हिन्दौ

विःवनीष



(चतुर्दश भाग)

पुराण— ११श लिङ्गपुराण।

पुर्व मागर्गे-१ सूत और नैमिषका संवाद, २ स्तका संक्षेपमें लिङ्गपुराणप्रतिपाद्य वर्णन, ३ प्राकृत सर्ग, ब्रह्माएड-का उत्पत्तिकथन, ४ युगादि परिमाणकथन, ५ ब्रह्मकृता-विद्यादि ब्रह्माएडसर्गकथन, ६ विह्निपित्-रुद्रकृतसृष्टिकथन, शिवके अनुप्रहसे निवृत्तिकथन, ८ योगमार्ग द्वारा शिवाराधनाविधि, अद्यङ्ग-साधनकम कथन, ६ योगियोंका विद्य, उपसर्गविधिकथन, अष्टविध पेश्वर्यहामकथन, १० महेशप्रसाद्पात कथन, लिङ्गपूजादिकथन, ११ श्वेतलोहित-कल्पप्रसङ्घमें सद्यजात और तिन्छिष्यसम्भवकथन, १२ रक्तकलप्रसङ्गमें वामदेव और तच्छिष्यसमाववर्णन, १३ पीतवासकल्पप्रसङ्गमें तत्पुरुष गायतीसम्भववर्णन, १४ असितकल्पप्रसङ्गमें अघोरोज्जवकथन, १५ अघोरमन्त्र-विधिकथन, १६ विश्वरूपकल्पप्रसङ्गर्मे ईशानसम्भव, पञ्च-्रध्रह्मात्मकस्तोत्न, गायतीका विचित्र महिमा-वर्णनः, १७ स्चआदद्भुत महिमवर्णन, ब्रह्मा और विष्णुके विवाद-मञ्जनार्थं लिङ्गोत्पत्ति, १८ विष्णुकृत शिवस्तीत, उसका फल्भ्रु तिकथन, १६ ब्रह्मा विष्णुसे वर पा कर आहादित महेश्वरका मोहनाशवर्णन, २० पान्नकल्पप्रसङ्गमें विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माको उत्पत्ति और चद्रदशन, २१ ब्रह्मा

और विष्णुकृत शिवस्तव. २२ ब्रह्मा और विष्णुकी महे-श्वरसे वरप्राप्ति, सर्पेव्हसम्भव, २३ श्वेतकल्पर्असङ्गीं ब्रह्माके प्रश्नानुरोधसे शिवकी सद्यश्राद्य त्पत्ति और गायंती-महिमकथन, २४ ब्रह्मांके निकट शिवका योगाचार्यावतार, विमिन्न द्वापरमें उनका शिष्य विभिन्न व्यास और भविष्य व्यासादिका कथन, २५ ऋषिगणकर्तुं क जिज्ञासित हो कर सूतको संक्षेपमें स्नानविधि और क्रमकथन, २६ सन्ध्या और पञ्चयज्ञादि विधकथन, २७ लिङ्गाचनविधिकथन, २८ मानसशिवपूजादिकथन, २ २६ देवदारुवनवासी ऋषियोंके चरितवर्णनप्रसङ्गमें सुदर्शन उपाल्यान, ३० शङ्करकी आराघनासे श्वेतकी मृत्युयाससे मुक्ति, ३१ ब्रह्माके कथितविधानमें तापसी ऋषियोंका शिवका साक्षात्, ३२ ऋषिगणकर्तृक शिवका स्तवं ३३ शिव-कर्तुंक स्तव और शैवमाहात्म्यवणन, ३४ ऋषियोंके प्रश्ना-नुसार शिवकथित भस्मस्नानादि-निरूपण ३५ क्षीप-ताड़ित द्घीचिकर् के शिवके प्रसादसे वज्रास्थि पा कर क्षपका मुण्डताङ्न, ३६ क्षुपकतृ क विष्णुका स्तव, देव-गणके साथ विष्णु और दधीचिका परामव, ३७ं सेनत्-कुमारसे जिक्रासित हो कर नन्दिकी उत्पत्तिविवरणकथा, ३८ विधाताके समीप विष्णु और शिवका माहात्स्य-

वर्णन, सृष्टिप्रकरण, ३१ युगधर्म, पुराणक्रमादि कथन, ४० कलिधमं, सत्ययुगका आरम्भ, कल्पमन्वन्तरादि कीर्त्तन, ४१ ब्रह्माका देवीपुत्रत्वकथन, तिमूत्ति का परस्पर उत्पा-व्कत्वकथन, तपःप्रीत महादेवके अनुप्रहसे ४२ शिलादका पुतलाम, ४३ नन्दीका मनुत्याकारलाभ और महादेवका महाप्रसाद प्राप्तिकथन, ४४ नन्दीका शिवकृत-गाणपत्याभिनेक और विवाह, ४५ ऋपियोंके समीप स्तका शिवरूपसमष्टिवर्णन, अधस्तलादि कथन, ४६ प्रियवत-पुतका पृथिवी-द्वीप-सागरकथन, पृथिवीका आधिपत्यकीत्त न, ४७ जम्बृद्धीपके अन्तर्गत नववर्ष कथन, अनी व्रवंशवण न, ४८ सुमेरमान और सूर्यप्रकादि कथन, ४६ जस्त्रृद्धीपमान, वर्णपव तादि कथन, ५० मितान्तशिख-रादिके शक्रादिका पुण्यायतनकीत्त^रन, ५१ शिवके प्रधान चतुःस्थानका कोत्त न, ५२ गङ्गोद्भवादि कथन, ५३ प्रक्ष-द्वीपादिकथन, ऊर्ध्वेलोक और नरकादिकोर्त्त न, ५४ सूर्य-का गतिनिरूपण, घुवादिकथन, ५५ शिवरूपी सूर्यका चैतादि मासकपसे द्वादशभेदकथन, ५६ सोमरथादिवर्णन, ५७ बुधादि रथप्रहमण्डपमानादि कीत्त[°]न, ५८ सूर्यं प्रमृति प्रहोंके आधिपत्य पर शिवका अभिषेचन, ५६ तिविध विह और सूर्यरिमसहस्नु-कार्यादि कथन, ६० प्रहप्रकृत्यादि कथन, ६१ गृहादि स्थानाभिमानिदेवकथन, ६२ ध्रुव-चरित, ६३ दश्चदेव-वशिष्ठादि सर्गकथन, ६४ वशिष्ठका पुत-शोक, पराशरकी उत्पत्ति, राक्षसगणदाहन, ६५ चन्द्रसूर्य-वंशवण नप्रसङ्घमं तिएडकोक्त शिवका सहस्रुनामकीर्च न, ६६ तिधन्वादि सूर्यवंशीय ययाति पर्यन्त चन्द्रवंशीय राजगणवर्ण न, ६७ ययातिचरित, ६८ सात्वत और यदु-मंशकीत्त न, ६६ कृष्णावतारकथा, ७० शिवकृत आदि ्र सर्गकथन, ७१ तिपुरवृत्तान्त, उसके नाशमें देवताओंका यत्त, ७२ तिपुरनाशके लिये ईश्वरका अभिप्राय, ७३ देव-् ताओंके प्रति ब्रह्माका लिङ्गार्चनिविधिकथन, ७४ लिङ्गमेद और लिङ्गसंस्थापनफलकथन, ७५ निगु ण शिवका ग्रोगागम्यत्वकथन, ७६ विविध शिवमूर्त्ति प्रतिष्ठाका फलकथन, ७७ शिवालय-निर्माणफल, शिवसेतमानादि-कथन, ७८ वस्त्रपूत जल द्वारा कार्यकरणका उपदेश, अहिंसाभक्तिफलकथन, ७६ उन्छिप्रादि गणकृत शिव-पूजा, दीपदान प्रसृतिका फलकथन, ८० शिवदेवगण-

संवाद, देवताओंका पशुत्वमोचन, ८१ पाशुपतव्रतकथन, ८२ व्यपोहनस्तवकथन, ८३ विविधशियवतकथन, ८४ डमामहेश्वरव्रतकथन, ८५ पञ्चाक्षरविधिकथन, ८६ सर्व-दुःखनिवारक-शिवकथित ध्यानादि कथन, ८७ शिवके अनुग्रह्से सनत्कुमार प्रभृतिकी मायासे मुक्ति, ८८ अणि-माद्याप्रसिद्धि, त्रिगुण-संसारादि कथन, ८६ योगिसदाचार, द्रव्यशुद्धि, स्त्रोधम निरूपण, ६० शिवीक्त यतिप्रायश्चित्त-विधि, ६१ मृत्युचिह, प्रणवमाहात्म्य और शिवोवासनादि कथन, ६२ वाराणसीमाहात्म्यकथन, ६३ अन्धंकासुरनिव्रह, वलराम-गाणपत्यप्राप्ति, ६४ वराहकतु क हिरण्याक्षवध और उद्धार, ६५ नृसिंहका हिरण्यकशिपुवध, ६६ नृसिंह-वीरमद्रसं वाद, नृसिंहपराजय, १७ जलन्यरवधादि कथन, ६८ शिवका सहस्रनाम सुन कर निज नैलकमलप्रदानपूर्वक पूजा द्वारा विष्णुका सुदर्शनचकलाभ, १६ देवीका शिव-वामाङ्गत्व और दक्ष-हिमालयसम्भवत्व-ऋथनप्रसङ्ग, १०० दक्षयज्ञध्यंस, १०१ पार्वतीकी तपस्या, मदनभस्म, १०२ देवीका शङ्करप्रसाद्लाम, १०३ शिवविवाह और पुतरत्पा दन, १०४ गणेशको सृष्टिके लिये सव देवताओंका शिव-स्तव, १०५ गणेशकी उत्पत्ति, १०६ शिवके नृत्यारम्म-प्रसङ्गमें कालोका उद्भव, १०७ भक्त उपमन्युके प्रति शिव-का प्रसाद,१०८ उपमन्युके निकट श्रीकृष्णका शैवदीक्षा-त्रहण ।

वर्गामामं—१ मार्कण्डेयाम्बरीयसंवादमं कीशिकवृत्तान्तकथन, २ विष्णुमाहात्म्यकीत्तं न, ३ नारदका गीतवाद्यलाम, ४ विष्णुमक्तलक्षण और उसका माहात्म्यवर्णन,
५ अम्बरीयचरित, ६ अलक्ष्मी समुत्पत्यादिकथन, ७
अलक्ष्मीनिराकरण, लक्ष्मीप्राप्तिका उपायकथन, ८ धीन्धुमूकचरित, ६ पशुनिरूपण, पाशकथन, शिवको पशुपतिनामनिरुक्ति, १० शिवके सामने सर्वसृष्टिकथन, ११ शिवका
विभूतिकथन, लिङ्गपूजामाहात्म्य, १२ अष्टमूत्तिकथन,
१३ अन्द्रमृत्तिकी पृथक् पृथक् संज्ञा, स्त्री-पुत्कथन, १८
शिवका पञ्चब्रह्मरूपवर्णन, १५ शिवके रूपनिरूपण
अधियोंका मत, १६ शिवका नानाविध नामरूपकोत्तं न,
१७ सगुणस्त्रविष्रहमें विश्वका उत्पत्तिकथन, १८ ब्रह्मादिकृत शिवका स्तव, १६ मण्डलमें शिवपूजाविधि, २०
मण्डलपूजा-अधिकारियोंका शिवदीक्षाविधिकथन, २१

शिवपूजानियमादि कथन, २२ सौरस्नानादि निरूपण, २३ मानसशिवपूजा, २४ शिवपूजाको विशेष उक्ति, २५ शिव-कथित अग्निकार्यकथन, २६ अघोरपूजाकथन, २७ जया-भिवेककथन, २८ तुलादानकथन, २६ हिरण्यगभँविधि, ३० तिलपर्वत-दानविधि, ३१ स्वल्पतिलपर्वत-दानविधि, ३२ स्वर्णमेदिनी-दानविधि, ३३ कल्पपादप-दानविधि, ३४ गणेशदानविधि, ३५ हेमधेनुदानविधि, ३६ लक्ष्मीदान-विधि, ३७ तिळघेनुदानविधि, ३८ गोसहसूप्रदानविधि, ३६ हिरण्याभ्वदानविधि, ४० कन्यादानकथन, ४१ हिरण्य-वृपदानविधि, ४२ गजदानविधि, ४३ अन्टलोकपालदान-विधि, ४४ श्रेण्डदानकथन, ४५ जीवश्रादकथन, ४६ ऋषियोंका प्रतिष्टाचिषयक प्रश्न, ४७ लिङ्गस्थापन, ४८ सूर्यादि देवतास्थापनविधि, ४६ अवोरेशप्रतिष्ठाकथन, ५० शृतु निप्रहप्रकारकथन, ५१ वज्रवाहनिका विद्याकथन, ५२ तिहिनियोगप्रकार, ५३ मृत्युञ्जयविधिकथन, ५४ सियम्बक-मन्त्र द्वारा शिवपूजाकथन, ५५ योगकथन, लिङ्गपुराण-पाड, श्रवण और श्रवणफलकथन ।

अव प्रश्न यह है, कि उक्त लिड्गुको प्रकृत-पुराणके मध्य गिन सकते हैं वा नहीं ? मतस्यपुराणके मतसे—

"यहाग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः। धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ॥ कल्पान्तं लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्। तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति॥"

(५३।३७)

जिस अन्थमें देव महेश्वरने अग्निलिङ्गमध्यस्थ हो कर अग्निकल्पान्तमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षार्थकथा प्रकाशित की थी, एकादशसहस्युक्त वही पुराण ब्रह्मा-कर्त क लिङ्ग नामसे वर्णित हुआ है।

फिर नारदपुराणमें छैङ्गपुराणकी अनुक्रमणिका इस प्रकार मिलती है—

"श्णु पुत प्रवक्ष्यामि पुराणं लिङ्गसंशितम् । पठतां श्रण्वताञ्चेव भक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ यद्य लिङ्गाभिधं तिष्ठम् विह्नलिङ्गे हरोऽभ्यधात् । मद्यं धर्मादिसिध्यन्तं अग्निकलपकथाश्रुयम् ॥ तदेव व्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम् । पुराणंलिङ्गमुदितं वह्न्याख्यान विचितितम् ॥

तदेकादशसाहस् हरमाहातम्यस्वकम्। परं सर्वेषुराणानां सारभूतं जगतये॥ पुराणोपकमे प्रश्नसृष्टि संक्षेपतः पुरा। योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम्॥ लिङ्गोन्द्रवस्तद्रचा च कीर्त्तिता हि ततःपरम्। सनत्कुमारशैलादिसंवाद्श्याथ पावनः॥ ततो दधीचिचरितं युग्धर्मनिह्नपणम्। ततो भुवनकोपाख्यो सूर्यसोमान्वयस्ततः॥ ततश्त्र विस्तरात् सर्गस्त्रिपुराख्यानकं तथा। लिङ्गप्रतिष्ठा भ्य ततः पशुपाशविमोक्षणम् ॥ शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम्। प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम्॥ अन्धकाख्यानकं पश्चाद्वाराहचरितं पुनः। नृसिंहचरितं पश्चाज्ञलन्धरवधस्ततः ॥ शैवं सहस्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम्। कामस्य दहनं पश्चात् गिरिजायाः करप्रहः॥ ततो विनायकाख्यानं नृत्याख्यानं शिवस्य च । उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः॥ विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीपकथा ततः। सनत्कुमारनन्दीशसंवादश्च पुनमु ने ॥ शिवमाहातम्यसं युक्तस्नानयागादिकं ततः। स्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा॥ वहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणन्ततः । प्रतिष्टा तत्र गदिता ततोऽघोरस्य कीन्त नम्॥ व्रजेश्वरी महाविद्या गायतीमहिमा त्यम्बकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च ॥ पतस्योपरिभागस्ते लैङ्गस्य कथितो मया। व्यासेन हि निवदस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः॥"

(हे पुत ! सुनो, अव लिङ्गपुराण कहता हूं। भगवान् हरने विह्निल्ङ्गमध्यस्थ रह कर मुक्ससे धर्मादि सिद्धिके निमित्त जो अग्निकल्पकथाश्रय लिङ्गपुराण कहा था,
व्यासदेवने उसीको दो भागोंमें विभक्त किया है। यह
लिङ्गपुराण अग्निके आख्यानसे चित्रित हुआ है। यह
हरमाहात्म्यस्चक पकादश सहस्र श्लोकोंमें परिपूर्ण है
और तीनों जगत्में सव पुराणोंका सारस्वरूप है। इसमें
प्रथमतः पुराणोपकम प्रश्न और संक्षेपमें सृष्टि-चर्णन है।
इसके पूर्वभागमें योगाख्यान, कल्पाख्यान, लिङ्गोत्पित्त
और उसको अर्चना, सनत्कुमार और शैलादिका पवित्र
संवाद, दघीचि-चरित, युगधर्म-निरूपण, भुवनकोषाख्यान, सूर्य और सोमवंश, विस्तृतरूपमें सृष्टि, तिपुरा-

ख्यान, लिङ्गप्रतिष्ठा, पशुपाशिवमोक्षण, समुद्यशिववत, सदाचारनिरूपण, सर्वविधवायश्चित्त और अरिष्ठ, काशी तथा श्रीशैलवर्णन, अन्धकाख्यान, वाराहचरित, नृसिंह-चरित, जलन्धरवध, शिवसहस्रनाम, दक्षयक्वविनाश, मद्नमोहन, गिरिजाका पाणिग्रहण, विनायकाख्यान, शिवका नृत्याख्यान और उपमन्युकथा, आदिका वर्णन है।

हे मुने ! इसके उत्तरभागमें ये सव विषय वर्णित हैं—विण्युमाहात्म्य, अम्बरीषकथा, स्नत्कुमार और नन्दीश-संवाद, शिवमाहात्म्यसंयुक्त स्नानयागादि, सूर्य-पूजाविधि, मुक्तिदायिनी शिवपूजा, वहु प्रकार दान, श्राद्ध-प्रकरण, प्रतिष्ठा, अधोरकी च न, वज्र श्र्वरी महाविद्या और गायतीकी महिमा, त्यम्बकमाहात्म्य और पुराण-श्रवणमाहात्म्य ।)

फिर शैवपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है —
"लिङ्गस्य चरितोक्तत्वात् पुराणं लिङ्गमुच्यते।"
लिङ्गका चरित वर्णित रहनेके कारण लिङ्गपुराण नाम
पड़ा है। विभिन्न पुराणोंसे लिङ्गपुराणके जो लक्षण उद्धृत
हुए हैं, प्रचलित लिङ्गपुराणमें उनका अभाव नहीं है।

प्रचलित लिङ्गपुराणमें ही लिखा है,— "ईशानकढपवृतान्तमधिछत्य महात्मना ।

ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम् ॥" (२।१) ईशानकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गमें पूर्वकालमें महात्मा ब्रह्मा-कर्तृक जो पुराण कल्पित हुआ था, उसका नाम लैङ्ग है। किन्तु पहले ही कहा जा चुका है, कि मात्स्य और नारदीय-के मतसे अग्निकल्पप्रसङ्गमें छैङ्गपुराण और ईशानकल्प-प्रसङ्गमें अन्तिपुराण वर्णित हुआ है। (मत्स्यपु॰ ५३ अ॰) इस हिसावसे ईशानकल्पाश्रयी छैङ्ग और अग्निकल्पाश्रयी हैंड्स एक है वा नहीं ? अधिक सम्मव है, कि वौद्धप्रभावके खर्व और ब्रह्मण्य प्रभावके अम्युद्यके साथ जव पुराणींका पुनः संस्कार होता था, उसी समय आग्नेयपुराणीक ईशानकल्पकी कथाओंका छैङ्गपुराणमें समावेश हुआ और र्ञानिकल्पके प्रसङ्गको,सम्मवतः आग्नेर्यपुराणके विषयीभूत समम्बन्द पौराणिकोंने छैङ्गुके मध्य अग्निकल्पकी कथाका स्पष्ट उहुं ख नहीं किया । किन्तु लिङ्गपुराणकी प्रतिपाद्य और समी कथाएं, यहां तक कि अग्निमय छिङ्गको कथा भी विवृत हुई हैं। जो कुछ हो, इस लैड्डके मध्य आदि

लिङ्गपुराणको अधिकांश कथाएं हैं। परन्तु परवतींकालमें कहर शैवोंके हाथमें पड़ जानेसे वीच बीचमें शिवकी और विल्पुकी निन्दाको कथा भी निवेशित हुई हैं। आदिपुराण किसीविशेष सम्प्रदायकी वस्तु होने पर भी उसमें सम्प्रदाय वा देवताविशेषकी निन्दाकी कथा थी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। सम्प्रदायकी है बाह्रे बीसे पुराणके मध्य ऐसी विद्वे पस्चक श्लोकावली बहुत पीछे प्रविष्ट हुई है। इस हिसाबसे सामान्य प्रक्षित श्लोकोंको अलग कर देनेसे इस लिङ्गपुराणको एक अति प्राचीन पुराण मान सकते हैं।

अरुणाचलमाहात्म्य, गौरीकल्यान, पञ्चाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्रनाम, रुद्राक्षमाहात्म्य भीर सरस्वतीस्तोत इत्यादि नामधेय कुछ छोटे छोटे प्रन्थ लिङ्गपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं। पर्ताद्भन्न वाशिष्ठ लैङ्ग-नामधेय एक उपपुराण भी मिलता है। हलायुघके ब्राह्मण-सर्वस्वमें वृहिल्ङ्गिपुराणसे बचन उद्धृत हुए हैं, पर भभी वह पुंराण देखनेमें नहीं आता।

१२श वराहपुराण ।

१ मङ्गलाचरण, सूतकृत प्रस्तावना, पृथिवीका प्रश्न, पृथिवीकृत परमेश्वरस्तुति, २ स्तोक्ति, वराहकर्तुं क पुराण-लक्षण कथनपूर्वक सृष्टिकथा, आदिसर्ग, पृथिवीका प्रश्न, वराहकत् क विस्तृत कपसे आदिसग वर्णंन, वराह-कर्^षक रुद्र, सनत्कुमार और मरीचि प्रशृतिकी उत्पत्तिकथा, प्रियव्रतकथा और प्रियव्रत-नारदस वाद, ३ नारद्कर्तुक ब्रह्मपारकथन, ४ वराहकर्तुक दशा-वतारकथनपूर्वक नारायणका रूपवर्णन, अध्वशिराका उपाख्यान, ५ अभ्वशिरा और कपिलका संवाद, रैभ्यउपा-ख्यान, यज्ञतनुस्तोत, ६ पुण्डरीकाक्ष-पारस्तोत भौर धर्म -च्याघ उपाख्यान, ७ रेभ्य तथा सनत्कुमारसंवाद, रेभ्य-कर्तुं क पितृदर्शन, रैभ्यकृत गदाधरस्तींत, ८ धर्मं ध्याध-का उपाख्यान, धर्मध्याधकृत पुरुषोत्तमाख्यस्तोत, ६ मादिकृत युगवृत्तान्त, १० विराटरूप दंशन और सुप्रतीक उपाख्यान, ११ गीरमुख उपाख्यान, १२ दुर्जयकृत नारायण-का स्तोत, १३ गौरमुख-मार्कण्डेयसंवाद, श्राद्धकाल, पितृगीता, १४ श्राद्धभोजनयोह्न व्यक्तियोंके नाम, श्राद्धमें

वजनीयगणके नाम, श्राद्धानुष्ठान-पद्धति, गौरमुख-का पूव जन्मवृत्तान्त, गौरमुखकृत नारायणका स्तोत्न, १६ दुजयस्त खर्ग जय, १७ प्रजागणका चरित, १८ अग्निकी उत्पत्तिकथा, १६ तिथिमाहात्म्यकथा, २० अभ्विनीकुमार-की जन्मकथा, द्वितीयास्रत्य, २१ गौरी-प्रादुर्भावकथा, दक्षयज्ञकथा, रुद्रसग[°], २२ दक्षयज्ञविनाश, रुद्रस्तोत, रुद्र-प्रसाद, पार्व तीजन्मकथा, हरपार्व तीका विवाह, नृतीया-इत्य, २३ गणेशजन्मकथा, गणेशके प्रति महादेवका शाप, गणेशका स्तोत, चतुर्थीकृत्य, २४ नागोत्पत्तिकथा, पञ्चमीकृत्य, २५ कात्ति केयकी उत्पत्तिकथा, देवगणकृत महादेवका स्तोत, २६ पष्टीमाहातम्य, आदित्योत्पत्तिकथा, सप्तमीकृत्य, २७ अन्धकासुरवधकथा, मातृगणोत्पत्ति-कथन, अष्टमीकृत्य, २८ कात्यायनीको उत्पत्तिकथा, वेत्ना-सुरवृत्तान्त, महेश्वरकृत कात्यायनीका स्तोत, नवमीकृत्य, २६ दिगुत्पत्तिकथा, दशमीकृत्य, ३० कुनेरोत्पत्तिकथा, एकाद्शीछत्य, ३१ नारायणस्त मनुरूपग्रहण, द्वादशीसत्य, ३२ धर्मोत्पत्तिकथा, त्रयोदशीहृत्य, ३३ रुद्रकी उत्पत्ति-कथा, देवगणस्त रहस्तोत, रहपशुपतिकथा, चतुर्दशी-कार्य, ३४ पितृसम्भवकथा, अमावस्या-कार्य, ३५ चन्द्रके प्रति दक्षका शाप, पौर्ण मासीस्टल्य, ३६ मणिजनृपति-गणका वृत्तान्त, प्रजापालकृत गोविन्दका स्तोत, विष्णु-का आराधनाप्रकार, ३७ आरुणिकवृत्तान्त, ३८ सत्यतपी-नाम घ्याधका वृत्तान्त, ३६ पृथिवीकृत व्रतीपाख्यान, ४० पौपशुक्क दशमीवतकथा, ४१ माघशुक्कद्वादशोवतकथा, ४२ फाल्गुनशुक्क एकादशीवतकथा, ४३ चैत्रशुक्कद्वादशी-वतकथा, ४४ वैशाखशुक्कद्वादशीकृत्य जामदग्न्यवतकथा, ४५ ज्यैष्टमासीय रामद्वादशोवतकथा, ४६ आवाढ्मासीय कृष्णद्वादशीवतकथा, ४७ श्रावणमासीय बुद्धद्वादशीवत कथा, ४८ भाद्रमासीय कल्किद्वादशीवतकथा, ४६ आश्विनमासीय पद्मनाभद्वादशीव्रतकथा, ५० कात्तिक-हादशीव्रतकथा, ५१ अगस्त्यगीतारम्म, उत्तम मत्त्रृ[©]लाम-शुभ्रव्रतकथा, वत्सप्रीनृपद्यत नारायणका वितकथा, स्तोत, ५६ धन्यव्रतकथा, ५७ कान्तिव्रतकथा, ५६ विघ्न-हरवतकथा, ६० शान्तिव्रतकथा, ६१ कामव्रतकथा, ६२ आरोग्यव्रतकथा, ६३ पुत्रप्राप्तिव्रतकथा, ६४ शौरेव्रतकथा, ६५ साव भौमवतकथा, ६६ नारद और विष्णुसंवाद, ६७ अहोरात चन्द्रसूर्यादिको रहस्यकथा, ६८ युगमेदसे धम मेद्कथा, गम्यागम्यानिरूपणकथा, अगम्यागमनके लिये प्रायश्चित्तविधि, ६६ अगस्त्यशरीरवृत्तान्त, ७**०** अगस्त्यका अवदान, ७२ तिदेवाभेदप्रसङ्गमें रुद्रोपदेश, गौतम, मारीच और शाण्डिल्य प्रभृतिका संवाद, काल-मेद्से ब्रह्मादि तीन देवताओंका प्राधान्यनिरूपण, ७३ रुद्रकर्तुं क नारायणका माहात्म्यकीर्त्तं न, रुद्रकर्तुं क नारा-यणका स्तोत, ७४ भूमिप्रमाणादिकथन, जम्बूद्दीपप्रमा-णादिकथा, ७५-७६ अमरावनीवर्णं न, सुरोचनी-प्रमुख स्थानवर्ण न, ७७ मेरुमूलवर्ण न, ७८ चैतरथादि शैलचतु-ष्ट्यको वर्ण^रना, ७६ पर्व[°]तान्त पर देवताओंका अवकाश-वर्णं न, निपधाचलपश्चिमवर्त्ती पर्वतादिकी वर्णं ना, शाकद्वीपवर्ण ना, कुशद्दीपवर्ण ना, भारतवर्ष वर्ण ना, कौञ्चद्वीपवण ना, शाब्मल प्रमृति द्वोपकी वर्ण ना, ब्रह्मादि तीन देवताओंका परापरत्वविवेक, अन्ध्रकासुरकथा, ६१ वैष्णवींकी उत्पत्तिकथा, ब्रह्मकृत शक्तिका स्तोत्न, ६२ वैज्ञाचीचरित, ६३ वैज्ञाची प्रहणके लिये महिषासुरके निज मन्त्रियोंकी अभिमन्त्रणा, वैष्णवी ग्रहणके छिये महिषा-सुरका मेरुपर्व तकी ओर प्रस्थानवर्ण न, वैष्णवी और महिपासुरके समक्ष दूतका संवाद, ६४ महिषासुरवध-वृत्तान्त, देवगणकृत वैष्णवीस्तोत, १५ रौद्रीचरित, रुख दैत्यका उपाख्यान, ६६ रुस्दैत्यवध, रुद्रकृत कालराहि-स्तोत, चामुएडाभेद्कथन, ६७ रुद्रका कपालित्व, रुद्रकृत-कापालिकवतका अनुष्ठान, रुद्रका कपालमोचन, कपालवत का फलवर्णन, ६८ सत्यतपाकी सिद्धि, ६६ चैत्रासुर्कथा, पञ्चपातकनाशका उपायकथ्न, विशेष प्रकारसे चिष्णु-पूजाका वर्णन, वराहपुराण श्रवणका फल, तिलघेनुदान-का फल, १०० जलधेनुदानका फल, १०१ रसधेनुदान-का फल, १०२ गुड्धेनुदानका फल, १०३ शर्कराधेनुदान-फल, १०४ मधुधेनुदानफल, १०५ क्षीरधेनुदानफल, १०६ द्धिघेनुदानफल, १०७ नवनीतघेनुदानफल, १०८ लवण-धेनुदानफल, १०६ कार्पासघेनुदानका फल, ११० धान्य-धेनुदानका फल, १११ कपिलाधेनुदानका फल, ११२ उमय-मुखीधेनुदानका फल, वराहपुराणका प्रचारक्रम, पुराण-समष्टिकी नामसंख्या, ११३ पृथिवी और सनत्कुमारका संवाद, ११८ पृथिवीके प्रति नारायणका प्रसाद, ११५-

११८ नारायण और पृथिवीका संवाद, ११६ विष्णुका भाराध्रनाप्रकारवर्णन, सुखदुःखमेदकथा, वाईस प्रकारके अपराधको कथा, भक्तखह्मपकथा, अपराधभञ्जन-प्राय-श्चित्त, प्रापण-निर्वाण-विधान, १२० त्रिसन्ध्यविष्णु-पासनाविधि, १२६ पुनर्जन्मवारणकर्म विधि, १२२ सना-तनधम स्त्रहपकथन, गर्भोत्पत्तिवारणकम विधि, तिर्यंग्-योनिपतनवारणकम विधि, कोङ्कामुखक्षेत्रप्रशंसा, १२३-१२४ गन्धपुष्पविशेषमें दानमाहात्म्य, ऋतूपकरणदानका फल, १२५ मायाखरूपकथन, १२६ कुन्जाध्रकमाहातस्य, १२७ सारमोक्षकर्यं कथन, १२८-१२६ झित्रयगणकी दीक्षाविधि, वैभ्यगणकी दीक्षाविधि, शूद्रगणकी दीक्षा-विधि, दीक्षितगणकी कर्त्त व्यविधि, दीक्षितगणकी विष्णु-पूजाविधि, १३०-१३६ अपराधश्रायश्चित्तविधि, दन्तकाष्ट-भक्षणके लिये प्रायश्चित्तविधि, मृतस्पर्शके कारण प्राय-श्चित्तविधि, विद्यात्यागके लिये प्रायश्चित्तविधि, दुन्कर्म करनेके कारण प्रायश्चित्त, जालपादाद्य भक्षणके कारण प्रायश्चित्तविधि, १३७ प्रायश्चित्तकर्मका स्त्र, १३८ सीकरक्षेत्रका माहात्म्यवर्णन, गृध्र और शृगालीका इति-हास, वैवस्वततीर्थका माहात्म्यवर्णन, खन्नरीद उपाख्यान, कम[े]फलकथन, गोमयलेपनादिफलकथन, चाएडाल-ब्रह्मराक्षस-संवाद, १४० कोकामुखका श्रे प्रत्व-माहातम्य, १४२ वद्रिकाश्रमका १४१ रजस्बलाकर्त्तं व्य गुहाकर्मं का आख्यान,१४३ मधुराक्षेत-माहात्म्यवर्णं न, १४४ शास्त्रप्रामका माहात्म्यवर्णं न, १४५ शालङ्कायनक उपाख्यान, १४६ रुरुका उपा-ख्यान और रुरुक्षेतका माहातम्यवण^६न, १४७ ह्रपीकेश-माह्यत्म्यवण न, गोनिकमणमाह्यत्म्यवर्णन, १४८ स्तुत-स्वामीतीर्थंका माहात्म्यवर्णन, १४६ द्वारवतीमाहात्स्य-बर्ण न, १५० सानन्दूरमाहातम्यवर्ण न, १५२ छोहार्गछ-माहात्म्यवर्णं न, पञ्चसरःक्षेत्रमाहात्म्यवर्णं न, १५३-१५४ मथुरामर्ख्डलमाहात्म्यवर्ण[°]न, १५५ मथुरामर्खलमें अक र-तीर्थका माहात्म्यवर्णन, १५६ मथुरामएडलमें वत्सकीड्न-तीर्थका माहात्म्यवर्ण न, १५७ मथुरामएडलमें मलयार्जुन-तीर्थमाहात्म्यवर्णं न, १५८ मथुरापरिक्रमण-फल, १५६ विश्रान्तितीर्थंका माहात्म्य्फल, १६० देववन-प्रभाववर्णन, १६२ चलतीर्थका माहात्म्यवण न, १६३ वैकुराठादितीर्थ- ं

माहात्स्य, कपिछचरित, १६४ गोवद्ध नमाहात्स्यवण न, १६५ मथुरामण्डलमें कूपमाहात्म्यवर्ण न, १६६ असि-कुएडमाहात्म्यवण^६न, १६७ विश्वान्तिक्षेत, १६८ क्षेत्रपाल-गण, १६६ अद्ध^{*}चन्द्रक्षेत्र, १७० मधुरामएडळमें गोकण^{*}-माहात्स्यवण^६न, शुकेश्वरमाहात्स्यवण^६न, महानसप्रेत-संवाद, १७१ सरस्रती-यमुनासङ्गमपर विष्णुपूजाकी फलकथा, कृष्णगङ्गाका माहात्म्यवण[्]न, पाञ्चाल ब्राह्मणीं-का इतिहासवर्णं न, शाम्वका उपाख्यान, १७८ रामतीर्थंमें द्वादशोवतमाहात्म्यफल, १७६ प्रायश्चित्तनिरूपणविधि, १८० सेतिहास भ्रुवतीर्थका माहात्म्यवर्ण न, १८१ काछ-प्रतिमास्थापनविधि, १८२ शैलप्रतिमास्थापनविधि, १८३ मृण्मयप्रतिमास्थापनविधि, १८४ तात्रप्रतिमास्थापनविधि, १८५ कांस्यप्रतिमास्थापनविधि, १८७-१६० रजतप्रतिमा-स्थापनिवधि, श्राद्धका उत्पत्तिवर्ण न, अशौचनिरूपणविधिः मेधातीथिपितृसंवाद, पिएडसङ्कल्पप्रकार, १६१ मधुपर्कीनरू-पनविधि, मधुपर्भदानप्रकारकथन, १६३-१६६ यमालयादि-सक्रपकथन, नाचिकेतका यमालयसे प्रत्यागमनवृत्तान्त, १६७ यमनगरका प्रमाणादिकथन, १६८ यमकी सभावण ना, १६६ पापियोंकी गतिवर्णना, २०० नरकवर्णना, २०१ यमदूरोंकी खरूपवर्ण ना, २०२ चिल्रगुप्तकी प्रभाववर्णना, २०३ चित्रगुप्तकर्तृक प्रायश्चित्तनिर्देश, २०४ चित्रगुप्त-कर्तुं क दूतप्रे रणवृत्तान्त, यम और चित्रगुप्तका संवाद, २०५-२०६ चित्रगुप्तकर्षं क शुभाशुभ कर्मं का फलनिर्देश, २०७ नारदसन्दिए-पुरुषविलोभनगुण, २०८ पतिव्रतो-पाल्यान, २०६ यमनारहसंवाद, २१० भास्करकर्षक-धर्म उपदेश, २११-२१२ प्रे बोधिनीमाहात्म्यकथन, २१३ गोकर्णे श्वरमाहात्म्यवर्णे न, २१४ नन्दिकेश्वर-वरप्रदान, २१५ जलेभ्बरका माहातम्य, २१६ शृङ्गेभ्बरका माहात्म्य-वर्ण न, २१७ फलश्रु तिवर्ण न, २१८ विषयानुक्रमणी।

उत्परमें जिस चराहपुराणकी स्वी दी गई है, अभी वही प्रचलित और मुद्रित देखी जाती है। यह गौड़सम्मत वराह है। अलावा इसके दाक्षिणात्यमें एक और वराह पाया जाता है। एक विषयक होने पर भी गौड़ीय रामायण और दाक्षिणात्य रामायणमें जिस प्रकार वहुपाठान्तर और अध्यायान्तर देखा जाता है उक्त हो बराहमें भी उसी प्रकार वहुपाठान्तर देखे जाते हैं।

एकविषयकवण नामें अनेक जगह ऐसे मिन्नरूपके श्लोक मिलते हैं, कि जिन्हें देखनेसे मालम होता है, कि वे भिन्न श्लोको अन्थ हैं और भिन्न हाथके लिखे हुए हैं। वार्लिन-के राजपुस्तकालयकी तालिकामें भी इस पुस्तकका नाम आया है। दोनों ही पुस्तकमें अध्यायसंख्या और पाठका मेल नहीं होने पर भी एक ही विषयको आलो-चना है।

अब यह प्रश्न होता है, कि उपरोक्त विवरणमूलक वराहकों आदि-वराह-पुराणके मध्य गण्य कर सकते हैं वा नहीं ? पुराणका स'स्कार होनेके वाद नारदपुराणमें वराहकों अनुक्रमणिका इस प्रकार दो गई है—

"शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम्। भागद्वययुतं शश्वद्धिःगुमाहातम्यसूचकम् ॥ मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्ऋतं पुरा। निववन्ध पुराणेऽस्मि श्चतुर्विंशसहस् के ॥ व्यासी हि विदुषां श्रेष्ठ साक्षात्रारायणी भुवि। ततादी शुभसं वादः स्मृतो भूमिवराहयोः॥ अथादिकतवृत्तान्ते रैभ्यस्य चरितं ततः। दुजैयाय च तत्पश्चाच्छाद्धकल्प उदीरितः॥ महातपस आख्यानं गीय्यु त्पत्तिस्ततः परम्। विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरिप ॥ गणानाञ्च तथा देव्या धनदस्य चृपस्य च । थाल्यानं सत्यतपसो वताल्यानसमन्त्रितम्॥ अगस्त्यङ्गिरा तत् पश्चात्रुद्रगीता प्रकीर्त्तिता। महिषासुरविध्वंसे माहात्म्यञ्च तिशक्तिजम्॥ पर्वाध्यायस्ततः श्वे तोपाख्यानं गोप्रदानिकम् । इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमोद्दे शनामकम् ॥ भगवद्धमें के पश्चात् वततीर्थंकथानकम्। द्वार्तिशद्पराधानां प्रायश्चित्तं शरीरकम्॥ तीर्थानाञ्चापि सर्वेषां माहातम्यं पृथगीरितम्। मधुरायां विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः॥ वण नं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसङ्गतः । विपाकः कर्म णाञ्चीव विष्णुवतनिरूपणम्॥ गोकर्ण स्य च माहात्म्यं कीर्त्तितं पापनाशनम्। इत्येय पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य निरूपितः॥ उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयोः। संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात् पृथक्॥ अशेषधर्माश्चाख्याताः पौकरं पुण्यपर्व च। इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तः पापविनाशनम्॥" (हे वत्स ! सुनो, वराहपुराण कहता 🛊 । यह पुराण हो भागोंमें विभक्त है और सबदा विष्णुमाहात्म्यस्चक है। मानवकल्पका जो कुछ प्रसङ्ग पहले मुक्तसे वर्णित हुए हैं. साक्षात् नारायणस्वरूप विद्याप्रवर व्यासने उन्हें इस चौवीस हजार श्लोकपूर्ण पुराणमें प्रथित किये हैं। इसके आरम्भमें ही भूमि और वराहका शुभस वाद. आदि वृत्तान्तमें रैभ्यचरित, श्राद्धकरूप, महातपाका आख्यान. गौरीकी उत्पत्ति, विनायक, नागगण, सैनानी (कार्त्तिकेय) आदित्य, गणसमुदाय, देवी. घनद और वृषका आख्यान, सत्यतपाका व्रत, अगस्त्यगीता, रुद्रगीता, महिपासुर-ध्वं समाहात्म्य, पर्वाध्याय. श्वेतोपाख्यान इत्यादि वृत्तान्त और पीछे भगवद्धम में वततीर्थंकथा. द्वाविशत् अपराधका शारीरिक प्रायश्चित्तसमुदाय, तीर्थका पृथक् पृथक् माहात्म्य, मथुरामें चिशेषरूपसे आद्वादिकी विधि, ऋषि-पुत्रप्रसङ्गमें यमलोकचण न, कम विपाक, विष्णुव्रतनिरू-पण और गोकण माहात्म्य, ये सव वृत्तान्त इसके पूव-भागमें निरूपित हुए हैं।

उत्तरभागमें पुलस्त्य और कुरुराजके संवादमें विस्तृतरूपसे सर्व तीर्थका पृथक् पृथक् माहात्म्य, अशेष धर्माख्यान और पौक्तर नामक पुण्यपव⁸ वर्णित हैं।)

मत्स्यपुराणके मतसे—

"महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च । विण्णुनाभिहितं क्षौण्ये तद्वाराहिमहोच्यते ॥ मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः । चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥".

जिस प्रनथके मानवकल्प-प्रसङ्गमें विष्णुकतृ क पृथिवी-के सामने महावराहका माहात्म्य विवृत हुआ है, वही २४००० स्होकयुक्त पुराण 'वाराह' नामसे प्रसिद्ध है।

नारदीयके लक्षणोंके साथ प्रचलित वाराहका बहुत कुछ सादृश्य रहने पर भी मानवकल्पप्रसङ्गमें महावराह-माहात्म्य वर्णित नहीं है, अथवा अभी जिस प्रकार वाराहमें बहुस ख्यक व्रतादिका उल्लेख है, प्राचीन वराह-में अथवा नारदीयपुराणके सङ्कलनकालमें जो वराह प्रचलित था, उसमें वे सव विषय थे वा नहीं, सन्दे ह है। आज कलका वराह भविष्योत्तरके जैसा नाना पुराणों-से सङ्कलित है, यह वराहपुराण पढ़नेसे ही मालूम होता है, यथा—मथुरामाहात्म्यमें— "शास्त्रप्रख्याततीर्थे तु तत्नै वान्तरधोयत् । शास्त्रस्तु सह सूर्येण रथस्थेन दिवानिशम् ॥" (५०) रवि पप्रच्छ धर्मात्मा पुराणं सूर्यभापितम् । भविन्यपुराणमिति ख्यातं कृत्वा पुनर्नवम् ॥" (वराह० १७९ अ०)

इस पुराणमें बुद्ध हादशीका प्रसङ्ग है। इससे भी वीध होता है, कि बुद्ध देव हिन्दुसमाजमें अवतारके वाद वराहने वर्त्त मान-रूप धारण किया है। यह वराहपुराण एशिया-टिक सोसाइटीसे मुद्रित हुआ है। इसकी क्लोकसंख्या प्रायः १०५०० है। किन्तु नारदपुराणको वराहानुक्रमणि-का पढ़नेसे यह मुद्रित वराह भी असम्पूर्ण के जैसा प्रतीत होता है। इसके अनुसार केवल पूर्व भाग मुद्रित हुआ है। उत्तरभागके पुलस्त्य-कुरुराज-संवादमें सभी तीथांका विस्तृतभावसे पृथक् पृथक् माहात्म्य, नानाविध धर्मा-ख्यान और पौष्करपर्व इत्यादि मुद्रित पुराणमें नहीं हैं।

सुप्रसिद्ध हेमाद्रिने १३ वीं शतान्दीमें चतुवर्गचिन्ता-मणिके मध्य वराहोक्त बुद्धहादशीका उल्लेख और १२वीं शतान्दीमें गौड़ाधिप वल्लालसेनने दानसागरमें इस चराहसे खोक उद्धृत किये हैं। इस हिसावसे भी इस चराहको १०वीं वा ११वीं शतान्दीका प्रनथ स्त्रीकार करने-में कोई उत्पत्ति नहीं रहती।

चातुर्मास्यमाहात्म्य, त्राम्यकमाहात्म्य, भगवद्गीता-माहात्म्य, मृत्तिकाशौचविधान, विमानमाहात्म्य, वेङ्कट-गिरिमाहात्म्य, व्यतिपातमाहात्म्य और श्रीमुष्णमाहात्म्य ये सव छोटे छोटे प्रनथ वराहपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं।

५३श स्कन्द-पुराख।

अभी स्कन्दपुराण नामका कोई एक स्वतन्त प्रन्थ नहीं मिलता। नाना संहिता, नाना खएड और वहुसंख्यक माहात्म्य जो प्रचलित हैं वे इसी स्कन्दपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं। यही सब संहिता, खएड और माहात्म्य ले कर यह प्रचलित स्कन्दपुराण शेप हुआ है। किन्तु उन सब खएडादिमेंसे कीन खएड पहले और कौन खएड पोछे होगा तथा कीन माहात्म्य किस खएड वा संहिताके अन्तर्गत है, यह सहजमें स्थिर नहीं किया जा सकता। खुतरां स्कन्दपुराणकी विषयानुकर्मणिका देनेके पहले उन सब खएडादिका पारस्पर्य-निणय करना आवश्यक है। स्कन्दपुराणीय शङ्करसंहिताके हालास्यमाहात्म्यमें लिखा है—

> "स्कान्दमद्यापि वक्ष्यामि पुराणं श्रुतिसारजस ॥६२ पढ़ विधं संहिताभेदैः पञ्चाशत्ष्वएडमिएडतम्। आद्या सनत् कुमारोक्ता द्वितीया स्तसंहिता॥ ६३ रुतीया शाङ्करी श्रीका चतुर्था वैष्णवी तथा। पञ्चमी संहिता बाह्यो पष्टी सा सीरसंहिता॥"

वेदके सारसे सङ्कलित स्कन्दपुराण ६ संहिताओं और ५० खण्डोंमें विभक्त है। इसकी आदि संहिताका नाम सनत्कुमार, द्वितीयका सूतसंहिता, तृतीयका शङ्कर-संहिता, चतुर्थका चैळावसंहिता, पञ्चमका ब्रह्मसंहिता और पष्टसंहिताका नाम सौरसंहिता है।

स्तसं हितामें भी उक्त छः संहिताओंका , उल्लेख है तथा प्रत्येक संहिताकी प्रन्थसं ख्या भी इस प्रकार निर्दिष्ट हुई है,—

> अन्थतश्चैव पर्हिशत् सहस्रे णोपलक्षिता । आद्या तु संहिता विद्या ! द्वितीया षट सहस्रिका ॥ वृतीया अन्थतिस्त्रशत्सहस्रे णोपलक्षिता । वृतीया संहिता पञ्चसहस्रे णाभिनिर्मिता ॥ ततोऽन्या विसहस्रे ण अन्थेनैव विनिर्मिता । अन्या सहस्रतः सृष्टा अन्थतः पिएडतोत्तमाः ॥"

सनत्कुमार-संहिताको प्रन्थसंख्या ३६००० स्तरसंहिता ६००० शङ्करसंहिता , ६००० वैष्णवसंहिता , ५००० ब्राह्मसंहिता , १००० सौरसंहिता , १०००

स्कन्दपुराणीय प्रचलित प्रभासखण्डके मतसे— "पुरा कैलासशिखरे ब्रह्मादीनाञ्च सनिधी। स्कान्दं पुराणं कथितं पार्वत्ययं पिणाकिना। पार्वत्या पण्मुखस्यायं तेन नन्दीगणाय वै। नन्दिनातिकुमाराय तेन व्यासाय धीमते॥ व्यासेन तु समाख्यातं भवद्भ्योऽहं प्रकीत्तिंथे॥ उसके वादके अध्यायमें लिखा है-

"स्कान्दन्तु सप्तधा भिन्नं वेदव्यासेन घोमता।

एकाशीतिसहस्नाणि शतं चैकं च संख्या॥

तस्यादिमो विभागन्तु स्कन्दमाहात्म्यसं युतः।

माहेश्वरसमाख्यातो द्वितीयो वैश्ववस्य च॥

तृतीयो ब्रह्मणः प्रोक्तः सृष्टिसं क्षेपसूचकः।

काशीमाहात्म्यसं युक्तश्वतुर्थः परिपञ्चते।

रेवायां पञ्चमो भाग उज्जयिन्याः प्रकीत्ति तः॥

पष्टः कल्पार्चं नं विश्वं तापोमाहात्म्यस्चकः।

सप्तमोऽथ विभागोऽयं स्मृतः प्रभासिको द्विजाः।

सर्वे द्वादश साहस्रं विभागाः साधिकाः स्मृताः॥"

(प्रभासख०)

पुराकालमें कैलासशिखर पर ब्रह्मादिके समक्ष पिणाकीने पार्वतीको स्कन्दपुराण कहा था। पीछे पार्वती-ने पड़ानन कार्त्ति केयको, कार्त्ति केयने नन्दीको, नन्दीने अलिकुमारको, अलिकुमारने व्यासको और व्यासदेवने मुक्ते (स्तको) सुनाया।

यह स्कन्द्पुराण वेदच्याससे सात भागोंमें विभक्त किया गया है। इसमें कुछ ८११०० श्रुगेक हैं। इसके 'आदि भागका नाम स्कन्दमाहात्म्यसं युत 'माहेश्वर' खएड, द्वितीयका 'वैम्मव' खएड, तृतीयका संक्षेपमें सृष्टि-वण नासूचक 'ब्रह्म' खएड, चतुर्थका काशोमाहात्म्य युक्त 'काशो' खएड, पञ्चमका उज्जयिनीका कथायुक 'रेवा' खएड, षष्ट कल्पपूजा, विश्वकथा और तापोमाहात्म्य सूचक 'तापी' खएड और सप्तम भागका नाम प्रमास-कथायुक्त 'प्रमास' खएड है। इन सव खएडोंमें वारह हजारसे अधिक विभाग निर्दिग्ट हैं।

फिर नारद्पुराणको स्कन्दोपक्रमणिकासे परिचय मिलता है, वह इस प्रकार है—

नारद्पुराणको स्कन्दोपक्रमणिकासे पुनः इस प्रकार परिचय मिलता है,—

"श्रृणु वक्ष्ये मरीचे च पुराणं स्कन्दसं ज्ञितम्।
यस्मिन् प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः ॥
पुराणे शतकोटीतु यच्छे वं विणितं मया।
छक्षितस्यार्थजातस्य सारो व्यासेन कीर्त्तितः ॥
स्कन्दाह्मयस्ततं खण्डाः सन्तेत्र परिकरिपताः।
पकाशीतिसहस्रन्तु स्कान्यं सर्वाधकृत्तनम् ॥
यः श्रृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः।
(१म) यत्न माहेश्वरा धर्मा पण्मुखेन प्रकाशिताः॥

कल्पे तत्युष्पे वृत्ताः सव सिद्धिविधायकाः। तस्य माहेश्वरश्चाद्यः खण्डः पापप्रणाशनः॥ किञ्चिन्नयूना कैसाहस्रो वहुपुण्यो वृहत्कथः। सुचरित्रशतैयुं कः स्कन्दमाहातस्यसूचकः॥ यत केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा। द्श्रयज्ञकथापश्चाच्छिवलिङ्गाचँने फलम् ॥ समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः । पाव^रत्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्॥ कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्गवः। ततः पाशुपतास्यानं चण्ड्याख्यानसमाचितम् ॥ दूतप्रवर्त्तनाख्यानं नारदेन समागमः। ततः कुमारमाहात्म्वे पञ्चतीयेकयानकम्॥ धर्मवर्म-नृपाख्यानं नदीसागरकीत्तितम् । दरम्युम्नकथा परवासाङ्गीजंघकथाविता॥ प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च । महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः॥ ततस्तारकयुद्धंच नानाष्यान-समाहितम्। वश्रस्य तारकस्याथ पश्चलिङ्गनिय वणम् ॥ द्वीपाख्यानं ततः पुण्यं ऊध्वलोकव्यवस्थितिः। ब्रह्माण्डस्थितिमानंच वकेरेशकथानकम् ॥ महाकालसमुद्गृतिः कथा चास्य महाद्गुता। वा सुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम्॥ नानातीर्थंसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रं प्रकीर्त्तितम् । पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्या प्रसाधनम्॥ तीर्थयातासमाप्तिश्च कीमारमिद्मन्द्रुतम् । अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा ॥ गौरोतपःसमाख्यानं ततस्तीर्थेनिरूपणम् । महिपासुरजाख्यानं वध्रश्चास्य महाद्भुतः ॥ शोणाचले शिवास्थानं नित्यदा परिकोर्त्तितम्। इत्येप कथितः स्कान्दे खण्डे माहेश्वरोऽङ्गृतः॥ (२य) द्वितीयो वैज्यवो खण्डस्तस्याख्यानानि मे श्रृणु । प्रथमं भूमियाराहं समाख्यानं प्रकीत्तितम्॥ यत रोचककुभृस्य माहात्म्यं पापनाशनम् । कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः॥ कुळाळाख्यानकं यत खुवणमुखरीकथा। नानाख्यानसमायुक्ता मरद्वाजकथाद्भुता ॥ मतंगाञ्जनस वादः कीर्सितः पापनाशनः। पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्त्तितं चीत्कछे ततः॥ मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीयस्य भूपतेः। इन्द्रचु सस्य चाख्यानं विद्यापतिकथा शुभा॥ जैमिनेः समुपाच्यानं नारदस्यापि वाडवः ।

नीलकण्डसमाख्यानं नार्रासहोपवण नम्॥

अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तया ।

रथयाताविधिः पश्चाज्ञपस्नानविधिस्तथा॥ दक्षिणामूत्तं याख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः। रथरस्राविधानञ्च शयनोत्सवकीत्त नम् ॥ श्वेतीपाख्यानमं बोक्तं वह्न्युत्सव-निरूपणम्। दोलोत्सवी भगवती वतं साम्वत्सराभिधम्। पूजा च कामिमिर्विण्णोरुद्दालकनियोगकः। मोक्षसाधनमन्त्रोक्तं नानायोगनिक्तपणम् ॥ दशावतारकथनं स्नानादि-परिकीर्त्तितम्। ततो वद्रिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम्॥ अ न्यादितीथमाहात्म्यं धैनतेयशिलाभवन् । कारण भगवद्वासे तीर्थं कापालमोचनम्॥ पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थादने नथा। ततः कार्तिकमाहातम्ये माहातम्यं मदनालसम्॥ धूब्रकोणसमाख्यानं दिनहत्यानि कार्तिके । पञ्चभीष्मवताख्यानं कीत्तिदं भक्तिमुक्तिद्व्॥ तद्वतस्य च माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा। पुण्डादिकार्त्तं नं चाल मालाधारणपुण्यकम्॥ पञ्चामृतस्नान्युण्यं घण्टानादादिजं फलम्। नानापुष्पार्चनफलं तुलसीदलजं फलम्॥ नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासरकीत्त नम्। अखण्डैकाद्गी पुण्या तथा जागरणस्य च ॥ मत्स्योत्सवविधानञ्च नाममाहात्म्यकीत्तिनम्। ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुरामवम्॥ मथुरातीधेमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम्। वनानां द्वादशानाञ्च माहात्म्यं कोर्त्तितं ततः॥ श्रीमद्भागवतस्याल माहात्म्यं कीर्त्तितं परम्। वज्रशाण्डित्यसं वाद् अन्तर्सीराप्रकाशकः ॥ ततो साघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् । नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्याये निरूपितम्॥ ततो वैशाखमाहातम्ये शय्यादानादिजं फलम्। ज्ञलदानादिचिपयः कामाख्यानमतः **परम्** ॥ श्रु तदेवस्य चरितं व्याघोपाख्यानमद्भुतम् । तथाक्षयतृतीयादेविशेपात् पुण्यकीसं नम् ॥ 'ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रव्रह्याहृतीर्थं के। ऋणपापविमोक्षाख्ये तथा घारसहस्रकम् ॥ स्वर्गद्वार चन्द्रहरिधर्महर्यु प वर्णनम् । स्वंर्णवृष्टेरुपाच्यानं तिलोदा सरय्युतिः॥ सीताकुण्डं गुप्तहरिः सरयूघघराह्यः। गोप्रचारञ्च दुःधोदं गुरुकुण्डादि पंचकम्॥ घोषाकादीनि तीर्धानि तयोदश ततः परम्। गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्वाङ्गविनिवत्तं कप् ॥ माण्डच्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदन्तरम् । अजितादिमानसादि तीर्थानि गदितानि च ॥

इत्येप वैणावः खण्डो द्वितीयः परिकास्तितः॥ (३य) अतःपरं इह्मखण्डं मरीचे श्रुणु पुण्यदम् । यत वै सेतुमाहातम्थे फर्ल स्नानेक्षणोद्भवम्॥ गाळवस्य तपश्चया राक्षसाख्यानकं नतः। चकतीर्थादिमाहारम्यं देवीतपनसं युत्म् ॥ वेतालतीर्थमहिया पापनागादिकी त्र नम्। मङ्गळादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम्॥ हन्मत्कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थमवं फलम् । रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिकपणम् ॥ रांखादितीधंमहिमा तथा साध्यानुतादिकः। धनुष्कोट्यादिमाहात्स्यं क्षीरकुएडादिजं तथा॥ गायत्रगदिकतोर्थांनां माहात्स्यं चाल कीत्ति तम्॥ रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम्। यातात्रिधानकथनं सेती मुक्तिप्रदं नृणाप्॥ धमारण्यस्य माहात्स्य ततः परमुदीरितम्। स्थानुः स्कन्दाय भगवान् यह तत्त्वमुपादिशत्॥ धर्मारण्यमुसंभूतिस्तत्वुण्यपरिक्षीत्तं नम्। कर्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम्॥ अप्सरातीर्थं मुख्यानां माहातम्यं यत्न कीत्तिंतम्। वर्णनामाभ्रमानांच धर्मतत्त्वनिरूपणम् ॥ देवस्थानविभागश्च वक्तलाकंकथा शुभा। छवा नन्दा तथा शान्ता श्रीमाता 🖘 मतंगिनी ॥ पुण्यदालाः समाख्याता यत्न देव्यः समास्थिताः। इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम्॥ लोहासुरसमाख्यानं गंगाकूपनिरूपणम् । श्रीरामचरितं चैव सत्यमन्दिरवणेनम्॥ जीर्णोद्धारस्य कथनं शासनप्रतिपादनम् । जातिमेदप्रकथनं स्पृतिश्रमनिरूपणम्। ततस्यु वैष्णवा धमाः नानाख्यानैस्दीरिताः। चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सवधमनिरूपणम्। दानप्रशंसा तत्पश्चाद्रृतस्य महिमा ततः। तपसञ्चैव पूजाया सिच्छद्रक्षथनं ततः ॥ प्रस्तोनां भिदाख्यानां शास्त्रप्रामनिरूपणम्। तारकस्य वधोपायस्त्राक्षाचीमहिमा तथा ॥ विष्णोः शापश्च वृक्षत्यं पार्यत्यातुनयस्ततः। हरस्य ताएडवं नृत्यं रामनामनिरूपणम्॥ हरस्य लिंगपूजनं कथायै जवनस्य च । पावतीजनमचरितं तारकस्य वधोऽद्भुतः॥ प्रणवैश्वयंकथनं तारकाचरितं पुनः । द्खयन्नसमाप्तिश्च द्वाद्शाक्षरक्षपणम् ॥ ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा हाद्शार्भनः। श्रवणादिकपुण्यञ्च कीत्ति दं शर्मदं नृणाम् ॥ ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्गुतः।

पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकण महिमा ततः॥ शिवरात श्च महिमा प्रदोपवतकी त नम्। सोमवारवतं चापि सीमन्तिन्याः कथानकम्॥ भद्रायुत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम्। शिवधमेसमुद्देशो भद्रायुद्वाह्वणेनम् ॥ भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्थकीत्तं नम्। शवराख्यानकञ्चीय उमामाहेश्यरवतम्॥ रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् । श्रवणादिकपुण्यं च ब्रह्मखण्डोऽयमीरितः॥ (१र्थ) अतः परं चतुर्शं च काशोखएडमनुत्तमम्। विन्ध्यनारद्योर्येत्र संवादः परिकोर्त्तितः॥ सत्यलोकप्रभावश्वागस्त्यावासे सुरागमः । प्रतिव्रताचरितं च तीर्थचर्याप्रशंसनम्॥ ततश्च सप्तपुर्व्याख्या संविमन्यानिरूपणम्। ब्रह्मस्य च तथेन्द्रोग्न्योलोंकाप्तिः शिवशर्म णः॥ अग्नैः समुद्भवश्चैव कथाहरुणसम्भवः। गन्धवत्यलकापुर्योरीश्वर्याश्च समुद्धवः॥ चन्द्रोडुवुधलोकानां कुजेज्याकमुवां क्रमात्। सप्तर्पीणां ध्रुवस्थापि तपोलोकस्य वर्णनं ॥ भ्रुवलोककथा पुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम्। स्कन्दागस्त्यसमाळापो मणिकणींसमुद्भवः॥ प्रभावश्वापि गङ्गाया गंगानामसहस्रकम्। वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविभवस्ततः॥ द्राडपाणिज्ञानवाण्योरन्द्रवः समनन्तरम्। ततः कलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम्॥ व्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रोलक्षणानि च । कृत्याकृत्यविनिर्देशो हाविमुक्ते शवर्णनम्। गृहस्थयोगिनो धर्माः कालज्ञानं ततः परम्। दिवोदासकथा पुण्या काशीवण नमेव च॥ योगिचर्या च लोलाकॉत्तरशास्वाकंजा कथा। द्रुपदार्शस्य तार्क्यांच्यारुणार्शस्योदयास्ततः॥ दशाश्वमेधतीर्थाख्वो मन्दराच गमागमः। पिशाचनोचनाख्यानं गणेशप्रे पणन्ततः॥ मायागणपतेरवाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः। विष्णुमाया प्रयञ्चोऽय विवोदासिवमोक्षणम् ॥ ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्जिन्दुमाधवसम्भवः। ततो वैक्षवतीर्घाख्या शूलिनः कौशिकागमः॥ जैगोएटपेन संवादो ज्येष्टेशाख्या महेशे तु। क्षेताख्यानं कन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः॥ . शैलेशरक इवरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः। देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः॥ दुर्गाया विजयश्वाथ औकारेशस्य वर्णनम्। पुनरोङ्कारमाहात्म्य विलोचनसमुद्भवः॥

केदाराख्या च धर्मे शकथा विश्वभुजोद्भवा । वीरेश्वरसमाख्यानं गंगामाहात्म्यकोत्त नम् ॥ विश्वकर्मे शमहिमा दश्नयकोन्त्रवस्तथा । सतोशस्थामृतेशादेभुं जस्तम्मः पराशरे ॥ श्वेततीर्थकदम्यश्च मुक्तिमण्डपसंकथा । विश्वेशविभवश्चाय ततो यातापरिकमः ॥

(५म) अतः परं त्ववन्त्याख्यं श्रृणु खएडञ्च पञ्चकम् । महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीप च्छिदा ततः॥ प्रायश्चित्तविधिश्चाःनेरुत्पत्तिश्च खुरागमः। देवदीक्षा शिवस्तीवं नानापातकनाशनम्॥ कपालमोचनाख्यानं महाकालवनंस्थितिः। र्तार्थं कलकलेशास्य संब पापप्रणाशनम्॥ कुराडनप्सरस इञ्च सर्गे राह्रस्य पुण्यदम्। कुटुम्बेणञ्च विरूप-कर्कटेश्वरतीर्थकम् ॥ दुर्ग हार् चतुःसिन्युतीर्थं शङ्करवापिका। सकरार्श्वगन्धवतीतीर्थं पापप्रणाशनम्॥ द्शाश्वरेधैकानंशतीर्थञ्च हरिसिद्धिद्म्। पिशाचकादियाता च हतुमत्कयनेश्वरौ॥ महाकालेशयाला च वल्मीकेश्वरतीर्थकम्। शुक्ते शभेशोपाच्यानं कुशस्घल्याः प्रदक्षिणम् ॥ अक रमन्दाकिन्यङ्कपाद्चन्द्राक्षेत्रेभवम् । करभेशकुवकुटेश-छड्डुकेशादितीर्थकम्॥ मार्करडेशं यज्ञवापी सोमेशं नर्कान्तकम्। केदारेश्दररामेश-सौभाग्येशनरार्ककम् ॥ केशार्कं शक्तिभेदंच खर्णाक्षरमुखानि च । ऑकारेशादितीर्थानि अन्त्रकस्तुतिकोत्तं नम्॥ कालारण्ये लिङ्गसंख्या खणं शृङ्गाभिधानकम् । पद्मावतीकुमुद्धत्यमरावतीति नामकम्॥ विशालाप्रतिकल्पाभिधाने च ज्वरशान्तिकम्। शिष्रास्त्रानादिकफलं नागोन्मीता (१) शिवस्तुतिः ॥ हिरण्यासवधाख्यानं तीर्थं सुन्दर्कुण्डकम्। नीलगङ्गापुक्तराख्यं विनध्यावासनतीर्थंकम्॥ पुरुषोत्तमाधिनासं तत्तीर्थञ्चाघनाशनम्। गोमतीचामने कुण्डे चिष्णोर्नामसहस्रकम्॥ वीरेश्वरसरः कालमैरवस्य च तीर्थंके। महिमा नागपञ्चम्यां नृसिहस्य जयन्तिका ॥ कुटुम्बे ध्वरयाता च देवसाधककी सैनम्। ककराजाच्यतीर्थञ्च विद्वेशादिसुरीहणस्॥ रुद्रकुएडप्रभृतियु वहुतीर्थनिक्रपणम् । याबाष्टतीर्थंजा पुष्या रेवामाहातम्यसुच्यते॥ धर्मपुतस्य वैरा ये पार्कग्ड येन सङ्ग्रमः। प्राग्ल्यानुमवाख्यानं अमृतापरिकोत्तं नन् ॥ करुपे करुपे पृथक्नाम नर्मदायाः प्रकीत्तितम्।

स्तवमार्षं नामेदञ्च कालराविकथा ततः॥ महादेवस्तुतिः पश्चात् पृथक्कत्मकथाद्भ ता । विशल्याख्यानकं पश्चाजालेश्वरकथा तथा॥ गौरीव्रतसमाच्यानं बिपुरज्वालनं ततः। देहपातविधानञ्च कावेरीसङ्गमस्ततः॥ दारुतीर्थं ब्रह्मावत्तं यत्रे श्वरकथानकम्। अग्नितोर्थं रवितोर्थं मेघनादं श्रीदारुकत्॥ देवतोर्थं नमदेशं कपिलाक्षं करअकर्। कुएडलेशं पि यलाइं विमलेशञ्च शूलभित्॥ शचीहरणमाख्यातमन्धकस्य वधस्ततः। शूलोमेदोद्भवो यत दारधर्माः पृथविषाः॥ माल्यानं दीर्घतपस ऋष्यशृङ्गकथा ततः। चित्रसेनकथापुण्या काशिराजस्य मोक्षणम्॥ ततो देवशिलाख्यानं शबरोचरिताचितम्। ब्याधास्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यकेतीर्थकम्॥ आदित्येश्वरतीर्थश्च शकतीर्थं करोटिकम्। कुमारेशमगस्त्येशं च्यवनेशञ्च मातृजम्॥ लोकेशं धनदेशश्च मं गलेशंच कामजम् । नागेशंचापि गोपारं गौतमं गङ्खसूइजम्॥ नारदेशं नित्वकेशं वहणेश्वरतीर्थकम्। वधिस्कऱ्यदितीर्थानि हनूमन्तेश्वरस्ततः॥ रामेश्वरादितीर्थानि सोमेशं पिङ्गलेश्वरम्। ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतिकेशं जलेशयम्॥ चएडाकेयमतीर्थंश्च कह्नोड़ीशंच नान्दिकम्। नारायणञ्च कोटिशं ज्यासतीर्थं प्रमासिकम्॥ नागेशं शङ्कवं णकं मन्मधेश्वरतीयंकम्। एरएडीसङ्गमं पुण्यं सुवर्णाशिलतीयकम्॥ करंजं कामहं तीर्थं भाग्डीरं रीहिणीभवम्। चक्रतीर्थं घीतपापं स्कान्दमाङ्गीरसाह्यम्॥ कोटितीर्थमयोन्याख्यमं गाराच्यं विलोचनम्। इन्द्रेशं कभ्युकेशंच सोमेशं कोहलेशकम्॥ नाम दं वाकमाग्ते यं भागवेश्वरसत्तमम्। ब्राह्मं दैवञ्च भागेशमादिवारोहणं खे(१)॥ रामेशमथ सिद्धे शमाहत्यं कङ्क्टेश्वरम् । शाक सौमंच नान्देशं तापेशं रुविमणीमवम्॥ योजनेशं वराहेशं झदशीशिवतोर्थंके । सिद्धेशं मङ्गलेशंच लिगवाराहतीथकम्॥ कुएडे शं श्वेतवाराहं भागवेशं रवीश्वरम्। शुक्कादोनि च तीर्थानि हुंकारस्वामितीर्थंकम्॥ सङ्गमेशं नारकेशं मीक्षं साप्त्रंच गोपकम्। नागं शाम्यञ्च सिद्धे शं मार्कएडाक्रू रतीर्धके ॥ कामोदशूलारोपाख्ये माएडव्यं गोपकेश्वरम्। कपिलेशं पिङ्गलेशं भूतेशं गांगगीतमे ॥

अश्वमेत्रं भृगुकच्छं केदारेशंच पापनुत्। कन्खलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम्॥ चन्द्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यश्च इंसकम्। मुलस्थानश्च शूलेशमाग्ने यं चित्रदैवकम्॥ शिखोशं कोटितीर्थं च दशकन्यं सुवणं कम्। ऋणमोक्षं भारभूतिरतास्ते पुंचमुण्डितम्॥ आमलेशं कपालेशं ऋङ्गे रएडीभवं ततः। कोटीतीर्थं लोटनेशं फलस्तुतिरतः परम्॥ कृमिजङ्गलमाहातम्ये रोहिताश्वकया ततः। धुन्धुमारसमाख्यानं बधोपायस्ततोऽस्य च ॥ वघो भ्रुन्धोस्ततः पश्चात् ततश्चितवहोद्भवः।' महिमास्य ततस्वएडीशप्रभावी रतीस्वरः॥ केदारेशं लक्षतोर्थं ततो विग्णुपदीभवम् । मुखारं च्यवनान्धाख्यं ब्रह्मण्यूच सरस्ततः ॥ चकार्ष्यं छिलता्च्यानं तीय 🛪 वहुगोमखम् । रुद्रावसं अ मार्केएड तीर्थं पापप्रणाशनम्॥ रावणेशं शुद्धपटं लवान्धुप्रे ततीर्थं कम्। जिह्नोदतीय सम्मृतिः शिवोद्धे दं फलभ्रुतिः॥ एय खर्डो ह्यवन्त्याख्यः श्रुण्वतां पापनाशनः।

(६ष्ठ) अतःपरं नागराख्यः खएडः यष्ट्रोऽभिघीयते ॥ लिङ्गोत्पत्तिसमाख्यानः हरिश्चन्द्रकथा शुमा । विश्वामितस्य माहात्स्यं तिशंकुस्वर्गतिस्तथा ॥ हाटकेश्वरमाहातम्ये बतासुरवधस्तथा। नागविलं शङ्क्तीर्थं मचलेश्वरवर्णं नम् ॥ चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम्। गयशीप वालशाख्यं वालमएडं मृगाह्यम्। विज्णुपादं च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः। सिद्धे श्वरं नागसरः सप्तर्वेयं ह्यगस्त्यकम् ॥ भू णगुर्त नलेशंच भीष्म दूर्वेरमकँकम्। शामि ष्ठ' शोभनाथ'च दौग मानत केश्वरम् ॥ जमद्ग्निवघाख्यानं नैःश्र्तियकथानकम्। रामहदं नागपरं जड़िल्हंच यहमूः॥ मुण्डीरादिविकाक असतीपरिणयस्तथा। बालिखिट्यंच योगेशं वालिखिट्यंच गारुड्म्॥ छद्मीशापः साप्तविंशः सोमप्रसादमेव च । अभ्यावृद्धं पादुकाख्यं आग्ने यं ब्रह्मकुएडकम् ॥ गोमुख्यं लोहयए याख्यमजापालेश्वरी तथा । शानीश्चरं राजवापी रामेशो लह्मणेश्वरः॥ कुरोग्राख्यं लचेशाख्यं लिङ्गं सर्वोत्तमोत्तमम् । अष्टबिष्टसमाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिजातकम्॥ ततोऽम्यारेवती चाल भहिकातीर्थं सम्मवम् । क्षेम करो च केदारं शुक्कतीर्थं मुखारकम्॥ सत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पला कथा।

अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गीर्यं गणेशमेव च ॥ ततो वास्तुपदाख्यानं अजागहकथानकम्। मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणपत्यत्वयं ततः॥ जावालिचरितं चैव वारकेशकथा ततः। कालेश्वयं न्धकाख्यानं कुएडमाप्सरसं तथा ॥ पुत्रादित्यं रोहिताश्वं नगरोत्पत्तिकीतं नम्। भार्गवं चरितं चैव वैश्वामितं ततः परम्॥ सारखतं पैथ्यलादं कं सारीशञ्च पैरिडकप्। ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्रग्रस्यानसं युतन्॥ रैवतं भतु यज्ञाख्यं मुख्यतीर्थेनिरीक्षणम्। कौरवं हाउकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकतय । पौकर नैमिपं धामें मरण्य वितयस्पृतम्। वाराणसोद्धारकाख्यावन्त्वाख्येति पुरीतयम्॥ वृन्दावनं खाएडवाख्यमद्वेकाख्यं वनस्यम्। कृत्पः शालस्तथा नन्दो श्रामबयमनुत्तमम्॥ असिशुक्ता पितृसं इं तीर्थंत्रयमुदाहतम्। अर्द्भूदो रैवतश्वैव पर्वतत्वयमुत्तमम् ॥ नदीनां तितयंगङ्गा नमदा चं सरस्वती। सार्द्ध कोटिलयफलमेंकैक चैयु कोर्त्तितम्॥ कृषिका शङ्खतोर्यञ्चामरकं वालमण्डनम्। हारकेशक्षेत्रफलपद् प्रोक्तं चतुष्यम्॥ शाम्बादित्यः श्राद्धकरुपः योधिष्ठरमथान्धकम् 🗠 जलशायि-चतुर्मास्यमशून्यशयनवतम् ॥ मङ्कुणेशः शिवरातिस्तुलायुरुपदानकम् । पृथ्वीदानं वाणकेशं कपालमोचनेश्वरम्॥ पापिएड साप्तर्हेंगं युगमानादिकी ते नम्। निम्बेश-शाकामार्थाख्या रुद्रैकादशकी च नम्॥ दानमाहातम्यकथनं द्वादशादित्यकोत्तं नम् । इत्वेष नागरः खएडः प्रभासाख्योऽधुनोच्यते ॥ (७म) सोमेशी यत विश्वेशोऽर्कस्थलः पुण्यदी महत्। सिद्धे श्वरादिकाख्यानं पृथगत प्रकीर्त्तितम्॥ अग्नितीर्यं कपदींशं केदारेशं गतिपदम्। भीमभैरवचएडीग्रा-भास्कराङ्गारकेश्वराः॥ वुधेज्यभृगुसौरन्दु-शिखीशा हरविग्रहाः। सिद्धे भ्वराद्याः पञ्चान्ये । रुद्रास्ततः व्यवस्थिताः ॥ वरारोहा हाजापाला मङ्गला ललितेम्बरी। **रुक्ष्मीशो वाङ्वेग्रश्चार्वीशः कामेश्वरस्तथा**॥ गीरीशवरुणेशाख्यमुयोशञ्च गणेश्वरम् । . कुपारेशञ्च शाकल्यं नकुलोतङ्कगौतमम्॥ दैत्यघ्नेशं चक्रतीर्थं सन्निहत्याह्वयं तथा । भूतेशादीनि लिङ्गानि आदिनारायणाह्वयम्॥ ततञ्चक्रधराख्यानं शाम्वादित्यकथानकम् । कथा कर्टकशोधिन्या महिर्पप्रगस्ततः परम्॥

कपालीश्वरकोटीश-वालब्रह्माहसत्कथा । नरकेशसम्बर्चे श-निधीश्वरकथा ततः॥ वलमद्रेश्वरस्थार्थे (?) गङ्गाया गणपस्य च । जाम्बबत्याख्यसरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा ॥ शतमेधलक्षमेधकोटिमेधकथा ततः । दुर्वासार्कयदुस्थानहिरण्यसंगमोत्कथा॥ नगराकस्य कृष्णस्य सङ्कर्यं णसमुद्रयोः। कुमार्या क्षेत्रपालस्य ब्रह्मे शस्यं कथा पृथक् ॥ पिङ्गला सङ्गमेशस्य शङ्कराकंघटेशयोः । ऋपितीर्थसा नन्दाकैतितकूपस्य की चेनम्॥ शशोपानस्य पर्णार्कन्यं कुमत्योः कथादुभुता । वराह्खामिवृत्तान्तं छायाळिङ्गाख्यगुरूपयोः॥ कथा कनकनन्दायाः कुन्तीगङ्ग शयोस्तथा । चमसोद्भे द्विदुरितलोकेशकथा ततः॥ मंकणेशत पुरेशपण्डतीर्थकथा तथा। सूर्यप्राचीत्रोक्षद्वयोदमानाथकथा तथा॥ भूद्धारशूलस्थलयोश्च्यवनार्केशयोस्तथा । अज्ञापालेशवालाकॅकुवेरस्थलंजा कथा ॥ ऋषितोया कथा पुण्या संगालेश्वरकी तंनम्। नारदादित्यकथनं नारायणनिद्धपणम्॥ तप्तकुण्डस्य माहोतम्यं मूळचण्डीशवंणंनम्। चतुर्वेक्तगणाध्यक्षकलम्बेश्वरयोः कथा॥ गोपालसामिवकुलसामीनोमेरती कथा । क्षेमार्काञ्जतविष्नेशजलखामिकया ततः॥ कालमेघस्य रुक्तिमण्या उवेंशीश्वरभद्रयोः। शङ्कावर्त्तं मोक्षतीर्थंगोप्पदाच्युतंसघनाम् ॥ मालेश्वरस्य ह्रंकारकृपचएडीशयोः कथा। आशापुरस्तविघ्नेशकलाकुएडकथाद्भुता ॥ कपिलेशसा च कथा जरद्रवशिवसा च । नलककोटिश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा॥ नारदेशमन्त्रभूतीदुर्गाक्टगणेशजाः । सुपर्गेलाख्य भैरव्योभेहतीर्थभवा कथा ॥ कीत्तनं कर्दमालसा गुप्तसोमेश्वरसां च। वहुस्वर्णेश-श्रङ्गे श-कोटीश्वरकथा ततः॥ मार्कण्डेश्वर-कोटीश-दामोद्रपृहोत्कथा । खणरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्तीभीमेश्वरी तथा॥ मृगीकुएडञ्च सर्वेख क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम्। दुर्ग विख्वेश-गङ्गे श-रैवतानां कथाद्भुता ॥ ततोऽवूदे शुभ्रकथा अचेलेश्वरकी त्तिनम्। नागतीयसा च कथा वशिष्ठाश्रमवर्णनम्॥ भद्रकर्णसा माहातम्य तिनेतसा ततः प्रम् । केदारसा च माहात्म्यं तीर्थागमनकीरर्तनम् ॥ 😁 कोटीश्वररूपतीर्थेहषीकेशकथा ततः ।

सिद्धे शशुक्रे श्वरयोमणिकणीशकीत्त नम् ॥ पं गुतीययमतीयवाराहीतीथ-वणनप् । ,चन्द्रप्रभासिष्डोदश्रीमाता शुक्कतीर्थं जम् ॥ कात्यायन्याश्च माहात्स्य ततः पिएडारकसा च । ततः कनखळस्याथ चक्रमानुपतीर्थयोः॥ कपिलाग्नितीर्थंकथा तथा रक्तानुवंधजा। गणेश-पाटेश्वरयोर्याताया मुद्गलस्य च ॥ चएडीस्थानं नागभवशिरः कुएडमहेशजा । कामेश्वरसार मार्कर्एंडे योत्पत्तेश्च कथा ततः ॥ उदालकेश-सिद्धे श-गर्दर तीर्थकथा पृथक् । श्रीदेवमतोत्पत्तिश्च व्यासगीतमतीर्थयोः॥ कुलसन्तारमाहातम्यं रामकोट्याह्नतीर्थयोः। चन्द्रोद्भे देशानलिङ्गत्रह्मस्थानोद्भवोहनम् ॥ तिपुष्करं रुद्रहदं गुहेश्वरकथा शुभा । अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ॥ महौजसः प्रभावस्य जम्बूतीर्थस्य वर्णनम्। गङ्गाधरमितकयोः कथा चाथ फुलस्तुतिः॥ द्वारकायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मकथानकम्। जागराद्याख्यव्रतञ्च वतमेकादशीभवम्। महाद्वादशिकाख्यानं प्रहादिवसमागमः। दुर्वोसस उपाख्यानं यात्रोपक्रमकी तंनम् ॥ गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्रां स्नानादिजं फलम्। चक्रतीथंसा माहात्म्यं गोमत्युद्धिसंगमः॥ सनकादिहदाख्यानं नृगतीर्थंकथा ततः । गोप्रचारकथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः॥ गोपीश्वरं समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीत्तं नम्। पञ्चनद्यागमाख्यानं नानाख्यानसमाचितम्॥ शिवलिङ्गमहातीर्थं कृष्णपूजादिकीत्तं नम् । तिविक्रमस्य मूर्त्त्रांख्या दुर्वासः क्रय्यसत्कथा ॥ कुश्दैत्यवघोऽर्चाख्या विशेपाचनजं फ्लम्। गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीत्तं नम्॥ कृष्णमन्दिरसं प्रेक्षं द्वारवत्याभिषेचनम्। तत तीर्थंवासकथा द्वारकापुण्यकीत्त नम्॥ इत्येप सप्तम' प्रोक्त' खण्ड' प्रामासिको द्विजः। स्कान्दे सर्वोत्तरकथा शिवमाहात्स्यवणैने॥"

(हे मरोचे! सुनो, अब स्कन्द नामक पुराण कहता हूं। इसके प्रतिपदमें साक्षात् महादेव वर्त्त मान हें। मैंने शतकोटि पुराणोंमें जो शैव वर्ण न किया है, उन लक्षित अधीका सार ध्यासने कीर्त्त न किया है। यह स्कन्द नामक पुराण सात खल्डोंमें विमक्त है। इसमें इकासी हजार श्लोक हैं जो सभी पापनाशक हैं। जो ध्यक्ति इस-का श्रवण वा पाठ करते हैं, वे साक्षात् शिवक्रपमें अव- स्थान करते हैं। इसमें षण्मुख कतृ क तत्पुरुपकल्पमें सर्व सिद्धिविधायक माहेश्वर-धर्म प्रकाशित हुए हैं।

(१म माहेस्वरखंडमें) चृहत्कथायुक्त माहेश्वरखएड ही इस पुराणका आदि और सर्व पापनाशक है। माहेश्वरखएड पुण्यजनक है और इसमें वारह हजारसे कुछ कम श्लोक हैं। यह खएड स्कन्दमाहातम्यसूचक है। इसके केदारमाहात्म्यमें पहले पुराणोपक्रम है, पीछे दक्ष-यज्ञकथा, शिवछिङ्गार्चनमें फ़ळ, समुद्रमथनास्यान, देवेन्द्रचरित, पाव तीका उपाख्यान और विवाह, कुमारो-त्पत्ति, तारकयुद्ध, पशुपतिका आख्यान, चएडीका आख्यान, दूतप्रवर्त्त नाख्यान, नारदका समागम, कुमार-माहात्म्यमें पञ्चतीर्थं कथा धर्मं वर्मं नृपाख्यान, मही-सागरकोत्त[े]न, इन्द्रद्युम्नकथा, नाड़ीजङ्गकथा, महीपाढु-भ व, दमनककथा, महीसागर-संयोग, कुमारेशकथा, तारकयुद्ध, तारकवध, पञ्चलिङ्गनिवेशन, द्वीपाल्यान, ब्रह्मार्डिस्थितिमान, चर्क रेशकथा, वासुदेव-माहात्स्य, कोरितीर्थ, नानातीर्थसमाख्यान, पाएडवोंकी कथा, महाविद्याप्रसाधन, तोथ यातासमाप्ति, अरुणाचल-माहातम्य, सनकब्रह्मसंवाद, गौरीतपोवृत्तान्त और उन सव तीर्थोंका निरूपण, महिषासुरजपाख्यान और वध तथा शोणाचलमें शिवावस्थान वर्णित हुए है।

संस्थापन, मदनालसमाहातम्य, भ्र प्रकोश समार्ख्यान, कार्त्तिकमासीय दिनहत्य, पञ्चमी म-त्रताख्यान और त्रत-माहात्म्यमें स्नानविधि, पुण्ड्रादिकीत्तंन, मालाधारण, ् पुण्यपञ्चामृतस्नानपुण्य, घरटानाद् आदिका फल, नाना-पुष्प और तुलसीदलार्चन फल, नैवेद्यमाहात्स्य, हरि-वासरकीत्त न, अलण्डेकादशीपुण्य, जागरणपुण्य, मत्स्यो-त्सवविधान, नाममाहात्म्यकीत्त न, ध्यानादि पुण्यकथा, मथुरामाहात्म्य, मथुरातीर्थमाहात्म्य, द्वादश वनमाहात्म्य, श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, चज्रशारिडल्यमाहात्म्य, स्नानदान और जपजन्य फल, जलदानादि विषय, कामाख्यान, श्रुत-देवचरित, ध्याघोपाल्यान, अक्षयातृतीयादिकी कथा और ्विशेषपुण्यकीर्त्तेन, चन्द्रहरि और धर्म हरि-वर्णन; स्वर्ण-वृष्टिका उपाख्यान, तिलीदा सरयूसङ्ग पर सीताकुएड, गुप्तहरि, गोप्रचार, दुग्घोद, गुरुकुएडादि,पञ्चक, घोषा-कांदि त्रयोदशतीर्थ, सर्वेपापनाशक गयाकूपमाहात्म्य, माएडव्याश्रमप्रमुख तीथ और मासादितीय इस सवका चण न है।

(३४ वहासंडमें) हे मरीचे ! पुण्यप्रद ब्रह्मस्रस्ड हुनो । इसके सेतुमाहात्म्यमें स्नान और दश[°]न करनेका फल, गालवका तपस्चर्, रासझाख्यान, चक्रतीर्थादि-माहात्म्य, चेतालतीथं महिमा, मङ्गलादिमाहात्म्य, ब्रह्म-कुएडादिवण न, हनूमत्कुएडमहिमा, अगस्त्यतीर्थ फल, हामतीर्थादिकयन, लक्ष्मीतीर्थं निरूपण, शङ्कादितीर्थः महिमा, धनुष्कोट्यादिमाहात्म्य, श्लीरकुएडादिकी महिमा, गायत् यादि तीथ माहातम्य, तत्त्वज्ञानोपदेश, विधान, धर्मारण्यमाहात्म्य, धर्मारण्यसमुद्भव, ऋषिव'शनिरूपण, अप्सरातीथ का सिद्धिसमाख्यान, माहातम्य, वर्ण और आश्रमका धर्म निरूपण, देवस्थान-विभाग, वकुलाक कथा, इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्य, द्वार-कादिनिरूपण, लोहासुरका आख्यान, गङ्गाकूपनिरूपण, श्रीरामचरित, सत्यमन्दिरवण न, जीर्णोद्धारकथन, शासन प्रतिपादन, जातिभेदकथन, स्मृतिधर्म निरूपण, वैश्णव-घर्मकथन, चातुर्मासा, सर्वधर्मनिरूपण, दानप्रशंसा, म् वतमहिमा, तपस्या और पूजाका सच्छिद्रकथन, प्रकृतिका भिवाल्यान, शालग्रामनिरूपण, तारकवधोपाय, स्राक्षरा-च नक्रहिमा, विच्युका वृक्षत्वशाप और पाव तीका अनु-

नय, हरका ताएडवनृत्य, रामनामनिरूपण, जवनकथाके निमित्त हरका छिङ्गपतन, पावतीका जन्म, तारकाचरित, दक्षयञ्चसमाप्ति, द्वादशाक्षरनिरूपण, जन्मयोग समाख्यान और श्रवणादि पुण्य आदि विषय वर्णित हैं।

वधांडके वतर भार में —शिवमहिमा, पञ्चाक्षरमहिमा, गोकर्णमाहात्म्य, शिवराविमहिमा, प्रदोपवत कीत्त न, समाचारवत, सीमन्तिनीकथा, भद्रायुत्पत्तिकथन, सदा-चारनिरूपण, शिववर्मसमुद्देश, भद्रायुका विवाहवर्णन भद्रायुमहिमा, भस्ममाहात्म्यकीत्तंन, शवराख्यान, उमान्माहेश्वरवत, रुद्राक्षमाहात्म्य, रुद्राध्याय और श्रवणादिक पुण्य आदि कीत्ति हुए हैं।

अव अनुत्तम चतुर्यं काशीखरडका विषय कहा जाता है। इसमें पहले विन्ध्य और नारदका संवाद, सत्य-छोकप्रभाव, अगस्त्यावासमें .सुरागमन, पतिव्रताचरित और तीर्थंचय प्रशंसा, पीछे सप्तपुरी, संयमिनीनिरूपण, शिवशमकी सूर, चन्द्र और अग्निलोकप्राप्ति, अग्निकी उत्पत्ति, वरुणोत्पति, ग्रन्थवती, अलकापुरी और<u>्र</u>ाह्म्वरी-के समुर्त्पत्तिकंमसे चन्द्र, बुध, कुज, वृहस्पति और सूर्य-लोक तथा सप्तर्षि भ्रुव और तपोलोकका वर्णन, पवित ध्रुवलीक कथा, सत्यलोकवर्णन, स्कन्द और अग-स्त्यका आलापन, मणिकणिसमुद्भव, गङ्गाका प्रभाव, गङ्गाका सहस्रनाम, वाराणसीप्रशंसा, भैरवाविभ्^रव, ब्रह्मचारी द्र्डपाणि और ्ज्ञानावापीका उद्भव. आख्यान, सदाचारनिरूपण: आख्यान, कलावतीका इत्याहत्यनिर्देश, अविमुक्तश्वे रद्मण्ना. स्त्रीलक्षण, गृहस्य और योगियोंका धर्मकालक्कान, दिवोदास कथा, काशीवण न, योगीचय, लोलाक और खल्वाक, की कथा, द्रुपदाक[°], तार्झ्यांख्य, अरुणाक का, उद्य-द्शाश्वमेधतीय ख्यान, मन्दरसे यातायात, पिशाच मोचना-ख्यान, गणेशप्रेरण, मायागणपतिका पृथिवी पर प्रादु-र्भाव विष्णुमायात्रपञ्च, दिवोदासविमोक्षण, पञ्चनदो-त्पत्ति, विन्दुमाधवसम्भव, वैव्यवतीर्थीख्यान, श्टङ्कि और कौशिकागम, ज्येष्टेश, जैगीपव्यके साथ संवाद, क्षेता-ख्यान, कुन्दकेश और व्याघ्रेश्वरोत्पत्ति, शैलेश, रह्नेश और कृत्तिवासका संवाद, देवताओंका अधिष्टान, हुर्गा-सुरका पराक्रम, दुर्गाकी विजय और कारेश वण न

मोंकारमाहातम्य, तिलोचनसमुद्भव, केदाराख्यान, धर्मेश कथा, विल्वभुजकथा, वीरेश्वरसमाख्यान, गङ्गामाहातम्य-कोत्तंन, सत्येश और अमृतेशादि, पाराशरका भुजस्तम्म क्षेत्रतीर्थसमूह, मुक्तिमण्डपकथा, विश्वेशविभव और याता ये सव विषय निरूपित हुए हैं।

अनन्तर अवन्तो नामक पञ्चम खएडम ये सव ावपय वर्णित हैं,-महाकालाख्यान, ब्रह्मशोर्प च्छे द, प्रायश्चित्त विधि, अविकी उत्पत्ति, सुरागमन, देवीदीक्षा, शिवस्तोत कपालमोचनाख्यान, महाकालवनस्थिति, कलकलेशतीर्थं, अप्सरा नामक कुएड, मर्कटेश्वरतीर्थ, स्वर्गद्वार, चतुः-सकरार्कगन्धवतोतीर्थं, शङ्करवापिका, सिन्धुतीर्थं, दशाश्वमेधतीर्थं, पिशाचकादि याता, महाकालेशैयाता, वर्त्मोकेश्वरतीर्थं, शुकेश और नक्षते शका उपाख्यान, कुशस्थलीप्रदक्षिण, अक्र्यमन्दाकिनो, अक्ष्पाद, चन्द्र सीर सूर्यका वैभन, करमेश, कुक् देश, और लड्डुकेश प्रभृति तीर्थं, मार्कएड येश, यज्ञवापी, सोमेश, नरका-न्तक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशार्क, झौर शक्तिमेद प्रभृति तीर्थं, अन्धकस्तुतिकोत्तंन, शिप्रा-स्नानादि फल, शिवस्तुति, हिरण्याक्षवधाख्यान, सुन्दर-कुएड, अधनाशन, पुरुपोत्तमतीर्थं, विण्णुका सहस्रनाम-वीरेश्वर, सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमी महिमा, नृसिंह, जयन्तिका, मुकुटेश्वरयाला, देवसाधनकीत्र[°]न, प्रमृतिमें वहुतीर्थनिरूपण, कर्कराजतीय, कद्रकुएड रैवामाहात्म्य, धर्मपुण्यका माक्रण्डेयके साथ मिलन, पूर्वेलयानुभवाख्यान, अमृतकीत्तंन, कल्प कल्पमें नर्मदा के तामका पृथकत्व, ऋषि और नम दाका स्तव, काल-रात्रिकथा, महादेवस्तुति, पृथक् कल्पकला, विशल्या-ख्यान, त्रिपुरदहन, देहपातविधान, कावेरासङ्गम, दारु-तीर्ध, अग्नितीर्ध, रवितीर्ध, नर्भदेश प्रमृति, शचीहरण, अन्धकासुरवध, शूलमेदोद्भव, भिन्न भिन्न दानधम, दीघ तपाका आख्यान, ऋष्यग्रङ्गकथा, चैतसेनकथा, मोक्षण, देवशिलाख्यान, श्वरी-काशिसजका चरित, व्याधाख्यान, पुक्तरिण्यक्षंतीर्थं, आदित्येश्वर-तीर्थ, शकुतीर्थ, करोटिक, कुमारेश, अगस्त्येश, च्यव-नेश, मातृज, लोकेश, धनदेश, मङ्गलेश, कामज, नार-देश, नन्दिकेश और वक्तणेश्वर प्रभृति तीर्थं, दिधस्कन्दा-

दितीथ , रामेश्वरादितीथ , सोमेश, पिङ्गलेश्वर, ऋण-मोक्ष, कपिछेश, पृतिकेश, जलेशय और चएडाक तीथ, कहोड़ीश, नन्दिक, नारायण, कोटीश और व्यासतीथ, व्यासतीर्थं, प्रसासिक, नागेश, सङ्कर्णणक, और मन्म-थेश्वरतोर्थं, पररहीसङ्गम, सुवर्णशिला, करञ्ज और कामदतीर्थं, भाएडीरतीर्थं, चक्रतीर्थं, स्कान्द, आङ्गिरस, अङ्गाराख्य, त्रिलोचन, इन्द्रेश, कम्तुकेश, सोमेश, कोह-छेश, नार्मंद, देवभागेश, आदिवाराह, रामेश, सिद्धेश, आहल्य, कङ्करेश्वर, शाक, सौम, नान्देश, तापेश, रुक्तिमणीमव, योजनेश, वराहेश, सिद्धेश, मङ्गलेश और लिङ्गवाराह प्रभृति तीर्थं, कुएडे श, श्वेतवराह, भागंवेश, रवीश्वर और शुक्क प्रभृति तीर्थं, हुङ्कारसामितीर्थं, सङ्ग मेश, नारकेश, मोक्ष, साप[°], गोप, नाग, शास्त्र, सिद्धेश, मार्क एड और अकूर प्रभृति तीर्थं, कामोद, ग्रूछारोप, माएडव्य, गोपकेश्वर, कपिछेश, पिङ्गकेश, भूतेश, गाङ्ग-गौतम, अश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश, कनखलेश, जालेश, शालग्राम, वाराह, चन्द्रप्रमा, श्रीपत्याख्य, हंस्क, मूल-स्थान, शूलेश, चितदैवक, शिल्पोश, कोटितीर्थ, दश-कन्य, सुवर्णक, ऋणमोक्ष प्रभृति तीर्थ, कृमिजङ्गळ-माहात्म्य, रोहिताश्वकथा, धुन्धुमार-समाख्यान, धुन्धु-मार-चघोपाख्यान. चित्रवहोन्द्रव, चएडीशप्रमाव एवं केदारेश, लक्षतीर्थं, विण्णुपदीतीर्थं, व्यवन-अन्धाल्य, ब्रह्मसरोवर, चक्राख्य, ललिताख्यान, वहुगोमय, व्द्रा-वर्त, मार्क एडे य, रावणेश, शुद्धपट, देवान्धु, प्रेततीर्थ, जिह्नोद, तीर्थोद्भव और शिवोद्भव प्रभृति तीर्थ ये सब विषय श्रवण करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं।

(६'ठ नार गाल' डमें) इसमें लिङ्गोत्पत्ति, हरिश्चन्द्रकथा विश्वामित्रमाहात्म्य, तिशंकुकी स्वर्ण गति, हाटकेश्वर-माहात्म्य, वृताखुरवध, नागविल, शंखतीर्थ, अचलेश्वर-वर्ण न, चमत्कारपुराख्यान, गयशीर्प, वालशाख्य, वालमएड, मुगाह्वय, विष्णुपाद्र, युगरूप, सिद्धे श्वर, नाग-सरः, सप्तापं य, अगस्त्यकथा, भ्र.णगत, नलेश, शार्मिष्ठ, शोभनाथ, और-जमद्गिनवधोपाख्यान, निःश्रतियकथा, शामहद, नागपुर, जड़लिङ्ग, मुएडीरादि तिकाक, सतीपरिणय, वालखिल्य, योगेश, गावड़ लक्ष्मी-शाप, सीमप्रसाद, अम्बावद्ध, पादुकाख्य, आग्नेय, ब्रह्म-शाप, सीमप्रसाद, अम्बावद्ध, पादुकाख्य, आग्नेय, ब्रह्म-

कुएड, गोमुख्य, लोहयष्ट्याख्य, अजापालेश्वरी, शानैश्वर, राजवापी, रामेश, लक्ष्मणेश, कुशेश और खवेशलिङ्ग, रेवती प्रभृति तीर्थ, सत्यसन्धेश्वराख्यान, कर्णोत्पळाकथा, अदेश्वर, याद्मवल्पय, गीर्य, गणेश और वास्तुसमाख्यान, अज्ञागहकथा, मिष्टान्नदेश्वराख्यान और गाणपत्यतय, वाजिलचरित, मकरेशकथा, कालेश्वरी, अन्धकाख्यान, अप्सराकुएड, पुःयादित्य, रोहिताश्व और नगरोत्पत्ति-को त्र न, भागेव और विश्वामित्रचरित, सारस्वत, पैप्पळाद, कंसारीश, पैरिडक और ब्रह्माको यज्ञकथा, साविती उवाख्यान, रैवत, भर्त्यु यक्ष, मुख्यतीर्थं निरूपण, कौरव, हारकेश और प्रभासक्षेत्र, पीक्तर, नैसिष और धर्मारण्य, वाराणसी, द्वारका और अवन्त्यास्य, पुतीलय, वृन्दावन, खाएडव और अद्वे काल्यवनतय, फल्पशाल और नन्दाख्य प्रामतय, असि, शुक्का और पितृसंज्ञ तोर्थंतय, श्री. अबु द और रैवत नामक पर्वततय, गङ्गा, नर्मदा और सरखती नामक नदीलय, कूपिका, शहुतीर्थ, अमरक और वाल-मण्डनतीर्थं, शाम्बादित्य, श्राद्धकल्प, यौधिष्टिरसंवाद, अन्धक, जलशायी, चातुर्मास्य, अशून्यशयनव्रत, मङ्कणेश, शिवराति, तुलापुरुषदान, पृथ्वीदान, वालकेश, कपाल-मोचनेश्वर, पापपिग्ड, साप्तलिङ्ग और युगमानादि-कीर्स न, शाकस्मर्थ्यां ल्यान, एकादशखद्कीत्त न, दान-माहात्म्यकथन और बादशादित्यकी त न ये सव वर्णित हुए हैं ।

(अप प्रभादखारखर्म)—इसमें सोमेश, विश्वे श, अर्क-स्थल, सिद्धे श्वरादिका आख्यान, अग्नितीर्थ, कपहींश, केदारेशतीर्थ, भीम, भैरव, चक्तीश, मास्कर और अङ्गार-केश्वर प्रभृति हरविष्रह, वहां सिद्धे श्वरादि दूसरे और भी पञ्चब्दका अवस्थान, वरारोहा, अजपाला, मङ्गला और लिलेतेश्वरी, लक्ष्मीश, वाड्वेश, अर्घ्यश, कामेश्वर, ग़ीरीश, वरुणेश, गणेश्वर, कुमारेश, साकल्य, शकुन, उतङ्क, गौतम, दैत्यघ्नेश और चक्रतीर्थ, भूतेशादिलिङ्ग, आदि-नारायण, चक्रधराख्यानं, शाम्बादित्यकथा, कण्यक-शोधिनीकथा, महिष्य्नीकी कथा, कपालीश्वर, कोटिश और वालब्रह्म नामक कथा, नरकेश, सम्बर्चेश और निधीश्वरकथा, वलमद्रेश्वरकथा, गङ्गा, गणपित, जाम्बवती नामक नदी और पाण्डुक्स्पकी कथा, शतमेध, लक्ष्मेध

और कोटिमेधकथा, दुर्वासादिकी कथा, नगराक, कृष्ण, सङ्कर्षण, समुद्र, कुमारी, मोक्षपाल और ब्रह्मे शकी कथा, पिङ्गला, सङ्गमेश, शङ्करार्क, घटेश, ऋषितीयँ और नन्दार्क, वितक्रुपकी त न, शाशोपान, पर्णाक और न्यंकु-मतीकी कथा, वाराहस्वामि-वृतान्त, छायालिङ्गास्य और गुल्फकथा, कनकनन्दी, कुन्ती और गङ्गे शकथा, चमसी-द्गे द, विदुर और विलोकेशकथा, मङ्कुणेश, <mark>त्रिपुरे</mark>श और षएडतीर्थं कथा, सूर्य, प्राची, तीक्षण और उमानाथकथा, भृङ्गार, शूलस्थल, च्यवन और अर्केशकी कथा, अजा-पालेश, वालाक और कुवेरस्थलकथा, पवित ऋषितीया-कथा, सङ्गमेश्वरकीत्त^९न, नारदादित्यकथन, नारायण-निरूपण, तप्तकुएडमाहातम्य, मूलचएडीशवर्णन, चतुर-र्वेक्त्रगणाध्यक्ष और कलम्बेश्वरकथा, गोपालखामी और वकुछस्वामी, मरुतीकथा, क्षेमार्क, विघ्नेश और जल-स्तामोकथा, कालमेघ, रुक्मिणी, उर्वशोश्वर, भद्र, शङ्का-वर्त्त, मोक्षतीर्थ, गोव्पद, अच्चुतग्रह, मालेश्वर, हुङ्कार और कूपचएडोशकथा, कापिलेशकथा, जरद्रवशिवकथा, नल, कक⁸टेश्वर और हाटकेश्वर, जरद्ववेश प्रभृतिकी कथा, सुपर्णे श, मैरवी और भहतोर्थंकया, कद्^रमाल और गुप्त-सोमेश्वरका कीत्त न, वहुस्वर्णेश, श्रङ्गेश और कोटीश्वर-कथा, मार्क ण्डेश, कोटोश, दामोदरकथा, स्वर्णरेखा, ब्रह्म-कुण्ड, कुन्तीश, भीमेश, मृगीकुण्ड, सर्वस्रकेत, छता-विल्वेश, गङ्गेश-रैवतादिकी कथा, सम्रकथा, अचलेश्वर-कोत्त न, नागतीर्थं कथा, वशिष्ठाश्रमधर्णन, कर्णमाहात्म्य. तिनेत्रमाहात्म्य, केदारमाहातम्य, तीर्थं गमन् कीर्त्तं न, कोटीश्वर, रूपतीथ, इषिकेशकथा, सिद्धेश, शुक्रेश और मणिकणींश की चँन, पंगुतीय, यमतीर्थ और वाराहीतीथ वर्ण न, चन्द्रप्रभा, सपिएडोद, स्त्रीमाहातम्य भौर शुक्कु-तीथ माहात्म्य, कात्यायंनीमाहात्म्य, पिएडारक, कनस्रल-चक्र, मनुत्र्य और कपिलाग्नितीथ[°]कथा, चएडीस्थानादिक कथा, कामेश्वर और माकण्डेयोत्पत्तिकथा, उद्दालकेश और सिद्धे शतीर्थ कथा, श्रीदेवमाताकी उत्पत्ति, व्यास और गौतमतोर्थं की कथा, कुलसम्भाका माहात्म्य, चन्द्रो-द्भे दादिकथा, काशीक्षेत्र, उमा और महेश्वरका माहात्स्य, महौजाका प्रभाव, जम्बूतीर्थ वर्ण न, गङ्गाधर और मिश्रक-.को कथा, द्वारकामाहात्स्य, चन्द्रशम कथा, जागराद्याख्य-

नत, एकादशीवत, महाद्वादशीका आख्यान, प्रह्वादिषसमा-गम, दुर्वासाका उपाख्यान, याढोपक्रमकी चँन, गोमतीका उत्पत्तिकी चंन, चक्रतीथं माहात्म्य, गोमतीका समुद्र-सङ्गम, सनकादि हदाख्यान, नृपतीथं कथा, गोपचारकथा, गोपियोंका द्वारका गमन, गोपीश्वरसमागम, ब्रह्मतीर्थादि-की चंन, पञ्चनद्यागमाख्यान, शिवलिङ्ग महातीथं और कृष्णपूजादिकी चँन, विविक्रममूर्त्त्राख्यान, दुर्वासा और कृष्णकथा, कुशदैत्यवध, विशेपार्चनमें फल, गोमती और द्वारकामें तीर्थगमनकी चँन, कृष्णमन्दिरसंप्रकृष्ण, द्वारवत्यीमेषे चन, वहां तीर्थवासकथा और द्वारका पुण्यकी चँन।

उद्भारमें जो सब पुराण उद्भात हुए हैं उनसे स्कन्द-पुराणको प्रधानतः संहिता और खएड इन्हों दो प्रधान मागोंमें विभक्त किया जा सकता है। इनमेंसे संहिता ६ और खएड ७ हैं। संहिता और खएडमेंसे भी फिर कोई कोई नाना भागोंमें विभक्त है। स्कन्दपुराण ८१००० हजार स्त्रोकोंमें प्रधित होने पर भी उन सब संहिताओं और खएडोंको एकत करने-पर लाखसे अधिक स्लोक हो जाते हैं।

संहिताओं में अनेक शैंवदाशिनिक मत और शैव-सम्प्रदायके आचार-व्यवहार और अनुष्ठानादिके परिचय हैं। उक्त छः संहिताओं के मध्य सनत्कुमार, सूत, शङ्कर और सौरसंहिताके वहुत कुछ अंश पाये गये हैं। विष्णु और ब्रह्मसंहिता टीकाके साथ उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें विरल प्रचार है, किन्तु इस देशमें पाया नहीं जाता।

जिन सव संहिताओंका पता लगा नीचे उनकी विपयानुक्रम्णिका दो जाती है:—

१म धनतकुमार-संहिता।

१ विश्वेश्वरगणानुवर्णन, २ काश्यपवर्णन, ३ मोश्लों-पायनिरूपण, ४ विश्वेश्वरिक्ष्ट्राविर्मावकथन, ५ पाप-हरणोपायवर्णन, ६ भवानीवर्णन, ७ यात्रावर्णन और प्रशंसा, ८ देवताओंका अविमुक्तक्षेत्र प्रवेशवर्णन, ६ तीथवली-परिवृत भागीरथीप्रवेशवर्णन, १० शिवनृत्य-क्या, ११ हिरण्यप्रशंसा, १२ प्रमाकरका काशीप्रवेश, १३ पाशुपतवतोपदेश, १४ प्रभाकरका काशीवासप्रदान, १५ गरुड़ेश्वर यातावणन, १६ किटियाकुळ व्यासका वोराणसीप्रवेशकथन, १७ व्यासंभिक्षाटनवर्णनं, १८ व्यासक्षेतकथा, १६ अदाभ्येश्वरमाहात्म्यवर्णन, २० काशीधर्मनिकपण, २१ व्यासचरितवर्णन ।

२ ग सूत मंहिता।

१म शिवमाहात्म्यसं डमें—१ प्रन्थावतार, २ पाशुपत-वत, ३ नन्दीश्वरविष्णुसंवादमें ईश्वरप्रतिपादन, ४ ईश्वर-पूजाविधान और तत्पूजाफलकथन, ५ शक्तिपूजाविधिः; ६ शिवमकपूजा, ७ मुक्तिसाधन, ८ कालपरिमाण, तद-नवच्छिन्नस्वरूप-कथन, ६ पृथिवीका उद्धरण, १० ब्रह्मा-कर्नृक सृष्टिकथन, ११ हिरण्यगर्मादिविशेष सृष्टि, १२ जातिनिर्णय, १३ तीर्थमाहात्म्य।

२४ इत्योग खंडमें—१ इत्योग सम्प्रदाय-परम्परा,
२ आत्मसृष्टि, ३ व्रह्मचर्याश्रमिषि, ४ गृहाश्रमिषि, ५
वानप्रस्थाश्रमित्रिधि, ७ प्रायश्चित्तकथा, ८ दानधर्मफल,
६ पापकर्मफल, १० पिएडोत्पत्ति, ११ नाड़ीचन्द्र, १२
नाड़ीशुद्धि, १३ अप्राङ्गयोगमें यमविधि, १४ निवमिषि,
१५ आसनविधान, १६ प्राणायामविधि, १७ प्रत्याहारविधान, १८ धारणाविधि, १६ ध्यानविधि, २० समाधि।

३य शुक्तिसं हमें—१ मुक्ति, मुक्तिउपाय, मोचक और मुक्तिप्रद चतुर्विधप्रक्ष; २ मुक्तिमेदकथन, ३ मुक्तिउपाय-कथन, ४ मोचनकथन, ५ मोचनप्रदक्षथन, ६ ज्ञानोटपज्ञि-कथन, ७ गुरुप्रसादन और शुश्रू षणमहिमा, ८ व्याव्रपुरमें देवताओंका उपदेश, ६ ईश्वरका नृत्यदर्शन।

धर्ष यन्नवेभवखण्डमें अधोमागमें —१ विदार्थप्रश्न.
२ परापरवेदार्थविचार, ३ कम्यन्नवेभव, ४ वाचिकयन्न,
५ प्रणविचार, ६ गायतीप्रपञ्च, ७ आत्ममन्त, ८ पड्मरविचार, ६ ध्यानयन्न, १० नानयन्न, ११-१५ ज्ञानयन्नविशेपादि, १६ ज्ञानोत्पन्तिकारण, १७ वैराग्यविचार, १८
अनित्यवस्तुविचार, १६ नित्यवस्तुविचार, २० विशिष्टधर्मविचार, २१ मुक्तिसाधनविचार, २२ मार्गप्रामाण्य,
२३ शङ्करप्रसाद, २४ २५ प्रसादवैभव, २६ शिवभक्तिविचार, २७ परपदस्वरूपविचार, २८ शिवळिङ्गंखरूपकथन, २६ शिवस्थानविचार, ३० भस्पधारणवेभव, ३१
शिवप्रीतिकर ब्रह्मे क्यविज्ञान, ३२ भक्तरभावकारण, ३३
परतत्वनामविचार, ३४ महादेवप्रसादकारण, ३५ सम्प्र-

दाय-परम्पराविचार, ३६ सद्योमुक्तिकर श्लेबमहिमा, ३७ मुक्तिउपायविचार, ३८ मुक्तिसाधनिवचार, ३६ वेदादिका अविरोध, ४० सर्व सिद्धिकर कर्मावचार, ४१ पातक-विचार, ४२ प्रायश्चित्तविचार, ४३ पापशुद्धिउपाय, ४४ द्रव्यशुद्धिउपाय, ४५ अभक्ष्यनिवृत्ति, ४६ मृत्युस्चक, ४७ अत्रशिष्ट पापलक्ष्यकथन।

वगरिगामं—१ ब्रह्मगीता, २ वेदार्थं विचार, ३ साक्षित्वरूपकथन, ४ साक्ष्यस्तित्वकथन, ५ आदेशकथन, ६ उदरोपासन, ७ वस्तुस्वरूप विचार, ८ तत्त्ववेदविधि, ६ आनन्दस्वरूप कथन, १० आत्माका ब्रह्मतत्त्वप्रतिपादन, ११ ब्रह्माके सर्वशरीरमें स्थितिकथा, १२ शिवका अई-प्रत्ययाश्रयत्व, १३ स्त्रगीता, १८ आत्माकर्तृ क सृष्टि, १५ सामान्यसृष्टि, १६ विशेपसृष्टि, १७ आत्मस्वरूपकथन, १८ सर्वशास्त्राथ संग्रह, १६ रहस्यविचार, २० सर्व-वेदान्तसंग्रह।

३य शंकर सहिता।

यह शङ्करसंहिता फिर नाना खएडोंमें विभक्त है जिनमेंसे शिवरहस्यखएड ही प्रधान है। इस शिवरहस्य-खएडमें लिखा है-

"तत या संहिताप्रोक्ता शाङ्करी वेदसम्मिता । विश्तत्सहस्रे प्रे न्थानां विस्तरेण सुविस्तृता ॥ (६०) आदौ शिवरहस्त्राख्यं खण्डमद्य वदामि वः । तत्र योदशसाहस्रेः सप्तकाण्डेरलंकृतम् ॥ (६१) पूर्वः सम्भवकाण्डाख्यो द्वितीयस्त्वासुरः स्पृतः । माहेन्द्रस्तु तृतीयो हि युद्धकाण्डस्ततः स्पृतः ॥ (६१) पञ्चमो देवकाण्डाख्यो दक्षकाण्डस्ततः परम् । सप्तमन्तु मुनिश्रे हो उपदेश इति स्पृतः ॥ (६३)

इस स्कन्दपुराणमें वंद्रसिमत शङ्करसंहिता ३०००० प्रन्थोंमें सिवस्तर वर्णित हुई है। इसके प्रथम खरडका नाम है शिवरहस्मा। इसकी क्ष्णोकसंख्या १३००० हैं और यह सात काण्डोंमें विभक्त है। यथा—सम्मवकार्ग्ड, आसुरकार्ग्ड, माहेन्द्रकार्ग्ड, युद्धकार्ग्ड, देवकार्ग्ड, दक्ष-कार्ग्ड और उपदेशकार्ग्ड।

१म मम्भवकां इमे—१ सूतशीनकसंवाद, शिवके आदेशसे विष्णुका व्यासक्षपमें अवतार और अधादश-पुराणसङ्कलन, जिस जिस पुराणमें ब्रह्मादि देवताओं के

अन्यतमका माहातम्। दिया गया है, उस उस पुराणका नामकीत्त न, २ स्कन्दंपुराणान्तगत षट्संहिताका नामकथन, ३ दाक्षायणीका शिवनिन्दा सुन कर निज देहत्राग और मायामयी हिमालयकन्याके रूपमें आविर्भाव, ४ शूरपद्म प्रशृति असुरोंके उपद्रवसे पीड़ित इन्द्रादि देवताओंकी ब्रह्माके समीप गमनकथा, ५ ब्रह्माके निकट शूरपद्म, सिंहवक्त और तारकांसुर प्रभृतिका पराक्रम और इन्द्रादिका क्लेशविज्ञापन, ६ इन्द्रादि देवताओंके साध ब्रह्माका वैकुण्ट गमन और विष्णुके निकट असुरोंका उप द्रवकथन, ७ ब्रह्मादिके साथ नारायणका कैलास-गमन और शिवके निकट असुरकर्तृ क देवपराभव-वर्णन, ८ कार्त्तिकको उत्पादन कर असुरका संहार करूंगा, इत्रादि वाक्योंसे विष्णु आदिको आश्वासन दे शिवका समाधि-अवलम्बन, ८-१० शिवकी समाधि भङ्ग करनेके लिये देवताके आदेशसे मदनका कैलासगमन और समाधि भङ्गका उपायचिन्तन, ११ शिवका समाधिभङ्ग और मदनभस्म, मदनके पुनर्जीवनके लिये रतिकी प्रार्थना, पार्वतीको छलनेके लिये वृद्धश्रह्मणके रूपमें शिवका हिमालय-गमन, १३-१४ वृद्धब्राह्मणकॅपी शिवकी पार्वतीके समीप शिवनिन्दा, उसे सुन कर पार्वतीका क्रोध और उन्हें सन्तुष्ट करके शिवका कैलास आगमन, १५ महा-देवका सप्तर्षि सरण और पार्वतीका विवाह करनेके छिये उन्हें हिमालयके निकट प्रेरण, १६ सप्तर्षि-हिमालय-संवाद, १७ सपत्नी हिमालयकी गौरीदानमें सम्मति. सप्तर्षिका शिवके निकट आगमन, १८-२२ हरपाव तोंक विवाहाङ्ग कर्मका अनुष्ठान और हरपार्वतोका मिलन, २३ पावतीके साथ शिवका कैलासगमन, २४-२६ गणेश-का उत्प त्त-विवरण, २७ वीरवाहु, वीस्केशरों, वीरमहेन्द्र, वोरचन्द्र, वीरमात्तरंएड, वीरान्तक और वोर नामक शिवपुर्वोका जन्मवृत्तान्त, २८ शरवनमें कार्त्तिकेयका जन्म और उन्हें कैलास लाना, २६ क्रीड़ाच्छलमें कार्त्तिकेयका विक्रमवर्णन, ३० इन्द्रादि देवताओंका कार्त्तिकेयके साथ युद्ध और इन्द्रादिका पराभव, ३१ बृहस्पतिको प्रार्थ नासे कार्त्तिकेयकर्षं क देवताओंका पुनर्जीवन और आत्माका विश्वात्मक रूपप्रदर्शन, ३२ कार्त्तिकेयका देव-सेना-पतित्व पर अभिणेक, नारदानुष्टित यहमें प्राप्तः पश्वङ्ग-

सम्भूत एक छाग द्वारा विलोकव्याकुलीकरण और उस छागको कार्त्तिकेयके वाहनत्व पर वरण, ३३ कार्त्तिकेय-कर्तुं क ब्रह्माका कारागाररोधकथन, ३४ शिवकर्तुं क ब्रह्माका कारारोधमोचन, ३५ ३६ कार्त्तिकेयका रूप, वीय और विभूतिकथन, ३७ शूरपद्म प्रभृति असुरोंका विनाश करनेके लिये कार्त्तिकेय और वीरवाहु आदिकी युद्धयाता, ३८-३६ तारकासुरके साथ वीरवाहु आदिका युद्धवर्णन, ४० चीरवाहुको पराजय, ४१-४३ कार्त्तिकेय और तारका-सुरका युद्धवर्णन, ४४ कीञ्च और तारकासुरका वधकथन, ४५ क्रीञ्चतारकासुरवधके दिन ब्रह्माविष्णु प्रभृति देव-ताओंके साथ कार्त्तिकेयका हिमालय-पर्वत पर अव-स्थितिकथन, ४६ तारकासुरकी पितवोंका विलाप, तारका सुरके पुत असुरेन्द्रके पिताकी अन्त्येष्टिकिया समाप्त करके पितृव्य शूर्पदाके निकट आगमन और कार्त्तिकेयके हाथसे पितृवधवृत्तान्तकथन, ४७ कार्त्तिकेयका वल-विक्रमादि जाननेके लिये उनके निकट शूरपद्मासुरकर्एक गुप्तचरप्रेरण, ४८-५० कार्त्तिकेयादि देवतार्थीका वारा-णसी-तीर्यादिगमनवृत्तान्त् ।

वस्तादिका उत्पत्तिकथन, २ शूरपद्म, सिंहवयत और तार-कासुरका तपस्माकथन, ३ महादेवके निकट उनकी वर-प्राप्ति, ४-७ शूरपद्मादि असुरकत के देवताओंको पराजय, ८ इन्द्रादिकत के शूरपद्मका राज्याभिगेकवर्णन, ६ शूर-पद्मादिका विवाह और वंशविस्तारकथन, १० शूरपद्मका दौरात्म्यवर्णन, ११ विन्ध्यपर्वतका पतन और वातापि-वध, १२ शूरपद्मके भयसे श्रीकोपानगरमें शची समेत इन्द्रका पढ़ायन और देवताओंका उनके समीप आगमन, १३ गएडकोको उत्पत्ति, महाकालकत के शूरपद्मभगिनी-का हस्तच्छे द, १४ शूरपद्मके समीप अजवष्टतकत के अपना हस्तच्छे दिववरण, १५ इन्द्रपुत जयन्त्यादि देव-ताओं तथा शूरपद्मसुत भानुकोपाख्यान, असुरादिका युद्ध वृत्तान्त ।

वुष हैं। काइमें १७ शूरपद्मासुरके वलवीर्यादि देखनेके लिये वीरवाहुका प्रत्यागमन, वीरवाहुके मुखसे शूरपद्मका वलवीर्य सुन कर युद्धके लिये कार्त्तिकेयका लुद्धागमन ।

४ वृद्धकांडमैं--१-३५ कार्त्तिकेय वीरवाहु आदिके. साथ शूरपद्म मानुकीपादिका सविस्तार युद्धवृत्तान्त, शूरपद्ममानुकीपादिका निधनकीर्त्तंन।

पम देवकांडमें—१-७ कार्त्तिकेयका विवाहवर्णन, मुचुकुन्द नृपतिके चरिताख्यान प्रसङ्गमें कार्त्तिकेयका माहात्म्य कीर्त्त'न।

दस खंधमें—१-४ ब्रह्मादस संवादमें शम्भुका जगत्-कारणत्वकथन, शिवका सर्वेच्यापित्वादिनिरूपण, जगत्-का ब्रह्मात्मकत्वकथन, शिवका पतित्व और ब्रह्मादि यावतीय जीवोंका पशुत्वकथन, शिवाराधनाके लिये दक्षका मानसरोवरादिगमनवृत्तान्त, शिवका वर पाः कर दक्षका पुरोनिर्माणविवरण, दक्षपुर्तोकी स्रष्टुत्वप्राप्तिकी इच्छासे मानससरोवरमें तपस्त्रादि, सारदसमागममें विवेकोद्यके हेतु उनका मोक्षाभिलाषादिविवरण, यह वार्त्ता सुन कर दक्षकी पुनर्वार शतपुतस्रिहें मोक्षकी कामनासे शतपुतकी नारदीपदेशसे तपश्चारण, दक्षका. क्रोध और तयोविशति कन्यास्त्रिः, वशिष्ठाति प्रमुख ऋपि-गणको कन्यासम्प्रदान, पुनर्वार सप्तविशति कन्यासृष्टि और चन्द्रको सम्प्रदान, कृत्तिकाके प्रति निरन्तर अनु-रक्तिके कारण दक्षकर्ष क चन्द्रको अभिशाप और चन्द्रके क्षयरोगकी प्राप्तिकथा, चन्द्रका शिवाराधनादिवृत्तान्त, ५-६ हरपार्व तीसंचादमें जगत्कारणादिकया, शिवके उपदेशसे देवीका कन्यारूपमें पद्मवनमें अवस्थान, दक्ष-कर्तुं क कन्यात्वमें उनका ब्रहण, पशुपतिको पतिरूपमें पानेकी आशासे गौरीचे ्दक्षगृहमें रह कर तपश्चर्या, वृद्धब्राह्मणके वेशमें शिवका तपोरता गौरीके समीप आगमन, शिवदुर्गका विवाहोत्सववर्णन, अन्धकरिपुरके अकस्मात् अन्तर्धान पर देवीकी पुनर्वार तपस्त्रा, शिव-समागमवर्णन, दुहितृज्ञामात् देखनेकी अभिलाषासे दक्षका कैलासगिरि आगमन, शिवनिन्दादिवृत्तान्त, ब्रह्मा-कर्नु क यज्ञानुष्टानविवरण, नन्दीके साथ दक्षका विवाह-वर्णन, १०-१४ द्स्यज्ञ, यज्ञसभामें शिवभक्तोंके नहीं आनेकी दसकी चेष्टा, दश्रद्धीचिसंवाद, उसके प्रसङ्गमें शिवका परब्रह्मत्वकीत्त न, रुद्रनामवितरण, दक्षकतृक शिवचरित्र पर दोषारीएण, महादेवके दिगम्बरत्वका कारणनिर्देश, तपस्त्रिगणको मोहनेके लिये मोहिनीवेशमें

श्रीधरका और योगीवेशमें महेश्वरका दारुकवन-प्रवेश. व्याव्रवर्मादि और परशुमृगादि भगवद्भूषणधारणका कारणनिर्देण, १५-२० विधाताका वर पा कर गजासुर-कर्षक देवताओंका दुरवस्थावर्णन, विरूपाक्षकर्षक गजनिपात और तचम -धारणादि वृत्तान्त, क्राहरूपमें विष्णुकर्त् क हिरण्याक्षनाश और दन्ताघातसे चराचर-विनाश, ब्रह्मादिको प्रार्थनासे महादेवकर् क तइन्तो-त्पादन और खकरमें धारण विवरण, समुदमन्थनकालमें शिवकत्रंक मन्दरावातसे चञ्चलक्तर्मका पृष्टास्थिपह गादि-विवरण, विषाग्निइ ध विष्णुका कृष्णत्व कथन, शिव-कर्क विषपान, देवगणकृत नोलकएठस्तोत्न, शिवकी भिक्षावृत्तिका कारण-निर्देश, पद्मनाम और ब्रह्माका जगत्ं-कतृत्व है कर परस्परमें विवाद और शिवके समीप आविर्मावादि, कालभैरवोटपत्ति, तत्कतुं क ब्रह्माका शिर-श्छेदन, विष्णु प्रभृतिका रुधिरग्रहणवृत्तान्त, २१-२५ वृषद्भप्रधारी हरिका हरवाहनत्वप्राप्तिकारण, शिवका कपालमसम्बारणादि विवरण, हररोपानलसे जालन्यरकी उत्पत्तिकथा, तदुपद्रुत केशवादि देवताओंकी प्रार्थनासे महादेवकत् क जालन्धरवध-वृत्तान्तकथन, जालन्धर-कामिनी बन्दाके प्रति कामयमान विष्णुकतृ क जालन्धर-के मृत शरीरमें प्रवेश और वुन्दाके साथ सम्मोगादि, ब्रह्मवाक्यसे वृन्द्रवीजसे श्मशानीपरभूमिमें उत्पन्न तुलसोका आधिक्यविवरण. पार्व तोके करतलजात-् स्रोदसलिलसे गङ्गाका उत्पत्तिवृत्तान्त, २६-३४ शुका-चार्योपदिए मृतसेनके आदेशसे मागधाख्ययोगिवरको मोहनार्थं विभूति नाम्नी असुरकामिनीका मेरुप्रवेशमें गमन, करिणोद्धपघारिणी विभूतिके साथ करिह्रपघारी मागधका विहार, गजमुखदैत्यका उत्पत्तिकथन, पार्वती-परमेश्वरकी अक्षकीड़ामें विष्णुका साक्षित्रपमें अवस्थान-कंथन, पार्वतीके शापसे विष्णुकी अजगररूपप्राप्ति और वरद्वीपमें अवस्थान, गणेशके साथ गजमुखमित मृतसेन-का युद्ध, गणेशवाणिवद्ध गजमुखका मूपिकरूपग्रहण-विवरण, गणेशकरु क उसे वाहनत्वमें ग्रहण और तदा-रोहणादिकी त्रन, शुकाचार्य-मृतसेन प्रभृतिका पक्षिरूपमें पलायन, गणेशको देख कर अजगरह्नपा हरिको खह्नपटव-प्राप्ति, ३५-४० शिवसाहात्म्यश्रवण पर दक्षके सुसति उत्पन्न होते न देख द्घोचिका प्रस्थान, नारदके मुखसे पित्गृहमें यज्ञानुष्टानका संवाद सुन णिवके आदेशसे दाक्षायणीका पितृभवन-गमन, दक्षके मुखसे णिव-निन्दा सुन कर विमान पर चढ़ देवीका फिरसे कैलास-गमन और शिवके समीप तद्वृत्तान्तकथन, शिव और शिवाके कोघसे मद्रकाली और वीरमद्रका आविर्माव-प्रस्ताव, शिवको आज्ञासे डाकिनी, शाकिनी, हाकिनी-प्रभृतिके साथ वीरमद्रादिका दक्षालय-गमन, दक्षका शिरमृत्रेद, वीरमृद्रकृत ब्रह्मा और इन्द्रादिकी दुरवस्था, विष्णुके साथ उनका समरसम्मव, विष्णुकृत तत्स्तीव, देवताओंकी जीवनप्राप्ति, दक्षका पुनरुज्ञीवन, दक्षके समीप ब्रह्माकर्ष्ट क शिवमाहात्म्यकीर्चन, पृथिवीस्थाप-नादिकथन, भूगोलकथन।

७ उग्देशहां हमें—१-२ कैलासवणन, ३-५ असुरादि-का हे पोत्पत्ति-कारणनिर्देश, ६-७ अजमुखका आसुर-देहोत्पत्ति हेतु और पूर्व जन्मकर्म कथन, ६-१२ मस-माहात्म्यकीर्त्त न, १३-१६ छद्राक्षमाहात्म्यकीर्त्त न, २०-२६ शिवनाममाहात्म्यकथन, २७ सोमवारव्यविधि और तन्माहात्म्यकोत्त न, २८ आद्राव्यविधि, २६-३० उमामाहे-श्वरव्यविधि, ३१ केदारव्यविधि, ३२ कल्याणव्यविधि, ३३ शूलव्यविधि, ३४ केदारव्यविधि, ३२ कल्याणव्यविधि, ३३ शूलव्यविधि, ३४ अध्यव्यविधि, ३५ शुक्रवारव्यत-विधि, ३६ विश्वे श्वरव्यवविधि, ३७ कृत्तिकादिव्यतमाहात्म्य कथन, ३८ माधमासके प्रथम दिवसमें और चैताश्विन-मासके भरणीनक्षवमें शिवव्यविधान, ३६-४७ शिवमकके लक्षणादि, ४८ शिवपुराणश्रवणफल, ४६-५७ शिवद्रोह-फलकीर्त्त न, ५८-६० शिवनिन्दादिफलकीर्त्त न, ६१-८१ शिवपुजामाहात्म्यकथन, ८२ शिवयोगकथन, ८३-८४

६ सौर संहिता।

१ स्तके साथ ऋषियोंके संवादमें अष्टादशपुराण-कीर्त्त न, उपपुराणकथन, व्यासकृत शिवाराधन-विवरण कथन, तत्कर्त् क वेदविभाग कथन, ऋग्वेदकी इक्कीस शाखाओंका विवरण, यज्ञवेंदकी सौ शाखाओंका विव-रण, सामवेदकी हजार शाखाओंका विवरण, विभाग-पूर्व क जैमिनिप्रशृतिको वेददान-विवरण कथन, मुनियों-के निकट कृष्णद्वैपायनके परब्रह्मका रूपवर्णन, उनका शिव-शम्भु-महादेवादि नामकथन, धमका चोदनालक्ष-णत्वकथन, चोदना-प्राभाण्यनिरूपण, पुराणलक्षणकथन, स्य का उपासनाविवरणकथन, २-५ याज्ञवल्क्यकृत उसे सूर्यका तत्वज्ञानोपदेश कथन, अभेदवादकथन, जगत्सृष्टि कथन, हिरण्यगर्भका उपाधिमेदसे सप्तपाताल-का स्वरूपकथन, स्वर्गका संस्थानादिकथन, वर्णादि स्थान-निर्देशपूर्व क जम्बृद्धीप संस्थानादिकथन, प्रसद्दीपका निरूपण, आवह-प्रवहादि सप्त वायु, नेमिनिरूपण, नक्षत-मण्डल, सप्तर्षिमण्डल, घ्रु वमण्डल और सुरत्यादि कथन, सूर्य-चन्द्र-मण्डल आदिका मण्डलविस्तारादि परिमाण-कथन, सदाशिवलोकसंस्थानकथनपूर्वक विस्तृतस्पर्मे सदाशिवरूपवर्णन, जगत्कारण-निरुपण प्रसङ्गमें माया-वाद-निरूपण, वेदान्तप्रशंसा, ब्रह्मकारणतावादका अभ्य-हितत्त्व कथन, आर्हत, वीद्ध, पाञ्चरात्न, विनायक आदि तन्त्रोंका निन्दाकीत्त न, ६-१० भस्म तिपुण्ड्रादि घारण-माहात्म्यकथन, शापक्षयोपायकथन, अधिमुक्तमाहात्म्य-कथन, विश्वे भ्वरमहिमा, वाराणसीवर्णन, गङ्गादि नाना-तीर्थमाहात्स्यकथन, अध्यारोपादि स्वरूपनिरूपण, अज्ञान-लक्षणादिकथन, आत्मसक्षपादिकथन, परमात्मा और जीवात्माका उपाधिमेदनिरूपण, विश्वानमाहात्म्य कथन, उसका उपाय कीत्त[°]न, उसका खरूप-कथन, ज्ञान-कारण-निरूपण, ११-१६ सत्त्व-रज्ञ-तमोगुणादिका प्रकृतिनिरू-पण, जीवस्बरूपविवेचना, निगु[°]ण आत्माका वन्घहेतुनिरू-पण, देह इन्द्रिय मन प्राण विज्ञान और शून्यादिका आत्म-मोक्षस्वरूपनिरूपण, कत्ववाद-कथन, मोक्षोपायकथन, श्रुतिकल्पनायोग्य विषय-निरूपण, याझवल्म्यकर्तृ क सूर्य-स्तोतकीत्त न।

प्रभासखर्ड और नारद्पुराणमें जिस प्रकार सप्त खरडोंका एक दूसरेके बाद विवरण किया है, उसी प्रकार यहां भी सप्तखरडोंकी सूची दी जाती है।

१म श्रम्बिकाखगढ ।

१ कार्त्तिकेयका जन्म, २ अनुक्रमणिका, ३ नैसिषा-रण्यका उत्पत्तिविवरण, ४ ब्रह्मका प्राजापत्याभिष के, ५ रुद्रका जन्म, ६ ब्रह्मका शिरङ्खेद, ७ कपालसंस्थापन, ८ देवगणकर्षेक रुद्रदशनवृत्तान्त, ६ सुवर्णाक्षोत्पत्ति-वणन, १० दक्षशापकथा, ११ उमातपस्थावर्णन, १२ ब्राह-

कल क वालमोक्षण, १३ उमाका विचाह, १४ उमाविवाह-स्तव, १५ वशिष्टवरप्रदान, १६ शक्ति नामक वशिष्टपुर्वो-त्पत्तिकथा, १७ कल्मायपाद्शापविवरण, १८ राक्षससत निरूपण, १६ विश्वामितकर्षक विशयके प्रति वैर-निव-त्तंन, २० नन्दीका तपस्याप्रवेश, २१ नन्दीकर्तंक महादेव-को स्तुति, २२ जण्येश्वरक्षेत्रमाहात्म्यकथन, २३ नन्दोश्वर-के अभिषे कार्थ महादेवका इन्द्रादि, देवताहान, २४ नन्दी-श्वराभिषेक स्तुति-कथन, २५ नन्दीश्वर-विवाहकथन, २६ मेनकाकधित पतिनिन्दाश्रवण पर दुःखिता पाव तीका शिवके समीप आगमनवृत्तान्त, २७ शिवको गो-हरिण्यादि दानफल, २८ शिवपूजाविधि, २६ कुवेरपञ्चन्दूडावरप्रदान, ३० वाराणसीमाहात्म्य, ३१ दधीचमाहात्म्य, ३२ दक्षयह यिनाशवर्णन, ३३ वृषोत्पत्ति-वर्णन, ६४ उपमन्युवर-प्रदान, ३५ सुकेशवरप्रदान, ३६ षितृप्रक्ष, ३७ नरकसंख्या-कीर्त्तन, नरकभीतिवर्णन, ३८ शास्मलीनामक नरक-वर्णन, ३६ कालस्त्रक नरककथन, ४० कुम्सीपाकनरक-वर्णन, ४१ असिपतवनाख्य नरकवण न, ४२ वैतरणी-नरक-चण न, ४३ अमोधनरकवण न, ४४ पद्माख्यनरक-वर्णन, ४५ महापद्माख्यनरकवर्णन, ४६ महारीरवनरक वर्णन, ४७ तमोनाम नरकवर्णन, ४८ तमस्तमोनाम नरकवर्णन, ४६ यमगोताकथन, ५० संसारपरिवर्त्तन-कथन, ५१ सुकेशमाहात्म्य, ५२ काष्टकूटकथा, ५३ दुर्गा-तपःवर्णन, ५४ ब्रह्मप्रयाण बृत्तान्त, ५५ व्रह्मागमनवृत्तान्त, ५६ दुर्गावरप्रदान, ५७ सप्तध्याघोपाच्यान, ५८ ब्रह्मदत्त राजाका उपाख्यान, ५६ कोशिकीसम्मव-वृत्तान्त, ६० कौशिकोका विन्ध्यगिरिगमनवृत्तान्त, ६१ देत्यीद्योगवर्णन ६२ सुन्दरदैत्यवधवर्णन, ६३ असुर्रावजय-वर्णन, ६४ असुरोद्यगवर्णन, ६५-६६ देवो कौशिकोके साथ असुरोंका युद्धवृत्तान्तं, ६७ कौशिकीका अभिषेचन, ६८ कौशिकी-देहसम्भवा देवियोंका देश और नगरादिमें अवस्थान वृत्तान्त, ६६ पाव तीके साथ हरका मन्दरगमन, ७०-७१ नर्रासहकर् क हिरण्यकशिषुवधवृत्तान्त, ७२ स्कन्दोत्पत्ति-वर्णन, ७३ अन्धकोत्पत्ति-विवरण, ७४ अन्धकवरप्रदान, ७५ हिरण्याक्षका खपुरप्रवेशवृत्तान्त, ७६ हिरण्याक्षका सभाप्रवेशवृत्तान्त, ७७ असुरयोगवर्णन, ७८-१०६ देवा-सुरयुद्धवर्णन, १०७ वराहोत्सव-वर्णन, १०८ वराह-

प्रयाणवृत्तान्त, १०६ महादेशका सुमेरुगमन, ११० दान-फलनिरूपण, १११ उमासावित्रीसंवादमें कृच्छ्रादि-वत-फलकथन, ११२ स्त्रीधर्मनिरूपण, ११३ असृताक्षेपवर्णन, ११४ अमृतमन्थनप्रसङ्गमें नीलकरहोपाख्यान, ११५ विष्णुकर्तुं क अमृतापहरण और देवासुरयुद्ध, ११६-११७ वामनपादुर्भाव, ११८ शुक्तवासवसंवाद, वामनप्रादुर्मावमें तीर्थयातावर्णन, १२२ सैंहिकेयवध वर्णन, १२३ हरिश्चन्द्रनिर्देश, १२४ महादेवके समीप परशुरामकी वरप्राप्ति, १२५ वसुधाप्रतिष्ठावर्णन, १२६-१२८ गङ्गावतरणवृत्तान्त, १२६-१४८ अन्यकादि असुर-पराजय कीस न, १४६-१५१ पार्वतीकर्तृक अशोकतरु-·का पुतत्व-परिप्रहण, १५२ शूलीकर्तृक धर्मपद्धतिव्याख्या, १५३ विपहेतु महादेवके कर्डमें नीटत्व-कथन, १५४ पार्वतीकर्त्वेक भस्मरजसादिका विलेपत्वप्रश्न और महा-वेवका तदुत्तरदान, १५५ जगत्प्रभुके श्मशानवासित्व -सम्बन्धमें पार्वतीका प्रश्न और शिवोत्तर, १५६ सुगन्ध ·जलादि द्वारा शिवस्नानका फल, १५७-१५६ पुण्यायतन फल, १६० भैरवोत्सवकथा, १६१ विनायकोत्पत्ति, १६२ स्कन्दोर्त्पात्तं, १६३ स्कन्द-दर्शनार्थ देवगणका आगमन, १६४ स्कन्द-विनाशार्थं इन्ट्रकर्तृक मातृगणका प्रेरण, '१६५ स्कन्दके साथ इन्द्रयुद्धवृत्तान्त, १६६-१६७ स्कन्दका देवसेनापतित्व कथन, १६८-१६६ स्कन्दाभिणेकवर्णन, १७०-१७३ तारकासुरवधविवरण, १७४ स्कन्दके प्रति इन्द्रवाष्य, १७५ महिषासुरवध, १७६ महेश्वर-नामकथन, १७७ महेश्वरस्तुति, १७८ शंकुकर्णकर्तृक यमदूत-गणका प्रत्याख्यान, १७६ कालञ्जरायतनवृत्तान्त, १८२ -देवायतनोद्देश, १८३ भद्रेश्वगुख्यान, १८४ देवदारुवनमें महादेवस्थानमाहात्स्य, १८५ आवतन-वर्णेन, १८६ मयवर-दान, १८७ त्रिपुरवर्णेन, १८८-१६५ त्रिपुरवधवृत्तान्त, १६६ कौञ्चनघ, १६७ कौञ्चसञ्जीयन, १६८-१६६ प्रहाद्युद्ध, २०० प्रहादविजय, २०१ हिमवत्सम्भाषण, २०२ गिरिवाच्य, २०३-२०४ गिरिपसच्छे दवृत्तान्त, २०५ मेघोत्पत्ति, २०६ पक्षच्छेदनश्रवणफल, २०७-२०८ नारायणके साथ प्रहाद-का युद्धोद्योग, २०६ अनुह्राद्वध, २१० नारायण-कर्त् क चक्रसृष्टि, २११ प्रहादामरसङ्गम, २१२ परमदैवतवचन, -२१३ देवदानवयुद्ध, २१४ प्रहादका तपश्चरण, २१५

अञ्चरप्रचाणोत्पातवित्ररण, २१६ प्रह्नाद-नारायण-युद्धमें इन्द्रागमन ।

१ माहेश्वरखग्ड।

केदारखएडमें—१ लोमश-शौनकादि संवाद, ५-३ दक्षका शिवरहित यज्ञानुष्ठान, सतीदेहत्याग और वीर-भद्रकर[°]क दक्षयक्ष[°]विनाश, ४-५ वीरभद्रके साथ इन्द्रो-पेन्द्रादि देवताओंका युद्धवर्णन, दक्षकी छागमुराडप्राप्ति, शिवपूजा और शिवालय-निर्माणफल, त्रिपुण्डू और विभूतिमाहात्स्य, इन्द्रसेन राजाका उपाख्यान, अवन्तीपुर-वासी नन्दि नामक वैश्यका उपाख्यान और नन्द तथा किरातका शिवलोग-गमन, ६-७ ऋषिके शापसे शिवकी पएडत्वप्राप्ति और लिङ्गयतन, तत्स्वरूपकथन तथा अर्चन-माहात्म्य कीर्त्तन, पाशुपतधमंकीर्त्तन और कालीराज-दुहिता सुन्दरीके साथ उदालक ऋषिका सपर्याकरण, ८ रत्नमुक्ताताष्रमयादि लिङ्गपूजाकथन, गोकर्ण पर्वत पर रावणको छिङ्गपूजा, नन्दिके साथ रावणका विरोध और शापप्राप्ति, देवताओंका वानर रूपमें जन्मग्रहण, रामावतार-कथन, ६-११ वलिकत्र क शुक्तेश्वर्य हरण, समुद्रमन्थन, काळकूटोत्पत्ति, तद्दद्वारा ब्रह्माएड-भस्म, गणेशकी उत्पत्ति मीर पूजाविधि, समुद्रमन्थनमें चन्द्रादिका उद्भव और नानारत्नोत्पत्ति, स्रक्ष्मी और अमृतोत्पत्ति, विष्णुका मोहिनोरूपधारण, १३ देवासुरयुद्ध, १४ वलिमुस सर्व-दैत्यापस्थापन, दैत्यका जयलाभ, राहुके भयसे चन्द्रका शिवके समीप गमन, चिष्णुकतुंक कालनेमिवध, इन्द्र वृहस्पतिका विरोध, इन्ड्रकतुंक विश्वकर्मसुत विश्वक्रप-का मस्तकछेद, विश्वरूपके मुखसे कपिञ्जलकी उत्पत्ति, १५ नहुप और ययातिराजका उपाख्यान, १६ वृतासुरका जन्म, दर्घाचिका उपाख्यान, पिप्पलादकी उत्पत्ति, १७ वृतासुरवध, १८ वलिकतु क अमरावतीरोध और इन्द्रादि देवताओंका मयूरादिकपमें पळायन, वामनावदार-कथन, विलका यज्ञ, १६ वामनक्षपी विष्णुकी छलना, त्रिपाद्-भूमिभिक्षा और बलिका पाताल-गमन, १० गिरिजोत्पत्ति, २१ गिरिजाकी शिवशुश्रुपा और मद्नदाहनादि उपाख्यान, २२ पाव[°]तोतपःफलकथन, २३-२५ शिवविद्या**न**मणेन और चरडीकी आविर्भावकथा, २६ गम्बमादन पर्भंत पर शिवदुर्गाका विहार, अग्निका हंसरूपमें वहां गमन, नारद

वाक्यसे वालखिल्पका जन्म, २७ कार्तिकेयकी जन्मकथा, और सेनापितत्वमें वरण, कार्त्तिकेयका तारकासुरयुद्ध वृत्तान्त, २६ तारकासुरसंग्राम, ३० तारकासुरवध और कार्त्तिकेयका माहात्म्य कथन, ३१ यमकर्तृ क शिवको ब्रान्योगस्वरूप जिज्ञासा और अध्यातमनिरूपण, ३२ ध्वे तराजोपाख्यान, ३३ शिवरातिव्रतमाहात्म्य और पुक्कस वृत्तान्त-कथन, ३४ तिथ्यादिनिरूपण, शिवपार्वतीको स्व तकोड़ा, पराजित शिवका कोपीनग्रहणरहस्य, पीछे केलासत्याग और वनगमन, ३५ पार्वतीका शवरीक्रपमें शिवके समीप गमन ।

कुम रिकालंडमें--- उप्रथ्रवा-मुनिगण-संवादमें दक्षिणा-र्णव-तीरवर्ती कुमारेश, स्तम्भे श, चर्करेश्वर, महाकाल भीर सिद्धेण आदि पञ्च शिवतीर्थंमाहात्म्य और स्नानादि फलकथन, सीमद्रमासादि तीर्थमाहात्म्यवर्णन, घनञ्जयकत तोर्थम्मणयसङ्घे स्नानकाल जलसे ब्राहका उत्तोलन, दोनोंका युद्ध और प्राह-विस्कृरण, कल्याणी नारीका आविर्माव, जलचारिणी कामिनीका पूर्वशाप और अप्सरा जन्मादि ऋथन, इंसतीर्थ और काकादि तीर्थपसङ्ग, अप्सरा-की शापमुक्ति और खगंलीकमें गमन, २ अ सराप्रद्र पर अर्डु नका नारदके समीप गमन, द्वाद्श वार्षिकी महा-याता-कथा, फाल्गुन तीर्थयात्रामाहात्म्य-कथा, सरस्वनी-के किनारे कात्यायन मुनीके प्रश्न पर सारखत मुनि-कर्व क सारखतधर्मकथाशसङ्गमें वृषभवाहन महादेव-पूजा-का श्रे प्रत्वकथन, दानमाहात्म्यकीत्तंन, काशीपति प्रत-द नकी दाननिष्टा, ब्राह्मणको दान करनेसे रुद्रलोकगति, ३-४ पार्थकर्नुक वहु देश-नगरादि पर्यंटन और कल्प-स्मरावरा रेवातीका समागम, नदुत्तरतीरवर्त्ती मृगमुनिका आश्रम-समाख्यान, मृगाश्रममें भृगुसमागम, शृगुकर् क विप्रयोज्ञ स्थान कथन, शृगु-नारदसंवाद, महीनदीतटवत्तीं तीर्धसमाख्यान और महोसागरसङ्ग्रनमाहात्म्यकथा, देवशर्मा और सुभद्रमुनोसंवाद, ५ सविस्तरमें महोसागर-सङ्गममाहातम्य कथन, दानमाहातम्य कथनप्रसङ्गमें द्वौपा-कदान, चतुर्द्धा वैदिकदान, गृहादिदान, अन्न और हय-वाहनादि-दानफलकोत्तेन, अर्जुन-नारदसंवादमें ब्राह्मण स्थानप्रतिष्ठाकथन, संसारवर्णन, कलापप्राममाहातम्य-कीर्त न, ब्राह्मणप्रशंसा, ओंकारवर्णन, खायम्भुव खारो- चिषादि चतुर्श मनु, आदित्य और रुद्रादि कथन, शुक्र-शोणितसङ्गमसे जीवीत्पत्ति कारण और गर्भावस्थादि लोभनिन्द्रा, ब्राह्मणका निर्देश, ओहियत्वकथन, मासादिकामसे भास्करपूज्य पुण्यदिन ,नर्णय, ६ नारद-शातातप-संवादमें स्तम्भतीर्थ-प्रशंसा, कलापश्रामकथा, कोलम्बाक्र्प, दानवस्तङ्ग, पि रृ और मातृमाहातम्य, ७ मही-सागरमाहातम्यत्रसङ्गमें इन्द्रयु स्न-राजास्यान, ८ इन्द्रयु स-नाडोजङ्घसंवाद, ६ उत्ककी निशाचरत्व प्राप्तिकथा, १० शिवका इमनकोत्सव और शिवका दोलयाताकथन, अग्निवेश्याकन्याका आख्वान, ११ इन्द्र**मू और हेवदू**त-संवाद, १२ इन्द्रगु च कुर्मसंवादमें शाणिडल्य-विपाल्यान, शिवपूजा-माहातम्यकथन, दशयोजन विस्तृत कूमींत्पत्ति कथा, १३ इन्द्रगुम्न और लोमश-संवादमें वैण्णवी माया कथन, शरोरक्षयकथन, लीमशका शूद्ररूप पूर्वजन्ताख्यान और शिवपूजाके प्रभावसे उनका जातिस्मरत्वकथन, शिवभक्तिप्रशंसा, १८ वक-गृध-कच्छप-उल्लंक और इन्द्र-द्युक्का लोमशके निकट शिवदीक्षाविधानमें लिङ्गपूजा क्यन, सम्वत-मार्कण्डेय-संवाद, मालवदेशमें महीनदीकी उत्पत्ति और उसमें सव तीथींका प्रादुर्भावकथन, मही-सागरसङ्गम पर शिवपूजामाहात्म्य, कपिल वालुकादिः अनेक लिङ्गनामकथन, १५ कुमारेश्वरमाहात्म्यप्रसङ्गर्मे काश्यपीयसर्गं, मारुतोत्पत्ति, वज्राङ्गोत्पत्ति, १६-१८ वराङ्गी और वज्राङ्गसंवाद, तारकाख्यान, तारकासुरके साथ इन्द्रादिका संग्राम, १६ देवताओंका विष्णुके निकट आगमन और साहाय्यप्रार्थना, २० इन्द्रकर्°क जम्भासुर-वध, तारकके युद्धमें देवताओंकी पराजय, देवताओंकी रक्षाके लिये चिन्णुका मर्कटरूप धारण और दैत्यपुरमें गमन, २१ देवताओंका मकटकप धारण कर ब्रह्मलोक-गमन और देवगणकतुक ब्रह्मस्तव, पार्वतोगर्भमें कुमारोत्पत्तिप्रसङ्ग, २२ तारकप्रभावव गन, २३ हरगौरी-को विरहलीला, २८ हरपावतीका विहार, वीरनामक पुलजन्म, २५ दैत्यराजका पार्वतीरूपमें शिवके निकट आगमन, शिवका क्रोध, 'शिला हो जा' इस प्रकार माता-के प्रति गणेशका अभिशाप, कीशिकीका सिंहवाहिनीरूप-प्रसङ्ग, विश्वामितकर के शिवके अध्योत्तरशतनाम, कुमा-रोत्पत्ति, २६ कार्त्तिकेषका देवसेनापतित्व पर अभिषेक,

महोसागर-स्नानफल और कार्त्तिकेयके पाप दोंका व गन, २७ हैत्यसेनापति और तारकासुरके साथ कार्तिकेयका युद्ध, तारकवध, २८ लिङ्गनामनिक्कि, लिङ्गस्थापनफल, कपालेश और छिद्रमाहात्म्य, २६ कुमारेश्वरमाहात्म्य, ३० स्तम्भेश्वरमाहातम्य. ३१ पञ्चलिङ्गोपारूयान, ३२ शतम्यङ्ग नृपातमजा कुमारोके चरितप्रसङ्गमें समद्वीपादि वर्णन, ३३ सूर्यमण्डलादि च्योमलोककथन ३४ सप्तपातालवर्णन, ३५ गतश्रङ्गराजकन्या, कुमारीन्त्ररित. भारतखएडका कुलाचल और नदनग्रादिका विवरण, ३६ वर्घरेश्वर-माहातम्य, ३७ महाकालप्रादुर्भाव, ३८ अद्यादश पुराणनाम. वराहकल्पमें धर्मशास्त्रकार व्यासगणके नाम, विक्रमादित्य श्राह्क. बुद्ध प्रभृतिका आवि भविकालनिर्णय, युगव्यवस्था, ३६ करन्यम-महाकालसंवादमें पापकार्यनिर्णय, लिङ्गपूजा और पूजामन्त्रादि कथन, महाकालमाहात्म्य, ४० मृत्युकथन बा मुद्देवमन्त्र, वासुद्देवमाहात्म्य, ४१ आदित्यमाहात्म्य, ४२ दिव्यवर्णंन, ४३ कपिलेभ्बरप्रतिष्टा, स्मम्पतीर्थमें कार्त्तिकेयकर्तृक कुमारेशलिङ्गस्थापन कथा, ४४ वहून्क-कुएड और नन्दभग्नदित्यमाहातन्य, ४५ देव्युपाख्यान. ४६ सोमनाथोत्पत्ति, ४७ महोनगरस्थ जयादित्यादि तीर्थ-कथन, ४८ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, परलोकादिनिर्णय, ४६ कर्म-फलनिण्य, कमडकृत जयादित्य-स्त्रोत, ५० वर्वरीका-ख्यान, ५१ प्राग्ड्योतिवप्रसङ्घमें घटोत्कचके साथ भग-इत्त-कन्या विवाह, वर्ष रोक-नाम-निरुक्ति, ५२ घरोत्कन्य और उनके पुतकी दारका याता, श्रोकृष्णकर्त क वर्णधर्म और महाविद्यासाधन, ५३ क्षेत्रनाथमाहात्स्यप्रसङ्गमें कालिकाचरित, ५४ घटोत्कचके पुत वर्वंरीकाल्यानमें अपराजितस्तोत्त, अङ्गसिद्धिकथन, ५५ भीमेश्वरमाहातम्य, ५६ पद्मार्शस्तोत, देवीका नन्दगोपकन्यारूपमें आविर्माच प्रसङ्ग, देवीकर्तृक निज भावी अवतारकथन, कोन्छेश्वरी-वत्सेश्वरी और गयताङ्गमाहात्म्य, ५६ गुप्तक्षेत्रमाहात्म्य, ५८ कपिलमाहात्म्य ।

नारद्पुराणके मतसे महेश्वरखएडका शेवांग अरुणा-चलमाहात्म्य है, पर अभी वह माहात्म्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

२ वेष्णवखरड । नारद्वणित वेष्णवखरड स्वतन्त्र नहीं मिळता। Vol. XIV. 7 नारदीय विवरणके अनुसार भूमिखएड, उत्कलखंड, वद-रिकामाहात्म्य, कार्त्तिकमाहात्म्य, मथुरामाहात्म्य, माध-माहात्म्य, वैशाखमाहात्म्य, अयोध्यामाहात्म्य और गया-क्षमाहात्म्य वैष्णवखंडमें विवृत हुए हैं। ये सव उप-खंड खतन्त्र मिलते हैं। उत्कलखंड छोड़ कर और कोई भो उपखंड वैष्णवखंडके अन्तर्गत नहीं है। यहां तक कि वद्रिकामाहात्म्य और कार्त्तिकमाहात्म्य स्कन्दपुराणीय सनत्कुमारसंहिताके अन्तर्गत हैं, यह प्रत्येक प्रन्थमें निर्दिष्ट हुआ है। इसी कारण केवल उत्कलखंडकी अध्यायकमानुसार सूची दो जाती है।

उत्कळखंडमें—१ अैमिनिप्रभृति मुनिगणसंवादमें जगन्नाथप्रसङ्गः, त्रह्मा-विष्णुसंवाद, सागरके उत्तर और महानदोके दक्षिण भगवत्क्षेत्रनिर्णय, २ नीलमाधवा-ख्यान, यमकर्तृ क नीलमाधवस्तव, ३ मार्कण्डेयआख्यान, ४ यमें वर-नीलकएठ-कामाख्या-विमला-नृसिंह-अर्थ्याक और अष्टलिङ्गमाहात्म्य, इन्द्रद्युस्त्रआख्यान, इन्द्रद्युस्नका नीलाचलमाहात्म्यश्रवण और ब्राह्मणप्रेरण, ५ ब्राह्मण-क्षतियका नीलाचलदर्शन, पुएडरीककर्षक पुरुषोत्तम-स्तोत, अम्बरीपकर्नु क स्तव, भगवान्का विभूतिवर्णन, ६ उत्कलप्रशंसा, ७ इन्द्रचुन्नका आख्यान आरम्भ, इन्द्र-द्यु सका नीलगिरिका माहात्म्यश्रवण, तत्कर्तः क नीलाचल-पर निज पुरोहितप्रेरण, विश्वाबसु शवर और पुरोहित-संवाद, ८ शवरकर्षं क रोहिण्यादि तीर्थप्रदर्शन, पुरोहित-का अवन्तिपुरमें इन्द्रघु सके निकट आगमन, ६ पुरोहितके मुखसे इन्द्रगुझका नोलमाधव-वर्णन, इन्द्रगुझकर्तुक नीलमाधवादिका स्तव, विद्यापति कर्षक नीलमाधवका रूपवर्णन, १० विद्यापतिकर्नुक क्षेत्र और देवताका मान-कथन. इन्द्रयु स्न-नारदसंवाद, नारदकर् क विष्णुभक्ति-कथन, ११ नारद्के साथ इन्द्रयुद्धका नीलाचलयाता-प्रसङ्गः इन्द्रयुष्टका नीलाचल पर आगमन और उत्कलाधिपतिके साथ सम्भाषण, १२ नारद्कर्णक एकाम्रकाननमाहात्म्यकथन, १३ इन्द्रबुम्न और नारदका पकाम्रवनमें आगमन, विन्दुतीर्थमें स्नान और लिङ्गादि-दर्शन, १४ कपोतेशस्थली और विल्वेशमाहात्म्य, १५ विद्यापतिके मुखसे नीलमाधवका अन्तर्द्धान सुन कर इन्द्रयु म्नका मोह, नारदका आश्वास, श्वेतद्वीपसे नारद-

का मूर्ति आनयनप्रसङ्ग, १६ इन्द्रयु म्रकृत पुरुवोत्तप्रस्तव, १७ राजाभिप्रायसे विश्वकम कर्तृक नरसिंहप्रासाद्-निर्माण, इन्द्रचु म्नकर्नु क नर्रासहस्तव और नर्रासहक्षेत-माहात्स्य, १८ इन्द्रद्युक्षका अश्वमेघ, सहस्र अश्वमेघके बाद ध्यानमें इन्द्रस् झके पुरुषोत्तमादि मूर्त्तिदशन और तत्कत् क स्तोत, १६ समुद्रके किनारे महावृक्ष देख कर राजाके प्रति सेवकका निवेदन, नारदकर्षं क श्वेतद्वोपस्थ विष्णुके रोमसे वृक्षीत्पत्ति कथन, इन्द्रद्युस्नका चतुर्मु ज-रूप वृक्षदर्शन और महोत्सवपूर्वक वेदी पर छा कर स्थापन, वृद्धब्राह्मण वेशमें विष्णुका मूर्त्ति निर्माणार्थं आग-मन, जगन्नाथ, वलराम, सुभद्रा और सुद्र्शका मूर्त्तिवर्णन, २० इन्द्रयु म्नकृत स्तव, नारदके उपदेशसे इन्द्रय म्नकी वासुदेव, वलभद्र और सुभद्राको पूजा, २१ नारदकतु[ँ]क तारक ब्रह्मको अपौरुषेय मूर्ति और श्रुतिप्रमाणताकथन, इन्द्रद्यु म्नकतृ क जगन्नाथका प्रासादनिर्माण और प्रासाद-की प्रतिष्ठा करनेके लिये ब्रह्मलीकर्मे गमनोद्योग, २२ इन्द्रघु स्नका ब्रह्मलोकगमन, २३ नारदके साथ इन्द्रघु स्न-का ब्रह्मदर्शन और दाखब्रह्मकी प्रतिष्ठा करनेके लिये राजा-का निवेदन, देवगणकर्तुं क ब्रह्माके निकट नीलमाधवके दारुब्रह्मरूटवकी कारणजिश्वासा, २४ देवगण और इन्ह्-द्युम्नसंवाद, २५ रथलयनिर्माण, विभिन्न रथलक्षण और रथप्रतिष्ठाविधि, २६ गाल नामक राजा और तत्कतृक माधवका प्रस्तरमय प्रासाद-निर्माणकथन, गाल और इन्द्रद्युम्नका सम्माष, २७ वासुदेवादिकी रथयाला और मूर्त्तित्वयका स्तव, भरद्वाजकर्तृक प्रासादमें देवप्रतिष्ठा, २८ ब्रह्मकर क नृसिहम्तोत, ब्रह्मकर क नृसिह-प्रशंसा, २६ दारब्रह्मकर् क नीलाचलक्षेत्रमें अवस्थानकाल और गुरिडचादि महायाता-कथन, ३० भगवान्की ज्येष्ठ-स्नान-विधि, ३१ नरसिंह-स्नानविधि, स्नानयात्राफल, ३२ द्क्षिणामूर्तं विधि, ३३ विभिन्न रथप्रतिष्ठाविधि, ३४ सध्व मेधसरोमाहात्म्य, महावेदीमाहात्म्य, ३५ रथरक्षाविधि, ३६ शयनोत्सव, दक्षिणायनविधि, श्वेतराजीपाख्यान, ३७ भगवान्का निर्माल्यमाहातम्य, ३८ युगधम , ३६ याता-न्तर फल निण य, ४० प्रावरणोत्सव, उत्तरायणोत्सव, ४१ वैकाव अग्निसंस्कारविधि, ४२ दोळारोहणविधि, ४३ साम्बत्सरव्रतकथन, ४४ दमनभिक्षका, अक्षययाता, द्सा-

ख्यान, दक्षकृत जगन्नाथस्तव, ४५ भगवान्की भृति और महाभृतिका उपायनिण य, ४६ क्षेत्रमाहात्म्य, ४७ मोक्ष-खरूपनिण य, ४८ मुक्तिद्वारमाहात्म्य, ४६ दुर्वासाका क्षेत्र-गमन, ५६ दुर्वासाका विस्मय, ५६ नाम और स्नान-माहात्म्य, ५२ महामाघीस्नानविधि, ५३ महामाघीस्नान-माहात्म्य, ५४ कन्तु नामक मुनिकी कथा, महादेवीक अर्द्धोद्य और महादानमाहात्म्य, ५५ स्कन्द्महादेवसंवाद-में दशावतारमाहात्म्य, इन्द्रादिकी अवतार कथा।

३ व्रह्मखग्ड।

२व धर्मारण्यमाहात्म्यमें -- १ धर्मारण्यकथनविषयक स्तनारदादि प्रसङ्ग, धर्मारण्यकथाप्रसङ्गप्राद्धाटन, २ धर्मा-रण्यवर्णेन, तन्माहात्म्य और नामार्थकथन, ३ धर्मारण्य-में धमराजकी तपश्चर्या, धमाराजतपोभीत हह्यादि देव-कृत महादेवस्तुति, धर्मराजके तपमें वाधा डालनेके लिये इन्द्रकर्षं क अप्सराप्रेरण, नाना भूषणोंसे भूषिता वर्ड नी अप्सराका हाथमें वीणा लिये धर्म राजके समीप गमन, स्त्रीमाहात्म्यवर्णनादि, ४ वर्ड नी अप्सरायम-संवाद, धर्मराजका पुनस्तपः, महादेवसे धर्मराजकी वरप्राप्ति, धर्म कृत महादेवस्तुति, धमारण्यमाहात्म्यादि, ५ धर्मा-रण्य निवासिजनकर्त्तव्य, धर्मवापीमें श्राद्धकी कत्त-व्यता, युगधर्मकथनादि, ७ ब्रह्माकी उत्पत्ति, तत्कृत सृष्टि, ८ विष्णुके साथ देवतासंवाद, आह्रेय-विशिष्ट कौशकादिका गोत और प्रवरादिकी उक्ति, ६ विश्वावसु-गन्धर्वकन्याओंका धर्मारण्यस्थ वणिकोंके साथ विवाह, १० लोलजिहाल्य राक्षसका धर्मारण्यमें उपद्रव, विन्णुकृत तच्छान्ति, वहांके सत्यमन्दिरमें धर्मेश्वर-स्थापनवृत्तान्त, ११ सत्यमन्दिरको रक्षाके लिये दक्षिण द्वार पर गणेण-स्थापन, १२ सत्यमन्दिरके पश्चिम वकुळार्कस्थापन और रविकुर्खोटपत्ति, १३ हयब्रीवदैवका हयमुखकी रमणीयता सम्पादनार्थं धर्मारण्यमें तपश्चरण, हयमुखोत्पत्ति कथन. १४ हयग्रीवोपाख्यान, १५ राक्षसादिका भय दूर करनेके लिये सानन्दादेवीस्थापन, १६ श्रीमातृदेवीमाहात्न्यकथम, १७ कर्णाटक नामक दैत्योपाख्यान, १८ इन्द्रेश्वर, जयन्ते -श्वरमहिमादि वर्णेन, १६ धर्मारण्यस्थ **शिवतीर्थ, धरा**-क्षेत्रतीर्थादि वर्णन, २० भट्टारिका-छताम्बिकादि कुल-देवियोंका गोलप्रवरकथन, २१ धर्मारण्यदिग्देवतास्थापन, देश देशासुरगुद्ध, देशपराजय, धर्मारण्यस्थ ब्राह्मणादिका प्रकायन, धर्मारण्यमें लोहासुरादि दैत्योंका प्रवेशकथन, २३ रामचिरत्वर्णन, २४ रामकी नीर्थ याता, उन सव तीर्थोंमें क्षानादि करनेका फलकथन, २५ धर्मारण्यस्थ देशमन्दि-रादि जोणोंद्धारकरणार्थ रामके प्रति देशिका आदेश, २६ ताम्रपत्न पर धर्मशासनपत्नलिखनादि, २७ धर्मारण्यमें रामकर्तृक दानयशादि करण, २८ कलिधर्मकथन, रामदत्त ब्रह्मसहरणोद्धत कुमारपालराजके साथ विप्रसम्मापण, सेतुवन्धमें विप्रका गमन, वहां हनुमान्का समागम, हनुमान्के साथ द्विज्ञका कथोपकथन, २६ ब्राह्मणवृत्तिके उद्धारार्थ हनुमान्का उपाय, ३० ब्राह्मणवृत्तिको उद्धारार्थ हनुमान्का उपाय, ३० ब्राह्मणवृत्तिकोति, ३१ रामदत्त वृत्तिभोगो ब्राह्मणोंका परस्पर विरोधोत्पत्ति-कथनादि, ३२, उन द्विजोंके अतीतवृतान्त-कथन, एनद्श्रन्थ-प्रवणादिफलकथन।

३ग नहाोतरकांडमें—१ स्त और ऋषिगण-संवादमें शिवमाहातस्यकीत्तं न, शिवपञ्चाक्षरमन्त्र, रिरंसकी सह-धर्मिणी कलावतीके प्रार्थनाकारी दनोहमादक यादवके उपाच्यानप्रसङ्गर्मे शैवमन्त्रमाहात्म्य कथन, शान्तचतुर्वशी-के शिवार्चनमाहातम्य-कथनप्रसङ्गमें इक्ष्वाकुकुलज मिल समेत राजाका उपाख्यान, नरमांसदानहेतु वशिष्टका कोप. उनके शापके प्रभावसे राजाकी राक्षसयोनित्वप्राप्ति, खस्थानगमनकथन, राजाका कल्मापपाद्त्वप्राप्तिकथन, तत्कृत मुनिकिशोरमक्षणादि वृत्तान्त, ३-४ गोकर्णमाहात्म्य-कीतंन, गोकर्णसे प्रत्यावर्त्तनकालमें महर्पि शौनककत् क कुष्टरोगिणी काञ्चनचएडाली दर्शन और तद्विवरणकथन, शिवपूजामाहात्म्य, विमर्पण राजाका उपाख्यान और उनकी स्त्रीके सामने पूर्वजन्ममें निजका सारमेयत्व विवरणकथन तथा राज्ञीका भी पूर्वजनममें कपो-तीत्ववृतान्तकीर्त्तन, ५-६ उज्जयिनीदेशस्थ महाकाल-शिवलिङ्गका माहात्म्य, उज्जयिनीनाथ चन्द्रसेन नृपतिके राज्यमें मणिलुब्धप्रतिकृल राजाओंका युद्धार्थ आगमन-वृत्तान्त, शिवभक्त पञ्चवर्षाय गोपाल वालकका विवरण, प्रदोपकालमें गिरिशार्चनमाहात्म्य, विदर्भाधिपति सत्यरथ-का उपाख्यान, समरसंरम्भमं पुत्रप्रसवान्तर सत्यरथपती विद्वताका जलपानार्थं जलावतरण और ब्राहोदरमें प्रवे-शादि-वर्णन, ७-८ शाग्डिल्योक्त शिवपूजाविधि, शिवको

तुळसीपतदानकी अनावश्यकता, शिवस्तोत्रकीत्तेन, दिज-नन्दन और राजनन्दनका निधानकलसप्राप्तिकथन, ग्रन्धवे-कुमारीके साथ धर्मगुप्त नामक राजकुमारका विवाहानिक्यन, उपोप्य सोमवारमें शिवपूजाफलश्रुति. चित्रवर्मेदुहिता-के साथ नलपौत चिताङ्गद्का विवाहवर्णन, सोमवारवत-माहातम्य, नौकारोहण पर चन्द्राङ्गदेवका नौकाविहार, राजा-का जलनिगमन और नागराजके साथ साझात्कार, ६-११ विद्भवासी सामविद् और वेद्वित् नामक ब्राह्मणकुमार-इयकी धनलाभार्थ दम्पतिवेशमें निवधराजपत्नीके समीप उपस्थिति और एकका स्त्रोत्वप्राप्तिविवरण, सीमन्तिनीका प्रस्तावकी तंन, पिङ्गळानामी वेश्यामें अनुरक्त नन्दन नामक द्विजतनयका उपाख्यान, भद्रायु उपाख्यान, चन्द्राङ्गको कन्यारूपमें पिड्नस्टाका जन्मग्रहणवृतान्त, १२-१६ शिवचिन्तन-प्रकारकथन, शिवकवचकीर्त्तन, ऋपभ-कत् क भद्रायुक्ती शङ्कादि दान, भद्रायुक्ते साथ मगधींका युद्ध, कीत्तिमालिनीके साथ उनका विवाह, भद्रायुका जनमवृत्तान्त, उनका माहात्म्यकीत्त न, वामदेवमुनिका कौञ्चारण्यप्रवेशवृत्तान्त, वामदेव-ब्रह्मराक्षससंवादमें भस्म-माहात्म्यकीर्त्त न, सनत्कुमारके सामने शिवका विपुण्ड-धारणविधिकथन और तीन रैखाओंमेंसे प्रत्येकका नारद-दत्ताकथन, १७-१६ अभ्यहितत्वकथन, सिंहकेतु-कर्तृक वनके मध्य जीर्णदेवालयदर्शन और उसके अभ्यन्तर-प्रविष्ट गृहीत शिवलिङ्ग, शवरराजसंवाद्में शिवपूजाविधि-कथन, उमामाहेश्वरव्रतविधान, सर्पदर्शनसे मृतसर्वका दैवरथ-दुहिता शवरदाके साथ अन्त्रमुनिसंवादादिं कथन, पार्वतीकर्तृक उसे वरदान, २०-२२ रुट्राक्षमाहात्म्य, अङ्ग-विशेषमें रुद्राक्षघारणमाहातम्य, एकवम्तादि रुद्राक्षमेद-कथन, काश्मीरस्थ सुधर्मतारक नामक राजा सत्यकुमार-उपाख्यान, शिववत वैश्यका उपाख्यान, रुट्राध्यायमाहात्त्र्य काश्मीर-नृपतिका उपाख्यान, शिवमाहात्य्यप्रधान पुराण-श्रवणमाहात्म्य, पुराणक्षकी प्रशंसा, पुराणकी निन्दाकरने-से दोपकथन, पुराणदानमाहात्म्यकथन, विदुर नामक ब्राह्मण वेश्यापतिका उपाख्यान, तुम्बुरुपिशाचका संवाद, ब्रह्माएडखएडमाहात्म्यकथन, पुराणश्रवणफलानुवर्णन ।

४ काशी-खग्ड । प्रोर्दमें—१ विन्ध्यवर्णन, विन्ध्यनारदसंवाद और विन्ध्यवद्ध न, २ सूयगतिरोध और देवगणका सत्यलोक-में गमन, ३ अगस्त्यके आश्रममें देवताओंका आगमन और आश्रमवर्णन, ४ पतिवताख्यान, ५ काशीसे अगस्त्य-का प्रस्थान, ६ तीर्थप्रशंसा, ७ शिवशर्मा नामक ब्राह्मण-का उत्पत्ति कथन, और सप्तपुरीवर्णन, ८ यमलोक-वर्णन, ६ अप्सरा और सुर्यलोकवर्णन, १० इन्द्र और अग्निलोकवर्णन, ११ वैश्वानरका उत्पत्तिकथन, १२ निर्द्धति और वरुणलोकवर्णन, १३ वायु और अलका-पुरोवर्णन, १४ चन्द्रलोकवर्णन, १५ नक्षत्र और वुध-ळोकवर्णन, १६ शुक्रलोकवर्णन, १७ मङ्गल, गुरु और शनिलोकवर्णन, १८ सप्तर्पिलोकवर्णन, १६ ध्रुवोपदेश-कथन, २० ध्रुचोपाख्यान और ध्रुवका भगवहर्णन, २१ भ्रुवस्तुति, २२ काणीवशंसा, २३ चतुर्भु जाभिवेककथन, २४ ज़िवशर्माकी निर्वाणवाप्ति, २५ स्कन्द और अगस्त्य-का दर्शन, २६ मणिकणिकाख्यानकथन, २७ गङ्गामहिमा वर्ण न और दशहरास्तोल, २८ गङ्गामहिमा, २६ गङ्गाका सहस्रनाम, ३० वाराणसीमहिमा, ३१ कालभैरवप्रादुर्भाव, ३२ द्रडपाणिप्रादुर्भाव, ३३ ज्ञानवापीवर्णन, ३४ ज्ञान-वापीप्रशंसा, ३५ सदाचारकथन, ३६ सदाचारनिरूपण, ३७ स्त्री-लक्षणवर्णं न, ३८ सदाचारप्रसङ्गमें विवाहादि-कथन, ३६ अविमुक्तेश्वर धर्म वर्ण और गृहस्थाधर्मकथन, ४०-४१ योगकथन, ४२ मृत्युलक्षण कथन, ४३ दिवोदास नृपतिका प्रतापवण न, ४४ योगिनीप्रयाण, ४५ काशोमें चतुःपरियोगिनीका आगमन, ४६ लोलार्क-वर्णन, ४७ उत्तरार्कवर्णन, ४८ शाम्यादित्यमाहात्माकथन, ४६ द्रौप-दादित्य और मयूखादित्यवर्णन, ५० गरुड़ेश्वर और खखोहकादित्यवर्णन ।

परार्द्धमें — ५१ अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्व, गङ्गादित्य और समादित्यवर्णन, ५२ दशाश्व- मेधवर्णन, ५३ वाराणसीवणन और काशीमें गणप्रे पण, ५८ पिशाचमोचनमाहात्म्यकीसँन, ५५ काशीवणन और गणेशप्रे पण, ५६ गणेशमायाकथन, ५७ दुख्टि-विना- यक-प्रादुर्माव, ५८ विष्णुमाया और दिवोदास नृपितका निर्वाणप्राप्तिकथन, ५६ पञ्चनदोत्पत्तिकथन, ६० विन्दु- माधवप्रादुर्मावकथन, ६१ विन्दुमाधवाविर्माव और माध- वाग्निविन्दुसंवाद तथा वैष्णवतीथ माहात्म्यकथन, ६२

मन्दरपर्वतसे विश्वेश्वरका काशोमें आगमन और वृपभ-घ्वजमाहात्म्यकथन, ६३ जैगीषव्यसंवाद और ज्येष्ठेशा-ख्यानकथन, ६४ वाराणसोक्षेत्र-रहसाकथन, ६५ पराशरे-श्वरादि लिङ्ग और कन्दुकेश तथा व्याघ्रेश्वरलिङ्गकथन, ६६ शिलेश्वरलिङ्गकथन, ६७ रत्नेश्वरलिङ्गकथन. ६८ कृत्तिवाससमुद्भव, ६६ अष्टपिष्ट आयतनसमागमकथन, ७० वाराणसीमें देवताओंका अधिष्ठान, ७१ दुर्ग नामक असुरका पराक्रम, ७२ दुर्गविजयकथन, ७३ ओङ्कारेश्वर-महिमावण^६न, ७४ ओङ्कारेश्वरलिङ्गमाहात्म्य कथन, ७५ तिलोचनमाहात्म्य कथन, ७६ तिलोचनप्रादुर्माच कथन, ७९ केदारेश्वरमाहात्म्य कथन, ७८ धर्मेश्वरमहिमा कथन, ७६ घर्मेश्वरकथात्रसङ्गमें पक्षिगणकी कथा, ८० मनोरथ-तृतीयाव्रताख्यान, ८१ दुद[°]मका धर्मेश्वर आगमन और धर्मेश्वरलिङ्गं कथन, ८२ वं(रेश्वराविभावमें अमितजित्-पराक्रमकथन, ८३ वीरेश्वराविभाविकथन, ८४ वीरेश्वर-महिमाकथन, ८५ दुर्वासा वर-प्रदानकथन, ८६ विश्व-कर्मेश्वर-प्रादुर्भाव कथन, ८७ दक्ष्यक्रप्रादुर्मावकथन, ८८ सतीदेहिवसर्जनकथन, ८६ द्क्षेश्वरप्रादुर्भाव कथन, ६० पाव नीश्वरवण न, ६१ गङ्गे श्वरमहिमा, ६२ नर्म-देश्वराख्यान, ६३ सतीश्वराविर्मावकथनं, ६४ अपृते-शादिलिङ्गशादुभाव कथन, ६५ व्यासदेवका भुजस्तम्म-कथन, ६६ व्यासदेवका शापविमोक्षण, ६७ क्षेत्रतीय^६-वर्ण न, ६८ विश्वेश्वरका मुक्तिमग्डपमें गमन, ६६ विश्वे-श्वरिकङ्ग-महिमाख्यान, १०० अनुकमणिकाख्यान और पञ्चतीर्थादि यात्राकथन।

पू रेवाखराह ।

१ कथारम्भ, आदिकल्प ३-५ अवतारवर्णंन, ६ नर्म दामाहात्स्य कथन, ७ अश्वेतीर्थ, ८ विषुरो, ६ मर्क टोतीर्थ, १०-११ मतङ्ग (सृपि) व्याख्यान, १२ गङ्गा- जलतीर्थ, १३ मत्स्येश्वरतीर्थ, १४ शुक्ततापी, १५ कात्त- वीर्योपाख्यान, १६-१७ नागेश्वरतीर्थ, १८ जनकयब, १६ सप्तसारस्वत-तीर्थं कथा, २० ब्रह्महत्यापरिच्छेद, २१ सुक्जा, २२ विद्याच्रकोत्पत्ति, २३ हरिकेशकथन, २४ रेवाकुब्जासङ्गम, २५ माहेश्वरतीर्थं, २६ गई भेश्वरतीर्थं, २७ करमई श्वरतीर्थं, २८ मान्धाताका उपाख्यान, २६ अमरेश्वरतीर्थं, ३० चतुःसङ्गम, ३१ पञ्चलिङ्गतीथ ३२ अमरेश्वरतीर्थं, ३० चतुःसङ्गम, ३१ पञ्चलिङ्गतीथ ३२

जावाली ब्राह्मणका सस्त्रीक श्वर्गरोहण, ३३ पातालेश्वर, ३४ इन्द्रयु म्नयत्रमें नोलगङ्गावतार, ३५ वैदुर्य्यपर्वत, ३६ कपिलावतार, ३७ कल्पान्तदर्शन, ३८ चक्रखामियर्णन, ३६ विमलेश्वरतीर्थ, ४० स्तयागवर्णन, ४१ कावेरी-माहातम्य, ४२ चएडवेगामाहातम्य, ४३ एरएडोसङ्गम, ४४ दुर्वासाचरित. ४५ शल्योविशल्यानर्दा, ४६ भृगुपतन, ४७ बोङ्कारमहिमाकथन, ४८ पश्च म्ह्यात्मकल्तव, ४६ वाराह-र्खारोहण, ५० कपिलासङ्गर्भमें धुन्धुमारोपाख्यान, ५१ मुचुकुन्द कुवलयाभ्व प्रभृतिका स्वर्गारोहण, ५२ नरक-वर्गन, ५३ नरकलक्षम, ५४ यमकर्षक कर्मचतिवर्णना, ५५ गीटानमहिमा, ५६ मतङ्गाश्रमतीर्थ, ५९ नर्बज्ञा-माहातम्य, ५८ शिवलोकवर्णन, ५६ शिवमहिमाकीर्त्तन, ६० वानरहेमदेह, ६१ रन्तिदेव-राजोपाख्यान, ६२ मातृ-स्तुति, ६३ कुञ्जकानथ, ६४ विष्णुकोर्त्तन, ६५ नर्मदा-माहातम्, ६६ अशोकवनिका, ६७ वागोध्वरपुर, ६८ वाराह-महिमा, ६६ शम्भुस्तुति, ७० ययातिशुक्कतीर्थ, ७१ होपे-श्वरतोर्थ, ७२ विष्णुस्तुति, ७३ मेशनाद्छिङ्ग, ७४ दारु-तीर्थ, ७५ देवतीर्थ, ७६ दारुवचनशसङ्गमें नर्मदेश्वर-माहात्म्यकोर्त्तन, ७९ करञ्जेश्वरतीर्थ, ७८ कुएडलेश्वर-तीर्थ, ७६ पिप्पलेश्वरतोर्थ, ८० गुग्रावतीर्थ, ८१ पञ्च-किङ्गमिहमा, ८२ मृकएडाश्रम, ८३ हरिजिश्वर, बाजेश्वर, लुब्बकेश्वर, धनुरीश्वर और रामेश्वर पञ्चलिङ्ग-महिमा-कथन, ८४ अन्यकवघ, ८५ अन्यकवघ वरप्रदान, ८६ शूल-भेदोत्पत्ति, ८७ शूलभेदमहिमा. ८८ दोर्घतपाऋपिचरित-वर्णन, ८६ चितसेन माहातम्य, नन्दिगणकथा, ६० शवर-सर्गारोहण, ६१ भारुमतीका स्वर्गारोहण, ६२ अर्कतीर्थ, ६३ आदित्यंश्वरतोर्ध, ६४ अगस्त्यतीर्ध, ६५ भसास-वध, ६६ मणिनागतोर्ध, ६७ गोपालेश्वरतीर्थ, ६८ शङ्ख-चूड़ातीर्थ, ६६ पराशरेश्वरतीर्थ, १०० नन्दातीर्थ, १०१ हनूमदीश्वर, १०२ उरसङ्गममें सोमनाथतीर्थं वर्णं न, १०३ कपिछेश्वरतीर्थ, १०४ चकतीर्थ, १०५ चन्द्रा-दित्येश्वरतीर्थः, १०६ यमहासतीर्थः, १०७ व्यासतीर्थः, १०८ प्रभासतोर्थः, १०६ माक्^{ष्}ण्डेयेश्वरलिङ्गः, ११० मन्म-थेश्वरतीर्थ, १११ परएडतीर्थ, ११२ चक्रतीर्थ, ११३ रेवा-चरित्त-कथा।

्र अवन्तीखराह । इंश्वरीश्वर-संवादमें श्राद्धदानयोग्य पुण्यनशे वन-

प्रमृति निद्भपणप्रसङ्गीं अशीतिसंख्यक छिङ्गमाहातम्य-कीर्त्त न, २ अवन्तीदेशस्य महाकालवन-वर्णन, ३ अगस्त्येश्वरमाहात्म्यादि वर्णन, असुरिप्रकृत देवतार्मी-का मुखमालिन्य देख कर सन्तप्तहृदय अगस्त्यंकर्क स्रतेजसे दानवकुङमक्षीकरण, अगस्त्वेश्वर-लिङ्ग-प्रतिष्ठा-विवरण. ४ गुद्धोश्वरिङ्गमाहात्माकोर्त्तन, मकरमहर्षि-का वृत्तान्त, ५ दुण्ढेश्वरलिङ्गभाहात्म्य, गणनायक-दुण्ढे-श्वरवृत्तान्त, ६ डमधकेश्वरलिङ्गमाहात्या, रुध्युतकर्त्त सुरपुरसे निर्वासित वासवादि देवताशीका खेद और महाकालवनमें उनका पलायन, ७ अनादि कर्पेश्वरलिङ्ग-माहात्म , पद्मनाम और पद्मयोनिका विवाद और परस्पर-का ऊर्द और अधोलोक-प्रयाणादि कथन, ८ खर्ग द्वारे-श्वरमाहात्म (कोर्त्तन, विद्वसुखनिहित सुवर्णका उद्भवादि कथन, तल्लाभार्य सुरासुरादिका परस्पर प्रहार और निधनादि, ६ विष्ट्रवेश्वरिक्क्ष्याहात्मः, देवर्षिके साथ देवेन्द्रका महाकाळवनमें गमन, १० कपालेश्वरमाहात्मा, महाकालवनमें कापालिक वेशमें प्रविद्य कपाल, के प्रति विप्रगणका लोग्नादि निक्षेप, ११ खर्गद्वारेश्वर लिङ्ग-माहात्म।कीर्त्तन, १२ विण्णुकर्तक सुदर्शन द्वारा ताड़ित वोरभद्रका मृत्युवृचान्त सुन कर हाथमें शूल लिये शूल-पाणिका दक्ष अक्में प्रवेश, १३ उपेन्द्रादिका अन्तर्ज्ञान, महेशकर्वं क खगंद्रारनिरोध, १४ ककोंदेश्वरलिङ्गमाहात्मा, मातृके शापसे भीत शेपगणींकी तपस्या, कर्कीटकका महाकालवनमें प्रवेश, १५ सिद्धे श्वरिलङ्गमाहातमा, महाकालमें प्रवेशपूर्वक सिद्धगणका तपश्चरण, १६ लोक-पालेश्वरिलङ्गमाहात्मा, दानवकुलाकुलित लोकपालगण-का विष्णुके उपदेशसे महाकालवनमें गमन, १७ कामेश्वर-छिङ्गकोर्त्त न, १८ ब्रह्मशरीरसे कामका उत्पत्तिकथन, कामके प्रति ब्रह्मका भाषदानादि, १८ कुटुम्बेश्वरिस्ट्र-माहात्मा, मगवान् नीलकएडकत्^९क समुरोत्थित काल-कूटपान और महाकालवन-प्रवाहित शिप्राजलमें तत्प्रक्षे-पादि विवरण, १६ इन्द्रसु म्नेश्वर-लिङ्गमाहात्माकयन, इन्द्रद्युमनकी हिमालय पार्व पर तपस्यादि, २० ईशाने-श्वरलिङ्गमाहातम्य, कुकुण्डदानवकर्नुक ताड़ित देवताओं-का नारदके उपदेशसे महाकालवनमें प्रवेण; .२१ अप्सरे-श्वरिक्टङ्गमाहारम्यकीर्संन, वासवकर्नुक रम्माके प्रति

अभिशाप, नारदोपदेशसे अभिशप्ता रम्भाका महाकाल-२२ कलकलेश्वर प्रवेश, लिङ्गमाहात्स्य-कीर्त्त न, गिरिजायाके साथ गिरिशका कलहवृत्तान्त, २३ चण्डेभ्बरिङ्गमाहात्म्य, नारदके साथ ताओंका महाकालउद्देशसे गमन और राहमें नाग-चएडाख्य गणनायकके साथ संवादकथन, २४ प्रति-हारोपिछङ्गभाहात्म्य, हंसरूपधारी जातवेदाकर् क द्वार-पाल नन्दीको बञ्चन और रममान गिवाशिवके समीप उपस्थापन, विरुपाक्षकर्तुक नन्दिशापदान, १५ कुकु देश्वर लिङ्गमाहात्स्यकथन, रात्नमें कुक् टुरूपधारी कौंणिकाख्य-राजोपाख्यान, २६ कर्क टेश्बरमाहात्म्य, धर्मभृत्तिनामक राजाके समीप विशिष्टकर्तृक गजाका पूर्वजन्म और शूद्रत्वजातिकीर्त्तान, २७ मेघनादेश्वर लिङ्गमाहात्म्य, मदान्ध नामक असुरकर्िक उपद्रुत दुहिणगणकी भगवद्र्यानार्थे श्वेतद्वीपगमनादि कथा, २८ महालयेश्वर-लिङ्गमाहात्म्यकीर्त्तन, २६ मुक्तीश्वर-लिङ्गमाहात्म्यकीर्त्तन, मुक्ति नामक ब्राह्मणके साथ उसे वधोद्यतव्याधसंवाद, ३० सोमेश्वरलिङ्गमाहात्म्यकीर्त्तन, दक्षकन्याको परित्याग करके रोहिणीके प्रति चन्द्रकी अनुरक्ति पर दक्षका शाप-दान, ३१ नरकेश्वरमाहात्म्यकीर्त्तन, पुराकल्पीय कलियुग-में जीवगणके नरकयन्त्रणावर्णनप्रसङ्गमें निमि नामक नृपतीके साथ यमिकडूरका संवादकथन, ३२ जटेश्वरलिङ्ग-माहात्म्यकीर्त्तन, रथन्तरकल्पीय चीरधन्या नामक नरपति-· का उपाख्यान, ३३ परशुरामेश्वरिलङ्गमाहात्म्य, परशुराम-कर्तृक अश्वमेध-यज्ञानुष्टान और नारहसंवाद, ३४ च्वने-श्वरमाहात्म्यकथन, वितस्ताके किनारे तपश्चर्याहत और वल्मीकभावप्राप्त च्यवन तथा गर्यानिकामिनीयोंका वृत्तान्त, ३५ पण्डेश्वरिलङ्गमाहातम्य, भद्राश्व-अगस्त्यसंवाद, ३६ पत्तनेश्वरलिङ्गमाहातम्य, देवदेवदेवर्षिसंचाद, ३७ आनन्दे श्वरिलङ्गमाहात्म्य, रथन्तरकल्पीय अनमित्रके पुत्र आनन्द-राजका उपाख्यान, ३८ कडून्टेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, प्रेत-राजको जीतनेके अभिप्रायसे दरिद्र द्विजिशिशुको तपस्या, े ३६ इन्द्रेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, पुत्रनिपात सुन कर शतकतुका ं क्रोध और जटा तोड़ कर अग्निमें निश्लेप, उसके प्रभावसे घृत्तुका उद्भवकथन, ४० मार्कण्डेयेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, पुत लामार्थं मृकण्डकी तपस्यादि, ४१ शिवेश्वरलिङ्गमाहात्स्य,

ब्राह्मकल्पीय रिपुञ्जय राजान्ता उपाख्यान, ४३ कुसुमेश्वर-लिङ्गमाहातस्य, गणेशका कुसुमकीड़ादि कथन, ४३ अक्र रे-श्वरिटङ्गमाहातम्य, भृङ्गिरीटके समीप अर्चना न जान कर पार्वतीका क्रोध, ४४ कुण्डेश्यरलिङ्गमोहात्म्य-कथन, पुतवीरको महाकालवनमे तपोरत छुन कर द्र्शनार्थ पार्वतीपरमेश्वरका वहां गमन और गणा-ध्यक्ष कुण्डके साथ संवाद, ४५ लुम्पेश्वरलिङ्ग-माहात्म्यकीर्त्तन, म्लेच्छराज स्म्पकर्नृ क वलात्कारपूर्व क होमधेनुत्रहण, मङ्गे श्दरमाहात्म्यकथन, गङ्गाके प्रति समुद्र-का शापदान, ४७ अङ्गारकेश्वरमाहात्म्य, शिवके शरीरसे अङ्गारकको उत्पत्तिकथा, अङ्गारकका मङ्गलादि नामप्राप्ति कथन, ४८ उत्तरेश्वरिलङ्गभाहातम्य, इन्द्रको आज्ञासे मेबादिका वर्षणकाल कथन, ४६ नूपुरेश्वरमाहात्म्य, नूपुरको नपस्ता, ५० अमयेश्वरमाहात्म्य, कमलजके अथु-विन्दुसे हेरम्बकालकाख्य दानवकी उत्पत्ति, ५१ पृथु-केश्वरलिङ्गभाहात्म्य, वेणके शरीरसे पृथुकी उत्पत्ति, तत्-कृत घरादोहण, ५२ स्थावरेश्वरमाहात्म्यकीर्त्तन, छायाके गर्भसे शनिकी उत्पत्तिकथा, शनिके भयसे देवताओंका महादेवके समीप गमन, ५३ शूलेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, जम्मा-सुरकर्तृक वासवादिकी पराजय, गौरीकी प्रार्थनासे गिरीशके समीप अन्धकको दूत-प्रेरणादि कथा, ५8 ओंकारेश्वर-लिङ्गमाहातम्य, ओंकार नाम फीपलाकतिका उपाख्यान. ५५ विश्वेश्वरस्टिङ्गमाहात्म्य. ५६ कण्टकेश्वर-लिङ्गमाहात्स्य, सूर्यं वंशीय सत्यविक्रम राजाका महाकाल इनमें गमन, वहां हुङ्कार द्वारा अलोकिक सृष्टिसंसर्थ मित्रचर नामक हाह्यणका उपाख्यान, ५७ सिंहेश्वरिहर्नुः माहात्म्य, पशुपतिको पतिक्रपमें पानेको आशासे पार्व ती-की तपस्मा, पार्व तीके समीप ब्रह्माकृत शिवनिन्दा और पाव[°]तीके कोपसे सिंहादिको उत्पत्ति, ५८ रेवन्तेश्वर-लिङ्गमाहातम्य, वड्वारूपधारिणो संहाके गर्भसे अश्विनी-कुमारद्वय और रेवन्तका जन्मग्रहणवृत्तान्त, ५६ घण्टेश्वर-माहात्म्य, घण्टाख्यगणके विधातृ द्वारदेशमें सम्बत्सर अव-स्थानकथन ६० प्रयागेश्वरमाहातम्य, नारदकत् क प्रिय-वतके समीप श्वेतद्वीपस्थ सरोवरोद्दरस्थ कश्चित् कामिनीका पृत्तान्त, ६१ सिद्धे श्वरिलङ्गमाहात्म्य, अश्व-शिर नामक नरपतिके साथ जैगोपव्य कपिलादिका संवाद,

६२ मातङ्गे व्यरलिङ्गाहातम्य, गईभोकर्तृक मातङ्ग नामक किसी द्विजपुतका पुत्रजन्म वृत्तान्तकथन, ६३ प्राग्ज्योतिषपुराश्चिपतिकी सीभान्ने भ्यरिकडुमाहात्म्य, कन्या दुर्भागा अनङ्गमञ्जरोका खामिसीभाग्यप्राप्ति विवरण, ६४ रूपेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, पग्नकल्पमें पद्म नामक राजाका मृगयार्थ वनप्रवेश और कण्बदुहिताके साथ परिणयादि कथन, ६५ धतुःसहस्रे श्वर लिङ्गमाहातम्य, वनके मध्य कुजमा दानवका गृहविवर देख कर शङ्कितहृदय विदूरथ राजाके साथ ब्राह्मणका संवाद, ६६ पशुपालेश्वरलिङ्गमाहा-त्म्य, पशुपाल नामक राजाका दशुक मृ क आक्रमणवृत्तान्त, ६७ ब्रह्मे श्वरस्त्रिङ्गमाहात्न्य, पुलोम दैत्यकर्तुं क क्षोरसागर-शायी पद्मनाभ-नाभिपच पर स्थित पद्मोद्भव पर आक्रमण और तपस्याके लिये महाकालवनमें गमन, ६८ जल्पेश्वर-ळिङ्गमाहात्म्य, जल्पराजकुमार, खुवाहु, शलुमद्^९, जय, विजय और विकान्तादिका विवरण, ६६ केट्रारेश्वरिस्टुः-माहात्म्य, ब्रह्मपुरःसर शीतजर्जरित निर्जरगणका पुरारि-के समीप गमन, ७० पिशाचेश्वरमाहात्म्य, जन्मान्तरमें नास्तिकताके कारण पिशाचत्वप्राप्ति, छोमश नामक किसी शूद्रका शाकटायनके साथ संवादकथनादि, ७१ सङ्गमेश्वरमाहात्य, कलिङ्ग विषयमें सुवाहु नामक किसी नरपति कर्तं क महिवीके सामने निज पूर्वं जन्म-वृत्तान्त-कीर्त्तन, ७२ दुई पे स्वरिङ्गमाहात्म्य, नेपालदेशवासी दुई प नामक राजाका मृगयार्थ चनप्रवेश और उन्हें ं मर्त्रुक्षप जान कर किसी द्विजकन्याका उपम्थानादि विवरण, ७३ प्रयागेश्वरिस्माहात्म्य, शत्रुक्षय नामक हिस्तिनापुरराज-कर्तृक वनके मध्य मनुव्य-रूप-धारिणी गङ्गाका पाणिप्रहण, ७३ चन्द्रादित्येश्वरलिङ्गमाहात्म्य, शन्वरासुरकर् क कतुभुक् देवताओंका रणभूमिमें निर्याण, राहुभयार्दित सूर्यचन्द्रका विष्णुके सगोप गमन-विवरण, करभेश्वरलिङ्गबाहात्म्य, मृगवार्थ गहनमध्यगत अयोध्याधिपति वीरकेतुकत् क शरनिक्षेप द्वारा करम-रूपी ऋपमदेववध-वृत्तान्त, ७६ राजस्थलेश्वरलिङ्ग-माहातम्य, ब्रह्माकी आज्ञासे अवन्तोदेशमें नायकत्वप्राप्ति, रिपुजयके पृथिवी-पालन समयमें पृथिवी पर बह्या-भावादि कथन, ७७ वड्वेश्वर छिड्नभाहात्म्य, नरवाहनो-धानमें विहार करते हुए मणिमद्रसुत वङ्खका उपाच्यान,

७८ अरुणेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, अरुणके प्रति विनताका शापदान, ७६ पुष्पदन्तेश्वरलिङ्गमाहातम्य, निर्मि नामक ब्राह्मणकी पुत्रलामार्थ तपस्था, शिवपार्पद पुष्पदन्तकी अधोगति, ८० अविमुक्तेश्वरिसङ्गमाहातम्य, शाकल-नगराधिप चित्रसेनका उपाख्यान, ८१ हनुमन्तेश्वरलिङ्ग-माहात्स्य, रावणवधान्तर राजपद पर प्रतिष्टित रामचन्द्र-को सभामें समागत अगस्त्यादि महर्षिगणकर्तृ क अञ्जना-नन्दनकी प्रशंसा, वाल्यकालमें रिवधारणार्थ हनुमान्-का कृतोद्यम और इन्ड्रकुलिशपात पर म्रियमाण स्तुमान्-का वरलामादि, ८२ खप्नेश्वरलिङ्गमाहात्म्य, इक्ष्वा**कुवंशोय** कल्मापपाद राजाके प्रति 'राक्षस हो जा' इस प्रकार वशिष्ठका शापदान, ८३ पिङ्गलेश्वरमाहातम्य, पिङ्गलेश्वर-का उपाख्यान, ८४ विल्वेश्वरमाहातम्य, कृपिलविल्ववृक्ष-संवाद, ८५ कायावरोहणेश्वरिःङ्गमाहात्म्य, चन्द्रके प्रति दक्षका 'कायाहीन हो जा' ऐसा शाप, ८६ पिएडरेश्यर-लिङ्गमाहात्म्य, इक्ष्वाकुकुलतिलक अधोध्यापति परीक्षित् कर्तृक मृगयार्थ गहनवनमें प्रवेश और सराभिभूत किसी अपूर्व सुन्दरी कामिनीके साथ रमण-विहार करने-के वाद रमणीका अन्तर्ज्ञानादि-प्रसङ्ग ।

६ तापीखरह।

१ गोकर्णमुनिगणसंचादमें तापीके उभय तीरवत्तीं महारिङ्गकी कथा, तपतीके २१ नाम्कीर्चन, २ रामे श्वरक्षेत्रमाहात्स्य ३ शरभङ्गतीर्थ और गोलनदीमहिमा. ४ सनन्दर्तार्थ, ५ उच्चैःश्रवेश्वरक्षेत्र, ६ स्थानेश्वरलिङ्ग, ७ प्रकाशकक्षेत्र, ८ गौतमेश्वर, ६ गौतमेश्वर और अक्ष-मालातीर्थ, १० करङ्कपावनतीर्थ, ११ खञ्जनमुनिका आश्रमवर्णन, १२ ब्रह्मे श्वरलिङ्ग, १३ मीमेश्वरलिङ्ग, १४ शिवतीर्थ, १५ चकतीर्थ, काश्यपीसरित् और अक्षरे-श्वरतीर्थ, १६ शाम्यादित्यतीर्थ, १७ गङ्गे श्वरतीर्थ, १८ अर्जु नेश्वरतीर्थ, १६ वासचेश्वर, २० महिणेश्वर, २१ - धारेश्वर, २२ अम्बिकेश्वर, २३ आमई केश्वर, २४ रामे-श्वरक्षेत, २५ कपिलेभ्वर, २६ वधिरेभ्वर, २७ व्याव्ये श्वर, २८ विरहानदी, २६ पिङ्गलप्रस्थमें वैद्यनाथतीर्थ और धम्बन्तरीतीर्थ, ३० रामेश्वरतीर्थ ३१ गीतमेश्वरतीर्थ ३२ गिहतेश्वर और नारदेश्वरतीर्थ, ३३ सोमेश्वरतीर्थ. ३४ रत्नेभ्वरतीर्थ, ३५ उल्केश्वरतीर्थ, ३६ वरुणेश्वरतीर्थ,

३७ शङ्कतीर्थं, ३८ कश्यपेश्वर, ३६ शाम्बार्कतीर्थं ४० मोक्षेश्वरतीर्थं, ४१ मैरवीभुवनेश्वरीक्षेत्र, ४२ कपालेश्वर-तीर्थं ४३ चन्द्रेश्वरतीर्थं, ४४ कोटीश्वर और एकवीरा-तीर्थं, ४५ भवमोचनलिङ्गमाहात्म्य, ४६ हरिहरक्षेत्र, ४७ अम्बतीर्थं, ४६ भरतेश्वर, ५० गुप्तेश्वर, वारीताप्यक्षेत्र, ५२ कुरुक्षेत्र, ५३ अम्ब्येश्वर, ५४ सिद्धं श्वर, ५५ शोतलेश्वर, ५६ नागेश्वर, ५७ जरत्कारेश्वर, प्रांतलेश्वर, ५६ नागेश्वर, ५७ जरत्कारेश्वर, पातालविल ओर तापोसागरसङ्गम इत्यादि माहात्म्य।

द्रष्ठ नागस्व रह।

प्रचलित नागरखण्ड ३ परिच्छेदोंमें विमक्त है --१म विश्वकर्माणाख्यान, २य विश्वकर्मवंशाख्यान स्रोर ३य हाटकेश्वरमाहात्म्य।

१म विश्वकर्मोपाह्यानमें—१ शिवपण्मुखसंवादमें देवीप्रणयकथा, २ विश्वकर्मप्रपञ्च छप्टि, ३ जगदुत्पत्ति-प्रकरण, ४ ब्राह्मण्यगायस्वानिणय, ५ उपनयनसंस्कार, ६ उपनयनविधि, ७ सकलमूतसम्मव, ८ विश्वकर्मतनयो-त्पत्ति, ६ जगदुत्पत्तिनिर्णय, १० ज्योतिपष्रहनश्रसराशि-निर्णय, ११ हनूमतप्रभव, १२ विश्वकर्मां,पाख्यात ।

२। अधिकमेव श्वर्णेनमें—श्नायतोमहिमानुवर्णेन, २ विश्वकमेकुलाचार, ३-४ विश्वकमैकुलाचारविधि, ५ विश्वकमे व शानुवर्णन, ६ पण्यतस्थापन ।

इय हाटकेश्व(प्राहात्म्यमें — १ लिङ्गोत्पत्ति, २ लिशंकुका खपाख्यान, ३ हरिश्चन्द्रका राज्यत्याग, ४ विश्वामिलमोह, ५ विश्वामिलयमाव, ६ विश्वामिलका वरलाम, ७ तिशंकु का खर्गलाम, ८ हाटकेश्वरमाहात्म्य आरम्म, ६ नागविल पूर्तिविवरण, १० आनत्तीधिपचमत्कारसंवाद, ११ शङ्ख-तीर्थीत्पत्तिकथा, १२ चमत्कारपुरोत्पत्ति, १३ अवलेश्वर-प्राहात्म्य, १८ चमत्कारपुर-प्रदक्षिणमाहात्म्य, १६ चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १६ चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १७ गयाशिर-प्रतमोक्ष, १८, चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १७ गयाशिर-प्रतमोक्ष, १८, चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १७ गयाशिर-प्रतमोक्ष, १८, चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहात्म्य, १० गर्वाह्मराहात्म्य, १६ चल्युपदोत्पत्ति, २० वालमण्डनमाहात्म्य, २१ मृगतीर्थमाहात्म्य, २४ गोकर्णतीर्थात्पत्ति, २५ युगखक्तप्रवाह्ममाहात्म्य, २६ तीर्थसमाश्चय-नामकोत्तेन, २७ षड्झरमन्त्व कथन, २६ तीर्थसमाश्चय-नामकोत्तेन, २७ षड्झरमन्त्व और सिद्धेश्वरमाहात्म्य, २८ श्रीहाटकेश्वरमाहात्म्य, २६

नागहृदमाहातमाकथन, ३० सप्तर्पिगणका आश्रममाहातमा-कथन, ३१ अगस्त्याश्रममाहात्माकीर्त्तन, ३२ देवदानव-युद्धविवरण, ३३ अगस्त्यदेवीसंवादमें समुद्रशोपण और सगरमगोरथादिका जन्मप्रसङ्ग, ३४ अगस्त्यनिर्वित चित्रे-इवरीपीठमाहात्मा, ३५ दुःशोलप्रासादीत्पत्ति, ३६ घुन्यु-मारेश्वरमाहात्मा, ३७ ययातीश्वरमाहात्मा, ३८ चित्र-शिलामाहातमा ३६ जलशायांकी उत्पत्ति, ४० चैत-तृतीयामें उस जलके स्नानसे स्त्रीपुरुषगणका दिव्यरूपप्राप्ति-विवरण, ४१ मेनकातापससंवादमें पाशुपतवतमाहात्माः कोर्त्तन, ४२ विश्वामित्रमाहात्मा और तीर्थात्पत्ति, ४३ तियुक्तरमाहात्मा, ४४ सरखतीतीर्थ माहात्मा, ४५ महा-कालमाहात्मा, ४६ उमामाहेश्वर-संवाद, ४७ चमत्कार-पुरक्षेत्रमाहातम्यमे कलशेश्वराख्यान, कलशशापदान-कथन, ४८-४६ कलशेश्वरमाहात्माकीर्त्तन, ५० चहकोष-माहात्मा, ५१ भ्रणगत्तीमाहात्मा, ५२ नलकृत चर्ममुखा-स्तुति, ५३ नलेश्वरमाहातम्, ५८ साम्वादितामाहातमा, ५५ गाङ्गे योपाख्यान, ५६ शिवगङ्गामाहात्मा, ५७ विदुरा-गमनोत्पत्ति, ५८ नगरादितामाहात्मा, ५६ कर्मवृद्धिसे मानवादिका जन्म और कर्मश्चयसे जीवादिका निर्वाण-प्राप्तिकथन, ६० शर्मिष्ठातीर्थं माहात्मा, ६१ सीमनाथी-त्पत्ति, ६२ दुर्गामाहात्मा, ६३ आनर्त्त केश्वर और शूद्र-केर्वरमाहात्मा, ६४ जमद्ग्निवधाख्यान, ६५ सहस्रा-र्जु नवध, ६६ परशुरामीपाख्यानमें समुद्रके समीप स्थान-प्राथ ना, ६७ रामहदीत्पत्ति, ६८ तारकासुरकी उत्पत्ति,-देवदानवयुद्ध, कार्त्तिकेरोज्जवप्रसङ्ग, ६६ शक्तिमाहात्मा, ७० तिलतर्पण और दानमाहात्मा, ७१ आनर्त्त विषयमें हारकेश्वरक्षेत्रोद्भवकथन, क्षेत्रस्थ प्रासादपद्धतिकथन, ७२ यादवलिङ्गप्रतिष्ठा, ७३ यज्ञभूमिमाहात्मा, ७४ हरा-श्रयचेदिकामाहात्मा, ७५ रुद्रशिर जागेश्वरमाहात्मा, ७६ वालिखिल्याश्रमकथन, ७७ सुपर्णाल्यमाहातम्यमें गरुड़-तारद्का विण्णुदर्श नसंवाद, ७८ सुपर्णास्पोत्पत्ति, ७६ सुपर्णाख्यमाहात्मा, ८० श्रोक्तव्यचरिताख्यान और हाट-केश्वरमाहात्मा, ८१ महालक्ष्मीमाहात्मा, ८२ सप्तर्विशति-का माहात्मा, ८३ सोमप्रासादमाहात्मा-समाप्ति, ८४ आम्रवृद्धामाहारमामें कालादि यवनका सम्युत्थान और द्वगणकर्षक हननं, ८५ श्रीमाताका पादुकामाहात्मा,.

प्रथम और द्वितीय खण्ड समाप्ति, ८६ वसीर्द्धारामाहात्मा, ८७ अमितोयोत्पत्ति, ८८ ब्रह्मकुएडमाहात्म्य, ८६ गोमुख-माहातमा, ६० मोहयष्टिमाहातमा, ६१ अजपाळीश्वरी-माहात्मामें शङ्करका व्याव्यक्तपत्वकथन, ६२ द्शरथशनै-श्चरसंवाद, ६३ राजवापीमाहात्मामें रामेश्वर लक्षणेश्वर और सीतादेवीमूत्ति-प्रतिष्ठाकथन, ६४ रामकतृ क दुर्वासा-का अध्य दान और चातुर्मास्यवृत्तान्तमें दुर्वासाका पारणकथन, ६५ कुश्को राज्यदानपूर्वक रामका किकिन्ध्यागमन और सुग्रीवादि वानरके साथ सम्भा-षण, ६६ रामका पुष्पकारोहण पर लङ्कागमन और विभी-पण-संवाद, रामकर् क सेतुप्रान्तमें रामेश्वरलिङ्ग-प्रतिष्टा, ६७ रामचरितप्रसङ्गमें लक्ष्मणेश्वरमाहात्म्य, ६८ आनर्त-माहात्मार्मे विष्णुकूपिका प्रशंसा, ६६ कुशलवचरित-प्रसङ्गमें कुशेश्वर और लवेश्वरिलङ्गमाहातमा, १०० राक्षस लिङ्गच्छेदन, १०१ लुप्ततीर्थकथा, १०२ चित्रशर्माका लिङ्गरथापन, १०३ अष्टपप्रितीय[°]नाम, १०४ 'अप्र-पष्टितीर्थं स्थ लिङ्गनाम और ['] तन्माहात्माक्यन, १०५ दमयन्तीका उपाख्यान, १०६ दपयन्ती-चरितमें उपरोत्पत्ति, १०७ आनर्साधिपका पुरनिर्माण, ६४ गोलज ब्राह्मणसंस्थापन, पुरमें महाव्याधिका प्रकीप, राष्ट्रध्वंस होनेका उपक्रम, ब्राह्मणगणकर्त्तुक शान्तिकार्य, विजात नामक ब्राह्मणकत्तृंक द्रव्यदूपणकी कथा, अन्निकुएड-माहातम्य, यक्ककुएडस्पशेंसे विज्ञातके शरीरमें विस्फोटक-उत्पत्ति, १०८ विजानका वनगमन और महेश्वरप्रसाद-लाम, मौद्रल्यगोत देवराजपुत काथकी नागपञ्चमीमें नाग-हत्या, कुद्ध नागगणका चमत्कारपुरमें आगमन, ब्राह्मण का चमत्कारपुरत्याग, चमत्कारपुरवासी एक ब्राह्मणका वनमें विजातके साथ साक्षात् और नागके हाथसे चमत्-कारपुरका दुर्देशावणन, शिवके निकट विजातका नागहर-मन्त्रलाम, त्रिजातका चमत्कारपुरमें आगमन, नागहरमन्त्र-के प्रभावसे सर्पोंकी निर्विषता, चमत्कारपुरका 'नगर' नाम, वहांके ब्राह्मणोंको 'नागर' संज्ञा, १०६ नागरब्राह्मणों-का गोत्तनिर्णय, ११० अम्वारेवतीमाहात्म्य, १११ भट्टिका-तीर्थोत्पत्ति, ११२ क्षेमङ्करी और रैवतेश्वरोत्पत्ति, ११३ देवीसैन्यपराज्ञय, महिपासुरप्रभाव, ११४ कात्यायनीकी उत्पत्ति, ११५ महिषासुर-पराजयमें कात्यायनीमाहात्म्य, ११६ केदारोत्पत्ति, ११७ शुक्कतीर्थमाहात्म्य, ११८ वाब्मीकिनामनिरुक्ति, मुखारतीर्थोत्पत्ति, ११६ कर्णोत्पला तीर्थप्रसङ्गमें सत्यसन्धकथा, १२० सत्यसन्धेश्वरमाहात्म्य, १२१ कर्णोत्पळातीर्थंमाहात्स्य, १२२ हाटकेश्वरोत्पत्ति, १२३ याज्ञवल्कप्राश्रममाहात्म्य, १२४ पश्चपिगिडका गौरीकी अत्पत्तिकथा, १२५ पञ्चपिरिडका गौरीमाहात्म्य, ईशानी-त्पत्ति, १२६ वास्तुपदोत्पत्ति, १२७ अजागृहोत्पत्ति, १२८ खण्डशिला सौभाइकूपिकोत्पत्ति, १२६ वर्द्धमानपुरीय पतिव्रतावरलाम, १३० दोर्घिकामाहात्मा, ३१ धर्मराजेश्व-रोत्पत्ति, १३२ धर्मराजेश्वरमाहात्म्य, १३३ धर्मराजस्रुती-**द्भवकथा, १३४ आनर्त्ताधिय वसुसेनचरितप्रसङ्गमें** मिप्रात्र-देश्वरमाहात्मा, १३५ गणपतित्रयमाहात्मा, १३६ जावालि-आख्यानमें जावाछिक्षीम, १३७ जावाछि-फलवतीआख्या-नमें चिलाङ्गदेश्वरमाहातमा, १३८ अमरकेश्वरमाहातमा, १३६ अमरकुएडमाहात्मा, १४० व्यास-शुक-संवाद, १४१ वटेश्वरमाहात्मा, १४२ अन्ध्रकाख्यान, १४३ अन्ध्रकाख्यान-में केलीश्वरमाहातम्म, १४४ अन्धकाख्यानमें भैरवमाहात्म्मः १४५ युधिष्ठिराजुं न-संवादमें चक्रपाणिमाहात्मा, १४६ अप्सरसकुएडोत्पत्ति, १४७ आनन्देश्वरमाहात्मा, १४८ पुष्पादितप्रोत्पत्ति, १४६ पुष्पादितप्रमाहात्म्य, १५० पुष्पवर-लामकथन, १५१ मणिभद्रोपाख्यान, १५२ पुष्पविभवप्राप्ति, १५३ पुष्पागमन, १५४ पुष्पादित्रमाहात्मा, १५५ पुरहच-रण-सप्तमीवत, १५६ वाह्यनागर संज्ञक ब्राह्मणोत्पत्ति, १५७ नगरादिता, नगरेश्वर और शाकम्भरीकी उत्पत्ति, १५८ अश्वतीर्थोत्पत्ति, १५६ परशुरामोत्पत्ति, १६० विश्वामित्रराज्य-परित्राग, १६१ धारोत्पत्ति, १६२ धारा-माहात्माः, १६३ नागर-ब्राह्मणका कुलदेवता वर्णन, १६४ सरखतीका अभिशाप, १६५ सरखत्रोपाख्यान, १६६ १६७ याज्ञवलक्येश्वरोत्पत्ति, १६८ पिप्पलादोत्पत्ति, कंसारीश्वरोत्पत्ति, १६६ पञ्चपिण्डिकोत्पत्ति, १७० पञ्च-पिरिडका-गौरीकी उत्पत्ति, १७१ पुक्तरोत्पत्ति और यह-समारम्म, १७२ ब्रह्मयकारम्भ, १७३ नागरब्राह्मणींका गर्त्ततीर्थं में प्रेरणं, गायली-विवाह और गायलीतीर्थों-त्पत्ति, १७४ प्रथम यह्मदिनमें रूपतीथॉन्पत्ति, १७५ नागतीर्थोत्पत्ति, १७६ दूसरे दिनमें पिङ्गलाख्यान, १७६ तीसरे दिन अतिथितीथोंत्पत्ति, १७७ अतिथिमाहात्म्य,

१७८ राक्षसम्राद्धकथन, १७६ मातृगणागमन, १८० उदुम्बरीकी उत्पत्ति, १८१ ब्रह्मयज्ञावभृथ-यक्ष्मीतीर्थी-त्पत्ति, १८२ सावित्नीमाहात्मा, १८३ गायतीवरप्रदान, १८४ ब्रह्मज्ञान-सूचना, १८५ शानत राजकन्या रत्नवती-की कथा, १८६ रत्नवतीआख्यानमें वृहद्वलराजसंवाद, १८७ परावसु नामक नागर-ब्राह्मणसंचाद, भर्तृ यज्ञ, १८८ रत्नवतीके साथ विवाह करनेकी आशासे दशाणीधिपति-का आगमन, रल्लवतीकी विवाह करनेमें अनिच्छा और तपस्याकी इच्छा, शूद्रात्राह्मणोमाहातम्य, १८६ कुव्होत, हाटकेश्वर, प्रभास, पुकर, नैमिष, धर्मारण्य, वाराणसी, द्वारका और अवन्ती आदि क्षेत्रान्तर्गत पुण्यतीर्थं निरूपण, विशेष दिनमें तीर्थं स्तानफल, कुशका शासनवर्णन, भर्तृ यज्ञप्रसङ्ग्में विश्वामित-कथित कुम्मकयशाख्यान, १६० अन्यज प्रभायवर्णन, भत्रवन्नमर्यादाकथन, १६१ शुद्धनागर और देशान्तरगत-नागरकी शुद्धि और श्राद्धकथन, विश्वामित्रका नागरप्रश्न-निर्णय, भार्नु यज्ञप्रसंगमें नागर ब्राह्मणोंका अथन्वेवेदनिर्णय, १६३ नागरविशुद्धिकथन, १६४ नागरत्राह्मणका प्रेत-श्राद्वादि कथन, १६५ शक-विश्युसंवाद्में प्रेतकृत्य, १६६ वालमण्डनमाहात्स्य, १६७ इन्द्रमहोत्सव, १६८ गीतमेश्वर-माहात्म्य, १६६ नागरखेद और शङ्कादित्योत्पत्ति, २०० श्रङ्खतीर्थं माहात्म्य, २०१ रत्नादित्यमाहात्म्य, २०२ विश्वा-मिलके प्रभावसे शाम्त्रादित्यप्रभाव, २०३ गणपतिप्जा-माहात्मा, २०४ श्राद्धकल्प, २०५ श्राद्धोत्सव, २०६ श्राद्ध-कालनिर्णय, २०७ नागरशाखा और श्राद्धमें भोज्यनिर्णय, २०८ काम्यश्राद्धनिणय, २०६ गजच्छायामाहात्मा, २१० थ्राद्धकल्पपरीक्षा, २११ श्राद्धकल्पमें चतुर्द^भशोशस्त्रहत-निण^९य, २१२ द्राद्शविध पुत, श्राद्धमें अधिकारी और अनधिकारी पुतनिर्णय, २१३ पितृपरितोपार्थं मन्त्रकथन, े २१४ पकोहिए और संपिण्डोकरणविधि, २१५ भीषा-युधिष्ठिरसंवादमें नरकगतिकथन, २१६ भीष्मयुधिष्ठिर-संवादमें नरकवारण कार्य, २१७ जलशायिमाहात्मा, २१८ मृङ्गरीटकी उत्पत्ति, २१६ अन्धकपुत वृकका इन्द्र-राज्यलाम, २२० वृकासुरप्रभाव, अशून्यशयनवतप्रसङ्गमें जलशायीकी उत्पत्ति, २२१ चातुर्मास्य व्रतनियम, २२२ अज्ञान्यशयनवर्ततकथा, २२३ हाटकेश्वरान्तर्गत मङ्कणक

शुद्धं श्वरादि मुख्यतीर्थं कथन, २२४ शिवराविमाहात्मा, २२५ तुलापुरुषदानमाहात्मा, २२६ पृथ्वीदानमाहात्मा, २२७ वाताप्येश्वर और कपालमोचनेश्वरोत्पत्ति, २२८ इन्द्रच्यु झाख्यानमें सप्तलिङ्गोत्पत्तिविवरण, २२६ युग-स्वरूपकथन, २३० दुशीलोपाख्यानमें मासकमसे देवदर्शन फल, २३१ एकादश्रुष्टोत्पत्ति और तन्माहात्म्य, २३२ द्वादशाके तथा रत्नादित्योत्पत्तिकथा, २३३ हाटकेश्वर-माहात्मा समाप्ति, पुराणश्रवण-फल ।

७ प्रभासखर्ड ।

१ लोमहर्प ण—मुनिगणसंवाद, ऑकार-प्रशंसा, पुराण और उप-पुराणका संख्यानिर्णय, प्रतेत्रक पुराणका स्रक्षण और दानविधिकथन, सात्विक राजसादि पुराणनिर्णय, स्कन्दपुराणका खण्डनिर्णेय, २ स्तर्पिसंवादमें कैलास-वर्णन, देवीकृतशिवस्तव, शिवका निज खरूपकथन, ३ शिव-पार्वतीसंवादमें तीर्थसंख्या, तीर्थयाता और तीर्थमाहात्मा-वर्णन, प्रभासक्षेतप्रशंसां, ४ प्रमासक्षेतको सीमा, परि-माण और संक्षेपमें तन्मध्यगत प्रधान प्रधान तीर्थ, मैरव और विनायकादि कथन, ५ सीमेश्वर-वर्णन, ६ सोमेश्वर-माहात्म्य, ७ प्रभासका पीठस्थाननिर्णय, शिवकथित प्रधान प्रधान तीर्थं स्थाननिर्णय, राहविभाग, ८ जम्बूहीप और तदन्तर्गत वर्ष विवरण, कूर्मलक्षण, प्रभासनाम निरू-क्तिकथन, विशिष्टादि ऋषि-कथित ईश्वरस्तव, वर्कस्थल-माहात्म्य, राजभट्टारकोत्पत्तिकथन, ६ परमेश्वरोत्पत्ति, १० पवित्र नामकरण और अर्कस्थल उत्पत्ति, ११ सिडें-व्वरोत्पत्ति, १२ पापनाशनोत्पत्ति, १३ पाताल-विवर और सुनन्दादि मातृगणीत्पसि, १४ अर्कस्थलमाहातमासमाप्ति, १५ विष्णुका अवतार-कथन, १६ वन्द्रोत्पत्तिकथन, १७ सोमेश्वरोत्पत्तिकथन, १८ सोमनाथमाहात्मा, १६ सोमे-श्वरप्रतिष्ठाकथन, २० सोमेश्वरमहिमावर्णन, २१ सोमे-श्वरव्रत, २२ गन्धर्वेश्वरमाहात्मा और यात्राविधान, २३ सागरके प्रति अभिशापवर्णन, २४ सोमेश्वरयाता और तीर्थं स्थानकथन, २५ वड्यानलोत्पत्ति, २६ वड्वानल-वर्णं न, २७ बड्वानलप्रभाव, २८ सरखस्यवतार और सरखतीनदीमहिमा, २६ सरखती-सागरसङ्गम पर अनि-तीथ महात्मा, ३० प्राची सरस्रतीमाहात्मा, ३१ कङ्कण-माहातमा, ३२ कपहींशमाहातमा, ३३ केदारेश्वरमाहातमा,

३४ भीमेश्वरमाहातमा, ३५ भैरवेश्वर, ३६ चएडीश, ३७ भास्करेश्वर,३८ अनरकेश्वर, ३६ ब्रुधेश्वर, ४० वृहस्पतीश्वर, ४१ शुक्तेश्वर, ४२ शनैश्चर, ४३ राह्वीश्चर, ४४ केश्वीश्चर, ४५ सिद्धे श्वर, ४६ कपिलेश्वर, ४७ विमलेश्वर आदि पञ्च-लिङ्गमाहात्मा, ४८ वरारोहमाहात्मा, ४६ अजपालेखरी-माहात्मा, ५० रुद्रशक्तित्वयसंकेत, ५१ मङ्गलामाहात्मा, ५२ ललितामाहात्म्य, ५३ चतुर्देवीमाहात्म्य, ५४ लक्ष्मीश्वर, ५५ वाड्वेश्वरं, ५६ अटेश्वर और ५७ कामेश्वरमाहातम्य, ५८ गौरीतपोवनमाहात्मा, ५६ गौरीश्वर, ६० वरुणेश्वर, ६१ डोभ्बर, ६२ जलवासगणेश्वर, ६३ कुमारेश्वर, ६४ साकल्येश्वर, ६५ कल्कलेश्वर, ६६ नकुलेश्वर, ६७ उतंके-श्वर, ६८ वेश्वानरेश्वर, ६६ गीतमेश्वर, ७० दैत्यघ्नेश्वर-माहात्मा, ७१ चकतीर्थ, ७२ योगेशादि-लिङ्गमाहात्मा, ७३ व्यादिनारायण, ७४ सन्निहत्या, ७५ पाएडवेश्वर, और ७६ एकादशरुद्रमाहात्मा, भूतेश्वर, ७७ नोलंश्द्र, ७८ कपालेश्वर, ७६ वृषभेश्वर, ८० लाम्बकेश्वर, ८१ अधोरेश्वर, ८२ मैरचेश्वर, ८३ मृत्युञ्जयेश्वर, कामेश्वर, ८४ योगेश्वर, ८५ चन्द्रेश्वर, ८६ एकादशख्द्रमाहात्मा-समाप्ति, ८७ चक्रथरमाहात्माप्रसङ्गमें पौंडूक वासुदेवा-**ख्यान, ८८ शाम्यादित्यकथा, ८६ शाम्वादित्यप्रभावसे** शास्त्रकी रोगमुक्ति, ६० कएटकशोधिनी और महिषद्री-माहात्मा, ६१ कपालोश्वर, ६२ कोटीश्वर, ६३ वालब्रह्म-माहात्मा, ६४ ब्राह्मणप्रशंसा, ६५ ब्रह्ममाहात्मा, ६६ प्रत्यु-गेश्वर, ६७ अनिलेश्वर, ६८ प्रभासेश्वर, ६६ रामेश्वर, १०० लक्ष्मणेश्वर, १०१ जानकीश्वर, १०२ वामनखामी, १०३ पुष्करेश्वर, १०४ कुएडे श्वरी गौरी, १०५ गौर्यादित्य, १०६ वलातिबलदैत्यम्नी और गोपीश्वर, १०७ जामद-गन्पेश्वर, १०८ चिताङ्गदेश्वर, १०६ रावणेश्वर, ११० सौमाग्येश्वर, १११ पौलामोश्वरी, ११२ शापिडल्येश्वर, ११३ सागरादित्य, ११४ उप्रसेनेश्वर, ११५ पाशुपतेश्वर, -११६ भ्रुवेश्वर, ११७ महालक्ष्मी, ११८ महाकाली, ११६ पुकरावर्त्तनदी, १२० दु:खान्तगीरी, १२१ लोमेश्वर, १२२ कङ्कालमेरवक्षेत्रपाल, १२३ चित्रादित्रा, १२४ चित्रपथा-नदी, १२५ चित्रेश्वर, १२६ कनिष्ठपुष्कर, १२७ व्रह्मकुएड, १२८ रूपकुराडल, १२६ भैरवेश्वर, १३० सावितीश्वर, १३१ नारदेश्वर, १३२ हिरण्येश्वरभैरवमाहात्मा, ब्रह्मकुएड-

माहात्मासमाप्ति, १३३ गायतीभ्वर, १३४ रत्नेभ्वर, १३५ सत्यभामेश्वर, १३६ अनङ्गेश्वर, १३७ रत्नकुएड, १३८ रेवन्त, १३६ अनन्तेश्वरमाहात्मा, १४० अप्रकुलेभ्बर, १४१ नासत्येश्वर १४२ सावितोमाहात्मा आरम्म, १४३ साविलीका प्रभासमें आगमन, १४४ साविलीमाहात्मार-समाप्ति, १४५ भूतमातृका, १४६ शालकटङ्करा, १४७ वैवखतेश्वर, १४८ मातृगणवल, १४६ दशरयेश्वर, १५० भारतेश्वरं, १५१ कुशकेश्वरादि लिङ्गचतुप्रयं, १५२ कुन्ती-श्वर, अर्कस्थल, सिद्धे श्वर, नकुलीश, भार्गवेश्वर, माएड-वेभ्वर, पुःगदन्तेभ्वर, क्षेत्रपाल, वस्तुनन्दा मातृगणमुख-विवरण, त्रिसङ्गम, मङ्गीश्वर, देवमाता गौरी, नागस्थान, प्रभासेश्वर, १५३ ठड़े श्वर, मोक्षस्वामी अजीगर्तेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, अनरेश्वर, वृद्धप्रभास, १५४ जलप्रमास, १५५ दक्षयश्रविध्वंस, १५६ कामकुएठ, कालमैरव, रामे-भ्वर, १५७ मङ्कीभ्वर, १५८ सरस्रतीसङ्गम, १५६ श्राद्ध-कल्प, १६० सरस्वतीसागरसङ्गम पर श्राद्धविधि, १६१ ब्राह्मधर्ममें पालापातिवभेद, १६२ श्राद्धकल्पसमाप्ति, १६३ मार्कएडे येश्वर, पुलहेश्वर, कत्वीश्वर, कश्यपेश्वर, कौशिकेश्वर, कुमारेश्वर, गौतमेश्वर, देवराजेश्वर, मानवे-भ्वर, मार्कंग्डयेभ्वरमाहात्मासमाप्ति, १६४ वृपध्**वजे**भ्वर, ऋणमोचन, पुरुषोत्तम, १६५ सम्बर्तेश्वर, १६६ वलभद्रे-श्वर, गङ्गा, गङ्गागणपति, १६७ जाम्ववती, पाएडवकूप, १६८ दशाश्वमेधिक, मेघादि लिङ्गतय, १६६ यादवस्थलो-त्पत्ति, वज्रे श्वरमाहात्मा, १७० हिरण्यानदी, नगरार्क, १७१ वलभद्र, ऋष्ण, शेष, १७२ कुमारी, १७३ व्रह्म श्वर, पिङ्गानदी, दिव्यसुखेश्वर, ब्रह्मेश्वर, सङ्गमेश्वर, गंगेश्वर, शङ्करादित्य, शङ्करनाथ, घण्टेश्वर, ऋषितीर्थ, १७४ नन्दा-दिता, त्रितकूप, शाशोपान, कर्णादिता, सिद्धेश्वर, न्यंकुमती, वाराह, कनकनन्दा, गङ्गेश्वर, चमसोद्धे द, प्राचीसरखती, न्यङ्कीश्वर, १७५ जालेश्वर, लिङ्गतय, पड्-तीर्थ, तिनेत्रेश्वर, १७६ देविका, उमापति, भूधर, मूलस्थान और देवीमाहात्मासम्पूर्णं, १७७ यवनादित्यमाहात्मामं सूर्याष्टोत्तरशतस्तोत, १७८ च्यवनेश्वरमाहात्मामं च्यवना-ख्यान,, १७६ च्यवनशर्यातिसंवाद, १८० शर्यातिका यज्ञ, १८१ च्यवनकर्षं क च्यवनेश्वरप्रतिष्ठा, सुकन्यामर-माहात्स्य, च्यवनेश्वरमाहात्मासमाप्ति, १८२ न्यंकुमती-

माहातमा आरम्म, अगस्त्यात्रेय, गङ्गे श्वर, वालाक, वाला-दित्र और कुबेरोत्पत्ति, १८३ भद्रकाली, कौवेर और न्यंकुमतीमाहम्त्मासम्पूर्णः, १८४ तिपुष्कर, चन्द्रोदक और ऋषितोयामाहात्न्य सम्पूर्ण, १८५ गुप्तत्रयागं, सङ्गालेश्वर, सिद्धे श्वर, १८६ गन्धर्वेश्वर, उरगेश्वर और गङ्गा, सङ्गा-लेश्वरमाहात्मासम्पूर्ण, १८७ नारदादिता, साम्वादिता, तप्तोदककुएड, मूलचएडीश, चतुमु ख, विनायक, कलं-केश्वर, गोपालखामी, वकुलखामी, ऋषितीर्थ, क्षेमा-दित्य, कएटकशोधिनी, ब्रह्मे स्वर, १८८ स्थलकेश्वर, दुर्गादित्य, गणनाम, उन्नतस्थान, तलस्वामी, रुक्मिणी, तप्तोदकस्वामी, मधुमतीमें पिएडे श्वर और भद्रा, १८६ नलखामी, १६० गोष्पतितीर्थ, न्यंकुमती, नारायणगृह, १६१ देविका, जालेश्वर, हुङ्कारकूप, १६२ आशापुर, विघराज, १६३ कपिलघारा और कपिलेश्वरमाहात्मा, कपिलायष्टीमाहातमा, अंशुमती, जलन्धरेश्वर, १६४ नले-श्वर, कर्कोटकाक[°], अगस्तत्राश्रम, हाटकेश्वर, नारदेश्वर, दुर्गा, क्रूटगणपति, १६५ भहातीर्थ, गुप्तेश्वर, सुपर्णे-श्वर, श्रङ्गो श्वर, श्रङ्गारेश्वर, प्रकीर्णस्थानलिङ्ग, १६६ दामी-दर, वस्त्रापथक्षेत्र, गङ्गेश्वर, भव, १६७ वस्त्रापथक्षेत्र-माहातम्य, १६८ अन्ध्रकासुरवध, दक्षयक्षविध्वंस, १६६ खर्णरेखा, २०० रैवत, २०१ सोमेश्वरोत्पत्ति, २०२ सर-स्वतीतीर्थं यात्रा, २०३ शिवरातिमहिमा, २०४ वस्त्रापथ-क्षेत्रमाहात्मामें विलिनियह, वस्त्रापथ-क्षेत्रमाहात्मासमाप्ति, २०५ प्रभासक्षेत-याताप्रशंसा और प्रभासखर्ड-समाप्ति।

प्रचित स्कन्दपुराणीय सप्तखर्दि अध्यायके अनु सार जो विषयानुक्रमणिका दी गई, तदनुसार नारदीय-पुराणवर्णित ब्रह्मखर्द और वैष्णवखर्दका प्रथमांश छोड़ कर स्कन्दपुराणके प्रायः सभी अंश मिलते हैं। नारद-पुराणमें स्कन्दपुराणके जो कर चितित हुआ है, प्रचलित स्कन्दके उपरोक्त सात खर्र्डोमें उसका अभाव नहीं है। इस हिसावसे यह कहा जा सकता है, कि नारदपुराणकी पुराणानुक्रमणिका जिस समय सङ्कलित हुई थी, उस समय सप्तखर्द्युक्त स्कन्दपुराण प्रचलित था, इसमें सन्देह नहीं। अध्यापक विलसन् साहब इस प्रकार खर्द्दात्मक स्कन्दपुराणकी महापुराणके मध्य गण्य करनेमें सन्देह करते हैं। उनके मतसे काशीखर्दकी अनैक कथार महम्मद् गजनीके भारताक्रमणकी पूर्व वर्ती होने पर भी इसमें तत्परवर्ती कथाएं भी हैं। वे समकते हैं, कि जब उत्कलखर्ड जगनाथदेवके प्रसिद्ध मन्दिर वनाये जाने के वाद रचा गया है, तब इसे १२वीं शताब्दीके परवर्ती कालका श्रन्थ माननेमें कोई उज्जर नहीं। किन्तु नारदीय उक्तिके अनुसार उक्त दोनों ही प्रन्थको हम लोग ११वीं शताब्दीको पूर्व वर्ती श्रन्थ अनायाससे मान सकते हैं। स्कन्दपुराणीय काशीखर्डको एक ६३० शकको हस्तिलिप विश्वकोष-कार्यालयमें रिधत है। उसके साथ अचलित काशीखर्डका किसी विषयमें मेल नहीं है। सुतरां जब १००८ ई०का श्रन्थ मिलता है, तब काशीखर्डका रचनाकाल उसके भी बहुत पहलेका स्वीकार किया जा सकता है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और बेनडल साहव नेपालके राजपुस्तकालयमें ७वीं शताब्दीका हाथ-का लिखा एक स्कन्दपुराण-प्रन्य देख आये हैं। आज तक जितने पौराणिक प्रन्थ आविष्कृत हुए हैं, उनमेंसे नेपालका उक्त प्रन्थ ही सर्व प्राचीन हैं। जो प्रचलित पुराणोंको नितान्त आधुनिक समकते हैं, उनकी शङ्का दूर करनेके लिये हम लोगोंके संग्रहीत अभ्विकाखरडके द्वितीय अध्यायसे इसकी अनुक्रमणिका उद्घृत की जाती है।

अव प्रश्न होता है, कि ऊपरमें जी सब स्कन्दपुराणके परिचय दिये गये हैं, उन्हें स्कन्दपुराण मान सकते हैं, वा नहीं ? धर्म सुंबरचनाकालमें स्कन्दपुराण प्रचलित था या नहीं, उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । परन्तु मत्स्यपुराणसे स्कन्दपुराणका जो परिचय मिलता है, वह इस प्रकार है—

"यत माहेश्वरान् घर्मानधिकृत्य च पण्मुखः। कल्पे तत्पुरुणे वृत्तं चरितेरूपवृंहितम्॥ स्कान्दं नाम पुराणं तदेकाशीतिर्निगद्यते। सहस्राणि शतं चैकमिति मर्तेर्यु गद्यते॥"

जिस पुराणमें षड़ानन (स्कन्द)ने तत्पुरूप करूप प्रसङ्ग में नाना चरित और उपाल्यान तथा माहेश्वर-निर्दिष्ट धर्म प्रकाशित किये हैं, वही मर्तालोकमें ८११०० क्षोकयुक्त स्कन्दपुराण नामसे प्रसिद्ध हुआ हैं। मत्स्यपुराणके उक्त वचन पर दृष्टिपात करनेसे पूर्व वर्णित षट्संहिता और सप्तखएडात्मक स्कन्दपुराणको मात्स्योक्त स्कन्द नहीं मान सकते, पर उपरोक्त केदार-खएडमें नन्दिपुराण संवाद और—

"धर्मा नानाविधाः प्रोक्ता नन्दिनं प्रति वे तदा । कुमारेण महाभागाः शिवशास्त्रविशारदाः॥"

उक्त श्लोकका पाठ करनेसे प्रचलित स्कच्युरागमें भी जो आदि कितने लक्षण हैं, यह स्पष्ट जाना जाता है। इस प्रकार स्कन्दपुराणमें अनेक विशुद्ध विषय रहने पर भी, यहाँ तक कि इसके किसी किसी करडका सङ्कलन-काल सातवीं शताब्दीके पूर्ववतीं होने पर भी वर्तमान बर्डात्मक विराट्-क्रपधारी स्कन्द्युराणको आदि त्रयी-दश पुराण माननेमें सन्देह उपस्थित होता है। यह सन्देह करनेके यथेए कारण है। यदि उक्त संहिता और बर्ड 'स्कन्द्पुराणकें अन्तर्गत हो, तो एक ही विषयक, पक ही उपाख्यान विभिन्न संहिताओं वा विभिन्न खण्डोंमे वर्षित क्यों हुआ ? एक कुमारीत्पत्तिको कथा हो अस्विका-बएड, केदारखएड, कुमारिकाखएड और ब्रह्मखएड आदि-में वर्णित देखी जाती है। इस प्रकार और भो कितने विपर्योका उङ्लेख किया जा सकता है। यदि स्कच्पुराण पक पुराण होता तो एक ही विपयकी एकसे अधिक बार अवतारणा क्यों हुई ? अधिक सम्मव है, कि आदि स्कन्द-पुराणमें इस प्रकार एक विषयका अनेक वार उल्लेख नहीं था। सम्भवतः तन्पुरुपकल्पप्रसङ्गमें माहेश्वर धर्म और स्कन्दका चरित ही विस्तृत भागमें वर्णित था। पीछे हम लोगोंने शिवपुराणके उत्तरखर्डमें स्कन्द्पुराणका परिचय इस प्रकार पाया है-

"यत स्कन्दः स्वयं श्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः। तत्र स्कान्दं समाख्यातं"

अर्थात् जिस पुराणमें स्वयं स्कन्द (कार्त्तिकेय) श्रोता और साझात् महेश्वर वक्ता हैं वही पुराण स्कान्द कह-छाता है। शैव-निर्दिष्ट रुझण भी आजकरूके स्कन्दपुराण-में नहों है, केवरू प्रसङ्ग मात है। इस हिसावसे हम छोग समक्त सकते हैं; कि उस आदि स्कन्दपुराणका मारू-मसाला है कर विभिन्न सम्प्रदायके पुराणवाचक अर्थात् ज्यासगणने वर्त्तमान आकारमें स्कन्दपुराणका प्रचार किया है। माहेश्वर, वैष्णव, अस्विका इत्यादि खएडों में तथा शाह्नरी, वैष्णवी, गौरी, ब्राह्मी, इत्यादि नामधेय संहिताओं में साम्प्रदायिक प्रभाव भलकता है। इस प्रकार नाना सम्प्रदायके हाथसे स्कन्दपुराण विभक्त और परिवर्दित होने पर भी आदि स्कन्दपुराण शैवशास्त्र कह कर ही गण्य था। इस कारण शैवतर संहिताओं और खएडों में शिवकी कोई भी कथा छूटने नहीं पायी है। जो कुछ हो नेपालके राजदरवारसे आविष्टत स्कन्दपुराणके अस्विकास्वरुसे जाना जाता है, कि इस परिवर्दित और वर्तमान कालमें प्रचलित स्कन्दपुराणको हम लोग जैसा आधुनिक प्रन्थ समक्तते हैं, यथार्थमें वह वैसा आधुनिक नहीं है। प्रायः डेढ़ हजार वर्ष होता है, कि स्कन्दपुराणने वर्तमान कप धारण किया है।

उपरोक्त संहिता और खएड छोड़ कर और भी कितने माहातम्य तथा खएड स्कन्दपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं। यथा —

सहादिखएड, अवु दाचलखएड, कनकाद्रिखएड. काश्मीरखएड, कोशलखएड, गणेशखएड, उत्तरखएड, पुष्करखण्ड, वद्रिकाखण्ड, भोमखण्ड, भूखण्ड, भैरव-बर्ड, मरुयाचरुबर्ड, मानसंबर्ड, कालिकाबर्ड ,श्री-मालखएड, पर्वतखएड, सेतुखएड, हालास्यखएड, हिमचत्-बर्ड, महाकालखर्ड, अगस्त्यसंहिता, ईशानसंहिता, उमा-संहिता, सदाशिवसंहिता, प्रहादसंहिता इत्यादि । अदुःख नवमीक्या, अधिमासमाहातम्य, अभिलापाष्ट्रक, अस्विका-माहातम्य, अयोध्यामाहात्म्य, अरुन्धतोत्रतकथा, अर्द्घोद्य-वत, अवु द, आदिकैलाश, आलम्पुरो, आवाढ़, एका-दशी, इन्द्रावतारक्षेत्र, पाशुपातक्षेत्र, उत्कल, ओङ्कारे-भ्बर, कद्मववन, कनकाद्रि, कमलालय, कलसक्षेत्र, कात्यायनी, कान्तेश्वर, कालेश्वर, कुमारक्षेत्र, कुरूकापुरी, कृष्णनाम, कैवल्यरत, केशरक्षेत्र, कोटोश्वरीवत, गणेश, गरलपुर, कृष्णनाम, गोकर्ण, गो, चन्द्रपाल, परमेश्वरी, चातुर्मास्य, चिद्म्वर, जगन्नाथ, जयन्ती, तञ्जापुरी, विष्णु-स्थली, तपसतीर्थ, तल्पगिरि, तिरुनलवाड़ी, तुङ्गभद्रा, तुङ्गशैल, तुलजा, त्रिशिरगिरि, त्रिशूलपुरी, नन्दीक्षेतादि, नन्दीश्वर, पञ्चपार्व ती, पराशरक्षेत्र, पाण्डुरङ्ग, पुराणश्रवण, पावकाचल, पेरलस्थल, प्रवोधिनी, प्रयाणपुरी, वकुला-

रण्य, वदरिकावन, विख्ववन, भागवत, भीमेश्वर भैरव, मथुरा, मन्दाकिनो, घराचल, महारी, महालक्ष्मी, माया-क्षेत्र, मार्ग शीर्ष, मौनी, युद्धपुरी, रामशिला, रामायण, **च्हकोटो, च्हराया, लिङ्ग, वटतीर्थ, वरलक्ष्मी, वाञ्छे**श्वर, वानरवीर, वानवासी, विनायक, विरजा, वृद्धगिरि, वेद-पादिशव, वैशाख, विस्वारण्य, शम्मलप्राम, शम्भुगिरि, शम्भुमहादेवक्षेत्र, शालग्राम, शीतला, शुद्धपुरी, शृङ्कवेरपुर, शूलटङ्के भ्वर, श्रीमाल, श्रीमुण्णि, श्रीस्थल, सिंहाचल, सिद्धिवनायक, सुत्रहाण्यक्षेत्र, सुरिभक्षेत्र, हेमेश्वर और ह्रदालयमाहानम्य इत्यादि बहुसंख्यक माहातम्य, एतिङ्कल दाक्षिणात्यके प्राचीन मन्दिरोंमें जो सव स्थलपुराण पाये जाते हैं, उनका अधिकांश हो स्क द्पुराणके अन्त-गत हैं। जो कुछ हो, इस विस्तीण स्कन्द्पुराणीय विभिन्न माहात्म्यसे हम छोगोंने भारतके प्राचीनकालके भूवृत्तान्तका यथेष्ट परिचय पाया है। इसी कारण वे सव भौगोलिकोंको आदरकी सामग्री हैं।

१४ वामनपुराख।

१ पुलस्त्यनारद-संवादमें वामनपुसङ्ग, हरपावती-संवाद, २ दसयह, ३ शङ्करका तीर्थंग्रमण, ४ शङ्करकी कपालीप्रयुक्त दक्षका शिवरहित यज्ञ, मन्दरपर्यंत पर सती-का देहत्याग, शङ्करका क्रोध और उनके शरोरसे प्रमथगण-की उत्पत्ति, ५ दक्षालयमें युद्ध, राशिचककी खिंछ, ६ नर और नारायणका उपाख्यान, सतीके विरहानलमें शङ्करका भ्रमण, देवगणका स्तव, ७ नारायणकी योगभङ्ग करनेकी चेष्टा, च्यवनमुनिका पातालगमन, नरनारायणके साथ प्रहादका युद्ध, ८ नरनारायणका पराजयखीकार, प्रहाद-का वरदान, ६ अन्धकका राज्याभिषेक, १० देवताओंके साथ अन्धकका संग्राम, ११ सुकेशीनिशाचरका उपा-ख्यान, १२ नरकवर्णन, कीन कार्य करनेसे कीन नरक होता है उसका निर्णय, पुष्करद्वीपवर्णन, १३ जम्बूद्वीप-वर्णन, पर्व तवर्णन, नदीवर्णन, १४ सुकेशीका धर्मीप-देश, १५ सात्विककार्यः, १६ वाराणसीकी उत्पत्ति, १७ कात्यायनी और विष्णुका उत्पत्तिकाल, रक्तवीजका जन्म-वृत्तान्त, महिपासुरके युद्धमें देवताओंकी पराजय, १८ देवदानवकी देहसे भगवतीकी उत्पत्ति, १६ विन्ध्याचलमें देवीका अधिष्ठान, २० कात्यायनीके साथ महिषासुरका

युद्ध, २१ शुम्म और निशुम्म-विनाशके लिये देवीका पुनर्वारजन्म, पृथ्दकका वृत्तान्त, शम्बरके साथ तपती-का परिणाय, २२ कुरुराजका उपाख्यान, २३ पाव तीकी तपस्या, २४ पार्व तीके आश्रममें छद्मवेश-शङ्करका विवाद, शङ्करका महामेधुनभंग, २६ गणेशका जन्म-वृत्तान्त, शुम्म-निशुम्भका सैन्यसंप्रह, देवीके निकट दूत-प्रेरण, धूम्रलोचन-वध, चएडमुएडका युद्ध और विनाश, २७ रक्तवीजका युद्ध और विनाश, शुम्मका युद्ध और विनाश, देवताओंका स्तव, २८ कार्त्तिकेयका जन्म और सेनापतित्वमें वरण, २६ कार्त्तिकेयके साथ दानवका युद्ध, तारकासुरनिधन, क्रौश्चमेद और महिपासुरविनाश, ३० अन्त्रकासुरका भ्रमण और गौरीके रूपछावण्य पर मु धता, ३१ मुरदानवका उपाख्यान, पुकामनरकनिर्णय, ३२ भिन्न नरक और पापनिर्णय, पुत्रनिर्णय, केशवका द्वादशपत्नाख्य योग, ३३ मुस्दानवनिधन, शङ्करका योग, अङ्कनका नृत्य और खर्ग गमन, ३४ भाग वका मृतसञ्जी-वनी-विद्यादान, अन्ध्रकासुरके साथ शङ्करका विवाद, ३५ दएडक राजाका उपाख्यान, ३६ नीलकएठका स्तव, ३७ अन्ध्रकासुरके साथ शङ्करका युद्ध, ३८-४२ अन्ध्रका-सुर-निधन और भृङ्गीत्यप्रदान, ४३ मरुत्की उत्पत्ति, ४४ वलिका राज्यप्रहण, ४५ देवताओंके साथ संप्राम, देव-ताओंकी पराजय, प्रहादके साथ विलकी मन्त्रणा, ४६ देवताओंकी मन्त्रणा, पुरन्दरकी तपस्या, अदितिकी तपस्या, ४७ प्रहादके साथ विलका कथोपकथन, प्रहाद-का कोध और अभिसम्पात, ४८ प्रहादका तीर्धंगमन, धुन्धुका उपाल्यान, धुन्धुका अध्वमेघ-यह, देवताओंका निकट विपाद-भूमिपुार्थंना, वामनरूपमें धुन्धुके धुन्धुनिघन, वलिका अश्वमेधयझ, ४६ देवगणका स्तव, वामनका जन्म और जातकर्मादि, ५० स्थानविशेष-में भगवान्का रूपधारण, ५१ विलिके यहमें वामनका गमन, कोषकारका उपारूयान, ५२ वलिके निकट तिपाद-भूमिप्रार्थंना, वामनका तिपाद-भूमिदान, विराट्-मूर्ति-दर्शन, वलिका वर्णन, वाणके साथ कथोपकथन, ५३ वलिका पातालमें गमन, ब्रह्माका स्तव, ५४ पातालपुरीमें सुद्रशनचक्रका प्रवेश, सुद्रशेनचक्रका स्तव, बलिके प्रति प्रहाद्का धर्मीपदेश, ब्राह्मणके प्रति मिक, ५५

द्वादशमासमें विष्णुपूजाका नियम, वृद्धकी प्रशंसा। जपरमें प्रचलित वामनपुराणकी सूची दी गई है। अव देखना चाहिये, कि अपरापर पुराणोंमें वामनपुराणका कैसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है। नारद्पुराणके मतसे—

"श्र्णु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम् । विविक्रमचरिताढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम्॥ कूर्मकल्पसमाख्यानं वर्गतयकयानकम्। भागद्वयसमायुक्तं वक्तृश्रोतृशुभावहम् ॥ पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्शच्छिदा ततः। कपालमोचनाख्यानं दक्षयञ्च विहिसनम्॥ हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहनं ततः। प्रहादनारायणयोग्रु इ' देवासुराह्मयम् ॥ सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोपकम्। ततः काम्यवताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः॥ तपतीचरितं पश्चात् कुरुक्षेतस्य वर्णनम्। सरमाहातम्यमतुलं पार्वतीजन्मकीर्त्तनम् ॥ तपस्तस्या विवाहश्च गौर्यु पाख्यानकं ततः। ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः॥ ततोऽन्धकवधाख्यानं साध्योपाख्यानकं ततः। जावालिचरितं पश्चाद्रजायाः कथाद्भुता ॥ अन्धकेश्वरयं युद्धं गणत्वं चान्धकस्य च। मरुतां जनमकथनं वलेश्च चरितं ततः॥ ततस्तु लक्ष्म्याञ्चरितं तैविकममतः परम् । प्रहादतीर्थयातायां प्रोच्यन्ते तत्कथाः शुभाः॥ ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः। नक्षतपुरुवाख्यानं श्रीदामचरितं ततः॥ विविक्रमचरिवान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवीत्तमः। महादवलिसंवादे सुतले हरिशंसनम्॥ इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः। शृणु तस्योत्तरं भागं वृहद्वामनसंज्ञकम्॥ माहेश्वरी भागवती सौरी गणेश्वरी तथा। चतस्रः संहिताश्चात पृथक् साहस्रसंख्यया॥ माहेश्वयान्तु कृष्णस्य तद्भक्तानां च कीर्त्तनम्। भागवत्यां जगन्मातुरवतारकथाद्भुता ॥ सौर्यं सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः। गणेश्वर्यी गणेशस्य चरितं च महेशितुः॥ इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रितम्। पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने॥ ततो नारदतः प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना । व्यासात्तु रुञ्चमान वत्स तच्छित्यो रोमहर्षणः ॥ स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च । एवें परस्परा प्राप्तं पुराणं वामनं शुभम्॥"

(हे बत्स! सुनो, वामन नामक पुराण कहता हूं। यह पुराण विविक्रम-चरितसम्बिलत और दश सहस्र खोक युक्त है। इसके दो भाग हैं और इसमें कूर्म कल्पका समाख्यान तथा वर्ग वयकथा निक्रियत हुई है। इसका अवण करनेसे वक्ता और श्रोता दोनोंका मङ्गल होता है।

इसके आरममें पुराणप्रथ, ब्रह्मशीर च्छेद और कपालमोचनाख्यान, पीछे दक्षयक्षध्र स, हरकी काल-रूपाख्या, मदनदृहन, प्रहाद और नारायणका युद्ध, सुकेशी और अर्कसमाख्यान, भुवनकोय, कामत्रताख्यान, श्रीदुर्गाचित, तपतीचरित, कुरुशेतवर्णन, सरोमाहात्म्य, पार्व ती-जन्मकीर्त्तन, सतोकी तपस्या और विवाद, गौरीका उपाख्यान, कौशकी-उपाख्यान, कुमारचरित, अन्यक-त्रधाख्यान, शाध्योपाख्यान, जावालिचरित, अन्यक और ईश्वरका युद्ध, अन्यककी गणत्वप्राप्ति, देवताओं-की जन्मकथा, वलिचरित, लक्ष्मीचरित, तिविकमचरित, प्रहादकी तोर्थयाताके उपलक्षमें उनकी कथा, धुन्युचरित, प्रतेपाख्यान, नक्षत्वपुरुपाख्यान, श्रीरामचरित, तिविकमचरित, प्रतेपाख्यान, नक्षत्वपुरुपाख्यान, श्रीरामचरित, तिविकमचरित, प्रतेपाख्यान, नक्षत्वपुरुपाख्यान, श्रीरामचरित, तिविक्मचरित, क्रमचरितान्तमें ब्रह्मप्रोक्त उत्तम स्तव और प्रहाद तथा विलसंवादमें सुतलमें हरिकी वास, ये सव पूर्वभागमें विणित हैं।

इसके वृहद्वामन नामक उत्तरभागमें माहेश्वरी, भग-वती, सौरी और गणेश्वरी नामक चार संहिताएं हैं। उन चारोंमेंसे प्रत्येक संहितामें हजार श्लोक हैं। प्रथम-संहिता माहेश्वरीमें कृष्ण और कृष्णभक्तोंका कीत्तन, द्वितीय भागवतीमें जगन्माताकी अवतारकथा, सौरीमें पापनाशन सूर्यमाहात्म्य और चतुर्थ संहिता गणेश्वरीमें गणेशका चरित निवद्ध हुआ है। यह वामनपुराण पहले पुलस्त्यने नारदसे कहा था। पीछे नारदसे महात्मा व्यासमुनिने प्राप्त किया। हे चत्स! व्याससे उनके शिष्य रोमहर्णणने इसे पाया था और उन्होंने ही नैमिष्यारण्य-वासी ऋषियोंसे इसे सुनाया था।)

मतस्यपुराणके मतसे—

"तिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मु सः । तिवर्गमम्यधात्तच वामनं परिकीर्त्तितम् ॥ पुराणं दशसाहस्रं ख्यातं कल्पानुगं शिवम् ॥" जिस पुराणमें चतुर्मु स ब्रह्माने तिविक्रम (वामनका) माहातम्यका अवलम्बन कर तिवर्गका विषय कीर्तन किया है और पीछे शिवकल्प वर्णित हुआ है, वही दश-साहस्रश्लोकात्मक वामनपुराण है।

ऊपरमें वामनपुराणके जो लक्षण उद्धृत हुए हैं, केवल नारदोक्तिके साथ प्रचलित वामनपुराणका मेल देखा जाता है। किन्तु उत्तर भाग अभी नहीं मिलता है।

फिर मत्स्यपुराणोक तिविक्तमचरित रहने पर भी ब्रह्माकर्नुक वर्त्त मान वामनपुराण वर्णित नहीं हुआ है। इस हिसावसे प्रचित्रत वामनको आदि वामन माननेमें सन्देह उपस्थित होता है। आदिवामनकी अनेक कथाएँ इन वामनमें हैं इसमें सन्देह नहीं। पर इतना तो अवश्य है, कि नारदपुराणकी पुराणोपक्रमणिका रचित होनेके पहले वामनपुराणने वर्त्तमान आकार धारण किया था।

करकचतुर्थींकथा, कायज्वलीव्रतकथा, गङ्गामानसिक-स्नान, गङ्गामाहातम्य, दिधवामनस्तोत्न, वराहमाहातम्य और वेङ्कटगिरिमाहातम्य इत्यादि कितने छोटे छोटे प्रन्थ वामनपुराणके अन्तर्गत प्रचलित हैं।

५५ कुमंपुराणं।

पूर्वभागमें-१ सूत और नैमिणेय-संवादमें इन्द्रयुझ-कथाप्रसङ्ग, कूर्मपुराणकथन, २ वर्णाश्रमकथन, ३ आश्रम-क्राप्तथन, ४ प्राकृतसर्ग, ५ कालकथन, ६ भूमएडल-उद्भव, ७ तमोमय सर्गादि कथन, ८ मिथुनसर्ग कथन, ६ पद्मोद्भवप्रादुर्माव, १० रहसर्ग, ११ देव्यवतार, १२ देव-ताओंका सहस्रनाम स्तव, हिमवत्के प्रति देवताओंका डपदेश, १३ भृग्वादि सग^९कथन, १४ खायम्भुव मनुसग^९-कथन, १५ दक्षयक्षघ्वंस, १६ दाक्षायणीवंशकीर्त्तन, हिरण्यकशिपुवध और अन्धक-पराजय, १७ वामनावतार-ळीळा, १८ वळिपुत्रादि कथाप्रसङ्गमें वाणपुरदाहविवरण, १६ ऋषिवंशकीर्त्तन, २० सूर्य वंशकीर्त्तन-प्रसंगमें त्रिश्रन्वा पर्यंन्त राजगण-कीर्त्तन, २१ इक्ष्वाकुवंश-वर्णनसमाप्ति, २२ पुरुरवाका वंशवर्णन, २३ जयधुजवंश-कथन, २४ क्रोब्टुवंशकथन, राम और कृष्णावतार वर्णन, २५ श्रीकृष्णको तपश्चर्य, २६ श्रीकृष्णका रुद्रदर्शन, कृष्ण-मार्कण्डेय-संवाद्में लिङ्गमाहातम्यकथन, २७ वंशातु-कीर्त्तनसमाप्ति, २८ व्यासार्जु न संवादमें सत्यवेताद्वापर

युगकथन, २६ कलियुगखरूपकथन, ३० वाराणसी-माहात्म्यमें जैमिनि और व्याससंवाद, ३१ लिङ्गादि-माहात्म्यकथन, ३२ व्यासका कपर्दीश्वरादि लिङ्गदर्शन, ३३ मधामेश्वरमाहातम्य, ३४ जैमिनियमुख शिष्यपरिवृत व्यासका प्रयाग-विश्वरूपादि तीर्थं पर्यंटन, ३५ प्रयाग-माहातम्यकथन, ३६ प्रयागमरणमाहात्म्य, ३७ मान्रमासमें प्रयागमें फलाधिक्य इत्रादिः कथन, ३८ यमुनामाहात्म्य, ३६ भुवनकोवसंस्थानमें सप्तद्वीपकथन, ४० तैलोक्यमान-कथन, ज्योतिःसन्निवेश, ४१ द्वादश आदित्य और उनका अधिकारकालकथन, ४२ सूर्य का प्रह्योनि और सप्त रश्मिकथन, ४३ महर्लोकादि कीर्त्तन, ४४ भूलोकनिर्णयमे द्वीप, सागर और पर्व तादिका कथन, ४५ मेरउपस्थित ब्रह्मपुरीका कथन, ४६ केतुमाछवर्षादि भूमिसक्रपकथन, ४७ हेमकुटवणन, ४८ प्रश्नद्वीपादि कथन, ४६ पुष्करद्वीपादि-कथन, ५० मन्वन्तर-कीर्त्तन, ५१ व्यासकीर्तन, ५२ महा-देव अवतार-कथन।

ववरिभागमें-- १ ईश्वरीगीतामें ऋषियोंका प्रश्न और वक्तव्य ज्ञानप्रशंसा, ३ अव्यक्तादि ज्ञानयोग, ४ देवदेव-माहात्म्यज्ञानयोग, ५ देवदेवका ताएडवकालीन स्वरूप-दर्शन, ६ ईश्वरकी निज रूप उक्ति, ७ ईश्वरका प्रधान-स्वरूपत्व-कोर्त्तन, ८ गुद्यतम ज्ञानकथन, ६ ईश्वरज्ञानकथन, १० लिङ्गब्रह्मज्ञानयोग, ११ अद्याङ्गयोगकथन, १२ ब्रह्म-चारिधर्म, १३ गमनादि कर्मयोगकथन, १४ अध्ययनादि-प्रकारकथन, १५ स्नातकधर्मकथन, १६ आचाराधाय, १७ भस्यामक्ष्यनिर्णय, १८ नित्यक्रियाविधि, १६ भोज-नादि विधि, २० श्राद्धकल्पारम्भ, श्राद्धीय द्रव्यनिर्णय, २१ श्राद्धकल्पमें ब्राह्मणविचार, २२ श्राद्धकल्पसमाप्ति, २३ अशौचप्रकरण, २४ अग्निहोतादि विघि, २५ वृत्तिकथन, २६ दानधर्मकथन, २७ वानपुरुषधर्मकथन, २८ यतिधर्मकथन, २६ यतिसिक्षादि प्रकारकथन, ३० प्रायश्चित्तकथन, ३१ कपालमोचनमाहात्म्य, ३२ सुरापानादि प्रायश्चित्तकथन, ३३ मनुष्यस्त्रीगृहहरणादिका प्रायश्चित्त, ३४ विविध-चित्र-माहात्म्यकथन, ३५ रुहकोट्यादि-तीर्थ[°]कथन, ३६ महालयादितीय कथन, ३७ महेश्वरकी देवदारुवनलीला, ३८ नर्मदामाहातस्य, ३६ नार्मद्भद्रे ध्वरादितीर्थ-कथन, ४० भृगुतीर्थं कथन, ४१ नैमिप-जाप्येश्वरमाहात्म्य, ४२

तींथ माहांतम्यसमाप्ति, ४३ प्रलयकथन, ४४ प्राकृतप्रल-यादिकयन, कूर्मपुराणका पट्संवादकथन ।

अंब देखना चाहिये, कि अपरापर पुराणोंमें कूर्म-पुराणके छक्षण किस प्रकार निर्दिष्ट हुए हैं ? नारद्युराण-के मतसे--

"श्रुणु वत्स मरीचेऽच पुराणं कूर्मसंक्षितम्। लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत कूर्मचपुर्हरिः॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यंच पृथक् पृथक्। इन्द्रय सप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो द्यान्तिकं॥ तत्सप्तदशसाहस्रं सुचतुःसंहितं शुभम्। थंत ब्राह्मगं पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने॥ नानाकथा प्रसंगेन नृणां सद्गतिदायकाः। तंत्र पूर्वविभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा ॥ लक्ष्मीप्रद्यु म्नसंवादः कूर्मर्षिगणसंकथा। वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्त्तेनम्॥ कालसंख्यासमासेन लयान्ते स्तवनं विभोः। ततः संक्षेपतः सर्गः शांकरं चरितं तथा ॥ सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम्॥ भृगुवंशसमाख्यानं ततः खायम्भुवस्य च। देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयश्चाहतिस्ततः॥ द्श्रसृष्टिकथा पश्चात् कश्यपान्वयकीर्त्तंनम्। आतेयवं शकथनं कृष्णस्य चरितं शुभम् ॥ मार्करडकृष्णसंवादो व्यासपार्डवसंकथा। युगधर्मानुकथनं व्यासजैमिनिकी कथा॥ वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम्। बैलोक्यवर्णनं चैव वेदशाखानिरूपणम्॥ उत्तरेऽस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः। व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रवीधिनी ॥ नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यं च पृथक् ततः। नानाधर्मप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता॥ अतः परं भगवती संहितार्थनिरूपणे। कथिता यत वर्णानां पृथक्वृत्तिरुदाहर्ता॥ (ततुत्तरभागीय भगवत्याख्या द्वितीयसंहितायाः पञ्चपादेषु)

पादेऽस्या प्रथमप्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ।
सदाचारात्मिका वत्स भोगसींख्यविवद्धं नी ॥
द्वितीये क्षतियाणान्तु वृत्तिः सम्यक् प्रक्रीत्तिता ।
यया त्वाश्रितया पापं विध्येह वजेहिवम् ॥
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुविधा ।
यया चरितया सम्यक् स्रभते गतिमुक्तमाम् ॥
चतुर्येऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ।
यदा सन्तुष्यित श्रीशो नृणां श्रेयोविवद्धं नः ॥
पञ्जमेऽस्य ततः पादे वृत्तिः संकरजोदिता ।

Vol. XIV, 11

यया चिरतमाप्नोति भाविनीमुत्तमां जनिम् ॥
इत्येषा पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ।
तृतीयातोदिता सौरी नृणां कामविधायिनी ॥
षोढ़ा पट्कर्मसिद्धि सा वोधयन्ती च कामिनां ।
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीत्तिता ॥
चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षात् ब्रह्मसरूपिणी ।
ताः क्रमात् पट्चतुर्थीषु साहस्राः परिकीर्तिताः ॥

(हे वत्स ! सुनो, लक्ष्मीकल्पानुचरित कूर्म नामक पुराण कहता हूं । इस पुराणमें हरि कूर्मक्रपमें वर्णित तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षं इन चारोंका माहातम्य पृथक् पृथक् क्रपमें कीर्त्तित हुआ है । यह पुराण इन्द्रसुम्नप्रसङ्गमें भृषिकोंसे कथित और सत्तरह हजार स्होकोंमें परिपूर्ण है ।

(पूर्व भागमें) इसमें पहले पुराणीपक्रम, पीछे लक्ष्मी और प्रद्युम-संवाद, क्र्में और ऋषियोंका संवाद, वर्णाश्रमाचारकथा, जगदुत्पत्तिकीर्त्तन, संक्षेपमें काल-संख्या, लयान्तमें भगवान्का स्तव, संक्षेपमें सृष्टि, शङ्कर-चित, पार्व तीका सहस्रताम, योगनिकपण, भृगुवंश-समाख्यान, स्वयम्भु और देवादिकी उत्पत्ति, दस्रवद्यध्यं स, दस्रस्थिकथा, कश्यपवंशकीर्त्तन, आत्रेयवंशकथन, कृष्ण-चित, मार्क एड और कृष्णसंथाद, ध्यास और पाएडव-संवाद, गुगधर्मानुकथन, न्यास और जैमिनीको कथा, वाराणसी और प्रयागमाहात्म्य, तैलोक्यवर्णन और वेद-शाखा-निक्षण ।

(उत्तरभागमें) इसमें पहले ईश्वरीगीता, ज्यासगीता, नानाविधर्तार्धमाहातम्य, नानाधर्मकथा और ब्राह्मी-संहिता तथा पीछे भागवती-संहितार्थ-निरूपण और वर्णसमुदायकी पृथक् वृत्ति निरूपित हुई है। (उत्तरमागकी मागवत्याच्या द्वितीय संहितामें) इसके प्रथमपादमें ब्राह्मणोंकी व्यवस्थिति, द्वितीयपादमें झितयों-का सम्यक्रपसे वृत्तिनिरूपण, तृतीयपादमें वैश्यज्ञाति-का वृत्तिकथन, चतुर्थपादमें शूद्रोंका वृत्तिकथन, चतुर्थपादमें शूद्रोंका वृत्तिकथित हुई है। इसकी तृतीय सौरीसंहिता नरगणकी कामप्रदा और चतुर्थी वैष्णवी-संहिता मोश्रदायिका है।

मत्स्यपुराणके मतसे—

"यत धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले। माहातमं कथयामास कुर्मकपी जनाई नः॥ इन्द्रयु सप्रसंगेन ऋषिः शतु सन्निधी । सप्तदशसहस्राणि लक्ष्मोकल्पानुपङ्गिकम्॥"

जिस पुराणमें कूर्मक्षपी जनाईनने रसातल पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका माहात्म्य इन्द्रच समसङ्ग्रमें इन्द्रके समीप ऋषियोंसे कहा था तथा जिसमें लक्ष्मी-कल्पका विषय वर्णित हुआ है, वही सत्तरह हजार श्लोक-युक्त कूर्म पुराण है।

नारद और मार्त्स्यमें कूर्म के जो लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, प्रचलित कूर्म पुराणमें उनका अर्द्ध क है। फिर मूल श्लोक ले कर भी गीलमाल है। आजकलके कीर्ममें ६००० मात्र श्लोक पाये जाते हैं। इस पुराणके उपक्रममें ही लिखा है—

"हरं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्म मुत्तमम्।
चतुर्घा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रमेदतः॥
बाह्यी मागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीत्तिताः।
चतन्नः संहिता पुण्याः घम कामार्थ मोश्रदाः॥
हयं तु संहिता बाह्यी चतुर्वेदेश्च समिता।
भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामात्र संख्यया॥
यत धर्मार्थकामानां मोश्रस्य च मुनीश्र्वराः।
माहात्म्यमिक्छं ब्रह्म बायते परमेश्र्वरः॥" (११३५)
उक्तं श्लोकके अनुसार प्रचित्त क्र्म पुराण् ब्राह्मी;
भागवती, सौरी और वैष्णवी इन्हीं चार संहिताओंमें

पूर्वोक्त लक्षणानुसार कूमपुराणमें आदिपुराणके अनेक सामान भी हैं। पर हां इसमें डामर, यामल, तन्त्र आदिकी अनेक कथाएं पीछे संयोजित होने तथा अनेक मूल विषय नहीं रहनेके कारण इसने छोटा बाकार धारण किया है इसमें सन्देह नहीं।

१६ पत्स्यपुराण

१ मनु-विष्णुसंवाद २ ब्रह्माएड्दछन ३ ब्रह्ममुखो-त्यत्तिवृतान्त, ४ आदिसृष्टिविवरण, ५ देवादिसृष्टिविवरण, ६ कश्यपान्वयिवरण, ७ मदनद्वादशीवतोपाच्यान, ८ आधिपत्याभिषेचन, ६ मन्यन्तरानुकोर्त्तन, १० वैण्यचरित, ११ सोमसूर्यवंशवणनवृतान्त, १२ स्यवंशानुकोर्त्तन, १३ पितृवंशवर्णनमें अग्रोत्तरशतगौरीनामकोर्त्तन, १४-१५ पितृवंशवर्णन, १६ श्राद्धकल्प, १७ साधारणअभ्युदय- कोर्त्तन, १८ सपिएडोकरणकल्प, १६ श्राद्धकल्पमें फलातुं-गमनकथन, २० श्राद्धमाहातम्य प्रसङ्गमें पिपोलिकावहास-वृत्तान्त, २१ श्राद्धकल्पमें पितृमाहात्म्यकथन २२ श्राद्ध-कल्पसमाप्ति, २३ सोमवंशाल्यानमें सोमोराचारवर्णन, २४ ययातिचरित कथनारमा, २५ कचका सञ्जीवनीविद्या-लाम, २६ कच और देवयानीका परस्पर शापप्रदान, २७ शर्मिष्टा और देवयानीका कलह, २८ शुक्र और देवयानी-संवाद, २६ शर्मिप्राका देवयानीका दासीत्वकरण, ३० देवयानीका विवाह, ३१ ययाति और शर्मिष्ठासंङ्गम, ३२ ययातिके प्रति शुक्तका शाप, ३३ पुरुका पितृजरा प्रहणमें अङ्गीकार, ३४ पुरुका राज्याभिषेक ३५ ययातिका स्वर्गा-रोहण, ३६ इन्ड्र और ययातिका संवाद, ३७ पुण्यक्षय हेतु सर्गसे पतित ययातिके प्रति अएकोंकी उक्ति, ३८ अएक और ययातिका स्वाद, ३६ ययातिका उपदेश, ४० ययाति-का आश्रमधर्मकयन, ४१ परपुण्यसे ययातिका खर्गा-रोहणमें अङ्गीकार ४२ ययातिका उद्घार, ४३ यदुवंश-कीर्त्तन, ४४ कार्त्तवीर्यादिकी कथा, ४५ वृष्णिवंशका कथा-रम्म, ४६ वृष्णिवंशकी वर्णन, ४७ अधुरशाप ४८ तुर्वेखु-प्रसृति वंशवर्णन, ४६ पुरुवं शवर्णन, ५० पौरवं शवर्णन, ५१ अग्निवं शवर्णन ५२ योगमाहात्म्य, ५३ पुराणानुक्रम-कथन, ५४ दानधर्मेमें नक्षत्रपुरुवन्नत, ५५ आदित्यृशयनवत, ५६ कृष्णाष्टमीवत, ५७ रोहिणोचन्द्रशयनवत, ५८ तड़ाग-विधि, ५६ वृक्षोद्भवविधि, ६० सौमाग्यगयनवत, ६१ अगस्त्यकी उत्पत्ति और पूजाविधिकधन, ६२ अनन्त-तुर्तायावत, ६३ रसकल्पाणिनीवत, ६४ आर्द्रानन्द्करी तृतीयाव्रत, ६५ अक्षयतृतीयाव्रत, ६६ सारस्वतव्रत, ६७ चन्द्रसूर्यप्रहणस्नानविधि, ६८ सप्तमीव्रत, ६६ मैमीहादशी-व्रत, ७० अनङ्गद्धानव्रत, ७१ अशून्यणयनवृत, ७२ अङ्गरकः व्रत, ७३ गुरु और शुक्रपूजाविधि, ७४ कल्याणससमी-व्रत, ७५ विशोकसप्तमीव्रत, . ७६ फ उसप्तमीव्रत, ७७ शर्क रावत, ७८ कमल और सप्तमोवत, ७६ मन्दर-सप्तमीवत, ८० शुभसप्तमीवत, ८१ विशोकद्वादशीवत, ८२ विशोकहादशीवतमें गुड्धेनुविधान, ८३ दान-माहात्म्य, ८४ लवणाचलकोत्तंन, ८५ गुड़पवतकीर्त्तन, ८६ सुवर्णाचलकीर्तंन, ८७ तिलाचलकीर्तन, ८८ कार्पास-शैलकीर्त्तन, ८६ घृताचलकीर्त्तन, ६० रहाचलकीर्त्तन, ६१

रोव्याचलकोर्त्तन, ६२ पर्वत प्रदानमाहातम्य, ६३ नवप्रहका होम और शान्तिविधान, ६४ ग्रहउपाख्यान, ६५ शिवचतु-र्दशीवत, ६६ सर्वफलत्यागमाहात्म्य, ६७ आदित्यवारकल्प ६८ संक्रान्ति उद्यापनविधि, ६६ विष्णुव्रत, १०० विभूति-द्वाद्शीव्रत, १०१ षष्टीव्रतमाहात्म्य, १०२ स्नानफल और विधिकथन, १०३ प्रयागमाहात्म्यकथन, १०४ प्रयागनिरूपण प्रयागस्प्ररणादि फलकथन, १०५ प्रयागमरणादि फलकथन, १०६ प्रयागमें कमें मेदसे फल भेदकथन, १०७ प्रयागमाहा-त्म्यमें वितिश्व धर्मकथन, १०८ प्रयागमें अनशनादि फल-कथन, १०६ प्रयागका तोर्थराजत्वकथन, ११० प्रयागर्मे सवतीय का अधिष्ठान कथन, १११ प्रयागमाहात्म्यश्रवण-का फल, ११२ वासुदेवकर्िक प्रयागकी प्रशंसा, ११३ द्वोपादिव^{र्ण}न, ११४ भारत निषक्तिसंस्थान-निर्देश, ११५ पुरूरवाके पूर्व जन्म विवरणमें तपोवनगमनकथन, ११६ ऐरावतीवर्णन, ११७ हिमालयवर्णन, ११८ आश्रमवर्णन, ११६ आयतनवर्णन अतिप्रतिष्ठित वासुदेव-मूर्त्तिकथन, १२० पुरूरवाका तपश्चर्याकथन, १२१ जम्बूद्धोपवर्णन, १२२ शाकद्वीपादि वर्णन, १२३ पष्ट सप्तमद्वीपवर्णना, १२४ बगील-कथनमें सूर्य और चन्द्रमण्डलविस्तारादि कथन, १२५ ध्रुवकार्य सौर्यं चन्द्रमसचारादि कथन, १२६ सूर्यं-का गतिकथन, १२७ बुधभीमादिका रथविवरण और भ्रुवप्रशंसा, १२८ सूर्य मण्डलग्रहस्थान और प्रहसन्नि-वैशादि कथन, १२६ त्रिपुरका उपाख्यान और त्रिपुरकी ज्त्पत्ति, १३० तिपुरदुर्ग प्राकारादि विभागकथन, १३१ तिपुरप्रावल्य, मयदुःस्वप्नविवरण, १३२ देवगणऋत शिव-का स्तव, १३३ अद्भ त रथनिर्माण, १३४ नारदका लिपुरमें गमन, १३५ देवासुरयुद्ध, १३६ प्रमथगणकर्तृक लिपुर-वासी दानवगणका मद्ंन, १३७ तिपुराक्रमण, १३८ तारकाक्षवघ, १३६ दानवमयसंवाद, रात्रिसमागम, १४० **बिपुरदाह, १४१ ऐलसोमसमागम, श्राद्ध**मुक् पितृगण-कीर्त्त , १४२ मन्बन्तरानुकरूप, १४३ यद्यप्रवर्त्त न, ऋषिदेवगणसंवादमें वासुदेवका पक्षपात, उसके प्रति ऋषिगणका अभिशाप, १४४ द्वापर-किल्युगकीत्तंन, १४५ युगभेदसे आयुरादिकथन, धर्म कीर्त्तन, १४६ संक्षेप-में तारकवधकथन,,१४७ तारककी उत्पत्ति, १४८ तारक-वरलाम, १४६ देवदानवसमरोद्योग, १५० महासंग्राममें

कालनेमिकी पराजय, १५१ ग्रसनदैत्यवघ, १५२ मधनादि-संग्राम, १५३ तारकजयलाभ, १५४ देवतार्थोकी मन्द्रणा, पाव तीकी तपस्या, मदनमस्म, शिवका विवाह, १५५ गौरीत्वलाभके लिये कालिका पाव तीका तपस्याके लिये गमन, १५६ आड़िवध, १५७ वीरकशाप, १५२ कार्त्तिकेय-को उत्पत्ति, १५६ देवताओंका रणोद्योग, १६० तारक-वघ, १६१ हिरण्यकश्चिषुवधप्रसङ्गमें नरसिंह-प्रादुर्माव, १६२ नरसिंहके प्रति दैतोंका विक्रमप्रकोश, १६३ हिरण्य-कशिषु-चघ, १६४ पाद्मकल्पकथन-प्रसङ्गः. १६५ युगपरि-माणादि की तंन, १६६ संहारकर्म, १६७ मार्क ण्डेय और विष्णुका संवाद, १६८ नाभिपञ्चउत्पादन, १६६ ब्रह्मसृष्टि, १७० मधुकैरभवध, १७१ ब्राह्मणोंकी सृष्टि, १७२ विवि-घात्मकत्वकथन, १७३ दानवींके युद्धका उद्योग, १७४ देवताओंका समरायोजन, १७५ पर्व विवरण, १७६ देव-दानवयुद्ध, १७७ कालनेमिका पराक्रम, १७८ कालनेमि-वध, १७६ अन्धकवध, १८० काशीमाहातम्यमें द्राडपाणि-चरप्रदान, १८१ हरपाव तोके संवादमें अविमुक्तमाहातम्य-कथन, १८२ कार्त्तिकेयकर्षक अविमुक्तमाहात्म्यकथन, १८३ अविमुक्तक्षेतविषयमें पाव^९तीके प्रश्नानुसार महादेव-का उत्तरदान, १८४ अविमुक्तक्षेत्रमें मरणका फलकथन, १८५ वाराणसीके प्रति वेदव्यासका शापप्रदानका उद्योग, १८६ नर्म दाका माहात्म्य और वहां स्नानका फलकथन, १८७ व णतिपुर-मद् नका उद्योग, १८८ तिपुरमद् न, १८६ कावेरीसङ्गममाहात्म्यकथन, १६० मन्त्रेश्वरादि तीर्थं फलकथन, १६१ शूलमेदतीर्थादि कथन, १६२ भाग[°]-वेशादि कथा, १६३ अनरकादि तीर्थप्रस्ताव, १६४ अंकुशे-श्वरदर्श नफलादि कथन, १६५ भृगुवंशप्रवरकीस न, १६६ अङ्गिरोवंशकीर्त्त न, १६७ अतिवंशविवरण, १६८ विश्वा-मित्रवंशविवरण, १६६ कश्यपवंशवण न, २०० वशिष्ट-वंशानुकीर्त्तेन, २०१ पराशरवंशानुकीर्त्तन, २०२ अगस्त्य-वंशकीर्त्त न, २०३ धर्म वंशानुकीर्त्त न, २०४ पितृगाथा-कीर्त्त न, २०५ धेनुदान, २०६ कृष्णाजिनप्रदान, २०७ वृपलक्षणकोत्तर्न, २०८ सावित्रो-उपाख्यानमें सावित्री-का वनप्रवेश, २०६ वनदर्श[°]न, २१० यम और साविती-संवाद, २११ यमके समीप सावितीका द्वितीय वरलाभ, २१२ सावित्रीका तृतीय वरलाभ, २१३ सत्यवानका

जीवनलाम, २१४ सावितीकी उपाख्यानसमाप्ति, २१५ राजनीतिप्रमाण, सहायसम्पत्तिकथन, २१६ अनुजीवि-वर्त्त न, २१७ सञ्जयपूकरण, २१८ अगदाध्याय, २१६ राज-रह्मा, २२० राजाओंकी त्रिविध हिताहित कथा, २२१ दैवपुरुषकारवण न, २२२ सामनिर्देश, २२३ भेदकथन, २२४ दानपृशंसा, २२५ दराडपृशंसा, २२६ राजाके लोक-पालसाम्यका कारणनिर्देश, २२७ दराडपूणयन, २२८ अद्भुतशान्ति, २२६ उपसर्गप्रकारादिकथन, २३० अङ्गुत-शान्तिविषयमें देवप्रतिमा-वैलक्षण्यकीर्त्तन, २३१ अग्नि-वैकृत्य, २३२ वृक्षोत्पातकथन, २३३ वृष्टिवैकृत्य, २३४ जला शयविकृति, २३५ स्त्रीप्रसववैकृत्य, २२६ उपस्करवैकृत्य, २३७ मृगपक्षिवैकृत्य, २३८ उत्पातप्रशमन, २३६ प्रहयन्नविधान, २४० यात्राकालविधान, २४१ शुभाशुमनिमित्त भूताङ्ग-स्पन्दनकथन, २४२ स्त्रप्नाध्याय, २४३ मङ्गळाघ्याय, २४४ वामनप्रादुर्भाव, २४५ वामनोत्पत्ति, २४६ वलिच्छलना, २४७ वराहावतारकथारम्म, २४८ पृथिवीकृत विष्णुका स्तव, २४६ देवताओंके अमरत्वकथनप्रस्तावमें अमृत-मन्थनकथारम्म, २५० कालकूटकी उत्पत्ति, २५१ अमृत-मन्थन, २५२ वास्तुभूतोद्भव, २५३ एकाशीतिपद वास्तु-निर्णय, २५४ गृहमाननिर्णय, २५५ वेघपरिवर्जन, २५६ शल्यादिकथन और दिग्निणैय, २५७ दार्बाहरणकथा, वास्तुविद्याकथनसमाप्ति, २५८ देवार्चनानुकीर्त्तनमें प्रमाण कथन्, २५६ प्रतिमालक्षण, २६० अद्व[°]नारीश्वरादि प्रतिमा-स्वरूपकथन, २६१ प्रभाकरादि प्रतिमाकथन, २६२ पीठिकाकथन, २६३ लिङ्गंलक्षणकथन, २६४ कुएडादि-प्रमाणकथन, २६५, अधिवासनविधि, २६६ प्रतिप्राप्रयोग, २६७ हेयतास्नानविधि, २६८ वास्तुदोषापशमन, २६६ प्रासादनिर्देश, २७० मग्डपलक्षणादि कथन, २७१ मगधर्मे इक्ष्वाकुवंशीय भविष्यत् राजाओंका कीर्त्तन, २७२ पुल-कादि वंशीयका राजत्वकथन, २७३ अन्त्र, यवन और म्लेच्छगणका राजत्वकीर्त्तन, युगक्षयकथन, २७४ तुला-पुरुपदान, २९५ हिरणयगर्भप्रदानविधि, ब्रह्माण्डदान-विधि, २७६ कल्पपाद्पप्रदानविधि, २७३ गोसहस्रदान-विधि, २७८ हिरण्यकामधेनुविधि, २७६ हिरण्याश्वदान-विधि, २८०-२८१ हिरण्याश्वकी प्रदानविधि, २८१ हिरण्य-हस्तिरथप्रदानविधि, २८३ पञ्चलाङ्गलकप्रदानविधि, २८४

हेमपृथिवीदानविधि, २८५ विश्वचकप्रदानविधि, २८६ हेमकल्पलतादानविधि, २८७ सप्तसागरप्रदानविधि, २८८ रत्नधेनुप्रदानविधि, २८६ महाभूतघटदानविधि, २६० कल्पकीर्त्तन, २६१ मत्स्यपुराणोक्त तीथं और फलभ्रुति। नारदपुराणमें मतस्यकी अनुक्रमणिका इस प्रकार देखी जाती है—

"अध मारस्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम । यतोकं सत्यकल्पानां वत्तं संक्षित्य भूतले॥ व्यासेन वेद्विदुषा नर्सिहोपवणंनश् । उपक्रम्य तदुहिष्टं चतुर्दशसहस्रकम् ॥ मनुमत्स्यसुसंवादो ब्रह्माएडवर्णनन्ततः । ब्रह्मदेवासुरीत्पत्तिमांक्तोत्पत्तिरेव च॥ मदनद्वादशीत्तद्वत्लोकपालाभिपूजनम् । मन्वन्तरसमुद्देशो वैण्यराज्याभिवर्णनम् ॥ सूर्यवैवस्ततोत्पत्तिवु धसंगमनं तथा । पि गृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च ॥ पितृतीर्थप्रचारश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च। कीर्त्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा॥ कार्त्तवीर्यस्य चरितं सृष्टं वंशानुकीर्त्तनम्। भृगुशापस्तथा विष्णीर्दश्धा जन्म च स्रिती ॥ कोर्त्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनः पराः । कियायोगस्ततः पश्चात् पुरागं परिकोर्तितम्॥ व्रतं नक्षत्वपुरुपं मार्त्तग्रहशयनं तथा। कृषणायमीवतं तहहोहिणीचन्द्रसंदितम् ॥ तड़ागविधिमाहातम्यं पादपोत्सर्ग पव च। सीमा बशयनं तद्दंदगस्त्यवतमेथ च ॥ तथानन्ततृतीयाया रसकल्याणिनीवतम्। तथैवानन्दकार्याश्च व्रतं सारस्वतं पुनः॥ उपरागाभिपेकश्व सप्तमीश्यनं तथा । भीमाख्या द्वादशी तद्ददनंगशयनं तथा॥ अशून्यशयनं तहत् तथेवांगारकवतम् । सममीसप्तकं तद्वदिशोकद्वादशीवतम् ॥ मेरुप्रदानं दश्धा प्रहशान्तिस्तर्थेव च । प्रहस्वरूप कथनं तथा शिवचतुद[°]शी ॥ तथा सर्वफलत्यागः सूर्यनारवतं तथा। संकान्तिकापनं तद्वद्विभृतिद्वादशीवतम् ॥ षष्टिवतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः। प्रयागस्य तु माहात्त्र्यं द्वीपळींकानुवर्णनम्॥ तथोन्तरीक्षचारश्त्र भ्रुवमाहातम्यमेव च । भवनानि सुरेन्द्राणां तिषुरोद्योतनं तथा॥ पितृप्रवरमाहात्म्यं मन्वन्तरिविनिर्णयः। चतुर्यु गस्य सम्मूतिर्यु गधम निरूपणम् ॥

व्रजांगस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च। तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुकीर्त्तनम्॥ पावतीसम्भवस्तद्रत् तथा शिवतपोवनम् । अनंगदेहदाहश्च रतिशोकस्तथैव च। गौरीतपोचनं तद्वयत् शिवेनाथ प्रसादनं । पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाह मंगलम् ॥ कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा। नारकस्य वधो बोरो नरसिहोयवर्णनम्॥ पश्चोद्भवविसगस्तु तथैवान्धकघातन् । वाराणस्यास्तु माहातस्यं नर्भदायास्तर्थेत्र च ॥ प्रवरानुक्रमस्तद्वत् पितृगाथानुकीर्त्तनम् । तथोमयसुखोदानं दानं कृष्णाजिनस्य च॥ ततः सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तयैव च । विविधोत्पातकथनं प्रह्शान्तिस्तथैव च ॥ यातानिमित्तकथनं स्वप्रमंगलकोत्तनम् । वामनस्य तु माहातम्यं वाराहस्य ततः परम्॥ समुद्रमथनं तद्वत्कालक्त्याभिशातनम्। देवासुरविमद्रश्च वास्तुविद्यास्तथैव च ॥ प्रतिमालक्षणं तद्वद्दे बतास्थायनं तथा। प्रसाद्लक्षणं तह्न्यण्डपानां च लक्ष्णप्र॥ भवि यराज्ञामुद्देशो महादानानुकोर्त्तनम्। कश्पानुकी तमं तद्वत् पुराणोऽस्मिन् प्रकीर्तितम्॥"

(हे द्विजसत्तम! अव मत्स्यपुराण कहता हू, ध्यान दे कर सुनो । इस पुराणमें वेद्वित् व्यासमुनिने नरसिंह-वर्णनोपक्रमसे चौदह हजार श्लोक द्वारा संक्षेपमें सत्य-करपके सभी वृत्तान्त कीत्तन किये हैं। इसमें पहले मनु भीर मत्स्यका संवाद, पोछे ब्रह्माग्डवर्णन, ब्रह्मा और दैवासुरकी उत्पत्ति, मारुतंकी उत्पत्ति, मदनद्वादशी, लोक-पालपूजा, मन्वन्तरनिर्देश, वैष्यराज्यदर्शन, सूर्यवैवस्ततो-त्पत्ति, युधसङ्गम, पितृचंशानुकथन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ-प्रचार, सोमोद्भव, सोमवंशकीर्त्तन, ययातिचरित और वंशानुकीर्त्तन, भृगुशाप, विष्णुका दशावतार, पुरुवंश-कीर्त्तन, हुनाशनवंश, क्रियायोग, पुराणकीर्त्तन, नक्षत-पुरुषवत, मार्कएडशयन, कृष्णाष्टमी-वत, रोहिणोचन्द्र-वत, तड़ागविधिमाहातम्य, पादपोत्सर्ग, सौभाग्यशयन, भगस्त्यवत, अनन्त रृतीयावत, रसकल्याणीवत, आनन्द-कारीवत, सारखतवत, उपरागाभिगेक, सप्तमीशयन, भीमाद्वादशोवत, अनङ्गशयनवत, अशून्यशयनवत, अङ्गा-रकवत, सप्तमीसप्तकवत, विशोकद्वादशीवत, मेरुप्रदान,

प्रह्मान्ति, प्रह्स्वरूपकथन, शिवचतुदशी, सूर्यवारवत, संक्रान्तिस्नान, विभूतिद्वादशीवत, पष्टीवतमाहात्म्य, स्नान-विधिक्रम, प्रयागमाहात्स्य, द्वीपलोकानुवर्णन, अन्तरीक्ष-चार, घ्रु वमाहात्म्य, सुरेन्द्रोंका भवन, तिपुरप्रभाव, पितृ-प्रवरमाहातम्य, मन्वन्तरनिर्णय, चतुर्वगंकी उत्पत्ति, तारकोत्पत्ति, तारकासुरमाहातम्य, ब्रह्मदेवानुकीत्तन, शिवतपोवन, अनङ्गदाहन, पाव^६तीस्तव, कुमारोत्पत्ति, विवाहमं गल, ऋषिसं वाइ, नरसिंहवणेन, कुमारविजय, तारकवध, विसर्ग, वाराणसीमाहातम्य, अन्घकवघ, पितृकथानुकीर्त्तंन, प्रवरानुकम. माहात्स्य, मुखीदान, कृष्णाजिनदान, सावित्री-उपाख्यान, राजधम, विविध उत्पातकथन, प्रह्शान्ति, यातानिमित्तकथन, खप्नमङ्गळकोर्तन, वामन और वराहमाहातम्य, समुद्र-कालकूराभिशातन, देवासुरसङ्घर्गण, वास्तु-मन्थन, प्तिमालक्षण, देवतास्थापन, पुासादलक्षण, मएडपळक्षण, मविष्य-राजाओंका कथन, महादानकीत्तंत्र । यही सव विषय इस पुराणमें की तित हुए हैं।

मत्स्यपुराणमें भी लिखा है—

"श्रुतीनां यस कल्पादी पृतृत्यर्थं जनाईनं ।

मत्स्यक्षपेण मनवे नर्रसिहस्य वणनम् ॥

अधिकृत्याववीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनिवताः ।

तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राण्यथ विश्वतिः ॥"

जिस पुराणमें कल्पके आदिमें जनाई नने मत्स्यक्रपधारण कर श्रुत्यर्थं और नर्रसिहवर्णनप्रसङ्गम् समकल्पका विषय वर्णन किया है, वही वीस हजार श्लोकयुक्त
मत्स्यपुराण है।

नारद और मात्स्यमें जो लक्षण निर्देष्ट हुए हैं, प्रचलित मत्स्यपुराणमें उनका अभाव नहीं है। परन्तु प्रचलित मत्स्यपुराणमें उनका अभाव नहीं है। परन्तु प्रचलित मत्स्यकी श्लोकसंख्या १४११५ हजार माल हैं और आदिमत्स्यको २००००। इस हिसाबसे आदिमत्स्यको अनेक विषय छोड़ दिये गये हैं, ऐसा मालूम होता है। उधर आदि-मत्स्यको अनेक श्लोक परित्यक्त होने पर भी इघर भविष्यराजवंशप्रसङ्गमूलक अनेक श्लोक पृक्षिप्त हुए हैं। पहले लिखा जा चुका है, कि इसी मत्स्यके मताजुसार अधिसीमकृष्णके समय यह पुराण सङ्गलित हुआ

था। भविष्यराजवंशमें ६डीं शताब्दोंके राजाओंको कथा रहतेके कारण वह ६डीं शताब्दोंके पर उत्तींकालका रचा हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। सार्त्तरघुन दनके वृषो-त्सर्गत्तत्वमें "स्वल्पमतस्यपुराण" से श्लोक उज्जन हुए हैं।

१७ गहड्पुरासा।

पूत्रखण्डमें -१ स्तनैभियोयसंवादमें स्तकी गरुड़-पुराणकथवमतिज्ञा, २ गहड्युरागोत्पत्तिकथा, ३ गहड्ड-पुराग-त्र गैनके निमित्त स्नकर्नुक गीनकका अवधान-सम्पाइन, ४ रु इ ओर विज्युसंबादमें सृष्टिकथन, ५ प्रजापतिसर्ग, ६ दक्षको प्राचेतसरूपमें उत्पत्ति, कश्यप-कृत सृष्टि, ७ सूर्यादिका पूजाकयन, ८ विज्लुपूजाकथन, ६ दीक्षाविधि, १० लक्ष्मीयूजा, ११ न मध्यूहार्चना, १२: पूजाकपकथन, १३ वि णुपञ्जरकथन, १४ संक्षेपमें योग-उपदेश, १५ विष्णुका सहस्रनामकथन, १६ विष्णुका ध्यानकथन और सूर्यका पूजाकथन, १७ दूसरे प्रकारसे स्यंकी पूजा, १८ मृत्यु अयकी पूजा, १६ गाह इविद्या, २० शिव-कथित सर्वमन्त्रं, २१ पञ्चवनत्रपूजा, २२ शिवपूजा-कथन, २३ दूसरे प्रकारसे शिवपूजाकथन, २४ गण-पत्यादिको पूजा, २५ पादुकापूजा, २६ करन्यासादि कथन, २७ विपहरण, गोपालपूजाकथन, २६ श्रोधरादि पूजा-का मन्त्रकथन, ३० सविस्तार श्रोधरप्जाकथन, ३१ दूसरे प्रकारसे विष्णुपूजाकथन, ३२ पञ्चतत्वाच्चेन, ३३ सुदर्शन-पूजादि, ३४ हयप्रीवपूजा, ३५ हयप्रीवपूजाविधि, ३६ गायुत्रोन्यासादि कथनं, ३७ गायुत्रोमाहात्म्य, ३८ दुर्गादि-ुपूजुनविधि, ३६ अन्य प्रकारसे सूर्यपूजाकथन, ४० महेश्वर-पूजा, ४१ नानाविद्याकथन, ४२ शिव-पविद्वारोहण, ४४ , मूर्त्यमूर्तिध्यान, ४५ शालग्रामलक्षणकथन, ४६ वास्तु-ुनि,र्णय, ४७ प्रासादलक्षण, ४८ देवप्रतिष्ठाकथन, ४६ योग-धर्मादि कथन, ५० आहिकनिणय, ५१ दानधर्मकथन, ५२ प्रायश्चित्तविधि, ५३ अप्रनिधिकथन, ५४ पूर्यवतवंश वण नमें सप्तद्वीपादि कथन, ५५ संस्थापनकथन, भारत-वर्ष विवरण, ५६ प्लक्षद्वीपके राजयुर्वीका नामकीत्तंन, सूर्यादि पुमाण ५७ सप्तपाताल-नरककोर्तन, 46 और संस्थानकीर्त्तन, ५६ ज्योतिःसारकीत्तनारम्म, नक्षत्राधिप-योगिन्यादिकीर्त्तन, ६० दशादि विचार, ६१

चन्द्रसूर्यादि कथन, ६२ छग्नमानकथन, चरस्थिरादि मेदसे कार्यविशेषका कर्त्तव्यतानिर्णय, ६३ संक्षेपमें पुरुपका शुभाशुभस्चक लक्षणकथन, ६४ संक्षेपमें नारियोंका शुभा-शुभस्चक छक्षणकथन, ६५ सामुद्रिक छक्षणकीर्त्तन, ६६ शालश्रामशिलामेद्कथन, तीधंकथन, प्रभवादि पष्टिवपं-कोर्त्तन, ६७ पत्रनविजयादि, ६८ रत्नपरीक्षामें रत्नोत्पत्ति-कथन और रत्नपरीक्षाकथन, ६६ मुक्ताफलपरीक्षा, ७० पद्मरागपरोक्षा, ७१ मरकतपरोक्षा, ७२ इन्द्रनीटपरोक्षा, ७३ वैदुर्वपरोखा, ७४ पु यराग-परोझा, ७५ क र्रेतेनपरोझा, ७६ भो मरत्नपरोक्षा, ७९ पुलकपरोक्षा ७८ रुधिराख्यरत्न-परोक्षा, ७६ स्कटिकपरोक्षा, ८० विद्वमपरोक्षा, ८१ संक्षेप-में वहुतीर्थका माहात्म्यकथन, ८२ गयाका माहात्म्य और गयातीर्थं की उत्पत्तिकथा, ८३ गयाके म्थानमेद और कार्य मेरसे फलमेर्दकथन, ८४ फल्गुनदीमें स्नान और रुद्रपद्में पिएडदानका फलकोर्त्तन तथा विशाल नृपतिका इतिहास, ८५ प्रे तशिलादिमें पिण्डदानका फल, ८६ प्रेत-शिलामें श्राद्धकर्त्ताका फलकथन, ८७ चतुर्दश मनु, मनु-पुत्र, तदन्तरीय सप्तर्षि और देवताओंका कथन, ८८ मार्कण्डेय-क्रौण्टुकिसंवाद्में रुच्युपाख्यान, ८६ रुचिहृत पितृस्तव, पितृगणसे उचिको वरप्राप्ति, ६० वचिपरिणय और रौच्यमनुकां उत्पत्तिवर्णन, ६१ हरिध्यान, ६२ अन्य प्रकारसे हरिका ध्यानवर्णन, ६३ याज्ञवल्क्य-कथित धर्मोपदेशादि कथन, ६४ उपनयनकोर्त्तन, ६५ गृहधर्मनिर्णय, ६६ सङ्कोर्णजाति, पञ्चमहायज्ञ, सन्ध्या और उपासनादिका कीर्त्तन, गृिधर्म और वर्णधर्मादिका कथन, ६७ द्रव्यशुद्धि कथन, ६८ दानधमं, ६६ श्राद्धविधि, १०० विनायकशान्ति, १०१ प्रहशान्ति, १०२ वानप्रस्थाश्रमविवरण, १०३ यति-धर्म, १०४ पापचिह्नकथन, १०५ प्रायश्चित्तविधि, १०६ अशौचादि निर्णय, १०७ पाराशरघर्मशास्त्र, १०८ नीतिसार, १०६ नोतिसारमें घनरक्षणादिका उपदेश, ११० नीतिसार-में भ्रुवपरित्यागनिपेधादिका वर्णन, १११ नीतिसारमें राजलक्षण, ११२ नीतिसारमें भृत्यलक्षणनिर्णय, ११३ नोतिसारमें ग्रुणवित्रयोगादिका कीर्तन, ११४ नोतिसारमें मिलामिलविभाग, ११५ नीतिसारमें कुभार्यादि परित्याग-का उपदेश, ११६ व्रतकथनधारम्म, १न७ अनङ्गत्रयोदशी-वत, ११८ अलएडद्वादशीवत, ११६ अगस्त्यार्घ्यं वत,

१२७ रम्भातृतीयावत, १२१ चातुर्मास्यवृत, १२२ मास-उपवासत्रत, १२३ भीन्मपञ्चकादि वतविधि, १२४ शिव-रातिव्रत, १२५ एकादशीमाहात्त्र्य. १२६ विष्णुपूजन, १२७ भीमैकादशीकोत्तंन, १२८ वतनियम, १२६ प्रति-पदादि व्रतकथन, १३० पष्टी सप्तमी व्रतकथन, रोहिण्याप्टमीवत, १३२ बुधाएमोवत, १३५ महानवमोत्रत. अशोकाप्रमीवत, १३४ महानवमीवतप्रसङ्गमें कौशिकमन्त्रकथन, १३६ वोर-नवसीवत, १३७ दननवबसीवत, १३८ दिग्द्शमीवत, १३६ एकादशोवत, १४० श्रवणद्वादशोवत, १४१ मदन-त्रयोदशीवत, १४२ सूर्य व शक्थन, १४४ चन्द्रव शकथन-प्रसङ्गमें पुरुव शकीर्त्तन, १४५ जनमेजयव शकथन, १४६ बिण्युको अवतारकथा, पतित्रताका माहात्म्य, १४७ रामायणकथन, १४८ हरिचंशकथन, १४६ भारतकथन, १५० आयुर्वे दक्कथनमें सर्व रोगनिदान, १५१ ज्वरनिदान, १५२ रक्तपित्तनिदान, १५३ कामनिदान, १५४ श्वासनिदान १५५ हिकारोगनिदान, १५६ यक्ष्मनिदान, १५७ अरोचकनिदान, १५८ हद्रोगादि-निदान, १५६ मदात्ययादिनिदान, १६० अर्शोनिदान, १६१ अतीसारनिदान, १६२ मूलाघातनिदान, १६३ प्रमेहनिदान, १६४ विद्रिधिनिदान, १६५ उदरनिदान, १६६ पाण्डुशोधनिदान, १६७ क्रुप्ररोगनिदान, १६८-१६६ क्रिमिनिदान, १७० वातव्याधिनिदान, १७१ वातरक्तनिदान, १७२ सूलस्थान, १७३ अनुपानादिकथन, १७४ ज्वरादि-चिकित्साकथन, १७५ नाड़ीव्रणादि चिकित्साकथन, १७६ स्रोरोगादि चिकित्साकथन, १७७ द्रव्यनिर्णेय, १७८ घृत-तैलादि कथन, १७६ नानायोगादि कथन, १८० नाना रोग-का औषधकथन, १८१ नेत्रयोगादिका औषधकथन, १८२ चशीकरण, १८३ दन्तश्वेतीकरण, १८४ स्त्रोवशीकरण और मशकवारणादि कथन, १८५ नेत्रशूलादिका औपघ-कथन, १८६ रतिशक्ति बढ़ानेका उपायकथन, १८७ प्रहणादिका औषधकथन १८८ कटिशूलादिका औषध-कथन, १८६ गणेशपूजा, १६० प्रमेहादिका औषघकधन, १६१ मेधावृद्धिका औषघकथन, १६२ आघानस्रुत-रक्त और १६३ दन्तव्यथा-प्रशमनका औपघकथन, १६४ गएडमालादिका औषधकथन, १६५ सपंका भौपधकधन १६६ योनिव्यधादिका 'औषधकथन,

१६७ पशुचिकित्सा, १६८ पाण्डुरोगादिका औषघ-कथन, १६६ बुद्धि निर्मेल करनेका अधिषकथन, २०० विष्णुकवचकथन, २०१ विष्णुविद्या २०२ विष्णु-धर्मास्य विद्या. २०३ गारुड्विद्या. २०४ तिपुराकल्प, २०५ प्रश्नगणना. २०६ चायुजय, २०७ अध्विचकित्सा, २०८ औषधका नाम निर्देश, २०६ व्याकरणनियम, २१० उशहरणसमृह, २११ छन्द्रोशास्त्र भारम्म, २१२ मातावृत्त-कथन, २१३ समवृत्तकथन, २१४ अर्ड समवृत्तकथन. २१५ विषमवृत्तकथन, २१६ प्रस्तरादि निर्देश, २१७ धर्म उपदेश, २१८ स्नानविधि, २१६ तर्पणविधि, २२० त्रश्वदेवविधि, २२१ सन्ध्याविधि, २२२ श्राद्धिक्षि, २२३ नित्यश्रादः विधि, २२४ सपिएडीकरण, २२५ धर्मसारकथन, २२६ शूद्रका उच्छिप्र भोजन करनेके कारण पायश्चित्तकंथन. २२७ युगधर्मकथन, २२८ नैमित्तिक प्रज्यकथन, २२६ संसारकथन पुस्तावमें पापपरिणामकथन, २३० अप्टांग-योगकथन, २३१ विष्णुभक्तिकथन, २३२ नारायण-नम-स्कार, २३३ नारायणाराधना, २३४ नारायणध्यान, २३५ विष्णुका माहातम्य, २३६ नृसिहस्तव, २३७ ज्ञानामृत-कथन, २३८ मार्कण्डेयकथित नारायणका स्तव, २३६ ब्रह्म-कथित विष्णुका स्तव, २४० ब्रह्मज्ञानकथन, २४१ आत्म-ज्ञानकथन, २४२ गीतासार, २४३ अष्टाङ्गयोगका पुयोजन-कथन।

वसरखण्डमें (पेतक्त में)—१ वैकुएठसे नारायणके पृति गरुड़का विविध पृथ्न, २ गरुड़के पृति भगवान्का और्ड देहिक विधिकथन, ३ नरकका रूपवर्णन, ४ गर्भा-वस्थाकीर्त्तन, ५ दशदानादि कथन और पर्ण-नर-दाह-विधि, ६ अशौच कालिक्सपण, ७ वृपोत्सर्गकथन, ८ पञ्चपृतका उपाख्यान, ६ और्ड देहिक कर्माधिकारि-कीर्त्तन, १० वम्रुवाहन और पृतसंवाद, नाना रूपमें श्राइको तृप्तिजनकविधि, १२ मनुष्यजनमलाभका कारणादि कथन, १३ मनुष्यतत्त्वकथा, १४ पृतत्वनाशक कर्मकथन, १५ आतुर और म्रियमाणोंका दानवर्णन, १६ यमलोकका पथिनिर्णय, १७ यमपुर जानेकी अवस्था, १८ यममार्ग से निष्कृतिका उपाय, १६ वित्रगुमपुरमें जानेकी कथा, २० पृतगणका वासस्थाननिर्णय, २१ पृतलक्षण और पृतत्वमुक्तिका उपाय, २२ दूसरे पृकारसे पञ्चप्रे तका

उपाच्यान, २३ प्रेतगणका रूपनिरूपण, २४ मनुव्यगणका आयुनिर्रूपण, वालकका पिएडमानादि कथन, २५ शैश-चादि विभेद, आकीमारींका विशेष कत्तंत्र्य उपदेश, २६ सपिएडोकरणविधि, २७ वभ्रुवाहन और प्रेतसंबाद, २८ विशेष ज्ञानके लिये नारायणके पृति गरुड़का पृथ्न, २६ अद्धि देहिककृत्यकथन आरम्म, ३० दानविधि, ३१ दान-माहातम्य, ३२ जीवको उत्पत्तिकथा, ३३ यमलोक विस्तारादिका कथन, ३४ युगभेद्से धर्म-कार्यं व्यवस्था, दाहकोंके सगोतके कर्त्तव्यमें उपदेश, अशौचादि निरूपण ३५ सपिएडीकरणकी विशेषविधि और अविधि कथन, ३६ अनाहारसे मरणका फलकथन, ३७ उद्कुम्भदानादि कथन, ३८ अपमृतगणकी गति और उनके उद्धारका उपाय, ३६ कात्तिक्यादिमें वृपोत्सर्गं विधान, ४० पूर्वकृतकर्मका फत्तुं-अनुवन्धित्वकथन, विशेष दान पुकारकथन, ४१ जलाग्नियन्धनद्रप्रादि गणका पुर्याश्चत्तकथन, ४२ आत्म-घातियोंका श्राद्धनिपेघ कथन, ४३ वार्षिक श्राद्धकथन, ४४ पापमेदसे चिह्नमेद जनमभेद आदि कथन, ४५ मृतके लिये, अनुताप, उनकी मुक्तिका उपाय और गरुड्युराणपाटका फंलकथनं।

अव देखना चाहिये, कि उक्त गरुड़पुराणको हम लोग आदि गरुड़ मान सकते है वा नहीं? अध्यापक विलसन साहव इस गरुड़को पुराणोंमें गिनती नहीं करते।

मत्स्यपुराणके मतसे—

"यदा च गारु के कर्षे विश्वाएडाहरु हो द्भवम् ।

अधिकत्याववोहि प्णुर्गारु तिहि ने चते ॥

तद्याद्श चैक च सहस्राणीह परुवते ।"

विष्णुने गारु इकल्पमें गरु वे उद्भवप्रसङ्गमें विश्वापद्यसे आरम्भ लेकर जिस पुराणका वर्णन किया है, उसका नाम गारु है। इसमें १८००० महोक हैं।

नारद्वुराणके मतसे—

"मरीचे शृणु वल्रस्य पुराणं गारुडं शुभम्।

गरुड़ायाववीत् पृष्ठो भगवान् गरुड़ासनः ॥

एकोनविशसाहव्रं तार्स्यंकल्पकथाचितम्।

पुराणोपक्रमी यत सगसंक्षेपतस्ततः ॥

सूर्यादिपूजनविधिदीक्षा विधिरतः परम्।

अशादिपूजा ततः पश्चाक्षवन्यूहार्चनं द्विज्ञा।

पूजाविधानंच तथा वैष्णवं पंजरं ततः। योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नामसाहस्रकीर्त्तनम् ॥ ध्रानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजामृत्युं जयार्चनम् । मालामन्द्राः शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम् ॥ गोपाळपूजा वैलोक्यमोहनश्रीधरार्चनम्। विज्यवर्चा पंचतत्त्वार्चा चकार्चा देवपूजनम् ॥ न्यासादिसन्ध्रोपास्तिश्च दुर्गार्चाथ सुरार्चनम्। पूजा माहेश्वरी चातः पवितारोहणार्चनम् ॥ म्तिधानं वास्तुमानं पासादानाश्च रुक्षणम्। पृतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक् पूजाविधानतः॥ योगीऽष्टांगो दानधर्मः पायश्चित्तं निधिक्रिया। द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्याव्यूहरूच ज्योतिपम् ॥ सामुद्रिकं खरशानं नवरत्वपरीक्षणम्। माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्भ्यमुत्तमम् ॥ ततो मन्वन्तराख्यान पृथक् पृथक् विभागशः। पिताख्यान वर्णंधर्मा द्रष्यशुद्धिसमर्पणम् ॥ थ्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रह्यज्ञस्तध्यश्रमाः। मननाख्या प्रेताशौचं नीतिसारी व्रतोक्तयः॥ सूर्येवंशः सोमवंशोऽवतारकथनं हरैः। रामायणं हरिवंशो भारताख्यानकं ततः॥ आयुर्वेदे निदानं प्राक् चिकित्साद्रव्यजा गुणाः। रोगघ्न' कवचं विष्णोर्गारुड़ ले पुरो मनुः॥ प्रश्नचूड़ामणिश्चान्ते ह्यायुर्वेदकीर्त्तनम्। औपधिनामकथनं तती व्याकरणोहनम्॥ छन्दःशास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः । तर्पणं वैश्यदेयं च सम्ध्यापार्वणकर्म च॥ नित्य श्राद्धं सपिएडाख्यं धर्मसारोऽघनिकृतिः। प्रतिसंक्रम उकोऽस्माद्युगधर्माः कृतेः फलम्॥ योगशास्त्रं विष्णुभक्तिनमस्कृतिफलं हरे।। माहातम्यं वेष्णवं चाथ नारसिहस्तवोत्तमम्॥ ज्ञानामृतं गुह्याएकं स्त्रोतं विष्णवर्चनाह्यम्। वेदान्तसांख्यसिद्धान्तं व्रह्मज्ञानं तथात्मकम्॥ गीतासारफलोत्कीत्तिः पूर्वखएडोह्यमीरितः। अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्यः पुरोदितः॥ यत्र तार्झेण संपृष्टो भगवानाह वाड्वः। धर्मप्रकटनं पूर्वयोनीनां गतिकारणम् ॥ दानाधिकं फलं चापि प्रोक्तमन्त्रौद्ध देहिकम्। यमलोकस्य मागस्यं वर्णनंच ततः परम्॥ षोड्शश्राद्धफलकं वृत्ताणाचात वर्णितम्। निन्हतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम्। प्रे तपीड़ाविनिद्रे शः प्रे तचिह्निरूपणम्। प्रेतानां चरितास्थानं कारणं प्रेततां प्रति॥ ग्रेतकृत्याविचारश्च सपिएडकरणोक्तयः।

प्रतत्वमीक्षणाख्यानं द्रानानि च विमुक्तये ॥ आवश्यकोत्तमं दानं प्रतसौख्यकरं हितम् । शारीरकविनिद्रंशो यमलोकस्य वर्णनम् ॥ प्रतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्तृ विनिर्णयः । मृत्योः पूर्विक्रयाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम् ॥"

(हे मरीचे ! सुनो, शुभ गारुड्युराण कहता हूं । गरुड़से पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्णने यह पुराण गरुड़से कहा था। यह उनीस हजार श्लोकोंमें पूर्ण और ताक्ष्यकल्पीय कथा समन्वित है।

(पूर्वेखएड) इसमें पहले सर्ग^६संक्षेपमें पुराणोपक्रम-का वर्णन है और पोछे सूर्यादि पूजाविधि, दीक्षाविधि, श्रीप्रसृतिपूजा, नवन्यूहादि अर्चना, पूजाविधान, वैणाव-पञ्जर, योगार्थ्याय, विज्युका सहस्र-नामकोर्त्तन, विज्यु-ध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युञ्जयपूजा, मालामन्त्र, शिवार्चन, गणपूजां, गोपालपूजां, श्रीधराचेन, विन्णुपूजा, पञ्चतस्वा-र्चन, चकार्चन, देवपूजा, न्यासादि, सन्ध्रोपासन, दुर्गा-र्चन, सुराचन, माहेश्वरीपूजा, पवितारीहणार्चन, भूर्ति-ध्यान, वास्तुमान, प्रासादंरुक्षण, सवदेवप्रतिष्टा, अष्टाङ्ग-योग, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेशनरकाख्यान, सूर्याञ्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक, खरज्ञान, नवरत्नपरीक्षा, तीर्थसमु-दायका माहात्म्य, उत्तमगयामहात्म्य, पृथक् पृथक् रूपमें मन्यन्तराख्यान, पिताख्यान, समस्त वर्णधर्मे, द्रव्यशुद्धि, श्राद्ध, विनायकार्जना, ग्रंहयज्ञ, समस्त आश्रम, प्रेता-शीच, नीतिसार, सूर्यवंश, सोमवंश, हरिअवतारकथा, रामायण, हरिवंश, भारताख्यान, आयुर्वेदमें निदान, चिकित्सा, द्रव्यगुण, विज्युकवच, गारुड् और तेपुरमन्त्र, प्रश्नचूड़ामणि, ह्यायुर्वेदकीर्तन, औषधीनामकीत्तंन, व्याकरण और छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, वैश्व-देवतर्पण, सन्ध्रापार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिएडास्य-्रश्राद्ध, धर्मसार, योगशांस्त्र, विष्णुमक्ति, हरिनमस्कार-फल, वैय्यवमाहात्म्य, नारसिंहस्तव, स्नानामृत, गुह्या-ष्टकस्तोत, वेदान्तसांख्यसिद्धान्त ब्रह्मज्ञान और गीता-सारफलकी तन।

अनन्तर इसके उत्तरखण्डमें प्रतेकल्प वर्णित हुआ है। इसमें ताक्ष्यसे पूछे जाने पर भगवान्ने धर्मप्रकटन, पर्वयोनिका गतिकारण, दाना्धिकफल और औद दिहिक-कियाएं वणन की हैं। अलावा इसके इस पुराणमें यम-

लोक पथका वर्णन, पोड्ग् श्रादका फल, यममाग-निफ्तित, धर्मराजका वैभव, प्रतिपीड़ानिद्धेश, प्रतिचिह-निरूपण, प्रेतगणका चरिताख्यान, प्रेतत्वका प्रतिकारण, प्रेतकत्वविचार, सपिएडकरणोक्ति, प्रेतत्वमोक्षणकथन, मुक्तिनिमित्त दान, प्रे तसील्यकर आवश्यकीय दान, शारी-रकतिव श, यमलोकव र्णन, प्रोतत्वउद्भार, कर्मकर्तक-विनिर्णय, मृत्युका पूर्विकियाकथन, कर्मनिरूपण, पोङ्शक-श्राद्ध, सुतकःसंख्यान, नारायणविक्रिया, वृपोत्सग-माहातमा, निषिद्धपरित्याग, अपमृत्युक्रिया उक्ति, मनुष्य-गणका कमेविपाक, कृत्याक्तत्यविचार, विष्णुध्यान, सग -गतिसंवन्ध्रमें, विहिताख्यान, खग सुखनिरूपण, भूलोक-वर्णन, सप्तलोकवणन, पञ्चोद्ध्यं लोककथन, ब्रह्माएडस्थिति-कीत्तन, ब्रह्माएडका वहु चरित, ब्रह्मजीवनिरूपण, आत्य-न्तिक लयकथन और फलस्तुतिनिक्रपण, ये सव कीर्तित हुए हैं। यह गारुड़ नामक पुराण भक्ति और मुक्ति-प्रदान करता है।)

मात्स्य और नारदीयपुराणके स्रक्षणानुसार इस गरुड़को हम लोग निःसन्देह ृष्ट्रलपुराणके जैसा प्रहण कर सकते हैं। प्रचलित गरुडपुराणके २य अध्यायमें गरुड़की उत्पत्ति और गरुड़की नाम निरुक्ति तथा अय अध्यायमें भगवान् विष्णुकतृ क रहके समीप अएडसे जगत्ख्ष्टिप्रसङ्गमें पुराणाख्यानका पाठ करनेसे इस गरुड़को आदिगरुड़ माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो नारद्पुराणमें जो अनुक्रमंणिका दी गई हैं, उनके प्रायः समी विषय पुचलित गरुड्पुराणमें मिलते हैं हैं। जो कुछ गोलमाल है, वह केवल स्लोक ले करे। आदिगरुड़की स्रोकसंख्या १८००० है, किन्तु प्रचलित गरुडपुराणमें इससे सात हंजार कम होते हैं। भविष्य-राजवंशांख्यानका पूर्वांश पढ़नेसे झांत होता है, कि यह पुराण जनमेजयंके समयमें पहले पहले सङ्कृतित हुआ था। (१४४।४१) अनन्तर भविष्यराजव शे वर्णनकी जगह राजा शूद्रक तक नाम रहने (१४८।८) एवं चिप्णु मत्स्य आर्दिकी तरह अन्ध्रगुप्त-प्रभृति राजाओंका उल्लेख नहीं रहनेके कारण प्रचलित गर्वड़ प्रचलित विष्णुमतस्य आदि पुराणींकी अपेक्षा समिधक प्राचीन प्रतीत होता है। शूद्रकके समय हिन्दू और वौद्धगण आपसमें हिलमिल

कर रहते थे। उनके समयमें रचित मृच्छकि नाटकसे उस समयके वौद्ध और हिन्दू-समाजकी अवस्था वहुत कुछ जानी जाती है। उस समय वौद्धप्रभाव और बुद्धकी उपासना तमाम प्रचलित थी। इस गरुड्युराणमें भी बुद्धदेव २१वें अवतार माने गये हैं तथा बुद्धके पिता और वंशधरोंके नाम देखे जाते हैं।

गरड्युराणमें नाना विषयका प्रसङ्ग देख कर अध्या-पक विलसन इसे आधुनिक रचना मान गये हैं, किन्तु इससे आधुनिकत्व प्रमाणित नहीं होता। जो जो विषय गरुड्युराणमें विवृत हुए हैं, गरुड्को अपेक्षा अनेक प्राचीन प्रन्थोंमें उनका परिचय मिलता है। जो कुछ हो, इसमें आदि गरुड्युराणके सभी अंश नहीं रहने तथा पर्त्तमानक्तप धारणकालमें स्थान विशेषमें प्रक्षित अंश संयोजित होने पर भी इसे १ली या ररी शताब्दीका सङ्क लित प्रन्थ मान सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

त्निवेणोस्तोत्न, पञ्चपर्वं माहातम्य, विष्णुधर्मांत्तर, वेङ्कर्रगिरिमाहातम्य, श्रीरङ्गमाहात्म्य, सुन्दरपुरमाहात्म्य आदि कुछ प्रन्थ गरुहृपुराणके अन्तर्गत प्रचलित हैं। किन्तु ये सब आद्युनिक प्रनथके जैसे प्रतीत होते हैं।

१८ ब्रह्माएडपुरागा।

८कियापादमें —१ अनुक्रमणिका, २ हादशवार्षिक-यज्ञनिरूपण, ३ सृष्टियर्गन, ४ प्रतिसन्धियर्गन, ५ वर्त्त-मानकल्पविवरण, ६ देवासुरोत्पत्तिकथन, ७ योगधर्म, ८ योगोपवर्गः, ६ योगेश्चर्यं, १० पाशुपतयोग, ११ शौचा-चारळक्षण, १२ परमाश्रमप्राप्तिकथन, १३ यतिप्रायश्चित्त, १४ अरिग्रलक्षण, १५ औंकारप्राप्तिलक्षण, १६ कल्पनिरू-पण, १७ करपसंख्या १८ युगभेदमें माहेश्वरावतार, १६ ब्रह्मोत्पत्ति, २० कुमारोत्पत्ति, २१ विष्णुकर् क शिवस्तव, २२ खरोत्पत्ति, २३ हृद्रोत्पत्ति, २४ लोकपालचालखिल्य और सप्तर्पिकी उत्पत्ति, २५ अग्निवं शवर्णन, २६ दक्ष-कन्या और दक्षणापवर्णन, २७ दक्षकर्तृक शिवस्तव, २८ ड्वर्कथन, २६ देवव शवर्णन, ३० प्रणवनिर्णय, ३१ युगनिर्णय, ३२ भरतव शवण न, ३३ जम्बृहीपवर्ण न, ३४ दिग ्विभागस्थ सरिन्शैलादि, ३५ जम्बूद्वीपका वर्षकथन, ३६ वर्ष पर्व तकथन, ३७ उस दक्षिणदिक्स्य द्रोणीकथन, ३८ पर्व ताचासवण न, ३६ देवकूटादि पर्व तवण न, ४०

कैलासवर्ण न, ४१ निपधपर्व तादि कथन, ४२ सीम और नदीकथन, ४३ भद्राश्दवण न, ४४ केतुमालवर्णन, ४५ चन्द्रद्वीपवर्णं न, ४६ भारतवर्षं वर्णं न, ४७ किंपुरुपादि वर्ष वर्ण न, ४८ कैलासवर्ण न, ४६ गङ्गावतरण, ५० वर्ष -पर्व तस्थ नदीवर्ण न, ५१ भारतवर्षीय अन्तर्हींपकथन, ५२ प्रक्षद्वीपवर्ण न, ५३ शान्मलद्वीपवर्ण न, ५४ कुणद्वीप-वर्ण न, ५५ क्रौश्रद्धीपवर्ण न, ५६ शाकद्दीपवर्ण न, ५७ पुष्करद्वीपवर्ण न, ५८ वर्ष और द्वीपादिनिर्णय, ५६ अश्वः और ऊदुर्घ भागनिर्णय, ६० चन्द्रसूर्यादि ज्योतिःनिर्णय, ६१ ज्योतिष्कविवरण, ६२ प्रहनक्षत्ननिर्णं व, ६३ नीलकरह-स्तव, ६४ लिङ्गोत्पत्तिकथन, ६५ पितृवर्णन, ६६ पर्व-निर्णं य, ६७ युगनिरूपण, ६८ यश्चयर्णन, ६६ द्वापरयुग-विधि, ७० कलियुगवण न, ७१ देवासुराहिका शरीरपरि-माण, ७२ धर्माधर्मकथन, ७३ मन्त्रकृत् ऋपिवंग, ७४ चेदविभागादि, ७५ शाकल्यवृत्तान्त, ७६ संहिताकार ऋषिय'श्रवण न, ७९ मन्यन्तरकथन, ७८ पृथुव'शानु-कीर्त्तन, ७६ सायभ्भुवादि सर्गकथन, ८० वैवस्वतसर्ग-कथन ।

मध्यभागमें उपोद्धातपाद्में—१ पूजापतिव शासु-कीर्त्तन, २-५ काश्यर्पाय पूजासर्ग, ६ ऋषिवंशानुकीर्तन, ७ श्राद्धपृक्रिया आरम्म, ८-१३ श्राद्धकल्प, १४ श्राद्धकल्पमें ब्राह्मणपरीक्षा, १५ श्राद्धकर्यमें दानफल, १६ तिथि-विशेपमें श्राद्धफल, १७ नक्षत्रविशेषमें श्राद्धफल, १८ भिन्न-कालिक तृप्तिसाधन, रृष्यविशेषमें गयाश्राद्धादि फलकीत्तन, १६ वरुणवं ग्रबर्णन, २० इस्वाकुत्रं शकथन, २१ मिथिलाः वंशकथन, २२ राजयुद्ध, २३-३३ मार्ग वचरित, ३४ कार्ते-चीर्यचरित, ३५ ज्यामघचरित, ३६ वृष्णिवंशानुकीर्त्तन, ३७ समरचरित, भाग वकथा, ३८ देवासुरकथा, ३६ कृष्णावि-र्मावकथन, ४० इलस्तव, ४१ भविष्यकथा, ४२ वैवस्वतमनु-वंश, ४३ वैवस्वमनुवंश, गन्धवैम्र्न्हं नालस् १ ४४ गीता-रुङ्कार, ४५ वैवस्वतमनुव[•]शवर्णन, ४६ सो**म**जन्मविवरण, ४७ चन्द्र व शकोर्त्तन, (ययातिचरित), ४८ विष्णुव शवर्णन, ४६-५० विष्णुमाहात्म्यकोत्तेन, ५१ भविष्यराजवंश, उत्तर भागके उपसंहारपादमें ५२ वैवस्वत मन्वन्तराख्यान, ५३ सप्तम मन्वादि चतुर्द शमनु पर्यन्त विवरण, ५४ भविष्य-मनुर्भोका वर्णंन, ५५ कालमान, ५६ चतुर्ंशलोकवर्णंन,

५७ नरकवणन, ५८ मनोमय पुराख्यान, ५६ पाकृतिक छय-वणन, ६० शिवपुरादि वणन, ६१ गुणानुसारसे जन्तुओं-की गति, ६२ अन्वयध्यतिरेकानुसारसे पृष्ठयादि पुनसृष्टि वर्णन ।

अध्यापक विलसन, राजा राजेन्द्रलाल मिल, भाएडार-कर पृष्टित पुरातत्त्वविद् पिएडतोंके मूल ब्रह्माएडपुराण-को अस्तित्व सम्बन्धमें सन्देह कर गये हैं।

अब देखना चाहिये, कि उद्धृत विषययुक्त पुराणको हम लोग ब्रह्माएड कह सकते हैं वा नहीं? इस सम्बन्धमें अपरापर पुराणोंमें ब्रह्माएड-महापुराणका कैसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है? मत्सपुराणके मतसे—

"ब्रह्मा ब्रह्माएडमाहात्म्यमधिकृत्याव्रवीत्पुनः।
तच द्वादशसाहस्रं ब्रह्माएडं द्विशताधिकम्॥५४॥
भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्न विस्तरः।
तद्दब्रह्माएडपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहतम्॥५५॥"

व्रह्माएडका माहातम्य अवलम्बन करके ब्रह्माने जो पुराण कहा था, वही १२२०० क्ष्रोक समन्वित ब्रह्माएड है। जिस पुराणमें ब्रह्माने भविष्य कल्पवृत्तान्त विस्तृत क्षपसे विवृत किया है, वही ब्रह्माएडपुराण है।

शिव-उपपुराणके उत्तरखएडमें इस प्रकार लिखा है—
"व्रक्षाएडचरितोक्तत्वाह्वव्रह्माएड परिकोर्त्तितम्।"
व्रह्माएडका चरित अर्थात् व्रह्माएडका भूगोल-विवरण
इसमें वर्णित हुआ है, इस कारण इसे ब्रह्माएडपुराण
कहते हैं।

शिवमहापुराणकी वायुसंहिताके ११वे अध्यायमें लिखा है—

"ब्रह्माएड' चातिपुण्योऽयं पुराणानामनुकमः।"
यह ब्रह्माएडपुराण अति पुण्यपूद और समस्त पुराणों
. को अनुकमणिका स्वरूप है। नारदपुराणमें ब्रह्माएडपुराण की अनुकमणिका इस पुकार दी गई है—

> "शृणु वत्स प्रवक्ष्यामी ब्रह्माएडाख्यं पुरातनम् । यच द्वादशसाहस्रं भाविकरपकथायुतम् ॥ पृक्तियाख्योऽनुपङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः । -चतुथः उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि ॥ पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागेऽत समुदाहतः । तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्धस्तृत्तरो मतः ॥ (तत पूर्वभागे पृक्तियापादे) आदौ कृतसमुहं शो नैमिषाख्यानकं ततः । हिरण्यगमोंत्पसिश्व लोककश्पनमेय च ॥

एव वै पृथमः पादो द्वितीय रेग्णु मानद् ॥ (पूर्वभागे अनुष गपादे) कल्पमन्वन्तराख्यानं स्रोकज्ञानं ततः परम् । मानसीस्ष्टिकथन रुद्रपुस्ववणनम्॥ महादेवविभूतिश्च ऋषिसगैस्ततःपरम् । अजीनां विषयश्चाथ काळसद्भाववणेनम् ॥ पुरवताचयोद्देशः पृ.श्वन्यायामविस्तरः। वर्णनं भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम्॥ जम्वादिसप्तद्वीपाख्दा ततोऽश्रोलोकवणंनम्। ऊद्धं लोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम् ॥ यादित्यव्यृहकथनं देवप्रहानुकोत्तंनम् ॥ नोल र्गंडाड्याच्यानं महादेवस्य वैभवम् ॥ अमावस्यानुकथनं युगतत्त्वनिद्धपणम्। यजपुबत्तनं चाथ युगयोरएडयोः कृतिः॥ युगपुजालक्षणञ्च ऋषिपुवरवर्णनम् । वेदानां व्यसनाख्यानं खायम्भुवनिरूपणम्॥ शेषमन्वन्तराख्यानं पृथिबीदोहनस्ततः। चाक्षपेऽचतने सर्गौ द्वितीयोऽङ्ग्रि पुरोद्छे॥ अथोपोद्द्यातपादे तु सप्तर्षिपरिकीर्त्तनम्। पाजापत्याचयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः॥ ततो जयाभिच्याहारौ मरुदुत्पत्तिकीत्तनम् । काश्यपेयानुकथनमृपिव शनिकपणम्॥ पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ।[,] वैवस्वतसमुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम्॥ मनुपुताचयश्चातो गान्धर्घस्य निरूपणम्। इक्ष्वाकुवं शकथनं वं शोऽले : सुमहात्मनः ॥ अमावसोराचयश्च रजेश्चरितमद्वभुतम्। ययातिचरितञ्चाथ यदुव शनिरूपणम् ॥ कार्त्तवीर्यस्य चरितं जामद्ग्न्यं ततः परम्। वृष्णिव शानुकथनं सगरस्याथ सम्भवः॥ भागवस्याथ चरितं तथा कार्त्तवधाश्रयम्। समरस्याथ चरितं भार्गवस्य कथा पुनः॥ देवासुराहवकथा कृष्णाविर्माववर्णने। इलस्य च स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीत्तितः॥ विष्णुमाहात्म्यकथनं विखर्शनिक्रपणम्। भविष्यराजचरितं सम्प्राप्तेऽथ कलौ युगे ॥ एवमुद्धातपादोऽयं तृतीयो मध्यमे दले॥ चतुथमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे। वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम् ॥ पुर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते। भविष्याणां मनूनाञ्च चरितं हि ततः परम्॥ कल्पपूळयनिर्देशः ततः कालमानं ततः परम्। छोकाश्चतुद्श ततः कथिता मान्छक्षेणः ॥

वणनं नरकानाञ्च विकर्माचरणैस्ततः। मनोमयपुराख्यानं लयपाकृतिकस्ततः॥ शैवस्याथ पुरस्यापि चर्णनञ्च ततः परम्। तिविश्राद् गुणसम्बन्धाजन्तूनां कीर्त्तिता गतिः॥ अनिर्दे श्यापृतक्योस्य ब्रह्मणः परमात्मनः। अन्वयव्यतिरैकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम्॥ इत्येष उपसंहारः पादोवृतः स चोत्तरः । चतुंष्पादं पुराणं ते ब्रह्माण्डं समुद्दोहृतम्॥ अप्रादशमनीपभ्यं सारात्सारतरं द्विज। तदेव वस्यगदितमहाप्राद्शधा पृथक्। पाराशर्येण मुनिना सर्वे पामपि मानद ॥[वस्तुद्रश्रथ तेनेत्र मुनीनां भावितात्मनाम्। मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेंभ्यः पुचकाशिरे॥ मुनवोधर्मशीलास्ते दीनानुप्रहकारिणः यथा बेद् ' पुंराणन्तु विशिष्ठाय पुरोदितम् ॥ तेन गक्ति, सुतायोक जातुकर्णाय तेन च। व्यासलब्धा ततश्चैतत् पुभञ्जनमुखोद्दगतम् ॥ पुमाणीकृतलोकेऽस्मिन् पावर्त्तयद्वतमम्।"

है बत्स ! सुनो, अब ब्रह्माएड नांमक पुराण कहता हूं। यह ब्रांदश सहस्र श्लोक और भाविकत्यकी कथा द्वारा परिपूर्ण है। प्रक्रिया, अनुपङ्ग, उपोद्धात और उप-संहार नामक इस पुराणके चार पाद हैं। उक चार पार्लेके आदि हो पाद द्वारा पूर्णभाग, मध्यमभाग और चतुर्थपाद द्वारा उत्तरभाग कित्यत हुआ है।

(शम प्रक्रियापाद) इसमें पहले कृतसमुद्देश और पीछे नैमियाक्यान, हिरण्यगर्भात्पत्ति और लोककथनकी वर्णना है।

(२य अनुष्तुपाद) इसमें करपमन्वन्तराख्यान, लोकज्ञान, मानसी सृष्टिकथन, रुद्रप्रसववर्णन, महादेवविभूति,
अग्निगणका विषय, कालसद्भाववर्णन, प्रियमताचारनिर्देश, पृथिवीका देट्य और विस्तार, भारतवर्णवर्णन, जम्बादि सप्तद्दीपवर्णन, अधोलोकवर्णन, ऊर्वलोकक्राश्यन, प्रहचार, आदित्यव्यूहकथन, देवप्रहानुकीर्तन,
लोकक्राश्यान, महादेवका वैमव, अमावस्याकथन,
युगतत्त्वनिरूपण, यज्ञप्रवर्त्तन, शेषयुगका कार्य, युगप्रज्ञा
लक्षण, ऋषिप्रवरवर्णन, देवताओंका व्यसनाख्यान, स्वायम्मुव निरूपण, शेष मन्वन्तराख्यान और पृथिवीदोहन
य सव कीर्तित हुए हैं।

(मध्यम उपोद्धातपाद) इसमें निम्नलिखित विषय

वर्णित हैं—सप्तर्षिकीर्त्तन, प्रजापितसमूह और उनसे देवादिकी उत्पत्ति, जयामिध्याहार, मरुदुत्पत्तिकीर्त्तन, काश्यपेयानुकथन, ऋषिव शिनिरूपण, पितृकस्पानुकथन, आद्यकल्प, वैवस्ततीत्पत्ति, वैवस्ततसृष्टि, मनुपुत्रसमृह, गान्धवीनरूपण, इक्ष्वानुक श-कथन, अतिव शक्यम, रिजका चरित, ययातिचरित, यदुव शनिरूपण, कार्त्तवीर्यचरित, जामदग्न्यचरित, यृष्णिव शानुकथन, सगरसम्भव, भाग्वविरित, समरचरित, भाग्वकथा, देवासुरसंप्रामकथा, कृष्णाविर्माववर्णन, स्परस्तव, विष्णुमाहात्म्य, चिल्वं शनिरूपण और कलियुग उपस्थित होने पर मित्रयनराजचरित।

(उत्तरमाग उपसंहारपाद) इसमें पहले संक्षिममें वैवस्वतान्तराख्यान, पीछे भवित्य मनुश्रीका चरित, कर्य-प्रलयनिर्देश, कल्पमान, चौदह लोकोंका कथन, नरकोंका वर्णन, मनोमय पूराख्यान, प्राञ्चितक लय, शैवपुरका वर्णन, तिविधगुणसम्पर्कमें पूर्णियोंका गितकीर्त्तन और अनि-देश तथा अपूतक्ये परमात्मा ब्रह्माके अन्वयव्यतिरेकका वर्णन है। यह उपसंहार नामक उत्तरमाग सम्पन्न हुआ यह अष्टादश और सारसे भी सारतर पुराणके जैसा प्रसिद्ध है।

हे द्विज! वह पुराण चार लाख स्कोकरपमें भी
पढ़ा जाता है। पराशरात्मज व्यासने उसीको अष्टादश
प्रकारमें विभक्त करके प्रकाशित किया है। हे मानद!
वस्तुद्रश उस व्यास मुनिने मुक्तसे सभी पुराण सुन कर
उन्हें जनसाधारणमें प्रकाशित किया है। मैंने इस पुराणकी पहले पहले विशिष्ठसे कहा था। पीछे उन्होंने शिक्षक सुत और जातुकर्ण को सुनाया। अनन्तर व्यासने इस
लोकमें इस प्रभावनमुखीचारित इस ब्रह्माएडपुराणका
प्रचार किया है।

उद्धृत वचनसे ब्रह्माण्डपुराणके लक्षणाहि और वर्णित विवरणादिके विषय एक तरहसे जाने गये। विश्वकोष-कार्यालयसे प्रकाशित ब्रह्माण्डपुराणकी एक-माल अनुक्रमणिका पढ़नेसे ही जनसाधारणका सन्देह दूर हो संकता है। इस अनुक्रमणिकाके मध्य ही ब्रह्माण्ड-पुराणके वर्ण नीय विषयोंकी एक प्रकारकी सूची दी गई है। इस अनुक्रमणिकाके साथ नारदीयपुराणोक ब्रह्माण्ड- पुराणाल्यांनकी विस्रकुर एकता देखी जाती है। अलावा इसके मत्स्यपुराणके मतके साथ भी कोई पूमेद नहीं है। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माएडपुराण पुरा कालमें ब्रह्मासे कथित हुआ था। हम लोगोंके आलोच्य-ब्रह्माएडपुराणके १म अध्यायमें साफ साफ लिखा है—

"पुराणं सम्पुवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसिमतम्।" मत्त्यके मतसे - जिसमें भविष्यकल्प-वृत्तान्त वर्णित ब्रह्मार्डपुराण है। हम लोगोंके वंही ब्रह्माएड-युराणके सोलहवें सत्त-ंइस अठारहवे अञ्चायमें वत्तान्त विस्तारित इपमें वर्णित हुआ है, ऐसा विस्कृत-कल्प-विवरण और किसी पुराणमें नहीं है। पुराणके मतमें ब्रह्माएडका चरित वर्णित होनेके कारण रसं पुराणका नांमें ब्रह्माएड पड़ा है। हिमाएडपुराणके ३३से ५८ अध्यायमें ब्रह्माएडके नाना स्थानोंमें भूगोलविवरण जैसा दिया गया है, वैसा और किसी पुराणमें नहीं है। अतः इस ब्रह्माएडपुराणके अस्तित्व, मीलिकत्य और महापुराणत्व-सम्बन्धमें और कोई गोलमाल वा सन्देह रहने नहीं पाता। पर हां, वात यह है, कि अध्यापक विलसन, राजा राजेन्द्रलाल प्रशृति विवक्षण परिडतगण ब्रह्माएडपुराणके अस्तित्वसम्यन्धमें जो सन्देह करते हैं, सो क्यों ? किसी किसी ब्रह्माएड-पुराणके प्रन्थमें प्रति अध्यायकी पुष्पिकामें "वायुप्रोक्ते-संहितायां" ऐसा लिखा है। केवल ऐसो पुश्यिकाके ऊपर निर्भर करके कोई कोई महात्मा ब्रह्माग्डपुराणको बागु-पुराण क्तला कर और अन्तमें ब्रह्माण्डपुराणको भूल कर इस मूल महापुराणके अस्तित्व पर सन्देह कर यथार्थमें उनका यह मतिसम कहना चाहिये। नारदीयपुराणमें साफ साफ लिखा है-

"धासोळव्या तश्चैतत् प्रमञ्जनमुखोद्गतम्। प्रमाणीकृत्यळोकेऽस्मिन् प्रावर्त्तयद्गुत्तमम्॥"

इस वचन द्वारा ब्रह्माएडपुराण जव वायुत्रोक्त होता है; तब हस्तलिखित प्रन्थमें जो "वायुत्रोक्त संहितायां" ऐसी पुष्पिका गृहीत हुई है, वह भ्रमपूर्ण नहीं है। वरन् जो 'वायुत्रोक्त' नाम पढ़ कर ही उसे वायुपुराण कह कर मानते हैं, उनकी भारी भूल हैं ऐसा कहना होगा। राजा

राजेन्द्रलाल मिलने पशियाटिक सोसाइटीसे एक वायु-पुराण प्रकाशित किया है, उसमें भी इसी प्रकार महासम लक्षित होता हैं।

राजा अपने प्रकाशित वायुपुराणके मुखवन्धमें लिख गये हैं, कि उन्होंने छः हस्तिलिखित प्रन्थ मिला कर वायुपुराण प्रकाशित किया है। इन छः प्रन्थोंमें भारत-गवर्मेल्ट हारा संगृहीत ६७५ प्रन्थ ही उनका आदर्श है। अपर प्रन्थ प्रायः असम्पूर्ण और भ्रमपूर्ण होनेके कारण पाठ मिलानेके लिये बीच बीचमें आलोचित हुआ है। अब हम उनका बही आद्शे प्रन्थ ले कर हो एक वात कहेंगे। उस प्रन्थमें जो विवरण लिखा है उसका पाठ करनेसे यह सहजमें प्रतीत होता है, कि वह वायुपुराण नहीं है, हम लोगोंका आलोच्य ब्रह्माएडपुराण है।

नारदीयपुराणके बचन द्वारा जाना गया है, कि व्रह्माण्डपुराण चार पादोंमें विभक्त है। प्रक्रियापाद, अतु-पङ्गपाद, उपोद्धातपाद और उपसंहारपाद। इसमें वारह हजार खोक हैं। अत्रुप्त राजेन्द्रलालके आदर्श प्रन्य वर्णित—

"यवं द्वादशसाहरूं पुराणं कवयो चिदुः। चतुष्पादं पुराणन्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा॥" इत्यादि क्रोकमं ब्रह्माएडपुराणका ही परिचय मिलता है। एनद्भिश्न पशियादिक सोसाइटीसे प्रका-शित वायुपुराणके पूर्वभागमें चतुर्थं अध्यायोक्त—

"सर्गश्च पृतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ १० कन्पेग्योऽपि हि यः कल्पः शुचिम्यो नियतः शुचिः । पुराणं सम्पृवल्यामि मारुतं चेदसम्मितम् ॥ ११ पृक्तिया पृथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः । उपोद्धातोऽनुपङ्गश्च उपसंहार पव च । धर्मा यशस्यमाशुष्यं सर्वपापपृणाशनम् ॥"

इन सव क्लोकों द्वारा चतुष्पाद समन्त्रित ब्रह्माएड-पुराणका ही आभास मिलता है। उक्त वसनके मधा "मास्तं वेदसम्मितं" ऐसा पाठ रहनेके कारण उसे वायु-पुराण कह कर सचमुच जनसाधारणकी धारण हो सकती है। किंतु उसे असङ्गत पाठ समक्त कर छोड़ देंना ही उचित है। कारण, हम लोगोंके संग्रहोत चार ब्रह्माएड- पुराणोंके पृत्वीन प्रन्थमें "ब्रह्माएड' वेद्समितम्" ऐस ब्रह्माएडपुराण-परिचायक पृक्त पाठ देखा जाता है। विशेवतः राजेन्द्रलालके आदर्श ब्रन्थको समाप्ति पुष्पिका-में—"दित महापुराणे वायुशेवते द्वादशसाहस्त्रां सहितायां वसांडाहर्ष समाप्तम्॥" इस पृकार ब्रह्माएडपुराणका समाप्तिज्ञापक पाठ देखनेमें आता है। यह आदर्श प्रन्थ १६८८ सम्बत्में अर्थात् पृत्यः तीन सौ वर्ष पहले नागरा-क्षरमें लिखा गया है। इसके शेष पृथ्वमें पुराणको उग्नेक-संख्या भी निक्षपित हुई है। यथा—

प्रक्रियापाद्में स्लोकसंख्या		•••	8600
अनुबङ्गपादमें "	•••	•••	३६००
उपोद्धातपार्मे "	•••	•••	२४००
उपसंहारपाद्में "	,.,	•••	१२००

कुल-१२००० स्होक

प्रायः अधिकांश पुराणके मतसे ब्रह्माएडपुराणकी
क्षोकसंख्या १२००० है। अतएव राजा राजेन्द्रलाल जो
वारह हजार क्षोकात्मज ब्रह्माएडपुराणको वायुपुराण वतला गये हैं, सो उनकी भूल है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि श्वेतकल्पप्रसङ्गमें वायुने इस पुराणका वर्ण न किया था, किन्तु सोसाइटी-के मुद्रित वायुपुराणके आरम्ममें श्वेतकल्पका प्रसङ्ग विलक्कल नहीं है।

इसके पहले हो उपक्रममें कहा जा चुका है, कि जो व्रह्माएडपुराण ५वों शतान्दीमें यवद्रोप लाया गया था, आज भी वही ब्रह्माएडपुराण वालिद्रीपमें कविभाषामें अनुवादित पाया जाता है। प्रचलित ब्रह्माएडपुराणके साथ मिवण्यराजवंशवर्णनाप्रसङ्ग छोड़ कर और सभी अंशोंमें वालिद्रीपीय ब्रह्माएडका सादृश्य है। यह पुराण प्रकृति पञ्चलक्षणान्वित है। इसमें भविष्याख्यान छोड़ कर उस आहि ब्रह्माएडपुराणका प्राचीनक्षप देखा जाता है। अष्टाद्शपुराणमें इसकी गिनती होने पर भी इसे प्रचलित सभी पुराणोंकी अपेक्षा प्राचीनतम मान सकते हैं।

स्कन्दपुराणकी तरह वहुसंख्यक माहातम्य इस ब्रहमाएडपुराणके अन्तर्गत प्रचलित देखे जाते हैं, यथा— अम्नीभ्वर, अञ्जनादि, अनन्तश्यन, अज्जु[°]नपुर, अष्टनेत्र-

स्थान, आदिपुर, सान-दनिलय, ऋषियञ्चयो, कटोरगिरि, कालहस्ती, कानाझीविलास, कार्तिक, कावेरी, कुम्मकोण, क्षीरसागर, गोदावरी, गोदुरी, गोसुक्ति, चम्पकारण्य, श्चानमण्डप, तञ्जापुरो, तारकब्रह्ममन्त्र, तुङ्गमद्रा, तुलसी, दक्षिणामूर्ति, देवदाख्वन, नन्दिगिरि, नाचिकेत, नरसिंह, पश्चिमरङ्ग, पापविनाश, पारिजाताचल, पिनाकिनो, पुञ्चा-गवन, पुराणदान, पुराणश्रवण, पुरुषोत्तम, श्रतिष्ठान, वदरिकाश्रम, बुद्धिपुर, ब्रह्मपुरी, मन्दारवन, मयूरस्थल, महापुर, महारि, मायापुरी, रामायण, रक्षपूजा, रुक्तंपुर, वङ्कक्षेत्र, विरजाक्षेत्र, वेङ्कुटिगरि, वेङ्कुटेश, वेदगर्मापुरी, वेदारण्य, शिवकाञ्चा, शिवगङ्गा, श्रागीष्ठो, श्रीनिवास, श्रोमुण्ण, श्रोरङ्ग, सुगन्धवन, सुन्द्रपुर, सुन्द्रारण्य,हस्ति गिरि, हेरम्बकानन इत्यादि माहात्म्य, गणेशकवच, तुलसोकवच, बेड्रूटेशकवच, हनुमत्कवच इत्यादि कवच, दत्तातेय-स्तीत, नदीस्तीत, पश्चिमरङ्गनाथस्तीत, वन्दि-स्तोब, ब्रह्मपरागस्तोब, युगछिकशोरस्तोब, छिता-सहस्रनामस्तोत, वेङ्कदेशसहस्रनाम, सरस्रतोस्तोत, सिद्ध-लक्मांस्तोत, सीतास्तोत, पत्रित्र उत्तरखएड, क्षेत्रखएड, तुङ्गमद्राखएड, पद्मक्षेत, देवाङ्गचरित, ललितीपाख्यान, वारिजाक्षचरित, विष्णुपञ्जर आर अध्यात्मरामायण।

इनमेंसे अधिकांश आधुनिक कालका रचा हुआ है। इन्हें ब्रह्माएडपुराणके अन्तर्गत हैन मान कर ब्रह्माएड उपयुराणके अन्तर्गत माननेसे सव गोल नाल मिर जाता है।

१८ पुराणकी तरह अन्यान्य मुनि-रचित १८ उपपुराण भा प्रचलित हैं। उपपुराण देखो। वहुतींका
विश्वास है, कि वे सब उपपुराण उतने प्राचीन प्रन्थ नहीं
है। परन्तु उपपुराणसमूहमें अनेक प्रक्षित बचन रहने
पर भी मूल उपपुराण अतिप्राचीनकालमें संगृहात हुआ
था, इसमें सन्देह नहीं। ११वीं शताब्दीके शेपमागमें
पड्गुरुशिन्यने अपनी वेदार्थदीपिकामें नृसिह उपपुराणसे
स्लोक उद्धृत किये हैं और उसके पहले सुप्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अलवेहणी नन्दा, आदित्य, सीम, साम्ब
और नरसिह इत्यादि उपपुराणोंका उल्लेख कर गये हैं।
पूर्वीत १८ महापुराणके अतिरिक्त उपपुराण और अतिपुराण ले कर हम लोग और भी अनेक पुराणनामधेय
प्रन्थोंका सन्धान पाते हैं, यथा—

१ सनत्कुमार, २ नर्रसिंह, ३ वृहन्नारदीय, ४ शिव वा शिवधर्म, ५ दुर्वासस्, ६ कापिल, ७ मानव, ८ औशनस्, ६ वाहण, १० काल्कित, ११ साम्य, १२ निन्दिकेश्वर वा नन्दा, १३ सौर, १४ पराशर, १५ आदित्य, १६ ब्रह्माग्र्ड, १७ माहेश्वर, १८ भागवत. १६ वाशिष्ट, २० कौर्म, २१ भागव, २२ आदि, २३ मुहल, २४ कल्कि, २५ देवीपुराण, २६ महाभागवत, २७ वृहद्धर्म, २८ परानन्द, २६ पशुपति-पुराण।

अधादश प्राचीन महापुराणींसे मारतीय हिन्दूसमाज-की रीति, नीति, आचार, व्यवहार, धर्ममत और विश्वास तथा अनेक पुरा कहानियां जानी जा सकती हैं। पुराण-को हम लोग प्राचीन मौलिक प्रन्थके जैसा स्वीकार कर सकते हैं वा नहीं, पुराण श्रुतिमूलक है वा अवैदिक, पुराणका प्रकृत उद्देश्य क्या है ! इस सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध कुमारिलम्ह सविशेष आलोचना कर गये हैं।

(कुमारिङ भद्द देखों) जैन-पुराग्।

हिन्दूके जैसा जैन और वीद्यके भी पुराण हैं। ये सव पुराण हिन्दूपुराणके ही आदर्श पर रचे गये हैं। हिन्दूपुराणमें जिसप्रकार हिन्दू देवदेवियोंकी आख्यायिका और माहातम्य तथा पालनीय धमें और अनुष्ठानादिका प्रसङ्ग है, जैन पुराणोंमें उसी प्रकार तोथंडू रादि महापुरुणोंकी आख्यायिका, जैनोंके धर्म और व्यवस्थादिका उल्लेख हैं। रामचन्द्र, श्लीकृण प्रभृतिका लीलाख्यान जैन लोग किस भावमें देखते हैं तथा उन्होंने किस प्रकार भावमें वे सब अवतारलीला ग्रहण की है, जैनपुराणोंमें उसका यथेष्ट परिचय मिलता है।

जेनोंके २४ तीर्थं दूर हैं। इन चीवीसोंके आख्यायिका
प्रसङ्गमें दिगम्बर जैनोंके मध्य २४ महापुराण रचे गये
हैं। जिनसेनाचार्य-रचित आदिपुराणमें लिखा है—
"तिषद्यवयवः सोऽयं पुराणस्कन्ध इत्यते।
अवान्तराधिकाराणामपर्यन्तोऽत विस्तरः॥१२६॥
तीर्थंकर्न्युपराणेषु शेषानामपि संग्रहात्।
चतुर्विंशतिरेचात पुराणानीति केचन ॥१२०॥
पुराणं वृषमस्याधं द्वितीयमजितेशिनः।
एतीयं सम्भवस्येष्टं चतुर्थमभिनन्दिनः॥१२८॥
पञ्चमं सुमतेः शोकः षष्टं पद्मप्रमस्य च।

सप्तमं स्थात् सुपार्श्वस्य चन्द्राभासीऽप्टमं स्मृतम् ॥
नवमं पुप्पद्न्तस्य दशमं शीतलेशिनः ।
श्रे यसं च परं तस्माद्द्वादशं वासुपूज्यगम् ॥१३०॥
त्रयोदशञ्च विमले ततोऽनन्तजितः परम् ।
जिने पञ्चदशं घमें शान्तेः पोड्शमीशितुः ॥१३६॥
कुन्धो सप्तदशं ब्रे यमरस्याष्टादशं मतम् ।
महलरेकोनविंशं स्याद्विशञ्च मुनिस्त्रन्ते ॥१३२॥
एकविंशं नमेभैत्र्ंनेमेद्द्यं श्र महतः ।
पार्श्वेशस्य त्रयोविंशं चतुर्विंशञ्च सम्मतेः ॥१३३॥
पुराणान्येवमेतानि चतुर्विंशञ्च सम्मतेः ॥१३३॥
महापुराणमेतेषां समृहः परिभाष्यते ॥ १३४॥
(आदिपुराण २ पवं)

तीर्थंड्सरोंके नामानुयायी पुराणके मध्य शेप शलाका पुरुपोंका भी वर्णन आ जाता है, इसिलिये कोई कोई चौवीस पुराण मानते हैं। ऋपभदेवके चरितशापक पुराण ही आदिपुराण हैं, २य अजितनाथका पुराण, ३य सम्मवनाथका पुराण, ४र्थ अभिनन्दका पुराण, ५म सुमतिनाथका पुराण, ६ष्ट पद्मप्रभका पुराण, ७म सुपार्श्व-का पुराण, ८म चन्द्रप्रभका पुराण, ६म पुष्पदन्तका पुराण, १०म शीतलनाथका पुराण, ११श श्रेयांसका पुराण, १२श वासुपूज्यका पुराण, १३श विमलनाथका पुराण, १४श अनन्तजित्का पुराण, १५-श धर्मनाथका पुराण, १६-श शान्तिनाथका पुराण, १७-श कुन्थुनाथका पुराण, १८-श अरनाथका पुराण, १६-श मल्लिनाथका पुराण, २०-श मुनिसुत्रतका पुराण, २१-श निमनाथका पुराण, २२-श पार्ख्वनाथका पुराण और २३-श सन्मति (महावीर भगवान्)का पुराण । २४ जैनअईतोंके ये २४ पुराण हैं। यहो पुराण जैनमहायुराण कहळाते हैं। जैन**पु**राण लक्षण ।

हिन्दू छोग जिस प्रकार पुराणके पञ्चलक्षण स्वीकार करते हैं जैन छोग उसी प्रकार स्वीकार नहीं करते। आदिपुराणमें लिखा है—

"तीथेंशमापि चक्रं शां हिलनामद्वं चिक्रिणाम् । विषिट्छक्षणं चक्ष्ये पुराणं तद्विदामि ॥ पुरातनं पुराणं स्यात्तन्महन्महदाश्रयात् । महिन्न्रकपिद्दिष्टत्वान्महाश्रं योऽजुशासनात् ॥ किवं पुराणमाश्रित्य प्रस्तत्वात् पुराणता । महत्वं स्वमहिम्नैव तस्येत्यान्यैर्निकस्यते ॥ महापुराणमाम्नातमत पतन्महिष भिः॥" (११२०-२३)

२४ तीर्थं दूर, १२ चकवसीं, ६ वलदेव, ६ नारायण (अर्द्ध चकवसीं) और ६ पृतिनारायण इस पृकार तिरे-सठ शलाका पुरुषोंके चरित्तसे युक्त पुराणकोंमें जिनसेना-चार्य कहता हूं । पुरातनको हः पुराण कहते हैं । यह पुराण फिर महदाश्रय, महत्का उपदेश और महामङ्गलके अनुशासन बशतः महापुराण नामसे पृसिद्ध है । कोई कोई कहते हैं, कि पुराण कविका आश्रय करके जो विस्तृत हुआ है, वही पुराण और जो स्वीय महिमा तथा महापुरुष-सम्यन्धि महदम्युका अनुशासनयुक्त है, वह महर्षिगणकर्तु क महापुराण कहलाता है ।

अहणमणिरचित अजितनाथ-पुराणमें भी लिखा है—
"पुरातनैनरैक्ता तिषिष्युरुषाश्चिताः।" (१।८२)
प्रत्येक जैनपुराणमें प्रधानतः ६ अधिकार देखे जाते
हैं—१ लोकसंस्थान, २ राजयंशोत्पन्ति, ३ जिनेन्द्रका
पञ्चकल्याण, ४ गमनागमन, ५ दिग्विजय और साम्राज्य,
इतत्परिनिर्वाण।

रिविषेणके मतसे सात अधिकार छेकर पश्युराण है, १ स्थिति, २ वंशसमुत्पत्ति, ३ प्रस्थान, ४ संयुग, ५ छव-णांकुशोत्पत्ति, ६ भवोक्ति अर्थात् जिनकृत तत्त्वोपदेश अगैर ७ परिनिवृति । अनेक मनोहर अवान्तर कथाओंके साथ पुराणके ये ही सात अधिकार कीर्तित हुए हैं।

हिन्दुओंने जिस प्रकार ब्रह्म वा नारायणसे, आदि पुराणकी उत्पत्ति मानी है, जैन छोगभी उसी प्रकार अपने तीर्थेंड्ररसे इस पुराणकी उत्पत्ति मानते हैं।

रविषेण-विरचित पश्रपुराणमें लिखा है—पहले महा-वीरने अपने प्रिय गणधर इन्द्रभूतिसे यह पुराण कहा था। पीछे इन्द्रभूतिसे सुधर्मने, सुधर्मसे अम्बूख्वामीने, अम्बू स्थामीसे अभवने, प्रभवसे शिल्यक्रमानुसार कीर्तिने और कीर्तिसे अनुत्तरवाग्मीने यह पुराण प्राप्त किया।

अनुत्तरवायमीके निकट रविषेणने जो प्र'थ पाया था, उसीकी सहायतासे उन्होंने पद्मपुराणकी रचना की, फिर इस पद्मपुराणके शेषमें रचनाकाल इस प्रकार पाया जाता है

, "द्विशतास्यधिकेन समासहस्रे समतीतेद्ध चतुर्थवर्णयुक्ते । जिनमास्करवद्ध मानसिद्धे चरितं पद्ममुनेस्टिं निवन्धं॥"

जिनस्यं वर्द्धभानके निर्वाणकालसे एक हजार दो सौ चार वर्ष वीत जाने पर (अर्थात् वीरगत १२०४ सं० ६७८ ई०में) पद्ममुनीका यह चरित निवद हुआ।

जिनसेनके आदिपुराणमें मी लिखा है—

'जगदुगुरुने पहले पहल उत्सर्पिणीकालका पुरुपा-श्रयी अतिगसीर पुराण प्रकाशित किया था, पीछे उन्होंने अवसर्पिणीकालका आश्रय लेकर पुराणकथा प्रस्तुत कर-के सबसे पहले उसकी पीठिका प्रस्तुत की । पुराकल्पमें गोव्यति जो इतिवत्त कह गये हैं, वृषसेन नामकं गणधरने अर्थके-साथ उनका अध्ययन किया। पीछे उस कृती गण-घरश्रे छने अर्थ समेत खयम्भुका वाक्य अवधारण करके जगत्की भलाईके लिये उसे पुराणके रूपमें प्रथित किया। घोरे घोरे अवशिष्ट तीर्थंड्डर और ऋदिसम्पन्न गणवरगण भी सर्वज्ञ वाक्यातुसार वही पुराण प्रकाशित करने लगे । अनन्तर युगान्त काल.उपस्थित होने पर एक समय अखिलार्धद्शीं सिद्धार्थं नन्दन भगवान् महाबीर विपुला-चल पर पधारे । इस अवसरमें मगधराज श्रेणिक वहां जा पहुंचे और विनय प्रभावसे उन अन्तिम तीर्थ नायकसे पुराणका अर्थ पूछा । गणाधिपति गौतमने श्रेणिकके प्रति महाबीरकी अनुप्रह जान कर सभी पुराण कह दिये। महर्षि गौतमके वाद परवर्ती गणभ्रर सुधर्माने जम्बूखामीको अवंण किया, पीछे गुरुपरम्पराक्रमसे आगत पुराण अमी हम लोग यथाशक्ति प्रकाशित करते हैं, शेंव तीर्थ ड्रूप्ते इसका मूल तन्त्र प्रणयन किया, पीछे सान्निध्यक्रमाश्रयसे गौतमने श्रेणिकके प्रश्नानुसार इसे कहा था, इत्यादि सनु सन्धान करके यह प्रवन्ध निवद हुआं है।

इस प्रकार अपरापर जैन पौराणिकोंने पुराणीकी प्राची-नता संस्थापनके लिये महाबोरको हो पुराणप्रकाशक मान लिया है। प्राचीनत्व स्थापनकी नेष्टाको हिन्दू-पुराणका अनुकरणफल समकता नाहिये। पर हाँ, इतना तो अवश्य कह सकते हैं, कि हिन्दूसमाजके जैसा जैन-समाजमें भो, अति प्राचीत कालसे पुराणाल्यान प्रचलित था। रविषेण, जिनसेन, गुणभद्र, अहणमणि प्रभृति जैन-पौराणिकोंकी उक्तिसे इसका प्रमाण मिलता है।

द्वितीय जिनसेनने ७०५ शक्सें (७८३ ई०में) हरिव श (अरिष्टनेमिपुराण)की रचना की । प्रथम जिनसेनके आदि-प्राणमें २८ प्राणींका उल्लेख है, यह पहले ही कहा जा चुका है। तत्पूर्ववर्ती रविषेणने ६७८ ई॰में पद्मपुराण रचा, इसमें भी पूर्वतन पुराणका आमास है। इस हिसावसे ६डीं शताब्दीमें दिगम्बरोंके मध्य पुराण प्रच-लित था, इसमें सन्देह नहीं।

जैनपुराण-श्रवणफल ।

सभी हिन्दु पुराणोंमें जिस प्रकार पुराणश्रवण सर्वाभिष्टफलप्रद माना गया है, जैनपुराणमें भी उसी प्रकार इसका फल लिखा है। यथा आदिपुराणमें—

"पुराणसृषिभिः प्रोक्तं प्रमाणं सुक्तिमञ्जसा । ततः श्रद्धे यमध्ये यं ध्ये यं श्रेयोधिनामिदं ॥ इद् 'पुण्यमिद् 'पूतमिद् माङ्गल्यमुत्तमम्। इदमायुष्यमग्राञ्च यशस्यं खग मेव च॥ इदमच्चेयतां शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिश्च पृच्छताम् । पठतां क्षेतमारोग्यं श्रुण्वतां कर्मनिर्जरा ॥ इतोदुःखप्रनिर्णाशः सुखप्रस्फीतिरेव च। इतोभीष्टफल्ब्यकिर्निमित्तमभिपश्यताम् ॥" (शरह५८)

जिनसेनाचार्य-वर्णित २४ महापुराण छोड़ कर और भी अनेक पुराणोंके नाम सुने जाते हैं, यथा पुण्य-चन्द्रीदयपुराण, हरिवंश, पाएडवपुराण इत्यादि । इनमें-से महापुराण और पुराणके मध्य जो जो पुराण पाया गया है, पर्व वा सर्गानुसार उनमेंसे कई एक अनुक्रम-णिका उद्भुत की जाती है।

भादिपुराग् ।%

१म पवेंगे- नुषभादि जिनस्तुति, महापुराणादि निरुक्ति, सिद्धसेनादि पूर्वं तन जैनकवियोंकी प्रास्ति, आक्षेपण्यादि कथालक्षण, ऋषभके पृति भरतंका पृथा, उसके उत्तरमें आदितीर्थङ्करकी पुराणवर्णना, पीछे महा-वीरसे आचार -परम्परामें पुराणपातिकथन, २ मगधा-धिप श्रेणिक और गौतमसंवादमें पुराणाख्यानपुसङ्ग, धर्म-पृशंसा, क्षेत्रकालतीर्थादि पांच पृकारका पुराणकथन,

* स्य आदिपुराणके १से ४२ पर्व तककी रचना जिनसेना-बार्यने और ४३से ४७ पर्वकी गुणसद्वार्यने की है।

Vol. XIV. 15

गणधरकृत बादिजिनस्तोत, अंतुयोगादि चार पुकारकी श्रुतस्कन्धवर्णना, अनुयोगादिका प्रन्थसंख्यानिरूपण, तिषष्ट्यवयकथन, चौदीस जिनपुराणनामकथन, गौतम-स्वामीका कालनिर्णय, जिनसेनके आदिपुराणपूसङ्ग-में उपोद्धातवर्णन, ३ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामक काळनिर्णय, मानवकी आयु और देहपरिमाण, जैनमता-नुसारसे क्षेमङ्करादि मन्वन्तरनिर्णय, मरुद्दे वकी जन्मकथा, युगादि निर्णय, पुराणपीठिका वर्णन, ४ आदिनाथ ऋषभ-चरितप्रसङ्गीं जम्बूद्दीप और तद्न्तर्गत कुलंपव तादि वणन, ५ सचिवोंकी धर्मनीति, संसारकी अनित्यता और जीवाजीवादि तत्त्वकथन, जात्यन्तरकथन, शून्यवाद-निराकरण, अरविन्दराजाख्यान, शतवल नामक राजकथा, **ळिलाङ्ग**का आख्यान, ६ ळिलताङ्गपुत बङ्गञ्जय और उनके बन्धु कुमुदानन्दकी कथा, ललिताङ्गका खर्ग-च्युतिप्रसङ्ग, चक्रधरास्थान, ७ श्रीमती वज्रजङ्गसमागम, ८ जिनधम-प्रभाववर्णनमें श्रीमती-वज्रजङ्ग-पातदानानु-६ श्रीमती और वज्रजङ्गकी आर्यसम्यक्त्वी-त्पत्ति, १० अच्युतेन्द्रका पेश्वर्रं वर्णन, ११ वज्रनाभिका सर्वार्थसिद्धिलाभ, १२ आदि: जनके स्वर्गावतरणप्रसङ्गी व्याजस्तुति, प्रहेलिका, कालापक, क्रियागुप्त, स्प्रधान्धक, निरोष्ट्य, विन्दुमान, विन्दुच्युत्, शन्द्रप्रहेलिकादि कथन, १३ नाभिके औरस और मेरुदेवीके गर्भंसे नवम मास गर्भवासके वाद चैतमास कृष्णपश्चकी नवमी तिथिको ब्रह्ममहायोगमें आदिजिन ऋषभदेवका जन्म और जन्मो-त्सवकथन, इन्द्रादि देवगण और इन्द्राणीप्रशृति देवीगण-कत्रैक जन्माभिषेकवर्णन, १४ आदिजिनका जातकर्मीं-त्सववर्णेन, १५ कुमारकाल, यशस्त्रतीके साथ विवाह और उनके पुत भरतका जन्मकथावर्णन, १६ वृषमसेना-के गर्भसे ६६ पुलोस्पत्ति और उनके नाम तथा पुलादि-सह आदिजिनका साम्राज्यभोगवृर्णेन, १७ आदिजिनका संसारके प्रति वीतराग और उनका परिनिकामण, १८ घरणेन्द्र और विजयका अर्द्ध पथरामन, १६ नमि और विनमि नामक राजपुर्तोका राज्यप्रतिष्ठावर्णन, २० आदि-जिनका कैवल्योत्पत्तिकथन, २१ ध्यानतत्वानुवर्णन, २२ आदिजिनका समयसर और विनिवेशवर्णन, २३ आदिजिनका विभूतिवर्णन, २८ आदिजिनका धर्मदेशना-

कथन, २५ उनका तीर्थविहारवर्णन, २६ भरतराजका दिग्विजयोद्योगवर्णन, २७ भरतराजकी विजययाता, २८ पूर्वसागरद्वारादि-विजयवर्णन, २६ पाची दिग्बर्ची जनपद-समूह और दक्षिणार्णव पर्यन्त दक्षिण-दिश्वनी जनपद समूहका विजयवर्णन, ३० पश्चिमार्णव पर्यंन्त पश्चिम-दिन्वत्ती जनपदसमूहका विजयवर्णन, ३१ म्हेच्छराज-विजयप्रसङ्गमें गुहाहार उद्घाटन, ३२ भरतका उत्तरदिग्वि-जयवर्णैन, ३३ भरतका कैलासगिरिगमन, ३४ भरतराजके अनुजोंकां दीक्षावर्णन, ३५ कुमार वाहुवलिका रणोद्योग, ३६ कुमार भुजवलिका विजयवर्णन, ३७ भरतेश्वराम्युदय-कथन, ३८ द्विजीत्पत्तिवर्णन प्रसङ्गर्मे गर्भाघान, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोद, प्रियोद्भव, नामकम[°], वहिर्यान, निपद्या, अन्नप्रासन, ब्युप्टि, केशवाप, लिपिसंख्यानसंब्रह, उपनीति, वतचर्या, वतावतार, विवाह, वर्णलाभ, कुलचर्या, गृहोशिता, प्रशान्ति, गृहत्याग, आग्रदीक्षा, जिनरूपता, मौनाधायनवृत्ति, तीर्धं इतकी भावना, गुरुस्थानगमन, गणापप्रहण, खगुरुस्थानप्राप्ति, निःसङ्गत्वात्मभावना. धोगनिर्वाणसाधन, इन्द्रोपपाद, इन्द्राभिपेक, विधिदान-सुखोदय, इन्द्रत्याग, इन्द्रावतार, हिरण्योत्क्रप्टजन्मता, मन्दरेन्द्राभिपेक, गुरुपूजा, यौवराज्य, खराज्य, चकलाम. दिग्विजय, साम्राज्य, चक्राभिपेक, परिनिकान्ति, योग-सम्प्रदः, आह् त्य, चिहार, योगत्याग, अप्रनिव्हेति, इत्यादि गर्साधानसे निर्वाण पर्य न्त ५३ प्रकारका गर्मान्यय-क्रिया-वर्णन, ३६ द्विजातियोंके दीक्षाप्रसङ्गमें वृत्तलाम, पूजा-राध्य, पुण्ययज्ञ, हृहचर्या, उपयोगिता, उपनीति, ब्रह्मचर्या, वतावतार, त्रिवाह, कुलचर्या, गृहीशिता, प्रशान्तता, गृह-स्याग, दीक्षाय, जिनरूपता, दोक्षान्वय, पारिवाज्य, सुरै-न्द्रता, साम्राज्य, आहेत्य और परिनिर्वाण पर्यंन्त अग्रचत्वारिंग पुकार दीक्षान्वयवर्णन, ४८ क्रियावर्णन-प्रसङ्घमं आधानादि-सप्तक्रिया चलिका, और मन्त्रसमूहव ^{में}न, ४१ भरतराजका खादश⁹न और तत्फलोपवर्णन, ४२ भरतराजर्षिका पृजापालनस्थिति-पृतिपादन, ४३ हस्निनापुरपति जयराज-पुताख्यानपृसङ्गमे सुलोचनाका सयम्बर, मालारोपण और कल्याणवर्णन, ४४ जयविजयका पुभाववर्णन, ४५ सुलोचनाका सुख-सीभाग्यवर्णन, ४६ जय और खुलोचनाका जन्मान्तर-

वर्णन, ४७ श्रीपालचरित, यशःपाल वसुपालादिका प्रसङ्ग, आदिनाथके गणधर, पूर्व धर, केवलागमी, विकि यि, ब्राह्मी, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाशोंका संख्यानिर्णय, आदिनाथ और भरतादिका विभिन्न जन्म-कथन, भरतका स्वर्ग गमन, उपसंहार।

आदिपुराणके रचियता जिनसेनने अपने प्रन्यके
प्रारम्भमें नयकेशरो, सिद्धसेन, वादिच्यूड़ामणि, समन्तभार, श्रादत्त, यशोमध्र, चन्होदयका प्रमाचन्त्र, मुनीश्वर
शिवकोदि, जद्याचार्य (सिहनन्दी), कथालङ्कारकार
काणभिक्षु (देवमुनि), कथितीर्थ छत अकलङ्का, जिनसेनके
गुरु मद्दारक बोरसेन और वागर्थ संग्रहकार जयसेनगुरुकी प्रशंसाकी है। जैन कन्द्र देशो। दिगम्बरोंकी
पद्दावलीसे जो गुरु परम्परा उद्दृत हुई हैं, इस आदि
पुराणमें उसका मतमेद देखा जाता है, ऐतिहासिकोंके
काममें आ सकता है। यह समक्त कर उसे नीचे उद्ध त

"अहं सुघमां जम्ब्वाख्यो निखिलश्रुतधारिणः। क्रमात् कैवल्यमुत्पाद्य निर्वास्यामस्ततो वर्य ॥ तयाणामस्मदादीनां कालः केवलिनामिह। हापप्रिवर्णपिएडः स्याद्भगवित्वर्वतः परम् ॥ ततो यथाकमं विज्युनन्दिमिलोऽपराजितः। गोवर्द्ध नो भद्रवाहुरित्याचार्या महाधिपः॥ चतुर्गमहाविद्यास्थानानां पारगा इमे । पुराणं द्योतयिष्यन्ति कार्ल्मन शरदः शतम्॥ विशाखाप्रौष्ठिलाचार्यौ क्षतियो जयसाह्यः। नागसेनश्च सिद्धार्थी धृतिपेणस्तर्थेव व ॥ विजयो वुद्धिमान् गङ्गदेवो धर्मादिशव्दतः। सेनश्च दशपूर्वाणां घारकाः स्युर्णधाक्रमं ॥ त्राशीतं शतमन्दानामेतेयां कालसंप्रहं। तदा च कुरुक्षमेवेदं पुराणं विस्तरिप्यते ॥ ततो नक्षतनामा च जयपालो महातपाः। पाण्डुश्व ध्रुवसेनश्च कंसाचार्थ इति कपात्॥ एकादशांगविद्यानां पारगाः स्युर्मु नीन्दराः। विशद्विगतसन्दानामेतेषां कालमित्यते ॥ तदा पुराणमेतत् पादोनं प्रथयिष्यते। जामावती भूयों जायेताकाकनिष्ठतं॥ सुभद्दस्य यशोमद्रो भद्रवाहुर्महायशाः। लोहार्यक्वेत्यमी होयाः प्रथमांगांवित्रपारगाः॥ समानां शतमेषां स्यात् कालोपादशभियुं तः। तुर्यो भागः पुराणस्य तदास्य प्रतनिष्यते ॥

ततः क्रमात् प्रहोयेदं पुराणं खल्पमातया । धीप्रमादादिदोषेण विरलैद्धारियित्यते ॥ ज्ञानविज्ञानसम्प्रश्मुरुपर्वान्वयादिदं । प्रमाणं यच यावच यदा यत प्रकाशते ॥ तदापीद्मनुस्मतुं प्रमिव्यन्ति धीधनाः । जिनसेनाप्रगाः पूज्याः कवीनां परमेश्वराः ॥" (आदिपु० २ पर्व)

उक्त कुछ श्लोकोंसे गुरुओंका कालनिर्णय इस प्रकार हो सकता है—

हा समाता हु-			
गौतम (इन्द्रभूति) सुधर्म जम्बूखामी विष्णु	्रे चीरगत	चीरगत ६२ वर्ष	
नन्दिमित्र अपराजित गोवद [°] न चन्द्रवाहु १म	चतुर्दशपूर्वी पद्दस्थकाल १०० वर्ग	अर्थात् वीरगत १६२ वर्ग पर्यन्त ।	
विशाख पौष्टिलाचार्य श्रित्रय जयस	}		
नागसेन : सिद्धार्थं धृतिसेन विजय	दशपूर्वी पद्दस्थकाल १८३ वर्ष	अर्थात् वीरगत ३५१ वर्ष पर्यन्त ।	
बुद्धिमान गङ्गदेव घर्मसेन	}		
नक्षत जयपाल पाण्डु ध्रुवसेन कंसाचार्य	पकादशाङ्गी } पहस्थकाल } २२० वर्ष }	वीरगत ५७१ वर्ष पर्यन्त	
सुभद्र यशोभद्र भद्रवाहु २य लोहार्थ	े पृथमाङ्गी पद्दस्थकाल ११८ वर्ष	वीरगत ६८६ वर्ष पर्यन्त ।	

अभी किसी किसी पिएडतका कहना है, कि शङ्करा-चार्य द्वीं शतान्हीं के शेपमागमें विद्यमान थे। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि शङ्कर-जन्मके पहले ही जिनसेन शङ्कराचार्य को जानते थे। शङ्कराचार्यने शारीरक-भाष्यके स्य अधायके १म पादमें अद्वितीय ब्रह्मके जगत्सृष्टि-सम्बन्धमें जो विचार किया है, जिनसेन इस आदिपुराणमें (चतुर्थ अधायमें) उसका खएडन इस प्रकार करते आये हैं—

"स्रप्रास्य जगतः किश्चदस्तीत्येको जगुर्जंडाः॥ तह् णैयनिरासार्थं सृष्टिवादः परीक्ष्यते ॥१॥ म्नण सर्गवहिभूतः कस्थः खजति तज्जगत्। निराधारश्च कृटस्थः स्पृष्टैतत्क निवेशयेत् ॥२॥ नेको विश्वात्मकस्यास्य जगतो घटने पट्टः। वितनोश्च न तन्वादि मूर्तमुत्पत्तुमहिति ॥३॥ कथं च स खजेल्लोकं विनान्यैः करणादिभिः। तानि सुद्धा स्जेन्लोकमिति चेदनवस्थितिः ॥॥॥ तेपां स्वभावसिद्धत्वे लोकेऽप्येतत्मसञ्यते। किञ्च निर्मात्वद्विश्वं स्वतःसिद्धिमवाप्तुयात् ॥५॥ स्जेद्दिनापि सामग्राः स्वतन्तः प्रभुरिच्छया। इतोच्छामात्रमेवैतत्कः श्रद्दध्यादयु क्रिकम् ॥६॥ इतार्थस्य विनिर्मित्सा कथमेवास्य युज्यते। अकृताथाँऽपि न सुन्दूं विश्वमीग्द्रे कुलालवत् ॥॥॥ अमूर्तो निकायो व्यापी कथमेप जगत्स्रजेत्। न सिस्रक्षापि तस्वास्ति विक्रियारहितात्मनः ॥८॥ तथाप्यस्य जगत्सर्गे फलं किमिति मृग्यताम् । निष्ठितार्थस्य धर्मादिपुरुपार्थेव्यनर्थिनः ॥६॥ स्वभावतो विनैवार्थान्स्जतोऽनथ् सङ्गतिः। क्रीड़े यं कापि चेदस्य दुरन्ता मोहसन्त्रतिः ॥१०॥ कर्मापेक्षः शरीरादिः देहिनां घटयेद्यदि । नन्वेवमोध्वरो न स्थात्पारतन्त्रप्रात्कुविन्दवत् ॥११॥ निमित्तमालमिष्टश्चेत्कार्ये कर्मादिहेतुके। सिद्धोपस्थाय्यसौ हन्त पोव्यते किमकारणम् ॥१२॥ वत्सलः प्राणिनामेकः सृजञ्जनु जिन्नृक्षया । नजु सौल्यमयीं सृष्टि चिद्ध्यादजुपप्लुताम् ॥१३॥ सृष्टिप्रयासवैयर्थं सर्जने जगतः सतः। नात्यन्तमसतः सर्गोऽयुक्तो ब्योमारविन्दवत्॥१॥

नोदासीनः सुजेन्मुकः संसारी सोव्यनीश्वरः। सृष्टिवादावतारोऽयं ततश्च न कुतश्च न ॥११॥ महानधर्मयोगोऽस्य खब्दा संहरति प्रजाः। द्रष्टनित्रह्वुद्धा चेद्वरं दैत्याद्यसर्ज्ञनम् ॥१६॥ बुद्धिमत्ततसान्निध्ये तन्वाद्युत्पत्तुमहीति । विशिष्टसंनिवेशादिमतीतेर्नगरादियत् ॥१७॥ इत्यसाधनमेवैतदीश्वरास्तित्वसाधने । विशिद्रसंनिचेशादेरन्यथाप्युपपत्तितः ॥१८॥ चेतनाधिष्ठितं देहं कर्मनिर्मातृचेष्टितम्। तन्यस् तुखद्ःखादिवैखरूपाय कल्पते ॥१६॥ निम्माणकर्मनिर्मातृकौशलापादितोद्यम्। अङ्गोपाङ्गादिवैचित्रामङ्गिनां सङ्गगिरामहे ॥२०॥ तदेनत्कंभेवैचित्राद्भवन्नानात्मकं जगत्। विम्वकर्माणमात्मानं साधयेत्कर्मसारिधम् ॥२१॥ विधिः स्था विधाता च दैवं कमं पुराकृतम्। ईश्वरक्ष्वेति पर्यायाः विज्ञेयाः कर्मवेधसः ॥२२॥ स्रन्यारमन्तरेणापि व्योमादीनां च सङ्गरात्। खुण्टिवादो स निष्रहाः शि॰डैदु[°]म[°]तदुर्म[°]दी ॥२३॥ भावार्थ —अनेक चुद्धिहीन पुरुष कहते हैं कि, इस जगत्का रचनेवाला कोई एक (ईश्वर) अवस्य है। इसिलिये उनके इस असत्पक्षके मिटानेके लिये सृष्टिवाद-की परीक्षा वा जांच लखते हैं।

जो स्प्रिका रचनेवाला है, यह इस स्प्रिसे वहिमूँतजुदा होना चाहिये। तव कहो, कि वह किस स्थान
पर वैठकर इस जगत्को वनाता है? (जिस स्थान पर
धेटकर वह वनाता है, वह क्या जगत्से वाहिर है? यदि
हे तो इस स्प्रिके सिवाय एक दूसरो स्प्रि ठहरा और
फिर उसके वनाते समय भी उससे पृथक् स्थानकी
कल्पनाका प्रसंग आया) यदि कहोगे कि, उसके लिये
जुदा स्थानकी जरूरत नहीं है, वह निराधार है और
क्रूटम्थ है, तो हम पूछते हैं, कि वह स्थिको वनाकर
रखता कहां है? (और जहां रखता है, वह आकाश
अथवा और जो कुछ आधार है, उसका रचनेवाला
कीन है?)

एक अकेला ईश्वर इस विश्वातमक अर्थात् अनेकात्मक अनन्त पदार्थीके समूहरूप जगत्को नहीं बना सकता

है। इसके सिवा ईश्वर शरीररहित निराकार है, इस-लिये उससे शरीरादि साकार मृर्तिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि साकारसे हो साकारकी उत्पत्ति हो सकती है, निराकारसे नहीं।

और यह भो तो कहो कि वह विनः दूसरे उपकरणोंके लोकको कैसे वनाता है क्योंकि प्रत्येक पदार्थके वनानेमें कुछ न कुछ उपकरण सामग्रीकी जरूरत होती है । यदि ऐसा कहा जाय, कि उन उपकरणोंको पहले वनाकर फिर लोकको वनाता है तो फिर यह प्रश्न होता है, कि उन उपकरणोंको काहेसे वनाता है ? यदि दूसरे उपकरणोंसे वनाता है, तो उन्हें काहेसे वनाता है ? इस प्रकार अन-वस्था दोप आता है।

यदि ऊपर वतलाये हुए अनवस्थादोपका निवारण करनेके लिये लोकके वनानेके उपकरणोंको स्वतःसिख वतलाओं ने अर्थात् यह कहोंगे कि, उन्हें किसीने नहीं वनादा है, आप ही आप वन गये हैं तो फिर जगत्को हो स्वतःसिख कहनेमें क्या हानि है ? उपकरणोंके समान उसे ही स्वतःसिख कहनेमें क्या हानि है ? उपकरणोंके समान उसे ही स्वतःसिख क्यों नहीं कहते हो ? इसके सिवाय सृष्टिका वनानेवाला जो ईश्वर है, उसे भी तो तुम स्वतःसिख मानते हो, अर्थात् यह कहते हो, कि उसको किसो ने नहीं वनाया है वह स्वयंभू है । तो इससे ईश्वरके समान विश्व भी स्वतःसिख है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा । जब ईश्वर स्वतःसिख हो सकता है तव सृष्टि स्वतःसिख क्यों नहीं हो सकती ?

यदि ईश्वर उपकरण सामग्रीके विना ही एवतंत्र हो कर केवल इच्छासे संसारका सज़न करता है, पैसा कहोंगे तो इस तुम्हारे इच्छामात यूक्तिशन्य काल्पनिक कथन पर कीन श्रद्धा करेगा ? अर्थात् केवल यही कह देनेसे कि ईश्वरमात्रसे जगत्को वनाता है, काम नहीं चलेगा। इसके लिये कुछ युक्ति चाहिये।

अव यह कहो कि तुम्हारा सृष्टिकर्ता ईश्वर इतार्थ है अथवा अक्षतार्थ है ? यदि इतार्थ है अर्थात् उसे कुछ करना वाकी नहीं रहा-चारों पुरुषार्थोंका साधन कर चुका है, तो उसका कर्तापना कैसे वनेगा ? वह सृष्टि क्यों बनावेगा ? और यदि अक्षताथ है, अपूर्ण है, उसे कुछ करना वाकी है, तो कुम्मकारके समान वह भी सृष्टि

को नहीं वना सकेगा क्योंकि कुम्हार भी तो अकृतार्थ है, इसलिये जैसे उसने सृष्टिकी रचना नहीं हो सकती है उसी प्रकारसे अकृतार्थ ईश्वरसे भी नहीं हो सकती है ?

यदि ईश्वर अमूर्त, निश्किय और सर्यध्यापक है, ऐसा
तुम मानते हो, तो वह इस जगत्को कैसे वना सकता
है ? क्योंकि जो अमूर्त है, उससे मूर्तिक संसारको रचना
नहीं हो सकतो है, जो कियारहित है वह सृष्टिरचनारूप
किया नहीं कर सकता है, और जो सबमें व्यापक है, वह
जुना हुए विना-अध्यापक हुए विना सृष्टि नहीं वना
सकता है।

इसके सिवा ईश्वरको तुम विकाररहित में। कहते हो, और एप्टि वनानेकी इच्छा होना एक प्रकारका विकार हैं विभावपरणती है, तो वतलाओ उस निर्विकार पर-मात्माके जगत् वनानेकी विकारचेष्टा होना कैसे सम्भव हो सकता है?

और यदि थोड़ो देरके लिये सम्भव भो मान लिया जाय, तो इसका विचार करना चाहिये कि, जो निष्टि-तार्थ है-सिद्धसङ्करप है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोझ पुरुपार्थ के साधनका जिसे कुछ प्रयोजन नहीं है उस ईश्वरको सृष्टिके उत्पन्न करनेमें फल कीन-सा है? अभि-प्राय यह कि जिसे कुछ करना शेप नहीं है-स्तक्त्य है, वह किस लिये सृष्टि वनावेगा?

यदि यह कहोंगे कि विना किसी प्रयोजनके खमावसे हो सृष्टिको रचना करता है, तो अनर्थ होता है। क्योंकि बुद्धिमान पुरुष किसी प्रयोजनके विना किसी भी कामके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। यदि कहोंगे कि, यह उसकी एक कीड़ा है-खेल है, तो ईश्वरमें अज्ञान-परम्परा सिद्ध होती है। क्योंकि अज्ञानी जीव ही अपना समय खेलमें व्यतीत करते हैं।

यदि ख्रिष्टिकर्ता जीवोंके किये हुए पूर्व कर्मोंके अनु-सार उनके शरीरादि वनाता है, तो कर्मोंको परतंत्रताके कारण वह ईश्वर नहीं हो सकता है जैसे कि जुलाहा। अभिप्राय यह कि, जो स्वतंत्र है समर्थ है उसीके लिये 'ईश्वर' संज्ञा ठीक हो सकती है, परतंत्रके लिये नहीं हो सकती। जुलाहा यद्यपि कपड़े वनाता है, परन्तु परतंत्र है और असमर्थ है इसलिये उसे ईश्वर नहीं कह सकते हैं।

Vol. XIV. 16

यदि यह संसार कर्मादि हेनुक है अर्थान् प्रत्येक जीय अपने अपने कर्माके अनुसार उत्पन्न होता है-ईश्वर उसमें केवल निमित्तमाल है. तो फिर कर्मोके अनुसार उत्पन्न होनेवाले संसारका करनेवाला विना कारण कर्मोमें ईश्वर क्यों उहराया जाता है? यह वड़े खेदकी वात है। अभि-प्राय यह है कि जब संसारका सुख्यकर्त्ता प्रधान कारण कर्म हैं. तब फिर निमित्तमाल ईश्वरको सृष्टिके कर्त्तापनका श्रेय व्यर्थ ही क्यों दिया जाता है?।

यदि है । बर इयालु है, इसिलिये प्राणियों पर अनुप्रह करनेकी इच्छासे लुप्टि वनाता है, तो उसे सारी स्रिप्टिको सुखप्रयो बनानी चाहिये थी - - कुछ सुस्रो और कुछ दुखी नहीं बनानी थी।

यदि यह जगत् सत् है अर्थात् द्रव्यद्रिष्टे अविनागी है-सदासे है और सदा काल तक रहेगा, तो इसके वनानेका परिश्रम व्यर्थ है और यदि सर्वधा असत् है-असत्से सन् होना है अर्थान् पहले नहीं था ; पीछे उत्पन्न किया जाता है, तो यह आकाशके कमलपुष्पके समान अयुक्त है-वन नहीं सकता है। अभिप्राय यह है कि, सत् पदार्थकी वास्तवमें उत्पत्ति नहीं होती है, उसकी केवल कोई पदार्थ (अवस्था विशेष) उत्पन्न होतो है। जैसे सुनार सन् रूप सोनेको उत्पन्न नहीं करता है किंतु सोनेको कुएडल, बलय आदि किसी पर्यायको उत्पन्न करता है। इसलिये ईश्वर यदि सत् सक्त जगन्की उत्पन्न करना है तो उसका यह प्रयास निष्फल है, क्योंकि सत्तारूपसे तो जगत् पहले था ही-उसने बनाया ही क्या ? और जो पदार्थ असत् है, जिसको सत्ता हो नहीं है जैसे कि आकाशका पुग्प अथवा गधेका सींग, तो उसका उत्पन्न करना ही असम्भव हैं— पहले खिं सर्वथा ही नहीं थी तो ईश्वर उसकी उत्पन्न भी नहीं कर सकता है।

यदि ईश्वर मुक है—कर्मजालसे रहित है. तो उदासीन अर्थात् सर्व प्रकारको प्रवृतियोंसे रहित होना चाहिये और ऐसी अवस्थामें वह छि वनानेकी प्रवृत्ति ही नहीं करेगा और यदि संसारी है—कर्ममें लिप हैं. तो वह ईश्वर अर्थात् समर्थ नहीं हो सकता है असमर्थ होगा। क्योंकि संसारी पुरुष सृष्टि निर्माणक्तप महान् कार्यको

नहीं कर सकते हैं, जैसे कि हम तुम। अतः तुम्हारा यह एपि रचनाके बाद किसो भी तरहसे सिद्ध नहीं हो सकता है।

और आगे यदि ईश्वर एष्टिको रचकर फिर उसका संहार करता है, तो यह उसके लिये महान् पापका कार्य है। क्योंकि "विपवृक्षोऽिप संवर्धा खयं छेतुमसाम्प्रतम्" सज्जन पुरुष अपने हाथसे लगाये हुप विपवृक्षको भी स्वयं नहीं उलाड़ सकते हैं। यदि कहो कि, दैत्यादि हुएोंका नाश करनेके लिये वह ऐसा करता है, तो इससे अच्छा यही है कि, वह पहलेहीसे सोचकर दैत्यादि हुए-जीवोंको उत्पन्न नहीं करे। "प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरा-द्रश्योंन वरं" शरीरमें लगा हुई कीचड़की घोनेकी अपेक्षा तो यहां अच्छा है कि स्वशं हो न करे। यह कहांकी द्रिस्मता है, कि पहले राश्वसोंको वनाना और फिर उनके संहारके लिए यह करना।

यदि यह कहोंगे कि त्रिलक्षण प्रकारकी रचनादि होने-के कारण शरीरादि (सृष्टि)को उत्पत्ति किसी पक बुद्धिमान् कर्ताके होनेसे ही हो सकती है। जै से विल-क्षण रचनावाले नागरादिकोंकी रचना चतुर कारीगरके ही होनेसे हो सकती है, तो यह युक्ति भी सृष्टिकर्त्ता ईश्वरका अस्तित्व साधन करनेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि बुद्धिमान् कर्त्ताके विना दूसरी तरहसे भी विलक्षण विलक्षण रचनायें हो सकती हैं।

यह चेतनासे युक्त शरीर कर्मक्रपी कर्साका वनाया हुआ है। और इसमें जो शरीर इन्द्रियां और सुख दुःखादि हैं, वे सत्र इसकी विलक्षण प्रकारकी रचनाथें हैं। अभि-प्राय यह कि वुद्धिमान् कर्ताके विना केवल जड़खरूप कर्मीके द्वारा भी विलक्षण रचना हो सकती है। इससे तुम्हारा यह हेतु ठीक नहीं है कि सृष्टि एक विलक्षण प्रकारकी रचना है, इसलिये उसका कर्ता कोई विचलण वा बुद्धिमान् पुरुष होना चाहिये।

प्राणियों के अंगों में तथा उपांगों में जो विचित्रता होती है, यह निर्माणकर्म (नामकर्मका एक भेद) रूपी कर्ता-की रचना कौशलसे होती है; ईश्वरकी कारीगरीसे नहीं होती है, ऐसा हम कहते हैं।

अतएव यह जगत् कर्मीकी चिचित्रतासे नानात्मक

अर्थात् यनेक प्रकारका होता हुआ अपने विश्वकर्मारूप कर्मसारथीको साधता है अर्थात् यह सिद्ध करता है कि जगत्का कर्ता कर्म है कोई पुरुप विशेष नहीं है।

विधि, खन्डा, विधाता, दैव, पुराकृत, कर्भ और ईश्वर ये सव कर्म क्षपी ब्रह्माके हें। पर्यायवाची नाम हैं।

आकाशादि पदार्थं किसी वनानेवाले विना मी सिद हैं अर्थात् उन्हें किसीने बनाया नहीं है स्वतःसिद हैं । इसमें मिथ्यामतके मदसे उन्मत्त हुए सुन्दिवादीका शिष्टपुरुषों (सज्जनों)को निग्रह करना चाहिये।

उपर्युक्त कथनसे फलितार्थ यह निकला कि यह सृष्टि अनादि निधन है अर्थात् न कोई इसको वनाने-वाला और न संहार ही करनेवाला है।

अांजतनाथपुराख ।

१म पवेमें मङ्गलाचरणमें चौवीस जिनस्तव, गौतम-सुधर्मादि भीर गुणभद्रादि पूर्ववर्त्ती पुराणकारींकी वन्दना, संवेगिनी और निवेंददायिनी धर्मकथा, वर्द्ध मानसे गुरु-परम्परामें पुराणप्राप्तिकथा, विपुलाचलमें महावीर और अजितनाधपुराणानुकमणिकाकथन, २ श्रेणिकसंवाद, ध्रेणिक-इन्द्रभृतिसंवादमें पुरागीपक्रम, ३ तिलोकरचना-विधान, ४ कुलकर् गणका जन्म और अभिधान, ५ ऋषम-की उत्पत्ति, सुमेरु पर ऋपमका अभिलेक, विविध उप-देश, लोकदुःखनाश, श्रमणधर्माश्रय, केवलोत्पत्ति, ६ आदि जिनका पेश्वर्य, नर और अभराधिवगणके जपर अध्यक्ता, सद्धर्मामृतवर्षण, कैलासमें ऋषमनाथका निर्वाणगमन, भरतका निर्वाण, ७ राजगणका कीर्तन, भूतिविक्रमनामक राजेन्द्रका तपोवनगमन, स्रविक्रमका वैराग्य, मोक्षसाधनका कारण, गुणसेनका माहात्म्य, विजयादि राजाओंकी दीक्षा और दोक्षायन्त्रनिरूपण, विजयका महाक्षोम, उनका अयोध्यागमन, ६ पुरुद्वेका चरित, १० पुरुद्वेवका माहात्म्य, ११ सिंहधूजका माहात्म्य, १२ सुकेतुचरित, जितशतुराजका राज्यलाभवर्णन, १३ उनका चंशाधिकार, १४ अजितजनोटपत्तिप्रसङ्ग, १५ जिन-गर्मावतार, १६ अजितनाथका जन्मामिषेक, १७ उनकी चेष्टा, १८ वाल्यकालमें उनका अपराजयकथन, तड़िद्रेग-तिरस्कार, अजितनाथका पराक्रमवर्णन, १६ जितश्रुका

वैराय, अजित्नाथका राज्यामिनेक, २० सगरका जन्म, २१ अजितनाथका निष्क्रमण, २२ सगरका हरण, प्रेम-श्रीका प्रेमवन्धन, २३ सगरकी जिनवन्दना, २४ सगरका विवाह, २५ सगरका मतिवर्द्धिनीलाभ, २६ सगरका श्री-मालालाभकथन, २७ महादेवका दीक्षावर्णन, २८ सगरका अम्युद्य, २६ अजितनाथका केवलकानलाम, ३० सगर-का स्त्रीरत्नलाम, ३१ सगरकी दिग्विजय, ३२ अशेष्या गमन, ३३ सगरसाम्राज्य, ३४ भगीरथका जन्त, ३५ समबश्रुतिव्याख्यान, ३६ जिनका विहारवर्णन और सगर-का जिनवन्दन, ३७ तत्त्वोपदेश, ३८ सद्धमं पदेशकथन, देवियोंका भवान्तरसम्बन्ध, ४० अजितनाथका निर्वाणवर्णन, ४१ सगरका निर्वेद, सगरका निकामण, ४२ सगरका केवलज्ञानरूप साम्राज्यलाम, ४३ चैत्या-ह्य, संयतचैत्य, सिद्धप्रतिमाद्शीन और सगरका निर्वाण-कथन, ४४ भगोरथका निर्वाण, जहुकी उत्पत्ति और माहातम्य, ४५ सम्भवजिनमाहातम्य, ५६ अन्य जिनगणका प्रसङ्ग, ४७ गुरुपरम्पराकथन ।

पद्मपुराख।

१ जिनस्तुति, कुशाप्रगिरिशेखर पर महावीरका अव-स्थान, इन्द्रभूतिके निकट श्रेणिकका प्रश्न, पद्मपुराणका मनुक्रमणिकाकथन, २ विलोकसंस्थान, ३ कुलकारिगण-को उत्पत्ति, संसारका दुःख देख कर भयवर्णन, ४ आदि-जिनऋषभकी उत्पत्ति, नगाधिपमें ऋषभका अभिनेक, विविध उपदेश, लोकका आर्त्तिनाश, श्रमणधर्मग्रहण, केवल-मानीत्पत्ति, विष्टपातिग पेश्वर्या, सर्वदेव और राजगणका आगमन, निर्वाणसुखसङ्गम, वाहुवल और भरतका निर्वाणवर्णन, द्विजातिगणकी उत्पत्ति, कुतीर्थकगणका पादुर्भाव, इक्ष्वाकुप्रमृति राजाओंका व शकीर्त्तन, विधा-धरका उद्भव, विद्यु इं ब्ट्रका जन्म, जयण्यका उपसर्ग और केवलज्ञानसम्पद्वर्णन, नागराजका संक्षोभ, विद्याहरण-तर्जन, अजितनाथका अवतार, पूर्णाम्बुद्दकन्यासुखवर्णन, विद्याधरकुमारका शरण और प्रतिसंश्रय, राक्षसराज-का रक्षोद्दीपलाभ, सगरकी उत्पत्ति, सगरका दुःख, सगरकी दीक्षा और निर्वाणवर्णन, ५ अतिकान्त महा-राक्षसगणका वंशकीर्त्तन, ६ प्रधान प्रधान वानरींका व शविस्तार, ७ तड़ित्केशका चरित, उद्धिका चरित,

अमरचरित, किष्किन्धार्मे अन्धसगीत्पत्ति, श्रीमाला-लेचरका आगमन, विजयसिंहवघ, अशनिवेगजका क्रोध, अन्धकका शत्नुलाम, पुरका विनिवेश, मधुपर्वतरीखर पर किष्किन्धपुरस्थापन, सुकेशनन्दनादिका छङ्काप्राप्ति-निरू-पण, निर्घातवश्रहेतु सुमालिका सम्पदवर्णन, विजयार्द्ध के दक्षिणइन्द्रका जनमकथन, सर्वविद्यालाभ, सुमालिकी पञ्चत्य प्राप्ति, वैश्रवणका जन्म, पुष्पान्तक-समावेश, केकयराजके साथ सुमालिके पुत्रका योग, चारु खप्नदर्शन, दशाननका जन्म और विद्यालाम, अनावृत्तका संझोभ, सुमालिका समागम, ८ रावणका मन्दीदरीलाम, कन्याओंकी परीक्षा, भानुकर्णकी चेष्टा, वैश्रवणपुतका क्रोध, यक्षराक्षस-का युद्ध, कुवेरकी तपस्या, दशाननका लङ्कागमन, पृक्ष-चैत्यदर्शन, हरिषेणका माहातम्य, त्रिजगन्द्र पण नामक करीन्द्रदर्शन, यमस्थानच्युति, अर्करजःकिन्किन्ध सङ्गम, चोरकतृ क कैकसेयीका खरालङ्काका संश्रय, चन्द्रोद्य-वियोग पर अनुराधाका महादुःख, विरोधितपुरधुंस, ६ सुग्रीव-श्रीरामसमागम, वालिकी प्रवज्या, अष्टापद-पर्वतका क्षीभ, वालि-निर्वाण, १० सुग्रीवका सुतारालाभ, साहस-गामीका सन्ताप, रात्रणका विजयाद पर्वत पर गमन, अनरण्यसहस्रांशुका वैराग्य, ११ मरुत्तयक्षनाश, १२ मधुका पूचजनमाख्यान, उपरम्भाका अभिलाप, महेन्द्रका विद्या-लाभ और राज्यलक्ष्मीक्षय, इन्द्रपराभव, १३ इन्द्रनिर्वाण, १४ दशाननका मेरुगमन, पुनः प्रत्यावत्तेन, अनन्तवीय का प्रश्न, दशाननका नियमकरण, १५ ह्नुमान्की उत्पत्ति, १६ अष्टापदपर्वत पर महेन्द्रके साथ प्रहादका अभिलाब, वायुका कीप, उसके प्रसादसे अञ्जनासुन्दरीका विवाह, दिगम्बर कर्तु क हन्यान्का पूर्वजन्मकथन, १७ पवनाञ्जना-सम्भोग, भूतादवीप्रविष्ट वायुका इभद्रशैन, विद्याधर-समायोग, अञ्जनाका व्रशनोत्सव, १८ हनुमान्का जन्म, दारुणदशामें वायुका पुत्रसाहाय्यमें स्वीकार, १६ रावण-का साम्राज्य, २० जैनउत्सेध, तीर्यङ्करादिका जन्मानु-कीर्त्तन, २१ वज्रवाहु और कीर्त्तिधरका माहात्म्य, २२ कोशलमाहात्म्यविवरण, २३ विभीषणव्यञ्जन, २४ दशरथ-कां जन्म, केकयको चरदान, २५ पद्मः (राम), लक्ष्मण, शबुघ्न और मरतका जन्मविवरण, २६ सीताकी उत्पत्ति, २७ मु च्छपराजयवर्णन, २८ लक्ष्मणका रत्नलाभ; प्रभाचक्र-

हरण, तन्माताका शोक, नारदाङ्किता सीताको देख कर उनको माताका मोह, सीता-खयम्बरवृतान्त, महाधनुकी उत्पत्ति, सर्वभूतशरण्यका दशरथको दीक्षाप्रदान, २६ दशरथका वैराग्य, ३० भामग्रङ्खसमागम, ३१ दशरथकी प्रवज्या, ३२ दशरथका वानप्रस्थाश्रय, सीतादर्शन, केकयी-के वरसे भरतका राज्यलाम, ३३ वैदेही, पद्म और सौमितिका दक्षिणकी ओर गमन, वज्रकणें(पाल्यान, वज्र-कर्णकी चेष्टा, कल्याणपत्नीलाभ, रुद्रभूतिका वशीकरण, ३४ चाळिखिल्य-विमोचन, ३५ अरुणग्राममें रामपुर-स्थापन, ३६ कपिलोपाख्यान, ३७ अतिवीर्याख्यान, ३८ अतिवीर्य`पुत्र पद्मचरित, वनमालाका सङ्गम, जितपद्मा-लाम, ३६ देशभूषण कुल्लभूषणका चरित, ४० रामगिरिका आख्यान, वंशपर्वत पर रामचैत्यादिका ४१ जटायुका उपाख्यान, ४२ दण्डकारण्यनिवास, पातदानफल, ४३ महानाग-रथारोह, ४३ सम्बूकवि नाश, ४४ कैकयोका वृत्तान्त, खरदूपणवध, सीता-हरण, रामका विलाप, ४५ सीतावियोगदाह, ४६ विरोधक आगमन, रत्नजिटका छेद, ४७ सुप्रोवसमागम, साहसगतिका निधन, ४८ आकाशमें सीतासंवाद, ४६ हनुमत्परस्थान, ५० महेन्द्रदुहिता समागम, ५१ गन्धर्व-कन्यालाम, ५२ हनुमान्का लङ्कासुन्दरीकन्यालाम, ५३ ह्युमान्का प्रत्यागमन, ५४ पद्मका छङ्कागमन, ५६ दोनींका वलपरिमाण, ५७ रावणनिग[°]मन, ५८ हस्तप्रदानकी कथा, ५६ हस्तप्रदान और नलनीलका पूर्वजन्मकथन, ६० हरि और पद्मका विद्या-लाभ, ६१ सुप्रीवभामएडलसमा-श्वास, इन्द्रजित् और कुम्मकर्णका सुरपन्नगवन्धन ६२ लक्षमणका शक्तिशेल, ६३ रामका विलाप, ६४ विशल्पका पूर्वजन्म, ६५ विशस्यका समागम, ६६ रावणदूतागम, ६७ रावणका जिनशान्तिगृहमें प्रवेश, ६८ जिनस्तुति, ६६ फाल्गुनाहिकनिरूपण, ७० देवताओंको लङ्काभवनमें प्राति-हार्यकल्पना, ७१ चहुरूपनिद्या, ७२युद्धनिर्णय, ७३ युद्धो-द्योग, ७५ चक्रोत्पत्ति, ७६ लक्ष्मणकर्तृक कैकसेयवध, रावणवध, उसकी नारियों और विभीषणका विलाप, ७७ प्रीतिङ्करोपाख्यान, ७८ केविकिका आगमन, इन्द्रजितादिकी दीक्षा और निष्क्रमण, ७६ सीतासमागम, ८० मयो-पाल्यान, ८१ नारदकी सम्प्राप्ति, भयोध्यामें प्रवेश, राम-

लक्ष्मण-समागम, ८२ तिभुवनालङ्कार-संक्षीम, ८३ गजकी पूर्वजन्मकथा, ८४ तिभुवनालङ्कार-समाधि, ८५ भरतका पूर्वजन्मानुचरित, ८६ भरतकी प्रवज्या, ८७ भरतका निर्वाण, ८८ श्रीचक्रधरका साम्राज्य, लक्ष्ण्यालिङ्गितवक्ष-का मनोरमालाम, ८६ मधुसुन्दरवध, छवणदैत्यकी मृत्यु, ६० मथुरामें उपसर्गं, ६१ शतुद्रजन्मानुकीर्त्तन, ६२ रम्मा-लाम, ६३ रामलक्ष्मणकी विभूति, ६४ जिनेन्द्रपूजा, ६५ रामकी चिन्ता, ६७ सीतानिर्वासन, ६८ सीतासमा-श्वासन, ६६ रामका शोक, सप्तर्पिका आगमन, वज्रजङ्घ-का परिताण, १०० छवणांकुशका जन्म, १०१ छवणां-कुशकी दिग्विजय, १०२ पिता (पद्म)-के साथ महायुद्ध, १०३ लचणांकुशका चेश्वय लाम, कैवल्यसम्प्राप्ति, १०४ रुङ्काभूषणका अमरागमन, वैदेहीका पातिहाय[°], १०५ रामका धर्मश्रवण, १०६ रामका पूर्वजन्माख्यान, कृतान्त-वक्तका स्तव, खयम्यरमें परिक्षोम, १०७ कृतान्तवक्तकी पूनज्या, १०८ लवणांकुशका पूर्व जन्मकथन, १०६ मधु-पाख्यान, ११० कुमारगणका श्रमणधर्म और निष्क्रमण-कथन, १११ भामग्डलका परलोक, ११२ हनुमान्का निर्वेद, ११३ हनुमान्का निर्वाण, इन्द्रपुरसंवाद, रामपुद्ध-की तपस्या, ११४ पद्मका दारुण-शोकवर्णन, ११५ ऌक्ष्मण-वियोग और विभीषणका संसारस्थिति वर्णन, ११६ लक्ष्मणका संस्कार और कल्याणमिलका देवागम, ११७ वलदेवका निष्क्रमण, ११८ दानपुसङ्ग, ११६ पद्म (राम)-की कैवल्योत्पत्ति, १२० वलदेव (राम)का सिद्धिगमन (निर्वाण) (श्लोकसंख्या १८८२३ ।)

वान्तिनाथपुरागा।

१ जिनवन्दना, सुधर्मादि गुरुगणका नमस्कार और पूर्ववर्त्ती कवियोंको पूर्शास्त, प्रन्थारम्भमें वक्तश्रोतृलक्षण, जीवाजीवादि सप्ततत्त्वकथन, २ शान्तिनाथोत्पत्ति-प्रसङ्गमें विजयाद्ध पर्वतके मानादि, तिन्नकटवर्त्ती नगरसंख्या और नगरमानकथन, शान्तिनाथका जन्म, अभिषेक और खर्य-प्रमा सहिववाहवर्णन, ३ अमिततेजका राज्य, प्रजापतिका जलन, जटीको मुक्ति, श्रीविजयका विश्वविनाशवर्णन, ४ अमिततेजका धर्मप्रश्नकरण, ५ श्रीपेणराजकी उत्पत्ति और चरितकथन, ६ विचुलदेव और वलदेवका आख्यान, ७ अनन्तवीय का दुःस और अन्युतेन्द्रका सुक्रवर्णन, ८

अंतन्तवीर्यंका सन्यंक्त्वलांम, वज्रायुंघ और चक्रवित्तित्व-प्राप्ति, ६ उनका इन्द्रभउपक्रपक्षवणंन, १० मेघरथ नृपति-की उत्पत्ति और चरितवणंन, ११ मेघरथकी वैराग्यो-त्पत्ति और दीक्षाप्रहण, १२ शान्तिनाथका गर्भावतार-वर्णन, १३ शान्तिनाथका जन्म और देवताओंका आग-मनवर्णन, १४ शान्तिनाथका जन्माभिषेक और राज्य-लक्ष्मीवर्णन, १५ शान्तिनाथका निष्क्रमण और ज्ञान-कल्याणक द्यवर्णन, १६ शान्तिनाथका समवसरण, धर्मोपदेश और निर्वाणवर्णन। (अ्ग्रोकसंख्या ४३७५।)

श्रिर्हिनेमिपुराग (हरिवंश)। १ मङ्गलाचरण, भ्रुषसेम-लोहाचार्यं प्रभृति पूर्वा-चार्व कथन, २ विदेहान्तर्ग त कुएडपुराधिपति सिद्धार्थ श्रीसमुद्रका पुतरूपमें जिनका कथन, इन्द्रादि देवगणकर क जिनाभिषेक वर्ण न, जिनका वर्द्ध मान नामकरण, तीस वर्ष में उनको वैराग्योत्पत्ति, वनगमनपूर्वक द्वादश वर्ष-व्यापी तपस्या, घातिसंघातिक मैविनाश, केवलज्ञानप्राप्ति, षट्षष्टि दिवस मौनावलम्बन पर विहरण, राजगृह-गमन, वहां रस्तिंस्सिनोपिवष्ट जिनेन्द्रके समीप चन्द्र-लोकस्थित देवगण, नागकुमारगण और किन्नरगन्थर्वादि-का समागम, तीर्थार्थं प्रकाशके लिये जिनेन्द्रके समीप गौतमका अनुरोध, वद्भैमानकर्षं क जिनधर्मार्थंप्रकाश, तत्-प्रसङ्गर्मे संस्थान, समवाय, आचाराङ्क, सूतकृत, प्रश्नप्ति-इदय, ज्ञातधर्मैकथा, श्रावकाध्ययन, अन्तकृत्द्शा, अनुत्तर-दशा, प्रश्नवाकरण, विपाकसूतार्थं और दृष्टिवादार्थंकथन, भनन्तर सवींका जिनधम्मग्रहणपुरःसर ख ख स्थानमें प्रस्थान, मगधमें जिनगृहावली निर्माणादि कथन, धर्म-तीर्थं प्रवर्त्तन, ३ काशि-काञ्चि-द्रविड्-महाराष्ट्रगान्धारादि-सभी देशोंमें जैनधर्मप्रचार, जिनमुखोद्गत मागधोभापामें उपदेश सुन कर जनताका शान्तिलाभवर्णन, जिनके घर्म-शासनप्रसङ्गर्मे सिद्धासिद्ध भेदसे दो प्रकारका जीव, पञ्चविध झानावरण, नवविध दर्शनावरण, अद्यविशति-विध मोहनीय, चतुर्विध आयु, चत्वारिशत् नाम, द्विविध गोत और पञ्चविध अन्तराय कर्मकथन, कर्मविधुंशमें जीवका सिद्धत्वकयन, सिद्धगणका सम्यक्रूपसे परमा-नन्त-केवलकान और केवलदर्शनादिकप अप्रविधगुणकथन मीहोद्य और नाशोपशंमद्भव अवस्थातययुक्त तिविध

असिद्धनिरूपण, मिध्याद्रस्टि, आसादन, सम्यङ्मिध्यां द्रुष्टि, संयतासंयताश्रय, संयत उपशान्तकपाय, सम्यक ट्रप्टिश्लीणकपायादि रूप असिद्धका गुणस्थाननिरूपण, सुखदुःख-प्राप्तिकारणकथन, भव्याभव्यमेद्से जीवींका है विध्यक्यन, कुद्रप्टि-माया-लोभ प्रभृतिका फलक्रथन, मधुमांसादि वर्जनमें सुमानुष्यप्राप्ति, कुकर्मद्वारा कुमानुष्य-प्राप्ति, इन्द्रियनिग्रहफल, कन्द्रपरिञ्जित कन्द्रपनामक देव-ताओंको अभियोगिता और क्लिप्टत्वादिकथन, सम्यक्-दर्शनका दुर्छभत्वकथन, उसके अभावमें संसारसागर निमञ्जन, पूर्वीक् सम्यक्तव-परमानन्तादिका कारणकथन, संझेपमें सनत्कुमार-महेन्द्र-शुक्त-महाशुकादि कल्पविविरण, दिवश्च्युतिगणका गतिकथन, पूचजनमाभ्यस्त शुभषोड्श-कारणोंसे जिनशासनानुष्ठान द्वारा निर्वाणप्राप्तिकथन, जितशबुनामक श्रेणिकराजके निकट गौतमका हरिवंश की सँन, ४ अलोकाकाश शन्दनिवक्ति, वहां जीव और पुरलका अवस्थानाभावकथन, वहां धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायादिका गतिस्थानाभाव, आलोकाकाशमध्य लोकका स्थितिकथन, ५ लोकशब्दनियक्तिं, लोकका वेतासन-मृदङ्गमञ्जरीसदृश अकितिकथन, वहाँ चतुद्श रज्जुविभागादि कथन. लोकका घनवातादि तिविध वायु-गणका परिमाणादिकथन, ६ अधीलीकसंस्थान, नरकादि-का वृत्तान्त, तिर्याक्लोकवर्णन प्रसङ्गमें द्वीप-सागरदेशादि-निरूपण, उनका संस्थान भौर परिमाणादि कथन, ऊर्ड्-लोकवर्णन, नक्षत्रलोक भौर तदितर ज्योतिकादिका धरा-तलसे दूरत्वादि निरूपण, सिद्धलोककथन, ७ वर्णगुन्धा-दिहीन कालखरूपकथन, मुख्य गौणमेदसे द्विविधकाल-निरूपण, समयवृत्तिकमसे कालका विविधत्वनिरूपण, निश्वास-उच्छ्वास-प्राण-तोक-छवादिका छक्षण, परमाणु-लक्षण, परमाणु पढंशत्वकथन, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श द्वारा पूरण और गलन हेतु परमाणुका पुद्रलास्या कथन, सुभद्र-बुटी-रेणु-वालाप्र-यूका-यव-अंगुल्यादिका अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीका लक्षण, अनुलोमकामसे अवसर्पिणीका सुखमादि षट् कालस्वनिक्रपण यथा— सुलमा सुलमा सुलमा, दुलमा सुलमा सुलमा, इसके विलोममें उत्सर्पिणीनिक्रपण, अवसर्पिणीके प्रथमविकाल-भारतभूमिका कल्पवृक्षभूपितभोगभूमित्वाहि कथन,

तदनन्तर दुःखमा-अतीतमें परवर्ती दोनों कालमें गङ्गा और सिन्धुनदीके मध्य तथा दक्षिण भारतमें कुलकरोंके उत्पत्तिकथन-प्रसङ्गमें पहले श्रुतिनामक कुलकरका राज्य-शासनादि वर्णन, उसके पुत्र सन्मति नामक कुलकरका विवरण, पीछे यथाक्रमसे क्षेमङ्कर, क्षेमन्घर, सीमन्धर, यथार्थ, विवुत्रवाहन, चक्षुप्यत्, यशसी, अभिचन्द्र, महः-देव, प्रसेनजितादि चतुर्दश कुलकरोंका उत्पत्त्यादि कथन, ८ आदिजिन ऋपमके जनमादि कथनप्रसङ्गमें दक्षिण नाभि-राज, उनको पत्नी मरुदेशकी फथा, मरुदेवके गर्भसे ऋपम-देवका जन्म, इन्द्र-शची प्रभृति देवदेवी कर्नु क मरुदेवीकी सेवा, भगवान् जिनदेव वृषद्धपमें उनके उद्रमें मुखप्रवेश कर रहे हैं मध्देवीका इस प्रकार सुखस्तप्रदर्शन, जिनदेव-का जन्म, तीर्थङ्करदर्शनार्थ सुरासुरोंका आगमन, साकेत-नामनिक्ति, शचीका जिनस्तिकागारमें प्रवेश और तत्-कर्तृक जिनदेवको सुमेरुशिखर पर आनयन, इन्द्रादि सुरासुरकर् क जिनदेवका जन्माभिवेक, इन्द्रकर् क वज्र-सूचि द्वारा जिनका कर्णवेध-सम्पादन श्रीर उनके कर्णको रत्नकुण्डलद्वारा अलंकतकरण, जिनका 'ऋषम' ऐसा नामकरण, पौलोमीकर्तृक जिनदेवको फिरसे अयोध्या-नगरीमें आनयन और उनके पिताका आनन्दवर्द्धन, ६ जिनदेवका वाल्यकीड़ा, यौवनमें नन्दा और सुनन्दा ना क दोनों कन्याका पाणिब्रहण, नन्दाके गर्भसे भरतपुत और ब्राह्मी नामकी कन्याका जन्मविवरण, पीछे सुनन्दा-क़े गर्भसे महावल नामक पुत्र और लोकसुन्दरी नाम्नी क्रन्याका जन्म, नन्दाके गर्भसे कमशः वृपमसेनादि ६८ पुर्तिका जन्मकथन, अनन्तर आदिनाथकर्तृक प्रजागणकी दुरवस्था पर द्यार्ट्ड हो क्षतत्राण, वाणिज्य और णित्यादि सम्बन्धकामसे क्षतिय, वैश्य और शूर्रूप तिविधवर्ण-विभाग करण, नीलाझण नाम्नी इन्द्रनर्तकीका नृत्य देख ऋवमको वैराग्योत्पत्ति और इन्ट्रादि वाह्य शिविकामें आरोहण कर सिद्धार्थ वनमें गमन, प्रयागक्षेत्रमें गमन-पूर्वक केशमुरहन, जिनदेवका ध्यानावलम्बन, दैववाणी-मुनकर समाधिस्य झिलयोंका भगवद्भियाय जान नम्नी-का कुश्-चीवर-वल्कङघारणवृतान्तकथन, षण्मास अन-्रण्तपूर्वक नग्न जिनदेवका पृथिवीपारस्रमण, एकदा सीम-प्रम नामक राजाके घर जिनदेवका गमन और राजाकर क

इक्षुरसं पूर्ण कल्रसदान प्रसङ्गमें दानतीर्थं ड्रुरोत्पत्ति, प्रति-प्रह, स्थानदान, पार्पक्षान्छन, पूजन, प्रणति, मनःशुद्धि, वाक्यशुद्धि, कायशुद्धि और एपणाशुद्धि इत्यादि नवविध दानकथन, पूर्वताल पुराधिपति वृपभसेनके शकट नामक महोद्यानमें न्यप्रोधतक्षके नीचे जिनदेवका ध्यानयोग आश्रयपूर्वक कैनल्यज्ञानप्राप्तिकथन, वह वृत्तान्त सुन कर भरतादिका वहां आगमन और जिनका आईतैश्वर्य द्शिन, प्रवज्याग्रहण कथन, १० जिनदेवका धर्मदेशना दया सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अभोहतादि पञ्च सुक्ष्म यतिधार तथा गृहस्थाधम निरूपण, उक्त विधर्मानुष्टानसे मोक्षोद्भव-कथन, श्रुतज्ञानसे वे सद भ्रम हस्रागोत्पत्तिकथा, हाद-ज्ञाङ्गनिरूपण, पर्यय-अक्षर-पद्-संधात-प्रतिपत्ति-अनुयोग प्रापृत-वस्तु-पूर्ववाट् इत्यादि कमसे.श्रुतज्ञानविकल्पनिक पण, वर्णपदादिका अवान्तरभेदप्रपञ्च, पर्यायाङ्गमें दृष्टि-बाद-प्रदर्शन, क्रियाद्वरिदवाद, नियति सभाव-काल, दैव और पौरुपादि हारा ख-पर नित्यानित्यभेदमें प्रत्येक जीवाजीवादि नव पहार्थं का विश्वतिप्रकार मेदकथन, इस प्रकार कुछ १८० प्रकारका भेदकथन, तिरसङ प्रकारका कियाचादद्वािटनिकपण, विनयद्वाटिबादका ३२ मेह, यथा— जनक-जननी-देवनृपति-ज्ञाति-बाल-बृद्ध और तपस्ती-में मन-चचन-काय और दामरूप चतुर्विध विनयकार्य, तथा परिकर्म, स्ट, अनुयोग, पूर्वगत, चूलिका प्रभृति परिकर्मादि मेदकथन पूर्वक चन्द्रसूर्य-जम्बूहीप-होप-सागरादिके संस्थापनादिका निरूपण, अक्षरपदादि-निरू-पण, श्रोतृगणका श्रावकश्चम दोक्षाकथन, ११ जिनपुत भरतके दिन्यिजयवर्णनप्रसङ्गमं गङ्गासागरप्रदेश, दाक्षि-णात्य, सिन्धुदेश, हिमालय, वृपसगिरि, म्लेच्छंदेशविज-यादि कथन, भ्लेच्छराजादि-कर् क भरतको कन्यादान, भरतके आदेशसे उनके भ्रातृगणका ख ख राज्य त्यागपूर्वक जिनदेवका शरण-प्रहण और प्रश्नंत्राकथन, भरतका ऐध्व-र्यादि वर्णन, भरतमित्र जय नामक हस्तिनापुरपतिका अपनी भार्याके साथ जिन्धर्मभवणपूर्वक प्रवत्याप्रहण, वृषभसेन-इंद्राय-कुम्म-शृह्युमदन-देवशम नणघर-धनदेव-नन्दन प्रश्नृति ८४ गणिगणका नामकथन, इनके मध्य वृपमका ही अपर नाम आदि जिनदेव, कैलासगिरि गमन पूर्वक गणिगणवेण्यित हो ऋषमका सिद्ध स्थान गर्मनी

देवगणका गन्ध्रयु प्रवूपादि द्वारा जिनपूजा कथन, १२ भरतकर् क निज पुत आदित्ययशाको राजपद पर अभि-पेक, भरतका जैन होझाप्रहण, सपुत्र यशश्रुतिको राजपद्दपर अर्मिषेक पूर्वक आदित्ययशाका निकामण और निर्वाण-वर्णन, वल-खुवल-अतिवल-महावल-अमृतवल मभृति चतुदश लक्ष संख्यक आदित्य वंशीय गणका राज्यत्याग बीर निर्शागवाधिकथन, जिनकुनार वाहुवलके बीरससे सोमयशाको उत्पत्ति और उससे सोमवं शप्रवर्त्तन, सोम-यशांके पुत्र महाबल, महाबलके पुत सुबल, सुबलके पुत भुजवल इत्यादि पश्चशत कोटिलश सोमव शीय गणका निर्वाण, उप्रादि कौरवोंका निर्वाण और नामके वंशीय खेवरनायं रह्न अब्र रह्मरथ प्रभृतिका निर्वाणप्राप्तिकीर्त्तन, १३ सगर नामक चकघरका पप्टिसहस्र पुतजन्मकथन, दम्भपूर्व क उनका पृथिवी खनन और उससे कुपित नाग-राजकर्नु क उन्हें भस्मीकरण, यह सुन कर सगरको जैन-दीक्षा और मोक्षपृति, सगरके अपर पुत सम्मवनाथ और सम्मवके पुत्र सभिनन्दन, इसी पुकार उनके पुत्र सुमतिनाय, पःग्रिम, सुपार्थ्व, चन्द्रपुम, पुष्पदन्त और शीतल जिनेन्द्र इत्यादि इक्ष्वाकु व शवणैन, १४ वत्सदेशमें कीशाम्बीराज सुमुखको कथा, सुमुखका वसन्तकालमें हस्तियान पर कालिन्दीपुलिनमें गमन, वसन्तोत्सवमें एक सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनी दर्शन, इसके छिपे सुमुखराजका विरह, यह वृत्तान्त सुन कर मन्त्रिगणकर्तृक वनमाला नाम्नी उस कंन्याको आनयन, वनमालाके साथ राजाका समागम, उसके गर्भसे हरिका जन्म, हरिके पुत्र मोदागिरि, मोदा-गिरिके पुत्र हेमिगिरि और हेमिगिरिके पुत्र सुनय इत्यादि हरिव शवर्णन, १५ हरिव शोय सुमित-राजाख्यान, राज-महिषी पद्मावतीका शुभस्वप्रदशन, उसके गर्भसे माघशुक्रा द्वादशो श्रवणानक्षत्रमें जिनका जन्मवृत्तान्त, पुरन्दरादि देवगणकर्तुं क हिमालय अधित्यका पर जिनका जन्मा-भिषेक, कुशाप्रपुरमें जननीको गोदपर जिनेन्द्रका मुनि-सुवतं ऐसा नामकरण, सुव्रतका पाणिग्रहण, जलधरको देख कर विनश्वर शरीरवायुके सम्बन्धमें उपदेश, सुव्रत-का राज्यामिपेक और, उनके पिताकी समाधि, सुव्रतका निर्वेद, छः दिन उपवासपूर्वक उनका मिक्षार्थं वहिर्गमन, राजगृहनिवासी वृषभद्त्तका भिक्षादान, तदुपलक्षमें पुष्प-

वृष्ट्यादि शुभकल्याणवर्णन, निजपुत दक्षको राज्यप्रदान पूर्वक सुव्रतका निकामण और निर्वाणकथन, दक्षके औरस और उनकी पत्नी इलाके गर्भसे ऐलेय नामक पुत और मनोहरी नासी कन्याका जन्म, एकदा दक्ष प्रजापितके नवयौवना कन्याका रूप देख कर विक्षिप्त हृदय होनेसे इलाका तत्प्रति कोध और इलाका पुत्रके साथ दुर्गम प्रदेशमें गमन, ऐलेय कर्न क नर्मदाके किनारे माहिष्मती नामक नगरी निर्माण और तत्पुत कुनिमकी राज्यदान-पूर्वेक ऐछेथका तपस्याके लिये अनगमन, कुनिमकर्त्रक वरदाके किनारे कुरिडन नामक नगर स्थापन और पुलोम पुतको राज्य दे कर वानग्रस्थत्रहण, पुलोमके पुत चरम-पौछोमकर्त्व के रेवाके किनारे इन्प्रपुर और वनके छड़के महीद्त्तकर्तृक कुलपुरस्थापन, अनन्तर पुर्तादि क्रमसे मत्स्य, अशोधन, साल, सूर्य और देवदत्तादिका वृत्तान्त, दैवदत्त्रपुत विधिलानाथका विदेहाधिपत्य और उनके लड़के हरिपेग, शङ्क और अभिचन्द्रादिका विवरण, अभि-चन्द्रके पुत्र वसु, उनके पुत्र वृहद्वसु महावदु बादि दश-वसुका विवरण, वेदवित् श्रीरकदम्बके पुत्रं पर्वत और शिष्य वसु तथा नारद, वसुराजको सभामें पर्वत और नारदका शास्त्रार्थप्रकाश, नारट्के कर्मकाएडीय वेदसाग-की निन्दा और कर्ममार्गसमर्थनमें पर्वतको पराजय, वसु-राजका पर्वतके प्रति पक्षपात, इस कारण उनका अधः-पतन-कथन, १८ मधुराधिप यदुकी उत्पत्तिकथा, उससे सूर और सुवीरका जन्म, स्रसे अन्धकवृष्ण्यादि और मुवीरसे भोजकादिका उद्भव, अन्धकवृष्णिकी समुद्र-विजय और वसुदेवादि दशरुत तथा कुन्ती और मन्द्रा नामक दोनों कन्याकी जन्मकथा, भोजकवृष्णिसे उप्रसेन, महासेनप्रभृति पुत्रका जन्म, सुवसुके वंशमें जरासन्धका उद्भव और उनके पुत कालयवनादिकी जनमकथा, सुप्र-तिष्ठ नामक सुनीश्वरकर्त्तृक राजग्रहागत वृष्णिगणके सामने निमभापित धर्मदेशना, यथा-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्या और निम्र् च्छां साधुओंके ये पांच महा-व्रत, कायिक, वाचिक और मानसिक मेदसे तिविधगुप्ति, सर्वानिष्ट्रप्रत्याख्यानक्षप समिति, हिंसादि निवृत्तिक्षप अणुवत, दिग्देश अनर्थदर्जादि निवृत्तिहरूप गुणवत, अतिथि पूजादि रूपवत, मांस-मद्य-मधु-घूत-चेश्यादि त्यागरूप

नियम ये सव व्रतगृहियोंके अभ्युद्यका साधक, अनन्तर अनेक प्रकारके जीवोंका कर्मवशसे कुयोनिप्राप्ति,पृथिवीसिट लादिमें जीवविभागसंख्या और एकेन्ड्रियसे पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जोवगणका शरीरायुःप्रप्ताणादि कथन, अन्धकवृष्णि-का पूर्वजन्म, समुद्रविजयके हाथमें राज्य और वसुदेवकी समर्पणपूर्वक अन्धकवृष्णिके सुप्रतिष्ठका शिष्यत्व खोकार, मधुरामें उप्रसेनको समिषिक करके भोजकवृष्णिका निर्प्रन्थ व्रतप्रहण, एकदा समुद्दविजयके आदेशसे वसु-देवका रमणीय उद्यानमें अवस्थान और एक कुब्जाकर्तुं क उनका अधिक्षेप, राजाके प्रति उनकी वीतश्रदा और इमशानमें गमन, अग्निप्रवेशप्र दर्शनपूर्वक छन्नवेशमें विजयखेर नामक पुरमें गमन, वहां गन्धर्व-विद्याद्यवीण सुप्रीव नामक झिंत्रयको सीमा और विजयसेना नामनी कत्याका पाणिप्रहण, विजयसेनाके गर्भसे अकरका जन्म-द्रानपूर्वक उनका वन-गमन, अनन्तर दो विद्याधर कुमारों-के यलसे कुअरावर्त्त नामक विद्याधरपुरमें गमन, वहां श्यामा नाम्नी विद्याधर कुमारीका पाणिश्रहण, अङ्गारक नामक किसी विद्याघर शत्रुकत्त क उन्हें भालिङ्गनपूर्वक-आकाशमार्ग में हरण और चम्पानगरीमें यक्षकुमारीको थानयन, चारुदत्तके साथ उनकी मिलता, चारुदत्तके निकट गन्धर्वविद्या प्रकाश और गन्धर्वसेना नाम्नी राज-कुमारीका पाणिपीइन, २०-२१ उज्जयिनोनाथ श्रीधर्म-राजके वलि, वृहस्पति, नमुन्ति और प्रहाद नामक मन्ति-चतु रयका पूसङ्ग, मन्त्रिचतुष्टयके साथ अकम्पनादि जैनमुनिद्दीनार्थं राजाका विहरुद्यानमें आगमन, उनके संसर्ग से राजाका निर्वेद, पद्म नामक पुत्रके हाथ राज्य-भार .अर्पणपूर्वक उनका विष्णुकुमारके निकट जैनदीक्षा-प्रहण, पद्मकतृ क विल नामक विपृको सप्ताह-राज्यपुदान, वलिके निकट विष्णुकुमारका आगमन और विपादभूमि-पार्थना, वलिकत्तृ क पादतय-मूमिदान, विष्णुकुमारका महाकाय धारणपूर्वक एक पाद्में ज्योतिश्चक, द्वितीय पाद्में मनुष्यलोक और तृतीय पाद्में अवकाश अधिकार, देवगणकर्चृ क प्रसादन और विष्णुकुमारका महाकाय-संवरण, उनके आदेशसे देवगणकत्रुंक विलका वन्धन और देशसे निर्वासन, चारुव्तका चरित्र और गणिका कलिङ्गसेनादुद्दिता वसन्तसेनाका विवरण, २२-२४

फाल्गुनोत्सवमें गन्धव सेनाके साथ वसुदेवका पार्ध्व-नाथ पृतिमापूजनार्थं उस मन्दिरमें गमन, वहां नीस्रोत्पल-दलस्यामा एक कन्या देख कर वसुदेवका मनोविकार, यह देख कर गन्धर्व सेनाकी ईर्षा और उन्हें जिनेन्द्रके निकट छा कर स्तोल द्वारा भगवान्का प्रसादन, पीछे लगृहमें ला कर पियाके पादतलमें पतित हो कर उन्हें सान्त्वना, त्रसुदेवके निकट एक वृद्धा विद्याघरीका आग-मन और तत्कनु क उप्रभोजादि अनेक झितय राजाओं-की जिनमक्ति और तपस्यादि वर्णन, मनु-मानव कौशिक-गैरिक-गान्धार-भूमितुएड-धादित्य-ग्रोमचर-मातङ्गप्रधृति विद्याचार्यं, गौरीप्रकृषि रोहिणो, अङ्गारिणी महागौरी महाश्वेता माथूरो कालमुखो आदि विद्या, दैत्य-पक्षग-मातङ्गादि भेद्से अष्ट त्रिद्याधर और उनका विद्यानाम-कथन, 'विनमिकुछतिछक विद्याघरपति मातङ्को गोनजा हुं, नाम मेरा हिरण्यवती हैं' इस प्रकार वृद्धा विद्याधरीका परिचयदान और मदङ्कलालिताको प्रीतिके लिपे भागमन-कारणकथन, वसुदेवको पानेके लिये उस विरहिणी विद्या-धरीका अवस्थावर्णन, एकदा निशाकालमें एक चेनाल-कन्याकर् क वसुदेवहरण, श्रीमन्त नामक विद्याघराधि-ष्टित गिरिवरमें आनयन, वहां वसुदेवकर्तु क नीलयशाका पाणिप्रहण और उसका जन्मविवरण-श्रवण, नीलकएड नामक विद्याधरकक्^रक नीलयशा हरण, वसुदेवका दीन-वेशमें देशभ्रमण, सोमश्रो नामक कन्याके साथ वसुदेवके विवाहप्रसङ्गर्मे सगरपुरोहितहत सामुद्रिक शास्त्रागम और नरका शुमाशुभ लक्षण-निरूपण, अनन्तर वसुदेवका तिल-वस्तुपुरमें गमन और वहां राश्चसवधान्तर पञ्चशत-कन्याका पाणिप्रहण, पीछे वसुदेवका वेदसाम नामक पुरमें गमन और कपिछश्चिति नामक राजाकी हत्या करके उसको कन्या कपिलाका पाणिप्रहण, उसके गर्भसे कपिल नामक पुत्रजन्म, अनन्तर वसुदेवका शालिगुहापुरी-जयपुर-मद्रिलपुर-इलावद्ध नपुरमें जा कर वहांकी राजकुमारियों-का पाणिप्रहण, २५-२८ इलावर्ड नपुरराज दधिमुलके साथ वसुदेवके संवाद्प्रसङ्गुमें कौरववंशीय कार्तवीर्यका कामधेनुके लियं जमदिनवध, पीछे परशुरामके हाथसे कार्त्तवीय का निपातन, परशुरामक तु क सप्तवार पृथिवी-निःश्वतिय-करण, गर्भवतीका कात्तवीर्याद्ध नमहिषीका

जामदान्यके भयसे कौशिकमुनिके आश्रममें परायन, वहां सुभौम नामक पुतजन्म, सुभौमकत् क चक्रसे जाम-इन्त्यका शिरश्छेदनपूर्वक लिसप्तवार पृथिवीको अब्राह्मण-करण, मदनवेगाके साथ वसुदेवका विवाह, उसके गर्भसे अनावृष्टि नामक पुत्रजन्म, मद्नवेगाका रूप धारण कर सूर्पनखाका वसुदेवको हरणपूर्वक अन्तरीक्षमें गमन, भद्राकी सहायतासे उनका परिवाण, कन्यापुरमें गमन-पूर्व क वेगवती नासी विद्याधर-कुमारीका पाणित्रहण, तत्प्रसङ्गमें निमवं शजात विद् युद् ं प्रका वृत्तान्त, विदेह-नगरवासी सञ्जयन्त नामक मुनिचरित, श्रावस्तीपुरराज पणीपुत्रकी कन्या प्रियं गुसुन्दरीके साथ विवाह करनेकी इच्छासे वसुदेवका अपने वाह्योद्यानमें जा कर अवस्थान, । वहां विप्रमुखसे मृगध्यज-महिबोके उपाच्यानप्रसङ्गमें नास्तिक . और एकान्तवाक्षे अलकायुर-राजमन्त्री हरि-श्मश्रुका विवरणश्रवण, २६-३२ श्रावस्ती नगरमें काम-देवगृह नामक जैनमन्दिरके नामकरणप्रसङ्गमें कामदत्त-श्रेष्ठीकर्त्तृ क स्थापित रतिकाम-प्रतिमार्वृत्तान्त. कामदत्त-के पुत्र कामदेव और उनको कन्या वन्धुमतो, प्रतिदिन, कामदेव-गृहमें जा कर वसुदेवकी रतिकामकी पूजा और सन्तुष्ट कामदेवकर्ज् क बसुदेवको वन्धुमती सम्प्रदान, यह वृत्तान्त सुन कर. एणीयुत राजकन्याको वसुदेवके पृति अनुरक्ति, पीछे उसके साथ वसुदेवका विवाहयणंन, अनन्तर म्लेच्छराजकन्या जराका पाणिग्रहण श्रीर जरा-कुमार नामक पुत्रोत्पादन, अरिष्टपुर-राजकन्या रोहिणोका स्वम्बर, स्वयम्बरसभामें समुद्दविजय जरासन्धादि अनेक राजांओंका आगमन, वसुदेवकी मात्वेशमें यहां उपस्थिति, उनके गलेमें रोहिणीका चरमाल्यदान, इस पर समुद-विजयादि राजाओंके साथ वसुदेवका तुमुळयुद्ध, वसु-देवका जयलाभ, वसुदेवका परिचय पा कर समुद्रविजय-कर्तृक भ्राताको सालिङ्गन, रोहिणीके गर्भसे रामका जन्म, राम और भार्याके साथ वसुदेवका साकेतनगरमें आगमन-महोत्सववर्णन, ३३-३४ धर्जुर्विद्याविशारद सिशिप्य कंसादिके साय वसुदेवका जरासन्धजयार्थ राज-गृहमें गमन, 'जो जीवित कुम्भीरको पकड़ कर छा सकेगा, उसीको कन्या दूंगा'इस पूकार सिहपुरराज सिहरथकी घोषणा सुन कर चसुदेवका कंसके पृति चीर्पताका-Vol XIV. 18

घारणका आदेश, गुरुके आदेशसे कंसकर्त क सिंहरथ-वन्धन और जरासन्ध्रुरमें निक्षेप, कंसका जन्मवृत्तान्त, कोशाम्बीवासिनी एक मद्यकारिणीकी यमुनाप्रवाहमें मञ्जुषाके मध्य कंसञ्जाति, अयत्यनिर्विशेषमें प्रतिपालन, जरासन्धका वह मञ्जुवा-आनयन और मञ्जुवासंलन-लिपि पड़ कर कंसको उप्रसेन और पशावतीके पुतके द्वैसा अवधारण, जरासन्धकर्तृ क कंसको खक्रन्या जीव-ध्यापुदान, कंसका मथुरामें आगमन और अपने पिता उप्रसेनको कारागारमें निक्षेप करके राज्यप्रहण, पीछे वसुदेवको हा कर गुरुदक्षिणासक्तप देवको नाझी अपनी भगिनीको समर्पण । 'वसुद्देवपुतके हाथ पतिपुतकी मृत्यु होगो। इत्यादि कंसके पृति जरासन्यकुमारीकी उत्ति, यह सुन कर वसृदेवके निकट पृतारणापूर्वक प्रसृतिके समय देवकीको अपने घरमें रखनेकी प्रार्थ ना, इस पर वसुदेवका सम्मतिदान, देवकी. वसुदेव और कंसके अव्रजका अतिमुक्त नामक मुनिके आश्रममें जा कर ख ख अवस्था-निवेदन, वहां उपसेनादिका जन्मादि कथन, देवकीका आश्वास, देवकीके गर्भजात नृपदत्त-देवपाल-अनीकदत्त शतुधादि छः पुत्नींका कंसके हाथसे अकाल-मृत्युकथन, देवकीके सप्तम गर्भमें शहु-पद्म-गदासिधारीका जन्म, तत्कर्क कंसादिका विनाश और पृथिवीभीग, जिनेन्द्र अरिएमेमिके चरित प्रसङ्गर्मे महोपवासविधि, सर्वतीमद्र नामक तपीविधि, विलोकसार नामक तपी-विधि, वस्त्रमध्यतपोविधि, मृदङ्गमध्य, मुरजमधा, एका-वली, द्विसावली, मुकावली, रत्नावली, सनकावली और सिंहनिकोड़ित-तपोविधि, मेरुपंक्ति, विमानपंक्षि, शातक्रम् सप्तस्तम, अष्टाष्टम, नवनवम, दशदशम इत्यादि हार्विश पर्यन्त तपोविधि-कथन, अनन्तर एक कल्याणसे पञ्च-विंशति कल्याणादि नामधेय भावना, भाद्रशुक्का सप्तमीमें परिनिर्वाण, भाद्कुणपष्टीमें सूर्य प्रभ, तयोदशीमें चन्द्रप्रभ और कुमारसम्भव, सुकुमार, सर्वाथ सिद्धि प्रभृति विधि, तदनुष्टानसे वीथ ड्रुर प्रकृतिलाभ, ज्ञानादि पर्कपाय निवृतिसे विनय सम्पन्नता, शीलवतरक्षारूप अनितचार-कथा, जन्म-जरा-मरणामय-मानस शारीर-दुःखसे संसार भयक्ष सम्बेगकथन, इत्यादि प्रकारसे ज्ञानयोग, त्याग, मार्गनुगा वेश, समाधि, वैयावृत्य, बन्धन, अवृतिक्रमण,

कायोत्सर्ग, मार्गपूमावन, पूचचन और वत्सलतादि-लक्षण-कथन । ३५-३७ देवकीका यमज पुत्रजन्म, यमजके स्थानमें दो मृतपुत्र रख कर उन दोनोंको छे देवताओंका अलकागमन, कंसकर्िक उन दो मृत पुत्नोंको शिलातल-पर निक्षेप, इस पुकार कंसकतु क देवकीका षट्पुतनाश, देवकीका शुभ स्वप्नदर्शनपूर्व क गर्भघारण, भाद्रशुक्क-द्वादशी तिथिको शङ्खचकादि चिह्नित अधीक्षजका जन्म-पिताकर्तक वृषमस्तपत्रारी नगरदेवके निकट वळदेवको पूर्शन, भगवत्प्भावसे यमुनाकी श्लीणपुवा-हता और नदी पार करके चसुदेवका नन्दालयमें गमन, तत्कन्या प्रहण, उसके स्थानमें श्रीकृष्णकी स्थापनपूर्वक त्वरित पहले मथुरा आगमन, कंसका देवकोके स्तिका-गारमें गमन और उस कन्याको ग्रहण कर उसका नासिकाछेदनपूर्वक ताड्न, देवकीके नन्दालयमें गमन-पूर्वक श्रीकृष्णदर्शन, वलदेव और कृष्णका मधुरागमन-पूर्वक केशी, गज, चानूर, मुष्टिक पृमृतिका विनाश और कंश वश्वपूर्वक उपसेनको राज्यदान, रजताद्रिराज सुकेतु-की करवा रेवती और सत्यभामाके साथ रामकृष्णका विवाह, दुहितृशोकसे सन्तप्त हो जरासन्यका रामकृष्ण-निधन। ये कालयवन नामक पुतको पूरण, अनुलमाला नामक पर्वत पर रामकृष्णके हाथसे कालयवनवध, जरा-सन्ध कर्तृक तद्द भ्राता अपराजित पूरण, रामकृष्ण-के निकट अपराजितकी पराजय, ३८-४० कुवेरपती शिवाका सुखादर्शन, उसके गर्भसे अरिष्टनीम नामक जिनेन्द्रका जनम, इन्द्रादि देवगणकर्तृक उनका अभिषेक, सुमेवशिखर पर हा कर उनका नामकरण, महेन्द्रकृत जिनस्तीत, भ्रात्वध सुन कर कुद्ध हो चतुरङ्गवलके साथ जरासन्धका मथुरागमन, वृष्णिभोजादिका मथुरात्याग-पूर्वक पलायन, जरासन्धका तद्तुसरण, यादवगणका विन्ध्रागिरि पर आगमन और वहां जरासन्ध्रकर्रं क युद्धाह्वान, दैवक्रमसे वहां भरताद्व[°]वासीकर्नुक वहु चितासजा, यह देख कर 'यादवगण दग्ध हो रहे हैं' जरासन्धकी इस प्रकार कल्पना, यादवशिक्षित एक वृद्धा-कतृ क 'जरासन्धके भयसे याद्वगण चितामें दग्ध हो रहे हैं' इस प्रकार उकि, यह सुन कर दृष्टचित्त जरासन्ध-का राजगृहमें पूत्थागमन और याद्वींका शान्ति-

४१-४४ द्वारका-निर्माण, श्रीकृष्णका अनेक राजकन्याओंके साथ विवाह, नैतिकुमारका सम्वर्द्धन, नारदका द्वारका-आगमन और उसका जन्मविवरण, भैं दौर्ष पुर-निवासी सुमित नामक तापसका पुत हं, देवता-के अनुग्रहसे मैं अग्रमवर्णमें सरहस्य जिनागम अध्ययन करके आकाशगामिनी विद्या और संयमासंयम लाम किया हैं' इस प्रकार नारदका परिचयदान, नारदके उप-देशसे श्रोक्रणकर्त्युक रुक्तिमणीहरण, रुक्तिमणीमुखच्यु ताम्बूलको श्रीकृत्यके कपड़े में बंधा हुआ देख सत्यमामा-की ईर्पा, पीछे रुमिमणीको देवता जान उसके पद पर कुसुमाञ्जलिपदान भौर खसीमाध्य प्रार्थना, रुविमणीके पुवजनम, धृमकेतु नामक असुरकत् क पुबहरण और खदिरवनके मध्य शिलातल पर स्थापन, पीछे मेघकूउराज फाऊसः वरमहिषी कनकमालाकर्नु क वह शिशुप्रहण और पुत्रनिशिधमें प्रतिपालन, पुत्रका संवाद जाननेके लिये श्रोकृष्णका नारद्को प्ररेण, विदेहवासी सीमन्त्रर नामक जिनेन्द्रके निकट नारदका गमन, उनके मुखसे मधुकैटम-का प्रयुक्तशाम्बरूपमें जन्मान्तरप्राप्तिविचरण-श्रवण, सीम-न्धरके आदेशसे नारदका मेग्रकूट जा कर प्रधुस-दर्शन, सत्यभामाके पुत भानुका जन्म, नारदके उपदेशसे श्री-कृष्णकत्तृ क जम्बू पुर्त्वाधिपति जाम्बवकी कन्या जाम्ब् वती-का हरण और माता विष्वक सेनाके साथ उनका द्वारका-में प्रत्यागमन, श्रीकृष्णका सिंहलराजकन्या लक्ष्मणाके साथ विवाह श्रीरूणका सौराष्ट्र-गमन और नमुचिकी हत्या करके उसका भगिनी सुसीमाका पाणिप्रहण, इस प्रकार श्रोक्रणके साथ गौरी, पद्मावती और गान्धांरी आदिका विवाह एवं हलधरके साथ रेवती, वन्धुवती, सीता और राजिवनेतादिका परिणय-कथन, ४५-४६ युधिष्ठिरादिके जन्मकथनपूसङ्गमें कुरुवंशकोर्त्तन, आदि-जिनऋषभके समकालीन हस्तिनापुराधिप श्रेय और सोम-पूभका वृत्तान्त, सोमपूभपौत्न कुरुसे कुरुवंशपूवर्तन, अन-न्तर कमान्वय तद्ववंशीय कुरुचन्द्र, धृतिकर, धृतिमिल, धृतिदृष्टि, भ्रमरघोष, हरिघोष, सूर्यात्रोष, पृथुविजय, जय-राज, सनत्कुमार, सुकुमार, नारायण, नरहरि, शान्ति-चन्द्र, सुदर्शन, सुचार, चारु, पद्ममाल, वासुकी, वसु, वासव, रन्द्रवोर्घ, विचितवीर्घ, चित्ररथ, पारसंद, शान्तनु,

धृतकर्मा आदिका नामकथन, धृतपुत् धृतराजको अम्बा, अम्बालिका और अम्बिकाके पृति आसिक, उससे धृत-राष्ट्र, पाण्डु और विदुरका जन्त, सुयोधन, युधिष्टिर और अभ्वत्थामादिका जन्मादि कथन, निर्वासित-गृहदाहमुक पाएडवगणका वेशपरिवर्त्तनपूर्वक कौशिकपुरी, श्लेप्मा-तक और वसुन्धरापुरादि-गमन, युधिष्टिरका वसन्त-सुन्द्रीसमागम, पोछे उनका तथा उनके भ्राःगणका तिशृङ्गगुर-गमन-पूर्वक प्रभा, सुपुभा और पद्मादि राज-कुमारियोंका पाणिग्रहण, हिड्स्विदका संवार, पार्थगण-का द्रुपद्राज्यमें गमनपूर्वक द्रौपदीलाभ, चूतमें पराजित पाएडवींका बनवास, उन लोगींका रामगिरि-गमन और वहां रामलक्ष्मण-पृतिष्टित जैनालयादि दर्शन, पीछे विराट-नगरमें वास और उनका वेशपरिवर्तनादि वृत्तान्त, द्रीपदीलुब्ध कीचकका भीमसे परिवाण, अनन्तर कीचक-का तपश्चर्या निर्वाणलाम, द्रौपदी और कोचक-का पूर्वजनमन् तान्त, १७-५२ पृयु मचरितको र्जन, उनका विविध अलङ्कार कु उपनाग और कु पुमगयनादि लाम, सम्बरनिष्रह, तद्गुहस्थिता दुवं घनकन्या कनक-लताका वृत्तान्त, प्रयु झका कनकलता-लाभपूर्वक नारदी-पदेशसे द्वारका आगमनकालमें रामकृष्णके साथ युद्ध, नारदके मुखसे प्रयुद्धका परिचय और उनका द्वारकापुरी-प्रवेश महोत्सवादि वर्णन, साम्बका जन्मकथन, अकू-रादि श्रीकृष्णपुलके नामादि, प्राधान्यानुसार यदुकुल-कुमारोंमेंसे प्रत्येकका नाम और उनका साद्ध तिकोटि संख्याकथन, यशोदागर्भजाता कंसनिपीड़िता दुर्गाका पूर्वजन्मादि विवरण, जिन-सेवासे दुर्गाकी निर्वाणप्राप्ति, कृष्णके साथ युद्ध करनेकें लिये ससैन्य जरासन्धका हारकागमन, यादव और मागधपक्षीय प्रत्येक वीरका नाम और महासमर-वर्णन, रूप्णकर्त्तृक जरासन्य वध-वर्णन, जरासन्धक़े नाशके लिये द्रोण, दुर्योधन, दुःशा-सनादिका निवेदन और विदुरके समीप जिनदीश्राप्रहण, फर्णका सुदर्शनोद्यानमें कर्णकुएडळ परित्यागपूर्वक दम-वयाके निकट जिनदीक्षाग्रहण और उस. स्थानका कर्ण-**खुवर्ण नाम पड्नेका कारण कथन। ५३-५४ जरासन्ध** और यादवोंका आनन्दस्थान तथा आनन्द्पुर नामक जिन .मन्दिर स्थापन वर्णन, श्रीकृष्णकी दक्षिण देशादि विजय, तत्कर्तृक यदुवंशीय सहदेवको राजगृह, उप्रसेनस् तकी मथुरा, पाएडवींको हस्तिनापुर और स्मप्रनामको कोशल-पुर प्रदान, नारदके उपदेशसे धातकीखण्ड भारतान्तर्गत अमरकङ्कुपुरराज पद्मनाभकर्नु क द्रौपद्रीहरण, यह वृत्तान्त सुन कर पाएडवोंका रामकृष्णादि यदुवलके साथ दिव्य-रथकी सहायतासे लवणसमुद पार हो अमरकङ्कपुरमें गमन और द्रौपदीको उद्घार, पुनः सागर पार कर समुद्र-के किनारे मलयाचलको शोभासे हतचित्त हो वहां मथुरा नामक पुरी निर्माणपूर्वक अवस्थानादि वर्णन । ५५-५६ वाणदुहिता उपाके साथ प्रग्रुम्नतनय अनिरुद्धका विवा-हादि वर्गन, श्रीकृष्णका रुक्मिण्यादिके साथ रैवतक विहार, नेमिजिनकी वैराग्योत्पत्ति, इन्द्रादि देवगणकर्त्तृ क नेमिका अमिषेक, रामकृष्णका निषेधमें भी नेमिनाथकी तपस्याके लिये गिरिराजमें गमन, जिनके ध्यानानुष्ठान प्रसङ्गमें ध्यानखरूप कथन, आर्त्त और रौट्रमेदले द्विविध ध्यान कथन, तथा वाज्य और आन्तर भेदसे द्विविध ध्यान, पीछे चतुर्विध आन्तरधानलक्षण, अनुपादेयदुःखका साघन, हिंसा, संरक्षा, स्तेय और मृषानन्द भेदसे चातु-र्विध रौद्रध्यान, तथा भावशुद्धि साधन द्वारा योगाभ्यास रूपधर्मधान, वह फिर बाह्य और आधारिमक भेदसे द्विविध, फिर अपार-विचयादि भेदसे दशविध, किस प्रकार संसारहेतु प्रवृत्तिका परित्याग किया जाता है, उसकी चिन्ता ही १म अपार-विचय, 'पुण्यप्रवृत्तिसमृहकी आत्मसात्करणार्थं सङ्कल्प उद्भवका नाम 'उपाय विचय' जीवगणके अनादि निधनत्वका उपयोग खलक्षणादि-चिन्तन हो 'जीवविचय' स्याद्वीदपृक्षियाका अवलम्बन करके तर्कानुसारी पुरुपका सन्मार्गाश्रय ही 'हेतुविचय' इसी पुकार अजीवविचय, विपाकविचय, विरागविचय, भावविचय, संस्थानविचय और आध्रात्मिक विचया-दिका स्वरूपकथन, शुक्क और परमशुक्तमेद्सें द्विविध शुक्कधान, परमशुक्कधान-पृभावसे योगीका हान, दर्शन, सम्यक्त्व, वीर्य और चारित पूर्व क सकर्म क्षय हारा अनन्तसं खावह मोक्षपुाप्ति कथन, नैमिनाथकी ५६ अही-रात तपस्या करके शुक्कुधशनादि द्वारा घातिकर्म दहन कर जैनकैवल्यपृाप्ति कथन । ५७ जिनोंके समवस्थान भूमिनिरूपणपुसङ्गमें सामान्यभूमि, उद्यान, सरोवर और

गृहादिकथन, वरदत्त नामक गणधरके पृति जिनदेवका उपदेश, एकात्मखरूपकथनसे एकरूपा वाणी, द्विविधकथन-से द्विरूपा, इसो पुकार नवरूपा वाणीकी वर्णना, जगत्-का भावामाव, निर्विकल्प, अरेतु और अनादिका क्षित्यादि कार्य परम्परासे कर्नु त्व द्वारा सहेतुत्वसिद्धि कथन, अनादित्व, अगरिणामित्व, बात्मपरलोकत्व, धर्माधर्मका अस्तित्व, आत्माका कर्तृत्व भोकगृत्वादि कथन, आत्मा-का अस्तिनास्ति पद पुकार, अविद्याके पुमावसे आत्माका संसारवन्य और विद्याके पूमावसे आत्माको विमुक्ति, सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित इस तिविध विद्योत्पत्ति द्वारा मोक्षहेतुत्वनिरूपण, जोव अजीव आश्रव वन्ध सम्बर निर्जर और मोश्रह्मप सततत्त्व, ज्ञानेच्छा-द्वेष-सुख-दुःखादि आत्मिलिङ्गत्त्रकथन, 'पृथिव्यादि भूतगणके संस्थान विशेषसे हो इस जोव तथा पिश्वकिण्वादिसे मदशक्तिवत् चैतन्यकी उत्पत्ति हुई हैं, श्ररोरके चैतन्य व्यभिचारित्व से नहीं, इस पुकार चार्चाकमतखर्डन, 'आत्मा केवल संवित्मात नहीं है, क्षणेकात्मामें संवित्से प्रत्यमिश्चान-व्यवहार विलुप्त होता है। इत्यादि रूपसे श्रणिकविशान-चारखएडन, यही आत्मा अणुमात भी नहीं है अथवा अंगुप्रमात भो नहीं है, सभी स्थानों पर जिस प्रकार चक्ष-की दृष्टि नहीं जाती, उसी प्रकार आतमा भी सर्वोका विभु नहीं हो सकती, देहमाल-परिमाण ही यह आत्मा है, वोधात्मक जीव, अवोधात्मक अजीव, अजीवका आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्रल और काल यह पञ्चविध अस्तिकाय-कथन, संसारी और मुक्तभेद्से द्विविध जीव, समनस्क और अमनस्क भेदसे द्विविध संसारी, शिक्षाक्रियालाप-प्रहणरूपसंज्ञा जिसमें हैं, वही समनस्क है, जिसमें इसका अभाव है, वही अमनस्क है, यह जीवं नयादि उपाय द्वारा प्रतिपत्तियोग्य हैं । अनेकात्मद्रव्यमें नियत एकात्मसंग्रहका नाम नहीं है, द्रव्यार्थिक और पर्यवार्थिक-भेद्रे द्विविध नयकथन, वह फिर नैगम, संप्रह, व्यवहार, ऋजुस्त, शब्द और समभिक्द मेद्से षड् विध, अणु और स्कन्द भेदसे द्विविध पुहल, काय, वाक् और मनका कर्म-योगरूप आस्त्रव, वह फिर संक्रपाय और अक्रवायभेदसे द्वित्रिध, कुगति प्राप्तिहेतु कषायसंज्ञा, पुनः शुप्त और अशुभभेद्से द्विविध आस्त्रवकथन, साम्परायिकी, कायिकी,

अध्यात्मिकी, प्रत्यायिकीं और नैसर्गिकी भेदसे पश्चविध क्रियानुप्रवेश, इनमेंसे प्रत्येक पञ्चमेदसे पञ्चविशति प्रकार-का कियालक्षण, इस प्रकार सामान्यभावमें कर्मास्रवका मेद्प्रदशंनपूर्वंक प्रत्येकका विशेष कार्यनिरूपण, अनन्तर पूर्वोक्त अहिंसा, सुनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिश्रह-रूप महाणुव्रतकथन, संसारकारणसे आत्मगीपनका नाम गुप्ति, कायिक, वाचिक और मानसिक मेदसे त्रिविध गुप्ति, सागार और अनागार भेदसे द्विविध वतीकथन, गृहस्थका कर्त्तव्यतानियम, सम्यग्हान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्-चारित्ररूप रत्नतयप्राप्ति उपाय-कथन, ज्ञानावरण, दर्शना-बरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गील और अन्तराय भेद्से अष्टविध कवायनिमित्तक प्रकृतिनिरूपण, इसके अवान्तरमेदादि, गतिभेद और मिथ्यादर्शनादि मेद्फयन, तसं स्थावर नामभेदसे द्विविध अमनस्क जीव, चतुर्विध द्वीन्द्रियादि कथन, सातप, उद्योत, उच्छास, प्ररीरसुभग, दुभग, सुस्वर, दुःखरादि भेद्से शुभाशुभ सून्मादिलक्षण, विपाकजा और अविपाकजा द्विविधा निर्जराकथन, निरोध-रूप और भावद्रव्यभेदसे सम्बरकथन, वाणिपोड़ापरि-हार द्वारा सम्यगवनरूप समिति, ईर्प्या, भाषा, एपणा, आदान और उत्सर्गभेदसे पञ्चधा समिति, समिति और गुप्तिका सम्बरकारणता-कथन, कर्मवन्धनके अभावमें दुःख-निवृत्तिरूप अपवर्गकथन, मोश्रकारणजीवादि सप्ततत्त्व सुन कर यादवराण और उनकी कामिनियोंका अणुवत ब्रहणपूर्वक निजगृह गमनविवरण। ५६-६६ नेमिनाथका विहार निर्माण पुरःसर सुराष्ट्र, मत्स्य, लाट, कुरुजाङ्गल, पाञ्चाल, मागध, अङ्ग और बङ्गादिदेशमें भ्रमण और जैन-धर्मप्रचारकथन, कृष्णके ज्येष्टं भ्रातृगणका नेमिनाथका शिष्यत्वप्रहण, नेमिनाथकर्तुं क सत्यभामा रुक्मिणी आदिका पूर्वजन्मकीर्त्तन, रूच्ण और नेमिनाध संवादमें चक्रधर, अद्ध चक्रधर, वृपम, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रम, सुपार्क्व, नेमि आदि अर्हेत्राणका नाम, पार्क्व और महा-वीर आदि भविष्य तीर्थंकरगणके नामादि और संक्षेपमें सभी तीर्थंकरका चरित-कीर्त्तन, पूर्वधर, शिक्षक, अवधि, केवली, बादी, वैकियदि और विषुलायुत भेदसे सप्तविध-जिनकथन, इनके. मध्य ४०५० पूर्वधरकथन, महावीरके समय पालकराजका भावी जन्मकथनं, द्वे पायन मुनिके

शापसे यदुवंशध्वंसकथा, रामकृष्ण ध्यतीत सभी यादव और पुरवासिगणका अग्विदाहमें विनाश, 'जराकुमारके हाथसे कृष्णका निधन होगा', यह वार्ता सुन कर कृष्ण-भ्राता जराकुमारका द्वारका परित्यागपूर्वक दक्षिणप्रदेशमें गमन, यादवगणके विनाश पर शोकसे सन्तस रामकृष्ण-का दक्षिणमधुराकी ओर गमन, राहमें वनके मध्य वृक्षके तले सोये हुए कृष्णका जराकुमार-निश्चिम्न शरसे चरण वधन और कृष्णका देहत्याग, वलदेवका विलाप, जरा-कुमारके मुखसे कृष्णकी निधनवार्ता सुन कर पाएडव-गणका वलदेवके समीप आगमन और कृष्णका औद -देहिक किया सम्पादन, वलदेवकी तपस्था, पाएडवगणकी प्रवज्या, उनका निर्वाण और नेमिनाथका निर्वाणकी त्त्रंन । (स्रोकसंख्या ६३४४)

इस पुराणमें दिगम्बरीके मत और विश्वासके सम्बन्ध-में अनेक कथाएं वर्णित रहनेके कारण तथा हिन्दूओं के पौराणिक विषयादिने जैनोंके निकट उसी प्राचीनकालसे जैसा विकृतभाव धारण किया है, उसका यथेष्ट प्रसङ्ग रहनेके कारण इस पुराणसे अपर जैनपुराणकी अपेक्षा विस्तृत सूची दी गई है।

इस अरिष्टनेमियुराणके शेषमें जिनसेनने प्रन्थरचना-काल और ऐतिहासिक कथाकी जो अवतारण की है वह इस प्रकार है—

> जयत्वजय्या जिनधर्मसन्तितः प्रजास्पिह क्षेम सुभिक्षमस्ततः। सुखाय भूयात् प्रतिवर्षवर्षणेः

सुजातशस्या वसुधासुधारिणाम् ॥
शाकेव्वव्दतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेवृष्तराम् ।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवह्नमे दक्षिणाम् ।
पूर्वा' श्रीमद्वन्तिभूगित नृपे वत्सादिराजेऽपरां
सौर्याणामिधमण्डले जययुते वीरे वराहेऽवित ॥
कल्याणेः परिवर्द्ध मान-विपुल श्रीवद्ध माने पुरे
श्रीपार्थ्वालयनहराजवसतौ पर्याप्तशेषःपुरा ।
पश्वाद्दौस्तिटकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्व्यनावष्वने
शान्तेः कान्तिगृहे जिनेश्वरचितो वंशे हिरीणामयं ॥
न्युत्स्वृष्टापरसङ्घसन्तित्वृहत्पुकाटसङ्घान्वये
प्राप्तः श्रीजिनसेनस्रिकविना लाभाय वोधोः पुनः ।
दृष्टोऽयं हिरवंशपुण्यचरितः श्रीपार्श्वतः सर्वतो
ध्याप्ताशामुखमण्डलः स्थिरतरः स्थीयान् पृथिध्यां चिरं॥"

(अरिष्टनेमि ६६ सरा)

Vol. XIV. 19

मुनिसुत्रतपुराण।

१ दुर्जन-निन्दा, संज्ञनस्तुति, कविका सामर्थ्य और असामध्य कथन, वक्ताका लक्षण, श्रुतिका लक्षण, शास्त्र-माहात्म्य, २ मगधविषयमें राजगृहनगरमें श्रेणिक नामक जैन नरपतिकी कथा, उनकी चेलिनी नामक महिपीके गर्भसे रूपविद्यासम्पन्न सप्त पुतका जन्म, वैमारगिरि-शिखर पर समागत महावीरके दर्शनार्थ वहां श्रेणिक राजका गमन और उन्हें प्रणामपूचक पुराणश्रवणार्थ प्रार्थना, ३ जम्बृद्वीप, भारतवर्ष, चम्पानगरी और तन्नगरा-धिप हरिवर्माका वृत्तान्त, ४ धर्मिछ नगराधिपति भानुका वृत्तान्त, उनका नागपुरमें गमनपूर्वक नागकामिनीदशन और वहां उनका युद्धादि वर्णन, कैलासगिरिरामनाथ योगीन्द्रका विवरण, तत्कत्रक विदेहाधिपति महासेनका वृत्तान्तवर्णन, रम्यकदेश-राजपुत तिविकमको उसकी कन्याका सम्प्रदानादि कथन, ५ चम्पानगरीराज हरिवर्मा-का नागकन्याके साथ समागम, अनन्तवीय नामक जिन योगीन्द्रके निकट हरिवर्माका उपदेशलाभ । ६ ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रम धर्मवर्णन, योगीन्द्रदे मुखसे धर्मोपदेश सुन कर राजाका निर्वेद और निजवुतको राज्यदानपूर्धक तपश्चरण, ७ हरिवर्माका धरानप्रकार कथन, उनका खर्ग लाभ और वैभववर्णन, ८ आर्यावर्त्तके अन्तर्गत शोभाघार मगधका विवरण, हरिवंशराजका वृत्तान्त और उनके घरमें नम-स्थलसे रत्नराशि-पतनवृत्तान्त। ६ जिनदेवका हरिवंश पुतक्तपमें जन्म, उनका मुनिसुव्रत यह नामकरण, उनके अभिषेककालमें इन्द्रादि देवगण कर्इक स्तृतिगान, उनकी वाल्यलीला और राज्यप्राप्ति, तालपुरराजका उनके वाहन गजरूपमें जन्म आर गार्हस्थ्य धर्म कथन । ११ मुनिसुवत-की दीक्षा, केवलोत्पत्ति और आहत्यकथन, मथुराधिपति महराजका विवरण । १२ महिनगराधिपतिका चृत्तान्त, मिलके प्रति मुनिसुव्रतके उपदेशप्रसङ्गमें संक्षेपसे जैनधर्म तात्पर्यं, अर्हत्पूजाके मन्त्रादि और चतुराश्रम धर्मकीर्त्तन । १३ मुनिसुव्रतका निर्वाण, मथुरापति यशोधरका अनन्त-नाथ नामक चतुद^९श जिनके निकट दीक्षाप्रहण, हरिषेण-का चक्रवर्त्तित्व और सर्वार्थ सिद्धिप्राप्तिकीत्तन, १५ काल-परिमाण संख्यादि, कुलकरगणका विवरण, उनके वंशमें ऋषमदेवका जन्म और उनके पुत भरतादिके वृत्तान्सकम-

से सगरादिका व'श वर्णन, सुयोधन-राजकन्याके स्वय-म्बरमें सगरका गमनवृत्तान्त। १६ श्रुत नामक मुनिका उपाख्यान, वसुराजका उपाख्यान, नारद और पर्वत नामक तपस्तोका समिन्पुष्पाहरणार्थं रमणीय वनमें प्रवेश, वहां सात रमणियोंके साथ विहार और एक मगूर-दर्शन-विवरण, सगराजुष्टित पशुयोगसे पर्वं त मुनिका आर्त्तिप्रहण, हिंसाका दोषावहत्व और अहिंसाका परम-धर्मत्वकथन । १७ वाराणसीमें दिलीपका राजत्व, रघुके उत्यक्तिकथन प्रसङ्गम् रघुवंश और रामलक्ष्मणादिका उत्पत्तिकथन, अयोधग्रामें राजा दशरथका राजधानी स्थापन और नागपुराधिपति नरदेवका विवरण। १८ मेचकुटाधिपति सहस्रशीव नृपतिका विवरण, तद्वश्रातु-ष्पुत सितकएउने निकट युद्धमें पराजित सहस्रपीवका निर्वाण, सितकएडका छङ्कामें राजधानीकरण, उनके शत-करह, पञ्चाशत्करह, पुलस्त्यादि पुत्रपीतादिका वृत्तान्त । १६ मेघश्रीके गर्भजात पुलस्त्यपुलका रावण नामकरण, वालिसुग्रीवादिका जन्म, वालिके निकट रावणकी सात वार पराजय, कर्डमें हारधारणद्वारा रावणकी दशकएठत्व प्राप्ति, रावणकृत नन्दीश्वरवतानुष्ठान, मन्दोदरी, मनी-द्येगा, मन्स्रघोषा और मञ्जुघोषा प्रभृति रावण-महिषियाँ-का विवरण, मन्दीदरीके गर्भसे सीताका जन्मवृत्तान्त, भूमिखननकालमें जनककी मञ्जुवास्थित कत्याप्राप्ति, राम-के साथ सोताका परिणय, दशरथकी आज्ञासे रामका अभिषेक, रामका सीता और छक्ष्मणके साध चाराणसी गमनपूर्वेक तद्रराज्यशासन, रावणको समामे नारदका आगमनवृत्तान्त, २० वाराणसीस्थ चित्रकूरोद्यानमें ख्रियों-के साथ रामलक्मणका वसन्तोत्सव, नारदके कहनेसे सूर्प-नखा और मारीचकी सहायतासे रावणका सीताहरण, सीताहरणवृत्तान्त सुन कर जनक, भरत और शतुवका रामके समीप आगमन, इस समय अञ्जनानन्दन और सुप्रीवका स्वयं रामके समीप गमन, अञ्जनापुतका हनू-मान् नाम पड़नेका कारण, सोतादर्शनार्थं हनूमान्का भ्रमरक्षपमें लङ्काप्रवेश, मन्दोद्रीहत सीताका आध्वास-वर्णन, २२ रावणका हनूमानके साथ संवाद, विमीपण-का रामपक्षपातित्व, एक गजके लिये छन्नणके साथ चालिका मृत्युपुर-गमन, वानरसेनाके साथ

लङ्कामें प्रविष्ट रामका रावणवधादि वृत्तान्त, रामलत्मणको दिग्वजय और पुनः अगेष्यामें गमन, द्रगरशहत रामका राज्यामिपेक, कार्तिक शुक्क हियोयामें जिनपूजा-विधि, रामको जिनप्रनिद्दमें पूजा, सोनाके गर्मसे अष्ट-पुनका जन्म, उनमेंसे लवको योवराज्यमें अभिपेक, लक्षणके वियोगसे रामका आदि जिनके निकट जा कर केवल दीक्षाप्रहण, अन्यान्य तिथियोंमें जिनपूजाविधि और रामका शिवप्राप्तिकथन।

इस पुराणके रचयिता कृष्णदासने ग्रन्थरचनाकाल और अपना जो परिचय दिया है, वह इस प्रकार है —

'इन्द्रप्रपद्चन्द्रमितेऽध वर्ष' .(१६८१) श्रीकार्त्तिकाखी धवले च पक्षे

जीवे त्रयोदश्यपराह्यामे कृष्णेन सौस्यायविनिर्मितोऽयम् ॥
कोहपत्तनिवासमहेभ्यो हर्ग एव वनिज्ञामिव हर्गः ।
तत्युतः कविविधिः कमनीयो भाति मङ्गलसहोदर-

श्रीकल्पवलीनगरं गरिन्हे,श्रोवहाचारोध्वर पव हाणाः । करावलकृष्विततपूरमलः प्रवर्द्धमानो हितमात्तान ॥ पञ्चविशतिसंयुक्तं सहस्रतयमुक्तमम् । स्रोकसंख्येति निर्दिण कृष्णेन कविवेधसा ॥"

(संबत्) १६८१ वर्णमें कार्त्तिकमास शुक्कपक्ष तयो दशो तिथि अपराहकालमें कृष्णकर्त्तृ क यह पुराण रचा गया । लोहपत्तनिवासो हर्ग, उनके पुत्र कि मङ्गल और किव मङ्गलके सहोदर यही कत्यवली नगरवासी श्रोब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास थे। इस समय पुरमह राज्य करते थे। इस पुराणकी श्लोकस ख्या ३०२५ है।

पश्चिनाथपुराए। (सकलकीर्ति-रचित)

१ जिनस्तुति, विदेहके अन्तर्गत कच्छकावती नामक पुरावर्णन, वहांके वैश्ववण नामक राजाकी कथा, धमोंप-देश, रख्नवयवर्णन, २ वैश्वव राजका दीक्षावर्णन, ३ इन्द्र-भवनवर्णन, ४ वैव्यमस शुक्क प्रतिपद अध्विनी नश्चतमें मिछ्छनाथका गर्भावतार, जनमाभिषेक, कल्याणवर्णन, ५ मिछनाथकी वेराग्योत्पत्ति, ६ उनका तिश्कमण और कैवल्योत्पत्ति, ७ मिछनाथका धर्मापदेश और निर्वाण-वर्णन ।

विपसनाथपुरास्स (कृष्णदास-विरचित) १ जिनस्तुति सीर सज्जनस्तुतिप्रसङ्गर्मे जम्बूहीपादि

लोकस स्थान, राज गृहपुरवणनं, मगधराजश्रेणिकका विवरण, चन्द्रपुराधिपति सीमशर्माके निकट श्रेणिकका पंतप्रेरण, श्रेणिकपत्नीका विलाप, श्रेणिकका निर्वेद और उनका परिवर्ज्याश्रय, महाबीरके निकट श्रेणिकका गमन और पुराणप्रश्न, २ विमलनाथपुराणजिह्यासा, धातकी-खर्डवर्णन, पद्मसेनराजका विभृतिवर्णन, ३ कपिलावुरा-धिप कृतवर्मा और उनकी महिची जयश्यामाके गर्मसे ज्यैष्टमास कृष्णाद्शमीको जिनेन्द्रका आविर्मात्रवर्णन और इन्द्रादि देवगणकर्तुं क उनका अभिषेक तथा विमल-नाथ यह नामकरण, ४ चिमलनाथकी दीक्षा, मधु, खबम्भू और वलभद्रकी समृद्धि, ५ विमलनाथका निकारण, मेर्कमन्द्र पर आगमन और तत्कृत ब्रह्मज्ञान-तत्त्वीपदेश, ६ वैजयन्त और संजयन्तको दीझा, संजयन्तको शिव-प्राप्ति, अधिरदाभदेवसमागम, ७ श्रोधरदेवकी उत्पत्ति स्रोर त्रिभृतिवर्णन, ८ रामदत्त, रह्ममाला, अच्युत, पूर्ण-चन्द्र, रत्नायुषं, सिहासन और वज्रायुष्टका सर्वार्थसिद्धिः गमन, ६ मैठमन्दरकी दोक्षा और विमलनाथका निर्वाण। विमलनायके संयमी और श्रावकश्रावकादिका संख्या-निरूपंग, प्रन्थकार कृष्णदासका गुरुपरम्पराकीर्तन।

पुराणके शेवमें पुराणकारका ऐसा परिचय मिळता है—

विष्याते जगतीतके तिभुवनलामिस्तुतेऽमून्महान्।
काष्टासङ्घुनामिन प्रभुमती विद्यागणे स्टिराट्॥
सारङ्गाणंत्रपारणो विद्युवशाः श्रीरामसेनो जिनं।
ध्यानाणोविततिप्रयूत्यजितो भानुस्तमीराशिषु॥
तत्कमेण गणमूत्ररमानुः सोमकोत्तिरिव शीतमयूखैः।
संवभ्व जनताशिलिभुसनागनायद्यिताकृततेजाः॥
तत्प्दे विजयसेनमदन्तो वोधिताऽलिल्जनः कमनीयः।
कोत्तिकान्तिकमलाजलराशिः संवभ्व विजयी कुमतीमां

तत्पद्दे सूरिराजः सकलगुणनिधिः श्रीयशः कोर्तिदेव-स्तत्पादाम्मोजपण्ड्यात् सकलशशिमुखो वादिनागेन्द्र सिहः।

संजाको प्रान्तसेनोदय इति वचसां विस्तरे संप्रवीणः । तत्यद्वाजीलिशक्तिभुवनमहिमा तन्मुखमान्तकीर्त्तः॥ राजते रजनिनाथयशाः कौ तत्पद्दोदयनपाहिमदीप्तिः । तकनाटककुलागमदक्षो रक्तभूषणमहाकविराजः॥१७८॥ श्रीमलोहाकरेऽभूत् परमपुरवरे हर्गनामा वरीयान् । तत्पत्ती साधुशीला गुणगणसद्दनं वीरिकाल्येव साधी॥ पुतः श्रोकृष्णदासो रतिप इव तयो ब्रह्मचारीश्वरस्य सत्कात्तीं राजते वै वृषभजिनपदाम्भोजपद्पातु समानः॥ १७६॥

गूजरे जनपदे पुरे कृतः कल्पवर्ण्यमिध एप सादरात् । वर्द्ध मानयशसा मया पुरोः पङ्कजाहित कुचेतसा ध्रुवम्॥ खिलसङ्कितशतान्त्रितोधिको वेदपर्श्रमितकाव्यराजिभिः । परिडतैभैतिविकारवर्जितैः संहिखाच्य पठनाय दीयताम्॥ देविषयर्चन्द्रमितेऽथ वर्षे पक्षे सिते मासि नमस्य छेमे । एकादशो शुक्रमृगर्क्षयोगे ध्रोव्यान्विते निर्मित एव एव॥" (१० सर्ग)

उत्त ऋोकसे इस प्रकार परिचय मिलता है—काष्टा-सङ्घमें श्रोरामसेन, उनके शिष्य सोमकीर्ति, सोमकिर्तिके शिय विजयसेन, विजयसेनके पृष्टिशिष्य कीर्तिदेव, कीर्ति-देवके शिष्य वादिनागेन्द्रसिंह, नागेन्द्रके शिष्य प्रान्त-सेन, प्रान्तसेनके शिष्य महाकविराज रत्नभूषण लोहा-कर, लोहाकरके पुत्र हर्ग, हर्गको पत्नो चीरिका, चीरिकाके पुत्र ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदास और उनके किनष्ट मङ्गल थे। गुज्जैरदेशके कल्पवलीयाममें पुराणकारका वास था। १६७२ ब्रह्ममें यह पुराण रचा गया।

उत्तरपुराण।

जिनसेन आदिपुराणको अव्रा ही छोड़ कर कराल कालके गालमें पतित हुए। उनकी प्रियशिष्यने आदि-पुराणके ४५से ४७ समें शेष करके जिनचरित समाप्त करनेके अभियायसे इस उत्तरपुराणकी रचना की। इस उत्तरपुराणके शेषमें गुणभद्गशिष्य छोकसेनने जिस प्रशस्ति-की वर्णना की है, वह दाक्षिणात्य है। ऐतिहासिकोंकी आदरकी वस्तु अनेक ऐतिहासिक तत्त्व इस प्रशस्तिके मध्य बर्णित रहनेके कारण पहले यही प्रशस्ति उद्दधृत की जाती है। उत्तरपुराणके ७९वें पव में लिखा है, कि महापुरुप रत्नसमूहके था कर मूलसङ्घरूप समुद्रमें सेन-वंशकी उत्पत्ति हुई। उस सेनवंशमें वादिमदहस्तिसमूह-के विवासनकारी महावीरके सेनाप्रणीस्वरूप वीरसेन मद्दारक्रने जन्मग्रहण किया । ज्ञान और चारित उनमें मृत्तिमान या और शिय्योंके प्रति वे अनुप्रह्परायण थे। राजन्य उन्हें प्रणाम करनेके समय जव अपना मुखान्ज नीचे करते थे, तब उनके नखचन्द्रकिरणसे नक्श्री लाभ करके विकाश पाया था । मिक्षवृन्द पृतिपदमें दुर्वोध्य

'सिद्धिभूपद्धति' नामक प्रन्थकी उनकी रचित टीका पढ़ कर अवलीलाकमसे भर्यप्रहण करते थे। वीरसेनके बाद जिनसेन पट्टस्थ हुए थे। राजा अमोघवर्षने इनके पद पर लुगिठत हो अपनेको पवित समका था। जिनसेन नाना विद्यापारदर्शीं, वादियोंके युक्तिनिराश करनेमें सुदक्ष, सिद्धान्तसमूहके पृष्ठत तस्वन्न, आख्यानवर्णनपटु, प्रन्थसमूहकी समस्यामेदसे सुनियुण और महाकवि थे। उनके दशरथ नामक एक समधर्मी परिडत थे। उनकी अति पाञ्चल व्याख्यासे सभी शास्त्रार्थ मुकुरमें मूर्त्तिकी तरह प्तिचिम्वित होते थे। वह च्याख्या वालकगण भी सहज्ञमें समभ सकते थे। विश्वविख्यात गुणभद्र इन दोनोंके शिष्य थे। उन्होंने 'सत्य क्या है' यह अच्छी तरह सममा था और जिन सव प्रन्थोंमें सत्य निहित है, वे उसकी भी व्याख्या कर सकते थे। उनकी बुद्धिवृत्ति सिद्धान्तसमूहके अन्तर्निहित छोटे छोटे विपयोंकी भी उत्कृष्टकृपसे अध्यापना करके मलीमांति परिपक हुई थी। वे नपोनिरत थे और उनके वाक्यसे मनुष्यहृद्यका महा-न्त्रकार दूर होता था। सिद्धान्तके टीकाकार वहुमान्य जिनसेनने पुरुको जीवनी (ऋपमचरित)-को रचना की। इस ग्रन्थमें सभी पृकारके छन्द और अलङ्कारका दृष्टान्त है तथा इसमें परोक्षभावसे समस्त शास्त्रीय तस्वींका उल्लेख है। इस काव्यने अपरापर समस्त कार्थोंको लज़ित किया था और यह उच्चिशिक्षित पिएडतमएडलीका भी विशेष शिक्षापृद है। जिनसेन जिस ग्रन्थको सम्पूर्ण कर न सके थे, गुणभद्रने उसे सम्पूर्ण कर डाला था। किन्तु दीर्धकाल अतिवाहित हो जानेके कारण उनके ग्रन्थमें छोटे छोटे विवरण नहीं दिये जा सके। इस म्हारण रचना वहुत कुछ संक्षित हो गई है। इस पुराणके पाठकोंकी आत्माकी वन्धनावस्था क्या है ? किस कारण यह वन्धन उत्पन्न होता है, इसका परिणाम क्या है, ं पुण्य और पापकी ध्याख्या तथा आतमा वन्धनमुक्त हो कर किस पूकार निर्वाण लाभं कर सकती है ? इत्यादि शिक्षाएं पुाप्त होती हैं। इससे पाठकका धर्मविश्वास सुदृढ़ होगा और किस पुकार आस्वव (कर्मपुवाह) शेष किया जा सकता है तथा निर्जर किस प्रकार होता है, इसे वे अच्छी तरह जान सकेंगे। इस कारण मुमुक्षुगण इस

पुराणका सवदा पाठ अथवा श्रवण करे, उस विषयकी चिन्ता करे, इस पुराणकी यलपूर्वक पूजा करे और प्रति-लिपि प्रस्तुत करे। गुणमद्रके प्रधान शिष्य लोकसेनने अपने विपुत्त प्रभाववशतः इस पुस्तकके सम्बन्धमें गुरु-का आदेश प्रतिपालन किया था। उनके द्वारा उच-श्रेणीस्थ ध्यक्तियोंके मध्य इस पुस्तकका वहुत प्रचार हुआ था। समस्त शास्त्रोंके सारखरूप यह पुराण धर्मवित् श्रेष्ठ व्यक्तिगण द्वारा ८२० शक पिङ्गलसम्बत्सर ५ आश्विन (शुक्रपक्ष) गृहस्पतिवारको पूजित हुना। इस समय विश्वविख्यातकोर्ति सर्वशहुपराजयकारी अकालवर्ण-तृपति सारी पृथिवीके ऊपर राज्य करते थे। उनके रणहस्ती गङ्गावारि पान करके भी तुंस न हो कर मलयवायुसञ्चालित सूर्यकरास्पृश्य निविद चन्दन-सनमें प्रवेश करते थे। लक्षी दूसरेके आवाससे अउस हो उनके हृद्ममें सुखसे वास करती'थीं। उनके अधीन लोकादित्य, दूसरा नाम चेल्लपताक, वनवासप्रदेशके अन्तर्गत वङ्कापुरका शासन करते थे। उनके नामा-नुसार उस स्थानका चेह्नकेतनके पुत्र और चेह्नध्वजके कनिष्ट थे तथा पद्मलयवंशमें उत्पन्न हुए थे। जैनधर्म-प्रचारमें उनकी यथेष्ट चेष्टा थी।

उक्त प्रशस्तिवर्णित अमोधवर्ण और अकालवर्णने दाक्षिणात्याधिपति प्रसिद्ध राष्ट्रकूट-राजवंशमें जनमग्रहण किया था। अमोधवर्णके ७९५ और ७८७ शक्तें उत्कोर्ण ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि ७३५ शकमें वे सिंहा-सन पर अधिकढ़ हुए। इधर ७०५ शकके रचित जिन-सेनके हरिवंशमें लिखा है, कि वल्लभराज (हितीय गोविन्द) उनकी पूजा करते थे। इस हिसावसे जिनसेन हरिव शरचित होनेके वाद ३० वर्ण और जीवित रहे। अमोघपुत अकालवर्ष इस उत्तरपुराणके अनुसार ८२० शक्तमें राज्य करते थे। उनका ८२४ शक्तमें उत्कीर्ण ताम्रशासन भी पाया गया है। सुतरां उत्तरपुराणको प्रशस्ति प्रकृत इतिहासमूलकके जैसा पुमाणित होती है। हरिव शरचनाकाल ७०५ शक और आलोच्य उत्तरपुराणके रचनाकाल ८२० शकके मध्य, राष्ट्रकृटवं श-में कृष्णराजपुत बहुस, अमोधवर्ण भीर अकालवर्ण इन तीन राजाओंका परिचय तथा जिनसेन, गुणभद्र भीर होकसेन इन तीन जैन-कविका परिचय मिलता है। अमोघवर्ण और अकालवर्णके समयका खोदित शिला-हेखसे भी वनवासीके सामन्त चेलकेतनव शीय वङ्केय-रस और शङ्करगण्डका नाम पाया जाता है।

इस उत्तरपुराणमें स्य तीर्थंड्कर अजितनाथसे ले कर २४श तीर्थंड्कर महावीरपर्यन्त २३ तीर्थंड्करोंका लीला-ख्यान संक्षिप्त भावसे वर्णित है। एक एक तीर्थंड्करको ले कर इस पुराणके मध्य एक एक पुराण कि एत हुआ है अर्थात् इस पुराणमें २३ पुराणोंका संश्रह है। किन्तु इसकी पर्वसंख्या जिनसेनके आदिपुराणकी पर्धसंख्या के वादंसे आरम्भ है। आदिपुराण ४७ पर्वोमें सम्पूर्ण है। ४८वें पर्वसे यह उत्तरपुराणसंश्रह आरम्भ हुआ है। पतद्जुसार इस पुराणसंश्रहको अनुक्रमणिका नीचे दी जाती है—

२य अजितन यपुराणमें — ४८वें पर्व में साकेतनगरा-धिप रस्वाकुव शीय काश्यपगोल जितशलुके औरस और उनकी पत्नी विजयसेनाके गर्भसे जिनेन्द्रका आविर्भाव, ज्येष्ठ पूर्णिमाके रोहिणीनक्षत्रमें २य जिन का गर्भप्वेश, माघमासकी शुक्कादशमीको उनका जन्म, इन्द्रादि देव-गणकर्षं क उनका जन्माभिषेक, अजितनाथ यह नामकरण, ७२ लाख वर्ष उनका आयुमान, ४५० घनु शरीरमान, देहवर्ण सुवर्ण, माघमास रोहिणोनझतका शुक्का नवमोको सहेतुकवनमें सप्तर्गद्रमके निकट साद्धीपद्योपवास पूर्वक संयम, शुक्क-पकादशीके शेपमें आत्मकान, उनके सिंहसेनादि ६० गणधर, ३७५० संख्यक पूर्वधर, २१६०० शिक्षक, ६४०० विद्यानी, २०००० केवल्रहानी, २०४०० विकियर्द्धि, १२४५० मनःपर्ययद्शीं, २००० अनुत्तरवादी, १०००० 'तपोधन, ३२००० प्राक्कुब्जादि आर्थिका, ३०००० श्रावक और ५०००० श्राविकाका संख्याकथन, पूर्वविदेहके अन्तर्गत वत्सकावन्तीके राजा जयसेन और उनके पुत्र रतिषेणकी कथा, सगर और उनके साठ हजार पुलोंकी कथा।

३य बम्बनाधपुराणमं—४६वे पर्वमें पूर्व विदेहकच्छ विषयके अन्तर्गत क्षेमपुरमें विमलवाहनराज और उनके पुत विमलकीर्त्ति, विमलकीर्त्तिको राज्यदानपूर्वक विमल-वाहनका जिनशिष्यत्व और निर्वाणकथन, श्रावस्ति- राज काश्यपगीत दृढ़राज और उनकी महिपी सुपेणा फाल्गुनकी शुक्काप्रमीको सुपेणके शुभस्त्रामें गिरीन्द्र-शिखराकार वारणदर्शन, और सुपेणके गर्भसे नवम मास-में मृगशिरा नक्षत्र पूर्णिमाक दिन सम्मवनाथका जन्म और जन्माभिषेकादि चरितकथन, उनका आयुमान ६ लाख वर्ष, शरीरमान ४०० धनु, देह सुवर्ण वर्ण, उनकी चारुपेणादि गणधरसंख्या १७५, पूर्वधर २१५०, शिक्षक १२३००, अवधिदर्शी ६६००, के वल्रकानी १५०००, वैक्रियर्डि १६८००, मनःपर्ययो १२१५०, अनुत्तरवादी १२०००, निर्मन्य २०००० और आविकाकी संख्या ५०००। चैतमासकी शुक्कपर्छंको सम्भवनाथका निर्वाणवर्णन ।

भर्थ अभिनन्दनपुराण्में — ५०वें पर्वं में पूर्वं विदेहमें मङ्गलावती नगरमें महावलका राजत्व और मोक्षवर्णन, अभिनन्दन के जन्मसे निर्वाण पर्यन्त वर्णन, उनका गणधर १०३, पूर्वं घर १२५००, शिक्षक २३००५०, विज्ञानी १८००, केवलज्ञानी १६०००, विक्रिपर्दि १६०००, मनःपर्यय ११६५०, अनुसरवादी ११०००, यनि ३०००००, मेरुपेणा प्रभृति आर्यिका, ३३०६०० उपासक, ३००००० और आविका ५००००।

पम हमितनाधपुः। गर्ने—५१वें पवं में पुक्तलावतीके अन्तर्गत पुण्डरीकिणीपुरके राजा रितिपेणका वैभव और मोक्षादि वणन, साकेतराज मेघरथ और उनकी पत्नी मङ्गलाके पुत्रक्षपमें श्रावणमास शुक्कद्वितीया मघा नश्रवको सुमितनाथका गर्भप्रवेश और वैत्रमासके शुक्कप्रश्न चित्रानश्रवको सुमितनाथको जन्मसे चैत्रमास मघानश्रव शुक्क एकादशीको उनका मोक्ष पर्यन्त वर्णन, उनका आयुमान ४००००० वर्ष, शरोरमान ३०० धनु, गणधरसंख्या ११६३, पूर्व घर २४००, शिक्षक २५४३५०, अवधिक्रानी ११०००, आत्मक्रानो १३०००, वैक्रियक १८४००, मनः-पर्यथी १०४००, अनुत्तरवादी १०४५०, संन्यासो ३२०००, अनन्तादि आर्यिका ३३००००, श्रावक ३००००० और श्राविका ५०००००।

६ष्ठ व्दमन्नमपुराणमें—५२वें पर्व में विदेहके दक्षिण सुसीमानगरमें अपराजित नामक राजाका राजत्व और मोक्षवर्णन, कौशाम्बी नगरमें इक्ष्वाकुव शीय धरण नामक राजा और उनकी महियो देवी सुसोमासे पश्चमका जन्म, माघक्रण-पहोको उनका गर्भप्रवेश और कार्त्तिक मासकी कृण-लयोद्शोको उनके जन्मसे छेकर फाल्गुनमास चिला नक्षत्र कृष्णा चतुर्थीको निर्वाण पर्यन्त । उनको गणघर-संख्या ११०, पूर्व घर २३००, शिक्षक २६०००, अश्विकानो १०००००, केवलकानो १२०००, विकियदि १६८००, मनःपर्यय १३०००, अतुत्तरवादो ६६००, यतोश्वर ३३००००, रालिषेणादि आर्थिका ४२००००, श्रीवका ५०००००।

अम द्वाविस्तामिपुराणमें—५३वे पर्वमें सुकच्छ विषयमें क्षेत्रपुराधिय निद्षेणका वैराग्य और मोक्षत्रणंत,
वाराणसीराज सुप्रतिष्ठ और उत्तको महिष्यो पृथिवीषेणा
से सुपार्श्व स्वामीका जन्म, भादमास विशासा नक्षत्र
शुक्कपृष्ठीको उत्तका गर्भप्रवेश, ज्येष्ठ शुक्कद्वादशीमें जन्मसे
ले कर फाल्गुन कृष्ण-सप्तमो अनुराधा नक्षत्रमें निर्वाण
पर्यन्त, उत्तकी गणधरसंख्या ६५, पूर्वधर २३०, शिक्षक
२४४६२०, अवधिज्ञानी ६०००, केवलज्ञानो ११०००,
वैक्षिप्रक १५३३०, मनःपर्यथ ६१५०, अनुत्तरवादो ८६००,
यतीश्वर ३०००००, मीनाप्रभृति अपर्यका ३३०००, आवक
३००००० और आविका ५०००००।

टम वन्द्रवभपुराणमें—५८वें पव में विदेहकेप विका-रियत तुर्गवनान्तर्गत श्रीपुर नामक स्थानमें श्रीविणका राजत्व, श्रीकान्ता नाम्नी उनकी महिषीकी कथा, राजाका वैराग्य और मोश । इक्ष्वाकुवंशीय चन्द्रपुराधिप महासेन और उनकी महिषी छक्ष्मणासे चन्द्रप्रमका जन्म, चैव कृष्णपञ्चमोको उनका गर्भप्रवेश, पौष कृष्णपकाद्शीको जन्मामिषेकसे फाल्गुनमासकी शुक्कसप्तमी ज्येष्टानस्रकको निर्वाण, गणधरसंख्या ६३, पूर्व घर २००, शिक्षक २००४००, अवधिक्षानी ८०००, केवछक्षानी १०००, विक्रियद्वि १४०००, चतुर्कानी ८०००, वादीश ७६००, साधु २५००००, वहणादिस्रियिका ३८००००।

हम् पुरःदन्तवुराणमें प्रवे पर्वमें पुष्कलावतीके अन्तर्गत पुरुडरीकिलीपुरमें महायद्म नामक राजाकी जिन-भक्ति और मोक्षादि वर्णन, काकुन्दिनगराधिपति दस्वाकु-वंशीय सुत्रीवराज और उनकी पत्नी जयरामासे पुष्प-दन्तका आविर्भाव । फाल्गुन कृष्णनवमी मूलानक्षत्रमें उनका गमप्रवेश, मार्गशोर्ष शुक्कपक्ष चैत्रयोगमें जन्मा-भिषेकाद्से भाद्रमास शुक्काप्रमीमें निर्वाण पर्शन्त । विदर्मादि सप्तर्द्धिसंख्या ८८, श्रुतकेवली १५००, शिक्षक १५५५००, तिक्कानी ८४००, केवलज्ञानी ७०००, विकि-यर्द्धि १३०००, मनःपर्याय ७५००, अनुत्तरवादी ६६००, पिरिडतर्द्धि २०००००, घोषादिश्रायिका ३८००००, श्रावक २०००००, श्राविका ५०००००।

१० शीतलना शपुराणमें पृद्धे पर्वमें सुसोमानगरािश्वप पश्चित्र प्रसाद प्रमाद, वैराग्य और मोक्षवर्णन, भद्रपुरराज इद्रश्य और उनकी महिपी सुनन्दासे शीतलका
आविर्माव। चैतमास पूर्वाबादा और कृष्णाएमीको गभप्रवेश, माधमास शुक्कद्वादशीको जन्मामिपेकसे आध्यिन
शुक्काएमी पूर्वाबादा नक्षत्रको समेदशिखर पर निर्वाणप्राप्तिपर्यन्तवर्णन। उनकी अनगारादि गणधरसंख्या ८१,
पूर्वधर १४००, शिक्षक ५६२००, तिज्ञानो ७२००, पञ्चमज्ञानो ७०००, चैकियिद्ध १२०००, मनःपर्यय ७२००, वादी
५७००, यति १०००००, घरणादि आर्थिका ३८००००,
आविका २०००००।

रश्य श्रेयांसनायपुराणमें पर्वमें क्षेमपुरराज निलन्त्रमाका प्रभाव, वैराग्य और मोक्षवणन, इक्ष्वाकु-वंशीय सिंहपुराधिप विष्णुराज और उनकी पत्नो नन्दासे श्रेयांसका जन्म, ज्येष्ठमास कृष्णपद्धी श्रवणानक्षतमें उनका गर्भप्रवेश, फाल्गुनमास कृष्ण-पकादशीमें उनके जन्मा-भिषेकसे श्रावणमासकी पूर्णिमा तिथि और धनिष्ठा-नक्षत्रमें निर्वाणप्राप्ति पर्यन्त व र्मन । उनकी गणधर-संख्या ७९, पूर्वघर १३००, शिक्षक ४८२००, तृतीयंत्रानी ६०००, पञ्चमञ्चानी ६५००, विक्रियद्धि ११०००, मनःपर्याय ६०००, अनुत्तरवादी ५०००, श्रावक २००००, श्राविका १००००, श्रावक २००००, श्राविका १००००। राजगृहपति विश्वमृति विश्वनन्दि और उनकी पत्नी लक्ष्मणाको कथा, विषयपुरराज पोदन और उनकी पत्नी स्मावती, जयवतीपुरमें विशासनन्दी और अलका-पूरमें मयूरग्रीवके पुत्र हथग्रीवका प्रसङ्ग ।

१२ग बासुयूज्यपुराणमें ५८वें पर्वमें रह्मपुरमें पद्मो-चरराजप्रसङ्गमें उनका निर्वाणवर्णन, इक्ष्याकुर्वंशीय चम्पनगराधिय वासुपूज्य और उनकी प्रती जयावतीसे वांस्यूज्यका जन्म, आयादं कृष्णचतुर्दशीमें उनका गर्मे प्रवेश, फाल्युन कृष्णचतुर्दशीमें उनके जन्मामिषेकसे भाद्रमास शुक्रचतुर्दशी विशाखानक्षत्रमें उनका निर्वाण-कथन, उनकी गणधरसंख्या ६६, पूर्वधर १२००, शिक्षक १६२०० अवधिकानी ५४००, श्रुतकेवली ६००, विकिर्माई १००००, चतुर्कानी ६०००, अनुत्तरवादी ४२००, यति ७२०००, सेना प्रभृति आर्थिका १०६०००, श्रावक २०००० और श्राविका ४०००००। मलबदेशक विन्ध्य-पुरमें विन्ध्यशक्ति नामक राजकथा, महापुरराज वायुरथ, इन्द्रकल्पमें द्वारावतीपुरमें ब्रह्म नामक उनका अवतार और मोक्षवर्णन।

१३श विवन्नायपुराणमें — ५६वे पर्व में रम्यकावती-राज पश्चसेनका प्रभाव, काम्पिल्यपुरमें पुरुव शीय इत-वर्मासे विमलनाथका जन्म, ज्यैष्टमास कृष्णदशमी उत्तर-भादपद नस्त्वमें उनका गर्भप्रवेश, माध शुक्कचतुर्द शीकी उनके जन्माभिषेकसे आपादमासकी कृष्णाध्मीमें निर्वाण और उनका श्रावकश्चावकादि संख्या निरूपण, विभल-नाथकी तीथमें राम, केशव, धर्म और खयम्मूका जन्मादि आख्यान।

१४श अनम्तनायपुराणमें—६०वे पर्व में अरिष्टपुराधि-पति पद्मारथका विवरण, इक्ष्वाकुयंशीय साकीतनगरा-धिप सिंहसेन और उनकी पत्नी जयश्यामासे अनन्त-नाथका जन्माख्यान, कार्त्तिकयास कृष्णप्रतिपदमें उनका गर्भथ्रवेश, ज्येष्टमास कृष्णद्वादशीमें उनको जन्मामिषेकसे वैतमास अमावस्थाको रेवती नक्षतमें उनका मोक्षपर्यन्त, उनको गणधरपूर्व धरादिका संख्यावर्णन, पोदनाधिपति वसुसेन, सुप्रम, पुरुषोत्तम और मधुसुद्दनका प्रसङ्ग ।

१५ धमनः यपुराणमें ह्रचें पर्वमें सुसीमानगराधिप दशरथका निर्वाणाख्यान, कुरुवंशीय रत्नपुराधिप मानुराज और उनकी पत्नी सुपूमासे धर्मनाथका जन्मा-ख्यान, वैशाखमास शुक्कतयोदशी तिथि रेवतीनक्षतमें उनका गर्मपृवेश, माधमास शुक्कतयोदशीमें उनके जन्मा-मिषेकसे निर्वाणपर्यन्त वर्णन, उनके गणधरादिकी संख्या गीर सनतकुमारादिका विवरण।

१६ श न्तिनाथपु ।णमें—६२वें पर्वमें तिलकान्तपुर-राज चन्द्राम और उनकी पत्नी सुमद्राका आख्यान,

शान्तिनाथके गर्भपृवेशसे दीक्षापर्यन्त वर्णनपृसङ्गमें अनन्तवीर्य और अपराजितका अभ्युद्यवर्णन, ६३ वल-देवकी कन्या विजयाका स्वयम्बरवर्णन, शान्तिनाथका वैराग्य और निर्वाणवर्णन।

१७ कुःशुनाशपुर.णमें —६४वे' पर्वमें सुसीमापुरा-धिय सिंहरशका आख्यान, कुन्युचकधरके गर्भपृदेशसे मोक्षपर्यन्तवर्णन।

१८ अरनायपुराणमें हुए वे पचमें क्षेमपुरराज धन-पतिका आख्यान, अरनाथके गर्भपूबेशसे मोक्षपर्यन्त वर्णनप्सङ्गमें सुभीम चकवत्तीं, नित्वणेण, वनदेव और पुण्डरीक नामक अर्द्ध चकवत्तीं और निशुम्म नामक प्रतिशत्तुका विवरण।

१६ महिनायपुराणमें ६६वे पर्वमें वीतशोकपुरराज वैश्रवणका आख्यान, मिलनाथके चरितपृसङ्गमें पद्मचक-धर, नन्दिमित, देवदत्त और वासुदेव-चलीन्डका पृसङ्ग।

२० मुनिसुत्रतपुराणमें —६७वें पर्वमें राजगृहपुराधिप सुमितराज और उनको पत्नी सोमासे सुत्रतका जन्म और उनका चरिताख्यान, स्वस्तिकायतीपुराधिप विश्व-वसु और उनके अध्यापक क्षीरकदम्यका आख्यान, नारद और पर्वतको कथा, सुमार्गपृथर्त्तन।

२१ नमनायपुराणमें इद्वे पर्नामें नागपुराधिप नरदेव-राजचरित, रावणाख्यान, सीताकी जन्मकथा, नमिनाथ-का चरितकीर्त्तन, हरिपेण-चक्रवर्त्ती, रोमदेव, छन्मीधर, केशवादिका आख्यान, ६६ जयसेन चक्रवर्त्तीका आख्यान।

२२ तेसेनायपुः।णमं ७०वे पर्नम् नेमिचरितपूसङ्गमं समुद्रविजय और कृष्णचरितचणेन, ७१ निमनायका निर्वाणवर्णन । ७२ पद्मनाभ, वलदेव, कृष्ण, जरासन्ध आहिका परमायुसं स्थाकथन।

२३ श्वेनाथपुराणमें - ७३वे पर्वामें पार्श्वनाथका पूर्व-जन्म, अम्युद्य और निर्वाणाख्यान ।

२४ महाशिरपुरोणमें ७४ पर्नमें महावीरचरितपूसङ्ग-में मगधाधिप श्रेणिकराज और जयकुमाराख्यान, ७५ चन्दना नाम्नी आर्थिका और जीवन्धका आख्यान, ७६ महावीरका निर्वाण, ७९ जिनसेन और गुणभद्रादिका पूशस्तिवर्णन,। (श्लोकसंख्या पूायः १००००)

आदि और उत्तरपुराणमें पृत्येक तीर्थङ्करके पहले

जिन सव राजचकर्त्रात्त्रयोंका आख्यान वर्णित है, पुराण-कारियों के मतसे तीर्थं द्वरगण पूर्ववर्ती जन्ममें उन्हीं सव राजाओंके रूपमें आविर्मूत हुए थे। जैसे, आदिपुराणमें लिखा है, वृपभदेव पहले महावल चक्रवत्तीं रूपमें आवि-भूत हुए, उन्होंने जैनधर्ममें दोक्षित हो कर पीछे लिल-ताङ्गदेव नामसे जन्तप्रहग किया। वेही फिर अन्य जन्ममें उत्पलपुराधिप वज्रवाहुके पुत्र वज्रजङ्क नामसे उत्पन्न हुए थे। इस जन्ममें उन्होंने जैनभिक्षुको खाद्य-दान करके आर्य नामक जैनान्त्रार्यक्षपमें जन्म लिया। पीछे उन्होंने खयम्पूम नामसे द्वितीय खर्गमें पुत्यावर्त्तन किया, अनन्तर सुवेदी नामसे गणीनगर-राजव शमें जन्म-ब्रह्म किया। पोछे वे पोडम्झामि अञ्युतेन्द्ररूपमें पुकाणित हुए थे। उन्होंने फिर पुएडरीकिणी-नगराधिय वज्रसेनके पुत्र वज्रनाभ नामसे जन्म लिया । इस जन्ममें वे विशुद्धचारित लाम करके मोक्षधामके निकट पोडण्-खर्गमें समुदित हुए। इसके परजन्ममें ही चुपमतीर्थ-नाम धारण कर पृथिवी पर अवतीर्ण हुए । इस जन्ममें उन्होंने अपने पुत्र भरतको नाटक, दूसरे पुत्र वाहुविक्षेको काव्य, अपनी लड़की ब्राह्मीको व्याकरण और दूसरी लड़की सुन्दरीको गणितशास्त्रमें शिक्षा दी थी।

आदिषुराणमें जिस प्कार पहले तीर्थंड्करका जन्म-विवृत हुआ है, उक्त पुराणमें भी उसी प्कार २३ तीर्थ-डूगोंका पूर्वजन्माख्यान पाया जाता है। इस उत्तरपुराणमें श्रीकृष्ण विखएडाधिपति और तीर्थंड्कर नेमिनाथके शिष्य माने गये हैं।

आदि और उत्तरपुराणमें तिरसट महापुरुपोंका चरित वर्णित है। यथा—२४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासु-देव, ६ शुक्कवल और ६ विष्णुद्विष्। इन ६३ महा-पुरुषोंका चरित रहनेके कारण उक्त दोनों प्रन्थ तिषष्ट्य-वयवीपुराण नामसे पुसिद्ध हैं।

ेनव्दाणका अपसंहार।

रविषेणका पद्म (राम) पुराण, जिनसेनका अरिष्ट-नेमिपुराण (हरिव'श) और आदिपुराण तथा गुणमड़का उत्तरपुराण प्रधानतः इन्हीं चार पुराणोंका पाठ फरनेसे ही दिगम्बर जैनियोंका पौराणिक तस्त्व जाना जा सकता है। उक्त चार महापुराणकी सहायतासे ही परवर्ती जैन कवियोंने नाना पुराणोंकी रचना की है। सकलकीर्ति, अरुणमणि, जिनदास, श्रीभूषण और ब्रह्मचारी कृष्णदास सब किसीने एक खरसे अपने अपने पुराणमें यह वात खीकार की है। जैन लोगोंका कहना है, कि सकलकीर्ति और उनके शिष्य जिनदासने चीवोस जिनोंके चरित-मूलक पुराणोंकी रचना की थी। किन्तु हम लोगोंने सकलकीर्ति-रचित चकश्ररपुराण, मल्लिनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण और पार्श्वनाथचरित तथा जिनदास-रचित पश्चपुराण और हरिवंश देखे हैं। जिनदासने अपने हरिवंशके ३६वें संगीमें लिखा है—

"श्रीनेमिनाथस्य चरित्रमेतद्नेन नीत्वा रिवषेणसूरैः । समुद्धुतं खान्यसुखप्रवोधहेतोश्चिरं नन्दतु भूमिपीठे॥" इस प्रकार उन्होंने रिविषेणके ग्रन्थसे अपने हरिवंश-की रचनाकथा प्रकाशित की है। इससे जाना जाता है, कि रिवपेणने हरिवंशकी भी रचना की थी। उपरीक पुराण छोड़ं कर केशवसेनकृष्णजिष्णु कर्णामृतपुराण और श्रीभूषणसूरि (१६वीं शतान्दीमें)ने पाण्डवपुराण-की रचना की। पाण्डवपुराणमें अपूर्व पाण्डवपुराण-की रचना की। पाण्डवपुराणमें अपूर्व पाण्डवपुराण-वर्णित है,—महाभारतके आख्यानके साथ अनेक विषयों-में इसका सादृश्य है।

वे सव पुराण संस्कृत भाषामें रचे गये हैं। एतइव्यतीत प्रभाचन्द्ररचित महापुराणिटण्यनी नामक एक
प्राचीन संस्कृत प्रनथ पाया जाता है। माकृतभाषामें
रचित महापुराण-विशेषके ध्याख्यास्त्रक्षण यह टिप्पनी
प्रनथ रचा गया है। जिनसेनके आदिपुराणमें उनके
गुरुपरम्पराक्रमसे प्रभाचन्द्रने उद्घतन सप्तमपुरुषका
स्थान दखल किया है। यदि इन्हीं प्रभाचन्द्रने महापुराणकी टिप्पनी लिखी हो, तो उनके पहले रचित मूलप्रनथ पाचवीं वा छठी शताब्दीका पूर्वतन होता है।

दाक्षिणात्यके जैनसमाजमें पाचीन कणाडीमाणामें रचित अनेक पुराण पाये जाते हैं। उन सब कणाड़ी पुराणोंके मध्य दक्षिण-मथुराराज रणमञ्छके मन्त्री चामुण्डराय-चिरचित चामुण्डरायपुराण, कमलभव-चिरचित शान्तिनाथपुराण, द्वारसमुद्रराज बल्लालरायके समसामयिक गुणवर्म-विरचित पुष्पदन्तपुराण, चीरसोम-

स्री प्रणीत चतुर्विशतिषुराण और मुङ्गरासरचित हरि-वंश उल्लेख योग्य है।

बोद्धपुर(ग ।

वर्तमान नेपाली वीद्धसमाजमें भी स्ततन्त्र वीद्धपुराण प्रचलित है । फिन्तु वीद्धमन्यमें पुराणका
उक्लेखं नहीं है । आजकलंके नेपाली वीद्धगण ६
पुराणं स्वीकार करते हैं जो 'नवधर्म' नामसे प्रसिद्ध
है। आख्यान, इतिहास, वीद्धानुन्तेय व्रतादि और प्रधान
प्रधान तथागतकी जीवनी इस पुराणमें वर्णित है।
नवधर्म यथा—

१म प्रशापारमिता (श्लोकसंख्या ८००, न्यायशास्त्रके मध्य गण्य करना उचित है।)

२य गएडव्यूह—(ऋोकसं क्या १२००, इसमें सुधन-कुमारका चरित, ६४ गुरुसे उनके वोधिझानकी कथा धर्णित है।)

३य समाधिराज (ऋोकसं ख्या ३०००, इसमें जप द्वारा समाधिकी विधि व्यवस्था हैं।)

8र्थ लङ्कावतार—(स्होकंस इया ३०००, इसमें रावण-का मलयगिरि गमन और वहां शाक्यसिंहके निकट वुद्धचरित सुन कर वोधिश्वान-लामकी कथा वर्णित है।)

५म तयागतगुह्यक ।

६ष्ठ सद्यभेषुएडरीक—(इसमें चैत्य वा बुद्धमएडल-निर्माण पद्धति और तत्पूजा-फल वर्णित है।)

अम लिलतिवस्तर—(स्होकस' ज्या ७०००, यह बुद्ध-पुराण नामसे भी प्रसिद्ध है। इसमें शाक्यसिंहका चरित विस्तृत भावमें कीर्तित हुआ है।)

८म सुवर्णप्रमा—(इसमें सरखतो, रुक्ष्मी और पृथिवी-का आख्यान और उनकी शाक्यबुद्धपूजा वर्णित है।)

ध्म दशभूमीश्वर (ऋोकसंख्या २०००, इसमें दश भूमिका वृतान्त विस्तृतभावसे वर्णित है।)

उक्त नवधमें व्यतीत नेपाली बीझोंके मध्य खयम्मुपुराण (वृहत् और मध्यम) पाया जाता है। इसमें
नेपालके प्रसिद्ध खयम्मूक्षेत्र और वहांके खयम्मू-चैत्यका
माहात्म्य विस्तृतं भावसे वर्णित है। यह पुराण १६वीं
शतान्त्रीमें रचा गया है। इस पुराणके शेषांशसे मालूम
होता है, कि शैवसे ही आधुनिक वीझोंका प्रमाव मन्न
Vol XIV, 21

हुआ है,—शैवसस्प्रदायने ही बीवधर्मको प्राप्त कर डाला है। इस वृहत् स्वयस्भूपुराणमें लिका है—

यदा भविष्ये काले च अतं नेपालमण्डले । शैवधर्मा प्रवस्तेनते दुर्भिक्षश्च भविष्यति ॥ यथा यथा शैवधर्मं प्रवस्तेतऽत मण्डले । तथा तथा स अत्यथे दुःसपोड्डा भविष्यति ॥ बौद्धलोकगणा थेऽपि शैवधर्मं करिष्यति । ते सर्वे कृतपापाच नरकञ्च गमिष्यति ॥ शैवलोका जना येऽपि बौद्धधर्मं प्रवस्तेते ।

तस्य पुण्यमसंदिष सुकावतीं गमिष्यति ॥ (८ म०)
पुराण—एक तीर्थिक । अवदानशतकर्में लिखा है, कि
उनके साथ एक दूसरे बौद्धका विवाद हुना । महाराज
प्रसेनजित्ने दोनोंका विवाद कएडन करनेके लिये एक
सभा की और दोनोंको ही अपने अपने आराध्य देवका
पूजा करनेका हुकुम दिया । पूजाक समय पुराणक इष्टदेवने पुष्प प्रहण नहीं किया यह देख उनके उपासकोंने
उपेक्षा करके उनका आश्रय छोड़ दिया था।

२ तुलामानविशेष ।

पुराण उड़ीसाकी करदराज्यवासी एक मादिम जाति। मयूरभञ्जक सामन्तराज्यमें ही इनकी संख्या सबसे अधिक है। सरिवाओं के साथ इनका अनेक साह्रश्य है। इन लोगोंका कहना है, कि पश्लीके डिक्कसे उनको उत्पत्ति है। डिक्कुसुमसे अजराजगणकी, लाला-सेपुराणगणकी और कोलासे सरिवाजातिकी उत्पत्ति हुई है। इनका आचार व्यवहार बहुत कुछ सरिया और ज्ञियाङ्ग जातिसे मिलता जलता है।

स्तरिया और ब्रुयांग शब्द देखी ।

२ चहुग्रामकी पावंत्यप्रदेशवासी जाति विशेष। जब से वे पावंत्य-तिपुरा (साधीन तिपुरराज्यमें) आ कर वस गये हैं, तभीसे इनका तिपारा वा टिपरा नाम पड़ा है। कण्फुली नदीके उत्तरों किनारें तिपुराके अधिकृत पावंत्यप्रदेशमें ही इनका बास है। सभी पावंत्य जाति-की तरह इनका प्रधान व्यक्ति ही अपराधादिकी निष्पत्ति करता है। वे लोग चडाल स्वभावके होते और अधिक दिन तक एक जगह रहना पसन्द नहीं करते हैं।

मृत्युके बाद वे स्त्रोग शतपेह नदी वा नारनेक

के समीप बुला कर सम्राट्के प्रश्नका यथायथ उत्तर देनेको कहा। पुराणगिरिने कहा, कि अभी भारतके शासनकर्त्ता हेप्टिस साहव (Governor of Hindustan) है। इस प्रकार नाना कथावार्त्ताके वाद वे सम्राट्से एक पत्न ले कर हेप्टिसको देनेके लिये राजी हुए। चीन-राजधानीमें ही लामाकी मृत्यु हुई, पीछे पुराणगिरी अन्यान्य शिण्योंके साथ उनकी पृतदेहको वक् समें रख कर भोटराज्यकी ओर रवाना हुए। पिकिन-से दिगुकी नगर आनेमें उन्हें ७ मास ८ दिन लगे थे।

जव वे भोट राजधानीमें रहते थे, उस समय वहां के राजधुरुषोंने राज्यसं कान्त कुछ प्रयोजनीय कागज पत छे कर भारतके तत्कालीन गवर्नर-जेनरल हेन्टिंस वहां दुरको देनेके लिये उनसे अनुरोध किया। वे उन सब विशेष प्रयोजनीय कागजों को ले कर वारवेल और इलियट साहवको निकट रख आये। इन सब राजकीय कार्यों से राज्यका विशेष मङ्गल होगा यह, वे जानते थे और इसी कारण अपने अलौकिक क्षमता बलसे यह सब क्षद्रतर कार्य सम्पादन करनेसे वे कुण्डित नहीं होते थे। अञ्जावा इसके एक समय काशोराज चेत्सिंह 'और वहां के रेसिडेण्ट प्रहम साहवने किसी कार्योपलक्षमें इन्हें बुलवा मेजा 'था, कुछ दिनों के वाद गवर्नर-जेनरलने इन्हें आशापुर नामक एक प्राम जागीरमें दिया था तथा वे उसका निष्कर भोग दखल करने आते थे।

उनकी बुद्धि, अध्यवसाय, वीर्यः और साहसकी और ध्यान देनेसे वे एक महा पुरुष थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। सैकड़ों पर्वंत, नद, नदी, नगर अतिक्रम कर तथा नाना प्रकारके असभ्य और दवर जातिके मध्य हो कर पैदल भ्रमण करना साधारण साहस वा उत्साहका काम नहीं है।

पुराणपुरुष (सं०पु०) पुराणैवे दादिभिक्षपस्ततः पुरुषं मध्यपदलोपि-कमधारयः वा पुराणः पुरुषः। विष्णु। पुराणप्रोक्त (सं० वि०) पुराणे प्रोक्तं। पुराणोक्त, जो पुराणमें कहा गया हो।

पुराणवित् (स'० ति०) पुराणं वेत्तिविद-किृष् । पुराण-वेत्ता, पुराण जाननेवाला ।

पुराणविद्या (सं ॰ स्त्री॰) पुराणस्य पुराणशास्त्रस्य विद्या, पुराणशास्त्रको विद्या । पुराणान्त (सं॰ पु॰) पुराणान् पुरातनात् । अन्तयति अन्त-णिच्-अण्। १ यम । पुराणस्य अन्तः अवसानं २ पुराणका शेपं। पुराणाधिष्ठान—काश्मीर राज्यको ग्राचीन राजधानो । तस्र-इ-सुलिमान नामक स्थानसे १ कोस दक्षिण-पूर्वर्म पाण्ड्रे-थान् नामक जो नगर है, यही उनकी प्राचीन कीर्तियों-का परिचय देता है। जब यह नगर ध्व सप्राय हो गया, तव ६ठीं शताब्दीके प्रारम्भमें राजा प्रवरसेमने वर्र्तमान श्रोनगरमें राजधानी वसाई । चीनपरित्राजक यूपमञ्जवङ्ग जब भारतवर्ष आधे तव उन्होंने ६३१ ई०में इस प्राचीन नगरके समीप एक विख्यात 'वौद्ध' स्तूप देखा था। इस स्तूपके मध्य शाक्य बुद्धके दन्त प्रोधित थे। किन्तु लौड़ते समय ६४३ ई०में पञ्चावमें आ कर उक्त परिवाजकने वह पवित दांत नहीं देखा था। कन्नौजराज हर्ष वर्द नने दलवलके साथ काश्मीर सीमान्तमें आ कर-जब काश्मीऱ-पित दुर्लभराजसे बुद्धदन्त मांगा तव उन्होंने आहादपूर्वक दन्त लौटा कर हिन्दूत्वकी गौरव रक्षा की थी। पुरातत्त्व (सं ० पु०) प्राचीन काल सम्बन्धी विद्या, पत्न-शास्त्रः। पुरातन (सं०पुरु) १ विष्णु । (लि०) ५२ प्राचीन, पुरातन गुड़ (सं ७ पु॰) प्राचीन गुड़, पुराना गुड़ । गुण-पित्त और वातनाशंक, तिदोषक्त, 'रुचिकर,' हुन, विष्ठा और मूतशोधक, -अग्निकर, पाण्डु और प्रमेह- " नाशक, स्निग्ध, सादुकरं, लघु: श्रमंत्र और पथ्य 🖰 🗀 पुरातनघृत (सं॰ क्की॰) पुराना घी, एक घड़ें में दश वर्ष घी रखनेसे वह पुराना होता है। घी जितना ही पुराना होगा, उसमें उतना ही अधिक गुण होगा। इसका गुण-अपस्मार, मूर्च्छादि, शिरःशूल और मुखरोगादि नाशक, किसी किसीका कहना है, कि बी एक वय में पुराना होता है। पुरातन-धान्य (सं॰ क्वी॰) पुरातनं धान्यं । संवत्सरा-द्युपित भान्य, पुराना भान । एक वर्ष के पुराने भानमें

गुरुता आदि दोप नहीं रहते।

की भूमि।

पुरातळ (सं• क्वी॰) तळातळ, सात बाताळक नोचे-

पुराधिव (सं • पु॰) पुरस्य अधिवः । पुराध्यक्ष, नगरा-धिव ।

पुराध्यक्ष (सं ॰ पु॰) पुरस्य पुराधिकृतो वा अध्यक्षः। नगराधिकृत, पुरका अधिपति।

युक्तिकल्पतवमें राजाओंके अन्तःपुराध्यक्षका लक्षण इस पृकार लिखा है, च्यूद्ध, कुलोद्धत, कार्यकुशल, विशुद्ध समाव और विनीत पे सब गुणसम्पन्न व्यक्ति राजाके अन्तःपुरके अध्यक्ष हो सकते हैं।

"नृद्धः कुलोद्धतः शकः पितृपैतामहः शुचिः। राष्ट्रामन्तःपुराध्यशो विनीतश्च तथेष्यते॥"

पुराना (हिं० वि०) १ जो बहुत दिनोंसे चला आता हो, जो नयान हो। २ जो बहुत पहले रहा हो, पर अव न हो, पाचीन । ३ कालका, समयका । ४ जिसका चलन अव न हो। ५ जिसने वहुत जमाना देखा हो, जिसका अनुभव बहुत दिनोंका हो। ६ जो बहुत दिनोंका होनेके कारण अच्छी दशामें न हो। (कि॰ सं॰) ७ पूरा करना, भराना। ८ पालन कराना, अनुकूल बात कराना। "ह इस पुकार बांटना कि सबको मिल जाय, अंटाना, पूरा डालना। १० फिसी घाव, गर्डे या खाली जगहको किसी वस्तुसे छेक देना। ११ अनुसरण करना। पुरायोनि (सं॰ पु॰) पुरा पाचीना योनिरस्य। महादेव। पुरारा—मध्यप्रदेशके भाएडार जिलेका एक सामन्तराज्य । यह बाधनहीको किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३१ वर्गमील है। यहांके सरदार गींब जातिके हैं। पार्व-वर्त्ती विस्तृत शालवन व्याघ्रसंकुल है। पुरारा ग्राम ही इसका सदर है।

युराराति (सं॰ पु॰) पुरस्य भरातिः । तिपुरभेद्क, शिव, पुरारि ।

पुरारि (सं॰ पु॰) पुरस्य अरिः। शिव, महादेव। पुरार्द्ध विस्तर (सं॰ पु॰) पुराद्धे पूर्वार्द्धे विस्तरी विस्तृति-रस्पेति।

पुरावती (सं॰ स्नी॰) नवीभेर ।

पुरावसु (सं ० पु॰) पुरा पूर्व काले उत्पत्तेः पूर्गित्यर्थः

वसुः। भीषा। हैं पुरावित् (सं• ति•) पुरा पुरावृत्तं वेत्ति विद्व-किप्। पुरावृत्तानिक, पुराणवेता। पुरावृत्त (सं० क्ली०) पुरा पुराणं वृत्तं चरितं यतः । पूव-वृत्तान्तिवन्थन, पुराना वृत्तान्त, पुराना हाल, इतिहास । पुरासाह् (सं० पु०) पुराणि शलुपुराणि सहते अभि-भवति सह-ण्वि पूर्वपददीर्घः । शलुपुराभिभावक, इन्द्र । पुरासिनो (सं० स्त्रो०) पुरं नगरमस्यति त्यजतीति अस-णिनि-ङोप् । सहदेवीलता, सहदेइया नामकी बूटी । पुराझहन् (सं० पु०) पुरस्य तिपुरस्य असुहत् शलुः । शिव ।

पुरि (सं ० स्त्रो०) पुर्यंते इति पृन्द (इ ए श्रृ पृ इरीते । वण् ४११४२) स च किन्। १ पुरो । २ नदी । ३ शरीर । (पु०) पुर्यंते यश आदिभिरिति । ४ राजा । ५ संन्यासीविशेष । मुख्डमालातन्त्रमें इनकः लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"देवतायाः सदा ध्यानं श्रोगुरोः पूजनं तथा। अन्तर्यागेषु यो निष्ठः स वीरः पुरिरेव च॥" (मुण्डमाळातन्त्र २ प०)

जो बीर सर्वदा देवताने ध्यानमें निरत, गुरुपूजारत और अन्तर्यागावलम्बी हैं, वे पुरि कहलाते हैं।

६ दशनामी संन्यासियोंके मध्य एक प्रकारका संन्यासिमेद। शङ्कराचार्यके प्रधानतः प्रभूपाद, इस्ता-मलक, मण्डन और तोटक ये चार शिष्य थे। इनमेंसे फिर तोटकके तीन शिष्य थे, सरखती, भारती और पुरि।

"ज्ञानतत्त्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्त्वपदे स्थितः।
परब्रह्मरतो नित्यं पुरिनामा स उश्चते ॥"
(प्राणतोषिणी अवधूतप्र॰)

जो श्रानतत्त्वमें सम्पूर्ण हैं अर्थात् जिन्होंने ज्ञानलाम किया है तथा जो पूर्णतत्त्वपद पर अवस्थित और सतत परज्ञहामें अनुरक्त हैं, वे ही पुरि कहलाते हैं।

इनका अक्ष्यान्य विवरण दश्चनामी शांखाने देखा । इसी पुरितामसे इस साम्प्रदायिक संन्यासियोंकी उत्पत्ति हुई है । कौन कौन गुण रहनेसे पुरि उपाधि प्राप्त होती है, प्राणतोषिणीमें यह विषय इस प्रकार लिखा गया है.—

शङ्करखामीके प्रतिष्ठित चार मठोंमेंसे शङ्कागिरिकें मठमें पुरिश्चेणिस्थ संन्यासी देखनेमें आते हैं। जो इस पुरि श्चेणीमें प्रवेश करके उन मतमें दीक्षित होते हैं वे हो पुरि कहलाते हैं। विख्यात पुराणपुरो इसी श्रेणी-के अन्तगत थे। पुराणगिरि देही।

पुरि श्रेणीक मध्य कुछ लोगींने वैकानधर्म ब्रहण किया है। यशोहर जिलेको अन्तर्गत स्थानविशेषमें इस सम्प्रदायके कुछ व्यक्ति योगीवैष्णव नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि श्रीचैतन्य महाप्रभुने किसी समय काशीधामके ईश्वरेन्द्रपुरिके निकट उपस्थित हो कर कहा था, 'मैंने एक मन्त्र प्राप्त किया है सुनिये।' पुरि वह मन्त्र सुनते हो प्रेमाभिभूत हो गये और वैकावधर्म ब्रहण करके उन्होंने अपनी आत्माको चरितार्थं कियां। उनके गुरु माधवेन्द्रपुरि भी शिष्यके समीप उक्त मन्त्रका आखाद पा कर बैळाव धर्मेमें दीक्षित हुए। क्रमशः दशनामी संन्यासि-सम्पदाय-मेंसे बहुतेरे वैष्णव-सम्पदाय सम्निविष्ट हुए । ये लोग उदा-सीन अथच दारपरिव्रह करते हैं, इसीसे योगी और गिरि-वैज्यव दोनों ही कहलाते हैं। उत्कलमें कई जगह योगी और गिरि नामक दो पुकारक वैध्याव देखे जाते हैं। यह गृहस्थ योगीवैज्यव भिक्षां द्वारा और गिरिवैज्यव कृपि-कार्य तथा शिष्य-सेवकादिका दान ग्रहण करके अपना गुजारा चलाते हैं। अन्यान्य वैकावींकी तरह इनकी खतन्त्र मठ और मंहन्त हैं। महन्तकें निकट वे मन्त्रोप-देशं ब्रहण करते हैं। २ नदीविशेष।

पुरिखां (हिं० पु॰) व खा देखों।

पुरिया (हिं स्त्रीं) वह नदी जिस पर जुलांहे वानेकी बुननेके पहले फैलाते हैं।

पुरिश (सं॰ पु॰) पुरि देहे शेते शी-अ। पुरुष। पुरी (सं॰ स्त्रो॰) पुरी वा कीष्। नगरी, शहर।

> "नृपावासः पुरी प्रोक्ता विशांपुरमपीव्यते ॥" (श्रीधरखामीधृत भृगुव०)

राजा जहाँ वास करते हैं, वह स्थान पुरी कह-:लाता है।

राजाको शतुओंके आक्रमणसे वचानेके छिये पुरीको अति सुदृढं करना चाहिये। महाभारतके वनपव में सुदृढं पुरीवर्णनकी जगह छिला है, कि शिशुपाछवधको वाद राजा शाल्वने द्वारकापुरी पर आक्रमण किया। उस समयं वह पुरी नीतिशास्त्रविधानानुसार सभी प्रकारसे सुसज्जित थी। वह नगर तोरण, पताका, योधगण, तदाश्रयस्थानं, शबुशहारक यन्त्रविशेष (कमान वन्द्रक प्रशृति), सुरङ्गरूप गुप्तपथनिर्माता, खनक, लोहमुखशंकु-युक्त रथ्या, खाद्यद्र्यपूरित अट्टालकयुक्त पुरद्वार, चक्रम्रहणो, विपश्चप्रक्षित उटका और अज्ञात निवारक आयुधिक्षणे, मृत्तिका और वर्मनिर्मित समस्त पात, भेरो, पणव और आनव आदि वाद्ययन्त्र, तोमर, अकुश, शतधनीं, लाङ्गल, भूशुण्डी, वर्त्तु लीहत पाषाणसमूह, पर्श्वभ, लोहमय चर्म, आग्नेय अस्त्रसमूह, गुलिकोपक्षेपक-यन्त्र और विविध अस्त्रश्रसोंसे परिपूणं था। प्रधान प्रधान वीरगण इस पुरोक्ती रक्षा करते थे।

यदि पुरीको संरक्षित करना हो, तो उसे उक्त द्रव्य द्वारा पूर्ण कर रखे। (भारत वनप॰ १५ ८०) पुर देखो। पुरी—विहार और उड़ीसाका एक उत्तरीय जिला। यह अक्षा॰ १६ २८ से २० २६ उ० तथा देशा॰ ८४ ५६ से ८६ २५ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४६६ वर्ग मोल है। इसके उत्तर और उत्तरपूर्व में कटक जिला, दक्षिणपूर्व और दक्षिणमें बङ्गोपसागर, पश्चिममें गआमका मन्द्राज जिला और उत्तर-पश्चिममें नयागढ़, रणपुर और खन्द्रपड़ा सामन्तराज्य है। पुरी नगर ही जिलाका सदर और विभागीय राजकर्मचारियोंका आवासस्थान है।

स्वमावतः पुरी जिला तीन भागोंमें विभक्त है, यथा— दयानदीके दक्षिणकुलसे दाण्डिमाल और खोरदाकी पार्वत्यमूमि तकका स्थान पश्चिमांशवत्तीं, यहांसे महा-नदीकी अववाहिका मध्यभाग और बिल्काहद तथा समुद्रपर्यन्त तकका स्थान पूर्वभाग। मध्य और पूर्व प्रदेशकी जमीन कह ममय और समुद्रतीरसे मध्यदेशवत्तीं पार्वतीय उपत्यका समधिक उर्वरा है। महानदीके मुहाने और छोटो छोटी बहुत-सी स्रोतस्विनी यहां वहने-के कारण खेतीवारीको विशेष सुविधा है। कोशाखाई नदीकी प्राचीन और कुश्भद्रा शाखा कुश्भद्रा नामसे वक्नोपसागरमें गिरता है तथा भाग वी, नूना और द्या नामकी तीन शाखाएं, भाग वी और द्या नामक चिल्का-हदमें आ मिली हैं। पूर्वाशकी अपेक्षा मध्यमांशकी जन-संख्या अधिक है। देवी नदीक मुहानास्थित पूर्व सीमा-

Vol. XIV 22

वर्त्ती स्थान जंगलसे परिपूण है। वर्षाकालमें जलपूर्णा नदीमें नाव द्वारा पण्यद्रव्य पहुंचाया जाता है। इस सप्तय मार्गवो, दया और नूना नहोको अवस्था मीपणतरा हो जाती है। भीषण वादसे तीस्वत्तीं भूमि इव जाती है जिससे शस्यादिकी विशेष क्षति होती है। दीन दुःबी प्रजाको इस प्रकार क्षतिप्रस्त होते देख १८६६ ई०मे' करीव चार सौ मील लम्बा एक सुदीर्घ वांध दिया गया है। उंक्त वर्ष की बाढ़से जल स्नावित हो पायः छः लाख रुपयेका अनाज नष्ट हुआ था। अळावा इसके प्रायः तीस हजार वीघा उर्थरा जमीन वाढ़के भयसे जोती नहीं गई थो । पूर्विदिक्स्ध बङ्गोपसागरका चर-स्थान वालुका-मय बलयक्त भी जिलेको घेरे हुए हैं। कहीं वह वालुका रेखा दो मील प्रशस्त और कहीं हस्तमात्र विस्तृत है। वाणिज्य विस्तारके लियं यहां कोई उपयुक्त वन्दर नहीं है। पुरी वन्दरमें एक मात्र आध्वितसे हे कर माध तक देशीय नावे आ जा सकतीं। चिल्काहर छोड़ कर यहां सर नामक एक और दो कीस लम्बा हुद है। उसी हुदके जलसे भाग बोकी बृद्धि और पुष्टि होती है, इसकी अपेक्षा चित्का हद १० गुणा बड़ा है। इस समुद्रांशकी पश्चिमी-सीमा पर पर्यंतमाला और पूर्वकी और बालुकास्तूप द्रावायमान है। यहां चरके पड़ जानेसे जो पारिकुदुद्वीव-की उत्पत्ति हुई है, अभी वही उस बालुकास्तूपके साथ मिल जानेके कारण समुद्रसे यह हद विलक्तल पृथ म् हो गया है। यहांकी द्रश्यावली नित्य नवीन और नयन-मन तृप्तिकर है। वर्षाऋतुमें पर्वत हो कर जलधारा ह्रदमें आ गिरी है, वर्षांकी सर्वेत्रासी बादसे वहांकी प्रजा तथा खेतो-बारीकी अवस्था प्रायः शोचनीय हो जाती है। शीत-के प्रारम्भमें अर्थात् अप्रहायण और पीषमासमें यहांका जल सारा रहता है। पूर्व समयमें यहां लवण प्रस्तुत होता था। विस्ता देशो।

पुरी जिलेके वनविभागमें शाल, शीशम, कोविदार, करहल, आम्र, पियासाल और कुर्मा प्रश्नित सृत्यवान् वृक्ष रहनेके कारण वहां चकीर काष्ट्रका उतना अभाव नहीं देखा जाता। वनजात मधु, मोम, दसर, नाना जातीय औषघ, वांश आदिसे देशवासियोंका विशेष उपकार होता है। शिकार, ध्रमण, प्राचीन लुप्तकीत्तियों-

का सन्दर्शन, देवालय और तीर्थादिके परिवर्शन प्रशृति कौत्हलोदीएक आरामपद विहार यहां अप्रतुल नहीं है। श्रीक्षेत्रके जगन्नाधदेशका मन्दिर, सुवनेश्वर-मन्दिर, कोणारक, खएडगिरि और नीलाचल स्थान देखने शोध हैं।

पुरी जिलेका कोई पृथक् इतिहास नहीं है। पहले करकनगरमें उड़ीसाविभागकी राजधानी थी। मुसलमान और महाराष्ट्र राजाओं के समयमें वहां जो सब लड़ा-इयां हुईं, वे करकके निकरवर्त्तीं स्थानोंमें ही हुईं थीं। इस कारण उड़ीसाके इतिहासके साथ इनका ऐति-हासिक तस्वसमूह निवद हुआ है। इस जिलेके अंगरेजी शासनमें आनेके वाद यहां वो राष्ट्रविष्ठवके निदर्शन पाये जाते हैं। १८०४ ईं०में खुर्दाके महाराजने अङ्गरेजींके विरुद्ध अल्लघारण किया था। पीछे १८१७-१८ ईं०में पुरीके कृपिजीवियोंमें से अनेक पाइक सेनाकी विद्रोह्य किमें जल मरे थे।

मरहर्जेंके बार बार आक्रमणसे विपर्यस्त ही खुर्दा-राज अपनी सम्पत्तिका अधिकांश की वैठे। पक्रमात खुर्दाके किलेमें ही उनकी साधीनता रह गई थी। (१८०३ ई०में) जब पुरीप्रदेश अङ्गरेजोंके हाथ आया, तब खुर्वापतिने अङ्गरेजींके साथ मित्रता कर ली अङ्गरेज कमि-श्ररके परामशेसे खुर्दाराज मरहठींको उनकी नद्यसम्पत्ति-का अधिकार देनेको सहमत हुए । किन्तु जब अंगरेजी-सेनाने पुरीका परित्याग करके मन्त्राजकी और प्रस्थान किया, तब राजाकी मति पलट गई। उन्होंने अपने राज्य-उद्घारका अच्छा मौका जान कर १८०४ ई०में सुगल-वन्दीके अन्तर्गत भारगांव श्रामका राजस वसूल करनेके लिये आदमी भेजा । अङ्गरेज-गवर्में एटके आदेशको उन्हों ने जो अवहेला की इसके लिये कमिश्ररने उनकी बड़ी निन्दाकी। इस पर भी उन्हें होश त हुआ और वे पुरीके जगन्नायदेवके मन्दिर-संकान्त कार्यावलीमें हस्तक्षेप करके जनसाधारणके अप्रिय हो उठे। कमिश्नर बहादुरने उन्हें सुगळवन्दीका राजस वसूल करनेसे निषेघ किया था। अनन्तर अक्-वर मासमें पाइकगण विद्रोही हो पिप्पली शामके निकट-वसीं स्थानीमें भीषण अत्याचार करने छगे। इस पर

करक गञ्जामसे यंगरेजी सेना मेजी गई। विद्रोही दल-ते पिपलीका परित्याग कर खुर्दा दुर्गमें आश्रय लिया। कुछ दिन लगातार गोलावर्गणके वाद दुर्ग अङ्गरेजों के हाथ लगा। राजा दुर्ग छोड़ कर माग चले, किन्तु आत्मसमर्पण करने पर भी उन्हें सम्पत्ति वापस न मिली। वंगरेज गवर्मेण्टके अधीन वह सम्पत्ति 'खास-महल' नामसे कहलाने लगी है। १८०७ ई०में राजाको मुक्ति दे कर पुरीधाममें रहनेका हुकुम मिला।

१८१७ ई०में पाइकगण पुनः विद्रोही हो उठे। इस गर खुर्दाराजसेनापति जगवन्धु उनके अधिनायक हो राजाकी तरह नेतृत्व करने छगे। ये पहले प्रविश्वत हो कर अपनी सम्पत्ति खो बैठे थे। इसीका परिशोध , लेनेके लिये वे दलवलके साथ इधर उधर भ्रमण करने . छगे । विद्रोही दछने समय पा कर वाणपुरके थाना और गवर्मेण्डआफिसको लूटा तथा खुर्बाके राजकीय-प्रासादादिको जला डाला । विद्रोह-दमनके लिये अंग-. रेजी सेनाने फटकसे खुर्दा और पिपलीकी ओर कूच किया। दोनों दलमें घमसान लड़ाई छिड़ी। आखिर अंग-रेजीने ही विजयपताका फहराई। शोवही सुशासन - प्रतिष्ठित हुआ। किन्तु वन्दिराजके ऊपर अंगरेजींका जो सन्देह था वह दूर न हुआ। राजाने कोई दूसरा उपाय न देख भाग जानेका विचार किया। अंगरेज-कौशलसे वे पुरी नगरमें ही पकड़े गये और फोटेविलि-यम दुर्गमें वन्दी भावमें प्रेरित हुए। इसी साल फोर्ट-विलियममें उनकी मृत्यु हुई। पीछे अंगरेजीशासनसे खुर्दाकी विशेष श्रीवृद्धि हुई । पुरीराज १८७८ ई०में हत्यापराधमें अभियुक्त हुए और आजीवन उन्होंने भंगरेजोंके अधीन दासत्व शङ्खलसे आवद हो अपना समय विताया। उनकी मृत्युके वाद उनके पुत ही अभी जगन्नाथमन्दिरकी देखरेख करते हैं। मन्दिरमें सवसे खुर्दाराजका ही भोग चढाया जाता है, पीछे और दूसरे . दूसरे छोगोंका । श्रीक्षेतके जगन्नाथ देवके मन्दिर इस पुरी जिलामें रहनेके कारण यह स्थान जनसाधारणमें विशेष मशहूर हो गया है। जगनाय देखी।

अन्यान्य विषयोंमें पुरीवासिगण विशेष कार्यकुशल नहीं होने पर भी लवण प्रस्तुत करनेमें वह सुदक्ष थे। अभी कपड़ा बुनना, सीने और चांदीका वारीक काम करना तथा महीका वरतन वनाना ही यहांका प्रधान अवसाय हो गया है। १८७६ ई०में कलकत्ते और मद्राज-में पण्यद्रव्य ले जा कर बेचनेके लिये एक नियम लिपिवद हुआ। चिक्कातीरवर्त्ती रम्भानगर हो उसका केन्द्रस्थान उहराया गया। कलकत्तेसे प्राएडट्राङ्करोड, कटकसे पुरी पर्यन्त याती जानेके पथ और वहांसे गक्षाम हो कर मन्द्राजट्राङ्करोड मन्द्राज नगर तक विस्तृत रहनेके कारण वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है।

जिलेकी जनसंख्या १०१५२६८ है, जिनमेसे सैकड़े पीछे ६८ हिन्दू और शेवमें मुसलमान तथा ईसाई हैं। अधिवासियोंके मध्य हिन्दूगण पूर्व प्रधानुसार ब्राह्मण, क्षितिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार भागोंमें विभक्त हैं। सभी लोग प्राचीन पद्धतिक अनुसार अपना अपना जातीय व्यवसाय करते हैं। इस जिलेमें १ शहर और ३१० ग्राम लगते हैं।

प्रायः १०वीं शताब्दी तक यहां वौद्धर्म खब बढ़ा चढ़ा था। सन्यासियोंका गुहावास, पावैतीय आवास वाटिका और शिलालिपि ही उसका निद्शैन है। खएड-गिरि नामक पर्वत ही वौद्ध-कोर्सिश्चेतका प्रधान स्थान था। सर्पगुहा, इस्ती और व्याव्रगुहा तथा राणीपुर नामक द्वितल वौद्धसङ्घासम आदि अनेक बौद्धकोर्सियां पाई गई हैं। वे सव कीर्त्तियां तीन विशिष्ट युगोंमें निर्मित हुई थीं, १म युग-वन्य पशुकी वासस्थानको तरह छोटी छोटो गुहा-वौद्धभिक्षक योगियोंका प्रार्थनामन्दिर ; २य युग-इस समय परस्परका सम्मीलन स्थान और सुन्दर मन्दिरादि बनाये गये ; ३य युग-सुन्दर वाटिका और यन्दिरादिका निर्माणकाल। राणीपुरका प्रासाद इसका निदर्शन है। उक्त सङ्घ-मन्दिरमें स्थापयिताकी चितित लीला खोदित है। सूर्यपूजाको निद्शीन स्थान कोणाक -का ध्यंसावशिष्ट मन्दिर आज भी उडीसाके उपकुलमें विद्यमान है।

अधिवासिगण समावतः ही दिद्य हैं। वैश्रभूपा सामान्य तथा दारिद्रव्यक्षक हैं। विद्याशिक्षाके लिये यहां महात्मा सर जार्ज कैम्बबेलके उत्साहसे प्रायः २ हजार विद्यालय प्रतिष्ठित हुए हैं। अलावा इसके संस्कृत सीखनेके लिये और भी कितने विद्यालय हैं। साधुसमागमके स्थान पवित्व श्रीक्षेत्रधाममें भी विभिन्न राष्ट्रपादि साम्प्रदायिक संन्यासियोंके मठ देखनेमें आते हैं। वे सन मठ शास्त्रादि आलोचना और साधुप्रसङ्गभके पक्तमाल पुण्यमय स्थान हैं तथा एक एक महन्त एक एक मठके अधिकारी हैं।

२ पुरी जिलेका उपविभाग । यह अक्षा० १६ २८ से २० २३ उ० और देशा० ८५ ८ से ८६ २५ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १५२८ वर्गमील और जनसंख्या सात लाखके करीन है। इसमें पुरी नामका एक शहर और १८८६ श्राम लगते हैं। जगन्नाथदेवका प्रधान मन्दिर पुरी शहरमें अवस्थित है।

३ पुरीका प्रधान नगर वा जगन्नाधक्षेत । यह अक्षा॰ १६ ४८ उ॰ और देगा॰ ८५ ४६ पू॰ समुद्रके किनारे अवस्थित है । जनसंख्या पचास हजारके करीव है।

पुरी नगर उतना छोटा नहीं है। पवित क्षेतकी सीमा ले कर इसका आयतन ६५०० वीघा है। यातियीं-के रहतेके लिये यहां अनेक मकान हैं। समुद्रतीरवर्त्तां वालुकामय स्तूपके मध्य हो कर नगरका जल अच्छी तरह नहीं निकलने तथा रास्ताओंके सङ्कीर्ण होनेके कारण यहांका खास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। इसीसे कभी कभी ज्वरादि उत्कृष्ट पीड़ाका प्रादुर्भाव देखा जाता है। विशेषतः रथयाता, रासयाता, दोळ्याता, स्नानयाता और हिन्दोलयाता आदि पर्वोमें यहाकी जन-संख्या इतनी बढ़ जाती है, कि परस्परके शारीरिक उत्ताप और मृतपुरीषादिके त्यागसे यहांका जलवायु विलक्त विगड़जाता है। साथ साथ प्लेग भी आ पहुंचता है। जग-न्नाय-दर्शनाभिलायी कितने तीर्धयाली अकाल ही समुद-गभेमें निक्षित होते हैं, उसका निरूपण करना कठिन है। इस अकालमृत्युका निवारण करनेके लिये वद्धपरिकर अंगरेजकर्मचारियोंने तोन उपाय अवलम्बंन किये हैं-

श्म—नियमित संख्याके अतिरिक्त छोगोंको न आने देना, २य—राहमें कोई विषदापद न आन पड़े, उसके ऊपर छक्ष्य रखना, ३य—जिससे नगरमें कोई देशव्यापक पीड़ा अथवा प्लेग आने न पावे, इस विषयमें विशेष सतक रहना। विस्चिका रोगका प्रादुर्माव होनेसे

पहले यात्रोका आना रोक दिया जाता है। दूसरे साया-भावके कारण भी यातियोंको भारी कप होता है। जहाज और वर्त्तमान रेळपथ होनेके वहुत पहलेसे ही यहां तीर्ध-यातिगण पैदल आया करते थे। प्रायः वावल, चिउड़ा और नदो तड़ागादिको दुष्ट जलका सेवन करनेसे वे रोगा-कान्त हो राहमें तरह तरहके कप्र भोगते थे और राहमें ही वहुतींकी जीवनलीला शेष हो जाती थी। इस प्रकार विपत्से तीर्थयातियोंको परिताण करनेके अभिप्रायसे राहमें अनेक अस्पताल राजाकी तरफसे. खुल गये हैं। श्रीसेत-समीपवर्ती, स्थानीमें रोगियोंका वदाकक करनेके लिये चिकित्साविभागसे एक .दल चौकीदार (Medical patrol) नियुक्त हुआ है । गवमेंस्टकी रेसी बेपा रहने पर भी मृत्युसंस्था कुछ भी कम नहीं हुई है। कारण भक्त तीर्थयातिगण जव तक मुमुर्षु अवस्थामें नहीं पहुंच जाते, तव तक वे अस्पताल जाना पसन्द करते ही नहीं।

पेतिहासिक तस्त्रींकी आलोचनासे मालूम होता है, कि बुद्धदेवके परवत्तीं समयसे ले कर वर्तमान काल तक यहां धर्मप्राणताकी पराकाष्ट्रा लक्षित हुई है। संक्षेपमें केवल इतना ही कहा जा सकना है, कि यहां ईसा-जन्मके पहले वीद्धधर्म विराजित था। पीछे ग्रैव और कमणा रामानुजादि वैष्णवमतावलिक्योंकी उत्ते-जनासे पुरीक्षेत वैष्णवमय हो गया था। आज भी यहां उन वीद्धों और विष्णवमेतावलिक्योंकी उत्ते-जनासे पुरीक्षेत वैष्णवमय हो गया था। आज भी यहां उन वीद्धों और विष्णवमित एकप्राणता और एकजता प्रकाल श्रोक्षेतमें हो विद्यमान है। वाजारमें भोग करोद्देत समय जातीयताका कुछ भी विचार नहीं है। प्रकप्राण और एकजातिकी तरह चएडालसे ले कर बाह्यण तक सभी एक पालमें मोजन कर सकते हैं और एकभाव जगकाथकी उपासना ही यहांका मुख्य धर्म है।

कितने वर्षीसे हिन्दू जातिका महातीर्थक्षेत जगन्नाथ-धाम जनसमाजमें परिचित है तथा वर्त्तमान श्रीमित्र कव वनाया गया है, उसका निरूपण करना. कठिन है। मालूम नहीं, ऐसे वालुकामय हतादृत स्थान पर हिन्दू-जगत्के श्रेष्ठतीर्थका अवस्थान क्यों हुआ।

युक्तप्रदेशके सभी पवित तीर्थं मुसलमान-आक्रमणसे विध्वस्त और अपवित हो गये हैं। वालुकामय समुद्री- पक्छ पर स्थान पा कर जगन्नाथदेवका मन्दिर आज भी मस्तक उठाये हुप है। जब उड़ीसाके अफगान मुसलमानोंने इस प्रदेश पर आक्रमण किया, उस समय भी जगन्नाथ देवके पंडा लोगोंका पूर्ण प्रभाव था। श्रीक्षेतकी देवमूर्तिके ऊपर पंडा पुरोहितोका पूर्णसत्त्व नहीं है। ये केवल ब्राह्मणोंके ही नहीं, वरन् सारे भारत-वासियोंके पूजनीय देवता हैं। उच श्रेणीके ब्राह्मणसे ले कर नीच शवर जातिका भी आधिपत्य देखा जाता है।

भारतीय इतिहासके प्रभाती ऊषामें यहां निर्वाणपिपासामें प्रबुद्ध बौद्धोंने आश्रयलाम किया था। कई
शताबरी तक शाक्यबुद्धका खर्णद्युद्ध इस पुरिधाममें
प्रोथित रहनेके कारण उतने समय तक यह नगर बौद्धोंका
जेवसलेम समका जाता था। समुद्रके उच्छ्वसित ऊर्मिमालाके घोर गभीर कलकल नादसे आत्मविस्मृत और
हैम्बरप्रकृतिके ओङ्कारके अनुपासके शाब्दिक हिल्लोलमें
तन्मय हो कितने साधु संन्यासा इस तीर्थसङ्गम पर आ
कर समुद्रतीरवर्त्ती खर्गद्वार नामक पवित्रक्षेत्रमें संसारसे
उदासीन हो कालक अनन्तकोड़में आश्रय लेते हैं, वह
देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। जिन्हें ईश्वरमें मिक
और वैराग्य हुआ है, वे जो जीवन भरमें एक वार जगनाथद्शान नहीं किये हैं, ऐसे मनुष्य भारतमें बहुत
कम है।

श्थी शताब्दोक प्रारम्भसे ही जगन्नाथदेवका प्रकृत इतिहास मिलता है। ३१८ ई०में रक्तवाहुने पुरी-आक-मणकी कथा इतिहासमें लिखी है। इस समय जब पुरो-हितगण देवमूर्ति ले कर नगरसे भाग चले, तव दस्युदल जनशून्य नगर पर अधिकार कर वैठे। प्रायः डेढ़ सौ वर्ण तक वह विग्रह पश्चिमदिक्वत्तीं जगङ्गलमें छिपा रहा। पीछे किसी धर्मपरायण राजाने विदेशियोंको मार भगा कर देवमूर्त्तिकी पुनः प्रतिष्ठा की थी। तीन वार यह देवमूर्त्ति चिल्काहदमें निक्षिप्त हुईं। समुद्रपथसे जलदस्य द्वारा आक्रमण अथवा दुईं र्ष अफगान अथवारोहियोंके करालकवलसे प्रतिमूर्त्तिकी रक्षा करना ही तहे शवासी प्राणसे भी वढ़ कर मूल्यवान समकते थे। पंडा लोग शतुके हाथसे पवित देवमूर्त्तिकी रक्षा करनेको अभिप्रायसे कभी उन्हें जलके मध्य और कभी जमीनके अन्दर छिपा कर रकते थे।

. Vol. XIV. 23

जगन्नाथके ऐसे विश्वच्यापी और चिरन्तनस्याति लासका कारण यह है, कि वे आपामर साधारणके देवता हैं। दीनदरिदसे छे कर धनधान्यवान् व्यक्तिपर्यन्त सभी समान भावसे यहां आचरित होते हैं। ब्राह्मण पंडासे ले कर पाषएड कृषक पर्यन्त समनाधिकारमें विजगत्के अधिपति नारायणके सामने खड़े हो सकते हैं। पर्तान्न-वन्धन प्रवोत्तमक्षेतमें जातिविचार कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण शदके हाथका और शद भी किसी दूसरी जातिके हाथका महाप्रसाद खाते हैं। परमेश्वरकी निगाहमें मनुष्य और कीट समान है। इस जगन्नाथक्षेत्रमें आवहमानकाल उसका निदर्शन विजगतपतिके समीप विद्यमान है। हिन्द्रशास्त्रमें यह जगन्नाथ-मूर्त्ति वैक्रण्ड-पति विष्णुका रूपान्तरमात है। पीछे पएडा लोगोंने विमूर्त्ति वा विधाशक्तिका अवान्तर आश्रय भ्रहण कर समय मुर्तिको जगनाय, भाता दलराम और भगिनी सभद्रा इन कल्पित नामों स्से अभिहित के किया है। पत-

क वृन्दावनचन्त्र औक्तरण नारायणके पूर्णावतारके जेवा कित्वत हैं। बलगम उनके माई ये और प्रमन्ना बद्दन थीं। विवाहस्थलमें कृष्णपश्चा अर्जुनकर्तृक सुभन्ना-हरण जेवा भीति॰ प्रद है, यहां भी सुभन्नाका विवाहन्यायार वैसा ही कल्यनाश्चित हैं। श्रीकेन्न सुभन्ना समुद्रके मयसे कर कर अपने दोनों भाइयोंकी धरणायन हुई हैं। यह मी अलौकिक है, कि जग-नाइयोंकी धरणायन हुई हैं। यह मी अलौकिक है, कि जग-नाइयोंकी धरणायन हुई हैं। यह मी अलौकिक है, कि जग-नाइयोंकी धरणायन हुई हैं। यह मी अलौकिक है, कि जग-नाइयोंकी धरणायन हुई हैं। यह मी अलौकिक है, कि जग-नाइयोंकी धरणायन है, कि जब समुद्र सुमद्राप्तार्थी हो कर आये, तब कन्नोलकी हु कारसे मयसीत हो इल्लामिनी सुमद्रा भग गई । भाईके आधायन देने पर वे उन्होंके समीप रह गई । श्रीकृष्ण (जगनाय) ने भनिनोका भय दूर करनेके लिये समुद्रको आये बढनेके रोक दिया। तसीसे समुद्र दूरमें ही दण्डाय-मान हैं। सनका गर्जन फिर कभी भी सुमद्राके कर्णस्पर्शी नहीं हुआ।

ने जगनाधरें कभी मूर्तिकी तरह वौद्धवासमें भी इस प्रकार चित्रांकित एक यन्त्रसक्तिका उस्टेस है। राजा राजेन्द्र-साठ, कर्निहम सादि प्रस्ततस्पविदींने दोनोंका साहस्य स्थ्य सरके जगनायको पूर्वतन बौद्धकीर्तिका क्यान्तर स्थिए किया है। विद्य यह ग्रुकि समीनीन नहीं है। सगनाब देशो। द्रिन्न भारतको संभी देवदेवियोंको मूर्ति पुरीमन्दिरकी चारों ओर पृतिष्ठित है। इस कारण भारतवासी विभिन्न साम्पृदायिक व्यक्तिगण यहाँ आ कर सच्छन्दतासे अपने अपने अभीष्टदेवकी पूजा कर आत्माको चरितार्थ करनेमें समर्थ होते हैं। देवमन्दिरमें पुराणादिसे नाना चित्न पृस्तरखण्ड पर पृतिफलित हुए हैं।

जगनाथदेवकी प्रतिमृत्ति इस प्रकार क्यों गठित हुई, इस सम्बन्धमें दो एक प्रवाद इस प्रकार प्रचलित है,-पुरा-कालमें इन्त्रयुम्न राजाने इसी देवमूर्त्तिकी स्थापनाकी कामनासे ब्रह्माकी तपस्या की । ब्रह्मांके वरसे विश्वकर्माने आ कर समुद्रसैकतमें इस मन्दिरका निर्माण किया। पीछे उन्होंने राजासे कहा, 'मैंने जगनाथकी प्रतिमूर्त्ति गढ़ना आरम्भ कर दिया है, जब तक मूर्त्तिगठन शेप न हो जाय. तव तफ कोई भी यह मन्दिर-द्वार खोल कर उसमें प्रवेश न करे, करनेसे काममें बाधा पहुंचेगी।' वहुत दिन वीत जाने पर राजा वड़े ही ध्यप्र हो उठे। उनका धैर्य विलक्कल जाता रहा । उन्होंने मन्दिर-द्वार खोला, . मूर्त्तिको वर्त्तमान आकृति तक गढ़ा हुआ पाया । तभीसे विश्वकमनिर्मित वही मूर्त्ति जनसमाजमें जगनायदेवकी प्रतिमूर्ति समक कर पूजी जाती है। फिर किसी किसी-का कहना है, कि यहांके आदिमवासी शवरगण निविड अरण्यमें नीलवर्णके एक पत्थरकी पूजा करते थें। वह जाव्रत देवता अनार्य जातिकी पूजा और उत्सर्गीकृत उपहारादिसे परितुष्ट न हो कर आर्योंके पवित्र और शुद्ध-भावसे प्रदत्त भोगादि प्रहण करनेको इच्छुक हुए। प्राचीन आर्थ वंशीय जब कभी किसी राजाने इस प्रदेशमें पदापण किया तव उन्होंके यत्नसे उस प्रस्थरखण्डको काट छांट कर नूतनभावसे प्रतिमूर्त्ति गठित हुई। आज भी उड़ीसाने प्रत्येक घरमें दोनों प्रकारकी पूजा प्रचलित हैं। आर्य जातिकी देवदेवीक़े मन्द्रिके पार्श्वही प्राचीन अनार्योंकी मूर्तिहीन प्रस्तरमय ग्राम्यवेवताओंकी मी स्वतन्त पद्धतिके अनुसार पूजाविधि निवद्ध है।

उक्त प्रकारसे कोई युक्तप्रदेशवासी विष्णुपूजक किसी आय वंशीय राजाके पुरीधाममें आगमन और अवस्थान-की कल्पना करते हैं। क्रमशः उन्होंने आदिम अधि-वासियोंको अधीनतापाशके वद्ध करनेकी आशासे इनकी मनस्तुष्टिके लिये आयं और अनार्य प्रथाके कियाकला पादिको मिश्रित कर रखा है। पुराणमें लिखा है, कि विष्णु एक माल राजा और वीरपुरुवींके देवता हैं। उक्त विधानसे यहांको जगनाय मूर्ति भी सबसे पहले ब्राह्मण द्वारा पूजित न हो कर राजा-द्वारा पूजित होती है और राजाके आवेशसे पूजाविधि प्रवर्त्तित हुआ करती है।

इस सुदूर जाङ्गलभूमिमै पहले पहल वैष्णवधर्मका प्रचार हुआ, सो नहीं। सम्भतः सबसे पहले यहां अनायी-की प्रस्तरपूजाकी ही प्रधानता थी। क्रमशः आर्यंगण स्वधर्म प्रचारके उद्देशसे वहां आये। पीछे ईसा जन्मके पहलेसे ले कर ४थी शताब्दी तक यहां बौद्धयति और मार्हेत्गणके कलकएठसे उड़ीसाका कन्दरसमूह प्रति-ध्वनित हुआ था। इस समय उसके साथ साथ शैव और वैणावींका अम्युद्य हुआ। शैवप्रभावका चूड़ान्त द्वरान्त भुवनेश्वरमन्दिरमें ही प्रतिभात हुआ है। ५वीं शताब्दीसे ही यहां वैष्णव धमेकी गोटी जमने लगी। १२वीं शताब्दीकी पुरीधाममें जो जगकाथदेव उडिसापतिके चिरसहाय और सम्पत्ति थे, रामानुजको ओजस्विनी वक्तृता और तेज-स्विनी प्रतिभासे समस्त दाक्षिणात्यवासीने उक्त देव-मुक्तिको पुज्य देवता समक्त लिया था। ११५० ई०में उक्त महापुरुषने नगर नगर घूम कर विष्णुमें एकत्व, आदि-के कारण का आरोप करके वैच्याव धम का प्वार किया। जब नारायण समस्त ब्रह्माएडके अधिपति हैं, तब सभी मनुर्योका उनके ऊपर समान अधिकार है। रामानुजके शिष्योंसे ही वैष्णवोंकी जातीय एकताका सूलपात हुआ । वे जव एक ईश्वरकी खुए-सन्तान हैं, तव उनके साध एकत भोजन और शयन करना अनेध नहीं है।

११०७ ई०में राजा चोड़गङ्गदेव उड़ोसाके सिहासन पर अधिकढ़ थे। गङ्गगनदीसे छे कर गोदावरी तट तक उनका आधिपत्य फैला हुआ था। उनके दंशके अनङ्ग-भीम १० सेतु और १५२ स्नानसोपानका निर्माण, कूप तड़ागादिका खनन, पान्थशाला आदि साधारण आश्रय-स्थान इत्यादि कीर्तियां छोड़ कर गये हैं। वर्तमान जगक्षाथका मन्दिर चीड़गङ्गकी अलीकिक कीर्ति है।

१३वीं और १४वीं शताब्दीको मारतमें नवयुग उप-स्थित हुआ। वैन्णव-चूड़ामणि रामानन्द और कवीरकी विमोहिनी वक्तृतासे विमुन्ध हो भारतवासियोंने वैष्णव-धर्म प्रहण किया और इस प्रकार अपनेको पुण्यवान् समका। क्वीरके वाद महाप्रभु श्रीचैतन्यने जगत्-वासियोंको भुळा कर वैष्णवधर्मका प्रचार किया। उक्त महायुक्पके मतसे जगदीश्वरके निकट जाति वा कुळका विचार नहीं है। जो कायमनसे उनकी सेवामें रत रहते हैं, वे कमा भी विमुख नहीं होते। चैतन्यके प्रभावसे पुरोवासी वेष्णवधर्ममें दीक्षित हुए। वहांके प्रधान प्रधान पिछतोंने महाप्रभुके तर्कसे पराभृत हो उनका शिष्यत्व प्रहण किया। श्रोक्षेत्र ही चैतन्यको जीवळीळा हुई। उनकी मृत्युके वाद वैष्णवोंने उन्हें नारायणका अंश जान कर जगन्नाथ-मन्दिरके पार्श्वमें उनको भी मूर्ति-प्रतिष्ठा की है। समय उत्कळप्रदेशमें आज भी प्रायः ८ सौ चैतन्यमूर्ति विराजित हैं।

महाप्रभुकी जीवइशामें ही (१५२० ई०में) उत्तर-भारतमें वल्लभखामीने वैध्यव मतका प्रचार किया। उनका मत उक्त महायुक्षोंके मतसे खतन्त्र था। रामानुन, रामा-नग्द, कवीर, चैतन्य और बल्लनस्वामी आदि सब्द देखी।

इस प्रकार धीरे धीरे धार्मिकोंके अम्युद्य और पुण्यक्षेत जगन्नाथतीर्थमें समागमके लिये अनेक मठों-की प्रतिष्ठा हुई है। जगन्नाथदेवकी वार्षिक आय प्रायः ७ लाख रुपयेकी है। प्रतिद्वन्न यातियोंके प्रदत्त अल-ङ्कारादि भी कम दामके नहीं होते। प्रवाद है, कि प्रसिद्ध कोहिन्र जो एक समय खएडाकारमें महाराणी भारतेथ्यरी विकृरियाके मुकुटमें और अभी पञ्चमजाजंके मुकुटमें शोभा देता है, वही पञ्जावकेशरी रणजित् सिंह जगन्नाथदेवको दान कर गये थे । जगन्नाथक्षेतमें वैकावधर्मका पूण प्रभाव विद्यमान रहने पर भी विमला देवीके मन्दिरमें शक्तिउपासनाके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं।

जगन्नाथको सेवकमण्डलोके मध्य प्रायः ३६ थाक और ६७ श्रेणो हैं। खुर्दाराज सर्वोमें श्रेष्ठ है। पंडा लोगोंमेंसे कुछ देवमूर्त्तिको आभरणादिसे भूषित करते, कोई पूजाके आयोजनमें लगे रहते, कोई परिच्छादिको रक्षा करते और कोई रन्धनादि काम करते हैं। एतद्भिन्न सेवानुरत भृत्यगण, नर्त्तकोगण, वाद्यकरगण, मालाकार-गण और नाना कारिकर देवसेवामें समय विताते हैं। श्रीमन्दिरके एक एक स्थानमें प्राचीन सभी प्रन्थ रक्षित हैं। यहां वहुतसे विज्ञ ध्यक्ति सर्वदा शास्त्रानुशीलनमें समय ध्यतीत करते हैं।

देवमन्दिर चार भागोंमें विभक्त है, १म भोगमन्दिर, २य नाट्यमन्दिर, ३य दर्शनमन्दिर वा जगमोहन और ४थ पीठभूमि वा पवित गभँगृह। यहां जगन्नाथ, वलराम और सुभद्राकी मूर्ति स्थापित है। सिहद्वारके वहिर्दशमें एक अति पाचीन स्तस्म है जहां वहुतसे दर्शक भा कर इकट्ट होते हैं। पुरो उपक्लसे १० कोस उत्तर जहां सूर्यउपासकोंके पवित मन्दिरादिका ध्वंसावरोध पड़ा है, उक्त स्तम्म उसी कोणार्कसे लाया गया है। कितने समय पहले यहां सूर्यांपासना प्रचलित थी, उसके पूछत समयका निरूपण करना कठिन है।

मन्दिरका विस्तुत विवरण जग्नाय शब्दमें देखी।

जगन्नाथदेवकी रथयाता ही यहांका प्रधान उत्सव है। यह उत्सव आषादी शुक्का द्वितीयासे आरम्भ हो कर आह दिन तक रहता है। जगन्नाथ देवका रथ ४५ फुट ऊंचा, ३५ फुट चतुरस्न और ७ फुट व्यासके १६ चन हैं। सुमद्रा और वलरामका रथ उससे कुछ छोटा है। उत्सवके दिन मूर्चिको तीन रथों पर विठा कर महासमारोहसे उद्यानवाटिकामें ले जाते हैं। उद्यान-वाटिकासे ले कर श्रीमन्दिर तक रथयाताके उपयोगी केवल एकही पूशस्त पथ है और सभी पथ संकीण हैं। श्री-मन्दिरसे उद्यानवाटिका आध कोससे भी कुछ कम दूरी पर है। इस पथ हो कर रथ लाते समय वालू चन वैठ जाता है (४२०० सी वहांके गृहस्थ और तीर्थयातिगण

[#] प्रवाद है, कि यह मणि जगनाथकी ही थी। हिन्दु वर्मद्वेणी प्रसिद्ध काठापहाडने बगनाथ देवके अंगसे वह मणि विच्छिन्न करके दाक्षमय देहकी जला कर चिरुकादिमें फेंक दिया था। पण्डा लोगोंने देवमूर्तिकी पुन: प्रतिष्ठा की है। अंगी प्रतिवर्ष स्नानयात्राके समय जगनाथदेवके शरीरमें रंग दिया जाता है। रणजित्ने मुसलमानसाहुसे कोहिन्द ले कर पुन: जगनाथदेवको दे दिया था। इस प्रवादके मूलमें कुछ भी सल नहीं है।

मिलकर रथ कींचते हैं, तो भी आध कोसका रास्ता तै करनेमें कई दिन लग जाते हैं। सूर्यके निदारुण उत्तापसे तथा दश वीस हजार जनताके मध्य प्राणपणसे रथ खींचनेसे सदीं गर्मीके मारे किसी किसीकी मृत्यु भी हो जाती है। जब रथ उद्यान पहुंचता है, तब सर्वो-के आनन्दका पारावार नहीं रहता। महोल्लाससे याति-गण उस उत्तत बालुकाके ऊपर लेट जाते हैं। वहुत देर वाद वे उठते और स्नानको जाते हैं। पहले कभी कभी उन्मत्तको तरह नाच करते करते कोई कोई याती रथचक्रके तले गिर कर प्राण गंवाते थे, किन्तु अभी ऐसी अपघात मृत्यु नहीं होती। लोगोंकी भीड़से कितने मनुष्य चकके नीचे पंड़ कर प्राण को वैठते हैं। फिर कोई कोई (जो कठिन रोगसे प्रसित हैं) खें च्छासे चक्कमे तले पड़ कर इस यन्त्रणाको लायव करते हैं। रथसे दव कर मरनेसे देवमूर्त्तिको छूनेमें अपवित्रता नहीं समभी जाती। किन्तु मन्दिर-खामीके मध्य यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो सभी अपवित्न होते हैं। यथाविधि स्नान आदि द्वारा देवमूर्ति शुद्ध हो जाती है, दूसरे दूसरे स्थान जलसे घो दिये जाते हैं।

जगन्नाथ सभी भारतवासियोंके देवता हैं। यहां-सभी देवमूर्तियोंका पर्यवेक्षण करनेसे ऐसा अनुमान किया जाता है, कि एक समय यहां भारतवासी सभी जातीय धर्मसम्प्रदायने आश्रय पाया था। किन्तु कह नहीं सकते, कि किस कारण वर्त्तमान समयमें पंडा छोग सुंड़ो, चमार, च'डाल, मेहतर आदि नीच जातिको, यवन, म्लेच्छ आदि विधर्भी सम्प्रद्रायको तथा कसाई और पशुमांसभोजी आदि जातियोंको मन्दिरके भीतर घुसने नहीं देते। जूता पहन कर अथवा हाथमें चमड़े का वैग लिये मन्दिर-में प्रवेश करना निषेध् है। रात दिन मुएडके मुएड याती पुरीनगरमें आते हैं। यातियोंमें विशेष कर स्त्रीकी संख्या ही अधिक देखी जाती है। पत्रितन वड़ी वड़ी मूं छ दाढ़ी जटावाले उलङ्ग संन्यासी जगन्नाथ-दर्शनको . आते हैं। पूर्व समयमें जब रेलगाड़ी नहीं चली थी, तव याती पैदल ही यहां आया करते थे। सुन्दर वालुकामय प्रान्तर हो कर इतने छोगोंका गर्मनागमन ठीक समर-वाहिनी सेनावलकी तरह दिलाई देता है। आगत

यातियोंको पकड़ लानेके लिये पंडा लोगोंके अधीन प्रायः ३ हजार आदमी प्राम प्राममें धूमते हैं।

जब याती सिहद्वारमें प्रवेश करते हैं, तब एक आदमी काड़ छे कर उन्हें धोरे धीरे मारता है। विश्वास है, कि ऐसा करनेसे उनका पूर्व सिश्चित पाप जाता रहता है। प्रति दिन प्रायः ५ हजार याती एक साथ सान करते देखे जाते हैं। रथयाताके समय स्वर्णद्वारके निकट प्रायः ४०००० याती एक वारमें स्नान करनेको अवतीर्ण होते हैं। पुरी-धाममें प्रति वर्ष कितने मनुत्य आते हैं, उसका निरुपण करना कठिन है। रथयाता उत्सवमें प्रायः ६० हजार छोगोंके छिये प्रसाद प्रस्तुन होता है और अन्यान्य उत्सवोंमें प्रायः ७० हजार यातियोंके छिये रसोई वनती है। मिसनारारियोंके छिखित यृत्तान्तसे जाना जाता है, कि किसी किसी साछ रथयाताके समय प्रायः डेढ़ छाख मनुष्य यहां इकट्ठे होते हैं।

यातियोंके पुरो आनेसे ही पंडा छोग नये चूल्हे जला कर उन्हें रसोई वनानेसे मना कर देते हैं। कारण जिस पवित नगरमें जगन्नाधदेव प्रसाद देते हैं, वहां उस प्रसादंका प्ररित्याग कर खपाक-अन्तप्रहण महापाप है। इस कारण धर्मपरायण भारतवासियोंके लिये प्रसाद खानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। पर्यु पित प्रसाद खानेसे तथा अखास्थ्य स्थान पर सोने वेडनेसे तीर्थयादी-गण विस्चिका रोगसे प्रसित हो जाते हैं। घरमें करोखे नहीं रहनेसे परिष्ठत हवा घुसने नहीं पाती । इस कारण रोगी दुर्गन्धयुक्त बायुसे मारात्मक हो जाते हैं। १३११ फुट लम्बे घरमें महाजनताके समय ७०१८० आदमो रालियापन करते हैं। रथवाता देख कर जब लाखें मनुष्य खदेशको छौटते हैं, तद प्रायः सभी नदियां वाढ़के जलसे भर आती हैं। उस समय किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उस वेगवती स्रोतखुतीको पार कर नाव द्वारा भी दूसरे किनारे जा सके। एक तो पथश्रमके हुँ श, दूसरे खुछे मैदानमें घूप पानीके तले वास, उसके ऊपर गुड़ चिउँ ड़ा आदि खानेसे शरोर इतना क्लिप्ट हो जाता है, कि मनुष्य अकालको करालकालके शिकार वन जाते हैं। कितने वाढ़में डूव मरते हैं और कितने ज्वरके विकारसे प्राण खो वैठते हैं।

१८७० और १६०० ई०के रथयाता उपलक्षमें यहां महामारी वहुत जोर शोरसे फैळ गई थी। शवराशि देख कर अधिकांश याती रथ आनेके पहिले ही श्रांक्षेत छोड़ कर प्राणभयसे भाग चले थे। महामारीका प्रकोप इतना वढ़ा कि वृटिशगवर्मेंग्टके विशेष चेष्टा करने पर भी सैकडोंकी जान गई थी। अभी यहां अच्छा वन्दोवस्त हो गया है। यासीका दल थोड़ा थोड़ा करके आता और जाता है और रोगी ऐसे यत्नसे अस्प-तालमें रखे जाते हैं, कि गवम एटको किसी प्रकार दोपी नहीं कह सकते। हिन्दुतीथँमें विधर्मी राजाका हस्थक्षेप करनेका अधिकार नहीं है। राज्येश्वर अनाद्वत यालियोंका आगमन रोक नहीं सकते । क्योंकि ऐसा करनेसे हिन्दुका धर्महानि हो सकतो है। पुरीधाम भारतवासियोंका एक महापुरण्यतीर्थ और वैश्णवधर्मकी पृक्त मिद्रशंनभूमि है। पुरीतत् (सं ० पु० क्की०) पुरीं शरीरं तनोतीति तन-किए (गमः क्वी । पा ६।४।४०) इत्यत 'गमादीनामिति वक्तव्य' इति वार्त्तिकोक्त्या अनुनासिकलोपः तुगागमस्च ततो (नहिब्रुत्तिवृषि न्यधिरुचि अहितानेषु क्यो । पा ६।६।११६) पूर्वपदस्य दीर्घः । अन्त्र, आंत ।

पुरोदास (सं॰ पु॰) परमानन्दपुरी देखो । पुरोमोह (सं॰ पु॰) पुरी शरीरं मोह-यतीति मुह-णिच् (कर्म्येण्यण । पा ३।२।१) धुस्तूर, धत्रा । पुरोष (सं॰ क्की॰) पिपर्ति शरीरमिति पृ-ईषन् सच कित्

(श्रवृक्ष्यांकिच । उण् ४।२७.) १ विष्ठा, मल, गू।

जो सव वस्तु खाई जाती हैं, उनका सारांश रस और रक्तादि कपमें परिणत एवं असार अंशका स्थूलभाग विश्वाक्षपमें तथा जलीयांश मूलाकारमें परिणत होता है। जिस प्कार प्रतिदिन आहार करना होता है, उसी प्कार प्रतिदिन आहार करना होता है। शास्त्रमें भोजनादिका जैसा विधान है, प्ररीषत्यागका विपय मी वैसा ही देखनेमें आता है। आहिकतत्त्वमें लिखा है, कि गृही अरुणोदयकालमें उठ कर दन्तधावनके वाद प्रतिषत्याग करे। स्थोंदयके पहले चार दएडकालको ही अरुणोदयकाल कहते हैं। मूल वा प्रतिपक्ता वेग

उपस्थित होने पर कभी भी उसे रोके न रखे। किन्तु इन्द्रियवेगको जहां तक हो सके अवश्य रोके। मल और मूलका वेग रोकनेसे नाना प्रकारको पीड़ा उपस्थित होती है। जब मूल और पुरीष त्याग करने वैठे, उस समय पैरके तले एक तृण रख है, मस्तकको वस्त्रसे ढँक ले और तब मौनी हो कर छीवन वा उच्छ्वासरहित हो पुरीष वा मूल त्याग करे।

"उत्थाय पश्चिमे रातेस्तत आचम्य चोदकं। अत्तर्धाय तृणेर्भूमि शिरःप्रावृत्य वाससा॥ बाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्रासवर्जितः। कुर्यान्म्वपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥"

(आहिकतत्त्व)

घरसे निकल कर नैऋ तकोणमें शरिनक्षेप करनेसे वह जितनो दूर जा सके, उतना स्थान छोड़ कर, मूल और पुरीपत्याग करे। मल और मूलत्याग दिनके समय उत्तर ओर रातके समय दक्षिण ओर विधेय हैं। पुरीयत्यागके समय द्विजको उपयीत कण्डलम्बत वा दक्षिणकामें रखना चाहिये। जूता पहन कर मूल वा पुरीयत्याग करना मना है। "न च सोपानको मूबपुरीषे इर्यात" (अ हिकतन्त) मूल वा पुरीपोत्सर्गके समय जलपाल स्पर्श न करे, करनेसे वह जल मूलके जैसा समका जाता है। स्पर्भ, जल, दिज और गो इनके अभिमुखी हो कर मलमूल त्याग करनेसे आयुःक्षय होता है।

"प्रत्यादित्य' प्रतिजल' प्रतिगाञ्च प्रतिद्विजं।
मेहन्ति ये च पथिबु ते भवन्ति गतायुवः॥"
(आह्रिकतत्त्व)

पथ, भसा, गोबज, हलसे जोता हुआ स्थान, पर्वत, जीर्णदेवायतन, वल्मीक, ससत्त्व गर्च, जिस गर्चमें जीव रहता हो, नदीतीर और पर्वतमस्तक इन सब स्थानों पर मलमूब-त्याग नहीं करना चाहिये। अतिगुप्त भावमें मूब और पुरीपत्याग विधेय है। (अ हिस्तस्व)

पश्पुराण-उत्तरखग्हके ६४वें अध्याथमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। यहां उसका सारांश अति संदेगमें दिया जाता है—ज्ञाह्ममुह्न्तमें उठ कर हस्त और मुख प्रक्षालन करे। पीछे एक सौ धनुःपरिमित स्थान (शर निक्षेप करनेसे वह जितनी दूर जा गिरे, तत्परिमित स्थान) अथवा ग्रामके वाहर पुरीषत्याग करें। नैऋं तकोणमें पूर्वोक्त परिमित स्थान वाद दें कर खिनत द्वारा तिमुष्टि आयत और १२ अंगुल गमीर गर्न वनावे। पीछे मस्तकको वस्रसे ढँक ले और उपवीतको दक्षिण कर्णमें संलग्न कर पुरीप त्याग करें। पुरीषत्यागके समय मौनी होना उचित है और उस समय सूर्य, चन्द्र, ब्राह्मण, गुरु, देवतामूर्चि, स्त्री और गुरुजन आदिका कभी भी अवलोकन न करे। पूर्वाहमें पिश्चममुख, अगराहमें पूर्वभुख, मध्याहमें उत्तरमुख और राति-कालमें दक्षिणमुखी हो पुरीप त्याग करना चाहिये।

"पूर्वाह तु द्विजः क्यांत् पिश्चमाभिमुखोऽथवा। अपराह पूर्वमुखो मूलगूथियसर्जनम्॥ मध्याह प्रयतः कूर्यात् यतवागुत्तरामुखः। दक्षिणाभिमुखो रालौ द्विजो मैलं प्रयत्नतः॥" (पद्मपुराण उत्तरखण्ड)

निशा वा अन्यकारमें कोई भी दिशा क्यों न हो, मूल और पुरीप त्याग किया जा सकता है।

देवायतन, वृक्षमूल, जल, नद, नदी, कूप, मार्ग, वापी, गोष्ठ, भस्म, चिताग्नि, स्मशान, उपर, द्विजालय, जलसमीप, आकाश, पुण्डू, शाद्वल, समुद, तीर्थ, यह्मवृक्ष्म्स्ल, वैश्यवालय, फालकृष्टभूमि, शस्यक्षेत्र, पुणोद्यान, पर्वतमख्तक, गोव्रत, नदीतीर, यह्मभूमि, पवितीकृत स्थल-प्रभृति, इन सब स्थानों पर कभी भी मूत वा पुरीप त्याग न करे। मूत और पुरीप त्याग करके जलशौच कर ले। पीछे पवित्र स्थानसे मृत्तिका ले कर उससे शौच और वादमें पुनः जलशौच विधेय है। इस प्रकार शौच करनेसे पुरीधकी गन्ध विलकुल जाती रहती है।

"प्रथमेऽन्त्रिनेरः शौचं कुर्यान्मृद्धिरतः परं । पुनर्जेक्षेः पुरीषस्य यथा गन्यक्षयो भवेत् ॥" (पद्मपु० उत्तरख०)

मृत्तिकाशीचमें मलद्वारमें तीन, पांच वा सात वार, शिश्वदेशमें एक वार और वाएं हाथमें ७ वार मृत्तिका देनी होती हैं। (५६९० इत्तरहा॰) २ उदक, जल, पानी। ३ पुरीपतुल्य मृत्तिका, विग्राके समान मही। पुरीपकृमि (सं॰ पु॰) विग्राजात कृमि, गूसे पैदा होने-

वाला कीड़ा।

पुरीषण (सं० पु०) पुर्या देहात् इष्यते त्यज्यते इति पुरी-इप-कर्मणि ब्युट् । पुरीष, विष्ठा ।

पुरीषम (सं० पु०) पुरीषं मिमीते मा-क। माप, उरद। पुरीषवत् (सं० ति०) पुरीष-मतुप्, मस्य व। पुरीप-विशिष्ठ।

पुरीषवाहन (सं० ति०) १ पांशुद्धप मृद्वाहक । २ यवस-वाहक गर्दम ।

पुरीषाधान (सं॰ क्ली॰) पुरीषमाधीयतेऽतः, आ-धा-आधारे ल्युट् । देहस्थं पुरीपाशयस्थान, देहमें वह स्थान जहां पुरीप रहता है ।

पुरीपिन् (सं॰ ति॰) पृणाति प्रीणातीति वा पुरीपमुद्दं ततः मत्वर्थे इनि । जलयुक्त ।

पुरीष्य (सं॰ ति॰) पुरीषाय हितं यत् । पुरीपहित, पशु-हिन ।

पुरीन्यवाहन (सं० ति०) पुरीणं यहति वह-ज्युट् (६६४-पुरीवपुरीच्येषु ज्युट् । या ३१२१६५) पुरीव्यवाहक, पुरीच्य-वाहनकारी ।

पुरु (सं० पु०) पिपर्ति पूर्वते बेति पू (पृमिदेव्यधियिक्षधृषिद्विभ्यः। वण् ११२४) इति कु, ततः (विकायपूर्वसः।
पा जोशाह् ०२) इति उत्वं, (उरण् रपरः। पा १११५१)
इति रपरत्वं। १ देवलोक। २ दैत्य। ३ नदीमेव।
४ राजविशेष। ५ चाक्षुषमनुके पुत्रभेद। ६ पर्वतमेदः।
इस पर्वत पर पुरुरवाका जन्म हुआ था और भूगुने
तपस्या की थी।

"पर्वतस्य पुरुर्नाम यत जातः पुरुरवाः । भृगुर्यत तपस्तेपे महर्षिगण-सेविते ॥"

(भारत ३।६०।२२)

शरीर । ८ पराग । ६ नृपमेद, यसातिके किनष्ठ
 पुत । महाभारतमें इनका विचरण इस प्रकार है,—

नहुषके लड़के ययातिकी दो स्त्रिया थीं, देवयानी और शिमेष्ठा । देवयानोंके गर्भसे यदु और तुर्वस्रु तथा शिमेष्ठाके गर्भसे द्रस, अनु और पुरु हुए। शुक्राचार्यके शापसे जव ययाति जराश्रस्त हुए, तव उन्होंने सव पुत्रों-को बुला कर कहा, हि पुत्रगण! में काममोगसे तृप्त नहीं हुआ हूं, अतएव सहस्र वर्ण तक तुममेंसे कोई एक मेरा बुढ़ापा लो और अपनी ज़वानी मुक्ते दो, जिससे में पुनः जवान हो कर अभिनव-शरीर द्वारा कामभीग कर सक् ।' इस पर यदु प्रमृति कोई भी बुढ़ापा छे कर अपनी जवानी देने पर सम्मत न हुआ। अनन्तर छोटे छड़के पुरुने पितासे कहा, 'हे राजन ! मैं अपनी जवानी खुशीसे देता हूं, आप इसे छे कर सहस्र वर्ष तक कामभीग कीजिये।'

पुरसे योवन प्राप्त कर ययातिने सहस्त वर्ण तक कामभोग किया, पर इतने पर भी उन्हें तृप्ति न हुई। अन्तमें उन्हों ने पुनः पुरको बुला कर अपना बुढ़ापा उनमें से लेलिया और उनका योवन लौटा दिया। पीछे उन्हें राज्याभिषिक कर कहा, 'पुत ! तुम ही मेरी उपयुक्त सन्तान हो, तुम हीसे में पुत्रवान हुआ हुं, इस कारण आजसे यह वंश तुम्हारे नाम पर अर्थात् पौरव नामसे प्रसिद्ध होगा।' पिताका आक्रापालन करनेके कारण पुरु सबसे छोटा होने पर भी और उयेष्ठ भाइयोंके रहते भी राज्यके अधिकारी हुए थे। पीछे पौष्टि नाझी स्त्रीसे इनके तीन पुत्र हुए, प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व। इन्होंसे चर्डवंशीय क्षतियोंकी उत्पत्ति है।

(सारत ७५।८३ अ०)

आर्यजातिके सर्वप्राचीन ऋग्वेद प्रन्थमें इनका परि-चय मिलता है। पतिस्निन्न हरिवंश, श्रोमस्रागवत, ब्रह्माण्डपुराण और विष्णुपुराणादिमें इनका परिचय जैसा लिखा है, वह नीचे देते हैं—

ये महातमा नहुषके पौत और महाराज ययातिके पुत थे। महाराज ययातिने सारी पृथ्वी जीत कर उशना-की छड़की देवयानीसे, पीछे वृपपर्वा नामक असुरकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया। देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वस्र तथा शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रह्म, अनु और पुरु उत्पन्न हुए। ऋग्वेद (१११०८।८)-में भी इन पांच नामोंका उद्घेख है। सायणाचार्यके भाष्यसे जाना जाता है, कि इन्द्र उनके सहाय थे। पुरुक्ते वड़े भारी विजयी, पराक्रमी, उदारचेता तथा वंशके एक उज्ज्वल एत होनेकी चर्चा भी ऋग्वेदमें है।

"त्विद्धिया विश आयम्मसिक्षी रसमनाजहतीमींजनानि । वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यद्ग्ने व्रयञ्जवीदेः॥" अर्थात् हें वैश्वानर ! जव तुम पुरुके समीप देवीय्य-मान हो कर पुरियोंका. विध्वंस करके प्रज्वित हुए, तव तुम्हारे भयसे असिक्ती प्रजागण भोजन छोड़ छोड़ कर आई'। इससे अनुमान किया जाता है, कि पुरुकों बोरत्वप्रभासे चमत्कृत कृष्णवर्ण अनार्यगण उनके शरणा- एक हुए थे। एक स्थान पर और भी लिखा है,— "प्र पौग्कृत्वि' त्रधदस्युमावः क्षेतवाता वृत्रहर्येषु पूरुम ।" (ऋक् ७१६१३) अर्थात् हे वर्णक इन्द्र! तुम युद्धमें भूमिलाभके लिथे पुरुकुत्सके पुत तसदस्यु और पुरुकों रक्षा करों। इसका समर्थन एक और मन्त इस प्रकार करता है— "भिनत्पुरो नवितिमन्त्रो पूरवे दिवोदासाय महि दाशुवे नृतो" (ऋक् १११३०।७) अर्थात् हे (नृत्यशील) इन्द्र! तुमने पुरु और दिवोदास राजाके लिथे नव्यो पुरोंका नाश किया है।

शुकाचार्यके शापसे जब महाराज ययाति जरामस्त
हुए तब उन्होंने सब पुत्रोंको एक एक कर बुला कर
अपना बुढ़ापा देना चाहा। पर पुरुको छोड़ और कोई
बुढ़ापा छे कर अपनी जबानी देने पर सम्मत न हुआ।
पीछे महाप्राझ ययातिने अभिलिषत सम्भोगके वाद पुरुको योवन प्रत्यर्पण कर राज्यमें अभिषेक किया। इसके
वाद 'तुम हो मेरे एकमाल यंश्रधर हो और तुम्हारे हो
नाम पर यह यंश भविष्यमें पौरववंश कहलायगा'
इत्यादि आशीर्वाक्य उच्चारण कर वे तपश्चर्या और वनवासमें कृतसंकल्प हो ब्राह्मणों तथा तापसोंके साथ
राजपुरसे निकल पड़े। (महामारत १।८४।२८२४)
महामारत आदिपर्व ८७ वें अध्यायमें लिखा है, कि महाराज पुरुने पितासे गङ्गा और यमुनाके निकटवर्त्तां
भूमागका अधीश्वरत्वं पाया था। महाभारत और
हरिवंश पढ़नेसे मालुम होता है, कि महाराज पुरुके

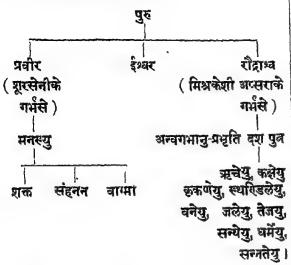
(महा० शटणाप)

इससे माछम होता है, कि यदुतुर्वश्वादि म्लेच्छयवनावश्वास पुत्रोंने भारतके वहिर्भागमें राज्यसम्पादनका भोग किया था।

[#] स्वर्गमें देवराज इन्ह्रने ययातिसे पूछा था, 'श्रम्य-माण पुरुने जो तुमसे बुढापा लिया, सो तुम किस शकार उसे राज्यभाग दिया था, सच सच कही । इस पर ययातिने कहा—

[&]quot;गंगायमुनयोमंच्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्त । मध्ये पृथिग्यास्तं राजा भातराहन्साधिपास्तव॥"

दो स्त्रों थों, पौष्टी और कौशल्या। महामारतमें पुरुराज की पौष्टी नामक स्त्रीसे जो सन्तान सन्तति उत्पन्न हुईं, उनकी वंशतालिको इस प्रकार है।



महत्रेयु ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर हो अनाधृष्टि नामसे प्रसिद्ध हुए। उनकी पत्नी तक्षकनिन्दनी ज्वलनाके गर्भसे परम धार्मिक राजा मितनारने जनमग्रहण किया। मितनारके तंसु, महान, अतिरथ और दृष्ट्र नामके चार पुत्र हुए। तत्सुके पुत्र ऐलिन और राजा ऐलिनके रथन्तरोके गर्भसे दुष्मन्त, मूर, भीम, प्रवस्तु और वसु नामक पांच पुत्र उत्पन्न हुए। अ राजा दुष्मन्तके शकुन्तलाके गर्भसे भरत नामक पक प्रधितयशा पुत्रने जनम प्रहण किया। उन्होंके नामानुसार इस देशका भारतवर्ष नाम पड़ा है। भरतके तीन पत्नी थी जिनसे नी पुत्र उत्पन्न हुए, किन्तु वे सव पुत्र अनुक्ष्य नहीं होनेके कारण राजा उनके पृति असन्तुष्ट रहा करते थे। इसके वाद रानियोंने रोवपरतन्त्र हो अपने पुत्रोंको मरवा डाला, राजा वितथने पुत्रोत्पत्तिके लिये महामुनि भरद्वाजको

हरिनं शके मतसे — प्रतिरयके पुत्र राजा कान और
कग्रवके पुत्र मेचातियि थे । इन्हीं मेघातियिसे काम राजा
ने बाह्मणस्य प्राप्त किया । इनके इलिनी नामकी एक कम्पा
भी जियका विवाह तं पुके साथ हुआ था । तं पुके पुत्र राजां थे
सुरोध ये । सुरोधकी पत्री उपदानवी के गर्नसे उपनन्त,
सुरोध ये । सुरोधकी पत्री उपदानवी के गर्नसे उपनन्त,
प्रवीर और अन्य नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ।
(हरिनंश)

बुला कर भूमन्धु नामक एक पुत पृाप्त किया। भरतपुतने भूमन्युको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया । भूमन्युके औरस और पुष्करिणीके गर्भसे सुहोत, सुहोता, सुद्दवि, सुयज्ञ, ऋचीक और दिविरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ सहोतने ऐक्ष्वाकीके गर्भसे अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़ नामक तीन पुत पाप्त किये। अजमीढ़के तीन महिषियोंसे छः पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे धूमिनीके गर्भसे ऋक्ष, नीलीके गर्भसे दुप्पन्त और परमेष्ठी तथा कशिनोके गर्भसे जहु (ये गङ्गाको पी गये थे), वजन और कपिण थे। इन्हीं दुष्मन्त और परमेष्ठीके वंशसे पाञ्चालगण उत्पन्न हुए। जहु के वंशमें कुशिक राजाओंने और ऋक्षसे राजवंशकर सम्बरणने जनमग्रहण किया, सम्बरणके अत्याचारसे सारा राज्य तहस नहस हो गया । पाञ्चाल राजाओंने चतुरङ्ग दलमें आ कर उन्हें परास्त किया। राजा सम्बरण अपने अमात्य और सुहरीं-के साथ सिन्धु नामक महानद्के किनारेसे हे कर पर्वंत तक विरुतृत आरण्यभूमि पर वास करने लगे। एक दिन भगवान् वशिष्ट उनके आश्रममें पधारे। भारतगणने उन-की विशेष सम्बद्ध ना की। विशिष्ठदेवने उनके आवरणसे पृसन्न हो कर पौरव सम्बरणको निज पृभावसे साम्राज्य वर अभिषिक किया । पृथिवीपास हो कर सम्बरणने भूरिदक्षिणाविशिष्ट वहु यहका अनुष्टान किया। इसके वाद सम्बरणने सौरी तपतीसे कुरु नामक एक पुत्र उत्पादन किया। कुरुजाङ्गल और कुरुक्षेत उन्हींके नामानुसार पृतिग्रित हुआ। उनकी वाहिनी नामकी पत्नीसे अभ्ववत्, अभिन्यन्, चैत्ररथ, मुनि और जन्मेजयने जन्मग्रहण किया । अभ्ववत् (अविक्षित्)से परिक्षित्, शवलाध्व, थादिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःथ्रवा, भङ्गकार और

इरिवंशमें लिखा है, कि राजा भारतने पुत्रोत्पत्ति।
की कामनाथे भगदाज द्वारा यहानुष्ठान और धर्मधंक्रमण
कराया, किंतु पहले सभी कियाएँ वितय अर्थात निकल हुई
थीं, इस कारण महासुनिने भरत-पुत्रका वितय नाम रखा।
महाभारत टीकामें नीलक्युटने नितथ शब्दका कुछ दूधरा ही
अर्थ लगाया है, क्या धितत्यंविशतस्वयाभागे जनकसादस्य
यत्र तलाहमं पुत्रजनमा ।

(महासारत ११९४।२१ खोकको टीकाम नीठकपढ)

जितारि नामक आठ पुत उत्पन्न हुए । परीक्षित्से कक्ष-सेन, उप्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुपेण और भीमसेन तथा जनमेजयसे धृतराष्ट्र, पाण्डु, वाहिक, निपध, जाम्वू-नद, कुएडोदर, पदाति और वसातिगणका उद्भव हुआ । पीछे धृतरद्भुसे कुण्डिन, हस्ती, वितर्क, काथ, कुण्डिन, वहिःश्रवा, इन्द्राम और भूमन्यु तथा पृतीप, धर्म नेत और सुनेत नामक उनके तीन पौत उत्पन्न हुए । पृतीपसे देवापि, शान्तनु और वाहीक नामक तीन पुतोंने जन्म-ग्रहण किया । महारथ शान्तनु भूमण्डल अधिपति हुए थे।

पूरकी कौशल्या नाम्नी भार्यासे जनमेजय, जनमेजयकी पत्नी अनन्ताके गर्भसे पाचिन्वान्, पाचिन्वान्के औरस और असिक्षीके गर्भसे संयाति, संयातिके पुत अहंयाति, अहंगातिके पुत सार्वभौम, सार्वभौमके पुत जयत्सेन, जयत्सेनके पुत अवाचीन, अवाचीनके पुत अरिह, अरिह-के पुत महाभीम, महाभीमके पुत अयुतनायी, अयुतनायी-के पुत अक्रीध, अक्रीधके पुत देवातिथि, देवातिथिके पुत अरिह, अरिहके पुत्र ऋक्ष, ऋक्षके औरस और तक्षकदुहिता ज्वालाके गर्भसे मतिनार, मतिनारके पुत्र तंसुके पुत पेलिन, पेलिनके पुत दुष्मन्त, दुष्मन्तके पुत विश्वा-मिलकी दुहिता शकुन्तलागर्भजात भरत, अभरतके पुल काशिराजदुहिता सुनन्दागर्भजात भूमन्यु और भूमन्युके पुत सुहोत थे। सुहोतने इक्ष्वाकुकन्या सुवर्णासे विवाह किया। सुवर्णाके गर्भसे महाराज हस्ती उत्पन्न हुए। इन्होंने ही अपने नाम पर हस्तिनापुर नगर वसाया था। 🕆 हस्तोके पुत विकुरहन और विकुरहनके पुत अजमीढ़ थे। अज्ञशीदके कैकेयी, गान्धारी, विशाला और ऋक्षा नाझी पत्नीसे चौवीस सौ पुत उत्पन्न हुए जिनमेंसे महाराज सम्बरण वंशप्रतिष्टाता थे । तपतीके गर्भ और सम्बर्णके -औरससे कुरुका जन्म हुआ। कुरुके पुत विदुरथ, विदुरथ-के पुत अनश्वा, अनश्वाके पुत परीक्षित्, परीक्षित्के पुत भीमसेन, भीमसेनके पुत प्रतिश्रवा, प्रतिश्रवाके पुत प्रतीप और प्रतीपके देवापि, शान्तनु तथा वाह्वीक नामक तीन

Vol. XIV. 25

पुत्र हुए≑। महाराज शान्तनुने गङ्गासे विवाह किया। गङ्गाके गमसे देवव्रत (भीष्म) उत्पन्न हुए। शान्तनुने सत्यवतां (गन्धकाली) नाम्नी और एक कन्याका पाणि-ब्रह्ण किया । कुमारीमें इसी सत्यवतीसे पराशर द्वारा द्वैपायन उत्पन्न हुए थे। पीछे शान्तनुके औरससे विचित्रवीर्य और चिताङ्गद नामक दो पुर्तीका जन्म हुआ। विचित्रवीर्यं राजा हुए। उन्होंने अभिनका और अम्वालिका नाम्नी दो काणिराजदुहिताका पाणिप्रहण किया । निःसन्तानावस्थामें उनकी मृत्यु हुई । सत्यवती-ने दुष्मन्तवंशका उच्छेद होते देख चिन्तान्वित मनसे द्वैपायनका समरण किया। ऋपिके उपस्थित होने पर सत्यवतीने कहा, 'वत्स! तुम्हारे भाईक विना कोई सन्तान छोड़े स्वग को सिधार गये हैं, अतएव तुम उनके क्षेत्रमें एक पुत उत्पादन करके वंशकी रक्षा करो।' ह्रैपायनने अवनत मस्तक्से मातृवाक्यका पालन किया। अनन्तर यथाकालमें उन्होंने धृतरायू, पाण्डु और बिदुर नामक तीन पुल उत्पादन किये। द्वैपायनके वरसे धृतराष्ट्रके गान्धारीगर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन प्रधान थे। पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे युधिष्ठिर. भीम और अर्जुन तथा माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। पांडू-के पुत पाण्डव नामसे और धार्त्तराष्ट्राण कौरव नामसे प्रसिद्ध हुए, द्रौपदीके गर्भसे युधिष्ठरके प्रतिविन्ध्य, भीमके सुतसोम, अर्जु नके श्रुतकीचिं, नकुलके शतानीक और सहदेवके श्रुतकर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। युधिष्ठिर-शैवराजकन्या देवकीके गर्भसे यौधेय नामक एक और पुत हुआ । इसी प्रकार काशिराज-टुहिता वलन्थरासे भीमके सर्वग नामक पुत और हिड्सिया राक्षसीसे घटोत्कच, नकुलके चेदिराजकन्या करेणुमतीसे निरमित,

(भागवत शरहार्यू)

क हरिवंश और महाभारतमें प्र₹टित पूर्व वंशावली-के साथ इसका वहुत कुछ मेठ हैं, उसके बाद गोलमाल हैं।

ने यहां फिर मेल देखा जाता है।

^{*} भागवतके मतने वितथके पुत्र मन्यु और मन्युक्तं पांच पुत्र बृहरहोत्र, जय, महावीर्थ, नर और गर्भ हुए। बृह-स्वत्रके पुत्र हस्तीने ही हस्तिनापुर वसाया। किते तीन पुत्र हुए, अजमीह, द्विमीड और पुक्मीह।

क्षेत्र नके नागकन्या उद्ध्वीचे एक पुत्र और चित्रां। गदाचे वध्नूवाहनका जन्म हुआ था।

मद्रदृहिता विजयाके गर्भसे सहदेवके मुहोत नामक पुत उत्पन्न हुए। पाण्डवकुलमें एक पुत्रके जन्म लेने पर भी कुरु-पाण्डवयुद्धमें सभी निहत हुए। एकमात सुभद्रागर्भजात अर्जु नके लड़के अभिमन्युसे वंशरक्षा हुई है। विराद्राजदुहिता उत्तराके गर्भसे उनके छः मासका पक पुत्र भूमिण्ड हुआ। भगवान् वासुदेवने इस अकालजात शिशुको सञ्जीवित कर दिया। कुल परिशीण होने पर जन्म होनेके कारण वालकका परिश्चिन् नाम रखा गया। परिश्चित्के औरस और माद्रवतीके गर्भसे जनमेजयकी उत्पत्ति हुई। जनमेजयके गतानीक और शंकुकर्ण नामक दो पुत्र तथा शतानीकके अध्यमध्यदत्त नामक एक पुत्र हुए। (महाभारत आदिएर्च १४ और १५ अध्यायमें वंशका वर्णन की तित हुआ है।)

महाभारत, हरिवंश, विश्णुपुराण और श्रीमद्भागवत-से पुरुवंशीय राजाओं के जो नाम पाये जाते हैं, उनमें-एक दूसरे साथ कुछ कुछ पृथक्ता देखी; जाती है। भागवतादिके अवलम्बन पर चन्द्रचंश शब्दमें जो तालिका दी गई है तथा वर्त्तमान प्रवन्धमें जो महाभारतीय वंशा-ख्यान उद्धृत किया गया है, उन सक्का सामश्रस्य करके सम्यक् आलोचना करनेसे जाना जा सकता है, कि इस चन्द्रवंशीय पुरुराजवंशसे एक और महातपा ब्राह्मण वा ब्रह्मिया और दूसरी और तेजवीर्ध्सम्पन्न श्लियजाति उत्पन्न हुई थी। पहले हरिवंश (२६ अ०) से उद्घृत किया जा खुका है, कि सुहोलके पुत्र काशिक और गृत्स-मद्ध थे। किन्तु विष्णुपुराण पढ़नेसे मात्रुम होता है, कि श्लतवृद्धके पुत्र सुहोलसे ही गृत्समद्की उत्पत्ति हुई है। वंशपरम्परामें कैसा ही गोलमाल क्यों न रहे, मूल घटना सबींकी प्रायः एक सी है।

गृत्समद एक ऋग्वे दके मन्तद्रप्ट्रा ऋषि थे। भाष्य-कार सायणने उक्त महायन्थके द्वितीय मण्डलकी अनु-क्रमणिकामें उसका परिचय दिया है। इसके वाद (हिर-बंश ३२ अ०) राजा दिवोदासके प्रसङ्गकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि काशसे लड़ी पीर्ढामें राजा दिवोदासने जनमग्रहण किया। ऋग्वेदमें इनके चलवीर्य और पुण्यवताका विशेष परिचय पाया जाता है।

(दिवोदास देखो ।

दिवोदासके पुत्र राजा मित्रयु अविधे कहलाते थे। उनके पुतका नाम मेलायण था, जिनके वंशधरगण मेंवेय नाममे प्रसिद्ध थे। महातमा काणसे २०वीं पीड़ीमें मार्गनृनि की उत्पत्ति हुई । महामारतोक्त महाराज मतिनाका पुर अतिरथ भागवत और विष्णुवुराणमें अवितरथ नामसे व्यसिद्ध हैं। उनके व शमें महामुनि कण्य हुए। कण्यमे ही मेघानिथिको उत्पत्ति है। मेघानिथिके महिमागुणसे ही उनके वंशधर प्रस्कण्य आदि ब्राह्मण वर्णमें विभक्त हुए तथा एक एक विशिष्ट धेणीके कहलाने लगे । दूसरे महाराज अजमीढ़ थे। महासारतमें इन्हें ऐक्षका गर्भ जात पुत्र वतलाया है, किन्तु हरियंश, विष्णुपुराण और भागवनपुराणमें कुछ और तरहसे छिखा है। अजगीदसे प्रियमेधादि द्विजोंकी उत्पत्ति हुई है। भागवतके मतसे अजमीढ़के पुत्र बृहदियुके व'शप्तें पारके औरससे बहादत्त उत्पन्त हुए। ये छोग क्षतिय कह कर परिचित थे। ब्रह्मदत्तके पुत विव्वक्सेनमे योगणासको रचना की। अजमीढ़से ७वीं पीढ़ीमें मुद्रल नामक जिन महापुरतने जन्म लिया, उन्होंसे मीहत्यगोतीय ब्राह्मणेंका धार्थिभीय हुआ है। तं मुसे ६ठीं पीड़ोमें गगंकी उत्पत्ति हुई। भागवतपुराण, विष्णुपुराण और हरिव शमें कुछ कुछ व शबिपयेय लक्षित होने पर भी गर्गसे श्रवियकुलमें शिनिका उद्भव और गार्ग तथा शैन्य ग्राहाणोंकी उत्पत्ति मानी गई हैं। गर्ग भ्राता महावीर्यसे दुरितक्षय (उरुस्य: का उद्भव हुआ। उनके तय्वाराणि, कवि और पुकरा रुणि नामक तीन पुत हुए। अविययंगक जन्म लेने पर भी इन तीनीने ब्राह्मणत्य प्राप्त किया था। इस प्रकार पुरु वंशोद्भव अतेक राजकुमारीने अपने अपने तपःप्रमाय-से ब्रह्मत्व या ब्राह्मणत्व लाभ किया था । मुनिश्रेष्ठ विश्वामित भी इसी व गर्क थे। विश्वाभित्र देखी।

विष्णुपुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि ३१वीं पीड़ी-में तथा राजा जनमेजयसे २६वीं पीढ़ोमें क्षेमक नामक एक महापुरुपने जन्म ग्रहण किया। इन्हीं महात्मासे ग्राह्मण और क्षेत्रियव शके प्रतिष्ठाता पुरुव गका गीरव निरोहित हुआ।

पुरु—पंजानके एक हिन्दू राजा । ईसासे ६२७ वर्ग पहले जन ब्रीकदिग्विजयो आलेकसन्दर भारतनां पर चढ़ाई करतेको आये, उस समय महाराज पुरुने वितस्ता नदीके किनारे दलवलके साथ उन्हें रोका था। वे पौरववंशीय और चन्द्रवं शोज्जव राजा थे, ऐसा जन साधारणका विध्वास है। उनका राज्य कहां तक फैला हुआ था इस विपयमें आज तक कोई प्रकृष्ट विवरण नहीं मिला है। हस्तिनापुरमें उनकी राजधानी थी और वितस्ता तथा असिकी (चन्द्रभागा) दोनों निद्योंका मध्यवतीं समग्र भूभाग उन्होंके अधिकारमें रहा। किन्तु उत्तरी सीमामें वन्यमूमि छोड़ कर और अधिक स्थान उनके दखलमें न था।

पार्वत्यभूमि पर Glancanicae or Glaussae नामक जाति रहती थी। महामित अलेकसन्दरने उन्हें परास्त करके ३७ नगरों पर अपना अधिकार जमा लिया और खदेश लोटते समय वे उन्हें पुरुराजके शासनाधीन छोड़ गये। उस राज्यके पूर्व असिक्षी और ऐरावती नहीं पर्यन्त विस्तीर्ण भूमि पर एक दूसरे पुरु नामक राजा राज्य करते थे। उन दोनोंमें लड़ाई हुआ करती थी। दक्षिण पूर्वभागमें काठी (Cathaei) और अन्यान्य खाधीन सामन्तराजगण राज्य करते थे।

माकिद्नाधिप आलेकसन्दर जब उन्हें दमन करनेके लिये अश्रसर हुए, तव हिन्दूवीरने उन्हें खासी सहायता पहुंचाई थी। दक्षिणमें मूलतानवासी माळवा वा मल (Malli)का आधिपत्य था। महाराज पुरु परमात्मीय अभिसारपति (Abissaras)के साथ मिल कर नलेंकि दमनमें अश्रसर हुए, किन्तु अकृतकार्य हो वापिस आये। उन राज्यके पश्चिम वितस्तानदीके दूसरे किनार तक्षिणलाराज्य था। यह तक्षिणलापति उनके खाधीनतालोपी और परमणल थेन।

जव माकिद्वनपति आलेकसन्दर भारतवर्ष आये, उस समय पुरु राजाके चतुष्पार्श्ववत्तीं राजन्यवर्ग परस्पर विरोधी थे । भारतके अदृष्टसे गृहविच्छे द ही सच-नाशक मूल है। आलेकसन्दर कन्धारको अतिक्रम कर सिन्धुनदी पार हुए। तक्षशिलापतिने सुयोग समक्ष कर आलेकसन्द्रको हस्तगत किया । छिद्रान्वेपी गृहशतु-के सुचतुर कौशलसे ताड़ित ग्रीकसेना क्षित्व वीरोंको परास्त करनेमें समर्थ हुई थी । ग्रीक इतिहासमें दुवराज-का नाम ज्वलन्त अक्षरमें लिखा हुआ है । किन्तु नृशंस विश्वास्त्रातक, खदेशहोही और हीनचेता तक्षशिलापित जनसाधारणके निकट घृणादृष्टिसे उपेक्षित होते हैं ।

तश्चशिलाधिपति श्रीकसेनाके साथ किस स्थान पर मिले अथवा माकिद्नसेनाने पुरुके आक्रमणकी प्रतीक्षा करके कहां पर छावनी डाली थी इस विषयमें पूत्नतत्त्व-विदोंका भिन्न भिन्न मत है।(१) किन्तु पूर्वतन वड़े छाट हार्डिज और डा॰ कनिहम आदिकी अनुसन्धित्सु गवे-पणा द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि वितस्ता नदीके किनारे जलालपुर नामक स्थानमें आलेकसन्दरकी सेनाका अड्डा था। श्रीकवीरका आगमनपत ले कर वाग्वितएडा करनेके वदलेमें तत्प्रतिष्ठित चुकेफल और निकिय नगर-के अवस्थान और ध्वंसावरोपसे संघटित इतिहासाबली-की सम्यक् पर्यालीचना कर देखनेसे दोनोंका सामञ्जस्य और संस्थान वहुत कुछ अनुमान द्वारा सिद्ध हो सकता है (२) । आलेकसन्दरने ५० हजार सेनाः लेकर (इनमेंसे तक्षशिलापतिकी ५ हजार थी) वितस्ता नदी-के किनारे जलालपुरके निकट छावनी डाली थी। वर्षा-ऋतुमें नदीमें बाढ़ आ जानेसे वे वितस्ता नदी पार न कर सके, केवल सैन्यदलको साथ ले इधर उधर पार करनेकी चेष्टा करने लगे। दूसरे किनारे मङ्ग और महबत्-

क पहले इस स्थानका नाम क्षत्र वा महिल्यान थः, पर अभी मूलतान बहलाता है।

पं तथक्रिया उत्तर पार्वतीय Abissares राज्य है।

⁽१) Elphinstone's Kabul I. 109; and Burmes, Bokhara, ii. 49. Beng. As, Soc Jour. 1856 p. 473 जेनरल कोर्टने लिखा है कि, वर्त्तमान क्षेत्रम नगरमं उनकी राजधानी थी। खिलियत्तन नामक स्थानमें वितस्ता पार कर अन्होंने पृष्टिकोटीमें लडाई ठान थी। Beng. As, Soc Jour, 1848, p. 619. जेनरल एउट लिख गये हैं, कि क्षेत्रममें प्रोक सेनाकी और नारदाबादमें पुरुसेनाकी छावनी थी।

^(2) Arch. Sur. Rep. II p. 179-81.

क किसी किसीका कहना है, कि आलेकप्रत्यके साथ है ठाल इप् हनार पदाति और १५ हनार अशारोही ये। अलाबा इसके इस्त्यास्ड संस्थसंख्या भी कम न थी।

पुरके निकट टहर कर पुरु दलवलके साथ उनकी सैन्य-चालनाका निरीक्षण करते थे। पुरुराजके अधीन प्रायः ३० हजार पदाति, ४ हजार अध्वारोही, २०० हस्ती और ३०० रथारोही योद्धा वर्चमान थे।

किस स्थान पर दोनों दछमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ, प्लुटार्कप्राप्त आलेकसन्दरके खहस्तलिखित पतानुसार उसका जो कुछ विवरण मालूम हुआ, वह नीचे लिखते हैं—

'इस प्रकार उपयु परि अनुसन्धान करके भी जव उन्हें नदी पार करनेका सुविधाजनक पथ न मिला, तव वे क्रमशः निराश होने लगे। इसी वोचमें एक दिन रात-की घोर धनघटासे आकाश आच्छादित हो गया। आलेकसन्दर स्योग समक कर प्रकृष्ट सेनाको साथ ले प्रवल प्रमञ्जन और प्रावृद्धाराके सम्मुख हुए। एकमात विद्युद्दाम ही उनके पथका सहाय था। निशान्धकारमें आवरित श्रीकसेना छिप करके पाव^६त्यदेश होते हुए (दारापुर पार कर दिलावरके समीप) वितस्ता पार कर गये। यहां हिन्दू प्रहरियोंने प्रीकोंको नदी पार करनेकी चेष्टा देख पुरुराजको खबर दी। पुरुराज उसी समय अभ्वारोही सेनाके साथ नदीके फिनारे पहुंच गये। किन्त वे करते क्या, आलेकसन्दर प्रायः छः हजार सेना-के साथ वहां डटे हुए थे। अतः उन्होंने आलेकसन्दरकी गति रोकनेके लिये पुलींको मेजा। वर्षाका समय था, भूमि कर्वममय हो गई थी, रथचक्रके जमीनमें धंस जानेसे वे युद्धमें विलकुल अशक हो गये। अध्वारोही सेना साथ ले पुरुके पुत शोरगुल करते हुए शंतुओं पर टूट पड़ें । घोरतर युद्धके वाद राजपुत और सिकेन्द्रिय प्रसिद्ध ग्रीकयोद्धा चुकेफलस् (Bukephalus) दोनों ही मारे गये । पुरुराज पुसका संवाद सुन कर प्रतिहिसार्थ द्लवलके साथ आगे वढ़े। सिखयुद्धके विख्यात चिलियनवाला-युद्धक्षेत्रमें (वर्त्तमान मोङ्ग और पिम पव तमालाके मध्यवत्तीं विस्तृत समतल क्षेत्रमें) पुर-राज और आलेकसन्दरका भीवण समर आरम्भ हुआ। युद्धमें पुरुराजको हार हुई। क्रेटिरस और अन्यान्य ग्रीक-सेनापतिगण नदोके दूसरे किनारेसे क्षतियसैन्यका परा-भव देख वहुत जल्दीसे नदी पार कर गये और भागते

हुए भारतीय सेनाका पीछा कियाः । इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि श्रीकशिविर और युद्धक्षेत्र पायः आमने सामने था । १

शतुके शरसे विक्षिप्त हस्तिसेना इधर उधर आगने लगो। पुकराज मी सैन्यदलका छत्रभङ्ग देख पूग्ण ले कर भागे। किन्तु राहमें वे अनुसरणकारी सेनादलसे पकड़े गये और कन्दी क्रपमें आलेकसन्दरके सामने लाये गये।

णं इससे यह सिद्धान्त हुआ, कि जलाबपुर और मोंगराज आमने सामने रहनेके कारण प्रीक और हिन्द्वेनाके केन्द्र-स्थलस्वमें विराणित हुआ था।

श्री प्रवाद है, कि विन्दिशायमें आ कर भी पुरुशकने हिके न्दरकी अधीनता स्वीकार न की। उन्होंने सहपेष्ठे उत्तर दिया था, 'देव-दुर्विपाक्से यसिप में तुमसे परास्त हो गया हूं, तो भी अभी मेरे बाहुबसका काघन नहीं हुआ है! आपपी। हैं, वीर मर्भकी रक्षा कीजिये! में आपको राजोचित मलपुदमें आहान करता हूं।' बीर आलेक्सन्दरने उनके बाहुमस्तान पर अपनी सम्मति प्रकट की। दोनोंमें मलपुद आरम्म हुआ। इस बार माकिदनपतिने पुरुगजके बाहुबससे अपना परामव स्वीकार किया और वे उनके मुजबसका विशेष प्रशंसानाद करने को। उत्तर पुरुशजने उनकी हिन्दूधभीचित सम्मानके साथ सम्बर्धना की थी।

भी क ऐतिहासिक च्याचो, प्छार्यकं, आरियन, दियोरोरस, कारियस और जाण्डिन् आदिके वर्णनातुसार जाना जाता है, कि विताता नवीके परिचमी किनारे समाद्य आळे बसन्दर अपना विविद्य एक नदी पार हुए थे। यहां विख्यात सेनापति वुके फलसकी कनके जपर वे 'वुके फल' नगर की प्रतिम्ना कराये। दियोदोरस आदिने साफ साफ लिखा है, कि निकिया नगरके परिचम और नदीके परिचमी किनारे 'वुके फल' नगर वैसायो गया। निकिया नगरके टक्काल (Mint) से जी सव सुन्ना अचलित हुई है, वह वर्तमान मोंगराज्यमें पाई गई है। उस देश के लोग अति प्राचीन सुन्नाओंको 'मोंगशाही' मुन्ना कहते हैं। कुछ मुन्नाएँ ऐसी भी हैं जिनमें 'निक' एत्टर रहनेके कारण वे निकियाका रूपान्तर समझी जाती है। मोगक राजके नामानुसार इसका मोल नाम पड़ा है। तक्षितां जो शिकाछिप प्राप्त हुई है, उसमें महाराज मोंगका नाम देखा जाता है।

[#] Anabasis, Vol. V. p. 18.

राजाकी वदान्यता, विनय और वलबीर्य से तुप्त हो उन्हें वन्धनपाशसी मुक्त कर दिया । पीछे वे दोनों वन्धुता-सुतमें आवद हुए। अनन्तर राजा पुरुने सिकन्दरका सहायतासे पूर्वकथित (Glaussae) मह और काडो जाति-को परास्त कर अपने साशनाधीन कर लिया। उदारचेता श्रीकवीर सिकन्दर पुरुराजके पञ्जावका सिंहासन दे कर अपने राज्यको छौट गये। जानेके पहले उन्होंने अपने प्सिद्ध अभ्वारोही सेनिक युकेफलसके स्मरणार्थ और विजय घोषनार्थं निकिया नगर वसाया। सिकन्दर वापिस तो हुए पर ग्रीकसेनाका रक्षणा-वेक्षण-भार वे एक शासन-कर्त्ताके ऊपर छोड़ गये। ईसासे ३२३ वर्ष पहले जव आलेकसन्दरकी मृत्यु हुई, तव शासनकर्त्ता युदिमो (Endemos)ने अपनेको पञ्जाव प्रदेशके एकेश्वराधिपति वनानेकी कामनासे सेनापति युमेनिककी सहायता द्वारा पुरुराजको मार डाला। जब महाराज पुरु षड्यन्तकारी दलसे निष्टुरतापूर्व क मारे गये, उस समय मौर्य राज चन्द्रगुप्त वर्त्तमान थे। पुरुके निधन पर युदिमोको विशेष वाघाविवका सामना करना पड़ा । अच्छा मौका देख कर हिन्दूवीरोंने चन्द्रगुप्तके अधीन श्रीकों पर चढ़ाई कर दी। अन्तमें उन्हें विशेषक्रपसे निर्जित और ताड़ित करके चन्द्रगुप्त हो पञ्जावके राजा हुए ।

पुरक्तत्स (सं॰ पु॰) मान्याताके एक पुतका नाम। मान्याताके दो पुत थे, पुतकुन्स और मुचुकुन्द । इनकी पत्नी ऋषिके शापसे नदी हो गई थी। (हरिव श १२ व)

राजा शशिवन्दुकी छड़की इन्द्रमतीके गर्भसे पुरुकुत्स-का जनम हुआ था। ये नर्मदा नदीके आस पासके प्रदेशों पर राज्य करते थे। पुराणमें छिखा है,—नागोंने अपनी वहन नर्मदाका पुरुकुत्सके साथ विवाह कर दिया। नागों और नर्मदाके कहनेसे पुरुकुत्सने रसातछ जा कर मौनेय गन्थवींका संहार किया था। आयजातिके सर्व प्राचीन प्रन्थ ऋग्वे देमें छिखा है, कि दस्युनगरका ध्वंस करतेमें इन्द्रने राजा पुरुकुन्सको सहायता पहुंचाई थी। नर्मदाके गर्मसे इन्द्रें तसदस्यु नामक एक पुत उत्पन्न हुआ। दक्ष आदि प्रहृषि योंने इन्हें विश्णुपुराण सुनाया था।

्ह ६ ११६३१७, ११११२११७) पुरुकत्सव (सं ० पु०) इन्द्रके एक शतुका नाम। Vol. XIV. 26 पुरुकुत्सानी (सं ० स्वीच- स्कुत्सस्य पतो वाहुलकात् आनङ्शीष् ; पुरुकुत्समानयति अन-णिच्-अण् , गौरा-दित्वात् छोप् वा । पुरुकुत्सको पत्नो ।

पुरुकृत् (सं० ति०) पुरु-कृ-क्रिप् तुक् च । १ प्रभूत-कर्त्ता। २ कर्मकर्त्ता।

पुरुकृत्वन् (सं ० ति०) वहुकर्मसृत्, इन्द्र ।

पुरुश्न (सं॰ त्नि॰) पुरवः धर्घोऽन्नात्यस्य छान्दसः अन्त्य लोपः । वहुन्नसामी, प्रचुर अन्नका अधिपति ।

पुरुखा (हिं पुर) यु खा देखी।

पुरुगूर्त्त (सं० ति०) बहुद्वारा उद्यमित, बहुतोंसे प्रयत्न किया हुआ।

पुरुचेतन (सं० वि०) वहुशाता, अनेक विषयींका जानने बाला।

पुरुज (सं॰ पु॰) पुरुजन-ड। १ भरतवंशीय सुशान्तिके

एक पुतका नाम । २ पुँरुराजाके एक पुतका नाम । पुरुजयपाल-पृथ्वीराजके प्रतिद्वन्द्वी कन्नोजाधिपतिके पौत । ये २य जयपाल नामसे प्रसिद्ध हें । पञ्जाव-की राजधानी लाहोर और कन्नोजमें ये राज्य करते थे। सिन्धुके अधिपति चाँदरायके साथ इनकी मारी दुश्मनी थी। इनके पुत्र भोमपालको कन्या नहीं देना ही विवाद-का कारण था। धोरतर युद्धके वाद पुरु जयपाल भोजचाँदका आश्रय लेनेको वाध्य हुए । ४१० हिजरी-में सुलतान महमृद् कालक्षरराज नन्दकी आक्रमण करने-के लिये भारतवर्ष आये । इधर पुरु भी नन्दकां सहायता देनेके लिये अप्रसर हुए। पर यमुना नदीके किनारे दोनों में मुठभेड़ हुई और पुरु पराजित हो कर नौ दो ग्यारह हो गर्भ । किन्तु ऐतिहासिक अल् वेहनिने लिखा है, कि ४१२ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई। यदि यह सत्य हो, तो काल अर-युद्धमें ही उनको मृत्यु हुई थी, इसमें सन्देह नहीं ।

पुरुजात (सं० ति०) वहुप्रादुर्माव ।

पुरुजाति (सं पु॰) पुरुज, राजा सुशान्तिके एक पुलका नाम।

पुरुजित् (सं॰ पु॰) १ कुन्तिभोजके पुत्र । ये अर्जुनके मामा थे । २ शशविन्दवंशीय रुचकपुत्रभेद । ३ विष्णु । ४ एक क्षतिय राजा । ये महादेवके भक्त थे और कृपा-मुनिके कुछमें उत्पत्न हुए थे । पुरुणीथ (सं० पु०) अनेक लोगों के नेता। पुरुत्मन् (सं॰ पु॰) पुरुरातमा यस्य पृषोदरादित्वात् साधुः। प्रचुरात्मक, वहु आत्मा। पुरुदंशक (सं० पु०) पुरु वहुलं यथास्यात्तथा दशतीति दम्श-ण्बुल् । हंस । पुरुदंशस् (सं० पु०) पुरुं दैत्यविशेषं दशति हिनस्तीति दन्श्र असुन्। इन्द्र। (ति०) पुरुणि दंशासि यस्य। २ वहुकमयुक्त । पुरुदत्त (सं० पु०) दा-क्त, दत्त्तं धनं, पुरु-दत्तमस्य । वहु-धन इन्द्र। पुरुदस्म (सं० ति०) पुरु-दसति वाहुं मन् । १ वहुनाशक । २ बहुकर्मक, बहुकर्मयुक्त । (पु०) ३ विष्णु। पुरुदिन (सं० क्ली०) वहुदिन, अनेक दिन । पुरुद्रप्स (सं० हि०) प्रभूत जलयुक्त । पुरुद्रह् (सं० ति०) १ वहुतोंके द्रोहकारक । (पु०.) २ पुरुहृत, इन्द्र । पुरुद्वत् (सं॰ पु॰) वैदभींसे उत्पन्न क्रोब्टुवंशीय मधुसुत नृपभेद् । पुरुधा (सं॰ अव्य॰) पुरु वह्वर्थत्वेन संख्याशव्यत्वात्-प्रकारे धाच् । वहु प्रकार, अनेक तरहका । पुरुपन्था (सं॰ पु॰) राजमेद् । पुरुपुत (सं॰ ति॰) वहु औषधि वनस्पतिरूप पुतयुक्त । पुरुपेशा (सं॰ स्त्री ॰) वहुरूपा औषघि । पुरुपेशस् (सं० ति०) बहुरूप । पुरुप्रजात् (सं० ति०) वहु प्रादुर्माव । पुरुप्रशस्त (सं० ति०) वहुधा स्तुत, अनेक प्रकारसे स्तुत । पुरुप्रिय (सं० ति०) वहुतोंका प्रीत्या। पुरुषे प (सं० ति०) प्रे रक, मेजनेवाला । पुरुप्रे पा (सं० स्त्री०) वहुविध, अनेक प्रकार । पुरुभुज (सं० ति०) पुरु-भुज-किप्। प्रभूतभोजी, वहुत खानेवाला । पुरुभू (सं० पु०) वहु-यञ्चभवन । पुरुभूत (सं॰ पु॰) पुरुद्धत पृषोदरादित्वात् साधुः । पुरु-हूत, इन्द्र। पुरुभोजस् (सं॰ पु॰) पुरुन् भुंक्तेभुज असून । १ मेघ, वाद्छ। २ मेष, भेड़ा। (ति०)३ पृचुरमोजक, वहुत

खानेवाला ।

पुरुमन्तु (सं० वि०) वहुविपयज्ञाता, जो अनेक विपयोंसे जानकार हो।
पुरुमन्द्र (सं० वि०) वहुतसे लोगोंका अप्रियमाजन।
पुरुमह्र (सं० वि०) वहुतसे लोगोंका अप्रियमाजन।
पुरुमह्र (सं० वि०) वहुत्तसे लोगोंका अप्रियमाजन।
पुरुमाय (सं० वि०) वृह्वहननादि वहुकर्मा इन्द्र।
पुरुमित्र (सं० पु०) १ महारथ नृपमेद। २ धृतराप्नुका पुरुमेद। ३ राजविशेष।
पुरुमीद् (सं० पु०) सहोतके औरस और ऐक्ष्वाकीके गर्भसे उत्पन्न अजमीद्के अनुज कौरव-नृपमेद।
पुरुमेध (सं० पु०) वहुविध यज्ञ, अनेक प्रकारके याग।
पुरुष्मेध (सं० पु०) रथो रहतेः पुरुः रथो रहणं यस्य।
प्रतिदिन भुक्तिमेदानुसार वहुरंहण आदित्य।
पुरुरवस् (सं० पु०) सोमवंशीय नृपमेद।

पुरुरावन् (सं० ति०) वहुविरुद्ध फलदाता ।
पुरुरुच् (सं० ति०) प्रभूतदीति, चमकीला ।
पुरुरुप् (सं० ति०) पुरु वहुद्ध्यं यस्य । वहुद्धपयुक्त,
अनेक रूप धारण करनेवाला ।
पुरुलिया—विहार और उड़ीसाकि मानमूम जिलेका उपविभाग । यह अक्षा० २२ ं ४३ से २३ ं ४४ ं उ० और
देशा० ८५ ं ४६ से ८६ ं ५४ पू०के मध्य अवस्थित है ।
मूपरिमाण ३३४४ वर्गमील और जनसंख्या १०२४२४२
है । इसमें ३ शहर और ४२७३ माम लगते हैं । क्षालिदा
शहरमें लाहका कारवार है और रघुनाथपुरमें लाह तथा
उत्कृष्ट रेशमी वस्त्व प्रस्तुत होते हैं जो वाणिज्यके लिये
मिन्न मिन्न देशोंमें भेजे जाते हैं । १८३० ई०में गङ्गानारायण नामक किसी व्यक्तिने वराभूमके पार्वत्य अधिवासियोंका दलपति हो कर अङ्गरेजके विरुद्ध युद्ध किया
था । मानमूप देखो ।

२ उक्त जिलेका एक ग्राहर । यह अक्षा० २३ २० उ० और देशा० ८६ २२ पू० । वङ्गाल नागपुर रेलवेकी सीनी-आसनसोल शाखा पर अवस्थित है। जनसंख्या १७२६१ है। यहां १८७६ ई०में एक म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। नगरका राजख कुल मिला कर २७०००) ६० है। यहां एक कारागार है जिसमें २७६ कैदी रखे जाते हैं।

पुरुवत्मन् (सं० ति०) वहुपथयुक्त ।
पुरुवार (सं० ति०) वहुकत्तृ क वरणीय।
पुरुवीर (सं० ति०) वहुकर्मा, प्रभूत कर्मसम्पन्न ।
पुरुवेपस् (सं० ति०) वहुकर्मा, प्रभूत कर्मसम्पन्न ।
पुरुवात (सं० ति०) वहुकर्मा ।
पुरुवाक (सं० ति०) वहुकर्मा ।
पुरुवाक (सं० ति०) पुरुः चन्द्र आह्यद्कत्वात् दीतिरस्य पृथोदरादित्वात् साधुः । वहुदीपिक, पुभूतदीतियुक्त ।
पुरुष (सं० पु०) पुरित अप्रे गच्छतीति पुर-कुषण्
(पुरः कृषण् । व्य शाह्य) पिपक्ति पूर्यित वलं यः

"द्विधा इत्वात्मनो देहमङ्क्षीन पुरुषोऽभवत् । अद्धेन नारो तस्यां स विराजमस्त्रजत् पृश्वः॥" (मतु १।३२)

पुर्शते य इति वा, पुरि देहे शेते शी-ड पृषोदरादित्वात्

साघुः । १ पूमान, मनुष्य, आदमी।

विधाताने अपनी देहका दो भाग करके आधे भागमे पुरुवकी और आधेमें स्त्रोकी सृष्टि की थी।

पर्याय—पुरुष, ना, नर, पञ्चजन, पुनान, अर्थाश्रय, अधिकारो, कर्माह, जन, अर्थवान, मनुष्य, मानव, मर्च्य, मानुष, मनु, रसिकराज, धनकामधामा, मदनशायकाङ्क, मन्मथशायकलक्ष्य। (कविकर्वकता)

वंदिक पर्याय — मनुष्य, नर, घव, जन्तु, विश, क्षिति, कृष्णि, चर्णिण, नहुष, हरि, मर्या, मर्च, व्रात, तुर्वश, दुधु, आयु, यदु, अनु, पूरु, जगत्, तस्युप, पञ्चजन, विवस्तन्त, पृतना । (वेदलक्षण्ड २ अ)

रितमझरीमें लिखा है—पुरुष चार जातिका है,—शश, मृग, वृष और अश्व । इनका लक्षण—वाक्य अति सुकोमल, सुशोल, कोमलाङ्ग, उत्तम केशयुक्त, सकलगुणाकर और सत्यवादो ये सब लक्षण पुरुप शश हैं। सर्चदा मधुर वाक्य वोलनेवाला, दीर्घनेतयुक्त, अत्यन्त भीर, चपलमित, सुदेह और शीघ्रगामी ये सब लक्षणाकान्त पुरुष मृग हें, वहुगुण और अनेक वन्धुयुक्त, शीघ्रकाम, नताङ्ग, सुन्दर देह और सत्यवादी ये सब लक्षणयुक्त पुरुष वृप हें, जिनका उदर और कोटिदेश कृश है, जिनके कण्ठ और अधरोष्ठ उप्र तथा दशन, नासिका और श्रोत-

दीर्घ हैं, उन्हें अध्वजातीय पुरुष समफना चाहिये। रसमञ्जरीमें पुरुषोंके पृति जातिकथनस्थलमें ऐसा लिखा है,—

"पाते त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनैः सह । शास्त्रे वोद्धा रणे योद्धा पुरुषः पश्चलक्षणः॥" (पाचीन)

जो सत्पालको दान देते हैं, गुणके अनुरागी हैं, परिजनके साथ भोगी हैं तथा जो शास्त्रज्ञ हैं और युद्ध-स्थलमें वीरत्व दिखलाते हैं, वे ही पञ्चविध लक्षणाकान्त पुरुपपद्वाच्य हैं। सामुद्रिक मतमें पुरुपके शुभाशुभ लक्षणका विषय इस पृकार है,—

"कीदृशः पुरुपो वन्द्योऽवन्द्यो वा कीदृशो भवेत्॥" (सामुद्रिक)

कैसे लक्षणके पुरुष श्रेष्ठ वा निन्द्नीय होते हैं, श्रीकृष्णने जब यह विषय महादेवसे पूछा, तव उन्होंने कहा था,—जिस पुरुषके पांच अङ्ग दीर्घ, चार अङ्ग हस्व और पांच अङ्ग सूदम तथा जिसके छः अङ्ग उन्नत, सात अङ्ग रक्तवर्ण, तीन अङ्ग गभीर और अपर तीन अङ्ग विशाल होते, वहां महापुरुष हें अर्थात् ये सव लक्षण जिनमें हैं, वे पुरुष श्रेष्ट माने जाते हैं। दोनों वाहु और नयन दोनों कुक्षि, नासायुट और दोनों स्तनका मध्यस्थल ये पांचों अङ्ग दीर्घ होनेसे प्रशस्त है। ब्रीवा, दोनों कान, पृष्ठदेश और दोनों जांघ ये चारों अङ्ग हस्व होनेसे प्रशंसनीय है। अंगुलिपर्व, दन्त, केश, नख और चर्म ये पांच अङ्ग सुक्ष्म होनेसे मङ्गळपद है। नासिका, नेत्न, छळाट, दन्त, मस्तक और हृद्य ये छः अङ्ग उन्नत, पाणितस्र, पादतस्र, नयन-प्रान्त, नख, तालु, अधर, जिह्वा इन सात अङ्गोंका रक्तवर्ण होना शुभकर है। खर, युद्धि और नाभि गम्भीर तथा वक्षः-स्थल, मस्तक और ललाट ये तीन स्थान विस्तीणं होनेसे शुभ होता है।

जिस पुरुषके नयनका प्रान्तभाग रक्तवर्ण है, लक्ष्मी उसे कभी भी छोड़ कर नहीं जाती। जिसका शरीर तप्त काञ्चनकी तरह गौरवर्ण है, वह कभी भी निर्धन नहीं होता। जिसके नयन क्षिण्ध हैं, वे सौभाग्यशाली और जिनके करतल क्षिण्ध हैं, वे ऐर्श्वर्यशाली होते हैं। काम नहीं करने पर भी जिनके दोनों हाथ कठिन होते, पथभ्रमण करने पर भी जिनके दोनों चरण कोमल रहते तथा जिनके पाणितल सर्वदा रक्तवर्ण दिखाई देते वैसे मनुष्य अवश्य राज्यलाभ करते हैं। जिसका लिङ्ग दोर्घ होता वह दरिद्र, स्थ्ल लिङ्ग होनेसे निर्धन, रूश होनेसे सौभा यशाली और हस्त होनेसे राजा होता है। (माधदिक)

(रेखा द्वारा स्त्रो वा पुरुपका ग्रुभाग्रुभ स्वयण जाना जाता है, इसका विवरण सामुद्रिक शन्दमे स्टिखा है।)

वृहत्संहितामें पुरुपका लक्षण इस प्रकार लिखा है-सुनिपुण दैवज्ञ पुरुपके उन्मान, मान, गति, संहति, सार, वर्ण, स्नेह, खर, प्रकृति, सत्त्व आदि देख कर भूत, भवि-ध्यत् और वर्त्तमान इन तोनों कालका फल कह सकते हैं। जिसके दोनों चरण सर्वदा धर्माक नहीं रहते, जिसका तलदेश अत्यन्त सुकोमल, वर्ण गौर, समस्त अंगुलि परस्पर सुसं।श्लप्ट, समस्त नलर (नाखून) सुन्दर अथच ताम्रवणं, पार्णिदेश मनोहर होता, जो सबेदा ईषदुःण, आंग्रराल, सु।नगृह गुल्फविशिष्ट तथा कूमेपृष्ठका तरह समुन्नत है, वहा पुरुष राजा होता है। जिसके दोनों वरणके नख शूपको तरह रुझ और पाण्डु-वर्ण तथा जिसके दोनों पद चक्र, शिराल, शुक्तप्राय और अत्यन्त विरल मंगुलिविशिए होते, वह व्यक्ति दरिद्र होता है। बहुत दूर नहीं जाने पर भो जिसके दोनों पांच चिषम और कषाथ सहूश कृष्णवर्ण हो जाते, उसका वंश कभो नहीं चलता। पदतल दण्य महोको तरह होनेसे ब्रह्मघाता और पीतवर्ण होनेसे अगय्यारत होता है। जिसकी जांच अत्यन्त विरल, अथच भूदम सूद्म रोमोसे आच्छादित रहतो हैं, जिसका ऊख्देश सुन्दर और हस्ति-शुण्डका तरह तथा जानुदेश स्थूल अथच परस्पर समान होता है, वह व्यक्ति राजत्वलास करता है। कुक् र वा श्युगालको तरह जङ्घाविशिष्ट होनेसे वह निर्धन होता है। राजाओंके प्रति लोमकूपमें एक एक लोम और पण्डित तथा श्रोतियके प्रति छोमकूपमें दो दो करके छोम होते हैं। जिनके लोमकूपमें तीन वा तीनसे भो अधिक लोम होते वे निःख होते हैं। मस्तकके केश सम्बन्धमें भी ऐसा ही नियम है। जानुदेश मांसहीन होनेसे विदेश-में मृत्यु, अल्पमांसयुक्त होनेसे सौमाग्यशाली, विकट

मांसछ होनेसे दिए और निम्नमांसिविशिष्ट होर्निसे स्त्रीजित होता है। जानुदेशमें समान मांस ग्हनेसे राजत्वलाम और चृहत् होनेसे दीर्घायु लाम होता है। पुरुवाङ्ग श्रद्ध होनेने धनवान् और सन्तानशून्य तथा स्भूल होतेसे धनहीन होता है। लिङ्ग वामभागमें भुका ग्हेनसे पुत और घनवर्जित, दक्षिणभागमें मुका रहनेसे पुत्रवान्, नीचेकी ओर फुका रहतेसे दृष्टि, जिराल होनेसे अला-तनपयुक्त और लिङ्गकी प्रनिध स्यूल होनेसे वह व्यक्ति अत्यन्त सुखी होता है, जिसका क्रीप अत्यन्त निगृह है, वह व्यक्ति राजा, दोर्घ वा तुग्नकोपित्रिशिष्ट पुरुष वित्तर्होन तथा जिसका शिश्च ऋड, वृत्त और अव्यशिराल है वह धनवान् होता है। जिसके केवल एकमात सुक (अएडकोप) रहता है, उसकी जलमें मृत्यु होती और अस मान मुक्तविशिष्ट व्यक्ति स्त्रीचञ्चल होता है। जिनकी प्रसाव-घारासे शब्द होता हो, वे सुखी और जिनसे ग़ब्द नहीं होता है वे निःख होते हैं। दो, तीन वा चार घारामें पेशाव निकल कर आवर्त्तके साथ दक्षिण भागमें तरिहुत होनेसे नरपति और विक्षित भावमें मूलपात होनेसे धन-हीन होता है। मृत केवल एक धारामें निकल कर तरङ्गयुक्त होनेसे उत्ऋष्ट सन्तान होती है। गिश्रमणि क्तिन्ध, उन्नत अथवा समभागमें रहनेसे धन, रत्न और वनितामोगी होता है। यदि शिक्षमणिका मध्यमाग निम्न हो, तो उसे कत्या होती और वह धनहीन होता है। बस्तिदेशका शीर्णभाग परिशुष्क होनेसे धनहीन और दुर्भाग्यशाली होता है। शुक्रको पुष्पानिय होनसे राजा, मधुगन्धि होनेसे प्रभूत धन, मत्स्यगन्धि होनसे अतेक सन्तान, क्षारगन्धि होनेसे दरिद्र और मिद्रागांन्य होनेसे यात्रिक होता है। जिसके नितम्बका पिछला भाग स्थूल होता, वे दरिद्र, किन्तु मांसल होनेसे सुखा होता है। इसका अर्द्ध भाग सुन्दर होतेसे वलवान और मण्डूकको तरह होनेसे राजा होता है। करिंदरा सिहसदृश होनेसे नरपति, वानर वा करिशावकः की तरह होतेसे धनहीन, जउरदेशके समान होतेसे भोगो, घटतुल्य होनेसे निर्यंत, पार्थ्वदेश विकल नहीं होनेसे धनवान, निम्न वा वक्र होनेसे भोगहोन, उन्नत-कक्ष व्यक्ति नरपति, विषमकक्ष होनेसे कुटिल, उदर सर्पा-

छति होनेसे दरिद्र और वहुमोजी, गोलाकार, उन्नत और विस्तीर्ण नाभिविशिष्ट होनेसे सुखी ; खल्प, अदृश्य और निम्नतासि होनेसे क्लेशमोगी होता है। नासिका मध्य-भाग तरङ्गयुक्त वा विषम होनेसे शूलरोगी और निःख, नाभीदेश वामभागमें आवर्त्तयुक्त होनेसे शठ तथा दक्षिण ओर आवर्त्त होनेसे मेघावी होता है। नाभि पार्श्व-की ओर आयत होनेसे चिरायु, ऊपरमें आयत होनेसे प्रभु, उदर एक विलिचिहित होनेसे शस्त्राघातसे मृत्यु, द्रिविल विशिष्ट होनेसे स्त्रीभोगी, तिवलियुक्त होनेसे औदरिक तथा चार विल रहनेसे अनेक सन्तित होती है। राजाओं-के उदरमें बिल नहीं रहती। जिसके उदरमें बिल नतोन्नत है, वह पापिष्ठ और अगम्बगामी, उदरविक सरक्रभावमें विद्यमान रहनेसे सुखी तथा परदार-विद्वेषी होता है। जिनका पार्श्वदेश मांसल, मृदु और दक्षिणावर्त रोमद्वारा आच्छन्त रहता है, वे राजा और इसका विपरीत होनेसे दुःसी होते हैं। कुचात्र भाग अनुन्नत होनेसे सुभग, विषम वा दीर्घ होनेसे निर्धन; पीन, दश्ववर्ण वा निमन होनेसे सुखी होते हैं।

वक्षः रुयल उन्नत, पृथु और मांसल होनेसे नरपति, इसका विपरीत वा शिराल एवं गर्मकी तरह रोमावलि विशिष्ट होनेसे दुःखी, अरःस्थल समान होनेसे अर्थवान, वक्षःस्थल अविशाल होनेसे निर्धन होता है। श्रीवादेश चिपिटककी तरह आकारविशिष्ट, शुष्क वा शिराल होनेके निर्घन, महिषशीव व्यक्ति वलवान्, कम्बुकी तरह होनेसे राजा और प्रलम्ब होनेसे बहुमक्षक होता है। जिनका पृष्ट देश अभन्न और अरोमश होता है, वे धनवान् और तिद्रिन्न व्यक्तिगण निर्धन होते हैं। अंसस्थल मांसहीन, रोमाच्छादित, भग्नप्राय और क्षद्र होनेसे निर्धनः विपुल, सुगोल और सुश्लिए होनेसे सुखी होते हैं। दोनों वाहु ब्रिरद्-शुल्डाकारवृत्त, आजाजुलस्वित, परस्पर समान और पीन होनेसे राजा, रोमश और इस होनेसे दुःसी, इस्तांगुळि दीघ होनेसे दीर्घायु, करतल वानरकरके सदृश होनेसे धनवान् तथा व्याघ्रके सदृश होनेसे पापिष्ठ होता है। हाथका मणिवद यदि निगृद्ध, दृढ़ और सुरिश्रष्ट सन्धिविशिष्ट हो, तो राजा ; करतल निम्न होनेसे पितृ-धनसे वश्चित, करतलका कोई स्थान संयत वा निम्न

होनेसे धनवान्, नतोन्नत होनेस अतिशय निःख तथा लाक्षाके सद्वरा रक्तवर्ण होनेसे नरपति; पीतवर्णे होनेसे अगम्यागामी और रूक्म होनेसे निर्धन होता है। कुनस वा विवर्णनल होनेसे तार्किक, अंगुष्ठमें ववरेखा रहनेसे धनवान् और अंगुष्ठ मूलमें यव रहनेसे पुतवान् होता है। करतलकी समस्त रेखाएं हिनाध और निम्न होनेसे धनवान्, इसका विपरीत होनेसे दरिद्र, अंगुलिके विरल होनेसे निःख और घनांगुलि रहनेसे धनवान् होता है। तीन रेखा मणिवन्यसे निकल करतलयापी होनेसे पृथिवीपति, हस्ततछ पर मत्स्यचिह्न रहनेसे याहिक, वज्रचिह्न रहनेसे धनी, मत्स्यवुच्छ रहनेसे विद्वान् ; शङ्क, छत्, शिविका, हस्ती, अभ्व और पदचिह्न रहनेसे नरपति, कलस, मृणाल, पताका और अंकुशचिहसं धनी; चक्र, असि, परशु, तोमर, शक्ति, धनु वा कुएडाकार रेखा रहने-से चमुपति, मकर, ध्वज, प्रकोष्ठ और आगार तुल्य रेखा रहनेसे धनी; अंगुष्ट मूलमें बेदीकी तरह रेखा रहनेंसे अग्निहोती, वापी और देवगृहसद्रश चिह्न रहनेसे धार्मिकः अंगुष्ठमूलमें जितनो स्थूल रेखाएं होंगी उतने पुत और जितनी सुक्ष्म रेखाएं होंगी उतनी कन्या होती हैं। मणि-वन्योरिथत रेखा प्रदेशिनी अर्थात् तर्जनीमूलमें संलग्न होनेसे शतायु और उससे कम होनेसे उसी अनुपाता-नुसार आयुः स्थिर होगी। करतल पर अनेक रेखाएं रहनेसे निःखः चिवुक अत्यन्त कृश अथच दीर्घ होनेसे निःखः, मांसल होनेसे धनीः, अधर अवक्र अथच विम्ब-फलतुल्य होनेसे राजा और सुक्ष्म होनेसे दरिद्र; ओण्डदेश विवर्ण और सुक्त होनेसे निर्धन; दशनपंक्ति घनी, स्निन्ध और सम होनेसे शुभ होता है। और तालु रक्तवर्ण, दीर्घ, सूत्तम और कृष्णवण होनेसे दरिद्र । मुख सुन्दर, असंवृत, विमल, चिक्कण और सम होनेसे नरपित ; इसका विपरीत होनेसे क्छेशभोगी होता. है । जिसका मुख वहुत वड़ा होता, वह दुःखी और जिसका मुख स्त्रीकी तरह होता, उसे सन्तान नहीं होती है। जिसका मुख गोल होता, वह अति शठ ; मुख दीर्घ होनेसे धनहोन ; चतुःकोणाकृति मुखमएडलयुक्त होनेसे घूर्च और जिसका मुख निञ्न होता, वह सन्तानरहित होता है। अति हस्तमुख-

विशिष्ट व्यक्ति रूपण और सर्वाङ्गसुन्दरमुखविशिष्ट व्यक्ति भोगी होता है। शमश्रु अस्फुटिताग्र, स्निग्ध, कोमल और नत होनेसे शुभ, तथा रक्तवण, कठोर और अल्प होनेसे तस्कर होता है। कर्णव्रय निर्मास ्र होनेसे अशुभ ; इस्वकर्णविशिष्ट न्यक्ति कृपण और शंकु-कर्ण व्यक्ति नरपति ; कर्ण छोमश होनेसे दीर्घायु, विपुछ होनेसे धनवान् । शिरालु होनेसे क्रूर और लम्ब अथच मांसल होनेसे सुखी तथा गएडस्थल अनिम्न होनेसे भोगी होता है। गएडमें अत्यन्त मांस रहनेशे मन्त्रणा-दाता ; नासिका शुकपश्लीकी तरह होनेसे सुली ; शुक्क होनेसे चिरजीवी ; छिन्त होनेसे अगम्यागामी ; दीर्घ होनेसे सीभाग्यशाली और वक होनेसे चौर होता है। नयन कमलदलके सदूरा होनेमे धनी ; उसका प्रान्तभाग रक्तवर्ण होनेसे शुभ ; मधुकी तरह पिङ्गलवर्ण होनेसे धनवान् ; मार्जारके सदृश होनेसे पापिष्ठ ; हरिणलोचन और वसुँ छ-छोचन होनेसे सुभग ; वक्रछोचन होनेसे तस्कर, केकरनेत होनेसे कर; हस्तीवत् होनेसे राजा और गभीर होनेसे ऐश्वर्यशाली होता है। भ्रूयुगल अत्यन्त उन्नत होनेसे अल्पायु, किन्तु विस्तृत उन्नत होनेसे अत्यन्त सुखी; परस्पर असमान होनेसे दरिद्र; वालेन्दुवत् वक्र अथच निम्न होनेसे घनी और खिएडत होने से दरित्र होता है। शङ्ख अर्थात् ललाटकी अस्थि उन्नत अथच विपुल होनेसी शुभ ; निम्न होनेसी सन्तान और धनहीन ; नतोन्नत होनेसे दरिद्र तथा अद्व^रचन्द्राकार होनेसे प्रशस्त धन्युक्त होता है। शुक्ति अर्थात् कपाल-का अस्थिखएड वृहत् होनेसे विद्वान् ; शिराल होनेसे अधार्मिक । उन्नत शिरायुक्त अधवा खस्तिकको तरह होनेसे धनी होता है। निम्नललाटविशिष्ट मोनव दुःखी और क्रूरकर्मनिस्त । अत्युन्नत होनेसे राजा और सङ्कीर्ण होनेसे कृपण होता है। ललाउके ऊपर तीन आयत रेखा रहनेसे शतायु ; चार रेखा होनेसे शतायु और राजा ; घटी, रेला रहनेसे ६५ वर्षकी परमायु और छछाटको समस्त रेखाएँ छोटी छोटी रेखा द्वारा छिन्न होनेसे अगन्यागामी और ६० वर्ष परमायु होती है। छछाटको समस्त रेखाएं भ्रके थ सं लग्न रहनेसे ३० वर्ष परमायु और उनके वाम-

भागमें वक्र होनेसे २० वर्ष तथा अत्यन्त छोटो छोटो सामान्य रेखाएं छछाटभाग पर रहनेशे अल्पाय होती है। जिसका मस्तक विलक्कल गोलाकार है, वह धनी और छताकार-शिरोदेशयुक्त व्यक्ति राजा होता है। जिसके शिरोभागकी करोटि (खोपड़ी) वृहत् होती, वह अस्पायु होता है। मस्तक घटाकार होनेसे चिन्ता-शील, दो भागोंमें विभक्त होनेशे पापात्मा और निर्धन होता है। जिस व्यक्तिके केश, क्रिग्घ, कृष्णवर्ण, आकु-ञ्चित और भिन्नात्र तथा वे केश यदि कोमल और अन-धिक हों, तो वह सुखी और जिसके केश वहुमूछ, विषम, कपिलवर्ण, स्थूल, स्फुटिताब्र, कर्केश, क्षुद्र, अत्यन्त वक और घन होते वह व्यक्ति दख्दि होता है। रुक्ष, मांसहीन और शिराल कोई भी स्थान क्यों न हो, वह अशुभस्चक है। इसका विपरीत होनेसे शुभ होता है। पुरुष और स्त्री तुलित होने पर यदि अर्द्ध भार हो, तो सुखी और यदि न्यून हो, तो दुःखी होता है। भारा-धिक व्यक्ति वलवान् होता है। पुरुष वा नारीकी जव २५ वर्षको उमर अथवा जीवनका चतुर्थ भाग उपस्थित हो जावे, तभी मान (तौल)-का उपयुक्त समय समन्ता चाहिये। पुरुषादिको देहाभ्यन्तरीण किसी तेजोमय पदार्थकी कान्ति ही एकमात शुभाशुभ फल प्रकट करती है अर्थात् उसीसे शुम और अशुमका निर्णय किया जाता है। दन्त, त्यक्, नख, रोम और केश इनकी किल्ध छाया (कान्ति) यदि सद्गन्धशास्त्रिनी हो, तो उसे भौमोछाया कहते हैं। इससे तुष्टि, अर्थलाम, अभ्युद्य और प्रतिदिन धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि होती है। जो छायां अर्थात् लावण्य कृष्ण अथच निर्मल, हरिद्वणे और नयन-सुलकर है, उससे सौभाग्य, मृदुता और सुलवृद्धि होती है। इस छायाको जलीया छाया कहते हैं। यह जननीकी तरह हितकारों है। शरीरकी जो छाया अतिप्रचएड और अर्थ्य होती, जिसका वर्ण पद्म, सुवण अथवा अग्निकी तरह होता, उसे आग्नेयी छाया कहते हैं। यह छाया तेज, विक्रम और प्रतापको वढ़ाती है। देहस्थित जो छाया मलिन, पुरुष और कृष्णवर्ण तथा दुर्गन्यविशिष्ट होती, वह छाया वायवी छाया है। इससे प्राणियोंका वध, वस्थन, व्याधि, अनर्थ और अर्थनाश

आदि नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। फिर जो छाया रफ़टिककी तरह निर्मेल होती, वही आकाशी छाया है। यह छाया अति शुमकारी मानी गई है। राजाओंका खर हस्ती, वृष, रथखन, भेरी, मृदङ्ग, सिंह वा मेघकी तरह होता है। गईभकी तरह विशीर्ण अथवा पुरुपखर मानव निर्धन और असुखी होता है। मेद, मजा, त्वक, बस्थि, शुक्र, शुविर और मांस ये सात अस्ति प्राणियोंकी सार है। तालु, ओष्ट, अधर, जिह्वा, नेत्रप्रान्त, वायु, करतल और पदतल ये सव रक्तवर्ण और रक्तयुक्त होनेसे अनेक प्रकारका सुख होता है। त्वक् मस्ण होनेसे धनी, कोमल होनेसे सुभग ; पतला होनेसे विचक्षण होता है। अस्थि स्थूल होनेसे वलवान् और पण्डित, शुक्र, गुरु और परिमाणमें अधिक होनेसे सुभग और विद्वान् होता है। वाक्य, जिह्ना, दन्त, नेत और नख ये पांच स्थान स्निन्ध होनेसे घन, पुत्र और सीमाग्य तथा इझ होनेसे निर्धन होता है। वर्ण, क्लिश्च और कान्तियुक्त होनेसे राज्य-लाम, मध्यमद्भप होनेसे पुतवान और धनी तथा रूक्ष होनेसे निर्धन होता है। विशुद्ध वर्ण शुभ और सङ्कीर्णवर्ण अशुभप्रद् है। जिनके मुख गी, वृष, शादू ल, सिंह वा गरुड़के सदूश होते, वे पृथिवीपति, वानर, महिव, वराह वा छागलकी तरह होनेनेसे पुत और धनहीन तथा गदर्भ और हस्तिशावककी तरह होनेसे निःख और असुखी होते हैं।

परिमानानुसार पुरुष उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। इनमेंसे जो अपनी इस्तांगुलिसे १०८ अंगुलि उत्ता है, वह अत्तम, ६६ अंगुलि परिमित पुरुष मध्यम और ८४ अंगुलि परिमित पुरुष मध्यम और ८४ अंगुलि परिमित पुरुष मध्यम और ८४ अंगुलि परिमित पुरुष अधम माना जाता है। मृत्तिका, जल, तेज, वायु, आकाश, देवता, नर, राक्षस, पिशाच और तियंक्योनि इन्हें स्वभावतः ही पुरुषके लक्षण उत्पन्न होते हैं। चे सव लक्षण नीचे लिखे जाते हैं। सुन्दर पुष्पकी तरह गन्ध्युक्त, सम्भोगनिषुण, सुन्दर निश्वासयुक्त तरह गन्ध्युक्त, सम्भोगनिषुण, सुन्दर निश्वासयुक्त और स्थिर होना ही महीस्वभाव है, जलस्वमावके पुरुष अन्यन्त जलपानानुरक, स्रोलोलुप और रसभोगी; अग्विप्रहतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, तीक्षण, भयङ्कर, क्षुधानुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, तीक्षण, भयङ्कर, क्षुधानुरुतिपुरुष अन्यन्त चल्लल, वायुप्रकृति पुरुष क्रश और कीधी;

आकाशप्रकृति पुरुष निषुण, विवृतमुख, शब्द् और छिद्रिताङ्गविशिए; देवप्रकृति पुरुष त्यागशील, मृदु, कोपन और स्नेह्युक्त; नरप्रकृति पुरुष गीत और भूषण-प्रिय तथा निरन्तर संविभागनिपुण, राक्षसप्रकृति पुरुष अन्यन्त कोपी, खल और पापात्मा; पिशाचप्रकृति पुरुष चपल, मलिन, बहुपलापवादो और न्यक्तदेह होता है। पुरुषकी शार्वूल, हंस, मदमक्त, मतङ्गल, महावृषम वा मयूरकी तरह गित होना शुभ हैं। जो विना शब्द किये धीरे गमन करते हैं, वे धनवान और जो द्वतगामी वा बहुगामी हैं, वे दरिद्र होते हैं। (हृह्दहिता ६८ अ०)

इन सव लक्षणों से भविष्यमें पुरुष कैसा होगा, यह जाना जाता है। निमित्तक पण्डितगण इन सव लक्षणों से शुभाशुभका निर्णय करते हैं। यह साधारण पुरुषका लक्षण वतलाया गया। वृहत्संहितामें पञ्च महापुरुषके लक्षण लिखे हैं, जिनका सार यहां पर संक्षेपमें दिया जाता है।

पञ्च महापुरुषलक्षण-वलवान् । ताराव्रह अर्थात् मङ्गलादि पञ्च ग्रह जब स्वक्षेत्र वा उचगृह अथवा केन्द्रमें रहते, तव महायुरुपगण जन्म लेते हैं। बलवान् वृहस्पति-के समय जनमग्रहण करनेसे हंस, शनिग्रहके समय शश्. मङ्गल प्रहमें रुचक, वुधप्रहमें भद्र और शुक्रप्रहमें जन्म लेनेसे मालव्य पुरुष जन्मग्रहण करते हैं। सूर्य वलवान् होनेसे तत्क्षणजात व्यक्तिकी शरीरगढन उत्तम और वलवान् चन्द्रके समयजात व्यक्तिकी मानसिक प्रकृतिका महत्त्व होता है। महापुरुषों के मध्य जिसके चन्द्र और स्यैं जैसे विभिन्न राशिगत होंगे, उसके लक्षण भी वैसे ही होंगे। समस्त राशियों के जिस प्रकार धातु महा-भूत, प्रकृति, द्युति, वर्ण, सत्त्व और कप सूय चन्द्र द्वारा उपभुक्त हो'ने, उसके लक्षण भी उसी प्रकार स्थिर करने होंगे। वह वलहीन सूर्य अथवा चन्द्रकर्तृक उपयुक्त होनेसे तत्क्षणजात पुरुषगण सङ्कीर्ण पुरुष कहलाते हैं। किसी व्यक्तिके जनमकालमें मङ्गलग्रह वलवान् रहनेसे पराकाम, बुधग्रह रहनेसे गुरुता, वृहस्पति रहनेसे खर, शुक रहनेसे स्नेह और शनि रहनेसे वर्ण जानना होता है। इनके गुणदोपके तारतम्यानुसार उक्त सभी साधुत्व छाम करते हैं। सङ्कोर्ण पुरुषगण श्रेष्ठ नहीं होते।

हंस, शश, रुचक, भद्र और मालव्य इन पंच प्रकारके पुरुपोंका विशेष विशेष लक्षण अभिहित हुआ है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया । (वृहत्-संहिताके ६६वें अध्यायमें विशेष विवरण लिखा है।)

२ सांख्योक्त प्राणियों का आत्मास्वक्षप । सांख्य-के मतसे पुरुष चेतन स्वक्षप है, किन्तु सुखदुखादि यून्य हैं । ये अपरिणामी अर्थात विकारशून्य हैं और अकर्ता हैं अर्थात् कोई कार्य ही नहीं करते । यही पुरुप ही प्राणियों की आत्मा हैं, सुतरां जितने प्राणी हैं, सवों को पुरुप कह सकते हैं। प्रकृति और पुरुप परस्परसापेक्ष हैं। जिस प्रकार लोहा सुम्वकके समीपस्थ होनेसे सुम्वककी ओर गमन करता है, उसी प्रकार प्रकृति उस पुरुप-सन्तिधानप्रयुक्त विश्वरस्वनामें प्रवृत्त होती है। प्रकृतिके स्वयं जड़ होने पर भी वह पुरुपके सहयोगसे संसार-व्यापार सम्पादन करनेमें समर्थ है।

३ विष्णु । सांहप और प्रकृति देखां । "दवं पुराणं पुरुषो विष्णुचेंदेषु पद्यते । अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च गुणेभ्यश्च परस्तथा ॥" (हरिवं ० १२)

४ शिव । ५ जीव । ६ दुर्गा ।

"महानिति च योगेषु प्रधानश्चैव कथ्यते ।

तिगुणाव्यतिरिक्ता सा पुरुपश्चेति चोच्यते ॥"

(देवीपुराण १५ अ०)

अभ्यस्थानकभेद, घोड़ेकी एक स्थिति । इसमें यह अपने दोनों अगछे पैरोंको उठा कर पिछले पैरोंके वल खड़ा होता है। जमना, सीखपांव।

पुरुपराशि—मेप, मिथुन, सिंह, तुला, धनुः और कुम्म ।

पुरुपत्रह—भीम, अक, जीव । पुरुपनश्रह—हस्ता, मूला, श्रवणा, पुनवसु, मृगशिरा और पुन्या ।

८ चेतनाथातु । ६ सूर्य । १० पुन्नागवृक्ष, सुलताना-चम्पा । ११ पारद, पारा । १२ गुग्गुलु, गुग्गुल । १३ तिलक । १४ मनुष्यका शारीर वा आतमा । १५ पूर्वज । १६ पित, स्वामी । १७ व्याकरणमें सर्वनाम और तद्युसारिणी क्रियाके क्यों का वह भेद जिससे यह निश्चय होता है, कि सर्वनाम वा कियापद्वाचक (कहनेवाले) के लिये प्रयुक्त हुआ है अथवा संवोध्य (जिससे कहा जाय) के लिये अथवा किसी दूसरेके लिये। जैसे 'में' उत्तम पुरुष हुआ, 'चह' प्रथम पुरुष और 'तुम' मध्यम पुरुष।

पुरुपक (सं॰ पु॰ क्ली॰) पुरुप पनेति पुरुप साथैं-कन्। घोटककी ऊर्द स्थिति, घोड़ेका जमना, सीखपांच, अलफ। २ बोड़ेका स्थानकभेद।

पुरुपकार (सं० पु०) पुरुपस्य कारः करणम्। पुरुपकी कृति, पौरुप, उद्योग। दैव और पुरुपकार ये दोनोंके मिळनेसे फळ होता है। दैवसे पुरुपकारकी प्राधान्य शास्त्रमें निर्दिष्ट हुई है।

जिस त्रकार एक चकसे रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार विना पुरुपकारके दैव प्रसन्न नहीं होते। दैव शुभ होने पर सामान्य पुरुपकार द्वारा ही मानवगण शुभफल प्राप्त करते हैं।

> "यथा ह्ये केन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्। तथा पुरुपकारेण विना दैवं न सिध्यति॥" (नीतिशास्त्र)

मत्स्यपुराणमें पुरुषकारका विषय इस मकार लिखा है—एक दिन मनुने मत्स्यसे पूछा था, कि देव और पुरुषकारमें श्रेष्ठ कौन है? इसके उत्तरमें मत्स्यदेवने जी उत्तर दिया था, वह इस मकार है —

'देहान्तरमें अजित खीय जो कर्म है उसे देव कहते हैं अर्थात् पूर्वजनममें जिस कर्मका अनुष्टान किया जाता है, यह देव नामसे प्रसिद्ध है। यह देव पुरुपकारसे श्रेष्ठ है। मङ्गळाचार व्यक्तिके देव प्रतिकृत होने पर भी वह पुरुपकार द्वारा विनष्ट होता है।

जो पूर्वजनममें सात्विक कर्मका अनुष्ठान करते, वे विना पुरुपकारके भी फललाम करते हैं। जो राज-सिक कर्म करते हैं। जो राज-सिक कर्म करते हैं, वे पुरुपकार भिन्न फललाम नहीं कर सकते। तामस कार्यकारियोंके लिये अति कटोर पुरुपकार कार आवश्यक है। अति यससे पुरुपकार करने पर अशुभ देव निराकृत हो शुभफल देते हैं। इसी कारण दैवसे पुरुपकारको श्रेष्ठ वतलाया है। देव, पुरुपकार कार कार कार कार कार काल वे तो हों। इनमेंसे अलग मलग हो कर कोई भी फल नहीं दे सकता।

जिस प्रकार रूपि वृष्टिके समायोगसे कालमें फलपस् होतो है, उसी प्रकार दैव और पुरुषकार उपयुक्त कालमें निश्चय ही फलप्रद होता है। पुरुषकार करके यदि फल न मिले तो उसके प्रति चीतश्रद्ध होना उचित नहीं। उपयुक्त काल आने पर उसका फल आपसे आप होगा। प्रत्येक मनुष्यको अति यलपूर्वक पुरुषकारके प्रति यल करना उचित है। पुरुषकार जैसा किया जायगा, फल भी वैसा ही मिलेगा। केवल देवके आसरे रहना उचित नहीं। पुरुषकारके प्रति यत करना ही सर्वतोमावसे विधेय है। (मरहरपुराण दैवपुरा जारक नाम १६' ५ ४०) पुरुषकुञ्जर (सं० पु०) पुरुषेयु कुञ्जरः श्रेष्टः या पुरुषः कुञ्जर इव उप मितसमासः । पुरुषश्रेष्ठ, पुरुष-स्याद्य। पुद्भव, ऋषम और कुद्धर आदि पुरुषके श्रेष्टार्थवाचक हैं। पुरुवकेशरी (सं ० पु ०) पुरुवः केशरी इव । १ पुरुवश्रेष्ठ । २ न्रसिंहरूपी विष्णु । पुरुपक्षेत (सं॰ क्ली॰) ज्योतिषोक्त वह क्षेत्र जहां पुरुषका जन्म निर्दिष्ट हुआ है। पुरुषगति (सं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका साम । पुरुपगन्धि (सं० द्वि०) पुरुषका आद्राण । पुरुषप्रह (सं॰ पु॰) ज्योतिषके भनुसार मङ्गल, सूर्यं और वृहस्पति । पुरुषप्न (सं० ति०) पुरुष हन्ति हन-रच्। पुरुष-हनन-साधन आयुध, पुरुवकी हत्या करनेवाला हथियार । पुरुषच्छन्दस् (सं० स्त्री०) पुरुष इव द्विपादत्वात् छन्दो यस्याः। द्विपदाख्य छन्दोभेद। इस छन्दमें दो चरण रहते हैं, इसोसे इसका पुरुषच्छन्दस् नाम पड़ा है। पुरुषता (सं॰ स्त्री॰) पुरुषस्य भावः तल्र-टाप् । पुरुषत्व, पुरुषका भाव, पुरुपका धर्म । पुरुपतेजस् (सं॰ ति॰) पुरुपत्वविशिष्ट । पुरुषता (सं० अव्य०) पुरुषको, पुरुष विषयमें । द्वितीया और सप्तमीके अर्थमें ही 'ता' प्रत्यय होता है। पुरुषत्व (सं० क्ली०) पुरुष भावे त्व । १ पुरुषका धर्म, पुरुषका भाव। २ पुंसव। पुरुषत्वत् (सं० अध्य०) पुरुपवत्ता । पुरुषदध्न (सं० ति०) पुरुष परिमाणार्थं द्ध्नर् प्रत्यय।

षुरुषद्न्तिका (सं० ति०) पुरुषस्य दन्त इव आरुतियस्याः, कप्, कापि अत इत्वं। मेदा नामकी ओषि। पुरुषद्वयस् (सं० व्रि०) पुरुष परिमाण । पुश्वाद न रे ी । पुरुषद्वेषिन् (सं० ति०) पुरुषं द्वेष्टि द्विप्-निन् । पुरुष-द्धे पशील । पुरुवधर्म (सं॰ पु॰) पुरुवस्य धर्म ६-तत् । पुरुवमात धम । पुरुषनक्षत्र (सं॰ पु॰) ज्योतिष-शास्त्रानुसार हस्ता, मूला, श्रवणा, पुनर्वसु, मृगशिरा और पुऱ्या नक्षत्र । पुरुवनाग (सं॰ पु॰) पुरुषो नाग इव । पुरुषश्रेष्ठ । पुरुषनाय (सं० पु०) पुरुषान् नयति अण् उपपदसमासः। १ नरपाल । २ सेनापति । पुरुपन्ति (सं पु॰) ऋषिविशेष । पुरुषपुङ्गय (सं० पु०) पुरुषः पुङ्गव इव । पुरुषश्रेष्ट, पुरुष-प्रधान। पुरुषपुरुडरीक (सं० पु०) पुरुषेषु पुरुडरीकः, श्रेष्टः, बा पुरुषः पुरुडरीको व्याव्य इव । १ पुरुषव्याव्य, पुरुषश्चेष्ट । २ जैनियोंके मतानुसार नव वासुदेवोमेंसे सप्तम बासुदेव। पुरुषपुर-प्राचीन गान्धार राज्यकी राजधानी। चीन-परिवाजक यूवनचुवङ्ग इस नगरका पो-छु-ष-छो नामसे उल्लेख कर गये हैं। किंती-अनुवादित वसुवन्धुकी जीवनी पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने भारतके उत्तरस्य पुरुषपुर नगरमें जनमग्रहण किया, इस समय यहां असङ्ग वोधिसत्व भी वर्चमान थे। इसका वर्चमान नाम पेशा-वर है। गन्धार और पेतागर देखी। पुरुषमात (सं० ति०) पुरुष-परिमाणार्थे मात्रद् प्रत्ययः । पुरुष परिमाण। पुरुपमानिन् (सं० ति०) पुरुष मननकारी । पुरुपमुख (सं॰ त्नि॰) पुरुषवत् मुखविशिष्ट, पुरुषके जैसा मु हवाला । पुरुपमृग (सं॰ पु॰) पुंमृग, नरहरिन । पुरुषमेध (सं॰ पु॰) वैदिक कालमें अनुष्टित यागमेद। अश्वमेध और गोमेध आदि वज्ञोंमें जिस प्रकार तत्तत् पशु विलक्षी व्यवस्था है, यह नरमेधात्मक यञ्च उसी प्रकार नरविल द्वारा सम्पन्न होता था । इस यज्ञके करनेका अधिकार केवल ब्राह्मण और क्षतियको था। चैतमास शुक्का दशमीसे प्रारम्भ होता था और चालीस

पुरुषपरिमाण ।

दिनोंमें समाप्त होता था। इस वीचमें २३ दीक्षा १२ उपसत् और ५ सूत्या होती थीं। इस प्रकार यह ४० दिनोंमें समाप्त होता था। यज्ञके समाप्त हो जाने पर यज्ञकर्त्ता वानग्रस्थाश्रम ग्रहण करता था।

वाजसनेय-संहिताके ३०वें अध्यायमें-५-२२ किएडका-में लिखा है, कि ब्राह्मणादि पशुको अग्निष्टादि एकादश यूपोंमें बन्धन करें। इनमेंसे अग्निष्टयूपमें ४८, द्वितीय-यूपमें ३७ और अवशिष्ट ६ यूपोंमेंसे प्रत्येकमें ११ पशुका वन्धन सम्पन्न करना होगा। नीचे तत्त्वत् देवता और ब्राह्मणादि पशुओंके नाम दिये गये हैं।

१म अग्निष्ठ- यूपरों१ -

आनन्ददेव-स्त्रीसख,१२ त्रह्या --- त्राह्मण प्रमुद्देव-कुमारीपुत **ञ्चत्र—ञ्चतिय,** मेघादेवी -रथकार, मरुवुगण--वैश्य, धेर्यदेव--तक्षा, तमो —तस्कर, श्रम वा तपोदेव—कीलाल,१३ नारक--वीरहा,२ मायादेवी-कर्मार पापदेवता—ह्यीव, ह्मप--मणिकार, तपो--श्रुइ आक्रयादेवता—अयोग,३ शुभ--वप,१४ शरव्यादेवी—इबुकार,१५ काम---पुं श्वल्युः ४ हेतिदेवी—धनुष्कार, अतिक्षु ए-मागध,५ कर्म—ज्याकार नृत्त-स्त, ६ दिष्ट—रज्जु—सर्ज,१६ गीत--शैल्ष,७ मृत्यु—मृगयु,१७ धर्म-सभाचर,८ अन्तक—श्वनी,१८ नरिष्ठादेवी—भीमल,६ नदीगण-पौजिष्ठ,१६ नर्भदेव-रेम,१० इसदेव--कारि,११

(१) अभिक समीपवर्ती प्रथमयूर, (२) बस्यु. (३) खानसे छोइ-उत्तोलक, (४) व्यभिचारिणी, (५) क्षत्रिया नर्म और वैश्यके औरससे खरपन्न, (६) नामणीके गर्म और क्षत्रियके ओरससे खरपन्न, (७) नर, (८) भाट, ६) भीम-मूर्त्ति, (१०) वाचाछ, (११) सर्वदा कार्यकरणसीछ, (१२ स्त्रेण, (१३) कुळाल (कुम्भकार), (१४) जो वीत वपन करते हैं, (१५) व णनिर्माणकारी, (१६) रज्लु नेर्माणकारी, (१७) ज्याष, (१८) कुन्करपोधक, (१६) पुक्कस (बाग्धी) वा ज्ञालिया,

ऋक्षिका—नेषाद,२० सन्धिदेवता—जार,२८
पुरुषव्याघ्र—दुर्भद,२१ गेह—उपपित,
गन्धर्वाप्सरादियोंका—वात्य,२२ आर्त्तिदेवी—परिविदान,३०
सपदेवताओंका—उन्मत्त, निर्ऋ तिदेवी—परिविदान,३०
सपदेवताओंका—अप्रतिपत्,२३ आराद्धिदेवी-पदिधिपुपित३१
अयोदेवताओंका—कितव,२४ निष्कृतिदेवी—पेशस्कारो,३२
ईयतादेवीका—अफितव,२५ सञ्ज्ञानदेवता—स्मरकारो,३३
पिशाचगणका—विदलकारो,२६ प्रकामोधदेव—उपसद,३४
यातुधानोंका—कएटकीकारो,२७

द्वितीय यू।' ---

अधर्म-विधर वणेदेवता—अनुरुघ,३५ पवित--भिषक, बल---उपदा,३६ प्रज्ञान---नक्षतदशं, ४० उत्सादगण--वकाङ्ग,३७ अशिक्षादेवी-प्रश्नी, ४१ प्रमुदेवता— स्वाङ्ग ३८ उपशिक्षादेवी-अभिप्रश्नी।४२ द्वारदेवी—स्नाम ३६ व्वीव यू ।में -स्वप्र-अन्घ मर्यादादेवी-प्रश्नविवाक, ४३ इरादेवी-कीनाश, कीलालदेव—सुराकार, अर्मियोंका—हस्तिप, ४४ भद्र—गृहप, जव---अश्वप, श्रेयोदेव--वित्तध,४५ पुष्टिदेवी--गोपाल, अध्यक्षदेव--अनुक्षत्ता ।४६ वीर्यदेवी—अविपाल, तेजः--अजपाल,

(२०) चएडाळ, (११) पाल्फीबाहर, (२२) उपनयन, चेस्कारहीन दिजाति, (२३) अव्यवस्थिति, (२६) वृतकीहरू (जुआही), (२५) जुआहियों हा अव्यवस्थिति, (२६) वृतकीहरू (जुआही), (२५) जुआहियों हा अव्यवस्थिति, (२६) वृतकीहरू (२५) पळासपत्रावि कराइक द्वारा विद्य करके विकरोपजीवी, (२५) जिसके साथ सर्वदा वा दो चार वार सम्बन्ध हुआ है, (२९) जिसके किन्नका विवाह हुआ है, स्वयं अविवाहित हैं, (३०) ज्येष्ठका विवाह नहीं हुआ, पर स्वयं विवाहित हैं, (३१) ज्येष्ठकरयाके अविवाहित रहते जिस किनिष्ठाका विवाह हुआ है, तमका स्वामी, (३२) वेशरचना ही जिसकी वपण्डी तमको है, (३३) कामोदो तम ही जिसका च्यनसाय है, (३४) जीवानीसी (६५) जो रिजवत के कर सम्याय कार्य करता है, (३६) जपायनप्रदाता, (३०) कुन्ज, (२८) वामम, (३६) वह-निम्न चन्नु नळसावी, (४०) उपोतिचिद, (४१) शक्नविज्ञासक, (४२) शक्वविज्ञासके उत्तरहाता, (४३) गणनाप्रभावसे प्रश्नका इत्तरदाता, (४४) मामविक्वमी, (४५) कोनाध्यक, (४६) सरय, इत्तरदाता, (४४) मामविक्वमी, (४५) कोनाध्यक, (४६) सरय, इत्तरदाता, (४४) मामविक्वमी, (४५) कोनाध्यक, (४६) सरय,

चतुर्थ धूरमं -

भादेवी—द्रावाहार,४७ सवलोक—उपसेका,५२
प्रभादेवी—अग्न्येघ, ४८ अवऋतिदेवी—उपमन्धिता,५३
व्रध्तविष्टप—अभिषेका,४६ मेधादेवी—वासपल्युली,५४
वर्षिष्ठनाक—परिवेशनकर्त्ता, प्रकामदेव—रजयिबी,५५
देवलोक—पेशिता,५० ऋतिदेवी—स्तेनहृद्य ।५६
मनुष्यलोक—प्रकरिता, ५१

वक्रम यू भी --

वैरहत्य—पिशुन,५७ अरिष्टिदेवी—अश्यसाद,६१ विविक्तिदेवी—श्रत्ता,५८ स्वर्ग लोक—भागदुघ,६२ श्रोपदंष्ट्र—अनुश्रत्ता,५६ वर्षिष्टनाक—पिवेष्टा६३ वल्ल—अनुचर, मन्यु—अयस्ताप,६४ भूमादेवी—परिस्कन्द,६० क्रोध—निसर, ६५ प्रियदेव—प्रियवादी

षष्ठ यूवमें--

योग—योका, ६६ निऋ तिदेवी—कोशकारी,७२ शोक—अतिसर्त्ता,६७ यम—अस्,,७३ स्रोम—विमोका, ६८ यम—यमस्,,७४ उल्क्लिनकुल—तिडि,६६ अधर्वेदेवगण—अवतोका,७५ वपु—मानस्कृत,७० वत्सर—पर्यायिणी,७६

(४७) लकडहारा, (४=) प्ल्हा चळानेका दास वा दासी, (४१) वाचक, (५०) छिदालोदक (Engraver), (५१) भारकर, (५२) स्तान करानेका नौकर, (५३) गात्रमर्दनादि करनेका नौकर, (५३) रजक, (४५) रेरेज, (५६) नापित, (५७) पर निदक, (५८) सार्थि, (५८) सार्थिका सहचारी, (६०) काद्वस्तार, (६१) चास काटनेवाला, (६२) गोरीम्मा, (६३) गोस्त्य, (६४) जौदतप्तकारी, (६५) त्रालोहपीटनकारी, (६६) गोमी, (६०) अनुगामी, (६०) विश्वद्धारकारी, (६९) विद्वान, (७०) मानी, (७१) चक्षा क्रान्यवद्धारी, (७२) क्रान्यलादिका कोश्वनिर्माणकार क, (७३) म्तवस्था, (७०) व्याजन्यलादिका कोश्वनिर्माणकार क, (७३) म्तवस्था, (७४) व्याजनकारिणी, (७५) अञ्चन वाद पक्षा वाद वाद पक्षा वाद वाद वाद पक्षा वाद वाद वाद वाद

सप्तम युवरें---

परिवत्सर—अविजाता,७७ साध्यगण—चमझ,८३

इत्वत्सर—अतित्वरी,७८ सरोगण—धेवर,८४

इत्रत्सर—अतिष्कद्वरी,७६ उपस्थावरादेवी—दाश,८५
वत्सर—विजर्जरा,८० वैशन्तादेवी—वैन्द,८६
संवत्सर—पिलक्षी,८१ नङ्गलादेवियोंका—शीं कल८७

ऋभुदेव—अजिनसन्ध,८२

अष्टम यूगरें.---

पार—मार्गर,८८ साजुदेवी—जम्मक,६३
अवार—कैवर्त्त, पर्वत—िकम्पुरुप,६४
तीर्थ—आन्द,८६ वीभत्सादेवी—पौल्कस,६५
विपम—मैनाल,६० वर्ण—िहरण्यकार,
स्वनगण—पर्णक,६१ तुलादेवी—चाणिज,
गुहादेवी—िकरात,६२

नवन युवमें--

पश्चादोय—ग्लावी,६६ संशर—प्रच्छिद,१०१ विश्वभूत—सिध्मल,६७ अक्षराज—कितव—,१०२ भूतिदेवी—जागरण,६८ कृत—आदिनबद्शे,१०३ अभूतिदेवी—स्वपन,६६ त्रेता—कर्णी,१०४ आर्त्तिदेवी—जनवादी,१०० द्वापर—अधिकर्सी,१०५ वृद्धिदेवी—अप्रगल्भ,

(40) वन्ध्या, (७३) क्रलटा, (७९) पूर्णयुवती, (८०) किरिकणात्रा, (८१) पक्ष केशा, (८२) जिसका करीर अस्ति-वर्मसार हो, (८३) चमार (८४) घीवर, (८५) नौकावाही बीवर, (८६: मेहतर, (८०) मनस्यत्रीवी, (६८) स्वाघातक, (८९) बन्वनिक्रगोपजीवी, (६०) मछुआ, (९१-६५) वनचर, (६६) मेहरोगी, (१०) क्रलीरोगी, (६८) जिसे अच्छी तरह नींद न आती हो, (६६) निरन्तर श्रष्ट्याशायी, (१००) स्पष्ट-वादी, (१०१: व्यवसायी च्लक, बनावटी, (१०२) धूर्त, (१०३) खारमदोवदर्शी, (१०४) कल्पना कारी, (१०५) अतिरिक्तकल्पना करिन,

दशव यूवमें

श्रीस्कृत्य-सभास्थाणु, प्रतिश्रुत्कादेवी-अर्त्तन,१०८ मृत्यु-गोव्यच्छ,१०६ घोष-भप,१०६ अन्तक-गोघात, अन्त-वहुवादी, क्षभादेवी-जो गोवधकारी

भिक्षावृत्तिका अवलम्बन करता है, दुश्कृत—चरकाचार्य, अनन्त—मूक, पानमा—सैलग,१०७ शब्द—आडम्बराधात,

एकादश यूदरे ---

महोदेव — वीणावाद नर्भदेव — पुंश्चल, ११४ कोश — तूणवध्म,११० हसदेव — कारि,११५ अवरस्पर — शङ्क्षध्म,१११ यादोदेव — शावल्य,११६ वनदेव — वनप,११२ महोदेव — ग्रामणो,११७ अरण्यदेव — दावप,११३ गणक और अभिकोशक,११८

गुस्तदेवता—वोणावाद, द्युदेव—खलति,१२६ पाणिष्टन,१२६ और तूण्यन,१२० सूर्य—हर्य्यक्ष आनन्द—तलब,१२१ नक्षत्वगण—किर्मिन,१२७ अनि—पीवा,१२२ चन्द्रमा—किलास,१२८ पृथिवीदेवी—पीठसपी,१२३ अहर्देव— गुक्कपिङ्गाझ, वायु—चारडाल,१२४ रातिदेवी—कृष्णिक्षिक्ष, अन्तरीक्षदेव—वंशनसी,१२५

इसके वाद प्रजापित देवताके जुएखक्रपमें (परस्पर विरुद्धक्प) अतिदीर्घ, अतिहल, अतिस्थृल, अतिरुश, अतिशुक्त, अतिरुज्ण, अतिकुल्व और अतिलोमश ये अए-

(१०६) गोवाडनकारी, १००) ठव, (१०८) आत्मद:खर्चनोप्जीवी, (१०६) द्यावादी, ११०) व श्रीवादकोपजीवी, (१११) ग्रांखवादकोपजीवी, (११२) वनस्कार्य वटहः
बाद तेपजीवी, (११३) दावानिन वा ग्रहामिन निर्वापणार्थ बद्धाबादक, (११४) भड्डआ, (११५) जो ताली देता है। (११६)
जी ग्रावास देवा है, (११०) मान्यप्रवपदर्श ह, (११८) परोबादक, (१२४) हस्ततालवादक, (१२२) स्युककाय, (१२३)
वंग्र, (१२४) अस्याकारी, (१२५) आजीकर, (१२६) गंजा,
(१२०) दह्नरोगी, (१२८) घवळरीगी।

विध पशुवन्धन करे। ये सभी अंशूद और अब्राह्मण हैं। मागध, पुंच्छों, कितव और ह्रीव इन चार अशूद्र और अब्राह्मण पशुकों भी प्रजापति देवताके छिये द्वितीय यूप-में बन्धन करना होगा। (बाजसने संहि । ३०१५-२२)

एकमात यज्जुर्वेदमें हो पुरुषमेघ यागका प्रसङ्ग है, सो नहीं । शतपथत्राह्मणके "यदस्मिन् मेध्यान-पुरुपानाल-भते तस्माह्रेच पुरुपमेधः" (१३|६|२|१) वचन और पड्विंगत्राह्मण ४।३, कात्या यन-श्रोतस्त २१।१।१, शांख्यायन-श्रीतस्त १६।१०।१ રરારાશ્રુ. अधर्ववेद १०।२।२८ आदि स्थानोमें यज्ञमें पुरुषविका उट्लेख है। अव प्रश्न होता है, कि क्या सचमुच वैदिक समयमें नरविल होती थी ? इस समस्याकी मीमांसा करना वड़ा ही कठिन है। हिन्दुस्थानवासी राप्तकृषा-मूर्तिपूजक विन्णु-उपासकगण काली आदि शकिकी उपासनामें छागादिकी विक दिया करते हैं। विक शब्द-का प्रकृत अर्थ है देवताके समीप पूजीपहार दान । किन्तु 'वल' धातुका वध करना अर्थग्रहण करनेसे 'देवोई शसे विधिपूर्वक पशुधातन' ऐसा एक मिन्न अर्थ ह्रव्यङ्गम होता है। यथार्थमें उक्त भिन्न भिन्न देवताके सामने वैदिकयुगमें भिन्न भिन्न पुरुपकी विक होती थी वा नहीं। इसके उत्तरका यथायथ कोई मी प्रमाण नही मिलता। कोई कोई पण्डित इसे पुरुपके अर्थमें नारा-यण-ग्रहण विष्णुमहिमात्मक-यज्ञ, ऐसी व्याख्या करते हैं। ये इसे रूपक बतला कर उपेक्षा करते हैं, कमी भी नरविल-समन्वित मनुष्यप्राणघाती निरूप्तर यज्ञविशेष-का नाम है, ऐसा हृदयमें स्थान नहीं देते। सामान्य विवेचना कर देखनेसे मात्र्म होता है, कि मनुष्य मनुष्य-का प्राणहन्ता है, विशेषतः साबी इष्टकामनासे निरपराध जीवनका अकारण-उत्सर्ग उन विश्वविख्यात वेदमन्त-द्रधा महर्षियोंके लिये कमी भी सम्मव पर नहीं हो सकता । जिस वेदमें जलदेवकी प्रीतिके लिये शुनःशेष-के उत्सर्ग और अकारण निधनकी आशङ्कासे रौद्रहृद्य ब्रह्मर्थि विश्वामितका भी अन्तःकरण द्यासे पिघल जाता था, ऐसा प्रसङ्ग वर्णित है, उस पुण्यमय वैदिकप्रवाहमें ऐसी अयुक्तिसङ्गत घटना हो, यह कभी भी मनुष्पद्वरयके विभ्वासमूलमें स्थान पानेके योग्य नहीं।

मन्तद्रपा वैदिक ऋषियोंने इन मन्तो का दर्शनलाम किस कारण प्रकट किया है, मालूम नहीं। थोड़ा लक्ष्य करनेसे ही जाना जाता है, कि यजुर्वेदी-उत्सर्गार्थ और उनकी छिखित देवता प्रायः अनुरूप है। उक्त प्रन्थवर्णित चरित्रयुक्त जीवोंके प्रायश्चित्तार्थं और तत्तत् आकृतिगत मनुष्यजीवनके परम पदलाभार्य अनुरूप देवताकी अधिष्ठान-कल्पनामात है। आलोचना करनेसे झात होता है, कि 'धर्म' कमी भी तोषामोदी भिध्यावादी चाटुकारको पसन्द नहीं करता और ज्ञान कभो भी कामादिकी उदीपन-शिक्षा नहीं देता। इस प्रकार यथार्थमें धमेंके समीप पापका निधन और **झानके समीप रिपुका वर्जन एकान्त अभिन्ने त** है। रिपुके परवश होनेसे आत्माभिमान सहचर हो कर ज्ञानलाभके पध पर कल्डकलकप हो जाता है। इस कारण ज्ञान-िषपासु व्यक्तिके लिये रियु-पुरुपको बलि वतलाई गई है। तद्वुरूप धर्माचारी कव कुपथगामी हो कर मिथ्या-बादी हो जायगे, साधुप्राण ऋषियोंका यह कभी भी अभिन्नेत नहीं है। यही कारण है, कि वे निरपेक्षसावर्में विशेष विशेष देवताके सामने विशेष विशेष जीवकी उत्सर्ग-कथा लिख गये हैं अर्थात् जिस जिस देवताका जो जो अप्रिय है अथवा जिन सद चरितानुष्ठानसे जो जो देवता रुष्ट होते हैं, वैदिक ऋषियोंने उन सद देवताओंको प्रसन्न रखनेके लिये मानवको उसी उसी चरित्र-गुण-का उत्सर्ग करनेको आदेश दिया है। अर्थात् हे मानव ! तुम धर्मके सामने अपने पापकी विल दो, मोक्षपद पाओंगे । तुम पापकी विछ दो, ऐसा कहनेसे यह नहीं समभा जाता कि तुम ही खयं धर्मके समीप उत्सगी-कृत हो।

किन्तु साधुयुगकी कथा विकृतयुगमें आ कर अधिक-तर विकृत हो गई है। आचारम्रष्ट तान्तिकींने मन्त-प्रमाव भूळ कर जब छौकिक आचारमें ध्यान दिया, तभी वे वैदिकमाहारम्य भूळ कर मौतिक-आचारमें लिस हुए। वैदमें पुरुषमेध-यहकी व्यवस्था है, यह देख कर वे अमीष्ट-छामकी आशासे उन्मत्त हो गये। वैदिक क्रियाकछाप-के उत्पर लक्ष्यन रख कर उन्होंने पापपथका प्रभ्रय लिया। कमशः पुण्यमय मोक्षप्रद श्रष्ट हो कर ये पापके अशान्ति-

निकेतनमें अप्रसर हुए, यथार्थ ही कालप्रभाव और वुद्धिविपर्थयसे ऐसा इपान्तर हो गया था। वैदिकयुगमें
धर्म ही एकमाल मोक्षोपाय समन्ना जाता था, इस कारण
क्दर्मप्रतिग्रा ही तत्कालीन ऋषियोंको मानसिक उत्कध्ताका फल है। वैदिक आचारम्रष्ट कर्मकाएडमें लिस
तान्तिकगण मोक्षलामके लिये मोहजड़ित क्रियाकाएड
पर लक्ष्य रख कर देवीके सामने नरविल देनेमें कातर
नहीं होते। इसके बाद शक्ति उपासक कापालिकोंका
अम्युद्य हुआ। यह नृशंस धर्मवीरपाण तान्तिकाचारके
अनुग्रानसे मुक्ति पा कर मुरासेवन और अकारण सैकड़ों
नरहत्या करते थे। वे नर नारी पकड़ कर जङ्गल ले जाते
थे। वहां यक्षारमके वाद स्रोके सतीत्वनाश और पुरुपके
जीवनदानसे यक्षानुष्ठानका समाधान ही इस सम्प्रदायप्रवित्त धर्ममत्रकी मूल भित्ति समन्नो जाती थी।

ऋक् और यद्धःसंहितामें पुरुषमेधकी परिपोषक जो सब घटनाएँ मन्तके मध्य सिन्नविशित हुई हैं, वे केवल पूरम सूतका आभासमात है। संहिताके मध्य जो अस्पष्ट और अस्पुट है, वैदिक ब्राह्मणादिमें वही पुष्कुादु-पुष्कुक्सपमें विवृत हुई है। संहितामें जो सनातन आर्यः जाति-के अनुष्ठेय कर्त्तच्य कर्मक्सपमें लिपिवद्ध हुआ था, ब्राह्मण-पुगमें उस पूर्वतन क्रियाकलापका कुछ अंश परित्यक्त है। कुछ परिमार्जित है और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने नूतन याग्यक्ति परिपुष्ट हो कर कलेवरको परिवद्धित किया है। संहिता-परिवर्त्तित धर्म आदिभाविभिश्रत है, पर ब्राह्मण-निर्दिष्ट धर्मपथ ही हिन्दूधर्मप्रतिष्ठाका यथार्थं सोपान हैं।

पेतरेय ब्राह्मणमें एक जगह लिखा है, कि देवगण यहमें
पुरुषविल देते थे, किन्तु वह गल्प पढ़नेसे पेतरेय ब्राह्मणके समय हिन्दूसमाजमें पुरुषमेध प्रचलित था, पेसा विध्वास नहीं होता। देवगण मनुष्यकी हत्या करके उसके
श्रारीरसे उत्सर्ग वपा ब्रह्मण करते थे। उत्सर्गाध उक्त
वांश ले कर ही वे उस मनुष्यकी विदाई देते थे। पेतरेयब्राह्मणके उक्त वचनसे यह साफ साफ प्रतीत होता है,
कि समय प्राणिवधयह प्रचलित नहीं था। किन्तु उक्त
ब्राह्मणके स्थान विशेषमें यहमें हत जीवकी वपा उत्सर्ग
करनेका मन्त्र रहनेके कारण तथा उत्सर्गार्थ जीवादिके
निर्वासन, हरण और पुरोहितगणके मध्य परस्परके

विभाजन भादिका पाठं करनेसे मनमें एक नवीन सन्देह-छायाका उद्य हो जाता है। इस ब्राह्मणयुगमें अश्वमेध, गोमिध वा छागमेध यह अनुष्टित नहीं होता था, यह निःसन्देह नहीं कहा जा सकता।

तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें भी पुरुषमेधयहकी कथा लिखी है। उक्त प्र'थ आयस्तम्बने कहा है, कि यह यह पश्चित्न व्यापी है, ब्राह्मण और राजन्य (क्षतिय) छोड़ कर और किसीको भी वह यह करनेका अधिकार नहीं है। यज्ञाधिकारी अनेक फलोंके अधिकारी होते हैं। पञ्चशार-दीय यहकी तरह इसकी दिनसंख्या विहित हुई है और अनिष्टोममें जिस प्रकार ११ वलियोंका विधान है, इसमें भी बसी प्रकार मध्य दिनमें 'दैवसवितस्तत् सवितुर्वि-श्वामि देवसवित' इत्यादि मन्त्रीश्वारणपूर्वक सावित्रीको तीन वार भाष्ट्रति दे कर यूपजुष्ट वध्यजीवकी उपाकृत करना होता है। "ब्राह्मणे ब्राह्मणाम् आलभेत" इत्यादि मन्होंसे बाईस बार मनुष्यको उपाक्तत करके यूपमें वांध वेना पड़ता है। इस समय ब्रह्मा (पुरोहित) सहस्र-शोव^९ पुरुष, इत्बादि मन्त्रपाठपूर्व[°]क परम पुरुष-नारायण-का ः तुतिपाठ करना होता है।' सावणाचार्यने आपस्तम्य-का मत उद्भुत करके तत्तत् यूपजुष्ट पशु और देवदेवीकी अर्थान्तर व्याख्यानमें जैसा मत प्रकाशित किया है, उससे स्पष्ट जाना जाता है, कि ब्राह्मणसे छे कर क्रमारी पर्यन्त मनुष्यक्षपद्यारी प्रत्येक पशु ही पुरुषमेधयक्षमें मध्यन्त्नि को अन्यान्य पशुओंके साथ वधयोग्य है। उनके मतसे यह पुरुषमेध सोमयागसदृश है।

आपस्तस्य अथवा सायण कोई भी पुरुषविक्रको इत्यक नहीं बतलाते। आपस्तम्बने जो एक 'उपाइत' शब्द-का प्रयोग किया है, वह अपरिस्फुट है। उक्त उपाइत शब्दके ऊपर निर्भर करके किसी प्रकार प्रइत अर्थ ब्रहण नहीं किया जा सकता।

बहमें विल देनेके पहले उस पशुको स्नानादि कराने-के बाद यथा नियमसे उत्सग करके अमीष्ट देवताके उद्देशसे बिल देनी होती हैं। यूपजुष्ट पशुको पविल करने-का नाम ही उपाकृत हैं। महर्षि जैमिनि और शवरस्वामी-ने पशुवलि देनेकी जो जो किया करनी होती है, उसीको उपाकरण बतलावा है। आपस्तम्बके वस्त्रमसे आभास ध्यतीत कोई स्पष्टतर उत्तर तो नहीं मिलता, पर तत्पर-क्तीं शतपथवाद्यणमें यश्चमें विलिदानार्थ नरपशुके उपा-करणादिका प्रकृत विवरण विधा गया है, जिसका तात्पर्थ इस प्रकार है,—

पक दिन पुरुषक्षपी नारायणने इच्छा की, कि मैं सब
भूतोंमें अवस्थान करूं गा। उसी समय उन्होंने यह पञ्चरात
साध्य पुरुषमेध्यन्न देखा और आहरण कर लिया। वहीं
ले कर उन्होंने यज्ञानुष्टान किया, जिससे वे सर्वभृतस्थ और सृष्टिभूत हुए। इस यन्नमें २३ दीक्षा, १२ उपसद, ५ सुत्या, कुल ४० गात निर्दिष्ट हुए हैं। इन चालिसोंके मध्य चत्वारिशदक्षरा विराद् विराद्पुरुषक्पमें अवस्थित है। इस विराद्से यन्नपुरुष उत्पन्न हुआ है।

वार दशत् चार लोक प्राप्तिका उपाय है, प्रथम दशत्से यह लोक (पृथिवी), द्वितीय दशत्से अन्तरिक्ष, तृतीय दशत् से आकाश और चतुर्थ दशत्से समस्त दिशाएं प्राप्त होती हैं। इस प्रकार यहकारों दशत्से चार लोक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यहकारों दशत्से चार लोक प्राप्त होते हैं। सुतरां यह पुरुषमेघ हो चार लोक प्राप्ति और सर्वावरोधका उपायस्करण है। इस यहमें दीक्षित होनेमें अनि और सीम-के उद्देशसे ११ पशु और उनके लिये फिर ११ यूपोंकी आवश्यकता है। एकादश अक्षरमें लिख्डम् है, लिख्डम् ही वज्र और वीर्यस्करण है। निख्डम्के वज्र और वीर्यप्रमावसे सभी पाप जाते रहते हैं। सुत्यामें ११ पशुकी आवश्यकता है, क्योंकि इस यहमें ११ पशु निर्दिष्ट हुए हैं। इसके द्वारा पुरुषमेधमें समस्त लाभ और समस्त जय की जा सकती है। इस पञ्चाहसाध्य पुरुषमेधमें पञ्चविध अधिदेवत और समस्त अध्यातम पाये जाते हैं।

इस पञ्चाहके मध्य प्रथम दिन अनिष्टोम, द्वितीय दिन डक्य्य, तृतीय दिन अतिरात, चतुर्थ दिन उक्थ्य और पञ्चमदिन अनिष्टोम होना आवश्यक है। इस पञ्चरातमें यवमध्य होता है। अतिरात ही आतमा है, कारण दो उक्थ्य के मध्य अवस्थित है। अतिरात मध्याहमें होनेके कारण यही यवमध्य है। इस पुरुषमेधमें प्रथमाह यह छोक है, इस छोकमें वसन्त ही प्रधान है। इसके ऊर्ड अन्तरिक्ष द्वितीयाह है, वहां श्रीष्मसृतु है। तृतीयाह ही अन्तरिक्ष छोक है, वहां वर्षा और श्रात् चे दो सृतु हैं। अन्तरिक्षके उपर दिव चतुर्थाह है, जिसकी मृतु हेमन्त है। इसके ऊपर द्यौ पश्चमाह है, जहां शीतऋतु है। अध्यातमभावमें भी इसी प्रकार पञ्चाह पश्चऋतुका अधिष्ठान है। यह पुरुषमेधयह करनेसे वे सब छाभ और अवरोध किये जाते हैं।

शतपथत्राह्मणके १३।६।२ अध्यायमें, पुरुषमेघ नाम क्यों पड़ा, इसका विषय यों लिखा है,—

बह लोक समुदाय ही पुर है। इस पुरीमें वे शयन करते हैं, इस कारण उनका नाम पुरुष पड़ा। अन्नका नाम ही मेघ हैं, मेघ ही पुरुषकां आहार है, इसीसे यह पुरुपमेध हैं। इस यश्में मेध्य पुरुषगण आल-मित अर्थात् हिसित होते हैं, इससे इसका पुरुषमेध नाम पड़ा है। मध्यम दिनमें ही उन्हें बिल चढ़ाई जाती है। यह मध्यम दिन ही अन्तरिक्ष है, अन्तरिक्ष ही सभी भूतोंका भावास है। वह मध्यम दिन ही उदर है, उदर ही अन्त-धारण करता है। विराट्के दश अक्षर हैं इसीसे दश दश करके चिल दी जाती है। तिन्द्रमके अक्षर एकादश हैं, इस कारण पकादश दश अर्थात् एक सौ दशकी भी विल दी जा सकती है। जगती अप्राचत्वारिंशत् अक्षरा ४८ पशु विल देनेकी व्यवस्था है। गायली अद्यक्षरा है, इस कारण उत्तम भाउपशुहिसा होती है। वे सव हिसित पशु ब्रह्मप्रजा-पतिके हैं। ब्रह्मप्रजापित सविताको प्रसन्न करनेके लिये सावित्रीमन्त्र उचारणपूर्वंक तीन आहुति करते हैं। उसी सविताने प्रसन्न हो कर पुरुषोंको प्रसन किया है, इसी-से वे प्रसूतगण (विख्यक्रप) हिसित होते हैं, इत्यादि ।

शतपथन्नाह्मणका विवरण पढ़नेसे क्या यह प्रतीत नहीं होता, कि पूर्वकालमें किसी प्रकारकी नरवलि प्रधा प्रचलित थी, जिसके अनुकल्पकी कथा शतपथन्नाह्मणमें वर्णित हुई है ? मानव-समाजकी शैशवावस्थामें जो सव भाचार व्यवहार प्रचलित रहते हैं, यौवन कालमें वे नाना कारणोंसे परिवर्त्तित होते देखे जाते हैं । वेदस्पृष्टिके पहिले आर्य समाजकी जब शैशवावस्था थी, उस समय वे स स्व परिजन अथवा स स उपास्य देवताकी परितृष्टिके लिये नरविल देते थे, यह असम्भव नहीं है । ऐतरेय-न्नाह्मणमें शुन शैपका उपास्यान पढ़नेसे, एक समय यह्मोपलक्षमें नरविलक्षी प्रथा प्रचलित थी, उसका स्पष्ट आमास मिलता है । पहले हरिश्चन्द्रके एक भी सन्तान न थी। पीछे उन्होंने

वरुणकी आराधना करके उनके वरसे रोहित नामक एक पुत प्राप्त किया। पुत होनेके पहले यह बात ठहरी थी जो पुत्र जनम लेगा, उसे वरुणको उत्सर्ग करना होगा। पुत होने पर वरुण आये और हरिश्वन्द्रसे पुतके छिपे प्रार्थना की । किन्तु हरिश्चन्द्र इस बार वरुणकी प्रार्थना पूरो न कर सके। रोहित प्राणभयसे जङ्गल भाग गये। अजीगर्च नामक एक द्रिद ब्राह्मणके साथ उनकी भेंट हुई। एक तो ब्राह्मण दिस् थे, दूसरे उनके पुत भी अनेक थे जिनका पालन पोषण वे अच्छी तरह न कर सकते थे। इस कारण नितान्त अनिच्छा रहते हुए भी उन्होंने अपने मध्यम पुलको राजाके हाथ बेच डाला । अब रोहितके वदलेमें उस ब्राह्मणकुमारको ही वरुणके निकट उत्सर्ग करनेकी व्यवस्था हुई। विश्वामित इस यहने पुरोहित वने । उत्सर्गके समय उस ब्राह्मण-कुमार शुनः-शेपकी कातरोक्ति सुन कर विश्वामितका भी इदय द्या-से पिघल गया । सम्भवतः इस ब्राह्मण-कुमारका प्राणवध करना विश्वामितने उपयुक्त नहीं समभा। वरुणदेवकी सन्तुष्ट करके उन्होंने उस ब्राह्मण-कुमारके प्राण बचा दिये, यहां तककी वह ब्राह्मण-कुमार विश्वामितके ज्येष्टपुत कह कर गृहीत हुआ। उक्त उपाख्यानसे ऐसा बोध होता है, कि अधुनातनकालमें जिस प्रकार गङ्गासागरमें पुत-दान अथवा देवी चामुएडाके निकट नरविख् प्रचलित थी, अतिपूर्वकालमें वैदिक सभ्यताका जब उतना विस्तार न था, तब उसी प्रकार वलिप्रधाका प्रचार रहा। वैदिक सभ्यताके विस्तारके साथ साथ जब इस कार्यको लीग हेय समभने लगे, तब उसके विकल्पमें पशु-विलक्ष प्रचार हुआ। कलिकालमें पुरुषमधको निषिद्ध वतलाया है।

पुरुषरक्षस् (सं॰ पु॰) पुरुषाकार राक्षसभेद् । पुरुषराज्ञ (सं॰ पु॰) पुरुषका राज्य रूस स्मापन

पुरुषराज (सं॰ पु॰) पुरुषस्य राजा दन् समासान्तः। पुरुषश्रेष्ठ।

पुरुषराशि (सं॰ स्त्री॰) ज्योतिय शास्त्रानुसार मेय, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्मराशि ।

पुरुषकप (सं० क्ली०) पुरुषाकार।

पुरुपरूपक (सं० ति०) नराकृतिविशिष्ट ।

पुरुवरेवण (सं० ति०) पुरुवस्य रेघणः। पुरुवहिंसकः, पुरुवकी हत्या करनेवाला। पुरुषरेपिन् (सं० ति०) पुरुषहिसाशील, पुरुषकी हिसा करनेवाला।

पुरुषवध (सं० पु०) नरहत्या।

पुरुषवत् (सं० ति०) पुरुष-मतुष्, मस्य व। नरवत्, मनुष्य-के जैसा।

पुरुषवाच् (सं० स्त्री०) पुरुषस्येव वाक् यस्याः। पुरुष-वद्वाषययुक्त शारि, नरके जैसा वोस्तनेवासी मादा तोता। 'पुरुषयार (सं० पु०) ज्योतिष शास्त्रानुसार रवि, मङ्गस्त, वृह्दस्पति और शनिवार।

पुरुपवाह (सं० पु०) पुरुषमादिपुरुषं वहति वह-अण्।
१ विष्णुकां वाहन गरुड़। २ पुरुपेण नरेण उद्यते वहकर्मणि घड़्। २ नरवाहन, कुवेर। पुरुपस्य वाहः वाहनं।
३ पुरुषकां वाहन।

पुरुपवाहन् (सं० अन्य०) पुरुष-वह णमुल् । पुरुषकर्मक वहन । णमुल् प्रत्यय होनेसे यथाविधि अनुप्रयोग होता

है। यथा 'पुरुपवाहं वहति पुरुपं वहतीत्यर्थः'।
. पुरुपविध (सं॰ ति॰) पुरुस्येव विधा यस्य। पुरुपप्रकार।
पुरुपर्थभ (सं॰ पु॰) पुरुप ऋपभ इव उपमितसमासः।
पुरुपश्चेष्ठ।

्र पुरुपव्यात्र (सं॰ पु॰) पुरुपो व्यात्र इत । पुरुपश्रेष्ठ । ... पुरुपव्याधि (सं॰ स्त्री॰) उपदंश ।

... पुरुववत (सं० क्ली०) साममेद ।

पुरुपशांद्रील (सं० पु॰) पुरुषः शाद्रील इव उपित-समासः। पुरुपश्रेष्ठ।

पुरुपशिरस् (सं० क्ली०) नरमस्तक ।

ं पुरुपशीर्षं (सं० क्षी०) पुरुषका मस्तक।

पुरुपशीर्पंक (सं० क्ली०) नरमस्तकयुक्त चौर-व्यवहत यन्त्रभेद ।

पुरुषसिंह (सं पुरुष) पुरुषः सिंहः इव पुरुषेषु सिंहः श्रेष्टी वा । १ पुरुषश्रेष्ठ । २ जिनविशेष । इसका पर्याय श्रीवि हैं।

पुरुषस्त (सं० क्षी०) परमपुरुषप्रतिपादकं स्तः । स्ताभेद । इस स्ताका पाठ कर अभिषेकादि अनेक कार्य करते होते हैं) ऋग्वेदमें १०१६०११-१६ तक यह पुरुष-स्ता लिखा है। पुरुषस्ता वधा १ । "सहस्रशोर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स मूर्पि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठवशांगुरुम् ॥

२। पुरुष पनेदं सर्व यद्भूतं यश्च भव्यं। उतासृतत्वस्येशानी यदश्चे नातिरोहति॥

३। पतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पुरुषः। पादोऽस्य विश्वा भृतानि तिपादस्यामृतं दिवि॥

४। तिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहा भवत् पुनः। ततो विष्वङ्धकामत् साशनानशने अभि॥

५। तस्मादु विराङ्जायत विराजो अग्नि पृक्षः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चादुभूमिमथो पुरः॥

६। यत्पुरुपेण हिवपा देवा यक्षमतन्वतः। वसन्तो अस्यासीदाज्यं प्रीप्म इध्याः शरद्वविः॥

७। तं यकं वर्हिषि प्रीक्षन् पुरुषं जातमप्रतेः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

८। तस्माद्यसात् सर्वेष्ठतः सम्भृतं पृषदास्यम्। पश्चातास्यके वायुव्यानारण्यान् ब्राम्यास्य वे॥

ह । तस्माद्यक्षात् सर्वेद्धतः ऋषः समानि जिहरे । छन्दांसि जिहरे तस्माद्वयत्तस्मादजायत ॥

१०। तस्माद्य्या अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जित्रेरे तस्मात्तस्माज्ञाता अजावयः॥

११ । यतपुरुषं व्यद्धः कतिथा व्यकलपयन् । मुखं किमस्य की बाह का ऊरू पादा उच्चेते ।

१२ । त्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्वाह्न राजन्यः इतः । ऊक्त तदस्य यद्वैश्यः पद्दभ्यां शूद्रो अजावत ॥

१३ । चन्द्रमा मनसो जातश्वक्षीः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्वानिष्व प्राणाद्वायुरजायत ॥

१४। नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीव्यों ही समवर्ततः। पद्धां भूमिर्दिशः श्रीतात्तथा लोका अकल्पयनः॥

१५। सप्तास्यासन् परिधयितः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यक्षं तन्याना अवधनन् पुरुषं पर्युः।

१६। यह न यह मजयन्त देवास्तानि धर्माणि प्रधमान्यासन् ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत पूर्वे साध्या सन्तिदेवाः॥ (ऋक् १०१६०।१-१६)

पुरुषाशक (सं० पु०) पुरुषस्य अंशः स्वार्थं कन् ।
१ पुरुषाशक (सं० पु०) पुरुषस्य अंशः स्वार्थं कन् ।
१ पुरुषाशक (सं० पु०) पुरुषं अत्ति अद-किए। नरमक्षक राक्षस,
मजुष्य स्वानेवाला राक्षस। (ति०) २ शबुजनमक्षक।
पुरुषाद (सं० पु० स्त्री०) पुरुषमत्ति अद-अण् उपपद
समासः। १ राक्षस। २ मत्स्यदेशभेद।
पुरुषादक (सं० ति०) १ नरमक्षक राक्षस। २ जनपदभेद

पुरुषाद्त्व (सं० क्ली॰) पुरुषाद्स्य भावः. त्वा राक्षसका भाव वा धर्म ।

. पुरुषाद्य (सं॰ पु॰) पुरुषाणां जिनपुरुषाणामाद्यः प्रथमः । आदिनाथ नामक जिनविशेष । पुरुषेषु जीवे आद्यः प्रथमः, वुरुपाणां आद्यो वा । २ विष्णु । पुरुषः नराः : आद्यो यस्य । ३ राक्षस ।

पुरुवाधम (सं॰ पु॰) पुरुषेयु अधमः अतिनिकृष्टः । निकृष्ट तर, अधम मनुष्य।

वुरुवानुक्रम (सं॰ पु॰) पुरखोंकी चली आती हुई परम्परा। पुरुषान्तर (सं० पु०) अन्यः पुरुषः। अपर पुरुष, दूसरा - आदमी ।

पुरुषान्तरात्मन् (सं॰ पु॰) जीवात्मा ।

• पुरुषाबण (सं॰ ब्रि॰) पुरुष आत्मा अयनं प्रतिष्ठा यस्य, ततः 'पूर्वेपदात् संज्ञायामगः' इति णत्वं । आत्मप्रतिष्ट प्राणादि, प्राणादि आत्मासे प्रतिष्ठित हैं, इसीसे यह नाम पड़ा है।

पुरुषायुष (सं० क्ली०) पुरुषस्य आयुः अच्समासान्तः (पा ५।४।७७ -) पुरुषका आयुःकाल । सौ वर्ष का काल, जो मनुष्यकी पूर्णायुका काल माना गया है।

पुरुषारथ (हिं पु॰) पुरुषार्थ देखो ।

पुरुषार्थ (सं ० पु०) पुरुषस्य अर्थः । पुरुपका प्रयोजन । वह चार प्रकारका है, धर्म, अर्थ, काम और मीक्ष।

· "धंमीर्थं काममोक्षाश्च पुरुषार्था उदाहताः।"

(अग्निपुराण)

भर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चार पुरुषार्थ हैं। इन चार्गेमेंसे मोक्ष ही सर्वप्रधान है। सांख्यके मतसे ं तिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिरुप मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है---

- "अथ तिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तः पुरुषार्थः॥" (सांख्यस्त्र १।१)

प्रकृति पुरुषार्थके लिये अर्थात् पुरुषको दुःखोंसे निवृत्त करनेके लिये निरन्तर यत्न करती है, पर पुरुषके . धर्मको अपना धर्म स्ममः अपने खरूपको भूळ जाता है। जव तक पुरुषको खरूपका ज्ञान नहीं हो जाता, तव तक प्रकृति साथ नहीं छोड़ती। किसी न किसो दिन प्रकृति पुरुषका प्रयोजन सिद्ध करेगी हो। धर्म, अर्थ और काम

मह तिविध-पुरुवार्थ निरुष्ट वा मन्द पुरुवार्थ है। २ पुरुषकार, पौरुष, उद्यम, पराक्रम । ३ पुंस्त्व, शक्ति, सामर्थ्य, वल ।

कुरुवार्थी (सं॰ ति॰) १ पुरुवार्थं करनेवाला । २ उद्योगी । ३ परिश्रमी । 8 सामध्येवान्, वली ।

वुक्वाशिन् (सं॰ पु॰) वुक्वमश्चाति अश-णिनि । नर-मक्षक राक्षस, मृजुष्य खानेवाला राक्षस ।

पुरुषास्थिमालिन् (सं॰ पु॰) पुरुषाणामस्थीनि तेषां माला अस्त्यस्येति पुरुषास्थिमाला त्रीह्यादित्वात् इनि । शिव, महादेव ।

पुरुषेन्द्र (सं० पु०) पुरुषेषु इन्द्रः श्रेष्ठः । पुरुषश्रेष्ठ । पुरुषेषित (सं॰ ति॰) पुरुषक्तृ क प्रेरित ।

वुरुषेश्वर--- एक प्राचीन क्षतिय राजा। ये भैरवीदेवताके भक्त और भोमपें मुनिकुल-जात थे। (महादि ३४।१६) पुरुषोत्तम (सं० पु०) पुरुषेषु उत्तमः। १ विष्णु। २ जिनराज-विशेष। इसका पर्याय सोमभू है। ३ पुरुष-श्रेष्ठ। ४ घमंशास्त्रानुसार वह निष्पाप पुरुष जो शतु मित आदिसे सबदा उदासीन रहे।

५ उत्कळखण्डका एक देश, पुरो। यह पोठ स्थानों-.मेंसे एक है। यहांकी शक्ति भगवती विमला हैं।

नीलाचलका दूसरा नाम पुरुषोत्तम है। यह ओड्-देशमें रिषकुल्या और वैतरणी नामक दो नदियोंके बीच अवस्थित है। यहां खयं पुरुषोत्तम नारायण वास करते हैं, इसीसे इसका पुरुषोत्तम नाम पड़ा है। ६ मलमासका महीना, अधिक मास ।

पुरुषोत्तम-कर्णाट-राजवंशके एक राजा। ये इतिहास-प्रसिद्धं वैष्णव श्रीरूप गोखामीके पितामह मुकुन्दके वह भाई थे।

पुरुषोत्तम पुरीनगरंके अन्तर्गत श्रीक्षेत्रतोर्थ । यहांके जगनाथदेव भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। यहांके किस किस तीर्थमें कौन कौन किया करनी होती है, अधा-. विशति तत्त्वमें उसका प्रकृष्ट विवरण दिया गया है।

जगन्नाथ देखी।

पुरुषोत्तम--इस नामके अनेक संस्कृत प्रनथकार और पिडत हो गये हैं। १ छन्दोमञ्जरीके रचयिता गङ्गादासके पुत् । २ राधाविनोद्के प्रणेता रामञ्जन्द्रके वितामह

Vol. XIV. 30

और जनादेनके पिता। ३ कुएडकौमुदीके रचिता विभ्वनाथदेवके पिता। ४ विभ्वप्रकाशपद्धतिकार विश्व-नाथदेवके पिता। ५ अङ्गङ्कारशास्त्रप्रगेता कविचन्द्र। साहित्यद्रपेणमें इनका नाम आया है। ६ आविर्भाव, तिरोभाव, वादार्थ, प्रहस्तवाद, विम्वप्रतिविम्बवाद, सवृत्तिवाद आदि प्रन्थकार। ७ उत्सवप्रतानके रच-यिता। ८ गायतीकारिकाभाष्य वा गायत्राद्यर्थप्रकाश-कारिका-विवरण नामक प्रन्थकर्ता । ६ तत्त्वदीपप्रकाशा-वरणभङ्गके रचयिता। १० निरोधलक्षणटीकाके प्रणेता। ११ नृसिहतापनीयोपनिपत्-टीकाके रचयिता। १२ पण्डितकर भिन्दिपालप्रणयणकर्ता । १३ प्रस्थानरता-करके रचनाकार। १४ भगवज्रक्तिरत्नावलीके प्रणेता। १५ भागवतनिवन्धयोजना और भागवतपुराणसहूप-विषयक शङ्कानिराश नामक दो प्रन्थोंके प्रणेता। १६ मुक्तिचिन्तामणि और तद्दीकाके रचयिता। १७ वेदान्त-मालासङ्कलनकर्ता । १८ शङ्खचकथारणवादके प्रणयन-कर्ता । १६ संन्यासनिर्णयके सङ्ग्रस्टियता । २० सुभा-पित-मुक्तावली-प्रणेता । २१ एक प्रसिद्ध परिडत, पीता-म्यरके पुत और यहामाचार्यके शिष्य । इन्होंने खरचित अवतार-वादावली प्रन्थमें विद्वलेश्वरका उल्लेख किया है। एतद्भिन्न द्रव्यशुद्धि और दीपिका, नवरत्नटिप्पनी, प्तावलम्बनरीका, बल्लमाएकविवृतिप्रकाश, विद्यन्मण्डन-टीका, सुवर्णसूत, सिद्धान्तरहस्यविवरण, सिद्धान्त-वाङ्माला और सेवाफलस्तोलटीका नामक और कई ब्रन्थ इन्हींके वनाये हुए हैं। २२ एक विख्यात वैदा-न्तिक परिडत । इनकी उपाधि आश्रम है। ये छान्दो-ग्योपनियत्भाप्यके प्रणेता नित्यानन्दाश्रमके गुरु थे। २३ अध्यात्मकारिकायलीके रचयिता। २४ मकरन्द्टीकाके प्रणेता । २५ मुक्तिचिन्तामणिके सङ्क्लयिता। ये गज-पति श्रीपुरुपोत्तमदेव नामसे प्रसिद्ध थे। २६ सम्ब त्सर-निर्णयप्रतानके रचयिता। २७ अग्निष्टोमऋतुकः लिप्ति नामक प्रन्थकार। २८ माधवकी पुत्र, चन्नव्तके पीत और श्रीकण्ठदत्तके प्रपीत । इन्होंने द्रव्यगुण नामक एक वैद्यकप्रन्थकी रचना की है।

पुरुपोत्तमभाचार्य—१ वादिभूषणके प्रणेता । २ वेदान्त-रत्नमञ्जुषाके रचविता । ३ निम्बार्कसम्प्रदायभुक एक

साधु। ये विश्वाचार्यके शिष्य और विलासाचायके गुरु थे। 8 भक्त्युद्धवके प्रणेता। एक पण्डित, आप वेदान्तरत्नमञ्जुपा दशक्षोकटीका नामक एक प्रन्थ क्ता गरी हैं।

पुरुपोत्तमकवि चुन्देलखएडवासी यक कवि । ये १६५० ई०में विद्यमान थे । ये विशेष धर्मपरायण थे । इस कारण जनता गुरुकी तरह इनका आदर करती थी । पुरुपोत्तमक्षेत—उत्कलके अन्तर्गत जगन्नाथ-देवाधिष्ठित श्रीक्षेत्रभूमि ही पुरुपोत्तमतीथं वा क्षेत्र कहलाती है । जगन्नाथ शुन्दों विस्तृत दिव-ण देखो

पुरुपोत्तम-गजपति नारायणदेव—पर्लाकमेवड़ोके एक हिन्दू राजा।

पुरुपोत्तम गजपित श्रीवीरप्रकाश—दाक्षिणात्यके कोएड-विडू राज्यके अधीश्वर । इन्होंने १४६१से १४६६ हैं। तक राज्य किया । १४११ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि इन्होंने कोएडविड्, वासियोंको राज-करसे विमुक्त कर दिया था ।

पुरुपोत्तम विपाठी—एक कि सोमादित्यके पुत ।
पुरुपोत्तमदास—वैराग्यचिन्द्रकाके रचियता ।
पुरुपोत्तमदेवि—रैवतीहलाएड नाटकके रचियता ।
पुरुपोत्तमदेव—१ एक कि । पद्यावलीमें इनका उल्लेख हैं । २ गोपालार्चनिविधिके प्रणेता । ३ विक्यात वैयाकरण और आभिधानिक । अपने वनाये हुए हारावली प्रन्थमें उन्होंने लिखा हैं कि जनमेजय और धृष्टि-सिंह उनके समसामयिक थे । उप्मामेद, एकाझरकोप, कारकचक्र, जकारमेद, झापकसमुख्य, द्विकपकोष, द्वार्थकोम, परिभाषार्थमञ्जरी-विवरण, परिभाषावृत्ति, भाषावृत्ति, वर्णदंशना, शब्दमेदपकाशकोष, सकारमेद आदि प्रन्थ उन्होंके रचित हैं । ४ तीरभुक्तिके अधोधर । इनके पिताका नाम भैरव और माताका जावामहादेवी था । द्वैतनिर्णयके प्रणेता प्रसिद्ध वाचस्पित मिश्र इनके आश्रित थे ।

पुरुषोत्तम देव - उड़ीसाके एक राजा । ये छोग बंशपर-म्परासे जगक्षाथदेवके मन्दिरमें भाड़ दिवा करते थे, इस कारण काञ्चीपतिने इन्हें अपनी कन्या देना न चाहा। इस अपमानका बदला लेनेके लिये राजाने काञ्ची पर आक्रमण किया और वहांके अधिपतिको परास्त कर बलपूर्वक उनको कन्याको अपनी स्त्री वना लिया।

वु स्योत्तम परिडत-गोतप्रवरमञ्जरी और महाप्रवरमञ्जरी नामक प्रन्थोंके रचयिता।

पुरुषोत्तमपत्तन—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक नगर। यह वेजवाड़ासे १२ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

पुरुषोत्तमपाएडा-वाक्षिणात्यके पाएडावंशीय एक नरपति।

पुरुषोत्तम पौराणिक अहात्वपद्धतिके प्रणेता । इनके पिताका नाम वालमभट्ट था।

पुरुषोत्तमपुर—मन्द्राजप्रदेशके गञ्जाम जिलेका एक नगर।
यह शक्षा० १६ ३० से १६ ५२ उ० तथा देशा० ८४ ४३ से ८५ २ पूर्वके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६४ वर्गमील और जनसंख्या १०२३६६ है। इसके पूर्वमें कल्लोकोट राज्य तथा पश्चिममें गूमसुर तालुक है। यहांका तौगोड़का स्तम्म ही देखने लायक है। उस स्तम्ममें सम्नाट् अशोकके अनुशासन खोदे हुए हैं। इस स्तम्ममें सम्नाट् अशोकके अनुशासन खोदे हुए हैं। इल हावाद, धौली अथवा कटकके स्तम्मकी जैसी आकृति है, इसकी गठन भी वैसी ही है। स्तम्मके चारों ओर महीकी ऊची दीवार देखी जाती हैं। यहांके लोग इस प्राकारमण्डित स्थानको लाक्षादुर्ग कहा करते हैं। प्रवाद है, कि यह दुर्ग अमेद्य था और इसका उपरी भाग लाह की तरह चिकना था। इस कारण शखु वड़ी मुक्तिलसे इसमें प्रवेश कर सकते थे।

२ उक्त जिलेकी वंशधारा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित एक गएडप्राम । यहां दन्तधरपुरकोट नामका जो महोका दुर्ग है उसे लोग करवाधिपति राजा दन्तवक निर्मित बतलाते हैं । दुर्ग के भीतर अनेक शिवलिङ्ग और प्रस्तर खोदित एक श्रीमूर्त्ति है । स्थानवासियोंका कहना है, कि यही मूर्त्ति दुर्ग को अधिष्ठाली देवीकी प्रतिमूर्ति है । इसके अलावा यहां अनेक प्राचीन खर्ण मुद्रा भी पाई गई हैं।

पुरुषोत्तमप्रसाद उपाधि आचार्य, श्रीनिवासके शिष्य। अञ्चारमसुधातरिङ्गणी और श्रुत्यन्तसुरद्वम नामक दो प्रन्थ इन्होंके वनाये हुए हैं । २ निम्बार्कके शिष्य, मुकुन्द-महिम्नस्तवके प्रणेता ।

पुरुषोत्तमभट्ट—देवराजार्थके पुत्त, प्रयोग-पारिजातके प्रणेता ।
पुरुषोत्तम विद्यावागीश-भट्टाचार्य—एक संस्कृतम्
पिएडत । इन्होंने १७७२ ई॰में कोचविहारपित महनरनारायण देवके आदेशसे प्रयोगरत्नमाला नामक एक
स्थाकरणकी रचना की ।

पुरुषोत्तममहातमअ—साहित्वदीपिकाके रचयिता।
पुरुषोत्तम मनुसुधीन्द्र—किवतावतारके प्रणेता।
पुरुषोत्तममास (सं० पु०) मलमास, अधिक मास।
पुरुषोत्तममिश्र—१ उपाधि किवरत्न, रामचन्द्रोद्यके
प्रणेता। ये सङ्गीत-नारायणके प्रणेता नारायणदेवके गुरु थे।
२ उपाधि दोक्षित। मुखवोधदीपिकाके सङ्कल्लिता।
पुरुषोत्तम सरस्तती—श्रोपादके शिष्य और श्रीधर-सरस्तती
तथा मधुसूदनके छात थे। इन्होंने सिद्धान्ततत्त्वविन्दूसन्दीपन नामक श्रन्थकी रचना की।

पुरुषोत्तमानन्दतीर्थं शिवरामानन्दके शिष्य । इन्होंने विदान्तन्यायरत्नावली-ब्रह्माद्वैतामृत प्रकाशिका नामक ब्रह्मस्त्रक्री एक टीका रची है।

पुरुषोत्तमानन्द् यति—एक विख्यात पिएडत । ये सिद्धान्त-तत्त्वविन्दूटीकाके प्रणेता पूर्णानन्द सरस्वतीके गुरु और अबै तानन्द यतिके शिष्य थे।

पुरुष्टुत (सं॰ त्रि॰) वहु प्रदेशमें स्तुत, जिसकी प्रशंसा अनेक प्रदेशोंमें की गई हो।

पुरुष्य (सं० ति०) पुरुषाय हितं यत् । पुरुषहित । पुरुस्पृह (सं० ति०) वहुकर्त्तुक स्पृहणीय ।

पुरुह (सं॰ ति॰) पुरुं प्रचुरं हन्ति गच्छतीति पुरु-हन-ड । प्रचुर, बहुत, काफी।

पुरुद्ध (सं॰ ति॰) पुरुं प्रचुरं हन्ति गच्छतीति हन-गती बाहुलकात् डु । प्रचुर, बहुत ।

पुरुद्धत (सं० पु०) पुरु प्रचुरं द्वतमाह्वानं यञ्चेषु यस्य वा पुरु यथा स्यात् तया द्वयते यज्वभिरिति अथवा पुरुणि वद्वनि द्वतानि नामानि यस्य । १ इन्द्र । २ इन्द्रयव । (ति०) ३ प्रचुर नामविशिष्ट ।

पुरुद्वता (सं॰ स्त्री॰) भगवतीकी एक मूर्त्ति। पुत्रकर नामक पीठस्थानमें यह मूर्त्ति विराजित हैं। "विश्वे विश्वेश्वरी प्राहुः पुरुद्धताश्चं पुण्करे।" (देवीभाग० ७।३०।५६)

पुरुद्वति (सं॰ स्त्री॰) १ दाक्षायणी । (पु॰) पुरवी हतयो नामान्यनस्य । २ विष्णु ।

पुरुहोत (सं० पु०) अं शुनृपपुतमेद ।

पुरु-पुरु देखो ।

पुरुची (सं० ति०) गमनयुक्त।

पुरुद्ध (सं० पु०) पुरुन् पौरवनृपान् उद्वहित उद्द-वह-अच्। १ पौरववंशीय नृपश्रेष्ठ । २ द्वादश मन्वन्तरीय रुद्धसाविण मनुके एक पुतका नाम ।

पुरत स्व (सं पु) पुरु प्रज्ञुरं यथा स्यान् तथा रौति वा पुरौ पर्वते रौतोति पुरु-रु (पुरूरवाः। उण् श२३१) इति असि प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। सोमवंशीय बुध-के पुत और चन्द्रमाके पौत । पर्याय—वौध, ऐल, उर्वशी-रमण।

चेदसंहितामें पुरुत्वाको सूर्य और जयाके साथ झसाएडके मध्यवत्ती स्थानमें अवस्थित बतलाया है। श्राचेदके मतसे ये इलाके पुत्र और धार्मिक राजाके जैसे गण्य थे। फिर महाभारतके मतानुसार इला इनके पिता और माता दोनों ही थीं। इन्होंने माता इलासे ही प्रतिष्ठा-लाभ किया।

हरिवंशमें लिखा है, कि चन्द्रमाने वृहस्पति-पत्नी ताराको हर लिवा था। उस समय ताराके गर्भसे चन्द्रको एक पुत्र हुआ जिसका नाम बुध रखा गया। बुधका विवाह राजपुती इलाके साथ हुआ। इलाके गर्भसे बुधको पुकरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुकरवा अति विद्वान और नानाविध सव्युण-विभूपित थे। उर्वशीने ब्रह्मशापसे मर्त्यलोकमें जन्म लिया। एक दिन वह अपसरा राजा पुकरवाके निकट पहुंची और बोली 'यदि आप मेरी चार बातोंका पालन करें, तो में आपको वर सकर्ता हूं। में उर्वशी नामकी एक अपसरा हुं, ब्राह्मणके शापसे मर्त्यलोकमें उत्पन्न हुई हूं। मेरी चार बात यह है, कि में आपको कभी नंगा न देखूं, अकामा रहूं तो आप संयोग न करें, मेरे पर्लगके पास दो मेढ़े हमेशा बंधे रहें और आप एक सन्ध्या केवल घी पी कर रहें। अब तक आप उक्त जार बातोंका प्रतिपालन करेंग, तभी

तक मैं आपके पास रह गी। इसका उल्लुचन करनेसे ही मैं उसी समय आपको छोड़ खस्थानको चछी जाऊ गी। राजाने इन बातोंको मान कर विवाह किया और ६१ वर्ष तक सुखपूर्वक रहे। एक दिन गन्धर्व उर्वशीके शाप-मीचनके लिये दोनों मेढ़े छोड़ा कर ले चले। राजा नंगें उनकी ओर दौड़े। राजाको नर्गावस्थामें देखनेसे ही उर्वशीका शाप छुट गया और वह खर्गकी चली गईं। इस समय गन्धवाँनि भी मेढ़े छोड़ दिये। राजा उर्वशीकें वियोगसे नितान्त अधीर हो इधर उधर घूमने छगे। एक वार कुछ्क्षेत्रके अन्तर्गंत प्लक्ष तीर्थमें हेमवती पुकारिणी-के किनारे उन्हें उर्वशी पुनः दिखाई पड़ी। राजा देख कर वहुत विलाप करने लगे । इस पर उर्वशीने कहा, 'मुक्ते आपसे गर्भ है, एक वर्ष वाद अनेक पुत उत्पन्न होंगे जिन्हें छे कर आपके निकट आऊ'गी और केवल एक रात रहूंगी।' राजा कुछ सुस्थ हो कर संस्थानको चले गये। पीछे सर्ग में उर्वशिके गर्भेसे आयु, अमावसु विश्वायु, श्रुतायु, द्रद्रायु, वनायु और शतायु ये सार्त पुत हुए। उर्वशी इन पुर्तोको ले कर राजाके पास गई और वहां केवल एक रात ठहरी । गन्धवाँने राजाको अग्निपूर्ण एक स्थाली दी । राजाने उस अग्नि द्वारा अनेक यह किये। इन सब यहाँके फलसे उन्होंने गन्धर्वोंका सालोक्य प्राप्त किया था। प्रयाग नगरीमें उनकी राजधानी थी। जाहवीके किनारे प्रतिष्ठित होनेके कारण इसका नाम प्रतिष्ठानपुर पड़ा। (इरिव'ग २५-२६ अ० ।) अग्निपुराण और मत्स्यपुराण आदिमें पुरुरवाका विवरण आया है।

ऋग्वेदमें भी पुरूरवा राजाकी सुकृतिका लेख देखनेमें आता है।

२ विश्वदेव । ३ पार्च णश्राद्धमें देवतामेद । पुरुवसु (सं॰ पु॰) पुरु प्रचुर वसु धनं वस्य वेदे दीर्घः । बहुधन, अच्छी सम्पत्ति ।

पुरेथा (हिं पु॰) हलकी सूठ, परिहथा। पुरैन (हिं स्त्री॰) पुरहन देखी।

पुरोग (सं० ति०) पुरोऽत्रे गच्छतीर्ति पुरस्-गम-उ। अत्रगामी।

पुरोगत (सं० ति०) पुरस्-गम-का। जो पहले गया हो। पुरोगति (सं० पु०) पुरोऽप्रे गतिर्गमनं यस्य। १ कुम्कुर, कुत्ता। (ति०) २ अप्रग, व्यप्रगामी। पुरोगन्तृ (सं० ति०) पुरस्-गम-तृच् । पुरोगामी, अप्र-गामी ।

पुरोगम (सं॰ ति॰) पुरोऽप्रे गच्छतीति गम-अच्। अप्र-गामी।

पुरोगव (सं॰ ति॰) पुरोगन्ता, अप्रयामी ।

पुरोगा (सं॰ पु॰) पुरोगामी, अप्रगामी ।

पुरोगामिन् (सं० ति०) पुरोऽन्ने गच्छतीत गम-णिनि । अन्नगामी । पर्याय--पुरोग, अन्नेसर, त्रेष्ठ, अन्नतःसर, पुरःसर, पुरोगम, नासीर, न्ननसर ।

पुरोगुरु (सं॰ ति॰) अग्रभागमें गुरु, जिसका अगला हिस्सा भारी हो ।

पुरोग्नि (सं॰ पु॰) पुरोऽप्रे अङ्गति अङ्ग-नि निपातनात् साधुः। अव्रगम, अव्रगामी, प्रधान।

पुरोचन (सं० पु०) दुर्योधनके एक मिलका नाम । दुर्यो-धनने जतुगृहमें पाएडवोंको जलानेके लिये इसे नियो-जित किया था। वारणावत-नगरमें जतुगृह वनाया गया और पाएडवगण कुन्तीके साथ उसी नगरमें आये। पुरोचन इन लोगोंको भस करनेके समयकी प्रतीक्षा कर रहा था; किन्तु पाएडवोंने यह गुप्त भेद जान लिया। भीमसेन जतुगृहसे निकल कर पुरोचनके घरमें आग लगा कर माता और भाइयों समेत चलें गये थे। इघर पुरोचनने अग्नि-दग्ध हो प्राण-विसर्जन किये।

(भारत आदिवर्व १४५ अ०) जतुगृह देखो । पुरोजन्मन् (सं० वि०) पुरोऽम्रे जन्म यस्य । १ अव्रज भ्राता, वड़ा भाई । स्त्रियां वाहुलकात् टाव् । २ अव्रज-भगिनी, वड़ी वहन ।

पुराजव (सं वि) पुरोऽप्रतो जवी वेगी यस्य। १ अप्रवेगयुक्त, जिसके अप्रभागमें वेग हो, आगे वढ़ने-वाला। २ रक्षी, रक्षा करनेवाला। (पु) ३ पुष्कर-द्वीपके सात खएडोंमेंसे एक खएड।

पुरोज्योतिस् (सं । ति । अप्रगाभी ज्योतिर्विशिष्ट ।

पुरोटि (सं॰ पु॰) पुरोऽटतीति भट-इन् । १ पतमङ्कार, पत्तोका शब्द । २ पुरसंस्कार ।

पुरोडाश (सं 0 पु 0) पुर-आदी दाश्यते दीयते इति पुरस् दान्य-दाने किए निपातनात् दस्य छ । १ हविः । पुरोऽग्रे दास्यते दीयते दाश घन दस्य छ । २ हविर्मेद, यक्षीय-

द्रव्य, वह वस्तु जो यज्ञमें होम की जाय। ३ यवच्यानिर्मित रोटिकाविशेष, जीके आटेकी वनी रोटी। 8
पिष्टकचमसी, आटेकी चौंसी। ५ हुतशेष, वह हिन वा
पुरोडाश जो यज्ञसे वच रहे। ६ यज्ञमें शरीरावयव
यज्ञका अङ्ग। यव आदिके आटेकी वनी हुई टिकिया
जो कपालमें पकाई जाती थी। यह आकारमें लम्बाई
लिये गोल और वीचमें कुछ मोटी होती थी। यज्ञोंमें
इसमेंसे टुकड़ा काट कर देवताओंके लिये मन्त पढ़ कर
आहुति दी जाती थी। ७ पिष्टकमेद, एक प्रकारका
पीटा। ८ पुरोडाशसह चरितमन्त, वे मन्त जिनका
पाठ पुरोडाश वनाते समय किया जाता है।
६ सोमरस।

पुरोडाशिक (सं० ति•) पुरोडाशः पिष्टपिएडः, तत्सह-चिती प्रन्थो लक्षणया पुरोडाशः तस्य व्याख्यानं तत भवो वा प्रन् (गीरो-डाशात छन्। पा धाशाकः) तत्-व्याख्यानप्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें पुरोडाशसम्बन्धी व्याख्या हो।

पुरोडाशिन् (सं॰ ति॰) यहीय-पुरोडाश् सम्बन्धीय । पुरोडाशीय (सं॰ ति॰) पुरोडाशाय हितं छ । पुरोडाश्-हित, यवतण्डुलादि ।

पुरोडाश्य (सं० ति०) पुरोडाशाय हितमिति पुरोडाश्-यत्। पुरोडाशहित, हिवर्योग्य, हिवके लायक।

पुरोद्भव (सं० ति०) पुरे उद्भवति उद्ग-भू-अच्। नगर-भव, नगरमें उत्पन्न।

पुरोद्भवा (सं॰ स्त्री॰) पुरे उद्भवो यस्याः। महामेदा। पुरोद्यान (सं॰ क्ली॰) पुरे यदुद्यानं। पुरो-उद्यान, नगरका वर्गाचा।

पुरोध (सं॰ पु॰) पुरोहित।

पुरोधस् (सं॰ पु॰) पुरोऽग्रे दधाति मङ्गलमिति पुरस् धा असि (पुरक्षि व । उण् ४।२३०) सच डित् । पुरो-हित । पुरोहित देखो ।

पुरोधा (सं ॰ स्त्री •) पुरस् धा सम्पदादित्वात् भावे-किए। पौरोहित्य, पुरोहिताई।

पुरोधातृ (सं ॰ पु॰) पुरस्-धा-तृण्। पुरोहितनियोग-कारी, वह जो पौरोहित्य प्रदान करता हो। पुरोधानीय (सं ॰ पु॰) परोहित।

Vol XIV. 31

पुरोधिका (सं॰ स्त्री॰) अग्रपत्नी, प्रियतमा-सार्या, प्यारी स्त्री।

पुरोऽनुवाक्या (सं० स्त्री०) १ वह ऋचा जिसे पढ़ कर पुरोनुवाक्या नामकी आहुति दी जाती है। २ यज्ञीकी तीन प्रकारकी आहुतियोंमें एक।

पुरोभक्तका (सं० वि०) प्रातराश, जो पहले खाया जाय। पुरोभाग (सं० पु०) पुरस्-भज्-घज्। १ अप्रभाग, ंअगला हिस्सा। (वि०) २ अप्रभागयुक्त, अप्रभाग-चाला।

पुरोमागिन् (सं ० ति०) पुरः पूर्वमेव भजते इति
पुरस्-भज-णिनि । १ दोषमातदशीं, छिद्रान्वेषी, गुणींको
छोड़ कर केवल दोपोंको और ध्यान देनेवाला । (ति०)
२ अश्रांशी, अग्रभागयुक्त, अश्रभागवाला ।

पुरोभू (सं ॰ त्रि ॰) पुरस्-भू-किए । जो युद्धमें पहले शतु-को प्राप्त हो ।

पुरोमास्त (सं॰ पु॰) पूर्वोमास्तः । पूर्वशन्दादसि, पुर, आदेशः । पूर्वदिग्भव यायु, पूर्व ओरको हवा । पुरोयावन् (सं॰ ति॰) पुरोगत, पहले गया हुआ ।

पुरोयुष् (सं ० ति ०) पुरस् युध-किप्। सं ग्राममें अग्र-योद्धा, जो लड़ाईमें सक्से आगे रहे।

पुरोरंथ (सं ० ति ०) पुरोऽप्रे स्थो यस्य । अप्रतोरथ, आगेवाला स्थ ।

पुरोरवस (सं ॰ पु॰) पुरूरवस् पृथोदरादित्वात् साधुः। पुरुषक्षि ।

पुरोक्च् (सं ० ति०) पुरोऽप्रे रोचते ठच्-किप्। १ अप्रे-रोचमान। २ ऋग्भेद।

पुरोवर्त्तिन् (सं ॰ हि॰) पुरोग्ने वर्त्तते वृत-णिनि । सम्मुख-वर्त्तीं, सामने रहनेवाला ।

पुरोवस्र (सं॰ पु॰) पुरवस्र ।

पुरोवात (स'० पु०) पूर्ववर्ती वातः। पूर्ववर्ती वायु, पूरवकी हवा।

पुरावृत्त (सं ० ति०) अप्रवत्ती ।

पुरोहन् (सं ० ति०) पुरस् हन्-िक्षप्। पुरहन्ता, पुरहनन-

कारी । पुरोहविस् (सं ॰ पु॰) अप्रदेय हविः, पहले देने लायक पुरोबाश । पुरोहित (सं १ पु०.) पुरो द्वंप्टाद्वप्रफलेषु कर्मपु घोयते आरोज्यते यः, वा पुर आदावेव हितं मङ्गलं यस्मात्। २ शान्त्यादि कर्चा, ऋत्विक, श्राद्धयक्षादि कारियता, वह प्रधान याजक जो राजा या और किसी यजमानके यहां अगुआ वन कर यज्ञादि श्रौतकर्म, गृहकर्म और संस्कार यथा शान्ति आदिका अनुष्ठान करे कराय। पर्याय पुरोधाः, धमकर्मादिकारक। कविकल्पलतामें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"पुरोहितो हितो वेदस्मृतिकः सत्यवाक् शुन्तिः। ब्रह्मण्यो विमलाचारः प्रतिकर्त्तापदामृद्धः॥"

हितकारक, बेद और स्मृतिशास्त्रमें अभिन्न, सत्य-वादी, शुनि, ब्राह्मणका आचारसम्पन्न, निर्मेल आचार-युक्त, ऋजु और आपदके प्रतिकारकारी, ये सव गुणयुक्त ब्राह्मण पुरोहितके उपयुक्त हैं।

चाणक्यने पुरोहितका लक्षण इस प्रकार लिखा है— "वेदवेदाङ्गतस्वज्ञी जपहोमपरायणः।

आशीर्वाद्वचोयुक्त एष राजपुरोहितः॥" (चाणम्य) जो वेद और चेदाङ्गके तत्त्वाभिन्न तथा जपहोमादि परायण हैं, सर्वदा आशीर्वाद-वचनयुक्त हैं, वे राजपुरोहित अर्थात् पुरोहितश्रेष्ठ हैं ।

पुरोहितके निम्नलिखित दोय निन्दनीय हैं,—

"काणं व्यङ्गमपुतं वानभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।

त हस्तं व्याधितं वापि नृपः कुर्यात् पुरोहितम् ॥"

(कालिकापु॰)

काण, ध्यङ्ग, अङ्गहीन, अपुत्न, अनिमज्ञ, अजितेन्द्रिय, इस और पीड़ित इन सव गुणयुक्त व्यक्तियोंको राजा पुरोहिन न बनावें। शुक्क यज्ञवेंदमें लिखा है, व्यक्तियोंको राजा यज्ञादि कार्यमें जो प्रधान हैं, उन्हें पुरोहित कहते हैं। पुरोहितको चाहिये कि वे सुग्रह्मलासे यज्ञादि कार्य करें। 'गाच्ने जाग्रयाम पुरोहिता: स्वाहा"। (ज्ञवल यज् • ११२३) 'पुरोहिना: यागाज्ञष्ठाना दौपुरोगापिन: प्रधना;' (वेदग्रेप) अनिपुराणमें लिखा है—पुरोहित साम, अहक् और यज्ञः इन तीनोंमें तथा दण्डनोतिमें कुशल होवें।

"तयोञ्च दण्डनीत्याञ्च कुश्लः स्यात् पुरोहितः।" (अन्तिपु•)

पुरोहित सर्वदा वेद-विहित शान्ति और प्रोहिक

काय करें। महाभारतके भोष्मपर्वमें लिखा है, कि राजा धर्मार्थ पर्यालोचना करके अतिशीध एक वहुदशीँ पुरोहित नियुक्त करें। राजाओंके पुरोहित यदि धर्म-परायण और मन्त्रनिपुण तथा राजा धार्मिक होनें, तो प्रजाका सब तरहसे मङ्गल होता है। राजा और पुरो-हित दोनों ही देवता और पितरोंको परितृप्त तथा प्रजा-को परिवर्धित करते हैं। राजाओंके पुरोहित यदि उप-युक्त न रहे, तो प्रतिपदमें कप्र पाते हैं।

वैदिककालमें पुरोहित राज्यके विश्वासी और धार्मिक गिने जाते थे। किन्तु मनुके समय देवपूजक ब्राह्मण दूसरे उच ब्राह्मणकी अपेक्षा कुछ हीनपदस्थ हो गये। ऐसा होने पर पुरोहितका प्रभाव घटा नहीं। राजा जानते थे, कि उनके हाथसे देवगण पूजा ग्रहण न करेंगे। इस कारण वाध्य हो कर उन्हें गृहपुरोहित नियुक्त करना पड़ा था। यह पौरोहित्य ले कर ही विश्वामित और विशिष्ठमें विवाद चला। विश्व भिन्न और विश्व दे छो।

पूर्वकालमें पुरोहितको हैं। यागयज्ञादि सभी वैदिक कार्य करने होते थे, किन्तु आज कल पुरोहितको वैसे कठिन कार्य करने नहीं पड़ते । नित्य पूजा और पार्व-णादिमें आद तथा देवप्रतिमाकी पूजा करनेका भार पुरोहितके जपर सौंपा गया है। किन्तु प्रह्यज्ञ करनेके लिये तथा आचार्य और वैदिक यागादि करनेके लिये विभिन्न होता नियुक्त होते हैं। आजकल हम लोगोंके देशमें कई जगह नापित और पुरोहित ही विवाहका सम्बन्ध स्थिर करते हैं।

पूर्वकालके वही एक पुरोहित अभी तीन भागोंमें हो गये हैं।—

१, पुरोहित—ये लोग यजमान वना कर पूजा करते हैं। विशेष विशेष कर्मोंमें यजमानको मन्तकी आवृत्ति कराते हैं, उनके लिये शान्ति खस्त्ययन किया करते हैं। . . २, पुजारी—ये देवल ब्राह्मणके जैसा विख्यात हैं। किसी निर्दिष्ट देवालयमें ये लोग प्रतिष्ठित देवताकी पूजा किया करते हैं।

३, गुष-देवतास्थानीय-ये कानमें मत्त्र देते हैं। इसीसे अपर ब्राह्मणोंकी अपेक्षा इनका दरजा ऊपर है। इन तीन श्रेणीके पुरोधायोंमें जिनके केवल ब्राह्मण शिष्य हैं, हिन्दूसमाजमें उन्होंका सबसे वढ़ कर आदर है। जो ब्राह्मण और क्षतिय दोनों वर्णका पौरोहित्य करते हैं, वे भी सम्मानित हैं। पर हाँ याजकताके कारण पूर्व ब्राह्मणकी अपेक्षा कुछ हीन हैं। जो ब्राह्मण सत्शूद्रका पौरोहित्य करते, वे शूद्र्याजी ब्राह्मण कहलाते हैं। उच्च श्रेणीके ब्राह्मणसे ये वहुत निकृष्ट समक्ते जाते हैं। किन्तु जो ब्राह्मण नीच शूट्रोंकी याजकता करते, वे वर्णब्राह्मण हैं। पूर्वीक तीन श्रेणीके ब्राह्मण वर्ण ब्राह्मणके हाथका जल नहीं ब्रह्मण करते। ये छोग पतित समक्ते जाते हैं।

जैनदेवालयमें भी ब्राह्मण पुरोहित देखे जाते हैं। वालिद्योपमें हिन्दुओं के मध्य पुरोहितका महासम्मान है। वहां राजाधिराजसे ले कर दीनदरीद सभी पुरोहितको देवतुल्य मानते हैं।

(ति॰) २ अप्रधारित, जो पहले पकड़ा गया हो।
पुरोहिताई (हिं॰ स्त्री॰) पुरोहितका काम।
पुरोहितानी (हिं॰ स्त्री॰) पुरोहितकी स्त्री।
पुरोहिति (सं॰ स्त्री॰) पुरोहितको स्त्री।
पुरोहितिका (सं॰ स्त्री॰) पुरोहितस्य पत्नी जीव पुरोहिती ततः स्वार्थे-क अनुकम्पायां कन् वा। १ अनुकम्पित पुरोहितपत्नी। शिवादिभ्यो अपत्ये अण् पौराहितिक। २ पुरोहितका अपत्य, पुरोहितकी सन्तान।
पुर्जल (हिं॰ पु॰) एक यन्त्र जिस पर कलावस्त्र लपेद्रा जाता है।

पुर्जा (हिं पु) पुर न हे लो ।
पुर्च गाल — यूरोप महादेशके अन्तर्गतं एक राज्य । यह
अटलाएटक महासागरके किनारे अवस्थित है । इसके
अत्तरमें रूपेन देशके अन्तर्भु क गालेसिया प्रदेश, पूर्वमें
स्पेन-सीमान्तवत्तीं लीवन, इसटर, महुरा और सेमिसप्रदेश, तथा दक्षिण और पश्चिममें अटलाएटक महासागर है । इसका भूपरिमाण प्रायः ३४२५४ वगमील
और जनसंख्या प्रचास लाखसे ऊपर है ।

स्पेन और पुत्तैगाल दो स्वतन्त राज्य गिने जाने पर भी यथार्थमें इन दोनों के मध्य स्वभावरक्षित कोई विभाग नहीं है। इस राज्यमें प्रवाहित मिनहो, दुरो, टेगस्, गोआदियाना आदि नदियां स्पेनदेशसे निकल कर अस्- लाण्टिक सागरमें गिरी हैं तथा मण्डेगो, जिजिरे और हदो नामक तीन निद्यां पुत्तिगाल राज्यके मध्य उत्पन्न और प्रवाहित हैं।

पुर्त्तगालको उपकूल-भूमिको लम्बाई प्रायः ५०० मीछ हैं जिनमेंसे पश्चिम कूछ ४०० मील और दक्षिण १०० मील है। दक्षिण-पश्चिमकुल पर सेएट-भिन्सेएट और पूर्वदक्षिण पर सेल्टमेरिया अन्तरीप वर्त्तमान है। पश्चिम-कूलस्य स्थानकी भूमि पर्वताकीर्ण और पूर्वभागमें सम-तलक्षेत्र विद्यमान है। सेएर-भिन्सेएरसे सिराडि-मिन्नक नामक पर्वतश्रेणीकी शाखा क्रमशः उत्तरकी ओर सेतुवल हुद तक चली गई है और फिर वहां वह समक्षेत्रमें परि-णत हुई है। उपक्ल भूमिके इस प्रकार पर्वतवेष्टित रहनेके कारण यह हृद्, उच्च और शतुकर्तृक दुर्मेंच-सो मालूम पड़ती है। इस हदके उत्तर-पश्चिम भागमें सदा-डिएराविडा नामक अन्तरीप दिखाई देता है। इसकी शेष सीमा पर एम्पिचेल नामक एक और अन्तरीप है। इसके वाद टेगस नदीके मुहाने तकका भूभाग प्रायः सम-तल है। परन्तु उक्त नदीके दूसरे किनारे लिसवन नगर-के उत्तर और पश्चिममें सिएदोमाफ्रा, टोरिस, मेड़िस आदि गिरिश्रेणी इतस्ततः चिक्षित्त हैं। इन सब पर्वतीं-को शेव सीमा पुत्तैगाळके सर्वपश्चिम सीमान्त पर कारो-डि- रोका नामक गिरिश्ङ्गमें आ मिली है। टेगस नदी और समुद्रतीरके मध्यवत्ती पर्वतीके वीच वीचमें उपत्यका भूमि विराजमान देखी जाती है। उत्तराभिमुखी पर्वतराजको अन्तःसीमा पर पेनिक नामक प्रायोद्घोप है। यहांसे ले कर मण्डे गो नदीमुख तकका स्थान ऊंचा और नीचा है। मण्डेगोनदीके उसरसे हे कर मण्डेगो अन्तरीप तक सिरा-डि अलकोवा नामक पर्वत शोभा देता है। यहांसे डुरो नामक नदीतीर पर्यम्तकी भूमि वालुकामय, समतल और जलादिसे परिपूर्ण है। इसके वाद मिनहो नदी तककी भूमि ऊंची और पर्वतमय है। इन सव कारणों से पुर्तगालको उपकूल-भूमि इतनी विपद जनक है, कि एक छोटी बोट छे कर इसके बन्दरादिमें वहुत मुश्किलसे प्रवेश किया जा सकता है। शीतकालमें ज्ञव दक्षिणवायु कहती है, तब समुद्रका किनारा अपेक्षा-कृत भयावह देखा जाता है। इस समय वन्दरमें प्रवेश-

कारी नौकायातीके प्राण सर्वदा संशयापश्च रहते हैं।
सच पृछिषे, तो पुर्चगाल राज्यमें समतलक्षेत बहुत
कम है। उत्तर प्रदेशों में पिरिनिज-पर्वतश्रेणोकी शाखा
प्रशाखा फैली हुई हैं और दक्षिणकी ओर विस्तृत पर्वतश्रेणी स्पेनराज्यके सिरा-मोरेना (Sierra morena)
नामक पर्वतकी शाखामाल है। समप्र पुचगालराज्यमें
केवल दो वड़े वड़े समतलक्षेत देखे जाते हैं, पहला
आलमटेजो प्रदेशमें और वूसरा आलेमटेजो तथा इहरमनुराप्रदेशके मध्य अवस्थित है। बेहराप्रदेशमें भी
पक्ष और छोटी समतल भूमि है जो भौगानदीके मुहानेसे ले कर देशाम्यन्तर तक विस्तृत है। अनेक एवंत
रहनेके कारण यहां उपत्यकाकी संख्या भी अनेक है।

जिस स्थान हो कर मण्डेगी नदी बहती, बही उपत्यका

सवसे वृहत, सुरम्य और शस्यश्यामल है।

साधारण जलवायु उण्ण होने पर भी मध्यस्य नकी
तरह यहां कभी भी जलाभाव वा उष्णाधिक्य लक्षित
नहीं होता। समुद्रतीर पर्वतमालासे परिवेष्टित रहनेके कारण कभी कभी जलवायुक प्रभावका वैलक्षण्य हो
जाया करता है। उत्तरांशवत्तीं पावतीय जिलों में शीतके
समय अधिक शीत और तुयारपात होता है, किन्तु रक्षिणमें शीत क्षणस्थायी है और तुयारपात विलक्तल होता हो
नहीं। गर्भीके समय यहां इतनी गर्भी पड़ती है कि
शीतप्रधान देशवासियों को यहांका रहना कष्टकर माल्म
पड़ता है। अप्रिलसे ले कर अक वर मास तक राज्यके
पश्चिम काफी वृष्टि होती है। यहांकी उन्नमूमि स्वास्थ्यकर है, किन्तु निम्त अथवा लवणाक स्थान उतना
स्वास्थ्यद नहीं है।

यहांकी जमीन उर्वरा तो खूब है पर छोग खेतीकी ओर उतना ध्यान नहीं देते । गेहं, जी, चना, पाट, पटसन ऊंची जमीनमें और पंकी जमीनमें धानकी अच्छी फसल लगती है। कमलानीव, नीव, इमर और वदाम प्रध्य तथा दक्षिणप्रदेशमें उत्पन्न होता है। अंगुरकी खेती ही पुर्तगोजको प्रधान उपजीविका और परिश्रम-जात दृष्य है। दुरो नदीके उत्तर अंगुरका जो लम्बा चौड़ा गोला है, वहांसे अंगुरके निर्याससे एक प्रकारका उत्कृष्ट मद्य प्रस्तुत होता है। आपरटो (Oparto) नगरसे

इस मद्यकी विभिन्न देशों में रक्षनी होती है। इस सुरस और स्वास्थ्यकर मद्यकी वहांके लोग 'पोर्ट' कहते हैं। यहां जैत्न फलकी खेती तो होती है, पर उसका तेल उतना उमदा नहीं होता। स्थल पर नाना प्रकारके जीव जन्तु और जलमें तरह तरहकी मछलियां देखी जाती हैं। खनिज पदार्थोंमें श्लेट, मार्चल पत्थर, लोहा और कोयला पाया जाता है। समुद्रतीरवर्त्ती लवणाक दलदलको सुक्षा कर प्रचुर लवण तैयार करते हैं।

उत्तरांश और पार्वतीय जिलेके लोग उद्यमशील और कर्मठ होते हैं। किन्तु निम्नांशके अधिवासिवृन्द अपेक्षालत आलसी, मन्मनोरथ हैं तथा वेशभूषामें अपिकार रहते हैं। शिक्षित व्यक्तियोंका व्यवहार नम्न और शिष्टाचारसम्पन्न है। विदेशियोंका ये लोग खूव आदर करते हैं। मद्यमस्तुत और मद्यविक्रय इनका प्रधान व्यवसाय है। स्वदेशजात नाना प्रकारके द्रव्य और दक्षिणप्रदेशस्थ काग (Cork) का वाणिन्य इन्हीं द्वारा परिचालित होता है। कोई कोई पश्मीने और रेशमीवस्त्र, स्तीकपड़े, स्थम लिनेन और जहरतादिका कार्य तथा व्यवसाय करते हैं। लीह, काष्ट्र और मुसकानिर्मित नाना प्रकारके शिल्पकार्य भी देखे जाते हैं।

पुरीगालकी माना और िवाशिका।

पूर्वकालमें पुर्तगालवासिगण विशेष विद्यानुरागी नहीं थे। किन्तु उनकी जातीय भाषाकी उन्नित और जातीयताका गौरव खदेशीय इतिहासमें साफ अक्षरोंमें बोषित हुआ है। अरवजाति (Moors)से खदेश उद्धार और जातीय खाधीनताकी परिपुष्टि एक माल 'द्र वादुर' आक्याधारी पुर्तगीज कवियोंकी वीरत्वस्चक भाषामें लिखित काव्यादिसे हुई थी। जातीय एकताको पुर्तगीज इद्यने अधिकार किया, साथ साथ प्रकृति सती शान्तिमयी मूर्ति धारण करके पुर्तगालवक्षमें विराज करने लगी। एकताबद्ध पुर्तगीजजाति काव्यमीद विसर्जन करने शास्त्रवलसे जातीय गौरव वृद्धि करनेके लिये अपसर हुए। इस युगमें जैसी भाषामें पुर्तगीजगण पद्य लिखते थे, वह यूरोप जगत्में 'वीरभाषा' वा R mencelanguage कहलाती थी। वीरभाषाके वाद ही पुर्तगाल-

में वीरयुगकी उत्पत्ति हुई। इस समय भारूको-डि-गामा (va-co-de-gama) और आफन्सो-डि-आलवुक (Affonso-de-Albuquerque) आदि सदेशहितेपी वीरचेता पुरुषींने जन्म है कर जातीय गौरवकी रक्षा की थी। इनके वाहु और बुद्धिवलसे पुर्तगीजींकी राज्यवृद्धि-की वलवती पिपासा बहुत कुछ शान्त हो गई थी। १६वीं शताब्दोको इनके समसामयिक कालमें (१४६५-१५५८ इं॰में) कामिन्स (Camaens) और मिरान्दा (Franci-co sade Miranda) नामक दो पंडितोंने भाषाकी पौराणिकता वर्जन कर उसमें श्रीक, इटाली, स्पेन आदि देशोंकी विज्ञभाषा (Classical School) के अनुकरण पर वुर्त्तगीज भाषाकी गउन की । पूर्वतन भाषा विशेषहर्प-से परिमार्जित और जूतन वर्णमें रिज्जत हो कर अपेक्षाकृत उउज्वल और सुललित हो उठी। कामिन्सका जातीय-सङ्गीत (National enics) पुर्त्तगीजके हृद्यमें सुधा-भाराकी वर्षा कर देता था। इसी समय जब पुर्त्तगालमें स्पेन-आधिपत्यका विस्तार हुआ, तव पुर्त्तगीज-जीवन विलक्कल निरुद्यम हो गया। वर्त्तमानकालमें भिन्न देशीय भिन्न भिन्न प्रन्थके निरन्तर अनुकरण पर उस देशके सार्व-को स्वदेशीय प्रन्थमें सिश्ववेश करनेके कारण पुर्त्तगीज साहित्यसे नृतन युग (New native School)-की सृष्टि हुई और इसीकी सहायता से क्या पद्य क्या ऐति-हासिक गवेपणा, सभी और भाषाको प्रभृत पुष्टि देखी जाती है।

१८४४ ई०में जव पुर्तगालने शिक्षाकी उन्मत्तिके लिये नृतन आईन लिपिवद किया, उस समय पुर्तगालमें शिक्षित लोगोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी। इस आईनमें लिखा था, कि प्रामसे एक मीलके अन्दर जहां विद्यालय रहेगा, वहां ७से १५ वर्षके बालक और बालिकाको पढ़नेके लिये जाना पड़ेगा। जो माता पिता इस आईनका उल्लङ्घन करके अपनी सन्तानको पढ़ने न मेजेंगे, उन्हें राजाकी ओरसे दएड मिलेगा। ऐसा दृढ़ आईन जारी रहने पर भी देखा गया कि १८६२ ई०में सारे पुर्तगालमें सैकड़े पीछे ८२ मनुष्य लिखना वा पढ़ना नहीं जानते थे। पीछे घीरे घीरे पुर्तगालमें विद्याका खूब प्रचार हुआ १८७६ ई०में यहां प्रायः ३५१० विद्यालय और १६८१३१ विद्याधींकी संख्या पाई गई।

· साहित्य छोड़ कर अन्यान्य विषयोंमें शिक्षा देनेके लिये। १७ जिलोंमें विधोन्नत्तिविधायिनी सभाए (Lycess) संगठित हुई। जब कोई व्यक्ति किसी विभिन्न विषयका अध्ययन करनेकी इच्छा प्रकट करते थे, तब इस सभाकी अनुमति ले कर वे कोहम्बाके विश्वविद्यालयमें अथवा किसी विशेष शिल्पविद्यालयादिमें (The special solvool) शिव्प कृषि आदि सीख सकते थे। उक्त विशेष विद्यालयका शिक्षाकार्य सुयोग्य परिडतमएडलो द्वारा सचारु पसे निर्वाहित होता था। इस श्रेणीके विद्यालयके मध्य अपर्धे और लिसवन नगरका Polytechnic school, Polytechnic Academy, the medical school and Industrial Institutes और लिसवन नगरका The Institute general of Agriculture, The Royal and marine observatories, the Academy of fine Arts बही सब प्रधान हैं। राजानुप्रह से रक्षित और राजव्ययसे परिचालित लिस-वन्, पसोरा, भिलारियल, ब्रागा और अपर्टोका साधारण पुस्तकागार विशेष मूल्यवान् है। टोरे-डेल-टोम्बो नामक स्थानका महाफेजखाना (Archives) यहां उल्लेख बोग्य है। टोम्बर पुस्तकागारमें प्राचीन प्राचीन कागज प्रतादि (Becords) व्यतीत, पुरातन इस्तिलिखित पुस्तकोंकी आलोचनाके लिये और राजकीय कूटनीतिका सम्यक् विचारके लिये एक और विद्यामन्दिर सभी स्थापित हुआ है।

पुर्ततालका शामिल्य ।

वाणिज्यादिके विस्तारके लिये १८८४ ई भीं यहां १२८५ मील रेल-पथ, ५० मील द्रामपथ, और २६०० मील टेलिग्राफ-तार नाना स्थानोंमें संयोजित हुआ है। उक्त रेलपथकी सहायतासे लिसवन, मालेन्स्या-डि-अल्काण्द्रा, तालाग्रा, माद्रिद, अपर्टी, दुया, नाइन, ब्रागा, फेरो, अलगार्भ (Algarves), पलवास, वेडेजस, सेनिल, केडिज, मलागा, वेहरा, फिग्रुइराडाफोज, फर्मोजा, केलोरिको, गोवार्डा, आदि स्थानोंमें साने जानेका अच्छा प्रवन्ध कर दिया गया है। लिसवन नगरसे लेकर समुद्रगर्भ होते हुप सुदूर अमेरिका उपनिवेशमें राइओ-

साधारणंतः इङ्गलैएड और तद्धिकृत राज्यसमूह,
यूनाइटेड च्टेट, फान्स और स्पेन राज्यके साथ पुर्त्तगीजवाणिज्य-व्यापार करते हैं । जीवित जन्तु, जन्तुजात
द्रव्यादि, मत्स्य, रेशम, पशम, केश, र्व्ह, पटसन, चकोरकाष्ट्र, गेहूं, जी, मैदा आदि नाना प्रकारकी शाकसब्जी
उपनिवेशजात नाना द्रव्य, धातु और अन्यान्य जनिजपदार्थ, मद्य, कांच और तरह तरहके मद्दीके वरतन,
कागज, कलम इत्यादि तथा खदेशवासीके परिश्रमसे
उत्पन्न नाना जातीय द्रव्योंकी यहांसे रक्षनी और आमदनी होती है।

पुर्रागालकी शासनप्रणाली।

पुर्त्तगाल-राज्यमें एक वंशानुक्रमिक राजा रहने पर भी राज्यमें पूर्ण क्षमता विस्तार करनेका अधिकार उन्हें नहीं है। १८२६, १८५२ और १८७८ ई०में प्रदत्त राज-सनद (Uharter)-के अनुसार खयं राजा केवल दो समा (chambers)-के मतानुसार कार्य और राज्य-शासनादिके परिचालन और राज्यसंक्रान्त नियमादि (Laws,-के संगठन करनेमें वाध्य हैं। शासनसम्प-कींय किसी कार्यकी उन्नति अथवा किसीको मन्त्री चा 'पियर' (Peer)-के पद पर अधिष्ठित करनेमें मन्त्रि-समा (Council of State)-से सलाह लेनी पड़ती है।

राजाके निर्वाचनके लिपे सुविक पण्डितमण्डली, प्रत्थकार और विशिष्ट धनीव्यक्ति द्वारा यहांकी 'हाउस-आव पियर' नामक सभा गठित है। इस सभामें कुल १५० सभ्य हैं। अलावा इसके 'हाउस-आव डेपुटीज' नामक एक और सभा है। नगरवासी २५ वपके युवकको ही सभ्यनिर्वाचनको क्षमता है। पतद्वतीत विश्वविद्यालयके उपाधिधारी, पुरोहित, राजकर्मचारी और विद्यालयके शिक्षकमालको ही उक्त निर्वाचनमें भोट देनेका अधिकार है। राजा अपने खर्च वर्षके लिये राजस्वस्व से १८८००० पौण्ड सुद्रा पाते हैं।

पहलेकी अपेक्षा अभी पुर्तगालकी सैन्यसंख्या अधिक है। १८८४ ई०के नूतन आदेशानुसार प्रत्येक सेना-को ५२ वर्ष तक काम करना होता है। पदातिक, अश्वा-रोही और कामानवाही सेना छोड़ कर नीवलकी वृद्धि-के लिये ३० कलवाले जहान और १४ वायुगामी पाल- के जहाज हैं। सभी जहाज आवश्यकतानुसार कामान-सिजात है। पुर्त्तगोजराजके पास स्थलपथमें युद्धार्थ-रिक्षत सेना प्रायः १ लाख २० हजार और नीयुद्ध-परि चालनके लिये २८३ सेनापित और ३२३५ नाविक हैं।

पुर्त्तगालराज महामति जोहन (John the great) के पुत नाविक चूड़ामणि हेनरिक (Dom Henric the Navigator)-ने विशेष उद्यमसे नौपधर्मे गमन और हेशदेशान्तर वाणिज्य स्थापनके लिये आत्मजीवन उत्सर्ग कर दिया। इन महापुरुषने पूर्वकी ओर भारतवर्ष आनेकी आशासे जीवनके शेष दिन तक (१३६४-१३६० ईं भें) जलपथकी पर्यालीचना और ज्योतिष्कमण्डलके अवस्थितिनिरूपणकी शिक्षा की थी। उन्हींकी चेष्टाके फलसे उत्तमाशा अन्तरीपको वेष्टन कर भारत आगमन-का पथ सभ्यजगत्में प्रकाशित हुआ। यह पथ आवि-कृत हो जानेसे सभ्य यूरोपखएडमें भारतने वाणिज्यकी भाशा मुकुलित हुई थी। उनके इस उपकारके लिये समप्र यूरोपवासी एक समय पुर्तगोज जातिके ऊपर विशेश कृतज्ञ थे। १४४४ ई०की ४थी मईकी पुर्त्तगीजींने पोपसे पूर्व-आविष्कृत और भविष्यमें जो आविष्कृत होगा उन सव देशींके अधिकार और शासनकार्य-निर्वाहके लिये एक अनुज्ञापत पाया। कलम्बंस कर्त्त अमेरिका आविष्कृत होनेके ठीक बाद ही १४६३ ई०में पुर्तेगीज अधिकारका अभ्रण्ण रखनेके लिये पोपने एक और शासन लिख दिया। उक्त शासनके वलसे १४६७ ई०की ८वीं जुलाईको भास्को-डि-गामा नामक एक पुर्त्तगीज राजा मानुएलके आदेशसे सुसजित जहाजादिको साथ छै भारत जयके उद्देशसे वाहर निकले। १५०० शताब्दीमें केव्रल दूसरा दल ले कर देशजयको आकांक्षा पूर्ण करनेके लिये समुद्रपथमें अप्रसर हुए। चलते समय उन्हें हुकुम मिला था. कि देशभ्रमणके साथ साथ धर्मविषय पर वक्तृता दे कर भिन्न देशीय व्यक्तियोंकी खधममें दीक्षा देवें । विनामा उत्तमाशा अन्तरीपको पार कर १४६७ ई०को २२वीं नवम्बरको आफ्रिकाके पूर्व उपकूछमें पहुंचे और दूसरे वर्ष २२वीं मईको भारतके कालिकट नगरमें पंचारे। -उभर अद्भृष्ट दोषसे केंब्रल प्रतिकृत तुफानमें पत्न कर दक्षिण-अमेरिकाके ब्रेजिल राज्यके उपकूल चले गये और पीछे वहांसे पुनः लीट कर कालिकट पहुंचे। १५वीं शताब्दीके शेष भागसे पुर्तगीजोंने अफ्रिकाके पूर्व और पिश्चम उपकूलवर्त्ती स्थानोंको और उत्तमाशा अन्तरीपसे ले कर पिश्याके दक्षिण भागमें जापान पर्यन्त समुद्रके निकटवर्त्ती स्थानोंको तथा भारतीय-द्रोपपुञ्जके अधिकांशको अधिकार कर लिया। १५००से १६१० ई०के मध्य उन्होंने पूर्वसमुद्रस्थित स्थानोंके ऊपर प्रभुता फैला कर वहांका वाणिज्य हथिया लिया। दक्षिण-अमेरिकाका विस्तीण राजत्व छोड़ देने पर भी उन्होंने भिन्न समयमें भारत-महासागरस्थ जिन सव स्थानों पर अधिकार जमाया था, संक्षेपमें उसका परिचय नीचे देते हैं—

आफ्रिका-राज्यके पूच और पश्चिम उपक्रूलमें— मेलिन्द, कुतलोचा, सोफाला, मोजाम्बिक, मोम्बाशा (१६१५ ई॰में अधिकारच्युत हुआ), एङ्गोला, ओसा-मेडिस्, प्रिन्सेप द्वीप, सेल्टजेमसेस् द्वीप, पसुडा, सेनि-गाम्बिया, विसाव, केपभाई-द्वीपपुज, आजोर्स और मिदरा आदि स्थान।

अरवमें—आदेन और मस्कट (१६४८ ई॰में अरवोंने पुर्त्तगीजोंको मस्कटसे मार भगाया)

पारस्यमें - वसोरा और अर्मज नगर।

भारतवर्षमें—सिन्धुनदके तीरवत्तीं देवल वा देउल और डह ; मलवार उपक्लमें डिउ, दमन, पसेरम, दन्न, सेएटगेनिस ; आगासियम, चाबुल वा चेउल, देवल, वेसीन (Bassien), शालसेट वा गाढ़ापुरी, महिम, वम्बई, टक्ना (थाना), करञ्ज, गोआ, हनोर, वासिलर, मङ्गलूर, कालिकट, क्रङ्गनूर, कोचिन, कुइलन, करमण्डल-उपक्लमें नागपत्तन, माइलापुर, सेएट थोम, मछलीपत्तन वन्दर आदि स्थान और वङ्गोपसागरतीरवर्त्तीं वङ्गालके कुछ स्थान, आराकान और चट्टप्राम जिलेमें पुर्सगीजोंने अपना आधिपत्य फैलाया था।

पुर्शगीज शब्दों निस्तृत निवरण देखी। सिंहलद्वीपमें मन्नार, पैएट-डि-गल, कलम्बी, जाफना-पत्तन और मलकाद्वीपपुत्र आदि स्थानोंने अधीनता सोकार की थी। सलावा इसके पेगू, मर्त्तवान, जकु- सिलोन आदि स्थानों में इन्होंने वाणिज्यके लिये कोठी खोली थी। चीनसाम्राज्यके अन्तर्भुक्त मेकाव और फर्मोजा नामक द्रोप भी एक समय पुर्नगीजोंके अधिकारमें था। अभी पुर्नगालवासीका वैसा वीरत्व परिचय नहीं पाया जाता। उनका पूर्वका-सा उद्यम और वाणिज्यतृष्णा जाती रही। अभी वे विलक्कल निरुद्यमी और उत्साहहीन हो गये हैं।

वत्तमान कालमें पुर्त्तगीजगण आफ्रिकाके पूर्व उपक्रूल-वर्त्ती डेलगेडो अन्तरीप तकके स्थानका भोग कर रहे हैं। भारतमें गोआ, दमन और डिउ तथा सुदूरतीर-समुद्रमें एकमात मेकाव पुर्त्तगीजोंके अधीन है। १५५७ ई०में उन्होंने मेकाव पर अधिकार किया और १८४८ ई०-में वै वहांके अधिपतिको वार्षिक ५०० सी तएल (Tael) मुद्रा खजाना देनेको बाध्य हुए। ऊपरमें लिखा जा चुका है, कि नाविकश्रेष्ठ हेनरिकका पदानुसरण करके ही पुर्त्तगीजोंने भारतवर्षमें प्रवेश किया था। पुर्त्तगालराज पिट्रो-डि-कोविलहन और २य जोहनके आदेशसे वाणिज्यप्रसार-पूर्वसमुद्रमें आफन्सी-डि-पायमा वृद्धिकी आशासे खदेशसे १४८७ ई०में वाहर निकले। दोनों जब नेपलस, रोडस, आलेकसन्द्रिया, कायरोसे थर पर्यन्त आये, तव यहां छोहितसागरके किनारे उन्होंने सुना कि आदेनसे कालिकट नगरमें वाणिज्य जोरोंसे चल रहा है। तदनुसार वे आदेनकी ओर अग्रसर हुए और वहां-से पायमा आविसिनिया देशमें तथा कोविलहन अरव-देशीय अर्गवपीत पर चढ़ कर कन्ननूर उतरे। यहांसे कालिकट और गोआनगर परिदशन करके वे पुनः आफ्रिकाको चल दिये। पुर्तगीज ब्रजातिमें भारत आग-मनके लिये कोविलहन साहव ही सर्वप्रथम थे। इसके वाद १६वीं शताब्दीमें पुर्त्तगीजोंने वङ्गालके कुछ स्थानी पर अधिकार जमाया था। सातगाँव (सप्तत्राम) और चटुगांव (चट्टग्राम) नामक दो बङ्गालके प्राचीन बन्दरींका पुत्तेगीज Porto Piquen and Porto Grande (the Little Haven and the great Haven) नाम रखा था । पुर्तगीजोंके भारत और बङ्गालमें आगमन और नाना स्थानोंमें वस्युवृत्ति तथा भीषण अत्याचारकी कथा 'पुर्तगोज' शब्दमें विशेषरूपसे विवृत हुई है। पुर्तगीज देखी।

पुरीगालका इतिहास ।

समग्र पुर्रुगालका प्राचीन इतिहास नहीं है। इसका प्राचीन इतिहास स्पेनदेशके साथ मिला हुआ है। हिरो-दोतसने स्पेन और पुर्त्तगाल इन दो देशोंको एकत 'आइ-विरिया' नामसे और रांमक लोग 'हिम्पानिया' नामसे उल्लेख किया है। स्पेन शहरते विस्तृतत विवरण देखी। १०६४ ई०में वर्गाएडीके काउएट हेनरीने यह प्रदेश (Terra Portucalensis or the country of Porto cale) उपहारसहूप पाया था। तभोसे पुत्तैगालदेशवासी पुर्त्तगीजोंका प्राचीन इतिहास चलता है। आइविरिया-वासी पुर्त्तगालमें फिनिकीय जातिका उपनिवेश था। इस प्रायोद्वीपके पूर्वतन अधिवासिगण आइविरीव और केल्ट-जातीय थे। जिस समय भूमध्यसागरके उपक्छवर्ती देश कार्थिजिनियोंके उपद्रवसे तंग तंग थे, उसी समय कार्शिजिनीय-सर्दार हमिलकरने इस राज्य पर आक्रमण कर अधिकार जमाया। अनन्तर रोमक जातिने इस प्रदेशको जीत कर अपनी शासनक्षमता फैलाई थी। रोमकके अधिकारमें इस राज्यका कुछ अंश लुसितानिया नामसे प्रसिद्ध था।

पीछे भाग्डाल, पलान और मिसिगथ जातिने ऋमशः पुर्तगालको आक्रमण किया और लूटा। सबसे पीछे ८वीं शताब्दीमें अरववासी मुसलमानींने इस राज्य पर अधिकार जमाया। १५वीं शताब्दीमें गार्सिया-डि-मेने-जिस नामक किसी सुविज्ञ परिडतने पुर्तगालको रीम-साम्राज्यके अन्तर्गत 'छुसितानिया' नामक स्थान वत-लाया । पोछे वार्णाडॉ-दि-ब्रिटोने प्राचीन प्रन्थादिकीं पुत्तगालको लुसितानिया मान कर सहायतासे भिराएथास्को पुर्त्तगीजके जैसा स्थिर किया । पुर्तगालको राज्य माननेमें बहुतेरे 'छुसितानिया' विद् राजी नहीं हैं । कामिन्सप्रमुख पुर्त्तगीज कविगण पुर्त्तगालको बड़ी खुशीसे लुसिबानिया कहते थे। उनका रचित "Os Lusiadas" नामक वृहत् काव्य ही इसका जाज्वल्य प्रमाण है।

प्रायः दो सदी तक पुर्त्तगीजींने ओमयदके खलीफाओं की अधीनता खोकार की थी। सुवित्र मुसलमान खली-फाओंके समयमें लिसवन, लमेगी, भिसेव और अपटॉ अंदि नगरों में रोमक खायत्वशासन के प्रयानुसार राजकार्य परिचालित होता था। १०वीं शताब्दी के शेषमें जब
ओमियद के खलीफाओं का वलवीय घट गया, तब खृष्ट्यमांवलम्बी मिसिगथवंशीय राजगण अन्दुरिया पर्वतश्रेणीं से
अवतीण हो कर उपर्यु परि पुर्चगाल पर आक्रमण करने
लगे। आखिरकार ६६७ ई०में गालिसियाराज २य
वार्मु डोने अपर्टी राजधानी पर आक्रमण कर मुसलमानी
अधिकारसे ले कर वर्तमान पएटर-इ-डुरो तकके स्थानको
अपने अधिकारमें कर लिया। ११वीं शताब्दी के प्रारम्भमें
ओमियद खलीफाओं का प्रभाव विध्वस्त होने के वाद
मुसलमान अमीरोंने साधीनता-ध्वजा फहरा कर प्रधान
प्रधान नगरों पर अपना दखल जमाया। १०५५ ई०में
लियनाधिपति फार्दिनन्द-दी-प्रेटने वेहरा पर आक्रमण
किया।

परवर्त्ती १०५७ और १०६४ ई०में उन्होंने यथाकम लमेगो, तिसेश्व और कोइम्ब्रा आदि स्थान अपने अधि-कारमें कर लिये। १०६५ ई०में फार्दिनन्दके वड़े लड़के गासियाने अपर्टोंके काउएट और सेवनन्दो नामा अरव-वंशीय कोइम्य कि काउएटको अपनी स्वाधीनता स्वीकार कराई। फार्दिनन्दके दूसरे छड्के ६ठे अल्फन्सोने १०७३ ई॰में पितृसम्पत्ति सुरक्षित करके मुसलमानोंका दमन किया। अन्तमें मुसलमान लोग धर्ममद्से उन्मत्त हुए। अल्मोरा-वंशीय मुसलमानराज युसुफ-इविन-तेसुफिनने १०८६ ई०में जलाकामें खुष्टानराजको परास्त कर भुसल-मानी अधिकार फैलाया। उद्धत मुसलमानी शक्तिका हास करनेके लिये जब ६ठे अलफन्सीने समस्त खुष्टानों-से सहायताके लिये प्रार्थना की, तब काउएट रेमएड और वर्गाएडीके अधिपति काउएट हेनरी वीरद्रपंसे अप्रसर हुए। उक्त दोनों वीर् पुरुषकी अध्यक्षतामें आल्फन्सोने वेडोजसके 'मोताछी!-को परास्त कर छिसवन और सान्तरिम नगर जीत तो लिया, पर वे उपभोग कर न सके। आलफेराके खलीफा युसुफके सेनापति शेरने पुनः उक्त दोनों नगरों पर अपना दखल जमा लिया। आल्-फन्सोने किंकत्तंच्यविमूद् हो गालिसिया सीमान्तकी रक्षा करनेके लिये १०६४ ई०में नया वन्दोवस्त किया। तद्नुसार अहींने अपर्टी और कोइम्ब्राके अधीनस्थ सामन्तर्कोंको एकत कर तत्प्रदेश वार्गारिडपित हेनरीके साथ अपनी अवैधकन्या थिरोसाका विवाह कर दिया और काउएट रेमएडको अपनी उत्तराधिकारी कन्या इउरेका और गालिसिया प्रदेशका शासन भार सौंपा, उक हेनरी उस समय एक प्रसिद्ध योद्धा गिने जाते थे। इन्होंने कृजेड युद्धके अधिनायक हो विशेष क्षमता दिखलाई थी। वर्गएडीके ड्यूक रावर्ट इनके पितामह और उनके तृतीय पुत हेनरी इनके पिता थे।

हेनरीको धारणा थी, कि ६ठे' आलफन्सोकी मृत्युके वाद वे हो श्वसुरके राज्याधिकारी होंगे। ११०६ ई०में आलफन्सो अपनी कन्या यूरेकाको सिंहासन दान कर परलोकको सिधार गये। हेनरीने अपना अभीष्ट सिद्ध न हुआ देख लियन पर आक्रमण कर दिया । दोनों पक्षमें घनघोर लडाई छिड गई। उधर मुसलमान सरंदार शेर अलमोरा वंशकी प्रतिष्ठाके लिये विशेष चेष्टा करने लगे। १११२ ई॰में एसटगों नगरमें जब हेनरीकी मृत्यु हुई, तब थिरेसाने नावालिग युत आफन्सो-हेनरीके प्रतिनिधि हप-में राज्यशासनका भार ब्रहण किया। यह रमणी रूप-यौवनसम्पन्ना, विद्यावती और वहु गुणवती थीं। उन्होंने पुत आफन्सोके अधिकत राज्यको खाधीन करनेमें खुव दिमाग लगाया था। राज्यके मध्य शान्तिस्थापन करनेमें प्रयास पाने पर भी उनके राजत्वसे सर्वदा गुद्ध विग्रह हुआ करता था। १११६ ई०में उन्होंने विशय-आव-सेरिट-यागो कर्तु क प्रणोदित हो कर पुर्त्तगालकी उत्तरी सीमा टप और ओरेन्ज नामक स्थान पर आक्रमण किया। १११७ ई॰में मुसलमानोंने कोइम्या नगरमें उन्हें घेर लिया। अनन्तर उनकी वहन यूरेकाने उन्हें ११२१ ई०में कैद किया। विशपं गेलमाइरिव और मरिसियो विर्डिन्य (Archbishop of Braga)-की मध्यस्थतामें दोनोंका मेल हुआ। इसके वाद ही दोनों वहन अपने अपने प्रणयी छे कर आमीद-प्रमीदमें समय विताने लगीं। अतः यूरेका-के पुत्र ७म आलफन्सो और हेनरी दोनों ही अपनी अपनी माताके विरुद्ध खड़े हुए। ११२७ ई॰में ७म आलफान्सो-वलपूर्वक आक्रमण करके थिरेसाको उनकी अवनति खीकार करानेकी कोशिश की। पुत हेनरीक माताके आचरण पर वहुत नाराज हुए । ११२८ ई०में सानमामिष्ठ-

के युद्धमें हेनरिकको जीत हुई। थिरोसा पुलके हाथ वन्दिनो हुई। पीछे हेनरीकने माताको पुनः कारागारसे मुक्त कर दिया।

१७ वर्षकी अवस्थामें आफन्सोने राज्यभार प्रहण किया । प्रायः ६० वर्षे तक युद्ध करके उन्होंने राज्यलक्ती-को पराधीनतापाशसे मुक्त किया और पुतके लिये पक साधीन क्षुद्र राज्य स्थापित कर दिया। उन्होंने मुसल-मानोंको परास्त कर अपनी खाधीनताके लिये गेलिसिया सीमान्त पर ७म आलफन्सोंके विरुद्ध चार बार युद्ध किया। पीछे चे वलिंडिमेजके द्वन्द्युद्धमें काष्टिलवासी चीरोंका पराक्रम खर्चे कर तत्कालीन खृष्टान-जगत्में एक महाबीर समक्ते जाने छगे। इसके वाद् वे राजाकी उपाधि धारण कर पुर्त्त गालका राज्यशासन करने लगे । ११३५ ई०में आफन्सोने कोइम्या राजधानीको रक्षाके छिये लिरिया नगरमें एक दुर्ग वनवाया और नाइट-टेम्पलर तथा नाइट-इसपिटेलियारॉको मुसलमानो पर आक्रमण करनेके लिये नियुक्त किया। ११३६ ई०में जब ७म आल-फन्सो दूसरी वार युद्धकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय हेनरिकने कसर-हविन-आवी-दानिशके अधिकृत प्रदेश पर आक्रप्रण कर दिया। बैजके दक्षिणवत्तीं नगरमें उन्होंने मिलित मुसलमानी सेनादलका सामना किया। मुसल-मान-अधिनायक अमीरकी उमार-वरिक नगरके निकट पूरी हार हुई। इस युद्धमें केवल मुसलमानोंकी ही हार हुई सो नहीं, साथ साथ उनके भ्रातृसम्पर्कीय ७म आल-फेन्सकी अद्रुएलदमी उन्हें छोड़ कर चली गईं। ११४३ ई०में कार्डिनल गायिंड-भिकोदके यत्नसे जामोरा नगरमें दोनों भाइयोंके वीच सन्धि स्थापित हुई। आफन्सी हेनरिक पुत्त गालके सर्वमय राजा हुए और उन्होंने पोप-की अधीनता कर ली। इसके वाद पुत्त गालके अदूष्टमें मुसलमानोंके साथ वार वार युद्ध छोड़ कर और कोई भी घटना न घटी ।

११४४ ई०में आयूजकरियाने टेम्पलके वीरोंको सीरी नगरमें परास्त किया। ११४७ ई०के मार्च मासमें उन्होंने सान्तरिम और लिसवन नगर पर दखल जमाया। उसी सालकी २४वीं अक्तूबरको हेनरीकने क्रुजेडयाती विभिन्न देशीय वीरोंकी सहायतासे लिसवन नगरका

पुनरुद्धार किया । इसके वाद उन्होंने सिएटा, पर्लमेळा और अल्माडा पर अधिकार कर ११५८ ई॰में अलकाशेर-डो- साल नामक महानगरीको जीता । ११६१ ई॰में वे अल्मोहेदवंशीय खलीफाके अधीनस्थ मुसलमानी सेनासे परास्त हुए । मुसलमानोंने आपसमें विवाद करके पृथक्-क्रुप्से अधिकृत स्थानको वांट लिया । भिन्न मिन्न स्थानोंका आधिपत्य प्रहण करने पर भी वे सबके सब दुर्वल हो पड़े ।

उद्धतप्रकृतिके आफन्सी-हेनरीक यद्यपि परास्त हो गये, तो भी उनकी अन्तर्निहित उच आशा लहलहाती ही थी । उन्होंने वैद्याजस पर चढ़ाई करनेका सङ्कल्प कर किया। उनके जमाई फर्दिनन्द उनके विरुद्ध खड़े हुए। ११६६ ई०में उन्होंने वैदाजसमें घेरा डाला। इस युद्धमें वे विशेष रूपसे आहत और चन्दी हुए। ११६७ ई०में यदि वे रूपेन सम्पर्कीय गालिसिया आक्रमणहूप युद्धव्यापारमें लित न रहते, तो उन्हें ऐसी कठिनाइयां फेलनो न पड़तीं। राजा आफन्सोने अपनी मुक्तिके लिये गालिसियाके युद्दकार्थसे अलग रहनेकी प्रतिज्ञा की । अव फार्दिनन्दने उन पर और अधिक दवाव न डाला । वृद्ध राजाने मुक्ति तो पाई, पर उनका वह क्षत आरोग्य न हुआ । ११६६ ई०में मुसलमानीं-का गृहविवाद शान्त होने पर अलमोहदवंशीय फलीफा युसुफ-आव्-याकुव अफ्रिकासे सागर पार कर वहु सेनाके साथ स्पेन राज्य पहुंचे और अलेमदेजो प्रदेशमें पुर्त्त गीज लब्ध स्थान अपने अधिकारमें कर लिये । पीछे ११७१ ^{हे०-} में मुसलमानराजने जब सन्तरिम पर आक्रमण कर न सके, तव उन्होंने हेनरिकके साथ सन्धि कर ली। ११७२ ई०में आफन्सी हेनरिकने अपने पुत्र खप्त साङ्कोको अपने साथ सिहासन पर विठा राजा वतला कर घोषणा कर दी । पुतने भी उपयुक्त पिताके पुतकी तरह युद्ध विष्र-हादिमें लिप्त रह कर पिताका गौरव वढ़ाया था । प्रायः १२ वर्ष तक अलमदेजो प्रदेश एक विस्तृत युद्धसेतमें परिणत हुआ था। ११८४ ई०में युद्धफ़्ते पुनः नई सेना ले कर सन्तरिममें घेरा डाला । यहां दोनों दलमें घमसान छड़ाई छिड़ गई। ४थी जुलाईको साङ्कोने आन्नमण-कारियोंको विशेषस्पर्स विध्वस्त और मर्वित कर डाला। युद्धमें युसुफको गहरी चोट लगी। क् जेडयोद्धा राजा भाफन्सो हेनरिक अपने राज्यावसानके समय इस विष्यात युद्धविजयसे राज्यमें ग्रान्तिस्थापन करके ११८५ ई॰में परलोक सिधारे।

पिताकी मृत्युके वाद पुत १म डम साङ्को राजपद पर अधिष्ठित हुए। इन्होंने पिताकी तरह युद्धविद्यामें विशेष परिचय नहीं दिखलाने पर भी राज्य परिचालनके लिये शासनविधिका परिवर्त्तन, नियमादि संगठन और नगरादि निर्माणके कारण जनसाधारणसे 'पोमोयाडर' वा नगरप्रतिष्ठापककी उपाधि पाई । ११८६ ई०में इन्होंने मलगार्भ प्रदेश और उसकी राजधानी सिलमेस नगरको दखल किया। किन्तु ११६२ ई०में युसुफ-आवू याञ्जवने पुनः अलगाई, अलेमटेजो और अलकाशेट-डी-साल आदि स्थान जीत लिये। अलमोहेद खलीफाओंके अधीन मुसलमानोंको वीर्यवान् और दुर्द्ध वें समक्त कर पुत्तगीज-राज साङ्कोने सन्धि कर ली। इसके वाद प्रायः युद्धविप्र-हादिका परित्याग कर इन्होंने नगरादिकी वृद्धि और वाणिज्यको उन्नतिकी ओर विशेष ध्यान दिया । पहले लिखा जा चुकों है, कि पुर्तगाल नगरमें प्राचीन रोमक प्रथानुसार सायत्वशासन प्रचलित था। मुसलमानीने इस प्रथाको उपकारिता समन्त कर उन्हींका पदानुसरण किया। किन्तु साङ्कोके इस प्रथाका अनुकरण करने पर भी, उन्होंने नीति और विवेचना पूर्ण आईन द्वारा राज्यको सुशासित किया। पीछे वे इङ्गलैएड, फान्स तथा उत्तर यूरोपवासी क्रूजेड-योद्धाओंको पुत्त'-गालमें उपनिवेश स्थापन करा कर जनसंख्या वढ़ाने लगे। राज्यस्य गण्यमान्य व्यक्तियों और समर-विभागके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंके वीच जिलेकी पश्चिमूमि वांट दी गई। उनका आदेश था, जिस किसी उपायसे ही वे सव जमीन जरूर आवाद करनी होगी। इसके वाद धर्म-याचकोंका अधिकार है कर पीप ३थ इनोसेएटके साथ इनका विवाह हुआ। पोपकी उपेक्षा करके इन्होंने याजकोंकी युद्धक्षेत्रमें उपस्थित रहनेका हुकुम दिया। धर्मयाजकोंके ऊपर ऐसा कठोर आदेश पोपको चन्नाधात सा मालूम हुआ। उन्होंने राजाके पास कई वार दूत भी भेजा, पर कोई फल न हुआ। अन्तमें उन्होंने पोपके 'पविल आसन' की दुहाई दे कर अपनी अवनति और

वार्यिक देय करके लिये राजाके पास आवेदनपत लिख मेजा। सुविश्व राजमन्त्री जुलियो (Chancellor Juliao)-ने उनकी प्रार्थना पर कान न दे कर कहला मेजा कि "राजाकी अनुमति ले कर आप धर्म-मन्दिरके अधिकृत स्थानको छे कर नया वन्दोवस्त कर सकते हैं।" अपरोंके विशाप मार्टिन्हो रिडजेस इस विवाद व्यापारमें लिप्त रहनेके कारण राजाके आदेशसे अवरुद्ध हुए। पीछे रोमनगर भाग कर उन्होंने पोपके आश्रयमें आत्मजीवनकी रक्षा की। १२१० ई०में बुढ़ापाके कारण राजा साङ्की दुर्वल हो पड़े। वृद्धावस्थामें उन्होंने धर्मयाजक, पोप अथवा विश्वपींके साथ कीई विवाद करना न चाहा। पोपकी समी वार्ते स्वीकार कर छी गई। अपनी सन्तान-को यथोपयुक्त भूसम्पत्ति दे कर उन्होंने आलकोबाशा-मठ-में अवशिष्ट जीवन वितानेकी इच्छासे संसाराश्रमका परित्थाग किया । १२११ ई०को उसी मठमें उनकी मृत्य हुई। पीछे उनके छड़के २य आफन्सी सिंहासन पर वैठे।

मन्त्री जूलियोके कहनेसे २व आफन्सोने राज्यान्त-र्गत विश्रप, फिडालगो (Fidalgoes) और रिकस् होमेन (Ricos homens) आदिको बुला कर एक महासभा (Cortes) की । पुर्त्तगीज इतिहासमें यही मथम विचार सभा है। पिताने जो प्रतिका की थी उसकी रक्षा करने पर भी इन्होंने (जूलयो प्रवर्त्तित नूतन आईनके असु-सार युद्धविमहादिमें लिप्त नहीं रहनेके कारण) अब धर्म-याजकोंको जमीनका उपसत्व भोग करने न दिया। राजा २य आकन्सो योद्धा तो नहीं थे, पर उनकी अर्थपिपासा वलवती थी। उन्होंने अपने भाई और वहनोंकी पितृ-सम्पत्तिका हिस्सा नहीं दिया, वरन भाइयोंको राज्यसे निकाल भगाया। अन्तमें लिउनराज ६म आलफन्सी उनके विरुद्ध खड़े हुए। तव उन्होंने अपनी वहनींकी कुमारी रख कर विषयमोग करनेकी सम्मति दी। राजा खयं उदारनैतिक और रणनिपुण तो नहीं थे, पर उनके अधीनस्थ मन्त्रो, याजक और सामरिक कर्मचारियोंने दक्षतापूर्वक मुसलमानोंके विरुद्ध युद्ध करके अपने वीर-त्वका परिचय दिया था। १२१२ ई०को अपना अपना अध्यक्ष छे कर पुर्चगीज पदातिगण नभस्-िं तोलासा-

में लड़े थे। अनन्तर उन्होंने मुसलमानोंके चंगुलसे पुनः अलेम्टेजो जीत कर १२१७ई०में अलकाशके डो साल पर अधिकार जमाया और आएडालुसियामें 'वाली' मुसल-मानोंको परास्त किया।

ज्लिओं के पदानुसारी मन्ती गोनशाली-मेण्डिसके परामर्शानुसार राजाने आगाके आर्कविशय पस्तेवाव सीआरिजकी अधिकृत भूम्यादि छीन छी । इस कारण पोप ३य हनोरियसने राजाको धर्मशालासे निकाल दिया और जब तक वे ब्रागाको क्षति पूरी न करेंगे तथा नृतन चानसेलरको राजकर्मसे अलग न कर देंगे, तब तक उनके राज्यमें निषेधविधि (Interdict of chechurch) प्रचारित रहेगी। राजाने पोपकी वात पर कुछ भी ध्यान न दिया। इस प्रकार धर्मकार्यसे निषिद्ध हो राजा १२२३ई०में इस लोकसे चल वसे।

इनकी मृत्युके वाद द्वितीय साङ्घो तेरह वर्षकी अव-स्थामें राजसिंहासन पर अधिहृद् हुए। वालक राजा-के राजत्वमें अकसर जैसा राष्ट्रविष्ठव हुआ करता है, इस समय भी विशप और महामान्य व्यक्तियोंमें वैसा ही ं विरोध उपस्थित हुआ था। गोनासालो मेरिडस, पिद्रो पसिस् (Lord Steward)-प्रमुख राज्यके प्रधान प्रधान व्यक्तियों ने राजसिंहांसनको अटल रखनेके लिये पोपसे इससे राज्यके मध्य ब्रागाके आर्क-' सन्धि कर छी। ं विश्वपक्षी धाक जम गई। उन्हों ने नये लाड प्युआई . एब्रिल पेरिस और लियनराज ६म आलफन्सोके कहनेसे - १२२६ ई०में पळवसको अवरोध और फतह किया। घीरे ्र धोरे वालकराजाकी सुख्याति चारीं ओर फैल गई। उन्होंने दूंसरे वर्ष पूर्वतन कमचारी भिनसेएटको प्रधान मन्ती (chancellor) पिद्रो पनिसको प्रधान कोषाध्यक्ष (Lord Steward) और मार्टिन एनिसको राजपताका-वाहक कार्यमें पुनः नियुक्त करना चाहा। राजक्षमताकी · ऐसी वृद्धि पर विशप और धर्मयाजकोंके वीच असन्तोष-्रका *लक्ष्*ण दिखाई पड़ने लगा । वे राजाको राज्यच्युत ं करनेकी कामनासे भीतर ही भीतर षड्यन्त करने छगे। ् उग्रर राजा पोपकी शान्तिके लिये खृष्टघर्मरक्षार्थ विधर्मी ु, मुसळमानोंके साथ युद्धयापारमें छग गये। विशपोंको ्धमग्राण राजाके विरोधी देख पोपने १२२८ ई॰में पवि-

भिला-वासी एक दूतको उनके पास भेजा। उक्त व्यक्तिने यहां भा कर पुर्चगोज विश्वपींको यथेष्ट लाञ्छना और तिर-स्कार किया। पीछे उन्होंने प्रधान विचारपित भिन्सेएको गोआडीका विश्वप बनाना चाहा। १२३७ ई॰में २य डम साङ्कोंके साथ धर्मयाजकोंका फिरसे कलह पैदा हुआ। इस पर पोप ध्म प्रेगरिने पुर्चगालराज्यमें निपेधाहाको प्रवर्तन किया। पीछे साङ्कोंने पोपको अवनित स्वीकार कर छुटकारा पाया।

१२३६ ई०में उन्होंने फिरसे मुसलमानों पर अलगाड प्रदेशमें धावा कर दिया। पीछे कमशः मार्टीला, भाष-मिंख्य १२४०में केसेली और १२४४ ई०में टामिरा हाथ लगा । १२४०से १२४४ई०के मध्य पुत्तगालराज डोना मेनसिया छोपेज नाम्नी किसोकाष्टिलियन विधवा-रमणी-के अवैधप्रणयमें आसक्त हुए। उनके इस कदर्य व्यव-हारपर सभी पुर्व गाळवासी उनके प्रति वीतश्रद्ध हो गये। १२६५ ई०में उन्होंने राजसाता आफेन्सोको आदर पूर्वंक बुला कर अपना परिचालक वनाना चाहा, स्वयं पोपने भी साङ्कोकी राज्यच्युतिकें छिये कादेशपत भेजा। पोपके आदेशसे जोहन प्रस (Archbishop of Braga) दाइवारसियो (Bishop of Coimbra) और पिद्रो साफभेडोरिस (Bishop of Oporto) फ्रान्सकी राजधानी पारि नगरमें आफल्सोके निकट गये । आफन्सोके पूर्वसम्मति प्रगट करने पर वे १२४६ ई०-में इन्हें लिसवन नगर लाये और राज्यरक्षक (I)elender of the kingdom) कह कर घोषणा कर दी। इस समय प्रायः २ वर्षं तक राष्ट्रविष्ठवके वाद १२४८ ई॰में इम मास्कोको मृत्यु हुई।

सिहासन पर अधिष्ठित हो कर आफल्सोने अलगार्भ पर दखल जमाया। पुर्च गाल-राज्यसीमाकी ऐसी वृद्धि देख काष्टिल और लिवनाधिपति १०म आलफेन्सो जल मरे। दोनोंमें युद्ध भी हुआ, आखिर राजा ३य आफन्सोने आलफन्सोकी अवैध-कन्या डोना विपद्रिससे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की, तब दोनोंका विवाद निवटा। इसके वाद उन्होंने पुर्च गालराज्य पर आँख गड़ाई। पारीनगरकी प्रतिश्चृति रहते हुए भी वे विश्वपोंकी क्षमता घटानेकी कोशिश करने लगे। अपना उद्देश्य सिद्ध

करनेके लिये राजाने १२५४ ई० कोलिरिया नगरमें एक महासभा की। समवेत नगरवासी भद्रलोक और उच्च श्रेणीके याजकींकी सहायतासे उन्होंने प्रथमस्त्री (Matilda countess of Boulogne)-के रहते ही फिरसे आफन्सो दिवाइजकी कन्यासे विवाह करनेके छिये पीएका निषेधविधिका उहाङ्गन कर दिया। अन्तर्मे पुर्तागालके विशाप और आर्कविशापोंने जन उनकी ओरसे पीप 8थ उर्वानसे प्रार्थना की, तव १२६२ ई०में उक्त द्वितीयविवाह युक्तिसिद्ध है, यह जनसाधारणको मालूम हो गया, और उनके वड़े लड़के डम-डिनिज राज्याधिकारी होंगे, यह भी उक्त याजकसभासे स्थिर हुआ । १२६३ ई०की १०वीं आलफन्सोने उन्हें अलगार्भ प्रदेशका पूर्ण शासन-भार प्रदान किया । १२७० ई०में राजपुत डिनिज विद्रोही हो कर पिताके विरुद्ध खडे हुए। इस प्रकार प्रायः दो वर्षं तक राष्ट्रविष्ठव चलते रहनेके वाद १२७६ ई०में वृद्ध राजाकी मृत्यु हुई।

इतने दिनों तक पुर्त्त गाल राजाओंने युद्ध और राज्य वृद्धिकी ओर ध्यान दिया था। राज्याधिकार और विधिवद्ध राजनियमादि द्वारा चालित पुर्तागाल राज्य , अभी एक खाधीन राज्य रूपमें गिना जाने लगा । अभी ्सम्य जगत्में 'सम्यता'का विकाश आरम्भ हुआ । एशिया जय और विभिन्न देशान्वेषणमें निकल कर उन सव देशींका अधिकार पुर्तगालके माग्यमें नहीं बदा। पुर्त्त-. गीजोंने सभ्यता-अभ्यासमें विशेष ध्यान दिया । जिससे वे अपरापर सुस्भ्य यूरोपवासियोंके साथ मिल कर समकक्षता दिखा सकें, इसके लिये वे विशेष चेपा करने लगे। एक मात राजा डम डिनिज छोड कर और कोई भी ऐसे भारी काममें लिप्त न थे। उक्त महात्माके-ही उद्योगसे पुर्त गालराज्यमें कई एक हितकर कार्य हुए थे। राज़ा स्वयं एक कवि, सुरसिक और विद्या-. र्जन-प्रिय.थे । वे न्यायपरता और सुनियमके वडे पक्ष-पाती थे, न्यायविचारमें राज्यकायँकी पर्यालोचना भी अच्छी तरह करते थे। अपने राज्यमें सुविचारप्रतिष्टा-के लिये उन्होंने सु-आईनका प्रचार और विचार-अर्ग-लतका स्थापन किया। कृषिकार्यकी उन्नतिके लिये उन्होंने कृषिनिद्यालय खोला और पितृ-मातृहीन कृपक

वालकोंके लिये एक वासमयन वनवा दिया। छ्षिविद्याकी उन्नतिके लिये उन्होंने जिस प्रकार लिरियामे
पाइन-वन (Pineforest)-को शहरमें परिणत किया,
उसी प्रकार वे वाणिज्यकी उन्नतिके लिये इङ्गलैण्डके
साथ सन्धिस्थापन करके विख्यात हुए। इसके वाद
राज्यरक्षामें ध्यान देते हुए उन्होंने एक नौसैनादलकी
गठन की थी। जेनोआवासी इ-मान्यूएल पेसान्हा उनके
प्रथम नौसेनापति (Admiral) नियुक्त हुए। सामरिक विभागके उन्नतिविषयमें वे जिस प्रकार चेष्टित थे,
पुनः पुनः युद्धविष्रहसे क्लान्त पुत्त गाल राज्यमें शान्तिस्थापन करनेमें उन्हें उसी प्रकार वल रखना पड़ा था।
इन सव परिश्रमशील कार्योंके लिये उन्हें Re Lavrador or Danis the lahom की उपाधि मिली थी।

सिहासनप्राप्तिके कुछ वाद ही डिनिजको सिहासन-का अधिकार है कर भाई आफन्सोके साथ राज्यविश्ववमें (Civil wars) लिप्त रहना पड़ा था । पर शीघ ही दोनों भाईका मनोमालिन्य जाता रहा। इसके बाद डिनिजने आरागणराज ३य पिट्रोकी कन्या इसाबेळासे विवाह किया। यह रमणी अपनी सच्चरितता और सद्गुणके लिये १६वीं शताच्दीमें "आदर्शरमणी" कह कर गण्य हुई थीं। उनके शासनकालमें ४थै साङ्केंके-साथ काप्टिलके अधिपति ४र्थ फार्दिनन्दका युद्ध हुआ। पुत्त गालका सिंहासन ले कर युद्ध छिड़ा था । १२६७ ई॰के सन्धिपतानुसार दोनोंमें शान्ति स्थापित हुई। उक्त पत्नके शर्तानुसार ४थं फार्दिनन्दने डिनिज-फन्या कनशान्सका और पुत्तंगालराजपदके उत्तराधिकारी आफन्सोने फार्दिनन्दकी बहन विपद्भिसका पाणिग्रहण किया । आपसमें ऐसा आदान-प्रदान हो जानेसे सभी युद्धवित्रह शान्त हुआ । पूर्वोक्त सम्बन्ध रहते हुए भी पुत्तं गालराज इङ्गलैएडके १म पडवर्डके साथ क्रुट्रेम्बिता-स्थापनमें पराङ्मुख नहीं हुए । पुत्त गाल और इङ्गलैण्ड-की वाणिज्य-उन्नतिके लिये उन्होंने १२६४ ई०में एडवई-के साथ वाणिज्यसम्पर्केमें स़न्धि कर ही। इङ्गहीएडपति २य पडवर्डके साथ भी उनका सङ्गाव था। '१३११ ई०-में पोप ५म क्वें मेण्टने नाइट-चेम्पलरोंचे प्रति द्वेष करके ,उनकी क्षमता बदा दी और राजा डम डिनिज (Order of Christ) नाम दे कर एक दल नूतन योद्धृ-सम्प्रदायका प्रवत्त न किया। पोछे उन्हें टेम्पलरों की अक्तभूमि दान करके वे पोपके अनुप्रहपास हुए। १३२३ ई०को पिता-पुत्रमें सुठमें छ हुई। स्वयं रानी इसावेला (St. Isabel) ने दोनों दलके बीच अध्वचालना करके पितापुत्रका विवाद मिटा दिया। १३२५ ई०में राजाकी मृत्यु पर्यन्त दोनों-में ग्रान्ति वनो रही।

४र्थ आफन्सो राजपद पानेके वाद ही पिताके मतानु-सरण करके कार्य करने छगे। १३२८ ई०में अपनी कन्या द्वीना मेरियाको काष्टिलपति ११वे आलफन्सोके हाथ सौंप कर आत्मीयता स्थापन की। किन्तु जब पुत्त गाल-को मालूम हुवा कि काप्टिलपित उनकी कन्याके साथ वुरी तरह पेश आते हैं, तब वे उनके निग्छर व्यवहार पर कुछ हो युद्ध करनेको अप्रसर हुए । सेण्ट-इसावेलाको मध्य-स्थतासे १३४० ई०को दोनोंमें शान्ति स्थापित हुई। आफन्सके पुत डमपिद्रोने,पेनाफिपल द्वाकको कन्या कनष्ट न्स मानुपलसे विवाह किया। ४र्थ आफन्सो मरकोराज भाबू हामेमके विरुद्ध ११वें आलफन्सीकी सहायता करने-में प्रतिश्रुत हुए। मिलित खृष्टीय सेनाने सालाडो नदीके किनारे मुसलमानोंको परास्त कर् विजयघोषणा की। इस युद्धमें पुर्त्त गालराजने विशेष दक्षता दिखा कर वीर'की उपाधि पाई। १३४७ ई०में आरागणराज ४र्थ पिद्रीके साथ अपनी कन्याका व्याह दे कर पुत्त गालराजने अपनी वलपुष्टि की । राजा ४र्थ आफन्सोने डोना-इनिस-डि-कब्द्रोकी विषम हत्यामें लिप्त रह कर अपने शेष जीवनको कलङ्कित कर दिया था।

राजा १म इम-पिट्रांने सिंहासन पर बैंड कर पहले १३५७ ई॰में डोनाइनिसके निहन्ताको कठोर दण्डाज्ञा दी। पीछे उसके कृतपापका प्रायश्चित्त कराया और इनिसके प्रति प्रगाद अनुरागवशतः मृतदेहको कन्नसे उठा कर बड़ी धूमधामसे उसके मस्तक पर राजमुकुट सुशोमित किया। अन्तमें उनकी मृत्यु पर महाशोक प्रकट कर शोकसन्तम हृदयसे उस मृतदेहको आलकोवाशा मटमें राजा और रानीको कन्नके बगल गाड़ दिया।

जिस सूक्ष्म और प्रतिजिद्यांसापूर्ण न्यायपथातुवत्ती हो कर उन्होंने राजकार्यका पर्यवेक्षण किया था, पुत्रंगोज

राज्यके इतिहासमें वह ज्वलन्त अक्षरोंमें प्रकाशित है। उन्होंने क्या धर्मयाजक, क्या सम्म्रान्त व्यक्ति सवींकी समान भावमें कठिन दण्डाहा दे जनसाधारणसे Pedro the Severe की आख्या पाई थी। वे अपने पितामहकी तरह इङ्गलैएडकी वन्धुता पसन्द करते थे। इङ्गलिएडराज ३य एडवडके साथ उनका ऐसा सद्राव था, कि १३५२ ई०में एडवर्डने अपनी प्रजाकी सूचना दे दी, कि वे पुत्तगालके विरुद्ध कोई क्षतिजनक कार्य करने इसके बाद १३५३ ई०में आफन्सी न पार्वे। मार्टिनस अलहोंको अध्यक्षतामें लएडन और समुद्रतीर-वत्तीं पुर्त्तगालवासी वणिकींके वीच एक सन्धि हुई। उक्त सन्धिके अनुसार दोनों जातिके वाणिज्य और एण्य द्रव्य पर दोनोंका विश्वास सम्पूर्णसपसे कायम रहा। पिट्रोके राजत्वकालमें वाणिज्योन्नतिका यही द्वितीय स्तर है।

महाराणी कनप्टान्सके गर्भजात पिद्रो-पुत्र फार्दिनन्द १३६७ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। इनके शासनकाल-में पुर्च गालमें राजतन्त्रका (Absolute monarchy) लक्षणादि दिखाई पड़े थे। राजा अपना कार्य मूल कर, प्रजाका सुल भूल कर एकमाल अपने ऐहिक सुलके अन्वेषणमें व्यस्त रहते थे। अल्गार्भ युद्धावसानके वाद, जब पुत्त गालमें शान्ति विराजती थी, तब पुत्त गालवासी कृषि और वाणिज्यकी उन्नतिसे अपनेकी धनमद्में गर्वित और विद्यावर्यामें सीभाग्यसम्पन्न समक्त अपनी अवस्था-का अनुधावन करनेमें समर्थ हुए थे। राजाकी वर्त्त मान लम्पट प्रजाके इदयमें असन्तीवके एकमाल कारणका

पतिनन्दके दुवल और लघुनेता होने पर भी राज्य-वृद्धिकी आशा उनके इदयमें बलवती थी। वे आरा-गणराजकन्या ल्युनोरासे विवाह करनेमें प्रतिश्रुत हो १३६६ ई०में काष्टिलराज पिद्रो (The cruel) की मृत्यु-के वाद काष्टिल सिहासनके प्रार्थी हुए। कारण, उनकी पितामही विपद्रिस काष्टिल-राजकन्या थी। बहुतोंके उनका पक्ष लेने पर भी काष्टिलवासी सम्म्रान्तवंशीय वहुतोंने पुत्र गांजको सिहासन देनेमें अनिच्छा प्रकृद्द की। उन्होंने पिद्रोकेस वैधपुत देशामारेवासी हेनरी (Henry ii)-

की काष्टिल-सिंहासन पर विडाया । इसी सूत्रसे होनों पक्षमें युद्ध छिड़ा। पोछे पोप ११वें प्रेगरोकी मध्यस्थतामें फार्दिनन्दने काष्टिलकी आशा छोड़ दी और २य हेनरीकी कन्या ल्युनोराको व्याहना चाहा । पोपके मध्यस्थ होने पर भी यह सन्धि कार्यमें परिणत नहीं हुई। फार्दिनन्दने फिरसे द्वास-अस-मोण्डेवासी किसी भद्र मनुष्यकी विधवा कन्या डोना-ल्युनोरा-तेलिजके प्रणय और इत पर मोहित हो उसीसे विवाह कर लिया। काष्टिलराज २य हेनरी अपनेको अपमानित समभ इसका बद्छा चुकानेके छिये तैयार हो गये और दल वलके साथ आ कर लिसवन नगरकी घेर लिया । फार्दिनन्दने कोई उपाय न देख गएट (Gaunt) के राजा जानके साथ सन्धि कर ली। राजा जानका पिद्रो-मू पलकी कन्या कनद्यान्ससे विवाह हुआ था, इस कारण वे काष्टिलराजसिंहासनके प्रार्थी हुए थे। उनके साथ हेनरीकी पहलेसे शतुता होनेका यही कारण था। पीछे १३७४ ई०में काष्टिलराजके साथ फार्दिनन्दकी सन्धि स्थापित हुई।

महारानी च्युनोरा पुत्त गालराज फार्दिनन्द पर अधि-कार कर वैठी । राजा रानीके हाथको कठपुतली हो गये। रानी राज्यको सर्वमयी कर्तों हुई। धीरे धीरे रानी-के अत्याचारसे राज्यस्थ सभी व्यक्ति उत्त्यक्त हो पड़े। इङ्ग-लैण्डेश्वर ३य पडवर्डके साथ पुर्चागालराज जिस मितता-स्त्रमें आवद्ध थे, रानीने उस स्त्रको काट डाला। इन सब अन्याय अत्याचारींका प्रजागण सहन कर न सकी और क्रमशः उनके प्रति विरक्ति प्रकाश करने लगी। जीन फार्णान्दिज पिड्यारो नामक जो व्यक्ति अङ्गरेज-राजसभामें पूर्वकथित सन्धिपत्त ले कर गाया था, रानी उसके रूप पर मोहित हो गईं। अव वह अपनेका सम्हाल न सकी, प्रणयसमुद्दमें कृत पड़ीं। पिएडयारोको औरलप्रदेशका काडण्ड वनानेके लिये रानी राजाको वहुत तंग करने लगी।

काष्टिलकी सिंहासन-वासना अव भी फार्दिनन्दके इत्यमन्दिरसे दूर नहीं हुई थी। १८८० ई०में २य हेनरी-की मृत्युके वाद उन्होंने हेनरीके उत्तराधिकारी १म जानके विरुद्ध युद्ध करनेकी कामनासे पुनः इक्नुलेएडसे सहायता मां ने । इङ्गलैएडराज २यं रिचार्डने उनकी सहा-यता करनेके छिये आरल-आव केम्ब्रजको दलवलके साथ मेजा। राजपुत पडवडने (१३७६ ई०में सिरियाकी महा-समाके अनुसार) फार्दिनन्दकी एकमात कन्या और पुर्वं गाल-सिंहासनको उत्तराधिकारिणी विएद्रिससे विवाह करना चाहा। १३८३ ई०में पुत्त गालराजने अपनी प्रतिका तोड़ दी और रानीके इच्छानुवर्त्ती हो अङ्गरेजींको पुत्त गालसे मार भगाया। इस पर अङ्ग-रेजोंने पुर्त्त गालको तहस नहस करके काष्टिलपति १म जानके साथ मिलता कर छी । इस सन्धिसूतसे राजा जान पूर्त गीज-राजकन्या डोना-विएद्रिसके साथ विवाह करनेको सहमत हुए शर्त यह ठहरी, कि जब तक विपद्रिसको वड़े छड़के वयःप्राप्त नहीं होंगे, तब तक महा-रानी ल्युनोरा राजप्रतिनिधिरूपमें राजकार्यंकी पर्या-लोचना करेंगी। इसके छः मास वाद २२वीं अक्तूबर-को फार्दिनन्दकी मृत्यु होने पर डोना ल्युनोराने राज्य-भार प्रहण किया।

च्युनोरा राजेश्वरी तो हुई, पर अधिक दिन राज्यका सुलभोग न कर सकीं। उनका अदूष्टाकाश पुत्त-गीजोंकी जातीयताकी गभीर धनच्छायासे छा गया। घृणाके ज्वलन्तविषसे जर्जरित हो सभी असचरिता रानीके राज्यशासन पर भीषण कटाक्षपात करने छगे। काष्टिल-राज्यके साथ विवाहसूत्रमें पुत्तीगालका राजछत एक साथ करना भी उसका अन्यतम कारण या। पिद्री-सिभियरके अवैधपुत सम जान (Grand master of the Knights of St. Bennett of Aviz)-ने रानीके चूणित चरित पर तथा राज्यमें स्वाधीनता-स्थापनमें नितान्त इच्छुक हो ६ठीं दिसम्बरको लिसवननगरमें विद्रोहिदल-का नेतृत्व ग्रहण किया और राजप्रासादमें महारानी ल्युनोराके प्रणयपात परिडयारोकी इत्या की। रानी प्राणके भयसे विना किसीको कहे सुने सान्तरिम नगरमें भाग गई । वहांसे उन्होंने काष्टिलपति १म जानकी अपनी सहायताके लिये बुला मेजा। इधर इस जान सवके सामने अपनेको पुत्त गालके परिवाता (Defender ot Portugal) बतला कर विघोषित हुए। जीन दास रिश्रस (Joao das Regras)-के चान्सेलर-पद

पर और आलमेरिस पेरेरा (Alveres Pereira)-के कानप्रवल-पद पर प्रतिष्ठित होनेसे राज्यभ्रष्ट रानी और काष्टिलराज जान युद्धके लिये तैयार हो गये। इस पर उम जानने भी इङ्गलैएडसे सहायता मांगी। अंगरेज-राजके सहायता देनेमें प्रतिश्रुत होने पर उन्होंने पुर्च-गाल राजधानीको सुरक्षित कर रखा।

यथासमय १३८४ ई०में काष्टिलराज जानने ससैन्य पुर्त्त गाल आ कर किसवन नगरमें घेरा डाला। पर युद्धमें हार खा कर वे खदेशको लौटे। देश लौटनेक पहले उन्होंने सुना, कि डोना ल्युनोरा विषप्रयोगसे उनके प्राण लेनेको तैयार हैं। राजाने उन्हें पकड़ कर टोर्ड सिलाक मटमें अवरुद्ध रखा। यहां १३८६ ई०में पुत्त गाल-रानीकी प्राणवायु उड़ गई।

केवल एक युद्धसे दोनों जातिका विरोध दूर नहीं हुआ। दोनों देशकी आम्यन्तरिक अवस्था देख भविष्यमें द्वितीय युद्धकी सूचना हो रही थी। पुत्त गीजोंने अपनी खाधीनता खो जानेके भयसे प्राणपणसे युद्ध करके जातीय गौरवकी रक्षा की थी, ओटलरो और द्राङ्कोसोंके युद्धमें कानन्देवल आलमेरिस-पेरेराने विशेष बीरता दिखा कर काष्टिलिय सेनाको परास्त किया। इसी कारण वे "The Holy Constable" नामसे प्रसिद्ध हुए। १३८५ ई०को कोइस्टाकी महासभामें पुत्त गालकों सिहासन पर विटानेके लिये राजनिर्वाचनका प्रस्ताव उटा। चानसेलरके कथनानुसार सर्वोने डम जानको पुत्त गालका राजा पसन्द किया।

राजा जान ताज पहन कर सवींके परामर्शानुसार ५०० तीरन्दाज अङ्गरेजी सेना और राज्यस्थ वीरहृद्य व्यक्तियोंको साथ हो अगस्त मासमें आलजुवोराटाके रणक्षितमें कृद पड़े और काष्टिलराजको प्रभृता सेनाको यमपुर भेज दिया। इसके वाद पुनः अक्तूबर मासमें 'होली-कानस्टेंबल'-के हाथसे बलमार्जे नामक स्थानमें काष्टिलराज परास्त हुए। उपर्यु परि इस प्रकार विपर्यंस्त हो काष्टिलराज बलक्षय होने लगा। अन्तमें दूसरे वर्ष जव गएटके शासनकर्ता जानने दो हजार वर्षाधारी और तीन हजार बीरन्दाज ले कर काष्टिल पर आक्रमण किया, तब

काप्टिलपतिने वचाधका दूसरा उपाय न देख सन्धिकी प्रार्थना की थी।

इङ्गलैएडके साथ सन्धि और मित्रताकी उपकारिता समक्त कर पुत्त गालराजने पुनः १३८६ ई०में दो राज्योंमें वाणिज्य और राजनैतिक कार्यमें मित्रता-स्थापनके लिये पक सन्धिपत लिख दिया। उक्त पत Treaty of Windsor नामसे प्रसिद्ध है। राजा डम जानने गएटके शासनकर्त्ता जानकी द्वितीय पत्नी-गर्भजात कन्या फिलिपा (Philippa of Lancaster)से विवाह किया। इससे दोनोंमें धनि-ष्टता और भी वढ़ गई। इस समय काष्टिलराज़के साथ पुर्त्त गालराजकी सन्धि स्थापित हुई। किन्तु वीच वीचमें उक्त पत्न प्रवर्त्तित होता जाता था। आखिर १४११ ई०में दोनोंके बीच पूर्णशान्ति स्थापित हुई। इस सन्धिका इङ्ग-लैएडके ४थ, ५म, ६४ हेनरी और २य रिचार्ड आहिने आनन्द हृदयसे प्रतिपालन किया था। १३६८ ई०में जव ज्येष्ठ राजपुत डम-डिनिजने पिताके विरुद्ध अस्त्र धारण किया, तव २य रिचार्डने राजा जानको सहायताके लिये कुछ सेना मेजी थी। धर्थ हेनरीने उन्हें Knight of the Garti-की उपाधि दी। १४१५ ई०में अपने तीनों पुर्तीकी उरोजनासे प्रवृद्धध हो राजा आफ्रिका जीतनेकी कामनासे मरकोवासी मूरों पर आक्रमण करनेको अग्रसर हुए। राजपुत डम दुआत्ते, डम पिद्रो और डम हेनरिक-ने वीरनाम पानेकी इच्छासे मूरोंको किउटा नगरमें परा-जित किया । इस युद्धमें अंगरेजराज ५म हेनरीने उनकी विशेष सहायता की थी, किउटाके अधिकारसे पुर्त्तगालका अद्रुएकवाट उन्मुक्त हुआ। पुर्त्त गालराज्यके वहिर्देशमें यही पुर्तंगीजोंका प्रथम अधिकार था। युद्धके वाद तीनों व्यक्ति अपने अपने अभीष्ट पथकी और चल दिये। ज्ये प्र उम एडवाडै राज्यशासनमें पिताकी सहायता करनेके लिये रह गये। मध्यम पिद्रो (Duke of Coi- $\mathrm{m}^{1}\mathrm{ra}$) यूरोपके नानास्थानींमें भ्रमण कर अपनेको सुविज्ञ पण्डित और योद्धृवीर वतलां कर प्रसिद्ध हुए थें। तृतीय डम हेनरिकने एकमाल समुद्रयाला और चिभिन्न देशोंके आविष्कारकी उन्नतिके लिये आत्मजीवन उत्सर्ग किया था। उन्होंने अलगाभैका शासन कर्तृ त्व, ज्यूक आव .सेउमि और master of the order of Christ-की उपाधि प्रहण कर सेव्रिस नगरमें वास-भवन वनाया था । १४३३ ई०में जानके मरने पर उनके छड़के एडवर्ड राजसिंहासन पर अधिकढ़ हुए। पिताकी तरह अनेक सदगुणोंसे भूपित होने पर भी वे राज्यसंकान्त कुछ गुरुतर कार्यमें हस्तक्षेप कर आत्मजीवन कळुषित कर गये। सिहासन प्राप्त करने-के वाद ही उन्होंने एभोरा नगरमें एक महासभा करके यह स्थिर किया, कि पितृदत्त उनकी जो सव भूसम्पत्ति राज्यके सम्म्रान्त मनुष्य भोग कर रहे हैं, उसका सत्त्व वे पुतादिकमसे भोग कर सकेंगे, पुतके अभाव-में वह सब सम्पत्ति राजाको होगी । सम्प्रान्त भद्र-बंशीय वहुतींके पुत सन्तान नहीं रहने पर वे अपनी अपनी मान रक्षाके लिये सारी सम्पत्ति छोड़ काष्टिलको भाग गये। एडवर्डने समका, कि उनका अमीए सहजमें ही सिद्ध हो गया । राज्यके अधिकांश सम्प्रान्त व्यक्तियों-के भिन्न भिन्न देश चले जानेसे अवशिष्ट व्यक्तियोंकी क्षमताका हास हो गया। एडवर्डने पिताकी राजनीतिको वशवर्ती हो आरागण-राजकन्याका पाणिप्रहण किया। इङ्गलैएडराजने विएडसरके सन्धिसूतवलसे (Knight of the Garter)की उपाधि दी। उन्होंने अपने छोटे भाई डम हेनरिकको समुद्रके किनारे नाना स्थानोंमें जानेके लिये उत्साहित किया। १४३६ ई०में टाञ्जियरकी युद्धयातासे ही पुत्त[°]गालको भविष्यत् देशाविष्कार आदि क्षणकालके लिये निर्वापित हुई थी। उनके सर्वकनिष्ठ भ्राता डम फार्दिनन्द, पिद्रो, हेनिरक और पोप आदिके मना करने पर भी उन्होंने टाञ्जियर पर आक्रमण करनेके लिये एक दल नीसेना मेजो । शतुके हाथसे पडवार्डकी सेना विच्छिन्न हो गई। टाञ्जियरवासियों ने उनके छोटे भाई फादिनन्दको कैद कर लिया और वाकी सभी सेना छोड दिया। राजा भाईके जीवनसे निराश हो -विशेष मर्मपीड़ित हुए। मस्तिष्ककी विकृतिसे दण्य हो वे १४३८ ई०में परलोक सिधार गये। डम फार्दिनन्द-ने भी फेज नगरमें वन्दी रह कर तरह तरहका अत्या-चार सहा और पीछे अपने द्यादाक्षिण्य और दूढ़ताके िवये "The constant Prince"नाम प्रहण कर १८४३ ई॰में जीवन विसर्जन किया ।

एडवर्डकी मृत्युके वाद् उनके अल्पवयस्क एक पुत् ५म आफन्सो सिंहासन पर वैठे । वालकराजके प्रतिनि-धित्व हे कर राजमाता डोना ह्युनोरा और चचा डम-पिद्रो (Duke of Coimbra)में विवाद खड़ा हुआ। छिसवन नगरवासीने पिद्रोका पक्ष छे कर उन्हींको रिजेएट वा प्रधान अभिभावक वनाना चाहा। १४४७ ई॰में राज्यके मध्य डम पिद्रोकी क्षमता उच सीमा पर पहुंच गई । इस समय एडवर्डपुत ५म आफन्सोके वयः प्राप्त होने पर उनके चचा पिद्रोने अपनी कन्या ल्युनोराको उन्हें व्याह दिया। वहनसे विवाह करने पर भी उनका मन शान्त नहीं हुआ । चचाके एकाधि-पत्य पर वे क्रमशः ईर्षान्वित होने छगे । ड्यूक आव व्रगञ्जा उनके मनमें चचाकी विद्वेषाग्निको उद्दीपित कर रहे थे। अतः उनका अन्तःकरण क्रमशः विषमय होता जा रहा था। उन्हों ने अपने चचाको राज्यसे वहिष्कृत करनेका सङ्करप किया। अन्तमें उन्होंने ड्यूक आव ब्रागञ्जा-के परामर्शानुसार राजकीय सेनाकी साथसे १८४६ इ॰में आलफारोविरा नगरके समीप अपने चचाकी सेनाका सामना किया। युद्धमें डम पिद्री मारे गये। इसके बाद ५म आफन्सो देश विजयकी कामनासे अफिकामें जा १४५८ ई०में अलकाशके सेगुअर और १४७१ ई०में आरजिला और टाञ्जियर राज्यको दखल कर लिया। अफ़िकाके युद्धमें उन्होंने विशेष वीरत्व और युद्ध-विद्याका परिचय दिया था, इस पर सवो ने उन्हें "The African" उपाधिसे भूषित किया। इधर वे जिस प्रकार अफ्रिकाके युद्धमें लिप्त थे, उसी प्रकार उनके चचा डम हेनरिक (The navigator)-के उत्साहसे प्रणोदित पुर्तागीजगण समुद्रपथसे देशा-विष्कारमें व्यापृत रह कर नाना स्थानों में जाने लगे। १४६६ ई०में हेनरिककी मृत्यु होने पर भी राजाने अपने चचाके देशान्वेषणरूप महाकार्यसे जनसाधारणको विशेष उत्साहित किया था। राजा ५म आफन्सोके अन्तर्निहित काष्टिल-विजयवासना दिनों दिन उद्दीप्त होती जा रही थो। इस उद्देश्यको साधन करनेको आशासे वे काष्टिलपति ४र्थ हेनरीकी वालिका कन्या जोहनको व्याह कर राजसिंहासनप्रार्थी हुए। उधर काष्टिल वासियों-

नं आरागगराज फार्दिनन्दको वालिकापत्नी इसाबेलाका पक्ष ले कर उन्हें सिहासन पर विटाना चाहा । इस प्रकार दोनों में विरोध खड़ा हुआ। दोनों ही शस्त्रादि कर एक दूसरेके सम्मुखीन हुए। १४७६ युद्घमें पुत्तं गीजगण विशेषद्भपसे ई०में परास्त हुए थे। राजाने फान्स जा कर ११वें छुईसे साहाय्य प्रार्थना की, पर कोई फल नहीं निकला। अव कोई उपाय न देख राजा १४७८ ई०में अलकरदारा सन्धिपत पर अपना हन्ताक्षर करनेकी वाध्य हुए और उसीके अनुसार नव-परिणीता भार्या जोहन को मठमें चिरनिर्वासित करनेको वाध्य हुई। इस प्रकार मनःकप्टले उनकी चित्तचञ्चलता और भी बढ़ने लगी। प्रायः अदुर्धोन्मादावस्थामें एक वर्ष विता कर राजा १४८१ ई॰में परलोकको सिधार गये जिससे समी प्रकार-ज्वाला शान्त हुई।

राजा २य जानने पुर्त्वागल सिंहासन पर वैठ कर काष्टिल और इङ्गलैएडके साथ वाणिज्यसूतमें सन्धि-स्थापन किया। पीछे वे प्रजाको सब भांतिसे सन्त्रप्ट कर राज हार्यकी पर्यालीचना करने लगे । उस समयके इङ्गलैएडराज ७म हेनरी और फ्रान्सके अधिपति ११वें लूईको अनुकरण पर राज्यशासन करको उन्होंने अपने राजत्वको उउज्यल कर दिया था। टोरोके युद्धमें वीरता दिख़ा कर वे एक विख्यात सैनिकपुरुष गिने जाने छगे। राज्यके सम्म्रान्त व्यक्तियोंकी अधिकारस्थ भूमि आदिका विचार राजविचारक (Corregidors) द्वारा निपान होने-के लिये एभोरामें महासभा की गई। उनके पिताके राजत्य कालमें ब्रगञ्जाके इयुक फार्दिनन्दने खाधीनता प्राप्त करना चाहा था, इसःकारण उनका दमन इन्हें एकान्त आवश्यक जान पड़ा । उक्त महासभाके अधिवेशनका मुख्य उद्देश्य था फार्दिनन्द-प्रमुख सम्म्रान्त भद्र व्यक्तियोंका क्षमता हास । अतः उन लोगोंमें धीरे धीरे विद्वेष भाव प्रकाश होने लगा व्रगञ्जाको अ्यूक पर आक्रमण करना उनका मूल मन्त्र हुआ उन्होंने इयुकको राज-द्रोहिताके अपराघ पर दिएडत और भावद करके एमोरा नगरमें विचारके वहाने भेज दिया और वहीं १४८३ ई०में वे परलोकको सिधार गये। फार्दि-नन्द् (Duke of Viseu) जो राजाके निकट आत्मीय थे

सम्य्रान्त मद्रश्रीगोंके नेतृपद पर अधिष्ठित हुए। आंत्मीय होनेके कारण राजा उन पर भी विश्वास नहीं करते थे। ११वें छुईको राजनीतिके अनुवर्त्तां हो उन्होंने १४८४ ई॰ में अपने हाथसे सेतुवल नगरमें उनका प्राण संहार किया। ईस पर भी उनकी शोणितिपिपासा निर्वापित नहीं हुई। उन्होंने राजपदको निष्कण्टक करनेके लिये और भी असी भद्रश्रोगों (Nobles) का रक्तदर्शन किया। इन सब सहंशोन्द्रव मद्र व्यक्तियोंको अपने नेतोंसे ओट करनेमें राजाने विशेष कए पाया था। अब वे निविवाद शबु-पिशून्य हो राज्यशासन करने लगे। प्रजा उन्हें 'The Perfect king' नामसे पुकारने लगी।

यद्यपि उन्होंने अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये ऐसा नृशंस आचरण किया था, तो मी पुर्त्तगीजीको कभी भी आलससे दिन विताने नहीं दिया। डम हेनरीको शिक्षित नाविक सम्प्रदायने वड़े यत्नसे अपने अधीन समुद्रपथ होकर देश देश भ्रमण कराया था। गोल्ड कोष्ट (Gold C ast) में वाणिज्य फैलानेके लिये उन्होंने १४८४ ई०में पलमीना (Lamina or Elmina) नगरमें एक हुग वनाया । १४८६ ई०में वार्थछोमिड डियस उत्तमाशा अन्त-रीपका परिस्रमण कर अलगीआ उपसागरमें पहुंचे। १४८७ ई०में राजा प्रेप्टरने जानके अन्वेपण और भारत-वर्ष पहुंचनेके लिये एक दल सिजत नौसेना मेजी। उसी साल उन्होंने विशेष तत्त्वानुसन्धानसे पिद्री-डि-एमीरा और गञ्जालो पनिसको टिम्बको प्रदेशमें तथा उत्तर महा-सागर हो कर काथे (Cathay)में जानेका पथ निरूपण करनेकी इच्छासे माटिम् छोपँजको नाभा-जिमला द्वीप भेजा । यही उत्तर-पूर्व (North East Passage) पथके निद्भाणका प्रथम उद्यम है। ऐसी विचक्षणता रहते हुए भी राजाने १४६३ ई०में कलम्बसके म्रमण और अमेरिका दर्शनरूपव्यापारकी अलीक विवेचनासे उसको कार्यसे अव्याहति दे कर विपम भ्रमात्मक कार्य किया था। अपने राजत्वके शेष काल तक वे भास्को-डि-गामाके भारत-आक्रमणके लिये रणतरी सज्जा आदि विस्तृत ध्यापारींमें लिस थे । उन्होंके राजत्वकालमें पुत्त गाल और स्पेन राज्यके मध्य अनाविष्कृत-देशोंकी विभाग-व्यवस्था करके पोपने एक आदेशपत प्रदान किया। १४६० ई०में जेष्ठ पुत आफन्सोकी मृत्यु हो जाने से राजाको अपना जीवन

वीभ सा मालम पडने लगा। स्पेनराज फार्दिनन्दकी कन्या इसावेळाके साथ अपने पुतका विवाह दे कर वे जिस भविष्यत् आशा पर उत्फुहित हुए थे, अभी पुतके निधन पर वह आशा निराशाके अगाध जलमें डूव गई। मर्माहत हो राजाने १४६५ ई०में अपनी जीवनलीला शेप की। इसके बाद इस माजुपल "The Fortunate" पुर्तगाल-के सिहासन पर वैठे। जिस फार्दिनन्दकी (Duke of viseu) २य ज्ञानने निष्ठुरभावसे हत्या की थी, ये उन्हीं-के अन्यतम भाई थे। भास्को-डि-गामा, आफन्सो डि-आलवुकार्क, फ्रान्सेस्को अलिमदा आदि प्रधान प्रधान नाविक और योद्धाओंने नाना स्थानोंमें पर्यटन कर पुत्त-गाल-राजलक्मीको अतुल पेश्वर्यंसे भूषित कर दिया था। इस विषयमें राजाके खयं उद्योगी नहीं होने पर मी काष्टिलसिंहासन-अधिकारकी वासना उनके हृदयमें आप ही आप जग उठी। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उन्होंने आफन्सोकी विधवा पत्नी फार्दिनन्द-पुती इसावेळासे विवाह करना चाहा। नवपरिणीता पत्नीको खुश करनेके लिये वे पुत्त गालसे यहृदियों (Jews)-को को मार भगानेमें तैयार हो गये। यहृदियोंने पुर्त गालमें रह कर कभी भी कोई अपकार नहीं किया, उनका घ्यान हमेशा राज्यके मङ्गलकी ओर रहता था। आफन्सो-हेनरिककी असीम छपासे वे इतने दिनों तक पुत्र गाल-में निरापद्से रहते आये थे, इस कारण वत्त मान राजाकी भी उन्हें निकाल भगानेकी जरा भी इच्छा न थी, पर वे करते क्या, प्रियतमाने उन्हें अपने हाथका जिलीना वना लिया था। १८६७ ई०में शुम विवाह सम्पन्न हुआ। विवाहके वाद उन्होंने स्पेन-राजसिंहासनके उत्तराधिकारी होने की चेष्टा की। पर लौटती सालमें राजकन्या इसावेलाकी टोलेडी नगरमें अकरमात् मृत्यु हो जानेसे राजाकी भविष्यत् राज्य-आशा सदाके लिये विलुप्त हो गई। इस पर निक्त्साह न हो, उन्होंने फिरसे अपनी साली नेरियासे विवाह कर लिया। इस विवाहसे भी उनकी आशा पूरी न हुई। उनकी बड़ी सालीके पुत ५म चार्छस म्पेनके सिंहासनाधिकारी हुए। राजा जव अपने राज्यमें विवाह व्यापारमें लिप्त थे, उस समय भास्को-डि-गामा, केवल

(इन्होंने १५०० ई०में ब्रेजिलका आविष्कार किया), आलबुकार्क, अलमिदा, दुआर्चे पाचेको आदि प्रधान प्रधान पुर्त्तगीज नाविकगण भारतक्षेतमें पुर्त्तगीजकी गौरवरक्षा करते रहे। १५०१ ई०में जोहन-डि-नोभाने एसेन्सन (Ascension) द्वीपका और आमेरिगो भेस्पुची (Amerigo vespucei)ने अमेरिकाके राइओ-प्लाटा और पारा-गुई राज्यका आविष्कार किया। १५०६ ई०में इयुगो छोपेज दि-सिकुइराने मलका पर और १५१० ई॰में आल्युकार्कने गोआ पर अधिकार किया था । १५१२ ई०में फान्सिस्को सेनाने मलका द्वीपपुत्रका आविष्कार और १५१५ ई०में लोपेज सोआरिसने सिंहलके कलम्बो नगर-में एक दुर्गका निर्माण किया। १५१७ ई०में फार्णान्दो-पेरिज एन्द्रादा चीन साम्राज्यके काएटन नगरको जीत कर १५२१ ई०में पेकिननगरको खाना हए। १५२० ई०में मगेलान (Magalhao)ने जिस प्रणालीसे सुविधाजनक गमनपथका आविष्कार किया, वह आज भी (Straits of Magellan) उन्होंके नामकी घोषणा करती है।

१५२१ ई०को ३य जानने मानुएछके सिहासन पर अधिकार तों किया, पर २य जान द्वारा देशस्थ भद्रलोगोंकी
क्षमता हास हो जानेसे सभी छोग अपनी तथा देशको भछाई
भूछ कर राजाके विरुद्ध पड्यन्त रचने छगे। १७८६ ई०में
घोर फरासी राष्ट्रविद्धवके समय फरासी भद्र छोगोंकी
मानसिक अवस्थाने जैसा पछटा खायाथा अभी पुर्त्तगाछके भाग्यमें भी वैसा ही पछटा खानेको था। मारतीय
बाणिज्यधनसे राजकोष पर्याप्तकपसे पूर्ण रहनेके कारण
राजाने पुर्त्तगाळसे राजकर छेना विछक्कछ बंद कर दिया।
इसमें प्रजाकी विशेष सुविधा होने पर भी वे राज्यशासनकी यथेच्छाचारिता (Absolutism of the governका गरे विरक्त हो खदेशका त्याग कर भागने छगी।
वार वारके युद्धसे आलेमदेजो और आलगाभ प्रदेशकी भी
जनसंख्या घट गई थी।

१५वीं शतान्द्रीमें सुमहान् देशाविष्कारसे पुर्तगालकी जनसंख्या और भी घटने लगी। केवल युवकोंने ही मान्य और धनार्ज्ज नकी आशासे सैनिक वा नाविक हो समुद्रपथसे विभिन्न देशोंमें जा कर आत्मजीवन उत्सग किया था। कितने पुर्तगीजोंने भी स्त्रीपुत्रपरिवारको साध छे ब्रे जिल और मदिरामें उपनिवेश वसा लिया था। जो कुछ पुत्त गीज खदेशमें वच रहे, वे भी अपनी अपनी जमीन तथा घरको छोड़ कर वाणिज्यमें घनवान् होनेकी आशासे लिसवन नगर जा कर रहने लगे। पुत्त गीजों-को इस प्रकार विभिन्न देशोंमें जानेसे राजा, राज्यस्थ भद्र व्यक्ति अथवा सामरिक-कर्मचारियोंमेंसे किसीने भी नहीं रोका। अब वे डम हेनरिक द्वारा लाये गये अफ्रिकावासी क्रीतदासींसे अपनी अपनी जमीन आवाद कराने लगे। रोमराज्यके अधःपतन पर इटालीकी जैसी दशा हुई थी, अभी पुत्त गालके भाग्यमें भी वही हुई। वैदेशिक और शोपनिवेशिक कोठियोंमें कर्म-चारियोंके उत्कोचप्रहण और अत्याचारसे पुत्त गीजींकी अद्रुप्टलक्सी भागनेकी तैयारी कर रही थीं। इससे भी वढ़ कर यह, कि १५३६ ई०में "iloly office"की सहा-यतासे राजा जेसुइट् और द्र्डविधायक (Inquisition) सम्प्रदायी ईसाइयोंकी पुर्त गाल ला कर जनसाधारणके अप्रिय हो उठे। रोमके प्रधान प्रधान धर्मयाजकींके उनका पक्ष छेने पर भी पुत्त गाळवासी यहूदी खृष्टान (Neo-Christion) उनके विरुद्ध खड़े ही गयेथे। 'द्एडदातृ'-सम्प्रदायने पुत्तं गालका कुछ भी उपकार नहीं किया था, वरं चिरोप अपकार किया था। खुष्टान देखी।

१६वीं शताब्दीमें सारे यूरोपखएडमें विद्योन्नितकी जैसी पराकाष्टा प्रदर्शित हुई थी, पुत्त गालके अद्रुप्टमें अव वैसी होने न पायी। राजाके अनुप्रहसे दएडविधायक खृष्टानदलने प्रतिष्टालाम किया। राजा अपनी अवनित्की प्रयरक्षा न कर सके। १५५४ ई भीं उनके एकलौते पुतको मृत्यु हो जानेसे वे वड़े मर्मपीड़ित हुए। १५५७ ई भीं वे इस लोकका परित्याग कर अपने पौत सिवाधियनके लिये सिहासन छोड़ परलोकको सिधारे। इन्हींके राजत्वकालमें आल्यूकार्ककी डिउनगर जय, सेएड फान्सिस जेभियरका धर्मप्रचार और नानी-दा-कन्हाकी भारतशासनख्याति पुत्तं गीज इतिहासकी प्रधान घटना है।

तीन वर्षके वालक डम सिवाप्टियन पुत्त गाल सिहा-सन पर वैहे। दारुण गोलयोगके समय वालकके राजत्वमें जैसा विषमय फल घटा करता है, उनके भी राजत्वमें वैसा ही घटा। राजाके इच्छानुसार रानी

कार्डिनल हेनरी राजाके प्रतिनिधि और रक्षक हए। वालकराजके शिक्षक और राजमन्दी लुई तथा मार्टिमगन सामरा नामक दोनों भाई यथार्थमें सभी कर्मोंकी अध्य-क्षता करने छगे। १५६८ ई०में सवाछिग हो कर उन्होंने राजकार्य अपने हाथमें लिया। पहले हो पहल वे अफ्रिका पर आक्रमण करनेकी कामनासे १५७४ ई०में किउटा और टाञ्जियारस्नामक स्थान देखनेको गये। उसके सीभाग्यसे १५७६ ई०में मौली अहाद इन्न अवदुलाने २य फिलिएसे सहायता नहीं पा कर सिवाष्टियनकी शरण ली। उनका पक्ष ले कर राजाने मरकोके सुलतान अवदुल मालिकके साथ लड़नेका विचार किया। लड़ाईके सर्चके लिये उन्होंने अपने राज्यमें यहूदी-खृष्टानसे अतिरिक्त कर यसूल किया और कुछ रुपये कर्ज ले कर वे लड़ाईका सामान प्रस्तुत करने लगे। १५७८ ई०में कुछ सेना साथ छे वे अफ्रिकाके उपकूलमें जा धमके और मौली अह्मद्की सेनाके साथ मिल गये। अल्कशर-अल्कवीर नामक स्थानमें दोनों सेनाकी मुटमेड़ हुई। पुत्त गीज-राज युद्धमें परास्त हुए। सन्धिकी वात छिड़ी। मुसल-मानी-सेना शान्तिके लिये अपेक्षा करने लगी। इसी वीचमें सिवाष्टियन असीम साहससे अभ्वारोही मूर-सेना पर टूट पड़े। इस घोर युद्धमें सिवाप्टियन, मौली अवदुल मालिक और अन्यान्य पुत्त गीज-सेनापित यम-पुरके मेहमान वने। इस दारुण संवादके पुर्ताणल पहुंचने पर राजम्राता कार्डिनेल हेनरीने पुत्तंगालका सिहासन सुशोभित किया। १म हेनरी राजा तो हुए, पर सिहासनका अधिकार हे कर मानुपलके वंशघरींमें तकरार पैदा हुआ। हेनरीने लिसवनकी महासभा पर इसका विचार-भार सौंप दिया। कोइम्ब्राके विश्वविद्या-लयसे यही निश्चित हुआ, कि कैथरिन डाचेस आव व्रगञ्जा ही राजपदके अधिकारी हैं। किन्तु स्पेनरांज द्वितीय फिलीप रिश्वत देकर सर्वोंको वशीभूत करने लगे। खृष्टोभाव-दा-मौरा और प्राटीनियो पिनहेरो (Bishop of berria)-ने उनका पक्ष छे कर आजिखिनी वक्तृता-प्रभावसे पुर्त गाल-वासियों की अर्थ और भूम्यादि देना कवूल करते हुए वशमें कर लिया। १५८० ई०की ३१वीं जनवरीको हेनरीकी मृत्यु होने पर सवी ने २य फिलिए-को राजा बनाया।

सिहासन पर वैठ कर फिलीपने युद्ध वन्द करना चाहा। इसके लिये उन्हों ने ब्रगञ्जाके ड्रयककी व्रेजिल-राज्य और राजाकी उपाधि देना अङ्गीकार किया । अछावा इसके उन्हीं ने अन्दुरिया-राजपुत्रोंके साथ अपनी कन्याका विचाह दे कर व्रगञ्जाधिपतिको हस्तगत किया। सिंहा-सनके प्रतिद्वन्द्वियों को तो उन्हों ने किसी प्रकार शान्त किया, पर इधर राजा लुईके अवैधपुत एएटोनियो (Prior of Crato)-ने उल्लाससे उन्मत्त हो सान्तरिम नगरमें अपनेको राजा वतला कर घोषणा कर दी और अपने नामसे सिका भी चला दिया। पुत्त गीजोंके अर्थ-प्राचर्य रहने पर भी वे दण्डविधायक सम्प्रदायके अत्या-चारसे निस्तेज हो पडे थे। वह अत्याचार आज भी पुर्त्त गालवासी भूल नहीं सके हैं। इस कारण उन्होंने स्पेनराज फिलीपके विरुद्ध अख्रधारण करना नहीं चाहा। वे ५म चार्ल्सके पुत्र फिलीपके प्रतिशत दानादिकी वात पर निर्भर करके अपनी अपनी स्वाथसिद्धिकी आशा पर अरल थे। पुर्तेगीजगण पएटोनियोकी वात पर ताच्छिल्य-भाव दिखाने छगे। इयुक-आव आलभाने एक दल स्पेनसैन्यको छे कर पुर्त्तगालमें प्रवेश किया। अल्कएटा-के युद्धमें पएटोनियो पराजित हुए और फिलीपने अपनेको राजा वतला कर घोषणा कर दी।

फिलीपने राज्याधिकार प्रहण करके पुर्त गाल-शासनके लिये अच्छा प्रवन्ध कर दिया। १५८१ ई०की थोमरकी महासभामें उन्होंने पुर्त्तगालके शासन-खातन्त्रा, प्रजावर्गकी साधीनता और अधिकार-एक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करते हुए एक वक्तृता इस प्रकार दी,—'सभी समय महासभाका अधिवेशन आवश्यक है। यदि किसी विशेष कार्यका विचार आ पड़े, तो पुर्त्तगीज-महासभा उसकी निष्पत्ति करेगी। राज्यके समस्त कर्मचारीका पद पुर्त्तगीजके सिवा और अन्य ज्ञातिके लोग नहीं पावेंगे। पुर्त्तगालके सभी कार्मोकी देख रेख करनेके लिये राजाके साथ एक मन्तिसभा रहेगी।' इन्होंके शासनकालमें ४ व्यक्तियोंने मृत राजा डल-सिवाप्रियनका नाम प्रहण कर पुर्त्तगाल-सिहासन अपनानेकी कोशिश की। वे एक एकके पकड़े गथे और राजदण्डसे दिख्डत हो यमपुर सिधारे।

जो ६० वर्ष (१५८०-१६४० ई०) पुत्त गाल स्पेन-राज्यके अधीन था, पुत्त[ँ]गाल इतिहासमें वह the Sixty years captivity नामसे प्रसिद्ध है। ६० वर्ष वन्दि-भावमें रह कर पूर्त गालको कितनी मुसीवतें फोलनी पड़ी थी, उसकी इयत्ता नहीं । अङ्गरेजराजने १५६५ ई०में पुर्च गीजोंसे फेरोनगर छीन लिया और उसे लूटा। पीछे ओलन्दाज, अङ्गरेज और फरासीने उपर्यु परि पुत्त गीज उपनिवेश और उनको अधिकृत स्थानों पर आक्रमण करके वाणिज्याधिकार हथिया लिया । राजा फिलीपके उद्योगसे सुविख्यात रणतरी (The Spanish Armada) पुत्त-गाल उपकूलमें सजित हो इङ्गलैएड पर आक्रमण करनेके लिये अप्रसर हुई। किन्तु दैवक्रमसे एक भारी तूफान भाया जिससे वह छौहवर्मावृत रणतरी समुद्रगर्भेमें कहां विलीन हुई, किसीको मालूम नहीं। फिलीपके राज्य-शासनसे ही पुत्त गालकी अवनितका द्वितीय सोपान आरम्भ हुआ।

स्पेनशासनसे उत्त्यक्त हो पुत्त गीज लोग १६३४ ई०-को लिसवन नगरमें पहले असन्तोपके लक्षण दिखाने लगे। पीछे १६३७ ई०में एभोरा नगरमें विद्रोहिदलने राज-सैन्यको परास्त कर कुछ दिनके लिये राजकार्यकी परिचालना की थी। आखिर जब स्पेनराज फरासी और कैटलण विद्रोहमें उलके हुए थे, तव पुत्र गीजींकी यह समय विशेष सुविधाजनक मालूम पड़ा । पिद्रो-डि-मेडो-नशा फरटाडो, पएटोनियो और लुई-डि-अलमाडा आदि राज्योंके प्रधान प्रधान व्यक्तियोंके पड्यन्तसे एक राज-द्रोहिदल संगठित हुआ। १६४० ई०की १ली दिसम्बरको राजप्रासाद पर आक्रमण करके उन्होंने राजसेनाको परास्त किया। सर्वोने सलाह करके व्रगञ्जाके ड्यूकको राजपद ग्रहण करनेके लिये लिख भेजा। १३वीं दिसम्बरको उन्हें लिसवन नगरमें बुला कर राजपद पर प्रतिष्ठित किया गया। इसके वाद समस्त पुर्त्तगालवासियोंने उद्धत हो स्पेनवासियोंको राज्यसे मार भगाया । दूसरे वर्ष १६वीं जनवरीको लिसवनको महासभाके आदेशसे राजा ४थ जान पुर्त्त गालके राजा और उनके पुत्र थियोडोसस उत्तराधिकारी हुए।

पुर्तं गीजोंने स्पेनके विरुद्धचारी हो राज्य तो द्खल

कर लिया, पर खाधीनताकी रक्षा करनेमें अपनेकी असमधें समक उन्होंने सहायताके लिये इड्गुलैएड, हालेएड और फ्रान्समें आदमी भेजा। पहले पुत्त गालकी सीभाग्यलको पुत्त गाल-अद्धृष्टाकाशमें उज्ज्वलक्ष्मसे स्नेहधारा वरसती थी, पर पुत्त गीज उपनिवेशोंमें ओलन्दाजगण जो अपना आधिपत्य फैलानेके लिये युद्ध-विग्रहमें लिस ये उससे पुत्त-गालको विशेष कए भुगतना पड़ा था। राजा ४थ जानके शासनसे परितुए न हो कर उन्होंने मेजेरिन (Mazarin) के ड्यू कको पुत्त गालका शासनमार सौंपा और अपनेको पुनः फ्रान्सके अधीन रखना चाहा। इस समय फरासी और स्पेनयाडाँके साथ धमसान युद्ध चल रहा था। १६५६ ई०में राजा ४थ जानको मृत्यु हुई। उस समय भी स्पेन-फरासी युद्धका अवसान नहीं हुआ था।

राज्यके उत्तराधिकारी डम धियोडोसस (Prince of Brazil) पिताके पहले ही मर चुके थे, इस कारण राजा-के द्वितीय पुत ६ठे आफन्सो तेरह वर्षकी अवस्थामें राज-सिहासन पर अधिष्ठित हुए। राजमाताने राजकार्यका प्रतिनिधित्व अपने हाथमें लिया। यह रमणी खामीकी अपेक्षा बुद्धिमती और तेजिसनी थी। स्पेनराजके विरुद्ध युद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने मार्सल स्कोमवग (Marshal Schomberg) सैनिक शिक्षाका भार सौंपा। १६५६ ई॰में डम-एएटोनियो लुई-दि-मेनेजिसने पलवस नगरमें उन-लुई-दि-हारोको परास्त किया। युद-में जय होने पर भी पुत्त गालके लिये विशेष सुविधा न हुई। फरासियोंने मेजेरिनकी प्ररोचनासे पुत्त^रगालको सहायता देना नामंजूर किया । अव इङ्गलेएड-राज सुयोग पा कर घीरे घोरे अप्रसर हुए। द्वितोय चार्ल्सने पुर्त्त गीज-गजकन्या कैथरिन आव ब्रगङ्गासे विवाह करना चाहा । वे जानते थे, कि इस विवाहमें पुर्त गीज-राज-माता प्रचुर औपनिवेशिक-सम्पत्ति दहेजमें हैंगी। १६६१ ई०में विवाह स्थिर हो गया। सेएडविच के अर्छ (Earl of Sandwich) वधू छैनेके लिये १६६२ ई०में लिस-वन नगर आये। यौतुकमें इङ्गळेएडराजको टिझयर, वम्बई। और गल (Galle) नामक स्थान मिले तथा ओलन्दाज और पुर्त्तंगीजोंका विवाद मिटानेके लिपे र्ङ्गलैएडराज सेनासे सहायता क्र्नेमें सहमत हुए।

अंगरेजी सेनाके पहुंचनेके पहले ही स्पेनके साथ विवाद छिड़ गया । उसी साल राजपुतको सवा-लिंग घोषणा करके राजमाताने संसाराश्रमका परि-त्याग किया और मठमें जा कर वे अवशिष्ट जीवन विताने छगीं । यहां उनके परामशांनुसार काष्ट्रेज मेलहोरके काउएट खुजान् भास्कोन्साली राजकार्यकी परिचालना करने लगे। अङ्गरेजी-सेनाके पहुंचने पर राजमाताको आंशासे कान्देल मेलहरने काफी सेना इकड्डी की और उसके सेनापति हुए स्कोमवर्ग । इस विपुछवाहिनोको छे कर स्कोमवर्गन जो सब युदुव किये तथा राजा स्वयं उपस्थित रह कर जिन सव युदुश्रों में जयो हुए थे, उससे उनका 'विजयी' (Alfonso the victorious) नाम रखा गया । १६६३ मिलाक्नोरके काउएट-की सहायतासे स्कोमवर्गने पहले अप्रियाराज डन जानको परास्त किया, पीछे पभोरा नामक स्थान जीता। १६६४ ई०में कुरदाद-रोड्डिजो नगरमें पिद्रो जाक्वे-दि मग-लहें (Pedro Jaques de Magalhaes)-ने असुना (Ossuna)-के ड्रयकको परास्त किया। १६६५ ई॰में मेरायलभाके मार्किस मोण्टेने क्लैरोर (Montes Claros) युद्धमें और खुष्टेभाव दा-पेरेराने मिला-मिकोशरके युद्ध्यमं स्पेती-सेनाके ऊपर जयपताका फहराई। इस प्रकार क्रमशः विध्यस्त हो कर स्पेनराज हतवछ हो पड़े । दोनोंके वीच क्षणस्थायी एक सन्धि हुई, पर वह उतनी फलदायक न निकली । काप्टेल मेलहरने अपनी तथा पुर्त्त गालको क्षमता बढ़ानेके लिये पुर्त्त गालराजके साथ फरासीराजकन्या एलिजाबेथ (Marie Francoise Eli-abeth Mademoiselle d' Aumale)-का १६६६ ई॰में विवाह कर दिया। यह रमणी फरासीराज ४थें हेनरीकी पीती और साभय-निमूके ड्यूककी कन्या थी। फान्सके अधिपति १४वे छुईने इस विवाहका अनुमोदन किया । विवाहमें विपरीत फल घटा । काप्टिल-मेलहरने अपने पांचमें अपनेसे ही कुडारी मारी । नववधूने स्वामीको पसन्द नहीं किया । वे राजभ्राता दम पिद्रोके प्रेममें फंस गई। प्रायः चौरह मास कलह और घृणित स्वामिसहवासमें समय विता कर उन्हों ने विवाहवन्धन-विच्छेदके लिये लिसवनके श्रेष्ठ-धर्ममन्दिरमें आवेदन किया। इधर डम पिद्रोने अपने भाईको राजप्रासादमें वन्द करके १६६८ ई०के जनवरी मासमें शासनभार अपने हाथ लिया। १३वीं फरवरीको उन्होंने स्पेनराजको क्युटा राज्य देकर सन्धि की। २४वीं मार्चको पोपकी सम्मतिसे रानीका खामित्याग खीकृत हुआ। २री अपिलको रिजेय्ट डमपिद्रोके साथ उनका विवाह हो जानेसे काप्टल-मेलहर फ्रान्सको भाग गये। दुर्भाग्यक्रमसे ६ठें आफन्सो वन्दी हो कर टार्सिरा और पीछे सिण्द्रामें निर्वासित हुए। यहीं पर १६८३ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उसी साल रानीकी भी मृत्यु हुई थी।

आज तक पिद्रो राजाभिभावक हो राजकार्यकी पर्या-लोचना करते आ रहे थे। १६८३ ई०में आफन्सोकी मृत्युके वाद वे पिद्रो नामसे पुत्त^९गालके राजा हुए। १६८७ ई॰में उन्हों ने मितके अनुरोधसे पुनः मेरिया सोफियाके साथ विवाह करना चाहा। स्पेनराज २य चार्ल्सको मृत्युके वाद स्पेनका सिंहासन छे कर विवाद पैदा हुआ। इस समय उन्हों ने फरासीराज १४वें लुईके पौत ५म फिलिपको सिंहासन देनेका विचार किया तथा १७०१ ई०में फरासी-नौसेनादळको टेग्सनदी-के मुहाने था कर रहनेका हुकुम दिया। इङ्गलैएडकी Whig मन्तिसमा पुत्त गालके पक्षपातित्व पर विरक्त हुई। जान मेथुअन (Right Hon, John Methuen) नामक कोई व्यक्ति राजकीय और वाणिज्य-सम्पर्कीय कार्यनिष्पत्तिके लिये सन्धिके उद्देश्यसे भेजा गया। १७०३ ई०में राजाने उक्त सन्धिपत पर (Methuen Treaty) हस्ताक्षर किया । स्पेनराजसिंहासन छे कर जो युद्ध हुआ, इतिहासमें वह Wars of the Spanish Succession नामसे प्रसिद्ध है। १७०४ ई॰में पुत्त-गीज और अङ्गरेजी सेनाने मिल कर सालमाटेरा और भालेन्सो पर अधिकार किया। दूसरे वर्ष राजा डम पिद्रो अपनी वहन कैथरिन पर (Queen Downger of England) राजप्रतिनिधित्व अपंण कर आप मृत्यु-शय्या पर शायित हुए। इधर अङ्गुरेजी सेनापति लार्ड गालवे और पुर्त्त गीज सेनाध्यक्ष जोया-दा-सुजा तथा मार्किस दास मिनसने मिलं कर कमशः अल्काएदारा. कोरिया, द्राक्जिलो, ह्राकेन्सिया, क्युदाहरिंदुजा और आमिला जीता तथा कुछ कालके लिये मादिद नगर पर अधिकार किया। राजा रोगशल्या पर शायित रहनेके कारण ये सब विषय कुछ भी जान न सके। वलके क्षयसे वे दिनों दिन अवसन्न होने लगे। १७०६ ई०को अल्काल्यरा नगरमें उन्होंने मृत्युसे आलिङ्गन किया। सुनियमसे राज्यशासन करके उन्होंने मितव्यियताका अभ्यास कर लिया था। १६६७ ई०में उन्होंने महासमा (Cortes)-का अधिवेशन वन्द कर दिया। १८२८ ई०के पहले और इस सभाका अधिवेशन होने नहीं पाया।

डम पिद्रोकी मृत्युके वाद उनके पुत ५म जानने कैथ-रिनसे राज्यभार ग्रहण किया। पितृवन्धु ड्यूक-आव-काडाभलके परामर्शानुसार वे स्पेनराज ५म फिलीप पर आक्रमण करनेके लिये उद्योगी हुए। इस समय काडा-भलके कहनेसे राजा जान अर्थयसम्राट् १म ल्युवोल्डकी कन्या आर्क-डचेस् मरियानासे विवाह किया। पुत्त^९-गालराजने अपनी दलपुष्टि तो की, पर इससे कोई विशेष फल नहीं देखा गया। १७०६ ई॰में पुत्त गीजगण कैया (Caia) और १७११ ई॰में राव-डि-जेनिरो नगरमें अच्छी तरह स्पेनसेना द्वारा परास्त हुए। अनन्तर उद्गे क्रसन्धि (Treaty of Utrecht)-के दो वर्ष वाद अर्थात् १७१५ ई॰को मादिद नगरमें दोनों राज्यके वीच सन्धि स्थापित हुई। १७१७ ई॰में पोपकी अनुमतिसे राजाने तुर्कियों के विरुद्ध युद्धयाता की। विधर्मी तुर्कसेना मारापन अन्तरीपके पास ही पुत्त गीजोंसे परास्त हुए। पूर्वोक्त सन्धिके अनुसार फिलीपके पुत डम फार्दिनन्दने पुत्त-गालराजकन्या मेरिया वर्वरासे और इम जोसेफने स्पेन-राजकन्या मरियानासे विवाह किया। राजाने पोपको प्रचुर अर्थ दिया था, इसीसे पोपने लिसवनके आर्क-विशापको पेद्रयार्क -पद प्रदान किया। राजा भी उसके साथ साथ 'फिडेलीसिमस' (Fidelissimus of the most faithful)-की उपाधिसे भूषित हुए !

१७५० ई॰में पिताकी मृत्यु होने पर डमजोसेफ पितृसिहासनके अधिकारी हुए। १८वीं शताब्दीमें प्रधान राज्ञनैतिक सवष्टियो-दा-कमलहो (Duke of Pombal) उनके राज्यशासन कार्यमें व्यापृत थे। राजकार्यमें विरोध पारदर्शिता दिखा कर राजमन्तीने राजाका मन चुरा लिया। १७५५ ई०फी १छी नवम्बरको भयानक भूमि-कम्पमें विशेष वस्ताके साथ उन्होंने प्रजाका असाव दूर किया था। इसीसे वे राज्यके सर्वमय कर्ता और सर्वों के श्रद्धापात हो उठे। १६५६ ई०में टाभोरा षड्यन्तसे व्यतिव्यस्त हो कर उन्होंने जेसुइट सम्प्रदायको दमन करनेका सङ्कृत्य किया। १७६६ ई०में राजाकी पुनः हत्या करनेकी चेष्टा की गई। अन्तमें उन्होंने १७७३ ई०में उक्त सम्प्रदायका रोमकी सन्धिक अनुसार समूख दमन किया।

१७६२ ई०में जब स्पेनराज सप्तवर्षथापी युद्धवित्रहमें (Seven years' war) लित थे। उस समय मार्किस-सिरिया नामक किसो स्पेन-सेनापतिने पुर्त्तगाल पर आक्रमण करके व्रगञ्जा और अलमिदाको कतह किया। पुर्त्तगाल-राजमन्त्री पोम्वलने इङ्गलैएडकी सहायतासे स्पेनियाडोंको भेलिन्सिया-अल्काएटारा और भिला-भेल्हा नामक स्थानमें परास्त किया। १७६३ ई०की १३वीं फरवरीको दोनों दलमें शान्ति स्थापित हुई। राजा जोसेफके राजत्वके शेपकालमें दक्षिण-अमेरिकाके सेका-.मेएटोका अधिकार छे कर पुनः स्पेनराजके साथ विवाद खड़ा हुआ। यह गोलमाल मिटने भी नहीं पाया था, कि १७७७ ई०में उनका प्राणवियोग हुआ। उनके केवल ४ कन्या थीं जिनमेंसे वड़ी डोनामेरिया फ्रान्सिस्का राज-.भ्राता डम पिद्रोको ब्याही गई थीं। अब नही ३य पिद्रो राजा कह कर घोषित हुए। किन्तु राजा और रानी दोनोंके दुर्वलताका परिचय देनेसे विधवा रानोके हाथ राज्यशासन-भार सौंपा गया । उन्होंने पोम्बालको राज्यसे निकाल भगाया।

जव पुर्त्तगालकी आस्यन्तरिक अवस्था इस प्रकार थी, फरासी-राज्यमें उस समय (१७९६ ई०में) राष्ट्र-विश्वव उपस्थित था। सभी रानीके शासनके विरोधी हो गये। इधर रानीके खामी और ज्येष्ठ पुत डम जोसेफ कराल कालके गालमें पितत हुए। रानीका दिमाग विल-कुल खराव हो गया। अतः जनसाधारणके अनुरोधसे उमजान १७६६ ई०में राज्यके प्रकृत अभिमावक हुए। जो सव पुर्त्तगीज फरासियोंको मतानुसरण करके उत्तेजित

हो गये थे अथवा पुर्तगीज राज्यमें जो सब फरासी-चिद्रोहिताक उत्तेजक समभे जाते थे, वे सभी निर्जित और ताड़ित हुए।

जनसाधारणके आग्रहसे जान फारविश-स्केल्टरकी विधिनायकतामें ५००० पुर्तगीज सेना पूर्व पिरिनिजकी और ४ नौसेनावाही जहाज मार्किस नीजाके अधीन अंग-रेजींसे मिलनेके लिये मूमध्यसागरमें भेजे गये। स्केल-टरके फरासी सेनाके साथ विस्तर युद्ध करने पर भी १७६५ ईं०में उन्होंने देखा, कि गोड्य (Godoy, Prince of the Prace) की अध्यक्षतामें स्पेनगवर्मेण्टने पुर्व-गालराजकी मिलता भूल कर वानेल नगरमें फरासी-विध्वकारियोंके साथ मिलता कर ली है।

१७६६ ई०में सन हल्डेफन्सोकी सन्धि होनेके वाद स्पेनराजने अङ्गरेजों के विरुद्ध युद्धकी घीषणा कर दी। स्पेन-सेनाके पुत्त गीज सीमान्त पर उपस्थित होनेसे पुत्तं गोजो ने अंगरेजराजसे सहायता मांगी। चार्ल्स प्टुवार्ड ससैन्य वहां पहुंच गये। आखिरकार स्पेन-राजको मध्यस्थतामें फरासीके साथ सन्धिका प्रस्ताव चलने लगा, पर सन्धि न हुई । १८०० ई०में महा-वीर नेपोलियनके आदेशसे उनके माई लुसीन दोनापार्ट (Lucien Bonaparte) माहिद नगरमें आये और उन्हों-ने पुर्त्त गाळराजको अंगरेजों से मितता तोड़ देनेके लिये सूचित किया तथा जिससे फरासी वणिक् छोड़ कर अङ्ग रेज आदि अन्यान्य जातियां पुत्त गीज वन्दरमें वाणिज्य न कर सके, यह भी कहला भेजा। पुर्त्तगीज मन्त्रियोंने उन-की वात पर कान नहीं दिया। अतः लेकलार्क (Leclero) के अधीन फरासी सेना स्पेनदेशमें घुसी । ओलिमेआ केस्पमेयर, आरोज्जे स और पलोर-दा-रोजा नामक स्थान विना खून खरावीके स्पेनियडॉके हाथ लगे । आखिर स्थानमें वैडाजसमें दोनों दलके बोच सन्धि हुईं। उस सन्धिकेअनुसार पुत्तं गीजोंने स्पेनराजको स्रलिभेजा प्रदेश और पारी नगरकी सन्त्रिके अनुसार फरासीराजको आमेजन तकका अधिकार छोड़ दिया था।

वैडाजसकी सन्धिसे नेपोलियनका जी नहीं भरा। मन ही मन वे- पुत्त गालराज्यके ध्वंसका उपाय सोचने लगे। पुत्त गालको युद्धभंमें उत्ते जित करनेके अभिप्रायसे- उन्होंने लेनिस (Lannes) नामक एक फरासी सेना-पतिको लिसवन नगर मेजा। लेनिस सभी कार्य प्रयु-के आदेशसे किया करते थे। इङ्गलैएडके पक्षपाती मन्तिदलको उन्होंने विदा कर दिया। पुत्त गालराजको इङ्गलैएडके विरुद्ध उत्ते जित करनेके लिये नेपोलियन-ने १८०४ ई०में जूनो (Junot)-को मेजा। यूरोपके नाना स्थानों में युद्ध होनेके कारण उन्हों ने पुत्त गाल-राजसे उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य कराना नहीं चाहा। केवल उन्हें निरपेक्ष रहने दिया। १८०७ ई०में नेपोलियन अष्ट्रिया, प्रूसिया और रूपिया जीत कर पुत्त गाल ध्वंसका उपाय सोचने लगे।

जूनोने फरासी और स्पेनवाहिनी साथ छे पुर्त गाल पर आक्रमण कर दिया। एक दल स्पेन सेनाने मिन्हों और अलेमटेजोंको दखल किया। यह संवाद राज-प्रासादमें शीघ्र हो पहुंचा। राजा किंकर्त व्यविमृद्ध हो इघर उघर ताकने लगे। अङ्गरेज-सेनाध्यक्ष सर सिडनी स्मिथने उन्हें सलाह दी, कि अभी राजप्रतिनिधि और रानीको ब्रेजिसमें जाना ही अच्छा है और वे खयं विपष्टु-समुद्रमें पुर्त गालको रक्षा करेंगे। १म मेरिया और उम जान तत्त्वावधान-सभाके हाथ पुर्त गाल सींप कर अङ्गरेजी जहाजसे अमेरिका भाग गये। अङ्गरेजी नौसेनाके टेग्स नदीके मुहाने पहुंचते न पहुंचते परिश्रान्त फरासी सेनाने आ कर लिसवन पर अधिकार जमाया।

पुर्त गाल पर गोटी जमा कर जूनोने देखा, कि यहां के सभी लोग फरासी-मतक पक्षपाती हैं। साधीनता-प्रयासी मान्यगण्य व्यक्तिगण सभी उनके दलमें मिल गये। मार्किस अलोणीन ससैन्य आ कर उनकी अधीनता खीकार की। रिजेन्सी-सभा (Council of Regecy)-ने प्रजाका मनोभाव समक्त कर उनके विरुद्ध होना नहीं चाहा। जूनोने पुर्त गोजों से राज्यशासनभार प्रहण कर राजकीय पर कब्जा किया और पुर्त गालराज्यको अपने सेनापितयों के वीच वांट दिया। १ली फरवरीको उन्हों ने प्रगञ्जा राजवंशका राज्य शेय हो गया ऐसा कह कर तमाम घोषणा कर दी। उधर व्रगञ्जाराजसिंहासन पानेकी आशासे उन्होंने पुर्तगीजोंको सान्त्यना देनेकी चेष्टा की। नेपोलियनने युद्धके ज्ययस्वस्य पुर्त गीजों से ४ करोड़

फ्राङ्क सिको मांगे। जूनोको वहुत कहने सुननेसे २ करोड़ सिक्के से ही रिहाई मिल गई। जूनोने पुत्त गाल-का राजपद्प्रार्थी हो कर सम्राट्को सूचित किया। इधर पुर्त्तगालमें फरासी और स्पेनी सेनापतियों-के वीच विवाद उपस्थित हुआ । जूनो लिसवनका परित्याग कर भाग चले । राजकाय अपरोंके विशप-प्रमुख प्रतिनिधि-सभाके हाथ सौंपा गया। उक्त याजक-प्रवरने अङ्गरेजोंकी सहायता मांग भेजी। इतने दिनों तक सेनापतियोंके शासनसे सभी पुत्त गालवासी तंग तंग आ गये थे । सर्वोंने फरासियोंको मार भगानेका दूढ़ सङ्ख्य किया। सीभाग्यवश इङ्गलैएडराजने विशपकी वात पर कान दिया । सर आर्थर बेलेस्ली धोडी-सी सेना है कर पुत्त गालमें आ धमके। मण्डेगो नदी पार कर वे वलवलके साथ लिसवनकी ओर खाना हुए । १८०८ ई॰की १७वीं अगस्तको उन्हों ने रेलिशा-नगरमें लाबोदे (Laborde)-को और २१वींको भीमपटा नगरमें जुनोको दलवल समेत परास्त किया। फरासियों-होने पर सिण्डानगरके अधिवेशन के पराजित (Convention of Cintra)-में यह स्थिर हुआ, कि जुनो अपने अधिकृत दुर्गादिको पुत्त⁶गीजने हाथ सींप कर पुत्त गालसे चले जांय।

इस प्रकार विना आयासके फरासीशासनसे उत्त्यक्त हो पुत्त गीजो ने पुनः राजरक्षणी-सभा (Regencey)-की प्रतिष्ठा की और राज्यके सामरिक विभागकी उन्नतिके लिये डिमङ्गी एएटोनियोंने डिसुजा कोटिनहे नामक व्यक्तिको इङ्गलैएड मेजा और वहांकी मन्त्रिसभासे एक उपयुक्त सेनापतिको शिक्षक-रूपमें भेज देनेका अनुरोध किया । तदनुसार मान-नीय जे सि भिलीयर और मेजर जेनरल वेरेसफोर्ड छिसवनमें उपस्थित हुए । पुत्त गीजसेना इस प्रकार शिक्षित और अङ्गरेजपरिचालित होने पर भी फरासियों-से हमेशा भय साया करती थी । करुणाके युद्धमें सर जान मूरके पराभव और माशल सल्टकी अपर्टी-विजयसे पुर्त्तगीजगण विचलित हो गये। आखिर वेलेस्लीकी अध्य-क्षतामें पुत्त गोजसेनाने सल्टको अपरोंसे मार भगाया। इसके वाद मेसिनाके युद्धमें पुत्र गोजोंने सचसुच वीर-

जीवनका परिचय दिया थां। दक्षिण फान्सके समी
युद्धोंमें विशेषतः सेलामाङ्का और नेमिलेके युद्धमें वे
फरासीके विरुद्ध अल्लाधारण कर अपनी लुम-साधी-नताका पुनरुद्धार करनेमें समर्थ हुए थे। यूरोपखएडमें
यही पेनिनसुलाका युद्ध नामसे मशहूर है।

युद्धावसानके वाद ही अर्थात् १८१६ ई०में. उन्माद व्रस्ता रानीः (म मेरियाकी मृत्यु होने पर राजप्रतिनिधि छठें जान नामसे पुर्त गालके सिहासन पर वैठे । रानी जीआकुइना (Carlota Joaquina) उच्चाभिलायसे प्रणोदित हो राजाके विरुद्ध पड्यन्त करने लगी । इसके पहले प्रतिनिधिके कार्यसे सभी असन्तुष्ट हो गये थे । अङ्गरेज सेनापति सर चार्ल्स म्दुवाई और मार्सल वेरेस्फोर्डने पुत्त गालका शासन-भार अपने हाथमें लिया । दारुण विपद्के समय क्या युद्धभित्रमें क्या राजसभा वहांकी प्रजा अङ्गरेजका शासन सहा तो करती थी, पर शान्तिके कोमल कोड़ पर वैदेशिकका प्रभुत्व उन्हें अच्छा नहीं लगता था। पुर्त-गालकी साधीनताके लिये सभी पुत्त गीज वह्रघपरिकर हुए । १८२० ई०मे वेरेस्फोर्डके पुत्त गालमें रहनेसे उनका:मनोरथ पूरा हुआ । पुर्त्त गीजोंने अङ्गरेज कर्म-चारियोंको राज्यसे निकाल दिया और १८२२ ई०मैंः एक नई प्रतिनिधि-समा तथा एक नई साधारण सभा; (New Constitution) संगठित की । सभाकी आज्ञासे पयुडल प्रधा (Feudalism) उठा दी गई और एक नई न्यवस्था की गई । इस समय इङ्ग्लैण्डेश्वरने राजा जानसे राज्यमें लीट आनेका अनुरोध किया। राजा जान अपने छड़के पिद्रोको ब्रे.जिल सिहासन पर विठा आप पुत्त[े] गालको ओर अप्रसर हुए । राजा जानके पुत्रके परामर्शानुसार नृतनः समाके पक्षपाती होने: पर भी रानी और उनके लड़के इम मिगुएल उनके विरुद्ध काय करने लगे। अतः वे लिसवन नगरसे निकाल ्दिये:ग्येग, उधर वे भी निश्चिन्त हो कर नहीं वैठे। राजाके विपक्षमें पुनः पड्यन्तः करके उन्होंने राजवधु मार्किस , साव- लीले (Marquis of Loule)-की हत्या कर झली और राजमन्त्री पलमेला तथा इत्ये गुजा प्रासादके मध्य अवस्तः किये गये। वैदे-

शिक मन्त्रियोंक विशेष उद्योग और सहायतासे राजां-ने पुनर्मु कि पाई । पछमेठा पुनः मन्त्रिपद पर अधिष्ठित हुए । इसके वाद राजा, रानी और पुत्र मिगुपछको साथ छे ब्रे जिलको चल दिये । वहीं १८२६ ई॰में उनकी मृत्यु हुई । वे अपनी सम्पत्ति वालिकाकन्या मेरिया इसा बेलाको दे गये ।

ब्रे जिलाधिपति ४थँ डम पिद्रो पुर्त्त गालके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। उन्होंने अङ्गरेजमन्त्री सर चार्त्स ष्टुवार्डको सनदपत लिख कर पुत्त गाल मेजा,—"यदि ग्लोरिया अपने भाई डम मिगुपलसे विवाह करे और मिगुपल नूतन समा- (New constitution)की कार्यावलीका अनुमोदन करे, तो मेरिया सिहासन पा सकती हैं।" यह वात मन्त्रिसभाकी स्चित कर उन्होंने अपनी कन्या डोना मेरिया-दा-कोरियाको पुर्तंगाल सिहासनकी उत्तराधिकारिणी ठहराया। सनद् पा कर महासमा वड़ी प्रसन्न हुई और पलमेला भी प्रधान मन्त्रि-पद पर नियुक्त हुए। १८२७ ई०में राजाने मूर्वतावशतः मिगुपलको राजप्रतिनिधि पद पर अभिपिक्त किया। उद्याः भिलापी मिगुपलने प्रजासे सहायता पानेकी आशासे उत्फुल:हो अपनेको एकेश्वर राजा वतला कर तमाम घोपणा कर दी। पलमेला, सालदान्हा, भिलाफ़ोर, सम्पियो आदि दलवळ समेत निर्वासित हुए ।; इङ्गलैएड जा कर वे अपना दुखड़ा रोये। डयूक आव वेलिस्न और टोरी मन्तिसभाने मिगुएलके कार्यका अनुमोदन करके उनकी वात.पर जरा भी ध्यान न दिया। अतः भन्तमनोरथ हो पलमेला, काउएट भिलाक्लोर और जीसे पएटोनियो गारेरोः प्रतिनिधि हो कर वालिका रानीकी ओरसे टर्सिरा (Azores) द्वीपका शासन करने;छगे ।

१८३१ ई०में उम पिद्रो ब्रेजिलके राजसिंहासनको व्याने. वालकपुतके हाथ सौंप कर आप लएड़त नगरमें अपनी कन्यासे मिलते चले गये। वहांसे वे अपने भाई मिगुपलका दमन करनेके लिये उद्योग करते लगे। आखिर एजासीमें आ कर उन्होंने समवेत सैनिकमएड़लीको अध्यक्षतामें काइएट मिलाफोरको नियुक्त किया और कसान सर्टीरियस नौ-सेनापित हुये। १८३२ ई०के जुलाई मासमें इम. पिद्रो दलबलके साथ अपर्टी नगरमें आ

धमके। दोनों पक्षमें घमासान ळडाई छिड़ी। अक्तूवर-मासमें सटोरियसने जलपंथमें मिग्रपलको विशेषकपसे परास्त कर वदला चुकाया। १८८३ ई०में मेजर जैनरल जीहन कालों सालदानहाने फरासी-सेनापति वोर्मी (Bourmont) परिचालित मिगुपलसेनाको अपर्टी नगरमें परास्त किया। काउएट भिलापलोरने अपटोंसे अलगार्भ प्रदेशमें जा कर तोलज जोदोको पराजित किया और वहांसे ससीन्य अप्रसर हो कर छिसवन पर अधि-कार जमाया । उधर कप्तान चार्ल्सने नेपियर परिचालित वाहिनी सेएट भिनसेएट अन्तरीपके अदूरवर्त्ती जलपथर्मे मिगुपलसेनाको हराया । उसी साल रानी मैरिया लिसवन आई। पिता पिद्री उनके प्रतिनिधि रूपमें राज्य-शासन करने लगे। इङ्गेलीएड और फान्सकी रानीने श्य मेरियाका पक्ष लिया । इस समय मिलित स्पेन और पुर्रा-गीज सेनाकी सहायतासे, विभिन्न सेनापतियोंकी कार्य-कुशलतासे टोरिस, नीभास, अलमाष्टर, वेइरा, द्रास-अस-मोण्टे, आसिसिरा (Asseiceira), अलेमदेजो और पभोरामएटके युद्धमें मिगुएल दलवल समेत परास्त हुए । अन्तमें डम मिगुएछने आत्मसमप्ण किया । शर्त यह उहरी कि वे और उनके वंशधरनण पुत्त गाल राज्यमें फिर कमी भी प्रवेश नहीं कर सकते।

१८३४ ई०में रानी २य मेरिया सर्यानी हुई। उम पिद्रो पेसे दुःसह युद्धध्यापारमें लिप्त रहनेके कारण क्रमशः क्लान्त हो पड़े। अतः आराम और अवकाश लेने-की कामनासे वे लिसवनके निकटवर्ती के लुज (Queluz) प्राममें जा कर रहने लगे। यहां छः दिन रहनेके वाद परिश्रम और वलक्षयजनित दुर्वलतासे उनकी मृत्यु हुई।

पिताको मृत्युके वाद रानी २य मेरिया पन्द्रह वर्षको उमरमें पुर्त गालसिहासन पर वैठी। पलमेलोको शासनसे प्रायः सभी विरक्त हो गये थे जिससे एक विशिष्ट दलकी एपि हो गई थी। वोनों दलको मनमुदावसे राज्यमें महाविश्वद्धला उपस्थित हुई। वीच वीचमें दो पक छड़ाई भी छिड़ गई। १८४७ ई०में प्राणाडा महासमा (Convontion of Granada) की सन्धिके अनुसार दोनोंमें शास्ति स्थापित हुई। किन्तु उसके साथ साथ मिगुष-

लाइट' (Miguelites) दस्युदलने पुनः पुत्तं गालमें अत्याचार करना आरम्म कर दिया।

१८३५ ई०में रानी मेरियाने अगप्टस चार्ल्स यूजिन नेपोलियन (Duke of Lenchtenberg)-से विवाह किया। दो ही मांसके भीतर यूजिनकी मृत्यु हो जानेसे रानीने पुनः प्रिन्स फार्विनन्द (of Saxe Coburg-G-tha, The first king of the Belgians)-से विवाह किया।

१८५३ ई॰की १५ वीं नवस्वरको मेरिया परलोकको सिधारीं। पीछे उनके वड़े लड़के ५म उमकी नवा-लिगी तक उनके पिता (King consort) २य उम फार्दिनन्द पुतके अभिमावक हो कर रहे।

१८५५ ई०में पिद्रोने सवालिग हो कर राज्यशासनका मार अपने हाथ लिया। १८५७ ई०में उन्होंने होहेन- जोलारण-राजपुती ष्टिफानोसे विवाह किया। दासकय- विकयकी प्रथाको रोकनेका संकल्प करके फरासी-गण अफ्रिकाके उपकूलकी तलाश करने लगे। मोजा- मिवकवासी पुत्त गोजोंने फरासी-रणपोतको रोक रखा। फरासी-सम्राट् ३य नेपोलियनने आदमिरल लामो (Lavaud)-के अधीन एक दल नौ-सेना मेज कर क्षतिपूर्तिके लिये रुपये वस्तुल कर लिये। १८६०-६१ ई०में यहां विस्विका और पीतज्वरका भारी प्रकोप था। १८६१ ई०के नवम्बर मासमें राजा, उनके भाई इम फार्दिन्द और डम जानको विस्विका रोगसे मृत्यु हुई। इनके शासनकालमें जोहन वैप्तिस्ता, एख्टोनियों केलि- सियानो और लुई रैवेलको सहायतासे साहित्य, इति- हास और विद्याशिक्षाकी विशेष उन्नति हुई थी।

डम लुईने राजा हो कर इतालीराज मिक्र मानुएल-की कन्या पायाका पाणिप्रहण किया। पलमेली आदि प्रधान प्रधान राजनैतिक और वीरपुंक्षणण एक एक कर कराल कालके शिकार बनते गये। इनके परवसी इयूक आव लीले आगुइयार, मार्किस आमिला, पर्टोनियी मानुपल आदि व्यक्तियोंने राज्यशासनका नेतृत्व प्रहुण किया और युद्धविग्रह मूल कर राजनीतिक कार्यमें मन दिया। १८७० ई०में राजाने राजकार्यसे अवसर देनेके लिये बृद्ध सालदान्हाकी दृतक्रपमें लएडननगर मेकां। यहां राजकायंमें ध्यापृत रह कर १८७६ ई॰में उनकी मृत्यु हुई। १८७८ ई॰में हाउसआव पियर्सकी पुनर्गठन हुई थी। इनके राजत्वकालमें सेपीपिराटे रवाटो आइमेन्स और वृटो कपेलो आदि भ्रमणकारियोंने मध्य अफ्रिकाके स्थानोंका गृहतत्त्व आविष्कार करके अफ्रिकाराज्यके श्रीवृद्धिका पथ उद्घाटन किया। रिजिनरेडर (Hegenerdor) दलके नायक फोएटे पेरिरा डि मेली १८७१-७९, १८७८-८२ और १८८३ ई॰में महामन्तिपद पर अधिष्ठित थे। उन्हींके यहासे रेलपथ तथा नाना विषयोंको उन्नति हुई थी।

१८४८ ई०में हार्कु इलेनी प्रणीत पुत्तैगालका इतिहास पहले पहल मुद्रित हुआ था। १८८० ई०में प्राचीन कवि कामिनके उद्देशसे एक जातीय महोत्सव आरम्म हुआ।

लुईकी मृत्युके वाद इम कार्लस (Domearlos)
१८८६ ई०की १६वीं अक्टूबरको राजसिंहासन पर अग्निप्रित हुए। १८६४ ई०में उनका जन्म हुआ था।
१८६३ ई०में उन्होंने फरासोरमणी पमिलीका पाणिग्रहण
किया। पुर्तगालके उत्तराधिकारी और राजवंशधर लुई
(Prince Royal Luiz Friippe Duke of Braganza)
ने १८८७ ई०की २१वीं मार्चको जनमग्रहण किया था।

इस समय पूर्व और मध्य अफ्रिकामें उपनिवेश छे कर इङ्गुळैएड और पुर्त्तगालके साथ मनमुराव रहा। पीछे १८६१ ई०के मई मासमें दोनोंके वीच सन्धि स्थापित हुई। वूअर-युद्धके आरम्भमें पुर्तगालने किसीका पक्ष नहीं लिया था। १८६२ ई॰में राजस्व विषय से कर पुर्त-गालमें विवाद खड़ा हुआ। वैदेशिक ऋणके कारण इङ्गळेएड और जर्मनीके साथ पुर्तगालका विवाद होने पर था, पर हिञ्जेरिविरोकी चेष्टासे वह आग धधकने न पाई। इस समय देशकी शोचनीय अर्थनीतिक अवस्था ले कर कई जगह विद्रोह होता देखा गया। इनमेंसे १६०३ ई०के जनवरी मासका फण्डेओका विद्रोह विशेष उद्छेखयोग्य है। १६०३ ई०की २३वीं अप्रिलको एक वल अभ्वारोही और गोलन्दाजीने मिल कर साधारण तन्त्रकी घोषणा की । किन्तु यह विद्रोहानल बढ़ने नहीं पाया, शीघ्र ही शान्त किया गया। पार्लियामेख्टको १६०६ ई० सितम्बर मासके अधिवेशनमें साधारणतन्त्रके

पक्षपाती प्रतिनिधियोंने राजा उम-कालींको कुछ राजस्व विषयक अपराध पर अभियुक्त किया। तत्कालीन प्रधान मन्त्री जोओ फान्फो (Joao Tranco)-ने विशेष तत्प-रताके साथ छुप्तवाय राजशक्तिकी रक्षा करनेकी कोशिश की, पर उनका उद्देश्य फलोभूत न हुआ। मन्तिसभाने राजा और मन्त्रीको पड्यन्तको अपराध पर अभियुक्त किया। १६०८ ई०की १ली फरवरीको राजा बम काली और फाउनियं सकी हत्या की गई। इसके वाद प्रिन्स मैनुष्छ (Prince Manuel or Emanoel ir) राज-सिहासन पर वैठे। १६१० ई०में पुनः साधारणतन्त्र घोषित हुआ । राजा अपना परिवार हे कर इङ्ग्लिएड भाग गर्थ। डा॰ त्रागा (Dr Theophile Braga) इस साधारण तन्त्रके प्रधान सभापति हुए। इस समय पुत्तेगालमें कैथलिक चर्चकी क्षमता वहुत कुछ घटा दी गई। १६११ ई०के अगस्त मासमें साधारणतन्त्रका पुनर्संगठन हुआ । डा॰ मैतुपळ डि आरियाना (])r, Manuel-de Arriaga) इस नृतन शासनतन्तके सभा-पति वने और इसके प्रधान मन्त्री हुए डा॰ सेनीर चैगस (Dr Sehnor Chagas)। इन हे मन्तित्व-कालमें राजपक्षीय दलने कप्तान कुसिरी (Capt H M P Couceiro)-क अधीन १६११ और १६१२ ई०में चिद्रोही हो राजधानी पर आक्रमण किया और वहुतसे नगरों पर अधिकार जमाया। किन्तु उनका बहुत जल्द दमन किया गया। उनमेंसे कुछ एकड़े गये और अति फठोर दण्डाहासे दण्डित हुए।

सैनोर चेगसके वाद डा॰ मासकनसेली (Dr. Augusto de Vasconcello) प्रधान मन्त्रीके पद पर सुशोसित हुए। इनके समयमें कोई विशेष घटना न घटी।
पीछे १६१२ ई०के दिसम्बर मासमें डा॰ आफन्सो कोए।
(Dr. Afonsó Costa) उस पर प्रतिष्ठित हुए। राजकार्य सुचारकपसे करनेकी और इनका विशेष ध्यान या।
अनन्तर १६१८ ई०के फरवरी मासमें डा॰ मैकोडा
(Dr. B. Machado)-ने मन्ति-पद सुशोभित किया।
महायुद्धका स्त्रपात इन्हींके समय हुआ। पुर्त्तगालने
इस युद्धमें अङ्गरेजींका पक्ष छिया था। मैकोडाके
वाद कीनटिही (Sehnor Countiho) और पिर

उनके वाद १६१५ ई०के जनवरी मासमें जेनरल कैप्टो (Gen Pimenta de Castro) प्रधान मन्त्री हुए। इस समय साधारणतन्त्र-वादी विद्रोही हो उठे। उन्होंने कैशोको पकडा और मार डाला। अनन्तर सेनर चैगस (Selmor Chagas)ने फिरसे मन्त्रिपद ग्रहण किया। पर कुछ समय वाद ही वे इस पदसे हट गये । पीछे डा॰ कैंद्रो (Dr Jose de Castro) उस पद पर नियुक्त हुए ! १६१५ ई०को मई मासमें प्रेसिडेएट अरियागाने पदत्याग किया। अब डा॰ ब्रैगो (1)r Brago) सभापति हुए। इनके समयमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई। पीछे डा॰ मैकोडा (Dr Barnardino Machado) ने सभा-पतिका पद ग्रहण किया। १६१७ ई०के दिसम्बर मासमें पुर्तगालमें फिरसे चिद्रोहानल धधक उठा। चिद्री-हियोंने जयलाम करके सभापति मैकोडा और प्रधान मन्त्री कैसटाको पकड़ा और मार डाला। अव शासन-तन्त्रका पुनर्गेठन हुआ। मेजर पायस (Maj. S. Paes) सभापति और प्रधान मन्त्री हुए। इस समयसे खतन्त्र प्रधान मन्त्रिपद बिलुप्त हो गया । अपर मन्त्रियोंने प्टेर सेकेटरी (Sceretary of State)-की आख्या पाई। १६१८ ई०के दिसम्बर मासमें उक्त विष्ठवका प्रथम वार्षिक स्मृतिउत्सव वडी धूमधामसे सम्पन्न हुआ। इसके कुछ समय बाद ही मेजर पायस विद्रोहियोंके शिकार वने । अनन्तर एडमिरल कैट्री (Admil. J. C. Castro) सभापतिके पद पर और सेनर वार्वोन (Sehnor Barban) स्वतन्त प्रधान मन्ति-पद पर अधिकढ हुए। इनके समयमें प्रजातन्तवादियोंने फिर-से विद्रोह खडा कर दिया। पर शीघ्र ही उनका अच्छी तरह दमन किया गया और १६१६ ई०के जनवरी मासमें अपोर्टेमें राजतन्त्रकी घोषणा हुई। कप्तान कुसिरो (Capt, H. M. P. Conceiro) राजकार्यकी परिचालना-में नियुक्त हुए। किन्तु कुछ समय वाद ही प्रजातन्त्र फिरसे प्रतिष्ठित हुआ । लिसवनमें विद्रोहिगण 'सोभि-यट' शासनका दावा करने छगे । उस विद्रोहने ऐसा भयडूर रूप धारण किया था, कि प्रे सिडेण्टको दमन-मूलक नीतिके पुनः प्रवर्त्तनकी आवश्यकता हुई थी।

पुर्तगीन देखा ।

पुर्त्तगाली (हि॰ पु॰) १ पुर्त्तगालवासी, पुर्त्तगालका रहनेवाला।

यूरोपकी नई जातियोंमें हिन्दुस्तानमें सबसे पहले पुर्तगाली लोग ही आए। पुर्तगाली व्यापारियोंके द्वारा अकवरके समयसे ही यूरोपीय शब्द यहांकी भाषामें मिलने लगे। यथा, गिरजा, पादरी, तम्बाक्, आलू आदिका प्रचार तभीसे होने लगा। २ पुर्तगाल सम्बन्धो।

पुर्तगीज—पुर्तगालके खृष्टान अधिवासी। पुर्गगत देखी।
जव भारतमें अंगरेज, फरासी और ओलन्दाजोंका नाम
निशान न था, उसके पहले पुर्तगीजोंने भारतके उपक्लमें व्यवसायके उद्देश्यसे आ कर असाधारण राजशिकका
परिचय दिया था। सैकड़ों पुर्तगीज भारतीय रमणियोंका पाणिग्रहण करके संसारी हुए थे—उन्होंने ही सबसे
पहले पाश्चात्य-सम्यताको भारतवर्षमें अनुप्राणित करके
कितने भारतवासियोंकी मति पलट दी थी। उनका
प्रभाव दक्षिणात्यके पश्चिम उपक्लमें आज भी देखा
जाता है। पुर्तगीजोंका कटोर उत्पीड़न, मोहन प्रलोभन, विश्वासघातकता और प्रवल प्रताप आज भी
भारतवासीमूले नहीं है। उनके साथ भारतवासीका
कैसा सम्बन्ध था, पहले वही वतला देना उचित है।

पुत्तं गीजजातिकी उन्नतिका मूळ पुत्तं गीज-राजकुमार इम हेनरिक था। उन्होंके यत और अर्थानुकृत्यसे पुत्तं-गीजगण नाना देशोंका आविष्कार, वाणिज्यविस्तार और अनेक राज्याधिकार करनेमें समर्थ हुए थे। रोमक साम्राज्यध्वंसके वाद यूरोपीय वाणिज्य बहुत कुछ परहस्तगत हुआ। इस समय अरवजातिने ही भारतके साथ यूरोपीय वाणिज्यका कुळ अधिकार पाया था। पाछेस्तिनके महाधमें युद्धके वाद स्पे नदेशमें मुसळमानींके हाथ भारतीय अपूर्वविळासी द्रव्योंका परिचय पा कर यूरोपीय राजगण विमुग्ध हो गये और मणिरज्ञाकर तथा विळासमण्डार भारतका प्रकृत सन्धान पानके ळिये बहुत व्याकुळ हुए थे। इसका फळ यह हुआ, कि पुर्त्तु गीज-राजकुमार इम हेनरिकने भारताविष्कारकी ओर ध्यान दिया। १४१८-२० इंग्में उन्होंने सबसे पहळे पोटोंसण्टो और मियरा द्वीपका आविष्कार किया

इसके वाद वे प्रति वर्ष अफ्रिका-उपक्लमें छोटे छोटे जहाज मेजने लगे। उस समय पोप खृष्टान-जगत्के सर्व-मय कत्तां थे। यूरोपोय सभी राजगण उनके निकट शिर फुकाते थे। इस कारण कुमार हेनरिकने उनसे प्रार्थना की, 'आप जिन जिन देशों का आविष्कार और अधिकार करें, वे पुत्त गालराजके हो अधिकारमें रहे, यहीं मेरा अनुरोध है। कारण, आपके आविष्ट खृष्टान-धर्म प्रचार द्वारा आविष्कृत जनपदवासीका अज्ञान अन्ध-कार दूर करना ही मेरे उद्देश्य हैं।' पोप और उनके सदस्योंने हेनरिककी प्रार्थना स्वीकार कर ली। हेनरिकके भाई और पुत्त गालराज्यके अभिभावक डम पिद्रोने भी उन्हें यह क्षमतापत दिया, कि इस समुद्र अभियानमें पुत्त गालराजको जो कुछ लाभ होगा, उसका पञ्चमांश हेनरिक पार्वेगे और सिवा उनके कोई भी ऐसे अभियान-में अप्रसर न हो सकेंगे।

हेनरिकने किस प्रकार अनेक राज्योंका आविष्कार किया, यह भी कह देना उचित है। जिस देशका प्रथम सन्धान होता था, उस देशके कुछ स्त्रीपुरुपोंको लिसवन नगरमें पकड़ लाते थे। उनके साथ कोई भी वन्दीके जैसा व्यवहार नहीं करता था । वरं पुर्त्त गालको खाघीन प्रजासे वढ कर उनका आदर होता था। उन्हें भरण-पोपणके लिये यथेष्ट भूसम्पत्ति मिलती थी। विदेशी होने पर भी सुन्दरी पुर्त गोज-रमणियोंके साथ उनका विवाह होता था। कोई कोई सम्प्रान्त विधवा महिला ऐसी वन्दिनी रमणीको पोप्यकन्यारूपमें ब्रहण करती थी । मृत्युकालमें उसीको सारी सम्पत्ति दी जाती थी। ऐसे आदर और यल पर विदेशी मोहित हो जाते थे, कमी भी जन्मभूमिपरित्यागका कप्ट अनुभव नहीं करते थे। वरं वे भी यथासाध्य अपनी अपनी जन्मभूमि और अपने अपने झात स्थानका सन्धान कह देनेमें कुण्डित नहीं होते थे। इस प्रकार उन लोगोंसे सन्धान पा कर ही इम हेनरिकने नाना अज्ञात प्रदेशोंका आविष्कार किया था। यद्यपि हेनरिक छाखों चेष्टा करके भी भारत-का आविष्कार न कर सके, तो भो वे वीज रोप गये थे जिसके फलंसे परवर्त्तीकालमें पुर्त गीजगण भारत आवि कारमें समर्थे हुए थे, इसमें सन्दे ह नहीं ।

सिहांसन पर अधिन्तित होनेके कुछ समय वाद हो डम जोगांने जिस देशमें गरम मसाले उत्पन्न होते थे तथा प्रे प्ररजन वास करते थे, उन्हीं उन्हीं देशोंको दृढ निकालनेके लिये उपयुक्त लोगोंको भेजा था। राजाके आदेशसे जीओं पेरेस्-दा-कोविल नामक आरव्यभाषावित् एक पुत्र गीज भी इस कायमें नियुक्त हुए। १४८७ ई०की ७वीं मईको उक्त देशोंका आविष्कार करनेके लिये याता कर दी। वे पहले वार्शिलोना, पीछे नेपल्स और रोडस होते हुए आलेकसन्द्रिया पृहु चे। यहां कुछ दिन तक कम्पज्वर भुगत कर उन्होंने कुछ तार खरीदे और वणिक्रूपमें कायरोनगरमें प्रवेश किया । यहां आदेन-याती कुछ अरव आ कर उनसे मिले। पांछे पुर्व गीज-गण सिनाई पर्वतके पाद देशमें आपे। यहां उन्हें वणिकोंसे कालिकट शहरके विस्तीर्ण वाणिज्यका पता लगा। इस वार वे सुआकिम होते हुए आदेन जा कर पृथक् पृथक् हो गये। काविलहांवने भारतवर्षकी ओर और पैवाने हथियोपियाकी ओर याला की।

कोविल-हांव एक अरवी जहाज पर बढ़ कर पहले मलवार उपक्लवचीं कजनूर पहुंचे। वहां कुछ दिन ठहर कर वे कालिकट आये। वहां अदरक और गोल-मोचकी अच्छी फसल होती देख वे चमत्कृत हो गये। उन्होंने यह भी सुना, कि यहां दारचीनो और छवडूको खासी आमदनी है। जिसके लिये पुत्र गीजराज इतने दिनों तक अनुसन्धान ले रहे थे उस स्थानका सन्धान पा कर कोविलहांव ऐसे प्रसन्त हुए मानों उन्हें खर्ग हाथ लगा है। वहांसे वे गोआनगरको चल दिये।

पीछे वे हरमुज द्वीपका परिदर्शन कर अफ्रिकाके उपकृत्व वावेल-मन्द्व प्रणालीके ठीक वाहर जैला नामक स्थानमें और वहांसे कुछ अरव चिणकोंके साथ सोफाला वन्द्रमें आये। यहां उन्हों ने सुना, कि पास ही ६०० मील लम्बा एक द्वीप है जिसे काफ्रि लोग 'वन्द्रद्वीप' कहते हैं। (असो मदागास्कर नामसे प्रसिद्ध है)

कोविल-हांचने भारतीय वाणिज्यका कुल हाल जान पुत्तैगालराजके पास इसकी खबर दो। इसके वाद उन्होंने नाना स्थान परिदर्शन किये थे, किन्तु अपने अदृष्ट क्रमसे वे फिर जन्मभूमिको लीट न सके,। एक हवसी- रमंजीके प्रेम पर मुन्ध हो उन्होंने ३३ वर्ष तक आवि-सीनियामें समय विताया और यहीं उनकी मृत्यु हुई।

कोविछ-हांव जिस समय गरमः मसालेका देश आविष्कार कर निकले, उस. समय सुविख्यात कलम्बस पुत्तगालराजकी आज्ञासे भारताविष्कारके लिये खाना हुए। उन्होंने भारतका सन्धान न पा कर सुवृहत् अमे-रिका महाद्वीपका आविष्कार करके कीर्त्ति और यश खूव कमा लिया था।

उधर वार्थलोमेओ-दि-दियाजने (१४८६ ई० अगस्तके शेषमें) उत्तमाशा अन्तरीप (Cape of Good-hope) का आविष्कार किया। इसके पहले और कोई भी यूरो-पीय यहां नहीं आये हुए थे। यहां आनेमें दियाजको मारी कष्ट भुगतना पड़ा था, इसीसे पहले इस अन्तरीपका नाम पड़ा 'करिका अन्तरीप' (Cabo Formentosa), पीछे जब वे पुत्तैगाल पहुंचे और पुत्तैगालराज २य जीआंवको कुल हाल कहा, तब उन्होंने भारताविष्कारको अनेक दिनोंकी आशा सफल होगी, ऐसा समक्त कर इसका नाम रखा 'उत्तमाशा'।

१४६५ ई०में मानुपल पुर्त्तगालके सिहासन पर वैठे। कुछ समय वाद ही उन्होंने राजकुमार हेनरिकके मतका अनुसरण किया। देश देशान्तरोंके आविष्कार और वाणिज्यको उन्नति की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। २य जोआंवके समयके कुछ कागज पर्तोसे उन्हें मालूम हुआ, कि यूरोपके वाणिज्यकेन्द्र मिनिसके धन और वाणिज्यकी जो कुछ हुई है, वह भारतीय द्रव्यजातसे ही-ाफिर क्या था, इसकी खबर लगते ही पुत्त गीजराजने अतिशीव तीन बड़े वड़े समुद्रपोत बनवाये और अपने हिसाव-रक्षक एस्तेवांच-दा-गामाके पुत्र भास्को-डि-गामा-को सर्वोका अध्यक्ष वना कर मेजा। भास्को-डि-गामाने सांव-गब्रिपल नामक जहाज पर चढ कर याता की । उनके साथ दो और वड़े वड़े जहाज और दी सी से ऊपर साहसी मनुव्य थे। १४६८ ई०के मार्च मासमें वे मोजा-म्यिक नगर पहुंचे । यहां वस्वईसे आये हुए दवाने नामक एक अरवी दलालके साथ उनकी मुलाकात हुई। उस दलालसे भास्को-डि-गामाको वहुत कुछ पता लग गया। उसीके यससे उन्होंने मोजाम्बिकके शेसके पड्यन्तसे रक्ता पाई थी।

मोजाम्त्रिकसेः कुइलीया होते हुए भास्को डि-गामा मोम्यासा आये । यहांके अधिपति भी भास्को-डि-गामाका जहाज नष्ट करनेकी कोशिशमें थे, पर पुर्र्य गीजोंके कौशलसे वे कुछ मी न कर सके। डि-गामा उपकूल होते हुए अप्रिल मासमें मेलिन्द शहर पहुंचे। मेलिन्दके राजाने डि:गामासे मुलाकात कर उनकी यथेष्ट अभ्यर्थना की थी । डिनामाने भी पुर्च गालराज प्रदत्त सुवर्ण-खचित तलवार, खर्णसूत्रवेष्टित लाल सारनका वर्म तथा और भी सोनेकी कई चीजें दे कर मेलिन्दराजके सम्मान-की रक्षा की । दवाने ने डि-गामाकी खम्मात् (काम्बे) जानेकी सलाह दी थी, पर मैलिन्द्पतिने उन्हें कहा, 'आप.जिस उद्देश्यसे भारतवर्षे जा रहे हैं, वह कालिकट जानेसे ही सिद्ध हो सकता है।' अनुकूछ वायुकी आशा-से द्वि-गामा वहां तीन मास तक ठहरे। याताकालमें मेलिन्द्पतिने डि-गामाको पथ दिखलानेके लिये दो विचक्षण मांभी लगा दिये। जिनमेंसे एक मालिमखाँ नामक गुजरातवासी था। २० दिन याहाके वाद समुद्र-वक्षसे.कन्ननूरका पहाड़ उनके दृष्टिगोचर हुआ। कालि-कटसे ३ कोसको दूरी पर डि-गामाने लड्जर डाला।

इस समय कालिकट सर्वप्रधान वाणिज्यस्थान समका जाता था। प्रायः ६०० वर्षोसे अरबी:विणिक्गण यहां वाणिज्य कर रहे थे। मिस्न, तुरक्क आदि नाना स्थानोंके सैकड़ों वाणिज्य-पोत इस कालिकट वन्दरमें लंगर ढाले रहते थे। मिस्नके विणक्गण मकासे नाना द्रव्य ला कर उसके वदलेमें यहांसे गोलिमचे और भैषज्य द्रव्य ले जाते थे। पोछे उन सब द्रव्योंकी पुनः यूरोपके नाना स्थानोंमें रफ्तनी होती थी। इस वाणिज्य-व्यापारसे अरबगण महाधनी हो गये थे।

डि-गामाने कालिकटमें आ कर यह घोषणा कर दी, कि उनके साथ बहुतसे जहाज थे, वे सब कहां चले गये, मालूम नहीं। उन्हीं सब जहाजोंकी तलाशमें वे इस देशमें आये हुए हैं। उन्होंने अपने आदमियोंसे कह दिया; कि यदि कोई किसी प्रकारका द्रष्य बेचने आबे, तो उसे मुंह-मांगा दाम दे देना। मछली, पक्षी, फल आदि ले कर कितनी नावें उनके जहाजके समीप आईं। पुत्त गीजोंने जितना जिसने मांगा, उतना दाम दे कर मत्स्यादि खरीइ

लिये। विक्रेतागण इस प्रकार आशातिरिक मृत्य पा कर नगर लीट गये और 'पुत्त गीजोंकी दयाकी कथा तमाम घोषणा कर दी। घोरे घोरे यह वात सामरी-राजके कानमें पड़ी। उन्होंने एक सम्म्रान्त नायको पुत्त गीजोंका अभिप्राय जाननेके लिये मेजा। डि-गामा-की ओरसे दवानने आं कर राजाके समीप जहाज अन्व-पणकी कथा और गरममसाले तथा भैषज्य-द्रव्यादिका चाणिज्यप्रसङ्ग उपस्थित किया। सामरोराजने द्वान-को अनेक पक्षी और फलम्लादि उपहारमें दे कर विदा किया और डि-गामाके इच्छानुसार गोलमिर्च तथा भैषज्यादि खरीदनेका बचन दे दिया।

जब अरवीय विणकोंको इसकी खबर लगो, तव वे वड़ ही विचलित हुए। जिससे पुर्त गीज लोग भारत- के उपक्लमें किसी प्रकारका वाणिज्य न कर सके, इस- के लिये वे राजाके प्रधान दीवान तथा प्रधान गुमस्ता- के साथ मन्त्रणा करने लगे। विणकोंने राजपुरुपोंको समक्षा कर कहा, कि पुर्त गीज लोग दूर देशसे केवल वाणिज्यके अभिप्रायसे यहां नहीं आये हैं, देशकी अवस्था जान कर इस देशको अधिकार वा लूट करनेके इच्छासे ही आये हुए हैं। इस समय राजाको विशेष सतक होना उचित है। इन सव विणकोंको यथेए उत्कोचः दे कर राजपुरुषोंको अपने हाथ कर लिया।

राजपुरुषों की प्ररोचनासे राजाका मन पलट गया।
जव दवान राजाके समीप संवाद देने गये, तव राजाने
कोई उत्तर न दे उन्हें लीटा दिया। इधर अरवगण
डि-गामाको ध्वंसके लिये पड़यन्त करने लगे। इस
समय अलजीपरेज नामक सेमिल-निवासी एक व्यक्ति
कालिकटमें रहता था। वह मुसलमानी धर्म ग्रहण
करके अरवींका विशेष प्रीतिमाजन था। इसी व्यक्तिने
स्वदेशवासी डि-गामाकी रक्षा की थी। इससे डि-गामाको यदि भीतरी खबर न लग जाती तो देश लीट नहीं
सकते थे। अनेक चेष्टाके वाद डि-गामाने वाणिज्यइव्य खरीदनेका अधिकार तो पाया, पर उनके व्यवसायमें विपरीत फल घटा। वे निर्दिष्ट मूल्यकी अपेक्षा
अतिरक्त मूल्य दे कर खरीद करने लगे। इस पर राजपुरुषोंने राजाको कवर दी, 'पुर्वंगीज लोग वाणिज्यकी

आशासे यहां नहीं आये हुए हैं, यदि ऐसा होता, तो वे अन्याय मूल्य दे कर चीज नहीं खरीदते। निश्चय हो दालमें कुछ काला है।' राजाने राजपुरुपोंकी वात पर विश्वास न कर डि-गामा राजसमामें आनेका वुलावा मेजा। पहले डि-गामा राजसमामें उपस्थित होनेको राजी न हुए। पीछे जब कालिकटराजको ओरसे तीन उच्चपदस्थ नायवोंने जा कर राजाका अभिप्राय जताया, तव वे आनेको राजी हुए।

डि-गामा उत्कृष्ट वेशभूषा और महा आडम्बरसे कालिकटकी सभामें पहुंचे । उन्होंने मेलिन्दके अधि-पतिको जैसा नजराना दिया था, सामरीराजको भी वैसा हो नाना प्रकारका मूल्यवान् द्रव्य भेंट दे कर सन्तुष्ट किया । दूसरे दिन कालिकटराजने भी काफी सामग्री मेज कर वास्की-डि-गामाके सम्मान-की रक्षा की। अरवीय वणिकोंने पहलेसे ही कोतवाल-को रिशवत दे कर वशीभूत कर रखा था। दूसरे दिन कोतवालने डि-गामाको राजाके समीप ले जानेके वहानेसे एक दूरस्थ ग्राममें छे जा कर कैद कर लिया। केवल राजाके भयसे वह डि-गामाका प्राणसंहार कर न सका। कोतवालने डि-गामासे कहा, 'यदि आप अपने जहाजका कुल माल कोडीमें उतार है' तो आपको किसी विपदकी आशङ्का नहीं है।' डि-गामाने अपने सहकारी सेतुवलको जहाजमें भेज कर अपने भाईको संवाद दिया, कि जहाज परसे कुछ माल यहां भेज दो। नाव पर लद कर माल आने लगा, तो भी डि-गामाने छुटकारा न पाया। उनके भाईने कहला मेजा, कि यदि वे अति शीघ छोड़ न दिये जांयगे, तो वन्दरमें जितने जहाज और नाव हैं, सर्वोको वे विध्वंस कर डालेंगे। यह खबर पाते ही कोतवालने राजाको सूचित कर दिया । राजाने उसी समय डि-गामाकी प्राणद्र्डका हुकुम दे दिया। किन्तु ब्राह्मण-मन्त्री और कोषाध्यक्षके अनुरोधसे यह दारुण आदेश रुक गया। जहाज परसे निकोला कोपल्हो दो नायकोंके साथ आ कर राजासे कहा, कि यदि आप डि-गामाको छोड़ न देंगे, तो पुर्तगाल-राज इस विश्वास-घातकताका प्रतिशोध लेनेके लिये अवश्य हथियार उठायँगे। राजाने ब्राह्मणमन्तियोंके परामशैसे उसी समय डिनामा- को छोड़ देनेका हुकुम दे दिया और कहा, "दुष्ट व्यक्तिको सलाइसे ऐसा अन्याय कार्य हुआ, इस कारण वे वड़े ही दुःखी हैं।" छुटकारा पा कर भास्को-डि-गामाने वहुत जल्द कालिकटका परित्याग किया। जाते समय वे यह स्चित करते गये, कि किसी न किसी दिन वे दुवुंत्त मुरों (अरवों)-को ध्वंस करने अवश्य आयंगे।

कश्चनूरके निकट जब उनका जहाज पहुंचा, तब वहांके राजाने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया और अपने
जहाज पर जितना द्रष्य छद सकता था, उससे भी अधिक
गोछिमिर्च और दारचीनी भेज दी। कश्चनूरराजने सोनेके
पत्तर पर पत छिल कर पुर्च गाछराजसे मितता कर
छी। कश्चनूरराजकी आतिथेयता पर डि-गामा विमुग्ध
हो गये थे। १४६८ ई०की ५२वीं नवम्बरको उन्होंने कश्चनूर छोड़ा। गोआके स्वेदारने जब सुना, कि पुर्चगीजजहाज आया है, तब उन्होंने अपने पोताध्यक्षको दछबछके साथ उसे पकड़ छानेको मेज दिया। पुर्चगीजोंके हाथसे उसे यथेष्ट कष्ट भुगतना पड़ा था।

प्रत्यागमनकालमें नाना स्थानींका द्रश्न कर १४६६ ई॰की १८वीं सितम्बरको डि-गामा दलवलके साथ लिस-वन नगर पहुंचे । पुत्त गालराजने महासमाद्रसे उन्हें प्रहण किया और तरह तरहके उपढ़ोकन दे कर उच्च सम्मानसे भूषित किया ।

दूसरे वर्ष डि-गामाके अनुरोधसे पेद्रो-अल्वरेज-के वल कालिकटमें वाणिज्य स्थापन करनेके लिये मेजे गये। इस वारकी यातामें के वलके साथ युद्धोपयोगी १३ वड़े वड़े जहाज, प्रमूत युद्धोपकरण, राजयोग्य अनेक उपहारद्रव्य, उस समयके प्रधान और विख्यात नाविक-गण तथा १२०० मनुष्य थे। उनके दलस्य प्रधान-व्यक्तियोंमेंसे वार्थल-मिज-दि-दियाज, डि-गामाके सह-यातो निकोला कोएलहों और दो-माषी गाम्पार थे।

१५०० ई०की ६वीं मार्चको केन्नलका जहाज निकला। इस यातामें उन्होंने ने जिल आदि कई एक नूतन स्थानीं-का आविष्कार किया। भारत-उपकूलमें उपस्थित होनेके समय काम्बे'वेशस्थ 'गोगो' नामक बन्दर पर सबसे पहले उनको नजर पड़ी। बहांसे उपकूल होते हुए केन्नल अज-द्रीप (Angedive)में आये। यहां पर मांकी मल्लाहोंने कुछ काल तक विश्राम किया। ३०वीं अगस्तको (लिसवन छोड़नेके प्रायः ६ मास बाद) वे कालिकटमें उतरे। यथा-समय उन्होंने सामरीराजको निकट उपयुक्त व्यक्ति भेज कर वाणिज्य स्थापनके लिये उनको सहायता और अनु-मित मांगी। सामरीराजको सम्मत होने पर दोनों औरसे एक सन्धिपत लिखा गया। पुत्त गीजों ने महासमारोहसे बीच कालीकटमें एक कोटी निर्माण की। कप्तान आय-रस-कोरियर और ७० यूरोपीयके हाथ उस कोटीका रक्षा-भार सौंपा गया। कप्तानके जीवनके प्रतिभूखरूप सम्मान्त वणिक वंशीय दो वणिक पुत्र कप्तानके जहाज पर जा कर रहे।

पुत्त गीजींने कोठी तो खोली, पर अनेक चेष्टा करने पर भी पहले उन्हें माल न मिला। जितने अरवी वणिक थे, सब कोई मिल कर जिससे पुत्त गीज किसी प्रकारका वाणिज्य द्रव्य न पा सके, प्राणपणसे उसकी कोशिश करने लगे । केंब्रलने सामरीराजको इसकी खबर दी। पर क्या करना उचित है, उसे सामरीराज स्थिर न कर सके। अनन्तर केब्रालने १६ दिसम्बरको माल लदे हुए अरवी जहाज पर आक्रमण किया और इसे लूट लिया। इस पर नगरके सभी अरव उत्तेजित हुए और कुठियालके मकान पर आक्रमण कर उसे तहसं नहस कर डाला । इस प्रकार दोंनों दलमें विषम विवादका स्वपात हुआ। पुत्त^भगीजोंने जहां जितने जहाज देखे, सवों को लूटा और ध्वंस कर डाला। अरवीने भी मोका पा कर जलपथमें पुत्तीजों पर चढ़ाई कर दो और इस प्रकार प्रतिशोध छे कर प्रतिहिंसावृत्तिका चरितार्थं किया। इस विवादमें भिनिसीयगणने अरवींका पक्ष लिया था।

के ब्रेंड कोचिनको भाग गये । कोचिनराजने (Trimumpura) के ब्रेंडको अपने यहां आश्रय दिया । कोचिनराज सामरीराजकी तरह सहायसम्पत्तिशाली नहीं होने पर भी उनकी उदारता, नम्रता, सहद्यता और सत्यप्रियता पर पुत्त गीजगण विमुग्ध हो गये थे ।

कोचिनमें एते समय कन्नन् और कोलम्ब-राज-ने के ब्रेडिक निकट दूत भेजा था और स्चित किया था, कि कोचिनराज उन्हें जिस दरमें गोलमिर्च और अदरक

Vol. XIV. 39

देंगे, उससे कम दरमें हम वे सब दृष्य देनेकी प्रस्तुत हैं।

-:

१५०१ ई०की १०वीं जनवरीकी केंब्रल कीचिन छोड़ रहे थे, कि उसी समय कीचिनराजने उन्हें खबर दी, कि सामरीराजने उन पर चढ़ाई करनेके लिये १५०० आदमियों के साथ एक बेड़ा जहाज भेजा है। उनके आक्रमण करनेके पहले ही के ब्रलने बड़ी तेजीसे उनका पीछा किया, पर समुद्रमें तूफान था जानेसे युद्ध न हुआ। के बल १५वीं जनवरीको कन्नसूर पहुंचे। यहांके राजाने पुर्त्त गालराजके लिये प्रचुर उपहार मेज कर पुर्त्त गीजी के साथ मित्रता कर ली और उन्हें अपने राज्यमें खाधीन भावसे वाणिज्य करनेका अधिकार दे दिया । यहां केवल एक दिन रह कर केंद्रलने खदेशकी याता कर दी। १५०१ 📢 क २१वीं जुलाईको केव्रल लिसवननगर पहुंचे। वे अपने साथ जहाज पर छाद कर दारचीनी, अदरक, गोलमिर्च, छचङ्ग, जायफल, जयिती, मृगनामि, कस्त्री, शिलाजनु, कु'द्रू, चीनके वरतन, तेजपात, मस्ति (Mastic), धूप, धूना, गन्धरस, श्वेत और रक्तचन्दन, कपूर, मुसवर, तृणमणि (Amber), लाझा, मिस्रको रक्षित शव (Munnmy), अफीम और नाना प्रकारको भैषज्य द्रव्य लाये थे।

के ब्रलको लिसवन पहुंचनेको पहले पुर्तागालराजने वहुत दिन तक उनके प्रेरित जहाजींका कोई संवाद न पा १५०१ ई०की १०चीं अप्रिलको जीआँव-दा-नोमा नामक गालिसीबको अपने जहाजों के अन्वेषणमें भेजा था। क प्रलक कोचिन छोड़नेक वाद; दा-नोमा कन्ननूर होते हुए राह्में कालिकटके कुछ जहाजों को हुवा कीचिन पहुंचे। यहां आनेसे मालूम हुआ, कि राजा पुर्चंगीजों पर बड़े विगड़े हैं। कारण, केंग्रल राजाको विना कहे हुए अथच उनके आदमीको ले कर चले गये हैं। के ब्रलने जिन सब लोगोंको कोचिनमें रख छोड़ा था मुसलमानोंके हाथसे उनमेंसे किसीकी भी रक्षाकी सम्मावना न थी । पर राजाने नितान्त द्यापरवश हो उन्हें नायकसैन्यके रक्षिस्वरूप नियुक्त किया है। अब दा-नोभा वहां कुछ काल भी ठहर न सके और कन्नन्रको लिये रवाना हो गये। यहां मुसलमानीने आपसमें मेल कर लिया और किसीने भी उनसे माल न

खरीदा । वा-नोमाके पास नंकद रुपये अधिक न रहते-के कारण वे भी इच्छानुसार माछ न छे सके। इस समय उदारहृद्य कोचिनराजने प्रायः डेढ़ हजार मन गोछिमिच, ५०० मन दारचीनी, ६५ मन अदरक और कुछ गांठ कपड़े का अपनी जामिनी पर दिलवा कर वा-नोमाके मानसम्भ्रमकी रक्षा की। दा-नोमा जो सव यूरोपीय द्रव्यजात अपने साथ छाये थे, उन्हें कन्नन्रमें एक गुमास्तेके जिम्मे कर खदेशको वल दिये। उन्होंने कालिकटके एक जहाजको लूट कर वहुमूल्य मणिमाणि-क्यादि पाये थे।

पुर्त्तगालराजने समका, िक जब तक अरवींका वाणिज्यदृश्य ध्वंस नहीं किया जायगा, तव तक पुर्त्तगीजगण
कभी भी भारतलपकुलमें मर्यादाकी रक्षा न कर सकेंगे।
इस कारण उन्होंने २० जहाज प्रस्तुत किये। भारकीडि-गामाके अधीन १५ और उनके आत्मीय पस्तेवांव-डिगामाके अधीन ५ जहाज थे। इस वार दूसरी बारकी
अपेक्षा जहाजमें यथेष्ट युद्धसामग्री और ८०० महायोद्धा
थे। कोचिन और कन्नमूरके राजदूत भी उनके साथ
लीटे। इस वार भारकी-डि-गामाने यह स्थिर कर
लिया कि भारत उपकुलमें सभी समयके लिये बेड़ा उपस्थित रहेगा और भारतसागरमें खुटमें जो माल हाथ
लगेगा, उसीसे उन सव जहाजोंका खर्च चलेगा। १५०२
ई०की २५वीं मार्चको जहाज पुर्त्तगालराजको सनद ले

मोजास्विक, मेलिन्द आदि बन्दर होते हुए भारकी-दि-गामाने कन्ननूर आ कर लंगर डाला। राहमें उन्होंने सामरीराजके गुमाश्ता खोजा कासिमके भार्दका माल लदा हुआ एक जहाज दखल किया।

कन्ननूरराजके साथ भेंट करके डिगामाने पुर्व गालराजभदत्त उपहार उन्हें प्रदान किया । राजाने भी पुर्व गाल-राजकी महियोके लिये हीरामुका दी थी।

कल्लनूर, कोचिन और कोलम्ब छोड़ कर और किसी मी स्थानके विणक् न आ सके, इसके लिये विनामा उपकुलके नाना स्थानोंमें जहाज भेज कर युद्धका आवी-जन करने लगे। अनन्तर कालिकटमें आ कर उन्होंने देखा, कि बन्दरमें एक भी मुसलमानी जहाज नहीं है, पुत्त गीजोंके भयसे सभी भाग गये हैं। इस वार पुत्त -गीजने भी दारुण अत्याचार आरम्भ कर दिया। राजाने हि-गामाके साथ सन्धिस्थापन करनेके लिये ब्राह्मण और कुछ कर्मचारी भेजे । पुत्त गीजोंने सर्वोके नाक कान काद डाले और पांच वांघ कर खूव अत्याचार किया।



मास्को-डि-गामा।

ब्राह्मणका निष्रह सुन कर सामरीराज आग वव्हें नितान्त कृद्ध हो राजाक साथ पुत्र गीजध्वंसका हो गये। सुसलमान लोग भी पुत्र गीजके अत्याचार पर आयोजन करने लगे। इधर जिस प्रकार सामरीराजके

साथ चिरोध गुरुतर हो उठा था, उधर उसी प्रकार कोचिनके राजा और कोलम्बकी रानी ये दोनों आशानु-ह्य-गरम मसाले दे कर यथा साध्य डि-गामाका सन्तोष विधान कर रहे थे। डि-गामाने बाणिज्यकी सुविधाके लिये सब जगह एक निर्दिष्ट दर और परिमाण स्थिर कर दिया था।

वाणिज्यस्त्रसे जितना ही अर्थागम होने लगा, जतना हो पुर्त गीजोंका अधिकार भी बढ़ने लगा। मुसल-मानोंने ६ सी वर्ष तक वाणिज्य किया था, पर वे उतना अत्याचार करनेको कभी साहसी न हुए थे, अब पुर्त गीजोंने उससे कहीं वढ़ कर अत्याचार करना आरमा कर दिया। पुर्त गीजोंके साथ अब कोई मी इच्छा करके व्यवसाय करना नहीं चाहता। पर बहुतेरे प्राणके भयसे मानसम्भ्रम-नाशके भयसे तथा उत्पीड़नके भयसे व्यवसाय चलानेको वाच्य हुए। इस समय अनेक प्रधान प्रधान मुसलमान वणिक भारत उपकृत छोड़ कर चले जानेको वाच्य हुए थे। कमशः पुर्त गीजोंने प्रवाल, ताँवेका पत्तर, सिन्दूर, कम्बल, पीतलके वरतन, रंगीन कपड़े, छुरी, लाल एगड़ी, दर्पण और रंगीन रेशम का व्यवसाय भी खास कर लेनेका आयोजन किया।

सामरीकने पुत्तंशीज जहाजकी अवस्था जाननेके लिये एक ब्राह्मणको दूतके रूपमें सन्धि प्रस्तावके वहाने डि-गामाके निकट भेजा । किन्तु डि-गामाने राजाका अभिप्राय समक्तकर ब्राह्मणदूतको यथेष्ट लाञ्छना की थी। अपने कुत्तेसे ब्राह्मणका सर्याङ्ग क्षत विक्षत कर डाला और अन्तमें नाक कान काट कर विदा कर दिया । ऐसा दूतनिग्रह सम्यसमाजमें कभी भी किसीने नहीं देखा होगा।

सामरीराजके समुद्रपोताध्यक्ष खोजा कासिमने वहुतसे युद्ध जहाज है कर पुर्तगीजों पर आकारण कर दिया। पुर्तगीज लोग जलयुद्धमें सिद्धहरूत थे। विशेषतः उनके पास अच्छी अच्छी कमान और गोला गोली रहने के कारण उनका प्रभाव मुसलमान लोग सहा कर न सके। धीरे घीरे मुसलमान सभी रणपोत विध्वस्त हुए। इस समय खोजाके लीपुतपरिवार और अनेक सम्म्रान्त मुमलमान महिलाएं पुर्तगीज पोताध्यक्ष भिलेखके मुमलमान महिलाएं पुर्तगीज पोताध्यक्ष भिलेखके मुमलमान महिलाएं पुर्तगीज पोताध्यक्ष भिलेखके मुमलमान महिलाएं पुर्तगीज पोताध्यक्ष भिलेखके

माणिक्यखाचित एक महमादकी प्रतिमा भी हाथ छगी थी। सदारके वीरत्व पर प्रसन्न हो डि-गामाने उसे सर्व-प्रधान पीताध्यक्ष बनाया तथा जलमें वा स्थलमें उसीके इच्छानुसार कार्य करनेका पूर्ण अधिकार दिया। इसका फल यह हुआ, कि सदारने जलपथमें एक प्रकारकी दस्युवृत्ति आरम्भ कर दी। भारतवासी मुसलमानींकी मकायाता वंद ही गई।

वि-गामाने इस प्रकार भारत-उपक्लमें पुर्त्त गीज-शक्तिकी जड़ मजबूत करके १५०२ ई०की २८वीं दिस-स्वरको खदेशयाता की।

कोचिनराजने पुत्त गीजकी वृथासाध्य सहायता की थी। इस कारण सामरीराजने कोचिनराज्यको तहस नहस्त कर बालनेके लिये वहुत-सी सेना भेजी । इस समय पुत्त गीज सधिनायक सोदार भी घटनाकमसे कीचिन पहुंच गये थे। यहाँका पुत्तं गीज कोटीवाल फर्णान्दिज कोरियाने भी कोचिनराजको सहायता यहु चानेके लिये सोदारसे अनुरोध किया। किन्तु उन्होंने अपनी सार्थ-सिदिके लिये इस बोर उतना ध्यान नहीं दिया। जिस राजाने अपनी विपदको तुच्छ जान कर पुत्र गोजींको यथासाध्य उपकार किया था, अभी उसी राजाको विण्य-में डाल कर खार्थपर सदार वहाँसे चल दिये। किन्तु उनकी खार्थपरताका फल बहुत ही जल्द मिल गया। वे जन काम्बे-उपक्लके निकट कुछ मुसलमानी जहाजींकी लूट और दग्ध कर कुड़िया-सुड़िया द्वीपमें पहुंचे, तब वहां वे अकस्पात् प्रवल त्फानसे अपने भाई समेत जल-मन्त हो गये। अब पुत्तं गीज कप्तानगण किसी इसरेको अध्यक्ष बना कर कोचिनराजको सहायता देनेके लिये अग्रसर हुए। पर कन्तन्र्सें वे अधिक समय तक उहर गपे। इधर कोचिन पहलेसे ही सतर्भ थे। इस समय कोचिनराजको बहुतसी सेना अर्थके छोमसे अपने प्रमुका परिल्याग कर कोचिनराजके यहां रहते लगी। सामरी-राजने उन्हें तथा निर्वाचित नायर-सेना (कुळ ५००००) छे कर कोचिनराज्य पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें कोचिनराजपुत युवराज नारायणने प्राणविसर्जन किया। पीछे कोचिनराज स्वयं रणस्थलमें उपस्थित हुए । पर उनकी सभी चेष्टाएं निष्फल गईं। उन्होंने घोड़ी सी सेना और अपने आश्रित पुत्त गीजीको हे कर वैपिम ब्रीपमें आश्रय लिया। उस समय तक भी कन्तन्रमें जो पुर्त्त गीज सेना ठहरी थी उनकी नींद नहीं टूटी। इघर सामरीराजने कोचिनराजको कहला भेजा, 'यदि आप अपने आश्रित पुर्तगोजों को मेरे पास मेज दें, तो मैं किसी प्रकार आपको कष्ट न दुंगा।' किन्तु आश्रितवत्सल कोचिनराज यद्यपि भारी विषद्में पड़े हुए थे तो भी वे सामरीराजके कथानुसार कार्य कर न सके। उन्होंने कहला भेजा, कि प्राण जाने पर भी मैं विश्वासघातकता न कर सकूंगा।

जिस समय भारतवर्षमें पुत्त गोजोंको छे कर इस प्रकार गोलमाल चल रहा था। उसी समय पुत्त गाल-राजने भी मुसलमानोंका सामुद्रवाणिज्य ध्वंस करनेके लिये तीन पोताध्यक्षके अधीन पुनः तीन वारमें ६ जहाज भेजे। प्रथम दलमें आफरसी-दा-आलबुकार्क, द्वितीय दलमें उनके सम्पर्कीय भ्राता फ्रान्सिस्की-दा-आलंबुकार्क और तृतीय दलमें आएटनिओ-दा सालदानहा अधिनायक हुए। ये तीनों वेड़े यथाक्रम १५०३ ई०को ६ठी अप्रेल और १४वीं अप्रेलको लिसवनसे छुटे थे।

कन्नन्रमं आ कर आल्युकार्कने कोचिनराजकी विपद्ववार्ता सुनी। अब वे यहां और अधिक काल तक उद्दर न सके, २री सितम्बरको वैपिम द्वीपमें आकर कोचिनराजसे मिले।

कोचिनको रक्षाके लिये सामरीराज जो सब सेना छोड़ गये थे, पुर्चगीजोंकी रणतरी देखनेके साथ ही बे सबके सब नौ दो ग्यारह हो गये। कोचिनराज निर्विचाद-से अपनी राजधानी पहुंचे। फ्रान्सिस्को-दा-आलबुकार्कने कोचिनराजकी विश्वस्तता और सरलताके लिये कतजता प्रकाशपूर्वक उन्हें १०००० डुकाट मुद्रा नजराना दे कर उनके सम्मानको रक्षा को। केवल इतना ही नहीं, कोचिनके अधीन जिन सब सामन्तराजींने अवाध्यताका परिचय दिया था अथवा सामरीराजका पक्षावलम्बन किया था, फ्रान्सिस्कोने उनमेंसे सर्वोका दमन किया।

२७वीं सितम्बरकी कीचिन नगरमें पुर्तगीजींके सर्व प्रथम दुर्गकी नींच डाली गई। इस समय आफन्सी-दा-आलवुकाक स्वयं कीचिनमें रह कर दुर्गका निर्माण करा रहे थे। जब दुर्ग विलक्कल तैयार हो गया, तब पुर्तगाल-

राजके नामानुसार उसका 'मानुपल' नाम रखा गया।

अव पुर्तगोज लोग उचाशासे उन्मत्त हो भीमपरा-क्रमसे कालिकटके निकटवत्तीं नानां स्थानीं पर आक्रमण करने छगे । हजारीं निरीह प्रजाने पुर्त्तगीजोंके उत्पीड़न और निग्रहसे प्राण गंवाये । सामरीराजने अपनी प्रिय-प्रजाके धन-प्राणको रक्षाके लिये चारो और वहुसंख्यक नायरसेना मेजी, किन्तु पुर्तगीजींके कूटयुद्ध और गुप्त अग्न्यस्त्रके प्रभावसे अधिकांश सेना इनके सामने उहर न सकी। सभ्य जगत्में जिसे न्याययुद्ध कहते हैं, पुर्तगीज लोग उस युद्धनीतिका अवलम्बन नहीं करते थे। वे लोग अकस्मात् जहां जा पहुंचते थे, वहां सामने जिसे पाते, उसीको मार डालते अधवा यथासर्वस्व ॡट कर घर द्वार जला देते थे। राजसेनाके वहां पहुंचने से ही वे दुम दवा कर भाग जाते थे। जब वे थोड़ी-सो सेना देखते, तव उनकी गोलागोलीके सामने किसीका आनेका साहस नहीं होता था। इस प्रकार पुर्तगीजीने वाणिज्य व्यवसायमें आ कर केवल मुसलमान विणकोंको ही नहीं, उपकुलवासी सभी भारतीय प्रजाको व्यतिव्यस्त कर डाला ।

सामरीराजने कोलम्बकी शासनकर्ती और रानी-को कहला मेजा, कि पुर्तगीज लोग जिससे उनके अधि-कारके मध्य एक भी कोठो खोल न सके, इस पर विशेष ध्यान रहे। किन्तु यहां मुसलमान अथवा कोई विदेशी विषक्के उपस्थित नहीं रहनेसे पुर्तगीजोंने रानीकी मीठी मीठी वातोंसे प्रसन्न कर अपना मतलव निकाल लिया। यहां एक गिर्जा पहलेका ही वना हुआ था। अभी एक वहुत वड़ी वाणिज्यकी कोठी खोली गई। देशीय लोगोंकी काथलिक ईसा-मतकी शिक्षा देनेके अभिप्रायसे पुर्तगीज-पादरी रहरिगोंने यहां अड्डा जमाया।

फान्सिस्को-दा-आलघुकाक ने जनवरी मासमें कालिक आ कर सामरीराजके साथ एक सिन्ध की। किन्तु पुर्त-गीजोंने जब कालिकटका माल लदा हुआ एक जहाज लूट लिया, तब सामरीराजने सिन्ध तोड़ दी और जल तथा स्थल-पथमें पुर्तगीजोंसे शबुता करनेके लिये चारो ओर घोषणा कर दी।

इघर भाईको आनेमें विलम्ब देख २०वीं जनवरी

Vol. X1V 40

(१५०४ ई०)को आफन्सो-दा-आलवुकाक ने खदेशकी याला कर दी। वहां उन्होंने पुर्त्तगालराजसे यथेष्ट पारि-तोषिक और उच्चसम्मान प्राप्त किया। किन्तु फ्रान्सिस्को-दा-आलवुकाक ने भारत उपकूलको लूट कर काफी धन जमा कर लिया था सही, पर वे दुर्भाग्यकमसे खदेश छौट न सके। ५वीं फरवरीको जब वे अपने तीन जहाजों पर माल लाद कर खदेश जा रहे थे, तब राहमें दलवलके साथ वे समुद्रगर्भशायी हुए।

आलबुकार्क के प्रस्थानके वाद ही सामरीराजने मल-वारके अवरापर राजाओं और सामन्तोंके साथ मिल कर कोचिनसे पूर्चगीजोंको मार भगानेका आयोजन किया । प्रायः ५०००० पदाति, २८० रणतरी और ४००० नौयोद्धा कोचिनकी और भेजे गये। कोचिनराज यह संवाद पा कर विचलित हुए । पुत्तंगीज-अध्यक्ष कोचिनराजको राजधानीका रक्षाभार सौंप कर आप शतुकी गति रोकनेके लिये आगे बढ़े। कोचिनराज्यमें प्रवेश करनेके जो सव पथ और घाट थे, पाचेकोने उन सव स्थानों पर पहरा विद्या दिया । सामरीराजके दळवळने चारो ओरसे कोचिनराज्य पर आक्रमण कर दिया। किन्तु सौभाग्य-शाली कोचिनराज और पुर्तगीजोंकी चेष्टासे शतुगण वाल वांका कर न सके। कम्वलम् नामक स्थानमें पुर्तं-गीज लोग नितान्त विपदुप्रस्त हो पड़े थे । यहां शबुके आक्रमणसे पुत्त गीज जंगी-जहाज विध्वस्त और छित्र-युक्त हो गये। वादमें पाचेकोने छिपके आ कर वहुत परिश्रमके वाद पुर्त्त गोजींकी रक्षा की। अनन्तर पाचेकी-को खबर मिली, कि कोचिनवासी समी पुर्स गीज शबुके शिकार वन गये हैं और कन्ननूर तथा कोलम्बमें उन पर विपद्का पहाड़ टूट पड़ा है । अब पाचेको स्थिर रह न सके, उसी समय कीलम्बकी चल दिये। यहां उन्होंने देखा, कि केवल एक पुत्त गोज मारा गया है। पुर्त्त गोज-के सभी जहाज खाली थे। किन्तु अरवी जहाजीं पर गरम मसाला लदा हुआ था। पोचेकॉने उन स**व जहा**जीं-को दखल कर उनके सभी माल असवाव अपने जहाज पर रख लिये। पीछे वे पुत्त गीजींकी रक्षाका सुप्रवन्ध करके उपकूलके नाना स्थानोंमें विदेशीय जहाज लूटने-को चल दिये।

ठोक इसी समय पुत्त गालराजने लोपो-सोयारेज-दि-अलगबारिया नामक एक और पोताध्यक्षको भेजा। उनके अधीन १३ वड़े वड़े जहाज और १२०० नीयोदा थे। अञ्जद्वीपके निकट उनके साथ सालदानहा और राइलोरेन्सकी मुलाकात हुई। वहीं उन्होंने पाचेकोके पराक्रम और सामरीराजकी पराजयकी कथा सुनी। उन्हों ने सालदानहा और छोरेन्सोको अपने साथ छे लिया। अव तीनोने मिल कर कालिकट वन्दर पर चढ़ाई कर दी। उस समय सामरीराज अपनी राजधानीमें नहीं थे, राजपुरुषगण भी शत्नुके आक्रमणसे नगरभा-का कोई पुवन्ध न कर सके । पुर्विगीज लोग जहाज परसे दो दिन तक लगातार गोला-वृष्टि करते रहे जिस-से नगरकी अनेक वड़ी वड़ी अद्यक्तिमाएं धूलिसात हुई, अधिकांश विध्वस्त हुआ और प्रायः ३०० व्यक्तियोंके प्राण गये। यहांके पुत्तंगीज पोताध्यक्षगण १४वीं सितम्बर-को कोचिनके लिये रवाना हुए। वहा पहुंच कर उन्हों-ने कोचिनराजसे सुना, कि सामरीराजके नवीया दिए नामक एक प्रधान सेनानायकने उनका विशेष अनिष्ट किया है, अभी वे कोरङ्गनूरमें उहर कर को चिन आक-मणके लिये वल सञ्चय कर रहे हैं। सोयारेजने कोरङ्ग-नूर जा कर नवीया दरिम पर इमला कर दिया । इस युद्धमें दोनों पक्षको थिशेष क्षति हुई । अन्तमें दरिम रणस्थलसे भाग चले। अद पुर्संगीजीने नगर ॡट कर यहूदी और मुसलमानों की मसजिद तथा हिन्दूदेवालय-को तोड़ फोड़ कर अपनी पैशाचिक वृत्तिको चरितार्थ किया। उनके शाणितकृपाणसे सैकड़ों निःसहायके प्राण गये।

मुसलमान विणक्तींका प्रवल प्रताप पुर्तगीजोंके हाथसे कमशः खर्व होने लगा। जिस जिस वन्त्रमें मुसलमानोंने वाणिज्य द्वारा प्रमृत अर्थ और प्रमाव उपार्जन किया था, भारत-महासागर और अरवसमुद्रके तीरवसी प्रायः उन्हीं सब वन्त्रों पर पुर्तगीजोंने अपना अपना प्रताप जमा लिया। भीषण अत्याचार, पाशिक उत्पीड़न, घोरतर कामानगर्ज न सीर कूटनीतिबलसे पुर्तगीज लोग भारत-महासागरमें एक प्रकारसे एका- घिपत्य करने लगे। समुद्रवाणिज्यमें घोरे घीरे उन्होंने प्रधानता लाभ कर लं।

इस समय पुर्त्तगालराजने चारों और दृष्टि रखनेके लिये तथा पुर्त्तगीजोंकी स्वार्थरक्षाके लिये एक शासन-कर्ता (Governor)-को मारतवर्ष मेजा। पहले तिस्तौव-दा-कानहा इस उच पद पर सुशोभित हुए थे। किन्तु यहां उनका स्वास्थ्य ठीक न रहा, इस कारण डम-फ्रान्सिस्को-दा-अलमिदा प्रथम गवर्नर वन कर आये।

वुरीगीजोंका प्रथम शासन ।

१५०५ ई० अगस्त मासके शेषभागमें अलिमदा (Almeida) ने पहले पहल अञ्चद्दीपमें पदार्पण किया। यहां एक दुर्ग वनाया गया। एक पुर्तगीज-सेनानायक और ८० योद्धा दुर्गरक्षामें नियुक्त रहे। वहांसे अलिमदा हनोवर (Onor) को चल दिये। उन्होंने यहांके शहर और अनेक जहाजोंको जला डाला। यहांके नगराध्यक्ष तिमोजाने उनका आनुगत्य स्वीकार किया था।

पुर्तगालराजने अनेक हीरामुक्ताखित सोनेका एक मुकुट कोचिनराजके लिये भेज दिया था। गवर्नर अल-मिदा वड़ी धूमधामसे उस राजमुकुटको अपँण करनेके लिये कोचिन आये। किन्तु उस समय कोचिनराजने सिंहासन छोड़ दिया था, इस कारण उनके उत्तराधि-कारी नाम्बदानके शिर पर वह मुकुट पहनाया गया। इसी कोचिन नगरमें अलमिदाका प्रधान आवासनिर्मित हुआ और वहीं स्थान भारतीय-पुर्तगीजोंका सर्वंष्रथम शासनकेन्द्र गिना जाने लगा।

पुर्स गीजोंका प्रभाव क्रमशः वढ़ते देख सामरीराजने मिस्नाधिप सुलतानकी सहायता की और दोनोंने मिल कर बहुसंख्यक नीवल संप्रह किया। किन्तु उत्कोच-प्राही मुसलमान-चरके मुखसे यह संवाद पा कर पुर्स-गीजोंने पहले कायरोसे आये हुए नीवलको विपर्यस्त कर डाला। किन्तु उसके वाद ही मुसलमानी नीसेनाने जा कर पुर्त गीजोंको मार भगाया और अञ्जद्वीप पर अधिकार जमाया।

अनन्तर पुर्त्त गीज पोताध्यक्ष उम छोरेन्सोने पहले चेउल और पीछे दभोल पर आक्रमण किया। शेषोक्त स्थानमें आग लगा कर वे कीचिन छौट गये।

इस समय पुत्त गीज नीदस्युगणके हाथसे मळवार-का एक प्रवान वणिकपुत्र मारा गया था। इस निरए- राध धनीपुतर्के प्राणनांश पर कन्ननूरराज वड़े दुःखी हुए और वे सन्धि तोड़ कर पुत्त[°]गीजोंके कहर दुश्मन वन गये। सामरीराजने भी २१ कमान भेज कर उन्हें उत्ते-जित किया। कन्ननूरपतिने प्रायः ४० हजार नायरसेना एकत कर जल और स्थल पथमें भीमवेगसे पुर्त्तगीज पर आक्रमण कर दिया। इस समय लोरेन्सो दि-ब्रिटोने असीम साहससे अनवरत गोलावर्षण कर शतुओंको स्तम्मित कर दिया था। किन्तु उस विपुलवाहिनीका प्रवल आक्रमण वे कव तक सहा कर सकते! एक एक पुर्त्त गीज-योद्धा वहुसंख्यक शबुओंका विनाश कर देह-त्याग करने लगे। अव दि-ब्रिटोको जयलाभको आशा न रही। इसी समय उनके सीमाग्यवशतः पुर्त्त गालसे तृस्तांव-दा-कानहा ११ जहाज और २०० सौ नीयोद्धाके साथ कन्ननूर पहुंचे । इस नववलके आक्रमणसे नायर-सेना छतभङ्ग हो रणस्थलसे भाग चली। कन्ननूरराज सन्धि करनेको वाध्य हुए। पुत्तीजोंने भी अपनी सुविधा समभ कोई आपत्ति न की।

पुत्त गीज-गवर्नरने आ कर तृस्तांन-दा-कानहाकी भूरि भूरि प्रशंसा की । अब दा-कानहा पोणानी नामक स्थानमें सामरीराजके अधीन कुछ मुसलमानी वाणिज्य-पोतोंको ध्वंस कर तथा प्रसुर वाणिज्य द्रथ्य लूट कर देश लौटे। (६डी दिसम्बर १५०७ ई०)

इसके वाद सुलतानके प्रेरित और मीर होसेन-परि-चालित नौयोद्ध गणके साथ पुर्तागीजोंका घोरतर जलयुद्ध छिड़ा। इस युद्धमें मुसलमानोंके हाथसे पुर्तागीज गवर्नर अलमिदाका पुत मारा गया। आखिरकार मुसल-मानोंकी ही पूरी हार हुई थी।

जिस समय तृस्तांव-दा-कानहाने लिसवनका परि-त्याग किया, उसी समय आफन्सो-दा-आलबुकार्क भी ६ जहाजके अधिपति हो कर भेजे गये। यालाकालमें पुत्त गालराज डम मानुपलने उन्हें कह दिया था, कि अल-मिदा तीन वर्ष तक गवर्नर रहेंगे, पीछे वे ही राजप्रति-निधि और गवर्नर होंगे। इस उद्याशयको हृदयमें रख करः आलबुकार्कने पहले पहल भारतसागरमें प्रवेश किया, पीछे हरसुज (अर्मज) द्वीप पर अधिकार करके वहां एक स्थायी दुर्ग निर्माण किया। उनके सहगामी कुछ पोताध्यक्षने अमीधिपतिके निकट उत्कीच पा कर अथवा दुग निर्माण अनावश्यक समक्त कर उनके साथ विवाद किया, यहां तक कि वे आलबुकाक को परित्याग कर पुत्तगीज-गवर्नर अलमिदाके पास आये और उनके प्रधान अध्यक्ष आलबुकाक पर कई एक अभियोग लगाये।

उद्धत कप्तानोंकी वात पर विश्वास कर अलिमदाने हरमुजके अधिपति सेफउद्दीन और वहां के शासनकर्ता खोजा आतरको एक पत्न लिखा जिसका ममें यों था, "आलबुकार्क ने विना पुर्त्त गालराजकी आज्ञाके आपके विरुद्ध अन्याय कार्य किया है, इसके लिये उन्हें उपयुक्त दएड मिलेगा।" खोजा आतरने वह पत्न आलबुकार्क को दिखलाया जिसे देख कर आलबुकार्क ने भी समभ्द लिया था, कि भारतवर्ष पहुंचनेसे उन्हें किस प्रकार अभ्यर्थना-लाभ करना चाहिये।

यथा समय आलबुकाक अपने अपूर्व अध्यवसायके
गुणसे हरमुजमें पुर्त गोज आधिपत्य जमा कर तथा हरमुजाधिपतिको कर देनेमें वाध्य कर भारतवर्ष पहुंचे। उस
समय अलिमदा पुतहत्याका प्रतिशोध लेनेके लिये दीउ पर
आक्रमण करनेका आयोजन कर रहे थे। आलबुकाक ने
आ कर ही अलिमदाको राजाका आदेश कह सुनाया और
उनके हाथ शासन क्षमता दे कर उत्हें खदेश जानेका
अनुरोध किया।

अलिमदाने हठात् अपना उच्च पद छोड़ना न चाहा, वरं उन दुष्ट कप्तानोंकी वात पर विश्वास कर उन्होंने आलवुकाक के विकद्ध पुत्त गालराजके निकट अभियोग लिखा। आलवुकाक ने भी उसीके साथ साथ उसका व्यायथ उत्तर भेजा।

इस गोलमालके समयमें भी अलमिदाने अञ्जहीप होते हुए दमोल और महीम पर आक्रमण किया और भारतवर्षमें उनका आयुष्काल शेष हो चला, ऐसा समफ आशातिरिक धनरत संग्रह कर लिया। इसी समय जेडलके अधिपति निजाम उलमुक्कने पुर्तगालराजकी अधीनता खीकार की।

१५०६ ई०की ८वीं मार्चको वड़ी धूमधामसे अलिमदा कोचिन पहुंचे और जिससे आलबुकाक किसी प्रकार

शासन-क्षमता न पा सके, इसके लिये उन दुए कप्तानीके साथ गड़यन्त करने लगे।

इधर दो गवर्नरमें विवाद होते देख कोचिनराजने भी मालका मेजना बंद कर दिया। यह संवाद पा कर अल-मिदाने आलयुकार्कको कुछ काल तक शान्त रहनेके लिये अनुरोध किया। कोचिनराज आलबुकाक का पक्षा-वलम्बन करके अलमिदाके व्यवहारकी कथा सुचित करनेके लिये पुत्त गालमें दूत भेजनेको प्रस्तुत हुए। इतने पर भी अलमिदाने अपना शासन-कतृ त्व न छोड़ा। अलावा इसके जिससे आलबुकार्क के वन्धुविच्छेद और सुहदू मेद हो जाय, उनका मानसम्प्रम जाता रहे, कोचिनराजके साथ कुछ भी आलाप न करने पावे, इसके लिये अलमिदाने चारो और चर लगा कर व्यवस्था भी की थी। आखिर जब उन्होंने देखा, कि भालवुकाक किसी हालतसे उनकी वश्यता खीकार करनेको नहीं है, तब उस उच्चपदस्थ राजपुरुवले नाम पर यह कह कर अभियोग लगाया, कि वे पुत्तीगीज गवर्नर और उनके अधीनस्य समस्त पुत्त गीजोंके उच्छेदसाधनके लिये सामरीराजने साथ पड़यन्त्र कर रहे हैं। इस मिथ्या अभियोगके वलसे कन्ननूर दुर्गमें आलबुकाक[°] वन्दी हुए। उनके वासगृहादि अलमिदाके आदेशसे तहस नहस कर डाले गये। किन्तु आलबुकार्कको अधिक दिन तक कष्ठ भोगना न पड़ा। १५०६ ई०की २६वीं अक्तूवरकी उनके भतीजे मार्सल उम फ़ार्णान्हों कोटिनहों पुत्र गाल-राजका आदेशपत ले कन्ननूर आये । यहां आ कर आल-बुकाक को वन्दी देख वे वड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उसी समय उन्होंने आलबुकाक को मुक्त कर देनेका हुकुम दिया।

अलिमदाने देखा, कि अब उनकी चालाकी नहीं चलती इस कारण, उन्होंने १५वीं नवम्बरको शासनका भार आलखुकाक पर अपण कर म्लानमुख और भग्नहृदय-से खदेशकी याता की। जिन्होंने उनके साथ रह कर आलखुकाक के विरुद्ध अल्लाधारण किया था, वे भी उनके साथ जहाज पर चलें। सालदाना उपसागरके किनारे निरीह अधिवासियोंके प्रति अत्याचार करनेके कारण अलिमदा अधिवासियोंके प्रस्तराघातसे पश्चत्वको प्राप्त अलिमदा अधिवासियोंके प्रस्तराघातसे पश्चत्वको प्राप्त इए। प्रथम पुत्त गोज गवनरका यही परिणाम हुआ।

भारवुकार्कका शासन l

अव आलबुकार्क सर्वप्रधान पोताध्यक्ष (Captain General) और भारतके शासनकर्त्ता हुए। उन्होंने सामरीराजका पराक्रम नष्ट करनेके लिये कमर कसी। कोचिनपितने भी सामरीराजकी गतिविधि लक्ष्य करनेके लिये दो ब्राह्मणको चर रूपमें उनके यहां मेजा। चरने आ कर संवाद दिया, कि अभी राजधानीमें न तो राजा हैं और न अधिकांश सेना ही है, यदि कालिकट पर आकमण करना हो, तो यही अच्छा मौका है।

दिसम्बर मासके शेषमें २००० पुत्त गीज २० युद्ध-जहाज और वहुसंख्यक तरी ले कर कालिकटको अग्रसर हुए। आलवुकार्क और उनके मतीजे प्रधान अधिनायक हो साथ साथ चले।

१५१० ई०की ४थी जनवरीकी कालिकट पहुंचनेके साथ ही पुत्त गीजोंने मुसलमान न्यूहकी भेद डाला। भालवुकाक ने उस दिन अपनी सेनाको विश्राम करनेका हुकुम दिया, पर उनके भतीजेकी यह अच्छा न लगा। उन्होंने उसो समय सैन्यपरिचालना करके राजमवन पर आक्रमण किया और उसे भस्मसात् कर डाला। पहले तो किसीने वाधा न दी, पर राजभवन पर आक्रमण हुआ है, यह संवाद जब विजलोकी तरह तमाम फैल गया तव टिड्डी सरीखी नायरसेना आकर पुर्त गीजों पर टूट पड़ी। आलवुकाक अप्रगामी सैन्यकी और उनके भतीजे मार्संल पार्श्वसैन्यकी चालना करते थे। नायरोने पहले पार्श्वरिक्षयों पर ही धावा वील दिया। पुत्तं गीज लोग इस आक्रमणको सहान कर सके। खयं मार्सल और उनके सहकारी तथा और अनेक प्रधान प्रधान योद्धाओंने प्राण विसर्जन किये। आलबुकार्क को दो सख्त चोट लगी थी, उन्हें कन्धे पर उठा कर पुर्त्तगीजगण नी दो ग्यारह हो गये । उस समय बम अख्टोनिओ और रावल नामक दो पुर्रोगोज कप्तान दछवछके साथ यदि वहाँ न पहुंच गये होते, तो सम्भव था, कि एक भी पुर्त्त गीज जान ले कर लौटने नहीं पाता।

आलबुकाकंका घाव जब अच्छा हो गया, तब वे इसका बदला लेनेके लिये पुनः विपुल आयोजन करने लगे। सहायता पानेको आशासे उन्होंने विजयनगरा- धिप (नरसिंहराज)के निकट दूत मेजा । वे भी कुछ छामको आशासे स्थछपथमें पुत्तगीजोंको सहायता पहुं-चानेमें राजी हुए।

सव सालवुका के अञ्चहीप आये। यहां उन्होंने तिमोजा के मुखले खुना कि, कमी तुर्कों को गोआमें अच्छी धाक जम गई है। इन्होंने ही अलमिदा के पुलको मार डाला था। कायरों के खुलतान इनकी सहामता के लिये कुछ सेना मेज रहे हैं। इमियों में अच्छे अच्छे कारी गर हैं जो गोआमें रह कर पुर्तगीजों के जैसे उत्सृष्ट जहाज प्रस्तुत कर रहे हैं। गोआके स्वादारकी मृत्यु हो गई है। गोआ पर आक्रमण करने का यही अच्छा मौका है।

तिमोजाके मुखसे गोआको अवस्था सुन कर आल-चुकाक २४वीं फरवरीको गोआ पहुंचे। उनके भतीजे डम अव्योनिओने पिक्षम दुर्ग पर आक्षमण कर दिया और यहांके अख्रशस्त्रादि स्टूट कर दुगमें आग लगा दी। पीछे आप जहाज पर चले आये। दूसरे दिन नागरिक-प्रजाने दो सम्मान्त व्यक्तियोंको मेज कर पुत्त गालराजका आनुगत्य स्वीकार किया।

श्रधी मार्चको आलबुकार्कने सम्पूर्णकपसे गोआ पर अधिकार कर लिया। यहांके दुर्गमें यथेष्ठ युद्धसज्जा, कमान, गोला, गोली, वाणिज्यद्रव्योंसे लदे हुए ४० जहाज, अश्वशालामें १६० उत्हृष्ट अरवी घोड़े और तुक तथा कमियोंकी रमणियां पर्च शिशुपुतादि थे। ये सभी पुर्च गोज-शासनकर्त्तां हाथ लगे। पीछे उन्होंने वांदा और गोन्दालदुर्गसे तुकांको मगा कर वह दुग अपने वश-वर्त्तां प्राचीन हिन्दूराजवंशको प्रदान किया।

तिमोजाने समका था, कि जब गोआ पर पुर्त्त गीजा-का अधिकार ही जायगा, तब वे उपयुक्त कर छे कर मुक्ते ही वह देश दे दे गे। कारण, इस सम्बन्धमें दूसरे दूसरे कतानों की भी सम्मित थी, पर ऐसा नहीं हुआ। आछबुकार्कने गोआकी अवस्था देख कर यहीं पर पुर्त्त-गीज भारतका प्रधान शासनकेन्द्र बनाना चाहा। तिमोजा पुर्त्त गीजसे यथेष्ट सम्पत्ति और उन्न सम्मान पा कर भी तृप्त न हुए। जब आछबुकार्कको मालूम हुआ, कि तिमोजा असन्तुष्ट हो गये हैं, तब उन्हों ने उन्हें पुर्त्त-गीजसमामें बुला कर नंगी तलवार, प्रधान मएडकोश्वर

Vol. XIV. 41

(Aquazil)की उपाधि और गोबाकी समस्त भूमि (करनिश्चित करके) प्रदान की ।

मुसलमान स्वाने गोआमें आनेके साथ हो दूना कर वढ़ा दिया था। अव हिन्दूपजाने कर घटानेके लिये आलबुका कैसे निवेदन किया। हिन्दूराजाओं के समय जिस दरसे कर लिया जाता था, वहीं दर कायम रही। यह संवाद पाते हो हिंदूपजागण दलके दल आ कर गोआमें वास करने लगी।

. गोआ-प्रदेशका शासन और कर वस्तृ करनेके छिये पुर्तगीज शासनकर्ताके अधीन एक एक जिलेमें एक एक देशीय थानेदार नियुक्त हुए। प्रजा और विणक्ती की सुविधाके छिये टकसाल आदि खोली गई। सोने, चाँदी और ताँबेका क्रुजादो, दिनार, विन्तेम तथा एस्पारो प्रचलित हुआ।

इस समय भालबुकार्कने सुना, कि आदिलशाह उन पर आक्रमण करनेका विशेष आयोजन कर रहे हैं। उन्हें गोन्दालके मण्डलिकसे खवर मिली, कि शङ्के श्वरके राजा वालोजी, सुवाके सेनापति कोशलखाँ और करपत्तनराज मालिक रज्यान ये तीनों मिल कर आदिलशाहके साथ पड़यन्त्र कर रहे हैं और बहुत जल्द गोआ पर आक्रमण कर दे'ते। इधर आदिलशाहने अपने दलको पुष्टि करने-के लिये नरसिंहराजसे सहायता मांगी। नरसिंहराज मुसलमानों से विद्वेष रखते थें। उन्हों ने कहला भेजा, कि करीव ४० वर्ष हुए, मुसलमानोंने अन्यायपूर्वक उनके अधिकृत गोआ-प्रदेश दखल कर लिया है, इस कारण वे मुसलमानको सहायता न दे कर पुर्त्त गीजोंको ही सहायता देना अच्छा समऋते हैं। गारसोपाके राजा वीरचोलने पुत्त^रगीजोंका साथ दिया, आलबुकाकैने गोआंप्रवेशके सभी पथ घाट विशेषहपसे सुरक्षित कर रखे।

रही मईको आदिलशाहने दो दूत पुर्च गीज समामें मेजे । उनमेंसे एक पुर्च गीज था । यह व्यक्ति पुर्च - गालसे अपमानित हो कर भारतमें आया और आदिलशाहके यहां नौकरी करने लगा। दूतोंने आ कर आलबुकाकेंसे कहा, कि आदिलशाह अपना अधिकृत गोआप्रदेश चाहते हैं और उसके वदलेमें वे कोई दूसरा बन्दर उन्हें देनेको राजी हैं। आलबुकाक-ने आदिलशाहके प्रस्तावको नामंजूर किया। दोनों दूत वापिस गये।

१७वीं मईको गभीर रातिमें मुसलमानीने चार दलीमें विभक्त हो अगासिम नामक पथ होते हुए गोआमें
प्रवेश करनेकी चेटा की। पहला दल जो पुत्तगोजोंकी आँखमें घूल डाल कर अपना मतलव निकालना
चाहता था, स्वयं विनष्ट हुआ। परन्तु दूसरे दलने
नौकाद्वारा वड़ी तेजीसे अगासिममें प्रवेश कर तिमोजाके
रिक्षयोंको परास्त किया और पुत्त गीजनामक दुआर्से-दासुसाको मार डाला। वहां और जितने पुर्त गीज थे,
सर्वोंने गोआ जा कर जान वचाई।

इधर प्रवेशपथ पा कर आदिलशाह काफी सेनाके साथ गोआमें जा धमके । आलवुकार्ककी वाध्य हो कर दलवल समेत दुर्गमें आश्रय लेना पड़ा। किन्तु यहां भी वे निरापदसे रह न सके, तुरंत जहाज पर चढ़ कर भाग चले। आदिलशाहकी सेना पुत्त गीजके जहाज पर लगातार गोलावर्षण करने लगी। इधर जहाजकी रसद भी घट गई। एक तो मुसलमानोंके गोलेसे पुत्त गीजोंका लक्षभंग हो गया था, दूसरे रसद घट जानेसे आलवुकार्क और भी भारी विपद्में पड़ गये। २१वीं जुलाईको उन्होंने वहुत मिक्किलसे जहाज छोड़ा, पर जाते समय मुसलमानोंके गोलोंसे वहु संख्यक मनुष्य और कुल जहाज विनष्ट हुए थे।

रहवीं सितम्बरको आलबुकार्क कोचिन पहुंचे। इसके पहले पुर्च गालसे और भी अनेक युद्धजहाज और नीसेना पहुंच गई थी। अब आलबुकार्कने सभी जहाजके प्रधान प्रधान योद्धाओंको ले कर एक मन्त्रणासभा की। आलबुकार्कने पुर्चगीजोंको समका कर कहा, यदि हम लोग गोआको जीत न सकेंगे, तो समक्तना चाहिये. कि पुत्त गाल का नाम भारतसे शीघ ही बिलुत हो जायगा। उसनते हैं, कि आदिलशाह, सम्मात् और कालिकटके राजा बहुत

[#] जुजादोका परिमाण—१ | विनार—एक रूप्येसे कुछ सम । विस्तिम प्रायः अभैर एस्वारो प्रायः अ। इन सव मुद्राओंकी एक पीठ पर खुष्टीय क्या और दूशरी पीढ पर पुर्तगालराज हम माउएलका नाम अंकित रहता था।

जल्द एकत होंगे। इस समय यदि तुरस्कके सुलतान भी सेना भेज कर उन्हें सहायता पहुंचानेको राजी हो जांय, तो सम्भव नहीं, हम लोगोंकी जीत होगी, आशा पर पानी फिर जायगा। कोई कोई पोताध्यक्ष इस समय युद्ध करनेको राजी न हुए, किन्तु आलबुकार्कने कहा, 'हममेंसे जो इस समय युद्ध करना नहीं चाहते, वे पीछे रहें और जो पुर्त्वगीजराजके मानसम्प्रमकी रक्षाके लिये प्रस्तुत हैं, वे मेरे साथ आगे वहें।'

पुसगीजके कुछ जङ्गी जहाज कन्ननूरमें आ कर मिछे। आछवुकाक रेइ जहाज और प्रायः २००० पुर्त्तगीजसेना हे कर आगे वढ़े कि। उनके हनोवर पहुंचने पर तिमोजी और गासींपाके राजाने उन्हें आ कर स्वित किया, 'आदिछशाहके अधीन प्रायः ४ हजार तुकीं, कमी और ओरासानी सेना तथा कुछ वालघाटी तीरन्दाज गोआकी रक्षा कर रहे हैं।' गोआके समीप पहुंच कर आछवु-काक ने अपनी सेनाको तीन दलोंमें विभक्त किया। २५वीं नवम्बरको तीन ओरसे तीनो दलने गोधाको घर लिया। तुकाँने पहले पुर्त्तगीजो को वाधा दी थी, पर आछवुकाक ने स्वयं युद्धस्थानमें उतर कर अपनी सेनाको

यहांसे १५१० ई०की १७वीं अवतूबरको आलबुकार्कने पुर्तगालरान डममातुएलको एक पत्र इस प्रकार लिखा था, ''गोभा पर अधिकार करना पुरोगालराजका प्रधान करीन्य है। इस पर अधिकार हो जानेसे हम छोग एक समय बहजर्मे समस्त दक्षिण-भारतका शासन कर सके गे। हम नेगो का प्रधान अवलम्बन हैं युद्धजहाब । वह जहाज गोआ-में ही प्रस्तुत होता है, दूसरी जगह और कहीं भी नहीं। परीगोलसे कारीगर ला कर यहां जहाज बनाना सहज नहीं ह, विशेषतः देखा जाता है, कि यूरोपीय कारीगर इस देशके उल्ल जलनायुके गुणसे श्रीध्र ही अकर्मण्य हो जाते हैं, धनमें कुछ भी मनुस्थल नहीं रहता। किन्तु गाआके देशीय कारीगर सर्वदा सममावमें और ठीक यूरोपीयके जैसा काम किया करते हैं। यह त्थान यदि प्रसन्नानोंके अधिकार्में रहेगा, तो असंख्य जहाज बना कर हम खेंगी'का पराक्रम खर्व करेगा। समुद्रवाणिकार्स हम छोगी की प्रधानता है, बह प्रवानता वाती रहेगी । अतः जिस प्रवाससे हो सके, गोंना पर अविकार करना पुर्तनीओंका एकमात्र कर्तन्य है।

उत्साहित किया और तुकव्यूहको घेर डाला। पुत्त-गीजो'ने उन्मत्तकी तरह अपने प्राणको हथेली पर रख तुर्कोसेनाका पीछा किया। दोनो दलमें भीषण दन्द्युद होने लगा। पीछे अश्वारोही तुर्कीसेनाके आक्रमणसे पुत्त गीज लोग छतमङ्ग हो पड़े। अनेक प्रधान सेना-पतियों के प्राण गये। इस समय आलबुकार्क स्वयं नंगी तलवार हाथमें लिये उस रुधिर-समुद्रमें कृद पड़े। उनकी देखा देखी वहु संख्यक पुत्ती गीजने आ कर भीम-वेगसे तुक -अध्वारोहियों को मार गिराया और उनके अभ्व पर सवार हो वहुत जोरसे गरजते हुए मुसलमानों -को मदैन करने लगे। कुछ मुसलमान-सेनानायक शतुके हाथसे मारे गये । सेनापतिकी मृत्यु पर मुसलमान लोग डर गये और रणस्थलसे भाग चले। आलवुकार्क-ने गोआ पर अधिकार जमाया। अव उन्हों ने घोषणा कर दी, 'जो जितना ॡट सकेगा, वह उसीका होगा। आलवुकाक[°]ने १०० वडी वडी कमान, तरह तरहके युद्धास्त्र, २०० घोड़े और प्रचुर युद्धोपकरण पाये थे। **छुरठनशील पुर्त्त गीज-सेनाकी ता इनासे कितने** मुसल-मानोंके प्राण गये, कितनी मुसलमान-रमणियां पुर्तं-गीजके करायत्त हुईं, उसका डीक प्रमाण मिलता। हिन्दू ब्राह्मण और कृषकोंको जिससे किसी प्रकारका अनिष्ट होने न पावे इसके लिये आलवुकार्कने सर्वोको सावधान कर दिया था।

आलबुकाकंके यत्नसे गोक्षामें पुर्तागीज राजधानी वसा दो गई। जिन सव पुर्तागीजोंने यहांका अधिवासी होना चाहा, उनके साथ वन्दिनी मुसलमान-रमणियोंका विवाह हुआ। रमणीके लोभसे वहुतेरे पुर्तागीज योदा यहां विवाह करके भारतवासी हो गये और उनकी चालवाजीमें पड़ कर अनेक हिन्दुओं तथा मुसलमानोंने पोपके आदिष्ट खृष्टान धर्मको प्रहण किया।

पुत्तं गीजराजने केवल उच्च स्वभावके प्रधान प्रधान सैनिकोंको ही भारतीय महिलाके साथ विवाह करनेका अधिकार दिया था। किन्तु आलबुकार्क ने सभी पुर्त-गीजोंका आग्रह समभ कर किसीका भी आवेदन अग्राह्म नहीं किया। पर हां, रतना कह दिया, कि वे किसी नीच जातिको कन्यासे विवाह न करें, उच्च जाति और सम्वान्त व्यक्तिकी कंन्या पानेसे ही विवाह कर सकते हैं। आलवुकाक ने खयं भी एक उच्चवंशीय महिलाका पाणिप्रहण किया था। उस समयक पुत्त गीज विवरणसे
जाना जाता है, कि प्रायः दो हजारसे ऊपर पुत्त गोज
देशीय महिलाओंका पाणिप्रहण कर और जीविकानिर्वाहके लिये उपयोगी जमीन जमा पा कर भारतवासी हुए
थे। उन सब महिलाओंने यद्यपि ईसा-धर्म प्रहण कर
लिया था, तो भी उन्होंने सामाजिक आचार-व्यवहार, रीति
नीति, जाति और विश्वासका परित्याग नहीं किया।
बरन उनके प्रभावसे पुत्त गीज जातिने भारतीय आचार
व्यवहार और रीति-नीतिका अनुकरण करना सीख

मुसलमानोंके उत्पीड़नके भयसे अनेक सम्म्रान्त हिन्दू निकीवर द्वीपमें जा कर वस गये थे। जब उन्होंने सुना, कि गोआमें पुत्त गीजका अधिकार हो गया, तब वे आलबुकाक की अनुमति हो कर दलके दल यहां आ कर रहने लगा।

इस समय हनोवर (Onor) के राजाने गोआमें दूत मेज कर पुत्र गीजोंके साथ मिलता स्थापनका प्रस्ताव किया। किरतु आलबुकाक ने उनसे सन्धि न करके प्रकृत राज्याधिकारी और उनके भाई मलहाररावके साथ सन्धि कर ली। मलहारराम कनिष्ठकी दुरिमसन्धिसे अपना राज्य को बैठे थे। अभी गोआमें आ कर उन्होंने पुत्र गीज गवर्नरसे महासम्मान प्राप्त किया। पीछे वार्षिक २००००) उ० कर देना कबूल करने पर सारा गोआ उन्हें इजारेमें मिला।

गोआ नगरीको उपयुक्त रूपसे सुरक्षित करके आलबुकाक समृद्धिशाली मलका द्वीप जीतनेको अप्रसर
हुए। उस समय मुसलमान और गुजराती वणिक्गण
मलका, सुमाला और यनद्वीपमें वाणिज्य-व्यापारमें लिस
थे तथा इसमें उन्होंने लाभ भी खूब उठाया था। अव
पुक्त गीजोंने उन सब स्थानोंमें अपनी गोटी जमाना
नितान्त आवश्यक समना।

मलका-याता कालमें आलयुकाक सिंहल होते हुए गग्ने। राहमें सुमाताके पसुमाराज और यवद्वीपराजने उसका भातुगत्य स्वीकार किया। मलकाराजने कुछ

पुत्तं गीजोंको केंद्र कर रखा था । उन्हें छुरकारा देनेके लियेमालयुकार्क ने राजाको कहला भेजा । किन्तु मुसल-मान और गुजराती विणकोंकी उत्तं जनासे मलकाराजने पुत्तं गीज अधिनायककी वात पर कान न दिया। इस पर आलयुकार्क ने मलका पर चढ़ाई कर दी । मुसलमान सेनाने असीम साहससे युद्ध तो किया, पर पुत्तं गीजोंको हरा न सके । पुत्तं गीजके गोलोंसे मुसलमान लोग छव-मङ्ग हो 'पड़ें । अब पुत्तं गीजोंने जहाजसे उतर कर तीव्र वेगसे राजधानी पर धावा वोल दिया। मलका-राज अपने पुत्रं और जामाता समेत भाग गये।

इस समय चतुर मलयसेनाने अग्निपोतसे आ कर पुत्त गीज जहाजोंको नष्ट करनेको चेष्टा की। किन्तु पुत्त न गीजोंको सतक तासे वे विशेष हानि पहुंचा न सके। उस समय वहुतसे चीनपोत श्यामदेश जा रहे थे। उन सव पोतोंके अध्यक्षोंके साथ पुत्त गीजोंका सद्भाव हुआ था। श्यामराजके साथ मितता करनेके लिये आलवु-काक ने चीनपोताध्यक्षोंके साथ दुआत्ते फार्णान्दिकको श्यामराज्य भेज दिया।

मलका जब अधिकारमें आया, तव आल्ड्रेकार्क ने नगर लूटनेका डुकुम दे दिया, केवल नयनशेठी नामक एक हिन्दूका एक भी द्रम्य स्पर्श करनेसे निपेध कर दिया। अन्तमें वे इसी नयनशेठीकी शासनकर्ता और आत् मुत्राजकी मुसलमानोंका सर्दार वना गये श मलकादीपमें आल्ड्रकार्क ने पुत्त गीज-धाक जमार्छ। मुसलमानोंकी मसजिद तोड़ फोड़ कर उन्होंके माल-मसालेसे दुर्ग वनाये और प्राचीन मुद्राक वदलेमें पुर्त-गीज मुद्रा चलाई। भारत लीटते समय उन्होंने सुना, कि आत् मुत्राज अल्लाउद्दीन आदि मुसलमान सर्दारोंके साथ पुत्तेगोजोंके विकद पड़्यन्त कर रहे हैं। अतः उन्होंने उसी समय उत्तमराजको कैद कर लिया।

आलबुकाकने पुर्त गालराजके पास मलकाविजयका संवाद भेज दिया । पुर्तगालराजने यह खुश सवरी पोप-को सुनाई । पोपने इस संवाद पर रोममें वड़ी धूमधामसे उत्सव किया था।

क पुर्त्तगीजप्रक्यमें नयनशेठी Nmz chatu और आतम्बर् राज Utomutaraja नाम्मे वर्णित् हुए हैं।

आलयुकार्क के गोआ परित्यागके वाद ही आदिल-शाहके सेनापित पुलाद खाँने गोआ पर आक्रमण करके मलहाररावको वहांसे मार भगाया। मलहारराव और तिमोजाने विजयनगर भग कर नरसिंहराजके यहां आश्रय लिया। पीछे अपने भाईका मृत्यु-संवाद सुन कर वे विजयनगराधिपको सहायतासे पुनः हनोवरके राजा हुए।

पुलाद काँ वाने स्तरिम नामक स्थान पर छावनी डाल कर गोआ दुर्ग पर अधिकार करनेकी चेष्टा कर रहे थे। इसी समय आदिलशाहने रसुल खाँ नामक एक दूसरे सेनपतिको गोआ जीतनेके लिये मेजा। इन दोनों सेना-पतिओंमें पटती नहीं थी। रसुलखाँ उन पर विरक्त हो कर उन्हें दमन करनेके लिये पुर्तंगी जोंके साथ मिल गये।

पुलाद्कां पराजित हुए और भाग जानेकी वाध्य हुए। इधर रखुलकांने वानेस्तरिम पर अधिकार कर गोमा नगरो देखनेका अमिप्राय प्रकट किया। पुर्त्तगीजों-को अब अपनी भूल मालूम पड़ी और वे सतर्क हो गये। उस समय नगरमें केवल ४०० पुर्त्त गीज थे। ये लोग प्राणपणसे नगरकी रक्षा करने लगे। जयकी कोई सम्भावना नहीं है, ऐसा समक पुर्त्त गीजमेंसे बहुतींने रसुलकांका पक्ष लिया।

पुत्त गोजोंके ऐसे विपत्तिकालमें आलबुकार्क भारत उपक्लमें पहुंचे (१५१२ ई॰की जनवरी)। कोचिक, कत्रनूर, माट्कल आदि स्थानोंमें वाणिज्यका सुवन्दोवस्त करके वे अक्तूवर मासमें गोआकी रक्षाके लिपे अप्रसर हुए।

जो पुत्त गीजोंके विरुद्ध खड़े हुए थे अथवा जो विपक्षताचरणकी चेष्टा कर रहे थे, अभो आल बुकार्कका आगमन-संवाद सुत कर उनमें कितने भीत, विचलित और निरस्त हुए। कई एक युद्धोंके बाद रस्रलखाँने भी अपनो हार मानी।

इसके वाद खम्भातके अधिपति और आदिलशाहने दूत मेज कर सन्धिका प्रस्ताव किया। उस समय गार्सिया-दा-सुसा दभोलमें घेरा डाले हुए थे। सन्धिका प्रस्ताव सुन कर आलबुकार्कने उन्हें दमोल पर आक्रमण करनेसे मना कर दिया।

गण पुर्तगालराजको समभा रहे थे—'गोआ नितान्त है थे। अस्वास्थ्यकर स्थान है, उस स्थानरक्षाके लिये व्यथंमें ह दूसरे लोकक्षय और प्रचुर अर्थव्यय हो रहा है।' पुर्तगालराजने सेना-भी उनकी वात पर विश्वास कर आलबुकार्कको लिख रक्त हो भेजा, 'गोआ जैसा अस्वास्थ्यकर स्थान है, कि उसे मिल छोड देना ही उचित है।' आलबुकार्कने भी इसका

कोठो सोलनेका आदेश लिया।

यथायथ उत्तर दे कर पुत्तं गालराजके इस मिथ्या संदेहको दूर किया। पुत्तं गालराजके आदेशसे आलबुकार्क (१५१३ ई०की ८वीं फरवरी) १८०० पुत्तं गीज, ८३० मल-वारी और कर्णाटी नौयोद्धाको साथ ले अरवके प्रधान

इधर नरसिंहराज और बैङ्गीपुराधिपके साथ उन्होंने

मिबता की । पुर्त्तगीज-अधिकारके मध्य जो सब अरवी

घोड़े आयंगे, उन्हें किसी दूसरेको न दे कर विजयनगर

भेज देंगे, इस शर्त पर उन्होंने नरसिंहराजसे भाटकलमें

सौमाग्योदय हो रहा था, उस समय उनके कुछ विपक्ष-

भारतमें जन आलबुकाकंके यक्क्से पुर्तगीजींका

वन्दर आदेन पर चढ़ाई करनेके लिये अप्रसर हुए।

२६वीं मार्चको पुत्त^रगीजसेनाने तीन ओरसे आदेनको घेर लिया। आदेनके शासनकर्ता मीर मिर्जाने पहले मीठी मीठी वार्तीसे तथा उपढौकन भेज कर सन्धिका प्रस्ताव किया, लेकिन उससे कोई फल न देख वे भी ्दलवलके साथ पुत्त^भगीजका आक्रमण व्यर्थ करनेके लिये अवसर हुए। दोनों पक्षमें गोलावृष्टि होने लगी। पुर्त-गीजके गोलोंसे नगरकी यथेष्ट क्षति हुई, किन्तु इस बार पुत्तं गीज लोग आदेन जीत न सुके। वहांसे आलवु-कार्कने ससैन्य अरवसमुद्रमें प्रवेश किया। इस समय उनके दो उद्देश्य थे, १ला-कायरोकी जमीनकी उर्चरता नष्ट करनेके लिये पहाड़ काट कर नीलनदका स्रोत परि-वर्त्त और २रा-जेरुसलेमके जुष्टमन्दिरका उद्घार करनेके लिये अनेक अध्वारोही सेना ले कर अकस्मात् मदिना पर आक्रमणपूर्वक महस्मदकी मूर्चि लाना। किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हुई। अरवसमुद्रवत्ती कुछ वन्दरोंका सन्धान, कुछ अरवीपीतोंका दहन और और खुएउन छोड़ कर इस यातामें कोई विशेष स्थायी कार्यं न हुआ।

Vol. XIV. 42

अगस्त मासमें आछवुकार्क दीउ द्वीपकी छौट आये। यहांके मुसलमान शासनकर्त्ताने उनका अच्छा सत्कार किया। चेउल आ कर आछबुकार्कने सुना, कि कुछ मुसलमानी जहाज माल ले कर कालिकटसे मक्का जा रहे हैं। फिर क्या था, आलबुकार्कने कुछ योद्धाको भेज कर वे सब जहाज छीन लिथे।

अनन्तर आलबुकार्भने कालिकटमें दुर्ग वनानेका दूढ़ सङ्कल्प किया । इस समय जिससे पुत्त गोजोंके साथ सामरीराजकी सन्धि स्थापित होने न पावे, कन्ननर और कोचिनके राजा भीतर ही भीतर उसकी चेष्टा कर रहे थे। सामरीराजने किसी हालतसे पूर्व गीजोंको कालिकट वन्दरके इदय पर दुर्ग वनानेकी अनुमति न दी। सामरीराजके भाईने छिपके पुर्र गीजोंके साथ मितता कर ली थी। अब भी आलबुकार्कने उन्हें कहला भेजा कि, 'आपको हो कालिकटके राजा वनावेंगे। सामरी-राजकी विषप्रयोग द्वारा हत्या करना ही आपका कर्च व्य है।' राजभाताने आलवुकाक के इस घूणित प्रस्तावको स्वीकार कर लिया । थोडे ही दिनोंके वाद विपपानसे सामरीराज कराल कालके गालमें फंसे। उनके साथ कालिकटमें हिन्दू और मुसलमानकी प्रधानता थी, वह भी जाती रही। सातृहन्ताने अव सिंहासन पर बैठ कर पुत्तं गीजोंकी अपने यहां बुलाया। धूर्त पुत्तं गीजोंकी वहत दिनोंकी आशा पूरी हुई। मुसलमान लोग अत्या-चारके भयसे कालिकट छोड़ कर भाग गये। आलवु-काक⁸ दलवल समेत भ्रातृघाती सामरीराजकी सभामें पह वे। सामरीने पुर्त गीजोंके इच्छानुसार ही दुगै वनानेका हुकुम दे दिया। समुद्रके किनारे और वन्त्रके मध्यस्थल पर दुर्भेच दुर्ग वनाया ,गया । उपयुक्त पुर्क-गीज सेनापति दुर्गरश्लामें नियुक्त हुए। सामरीराजने सुवर्णाक्षरसे सन्धिपव पर हस्ताक्षर कर दिया और पुर्तं-गालराजसे उनका मिलताशापकपत लानेके लिये एक राजदूत पुर्त्तंगाल भेजा। पुर्त्तंगालराजने उस दूतकी सम्मानरक्षा की और वे अपने हाथसे पत्र छिख कर सामरीराजके साथ मिलतासूलमें आबद्ध हुए। दोनोंमें यह शर्त उहरी, कि सम्पद् विपद्गें एक दूसरेकी सहायता करेंगे।

१५१३ ई॰की २४वीं दिसम्बरकी पुर्त्तगीजोंके साथ सामरीराजकी जो सन्धि हुई, उसमें इस प्रकार लिखा था—

"प्रवाल, रेशमीवस्त्र, पारद, सिन्दूर, तांबे, केसर, सीसे, फिटकरी और पुर्त्त गालसे आगत दूसरे दूसरे वाणिज्यद्रव्योंकी पूर्ववत् वन्दर और पुत्त गीजोंकी कोटीमें विकी हो सकेगी। सामरीराज भी अपने राज्यमें जितने प्रकारके गरम मसाछे और भेषजद्रष्य उत्पन्न होते हैं, सर्वोकी रक्षनीके लिये पुत्त गीजोंको अर्थण करें गे। पुत्त-गीज भी जो सव द्रव्य खरीदेंगे, राजाकी उसका महसूल देंगे। सामरीराजके अधिकारके मध्य हरमुज, सम्मोत, सुमाला, सिहल आदि स्थानींसे जो सव मुसलमानी जहाज आवेंगे, उनसे उपयुक्त महसूल लेना होगा। कन्ननूर और कोचिन छोड़ कर और जिस किसी स्थान-का जहाज कालिकटमें 'पासपोर्ट' लेने आवेगा, पुर्तागीज उन्हें 'पासपोर्ट' दें में। देशीय और अथवा कोई पुर्त-गीज यदि आपसमें लडाई भगडा करे. तो सामरी-राज देशीय व्यक्तिका विचार और पुत्त गीजदुर्गाध्यक्ष पुत्तंगीजका विचार कर उपयुक्त दण्डविधान करेंगे। सामरीराजकी जो आय होगी, उसका आधा राजा और आधा पुत्त गालराज पावे गे। सामरीराजके प्रयोजन होने पर पुत्त गालराज सैन्य द्वारा उनको सहायता करेंगे, उघर सामरीराज भी सैन्य द्वारा पहुंचानेकी वाध्य हैं। पुर्त्त गीजगण गोलमिर्च अथवा जी कोई द्रष्य खरीदेंगे, उसका उचित मूल्य देनेको वाध्य होंगे और राजा उसका महसूल नगदमें वसूल करेंगे।"

उक्त सन्धिकी खबर कोचिनराजको लग गई। पुर्तं-गीजगण उन्हें वार बार आशा देते था रहे थे, कि मौका पा कर वे सब मिल कर उन्होंको भारतके प्रधान राजा बनावेंगे। किन्तु अभी कालिकटको जो सन्धि हुई, उसमें पुर्त्तं गीज-शासनकर्ताने कोचिनराजको घूणाक्षरमें भी अपना अभिप्राय जानने न दिया। कोचिनराजने नितान्त दुःखी हो. पुर्तं गालराजको इन सब विषयोंकी खबर दी। किन्तु पुर्त्तं गालराजने उनके पल पर जरा भी ध्यान न दिया। जिन पुर्त्तं गीजोंके लिये पूर्वतन कोचिनराजने अपने प्राण तक विसर्जन कर दिये थे, जिन्हें आंश्रय दे कर कोचिनराज देशीय दूसरे दूसरे

राजाओं के शतु वन गये हैं, उस पुर्तागोज जातिकी खार्थपरता देख कर उदारचरित कोचिनराज वड़े विस्मित और मर्माहत हुए। आलबुकार्क प्रत्येक पत्नमें पुर्तागालराजको स्चित करते गये कि, "उनके विपक्षमें राजाके समीप जो कोई किसी प्रकारकी चर्चा करेगा, उसे राज्यका घोर शतु समक्तना राजाका प्रधान कर्ताथ है।"

कन्नन्तर्में रहते समय आल्ड्युकाकको खबर लगी, कि तुरुक, मिस्न, अरब आदि स्थानोंके अधिपतियोंने पुत्तं गोजोंका दमन करनेके लिये विशेष आयोजन किया है और वे भारतीय राजाओंको भी उत्ते जित करनेके लिये दूत द्वारा प्रसुर अर्थ भेज रहे हैं।

पुर्त्त गीजोंके आदेन-वन्द्र आक्रमण करनेके वाद मल-वार उपकूलमें उत्क्रप्ट अफीमकी आमदनी वंद हो गई। १५१३ ई०की १ली दिसम्बरको आलबुकाकने इस अफीम-की आवश्यकताके सम्बन्धमें पुत्त गालराजको एक पत इस प्रकार लिखा,—

"में आपको सामान्यद्रव्यकी वात नहीं लिखता। यदि आप मेरी वात पर विश्वास करें, तो आजोर्सके पोस्तेको हैं हीको तमाम पुर्त्तगालमें खेती कराना कर्त्तव्य है। कारण, पहले यहां जिस मूल्य पर अकीम मिलती थी, अभी आठ गुना दाम देने पर भी वह नहीं मिलती। यदि प्रतिवर्ष एक जहाज अफीम वहांसे भेज सकें, तो खर्व वाद दे कर यथेष्ट लाभ हो सकता है और अधीन भारतवासियोंकी भी जीवनरक्षा हो सकती है। अफीम-का सेवन नहीं करनेसे भारतवासी नहीं वचेंगे।"

१५१४ ई०की जनवरीमें आलबुकार्कने गोआ आ कर देखा कि, पेगु, श्याम आदि नाना दूर देशोंसे राजदूत आ कर उनकी अपेक्षा करते हैं। पुत्त नालराजके साथ मिलता करने और मलका आदि स्थानों पर वाणिज्य-स्थापनके उद्देश्यसे वे लोग आते हैं। पुत्त गालराज-को उपढ़ौकन देनेके लिये वे अपने साथ नाना उपहार लाये थे। आलबुकार्कने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया।

इसके वाद दीउ नामक द्वीपमें दुर्ग वनानेकी कामना-से वे उद्योग करने लगे। वहांके अधिपितको सन्तुष्ट

करके उनकी अनुमति छेनेके किये उन्होंने पेरी-काइ-मदी और गणपति नामक एक गुजराती भाषाश्व हिन्दूको दूत वना कर भेजा। सम्भात्के अधिपतिने इस विषयमें यथेष्ट सहायता की थी । लाख चेष्टा करने पर भी पुत्त गीज लोग दीउ द्वीपमें दुर्ग न वना सके। पीछे नरसिंहराज और आदिलशाहने आलवुकाक के पास दूत मेजा। आलवुकाक ने पहले भारकलमें कोडो खोलनेके लिये नरसिंहको जैसी खुशामद की थी, अभी वह भाव उन्होंने नहीं दिखाया। अभी उन्होंने कहा, 'उपयुक्त अर्थ पानेसे वे नर्रासहराजके निकट पुत्त गीजसेना और घोडे भेज सकते हैं। पर हां, इतना कह सकते हैं, कि वे नर्रासहराजसे कभी भी शलुता नहीं करेंगे।' पीछे उन्होंने आदिलशाहके दूतसे कहा, 'आदिलशाहने जो सव पुर्र गीज रखे हैं, उन्हें यदि वे गोआ मेज दें, तो सन्धिके प्रस्ताव पर विचार किया जा सकता है।' आदिलशाहने बहुतसे पूर्व गीजो को गोआ भेज दिया। इन लोगों ने आदिलशाहका पक्ष अवलम्बन किया था, इस कारण आलबुकाक ने इन्हें दुर्गमें कैद कर रखा।

हरमुजके पूर्वतन अधिपतिको मृत्यु हो जानेसे वहां एक दूसरे शासनकर्ता नियुक्त हुए थे। ये नाममातके शासन कर्त्ता रहे, नूरउद्दीन नामक एक अमीर ही सर्वे-सर्वा थे। पुत्रं गीजोंके साथ उनका सन्नाव नहीं था। पुत्त गालपोताध्यक्ष पेरो-दा-आलबुकाक ने उनकी कुट नीतिसे वड़े कौशलसे पुत्त गीज खार्थरक्षा की थी। धीरे धीरे हरमुज हीपमें नूरउद्दीन और उनके भाई ही प्रवल हो उठे। हरमुज-अधिपति उनके हाथके खिलोंने थे। दोनों अमीरको असाधारण क्षमतासे वहुतसे छोग वागी हो गये। इसी मौकेमें पुर्त्त गोजगण हरसुजको जीत कर पुर्त्त गालराजकी विजयपताका फहरानेकी कोशिश-में थे, पर सभी चेष्टाएं निष्फल गई। वे जहाज लूट कर अर्थ संग्रह करके आफन्सो-दा-आलवुकाकंके निकट उपस्थित हुए। अपने भतीजेसे आद्योपान्त कुल वृत्तान्त सुन कर वे उसी समय हरमुजकी ओर रवाना हुए (१५१५ ई०को २१वीं फरवरी)। इसी समय आलिदशाहका दूत सन्धिका प्रस्ताव हे कर वहां उप-स्थित हुआ, पर इस सम्बन्धमें अभी कोई बातचीत न छिड़ी।

मस्कट शहरमें आ कर आलबुकार्कने सुना, कि हर-मुजमें घोरतर विद्रोह उपस्थित है। नूरउद्दीनके मतीजे हामिद्ने दुर्भ और प्रासाद पर अधिकार कर लिया है और उनके हायसे हरमुजके अधिपति तथा नूरउद्दीन सपरि-वार वन्दी हुए हैं । आलबुकार्क वड़ी तेजीसे हरमुज आये और यहां तोपध्वनि करके उन्होंने अपना आगमन-संवाद स्चित किया। हामिद्ने भयभीत हो अधिपति और नूरउद्दीनको मुक्त कर दिया । पीछे उन्होंने उपहार द्रव्यके साथ सन्धिका प्रस्ताव ले कर एक दूत भेजा। पुत्तं गीज-प्रतिनिधिने दूतका खूव सत्कार किया और जाते समय कह दिया, 'यदि पुर्त्तगालराजकी विजय-पताका राजप्रासादके शिखर पर गाड़ दो, तो पुर्स गाल सन्त्रि कर सकते हैं।' आखिर हुआ मी यही, निर्वोध हामिदने पुर्त्तं गालराजकी पताकाको प्रासादकी चूड़ा पर सुशोभित किया । समस्त पुत्तं गीजोंने एकवारगी तोपध्विन करके राजपताकाकी सम्मान-रक्षा की। हर-मुजने अधिवासियोंने समक्षा, कि हरमुजशहर पुर्च गीजों-के हाथ लग गया। आखिर हुआ भी वही। १५१५ ई॰की १ली अप्रिलको आलवुकाक्षेत्रे दलवलके साथ जहाज परसे उतर कर राजप्रासाद तथा दुर्ग पर अधि-कार किया और हामिदको मार डाला । पीछे समी क्षमीर उमरावके सामने उन्होंने हरमुजने उस वन्दी नर-पतिको राजा कह कर घोषणा कर दी। इसके वाद सेख इस्माइलके यहांसे दूत आया । आलवुकाकने भी यह संवाद दे कर एक दूतको इस्माइलकी सभामें मेजा, कि वे कायरोके सुलतानको परास्त कर आपको सहायता कर सर्वेगे।

हरमुजद्वीप पुर्तं गीजोंके सम्पूर्णं करायत्त हुआ।
नाममालके राजा रहे। पुर्तं गीज दुर्गाध्यक्षकी सम्मितके विना राजाको कोई कार्यं करनेका अधिकार न रहा।
इस प्रकार हरमुजमें पुर्त्तं गालको गोटी जम गई। अव
आलवुकार्कं आदेन वन्दर जीतनेका आयोजन करने लगे।
उस समय पिश्यामें कालिकट, हरमुज और आदेन ये
तीनों ही सर्वप्रधान वाणिज्यक्षेत गिने जाते थे। पहले
दोका वाणिज्य पुत्त गीजों के अधिकारमें आ गया, केवल
तीसरा आनेकी वाकी है। उन्हों ने सीचा यह तीसरा

केन्द्रस्थल यदि उनके हाथ लग जाय, तो पुत्त गीज जाति पशियामें वाणिज्य-जगत्की सर्वमयकर्ता होगी और पुत्त⁹गाळराज भी समस्त सभ्य जगत्में ऊ^{*}चा स्थान पार्वेगे । इसं बार आळवुकार्क पहलेसे भी ज्यादा आयोजन करने लगे । उन्हों ने फनसेको नामक अपने गुमाश्तेको प्रचुर अर्थ दे कर अनेक युद्धोपकरण संप्रह करनेके लिये भेजा। चेमा और नाना स्थानों के मुसल-मान -राजाओं के निकट दूत मेज कर भय मैंबी दिखलाते हुए बहुतों को वशमें कर लिया। किन्तु इस वार चारों ओर सुविधा रहने पर भी विधाता वादी हो गये, आलवुकार्क असुस्थ हो पड़े। दिनों दिन उनकी वोमारी बढ़ने लगी । २०वीं जनवरीको उन्होंने अपने भारमीय और प्रधान प्रधान पोताध्यक्षके सामने अपने भतीजेको हरमुजका दुर्गांध्यक्ष वनाया । दुर्गं रक्षाके लिये उपयुक्त उपदेश दिया और इरमुजके पूवतन राजा सैफ उद्दीनके नावालिग दोनों पुत्नोंको उनके तत्त्वावधानमें रखा। वे जानते थे, कि पेसा नहीं करनेसे वत्त मान हरमुजा-धिप सुविधा पानेसे ही उन दोनों राजपुतों को मार डालेगा । ८वीं नवम्बरको उन्हों ने हरमुजसे अन्तिम विदाई ली। भारतकी भोर उनका जहाज अप्रसर हुआ।

मस्तरके निकट कलहार नामक स्थानमें जब उनका जहाज आया तब नाविकोंने एक मुसलमानी रणपीत पर आक्रमण कर दिया। इस रणपीतमें आल्डुकार्कके नामसे एक पत्न था। पत्न पढ़ कर आल्डुकार्कने समका, कि पुर्वा गालराजने शहकी प्रतारणामें भूल कर उनके स्थान पर लोपो सोयारेसको भारतका शासनकर्ता और सर्वप्रधान पोताध्यक्ष बना कर मेजा है। पुर्वा जी वीर पत्न पढ़ कर मर्माहत हो वोले, "मैंने राजाके निकट जनताके निकट बदनामी उठायी। क्या हो अच्छा होता, यदि इसके पदले मेरी मृत्यु हो जाती।"

उक्त मुसलमान-रणपोतमें हरसुजपितके नाम एक और पत था जिसमें लिका था, "यदि अव तक आलबु-कार्कने हुर्ग पर अधिकार न किया हो, तो किसी हालत-से कुछ दिन और उसे बचाये रखें। कारण, एक और दूसरे शासनकर्ता जा रहे हैं, वे आप लोगोंकी इच्छा पूर्ण करेंगे। पुर्तागालराजसे यद्यपि आलबुकाक हतमान हो गये थे तो भी उन्होंने पुर्त्त गीजजातिसे भूछ कर मी शतुता करना न चाहा। उन्होंने उसी समय पत्नको जला डाला और मुसलमानोंको ह्रसुज जाने दिया। अव आलयुकार्कने केवल प्रधान कर्मचारीको अपने पास रख कर इच्छापत (Will) प्रस्तुत किया जिसका प्रथम इस प्रकार था—

'गोआमें मेरे यत्नसे जो गिर्जा बनाया गया है उसी-में मेरी समाधि वने और मेरी एक खएड अस्थि पुर्च-गालमें भेजी जाय।'

पीछे वीच समुद्रमें वैट उन्होंने मृत्युका दिन निकट ज्ञान कर ६ठीं दिसम्बरको एक पत्न पुर्तागोलराजके पास इस प्रकार लिख भेजा—

'महानुभव! यह पत अपने हाथसे लिख न सका, लिखनेकी अव मुक्तमें सामध्ये रह न गई। सृत्यु वहुत करीव है। मेरे यहां पर केवल एक पुत्रक है, मुक्ते जो कुछ है, उसीको सौंप जाता हूं। आपके श्रीपदमें भारत-का सर्वप्रधान स्थान अर्पण किया है। मैंने जो कुछ किया है, उसे आप भूले गे नहीं। मेरे लिये मेरे पुत पर स्थाल रखें गे।'

१५वीं दिसम्बर शनिवारकी रातको उनका जहाज बहुत धीरे धीरे उन्होंके प्रीतिप्रद गोआवन्द्रमें उपस्थित हुआ। उनका मुमुर्वकाल उपस्थित जान कर गोथाके सवप्रधान धर्माध्यक्ष ('icar general) उनके शान्तिविधानके लिये जहाजसे वहां पहुंचे। उन महावीरने जीवनके शेवकालमें अपने रणवेशको उतार खृष्टान साधुके परिच्छेदसे निज देहको भूषित करनेका हुकुम दिया। धर्मालाप करते करते रिववार ब्राह्मसुद्धक्षंमें पुत्त गाल-राज्यके एक महायुक्षने इस लोकका परित्याग किया। गोथाके पुत्तं गोज गिर्जामें वड़ी धूमधामसे उनको समाधि हुई। पुत्तं गालराजने कहला मेजा, कि "जब तक आल-युकाकको अस्थि भारतमें रहेगी, तब तक पुत्तं गीजजातिको भारतमें कोई विपद्द नहीं है। अतः उनकी अस्थि पुत्तं गाल भूल कर भी न भेजी जाय।'

Vol. XIV. 43

आलवुकार्कने अलेकसन्द्रकी जीवनी पढ़ों थी। उनकी जीवनी भी उसी माकिदन महाबीरके आदर्श पर परिचालित हुआ था। उनके मृत्युकालमें चारों और पूर्णशान्ति विराजमान थी। भारत-उपक्लके साथ मलका, सुमाला, सिंहल आदिका चाणिज्यं निरापद्से बलता था।

१५१५ ई०की ८वीं सितम्बरको छोपो सोम्रारेसने
गोआ आ कर शासनमार प्रहण किया । शासनमार
प्रहण करते ही वे पूवतन दुर्गाध्यक्ष भौर कप्तानोंके स्थान
पर नये नये आदमीको भत्ती करना शुक्त कर दिया और
सभी काय मनमाना करने छगे । उनके आचार-व्यवहार पर सभी मंनुप्य विरक्त हो गये । कोचिन आ कर वे
अन्यान्य कार्य करने छगे, इस पर कोचिनराज भी बहुत
विगड़े । एक पुर्तगीज येतिहासिकने खिखा है, "अभी
भद्र छोगोंका व्यवहार विछक्तल उलट गया । उन्होंने
वाणिज्य-व्यवसाय छोड़ दिया और अपने मानसम्भ्रमकी
रक्षाके लिये धनरत्वकी अपेक्षा अस्त्रशस्त्रको हो अधिक
पसन्द किया । अभी जहाजके कप्तान ही प्रधान वणिक्
हो गये । सुतरां मान अपमानमें, यश अपयश्में और
आदेश उपहासमें परिणत हुआ ।"

सच पृछिये तो इस समय धर्मका होंग करके पुर्त -गीज याजकोंने तथा वाणिज्यके नाम पर जहाजके कप्तानों-ने यहां तक कि पुर्त गीज सैनिकसे हो कर मांकोमछाह पयन्त सवोंने घोर अत्याचार करना आरम्म कर दिया। पहले पुर्त गीजोंने आ कर अपने अपने खाथसाधनके लिये जैसा व्यवहार किया था, आज कलके अविचार और उत्पीड़नकी तुलनामें वह कुछ भी नहीं है।

अरबसमुद्रमें सुलतानका प्रभाव सर्व करके पुर्त-गोजोंकी प्रधानता स्थापित करनेके लिये पुत्त गालराजने लोपो सोआरेसको भेजा था। अभी राजप्रतिनिधि (टवीं फरवरी १५१६ ई०) राजाका आदेश पालन करनेके लिये २७ जहाज, १२०० पुत्त गोज

^{*} इस पुत्रने एक सम्त्रान्त मारतमहिलाके गर्मसे अन्त-प्रहण किया था।

[#] किन्द्र इवके पचास वर्ष बाद (१५६६ दे०की १८वाँ महँको) आछबुकार्ककी अन्तिम इच्छा पूरी करनेके छिये छनकी अस्मि लिसबन नगरमें ठाई गई और बनी धूमभामसे किसी निर्देष्ठ स्थानमें रखी गई थी।

और ८०० मळवारी-सैन्य तथा ८०० मळवारी नाविक ले कर दौड़ पड़ें। इस समय आदेन आसानीसे पुत्त गीजोंके अधिकारमें आ जाता, पर राजप्रतिनिधिकी वेवक्फोसे ऐसा न हो सका। आदेन पहुंच कर पुर्त-गीजोंने तोपध्वनि की जिससे वहांके शासनकत्तांने विना किसी छेड़ छाड़के दुर्गद्वार स्रोल दिया और पुर्त्त गाल-राजकी अधीनता स्वीकार कर छो। उनकी मीटी मीटी वातोंसे संतुष्ट हो लोपोने और कुछ भी न किया, वरन् उनसे संवाद पा कर वे सुखतानके जहाजको ध्वंस करने-के लिये अरवसमुद्रकी और चल दिये। किन्तु लाख चेपा करने पर भी वे सुलतानका वाल वांका कर न सके। नाना स्थानोंमें उनका वलक्षय होता गया। आखिर रसद घट जानेसे बहुतोंकी जान भी गई। सुविधा न देख वे वहांसे छीटे, किन्तु छीटते समय बादेनमें प्रवेश कर न सके। इस वार आदेशकर्त्ता विशेवरूपसे डटे हुए थे। पुर्र्त गीजोंके पक्षमं सुविधा न होगी, ऐसा समक लोपोने भग्नमनोरथ हो आदेनका परित्याग किया। १५१६ ई०के सितम्बर मासमें वे गोआ पहुंचे, किन्तु यहां अधिक काल दहर न सके, तुरत कीचिनके लिये खाता हो गये। २५वीं सितम्बरको कोलम्बकी रानी और उनके अधीन सामन्त राजाओंके साथ छोपोंने सन्धि कर छी। इस पर रानीने सेण्ट-टामस-गिर्जाका पुनः निर्माण कर दिया और ५००० मन गोलमिर्च देनेकों राजी हुई'।

पुर्स गीज-प्रतिनिधि जिस समय अरवसमुद्रमें थे, उसी समय आदिलशाहने गोआ जितनेके लिये अंकुश खाँ-को भेजा था। लोपो उसी समय गोआ आये और उप-कूलवर्त्ती सभी स्थानों पर दखल करनेके लिये गोआके सौन्याध्यक्ष गोटेरी-डि-अनरोको हुकुम दिया। पुर्त्तगोज-सेनापतिने पएडा पर चढ़ाई कर दी, पर इतकार्यं न हो वे अन्तमें २०० सेनाको खो कर लीटनेको वाध्य हुए। इसके वाद आदिलशाह वहुत-सी सेना भेज कर कई मास तक गोआमें घेरा डाले रहे जिससे गोआवासियोंको यथेष्ट दुर्दशा हुई। पुत्त गोज लोगकी भी रसद घट जानेसे चिन्तित थे, कि इसी समय कोलभ्व और चीनसे पुत्तं गीज रणतरीने आ कर गोआको रक्षा की।

इसके वाद मलका, पसुमा आदि द्वीपोमें भी छोटी

मोटी छड़ाई हुई थी। किन्तु पुरर्तगीज जातिके अदृष्टि-कामसे कोई स्रति न हुई।

पसुम्माकी ओर जाते समय (फरवरी १५१६ ई०) कसान टम पेरेस प्रतिकृष्ट तूफानमें पड़ कर बङ्गालमें जाने लगे। पुत्त गोज आज तक कभी बङ्गाल नहीं आये हुए थे, यही उनका पहला आगमन था। किन्तु यहां वे विशेष उपद्रव कर न सके, लूट पाट हारा कुछ रसद संग्रह कर मलकाको चल दिये। अन्तमें चीनदेश जा कर उनका प्राणान्त हुआ।

लोपो सोयारसकी शिकायत पहले ही पुर्ता गालराज-के पास पहुंच चुकी थी । राजाने उन पर सन्देह करके फर्णव-दा-आलका-केवाको उनका हिसाव किताव देखनेके लिये भेजा। किन्तु प्रतिनिधिके साथ उन्हें मुलाकात न हुई। अभी पुर्त गीजोंके दो पक्ष हो गये, जिससे शासन-कार्यमें अनेक विश्वद्धुला होने लगी। दोनों ही पक्ष प्रजा-का लेह्न पीनेको उताव थे। अन्तमें आलकाकेवा अप-मानित और विरक्त हो स्वदेशको चल दिये।

कप्तान जोन-दा-सिल-वेराने मालद्वीपके राजाको प्रसक्ष कर वहां एक कोटो खालनेकी उनसे अनुमति ले ली। इसके वाद सम्मान्के बहुमूल्यवान् प्रथपूर्ण दो पोतको हथिया कर वाणिज्य करनेकी आशासे वे बङ्गाल आये। उनके जहाज पर एक बङ्गालो युवक थे जिसने काम्बे-पोत-को लूटते देखा था। उसके मुखसे जहाज लूटनेका संवाद पा कर बङ्गालियोंने सिलवरोको जलदस्यु समक्ष लिया। अतः कोई भी उन्हें माल देनेको राजी न हुए। चीनदेशसे जोन कोएलको आ कर यहां पर सिलवरोसे मिले। आरा-कनके राजाने अपने यहां बुलाया, किन्तु वहां भी वाणिज्यको कोई सुविधा न हुई। अतः वे कोलम्बोको वाणिज्यको कोई सुविधा न हुई। अतः वे कोलम्बोको वाणिस आये। यहां फिर एक पत्थरका दुग वनाया

इसके बाद स्थाम, पेगू, बंदम आदि राज्योंके साथ सिन्ध करके छोपो वाणिज्य चलाने लगे। सभी स्थानों-में पुत्त गीजोंकी वड़ी बड़ी कोठी खोली गई। छोपो सोआरेसके भाग्यमें शुम दिन आ ही रहा था, कि इसी बीचमें पुत्त गालराजने उनके आवरणसे असन्तुष्ट हो छोपेज-दा-सेकु-इराको भारतका शासनकर्ता और सर्वप्रधान पोताध्यक्ष वना कर भेजा। २०वीं सित-म्बर (१५१८ ई०) को कोचिन जा कर इन्होंने छोपोसे शासनभार प्रहण किया। छोपो हताशहृद्यसे देशको छोटे।

लोपेस दा-सेक्रइशका शासन।

पुर्तगीज गवर्नर सेकुइराके प्रथम शासनकालमें दुर्गं वनानेकी कोशिश होती थी। भारतवर्षमें अच्छी कमान वा गोला गोली नहीं मिलनेके कारण, जिससे भारतमें उत्कृष्ट अग्न्यस्त्रादि प्रस्तुत हो, पुर्त गीजोंके यत्नसे उसका भी आयोजन होने लगा। इसी समय ब्रह्मदेशके मर्त्त -वान शहरमें पुत्त गीजोंकी एक वड़ी वाणिज्यकोठी सोली गई। अब यहांसे पूर्व भारत और ब्रह्मदेशके नाना द्रन्योंकी यूरोपमें रफ्तनी होने लगी।

मालद्वीप आदि स्थानोंमें भी कोटा वनानेके वहाने ले उन्होंने दुर्ग वना डाला। पुत्त गोजोंको नृशंस डंकैत समक्ष कर अधिवासियोंने उन्हें किसी प्रकारकी वाधा न दी।

१५२० ई०की १३वीं फरवरीको राजप्रतिनिधि दिओगो-लोपेस आदेन और अरव समुद्र जीतनेको अप्र-सर हुए। किन्तु विशेष क्षतिप्रस्त हो उन्हें हरमुजकी ओर भाग जाना पड़ा।

जिस समय दिओगो-लोपेस आदेनकी ओर रवाना हुए, उसी समय आदिलशाहके साथ विजयनगराधिप कृष्णराजका युद्ध चल रहा था। कृष्णराज अनेक सैन्य ले कर तीन मास तक "रायचूड़"में घेरा डाले रहे। कृष्णीचाम- फिगुइरा नामक एक पुत्त गीज दुर्गाध्यक्षने ससैन्य आ कर कृष्णराजका पक्ष अवलम्बन किया और उन्होंकी सहायतासे कृष्णराजने रायचूड़ पर दखल जमाया। इसी सुयोगमें गोआके पुत्तगीज सेनापित चौकी-दार राइ-दि-मेलोने २५० अध्वारोही और ८०० कर्णाटी ले कर गोआके निकटस्थ मुसलमानाधिकृत अनेक स्थानों-को दखल कर लिया।

१५२१ ई०की ६वीं फरवरीको सेकुइराने २००० पुत्त गीज और ८०० मळवारी तथा कणाड़ी सेन्य छे कर दीउ पर धावा वोळ दिया, किन्तु इस वार भी उनकी चेष्ठा व्यर्थ नई।

मृत आलवुकाकके भतीजे जाज-दि-आलबुकाक वण्टं होते हुए मलाकस (गरम मसालेका) द्वीपमें पुत्त-गीज दुर्ग वनानेके लिये मेजे गये । यहां उन्होंने देखा कि स्पेनियार्डने पहले ही आ कर यहांके राजासे सन्धि कर ली है। अनेक चेष्टा करनेके वाद गुजराती विणकों-की सहायतासे पुत्तगीजों ने तार्णेतद्वीपमें एक दुर्ग वनाने-का आदेश पाया। यहां पुत्त गीज और स्पेनियार्डोंके स्वाथ ले कर पुत्त गालराज और स्पेनराजके वीच विरोध उपस्थित हुआ था।

इसी समय कोचिनराजने वदला चुकानेके लिये ५०००० नायर सैन्य ले कर सामरीराज पर आक्रमण कर दिया। पुर्त गीज लोग सामरीराजके साथ सिन्धस्तमें आवद रहने पर भी भीतर ही भीतर पुर्त गीजसेना भेज कर कोचिनराजकी सहायता करने लगे। इस वार सामरीराज भारी विपद्में पड़ गये, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु ब्राह्मणोंने उनका पक्ष लिया और पुर्त गीजों को आश्रय दिया है, ऐसा कह कर वे खदेशवासियों को शाप देने लगे। उनके शापके भयसे किसी भी नायर सेनाने सामरीराजके विरुद्ध अख्यधारण करना न चाहा। कोचिनराज भग्नहद्यसे अपने राज्यमें लीट जानेको वाध्य हुए।

सेकुइराका शासनकाल शेव हुआ । देशीय सभी विणक् उनके शासनसे विरक्त हो गये थे । पुत्त गीज-शासनकर्ताकी अनुमति ले कर वे अपने जहाजों को दूर देश तो भेज सकते थे, पर पुत्त गीज प्रधान मीका पानेसे ही उनका माल लूट लेते थे। इस कारण कन्त-नूर आदि नाना स्थानोंसे पुत्त गालराजके निकट अभियोग पहुंचने लगे । पुत्त गालराजने सेकुइराके उपर असन्तुष्ट हो कर डम-दुआर्चे -दि-मेनिजेसको शासनभार लेनेके लिये भेजा।

डम-इआर्से-डि-मेनिजेस।

१५२२ ई॰की २२वीं जनवरीको मेनिजसने शासन-मार ब्रहण किया । इस समय हरमुजद्वीपमें भारी गोल-माल चल रहा था । पुत्त गीज कर्मचारियों के दुर्व्यव-हारसे द्वीपके सभी मुसलमानोंने मिल कर पुत्त गीजों पर आक्रमण किया थां। डम दुआतें ने पहले कई दल सेना भेजो, पीछे खुदसे जा कर हरमुजमें अच्छी तरह अपना आधिपत्य जमाया। इस बार हरमुजके सभी मुसलमान अधिवासी निरस्त्र कर दिये गये। अब वहां-के मुसलमान राजाके कुछ शरीररक्षककी छोड़ कर और किसीको भी अक्षधारणका अधिकार न रहा।

ठीक इसी समय आदिलशाहने गोआके निकटनतीं अपने पूर्वाधिकत स्थानींका पुर्तगीजींको परास्त कर पुनरुद्धार किया।

इस समय चट्ट्यामके निकटवर्ती वङ्गोपसागरमें पुर्तागीज दस्युगण भारी उत्पात मचा रहे थे। अनेक अपराधी और नीच श्रेणीके पुर्तागीज पुर्तागीजशासनका परित्याग कर दूर देश भाग आये थे। वे सब दुवृंच छोटे छोटे दलोंमें विभक्त हो समुद्रके मध्य दस्युवृत्ति द्वारा जीविका चलाते थे।

भारतके पश्चिमी समुद्रमें पुत्त गीजशासनकत्तांके आदमी रहनेके कारण उन्हें दृष्युपृत्तिकी सुविधा नहीं मिलती थो। इस कारण बङ्गोपसागरमें उन्होंने अपना अड्डा जमाना पसन्द किया था।

इस समय सुमालाद्वीपमें आचिन और पेविरके राजामें वमसान युद्ध चल रहा था। पसुमा भाग कर पेहिरके राजाने पुत्त गीज दुर्गाध्यक्षका आश्रय लिया। आचिन-राजको जब मालूम हुआ, कि दुर्गाध्यक्षने पेविरराजको सहायता की है, तव उन्होंने भट पसुमा पर आक्रमण कर दिया। दुर्गाध्यक्ष इम आण्ड्रीने सहायता मांगनेके लिये एक दूत चहुप्राम भेजा। चहुप्रामसे सहायताके लिये कुछ जहाज भेजे गये। किन्तु राहमें पुत्त गीज जलदस्युगणने उन्हें लूट लिया। पीछे जहाजके सभी योद्धा उनके दलमें मिल गये। इस प्रकार पुत्त गीज दस्युको संख्या धीरे धीरे बढ़ती गई।

इसके पहले पुर्त गोजींने वोणिओद्वीप जीतनेकी चेष्टा की थी, पर कोई फल न हुआ था। इसी कारण जार्ज-वा-आलयुकार्क ससैन्य वहां मेजे गये थे। उन्होंने १५२४ ई०की १ली जनवरीको पुर्त गालराजको जो एक पत लिखा था उससे जाना जाता है, कि उस समय बोणिओ 'कपूर्दाप' नागसे प्रसिद्ध था। यहां कपूर प्रसुर परिमाणमें उत्पन्न होता था। वक्नुदेश, पुलिकट,

विजयनगर और मलवार उपकूलमें उस कप्रकी रहनी होती थी। वीणिओद्वीप मुसलमानराजके अधीन रहने पर मी जिस अंशमें कप्र उपजता था अर्थात् कप् रहीण उस समय हिन्द्राजके अधीन था। वे वे वीणिओराजसे काम्बे और बङ्गदेशजात कपड़े ले कर उसके बदलेमें कप्र देते थे।

डम दुआत्तें के समयका और कोई विशेष उन्ने ख्योग्य विवरण नहीं मिलता । उनके शासनकालमें कोई अच्छा काम नहीं हुआ । वे तो स्वयं अर्थसञ्चय करनेके लिये आये थे, सुतरां उनसे सुविचारकी आशा दुराशामान थी । उन्होंने प्रचुर अर्थ सञ्चय करके अपना पेट भर लिया था । उन्होंका पदानुसरण करके ही अनेक पुर्व-गीजोंने दस्युवृत्ति आरम्भ कर हो थी। इसी कारण उन्होंने 'पुर्व गाल-कलङ्क' ऐसा नाम पाया था।

द्वम भारको छिन्गापाका शासन ।

पुत्त गालने समका, कि नीचवंशके हाथसे शासन-कार्य अच्छी तरह नहीं चळ सकता। इसीलिये इस वार उन्होंने डम-भास्को-डिगामा (Conde-de-vidigueira) की अपने प्रतिनिधिक्तपर्में भारत भेजा।(१) उनके साथ उनके दी पुत्र डम पस्तेवन-डि-गामा(२) और डमपाली डि-गामा, एतिझ्न्न पुत्त गालपाजके निकट सम्पर्कीय अनेक सम्मान्त व्यक्ति (कुळ ३००० मतुल्य) आये थे।

१५२४ ई०की २३वीं सितम्यरको भास्को हि-गामा तीसरो वार गोआमें उपस्थित हुए। उनके आगमन पर सभी पुर्च गीज फूले न समाये। इसके पहले पुर्च गीज दुर्गाध्यक्षने अन्याय और अत्याचारपूर्वक अर्थप्रहण करके समस्त गोआवासियों को विरक्त कर दिया था। अभी भास्को-हि-गामाने सबसे पहले उन्होंको पदच्युत कर

[#] मुसलमान लोग इस राजाको 'काफेरराज' कहते थे, इसीसे किसी किसी पुरीनीक प्रत्यमें ये 'काफेर' नामसे मश-हुर हैं।

⁽१) पूर्वतन पुरीगी अशासनकर्ती अपनेको पांceroy बा राज प्रतिनिधि बतला कर जनसाधारणमें पानित तो थे, पर किसीने राजाते यह उपाधि नहीं पाई थी। केवल डम-भारको॰ दिनामाको ही सबसे पहले यह उदाधि मिली।

⁽२) वे वृत्तेगालरानके समुद्योताध्यक्षोंके सरदार ये ।

डम-हेनरिकको उस पद पर अधिष्ठित किया। केवल दर्गाध्यक्षको पदच्यत करके वे शान्त न हुए, पुर्त्तगीज शासनाधीन सभी स्थानों के दुष्ट कर्मचारियों की अलग कर विश्वासी और विश्व व्यक्तिको नियुक्त करने छगे। दुए सेना दुर्गसे गुप्तभावमें अखशख है किसी दूसरे स्थानमें जा अर्थोपार्जनके लिये अत्याचार करती थी। इस कारण भास्कोने घोषणा कर दी, कि जिसके पास जो अल्ल है, दुर्गमें रख जाय, नहीं तो कठिन दएड भोग करना होगा, तथा दुर्गाधिपकी अनुमति लिये विना कोई भी अलका व्यवहार नहीं कर सकता । उन्होंने सुना, कि पुत्त गीजमेंसे कोई कोई गुप्तभावमें जहाज छे कर समुद्रपथसे विदेशीयके साथ वाणिज्य कर रहा है। इस पर वे बहुत विगडे और इस वातकी घोषणा कर दी, कि "बिना उनकी अनुमतिके कोई भी पुत्त गीज कोई जहाज नहीं चला सकता ; यदि जहाज चलाना हो, तो उस स्थानके पुत्त गीज कोठीवालसे उनका खाझरित अनु-मतिपत ले कर चलावे। जो कोई इस आदेशका उल्ल-ङ्गन कर समुद्रयाता करेगा, उसका जहाज मय मालके जन्त कर लिया जायगा।" इस प्रकार इन्होंने गुप्त व्यव-सायको बंद कर दिया।

अलावा इसके उन्होंने समुद्र और जलपथमें पुत्तं-गीज कमंचारियोंके कार्य पर लक्ष्य रखनेके लिये गुप्तचर नियुक्त किया। पीछे आप कुछ अनुचर साथ छे कन्न-नूर, कोचिन आदि स्थान देखने आये । उन सव स्थानींमें भास्को डि-गामाका वड़ी धूम धामसे खागत हुआ था।

इतने दिनों तक पूर्वशासनकर्ता उम-दुआर्से हरमुज-बीपमें लुटपाट करते थे । नवस्वर मासमें वे नव राज-प्रतिनिधिको कार्य समका देनेके लिये कोचिन आये। भास्को-डि-गामाने यहां उन्हें उतरने न दिया, उसी समय 'कप्टेलो' नामक जहाजसे वन्दीभावमें पुत्त गाल जानेको फरमाया ।

पहले डम-दुआर्ते इस अपमानको सहा करनेमें प्रस्तुत न थे। पीछे अपने जहाजसे जानेको प्रस्तुत हुए। इस पर भास्कीने अत्यन्त कृद्ध हो उन्हें शासन फरनेके लिये गोलागोलीके साथ रणपोत केजा।

रथर नाना कार्यामें व्यस्त रहनेके कारण मानसिक

परिश्रमसे भास्को-डि-गामा पीड़ित हो पड़े। इसी अवसरमें डम दुआर्च ने अपने पदत्यागपत पर हस्ताक्षर नहीं किया। वरं उन्होंने कहला भेजा, कि वे दुर्शके मध्य जा अंपना कार्य समका बुका कर खाक्षर करनेको प्रस्तुत हैं। डम-भास्कोने उन्हें जमीन पर पैर रखनेसे निपेध किया । इस पर डम-दुआर्चे विना राजप्रतिनिधि आदेशके अपना जहाज हो कर चल दिये।

अलगार्म उपकूलमें ज्योंही वे जहाज परसे उतरे त्योंही पुत्त गाल-राजपुरुषके वन्दी हुए ।

इधर भास्को-डि गामाका आयुष्काल वीतने चला। जिस भारताविस्कारके लिये उन्होंने अतल यश उपार्जन किया था, उसी भारतमें (कोचिनके सेएट अएटोनियो नामक खष्टीय मटमें) बड़ी धूमधामसे उनकी अन्तेष्टि क्रिया की गई। उनकी मृत्युके वाद उम इनरिकके शासनभार ब्रह्ण करनेकी वात थी, पर उस समय वे गोआमें न थे, इस कारण लोपो-वाज दा साम्पयोने तव तकके लिये शासनभार ग्रहण किया। इम हेनरिकके आने पर वे ही भारतके शासनकर्त्ता हुए। लोपोवाज दलवल ले कर अरव समुद्रकी ओर रवाना हुए। भास्को-डिगामाके पुत एस्तेवन डि-गामाने अव यहां जरा भी रहना पसन्द न किया और शीघ्र ही लिसवनकी याता कर दी।

इसके कुछ समय वाद नायरोंने कालिकटके पुत्त गीज दुर्ग पर धावा कर दिया। इसका प्रतिशोध छेनेके लिये डम हेनरिक सामरीराजके अधीन पोनानी नगर जीतनेकी अत्रसर हुए, दोनो पक्षमें जल और स्थलमें गहरी मुठमेड़ हो गई। आखिर नायरसेनाको ही रणमें पीठ दिखानी पड़ी। पुर्च गीजोंने नगरको अच्छी तरह लुट करके जला डाला । इसके वाद पुत्त[°]गीजोंके साथ कालिकटमें एक भी युद्ध न हुआ, दुर्गरक्षा सुविधाजनक नहीं है, ऐसा समभ पुत्त गीज लोग अपने दुर्गको ध्वंस कर वहांके कुल सामान उठा ले गये।

अनन्तर उम हेनरिकने दीउ पर अपना अधिकार जमानेके लिये यथेए आयोजन किया था, किन्तु राहमें वर्बु रक्ती चढ़ाईमें वे परास्त हुए। अतः उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। इसके बाद वे रोगव्रस्त हो पड़े और १५२६

Vol ZIV. 41

ई०की २१वीं फरवरीको कन्ननूर नगरमें उनकी प्राणवायु उड़ गई। उन्होंने १३ मास तक राज्य किया था।

छोपो याज-द -साम्पयो ।

डम हेनरिककी मृत्युके वाद पेरो-मस्करेन-हसके शासनकर्ता होनेकी वात थी, पर इस समय वे मलका द्रोपमें सैन्यपरिचालन कर रहे थे। उन्हें संवाद दे कर यहां बुलानेमें अधिक समय लगता, इस कारण लोपी वाज-दा-साम्पयो शासनकर्त्ता हुए। डम हेनरिकने फ्रान्सिक्को-दा-साको शासनभार देनेकी वात कही थी, पर दासाके भाग्यमें वदा नहीं था, कोई भी उनके आदेशपत-को वाहर न कर सका।

लोपो-वाजके गोधा जाने पर फ्रान्सिस्की-दा-साने उन्हें शासनकर्त्ता नहीं माना। अन्तमें मन्तिसभाने लोपो-वाजको ही शासनकर्त्ता स्वीकार किया। यह उच्च पद पानेके साथ ही लोपोने मलका द्वीपमें पेरो-मस्करेन-इसका इसकी संवाद मेज दिया। पीछे हरमुज, चेंडल आदि स्थानोंमें जा कर पुत्त गोज-कमैचारियोंका भगड़ा निवदानेके लिये उन्होंने अरवसमुद्रकी याता की।

इधर मस्करेनहस मलकामें उम हेनरिकका मृत्यु-संवाद पा कर आप गवर्नर (शासनकर्ता) वन गये और इच्छानुसार लोग भतीं करने लगे।

इस समय मलकाद्वीपमें भारी गोलमाल चल रहा था। पुर्त गीजोंमें ही दो दल हो गये थे, एक दल तिदोर-राजके साथ सिन्ध करनेको और दूसरा उसके विपक्षमें युद्ध करनेको प्रस्तुत था। सिन्धके वाद भो जिस समय द्वीपवासी सम्भ्रान्त व्यक्तिगण राजाकी अन्त्येणिकियामें न्यस्त थे, उसी समय एक दल पुर्त-गीजने जा कर उन पर आक्रमण कर दिया। पुर्त गीजों-की ऐसी विश्वासघातकता पर निकटवर्ती सभी द्वीप-वासी पुर्त्तगीजों पर वड़े असन्तुए हुए। इघर स्पानियाडाँने आ कर द्वीपवासियोंके साथ मेल कर लिया और पुर्त्त-गीजोंको मार भगाया।

१५२७ ई०के फरवरी महीनेमें मस्करेनहस शासन-भार ग्रहण करनेके लिये कोचिनमें उतरे। कोचिनके कप्तान और कोशाध्यक्ष आफन्सी मिक्सियाने उन्हें उसी

समथ यहांसे निकल जानेकी कहा। उनके तीक्ष्णाल-से मस्करेनइसके कुछ अनुचर भी घायल हुए। मस्करेन-इस वड़े विस्मित और दुःखित हो गोआमें आ कर उहरे। यहां प्रधान शासनकत्ती समक कर लोग उनकी अध्य-र्थना तो क्या करते, वे उसी समय वन्दी हो कर कन्ननूर-दुगें भेज दिये गये। लोपो-वाजके इस अन्याय कार्य पर अधिकांश पुर्त्तगीज उनके प्रतिकृछ - इे हुए। कन्तन्र्के दुर्गाधिपतिनै मस्करेनहसको कारागारसे मुक्त कर दिया। चैउलके गर्वनर कृष्टोवाम-दा-सुजा और भारतसमुद्रके पोताध्यक्ष आएटोनिया दा-मिरन्दा मस्करेनहसका पक्ष लिया। पुर्त्तगीजॉको दोनों पक्षमें मनमुराव हो जानेसे शासनकाय वंद रहा। अन्तमें साछिसीके ऊपर जव इसका भार दिया गया, तव उन्होंने छोपो-वाजको ही प्रकृत शासनकर्त्ता उहराया। मस्करेनहस उसी समय लिसवनको चल दिये।

अव छोपो-वाज नाना स्थानोंको जीतने और नाना स्थानोमें दुर्ग वनानेका आयोजन करने छगे। मार्टिन आफन्सो नामक उनका एक पोताध्यक्ष प्रतिक्रूछ हवासे नागमछयमें जा छगे। यहां वे एक वड़े जहाज पर चढ़ कर बङ्गाछको चाकुरिया नामक एक प्राममें पहुंचे। यहां वे सबके सब बङ्गाधिपके कीतदास हो गये।

इसके वाद लोपोने मलवार-कुलवर्त्ती पुरकाड़ पर आक्रमण करके वहांके सभी अधिवासियोंको वड़ी वेरहमी-से मार डाला और पीछे रानीको भी कैंद कर लिया।

इस समय चेउलके शासनकर्ता निजाम उल् मुक्कके साथ काम्ये राजका युद्ध छिड़ा। काम्येराजको पुर्त गीज-की ओरसे खासी मदद मिलने पर भी निजाम उल-मुक्ककी ही जीत हुई। इस युद्धमें पुर्त्त गीजोंकी भी विशेष क्षिति हुई थी। वहुत चेष्टा करनेके बाद पुर्त्त गीजों ने चेउल पर अधिकार तो किया, पर उनकी आशा दीउ द्वीप जीतनेकी जो थी, सो पूरी न हुई।

लोपो-वाजका दिन शेष हो चला । पुत्तैगालराज-नाना दा-कन्हाको जनको जगह पर भेजा । १५२६ ई०के अकत्वर महीनेमें नाना-दा कनहा कोचिनमें आ-कर राजप्रतिनिधि और शासनकर्ता हुए। पीछे कन्न-श्र आ कर उन्होंने लोपोवाजको बन्दी कर पुत्तभाल भेज दिया । वन्दी होनेके समय छोपो-वाजने कहा था, 'नाना-दा-कन्हाको कह देना, कि उन्होंने मुक्ते जिस प्रकार वन्दी किया है, उसी प्रकार एक दूसरे शासनकर्ता-के हाथ वे भी वन्दी होंगे।' इस पर नानाने कहछा भेजा, 'छोपो-वाज वन्दी होनेके योग्य हैं, मैं नहीं।'

होपोने पुत्त गोज-राजकोपसे इच्छानुसार अर्थ प्रहण किया था, इस कारण उनको अन्तमें यही दुवँशा हुई। उन्होंके समय गोआमें राजस्वका खासा बन्दी-वस्त हुआं था।

तीस प्राप्त छे कर गोआ प्रदेश गठित था, इस कारण लोग इसे 'तीसवाड़ी' वा तीसोवारी कहते थे। प्रति प्राप्तका राजस्य वस्ल करनेके लिये एक एक 'प्राप्तकार' वा 'प्राप्तकर' नियुक्त हुआ था। इन ग्राप्तकारोंको साल भरमें एक वार करके पुर्त्तगोज थानेदारके निकट उपस्थित होना पड़ता था। थानेदार प्रतिग्राममें जिस हिसावसे कर निर्देश कर देते थे, ग्राप्तकर लोग उसी हिसावसे ग्राप्तवासीसे वस्ल करते थे। गामकर ही विलक्तल कर वस्ल करनेका दायी था। यदि वह वस्ल न कर सकता, तो उसका यथासर्वस्त वेच लिया जाता था।

नानी-रा कश्याका शासन ।

नानी-दा-कन्हाका प्रधान उद्देश्य था-दोउद्वीप पर अधि-कार करना । किन्तु वे शोघ आयोजन करान सके । १५३० ई॰में उनकी चेप्रासे मङ्ग्लरके निकट छातिम, सुरतवन्दर, अगसी नगर और सियालवेट-द्वोप आदि स्थान आकान्त हुए, पुत्त गोजोंसे जलाये और लृटे गये थे। १५६१ ई०-में उनके हुकुमसे अनेक पुर्श गीज सेना दीउकी दखल करने गई थी । इस समय पुत्ती गोज नी-योद्धाओं ने महुवा द्वीप और घोगोवन्दर, वलेम्बर, तारापुर, महिप, केलवा, अगासी और सूरत आदि (गुजरात और महा-राष्ट्रके अन्तर्वर्त्ती व अनेक स्थान लूटे तथा अग्निकाएड द्वारा उत्सन्न करनेकी चेष्टा की । पीछे पुर्तागीजोंने चेउलके राजासे अनुमित ले कर वहां एक दुर्में इत्र और कुछ गिर्जा वनवाये । इस समय पुत्त गोजो ने पुनः पत्तन, मङ्गलूर आदि कई स्थान लूटे और जला डाले। इसके वाद १२ युद्धजहाज छे कर पुत्ते गीज दमन-दुर्ग-को ध्वंस करनेके लिये गये थे, पर जव उन्होंने देखा, कि

कोई वश नहीं चलता, तव बसाईसे ले कर तारापुर तक सभी नगरों में उन्होंने आग लगा कर लोमहर्षण काण्ड किया था। पीछे ठाना, वन्दर, महिम और वम्बई आदि स्थानों ने पुत्त गालराजकी अधीनता स्वीकार की और वाध्य हो कर उन्हें कर देना पड़ा।

थानेदार और दुर्गाध्यक्षगण अपने इच्छानुसार काम काज करते थे। इस कारण वीच वीचमें राजकोपका अप-व्यय, राजखका हास, नाना अत्याचार और राजपुरुषोंका उद्र पूरण होता था। अभो नाना-दा-कन्हाने यह नियम चलावा, कि दुर्गाध्यक्ष विना पुत्त गीजराज-प्रतिनिधिकी आज्ञाके कोई भी कार्य अपने मनसे नहीं कर सकता।

इसके वाद मुगलोंने काम्ये पर अधिकार करनेकी चेष्टा की। काम्येपित डर कर पुत्त गोजोंका आश्रय लेनेको वाध्य हुए। पुत्त गोजोंने भो सुविधा पा कर काम्येमें अड्डा जमाया।

१५३४ ई०की २१वीं सितम्बरको पोताध्यक्ष मार्टिम् आफन्सो और नाना-दा-फन्हाके प्रधान परिचायक सिमन-फेरिराके यत्तसे दीउ-अधिपतिने पुर्त्त गीजोंसे सन्धि कर ली । पुर्त्तगोजोंको दीज-होपमें दुर्ग वनानेका हुकुम मिला; इस प्रकार उनकी वहुत दिनोंकी आशा आज सफल हुई। इस समय डय गोवोटेन्हों नामक एक पुर्त्त गीजने जैसा साहस दिखलाया था वह उल्लेखयोग्य है। इसी समय ११ हाथ लम्बी एक डॉगी ले कर वोटेलहोने दीउसे पूर्त-गालकी याता की। फरासियोंको भारतका पथ दिखलाने गया था, इस कारण वे पुत्त⁵गालराजसे अपमानित हुए थे। अभी राजाकी प्रसन्नता पानेकी आशासे वे किसीकी विना कुछ कहे सुने शुभ संवाद देने चले। याताकालमें उनके साथ कुछ मांकीमलाह भी थे, पर समुद्रमें वे सबके सव विनष्ट हुए। अकेले उस छोटी होंगीको खे कर बोटेलहो लिसवन नगरमें पहुं चे। पुर्त्त गालराजने उनके असीम साहसकी भूरि भूरि प्रशंसा की, पर उनका भाग्य चमकने नहीं पाया।

१५३६ ई॰में नाना-दा-कान्हाने स्वयं जा कर वसांई नगरमें एक दुग वनवाया।

इघर पुर्त्त गोजोंने भारतके पश्चिमउपकूलमें प्रायः सभी प्रधान नगरोंमें पुर्रागालराजकी विजयपताका फह राई। पर इतने पर भी पुर्शागालराजको आशानुकप अर्थ हाथ नहीं लगता था। भारत-महासागरीय द्वीपपुअमें बाणिज्य तो जीरों चलता था, पर पुर्शागीज-कतान और पुर्शागीज राजकर्मचारी ही उसके फलभागी होते थे। अभी नानाःचा-कन्हा उसके प्रतिविधानमें अग्रसर हुए। किन्तु उनका उद्देश्य अंचा होने पर भी वे अर्थका लोभ रोक न सके।

१५३७ ई०में काम्बेराजको मृत्यु होने पर दिछीके मुगलसमार्के साले मीर महम्मद जमानने ५००० अध्वा-रोहियों के साथ आ कर काम्बे पर दखल जमाया। पीछे वे अर्थ द्वारा पुर्रागीज शासनकर्ताको वशीभृत करके गुजरातके राजा वने। किन्तु काम्बेराजके भतीजे असुद्ने शीव्र ही काफो सेना संग्रह कर नवनगर राज-धानी पर चढ़ाई कर दी। महस्मद पक्षके बहुतोंने रिश्वत पा कर अहादका पश्चालम्बन किया था। फलतः मीर-महस्मद पराजित हो बङ्गदेश भाग जानेको चाध्य हुए। इस समय पुर्त्तगालराज भी बङ्गालमें वाणिज्य और पुर्त्त-राजको धाक जमानेको फिक्रमें थे। इसके पहले ही कहा जा जुका है, कि मार्टिम् आफन्सो और कुछ पुर्तः गीज बङ्गालमें बन्दी हुए थे। उन्हों ने बङ्गाघिपकी ओर-से पटानों के साथ युद्ध किया था। अन्तमें खोजा खवा-दिमकी चेष्टासे वे मुक्त हुए। इसी खोजा खवादिमने पुर्रागालराज-प्रतिनिधिको कहला भेजा था, 'यदि मुफे हरमुजद्वोप भेजने सकें, तो मैं चट्टग्राम वन्द्रमें पुर्शगाल-राजके लिये दुर्ग वनानेकी अनुमति ले सकता हूं ।

नाना-दा-कन्हाने खोजाके प्रस्तानको आह्वादपूर्वक प्रहण किया और माटींम् आफन्सोके अधोन ५ जहाज ३०० योद्धायों के साथ मेजा। माटिंम् चड्डमामराजको देनेके लिये अनेक उपहार अपने साथ लाये थे। किन्तु उपहार लेनेको वात तो दूर रहे, चट्टमामपितने आफन्सो और उनके १३ साथियों को कैद कर लिया। पुर्त्तगीज-राजप्रतिनिधिने यह संवाद पाते ही अख्टोनियो-डि-सिलमा-मेनेजिसके अधीन ३५० नी-सेना और ६ जहाज भेजे। खोजा खवादिमको सहायतासे अख्टोनियोने भी वन्दियोंको छोड़ देनेके लिये पुर्त्तगोज गवर्नरका पत और देय उपहार भेज दिया। किन्तु राजासे उत्तर आनेमें

विलम्ब देस पुर्त्तगीजगण चहुप्राम और उपकृत्वत्तीं अन्यान्य प्रामोंको दृष्ध करने लगे। यह संवाद पा कर राजाने बन्दियोंके प्रति और भी कठोर व्यवहार करनेका आदेश दिया। इसके कुछ समय वाद सेरखाँने विद्रोही हो कर पुर्त्तगीजोंको सहायतासे वङ्गाभिषको परास्त किया। इसीसे राजाने पुत्तगीज कैदिबोंको छोड़ दिया। इसी समयसे वङ्गमें पुर्त्तगीजोंका उत्पात शुक्क हुआ।

इसके वाद पुर्च गीजोंने भारत महासागरमें भी और बहुतसे छोटे छोटे द्वीपींका आविष्कार कर वहां खृषानधर्मै-का प्रचार और स्थापन किया। १५३८ ई०की २८वीं सित-म्बरको तुरुक्षके सुलतानने मिश्रके शासनकर्ता सलिमान पाशाको दीउ जीतने और वहांसे पुर्तगीजींको मार भगाने-के लिये मेजा था। यहां पुर्तगीज अध्यक्ष फ्रान्सिको पाचेकोके साथ सलिमानका घमासान युद्ध छिड़ा। इस युद्धमें दोनीं पक्षके अनेक लोग मारे गये। कमी, तुर्की और पुत्तेगीजीने इस युद्धमें असाधारण वीरता दिखलाई थो । आखिर मुसलमानको गोलींसे छत्रभङ्ग हो पुत्तगीज अध्यक्ष आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए थे । केवल सिलवेरा नामक पुत्तैगीज वीरके अदम्य उत्साहसे सिलमान दुर्ग विजय न कर सके। इधर नाना-दा-कन्हा सिलमान पर आक्रमण करनेके लिये यथेष्ट सेना संप्रह कर रहे थे, किन्तु डम गासिया-दा-नोरन्हाके उनकी जगह पर राजप्रतिनिधि हो कर आनेसे उनका उद्यम वर्षे गया। सिलिमानने प्रायः ३ मास तक दीउमें घेरा डाला था। पीछे खोजा जाफरके कुपरामर्शंसे उन्होंने घेरा उठा लिया और खदेशको याता कर दी।

इम गासियाके साथ काष्ट्रिल-निवासी जोवा-दा-आलबुकाके पुर्त्तगोज-भारतके प्रथम विशय वन कर आये। उत्तमाशा अन्तरीयसे ले कर भारत पर्यन्त सभी स्थानवासी ईसाइयोंके ये ही गुरु हुए। पुर्त्तगीजोंमें खुष्टीय-धर्मप्रचारकी चेष्टा रहने पर भी धर्मका उतना आव्र नहीं था। धर्मप्रचारको अपेक्षा वाणिज्य-विस्तार ही उनका प्रधान लक्ष्य था। अभी विशयके आयमनसे धर्मकी तृती तमाम बोलने लगी।

गार्सिया कार्यभार प्रहण करनेके बाद ही दीउकी रक्षाका बन्दोबस्त करने छगे। उन्होंने दीउ-दुगकी रक्षाके

लिये प्रभूत युद्धोपकरण और अनेक युद्धजहाज मेज दिये। किसी किसीका कहना है, कि पुर्त्तगीजींका युद्धायोजन देख कर ही सलिमान खदेश वापिस जाने-को वाध्य हुए थे।

डम-गार्सिया सिलमानका प्रस्थान-संवाद पा कर निश्चिन्त हो वैठे। पीछे वे नाना स्थानोंमें घूमते हुए १ली जनवरी (१५३६ ई०)-को महासमारोहसे दीउद्वीप-में उतरे। इस बार सर्वोने दुर्गसंस्कारमें विशेष ध्यान दिया। पुर्नेगीज पेतिहासिकोंने लिखा है, कि अति शीध दीउदुगको सुरक्षित करनेके लिये शासनकत्तांसे ले कर सम्धान्त पुर्वगीज और अपरापर कारीगर तक सर्वोन ने मिल कर संस्कारकार्यमें योगदान किया था।

पीछे तत्कालीन गुजरातके मुसलमान-सेनापित जाफरके साथ पुर्तगीजोंकी सिन्ध स्थापित हुई। शर्त वह ठहरी, कि दीउसे जो राजस्य वस्ल होगा उसका आधा पुर्त्तगीजपित और आधा सुलतान मह्मूद शाह पांयगे।

इसके कुछ समय बाद एक भारी त्कान उपस्थित हुआ, जिससे अनेक मुसलमान और पुत्तीजीज जहाज जलमन हो गये थे। स्वयं पुत्तीज-गवर्नरने वहुत मुश्किलसे एक नदीमें प्रवेश कर जहाज समेत अपनी प्राणरक्षा की थी।

१५३६ ई०में राई लोरेन्सो-दा-टोवर वसाई नगरके अधिवासियोंके प्रति घोर अत्याचार करते थे। इस पर खोजा जाफरने व्ल-वलके साथ वहां आ कर लोरेन्स पर आक्रमण कर दिया। किन्तु चेउलके दुर्गाध्यक्षने उसी समय सहायता मेज कर लोरेन्सोकी सहायता की थी।

काम्बे-उपकूलमें तमाम पुत्त गीजोंकी तृती वोल रही हैं, यह जान कर देशीय सभी राजगण डर गये। निजाम-उल-मुख्क और आदिलशाहने सन्धि कर ली। सामरी-राजने चीन-कोतवालको पुत्तेंगीज-दुर्गाध्यक्ष माजु-पल-दा-विटोके साथ सन्धिका प्रस्ताव करके मेज दिया।

१५४० ई०के जनवरी मासमें सन्धि स्थापित हुई। इसमें पुत्त गीजोंको ब्रिशेष सुविधा हुई थी। सन्धिके ए। XIV. 45 अनुसार ३० वष तक सामरीराजके अधीन राज्यमें किसी नाव पर पांच डांड्से अधिक डांड नहीं रह सकते थे। पुत्त-गोज दुर्गाध्यक्षकी नाव छोड़ कर और किसीकी भी नाव समुद्रमें नहीं जा सकती थी। मलवार-उपकूलमें जितना गोलमिर्च और अद्रक उत्पन्न होता था उसे पुत्त गीज कम दाममें बरोद लेते थे। पुत्त गीज राजपुरुपोंकी चेग्रासे भाटकल और अअद्वीपके समीप वहुतसे पुत्त गीज जल-दस्यु पकड़े गये।

नानो-दा-कन्हा और अधिक दिन भारतसुखंका भोग न कर सके। केवल १६ मास शासनकार्य करके वे १५४० ई०की ३री अप्रिलको मृत्युमुखमें पतित हुए। इस बार माटिम आफन्सो-दा सुजाने गवर्नर होनेकी चेष्टा की, पर इस समय वे पुर्त गालमें थे। अतः सवो ने भास्को-डि-गामाके पुत डम-पस्तेवो-डि-गामाको ही शासनकर्ता वनाना पसन्द किंवा।

दम-प्रतेवो-छि-गामा ।

डम एस्तेवो अति उश्वप्रकृतिके मनुष्य थे। उन्हों ने मलका द्वीपमें प्रभूत सम्पत्ति उपाजन की थी। किन्तु शासनकर्तृत्व ग्रहण करते ही उन्हों ने घोषणा कर दी, कि वह सम्पत्ति उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है, वह राजसम्पत्ति है। उन्हों ने अपने रुपयेसे देशीय खृष्टान युवकों की शिक्षाके लिये एक विद्यालय खोला।

अभी उनके भाई उम-खृष्टों को चिन आदि स्थानां में रणपोतकी देखरेल करने के लिये भेजे गये। को चिनके
निकटवर्ती चाइमल के राजा उनसे परास्त हुए। दूसरे
दूसरे शासनकर्ता के जैसे पस्तेवो-डि-गामाने भी कार्यभार ग्रहण करते ही अरवसमुद्रमें रणपोत चलाया था।
उनके समयमें मलका और सुमाता के निकटवर्ती अनेक
स्थान पुत्त गीजों के अधिकारमें आये। उन्हों ने अनेक
तुकीं जहाज लूटे थे। यहां तक, कि तुक्क सुलतानके साथ पुत्त गालराजकी सन्धि होनेकी वात भी छिड़
गई थी। किस प्रकार सन्धिपल प्रस्तुत होगा, पुत्त गालराजसे उसका आदेश आया था। किन्तु उनके कमचारियों के दौरात्म्यसे तुक गण विरक्त हो गये। इस
कारण सन्धि स्थापित नहीं हुई।

यथासमय मार्टिम आफन्सो-दा-सुजा (१५४२ ई०में)

गवर्नर बन कर आये। जो कोई गवर्नर बन कर आते थे. वह अपने ही पूर्ववर्ती गवर्नरका दोष निकालनेकी कोशिशमें रहते थे। क्यों कि उनका विश्वास था, क गवर्नर होनेसे ही दुराचारी होते हैं, वे चारों ओरफे लोभको हुटा नहीं सकते, वे अपनी पदोचित मर्यादाको भूल कर अन्याय कार्य करनेमें जरा भी नहीं संकुचते। मार्टिमके मनमें भी यही धारणा थी। यहां तक कि उन्हों ने गोधा आनेके समय इयूगी-सोयारेस नामक एक जलद्रस्युको कैद किया। इस व्यक्तिको प्राणद्र्ड-का आदेश भी मिल चुका था, पर वे किसी तरह भग कर भारतसमुदमें वस्युवृत्ति द्वारा अपना गुजारा चलाने लगा। अम पस्तेवोक्ते जो सब दोच थे, सो उसे मालूम था। उसने सीचा, कि नये गवनरको यदि इसकी इत्तला दे दें, तो सम्भव है, कि वे मुक्त पर प्रसन्न होंगे। इसी आशासे वह मार्टिमके समीप गया और पस्तेवोके विचद्र जो कुछ कहना था, कह सुनाया । इस प्रकार उस धृत्त ने गवनरके हाथसे रक्षा पाई। इस दुवृ त्तकी वात पर भूछ कर मार्टिम गोआमें पदार्पण करते ही उम-पस्तेवोके साथ बुरा व्यवहार करने छगे। उच्च हृद्य-वाले पस्तेवो इस पर बड़े विरक्त हुए और उसी समय गवर्नरका पद परित्याग कर मार्टिमसे विना मुलाकात किये ही अति दीनभावसे पुरर्तगालको चल दिये। पुस्तैगालराज और राज्यके प्रधान व्यक्तिने अति आदर और सम्मानके साथ उनकी अभ्यर्थना की। सबो'ने समभा था, कि एस्तेवी महाधनी हो कर देश छीटे हैं, पर पीछे उन्हें मालूम हो गया, कि पस्तेवनके पास तो कुछ उपार्कित धन था, उसका अधिकांश उन्हों ने द्रीत दुखियों को बांट दिया है। अभी वे सामान्य गृहस्थ-माल हैं।

मार्टिन आफन्सो-दा-सुग्राका भागमन ।

मार्टिम आफन्सोने शासन-भार ग्रहण करनेके बाव ही भारतके बन्दरमें जितने जहाज थे, सबों को अच्छी तरह संज्ञानेका आदेश किया और पुर्तगीज-सैनिकों का वेतन घटा दिया। इस पर सबके सब असन्तुष्ट हो गये। बहुतों ने सैनिक-चृत्तिका परित्यागं कर वाणिज्य श्रावसाय करना आरम्म कर दिया। गवर्नरने सैनिकोंका

अभिप्राय जान कर उन्हें दमन करनेके उद्देश्यसे एक हुकुम निकाला कि, "मलकाके शुल्कगृहमें वैदेशिक विश्वों-के निकट जिस दरसे महस्ल लिया जाता है, उसकी दर घटा दो जाय और पुर्तगीज विश्वोंय विश्वोंग ज्यादा महस्ल वस्ल किया जाय।" विदेशीय विश्वोंको विशेष सुविधा हो जानेसे राजकोषमें भी शुल्कसे काफी भाम-दनी आने लगी। किन्तु पुर्तगीज-विश्वोंसे उस प्रकार कर नहीं लिया जाने लगा। वे नाना प्रकारके कूट उपाय-से शुल्कके दायसे रक्षा पाने लगे। मार्टिम-पुत्तगीजोंकी बह दुरिमसन्धि जान कर नितान्त मर्मपीड़ित हुए थे।

इस समय गोभाके निकटवर्त्ती स्थानके शासनकर्ता आसद खाँने आदिलशाहको राजच्युत करके अपने भाई मालू आदिलशाहको सिहासन पर वैठानेकी चेष्टा की, पीछे वे पुर्त्त गीजोंकी सहायता करनेके लिये पुर्त गाल-राजको कोङ्कण प्रदेश छोड़ देनेको राजी हुए। इस उप-कारमें पुर्त्त गीज गवर्नरने मालू आदिलका पक्ष अवलम्बन किया।

इस समय आदिलशाइने भी कहला मेजा, कि यदि
पुत्त गीज उनका पक्ष अवलम्बन करें और मालको एकइवा दें, तो वे उन्हें सालसेटी और वारह देश प्रदान करें। ।
पुत्त गीजोंके कुपरामर्शसे गवन रने आदिलशाइके प्रस्तायको सीकार कर लिया । सन्धिपत लिखा पढ़ा गया ।
आदिलशाइने उक्त दोनों स्थान और गवन रको प्रभूत
धनरत (प्रायः १० करोड़ मुद्रा) प्रदान तो किया, पर
पुत्त गीजशासनकर्ताने प्रचुर धन ले कर भी सन्धिक
अनुसार कार्य नहीं कियो । उन्होंने सबके सामने मालको गीमा बुलवा मंगाया । इस पर आदिलशाइने सभी
कपये लौटा देने के लिये गवन रको एक पत्त लिखा ।

गवर्नर मार्टिम इस प्रकार दो पक्ष छेनेवाले व्यक्ति
नहीं थे। उन्होंने जिनके परामर्शसे यह दुएकर्म किया
था, उन्हें वे हमेशा गाली दिया करते थे। इधर वे अपने
महत्त्व और सत्तताको रक्षाके लिये विव्रत हो पड़े।
आखिर उन्होंने पुत्त गालराजको एक पत्त लिखा, सुमसे
अब शासनकार्थ नहीं चल सकता, यदि शोघ हो कोई
दूसरा गवर्नर नहीं मेजा जायगा, तो मैं किसी आदमीको
शासनकार्थ सौंप कर चला जाऊंगा।

द्यम-त्रोहन हि-काच्य्रोका शासन ।

१५४५ ई०की १ली सितम्बरको उम जोहन-डि-काष्ट्रो पुत्त गालसे शासनभार ले कर गोआ पहुंचे। मार्टिम आफन्सो स्वदेशको चल दिये मानो उन्हें निष्कृति मिल गई। उम-जोहन गवर्नर होनेके वाद ही चारों मोर नये नये पोताध्यक्ष, दुर्गाध्यक्ष और राजकर्मचारी भेजने लगे।

इस समय काम्बेके अधिपति सुलतान महमूद अन्यान्य मुसलमान राजाओंके साथ मिल कर दीउसे पुर्त-गीज प्रभावका लोप करनेके लिये अनेक सैन्य सामन्तींके साथ अप्रसर हुए। उनके सेनापति काजी जाफरने भीम विक्रमसे पुर्त्त गीज दुर्ग पर आक्रमण किया। दोनों पक्षके सैकडों योद्धा निहत हुए, साथ साथ सेनापति जाफर भी मारे गये। अनन्तर हमो खाँ, जाफर खाँ आदि सेना-नायकोंने वहुसंख्यक कमान और योद्धा ले कर प्राणपणसे ट मास तक दीउमें घेरा जाला। ऐसी दुर्घटना और कभी नहीं हुई थी, पुत्त गीज लोग विशेष क्षतित्रस्त और विपद्गमस्त हुए थे। इस समय दुर्गस्थ पुत्त गीज-रम-णियों तकने भी शतुद्मनार्थ अस्त्र धारण किया था। चारों भोरसे पुरर्तगोज जंगी जहाज पहुंच तो गया, पर कुछ न कर सका। इस महायुद्धमें कितने पुरर्तगीजोंके प्राण गये थे, उसकी शुमार नहीं। पुर्त्तगीज ऐतिहा-सिकोंने लजावश उसे प्रकाशित नहीं किया। उन्होंने मुक्त-कएउसे श्रुपक्षीय असंख्य छोग मारे गये यही घोषणा की है। उस युद्धमें पुर्त्तगीज गवर्नरके पुत भी शतुके शिकार बने थे। मुसलमानोंकी सम्पूर्ण जयकी सम्मावना थी, अन्तमें पुर्त्तेगीजों ने भात्मरक्षाका कोई उपाय न देख यथेष्ट उत्कोच और भविष्यत् आशा दे कर बहुसंख्यक मुसलमान सेनानायककी हत्या की थी। उसका फल बह हुआ, कि मुसलमानी सेना पराजय खीकार कर रणस्थलसे भाग जानेको वाध्य हुई ।

दीउका उद्धार भौर मुसलमान-पराजयका संवाद पा कर गोआमें महोत्सव हुआ । पुत्तगालकी रानीने इस युद्धजयका संवाद पा कर कहा था, "हि-काब्द्रोने खृष्टानकी तरह पराजय किया है और अखृष्टानकी तरह बे विजयी हुए हैं।"

इघरका कगड़ा मिटने भी न पाया था, कि उधर युद्धकी तैयारी होने लगी। अली आदिलशाह जब मालू आदिलशाहको अपने फंदेमें फंसा न सके, तब वे पुर्च-गीजों पर आक्रमण करनेका आयोजन करने छगे। पुर्त्त-गीज गवर्नरने, इस समय युद्ध करना सुविधाजनक नहीं है ऐसा समक, सन्धि कर हो। इस सन्धिके अनुसार पुर्त्तगीज माळू-मादिलशाहको सपरिवार कैदमें रखनेके लिये वाध्य हुए और उन्हें सालसेटी तथा वारह देश मिले। इस समय सेनाको देनेके लिये तथा दीउ दुर्गके संस्कार-के लिये गवर्नरको २००० पागोडा (l'agoda) कज छेनेकी जरूरत हुई । उस समय पुर्त्तगीज-राजकोष विलक्कल खाली था। गवर्नरका यह प्रस्ताव सुन कर गोआवासिनी पुर्चगीजभामिनी देशीय महिलाओंने अपना अपना अलङ्कार दे कर रुपये संब्रह किये थे। जिस समय गवर्नर दोउसे गोआ छौटे, उस समय पुरमहि-लामोंने भरोखेसे गुलावजल भीर पुष्पवृष्टि करके उनकी सम्बद्ध ना की थी।

इसके वाद अली आदिलशाह समक सके, कि वे पुत्त -गीजोंसे प्रतारित हुए हैं। पीछे उन्होंने फिरसे पुत्तंगीजों पर आक्रमण करके सालसेटी और वारह देशोंका उद्धार किया। इस भयसे गवनरने १५४७ ई०की १६वीं सितम्बर-को विजयनगरके राजासे सन्धि कर ली। इस सन्धिमें यह स्थिर हुआ, कि गोआमें जो सब घोड़े विकने आयेंगे, उन्हें किसी दूसरेको न दे कर विजयनगर भेज दिये जायंगे। इसी महीनेमें इम जार्ज नामक पुत्तें गीज कप्तानने भरोचको जीता।

लिसवनराजसे सनद ले कर १५४८ ई०की २१वीं मई-को एक जहाज भारतमें आ कर लगा। उस राजसनद-के अनुसार बि-काष्ट्रो राजप्रतिनिधि हुए। इस प्रकार उन्हें तीन वर्ष और शासनका अधिकार मिला, केवल यही नहीं, बहुत रुपयेकी वृत्ति भी निर्द्धारित हुई। सम जोहनने जिस समय यह शुभसंवाद पाया, उस समय वे मृत्युश्य्या पर सोये हुए थे। १५४८ ई०की ६ठी जूनकी (४८ वर्षकी अवस्थामें) गोआ नगरमें उनकी प्राणवायु निकली।

दम जोहन प्रकृत राजभक्त और राज्यके हितेवी थे।

वे दूसरे अर्थलोमी पुस्त गीजों की तरह अपना मतलव साधनेवाले नहीं थे। यहां तक कि उन्होंने किसी राजकीय पत्नमें द्रिपृत्वक लिखा, था, "उन्होंने अपनो स्वार्थ-रक्षा वा धनवृद्धिके लिथे राजा अथवा प्रजासे एक कौड़ी भी नहीं ली।" वे दूसरे दूसरे पुत्त गीज शासनकर्ताओं-की तरह अहङ्कारी नहीं थे। वे गुणका उपगुक्त सम्मान करते थे, उनके वाद गार्सिया-डि-सा गवर्नर वन कर भारतवर्ष पधारे।

गासिया-डि-सं ।

शासनभार पाते ही गासियाने जनसाधारणके सन्तोषजनक कायकी और ध्यान दिया। ६डीं अगस्तको खुष्टान डोमिनिक सम्प्रदायकें छः धर्मगुरुओं (Dominican fither) ने पहले पहल गोआ आ कर मडस्थापन किया।

१७वीं सितम्बरको गासिया भारकलकी रानीके साथ सिन्ध की। शत यह ठहरी, कि रानी अपने अधिकार- के मध्य किसी जलदस्युको आश्रय नहीं दे सकती। जल- द्स्युगण पुर्त्व गीजराजकी जो क्षति करते हैं और करेंगे रानी उसका क्षतिपूरण करनेको वाध्य हैं।

गासियाके शासनकालमें प्रसिद्ध खृष्टान साधु जैभियरने मलका आदि द्वीपोमें खृष्टानधर्मका प्रचार करके वहुतसे लोगों को खृष्टानधर्ममें दीक्षित किया। इस समय पेगू और श्यामराजमें श्वेतहस्ती ले कर तुमुल संग्राम लिड़ा। वहांके पुर्त्त गीजगण पेगुराजको तरफसे लड़े थे।

१५४६ ई॰ के जुलाई मासमें गासियाका शासनकाल शेव हुआ, वे केवल १३ मास तक गवर्नर थे। कार्ववेद्याल।

वसाईके पूर्वतन दुर्गाध्यक्ष जार्ज केत्रल इस वार गंवर्नर वन कर आये। १५४६ ई०की १२वीं अगस्तको जन्होंने गोआ आ कर शासनभार ब्रहण किया।

इसके कुछ समय वाद ही सामरीराज और पिमेन्ताके राजाने मिल कर छाखसे अधिक सेनाके साथ कोचिन-राज पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें पिमेन्ताके राजा मारे गये। इसका वदला छेनेके लिये नायरों ने प्राणको हथेली पर रख दड़ी तेजीसे कोचिनसैन्य और पुर्त-

गोजों पर धावा मारा, युद्धमें बहु संख्यक वीर यमराजके मेहमान बने । यह भीषण संवाद जब गोआ पहुंचा तद जार्ज केग्रल १०० जंगी जहाज और ४००० घोदा हो कर वहां जा धमके । उनकी कोधाग्निसे तिरुकुलम, कुलित और पोनानी नगर भस्मसात हो गया। पीछे कोचिन जा कर गवर्नरने तुमुल संशाम छेड़ दिया। हजारों नायरसेना वीरगितको प्राप्त हुई।

मलवारके अनेक सामन्त इस युद्धमें परास्त हो आत्मसमप्रेण करनेको प्रस्तुत थे, पर ठीक इसी समय डम-आफन्सो-डि-नोरोन्हा नये प्रतिनिधि हो कर उपस्थित हुए। केव्रल जिस दिन (१५५० ई०की २५वीं नवम्बर) शक्षुध्वंसका आयोजन कर रहे थे, उसी दिन उन्हें दल-बलके साथ लीट आनेको कहा गया। इस प्रकार दैवकम-से सामन्तराजाओंने बाण पाया।

इस समय चारों ओर शोणितपात, अनर्थ अत्याचार और पुत्त गीज शासनकर्ताओंकी हिंसा द्वेष देख कर खृष्टानसाधु जेमियर वड़े दुःखित हुए और उन्होंने पुर्त-गालराजसे शान्तिस्थापनका अनुरोध किया। पर उनकी बात कौन सुननेवाला था।

डम आफ्रमो-डि-नोरीनहम्।

१५५० ई०के नवस्वर मासमें उम आफन्सोने नये राजप्रतिनिधि हो कर कोचिनमें पदार्पण किया। पहले गवर्नर ही सवमय कर्ता थे, उन्हें दूसरेके आदेशकी अपेक्षा करके कोई कार्य करना नहीं पड़ता था। किन्तु इन नये राजप्रतिनिधिके साथ नयी मन्त्रिसमा संगठित हुई और उसी समाका परामर्श ले कर वे शासनकार्य चलानेको वाध्य हुए।

इम आफन्सो गवनर होते हो चारों और नये नये सेनापित और दुर्गाध्यक्ष मेजने लगे। वसोराके शासन-कर्त्ताने तुर्कोंके अत्याचारसे विरक्त हो पुर्त्व गीजोंसे सहायता मांगी। इस पर पुर्त्त गीज गवर्नरने कुछ जंगी जहाज भेजे थे।

१५२१ ई०में उनके आश्रयमें सेएट जेमियर खृष्टानधर्म-का प्रचार करनेके लिये सिहलद्वीप गये ।

कोचिन और पिमेन्ताराजमें मनमुदाव चल रहा था। डम आफन्सो दलबलके साथ चहां जा धमके और उन्हीं- ने कोचिनराजका पश्च छेकर पिमेन्ताराजको परास्त किया।

इम पेरे।-दा-मस्करेनहस् ।

१५५४ ई०के सितम्बर मासमें डम-पेरो-दा-मस्करेन्हस् राजप्रतिनिधि और शासनकर्ता हो कर आये।
उनकी सहायतासे मालू आदिलशाहने अपनेकी वीजापुरके राजा बतला कर तमाम घोषित कर दिया। इसके वाद
हो नये राजप्रतिनिधि केवल दश मास तक कर्तृत्व
करके १५५५ ई०की १६वीं जूनको मृत्युमुखमें पतित
हुए। उनके स्थान पर इसाईके सेनापित और थानेदार
फान्सिको वरोटा गवर्नर हुए। उनके समयमें पुर्तगीजोंते कोङ्गणका राजस्व लेनेका अधिकार पाया था। मालू
आदिलशाहने वहुसंख्यक सेना ले कर उन पर घावा वोल
दिया। इस समय पुर्तगीजोंको सहायता करना उचित
था। वीजापुरमें पुर्तगीज सेनाध्यक्ष डम-पएटोनियो-डिवोरेन्हा रहते थे। युद्धके कुछ पहले ही पुर्तगीज गवर्नरने
उन्हें यहांसे हट जानेके लिये हुकुम दिया।

कुछ दिन वाद सिन्धुप्रदेशके अमीरते किसी अत्या-चारी राजाका दमन करनेके लिये पुर्त्त गीजोंसे सहायता मांगी। पुर्त्त गीज गवनरने अर्थके लोभसे ७०० योद्धाके साथ पेद्रोवारेटो रोलिमको सिन्धुप्रदेश भेज दिया। पुर्त्त-गोज सेनापित वहां जा कर सिन्धुराजका यथासर्वस लूट लाये। इतना घनरत पुर्त्त गीजोंको पशियाके मध्य और कहीं भी हाथ नहीं लगा था।

इसके वाद चेडल आदि नाना स्थानोंको लूटने तथा सैकड़ों ग्रामोमें अग्निप्रदानपूर्वक ध्वंससाधन करनेके सिवा और कोई काम नहीं हुआ।

बारेटोका भी शासनकाल वीत चला । इस वार पुत्त गालके सम्म्रान्त वंशीय ब्रागञ्जा-ड्यू कके भाई डम कनप्रन्टिनो-डि-ब्रागञ्जा १५५८ ई०के सितम्बर मासमें राजप्रतिनिधि हो कर गोआ उपस्थित द्वप ।

इम कनष्टानिष्टनी-द्वि-त्रागठ-मका शासन

डम-कनप्राण्टिनोने कार्यभार श्रहण करनेके वाद ही डम-पायेदा-नोरोनहाको कन्ननूरका दुर्गाध्यक्ष बना कर मेजा। उनके दुर्व्यवहार और अत्याचारसे पुत्त गोर्जाके मित कन्ननूरराज भी नितान्त विरक्त हुए और पुत्त गोर्जो- को नगरमें घुसनेसे निषेध कर दिया। इस पर पुर्त गीज उनके साथ छड़ाई करनेको तुल गये। इस समय पुर्त -गीज-राजप्रतिनिधि दमन पर अधिकार किया, किन्तु कन्ननूरमें पुर्त गीज लोग कई एक युद्धोंमें परास्त हुए। अभी कन्ननूरके अधिराजको उत्तेजनासे मलवारके सभी राजोंने पुर्त गीजके विरुद्ध अख्यधारण किया। अन्तमें चारों ओरसे वहुसंख्यक युद्धजहाजके पहुंच जाने-से मलवारियोंको पराजय और पुर्त्तगीजोंको प्रतिपत्तिको रक्षा हुई थी।

१५६० ई०में सबसे पहले गोआमें एक आर्चिविशप आये। उनके साथ यहृदियोंका दमन और खुप्रान अना-चारियोंका शासन करनेके लिये एक (Inquisitor) दएडविधाता उपस्थित हुए। इनके आगमन पर गोआके कट्टर खुष्टान छोड़ कर सभी सम्प्रदायके कपालमें आग लगी। उनके अत्याचारकी कथा पीछे लिखी जायगी।

इसी साल पुर्त्तगीज लोग सिंहलका जाफनापत्तन जीत कर सिंहलराजके प्रधान उपास्य बुद्धदेवके दाँत लूट लाये। इस पवित्र दाँतके वास्ते ब्रह्मदेशके राजा पुर्त-गोज राजनिधिको प्रायः तीस लाख मुद्रा देने पर प्रस्तुत थे। पर राजप्रतिनिधि और उनके मन्त्रिवर्ग इससे और भी कुछ अधिक चाहते थे। आखिरकार सभी धर्मयाजकोंके परामशंसे उस पवित्र दाँतको जाँतेमें पीस कर मस्म कर दिया गया।

१५६१ ई॰में पुर्रा गीजोंके साथ स्रत शहरमें चेङ्गिस बाँका घोर संग्राम हुआ। इसमें चेङ्गिस खाँ २००० सेनाके साथ परास्त हुए थे।

डम कन्छानिटनोके काय पर मुभ्य हो पुत्त गालराज-ने उन्हें आजीवन राजप्रतिनिधि रखनेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उन्होंने अपनी खुशीसे उच्छपदका परित्याग किया।, उनके स्थान पर डम फ्रान्सिस्को कुटिनहा १६६१ ई०के सितम्बर मासमें राजप्रतिनिधि हो कर आये।

बम-फान्सिस्को कुटिन्हो ।

कुटिन्हो आते ही देशमें केवल वाणिज्यकी रक्षनी और जिससे राजाकी आय बढ़े, इसके लिये कोशिश करने लगे। उनके समयमें कन्ननूरका विवाद शान्त नहीं हुआ था, उस समय कभी कभी छड़ाई हो जाया करती थी।

१५६४ ई०की १६वीं फरवरीकी अकस्मात् उनकी मृत्यु हुई। उनके वाद मलकाके दुर्गाध्यक्ष जोहन-दिमेन्दोशा भारतके गवर्नर हुए। उस समय कन्नन्त्रके विवादने कुछ भीषण रूप धारण किया था। इस समय एक सम्य्रान्त व्यक्ति पुत्तगीज सेनापितके हाथसे मारे गये। उनकी विधवा रमणी अधीरा हो गई और उसके आत्त नादसे कन्नन्त्र शहरमें शोक छा गया। इस पर सहृद्य व्यक्तिमातने ही उत्ते जित हो कर पुत्त गीजों पर हमला किया था। यही मलवार-युद्धका सूत्रपात है।

जोहन-डि-मेन्दोशा केवल ६ मास तक गवर्नर थे। पोछे डम-अएटोनियो-डि-नोरन्हा पुत्तं गालसे राजप्रति-निधि हो कर आये।

डम अवरोनियो-डि-नेरोन्हा।

नये राजप्रतिनिधिने आते ही कन्नन्रस्थ पुर्संगीजों-की रक्षाके लिये अनेक युद्ध-जहाज भेजे। आठ मास युद्धके वाद कन्नन्रराजकी हार हुई।

१५६८ ई०में फ्रान्सिस्कन याजकोंकी चेष्टासे साल-सेटी द्वीपके वहुसंख्यक छोग ईसाई हो गये थे। इसा समय कुछ धर्मं हिन्दुओंने उसके प्रतिविधानकी चेष्टा की थी। इस पर कुद्ध हो पुर्च गीजोंने यहांके सभी देवालय तहस-नहस कर डाले। सालसेटीके पहाड़ पर जो अपूच सुरङ्गपथ हैं, वहुतोंका विश्वास हैं, कि यह काम्बे शहर तक चला गया है। इस सुरङ्गको पार होनेके किये पादरी अएटोनियो देपोटोंने कुछ साथियों-को ले कर याता की थी। किन्तु ७ दिनमें ७०।७५ कोस जानेके वाद रसद घट गई जिससे वे लौट आनेको वाध्य हुए। प्राचीन पुर्च गीज ऐतिहासिकगण इस अपूर्व सुरङ्गके विषयमें अनेक कथाए लिख गये हैं।

डम अल्टोनियोने ४ वर्ष शासनकार्य करके लिसवन-की याता की। राहमें १५६६ ई०की २री फरवरीको चे कराल कालके गालमें फँसे। यह एक सिंदिवेचक ब्यक्ति थे। जब कोई उनके पास दलील सही करानेके लिये जाता था, तब वे कहा करते थे "जिस हाथसे ऐसा विषय साक्षर किया जायगा, उस हाथको दो खएड कर देना उचित है।" डम्-छ्रज-िंड आट इड (Dom-Luiz-de Atayde)

१५६८ ई॰के अक्तूबर मासमें डम छुइज (Condede-Atougiua) राजपतिनिधि हो कर आये।

१५६६ ई०के नवस्वरमें उनके साथ हनवरके राजा और गार्शोपाकी रानीका युद्ध छिड़ा। पुत्तगीजोंका अन्यान्य अत्याचार ही इस युद्धका कारण था। पुत्तं गीजोंके क्रोधानलसे हनवरसे ले कर गार्शोपा पर्यन्त सभी प्राप्त भस्मीभूत हुए। धीरे धीरे पुत्तं गीजोंका आचरण भारतवासीके लिये असहा हो गया।

निजाम-उल-मुल्कने चेउल, वसाई और दमन जयका, आदिलसाहने गोआ, हनवर और वार्शेलो जयका और सामरीराजने कन्ननूर, मङ्गलूर, कोचिन और कालियम् आक्रमणका भार लिया।

पुत्त गीजराज-प्रतिनिधिने चरके मुखसे यह संवाद पाया। वे पहले गोआकी रक्षाका वन्दोवस्त करने लगे। आदिलशाहने वहुत जल्द लाखसे अधिक सेना है कर चारों ओरसे गोआको घेर लिया। इस समय उम लुइजके असाधारण उत्साह और कार्यकुशलतासे वह असंख्य मुसलमानवाहिनी गोभा नगरमें प्रवेश कर न सकी । आदिलशाह अधिक काल तक गोआमें घेरा डाले रहे। उस समय डम छुइज यथेष्ट उत्कोच दे कर गुप्त-चर द्वारा आदिलशाहके शिविरका संवाद लेने लगे। यहां तक, कि आदिलशाह अपनी वेगमके साथ जो कुछ मन्त्रणा करते थे, उसकी भी खबर लुइजको मिल जाया करती थी। इस प्रकार यदि वे सतर्क न रहते और शिविरका संवाद नहीं पाते, तो सम्भव नहीं, कि वे एक भी पुर्त्तगोजकी रक्षा कर सकते और गोआनगरीको शतुके चंगुलसे क्वा सकते थे। जो कुछ हो, मुसल-मानोंके गोलोंकी वौछारसे गोथानगरी तहस नहस हो गई, प्रधान प्रधान अद्टालिकाएं धीरे घीरे भूतलशायी हुईं, सैकड़ों पुर्त्तगोज सेनाने असाधारण चीरत्य दिखा कर भूमिचुम्बन किया। पुत्तैगीजोंके अनवरत गोला वर्षणसे हजारों मुसलमानी सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रहीं। गोआमें जब ऐसा व्यापार चल रहा था, उसी समय निजाम-उल्-मुल्कने भी प्रायः दो लाख सेना लेकर पहले चैउल पर आक्रमण कर दिया। यहां पुर्तगीज लोग

मुंसलमानोंका आंक्रमण सहा कर नं सके। इस समय पर्तगोज-वीरोंने जैसा साहस और वीरत्व दिखलाया था, वह अति प्रशंसनीय हैं। इस समय गोआ चारी ओरसे अवरुद्ध होने पर भी उम लुइजने चेउलकी रक्षा-के लिये कुछ जंगी, जहाज और बहुसंख्यक साहसी पुर्त-गीज योद्धा भेजे। सुतरां जल और स्थल दोनीं पथमें ही मुसलमानोंको युद्ध करना पड़ा। पुर्तगीजोंके गोला-वर्धणसे कितने मुसलमान चेउलके रणस्थलमें धराशायी हुए, उसकी शुमार नहीं। पुर्त्तगीज भी मुद्दी भर सेना है कर उस असंख्य सेन्यसागरमें कब तक सन्तरण कर सकते । अनेक पुर्तगीज-सेनापति और गण्यमान्य यक्ति इत वा आहत हुए। पुर्त्तगीजींकी विवाहित देशीय रमणियोंने पतिकी रक्षाके लिये जैसे साहस और उत्साहका परिचय दिया था, वह नितान्त श्लाघाका विषय है, इसमें सन्देह नहीं। वहुतोंने तो योद्धाओं के वेशमें नंगी तलवार हाथमें लिये आत्मरका की थी और वहुतोंने पतिकी अनुगामिनी हो क्षिप्र-वन्यूक चला कर मुसलमानोंको निपातित किया था, पीछे आप वीरगतिः को प्राप्त हुई थीं। पुर्त्तगीजोंकी सहायसम्पत्ति खोई जाने पर भी पुर्तगीज योद्धा अपने मानसम्प्रम और प्रति-पत्तिकी रक्षा जिस वीरतासे कर रहे हैं उसे देख निजाम उलमुल्क तक भी विमुख्य हो गये थे । उन्होंने अपनी आंखोंसे स्वपक्षीय सैकडों वीरकी निपातित होते देख जयकी आशा छोड़ दो। इस प्रकार यदि कुछ दिन और युद्ध बलता, तो सम्भव था, कि पुर्संगीज दुर्ग छोड़ देने-को वाध्य होते। समस्त चेउल निजाम-उलमुक्कके अधीन होता, पर उन्होंने अपनी बेगमकी उन्हों जनासे सन्धि कर ली। दैवकमसे पुत्त गोजींकी वाण मिला।

जिस कारणसे निजाम-उल-मुक्कने सन्धि की, आदिलशाह भी उसी कारणसे सन्धि करनेको वाध्य हुए। प्रायः एक वर्ष अवरोध, प्रभूत शबुक्षय, यथेष्ट अर्थेव्यय और अपना वलक्षय करके भी जब उन्होंने देखा, कि पुर्त गीजोंने किसी हालतसे उनकी वश्यता खीकार नहीं की, सुखतुर और समरनिपुण-पुर्त गीजराज-प्रतिनिधिकी चेष्टासे उनकी सभी अभिसन्धि व्यर्थ निकली, तब उन्होंने अवरोध उटा लिया। इस प्रकार भगवान-

की क्रपासे पुर्त्त गीजों ने गोआ नगरीकी रक्षा कर अपने भाग्यको सराहा। पीछे १५७१ ई०की १७वीं दिसम्बर-को पुर्त्त गीजों के साथ आदिलशाहकी सन्धि स्थापित हुई।

सामरीराजके इस समय जलपथमें आक्रमण करने-की बात थी, पर वे कुछ विलम्ब कर गये। यदि वे विलम्ब नहीं करते और पुत्त गीजों को जलपथमें सहा-यता नहीं मिलतो, तो उनकी क्या दशा होती, कह नहीं सकते। सामरीराजका अभिश्राय कुछ और था। उन्होंने यह नहीं समका था, कि आदिलशाह इतनी जल्दी निरस्त हो जांयगे। इधर पुत्तगीजोंके साथ उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव करके मेजा। डम-लुइजने उनका अभिश्राय अच्छी तरह समका था। वे उस महाविपदु-कालमें भी सन्धि करनेको राजी न हुए।

सामरीराजने १५७० ई०के फरवरी महीनेमें अपने सामुद्रिक सेनापितके अधीन अनेक जंगी-जहाज मेजे। मलवारी-योद्धाओंने महाउत्साहसे पुर्तगीज जहाजों पर आक्रमण कर दिया। इस समय मङ्गलूरको रानीने वहांका पुर्तगीजदुर्ग दखल करनेके लिये सामरीराजके सेनापितके निकट संवाद मेजा। गहरी रातमें, सारा मङ्गलूर जब निस्तब्ध था, उसी समय मलवारियोंने मङ्गलूर जब निस्तब्ध था, उसी समय मलवारियोंने मङ्गलूरके पुर्तगीजदुर्ग पर छापा मारनेका आयोजन किया। किन्तु इसमें वे कृतकार्य न हुए। तीन महापराक्रमशाली राजाका मेल होने पर भी पुर्तगीजोंकी हार नहीं दुई। पुर्रागीजराजप्रतिनिधिके अद्भुत साहस और युद्धकौशलसे सभी भारतवासी विस्मित हुए। सारे यूरोपने इसके लिये पुर्रागीज-प्रतिनिधि डम लुइजकी प्रशंसा की थी।

उम लुइज उश्वाभिलाकी वा अर्थिपशाच नहीं थे। अधिकांश गवनर खदेश लौटते समय प्रचुर धनरज्ञ-संप्रहको चेष्टामें रहते थे, पर उम लुइजका उस ओर जरा भी ध्यान नहीं था। उन्होंने जब खदेशयाजा की, तब वे गङ्गा, सिन्धु, ताइग्रीस और यूफेटिस नदीका जल अति यक्तसे देश ले गये थे और उसीको अमृत्य सामग्री समक कर देशके लोगोंको दिखाते थे।

पशिया और अफ्रिकाके अनेक स्थान पुत्त गालराजके

अधीन हो जानेसे शासनके सुवन्दोवस्तके लिये इस बार सभी स्थान तीन मागोंमें विभक्त किया गया। १ला— सिंहलसे गाडेपुई अन्तरीय पर्यन्त पुर्तगीज राजमतिनिधि और भारतीय शासनकत्तांके अधीन, स्या—गाडापुई और करिएट अन्तरीयके मध्यवत्ती समस्त स्थान मनमी-तापाके शासनकर्त्तांके अधीन और इरा पेगू और चोनके मध्यवत्ती समस्त स्थान मलक्काके शासनकर्तांके अधीन हुआ।

इम आरोनियो-डि-नं।रन्हः।

१५७१ ई०की ६वीं सितम्बरको उम अल्टोनियो राज-प्रतिनिधि हो कर आये। उस समय भी आदिलशाहका सम्पूर्ण घेरा उठा नहीं था। सुतरां आलिशाहके ससैन्य चले जाने पर डम अल्टोनियोंने विजय-गौरव प्राप्त किया।

सामरीराजने उस समय भी कोलियम दुर्ग में घेरा बाला था, पर गोआसे सहायता जानेमें विलम्य हो जानेसे पुर्त्तगीजलोग दुर्गकी रक्षा न कर सके। इस दुर्गमें अनेक पुत्तगीज रमणियां थीं। मानसम्ब्रम जानेके भयसे वे सक-के सब आत्त नाद करने लगीं। अपर प्रधान सेनाओंकी इच्छा नहीं रहने पर भी रमणियोंकी कातरतासे मुख्य हो दुर्गाध्यक्ष दम-दीगो-डि-मेनेजिस सामरीराजको दुर्ग छोड़ अपने दलवलके साथ एक जहाजसे कोचिन भाग गये।

नव राजप्रतिनिधि अति द्रिष्ट् थे, इसीसे उन्हें अथॉ-पार्जनकी विशेष चेष्टा थी । इस कारण, उनके साथ मलकाके शासनकर्ता वारेटोका विरोध उपस्थित हुआ। अस्टोनियोंने बोरेटोके हाथसे वलपूर्वक शासन क्षमता छीन ली। इस पर बारेटोने विरक्त हो पुर्त्वगालराजके निकट अभियोग लगाया। फलतः बारेटोका कपाल खुल गया।

अराटोनियो-मोनिज-ग.रेटो ।

वारेटो पुर्त गालराजकी आश्वासे शासनकर्ता हुए।
मलका द्वीपसे आ कर उन्होंने १४७३ ई०की ध्वीं सितअ्थरकी गोआमें शासनमार ब्रह्ण किया। इसके कुछ
मास वाद ही, सामरीराजकी हुग छोड़ देनेके अपराध पर
इम काष्ट्रीकी प्राणदण्डकी आशा हुई।

१५७३ ई०में मलवारके पुत्त गीज नौसेनाध्यक्ष गैपाड़, परापङ्गलम्, कापकीटी, नीलगिरि आदि अमेक स्थानीकी आक्रमण, लुएउन और अग्निप्रदान करने लगे। इससे उपक्लवर्त्ती प्रताके कएका पारावार नहीं था। इसी समय पुत्तगीज शासनकर्ता भारत महासागरस्य द्वीपपुञ्जका गोलयोग ले कर ही व्यस्त थे। उसी कार्यमें उनका शासनकाल शेष हुआ।

१५७६ ई०को लिसवनसे राइ-लोरेन्सो डि-रावोरा राजप्रतिनिधि हो कर आ रहे थे, किन्तु मोजाम्बिकमें जहाजके लगते ही कराल कालके गालमें पतित हुए। अब कार्यको प्रधानताके अनुसार उम-डिगो-डि-मेनेजिस गवर्नर हुए।

दम-दिगो-डि-मेनेजिस।

इन्होंने शासनभार पाते ही चारों ओर जंगी जहाज मेजना शुद्ध कर दिया। इस समय द्मीलके थानेदारने विश्वासघातकतापूर्वक कुछ पुर्तां गीज राजपुरुपोंको अपने यहां निमन्त्रण किया और सर्वोको घातकके हाथसे मरवा बाला।

डम•छ्रब-द्वि-बाटाह्ड।

इस समय डम-छुहज पुनः राजप्रतिनिधि बन कर गोथा आये। उन्होंने भी दभोलकी दुर्घटनाका संवाद पा कर थानेदार मालिक दुधानका सिर काट लानेके लिये अनेक युद्धजहाज मेजे। पर उन्हें थानेदारका सामना करनेका साहस नहीं हुआ। धानेदार ६००० सेना लेकर उपकुलकी रक्षा कर रहेथे, इसी समय दो विक्यात मलवारी जलदस्यु उनके साथ मिल गये। पहले दोनों दस्युके कीशलसे कुछ पुत्त गोज जहाज विपयेस्त हो गया था, पर पीछे वहु संख्यक पुत्त गोज युद्ध-जहाजने मा कर धाने-दारके पक्षीय सभी जहाजोंको ध्वंस किया और आरो-हियोको अति धृणित भावसे मार डाला।

१५८१ ई०में लिसवनसे संवाद आया, कि स्पेनराज स्य फिलिप पुत्त गालके राजा हुए हैं। अतः सभी सभी पुर्त्तगीज़ोंने उन्हें अपना अधीम्बर माना ।

डम फ्रान्सिस्को मस्कारेन-इसने नृतन राजप्रतिनिधि हो कर १६वीं सितस्वरको कार्यभार प्रहण किया। डम फ्रान्सिको मस्करेन इसक (Count of Santa cruz)

इस समय जलदस्युका उत्पात और भी बढ़ गया था। उनके उत्पातसे उपकृत्यासियोंकी बात तो कू रहे, कोई भी सम्प्रान्त पुर्त्त गीज निरापद्से समुद्र हो कर नहीं जा सकते थे। उम फान्सिस्कोने इनका सम्पूणंकप-से दमन करनेकी चेष्टा की। उस समय कालिकट राजा-के अधीन कोलत्तुर नामक स्थानमें अनेक जलदस्युका अड्डा था। फान्सिस्को फार्णान्दिजने १८ युद्ध-जहाज ले कर कोलत्तूर पर आक्रमण और दस्युगणको समूल ध्वंस किया। पीछे पुत्त गीजगण कालिकट और कन्नमूर-के मध्यवर्ची सभी स्थानोंमें भारी उत्पात मचाने लगे। महाराष्ट्रगण जिस प्रकार चौथ वस्ल करते थे, पुर्त्त गीज-लोग भी उसी प्रकार नगर प्रामको जला कर तथा सैकड़ों व्यक्तिका प्राणनाश कर वलपूर्वक कर वस्ल करने लगे।

ं दमन नगरमें इस समय पुत्त[°]गीजोंके मध्य एक सङ्घर्यं उपस्थित हुआ । वहांके दुर्गाध्यक्ष मार्टिम-आफन्सी डि-मेलोने अपने अधीनस्थ एक पुत्त गीज सेनाकी कैद किया। इस पर शेप सभी सेनाने उत्ते जित हो डि-मेलो-के कार्य पर लात मारी । यहां तक कि, उस समय यदि सरकोटा द्वीपके रामराज विरुद्धाचरण नहीं करते, तो निश्चय था, कि वे सव योद्धा दलपतिका प्राणनाश कर मुगलोंके साथ मिल जाते। रामराज पुर्च गीजोंके मित थे। मुसलमानींके दमन अवरोध करने पर उन्होंने समस्त पुत्त[°]गीज रमणियोंको अपने राज्यमें आश्रय दिया : पर उनके बहुमूल्य अलङ्कारके ऊपर रामराज लुभा गये। लौटते समय रेपुत्त गीज रमणियोंको वे सव अङ्कार नहीं मिले। इसीसे पुत्त गीजोंने क्रुद्ध हो सरकोटा द्वीप पर आक्रमण कर दिया। इस समय एक दूसरेको मदद पहुंचाना जरूरी था, इस कारण पुत्त गीज़योद्धा-गण भी औद्धत्यपरित्यागपूर्वक शतुनाशके आपसमें मिल गये। इस प्रकार वह गोलमाल ६क गया। किन्तु इसके बाद १५८२ ई०में दमनके पुर्त्तगीजींने एक बार और गोलमाल उपस्थित किया । पुर्त्तगीजपोताध्यक्ष फार्णाव-डि-मिरन्दाने स्रतसे छोटते समय एक वड़े जहाजको .द्खल किया। उसके लूटका माल ले कर सेनामें विरोध उपस्थित हुआ। फार्णावने पहले वह अंश किसीको भी नहीं दिया। इस पर सेनाने विद्रोही हो कर दमन पर चढ़ाई कर दी। इस अतर्कित आक्रमणसे नगरवासी . भारी विषष्टुमें पहें। उन अवाध्य सेनाओंने सैकड़ों Vol XIV. 47

नगरवासीका प्राणसंहार किया, उनका यथासवस लूटा और पुत्तंगीज जयपताका उखाड़ कर उसकी जगह एक कृष्णपताका फहरा दी। इस समय मिरन्दा यदि जमीन पर पांच रखते, तो निश्चय ही यमराजके मेहमान वनते। अन्तमें रक्षाका कोई उपाय न देख वे सेनाके वीच लूटका माल वांट देनेको राजी हुए। इस प्रकार धधकती हुई आग ठंढी हुई।

कणाड़ा-उपकूलमें वार्शिलोका वन्दर था । वहुत वह स्थान वाणिज्यके लिये मशहूर था । यहां अनेक सम्म्रान्त मुसलमान-वणिक् रहते । फ़ान्सिस्को-डि-मेलो-साम्पयो नामक यहां एक दुर्गाध्यक्ष थे । उन्होंने केवल अर्थशोषण और सामीद प्रमोद्में मन दिया था । एक दिन मुसलमानी पर्वमें मौका पा कर मुसलमान लोग उन पर टूट पड़ें। पुत्त[°]-गोजअध्यक्ष चरके मुखसे संवाद पा कर पहलेसे प्रस्तुत थे। विद्रोहके पहले ही उन्होंने विद्रोही नायककी मार डाला । इस पर मुसलमानींने निकटवत्तीं वुलुवराजके यहां आश्रय प्रहण किया । तुलुव राजाने मुसलमानों को ५००० वीरों से मदद् की । अव उन्हों ने वार्शिली पर आक्रप्रण किया और आग लगा कर नगरके प्रधान प्रधान स्थानको जला डाला । पुत्तंगीज प्रतिनिधिने वहुसंख्यक सेंना मेज कर उन्हें अच्छी तरह परास्त किया । इस वार पुत्त गीजों के मीषण अत्पाचारजे कणाड़ा उपकूछ प्रायः जनसून्य हो गया था ।

१५८३ ई०को जेसुइट ईसाइयो'ने पुर्त गीज-प्रतिनिधि-के आश्रममें सालसेटी द्वीपमें खुष्टानधर्मका प्रचार करना चाहा। इस वार भी धर्मप्रचार ले कर द्वीपवासियो'के साथ विवाद हुआ। अनेक खध्म अनुरागी इस वारके विवादमें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। जेसुट लोगोंने बहु संख्यक मन्दिरको धृलिसात् करके वहां अनेक गिर्जा निर्माण किये।

मालू आदिलशाह पुतपरिवार सहित गोआमें वन्हीं थे। यहीं पर पुरर्तगीजों के दुर्व्यवहारसे उन्हों ने प्राण-त्याग किया। उनके पुत काफू कौ इतने दिनों तक गोआमें पुर्शगीजों के तत्त्वावधानमें थे। इप्राहिम आदिलशाहके अत्याचारसे विरक्त हो वीजापुरकी प्रजाने

काफू साँ को राजा वनानेकी चेष्टा की । इस समय आदिलशाहके एक सेनापित लड़वा खाँ पुर्तागीज अध्यक्ष डोगो-लोपेज-वयामको रिश्वतसें वशीभृत करके काफू-को छुड़ा लापे। काफू खाँने समका था, कि वे ही राजा होंगें, पर विश्वासघातक लड़वा खाँने आदिलशाहको प्रसन्न करनेके लिये निरोह काफू खाँके दोनों नेत निकाल लिये। पुर्तागीज-राजप्रतिनिधिने यह दारुण संवाद पा कर उत्कोचप्राही सेनाध्यक्षकी घोर निन्दा की थी।

इस समय कोचिनराजने पुर्रागीजोंकी क्र्टनीतिसे वशीभूत हो राज्यका समस्त शुक्क वस्ल करनेका भार पुर्रागीजोंके हाथ सौंपा । इस पर कीचिनकी सभी प्रजा विद्रोही हो कर जी-जानसे स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अप्रसर हुई । इस युद्धमें वहुसंख्यक पुर्रागीजोंकी जान गई थी। कीचिनराज भी भारी विपद्धमें पड़ गये थे। आजिरमें गोआसे अनेक पुर्रागीज सेनाने आ कर विद्रोहको शान्त किया। इस समय शङ्खें इके नायकको भी पुर्रागीजोंको हाथसे यथेष्ट कष्ट सुगतना पड़ा था।

डम दुआर्से-डि-मेनेजिस्।

१५८४ ई०में उम दुआत्तें राजप्रतिनिधि हो कर आये।
वे पहले कोचिनको प्रजाको शान्त करने छग गये।
उन्होंने कुछ सम्प्रान्त नगरवासियोंको शुल्क वस्त्रको
देखरेल करनेका भार दिया। पीछे कोचिन आ कर
उन्होंने प्रजाकी इच्छा पूरी को।

दे गोआ छोट कर दस्युदलपित शहू इके नायकका दमन करनेको अग्रसर हुए। इस समय आदिलशाहने स्थलपथमें नायकका शासन करनेके लिये पएडाके स्वे-दार रोस्ती खाँके अधीन ४०००० सेना मेजी। इधर उन-की सुविधाके लिये पुर्तागीजों ने जलपथमें नायक पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओरके आक्रमणसे नायक पराजित हुए, अधिकांश दस्युपित गोलेके आधातसे परलोक सिधारे। अन्तमें नायकने अनुनय विनय करके दोनों पक्षके साथ सन्धि कर ली।

डम दुआरर्तेके शासनकरता होने पर भी उनके चाचा राइगनसालभेस-डि-कमराई सर्वेसर्वा थे। इस समब प्रायः सभी कार्ण उन्हींके आदेशानुसार चलते थे।

उन्होंने सामरीराजके अधिकारमुक पोनानी नामक स्थानमें एक दुर्ग वना । चाहा और इसके लिये सामरी-राजको उपयुक्त स्थान दिखा देनेके लिये कहला मेजा। सामरीराज टालमटोल करने लगे । उन्होंने पुर्रागीज-दूतसे कह दिया, कि उनके बाह्मण अभी शुभ दिन नहीं पाते, इसलिये उनका जाना एक गया है । धूर्ग पुर्रा-गोज-सेनापतिने बाह्मणको मुद्दी गरम कर शीव ही शुभ दिन निकलवाया। अब सामरीराज आ कर दुर्गोपयोगी स्थान दिखा देनेको चाध्य हुए । दुर्ग वनाया गया। अव पुर्तागोजोंको चारों और लूटपाट करनेमें सुविधा हुई।

१५८६ ई०में डम हिरोम कुटिन्हो गोभामें सर्वोच अदालत सोलनेके लिये राजाके आदेशसे वहां पहुंचे।

इस समय अङ्गरेजराजकी ओरसे सर फ्रान्सिस दे क जलपथके आविष्कारमें नियुक्त हुए । भारतसे एक पुर्तागीज जहाज आजोर्सके निकट उन्हें हाथ लगा। १५७० ई०के पहले अङ्गरेज और अपर विदेशीय यूरोपियों-का विश्वास था, कि पुर्तागीजके जैसा नीयोद्धा और युद्धजहाज और किसी जातिके नहीं है। किन्तु दे क साहवने अभी वह जहाज लूट कर देखा, कि पुर्तागीज लोग न तो वैसे नीयोद्धा हैं और न जहाज ही बनाने जानते हैं। उस जहाजमें उन्हे प्रायः १० लाख क्ययेकी सामगी हाथ लगी थी। यह देख कर अङ्गरेजोंकी भारत-वर्ष पर पहले पहल आंख गड़ी। ओलन्दाजोंने जहाज लूटे जानेका संवाद पहले ही पाया था। अभी वे भारतमें वाणिज्य करनेके लिये बद्धपरिकर हुए। उसके साथ साथ पुर्वं गीजोंका भी भाग्य चमका।

हम दुआर्त्त मेनेजिसके समय मलका द्वीप और सिहलमें पुर्त्त गीजोंको यथेष्ट कष्ट भुगतना पड़ा था। इस समय उन सब द्वीपोंके राजा पुर्त्त गीज-ध्वंसका आयोजन कर रहे थे। अनेक युद्धोंके वाद विशेष क्षतिप्रस्त हो पुर्त्त गीज प्रतिनिधि सम्प्रमकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। इस समय कोचिनराजने हर तरहसे सहायता पहुंचा कर सिहलके पुर्त्त गीजोंकी रक्षा की थी।

१५८७ ई० तक भारतीय वाणिज्य पुर्तगालराज एका-धिकारमें रहा, पर इसी साल एक दिल सम्म्रान्त पुर्त गोजको भी वाणिज्य करनेका अधिकार दिया गया। इस दछका नाम था (Companha Portugueza das Indias Orientas) अर्थात् पूचभारतीय पुर्रागोज-समिति। परन्तु यह समिति अधिक दिन तक स्थायी न रही। जब ये वाणिज्य करने गये, तब सभी गोआवासी इनके विरुद्ध खड़े हुए। राजप्रतिनिधि भी भीतर ही भीतर इनके खार्थनाशकी कोशिशमें थे। अतः थोड़े हो दिनोंके अन्दर इस समितिका अस्तित्व लोग हो गया।

१५८८ ई०के मई मासमें डम वुआर्चे सिहल-जयका संवाद पानेके वाद ही कराल कालके गालमें फंसे। इनके शासनकालमें सभी भारतीय द्वीपपुजको पुत्र्वेगाल-के शासनमें लानेकी चेद्या की गई, इसीसे, भारतीय वाणिज्यमें जो कुछ लाभ हुआ था, बर्च हो गया।

डम हुआरोंके वाद मानुपल-डि-सुसा कुटिन्होने गोंआमें शासनभार श्रहण किया। उनके शासनकालमें भारतसमुद्दमें अनेक वाधाविष्न होने पर भी पुर्शगीजोंके साथ भारतवासियोंका कोई संघर्ष नहीं हुआ।

मथियस-डि-आलवुकार्क।

१५६० ई॰में मथियसने राजप्रतिनिधि हो कर लिस-वनसे याता की। १५६१ ई॰के मई मासमें उन्होंने गोआ पहुंच कर शासन-भार प्रहण किया। पहले अनु-कूल ऋतु आये विना कोई भी पुत्त गालसे जहाज नहीं छोड़ता था, पर मथियस ही सबसे पहले असमयमें जहाज चला कर निर्दिष्ट समयमें भारतवर्ष पहुंचे। सिहलके राजाओंने ईसाइयों के विरुद्ध अख्यधारण किया था। शासनभार प्रहण करते ही मथियसने अनेक नौवल मेज कर उसका प्रतिविधान किया।

१५६१ ई०में पुर्रागीज जेसुटोंको प्रसन्न करनेके छिये सामरीराजने अपने राज्यमें ईसाइयोंको गिर्जा बनानेका हुकुम दिवा।

१५६२ ई०में पुर्त्तगीजों के अत्याचार पर सन्धि तोड़ कर मुसलमानोंने जेउल पर आक्रमण कर दिया । इनका सेनापित पहले पुर्त्तगीजों के अधीन काम करता था और उनका रणकौशल अच्छी तरह जानता था । अतः उसके कथनामुसार जब मुसलमानों ने पुर्रागीकों पर चढ़ाई कर हो, तब वे विशेष क्षति और मारी विषद्में पड़ गये। जो चेउल नगरकी रक्षामें तैनात थे, उनमेंसे अधिकांश मुसलमानों के शाणित कृपाणाद्यातसे बीरगतिको प्राप्त हुए। आखिर वसांई, गोक्षा आदि नाना स्थानों से संस्थक पुर्रागीज योद्धाने था कर मुसलमानों को परास्त किया। पराजित हो कर मुसलमान-सेनापित फरीद साँ और उनकी कन्या काथिलक धर्ममें दीक्षित हुई। अब क्रिस्तान हो कर फरीद खाँ पुर्तागालको चल दिये।

१५६५ ई०में जोहन-डि सालदाना गोजाके आर्क-विशप वन कर आये। उन्हों ने राजप्रतिनिधिके साथ मिल कर खुट्टीय-धर्म-प्रचारमें विशेष ध्यान विया । पुर्त्त-गीज धर्मप्रचारको ने भी नाना-स्थानो में धर्मप्रचार करने और लोगों को भुलानेके अभिप्रायसे छोटे छोटे दुर्ग वनवाये। उनमेंसे सीलरका दुर्ग ही प्रभान है। लुप्रीय-धर्मचारकगण सुविधा पा कर बहुतों की छल बलसे भुला कर किस्तान बनाने लगे। इस पर अनेक हिन्दु और मुसलमानों ने महाविरक हो कुछ पादरीको मार डाला । फिर इया था, पुर्शगीज योदाओं ने गाजकों के साथ मिल कर नगर-प्राम जला डाला और निरीह लोगों के प्रति जैसा अत्याचार किया वह वणना-तीत है। पोपका हुकुम था, कि दएडविधातृगण केवल सधमें द्रोही ईसाइयों और यह दियों की दएड देंगे, पर गोआके आकविशपके अधीन दण्डविभाताओं (Inquisitors) ने हिन्दू और मुसलमानी पर भी धर्मके नामसे उत्पीडन करना आरम्भ कर दिया । किसी किसी का कहना है, कि धर्मके नामसे यह अनर्थकारी उत्पोडन और अत्याचार ही भारतीय पुर्त्तगीजोंके अधःपतनका अन्यतम कारण था।

१५६७ ई०के मई मासमें उम फ्रान्सिस्को-डि-गामा (Condede-vidigueira) राजप्रतिनिधि हो कर आये। वे कुछ अधिक अहङ्कारी थे, किसीकी परवाह नहीं करते थे, इस कारण वे सभीके अप्रिय हो गये। वे अपने अक-र्मण्य आत्मीयगणको उच्च पद पर नियुक्त कर निन्त्नीय हुए थे।

इसके पहले ही ओलन्दाज लोग भारतमें वाणिज्य करनेकी जेष्टा कर रहे थे। उनकी ओरसे भारतकी अवरुधा और भारतीय विषयोंका पता लगानेके लिये लिनसोटेन भेजे गये। लिनसोटेन गोआके आकैविशपके दलमें मिल कर उन्होंके जहाज पर भारत आये।
विणकोंके लिये किसी देशके सम्बन्धमें जो जो जानना
आवश्यक था, लिनसोटेन सभी जान गये थे। १५६२
ई०में वे खदेशको लीटे और १५६६ ई०में अपने भ्रमण
और भारतका चाणिज्य विषय ले कर उन्होंने एक प्रन्थ
प्रकाशित किया। उस अन्थसे ओलन्दाजगण समस्त
शातव्य विषय जान कर भारत-उपकूलमें उपस्थित हुए।
ओलन्दाजोंकी वाणिज्य चेष्टा देख कर इस समय स्पेनराज फिलिपने भी ओलन्दाजोंकी विषय सम्पत्ति छीन
लेने और उन्हें देशसे मार अगानेका आवेश दिया।

ं अंगरेजींने भी इस समय रानी पिलजावेधका आदेश ले कर खदेशीय द्रध्यके वदलेमें विदेशीय मालयलकी आमदनो करनेकी चेष्टा की।

१६०१ ई०में अङ्गरेज कप्तान लाङ्के प्रर भारत-महा-सागरमें उपस्थित हुए और आचिनमें उन्होंने वाणिज्य-कींडी बोलनेका पहले पहल आदेश पाया। आचिनराज-के उत्साहसे अङ्गरेज और ओलन्दांज लोग पुर्त्त मीजका वाणिज्य-प्रमाव नष्ट करनेके लिये वद्धपरिकर हुए। पुर्त्त गीजोंके नाना उत्पीड़न और धर्मके भाणकारी दण्ड-विधाताओं (Inquisitors)के अति जधन्य निग्रहसे जनता पुर्त्त गीजों ऊपर मर्मान्तिक विरक्त हो गई थी। अभी देशीय विणकोंने स्वतः प्रवृत्त हो कर अङ्गरेज और ओलन्दांजका पक्ष लिया। वाणिज्यकी सुविधा समक्त कर ही विलायतसे अनेक वाणिज्य-जहांज भारतकी ओर आने लगे।

इस समय एक और दस्युदलपित पुत्त गीजोंका महा-शबु हो उठा। इस जलदस्युका नाम था लाँ अली। पहले सामरीराजने इसे उत्साह दिया। क्रमशः उसने अपने वाहुवलसे सामरीराजके अधीन मलवारके अनेक स्थानों पर दखल जमाया और अपनेको 'भारतीय-समुद्रका अधिपित' और 'मुसलमान-धर्मका पुनरुद्धारकारी' वतला कर भोषणा कर दी। अभी सामरीराज दस्युका मन्द अभिप्राय समक्त कर पुत्त गीजोंके साथ मिल गये और खाँ भलीके निपातनकी चेष्टा करने लगे। दो प्रवल-शक्तिके एकत हो कर अनेक वार युद्ध करने पर भी

मुसलमान-दस्युका बाल वांका न हो सका। १५६६ ई०-में उस दस्युपतिने 'पुत्त गीजध्वंस' उपाधि ग्रहण की। महाविकमसे ्युद्ध करके उसने पुर्त गीजोंको अपने अधि-कारसे मार भगाया । पुर्त्तगीज लोग व्यतिव्यस्त हो पड़े, उन्होंने फिरसे सामरीराजके साथ मिल कर चारों ओरसे खाँ अली पर आक्रमण करनेकी चेष्टा की। इस वार खाँ अली पक्षके अनेक योद्धा मारे गये। खाँ अली क्रमशः निस्तेज हो पड़ा। अभी दस्युपतिने सामरी-राजकी निकट अनेक उपहार मेज कर उनके तथा अपने दलकी रक्षाके लिये विशेष अनुनय किया। सामरीराज-ने दस्युपतिकी बात पर कान नहीं दिया। नायरसेना ले कर वे भो खाँ अलीके दुर्गध्वंसमें प्रवृत्त हो गये। अव वचायका कोई उपाय न देख खाँ अलीके आत्मसमर्पण करने पर सामरीराजने उसे अभयदान दिया। किन्त पुत्त गीज उसे वन्दी करके गीआ लाये। यहां दस्युपति राजद्रीह, दस्युवृत्ति और जृष्टानद्रीहिताके अपराध पर द्ळवळ समेत मारे गये । पीछे उसका हुगै भी धूळि-सात् कर दिया गया।

१६०० ई०में आयरस-दा-सालदान्दा फ्रान्स्स्कोके स्थान पर राजप्रतिनिधि अमिषिक हुए । पहलेसे ही सब कोई फ्रान्स्स्कोके ऊपर विरक्त थे। अमी नये राजप्रतिनिधिके आने पर उनके उत्साहसे पुर्वगीज-राजपुरुषगण फ्रान्स्स्को-डा-गामाके साथ अन्याय अव-हार तथा विशेषकपसे उन्हें अपमानित करने लगे। उनके सामने सबोंने भास्को-डि-गामाकी प्रतिमृत्ति जला डाली। उनके अवैध-आचरण पर कुद्ध ही वे लोग अन्तमें उनके प्राणनाशका यहयन्त रचने लगे। अब वे यहां अधिक काल ठहर न सके, अनुकूलवायुमें जहाज चला कर छः महीनेके अन्दर पुत्तगाल पहुंचे। फलतः अत्यन्त कप्रपाकर प्राप्तनकालमें समर्थ हुए थे। फ्रान्सिस्को-के शासनकालमें और उनके वाद भी बङ्गालके समुद्र-कुलवत्ती स्थानमें पुत्त गीजोंने भीषण उत्पात मचाना आरम्स कर दिया था।

आयरस-दि-सासदन्हा ।

सालदानहाके शासनकालमें पुत्र गीजीने आराकानमें प्रतिग्रालाम किया था । सालमाडोर-रिवोरा-डि-सुजी

(Salvador Ribeiro de sousa) नामक एक पुनेगीज सैनिकने रोसङ्ग (आराकन)-राजके अधीन कार्य करना खीकार किया। धीरे धीरे उसने आराकनी सेनाकी अध्यक्षता प्राप्त कर ली थी । पीछे लिसवनवासी फिलिए डि-विटो-इ-निकोटी नामक एक और व्यक्तिने जवं डि-सुजाका साथ दिया, तव उनके प्रभावसे घीरे धीरे वहुत पुर्तगीज आ कर आराकानमें आश्रय प्रहण किया । आराकनराजने उनकी सहायतासे पेग्-का सिहासन पाया था, इस कारण उन्होंने पुत्त गीजोंको (रंगून जिलेके मध्यवर्ती) सिरियम वा धमलिए नामक वन्दर प्रदान किया । पोछे निकोटोकी उत्तेजनासे आरा-कनराजने नदीके मुहाने पर एक शुल्कगृह (Customhouse) वनवाया । वनद्ळा नामक एक व्यक्तिको उसका कार्य सौंपा गया। वे पुर्तगीजोंकी दुरभिसन्धि जानते थे, इस कारण उन्होंने वेलचुअर नामक एक खृष्टान-याजक (Dominican friar) छोड़ कर और सभी पुर्तगोजोंका प्रवेश निषध कर दिया। इस पर सभी पुर्क गीज उत्ते-जित हो उठे। नेकोटीने अपरापर पुत्तं गोज सेनानायक-की सहायतासे एक दिन हुउात वनदला पर आक्रमण कर शुक्तगृहको अधिकार कर लिया। पीछे दिघानका वौद्ध मन्दिर सूट कर उन्होंने प्रचुर अर्थ पाया और उसीसे अपने दलकी पुष्टि की । आराकनराज पहले इस कार्यके लिये निकोटी पर वड़े विगड़े थे, पर निकोटी राजाकी अनेक भावी आशासे प्रलुव्ध कर उनके और भी प्रियपात हो उठे। आराकनराजने निकोदीके इच्छानुसार उक्त शुक्तगृहको दुर्गसे सुरक्षित रखनेका आदेश किया।

यहां जव दुर्गको नीवं डाली गई, तव निकोटी पुर्त-गीज-राजप्रतिनिधिका अनुप्रह पानेकी आशासे सालमा-होरके ऊपर दुग रक्षांका कुल भार दे गोआके राजप्रति-निधिको वह दुर्ग देनेको आये। राहमें निकोटीने कुल राजाओंसे मुलाकात की और उन्हें यह आशा दी, कि यदि वे पुर्त-गीज राजप्रतिनिधिका साथ दें, तो वे अना-यास ही वङ्ग अथवा पेगू पर अधिकार कर सकेंगे। उसके मुखसे ऐसा मनोमुन्धकर वाक्य सुन कर अनेक राजाओंने उसके साथ गोआमें दूत भेजा था।

निकोटिरनके आराकन-परित्यागके वाद ही आराकन-Vol. XIV. 48 राज पुर्तं गोजोंको दुरिमसिन्ध समक न सके । उन्होंने उसी समय पुर्तं गीजोंको अपने राज्यसे निकल जानेका हुकुम दे दिया और पुर्तं गीज सेनाका दमन करनेके लिये वनदलाके अधीव ६००० सेना मेजी। प्रोमके राजाने भी सेना भेज कर आराकनराजकी सहायता की थी। किन्सु सालमाडारने ससैन्य दुर्गंके भीतरसे ऐसा अविरल गोलावर्पण किया था, कि किसीको उनके निकट जानेका साहस नहीं हुआ। पुर्तं गीजोंने रातको अतर्कित भावसे आक्रमण करके आराकनी सेनाको परास्त किया। इस समयसे उन दुर्दं वें और पिशासकप पुर्त्तं गीजोंने आराकनासीके ऊपर दारण अत्याचार आरम्भ कर दिया। कमशः जलपथकी याता और भी अनर्थकर तथा विपन्जनक हो गई। वनदलाके वार वार आक्रमण करने पर भी पुर्त्तं गीजोंका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। सैकड़ों आराकनी पोत पुर्त्तं गीजोंके हाथसे विध्वस्त हुए।

१६०२ ई०में सालमाडोर रिवेरोने ससैन्य कामलङ्का पर धावा मारा, जिससे जल भीर स्थलपथमें कामलङ्का को विशेष क्षति हुई। कामलङ्काराज महासिंह उस युद्ध-में गारे गये। उनकी मृत्युके वाद पेगूके अधिवासिगण पुर्ति गीज लोगों से डर गये और उनकी विशेष मिक करने लगे। इस समय वहांके प्रायः २००० मनुष्यों ने रिवेरों के अश्रीन काम करना स्त्रोकारा था। अभी रिवेरों कामलङ्काके सिंहासन पर अभिषक्त हुए। रहिंगो-आलवरेस-डि-सेकुइरा अब सिरियामके अधिपति हुए।

इधर निकोटी गोआ जा कर पुत्ते गीज राजप्रतिनिधिन के प्रोतिभाजन हुए। यहां तक कि पुत्ते गीज प्रतिनिधिने यवद्वीपीय रमणीके गभजात अपनी एक भ्रातुष्पुतीके साथ निकोटीका विवाह कर दिया और उन्हें 'सिरि-यामके हुर्गाध्यक्ष और पेगूजयके प्रधान सेनापति'को उपाधि दी।

निकोटी सिरियामको छौट दुर्ग-संस्कार, गिर्जा-स्थापन और आराकनराजको भनेक उपहार भेजने छगे। इसके वाद उन्होंने यह आदेश निकाला कि, इस ओर जो कोई वाणिज्य-जहाज भावेगा, उसे इसी शुक्कगृह हो कर जाना पड़ेगा। इससे पुर्व गोर्जोको यथेष्ट आमदनी होने लगी। अब आराकनराज उस शुक्कगृह पर दखल

करनेकी चेष्टा करने लगे । उनका अभिप्राय समक्त कर पुर्च गीज लोग आराकनी-पोत लूटने लगे । पेगूराज-पुर्वोने आराकनी सेनाके साथ मिलकर पुर्च गीजोंके साथ घोर संप्राम किया था, किन्तु पुर्च गीजोंके कूट्युद्धसे वे वार वार पराजित हुए थे । आराकनराज और प्रोमराजके परास्त होने पर ब्रह्मके और किसी भी राजाको पुर्च गालोंके विरुद्ध अप्रसर होनेका साहस नहीं हुआ । अव पुर्च गीजगण निश्चिन्त हो प्रचुर अर्थसञ्चय करने लगे । सालमाडोर रिवेरोने निकोटीके हाथ शासन-भार सौंप कर खदेशको याता को । इस समयसे आराफन और पेगूके मध्यस्थित समुद्रोपकूलवर्ची स्थान और बङ्गोप-सागरस्थित अनेक छोटे छोटे होप 'फिरंगीका मुक्क' वा 'फिरंगी'का देश कहलाने लगे थे ।

१६०५ ई०में मार्टिम-आफन्सो-डि-काण्ने राजप्रतिनिधि हो कर आये। इस समय ओलन्दाजगण क्रमशः प्रवल होते जा रहे थे, उन्होंने पुर्त गीजोंके हाथसे भारत-महा-सागरीय अनेक द्वोपींका वाणिज्याधिकार छीन लिया। इस कारण दोनोंमें यमसान छडाई छिडी।

आफन्सोको मृत्युके बाद उनके स्थान पर गोआके आर्कविशप डम आलेक्लो-डि-मेनेजिस १६०७ ई०में पुर्त्त-गोज-भारतके शासनकर्ता हुए । १६०६ ई०में उनकी जगह पर डम-जोहन पेरिरा-फ्रोजस (Conde-de Feyra) पुर्त्त गालसे राजप्रतिनिधि हो कर आये।

इसके पहले निकोटीने आराकनराजके एक पुतको कैंद कर रखा था। उनकी मुक्तिके लिये आराकनराज वहुत कोशिश करने लगे। निकोटीने इस सम्बन्धमें गोआके राजप्रतिनिधिका अभिप्राय जानना चाहा। प्रतिनिधिने बिना कुछ लिये ही आराकन राजकुमारको छोड़ देनेका हुकुम दिया। किन्तु निकोटीको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने राजकुमारकी मुक्तिके लिये पांच लाख रुपये मांगे। इस पर आराकनराज नितान्त असन्तुष्ट हुए और तौंगुराजके साथ मिल कर निकोटी पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें आराकनराजको हार हुई। इसका प्रतिशोध लेनेके लिये आराकनराजने बहु संस्थक काथलिक किस्तानोंको एकड़ कर कैंद किया और उन्हें यथेष्ट कष्ट दिया। अन्तमें वार वारके आक्रमणसे

बलहीन हो पुत्तं गीज लोग सिरियाम दुग समपण करने को बाध्य दुए । जंयहपैसे गर्वित भाराकनी जहाज भी इस समय लीट रहा था। छल बल कीशलसे पुत्तं गीजोंने भी अन्तमें भाराकनी रणपोतींको विध्वस्त कर जयलाम किया।

निकोटोके विजय-संवादसे समस्त ब्रह्मदेशके नृपतिगण उनके साथ मिततापाशमें आवद होनेके लिये
उत्सुक हुए यहां तक, कि मर्च वानके राजाने निकोटोके
पुत्रको अपनी कन्यासे विवाह कर सम्बन्ध स्थिर किया।
इस मर्चवान-राजकी सहायतासे निकोटीने प्रीमराजकी
परास्त और कैंद्र किया। उस समय प्रीमराज पुर्च गाल
राजके अधीनता-पाशमें आवद थे, किन्तु निकोटीने
धमेंके ऊपर अटल न रह कर अपनी दस्युवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये प्रीमराजका प्रचुर अन्तरत्न अपहरण
कर लिया।

१६०५ ई०को बङ्गालमें एक और पुत्त⁶गीजका उत्पात आरम्भ हुआ। जिसका नाम था सिवाष्ट्रिओ-गञ्चालिस-तिवाओ । लिसवनके निकट एक नगण्य प्राप्तमें अज्ञात कुलशील एक निम्न व्यक्तिके घरमें गञ्जालिसका जन्म हुना था। किसी प्रकार बङ्गाल देश आ कर उसने सैनिक-वृत्तिका अवलम्बन किया था, किन्तु इसमें विशेष सुविधा न देख सैनिकवृत्ति छोड़ दी और खवणका धवसाय आरम्भ कर दिया। पहुछे ही वह एक छीटी बोट पर लवण लाद कर आराकन आया, किन्तु उस समय भारा-कनराज पुरुत गीजों पर बहुत कुद्ध थे, इस कारण गुआ-लिसने वह कप्टले प्राणरक्षा की थी। इस वार उसने भी अनेक दुष्ट छोगों और कुछ जहाजोंको छै कर आराकन-उपकूलमें दस्युवृत्ति बारम्म कर दी। यहांसे वे खुरका माल ले जा कर वाटिकालिया वन्दरमें बेचते थे। इन दस्युगणके उत्पातसे चट्टमाम, आराकन और बङ्गालके उपकुलवासी सभी मनुष्य व्यतिव्यस्त हो गये । शण-द्वीपके राजा फते खाँने उनका दमन करनेके लिये रणपीत-में अनेक सेना के उन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उन दुव् तोंके निकंट शणंदीपराज परास्त और बन्दी हुए। उनकी अनेक सेना पुत्त गीज दस्युके शिकार बन गई। फते बाँको परास्त करके दस्यु लोगोंने गञ्जाविसको अपना दलपति बनाया ।

सिबाध्यियो शङ्जालिस ।

बङ्गालके नाना स्थानों में जो सब पुर्शगोज रहते थे अभी उन्हों ने आ कर गञ्जालिसका साथ दिया। अभी गञ्जालिस शणद्वीप पर अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगा। वाटीकालियाके राजाने भी आधा राजस्व पाने-की आशासे पुर्चगीजोंके साथ कुछ जंगी-जहाज और दो सौ अश्वारोही भेज दिये।

१६०६ ई७के मार्चमासमें गञ्जालिसने ४० जहाज और प्राय: ४०० पुर्त्तगीज-सेनाको ले कर शणदीय पर चढ़ाई कर दी। फते खाँके भाईने हजारसे ऊपर मुसल-मानी-सेना ले उन्हें रोका। घोरतर युद्ध करके पुर्त्तगीज लोग श्रान्त हो पड़े, पर तिस पर भी द्वीप हाथ न लगा। घीरे धीरे उनकी रसद घटने लगी। इस समय स्पेनीय जहाजके कप्तान गैरु-पर-डि-पीनाने उन लोगोंके अनुरोध-से रातको ५० योद्धाओंके साथ द्वीपमें उतर कर भयङ्कर अन्तिकाएड किया। उनका गभीर गर्जान और अन्तिवर्षण सन कर मुसलमानोंने समक्ता, कि शतुकी फिर अनेक सेना पहुंच गई है, अतः उन्हें लड़ाई करनेका साहस नहीं हुआ। अव गञ्जालिसने फीरन दलवलके साथ जा कर दुर्ग पर अधिकार जमाया।

शणद्वीप जीत कर गञ्जालिसने पहले सभी पुत्त-गीजोंको थोढ़ी थोड़ी जमीन दी थी, पर पीछे छीन ली। किन्तु वादिकालियाके राजाको राजसका आधा देनेकी बात तो दूर रहे, कुछ भी न दिया गया उल्टे वह उनके विषद युद्ध ठाननेको तैयार हो गया।

गङ्गालिस धीरे धीरे धनी हो चला। १००० पुत्तेगीज, २००० देशी पदाति, २०० अश्वारोही, ८० जहाज और अनेक गीला गोली उसे हाथ लगे। अभी उसीके प्रभावसे वाटिकालियाराजके अधीन जवासपुर और पाटिलाङक्षा नामक दोनों द्वीप पुत्तेगीजके अधिकार-मुक्त हुए। शणद्वीपमें नाना स्थानोंसे वाणिज्यपीत आते थे, गञ्जालिस उन सब पोतोंसे शुक्त वस्तुल करता था। इस प्रकार वह शीध ही सहाम सम्पत्तिमें निकटवर्ती राजाओंका मुकाबला करने लगा।

इस समय आराकनराज्के साथ अपने भाईमें हाथी लेकर विवाद उस्थित हुआ। इस पर राजाने अाने भाईकी राज्यसे निकाल भगाया। राजप्राता अनापयमने परिवार और धनरत्नादिके साथ गक्षालिस का आश्रय लिया। गञ्जालिसने अच्छा मौका देख कर उनकी वहनसे विवाह किया और गुप्त भावसे विघ खिला कर उनकी सारी धनसम्पत्ति ले ली। इस पर अनापयमकी विधवा-पत्नीने आराकनराजके निकट गञ्जालिस पर अभियोग लगाया। धूर्च गञ्जालिसने उनका मुंह बंद करनेके लिये अपने भाई अख्डोनिओ तिवाओने साथ उनका विवाह कर देनेकी चेष्टा की; पर विधवारमणी उसके नीच प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुई। इधर आराकनराजने आ कर गञ्जालिस पर धावा वोल दिया। अन्तमें गञ्जालिस सन्धि करनेको चाध्य हुआ और हतभागिनी विधवाने आराकनराजका आश्रय लिया।

पुर्तं गीजोंके ऐसे उपद्रवसे उत्त्यक्त हो मुगल लोग इस समय मुलुआराज्य पर आक्रमण करनेका आयोजन कर रहे थे। गञ्जालिसने आराकनराजके साथ मिल कर मुगलोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। शर्त यह ठहरी, कि मुगलोंको हटा सकने पर आधा मुलुआराज्य गञ्जालिस पावेगा। इसके प्रतिभूखक्षप गञ्जालिसने अपने भतीजे और शणद्वीपवासी कुछ पुर्त्तं गीजोंको आराकनके निकट रख छोड़ा था।

आराकनराज मुगलोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए।
किन्तु गञ्जालिसने अपने कथनानुसार सहायता नहीं की।
आराकनराज्य अकेले युद्ध करके परास्त हुए और अन्तमें भग कर उन्होंने चट्टग्रामदुर्गमें आश्रय लिया। पीले
गञ्जालिस मुगलोंके साथ युद्धका बहाना करके आराकनी
पोताध्यक्षोंके साथ मिल गया। एक दिन उसने सभी
पोताध्यक्षोंको अपने जहाज पर निमन्त्रण कर मार डाला
और उनके अधीनस्थ आराकनीपीत और जहाज लुट लिये। इतने पर भी दुर्च च शान्त नहीं हुआ। तलचार और अग्निप्रयोगसे वह निरीह उपक्ल-चासियोंका
अतर्कित भावसे संहार करने लगे। इसके वाद गञ्जालिस
आराकन पहुंच कर लोमहर्षण-काण्ड करनेमें प्रवृत्त हुआ।
सुरस्य आराकननगर उसके दौरात्स्यसे हतश्री हो पढ़ा,
नाना विदेशीय जहाज दुरात्माके हाथ लगे। यहां तक
कि, आराकनराजका खणे और गजदन्त-ख्चित एक बहा जहाज दुरातमाने नष्ट कर डाला। इस विश्वासघातकता और पैशाचिक अत्याचारसे अराकनराजने नितान्त कुद्ध हो गञ्जालिसके भतीजेके दृश्यमें शलाका विद्ध कर, जिस-से गञ्जालिसकी इस पर निगह पड़े, इस अभिप्रायसे उस-को उच्चस्थानमें लटका दिया। पर यह देख कर भी उस नरिपशाचका पाषाण-हृदय नहीं पसीजा। भतीजेके उद्धारकी कोई चेष्टा न कर वह दुवृं त शणद्वीपको चला गया।

इधर दस्युपति सिवाष्टिओ गञ्जालिस शणद्वीपका एक खाधीन राजा हो गया। उसने गोआके पुत्त गीज-राजप्रतिनिधिको सूचित किया, कि वह पुत्त गालराजके अधीन रहेगा, प्रतिवर्ष पुत्त गालराजको कर खरूप एक जहाज चावल मेजा करेगा। पुत्त गीज गवर्नमेख्स्से भी उसने सहायता मांगी। राजप्रतिनिधि उसे सहायता देनेको राजी हुए। तदनुसार उसने डम-फ्रान्सिस्की-डि-मेनेजिसके अधीन १४ छोटी बोट मेजी थीं। उम-फ्रान्सिस्कोने आराकन-उपकुलमें पहुंचते ही वहांके राजा पर आक्रमण करनेकी चेष्टा की। किन्तु डीक उसी समय कुछ ओलन्दाज युद्ध-जहाज ले कर पहुंच गये। अतः उन्हें आराकन पर आक्रमण करनेका मौका नहीं मिला। इधर उन दोनोंने आराकनी जहाज पर बढ़ाई कर दी । युद्धके आरम्भ होते न होते ओलन्दाजीने था कर आराकनियोंका साथ दिया। युद्धमें डभ-फ्रान्सिस्को मारे गये और गञ्जालिस भी अपना जहाज ले कर शण-द्वीपमें भाग आया। पुत्तं गीज गवर्में एटकी सेना गञ्जा-लिस पर विरक्त हो गोआ बापस आई। इसके वाद ही आराकनराजने काफो सेना छे कर शणद्वीपको दखल कर लिया। गञ्जालिसने विपद्मस्त हो चट्टमाम भाग कर ज्ञान वचाई।

दूसरे वर पुत्त गीजोंने श्यामराजके निकट मर्चवानमें दुर्ग वनाने और विना शुक्कके वाणिज्य करनेका अधिकार पाया। इस पर ब्रह्मराजने डर कर पुत्त गीजोंके साथ सिन्ध कर ली और आराकनराजके विरुद्ध पुर्त्त गीजोंको सहायता पहुंचानेमें सहमत हुए।

१६१७ ई॰में सम जोहन कुटिनहों (Conderie-Bedondo) लिसबनसे राजंप्रतिनिधि हो कर. आये। इस समय वेङ्करनायकने मलवार-उपकूलमें पुत्तं गोजोंके विकक्ष युद्ध घोषण कर दो। पहले वेङ्करनायक ही विशेष क्षतिग्रस्त हुए थे, पर पीछे उन्होंने १६१८ ई॰ में १२००० कनाड़ी-सेना ले कर पुत्तं गोजोंको परास्त किया। इस युद्धमें वहुसंख्यक पुत्तंगीज निहत और वन्दी हुए थे। लुइस-डि-व्रिटो और डम-फ्रान्सिस्को-डि-मिरन्दा नामक दो पुत्तं गीज सेनाध्यक्ष युद्धमें प्राण गैवाये थे।

१६२३ ई०में रामनादके सेतुपतिने पुर्तागीजींके विरुद्ध अस्त्रधारण किया, किन्तु इस युद्धमें वे ही क्षतिअस्त हुए। इस समय तओरराजने पुर्तागीजींके अत्याचारसे सिहिलियोंको मुक्त करनेके लिये क्षेम-नायकके
अधीन १२००० हजार सेना भेजी थी। कई एक युद्धोंमें
जीत होने पर भी अन्तमें पराजित हो तओरकी वड़गसेना
देशको लीट गई।

१६२२ ई०में फार्डिनन-डि-आलवुकार्कका शासन-काल शेष हो चला। वे वहुत कप्टसे भारतीय पुर्त गोजों-की ख्याति प्रतिपत्तिकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। किन्तु इस समय हरमुजद्दीपमें अङ्गरेजोंका वाणिज्य-प्रभाव वहुत चढ़ बढ़ गया था।

उसी सालके सितम्बर मासमें डम फ्रान्सिस्को-डि-गामा (Conde-de-Yidigueira) पुनः राजप्रतिनिधि ही कर आये। यहां उन्होंने देखा, कि पुन्त गीज गवर्मेग्टकी अधिकांश आय पर खुष्टान-पादरी और याजकाण अधि-कार कर वैठे हैं। एक गोआमें उन्होंने देखा, कि अपर पुन्त गीज अधिवासीकी संख्यासे पादरी लोगोंकी संख्या दूनी है। इधर पुन्त गीज प्रभावकी रक्षाके लिये जितना खर्च नहीं होता था, उधर उतनाही अकर्मण्य याजकोंकी परितृप्तिके लिये ज्यादा खर्च होता था।

१६२३ ई०के जनवरी मासमें अङ्गरेजों और ओल-न्दाजोंने जहाजसे आ कर गोआको घेर लिया। इस समय गोआमें ऐसा जहाज नहीं था जो शत्रुकी गति रोक सकता। जो कुछ हो, पुर्च गीजोंके सौमाग्यक्रमसे शत्रु-गण आप ही लीट गये, नहीं तो गोआके भाग्यमें क्या होता, कह नहीं सकते।

कमशः अङ्गरेज, ओलन्दाज और फरासीगणने भारत-

तीय वाणिज्यमें प्रधानता छाम की। पुत्त गालराजने भवना खार्थ नए होते देख अवने प्रतिद्वन्द्वियोंके उच्छेदके लिपे हर उपायका अवलम्यन करनेके लिये आदेश दिया।

जिस नीवलसे पुर्तगीजों ने एक समय पशियामें प्रधानता लाभ की थी, पुर्तगीजों के शतुगण अभी उसी नीवलसे वलवान् हो उठे। राज्यकी आमदनी विलक्कल घट गई। यहां तक कि अनेक प्रधान वन्दरोंमें राजपुर्यगण रिश्वत ले कर विना शुक्क मालकी रफ्तनी करने लगे। धूर्त राजस-संप्राहकगण राजसरकारमें उचित रीतिसे राजस-वस्त्रका हिसाव नहीं देते थे। ये सव कर्मचारी पुनः पुरुपानुकमसे कार्य करने लगे थे। अतः राजाके इष्टानिष्टकी ओर ध्यान न दे कर सभी अपना मतलव निकालनेमें मस्त थे। विशेषतः जो यूरोपियनों-के विषद युद्ध करके प्राण गैवाते थे, पुर्वगीज-गवमेंएट विना देखे सुने उनके पुत्रों को वह पद प्रदान करती थी। यहां तक कि पुतादिके अभावमें भी उनकी विधवा-पत्नी पितका पद पाती थीं।

े अनेक पुरा^रगीज भारतीय कामिनियींका पाणिब्रहण करके भारतवासी हो गये थे। उनकी खदेश जानेकी उतनी इच्छा नहीं होती थी, खुतरां वे यहां धनसम्पत्ति बढ़ानेकी चेष्टा करते थे। विशेषतः भास्की-डि-गामाके कठोर आदेशानुसार कोई भी ध्यक्ति देशसे आते समय अपनी स्त्री साथ नहीं ला सकता था। इस प्रकार लामी अथवा प्रणयीके साथ खदेश त्याग कर आने पर वह स्त्री गुक्तर दण्डभीग करती थी। इससे पुत्र गाल-की और भी क्षति होने लगी। पुत्त गीजगण विवाह करके जी भारत और सन्निकटवत्तीं द्वीपादिमें वस गये थे. उससे पुत्त गाल क्रमशः जनशून्य हो गया था। अतः पूर्वाः देशको रह कर पुनः एक नया नियम लिपिवद्ध हुआं। पूर्च-गोजोंकी मतिगति पलटानेके लिये तथा भारतीय-रमणोकी प्रणयासकि पुर्तागीज हृदयसे स्थानान्तरित करनेके अभि-प्रायसे प्रतिषय पुत्त गालसे भारतादि नाना स्थानोंमें अनेकानेक अनाथा वालिका मेजी जाती थीं। इनके भरणपोषंण और रक्षणावेक्षणका भार पुर्व गीज-गवर्मेंग्ट-के ऊपर सींपा गया था । वे सव वृालिकाएं बड़ी होने पर पुरा गीजके साथ व्याही जाती थीं। विवाहके समय उन्हें पुत्त गीज-गवर्में एट्से यथेष्ट यौतुक मिलता था। कहीं कहीं यौतुकके वदलेमें उपयुक्त कमें विया जाता था। किन्तु वालिकाके वह कमें करनेमें अक्षय होने पर उनके पितगण पुतादि कमसे वह कार्य करते थे। इस प्रकार विचाहके यौतुक खरूप एक व्यक्ति एक बार कोरङ्गन्तू का शासनकर्त्ता तक भी हो गया था। अन्तमें विचाहकी आशासे कमें प्राथिकों संख्या इतनी वढ़ गई, कि पद-प्रदान और भी असुविधाजनक प्रतीत होने लगा। इस पर पुर्त्तगीज-गवर्में एट्ने उस कार्यकों पुरुषा जुक्रमिक न करके तीन वर्षके लिये निर्देश कर दिया। उक्त कारणसे शासन विश्यञ्जल और प्रसुर अर्थ अपव्यय हुआ था।

इस समय पुत्र गोज-गवमेंण्टके ओलन्दाजके विरुद्ध आक्रमणोपयोगी युद्ध-जहाज, सैन्य भथवा वैसा अर्थ नहीं था। जब किसी विशेष कार्यके लिये चंदा वसल होता था, तव उससे किसी न किसी व्यक्तिविशेषकी उदर पूर्ति होती थी अथवा वह सञ्चित रुपया अपव्यय हो जापा करता था । पुत्त गीज-याजक (clergy)-के मनीमत और अपरापर धर्मकर्म निर्वाहके लिये पहले सैकडे पीछे एक रुपया करके कर वसूल होता था, किन्तु १६२१ ई०में स्थिर हुआ, कि पुत्त गालके राजकार्यमें जो प्राण-विसर्ज न करेंगे, उनके स्त्री-पुत्रको ही वे रुपये दिये जांयगे। इसके वाद ओलन्दाजींकी गति रोकनेके लिये युद्ध-जहाज वनाने-में किसी किसी वन्दरसे सैकड़े पीछे २) रुपयेके हिसाब-से महसूल वसूल होने लगा। ऐसा करने पर भी पुर्च-गीज-गवर्में एटं अर्थसंस्थान करनेमें समर्थं नहीं हुई। कारण, खृष्टान-पाद्रियों और वैरागियों मेंसे अधिकांश इस अर्थसे अपना पेट भरते थे और प्रधान प्रधान राज-पुरुपगण तहवील तीड़ कर अपव्यय करने लग गये थे।

धर्मध्वजी पुर्तगोज वैरागियों के आतिशय्य पर विरक्त हो पुर्तगालराजने वहुतों की वृत्ति यंद कर दी, यहां तक कि उन्हों ने गिर्जा और मठ निर्माण विलक्कल निर्मेध कर दिया।

इसके पहले पुर्त्तगीज लोग वङ्गालमें कोठी खोल कर वाणिज्य-व्यवसाय चला रहे थे। वङ्गालके अनेक दस्यु-ने आ कर इन लोगोंका साथ दिया। दस्युगणके साथ पहले पुर्त्त गीजगण भी दस्युता करने निकलते थे, श्रीरे भीरे दोनोंके वीच गाढ़ी मिलता हो गई, किन्तु पुर्व गीज-राजप्रतिनिधिने पुर्त्त गीजोंको सतर्भ कर दिया था जिससे उन्होंने पूर्वदस्युतावृत्ति छोड़ कर पहले हुगली#में वाणिज्यकोठी और पीछे वङ्गाधिपको अनुमति छे वहां एक दुर्ग बनाया। गोआसे यहां एक दुर्गाध्यक्ष नियुक्त होते थे।

शाहजहान्ने १६२१ ई०में जब बङ्गाल पर आक्रमण किया था, उसंसमय माइकल-रड्रिगो हुगलीके शासन-कर्त्ता थे । शाहजहान्ने वर्द्ध मान फतह किया है, यह सुन कर हुगलीके पुर्त्तगीज लोग डर गये थे। माइकल रङ्खिगोने शाहजहांके शिविरमें जा कर राजसम्मानार्थं उनके सामने नजराना दाखिल किया। माइकलके पास उस समय अनेक यूरोपीय सेना और अनेक कामनादि युद्धसज्जा थी । इसीसे शाहजहान्ने उन्हें अपने दलमें लानेकी चेप्रा की । उन्होंने कहा था, कि यदि पुर्तगीज यूरोपीय सेना और कमान अस्त्र दे कर उनकी सहायता करेंगे, तो उन्हें यथेष्ट पुरक्तार मिलेगा। किन्तु पुत्त-गीज-शासनकर्त्ता उस प्रकृतके लोग नहीं थे, शाहजहान्का पक्ष छेनेसे उनके खार्यकी हानी हो सकतो है, यह समभ कर वे किसी प्रकारकी सहायता देनेमें राजी नहीं हुए। इस पर शाहजहान पुत्त गीजों पर वड़े विगड़े, पर इस समय वे कर ही क्या सकते थे, रिंडुगोके पास काफी सेना थी। अतः उन्होंने पुत्तं गोजोंके साथ विवाद नहीं करके देवप रहना ही अच्छा समभा।

शाहजहांके मुंहमें ताली भर कर पुत्त गीज लोग और भी दुद र्व हो उठे। उनके उत्पातसे निम्नवङ्गाल अस्थिर हो गया। भागीरथी हो कर जो सव जहाज वा नार्वे जाती थीं, प्रत्येकसे पुत्त गीज लोग महसूल वस्**ल क**रने लगे। इस समय लोगोंको छोटे छोटे लड़कोंके पकड़े जानेका भय था। पुर्त्तगीज लोग छोटे छोटे स्चौंको एकड़ विभिन्न देशोंमें ले जा कर वेचते थे। अलावा इसके उनमेंसे कुछ पूव-वङ्गालमें जा मगदोंके साथ मिल कर स्थल और जलमें वड़ा ही उत्पात करते थे। उनके उत्पात-से कितने शहर, कितने प्राम उत्सन्न हो गये तथा कितने विणक्षीका सर्वनाश हुआ, उसकी शुमार नहीं।

कासिम खाँने जो वङ्गालके सुबेदार थे, दिल्लीश्वर शाहजहान्को पुत्त गीजोंके व्यवहारकी खवर दी। सम्राट तो पहलेसे ही माइकल रिंडुगोकी अवाध्यता पर चिंडे थे, अव उन्हों ने 'प्रतिमापूजक फिरंगियों' को राज्यसे मार भगानेका हुकुम दिया।

१६३३ ई॰में पुत्त गोज लोग नाना स्थानी में अए-मानित और कृतपापका प्रतिफल भीग करने लगे। एक एक कर बहुतसे स्थान उनके हाथसे निकल गये। इसी साल दिल्लीश्वरके आदेशसे असंख्य मुगलसैन्यने जलाध और स्थलपथसे या कर चारों ओरसे हुगलीको पेर लिया । पुर्त्तगीजगण असीम साहससे अपने मानसम्प्रम और दुर्गरक्षामें प्रवृत्त हुए । २१वीं जूनसे हे कर २६वीं सितम्बर तक (३ मास ८ दिन) शतुके भीषण आक्रमण-से दुर्गरक्षा करते हुए वे अन्तमें आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए थे। मुगलोंके गोलोंसे अनेक पुत्तगीज उड़ गये। जो कुछ वच रहे, उन्होंने रक्षाका कोई उपाय न देख स्त्रीकत्याकी सम्प्रमरक्षाके लिये बाद्धद्यानेमें आग लगा दी जिससे मुहूत भरमें वहुसंख्यक नरनारी कालके अनन्तस्त्रीतमें विलीन हो गईं। इघर मुगलॅंने पुर्तगीजॉं-के प्रायः ३०० पीत नष्ट कर डाले। केवल दो जहाज श्रुक्त पंजिसे दच कर गीआमें यह दावण-संवाद देनेकी चले । उस समय अनेक पुत्त गीज स्त्री, पुरुष और बालक बन्दी हो कर आगरामें सम्राट्के समीप लाये गये थे। पुत्र गीज रमणियां मुसलमानी भन्तःपुरमें परिचारिका हो कर रहने लगीं। वालकोंको त्वक्च्छेद करके मुसलमान वनाया गया। धर्मध्वजियोंने बहु लाञ्छनाके बाद मुक्ति पाई ।

बुगर्लीके वाणिज्यकेन्द्रसे पुत्तं गीजोंको खासी भाम-दनी होती थी, अब वह उस प्रवान स्थानके हाथसे निकल जाने पर पुत्त गोज लोग हताश हो पह । उन्होंने अब कोई उपाय न देख विजयनगरके राजासे सन्धि कर ली। विजयनगरपतिकी सहायतासे ओलन्वाजीकी निकाल भगानेकी बेष्टा उसके साथ उद्दीप्त हो उठी। इघर उनके दूसरे प्रतिद्वन्द्वी फरासी लोग भारत-उपकूलमें जा धमके। इस समय मुगल लोग दाक्षिणात्यमें नामिणत्य

फैलानेकी जो चेष्टा कर रहे थे, उससे पुरागीज लोग

मुत्तीगीज लोग हुमळीकी 'गोलीन' कहते वे ।

और भी डर गये । वे जानते थे, कि दाक्षिणात्यमें मुगल-आधिपत्य हो जानेसे उन्हें भारतवर्षमें रहना मुक्किल हो जायगा।

इस समय गोआके आकविशपने पुत्त गालराजको खबर दी—"भारतसमुद्रमें पुत्तीजींके अनेक शतु हैं सही, पर पुत्त²गालराजकी प्रजा ही उनके प्रधान शबु-हैं।" उस समय जेसुइटगणके उत्पातसे केवल भारत-वासी ही नहीं ; बुर्चगीज गवर्मेण्ट तक भी विवत हो गई थी। पुर्त्त गालराज प्रतिवर्ष हजारों पुर्त्त गीज-योद्धा जहाजसे भेजते थे, किन्तु भारतमें पदार्पण करते ही वे युद्धवृत्ति छोड़ देते थे, कपर-वैराग्य प्रहणपूर्वक जेसु-इटोंके दलसे निकल कर अथोंपार्जनकी चेष्टा करते थे। हजारमें तीन सौ योदा भी पुत्त गीज-गवर्में एटकी सेवामें नियुक्त रहते नहीं देखे जाते थे। सुतरां ऐसे खार्थ लोलुप व्यक्ति ले कर पुंसी गोज-गवर्में एट कव तक अपनी प्रभुताको रक्षा कर सकती थी ! इस कारण पुर्रागालराज-ने बहु हुकुम निकाला, कि जो विदेशी राजकीय काम करना चाहते हैं, वे ही नियुक्त किये जांयगे और पुर्त[ु]-गीज-सेनाके समान उन्हें वेतन दिया जायगा।

पेदो-दा-सिल्भा ।

१६३५ ई॰में पेद्रो-दा-सिक्सा राजप्रतिनिधि हो कर आये! इनके समयमें पुर्त्तगाल-राज्यकी अवस्था शोच-नीय होती जा रही थी। सिंहलपति राजसिंहने पुर्त्त-गीजोंको परास्त किया। इस समय पुर्त्त गीज-गवर्में एट-को बड़ा ही अर्थ कप्ट उपस्थित हुआ था। राजप्रति-निधि रुपयेके लिये राजकीय सभी उद्ययन वेचने लगे।

१६३७ ई०की ५वीं अकटूबरको राजप्रतिनिधिने पुर्तागालराजको स्वय दी, कि अङ्गरेजोंके साथ शतुताकी कमशः वृद्धि हीती जा रही है। अंगरेज लोग वेड्कटाप्पानायक और किसी किसी राजाको पुर्त गोजों के विरुद्ध उत्तेजित कर रहे हैं। उन्हों ने वाविया नामक एक दस्युक्ते साथ मिल कर भारकलमें एक कोठी खोली है। जो कुछ हो पुर्त गालराज और इङ्गलैएडराजकी मध्यस्थतासे दोनों देशवासिबोंकी शतुता वहुत कुछ घट गई। अंगरेज लोग जिससे पुर्त्तगीजोंके साथ किसी प्रकार विष्ठेद न हो, ऐसे भाषमें वाणिज्य बलाने लगे।

१६३८ ई०के नवस्वरसे है कर १६३६ ई०के फरवरी मास तक ओलन्दाजोंने गोआमें घेरा डाला था। सिंहल-में १६३६ ई०की २४वीं जूनको पेद्रो-दा-सिल्माकी सृत्यु हुई। गोआके आर्कविशप फ्रान्सिस्को गवर्नर हुए। उनके समयमें मदुराके नायकके साथ पुर्त्तगाल-गवर्में एट-की सन्धि स्थापित हुई।

अक वर मासमें अएटोनियो-टेलिस-डि-मेनेजिसने गोआका राजप्रतिनिधित्व प्रहण किया। किन्तु उन्होंने राजकार्यमें अच्छी तरह हाय भी डालने नहीं पायां था, कि जोहन-दा-सिल्मा-तेलो-डि-मेनेजिस (Conde-de Aviera) पुरत गालसे राजप्रतिनिधि निर्वाचित हो कर भारतवर्ष आये। अन्होंने यहां आ कर देखा, कि सिहल पुत्त गीजोंके हाथसे करीव करीव निकल गया है, मलका-की अवस्था अति शोचनीय है. भारतीय अन्यान्य स्थान अब पुरत गीजोंके हाथसे जाना चाहता है, एक भी दुर्ग सुरक्षित नहीं है, राजकोषमें अर्थ नहीं है। इन सब कारणोंसे वे विशेष चिन्तित हो पड़े। इतने दिनों तक पुत्त गाल रूपेनराजके अधिकारमें था, अव फिर पुत्तें-गाल साधीन हो गया है। पुरत गालराजने चारों ओर शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे १६४१ और १६४२ ई०-में ओलन्दाज और अंगरेजोंसे सन्धि कर ली। अंगरेजने सन्धिको रक्षा तो की, पर भारतीय ओलन्दाजीने, जो सन्धिके विषयसे जानकार नहीं थे, भाटकल, तिन्क-मली, नेगाम्बो, गाली आदि स्थानीं पर चढ़ाई कर दी।

१६४४ ई॰में डम फिलिप मस्करेनहस राजप्रति-निधि हो कर आये। इस समय ओलन्दाजोंने गोआमें कुछ वाणिज्यका अधिकार पा लिया था। किन्तु पुर्त्त-गीज गवमें एटने अंगरेज और ओलन्दाजोंको दारचीनी खरीदनेसे मना कर दिया। कुछ दिन तक केवल दार-चीनीका व्यवसाय पुर्त्त गीजोंके पकाधिकारमें रहा।

१६४८ ई०में ओलन्दाजोंने सिन्ध तोड़ दी। इस समय तुतकुड़ीके नायकने पत्तन नामक स्थानसे ओल-न्दाजोंको मार भगाया, इस कारण ओलन्दाज सेनापितने आ कर तुतकुड़ी पर आक्रमण कर दिया और पुर्त्त गीजोंके सभी अख्यशस्त्र छोन लिये। इस समय पुर्रागीज वैरागी-गण विशेष लाञ्छित-हुए थे। क्रमशः चारों ओर पुर्रागीजोंके साथ ओलन्दाजोंका विवाद चलने लगा । विस्तार-के भयसे उन सव वातोंका यहां उल्लेख नहीं किया गया । ऐसे सुअवसरमें अरवोंने भी पुर्त्त गीजों पर पारस्य और अरव समुद्रमें चढ़ाई कर दी। मस्कट, हरमुज आदि नाना स्थानोंमें समरानल प्रज्वलित हुआ था।

पहले भारतके पश्चिम-उपकूलमें कोई भी जहाज
पुर्तगीज गवर्में एटसे पास लिये विना नहीं आ जा सकता
था, अभी (१६५१ ई०में) गोलकुएडा, वीजापुर, मङ्गलूर
आदिके अधिवासिगण विना पासके जहाज चलाने लगे।
१६५२ ई०में वेदनूरके सरदार शिवप्पा नायकने समस्त
कनाड़ा-प्रदेश पर अधिकार जमाया। इसके साथ
साथ पुर्तगीज लोग अपने अधिकृत अनेक स्थान लो
वैठे और अनेक पुर्तगीज योद्धाओंने प्राण विसर्जन किये।

इस समय पुर्तगीजोंमें भी अन्तर्विवाद चल रहा था। उच्च प्रकृति मस्करेन-हसका शासन स्वार्धप्रिय नीच प्रकृति- के अधिकांश पुर्तगीजोंको अच्छा नहीं लगा। १६५३ ई०के २२वीं अकटूबरको डम ब्राज-डि-काष्ट्रोने षड्यिन्तर्योंकी सहायतासे मस्करेनहसको पदच्युत करके शासनभार प्रहण किया। एक तो पहलेसे ही पुर्तगीज-अधिकारमें अशान्तिका राज्य चला आ रहा था। दूसरे डम ब्राजके शासनसे आभ्यन्तरिक गोलमाल और भी बढ़ने लगा। पुर्त्तगीजों के मध्य सभी जगह अशान्तिक लक्षण दिखाई देने लगे।

इस समय पुत्त गीज पादिरयों ने भी अच्छा मौका देख कर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। प्रसिद्ध भ्रमणकारी टावर्नियरने इस समय गोआमें आ कर जैसा अखप्रानोंका निश्रह देख पाया था, उनकी भ्रमणकाहिनी-से उन सब अमानुपिक अत्याचारका पाट करनेसे शरीर-के रो गटे खड़े हो जाते हैं। खृष्टान वनानेके लिये अथवा जो सब खृष्टाान-धर्मका अमान्य करते थे, ऐसे बहुसंख्यक लोगों को नाना प्रकारके दएड दिये जाते थे।

१६५8 ई०में आदिलगाहने वारह देशों और गोआ पर आक्रमण करके पुत्त गीजों को व्यतिव्यस्त कर डाला। आदिलशाह यदि चाहते, तो इस वार गोआसे सभी पुत्त गीजों को भगा सकते थे, पर वे इस और ध्यान न दे केवल पुत्तंगीजराज्यको लूट कर चल दिये। १६५५ ई०को २३वीं अगस्तको डम-रडरिगो-सर्वो-हाँ-सिल्टविरा (Conde-de-Sarzedvo) राजप्रतिनिधि हो कर आये, यहाँ आते ही उन्हों ने पहले डम-ब्राजको दल-वल समेत पदच्युत किया।

डम रहिरगोके शासनकालमें सिंहलद्वीपमें ओलु-न्दाजों और पुर्त गीजों के वीच महासमर छिड़ गया था। आखिर १६५६ ई०की १२वीं मईको पुर्त गीज लोग ओलन्दाजों से अच्छी तरह हार खा कर लीटे। यह अशुभ संवाद पहुंचनेके पहले ही डम-रहिरगो परलोक सिधार गये थे।

इधर ओलन्दाजोंने कलम्बीकी जीतसे उद्दीत हो मन्नार-के उपसागरवर्ती कुछ छोटे छोटे द्वीप, तुतकुड़ी, नाग-पत्तन आदि नाना वन्दरोंको अपने दुखलमें किया और वहांसे पुर्त्त गीजोंको मार भगाया।

१६६० ई०में गोआके आकीवशयकी मृत्यु हुई। उन-का पदाधिकारी कीन होगा १ यह ले कर खृष्टीय-याजकीं-के वीच मनमुदाव हो गई। धीरे धीरे इस विवादस्त्वसे दोनों दलमें युद्धका आयोजन होने लगा। आखिर दोनों दल गोला गोली ले कर विवादकी निष्पत्ति करनेमें अप-सर हुए। राजपुरुपोंने बड़ी मुश्किलसे शान्तिस्थापन किया था।

१६६१ ई०में पुर्त्तगीजोंको भगा कर और बहुसंख्यक नायरसेनाको पराजित कर ओलन्दाजोंने कोलम्ब पर अपनी ग़ोटी जमाई। दूसरे वर्ष कोरङ्गनूर और कीचिन भी ओलन्दाजोंके हाथ लगा। इस समय पुर्त्तगीजोंका प्रवल प्रताप कमशः नष्ट होता जा रहा था।

१६६३ ई०में अएटोनियो-डि-मेलो-ई-काष्ट्रो राजप्रित-निधि हुए। भारतमें आ कर उन्होंने पुत्त गीजोंके नए-गौरवके उद्धारके लिये प्राणपणसे चेष्टा की थी, पर बुक्ती हुई आग फिर नहीं सुलगी। ओल्लन्दाजोंने पुर्त-गीजोंके यत्तरक्षित कन्ननूर-दुर्गको भो हथिया लिया।

१६६१ ई०में इङ्गलैएडराज २य चार्ल्सके साथ पुर्त गालराजसहोदरा इनफएटाका विवाह हुआ । इस समय पुर्त्तगालराजने मगिनीपतिको वम्बई द्वीप और वम्बई वन्दर यौतुक खक्रप प्रदान किये । तद्युसार इङ्गलैएडपतिने वम्बई द्वीपमें सर-अब्राहम सिपमानको भेज दिया, किन्दु

भारतके पूर्वगीजराजप्रतिनिधिन उक्त स्थान सहजमें अङ्ग-रेजोंको देना नहीं चाहा । अनेक लिखा पढ़ीके वाद हताशहंदयसे १६६५ ई०की १८वीं फरवरीको पुर्त-गीज-प्रतिनिधि अङ्गरेजोंको वम्बई द्वीप छोड़ देनेके लिये वाध्य हुए। वम्बई छोड़ देनेके समय यह वात ठहरी, कि 'अङ्गरेज पुत्त गीजोंके साथ मिलका-सा व्यवहार करेंगे, यहांके किसी भी पुत्रीगीजको कप्ट नहीं देंगे, परस्पर-की विषद आपद पर एक दूसरेकी सहायता करेंगे।' थोड़े ही दिनोंके वाद अङ्गरेज लोग यहांके पुर्त्तगीज वणिकोंसे महस्रल होने लगे। इस पर पुर्त गीज-गवर्मेंस्टने भी अङ्गरेजींसे महसूल लेना नहीं छोड़ा। अलावा इस-के बर्म्याईके निकटवर्त्ती अनेक स्थान जो अङ्गरेजराजको यौतुकमें नही मिले थे, अङ्गरेज लोग उन्हें भी बलपूर्वक अपनाने छगे। इत्यादि नाना कारणींसे अङ्गरेजींके साथ पुर्त गीजो का विवाद उपस्थित हुआ। इस समय अङ्गरेज लोग पुत्त गीजोंको नष्ट करनेके अभिप्रायसे गुप्त-भावमें मस्कटके अरवों को गोला और बाहद देने लगे। वहुत-सी अङ्गरेजी सेना उनके साथ मिल कर पुर्रागीजों से लड़ने लगी।

भारतके पश्चिम-उपकूलमें जिस समय उक्त गोल-माल चल रहा था, भारतके पूर्वंउपकूलमें भी उस समय पुत्त गीजींके साथ मुगलो का संघर्ष उपस्थित हुआ था। गोआ, कोचिन, मलका आदि नाना स्थानोंके जितने अपराधी, जुआचीर तथा जितने अधम पुत्त गीज रसाङ्ग (आराकन) उपकुलमें आ कर वस गये थे, वे धर्मद्रोही. वहुविवाहकारी, नरघाती आदि भीषण प्रकृतिके लोग समम्बे जाते थे। आराकनराजने मुगलो के हाथसे सीमान्तप्रदेशकी रक्षा करनेके लिये उन सव वदमाशो को नियुक्त किया था और सुखखच्छन्दके लिये उन्हें काफी जमीन भी दी थी वे लोग जल और स्थलमें दस्यु-वृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करते थे। कभी कभी बङ्गाल-में घुस कर वे नगर और गांवको लूटते तथा वहांके अधिवासियों को कैद कर लाते थे। उनके अत्याचारसे पूर्ववङ्ग और निम्नवङ्ग तवाह हो गया था। इनके साथ भाराकनी वा मग छोग भी आ कर छूट पाट करते थे। इसी-कारण निम्नबङ्गके झंनेक स्थान मगी के उत्पातसे जनशून्य हो गये हैं, और मग-कर्तृक जनशून्य कह कर आज भी प्रसिद्ध हैं। मगराज ही उन सब दुवृँत पुत्त -गीजो के आश्रयदाता थे, इस कारण मुगलके स्वेदार सायेस्ता खाँने मगराजको दमन करनेका आयोजन किया। किन्तु वे जानते थे, कि मगराज़का दमन करनेमें पुर्त-गीजोंकी सहायता आवश्यक है। इस कारण उन्होंने चदृग्रामवासी पुर्त गीज दस्यु लोगों को कहला भेज़ा, कि स्वेदार शीव ही चट्टग्राम पर चढ़ाई करनेको हैं, अभी वे उन्हें अपने कार्यमें नियुक्त करना चाहते हैं। जो उनका साथ देंगे, उनके रहनेका वे बङ्गालमें अच्छा प्रवन्ध कर देंगे ; किन्तु जो उन्हें सहायता नहीं देंगे, उन्हें विशेष कप्ट भुगतना पड़ेगा। पुत्त गीजोंने भी समना, नि प्रवल मुग्ल-सेनाको वे कव तक सामना कर सकेंगे, अभी स्वेदारको सहायता देना ही उनके हकमें अच्छा होगा। अतः पुत्त गीजींने आ कर सायेस्ता खाँका साथ दिया। उनकी सहायतासे मुगल-सेनापति आराकनियोंको परास्त कर शणद्वीप पर अधिकार कर वैठे। मग छोगं नितान्त भीत हो चट्टप्रामको भाग गये । सायेस्ता खाँने पुर्त्तगीजों को रहनेके लिये ढाकाके निकटवर्त्ती स्थान दिये। वे सब स्थान अभी 'फिरङ्गी-वाज़ार' नामसे मशहूर हैं।

शिवाजीका जब सतारा चमका, उस समय मुगल लोग जैसा विचलित हो गये थे, अभी पुत्त गीज भी वैसा ही डर गये। १६७० ई०को दमन नगरमें सबसे पहले मरहठों और पुत्त गीजोंके. वीच नीयुद्ध छिड़ा। मरहठोंने कितने पुर्त्त गीज जहाजोंको दखल कर लिया। इसका मितशोध लेनेके लिये पुत्त गीज लोग भी शिवाजोंके १२ जहाज लूट कर बसाई नामक स्थानमें भाग गये। इस पर शिवाजीने पुत्त गीजोंको भारतवर्षसे मार भगानेका दृढ़ सङ्कर्य कर लिया था।

१६७२ ई॰में मुगलोंसे कोङ्कण ज़ीते जानेके वाद शिवाजीने पुर्त्त गीजोंसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेके लिये सेना मेजी। पुर्त्त गीज लोग कर देनेके लिये वाध्य हुए।

पुत्त गीजः गवर्मेण्टकी अवस्था दिनी दिन शोचनीय होती जा रही थी, पुर्त्तगीज लोग, किस प्रकार लुप्त गीरव-का उद्धार कर सकेंगे, इसके लिये भारी: चिन्तामें थे। किन्तु राजकोषमें उतना धन नहीं था और न उतना छोक-वंछ हो था। साथ साथ कितने विलासी अर्थपिशाच पुत्त गीज गवमें एटको घेरे हुए थे, ऐसी अवस्थामें क्या हो सकता था! किन्तु जिस प्रकार युक्ता हुआ दीप एक बार रोशनी दे कर फिर सदाके लिये बुक जाता है, पुर्नै-गालके भाग्यमें भी उसी प्रकारका दिन आया। १६७८ई०-की १२वीं दिसम्बरको कनाड़ाके राजाके साथ पुर्तगीजों-की सन्धि स्थापित हुई। अब राजाके अर्थानुकुल्यसे पुर्त-गीजोंने मङ्गलूरमें एक कोठी खोली और मिराज, चन्दोल, भारकल तथा कल्याणमें काथलिक गिर्जा बनानेका अधि-कार पाया। अनन्तर १६८२ ई०में पुत्त गीजो ने द्वीप पर अपना आधिपत्य फैलाया । इसके वाद हो शिवाजीके पुत शम्भुजीने चेउल पर आक्रमण किया। महाराण्ट्रींका अत्याचार प्रसिद्ध होने पर भी इस समय पुत गीजोंने सैकड़ों ब्रह्महत्या और मन्दिर ध्वंस करके जैसा पैशाचिक काएड किया था, सभ्यजातिक इतिहासमें उसकी उपमा नहीं । चेउल-आक्रमणसे सुविधा न देख शम्भुजीने वसाई और दमनके मध्यवर्ती सभी स्थानी की आक्रमण और ध्वंस कर डाले। इस समय पुर्श्वगीज-राजप्रतिनिधि-ने सन्धिका प्रस्ताव किया, पर शम्भुजीने पांच करोड़ पगोडा मांगे ।

१७१२ ई०में कनाड़ाके राजाने सन्धि तोड़ दी। इस पर भास्को फर्णान्दिजने जा कर वाशिलोर, कल्याणपुर, मञ्जूलूर, कोमता, गोकर्ण और मिराज पर धावा बोल दिया था।

१७१७ई०में ५०० महाराष्ट्र अध्वारोही शालसेटी जा कर पुत्त गीजोंका यथासर्वस लूट लाये। इसके दूसरे वर्ष दुस्युपति अ'प्रियाके साथ अश्वद्वीपके निकट विवाद खड़ा हुआ। इस समय आसिरगढ़ और रामनगरके राजा दमन पर चढ़ाई करके अनेक गो और कृषकोंको कैंद कर ले गये।

पुत्त गीज-मरहठोंका विवाद कमशः गुरुतर हो उठा। कहलके सरवेशाईने पुत्त गीजोंके बहुतसे वाणिज्यपोत लूटे और अपने कब्जेमें किये। पर्डाका दुर्ग भो उनके हाथ लगा। अन्तमें पर्डाके राजाने पुत्त गीजोंसे मिल कर हुगैका उदार किया।

१७२६ई०में पेशवाने कर्णाटक पर छापा मारा । इनके साथ पुत्त गीजोंसे कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां भी हुईं।

१७३० ई०में मरहठा-सेनाने वसांई पर अधिकार किया । वसांई-युद्धमें वहुसंख्यक पुत्तं गीज निहत और वन्दी हुए थे। इसके वाद ही महाराष्ट्र-सेनापितने शालसेटी पर चढ़ाई कर दी। किन्तु इस बार अंगरेज और पुत्तंगीज मिल कर लड़ते थे, इस कारण महाराष्ट्रों- का कुछ वश न चला और वे हार खा कर भागे।

१७३१ ई०को ३री जुलाईको वसाई नगरमें एक सन्धिपत लिखा गया। इस सन्धिके अनुसार महाराष्ट्रपतिने पुर्त गीजों के जो स्थान दखल किये थे, उन्हें वे छोड़ देनेको वाध्य हुए। किन्तु सन्धिमें जो सब गर्तें लिखी थीं, उनके अनुसार एक भी कार्य नहीं हुंआ। २री अक्तूबरको पुर्त गीजोंने पनियाला प्राममें महाराष्ट्रीं को परास्त किया। १७३२ ई०की १७वीं जनवरीको दोनों पक्षके प्रतिनिधि सन्धिका प्रस्ताव ले कर वर्म्बई नगर पहुंचे।

१७३४ ई०, ८ मईको पुर्तगोज-सेनापित डम लुइज नोटेलहो दर्युनायक अ'ग्रियाको गित रोकनेके लिये वहुतसे
युद्ध-जहाजके साथ वसाँई नगर आये। इसो वीचमें
शम्भुजी-अ'ग्रिया चेउल-दुर्ग पर अधिकार कर वैठे।
पुर्त्त गीज-सेनापितने कोलावाके शासनकर्ताकी सलाहसे
शम्भोजी पर आक्रमण कर दिया। किन्तु शम्भोजीके
पराक्रमसे पुर्त्त गीज-सेनापितको रणक्षेतमें पीठ दिखानी
पड़ी। अन्तमें वम्बईके अङ्गरेज-गवर्नरने अ'ग्रिया और
पुर्त्त गीजका विवाद निवटा दिया।

कोलावाके शासनकत्तांने पुर्तागीओं को आशा दी थी, कि यदि वे अंग्रिया' पर चहाई कर दें, तो उन्हें वे कुछ स्थान देंगे। किन्तु कोलावाके शासनकत्तांने अपनी वात पूरों न को। इस पर पुर्तागीओंने १७३७ ई०में शस्मों अंग्रियाके साथ मिल कर उनके भाई मन्नाजीके विकद्ध कोलावा पर आक्रमण कर दिया। पेशवांने यह संवाद पा कर मन्नाजीकी सहायतामें कुछ सेना भेजी और पुर्तागीओं को परास्त किया तथा मन्नाजीको आश्रव दिया। इसी साल महाराष्ट्रोंने शालसेटो और

टाना-दुग पर अधिकार कर लिया था। इस संवादसे गोआवासी पुर्रागीजगण उन्मत्तप्राय हो गये थे। उन्हों ने उसी समय वहुत-सी सेना मेज कर बसांई नगरमें महा-राष्ट्रों पर हमला कर दिया। यहां महाराष्ट्रगण पुर्रा-गीजों की गति तो रोक न सके, पर उसी समय उत्साह-पूर्वक उन्हों ने शालसेटी, मनोरा, सेवाला, सवाज और कई एक पुर्रागीज-दुर्ग अधिकार कर लिये।

इसके वाद पेशवाने वसाँई दखल करनेके लिये प्रभूत सेना मेजी। इस समय पुर्त्तगीज लोगोंने महिम, लिपुर, असारिम, काल्मी, सरिदान, दचु, वन्दर आदि स्थानोंके दुर्ग छोड़ दिये, केवल वसाँई, दमन, चेउल और दीउ-दुर्गकी रक्षामें जी-जानसे लग गये।

१७३८ ई०के नवस्यर मासमें चिमनाजीने वसाँई पर इसल जमाया। उनके अधीन शङ्करजीने कतरावार, अम्बरगांव, नागल, दन्तु और अन्तमें महिम पर अधिकार किया। पुर्त्तगीज लोग अवनत मस्तकसे महाराष्ट्रोंके हाथ महिमदुर्ग अर्पण कर स्त्री-पुतके साथ वसाँईनगर चले आये।

महिम-अधिकारके बाद ही महाराष्ट्र-सेनापितने कालमी, सरिदान, तिपुर, असारिम आदि पुर्तागीज-दुर्गोंको दखल किया। इसके वाद २००० अध्वारोही और ६००० महाराष्ट्र-सेनाने आ कर मर्मागीआको घेर लिया। गोआबासीके मानसम्प्रमकी रक्षाके लिये पुर्तागीज-राजयितिधिने सिन्य कर ली। १७३६ ई०की २री मईको सिन्ध स्थापित हुई। शर्व यह दहरी, कि शाल-सेटी और वारह देशोंका जो कुछ राजस्व वस्ल होगा, उसके सैकड़े पीछे ४० भाग वाजीराव पावेंगे। पुर्तागीज-गवमेंएट बाजीरावको ७ लाल चपये देनेको वाध्य हुए। इमनप्रदेश और उसके दुर्गोंके वदलेमें वाजीरावको वसाई मिला।

इसके वाद दस्युपित अंग्रियाके उत्पातसे पुर्त्तगीज लोग तंग तंग आ गये थे। अभी पुर्त्तगीज-गवर्मेंग्टके पास उतना धन नहीं, कि उसका सामना करती। अतः पुर्त्तगीज-गवर्नर वाजीरावको चेउल जिला दे कर पुनः सन्धि-स्त्रमें आवद हुए। अभी केवल गोआ, दमन, दीउ यही तीन स्थान पुर्त्तगीजोंके अधिकारमें रह गये। आज कल भी इन्हीं तीन स्थानों पर पुर्त्तगीजोंका आधि-पत्य चल रहा है और पुर्त्तगालसे गवर्नर-जेनरल आ कर इन तीन स्थानोंका आज भी शासन करते हैं।

गोभा और पुर्रागह देखो ।

इस समयसे परवर्ती जितने पुर्त्तगीज-शासनकर्ता इप, उनके नाम और शासनकाळ इस प्रकार हैं—

७८। उम पिद्रो मस्करेनहस (Viceroy) १७३२-४१। ७६। उम जुईज डि मेनेजिस (Viceroy) १७४१-४२। ८०। उम फ्रान्सिस्को डि-भास्कोनसेला, उम जुईज केटानो डि अलमिडा (Covernor) १७४२-४३।

८१। डम लीरेन्सो-डि-नोपोन्हा, डम लुईज केटानो-डि-अलमिडा (Governor) १७४३-४४।

८२। इम पिद्रो मिगुपल डि भलमिडा-इ-पुर्त्तगाल (Viceroy) १७४३-५०।

८३। फ्रान्सिस्को-डि_{न्}ञासिस् (Viceroy) १७५०-५४। ८४। डम छुईज मस्केनहस (Viceroy) १७५४-५६।

८५। उम अण्डोनियो ताभिरा दा-निमा-व्रम-दा सिल्मिरा, जोहन-डि मेस्किटोमटोसं-टिकसिरा, फिल्फि-डि-भल्लदेरिस सौटो मेयर (ommissionor) १७५६।

८६। मानुपल-दि-सालदान्हा-दि-आलपुकाके (Victory) १७५६-६५।

८७। इम अल्टोनियो ताभिरा-ना-निभा व्रम-ना-सिल्भिरा, जोइन बापिष्टा भाज पेरिरा, इम जोइनजोसे डि-मेलो (Commissionor) १७६५-६८।

८८। डम जोहन् जोसे-डि-मेलो (Governor)

१७६८-७४। ८६। फिलीप-वि-मह्रदारिस सौद्योमेयर (Governor)

१७९४। ६०। डम जोसे पिद्रो दा कमार (Governor and Captain-General) १७९४-७६।

६१। फ्रोडिंग्को गिलहारमी-दि-सुजा (Governor and Captain General) १७७६-८६।

ध्र । फ्रान्सिस्को-दा-कान्हा-ई-मेनेजिस (Governor and Captain General)

६३। फ्रान्सिको अण्टोनियो-बा-सिगा केब्रल Governor and Captain-General) १७६४-१८०७।

६४ वर्णार्डी जोसे-डि-छोरेना (Viceroy and Captain-General) े १८०७-१६। डम ड्यूगो-डि-सुजा (Viceroy and Captain-General) १८१६-१८२१। ६६ । मानुपल गडिन्हो दा मिरा, जोआकिम् मानु-पल कोरिया दा-सिल्भा-ई-गामा, मानुपल जोसे गोमिस् लौरिरो, गोनशालो-डि-मगलहे दिकसिरा मानुपल दुभार्ते लियाव (Commissionor) १८२१-२२। ६७। डम मानुपल-दा-कमरा (Captain-General) १८२२-१८२४। डम मानुपल-दा-कमरा (Viceroy and Captain-General) १८२४-२५। ६८। डम-मानुपल-दि एस गल्डिनो, कारिडडो जोसे मौराव गार्सेजपाथा, अल्टोनियो रिविरो-डि-कार्भाव्हा (Commis-ionor) १८२५-२७। ६६। इम मानुपल-डि पुत्तंगाल-ई-काश्नी (Governor) १८२७-३०। डम मानुपल-डि-पुर्त्तगाल-ई-काष्ट्रो (Viceroy) १८३०-३५। वर्णांडो पेरिज-दा सिल्भा (Prefect) 12341 इसके वाद (१८३५से १८३७ ई०के मध्य) वहुत प्रादेशिक सभाप' (Provincial Committee) संग-ठित हुई । १०१। सिमाय इनफाण्टे-डि-लासार्ड (Governor-General) १८३७-३८ । १०२। इमं अएटोनियो फेलिसियानो-डि-माएटो-अण्टोनियो-भिएरा-दा-फन्सेका, जोसे रिटा, जोसे कान्सिको फ्रियर-डि-छिमा, डिमङ्गो जोसे मरियानो लुईज (Council of the Government) १८३८-३६। १०३। जोसे अण्टोनियो भिएरा-दा-फन्-सेका (Interim Governor-General) १०४। मानुपलजोसे मेरिडस (Governor-Gene-१८३६-४०। ral) **१९५। जोसे अल्टोनियो भिएरा-दा-फनसेका, जोसे** फान्सियो फियर-डि-लिमा, अख्टोनियो जोहन डि-आधा-

इदें, डिमिङ्गो जोसे मरियानो छुईज, जोसे दा-कोष्टा काम्पेस केटानो-डि-सुजा-भास्कोनसेलो (Council of the Government) 1 082} १**०६। जोसे जोश्राकिम् लोपेज डि-लिमा** (Governor-General) 158-0821 १०७। अएटोनियो रमल्हो डिसा, अएटोनियो जोसे-डि-मेलो सौटो मेयर तेलिज, अएटोनियो-जोहन-डि-अथा-इदे, जोसे दा-कोष्टा काम्पोस, केटानो-डि-सुजा-ई-भास्कोन्सेलो (Council of the Government) 9,282 1 १०८ । फ्रान्सिस्को जोमिवर-दा-सिलमा-पेरिरा (Governor-General) 8585-831 १०६ । जीखाकिम्-मौराव गार्सेज पल्हा (Gove nor-General) १८४३-४४ I ११०। जोसे फेरिरा पेष्टानो (Governor-General) १८४४-५१ | १११। जोसे जोआकिम् जानुवरियो लापा (Governor-General) १८५१-५५। ११२ । डम जोआकिम्-डि-सएटारिटा बोटेलही, लुईज दा-कोष्टा कम्पोस, फ्रान्सिस्को जेभियर पेरिज वर्णाडों हेकटर दा-सिल्भिरा-ई-लोरेना, भिकृर एनाएा-सियो मुराव गार्सेजा पलहा (Conneil of the Goverment) १८५५ । ११३। अएटोनियो सिजर-डि-भास्कोन्सेलो कोरिया (Governor-General) १८५५-६४। ११४। जीसे फेरिरा पेष्टानी (Governor-General) १८६४ ७० । ११५। जानुवरियो कोरिया डि-अलमिडा (Gover-१८७०-७१ 1 nor-General) जोआिकम् जोसे-डि माकेडो-ईं कोद्रो ११६ । (Governor-General) १८७१-७५1 ११७। जोहन ताबारिज-हि-अलमिडा (Governor-१८७५-७७ | General) ११८। इम आयास-बि-अरुपलस-ई-भास्कोन्सेली, जोइन केटानो-दा-सिलमा काम्पोस, फ्रान्सिको जेभियर सोवारिस-दा-मिगा, एडवडों अगष्टो पिख्टो बालसेमाव

(Council of the Government) १८७७। ११६। अएटोनियो सार्जियो-डि-सुजा (Governor-General) १८७७-७८।

१२०। डम अयासँ-डि-अहप्छास ई-आंस्कोन्सेलो, जोहन केटानो सिलभा कम्पोस, फ्रान्सिस्को जैभियर सोवारिस दा-भिगा-अल्टोनियो सर्जियो डि-सुजा, पीछे पडुवाडों अगन्टो पिएट-वलसेमाव (Council of the Government)

१२१। केटानी अलेकसन्दर-डि-अलमिडा प-आल-दुकार्क (Governer-General) १८७८-८१।

१२२ । काल्स यूजिम्रियो कोरिया-दा-सिल्भा (Governor-General) १८८१-८५।

१२३। फ्रान्सिस्को जोशाकिम् फेरिरा-डि-अमरल (Governor-General) १८८५-८६।

१२४ । अगष्टो सिजर कार्डासो डि-कार्माव्हो (Governor-General) १८८६-८६।

१२५ । भास्को गीडिस-डि-कार्माव्हो-ई-मेनेजिस (Governor-General) १८८६-६१।

१२६। फ्रान्सिस्को मरिया-दा-कान्हा (Governor-General) १८६१-६२।

१२७ । फ्रान्सिस्को टिकसिरा-दा-सिल्मा (Governor-General) १८६२-६३।

१२८। राफेल जाकोम लोपेज-डि-अन्द्रादे (Governor-General) १८६३।

बत्तमान (१६२६ ई०) गवर्नर-जनरलका नाम है अलवार्टी-डि-काष्ट्री मीरिस (Capitas tenente Medica)। ये गोआके सदर पंजिममें रहते हैं।

पुत्तं गीजराज्य ध्वंस होनेके और भी अनेक कारण थे, यथा—विलासिता अमितव्ययिता, परश्रीकातरता और व्यसनासिक । जिस समय भारतीय पुत्तं गीजोंको चारों ओरसे विपद्दने घेर लिया था, उस समय पुत्तं गीज राजपुरुषगण नशेमें चूर और वेश्या ले कर उन्मत्त थे। उस समयके किसी किसी पेतिहासिकने लिखा है, 'पुत्तं गीज सभामें यथेच्छाचारिता और विलासिताका प्रवल कोत वहता था। यहां भी प्रत्येक राजपुत्त्य दो चार देशीय वाईजी (नत्तंकी)को ले कर आमोद प्रमोदमें मस्त रहते थे, राज्यकी और भूल कर ध्यान

नहीं देते थे। जब विना युद्धके काम नहीं चल सकता था, तब वे लम्पट राजपुरुषणण सस्तैन्य रणक्षेत्रमें उपस्थित हो कर अधस्तन कर्मचारियोंको युद्धमें नियुक्त करते थे और आप अपने अपने शिविरमें मद्य और वेश्या ले कर आनन्द-सागरमें गोते लगाते थे। इस प्रकार युद्धका परिणाम जैसा होना चाहिये था, वैसा होता था।' गोवा बन्दां ५१६ पृष्ठमें इवका विवरण देखा। पुर्य (सं० ति०) पुरमध्य वा दुर्गमें स्थित। पुर्य (सं० ति०) पुरमध्य वा दुर्गमें स्थित। पुर्य (सं० क्री०) देहके प्रधान आठ अंश। पुर्याद्वि वृह्बोलतन्तोक्त पीठस्थानमेद। पुर्या (सं० पु०) पोलित उन्निलतो भवतीति प्रकार ।

पुल (सं॰ पु॰) पोलति उच्छितो भवतीति पुल-क।१ पुलक, रोमाञ्च। २ शिवानुचर भेद, शिवका एक अनु-चर। (ति॰)३ विपुल, वहुतसा।

पुल (फा॰ पु॰) सेतु, किसी जलाशय, नदी, गङ्ढें या खाईके आर पार जानेका रास्ता जो नाव पाट कर या खभ्मों पर पटरियां आदि विछा कर वनाया जाय।

पुलक (सं॰ पु॰) पुल-खार्थे कन्।१ रोमाञ्च, प्रेम, हर्ष आदिके उद्घेगसे रोमकूपोंका प्रकुट्ल होना । पर्याय— रोमोज्जव, त्वक्कस्प, त्वगंकुर । २ तुच्छ धान्य, एक प्रकारका मोटा अन्त । ३ प्रस्तरमणिभेद, एक प्रकारका रज्ञ (Garnet)।

गवड्युराणमें लिखा है— भुजङ्गनणने दानवपतिकी उपयुक्त पूजा करके उनके नखोंको पुण्यजनक पर्वत, नदी और अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानों पर स्थापित किया था। इसी कारण उन सब स्थानोंमें पुलकमणि उत्पन्न होती है। दशाणें, बोगदाद, मेकल और कालगाद्रि आदि स्थानोंमें छण्ण, मधुपिङ्गल, मृणालकप, गन्धर्यलताका वर्ण, अग्निवण और कदली वर्णकी सर्वापेक्षा उत्कृष्ट पुलकमणि पाई जाती है। शङ्क, पद्म, भृङ्ग और अर्जवर्णाभ विचिताङ्ग पुलक मङ्गलजनक और उत्तम है। यह पुलक वृद्धिप्रद माना गया है। काक, कुक्कुर, गर्दभ, श्र्याल, वृक्त और ग्रथ्नके रक्तमांसलिस मुखके जैसा विकटकप पुलक सृत्युकारक है। इसलिये जानी व्यक्तिको चाहिये, कि उसका विल-कुल परित्याग कर दें, भूल कर कभी भी पास न रखें। इस पुलकमणिके नामके विवयमें मतभेद देवा जाता है।

कोई इसे गोरी, कोई पिटोनिया, सोदएडा आदि कहते हैं। इसका अङ्गरेजी नाम Garnet है। यह मणि एक प्रकारका वानेदार पत्थर है । नदीके मध्य यह मणि पत्थरों रोड़ों र्अथवा वालिमय नदीगभैमें पाई जाती है। कठिनतामें यह ६'५से ७'५ और इसका आपेक्षिक गुरुत्व ३'५से ४'३ है। इस मणि द्वारा रूफटिक काटा जा सकता है। फिर इन्द्रनील वा माणिकसे भी इसे काट सकते हैं। कांचका तरह इसमें चमकदमक है। घिसनेसे घन-ताड़ित उत्पन्न होता हैं और चुंबकके निकट रखनेसे गति होती है। साइलेक्स (Silex), आलुमिना (Alumina) और अर्प परिमाणमें अक्साइड आव आयरन (Oxide of iron) इस मणिका उपादान है। वर्णमें अथवा आयतनमें इस मणिके जितने भेद हैं, उतने भेद और किसी पत्थरके नहीं देखे जाते । श्वेत, पीत, हरित, रक्त, कृष्ण और पांशु आदि नाना वर्णीका पुलक सद जगह मिलता है। यूरोपोय जहूरियोंने पुलक मणिको प्रधानतः निम्न-लिखित श्रेणियोंमें विभक्त किया है, १म Almandine वा मूल्यवान् पुलक, २ सिरीय वा प्राच्यजगत्का पुलक, ३ Pyrope वा बोहिमीय पुलक, 8 Fssonite वा बदामी पुलका नारवे, स्वेडन, खीजलैंग्ड, स्पेन, श्रीणलैग्ड, युनाइटे इस्टेट, मेक्सिको, ब्राजिल, अध्ने लिया आदि स्थानोंमें प्रथम श्रेणीका पुलक पाया जाता है। यह मणि देखनेमें लालवर्ण लिये नीला होता है। भारतके चेर-देशमें यह मणि यथेष्ट मिलती थी, इस कारण यह 'सिरीय' नामसे पाञ्चात्य जगत्में प्रसिद्ध हैं। ब्रह्म और सिंहलमें भी यह मणि मिलती हैं। ३य श्रेणी उज्ज्वल अथच घोर सिन्दूर वर्णकी होती है, इसीसे यूरोपमें इसे सिदुरिया पुलक भी (Vermilion Garnet) कहते हैं। वोहिमिया और जर्मनीके नाना स्थानीमें यह मणि पाई जाती है। 8र्थं श्रेणी रक्तपीतमिश्रित अर्घात् बदामी रंगकी होती है और सिहलमें प्रधानतः मिलती हैं।

उक्त चार श्रेणीके अलावा साइवेरियासे एक आर प्रकारकी मणि आती है जिसका रंग विलक्षल सफेद सब्ज है। प्तद्भित्र खनिजतत्त्वविदोंने और भी ६।७ प्रकारके पुलक निकाले हैं। किन्तु उनका जहरियोंके निकट उतना आदर नहीं है। मारतवासी और रोमकगण वहुत पहलेसे हो इस मणिके विषयसे अवगत थे। थिउफे एस और फ़िनिने Carbunculus नामसे इस मणिका उल्लेख किया है। छिनिके मतसे यह मणि स्त्री और पुरुष यही दो श्रेणियों-में विभक्त है। पुरुषश्रेणी पश्चराग और स्त्रीश्रेणी पुलक समभी जाती है।

एक समय मृत्यवान् होनेके कारण इस पुलकका यथेष्ट आदर था। यह पत्थर नरम होता है, इसलिये इस पर अच्छो नकाशी काढ़ी जाती है। यूरोपके प्रधान प्रधान राजवंश-घरोंमें इसी प्रकारके पुलक पर सके दिस प्लेटी आविकी मूर्ति सोदित है। अभी इस पत्थरकी यथेष्ट आमदनी हो जानेके कारण पहलेके जैसा इसका नहीं है। अभी जिम्हाकार बृहत् पुलकमणि २००) कामें विकती है। अनेक व्यवसायी इस पुलककी पीठ पर काला रंग लगा कर और पश्चादुभागको बंद कर इसे पश्चाग वतलाकर लोगों को उगते हैं। मध्ययुगमें भी यूरोपमें पुलकका यथेष्ट आदर था। पश्चरागकी तरह यह भी श्रारीक पश्चमें विशेष उपकारी समका जाता था।

अभी सभ्यजगत्में जितने पुलक हैं उनमेंसे माकी दि-दि (Marqui sode Dree) के तीशाखानेके दी पुलक सक्से बड़े हैं। इनमें से एक अठकोनी है जो आ इश्च लक्ष्या और ६३ इश्च चौड़ा है। इसका मूल्य प्रायः ३५५० फ़ाङ्क होगा। दूसरा पुलक १०६ इश्च लग्या और ६६ इश्च चौड़ा है। इसका मूल्य हजार फ़ाड़ुसे कम नहीं होगा।

8 देहवहिभैव कीटमेद, शरीरमें पड़नेवाला एक कीड़ा। ५ मणिदीषभेद, रत्नोंका एक दोप। ६ गजाब-पिएड, हाथीका रातिव। ७ हरिताल, हरताल। ८ गलके, एक प्रकारका मचपाल। ६ सर्वपभेद, एक प्रकारकी राई। १० गन्धवभेद, एक गन्धवंका नाम। ११ सर्वप, सरसों। १२ कंकुछ, एक प्रकारका गेक्क। १३ कन्दविशेष, एक प्रकारका कन्द। १४ लोमहर्पण, पुलकाविल।

पुलकता (हिं० क्रि॰) पुलकित होना, धेम, हर्प आदिसे प्रकुल होना, गद्दगद्द होना।

पुलकाई (हि॰ स्त्री॰) पुलकित होनेका माव, गहगह होना। पुलकाङ्ग (सं० ति०) १ रोमाञ्च सङ्गविशिष्ट, पुलकित अङ्गवाला । (पु०) २ वरुणके पाशास्त्रमेद, वरुणके एक पाशास्त्रका नाम ।

पुलकालय (सं॰ पु॰) कुवेरका एक नाम । पुलकालि (सं॰ स्त्री॰) पुलकावलि, हपैसे प्रफुल रोम । पुलकावलि (सं॰ स्त्री॰) हपैसे प्रफुल रोम ।

पुळिकत (सं॰ ति॰) पुळक-इतच्। १ रोमाञ्चित, प्रेम या हर्षके वेगसे जिसके रोषं उभर आप हों। २ हर्षयुक्त, गहगद्द।

पुलकिन् (सं० ति०) पुलकमस्त्यर्थे इनि । १ रोमाञ्चयुक्त, प्रेम या हर्षसे गद्गद् होनेवाला । (पु०) २ घाराकदम्ब । ३ कदम्य ।

पुलकीकृत (सं० ति०) पुलक-चित्र । हर्षसे रोमाञ्चित, प्रोमसे गहुगदु ।

पुलकोद्गम (सं० पु०) हर्ष, खुशी।

पुलगांच मध्यप्रदेशके वर्द्धा जिलान्तर्गत एक रेलवे स्टेशन। यह अक्षा० २० 88 उ० और देशा० ७६ २१ पू०के मध्य वर्द्धानदीके समीप एक सुन्दर जलप्रपातके किनारे अवस्थित है। पहले यहां मनुष्योंका वास नहीं था, लेकिन स्टेशन होनेके साथ ही साथ यह स्थान प्राममें परिणत हो गया। देवली और हिङ्गनधाटकी प्रसिद्ध रहेंकी हाट जानेका रास्ता यहीं आ कर मिला है। हिंदू लोग इसको तीर्थस्थान मानते हैं। यहां पक देवालय भी है।

पुलट (हिं० स्त्री०) पत्नट देखी।

पुलटिस (हिं० स्त्री०) अलसी, रेंड़ी आदिका मीटा लेप जिसे फोड़ें, घाव आदिकी पकाने या वहानेके लिप उस पर चढ़ाते हैं।

पुलपुल (हि० वि०) पुलपुला देखी।

पुलपुला (हिं॰ वि॰) जो छूनेमें कड़ा न हो, जिसके भीतरका भाग ठोस न हो, जो भीतर इतना ढीला और मुलायम हो कि द्वानेसे धंस जाय।

पुलपुलाना (हिं० कि॰) १ किसी मुलायम चीजको दवाना। २ मुंहमें ले कर दवाना, विना चवाप खाना, चूसना।

पुलपुलाहर (हि॰ स्रो॰) मुलायमियत, पुलपुला होनेका भाव। पुलमायि अन्ध्रभृत्य वंशीय दाक्षिणात्यके एक प्रवल पराकान्त राजा। भिन्न भिन्न प्रत्थोंमें इनका भिन्न भिन्न नाम देखा जाता है, यथा ब्रह्माएडंपुराणमें पुलमायी वा पुलमावि, गात्स्यमें पुलोमावि, विष्णुपुराणमें पहुमान, मागवतमें अटमान, नासिककी शिलालिपिमें पुडूमायि, पुलुमायि वा पटुमावि इत्यादि।

प्रसिद्ध ग्रीक-भौगोलिक रलेमीने लिखा है, कि उनके समयमें दक्षिणापथ दो प्रधान राज्योंमें विभक्त था—इसके उत्तरांशमें Sero Polemios (प्राकृत 'सिरिपुलुमावि') राज्य करते थे। पैठनमें उनकी राजधानी थी और दक्षिणांशमें Baleocuros नामक एक राजा Hippocura नामक स्थानमें राज्य करते थे। रलेमि-वर्णित उक्त दो राजा शिलालिपि और प्राचीन मुद्रामें 'पुलुमायि' और 'विलिवायकुर' नामसे वर्णित हुए हैं।

टलेमि १६३ ई॰में कराल कालके गालमें पतित हुए और किसीके मतानुसार उन्होंने १५१ ई॰में प्रत्थकी रचना की। इस हिसाबसे टलेमिका प्रन्थ रचित होनेके पहले टलेमि प्रादुर्भूत हुए थे, इसमें सन्देह नहीं।

नासिकगुहासे जो शिलांलिपि पुलूमायिके १६वें वर्षमें आविष्कृत हुई है, उससे जाना जाता है, कि पुड़-मायिकी माताका नाम वासिष्ठी और पिताका नाम गीतमीपुत सातकि था। तेरह वर्ष राज्य करनेके वाद गीतमीपुतने असिक, अश्मक, मधुक, सुराष्ट्र, कुकुर, अप-रान्त, अनूप, विदर्भ, अकर और अवन्तीके ऊपर आधि-पत्य फेलाया था। इन्होंने शक, यवन और पहवोंको ध्वंस करके क्षतियगौरवकी रक्षा की थी। पे दिजनर-कुटुम्विनवह न' और खगारातवंशके मूलोत्पाटनकारी थे। इन्होंसे सातवाहन-वंशका यश पुनः प्रतिष्ठित हुआ था।

डाकृर माएडारकके मतसे पुड़ुमायिने पैठनमें १३०से १५८ ई० तक तथा दूसरे प्रसतस्यविदके मतसे १३५से १८५ ई० तक राज्य किया। इनके वाद इनके किनष्ठ भ्राता शिवश्री सिंहासन पर वैठे। शिवश्रीकी मुद्रामें भी ये वासिष्ठीपुत्र' नामसे ही आख्यात हुए हैं।

पुलस्त (हिं ॰ पु॰) पुलस्य देखी।

पुलस्ति (सं॰ पु॰) पुल महत्त्वे किप्, पुलं महत्त्वं असते

गच्छिति अस्-ित । सप्तिषेके अन्यतम, पुलस्त्य मुनि ।
पुलस्त्य (सं० पु०) १ सप्तिषियोंमेंसे एक ऋषि जिनकी
गिनती प्रजापतियोंमें भी होती है । ये ब्रह्माके मानस
पुलोंमेंसे थे । एक विष्णुपुराणके मतानुसार ब्रह्माके कहे
हुए आदि पुराणका मनुष्योंके बीच इन्हींने प्रचार किया
था । इन्होंने ब्रह्मासे विष्णुपुराण प्राप्त कर पराशरको
दिया था । यही पुलस्त्य विश्रवाके पिता और कुवेर
तथा रावणके पितामह थे और इन्होंसे राक्षसवंश विस्तृत
हुआ है ।

पुलस्त्यका रचित एक धर्मशास्त्र भी मिलता है। क्रमलाकरके शूद्रधर्मतत्त्वमें पुलस्त्यस्मृतिके वचन् उद्गृत हुए हैं।

२ शिवका एक नाम।

पुलह (सं पु) १ एक ऋषि जो ब्रह्माके मानसपुतीं और प्रजापतियों में थे। ये सप्तिर्थिं में हैं। भागवतके मतसे इनकी स्त्रीका नाम गति था। इनके कर्मश्रेष्ठ, वरीमान् और सहित्यु ये तीन पुत्र थे। मतान्तरसे पुलहकी स्त्रीका नाम क्षमा तथा पुत्रका नाम कर्दम, अवैरी-वत् और सहित्यु था। दे गन्धवंभेद, एक गन्धवं। ३ शिवका नामान्तर, महादेवका एक नाम।

पुलाक (सं० पु०) पोलित उच्छितो भवति पुल-आक निपातनात् (वलाकादयश्व) । १ तुच्छधान्य, एक क्रव्य, अंकरा । २ संक्षेप, अल्पता । ३ भक्तसिक्य, भातका मांड, पीच । ४ क्षिप्रता, जल्दी । ५ उवाला हुआ चावल, भात । ६ मांसोदन, पुलाव ।

पुलाककारिन् (सं० ति०) क्षिप्तकारी, जल्दवाजी करने-वाला।

पुळाकिन् (सं० पु०) पुळाक-इनि । यृक्ष । पुळाणिका (सं० स्त्री०) त्वक्की कठिनता, चमड़ेका कडापन ।

पुलायित—शब्दकरपद्धम और वाचस्पत्यमें पलायित शब्द-की जगह पुलायित शब्द ग्रहीत हुआ है जिसका अर्थ है—अञ्चगति, विकान्ति ।

पुलालिका (सं॰ स्नी॰) नासप्रदंश विपोपद्रवमेद । पुलाव (हिं॰ पु॰) मांसीदन, एक व्यंजन या खाना जो मांस और चावलको एक साथ पकानेसे वनता है। पुलिदा (हिं० पु॰) छपेटे हुए कपड़े, कागज आदिका छोटा मुद्रा, पूला, बंडल, गड्डी।

पुलिकट (पलिकट) मन्द्राज-प्रदेशके चेङ्गलपत जिलानगैत एक प्रसिद्ध नगर। इसका प्रकृत नाम परवेकोंड़
है। यह अक्षा० १३ २५ उ० और देशा० ८० १६ प्०के
मध्य, पुलिकट हदके किनारे समुद्रके पास मन्द्राज
शहरसे २३ मील उत्तरमें अवस्थित है। ओलन्दाजोंने
भारतवर्ष आ कर सबसे पहले इसी नगरमें कोठी कोली
थीं। १६०६ ई०में उन्होंने यहां एक दुर्ग वनवाया और
१६१६ ई०में अङ्गरेजोंके साथ मिल कर मिर्चका व्यवसाय
आरम्भ किया। परवर्त्तों कालमें करमण्डल उपकृत्में
यह स्थान ओलन्दाजोंका प्रधान अड्डा थ। १७८१ ई०में
अङ्गरेजोंने इस पर अपना दखल जमाया और १७८५ ई०में
अङ्गरेजोंने इस पर अपना दखल जमाया और १७८५ ई०में
पिर ओलन्दाजोंको लौटा दिया। वाद १८२५ ई०की
सन्धिके अनुसार ओलन्दाजोंने सदाके लिये उक्त स्थान
अङ्गरेजोंको दे दिया। यहां ३०० वर्षका प्राचीन सुन्दर
शिल्पयुक्त समाधिगृह अब भी वर्त्तमान है।

पुलिकेशि (१म) — चालुक्यवंशीय एक पराकान्त राजा। इन्होंने छठीं शताब्दीमें पल्लवराजधानी वातापिपुरी (वदामी) जीत कर चालुक्यराज्य प्रतिष्ठित किया। चालुक्यशब्दमें विस्तृत विवरण देखी।

पुलिकेशि (२य) — चालुक्यवंशीय एक सर्वप्रधान राजा। चालुक्यराज मङ्गलीशकी मृत्युके बाद २य पुलिकेशि और विष्णुवर्द्ध नके मध्य राज्य वांटा गया। २य पुलिकेशि पितृराजधानी वदामीमें ही अधिष्ठित हुए और विष्णु-वर्द्ध नने पूर्वा शमें वेङ्गिदेश जा कर अपनी राजधानी वसाई।

पूर्वतन चालुक्य राजाओं के मध्य यही पुलिकेशि वलवीर्यमें भारत-विख्यात हुए थे। ६१० ई० के प्राक्-कालमें वे सिहासन पर वैठे। अभिषेकके वाद ही उनकी विजयस्पृहा बलवती हो उठी। थोड़े ही दिनोंके मध्य समस्त महाराष्ट्र और दक्षिणापथका अधिकांश इन्हें हाथ लगा। इन्होंके समयमें सम्राट् हर्षवर्द्ध न उत्तर-भारतमें राज्य करते थे। हिमालयसे ले कर गङ्गासागर और गुर्जर पर्यन्त उनका आधिपत्य विस्तृत होने पर भी पुलिकेशि हीके प्रभावसे वे दक्षिणापथको जीत न सके

थे। हर्षदेवने अपने अधीनस्थ राजन्यवर्ग और प्रधान प्रधान सामन्तोंको ले कर भीमवेगसे पुलिकेशि पर आक्रमण किया था। किन्तु पुलिकेशिके असामान्य वीरत्व और तद्मुवत्तीं महाराष्ट्र वीरोंके रणकीशलसे हर्षदेवको युद्धमें पीठ दिखानी पड़ी थी।

इन्होंने हर्षदेवको परास्त करके महाराजाधिराज 'परमेश्वर'-की उपाधि पाई थी। चीनपरिवाजककी वर्णमालासे जाना जाता है, कि पुलिकेशि जातिके झिलिय थे। उनके राज्यका परिमाण प्रायः १२०० मील था। उनकी संभी प्रजा शिष्ट, शान्त, परिश्रमी, नम्रप्रकृति और वीर गिनी जाती थी।

पुलिकेशिके पराक्रमकी कथा केवल भारतमें ही सीमावद्य न थी, दूर दूर देशोंमें भी उनकी यशोराशि फैली हुई थी। एक अरव ऐतिहासिकने लिखा है, कि पारस्था-धिप स्य खसक्षने अपने राज्यके ३६वें वर्षमें (६२५-६ ई०में) पुलिकेशिकी सभामें दूत द्वारा उपलिकन भेजा था। इस प्रकार दोनोंमें गाली मित्रता हो गई थी। पुलिकेशि-की सभामें पारस्पदौत्यका चित्र आज भी अजएटाकी विध्वविख्यात गुहामें सुचित्रित है।

६३४ ई०को पेहोलके शिलाफलकमें उत्कीण पुलि-केशिकी प्रशस्तिमें लिखा है, 'राष्ट्रकूटराज आप्पायिक गोविन्च, वनवासीके कदम्बराजगण, गङ्ग और अनूपगण, कोशल और कलिङ्गगण, काञ्चिके पल्लबगण, चोल, केरल और पाण्ड्यगण पुलिकेशिके निकट पराजित हुए थे तथा महाराष्ट्रके अन्तर्गत ३ प्रदेश और ६६ हजार प्राम उनके अधिकारमुक्त थे। हर्षको परास्त करके उन्होंने 'प्रमिश्वर' की उपाधि पाई थी।

चीन-पेतिहासिक म-तुआन-छिन् विस्तृतभावमें हुए और पुछिकेशिका युद्धाख्यान वर्णन कर गये हैं। उनके मतसे ६१८से ६२७ ई०के मध्य यह महासमर छिड़ा था। पुछिकेशि स्वयं क्षत्रिय और हिन्दू होने पर भी उनके आश्रयमें जैनधम खूव चढ़ा बढ़ा था। परिव्राजक यूपनचुवंग पुछिकेशिको राजधानोमें खेताम्बर जैनियोंका प्रभाव देख गये हैं। पेहीछके मेगुति-मन्दिरमें जो पुछिकेशिको सुविस्तृत शिळाछिपि है, वह भी रविकीर्ति नामक एक जैनकी विरचित है। रविकीर्ति अपनेको

कालिदास और भारविके समान कवि वतला गये हैं। वह स्टोक इस प्रकार है—

"येनायोजितवेशमस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेशम । स विजयतां रविकोर्त्तिः कविताश्रितकालिदासभारवि-कोर्त्तिः॥"

इस शिलालिपिसे जाना जाता है, कि पुलिकेशिके समयमें भी भारतयुद्धसे एक अब्दकी गणना होती थी। यथा—

"तिंशत्सु तिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेप्वव्देषु पश्चसु च॥ पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥"

अर्थात्—कुरुक्षेत्रके महासमरसे इस कलिकालके ३७३५ वर्ष हो जाने पर शकराजका ५५६ अब्द बीत चुका था, अर्थात् भारतगुद्धगताव्द ३७३५ = शकगताव्द ५५६। यह राजा सत्याश्रम-पुलिकेशि-बल्लभ नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके आदित्यवर्मा, चन्द्रादित्य और १म विक्रमा-दित्य नामक तीन पुत्र तथा अम्बेरा नामक एक कन्या थी।

पुलिकेशि—१०वीं शताब्दीके चापवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम अड्डूक था।

पुलिन (सं० पु॰ क्की॰) पुल महत्त्वे इनन् स च कित् (तलिपुलिभ्याञ्च। उण् ३।४३) १ चर, भरतके मतानु-सार पानीके मीतरसे हालकी निकली हुई जमीन। २ क्षणतीययुक्त द्वीप, नदीके वीच पड़ी हुई जमीन या रेत। ३ तट, किनारा। ४ यक्षविशेष, एक यक्षका नाम।

पुलिनद्वीपशोभित (सं॰ ति॰) पुलिन तथा द्वीपादि द्वारा विभूषित या शोभायमान ।

पुलिनवती (सं० स्त्री०) १ नदीभेद, एक नदीका नाम । २ तटशीला ।

पुलिन्द-भारतको एक आदिम असम्यजाति । ऋग्वेदके ऐतरेय-बाह्यणमें लिखा है, विश्वामितके जिन सब पुत्रोंने शुनःसेफको ज्येष्ठ नहीं माना था वे विश्वामितके शापसे पतित हो गये थे । उन्हीं पतित विश्वामितके पुत्रोंसे पुलिन्द शवर आदि असम्य जातियोंकी उत्पत्ति हुई है। वामनपुराणमें इन पुलिन्दोंकी उंत्पत्तिके विषयमें एक अन्दुत उपाख्यान इस प्रकार है—

'दानवींने तें छोक्यका अधिकार किया। इन्द्र हत-राज्य हो देवताओंके साथ ब्रह्मछोक आये। यहां इन्द्रने कश्यपादि ऋषियोंके साथ ब्रह्माको प्रणाम कर कहा, 'पितामह ! विलने हमारा राज्य छीन लिया है, सी क्या करना चाहिये।' ब्रह्माने जवाव दिया, 'इन्द्र ! तुम कर्म-फलका भोग करते हो।' उसी समय कश्यपने भी कहा, 'देवेन्द्र ! तुम भ्रुणहत्याके पापसे लिप्त हो गगे हो, तुमने वज द्वारा दितिका उदर भेद डाला है।' कश्यपकी कथा सुन कर इन्द्रने ब्रह्मासे पूछा, 'पितामह! मेरे लिये कौन प्रायश्चित्त होना चाहिये ?' इस पर ब्रह्मा, कश्यप और विशिष्टने एक खरसे कहा, 'तुम शङ्ख्यकगदापग्रधारी माधवकी शरण लो, वे ही श्रेयोविधान करेंगे।' अनन्तर इन्द्र उसी समय महीतल पर कालश्चरके उत्तर, हिमादिके दक्षिण, कुशस्थलके पूच और वसुपुरके पश्चिम अमूर्च गदाधरके स्थानको चल दिये। यहां देवराज इन्द्रने एक वर्षे तक गदाधरकी तपस्या की। माधवने प्रसन्न हो कर उन्हें दर्शन दिये और कहा, 'देवेन्द्र ! अब तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो चुके, तुम बहुत ही जस्द राज्यलाभ करोगे।' इसके बाद इन्द्र सुरनदीमें स्नान करके पवित हुए। उनके भीवणकर्मा सहचरीने कहा, 'अव हम लोगोंको क्या करना होगा, कृपया आदेश दीजिये ।' इन्द्रने उत्तर दिया, 'तम लोगोंने मेरा पाप ले कर जनमग्रहण किया है, इस कारण तुम लोग हिमादि और कालअरके मध्यवत्तीं प्रदेशोंमें जा कर पुलिन्द नामसे वास करो। इतना कह कर पुरन्दर पापमुक हो चल दिये।

रामायण, महाभारतादि सभी प्राचीन प्रन्थोंमें इस पुलिन्द जाति और उनके निवासभूत जनपर्दोका उल्लेख देखनेमें आता है। (भारत) २।३१११५,६१६।३६।४० रामायण-४।४०।२१ लक्षाण्डपु॰ मत्वपु॰ ११३।४८,१२०,४५, मार्कण्डेय पु० ५७।४७, वावनपु॰ १३।४८, लिंगपु० ५२।२८, स्तमंदिता २६।११, श्रीहर्षचरित १।१४, तापीन्तस्ड ६।२४, दिन्दिनस्

पुलिन्द जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वामनपुराणमें जो स्थान निर्णीत हुआ है, उसे अपरापर प्राचीन संस्कृत प्रन्थों में कुलिन्द वा कुनिन्द जातिका स्थान वतलाया है। क्रिनिन्द दखो। पुलिन्द लोग गुजरात और महाराष्ट्रवासी पूर्वतन असम्य द्रस्युजातिक जैसे प्रतीत होते हैं। दस्य देखी। समापर्वमें लिखा है, कि सहद्विने नाचीन और अर्डु कराजाओंको परास्त कर वाताधिपको वशवसीं किया। पीछे वे पुलिन्दों को जीत कर दक्षिण-की ओर अप्रसर हुए। (समापुर ३१ अ०)

अर्बु कको कोई कोई वर्त मान आवृपहाड़ और वाता-धिपको वातापिपुरी (वर्त्त मान वदामो)-के अधिपति मानते हैं। इस हिसावसे मालूम होता है, कि गुजरात-के पूर्वा शसे छे कर वर्त्तमान वदामीके निकटवर्त्ती स्थान तक असम्य पुलिन्द जातिका वास था। महाभारतके भोष्मपर्वमें 'सिन्धुपुलिन्दकाः' ऐसा लिखा है। इससे वे सिन्धुप्रदेशके दक्षिणांशस्थ रणवासी भी समके जाते हैं।

अशोकके शाहवाजगड़ी-अनुशासनमें पुलिन्दजातिका जो उल्लेख है और कथासरित्सागरमें भी कहीं कहीं पुलिन्दजातिका जो वर्णन है, उससे यह जाति आज कल-को भील जातिकी एक शाखा-सी समभी जाती है।

प्रसतस्यवित् किन्हम् साहव भिल्लक और शवर इन दो जातियो को पुलिन्दका एक पर्यायवाची वतला गर्थ-हैं। (Cunningham's, Arch, Survey Reports, Vol, p. 189)

ग्रीक भौगोलिक टलेमिने इस जातिको Paulindai Agriophagoi और ग्लिनिने Molindai नामसे उल्लेख किया है। एक समय समस्त भारतवर्षमें इस जातिका वास था। कोई कोई समक्रते हैं, कि 'पोद' शब्द इस पुलिन्द शब्दका अपग्रंश है।

पुलिन्द्क-१ पुलिन्द्जाति और उनके निवासभूत जनपद विशेष। २ पुलिन्दोंके एक राजा। कथासरित्सागर-में पे ही पुलिन्द, भिल्ल और शवर इन तीन जातियोंके अधिपति बतलाये गये हैं। ३ आद्र कके एक पुतका नाम।

पुलिन्द्यन स्कन्द्युराणीय तापीखएड वर्षित एक पवित्र स्थान । वर्ष्यान ताप्ती नदीके किनारे यह चन बसा हुआ था। महादेव पुलिन्दवेष्टित हो कर इस वनमें वास करते थे। पुलिन्दसेन—कलिङ्गके एक विख्यात वीर । ये माधव-वर्माके पूर्वपुरुष थे । माधववर्माके ताप्रशासनमें "कलिङ्गोंके मध्य प्रथितयशा" इस प्रकार वर्णित हुए हैं । पुलिन्दा—एक छोटी नदी जो ताप्ती नदीसे जा मिली हैं। महाभारतमें इसका उल्लेख आया है। यहांके हिन्दुओं का विश्वास है, कि पुलिन्दासङ्गममें स्नान करनेसे अशेष पुण्यलाभ होता है।

पुलिसत् (सं॰ पु॰) नृपसेद, एक राजाका नाम ।
पुलिसिद्द-दाक्षिणात्यमें कर्णूल जिलान्तर्गत एक प्राचीन
प्राप्त । यह निन्दियालसे दो कोस उत्तर पड़ता है । यहां
विजयनगरके अच्युतरायके शासनकाल (१४५५ शकमें)में नागलिङ्गे श्वरका मन्दिर निर्मित हुआ है ।

पुलियानगुड़ी — मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवेलि जिलेके नारा-यण-कोविल तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ ६ १० उ० और देशा॰ ७६ २६ प्०में, पुराने मदुरा-रास्तेके किनारे श्रीवैकुण्ठेश्वरके समीप वसा हुआ है। यहां प्रायः ढाई हजार मदुष्योंका वास है। नगरमें एक वहुत पुराना विष्णुमन्दिर है जिसमें ताम्रशासन और स्थलपुराण भी मिलते हैं।

पुलियार-दक्षिणापथकी एक पार्वत्यजाति । मदुरा जिलेके पालनो नामक पहाड़ पर बहुतसे मनुष्यका वास देखनेमें आता है। इन लोगोंकी अवस्था अत्यन्त घृण्य और शोचनीय है। यहां तक कि कीरवर नामक असम्यंजातिके यहां ये छोग दासत्व करते हैं। ऐसी निरुष्ट अवस्था होने पर भी आश्चर्यका विषय यह, कि ये लोग कीरवर आदि नीचजातिके देव-पूजक और चिकित्सकका काम करते हैं। कारण, सिर्फ ये लोग ही नाना प्रकारके वृक्ष, लता, पौधे आदि पहचानते तथा वन्यदेवताकी तृप्तिके लिये मन्तोचारण करते हैं। कोरवरोंमें से कोई एक पीड़ित होने पर तुरत पुलियारके पास खबर दी जाती हैं। पुलि-यार आ कर शाक वा मूलका औषधके ह्रपमें प्रयोग करते और कभी कभी मन्त्रीचारण कर रोगीकी मला चंगा कर देते हैं। ये लोग शान्त, शिष्ट, नम्रप्रकृतिके तथा अत्यन्त मृगयाप्रिय होते और अक्सर विप तथा सुतीक्ष्ण तीर प्रयोगसे वाघको भी मार डाळते हैं। ये भूतप्रतके उपासक और सर्वभुक् हैं। कोई भी एकसे

अधिक विवाह नहीं कर सकता। रागी नामक शस्पको सड़ा कर जी मद्य प्रस्तुत होता हैं, वही इन सव जातियों-का प्रियतम पानीय है।

पुलिस्कि (सं॰ पु॰) सर्पं, साँप।

पुलिवलम् मन्द्राजके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत एक श्राम।
यह वालजापेतसे १२ मील उत्तरमें अत्रस्थित है। यहां
चोलराज प्रतिष्टित एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिरका
ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। दोनों मन्दिरमें बहुत
पुरानी शिलालिपि उत्कीर्ण हैं।

पुलिवेन्दला—१ मन्द्राज प्रदेशके कड़प्पा जिलेके अधीन एक तालुक वा महकूमा। इसका असल नाम पुलि-मएडलम् अर्थात् व्याघ्रावास है। यह अक्षा० १४ १० से १४ 88 उ० और देशा० ७९ ५७ से ७८ २८ पूर्क मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७०१ वर्गमील और जनसंख्या १०३३६६ है। इसका पश्चिमांश उपेजाऊ है जहां काफी रुई उपजती है। पूर्वाशमें पापन्नी नदी प्रवाहित है, इसीलिये जलका समाव नहीं होता । इसके मध्यवत्ती स्थानमें अवसर चने और कपासकी खेती होती है। इसके अलावा चावल, नील और सरसों भी उंपजर्ता है। १८०० ई०के पहले यह स्थान पोलिगरींके अधिकारमें था। आजकल भी उनके वनाए हुए परिखाविशिष्ट प्राचीन दुर्गादिका भग्नावशेष और उन सव दुर्गांके मध्य गोले फेंकनेके जो छिद्र रहते थे वे भी देखनेमें आते हैं। १८८३ ई०में इस तालुकमेंसे फीजदारी अदालत और १० थाने स्थापित हुए। यहांका राजस्व कुल १८२५२०) रु० है।

र उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह कड़ापासे १६ मील पश्चिममें वसा है। यहां कम्पनीका वागान और डाकघर है। इस नगरसे डेढ़ मील पश्चिम रङ्गनाथ-खामीका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है। प्रवाद है, कि रङ्गनाथकी खयम्भूमूर्त्ति पूर्वतन युगमें प्रादुर्भूत हुई थी। यहांके स्थलपुराणमें रङ्गनाथखामीका माहातम्य विस्तृत रूपसे वर्णित है। मन्दिरके समीप ही पोलिगार-दुर्गका मग्नावशेप देखनेमें आता है।

पुलिश—एक प्राचीन ज्योतिर्प्र न्थके रचयिता। वराहमिहिर-ने जिस पञ्चसिद्धान्तका उद्खेख किया है, उनमेंसे पुलिश-रचित 'पौलिशसिद्धान्त' एक है। अल-वेरुणीने इन्हें ं।छस्-अठ्-यूनानि' अर्थात् प्रीक पछस् नामसे उल्लेख किया है। उनके मतसे पुलिश सैन्ता अर्थात् आलेक-सन्द्रियावासी थे। जर्मन-अध्यापक वेवर (Weber)-ने अल्वेरुणोका वर्णन देख कर स्थिर किया है, कि Paulus Alexandrinus ग्रीक भाषामें रचित Eisagoge) नामक प्रन्थ संस्कृत भाषामें पौलिश-सिद्धान्त नामसे वर्णित हुआ है।

अभो मूल पौलिश-सिद्धान्त सम्पूर्ण नहीं मिलता। अल्वेरुणी ब्रह्मसिद्धान्त और पौलिशसिद्धान्त देख कर हिन्दूज्योतिषके सम्बन्धमें यथेए आलोचना कर गये हैं। भट्टोत्पल और वलभद्र पौलिशसिद्धान्तसे वचन उद्धृत कर गये हैं। ब्रह्मगुप्तने पुलिशका नामोल्लेख किया है और वराहमिहिरकी पश्चसिद्धान्तिकामें पौलिश-सिद्धान्तका विषय आलोचित हुआ है।

राजा राजेन्द्रपाल आदि प्रवतत्त्वविदीने पुलिशको इजिप्टवासी बतलाया है। किन्तु अलयेरुणीकी आलो-चना और पञ्चसिद्धान्तिका पढ्नेसे पुलिशको हम लोग ब्रीकज्योतिर्विद् नहीं मान सकते। ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, भट्टोटपळ और वलभद्र आदि ज्योतिर्विदोंके पौलिश-सिद्धान्तको कथा लिखने पर भी कोई भी पुलिशको 'यवन' खीकार नहीं करते। अल्येरुणीने किस प्रमाणसे पुलिशको त्रीक और आलेकसन्द्रियावासी वतलाया है, यह भी मालूम नहीं। डाकृर वेवर साहवकी भी उक्ति समीचीन-सी प्रतीत नहीं होती । Paulus Alexandrinus-के प्रन्थमें पौलिशसिद्धान्तके प्रतिपाद्य मूलविषय नहीं हैं। Eisagoge-से वेवरने जो सब विवरण उद्धृत करके उन्हें पौलिशसिद्धान्तके साथ मिलानेकी कीशिश की है, वे भी सुयुक्तिपूर्ण नहीं हैं । किसी जातक प्रन्थमें क्षेत और क्षेताघिपतिके परिचयप्रसङ्गीं वे सव कथाएं आलोचित हुई हैं। Eiságoge एक जातकग्रन्थ है, किन्तु पुलिशका सिद्धान्त एक शुद्ध ज्योतिष है।

पूर्वोक ज्योतिर्विदोंके उद्धृत वा आलोचित पुलिश-सिद्धान्तका विषय पढ़नेसे यह सहजमें खीकार किया जा सकता है, कि पुलिश एक प्रधान ज्योतिर्विद्ध थे, उन्होंने प्रीकज्योतिषका भाव अपने प्रन्थमें नहीं रखा है। उन्होंने जिस मतका प्रचार किया है, वह भारतीय अथवा पार-सिक जैसा प्रतीत नहीं होता। सचराचर पुलिशसिद्धान्तसे आर्या और अंजुल्ड्समें लिखित श्टोक देखे जाते हैं। उन श्टोकोंको देख कर कोई कोई समकते हैं, कि पुलिशने दो सिद्धान्त लिखे थे, पर उनके मूलमें कुछ भो सत्य नहीं है। एक सिद्धान्तमें दो प्रकारके श्टोक रह सकते हैं, वराहमिहिरका प्रन्थ पढ़नेसे यह सन्देह दूर हो जायगा। किसी किसी प्रन्थमें 'पौलिश'-को जगह 'पौलस्य' नाम उद्धृत हुआ है, जो लिपिप्रमाद समका जाता है। पर हां, यह भी जान लेना आवश्यक है, कि पौलस्त्यरचित खतन्त ज्योतिशक्तोंकी आलोचना करनेसे जाना जाता है कि ब्रह्मगुप्त, वराह-मिहिर आदि ज्योतिर्विदींके पूर्वतनकालमें, भारतवर्षमें एक आर्यभट्ट और दूसरे पुलिश इन्हों दोका ज्योतिर्वित प्रधानतः प्रचलित था।

पुलिस (अं० स्त्री०) १ प्रजाको जान और मालकी हिफा-जतके लिये मुकर्रर सिपाहियों और अफसरोंका दल, ग्राम, नगर आदिकी शान्तिरक्षाके लिये नियुक्त कर्म-चारियों तथा सिपाहियोंका वर्ग । २ अपराधोंको रोकने और अपराधियोंका पता लगा कर उन्हें पकड़नेके लिये नियुक्त सिपाही या अफसर ।

पुळिसमैन (अं॰ पु॰) कांस्टेवल, पुलिसका सिपाही या प्यादा ।

पुलिहोरा (हि॰ पु॰) एक प्रकारका पक्षवान ।
पुली (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका पक्षी जो काले और
भूरे रंगका होता है। यह पक्षावसे ले कर वङ्गाल तक
सारे उत्तर-भारतमें पाया जाता है।

पुलुकाम (सं॰ ति॰) पुरु कामयते कामि-अण् उपपदस॰, ततो रस्य लः। बहुकामनायुक्त, नाना प्रकारकी कामना रखनेवाला।

पुलेवैठ (हि॰ पु॰) हाथीवानोंकी वोली। इसमें हाथी पीछे-के दोनों पैर फुका देता है।

पुलोमन् (सं॰ पु॰) १ दैत्यभेद, इन्द्रका श्वशुर । इन्द्रने युद्धमें पुलोम-दैत्यको मार कर उसकी कन्या शचीसे व्याह किया था । २ राक्षसभेद, एक राक्षस । ३ अन्ध-वंशका एक राजा ।

पुलोमजा (सं॰ स्त्री॰) पुलोस्नो दैत्यात् जायते जनः उ, स्त्रियां टाप् । इन्द्राणी, शची, पुलोमकी कन्या । पुँळोमजित् (सं॰ पु॰) पुळोमार्नं जयतीति जि-किप् तुगा-गमस्च । इन्द्र ।

पुलोमद्विष् (सं॰ पु॰) पुलोन्नः दैत्यविशेषस्य द्विट् शतुः । इन्द्र ।

पुलोमभिद् (सं॰ पु॰) पुलोमानं मिनत्तीति मिद्-िकप्। इन्द्र।

पुलोमही (सं॰ स्त्री॰) अहिफेन, अफीम ।

पुळोमा (सं० स्त्री०) १ भृगुकी पत्नी, च्यवन ऋषिकी माताः। ये वैश्वानर दैत्यकी कन्या थीं। २ वचा, वच।

पुलोमारि (सं० पु०) पुलोम्नः अरिः। इन्द्र।

पुळोमार्चिस् (सं॰ पु॰) राजपुतमेद ।
पुल्कस (सं॰ पु॰ स्त्री॰) एक संकर जाति । इसकी
उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुप और क्षतिया स्त्रीसे कही जाती है।
शतपथब्राह्मण (१४।७।१।२२) और चृहदारण्यक उपनिपद्द (४।३।२२)में इस जातिका उल्लेख देखनेमें
अाता है।

पुल्प (सं॰ ति॰) पुल चतुरर्थ्यां बलादित्वात् यः (ग ४।२।८०) पुलनिवृत्तादि, पुलक्योग्य, रोमाञ्च होने लायक।

पुल्ल (सं० ति०) फुल्ल-पृयोदरादित्वात् साधुः । विकसित, खिला **हु**मा ।

पुलक (सं० क्ली०) आश्चर्य ।

पुल्ला (हि॰ पु॰) नाकमें पहननेका एक गहना।

पुर्ली (हिं॰ स्त्री॰) घोड़े के सुमके ऊपरका हिस्सा।

पुल्बच (सं॰ पु॰) पुरु बहु अत्ति अद्-अच्, पृथोदरादित्वात् रस्य छः । बहुभक्षक मृगभेद ।

पुवा (हिं॰ पु॰) पूना या माडपूना दे खो ।

पुवार (हिं पु) पयाल देखी।

पुरत (फा॰ स्त्री॰) १ वंशपरम्परामें कीई एक स्थान, पिता पितामह प्रपितामह आदि अथवा पुत्र, पौत्र प्रपौ-तादिका पूर्वापर स्थान, पीढ़ी। २ पृष्ठ, पीठ, पीछा।

पुस्तक (फा॰ स्त्री॰) दोळची, घोड़े गदहे आदिका पीछेके दोनों पैरों से छात मारना।

पुस्तनामा (फा॰ पु॰) वंशावली, पीढ़ीनामा, कुरसी-नामा, वह कागज जिस पर पूर्वापर कमसे किसी कुलमें 'उत्पन्न लोगों के नाम लिखे हों।

Vol. XIV. 58

पुरतवानी (फा॰ स्त्री॰) वह आड़ी छकड़ी जो किवाड़के पीछे पल्लेकी मजबूतीके लिये लगी रहती हैं।

पुरता (हिं पु) १ पानीकी रोकके लिए या मजवतीके लिए किसी दीवारसे लगा कर कुछ अपर तक जमाया हुआ मिट्टी, हैं दे, पत्थर आदिका देर या ढालुवां टीला । २ पानीकी रोकके लिए कुछ दूर तक उठाया हुआ टीला, वांघ, अचा मेंड़ । ३ कितावकी जिल्दके पीछेका चमड़ा । ४ पीने चार माताओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली रहता है।

पुरतावंदी (फा॰ स्त्री॰) १ पुरता उठानेकी किया या भाव, पुरतेकी वंघाई। २ पुरतेका काम।

पुरती (का॰ स्त्री॰) १ आश्रय, सहारा, धामा, टेक । २ पृष्ठरक्षा, सहायता, मदद । ३ पक्ष, तरफदारी । ४ वड़ा तिकया, जिस पर पीठ टिका कर वैठते हैं, पीठ टेकनेका तिकया, गाव-सिकया।

पुरतेन (हिं॰ स्त्री॰) वंशपरम्परा, पुरुषपरम्परा, पीढ़ी दर पीढ़ी।

पुरतैनी (हिं वि) १ जो कई पुरतों तक चला चले, वेटे पोते परपोते आदि तक लगातार चला चलनेवाला। २ जो कई पुरतोंसे चला आता हो, कई पीढ़ियोंसे चला आता हुआ, दादा परदादाके समयका पुराना।

पुषा (सं॰ स्त्री॰) पुष्णातीति पुष-पुष्टी क, ततप्राप् । १ छाङ्गलीवृक्ष, कलिहारीका पीधा, कलियारा । २ पांपण करना, पालना ।

पुषित (सं॰ स्री॰) पुष्यते स्मेति पुष-क, स्वादिगणीय-त्वात् इट्।१ पुष्ट, पोषण किया हुआ। २ प्रतिपालित, पाला पोसा हुआ। ३ वर्डित, बढ़ा हुआ।

पुष्क (सं० क्की०) पुष वाहु० भावे क, किस्य । पुष्टि, पोषण ।
पुष्कर (सं० क्की०) पुष्णातोति पुष-पुष्टी (पुषः किन् । उण्
धाष्ठ) इति करन्, स च कित् । १ हस्तिशुण्डाम्म, हाथीकी
सं इका अगला भाग । २ वाद्यभाण्डमुख, ढोल, । सृदङ्ग
आदिका मुंह जिस पर चमड़ा मढ़ा जाता है । ३ व्योम,
आकाश । ४ असिफल, तलवारका स्थान । ५ इप्टमेद,
कुड । ६ पद्म, कमल । ७ ताथमेद, एक तीर्थका नाम ।
८ रोगमेद, एक प्रकारका रोग । ६ कान्त । १ द्वीपमेद,
पुराणमें कहे गये सात द्वीपोंमेंसे एक ।

देवीमागवतके अनुसार यह द्वीप दिधसमुद्रके आगे हैं और इसका विस्तार शाकद्वीपसे दूना है। इस द्वीपमें अयुत पलयुक्त पुष्कर शोभा पाता है। इसके पत्ते जैसे विशव हैं, यैसे प्रदीप अनिशिखाकी तरह प्रतिमासम्पन्नभी हैं। सर्वेछोकगुरु वासुदेवने छोकसृष्टिकी कामनासे ब्रह्माके आसन-स्वरूप उस पुष्करकी कल्पना की है। इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक पर्वत दो खएडोंमें विभक्त हो कर अर्वाचीन और पराचीन नामक दो वर्षोंकी सीमा निर्द्धा-रण करता है। इसकी ऊंचाई और चौड़ाई दश हजार योजन है। प्रियत्रतके पुत्न वीतिहोत इस द्वीपके अधिपति हैं।

११ नागभेद । १२ सारसपक्षी । १३ एक रोजा जो नलके छोटे भाई थे । इन्होंने कलिदेवकी सहायताले नलको जूपमें हरा कर निषधदेशका राज्य ले लिया था। पीछे नलने कलि-परित्यक्त हो कर जूपमें ही फिर पुष्कर-को पराजय किया और राज्यको जीता।

(भारत वनप॰) नल देखो ।

१४ वरुणपुत पुष्करद्वीपस्थ राजा। १५ असुरमेद।
१६ विण्या। १७ पुष्करद्वीपस्थ पर्वतमेद। १८ पुष्करद्वीपके राजमेद। १६ पद्मकन्द। २० सपं, सांप। २१
खड़ गक्षोष, तलवारका म्यान। २२ युद्ध, लड़ाई।
२३ जल, पानी। २४ जलाशय, ताल, पोखरा। २५
करलीका करोरा। २६ वाण, तीर। २७ पिंजड़ा।
२८ तृत्यकला। २६ मद, नशा। ३० सूर्य। ३१ एक
प्रकारका ढोल। ३२ एक दिग्गजः। ३३ शिवका एक
नाम। ३४ छण्णके एक पुतका नाम। ३५ बुद्धका एक

३७ योगविशेष, करवार भद्रातिथि, भग्नपादनक्षत-घटित अशुभजनक योगविशेष, विपुष्करयोग। मृत्यु-कालीन कर्वारादि होनेसे यह योग होता है। पुनर्वंसु, उत्तराषादा, रुत्तिका, उत्तरफल्युनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा नक्षत तथा रिव, मङ्गल और शनिवार तथा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि इन सवका एकत योग होनेसे उस दिन मृत लाकिनो पुन्करकोष होता है।

इस दीवमें जन्म लेनेसे जारज-याग और मरनेसे पुष्कर-नीव हुआ करता है। यह दोष पानेसे ही शान्ति करना कर्लथ्य है। यदि इस दोषकी शान्ति न की जाय, तो उसके प्रथम मास वा प्रथम वर्षमें कुटुम्बको पीड़ा होती है। यदि देवता उसकी रक्षा भी क्यों न करें, तो भी उसका पुतनाश अवश्यम्मावी है। अतर्पव पुष्करशान्तिके लिये अयुतहोम अवश्य कर्त्त व्य है। यदि यह न कर सकें, तो सुवर्ण दान करना चाहिये। यह दान वा होम सत व्यक्तिके अशौचकालमें ही किया जाता है। अशौचके कारण विलम्ब करना उचित नहीं। क्योंकि शुद्धिकारिकामें भी लिखा है,—

"मुख्यकाले त्विदं सवं स्तकं परिकीर्त्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य स्तकेऽपि न स्तकम्॥" (शुद्धिकारिका)

यह शान्ति शमशानमें करनी होती है। ब्रह्मिक्रगण ही इस विषयकी शान्ति करते हैं। शब्दकलपद्धमोक वराह-संहितामें इस दोषशान्तिका विषय इस प्रकार लिखा है।

जिस दिन इस दोषशान्तिके लिये दान वा होमादि करने होंगे, उस दिन पहले सङ्कल्प करना कर्च व्य है। संकल्प यथा—

"श्री विष्णुरोम् तत्सद्य समुके मासि समुके पसे अमुक तियो अमुक गोत्रः श्रीअपुक देवशामां अमुक गोतस प्रेतस्य अमुक देवशर्मणः त्रिपुक्तर-योदकाजीतमरणज्ञन्यदौष प्रशासनः कामः इद'काञ्चनं श्रीविष्णुदेवतं यथाश्रम्भवगोत्रनाम्ने वाद्यणाः याई ददे" इस प्रकार संकल्य करके दान करे। पूजा और होम करते समय 'एजाहोमकर्मणा करिष्मे' ऐसा संकल्प करके पूजा और होम करे। तिल, धान और जीको स्तत वा श्रीरमें मिला कर होम करना होता है। इस शान्तिमें वरु और विल देनी होती है। चैकडू, अश्वत्थ और उड म्बर इनके समिध् द्वारा अधोत्तर शतहोम करना होता है। पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा सर्वतोमद्रमण्डल प्रस्तुत करके उसमें यम, धर्म और चिक्रगुप्तको स्थापना करे। पीछे इनकी पूजा और होम विश्वय है। तिथि, वार और नक्ष्यकती पूजा तथा होम करना होता है।

शान्तिके विधानानुसार यदि शान्ति न की जाय, तो जी प्रेत-व्यक्तिका श्राद्धाधिकारी है, उसके पुष्करजन्य अरिष्ट अर्थात् चतुष्पाद्दोष होता है। साल पूरने पर अथवा सोलह वा छः महीनेके भीतर उसका पुत्र यमपुर-का मेहमान वन जाता है। अथवा उसीकी मृत्यु होती है वा भ्रातृवियोग होता है। धीरे धीरे उसकी सभी वस्तु विनष्ट हो जाती हैं। यहां तक कि, उसका वास्तु-वृक्ष तक भी जीवित नहीं रहता। इस कारण सबसे पहले इसकी शांन्ति अवश्य कर्त्तव्य है। विस्तार हो जानेके भयसे इसका विस्तृत विवरण यहां नहीं लिखा गया।

३८ ब्रह्मकृत तीर्थविशेष । इस तीर्थंका नामान्तर इपतीर्थं और मुखदर्शन है । पद्मपुराणमें लिखा है— इस तीर्थमें ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर नामक तीन हद हैं । इस तीर्थंका परिमाण सौ योजन माना गया है ।

ज्योतिस्तस्वमें लिखा है, योंगविशेषमें गङ्गादि नदीने भी पुष्करत्व होता है। सूर्यंके मकरराशिमें अर्थात् माघ मासमें रहनेसे तथा उस समय यदि बृहस्पति मकर-राशिमें रहे और रविवारमें पूर्णिमा तिथि पड़े, तो गङ्गा पुष्करके समान पवित तीर्थ होती है। सूर्यं यदि सिह-राशिमें अर्थात् भाद्रमासमें हो तथा वृहस्पति यदि उस समय सिहस्थ हो तो गङ्गाका उत्तरभागस्थ प्रयागतीर्थ पुष्कर सहश होता है। बृहस्पतिवारमें पूर्णिमा होनेसे गोदावरी, मेषमें सूर्यंके वृहस्पतिके साथ पकत रहनेसे तथा सोमवारमें शुक्काप्टमी होनेसे कावेरी, कर्कटराशिमें सूर्यंके स्थित होनेसे बृहस्पति वा सोमवारमें अमावस्था वा पूर्णिमा होनेसे तथा कृष्णा ये सव नदियां पुष्करके समान होती हैं। इसमें स्नान-दानादि करनेसे कोटि-सूर्य-ग्रहणमें स्नानदानादि करनेके समान फल होता है।

"मकरस्थो यदा भानुस्तदा देवगुरुर्यदि ।
पूर्णिमायां भानुवारे गङ्गा पुष्कर ईरितः ॥
गङ्गोत्तर्थ्यां प्रयागे च कोटिस्व्यंप्रहेः समः ।
सिहसंस्थे दिनकरे तथा जीवेन संयुते ॥
पूर्णिमायां गुरोवारे गोदाव्यांस्तु पुष्करः ।
तत स्नानञ्च दानञ्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥
मेषसंस्थे दिवानाथे देवानाञ्च पुरोहिते ।
सोमवारे सिताप्रस्यां कावेरी पुष्करो मतः॥

कर्कटस्ये दिवानाथे तथा जीवेन्द्रवासरे। अमायां पूर्णिमायां वा कृष्णा पुष्कर उच्यते॥" (स्कन्दपु॰ पुष्करखएडमें श्रीशैलमा॰)

३६ मेघनायकियशेष। जिस वर्ष पुष्करमेघ मेघाधि-पति होता है उस वर्ष जलका अभाव होता, पृथिबी शस्यहीना होती और लोग तरह तरहके कष्ट भुगते हैं।

> "पुष्करे दुष्करं वारि शस्यहीना वसुन्धरा । विश्रहोपहता लोकाः पुष्करे जलदाधिये ॥" (ज्योतिस्तस्व)

इस पुष्करमेघका आनयन-प्रकार इस प्रकार लिखा है—शाक वर्षमें तीन जोड़ कर उसे चारसे माग दे। भागशेष जो वच रहेगा, उसीके अङ्कानुसार यह स्थिर करना होगा, अर्थात् भागशेषके एक रहनेसे आवसे, दो रहनेसे सम्बर्भ और तीन रहनेसे पुष्करमेघ स्थिर करना होगा।

> "तियुते शाकवर्षे तु चतुर्भिः शोषिते कमात्। आवर्त्तं विद्धि सम्वर्तं पुष्करं द्रोणमम्बुदम्॥" (ज्योतिस्तस्व)

४० विष्णु भगवान्का एक कप। विष्णुकी नाभिसे जो कमल उत्पन्न हुआ था, वह उन्हींका एक अङ्ग था। इसकी कथा हरिवंशमें बड़े विस्तारके साथ आई है। पृथ्वी परके पर्वत आदि नाना भाग इस पद्मके अङ्ग कहे गये हैं। पुष्कर प्राइमीव देखी।

पुकार—भारतवर्षका एक प्रधान तीर्थ और नगर। राज पूतानेके सजमीर-मारवाड़के अन्तर्गत सक्षा॰ २६ दे॰ और देशा॰ ७४ दे६ पू॰ के मध्य अवस्थित है। मारतवर्षके मध्य यहीं पर प्रस्त ब्रह्ममन्दिर देखा जाता है। प्रवाद है, कि ब्रह्मा जब यहां यह करते थे, उसी समय इस मन्दिर-का निर्माण हुआ था। पद्म और नारदादि नाना पुराणोंमें इस पुण्यक्षेतका माहात्म्य वर्णित है।

पद्मपुराणके सृष्टिक्षएडमें लिखा है —

"पद्महस्तोऽपि भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः।
भूप्रदेशे पुण्यराशी यहं कर्तुं व्यवस्थितः॥
अवरोहं पर्वतानां वसे वातीव शोमने।
कमलं तस्य हस्तानु पतितं धरणीतले॥
तस्य शब्दो महानेष पेन यूयं प्रकम्पिताः।
तदासी सुरवृन्देन पुष्पमोदाभिनन्दितः॥

अनुगृह्याथ भगवान् वनं तत् समृगाएडजं। जगतोऽनुब्रहार्थाय वासं तलान्वरोचयत्॥ पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्रे वृषभमेव च। जनितं तद्भगवता लोकानां हितकारिणा॥"

व्रह्मोवाच ।

युषाद्धितार्थमेतद्धि भयं विनिहतं मया। देवतानाञ्च रक्षार्थं श्रयतामत कारणम्॥ असुरो वज्रनाभोऽयं वालजीवापहारकः। अवस्थितस्त्वष्टभ्या रसातलतलाश्रयम्॥ युक्पदागमनं ज्ञात्वा उपस्थान्निहतायुधान्। ह्न्तुकामो दुराचारः सेन्द्रानिप दिवौकसः॥ घातं कमलपातेन मया तस्य विनिर्मितं। स राज्यैश्वर्यदर्पिष्ठस्तेनासौ निह्तो मया॥ लोकेऽस्मिन् समये भक्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः। मैव ते दुगतिं यान्तुं लभन्तां सुगति पुनः ॥ देवानां दानवानाञ्च मनुष्योरगरक्षसां। भूतप्रामस्य सर्वस्य समोऽस्मि बिदिवीकसः॥ युषाद्धितार्थं पापोऽसी मया मन्त्रेण घातितः। प्राप्तः पुण्यक्रतां लोकान् कमलस्यास्य दर्शनात्॥ यसमया पद्ममुक्ते स्तु तेनैवं पुष्करं भुवि। ख्यातं भविष्यते तीर्थं पावनं पुण्यदं महत्॥ पृथिव्यां सर्वजन्तूनां पुण्यदं परिपठ्यते ।" (१५ अ०)

एक समय लोकपितामह भगवान ब्रह्मा हाथमें पद्म लिये पुण्यमूमिप्रदेशमें यह करनेकी इच्छासे एक अति रमणीय पार्वत्य वनमें घुसे। उनके हाथसे वह पद्म पृथिवी पर गिर पड़ा। उसके गिरनेसे ऐसा शब्द हुआ; कि सभी देवता कांप उठे। अनन्तर ब्रह्माने सुरवृन्द-कर् क पुण्यामोदादि द्वारा अभिनन्दित हो अनुप्रहपूर्वक उसी मृगशावक संकुल वनमें रहना पसन्द किया। इसीसे इस स्थानका भगवान लोकहितैषी ब्रह्माने क्षेत्रश्रेष्ठ पुष्करतीर्थ नाम रखा।

ब्रह्माने कहा, मैंने तुम छोगों (देवगण) की महाई और रक्षाके छिये भयको दूर कर दिया है। बालकोंका प्राणहन्ता वंजनाभ नामक असुर रसातलमें रहता था। तुम छोग यहां आये हुए हो, यह उसे मालूम हो गया, सो उस दुएने इन्द्र आदि देवताओंको मार डालनेका विचार किया था। अतपन मैंने कमलपत्रसे उस राज्ये स्वय-दर्पित असुरको मार डाला है। इस जगत्में वेद-

पारग ब्राह्मणोंकी दुर्गति दूर होवे और वे उत्तम गतिकों प्राप्त होवें। हे देवगण! मैं देव, दानय, मनुष्य, उरग, राक्षस और समस्तः भूतव्रामके समान हूं, मेंने तुम लोगोंको भलाईके लिये. हो इस पापिष्ठ असुरका मन्त द्वारा विनाश-साधन किया है। यह कमल देख कर वह असुर भी पुण्यवानोंके लोकको प्राप्त हुआ है। मैंने पन्न निक्षेप किया है, इस कारण भविष्यमें यह स्थान अति पवित्व पुण्यप्रद और महातीर्थ पुष्कर नामसे प्रसिद्ध होगा तथा पृथिवीके सभी प्राणी यहां आ कर अशेष पुण्य लाभ कर सकेंगे।

पुष्करमाहातम्यमें इस तीर्थकी चतुःसीमा इस प्रकार निर्दिष्ट हुई है —

"स एवमुक्त्वा भगवान् ब्रह्मा तैरमरैः सह। क्षेतं निवेशयामास यथावत् कथयामि ते॥ उत्तरे चन्द्रनद्यास्तु प्राची यावत् सरस्तती। पूर्वन्तु तद्वनात् कृत्स्नं यावत् कव्यं सुपुष्करम्॥ वेदी ह्येषा कृता यहे ब्रह्मणा लोककारिणा॥"

उन्हीं भगवान् ब्रह्माने अमरगणके सहित इस प्रकार यथायथ क्षेत्र स्थापन किया है। चन्द्रनदिके उत्तर प्राची सरखती नदी पर्यन्त जो सब वन है उस वनके पूर्व भागको ही लोकस्रष्टा ब्रह्माने यहके निमित्त इस पुष्कर वेदीकपर्मे निर्माण किया था।

पद्मपुराणके सृष्टिखएडमें (१४-२६ अ०) और नारद-पुराणके उपरिभागमें (७१ अध्यायमें) सविस्तार पुष्करक्षेत्र और पुष्करतीर्थका माहात्म्य तथा वहांकी चन्द्रा, नन्दा और प्राची नदी, यज्ञपर्वत, विष्णुपद प्रशृति, एतद्भिन्न ब्रह्मा, सावित्री, चदरो आदि देवमाहात्म्य वर्णित हैं।

यह पुष्करतीर्थं अति प्राचीन है। महाभारतमें भी इस तीर्थका उल्लेख आया है। साञ्चिसे आविष्कृत वौद्ध-शिलालिपिसे जाना गया है, कि ईसा-जनमके तीन सी वष पहले भी यह रूथान तीर्थमें गिना जाता था।

वर्तमान पुष्कर शहरमें ब्रह्मा, सावितों, वद्री नारा-यण, वराह और शिवआत्मातेश्वरका मन्द्रि विद्यमान है। ये सभी मन्द्रि आधुनिक हैं। औरङ्गजेवके प्रभावसे यहाँके:सभी प्राचीन मन्द्रि विध्यस्त हुए हैं। यहांका पुष्करहृद देखने लायक है। इस हृद्के किनारे स्नान करनेके लिये अनेक तीर्थ हैं और राजपूताना-राज-वंशधरोंके विश्रामार्थ प्रासादमाला भी शोभा देती है। इस शहरकी सीमाके भीतर सब प्रकारकी पशुहृत्या निपिद है। कार्त्तिक मासमें जब यहां मेला लगता है, तब लाखसे ऊपर मनुष्य समागम होते हैं। इस समय घोड़े, ऊंट, वैल तथा नाना प्रकारके दृष्योंकी विकी होती है। यहांकी लोकसंख्या चार हजारसे अधिक नहीं होगी जिनमेंसे अधिकांश पोकर्ण ब्राह्मण हैं।

२ एक पुराणका नाम । कमलाकरके निर्णयसिन्धुमें यह पुराण उद्धृत हुआ है ।
पुष्कर—१ भगवनामस्मरणस्तुतिके प्रणेता । २ एक चेरराज । ३ 'रसरतन'-के प्रणेता एक हिन्दी कवि ।
पुष्करक (सं० क्ली०) पुष्करमूल ।
पुष्करकर्णिका (सं० स्त्री०) पुष्करं पद्म कर्णयति साह्रश्येन
प्राम्नोतीति कर्ण-ण्डल्, टापि अत इत्यं । स्थलपद्मिनी ।
पुष्करचूड़ (सं० पु०) लोकालोक पर्वतोपरिस्थत दिग्गजमेद ।

पुष्करजटा (सं० स्त्री०) पुष्करमूल । पुष्करणा (पोकरणा)—एक श्रेणीके ब्राह्मण। ये पञ्च द्राविड़ोंके अन्तर्गत गुर्जर ब्राह्मणोंकी एक शाखा है। इनका भाचार, विचार, खान, पान भी दाविङ्-सम्प्रदाय हीके अनुकूल सदासे चला आता है। अतः ये न तो लशुन, पलाण्डु, गृञ्जन आदि अभस्यका भक्षण करते और न हुका, वीड़ी आदि अपेयका पान हो करते हैं । इनंकी पुरोहिताई-गुरु यजमान वृत्ति, पवांर, भाटी आदि वंशजींके राजा-महाराजाओंकी तथा राठौड़ोंके राजगुर सेवड़ (दम्माणी) पुरोहितों, रतनू चारणों, माटिये-महाजनों, माहेश्वरी वैश्यों आदिकी वहुत प्राचीन कालसे चली आती है । ऐसेही जैसलमेंर, जोधपुर, वीकानेर, किसनगढ़ (कृष्णगढ़) जयपुर, एमनगर, ईंडर आदि राजों महाराजोंके यहां, कुलाचार्यं, पुरो-हित, गुरु, राजदानाध्यक्ष, राजविद्यागुरु, राजंज्योतिषी, राजवैद्य, राज्यरक्षक, राज्यवीहरे, राज्यखामीभक्त, राज्यसन्मानित-जागीरदार आदि एवं राज्य मुसाहिव, मुत्सदी आदिके उच्च पदों पर भी सदासे रहते आये हैं और पूर्ण विश्वास-पात होनेके कारण सच्चे 'खामीभक्त समभे जाते हैं।

इनके पूबज वहुत प्राचीन कालमें सैन्धवारण्य (सिन्धुदेश)में रहते थे। किसी कार्यविशेषके निमित्त वहुतसे ब्राह्मण श्रीमाल नगरमें (जो इस समय भीनभाल कहलाता है) एकत हुए। उनमें सैन्धवारण्यके ब्राह्मण भी थे। वहां पर अन्य ब्राह्मणोंके साथ मतभेद होनेके कारण सैन्धवाण्यवासी ब्राह्मण वहांसे चले गये। उनमें से कितने तो पीछे सैन्धवारण्यमें और कितने मार-वाड़में जा कर वस गये। यह घटना विक्रम संवत् २००-से ३०० वर्ष पूर्वको मानी जाती हैं।

मारवाड़में आनेवालोंके साथ सवका प्रधान पुरुष भी चला आया था, जिसका नाम "पुष्कर ऋषि था।" उसने जोधपुर और जैसलमेरके मध्यवतीं वनमें एक नगर वसाया, जो उक्त ऋषि हीके नामसे "पुष्करण" प्रसिद्ध हो गया। आगे चल कर भाषा-भाषियों द्वारा यह "पीकरण" कहलाने लगा। उसी नामसे यह अद्यावधि प्रसिद्ध है।

उक्त नगर वसनेके वहुत समय पीछे "मैरवा" नामक पक दुए राक्षसके कएसे दुः बी हो सव लोग जहां तहां भाग गए, जिससे वह नगर वहुत समय तक उजाड़-सा पड़ा रहा। फिर विक्रम सम्वत् १६०० के लगभग सुप्रसिद्ध सिद्धपुरुष-त्ंवर राजपूत-वीर "रामदेवजी पोर" अपने पिता अजयसीजीके साथ इस देशमें आये। उस समय यहां राठौड़में मालदेवजीका राज्य था। उनसे आज्ञा ले कर उन्होंने इस नगरको पूर्ववत् उसी "पोकरण" नामसे पोछे आवाद कर दिया। उपरोक्त वृतान्त मुंह-णोत नैणसीने भी अपनी ख्यातके दूसरे भाग—मारवाइ-के जुगराफिया-में विस्तारपूर्वक लिखा है।

इसी प्रकार निद्या शान्तिपुरके संस्कृत कालेजके प्रधान आचार्य श्रोयुत् पिएडत योगेन्द्रनाथ महाचार्य, परः प० डी॰ पलने अपनी पुस्तक "हिन्दूजाति और मत" के पृष्ठ ६६में इस प्रकार लिखा है—

"The Pokarnas are very numerous not only in every part of Rajputana, but in Guzrat and Sindh also. They derive their designation from this town of Pokaran which lies midway between Jodhpur and Jeysulmere. The priests of Pushkar are called Pushkar Sevakas or the worshippers of Lake. The Pokarana Brahmanas have no connections whatever with the holy lake called Pushkar near Ajmer."

अर्थात्—पोकरणे ब्राह्मणींकी संख्या अधिक है। वे केवल राजपूतानेमें ही नहीं, गुजरात और सिन्धमें भी अधिक संख्यामें रहते हैं। उनका यह नाम भी जोधपुर और जैसलमेरके बीचके पोकरन नामसे पड़ा है। पुष्करके ब्राह्मणींका नाम पुष्कर-सेवक (पूजक) है। इन पोकरणे ब्राह्मणींका सम्बन्ध अजमेर समीपस्थ पुष्करक्षेत्र-से विलकुल नहीं है।

अन्यान्य प्रन्थोंमें भी पुष्करणे ब्राह्मणींका जो परिचय दिया गया है, वह इस प्रकार है—

श्रीयुत् पाएडोवा गोपालजीने अपनी जाति-विषयक पुस्तकके पृष्ठ १००में और रेवरेएड शेरिङ्ग साहव, एम० ए० एल० एल० वो-ने अपनी पुस्तक "हिन्दूकास्टस्"-के प्रथम भागके पृष्ठ ६६में, तथा भारतवर्षीय मनुष्यगणनाकी पञ्चीसवीं जिल्द "राजपूताना सर्कलकी रिपोर्ट"-के पृष्ठ १४६ व १६४में पुष्करणे ब्राह्मणोंको पंचद्राविड़ींमें गुर्जर-ब्राह्मणोंका एक भेद माना है।

ब्राह्मणनिर्णय पुस्तकके पृष्ठ ३७९से ३८४ तकमें पुष्क-रण्य ब्राह्मणोंके वृत्तान्तमें लिखा है, कि पुष्करणे ब्राह्मण खान पानसे पवित्र होते हैं।

रिपोर्ट मदु मशुमारी राज्य मारवाड़ तथा तवारीख जैसलमेर आदिने पुष्करणे ब्राह्मणोंके सदुगुणोंकी भूरि भूरि प्रशंसा को है।

सिकन्दरने जिस समय सिन्ध पर आक्रमण किया था, उस समय आलोर वा आरोड़के राजाके पुरोहित पुष्करणे (पोकरणे) ब्राह्मणोंके पूर्वंज थे जो सिन्धि-ब्राह्मण कहलाते थे।

प्राचीन इतिहास लेखक सुप्रसिद्ध मुंहणीत नैणसीने जिन्हें मुतानैणसी भी कहते हैं, वि० सं० १७०५से १७२५ तक कठिन परिश्रम करके एक वृहत् इतिहासका संग्रह किया था। वह इतिहास आजसे २९५ वष पहलेकी मारवाड़ी भाषामें रचित है और "मु हणोतनैणसोकी क्यात" के नामसे प्रसिद्ध है। इस दुर्लभ प्रत्यको काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने हिन्दी भाषामें प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया है। उन्हीं नैणसीने मारवाड़का सवसंग्रह (गजेटियर-जुगराफिया) भी वहुत विस्तारसे लिखा था जो नैणसीकी ख्यातका दूसरा भाग समका जाता है, उसमें इस "पोकरण" नामके प्रारम्भमें पुष्करणे ब्राह्मणोंके पूर्वजोंने श्रीमाल नगरसे आ कर पुष्करणके वसाने, कालान्तरमें "भैरवा" राक्षसके भयसे शूल्य होने, फिर पीछेसे रामदेवजी पीर द्वारा आवाद होने अविका वृत्तान्त विस्तारसे लिखा है।

इन ब्राह्मणोंका नाम "पुष्करणा वा पोकरणा" है और अजमेर समीपवत्ती है उस तीर्थक्षेत्रका भी नाम "पुष्कर वा पोकर" इन दोनों नामोंके कुछ साद्रश्यके भ्रममें पड कर "टाइराजस्थान"-में इन ब्राह्मणोंका सम्बन्ध उस तीथ-क्षेत्र पुष्करसे हैं, ऐसा जो लिखा है सो वड़ी भारी भूल की है। वह भूल प्रन्थकत्तांको ततुसम्बन्धी इतिहास नहीं मिलनेके कारण हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है । ऐसी और-सी भूलें उनसे हो गई हैं जिन्हें इतिहासक्वोंने समय समय पर जता कर उनका संशोधन भी कर दिया है। इस प्रकार पुष्करणों-सम्बन्धी उक्त भूळ "पुष्करणे ब्राह्मणोंको प्राचीनता और टाडराजस्थानकी भूल" नामक पुस्तकर्मे पं॰ मीठालालजी व्यासने सप्रमाण दिखला दी है। यथाधैमें इन ब्राह्मणीं-का सम्बन्ध उक्त तीर्थक्षेत्र पुष्करसे कुछ भी नहीं है, परन्तु जोधपुर राज्यान्तर्गत "पोकरण" नामक नगरसे अवश्य है। (जैसे पालीसे पालीवालींका, साचोरसे साचोरोंका और श्रीमालसे श्रीमालियोंका है) उस पोक-रणमें इन पुष्करणे ब्राह्मणोंके ५००से भी अधिक घर इस

समय भी विद्यमान हैं। पोडण देशो। पुष्करनाड़ी (सं० स्त्रो०) पुष्करं पद्मं नाड़यति सौन्दर्येण भूंशयतीति नाड़-अच, ततो गौरादित्वात् डीण्। स्वलपद्गिनी देखी।

पुष्करनाभ (सं॰ पु॰) पुष्करं पद्मं नामी यस्य ततो अच समासान्तः। पद्मनाभ, विष्णु भगवान्। पुष्करपर्ण (सं क्ही) १ पद्मपत्न, कमलका पत्ता। २ इष्टकभेद, एक प्रकारको ईंट जो यहकी वेदी वनानेके काममें आती थी।

पुष्करपर्णिका (सं० स्त्रो०) पुष्करपर्णी, स्थलपिक्षनी।
पुष्करप्रादुर्माव (सं० पु०) पुष्कराकारः प्रादुर्मावः।
भगवान्की पद्मरूपमें उत्पत्ति। हरिवंशमें इसका विस्तृत
विवरण लिखा है। अति संक्षिप्तभावमें वह नीचे दिया
जाता है।

भगवान् विष्णुने जव इस जगत्की सृष्टि की, तव पहले पञ्चमहाभूत, पीछे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसके वाद भगवान्ने अपने नामिदेशसे एक सहस्रदल हिरणमय पग्न उत्पादन किया। उस पर्में रेणु तो कुछ भी न थी, पर उसकी सदुगन्धसे चारों दिशाएं आमोदित होती थीं और उसकी प्रभा शरत्कालीन भास्करकी तरह समुज्ज्वल थी। सर्वेतत्त्वज्ञ महर्षियोंने उक्त पद्मको नारायणसम्भूत वतलाया है। यही भगवान्का आद्य महापुष्करसम्भव है। इस पद्मके चारों ओर जो सब केशर हैं वही पृथिवीस्थ-असंख्य धातुपर्वत हैं । उसके जो पत ऊर्ध्वगामी है, वे अति दुर्गम शैलव्यात म्लेच्छ देश हैं ; निस्रस्थ पद्मपत्नके अधोभाग विभागकमसे कुछ अंश दैत्योंके और कुछ उरगोंके वासार्थं कल्पित हुए हैं। इसका नाम पाताल है। इस पातालके निम्नदेशमें केवल उदकमय स्थान है। यहीं पर महापातिकगण अव-स्थान करते हैं। इस पद्मके चारों ओर जो जलराशि विद्यमान है, उसका नाम पकाणव है।

सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान्ने इख प्रकारके पद्मकी सृष्टि की थी, इसीलिए महर्पियोंने यहस्थलमें पद्मविधिका उक्लेख किया है। विशेष विशरण हरिन'श २०२ अ० देखो।

पुष्करप्रिय (सं० पु०) १ मधुमिक्षका । २ सोम ।
पुष्करब्राह्मण--- ब्राह्मणमेद । पुष्करण और पोक्रण देखी ।
पुष्करमूल (सं० क्की०) पुष्करस्य मूलमिन मूलमस्य
पुष्करजातं मूलं ना । १ पुष्करदेशप्रसिद्ध औषधिवशेष,
पातालपिक्षनी । हिन्दी भाषामें इसे पिहोकर-मूली
कहते हैं । यह काश्मीरदेशके सरोवरोंमें उत्पन्न
होता है। पर्याय-मूलं, पुष्कर, पद्मपत्नक, पुष्करिणी,

वीर, पौकर, पुष्कराह्वय, काश्मीर, ब्रह्मतीर्थ, श्वासारि, मूलपुष्कर, पुष्करजटा, पुष्करिशका। गुण—कटु, उल्ला, कफ, वात, ज्वर, श्वास, अरुचि, काश, शोध और पाण्डुनाशक। मावप्रकाशके मतसे यह पाश्वशूलनाशक
माना गया है। जल द्वारा शोधन करके इसका ओषधमें व्यवहार किया जाता है,—

"मार्गी" पुष्करमूलंच राख्नां विख्वं यमानिकां ।
नागरं दशमूलंच पिप्पलीं चाप्छु साध्येत् ॥"
(वैद्यक चकपाणिस॰ उचराधिका॰ भाग्याधिका॰)
यह औषधि आजकल नहीं मिलती । वैद्य लोग इसके
स्थान पर कुष्ठ या कुरका व्यवहार करते हैं। २ पद्ममूल।
पुष्करमूलक (सं॰ क्ली॰) पुष्करस्य कुष्ठस्य मूलं ततः
संज्ञायां कन् । १ कुष्ठवृक्षका मूल, कुरकी जड़ । २ पद्ममूल।

पुष्करबीज (सं॰ क्ली॰) पुष्करस्य वीजम् । पुष्करमूल । पुष्करब्याव (सं॰ पु॰) ग्रघ, गीघ ।

पुष्करशान्ति (सं० स्त्री०) अशुभजनक पुष्करयोग होनेसे उसकी शान्ति । पुष्कर देखो ।

पुष्करशायिका (सं० स्त्री०) प्लवजातीय जलविहङ्गम-भेद, एक प्रकारका जलचर पक्षी। यह पक्षी सङ्घातचारी होता अर्थात् दलवद्ध हो कर विचरण करता है।

पुष्करशिका (सं० स्त्री०) पुष्करस्य शिका जेटव । पुष्कर-मूल ।

पुष्करसद् (सं॰ ति॰) पुष्करे सीदिति सद्-िकप्।१ जो कमछ पर वास करते हों। (पु॰) २ गीलप्रव-र्चक ऋषिविशेष, गोलप्रवर्त्तक एक ऋषि।

पुष्करसागर (सं॰ पु॰) पुष्करमूल । पुष्करसाद (सं॰ पु॰) पुष्करं पद्मं सीदति सद-अण्। कमलमक्ष पक्षिविशेष, कमल खानेवाली एक प्रकारकी चिड्रिया।

पुष्करसादि (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।
पुष्करसारिन (सं० पु०) मुनिभेद, एक मुनिका नाम।
पुष्करसारी (सं० स्त्रो०) लिपिभेद, ललितविस्तरमें
गिनाई हुई लिपियोमेंसे एक।

पुष्करस्थपति (सं० पु०) महादेव, शिव । पुष्करस्रज् (सं० पु०) पुष्करस्य पद्मस्य स्नक् ययोरिति । १ अश्विनीकुमार तुत्य, अश्विनाकुमारके समान । पुष्कराक्ष (सं॰ पु॰) पुष्करवदक्षिणी यस्य (अक्ष्णोऽदश-नात् । पा ५।४।७६) इति अच् । १ विष्णु । "पुष्कराक्ष ! निमम्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे । वाहि मां देवदेवेश त्वत्तो नाम्योऽस्ति रक्षिता ।"

(तिथितत्व)

२ श्रीकृष्ण । ३ सुचन्द्रके एक पुतका नाम । ४ काम्बोजके एक हिन्दू राजा । (ति॰) ५ पवातुल्य नेतः जिसकी आंखें कमलके समान हों।

पुष्कराख्य (सं॰ पु॰) पुष्करस्य पद्मस्य आख्या इति आख्या यस्य । १ पुष्कराह्म्य, कुष्ठौषघ, कुट नामक ओषधि । २ पद्मतुल्य नामक सारस ।

पुष्कराङ्कित (सं० क्वी०) पुष्कराङ्किति जायते जर-ड। पुष्करमूळ, कुछौषध।

पुष्करावि (सं०पु०) इनि-प्रत्यय-ितिमत्तक शब्दगणभेव । गण यथा—पुष्कर, पद्म, उत्पल, तमाल, कुमुद, नड़, किपत्थ, विष, मृणाल, कर्दम, शालूक, विगर्ह, करीष, शिरिष, यबास, प्रवाह, हिराय, कैरव, कल्लाल, तट, तरङ्ग, पङ्कज, सरोज, राजीव, नालीक, सरोवह, पुरक, अरविन्द, अम्मोज, अन्ज, कमल और पयस।

पुष्करादिचूण (संक्क्षी) चूर्णीषधमेत्। इसकी प्रस्तुत प्रणाली यों है—पुष्कर (कुट), अतीस, दुरालमा, कर्कट-श्रङ्की और पीपल इन सब चीजोंका बराबर भाग ले कर चूर्ण करे। बाद उस चूर्णका बहुत थोड़े परिमाणमें मधुके साथ सेवन करनेसे बचोंका पञ्चविध कास रोग जाता रहता है।

पुष्काराद्य (सं॰ क्की॰) पुष्करमूल । पुष्कराद्या (सं७स्त्री॰) स्थलपदमिनी ।

पुष्कावणि (सं॰ पु॰) पुरुवंशीय दुरितक्षय राजाके तृतीय

पुत ।
पुष्करावती (सं० स्त्री०) पुष्कराणि सन्त्यत, मतुप्,
मस्य व, दीर्घश्च । १ नदीसेद, एक नदीका नाम । २ एक
नगरका नाम । पुष्कलावती देखी । ३ दाक्षायणीकी
एक मूर्ति ।

पुष्करावर्त्तक (सं॰ पु॰) पुष्करं जलमावर्त्तयित, आ-वृत-णिच्-अण् तत उपपदसमासः । मेघाधिपतिभेद, मेघ-नायकविशेष, मेघोंके एक विशेष अधिपति । पुष्कराह्व (सं० पु०) पुष्करस्य आह्वा इति आह्वा यस्य । १ सारस पक्षी । पुष्करं आह्वा यस्य । २ पुष्करमूल । पुष्कराह्वय (सं० क्षी०) पुष्करं आह्वयो यस्य । पुष्करमूल । पुष्करिका (सं० क्षी०) पुष्करं तदाकारोऽस्त्यस्य ठन्, टाप् । शूकदोष निमित्त रोगमेद, पीडका विशेष, एक रोग जिसमें लिङ्गके अप्रमाग पर फुंसिया हो जाया करती है। पित्त और रक्तके दूषित होनेसे थे सव फुंसियां उत्पन्न होती हैं। इसकी चिकित्सा—इस रोगमें शीतल क्रिया विशेष हितकर है। उस स्थान पर जहां पुष्करिका हुई हो, जलीक (जोंक) द्वारा रक्तमोक्षण करा कर इत सेचन करनेसे यह रोग जाता रहता है।

(सुश्रुत चिकि० २१ अ॰)

भावप्रकाशके मतसे इसका स्थण-शिश्च देशमें पत्रकाणकाकी तरह जो छोटी छोटी पीड़का अर्थात् फुंसियाँ होती हैं उसे पुष्करिका कहते हैं। यह रोग पित्त तथा रक्तसम्भृत है।

पुष्करिणी (सं० स्त्री०) पुष्करवत् आकृतिरस्त्यस्या इति पुष्कर इनि, ततो डीप्। १ स्थलपिश्वनी। २ पुष्करमूल । पुष्करं शुण्डादण्डस्तदस्त्यस्या इति इनि। ३ हस्तिनो। ४ सरोजिनी। पुष्कराणि पश्चानि सन्त्यन्त्रेति इनि। ५ जलाशय, शतधनुःपिगित समंचतुरस्र जलाधार, पोखरा। पर्याय—खात, जलकूपी, पौष्करिणी। कृप, वापी, पुष्करिणी और तड़ागके भेदसे जलाशय चार प्रकारका है। किसी किसीके मतसे इसके भी आठ भेद हैं, यथा—कृप, वापी, पुष्करिणी, दीर्धिका, द्रोण, तड़ाग, सरसी और सागर। यह जलाशय खननसाध्य है अर्थात् खोद कर तैयार करना होता है। जो जलाग्य जत्तर और दिश्वणमें सौ धनु अर्थात् चार सौ हाथ लक्ष्या हो, उसे पुष्करिणी कहते हैं। यह पुष्करिणी जिस समय प्रस्तुत करनी होती है, उसके पहले वास्तुयाग करना कर्तव्य है।

पुष्करिणी सननके पहले यदि वास्तुयाग न भी किया जाय, तो कोई हर्ज नहीं, पर पुष्करिणी-प्रतिष्ठाके समय वास्तुयाग अवश्य कर्तथ्य है। आरम्भ वा प्रतिष्ठाके समय समय वास्तुयाग करना ही होगा, नहीं करनेसे पापभागी

हाना पड़ेगा और वह पुष्करिणी शुभदायिनी नहीं होगी। पुष्करिणीका आरम्म वा प्रतिष्ठा ज्योर्तिषोक शुभदिनमें करनी होती है, अशुभ दिनमें कदापि नहीं।

ज्योतिषमें इसके दिनका विषय इस प्रकार छिखा है,—विशुद्धकालमें अर्थात् जव वृहस्पति और शुकके वाल्यास्तादि-जनित अकाल न हो, ऐसे कालमें तथा दक्षिणायनमें पुष्या, अनुराधा, हस्ता, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, पूर्वायाढ़ा, मघा, मृगशिरा, ज्येष्ठा, श्रवणा, पूर्वभाद्रपद, अश्विनी और रेवतीनक्षतमें एवं शुक्कपक्षकी प्रतिपद, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णमा तिथिमें, सोम, वृहस्पति और शुक्रवारमें, शुभयोग और शुभकरणमें, दशयोगभङ्ग आदि नहीं होने पर तथा कम-कर्त्ताकी चन्द्र और ताराशुद्धिमें पुष्करिणीका आरम्भ वा प्रतिष्ठा करें। प्रतिष्ठाकालीन यदि विशुद्ध दिन न पाया जाय, तो संकान्तिमें प्रतिष्ठा की जा सकती है।

पुष्करिणी आदि जलाशयकी प्रतिष्ठा करनेसे अशेष पुण्य प्राप्त होता है। जो जलदानके लिये पुष्करिणी खुदवा देते हैं, उन पर विष्णु भगवान वड़े प्रसन्न होते हैं। अन्तमें उन्हे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो पुष्क-रिणी खुदवानेके लिये भूमिदान करते हैं, वे वरुणलोक-को जाते हैं।

"संक्षेपातु प्रवक्ष्यामि जलदानफलं श्रणु । पुष्करिण्यादिदानेन विष्णुः प्रीणाति विश्वधृक्॥" जलाशयकरणार्थं भूमिदान-फलमाह चित्रगुप्तः— "जलाशयाथ यो दद्यात् वारुणं लोकमुत्तमम् । भूमिरिति शेपः ।" (जलाशयोरसर्गतस्व)

जो पुष्करिणी प्रतिष्ठित नहीं है उसके जलसे पूजा वा तर्पणादि, दैव वा पैत्रा कोई भी काम नहीं करना चाहिये। इस कारण पुष्करिणी खनन करनेके वाद ही सबसे पहले उसकी प्रतिष्ठा विधेय है।

"यचासर्वाय नोत्सृष्टं यचाभोज्य निपानजं। तद्वज्जै सिक्टिलं तात! सदैव पितृकर्मणिः॥" (शाह्वकतत्त्व)

माघ, फाल्गुन, चैंत, वैशास, ज्येष्ठ और आपाढ़मांस-में पुष्करिणीको प्रतिष्ठा की जा सकती है। पुष्करिणी V.ol. XIV 55 यदि सर्वभूतोई शसे प्रतिष्ठित हो, तो उसके जलमें सर्वो-का खत्व रहता है। प्रतिष्ठित पुष्करिणीमें प्रतिष्ठाता किसीको भी खानादि करनेसे रोक नहीं सकते। उस पुष्करिणीका जल नद्यादि जलके समान सभी अपने अपने काममें ला सकते हैं।

मिताक्षरामें लिखा है—"अतपव जलाशयोत्सर्गमुप्-क्रम्य मत्स्यपुराणेऽपि 'शाप्तोति तद्यागवलेन भूयः' इति यागत्वेनाभिहितं, ततश्च तज्जलं खखत्वदूरीकरणेन नद्या-दिवत् साधारणीकृतं । अतपव—

'सामान्यं सर्वभूतेग्यो मया दत्तमिदं जलं। रमन्तु सवभूतानि स्नानपानावगाहनैः॥ इति मन्त्रिंगेनोपादानं विना कस्यापि स्नत्वमिति।" इत्यादि।

जहां लोगोंको जलका किए होता है, वहां जो पुष्क-रिणी खुदवाते हैं, उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यदि कोई पुरातन पुष्करिणीमेंके पंकको फेंकवा दे अथवा घाट वंधवा दे, तो उसे भी अशेष पुण्य होता है। ऐसे व्यक्ति कभी भी जल-कप्ट नहीं पाते, वे सभी प्रकारकी तृष्णासे विमुक्त होते हैं। पुक्तरिणी और वाणी आदि खनन करके जब उसकी प्रतिष्ठा की जाती है, तब उसके प्रत्येक जलविन्द्रसे शतवर्षावच्छित्र स्वर्गलाभ होता है।

इस कारण हिन्दूमालको ही पुष्करिणी आदि खनन करके उसकी प्रतिष्ठा करना अवस्य कर्त्तध्य है।

(जलाशायोरसर्गतस्य)

जलाशयादिका विषय और उसकी व्यवस्था जला-शयोत्सर्गतत्त्व और ज्योतिस्तत्त्वमें विशोषक्षपसे लिखा है। अति संक्षिप्त भावमें उसका मर्मार्थ यहां पर प्रद्-र्शित हुआ।

पुष्करिन् (सं॰ पु॰) पुष्करं शुण्डाश्रमस्त्यसा इनि । गज, हाथी ।

पुष्करी (हिं० पु०) पुष्करिन देखी।

पुकरह (संक्ष्ठीक) पुक्रसूल।

पुष्कर्ण-मारवाड और सिन्धुप्रदेशवासी ब्राह्मणमेद ।

पुरुष्णा देखो ।

पुष्कल (सं० क्की०) पुष्पति पुष्टिं गच्छत्यनैनेति पुष-कलन् (कलंश्व। उण् ४।५) स.च कित्। १ प्रामचतुष्टयात्मक मिक्सा,

चार प्रामकी भिक्षा। २ अन्तमानभेद, अनाज नापनेका एक प्राचीन मान जो ६४ मुट्टिगोंके वरावर होता था। (पु०) ३ असुरभेद, एक असुर। ४ रामानुज भरतके एक पुत्त, रामके भाई भरतके दो पुतोंमेंसे एक। ५ वरणके एक पुत्र। ६ एक बुद्धका नाम। ७ एक प्रकारका होल। ८ एक प्रकारकी वीणा। ६ शिव, महादेव। (ति०) पुष्करं महत्त्वं लातीति ला-क, वा पुष्कं मुष्टिमईति, वा तद स्त्यस्पेति (विद्यादिस्ग्यच। पा ३।१।४८ इति छच्) १० श्रेष्ठ। ११ प्रचुर, अधिक, बहुत। १२ परिपूर्ण, भरापूरा। १३ उपस्थित। १४ पविता।

पुष्कलक (सं० पु०) १ गन्धमृग, कस्तूरीमृग । २ क्षपणक । ३ कील ।

पुष्कलावत (सं० पु०) उत्तरस्थ देशमेद । पृष्टलावती देखी ।
पुष्कलावती—गान्धार-राज्यकी प्राचीन राजधानी । विष्णु
पुराणके मतसे रामके भ्रातुष्पुत (भरतके पुत्र) पुष्कल
ने यह नगर वसाया और उसीके नामानुसार इस स्थानका नाम पुष्कलावती पड़ा।

जिस समय अलेकसन्दर (सिकन्दर)-ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, उस समय तक भी इस स्थानकी गिनती गान्धारप्रदेशके एक प्रधान नगरमें थी। अलेक-सन्दरके सहगामी पेतिहसिक परियनने Pecukelae (पेकुकेले) और रलेमीने I roklais आदि नामोंसे इसका उल्लेख किया है। अपरापर ग्रीक ग्रन्थोंमें Peukelao tis वा Peucolaitis नामसे यह स्थान वर्णित हुआ है। अधिवासिवुन्दको दोनिसियस-पिरिगेतिस यहांके Peukalei नामसे उल्लेख कर गए हैं। परियनका लिखना है, कि यह नगरी वहुत वड़ी थी और सिन्धुनदी-से थोड़ी दूर पर थी। यहां वहुतसे मनुष्योंका वास था और हस्ती (Astae) एक सामन्तराजकी राजधानी-थी। वे अपने दुर्गंकी रक्षा करनेमें ३० दिन अवरोधके वाद् अलेकसन्दरके सेनाध्यक्ष हेफिएियन द्वारा मारे गए। अलेकसन्दरने उनके लड़के सञ्जय (Sangaeus)-को पितृराज्य पर अभिषिक किया।

क्षीं शतान्त्रीमें जब चीनपरिवाजक गृपनचुनङ्ग इस नगरमें आप थे, उस सम्य भी यहां बहुत महुन्य रहते थे। नगराम्यन्त्रस्थ द्वारके साथ पक सुड़ङ्ग छगा हुआ था। चीनपरिवाजकने यहां हिन्दू-देवमन्दिर और अशोकराज- निर्मित वौद्धस्तूप देखे थे। उनकी वर्णनासे जाना जाता है, कि यहां अनेक महापुर्व आविर्मूत हुए थे। उनमेंसे उक्त स्थानमें रह कर आचार्य वंसुमितने 'अभिध्यम्प्रकरणपादशास्त्र' और धर्मतातने 'सम्यक्ताभिधर्म-शास्त्र' प्रणयन किये। पेशावरसे १८ मील उत्तर स्वात और कावुल नदीके सङ्गम पर हस्तनगर नामक जो प्राचीन ग्राम वसा है, पुरावित् कनिहमने उसीको प्राचीन पुष्कलावतो वतलाया है।

पुष्कलेत (सं॰ पु॰) काश्मीरका एक नगर। इसी नगरमें जयापीड़के साथ कान्यकुन्जाधिपतिका वहुत दिनीं तक संग्राम दुशा था।

पुष् (सं० ति०) पुष-क । १ इतपोपण, पोषण किया हुआ, पाला हुआ। पर्याय—प्रतिपालित, पुषित, पत। २ वलवर्द्ध क, मोटाताजा करनेवाला। ३ वलिष्ठ, मोटा ताजा, तैयार। ४ दृढ़, पक्का, मजबूत। (क्की०) भावे का। ५ पुष्टि, पोषण। (पु०) ६ विष्यु।

पुर्प्ड (हिं॰ स्त्री॰) वलवीर्यंवद्ध क औषघ, पुष्ट करनेवाली आपघ, ताकतकी दिवा ।

पुष्रता (सं॰ स्त्री॰) १ द्रढ़ता, पोढ़ापन । २ मजदूती, मीटा ताजापन ।

पुष्टताड़ित--(Positive Electricity) ताड़ितकी वियो जनशक्ति ।

पुण्यति (सं॰ पु॰) पुष्टानां पितः। गुणपूर्णं मनुष्यके खामी। पुण्यवत् (सं॰ ति॰) पुष्टं पोपणं कार्यत्वेनास्त्यस्य मतुप् मस्य व, वेदे दीर्घः। पोषणकर्त्तां, पालनेवाला।

पुष्टि (सं० स्त्री०) पुष भावे किन् । १ पोषण । २ वृद्धि, सन्तितिकी वढती । ३ पोड्रा मातृकाके अन्तर्गत गणदेवता विशेष, सोलह मातृकाओंमेंसे एक । वृद्धिश्राद्धके अन्तर्गत पष्टी-मार्कण्डेय पूजादिमें गौरी और पुष्टि-प्रभृति गणदेवताकी पूजा करनी होती है । ये दक्षकन्याओंकी अन्यतमा थीं । ४ खद्दाविशेष, मंगला विजया आदि आठ प्रकारकी चारणाइयोंमेंसे एक ।

"मङ्गला विजया पुष्टिः क्षता तुःष्टिः सुखासनं । प्रचएडा सर्वेदोभद्रा बहुानामार्थ्यं विदुः॥" ५ तन्त्रोक चन्द्रकलाका नामान्तर । "अमृता मानदा पृषा पुष्टिस्तुष्टि रतिष्ट्रं तिः । शशिनी चन्द्रिका कान्तिन्पॅरिका श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥ पूर्णा पूर्णामृता काम-दायिन्यः शशिनः कलाः॥" (हदयामल)

६ धमकी पित्रयोंमेंसे एक । ७ योगिनीमेद, एक योगिनो । ८ अश्वगन्था, असगंध । ६ विलिष्ठता, मोटाताज्ञापन । १० वातका समर्थन, पक्कापन । ११ दूढ़ता, मजबूती । १२ वृद्धि नामक ओषि । पुष्टिक (सं० पु०) एक कविका नाम । पुष्टिकर (सं० बि०) पुष्टि-कृ-ट । १ पुष्टिकारक, पुष्ट करने-वाला, ताकत देनेवाला । २ स्थूलतासम्पादक, वल-वीण्यद्धिक ।

पुष्टिकरी (सं॰ पु॰) गङ्गा ।

पुष्टिकर्मन् (सं० ह्रो०) पुष्ट्यर्थं कर्म। पुष्टि निमित्तक कार्य, पुष्टिके लिप काम।

पुष्टिका (सं॰ स्त्री॰) पुष्टाँ कं जलं यस्याः। जलगुक्ति, जलकी सीप, सुतही, सोपी।

पुष्टिकान्त (सं॰ पु॰) पुष्टेः कान्तः । गणाधिप, गणेश । पुष्टिकाम (सं॰ ति॰) पुष्टाभिलापी, जो पुष्टिकी इच्छा रखते हों।

पुष्टिकारक (सं० ति०) वल्रचीर्यकारक, पुष्टि करनेवाला । पुष्टिगु (सं० पु०) ऋग्वेदके एक ऋषि । ये ८।५१ ऋक्-के ऋषि थे ।

पुष्टिद (सं॰ ति) पुष्टिं बदाति दा-क। पोषणकारक, पुष्टि देनेवाला।

पुष्टिद्ग्धयल (सं० पु०) आगके जलेको आगसे ही सेंक कर या किसी प्रकारका गरम गरम छेप करके अच्छा करनेकी युक्ति।

पुष्टिदा (सं० स्त्री०) १ अश्वगन्धा, असगंध । २ वृद्धि नामकी ओषधि । ३ पुष्टिदाती, पुष्टिदेनेवाली ।

पुष्टिदाचन् (सं० ति०) पुष्टिदायक, पुष्ट करनेवाला । पुष्टिपति (सं० पु०) १ अग्निमेद, अग्निका एक मेद्र। २ सरस्वती ।

पुष्टिमत् (सं० ति०) पुष्टि-मतुप्। पोपकृत्, पुष्टियुक्त। पुष्टमति (सं० पु०) अग्निमेद, अग्निका एक भेद्। इस अग्निके तुष्ट होने पर यह पुष्टि प्रदान करती है। पुष्टिमार्ग (सं० पु०) वल्लभसम्प्रदाय, वल्लभाचायके मतानुक्ल वैष्णव मित्तमार्ग । पुष्टिमार (सं० ति०) पुष्टिघारक, वल्लवीर्यकारक । पुष्टिवर्द्ध न (सं० ति०) पुष्टिवर्द्ध नकारो, ताकत वढ़ाने- वौला ।

पुष्तू—अफगानिस्तानकी अनेक जातियां, जिस एक भाषामें वोलचाल करती हैं, साधारण वही भाषा पुष्तू या अफ गानी कहलाती हैं। पुन्तू भाषाके अभिधान-लेखक कप्तान ब्लामाटींका कहना है, कि काबुल, कन्धार, शरावक और पिविनमें जो रहते हैं, वे वर-पुष्तुन वा अफगान और जो मारतके निकट रोह जिलेमें रहते हैं, वे लर-पुजतुन वा छोटे अफगान कहलाते हैं। अफगानिस्तानमें राजकीय सभी कर्मोंमें पारसीभाषाका व्यवहार होने पर भी यहांके लोग साधारणतः इसी पुष्तू भाषाको काममें छाते हैं। अफगानीमें पुष्तुन और पुखतुन, यही दो भाग देखे जाते हैं। पुष्तुन लोग पुष्तू भाषाका और पुखतुन पुक्तू भापाका व्यवहार करते हैं। पुन्तू प्रतीच्य-भाषा है। यह पारसी भाषाके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है। कन्थारके दक्षिण पिषिण उपत्यकासी ले कर उत्तर काफ़िस्तान-पर्यन्त पुप्तू भाषा और पश्चिममें हेळ-मन्द नदीके किनारेंसे छे कर पूर्वमें सिन्धुनदीके तीरवर्ती अटक-पर्यन्त पुक्तू भाषा प्रचलित है। ११वीं शताव्हीमें महमूद गजनीके भारताक्रमणके वादसे अनेक अफगान अपनी जन्मशूमि छोड़ कर भारतमें भा कर वस गये। इनमेंसे वहुतेरे जातीय भाषाके साथ भारतीय-भाषाका व्यवहार करते हैं। किन्तु ऐसे अनेक परिवार देखे गये हैं, जो बहुकाल भारतवासी होने पर भी अविकृत भावमें शुद्ध पुष्त्भाषाका ध्यवहार करते हैं। बुन्देलखएडके किसी किसी अंशमें और रामपुरके नवावके राज्यमें पेसे परिवारींकी संख्या थोड़ी नहीं है। रामटीं साहवके मत-से सेमितिक और इराणीय भाषाके साथ पुष्तु-भाषाका सौसादृश्य रहने पर भी यह संस्कृतादि आर्यभाषासे विलक्कल पृथक् है। अफगामिस्तानमें सभी जगह पारसी-भाषा देखी जाती है। सभी उच परिवार उसी भाषामें बोळचाळ करते हैं और उसी भाषामें लिखते पढ़ते भी हैं। प्रजा भी उस पारसी भाषाके जानकार हैं, पर वे

जातीय भाषा पुष्तुका व्यवहार करना ही पसन्द करती हैं। इस भाषामें लिखे हुए उनके एक दो प्रत्य भी हैं जो केवल उपाक्यानादिसे परिपूर्ण हैं, उच्चतत्त्वम्लक एक भी प्रन्थ नहीं है। ज्योतिष, चिकित्सातत्त्व, इतिहास आदि सीखनेकी इच्छा होनेसे उन्हें पारसीकी सहायता लेनी पड़तो है।

पुष्प (सं० क्षी०)पुष्यति विकसति यः, पुष्प विकाशे अच् । तरुवतादिका प्रसव, फूछ। संस्कृत पर्याय—प्रस्न, कुसुम, सुमनस्, स्न, प्रसव, सुमन। देवपूजाके लिये पुष्प-चयन हिन्दूमातका हो कर्च ध्य है। किस किस देवताके कौन कौन पुष्प प्रिय हें और फिस देवताकी किस पुष्पसे अर्चना नहीं करनी चाहिये, उसका विषय वहुत संक्षेपमें लिखा जाता है।

पुष्प शब्दकी नाम-निरुक्तिमें ऐसा लिखा है,—
"पुण्यंसंबद्ध नाचापि पापौघपरिहारतः ।
पुष्कलार्यंप्रदानाच पुष्पमित्यभिघीयते ॥"
(कुलार्णंव)

यह पापोंको दूर करता और पुण्यको वढ़ाता है तथा पुष्कलार्थ है, अर्थात् श्रेष्ठार्थ प्रदान करता है, इससे इसका पुष्प नाम पड़ा है। स्नान करके पुष्प तोड़ना मना है। "स्नानं कृत्वा तु ये केचित् पुष्पं चिन्चन्ति मानवाः। देवतास्तन्न गृह्णन्ति भस्मीभवति काष्ठवत्॥"

(आह्रिकतत्त्व)

स्नान करके यदि कोई पुष्प तोड़े, तो देवता उसे
प्रहण नहीं करते। इस स्नानका मतलव प्रातःस्नान
नहीं, मध्याहस्नान है। प्रातःस्नान करके पुष्प तोड़
सकते हैं, इसमें दोय नहीं। क्योंकि वचनान्तरमें मध्याहस्नानका हो परकाल निषिद्ध हुआ है। स्यॉद्यके पहले
जो अतैल स्नान है, वही प्रातःस्नान है। स्यॉद्यके वाद
सतेल वा अतेल दोनों ही स्नानको मध्याह कहते हैं।
पूर्वोक्त वचनका तात्पर्य यह है, कि मध्याहस्नान अर्थात्
स्र्योंद्यके वाद स्नान करके पुष्प न तोड़े।

"स्नात्वा मध्याहसंमये न छिन्यात् कुसुम नरः। तत्पुष्पैरच्चेने देवी! रौरवे परिपच्यते॥" (स्वृति) मध्याहकालमें पुष्प तोड़ करं यदि उस पुष्पसे देव-पूजा की जाय, तो रौरव नरक होता है।

प्राताकां छमें प्राताकृत्यादि समाप्तं करके पहले शुचि हो ले, तब पुष्पं तोड़े। देवपूजा करनेवाले यदि खर्य पुष्प तोड़ें, तो विशेष फल है। दूसरोंसे तोड़े हुए पुष्पसे भी पूजा की जा सकती है।

देवपूजामें वर्जनीय पुष्य क्रिमिसिमिस पुष्य, विशोण, भग्न, उद्गत, सकेश, मूधिकाधृत, याचित, परकीय, पट्यु पित, अन्त्यस्पृष्ट और पदस्पृष्ट इन सव पुष्पोंसे देव-पूजा नहीं करनी चाहिये। ऐसे पुष्पों द्वारा देवपूजा करनेसे देवता प्रसन्न नहीं होते।

"पुःपञ्च क्रमिसम्भिन्नं विशोणं मनमुद्धतं । सक्तेशं मूपिकावृतं यत्नेन परिवर्ज्जयेत्॥ याचितं परकोपञ्च तथा पर्ध्यु पितञ्च तत्। अन्त्यस्पृष्टं पदास्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत्॥"

(कालिकायु॰)

देवताके पुरोमागमें पुष्प द्वारा पूजा करनी होती है। "निवेदयेत् पुरोमागे गन्धं पुष्पञ्च मूवणं।"

(पकादशीतस्त्र)

जा सब पुंरुष खर्य पतित होते हैं अर्थात् आपसे आप जमीन पर गिर पड़ते हैं, वैसे पुग्पोंसे देवपूजा न करे। "खर्य पतितपुष्पणि त्यजेद्दपहितानि च।"

(एकाव्शीतस्व)

देवताविशेषमें वर्जितपुष्प-कुन्दपुष्प द्वारा शिवकी, उन्मत्तक पुष्प द्वारा विष्णुकी, अर्क और मन्दार द्वारा स्त्रो देवताकी तथा तगरपुष्प द्वारा सूर्यकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

"शिवे विवञ्जयेत् कुन्दमुन्मत्तञ्च हरी तथा । देवीनामर्कमन्दारी सूर्यस्य तगरन्तथा ॥" (एकादशीतत्त्वमें शातातप)

पुष्प खरीद कर पूजा न करे। परन्तु यदि धर्मार्जित धन द्वारा पुष्प खरीद कर पूजा की जाय, तो उससे देव-गण प्रीत होते हैं।

शेफालिका और कहार ये दोनों पुण्य शरंत्कालकी
पूजामें अति प्रशस्त हैं। शरत् भिन्न अन्य ऋतुमें उस
पुष्प द्वारा पूजा करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है। रक्तकृष्ण और उन्न गन्धिपुष्प तथा करवीर और बन्धुजीव
पुष्प द्वारा पूजा नहीं करनी चाहिये।

"शैफालिका तु कहारं शरन्काले प्रशस्यते । अन्यतं न स्पृशद्धे वि! प्रायश्चित्तन्तु पूजनात् ॥"
(मत्स्यस्क १४)

जो पुष्पवृक्ष दूसरेका रोपा हुआ है, उससे अनुमति लिये विना पुष्प तोड़ कर यदि देवपूजा की जाय, तो वह पूजा निष्फल होती है।

"परारोपितवृक्षेम्यः पुष्पमानीय योऽर्ज्ययेत् । अनुज्ञांप्य च तस्यैव निष्फलं तस्य पूजनं ॥"

यह नियम ब्राह्मणके लिये नहीं वतलाया गया है, पर ब्राह्मण भिन्न अन्य वर्णके लिये। ब्राह्मण दूसरेके वगीचे-से बिना मालिकको अनुमतिके पुष्प तोड़ कर उससे देव-पूजा कर सकते हैं, इसमें कुछ भी दोष नहीं। क्योंकि मनु आदि संहितामें लिखा है, देशर्थकप्रम वयन अत्तेय' इसीसे उस पुष्पका ब्राह्मण अपने जैसा व्यवहार कर सकते हैं। यदि ब्राह्मणेतर वर्ण बिना मालिकको अनुमतिके पुष्प तोड़े, तो राजा उसे शिरच्छेदन द्एड दे सकते हैं।

देवताके उपरिस्थित पुष्प, मस्तकोपरि धृत पुष्प, अधीवस्त्रधृत और अन्तर्जलप्रशालित पुष्प हुष्ट पुष्प है अर्थात् ऐसे पुष्पसे देवपूजा निविद्ध है।

पुष्प हाथमें ले कर किसीको भी अभिवादन करना नहीं बाहिये और जिसके हाथमें पुष्प रहेगा, उसे भी अभिवादन करना निषिद्ध हैं।

याचित पुष्प और क्रयकीत पुष्प द्वारा देवपूजा निष्फल हैं। परन्तु चीरचत् क्रय अर्थात् मुंहमांगा दाम दे कर जी पुष्प खरीदा जा सकता है उससे पूजा की जा सकतो है। ब्राह्मणकी उचित हैं, कि वे अपनेसे फूल तोड़ कर पूजा करें। यदि वे शूद्रके लाये हुए फूलसे पूजा करें, तो उन्हें पतित होना पड़ता है। यह नियम ब्राह्मण-के निज घरके लिये हैं। यदि ब्राह्मण किसी शूद्रके घर पूजा करने जांय, तो शूद्राहत पुष्प द्वारा पूजा करनेमें कोई दोप नहीं होगा।

देवगण पुष्प द्वारा जैसा प्रसन्न होते हैं, और किसी भी द्रव्यसे वैसा प्रसन्न नहीं होते।

"न रत्नैर्न सुवर्णेन न वित्तेन च भूरिणा। तथा प्रसादमायाति यथा पुष्यैर्जनाई नः॥" (स्पृति) पर्युषित पुष्पसे पूजा नहीं करनी चाहिये, यह पहले १०। ১। V 56 ही कहा जा चुका है। कौन पुष्प कितनी देखे वाद पर्युपित होता है, उसका विषय नीचे लिखा जाता है।

श्वेत और रक्तवर्ण पद्म, कुमुद और उत्पल ये सब पुष्प पांच दिनोंके वाद पर्युपित होते हैं।

"पश्चानि सितरकानि कुमुदान्युत्पलानि च । एषां पर्युपिता शङ्का कार्या पश्चदिनोत्तरं ॥"

(पकादशीतत्त्व भविपापु॰)

काल विशेषमें निम्नलिखित पुष्प पर्युपित होते हैं। जातीपुष्प एक प्रहर, मिलका अद्धंपहर, मुनिपुष्प तीन-प्रहर और करबीर पुष्प एक दिनके वाद पर्युषित होता है।

"महरं तिष्ठते जाती महराद्ध न्तु मिक्का । वियामं मुनियुष्पञ्च करवीरमहर्निशः॥" (स्मृति)

तुलसी, अगस्त्य और विस्व ये पर्युषित नहीं होते। माध्य, तमाल, आमलकी वल, कहार, तुलसी, पद्म, मुनिपुष्प और सव पुष्प कलिकात्मक अर्थात् प्रस्फुटन-योग्य हैं, वे पर्युषित नहीं होते।

"तुलस्यगस्त्यविस्त्रानां न च पर्युषितात्मता।" योगिनीतन्त्रमें---

"विस्वपतञ्च माध्यञ्च तमालामलकीद्रलं। कहारं तुलसीञ्चैव पदमञ्च मुनियुष्यकं॥ यतत् पर्युषितं न स्यात् यञ्चान्यत् कलिकातमकं। कलिकातमकं प्रस्फुटनयोग्यं॥" (एकादशीतस्य)

राघवभट्टके मतसे पुष्पिवशेषके कालिक पर्युधितस्त्र-का विषय इस प्रकार लिखा है। विस्व, अपामार्ग, जाती, तुलसी, शमी, शतावरी, केतकी, भृङ्ग, दूर्वा, मन्दार, अम्भोज, नागकेशर, दर्भ, अगस्त्य, तिल, तगर, ब्रह्म, कहार, मही, चम्पक, करवीर, पाटला, दमनक और महवक ये सव पुष्प दिनोत्तर पर्युधित हैं।

"विल्वापामार्गजाती तुलसिशमिशताकेतकीमृङ्गदूर्वा, मन्दाम्मोजाहिद्सर्ग सुनितिलतगरब्रह्मकहारमही । चम्पाश्वारातिकुम्मीद्मनमरुवका विल्वतोऽहानि शस्ता, स्विशत्त्रे कार्यरीशोनिधि-निधि-वसु-भू-भू-यमा भूय एवम्॥" देवविशेषमें कीन कीन पुष्प प्रिय है, उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

केशवपूजनमें प्रशस्त पुष्प—मालती, मल्लिका, यूथिका, अतिमुक्तकं, पाटला, करेबीर, जया, सेवित, कुब्जेक, अगुरु, कर्णिकार, कुरुएडक, चम्पक, तगर, कुन्द, मिल्लका, अशोक, तिलक और चम्पक ये सव पुष्प विष्णु पूजामें प्रशस्त हैं। केतकीपलपुष्प, भृङ्गारकपुष्प, रक्त, नील और सितोत्पल पुष्प इन सव पुष्पोंसे विष्णु पूजा विशेष प्रशस्त हैं। (अग्निपु॰)

वामनपुराणमें लिखा है—जातों, शताहा, कुन्द, वहुपुद, वाण, पङ्कज, अशोक, करवीर, यृथिका, पारिमद्र, पारला, वकुल, गिरिशालिनी, तिलक, पीतक, तगर इन सव पुष्पोंसे विष्णु पूजा प्रशस्त है। पतिङ्गन्न सुगन्धित जो कोई पुष्प हो उससे विष्णु पूजा की जा सकती है। केवल केतकीपुष्प विष्णु पूजामें निषिद्ध है। जिन सव पुष्पोंसे विष्णु पूजा की जा सकती है, उन सव पुष्पवृक्षोंके पल्लव भी विष्णु पूजामें प्रशस्त हैं। (वामनपु० ६१ अ०)

विष्णुकी पुष्पविशेष द्वादा पूजा करनेसे निम्नलिखित फल प्राप्त होते हैं। तीथोंमें जिस प्रकार गङ्गा और
वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, पुष्पोंमें मालती भी उसी प्रकार है।
इस मालतीकी मालासे यदि विष्णुपूजा की जाय, तो
वह जन्म, दुःख, जरारोग और कमैवन्थनसे मुक्त होता है।
कार्त्तिक मासमें जो मालतोकी मालासे विष्णु-मन्दिर
सजाते और पूजा करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं।
भक्तिपूर्वक जातिपुष्प और माल्य द्वारा पूजा करनेसे
कल्पकोटि सहस्र वर्ष विष्णुगृहमें वास और विष्णुके
समान पराक्रमी होता है।

खर्णकेतको पुष्प द्वारा यदि विष्णुकी पूजा की जाय, तो सौ कोटि वर्ष तक विष्णु उस पर प्रसन्न रहते हैं।

केतकोन्द्रव पुष्प द्वारा विष्णु पूजा करनेसे देवताओं के साथ विष्णु लोकमें वास, कार्त्तिक मासमें मिल्लका-कुसुम द्वारा विष्णु पूजा करनेसे विजन्मार्जित पापनाश, पाटलायुष्प द्वारा पूजा करनेसे परमस्थान प्राप्ति, अगस्त्य पुष्प द्वारा पूजा करनेसे नरकनाश, मुनियुष्य द्वारा कार्त्तिक मासमें पूजा करनेसे वाजिमेध यज्ञका फल, सितासित करवीरयुष्प द्वारा पूजा करनेसे शतवर्ष खर्ग, वकुल और अशोकयुष्प द्वारा पूजा करनेसे शतवर्ष खर्ग, वकुल और अशोकयुष्प द्वारा पूजा करनेसे यावधन्द्रदिवाकर खर्ग-लाभ होता है, इत्यादि । पद्मपुराण उत्तरखण्डके १३१ अध्यायमें इस विषयका विस्तृत विवरण लिखा है।

नारदीय सप्तम सहस्रमें लिखा है,—मालती, वकुल,

अशोक, सेफालिका, नवमालिका, अस्लान, तगर, अङ्कोट, मिल्लिका, मधुपिरिडका, यूथिका, अधापद, कुन्द, कदम्ब, मधु, पिप्पल, चम्पक, पाटल, अतिमुक्तक, केतक, कुरुवक, विस्व, कहर, करक, वक और लवङ्ग थे पचास पुष्प विष्णु के लक्ष्मीतुल्य प्रिय हैं।

विष्णुप्तनमं निषद्धं पुष्य—जिन सव पुष्पींकी गन्धं अतिशय उत्र हो और जिन सव पुष्पींमें गन्धं नहीं हो, ऐसे पुष्प, कएटकयुक्त पुष्प, रक्त पुष्प, चैत्यवृक्षीद्भव पुष्प, श्मशानजात पुष्प और अकालज पुष्प, कूटज, शाल्मली-पुष्प, शिरोप पुष्प, अनुक्त रक्त कुसुम अर्थात् जिन सव रक्त पुष्पींका विषय शास्त्रमें नहीं लिखा गया है, वैसे रक्त पुष्प, इन सव पुष्पींसे विष्णुपूजा नहीं करनी चाहिये।

विष्णुविषयमें जिन सव पुष्पोंकी कथा लिखी गई, पुरुष देवतामालकी पूजामें वे सव पुष्प प्रशस्त हैं। धूर्त-पुष्पसे विष्णुको, तगरपुष्पसे सूर्यकी, नागकेशरपुष्पसे शिवकी और लकुच-पुष्पसे स्त्री-देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

योगिनीतन्त्रके सप्तम पटलमें पुष्याध्यायका विषय इस प्रकार लिखा है,---

"श्रुणु देवि ! प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायं समासतः। ऋतुकालोऋवैः पुष्पैमंहिकाजातिकुं कुमैः॥" इत्यादि। (योगिनीतन्त्र ७ प०)

ऋतुपुष्प अर्थात् जिस ऋतुमें जो पुष्प होता है, वह पुष्प, मिल्लका, जाति, सित, रक्त और नीलपदा, किशुक, तगर, जवा, कनकचम्पक, वकुल, मन्दार, कुन्दपुष्प, कुरु-एडक, वन्युकप्रभृति पुष्प द्वारा केशवाचन करे।

देवीप्जामें प्रशस्त पुष्प ।—वकुल, मन्दार, कुन्द, कुरु-एडक, करवीर, अर्कपुष्प, शालमली, अपराजिता, दमन, सिन्धुवार, मरुवक, मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका, माधवीलता, पाटला, जवा, तर्कारिका, कुन्जक, तगर, कर्णिकार, चम्पक, आम्रातक, वाण, वर्चरा, अशोक, लोघ्र और तिलक आदि पुष्पोंसे देवीप्जा ही प्रशस्त है। (बराइपु॰)

तन्त्रोक्त देवीत्रिय पुष्प ।—करवीर और जवाष्पुप सर्य काळी खरूप है। इस करवीर और जवापुष्प द्वारा काली और तारा आदि महाविद्याकी पूजा करनेसे साधक सव प्रकारके पापोंसे रहित हो शिवतुल्य हो जाता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

"शुक्कं कृष्णं तथा पीतं हरितं लोहितं तथा।
करवीरं महेशानि! जवापुष्पं तथैव च॥
स्वयं काली महामाया स्वयं त्रिपुरसुन्दरी।
अनादरं न कर्त्तव्यं कृत्वा च नरकं वजेत्॥
ये साधका जगन्मातरच्चियन्ति शिविषयां।
प्रतेश्च कुसुमैश्चिएड! स शिवी नात संशयः॥"
(पुरश्चरणरसोल्लास १०म पटल)

जवा, द्रोण, कृष्ण, मालूर और करवीर इन सब पुर्णोंको श्वेतचन्दन-संयुक्त और रक्तचन्दन-विलेपित कर-के जो भक्तिपूर्वक जगद्धावी और दुर्गा आदिको पूजा करते हैं, उनका सभी अभीष्ट सिद्ध होता और वे स्वयं विश्वेश्वरके समान होते हैं।

नाना प्रकारका उत्पात उपस्थित होने पर एक कर-वीरपुष्प और दो हजार पद्म द्वारा काली और तारा आदि देवियोंकी पूजा करनेसे सब प्रकारका उत्पात जाता रहता है और पीछे सीभाग्यका उदय होता है। वक, जाति, नीलोत्पल, पद्म, रुद्रजट, छण्णापराजिता, मालूर-पत, द्रोण और कैतकीपुष्प आदि द्वारा स्त्री-देवताओंको पूजा विशेष प्रशस्त है। प्रायः सभी तन्त्रोंने इन सब पुष्पोंकी विशेष प्रशस्ता लिखी है।

योगिनीतन्त ७म पटल, पुरश्वरणरसोक्लास १०म पटल, वृहक्रीलतन्त २य पटल आदिमें इन सव पुर्णोंके विशेष विवरण और प्रशंसादिका विषय लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया।

२ स्त्रीरजः, स्त्रियोंके ऋतुकालको पुष्पोद्गम कहते हैं। स्त्रियोंके पुष्पोद्गमके वाद ये युवती और जब तक पुष्पो द्गम नहीं होता, तब तक कन्या कहलाती हैं।

> "वुष्पकाले शुचिस्तसादपत्यार्थी स्त्रियं व्रज्ञेत्।" (सुश्रुत)

पुतकामीको चाहिये, कि स्त्रीके पुण्पकालमें श्रुचि हो कर मैथुनकर्म करे।

यह पुष्प दो प्रकारका है—शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध पुष्प या विशुद्ध शोणित फलित है अर्थात् गर्मधारणमें समर्थ होता है। अशुभ पुष्प फलित नहीं होता। सुश्रुतके मतसे जिस ऋतुशोणितका वर्ण शशक-शोणितकी तरह या लाक्षारसको तरह होता और जिससे वस्त्र नहीं रंगता, ऐसा ऋतुशोणित विशुद्ध माना गया है। तिदीप और शोणित ये चार पृथक् रूपमें वा इनमें-से दो अथवा सभी मिल कर ऋतुशोणित दूपित होनेसे सन्तान नहीं होती। (सुश्रुत शारीरस्थान २ अ०)

चरक और सुश्रुतके शारीरस्थानमें शुक्र और शोणितका विशेष विवरण लिखा है। रसरकाकरमें लिखा है—
जिसका पुष्प (ऋनुशोणित) वात-हत हो, उसके फल
(सन्तान) नहीं होता। इसमें योनि और किटमें
वेदना होती है तथा अधिक परिमाणमें रक्तसाव होता
है। जिसका पुष्प पित्तहत हो, उसके भी सन्तान नहीं
होती, परन्तु उष्ण जम्बूफल सदृश शोणित निकलता है
और किट तथा उद्रों वड़ी वेदना होती है। जिसका
पुष्प श्लेष्महत हो, उसके भी सन्तान नहीं होती। इसमें
अधिक परिमाणमें पिच्छिल घना शोणितसाव होता
और योनि तथा नाभिदेशमें वड़ी पीड़ा होती है। इसका
विशेष विवरण रकस्, आर्त्व, ऋद्व, ऋद्वमती और एकस्वला
शब्दमें हेलो।

तान्तिक लोग पुष्पिता (ऋतुमती) स्त्री द्वारा नाना प्रकारके तन्त्रोक्त क्रिया-कलापका अनुष्ठान करते हैं।

३ चक्षुरोगविशेष, फूला, फूली । हारोतके चिकित्सित-स्थानमें लिखा है— "पूर्वाहारविहारैस्तु नेते पुष्पञ्च जायते । प्रथमं सुखसाध्यं स्यात् द्वितोयं कप्रसाध्यकं ॥ तृतीयं शस्त्रसाध्यन्तु चतुर्थं दुःखसाध्यकम्॥" इत्यादि । (हारीतिचिकि० ४४ अ०)

असमयमें आहार और विहार तथा नेतरोगमें जो सव वस्तु खाना मना है, वही सव वस्तु खानेसे चक्षमें पुष्परोग होता है। प्रथम सुखसाध्य, द्वितीय कप्ट-साध्य, तृतीय शस्त्रसाध्य और चतुर्थ असाध्य है।

इसकी चिकित्सा—शङ्ख-पुष्प, छोध्र, शङ्खनाभि और मनःशिला इन सब द्रष्टोंको एकत कर यदि वायुके विगड़नेसे पुष्परोग हुआ हो, तो कांजी द्वारा, पित्तके विगड़नेसे हुआ हो, तो पयः द्वारा और यदि श्लेष्माके विगड़नेसे हुआ हो, तो मूल द्वारा पीसे, पीछे उसे छाथामें सुखने दे। वादमें काजल वना कर चक्षुमें देनेसे वह पुष्प रोग जाता रहता है। 'हारीतचिकि । ४४ ४०)

दूसरा तरीका हरोतकी, वच, कुट, पीपर, मिर्च, विभीतक-मजा, शङ्क्षनाभि और मनःशिला इन सव द्रब्योंको समान भागोंमें वांट कर वकरीके दूघसे पीसे, वादमें वत्ती वना कर पुष्परोगमें प्रयोग करनेसे द्रिवार्षिक पुष्परोग एक महीनेमें आरोग्य हो जाता है। इसका नाम चन्द्रोदयवित्त है और यह द्रष्टिप्रसादनी माना गया है।

४ घोटकलक्षणविशेष, घोड़ोंका एक लक्षण, चित्ती। अश्ववैद्यक्रमें लिखा है—

"आगन्तुवस्तुरङ्गस्य ये भवन्त्यन्यवर्णगाः। विन्दवः पुष्पसंज्ञास्तु ते हिताहितसंज्ञकाः॥"

जिस वर्णका घोड़ा हो उससे भिन्न रंगकी चित्तीको पुष्प कहते हैं। यह पुष्प-चिह्न हित और अहितके भेदसे दो प्रकारका है। किस किस स्थानमें यह चिह्न रहनेसे हित अर्थात् शुभ और किस स्थानमें रहनेसे अशुभ होता है, इसका विषय नीचे दिया जाता है—

अपान, ललाट, भूमध्य, मूर्द्धा, निगाल और केशान्त इन सब स्थानोंमें यदि पुष्पचिह हो, तो शुभ ; स्कन्ध, बक्षःस्थल, कश्च, मुब्क और हनुमें हो, तो खामीका हित ; नाभि, केश, कएठ और दन्तमें पुष्पचिह हो, तो खामीकी सर्वार्थसिद्धि होती है।

अहितचिह—अधरोष्ठ, कएठस्थल, प्रोध, उत्तरीष्ठ, नासिका, गएडद्रय, शङ्ख्रद्रय, भ्रूद्रय, श्रीवा, स्कदेश, स्थ्रक, स्फिच्प्रदेश, पायु और क्रोड़ इन सव स्थानोंमें अभ्वका पुष्पचिह्न निन्दित है।

घोड़े के जिन सव हित-पुष्पचिहोंका विषय कहा गया
है, वे सव पुष्प-चिह्नयुक्त घोड़े रहें, तो मालिकका नानाविघ कल्यान होता है। अहित-चिह्नयुक्त घोड़े के रहनेसे मालिक पद पदमें कए पाता है। इस कारण ऐसे
घोड़े को भूल कर भी अपने यहां न रखें। काला और
पीला पुष्पचिह्नको सभी जगह निन्दनीय माना गया है।
(अस्वहेशक शु८२-६२)

५ विकाश, ६ कुबैरका रथ, पुष्परथ । ७ पुष्पाञ्चन, एक प्रकारका सुरमा । २ रसाञ्चन, रसीत । ६ पुष्करमूल । १० लवङ्ग । ११ मांस ।

पुष्पक (सं० क्वी०) पुष्पभिव पुष्पैर्वा कायति प्रकाशते कै-क, पुष्प-संज्ञायां कन् वा। १ रीतिपुष्प। पुष्पमिव प्रतिकृतिः (इवेष्रतिकृती। पा ५।३।६६) इति कन्। २ कुबेर-विमान, कुबेरका विमान (Air-ship)। कुबेरके रथका नाम पुष्पक-रथ था। रावणने कुवेरको हरा कर यह विमान छीन छिया था और वहुत दिनों तक यह उसीके पास रहा । रावणके वधके उपरान्त रामने इसे फिर कुवेरको दे दिया। यह विमान आकाशमागैसे चलता था। ३ नेंबरोग, आँखका एक रोग, फूला, फली। ४ रत्नकङ्कण, जड़ाऊ कंगन । ५ रसाञ्चन, रसौत । ६ लोहे या पीतलकी मैल। पुष्पःस्वार्थे-कन्।७ पुष्प, फूल। (पु॰) ८ निर्विष सपैजातिभेद, विना विषका साँप। गळगोळी, शूकपत, अजगर, दिव्यक, वर्षहिक, पुष्पशकळी और पुष्पक प्रभृति निर्विष जातिके सर्प हैं। १ पर्वतमेद्, एक पर्वेतका नाम। १० प्रसादका मण्डपभेद, प्रासाद वनानेमें एक प्रकारका मंडप। विश्वकर्मप्रकाशमें इसका विपय इस प्रकार लिखा है,—प्रासाद प्रस्तुत करनेमें तद्-नुरूप मण्डप भी प्रस्तुत करना चाहिए। यह मण्डप नाना प्रकारका होता है। उसमेंसे पुष्पक, पुष्पमद्ग, सुवृत, मृत नन्दन, कौशल्य प्रभृति मएडप शुभजनक है। पुष्पक-मएडप चौंसठ खंभींका होना चाहिये।

अपराजिताप्रभामें लिखा है, कि जिस स्तम्भका चतुष्कोण आठ भागमें विभक्त हो, उसे पुष्पक कहते हैं।

११ इन्द्रका प्रिय शुक्रपिक्षमेद । यमको देखते ही यह पक्षी उड़ जाता था, इसलिए देवताओंने उसकी प्राण रक्षाके लिये यमसे अनुरोध किया। किन्तु कालके हाथमें वह पक्षी पंतित हुआ और देवताओंके अनुरोध करने पर भी मृत्युने उसे धर दवाया। १२ हीराकसीस। १३ मिट्टीकी अंगीठी। १४ पीतल।

पुष्पकरएडक (सं० क्की०) पुष्पाधार करएड इव कायतीति कै-क, वहुतरमनोरमपुष्पाधारकत्वादस्य तथात्वं। उज्ज-यिनीका एक पुराना उद्यान या बगीचा जो महाकालके मन्दिरके पास था।

पुष्पकरिएडनी (सं० स्त्री०) पुष्पकरएडकं शिवोद्यान-मस्त्यस्य। इति इनि, स्त्रियां ङीप्। उज्जयिनी। पुष्पकर्णं (सं० क्षि०) पुष्पं कर्णे यस्म। वह जिसके कानमें पुष्प हो। पुष्पकार (सं ० ति ०) पुष्पस्त-स्वयिता, गोंभिछ । पुष्पकाल (सं ० पु०) पुष्पस्य कालः । १ स्त्रियोंका ऋतु-समय । पुष्पप्रधानः कालः । २ कुसुमप्रधान यसन्तकाल ।

पुष्पकासीस (सं० क्ली०) पुष्पितव कासीसं। पीतवर्ण कासोस, हीराकसीस। पर्याय—कंसक, नेलीपध, वत्सक, मलीमस, हस, त्रिपद, नीलमृत्तिका। गुण—तिक, शीत और नेलरोगनाशक। इसके लगानेसे पामा और कुष्टादि नाना प्रकारका त्वक्दीप विनष्ट होता है। भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—पीतवर्ण कासीसको पुष्पकासीस कहते हैं। इसका गुण—अम्ल, तिक, कषाय-रस, उष्णवीर्य, केशका हितकर, वायु, कफ, नेलकएडू, विष, मूलकृच्छु, अश्मरी और श्वितरोगनाशक है।

पुष्पकीट (सं॰ पु॰) पुष्पप्रियः कीटः। २ भ्रमर, भौरा। २ कुसुन-क्रमिमाल, फूलका कीड़ा।

पुष्पक्रच्छू (सं० पु०) एक व्रत जिसमें केवल फूलोंका काथ पी कर महीना भर रहना पड़ता है।

पुष्पकेतन (सं॰ पु॰) पुष्पं केतनं ध्वजी यस्य। कामदेव।

पुष्पकेतु (स'० क्की०) पुष्पनिर्मितः केतुरिव । १ कुछु-माञ्जन, पुष्पाञ्जन । (पु०) २ कामदेव ।

पुष्पगण (सं o पु o) पुष्पाणां गणः । पुष्पवगं, फूलींका समृह । अर्कप्रकाश-चिकित्साप्रनथमें इसका विषय इस प्रकार छिखा है,—चार प्रकारका स्थळपद्म, सेवती, गुळदावती, नेपाळी, गुळाव, गुळावास, दिखनी, जाती, यूथी, राजवल्ळी, तीन प्रकारकी छोटी यूथो, चम्पक, नागचम्पक, वकुळ, कदम्य, कुन्द, शिवमल्ळी, दो प्रकारका कुब्ज, दो प्रकारको केतकी, किङ्किरात, किणकार, दो प्रकारका अशोक, वाणपुष्प, चार प्रकारका कुब्एडक, तिळक, मुचुकुन्द, चार प्रकारका वन्यूक, चार प्रकारकी जवा, दो प्रकारको वसुन्धरी, अगस्ति, दमन, मारु, पपरी, वहुविणका, दो प्रकारका पाटळ और सूर्य्यमुखी इन सव फळोंका समृह पुष्पगण कहळाता है।

पुष्पगिएडका (सं॰ स्त्री॰) नर वा नारीका विरुद्ध अभि-प्राय वा चेष्टा । पुष्पगन्धा (सं॰ स्त्री॰) शुक्क यृथिका, सफेद जूही । पुष्पगवेधुका (सं॰ स्त्री॰) नागवला ।

पुष्पिगिरि—१ कुर्गराज्यकी उत्तरपश्चिम सीमाके पश्चिम घाटकी एक शाला। इसका दूसरा नाम सुब्रह्मण्यशैल है। यह दक्षिण कनाड़ा और महिसुरके इसन जिला-न्तर्गत अक्षा० १२ ४ उ० और देशा० ७५ ४४ पू०के मध्य, समुद्रसे ५६२६ पुट ऊंचे पर अवस्थित है। यद्यपि यह गिरि दुरारोह है, तो भी यहाँके सुब्रह्मण्यदेव-के माहात्म्यप्रयुक्त वहुत-से मनुप्र आते हैं। पौष मास-में यहां मेला लगता है जिसमें वहुत याती इकट्ठे होते हैं।

२ मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलान्तगँत कड़ापा शहरक्षे ८ मील उत्तर और पेत्रे इ नदीके उत्तरक्रूल पर अव-स्थित एक शैल । यहां वैद्यनाथस्वामी आदिके कई एक प्राचीन विष्णुमन्दिर है और उनमें खोदित शिला-लिपि भी देखी जाती है।

३ चीनपरिवाजक यूपनचुअङ्ग-वर्णित उद्भराज्यकी दक्षिण-पश्चिम सीमा पर अवस्थित एक गिरि और उसके ऊपर एक सङ्घाराम। चीनपरिवाजकने लिखा है, कि उपवासके दिन इस सङ्घारामके एक प्रस्तरमय स्त्पूपसे अपूर्व ज्योति निकलती और अनेक आश्चर्य घटना देखने-में आती थीं।

पुष्पग्रह (सं० ह्यी०) पुष्पनिर्मितं गृहं । फूलका घर । पुष्पत्रन्थन (सं० ह्यी०) पुष्पस्य व्रन्थनं । फूल गूर्थना, माला गूर्थना ।

पुष्पघातक (सं॰ पु॰) हन्तीति हन-ण्डुल्, घातकः, पुष्पाणां पुष्पवृक्षाणां घातकः नाशकः । फूलका नाशक ।

पुष्पचाप (सं॰ पु॰) पुष्पमेव, पुष्पमयो वा चापो यस्य । १ कामदेव । पुष्पाणां चापः । २ फूलधनुः, फूलका धनुष । पुष्पचामर (सं॰ पु॰) पुष्पं चामरं इव यस्य । १ दमन-वृक्ष, दौना । २ केतक, केवड़ा ।

पुत्पन (सं॰ हो॰) पुष्पाजायते जन-इ। १ पुष्परस, फूलका रस। २ पुष्पजातमात, फूलसे उत्पन्न बस्तु। यथा, गुलावजल प्रसृति। स्त्रियां टाप्। ३ पुष्प-शर्करा, फूलका गुड़।

पुष्पजाति (सं॰ स्त्री॰) मलयपर्वतसे निकली हुई एक नदी। पुष्पजासव (सं० पु०) पद्मादि दशिवध पुष्पजात आसव, वह अर्क वा मद्य जो दश प्रकारके फलोंसे बनाया जाता है। पद्म, उत्पल, निलन, कुमुद, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपब, मधूक, प्रियंगु और धातकी इन दश प्रकारके पुष्प द्वारा यह भासव प्रस्तुत होता है।

पुष्पद (सं० पु०) पुष्पं ददातीति दा-क। १ वृक्ष, पेड़, गाछ। (ति०) २ पुष्पदात्मात्न, फूळ देनेवाळा। पुष्पदंपू (सं० पु०) पुष्पमिव दंष्ट्री यस्मा। नागमेद, एक नाग। पुष्पदन्त (सं० पु०) पुष्पमिव शुक्की दन्ती यस्मा। १ वायुकीणस्मा दिग्गज, वायुकीणका दिग्गज। २ विद्याधर- विशेष, एक विद्याधर। ३ वर्च मान अवसर्पिणीके नवम जैनमेद। ४ नागमेद, एक नागका नाम। ५ पार्वतीप्रदत्त कार्त्तिकेयका अनुचरिवशेष, पार्वतीका दिया हुआ कार्त्तिकेयका एक अनुचर। ६ विष्णु के एक अनुचरका नाम। ७ शिवका अनुचरमेद, शिवका अनुचर एक गन्धव जिसका रचा हुआ महिम्नस्तीत कहा जाता है।

कथासरित्सागरमें लिखा है, कि पुष्पदन्त नामक शिवके एक अनुचर था। इसने छिए कर शिवपार्वतीका कथोपकथन सुना। इस पर महादेवजीने कृद हो कर इसे शाप दिया। उसी शापसे पुष्पदन्त मर्त्यलोकमें कात्या-यन चरठिच नामसे कौशाम्बी नगरमें ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ। इसके जन्मके बाद ही आकाशवाणी हुई, कि यह बालक श्रुतिधर और वर्षपिएडतसे विद्यालाम करेगा। इतदा विशेष विवरण बरानि शब्दमें देखो।

गन्धवराज पुष्पदन्त किसी समय शिवका निर्माल्य लांघ गया धा इससे शिवने शाप द्वारा इसका आकाश-गमन रोक दिया था। पीछे महिम्नस्तोल बना कर पाठ करनेसे फिर खेचरत्व प्राप्त हो गया। महिम्नस्तव शिव-पूजामें पढ़ा जाता है। पार्चतीकी सिङ्गिनी जया इसी पुष्पदन्तकी पल्ली थी। ८ शलुञ्जयगिरिका नामान्तर । ६ चन्द्रस्त्यूर्यं, चान्द्र और सूरज। (क्ली०) १० नगरद्वारमेद, एक प्रकारका नगर-द्वार।

पुक्त प्रकारका नगर अस् ।
पुक्तपद्गतक (सं पु प) गन्धर्विविशेष, एक गन्धर्व ।

ये महिम्नस्तवके प्रणेता थे । पुष्पदन्ततीर्थं (सं० क्ली०) शम्मल प्रामके अन्तर्गत तोर्थ-

पुष्पदन्तिमिद्द (सं० पु०) शिव, महादेव । पुष्पदर्शन (सं० क्षी०) रजीदर्शन । पुष्पदामन् (सं० क्षी०) पुष्प-निर्मितं दाम । १ पुष्पनिर्मित माल्य, फूलको बनी माला । २ छन्दोभेद, इस छन्दके प्रति-पादमें १६ अक्षर रहते हैं । लक्षण—

"भूता श्वाक्वान्तं मतनसररगैः कोत्तितं पुण्यदाम।" (वृत्तरज्ञाकरटीका)

पुष्पद्रव (सं० पु०) पुष्पाणा द्रवः । १ पुष्परसः, फूलका रसः। पर्यायः—पुष्पसारः, पुष्पस्वेदः, पुष्पजः, पुष्पिवर्यासकः, पुष्पाम्बुजः । ग्राण—कषायः, गौल्यत्वः, दाहः, भ्रमः, आर्तिः, विमे, मोहः, मुखामयः, तृष्णाः, पित्तः, कफदोप और अविच-नाशकः । गुलावजल आदिको पुष्पद्रयं कहते हैं। २ मधु । पुष्पद्रमः (सं० पु०) पुष्पवृक्षः, फूलका गाछः ।

पुष्पद्गुमकुसुमितमुकुट (सं० पु०) गन्धर्वराजमेद । पुष्पध (सं० पु०) वात्यविप्रजात जातिमेद, वात्य वाह्मण-से उत्पन्न पक जाति । मनुमें इस जातिके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"मात्यासु जायते विप्रात् पापातमा मुर्जकपटकः । आवन्त्यवाटघानी च पुष्पधः शैल पव च ॥" (मनु १०।२१)

बात्य ब्राह्मणकी सवर्णा पत्नीसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसे पुष्पध कहते हैं।

वुष्पधनुस् (सं॰ पु॰) पुष्पं धनुर्यस्य, विकल्पे न भनङ् । १ कामदेव । २ पुष्पका धनुष । पुष्पधन्यन् (सं॰ पु॰) पुष्पं धनुर्यस्य, (धनुषस्य । पा ५।४।१३२)

क्षिण्यन्तन् (सं० पु०) पुष्पं धनुयंस्य, (धतुयान । पा पाशा ११९) इति अनङ् आदेशः । १ कामदेव । २ औपघिवशेष, एक स्तीषध । प्रस्तुत प्रणाली— रसिसन्दूर, सीसा, लोहा, अम्रक और वङ्ग इन सव द्रष्योंको एक साथ मिला कर धत्रा, भांग, जेडी मधु, सेमरामूल और पानके रसकी भावना दे कर इसे प्रस्तुत करना चाहिए । इसका भी, मधु, चीनी और दूधके साथ सेवन करनेसे रितशिक बढ़ती है। (भैषव्य(त्ना० ध्वज नेगापि०)

पुष्पधर (सं० पु०) महादेव । पुष्पधारण (सं० पु०) पुष्पं धारयति भारि-च्यु । बिष्णु । पुष्पध्यज (सं० पु०) पुष्पं ध्वजी यस्य । पुष्पकेतन, कामदेव ।

भेद् ।

पुष्पनिश्च (सं० पु०) पुष्पं निश्चति चुम्वतीति पुष्प-निश्च-अण् (कर्मयण। पा ३ २।१) स्रमर, भौरा।

पुष्पिर्यास (सं• पु॰) पुष्पस्य निर्यासः । पुष्परस्, मक-रन्द्द, फूलका रस । इसका गुण—शीतल, कषाय, स्थील्य-कारक, दाह, भ्रम, पीड़ा, विम, मोह, वक्तवपीड़ा, तृष्णा, कफ, पित्त और अरुचिनाशक है।

पुष्पनेत्र (सं॰ क्ली॰) पुष्पनिर्मितं नैत्रं । पुष्पनिर्मित वस्ति-शलाकावययभेद्, यस्तिकी पिचकारीकी सलाई ।

पुष्पन्धय (सं० पु०) पुष्पं धयतीति धेट-पाने खश (अहाँद्ववत्रन्तस्यमुन्। पा ६१३१६७) इति मुन्। १ भ्रमर, भौरा। (लि०) २ पुष्परसपानकत्तां, फूलका रस पीने-वाला।

पुष्पपत्न (सं॰ क्ली॰) पुष्पस्य पत्नं । पुष्पदल, फलकी-पत्ती ।

पुष्पपितन् (सं॰ पु॰) पुष्पं तन्मयं पत्नी वाणी यस्य । कुसुमशर, कामदेव ।

पुष्पपथ (सं॰ पु॰) पुष्पस्य स्त्रीरज्ञसः पन्धाः सरणिः। स्त्रियोंके रजके निकलनेका मार्ग, योनि, भग।

पुष्पपाण्डु (सं॰ पु॰) मण्डलि-सर्पभेद, एक प्रकारका साँप।

पुष्पपिएड (सं॰ पु॰) अशोकवृक्ष, अशोकका पेड़ ।

पुष्पपुट (सं० पु०) १ पुष्पका आवरण, फलकी पंख-ड़ियोंका आधार जो कटोरीके आकारका होता है। २ तद्वत् हस्तस्थापन, उक्त आकारका हाथका चंगुल।

पुष्पपुर (सं॰ क्ली॰) पुष्पवत् पाटिलपुष्पयुक्तं तद्वत् शोभा-जनकं वा पुरं। १ पाटिलपुत्तनगर, वर्त्तमान पाटिलपुत (पटना)-का एक नाम। २ काशीके निकटवर्त्ती एक प्राचीन प्राम।

पुष्पप्रचय (सं॰ पु॰) पुष्प-प्र-चि-अच् । चौर्यद्वारा कुसुम-इरण, फल चुराना ।

पुष्पप्रचाय (सं० पु०) पुष्प-प्र-चि 'हस्तादाने चेरस्तेये' इति धज्, हस्तादान इत्येनेन प्रत्यासत्तिरादेयस्य गम्यते । हस्त द्वारा कुसुमचयन, हाथसे फळ तोड्ना ।

पुष्पप्रचायिका (सं० स्त्री०) पर्यायेण पुष्पाणां चयेनं, प्र-चि-ण्डुल्, तदन्तस्य स्त्रीत्वं, क्रीड़ात्वात् नित्यस्यः, भाष्युदात्तता च।परिपाटीपूर्वक कुसुम-चयन, नियमपूर्वक पाल तोड्ना। पुष्पफल (सं० पु०) पुष्पयुक्तं फलं यस्य । १ कुप्माएड, कुम्हड़ा । २ कपित्य, कैथ । (मली०) ३ अर्जु नवृक्ष । पुष्पफलशाक (सं० पु०) पुष्पशाक और फलशाक मात, अलावू आदिका साग । इसका ग्रुण—पित्तनाशक, वायु-वर्द्धक, स्वादु, मूल और पुरीषवर्द्धक है।

पुष्पफलद्भा (सं॰ पु॰) फलफलसे शोमित वृक्ष।

पुष्पफला (सं॰ स्त्री॰) कुष्माएडलता ।

पुष्पविक्च (सं॰ पु॰) पुष्पोपहार, फूलकी बिल या भेंट । पुष्पभद्र (सं॰ पु॰) मण्डपभेद, वास्तुशिल्पमें एक प्रकार-का मण्डप जिसमें ६२ खंभे हों ।

पुष्पभद्रक (सं० क्ली०) देवोद्यानविशेष, देवताओंका एक उपवन ।

पुष्पभद्रा (सं॰ स्त्री॰) १ एकाम्रकाननके निकट प्रवाहित नदीभेद । २ मलयगिरिके पश्चिमकी एक नदी।

पुष्पभव (सं॰ पु॰) मकरन्द, मधु।

पुष्पभृति (पुष्पभृति)—१ सम्राट् हपवद्धैनके पूर्वपुरुष जो शैव थे। २ काम्योज या काबुलके एक हिन्दू राजा। ये ईसाकी सातवीं शताब्दीमें राज्य करते थे।

पुष्पभूषित (सं० त्रि०) पुष्पेण भूषितः। १ कुसुमार्छ-कृत, फूलसे सुशोभित। २ वणिक्नायक रूपक-प्रक-रणभेद। प्रकरण शब्द देखो।

पुष्पमञ्जरिका (सं० स्त्री०) इन्दीवरलता, नीलपश्चिनी। पुष्पमञ्जरी (सं० स्त्री०)१ घृतकरञ्ज, घीकरंज। २ पुष्प-मञ्जरी, फूलकी मंजरी।

पुष्पमण्डन (सं० क्ली०) फूलका अलङ्कार । मणि और सुवर्णादि निर्मित भूषणका जैसा आकार प्रकार होता है, कुसुमका भी वैसा ही आकार प्रकार देखा जाता है। किरीट, वालपथ्या, कर्णपूर, ललाटिका, प्रवेचक, अङ्गद, काञ्ची, कटका, मणिवन्धिनी, हंसक और कञ्च की इत्यादि नाना प्रकारके पुष्पमण्डन हैं। कपगोस्वामि-रचित वृहद्गणोहें शन्दीपिकामें इनकी रचनाप्रणाली सविस्तार लिखी है।

पुष्पमय (सं० ति०) पुष्प सक्तपार्थे मयट्। पुष्पसक्तप, फूलमय।

पुःपमाल (स्केश्ली॰) पुष्पाणां माला। फूलकी माला। पुष्पमास (सं॰ पु॰) पुष्पाणां मासः, पुष्पप्रधानो मासो वा। वसन्त ऋतुके दों महीने। इस समय नाना प्रकारके फूळ होते हैं, इस लिये वसन्तकालको पुष्पमास कहते हैं।

पुष्पित (पुषािमत)—पक पराकान्त हिन्दू राजा। ये श्री शताब्दीमें मगधदेशमें राज्य करते थे। पुराणके मतसे—ये शुङ्गवंशके प्रथम राजा थे, मौर्यवंशके वाद सिहासन पर अभिषिक हुए। बहुतोंका कहना है, कि महाभाष्यकर पतञ्जिल इनके समयमें विद्यमान थे। ये यागयक्षप्रिय हिन्दू-राजा थे। जिनसेनके हरिवंशके मतसे इस पुष्पिमतवंशने ३० वर्ष तक राज्य किया—

"तिशसु पुष्पमित्राणां षष्टिर्वस्विग्निमित्रयोः।" (६०१८५) यतङजि देखो ।

दिव्यावदानके अन्तर्गत अशोकावदानमें लिखा है,— मौर्याधिप अशोकके स्वर्गवासी होने पर उनके अमात्योंने सम्पदि (सम्प्रति)-को राजसिंहासन पर विद्राया। सम्पदिके पुत्र वृहस्पति, वृहस्पतिके पुत्र वृष-सेन, वृषसेनके पुत पुष्पधर्मा और पुष्पधर्माके पुत्र पुष्प-मित्र थे। पुष्यमित्रने राजा हो कर अमात्योंसे कहा, 'देसा कौन-सा उपाय है, जिससे मेरा नाम चिरस्थायी हो सकता है ?' उन्होंने जवाव दिया, 'राजा अशोक ॅ८४००० धर्मराजिकाकी प्रतिष्ठा कर कीर्त्ति स्थापन कर गये हैं। आप भी वही कीजिये।' इस पर पुषामित-ने कहा, 'अलावा इसके क्या और कोई उपाय है ?' ब्राह्मण पुरोहितोंने उत्तर दिया, कि इसके विपरीत कार्य द्वारा भी आपका नाम चिरस्थायी हो सकता है। ब्राह्मणीं-की सलाहसे पुषामित समस्त भगवच्छासन, स्तूप और भिक्ष-परिगृहीत सङ्घारामको ध्वंस करने लगे। इस प्रकार मिक्षकोंको विनाश करते हुए वे शाकलमें उपस्थित हुए। यहां आ कर उन्होंने यह ढिढोरा पिटवा दिया, कि जो श्रमणके शिर काट लावेगा, उसे दो सौ दीनार ंइनाम मिलेगा। इस प्रकार वे वृद्ध और अर्हत्-प्रभृति-का भी विनाश करने छंगे। उनके इस अत्याचारसे सभी घवड़ा गये। अन्तमें दंघु निवासी एक यक्षने पुषा-मिलको छलपूर्वक एक पर्वत पर हे जा कर मार डाला। पुषामितको साथ साथ मौर्यवंशका भी विराग बुक्त गया। २ एक राजवंश । गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तने इस वंश-

को प्रशस्त किया था।

पुष्पमृत्यु (सं॰ पु॰) देवनलवृक्ष, पक प्रकारका नरकट, वड़ा नरसल ।

पुष्परक्त (सं० पु॰) पुष्पे पुष्पावच्छेदे रक्तं रक्तवर्णं यस्य, वा पुष्पं रक्तं यस्य । सूर्यमणिवृक्ष, सूर्यमणि नामके फूळका पौधा ।

पुष्परजस् (सं॰ क्वी॰) पुष्पाणां रजः । पुष्परेणु, फूलकी भूल, पराग ।

पुष्परथ (सं० पु०) पुष्पनिर्मितो रथः । फूलका रथ । पुष्परस (सं० पु०) पुष्पाणां रसः । फूलका मधु । पुष्परसाह्वय (सं० क्ली०) पुष्परस इत्याह्वय आख्या यस्य । मधु ।

पुष्परसोद्भव (सं० क्ली०) मधु।

पुष्पराग (सं० पु०) पुष्पस्येय रागी वर्णी यस्य। मणि विशेष, पुखराज। पर्याय—मञ्ज्ञमणि, वाचस्पतिवल्लम, पीत, पीतस्फटिक, पीतरक, पीताश्म, गुरुरल, पीतमणि, पुष्पराज। गरुड़पुराणके ७५वें अध्यायमें इस मणिके वर्ण, गुण, परीक्षा और मूल्यादिका विवरण सविस्तार लिखा है। उक्त पुराणमें पक जगह लिखा है, कि असुरी-का चमड़ा हिमालय पर्वत पर गिरा था उसीसे महागुण-सम्पन्न पुष्परागकी उत्पत्ति हुई है। कुछ पीला वा पाण्डुवर्ण कान्तिविशिष्ट निर्मल पत्थर विशेष ही पुष्पराग नामसे प्रसिद्ध है। यह पत्थर यदि ललाई लिये पीला हो, तो उसे कुरुएटक और यदि सफेदी तथा ललाई लिये पीला हो, तो उसे कुरुएटक और यदि सफेदी तथा ललाई लिये पीला हो, तो उसे क्षाय कहते हैं।

विशेष विवरण पुषराज शब्दमै देखो । पुष्पराज (सं० पु०) पुष्पमिव राजते राज-स्व । पुष्पराग, पुष्पराज ।

पुष्पराजप्रसारिणी तेल (सं० हो०) तैलोपधमेद। इसकी प्रस्तुत प्रणालो यों है,—तिलतेल ऽ४ सेर, काथार्थ गन्धमेदाल १०० पल, जल ६४ सेर, शेप १६ सेर, गाय और भेंसका दूध १६ सेर, पद्म और शतमूलीका रस प्रत्येक ऽ४ सेर; कल्कार्थ सौंफ, पोपल, इलायची, कुट, कएटकारी, सोंठ, यष्टिपधु, देचदार, शालपणीं, पुनर्णवा, मंजिष्ठा, तेजपल, रास्ना, वच, वमानि, गन्धतृण, जटामांसी, निसिन्धा, वेडे ला, चितामूल, गोहर, मृणाल और शतमूली प्रत्येक २ तोला इन सर्गेको एक साथ मिला कर

यथानियमसे तैल प्रस्तुत करना चाहिये। इस तेलके लगानेसे भग्न, खञ्ज, पंगु, शिरोरोग, हनुमह और सव प्रकारकी वातज व्याधि वहुत जल्द जाती रहती है।

(भैष्डयरत्ना० वातव्याधिरश्राधिष)

वुष्परेणु (सं॰ पु॰) वुष्पाणां रेणुः ६-तत्। कुसुमरजः, पराग, फूलकी धूल।

पुष्परोचन (सं॰ पु॰) पुष्पं रोचने वास्त्र पुष्पेषु रोचनः ्रुचित्रदो वा । नागकेशर ।

पुष्पळाव (सं॰ पु॰) पुग्रं छुनाति अवचिनोति मालाद्यर्थ-मिति, पुष्प-ॡ-अण् । मालाकार, माली, फूल चुननेवाला ।

पुष्पलावन (सं॰ पु॰) उत्तर दिशाका एक देश।
पुष्पलाविन् (सं० ति०) पुष्प-लू-णिनि । मालाकार,
माला वनानेवाला।

पुष्पत्नायी (सं॰ स्नी॰) पुष्पलाय स्त्रियां ङीप् । मालाकार-पत्नी, मालिन, फूल जुननेवाली ।

पुष्पलिक्ष (सं॰ पु॰) पुष्पं लिक्षति चुम्वति लिक्ष-अग्। भ्रमर, भौरा।

पुष्पिलिपि (सं॰ स्त्री॰) पुष्पमयी लिपिः । लिपिभेद, एक पुरानी लिपि या लिखानट ।

पुष्पलिह् (सं॰ पु॰) पुष्पं लेढ़ीति, लिह्-किप्। भ्रमर, भौरा।

पुष्पवदुक (सं० पु०) नायकमेद ।

पुष्पवत् (सं वि) पुष्पमस्त्यस्या इति पुष्प-मतुप् मस्य व । १ पुष्पविशिष्ट, पुष्पयुक्त, फूलवाला । (पुः) २ रिव और शशो, सूर्य और चन्द्रमा । 'रिव और शशी इस अर्थमें प्रथमाके द्विचनान्तमें अर्थात् "पुष्पवन्ती" ऐसा हो रुप होता है, पृषोदरादिहेतुक यह शब्द अदन्त भी अर्थात् 'पुष्पवन्त' ऐसा भी रूप होता है । गदाधरके शक्तिवादमें ऐसा ही अर्थ निणीत हुआ है ।

पुष्पवती (सं॰ स्त्री॰) पुष्पवत्-ङीष् । १ तीर्थविशेष, एक तीर्थं । २ रजस्वला, ऋतुमती स्त्री, रजोवती । (ति॰) ३ फूलवाली, फूली हुई ।

पुष्पचन (सं० क्ली०) पुष्पाणां वनं। फलका जङ्गल। पुष्पवर्ग (सं० पु०) पृष्पाणां वर्गः ६-तत्। सुश्रुतोक्त-विशेष फूल, पुष्पसमूह यथा—

कोविवार (रक्तकाञ्चन); शण और शाल्मलीपुन्य Vol. XIV 38 पाकमें मधुर और रक्तपित्तनाशकः, वृष (वासक और अगस्त्य (वक) पुष्प तिक्त, परिपाकमें कटु और क्षय-कासनाशकः मधुशित्र (रक्त शोभाञ्जन) और शरीर परिपाकमें कटु, वातनाशक और मलमूतका सञ्चयकर ; अगस्त्यपुष्प अत्यन्त शीतल वा अत्युष्ण नहीं और रात्र न्ध ध्यक्तिके लिए विशेष उपकारी; रक्तवृक्ष, निम्व, मुष्कक, अर्फ और आसन इन सब बृक्षोंके फूल कफ और पित्त-हारी तथा कूटज कुप्टरोगनाशक ; पद्मपुष्प कुछ कुछ तिक मधुर, शीतल, एवं पित्त और कफनाशक ; कुमुद्युष्प, मधुर, पिच्छिल, क्षिग्ध, आनन्दकर और शीतल ; कुवलय और उत्पल कुमुद्की अपेक्षा कुछ भिन्न गुणविशिष्ट ; सिन्धुवार पुष्प हितकर और पित्तनाशक; मालती और महिकापुष्प तिक और पित्तनाशकः, बकुलपुष्प सुगन्धि, विशद तथा हयः, पाटलपुष्प भी पूर्वोक्त गुणयुक्तः; नागकेशर और कुकु मपुष्प श्लेष्मा, पित्त तथा विषनाशकः चम्पकपुष्प रक्तपित्तनाशक, शीतल, अंथच उप्ण तथा कफनाशकः किशुक तथा पीतिक्रिएटीपुण्य कफ और पित्त-नाशक होते हैं। जिन जिन वृक्षोंके जो जो गुण कहे गए हैं, तद्वृक्षजात पुष्पके वे ही सब गुण होंगे।

पुष्पवर्ष । सं॰ पु॰) वर्षपर्वतविशेष, एक वर्ष-पर्वतका नाम, सात वर्षे पर्वतींमेंसे एक ।

पुष्पवर्षिणी (सं० स्त्री॰) निगु एडी।

पुष्पवल्लभ (सं॰ पु॰) मल्लिकापुष्पवृक्ष ।

पुष्पवाटिका (सं॰ स्त्री॰) फुलवारी, फूलोंका वगीचा । पुष्पवाटी (सं॰ स्त्री॰) पुष्पाणां वाटी । पुष्पोद्यान, फूलों-का वगीचा।

पुष्पवाण (सं॰ पु॰) पुष्पं वाणो यस्य । १ कामदेव । २ कुराद्वीपस्य राजभेद, कुराद्वीपके एक राजा । ३ देत्यभेदं, एक दैत्य । ४ कालिदास-प्रणीत पुष्पवाणविलास नामक ब्रन्थवर्णित नायकभेद । ५ फूलींका वाण ।

पुष्पवाहन (सं॰ पु॰) पुष्पं पुष्करं वाहनमिव यसा। पुष्करराज।

पुष्पवाहिनी (सं॰ स्त्री॰) नदीभेद, एक नदीका नाम।
पुष्पवृक्ष (सं॰ पु॰) पुष्पाणां वृक्षः। फूलका गाछ।
पुष्पवृष्टि (सं॰ स्त्री॰) पुष्पाणां वृष्टिः। पुष्पवषण, फूलीं॰
की वर्षा, ऊपरसे फूल गिरना या गिराना। मङ्गल-उरसक्

या प्रसन्नता सूचित करनेके लिये फूल गिराए जाते थे। पुष्पवेणी (सं० स्त्री०) फूलकी चोटी।

पुष्पशकटी (सं० स्त्री०) आकाशवाणी।

पुष्पशक्रलिन् (सं॰ पु॰) निर्विप जातीय सर्पविशेप, एक प्रकारका विपहीन साँप।

पुष्पशय्या (सं०स्त्री०) पुष्पनिर्मिता शय्या । पुष्प द्वारा प्रस्तुत शय्या, फलोंका विछायन ।

पुष्पशर (सं॰ पु॰) कामदेव।

पुष्पशरासन (सं० पु०) कामदेव।

पुष्पशर्करा (सं स्त्री) पुष्पोद्भूता शर्करा। फूलकी चीनी । इसका गुण—स्वादु, हव, शीतल, गुरु, पित्त और । पुष्पहीना (सं० स्त्री०) रजःशून्या स्त्री, वह स्त्री जिसे रजो-कफनाशक है।

पुरपशाफ (सं॰ पु॰) ऐसे फूल जिनकी भाजी वनाई जाती है। यथा—कचनाल, सहजन, खैर, रासना, सेमल, अगस्त और नीम।

पुष्पश्चन्य (सं कि) १ पुष्परहित, विना फूलका। (पु॰) २ उद्दुम्बर, गूलर।

पुष्पश्रीगर्भं (सं॰ पु॰) बोधिसत्वभेद ।

पुष्पश्रेणी (सं० स्त्री०) मूसाकानी।

पुष्पसमय (सं॰ पु॰) पुष्पस्य समयः । वसन्तकाल ।

पुष्पसाधारण (सं॰ पु॰) वसन्तकाल ।

पुष्पसायक (सं० पु०) पुष्पाणि सायका यसः। कन्दपं, कामदेव ।

पुष्पसार (सं॰ पु॰) पुष्पस्य सारः । १ पुष्पद्रय, फलका रस, गुलाबका जल इत आदि भथवा मधु। (ति॰)२ पुष्पश्रेष्ठ ।

पुष्पसारा (सं॰ स्त्री॰) तुलसी ।

पुष्पसूत्र (सं॰ क्वी॰) सामवेदीय सूत्रभेद, सामवेदका सूत्रप्रन्थ जो गोभिलरचित कहा जाता है। दाक्षिणात्यमें थह् प्रनथ फुलसूल और चररुचिप्रणीत कह कर प्रचलित है । अजातशतु और दामोदरने इसकी टीका लिखी है ।

पुग्पसेन—धर्मशर्माभ्युद्य नामक काव्यके रचयिता।

पुष्पसोरभा (सं० स्रो०) पुष्पे सोरभं यसाः तीवृगन्ध-बस्वादेव तथात्वं । कलिहारीका पौधा, करियारी ।

पुष्पस्नाम (सं० क्ली०) पुष्पत्नान देखी ।

पुष्पस्तेद (सं०पु०) पुष्पाणां खोदः। पुष्पद्रव, फलका रस।

पुष्पहास (सं॰ पु॰) पुष्पाणां हास इव प्रपञ्चद्वपेण प्रकार्गा यस्त्र । १ विष्णु । २ कुमुम-विकाश, फलोंका खिलना ।

पुष्पहासा (सं॰ स्त्री॰) पुष्पं हास इव यस्त्राः। रजसला स्रो ।

पुष्पहोन (संब पु॰) पुष्पेण होनः। १ कुसुमरहित हुम, विना फूलका वृक्ष । २ उदुम्यरवृक्ष, गूलरका पेड़ । (ति०) ३ विना फलका।

दर्शन न हो, बन्ध्या, बांभा ।

पुष्पा (सं स्त्री) पुष्पं अभिधेयत्वेनास्त्यसमा इति अच्, टाप् । १ कर्णपुरी, वर्त्तमान भागलपुर । पर्याय-चम्पा, मालिनी । २ बृहच्छतपुष्पा, सौंफ ।

पुरपाकर (सं॰ पु॰) वसन्त ऋतु। इस समय नाना प्रकारके फूल खिलते हैं, अतः इसे क्रुसुमाकर कहते हैं। २ एक प्रसिद्ध मीमांसक।

पुष्पाकरदेव (सं॰ पु॰) एक संस्कृत कवि ।

पुष्पागम (सं० पु०) पुष्पाण्यागच्छन्त्यत आगम आधारै अव् । वसन्तऋतु ।

पुष्पाङ्क (सं० पु०) माधवी।

पुष्पाजीव (सं पु) पुष्पैराजीवति जीविकां निर्वाहय-तीति, आ-जीव-अच्। मालाकार, माली।

पुष्पाजीविन् (सं० पु०) पुष्पैराजीवतीति आ-जीब-णिनि । मालाकार, माली ।

पुष्पाञ्जन (सं॰ क्ही॰) पुष्पसा नेतरोगविशेषसा अञ्जनं । अञ्जनभेद, एक प्रकारका अञ्जन जो पीतलके हरे क सावके साथ कुछ ओपधियोंको पीस कर वनाया जाता है। पर्याय—पुष्पकेतु, कौसुम्म, क्रुसुमाञ्जन, रोतिक, रीतिपुष्प, पौष्पक। गुण-शीत, पित्त, हिका, प्रदाह, विषदीष, कास और सब प्रकारके नेत्ररोगींका नाशक।

पुष्पाञ्जलि (सं॰ पु॰) पुष्पाणामञ्जलिः। कुसुमाञ्जलि, प्रस्नाञ्जलि, फलोंसे भरी अंजली या अंजली भर फूल जो किसी देवता या पूज्य-पुरुपको चढ़ाये जांय।

पुष्पाणगढ़ (सं॰ पु॰) राजतरङ्गिणीमें वर्णित एक श्राम । इस श्राममें सोमपालका आश्रम था।

पुष्पानन (सं॰ पु॰) पुष्पमित्र विकसितमाननमस्मात्। मद्यभेद, पक्र प्रकारकी शराव।

पुष्पाभिकीर्णं (सं॰ पु॰) दवींकर सर्पविशेष।

पुष्पाम्बुज (सं० क्ली०) पुष्पस्य अम्बुनी जायते जन-उ। मकरन्द ।

पुष्पाम्भस् (सं॰ पु॰) तीर्थभेद, एक तीर्थं ।

पुष्पायुध (सं॰ पु॰) पुष्पमायुधमसा । कुसुमायुध, कामदेव।

पुष्पार्क (सं० पु० ह्वी०) सेवती प्रभृति पुष्पोत्थ अर्ह, सेवती आदि पूछोंका अर्क। अर्कप्रकाशचिकित्सामें इस प्रकार छिखा है, कि सेवन्ती, शतपत्नी, वासन्ती, गुळदावती, आमला, यूथिका, चम्पा, वकुछ और कदम्ब इन सवोंको केतकीपत द्वारा आच्छादन कर अर्क प्रस्तुत करना चाहिये। इसका मिर्चके साथ सेवन करनेसे पुरुषत्व बढ़ता है।

पुष्पार्णं (सं॰ पु॰) एक राजा । इनके दोषा और प्रभा नामकी दो पत्नी थीं ।

पुष्पावचायिन् (सं॰ पु॰) पुष्पमवचिनोति मार्छार्यं अव-चि-णिनि । मालाकार, माली ।

पुष्पावती (सं० स्त्री०) मध्यप्रदेशान्तगंत विलहरिका प्राचीन नामं।

पुष्पासव (सं० क्ली०) पुष्पस्य आसवं। १ मधु। २ फर्लोसे बना हुआ मद्य।

पुष्पासार (सं॰ पु॰) पुष्पवृष्टि ।

पुष्पास्त्र (सं० पु॰) पुष्पमस्त्रं यस्य । कुसुमायुध, काम-देव ।

पुष्पाह्म (सं॰ स्त्री॰) पुष्पैराङ्क्ष्यते स्पर्द्ध ते आ-ह्वे-क, तत-ष्टाप्। शतपुष्पा, सौंफ।

पुष्पिका (सं क्ली) पुषाति विकसतीवेति पुष्प-पञ्चल्, दापि अत इत्वं । १ दन्तमल, दाँतकी मैल । २ लिङ्ग-मल, लिङ्गकी मैल । ३ प्रन्थाध्याय-समाप्तिमें तत्प्रति-पाद्यकथन प्रन्थांशभेद, अध्यायके अन्तमें वह वाक्य जिसमें कहे हुए प्रसङ्गकी समाप्ति सूचित की जाती है। यह वाक्य "इति श्री" करके प्रायः आरम्भ होता है। यथा, "इति श्री मार्कएडे यपुराणे सार्वणिके" इत्यादि। पुष्पिणी (सं० स्त्री०) १ घातकीवृक्ष, धवका पेड़। २ त्स्रक, रुई। ३ सर्णकेतकी।

पुष्पित (सं० ति०) पुष्प-क, पुष्पं जातमस्येति पुष्प-तारकादित्वादितच् वा । १ जातपुष्प, कुसुमित, फूला हुआ। (पु०)२ कुशद्वीपके अन्तर्गत पर्वतमेद, कुश-द्वीपका एक पर्वत । ३ एक बुद्धका नाम।

पुष्पिता (सं॰ स्त्री॰) रजसला स्त्री।

पुष्पिताया (सं० स्त्री०) पुष्पितं विकसितमिव अयं यस्याः। छन्दोविशेष, एक अद्धे समवृत्त । इस छन्दके प्रथम और हतोय चरणमें १२ तथा द्वितीय और चतुर्थं चरणमें १३ अक्षर होते हैं। इनमेंसे प्रथम और तृतीय चरणमें ७वां, ६वां, ११वां तथा १२वां अक्षर गुरु और शेप वर्णं लघु हैं। द्वितोय और चतुर्थं चरणमें ५वां, ८वां, १०वां, १२वां तथा १३वां वर्णं गुरु और शेप लघु हैं।

पुष्पिन् (सं॰ पु॰) पुष्पमत्वर्थे इनि । **सुसु**मयुक्त वृक्ष, फला हुना पेड़ ।

पुष्पेषु (सं ० पु०) पुष्पं इष्टर्यंस्य। कामदेव।

पुष्पोत्कटा (सं॰ स्त्री॰) राक्षसीमेद, सुमाली राक्षसकी केतुमती भार्यासे उत्पन्न चार कन्याओंमेंसे एक जी रावण और कुम्भकर्णकी माता थी।

पुष्पोत्सव (सं० पु०) वृष्पकाले स्त्रीणां प्रथम-ऋतु-समये यः उत्सवः । १ स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शनमें एक प्रकार-का उत्सव । स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शनमें नाना प्रकारके उत्सवादि होते हैं । २ कुस्तुमक्रीड़ा, फूलका खेल । पुष्पोदका (सं० स्त्री०) पातालस्थिता नदीभेद, पाताल-को एक नदी ।

पुष्पोद्भव (सं॰ पु॰) दशकुमारचरितोक्त नायकमेद । पुष्पोद्यान (सं॰ पु॰) पुष्पवाटिका, फुलवारी ।

पुष्प (सं ० पु०) पुषान्त्यस्मिश्वर्था इति पुष-मयप् (पुष्पतिद्धी नक्षत्रे । पा २।१।११६) १ अभ्विनी आदि करके सताईस नक्षत्रके अन्तर्गत ८वां नक्षत्र । नक्षत्रकी आकृति वाणकी-सी है। पर्याय-सिध्य, तिषा और पुषा । इस नक्षत्रमें प्रायः सभी शुभ कर्म किये ज़ा सकते हैं। विशेषतः मायाकर्ममें यह नक्षत अति प्रशस्त है।

इस नक्षत्रमें जो जन्म छेता है, वह श्रेष्ठमतिसम्पन्न, कृती, कुळप्रधान, धनधान्ययुक्त, प्रान्न, अतिशय वीर, देवद्विजभक्त और सब विद्यामें निपुण होता है।

(कोडीकला)

कोष्टीप्रदीपके मतसे—इस नक्षतमें जन्म छेनेवाला, पितृमातृभक्त, स्वधमेपरायण, अभिनयकुशल, सम्मान और सुवर्ण तथा वाहनादिसम्पन्न होता है। पुत्रानक्षतमें जिसका जन्म होता, उसकी राशि कर्कट होती है। शतपद-खकानुसार नामकरण करनेमें पुत्रानक्षतके प्रथमादि चार पदमें "हु, हे, हो, इं" ये चार अक्षरादि नाम होंगे। इस नक्षतमें जो जनमग्रहण करता, वह देवता होता है।

यह नक्षत्र मेष-जातीय है। इस नक्षत्रमें जनम लेनेसे चन्द्रकी दशा होती है। (ज्योतिष्यत्य) इस नक्षत्रके अधिपति वृहस्पति हैं। इस नक्षत्रमें गङ्गास्त्रान करनेसे कोटि कुलका उद्धार होता है।

"संक्रान्तिषु व्यतीपाते श्रहणे चन्द्रस्यैयोः।
पुषेत्र स्नात्वा तु जाह्नव्यां कुलकोटिः समुद्धरेत्॥"
(व्रद्धपु॰)

२ सूर्यवंशीय एक राजा। (ह १८१३२) पुष-भावे क्यप्। ३ पुष्टि, पोषण। ४ फल या सार वस्तु। ५ पूसका महीना।

पुष्पगुप्त— मीर्थराज चन्द्रगुप्तके शाले एक वैश्य। रुद्रदामा-की गिरनरलिपिमें लिखा है, कि इस पर्वतके पाद्देशमें पुष्पगुप्तने एक सुन्दर हुद्र वनवाया था। मीर्थ अशोक के यवनशासनकर्त्ता तुषास्यने प्रणाली द्वारा उसे अले-कृत किया था।

पुष्पधर्मन् (सं० पु०) एक राजा।

पुष्यनेता (सं० स्त्री०) पुषाः तन्नामकं नस्नतं नेता प्रथमा-बिधशेषपर्यन्तसमापको यस्त्राः, अच्समासान्तः । वह रात्रि जिसमें बरावर पुषा नस्नतः रहे।

पुष्यमित—मीर्योके पीछे मगधमें शुङ्गवंशका राज्य प्रति-ष्टित करनेवाला एक प्रतापी राजा। पुष्यभित्र देखी। पुष्यरथ (सं ॰ पु॰) पुष्य इव रथः, पुष्ये याक्रोत्सवादी रथी

वा। क्रोड़ारथ, घूमने फिरने या उत्सव आदिमें निक-छनेका रथ, यह रथ युद्धके कामका नहीं होता। पुष्यलक (सं० पु०) पुषां पुष्टिं छकति लाकयति वा-अच्। १ गन्धमृग, कस्त्रीमृग। २ क्षपणक, चंवर लिए रहने-वाला जैन साधु। ३ कील, खुंटा।

पुष्यस्तान (सं० क्की०) पुष्ये पुष्यनक्षतकाले स्नानं । पुष्पा भिषेक, पुष्यानक्षत्वमें स्नान । पूसके महीनेमें जब चन्द्रमा पुष्यानक्षत्वमें जाते हैं, तब यह योग उपस्थित होता है। उस दिन राजाको विभ्रशान्तिके लिये यह स्नान करना चाहिये । इसका विषय कालिकापुराण और वृहत्-संहितादिमें विशेषक्षपसे लिखा है, पर यहां उसका सार दिया जाता है—

पूसके महीनेमें चन्द्रमाके पुष्रानक्षतमें जानेसे राजा सौभाग्य और कल्याणकर तथा दुर्भिक्ष और मरकादि क्कें शनाशक पुपास्नान करें। विधिमद्रादि और दुए-करण तथा व्यतीपात, वैधृति, वज्र, शूळ और हर्पणादि-योगमें यदि पुषा नक्षत और तृतीया तिथि तथा रवि, शनि अथवा मङ्गळवार युक्त हो, तो उस दिनका पुपा-स्नान दोषनाशक है । यदि राज्यमें प्रहविपाकसे अति-वृष्टि वा अनावृष्टि आदि उपद्रव हो जाये, तो राजा पौप-मास भिन्न दूसरे समय भी पुष्यानक्षत्रमें स्नान कर सकते हैं। स्वयं ब्रह्माने इन्द्र और अन्यान्य देवताओंकी शान्तिके लिये वृहस्पतिको इस शान्तिका उपदेश दिया था। राजा को चाहिये, कि वे पुष्पस्नानके लिये अति शुचि और पवित्र स्थान चुन लें। जिस स्थानमें तुप, केश, अस्थि, वल्मीक, कीट और कृमि आदि अपवित वस्तु न हों; काक, पेचक, कुक्, र, कडू, काकोल, गृथ, वक मादि पक्षी जिस स्थानमें विचरण न करते हों तथा इंसकारएडवादि शान्त जलचर जहां विचरण करते हों, वही स्थात पुष्यस्नानके लिये प्रशस्त है। स्थानका निर्णम कर मयाविधान उसका संस्कार कर्त्तवा है। पीछे राजा पुरोहितों और अमार्त्योंके साथ नाना प्रकारके वाद्यादि करते हुए उस स्थान पर जांय । उस रूयान पर पुरोहित उत्तरमुखी हो कर सुगन्ध चन्दन, कर्पूरादि सुवासित जल और गोरीचनादि द्वारा 'गन्ध द्वारेति' मन्त्रसें इस स्थानका अधिवास करें। पीछे राजेजादि पञ्चदेवता, केशव, इन्द्र, ब्रह्मा, और सपार्वती पशुपित तथा अन्यान्य गणदेवता आदिका पूजन करे। वादमें पायस तथा तरह तरहके सुमिष्ट फल नैवेच चढ़ा कर निव्नलिखित मन्त्रसे दूर्वा और अक्षतादि द्वारा भूतों-का अपसारण करना होता है। मन्त्र—

"अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः।
भूतानामविरोधेन स्नानमेतत् करोम्यहम्॥"
तद्दन्तर राजा देवताओंका आह्वान करते हुए पुपास्नान करे और तव निम्न लिखित मन्त्रसे उनका पूजन
विधेय हैं। मन्त्र—

"आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत पूजाभिलापिणः। दिशोऽभिपालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभागिनः॥" अर्थात् जो सद देवता मेरी पूजा ब्रहण करनेको इच्छुक हें, वे दिक्पाल देवगण आ कर अपना अपना भाग ब्रहण करें।

इसके वाद पुरोहित पुष्पाञ्जलि देकर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करें। मन्त्र—

"अद्य तिप्रन्तु विद्युधाः स्नानमासाद्य मामकं। इदः पूजां प्राप्य यातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे॥"

'हे देवनण! आज आप लोग इस स्थान पर अवस्थान करें। दूसरे दिन पूजा प्रहण करके राजाको वर देते हुए चले जांथ। राजा इत्यादि प्रकारसे पुषाक्षानादि कार्य समाप्त करके पुरोहितके साथ वहीं पर शयन करें। रातको जो खप्त होगा, उसीसे इस पुषाक्षानका शुभाशुभ स्थिर करना होता है। राजाको उस दिन यदि वुःखप्त दिखाई दे, तो फिरसे उन्हें पुषाक्षान करके चतुर्गुण होम और विविध दान करना चाहिये।

राजा खप्तमें यदि अपनेको गो, अश्व, हस्ती और प्रासाद पर आरोहण करते हुए देखें, तो राज्यसम्पद्वृद्धि तथा मङ्गळ लाम होता है। यदि दिखे, देवता, सुवणं, सर्प, वोणा, दूर्वा, अक्षत, फल, पुष्पच्छद, विलेपन, चन्द्र-मण्डल, शङ्क्ष, छल, पद्म और मिल देखें, तो अपना लाम और शत्रुका क्षय होता है। ग्रहणदर्शन, निगड़ (जंजीर) द्वारा पाद-वन्धन, मांस-सोजन, पर्वतस्रमण, नाभिदेशमें वृक्षोत्पत्ति, मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे रोदन, अगम्यागमन, कूप, पङ्क और गर्त्तमें अवतरण, पर्वत वा नदी-अवतरण, शतुच्छेदन, खपुलमरण, रुधिर वा मद्यपान, पायसमोजन

और मनुष्यारोहण प्रभृति खप्नमें देखनेसे राजाका कल्याण, सुख और शतुक्षय होता है।

अञ्चन स्वप्न—राजा खप्तमें यदि अपनेको गद्हे, ऊँट, मैंस आदि पर चढ़े हुए देखें, तो उनका राज्यनाश होता है। नृत्य, गीत, हासा. अशुभ विषयका पाठ, रक्तवख-परिधान, रक्तमाल्यविभूषण, रक्त और कृष्णवर्णा स्त्री-कामना, इन्हें खप्तमें देखनेसे राजाको मृत्यु तथा कूपमें प्रवेश, दक्षिणको ओर गमन, पङ्कमें निमज्जन और स्नान इस प्रकार देखनेसे भार्या और पुतका नाश होता है। खप्त द्वारा इसी प्रकार शुभाशुभका विचार करना होगा।

पुषास्नानके लिये मण्डण प्रस्तुत करना होगा। इस मण्डपके ऊपर राजा यैठ कर माङ्गलिक और निम्नलिखित द्रव्ययुक्त जलपूर्ण कलससे स्नान करें। मण्डपकी लम्बाई वीस हाथ और चौड़ाई सोलह हाथ होनी चाहिये। मण्डपमें पूर्व दिन मातृकापूजा, वसुधारा और आभ्यु-द्यिक-श्राद्ध करना होता है। चन्द्रन, अगुरु आदि द्वारा सम्मार्जित मण्डलस्थल पर 'हों शम्भवे नमः' तथा 'अस्त्राय हूँ फर' ये दोनों मन्त्र लिख देने होंगे। पीछे मण्डलविद्द पण्डित कमलस्त्र वा कोंघेय-स्त्रसे चार हाथका खस्तिकाख्य मण्डल और उस मण्डलके मध्य एक हाथका अथ्दलपन्न आदि निर्माण करके यथाविधि आट कलस और मण्डल मध्यस्थित पन्नके ऊपर पञ्च-मुख घटकी स्थापना करें।

नवरत, सर्ववीज पुष्प और फल, हीरक, मौकिक, नागकेशर, डुम्बर, बीजपूरक, आम्रातक, जम्बीर, आम्र, दाड़िम, यव, शालि, नीवार, गोधूम, श्वेतसर्वंप, कुंकुम, अगुर, कर्पर, मदलोचन, चन्दन, मदन, लोचन, मांसी, इलायची, कुष्ठ, पलचएड, पण, वच, आमलकी, मंजिष्ठा, आठ प्रकारका मङ्गलद्रव्य, दूर्वा, मोहनिका, भद्रा, शतमूली, पूर्णकोप, सित और पीतगुजा आदि द्रव्य संग्रह करके कलशमें रख दें। पीछे यथाविधि पूजा और होमादि हो जाने पर स्नानपट और शय्यापट प्रस्तुत करें। छब्बीस हाथ गोलाकार चतुष्कोण स्नानपट और आठ हाथ लम्बा तथा चार हाथ चौड़ा श्व्यापट होना चाहिये। पीछे स्नानपट्टमें वैठ जानेके वाद मएडलविद पण्डितको चाहिये, कि वे राजाको शास्त्रविहित धर-जल द्वारा

निम्नलिखित मन्त्रसे ब्राह्मणके साथ स्नान करावें। मन्त्र यथा---

" सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु पे च सिद्धाः पुरातनाः ।

श्रह्मा विष्णु एच एद्धश्च साध्याश्च समग्द्धणाः ॥

श्रादित्या वसवो एद्रा आश्चिनयौ भिषण्वरौ ।

श्रादित्या वसवो एद्धा आश्चिनयौ भिषण्वरौ ।

श्रादितिर्वमाता च खाहा छक्ष्मीः सरस्रतो ॥

कोर्त्तिर्छक्षमीर्थृ तिः श्रोश्च सिनीयाठी कुहस्तथा ।

दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्गुरेव च ॥

देयपत्न्पश्च याः प्रोक्ता देयमातर एव च ।

सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वे चाप्सरसां गणाः ॥" इत्यादि

विस्तार हो जानेके भयसे सभी मन्त्र नहीं लिखे गये पीछे पुरोहित राजाको शान्तिवारि द्वारा अभिषेक करे। राजाके स्नानके बाद अमात्य आदि राजाके अन्तरंगोंको भी पुरोहित अवशिष्ठ जल द्वारा अभिषेक करे।

यह राजाओंकी प्रधान शान्ति है। इस शान्तिसे उनके सभी विझ नष्ट होते हैं और अन्तमें उन्हें सर्गकी प्राप्ति होती है।

राजाको चाहिये, कि इसी प्रणालीसे अभिषिक्त हो कर राज्यभार प्रहण करें। (कालकायु॰ ८६ भ॰)

वृहत्संहितामें पुपास्तानका विषय इस प्रकार लिखा है, —राजाके ऊपर ही प्रजाका शुभाशुम निर्मर करता है। इसलिये राजाको चाहिये, कि प्रजा और राज्यकी भलाईके लिये यह पुपास्तान अवश्य करें। खयम्भु जहाने इन्द्रके लिये वृहस्पतिको इस शान्तिका उपदेश दिया था। इससे वढ़ कर पवित्र और विपत्शान्तिकर दूसरा कोई उपाय नहीं है।

श्लेष्मातक, अझ, कण्डकी, कटु-तिक और गन्ध-विहोन वृक्ष जहां न हीं तथा पेचक, शकुनि आदि अनिष्ट-कर पश्ली जहां विचरण न करते हों तथा तरुण तरु, गुज़्म, वल्ली और छता जहां परिपूर्ण हों उसी मनोरम स्थानमें पुषास्नान करना चाहिये । देवमन्दिर, तीर्थ, ज्ञान वा रमणीय प्रदेशमें पुषास्नान विशेष हितकर माना गया है। राजाको स्थानका निर्णय कर पुरोहितों और असात्योंके साथ वहां जाना चाहिये। पीछे पुरोहित यथा-विधान मण्डपादि प्रस्तुत करके पूजादि करें। नैवेद्यादि द्वारा पितरों और देवताओंका यथाविधि पूजन करके तव

राजा पुषास्तान करें। जिस कछशके जलसे राजा स्तान करनेवाले हों उसमें अनेक प्रकारके रत्न और मङ्गल द्रव्य पहलेसे डाल कर रखे।

चन्द्रपुष्यानक्षतमें तथा शुभमुद्धर्त भाने पर पश्चिम ओरकी वेदी पर वृष, वाघ, भीर सिंहका चमड़ा विज्ञा कर उस पर सोने, चौदी, तांबे या गूलरको छकड़ीका पाटा रखा जाय। उसी पर राजा स्नान करें।

प्रति पुपानक्षतमें सुख, यश और अर्थवृद्धिकर यही शान्ति कर्तव्य है। पौषमासकी पूर्णिमा पुषायुक्त नहीं होनेसे यि इस समय पुषास्तान किया जाय, तो आधा फल होता है। राज्यमें उत्पात वा कोई अन्य उपसर्ण घटनेसे राहु और केतु देखनेसे अधवा प्रह्विपाकमें पुषास्तान ही एकमाल विधेय और सर्वशान्तिकर है। पृथ्वी पर ऐसा उपद्रव नहीं जो इससे शान्त न हो। इसीसे राज्याधिरोहणप्राधीं और पुत्रजन्माकांक्षी राजाओंके अभिषेकको यही विधि विशेष प्रशस्त है। जो इस विधानसे हाथी और घोड़े को स्नान कराते हैं, उनके सभी पाप जाते रहते और अन्तमें उन्हें अष्ठिसिद्ध प्राप्त होती है। (बृह्दर्शहता ४८अ०) देवीपुराण आदिमें भी इस पुष्यस्नानका विशेष विवरण छिखा है।

पुष्पा (संव स्त्रीव) पुष्णाति कार्याणीति पुष् क्यप्, यत् वा ततहाप्, निपातनात् साधुः। पुष्पानक्षत्, अध्यिनी

भरणी आदि २७ नक्षतों मेंसे आउवां नक्षत ।
पुत्र्यानुगचूर्ण (सं० च्छी०) चूर्णीषधमेद । प्रस्तुतप्रणाली—
जामृन और आमकी गुडलोका गूदा, पाषाणमेदी,
रसाञ्चन, मोचरस, वराकान्ता, पद्माकेशर, कुंकुम, असीत,
मुता, बेलसींठ, लोध, गेक्रवामद्दी, करफल, मिर्च, सींठ,
द्राक्षा, रक्तवन्दन, सोनापाठा, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धवईका फल, यष्टिमधु और अर्जुनकी छाल इन सर्वोका वरावर वरावर भाग चूर्ण कर मिलावे । इसकी माता रोगीके अवस्थानुसार एक माशेसे चार माशा तक है। इसका
अनुपान—मधु और वावलका पानी है। इससे बर्श,
अतीसार, योनिदीष तथा प्रदर्रोग जाता रहता है।
पुष्रानक्षतमें यह भौषध प्रस्तुत करनी होती है, इसलिये
इसका नाम 'पुष्रानुगचूर्ण' हुआ है।

(भेवज्यस्ता॰ स्रीरोगाधिका॰)

प्रन्थान्तरमें 'पुष्यानगचूर्णं' इस प्रकार पाठ भी देखनेमें भाता है ।

पुष्पाभिषेक (सं॰ पु॰) पुष्पस्नान देखी।
पुष्पार्क (सं॰ पु॰) १ ज्योतियमें एक योग जो कर्ककी
संक्रान्तिमें सूर्यके पुष्पा नक्षतमें होने पर होता है। यह
प्रायः श्रावणमें दश दिनके लग भग रहता है। २ रविवारके दिन पड़ा हुआ पुष्पा नक्षता।

पुस (हिं पु) प्यारसे विलोको पुकारनेका शन्द । पुसाना (हिं कि) १ उचित जान पड्ना, शोभा देना, अच्छा लगना । २ पूरा पड़ना, वन पड़ना, पटना । पुस्त (सं क्ली) पुस्त्यते इति पुस्त वन्धादरादौ धञ् । १ लिप्यादि शिल्पकर्म, कारीगरी ।

गीली मिट्टी, रुफड़ी, कपड़े, चमड़ें, लोहे या रलों आदिसे गढ़, काट या छील छाल कर जो वस्तु वनाई जाती है, उसे पुस्त कहते हैं।

पुस्त्यते वध्यते प्रध्यते इत्यर्थः, आद्रियते वा इति पुस्त-धम् । २ पुस्तक, कितान।

पुस्तक (सं क्की) पुस्त-खार्थे-कन् । पुस्त, पुस्तक, प्रन्थ, किताव। हिन्दीमें यह शब्द स्त्रीलिङ्ग माना गया है। पुस्तकके परिमाण और लेखनादिका विषय योगि-नीतन्त्रमें इस प्रकार लिखा हैं—

"मानं बक्ष्ये पुस्तकस्य श्रृणु देवि समासतः।
मानेनापि फलं विन्यादमाने श्रीईता भवेत्॥
हस्तमानं मुष्टिमानमावाहु द्वादशांगुलं।
दशांगुलं तथाष्टौ च तती हीनं न कारयेत्॥"

पुस्तकका परिमाण हाथ भर, मुद्दी भर, वारह उंगली, दश उंगली अथवा आठ उंगली होना चाहिये। इससे कम होनेसे काम नहीं चलेगा। यधोक परिमाणकी पुस्तक गुणकर होती है। परिमाण विपरीत होनेसे श्रीभ्रष्ट होना पड़ता है।

"भूजें वा तेजपते वा ताले वा ताड़िपतके। अगुक्रणापि देवेशि पुस्तकं कारपेत् प्रिये॥ सम्भवे खर्णपते च ताम्रपते च शङ्कृरि!। अन्यवृक्षत्वचि देवि तथा केतिकपतके॥ मार्त्तेण्डपते रौषो वा वटपते वरानने। अन्यपते वसुद्रहे लिखित्वा यः समभ्यसेत्॥ स दुर्गतिमवाप्नोति धनहानिर्भवेदु धुवं॥" (योगिनीतन्त)

पुस्तक लिखनेका पत—भोजपत, तेजपत्र और ताड़-के पत्ते पर पुस्तक लिखी जाती है। सम्भव रहने पर सुवर्णपत, ताम्रपत, केतकीपत, मार्तपड़पत, रोप्यपत वा वटपत पर पुस्तक लिखी जा सकती है। पतिक्रव जो अन्य पत पर पुस्तक लिख कर अभ्यास करते हैं, वे पीछे दुर्गितिको यास होते हैं।

पुस्तकमें वेद नहीं लिखना चाहिये। यदि कोई पुस्तकमें लिख कर वेद पाठ करे, तो उसे ब्रह्महत्यका पाप होता है तथा घरमें रखनेसे भी उसका अनिष्ठ होता है।

"वेदस्य लिखनं इत्वा यः पठेत् ब्रह्माहा भवेत्। पुस्तकं वा गृहे स्थाप्यं वज्रपाती भवेद् ध्रुवं॥" (योगिनीतन्त्र ३ भा० ७ प०)

युगभेद्से पुस्तकके अक्षरमें भिन्न भिन्न देवता वास करते हैं। सत्ययुगमें शस्मु, द्वापरमें प्रजापित, बेतामें सूर्य और कलिकालमें लिपिके अक्षरमें खयं हरि वास करते हैं। इन सब अक्षरोंमें जो सब देवता रहते हैं, पुस्तकके आरम्भ वा समाप्ति कालमें उन सब देवताओंकी पूजा करनी होती है।

वेतन ग्रहण करके पुस्तक लिखना मना है। यदि कोई पेसा करे, तो उस पुस्तकके अक्षरके संख्यानुसार वह नरकमें वास करता है।

भूमि पर पुस्तक लिखनी वा रखनी नहीं चाहिये। जी ऐसा करते हैं, वे जन्म जन्मान्तर मूर्ख होते हैं।

पद्मपुराणके उत्तरखएडमें लिखा है, —धर्मशास्त्र और पुराण-शास्त्र लिख कर यदि ब्राह्मणको दान किया जाय, तो दाता देवत्वको प्राप्त होता है। वेदिवद्या और आत्म-विद्यादि शास्त्र कार्त्तिक मासमें ब्राह्मणको दान करनेसे अशेप पुण्य होता है। (१६९८ उत्तर्ख० ११७ अ०)

गठड़पुराणके २१५वें अध्यायमें लिखा है, कि वेदाध यज्ञशास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणादि पुस्तक जो रुपये दे कर दूसरेसे लिखा करके बाह्मणको दान करते हैं, वे अनेक प्रकारके सुख भोग कर अन्तमें सर्गको जाते हैं। भागवतादि वैश्ववयन्थ दान करनेसे विष्णु पदमें मक्ति और अन्तमें सर्गलाम होता है।

हेंमादिके दानखएडमें पुस्तकदानका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

पुस्तकमुदा (सं० स्त्री०) तन्त्रसारोक्त मुद्रामेद। वार्ष हाथकी मुद्री अपनी ओर करनेसे ही यह मुद्रा होती है। पुस्तकर्मन् (सं० ति०) पुस्तं प्रन्थलेखनं कर्माऽस्य। लेख्यादि कर्मकर्त्ता, लिखने आदिका काम करनेत्राला। पुस्तकशिम्बिका (सं० ति०) पुस्तकके आकारका; पोधी-के कपका।

पुस्तकागार (सं० पु०) पुस्तकस्य आगारः । पुस्तकालय, बह भवन या घर जिसमें पुस्तकोंका संब्रह हो ।

पुस्तकालय (सं॰ क्ली॰) १ पुस्तकागार, वह भवन जिसमें धम तथा विज्ञानादि सम्बन्धीय अनेक पुस्तकोंका संग्रह हो। जिस घरमें पुस्तकें नियमित इपसे तालिकायुक और सुश्रेणीवद हो कर अलमारीमें अच्छी तरह सजी रहती हैं, उसीको पुस्तकालय कहते हैं। अङ्गरेजीमें जिस नियमसे लाइब्रेरियां सजी रहती हैं, ठीक उसी नियमसे हम लोगोंके देशके वर्तमान पुस्तकालय भी सजे रहते हैं, किन्तु बहुत प्राचीनकालमें जब हाथकी लिखी हुई पुस्तक (Manuscript)-के सिवा छपो पुस्तकका नामनिशान तक भी न था। उस अनन्त-क्रोड़ावच्छिन्त पुण्यमय वैदिकसुगर्मे भी लेखनीनिवद वैदिकमन्त्रादि संरक्षणका कुछ आभास पाया जाता है। वत्तमान शैलीसे छपी वा हाथकी लिखी पुस्तकका संग्रह शिक्षित और सुसभ्य जगत्में जातीय उन्नतिका एकमात ं आद्रशं स्थल है। आज कल पुस्तक वेचनेवाले भी ं साइनवीडमें 'पुस्तककी दूकान' (Book-shop) छजा-वशतः ऐसा न लिख कर 'पुस्तकालय' (Library) हो लिख दिया करते हैं । किन्तु ऐसा नामकरण ठीक नहीं है। पुस्तकालयसे जव चाहें, तव पढ़नेके लिये एक एक ग्रन्थ अपने घर छा सकते हैं। उसे छीटा देने पर पुनः अपने इच्छानुसार दूसरा ग्रन्थ छानेमें कोई शापित नहीं रहती।

साधारणतः पुस्तकालय दो प्रकारका है, सकीय

(Private) पुस्तकांलय और साधारण त्रा पर्वलिक (Public) पुस्तकालय । जिस पुस्तकालयमें अपनी मानसिक वृत्तियोंकी स्फूर्ति सम्पादनार्थं और विद्या चर्चाकी उन्नतिके लिये किसी ज्ञानवान चक्तिने तरह तरहकी पुस्तकोंका संग्रह कर उन्हें सेल्फ, अलमारी आदिमें सजा रखा है, उसे खकीय (Private) पुस्तका-लय और जो जन साधारणके चंदेसे अथवा दातव्य अर्थ-से तथा देशवासियोंके ऐकान्तिक उद्यमसे संगठित हुआ - है, उसे साधारण वा पवलिक (Pablic) पुस्तकालय कहते हैं। उन सब पुस्तकालयसे पुस्तक लेनेमें अध्यक्ष अथवा अधिकारीको अनुमति छेनी पड़ती है। कहीं कहीं पुस्तकालयके कलेवरकी वृद्धि और उसका वर्च चलानेके लिये प्रत्येक सम्य (Member)-से कुछ कुछ मासिक, बैमासिक वा वार्षिक चंदा लिया जाता है। राजाकी ओरसे सब पुस्तकालय स्थापित और परिपी-पित होते हैं। उनमें जनसाधारणका चंदा नहीं लिया जाता । पेसे सव पुस्तकाकय विद्वस्मण्डलीके उपकारार्थ खोले जाते हैं। वहांसे प्रन्थ लेनेमें परिचालक समितिका अनुमति लेनी पड़ती है।

भारतमें आदि पुस्तकाळ्येकी कथा।

पुस्तकका आदर भारतवर्षमें वहुत दिनोंसे चला आ रहा है। ब्राह्मण पिएडत धर्मप्रन्थ और दर्शनादिका; राजा इतिहास, काव्य और धर्मशास्त्रादिका तथा दीन दरिद्र देशभाषामें रिचत उपदेशमूलक नाना कविता-प्रन्थका आदर करते हैं। यह प्रथा भारतवर्षमें आजसे नहीं वहुत पहलेसे चली आ रही है।

समस्त सम्य जातियोंके आदि इतिहासकी आलो-चना करनेसे जाना जाता है, कि उनके पुरोहित वा आचार्यगण ही आदि प्रत्थोंके प्रणेता और संप्रहकता थे। वे ही वड़ी सावधानीसे पुस्तकोंकी रक्षा करते थे। इस मारतवर्षमें भी वही देखनेमें आता है। यहांके आर्थ अप्रिंगण ही धर्मशास्त्रादिका प्रणयन करते और वड़े यहासे उन्हें रखते थे।

भारतीय नाना प्राचीन प्रन्थोंने लिखा है, एक एक मुनिके दश दश हजार तक शिष्य रहते थे। वे उन शिष्योंको खिलाते, कर्पड़ा देते और पढ़ाते थे। पहले जव लिपित्रधाका आविष्कार नहीं हुआ था, उस समय
कोई वैदिक ऋषि एक स्तुतिगान वा मन्त्र कह दिया
करते थे जो थोड़े ही समयके अन्दर हजारों शिषाके
हदयङ्गम हो जाता था। इसी प्रकार वह वंशपरम्परासे
वलता आता था।

इसके बाद चिह्न वा चिताङ्कण द्वारा सुप्रसिद्ध घटना-वली लिपिवद्ध करनेका उपाय अवलम्बित हुआ। वीस हजार वर्षकी प्राचीन सुमेरीय चित्तलिपिका निद-शन भारतवर्षके सिन्धु विमागान्तर्गत महेञ्जोदेरो और हरप्पो नामक स्थानमें तथा हकवतान (Echatana) नगरमें मद्रोंके और सूसा नगरमें पारसिकोंके सुप्राचीन संप्रहागारमें देखनेमें आता है। शिल्प विद्या और विज्ञान-चर्चा विस्तारके साथ साथ लिपिकाय भी धीरे धीरे फैलने लगा।

धर्मसूबके समयसे लिपिकरकी उत्पत्ति हुई! पाणिनिके ज्याकरणसे जाना जाता है, कि उनके पहलेसे हो लिपिपद्धति वा किसो प्रन्थको पत्नमें लिखनेको प्रथा प्रचलित थी। पाणिनिके पहले भी परल, काएड, पत्न, सूत और प्रन्थ इत्यादि शब्द प्रचलित थे। जिससे कोई अनुमान करते हैं, कि उसके पहलेसे ही वृक्षके छिलकेमें अथवा काएड वा पत्नमें छिपिकार्य सम्पादित होता था। इसी कारण प्रन्थविशेषके अंशका नाम पटल, पत्न, काएड इत्यादि विभाग कल्पित हुआ है। फिरसे वे सब विभिन्न परल वा काएड एक साथ गांध कर रखे जाते थे, इसीसे मूल पुस्तकका 'प्रन्थ' नाम पड़ा है। निरुक्तमें "अर्थतो-भग्धतश्र" इत्यादि प्रमाण द्वारा मूल पुस्तकके अस्तित्त्व-की कल्पना की जाती है। परन्तु पूर्वकालीन प्रन्थ कहने-से आज कलके जैसा 'पुस्तक' का ज्ञान नहीं होता था। पेसी पुस्तककी सृष्टि अधिक दिनकी नहीं है। यवन-प्रभावके वादसे हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है।

पहले तालपत, ताड़ितपत, भूजपत, वल्कल आदिमें लिखनेकी रीति थीं जो आज भी 'पोथी' नामसे प्रसिद्ध है। वे सब पोथी जहां रखी जाती थीं, उसे 'प्रन्थकुटी' (Library) कहते थे। प्रत्येक धर्माध्यक्ष, प्रत्येक राजा, प्रत्येक धर्माध्यक्ष, प्रत्येक राजा, प्रत्येक धर्माध्यक्ष, प्रत्येक राजा, प्रत्येक धर्माधिकरणके यहां अथवा वहुजनाकीण देवमन्दिर वा मटमें इस प्रकारकी 'प्रन्थकुटी' रहती है।

कागन शब्द देखी।

पाणिनिका अनुसरण करनेसे इतना अंबश्य कह सकतें हैं, कि तीन हजार वर्षसे भी पहले 'ग्रन्थ'-एक्षाकार्य आरम्म हुआ। सचमुच उस समय किसी विद्यार्थों के लिये पोथी देख कर पाठका अम्यास करना विलक्कल निषिद्ध था। साधारणको सुविधाके लिये लिपिकरगण ग्रन्थविशेषकी नकल करते थे।

पूर्वकालमें वेदको लिपिवद करनेका नियम नहीं था, किन्तु जब वेदके बहुतसे मन्त लुप्त होने पर थे तथा कीन मन्त्र किस अधिने प्रकाशित किया था, इसके निणयमें गड़वड़ी थी, उस समय कृष्णहें पायन वेदव्यासने भिन्न भिन्न वेदमन्त्रोंको संग्रह कर वेद-विभाग किया था। इस वेदिवभागके बाद ही सम्भवतः वेदको लिपिवद करनेकी चेंद्रा हुई थी। शायद इसी समय विभिन्न वेदका उचारण स्थिर करनेके लिये विभिन्न प्रातिशाख्य रवा गया। महामारतके समय जो वेद और शास्त्र लिपिवद होते थे, उसका प्रमाण तो मिलता है, पर लिपिवद वेदका प्रचार वहुत कम देखा जाता है। यथा—

"विशिष्ठ उवाच। यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम्। पवमेतद्यथा चैतन्तिगृहाति तथा भवान्॥ ११ धार्यते हि त्वया प्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः। त च प्रन्थार्थतत्त्वको यथावत्त्वं नरेश्वर॥ १२ यो हि चेदे च शास्त्रे च प्रन्थधारणतत्परः। त च प्रन्थार्थतत्त्वक्षस्तस्य तद्धारणं चुथा॥ १३ भारं स वहते तस्य प्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः। यस्तु प्रन्थार्थतत्त्वक्षो नास्य प्रन्थागमी चुथा॥ १४ प्रन्थस्यार्थस्य पृष्टः संस्ताद्वशो वम्तुमहिति।"

('शान्तिप० ३०५.झ०)

विशष्टिने कहा, महाराज (जनक)! तुमने वेद और शास्त्रकी जो कथा कही, वह उसी प्रकार तो है, पर तुमने उसका यथार्थ तात्पर्य नहीं समन्ता। तुमने वेद और स्मृति आदिका अम्यास किया है, पर उससे तुम्हें कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। जो अन्थका अम्यास करनेमें तत्पर हैं, पर प्रन्थका यथार्थ तात्पर्य प्रहण नहीं कर सकते, उत्त लोगोंका वैसा अम्यास करना पशुश्रममाल है। वे केवल प्रन्थका भारवहन करते हैं। किन्तु जो प्रन्थका यथार्थ तस्त्र समन्ति हों और प्रश्न करनेसे अनु-

ह्मप प्रत्युंत्तर दे संकर्ते हीं, उन्हींका परिश्रम सार्थक है। यहां वेदादि शास्त्रके भारवहनकी कथासे वेदादिशास्त्र-के प्रनथका ही वीध होता है।

वैदिक प्रन्थ छोड़ कर और सभी प्रन्योंका यथेए प्रचार था। किन्तु वेद वा घमँशास्त्रादि अथवा जिस जिस प्रन्थमें वेदका प्रसङ्ग हैं वे सब प्रन्थ छिखे जाने पर भी किसो शूद्रको दिखाये नहीं जाते थे अथवा जिससे कीई भी शूद्र उन्हें देख न सके, ऐसे हिसावसे वे रखे जाते थे। नाना विधर्मियों वा सम्प्रदायोंके प्रभावसे भारतवर्षसे यह प्रथा उठ तो गई पर यवद्वीपके श्राह्मणोंमें यह भाव आज भी तिरोहित नहीं हुआ है। वहां श्राह्मण छोग प्राण जाने पर भी शूद्रके सामने कोई मन्त उचारण नहीं करते। यहां तक कि उनके प्रिय ब्रह्माण्डपुराण तक भी किसी शूद्रको नहीं दिखाते। वहां शूद्रौंको महाभारत, रामायण और काव्यादि देखनेका अधिकार है।

पाणिनिके पहले प्रन्थ लिपिवद होनेकी प्रथा प्रच-लित रहने तथा अनेक प्रन्थ रचे जाने पर भी पूर्वकालमें निर्दिष्ट प्रन्थकुटी वा प्रन्थागारका प्रमाण नहीं मिलता।

वौद्ध और जैनधर्मके प्रभावके साथ जब बहुतसे लोग अपने अपने पूर्वपुरुषके धर्ममतको परिवर्त्तन करके नूतन मत ग्रहण करते थे, जब वे और उनके वंशधरगण अपने पूर्वपुरुषोंकी नित्यउच्चारित प्रन्थावली भी भूलते थे, उसी समयसे त्रन्थको लिपिवद करनेका प्रयोजन पड़ा था और उसके साथ साथ प्रन्थकुंटी खोलने की आवश्यकता भी जनसाधारणने हृद्यङ्गम कर ली थी। उस धर्म-संघष-के समय सभी अपने अपने मतका प्रचार करने और भिन्न मतके छिद्रान्वेषणमें कमर कसे हुए थे। अतः एक दूसरे-का मत जाननेके लिये उन सव धर्ममूलक वा सम्प्रदायिक प्रत्थोंके संप्रहमें यत्नवान हुए थे। इसी कारण अनेक न्नन्थ लिपिवद्ध और प्रचारित होनेकी सुविधा हुई थी। यही कारण है, कि हम छोग प्राचीन वौद्धप्रन्थमें 'प्रन्थ संग्रह' करना पुण्यजनक कार्य है, ऐसा उल्लेख देखते हैं। इसीलिये वौद्धस ङ्घाराममें और जैनमठमें सभी सम्प्रदायों-के हजारों प्रन्थ संगृहीत और रक्षित होते थे।

जैत और गैंद शब्द देली।

७वां शताब्दीमं चीमपरिधाजक यूपनचुवज्जने नालन्दा

विहारमें हजारों ग्रन्थ देखे थे। लीटते समय वे भारत-वर्षसे २२ घोड़ों पर छाद कर महायान मतावलियोंके १२४ स्त्र और ५२० खण्डोंमें विभक्त दूसरे दूसरे ग्रन्थ छे गये थे। उसके पहले और पीछे भी अनेक भारतीय पण्डित इस देशके अनेक ग्रन्थ छे गये हैं। बाज भी चीन और जापानके अनेक पुरातन महींमें उसका अस्तिस्व पाया जाता है।

धर्मशास्त्र, पुराण और काष्यादिकी तरह पूर्वतन , भारतीय राजगण प्राचीन ताम्रशासन और प्रशस्तिगेंका संग्रह किया करते थे। इस प्रकारके ताम्रशासनादि प्रस्तरपेटिकावद्ध और श्रन्थकुटीके मध्य रक्षे जाते थे। यह प्राचीन प्रथा मध्ययुगमें भी जारी थी। उत्कलसे स्य नर्रासहदेवका जो ३ प्रस्थ ताम्रशासन तथा कुछ वय हुए, वाराणसीके निकट जो एक समय १५ प्रस्थ ताम्र-शासन आविष्कृत हुए हैं, उनमें भी उस प्राचीन रीतिका बहुत कुछ निद्शैन पाया जाता है।

[गांगेय शब्द और Epigraphia Indica, Vol, II.

आसिरीय-राज्य ।

प्राचीन राजधानी निनिभि-नगर उत्सात स्त्पमेंसे जो सब कीणाकार अक्षर-मण्डित मृत्फळक (Clay-tablets) आविष्कृत हुए हैं, उन्हें पहनेसे मालूम होता है, कि वे सब महिमान्वित असुरवणिपाळ (Sardana-palus of the Greek) राजाके पुस्तकाळयके मूचण-स्वरूप थे।(१) इससे और भी पहले वाविलोनीय जाति-का अन्युदय इआ था। काळदीय (Chaldeans) गणकी मानसिक उक्षतिसे ज्योतिःशास्त्रका विकाश आरम्भ हुआ। कोई विशेष निदर्शन नहीं रहने पर भी

⁽१) Menant सहबने अपनी Bibliotheque du Pulais de Niuive नामक पुस्तकमें किला है, कि प्राय: १० हजार पंथ और राज़कीय पत्रादि जो सतकल कर्मे खरे हुए थे, किल पुस्तकालयमें को ना पाते थे। अभी उन सब पत्रकों जिसे किल British Museum नामक पुस्तकामारमें रिवत हैं और कमसे कहा २० हजार फलक निनिमेके ध्व सानशेषके मध्य इनर उत्तर पर्दे हुए हैं।

प्रन्थादि प्रमाणमें उसका बहुत कुछ भाभास पाया जाता है। बाविडन शब्द देखी।

इजिप्त ।

पूर्वतन इजिप्तराज्यमें पुस्तकालय था वा नहीं, इस विषयमें हमें कोई प्रकृत प्रमाण नहीं मिलता । जो चित्रा-क्षर (Bieroglyphic writings) आज भी नाना स्थानोंमें विद्यमान है, वह ईसा जन्मके दो हजार वर्ष पहले किसी शताब्दीमें किएत हुआ होगा । इसके वाद पृथ्यत्वक्-निर्मित (Pap) rus) कागजका उद्धावना-काल माना जाता है।

ईसा-जन्मके पहले १६वीं शताब्दीमें राजा एमिनोफिस (Amenophis I of the 18th dynasty के राजत्व कालका एक प्रन्थ उसी प्रकारके कागजमें पाथा गया है। वह कागज भोजपत्रके जैसा परिष्कृत देखनेमें लगता था। इसके भी पहले कागजकी प्रश्नम सृष्टि स्चित हुई थी। तभीसे कागजमें लिखित प्रन्थादिके रचनाकालको कल्पना को जा सकती है। प्राचीन भारतकी तरह इजिसके धर्ममन्दिरमें भी प्रन्थादि एके जाते थे। 'थाथ' (Thoth) नामक पवित पुस्तकमें(२) वे लोग धर्म और विज्ञान सम्यन्थीय व्यापार लिपिवद करके रखते थे। केवल मन्द्रितिमें ही उक्त प्रन्थ एके जाते थे, सी नहीं, मृत राजाओंके समाधिमन्द्रिमें भी पुस्तक संगृहीत होती थी।

ईसा जनमके पहले १४वीं शताब्दीमें राजा ओसि-मारिडयस (ing symandyas, identified with Ramses I) द्वारा स्थापित ऐसे एक पुस्तकालयका उल्लेख है।(३) औसि मरिडयसके दो ग्रन्थरक्षकोंके भी समाधिमन्दिरमें उन सव पुस्तकींका संग्रह था। लेप-सियसने उसका भी उल्लेख किया है। अलावा इसके मेग्फिसके मन्दिरमें एक और पुस्तकागारकी कथा युष्टा-थियस (Eustathius) लिख गये हैं। उपयु परि पार-सिक आक्रमणसे इजितीय साहित्यमें वहुत धका लगा। कुल ग्रन्थ लय प्राप्त हुए, कुल विजेतासे पारस्य-राजधानी-में लाये गये जो पीछे ग्रीकराजके हाथ लगे। फलतः इजिप्तका पूर्वतन गीरव वैदेशिकके हाथमें पड़ कर क्रमशः चित्रमाण और निखम हो गया।

श्रीस ।

ग्रीस राज्यमें भी पिसियाटस् (Pissistratus), पोलिक टिस् (Polycrates of Samos), युक्तिड (Fuclid the Athenian), निकोक्रेटिस (Nicocrates of Cyprus), युरिपाइडिस् और अरिष्टटल् आदिकी पुस्तकसंप्रहवार्ता हम लोगोंको अच्छी तरह मालूम है। पिसिश्राटस्ने सबसे पहले एक पुस्तकालय कोला। पाँछे अलेस-गेलियस् (Aules-Gellius) और प्लेटो (Plazo)ने कुछ पुस्तकोंका संब्रह किया । जेनो-फनने भी युथिडेमस (Eugthydemus) नामक किसी व्यक्तिके पुस्तकागारका उक्लेख किया है। आरिएटल अपनी पुस्तकालय प्रियशिष्य थियोफाएस् (Theo-Phrastus)-को और फिर थियोफाएस् भी उसे निलि-यसको दान कर गये। पार्गमस-राजाओं (Kings of rergamus) की प्रन्थलोलुपतासे अपनी पुस्तकाविल-को वचानेके लिये निलियस् सेप्सिस् (Scepsis)-को भाग गये। पीछे वह दूसरेके हाथ छगा।(४) शिलालिपि पढ़नेसे और भी कई एक पुस्तकालयोंका हम लोगोंको

(अ) ऐतिहासिक प्रानोका कहना है, कि उक्त पुस्तकावयको टियसनासी एपेलिकन (Apellicon of Teos) नामक किसी व्यक्तिने खरीह कर आयेग्समें रखा। रोमराज सिका (Sulla)-के ग्रीक्जयके बाद वह रोम राज्यभानीमें काया नगा। (Strabo, XIII, pp 608-9) किन्तु आये निरुष् (Athenaeus I, 4)-ने जिल्ला है, कि टकेनी फिलाकेक्स (Ptolemy Philadelphus)-ने निल्लिक्स उत्तका स्वस्त खरीह लिया।

Ramses I) द्वारा स्थापित ऐसे एक पुस्तकालयका उल्लेख है।(३) ऑसि मण्डियसके दो ग्रन्थरहरकोंके भी (२) पहले 'याक' प्रन्य ४२ खराडोंने विभक्त था। कमशः उन सूत्रोंकी टीका और टिप्पनीरे कुछ खण्ड और यह गये। ब्रोकवासियोंने जब इलिस्टाब्यको जीता, अस समय 'याक' साहित्यमें ३६५२५ प्रन्य छिस्ने जा सुके थे।

Lepsins, Chronologie der Egypter, p. 12 . (३) येतिस (Thebes) के निकटनती Ramesseum नामक विख्यात प्रासाद-मन्दिरमें वे सब पुस्तके रखी गई थीं। विकालिपिमें उसका नाम 'आत्माका शौषधालय' लिखा है। (Ancient Egypt J. III sq.)

पता लगता है। किन्तु उन पाठागारोंमें जो सब पुस्तक थे, वे फिस भाषाके और कितने थे, सो ठीक ठीक मालूम नहीं। टावोकी वात पर यदि विश्वास किया जाय, तो पहले आरिष्टरलको ही पुस्तकालय-प्रतिष्ठाता मान सकते हैं। उन्हींके प्रसादसे ईजिस राजाओंने पुस्तक-संग्रहका स्वादं चला था। अलेक-सन्द्रियाका विश्व-विख्यात पुस्तकालय जगत्में सुप्राचीन समका जाता है। ऊँचे दिमागवाले रलेमीवंशीय राजाओंके सुशासन और विद्योन्तितसे राज्यमें अनेक दार्शनिक और वैद्यानिकका अभ्युदय हुआ। टलेमी सीतर (Sotor)-ने पुस्तक संप्रहमें वतो हो कर जिस कार्यका आरम्भ किया, उनके वंशधर फिलाडेल्फस्ने नाना देशोंसे प्रन्थादि संप्रह कर उनका उद्यम सुसम्पन्न किया था। वे उन पुस्तकोंको अच्छी प्रणालीसे श्रेणीवद करके अपने मकानमें विभिन्न पुस्तकालय स्थापित कर गये। ये लोग विभिन्न भाषाको पुस्तकको नकळ करनेके लिये आदमी रखते थे । उनके पुत युरगेटिस् (Ptolemy Euergetes)-ने वेदेशिकोंसे वहतों प्रन्थ छे कर पुस्तकालयका श्री सम्पादन अलेकसन्द्रिया-महानगरीमें हो पुस्तकालय स्थापित थे। वड़े पुस्तकालयको जादूघर (Museum) और विश्वविद्यालयसे संयुक्त करके ब्रुकियम् (Bruchium quarter) विभागमें और दूसरा सिरापियम् (Serapeum) विभागमें रखा गया। उन दोनों पुस्त-कालयमें कितने प्रन्थ थे, उसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। अलेकसन्द्रियाके पुस्तकालयमें जेनोडोटस् (Zeno dotus), कालिमाकस् (Callimachus) एराटोस्थे-निस् (Eratosthenes), आपोलोनियस् (Apollonius) और अरिप्रोफेनिस् (Aristophanes) ब्रादि विख्यात प्रन्थरक्षकोंके नाम देखे जाते हैं। कालिमाकस्ने अपनी ग्रन्थरक्षताके समय जिस सुवृहत् पुस्तक्र-तालिका (Patalogue)-का प्रणयन किया, उसमें दोनों पुस्तकालयकी प्रतथसंख्या लिपिवद हुई है।(५) जब सीजरने अलेक-

सिन्द्रयाके उपक्रूछस्थ जंगी जहाजोंमें आग छगा कर उन्हें खाक कर ढाछा, तव ब्रुकियमका विख्यात विद्यालय मय पुस्तकोंके नए हो गया था।(६) दूसरे साछ आण्टनी महो-द्यने उक्त क्षतिपूरणार्थ पार्गामसके अधिकृत पुस्तकालय क्षियोपेद्राको दान करके अलेकसिन्द्रयाका विद्यागीरव अक्षुण्ण रखा। २७३ ई॰में आरेडियन (Aurelian) कर्नु क ब्रुकियम ध्वंसके साथ साथ एक पुस्तकालयका अस्तित्व मी छोप हो गया। ३८६ वा ३६१ ई॰में थियो-होसियसके अनुशासन (Edict of Theodosius)-में लिखा है, कि ईसाइयोंने सिरापियमके पुस्तकागरको ध्वंस किया और लूटा था। पीछे ३४० ई॰में क्षियो-पेद्रा-प्रतिष्ठित वह विख्यात पुस्तकालय सारासेनियों (Saracens)-के आक्रमणसे विलुप्त हो गया। जो कुछ वच रहा था, उसने भी ओमा-खळीफाकी सेनाके उपद्रवस्थे कालकी गोदमें आध्रय लिया।

वागीनस् ।

साहित्यचर्चाकी उन्नतिके लिपे पार्गामस-राजाओंने टलेमीवंशीय राजाओंको पराङ्मुख किया था। टलेमी राजाओंको (Papyrus) कागजकी रपतनी वंद कर देने पर भी अहली (Pttali)के पुस्तकालयने जगतमें प्रधानता लाम की थी। जब वह पुस्तकागार इजिप्टमें उठा कर लाया गया, उस समय उसमें प्रायः दो लाख प्रन्य थे। खीडस (Suidas)-के वर्णनसे हम लोगको पता चलता है, कि ईसा-जन्मके २२१ वर्ष पहले महात्मा अन्तियोक (Antiochus the Great)-ने कालसिसवासी विख्यात वैयाकरण गुफोरियन (Euphorion of chalci-)-को अपने पुस्तकागारके प्रन्थरक्षकमें नियुक्त किया था।

रोन ।

जातीय उन्नति और खाधीनताकी वृद्धिके साध साथ हम लोग सुसभ्य रोमचासियोंकी साहित्यचर्याका कोई जेम्बर (Tzei, ने स्वलिजित टिप्पनीमें कालिमाइक और हराटस्थेनिएके वचनसे सिरावियममें ४२८०० और विक्यमें ४१००० ग्रन्थोंका निर्देश किया है।

(६) Parthey आदि ऐतिहासिकगण इस बातका मीलि-कर्द स्वीकार नहीं करते !

^{(&#}x27;4) किंतु अलास-गेलियस्ने ७०००० और सेनेश (Seneca)-ने ४०००० ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। Ritschl, Die Alexandrinischen Bibliothenken, 6. 22

प्राचीन इतिहास नहीं पाते । वे लोग स्वभावतः ही कर्म-शील और रणकुशल थे । प्रवल रणिपासाके दुद्द[°]म-स्रोतसे अर्थछाछसा और देश-जयकी आकाङ्क्षाने वृद्धि पाई थी, किन्तु विद्योन्नतिकी ओर उनका जरा भी लक्ष न था। १६७ ई॰में पमिलियस पलास (Emilius Paulus) माकिदोनियासे पार्सियस (Perseus) युद्धजयके चिह्न-सक्त वहतसी पुस्तकं संग्रह कर लाये। यही रोमराज्यके प्रथम पुस्तकालयकी सृष्टि है। १४६ ई० सन्के पहले जव सिपियो (Scipio) कार्येजको जय कर वहांके पुस्तकालयसे केवलमात मागोकी लिखी कृपिविपयक पुस्तकें अपने देशमें लाये और अपरापर व्रन्थ अफ्रिकाके छोटे छोटे राजाओंको दान कर दिये, ७ उसके बाद अपिछ-कन-दि ताइयन (Apellicon the Teian)-को परास्त कर ८६ ई०सन्के पहले सिला पथेन्ससेखदेशमें पुस्तका लय उडा लाये। लुकुलस् (Lucullus)ने ६७ ई०सन्के पहले पूर्वेदेशको फतह कर स्वदेशके साहित्य-भाएडारमें बहुमूल्य व्रन्थादि अर्पण किये। सिसिरो और आटिकस्ने अनेक प्रन्थ संप्रह किये थे। दिरानियन (Tyrannion)-ने भपने पुस्तकागारमें तीस हजार प्रन्थींका संप्रह किया था।

सिसिरोने खयं दरेन्सस् भारोके पुस्तकालयका उल्लेख किया है। सिरिनस् सामोनिकस् (Serenus Sammonious)-ने ६२ हजार अन्य संग्रह किये। सीजर रोमराजधानीमें एक साधारण पुस्तकागार खोल गये हैं। यहां प्रन्थरक्षक कपमें रह कर ही भारोकी प्रन्थरणा बलवती हुई थी। श्लिनिने आविद्ध पोलियो (Asinius Pollio)-को ही साधारण पुस्तकालयका आदि स्ष्टिकर्त्ता माना है। आवेण्टाइन (Mount Aventine) पर्वतके पद्गियम् लिवरदादिस् (Atrium Libertatis) नामक स्थानमें वह पुस्तकालय स्थापित हुआ। इसके वाद सम्राट् अगष्टस्ने ३३ ई०सन्के पहले ओष्ट वियन और पैलटाइन नामक दो साधारण पुस्तकागार खोले। किन्तु दुर्देवक्रमसे दोनों ही यथाक्रम टाइटस् और कोनोडिवस्-राजके राजत्वकालमें जला दिये गये। भनन्तर टाइविरिवस्, भेस्पेसियन, भौमिटियन, हाज्रियन

आदि राजाओंने एक एक पुस्तकालय खोल कर देशका गौरव बढ़ाया।८

द्राजन फोराममें उलिपयस् द्राजनस (Ulpius Trajanu॰)-ने जनसाधारणकी भलाईके लिये अपने नाम पर एक वड़ा (Imperial Library) पुस्तकालय खोला । पीछे वह बाइयोक्किसियन्के स्नानागार (Baths of Diocletian)-में स्थानान्तरित हुआ। ४थी शताव्दीको रोमराजधानीमें प्रायः २८ साधारण-पुस्तकागार स्थापित हुए थे । केवल रोमनगरमें ही पुस्तकालय स्थापित कर नगरवासी और राजन्यवर्ग धन्य हुए थे, सो नहीं, तिवर (Tibur), कोसम (Comum), मिलान (Milan), आथेन्स (Athens), स्मिर्णा, पाद्रो (Patrae) और हासू-लेनियम् (Herculaneum) आदि स्थानीमें भी पुस्तका-गार स्थापन करके वे महायशस्त्री हुए हैं। उन सव प्रन्थागारोमें प्राचीर-संलग्न काठकी तख्ती पर हस्तिखिखत प्रनथ और कोष्ठीके जैसे कागजमें लिखित प्रनथादि 🔊 ड कर ख्यातनामा मनुष्यका चित्रपट, पत्थर और महीकी मूर्त्ति (Statue) आदि सजी रहती थीं। पुस्तकालयकी वृद्धिके साथ हम लोग C. Hymenaeus, C. Julius Vestimus आदि कुछ महापिएडतोंको प्रन्थरक्षकतः कार्यमें नियुक्त देखते हैं। शिलालिपिमें उनका अक्षय नाम खुदा हुआ है।

क्नस्तान्तिनीपक ।

सम्राट् कनस्तान्ताइनने वमफ्रास उपक्लमें राजभानी वसा कर पुस्तक संग्रहकी ओर विशेष ध्यान दिया। वे एकमात खुष्टान धर्मसाहित्यके वड़े प्रेमी थे, इसीसे उन्होंने ६६०० प्रन्थ संग्रह किये थे। केवल यही सब प्रन्थ संग्रह करनेका दूसरा यह भी कारण था, कि डाइ-ओक्किशियनने खुष्टधर्मसंकान्त अधिकांश पुस्तक नष्ट कर डार्ला थी। परवसी राजाओंके उद्यमसे पुस्तकालयकी वहुत कुछ तरकी हुई थी। ज्लियन और थियोडोसियसके

⁽⁹⁾ Phoy, Il N. Xviii 5.

⁽द) किसी विसी हा कहना है कि इंडी शतान्त्रीन पोप ग गरी-दि-ग्रेटके आदेशमें वह पुस्त हागार व्यंत्रप्राप्त हुआ ; किंतु यह निवान्त अमूलक है। (Ency Britt, Vol XIV, p. 511.)

विशेष उद्योगसे प्रायः एक लाख प्रन्थ संगृहीत हुए। जिल्लयनकी सहायतासे निसिविस नगरमें भी एक पुस्त-कालय खोला गया था। ४७७ ई०में सम्राट् जेनी (Emperor Zeno) के राजत्वकालमें कनस्तान्तिनोपलका पुस्तकालय अग्निद्ध होने पर भी जनसाधारणके आग्रहसे उसकी पुनः स्थापना हुई।

जव खृष्टधर्मके प्रसारके साथ साथ खृष्टान साहित्यका आदर बढ़ने छगा, तव सभी धर्मप्रन्थोंका रक्षा भार एकमाल गिर्जाधरके अधीन रहा । इरी शताब्दीमें जव जेरुसलेम नगरका भजनमन्दिर स्थापित हुआ, तव धर्मप्रन्थसम्बलित एक पुस्तकालय उसके साथ जोड़ दिया गया, ईसा-धर्मप्रचारके अभिप्रायसे धीरे धीरे प्रत्येक गिर्जाधरमें या प्राम्प्रभजना-मन्दिरमें खृष्टधर्मप्रन्थके संग्रहकी व्यवस्था प्रवर्तित हुई थी । सिजारिया नगरमें पिर्फलल् (Pamphilus) और युसिवियस (Eusebius) इस श्रेणीका एक विख्यात पुस्तकागार स्थापित कर गये और हिपी (Hippo) के गिर्जामें सेव्ह अग्रा-इनने अपना पुस्तकालय प्रदान किया।

उक्त राजधानीके वाइजाण्टियम् (Bygantium)
में उठ आनेसे साहित्यभण्डार उच्छुट्खला हो गया।
वण्डाल, गथ आदि असभ्य जातियोंके उपर्युपरि आक्षमण
इरलीराज्य भी नए प्राय हो गया। इस समय इरलीवासियोंके प्राण जोखिममें थे, इस कारण पूर्वतन विद्याजुराग और पुस्तकालयको रक्षा उनके हृद्यसे विलक्षल
दूर हो गई थो। रोमक और प्रीक लोगोंके परस्पर प्रन्थसंप्रहमें विरक्त और खुर्थ्यमंके पूर्ण प्रादुर्भावसे पिष्चमखण्डमें (Western Empire) घोर विष्लव उपस्थित
हुआ और प्राचीन युगका इतिहास इसी समयसे लुप्तप्राय होने लगा।

भव्ययुग ।

पाश्चात्य-जगत्में साहित्यचर्चाका अवसाद होने पर-भी सुदूर फारसीराज्य (Gaul)-में पुस्तकालय-प्रतिष्ठा-का उद्यम घटा नहीं था। पाव्लियस् कन्सेव्टियस्, टोना निसयस् फेरिओलस और धिओडोरिक राजमन्त्री कासि-योडोरस् के पुस्तकालयका उल्लेख मिलता है। अधी शतान्दीमें गथ जातिने भी उल्फिलससे सृष्ट्यमंका ममं

जान कर पुस्तकालय खोलनेकी ओर विशेष ध्यान दिया। कासिओडोरस् द्वारा स्थापित कालार्वियाके पुस्तकालय-में प्रन्थादिकी लिपि करनेके लिये खृष्टान संन्यासीगण नियुक्त होतेथे।

इस समयसे विद्याशिक्षा धीरे धीरे धर्ममन्दिरके अन्तर्भु क होती गई । विभिन्न दार्शनिक-सम्प्रदायके छोप होनेके कारण नाना स्थानींमें मठ स्थापित होने छगा। अतः उस समय धर्म और ईश्वरतस्य जाननेकी थोड़ी वहुत विद्याकी आलोधना होती थी।

यूरोपमहादेशसे ६ठीं और ३वीं शतान्दोमें भायरलेएडमें विद्यानुराग विस्तृत हुआ और प्रन्थसंप्रहकी प्रथा भी
प्रचारित होती देखी गई। ७वीं शतान्दीमें टाससवासी
थिओडर (Theodore of Tarsus रोमननगरीसे
कण्टर्बरी नगरमें अनेक पुस्तफ लाये। इसके वाद आर्कविश्रप एगवर्ट अलकुइन, शार्लिमेन (Charlemagne),
लूपस शार्माटस्, सार्लिमेनके पुत लुई, गार्वर्ट और
पोप सिल्मेप्टर २य आदि महातमा द्वारा प्रतिष्ठित अनेक
पुस्तकालयका उल्लेख देखनेमें आता है। चार्ल्स वि
वोल्डके वाद ४थी वा ५वीं शतान्दीमें एकमाल महमें ही
पुस्तकें संग्रह को जाती थीं। वेनिमिण्टाइन, आपिनयन
और डोमिनिकन आदि विशिष्ट सस्प्रदायोंने पुस्तकालय
संग्रहमें विशेष उदारता दिखाई थी। सेएट वेनिडिकके यहनसे नवाधिष्ठित प्रत्येफ महमें धर्मसम्बन्धीय पुस्तक
संग्रहमें विशेष औदार्य देखा गया था।

पलूरी (Fleury), मेल्क (Melia), सेएट गाल (St. Gall), सेएट मीर (St. Maur), सेएट जेनिमाईमी (St. Genevieve), सेएट मिक्टर और सर रिचाई विटिटन-निर्मित में कायर-सम्प्रदायका पुस्तकालय उल्लेख-योग्य है।

थलावा इसके इटलिस्थ मोएट फेसिनो (Monte Cassino) का पुस्तकालय इटो शताव्दीसे नाना प्रकारका कप्ट फेलता हुआ आज भी विद्यमान है। १०वीं शताव्दीमें मुरातोरीने जो वोवियो (Bobbio) पुस्तकालयकी तालिका प्रकाशित की, वह अन्तमें मीलनके एस्ट्री-सियन पुस्तकालयमें मिला दी गई।(१) पोम्पोसिया

^{. (9)} Autiq. Ital, Med, ÆVIII 817-24

पुस्तकागारकी ११वीं शताब्दीकी एक तालिका पाई गई है। (१०)

फरासीराज्यमें पलूरी (Fleury), मलूनी (Cluny), सेएट रिकार (St Requier) और कार्वी (Corbie) आदि स्थानीय मठोंमें अनेक पुस्तकोंका संग्रह था । पर-वर्ती समयमें १७६३ ई०को पलूरीको पुस्तकावलो ओर्लिन (Orleans) पुस्तकालयमें मिला दी गई। कवींका प्रन्थ संग्रह भी इसी प्रकार १६३८ ई०को सेएट जर्मन देस-प्रे (St. Germain-aes Pres) नामक मठमें और १७६४ ई०को पारी नगरके जातीय-पुस्तकालय और पीछे आमेन (Amiens) पुस्तकागारमें मिल गया।

जमैन-देशस्थ फुल्हा (Fulda), कमें (Corvey), रिच्त् (Reichenau) और स्पनिहम (Sponheim) आदि मटा-गार ही प्रधान हैं। शार्लिमेन राजाके यत्नसे फुल्दा प्रतिष्ठित हुआ। एवट द्यामियसके अध्यक्षताकां लमें यहां चार सी साधुसंन्यांसी प्रन्थादि नकलमें नियुक्त थे। वेसर नदीके किनारे जो कमें-पुस्तकालय था, वह १८११ ई०में मार्वर्ग विश्व-विद्यालयमें मिला दिया गया। रिचनी पुस्तकागार तीस वर्षव्यापी युद्ध (Thirty years! War) में भस्मीभूत हुआ। १५वीं शताब्दीमें जान द्रिधिम (John Tretheim) के उद्यमसे स्पनहाइमकी प्रन्थ-संख्याकी वृद्धि हुई। ८१६ ई०में प्रतिष्ठित सेएट गाल पुस्तकालय आज भी वर्त्तमान है।

इङ्गलैएड-राज्यमें भी कर्एडर्पी, यक, वारमाउथ, हिट्वी, ग्लघोनवारि, क्रयलैएड, पिटरवरो और द्वाहम आदि स्थानों- में इस प्रकारके पुस्तकालय थे। थियोडो और अगधाइन द्वारा प्रतिष्ठित कर्एड्वरी (Christ church) पुस्तकानगरका उल्लेख किया जा चुका है। ८६७ ई०में डेन्स (Danes) के आक्रमणसे वीरमाउथका प्रन्थागार नष्ठ हो गया था। क्रयलैंग्ड १०६१ ई०में जलां दिया गया। हिटवी (१२वीं शताब्दी की), पीटरवी (१४वीं शताब्दी-की) ग्लाधोनवारी और उरहमकी पुस्तकतालिका देखनेमें भाती है। एतिज्ञ साधुहङ्कां पुस्तकतालिका देखनेमें

स्वरुप और भी अनेक पुस्तकतालिका आविष्कृत हुई हैं।(११)

अरवजातिके अम्युद्य पर साहित्यरूपी आकाशमें मेघमालां दिखाई देने लगी। रणिपासु और राज्य-लोलुप विधर्मी अरवियोंने कभी भी ज्ञानोन्नतिका पृष्ट-पोषण नहीं किया, वरन् विजातीय आकोश और युद्ध-विद्ववसे सैकड़ों वैदेशिक-प्रन्थ जला कर खाक कर दिये गये । राज्य-जयकी लालसा जन प्रशमित हुई तन बलीफा-राजाओंने ज्ञानोन्नति और विज्ञानचर्चाकी ओर विशेष ध्यान दिया । उनके राजत्वकालमें पारससे ले कर पश्चिम स्पेनराज्य तक और उत्तरी-अफ्रिकामें जगह जगह साहित्य और विद्यानचर्चाके लिये विश्वविद्यालय और पुस्तकालय प्रतिष्ठित हुए थे। जव यूरोपकी पूर्वतन सभ्यता एक तरहसे विलुप्त हो गई थी, उस समय पूर्वमें वागदाद और पश्चिममें कडोंमा नगरने ही मुसलमानी अमलमें विद्याचर्चाका ऊ वा स्थान पाया था। कायरी (Cairo) और तिपली (Tripoli)-में भी पुस्तकालय थे। फतीमासम्प्रदायके (Fatimites in Africa) राजकीय पुस्तकालयमें प्रायः लाखसे अधिक प्रन्थों (Mss)-का संग्रह था। शोमियदों (Omayyds)-के संरक्षित स्पेन पुस्तकालयमें ६ लाख प्रन्थ थे. ऐसा सुना जाता है। अएडलुसिया (Andalusia)में प्रायः ७० पुस्तकालय थे । अरववासी और तद्व शीय स्पेनदेशीय मुरंगण ईसाइयोंकी तरह अपने अंपने मतावलम्बी धर्म-प्रनथकी रक्षामें यत्नवान थे । धर्मपुस्तकके सिवा वे दूसरे दूसरे प्रन्थसंप्रह नहीं करते थे। इस कारण १७८ ई॰में अलमनसोर (Almanzor) राजाने कडोंभा-के सुवहत् पुस्तकालयको तहस नंहस कर डाला।

⁽१.) DiariumItalicum, chap, XXII

⁽११) Dr. Achery. Martene, Durand, Pez, आदि महोदय द्वारा चंग्रतीत पुस्तकालय स्थित और Naum ann, Petzholdt, The Rev. Joseph Hunter और Mr. Edwards आदिश्री प्रकाशित तालिका ही उपका प्रमाण है। व्युति वर्ष सामित कार्यों में (Ecrol Library at Munich) इन करा की स्थान कार्यों के स्थान के स्थ

अंरवेंकी विद्योग्नित पर ईर्पान्वित हों वैजयन्ती-वासी (Byzantine Empire) श्रीक छोगोंने भी साहित्यचर्चामें नत्रजीयन छाभ किया । दार्शनिक ल्यु (Leo the Philosopher) और कनस्तातिन पर्फिरो जेनिटस (Constantine Porphyro genitus) के उद्यमसे कनस्तान्तिनोपलका पुस्तकालय पुनः उन्नत दशा को प्राप्त हुआ । पथस् और इजियनके मठागारमें नाना प्रन्थोंकी वड़े परिश्रमसे नकल की गई थी। १४५३ ई०में कनस्तान्तिनोपलका अधःपतन होने पर प्रोवियस् (Stobaeus), फोटियस् (Photius), और खीडस् (Suidas) आदि प्रन्थकारोंके सङ्कृतित सुप्राचीन प्रन्थ इटली आदि पश्चिमवर्त्ता राज्योंमें फैल गये।

नव्ययुग

१४वीं शताब्दीमें यरोपखएडमें साहित्यालोचनका पुनर्जन्मकाल (Renaiss ance l'eriod) उपस्थित हुआ। १३७३ ई०में ५म चार्ल्सने ६१० ब्रन्थ ले कर एक चिर-स्थायी पुस्तकागारका सूत्रपात किया। अर्छ आव वारविंक १३१५ ई०में अपने पुस्तकालयको वोर्डेस्ली (Bordesley Abbey)-में दान कर गये । इसके बाद -रिचार्ड अङ्गारमेल (Richard' Aungervyle of Bury, Edward ill's chancellor and ambassador)-ने आक्सफोर्डका डर्हम कालेज और पुस्तकालय खोला। १४३३ ई॰में कसिमों डि मेडेसी (Cosimocde Medici) ने भिनिस नगरमें और पीछे फ्लोरेन्स (Florence)-में मेडिसियन पुस्तकालय बोला था । १४३६ ई०में निकोली निकोटी (Niccolo Niccoli) ने इटलीमें सवसे पहले साधारण पुस्तकालयकी प्रतिष्ठा की। फेंड्-रिक (Duke of Urbino)के पुस्तकागारकी कथा उनके प्रथम प्र थरक्षक भेस्पोसियानो (Vespasiano)-के वर्णनसे जानी जाती है।

पूचसाम्राज्य (Eastern Empire) की राजधानी कनस्तान्तिनीपलके अभ्रःपतनके भयसे इंटलीकें राजाओं के यत्नसे प्रीक पिएडतगण आल्पस् पर्यतके अपर पार-स्थित राज्योंमें जा कर रहने लगे। हाङ्गे रीराज मेथियस् किंदिस (Mathias Corvinus) के यत्नसे ५० हजार प्रन्थ संगुद्दीत हुए। किन्तु दुर्माण्यवशतः १५२७ ई॰में

तुर्कोंके हाथंसे बुदा नगरंके पतन पर उक्त प्रन्थागारं समूल उन्मूलित हुआ था। आज भी उनका प्रन्थनिचय यरोपके किसी किसी पुस्तकालयकी शीभा बढ़ाता है।

वर्त्त मान युगके पुस्तकालयका उल्लेख करनेमें १७५३ ई०को अंगरेज राज द्वारा स्थापित वृटिश म्युजियम (British Museum)-को ही सबके पहले स्थान दिया जा सकता है। ग्रन्थाधिक्यमें फरासीराजधानी पारी-नगरके विव्छिओथेक नेशनछ (Bibliotheque Nationale)ने जगतमें उर् चा स्थान तो पाया था, पर म्युजियम-की तरह सुप्रणालीवद पुस्तकालय और कहीं भी देखनेमें नहीं आता । अभी इस पुस्तकागारमें १५५०००० मुद्रित और ५०००० हस्तलिखित प्रन्थ हैं । १८३७ ई०में सर एएटो-नियो पानिजी (Sir Antonio Panizzi)-के तत्त्वाव-धानसे तथा इङ्गलैण्डेश्वर (George II, III and IV) और तह शवासी महायुख्योंके उद्यमसे इसकी प्रन्थसंस्था वहुत वढ़ गई । भिन्नदेशीय ब्रन्थोंके मध्य यहां १२ हजार हिन्न, २७ हजार चीन, १३ हजार संस्कृत, और पाली आदि विभिन्न भाषामें (Oriental languages) मुद्रित पुस्तक ५ हजार हैं। १८७६ ई॰में संस्केत और पाली ग्रन्थकी तालिका प्रकाशित हुई। अभी लएडन महानगरीमें १२ प्रधान और साधारण पुस्तकालय देखे जाते हैं (लएडन छोड़ कर प्रेट ब्रिटेन और नायलैंएड राज्यके प्रधान प्रधान नगरमें प्रायः २८६ साधारण पुस्तकागार हैं। इनमें से एवार्डिन यु निवर्सिटी (६० हजार), वार्मिहम-फ्रि (१ लाख), केम्विज—द्रिनिटि कालेज (६२ हजार) और केम्ब्रिज युनिवर्सिटी (२ लाख ६ हुजार), डिव्छन—नेशनल (८५ हजार) और द्रिनेट कालेज (.१ लाख ६४ हजार), एडिनवरा—एडमीकेट (२ लाख ६८ हजार) और युनिवर्सिटी (१ लाख ४२ हजार); ग्लासगो युनिवर्सिटी (१ लांख २५ हजार), लोडस—लीडस् (२८५) हजार) और लीडस साधारण-ग्रन्थालय (१ लाख⁻१० हजार), लएडन-लएडन (६० हजार), पेटेएट आफिस (८० हजार) और युनिवसीटी (१ लाख), मेञ्चेष्टर-फ्री पवलिक (८५ हजार), आग्स-फोर्ड-चोडलियन (8 लाख ३० हजार), सेएट-पड़्र,ज युनिवसिटी (६० हजार) आदि प्रन्थालयोंकी न्यूना॰ धिक पुस्तक संख्या वी गई।

फरासीराज्यमें जगत्का सवप्रधान पुस्तकागार अव-स्थित है। पारीनगरके विश्लियोथिक नेशनल नामक पुस्तकालयमें २२६०००० पुस्तक और प्रायः ६२ हजार हस्तिलिखित ग्रन्थ १८८० ई०के पहेले विद्यमान थे। पर-वर्त्तीकालमें इसमें और भी कितने प्रन्थ मिला दिये गये। पुस्तक भिन्न यहां प्रायः १ लाख ४४ हजार मुंदापदक भादि और २२ लाख खोदित चित (Engravings) विद्यमान हैं। फरासीके राजन्यवर्ग और ख्यातनामा विद्वजनके ऐकान्तिक यनसे इस जातिके पुस्तकागारकी पेसी उन्नति हुई थी। अनुसन्धितसु लेखकोंने शालि-मेन और चार्ल्स दि-वोव्डके संगृहोत प्रन्थीमें इस पुस्त-कालयका उल्लेख पाया है। बहुत गोलमालके बाद राजा जान (King John, the Black-Prince's Captive)-के राजत्वकालमें विक्लिओधेक डु-राय (Bibliotheque du Roi नामसे इस विद्यामन्दिरकी प्रकृत पैतिहासिक भित्ति स्थापित हुई। विख्यात फरासी विप्रव (The French Revolution)-के वाद जातीय एकतावद्ध फरासियोंने इस प्रन्थालयकी उन्नति की और ध्यान दिया । इस कारण राष्ट्रविष्ठव जातीय विद्यामन्दिर-का उत्कर्ष साधक हुआ था, इसमें सन्दें ह नहीं। इसी समयसे इसका "Bibeiotheque Nationale" नाम पड़ा था(१२) । प्रजातन्त्रके पृष्ठपोषक और रणकेशरी नेपोलि-यनके अंभ्युत्थान पर तथा उनकी वदान्यतासे इस पुस्तकालयको विशेष श्रीवृद्धि देखी गई थी । उन्होंने भपने वाहुवलसे वर्लिन, हनीमर पलोरेन्स, भेनिस, रोम, हेग आदि प्रधान प्रधान नगरींसे पुस्तकालय उठा कर इसमें जोड़ दिया। केवल फरासी राजधानी ही पेसे विद्यानुशीलनका आदर्शस्थल थी, सो नहीं, प्रत्येक फरासी-प्रदेशमें (Provinces) ऐसी विद्योन्नतिका निद्र्शन पाया जाता है। जातीय-पुस्तकागार छोड कर पारी नगरमें और भी १४ साधारण पुस्तकालय हैं जिनमें

(१२) इस सुब्हत पुस्तकालयकी पुस्तकत लिका नहीं हैं। पहले नो छापी गई थी, उसके प्रधाद्भागमें नृतन ग्राव्य की नालिका संथोजित कर रखी गई हैं। १८०७ और १८५४ ई॰में गहांकी संस्कृत और पाली ग्राव्यकी तालिका मुद्रित और प्रकाशित हुई।

Vol. XIV. 62

से B. de l'Arsenal (२ लाख ६ हजार-), B. de l'Institut (१ लाख), Mazarine (१२ लाख), B. Sainte, Genevieve (१ लाख २३ हजार) और B. de l'University (१ लाख २६ हजार) तथा दूसरें इसरेमें अपेक्षाइत अल्पसंख्यक प्रन्थ हैं। सारे फरासी-राज्यमें जो ७० विख्यात पुस्तकागार हैं, उनमें और भी १० लाख से ऊपर प्रन्थींका संप्रह है।

जर्मन-साम्राज्यमें भी पुस्तकालयका अभाव नहीं है। १८७५ ई॰में एक वार्लिन नगरमें ही ७२ पुस्तकालयोंकी रजिस्द्री की गई थी। १६६१ ई०में जर्मनराज फ्रेडिरिक-विलियम द्वारा प्रतिष्ठित राजकीय पुस्तकालय ही (K nigliche Bibliathck) सबसे वड़ा है। इसमें ७ लाख ५० हजार हाथकी लिखी पुस्तकें मौजूदं हैं। जर्मन राज्य-में विद्योश्वतिका जैसा पूर्णप्रभाव है, उससे यदि वहां लाखों पुस्तकालयका होना सावित हो, तो आश्चर्य ही क्या! संस्कृत शास्त्रप्रन्थादिकी आलोचनामें जर्मनदेशने संसारमें ऊँचा स्थान पाया है। विद्योनमादसे उल्लसित जर्मनोंने नगर नगरमें लक्षाधिकप्रन्थयुक्त पुस्तकालय स्रोल कर जनसाधारणमें अच्छा नामक माया है और वे अवने देशका 'शर्मण्य' देश नाम रखनेमें भी कुण्ठित नहीं होते। अगसवर्ग (१ छाख ५१ हजार), वार्छिन युनिवर्सिटी (२ लाख १ हजार), वन (२ लाख ५१ हजार), ब्रेमेन (१ लाख), बेस्लू-युनिवर्सिटी (३ लाख ५४ हजार), और विन्छियोधिक (२ लाख २ हजार), कार्लभ्रु (१) लाख ३६ हजार), कासेल (१ लाख ६७ हजार), डार्म-ष्टम (५ लाख ३ हजार), डेसडेन (३ लाख ५७ हजार), आर्जाञ्जेन (१ लास ४६ हजार), फाङ्कफोर्ट (१ लास ५० हजार), फ्राइवर्ग (२ लाख ७१ हजार), गिसेन (१ लास ६२ हजार), गीथा (२ लाख ५१ हजार), गटि-ञ्जन (४ लाख ५ हजार), ग्रीफस्वाल्ड (१ लास २१ हजार), हेृिल (२ लाख २० हजार), हम्वार्ग (३ लाख ५६ हजार, हनोमर १ लाख: ७४ हजार), हेडेलवर्ग (३ **ळाल ५ हजार), जेना (१ छाल ८० हजार), काए**ळ (१ छास ८२ हजार), कोनिग्सवर्ग (१ छास ८४ हजार), लिपसिक ्विब्लिओथिक (१ लाख २ हजार); और युनिवसिटी (५ लास ४ हजार), जुनेक (१००२५०).

मेहिज्जेन (१ लाख २ हजार), मेझ (१ लाख ५२ हजार), मार्चग , (१ लाख ४० हजार) मेनिजन (१ लाख ६० हजार), म्युनिचविब्छिओधिक (१ छाख २६ हजार), और यूनिवर्सिटो (३ लाख २५ हजार), मुनएर (१ लाख २८ हजार), ओस्डेन्बर्ग (१ लाख), रस्टक (१ छास ४१ हजार), स्टसवर्ग (५ छास १३ हजार) स्टाट्गार्ट (४ लाख २६ हजार), ध्टुविञ्जेन (२ लाख ३८ हजार), वाइमर (१ लाख ८२ हजार), बाइसबेडेन (लाखसे ऊपर), उलफेन्बुटल (३ लाख १० हजार), ऊर्जवर्ग (३ लाख २ हजार), और अधिया हङ्गरी तथा सीजलैंख्ड मिला कर लाखसे ऊपर, प्रन्य-युक्त और भी अनेक पुस्तकालय देखे जाते हैं। इनमेंसे बुदापेस्त महानगरीमें जो पुस्तकालय प्रतिष्ठित हैं उसमें ४ लाख पुस्तक और ६३ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ मौजूद हैं। किन्तु आज चालिस वर्षोंसे उन सव प्रन्था-लय्में और भी कितनो नई प्रकाशित पुस्तकें तथा प्रन्थ संगृहोत हुए हैं उसका ठीक ठीक पता नहीं चलता।

ससराजधानी सेएटपिटर्सवगं नगरमें जगत्का श्रेष्ठ
तृतोय पुस्तकागार अवस्थित है। यहांकी हिम्परियलपविक लाइब्रेरीमें १० लाख मुद्रित और २६ हजार हस्तलिखित पुस्तक, २० हजार मानिश्वत, ७५ हजार फोटोचित
४२ हजार ओटोय्राफ और प्राया ५ हजार सनद संगृहीत
हैं। अलावा इसके डपांट (१ लाख ४४ हजार), हेलसिफर (१ लाख ४० हजार), काइफ (१ लाख १०
हजार), मोस्कोगालिट्जिन म्युजियम (३ लाख ५ हजार),
और युनिवर्सिटी (१ लाख ५० हजार), सेएटपिटर्सवर्गसाईन्स एकाडमी (१ लाख ५० हजार) और युनिवर्सिटी
(१ लाख ३६ हजार) आदि पुस्तकालयोंकी प्रन्थसंख्या
आजसे २० वर्ष पहलेकी तालिका देख कर लिखी गई है।
अभी और भी कितनी वृद्धि हुई होगी मालूम नहीं।

फरासी (७१), जर्मन (६७), आध्रया-हङ्गरी (५६), खीजलैंएड (१८), इटाली (७४), हालैएड (६), डेन्मार्क (४), आइसलैएड (२), नारवे (३), खीडेन (३), स्पेन (१६), पुर्तगाल (६), ग्रीस (२), क्रिया (१३), आदि यूरोपीय राज्यमें; इजिस (१), आध्रेलिया (५), चृटिश्यायना (१), क्रनाडा (४),

जामेका (१), मुरिसस् (१), न्युजीछेएड (२), दिक्षण अफिका (४) और तासमानिया आदि अंगरेजी उपनिवेशमें (२), समेरिकाके युक्तराज्यमें (८३), तथा दिक्षण अमेरिकाके आर्जेण्टाइन रिपिट्डिक (३), ब्रेजिस (१), चीली (१), मेकिसको (५), निकादरगीआ (१), पेक (१), वारगुई (१), और भेनिज्जपला (१)। उपरोक्त राज्योंके साधारण पुस्तकालयकी जो संख्या निर्दिष्ट हुई, काल्प्यभावसे उनका यथेए परिवर्त्तन हो गया है तथा और भी कितने नये पुस्तकागार प्रतिष्ठित हुए हैं जिनका प्रकृत तस्व मालूम नहीं रहनेके कारण पूर्वी लिखित देशस्थित पुस्तकालयोंके नाम और पुस्तक तालिका नहीं दी गई।

वर्तमानकालमें उक्त देशोंके सर्वप्रधान पुस्तकालयकी अन्धसंख्या इस प्रकार है— ...

Medical Karama		
देश	नगर	संख्या
स्रोजलैंण्ड	वासेळ	१ लाख ३४ हजार
इटाली	श्लोरेन्स	४ ,, ७५ हजार -
हालैण्ड	दि-हेग	2 " g "
हेन्प्राक	कोपेनहेगेन	eq 11 E 1
आइस्लैण्ड	रेक्जविक्	źo "
नारवे	खृष्टियाना	ક યુદ્ધ ય
खोडेन	ष्टकहलम्	₹ 15 9 € 11
स्पेन	माडिड्	8 ,1 8,9 31
पुर्तगाल	लिसवन	२ _॥ १० "
ग्रीस	आर्थन्स	१ ॥ ५६ ॥
इजिप्त	कायोरा	80 33
अध्ने लिया	मेलवोण	\$ -11 \$\$ 11
ा गायना	जाजैंटाउन	
कताडा	अहोया	१ लाज
मारिसस	लुखन्दर	१० हजार
न्युजिलेण्ड	ओचेलि टन	र १० हजार
केपकछोनी	केपराउन	। ३६ हजार
तासमानिया	होवार्टरा	उन ६ हजार
गुनाइटेडच्टेट	बोएन	८ छाख
Autres -	बार्श्विहे	न ् ४ लाख २७ हजार
आर्जेस्टाइन रिप	न्युनेस ्	परिज ४० इजार

व्रेजिल राइयोजेनिरी १ लाख २१ हजार चीळी सेंव्डियागो ६५ हजार मेविसको मेक्सिको १ लाख पेरु िलमा ३५ हजार निकारगोआ मेनागोआ १५ हजार उरुगुई मिएटिमिडो १७ हजार भेनिजिउला काराकाश २६ हजार

पहले हो लिखा जा चुका है, कि वाविलोनोय राज्यमें विद्याको अच्छो आलोचना होती थी, किन्तु प्रप्राणाभाव- से उसका कोई विवरण नहीं दिया गया। सम्ब्रित उक्त राज्यके निष्पुरनगरमें जगत्का सर्वश्रेष्ठ और सुप्राचीन पुस्तकालय आविष्कृत हुआ है जिसमें डेढ़ लाखसे ऊपर फलक पाये गये हैं। इनमेंसे जिन सत्तरह हजार फलकों- का पाठोद्धार हुआ है, उन्हें पढ़नेसे मालूम होता है, कि फलकोंमें इतिहास, शब्दविद्या, साहित्य, पुराण, व्याकरण अभिधान, विज्ञान और गणितशास्त्र लिखे हुए हैं। उनमें-सभी ईसा जनमके २२८० वर्ष पहलेके लिखे हुए हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है। सम्मवतः उन सवका उद्धार हो जानेसे प्राचीन हिन्दूगीरवका निदर्शन पाया जायगा।

भारत, चीन और जापान राज्यमें जगह जगह पुस्त-काल्य मतिष्ठित हैं। चीन-साम्राज्यमें ईसा जन्मके वहुत वर्ष पहले पुस्तकादि लिखनेकी प्रथा मचलित थी।

भारत ।

पहले ही कहा गया है, कि भारतवासी सभी दिनोंसे पुस्तकका आदर करते आये हैं। पुस्तकको यदि उनका उपास्य-देवता कहें, तो अत्युक्ति नहीं। आज भी भारतके नाना स्थानोंमें किसी किसी प्रत्थकी नित्य पूजा हुआ करती है। माधके महीनेमें सरस्वती-पूजाके दिन गृहस्थ-मात ही अपने संगृहीत प्रन्थोंकी देवी सरस्वतीक्पमें पूजा किया करते हैं।

पहलेसे ही भारतीय मठ वा धर्ममन्दिरमें नाना अन्य संगृहीत और रक्षित होते थे । नालन्दाकी अन्यकुटीको कथा ऊपरमें लिखी जा चुकी है। नालन्दाके निकटवत्तीं ओदन्तपुरी नामक स्थानमें (वत्तमान विहारमें) पाल-राजाओंके समय हजारों वौद्धप्रन्थ संगृहीत थे। मिनहुज- को तवकात-इ-नासिरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि
महम्मद-इ-वखितयारने जब बिहार पर आक्रमण किया,
उस समय भी यहां वौद्धोंका विश्वविद्यालय और वहुसंख्यक श्रमणोंका वास था। उस विश्वविद्यालयमें
हजारों प्रन्थ देख कर मुसलमान लोग चमत्कृत हुए थे।
उन्होंने सभी प्रन्थोंका मर्म जाननेके लिये किसी परिडतको बुला भेजा, पर उसके पहले ही मुसलमानोंके कराल
छपाणसे सभी श्रमणगण यमपुर भेज दिये गये थे।

मुसलमानी आक्रमणसे विहारका वह अमूल्य वौद्ध-प्रन्थालय बिलुप्त हो गया था। मुसलमानोंके कराल प्राससे जो वस गये थे उनमेंसे कोई कोई प्राणतुल्य धर्म-प्रन्थ ले कर नेपालको भाग गये। आज मो नेपालसे वे सव प्रास्तेन प्रन्थ वाहर होते हैं।

केनल महत्मद-इ-निश्चयारके आक्रमणसे ही नहीं, दूसरे दूसरे मुसलमानोंके उपयुंपरि आक्रमणसे कितने अमृत्य अन्थालय विध्नस्त हुए हैं, उसको इयत्ता नहों। तारीख-इ-फिरिस्ता पढ़नेसे मालूम होता है, कि फिरोज-तुगलकने जब नगरकोट पर आक्रमण किया, उस समय ज्वालामुखोके मन्दिरमें एक उत्हिष्ट प्रन्थकुटी थी। उस कुटीमें फिरोजने १३०० हिन्दूप्रन्थ पाये थे जिनमेंसे उन्होंने द्रशंन, ज्योतिय और जातक-सम्बन्धीय किसी किसी प्रनथका पारसीमें अनुवाद कराया था।

तुजुक्द-वावरी नामक मुसलमानी इतिहासमें लिखा है, कि सम्राट् वावर गाजी खाँकी प्रन्थकुटीमें बहुसंख्यक धर्मतत्त्व-सम्बन्धीय थ्रन्थ देख कर विमोहित हुए थे।

आईन-इ-अकवरीमें लिखा है, कि अकवर वादशाहके भी एक वृहत् पुस्तकालय था। यह पुस्तकालय सात खएडोंमें विभक्त था जो फिर गद्य, पद्य, हिन्दी, पारसी, श्रीक, काश्मीरो, अरवी इत्यादि पृथक् खएडोंमें सिज्जित रहते थे।

अकवरने जिस प्रकार विभिन्न भाषाके प्रत्थोंका पारसीमें अनुवाद करा कर प्रत्थालयकी शोभा वढ़ाई थी, टीपू
सुलतान भी उसी प्रकार नाना देशोंसे अमूल्य पारसी
प्रत्थोंका संग्रह कर अपने पुस्तकालयमें रख गये। उनके
अघःपतनके वाद वे सव अमूल्य प्रत्थ वृटिशंगवर्मेए के
हाथ लगे हैं। उनमेंसे अनेक प्रत्थ आज भी कलकत्तेकी पशियाटिक सोसाइटीमें देखे जाते हैं।

आधुनिक कालमं हिन्दू राजाओं के मध्य जो संस्कृत पुस्तकींका संप्रह कर चिरस्मरणीय हुए हैं, उनमें से तओरराज श्ररमोजी और नेपाल-राजका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। सुना जाता है, कि १७वीं शताब्दीसे तओरराजने प्रन्थसं प्रहमें बड़ी चेष्टा की थी। शरमीजी-के समय उनके पुस्तकाल्यमें २५ हजारसे अधिक हस्त-लिखित प्रन्थ मीजूद थे। आज भी तओरराज़के पुस्तकाल्यमें अठारह हजारसे ऊपर हस्तलिखित संस्कृत प्रन्थ विद्यमान हैं। वे सब प्रन्थ देवनागरी, नन्दिनागरी, कणाड़ी, तैलङ्गी, उड़िया आदि ताना अक्षरोंमें लिखे हुए हैं। इस प्रकारके बहुसं उपक प्रन्थ भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं हैं।

नेपाल !—नेपालके राजकीय पुस्तकालयमें प्रायः ८ हजार हस्तिलिखित प्रन्थ संगृहीत हैं तथा आज भी संग्रहकार्य चल रहा है। इस पुस्तकालयमें ५वीं और ६टीं शताव्हीं के लिखे हुए हस्तिलिप विद्यमान हैं। ऐसे सुप्राचीन तथा संग्रहत वौद्ध-प्रन्थ और कहीं भी देखनेमें नहीं आते।*

काश्मी।)—काश्मीरके पुस्तकालयमें भी नाना भाषा-में लिखित प्रायः दश हजारसे ऊपर प्रन्थ हैं जिनमेंसे कुछ दुष्प्राप्य संस्कृत प्रन्थ भी हैं। ऐसे मूल्यवान् प्रन्थ और कहीं भी नहीं मिलते।(१)

राजपूताना ।—राजपूतानेके सामन्तराजाओंके घरमें भी बहुसंख्यक प्रन्थोंका संप्रह है। इनमेंसे जयपुर, मेबार, अलवार, बीकानेर, जसलमोर, कोटा, वृंदो मौर इन्दोरका पुस्तकालय उद्लेखयोग्य है।

युक्तप्रदेश । युक्तप्रदेशके मध्य काशीधाममें हो सबसे अधिक संस्कृत प्रन्थोंका संप्रह देखा जाता है। काशीधामका गवर्मेण्ड संस्कृत कालेज, काशीराजका पुस्तकालय और कवि हरिक्चन्द्रका पुस्तकालय उल्लेख-वोग्य है।

बम्बईप्रवेशा — बम्बई प्रदेशमें अहमदावाद, पाटन, काम्बे, सुरत, पूना, नासिक, कोव्हापुर, भरोच आदि नाना स्थानोंमें हस्तिलिखित प्रन्थोंको प्रन्थकुरी है। उन सव पुस्तकालयके मध्य अहमदावाद, पाटन और काम्बे शहरमें बहुतसे ज़ैन-पुस्तकालय देखे जाते हैं। जैनयतियी-ने तीर्थम्रमणकालमें जहां जहां विश्राम किया था, उसे जैन लोग उपाश्रय कहते हैं। ऐसे उपाश्रयमें जैन-धर्म-प्रन्थ वड़े यहासे रखे हुए हैं। गुजरातको प्राचीन राज-धानी पाटन-शहरमें इस प्रकारके ११ और अहमदावादमें ६ उपाश्रय हैं। पाटनके पोफलियानोपाड़ोके उपाश्रममें तीन हजारसे उपर और हेमचन्द्रभएडारमें प्रायः चार हजार सुप्राचीन हस्तिलिपि हैं। इन दो उपाश्रयसे १६वीं शताब्दीमें लिखित तालपत्नकी पुस्तक बाहर हुई है। हेम-चन्द्रभएडारमें सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रकी लिखी पुस्तक देखनेमें आती है।(३) पूनाके विश्राम-आवास संस्कृत-पाठशालामें पेशवाओं द्वारा संगृहीत अनेक प्रन्थ देखे जाते हैं।

महबार। कालिकटमें यहांका सामरी-राजपुस्त-कालय उक्लेखयोग्य है। यहां संस्कृत और वाश्विणात्य-की नाना भाषामें लिखित बहुत-सी हस्तिलिपियां पाई जाती हैं।

िहिन्द्र । प्यहिसुरराज द्वारा प्रतिष्ठित सरस्वती-भएडारमें प्रायः ५ इजारसे ऊपर इस्तिलिखित प्रन्थ संगृहीत हुए हैं। महिसुरके अन्तर्गत शृङ्गेरिके शृङ्करा-चार्य-सामीमठमें भी हजारों संस्कृत पोथियां हैं।

तङ्जीर ।—तञ्जीर-राजपुस्तकालयकी कथा पहले ही लिखी जा जुकी है। - एतङ्किल तञ्जीर-जिलेमें गङ्गाधरपुर, गोविन्दपुर, कुम्मघोणम्, महारपुर, बेदारण्य, नागपहन

^{*} अभी नेपालसे ६ठीं और ज्यों सतान्सीये जिखित संस्कृत तान्त्रिक सून्य बंगाल-ग्रावसिंग्यने संग्रह किये हैं। Vide M. M. Haraprasad Sashiri's Catalogus of Durbar Library, Nepal.

⁽²⁾ Dr. Buhler's Reports. 1877; Dr. Stein's Cataolgue of Sanskrit Mas 22-41

⁽२) युक्तप्रदेशमें गवभेष्टके आवेशसे विकत देवीप्रवादने जो संस्कृत अंथोंकी तालिका प्रकालित की है, उसमें इस अञ्चलके बहुसंक्षक छोटे खोटे युस्तकालयोका सन्यान पाया जाता है।

⁽³⁾ Dr. Buhler, Dr. Peterson, Dr. Bhendarkar आहे द्वारा ब्रहारित संस्थत पुस्तक दिवन्ती ब्रह्म १

आदि नाना स्थानीमें छोटी छोटी प्रन्थ कुटियां देखी जातों हैं। इनमेंसे पुदुकोटका राजपुस्तकालय उल्लेख-योग्य हैं।

त्रिवांक्रइ ।—तिवांक्रड्-महाराजके पुस्तकालयमें भी कई हजार हस्तलिपियां देखी जाती हैं । उपरोक्त स्थान छोड़ कर काम्यनीका मन्दिर, मदुरा जिलेका शिवगङ्गा और रामनाथमट, विशाखपत्तन जिलेमें विजयनगराधिपका पुस्तकालय और वोविलीका राजपुस्तकालय, दक्षिण-आर्कटका चिद्म्यर, कोयम्यरत्रका कुमारलिङ्ग और राजपुस्तकालय उल्लेखयोग्य है । (8)

वंगाल गरेशा ।—कलकत्तेकी पशियादिक सोसाइटी और वहां रक्षित बङ्गाल-गवर्मेण्टका संस्कृत पुस्तकालय, कलकत्तेका संस्कृत कालेज, राजाराधाकान्तदेवका पुस्तकालय, महाराज यतीन्द्रमोहनटाकुरका पुस्तकालय उक्लेखयोग्य है। पशियादिक-सोसाइटी और तत्संलिप्त बङ्गाल-गवर्मण्टको संगृहीत संस्कृत हस्तलिपि प्रायः ८ हजारसे अधिक हैं और पारसी प्रन्यकी संख्या भी प्रायः ८ हजार होगी। संस्कृत कालेजमें प्रायः ४ हजार हस्तलिपि हैं।

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें प्रन्थोंका संप्रह रहने पर भी प्रधान प्रधान दो एक राजपुस्तकालय छोड़ कर और किसी भी पुस्तकालयकी तालिका नहीं मिलतो। इसीसे आजुमानिक प्रन्थ-संख्या नहीं लिखी गई।

वङ्गालके नाना स्थानोंमें अङ्गरेज-आगमनके वहुत पहलेके वहुसंख्यक वङ्गमाषामें लिखित ग्रन्थ देखे जाते हैं। एक मात्र विश्वकोष-कार्यालयमें ही हजारसे ऊपर बङ्गमाषामें लिखित पुस्तकोंका संग्रह है।

वर्तमान मुद्रित ग्रन्थके पुस्तकालयमें वड़ोदाके गायकथाड़का पुस्तकालय और कलकत्तेकी इम्पीरियल लाइनेरी सबसे वड़ी हैं। इन दो स्थानोंमें सभी प्रकारके जितने ग्रन्थ हैं, उनकी संस्था ५० हजारसे ऊपर हो सकती हैं, कम नहीं।

Vol. XIV. 63

कलकत्तेका इम्पिरियल लाइब्रेरी, वम्बईकी स्याल (Royal) एशियाटिक-सीसाइटी, प्रेसिडेन्सी कालेज, संस्कृत कालेज, ढाकेका नार्धब्रुक हाल, कोचविहारका राजपुरतकालय, तिपुरा महाराजकी स्थापित लाइब्रेरी, जयपुरका राजपुरतकालय, काशीकी कालेज लाइब्रेरी और पूनाके डेक्कान कालेजकी लाइब्रेरी ही उल्लेखयोग्य है। उन सव पुस्तकालयमें हजारों मुद्रित प्रन्थ हैं।

वुस्तकरक्षाकी ब्यवस्था ।

साधारण पुस्तकागार कैसा होनेसे सर्वोका सुविधा-जनक हो सकता है, इस विपयमें परिचालक समितिका लस्य रखना उचित है। प्रत्येक पुस्तकालयमें पाठागार (Reading rooms), अन्यगृह (Book-rooms), कर्मगृह (Work-room) और दफ्तरखाना (Office) आदिका रहना आवश्यक है। पाउग्रहका आयतन अपेक्षाकृत वड़ा होना चाहिये। जिससे अनेक आद्मी एक साथ पढ़ सकें, इसके लिये मेज (Table) और कुसीं (Chair) घरको सज्जित रखना उचित है। खदेश और मिस्रदेशीय खनामधन्य पुरुषके चित्र (Paintings), प्रतिकृति (Bust of statue) आदि द्वारा घरकी शोभा वढ़ानी चाहिये। कारण, उन्हें देख कर कोमल हृदय मानवमातको ही "महाजनगत पन्था"को आकांक्षा उत्पत्न हो सकती है। सभी घरोंको कुछ गरम रखना जकरी है। मेज अथवा वाहरकी उंडसे पुस्तकालयकी विशेष क्षति होनेकी सभावना है। उंड लगनेसे सेक्फ, अल-मारी, बुककेश, आदिमें घुन (White-ants) छग सकता है। वाहरकी ठंढ़से पुस्तकादिमें एक प्रकारका कींडा उत्पन्न होता है जो पुस्तकको काट कर विलक्कल वरबाद कर देता है। इन सब क्षयकारी कीटींके काटनेसे पुस्तक-को बचानेके लिये घरमें ताप देना आवश्यक है। छोम, सनलाइरंगेस (Sunlight System) वा वेनहेम (Ben-(ham light) प्रकाश द्वारा घरकी वायु उत्तप्त रखनी चाहिये। वर्त्तमान वैद्युतिक प्रकाश भी पुस्तककी रक्षा-में विशेष उपकारी है। एतन्त्रिन्न प्रत्येक प्रन्थमें नोमके पत्ते, नेपथालिन वा तार्पिन दे कर रखनेसे कुछ समय तकके लिये कीटदंशनसे उस की रक्षाकी जा सकती है। काष्टनिर्मित अलमारी, सेल्फ, बुककेश आदिके वदलेमें

⁽⁸⁾ दासिणात्यके नाना स्थानों में डोटे बंदे संस्कृत पुस्त-कालक हैं। Dr. Oppert's Catalogue of the Sanskrit Mss in Southern India और Dr. Hultzch's Reports of the Sanskrit Mss. इस्ट्या।

कर्छद्दार छोहे (Galvanized iron) आदि धातु वा श्लेट-निर्मित सेल्फ ही पुस्तकरक्षाका विशेष उपकारी माना गया है।(१) कारण, उसमें घुन लगनेकी सम्मावना नहीं रहती। रैंक (Rack) अथवा सेल्फमें पुस्तकको सजा कर रखनेसे भी सर्वदा सतर्क रहना उचित है ताकि धूल पड़ कर वह नए न हो जाय। अलमारी, दराज अथवा ग्लासकेशमें भी प्रन्थादिको सजा कर रख सकते हैं, पर वहुतेरे इसे पसन्द नहीं करते। कांचमें आवह रहनेसे सम्भव है, कि गरमीके मारे कागज खराव हो सकता है और काठ अथवा किसी प्रकारके अखच्छ आच्छादनसे उसका सम्मुख द्वार आवद्ध रहनेके कारण पुस्तक-निर्वाचनमें जनसाधारणको असुविधा होती है।

यदि किसी पाठकको कोई एक ग्रन्थ देखना हो, तो पहले उस पुस्तकके श्रेणीगत नम्बर और प्रन्थकारका नाम् वतला कर प्रन्थरक्षकमे वह पुस्तक मांगे। प्रन्थरक्षक भी पुस्तकतालिका देख कर साङ्के तिक चिह्नानुमार पहले सेल्फनिर्वाचन करे। पीछे नियमानुकमसे सज्जित प्रन्थ वाहर निकाल कर प्रार्थींके हाथमें दे दे। किन्तु वह प्रन्थ पुस्तकालयमें सन्निवेशित है वा नहीं, उसे जाननेका पहले कोई सहज उपाय नहीं था । इसमें पाठक और पुस्तक-रक्षफ दोनोंका ही वहुत समय नष्ट हो जाया करता था। पीछे 'इण्डिकेटर' (Indicator)-प्रथाका उद्भावन हो ्जानेसे पुस्तक-निर्वाचनमें वड़ो सुविधा हो गई है। मि० मार्गेल (वर्मि हमइरिडकेटर), मि॰ इलियट, मि॰ राइट और मि॰ कटग्रीभ-प्रवर्त्तित प्रथाका अवलम्यन करनेसे सभी आदमी यह काम कर सकते हैं। प्रन्थरक्षकींको सुविधाके लिये मि॰ पार (Mr. G. Parr)-प्रवर्त्तित, कार्डलेजर (Card-ledger) प्रशस्त है।

इसके बाद पुस्तककी बंधाई है। जितनी ही उत्कृष्ट वंधाई होगी, प्रन्थ भी उतने ही दिन तक स्थायी होगा । अच्छी बंधाई करनेमें यह निश्चय है, खर्च अधिक पड़ेगा, पर अभीका अधिक व्यय भविष्यमें थोड़ा दिखाई पड़ेंगा । कारण, उसे दूसरी वार बंघानेकी जरूरत नहीं होगी । मोरोक्को (Morocco) चमड़े से पुस्तक बंधाना सर्वाङ्गसुन्दर और दीर्घस्थायी होता है। जलवायुका उत्ताप और गैसका प्रकाश मोरोक्को चमड़े की विशेष क्षति नहीं कर सकता। भेलम (Vllum) परिष्कृत बछड्रेका चमड़ा सबसे दूढ् और दीर्घकाल स्थायी है । किन्तु सव प्रकारके कामोंमें वह उतना उपयोगी नहीं है। पर्यायक्रमसे कफ, इसिया,वेसिल, रोयन, बुकरम, खुती कपड़े, लिनोलियम, क्रेटोन और कागजादि द्वारा पुस्तक वंधाई जा सकतो है। किन्तु उन-का स्थायित्वकाल भी उसी प्रकार पर्यायानुयायी जानना चाहिये। रंगका विचार करके देखनेसे नील और सब्ज, लाल, काला, भोलीम और ब्राउन वर्ण ही प्रशस्त है । एक पुस्तकके सभी खएड (volumes) एक वर्णके होने चाहिये, ऐसा होनेसे उसकी पहचान सहजमें आ जाती है। दुष्प्राप्य और बहुमूल्य प्रन्थोंकी वंधाईके सम्बन्धमें **चिशेष दू**ष्टि रखना कर्त्तव्य है । साधारण पुस्तकको 'हाफ वाउएड' करानेसे काम चल सकता है। परन्तु जो ग्रन्थ दुष्प्राप्य और बहुमूल्य है उसे न्वमड़े द्वारा फुल-वाउण्ड करना आवश्यक हैं।

जिल्ददार पुस्तकोंको विभिन्न भागोंमें श्रेणीवड करके सजाना उचित है। यथा—साहित्य, काव्य, गीतिकाव्य, (Melo-dram,), नाटक (Dian a, Tiagedy, comedy), नवन्यास और उपन्यास, Novels) इतिहास (History, जीवतत्त्व (Zoology), पक्षीतत्त्व (Ornithology), मानवतत्त्व, भूतत्त्व (Zoology), यङ्कविद्या, वीजन्त्व, अस्थितत्त्व (Osteology), अङ्कविद्या, वीजन्त्व, अस्थितत्त्व (Osteology), अङ्कविद्या, वीज-गणित, रेखागणित, ज्यामिति, परिमिति, खास्थ्यरक्षा, आयुर्वेद और भैषज्य (Medicine), विज्ञान (Science and Arts), प्राणितत्त्व (Natural History) ईश्वरतत्त्व (Theology), धर्मशास्त्र वा स्मृति (Jurisprudence), आईन (Law), स्थापत्यविद्या

⁽१) डा॰ आकलेएड-उद्गवित गड क्रिक, आइ॰न बुक केश, मि॰ भागीका बुककेश और तोंकस (Tonks's का बुककेश उल्लेखयोग्य है। उत्तकालय और तरंगाधीन दव्योंका विस्तृत वित्रपण Mr. Edward, Memoirs of Libraries (1856), Dr. Petzoldts-इत Katachismus der Bibliothe-Kenlehre और Library Journal नाम प्रथ देखने योग्य है।

और भारकर्ष (Archoeology and Art of sculpture and paintin) दशैनशास्त्र (Philosophy), भगोल (Geography ', जीवनी Biography 4 शहरविद्या (Philology), वाणिज्य (Comm ree), समाज-नीति (Sociology) कृषिविद्या (Agriculture) और अयक अङ्क द्वारा लिखनविद्या (Palaeoygraphy) आदि विभिन्न विषयक प्रन्थोंको भिन्न भिन्न सेल्फ्रमें सन्निवेश करना आवश्यक है। पुस्तक सजाने-की चार प्रणाली हैं:--(१) आकृति-समान आकृतकी पुस्तकोंको सेल्फके एक खानेमें रखनेसे सुन्दर दिखाई देता है, (२) प्रन्थकारका नाम-अकारादि क्रमसे प्रन्थकर्त्वाका नाम लिपिवद्ध करके उनकी वनाई पुस्तकोंको १-२ नम्बर्क्समसे सजाना, (३) विषय-अर्थात् भूगोल, इति-हास, ज्यामिति, पदार्थविद्या (Natural philosophy, रसायन (Chemistry) आदिकी वैषयिक पृथक्ता देख कर सेल्फ्रमें संख्याक्रमसे उनका संस्थान और (8) प्राप्ति-खीकारके वाद ही निरूपित नम्बर बैठा कर उसे सेल्फ्रमें रखना अथवा उपरीक्त दो प्रकारकी प्रधाके अनुसार उन्हें सजाना। पहले विषयका सङ्क्रोत और पीछे तद्विभागीय चिह्न बैठा कर नम्बर देनेसे पुस्तक-निर्वाचन-में बड़ी सुविधा हो सकती है। जैसे, ज्यामितिको अडु-विद्या (Mathematics)का तृतीय स्थान देना होगा अर्थात पहले अङ्गणित (Arithmatics), बीजगणित (Algebra) और पीछे ज्यामिति, यह स्वाभाविक विशान (Natural Science) का एक अंग है। इस प्रकार ज्यामितिको पहले विज्ञानका अंशभूत करके उसे अङ्क-विद्याका तृतीय स्थान दे, पीछे १, २, ३ नं० ऋमसे उसे सजावे। इस सम्बन्धमें ड्युपे (Melvil Dewey) साहवका मत जनसाधारणके प्रहणीय है। पारी नगर-का 'विव्लिओधिक नैशनल' नामक पुस्तकालयका इति-हास (Histoire de Frauce) और मैपज्य सम्बन्धीय (Medicine) प्रन्थावलीका सुसमावेश (Classification) जगत्का एक आदर्शस्थल है।

पुस्तकोंके अपने अपने शासागत अङ्क्ष्मं निवद्ध हों: जानेसे उसकी एक तालिका अवस्य वनानी चाहिये। कारच वहन्तासिका देख कर प्रम्थरसक और पाठक दोनीं

को हो पुस्तक-निर्वाचन और ब्रहणमें सुविधा होगी। जिस पुस्तकालयमें तालिका नहीं है, वहां पुस्तक निकालनेमें वड़ी दिकत होती है। ऐसे पुस्तकालयको यदि पुस्तकीका देर कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। पुस्तकालयकी प्रतिष्ठा ही जव जनसाधारणके उपकारके लिये है, तव ऐसा कार्य ही क्यों किया जाय जिससे लोगोंको असुविधा हो। तालिकासे पहले पुस्तकके नाम, ग्रन्थकार और किस विपयका ग्रन्थ है, यह जाना जाता है। हम लोगोंके देशमें जहां साधारण पाठ्य-पुस्तकागार है, वहां जैसी तालिका प्रचलित है, उसमें काव्य नाटकादि भेदसे प्रन्थविभाग करके अकारादि क्रमसे प्रनथ और प्रनथकत्त्रांके नाम निर्द्धारित हुए हैं। किन्तु जहां अनेक पुस्तक हैं, वहां यह सङ्कीर्ण प्रथा काम नहीं देती । जहां लाखसे ऊपर पुस्तक हैं, वैसे ही स्थानमें प्रन्थकर्त्ताओंके नाम-निर्वाचनमें अकारादि क्रमसे प्रन्थादि-की तालिका सिननेश करनी होती है, ऐसा होनेसे कोई गोलमाल होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इन सव कार्योंकी देख-रेख करनेके लिये एक प्रत्थ-रक्षक (Librarian) का रहना जरूरी है। वे ही व्यक्ति प्रन्थरक्षक हो सकते हैं, जो ज्ञानो, कर्मंड, सुविवेचक तथा नाना भाषा और शास्त्रोंसे जानकार हों। कारण, उनसे किसी आवश्यकीय विषयके प्रश्न वा यथायथ उत्तर पाया जाता है। सभी विषयोंमें पारदशीं प्रन्थरक्षक ही जनसाधारणके प्रियभाजन हो सकते हैं। प्राहककी इच्छानुसार पुस्तकको अलमारी आदिसे वाहर निकालना उनका काम नहीं है। जो प्राहकको पुस्तक देते हैं, उन्हें Issuing office। कहते हैं।

पुस्तक-तालिका (Catalogue) बनानेमें निम्न-लिखित ६ विषय रह सकते हैं—(१) अमुक प्रन्थकारकी अमुक पुस्तक है वा नहीं ? (२) अमुक प्रन्थकारकी बनाई हुई कौन कौन पुस्तक है ? (३) अमुक प्रन्थ पुस्तकालयमें है, वा नहीं ? (४) अमुक विषयक वा घटनासमाश्रित कोई पुस्तक प्रन्थालयमें मिल सकती है वा नहीं ? (५) अमुक्क कौन कौन प्रन्थ हैं ? (६) किसी विशिष्ट सम्प्रदाय वा भाषाके सम्बन्धमें कितनी पुस्तकों मिल सकती हैं ? जिस प्रम्थसे उक्क प्रश्नोंका प्रकृत उत्तर मिल जाता है, उसीको पुस्तक-तालिका कहते हैं। इस कारण किसी पुस्तकागारमें (१) और (२), किसीमें (३), किसीमें (४) वा (५) लें कर तालिका वनाई जाती है। किन्तु चाहे जो हो, विषयगत हो, प्र'थ-नामगत हो वा प्रन्थकर्त्ता नामगत हो सभी अकारादिकमसे (Alphabetically) सिज्जत होती हैं। तालिका छपवानेमें खर्च तो होता है, पर उसके व्यवहारमें उतना कप्र नहीं होता। हस्तलिखित तालिकामें प्रन्थको वाहर निकाल लेना वड़ा किन है। तालिकाको वार वार छपवाना अच्छा नहीं; क्योंकि महिने दो महिनेके वाद जव जव-किर नये प्रन्थ संयोजित होते हैं, तब उसमें वड़ी दिक्कत होती है।

वर्तमान प्रथासे जो सव तालिकाएं प्रस्तुत हुई हैं, उनमें प्रन्थकर्त्ता और प्रन्थवित विषयोंका मूलांश लिपिवद्ध हुआ है। प्रन्थ और सामान्यतः तद्धणित विषय मालूम हो जानेसे पाठक सहजमें समक्त सकेंगे, कि उसमें उसकी लेख्य प्रतिपोषक कोई घटना लिखी है वा नहीं।

(Administration-) ही पुस्त-कार्यप्रणाली कालयका प्रधान अङ्ग है। जिससे प्राहक और सभ्य महोदय संतुष्ट रहें तथा उन्हें इच्छानुसार प्रन्थादि पढ़ने-को मिलते रहें, इस विषय पर परिचालक समितिकी दृष्टि रहना उचित है। जिससे आयव्यक्ता हिसाव साफ रहे और प्रतिमास नये नये प्रन्थ खरीदनेका सुप्रवन्ध हो, इसके प्रति भी लक्ष्य रखना कत्तंव्य है। ग्रन्थादिमें घूल न पड़े, धूल फाड़ते समय जिससे कर्मचारिगण उनके पृष्ठ न फाड़ डाले, इस विषयमें भी दृष्टि रखना आवश्यक है। सालमें २१३ वार ग्रन्थसंख्या (stock) निर्द्धारित करना कर्त्त व्य है। जब कोई नई पुस्तक पुस्तकालय-में आवे, तब कुछ दिनके लिये उसे सबके सामने रख दे जिससे सभी प्राह्क उस नई पुस्तकको पढ़ सके । अन-न्तर उसमें पुस्तकालयका नाम, नम्बर आदि चिपका कर अलमारीमें यथास्थान पर रख दें । पुस्तकोलयसे ब्राह्रकको पुस्तक देने वा उसे वापिस छेनेमें साफ साफ हिसाव रखना आवश्यक है। प्राह्क, जव तक पुस्तक र्खनेका नियम हैं, तव तक उसे अपने पास रख कर

वापस कर दे। पुंस्तकालयको रक्षा हर हालतसे करना चाहिये, नहीं तो सम्भव है, कि प्राहक वा सम्य महोदयके हाथसे पुस्तक नष्ट भी हो सकती है। पुस्तकालयको आग लगनेसे वचानेके लिये वहां एक जलयन्त (pump)-का रहना नितान्त आवश्यक है। पुस्तकी (सं० स्त्री०) पुस्तक, पोथी। पुस्तमय (सं ० ति०) वस्त्ररचित । पुस्तशिम्बी (सं॰ स्त्री॰) शिम्बीलताभेद, एक प्रकारकी सिम। पुस्फुस (सं ॰ पु॰) फुसफुस रोग । पुस्पुस्तश्वासक—(Pulmonata) वह जी हवामें फुस-फुस द्वारा सांस लेता है। पुहकर (हिं पुः) पुष्कर देखी। पुहकरमूल (हिं० पु०) पुम्हरमूल देखो । पुद्दाना (हिं० कि.०) ग्रथित कराना, पिरोनेका काम कराना, गुथवाना । पुहुष (हिं० पु०) पुष्प, फूल । .

पुहुमी (हिं॰ स्त्री॰) पृथ्वी, भूमि ; पुहुरेतु (हिं॰ पु॰) पुन्परेणु, फूलकी धूल, पराग । पुहुची (हिं॰ स्त्री॰) पृथिबी, भूमि । प्*गा (हिं॰ पु॰) १ सीपका कीड़ा। (स्त्री॰) २ सपेरींका वाजा, महुबर।

पूंछ (हिं॰ स्त्री॰) १ लांगूल, पुच्छ, जन्तुओं, पिश्चय की झें आदिके शरीरमें सिरसे आरम्म मान कर सबसे अन्तिम या पिछला भाग, दुम। मजुन्योंसे भिन्न प्राणियों के शरीरका वह गावदुमा भाग जी गुद्मार्गके ऊपर रीढ़की हट्टीकी सिन्धमें या उससे निकल कर नीचेकी ओर कुछ दूर तक लम्बा चला जाता है। भिन्न भिन्न जीचोंकी पूंछ भिन्न आकारकी होती हैं। पर समीकी पूंछें उनके गुद्मार्गके ऊपरसे ही गुरू होती हैं। सरीस्प वर्गके जीचोंकी दुम रीढ़की हट्टीकी सीधमें आगेकी ओर अधिकाधिक पतली होती हुई चली जाती हैं। मछलीकी पूंछ उसके उद्रभागके नीचेका पतला माग है। अधिकांश मछलियोंकी पूंछके अन्तमें पर होते हैं। पिश्चयोंकी पूंछ परीका एक गुच्छा होती है। इसका अन्तिम भाग अधिक फैला हुआ और आरम्मका संकुचित होता है। की झाँकी पूंछ उनके मध्यभागके संकुचित होता है। की झाँकी पूंछ उनके मध्यभागके

और पोछेका नुकीला भाग है। भिड़का डंक उसकी पूंछसे ही निकलता है। स्तनपायी जन्तुओं मेंसे कुछ की पूंछ उनके शेष शरीरके बरावर या उससे भी अधिक लम्बी होती हैं; यथा लंगूरकी पूंछ। इस वर्गके प्रायः सभी जीवोंकी पूंछ पर वाल नहीं होते; रोष होते हैं। पर हां, किसी किसीकी पूंछके अन्तमें बालोंका एक गुच्छा होता है। घोड़ेकी पूंछ पर सर्वत वड़े वड़े वाल होते हैं।

२ किसा पदार्थके पीछेका भाग। ३ जो किसोके पीछे या साथ रहे; पिछलगु, पुछल्ला। वृंद्धगन्छ (हिं पुं) वृद्धगन्छ देखो । २ नालेमें पूंछड़ी (हिं० स्त्री०) १ लांगूल, पुच्छ, पूंछ। चढ़ावके आगे आगे चलनेवाला पानी। पुंछताछ (हिं स्त्री) पूछत छ दे हो। पूंछना (हिं० किं०) र्इना देखो। प्रांख (हिं० स्रों०) प्रवांस दे हो । पूंजलतारा (हिं पु॰) केंद्र देखा । पुंजना (हि० कि०) नये वन्दरको पकड़ना। पूंजी (हिं स्त्री०) १ वह घन जिससे कोई कारोवार शुद्ध किया गया हो या चलता हो, वह धन या रुपया जो किसी व्यापार अथवा व्यवसायमें लगाया गया हो। किसी दूकान, कोठी, कारखाने, वैंक अरिकी निजकी चर या अचर संम्यति, मूलधन। २ किसी व्येक्ति या समुदायका ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या कालमें लगा सके। निर्वाहकी आवश्यकतासे अधिक धन या सामग्री, सञ्चितं धनः, सम्पत्ति, जमा । ३ वपया-पैसा, धन। ४ किसी विषयमें किसीका परिज्ञान या

पूंड (हि॰ स्त्री॰) पीछ।
पूजा (हि॰ पु॰) मालपुजा, एक प्रकारकी पूरी जो आटेकी
गुड़ या चीनोके रसमें घोल कर घोमें छानी जाती है।
सादके लिये इसमें कतरे हुए मैचे भी छोडते हैं।

समूह, पुंज, ढेर।

जानकारो, किसी विषयमें किसीकी सामर्थ्य या वेछ। ५

पूर्वी—दोआवके अन्तर्गत कैनपुरोके एक प्रसिद्ध कवि। लगभग १७४६ ई०में इनका जनम हुआ था।
पूर्व (सं० क्को०) पूर्वते मुखनेनेति पून्यन् किस (छापूर्

खण्डिभ्यः कित्। उण् १।१२३) १ गुवाकफल, सुपारी-का फल। पर्याय—पूगकल, चिक्कणो, चिक्का, चिक्कण, सोब्यक, उद्घेग, कमुकफल इत्यादि।

विशेष गुवाक शब्द है देखी।

इसका गुण — कफ और पित्तनाशक, रुझ, वक्त-विद्मलनाशक, कपाय और कुछ मधुर और सारक है। (धुश्रतध्र १० ४६ २०)। अतिसंहिताके मतसे यह क । य मधुर अर्थात् पहले कपाय पोछे मधुर, भेदक, पित्त और कफनाशक है। पक पूगफल वातवद्ध क, रुझ, भेदन, कफनाशक, गुरु, अभिष्यन्दि, मधुर, वहि-नाशक होता है। प्रथम वर्षका पूग विषतुल्य, दितोय-का भेदक और दुर्जर तथा नृतीयादि वर्षका सुधातुल्य रसायन है।

२ अङ्कोट, देरा । ३ पनसवृक्ष, करहरू । ४ शह-त्तका पेड़ । ५ छन्द । ६ भाव । ७ कएटकीवृक्ष, एक प्रकारकी कटेरी । ८ समूह, वृन्द, देर । प्राक्रत (सं० ति०) स्त्याकारमें स्थापित, जो टीलेके आकारका हो । २ संगृहोत, इकहा किया हुआ, राशि, देर ।

पूगलण्ड (सं ० पु०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली— सुपारीका चूर्ण ऽ२ सेर, दूध १६ सेर, चीनी १२॥ सेर, घो ऽ२ सेर; इन सव द्रव्योंको एक साथ पाक कर उपयुक्त समयमें गुड़त्वक्, तेजपत्न, इलायची, नागेश्वर, विकटु, लबङ्ग, रक्तचन्दन, जटामांसी, तालीशपत, पदावीज, नोलसुंधि, वंशलोबन, सिंवाइा, जोरा, भूमिकुआएड, गोक्षर, शतमूलो, मालतोपुष, आमलको और कपूँर प्रत्येक ४ तोला ले कर यथाविधि पाक करे। वाद एक स्निग्ध भार्डमें इसे रख छोड़ें। इसकी सेवनमाता एक तोला है। तव रोगोके अवस्थानुसार इससे कम ज्यादा हो सकता है। इसका सेवन करनेसे सव प्रकारके शूल, विम, सम्ज्ञपित्त, हहाह, भ्रमि, मूर्च्छां, आमवात, मेदो-विकार, प्लोहा पाण्डु, अक्ष्मरो और मूलकृष्छ् विनष्ट होता है। यह खएड अत्यन्त रसायन, शुक्रवर्द्ध क और पुष्टिकारक है। इसके सेवनसे वन्ध्या पुत और वृद्ध व्यक्ति तरुणता लाभ करते हैं। शूलरोगमें यह रामवाण ही है। (मैपन्य स्ता॰ श्रूजरोगाधि॰) : पूगपात (सं० क्लो॰) पूगस्य दन्तर्चावतपूगरसस्य आघार-भूतं पातं । पूगपीठ, पीकदान । इसका पर्याय—फह-वक है ।

पूगपीट (सं० क्की०) पूगस्य दन्तचर्वितपूगरसस्य पीठ-माधारपात । निष्ठीवनपात, पूगपात, पीकदान, उगाल दान । पर्याय—कटकोल, पतडुशह ।

पूगपुष्पिका (सं० स्त्री०) पूगसहितं पुष्पमत्रेति पूगपुष्प-कप्। कापि अतहत्वं। विवाहसम्बन्धि पुष्पताम्बूल। विवाहसम्बन्ध स्थिर हो जाने पर जो पुष्प सहित पान दिया जाता है, उसे पूगपुष्पिका कहते हैं। दूसरा नाम कुहुलि भी है।

पूराफल (सं॰ क्वी॰) पूरास्य गुवाकस्य फलं। गुवाक-फल, सुपारी। १ण देखो।

पूगमण्ड (सं० पु०) प्रश्नवृक्ष, पाकड़का पेड़।

पूगरोट (सं॰ पु॰) पूगवृक्ष इव रोट्यति, द्वीप्यते प्रकाशते इति वटः अच्। १ हिन्तालवृक्ष, एक प्रकारका ताड़। २ खर्जू रिवशेष, एक जातिकी खजूर। इस शब्दका 'पूगवोट' ऐसा पाट भी देखा जाता है।

पूरावृक्ष (सं॰ पु॰) ऋमुवृक्ष, सुपारीका पेड़ । पूर्गिन् (सं॰ पु॰) गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़ । पूर्गी (सं॰० स्त्री॰) सुपारी ।

पूर्गीफल सं को) गुवाक, सुपारी।

पूरव (सं कि) पूर्ग भवः, दिगादित्वात् यत् । (पा क्षाः। पूर्ण पूर्ण पूर्ण पूर्ण स्वाः। स्वाः। स्वाः। पूर्ण स्वः मृन्द्राज प्रदेशके अर्काट जिलान्तर्गत, अर्काटसे । पूर्ज स्वः मृन्द्राज प्रदेशके अर्काट जिलान्तर्गत, अर्काटसे । मिल पूर्वदक्षिण, पालार-आनिकटके समीयमें अवस्थित एक अति प्राचीन ग्राम । प्राचीन चोलराज-निर्मित भर- द्वाजेम्बरके मन्दिरके लिये ही यह स्थान प्रसिद्ध है । आरकाड़ वा छः वनोंमें जो छः प्रधान मन्दिर है उनमें- से भरद्वाजेश्वरका मन्दिर भी एक है ।

पुड़रण (सं० पु०) सामान्य वस्त्र, कपड़ा।
पूछ (सं० ख्री०) १ जिज्ञासा, पूछनेका मान। २
आदर, आवभगत, खातिर इज्जत। ३ खोज, चाह, तलव,
जहरत।

क्रुगान्छ (हि॰ स्त्री॰) पृथ्वतात्र देखो । पृथ्वतान्छ (हि॰ स्त्री॰) असुसन्धान या जांच पड्ताल,

जिश्वासा, किसी वातका पता छगानेके लिए वार वार प्रश्न करना या पूछना, वातचीत करके किसी विपयमें खोज। पूछना (हिं० किं०) १ जिश्वासा करना, कोई वात जानने-की इच्छासे सवाछ करना, कोई वात दिखापत करना। २ किसी व्यक्तिके प्रति सत्कारके सामान्य भाव प्रकट करना, किसीका कुशल, स्थान आदि पूछना, या उससे वैठने आदिके लिए कहना, सम्बोधन करना। ३ सहायता करनेकी इच्छासे किसीका हाल जाननेकी चेष्टा करना, खोज खबर लेना। ४ ध्यान देना, टोकना। ५ भादर करना, गुण या मूल्य जानना, कद्र करना।

पूछपाछ (हि॰ स्त्री॰) पूछताङ देखो । पूछाताछो (हि॰ स्त्री॰) पूछापाडी देखो ।

पूछापाछी (हिं॰ स्त्री॰) पूछनेकी क्रिया या मात्र.।

पूज (हिं॰ पु॰) १ देवता । (स्त्री॰) २ स्नित्यों आदिमें वह गणेशपूजन जो यद्योपक्षेत, विवाह आदि शुभ कर्मोंके पहले होता है । (वि॰) ३ पूजनीय, पूजनेयोग्य ।

पूजक (सं॰ ति॰) पूजयतीति पूज-ण्डुल् । पूजाकर्ता, पूजा करनेवाला, वह जो पूजा न करे ।

पूजन (सं० क्की०) पूज-भावे-स्युद् । १ पूजा, अर्जना, देवताकी सेवा और बन्दना । पूजा देखी । २ सम्मान, आदर, स्नातिरदारी ।

पूजना (हिं० क्रि०) १ मिक या श्रद्धां साथ किसीकी सेवा करना, किसीको प्रसन्न या परितृष्ट करने हिए कोई कार्य करना, श्रावर सत्कार करना। २ ईश्वर या किसी देवी देवताके प्रति श्रद्धा, सम्मान, विनय और समर्पणका माव प्रकट करनेवाला कार्य करना, आराधना करना, श्रचना करना। ३ वन्दना करना, सम्मान करना, वड़ा मानना, सिर फुकाना। ४ रिसवत देना, धुस देना। ५ नया वन्दर पकड़ना। ६ आस पासके धरातलके समान हो जाना, गहराईका भरना या वरावर हो जाना। जैसे, गड्ढा पूजना, घाव पूजना। ७ पूरा होना, वरावर हो जाना। केसी, गड्ढा पूजना, घाव पूजना। ७ पूरा होना, वरावर हो जाना। केसी, गड्ढा पूजना, घाव पूजना। उत्ति, यह क्षति या हानि इस जन्ममें तो नहीं पूजने की। ८ समाम होना, बीतना। ६ जुकता होना, पटना। यथा, ऋण पूजना।

१ चटका । २ ब्रह्मदत्त ग्रहस्थित शकुनि, विहङ्गम-स्त्री- । विशेष ।

राजा ब्रह्मदत्तके घरमें पूजनी नामक एक पश्नी था।
पक्क ही समयमें राजा और उस शकुनिके पुत हुए।
वाद राजाने उस शकुनिके पुतको मार डाला। शकुनिने
शोक और कोधसे अधीर हो कर उस राजपुतको आंखे
उपाट लीं।

इस पूजनो और ब्रह्मद्तका संवाद प्रहाभारतमें व्यान्तिपर्वेके १३६ अध्यायमें विस्तृतभावसे लिखा है। पूजनीय (सं० ति०) पूज-अनीयर्। १ आराध्य, अर्वनीय, पूजनेयोग्य। २ आदरणीय, सम्मानयोग्य। पूजमान (हिं० वि०) पूजनाय, पूज्य। पूजमान (हिं० वि०) पूजनाय, पूज्य। पूजक, पूजा करनेवाला। पूजा (सं० ति०) पूजनमिति पूज-अङ् वित्वपूजि कथिकिवचर्वश्य। या भागि०५) तत्याप्। १ पूजन, अर्चना, आराधना। ईश्वर या किसी देवी देवताके प्रति अद्धा, विनय, सम्भान और समर्पणका भाव प्रकट करनेवाला कार्य, पूजा कहलाता है। पर्याय नमस्या, अयिवित, सपर्या, अर्चना, सर्वा, अर्चना, अर्चना, सर्वा, अर्चना, अर्चना, सर्वा, अर्चना, सर्वा, अर्चना, स्विता, सर्वा, अर्चना, अर्वना, सर्वा, अर्चना, अर्वा, सर्वा, अर्चना, स्वता, विता, सर्वा, अर्चना, अर्वा, स्वता, अर्चना, स्वता, विता, सर्वा, अर्चना, अर्वा, स्वता, स्वता, विता, सर्वा, अर्चना, अर्चना, विता, सर्वा, अर्चना, अर्चना, विता, सर्वा, अर्चना, अर्चना, विता, सर्वा, विता, सर्वा, अर्चना, विता, सर्वा, विता, सर्वा, विता, सर्वा, सर्व, सर्वा, स

सभी धर्मशास्त्रीमें पूजाकी व्यवस्था लिखी है। अति . संक्षिप्त भावमें उसकी आलोचना नोचे को गई है।

. देवपूजक पहले स्नान, शिखिवन्धन कर हस्तपादादि उत्तमकपसे धो ले'। वाद हाथमें कुश ले कर आसन पर पूर्व या उत्तरमुख वैठ आचमनपूर्वक यथाविधान पूजा करे'।

पञ्चोपचार, दृशोपचार और पोड़शोपचार प्रभृति द्वारा देवपूजा करनी चाहिए।

पूजाका साधारण विधान।—पूजा करनेमे पहले अप्टपादिन्यास, करशुद्धि अर्थान् अङ्ग और कराङ्गन्यास, अंगुलि तथा व्यापकन्यास, इदादिन्यास, तालतय, दिग्-वन्धन भीर प्राणायाम करना चाहिये। वादमें जिस देवताकी पूजा करनी हो, उसका ध्यान, पादादि द्वारा पूजा और जप करके पूजा समाप्त करनी होती है।

गन्ध, पुत्प, धूप, दीप और नैवेशसे जी पूजा की जाती है उसे पञ्चोपचार, जिसमें इन पांचींके सिया पाय, अध्यें, आचमनीय, मधुपकें धीर आचमन भी हो वह दशोपचार तथा जिसमें उक्त दशके अतिरिक्त आसन, खागत, सान, वसन और आभरण हो वह पोड़शोपचार कहलाती है।

अन्यविश्व पोड़गोपचार—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूपण, गन्ध, पुग्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्ड्ल, अर्थना, स्तोब, तर्पण और प्रणाम।

अद्यदशोपचार—आसन, खागत, पाद्य, अर्घ्य, आच-मनीय, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धृप, दीप, अत्र, दर्पण, माट्यानुरुपन, प्रणाम और विसर्जन ।

पर्शतिशन् अर्थान् छत्तोस उपचार—आसन, अभ्य-ञ्चन, उद्धत्तेन, निष्क्षण, सम्माजेन, सपिरादिस्तपन, आवा-हन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, मधुपके, पुनराच-मनीय, वस्त्र तथा यद्योपवीत, अरुङ्कार, गन्ध, पुप, धृप, दीप, ताम्बूल, नैवेद्य, पुष्पमाला, अनुलेपन, श्रम्यां, चामर-यजन, आद्रशंद्रशंन, नमस्कार, नत्तेन, गीतवाद्य, गान, स्तुति, होम, प्रदक्षिण, दन्तकाष्ट-प्रदान और देव-विसर्जन।

शक्ति-विषयमें चतुःपष्टि (६४) उपचार—१ आसना-रोहण, २ सुगन्धि नैलाभ्यङ्ग, ३ मजनशालाप्रवेशन, ४ मजनमणिपीडोपयेशन, ५ दिव्यम्नानोय, ५ उद्वर्नन, ७ उ णोद्क स्नान, ८ कनक-कलसहियत सकल तीर्थाभिषेक, ६ घौतवस्त्रपरिमाजेन, १० अरुण दुकुलपरिधान, ११ दुकुलोत्तरोय, १२ आलेपमण्डपप्रवेशन, १३ आलेपमणिपीठोपवेशन, 38 चन्दन, कर्पूर, कस्तूरो, रोचना और दिव्यगन्धि द्वारा सर्वाङ्गानुलेवन, १५ केशकलापमें कालागुरु, धृव, मिलका, मालती, जाती, चम्पक, अशोक, शतपत्न, पूग, कुहरी, पुत्राग, प्रभृति सर्वे ऋत्त्वत्रपुष्प द्वारा मान्यभूषण, १६ भूपणमण्डपमवेशन, १७ भूपणमणिपोडोपवेशन, १८ नवमणिमुकुट, १६ चन्द्रशकट, २० सोमन्तसिन्द्र, २१ तिलकरत, २२ कालाजन, २३ कर्णपालीयुगल, २४ नासा-भरण, २[,]५ अघरयावक, २६ प्रथनभूषण, २<mark>७ कनक</mark>चित्र-पदक, २८ महापदक, २६ मुक्तावलि, ३० एकावलि, ३१ देवच्छन्दक, ३२ केयूरयुगलचतुष्टय, ३३ वलयावलि, ३४ ऊर्मिकावलि, ३५ काञ्चोदाम, ३६ कटिसूल, ३७ शोभाल्या-भरण, ३८ पादकटक, ३६ रत्नमृपुर, ४० पादांगुरीयक, ४१ पक हाथमें पाश, ४२ दूसरेमें अंकुश, ४३ तोसरेमें पुण्डे सू- चाप, ४४ चौथेमें पुष्पवाण, ४५ माणिषयपादुका, ४६ आवरण-देवताके साथ सिहासनारोहण, ४७ कामेश्वर-पर्यङ्कोपवेणन, ४८ अमृताशव-चषक, ४६ आचमनीय, ५० कर्पूरविटका, ५१ आनन्द, उल्लास, विलास और हास, ५२ मङ्गलाराबिक, ५३ खेतच्छव, ५४ चामरयुगल, ५५ द्पैण, ५६ तालवृन्त, ५७ गन्ध, ५८ पुष्प, ५६ धूप, ६० दीप, ६१ नैवेदा, ६२ पुनराचमनीय, ६३ ताम्बूल, ६४ चन्दन।

जिनको जैसा विभव है, वे उसीके अनुसार पञ्च आदिसे ले कर उक्त सभी उपचारों द्वारा देवपूजा करें। वित्तकी शठता कर देवपूजामें उपचारहीन होनेसे देव-पूजाका फल नहीं मिलता, वरं उससे भनिए हो होता है। अतः कशिप वित्तशाध्य करना उचित नहीं। अशौ-चादि होनेसे देवपूजा नहीं करनी चाहिये।

"अशुचिनं महामायाँ पूजयेत् तु कदाचन ।
अवश्यन्तु स्मेरेन्मंत्रं सोऽतिभक्तियुतो नरः॥
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणञ्च न विद्यते।
सर्वेपामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं वजेत्॥" इत्यादि
(हालका पु॰ ५४ अ॰)

अशुचि अवस्थामें देवपूजा करना उचित नहीं; किन्तु शुचि हो कर पूजा को जा सकती है। जनन वा मरणाशीचमें देवपूजा विधेय नहीं है, परन्तु अत्यन्त भक्ति-परायण होनेसे मन्त्र स्मरण कर सकता है। दाँतसे लेह निकलने पर मन्त्रस्मरण भी निषेध है। शरीरसे रक्तसाय होनेसे, झौरकर्म और मैथुनादिके बाद देवपूजा नहीं करनी चाहिये। महागुरुनिपातमें, एक वपंके मध्य अर्थात् सिपएडीकरण नहीं होनेसे देवपूजाका अधिकारों नहीं हो सकता।

वैदिक कार्यमें ब्राह्मण छा कर देवपूजा कर सकते हैं, किन्तु तान्त्रिक कार्यमें तन्त्रामुसार दोक्षित नहीं होनेसे किसी तन्त्रोक्त पूजादिमें अधिकार नहीं होता। प्रतिमा, पट, घट वा जलादिमें देवपूजा कर्त्तंच्य है। देव पूजाके पहले गणेशको पूजा करनी होती है। गणेशपूजा न कर अन्य देवताकी पूजा करनेसे वह निष्फल होती है।

"देवतादी यदा मोहात् गणेशो न च पूज्यते । तदा पूजाफलं हन्ति विघराजी गणाधिपः॥" (आहिङ वस्त्र ।) पूजाविधिमें पहले सूर्यार्घ्यं, गणेशपूजा, दुर्गा और शिवादि पञ्चदेवता आदिकी पूजा कर पीछे मूलपूजा करनी होतो है।

सभी देवता पूजे जा सकते हैं। मान आसन वा अर्घ्यपाल ग्रहण कर पूजा करना उचित नहीं। ऊषर, क्षारभूमि, कृमियुक्त स्थान अथवा अमार्जित स्थान पर वैठ कर पूजन नहीं करना चाहिए।

पूजा सास्विक, राजसिक और तामसिकके मेदसे तीन प्रकारकी है। जो पूजा निष्काम मावसे विना किसी आडम्बरके और सच्ची भक्तिसे सत्त्वप्रकृति कत्तां द्वारा की जाय, वह सास्विक; जो सकाम भाव और समारोह से राजसिक प्रकृति कत्तां द्वारा की जाती है वह पाजसिक और जो विना विधि, उपचार तथा मक्तिके केवल लोगों-को दिखानेके लिए की जाय वह तामसिक कहलाती है।

पूजादि कर उसका फल भगवान्को समर्पण करना ही विधेय है। गीतामें खयं भगवान्ने कहा है, कि जो कुछ करो, वह मुक्ते समर्पण कर हो; 'तक्कक मद्भूण' (गीता)। पूजादिके शेवमें 'एतस्युका कर्मफलं श्रीहण्णाम भिगाति। पूजादिके शेवमें 'एतस्युका कर्मफलं श्रीहण्णाम भिगाति। इस मन्त्रके पढ़नेसे भगवान्के ऊपर सभी कर्मफल अर्पण किये गये, सो नहीं। सथाथमें में जो कुछ करता हूं, वह सब भगवत्मे रित हो कर ही करता हूं इस ख्यालसे यदि पूजादिका फल कायमनीवाक्य द्वारा भगवान्को अर्पत किया जायं, तो उसो-को प्रकृत अर्पण कहते हैं।

विष्णुपूजा और शिवपूजा आदि ब्राह्मणोंके (स्नाना-हारकी तरह) नित्य कर्मके मध्य परिगणनीय है। यदि कोई मोहवश न करे, तो उसे पापमागी होना पड़ेगा।

पूजाके नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन और भेद माने जाते हैं। शिय, िषणु आहिकी जो पूजा प्रति-दिन की जाती है वह नित्य, जो पूजा कामना कर अर्थात् सुख-सौभाग्यकी आकांक्षासे अथवा विपत्यतीकारके लिये की जाती है वह काम्य कहलाती है। हुगोंत्सव सरस्वतीपूजन आदि भी काम्यपूजाके मध्य गिने जाते हैं। जो पूजा पुजजन्म आदि विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट कारणोंसे की जाती है उसे नैमित्तिक पूजा कहते हैं।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य यह विविध पूजा प्रत्येक-का अवश्य कर्त्तंब्य है। पृजाक प्रणाओ पृजायद्वतिमें देखी। २ वह धार्मिक इत्य जो जल, फूल, फल, अक्षत अथवा इसी प्रकारके और पदार्थ किसी देव देवी पर चढ़ा कर या उसके निमित्त रख कर किया जाता है। ३ आदर, सत्कार, खातिर, आव भगत। ४ प्रहार, तिरस्कार, दण्ड, त।ड़ना। ५ किसीको प्रसन्न करनेके लिए कुछ देना।

पूजाखएड—वौद्धप्रन्थभेद ।

पूजाधार (सं॰ पु॰) पूजानां आधारः । देवताओं के पूजनाधार जलादि । जल, विष्णुचक, यन्त्व, प्रतिमा, शालप्रामशिलादिमें देवपूजा करना विधेय है, इसीलिए इनका नाम पूजाधार पड़ा है। तान्त्विक पूजामें यन्त्व लिख कर उसमें पूजा करनी चाहिए। यन्त्व भिन्न देवपूजा विफल है, क्योंकि यन्त्व देवतास्वक्तप है।

पूजाई (सं० ति०) पूजामहैतीति पूजा अई-अच् (अई:। या ३ स१२) मान्य, पूजने वोग्य।

पूजाविषु दाक्षिणात्यके त्रिवन्दरम्का एक महोत्सव। दशहरा उत्सवके समय पद्मनाभपुरके कुमारस्वामी (कार्त्तिकेय) विवन्दरमें लाये जाते हैं। इस देवमूर्त्ति-को लानेमें तिवाङ्कोङ्राजके २००० फनम् । मुदाविशेष) सर्व होते हैं। कुमारस्वामीको नेयूर, ताम्रपणीं और करमनयूर इन तीन वड़ी नदियोंके पार आना पड़ता है। मवाद है, कि कुमारखामीने बुद्धे नाम ह एक कुरवरमणी-का और यैवमने नामक एक परवकन्याका पाणिग्रहण किया था। इस नीच जातीय रमणियोंके संस्रवहेत उन्हें पद्मनाभदेवके मन्दिरमें प्रवेश करने नहीं दिया जाता है। कुमारखामीकी पूजाके वाद राजसरकार उन्हें पायेयखरूप २००० फनम् देती है । उनके छीटने-के समय बहुत-सी देवनर्त्तकी, नायरसेना, तहसीछदार आदि अनेक गण्यमान्य व्यक्ति महासमारोहसे देवताके साथ साथ जाते हैं। अन्तर्में स्वयं महाराज आ कर उस उत्सवमें कुछ समयके लिए योगदान करते हैं।

पूजित (सं॰ ति॰) पूज-क। अर्चित, आराधित, जिसकी पूजा की गई हो। इसका पर्याय अञ्चित है।

पूजितव्य (सं वि) पूज-तन्य । पूजनीय, पूजा करने योग्य। पूजिल (सं० पु०) पूज्यते इति पूज इलच्, स च कित् (ग्राह्मिश्य: कित्। डण् १,५७) १ देवता। (बि०) २ पूजनीय, पूजायोग्य।

पूज्य (सं 0 पु) पूजियतुमर्दः पूज-यत् (अर्दे इस्रतृ नहन) वा ३ ३।१६६) १ श्वशुर, ससुर । (ति) २ पूजनीय, पूजायोग्य । पर्याय—प्रतीकृय । ३ माननीय, आदर योग्य ।

पूज्यता (सं॰ स्त्री॰) पूज्यस्य भावः, तल्-टाप्। पूज्यत्व, पूजनीयका भाव, पूजायोग्य होना।

पूज्यपाद (सं॰ ति॰) जिसके पैर पूजनीय हों, परमाराध्य, अत्यन्त पूज्य ।

प्ज्यपाद—एक विख्यात जैन-वैयाकरण। इन्होंने पाणि नीय कारिकावृत्तिकी रचना की। कोई कोई कहते हैं, कि प्ज्यपाद नाम नहीं हैं, उपाधि है। सम्मवतः जैन-पिएडत देवनन्दि वा गुणनन्दिकी उपाधि भी हो सकती है।

पूज्यमान (सं॰ ति॰) पूज-कर्मणि शानस्। १ सेव्यमान, जिसकी पूजा की जा रही हो, पूजा जाता हुआ। (क्की॰) २ भ्येतजीरक, सफेद जीरा।

पूटरी (हिं ॰ स्त्री॰) ईखके रसकी वह अवस्था जी उसके खांड वननेसे पहले होती हैं।

पूरीन (हिं क्सीण) पुरीन देखी।

पूठा (हिं० पु०) शुहा देखी।

पूड़ा (हिं पु) पूजा देखी।

पूड़ी (हिं स्त्री॰) १ पूरी देखी। २ मृदङ्ग या तबले पर मढ़ा हुआ गोल चमड़ा।

पूर्णी—उत्तर आकंट जिलेका आणीं जागीरके अन्तर्गत एक अति प्राचीन प्राप्त । यह आणीं शहरसे २ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। एक समय यहां बहुत बड़ी तांबेकी जिनमूर्त्ति थी। अभी भी बहु शिलालिपियुक्त उसका प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। इस अञ्चलमें यही जैनोंके मध्य सर्वप्रधान मन्दिर समका जाता है।

पूण् (हिं॰ पु॰) १ पत्थर । (स्त्री॰) २ पूर्णमासी, पूर्णिमा।

पूत (सं० ति०) प्-शोधे क । १ वतादि द्वारा शुद्ध । पर्याय—पवित, प्रयत । २ शुद्ध, शुचि, पवित । दिध

Vol. XIV. 65

गोमयप्रभृति स्वभावतः पवित है । ३ सत्य, सञ्चा। (पु०) पूयते स्व येनेति पू-करणे-क । ४ शङ्ख । ५ श्वे त-कुश, सफेद कुश । ६ विकङ्कतवृक्ष, कंटाईका पेड़ । ७ प्रक्षवृक्ष, पलास । ८ तिलकवृक्ष, तिलका पेड़ । (क्की०) पूयते स्मेति पू कर्मणि-क । ६ निर्द्यु पधान्य, वह अन्न जिसकी भूसी निकाल दी गई हो । इसका पर्याय वहलीकृत है । १० जलाशय ।

पूत (हिं ० पु०) १ पुत, लड़का, वेटा । २ च्व्हेंके दोनों किनारों और वीचके वे नुकीले उसार जिनके सहारे पर तवा या और वरतन रखते हैं।

पूतकता (सं० स्त्रो०) वेदोक्त ऋषिपत्नीभेद, एक वैदिक ऋषिकी स्त्रोका नाम।

पूतकतायी ('सं॰ स्त्रो॰) पूतकतोरिन्द्रस्य स्त्री पुतकतुः स्त्रीप्, ऐकारादेशस्य (पूतकतोरिचः पा ४।१।३६) इन्द्रपत्नो, शयी।

पूतकतु (सं॰ पु॰) पूतः क्रतुर्येन । इन्द्र ।

पूतगन्य (सं० पु०) पूतः पवितो गन्धो यस्य, वर्धरकः, काली वर्धरी तुलसी ।

पूतड़ा (हिं ॰ पु॰) वह छोटा विछीना जो वर्शके नीचे इसिछये विछाया जाता है, कि वड़ा विछीना मलभूतादि से बचा रहे।

पूततृण (सं॰ क्की॰) पूतं पवित्तं तृणमिति नित्यं कर्मधा॰ । श्चेतक्करा, सफेदकुरा ।

पूतदक्ष (सं० ति०) गुद्धवल ।

पूतदारु (सं॰ पु॰) पलाश, ढाक ।

पूतद्व (सं॰ पु॰) पूतः पवित्रो द्वः । १ पठाश, हाक । २ देवदार । ३ खदिर, खैरका पेड़ ।

पूत्रधात्म (सं० क्ली०) पूतं धान्यमिति नित्यकर्मधा०। तिलं।

पूतनः (सं॰ पु॰) गुद्कुन्द्रोग, वैद्यकके अनुसार गुद्रामें होनेवाला एक प्रकारका रोग । २ वेताल ।

पूतना (सं० स्त्री०) पूतं करोतीति तत्करोतीति णिच्, ततो युच् । १ हरीतकी, पीली हड़ । २ गन्धमांसी, सुरान्ध जटामासी । ३ योगिविशेष, एक योगीका नाम । ४ दानवीमेद । भागवतमें १०म स्कन्धके ६वें अध्यायमें इसकी भाक्यायिका इस प्रकार लिखी है । एक दिन

श्रीकृष्णको मारनेके लिये कंसने वालघातिनी पूतनाको हुकुम दिया। कामचारिणी पूतना मायावलसे परम रमणीय क्ष्य धारण कर गोकुलमें नन्दके घर पहुंचो। इसने अपने स्तनों पर इसलिये विप लगा लिया था, कि श्रीकृष्ण दूध पी कर उसके प्रमावसे मर जांव। परन्तु श्रीकृष्ण पर विपका तो कुल प्रमाव न पड़ा उलटे उन्होंने इसका सारा रक्त चूस कर इसीको मार डाला। मरनेके समय इसने वहुत अधिक लम्बा चीड़ा शरीर धारण किया था और जितनी दूरमें वह गिरी उतनी दूरकी जमीन धंस गई थी। पीछे श्रीकृष्ण इसके बक्षास्थल पर खेल करने लगे।

हरियंश्रमें इसकी कथा इस प्रकार आई है—कंसके आदेशसे कंसधाती पूतना शकुनीवेश घारण कर आधी रातको नन्दके घर पहुंची। वार वार विकट शब्द करके धोरघारा वरसाती हुई वह शकटके ऊरके पर वैठ गई। दो पहर रात थी, सभी निद्रामें अवेतन थे। इसी समय वह राक्षसी श्रीकृष्णको स्तन पिळाने ळगी। कृष्ण स्तनपान करने ळगे। थोड़े ही समयके वाद वह शकुनीवेशघारी पूतना छिन्नस्तनी हो उच्चे खरसे चीत्कार करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ो। इस पर नन्द आदि भी जग उठे और पूतनाकी सतदेहको देख कर वड़े चमत्कत हुए तथा उसकी मृत्युका कारण कुछ भो स्थिर न कर सके। (इरिवंश (२ अ०))

आज भी मधुरा नगरसे थोड़ी ही दूर पर 'पूतना-खाड़' नामक एक खाड़ी देखी जाती है। प्रवाद है कि भगवान्के स्पर्शसे दानवी पूतनाने यहां राक्षसी शरीर फैलाया था। उसके गिरनेसे ही वह स्थान गड़हा हो गया है। ब्रह्माण्डपुराणके वृहद्यनमाहात्म्यमें महावक-तीर्थ-वर्णनप्रसङ्गमें इस स्थानकी गणना पविवतीर्थमें की गई है। कार्तिक शुक्का बष्ठीको महावनमें पूतनाका मेला आरम्म होता है।

५ सुश्रुतके अनुसार एक वालग्रह या वालरोग। इसमें वञ्चेको दिन रातमें कभी अच्छी नींद नहीं आती। पतले और मैले रंगके दस्त होते रहते हैं। शरीरसे कौवेको-सी गन्य आती वहुत प्यास लगती और उल्टी होती है तथा रोंगटे सड़े रहते हैं।

इसकी चिकित्सा—कपोत-वङ्का (ज्योतिकाती), अर-लुक, वरुण, पारिमद्रक, अरूपोत, इनका काथ परिषेचन करनेसे; बन्द, हरीतकी, गोलमीचें, हरिताल, मनःशिला, कुछ और सर्जरस इन सब द्रव्योंसे प्रस्तुत पाक तेल लगानेसे; तुगाक्षीर, मधुरक, कुछ, तालिश, खिद्र और चन्दन इन सब द्रव्यों द्वारा पाक किये हुप घृतका सेवन करनेसे; बच, कुछ, हिंगुं, गिरिकदम्ब, इलायची और हरेणु इनका धूम-प्रयोग करनेसे यह रोग प्रशमित होता है।

गन्धनाकुली, कुम्भिका, बेरकी आंडीकी मजा, कर्कट-की अस्थि और घृत इनका धूप भी हितकर है। काका-वृती, चित्रफला, विम्वी और गुञ्जा इन्हें शरीरमें धारण करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

मत्स्य; अन्न, कृशंर और मांस इन सब द्रव्योंको मट्टी-के एक ढक्कनमें रख कर उसे किसी चीजसे ढंक दे और शून्यगृहमें निवेदन कर उपहारके साथ पूजा करे। पीछे उच्छिए जलसे स्नान करा कर निम्नलिखित मन्त्रसे स्तव करे। मन्त्र—

> "मिलनाम्बरसंवृता मिलना रूथ्नमूर्वं जा । शून्यागाराश्रिता देवी दारकं पातु पूतना ॥ दुदर्शना सुदुर्गन्था कराला मेघकालिका । भिक्षागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥" (सुश्रु० उ० तन्त ३३ अ०)

पूतनाकेशो (सं॰ क्ली॰) सुगन्थजटामासी । पूतनारि (सं॰ पु॰) पूतनाया अरिः शतुः । पूतनाको मारने-वाले, श्रोक्तव्या ।

पूतनासूदन (सं॰ पु॰) पूतनां सूदयति सूदतिवानिति वा सूदु-स्यु । श्रीस्रुण ।

पूतनाहड़ (हिं॰ स्त्री॰) छोटी हड़ ।

पूतनाहन् (सं॰ पु॰) पूतनां हन्तीति हन-किप्। श्रीकृष्ण। पूतनिका (हिं॰ स्त्री॰) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। पूतनी (सं॰ स्त्री॰) खनामख्यात एक सुगन्धशाक, पुदीना। पूतपती (सं॰ स्त्री॰) तुस्सीपत्र।

पूतफल (सं॰ पु॰) पूतानि पवित्राणि फलानि यस्य । पनस, कटहल ।

पूतवन्धुं (सं॰ ति॰) प्वित स्तीतावृतः।

पूतभृत् (सं॰ पु॰) पूर्त शुद्ध' सोमरसं विभक्ति भृ-किप् तुक् च । सोमरसाधार पात्रभेद, प्राचीनकालका एक वरतन जिसमें सोमरस रखा जाता था ।

पूतमंति (सं० ति०) पूता मितः कर्मधा०। १ पवित मिति, पवित बुद्धि। पूता मितिर्यस्य। २ विशुद्धचित्त व्यक्ति, पवित अन्तःकरणवाला। (पु०) ३ शिवका एक नाम।

पूतमाक्ष (सं॰ पु॰) गोलप्रवर्त्तक ऋषिमेद । पूतयव (सं॰ अध्य॰) पूता निस्तुषीकृता यवा अत तिप्र-दुग्वादित्वाद्व्ययोभावः । पूतयवाधाका खलादि ।

पूतरा (हि॰ पु॰) १ पुत, लड़का, वाल-वश्वा । २ पुतला-देशो ।

पूतरी (हिं० स्त्री०) पुतली देखी।

पूता (सं॰ स्त्री॰) पूत-टाप्। १ दूर्वा, दूव। २ शुद्ध, पवित्र। पूतात्मन् (सं॰ पु॰) पूतः पवित्र आत्मा समावः। १ पवित्र समावः, शुद्धअन्तःकरण। पूत आत्मा सक्तपं यस्य। २ विष्णु। (ति॰) ३ शुद्ध-अन्तःकरणका, जिसकी आत्मा पवित्र हो।

पृति (सं० क्ली०) पुनातीति प्-कर्त्तरि किच्। १ रोहिष तृण, रोहिष सोधिया । (स्ती०) प्-भावे किन् । २ पवितता, शुचिता । ३ दुर्गन्ध, वद्वू । ४ खट्टाशसुष्क, गन्धमार्जार, सुश्कविलाव । ५ दुर्गन्धिविशिष्ट, वद्वृद्दार । पृतिक (सं० क्ली०) पूर्त्या दुर्गन्धेन कायतीति कै-क । १ विष्ठा, पाखाना, गू । (पु०) २ पृतिकरञ्जवृक्ष, कांटा करंज, दुर्गन्ध करंज । (ति०) ३ दुर्गन्धिविशिष्ट, खराव गन्धवाला ।

पूतिकरज (सं० पु०) पूतियुक्तः करजः। करजमेद् ।
पिकः करज देखी।

प्तिकएटक (सं॰ पु॰) ईंगुदीवृक्ष, हिंगोर । प्रितकन्या (सं॰ स्त्री॰) प्रितका, पुदीना । `

पृतिकरञ्ज (सं॰ पु॰) पृतियुक्तः करञ्जः । करञ्जमेद, कांटा करंज (Guilandina Bonducella) पर्याय—प्रकीर्यं, पृतोकरज, पृतिकरज, पृतिक, पृतीक, कल्लिकारक, कल्लि-मालक, कल्लहनाशक, प्रकीर्णं, रजनीपुष्पं, सुमनस्, पृति-कर्णिक, केंड्यं और कलिमाल्य । गुण—कट्ठ, तिक, उष्ण और विष, वातपीड़ा, कण्डु, विचर्चिका, कुछ और त्वग्दोषनाशक। भावप्रकाशंके मतसे इसका पर्याय—कर ज, नकमाल, कर ज और चिरविल्वक है। गुण – कर ज, तीक्ष्ण, उच्च-वीर्य तथा योनिरोग, कुछ, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, व्रण, किम और कफनाशक। पत्तेका गुण —कफ, वायु, अर्श, क्रिम और शोधनाशक, भेदक, कर विपाक, उज्जवीर्य, पित्तवर्द्ध तथा लघु। फलका गुण —कफ, वायु, प्रमेह, अर्श, कृमि, और कुछनाशक।

पूर्तिकर्ण (सं॰ पु॰) पूर्तिदुर्गन्थः कर्णो यस्मात्। कर्णरोग-विशेष, कानका एक रोग।

इसका लक्षण—कुपितदीप द्वारा क्षत होने अपना अभिधात लगनेसे कानमें फुंसियां हो जातो हैं और उनके पकने या कानमें पानी जाने पर उससे बदब्दार जो पीप निकलती है, उसे प्रतिकर्ण कहते हैं। इस रोग-में पीप निकलनेके साथ साथ कान खुजलाता भी है।

इसकी चिकित्सा—खट्टे नीयके रसमें खर्जिकाश्वार-चूर्ण मिला कर कानमें देनेसे कर्णस्त्राव, वेदना और दाह जाता रहता है। आम, जामुन, मधुक तथा-वटके नथे पत्ते द्वारा पक्कतेल बना कर जातीपत द्वारा पाक करे। पीछे उसे कानमें देनेसे प्रिक्णिरोग वहुत जल्द प्रशमित होता है। स्त्रियोंके दूधसे रसाञ्चन घोस कर मधुके साथ कानमें देनेसे वहु कालोत्पन्न कर्णस्त्राव और प्रिक्णि जाता रहता है। कूद, हिंगु, चच, देवदाह, सींफ, सींठ और सैन्धव द्वारा तेल पाक करे। वाद उसे कपड़ें में छान कर कानमें देनेसे उक्त रोग जल्द आराम हो जाता है। इस रोगमें गुग्गुलका धूम भी विशेष उपकारी है। (भावप्र॰)

सुश्रुतके मतसे सुरसादिगणके काथसे पहले कान-को अच्छी तरह धो डालें। वाद उसीका चूण कानमें देनेसे यह रोग दूर हो जाता है। निसोधके रससे पाक किया हुआ तेल अथवा मधु मिला हुआ निसोध-का रस, गृहधूम और गुड़ एक साथ कानमें देनेसे पृतिकर्णरोग आरोग्य होता है।

वालकोंके पूतिकर्ण रोग होनेसे उसमें निम्नलिखित तैलीषण उपकारी है। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ऽ१ सेर, कल्कार्थ वहेड़ा, कूट, हरिताल, मैनसिल प्रत्येक ऽ४ सेर, पाकका जल १६ सेर। वरुण, आर्द्र, कपित्थ, आम्र और जम्बू इन सर्वोका पत तथा जाती फूछके पत्तों द्वारा तैळ पाक कर कानमें देनेसे पृतिकणैरोग प्रशमित होता है।

पूर्तिकणैक (सं० पु०)-पूर्तिः कणों यस्मात् कप्। पूर्तिकणे रोग, कानका एक रोग।

पूर्तिका (सं० स्त्रो०) पूर्या कायतीति कैक टाप् ।१ मार्जारी, विल्ली । २ कीटविशेष, एक प्रकारकी शहदकी मक्खी। ३ छताशाकविशेष, पोईका साग (Basella Rubra) पर्याय-कलम्बी, पिच्छिला, पिच्छिलच्छदा, मोहनी, मदशाक, विशाला, विल्पोदकी। यह तीन प्रकारको होती है, सामान्या, शुद्रपता और वनजाता। गुण-कडु, मधुर और निद्रा, आलस्य, रुचि, विद्यम और इलेफ्कारक। ब्राह्मणादि वर्णके लिये यह साग काना नियिद्ध है। इसके सानेसे वतौर ब्रह्महत्याका पाप लगता है। द्वादशी दिन भी यह शुक्रमोजन निषिद्ध वत-लाया गया है। इस पर किसी किसीका कहना है, कि जब प्तिकाभक्षण सामान्यतोनिपिद है, तो फिर हादशीके दिन भी इससे न खाना चाहिये, ऐसा क्यों कहा गया ? इसकी मीमांसा यही, कि शूराविकी इसके खानेमें दोष नहीं लगता । किन्तु उन्हें भी द्वादशो दिन यह जाना नहीं चाहिये। ब्राह्मणादि वर्ण यदि द्वादशीके दिन इसे खांय, तो वड़े भारी दोषका भागी वनना पड़ता है।

ताण्डयब्राह्मणमें लिखा है, कि पूरिका सोमके अंश-से उत्पन्न हुई है। इसलिए यदि सोमका अमाव हो, तो उसके प्रतिनिधिक्तपमें अर्थात् सोमके बदलेमें इसे लिया जा सकता है।

पूर्तिकामिक्कका (सं० स्त्री०) पृथुमधुमिक्कविशेष, एक प्रकारकी वड़ी मध्यी, डांस ।

पूरिकामुख (सं॰ पु॰) पूरिकाया मुख मिय मुखं यस्य। शस्त्रक, घोंघा।

पूर्तिकाष्ठ (सं॰ इही॰) पूर्तिकाष्ठमिति कर्मधा॰। १ देवदारु, देवदार । २ सरलवृक्ष, धूपसरल ।

पूरिकाष्टक (सं॰ ही॰) पूरिकाष्ट-स्वार्थे कन् । सरलवृक्षः धृपसरल ।

पूतिकाह (सं० पु०) पूतिकरञ्ज, दुर्गन्धि करंज ।

पृतिकीट (सं० पु०) कीटमेद, एक प्रकारकी शहदकी मच्छी ।

पृतिकेशर (सं० पु०) पृतिकेसर देखो।

पृतिकेश्वरतीर्थं (सं० क्की०) शिवपुराणोंक तीर्थंमेद। पूर्तिकेसर (सं॰ पु॰) १ गन्धमार्जार, मुश्क विलाव। २ नागकेसर ।

पृतिगन्ध (सं क्लो) पृतिर्गन्धो यस्य । १ रङ्गधातु, रांगा। २ सुगन्ध तृण, खुशवृदार घास। (पु॰)३ इ'गुदीवृक्ष, हिंगोट वा गोंदो । (द्वि०) दुर्गन्घ, बदवू । पृतिगन्धा । सं । स्त्री ।) सोमराजी, वकुची, वावची ।

पृतिगन्धि (सं वि ो पृतिर्गन्धो यस्य तत इ, नम्ध वे इत्वृतिसुपुरिमभगः। पा ५।४।१६५) दुर्गन्ध, बद्र्यू।

पृतिगन्धिक (सं० ति०) पृतिगन्धिस्वार्थे कन्। दुर्गन्ध, वदेवू ।

पूर्तिगन्धिका (सं० स्त्री०) पूर्तिगन्धिक-टाप् । १ वाकुची, वावची। २ पूतिशाक, पोय।

पूर्तिघास (संं पु॰) सुभूतोक जन्तुभेद, सुश्रुतमें वर्णित मृगकी जातिका एक जन्तु ।

पृतितैला (सं॰ स्त्री॰) पृति दुर्गन्धं तैलं यस्याः। ज्योति-ष्मती, मालकंगनी ।

पुतिद् (सं० पु०) तरुविङ्गल, वनविङ्गल ।

पूर्तिद्छा (सं० स्त्री०) तेजपत ।

पूतिनस्य (सं पु) पूतिदु गैन्धो नस्यः नासिकाभचो रोगः । नासारोगभेद । इसका रुक्षण—दूषितपित्त, रके तौर कफ द्वारा गले और तालुमूलकी वायु पृतिभावा-पन्न होनेसे मुख और नाकसे अत्यन्त दुर्गन्य निकलती है। इसीको पूतिनस्य कहते हैं।

इसकी चिकित्सा—कएटकारी, दन्ती, वच, सहिजन, तुलसी, तिकटु और सैन्धव इन सव कल्क द्वारा तैल पाक कर नस्य छेनेसे पूतिनस्य जाता रहता है।

सहिजनका घींज, वृहतीवीज, दन्तीवीज, लिकटु और सैन्यव इन सर्वोंके कल्क तथा विख्वपतके रस द्वारा तैल पाक कर प्रयोग करनेसे पूतिनस्य आरोग्य होता है।

सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—गले और तालुमूलमें दोष विद्य्धं हो कर जव मुख और नाकसे दुर्गन्धयुक्त वायु निकलती है तव उसको पृतिनस्य कहते हैं।:

Vol. XIV. 66

इस रोगमें नाड़ीस्वेद, स्रोहस्रोद, वमन और श्रंसन प्रयोज्य है। तीक्ष्णरसके साथ छघु अन्त अल्प परि-माणमें भोजन, उज्ण उदकपान और उपयुक्त समयमें धूमपान कत्त्रं व्य है। हिंगु, तिकटु, इन्द्रयव, शिवाटी, लाक्षा, कं कुम, कटफल, वच, कुप्ट, छ टी इलायची, विडङ्ग और करंज इन सव द्रव्योंको गोमूलके साथ सरसोंके तेळमें पाक कर नस्य छेना चाहिए । ऐसा करनेसे पृतिनस्य रोग वहुत जब्द-जाता ्रहता है। जिसके नाक या श्वाससे दुर्गन्य निकलती हो,

पूरितनासिक (सं० ति०) पूरितनंसिकाऽस्य । दुर्गन्धनासायुक, जो पिशुन हैं, वे परजन्ममें पूतिनासिक हो कर जन्मग्रहण करते हैं।

पूर्तिपत्न (सं॰ पु॰) पूर्ति पत्नं यस्य । १ श्योनाकभेद, सोना-पाठा । २ पीतलोध्र, पीला लोध ।

पूर्तिपतिका (सं श्ली) प्रसारिणी लता, पसरन। पूतिपर्णं (सं॰ पु॰) करञ्जवृक्ष, दुर्गन्ध करजं। २ र्गुदी-वृक्ष, गोंदी।

पूर्तिपर्णेक (सं० पु०) वृतिपर्ण देखी ।

पूर्तिपहुवा (सं॰ स्त्री॰) राजसुवी, वड़ा करेला ।

पूतिपुष्प (सं० पु०) इंगुदीवृक्ष, गोंदी 🏻

पूतिपुष्पिका (सं० स्त्री०) पूति पुष्पमस्त्राः, कापि अत-इत्वं) मधुमातुलुङ्ग, चकोतरा नीव । मातुर्खं ग देखी ।

पूतिफल (सं॰ पु॰) पूति फर्लं यसग्राः । सोमराजी, वावची । पृतिफला (सं० स्त्री०) पृतिक हो देखो।

पूर्तिफली (सं॰ स्रो॰) पूर्तिफलं यसग्रः, ङीय् । सोम-राजी, वाकुची, वावची । पर्याय अवल्गुज, वाकुची, सुपर्णिका, शशिलेखा, ऋष्णफला, सोमा, सोमवल्ली, कालमेषी और कुछन्नी।

पूर्तिमजा (सं॰ स्त्री॰) इंगुदीवृक्ष, गोंदी ।

पूर्तिमयूरिका (संव स्त्रीव) पूर्तिम यूरोव, ततः खार्थे कन्, हर्खश्च । १ अजगन्या, वर्वरी । २ वन्य तुळसी, वनतुळसी । पृतिमास्त (सं पुः) १ कर्कन्धु, छोटी वेरका पेड़ । २ विल्ववृक्ष, बेलका पेड ।

पूर्तिमाव (सं० पु०) एक गोतप्रवत्त क ऋषि । पूर्तिमांस (सं॰ क्ली॰) दुर्गन्ध मांस, पर्यु पित मांस । गुण-

सद्य प्राणनाशक।

पूर्तिमुक्त (सं० पु०) मलनिर्गम । पूर्तिमूषिका (सं० स्त्रो०) छुछुन्दरी, छुछुंदर । पूर्तिमृत्तिक (सं० क्की०) नरकभेद, पुराणानुसार इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। पूर्तिमेद (सं॰ पु॰) पूर्तिमेदोऽस्य। अरिमेद, दुर्गन्ध खैर। पृतियुग्दला (सं० स्त्री०) रोहिवतृष, रोहिव सोधिया। पूर्तियोनि (सं० पु०) उपप्लुता नामक योनिरोगभेद, (Morbid sensibility of the uteras) योनिरोग देखी। पूर्तिरक्त (सं॰ पु॰) नासारीगभेद, एक रोग जिसमें नाकमें-से दुर्गन्धियुक्त रक्त निकलता है। पृतिरज्ञु (सं० स्त्री०) छतामेर्, एक छता । पूर्तिवक्त (सं॰ पु॰) पूर्ति-वक्तमस्य। दुर्गेन्ययुक्त मुख, जिसके मुंहसे दुर्गन्थ निकलो हो। पूर्तिवर्वरी (सं० स्त्रो०) वनतुलसो, जंगली तुलसी, काली वर्षेरी। पूर्तिवात (सं॰ पु॰) पूर्तये पावित्राय वातो यस्य विस्व वृक्ष, वेलका पेड़ । पूतिवृक्ष (सं॰ पु॰) पूतिर्वृक्षः । १ श्योनाक, सोनापाठा । २ पवित वा दुर्गन्ध वृक्ष। पूतिशाक (सं० पु०) वकवृक्ष, अगस्त । पूर्तिशारिजा (सं॰ स्त्री॰) पूर्तिः शारिरिव जायते इति जन-इ-टाप्, वनविलाव । पृतिसञ्जय (सं०पु०) १ जनपद्विशेष । २ उक्त देशके वासी। पूर्ती (सं० स्त्री०) पूर्तीकरञ्ज। पूती (हिं० स्त्री०) १ छहस्रुनकी गांठ। २ जड़ जी गांठके रूपमें हो। पतीक (सं॰ पु॰) पति वा ङीष्, तद्वत् कायतीति, कै-क, वा पतिक पृयोदरादित्वात् साधुः। १ पतिकरञ्ज, दुर्गन्ध या कांटा करंज। २ गन्धमार्जार, विलाव। पतीकद्वय (सं० पु०) करञ्जद्वय, करंज और नाटा करंज । पतीकपत (सं० क्षी०) करंजका पत्ता। पतीकप्रवाल (सं० पु०) करञ्जपल्लव । पूर्तीकरञ्ज (सं० पु०) पतिकरञ्ज पृषीदरादित्वात् साधु । करञ्जमेद, कांटा करंज। प्तीका (सं स्त्री) पूर्तिका पृषीदरादित्वात् साधु। पतिका, पोय, पोई।

पूतुदारु (सं॰ पु॰) पलाश वृक्ष । पतुद (सं० पु०) १ र्बादर, खैर। २ देवदार, देवदार। (क्री॰) ३ देवदारुवृक्षका फल । ' पूरकारी (सं० स्त्री०) १ सरस्रती। २ नागींकी राज-धानी। पूत्यएड (सं ० पु०) पति दुर्गेन्धमएडमस्य । १ गन्ध-कीट, एक वद्ववूदार कीड़ा। २ वह हिरण जिसकी नामि-से कस्तूरी निकलती है। पतित (सं ० ति०) पजन किया हुआ। प्तिम (सं ० ति ०) प्वनसाधन, शुद्धिकर। पथ (हि॰ पु॰) वालूका ऊ चा टीला वा दूह। पथा (हिं० पु०) पूष दें हो। पथिका (सं क्षी) पृतिका पृषोदरादित्वात् साधुः। पृतिका, पोई, पोयका साग । पदना (हि॰ पु॰) उत्तरी भारतमें मिलनेवाला एक पक्षी । यह अकसर भूरे रंगका होता है, परन्तु ऋतुमेदके अतु-सार इसका रंग कुछ कुछ वदला करता है। इसकी देह प्रायः ७ इञ्च लम्बी होती हैं। यह घासका घॉसला वना कर रहता है और जमीन पर चलां करता है। पुरीना देखी । पून (सं॰ वि॰) पून्कं (पुत्रो विनाशे । पा ८ श४४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या) तस्य न । नष्ट, वरवाद । पून (हिं० पु०) १ जंगली वादामका पेड़। यह भारतके पश्चिमी किनारों पर होता है। इसके फूछ और पत्तियां दवाके काममें आती हैं और फलमेंसे तेल निकाला जाता है। २ तलवारकी मुठियाका निक्ला सिरा। ३ कलपून नामक वृक्ष जिसकी लंकड़ी इंमार्स वनानेके काममें आती है। इसके वीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है। ४ पुरुष, देखी । ५ पूर्व देखी। पूनना (हिं० पु॰) एक प्रकारकी ईख । पूनन (हिं० स्त्री॰) पूर्णिमा या पूनो देखो । पूनसलाई (हि॰ स्नो॰) वह पतली लकड़ी जिस पर र्छ-की पूनियां कातनेके लिये वनाते हैं। पूना-दाक्षिणत्यमें वस्वई प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा॰ १७ ५४ से १६ २४ उ० और देशा॰ ७३ १६ से ७५ १० पूर्वों अवस्थित है। भूपरिमाण:५३४६ वर्ग-

मील है। इसके उत्तरमें अहमंदनगर जिला, पूर्वमें अहमदनगर और शोलापुर, दक्षिणमें नीरा नदी तथा पश्चिममें कोलावा और थाना जिला है। पश्चिम और दक्षिणका 'भोर' सामन्तराज्य इसी जिलेके अन्तर्भु क है।

जिलेके पश्चिमांशमें सह्याद्रि नामक पर्वतमाला विराजित है जो क्रमशः दक्षिण-पूर्वकी ओर जा निम्नसे निम्नतर उपत्येकामें परिणत हो कर समतलक्षेत्रमें मिल गई है। एक 'घाट' वा गिरिपथ छोड़ कर पर्वत पार होने-का कोई उपाय नहीं है। 'वोरघाट' नामक गिरिपथमें रेलगाड़ी और वैलगाड़ी जानेके दो सरल पथ हैं। सह्याद्रि-शिंखरसे अनेक जलक्षीत पर्वतको धोते हुए भीमा नदीमें गिरे हैं। इन शाखा क्षोतोंमें मूठा वा मूला नदी मशहूर है। पूना नगर इसके दक्षिण-तट पर वसा हुआ है। 'नगरसे ५ कोस दक्षिण पश्चिममें खदक-वासला हद है। पूना और किरकी नगरमें इसका जल जच होता है।

यहां किरकी, हबेली, जुन्नर, खेड्, सिकर, पुरन्धर-पुर, मावल, इन्दुपुर और भीमखड़ी नामक ८ उपविभाग • हैं। जिलेका विचार-कार्य उन्हीं सब स्थानोंमें परि-चालित होता है। यहांके रेशमी बस्त्र, मोटे सूती कपड़े, कम्बल, रूपे और पीतलके गहने, पालादि, सुन्दर महीके बिलीने, टोकरे और ससबसके पंखे जनसाधारणके आदरणीय हैं। वे सव द्रव्य प्रस्तुत ही कर नाना देशीं-में वेचनेके लिये भेजे जाते हैं। पहले यहां कागजका विस्तृत कारोवार था, पर अभी घीरे घोरे हास होता जा रहा है। वाणिज्यकी सुविधाके लिये पत्थरके रास्ते तो हैं, पर रेलपथके खुल जानेसे दक्षिण-महाराष्ट्र और मुम्बई आदि स्थानोंमें जाने आनेकी विशेष सुविधा हो गई है। पुनासे महाबालेश्वर जानेमें कर्तीजी, कपरोली, सएडला, सेरोल, बाई और पञ्चगञ्ज हो कर जाना पड़ता है। यहां प्रायः सभी प्रकारके अनाज और अंगुरकी खेती होती है। कभी कभी काफी पानी नहीं वरसनेसे चावल आदि इतना महंगा होता है, कि भारी दुर्भिक्ष पड़नेकी सम्भावना हो जाती है। (१७६२-६३, १८०२, १८२४-२५ १८४५-४६, १८६६-६७, १८७६-७७, १८६४ और १६००-०२ ई०में अधिक और सत्पपरिमाणमें दुर्भिक्ष-

का आसास पाया गया है।) साधारण मनुष्य रुषि-कार्य भिन्न दास्यवृत्ति, इष्टक्तिर्माण और स्वधर कर्म-कारादिके कार्य करते हैं। जिले भरमें ११७८ प्राप्त और ११ शहर लगते हैं। जनसंख्या ६६५३३० है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पार्वतीय असम्य जातियोंके नाना शाखासुक मनुष्य यहां वास करते हैं। वस्वई प्रे सिडेन्सी-के अन्यान्य सभी स्थानोंकी अपेक्षा इस स्थानका जल-वायु सास्थ्यप्रद, शुष्क और वलकारक है।

पार्श्वतीं सतारा और शोलापुरका इतिहास ले कर ही पूनाका इतिहास बना है। पूर्वतन हिन्दूराजाओं की पेतिहासिक घटनावली उस सप्तयके राजवंशके साध मिश्रित थी। पूना अथवा इसी प्रकारके किसी स्थान-विशेषके नाम पर तत्कालीन इतिहास नहीं था। चालुक्य-वंशीय राजगण महाराष्ट्रदेशमें राज्य करते थे। चालुक्यन श देखी।

मुसलमानोंके शासनकालसे ही वर्त्त मान पेतिहासिक घटनापं धारावाहिक रूपमें लिखी जाती हैं। महाराष्ट्रोंके अम्युद्य पर पूनाने महाराष्ट्र-जगत्में उंचा स्थान पाया था। उस समयका पूनाका इतिहास जनसाधारणके हृद्यमें आज भी जगमगा रहा है। पूना ही मरहड़ोंका वासस्थान और सर्वेश्धान राजधानी तथा महाराष्ट्र-विजयलक्मीके प्रतिष्ठाता वीरकेशरी शिवाजी-वंशका जन्मस्थान था।

पनाके चारों ओर पर्वतमाला है। पर्वतके ऊपर गिरिदुर्ग रहनेके कारण वह स्थान सुदृढ़ भावसे रिक्षत है। दाशिणात्यमें मुसलमान-राजवंशको प्रथम प्रतिष्ठासे अह्मद्रनगर और वीजापुर राजाओंकी उन्नतिके साथ साथ इस स्थानका पेतिहासिक आलोक विकीण हो गया। पीछे १७वीं शताब्दीमें महात्मा शिवाजीकी राज्यप्रतिष्ठाके साथ ही पूनाके गौरवकी वृद्धि हुई। १८वीं शताब्दीमें यह नगर क्लालसे प्रजाब और विल्लीसे महिसुर पर्यन्त एक विस्तृत साम्राज्यके केन्द्रक्रपमें गिना जाने लगा था।

श्ली शताब्दीके आरम्भमें शालिवाहन नामक एक हिन्दू राजा महाराष्ट्रदेशमें राज्य करते थे। गोदाबरीके किनार पैठान नगरमें उनकी राजधानी थी। राजा जब-

सिंहने पहनोंको भगा कर चालुंक्यवंशकी प्रतिष्ठा की। इसके वाद कर्णाटक आदि दाक्षिणात्य देशोंमें चालुक्य-वंशीय राजपूत राजाओंने अपना अपना आधिपत्य फैला लिया था। शोलापुरके निकटवत्तीं कल्पाण नगरमें उनकी राजपताका फहरा रही थी। १२वीं शताब्दीमें जव चालुक्यवंशका अवसान हुआ, तव देवगिरि (दौलता-बाद)-के यादव-वंशधर इस प्रदेशका शासन करते थे। इनके राजत्वकालमें मुसलमानोंने पहले पहल १२६४ ई०में महाराष्ट्र पर आक्रमण किया। किन्तु १३१२ ई० तक यादववंशीय राजाओंने यहां राज्य किया था। फिरि-स्तामें लिखा है, कि सम्राट् महम्मद तुगलकते १३४० ई॰में इस प्रदेश पर आक्रमण कर कोन्धाना दुर्ग (सिंह-गढ़) जीता । १३४५ ई० तक दाक्षिणात्यभूमि दिल्लीश्वरके अभीन रही। पोछे मुसलमान अमीरोंने विद्रोही हो कर महम्मद् तुगलकके अधीनता-पाशको काट डाला । इसी समयसे गुरुवर्गा (कुलवर्गा)-के बाह्यनीराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई। इसके वाद १४२१ ई०में अहमदशाह बाह्मनी प्राचीन हिन्दूराजधानी विदर नगर (विदर्भ) में अपनी पूर्वतन राजधानी उठा लाये। १३६६ ई०से १४०८ ई० तक महाराष्ट्रदेशमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा। वह दुर्भिक्ष जनसाधारणमें 'दुर्गादेवी' नामसे प्रसिद्ध है। इस दारुण दुर्भिक्षसे दाक्षिणात्य जनग्रन्य हो पड़ा। महा-राष्ट्र-सरदारोंने अच्छा मौका देख कर मुसलमानोंके चंगुल-से पार्वतीय प्रदेश और दुर्भेंद्य दुर्गादि छीन लिये। बाह्मनी राजाओंने खोये हुए स्थानको फिरसे दखल करनेके लिये महाराष्ट्रोंके साथ कई एक लड़ाइयां कीं, पर सभी युद्धमें वे अकृतकार्यं होते गये। अन्तमें १४७२ ई०को ब्राह्मनीवंशके शेप स्वाधीन राज-मन्त्री महमूद-गवान्ते इनमेंसे कुछ स्थानों पर पुनरधिकार जमाया। इसके बाद उक्त राजमन्त्री वाह्मनी-राज्यके शासनकार्यको नूतन प्रणालीमें लिपिवड कर गये। जुन्नर नगर, इन्दापुर, मान्देश, वाई, बेलगाम और कोङ्कणका सदर गिना गया और अहमदत्तगर-राजवंशके प्रतिष्ठाता अहमद-शाह ही वहांके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। भीमानदोके तीरवत्तीं जिले बीजापुरके शासनकर्त्तत्वंमें रहे। आविसिनिया देशके सेनापति वस्तूर विनारके द्राथ गुलवर्ग सौंपा

गया तथा जैन स्वाँ और खाजा-जहानने पुरन्थर, शोला-पुर तथा और कई जिलाओंका शासनभार प्रहण किया

जुनरमें जाते हो अहमदशाहने मरहठोंके हाथसे शिवनेर, चावन्द, लोहगढ़, पुरन्धर, कोन्धाना (सिहगढ़)
और कोङ्कणके अन्तर्वत्तीं अनेक स्थान छीन लिये।
उत्तरोत्तर जयश्रीलामसे उनकी स्पर्धा पहलेसे कहीं बढ़
चली। अव वे वाह्यनीराजका अधीनतापाश उनमीचन
करनेको आगे बड़े। पहले वरणानदीके दक्षिण-तीरस्थ
प्रदेशके शासनकर्ता वहादुर गेलानी ही विद्रोही हुए।
साथ साथ आदिलशाहके उमाड़नेसे वाकनके जागीरदार जैनउदीन्ने उनका पदानुसरण किया। अतः १४८६
ई०में अहमदशाह उनसे मितता तोड़ देनेको बाध्य हुए।
इस पर जैनउदीनने उत्तेजित हो कर उन्हें युद्धके लिये
युलाया। दोनों पक्षमें लड़ाई छिड़ गई। जैनउदीन कोई
उपाय न देख चाकन-दुर्गमें छिप रहे। अहमदकी अधीनस्थ सेनाने मोमवेगसे दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।
युद्धमें जैनउदीन मारे गये और दुर्ग शत्नुके हाथ लगा।

इसी वीचमें वीजापुरके अधिपति युद्धफ बादिल-शाहने अपनेको भीमानदोके उत्तर तीरस्थ प्रदेशोंको साधीन राजा वतला कर घोषणा कर दो। दाक्षिणात्य-के नूतन राजाओंके वीच १४६१ ई०में एक सन्ति हुई। इस सन्धिके अनुसार निजामशाही राजगण नीरानदीके उत्तरवत्तीं और कर्माणके पूर्ववत्तीं देशोंके अधिकारी हुए। नीरा और भीमाके दक्षिणांशवत्तीं स्थान वीजापुर-राजके हो दखलमें रहे। अन्यान्य सरदारोंने इस विद्रोहमें साथ तो दिया था, पर वे खाधोनतालाम न कर सके। दस्तूर-दिनार यथाकम १४६५, १४६८ और १५०४ ई०-में वीजापुरके साथ युद्धमें परास्त हुए और अन्तमें मारे गये। अव उनका गुलवर्गा राज्यसिक्षासन वीजापुरके हाथ लगा। १५११ ई०में बीजापुरराजने शोलापुर पर दखल जमाया।

अनन्तर अमीर वेरिद द्वारा गुलबर्गा-अधिकार जीर और कमाल खाँके पतन पर गुलवर्गाका पुनरुद्वार संघ-दित हुआ। पुरन्धर और उसके आस पासके प्रदेश कई वर्षी तक ख्वाजा जहानके अधिकारमें रहे। १८२३ ई॰में कई एक गुद्धोंके बाद बीजापुर और अहमदनगर राज्यके बीच सन्धि स्थापित हुई। इस्माइल आदिलशाहकी वहनसे बुर्हान निजामशाहने विवाह किया। विवाहमें कन्याके यौतुकस्वक्षप शोला-पुर देनेकी वात थी। पर उक्त सम्पत्ति नहीं मिलनेसे निजामशाही राजाओंने अपना दावा मांग मेजा। इस स्वसे उपर्यु परि दोनों पक्षमें प्रायः ४० वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें (१५६३-६४ ई०में) उन्होंने विजयन्तगरपति रामराजको अपनेसे अधिक चलशाली समक्त कर आपसमें मेल कर लिया और रामराजकी क्षमताको सर्व करनेके लिये १५६५ ई०में युद्ध ठान दिया। तालिकोटमें दोनों दलके बीच यमसान लड़ाई लिड़ी। युद्धमें रामराज मारे गये और उनकी सेना विध्वस्त हुई। इसके वाद दाक्षिणात्यमूमिमें कुछ समयके लिये शान्ति वती रही।

१५६० ई०में बोजापुरके प्रतिनिधि दिलावर खाँ अहमदनगरको भाग आये और २य बुर्हान-निजामशाहको शोलापुर देनेके लिपे अनुरोध किया। १५६२ ई०में इला-हिम आदिल शाहसे अहमदनगरकी सेना पराजित हुई और-दिलावर बन्दी हो कर सतारा-दुर्ग भेजे गये।

इस वार दाक्षिणात्यमें मुगलराजवंशका आक्रमण आरम्भ हुआ। १६०० ई०में अहमदनगर अकवरके हाथ लगा था। हवसी-सरदार मालिक अम्बरने पुनः उस पर अधिकार जमाया। १६१६ ई०में जहाङ्गीरके पुत शाह जहांने सहमदनगरके कुछ अंश दखल कर लिये।

१६२६ ई०में मुगल-शासनकर्त्तां विद्रोही होने पर पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। १६३३ ई०में दीलतावाद मुगलों-के हाथ लगा और राजा वन्दी हुए। उस समयके मरहठा सरदारों के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति शाहजी मोंसलेने पूर्वतन राज-वंशके एक व्यक्तिको सिहासन पर विठाया। उन्होंने परेण्डासे मुगलोंको मार भगाया और पूना तथा गङ्गथर-जिलाको अच्छी तरह लटा।

शाहजहांने पराजयका संबाद पाते ही दाक्षिणात्यकी ओर 'संसैन्य याता कर दी। १६३६ ई०में वीजापुरके राजाने पराजित हो कर उनकी अधीनता खीकार की। शाहजीके अधिकृत स्थानोंकी द्वल करनेमें उन्हें विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ी। १६३७ ई०में शाहजीने आतम समर्पण किया और उसके साथ ही साथ निजामशाही-

वंशका विराग भी बुक्त गया। भीमा नदीके उत्तरः तीर-वत्ती जुकर आदि स्थान मुगळसाम्राज्यके हुए और दक्षिणतीरवत्ती भूभाग वीजापुरके राजाको दिये गये। शाहजी वीजापुरके अधीन नौकरी करने छगे और पारि-तोषिक खद्भप उन्हें पूना, सुपा, इन्हापुर, वारामित और मावल नामक स्थान जागीरमें मिले थे।

बीजापुर राजके अधीन मरहठा-सरदारके शिक्षित "वर्गी" नामक अभ्वारोही सेनादलने मुगल-युद्धमें विशेष रणपापिडत्य दिखा कर जनसाधारणमें प्रतिपत्ति लाम की थी। लीटे लीटे दुग मरहरा-सरदारोंके हाथ सुपुर्दे थे । मुसलमान 'मोकसदार'के अधीन हिन्दू-कॅर्म-चारिगण राजस्य वसूल करते थे। इस समय अनेक मरहठावंशने 'देशमुख' और 'सरदेशमुख'का कार्यभार व्रहण किया। जब चारों ओर मरहठालोग राजकर्ममें नियुक्त थे और चारों ओरके दुर्ग प्रायः मरहठा सरदारीं-से परिचालित होते थे, ठीक उसी समय वीजापुर राज-वंशकी अवनतिका सूत्रपात आरम्भ हुआ। शाहजीके पुत महाबीर शिवाजीने सुयोग समक कर अपना सिर उठाया। उन्होंके मोहमस्त्रसे मुख्य हो मरहठालोग दलके दल आने लगे और उनके दलमें मिल गये। अपर-हठोंकी उमति और अंतनतिके सम्बन्धका विशेष इतिहास शिवाजी शब्दमें देखी ।

१८१८ ई०में अन्तिम पेशवा वाजीरावकी मृत्युंके साथ साथ मरहठा-पराक्रमका भी अवसान हो गया। इसके वाद पूनामें और कोई घटना न घटी। विख्यात सिपाहीविद्रोहके समय भी यहां किसी प्रकारका औद्धत्य नहीं देखा गया। विद्रोहगुरु देशप्रसिद्ध नाना-साहेव इन्हीं वीजारावके दक्तक पुत्र थे।

इस जिलेके प्रत्येक ग्राम और नगरमें देवमन्दिर
स्थापित हैं। कुछ तो अति प्राचीन हैं और कुछ विलक्क आधुनिक। कुछ खंडहरमें परिणत हो गये और कुछ अपना शिक्तर ऊपरको उठा कर पूर्वतन गौरवकी रक्षा कर रहे हैं। यहांके अधिकांश हिन्दू शैव हैं, इस कारण शिव-मन्दिरकी संख्या ही अधिक है। स्थान स्थान पर शिला-छिपि भी दृष्टिगोचर होती है।

विद्याशिक्षामें यह जिला वस्वई प्रे सिडेन्सीके चौनीस

जिलोंमें सातवां है। अभी यहां २ शिल्पकालेज, १ व्यवसायी कालेज, १ विशानकालेज, १४ हाई-एकूल, २१ मिड्ल स्कूल और ३४१ प्राइमरी एकूल हैं। स्कूल और कालेजके अलावा यहां ४ अस्पताल और २० चिकित्सालय हैं। जिलेमें एक पागलखाना (Lunatic asylum) भी है।

२ उक्त जिलेका प्रधान नगर और दक्षिण-भारतमें अङ्गरेजराजका प्रधान सेना निवास । यह अक्षा० १८ देश ४० और देशा० ७३ ५१ पू० वर्म्यईसे ११६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यह नगर समुद्रपृष्ठसे १८५० फुट ऊ चा और मलवार-उपकूलसे प्रायः ३१ कोस पूर्व मुटानदीके दाहिने किनारे सुदृढ्दु में द्वारा सुरक्षित है। प्रत्येक वर्षके जुलाई माससे ले कर नवम्बर मास तक वर्म्यई-गवमें एट यहां रह कर राजकार्यकी पर्यालोचना करती है। यहां प्रेटइएडयन पेनिन्सुला रेलवेका एक स्टेशन है। जनसंख्या प्रायः १५३३२० है।

मूता और मूलाका सङ्गम छोड़ कर यहां नागकारी, भैरवा, माणिक नाला, आम्बिल ओड़ा, खड़क और वासलाकी नहर नगरके वीच हो कर वहतो हुई पार्वती-हुद्में गिरी है। इस प्रकार जलसिक होने पर भी नगर-का अधिकांश स्थान प्रस्तरमय और अनुर्वर है। पश्चिम-से पूर्वमें अपेक्षाकृत समतल भूमि देखी जाती है। उत्तरमें कहीं भी ऊंची भूमि दृष्टिगोचर नहीं होती। एकमात दक्षिणमें ही सिंहगढ़-भूलेश्वर पर्वतमाला, में मूता और मूलाका सङ्गमस्थान, मध्यभागमें खड़क-वासलाकी नहर और दक्षिणकी ओर पार्वतीहदतीरवर्ती पार्वती पर्वतके शिखर पर प्रतिष्ठित देवमन्दिर ही नगरकी शोभाको वढ़ाता और जनसाधारणको मनोरञ्जन करता है। नगरमें जलका अभाव दूर करनेके लिये और भी कितनी नहर वा जल-प्रणाली काटी गई हैं। पेशवा बालाजी वाजीराव द्वारा १७५० ई०में कद्राजखाल और पार्वतीहद काटा गया और आम्विल ओड़ा नामक जलस्रोतकी गतिको पलटा कर हदके साथ संवद्ध किया गया है। १७६० ई०में नानाफड़नवीसने जो नहर काट निकाली थी, वह 'नानाका खाल' नामसे प्रसिद्ध है। अलावा इसके रास्तियाखाल, चौधरीका

खाल, मृताखाल आदि कई एक खालें देशवासियोंके उत्साहसे कारे गये हैं। यहांके जलकी कल वर्म्यावासी सर जमसेठजी जि जि भाईके एकमात उत्साहसे स्थापित हुई थीं। इन्होंने विशेष उपकारिता दिखा कर ५ लाख ७ हजार रुपये इसके वनानेमें खर्च किये थे। नगर भरमें केवल दो तीन हो लंबे चौड़े पथ हैं और सभी संकरे हैं । पूर्व-पश्चिम विस्तृत गलियोंमेंसे एक पेशवाओंके अधिकार कालमें हत्याकारियोंको दएड देनेके ळिथे निर्दिए थी। यहां खुनी असामी को लाकर हाथीके पैर तले फेंक दिये जाते थे। यहांका घर प्रायः एकतला है, किन्तु रास्तेके उपरके मकान साधारणतः उद्यानयुक्त हैं । महाराष्ट्र-गौरव पूर्वतन वीर और सचिवीं-को अहालिकादि अधिकांश भग्नावस्थामें पड़ी है। शिन-वार नामक पेट वा मुहल्लेमें पेशवाका जो राजप्रासाद था, वह १८२७ ई०में जल कर विलकुल भस्मसात् हो गया। अभी केवल चारों ओरके सुदूढ प्राकार रह गये हैं।

राजस्तसंप्रह, प्रहरियोंका थाना और विचारि राज-कीय कार्योंकी सुविधाके लिये वहुत पहलेसे ही पूना नगर कई पक 'पेट' वा मुहल्लेमें विभक्त था। मुसलमानी अधिकारमें एक और 'पथ' मुसलमानी नाम पर स्थापित हुआ। अन्तमें पेशवाके राजसके समय यह फिर नूतन नाममें प्रवत्तित हुआ। नागकारी नदीके पूर्व मङ्गलवार, सोमवार, रास्तिया, न्याहल, नाना और भवानी, पश्चिम कसवा, आदित्यवार, गणेश, वेताल, गञ्ज, मुजाफर और घोड़पाड़का 'पथ' तथा मूता नदीके समीप नीवार, नारा-यण, सदाशिव, बुधवार और शुक्तवार आदि पेट अव-स्थित है।

उपरि उक्त १८ महल्लोंमें तथा नदीके किनारे वह-संख्यक, प्राचीन मन्दिर हैं। किसी किसी महल्लेमें प्रासादकी तरह अञ्चलिका भी देखी जाती हैं।

सोमगर पूर्व नाम साईस्तापुर। यह १६६२-६४ ई०में वाह्मिणात्यके मुगल-शासनकर्त्ता साईस्ताबाँसे स्थापित हुआ है। यहां अनेक ध्वंसावशेप देखे जाते हैं।

मंगलवार-प्राचीन नाम शाहपुर । यहांका नागेश्वर-

का विष्णुमन्दिर देखने छायक हैं। रास्तिया—पेशवाके अश्वारोहियोंके नेता आनन्दराव छत्मणने जबसे यहां शिव-मन्दिरकी स्थापना की, तबसे यह स्थान शिवपुरी कहलाने लगा है। अभी यह केवल उक्त बंशके नामकी घोषणा करता है। यहांका 'रास्तियाभवन' नामक सबसे वड़ा प्रासाद देखने योग्य है। प्रतिवर्षके श्रावण मासमें शिराल शेठ लिङ्गायत-वाणीके उद्देश्यसे एक वड़ा मेला लगता है।

श्यहाल-पेशवा वालाजी वाजीरावके खासगीवालके रक्षक न्यहालके नामानुसार यह स्थापित है।

नाना वा इद्यमान—यह १७६१ई०में नानाफड़नवीससे स्थापित हुआ है। पारिसयोंका अग्निमन्दिर, घोड़े पीर-का अस्ताना, निवधुङ्ग विठोवाके मन्दिर आदि प्रधान हैं।

भवानी—पेशवा सवाई माधोरावके राजत्वकालमें नानाफड़नवीसने इसे स्थापितं किया। इसका प्राचीन नाम वोवन वा जेज्जव है। यहांका भवानीदेवी और तेलफशदेवीका मन्दिर ही प्रधान है।

कथर सर्वेपाचीन और उपविभागका सदर । यहां-का अम्बरकाना, पुरन्थरका भवन, शेख सल्लाकी दो कत्र और गणपतिका मन्दिर प्रधान है।

भादित्यवार—प्राचीन नाम मालमपुर। वालाजी वाजीरावके शासनकालमें महाजन-व्यवहार जोषीने इसे प्रतिष्ठित किया। दुर्जनसिंहका पाग, फड़क्का प्रासाद, बोहोरादियोंका जमात्लाना, जुमा-मस्जिद और सोमेश्वर-मन्दिर प्रधान है।

गणे. — पूर्वोक्त जीवाजी पन्थ खासगीवाल द्वारा प्रतिष्ठित। मारुतीका दोलमन्दिर और दगड़ी नगोराका नागपञ्जमी मेला हो श्रेष्ठ है।

वताल उक्त जीवाजीपन्थ द्वारा प्रतिष्ठित। पहले इसका नाम गुरुवार था। जबसे वैतालमन्दिर वनाया गया है, तबसे यह वर्त्तमान नाममें परिवर्त्तित हुआ है। श्रीपार्श्वनाथ और वेताल-मन्दिर तथा राज्य वागशेरका तिकया देखने योग्य है।

मुजफ्काज ग—सरदार मुजफ्कर-जङ्ग द्वारा प्रतिष्ठित । धोरपडे—अम पेशवाके शासनकालमें माधोजीराव मोंसलेने इसे वसाया । यह स्थान पहले घोर-पड़े वा अध्वारोही सेना-दलके अधिकारमें था। शनिवार—पूर्व नाम मुर्जु दावाद । १७वीं शताब्दीके प्रथम भागमें मुसलमानींने इसे वसाया । यहां शनिवार-वाड वा पुरातन राजमवनका ध्वंसावशेष, मण्डई, ओङ्कारेश्वर, हरिहरेश्वर, अमृतेश्वर और शनिवार मारुति-मन्दिर तथा पींजरापोल है ।

नारायण—५म पेशवा नारायणराव वङ्घालके नाम पर यह वसाया गया है। मोदिचा और मातिचा गण-पतिका-मन्दिर, अष्टभुजा-मन्दिर, गायकवाड़-भवन और मानकेश्वरका विष्णुमन्दिर प्रधान है।

सदाशिव—३य पेशवाके भाई सदाशिवराव भाऊ द्वारा स्थापित। अंगरेजाधिकारके वाद इसका पुनः संस्कार हो कर 'नवि' नाम रखा गया है। लकड़ीपुल, विठोवा, मुरलीधर और नरश्रीशका मन्दिर, खाजिनाविहार, नाना-फड़नवीसका जलाधार, विश्रामवाग (१८७६ ई०में अग्निसे इसका कुछ अंश नष्ट हो गया), प्रतिनिधिकी गोट, सोतिया महसोवाका मन्दिर, साखनका आतुराश्रम, पार्वतीहृद और मन्दिर आदि प्रधान हैं।

वुधवार—१६६० ई०में सम्राट् औरङ्गजेव द्वारा प्रति-ष्ठित। इसका प्रचीन नाम महजावाद था। ८म पेशवा-का राजप्रासाद (१७६६-१८१७ ६०) वा बुधवारावाङ, बेलवाग, भाङ्गिया मार्यतिका मन्दिर, कोतवाल चावड़ी, तांवड़ी योगेश्वरी, कालीयोगेश्वरी और खनालीरामका मन्दिर, मोरोवा दादाका भवन, भिद्का भवन, धमधार-का भवन, ठठका राममन्दिर और पासोदिया-मार्यतिका मन्दिर ही प्रधान है।

शुक्तार—जीवाजी पन्थ खासगीवाल कर्त क स्थापितं। यहां तालिमखाना, तुलसीवाग, लक्कड़खाना, कालाहुद, भावनखानी, रामेश्वरमन्दिर, पन्थसंचिवका प्रासाद, चौधरीभवन, हीरावाग और पारशनाथका मन्दिर हीं प्रधान है।

पूना नगरके मध्य और वहिर्मागमें पार्वती, पाषाण, वृद्धे श्वर, मैरव, पञ्चालेश्वरका गुहामन्दिर, ओङ्कारेश्वर, हरिहरेश्वर, अमृतेश्वर, नागेश्वर, सोमेश्वर, रामेश्वर और सङ्गमेश्वर महादेवका मन्दिर तथा वालाजी, नरपत्सीर, नशींवा खुन्या, मुरलीधर, गोसमपुरके विष्णु, तुलसीवाग-के राम, वेलवागके विष्णु और लकड़ीपुलके विटोवाका

मन्दिर, एतिहित्र भवानी, ताड्वड़ी, योगेश्वरी आदि देनोमन्दिर और गणपतिका मन्दिर है। उक्त मन्दिरोंमेंसे प्राप्तभस्सभी नदीके किनारे अवस्थित हैं। इन सब मन्दिरोंका कारकार्य बुरा नहीं है।

उपरि उक्त मन्दिर और अद्वालिकादि छोड़ कर कल, रुषि और इञ्चिनियरि-शिक्षाका एक वैद्यानिक-विश्वविद्या लयः सिन्दिया छत्रो, वारुद और गोलाखाना, गोरावागान, ७ ईसाई-गिर्जा, पारसियोंका प्रेतमवन, होलकर-सेतु, सङ्गमपुल और वेलेस्ली आदि सेतु, सेनावारिक, जेल-खाना और साधारण पुस्तकालय आदि कई एक साधारण पुस्तकालय आदि कई एक साधारण पुस्तकालय आदि कई एक साधारण प्रस्तकालय आदि कई एक साधारण प्रस्तकालय आदि कई एक साधारण प्रस्तकालय आदि कई एक साधारण पर्ने की सेनानिवास था। इस कारण यह नगर सफेद पत्थरोंके प्राचीरसे धिरा हुआ था। यह आचीत दुर्ग मृता नदीके किनारे अभी जनाकोट नामसे मशहूर है। कोङ्कण-दरजा, नगरहार, मालिवेश, कुम्भावास आदि कई एक इसके द्वार हैं। किरकी और प्नामें सेनाकी छावनी है।

पूनाकाः संस्कृत नाम पुण्यपुर है । पुण्यसिलला औहः मूलाके सङ्गमस्थल पर अवस्थित तथा देव-मिन्द्ररादिसे भरपूर रहनेके कारण यह पुण्य जीवन हिन्द्र-गणसेवित एक प्राचीन नगरमें गिना गया है। भामदीके पञ्चालेश्वर आदि शैय गुहामिन्दर और गणेण खिन्दकी वहु कालस्थायी गुहाए वहांके प्राचीनत्वका एकमाल निद्यान है । इस प्राचीन समयमें पूना नगरमें ब्राह्मणोंका वास था । संस्कारवशतः वे उपदेवताके प्रकापसे नगरकी रक्षा करनेके लिये वहिरोवा, महाशोवा, नारायणे

#.स्यानीय प्रवादके अनुसार वह गुहामन्दिर ५३५ शहका, पर उसकी, गठनादि हे ख़कर कोई कोई उसे अबी वा ८वी शत ब्ली-का बना हुआ मानते हैं। लाई मेलेन्सिया (Lord Valentia, 1803)-ने टलेमीकिथत Punnata of Punnatual ही वर्तमान पूत्रा नगर सावित किया है.। अमणकारी फाइबर (Eryer) (१६७३-७५ इं०में)-ने अपने मानचित्रमें पूत्रा-नगरकी anatu नामसे उस्लेख किया है। प्राचीन मानचित्रका, 'Panatu' और टलेमीका Pannatu एक ही-है। श्वर, पुण्येश्वर और मारुतिदेव-मिल्स्की प्रतिष्ठा करते थे। १२६० ई०में दिल्लीश्वर अलाउद्दीन खिलजीकी सेनाने पूना पर अधिकार जमाया। विध्यमी मुसलमानींके अत्या-चार और प्रमावसे पुण्येश्वर तथा नारायणेश्वरका मिल्स् यथाक्रम सेख-सल्लाकी वड़ी और छोटी दरगाहमें क्पा-न्तरित हुआ। शिवाजीके पितामह मालोजी भोंसलाकी सम्बद्ध ना करके १५६५ ई०में अहमद नगरपित २य वहा-दुर निजामने उन्हें पूना, सूपा, शीवन और चाकनका विभाग दान किया। उस सम्पत्तिके दुर्ग भी उनके अधि-कारभुक्त हुए।

१६२० ई०में. अहमदनगरके मन्त्री मालिक अम्यरके सेनानायक सिद्धीयाकुवके अत्याचारसे तथा १६३० ई०-में दुर्भिक्षके प्रयीड़नसे अनेक छोग पूना छोड़ कर भाग गये। उसी साल वीजापुर राज महमूदके मन्त्री मुरार जगदेवरावने मालोजीके पुत शाहजीके विरुद्ध युद्ध करके पूना नगरको तहस नहस कर डाला। अनन्तर शाहजी-के वीजापुरराजकी अधीनता स्वीकार करने पर महमूदने पुनः १६३६ ई०में शिवाजीके पिताको पैतृक सम्पत्तिका अधिकार दे दिया । अव शिवाजीने पूनामें रहना पसन्द किया और दादाजी कौएउदेव नामक किसी ब्राह्मणकी अपनी सम्पत्तिकी देख-रेखका मार सौंपा। इन्होंके यत्नसे श्रोदीन पूनानगर पुन्: जनाकीर्ण और दिनों दिन समृद्धि-शाली होता गया। महाराष्ट्र गौरव शिवाजी और उनकी माता जिजिवाईको रहनेके लिये दादाजीने पालमहाल-(वर्त्त मान अम्बरखाना) नामक एक प्रासाद वनवा दिया। १६४७ ई॰में कोएडदेवकी मृत्यु;होने पर शिवाजीने शासन भार अपने हाथ लिया । १६६२ ई०में मरहरा-द्रस्युगणका उपद्रव रोकनेके लिये. औरङ्गावादके आसन-कर्त्ताः साईस्ता स्वाने -शिवाजी पर चढ़ाई करू दी । शिवाजीने भग कर सिंहगढ़-दुर्गमें अश्रमः लियाः। धीरे घोरे पूना, सूपा और चाकनके सभी दुर्ग मुगलेंके हाथ लगे । १६६३ ई०में साईस्ता खाँ लालमहलमें आ कर रहने छगे। अपनी छाती पर यवनींका शयन भला शिवाजीको कव अच्छा लग सकता था ! वे फीरन पूना पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे। वारातके बद्दानेसे जा उन्होंने निदित् - साईस्ताः खाँ पर- हमला कर

दिया। साईस्ता खाँ किसी तरह प्राण छे कर भागे। इसके वाद सेनापित जयसिंहने पनाको फिरसे दखल किया। शिवाजी दौड़नेमें वड़े तेज थे, कोई भी उनका पीछा करनेका दुःस्साहस नहीं कर सकता था, इस कारण सम्राट् औरङ्गजेवने प्रसन्न हो कर उन्हें १६६७ ई०में पूना, चाकन और स्पा विभाग छौटा दिया। इसके वाद खानजहानने पूना पर आक्रमण किया और १७६३ ई०में हैदरावादके निजामअलीने इसे अच्छी तरह लूटा और जला डाला था।

होलकर और सिन्दियाराजको आधिपत्यसे पेशवाओं-का क्रमशः वलक्षय होता जाता था। महाराष्ट्रक्षेत्र दिनीं दिन रणनिनादसे गुंजने लगे। क्रमशः अङ्गरेजराजकी सहायताकी जरूरत पड़ी। १८८२ ई०में वसाई (बेसिन)-की सन्धिके अनुसार पेशवाकी सहायताके लिये एक दल अङ्गरेजी-सेना पूनामें रखी गई। वैठनेकी जगह मिल जाने पर लोग सोनेकी जगह आसानीसे वना लेते हैं। यही हालत अङ्गरेजोंकी हुई । अब वे धीरे घीरे पूनाके राजकार्यमें हाथ वढाने लगे। १७६२ ई०में सर चार्ल्स मैलेट प्रथम प्रतिनिधि हो कर यहां आये। १८१७ ई०में पेशवा वाजीरावने अंगरेजोंसे सन्धि कर ली। सन्धि Treaty of Poona नामसे प्रसिद्ध है। समय दाक्षिणात्यमें पिएडारियोंनेः उपद्रव मचाना शुरू कर दिया । अङ्गरेजींने उनका दमन करनेके लिये पेशवासे सहायतद्भांगी। पेशवा भी व्शहराके वाद सेना देनेको प्रतिश्रुत हुए। दशहरा भी वीत चला, उसके साथ साथ मरहठा सेना आ कर पूनाके चारों ओर जुटने लगीं। मरहठोंने जनमासकी सन्धि तोड़ कर उसी सालके नवम्बर मासमें अङ्गरेजों पर चढ़ाई कर दी। फिस्कीके: युद्धमें: पराज़ित-हो: मरहरोंने: आत्मसमप्ण किया। वृटिशकी विजय-पताका पूनामें फहराने छगी। इसःसमय अ गरेजीसेनाके अत्याचारसे पूनावासीके धन पाण नष्ट हुए थे। १८१८ ई०में कीरीगाँवके युद्धमें मरहठा-सेनाके पराजित. होने-पर-बृटिश-गवर्में एटने-पेशवा. वाजी-रावको राज्यच्युत करके शासनभार अपने हाथमें छे छिया और पेशवाको कानपुरके निकटवत्ती विदुर नगरमें नजर-वंदी करके मेज विया। १८१६ ई०में ब्राह्मणॉकी, अधि- नायकतामें अंगरेजींकी हत्या करनेके छिये पूना नगरमें एक दुष्टर्ल संगठित हुआ। एलफिन्एन साहवने-घड्-यन्त्रकारी दलपतियोंकी कमान गोलोंसे उड़ा दिया। इसकेः वाद पूना नगरमें और किसी प्रकारकी घटना नहीं घटी। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रीहके समय यहां विद्रीहका लक्षण दिखाई दिया था। १८६० ई०में रेल-पथके खुल जानेसे यहांके वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। १८७६-७७ ई॰में पूनामें भारी अकाल पड़ा था । ई०मैं खड्कवासलामें जलकी कल स्थापित हो जानेसे अभी नगरका अर्जु वर स्थान भी फलपुष्पसे हरा भरा दोखता है। इस समय दस्युपति चासुदेव बलवन्त फडकके उपद्रवसे पूनावासी तंग तंग आ गये थे। फिलहाल पूना-नगर दक्षिण-भारतके सामरिक विभागकः प्रधान केन्द्र समका जाता है। यहां मिडिल और प्राइ-मरी स्कूलके अलावा वारह हाई स्कूल और तीन कालेज हैं।

पूनाक (हिं० स्त्री०) तेलहनमेंकी वची हुई सीठी, खली।
पूनिउ' (हिं० स्त्री०) पूनी देखो।
पूनी (सं० स्त्री०) पूति, शुद्धि।
पूनी (हिं० स्त्री०) धुनी हुई ठइकी वह वसी जो चरखे पर

स्त कातनेके लिये तैयार की जाती है-। पूनो (हिं० स्त्री०) पूर्णमासी, पूर्णिमा।

पूप (सं॰ पु॰) पू-किप्, पुवं पवित्रं पाति पक्षतीतिः पान क । पिएक, पूथाः या मालपूथाः नामका मीटा, पक्षतात्र । पूप चुरानेसे पिपीलिका (चींटीः) होना पड़ताः है ।

पूपला (सं॰ स्त्री॰) पूर्व तदाकारं लाति लान्कः। पोलिकाः, पूपली, प्राचीनकालका एक प्रकारका मीठा पक्रवानः। पूपली (सं॰ स्त्री॰) पूपल-ङोष्। पूपला देखीः।

पूपली (सं खों) १ वचोंने खेलनेका काठका वहुत छोटा खिलौना जो छोटी डंडोंके आकारका होता है और जिसके दोनों सिरे कुछ मोटे होते हैं। २ पोली नली। ३ वांस आदिमेंसे काटी हुई वह छोटी खोलली नली. जिसमें देशी पङ्क्षोंकी डंडोका अन्तिम भाग फंसाया रहता. है और जिसके सहारे पंखा सहजमें चारों और घूमा, करता है। पूपशाला (सं० स्त्री०) अपूप-विकयार्थं गृह, वह स्थान जहां पूप आदि पकवान रखे और बेचे जाते हैं।

पूपालो (सं० स्त्रो०) पूपाय अलतीति अल-अच्, गौरादित्वात् ङीष् । मालपूआ, पथा ।

वपाष्टका (सं० स्त्रो०) पूपद्रव्यसाघनी अष्टका अष्टमो।
गोणचान्द्र पौपमासकी कृष्णाष्टमी। इस दिन पप
द्वारा पितृलोकका थाइ करना होता है, इसलिये
इसे पूपाष्टमी कहते हैं। यह श्राइ अवश्यकत्त्रंथ है।
रासपूर्णिमाके वाद जो कृष्णाष्टमी होती है, उसी
दिन यह श्राइ करना चाहिथे। तीन अष्टका श्राइ
विहित हुए हैं, --पूपाष्टका, मांसाष्टका और शाकाएका। पप, मांस तथा शाक इन तीन द्रव्य द्वारा
अष्टमीमें श्राइ करना होता है, अतः इनका पूपाष्टकादि
नाम हुआ है।

पूपिक (सं • स्त्रो॰) पूपः पपाकारोऽस्त्यस्या इति उन्, ततप्राप्। पलिका, पआ, पूरी आदि पकवान।

पय (सं॰ क्ली॰) पयते दुगन्धो भवतीति पूप-अच्। पकत्रणादि सम्भव घनीभूत शुक्कवर्ण विकृत रक्त, पीप, मवाद। पर्याय—क्षतज, मलज, पुयन, प्रसित।

पक्रवणादिसे पय निकलता रहता है। पयवर्द क द्रव्य—नया चावल, उरद, तिल, कुलथी, वरवटी, हरि-द्वर्ण शाक, अमुद्रव्य, लवण, कदुद्रव्य, गुड़, पिएक, शुक्क-मांस वकरी अथवा भैंसका दूध, निर्जल देशमें जो पशु पैदा होता है उसका मांस, शीतल जल, कशर (खिचड़ी), पायस, दिध, दूध तथा तक आदि प्यवद्द के है, इसलिये इन सब चीजोंका परित्याग करना चाहिये।

पयउडश (हि॰ पु॰) भोजपतकी जातिका एक वृक्ष। यह स्रसिया पहाड़ी और वरमामें पाया जाता है। इसकी छाल मणिपुर आदिके जंगली लोग स्राते हैं और पानीके घड़े पर उसकी मजबूतोके लिये लपेटते हैं।

पयका (सं ॰ पु॰) पुराणानुसार एक प्रेतयोनि । इसमें मरनेंके उपरान्त ने नैश्य हो जाते हैं जो अपने धमसे च्युत होते हैं। कहते हैं, कि ऐसे प्रेतोंका आहार पीप है। पयकुएड (सं ॰ पु॰) पुराणानुसार एक नरकका नाम। पूथप्रमेह (सं ॰ पु॰) एक प्रकारका रोग जिसमें पीपके समान मूल होता है अथवा जिसमें मूलमेंसे पीपके समान हुर्गन्थ आती है।

प्यमानयव (स'० अव्य०) प्यमाना निस्तुघोकियमाणा यवा यत, तिष्ठदुःवादित्वादव्ययोमावः। परिष्क्रियमाण यवाधार खळादि।

पूयरक्त (सं ॰ पु॰) पूयविशिष्टं रक्तमसिन् । नाक-का एक रोग । इस रोगका निदान—रक्तिपत्तके आधिषय अथवा ललाटमें अभिधातादिके हेतु नाक-से लेह् मिला हुआ पीप निकलता है, इसीको पूय-रक्त कहते हैं ।

इसको चिकित्सा -इस रोगमें नाड़ीवणकी तरह चिकित्सा करनो होती है और वमन करा कर अवपीड़न, तीक्षण द्रव्यका चूर्ण नल द्वारा प्रयोग करनेसे यह अति शीव आरोग्य हो जाता है।

पूयवद्धैन (सं०पु०) पूरं वद्धं यति वृध-णिच्-ल्युर्। सुश्रुतोक्त नवधान्यादि द्रव्यगणभेद। ये सव द्रव्य खोने-से पूय बढ़ता है। प्रय देखो।

पूयवाहं (सं॰ पु॰) एक नरकका नाम।

पूयस्राव (सं॰ पु॰) १ नेत्रसन्धिगत रोगविशेष । इसका
लक्षण—नेत्रका सन्धिस्थान एक जाता है और उसंसे
पीप वहने लगती है, इसीको पूयस्राव कहते हैं। २ अभ्यका नेत्ररोगविशेष ।

पूयारि (सं॰ पु॰) पूयानामरिः, तद्विनाशकत्वात् । निम्ववृक्ष, नीमका पेड् ।

पूयालस (सं० पु०) पूय अलस इव यत, सान्द्रत्वेन चिराजिगीमनादेव तथात्वं। आँखोंका एक रोग जिसमें उसकी पुतलोकी सन्धिमें शोथ होनेके कारण वह स्थान पक जाता है और उसमेंसे दुर्गन्धियुक्त पीप निक-लती है।

पूर्योद (सं० क्की०) पूरमिवोदकमत, उदादेशः। नरकभेद। पूर (सं० क्की०) पूरयति सौगन्धेनेति पूर-कं । १ दाहागुरु, दाह अगर। (पु०) २ जलसमूह, वाढ़। ३ वणसंशुद्धि, घाव पूरा होना या बढ़ना। ४ खाद्यविशेष, वे मसाले या दूसरे पदार्थ जो किसी एकवानके भीतर भरे जाते हैं। ५ पूरक प्राणायामकारीका नासारन्त्र द्वारा वाहरमें यवना-कषण, प्राणायाममें पूरककी किया।

पूर (हिं वि०) पूर्ण देखी।

पूरक (सं० पु०) पूरयतीति पूरि-ण्वुल्। १ वीजपूर । २
गुणक अङ्क, वह अङ्क जिससे गुणा किया जाता है । ३
ध्यानकारोका नासिकागत उच्छ्वास, प्राणायामका अङ्गविसेप । ४ प्रेतदेहनिक्पादक अशौचकालमें देय दशपिएड । मृतष्यिककी देह मस्मीभूत होनेके वाद अशौचकालके मध्य पिएड द्वारा देहको पूरण करना होता है,
इसीसे इसका नाम पूरक पड़ा । दशपिएड द्वारा देह
पूरण होनेके कारण इसे दशपिएड भी कहते हैं । जो
प्रेतव्यक्तिका अग्निसंस्कार करें, वे नौ दिनमें नी पिएड
और जो श्राद्धाधिकारी हैं, वे अशौचान्त दिनमें पूरकपिएड अर्थात् दृशम पिएड हें । इस पिएड द्वारा सारी
देह पूर्ण होती है ।

देह व्यतीत किसी प्रकार खगं और नरकादिका भोग नहीं हो सकता। जब यह पाट्कोंपिक देह भस्मादिक्षपमें परिणत होतो हैं, तब उसकी इस पिएड द्वारा प्रेत-देह होती हैं। यह प्रेत-देह होनेके वाद उसका श्राद्धादि कार्य सम्पन्न होता है। पीछे साळ पूरने पर श्रधांत् सपिएडी-करणके बाद उसे भोगदेह होगी। इसी भोगदेह द्वारा खर्गनरकादिका भोग हुआ करता है।

मृत्युके बाद ही तेज, वायु और आकाश इन तीनों भूतोंकी सहायतासे अतिवाहिक देह होती है, जिसे प्रेत-देह भी कहते हैं।

इस समय वह देह आकाशस्थित, निरावलम्य, वायु-भूत और निराश्रय हो कर रहती है तथा शीत, वात और तपोद्भ त भयानक यातनाका अनुभव करती है।

पूरक पिण्डकी व्यवस्था ।— जिसकी अग्निकिया होगी, उसीका पूरकपिएड विधेय हैं। जो अग्निसंस्कार करें, वे ही पूरकपिएड दें। अशीचके प्रथम नौ दिन तक प्रतिदिन एक एक पिएड करके और दशवें दिन शेष पिएड देना होगा। शूद्रादिको ६ दिनमें ६ पिएड और ३०वें दिनमें दशवां पिएड देना होगा। जिसके पूर्णशीच नहीं होता उसे जिस दिन अशीचान्त होगा उसी दिन पूरक पिएड देना होगा।

प्रथम पिएडसे मस्तक ; द्वितीय पिएडसे कर्ण, चश्च और नासिका ; तृतीय पिएडसे गला, अंस, युज और वक्षःस्थल ; चतुर्थ पिएडसे नाभि, लिङ्ग और गुद ; पञ्चम पिएडसे जानु, जङ्घा और पादइय; पष्ट पिएडसे मर्म सप्तमसे समस्त नाड़ियां; अप्रमसे दन्त और रोम; नवमसे वीर्य और दशम पिएडसे सम त देह पूर्णताको प्राप्त होती है। इसी प्रकार मृत व्यक्तिकी देहके अङ्गादि पूरण होते हैं।

> "शिरस्त्वाद्ये न पिण्डेन प्रे तस्य कियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकान्तु समासतः ॥ गळांसमुजवक्षांसि तृतीयेन यथा कमात् । चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिळिङ्गगुदानि च ॥ जानुजङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः ॥ दन्तरोमाद्यप्रमेन वीर्यञ्च नवमेन तु । दशमेन च पूर्णत्वं तृमता श्रद्धिपर्ययः ॥" (श्रुद्धितःस्व)

यह पिएड प्रति दिन एक एक करके देना होता है। किन्तु तीन दिन अशीच होने पर पहले दिन एक, दूसरे दिन चार और तोसरे दिन पांच, इसी प्रकार दश पिएड देना होगा। जिसके केवल एक दिन तक अशीच है; उसे उसी दिन प्रकपिएड देना चाहिये।

यदि किसी कारणवशतः अग्निदाता पूरकपिएड न दे, तो आद्यश्राद्धकारीको अन्तिम दिन या आद्यश्राद्धके पूरक पिएड दे कर ऊर्णातन्तुमय वास द्वारा उसकी अर्चाना करनी चाहिये।

पुर्तादके अभावमें स्त्री यदि खामीका पूरक पिएड प्रदान करे और वह उस समय रजलला रहे, तो वस्त्र त्याग कर पुनः स्नान कर ले और तब पूरक पिएड है। पूरकपिएडदानका प्रयोग सर्वसत्कर्मपद्धतिमें सचिस्तार लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर और अधिक नहीं लिखा गया।

(ति॰) ५ पूरणकर्ता, पुरा करनेवाला।
पुरण (सं॰ क्रो॰) पूर्यतेऽनेनेति पूर-करणे ल्युट्।१ पूरकपिएड, दशाहिपड । २ वृष्टि, मेहँ। ३ कुटकट । ४ अङ्कका
गुणन, अङ्कोंका गुना करना। ५ वस्तिनेत प्रशृति मन्त्र
द्वारा कर्णादिमें तैलादि पूरणकर्म, कान आदिमें तेल आदि
मरनेकी किया। ६ वापतन्तु। (पु॰) ७ सेतु, पुल।
८ सुगन्धतृण।६ नागरमोथा, केंबटी।१० पूरणार्थ एकतैल।११ विष्णुतैल। पुरयतीति पूरि कर्त्व रिन्त्यु। १२

संख्यापूरण । १३ वातजन्य वणवेदना विशेष, एक प्रकार-का व्रण या फोड़ा जो वातके प्रकोपसे होता है । ६४ समुद्र । १५ परिपूर्ण करनेकी किया, भरनेकी किया । १६ समाप्त या तमाम करना, पूरा करनेकी किया । १७ पुनर्नवा, गदहपूरना । (ति०) १८ पूरक, पूण कारक, पूरा करनेवाला ।

पूरणकाश्यप (सं० पु०) पूर्णकाश्यप देखो । पूरणमळ—१ गिद्धौड़के एक राजा । सम्राट् अकवरशाह-के सेनापति राजा मानसिंहने विहार आ कर इन्हें परास्त किया था।

२ कच्छवाह-वंशीय एक राजा। ये पृथ्वीराज-कच्छवाहके पुत्र थे।

इः उक्त राजाके भ्रातृपौत । इनके पितामहका नाम राजा विहारीमल और पिताका नाम राय सिन्हदी पूर-ं विया था । ये छोग गह्छोत-वंशीय राजपून थे । पिता-के मरने पर पूरण चन्देरी और रायसिन-प्रदेशके जासन-'कर्त्ता हुए। १५३२ ई०में गुजरातपति वहादुरशाहके आक-मणसे रायसिन्-दुर्ग और अपने राज्यको वचानेके लिये 'पिता-पुतमें लड़ाई हो गई थी । इसके वाद हुमायूके ं प्रतिद्वन्द्वी दुर्वृत्त शेरशाहने इनके आचरण पर कुद्ध हो रायसिन् जीतनेका इरादा किया । दलवलके साथ इनके राज्यमें पहुंच कर शेरशाहने पूरणमलको अपने पास बुला भेजा। राजमहिपीने समभा था, कि इस वार राजाका निस्तार नहीं, सो उसने खामीको अच्छी तरह सिखा .पढ़ा दिया । राजाने भी चतुरा प्रियतमा पत्नीको सलाहसे ,,६००० अध्वारोही सेना ले कर राजाका अभिनन्दन किया। : अब सम्राट्के पेटमें चूहे कूदने लगे। उन्होंने छः हजार दुद्ध पे राजपूर्तीको पराजय करना अपनी शक्तिसे वाहर समका, इस कारण १ सी अध्वारोही और १ सी वहु- मूद्यः उपढाँकन दे कर राजाको अधीनता स्त्रीकार कर . ली । किन्तु राजाको अपने कन्जेमें लानेको इच्छासे वे . बहां छः मास तक ठहर कर पूरणमलको सेनाको बल-.परीक्षा करने लगे। ६५० हिजरीमें पुनः दोनोंमें छड़ाई . छिड़ी । शेरशाहने रायसिन-दुर्गको जीत लिया और ्राजाको वाराणसीका शासनकन् त्व देनेका प्रलोमन दे , ?कर, दुर्गसे वाहर कर दिया । राजा भी दुर्गका त्यागःकर

स्त्री-पुत ले कर विवत हो पड़ें। कालके कुचकसे शतु-के हाथ वे नजरबंदी हुए । राजाने चकान्त समक अपने होथसे प्रियतमा-प्रणयनीकी हत्या कर डाली और आत्मीयवर्गको भी इसी प्रकार स्त्री-हत्या करनेका आदेश किया । जब वे लोग अन्तःपुर-निवद्धा प्रिय-प्रणयिनीगण-की सतीत्वरक्षाके लिये ऐसे दूढ़व्रतमें वती थे, ठीक उसी समय वहुत तड़के अफगान लोग चारीं ओरसे आ कर हिन्दू पर ट्रूट पड़ें और उन्हें एक एक कर यमपुर भेजने छगे। पूरणमछने भी आत्मरक्षामें समर्थ हो जीवन-दान किया । जो सव राजपूत-महिलाये पकड़ी गृह थीं, उन राजपूत-कुलललनाओंके ऊपर दुवृ⁴त्त मुसलमान-नायक शेरशाहने अत्याचार करनेमें कोई कसर उदा न रखी। छः मासके मध्य उन्होंने हिन्दू-मुसलमानके वैर-निर्यातनको पूर्णमालामें दिखलाया था। यहां तक कि उन्होंने छल करके पूरणमलको पकड़ा और मार डाला तथा अन्तमें उनकी कन्याकी वाजारमें मृत्यगीत-व्यव-सायी नर्सकीके हाथ सौंपनेमें जरा भी सङ्कोच न किया# ।

पूरणी (सं० स्त्री०) पूर्यंते अनयेति पूरि-स्युद्, ङीप्। १ शास्मिलवृक्ष, सेमर। २ पूरणकारिका, पूरा करनेवाली। पूरणीय (सं० ति०) पूर-अनीयर्। पूरणके योग्य। पूरन (हि० वि०) पूर्ण देशो। पूरनकाम (हि० वि०) पूर्ण हो तेशो। पूरनकाम (हि० वि०) पूर्ण हो तेशो। पूरनपूरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी मीठी कचौड़ी। पूरनमासी (हि० स्त्री०) पूर्णमासी हेखो। पूरनमासी (हि० स्त्री०) १ पूर्ति करना, कमी या खुटिको पूरा करना। २ मनोरथ पूर्ण या सफल करना, सिद्ध करना।

तारीख-इ-शेरशाही नामक मुसलमानी। इतिहासमें इस भीषण अत्याचारकी कथा लिपिनद्ध है। १२१२ ई॰ में नहा-दुरके आक्रमण-समय भी इस प्रकारका एक और अखाचार संघटित हुआ था। सलतान बहाइर शाहने उस समय प्रणमलकी निमाता दुर्गोहिनीके रूपमाधुर्य पर मुख्य हो उनका पाणिग्रहण करना, चाहो। निस्तृत निवरण भीरट-र विक-नहीं नामकलास्पर्में देखी। ३ किसी चीजको किसी चीजसे आच्छादित करना, हाकना। ४ वजाना, फूंकना। ५ व्याप्त हो जाना, पूर्ण होना, भर जाना। ६ मङ्गुल अवसरों पर आटे, अवीर आदिसे देवताओं के पूजन आदिके लिये चौख्ंटे क्षेत्र आदि वनाना, चौक वनाना। ७ वटना।

पूरव (हिं पु॰) प्राची, पूर्व, वह दिशा जिसमें सूर्यका इदय होता है।

पूरवळ (हिं० पु॰) १ प्राचीन समय, पुराना जमाना । २ पूर्वजन्म, इस जन्मसे पहलेवाला जन्म ।

पूरवला (हि॰ पु॰) १ पूर्व जन्मका । २ प्राचीन कालका, पुराना ।

पूरविया (हिं पु०) पूरवी देखी।

पूरवी (हिं वि) १ पूर्वसम्बन्धी, पूरवका २ पूर्वी देखी।
(पु॰) ३ एक प्रकारका दादरा जो विहारी भाषामें होता
हैं और विहारप्रान्तमें गाया जाता है। (स्त्री॰) ४ पूर्वी
नामकी रागिणी।

पूरियतव्य (सं० ति०) पूर तच्य । पूरणीय, पूरा करने योग्य ।

पूरियत् (सं० त्रि०) पूर-तृच् । १ पूरक, पूर्ण करनेवाला । (पु०) २ विष्णु ।

पूरा (हिं० वि०) १ परिपूण, जो खाळी न हो, भरा। २ समस्त, समग्र, समूचा, जिसका अंश या विभाग न किया गया हो अथवा जिसके टुकड़े या विभाग न हुए हों, सोळह आना। ३ पूर्ण, कामिळ, जिसमें कोई कमो या कसर न रह गई हो। ४ यथेए, काफी, भरपूर। ५ सम्पादित, रुत, पूर्ण, सम्पन्न। ६ तुष्ट, पूर्ण।

पूराम्च (सं॰ क्ली॰) पूरं पूरकमम्रमत । वृक्षाम्च, महाम्नु, विषाविल ।

पूरिका (सं॰ स्ती॰) पूर्यते इति पूरि-क, स्तियां ङीप्, पूरो, ततः खार्थे कन, टाप् पूर्वंहस्तरच। पिष्टकमेद, कचौड़ी। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है, उरदको अच्छी तरह चूर्णं कर उसमें नमक, अदरक और हींग मिलाचे। वाद मैदेके भीतर उसे दे करके पिष्टकाकार बना कर खौलते हुए तेल या बीमें छान ले। वस, इसीको पूरिका कहते हैं। इसका गुण मुखरोचक, मधुर रस, गुरु, किन्ध, वलकारक, Vol. XIV. 69

रकिपित्तका दोषजनक, पाकमें उष्ण, वायुनाशक और चक्षका तेजोहारक है। यह तैलपकको अपेक्षा घृतपक होनेसे चक्षका हितकारक और रकिपत्तनाशक होता है। पूरित (सं० ति०) पूर्यते स्मेति पृ-पूरि-वा क (वा दान्त-शान्तपूर्णेति पाश्चरित्र) इति पक्षे इट्।१ क्वतपूरण, परिपूर्णे, भरा हुआ, लवालव । २ गुणित, गुणा किया हुआ। ३ तम।

पूरिन् (सं० ति०) पूर्णकारी, पूरा करनेवाला।

पूरिया (हिं पु॰) पाड़व जातिका एक राग । यह सन्ध्या समय गाया जाता है। इसमें पञ्चम खर वर्जित है। किसीके मतसे यह भैरव-रागका पुत और किसीके मत-से सङ्करराग है।

प्रियाकल्याण (हिं॰ पु॰) सम्पूर्ण जातिका एक सङ्कर राग। इसके गानेका समय रातका पहला पहर है। प्रि (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका प्रसिद्ध पकवान जिसे साधारण रोटी आदिकी तरह वैल कर खौलते घीमें छान लेते हैं। २ मृदंग, तवले, ढोल आदिके मुंह पर मद्रा हुआ गोल चमड़ा। (वि॰) ३ 'पूरा' शब्दका स्त्रीलिङ्गद्भप। पूरु (सं॰ पु॰) पृ वाहुलकात् कु। १ मनुष्य। मनुष्यके अर्थमें यह शब्द बहुबचनान्त होता है। २ वैराज मनुके एक पुतका नाम। ३ जह के एक पुतका नाम। ४ राक्षस-भेद। ५ यथातिपुत्रभेद। पु॰ देखें।

पूरुजित् (सं॰ पु॰) विष्णु । पूरुब (सं॰ पु॰) दृरद देवी ।

प्रमुज समुद्रज जीवयोनिमेद । आवयविक विभिन्तता देख कर वैक्षानिकोंने इनका श्रेणी-विभाग और नाम-करण किया है। साधारण अङ्गरेजीमें ये Polypes और l'olypiers नामक दो विशिष्ट श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं। जिसका आकार छोटे शैवालकी तरह होता, उसे Polypes और जो गुलमादि छोटे पौधेके सदृश होता है उसे Polypiers कहते हैं। कोई कोई प्रभुज देखनेमें ठोक उद्भिद्रके जैसा लगता है। ये जलजकीट हैं वा जीवभुक् शैवाल वा उद्भिद, इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर देना वड़ा हो कठिन है। प्रसिद्ध फरासी पिएडत टएडन (M. Tandon) साहवने खरूत 'सामुद्रिक भुवन' नामक पुस्तकमें गभीर गवेषणा द्वारा जो जीवतत्त्व प्रकट किया है, वही जनसाथारणमें आदरणीय है।

इस क्षद्र जीवके सम्बन्धमें यदि आलोचना की जाय, तो कुत्हल पैदा होता है और जगदीश्वरको अपार महिमा भलकती है। जलके तारतम्यानुसार इनमें भी विशेष पृथक्ता देखी जाती है। सुमिए नदोके जलमें और लवणाक्त समुद्र-जलमें बहुत अन्तर देखा जाता है। होनोंकी कार्यप्रणाली भी अनेकांशमें विभिन्न हैं।

इसके वड़े से वड़े जीवका आकार एक इञ्चके तृती-यांशसे अधिक नहीं होता है। ऐसे छोटे आकारसे इनकी प्रकृत अवस्थाका निरूपण करना वडा हो कठिन है। नदीके जलमें जो सब पूरुभुज उत्पन्न होते हैं, खाद्यादिभेद्से उनका गालवर्ण विभिन्न हो जाता है। उनकी गर्भस्थलोके वहिर्देशमें जो सब क्षुद्राकार उपनल संक्षिप्र देखे जाते हैं, वे ही क्रमणः परिवर्द्धित हो कर एक स्वतन्त पूरुभुजका आकार धारण करते हैं। जव यह अंशावयव अपने भरण-पोषणके उपयुक्त हो जाता है, तव मातृगातसे विच्युत हो कर उसकी एक स्रतन्त जीवरूपमें गिनती होती है। एक पृथ्भुजके शरीरमें एक दूसरे क्षुदाकार नलक्षी पूरुभुजका उद्भव प्रायः शरत्-कालमें ही हुआ करता है। पूर्णावयव पाते ही वह गिर कर जलके नीचे चला जाता है। शीतकालमें वह उसी भावमें रहता है। पोछे वसन्त ऋतु आने पर उसके कलेवरकी वृद्धि होती है। यदि किसी एक पूरुभुजको सात या आठ खएडोंमें विभक्त किया जाय, तो दो दिन-के मध्य वह एक एक कटा हुआ खएड फिरसे पूर्णाकार धारण करता है। इस प्रकार एकको काट कर नष्ट कर डाळनेसे उसकी कोई विशेष क्षति नहीं होती, वरन् नित्य नये पूरुभुज-वंशका विस्तार होता है। क्या ही ईश्वर-की अपार महिमा है!

और भी एक आश्चर्यका विषय यह है, कि उदर-स्थलीकी भीतरी ओरको मोजेकी तरह उल्टा देनेसे भी इनके जीव-जगत्की वाह्य क्रियादिका कोई व्याघान वा व्यक्तिक्रम नहीं देखा जाता। पहलेकी तरह अब भी वे खाते पीते हैं। वाहरका जो चमड़ा पूर्वावस्थामें निश्वास-प्रश्वासका एकमाल क्रियास्थल था, अभी वहां पाकस्थली-का काम करता है। सच.पूलिये, तो प्रभुजके हृद्य, इृद्यन्त, यस्त, धमनी, मस्तक वा मस्तिष्क आदि कुल भी नहीं है ; केवल धूसर शैवालकण सहश बाहु ही उनके हाथ, पांव, ओष्ठ और स्पर्शेन्द्रियका काम करती है।

पूरुष (सं० पु०) पूरति अग्नें गड्छतीति पुर-कुपन् (पुर: कुषन् । डण् ४,७४) ततः (अन्येवामि दश्यते । वा ६।३११३७ इति निपातनात् दीर्घः । १ पुरुष,नर, आदमी । पुरुषका शुमाश्चम छक्षण पुरुष शब्दमें टेकी ।

र नित्यमुक्त शुद्धस्त्रभाव, चेतन, आत्मा । सांख्य-दर्शनमें पूरुपका विषय इस प्रकार लिखा है,— पुरुप चेतन, प्रमाता अर्थात् प्रमा-साक्षो है। यह 'पुरिशेते' अर्थात् लिङ्गशरीरमें अवस्थान करता है, इसीसे इसका पुरुप नाम पड़ा है। यही पुरुप चेतन हेतु आत्मपदवाचय है। सांख्यके मतसे यह निखिल ब्रह्माएड प्रकृति और पुरुपात्मक है। इनमेंसे प्रकृति वा पुरुप कीन है, उसी विषयकी यहां आलोचना की जाती है।

पुरुष भिन्न आग्रह्म स्तम्त्र पर्यन्त समस्त जगत् ही प्रकृति है। इसके मध्य मूळप्रकृति अति सूक्ष्म और आदिम है। उसो मूळ प्रकृतिने धीरे धीरे विकृत हो कर इस असीम ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है और वह आज भी ब्रह्माण्डाकारमें अवस्थान करतो है। जो इस जगत्का मूळ वा सूक्ष्मचीज है, वही प्रकृति है और जो उसका विकार है, वही जगत् है।

जगत्की मूल अवस्था वा अव्यक्त अवस्थाका नाम प्रकृति और व्यक्तावस्था वा सविकार अवस्थाका नाम जगत् हैं। प्रकृतिका विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखी।

सांख्याचार्य कपिलने पदार्थ-निर्णयके मूल पत्तनकाल-में कीन पदार्थ प्रकृति है, कीन विकृति है तथा कीन अनु-भय अर्थात् न प्रकृति और न विकृति हो, इस प्रकार श्रेणीविभाग करके प्रकृतिका अन्यक, विकृतिका म्यक और उभयात्मक पदार्थका न्यकाव्यक तथा अनुभय पदार्थका 'इ' अर्थात् झाता वा पुरुष नाम रक्षा है। पीछे उन्होंने उनकी संख्या, परीक्षा और लक्षणका निद्रिश किया है।

यह अनुभयरूप 'क्र' पदार्थ पुरुष और आत्मा शादि भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं। पुरुष अनुभयात्मक हैं अर्थात् प्रकृति नहीं हैं और न विकृति ही है। प्रकृति शब्दसे कारण और विकृति शब्दसे उसका कार्य समका जाता है।

पुरुष कूटस्थ है अर्थात् जन्यधर्मका अनाश्रय, अवि-कारी और असङ्ग है। इसीसे पुरुष कारण नहीं हो सकता। पुरुष नित्य है, उसकी उत्यक्ति नहीं है. इस कारण कार्य भी नहीं हो सकता। अतएव पुरुष अनुभया-त्मक है।

यह पुरुष चर्मचक्षके अगोचर, हस्तपद्के अश्राद्य और मनके अगम्य है। इस 'इ' पदार्थने विविध सम्प्रदायके निकट विविध क्योंमें प्रकाश पाया है। इनमेंसे सांख्या-चार्योका सन्मत पुरुष जिस भावमें प्रकाश पाता है, उसी-का विषय यहां आलोच्य है।

पुरुषके अस्तिस्वका क्या प्रमाण है ? इस पर कपिल कहते हैं, 'अस्तिश्वारमा नास्तिरव धावनाभवाव' नास्तित्व-साधक प्रमाण नहीं रहनेके कारण मनुष्य आत्मनास्तिक नहीं हो सकता। 'मैं' 'मैं हूं' 'मेरा' यह आत्मानुमायक-श्वान सर्वोके हैं। जिसे आत्मा है, उसीको इसका श्वान है। अतप्रव पुरुष (आत्मा) नहीं है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता, यह खतासिख है।

पुरुष है, तक्किपयक सामान्य झान मी है। किन्तु इसका विशेष झान नहीं है। 'मैं हूं' केवल इतना हो झान है। किन्तु मैं क्या हूं अथवा मेरा खरूप कैसा है ? यह अयोगियों को मालूम नहीं।

इन्द्रियगणके वाद्यासक-खमाव होनेसे ही अयोगी व्यक्ति पुरुषके यथार्थ ज्ञानसे विश्चित हैं। अस्यन्त संयोग-वलसे जिस प्रकार लोहा और आग एक हो जाती है, मानव भी उसी प्रकार भ्रम और प्रकृतिके अविसाविध्य-प्रयुक्त अनारमपदार्थमें एकीभूत हो कर में करता हूं कभी विहास्य मांसपिएडमें आत्मसम्बन्ध स्थापन करके भिरे पुत्र हैं भिरे कलत हैं ऐसा कह कर व्याकुल होते हैं हत्यादि प्रकृतिकी मायासे मोहित हो कर, इसी प्रकार देहेन्द्रियादि नाना पदार्थोंमें आत्मत्व स्थापन करके वृथा कलेश पाते हैं। किन्तु में (ुपुरुष) कौन हूं और मेरा खक्तप कैसा है, यह सुल और दुःलभोग मेरा प्रकृत है वा नहीं; इसका कुल भी झान नहीं है।

पूर्वं समयमें मनीपियोंके आतम-जिहासा उपस्थित

होने पर जो आत्मतत्त्वज्ञ थे, उन्होंकी वे शरण छेते थे। वे इस आत्मविषयक यथार्थ तत्त्वका उपदेश दे कर सभी संदेहको दूर कर देते थे। नाना पदार्थीमें पुरुषत्वभ्रम नहीं होता था।

दूश्यपदार्थमात्रमें कोई भी पुरुष नहीं है। पहले पुरुषका खरुप जो जानना चाहते थे, वे योगका आश्रय कर तथा इन्द्रियका वहिगमन रोक कर सभी विषयोंसे अवगत हो ज्ञाते थे। 'गूढाला व प्रकाशते' पुरुष (आतमा) अपने पार्श्वचर अज्ञानसे सर्वदा आवृत हैं, इसी कारण अयोगी, अब्रह्मचारी और अविवेकी पुरुषके निकट वे प्रकाश नहीं पाते। 'नायमाला प्रवचनेन लभ्गः' पुरुष चाक्पाएडत्यमें नहीं मिलते। 'न शरील्परिकर्त्तनैः' यदि सारे शरीरको खएड-विखएड करके अनुसन्धान मी क्यों न किया जाय, तो भो उसमें पुरुष दिखाई नहीं देते।

पुरुष हस्तपदादि अवयव, तद्घटित देह, पांच प्रकारके प्राण, ग्यारह इन्द्रिय, मन, वुद्धि, अहङ्कार, इन सवके अति-रिक्त हैं। इस अतिरिक्त पर्वार्थकी स्फूर्ति, भान वां साक्षात्कार लाभका प ज्यान उपाय है ध्यान। 'आक्षा वा अरे इष्टगः' श्रोतको अन्तको निदिक्यासितकार' (सुति) ध्यानका आलम्बन आसवाक्य है, अनुकूल तके वा विचार उसका विध्ननाशक है।

'द्रव' तबिति निद्देंग्द्र' गुरुणाऽपि न शक्यते।' वह आंत्मां वा पुरुष बही हैं, ऐसा गुरु भी नहीं वतला सकते। गुरु शब्दसे यहां आत्मविद्व गुरु समभना चाहिये।

विरागी मानव जब गुरुके उपदेशानुसार समी विञ्नं वाधाको दूर और इन्द्रियोंको विषयान्तरसे मत्याहत कर ध्यानिनष्ठ होते हैं तब उसके वाद अविवेक दूर हो जाने से वे ज्ञान हारा पुरुषका खरूप जान सकते हैं। कपिछने इस वात पर 'वेहादिन्यितिरिकोऽसा' इस स्त्रका अर्थ यों है—यह स्यूछ देह, पञ्चप्राण, एतिष्ठप्र इन्द्रिय, मन और युद्धि आदि इनमेंसे कोई भी पुरुष नहीं है। युद्ध इन सबसे विखकुछ पृथक् है।

इस पुरुष (आतमा) के विषयमें विभिन्न मत देखा जाता है। स्थूल शरीर, प्राण, वायु, वक्षरादि इन्द्रिय ये सव पुरुष (आतमा) नहीं हैं सहो, पर मन जो आतमा नहीं है, इसका प्रमाण क्या ? ज्ञान और इच्छा आदि जो कुछ चेतन गुण हैं, सङ्करणिवकरण अवधारण आदि जो कुछ चेतनकाय हैं, सभी समनस्क पदार्थमें देखे जाते हैं। इन्द्रिय और प्राणके निर्व्यापार होने पर भी मन निवृत नहीं रहता। इत्यादि विरुद्ध मतके उत्तरमें कपिल कहते हैं, —मनको आत्मा वा पुरुप समभ कर निश्चित्त रह जाना मुमुक्ष जीवको उचित नहीं। तत्त्वदर्शी ऋपियोंको धारणा, ध्यान, समाधि और प्रज्ञा द्वारा मालूम हुआ था, कि पुरुष नित्य शुद्धस्वभाव और चित्सक्ष्प, है। पुरुष जो मन और दुद्धिसे स्वतन्त है, यह मननशील ज्ञानो मनुष्यका अनुभवसिद्ध है।

अनुभवप्रणाली इस प्रकार है— मन जब अपनेको स्थिरभावमें देखता है, तब उसे यह मालूम होता है, कि में आत्मा नहीं हुं, आत्माके अधोन हुं। मैं पुरुषका भोगोपकरणमाल हुं। मन सिक्षय और सिवकार है, पर पुरुष निष्क्रिय और निर्विकार। किसी समय वा किसी अवस्थामें पुरुषका विकार नहीं होता। संशय, निश्चय, विपर्यय, सन्धान और निर्याचन ये सव मनके ही धर्म हैं। पुरुष इन सबके दर्शक वा साक्षि-माल हैं।

मन पुरुपसे पृथक् है, इसमें जरा भी संदेह नहीं हो सकता। थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होगा, कि व्यवहारिक ज्ञान इसकी गवाही देता है। 'मेरा मन' छोड़ कर 'में मन हूं' ऐसा कोई भी नहीं कहता और उसके आकारका ज्ञान भी नहीं होता। 'मेरा मन' इस स्वतः- उत्पन्न ज्ञानकी व्यवहार-परम्परा लक्ष्य करनेसे पुरुपके साथ मनके दृष्ट्र-दृश्यभावके अतिरिक्त ऐक्यसम्बन्ध दिखाई नहीं देता। पुरुप दृशा है और मन दृश्य। पुरुप- के साथ मनका यदि वैसा स्थिरतर सम्बन्ध नहीं रहता, तो मनुष्य अवश्य कभी न कभी 'मेरा मन' इसके बदलेमें 'में मन हूं' ऐसा कहते; पर भूलसे भी इस ध्यवहारकी अल्याया देखनेमें नहीं आती।

'में' यह ज्ञान मनका चिर-निकद और स्ताःसिद्ध भाव-विशेष है। इसीसे वह वृत्तिकपमें कल्पित हुआ है। जिस हेतु मनोवृत्ति है, उसी हेतु वह 'मैं', प्रकृत 'में' (पुरुष)-से मिन्न है। जो प्रकृत 'में' है वह में हत्याकार मनो-वृत्ति-समाक्ष्य केवल-चैतन्य है। वृत्तिकप अपनापनमें प्रकाशक-केवल चैतन्य ही प्रकृत ही 'में' है। पुरुष चैतन्यरूपी हैं और मन जड़रूपी, पुरुषकां सं-भाव प्रकाश है और जड़का समाव अप्रकाश। मन जो जड़ वा अप्रकाश-स्वभावका है, वह अनुभव और युक्ति दोनों सिद्ध है। मन यदि पुरुषकी तरह प्रकाश-स्वभाव-का होता, तो मनुष्य सुप्ति, भूच्छां और मुखादि अवस्था-में प्राप्त नहीं होते। क्योंकि, जो जिसका सभाव है, वह कभी भी उससे अलग नहीं होता। उष्णता नहीं है, अथच अग्नि है, ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। अत-एव सुप्ति और मूच्छांदि मानसकी अप्रकाश अवस्था वेस कर मनका जड़त्य सहजमें निर्णीत हो सकता है।

इस पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि पुरुषको प्रकाण रूपी कहनेमें जो फल है, मनको प्रकाशरूपी कहने में भी वही फल है, सुप्ति मृच्छों आदि अप्रकाश अवस्था देख कर मनका जिस प्रकार अप्रकाशत्व अवधारण किया जा सकता है, उसी प्रकार पुरुषका भी जड़त्व निसंदेह निर्णीत हो सकता है।

इस पर कपिल कहते हैं, सो नहीं। पुरुषका जो प्रकाशस्त्रभाव है, वह कभी भी तिरोहित नहीं होता। परन्तु कुछ विशेषता है, वह यह है, कि मनके संयोगसे पुरुपका प्रकाश दूना हो जाता है। दिनमें घरकी दीवार पर जो प्रकाश रहता है, सफेद कांच द्वारा जब वाहरका प्रकाश उसमें प्रतिक्षेप किया जाता है, तब उस दिवार पर-का साधारण प्रकाश दूना हो जाता है। वह दूना प्रकाश वहत तीव्र और वहुत उजला दिखाई देता है। पुरुषके मनःसंयोग-कालका प्रकाश भी उसी प्रकार दूना है। द्विगुणित होनेके कारण जाप्रत्कालका चैतन्य अधिक विस्पष्ट अर्थात् जाज्वल्यभान है। काचस्थानीय मन जव तमोगुणके उद्रेक वशतः मलिन रहता है अर्थात् आत्म-प्रकाशका प्रतिविस्व ग्रहण नहीं कर सकता, तब पुरुषका प्रकाश विलुप्त-प्राय वा खल्प हो जाता है। वही सुप्ति और मुर्च्छादि कालका एकगुणप्रकाश है। जाव्रत्-कालका द्विगुणित प्रकाश उस समय अत्य हो कर एक-गुणित होता है। इस कारण लोग कहते हैं, कि मूर्ज्जा में ज्ञान नहीं रहता। किन्तु उस समय भी पुरुष अपने पकगुणित प्रकाशमें चिराजित रहते हैं। यदि कहो, कि अवस्थामें पुरुषके सत्ता स्फूर्ति रहती है, इस सिद्धान्तका

भ्या प्रमाण है ? तो इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है, कि सुप्तोत्थित मूर्च्छित व्यक्तिकी सुप्ति भी मुर्च्छामङ्का परवर्त्ती अनुभव है। मैं अज्ञान था, कुछ भी होश नहीं था, इस अनुभवके एकदेशमें जो 'मैं' और 'धा' अंग है. वही तात्कालिक आत्मसत्ता वा आत्म-प्रकाश रहनेका अनुमापक है। उस समय यदि किसी प्रकारको सत्ता स्फूर्ति नहीं रहतो, तो कभी भी जीवके उस प्रकार स्परणात्मक ज्ञान उपस्थित नहीं हो सकता था। पूर्वानुमवसे उत्पन्न संस्कारके वलसे ही स्मरणा-त्मक ज्ञानका उदय होता है, यह नियम खोकार करनेसे यह भी खीकार करना होगा, कि उस समयमें (पुरुष निज खाभाविक प्रकाशमें अवस्थित था। विषयका अस्प्ररण, मनका अप्रकाश और अज्ञान ये सभी एक हैं। मन जो उस समय आत्मप्रतिविम्न ग्रहण करनेमें अक्षम था, उसे और कोई देख न सका, केवल पुरुषने देखा था। उस समय पुरुषने यह देखा था, कि मन तमसाच्छन्न है, पुरुषने तमसाच्छन्न मनको देखा था, इसी कारण वे नींद ट्रटनेके वाद उसका स्मरण और अनुमान करनेमें समर्थ हैं।

नास्तिक तार्किकोंका मन अपनी सत्तास्कूर्त्तिकों कायम रख कर दूसरेको भी प्रकाश करता है। एकमात मनके वलसे ही जीव सव्यापार है, मनके अभावमें निर्व्या-पार है, स्रुतरां मन ही 'आत्मा' (पुरुष) है, ये सब वाते' नितान्त हैय हैं।

नास्तिक छोग समक्तते हैं, कि "वंतन्यं संहत्ययूतवर्मः" पुरुष (आत्मा) देहाकारमें परिणत भूतराशिके संयोगसे उत्पन्न चैतन्य नामक गुण वा शक्ति है। किन्तु कपिछका कहना है—ं, ।।से दिकं वंतन्यं प्रत्ये हारा हेः देह भौतिक होने पर भी चैतन्य उसका गुण वा धर्म नहीं है। पुरुष अपरिणामी, अतिरिक्त और नित्य वस्तु हैं। कारण, प्रत्येक भूत ही अचेतन है। परीक्षा करनेसे जब किसी भी भूतमें चैतन्यका अवस्थान नहीं देखा जाता, तव चैतन्य पदार्थ भूत अथवा भौतिकका सांयोगिक अथवा नैमित्तिक गुण कभी भी नहीं हो सकता। पुरुष स्वतः-सिद्ध और नित्यपदार्थ है।

प्रकृतिसे है कर चरमकार्य प्रयन्त सभी जड़ पदार्थ Vol. XIV, 70 संहत और मिलित गुणत्रय-सहरा हैं। सुतरां यह सुख -दुख-मोहात्मक है। अतपत्र पदार्थ अर्थात् दूसरेका प्रयोजन-सम्पादनार्थ उनका उद्भव है। गृह, शप्या आस-नादि पदार्थ संघातहप है अथच परार्थ है, यह प्रत्यक्ष-सिद्ध है। तदनुसार संघातमात हो पदार्थ है, यह स्थिर हो चुका। अब प्रकृति महदादि सभी संघात हैं, अतपव वे परार्थ हैं उसके अतिरिक्त और कोई भी पुरुष नहीं है।

कपिल कहते हैं,—'शरोरादिव्यतिरिक्तः पुमान्। संहतपरार्थत्वात्॥"(सांख्यस्० १।१३७-१३८)

पुरुष शरीरसे भिन्न हैं, यह संहत वस्तुकी परार्थता देखनेसे अनुमान किया जा सिकता है। इस विषयकी यहां कुछ विशेषक्षपसे आलोचना की जाती है।

गृह, श्रय्या, आसन अभृति सभी वस्तु संघात अर्थात् संहत पदार्थं हें। संघातमात ही पदार्थं है अर्थात् दुसरेका प्रयोजन-सम्पादक है। जगत्में इसका व्यभि-चार नहीं है। शरीर भी संहत पदार्थ वा संघात है। अतएव शरीर भी परार्थ होगा, इसमें संदेह नहीं। जगतक सभी स इत पदार्थ परार्थ हैं, केवल शरीर संहत होते हुए भी परार्थ नहीं होगा, यह कल्पना युक्ति-विगर्हित है। और इसमें कोई प्रमाण नहीं है। शरीर परार्थ है, इसके सिख होनेसे ही यह सिद्ध होता है, कि शरीर चेतन नहीं है। शरीरके अतिरिक्त कोई दूसरा ही चेतन है। शरीर उसीका प्रयोजन सम्पादन करता है। क्योंकि, जो अचे-तन है, उसका कोई प्रयोजन हो नहीं रह सकता । इष्ट-साधनता ही ज्ञानप्रवृत्तिका हेतु है। जिसके उद्देशसे मवृत्ति होती है, वही इप्ट है, वही प्रयोजन है । शरीर संहत होनेके कारण दूसरे पदार्थका प्रयोजन सम्पादन करता है। वह दूसरा पदार्थ और कोई नहीं है, असंहत पुष्व है। उसकी चेतना अवश्यम्मावी है। सुतरां शरीर-चेतन, यह भ्रान्त कल्पनामात है। स्फटिकमणि वस्तुतः लोहित नहीं होने पर भी सन्निहित जवाकुसुमके लौहित्य-में जिस प्रकार वह स्फटिकगतरूपमें प्रतीयमान होती है, उसी प्रकार शरीर वस्तुतः चेतन नहीं होने पर भी सिक्ष-हित आत्माकी चेतना केवल शरीर-गतक्रपमें प्रतीयमान

होती है। असंहत पुरुष और संहत शरीर इन दोनींकी चेतना स्वीकार करनेका कोई भी कारण नहीं है। वरन् शरोरके चेतन होनेसे वह परार्थ हो ही नहीं सकता। क्योंकि, चेतन स्वतन्त है। जो स्वतन्त है, वह परार्थ नहीं है। इसमें आपित यह हो सकती है, कि नौकर मालिकका प्रयोजन सम्पादन करता है, मालिकको तरह नौकर भो चेतन है। अतप्त पक चेतन दूसरेका चेतनका प्रयोजन सम्पादन कर सकता है। इसके उत्तरमें यहीं कहना है, कि चेतन नौकर है, किन्तु नौकरकी आतमा मालिकका प्रयोजन सम्पादन कर सकता है। इसके उत्तरमें यहीं कहना है, कि चेतन नौकर है, किन्तु नौकरकी आतमा मालिकका प्रयोजन सम्पादन नहीं करती। नौकरका अचेतन शरीर ही मालिकका प्रयोजन सम्पादन किया करता है, आतमा नहीं। शरीर चेतन होनेसे वह किसी हालतसे परार्थ नहीं हो सकता।

द्वितोयतः विगुणात्मक रथादि सारथि प्रभृति चेतन कर्नु क अधिष्ठित है। दुद्धि आदि भी अन्य कर्नु क अधि-ष्ठित होगी, वही अन्य पुरूप है। तृनीयतः सुख और दुःख यथाकमसे अनुकूलवेदनीय और प्रतिकूलवेदनीय है। सुखका अनुकूलवेदनीय और दुःखका प्रतिकूलवेदनीय गुणातीत पुरुप है। दुद्धि आदि स्वयं सुख और दुःखा-तमक है, इस कारण वह सुखकी अनुकूलवेदनीय वा दुःखकी प्रतिकूलवेदनीय नहीं हो सकती है। क्योंकि, ऐसा होनेसे स्विक्तया विरोध खड़ा होता है। चतुर्थतः दुद्धि आदि दूश्य हैं अतपन उसके दुष्टुक्पमें भी पुरुष सिद्ध होता है। कारण विना दुष्ट्राके दृश्य नहीं रह सकता है।

सांख्यकारिकामें लिखा है—
"संघातपरार्थत्वात् विगुणादिविपय्ययादिष्यानात्।
पुरुषोऽस्ति भोषतृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्व॥"
(सांख्यकारिका १७)

संघातपरार्थत्व, तिगुणादि विपर्यय, मोमतुमाव और कैवल्यार्थप्रवृत्ति इन सब कारणींसे पुरुपका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह पुरुप एक है वा अनेक, इसके उत्तरमें सांख्याचार्यगण कहते हैं,—

"जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्व । पुरुषवहुत्वं सिद्धं त्रेगुण्यविषय्र्ययाच्चैव ॥" (सांख्यका० १८)

ु पुरुष प्रत्येक शरीरमें भिन्न मिन्न है, समस्त शरीर-

में एक पुरुष नहीं है । समस्त शरीरमें यदि पक पुरुष होता, तो जनममरणादिकी व्यवस्था नहीं हो सक्ती थी। एकके जन्मसे सर्वोका जन्म, एकके मरणसे सर्वोका मरण, पकके अन्धतादिसे सवींको अन्धतादि, एकको प्रवृत्तिसे सवींकी प्रवृत्ति और एकके सुख-दुःखसे सवींके सुख-दुःख हो सकते थे। किन्तु वैसा नहीं होता, इस कारण शरीरमेदसे पुरुष भी मिन्न भिन्न है। यह पुरुष साक्षी है, क्योंकि प्रकृति अपना समस्त आचरण पुरुषको दिखाती है। चादी और प्रतिवादी जिसे विवाद विपय दिखाते हैं, छोग उसे साक्षी कहते हैं। प्रकृति भी अपना आचरण पुरुषको दिखातो है, इस कारण पुरुष साक्षी और इन्द्रा है। पुरुष त्रिगुणातीत है, इसीसे वह अकर्त्ता, उदासीन और केवल भर्यात् कैवल्ययुक्त है। दुःखनयका अत्यन्तामाच कैवल्य है। दुःख गुणघर्म है, पुरुष गुणांत्रोत है, इसीसे पुरुष कैवल्ययुक्त है। प्रधान महदादि भोग्य होनेके कारण वह भोकाकी अवेक्षा करता है। क्योंकि भोकाके विना भोग्यता हो ही नहीं सकती। वुद्धि आदिमें प्रतिविभ्नित पुरुष बुद्धादि-गत दुःख अपना है, ऐसा समकता है। विवेकज्ञान होनेसे पुरुपका यह व्यवहारिक दुःख जाता रहता है। इस विवेकज्ञानके लिये पुरुष प्रकृतिकी अपेक्षा करता है। दोनींको दोनीं-के प्रति अपेक्षा है, इस कारण प्रकृतिपुरुपका संयोग होता है। इसी संयोगसे सृष्टि होती है।

सांख्यकारिकामें लिखा है—
"पुरुषस्य दर्शनार्धं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पुरुष्वन्धवदुभयोरिप संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥"
(सांख्यका० २१)

गतिशिकिहीन और वृक्शिकिसम्पन्न पंगु तथा दृक्शिकिहीन और गितिशिकयुक्त अन्ध ये दोनों एक दूसरेकी अपेक्षा करते हैं, इस कारण दोनों ही परस्पर संयुक्त होते हैं। दृक्शिकिसम्पन्न पंगु गितिशिकियुक्त अन्धके कंधे पर चढ़ कर पथ दिखळा देता है और अन्ध भी उसीके अनुसार चळता है। इस प्रकार दोनोंकी हो इच्छा पूरी होती है। प्रकृति और पुरुपका संयोग भी उसी प्रकार है। यहां पर पुरुपको पंगु और प्रकृतिको अन्ध माना गया है। कारण, पुरुष दृक्शिकियुक्त और क्रिया-

शिकशून्य तथा प्रकृति कियाशिक्तयुक्त और दृक्शिकि-शून्य है। इसी संयोगके कारण ही प्रकृति महदादि अचे-तन होते हुए भी चेतनकी तरह और पुरुष वस्तुतः अकर्त्ता होते हुए भी गुणके कर्नु त्वमें कर्त्ताकी तरह प्रतीयमान होता है।

युद्धिसत्त्व पर भी पुरुष प्रतिविम्बित होते हैं। इस विषयकी यहां कुछ आलोचना करना उचित है। आवरक तमोगुणके अभिभूत होनेसे सत्त्वगुणका उद्भाव होता है। सत्त्व खच्छ, लघु और प्रकाशक है।

"सत्त्वं लघु प्रकाणकमिष्टमुपष्टमम्कं चलञ्च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवचार्थतो वृत्तिः॥"
(सांख्यका० १३)

इस पर पुरुषका प्रतिविम्न पड़ता है। मिलन आदश उज्ज्वल प्रकाशके निकटवर्त्ती होने पर भी वह समुज्ज्वल नहीं होता। किन्तु निर्मल आदर्श उज्ज्वल वस्तुके निकट उज्ज्वलता धारण करता है। उसी प्रकार चित्-शक्तिके निकट रहने पर भी तमीभिभूत चित्तमें चित्तकी छाया वा प्रकाशस्पता नहीं होती। सत्त्वसमुद्दे के होनेसे चित्त-

शक्तिके सान्निध्यवशतः चित्त भी उज्ज्वलता वा प्रकाश-कपताको धारण करता है। इसके द्वारा चित्प्रतिविम्ब-का विषत बहुत कुछ जाना जा सकता है।

्युद्धिसस्य पर चित्शिक्तका प्रतिविम्य पड़नेसे ही ज्ञानादि वृत्तियां वस्तुतः युद्धितस्वका धर्म होने पर भी वे पुरुषके धर्म हैं, ऐसा प्रतीत होता है। मिलन द्र्पणि में मुखका प्रतिविम्य पड़नेसे जिस प्रकार द्र्पणिकी मिलन्ता मुंख पर दिखाई देती है, उसी प्रकार युद्धितस्वगत ज्ञानादि वृत्तियां पुरुषगतक्षपमें प्रतिभात होती हैं। इसीका नाम चेतनाशिक्तका अनुप्रह वा पीरुषय वोध है। फिर युद्धितस्व और उसका अध्यवसाय अचेतन होने पर भी इसमें चेतन पुरुष प्रतिविम्वत होता है, इस कारण यह चेतनकी तरह प्रतीत होता है। इससे जाना जाता है, कि वाचस्पतिमिश्रके मतसे युद्धिवृत्ति प्रतिविम्वित नहीं होती। पातअलभाष्यकार वेद्ध्यासका मत भी इसी प्रकार है। किन्तु सांख्य-भाष्यकार विद्यासका मत भी इसी प्रकार है। किन्तु सांख्य-भाष्यकार विद्यासका प्रतिविम्वत वाही युद्धिवृत्ति और पुरुष इन दोनोंमें हो दोनोंका प्रतिविम्ब अङ्गीकृत

हुआ है। उनके मतसे पुरुष जिस प्रकार बुद्धिवृत्तिमें प्रति-विम्वित होते हैं, बुद्धिवृत्ति भी उसी प्रकार पुरुषमें प्रति-विम्वित होती है। वे कहते हैं, कि विषयके साथ इन्द्रिय-का सन्तिकर्ष होनेसे बुद्धिके विषयाकार परिणाम वा वृत्ति होती है। वह विषयाकार बुद्धिवृत्ति पुरुषमें प्रति-विम्वित हो कर चमकने लगती है। पुरुष अधच उसकी बुद्धिकी तरह विषयाकारता भिन्न विषय प्रहण वा विषय-मोग नहीं हो सकता। अतएव पुरुषमें प्रतिविम्बरूप विप-याकारता है ऐसा खोकार किया जाता है। विक्वानिमक्षने अपने मतका समर्थन करनेके लिये यह प्रमाण दिया है—

"तस्मिंश्चिद्दर्धने स्कारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ता प्रतिविम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥" (बांख्यद० १।१ स्तुनमा०)

तटस्थ वृक्ष जिस प्रकार सरोवरमें प्रतिविश्वित होता है, उसी प्रकार विस्तृत उस चैतन्यखरूप द्र्णणमें समस्त वस्तु दृष्टि अर्थात् बुद्धिको विषयाकार वृत्तियां प्रति-विश्वित होती हैं। विज्ञानभिक्षुने और भी कहा है—

"प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणं वृत्तिरेव न । प्रमार्थाकारवृत्तीनां चेतने प्रतिविम्वनम् ॥"

सांख्यकारोंके मतसे विशुद्ध चेतन अर्थात् पुरुष प्रमाता वा प्रमासाक्षी है और विषयाकार बुद्धि प्रमाण है। वुद्धिवृत्ति और चैतन्यका परस्पर प्रतिविम्व होता है, इसी कारण प्रज्वलित लीहिपिएडमें अग्निव्यवहारकी तरह बुद्धिवृत्तिमें वोर्घका व्यवहार हुआ करता है। वुद्धिवृत्ति क्षणमंगुर है, इसीसे वोध भी क्षणभंगुर समना जाता है। विज्ञानिमक्ष्ने स्पर्दाके साथ कहा है, कि अन्य-बुद्धिवाले मनुष्य बुद्धिवृत्ति और वोधका विवेक अर्थात् पार्थक्य नहीं समक सकते। तार्किक और वौद्ध आदि सर्वोने इस विषयमें धोखा खाया है। सांख्य लोगोंने वुद्धिवृत्ति और वोधका विवेक समका था, इस कारण उनकी श्रेष्ठता है। विज्ञानिमक्षुके मतसे वुद्धिवृत्तिकी तरह सुख और दुःखात्मक वुद्धिवृत्ति भी पुरुषमें प्रति-विम्वित होती है ; अर्थात् पुरुषमें साक्षात् सम्बन्धमें सुख दुःखादि नहीं रहने पर भी प्रतिविम्वरूपमें सुखदुःखादि-का अस्तित्व है। यही सांख्यशास्त्रका सिद्धान्त है। पुरुषके यथार्थमें दुःखादि शून्य होनेसे वह इस प्रकार

सुखादि सम्पन्न होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है।
सांख्यके मतसे पुरुष अनेक हैं। अध्य एक दूसरेके
अविरोधी हैं। जिस प्रकार घरमें अनेक दोषों के जलनेसे वे
एक दूसरेके अविरोध भावमें अवस्थान करते हें, कोई
भी किसीको वाधा नहीं देता, सवोंको सभी जगह व्याप्ति
रहती है, उसी प्रकार जीवभावापन असंख्य पुरुप भी एक
दूसरेके अविरोधभावमें अवस्थान करते हैं। अथ्य
किसीको कोई वाधा नहीं होती। एक दोपके जलने या
वुक्तनेसे जिस प्रकार दूसरा दीप नहीं जलता या वुक्ता,
उसी प्रकार पक पुरुषके वन्ध्यन वा मोक्षसे सवींका मोक्ष
नहीं होता। इससे प्रमाणित होता है, कि पुरुष प्रत्येक
शरीरमें भिन्न भिन्न है, सांख्याचार्योन, पुरुष अनेक हैं,
ऐसा सिद्धान्त किया है। किन्तु वेदान्तदर्शनमें इस मतका खएडन किया गया है।

वेदान्तके मतसे पुरुष एक है, अनेक नहीं। एक ही
पुरुष मनके नानात्यमें नाना रूपोंमें प्रकाशित होता है।
शङ्कराचार्यने अपनी असाधारण प्रतिमाके वलसे श्रुति
आदि प्रमाण द्वारा वह पुरुपवाद-मतका खएडन किया है,
उनका कहना है कि, 'ये सभी ब्रह्मात्मक हैं' 'वे हो सत्य
हैं, वे ही आतमा हैं' 'वे हो तुम हैं' 'थे सभी ब्रह्म हैं' 'इस
आतमामें किसी प्रकारका नानात्वभेद नहीं हैं' इत्यादि।
जिस प्रकार घटाकाश प्रभृति महाकाशसे भिन्न नहीं है,
मृगतृष्णिका जिस प्रकार ऊपर भूमिकी अनतिरिक्त है,
उसी प्रकार भोक्त भोग्य पप्रश्च और ब्रह्म अनतिरिक्त हैं।
परमार्थ-दर्शनमें अद्य ब्रह्म ही है, दूसरा कोई नहीं।

यदि यह कहा जाय, कि ब्रह्म वहुक्त हैं, वृक्ष जिस प्रकार वहुशाखान्वित है, बृह्म भी उसी प्रकार वहुशाखान्वित है, बृह्म भी उसी प्रकार वहुशक्तिप्रवृत्तियुक्त हैं। अतः ब्रह्मका एकत्व नानात्व होनों ही सत्य है। वृक्ष जिस प्रकार वृक्षक्त्पमें एक और शाखा पहाचादि क्रममें अनेक है तथा समुद्र समुद्र- क्रममें एक और फेनतरङ्गादि क्रममें अनेक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म भी ब्रह्मक्त्पमें एक, पर जीवादि भावमें अनेक हैं। (इस विषयमें जो सव युक्तियां और तर्क हैं, वे वेदान्त शब्दमें दिये गये हैं।)

पहले ही कहा जा चुका है, कि संसार, सुख और दुःस पुरुषके नहीं हैं। अब इस विषयको यहां थोड़ी आलोचना करनी चाहिये।

ख्याल करना चाहिये, कि अग्निक संयोगसे अयःपिण्ड जिस प्रकार अग्निकी तरह प्रतीयमान होता है, उसी प्रकार पुरुप-संयोगसे चित्प्रतिविम्य द्वारा बुद्धि भी चेतन-की तरह प्रतीयमान होती है। सुतरां बुद्धिका कर्जृत्व और भोक्तृत्व पुरुषमें प्रतीयमान हुआ करता है। यही पुरुषका संसार है।

थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होता है, कि संसार-को दशामें भी यथार्थमें पुरुषके कैवल्य वा मुक्तिका कोई भी व्याघात नहीं होता। क्योंकि, पुरुष उस समय भी केवल ही रहते हैं। उक्त प्रणालीकमसे बुद्धि ही विवेक-ज्ञान द्वारा पुरुषकी मुक्ति-साधिका है। वन्ध्र, मोझ और संसार वस्तुतः पुरुषके नहीं हैं। पुरुषके आध्रयमें बुद्धि ही वद्ध, मुक्त और संसारमागी हुआ करती है।

सांख्याचार्यांका कहना है, कि सभी वाहे। निष्य प्रामाध्यक्षके, मन विषयाध्यक्षके अर्थात् देशाध्यक्षके, वुद्धि सर्वाध्यक्षके और पुरुष महाराजस्थानीय हैं। प्रामाध्यक्ष प्रजासे कर छे कर विषयाध्यक्षको और विषयाध्यक्ष सर्वाध्यक्षको देता है। सर्वाध्यक्ष महाराजका प्रयोजन सम्पादन करता है। उसी प्रकार इन्द्रियां विषयको आलोचना करके उसे मनके निकट उपस्थित करती हैं और मन सङ्ख्य करके बुद्धिके निकट समर्पण करता है। वुद्धि उक्त कमसे पुरुषका भोगापवर्ग सम्पादन करती है। इन्द्रियकी आलोचना, मनका सङ्ख्य, अहङ्कार का अभिमान और बुद्धिका अध्यवसाय यथाक्रम हुआ करता है। पुरुषार्थ-निर्वाहके लिये ही इनकी प्रवृत्ति होती है।

प्रकृति खयं सृष्टि-कर्ती है। सांख्यकारिकामें लिखा है

"वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरहस्य।

पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥"

स्रोहप्रशः ५०)

वचोंको पालनेके लिये जिस प्रकार अचेतन दुःधकी प्रवृत्ति होती है, पुरुषके भोगापवर्गके लिये उसी प्रकार अचेतन प्रकृतिकी भी प्रवृत्ति होती है। नर्तकी जिस प्रकार समासहोंको अपना नृत्य दिखा कर नृत्यसे निवृत्त होती है, प्रकृति भी उसी प्रकार पुरुषके निकट अपना होती है, प्रकृति भी उसी प्रकार पुरुषके निकट अपना सकर दिखा कर निवृत्त होती है।

"रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात् । पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्थ निवर्त्तते प्रकृतिः॥" (म स कां० ५८)

गुणवान् भृत्य निर्गुण प्रभुकी आराधना करके जिस प्रकार कोई उपकार उससे पानेकी आशा नहीं करता, गुण-वती प्रकृति भी उसी प्रकार तरह तरहके उपायोंसे निर्गुण पुरुका उपकार करके उससे किसी प्रकारके प्रत्युपकारकी आशा नहीं करती। असूर्यम्पश्या कुलबध्का दैवात् घूँ घट उठ जाय और वह एक बार किसीं पुरुषसे देखी जाय, तो वह जिस प्रकार लजासे दूसरी वार उस पुरुपको देखनेका मौका नहीं देती, उसी प्रकार प्रकृति भी किसी पुरुषसे विवेक्जान द्वारा देखी जाने पर पुनर्वार उनके दर्शनपथ पर उपस्थित नहीं होती अर्थात् मुक्त पुरुषके सम्बन्धमें प्रकृतिकी भी दृष्टि नहीं होतो । पुरुषके आश्रयमें प्रकृति-का ही वन्ध, मोक्ष और संसार है। सच पूछिये, तो पुरुपके वन्ध, मोक्ष और संसार नहीं है। भृत्यगत जय और पराजय जिस प्रकार सामीसे उपचरित होती हैं, उसी प्रकार प्रकृतिगत वन्धमीक्ष भी पुरुषसे उपचरित होता है।

कोशकीट जिस प्रकार अपनेसे ही आपको वांधता है, प्रकृति भी उसी प्रकार अपनेसे ही आपको बन्धती है। यदि सचमुच देखा जाच तो पुरुषके वन्ध मोक्ष कुछ भी नहीं है।

आदरके साथ चौवीस तत्त्वोंके विवेकशानका अभ्यास करनेसे 'में पुरुष हूं, मैं प्रकृति वा वुद्धादि नहीं हूं, मैं कर्ता नहीं हूं, किसी विषयमें मेरा स्वामाविक स्वामित्व नहीं हैं, इस प्रकार विवेक-विषयमें साक्षात्कारात्मक श्वान उत्पन्न होता है। यद्यपि मिथ्याशान-वासना अनादि, तो मी विवेकशान तथा विवेकशानवासना सादि, तो मी विवेकशान मिथ्या-शानका और विवेकशान-वासना मिथ्या-शान-वासनाका उच्छेद साधन करती है। क्योंकि, तत्त्वविषयमें वुद्धिका स्वामाविक पक्षपात है, इस कारण तत्त्वश्चान प्रवट और मिथ्याशान दुवंट है। विरोधस्थल-में प्रवट दुवंटका उच्छेद साधन करता है, यह सर्वोको मात्रुम है। सुतरां मिथ्याशान द्वारा तत्त्वश्चान वाधकी आश्चा और पुनः विपर्यय वा मिथ्याशानकी उत्पत्तिकी

आशङ्का नहीं हो सकती। जिस प्रकार वीजके असावमें अंकुर नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिपुरुपका संयोग रहने पर भी विवेकस्याति द्वारा अविवेक विनष्ट हुआ है, उसको फिर सृष्टि नहीं होती । शब्दादि विषयभोग पुरुपका स्वाभाविक नहीं है । मिथ्याज्ञान ही भोगका निवन्धन वा हेतु है। मिथ्याक्षानके विनष्ट होनेसे भोग हो नहीं सकता। अतएव तव सृष्टिका कोई भी प्रयोजन नहीं। उक रूपसे विवेकसाक्षात्कार होनेसे सञ्चित धर्माधर्म वीजमाव नष्ट हो जाता है, इस कारण वह जन्मादिकप फल उत्पादन नहीं कर सकता। वाच-स्पति-मिश्रका कहना है, कि जलसिक्त भूमि पर हो योज अंकरोत्पावन कर सकते हैं। प्रखर सूर्यतापसे जिस भूमिका जल सुख गया है, वैसी ऊपर भूमिमें जिस प्रकार वोजको अंकुरोत्पत्ति असम्मव है, उसी प्रकार मिथ्या-ज्ञानादिकप क्लेश रहनेसे ही वह सिश्चत कर्मफल उत्पादनमें समर्थ होता है। तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्या-ज्ञानादि बलेश अपनीत होनेसे फिर कर्मफल समुत्पन्न नहीं हो सकता। इसका तात्पर्य यह कि क्लेशक्रप जलसे अवसिक्त बुद्धिक्प भूमि पर ही कर्मकप बीज फल-क्रप अंकुर उत्पादन करता है। तत्त्वज्ञानक्रप प्रकर सूर्यंकिरणसे समस्त क्लेशरूप सलिल परिशुक्त होनेसे बुद्धिभूमि ऊपर हो जाती है। वैसी ऊपर भूमिमें अंकुरी-त्पत्ति किस प्रकार होगी ?

यद्यपि तत्त्वज्ञपुरुषका, कर्मफल नहीं हो सकता, तो भो जिस धर्मात्रमंने फल प्रसव करना आरम्म कर दिया है अर्थात् जिस धर्माधमके प्रभावसे जिसके फलमोगके लिये वर्त्तमान शरीर उत्पन्न हुआ है उसे प्रवृत्तवेग कह कर उसका प्रतिरोध होना असम्भव है। कुम्मकार क्एडादि द्वारा चक्के को घुमाता है, किन्तु इस प्रकार कई वार चक्केको घुमा कर दएड अलग कर लेनेसे भी जिस प्रकार वेगास्य संस्कारके वलसे चक्का कुछ काल आप ही आप घूमता रहता है, उसी प्रकार सञ्चित धर्माधमँके फलप्रसव करनेमें असमर्थ होने पर भी उसने जो कर्म-फल उत्पन्न करना आरम्म किया है, उसी प्रारुध फलके कर्मानुसार तत्त्वह पुरुषका शरीर कुछ काल तक अवस्थित रहता है। प्रारुध कर्मफलमोगके वाद विवेकन पुरुषका शरीर कुछ काल तक अवस्थित होनेके पीछे जब इस भीग-देहका अवसान हो जाता है, तब फिर देहोत्पचि नहीं होती। क्योंकि तस्वज्ञान द्वारा कर्माश्यका बीजभाव वृष्य हो गया है। दृष्यवीज जिस प्रकार अंकुर नहीं दे सकता, ज्ञानदृष्य कर्माश्य भी उसी प्रकार तस्वज्ञ पुरुषकी देह उत्पादन नहीं कर सकता। उस समय पुरुषकी ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दुःखनिचृत्ति होती है। ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दुःखनिचृत्ति होती है। ऐकान्तिक और आत्यन्तिक शुक्तका अर्थ अवश्य-ममावी और अविनासी समक्षना चाहिये। शास्त्रसिद्धान्त सभी प्रणिधान करके देखनेसे मालूम होता है, कि भोगके अतिरिक्त प्रारुध्य फल कर्माश्यका क्षय नहीं होता। अनारुध्य विपाक वा अनारुध्य फलकर्माश्य तस्वज्ञान द्वारा दृश्यवीजकी तरह अकर्मण्य होता है। उसमें फिर फल प्रसन्न करनेकी शक्ति नहीं रह जाती।

पुरुष मुक्त और अमुक्त है। अमुक्त एक एक पुरुषके पक पक सक्ष्मशरीरके पहले ही प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। वह महाप्रलय काल तक स्थायी रहता है। यह सूक्ष्म-शरीर पूर्वगृहीत स्थूलदेहका परित्याग और अभिनव स्थूल देहका प्रदण करता है। यही पुरुषका संसार है। चित्र जिस प्रकार विना आश्रयके नहीं रह सकता, उसी प्रकार बुद्धादि भी विना आश्रयके नहीं रह सकती। इसीसे स्थूल शरीर लिङ्गशरीरका आश्रय है। सुपिएडत वाचस्पतिमिश्रके मतसे शरीर स्थूल और सूक्मभेदसे दो प्रकारका है। विज्ञानभिक्ष्के मतसे शरीर तीन है, सूक्ष्मशरीर, अधिष्ठानशरीर और स्थूलशरीर । उनका कहना है, कि स्थूल देहके परित्यागके वाद लिङ्गदेहका जो लोकान्तर गमन होता है, वह इसी अधिष्ठानशरीरके आश्रयमें होता है । उनके मतानुसार लिङ्गशरीर वा सूक्ष्मशरीर कभी भी विना आश्रयके नहीं रह सकता। स्थलभूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठानशरीर माना गया है। इस अधिष्ठानशरीरका दूसरा नाम है अतिवाहिक शरीर। जब तक पुरुषभी विवेकख्याति नहीं होती, तव तक पे सव शरीरग्रह्ण अवस्यम्भावी है। किसी न किसी दिन पुरुषकी विवेकस्याति होगी हो । विवेकस्याति होनेसे पुरुष असङ्ग, नित्यशुद्ध, बुद्ध और मुक्तसभाव होते हैं। प्रकृतिधर्ममें पुरुषने भपनेको सुखी दुःखी समन्ता था

जब विवेकस्याति हुई, तब उन्होंने देखा कि वह कुछ भी मेरा नहीं है। 'तदा इस्टु: खरूपे नावस्थान',। तब वे केवल इस्ट्राके खरूपमें अवस्थान करने लगे।

प्रकृति और शांहयदर्शन शब्द देखी। पूर्ण (सं० ति०) पूर्यतेस्मेति पृ-पूरि वा-क (वा दान्त-शान वूर्णदे । तस्य चक्रनव सारः वा अवि । रे) इति इझमावी निपा-त्यते च। १ पूरित, परिपूर्ण, पूरा, भरा हुआ। २ सीय सुखेच्छावदन्य, अभावशून्य, जिसे कोई इच्छा या अपेक्षा न हो। ३ सकल, अंखिएडत, समूचा। ४ समग्र, सारा, सनका सब । ५ आप्तकाम, परितृप्त, जिसकी इच्छा पूण ही गई हो । ६ यथेष्ट, भरपूर, काफी । ७ सफल, सिद्ध । ८ समाप्त, जो पूरा हो चुका हो। (पु॰) ६ प्रधाके पुत एक गन्धर्वका नाम । १० एक नागका नाम । ११ पक्षि-विशेषका खरमेद। १२ जल। १३ विण्यु, परमेश्वर। १४ काश्मीरवासी कोई शास्त्रविदु पंडित। इन्होंने विमाण-शास्त्रकी रचना की थी। १५ बौद्ध शास्त्रोक्त मैतायणीके पूर्ण अतीत एक पुलका नाम । (पु॰) सङ्गीत या तालमें वह रूथान जो 'सम अतीत'-के एक माताके बाद आता है। यह स्थान भी कभी कभी समका काम देता है। पूर्णक (सं 0 पुर) पूर्ण (संशायां बन् । पा पाश्राव्य) इति कन् । १ खण^९चूड्पश्ली, ताज्रचूड, मुर्गा । २ देवयोनि चिशेष, देवताओंकी एक योनि। ३ र्शा देखी। पूर्ण कंस (सं॰ पु॰) परिपूर्ण घट, भरा हुआ बड़ा। पूर्णककुदु (सं० ति०) पूण ककुदमस्य, अवस्थायान्त्य-लोपः समासान्तः । तरुणवयस्क वृष, जवान वैल या सांढ़ ।

पूर्णकलावटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली— पारा एक तीला, गन्धक १ तीला, लौह, धवईका फूल, बेलसींठ, विष, इन्ह्यव, आकनादि, जीरा, धिनया, रसा-अन, सोहागा और शिलाजतु प्रत्येक तीन तीला तथा मोधा, पञ्चमूली, बला, गजपीपल, अनार, सिघाड़ा, नागेश्वर, जासुन, भृक्ताज, जयन्ती और केशराज प्रत्येक दो तोला; इन सर्वोको एक साथ पीस कर २ माशेके बरावर गोली बनावे । इसका अनुपान महा है । इसके सेवनसे प्रहणी, शूल, दाह, ज्वर आदि रोग शोध जाता रहता है । पूर्णकाकुद (सं० ति०) पूर्ण काकुदं तालु अस्य न अन्त्य-लोपः। पूर्णतालुकमातः।

पूर्णकाम (सं पु) पूर्णं कामो यस्य । १ आप्तेच्छु, पर-मेश्वर । (ति) २ आप्तकाम, जिसे वातकी कामना या चाहन रह गई हो, जिसकी सारी इच्छाएं तृप्त हो चुकी हों । ३ कामनाशून्य, निष्काम ।

पूर्णकाश्यप—वौद्धशास्त्रोक्त एक प्रसिद्ध तीर्थिक। शाक्य-बुद्धने जिन छः तीर्थिकोंको अपने पेश्वर्थप्रभावसे परास्त किया था, ये उनमेंसे एक थे।

बुद्धने जिस समय धर्मप्रसार नहीं किया था, उसके पहले हो पूर्णकाश्यप अपने मतप्रचारमें छगे थे। वहुतोंने उनका मत अवलम्बन किया था। मगधके राजासे ले कर दीन दुखिया तक सभी उनकी भक्तिश्रद्धा करने लगे थे।

भोटदेशीय वौद्धप्रनथके मतसे बुद्धद्वे की छः तीर्थिकॉ-मेंसे पूर्णकाश्यप प्रधान थे। ये नंगे हो सर्वोंके सामने घूमा फिरा करते थे। उनका कहना था, कि यह जगत् अनन्त है, अथच सान्त है, अभ्रय है अथच क्षयशील है, असीम है अथच ससीम है, चित्त और देह एक है, अथच अभिन्न है, परलोक है अथन नहीं है, पिता वा माता कोई नहीं है, जन्म मृत्यु नहीं है। जिन्होंने परम सत्य पा लिया है और जिन्हें ऐसा मालूम हो गया है, कि यह जीवन और परजीवन एक नहीं, परस्पर भिन्न है तथा इसी जन्ममें मुक्ति होगी, वे ही साधु व्यक्ति जानते हैं, कि परजन्म नहीं है -इसी जन्ममें उनका शेष, ध्वंस वा मृत्यु निश्चित है। मृत्युके बाद पुनः जनम नहीं होता। यह देह सार भूतोंसे वनी है। मृत्यु होनेसे ये चार भूत, क्षिति—पृथ्वीमें, अप् — जलमें तेज — अग्निमें और मरुत्-वायुमें मिल जांयगे। पूर्णकाश्यपके मतसे यहो परम-तत्त्व है।

श्रावस्ती और जेतवनके मध्य बुद्धके साथ पूर्ण-काश्यपकी में ट हुई थी उस समय पूर्णकाश्यप अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। बुद्धने पेसा अपूर्वकौशल दिखाया था, कि पूर्ण और पांच तीर्थिक विस्तयाभिभूत हो कर भाग चले थे।

पूर्णकाश्यप बुद्धके ऐश्वर्यंसे पराभूत हो कर वड़े ही

मर्माहत हुए थे। वे स्नान करनेके वहाने एक सरोवरमें वैठे और गलेमें वालुकापूर्ण एक कलस वांघ कर डूव मरे।

पूर्णेकुट (सं॰ पु॰) एक प्रकारकी चिड़िया । भग, कूट, पूरि, करवक और करायिका ये सव पक्षी पूर्णेकुट कहळाते हैं। यह शब्द "पूर्णेकुट" इस प्रकार दीर्घ- ककारयुक्त भी छिखा जाता है।

पूर्णकुम्भ (सं॰ पु॰) सिललाविभिः पूर्णः कुम्भः । जल-पूरित घट, पानीसे भरा घड़ा । पूर्णकुम्भ सामने रख कर यावा करनेसे विशेष शुभ होता है । सभी शुभ-कर्मोंमें व्रवाजे पर पूर्णकुम्भ स्थापित होता है ।

पूर्णकोशा (सं० स्त्री०) लतामेद, एक प्रकारकी लता। पूर्णकोषा (सं० स्त्री०) १ यविषष्टक भक्षद्रव्य, प्राचीम कालका एक प्रकारका पकवान जो जौके आदेका करता था। २ कचौरी।

पूर्णकोष्ठा (सं० स्त्री०) पूर्णं कोष्ठमस्याः । नागरमोधा । पूर्णगढ़— बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलान्तर्गत एक बन्दर । यह अक्षा० १६ ४८ उ० और देशा० ७३ २० पू०के मध्य, रत्नगिरि नगरसे ६ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां-की मचकुन्दी नदीमें छोटे छोटे जहाज आ जा सकते हैं। यहां एक किला है।

पूर्णगमस्ति (सं० ति०) सम्पूर्ण-धनहस्त । पूर्णगर्मा (सं० स्त्री०) पूर्णः गर्भः यस्याः । १ आसन्न-प्रसवा स्त्री, वह स्त्री जिसे शोव्र प्रसव होनेकी सम्भावना हो । २ पूरणपोलिका, पूरन पूरी ।

पूर्णंचन्द्र (सं० पु०) पूर्णः चन्द्रः । १ पूर्णिमाका चन्द्रमा, अपनी सब कलाओंसे युक्त चन्द्रमा । २ धातुपारायण नामक प्रंथके प्रणेता । माधवीय धातुवृत्तिमें इसका उल्लेख है ।

पूर्णवन्द्ररस (सं॰ पु॰) रसौपधविशेष । यह पूर्णवन्द्ररस खल्प और वृहत्के भेदसे दो प्रकारका है । खल्पकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा, अम्र, लीह, शिलाजतु, विड्क्ष और खर्णमाक्षिक इन सब द्रव्योंका समभाग मधु और धीमें पीस कर एक माग्रेके बराबर गोली बनावे । यह भौग्ध विशेष बलकर है।

र्वृहत् पूर्णचन्द्ररसकी प्रस्तुत प्रणाली-°पारद् 8 तीला,

गन्धक ४ तोला, लौह ८ तोला, अप्र ८ तीला, रीव्य २ तोला, रङ्ग ४ तोला, खर्णमाक्षिक १ तोला, ताम्र १ तोला, कांसा १ तोला, जातिफल, लवङ्ग, इलायची, दावचीनी, जीरा, कर्पूर, प्रियंगु प्रत्येक २ तोला, इन सव द्रव्योंकी **घृत**कुमारीके रसमें पीस कर तिफला और अंडीके रसमें भावना देवें। वाद अंडीके पत्तेमें वांघ कर तीन रात तक धानकी हेरीमें रख छोड़े। इसकी गोली चनेके वरावर होनी चाहिए। इसका अनुपान पानका रस है। यह औषघ वल्य, वृष्य, रसायनश्रेष्ठ और वाजीकरण है, इसका सेवन करनेसे फास, श्वास, अहचि, आमशूल, कटिशूल आदि सभी प्रकारके शूल, अजीर्ण, ग्रहणी, वाम-वात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह और वातरक्त रोग प्रशमित होते हैं। इससे मेधायुद्धि, मद्न-की तरह कमनीय कान्ति और शरीरमें वलवृद्धि होती है। इसके सेवनसे वृद्धव्यक्ति भी तरुणत्वकी प्राप्त होते हैं। यह रसायन श्रेष्ठ और राजसेव्य है।

पूर्णचन्द्रोदयरस (सं० पु०) रसौषधमेद । प्रस्तुत प्रणाली—हरिताल, लौह और अम्र प्रत्येक ८ तोला; कपूर, पारा, गन्धक प्रत्येक एक तोला; जैती, मुरामांसी, तेजपत्त, शडी, तालिशपत्त, नागेश्वर, सोंठ, पीपल, मिर्च, दाहचीनो, पिष्पलीमूल और लींग प्रत्येक दो तोला इन सब चीजींको मिला कर गोली बनावे । इसका सेवन करनेसे अतीसार, महणी, अम्लपित्त, शूल और परिणाम-शूल आदि जाते रहते हैं । यह अतिसाररोगमें अत्यन्त उत्कृष्ट औपभ्र हैं । अनुपान और माला रोगीके अवस्था नुसार हिथर करनी चाहिये।

पूर्णतया (सं॰ अन्य॰) पूर्णस्पसे, पूरे तौरसे। पूर्णतः (सं॰ अन्य॰) पूर्णतया, पूरी तरहसे। पूर्णता (सं॰ स्त्री॰) पूर्णस्य भावः तल्-टाप्। पूर्णत्व, पूर्णका भाव, पूर्ण होना।

पूर्णदर्च (सं० क्की०) १ वैदिक क्रियामेद । २ पूर्णिमा ।
पूर्णपरिवर्त्तक (सं० पु०) (Metabola) वह जीव जी
अपने जीवनमें अनेक बार अपना रूप आदि बदलता हो ।
यथा—दंश, मक्षिका, तितली आदि ।

पूर्णपर्वेन्दु (सं० स्त्री०) पूर्णः पर्वणि इन्दुः पर्वेन्दुः यत । पोर्णमासी, पूर्णिमा । पूर्णपाल (सं० क्की०) पूर्णेश्व तत् पातञ्चिति नित्यक्तम-धारयः। १ वस्तुपूर्णं पात्न, वर्द्धापक । २ उत्सवकालमें गृहीत वस्त्रालङ्कारादि, पुत्रजन्मादिके उत्सवके समय पारितोषिक या इनामके रूपमें मिछे हुए बस्त, असङ्कार आदि। इसका पर्याय—पूर्णालक है। ३ होमान्तमें ब्रह्माको देय दक्षिणारूप द्रव्यमेद । होमकर्ममें ब्रह्मस्थापन करना होता है। वाद होम शेप होने पर उन्हें पूग-पात दक्षिणामें देना चाहिये। एक पात आतपतण्डुल द्वारा पूर्ण कर उसमें नाना प्रकारके उपकरण और फड देने होते हैं। पूर्णपातका परिमाण संस्कारतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—आठ मुहीकी एक कुञ्चि और आठ कुञ्चिका एक पुष्कल होता है। ऐसे ही चार पुष्कल अर्थात् २५६ मुहीके परिमाण तण्डुलयुक्त पातको पूर्णपात कहते हैं। इसमें यदि अशक हो, तो जिससे अनेक मजुष्य तृप्त हों उतने हो परिमाणका तण्डुलादि पूणपात देना चाहिये। होमकमैमें इस प्रकारका पूर्णपात ही ब्रह्माके दक्षिणारूपमें कल्पित हुआ है। इसके सिवा अन्य ब्रह्मदक्षिणा नहीं देना चाहिये। ४ जलपूर्णपात ।

पूर्णप्रकाश—एक प्रन्थकार, मन्त्रमुक्तावलीके रवियता।
पूर्णप्रक्ष (सं० ति०) पूर्णा प्रक्षा यस्य। १ सम्पूर्ण बुद्धि,
पूर्णक्षानी, वहुत बुद्धिमान, जिसकी बुद्धिमें कोई बुटि या
कमी न हो। २ पूर्णप्रक्षदर्शनके कर्त्ता मध्वाचाये। इनकी
गिनती वैश्यावमतके संस्थापक आचायोंमें है। वैदान्तस्त्र पर इन्होंने 'माध्वभाष्य' नामक है तपक्ष-प्रतिपादक
भाष्य लिखा है। हनुमान और भीमके वाद ये वायुके
तीसरे अवतार माने गये हैं। अपने भाष्यमें इन्होंने
स्वयं भी यह वात लिखी है। इनका एक नाम आनन्दतीथें भी है।

पूर्णप्रहादर्शन—पूर्ण-प्रहापवर्त्तित दर्शन । पूर्णप्रहाने और मी दो नामान्तर हैं, मध्य-मन्दिर और मध्य । पूर्णप्रहाने अपने माध्यभाष्यमें लिखा है, कि वे वायुको तृतीय अवतार हैं। वायुका प्रथम अवतार हउमान, द्वितीय भीम और तृतीय खयं वे हैं।

शङ्कराचार्यने असाधारण प्रतिभावलसे वेदान्तस्त्वने शारीरकभाष्यमें अहै तमत संस्थापन किया है। किन्तु रामानुज और पूर्णप्रह दोनों ही उस स्तका अवलम्बन करके द्वेतवादकी संस्थापना की है। रामानुज और पूर्ण-प्रश्न दोनोंका ही मत प्रायः एक सा है। पूर्णप्रश्नने वेदान्त-स्त्र और उसके रामानुजकत भाष्यका अवलम्बन करके यह दर्शन बनाया है। यों कहिये, कि तत्कृत वेदान्त-भाष्य ही इस दर्शनका मूल है। वेदान्तस्त्रके अर्थविप-यंग्रके कारण इस दर्शनकी उत्पत्ति हुई है।

पूर्णप्रज्ञके मतसे पदार्थ तीन है, चित्, अचित् और इंश्वर । चित् जीवपदवाच्य, भोका, असंकुचित, अप-रिच्छिन्त, निर्मलज्ञानखरूप और नित्य तथा अनादि कर्म-रूप अविद्यावेष्टित हैं। भगवदाराधना और तत्-पद्माप्त्यादि जीवका सभाव है। केशायको सौ भागोंमें विमक्त कर उसके एक भागको फिर सौ भागोंमें विभक्त करनेसे वह जितना सुक्ष्म होता है, जीव उतना ही सुक्ष्म है। अचित् भोग्य और द्रश्य पदवाच्य, अचेतन खरुप, जडात्मक जगत् और भोग्यत्व विकारास्पदत्वादि समावशाली है। वह अचित् पदार्थं तीन प्रकारका है, भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन । जिसे भोग किया जाता है, उसे भोग्य, जैसे अन्नपानीय प्रभृतिः जिसके द्वारा भोग किया जाता है, उसे भोगोपकरण, जैसे भोजन पालादि और जिसमें भोग किया जाता है, जसे भीगायतन कहते हैं, जैसे शरीर प्रभृति। इंश्वर सवोंके नियामक हरिपद्वाच्य, जगत्के कर्त्ता, उपा-दान और सर्वोंके अन्तर्यामी हैं। वे अपरिच्छिन ज्ञान, पेश्वर्यं, वीर्यं, शक्ति, तेज आदि गुणसम्पन्न हैं।

चित् और अचित् समी उनके शरीर-सक्रप, पुरुषी-सम और वासुदेवादि उनकी संज्ञा है। वे परम कारुणिक और भक्तवत्सल हैं और उपासकोंको यथोचित फल देने-के लिथे लीलावशतः पांच प्रकारकी मूर्त्ति घारण करते हैं, प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादिः द्वितीय रामादि अवतारसक्ष्य विभवः तृतीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध ये चार संज्ञाकान्त व्यूहः, चतुर्थं सूक्ष्म और सम्पूर्ण वासु-देव नामक परब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी सव जीवोंके नियन्ता। इस पांच प्रकारको मूर्तियोंमें पूर्व पूर्वकी उपा-सना द्वारा पापक्षय होनेसे उत्तरोत्तर उपासनामें अधिकार होता है। अभिगमन, उपादान, इज्या, साध्याय और योगभेदसे भगवान्की उपासना भी चार प्रकारकी है। देवमन्दिरके मार्जन और अनुलेपन आदिको अमिगमन गन्धवुष्पादि प्रजीपकरणके आयोजनको उपादान ; प्रजा-को इज्या ; अर्थानुसन्धान-पूर्वक मन्त्रजप तथा स्तोत्तपाठ, नामकीर्त्तन एवं तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासको स्वाध्याय और देवतानुसन्धानको योग कहते हैं। इस प्रकार भगवद् उपासना द्वारा ज्ञानलाम होनेसे करणामय भग-चान् अपने भक्तोंको नित्य पद प्रदान करते हैं। उस पद-की प्राप्ति होनेसे भगवान् कौन हैं, उसका सम्यक् ज्ञान हो जाता है। तव फिर पूनर्जन्मादि कुछ भी नहीं होता।

इन सब विषयोंमें रामानुज और पूर्ण प्रश्न दोनोंका ही मत समान है। किन्तु रामानुजका कहना है, कि चित् और अचित्के साथ ईश्वरके भेद, अभेद और भेदाभेद तीनों ही हैं। जिस प्रकार विभिन्न स्वभावशाली पशु और मनु-प्यादिका परस्पर भेद हैं, उसी प्रकार पूर्वोक्त समान और खरूपके वैलक्षण्यवशतः चिदचिदके साथ ईश्वरका भी मेदखीकार करना होगा। फिर जिस प्रकार 'मैं सुन्दर हु' 'मैं स्थूल हुं' इत्यादि व्यवहारसिद्ध भौतिक शरीरके साथ जीवात्माका अभेद देखा जाता है, उसी प्रकार चित् अचित् समी वस्तु ईश्वरके शरीर हैं। सुतरां शरीरात्म-भावमें चिद्चित् भी वस्तुओंके साथ ईश्वरका अमेद भी है, यह कहना पड़ेगा। जिस प्रकार एकमाल सृत्तिकाके हो विभिन्न घट और शरावादि नाना क्रुपोंमें अवस्थान करनेके कारण घटके साथ मृत्तिकाका भेदाभेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार एकमात परमेश्वरके चिदचिद नाना क्पोंमें विराजमान होनेके कारण चिदचिद्वके साथ उस-का मेदामेद भी है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। क्योंकि ईश्वरके आकारलहरप चिद्चिदुका परस्पर भेद् हे कर तथा उन दोनोंके साथ ईश्वरके शरीरात्मभावमें अमेद-वशतः मेदामेद हुआ है। फिर देखो, जिसका जो अन्तर्यामा होता है, वही उसका शरीर समका जाता है । भौतिक देहका अन्तर्यामी जीव है, इस कारण भौतिक देह जीवका शरीर है। उसी प्रकार जीवका अन्तर्यामी ईश्वर है, इस जीवको ईश्वरका शरीर कहना होगा। अतएव जिस प्रकार में सुन्दर हूं' में स्थूल हूं' इत्यादि व्यवहार द्वारा भौतिक शरीरमें जीवात्माके शरीरात्म-भावमें असेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार 'तस्व वि देत' तो', हे श्वेतकेती ! तुम ईश्वर इत्यादि श्रुतियोंमें जीवातमा और ईश्वरके शरीरात्मभावमें अभेद निर्दिष्ट हुए हो।

फलतः इस श्रुति द्वारा विलक्कल अभेद प्रतीत नहीं होता, पर हां इसे भेदाभेद कहा जा सकता है। रामानुज-की इस बात पर अर्थात् भेद, अभेद और भेदाभेद इस विरुद्ध तत्त्ववयका स्वीकार करने पर पूर्णप्रज्ञ कहते हैं, कि इसमें उन्होंने केवल प्रकारान्तरसे शङ्कराचार्यके ही मत-की पोषकता की है, वे यथार्थ रूपमें गन्तव्य पथ पर जा नहीं सके। अतएव उनका मत अश्रद्धेय है। मध्या-चार्यने अपने भाष्यमें शङ्करको दिखलाया है. जीव और ईश्वरके साथ जो परस्पर भेद है, उसमें और कोई संशय रह सकता। उस भाष्यमें लिखा है 'स आतमा तस्वपसि श्वेतकेतो' अर्थात् जीव और ईश्वरमें मेद नहीं है जीव और ईश्वर एक ही हैं। इस श्रुतिका ऐसा तात्पर्य नहीं, इस-का तात्पर्य इस प्रकार है, हे खेतकेतो, 'तस्य त्वं' उसका तुम हो, इस पन्डो समास द्वारा उसमें जीव ईश्वरका सेवक है, अर्थात् उसीका तुम हो, उसीके लिये तुम्हारी सृष्टि हुई है, यही अर्थ सुसंगत है । जीव और ईश्वरमें अभेद है, ऐसा अर्थ किसी तरह सुसङ्गत नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त ऐसा अर्थ भी समका जाता है कि जीव ब्रह्मसे भिन्न है।

पूर्णप्रज्ञने दो तत्त्व स्त्रीकार किया है, स्ततन्त्र और अस-तन्त । इनमेंसे भगवान सर्वदोपवर्जित और अशेप सह ण-के आश्रय खहप हैं। विन्मु हो खतन्त्र तत्त्व और जीवगण अखतन्त्रगत अर्थात् ईश्वरायत्त हैं। सेव्यसेवक-भावावलम्बी ईश्वर और जीवका परस्पर भेद और युक्ति उसी प्रकार सिद्ध होती है, जिस प्रकार राजा और भृत्यका परस्पर भेद देखा जाता है। अतएव जो जीव और ईश्वरकी अभेद-चिन्ताको उपासना कहते हैं तथा वैसी उपासनाका जो अनुष्ठान करते हैं, उन्हें परलोकमें कुछ भी सुख नहीं मिलता, वरन् नरक होता है । उसका कारण यह है, यदि भृत्यपदस्य कोई व्यक्ति राजपद पानेकी इच्छा करे, अथवा मैं राजा हूं, इस प्रकार घोषणा कर दे, तो राजा उसे भारी दण्ड देते हैं। फिर जो व्यक्ति निज अपकर्ष चोतनपूर्वक राजाका गुणानुकीर्त्तन करे, तो राजा प्रसन्न हो कर उसे समुचित पारितोपिक देते हैं। अतएव मैं ईश्वरका सेव्क हूं, यह जान कर ईश्वरके गुणोत्कर्पादि कोर्त्तनरूप सेवाके विना किसी तरह अभिलंबित फल-

प्राप्तिकी सम्भावना नहीं। 'मैं ईश्वर ह्' अथवा 'मैं ईश्वर हूंगा' इस प्रकार उनकी उपासनासे अनिष्ट भिन्न कोई इष्ट फल नहीं होता।

ईश्वर पूर्ण हैं और उन्होंने ही इस जगत्को परिपूर्ण किया है, इसीसे उन्हें पूर्ण कहते हैं। ईश्वरके उसी पूर्णभावको ले कर निखिल संसार पूर्ण होता है।

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण दमुच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥"

(वेदान्तस्० मध्व० शहाह)

इस ईश्वरके सम्बन्धमें मनीपियोंने नाना प्रकारके तर्कजाल फैलाये हैं, किन्तु तर्क द्वारा यह स्थिर नहीं हो सकता। 'नैधा तर्केंग मतिश्वनीया।

(मध्व भाष्य वेदांतसू० ११।१६)

भगवान विष्णुसे इस निखिल जगत्की सृष्टि हुई है। भगवान विष्णुने, जो अनन्त समुद्रशायी हैं, यह ब्रह्माएड-रूप कोप हो जिनका वीर्य है, अपने शरीरसे विविध प्रकारकी सृष्टि की है।

परत्रहा शब्दसे विष्णुका ही वोध होता है। शिव और रहादि नाना प्रकारके नामकरणको जगह पूर्णप्रक्रने लिखा है—मगवान विष्णु नाना प्रकारके रोगोंको दूर करते हैं, इसीसे उनका नाम रहा; सवींके ईश्वर हैं, इस कारण ईशान; महत्त्वाधिक्यवशतः महादेव; जो संसार-सागरसे मुक्त हो कर खगैमें सुखमोग करते हैं, वैसे नाकोंके आश्रयदाता हैं, इस कारण पिनाकी; सुखमय होनेके कारण शर्व; कतुखक्ष देह वस्त्रक्षमें परिधान करते हैं, इस कारण कृत्तिवास; विरेचन-हेतु विरिश्चि; (वृंहण अर्थात्) वृद्धि करते हैं, इस कारण ब्रह्म, अनन्त पेश्वर्थ-अधिपति हैं, इस कारण इन्द्र नाम वड़ा है। इस प्रकार भगवान विष्णुके अनेक नाम हैं।

पूर्णप्रहादर्शनके मतसे भगवान विष्णुकी सेवा तीन प्रकारकी है, अङ्कृत, नामकरण और भजन। इनमेंसे अङ्कृतकी सभी पद्धतियां साकस्यसंहिता-परिशिष्टमें विशेषक्षपसे लिखी हैं। और उनकी अवश्यकर्तव्यता तैत्तिरीयक उपनिपदमें प्रतिपादित हुई है। नारायणके सकादि अख्येंका सिह जिससे सभी अङ्गोंमें सिरकाल विराजित रहे, तसलीहादि हारा वैसा करना. अवश्य

कर्त्तव्य है। दाहि हाथमें सुदर्शनचकका और वाएं में राङ्क्षचिह्न धारण करे। कारण, उन चिह्नोंको देखनेसे भगवानका हमेशा स्मरण होता रहेगा और उससे अभि-लपित फल सिद्ध भी शीध्र होगी। अङ्कनको समी प्रक्तियाएं अग्निपुराणमें भी लिखी हैं, विस्तृत हो जानेके भयसे यहां उनका वर्णन नहीं किया गया।

द्वितीय सेचा नामकरण है। अपने पुत्रादिमें केश-चादि नाम रखने होंगे, क्योंकि इससे भगवान्का नाम-कीर्त्तन हमेशा होता रहेगा। तृतीय सेवा भजन है। यह भजन तीन प्रकारका है, कायिक, वाचिक और मान-सिक। इनमेंसे कायिक भजनके फिर तीन भेद हैं, दान, परिवाण और परिरक्षण। वाचिक चार प्रकारका है—सत्य, हित, प्रिय और खाध्याय अर्थात् शाख्याड वधा मानसिक भी तीन है—द्या, स्पृहा और श्रद्धा। जैसे—

"सम्पूज्य ब्राह्मणं भवत्या शूज्ञीऽपि ब्राह्मणो भवेत्।"

इस वाषय द्वारा यदि शूर भी भक्तिपूर्वक ब्राह्मणकी पूजा करे, तो वह ब्राह्मण हो सकता है अर्थात् ब्राह्मणकी तरह पविकादि गुणविशिष्ट होता है। इसी प्रकार 'ब्रह्मचिद्द ब्रह्में व भवति' यह श्रुति-वाक्य ब्रह्मक और ब्रह्मका अभेद न वतला कर ब्रह्मकानी व्यक्ति ब्रह्मके समान सर्वक्ष-त्वादि गुणसम्पन्न होता है, ऐसा अर्थ वतलाता है। श्रुतिमें 'माया, अविद्या, नियति, मोहिनी, प्रकृति और वासना' इन छः शब्दोंका जो प्रयोग है, उनका अर्थ भगवान विष्णुको इच्छामात है, -ब्रह्में कहा गया है, उसका अर्थ प्रकृष्ट पञ्चमेद है। यथा—जोवेश्वरमेद, जड़ेश्वरमेद, जड़नीवमेद और जीवगण तथा जड़पदार्थका परस्पर मेद। वह प्रयञ्च सत्य और अनादिसिद्ध है।

विष्णुका सर्वोत्कर्ष पृतिपादन करना सभी शास्त्रोंका पृथान उद्दे श्य है। धम, अर्थ, काम और मोक्ष यही चार पृकारका पुरुपार्थ है। इनमेंसे मोक्ष ही नित्य है और सभी स्थायी हैं। अतपव पृथान पुरुपार्थ मोक्षकी यहा पूर्वक पृप्त करना पृत्येक बुद्धिमान व्यक्तिके अवस्य कर्तव्य है। किन्तु मगवान विष्णुके प्रसन्न हुए विना मोक्ष मिछना दुर्लभ है और ज्ञानके विना मगवान विष्णु

पुसन्न हो नहीं सकते। इस ज्ञान शब्दसे विष्णुके सर्वो-त्कर्पज्ञानका वोध होता है। केवल मूढ़ व्यक्ति हो जीव-प्रेरक विष्णुको जीवसे पृथक् नहीं समक सकता, पर जो बुद्धिमान् ध्यक्ति हैं, उनके अन्तःकरणमें विष्णु और जीवका परस्पर भेद है, यह स्पष्टक्तपसे पृतीत होता है।

वहा, इन्द्र आदि सभी देवगण अनित्य और क्षर हैं, तथा छत्त्मी अक्षर-शब्दवाच्य हैं। उन क्षराक्षरोंमेंसे विष्णु प्रधान और लातन्त्राशित हैं तथा विद्यान और सुखादि गुणोंके आधारस्त्रह्म हैं, शेष सभो विष्णुके अधीन हैं। इन सवका सम्यक्षपसे ज्ञान हो जाने पर विष्णुके साथ सहवास और नित्य सुष्का उपभोग होता है।

श्रुतिमें लिखा है, कि एक वस्तु अर्थात् ब्रह्मका तस्त्व-हान हो जानेसे सभी वस्तु जानी जा सकती हैं। इसका तात्पर्य यह, कि जिस प्रकार प्रामस्थ प्रधान व्यक्तियोंको जान लेने पर ब्राम जाना जाता है और पिताको जान लेने पर पुत्र जाना जाता है अर्थात् पुत्रको जाननेकी फिर अपेक्षा नहीं रहती, उसी प्रकार इस जगत्के प्रधान-भूत और पिताके स्वरूप जो ब्रह्म हैं, उन्हें जान सकनेसे ही सभी वस्तु जानी जाती हैं अर्थात् दूसरेको जाननेकी फिर अपेक्षा नहीं रहती, नहीं तो इस श्रुति द्वारा वास्त-विक अभेद नहीं समका जायगा।

अह तमतावलम्बी जो व्यासकत वेदान्तस्त्रका क्रुटार्थ किया करते हैं, वह क्छ भी नहीं है। उन सब स्तोंका इस प्रकार अर्थ करना ही सुसङ्गत है। कुछ स्तोंके यथाश्रुत तात्पर्यका अर्थ लिखा गया। इसीसे समक सकेंगे, कि शङ्करादि-भाष्यमें क्टार्थ हो सन्निवेशित हुआहै।

'अयातो वृद्धानिक्षामा' इस सूतके 'अय' शब्दका आन-न्तर्थ, अधिकार आर मङ्गळ' यही तीन अर्थ हैं।

'अथ शब्दो मङ्गलाथोंऽधिकारानन्तर्यार्थक्व।'

(वेदान्त० मध्व० १।१।१)

फिर 'अतः' इस शब्दका अर्थ है हेतु, यह गरुड़-पुराणके ब्रह्मनारद-संवादमें छिखा है। जब नारायणके प्रसन्न हुए विना मोक्ष नहीं होता, तव ब्रह्मजिङ्गासा अर्थात् ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करना अवश्य कर्त्तव्य है, बही इस स्वका तात्पार्थ है। 'जन्मायस्य यतः' इस स्वमं व्रह्मके लक्षण कहे गये हैं। इस स्वका वर्ष इस प्रकार है—जिनसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार हुआ करता है, जो नित्य निर्दोष, अशेष सद्युणाश्रय हैं वही नारायण ब्रह्म हैं। वैसे ब्रह्मका प्रमाण क्या है ? इस उत्तरमें उन्होंने कहा है, 'शाह्मगोनित्नाव' सभी शाह्म हो निरुक्त ब्रह्मके प्रमाण हैं। क्योंकि, ब्रह्म हो सभी शाह्मोंके प्रतिपाद्य हैं। उस स्वोक्त शाह्म शब्दसे चारों वेद, महाभारत, नारद्पञ्चराव, रामायण और उन सव ब्रन्थोंके सभी प्रतिपोचक ब्रन्थ समक्ता चाहिये। ब्रह्मकी शाह्म-प्रतिपाद्यता किस प्रकार खीकार की जाती है, इस आशङ्का पर वे कहते हैं, 'तत्तु समन्वयात्' सभी शाह्मोंके उपक्रम और उपसंहारमें ब्रह्म हो प्रतिपादित हुए हैं, इस कारण उस आशङ्काका समन्वय भी हुआ है।

विस्तार हो जानेके भयसे सभी नहीं लिखे गये। इस दर्शनका विस्तृत विवरण आनन्दतीर्थ-कृत भाष्य, रामानुज-दर्शन, नारदपञ्चरात आदिमें लिखा है।

रामानुज, मध्व, शंकराचार्य आदि शब्द देखो ।

पूर्णवीज (सं० पु०) पूर्णं वीजंयस्य । वीजपूर, विजौरा नीवू ।

पूर्णभद्र (सं० पु०) १ नागभेद । इसका पुत रत्नभद्र और रत्नभद्रका पुत्र हरिकेश था । २ पक राजपिडत । इन्होंने सोममन्त्रीके आदेशसे १५१४ ई०में पञ्चतन्त्र अन्थ-का पुनः संस्कार किया ।

पूर्णभवा—वङ्गालके दिनाजपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी।
यह ब्राह्मणपुकुर नामक जलासे निकल कर मालदह
जिलेमें महानन्दासे आ मिली है। देपा, नर्ता, शियालइंगा, घाघरा, हानचाकाटाबाल, हरडङ्गा और मीना नामकी इसकी कई एक शाखाएं हैं।

पूर्णमळ--माळवदेशके एक राजा । ये गुजरातराज विशाल-वेचके समसामयिक और १३०० विक्रम-सम्वत्में विद्य-मान थे ।

पूर्णमा (सं० स्त्री०) पूर्णः कलापूर्णश्चन्द्रो मीयतेऽस्यां म-घनर्थे-क-टाप्। पूर्णमासो तिथि, पूर्णिमा। पूर्णमास् (सं० स्त्री०) पूर्णः कलाभिः पूर्णो मास्बन्द्रमा यतः । १ पूर्णिमा । पूर्णं मासं मिमीते मा-असुन् । २ सूर्यं । ३ चन्द्रमा ।

पूर्णमास (सं० पु०) पूर्णमासी पूर्णिमा, साधनत्वेनास्त्य-स्पेति, अव्। १ पौर्णमासयाग, प्राचीनकालका एक याग जो पूर्णिमाको किया जाता था। २ धाताका एक पुत्र जो उसकी अनुमति नामकी स्त्रीसे उत्पन्त हुआ था। पूर्णी मासो यतेषि। ३ पूर्णिमा।

पूर्णमासी (सं क्यो॰) पूर्णमास-गौरादित्यात् छोप्। पूर्णिमा, चन्द्रमासको अन्तिम तिथि, शुक्क पक्षका अन्तिम या पन्द्रहवां दिन।

पूणमुख (सं० पु०) जनमेजयके सर्पसतमें दृष्य नागमेत्, एक नाग जो जनमेजयके सर्पयहामें जलाया गया था। पूर्णमैतायनीपुत—वुद्ध भगवान् के अनुचरोंमेंसे एक। ये पश्चिम भारतके सुरपाक नामक स्थानमें रहते थे। स्त-का अभ्यास करनेवाले बौद्ध इनकी उपासना करते थे। पूणयोग (सं० पु०) बाहुयुद्धभेद। जरासन्धके साथ भीम-ने यही युद्ध किया था।

पूर्णराज--तोमर-वंशोय एक राजा ।

पूर्णवन्धुर (सं० ति०) स्तोतादिको देय धनसे पूरित स्थ द्वारा युक्त ।

पूर्णवपुस् (सं॰ दि॰) पूर्णदेहिवशिष्ट, पूर्णशरीरवाला। पूर्णवर्मन् (सं॰ पु॰) मगधके एक वौद्ध राजा। ये सम्राट् अशोकके शेप वंशघर थे। गौड़राज शशाङ्कने वोधिगयाके जिस वोधिवृक्षको नष्ट कर दिया था, उसे इन्होंने फिरसे सञ्जीवित किया। चीनपरिवाजक यूपनचुअङ्गके भ्रमणवृत्तान्तसे झात होता है, कि उसके आनेके पहले ही वे मगध-सिहासन पर वैठे थे। वोधगयाके शिलादित्य-विहारके समीप इनको प्रतिष्ठित ८० फुट ऊँची बुद्धप्ति के आच्छादनके लिये एक मन्दिरको वात भी उक्त परिवाजकने उल्लेख की है। पुष्पिक हेखो।

२ यबद्वोपचासी एक राजा। ये छठो शताब्दीमें

विद्यमान थे।
पूर्णविराम (सं० पु०) वासकके लिये सबसे बड़े विराम
या ठहरावका चिह्न या सङ्कोत, लिपिप्रणालीमें यह चिह्न
जो वाक्यके पूर्ण हो जाने पर लगाता जाता है। अङ्गरेजी
आदि अधिकांश लिपियोंमें और उन्हींके अनुकरण पर

मराठी आदिमें भीं, यह चिह्न एक विन्दु " ' " के रूपमें होता है। परन्तु नागरी, बंगला आदिमें इसके लिये खड़ी पाई "।"-का व्यवहार होता है।

पूर्णविषम (सं॰ पु॰) ताल (सङ्गीत)-में एक स्थान जो कभी कभी समका काम देता है।

पूर्णवैनाशिक (सं० पुर्) सर्ववैनाशिक, सर्वश्रान्यत्ववादी-बीद्धभेव ।

पूर्णशैल (सं॰ पु॰) योगिनीतन्त्रोहिस्तित एक पर्वत । पूर्णसेन-सरविकत योगशतकके टीकाकार ।

पूर्णहोम (सं० पु०) पूर्णः होमः। पूर्णाहुति। होमके अन्त-में पूर्णाहुती देनी होती है। पूर्णाहुती मृडनामानि होगी। अतपव मृड़-नामक अग्निका आवाहनादि कर यजमान समेत पुरोहित उठ कर उसमें पूर्णाहुति देवें।

पूर्णा (सं स्त्री) पूर्ण-टाप्। तिथि-विशेष। पश्चमी, दशमी, पूर्णिमा और अमावस्या तिथिको पूर्णातिथि कहते हैं इस पूर्णा तिथिमें स्त्रोसंसर्ग नहीं करना चाहिये। वृह-स्पतिवारको पूर्ण तिथि होनेसे सिद्धयोग होता है। सिद्धयोग यातादिमें विशेष प्रशस्त है।

पूर्णा—वरार राज्यकी एक नदी। इसका प्राचीन नाम पयोष्णी है। यह सतपुरा पहाड़से निकल कर तासी नदी-में था मिली है। काटापूर्ण, मूर्णा, मान, धान, शाहनूर, चन्द्रभागा और वान नामकी इसकी कई एक शाखा हैं। वरारके अन्तर्गत पूर्णासैकतमें प्रचुर और उत्कृष्ट कपास उपजता है।

पूर्णां घात (सं॰ पु॰) ताल (संगीत) में वह स्थान जो अनावातके उपरान्त एक मालाके वाद आता है। कभी कभी यह स्थान भी समका काम देता है।

पूर्णाङ्गद (सं० पु०) एक नाग ।

पूर्णाञ्जलि (सं० वि०) अञ्जलिपूर्ण, अञ्जलि भर, जितना अञ्जलिमें आ सके।

पूर्णानक (सं० क्लो०) पूर्णालक, पूर्णपात ।

पूर्णानन्द (सं० पु०) पूर्णं भानन्दो यह । १ परमेश्वर । २ तन्त्रप्रकरणकार चिद्वन्ते व ।

पूर्णानन्द—१ महावाक्यार्थप्रवन्ध, योगसंप्रह्टीका, श्रृति-सार, श्रुतिसारसमुखय और सुरेश्वरवात्तिकटीका आदि प्रन्थरचिताके नाम। एक ही व्यक्तिने उल्लिखित पांच पुस्तकों वनाई थीं, यह दीक नहीं कहा जा सकता।

Vol. XIV, 73

शेष्य थे, इसीलिए पूर्णचन्द्राक्षम नामसे प्रसिद्ध हुए।
३ पर्चक्रनिक्षणविक्षणक्षपञ्चाशिका-टीकाके रचिवता।
पूर्णानन्द कविचक्रवर्ती—विख्यात दाशीनिक। थे नारायण
महके शिष्य थे। इन्होंने तत्त्वमुक्तावली, मायावादशतदूषणी, तत्त्वाववीधटीका (सांख्य), योगवासिष्ठसारटीका और शतदूषणीयमन नामक कई एक प्रन्थ प्रणयन
किये। जनसाधारणमें थे गौड़पूर्णानन्द नामसे परिचित थे।

पूर्णानन्द चकवत्तीं एक संस्कृतवित् परिडत । इन्हेंनि सुन्दरीशक्तिदानटीका, श्यामारहस्य, तन्तानन्दतरङ्गिणी, तत्त्विन्तामणि और षद्चकप्रकरण आदि कई एक प्रत्थोंकी रचना की ।

पूर्णानन्दतार्थं—एक प्रसिद्ध टीकाकार । इन्होंने अद्धेत-मकरन्दटीका, अन्तःकरणप्रवीघटीका, अवध्वगीताटीका, अधावकगीताटीका, आत्मकानीपदेशटीका, आत्मानात्म-विवेकटीका, आत्माववीघटीका और दक्षिणासूर्तिस्तीत-टीका आदि प्रन्थ वनाये।

पूर्णानन्दनाथ—एक ग्रन्थकार । पूर्णानंदपरमहं स देखो ।
पूर्णानन्दपरमहंस—एक विख्यात पिएडत । ये ब्रह्मानन्दपरमहंसके शिष्य थे । इन्होंने ककारादि-कालीसहस्रनाम, कालिकादिसहस्रनामस्तुतिरत्नदीका, कालिकारहस्य, गद्यवल्लरी, तत्त्वचिन्तामणि (१५७७ ई०में रचित),
तत्त्वानन्द्तरिङ्गणी, वामकेश्वरतन्त्रमें महातिपुरसुन्दरीमन्त्रनामसहस्र, शाक्तकम (१५७२ ई०में), स्यामारहस्य,
पर्चक्रकम वा पर्चक्रप्रभेद, सुमगोदरव्षण और ब्रह्मानन्दस्त षर्चक्रदीपिकाको एक टीका प्रणयन की।

पूर्णानन्दब्रह्मचारी—पक कवि । कवीन्द्रचन्द्रीद्यमें इनका उक्लेख है।

पूर्णानन्दसरस्रती तत्त्वविवेकसिद्धान्ततत्त्वविन्दुरीका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये पुरुषोत्तमानन्द तथा अद्वैता-नन्द यतिके शिष्य थे।

पूर्णामिषेक (सं॰ पु॰) पूर्णः अभिषेकः । तन्त्रोक्त कौला-भिषेकभेद, महाभिषेक । तन्त्र शब्द देखो ।

पूर्णामृता (सं० स्त्री०) चान्दकी सोलह कलाओंका नाम । पूर्णायु (सं० स्त्री०) पूर्णायुस् देखी । पूर्णायुस् (सं० पु०) १ प्राधेय पन्धर्वभेद । पूर्णमायु-रस्य । २ शतायुक्त, सौ वर्षको आयुवाला । (क्की०) ३ शतवर्षमित जीवनकाल, सौ वर्ष तक पहुंचनेवाला जीवनकाल । (लि०) ४ पूरी आयुवाला । पूर्णालक (सं० क्की०) पूर्णपाल । इसका पाठान्तर 'पूर्णा-नक्त' ऐसा भी देखनेमें आता है। पूर्णपात्र देखी । पूर्णावतार (सं० पु०) पूर्णः अवतारः । १ घोड्श कला-युक्त अवतार, किसी देवताका सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त अवतार । विष्णु भगवानके पूर्णावतार नृसिंह, राम और श्रोकृष्ण हैं। अन्यान्य अवतार कलावतार हैं।

"पूर्णों नृसिंहो रामश्चं श्वेतद्वीपविराख्विसुः। परिपूर्णतमः कृष्णो चैकुण्डे गोछोके खयं॥" (ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रोक्तष्णजनमस० ६ अ०)

२ विष्णुके वे अवतार जो अंशावतार नहीं थे। वैत्यावगण गौराङ्गदेवको विष्णुका पूर्णावतार मानते हैं। फिर किसीके मतसे वे अंशावतार हैं। वंतन्य शब्द देखे। पूर्णाशा (सं० स्त्रो०) नदीभेद, एक नदीका नाम। पूर्णाश्रम—पूर्योगसारणो नामक प्रन्थके पूर्णता। पूर्णांद्वति (सं० स्त्रो०) पूर्णा आहुतिः। होमसमाप्तिमें अन्तिम आहुति। पूर्णंशम देखे। पूर्णिमा, पूर्णमासी। पूर्णिका (सं० स्त्रो०) पू-निङ्। पूर्णिमा, पूर्णमासी। पूर्णिका (सं० स्त्रो०) नासाच्छिनी नामक पक्षी, एक चिडिया जिसकी चोंचका दोहरी होना माना जाता है। पूर्णिमन (सं० स्त्रो०) मरीचियुका। पूर्णिमा (सं० स्त्रो०) पूर्णिः पूरणं, पूर्णि मिमीते इति माक्त-टाप्। पश्चदशीतिथि, पूर्णमासी। पर्याय—पीर्णमासी, पित्राः, चान्दों, पूर्णमासी। पर्याय—पीर्णमासी, पित्राः, चान्दों, पूर्णमासी, अनन्ता, चन्द्रमाता,

देवीपुराणमें लिखा है, कि पूर्णिमा दो प्रकारको है, राका और अनुमती। जिस पूर्णिमामें कलान्यून चन्द्रमा सूर्यास्तसे कुछ पहले उदय होता है, वह पूर्णिमा अनुमती कहलाती है। यह पूर्णिमा अर्थात् चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा देविपतरींकी अनुमत है, इसिल्पे इसका नाम अनुमती है। सूर्यास्तके बाद अथवा सूर्यास्तके साथ साथ जिस पूर्णिमामें पूर्णचन्द उदय होता है, वह पूर्णिमा राका कहलाती है। चन्द्रको रजनकारिका होनेके कारण शेव पूर्णिमाका नाम राका पड़ा है।

निरञ्जना, ज्योत्स्त्रो, इन्दुमती, सिता।

परिपूर्णमण्डलके साथ चन्द्र जिस तिथिमें उद्दय होता है, वही दिन पूर्णिमा कहलाता है।

"कालक्षये व्यतिकान्ते दिवापूणौं परस्परं। जन्द्रादित्यौ पराह्रे तु पूर्णस्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥" (कालमाधवीय)

तिथितत्त्वमें इसकी व्यवस्था आदिका विषय इस प्रकार लिखा है चतुदशींयुक्त पूर्णिमा ही प्रशस्त है। चतुदशींके साथ पूर्णिमाका युग्माव्दवंशतः चतुदेशो पूर्णिमा हो दैव वा पैतकभेमें आदरणीय है।

अमावस्या वा पूर्णिमामें गङ्गादितीर्थमें स्नानादि करनेसे यमपुरका दर्शन नहीं होता है।

पूर्णिमा तिथिमें यदि चन्द्र और वृहस्पतित्रहका योग हो, तो उसे महापूर्णिमा कहते हैं। इसमें स्नानदानादि करनेसे अशेय फलप्राप्ति होतो है।

यदि वेशाखमासकी पूर्णिमातिथिमें देवता, यम और पितरोंका मधुसंयुक्त तिल द्वारा तर्पण किया जाय, तो जन्मकृत्समी पाप दूर होते हैं और दश हजार वर्ष तक खर्गलोकमें गति होती हैं।

महाज्येष्ठी पूर्णिमा—ज्येष्ठमासको पूर्णिमा तिथिके ज्येष्ठानस्त्रमें यदि वृहस्पति और चन्द्रग्रह रहें और इस दिन यदि गुरुवार हो, तो महाज्येष्ठी होती है। ज्येष्ठा वा अनुराधानस्त्रमें वृहस्पति और चन्द्र रहनेसे तथा रोहिणो नक्षत्रमें रवि और गुरुवार नहीं होनेसे भी यह योग होता है।

ज्येष्ठ नामक सम्बत्सरमें ज्येष्ठमासकी पूर्णिमां तिथिमें ज्येष्ठानस्त होनेसे महाज्येष्ठी होतो है। जिस वर्षमें मूला वा ज्येष्ठानस्त्रमें वृहस्पतिका उदय वा अस्त होता है, उसी वर्षका नाम ज्येष्ठसम्बत्सर है।

महाज्येष्ठो पूर्णिमामें पुरुषोत्तमके दर्शन करनेसे विष्णु-लोक पास होता है और गङ्गास्नानसे मोक्ष मिलता है।

माध और श्रामणमासको पूर्णिमा तिधिमें श्राद अवश्य कर्त्तव्य है। यदि यह तिथि दोनों दिन रहे, तो किस दिन श्राद्धादि होंगे उसको व्यवस्था इस पुकार है—यदि पूर्व दिन सङ्गव वा रोहिणो लाग हो, तो पूर्व दिन और यदि दोनों दिन सङ्गवकाल रहे, तो दूसरे दिन श्राद्ध करना बाहिये। स्वोदवक बाद तीन सुहत् प्रातःकाल, इसके वाद तीन मुद्धर्चका नाम सङ्गव है। आवाद, माघ और कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिमें यथाशिक दान करना चाहिये। फाल्युनकी पूर्णिमाको दोलपूर्णिमा कहते हैं। इस दिन श्रीकृष्णका दोलारोह-

णोत्सव सर्वोको करना चाहिये। आश्विन मासकी पूर्णिमामें कोजागरी छक्ष्मी-पूजा करना उचित है।

इसकी व्यवस्थादिका विषय कोजागरी शब्दमें देख । कार्त्तिकमासकी पूर्णिमामें रासोत्सव सर्वोंको करना उचित है। पूर्णिमा तिथिकी गिनती पर्वोंमें है, इस लिये इस दिन स्त्री-सम्भोग और तैलमांसादि वर्जनीय है। फाल्यनमासकी पूर्णिमा मन्वन्तरा है; इसमें कानदानादि

करनेसे अक्षय फंल पाप्त होता है। अमानश्या देखी।

पूर्णिमा तिथिमें जन्मश्रहण करनेसे कन्दर्पतुल्य कप-वान, युवतीपिय, वलवान, शास्त्रमें सुनियुण, सर्वदा पुकुल्लिक्त और न्याय द्वारा वियुक्त धन उपार्जन करता है।

"क्रन्दर्पतुल्यो युवतीपियश्च न्यायाप्तवित्तः सततं सहर्यः । श्रुरोवली शास्त्रविचारदक्षश्चेत् पूर्णिमा जन्मिन यस्य जन्तोः ॥" (कोष्टीप्॰)

पूर्णिया—विहार प्रान्तके भागलपुर विभागान्तर्गत एक जिला । यह उक्त विभागके उत्तर-पूर्व अक्षा॰ २५ १५-से २६ ३५ उ० और देशा॰ ८७ २ से ८८ ३५ पू०-के मध्य अवस्थित है । इसके उत्तरमें नेपालराज्य और दार्जिलिङ्ग, पूर्वमें जलपाईगूड़ी, दिनाजपुर और मालदह, दक्षिणमें गङ्गानदी और पश्चिममें भागलपुर जिला है। भूपरिमाण ४६६४ वर्गमील है। पूर्णिया नगर ही इसका सदर है।

यहांके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें विशेष कुछ भी नहीं जाना जाता है। किरान्तीजाति (किरात)की कत्यना(१) और पुराकत्यित-गल्पसमूहमें आर्थ (हिन्दू) और अनार्थ किरातोंका युद्ध तथा पराभव वर्णित है। कोशी और करतोया नदीके उत्तर तथा पूर्व तीर पर किरात, कीचक आदि अनार्यजातिका वासस्थान देखनेमें आता है। उक्त वंशीय सरदारगण अपनेको 'राइ' शाखासुक राजपूत बतलाते हैं। किन्तु कोई कोई इन्हें कोचवंशोन्सवके जैसा अनुमान करते हैं।

मुसलमानोंके आगमनसे यहांके प्रकृत इतिहासका स्वापाव हुआ। महम्मद-इ-विद्यापने जिस समय बङ्गाल पर बढ़ाई की थी, उस समय इसका कुछ अंश नदीयाराज लक्ष्मणसेनके अधिकारभुक्त था। सुना जाता है, कि मुसलमान-कवलसे खदेश-रक्षाके लिए उक्त राजाने भागलपुरके निकटस्थ वीरवांध वनवाया था। १३वीं शताब्दीमें यह जिला बङ्गालके मुसलमान-शासनकर्तांके अधीन हुआ।

१७वीं शताब्दीके मध्यंकाल तक इस जिलेका और कोई उल्लेख नहीं देखा जाता है। यहां तक कि, एक फौजदारका नाम भी नहीं मिलता। वंगालके अफगान-शासनकर्त्ता शेरशाहके साथ जव दिल्लीध्वर हुंमायून्का युद्ध हुआं था, तव सम्राट्की सहायताके लिए यहांसे चंदा वसुल किया गया था । १७वीं शताब्दीके अन्तमें अस्तवल खाँ फौजदार नियुक्त हुए। वाद उन्होंने नवाव-की उपाधि छाभ कर राजस्तसंब्रह (अतीन)-का कार्य-भार प्रहण किया। इनके वाद अवदुल्ला खाँ १६८० ई०में असफन्दियर लाँ पूर्णियाके नवावपद पर नियुक्त हुए। वारह वर्ष शासन करनेके वाद भवनीयर खाँ उनके पढ पर अधिष्ठित हुए। १७२२ ई०में भवनोयरके मरने पर सैफ खाँने शासनक कुरव ब्रहण किया । अपने वंश-गौरवमें मत्त रह कर उन्होंने यथार्थमें पूर्णियाके नवावी-पदको गौरवस्थल वना दिया था। वंशमर्यादामें अपने को उच्च जान कर वे बङ्गालके नवाव मुर्शिर्दकुली खाँकी पीसी निफसा बेगमसे विवाह करनेमें कुएिठत हुए थे।

पूर्णियाके सिंहासन पर अधिष्ठित हो कर उन्होंने नेपाल सीमान्त पर चढाई कर दी और 'तराई' नामक स्थानको जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। १७३१ ई॰में उन्होंने चीरनगरके जमींदार चीरणाह पर भी आक-मण कर उनके अधिकृत धर्मपुर आदि चार परगने जीत लिए।(२)

^{ं (}१) क्रव्याग्डवका युद्ध और किरात-पराभवादि यहांके अधिवासियोंके सम्बन्धमें प्रयम बल्केखयोग्य पटना है।

⁽२) ये एक प्रसिद्ध सनिक पुरुष ये इनके पहुले उन्होंने उन्नारा-के शासनकालमें कितनी ही डवीसा-रमणियोंके प्रति अस्यासार

सैफ खाँकी मृत्युके बाद यथाकम आंबेद और बहादुर खांने पूणि याके मसनद पर अधि-कार जमाया। वहादुरको पदच्युत कर उनके पद पर अलीवदींके जामाता सौलत्जङ्ग नियुक्त किये गये। इनका दूसरा नाम सैयद अहमद था। १७५७ ई०में ये इस लोक-से चल बसे। बाद उनके एकमान पुत्र सकतजङ्ग पित्-सिहासन पर अधिरूढ़ हुए। सकत नीच प्रकृतिके मनुष्य थे। राज्यवासी और पूर्वंतन राजकर्मचारिगण उनके कडोर व्यवहारसे उत्त्यक हो उदे । इधर सकत पूर्णियाने सिंहासन पर बैठ कर अत्याचारसे देशको ध्वंस कर रहे थे, उघर दुव् त सिराज बङ्गालका मसनद पा कर राज्यवासी प्रधान प्रधान मनुष्योंके कुलमान विसर्जनमें कतसङ्करप हुए थे। मृत अजीवदींके इन वी दीहिलान पूर्णकपसे उनका मुखोउज्वल किया था। सिराजने वक्सी मीरजाफर खाँको पदच्युत कर दिया। अपमान-विषसे जर्जेरित मीरजाफर प्रतिहिंसाके लिए पूर्णिया गए और बङ्गालके मस्नद पर अधिकार करनेके लिए सकतको कुमन्तणा दी। प्रलुग्ध हृद्यमें आशाहणी अग्नि जल उठी। वे अपने भाईके दोष द्वंढने लगे।

सिराजको जब इस षड्यन्त्रका पता लगा तव वे युद्धकी तैयारो करने लग गये (३)। राजा मोहनलाल सिराजके इलवलको ले कर आगे वढे। काकजोल परगनेके बहियावाड़ी नामक स्थानमें दोनों दलमें मुठभेड़ हुई। मूर्क सकतने किसीकी न सुनी, बरन कोधान्य हो कर वड़े श्वर पर आक्रमण करनेके लिए हुकुम दिया। जलाभूममें उनकी अश्वारोही सेना भूमि सात् हो गई, किन्तु कायस्थ कुल-गौरव श्यामसुन्दरने अपनी अधीनस्थ कामानवाही

सेना छे कर अंसीम वीरत्यका परिचय दिया था। युद्ध-क्षेतमें सकत मारे गए और उनकी सेनाने भाग कर नगर-में आश्रय छिया। विजयी सेनाने दो दिनके वाद ही नगर पर भी दखल जमाया। सकतके वाद राय मेकराज खाँ, हाजिर अछी खाँ, कादिर हुसेन खां, अल्लाकुली खाँ, शेर-अली खाँ, सिपाहीदार जंग, राजा सुचेतराय, राजीन्दीन महम्मद खाँ और मुह्म्मद अली खाँ आदिने यथाक्रम शासनभार प्राप्त किया। १७९० ई०में मुह्मदको एद-च्युत कर मि० डुकारेल (Mr Ducarrel) प्रथम अङ्ग-रेजराजपरिचालक (Superintendent)-के क्यमें नियुक्त हुए।

स्थानीय जलवायु उतना खराव नहीं है। मोति-हारीके निकटवर्तीं छोटे पहाड़ और नेपाल-सीमान्तवर्ती क्रमोचनित्र भूमिके सिवा प्रायः सभी स्थान समतल हैं। एतद्भिन्न कोशो, कालाकोशो, पनार और महानन्दा आदि गङ्गाकी चार शाखा नदियां (४) जिलेमें प्रवाहित हैं। इस कारण यहांकी उर्वरतामें विशेष हानि नहीं होता। कोशी नदी पूर्वगतिका परित्याग कर और भी पश्चिमको वह र है है। बालुकामध गड्डे जहां तहां दे हैं। वर्षा-कालमें उसमें सामान्य धारा चलती है। कोशी और महानन्दामें वाणिज्यं-द्रव्य हे कर था जा सकते हैं। यहां चावल, तम्बाकू, पाट और नीलकी अच्छी खेती होती है। उक्त निदयोंके अलावा यहां लगभग ५८ सुविस्तृत जला-भूमि हैं जिनका जल दावण प्रीप्पमें भी नहीं सुलता। कोटायुरका भील १० हजार बीघा और शक्ति भील प्रायः ४ मील विस्तृत है। इनको देखने हीसे एक वड़ा हद सा प्रतीत होता है। जिलेके पश्चिममें खेतीवारीका कोई

किया था । इस कारण अकत देशवासियोंने इनके विरुद्ध अनका पूर्णियाशासन मुल्लिनना और स्वायप्रतापूर्ण था।

⁽३) दलवल हे साथ सिरान आतुरमनके लिए राजमहल तह अप्रवर हुए। उसी समय कलकते में इष्ट्रिया कम्पनी-के क्रमें नारियों के औदस्यकी स्वर पा कर ने ससैन्य कलकते को लीडे। इसके नाद अन्यकृत (the Black Hole;-का इत्याका गुरु स्वित होता है।

⁽⁸⁾ इन चार निवर्गिकी और भी प्रशाखाएँ हैं,-कोशी (इसका दूसरा नाम कीकिकी है। यह लाधिराज करिकिश कन्या और मुनिप्तनी थीं, बाद ऋषि-प्रार्थनासे सित्रला हुईं;)—नागरभार, मणेहरण और राजमोहन ; कालाकोशी — सौरा ; पनार—बाकडा, पर्नाण ; महानन्दा--वाहिनी और पितान, बंक, कोंके।ई और बाई शोर बतुआ, मेछ यमुना, बृत्रियंगा, चेंपा, बलाइन । इनके भलावा और भी होटी होटी नहियां हैं।

चिह्न नहीं दिखाई पड़ता, केवल गोचर-भूमि हो नजर आती हैं। इसमें ग्वाले अपनी स्त्रियोंके साथ गाय, भेंस चराते हैं। इन सब 'रायना' जमीनका कर देना पड़ता है। गङ्गाके किनारे और धमेंपुर परगनेमें दरमङ्गा-महाराजकी जो जमींदारी है, उसकी गोचारण-भूमिका खजाना नहीं लगता, सिफें गो-महिदादि चरानेका खजाना देना पड़ता है।

यहांके आदिम अधिवासियने वहुत कुछ अंश हिन्दुधर्म ग्रहण किया है। वे स्थानीय ब्राह्मण, कायस्थ या राजपूतके क्रियाकलायका विशेष अनुकरण करते हैं। यहांकी जनसंख्या १८७४७६४ है जिनमें हिन्दुओंकी संख्या ही सबसे अधिक है और मुसलमानोंकी इससे कुछ कम । इसके अलावा अग्रोरी, अतिथ, वैष्णव कवीरपन्थी, नानकशाही, संन्यासी, सिख, सुफाशाही और ईसाई आदि सम्प्रदायभुक्त मनुत्र्य भी देखनेमें आते हैं। इस जिलेके चार उपविमागमें पूर्णिया, बंशगांव, शीतलपुर-खास, कृष्णगञ्ज (किशनगंज), रानीगंज, भरतगांव और कसवा नामक ७ प्रधान नगर और कई एक गएडव्राम भी हैं। इस जिलेमें पूर्णिया सदर, किशनगंज और प्रधान रेलवे जंकशन कटिहार, ये तीन शहर ही लगते हैं। इस जिलेका पूर्वी भाग ही उपजाऊ और वृक्षोंसे हरा भरा दिखाई पड़ता है और पश्चिमी भाग बालुकामय ही है। यहां वने जङ्गल तो नहीं हैं किन्तु आमके पेड़ तथा अन्यान्य पेड़ पौधे वहुता-यतसे पाये जाते हैं जिनमें जंगली सुअर, भैंसे, चीता और और कमी कमी वाघ भी मिलते हैं। जिलेमें वर्षा प्रजुर परिमाणमें होती है, इस कारण गङ्गा, कोशी आदि अन्यान्य छोटी छोटी निदयोंकी वाढ्से फसलमें हानी पहुं चती है।

बङ्गालको तरह यहां पर्याप्त परिमाणमें धान उपजता है, पाट और तम्बाक् इसकी अपेक्षा कम । दलहन और तेलहन अनाजकी खेती भी बहुत देखी जाती है। विशेषतः सरसों और तीसी बहुत होती है। उत्तरमें उत्तम पाट और दक्षिणमें नील उपजता है। बाढ़की बजहसे फसल कम नहीं लगती, किन्तु अनावृष्टि होनेसे मारी अकाल पड़ जाता है। १७९० ई०में यहां जो अकाल पड़ा था Vol. XIV. 74 उसमें सैकड़ों मनुष्य मरे थे। १७१८ और १८७४-ई०में इसी प्रकार दो बार फसलमें हानी हुई थी, किन्तु भारो अकाल नहीं पड़ा था।

दक्षिणमें नीलप्रस्तुत करना जिस प्रकार निम्न श्रेणीके अधिवासियोंकी प्रधान जीविका है, उत्तरमें उसी प्रकार पाटसे चट और थैली तैयार करनेका चिस्तृत कारवार है। तांवे और जस्तेके साथ 'विद्री' नामक उपधातुको मिला कर यहां हुका, थाली और जलपात बनाया जाता है। कारीगर लोग उस पर कपेका फूल आदि कारकार्य गढ़ कर उसे बेचते हैं। इसके सिवा स्ती वा पशमीने कम्बल, सिन्दूर, चूड़ी आदि प्रस्तुत करना ही यहांकी खियों और पुरुषोंका व्यवसाय है। किशनगंजमें कागजिया नामक प्रायः तीस चालीस घर मुसलमान है जो मुनियासी और कोष्टा पाटको कूट कर कागज प्रस्तुत करते और उसोसे अंपनी जीविका चलाते हैं।

यहांसे चावल और अन्यान्य खाद्य अन्न, पाट, तेलहन (प्रधानतः सरसों) और तम्बाकृकी रक्षनी तथा दिनाज-पुरसे चावल और धान, कलकत्तेसे खाद्य पदार्थ, चीनी, नमक और किराशन तेल, युक्तप्रदेशसे कपड़े, चीनी और कोयलेकी आमदनी होती है। फारवीसगंज, रानीगंज, कसवा, पूर्णिया, कटिहार, वारसोइ, किशनगंज और खरखरी ये ही व्यवसायके केन्द्र हैं। उक्त कई एक जगहोंमें रेलपथके कारण विशेष खुविधा भी है। नेपालसे जो वाणिज्य व्यवसाय होता है, वह अकसर बैलगाड़ी, कुली अधवा बैलों पर लाद कर ही होता है।

यह जिला सदर पूर्णिया, किशनगंज और वसन्तपुर नामक तीन सविविजनोंमें वांटा गया है । यह जिला कलकृरके अधीन है, उनकी मददके लिए और भी पांच कर्मचारी हैं। यहां कुल पांच दीवानी अदालत मुन्-सिफके अधीन हैं। इनमेंसे दो किसनगंजमें और वाकी पूर्णिया, वसन्तपुर और किटहारमें रहते हैं। उक्त तीन शहरोंमें यथाकम दो, पांच और यक फीजदारी अदालत भी है। यहांका राजस कुल बारह लासके लगभग है। सदर पूर्णिया और किशनगञ्जमें स्यूनिसिपलीटी है और अन्यान्य जगह डिश्निषट-वोड द्वारा प्रवन्ध होता है। कुर- ें सेलाके समीप कोशो नदीमें रेलवेपुल है और महानन्दामें भी बारसोईके पास एक सुन्दर पुल है।

इस जिलेमें शिक्षाका प्रचार वहुत कम देखा जाता है। जिले भरमें कुल १०८४ विद्यालय हैं जिनमेंसे १६ सेके-एडरी, ६१८ प्राइमरो और १५० अन्यान्य स्कूल हैं। जिलेमें लगभग १७ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेका उपविभाग । यह अक्षा० २५ १५ से २६ ७ उ० और देशा० ८७ से ८७ ५६ प्०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २५७१ वर्ण मोल है। यहांकी जमीन बहुत ही नीची और सई है, आवहवा भी अच्छी नहीं है; इस कारण यहांकी जनसंख्या बहुत थोड़ी है। इसमें इसी नामका एक शहर, प्रधान रेलवे जंकशन किट हार और कुल १५२८ ग्राम लगते हैं। यहां पूर्णिया, किटहार, कसवा, फुलवरिया, इछामती और वारसोई नामके मशहूर वाजार हैं। यहांके काढ़ागोला नामक स्थानमें एक हाट भी लगती है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-विगागका सदर। यह सौरा नदीके पूर्व किनारे अक्षा० २५ ं ४६ ं उ० श्रीर देशा० ८७ ं २८ ं पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगमग १५ हजार है। यहांका रथान अखास्थ्यकर है। पश्चिम उपकण्ठवसीं पूर्वतन रामवागकी राजधानी अभी पूर्णिया नगरके अन्तर्भु के हुई है। पाचीन कालाकोशीको खाई और अन्यान्य कारणींसे यहांकी जनसंख्या दिनों दिन कमतो जातो है। यहां एक कैद-खाना भी है जिसमें २५० कैदी रह सकते हैं। कैद-खानेमें कम्बल, दरी और नेवार आदि प्रस्तुत किये जाते और वाजारोंमें वेचे जाते हैं। इस नगरमें पाटका भी भारी कारवार है।

पूर्णेन्दु (सं० पु०) पूर्ण इन्दुः कर्मघा०। पूर्णिमाका चन्द्र, पूर्णचन्द्र।

पूर्णेया—महिसुर राज्य-सचिव। ये 'दीवान-पूर्णेया' नाम-से प्रसिद्ध और जातिके ब्राह्मण थे। १७६६ ई॰में मुसल-मानराज टीपू सुलतान जव श्रोरङ्गपत्तन-अवरोघमें मारे गये, तब महिसुर-राज्य अङ्गरेजोंके हाथ लगा। अङ्गरेज-राजने पूर्वतन राजवंशीय चमराजपुत कृष्णराजको सिहा-सन पर विठाया। वालकराजको नावालिगीमें (१७६६-

१८१० ई० तक) राजकार्यकी देख-रेखके लिये ये ही सिविव नियुक्त हुए । वक्षुल्जा छोड़ कर इन्होंने जिस वक्षताके साथ राजकार्य चलाया, कि उससे थोड़े ही दिनोंके मध्य राजकीव पूर्ण हो गया । खर्य अङ्गरेज-राज ही इनकी निरपेक्षता, परिमाणदर्शिता और न्याय-परता देख कर चमत्कृत हुए तथा उनकी की हुई कार्या-वली पर प्रसन्न हो कर पारितोषिक-स्वरूप १८०७ ई०में एक जागीर दान दी। आज भी उस तालुकाका इनके वंशघर भोग करते हैं। ये महिसुरके अङ्गरेजप्रतिनिधि क्रोज साहव (Sir Bary Close) के नाम पर क्रोजियेट और अपने लड़के श्रानिवासके नाम पर श्रीनिवासगुर नामक एक नगर स्थापित कर गये हैं।

पूर्णोत्कट (सं० पु०) प्राच्यदेशस्य पर्वतभेद, मार्कण्डेय पुराणमें वर्णित एक पूर्वदेशीय पर्वत ।

पूर्णोत्सङ्ग (सं० पु०) १ अन्ध्रवंशीय एक राजा। (ति०) २ पूर्णकोड्देश, जिसको गोद भरी हो। पूर्णोद्स (सं० स्त्री०) देवीविशेष।

पूर्णोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारमेद, उपमा अलङ्कार-का वह मेद जिसमें उसके चारों अङ्ग सर्पात् उपमेय उपमान, वाचक और धर्म प्रकट रूपसे प्रस्तुत हों। पूर्त्त (स० क्ली०) पृ.पालने भावे क (न प्रव्यापृमू कि स्मर्ता। पिपित्ति वा ८१२ ५७ इति निष्ठा तस्य न नत्वं। १ पालन। पिपित्ति पालयत्यनेन जीवानिति क। २ खातादि कर्म, स्रोवने अथवा निर्माण करनेका कार्य।

पुष्करिणी, सभा, नापी, देवगृहादि और आराम, ये सव काम पूर्च कर्म कहलाते हैं। पुष्करिणीखनन, रास्ता प्रस्तुत करना भी प्रकार्ण है। यह प्रांकार्ण विशेष पुण्यप्रद है। ब्राह्मणोंका यह प्रथम धर्मधन है। यदि कोई प्रांकार्ण नहीं करके अर्थात् पुष्करिणी बादि प्रस्तुत न कर क्यवापी आदि खोदवाते हैं, तो उससे मी प्रसंकर्मकी तरह फल मिलता है। प्रकार्म द्वारा मोक्ष लाम होता है।

"ब्हापूर्तं द्विजातीनां प्रथमं धर्मसाधनं । इच्छेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षञ्ज विन्दति ॥ वापीकूपतड़ागानि देवतायतनानि च । पतितान्युद्धरेषु यस्तु स पूर्तं फलमञ्जूते ॥" (बराह्यु॰)

ं द्विजातीनां इष्टापूर्तं, इस वचनानुसार द्विजातियोंके लिये ही इष्टापूर्य विहित हुआ है शूर्ज़ेका अधिकार :नहीं, ऐसा ही समभा जाता है। किन्तु ऐसा नहीं है। वचनान्तर द्वारा स्त्रो और शूद्र दोनोंको हो पूर्च-कर्मका अधिकार है।

(ति०) २ पृ-कर्मणि-क । ३ पूरित । ४ छन्न, आच्छा-दित, ढका हुआ। पूर्त विमाग (सं० पु०) इमारतादि निर्माण और खननादि कार्यमें नियुक्त राजकीय विभाग, वह सरकारी विभाग या मुह्कमा जिसका काम सङ्क, नहर, पुल, मकान आदि वनवाना है। इसे Public works Department भी कहते हैं।

पूर्ति (सं स्त्री) पृ-भावे कि । १ पूरण, भरनेका भाव। २ गुणन, गुणा करनेका भाव । ३ किसी आरम्भ किये हुए कार्यंकी समाप्ति । ४ पूर्णता, पूरापन । ५ किसी काममें अपेक्षित बस्तुकी प्रस्तुति, किसी काममें जो वस्तु चाहिषे उसकी कमीको पूरा करनेकी क्रिया। ६ बापी, कूप, तड़ाग भादिका उत्सर्ग ।

पूर्तिकाम (सं० ति०) पूर्तिः धनादि-पूरणं कामो यस्य। धनादि पूरणामिलाषी ।

पूर्त्तिन् (सं० वि०) पूर्तिमनेन पूर्ते-इनिः (इष्टादिभ्यश्व । पा ५। २८८) १ तुप्तिप्रद्, तुप्ति ईनेवाला । २ इच्छापूरक, इच्छा पूर्ण करनेवाला। ३ पृरित। (पु॰) ४ श्राद्ध। पूर्वार (संक्क्षीक) पुरः द्वारं। पुर या नरकका द्वार, गोपुर।

पूर्पति (सं पु १) पुरः पतिः। पुरका पति, नगरका खामी।

पूर्व (हिं पु) १ पूर्व देखों। (बि) २ पूर्व देखों। पूर्वभक्षिका (सं० स्त्री०) प्रातराश, प्रातःकाल किया जाने-वाला भोजन, जलपान ।

पूर्मिद् (सं० ति०) असुरपुरमेद्क ।

'पूर्मिच (सं० क्ली०) संग्राम, युद्ध।

पूर्व (सं वि) प्रमयप्, पूर-ण्यत् वा । १ पूरणीय, पूरा करनेयोग्य अथवा जिसे पूरा करना हो। २ पालनोय। (पु॰) ३ तृणवृक्ष, एक तृणधान्य ।

पूर्व (सं० ति०) पूर्व-निमन्त्रणे, निवासे वा अच्।१ पूर्वकाष्ट्रा (सं० ख्री०) पूर्व काष्टा। पूर्वदिक, पूर्व दिशा।

प्रथम, आदि, पहलेका। २ समग्र, सम्चाः। ३ अप्र, अगला, आगेका। ४ ज्येष्ठ, वड़ा। ५ पुराकालीन, प्राचीन, पुराना । ६ पत्र्वाहर्त्ती; पिछला । दिक्, देश और काल-वाचक अर्थमें यह शब्द सर्वनाम है, तिलिङ्गमें इसका सर्व शब्दकी तरह शब्दरूप होगा । जहां पर सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी, वहां नर शब्दकी तरह रूप होगा।

(पुं॰) ७ वह दिशा जिस ओर सूर्य निकलता हुआ-रिखलाई देता हो, पश्चिमके सामनेकी दिशा । ८ जैन-मतानुसार सात तीछ, पांच खरव, साठ अर्व वर्षका एक काल-विभाग। (अव्य०) ६ पहले, पेश्तर)

पूर्वंक (सं॰ पु॰) १ पूर्वंज, पुरवा, वापदादा । (अञ्य॰) २ सहित, साथ । इस अर्थमें यह शब्द प्रायः संयुक्त संज्ञाके अन्तमें आता है। यथा-ध्यानपूर्वक, निश्चय-पूर्वक ।

पूर्वकर्मन् (सं॰ क्लीं॰) पूर्व कर्म। प्रथम कर्म। सुश्रुतमें तीन प्रकारके कर्मका उल्लेख है ; यथा-पूर्वकर्म, प्रधान-कर्म और पश्चात्कर्म । रोगोत्पत्तिके पहले तत्तदुव्याधिके प्रति जो सब काम पहले किये जाते हैं, उसे पूर्वकर्म कहते हैं।

पूर्वकल्प (सं॰ पु॰) १ पूर्वकाल, पहला समय। २ पूर्व-वतीं कला।

पूर्वेकामकृत्वन् (सं० त्रि०) पूर्वेकामनापूरण । पूर्वेकाय (सं॰ पु॰) पूर्वेकायस्य, वा कायस्य पूर्वे । कायका पूर्वमाग, शरीरमें नाभिसे ऊपरका भाग।

पूर्वकारिन् (सं० ति०) पूर्वकर्मिष्ठ, पहले करनेवाला । पूर्वकाल (सं॰ पु॰) पूर्वः कालः । प्राचीनकाल (पुराकाल । पूर्वकालिक (सं० ति०) पूर्वकालः साधनतयाऽस्तस्य टन् । १ पूर्वकालसाध्य, जो पूर्वकालमें किया गया हो । २ पूर्वकालजात, जिसकी उत्पत्ति या जन्म पूर्वकालमें हुआ हो। ३ पूर्व कालोन, पूर्व कालसम्बन्धी, जिसकी स्थिति पूर्वकालमें हो।

पूर्वकालिककिया । सं० स्त्रो०) वह असमापिका या अपूर्ण : किया जिसका काल किसो दूसरी पूर्ण कियाके पहले पड़ता हो।

पूर्वेक्टंत् (सं० ति० पूर्व-क्ट-किप्। पूर्व दिशाके कत्तां सूर्य।

पूर्वेकृत (सं० ति०) पूर्वे पूर्वस्मिन् वा कृतः। पुराकृत, पूर्वकालमें किया हुआ।

पूर्वाकोटि (सं० स्त्री०) विमतिपत्तिमें पूर्वीपात्त विषय, पूर्वापक्ष ।

पूर्वाग (सं० ति०) पूर्वे गच्छतीति गम-ड । पूर्वागामी । पूर्वागङ्गा (सं० स्त्री०) पूर्वा चासौ गङ्गा चेति । नर्गदा नदी ।

पूर्वगत-जैनोंके दृष्टियादके अन्तर्गत एक प्रन्थ । पूर्वगत्वन् (सं० ति०) पूर्वगामी ।

पूर्वित् (सं० ति०) पूर्व-चि-किप् तुक् च। पूर्वचयन-कारी, पहले चुननेवाला।

पूर्विचित्ति (सं० ति०) चित-भावे किन्, चित्तिः, पूर्वैचित्तिः स्मरणं यस्य । १ पूर्वानुभवविषय । (स्त्री०) २ अप्सराभेद, इन्द्रकी एक अप्सराका नाम ।

पूर्वज (सं० पु०) पूर्वे जायते पूर्व-जन-इ। १ ज्येष्ठ भाता, बड़ा भाई, अप्रजा। २ पूर्वपुरुष, पुरक्षा, वाप, दादा, पर-दादा आदि। ३ चन्द्रलोकस्थित दिव्यपितृगण, चन्द्र-लोकमें रहनेवाले दिव्य पितृगण। इस अधमें यह शब्द बहुवचनान्त होता है। पर्याय—चन्द्रगोलस्थ, न्यस्त-शख्न, स्वधाभुज्, कव्यवालादि। ये सव शब्द भी वहु- बचनान्त हैं। (ति.०) पूर्वकालोटपन्न, पूर्वकालमें उत्पन्न। पूर्वजन (सं० पु०) पुराकालीन पुरुष, पुराने समयके लोग।

पूर्वजनमन् (सं० क्की०) पूर्व जनमः। वर्त्तमानसे पहलेका जन्म, पिछला जनमः। इस जनममें पूर्व जनमार्जित कर्मका शुभाशुभ भोग करना पड़ता है।

पूर्वजनमां (सं० पु०) अम्रज, वड़ा भाई।

पर्वजा (सं० स्त्रो०) पूर्व ज-टाप्। उपेष्ठा भगिनी, वड़ी बहुन।

पूर्वजाति (सं० स्त्री०) पूर्वजनम, पिछला जनम।
पूर्वजित (सं० पु०) पूर्वो जिनः। अतीत जिनविशेष।
पूर्विय—मञ्जुश्री, ज्ञानदर्पण, मञ्जुभद्र, मञ्जुघोष, कुमार,
अष्टारचक्रवान, स्थिरचक्र, वज्रधर, प्रज्ञाकाय, आदिराद,
नीलोश्पली, महाराज, नील, शार्द्लवाहन, घियाम्पति,

खड्गी, दन्ती, विभूषण, वालवत, पञ्चचीर, सिंहकेलि, शिखाधर और वागीश्वर।

पूर्वेज्ञान (सं० क्की०) पूर्वेस्य जन्मनः ज्ञानं । १ पूर्वेजन्मका ज्ञान, पूर्वेजन्ममें अर्जित ज्ञान जो इस जन्ममें भी विद्य-मान हो । २ पहलेका ज्ञान ।

पूर्वतन (सं॰ ति॰) पूर्व मावार्थे-तन । पुराकालीन, पुराने समयका।

पूर्वतस् (सं० अव्य०) पूर्व-तसिल् । पूर्वसे, पहलेसे । पूर्वतापनीय--नृसिहतापनीय उपनिषद्का पूर्वभाग ।

पूर्वत्व (सं० क्की०) पूर्वस्य भावः, त्व । पूर्वका भाव, पूर्वका धर्म ।

पूर्वथा (सं॰ अध्य॰) पून-स्वार्थे छन्दसि थाल्। पूर्व-तुल्य, पहलेकी तरह।

पूर्वदक्षिणा (सं० स्त्र ०) पूर्वस्थाः दक्षिणस्याक्त्वान्तराला दिक् 'दिङ्नामान्तराले' इति समासः। १ पूर्व और दक्षिणके वीचका कोना, अग्निकोण। २ तदिक्सिथत देश। पूर्वदिक्पति (सं० पु०) पूर्वदिशः पतिः पतिरिषपितः। १ इन्द्र। २ मेषसिंहादि राशि, मेप, सिंह और धर्नुराशि पूर्वदिशाके अधिपति हैं।

पूर्वदिग्वदन (संब्क्षीक) पूर्वदिशि वदनमस्य। मैय, सिंह और धनु ये तीन राशियां हैं।

पूर्वेदिगोश (सं॰ पु॰) पूर्वेदिशामीशः । १ पूर्वेदिशाका अधिपति, इन्द्र । २ मेष, सिंह और धुनुराशि ।

पूर्वदिन (सं० क्की०) पूर्वस्य दिनं। पूर्वका दिन। पूर्वदिश् (सं० स्त्री०) पूर्वा दिक्।१. जिस दिशामें सूर्य

उद्य होते हों, पूरव । २ उक्त दिशाके पति इन्द्र ।
पूर्विदृष्ट (सं० क्को०) पूर्व दिष्ट भाग्यं साधनत्वेन अस्त्यस्य-अच् । पूर्वभाग्यानुरूप जात दुःखादि, यह सुख दुःख
आदिजो पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामखरूप भोगना पड़े ।
पूर्विद्य (सं० पु०) पूर्वश्चासी देवश्चेति वा पूर्वदेव इति
सुप्सुपेति समासः । १ असुर । यह पहले सुर अर्थात्
देवता था, पीछे अन्याय कर्मद्वारा सुरत्वसे भ्रष्ट हो कर
देत्यभावको प्राप्त हुआ । २ नरनारायण । इस अर्थमें यह
शब्द द्विबचनान्त होता है।

पूर्वदेवता (सं० स्त्री०) अनादि देवतारूप पितृगण । पूर्व अर्थात् फल्पान्तरमें पितृगण देवतास्वरूप थे, अतः उनका

नाम पूर्वदेवता है।

पूर्वदेश (सं० पु०) पूर्व देशः कर्मघा०। प्राचीदिगवस्थित जनपद, पूर्वदिशाका देश। इसका पर्याय वर्त्तानि है। पूर्व दिशामें मागघ, शोण, वारेन्द्र, गौड़, राड, वर्द्ध मान, तमोलुक, प्राग्ज्योतिय और उदयादि ये सब देश पूर्वपदवाच्य हैं।

पूर्वदेह (सं० पु०) पूर्व शरीर, पहलेका शरीर । पूर्वदेहिक (सं० ति०) पूर्वजन्मकृत, पूर्वजन्मका किय हुआ । पूर्वनड़क (सं० क्की०) जङ्घादेशस्थ अस्थिविशेष, जांघकी एक हड्डीका नाम ।

पूर्वनिरूपण सं० पु०) भाग्य, किस्मत।

पूर्वन्याय (सं॰ पु॰) किसी अभियोगमें प्रतिवादीका यह कहना है, कि ऐसे अभियोगमें मैं वादीको पराजित कर चुका हूं। यह उत्तरका एक प्रकार है।

पूर्वपक्ष (सं० पु०) पूवः पक्षः । १ कृष्ण पक्ष । २ शास्त्रीय संशयनिराशार्ध प्रक्ष, शास्त्रविचारके समय संशय-निराश-के लिए जो प्रश्न किया जाता है, उसे पूर्व पक्ष कहते हैं । पूर्वपक्ष होने पर उत्तरमें जो बात कही जाती है, उसे उत्तरपक्ष कहते हैं । ३ सिद्धान्तविरुद्ध कोटि । पर्याय—चोध, देश्य, फिक्किका । ४ अधिकरणावयवमेद, व्यवहार विशेष, व्यवहार या अभियोगमें वादी द्वारा उपस्थित वात, मुद्देका दावा ।

वीरिमित्रोदयमें चार प्रकारका उल्लेख देखनेमें आता है, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, क्रियापाद और निर्णयपाद। पूर्व-पक्षको नालिश कहते हैं। व्यवहारतत्त्व, मिताक्षरा और वीरिमित्रोदय आदिमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

व्यवहार शब्द देखी । पूर्वपक्षपाद (सं॰ पु॰) पूर्वपक्ष एव पादः । चतुष्पाद व्यव-हारके अन्तर्गत प्रथम पाद ।

पूर्वपक्षिन् (सं० ति०) १ वह जो पूर्वपक्ष उपस्थित करे। २ वह जो किसी प्रकारका दावा दायर करे।

पूर्वपक्षी (हिं० वि०) पूर्वपित देखी।

पूर्वपक्षीय (सं । ति) पूर्वपक्षे भवः, गहादित्वात् छ । पृपक्ष-सम्बन्वधीय ।

पूर्वपञ्चाल—पञ्चालका पूर्वा श ।

पूर्वेण्द (सं० ह्वी०) पूर्वं पदं । १ पूर्वं वृत्तीं विभक्ति-भन्त पद । २ पूर्ववृक्षीं स्थान ।

Vol. XIV. 75

पूर्वपदिक (सं॰ ति॰) पूर्वपदमधीते पूर्वपद-इकन् । पूर्व-पद्वेत्ता, पूर्वपदाध्यायी ।

पूर्व पद्य (सं० ति०) पूर्व पद्भव ।

पूर्व पर्व त (सं॰ पु॰) पूर्व : पूर्व दिक्सथः पर्व तः । उदया-चल, उदयपर्व त, वह कल्पित पर्वत जिसके पीछेसे सूर्य-का उदय होना माना जाता है।

पूर्वेपा (सं॰ ति॰) पूर्व-पा-िकप्। पूर्वपेय, अप्रपेय, पहले पीने लायक।

पूर्वपञ्चालक (सं॰ ति॰) पूर्वस्मिन् पञ्चाले भवः बुञ्। पूर्वपञ्चालमें होनेवाला।

पूर्वेपाटलीपुतक (सं० ति०) पूर्वेपाटलीपुते भयः, दुज्, न पूर्वेपदवृद्धि । पूर्वेपाटलीपुतनगरभव, पूर्वेपाटलीपुतमें उत्पन्न ।

पूर्वपाणिनीय (सं॰ पु॰) पाणिनिका पूर्वदेशीय शिष्य द्वारा पढ़ा हुआ व्याकरण ।

पूर्वपाद (सं० पु०) पूर्व पादस्य पकदेशिस० । अत्र चरण, अत्रपाद।

पूर्वपान (सं॰ क्की॰) अप्रपान, पहले पीना । पूर्वपाय्य (सं॰ क्की॰) पूर्वपेय ।

पूर्वपालिन् (सं॰ पु॰) पूर्व देशं दिशं वा पालयति पालि-णिनि । १ पौरस्त्यदेशपति नृपभेद, पौरस्त्य देशके राजा । २ पूर्वदिगोश इन्द्र ।

पूर्वपितामह (सं॰ पु॰) पूर्वः पितामहात्। प्रवितामह, परदादा।

पूर्वपीठिका (सं० स्त्री०) कथाप्रन्थावतरणिकाभेद् ।
पूर्वपीति (सं० स्त्री०) पूर्वकालमें प्रवृत्त पान ।
पूर्वपुक्ष (सं० पु०) पूर्वः पुक्षः । १ पितादितिक पुरुष,
वाप, दादा, परदादा आदि पुरला। २ ब्रह्मा ।
पूर्वपेय (सं० क्री०) पूर्वे पेयं। पूर्वपान, पहले पीना ।
पूर्वपश्चा (सं० स्त्री०) पूर्वेकान, पूर्वस्वृति ।
पूर्वफल्युनी (सं० स्त्री०) पूर्वो फल्युनीति कमेधा०। अश्विनी
आदि सन्तर्हम् स्वर्शनीये स्वर्णनाति कमेधा०।

अपनिष्णुना (संग्रह्मा) पूर्वा फल्युनाति कमघा। अधिवनी आदि सत्ताईस नक्षतोंमेंसे ग्यारह्यां नक्षतः। इसका आकार दो तारकायुक्त चारपाईको तरह है। इसके अधिग्राज्ञी देवता यम हैं। इस नक्षतमें जन्म लेलेखे सिहराणि होती है। पूर्वफन्युनो नक्षतमें गङ्गलाती द्शा और इस्ती नक्षतमें उक्त दशाक्षा भोषकाल २८ सार है। इस नक्षत्रके प्रतिपादमें ८ मास, प्रतिदण्डमें और प्रति-पलमें १६ दण्ड दशाका भोग रहता है। यह नक्षत्र अघोमुख है। इस नक्षत्रमें जन्मप्रहण करनेसे घूर, त्यागी, साहसी, भूमिपति, अत्यन्त कोपन, शिराल, अतिदक्ष, घूर्च, कूर और वायुप्रकृतिका होता है।

कोष्ठीकळापके मतसे इस नक्षत्रमें जन्म-प्रहण करने-से धनवान, प्रवासशीळ, हतशतु, कामकळापिएडत, जना-श्रयी और हृष्टान्तःकरण होता है।

पूर्वफल्गुनीभव (सं० पु०) पूर्वफल्गुन्यां भवतीति भू-अच्। वृहस्पति।

पूर्वभाद्रपद (सं० पु०) अश्विनी आदि नक्षतींके अन्तर्गत पचीसवां नक्षत । पर्याय—प्रोष्टपदा, पूर्वभाद्रपादा और पूर्वभाद्रपदा। इसका आकार घण्टेकी तरह और दो नक्षत्रयुक्त है। इस नक्षत्रके प्रथम तीन पादमें कुम्मराशि और शेष पादमें मीनराशि होती है। इस नक्षतमें जन्म लेनेसे राहुकी दशा होती है। इस नक्षतका भोगकाल चार वर्ष है। इसके प्रतिपादमें एक वर्ष, प्रतिदण्डमें २४ दिन और प्रतिपलमें २४ दण्ड होते हैं। शतपद्चकानु-सार नामकरण करनेसे इस नक्षत्रके प्रतिपादमें 'शे, शो, द, दि,' ये सव अक्षरादिके नाम होंगे। इसमें सिंहजातीय नक्षत जन्मग्रहण करनेसे अल्पवित्तसम्पन्न, दाता, विनयी, सद्घृत्तिपरायण, व्रियवाष्य-ऋथनशील, चञ्चलचित्त, प्रवासशील और राजसेवक होता है। कोछीप्रदीपके मतसे—जितेन्द्रिय, सब प्रकारको कलामें कुशल और प्रधान होता है।

पूर्वभाग् (सं० ति०) पूर्व भजते भज-िव। पूर्वभजना-कारी।

पूर्वभाग (सं० पु०) १ प्रथम भाग । २ ऊर्ड भाग । पूर्वभाद्रपदा (सं० स्त्री० एक नक्षतका नाम । पूर्वभाद द देखी ।

पूर्वभाव (सं० पुं०) पुर्वो भावः । १ पूर्ववित्तं कारणत्व । २ पूर्ववित्तभाव, पदार्थधर्मभेद । ३ पूर्वरागसे अपर । पूर्वभाविन (सं० वि०) पूर्व भवित भू-णिनि । १ कारण । २ पूर्ववित्तं पदार्थमात ।

पूर्वभाषिन (सं वि) पूर्व भाषते भाष-णिनि । पूर्ववका । पूर्वभूत सं वि) १ जो पहले गुजर गया हो । २ पूर्ववर्ती, पहला । पूर्व मारिन् (सं० ति०) पूर्व -मृ-णिनि । पूर्व मृत, पहले हो मरा हुआ ।

पूर्व मीमांसा (सं॰ स्त्री॰) हिन्दुओंका एक दशन। इसके कर्त्ता जैमिनि मुनि माने जाते हैं। इस शास्त्रमें कर्मकाएडसम्बन्धी वातोंका निर्णय किया गया है।

मीशंसा देखी।

पूर्व यञ्च (सं॰ पु॰) पूर्व श्वासी यञ्चलेति, वा पूर्वे पूर्व -स्मिन् काले यज्ञः । जिनविशेष। पर्याय—मणिसद्ग, जम्मल और जलेन्द्र।

पूर्वयायात (सं० क्की०) यथातिसम्बन्धोय पूर्वाख्यात । पूर्वयावन् (सं० पु०) अत्रगामो, आगे चलनेवाला । पूर्वरङ्ग सं० पु०) पूर्वं रज्यतेऽसिक्तित रञ्ज-अधिकरणे घन् । नाट्योपक्रम, नाटकका प्रारम्भिक संगीत या स्तुति । पर्याय—प्राक्संगीत, गुणनिका । इसका लक्षण—

"यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्ग-विद्योपशान्तये । कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वं रङ्गः स उच्यते॥" (साहित्यदर्पण)

रङ्गालयमें कुशीलव (नट) नाट्यके पहले विप्त-शान्तिके लिये अथवा दर्शकोंको सावधान करनेके लिये जो अनुष्ठान करता है, उसे पूर्व रङ्ग कहते हैं। पूर्वराग (सं० पु०) पूर्व पूर्व जातो रागोऽन्तरागः। नायक और नायिकाकी दशाविशोव, नायक अथवा नायिकाकी एक अवस्था जो दोनोंके संयोग होनेसे पहले प्रमके कारण होती है, प्रथमानुराग, पूर्वानुराग। इसका लक्षण—

> "अवणाद्रशैनाद्वापि मिथः संरुद्रागयोः । द्शाविशेषो योऽप्राप्तौ पृव[°]रागः स उच्यते॥" (सा॰ द॰)

व्याधि, मुर्च्छा और मृत्यु है।

कुछ लोगोंका मत है, कि पूर्व राग पहले नायिकाओं में होता है, पीछे नायकमें । नायकको देखने पर या किसी के मुंहसे उसके रूप-गुण आदिकी प्रशंसा सुनने पर नायिकाको मनमें जो पूम उत्पन्न होता है, उसीको पूर्व राग कहते हैं। जैसे, इंसके मुंहसे नलको पृशंसा सुन कर दमयन्तीमें अनुरोगका उत्पन्न होना। इसमें नायकसे मिलनेका अभिलाव, उसके सम्बन्धमें चिन्ता, उसका

स्मरण, सिखयोंसे उसकी चर्चा, उससे मिलनेके लिये उद्विनता, पूलाप, उन्मत्तता, रोग, मूर्च्छा भीर मृत्यु ये दश वाते होती हैं। यही पूर्व रागकी दश अवस्था हैं, इसे कामदशा भी कहते हैं। पूर्व राग उसी समय तक रहता है, जब तक नायक नायिकाका मिलन न हो। मिलनके उपरान्त उसे प्रेम वा पीति कहते हैं।

महाकाव्यमें नायिकाके विरहवणनस्थलमें पूर्व राग और उसकी दश अवस्थाओंका वर्णन करना होता है। पर पूर्व भागकी शेव दशा जो मृत्यु है, उसका वर्णन नहीं करना चाहिये। नीली, कुसुम्म और मिक्कष्टाके भेदसे यह पूर्व राग तीन पुकारका है।

पूर्व राग अवस्थामें जब तक नायक और नायिकाका मिलन नहीं होता, तब तक एक दूसरेमें जो भाव उत्पन्न होता रहता है, उसे दशा कहते हैं। यह दशा दश पूकारकी है, यथा—लालसा, उद्देग, जागर्य, तानव, जिड़मा, वैयत्र, ज्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

पूर्वरात (सं॰ पु॰) रातेः पूर्वी भागः, अच्-समासः (रात्र ह हाः पुंक्षि । पा २.४।२६) इति पुंस्त्वं । रातिका पूर्वभाग ।

प्रवेहप (सं क्री) प्रवे ह्रपमिति कर्मधा । १ प्रवे छक्षण, भाविन्याधिनोधक चिह्न, आगमस्चक छक्षण,
किसी बस्तुका वह चिह्न या छक्षण जो उस वस्तुके उपस्थित होनेके पहले हो पृकट हो, आसार । २ पहलेका
ह्रप, वह आकार या रंग ढंग जिसमें कोई वन्तु पहले
रही हो।

पूर्वेळझण (सं॰ क्ली॰) पूर्वं ळक्षणं । पूर्वेचिह्न, भावि-पदार्थेका प्रथम चिह्न, आगमसुचक ळक्षण ।

पूर्वेवत् (सं० अध्य०) पूर्वस्येव पूर्वेण तुल्यं वा किया, इवार्थे वित । १ पहलेकी तरह कियान्वितमेव । २ पूर्वेतुल्य, पहलेकी तरह, जैसा पहले था वैसा ही। (क्री०) पूर्वं कारणं विषयतया अस्त्यस्य मतुप्, मस्य व। ३ कारण द्वारा कार्यानुमान, किसी कार्यका वह अनुमान जी उसके कारणको देख कर उसके होनेसे ही किया जाय। अनुमान तीन प्रकारका है, पूर्वं वत्, शेषवत् और सामान्यतीद्वष्ट। यहां उनका विषय वहुत संक्षेपमें लिखा जाता है। कारण और कार्यके मध्य पहले कारणकी सत्ता

रहती है, पीछे अर्थात् उत्तरकालमें उसके द्वारा कार्यकी उत्पत्ति होती है, इसीसे पूर्व शब्दका अर्थ कारण और शेष शब्दका अर्थ कारण द्वारा कार्यका अर्थ कार्य है। अतएव जहां कारण द्वारा कार्यका अनुमान होता है, उसका नाम पूर्व वत् है। मेघ-की उन्नति देख कर वृष्टि होगी, इस प्रकार अनुमान करनेका नाम पूर्व वत् अनुमान है। यहां कारण द्वारा कार्यका अनुमान होता है। वृष्टिका कारण मेघ है, वहीं कारण देख कर कार्यानुमान होनेसे पूर्व वत् अनुमान हुआ है।

पूर्वेवत् शब्द-मत्वर्थंप्रत्यय और वितप्रत्यय, इन दोनों प्रकारसे व्युत्पादित हो सकता है। मत्वर्थ-प्रत्यय-पक्षमें पूच चत् शब्दका अर्थं पूच[°]युक्त और पूच[°]-शब्दका अर्थ कारण है। वति-प्रत्ययार्थ होनेसे पूर्व-वत् शब्दका अर्थ पूर्व तुल्य होता है । जहां सम्बन्ध प्रहणकालमें अर्थात् व्याप्तिक्षानकालमें लिङ्गलिङ्गी वा साध्य-साधनका प्रत्यक्ष, पीछे प्रत्यक्ष-पिदृष्ट साधन द्वारा वैसा ही अर्थात् प्रत्यक्षदर्शनयोग्य साध्यका अनुमान होता है, वहां पूव दृष्टके तुल्यरूप साध्यका अनुमान होता है, इस कारण उस अनुमानका नाम पूर्व वत् है। महा-नसमें धूम और वहिका सम्बन्ध वा व्याप्ति गृहीत हुई है। कालान्तरमें वैसा ही अर्थात् महानस-द्रष्ट धूमके समान धूम देख कर पर्वतादि पर वैसा ही अर्थात् महा-नस-द्रष्ट वहिके समान वहिका अनुमान होता है। यही पूर्व बत् अनुमान है। जहां व्याप्तिग्रहणकालमें साध्य और साधन दोनोंका प्रत्यक्ष होता है, वहां वैसे ही साधन द्वारा वैसे ही साध्यका अनुमान होनेसे पूर्व वत् अनु-मान हुआ करता है। (स्यायदर्शन) सांख्यदर्शनमें भी यह अनुमान खीकृत हुआ है। चीत और अवीतके भेट-से अनुमान दो प्रकारका है। इस वीत अनुमानके भी फिर दो मेद हैं, पूर वत् और सामान्यतोदृष्ट । उक्त अनु-मानके सम्बन्धमें न्यायद्शैन और वाचस्पति मिश्रका मत एक-सा है।

पूर्वं वयस् (ति०) पूर्वं वयः, कालावस्थामेदोऽस्य । १ वाल्यावस्थान्वित, छोटी उम्रवाला । २ वाल्यावस्था, लड्कपन ।

पूर्व वयस (सं॰ क्वी॰) पूर्व वयः कर्मधा॰ वेदे अच्समा-सान्तः। वाल्यवयस, छोटी उम्र। पूर्व वयासिन् (सं० ति० जीवनका पूर्व वा प्रथमकाल, बचपन ।

पूर्व वर्तिन् (सं० ति०) पूर्व वर्त्तते वृत-णिनि । प्रांक्-वर्त्तिमात, जो पहले हो या रह चुका हो, पहलेका ।

पूर्व वह् (सं० ति०) पूर्व वहनकारी, भागे ले जाने-वाला।

पूर्व वाद (सं० पु०) पूर्वी वादः। १ राजद्वारमें प्रथमा-भियोग, व्यवहार शास्त्रके अनुसार वह अभियोग जो कोई व्यक्ति न्यायालयमें पहले उपस्थित करे, पहला दावा, नालिश।

पूर्व वादिन् (सं॰ पु॰) पूर्व वादोऽस्त्यस्येति पूर्व वाद-इति । प्रागभियोक्ता, पूर्व वाद-कारक, वह जो न्यायालय आइमें पूर्व वाद या अभियोग उपस्थित करे, मुद्दे ।

पूर्व वायु (सं ॰ पु॰) पूर्व दिक्स्भवः वायुः। पूर्व दिक्रासे वहनेवाळी हवा, पूर्वी हवा। इसका गुण—पर्व दिक्रासे को हवा वहती है वह मधुर और ळवणरसविशिष्ट, स्निग्ध, अम्लुपित्तजनक और रक्तपित्तवद्धंक होती है; विशेपतः जो क्षतरोग, विपरोग, अथवा प्रणरोगविशिष्ट हैं वा जिनका शरीर श्लेप्पज है, उनके ळिये यह हवा विशेप अनिष्टकर है। किन्तु जो वायुरोगा, श्रान्त हैं अथवा जिनके शरीरका कफमाग स्ख गया है, उनके ळिये उक्त हवा विशेप उपकारो है।

पूर्ववार्षिक (सं॰ ति॰) पूर्वं वर्षाणां पकदेशिस॰ 'कालात् ठज्' इति ठज्, उत्तरपदवृद्धिः। जो वर्षाके पहुळे हो।

पूर्व बाह् (सं॰ पु॰) पूर्व वयसि बहति वह-ण्यि । पूर्व -बयसमें बाहक, वचपनमें छे जानेवाला ।

पूर्व विद् (सं वि) पूर्व वेत्ति विद-किए। पूर्व वृत्तान्त-वेत्ता, पुरानी वातोंको ज्ञाननेवाला, इतिहास आदिका श्राता।

पूर्व वृत्त (सं ० क्ली०) पूर्व वृत्तं । प्राचीनवृत्त, इतिहास ।
पूर्व वैरिन् (सं ० पु०) पूर्व शतु, पहलेका दुश्मन ।
पूर्व शारद (सं ० ति०) पूर्व शारदः पकदेशिसमासः,
'अवयवाद्वतोः' इति अण् उत्तरपदवृद्धः । शरत्श्वतुका
पूर्व मव, जो शरत् ऋतुके पहले हो ।

पूर्व शोप (सं ० ति०) पूर्व की ओर मस्तकयुक्त।

पूर्व शैल (सं ० पु०) पूर्व : शैलः । उदयपव त, उदयाचल । पूर्व सक्य (सं ० क्की०) पूर्व सक्थनः एकदेशि-समासः। (उत्तरस्य-पूर्वाच सक्थनः । पा ५।४।६८८) इति अच् समा-सान्तः । सक्थिका पूर्व भाग ।

पूर्व सद् (सं ० ति०) सामने वैठा हुआ । पूर्व सन्ध्या (सं ० स्त्री०) प्रातःकाल ।

पूर्व समुद्र (सं ॰ पु॰) पूर्व : समुद्रः । पूर्व वर्त्तिसमुद्र, पूर्व सागर ।

पूर्व सर (सं० ति०) पूर्व सन् सरतीति पूर्व स् (पूर्वे कर्ति । पा ३।२।२३) इति ट। अप्रगामी, आगे चलनेवाला।

पूर्वं सागर (सं ० ति ०) पूर्वं देशं सरतीति अण्। अप्र-गामी।

पूर्व सारिन् (सं॰ क्षि॰) पूर्व सरित गच्छतीति स्र-णिनि । पूर्व गामी, पहले जानेवाला ।

पूर्व स् (सं ० ति ०) पूर्व वा प्रथमोत्पन्ना । पूर्व स्थ (सं ० ति ०) पूर्वे तिष्ठति स्था-क । पूर्व स्थित । पूर्व द्वति (सं ० स्त्री ०) पूर्वो द्वान ।

पूर्व होम (सं ॰ पु॰) अप्रदेय होम, पहले दिया जानेवाला होम ।

पूर्वा (सं स्त्री) पूर्वं -टाप्। १ पूर्वादिक्, पूर्वं दिशा, पूर्वं । पर्याय—प्राची, परा, माघोनी, पेन्दी, माघवती। २ पूर्वाकाल्यनी देखों।

पूर्वा १ अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक तह-सील वा उपविभाग । यह अक्षा० २६ ८ से २६ ४० उ० और देशा० ८० ३७ से ८१ ६ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४७ वर्गमील है। इसमें १० परगते और ५३८ श्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका सदर । यह उन्नावसे दश कोस दिशाण-पूर्व, अक्षाण २६ २७ २० उ० और देशाण ८० ४८ ५५ पूर्ण पूर्ण मध्य अवस्थित है । पहले यही नगर उन्नाव जिलेका सदर था । अङ्गरेजींके अधीन आनेके बाद जब उन्नाव नगरमें शासन विभाग लाया गया, तब यहांकी समृद्धका हास हो गया। अभी यहांसे उन्नाव, रायवरेली, लखनऊ, कानपुर, वकसर आदि प्रसिद्ध नगर जानेका रास्ता है। प्रति सप्ताहमें

यहां दो वार हाट लगती और वर्षमें तीन वार मेला लगता है।

पूर्वाग्नि (सं॰ पु॰) पूर्वस्थाचित अम्नि, आवसध्य अग्नि । पूर्वाचल (सं॰ पु॰) पूर्वः अचलः । पूर्वाद्रि, उदयाचल । पूर्वातिथ (सं॰ क्की॰) साममेद ।

पूर्वातिथि (सं० पु०) गोत्तप्रवर ऋपिभेद ।

पूर्वादि (सं० ति) पूर्वे आदिर्यस्य । पूर्वे आदि करके शब्द्राण । यथा — पूर्वे, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, स्य, अन्तर । (स्रो०) पूर्वा आदिर्यस्याः । २ पूर्वादि दिशा ।

पूर्वाद्रि (सं॰ पु॰) पूर्वः पूर्वं दिक् स्थितो वा अदिः। उदयाचल । इसका पर्याय दिनमूर्द्धा है।

पूर्वाधिराम (सं० क्वी०) पूर्व भारतमें प्रचलित रामका पूर्वाख्यान ।

पूर्वानिल (सं॰ पु॰) पूर्वः अनिलः। पूर्वदिक्भव वायु, पूरवकी हवा।

पूर्वानुयोग (सं॰ पु॰) दृष्टिवाद्भेद । दृष्टिवाद पांच प्रकारका है,—प्रतिकर्ग, स्व, पूर्वानुयोग, पूर्वगत और चूलिका ।

पूर्वो चुराग (सं॰ पु॰) अनुराग या प्रेमका आरम्म, किसी-के गुण सुन कर अथवा उसका चित्र या रूप देख कर उत्पन्न होनेवाला प्रेम। साहित्यमें पूर्वा नुराग उस समय तक माना जाता है, जब तक प्रेमी और प्रेमिकाका मिलन न हो। मिलनेके उपरान्त उसे प्रेम या प्रीति कहते हैं।

पूर्वान्त (सं॰ पु॰) पूर्वपदका अन्तिम । पूर्वकांट देखो । पूर्वापर (सं॰ ति॰) पूर्वश्च अपरश्व । १ पूर्व और अपर देश, अगला और पिछला । २ आनुपूर्विक, कमानुसार, आगे पीछे। (पु॰) ३ पूर्व और पश्चिम।

पूर्वापर्य (सं॰ क्ला॰) पूर्वापरयोर्मावः ध्यञ् न उत्तरपद वृद्धिः। पूर्वापरका भाव।

पूर्वोपहाना (सं॰ स्त्रो॰) पूर्वमपहीयते अप-हा-कर्माण ल्युट, अजादित्वात् टाप् । पूर्वापहान कर्म ।

पूर्वापुप् (सं० ति०) धनादि द्वारा पूर्वास्तोताओंका पोषक । पूर्वाफालगुनी (सं० स्त्री०) नश्नतोंमें ग्यारहवां नश्नत । इसका आकार पलंगकी तरह माना जाता है और इसमें दो तारे हैं। प्रक लग्नी देखी ।

Vol XIV 76

पूर्वाभाद्रपद (सं ॰ पु॰) नक्षतोंमें पचीसवां नक्षत । विशेष पूर्वभादादमें देखो ।

पूर्वाभाद्रपदा (सं स्त्रो॰) नश्त्र देखों।
पूर्वाभिभापिन् (सं॰ ति॰) पूर्वमिभापते अभि-भापणिनि। पूर्ववका, पहले वोलनेवाला।
पूर्वाभिमुख (सं॰ ति॰) पूर्वमुख।

पूर्वामिषेक (सं ॰ पु॰) १ प्रथम अभिषेक । २ एक प्रकार-का मन्त ।

पूर्वाम्बुधि (सं॰ पु॰) पूर्वः अम्बुधिः । पूर्वं समुद्र । पूर्वाराम (सं॰ क्वी॰) वीद्धसंघारामभेद, एक प्रकारका वौद्धसंघ या मठ ।

पूर्वार्चिक (सं० क्ली०) सामवेदका प्रथम अंश या पूर्वार्ड ।

पूर्वार्जित (सं॰ ति॰) पूर्व अर्जितः । पूर्व में उपार्जित, पहलेका अर्जन या जमा किया हुआ ।

पुवाद्ध (सं॰ पु॰) पूर्वोऽद्धः । प्रथमाद्ध , किसी पुस्तकः का पहला आधा भाग, शुरुका आधा हिस्सा ।

पूर्वाद्ध काय (सं॰ पु॰) शरीरका पूर्वाद्ध वा सम्मुख-भाग।

पूर्वाद्धः (सं० ति०) पूर्वाद्धः भवः पक्षे यत्। पूर्वाद्धः -भव, जो पूर्वाद्धः से उत्पन्न हुआ हो।

पूर्वावेदक (सं० पु०) पूर्व मावेदयतीति आ-विद्-णिच् ल्यु । जो अभियोग उपस्थित करे, वादी, मुद्दर्ह । पूर्वाशिन (सं० वि०) पूर्व अश-णिनि । पहले मोजन करनेवाला ।

पूर्वापाढ़ (सं॰ पु॰) पूर्वाका हेकी ।
पूर्वापाढ़ा (सं॰ स्ती॰) पूर्वा चासी आषाढ़ा चेति।
अध्विनी आदि सत्ताईस नक्षतोंमेंसे वीसर्वा नक्षत्त । इसका
आकार सूर्यको तरह माना जाता है और इसमें चार तारे
हैं; मतान्तरसे यह हस्तिदन्ताकृति और दो तारका

युक्त है।

इस नक्षतके अधिष्ठाली देवता जल हैं और यह अधी-मुख नक्षत है। इस नक्षतमें जन्मग्रहण करनेसे राक्षस होता है। यह नक्षत नकुलजातीय है। शतपद-चका-नुसार नामकरण करनेसे प्रथमादि पादमें यथाकम भू, ध, फ, ढ़' इन अक्षरोंके नाम होंगे; पूर्वापाढ़ा नक्षतके प्रथम पादमें जन्म होनेसे धनुराशि और शेष तीन पादमें मकरराशि होती है। इस नक्षतमें जन्म होनेमें गृहस्पित-की दशा होती है। इसका प्रति नक्षतमें शह मास, प्रति-पादमें १।२।१५ दिन, प्रति द्र्डमें २८।३० द्र्ड और प्रति प्रतमें २८।३० प्रत भोग रहता है।

इस नक्षतमं जनमग्रहण करनेसे वालक सभी मनुष्यों द्वारा स्त्यमान, अनुगत, देवतामक्त, वन्धुओंका माननीय, अत्यन्त पट्ट तथा वैरियोंका दण्ड-सक्सप होता है।

कोष्टीप्रदीपमें लिखा है,-

"भूयोभूयस्त्यमानानुरक्तो-भक्तो देवे वन्युमान्योऽतिदक्षः। पूर्वापाढ़ा जन्मकाले यदि स्या-दापाढ़ः स्याद्दे रिचर्गे नितान्तं॥"

पूर्वाशिन (सं ० ति०) पूर्व भोजी, पहले खानेवाला ।
पूर्वाह (सं ० पु०) अहः पूर्व पूर्वापरेत्यादिना पकदेशि
समासः, ततप्रच् (अहोऽह एतेभ्यः। पा पाषा८८) इति
अहादेशः ततो णत्व (अहाऽदन् ति। पा नाषा७)
पुंस्त्वश्च। (पा राष्टार्व) १ त्रिधा-विभक्त दिनमानका
प्रथम भाग, दिनमानके तीन भागमेंसे पहला भाग।

दिनमानका समान तीन भाग कर उसके प्रथम भागका नाम पूर्वाह, मध्यभागका मध्याह और शेषभाग-का नाम अपराह है। पूर्वाहकाल देवताओंका अर्थात् देवताओंके जो सब कार्य हैं, उन्हें इसी पूर्वाहकालमें करना होता है; इसलिये पूजादि पूर्वाहकालमें होतो है।

पूर्वाहमें देवताओं, मध्याहमें मनुष्यों भीर अपराहमें पितरोंके कार्यादि करना उचित है।

२ द्विधाविमक्त विनका पूर्वभाग, दिनका पहला आधा भाग, संवेरेसे दुपहर तकका समय ।

पूर्वाहक (सं ० पु०) पूर्वाह जातः बुन् (प्रवाह प्रशह देशनूकप्रदीवावस्क राद्युन् । पा ४१२१२८) १ पूर्वाहजात, पूर्वाह
सम्बन्धी, पूर्वाहका । (पु०) स्वार्थ कन् । २ पूर्वाह ।
पूर्वाहतन (सं० ति०) पूर्वाह भवः इति ट्यु तुर्व ।
(विभाषा पूर्वाहपराहाभ्यां। पा ४।३।२४) पूर्वाहभव,

दिनके प्रथम भागमें होनेवाला ।
पूर्वाहिक (सं० वि०) पूर्वाहः साधनतयाऽस्त्यस्य ठन् ।
पूर्वाहिसाध्य कर्म, वह कृत्य जो दिनके पहले भागमें किया
जाता है।

पूर्वाह तन (सं० ति०) पूर्वाहमव।
पूर्वित (सं० ति०) १ जी पहले किया गया हो। २ पूर्व
आमन्तित, पहले ही बुलाया हुआ। २ पूर्वक।
पूर्विन सं० ति०) पूर्व इतमनेन 'पूर्वादिनिः' इति इनि।
पूर्वेकियाकारक।

पूर्विनेष्ट (सं० ति०) पूर्वस्थित ।

पूर्वी (हिं पु) १ पूरवर्मे होनेवाला एक प्रकारका वावल।
२ एक प्रकारका दादरा जो विहार प्रान्तमें गाया जाता
है और जिसकी भाषा विहारी होती है। ३ सम्पूर्ण
जातिका एक राग जिसके गानेका समय सन्ध्या है।
कुछ लोगोंके मतसे यह श्री रागकी रागिनी है मौर कुछ
लोग इसे भैरवी तथा गौरी अथवा देवगिरि, गौड़ और
गौरीसे मिल कर वनी हुई संकर-रागिनी भी मानते हैं।
इसके गानेका समय दिनमें २५ दण्डसे २८ दण्ड तक
है। (वि०) ४ पूर्व दिशासे सम्बन्ध रफनेवाला, पूरक्का।
पूर्वीबाट (हिं पु) दिशासे सम्बन्ध रफनेवाला, पूरक्का।
पूर्वीबाट (हिं ए) दिशासे सम्बन्ध रफनेवाला, पूरक्का।
पहाड़ोंका सिलसिला। यह वालेश्वरसे कन्याकुमारी
तक चला गया है और वहीं पश्चिमी घाटके अन्तिम
अ'शसे मिल गया है। इसकी औसत अ'वाई लगभग

पूर्वे प (सं० अध्य०) पूर्व दिशा, देश वा कालमें। पूर्वे तर (सं० त्रि०) पूर्वेभिन्न, पश्चिम।

पूर्वे खुः (हिं० पु॰) वह श्राद्ध जो अगहन, पूस, माघ और फागुनके कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिको किया जाता है। पूर्वे खुस् (सं॰ अव्य०) पूर्वेस्मिन्नहनीति पूर्वे पद्युस् (सः वहत-पनाभेषमः परेघन्ववृपूर्वेषुरन्वेषुरिति। पा प्राह्मारर) इति निपात्यते। १ पूर्वेदिन। २ प्रातःकाल, सबेरा। ३ धर्मवासर।

२ वनवारतः। पूर्वे बुकामशमी (सं० स्त्रो०) १ पूर्वदिग्वर्ति नगरीमेद, पूर्वे का एक नगर । पूर्वे बुकामशम्यां भवः अण्, उत्तरः पद्वृद्धिः। २ पूर्वे बुकामशमसे उत्पन्न ।

पूर्वोक्त (सं ० वि०) पूर्वकथित, पहले कहा हुआ, जिसका

जिक्र पहले आ चुका हो।
पूर्वोत्तरा (सं• स्ती०) पूर्वे स्थाः उत्तरस्थाक्वान्तराला
दिक्। ईशान कोण, पूर्वे और उत्तरके वीचकी दिशा।
पूर्वोत्पन्न (सं• ति०) पूर्वे कालमें उत्पन्न।

पूर्व (सं ० ति०) पूर्व्यैः इतं (पूर्वेः इतमिनवौ । पा ४।४। १३:) इति य। पूर्वे सिद्ध, पूर्व इत ।

पूर्व्य स्तुति (सं० स्त्री०) पूर्व ऋषियों द्वारा की हुई स्तुति।

पूलक (सं ॰ पु॰) पूल-ण्डुल्। १ तृणादिका स्तूप, घास-का टीलाया ढेर। २ धान्यनृणादिकी मुधि, स्ंज आदि-का वंधा हुआ मुद्दा, पूल।

पूला (हिं० पु०) म्ंज आदिका वंद्या हुआ मुग़, पूलक । पूलाक (सं० पु०) पूलाक पृषोदरादित्वात् साधुः। हुच्छधान्य।

पूळास (सं॰ त्रि॰) पूळ-राशीकरणे घञ्, तमस्यति अस-क्षेपे अण्। तृणादिस्तृपविक्षेपक।

पूलासककुएड (सं ० क्ली०) कुएडस्य पूलासकः, राजदन्ता-दित्यात् पर-निपातः । कुएडतृणादिका निचारक । पूलिका (सं ० स्त्री०) पूरिका रस्य छ । पूपमेद, एक प्रकारका पूजा ।

पूलिया (हि॰ स्त्री॰) एक नीच मुसलमान जाति जो मलवार प्रदेशमें रहती है।

पूछो (हिं॰ स्त्रो॰) छोटा पूछा।

पूळीची (हिं • स्त्री •) मळवार प्रदेशकी एक असभ्य जाति।

पूल्य (सं ० हो०) पूलाक, तुच्छ धान्य ।

पूवा (हिं पु०) अ देखी।

पूप (सं ॰ पु॰) पूषिति पूप-ता। १ ब्रह्मवास्वृक्ष, शह-त्तका पेड़। २ पौषमास।

पूष-वरार राज्यके अन्तर्गत एक नदी। वासिम नगरके उत्तरवर्ती काटाग्रामसे यह निकल कर ३२ कीस दक्षिण-पूर्व की ओर वहती हुई सङ्गमके समीप वेणगङ्गामें मिल गई है। जो अववाहिका पूप और काटापूर्णासे निकली है उसके ऊपर पाश्वेंस्थ भूमि हो उवेंरा है।

पूषक (सं पु॰) पूष-सार्थे कन् । १ व्रह्मदारुवृक्ष, शहतूत-का पेड़ । २ शहतूतका फल ।

पूषड़—१ वरारराज्यके वासिम जिलान्तर्गत एक तालुक।
भूपरिमाण १२७३ वर्गमील है। इसमें २ नगर और ३०६
प्राम लगते हैं।

२ उक्त ताळुकका प्रधान मगर और सदर। यह सक्षा०

१६ ५४ ३० उ० और देशा० ७९ ३६ ३० पू०के मध्य वासिम नगरसे १२ कोस दिश्चणपूर्वमें पूपड़ नदीके किनारे वसा हुआ है। यहांके अधिवासी हिन्दू हैं। दो सुप्राचीन हिन्दूमन्दिर और कितने हो ध्वंसावशिष्ट प्राचीन मन्दिर देखने होसे यहांकी पूर्व समृद्धिकी कल्पना की जाती है। अभी श्रीहीन होने पर भी तहसीलदारकी सदर कचहरी और राजखिवभागीय कर्मचारियोंका आवास प्रायः पचास वर्षसे भी अधिक समयसे यहीं पर है।

पूपण् (सं पु) पूषतीति पूप-वृद्धी (श्वन वक्षण् पूषन् होहित्रिति । वण् १११५८) इति किनन् प्रत्ययान्ती निपात्यते । १सूर्य । यह सूर्य द्वादशादित्यमें से पक हैं । महाभारतमें नारह सूर्यों नामकी जगह पर नौ ही सूर्यका उल्लेख है ।

पौराणिक ग्रन्थमें पूपाकी द्वादशादित्यके मध्य गिनती तो है, पर वेदमें ऐसा देखनेमें नहीं आता। चारो वेदमें ही पूपाकी रुत्ति है। पूपाका धातुगत अर्थ पोषक वा परिपालक है। तैक्तिरोय-ब्राह्मणमें लिखा है, कि "पृषा पद्मनां प्रजनिवता" (१७० २१४) अर्थात् पूपा पशुओंके प्रजननकारी हैं। तैक्तिरीय संहिताके मतसे, "पूषा वा शिन्दयस्य वोर्वस्य प्रदात।" पूषा ही इन्द्रिय वा वीर्यके प्रदानकारी हैं।

इस प्रकार वेदमें पूपा कहीं पशुओं के पोषक तथा परिवर्द्ध के, कहां मनुष्यों के सम्पत्ति-पोषक, कहीं गी-ताड़न -दण्डहस्त गोपाल और कहीं छागवाहन माने गये हैं; कहीं पर ऐसा भी उल्लेन मिलता है, कि उन्होंने सूर्य-देवके कपमें निलिल जगत् परिदर्शन किया है। उनकी सहायतासे दिनरात होती है। कहीं पर वे अपनी भगिनी-के अनुरागी, ऐन्द्रजालिकों के प्रप्रपोषक और पाणिप्रहणकालमें विवाहमन्तमें उपस्थित हैं। अनेक स्थानों पर वे इन्द्र और भगके साथ स्तुत अर्थात् पूजित हुए हैं। तैत्तरीय संहितामें लिला है, कि रहका यशमाग न देनेके कारण उन्होंने पूषाके दाँत तोड़ दिये थे। निरुक्त और इसके परवर्त्ती प्रन्थोंमें पूपा सूर्यक्रपमें ही वर्णित हुए हैं। यूपण (सं० ति०) पूष्णः पृथिया इटं अण् वेदे न वृद्धिः नोपधालोपः। पार्थिय पदार्थी, मिट्टोकी वनी जीज।

पूषणा (सं० स्त्री०) पूष्य-रयु, स्त्रियां टाप्। कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृकाका नाम। पूषण्वत् (सं० ति० पूषण-मतुप् मस्य वः। पुष्टियुक्त। पूषदन्तहर (सं० पु०) पुष्यः सूर्यभेदस्य दन्तं हरति ह-अच्। दक्षयक्ष कालमें पूपाके दन्तोत्पाटक शिवांश वीर-भद्र, शिवके अंशसे उत्पन्न वीरभद्रका नाम, जिसने दक्षके यक्तके समय सूर्यका दाँत तोड़ा था।

पूपभ्र (सं॰ पु॰) वैवस्तत मनुके एक पुतका नाम । पूपभाषा (सं स्त्री॰) पूषेव सूर्यद्दव भाषते इति भाष-अच्-टाप् । इन्द्रनगरी, सुरपुरी ।

पूर्णमिल (सं॰ पु॰) गोभिलका एक नाम।

पूषराति (सं॰ पु॰) पूपा तंदाख्यो देवो रातिर्दाता यस्य। सूर्यादेय वस्तु।

पूपा (सं० स्त्रो०) १ पृथिवी । २ दाहिने कानकी एक नाड़ीका नाम ।

५वा (हिं० पु०) सूर्य । पूपण् देखो ।

पूपा—विहार प्रदेशके दरभङ्गा जिलान्तर्गत अङ्गरेज गवर्में एटकी एक भूसम्पत्ति । भू रिमाण ४५२८ एकड़ है । तिरहुत कलकृरीकी पुरानी नत्थीसे जाना जाता है, कि १७६६ ई०में लोदापुर, पुपा, चाँदमारी और देशपुर आदि स्थानके मालिक सर्दारोंने अङ्गरेजराजके उक्त स्थान निष्कर दान दिया और एक कवाला भी लिखा, ताकि उनके उत्तराधिकारिगण कोई आपत्ति न कर सके। १७६८ ई॰में वलतियारपुर तककी वन्यभूमि उसके साथ मिला दी गई। १८७२ ई० तक ेह स्थान गवर्मेंग्टकी अभ्वपालवृद्धिका अड्डा रहा। १८७५ ई०में यहां रूपिकार्य सम्बन्धी एक कारखाना, १६०४-में एक कालेज और उद्योग-शिल्पशाला (Research Laboratory) खोली गई। यहां तमाकू, फूल और धानकी अच्छी खेती होती है। पूष्मात्मज (सं॰ पु॰) पूष्णः आत्मजः । मेघ, वादल । सूर्यसे ही वृष्टि होती हैं, इसलिए पूपात्मज शन्दका अर्थ मेघ होता है।

पूचासुहरू (सं॰ पु॰) पूच्चोऽसहरू । शिव, महादेव । शिवजीने दक्षयज्ञकालमें खीय अंशज वीरमहरूपमें सूर्यका दाँत तोड़ा था, इसलिए उनका नाम पूत्रासहरू पड़ा । पूस (हिं॰ पु॰) अगहनके बाद और भाघके पहलेका महोना, हेमन्त ऋतुका दूसरा चान्द्रमास । इसकी पूर्ण-मासी तिथिको पुष्य नक्षत पड़ता है।

पृका (सं० स्त्रो०) स्पृश्यते इति स्पृश्-वाहुलकात् कक्, पृवोदरादित्वात् साधुः । १ शाकविशेष, असवरम नामका गन्ध द्रव्य । इसका व्यवहार औषधोंमें होता है । पर्वाय— मरुन्माला, पिशुना, देवीलता, लघु, समुद्रान्ता, वधु, कोटिवर्षा, लङ्कायिका, मरुत, माला, स्पृका, कोटिवर्षा, लङ्कायिका, तस्कर, चोरक और चएड । गुण—पक्ते पर मधुर, हृद्य, पित्त और कफनाशक । २ पृकापुष्य । ३ लताकस्तूरी ।

पृक्त (सं॰ ह्यो॰) पृच्यते स्म, संबध्यते स्मेति पृच-सम्पर्के क । १ घन । (ति॰) २ सम्पर्केयुक्त, सम्यन्धवाला । पृक्ति (सं॰ ह्यो॰) पृच-भावे किन् । १ सम्पर्के, सम्यन्य, लगाव । २ स्पर्श, स्पृष्टि, छूना ।

पृक्थ (सं० क्ली०) धन, सम्पत्ति ।

पृक्ष (सं० पु०) अन्न, अनाज ।

पृक्षस् (सं॰ पु॰) पृच-वाहु॰ असि सुट्च। अन्न, अनाज। पृक्षयाम (सं॰ पु॰) अन्न-नियमन स्तोत वा यञ्च।

पृक्षघ् तसं स्त्री०) प्र-क्षघ्-किप्, वेदे प्रशब्दस्य सम्प्र-सारणं। प्रकृष्टक्षघा।

पृच्छक (सं॰ ति॰) १ जिज्ञासाकारी, प्रश्न करनेवाला, पूछनेवाला । २ अनुसन्घित्सु, जिज्ञासु, जाननेकी इच्छा रखनेवाला ।

पृच्छना (सं॰ स्त्री॰) जिज्ञासा करना, पूछना ।

पृच्छा (सं॰ स्त्री॰) प्रश्न, सवाल।

पृच्छ्य (सं॰ ति॰) पृच्छ वाहुलकात् कर्मणि न्यप्, सम्प्रसारणं। जिज्ञास्य, जो पूछने योग्य हो।

पृत् (सं • स्त्री •) पृ-पालने किप्, तुक् च । १ सेना, फौज । २ संग्राम, युद्ध, लड़ाई ।

पृतना (सं क्लोक) प्रियते इति पृङ् व्यायामे वाहुलकात् तनन्, गुणाभावश्च। १ सेना, फौज। २ वाहिनीतय, एक सेनाविभाग। अमर और भरतने लिखा है, कि १४३ हाथी, २४३ रथ, ७२६ घुड़सवार और १२१५ पैदल सिपाही कुल २४३०-का समुह पृतना कहलाता है। व्याप्रिवन्ते अस् योद्धारः इति तनन्। ३ संप्राम, लड़ाई। ४ मनुष्य, आदमी।

वृतनाज् (सं ० ति०) सेनाजेता, सेना जीत्नेवाळा । वृतनाजित् (सं ० ति०) १ सेनाजित् । (पु०) २ एकाह पृतनाज्य (सं ० क्की०) संग्राम, युद्ध । पृतनानी (सं ० पु०) पृतना नामक सेनाका अफसर। वृतनापति (सं॰ पु॰) सेनापति । पृतनापाट् (सं ० पु०) पृतनासाह् देखो । पृतनासाह् (सं ०पु०) पृतनां सहते सह-िष्व । इन्द्र । इस साह् शब्दका पाट् रूप होनेसे पत्व होगा, दूसुरी जगह नहीं । पृतनासाह्य (सं ० क्वी०) परकीय सेनाविभव। पृतनाह्व (सं ॰ पु॰) पृतनासु ह्वः, ह्वेञो भावेऽनुपसग-स्थेत्यद्, सम्प्रसारणञ्च। संग्राममें रक्षणार्थ आह्वान, युद्धमें रक्षाके लिए पुकारना। पृतन्या (सं ॰ स्त्रो ॰) सेना, फीज । पृतन्यु (सं ० ति ०) युद्धे च्छु, जो युद्ध करना चाहता हो, जो लड़नेके लिये तैयार हो। पृत्सुति (सं ० स्त्रो०) सेना, फौज । पृत्सुध (सं पु॰) पृत्सु धीयते घा कर्मेणि घनर्थे क। संप्राम, युद्ध । पृथक् (सं ० अव्य०) प्रथयतीति प्रथ विक्षेपे (प्रथः कित सम्प्रसार्णकर । उण् १।१३६) इति अजि कित्-सम्प्रसार-णञ्जा । १ भिन्न, अलग, जुदा । पर्याय—विना, अन्तरेण, ऋते, हिस्क्, नाना, वर्जन । २ इतर, नीच । पृथकरण (सं ० क्ली०) सम्मिलित वस्तुका भिन्नकरण, अलगाव, अलग करनेका भाव। पृथक्कार्य (सं० क्ली०) मिन्न कर्म। थक किया (सं ० स्त्री०) अलग करनेका काम। पृथक् क्षेत (सं ॰ पु॰) पृथक् भिन्नं क्षेतं उत्पत्तिस्थानं भ यस्य। एक ही पिता परन्तु मिन्न मातासे उत्पन्न सन्तान । पृथक्च्छद (सं० पु॰) अक्षीटचृक्ष, अख्रीटका पेड़ । पृथका (सं ॰ स्रो॰) पृथक् होनेका मान, अलगान, अल-

पृथक्तव (सं को०) पृथगित्यस्य भावः पृथक् भावे

क । पृथक् होनेका भाव, अलुगाव ।

Vol. XIV. 77

हद्गा ।

पृथक्तवच् (स्ं० स्त्री०) पृथक् त्वग् यस्याः दाप् । मूर्वा-लता। मृबः देखो । पुथक्पणीं (सं • स्त्री •) पृथक् पर्णानि युस्याः (पाककर्ण-वर्णं १ ब्यक्ति । पा शाशाक्षेष्ठ) इति ङ्रीष् । पिठ्वन नामकी ओषि । पर्याय-पृश्निपणीं, चित्रपणीं, अंधि-वहिंका । पृथगात्मता (सं ० स्त्री०) पृथक् आत्मा सक्तपं यस्य, तस्य भावः तळ्-टाप्। १ विवेक, विरक्तता, विराग। २ भेव, अन्तर। पृथगातिमका (सं ० स्त्री०) पृथक् आतमा खरूपं यस्याः-कापि अत इत्वं।ं व्यक्ति। पृथग्जन (सं॰ पु॰) पृथक् सज्जनेभ्यो विभिन्नो जनः। १ मुर्ख, वेवकूफ। २ नीच व्यक्ति, कमीना आदमी। ३ पामर, पापी । पृथावीज (सं० पु०) पृथक् विभिन्नानि नीजानि यस्य। महातकवृक्ष, मिलावां । पृथग्भाव (सं ० पु०) पृथक्टव, अलग होनेका भाव । पृथग्भूत (सं॰ ति॰) जो अलग हुआ हो । पृथग्विध (सं ० द्वि०) पृथक् भिन्ना विधा यस्य । नाना-कप। पृथवान (सं'० पु०) पृथिवी ।

पृथवान (सं ० पु०) पृथिवी । पृथवी (सं ० स्त्री०) प्रथते विस्तारमेतीति प्रथ-षिवन् सम्प्रसारणञ्ज (४थे विवन् सम्प्रसारणङ्ग । उण १।१५०) पृथिवी ।

पृथा (सं कित्री) कुन्तिभोजकी कन्या कुन्ती, पाण्डुराजाकी पत्नी । भागवतमें इस प्रकार लिखा है, — महाराज देवमी इके पुत्र शूर थे। इन्हीं शूरके औरस और
मारिषाके गर्भसे वसुदेवादि दश पुत्र और प्रथा आदि
पांच कन्याएं उत्पन्न हुईं। राजा शूरने अपने मित्र
कुन्तिभोजको निःसन्तान देख पृथाको दत्तकपुती सहएमें
प्रदान किया । पृथाने वाल्यकालमें दुर्वासा मुनिको
परिचर्यादिसे खुश कर उनसे देवाह्मनविद्या पाई। कुन्तीने कुमारी अवस्थामें एक दिन इस मन्त्रकी परीक्षा करनेके लिये स्यदेवका आद्भान किया । स्य मन्त्रके वलसे
उसी समय उपस्थित हुए। यह देख कुन्ती मौचक-सी
रह गईं। वाद कुन्तीने हाथ जीड कर कहा, मैने

परीक्षार्थ इस मन्त्रका प्रयोग किया था, आपसे मुक्ते कोई प्रयोजन नहीं। इस पर सूर्यने कहा, 'देवदर्शन व्यर्थ नहीं जाते, तुक्ते गर्भधारण करना हो पड़ेगा। यदि कन्या समक्त कर सङ्कोच करती हो, तो जिससे तुम्हारी योनि भ्रष्ट न हो, में वैसा हो कर्क गा।' सूर्य इस प्रकार कुन्ती-को गर्भाधान कर खर्ग चले गये। कुन्तीके भी उसी समय एक पुत्र हुआ। लोकलजाके उरसे कुन्तीने उस पुत्रको नदीमें फे क दिया। पीछे पाण्डुके साथ इनका विवाह हुआ और उसी देवाहान-मन्त्रके वलसे कुन्तीने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन इन तीन पुत्रोंको पाया।

विशेष कृती शब्दः देखो ।

पृथाज (स°० पु०) पृथायां जायते जन-ड। १ युधि-ष्टिरादि कुन्तीके पुत्र। २ अज्ञ[°]नवृक्ष।

पृथापति (सं ॰ पु॰) पृथायाः पतिः। पाण्डुराज। पृथिका (सं॰ स्त्रो॰) प्रथ-घत्रथें क, स्वार्थे क, अत इस्त्रं। शतपदी।

पृथित् (सं॰ पु॰) प्रथ-वाहुळकात् किन् सम्प्रसारणञ्च। वेणपुत पृथु नामक नृष।

पृथिवी (सं० स्त्री०) प्रथते विस्तारं गच्छतीति प्रथ-पिवन, सम्प्रसारणञ्च, (प्रथे: यिवन् धम्प्रवारणङच । उण् १।१५०) ततो ङीप्। मर्त्स्यादिका अधिष्ठानभूत। पर्याय-भू, भूमि, अचला, अनन्ता, रसा, विश्वम्भरा, घरा, स्थिरा, धरिलो धरणी उया, झौणी, झिति, काश्यपी, वसुमती, ब ध्या, उवीं, वसुन्धरा, गोता, कु, पृथ्वी, अवनि, मेदिनी, मही, भूर, भूमि, धरणि, क्षोणि, क्षोणी, श्लोणी, श्लमा, अवनी, महि, रत्नगर्भा, साग-राम्यरा, अञ्घिमेखला, भूतघाली, रत्नावती, देहिनी, पारा, विपुला, मध्यमलोकवर्त्मा, धरणीधरा, धारणी, प्रहाकाएडा, जगद्रहा, गन्धवती, खएडनी, गिरिकर्णिका, धारियती, धाती, सागरमेखला, सहा, अचलकीला, गी, अव्धिद्वीपा, द्विरा, इड़ा, इड़िका, इला, इलिका, उद्धि-वस्रा, इरा, आदिमा, ईला, वरा, उर्वरा, आद्या, जगती, पृथु, भुवनमाता, निश्चला, वीजशस्, श्यामा, कोड्कान्ता, खगवती, अदिति, पृथवी । (शन्दा^{र्णव}) ·

वैदिक पर्याय—गो, गा, ज्ना, क्ष्ना, क्षा, क्षामा, क्षीणी, क्षिति, अवनि, उचीं, पृथ्वी, मही, रिप, अदिति,

इला, निऋँ ति, भू, भूमि, पूषा, गातु, गोता । (वेदिनधण्ड १ ४०)

वेदमें पृथिवीशय्य पक्षान्तरमें अन्तरोक्ष नामसे भी उक्त हुआ है—

"स दाघार पृथिवीं द्यामुतेमां" (ऋक् १०।१२१।१) 'यद्वा पृथिवीत्यन्तरिक्ष नाम' (सायण)

श्रुति और स्मृतिका मतः।

पृथिवीको उत्पत्तिके विषय्रमें श्रुतिमें इस प्रकार लिखा है,--, आकाशात् वायुव योर्गिनरानेराप अद्भय पृथिवी-चोत्पवते" (श्रुतिः इससे प्रमाणित होता है, कि एक समय आकाश वा वाप्प समस्त जगन्मएंडलमें व्याप्त था। पीछे प्रत्येक वाष्पकणाके परस्पर आकर्षण और संघातसे अणु परमाणुकी उत्पत्ति हुई है। जैन-दर्शनमें लिखा है--"अण्वादीनां संघातात् दुव्युणुकादय उत्पचन्ते । तत स्वाव-स्थिताकृष्टशक्तिरेवाद्यसंयोगे कारणभावमापद्यते।" अणु-ऑके परस्पर संघातसे द्वि-अणु, तसरेणु आदि उत्पन्न हो कर आकाशमार्गमें फैल जाते हैं। धीरे घीरे जगदु-व्यापकत्व और घनत्व प्राप्त होता है । अन्तमें उनके मध्य अवस्थित आकृष्ट-शक्ति ही आद्यसंयोगसे कारणता पाती है। इसके द्वारा एक जगदुव्यापी आणविक आकर्पणशक्तिका परिचय मिलता है। घनीभृत अणु-मएडलीके आकर्षणाधिक्यके कारण दूरवर्त्तों अपेक्षाइत स्क्ष्मतर अणुओंकी गतिसे वायुका, पीछे द्वुतगमन भौर संघर्षणके कारण अग्निका, अग्निका उत्ताप घनीभूत हो कर शीतल होनेके समय जलका और उसो जलसे पृथिवीका अस्तित्व स्चित हुआ है।

ऋग्वेदसंहितामें (१।५६।२) अग्नि ही पृथिनोकी नाभि और ज्योतिकप मानी गई है—

"मूर्द्धादिवो नाभिरग्निः पृथिष्या अथाभवद्रतो रोदस्योः। तं त्वा देवासोऽजनयन्त् देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्ध्याय॥"

भारय—'श्रयमगिनदिवो यु लोक्स मूर्ज िरोबत प्रमान-भतो भवति । पृथिन्या भूमेश्च नामिः संनाहकः रश्चक इसर्यः । श्रयानन्तरं रोदस्योधावा पृषिन्योरयमरतिरिंगतिरमवत । हे वैश्वानर तं तादशं देव दानित्रगुणयुक्तं त्वा त्वां देवादः सर्वेदेवा शार्थाय विदुषे मनवे यजमानाय वा ज्योतिरित् अयोती-रूपमेबाजनयन्त उद्पादकन् ।" सायणभाष्यके ऐसे अर्थसे यह सावित होता है, कि तिजरूप अग्नि ही स्वर्गाद सृष्टलोकका प्रधान है और वहीं ज्योतिरूपों वैश्वानर पृथियो-रक्षक सूर्य हैं, इसमें सन्देह नहीं । सूर्यके आकर्षण और उत्तप्त रिमसे पृथिवीका रक्षण होता है, यह पौराणिक उपपत्ति और वैज्ञानिक तस्वसमुद्ध त भ्रुव सत्य वैदिक मतसे भी समीचीन माना जाता है।

वाजसनेयसंहितामें भी लिखा है—
"हद्राः संस्तृत्य पृथिवीं वृहज्योतिः समीधिरै।
तेषां भानुरजल्ध्ह्रच्छुको देवेषु रोचते॥"
(शुक्त्यण्च ११।५४)

इसके भाष्यमें महोधरने लिखा है,—"ये का; पृथिवीं पार्थिवं पिराह्वं संसन्य शर्करायोरसार-क्र्णें: संयोज्य बृह-ज्ययोति: श्रीकमितं समीधिरे सम्यक् श्रीपेतवन्तः । तेवां क्याणां श्रकः श्रुदो देवीप्यमानोऽनसं: भतुपक्षीण इव देवेषु मण्ये भातु: श्रीपेत: रोचते प्रकाशते इत् एवार्यः ॥"

वद्रगणने सूक्ष्म सिकतालों हिकह और पाषाणचूर्ण मिला कर पिएडाकारमें पार्थिय पृथिवीको सृष्टि करके वृह् ज्ञ्योति प्राप्त की। इसके फलसे च्ट्रोंकी देवीप्यमाना दीति देवताओं के मध्य प्रकाशित हुई थी। इससे स्पष्ट समन्त्रा जाता है, कि पिएडाकार पार्थिव जगत् गोल है और स्थूल भूत यह लौहकीह पाषाण चूर्णादि पदार्थ पाञ्चमीतिक विकृतिमात है तथा गन्धतन्मात परिणत हो कर पृथिवीका उत्पादक हुआ था। शतपथनाह्मणके (विकृतिमृतस्य प्रथमना (शतपथनाह्मणके (विकृतिमृतस्य प्रथमना (शतपथनाह्मणके प्रयोगसे पृथिवीकी भूतोत्पत्तिकी कथा प्रकट होती है।

भगवान् मनुने जगत्की उत्पत्ति और सृष्टिके सम्बन्ध-में जो वर्णन किया है, उसमें भी कोई मतपार्थंक्य नहीं देखा जाता। उनके मतसे यह परिदृश्यमान विश्वसंसार एक समय गाढ़ तमसाच्छन्न था। वह अवस्था दृष्टि-गोचर नहीं होती थी और न लक्षण द्वारा ही उसका पता चलता था। उस समय वह अवस्था ज्ञान और तकसे अतीत होकर सर्वतीमावमें निदित थी। पीछे स्वयम्भु भगवान्ने महाभूतादि चौबीस तत्त्वीमें प्रवृत्तवीर्य हो कर इस विश्वसंसारको प्रकट किया और धीरे धीरे वे ही उस तमोवस्थाके ध्वंसक्तपमें ध्वक हुए थे। मनोमाव- ब्राह्य सूक्ष्मतम अध्यक पुरुष ही शरीराकारमें प्रायु-र्भृत हुए। विविध प्रजाखिएकी कामनासे उन्होंने अपते शरीरसे ध्यानयोग द्वोरा पहले जलको सृष्टि की । पीछे उस जलमें अपना शक्तिबीज मिलाकर सुवर्णवर्णोपम सूर्य-के जैसा आभाविशिष्ट एक अग्ड निर्माण किया। उसके वाद सर्वलोकपितामह् ब्रह्मरूपमें उन्होंने खयं उस अएडके मध्य जन्म लिया। नर अर्थात् परमात्मासे प्रस्त होनेके कारण अपत्यप्रत्ययमें जलका नारा और नारा ब्रह्मरूपमें अवस्थित परमात्माके प्रथम आश्रयमूत होनेके कारण ब्रह्मका नारायण नाम रखा गया है। वे आदिकारण अध्यक्तानित्य और सद्सदात्मक हैं। तत्कर्तुक उत्पा-दित उन प्रथम पुरुपको भी छोग ब्रह्मा कहते हैं। भग-वान् ब्रह्माने इस ब्रह्माएडमें ब्रह्ममानके संवत्सरकां छ तक वास कर अन्तर्मे आत्मगत ध्यानवलसे उसे दो बएड· कर डाला । इसके ऊर्द्ध खएडमें स्वर्गादि-लोक और अधोखएडमें पृथिव्यादि, मध्य भागमें आकाश, अष्टिवक् और शाश्वत सभी समुद्र सृष्टि हुए। आत्मानुभवसे ब्रह्माने मनका उद्धार किया। मनस्कू-रणके पहले महत्तत्त्वका विकाश हुआ था। इसके वाद विषयप्रहणाक्षम इन्द्रियोंकी सृष्टि हुई। अनन्तकार्याक्षेत, अहङ्कार और पञ्चतन्मातमें आत्मयोजनासे देवमनुत्रादि जीवोंका उद्भव हुआ । मूर्त्तिसम्पादंक ये छह सूदमतम अंवयव पञ्चभूतादिका आश्रय लिये हुए हैं, इसलिये वह कांश्रयस्थान शरीर नामसे प्रसिद्ध हुआ है। आका-शादि महाभूत भी शरीरका आश्रय लेते हैं। महत्तत्व अहङ्कारतस्य और पञ्चतनमात्र इन सात दैवशक्तिकी स्त्ममानासे इस जगत्की सृष्टि हुई है अविनाशी-कारणसे इसी प्रकार अस्थिर सभी कार्योंकी उत्पत्ति हुई है। आकाशादि सभी भूतोंमें पहलेको छोड़ कर और सभी भूत अपने अपने गुणातिरिक्त पूर्व के गुणको ब्रहण करते हैं। आकाशका गुण शब्द हैं; वायुका शन्द और स्पर्श ; अम्निका शन्द, रूपर्श, और रूप ; जलका शब्द, स्पर्श, इ.प और रस तथा पृथिवीका गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। अनन्तर स्तमपञ्चतन्मातसे स्थलतर द्वश्यमान पदार्थादिका उद्भव हुआ है। वह परमदेव (ब्रह्म) जब जागरित

रहते हैं तब यह विश्वव्रह्माएंड भी उस समय चेष्टित रहता है। उस शान्तातमाने निद्रा छेने पर विश्वब्रह्माएड भी निमीलित हो जाता है तथा विश्वसंसारमें महाप्रलय संघटित होता है। ब्रह्मरातके अवसान पर प्रसुप्तावस्था-से उत्थित और प्रतिवुद्ध हो स्वयं ब्रह्मदेव सृष्टिकार्यमें लग जाते हैं। परमात्मा कर्तृ क सृष्टिकामनासे प्रेरित मन वा मवत्तस्यसे पहले शब्द्रगुणविशिष्ट आकाशकी उत्पत्ति और आकाशकी विकृतिसे वलवान् सर्व गन्धवह स्पर्शेगुणात्मक पविवे वायुकी उत्पत्ति हुई। वायुकी विकृतिसे तमोनाशक और समस्त वस्तुओंके प्रकाशक दीप्तिमान तेजः (रूप) उत्पन्न हुए । तेज विरुत हो कर ही जल (रस)-में परिणत हुआ, पीछे कालकमसे जलसे ही गन्यगुणसम्पन्ना पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है। महाप्रलयावसानके वाद सृष्टिके पहले पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति इसी प्रकार गोचरीभूत हुआ करती है, इसी तरह असंख्य असंख्य मन्वन्तर और लक्ष लक्ष वार विश्वकी सृष्टि और लय हुआ है । (मनु १५८० श्लोक')

ब्रह्माएडादि विभिन्न पुराणोंमें भी निखिल विश्वका तमोमयत्व और अनादि अनन्तपरिध्याप्तत्व कल्पित हुआ है। इस तमोमय विश्वमें गुणसाम्य उपस्थित होनेके कारण क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्रधान-प्रकृतिका सृष्टिकाल आरम्भ हुआ और सबसे पहले हो सूक्त और महद्वगुणसंयुक्त अव्यक्त समावृत महत्तत्त्वको प्रादुर्भाव हुआ । सत्त्व-गुणोद्द्रिक उसी महतत्त्वको सत्त्वगुणप्रकाशक मन कहते हैं। यही मन कारण नामसे प्रसिद्ध है। सत्त्वविद्द-गण महत्तत्त्वको ही सृष्टिकर्त्ता वतलाते हैं। सङ्कल्प और अर्ध्यवसाय उनकी वृत्ति हैं, लोकतत्त्वार्थके हेतुसक्प धर्मादि उनका रूप और सत्त्व है, तथा सत्त्व, रजः और तमः उनका गुण है। महत्तत्त्व गुणत्रयविशिष्ट होने पर भी रजीगुणके आधिक्यवशतः उससे महत्परिवृत और भूतादि विकृत अहङ्कारको सृष्टि होती है। अहङ्कारमें तमोगुणकी अधिकता रहनेसे तमोगुणाकान्त भूतसमूहका आदिकारणखरूप भूततन्मात उत्पन्न होता है। उस भूततन्मातसे शब्दतन्मात और सच्छिद्र आकाशकी उत्पत्ति मानी जाती है। विकारजनक भूतादिसे शब्द-तन्माले भूतादि कर्तुं क पुनर्वार आवरित होनेके कारण

उससे स्पर्शतन्मात और स्पर्शगुणयुक्त वायु उत्पन्न हुई। शब्दतनमात और आकाशके आवरणसे स्परीतनमातसे रूपतन्मात और तेजकी उत्पत्ति हुई । रूपतन्मातके आवरणसे रसतन्मात और जलका रसतन्मातके आव-गन्धतनमात्र और गन्धतनमात रसतन्मात कर्त्तृक आवरित होनेसे गन्धगुणयुक्त क्षितिका आविर्भाव हुवा था# । इस प्रकार गन्धतन्मात शन्द्-स्पर्श, रूप और रसकर्मु क समाविए होनेके कारण शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध यही पांच गुण पृथिवीके माने गये हैं। केवल स्थूलभूतका हो यह (नियम जानना चाहिये। भूतसमूह शान्त, घोर और मूढ़ गुणयुक्त होनेके कारण विशेष नामीसे परिचित हैं। ये आपसमें अनुप्रविष्ट हो कर एक दूसरेके धारणकर्त्ता हुआ करते हैं। लोका-लोकाचल परिवृत यह परिदृश्यमान सभी पदार्थ भूमिके अन्तम् त हैं । महदादि त्रिशेपान्त सात पदार्थ आपसमे संमिश्रित हो कर पुरुषके अधिग्रान पाप्त होते हैं। उसी अव्यक्तके अनुप्रहसे अण्डकी उत्पत्ति होती है। विशेष पदार्थसमूहसे पादुमूँत अएड ब्रह्मकार्यकलापका कारणखरूप है। उस प्राकृत अएडके विवुद्ध होनेसे ही भूतसमूहके आदिकर्त्ता प्रथम शरीरी हिरण्यगर्भ क्षेत्रह पुरुष जीवारमासमूहकी सृष्टि करते हैं। खणमय सुमेर पर्वत ही हिरण्यगर्भका गर्भ है, समुद्र उनका गर्भोहंक और पर्वतगण उनके जरायुं हैं। सप्तसमुद्र, सुमहत् पर्वत-समूह और शतसहस्र नदी-परिवेधित समद्वीपा पृथिवी, चराचर समुदाय विश्व और चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत वायु प्रमृति सभी लोकालोकसमृह इसी अएडके अन्तम् त हैं। अएडका वहिर्मांग भी दश गुण जल द्वारा परिवेष्टित है, उसके ऊपर दश गुण तेज, तेजके ऊपर दश गुण वायु, वायु दश गुण अकाश द्वारा और आकाश भूतगण द्वारा आच्छादित है।

भूतगण महत्परिवृत और महान अध्यक द्वारा आवृत
हैं। इस प्रकार अष्ट प्रकृति हो एक दूसरेका आवरण हो

स सांख्यकार कपिछने भी इस मतका प्रचार किया है—
''तल प्रियेवी धारणभानेन प्रवर्तमाना चतुर्णापुरकार करोति।
श्वाहरस्पर्शक्षरसगम्भवती प्रज्ञन्तुणा पृथिनी।''
(शांक्यतस्यको॰ १५१६६)

कर अंपडेका आवरक हुई है। विकारिसमृहसे विकार-के आधाराधेयभावमें अंध्र प्रकृति ही एंक दूसरेकी सृष्टि , और प्रलयकालमें लग किया करती है।

(तृक्षाग्रसपु॰ प्रक्रियावाद धर्य स॰ २३-८० दलेक)
इससे प्रतिपन्न होता है, कि शास्त्रकार मनु और
पुराणकारोंने वैज्ञानिक सत्यका पूर्णाभास पाया था।
या तो उन्होंने योगवलसे इन समस्त सत्यका द्वारोद्धाटन
किया हो, या प्रस्त वेज्ञानिक चर्चाप्रसूत इन समस्त
घटनावलियोंको वे लिपिवद कर गये हैं। धर्मप्राण
हिन्दूके निकट ईश्वर वा स्नष्टाको पकत्यकल्पना नितान्त
असम्भव नहीं है। इसी कारण इस सत्यसमृहका मूल
सभी ईश्वरमें आरोपित हुआ है। वर्त्तमान भूविदोंने
जगत्सृष्टिके आदिमें जो तमोमयत्यको कल्पना को है, हम
लोगोंके प्राचीनतम आर्थ स्वियोंने भी उस वातको
दूसरे प्रकारसे व्यक्त किया है, ईश्वरशक्तिके विकाशसे भूततन्मात द्वारा आकाशादिकी सृष्टि हुई है यही वर्त्तमान
वैज्ञानिकका Ether वा वाल्य है।

भूतत्त्वविदोंने जब बाष्यको ही जगत्को उत्पत्तिका मृहीभूतकारण बतलाया है, तब आकाशोत्पत्तिकी किया कहांसे हुई ? यह अवश्य खीकार करना पड़ेगा, कि मह तस्व सत्त्वरज्ञः प्रभृति तीनों गुण अहङ्कार और भूत-तन्मात (१) किसी स्क्ष्मतर कल्पनाका फल है। उन्होंके सहयोगसे आकाशकी उत्पत्ति हुई है। पीछे आकाशादिकी विकृतिसे वायवादि क्पान्तिति हुआ है। उनके मतिसम् सौर-जगत् भी पृथिवी है और यह मानवाकाश हो पार्थिव पृथिवो। आकाश मण्डलस्थ ज्योतिष्क प्रहृगण-परस्पर पृथक् और वक्षमावमें भूमण करते हैं। सूर्य-प्रहके समस्त नक्षत्वमण्डलका उन्नव, वायु-युक्त किरण जालसे जगत्का जलाकर्षण, उत्तरायण और दिक्षणायन कालमें रिश्मद्वयकी हासवृद्धि, सुपुम्ना नामक रिश्मसे प्रतिदिन चन्द्रालोकवर्द्ध न प्रभृति अनेक कथाओंकी एकता है, पर प्रभेद इतना ही है, कि वर्त्त मान वैज्ञानिकोंने

पृथिवीकी भूमणशीलता और स्र्यंके स्थायित्वकी केट्य-ना की है। भास्कराचार्य आदिके यह वात समर्थन करने पर भी ल्लाचार्य, ब्रह्मगुप्त और पुराणकारगण सूर्यका भूमणत्व स्वीकार करते हैं। परन्तु ब्रह्माएडपुराणकारने ब्रह्मणको वायुनिर्मित अदृश्य रिम-द्वारा भ्रुवनश्रत-में निवद और यथानिर्दिए पत पर भ्राम्यमाण दिखला दिया है तथा भ्रुवपरिवेष्टित सूर्यं भी भ्रमणशील हैं, यह भी लिखा है।(२)

वौगणिक कल्पित मत ।

इस पृथिवोकी उत्पत्तिका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिकाएडके सप्तम अध्यायमें इस प्रकार लिखा है,---भगवान् नारायणने एक दिन नारदसे कहा, महर्षे ! कोई कोई कहते हैं, कि वह पृथियो मधुकैटमके भेदसे उत्पन्न हुई है। किन्तु वह विरुद्ध मत तुम्हारे निकट व्यक्त करता हूं सुनो। पुराकालमें जब वे दुद्ध वे दोनों असुर मघु-कैटभ विण्णुके साथ हजारों वर्ष[°] तक युद्ध करके अन्तंमें उनका अद्भ तबीर्य और युद्ध देख परितुष्ट हुए थे, तंब उन्होंने कहा था, अच्छा, हम दोनों मरनेको राजी हैं, किन्तु जहां पृथिवी जलमन्न न हो, उसी स्थान पर हम दोनोंका वध कीजिये। इतनी वात कहते न कहते पृथियी खयं आ कर उनके सामने व्यक्त हुईं। अनन्तर वे दोनों मारे गये और उनके शरीरसे मेदोराशि उत्पन्न हुई । इस बटनासे जो पृथिवीका 'मेदिनी' नाम रखते हैं, उनका कहना है, कि पहले पृथिवी जलप्रवाहसे थोई जानेके कारण कुश हो गई थीं; पीछे दोनों असुरकी मेदोराशिके योगसे परिपुष्ट हुई हैं। किन्तु पृथिवीकी ज़त्पत्तिके सम्बन्धमें बाचीनकालसे पुष्करतीर्थमें रह कर हमने साझात् धर्मसे सववादि सम्मत जो विवरण सुना है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो। अति प्राचीन कालमें चिरजंल-मग्न महाविराट् पुरुपके शरीर पर बहुत दिनों तक सर्वाङ्ग सङ्गी मैळ जम गयी थी। कालफ्रमसे वह मैळ उनके प्रत्येक रोमकूपमें प्रविष्ट हो गयी जिससे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई। है मुने ! पृथिवी उनके प्रत्येक रोमकूर्पमें स्थिरभावसे रह कर पीछे वारम्वार जलके ऊपर आवि भू त और कभी कभी जलके मध्य तिरोभूत होने लिगीं।

⁽१) स्वीकार करनेकी बात है, कि ये सब ग्रन्ट् सचमुच किसी वैद्यांनिक आलोचनासे छिद्यान्त हुआ है। इसका अर्थ भी उसी प्रकार स्वतंत्रज्ञमावर्थ गृहीत हुआ करता है। ऋग्वेद (पारपाइ)-में पृथिवी ही सूर्यका आस्तरण मानी गई है। Vol. XIV.

⁽२) वृद्यांग्रहपुराण अनुवन्तवाद ५५-५७ अध्याच ।

इस प्रकार पृथिवी सृष्टिकालमें आविर्मू त, स्थितिकालमें जलके ऊपर स्थित और प्रलयकालमें जलमध्यगत होने लगीं। धोरे घोरे वसुधा प्रत्येक विश्वमें अवस्थान कर शैल, वन, सप्तद्रोप, सप्तसागर, हिमालय, मेरु, गृह, चन्द्र और सूर्यमें परिवृत हुईं। पीछे ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति करके समस्त सुरलोक, समस्त पुण्यतीर्था और पुण्य भारतवर्ष पर शोभित हुए। पृथिशीके अशी-भागमें सप्त पाताल और ऊदुध्वभागमें ब्रह्मलोक अव-स्थान करने लगा। इस प्रकार पृथिवी पर समन्र विश्व निर्मित हुआ। इस विश्वके सर्वोच्च भाग पर गोलोक और वैकुएउघाम अवस्थित है। ये दोनों धाम नित्य हैं, उनका कभो भी ध्वंश नहीं है। इसके अतिरिक्त और सभो विश्व कृतिम तथा नश्वर हैं। हे ब्रह्मन्! प्राकृत प्रलय उपस्थित होने पर जब ब्रह्माका भी विलय होता है, तव रुप्टि प्रारम्भमें भगवान् विष्णु आत्म द्वारा महा-विराट पुरुपकी सृष्टि करते हैं। उस प्रखयके समय क्षितिको अधिष्ठाती देवी भी दिक्, आकाश और ईश्वर इन तीन सत्य पदार्थके साथ अवस्थान करती हैं। ये वराह्कल्पमें सुर, मुनि, वित्र और गन्धर्न आदि कत्त्रुंक पूजित हो कर पीछे वराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी अृति-सम्मता पत्नी हुईं। इनके पुत मङ्गल और पौत्न घएटे श हुए इत्यादि ।

चसुधाने कहा —हे भगवन ! में आपके आज्ञानु-सार वराहरूप धारण कर लीलाकमसे ही इस सचराचर विश्वमण्डलको धारण करूंगी। परन्तु मुक्ता, शुक्ति, हरिको अर्चना, शिवलिङ्ग, शिला, शङ्क्षु, प्रदीप, मन्त, माणिक्य, हीरक, मणि, जपमाला, यञ्चस्त, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, पुष्पमाला, कर्पूर, सुवर्ण, गोरोज्ञना, चन्दन और शालग्राम-जल इन सव वस्तुओंको धारण न कर सक्तूंगी। क्योंकि उक्त द्रव्य यदि विना आधारके मेरे उपर रक्षते जांय, तो मुक्ते वड़ा हो क्लेश होगा। भग-वान्ते कहा—हे सुन्दरि! जो मृद्ध व्यक्ति ये सव द्रव्य विना आधारके तुम्हारे उपर रखेंगे, दिन्य-परिमित सी वर्ष तक कालस्त्र नरक वास करेंगे।

इस पृथिवीको पूजा, मन्त, ध्यान, दान, स्तव और जनन आदिका विधिनिपेध विवरण विस्तार हो जानेके भयसे नहीं लिखा गया। (हहारी नर्सपुताण प्रकृतिखंडहे अम अध्यानमें पृथिनी- 'पास राज देखी।)

उक्त पुराणके श्रीकृष्ण-जन्मखएडमें लिखा है, कि मन्त, मङ्गळकुम्म, शिवलिङ्ग, कुंकुम, मधुकाष्ट, चन्दन, कस्तूरी, तीर्थमृत्तिका, खड्ग, गएडकखड्ग, स्फरिक, पद्मराग, इन्द्रनील, सूर्यकान्तमणि, रुद्राक्ष, कुशमूल, निर्माल्य और हरिद्वर्णं मणि आदि पृथिवोक्ते ऊपर नहीं रखनी चाहिये। ये सव द्रव्य पृथिवोके भारसक्त हैं। जो कृष्णभक्तिहीन और छुष्णभक्तींकी निन्दा करते हैं, जो अपनी धर्माचारहीन और नित्य किया नहीं करते, जिन्हें वेदवास्यमें श्रद्धा नहीं है, जो पिता माता, गुर, स्त्री, पुत्र और पोव्य-परिजनींका प्रतिपालन नहीं करते, जो मिध्यावादी और निष्ठुर हैं तथा जो 'सद मनुष्य गुर-निन्दक, मिलद्रोही, ऋतव्र, मिथ्यासाक्षिदाता, विश्वास-घाती, न्यासहर, हरिनामविकयी, जीवघाती, गुक्द्रोही, प्रामयाजी, लोभी, रावदाही और शूद्रगृहमोजी हैं, पृथिवी उनके भारसे पीड़ित रहती हैं। अलावा इसके जो पूजा, यज्ञ, उपवास, वत और नियम कुछ भो तहीं करते तथा सर्वदा गो, ब्राह्मण, देवता और वैण्यवासे होप रवते हैं तथा जिनके मुखसे हरिकथा कभी नहीं निकलती और न भीतर हरिभक्ति ही हैं, वे पापिष्ट हैं। पृथिवी उन्के भार-से क्रान्त होती हैं। । व्रश्न ेवसे श्रीकृष्णवन्मन्त्र० ४४०)

इस पृथियो पर ग्रामशस्यादिको उत्पत्तिके सम्बन्धमें विच्णुपुराण लयोदश अध्यायके प्रथमांशमें पृथुचरितमें इस प्रकार लिखा है, —पृथियोपित सम्राद् पृथुके
राजत्वके प्रारम्भमें प्रजाने दुर्भिक्षादि नाना छेशोंसे
पीड़ित हो राजाके पास जा निवेदन किया, 'राजन!
धरित्ती अराजक अवस्थामें सभी ओषधियां ग्रास कर
गई हैं। इसलिये अञ्चके अभावसे प्रजाका दिनों दिन क्षय
होता जा रहा है। ऐसी अवस्थामें विधाताने आपको हो
हम लोगोंका प्रतिपालक निर्दिए कर दिया है। अतप्त
हे प्रजानाथ! हम लोग आपको प्रजा हैं, जिससे हमलोगोंकी जीवनरक्षा हो, वैसी कोई जीवनौषधि हम
लोगोंको प्रदान कीजिये।' राजा पृथु प्रजाकी कातरोकि
स्नन कर वसुन्धरा पर वहें विगड़े और धनुवाण हाथमें
ले कर उसी समय उनके प्रति दीड़ पड़े। इधर वसुन्धरा

ने भी पृथुराजाको उस अवस्थामें आते देख डरके मारे गोका रूप घारण कर लिया और ब्रह्मलोकादिकी ओर रवाना हुईं, पर कहीं भी उन्हें चैन न मिला। जहां जहां वे जा कर उहरती थीं, वहीं उन्हें मालूम पड़ता था, कि पृथु राजा हाथमें शरासन लिये सामने खड़े हैं। अन्तमें प्राणके भयसे वसुधा देवीने राजासे कहा, 'हे नरेन्द्र! आप मुक्ते वघ करनेके लिये उद्यत हुए हैं; किन्तु स्रोहत्या करना महापाप है, क्या यह आए नहीं जानते ?' इस पर राजाने कहा, 'यदि एक दुए व्यक्तिका : विनाश करनेसे वहुतींको जीवन एका हो, तो वैसी हिंसा-से पाय नहीं होता, वरं पुण्य ही होता है।' वसुन्धराने फिर निवेदन किया, 'हे प्रजानाथ ! आप यदि प्रजाके उपकारके लिये मेरी हत्या करते हैं, तो वताइये, आपकी प्रजाका वासस्थान कहां होगा? राजाने जवाव दिया, 'वसुधे! तुम मेरा शासन प्राह्म नहीं करती, इसीसे तुम्हें विनाश करके में अपने योगवलसे प्रजाको घारण कह्न गा।' राजाके इस प्रकार कहन पर पृथिवी डर गईं भीर उन्हें प्रणाम कर वोलीं, 'राजन्! आप यदि चाहें, तो मैं फिर आपको सभी जीर्ण ओपधियां दे सकती हूं, पर हां । आप मुक्ते पक बत्स दें और तमाम समतल करवा डार्ले। पेसा होनेसे ही मेरा दूध गिर कर सब जगह समान भावमें फैल जायगा।' पृथुराजने पृथिवीके अनु-रोघसे घतुकोटि द्वारा वहुसंख्यक पर्वतको अपने स्थान-से हंटा दिया और नतीन्नत भूमागको इस प्रकार सम-तल करवा डाला जिससे पृथिवी प्रचुर शस्य उत्पादन कर सकें। महाराज पृथुके राजस्य-कालसे ही यह पृथिवी नगर ग्राम और प्रशस्त विणक्षथ आदिमें विभक्त हुई हैं। इपि, गोरक्षा और ग्रस्यादि उसी समय-से सुचारहएमें सम्पन्न होने छगे। इसके पहले और कभी भी ऐसा नहीं हुआ था। पृथुराजने प्रजाकी भलाईके लिये खायम्भुव मनुको वत्सको कट्यना करके अपने हाथसे इस पृथिवासे शस्यादि दोहन किये थे, इसीसे भूमिका पृथिवी नाम पड़ा है।

नेयायिकोंका मत्।

न्यायके मतसे यह पृथिवी गुरु और रसयुक्त है। इसमें रूप, नैमित्तिक द्रवत्व और प्रत्यक्षयोगिता विद्यमान

है। स्पर्श, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, द्रवत्व, गुरुत्व, रूप, रस और गन्ध ये चौदह इसके गुण हैं।

गन्ध हो प्रकारको है, सौरम और असौरम । इन्हों हो गन्धके हेतु पृथिवी है, अर्थात् जहां गन्ध है वहां शिति-का अंश है, ऐसा जानना चाहिये। इस पृथिवीमें नाना प्रकारके रूप और छह प्रकारके रस विद्यमान हैं। इस-का स्पश-अनुष्ण, अर्शात और पाकज है।

पृथिवी हो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। पर-माणुखरूपा पृथिवी नित्य और अवयवशालिनी पृथिवी अनित्य है। यह सावयव-पृथिवी हेह, इन्द्रिय और विषम मेद्से तीन प्रकारकी है। इनमेंसे योनिजादि देहरूपा, ब्राणरूपा, इन्द्रियात्मिका और द्वाणुकादि ब्रह्माएड पर्यन्त पृथिवी विषयात्मिका नामसे प्रसिद्ध है।

पारचारय वा आधुनिक मतसे भूतत्व।

नद्नदीगिरिमालासे ले कर आसमुद्र तक विस्तृत भूमि खएड-जिस पर इम छोग (मनुष्यमात ही) वास करते हैं, जिसके उत्पन्न जात दृथसे हम लोग उदर भरते हैं, वही-सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला भूखएड पृथिवी ही है। दिग्वलय (द्रष्टिच्यापिका Horizon) परिवेष्टित वन उप-वन आदि जो सब प्राकृतिक सौन्दर्य देख कर हम लोग विमोहित होते हें, दैत्य दानव मानव और पशु पक्षी कीट पतङ्ग जिस भूमि पर विचरण करते हैं, वही भूमएडल है। वायु और वाण्य जिस प्रकार जगत्के अङ्गाधीन हैं, सूर्यां होक भी उसी प्रकार जीवका प्राणदायी है । : इसी कारण सूर्यके साथ पृथिवोका घनिष्ट सम्पर्क स्चित हुमा है। विशेष आलोचना और अनुसन्धान करनेसे मालूम हुआ है, कि पृथिवीके उत्पत्तिकालसे भिन्न भिन्न युगोंमें भिन्न भिन्न जोव-जगत् ऋएकी अपार करूणासे इस कर्म-क्षेत्रमें प्रकाशमान हुआ था। पौराणिकी कस्पनासे आदि (सत्य) युगमें मत्स्य, 'कूर्म, बराह, नृसिंह थादि भव-तारोंका आविभाव कल्पित हुआ है और उसी प्रसङ्गमें विभिन्न श्रेणीकी जीवदेहादिका चणन लिपिवद हुवा है। परन्तु वैशानिक अनुसन्धानसे आविष्कृत प्रस्तरीभृत अस्थिदेहके अवस्थानसे उस युगके मृत्तिकास्तरकी प्राचोनता यदि खोकार की जाय, तो यह स्पष्ट प्रतीतं

होता है, कि पृथिवीको प्रथमावस्थामें अद्भुताकार वृहदा-युतन अनेक जीव जगत्में विद्यमान थे।

यूरोपोय तत्त्वविदोंने पृथिवीजीवनके इतिहासको **झार युगोंमें विभक्त किया है—१ छा, आर्कियन इरा** (Archaean Era) वा युगमें Laurentian Period और Huronian Period नामक दो पूर्वतन प्रारुध विभागोंका उल्लेख है। २रा, पेलियोजोइक इरा (Paleozoic. िरः) वा युगके (Silurian, Devoniar, Catboniferous) विभागमें यथाकम कशेरकास्थिविहीन कीव, मतस्य और वृक्षलता शम्बृकादिका उद्भव देखा जाता है। ३रा, मेसोजइक (Mesozoic Era) युगके (Triassic Jurassic Cretaccous) कालमें एकमात सरीखपुका प्रावत्य लक्षित होता है। ४था, सिनोजङ्क (Cenozoic Era) युगके Tertiary और Quaternary विभागमें स्थूलचर्मा स्तन्यपायो जीव और मानव-जातिकी उत्पत्ति होती है। इसके वाद Post Tertiary प्रभृति युगान्तरका भो उल्लेख देखा जाता है। त्रेता और द्वापरादि युगके पहले पृथियोका अस्तित्व हम लोग भी स्वीकार करते हैं। सत्ययुगसे हिन्दूजातिकी वर्त्तमान पृथिवी है। मतस्ययुगसे हो जव पृथिवीके जीवोंके इतिहासका प्रथम निद्शेन पाया जाता है, तव उसे प्रथम । मान कर परवर्ती युगकी कल्पना की गई। १ला (Age of Fishes) २रा—सरीख्ययुग (Age of ! Repules) इरा स्तन्यपायोग्रग (Age of Mammals) और ध्या-मनुत्ययुग (Age of Man)। पुराणाख्यानमें जीवशून्य अपार जलधि-जलमें मत्स्य ही जगतका प्रथम जीव है। घीरे घीरे कुर्म, वराह, नृसिंह भादिका अधिष्ठान हुआ है । परमेश्वरको इच्छा पर हो ज्ञवं सृष्टि है, तब वे हो मानो भिन्न भिन्न जीवक्रपोंमें अवतोण हुए । ऐसी इतक करपना नितान्त अन्याय

भी नहीं जाती। पुराणमें द्वितीय युगमें जिस प्रकार प्रकार्ड शरीर और अङ्गुतायतन कूर्मकी अवतारणा की

है, उसी प्रकार द्वितीय युगान्तर प्राप्त 'ग्लिसियोसोरस इक्रियियसोरस' आदि प्रकाएडदेही सरीस्प्रका हम लोग निदशन पाते हैं। इसके वाद अस्थूलचर्मा स्तन्यपायी सतुष्पद जन्तुओंका आविर्मावकाल है। सबके अन्तमें

Sec. 1.

मनुष्य प्रथम जन्मकालमें भऐक्षाहरत निक्रप्रकार था। महामित बारहनने इस विषयमें अनेक वादानुवाद किये हैं। यही कारण है, कि हम छोगोंके देशमें वामनरूपी मानवके पहले नृसिहादतारका उल्लेख़ आया होगा। यह अनुमान जनसाधारणसे सत्य नहीं माने जाने पर भी पौराणिक उपाख्यानके मध्य रूपक रूपमें अनेक वैज्ञानिक सत्य सिन्नवेशित है। विद्वानके आलोकसे यदि देखा जाय, तो उससे अनेक लुप्त सत्यका उद्धार हो सकता है।

पास्वास्य मतसे पृथिवीकी इस्पति।

सूर्वके साथ पृथिवीका जो यनिष्ट सम्बन्ध है, वह सहजमें जाना जाता है। उनकी ज्योति: विस्फारित आलोकराशि नहीं पानेसे हम लोग कभी भी देख नहीं सकते और न समस्त जागतिक पदार्थ विरमाणता लाग कर सकता। अभी प्रश्न हो सकया है, कि यह पालियेती घरिती और सर्वमाणदायी सूर्य कहांसे आये? इस पर यदि थोड़ा भी विचार किया जाय, तो हम लोगोंका कौतुहल बढ़ता हैं और हम लोग इस विस्तृत ब्रह्माएडकी उत्पत्ति जाननेके लिये स्वतः इच्छुक होते हैं।

पृथिवी हम लोगोंका वासस्थान है, इसीसे पृथिवी तस्त्र जाननेके लिये हम लोग इतने व्याकुल हैं; किन्तु सौर जगत्के प्रत्येक ज्योतिष्कके साथ प्रत्येकका पेसा विशेष सम्बन्ध है, कि एककी भी उत्पत्ति जाननेमें दूसरी-की भी उत्पत्ति उसके साथ जाननी होती हैं। किसी किसी जातिकी किम्बद्न्तोमें सृष्टि-सम्पर्कीय जो कथा सिन्नविशित है, वह कल्पनाप्रस्त होनेके कारण अथाहा है। किन्तु प्राकृतिक नियमावलीकी पर्यालीचना द्वारा इस विषयमें जो सिद्धान्त हुआ है, वही वैद्यानिक जगत्में परिगृहीत और जनसाधारणका अनुमोदित है।

सौर जगत् एक वृक्ष है, सूर्य उसके काएड और उप-प्रहादि उसकी शाखा-प्रशाखा माल हैं। जर्मन-दार्शनिक काएटने वैज्ञानिक नियमानुसार सृष्टिके सम्बन्धमें आलो-चना करके स्थिर किया है, कि वह और उपव्रहादिक

[#] वस समय केवल ६ ग्रह और ६ उपग्रह साविष्ट्रत हुए थे।

आकाशमार्गमें एक ही समतलपथसे सूबके चारों ओर चकाकारमें धूमते हैं, कभी भी दैन समाधित नहीं हो सकते, वरन किसी साधारण नियम बलसे यह समस्त सौर जगन् एक ही पथसे प्रधावित होता है, किसी पदार्थ हारा ज्योतिष्कराण परस्पर संयुक्त रहनेसे समस्त्रमें चल सकते थे, पर बधार्थमें इथरमय (Ether) आकाशमें प्रहगण एक दूसरेसे अलग रह कर घूमते हैं। इथरके जैसे स्वमतर पदार्थमें संलिप्त रह कर प्रहादिकी ऐसी गति क्यों हुई? काएटका कहना है, कि पहले सौर जगत् आवर्तमान विश्वञ्चल वाप्पमय पदार्थराशिमें ब्याप्त था। किसी किसी जगह वाप्पके घना रहनेके कारण माध्याकपंणके वलसे वाप्प-जयत्के लघु अंश घने स्थानके वाप्पके साथ मिल कर एक एक गोलकमें परिणत हुए हैं।

दशङ (Sir William Herschel) ने दूरवोक्षण यन्त्रकी सहायतासे आकाशमें भित्र भिन्न अवस्थापन्न भिन्न भिन्न वाष्पल्एड देख कर यह स्थिर किया है, कि प्रदीप्त नीहारिका राशिके अवस्थान्तरसे ही जगत्की अभिव्यक्ति है और आकाशमें आज भी जो सव नीहारिका विद्यमान हैं, कालकमसे वह भी एक एक ज्योतिष्कर्में परिणत होंगी भाष्ट्रनिक ज्योतिर्विद्रिने परीक्षा द्वारा उक्त मतका समर्थन किया है। छैप्छेस (Laplace)-ने सौरजगत्का गति-सामञ्जरय देख कर जी कारण निर्देश किया है, यह भी पूर्वमतका समर्थन करता है। उनके मतसे आकाशमें अभी जो प्रह उपप्रह विराजित हैं, वे एक समय (सीरजगत्-को आदिम अवस्थामें) विशाल गोलाकार ज्वलन्त वाप्प-राशिमें ध्यात थे। क्रमशः वह वाष्पराशि एक आवर्तन-शलाका अवलम्बन करके अपने चारों ओर यूमती थी। इस प्रकार वाष्पराशि शीतल हो कर केन्द्रकी और संकु-चित होने लगी । सङ्कीचनके अनुसार घूमनेवाले समी पदार्थोंकी गतिकी बेगवृद्धिसे केन्द्रातिगशक्ति बढ़ती है। भूमते हुए गोलकके कटिदेशकी गति सबसे अधिक है, इस कारण वहांकी केन्द्रातिगशक्ति उसी परिमाणमें अधिक है। गोलकके प्रत्येक अंशकी केन्द्राति :-शक्ति भी उस अंशकी माध्यानंपँणशक्ति जव तक समानमाव्में

रहती है, तब तक लगातार घूमती रहेगी। 🗱 इस प्रकार उस वाप्प-गोलककी केन्द्रातिग-शक्तिके बढ़ जानेसे वियुष रेखासन्निहित स्थल केन्द्राकर्पणको अतिक्रम करके मुळांशसे विच्छिना हो जाता है और एक स्वतन्त अंगु-रीयकाकार चक्रकप धारण करता है। अवशिष्ट अंशसे फिर विच्छिन्न हो कर वह अतिविस्तृत वाप्पराशि कुछ खतन्त चक्रोंसे परिवेष्टित एक वृहत्तर गोलकमें परिणत होती है। वही हम छोगोंके सुर्थ हैं। एक एक स्वतन्त चकके घनस्थानके आकर्षणसे चारों ओरके सभी छोटे छोटे अंश मिल कर एक एक स्वतन्त्र ब्रह्रूएमें सुष्ट हुए हैं। पूर्वोक्त रूपसे परित्यक्त अतिविस्तृत चक्रके भीतर-से छोटे छोटे चक्र सतन्त्र हो कर जो सव ज्योतिष्क हुए हैं उनका नाम उपग्रह है। यदि किसी चकके सभी स्थानींका घनत्व और उसके कारण आकर्षण भी समान हो, तो उक्त पदार्थराशि खतन्त्र गोलकमें परिणत न हो कर शनिग्रहके जैसे प्रहके चारों और चक्राकारमें घूमती रहती है अथवा उस चक्रसे विच्छिन्न हो छोटो छोटी प्रहमालाके रूपमें परिणत होती है।

छैप्लेसका मत वैद्यानिक-जगत्में विशेष आद्रणीय है। उनके मतानुसार सौर जगत्में सूर्य हो जादिम ज्योतिक हैं और सभी सूर्यसे विच्छित्र हो कर आपे हैं। पृथिवोके खभाव और उत्पत्तिका पता लगानेमें लियनिज (Leibnitz), लैप्लेस, हर्शेल (Sir John Herschel), दार्शनिक काएड (Kant) और सोबेनवर्ग (Swedenborg) आदि महापुरुषोंने बड़ा परिश्रम किया। छैप्लेसने निगमनप्रणालीसे नीहारिकाकल्पन (Nebular hypothesis)-का जो सिद्धान्त स्थिर किया है, आधुनिक परिष्ठत सर विलियम रमसन और हैल्महल्टस व्याप्ति (Induction) प्रणालीसे उसी सिद्धान्त पर पहुंचे हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि स्यैके उत्पातके विना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। छोटे पतङ्गके पंख आने-से ले कर प्रकाएड पर्वतके चूर्णन तक सभी कार्य सूर्यके उत्तापसे सम्पादित होता है। सूर्यसे हम लोग पृथिवीका जीवन-एहाकारी जितना उत्ताप पाते हैं, कुल मिला कर

Vol. XIV. 79

[#] जन्हारका जुमता हुआ बनका इसका एक प्रकृष उदा-इरण है।

उसका २१७०००००० गुणा उत्ताप वेकार इधर उधर पड़ता है। स्थैसे इतना उत्ताप निकलने पर भी वह किस प्रकार अपने उत्तापकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए हैं ? प्राकृतिक नियमसे वाष्प शीतल होनेके समय संकृचित हो उत्ताप विक्षेप करता है। स्थैक्षप वाष्पगीलक शीतल हो कर जितना संकृचित होता है, उतना ही उसका उत्ताप बढ़ता है(१)। सूर्य देशो।

सूर्यपरित्यक वाण्यीय चक्र गोलकक्षप धारण करके सूर्यके चारों ओर घूमता है। धीरे धीरे वह शीतल और धना हो कर तरल हो जाता है। तरल गोलकके घूमनेसे उसके दो मेरु कुछ दव जाते और मध्य देश स्पीत हो उठता है। (२) उक्त नियमानुसार सूर्यत्यक एक वाण्यचक्र पृथिवीको गतिका परिमाण लेकर न्युटनने विषुवरेखास्थ प्रदेशको उन्नति और मेरु सिन्नहित प्रदेशको अवनतिका परिमाण स्थिर किया है। १७३६ ई०में फ्रान्सको वैज्ञानिक सभासे क्लारो, लेमनिये आदि कुछ मनुष्य पृथिवीके वृत्तांशका परिमाण लेनेके लिये लाप्लाएडदेश मेजे गये और उसो समयमें वुगें तथा कंदामिनने दक्षिण-अमेरिकाकी विषुवरेखाका परिमाण अवलम्बन करके अङ्कन्नणना द्वारा न्युटनका गणन-फल प्रतिपादित किया।

वाष्पमय पृथिवी शीतल हो कर धीरे घीरे जब धनो अवस्थामें आई, तब सभी वाष्प तरल हुआ, इसका कोई निश्चय नहीं । कुछ ती उसी अवस्थामें पृथिवीके जपर मौजूद है। पृथिवीका यह वाष्पावरण एक समय चन्द्र तक विस्तृत था, इसमें सन्देह नहीं । उस तरल अवस्था-

(१) गणना द्वारा रियर हुआ है, कि सूर्य उतापशिक न्ययं करके भी नवमें २२० फुट अपना न्यास संक्रित करते हैं। इस हिसाबसे प्रति ग्रातान्दमें सूर्यका थ मीड संकोचन आवश्यक है। इस प्रकार एक समय सूर्यवाल बुध, पृथिवी-कक्ष, यहां तक कि सौर-जगत्मय न्याप्त था।

(२) मेर्धितिहित स्थानकी अपेक्षा कोटिसितिहित स्थानकी केन्द्रातिग गति अधिक होनेके कारण वह केन्द्रातुग प्राक्तिकी अतिकाम करके स्कीत होती है और दोनों मेर विषुवरेखाकी सीर दब कर दोनों ओर निपक जाता है।

में पृथिवीका उत्ताप २००० से लिद्देश इ विश्वीका परिमाण था ! तापमान-यन्त्रके १०० उत्तापसे ही ज्ञळ उवल्ले लगता है, २००० उत्तापसे लीह प्रभृति धातुमय इल और अपरापर वस्तु यदि वाष्पाकारमें पृथिवीके उत्पर वह भी जाय, तो आञ्चर्य ही क्या !

जिस आकाशमें अभी प्रहण अवस्थित हैं, वहांका उत्ताप बहुत कम है। उत्तप्त तरल पृथिवीने (२०००') शीतल आकाशपधर्मे घूम कर भपना उत्ताप बहुत कुछ घटा दिया। शीतलताके कारण तरल पदार्थ धना हो कर और भी दूढ़तर होने छगा । च दके आकर्षणसे ज्वार-माराके कारण पृथिवी और भी शीतल हो गई। इत्यादि कारणोंसे जब पृथिवी एक तरहसे शीतल होती आई, तव मेरुसन्निहित समुद्र बहते हुए हिमशैलकी तरह अद्धं तरलावस्थापन्न जमी हुई पदार्थराशि पृथिवी पर जहां तहां बहने लगा । थीरे थीरे तरल पृथिवीके समस्त पृष्ठदेशने इस प्रकार जमी हुई ८दार्धराशि पर आवृत हो कर एक आवरणकी सृष्टि की। किन्तु ऐसे स्थ्म आच्छादनसे भाभ्यन्तरीण उचार-भादा बंद नहीं हुआ। वीच बीचमें आवरणको छेद कर तरलपदार्थ-राशि प्रचएड वेगसे ऊपरकी ओर उत्सिप्त होने छगी। धीरे धीरे ऊद्धींत्थित पदार्थराशि ही शीतल हो कर पर्नतत्त्वमं परिणत हुई।

भभी हम लोग पर्वतश्रेणी-समाकीण वाष्पमिएडत उत्तत मरुमय पृथिवी देखते हैं। धीरे धीरे उत्तापका भीर भी हास हुआ। जब शून्य स्थानमें बहते हुए जलीय-वाष्पका वाष्पाकारमें रहना असम्मव हो उठा, तव वही वाष्पराशि जम कर उत्तत जलाकारमें पृथिवी पर गिरी। पृथिवीके जपर वृष्टिपतन-युगका यह प्रथम आरम्भ है। उच्च पृथिवीके जपर वृष्टि पड़ते ही वह उच्च वाष्पाकारमें जपरको उठा। शीतल आकाशके संस्पर्शेसे वह पुनः शीतल हो कर वृष्टिक्यमें जमीन पर गिरा। जलकी धनी धनी अवस्थाके परिवर्तनसे अन्धकाराच्छक्ष पृथिवीने विधुत्के आलोक और वज्रकी ध्वनिसे घनघरा वजा विया। यह भौतिक विभ्रव कर तक वला था, उसका कोई निश्चय नहीं है। जलके सारी

 $\{j\in V_k$

जीर अस्कुट सूर्यराशिने वह दिगन्तव्यापी अन्यकार मेद कर अपने आलोकसे जलस्रावित पृथिवीको पुलकित कर डाला था।

मारतीय मतते पृथिवीका आकार और स्वभ व ।

मारतवर्षीय प्राचीनतम भूगोळिवित् परिडतींने
पृथिवीके ऑकारनिर्णयमें यथेष्ट बुद्धिमत्ताका परिचय
दिया है। किसी किसी पुराणमें पृथिवीको लिकोण वा
चतुंकोणादिकंपमें वतलाया है। विष्णुपुराण और
भागवतमें पृथिवीका आकार पद्मपत्नके जैसा वतलाया
है। सिद्धान्तशिरोमणिमें गणित और युक्तिवलमें घरणीका जैसा आकार और समाव निर्णीत हुआ है, वह
सर्वतोभावमें यूरोपीय ज्योतिर्विदोंका मत प्रतिपोधक है।
"भूमें पिण्डः श्रंशाङ्कृतकविरिवकुकेज्यार्किनक्षतकक्षा।
वृत्तेवृत्वो वृतः सन् मृद्दनिलस्तिल्ल्योमतेकोमयोऽयं।
नान्योघारः सशक्त्येव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे,
निन्दं विश्वच श्रवत् सदनुजमनुकादित्यदैत्यं समन्तात्॥"

(झिद्धान्तशिरोमणि)

पञ्चभूतमय यह गोलाकार भूमिलएंड चन्द्र, बुध, शुक, मंक्नेंल, वृह्हेंपंति, शनि और नश्नंतकश्चींवृतसे आवृत्त हो कर विना किसी आधारके आकाश-पथमें अपने शक्तिवल परे अवस्थित है; और उसी शक्तिके प्रभावसे देव-दैत्यादिके साथ विश्वसंसार अधिष्ठित है।

गोलाध्यायमें ब्रह्माएडके गोलत्वका िर्भशेष्ट प्रमाण मिलता है—

"भूभूघरतिदशदानवमानवाद्या ये

याश्च घिष्ट्यगमनेचरचक्रकशाः।

* कोई कोई यूरोपीय-वैद्यालिक पृथिवीके आकृतिगत सार्थयसे उत्तर-दक्षिण अमेरिका और अफ्रिकाके त्रिकोणत्व और यूरोप-एशियाका चतुर्मृत्रत्वक्षमें कृत्यना करते हैं। "It will be seen that the three continents of North and South America and Africa are triangular in shape and that the great continent of Europe and Asia, while it is more or less quadrilateral, sends great peninsulas into the Océan" (Beale's World's Progress, p. 3.) लोकञ्चवस्थितिकपयु परिप्रदिष्ठा

ब्रह्माण्डभाण्डजहरे तिवदं समस्तं ॥" ज्योतिर्विदोंने पृथिवी पर्यंत, देवदानव, मानव सौर उपर्युपरि सप्तछोकींकी व्यवस्थिति इस ब्रह्माण्डभाण्डो-द्र्पी कल्पना की है। पृथिवीको गोल्डत्वका विषय नीचे लिखा जाता है।

यह परिद्रश्यमान पृथिवी कदम्व-पुष्पकी तरह गोल तथा वन, पर्वत और नगरादि परिशोभित है।

"सर्गतः परतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः । कदम्बकुसुमग्रन्थिः केशरप्रसरैरिव ॥"

भूगोल शस्त्रमें विस्तृत विवरण देखी।

पृथिवी गोल है, इसके प्रमाणार्ध भारतीय ज्योतिर्वि-वोंने जो युक्तियां अवलम्बन की हैं, वे सर्वतोभावमें प्राहा हैं। चन्द्रमाको अपना प्रकाश नहीं है, स्थिकिरण द्वारा वे आलोकित होते हैं। पृथिवींके छायापात द्वारा स्थि-किरणके अवरोधको चन्द्रप्रहण कहते हैं। उस समय पृथिवींकी जो छाया चन्द्रमा पर पड़ती है, वह हमेशा गोलाकार दिखाई देती हैं। धरिली यदि गोलाकार नहीं होती, तो उसकी छाया कभी भी गोल दिखा नहीं पड़ती। प्रहणके समय चन्द्रकी श्रङ्गोन्नति ही गोलाकार छाया-पातका कारण है। चन्द्रग्रहण और श्रंभोन्नति शब्द देखी।

मत्स्य और कूर्मपुराणमें पृथिवीका गोलत्व स्वीकृत हुआ है।

"ऊड्रृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः। स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत् तमोमयं॥" (कुर्मपु०पु० ४०११५ और मत्स्यपु० १२८१६०)

किन्तु किसी किसी पुराणके मतसे वसुधाको सम-तल वतलाया गया है। महामित भास्कराचार्यने युक्ति द्वारा उस मतका खण्डन कियाँ है—

"यदि समा मुक्करोद्रस्सन्निभा भगवती घरणीतरणिः क्षितेः। उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥"

पृथिवी यदि द्र्पणोद्रको तरह समतल होती, तो उसके बहुत ऊपर भ्रमणशील सूर्य मनुष्यको हमेशा दिखाई दैता अर्थात् कभो भी दिन रात संघटित नहीं होती।

यूगेपीय पिड्नोंने घरामंडलको कनल नीवृद्धी तरह गोल और उत्तर-दंशिणमें इंड निपटा बतलाया है। पृथिवीके समतलस्व मतका निरसन और गोलत्व प्रतिपादनार्थं ज्योतिर्वित् ल्लाचार्यं इस प्रकार कहते हैं— "समता यदि विचते अयस्तालनिमायहुष्ण्याः। कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः॥"

पृथिवी यदि समतल होती, तो तालप्रमाण वहुत बड़े बड़े वृक्ष दूरसे दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते? इससे पृथिवीका गोलत्य ही स्चित हुआ है, कारण हम लोग जितने ही दूर बढ़ते जाते हैं, लक्ष्यवृक्ष क्रमणः छोटा दिखाई देने लगता है, अन्तमें वह विलक्षल अदृश्य हो जाता।

पृथिवोका गोलत्वनिवन्धन ही जो दिन रात होता है, सिद्धान्तज्योतिःशास्त्रमें वह प्रतिपन्न हुआ है। किन्तु पुराणशास्त्रमें दिवारात्रके निमित्त धरित्रोके मध्यस्थल पर सुमेहपर्वतकी अवस्थिति निक्रपित हुई है। उस पर्वतके अन्तरालमें सूर्यगमनके लिये पृथिवी अन्धकार समाच्छन्न होती है। भारकराचार्यने उक्त मतका प्रतिवाद करके इस प्रकार युक्तिप्रदर्शन की है,—

"यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तद्न्तरगः

स न दृश्यते।

उदगसौ ननु मेठरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिण-भागके॥"

सुमेर पर्वत पर हो यदि रजनीका कारण हो, तो सूर्य जव उसके दूसरी ओर जाते हैं, तव उस खर्ण पर्वत-को चमफ दमक क्यों नहीं दिखाई देती ? उक्त पर्वत तो हमेशा उत्तरकी ओर स्थित है, पर सूर्यदेव दक्षिणको ओर अर्थात् सुमेर पर्वतसे अत्यन्त दूरमें क्यों उदित होते ?

(यहां यह आपित हो सकती है, कि वहुदूरस्थ सुमेर पर्वत हम लोगोंके दृष्टिपथारूढ़ नहीं हो सकता। किन्तु अस्तकालमें जब हम लोग सूर्यको देखते हैं, तब तिन्न-कटवत्तीं पर्वत क्यों नहीं दिखाई देगा? रूपक अंशको बाद दे कर यदि देखा जाय, तो सिद्धान्तज्योतिःशास्त्रके साथ पौराणिक मतका विशेष अनेक्य मालूम नहीं पड़िगा। भूमण्डलके उत्तरमें सुमेर पर्वत है। उत्तर-प्रुव-नक्षतका निम्नस्थ भूभाग उसका शिखर कहलाता है। उक्त शिखरका देश देवभूमि स्वर्ग और तद्विपरीत दक्षिण घ्रुवका निम्नस्थ प्रदेश पाताल नामसे प्रसिद्ध है।

यथार्थमें अधःप्रदेशका नाम पाताल है, इसी कारण अमेरिका अधःप्रदेश पाताल कहलाता है। भूमएडलके उत्तरांशका रूपक नाम यदि सुमेर हो, तो सुमेर पर्वतको
ही दिवारालका कारण कह सकते हैं। भूमएडलकी
गोलाई दिवारालका कारण है, यह ज्योतिःशास्त-सम्मत
है। सूर्यका सुमेर पर्वतके अन्तरालमें जाना यह पौराणिक मत प्रकारान्तरमें उक्त मतका पोपण करता है।
पुराणमें इस सुमेरको स्वर्णमय वतलाया है। उत्तरकेन्द्रस्थ बृहज्ज्योति (Ansona Bornder) सुमेरको
स्वर्णमय रूपकरवका कारण है।)

पृथिवी गोल होने पर भी प्रत्यक्षतः समतलक्षेतको तरह क्यों दिखाई देती ?

"अत्यकायतया लोकाः सस्यानात् सर्वतोमुखं। पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां चसुन्वरां॥" (स्थैसि॰)

विपुल अवनीमएडलके सम्बन्धमें मानवगण बहुत छोटे हैं, इसी कारण पृथिवी वास्तविक गोलाकार होने पर भी लोगोंको चकाकार समतलक्षेत्रको तरह दि शई देती है। गोलाध्यायमें इसके और भी कितने प्रमाण मिलते हैं—

"समी यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी . नितरां तनीयान् ।

नरश्च तत्त्पृग्रगतस्य इत्स्ना समेव तस्य प्रति-भात्यतः सा ॥" (गोलाध्याय)

भूमण्डलके विषुल होनेके कारण ही भूपरिधिका शतांश तत्पृष्टस्थित मनुष्यके पक्षमें समतलक्ष्पमें प्रति-भात होता है।

वसुधा जव गोल है, तब अवश्य ही ऊर्द्धांग्रः मानना होगा, तो फिर क्या कारण है, कि निम्नदिक्स्थ श्राम-नगरवासिगण रूजलित नहीं होते। वसुधा गोल होने पर भी उसके ऊर्द्ध अधः नहीं है, वह कल्पनामात है। सुर्यसिद्धान्तमें लिखा हैं:—

"सर्वतैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितं । मन्यते ये यतो गोलस्तस्य कोड कवाप्यधः॥" (सूर्णसिद्धान्त)

पृथिवी गोलाकार और आकाशमें स्थित है, इस-

लिये उसके ऊर्द कहां है ! और फिर अधः ही कहां है ! भूमएडल पर सभी अपने अपने स्थानको उपरिस्थित समकते हैं । इस विषयमें भास्कराचार्य और भी लिखते हैं,—

"यो यत तिग्रत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि-स्थितञ्च।

स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ते तिर्थेगिवा-मनन्ति॥

क्षधः शिरस्काः कुदलान्तरस्था छाया मनुष्य स्व नीरतीरे।

अनाङ्कलास्तिर्यगधःस्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात ॥"

जो व्यक्ति जिस स्थान पर रहते हैं, उस स्थान अपने पद-पर रह कर ही वह धरातलको तलके नीचे और अपनेको धरितीके ऊपर सम-भता है। पृथिवोका 8र्थं भाग (६० अंश) स्थित व्यक्तिमालके ही धरामएडलके ऊपर अधिष्ठित रहने पर भी तिर्यंगुभावमें है पेसा मालूम पड़ता है। फिर जो डीक विपरीत भागमें (१८० ऊपरमें) वास करते हैं, ज आशय-तीरस्थ मनुष्यके जलगत प्रतिविम्बकी तरह उन्हें हम लोग औंथे मुंह खड़े समभते हैं। फलतः यह एक भ्रममात है। इस स्थान पर हम छोग जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार वे लोग भी उस स्थान पर सुखसे रहते हैं। सर्वोंके पदके नीचे धरणी और मस्तकके ऊपर अनन्त आकाश है। अभी प्रश्न हो सकता है, कि यदि पृथिवीकी श्रन्यमार्गमें अवस्थित हो, तो किस प्रकार वा किस भाश्चर्य शक्तिवलसे मनुष्यादि जीव और विच्युत प्रस्तरबण्डादि भूपृष्ठ पर स्थिर है ? आकर्षण-शक्ति-वलसे पार्थिवपदार्थे पृथिवी पर संयत रह कर अनन्त शक्तिके आधार उस ईश्वरका नियम प्रतिपालन करते हैं। ज्योतिःशास्त्रमें पृथिवीका कोई दूसरा आधार कल्पित नहीं हुआ है। परिडतप्रवर मास्कराचार्यने पुराणादि-की इन सब विषयोंकी धारणाकी युक्ति द्वारा खएडन किया है-

> "म्त्रांधर्ता चेद्धरिक्यास्तदन्य-स्तरकाप्यन्योऽप्येवमकानवस्था। Vol. XIV 80

अन्त्ये कल्या चेत् खशक्तिःकिमाये किनोभृमिः खाष्टमूर्तेश्च मृतिः॥"

धरिलोधारणके निमित्त यदि मूर्तिमत् आधार स्वीकार किया जाय, तो एकके वाद दूसरेको लेकर अनन्त आधार मानना पड़ेगा । फिर यदि शेषकी ही स्वीय शक्ति मानी जाय, तो वह शक्ति पृथिवीकी ही स्वीं नहीं स्वीकार की जायगी २। पृथिवी भी सामान्य नहीं है। शास्त्रमें इसे शिवकी अष्टमूर्तिमेंसे एक वतस्राया है। मास्कराचार्यने निम्नलिखित युक्तिसे इस विषयकां उपसंहार किया—

"यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधी द्वृतिः के कठिनत्वमश्मिन। मक्चलो भूरचला स्वभावतो

यतीविचित्रावत वस्तु शक्तयः॥"
जिस प्रकार स्यांग्निमं उणाता, चन्द्रमामं शीतलता, जलमं प्रवाह, पाषाणमं कठिनता और वायुमं चञ्चलता सामाविक है, उसी प्रकार पृथिवी भी सभावतः ही अचला है। क्योंकि वस्तुशक्ति अति विचित्र है। एक अचला शब्द प्रयोगसे ही जो मास्करने पृथिवीका निराधारत्वप्रतिपादन किया है, सो नहीं; उससे पौराणिक स्मादि आधारविषयक कल्पना और बौद्धशास्त्रोक्त धरणीका निरन्तर अधोगमनमत निराहत हुआ है। जो वस्तु सभावतः ही अचल है, उसे पकड़ कर रक्ता निष्ययोजन है। वौद्धाचार्यने जिस युक्ति और प्रमाण द्वारा पृथिवीका अधोगमन प्रतिपादन किया है, सिद्धान्तकारने उसी भ्रममतका खएडन किया है.

"भगञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारश्रून्या कुरिति प्रतीतिः। जस्यं न दृदञ्ज गुरू क्षमातः खेऽधः

प्रयातीति वदन्ति वौद्धाः॥" (गोलाध्याय)

वौद्धाचायंका कहना है, कि इतस्ततः राशिचक्रका भ्रमण देख कर ही वसुमती आधारशून्य प्रतीत होती है।(३) ऊपर फेंका हुआ गुरु पदार्थ जिस प्रकार आकाशमें

- (२) श्रीमङ्गागवतमं अनम्तरेषका पृथिवीका आधार वतलाया हैं, उन अनम्तका टूबरा नाम वक्षण है।
- (२) इस विषयंत्र वेरेडभत भी पौराणित प्रतका विरोधी है। बाडगण पौराणिक सतका प्रतिकाद करते हैं, क

नहीं ठहर सकता, नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार गुरु भार पृथिवी भी अघोगामिनी होती है।(४) वौद्धगण जिस कारणसे वसुन्धराके अधःपतन पर विश्वास करते हैं, भास्कराचार्यने उस कारणके निर्देश पर ही प्रतिवाद किया है—

"भूः केऽधः खलु यातीति बुद्धिक्वौद्धा मुधा कथन् । यातायातन्तु द्रष्ट्वापि खे यत् क्षिप्तं गुरुक्षितिम्॥" आकाशमें निक्षित्त गुरुपदार्थका पृथिवी पर यातायात देखं कर ही धरणी नीचे जाती है, ऐसा जो कहते हो, सो भारी भूल है।(५) ज्योतिर्विद्याविशारद भास्करका कहना है, कि उक्तशक्ति पृथिवीका आकर्षण छोड़ कर और कुछ भी नहीं है—

"आकृप्रशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वामिमुखं स्वराषत्या।

आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क पतित्वयं से॥" (गोलाध्याय)

पृथिवीमें आकर्षणशिक है, उसी शक्तिके वलसे शून्य मार्गमें फेंकी हुई गुरु वस्तु इसकी ओर आछए होती हैं। पृथिवी खयं चतुपार्श्वस्थ समान आकाशमें कहां पड़ेंगी ? यथार्थमें विशाल आकाशके ऊपर नीचे नहीं है। समावतः ही दएडायमान मनुष्यके मस्तककी ओरको ऊपरं और पादकी ओरको नीचे कहते हैं।(६)

पृथिवीके यदि अधार रहता. तो उद्यक्ते चारों ओर प्रस्यक्षराधि-चक किसी हालतमे घूम नहीं सकता था, उस आधारमे अवश्य ही टक्कर समता ।

- (४) पृथिवीका नियत अधीगमन यदि स्वीकार किया जाय, तो पृथ्वीसे चन्द्रसूर्यादि मर्शेकी दूरता प्रतिमुहूर्तमें अधिक होती, पर वैसा नहीं हैं। इस कारण वौद्धाचार्यगण समस्त सीरनगत्के अनन्त आकाशमें अधःपतन स्वीकार करते हैं। यह संस्कृत ज्योतिष शौर पुराणमत-विरुद्ध है।
- (५) धरणी यदि निम्नगामिनी होती, तो आंकाशमें निक्षित पदार्थ उसके ऊपर ठहर जाता। कारण, ग्रेरमार पृथिवी अपेक्षांकृत लघु पदार्थसे और मी जल्ही गिर पड़ती, सित पदार्थ किसी हालतसे उसको स्पर्ध नहीं कर सकता था।
 - (दें) १६८६ ई०में सर आइजक न्युटनने यूरोपेलगर्डम

मारतवर्षीय भूगोलिवत् पिएडंतगण प्राप्त-नगर-नदीपर्वतादिका संस्थान निर्णय करनेमें वहे ही असतर्क थे।
भूगोलसंकान्त गणित गणनामें इन्होंने जैसी पारदर्शिता
प्राप्त की थी, उसकी तुलनामें यह कुछ भी नहीं है।
पुराणादिमें इस विपयके जो कुछ निदर्शन मिलते हैं,
कालक्रमसे वे सव विलुप्त वा नामान्तरित हो गये हैं।
इस कारण उन सव गुरुतर विपयोंका परित्याग कर
गोलकानका उपयोगी स्थान ही आलोचित होता है।
"लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक्पश्चिमे रोमकपत्तन्त्र।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरः सौम्यऽथ याग्ये वहवानलक्ष्म।
कुवृत्तपादान्तरितानितानि स्थानानि वह गोलविद्दी वदिति।
लङ्कापुरेऽकस्य यदोदयः स्थात् तदा दिनाई यमकोटि पूर्यो
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्यादीमके राविदंलं तदैव।"

(गोंलाध्यांयं)

माध्याकर्षण देखी।

पृथिवीके आकर्षणशक्तिका विषय पहले पहल प्रकाशित किया, किन्तु सेन्वों वर्ष पहले भारतवासीको यह तस्व माह्म या। भानुपंगिक अन्यतस्वका आविष्कार करनेके कारण वैद्यानिक जगत्में उनकी ख्याति फैल गई है। पृथिवीश केशस्वान ही पार्थिवाकवेणका मूल है, इसे पहले पहल खुटनने ही सिनंदे किया। इसीका नाम माध्याकर्षण है। अभी बह एक द्वरैके आकर्षणमे संबद रह कर अपने अपने कथ पर लगाः तार यूनते हैं। भागवतके पून स्कल्पके २२वें अध्यायोर्क ''यथा कुलाछचकेण सूमता सह सूमता तदाभयाणी पिंपी-लिकाबीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वव्युग्रम्भानस्वात्। एवं नक्षत्रराशिसिक्वसमितेन कालचकेणं धुनं सेरुकेनं प्रदक्षिणतः परिधानता सद परिवासमानानां सूर्वाचीनां ग्रॅहाणां गतिरण्येव नक्षत्रास्तरे शहयन्तरे चोवळभ्येगानत्व त् ॥" इंखार्वि वंचर्न-प्रमाणेसे सूर्यादियहों ा हालवकते पृथंक् प्रवक् सूर्मणेत स्वित होता हैं। फलतः नक्षत्रं।न्तर वा राह्यन्तरमें इंस्की बेन्य प्रकारकी गति उपेंत्रकंप होती है। जगत्के अनर्वतंत्री करंपेनी करनेसे सुरीदिका मूमण उतना असंगतं नहीं समझा बार्ती। इससें और भी मोछंर होता है, कि प्रदूरें छुविवीसें हमें लेगें जो सूर्यक गति देखते हैं. वह काल्पनिक मात्र हैं। प्रहेंकी अपने अ .ने कक्ष परं घूतना ही माध्याकर्षण हैं।

भूमएडलके मध्यस्थलमें लङ्का, पूर्वमें यमकोटि, पिश्वममें रोमकपत्तन, अधस्थलमें सिखपुर, उत्तरमें सुमेक और दक्षिणमें बढ़वानल (कुमेक) है। गोलवित पिएडत-गण उक्त छह स्थानोंको भूपरिधिक पादान्तरित अर्थात् चतुर्थां श समानान्तरित रूपमें स्थित वतलाते हैं। लङ्का-पुरमें जिस समय सूर्यका उदय होता है, उस समय यमकोटिमें दिन दो पहर, सिखपुरमें अस्तकाल और रोमक-पत्तनमें हो पहर रात होती है।

भ्रुवोन्नति और अक्षच्छायाके अभाव द्वारा भूगोलका मध्यस्थल जाना जाता है।

> "तेषामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः। नतासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते॥" (सूर्यसिद्धान्त)

दिवाकर विषुववृत्तस्य हो कर उक लङ्का आदि सारों नगरके ऊपर होते हुए जाते हैं। इस कारण उन सव स्थानोंमें अक्षच्छाया और अक्षांशक्षप घ्रु वोन्नति नहीं है। यह जान लेना आवश्यक है, कि अक्षच्छाया और ध्रु वोन्नति नहीं रहनेसे ही भूगोलके मध्यवत्तीं पूर्वापर वृत्तका नाम निरक्षवृत्त पड़ा है। जिस दिन दिनरात समान रहती है, उस दिन सूर्य उस वृत्तके उपर हो कर भ्रमण करते हैं, इसीसे उसका विषुववृत्त नाम पड़ा है। वह वृत्त और निरक्षवृत्त यथार्थमें अभिन्न है।

वृक्षिण और उत्तर मेरुके आकाशके ऊपर दो भ्रुव-तारे हैं। निरक्षदेशके छोग उन तारोंको क्षितिजवृत्तके साथ संख्या देखते हैं। इस कारण उक्त चार पुरींकी भ्रुवोन्नति नहीं है।

प्राचीन ज्योतिर्विदोंने जिस प्रमाणसे पृथिवीका मध्यस्थल गोल सावित किया है, वही दूसरे प्रकारसे सारी पृथिवीके सम्यक् गोलत्वका परिचायक हुआ है।

निरक्ष देशके मनुष्य दक्षिण और उत्तर-ध्रुवको क्षिति-मण्डलक्षे साथ संलग्न और निज मस्तकोपरिस्थ आकाश-में ध्रुवसंश्रित राशिचक्रको जलयन्त्रको तरह भ्रमणशील देखते हैं। मध्य परिधिसे जितना ही उत्तर आगे वढ़ते हैं, यह राशिचक जतना हो दक्षिणमें अवनत और उत्तरध्रुव उन्नत दिखाई देता है। फिर मध्य परिधिसे दक्षिण वा उत्तर जितनी दूर आगे वढ़ें, उतनी हो दूर तकका स्थान अपसार-योजन कहलाता है। इस अपसार-योजन द्वारा पृथिवीका अंश निकपित होता है। निरक्षदेशके मनुष्य जिस प्रकार दोनों ध्रुवको क्षितिजके संलग्न देखते हैं, मेघवासी मनुष्य भी नसत्तचक्रको उसी प्रकार देखते हैं।

मेरुदेशस्थ व्यक्तिगण उत्तरध्रुवको आकाशके वीचमें (मस्तकके ऊपर) और वड्वास्थित व्यक्तिगण दक्षिण- ध्रुवको अपने अपने मस्तकके ऊपर देखते हैं। उक्त दोनों व्यक्तियोंसे नक्षवचक क्षितिजके साथ लग्न और दक्षिण-वाममें भ्राम्यमाण देखा जाता है। जब देखते हैं, कि पृथिवीके ऊपर नीचे (उत्तर और दक्षिण) और वीचमें आकाश मूमि तथा नक्षवचक उस उस देशवासीके निकट समभावमें उन्नत और क्षितिज संलग्न है तव किस प्रकार पृथिवीके गोलत्व पर अधिश्वास किया जा सकता है।

वाश्चात्यमत ।

यूरोपीय वैद्यानिकोंने जिस उपायका अवलम्बन कर पृथिवीका गोलत्व प्रतिपादन किया है, वह नीचे देते हैं।

पृथिवीका आकृतिनिरूपण ही वैद्यानिकींका एक महदुइ श्य है। कारण, उससे ज्योतिःशास्त्रके अनेक तत्त्व परिस्कुट हो सकते हैं और भूलोकका ज्यासांश ले कर द्यु लोकस्थित नक्षतादिका अवस्थान और दूरत्वगणना सहज हो पड़ती है। दृष्टिव्यापिकाके मध्यस्थलमें द्एडाव-मान व्यक्तिका पृथ्वीपृष्ट गोलाकार और समतल तथा शिरोदेशस्थ उच्च आकाश क्रमशः ही दिग्वलयमें मिश्रित जैसा मालूम पड़ता है। उत्तर वा दक्षिणकी ओर जाने-.बाला व्यक्ति मेरुदेशस्थ नक्षतावली (Circumpolar Stars)की कमोन्नति और भिन्न ओरकी अवनति देखता है। समुद्रमें अर्णवपोतके धीरे धीरे द्रष्टिसे गायव होते देसकर भी पूर्वतन ज्योतिर्विदोंने पृथिवीका गोलत्व स्वीकार किया है। आरिप्रटलके वर्णनसे जाना जाता है, कि गणि-तज्ञीने भूपरिधि ४ लाख स्टाडिया स्थिर की है। एराटी-स्थेनिसने पृथिवीकी आकृति निर्णय करनेमें मनोंयोगी हो कर आनुषङ्गिक जो सव जागतिक व्यापार लक्ष्य किये थे, उन्हींका अवलम्बन करके वर्त्तमान वैद्यानिकींने पृथिवी-का गोलत्व प्रतिपाद्न करनेमें सफलता पाई है। इजिप्तके उत्तरांशवर्त्ती सायनी (Syene) नगरमें उन्होंने सूयको

उत्तर क्रान्ति (Summer Solstice े-सीमावर्ती और मस्तकोद्धं व लम्बरेखास्थित देखा तथा उस समय समान देशोंमें अवस्थित अलेकसन्द्रिया नगरीमें इसके शिरोविन्दु-का अन्तर ७ १२ और दोनोंका व्यवधान ५००० प्राडिया गणना करके पृथिवीकी परिधी २ लाख ५० हजार प्राडिया स्थिर की। परवर्ती पोसिष्ठोनियस्ने भिन्न पथका अवलम्बन करके स्यंके बदले तारेकी सहायतासे पृथिवीकी परिधी २ लाख ४० हजार प्राडिया प्रतिपन्न की। दलेमीने अपने भूविद्याविषयक प्रन्थमें पृथिवी परिधिके ३६० अंग्रके एकांशको ५०० प्राडिया निरूपण किया है।

८१४ ई०में अरवराज खलीका अल् मामुनने पृथिवीका भायतन जाननेके लिये दो वल ज्योतिर्विदोंको उत्तर और दक्षिण दिशामें भेजा। मिसोपोटेमिया नगरका वड़ा मैदान ही उनका केन्द्रस्थल था। किन्तु विशेष परिश्रम करने पर भी वे कृतकार्यं न हो सके। अन्तमें फरासी--देशवासी फर्नेल (Fernel) नामक किसी व्यक्तिने पारि-नगरके द्राधिमांशके ऊपर हो कर परिभ्रमणकालमें यान-चकगति द्वारा जो दूरत्वका परिमाण स्थिर किया था, पीछे उसीको सहायतासे ज्योतिष्कमएडळको आळोचना में प्रवृत्त हो कर वे अज्ञात पृथिवीपरिधिके एक (बिग्री) अंशका परिमाण निरूपण करनेमें समर्थे हुए थे। १६१७ ई॰में लेडेन Leyden । नगरमें भूवित् स्नेल (Wsn·li) ने पृथिवीका परिमाण स्थिर करनेमें खूब चेपा की। उन-का परिश्रमफल १७२६ ई॰में मुसेनवुक (Muschenbroek) द्वारा परीक्षित हो कर प्रकाशित किया। रिचार्ड नरउड नामक किसी अङ्गरेजने १६३७ ई०की ११वीं जूनको लएडन-त्राधिमाके सूर्यकी ऊँचाई ६२ १ और १६३५ ई०की ६ठी जूनको यार्क द्राघिमाकी ऊँचाई (Meridian altitude) ५६° ३३ निरीक्षण करके तथा दोनों नगरकी अन्तर्वत्तीं दूरीका अवळम्बन कर वे जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, उससे डिग्रोका परिमाण ३६७१७६ फुट हुआ था।

१६६६ ई॰में पिएडतवर पिकार्ड दूरवीक्षणकी सहा-यतासे द्राधिमांश निरूपण कनेनेमें समर्थ हुए थे . इसके लिये उन्हें पारी (Paris)-के निकटवर्त्ती मेलभोसिनसे छे कर आमेन सन्निधिस्थ सोदी (Sourdon) नगर तक एक विकोणव्याप्ति (Triangulation स्वीकार करनो पड़ो थी। उसका परिमाण ८८५० ट्राईज (Toise) निरूपित हुआ। इसीसे १ डिग्रीका परिमाण ५००६० ट्राइज स्वीकार किया जाता है।

यूरोपखएडमें आज तक पृथिवीका पूर्णगोलत्व खीकृत हुआ था तथा भूपरिमाण निर्देश करनेमें और कोई विशेष उपाय अवलम्बित नहीं हुआ। अन्तमें रीकर (Richer)-का अभिनव आविष्कार होते ही उस विषय-में गणितज्ञोंकी दृष्टि आरुष्ट हुई। इस समयसे पृथिवीका आकार गोळ है, उस पर छोगोंको सन्देह होने छगा। उक्त विख्यात ज्योतिर्वित् भूवक्रता (Terrestrial refraction)-का निरूपण करनेके लिये फरासी-विश्वान सभा (Academy of Sciences of Paris) द्वारा कायेन-(Cayenne) द्वीप भजे गये । वहां वे अपनी घड़ीमें २॥ मिनटका अन्तर देख कर चमत्कृत हुए। उक्त द्वीपमें २॥ मिनट कम रहनेके कारण उन्हें दोलक Pendulum)-की गति घटा देनी पड़ी । वारिन और दाशे (Varin aud Dashayes)-ने अफ्रिका और अमेरिका देशमें तथा परवर्त्तीकालमें महामति न्युटनने अपनी 'प्रिन्सपिया' नामक पुस्तकमें इस विषयकी आलोचना पर अच्छी तरह समका दिया है। पृथिवीकी विषुवरेखान्तर्वर्ती स्थानोंकी स्फीति तथा भू-केन्द्रके दूरत्वनिवन्धन केन्द्र-विमुखी (Cantrifugal) शक्तिका प्रतिवन्धकता ही ·आकृष्टशक्तिके ह्वासका कारण है।

१६८४से १७१८ ई०के मध्य जे और डि केसिनी
(J and D Cassine) ने भृवृत्तका परिमाण िथर
करनेकी इच्छासे उत्तर पारीसे दनकार्क और दक्षिण
पारीसे कोलियर तकके विस्तृत स्थानमें तिकोणव्याप्ति
द्वारा जो परिमाण ग्रहण किया, उससे उत्तर और दक्षिण
भृवृत्तके पकांश (१ डिग्री) का परिमाण यथाकम
५६६० और ५७०६७ द्वाइज प्रतिपादित होता है। इससे
यह मालूम होता है, कि अक्षांशकी वृद्धिके साथ वृत्तांशका हास ही पृथिवीके प्रवर्त्त लामास (Prolate Spheroid) का अन्यतम कारण है। यह मत न्यूटन और
हिउगेन्स-प्रवर्त्तित मतका विरुद्ध होनेके कारण यूरीप-

जगत्में भारी हलचल पड़ गई और इस विषयको स्थिर करनेके लिये पारीकी वैद्यानिक सभासे द्राधिमांशके परिणाम-निद्दे शार्थ एक इल विषुववृत्तके सन्निक्ट और दूसरा दल उत्त. अक्षांशदेशमें गया। १७३५ ई०के १५वें छुईके तत्त्वावधानमें, बुगेन, कन्दामिन आदि (M. M. Godin, Bouguer and De la Condamine)ने दक्षिण-अमेरिकाके पेठ राज्यके अन्तर्गत विषुवव्यक्ते समान्तरदेशमें और झारो, कामो आदि (Clairaur, Camus, Maupertuie, Lemonnier and Outhier)-ने वोधनियोपसागर-समीपवर्त्ती मेठदेशकी विस्तृतिका परिमाण प्रहण किया। दोनोंके परिवृशकी विस्तृतिका परिमाण प्रहण किया। दोनोंके परिवृशकी हारा आकर्षणीशक्तिका निरूपण करनेसे तथा दोलक झारा आकर्षणीशक्तिका निरूपण करनेसे यही स्थिर हुआ है, कि यह भूमण्डल प्रवर्त्तु लाभास नहीं है, अव वर्त्तु लाभास (Oblate) माल है।

· १७४० ई०में केसिनो डि-थुरी और हासेहो (Lassine de Thury and Lacaille)-ने पूर्ववर्सी दोनीं केसिनीका पदानुसरण करके भिन्न पथका अवलम्बन किया। उनके मतसे अक्षांशकी वृद्धिके साथ भृवृत्तांश-की १ डिशी वृद्धि मालूम पड़ती है। १७५२ ई०को इत्तमाशा अन्तरी में ठेसेठीने भूवृत्तांशका जो परिमाण प्रहण किया था, उससे आशातीतं फललाभ हुआ तथा पक भूवृत्तांश ५७०३७ ट्राइज निर्णीत हुथा था। इसके वाद बस्कोभिच और वेकारियाने (Boscovich and Beccaria) यूरोपखएडमें तथा मेसन और सिक्सनने उत्तर-अमेरिकामें वर्त्तमान अङ्गरेजी प्रथासे विकोणव्याप्ति द्वारा वृत्तांशका परिमाण स्थिर किया। १७८३ ई०में पारी और प्रीनइचका भौगोलिक सम्बन्धनिर्णय करनेके लिये रायल-सोसाइटीसे जैनरल राय (General Roy) इङ्गळेएड-पक्षमें और काउएट केसिनी, मेकाएन तथा डेळाम्ब्रे फरासी-पक्षमें सदस्य निर्वाचित हुए। राम-रहेन-प्रवर्शित 'थिउडोलाइट' यन्त्रकी सहायतासे परि-माण-प्रहणमें उन्हें विशेष छुविधा हुई।

१८३८ ई०में बेसेल-प्रणीत Gradmessung in Ostpreussen नामक पुस्तक प्रकाशित होनेसे भू-विकानमें नृतन आलोक विकाशित हुआ। इसमें नक्षत वा Vol. XIV. 81 वृत्तांशका निरूपण करनेमें तिकीण व्याप्तिके अलावा चतुरस्त्रप्था (Least squares) अवलम्बित हुई थी। उसका गणितांश इतना जटिल है, कि लोग उसे समभ नहीं सकते।

१८६० ई०में द्भु वे (F. G. Struve)-प्रणीत Are du Meridien de 25' 20' entre le Danube et la Mer Glaciale mesure depuis 1816 Jusqu'en 1855 नामक प्रस्थ प्रकाशित हुआ। पृथिवीके आस्ति-निर्णयमें ऐसा अपूर्व वैज्ञानिक प्रस्थ और दूसरा नहीं है। इसमें सुदूरवत्तीं अक्षांशका परिभाण प्रायः अञ्चान्तक्त्पमें दिया गया है।

न्युटनने माश्याकर्षण और केन्द्रविमुखी वा केन्द्रातिग (Centritugal) शिकको ही पृथिवीके आकारनिर्णयका मूलाघार स्थिर किया है। समसावमें काणिक
(Angular)-वेगसे भ्राम्यमान किसी समस्मां तरलपदार्थको भ्रमणशील किसी एक अववर्षु लामास (೧६late spheroid) तुल्याकृतित्वप्राप्ति स्वीकार करके
न्यूटनने उसकी मध्यरेखाका परिमाण २३० २३१ निकपण किया है। उसके बाद उन्होंने स्थानविशोषके आकपण-वेलक्षण्य और वृत्तामासत्व (Ellipticity) तथा
घनत्व (Density)-का व्यतिक्रम निरीक्षण करके पृथिवीका जलाधारत्व और गोलत्व सम्पादन किया है। क्लारो,
लेप्लेस आदि महात्मगण भी गणितविद्याकी सहायतासे
दो विभिन्न स्थानोंके आकर्षणसे पृथिवीका गोलत्व प्रतिपादन कर गये हैं।

यह अवश्य खीकार्य और सम्भाव्य है, कि आदिम अव-स्थामें पृथिवी एक सुनृहत् तरल-पिएड (Fluid mass) कपमें परिणत थी। क्रमशः उत्ताविक्षेपसे शीतलता पा कर उसके ऊपरी भाग पर दुग्धसरकी तरह आवरक जम जाता है और विकृताङ्ग पर्व तादि मिएडत हो कर बत्तमान ठींस (Solid) आकारमें कपान्तरित हुआ है। भूपृष्ठ पर इतस्ततः पर्वत नदनदी समुद्र और द्वीपावली विराजित रहनेके कारण गणनाकार्यमें विशेष वाधा पड़ती है और पृथिवीको धूमनेके योग्य जो एक पृष्ठ है, वह भी कल्पनातीत हो जाता है।

वे सव होने पर भी अङ्कृविद्याकी सहायतासे पृथिवीका

का अएडाइतित्व प्रतिपादन करनेके लिये गणितज्ञोंने पक आवर्त्त नद्एड (Axis of rotation) खीकार कर लिया है तथा पृथिवो पर अक्ष (Latitude) और द्राधिमा (Longitude) रेखा विलिम्बत करके स्थान निर्णयमें सफलता पाई है। इस प्रकार युक्ति और गणना द्वारा पृथिवीका गोलत्व प्रमाणित होने पर भी उसका परिमाण निर्दारण करनेमें उनके यलकी लाय-वता नहीं देखी जाती। उत्तरोत्तर गणना द्वारा वे पृथ्वो-पृष्ठकी परिधि और व्यासादि निरूपण करके यशस्वी हो गये हैं।

पृथिवीका परिमाण।

ब्रह्माण्डपुराणमें पृथिवीका विस्तार ५० कोटी योजन वतलाया है। मेठके मध्यस्थानसे प्रत्येक दिशामें इस पृथिवीका यथार्थविस्तार ५० हजार योजन है। सम-द्वीपवती यह पृथिवी मेठके प्रत्येक ओर ३ कोटी १ लक्ष ७६ योजन विस्तीर्ण है। इस विस्तारको अपेक्षा पृथिवी-मण्डकी परिधि तिगुनी है। तारकासन्तियेशकी परिधिकी तरह भूसन्तियेशकी भी मण्डलाकार परिधि ज्ञाननी चाहिये।(७) उक्त अण्डकटाहके मध्य सप्तद्वीपा पृथिवी अवस्थित है।(८) उसके ऊपर यथाकम भू, भूव, स्थः महः, जन, तपः और सत्य नामक छलाकृति मण्डलाकार सात लोक और नीचे सात पाताल अवस्थित है।(६)

(७) ब्रह्माराष्ट्रपुराण अतुर्वस्ताद ५४ अध्याय १३-२१ श्लोक । यहां पुराणकारीने भूमण्डलका गोलत स्वीकार किया है। वैद्यानिक मतमें सूर्यसे नेयनुन म् व्यवधान २८००००००० मील है।

(द) ''अगुडस्यः स्तिन्धिमें छोकाः सप्तद्दीपा च मेदिनी ।'' (ब्रह्मागुड अनु० ५४।२४)

(६) श्रीमद्भागवत ५म स्कन्य २४ अ० और 'पाताल' शब्द देखी। कोई कोई प्रन्यकार सुमेहकी सर्ग, निरक्षदेशको मन्ये और वह्नवाको ही पाताल मानते हैं। इसी हारण सुमेह-स्थानवासी देवलोकोंकी दिन पात हम लोगोंकी दिन-रातसे विभिन्न कल्पित हुई है। हम लोगों का १२ मान वन लोगों- का एक दिन और रात होता है। पुराणमें जब सात बोकोंके सात विभिन्न केन्द्र स्थिर हुए हैं, तब किस प्रकार सम्प्रतालक प्रकल्की सन्यान की जाती है श्रे स्थार्थमें सनस्त जगत् है हर

वैद्यानिक मतसे पृथिवी स्पैकेन्द्रक और सीरजगत्के अन्तर्गत ५म ब्रह्कपर्में (१०) परिगणित है। मङ्गळ और वृह्कपित-कक्षके मध्यवसीं छोटे छोटे तारों (Asteroid को मध्य इसकी आकृति सबसे बड़ी है। विपुववृत्तमें भूमएडळका व्यास ७६२६ मील और मेरवेशमें ७८६८ मील है पृथिवीका आयतन २६१००० लक्ष घनमील और भूपृष्ठ १६७३१०००० वर्गमीलमात है।(११) जलकी अपेक्षा भूमाग ५०६ गुना मोटा है। स्पैकी तुल्तामें भूपिएडका आकृतिपरिमाण ०००० २०८१७३ और स्पैकी दूरी ५ कोटि कोस है।(१२) इतनो दूरसे स्पीकरणको पृथिवी पर पहुंचने तथा पूर्ण विकाश पानेमें ८ मिनिट १३ दे सेकेएड लगता है। पृथिवी गोलाकार है, पर उत्तर और इक्षिण मेरवेशमें १३ मोल करके चिपटी है।

दिनके बाद रात और रातके बाद दिन आना है। सबेरे पूर्वदिशामें सूर्य उगते और पश्चिममें दूवते हैं। रातको आकाशको नक्षत-गति देखनेसे भी सूर्य और ग्रह-नक्षतादिका पृथिवीपरिवर्त्त समका जाता है। इसी कारण माल्म होता है, कि पुराकालमें यूरोपखण्डमें भी

नव पौराणिक प्रविशे हैं, तब उसकी ऐसी परिमाण-करपना नितांग्त असंगत नहीं है। दक्षिणिक निहिम्त होने के कारण ही माल्यम पड़ता है, कि पौराणिक लोग सतले क और सत-पातालकी केन्द्रतारका निर्दारित नहीं कर गये हैं। बैहानिक दक्षि दूरनर्सी एक एक लोटा तारा हम लोगों के सूर्यके बड़ा है।

⁽१०) बृहस्पति, श्रानि, नेपचन, यूरेनस भावि ग्रह प्रियनी-से वर्षे हैं।

⁽११) मास्करावार्यने पृत्रिवीकी परिषि सीर न्यायके
गुणनफडको ही भूपृष्ठ सेत्रफड निर्णीत किया है। योजनसंख्यामें पृथिवीका परिमाण ४१६७, ब्याय १८५१२% सीर
पृष्ठसेत्रफड ७५५२०३४ है। भारतवर्षीय व्योतिर्विदोंके साम
पृत्रसेत्रफड ७५५२०३४ है। भारतवर्षीय व्योतिर्विदोंके साम

⁽१२) Lardner's Museum of Science and Arts Vol. II, p. 28. किंद्र किसी किसी ज्योतिर्विदने १५००००० मीछ स्थिर किया है।

पृथिवी सीर जगत्का केन्द्र मानी जाती थी। (१३) पहले हिपार्कस नामक ज्योतिर्विद्दने इस मतका उद्घावन किया। श्री शताब्दीमें मिस्रवासी रहेमी इस विषयकी अच्छी तरहसे लिपिवड कर गये हैं। इस कारण ज्योतिष्क जगत्की यह कल्पित भ्रमणप्रणाली 'रहेमिक थेवरी' कहलाती है। १५वीं शताब्दी तक यह भ्रान्तमत यूरोप-सण्डमें प्रचलित था। पीछे विख्यात ज्योतिर्विद्द कोपार्णिकस्ने इस मतको निराकरण करके प्रमाणित किया है, कि पृथिवी २४ घंटे (दिनरात) में एक बार अपने मेस्दण्डके चारों और आवर्त्तन करती है, इसीलिये सूर्य और नक्षतमण्डलीकी इस प्रकार दृश्यमान गति माल्यम पड़ती है।

कोपाणिकस्ने १५वीं शतान्दीमें जिस प्रकार सत्य प्रकाशित किया, आर्य भूमि भारतवर्षके श्रेष्ठ ज्योतिर्विद्द आर्यभर कोपाणिकस्के सेंकड़ों वंध पहले पृथिवीकी उसी प्रकार गतिविधि अच्छी तरह वर्णन कर गये हैं। पृथिवीकी समस्त गति द्दी प्रायः उसी समय आविष्कृत हुई थी। यहां तक कि, क्रान्तिपातकी वक्रगति (Precession of the Equinoxes) जो वृथिवीकी गतिसम्भूत हैं, उसे यूरोपमें निक्षपित होनेके पहले आर्य भट स्थिर कर गये हैं।

प्रियवीकी गति।

वर्रामान वैद्यानिकों के मतसे यह पृथिवी २८ घंटेमें वा एक नाक्षितिक दिनमें एक वार अपने मेरदण्डके चारों ओर घूम कर पुनः पूर्वाधस्थामें छीट आती है। यही पृथिवीकी आहिक गति (iarnal Rotation or its axis) है। यह आहिक गति ही दिन रातका कारण है। आहिक गति द्वारा पृथिवीके जब जिस अंगमें सूर्य रहते हैं, तंब उस भागमें दिन और विपरीत भागमें रात होती है। पृथिवी यदि अपने मेरदण्डको भयनमण्डलके ऊपर रख कर ठोक सीधी घूमती, तो सब समय भूपृष्ठके सभी स्थानों उपर दिन-रातका मान समान दिखाई देता। किन्तु यधार्थमें हम लोग दिन-रात समान नहीं देखते। शीत-

कालमें दिन छोटा और रात वड़ी तथा शीयमकालमें दिन वड़ा और रात छोटी होती है।

गोलाकार पृथिवी स्थिर मेर्ड्एडको पकड़ कर अयनमएडलमें मानो कुछ वक्रमाव वा चापगितसे घूमा करती
है। उत्तर मेरु जब सूर्यके जितने सम्मुख रहता है, तव
दक्षिणमेरु सूर्यके उतने ही विमुख हो जाता है। इस
लिये विषुवरेखाके उत्तर भागमें जितना समय तक दिन
उहरता है, दक्षिण भागमें उससे अधिक मालामें रातिकी
वृद्धि होती है। केवल विषुववृत्तस्थ प्रदेशोंमें दिनरातका
भाग समान रहता है। जब तक पृथिवो इस अवस्थामें
रह कर घूमेगी, तब तक २४ घंटेके मध्य एक वार घूम
जाने पर भी दक्षिणमेरु सूर्यके अभिमुखी और उत्तरमेरु
सूर्यके विमुखी नहीं होगा। खुतरां दक्षिणमेरुमें २४ घंटा
और उत्तरमें भी २४ घंटा दिन रहेगा।

इस प्रकार भ्रमणशील पृथिषीके दक्षिणमेवसे विषुव-रेखाके मध्यवत्तीं सभी दूरवत्तीं स्थान अपने दूरत्वके परि-माणानुसार जिस परिमाणमें सूर्यके अभिमुख पड़ते हैं, उसकी अपेक्षा अधिक भाग विमुखमें रहते हैं। इसी कारण यहां राविका परिमाण अधिक होता है। इसी प्रकार सूर्य जब कर्कटराशिमें रहते हैं, तब उत्तर मेवदेशमें छह मास दिन और दक्षिणमें छह मास रात तथा दक्षि-णायनमें जब मकरराशिमें रहते हैं, तब दक्षिणमेवमें छह मास दिन और उत्तरमेवमें छह मास रात होती है।

अयनमण्डलमें कौणिकभावमें रह कर पृथिवी प्रति-दिन एक वार करके अपने मेक्दण्डको आवर्त्तन करती है। किन्तु इस चापात्मक आवर्त्तनके कारण दिनरातका वैषम्य क्यों होता है? तथा कभी उत्तरमेक्में प्रकाश कभी अन्धकार, एक स्थानमें दिन छोटा, दूसरे स्थानमें वड़ा, ऐसा परिवर्त्तन जो होता है, सो क्यों?

आहिक-गति हो यदि पृथिवीकी एकमाल गति होती, तो कभी भी दिनरातका विपर्यय संघटित नहीं होता। सूर्य जिस नक्षतराशिके निकट रहते, उसे हम लोग हमेशा उसी स्थान पर देखते। प्रतिदिन अपने चारों और एक वार करके घूमती घूमतो पृथिवी एक वर्षमें एक वार सूर्यका प्रदक्षिण कर आती है। इसे पृथिवीकी वार्षिक-गति (Revolution on an orbit) कहते हैं। प्रति-

⁽१३) किसी किसी पुराणकारने इस मतका पोषकता की है, किंद्र मास्यपुराणके बद्धत कीकांश वह मूम निराकत होता है।

दिन सूर्य और नक्षतादिका स्थान परिवर्त्तन ही इसका प्रमाण है। हमं लोग सूर्यंकी गति पर्यवेक्षण करके देखते हैं, कि १० चैत (२२वीं मार्च)-को विष्णुपदकान्ति-वृत (Vernal equinox) में सूर्यदेव डीक पूर्वमें उदय हो कर पश्चिममें अस्त होते हैं। इसके बाद तीन मास तक उत्तरोत्तर उच्च हो कर १० आपाढ़ (२२वीं जून)-को सूर्यदेव उत्तरकान्ति सीमारुढ़ (Summer Solstice) होते हैं उस समय दिन बहुत बड़ा होता है। फिर वक-गतिसे लौट कर तीन मासके वाद १० आश्विन (१२वीं सितम्बर)-को हरिपद वा तुलाकान्तिमें (Antumnal Equinox) दिनरात वरावर होती है। पीछे स्प क्रतशः दक्षिणको ओर अग्रसर हो कर १० पौष (५४वीं दिसम्बर)-को दक्षिणकान्ति सीमामें (Winter Solstice) पहुंचने हैं । उस समय दिन बहुत ही छोटा होता है। इस प्रकार एक बार उत्तरप्रान्तसे आरम्भ कर फिर-से प्रत्यावर्रान करनेमें सूर्यको एक वर्ष छगता है। सूर्य की इस प्रत्यक्षगति (Apparent motion) द्वारा आकाशमें एक वृत्तामास अङ्कित होता है। जिसे राशि-चक्र वा सूर्य का अयनमण्डल कहते है। सूर्य की ऐसी दूर्यमान गति क्यों होती है ; यह पहले ही कहा जा चुका है। पृथिवी दिनों दिन सूर्यसे कुछ कुछ हट कर फिर पक वर्गमें उसी पूर्वस्थान पर छीट आतो हैं। छह मास तक हम लोग मस्तकके ऊपर ब्रह्मकटाहमें जिस तारका-मण्डलीको देखते हैं, वह फिर छह मास तक हम लोगोंके पैरके नोचे ब्रह्मकटाहमें रहती है । पृथिवीके उमय मेर-वत्ती तारींको छोड़ कर सूर्य परिम्नमणके साथ साथ अन्य संभी तारोंकी वैसी ही परिदृश्यक्षान गिन होती है। दोनों मेरुके ऊपर आकाशमें जो सब तारे हैं, वे कभी भी अदृश्य नहीं होते। कारण पृथिवी अपने अयनमण्डलके ऊपर < ३ डिग्री २८ मिनट कौणिकभावमें अवस्थित है .और हमेशा प्रायः उसी समान भावमें चली आई है। इसी कारण दोनों मेरुका लक्ष्य ठीक एक ही ओर निवद मालूम पड़ता है।

२४ घंटेमें पृथियी अपने आपकी एक बार आवर्तन करती है और एक वर्षमें उसी प्रकार एक बार सूर्य का प्रदृष्ट्रिण कर आती है। पृथियोकी इन दो गतियोंके मिल्नेसे एक और गति उत्पन्न होती है।

पृथिवी चापगितसे आकाश-पथमें सर्वकुएडलाइति चक्र वनाती है। स्यंके प्रदक्षिणकालमें जिस चक्राकार पथसे पृथिवी घूमती है, वही उसका अयनमण्डल है। यह अयनमण्डल विलक्षल गोलाकार नहीं है, वहुत कुछ डिम्बाइति (वृत्तामास) सा है। इसके दो अधिश्रय वा नामि (Focus) हैं। एक अधिश्रयमें सूर्य अविश्वत और दूसरा खाली पड़ा है। इसी कारण अयनमण्डलके सब स्थानीसे सूर्य समान दूरी पर नहीं हैं।

श्राहिक और वार्षिक गतिके श्रह्मावा पृथिवीके और भी दो गति हैं, एक क्रान्तिपातको वक्रगति (Prece ssion of the Equinoxes) और दूसरी मेरहहरूप-परि-वत्तन-गति (Nutation)। इन दोनोंको प्रकृति इतनी जिट्ट है, कि अङ्कुशास्त्रको सहायताके विना उसकी विवृति सहजमें वीधगम्य नहीं होतो। सुतरां संक्षेपमें उसका आभास दिया जाता है।

पृथिवी अपने अपने अयनमण्डलमें चापात्मकगतिसे अवस्थित रह कर प्रतिदिन भ्रमणकालमें अपनी विषुव-रेखाके सिर्फ दो विन्दुको कक्षसे स्वर्श कराती है। परन्तु वह एक ही विन्दुद्य कक्षके ऊपर हमेशा समभाव-में नहीं पड़ता। प्रतिवर्ष क्रान्तिपात ५० १० सेकेएड पहले पड़ता है अर्थात् आज निषुवरेखाका जो विन्दु कक्षके ऊपर पड़ता है, आगामी वर्ष उस दिन उस विन्दु-से ५० १० सेकेएड पोछे वह विन्दु कक्षको स्पर्श करता है, इस प्रकार २५८६८ वर्षोंमें फिर वह एक हो विन्दु कक्षके ऊपर भा पहुंचता है । क्रान्तिपातकी यह गति पृथिवी-की दो खतन्त्र गतिका कार्यफल है। पृथिवीके मेरुदेश-की अपेक्षा विषुवद्वृत्तस्थ पदार्थसमप्रि (Equatorial protuberance) अधिक है । सुतरां मेरुदेशमें चन्द्र-सूर्यका आकर्षणप्रभाव विषुववृत्तस्य स्थानकी अपेक्षा अवश्य अधिक होगा। आकर्षणके ऐसे चैपम्यके कारण क्रान्तिपात कमशः पीछे पड़ जाता है। चन्द्रंस्थेके ्आकर्षणके प्रभावसे जिस प्रकार क्रान्तिपातकी वक्रगति सम्पादित होती है, उसी प्रकार ग्रहोंके समवेत आकर्षण-से पृथिवीकी एक और अप्रगति उत्पन्न होती है । इन दोनों गतियोंके कार्यफल्से प्रतिवर्ष क्रान्तिपातका ५० १० सिकेएंड पीछे पड़ता है वा ५० १० सिकेएड आगे सम्पन्न होता है।

इस गतिसे हम लोग जागतिक व्यापारमें तीन घटना समाश्रित देखते हैं।

विषुत्ररेखाका प्रत्येक विन्दु जितना ही हटता है उतना ही पृथिवीका मेरु चक्राकार-पथसे घूम जाता है। पृथिवीका मेरु जिस चक्राकार पथ हो कर घूमता है, उसका केन्द्र है पृथिवीकक्षका मेरु। सुतरां २५८६८ वर्षीमें उस केन्द्रके चारों ओर पृथिवीका मेरु एक एक वृत्त अङ्कित करता है। इस गति द्वारा मेरुवर्तीं नक्षतराशिका सुदीर्घकालमें स्थानपरिवर्त्त न मालूम पड़ता है।

विपुवरेखाका एक एक विन्दु हट कर जितना हो उस-के पूर्विस्थित विन्दुकक्ष पर आ जाता है, उतना ही नक्षत-राशिमें सूर्यका उदयकालप्रमेद और ऋतुवैषम्य लक्षित होता है। एक नक्षत्रसे उस नक्षत्रमें लौट आनेमें पृथिवीका जो समय लगता है, उसे नाक्षत्र वत्सर (Sidereal year) कहते हैं। छत्तिकानक्षत्रके उद्यक्षानसे सूर्यके पुनः इतिकामें लौट आनेसे एक वर्ष पूरा होता है।

सौर वर्षकी समयाव्यता ही ऋतु-परिवर्त्तनका मूल और वर्रामान वैपम्यका प्रधान कारण है। यदि प्रति-वर्ण ऋतूत्पादक सौरवर्ण नाश्चतवर्णसे २० मि० २० से० पहले उपस्थित हो, तो उसी परिमाणमें प्रत्येक ऋतु भी नाश्चतवर्णके पहले सम्पादित होगी। इस प्रकार पुनः २५८६८ वर्णके वाद नाश्चत और सौर जूतन वर्ण ठीक एक ही समयमें आरब्ध हुआ करता है अर्धात् आज नाश्चत वर्णके जिस मासनें जिस दिनमें समान दिनरात हुई है, २५८६८ वर्ण वाद ठीक उसी दिन उसी समयमें समान दिनरात होगी।

हिन्दू छोग नाक्षवकी और अङ्गरेज छोग सौरवर्णकी गणना किया करते हैं। यूरोपीय गणनासे जिस मासमें जो ऋतु पड़ती है, वह प्रायः एक ही रहती है। परन्तु आयं छोगोंकी नाक्षत-गणनासे प्रतिवर्ण समान दिनरात २० मि० २० से० पहछे हो जानेके कारण अनेक वर्ण पीछे कमशः ऋतुकाछका परिवर्त्तन हुआ है। पहछे जिस समय ऋतुराज वसन्तका आविर्माव होता था, अभी उस समय निदारण प्रीष्मके समय वर्षा आई है। इस प्रकार पृतिशोंके होनों भागमें ऋतुकाछका विशेष वैछसण्य दिखाई हेता है।

Vol. XIV. 82

पहले जब वैशाखमासके प्रथम दिनमें वासन्तिक सम-रातिदिन होता था, उस समय उसी दिनसे भारत-वासियोंने नृतनवर्णकी गणना आरम्भ की है। परन्तु अभी १० चैतको समान रात दिन आरम्भ हुआ है, अतः पुनः वैशाखमासके प्रथम दिनमें समान रात दिन होनेमें प्रायः २५००० वर्ष लगेंगे। पहले वासन्तिक समान रात दिन-में सूर्य मेप राशिमें उद्य होते थे, अभी उस दिन मीन-राशि अतिक्रम करनेमें १० अंश वाकी रह जाता है। इस प्रकार सूर्य कमशः पीले उगते उगते २५८६८ वर्णके वाद पुनः उसी एक नश्चतमें उदय होंगे।

क्रान्तिपातके सचल होनेके कारण पृथिवीकी इससे जो मृद्रुगित होतो है, उससे अयनमंडल धीरे धीरे परिवर्त्तित होता जाता है। इस कक्ष्मपरिवर्त्तनगित द्वारा
पृथिवीके एक और वर्ष उत्पन्न होता है जिसे अङ्गरेजीमें
Anomalistic वा सौर-व्यवधान वर्ष कहते हैं। पृथिवी
कक्षका जो विन्दु सूर्य से सर्वापेक्षा निकट है, उस विन्दुसे आरम्म करके पुन, सर्वापेक्षा निकटस्थ विन्दुमें लीट
आनेसे एक वर्ष पूरा होता है। कक्ष अपरिवर्त्तित रह
कर यदि वह विन्दु अचल रहता, तो सौर-व्यवधान
और नासववर्षका परिमाण समान होता। परन्तु
पृथिवी ऐसी मृदुगितसे अपने अयनमण्डलको परिवर्त्त'न
करती है, कि एक अवस्थासे उस अवस्थामें लीट आनेमें
पृथिवीको १०८००० वर्ष लगता है।

कश्च ऐसे परिवर्त नके कारण एक वर्ण पहले कश्च-के जिस विन्दु पर आनेसे पृथिवी सूर्य से सर्वापेक्षा' निकटवर्ती रहती उस विन्दु के दूसरे वर्ष और भी १२" सेकेएड अग्रसर होनेसे वह फिर पहलेके जैसा सर्वा-पेक्षा सूर्य के निकटवर्ती होती है। सुतरां उस स्थान पर आनेमें पृथिवोको और भी १२ सेकेण्ड समय लगता है। इस कारण सौर-व्यवधान-वर्णका परिमाण नाक्षत-वर्णसे प्रायः ४ मिनट ३६ सेकेण्ड अधिक है अर्थात सूर्य-सम्पर्कमें पृथिवीका व्यवधान समान होनेमें प्रति वर्ण ४ मिनट ३६ सेकेण्ड अधिक समयको आवश्यकता होती है १(१४)

रेष्ठ रू कि उस रिक्तन निविध अनेक नैसर्गिक न्यापार क्षांचत हार्व है। उराणमें युगयुगको जिस महाप्रस्थको

स्य की दूरों सम्पक्षमें पृथिबीकक्षकी एक अवस्थासे पुनः उस अवस्थामें आनेमें १०८००० वर्ष, किन्तु ऋतु सम्पक्षमें स्थेका दूरत्व-परिमाण समान होनेमें प्रायः २० हजार वर्ष लगते हैं।

ऋत्त्पादक सौरवर्ष और सौरव्यवधान-वर्षके पर-स्पर वृत्तामासका व्यवधान ६१ ६ सेकेएड है। इन दो बत्सरोंको एक अवस्थामें आनेमें भी २० हजार वर्ष लगते हैं आर इसीके ऊपर ऋतुसम्पर्कमें सूर्यका दूरत्व-परिवर्त्तन निर्भर करता है।

पृथिवोको मेरुलक्ष्य-परिवर्त्तनगित प्रधानतः धन्द्रमाके आकर्षणसे होती है। परन्तु प्रहोंके समवेत आकर्षण द्वारा इसकी हास-वृद्धि हुआ करती है। पृथिवीके दोनों मेरु यद्यपि उत्तर दक्षिणमें लक्ष्यवद्ध हैं, तौमो चन्द्रमाके आकर्षणसे उत्तरमेरुकी उत्तराकाशमें और दक्षिणमेरुकी दक्षिणाकाशमें ऊद्ध्याधः गित होती है। पृथिवीमेरुकी इस चक्राकार मन्दगितके साथ साथ दोनों मेरु पर ही पूर्वोक्त प्रकारकी एक और गित हो जाती है। इसलिये दोनों ही मेरु आकाशमें लहू की तरह विसरणशोल विह अङ्कित करते हैं। इस गितसे १६ वर्षके वाद चन्द्रसूर्य और पृथिवीकी एक अवस्था होती है। इस कारण ऐसा एक एक चिह्न अङ्कित करनेमें अर्थात् एक मेरुके नीचेसे ऊपर उठ कर फिर उस नोचे स्थान पर आनेमें १६ वर्ष लगते हैं।

कथा लिखी है, सम्मनतः पृथिनीकी यह निमन गति ही उन समस्त दुर्घटनाओं का मूल है। मृतरनकी आळोचनासे मान्द्रम होता है, कि जगत्में एक एक समय प्रक्रय छपस्थित हुआ आ। यूरोपख्राइमें गोष्टिक्लोसिन युगमें अनस्त दुवारसे आखूत वैसे ही जगद्भ सका एक निस्त्रीन पाया गया है। वैद्वानिक एडहीमरने इसका ज्योतिषिक कारण निर्देश करते हुए कहा है, कि जान्तिपातकी नकगति द्वारा १० हनार वर्षमें पृथिनीके अर्ड सूर्य सम्पर्कते अपनी अनस्थिति परिन्तिन करते है। इसी नियमसे छत्तराईके आज अयनम इलके अति निकट प्रान्तमें रहने पर भी नह १० हजार वर्षके बाद दूर श्रांतमें नका जाता है। इसी कारण तुवारशैकके स्वाबसे उत्तर-युरोपके सभी जीन नष्ट हो जाते हैं।

घनत्व ।

पृथिबीका परिमाण और गतिनिणय करनेमें ज्योति-र्विद्गण जिस प्रकार वद्धपरिकर हुए थे, इसका वनत्व (Density) और गुरुत्व (weight) मालूम करनेमें वे उसी प्रकार यहाणील थे। किसी एक परिमेय शुद्रवस्तु-की आकृष्टिश्किके साथ पृथिवीकी आकर्षणशक्तिकी तुलना करनेसे इस विषयका स्पष्ट आभास पाया जाना है। एक पर्वतस्नूपके मस्तकोङ्गर्ध्वस्थानसे उसके ओलनको विच्युति ' Deflection of the planmet from the vertical position)-का अनुसरण करके वृगेन, मास्के-लिन आदि ज्योतिर्विद् पृथिवीका गुरुत्व निरीक्षण करनेमें समर्थे हुए थे। उन्होंने अपने अपने निर्दिष्ट पर्वत-की ओलनविच्युति ४ से ५ तक लक्ष्य करके तथा उस उस पर्वतका घनत्व वा गुरुत्व निरूपण करके यह स्थिर किया, कि पृथिवीपिएंडका गुरुत्व जलको अपेक्षा ५ गुणा अधिक है। किन्तु पर्वंतका यथायथ गुरुत्व निरूपित नहीं होनेके कारण इसका यथार्थ्य अवधारित नहीं होता। इसके वाद काभेएडस् परीक्षा द्वारा मि॰ फ्रान्सिस वेली (Mr. Francis Baily) सीसकके गुरुत्व और पृथिवी-की आकृष्टिशक्तिकी तुलनामें जलकी अपेक्षा पृथिवीका गुरुत्व ५६ ७ स्थिर कर गये हैं। तृतीयतः राजज्योति-बिंदु प्री (Mr. Airy, Astronomer Rojal) १८५8 ई०में टाइन नहीं के किनारे और हर्टन कोयलेके गड्ढेसे १२६० फुट निम्नतम प्रदेशमें घड़ीके दोलक यन्त्रकी गति-विच्युतिको छक्ष्य करके जिस सिद्धान्त पर पहुँचै थे, वह पृथिधीका गुरुत्य निर्णय करनेमें वड़ा हो उपयोगी है। उन्होंने भृषुष्ट जौर गड्हेंके निम्नस्थ दोलकका दैनिक व्यवधान २१ सेकेएड निरीक्षण करके यह स्थिर किया है, कि भूपृष्ठसे उस निम्नस्थानमें आकर्षण १८१८ संख्यक अंश अधिक है। इस अंकफलसे उन्होंने पृथिवीका गुरुत्व जलकी अपेक्षा ६से ७ गुणा अधिक निर्णय किया।

ताप ।

पृथिवीके वाहर और भीतर उत्ताप है। उत्ताप जीव-जगत्का प्राणदायी है। अनन्ताकाशका तेज, सूर्यका ताप-दान और वायुके निष्पोड़नसे जगत्में एक उत्ताप विकीणे होता है। हम छोग सूर्येकिरणसे जो उत्ताप पाते हैं उसी-

ही पृथिवीके भ्रमण और सूर्यसे स्थानविशेषमें पृथिवी-के स्थानभेदसे शीतश्रीष्मादि हुआ करता है। किन्तु पृथिवीका आभ्यन्तरिक उत्ताप इससे स्वतन्त है। भृपृष्ठसे हम लोग जितना ही नीचे जाते हैं, दैनिक उत्तापका व्यतिकम उतना ही कम मालूम पडना है, यहां तक, कि खूव नीचे जाने पर एक ऐसा स्थान मिछेगा, जहां वाह्यिक ताप विलक्कल अनुभूत नहीं होता। ऋतुके परिवर्त्तनसे उस स्थानके उत्तापका परिवर्त्तन दिखाई देता है। इस स्थानसे और भी निव्नतम प्रदेशमे जानेसे पुनः थोड़ा थोड़ा उत्ताप मालूम पड्ता है। प्रति ४०।५० फुटमें १ फारेनहीट उत्तापकी चृद्धि होतो है अथवा १ मील नीचे जानेसे प्रायः १०० उत्ताप गाया जाता है। इस हिसाबसे नीचेका ताप भी लेनेसे ५० मील और भी भम्यन्तर भागमें ५००० ताप-प्रभाव देखा जाता है। इस प्रकार उत्तापको कल्पनासे जग में उत्पत्तिके प्रारम्भमें सार्वजनोन तेजका आविर्माव समका जाता है। इससे यही अनुमान किया जाता है, कि ऐसे प्रचएडतावसे कोई भी धातु गाढ़ा हो कर नहीं रह सकता, अश्रय हो उसे गल कर द्रव होना पडता है। आग्नेयगिरिनिःसत धावत तरल पदार्थादि इसका निदर्शन है। इसी धारणासे वैज्ञानिकांने पृथिवीका आदि तरलत्व स्वीकार किया है। अभो देखा जाता है, कि पृथिवोका अभ्यन्तरभाग ताय-युक्त तरलपदार्थसे परिपूर्ण है और यह भूपृष्ट (Crest) दुश्वसरकी तरह किश्व हो कर उत्पन्न हुआ है। केन्द्र-गत ताप (Central heat) को खोकार करके अरियर, हम्बोल्ट आदि भूतस्वविद्दगण अभिनव तस्वाविकारमें सफलमनोरथ हुए हैं। पर्वतादिकी उत्पत्ति और भूमि-कम्प इसो तापका निदान है।

ताप शब्दमै विस्तृत विवसण देखें।

भनन्तकोड़ाविए-वाष्परिश घंनीभूत हो कर क्रमशः तरल हो जाता है। वही उत्तम तरल जलराशि शीनल होनेके समय दृद आवरणसे आच्छादित रहती है। धीरे धीरे उसके ऊपर स्तर पर स्तर पड़ कर भूषपञ्जर पत्थर-के जैसा कठिन हो जाता है। ऊपरमें जो मट्टो देखनेमें आती है, क्रमशः वह पत्थर हो कर कुछ समय बाद श्लेटादि घन श्रन्थियुक्त पत्थरमें परिणत हो जायगो। मट्टो और पर्वतादिके नीचेसे नीचे स्थानमें द्रवमय पत्थर वा धातवादिका हद या जलकोत देखनेमें भाता है। भृतस्य और पर्वत शब्द देखा। भूपृष्ठके नीचे विभिन्न स्तरोंमें जो सब निहित प्रस्तरास्थिका निदर्शन मिलता है, इससे एक एक प्रलयको करूपना की जाती है।

पृथिवीका ६ त्पति-काळ।

क्या वर्रामान वैज्ञानिक युगमें, क्या पूर्वतन आय हिन्दुओंके मध्य, पृथ्वीका वयस-निर्णय करनेमें विशेष आन्दोलन चला आ रहा है ? वैज्ञानिक वा ज्योतिर्विद्व-गण अपने अपने मतावलम्बनसे जिस प्रकार पृथिवीका उत्पत्तिकाल-निर्णय करनेमें समर्थ हुए हैं, पूर्वतन हिन्दू-शास्त्रकारोंने भी उन सब विपयोंको योगवलसे प्रगट किया है।

प्राचीन हिन्दूशास्त्रादिमें जगत्का अनन्त-कालक्याप्तित्य स्वीकृत हुआ है। भगवान प्रमुने "आसीदिदं तमोभूतं" प्रभृति वचनों द्वारा उसका समर्थन किया है। क्रमशः सूर्यके विकाश और तेजीविकिरणसे जो वाष्प वा निहारिका वनती है, उसीसे पश्चभूतमय इस गोलाकार पिएडकी उत्पत्ति है। परन्तु बहुत दिन हुए, यह उत्पत्ति संसाधित हुई है, कोई भी इसे निश्चय कपसे कहनेमें समर्थ नहीं हैं।

पुराणसे तथा वैज्ञानिक अनुसन्धानसे आविष्कत हुआ है, कि पृथिवी भिन्न भिन्न समयमें प्रलय-फ्रावित हो फिरसे सृष्ट हुई है। एकहत्तर गुगके वाद प्रलय और एक एक मन्वन्तर अर्थात् नृतन मनुका अवस्थितिकाल कल्पित हुआ है। मन्वन्तरकालकी सन्धिका परिमाण सत्ययुगके वरावर है। उस सन्धिके समयमं पृथिवी जल्फ्रावित होती है। चाक्षुप मन्वन्तरके महाप्रलयके वाद यह सप्तद्रोपवती पृथिवी विराजित हुई है। अभी पित्रका देखनेसे अम वैवस्वत मनुका आविर्भावकाल और श्वेतवराह कल्पाब्द ४३२०००००० मालूम होता है। इनमेंसे १६७२४६६००१ अब्द वीत चुके और १६५५८८-५००१ अब्द हुए, म-सृष्ट हुई है।

वर्त्तमान विख्यात ज्योतिर्विद् न्युकोम्य और इलडेन-कृत ज्योतिर्विद्या-विषयक पुस्तकर्मे लिखा है, कि नोहा-रिकासे (Nebular hypothosis) वैज्ञानिक आलोचना हारा आज भी पृथिवीकी उत्पत्ति खीछत नहीं हुई है, तो भी सभावकी सम्यक् पर्यालोचना (Studies of nature) द्वारा यह सूल दार्शनिक सिद्धान्तसे प्राह्य हुआ है। जागितक विस्तृत व्यापारके अनुशीलनसे देखा जाता है, कि यह धरा-मएडल आत्मरक्षणशील शक्ति-विशिष्ट (Self-sustaining) नहीं है, भौतिक देह (Organism) की तरह एक ही भावमें कारण द्वारा (Laws of action) परिचालित होती है और काल कमसे उसीमें इसका लय होगा। न्युकोम्बन पृथिवोका उत्पत्तिकाल स्वीकार किया है; किन्तु उसका प्रकृत गुण-फल नहीं मिलनेके कारण दो कोटि वर्षसे भी अपर इसका उत्पत्तिकाल प्रहृण किया है। उनके मतानुसार कालकमसे सूर्य और तारकादिका तेज क्षय होगा, धरा पुनः सन्धकारसे छा जायगो और कल्पान्तरमें नृतन सृष्टि-कार्यका आरम्म होगा।

मुवासु ।

पृथिवीमें जो वायुराशि निर्छित है, जिसका सेवन करके हम लोग जीवन-धारण करते हैं उसी विश्वजनीन वायुको प्राचीन हिन्दूशास्त्रमें भूवायु कहा गया है। भारतवर्षीय पूर्वतन ज्योतिःशास्त्रह पण्डितोंने भी भूणुष्ठसे ले कर आकाश तक सात प्रकारके विभिन्न वायुस्तरोंको स्वीकार किया है। यह वायु यदि नहीं रहती तो पृथिवी प्राणहीन शरीरकी तरह अकर्मण्य हो जाती। जलजन्तु-गण जिस प्रकार हमेशा जलमें रह कर जीवन वारण करते हैं, क्षणमात्र जलसे अलग होनेसे ही प्राण जानेका हर रहता है, उसी प्रकार हम लोग भी इस भूवायुके मध्य सर्वदा निमजित हैं। वायुविहीन हो कर यह जीव-जगत क्षणकाल भी जीवनकी रक्षा नहीं कर सकता। प्राणादिकी तरह ज्योतिःशास्त्रमें भो इस प्रकार वायुका उदलेख है।

प्रथमतः भूवायु, तब आवह, उसके ऊपर प्रवह, प्रवह-के ऊपर उद्वह, उद्वहके ऊपर सुवह, सुवहके ऊपर परि-बह और सवके ऊपरमें प्रसिद्ध परावह वायु अवस्थित है। पृथिवीपृष्ठसे बारह योजन ऊपर तक भूवायुकी सीमा है। विद्युत् और मेघ इस भूवायुका आश्रय लेता है। विकानिबहीन ब्योमयान पर चढ़ कर यह सावित किया

हैं, कि पृथिवीके उपरिस्थ यह विभिन्न वायुस्तर विभिन्न चापसे स्थूछ और सूच्म वा छघु हुआ करता है तथा वे सव वायु हमेशा भिन्न भिन्न दिशामें बहती हैं, ऐसा भनुमान किया जाता है।

प्राचीन हिन्दूशास्त्रमें लिखा है, कि—मानवावास
यह घरा सात द्वीप और सात समुद्रसे आवृत्त है;
इसमें जम्यू, प्लक्ष आदि सात द्वीप और भारत, किम्पुरुप,
हरि, रप्यक, हिरण्मय, कुरु, इलावृत, भद्राश्व, केतुमाल
आदि नौ वर्ष लगते हैं। प्रत्येक वर्षमें सात सात करके
कुलपर्वत हैं। अलावा इसके सैकड़ों नदी, उपनदी,
पर्वत, जनपद और नगर उन सव वर्षोंको आलोकित करते
थे। कालक्षमधे वे सब नाम परिवर्त्तित हो गये हैं भथवा
वे सब जनपदादि हमेशाके लिये कालकी अनन्त कोड़में
सो गये हैं।

वर्तमान गठन ले कर यदि देखा जाय, तो पृथियी चार वड़े वड़े भूखएडोंसे, दो वड़े और कई एक छोटे द्वीपों तथा द्वीपमालाओंसे परिपूर्ण है। भूतत्त्वकी गठन छे कर अनुमान करनेसे देखा जाता है, कि पशिया, यूरोप, अफ़्रिका, उत्तर अमेरिका और दक्षिण-अमेरिका थे सब महादेश परस्पर विच्छिन्न रह कर एक समयमें परस्पर संयोजित हुए 🐪 फिर भूतत्त्वके गठनानुसार किसी स्थानका हास और किसी स्थानको वृद्धि होती है। वाणिज्यकी उन्नतिके छिये फरासियोंके पैकान्तिक यससे अफ़िका महादेश अरव-कक्षसे विच्युत हो गया है और भूमध्य तथा लोहित-सागरके परस्पर योजित होनेसे एक सुविस्तृत वाणिज्य पथ खुल गया है। भारतवर्षके दक्षिण और सिंहलके बीच जो सब छोटी छोटी दीप-माला देखी जाती हैं, वे सेतुवन्ध नामसे मशहूर हैं।(१५) भूतत्त्वविद्गण उनकी गठन-प्रणालीसे अनुमान करते हैं, कि वे सब द्वोप एक समय भारतके साथ संयुक्त थे। पक्षणाः । देखी ।

पशियाके उत्तर-पूर्वराज्य साइविरियासे ले कर उत्तर-अमेरिकाके मध्यवत्तीं वेरिंप्रणाली तकमें जो सव छोटे छोटे द्वीप हैं उनकी तथा उन स्थानोंके अलकी अल्पताकी

⁽१-१) जितायुगमें रावणका नाश करने के किये शीराम-चन्त्रजी इसी प्रथस लंका गये वे ।

भालोचना करनेसे मालूम होता है, कि पनामायोजकके दिक्षण-अमेरिका-संयोगको तरह एक समय अमेरिका-भूमि भी पशियाखएडके साथ मिली हुई थी। पशिया, यूरोप, अफ्रिका और उत्तर-दक्षिण अमेरिका आदि हीपाकार वृहत् भूमाग महादेश कहलाता है। अप्रेलिया और न्युजिलैएड अपेक्षाहत छोटा हीप है। उसके वाद मदागास्कर, इङ्गलैएड, स्काटलैएड, आयर-हैएड, सिहल, सुमाला, वोणियो, यावा, वालि, फर्मूजा, जापान आदि छोटे हीप हैं। अलावा इसके फिलिपाइन, पोलिनेसियन, पापुयन, इजियन और पएटाट्का आदि और भी कई एक हीपपुंच हैं।

महादेशविभाग ।

एशिय'—साइविरिया, माञ्चुरिया, जापान, चीन, चोनतातार, तिञ्चत, मङ्गोलिया, तुर्किस्तान, तुरुक, अरव, पारस्य, अफगानिस्तान, वेलुचिस्तान, भारत, श्याम, श्रह्म, कम्योज, आनम, कोखिन, मलय, गङ्गा-यहिर्भूत उपद्वीप। ये सव देश वा राज्य छोटे छोटे विभागोंमें विमक्त हैं।

युराव—प्रेटिनि, फ्रान्स, स्पेन, पुर्तंगाल, इटली, तुषक, ग्रीस, अप्निया, खीजलैंएड, हालैएड, वेलजियम, जर्मनी, पोलएड, डेन्मार्क, नारवे, खीडन, कसिया।

अफ्रिका—मरको, अलजिरिया, दिउनिस, बीपलि, इजिप्त, न्युविया, आविसिनिया, जञ्जीवर, मोजाम्बिक, बान्सभाल, नेटाल, काफ्रोरिया, केपकलोनी, अरेञ्ज-फिप्टेट, कङ्गोफिप्टेट, सेनिगाम्बिया, गीनी, गोल्डकोप्ट, और मध्य अफ्रिकाके—चेचुआना, मोम्बासा, व्रिकोया आदि छोटे छोटे देशोय राज्य हैं।

वत्तर-अमेरिक —ग्रीनछैएड, एलास्का, कनाडाराज्य, युक्तराज्य, मेक्सिको, युकेटन, कोष्टरिका, गोआटिमाला, इन्दुरस, निकारागोआ, सानसलमदेर, वेष्टइण्डिया-ब्रीपपुञ्ज।

दित्तण-अमेरिका—इकोयाडर, कलम्विया, मेनिजिउला, विनिदाद, गायना (अङ्गरेज, फरासी और ओलन्दाज), ब्रेजिल, पेठ, विलिभिया, पारागुई, ओरागुई, ला-प्लाटा (अर्जेण्टाइन रिपग्लिक), चोली और फाक्लैएड-द्वीपपुज । कोटें छोटे द्वीपींका भिन्न भिन्न नामोल्लेख निष्ययोजन है ।

Vol. XIV 83

क्योंकि इनमेंसे अधिकांश अङ्गरेज, जर्मन, फरासी और इस आदि राजाओंके अधिकारभुक्त हैं।

समुद्रविभाग ।

ऊपर कहे गये स्थळविमागोंकी तरह पृथिवीपृष्ट पर के जळिवमागका नाम नीचे दिया जाता है—अट-ळाख्टिक-महासागर (यूरोप और अमेरिकाके मध्य, प्रशान्त-महासागर (प्रिया और अमेरिकाके मध्य), भारत-महासागर (प्रियाके दक्षिणसे छे कर अफ्रिका और अप्ने लियाके दक्षिण तक अक्षा॰ ३५'), दक्षिण-महा-सागर (मारत-महासागर और दक्षिण-मेरके मध्य), उत्तर-महासागर (प्रिया-यूरोप और अमेरिकाके उत्तर-से सुमेरु पर्वत), अलावा इसके भूमध्यसागर, उत्तर सागर, अरव-उपसागर, बङ्गोपसागर, मेक्सिको उप-सागर आदि अनेक छोटे छोटे जळिविमाग हैं।

समस्त पृथिवीके मध्य जो सव जलविमाग सबसे श्रेष्ट हैं, उनके नाम ये हैं—

महादेश—पशिवा, देश—कसिया, पर्वत—हिमालय, द्वीप—अष्ट्रे लिया, हद—कास्पियन, नदी—मिसिसिपि और यंसिकियं।

कालकमसे पृथिवी पर अनेक अद्भ त और अत्या-श्चर्य शिल्पकार्य प्रतिष्ठित हुए हैं। उन सबके निर्माताकी अकातर व्यवशीलता, निर्माणनैयुण्य और परिश्रम देखनेसे अवाक् होना पड़ता है। भारतवर्षका ताजमहल, वाचि-लोनियर आकाशोधान, इजिसका पीरांमीड और स्फिड्स-मृत्ति, रोडस् तथा साध्यस द्वीपके ऊपरकी कलोसस्-मृत्ति (Colossus), रोमराजधानोका कलेसियम् और चीनका सुविख्यात प्राचीर संसारमें बहुत मशहूर (Wonders of world) हैं।

पृथिवीकन्द (सं० पु०) भूकन्द ।

पृथिवीकम्प (सं॰ पु॰) पृथिन्याः कम्पः । भूकम्प ।

भूभिकम्प हेन्द्रो।

पृथिवोक्षित् (सं॰ पु॰) पृथिवीं क्षियति क्षि-पेश्वर्ये किप्, तुक् च । पृथिवीपति, राजा ।

पृथिवीचन्द्र (सं॰ पु॰) पृथिव्यार्चन्द्र इव । राजा । पृथिवीगीता (सं॰ स्त्री॰) पृथिव्या गीता । पृथिवीकी कथा। विष्णुपुराणमें ४थे अंशके २४वें अध्यायमें 'पृथिवीगीता' वर्णित है। पृथिवीगीता सुनने वा पढ़नेसे पाप करता है और परछोकमें सहगति मिलती है।

पृथिवीञ्जय (सं॰ पु॰) पृथिवीं जयित-जि-वाहु॰ खश्, मुम् च। एक दानवका नाम।

पृथिवीतीर्थं (सं० क्ली०) तीर्थमेद ।

पृथिवीधर मिश्राचार्यं—एक धर्मशास्त्रकार। रघुनन्द्नने शुद्धितत्त्वमें इनका नामोल्लेख किया है।

पृथिबीपति (सं०पु०) पृथिव्याः पतिः। १ राजा। २ ऋषभ नामकी ओषधि। ३ यम।

पृथिवीपतिस्रि-पशुपत्यष्टक नामक प्रन्थके प्रणेता ।

पृथियीपाल (सं० पु०) पृथिवीं पालयतीति पृथिवी-पाल-भण्। १ राजा। २ चण्हमानवंशीय नदोलके एक राजा जेन्द्रराजके पुत्र।

पृथिनीसुज् (सं० पु०) पृथियों सुनक्ति अवति सुज अवने किए । भूपाल, राजा ।

पृथिवीमण्ड (सं॰ पु॰-ह्री॰) कर्दम, कीचड़ ।

पृथिवीमय (सं० ति०) मृण्मय, मृत्तिकायुक्त ।

पृथिवीमूल-एक हिन्दू राजा । कन्दालीमें इनकी राज-धानी थी। इनके पिताका नाम प्रभाकर था।

पृथिवीरुह (सं॰ पु॰) पृथिव्यां रोहति रुह-क । भूमिरुह,

पृथिवीलोक (सं० पु०) भूलोक ।

पृधिवीवर्मा —१ गङ्गाके पूर्वान्तदेशके अधिपति। २ कलिङ्ग-के एक गङ्गवंशीय राजा। इनके पिताका नाम महेन्द्रवर्म-देव था।

पृथिवीश (सं॰ पु॰) पृथिव्या ईशः। राजा।

पृथिचीशक (सं० पु०) पृथिय्यां शक इव। राजा।

पृथिचीध्वर (सं० पु०) पृथिच्या ईश्वरः । पृथिवीका अधि-पति, राजा ।

पृथिचीषेण-वाकारकवंशीय एक हिन्दूराज । ये भहाराज रुद्रसेनके पुत्र थे ।

पृथिवीस्य (सं० ति०) जो पृथिवी पर वास करता हो,
भूमि पर रहनेवाला।

पृथिव्यापीड़ (सं॰ पु॰) काश्मीरका एक राजा।

काश्मीर देखी ।

पृथी (सं० पु०) वेणके पुत्र राजर्षि पृथुका एक नाम।

पृथी (हिं० स्रो०) पृथिवी देखी।

पृत्त (सं॰ पु॰) प्रथते विख्याती भवतीति प्रथ-छु, सम्म्र-स्मारणञ्ज (प्रथिव्रदिश्रस्मी सम्प्रसारणं स्कीपथ । इण् ११२६ । वे तायुमके सूर्यवंशीय पञ्चम राजा । वेणराजाके मरने पर उनके दहिने हाथको हिलानेसे इनकी उत्पत्ति हुई थी । भागवतमें इनका विषय इस प्रकार लिखा है—

जब राजा विणका देहान्त हुआ, तव उनके कोई
सन्तान न थी । इसिलिये ब्राह्मण लोग उनके दोनों
हाथ पकड़ कर हिलाने लगे । उस समय उनके एक
हाथसे ख्री और एक हाथसे पुरुप उत्पन्न हुआ। उन
दोनों को देख कर ब्राह्मण लोग आपसमें कहने लगे, 'यह
पुरुप भगवान विष्णुका और स्त्री लक्ष्मीका अ'ग है।
इस कारण पुरुपका नाम पृथु रखा जाय और स्त्री उनकी
पत्नी बनाई जाय।' इस प्रकार उस पुरुपका नाम पृथु रख
कर ब्राह्मण लोग उनका गुणकोर्त्तन करने लगे और नाना
प्रकारके वाद्यगीतादि माङ्गलिक काय भी होने लगे।

खयं ब्रह्मा देवताओं के साथ उस स्थान पर पहुंचे और पृथुके दिहने हाथमें भगवानका चक्र तथा पैरमें रेखा देख कर उन्हें भगवानका अंग्र वतलाया। अब ब्राह्मण उनके अभिषेकको तैयारियां करने छगे। जो कन्या उत्पन्न हुई थी, उसका नाम अचि रखा गया। ब्राह्मणों ने सप-लीक पृथुका यथाविधान अभिषेक कार्य सम्पन्न किया।

श्रमा धनद कुवेरने पृथुको स्वर्णमय आसन, वरुणने शुमछल, वायुने वालव्यक्तन और धर्मने कीर्त्तिमयी माला, इन्द्रने उत्कृष्ट किरोट, धर्मराजने दमनकारक दण्ड, ब्रह्माने वेदमय कवच, सरस्वतीने मनोहर हार, हरिने सुदर्शन- चक और लक्ष्मोने विविध सम्पत्ति पदान की। पीछे ठड़ने असि, अम्विकाने चर्म, सोमने अमृतमय अश्व, विश्वकर्माने सुन्दर रथ, अनिने छाग और गोष्ट्रङ्ग-निर्मित धनुस्, सूर्यने रिश्ममय वाण और भूमिने योगमय पादुका उपहारमें दी। नाट्यादि कुशल खेचरोंने इन्हें नृत्य, गीत और वाद्य तथा अन्तर्धानविद्या प्रदान की। ऋषियोंने अमोध आशीवांद दिया और समुद्रने स्वस्लिलोत्पन्न शङ्ख तथा सिन्धु पर्वत और नदीने असंख्य रथ इन्हें समर्पण किये।

स्त, मागध और वन्दिगण जब सभाय पृथुका स्तव करनेको तैयार हुए, तव इन्होंने उन्हें रोक कर कहा, 'अभी मेरी गुणावली अव्यक्त है, जब मैं स्तवके योग्य होऊ'गा, तब तुम लोग स्तब करना'।

अव विश्रमण पृथुको राज्याभिषेक करके 'तुम इस
पृथ्वीका पालक हो, यथाविधि इसका पालन करो' इस
प्रकार आदेश दे कर अपने अपने स्थानको चल दिये।
उस समय पृथिवीमेंसे अन्न उत्पन्न होना वन्द हो गया,
जिससे सब लोग वहुत दुःखित हुए, पोले पृथुके निकट
आ कर उन्हों ने निवेदन किया, 'महाराज ! ब्राह्मणों ने
आपको हम लोगोंका वृत्तिपद और शरण दाना बनाया
है। हम लोग अन्नके अभावसे विनष्ट होनेको हैं, इसलिये
आप अन्न प्रदान कर हम लोगोंकी प्राण-रक्षा कीजिये।
आप अन्निल लोकके पालक और सवींके जीवनदाता हैं।

महाराज पृथु प्रजाका ऐसा विलापवाष्य सुन कर वड़े दुःखी हुए और वोले, 'पृथिवी सभी ओपधियोंका बीज खा गई है, इसलिये अज्ञ उत्पन्न नहीं होता है। अव तुम लोग घर जाओ, मैं शीव्र ही अन्नाभाय दूर कर देता हूं।' प्रजाका क्लेश निवारण करनेके लिये राजा पृथुने कमान पर तीर चढ़ाया और पृथिवीकी ओर दौड़ पड़े। यह देख कर पृथिवी गौका कप धारण कर भागने लगी। राजाने भी उनका पीछा किया।

जब पृथिवी भागती भागती थक गई तब पृथुकी शरणमें आई और कहने लगी, 'राजन् ! आप आश्रित-वत्सल ओर सव प्राणियोंके पालक हैं। अतएव मेरी रक्षा कीजिये। आप प्रजा पालनके लिये मुक्ते विनष्ट करनेको उद्यत हुए हैं, किन्तु मैं इस ब्रह्माण्डकी द्रढ तरणी स्वरूप हूं, मेरे हो ऊपर यह विश्व प्रतिष्ठित है। मुक्ते विदीर्ण कर क्या जलराशिके मध्य अपनी प्रजाको रक्षा कर सकेंगे! आप तो प्रजा-पालक ठहरे, तो फिर क्यों प्रजानाशका उपयोग कर रहे हैं ?' इत्यादि प्रकारसे पृथिवीने नानाविध स्तव और हितकर वाक्य तो कहे, पर पृथुका क्रोध जरा भी शान्त न हुआ । पृथिवीने पुनः निवेदन किया, 'महाराज! ब्रह्माने मुक्त पर जो ओषधियां आदि उत्पन्न की थीं, उनका छोग दुरुपयोग करने लगे, आपके समान कोई भी उपयुक्त राजा न थे, प्रजा-पालन और यहादिकी ओर उनका जरा भी ध्यान न था, सभी चोर वन गये । इसिछिये मैंने यक्षार्थ ओपधियोंको 'अपने पेटमें रख लिया है । यदि इस प्रकार मैं उनकी रक्षा नहीं करती, तो कभी सम्भव नहीं था, कि आप उनका नाम तक भी जान सकते। वे सब ओपधियां मेरे पेटमें वहुत दिनों तक रहनेके कारण जीण हो गई हैं । आप एक उपायसे उन्हें निकाल लीजिये, जिससे मेरा अभिलाप सिद्ध हो । आप वल्ला दुहने का वरतन और दुहनेवाला स्थिर करके मुक्ते दुहिये जिससे मैं क्षीरमय अभीए प्रदान करूं। राजन ! आप मुक्ते इस प्रकार समतल वना दीजिये जिससे वर्षा ऋतुका अवसान होने पर भी देववृष्ट जलराशि मेरे ऊपर पतित हो कर तमाम समान भावमें फैल जाय।'

्रस पर पृथुने मनुको वछड़ा वनाया और अपने हाथ पर पृथिवीह्मपी गौसे सव औषधियां दूह लीं। इसके उपरान्त पंद्रह ऋषियोंने जिनकी जैसी अभिलाया थी, वृहस्पतिको वछड़ा वना कर अपने कानों में चेदमय पवित्व दूध दूहा।

इसके बाव दैत्य और दानवों ने भी प्रह्लादको वछड़ा बना कर छौहुवानमें सुरा और आसव ; गन्धव और अप्सराओं ने विश्वावसुको बछडा वना कर पद्ममय पावमें सौन्दर्य और माधुयँके साथ मधु : श्राद्धदेव पितरों अर्थमाको वछडा बना कर अपक मृण्मय पालमें श्रद्धा-पूर्वंक कव्य : सिद्धींने भगवान् कपिलको वछडा वना कर अणिमादि पेश्वर्थ और सङ्कल्पमयी सिद्धिः विद्याधर और खेचरों ने कपिलकों हो वछड़ा बना कर खेचरादि-विद्या। किन्नर और मायाबी व्यक्तियों ने मयदानवको बछडा वना कर अन्तर्धान-विद्या और माया दूही थीं। यह माया अति आञ्चर्य है। इसके वलसे सभी अभिलाव सिद्ध होते हैं। अनन्तर यक्ष, राक्षस, भूत और पिशा-चादि मांसभोजी व्यक्तियोंने रुद्को वछडा बना कर कपालपातमें चिधरकप आसय, फणहीन सर्पगण और समस्त सपैजाति तथा वश्चिकादि दंदशुकने तक्षकको वछड़ा वना कर चिलक्षप पालमें अपनी अपनी जातिका विष दूहा था । इसी प्रकार पशुओं ने भी शहवाहन वृषभको वछड़ा वना कर अरण्य द्वय पातमें तृणद्वय क्षीर, मांसासी जन्तुओं ने मृगेन्द्रको वछड़ा वना कर अपने शरीरकप पातमें मांसकप दुग्ध; पर्वतोंने हिमालयको

वत्स वना कर अपने अपने सानुक्ष्य पातमें विविध धातु दूहें। इस प्रकार सवीं ने अपनी अपनी किवके अनुसार पृथिवीको दुह कर अपना अभिलाष पूरा किया।

अनन्तर पृथुने संतुष्ट हो कर पृथिवीको 'दुहिता' कह कर सम्बोधन किया और तब उसके बहुतसे पवतों आदि-को तोड़ कर इसिलिये सम कर दिया जिसमें वर्षाका जल एक स्थान पर एक न जाय। पीछे वे वीज पृथिवीके चारों और निश्चिस हुए और अनेक नगरप्राम आदि बसाये गये। अव पृथिवी शस्यशालिनी हुई और प्रजा आनन्दसे काल व्यतीत करने लगी।

इस समय पृथुने ६६ यझ किये। जब वे सीवाँ यझ करने लगे, तब इन्द्र उनके यज्ञका घोड़ा ले कर भागे। पृथुने उनका पीछा किया। इस समय इन्द्रने अनेक प्रकारका रूप धारण किये थे जिनसे जैन, बौद्ध और कापालिक आदि मतोंकी सृष्टि हुई।

पृथु इन्द्रसे अपना घोड़ा छीन लाये थे, इस कारण इन-का 'विजिताश्व' नाम पड़ा था। इस यहमें मन्त द्वारा पृथु इन्द्रको भस्म करना चाहते थे, पर ब्रह्माने आ कर दोनोंमें मेल करा दिया। यह समाप्त करके पृथुने सनत्कुमारसे ज्ञान प्राप्त किया और अपने पर दुहितृसदूशी पृथिवीका भार सौंपा। पीछे वे अपनी स्त्रीको साथ ले कर तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये, वहीं उन्होंने योगके द्वारा अपने इस भोगशरीरका अन्त किया। (भागवतमें ४।१५ अ०से ले कर २४ अ० तक पृथुका विस्तृत विवरण लिखा उसे देखों।)

२ चतुर्थं मन्वन्तरके मध्य एक सप्तर्षि। ३ कुकुत्स्थ-के पुत्र अनेनाभूराजपुतः । ४ अजमीड़-वंशीय पारपुतके पुत्रभेद । ५ क्रीष्टु वंशीय चित्रके पुत्र नृपभेद । ५ दानव-भेद । ७ प्रियव्यत-वंशीन्त्रव विभुके पुतः । ८ तामस मन्वन्तरीय ऋषिविशेष । ६ महादेव । १० अग्नि । (पु०) ११ विष्णु । (स्त्री०) १२ कृष्णजीरक, काला जीरा । पर्याय-

"कृष्णजीरं सुगन्धञ्च तथैवोद्गारशोधनः। कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका। पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुः कृष्णोपकुञ्चिका॥" (भावप्रकाश)

१३ त्वकपणीं । १४ हिंगुपती। १५ अहिफेन,

अफीम। १६ एक हाथका मान, दो वालिश्तकी लग्नाई।
(ति॰ १७ महत्, वड़ा। १८ विस्तृत, चौड़ा। १६
अगणिव, असंख्य, अधिक। २० प्रवीण, कुशल, चतुर।
पृथ-१ चिएडकामक विशिष्टमुनिके गोतवंशसम्भूत एक
राजा, पे पाठारीय प्रभुजातिके थे। २ चन्द्रवंशीय
कान्तिराजके पुत्रमेद। ३ मुद्राराक्षसके प्रणेता विशाखदत्तके पिता।

पृथुक (सं० पु०) पृथुरेव पृथुसंज्ञायां कन् वा प्रथते इति प्रथ-(अभेकपृथुकेति । उण् ५,५३ े इति कुकन् सम्प्रसारणञ्च। १ चिपिटक, चिड्वा, चिउड़ा । इस शब्दका क्षीवित्रहु-में भी व्यवहार देखा जाता है ।

हरे, भिगोप या कुछ उवाले हुए धानको भून कर कूटनेसे चिड्वा तैयार करना होता है। इसलिए यह 'द्विःखिक' अन्न नामसे प्रसिद्ध है। यह चिड्वा देशविशेष-से शुद्ध है सही, फिन्तु ब्राह्मण, यति, विधवा और ब्रह्म-चारोको यह नहीं खाना चाहिए। यह देवताको भी चढ़ाना उचित नहीं। इसका गुण—गुरु, वलकारक कफ और विष्टम्मकारक है।

२ चाक्षय मन्त्रन्तरका एक देवगण। ३ वालक, लड़का। पृथु-स्वार्थे क। ४ पृथुशब्दार्थे।

पृथुकन्दन (सं० क्की०) तृणविशेष । पृथुकर्मन् (सं० पु०) शशविन्दुके पुत और चितरथके पौत ।

पृथुकत्पिनी (सं० स्त्री०) पृथुकऱ्पना, विस्तृत कल्पना । पृथुका (सं० स्त्री०) पृथुक-स्त्रियां टाप् । १ हिंगुपती । २ वालिका ।

पृथुकालुकी (सं० स्त्री०) रक्तालुमेद । पृथुकीय (सं० ति०) पृथुकाय हितं अपूर्पादित्वात् छ । पृथुकहित ।

पृथुकोत्ति (सं० पु०)१ शशविन्दुके पुत्रका नाम।
श्रिको०)२ शूरको एक कन्या। ३ पृथादुजा वस्तुदेवभगिनी, पृथाकी एक छोटो वहनका नाम। (ति०)
पृथुः कीर्त्तिर्थस्य। ४ वृहद्वयशस्त्री, महायशस्क, जिसकी
कीर्त्ति वहुत अधिक हो।

पृथुकोल (सं॰ पु॰) पृथुः कोलः। राजवदर, वड़ा वैर। पृथुकृष्ण (सं॰ पु॰) जीरक, जीरा। पृथुक्य (सं० ति०) पृथुकाय हितं यन्। पृथुकहित, पृथुके पृथुभैरव-वौद्धोंके एक दैवताका नाम। लिए। पृथुरा (सं० पु०) चाक्षपमन्यन्तरके देवताओंका एक भेद । पृथुगन्धा (सं० स्त्री०) गन्धराय्या । पृथुप्रीव (सं॰ पु॰) राक्षसमेद । (ति॰) पृथुः प्रीवा यस्य । विस्तोर्ण योवायुक्त, जिसकी गईन छम्बो हो। पृयुग्मन् (सं० त्नि०) पृथुभावप्राप्त । पृथुच्छद् (सं० पु०) पृथवम्छदाः पताणि यस्य । १ हरि-दर्भ, एक प्रकारका डाभ । २ हाथीकन्द । ३ वृहत्पत । पृथुजय (सं० पु०) शशिवन्दुके पुतका नाम । पृथुजाघन (सं० ति०) विपुलनितम्य, लम्बी जांघवाला । पृथुजय (सं॰ द्वि॰) शीव्रगामी तेज चलनेवाला । पृथुता (सं॰ स्त्री॰) पृथोर्मावः पृथु-तल्ल-टाप् । १ पृथुत्व, पृथु होनेका भाव। २ विस्तार, फैलाव। पृथुत्त्व (हि० पु०) पृथुता देखी। पृथुदर्शिन् (सं० ति०) पृथु-दूरा-णिनि। वहुदर्शीं, चतुर, सयाना । पृथुदान (सं॰ पु॰) शशचिन्दुके एक पुतका नाम । पृथुपक्षस् (सं० ति०) पृथुः पक्षः यस्य । वृहत् पाश्वं-द्वययुक्त । पृथुपत्र (सं॰ पु॰) पृथूनि पत्नाणि यस्य । १ लाल लह-सुन। २ हाथोकन्द्र। पृथुपर्शु (सं० ति०) विस्तीण पार्श्वास्थियुक्त । पृथुपलाशिका (सं॰ स्नी॰) पृथनि पलाशानि यस्याः, कप् टापि अत इत्त्वम्। शटी, कचूर। पृथुपाजस् (सं॰ बि॰) १ अतितेजस्वी, जिसकी की त्ति बहुत अधिक हो । २ विपुल वेगयुक्त, शोघ्रगामी । पृथुपाणि (सं॰ ति॰) पृथुः पाणियं स्य । आजानुङम्वित्सुज, जिसके हाथ वहुत लम्बे या घुटनों तक हों। पृथुप्रगाण (सं० ति०) पृथु प्रगाणं यस्य । पृथुगीतियुक्त । पृथुपगामन् (सं० ति०) शीव्रगामी, तेज चलनेवाला । पृथुप्रथ (सं० ति०) विस्तृतकीर्त्ति, जिसकी कीर्त्ति वहुत दूर फैली हो। पथुप्रोथ (सं । ति ।) अभ्वादिकी तरह विपुछ नासा-रन्ध्रविशिष्ट, घोड़े की तरह वड़ी नथनीवाला। पृथुवुध्न (सं० पु०) स्थूलमूल । Vol XIV 84

पृथुमुद्वीका (सं॰ स्त्री) स्त्म द्राक्षा, किशमिश । पृथुयशस् (सं० ति०) पृथु महत् यशो यस्य । १ महा-यशस्ती। (पु॰) २ शशदिन्दुके एक पुतका नाम। पृथुयशस् — १ उत्पलपरिमलके प्रणेता । २ होरापर्पञ्चा-शिकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम वराहमिहिर था। पृथुयामन् (सं० त्नि०) पृथुरथ । पृथुरिम (सं॰ पु॰) ! यतिमेद । २ त्रिस्तृत रश्मिशाली । पृथुराज-एक राजा। पृथु टेखो। पृथुराष्ट्र—वौद्ध गएडव्यूहवर्णित एक देश । पृथुरुक्त (सं० पु०) क्रीष्टुचंशीय रुक्तकवचके पुता। पृथुरोमन् (सं॰ पु॰) पृथ्नि रोमाणि, स्रोमस्थानीयानि शुल्कान्यस्येति । १ मत्स्य, मछलो । (बि.४) २ यह-होमयुक्त, वड़े वड़े रोए वाला। पृथुल सं ० ति ०) पृथुं पृथुत्वमस्यास्तोति पृथु-सिध्मादि-त्वात् छच्, या पृथुं छातीति छा-क। १ महत्, वड़ा, भारी। २ स्थूल, मोटा, ताजा। ३ अधिक, डेर, बहुत। पृथुला (सं० स्त्रो०) हिगुपत्नी । पृथुलाक्ष (सं० ति०) पृथुले अक्षिणी यस्य पच् समा-सान्तः । युहन्नेवयुक्त, वड़ी आँखवाला । पृथुलोमा (सं॰ स्त्री॰) १ मीनराशि । २ मछली । पृथुचक्त (सं० ति०) पृथु चक्ते यस्य । १ वृहन्मुखयुक्त, वड़ा मुंहवाला। (स्त्री०)२ कुमारानुचर-मातृकामेद। पृथुवेग (सं० ति०) पृथुः बेगः बस्य । १ महत्वेगयुक्त । (पु॰ पृथुः वेगः कर्मधा॰। २ प्रवल वेग। पृअुशिम्य (सं॰ पु॰) पृथुः शिम्या यस्याः । १ इयोनाक-भेद, सोनापाठा । २ पोतलोध, पीलो लोघ । ३ असि-शिस्वी । पृथुशिरस् (सं॰ ति॰) वृहत् मस्तकविशिष्ट, वड़ा सिरं-पृथुशिरा (सं ॰ स्रो॰) कृष्णजलीका, काली जींक। पृयुभ्रङ्गक (सं० पु०) मेयविशेष, मेढ़ा। पृथुरोखर (सं॰ पु॰) पृथु महत् रोखरं श्रङ्गं यस्य । पर्वत, पहाड़ । पृथुश्रव (सं॰ ति॰) पृथुः श्रवः कर्णो यस्य। इहुत् कर्णयुक्त, वड़े कानवाला ।

पृथुश्रवस् (सं० पु०) १ कंपारानुचरभेद, क्रात्तिकेयके एक
अनुचरका नाम । २ शशिवन्दुके एक पुत्रका नाम । ३
नवें मनुके एक पुत्रका नाम । 8 सरयूका पुत्रभेद ।
पृथुश्रवा —एक हिन्दू राजा । ये महाकालीके भक्त और
भूचएडमुनिके गोत्रजात थे ।

पृथुश्रोणि (सं वि०) पृथुः श्रोणियँस्य । वृहत् नितम्व-युक्त ।

पृथुसेन (सं० पु०) अनुवंशोय रुचिरतृपके पुत्रका नाम । पृथुस्कन्ध (सं० पु०) पृथुः स्थृतः स्कन्धो यस्य । शूकर, स्थर ।

पृथ्दक (सं० ह्रो०) पृथुपुण्यप्रदत्वात् महदुद्कं यस्य।

कुष्केवके अन्तर्गत एक नगर और प्राचीन तीर्थ। यह
वर्रामान पञ्जावप्रदेशके अभ्वाला-जिलेमें प्रवाहित पुण्यसिल्ला सरस्वतीके दाहिने किनारे अझा० २६ ५८ ४५ उ० और देशा० ७६ ३७ १५ पू०के मध्य अवस्थित है।

अभी इसे लोग पेहेवा कहते हैं। प्रसिद्ध थानेश्वर नगरसे
यह स्थान ६॥ कोस दूर पड़ता है।

महातमा वेणके पुत्र राजवकवत्तीं पृथु ससागरा
पृथिवीके अधीश्वर हुए। जब उनके पिता मरे, तव सरखतीके किनारे इसी स्थान पर उन्होंने अन्त्येष्टिकिया की
और देहान्तके १२ दिन तक उसी नदीके किनारे वैठ
अस्यागतींकी जलदान देते रहे। इस कारण उस
जलतटका पृथुदक नाम पड़ा है। पिताके श्राद्धगौरवकी
रश्लाके लिये महाराज पृथुने यहां एक नगर वसाया।
तभीसे वह स्थान प्रतिष्ठाता राजाके नामसे ही घोषित
होता आ रहा है।

थानेश्वरकी तरह यह स्थान भी पवित माना गया है। प्रायः ३०से ४० फुट उच्च मृत्तिकास्त्पके ऊपर और नीचे वसे रहनेके कारण छोग इस स्थानके प्राचीनत्वकी कथना करते हैं। यहांके स्त्पमेंसे जो वड़ी ईटें, खोदित प्रस्तरमूर्ति, देवालय और द्वारदेशादिका ध्वंसावशेष, स्तम्म और मुण्मयी प्रतिमूर्त्ति पाई गई हैं, उनकी आलोचना करनेसे उस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहता। इस स्थानसे आविष्क्रत मुद्रादि और अन्यान्य निदर्शन प्रायः थानेश्वरके समकालवत्तीं हैं।

पेहोबा नगरके पश्चिम गोरक्षनाथके शिष्य गरीवनाथ-

का मन्दिर हैं। उस मन्दिरके गातमें राममद्रदेवके पुत राजा भोजदेवको २७६ सम्वत्में उत्कीर्ण एक गिलालि। प्रिथत है। दक्षिण-पूर्वमें पञ्जावके निकट 'सिद्धगिरिको हवेली' नामक अद्दालिकामें एक और गिलालिपि निवद देखी जाती है। वह लिपि भोजदेवके पुत्र महेन्द्रपाल-देवके नीचे सातवीं पीढ़ोमें देवराज द्वारा खोदी गई है।

सम्भवतः गजनीपित महमृद्देन जिस समय धानेश्वर लूटा था, उसी समय इस नगरकी पूर्वश्री जाती रही। परवर्त्ती मुसलमानराजने इस स्थानका तीर्थमाहात्म्य लोप करनेकी इच्छासे घृतस्त्रतामें एक उद्यान-वाटिका तैयार कराई। जब कोई तीर्थयाती इस स्थान पर आता था, तब उसी समय उसे चालान कर दिया जाता था। इस प्रकार धीरे धीरे यहांकी जनसंख्या घटने लगी। अन्तमें सिखजातिके अध्युद्ध होने पर कितने तीर्थ पुनः संस्कृत हो कर प्रतिष्ठित हुए हैं।

वहां अनेक पुण्यसिलला पुष्करिणी और तीथस्थान हैं जिनमेंसे कुछ तो ध्वंस हो गये हैं और कुछ आज भी विद्यमान हैं। मधुस्रवा, घृतस्रवा, पापान्तक, ययाति, वृहस्पति और पृथ्वीश्वरादि तीर्थ प्रधान हैं। अलावा इसके और भी कितने छोटे छोटे तीर्थ हैं (कुरुनेत्रमें उन सब तीर्योका चिबरण टेखी)

वामनपुराणमें लिखा है, कि महामुनि विश्वामितने इस तीर्थमें स्नान कर ब्राह्मण्यलाभ किया था। यह तीर्थ सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें स्नानदानादि करनेसे अक्षय पुण्य प्राप्त होता है और अन्तमें परमागति मिलती है। वामनपु० ३८अ०

महाभारतमें लिखा है, कि पृथ्दकतीर्थ सभी तीर्थांसे श्रेष्ठ है। कुरुक्षेत्र तीर्थ अतिशय पुण्यप्रद माना गया है। उसकी अपेक्षा सरखती है और सरखतीसे भी यह तीर्थ अधिक पुण्यदायक है। इस तीर्थमें मृत्यु होनेसे परमागति प्राप्त होती है। सनत्कुमार और खर्य व्यासदेवने भी कहा है—

"पुण्यमाहुः कुरुक्षेतं कुरुक्षेतान् सरस्ततो । सरस्तत्याञ्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथ्द्कम् ॥ उत्तमं सर्वतीर्थानां यस्त्यजेदातमनस्तनुम् । पृथ्दके जप्यपयो न तस्य मरणं भवेत्॥ गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महात्मना ।

वेदे च नियतं राजन्नधिगच्छेत् पृथ्दकम् ॥

पृथ्दकात् तीर्थतमं नान्यतीर्थं कुरूद्वह ।

तन्मध्यं तत् पवित्रञ्च पावनञ्च न संशयः ॥

तत्न स्नात्या दिवं यान्ति येऽपि पापकृता नराः ।"

(महाभारत ३।८३।१३२-१३६)

पृथ्दकस्वामी चतुर्वेद—इनके पिताका नाम था मधुस्दन । ये ब्रह्मगुप्तरुत खण्डखाधकी टीका और ब्रह्मसिद्धान्त-वासना-भाष्यके रचयिता थे।

पृथूदर (सं॰ पु॰) पृथु महदुदरं यस्य । १ मेप, मेढ़ा । (ति॰) २ बृहत्कुक्षि, बड़े पेटवाला ।

पृथ्वी (सं० स्त्री०) पृथुः स्थ्हत्वगुणगुक्ता (बोनोगुण-वचनात्। ता शाराश्वतः) इति जीण्। पृथिवी। अन्यन्त चौड़ी अथवा पृथुकी दृहिनाके कारण इसका नाम पृथ्वी पड़ा। (पृथ्वी देखो।)

२ हिंगुपती । ३ छ्रण्णजीरक, कालाजीरा । ४ वृत्ता-हैत्मातृभेद । ५ पुनर्णमा । ६ स्थ्हेला, वड़ी इलायची । ७ अक्षेयुक्ष । ८ आदित्यभक्ता । ६ छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति पादमें सत्तरह अक्षर होते हैं और अप्रम तथा नयम-में यित होती हैं । इसके २रा, ६डा, ८वां, १२वां, १४वां १५वां, और १७वां अक्षर गुरु और शेप वणं लघु होते हैं। १० पञ्चभूतों या तत्त्वोमेंसे एक । इसका प्रधान गुण गन्य है, पर इसमें गीण कपसे शब्द, स्पर्श, कप और रस ये चारों गुण भी हैं । विशेष भूत शब्दमें देखे। । ११ पृथ्वी-का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी और पत्थर आदिका है और जिस पर हम सब प्राणी चलते फिरते हैं, भूमि, धरती, जमीन । १२ मिट्टी।

पृथ्वीका (सं० स्त्री०) पृथ्वी स्वार्थे कन् ।१ वृहदेला, बड़ी इलायची । २ स्क्ष्मैला, छोटी इलायची । ३ कृष्ण-जीरक, काला जीरा । ४ हिं गुपतो ।

पृथ्वीकुरवक (सं॰ पु॰) पृथ्व्यां मूमी कुरवक इव । श्वेत मन्दारक, सफेद मदार या आक ।

पृथ्वीगर्भ (सं० पु०) पृथ्वीव लम्बमानो गर्भ उद्रमस्य । लम्बोदर, गणेश ।

पृथ्वीगृह (सं॰ क्की॰) गहर, गुका। पृथ्वीचन्द्रसूरी—एक जैन परिडत। पृथ्वीचांद-१ चम्वाके भृम्यधिकारी । पितृह्त्ता जगत्-सिंह्का प्रतिशोध छैनेके छिये १६४१ ईं में ये सम्राद्युत शाहजहांकी अनुझासे ससैन्य उपस्थित हुए । इस कामके छिए इन्हें दिल्लीश्वरसे एक हजारी मनस्वदार और चार सौ अश्वारोही सेना मिछी । वाद सम्राट्के आदेशानु-सार ये चश्वाको छौटे और तारागढ़-दुर्गके सन्निकटस्थ पार्व त्य प्रदेशमें सैन्यसंग्रह करके पुनरुद्यमसे ग्वालियरराज मानसिंहके सहायतासे तारागढ़ पर आक्रमण कर दिया और जगत्सिंहको परास्त किया।

२ कच्छत्राहवंशीय राय मनोहरके पुत्र । पिताकी मृत्युके वाद खराज्य पर अधिष्ठित हो कर इन्होंने रायको उपाधि और पांच सौ पदाति तथा तीन सौ अश्वारोही सेनाका अधिनायकत्व प्राप्त किया।

पृथ्वीज (सं० ति०) पृथ्यां जायते इति जन-छ। १ भूमि-जात, जमीनसे पैदा होनेवाला। (क्वी०) गड्लवण, सांभर नमक।

पृथ्वीतल (सं० पु) १ संसार, दुनियां। २ यह श्ररातल जिस पर हम लोग चलते फिरने हैं, जमोनको सनह। पृथ्वीद्र्याल--राजद्र्यद्वाता, कोत्याल, पुलिसका श्रधान कर्मचारो।

पृथ्विदेव १म - हिह्यवंशीय चेदिराज्यके एक राजा । ये राजा रत्तराजके पुत थे । रत्नपुरमें इनकी राजधानी थो । पृथ्विदेव २य - हिह्यवंशीय राजा २य रत्तदेवके पुत्र और १म पृथ्विदेवके प्रपीत । चोड्गङ्ग-पराजयके वाद कलिङ्ग-नगरमें रत्तदेवकी राजधानी हुई । रत्नपुरको शिलालिपि-में ८६३ कल्खुरी संवत्सरमें इनका राज्यकाल लिखा है । पृथ्विदेव ३य-पृथ्विदेवके हितीय प्रपीत । रत्नपुरमें ये राज्य करते थे ।

पृथ्वीद्वी—वीद्धंदेवताभेद । आर्या वसुन्धरा नामसे प्रसिद्ध है । वसुन्धरा-व्रतोत्पत्त्यावदान नामक वीद्ध्यन्थमें इसका वास तुषित नामक स्वर्गमें वर्णित है । महावस्तु-अव दानमें लिखा है, कि इन्होंने गुरु काश्यपक्षी प्रार्थनासे व्राह्मणोंका ध्वंस किया था । वसुन्धरा देखो ।

पृथ्वीधर (सं॰ पु॰) धरतीति 'पचाद्यच्' इति अच् । मही-धर, पर्वत, पहाड़ ।

पृथ्वीधर-मिथिलाराज रामसिंहदेवके आश्रित एक

पिडत । इन्होंने मृच्छकटिकाटीकाकी रचना की ।
पृथ्वीघर आचार्य—१ कातन्त्रविस्तरिववरणके प्रणेता । २
शम्भुनाथके शिष्य । इन्होंने भुवनेश्वरीस्तोत, लघुसप्तशतीस्तोत, सरस्वतीस्तोत और भुवनेश्वर्धर्चनपद्धित
नामक कई एक प्रन्थ रचे । ३ रत्नकोषके रचिता ।
पृथ्वीघर मह—एक कवि । इन्होंने अभिज्ञान शकुन्तलटीका प्रणयन की । इनके पुत्रका नाम राघव मह था ।
पृथ्वीनाथ (सं० पु०) राजा ।

पृथ्वीनारायण शाह — नेपालके एक गोर्खाराज । इनके पिताका नाम नरभूपाल शाह था । पाल्पासे आ कर उद्यपुर-रांजवंशने सप्तगण्डकीतीरवर्तीं गोर्खालिराज्यमें राज्य स्थापित किया । पृथ्वीनारायणने अपने बाहुवलसे नेपालराज्य जीता । उन्हींके अत्याचारसे कीर्तिपुरकी महिमा लुन और नासकाटापुर नाम प्रवर्त्तित हुआ है । नासकाटापुर और नेपाल देखो ।

पृथ्वीपत्—सागरप्रदेशके एक राजा। इन्होंने पेशवासे विलिहरा नामकी भूसम्पत्ति पाई थी।

पृथ्वीपति (सं॰ पु॰) पृथ्वग्रः पतिः । पृथिवीपाल, राजा । पृथ्वीपाल (सं॰ पु॰) पृथ्वीं पालयतीति पालि-भण् । १ पृथिवीका पालन करनेवाला, राजा । २ राजतरङ्गिणो-वर्णिंत काश्मीरका एक राजा ।

पृथ्वीपुत्र (सं॰ पु॰) मङ्गलप्रह ।

पृथ्वीपुर (सं॰ पु॰) मगधराज्यके अन्तर्गत एक नगर । पृथ्वीभुज् (सं॰ पु॰) पृथ्वीं भुङ्के भुज-िकप । महीपति, राजा ।

षृथ्वीमल्ल-मेवारके एक राणा। राहुप और लक्ष्मणसिह-के मध्यवत्तीं राजत्वकालमें ये चित्तौरके राजसिंहासन पर अधिकल् हुए। इन्होंने असीम साहसके साथ वहुत से राजपूर्तोंकी खून खरावी कर मुसलमानोंके कवलसे हिन्दूके प्रधान तीर्थ गयापुरीका उद्धार किया था। इनकी निर्मीकता और स्वधमें प्रमिकता देख कर मुसलमानोंने हिन्दूधमें मेति अत्याचार करना छोड़ दिया।

पृथ्वीमल्ल मदनपालके पुत और मान्धाताके ज्येष्ठ भ्राता ।
इन्होंने वालचिकित्सा वा शिशुरक्षारत्न नामक वैद्यकप्रन्थ
की रचना की ।

पृथ्वीमलुराज--महाणव नामक ग्रन्थके रचयिता।

पृथ्वीराज—भारतके एक शेप और प्रधान हिन्दूराजा। उन्होंने भारतवर्ष पर केवल अपना आधिपत्य ही नहीं फैलाया था, वरन् उनका सुतीव प्रभाव इस भारतके कोने कोने व्यविहतभावमें फैल गया था तथा दिल्लीका सिहासन मुसलमानोंके हाथ आनेके पहले भारतीय हिन्दूराजाओं में उन्होंने श्रे प्र पद प्राप्त किया था।

चांद कविका प्रशंग।

चाँद किवने लिखा है, 'दिल्लीपित अनङ्गपाल जव काम-ध्वजके साथ संग्राममें प्रवृत्त हुए, उस समय अजमेरपित सोमेश्वरने उन्हें खासी मदद पहुंचाई थी। इस कारण दिल्लीश्वरने अपनी छोटी लड़की कमलाको सोमेश्वरके हाथ सौंप दिया। इसी कमलाके गर्भसे पृथ्वीराज उत्पन्न हुए। अनङ्गपालकी वड़ी लड़की सुन्द्रीके साथ विजयपालका विवाह हुआ था जिससे कन्नोजपित जयचन्द्रने जन्मग्रहण किया।'

चाँद कविके वर्णनसे पृथ्वीराजका वंशपरिचय इस
प्रकार जाना जाता है—पृथ्वीराजके पितामहका नाम
आनन्दमेवजी, प्रपितामहका जयसिंह और वृद्धप्रितामह
का नाम आना था। इन्होंने १११५ विक्रमशाकमें जन्म
लिया। पृथिराजरासौमें इनके जन्मके सम्बन्धमें जो
लिखा है, वह नीचे देते हैं—

"एकादश से पञ्चदह, विक्रमसाक अनन्द। तिहि रिपुजय पुरहरणको, भय पृथिराज नरिन्द॥ एकादस से पञ्चदह, विक्रम जिम ध्रम सुत्त। एतिय साक पृथिराज को, लिख्खों विप्र गुन गुप्त॥" (पृथिराजरासी १।६६४-५)

आनन्दमय १११५ विक्रमशाकमें उस रिपुहारी और पुरजयकारी पृथिवीराज नरेन्द्रका जन्म हुया। 'पृथिराज-रासी'-अन्थके आदिपवः प्रकाशक पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्यके मतसे,—चाँदकविने उक्त दोहामें जो 'अनन्द' शब्द लिखा है, उसका अर्थ अ-नन्द (६) है अर्थात् १००-६ = ६०।६१ ऐसा कल्पित अर्थ मान कर वे कहते हैं, कि १११५ विक्रम ६०।६१ = १२०५।६ सनन्द विक्रममें पृथ्वीराजने जन्मग्रहण किया। (काशीसे तत्-कर्तं क प्रकाशित पृथिराजरासी १३६-१४० पृष्ठ द्रष्ट्य।) किन्तु उनका यह कष्ट कल्पित, अर्थ समीचीन नहीं है।

यहां 'अनन्द' शब्द 'आनन्द' सक्तप ही व्यवहृत हुआ है। ऐसे 'अनन्द' शब्दका प्रयोग 'पृथिराजरासो'-में कई जगह आया है। यथा—

"अनगपाल तूं अर यरणं किय तीरथथ अनन्द ।" (पशियाटिक सोसाइटोसे प्रकाशित पृथिराजरासो, २य भाग ६६ पृ०)

विशेषतः परवर्त्ती पद्धरी श्लोकमें पृथ्वीराजको जन्म-पत्नोके उपलक्षमें चाँदकविने ऐसा लिखा है—

"द्रवार वैठि सोमेस राय, छीने हजार जोतिंग वुछाय॥
कही जन्म कर्म वाछकविनोद, सुभ छगन महरत सुनत मोद्
संवच इक्कद्स पञ्च अगग, वैसाखमास पख कृष्ण छग्ग॥
गुरु सिद्धिजोग चिलानखिन, गर नाम करण सिसुपरमहिन्त॥
क्रिया प्रकास इक घरिय रात, पछ तीस अंश लयवाछ जात॥
गुरु बुध शुक्र परिदसे थान, अष्टमै वार शनि फछ विनान॥
पञ्च दुर थान परिसोम भोम, ग्यारमैं राह वछ करन होम॥
वारमें सूर सो करन रङ्ग, अनमी नमाय तिन करै भङ्ग॥
प्रिथराज नाम वछ हरै छल, दिख्डीय तखत मण्डै सुछल॥
च्याळीस तीन तीन वर्षसाज, किछ पुहमि इन्द्र उद्धार काज"
(आदिएवे ७०५-७१०)

दरवारमें वैठ कर राजा सोमेश्वरने ज्योतिपीको सामने बुलाया और कहा, 'वालकका जन्म, कर्म और शुभलग्न बता दीजिये, जिसे सुन कर मेरा चित्त प्रसन्न हो।' सम्वत् १११५, वैसालमास, कृष्णपक्ष, गुरुवार, सिद्धियोग, चित्रानक्षत और शिशुका परमहितकर गर-करण ; एक दएड ३० पल और ३ अंश रात रहते जया-प्रकाशकालमें शिशुने जनम प्रहण किया। उनके दशम स्थानमें बृहस्पति, बुध और शुक्र ; अष्टममें शनि : पञ्चम और द्वितीयमें सोम और मङ्गळ ; एकाव्यमें (खळोंके नाशनार्थ) राहु और द्वादशमें सूर्य हैं। यह वालक शतुदलका निपातन करनेमें समर्थ होगा। पृथ्वी-राज इसका नाम रहेगा। दिल्लीके सिंहासनको ये सुशोभित करेंगे। इस कलियुगमें वे ४३ वर्ष तक पृथिवीके उद्धारकार्यमें लगे रहें गे अर्थात् केवल ४३ वर्ष तक जीवित रहें गे। चाँदकवि वर्णित जन्मपत्नीसे भी पृथ्वीराजका जन्मकाल १११५ विकम सम्वत् अर्थात् १०५८ ई० होता है। सुतरां पिएडत विष्णुलालकी कप्ट-करूपना ग्रहणयोग्य नहीं है।'

Vol. X1V 85

वचपनसे ही इनके शौर्यवीर्यका परिचय पाया जाता है। द्रवारमें प्रतापसिंह चालुक्यने अपनी मुंछों पर ताव दिया था, इस कारण रुष्ण (कान्ह) चौहान्ते उन्हें भार डाला। इस पर पृथ्वीराज वड़े विगड़े और उन्हें भाँखें वांध रखनेके लिये वाध्य किया था। राजा होनेके पहले ही पृथ्वीराजने नाहरराय और मेवातियोंको जीता था। इसके वाद ही साहबुद्दीन घोरीसे प्रेरित हुसेन खाँके साथ उनका विपुल संग्राम छिड़ा। युद्धमें साहबुद्दीन पराजित और हुसेन मारे गये। एक दिन पृथ्वीराज जब आखेटको निकले, तव शाहबुद्दीनने अत कित भावसे उन पर आक्रमण कर दिया। इस समय चौहान-वीरके साथ वहुत कम आदमी थे, तिस पर भो पृथ्वीराजने अतुल विक्रमसे घोरको परास्त कर ही डाला।

गुजरातके राजा भोलाराय वड़े ही अहङ्कारी हो उठे थे। पृथ्वीराजने उनका दर्प चूर्ण कर डाला। इसके बाद इञ्जिनोके साथ पृथ्वीराजका विवाह हुआ।

दिल्लीपतिके साथ जब मुगलोंका युद्ध छिड़ा, तब उसमें पृथ्वीरायने बड़ी बीरता दिखलाई थी। चन्द्र पुण्डीरके दाहिमी नामक एक परम रूपवती कन्या थी जो पृथ्वीराजको ब्याही गई। कैमास, चन्द्रसेनी पुण्डिर और चामण्डराय ये तीनों दाहिमीके माई थे। परवर्त्ती कालमें तीनोंने ही दिल्लीश्वरके अधोन उच्च पद प्राप्त किया। पृथ्वीके मातामह अनङ्गपालके दो कन्या छोड़ कर और कोई पुत्त-सन्तान न थी। उन्होंने पृथ्वीराजके पराक्रम, बुद्धि और गुण पर मुग्ध हो कर उन्हींको दिल्ली राज्य समर्पण किया और आप वदरिकाश्रमको चल दिये। ११३८ विक्रम-सम्बत्में हेमन्तकाल मार्गशीर्प शुक्कपञ्चमी तिथि और सिद्धियोगमें पृथ्वीराज मातामह द्वारा दिल्लीके सिहासन पर अभिषक्त हुए थे।

चाँदने लिखा है-

"ध्यारह सै अठतोसा मानं भौ दिल्ली नृप रा चौहानं। विक्रम विन सक वन्धी सुरं तपै राज पृथिराज करूरं॥"
- (माधो भाट-कथा ६५)

अनङ्गपाल दिल्ली छोड़ कर चले गये, यह सन कर साहबुद्दीन वड़ी धूमधामसे दिल्ली पर चढ़ाई करनेके लिये आ धमके। माधोसारने आ कर पृथ्वीराजको इसकी खबर दी। हिन्दू-मुसलमानमें तुमुल-संग्राम चलने लगा। साहबुद्दीन पराजित और वन्दी हुए। पीछे उपयुक्त अर्थद्ग् देनेके वाद उन्हें छुरकारा मिला। इसके अनन्तर पद्मावतीके साथ पृथ्वीराजका विवाह हुआ। इस समय चन्देलराजकी तृती तमाम वोल रही थी।

दिल्लीपतिके साथ उनकी लड़ाई छिड़ी। अल्हा और ऊदल नामक वनाफर राजपूत-वंशीय दो महावीरोंने परिमालका पक्ष लिया। किन्तु वे सबके सब पृथ्वीराजसे पराजय स्वीकार करनेको वाध्य हुए। अनन्तर पृथ्वीराज-की वहन पृथाके साथ चित्तोरपति समर्रासहका विवाह हुआ।

दिवलीपितको खहू-चनमें प्रसुर धन हाथ लगा।
जमीन कोड़ कर उस धनको निकालते समय सुलतानने
उन पर आक्रमण कर दिया। इस वार भी वे पहलेके
जैसा पृथ्वीराजके हाथ वन्दी हुए और प्रसुर अर्थद्दल्ड दे
कर जानकी रिहाई पाई।

दैवगिरि-राजकन्या शशिव्रताको पानेकी आशासे कन्नोजाश्विपति जयचन्द्र देवगिरिको पथारे। किन्तु इसके पहले ही पृथ्वीराज उस कन्याको हर लाये थे। यह ले कर दोनोंमें लडाई ठन गई। जयचन्द्रने वहुसंख्यक सेना ले कर दैवगिरिको घेर लिया। अन्तमें वे पृथ्वी-राजके सेनापति चामण्डरायसे परास्त हुए।

चामएडराय देवगिरिको फतह कर छौटे, इसी समय दिख्छोपति रेवाके किनारे हाथीके शिकारमें आये हुए थे। यहां उन्हें लाहोरके शासनकर्ता चन्द्र पुएडोरसे एक पत मिळा जिसमें लिखा था, कि साहबुद्दीनके सेनापित तातार मारुफ खाँ दिख्छी पर आक्रमण करनेके लिये विळकुळ तैयार हैं। फिर क्या था, दिख्छोश्वरने उसी समय दल-बळके साथ पञ्चनदको ओर याता कर दी। यहां उन्होंने सुना, कि चंद्रपुएडीर उनकी अव्रगामी सेना ले कर गजनी-पतिको रोकने तो गये हैं पर वे इस कार्यमें कृतकार्य नहीं होंगे। दिछोपित स्वयं युद्धस्थलमें कृद पड़े और साह-बुद्दीनको गति रोको। इस युद्धमें दोनों पक्षके अनेक सम्म्रान्त स्यक्ति खेत रहे। अन्तमें साहबुद्दीनने परास्त हो कर पूर्ववत् वन्दित्व स्त्रीकार किया । गजनीपति एक मास तीन दिन कैदमें रहे, पीछे काफी धन दे कर छुटकारा पाया ।

इघर वद्रिकाश्रममें अनङ्गपालको यह सम्बाद् मिला, कि जनको प्रिय प्रजा पृथ्वीराजको हाथसे वहुत कष्ट पा रही है, इस कारण उन्हें फिर राज्यभार प्रहण करना कर्त व्य है। इसो मौकेमें मालवराज महीपाल पहले सोमेश्वरकी राजधानो सम्भर और पोछे दिल्ली पर आकमण करनेके लिये अप्रसर हुए। किन्तु सोमेश्वरके निकट महीपालको पूरी हार हुई। इधर अनङ्गपाल-पक्षके कुछ लोगोंने बद्दिकाश्रम आ कर उन्हें राज्यप्रहण करनेका अनुरोध किया। उन लोगोंको वात पर अनङ्गपालने पृथ्वीराजको अपने मन्त्री द्वारा कहला मेजा, "या तो तुम राज्य छोड़ दो, या वद्रिकाश्रम आ कर मुकसे मुलाकात करों"।

पृथ्वीराजने वृद्धे की वात पर कान नहीं दिया। इस पर वृद्ध-अनङ्गपाल ससैन्य उनसे युद्ध करने के लिये आये। गजनों के सुलतानने भी दलवलसे आ कर अनङ्गपालका साथ दिया। पृथ्वीराज इस पर भी विनलित न हुए। रणश्चेत्रमें मातामहके साथ उन्होंने मुलाकात की। उनके प्रिय-मन्त्री कैमास अनङ्गपालके हाथीको आहत कर वृद्ध राजाको केंद्र करने आये। इस समय सुलतान उनकी रक्षा करने के लिये आगे दढ़े, पर पृथ्वीराजके हाथसे वे भी केंद्र कर लिये गये। पृथ्वी राजने वड़े आदर और सम्मानसे मातामहको प्रहण किया। साहबुद्देशको इस वार प्रसुर अर्थ देना पड़ा। वृद्ध अनङ्गपालको उस समय भो राज्यिलप्सा दूर नहीं हुई थी। वे एक वर्ष तक दिल्लीमें रहे और पृथ्वीराजके ज्यवहार पर बड़े प्रसन्न हो कर पुनः वद्रिकाध्रमको चल दिये।

गजनीपित वार बार ठोकर खाते गये थे। अतः इस वार वे बहुसंख्यक सेना छे कर घघर-नदीके किनारे जा धमके ; किन्तु इस वार भी उन्होंने पूर्ववत् प्रतिफल पाया।

इसके बाद पृथ्वीराजने कर्णाटकी याता कर दी। वहां-से वे केव्हन नामक एक नायकको साथ छै ११८१ सम्बद्में दिल्ली वापिस आये। पहलेसे ही कन्नीजपित जयचन्द पृथ्वीराजके शबु थे।
वे भी सुलतान साहयुद्दीनके साथ मिल कर पृथ्वीके
विकद पड़-यन्त रचने लगे। फलतः पीपामें गहरीं मुठभेड़ हो गई। अनन्तर दिल्लीपितने दोनों पक्षमें इन्द्रावती
नामक एक सुन्दरीका पाणिप्रहण किया। उनके साथ कुछ
दिन सुलसे विता कर दिल्लीश्वर आलेटको निकले। इस
अवसरमें सुलतानने उन पर धावा वोल दिया। दिल्लीके
अन्यतम सेनापित जैतरावने महाविकम दिला कर सुलतानको परास्त किया। इसके वाद पृथ्वीराजने कांगुरा
गिरिदुर्ग जीत कर इंसावतीकी पत्नी वनाया।

गुजरराजके साथ अजमेरपित सोमेश्वरका बहुत दिनोंसे विवाद चला था रहा था । गुजरपित भोला-भोमने गुप्तभावसे सोमेश्वरको मार डाला। इसके बाद सुलतानने पुनः दिल्ली पर हमला कर दिया। बहु वनमें होंनी पक्षमें युंद्ध छिड़ा। इस बार भो मन्तिवर कैमास-के प्रभावसे ११४० सम्बत्में सुलतान साहबुद्दोन परास्त हुए। गजनी-पित्का दर्प चूर्ण करके पृथ्वीराज पितु-हत्याका प्रतिशोध लेनेके लिये गुजरातको चल दिये। गुजरातके चालुक्यराज भोलाराय-भोमने भी बहुसंख्यक सेना ले कर दिल्लीश्वरका सामना किया। किन्तु पृथ्वी राजके कौशलसे उन्हें कालका आतिथा स्वीकार करना पडा।

अभी पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर दोनों जगहके अधीश्वर वन वैठे। एक दिन दिल्लीमें इन्हें मालूम हुआ कि, कजोज
पति जयचन्द्रकी कन्या संयोगित। (संयुक्ता)-ने पण किया
है, कि वह पृथ्वीराजके सिवा और किसीके गलेमें वरमाला न डालेगी। इधर जयचन्द्र कन्याको पातस्य करनेके अभिप्रायसे स्वयम्बरका आयोजन कर रहे हैं। जयचन्द्र पृथ्वीराजका जानी दुश्मन होने पर भी अभी उनकी
कन्याका अभिलाप पूरा करनेके लिये दिल्लीपतिने कन्नोजको याता की। वहुतसे विश्वासी लोगोंको नगरके वाहर
रख कर आपने संयोगिताका प्रकृत मनोभाव जाननेके
लिये छत्रवेशसे कन्नोज-राजगृहमें प्रवेश किया। वहां
उन्हें अच्छो तरह मालूम हुआ, कि जयचन्द्र-कन्या सचमुच उनकी सम्पूर्ण उपयुक्ता है, उन्हें लोड़ कर दूसरेको
वह कदापि न बरेगी। इसके बाद मेवारपति समरसिंहके साथ जयचन्द्रकी लड़ाई लिखी।

पहले संयोगिताको पाने, दूसरे समर्रासहके पक्षमें रह कर जयवन्द्रका द्रपैचूर्ण करनेके लिये पृथ्वीराज आयोजन करने लगे।

सम्बत् ११५० शकमें पृथ्वीराजके प्रिय मन्त्री कैमास सुरधामको सिधारे। सम्वत् ११५१ शकमें इन्होंने संयो-गिताको लानेके लिये वड़ी धूमधामसे कन्नोजकी याता की 🎋 कञ्जोजपति जयचन्द्रके साथ इन्हें तुमुख संग्राम करना पड़ा। अन्तमें दिख्छीपति कन्नोजपतिको परास्त कर और उनकी परम सुन्दरी कन्या संयोगिताको छै कर अपनी राजधानी लौटे। यह अपमान जयचन्द्रके इदयमें वाणसे चुभ गया । उन्होंने पृथ्वीराजको अधःपातित करनेकी आशासे गजनीपतिका आश्रय लिया। इस बार जयचन्द्रकी सहायतासे खुलतान प्रोत्साहित हो पुनः विल्ही पर आक्रमण करनेको आये। इस वार प्रथम युद्ध-में भीर-पुण्डीरकी वीरतासे सुलतानको पीठ दिखानी पड़ी। किन्तु वार वार अपमानित होने पर भी ये भग्न-मरोरथ न हुए। जयचन्द्रने प्रचुर अर्थ और सैन्य द्वारा सुलतानको मदद पहुँचाई । इस वार सुलतान भी हजारी मुसलमान-सेनाके साथ घघरहोलमें जा धमके । प्रथ्वी-राज भी प्रधान प्रधान सामन्तों को एकत कर रणक्षेत्रमें कृद पड़े। उनके वहनोइ समर्रासह भी उनकी सहायतामें पहुंचे। ऐसी घमसान लडाई और कभी नहीं हुई थी। ११५८ सम्बतु श्रावणमास शनिवार कर्केटसंकान्तिमें युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमें पहले पृथ्वीराजकी ही जीत हुई थी, किन्तु हिन्दुओंके प्रहुवैगुण्यसे आखिर खुळतानने ही विजय-छक्ष्मी पाई। समर्रासहने खदेश और खजातिके लिये रणक्षेत्रमें जीवन उत्सर्ग किया। पृथ्वीराज मुसल-मानके हाथसे वन्दी हो गजनी भेज दिये गये। यहां उनकी दोनों आंखें निकाल ली गईं। कविचन्द्र (चाँदकवि) अपने प्रभुके दर्शनार्थं वड़ी मुक्तिलसे गजनी आये और कौशल-क्रमसे गजनीके अधीन काम करने छगे। पीछे एक दिन कारागारमें उन्होंने पृथ्वीराज्ञके साथ मुलाकात की। सुलतानने जब कविचाँद्के मुखसे सुना, कि पृथ्वीराज

(कन ववलस्र)

क्ष ग्यारह स इस्यावना, चेत तीज रावनाह । कनवन दीखन कारने चल्यो मुनंभीनाह ॥ "

शब्दमेदी-वाण चलानेमें वड़े सिद्धहस्त हैं, तव उन्हें यह देखनेकी वड़ी लालसा हुई। इस अवसरमें चन्द्रने अन्ध पृथ्वीराजको सम्योधन कर कहा;—

"वारह वांस वत्तीस गज, अंगुल चारि प्रमाण। इतने पर पतसाह है, मित खुक्के चौहान।।
फेरि न जननी जनिम है, फेरि न खैंचि कमान।
सात वार तुम चूकियो, अब न चूक चौहान।।
धर पल्ट्यो पल्टी धरा, पल्ट्यो हाथ कमान।
चन्द कहै पृथिराजसों, जनि पल्टे चौहान।"

यह सुनते ही पृथ्वीराजने एक शब्दभेदी-वाण चलाया और वह तीर ठीक गयासुद्दीनके कलेजेमें जा लगा। वह तो मर गया, पर विपक्ष दल उन दोनों पर टूट पड़े। वस, चन्दने कटपट यह सोरटा पढ़ा,—

"अवकी चढ़ी कमान, को जाने कव फिर चढ़े। जिन चुके चौहान, इक्के मारिय इक्क सर॥" यह कहते ही पूर्व संकेतानुसार पृथ्वीराजने चन्दको और चन्दने पृथ्वीराजको मार डाला।

पृथ्वीराज जव मुसलमानके हाथसे वन्दो हो कर गजनी आये, तव उधर उनके पुत रायनसिंह (नारायणसिंह) विल्लीके सिंहासन पर बैठे, किन्तु राज्यलक्ष्मीका उपभोग उनके भाग्यमें न वदा था। वे शीव्र ही मुसलमानोंके हाथ से मारे गये और विल्लीराज्य मुसलमानोंके हाथ लगा।

च'दकविने अपने "पृथिराजरासी" नामक सुवृहत् काव्यमें * पृथ्वीराजका जो कुछ हाल लिखा है, वहीं यहां प्र संक्षेपमें दिया गया । राजस्थानके इतिवृत्त-लेखक टाड साहव और वर्त्तमान पाश्चात्य तथा देशीय अनेक ऐतिहासिकोंने च'दके आख्यानको प्रकृत इतिहास-मूलक माना है।

यह अवश्य कह सकते हैं, कि हिन्दी साहित्यमें चांद-कविका 'पृथिराजरासी' सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यके जैसा आदृत होगा, पर ऐतिहासिक साहित्यमें इसका कैसा आसन होगा, कह नहीं सकते। नाना कारणोंसे हम लोग प्रच-

छित पृथ्वीराजरासके अधिकांश विवरणको प्रामाणिक नहीं मान सकते।

श्ला कारण, पृथ्वीराज और समरसिंहके समकाल-में जो सब शिलालिपियां उत्कीर्ण हुईं, नके साथ चांद-कविकी उक्तिका प्रायः सामञ्जरूप नहीं है।

२य, पृथ्वीराजके समकालमें उनकी समाके किसी कवि द्वारा संस्कृत भाषामें 'पृथ्वीराजविजय' नामक एक काव्य लिखा गया। इसमें पृथ्वीराजके विषयमें जो सब वाते' लिखी हैं, उनके साथ भी चांदकविका विवरण नहीं मिलता।

३य, पृथ्वीराजके समसामयिक मुसलमान ऐति-हासिकोंने पृथ्वीराजके विषयमें जो कुछ लिखा है, उसके साथ मी पृथ्वीराजरासका सामजस्य नहीं है।

अव शिलालिपि आदि सामयिक प्रन्थोंमें पृथ्वीराज-का परिचय किस प्रकार लिखा है, यह भी देखना चाहिये।

पृथ्वीराजका ऐतिहासिक परिचय ।

प्रध्वीराजके पितामह अणीराज और पिता सोमेश्वर थे । सोमेश्वरने १२२६ सम्बन्में (११६६ ई०)-के फालान मासकी कृष्णतृतीया तक राज्य किया। इसी वर्ष पृथ्वी-राज सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके प्रधान मन्तीका नाम कदम्ववाम और प्रधान राजभाट (वन्दिराज) का पृथ्वीभट था । सिंहासन पर वैडनेके वाद हो नाना देशों को जोत कर प्रतिष्ठा लाभ को । ५७१ हिजरी (११७५ ई०)-में साह्युद्दीन घोरीने मूळतान पर अधिकार जमाया। इस समयसे उनके हृद्यमें भारतजयकी लिप्सा वलवती हुई। ५७४ हिजरी (११७८ई०)-में वे उचा और मूलतान होते हुए (गुजरातकी राजधानी) नाहरवारा (अनहलवाड्पत्तन)-को ओर अप्रसर हुए। मूलराज और भीमदेवके साथ उनकी गहरी मुठभेंड़ हुई। घोरीराजके आक्रमणसे खदेशकी गौरव-रक्षा करनेके छिये पृथ्वीराजने सेना मेज गुर्जराधिपतिकी सहायता की थी। इस युद्धमें विफल मनोरथ हो साहवुद्दीन खदेश छीटनेकी वाध्य हुए। यह संवाद पा कर दिल्लीपतिने गुजरराजदूतकी यथेष्ट उपहार दिया था। इसके वाद साहबुद्दीनने खोरासानको जीता। इस उपलक्षमें वे 'सुलतान मुस्जुद्दीन' और उनके माई

क्ष इस महाकान्यमें प्राय: लाखरे जगर कविताएँ हैं। ऐस उच्च महाकान्य हिन्दी-भाषाने और दूरवा नहीं है। ७० प्रसार्थीने यह सराकान्य वर्णित धुमा है।

समसुद्दीन 'सुलतान गियासुद्दीन' उपाधिसे निम्पित हुए। ५९९ हिजरो (११८१ई०)-में मुद्दुद्दीन सुलतान-ने महमूदके वंशधर खुसरु मालिकसे लाहोर जीतनेकी चेष्टा की। इस समय १२४६ सम्बत्में पृथ्वीराजने चन्देलराज परमिद्देवको परास्त किया और उनके अधि-कारभुक जेजाकभुक्ति देश पर दखल जमाया। इसी वर्ष (५९८ हिजरीमें) मुद्दुद्दीन दलवलके साथ देवलको गये और उसके अन्तर्गत समुद्दतीरवर्त्ती अनेक जनपद तथा प्रसुर अर्थ अपना कर खदेशको लीटे।

५७६ हिजरो (११८३ ई०)-में सुलतान मुइजुद्दीनने . पुनः भारतवर्षे पर दाँत गड़ाता। जम्मुराज चकदेवने वहुतसे उपहारके साथ अपने छोटे भाई रामदेवको सुल-तानके पास कहला भेजा, कि इस समय खुसकके राज्य-पर अधिकार करनेमें विशेष सुविधा है। सुलतानने वडे आदरसे राजवूतको ब्रह्ण किया और तमाम इस वातको घोषणा कर दी, कि खुसर मालिकका लाह्नोर (लाहोर) राज्य उनके अधिकारभुक्त हो गया। पर वे लाहोर दखल न कर सके, केवल उसके चारों ओरके प्रदेशोंमें लूट मार करते हुए देशको छीट गये। अन्तमें राजाचक्रदेवके अनुरोधसे सियालकोट आ कर उन्होंने पुनः दुर्गको द्वल कर लिया। पीछे दुर्गका फिरसे संस्कार करके वहां हुसेन-इ-खरमीलको दुर्गाध्यक्ष वनाया और आप स्वदेशको छीट गये। इसके वाद ही खुसरुमालिक हिन्दुस्तानी-सेना और खोखरजातिसे सहायता पा कर पुनः सियालकोटके दुर्गद्वार पर जा डरे। किन्तु उसी समय चकदेवकी सेना खरमीलकी सहायतामें पृष्टं च गई जिससे खुसर दुर्ग को छोड़ देना पड़ा। उस समय भी समस्त लाहोर प्रदेश खुसर मालिकके शासनाधीन था। किन्तु मह्मूद्वंशके गौरव-रवि प्रायः अस्त हो रहे थे। ५८२ हिजरी (११८६ ई०)-में सुलतान मुस्ज-उद्दीनने सिन्युनदी पार कर पञ्चनद पर आक्रमण कर विया।

इस समय चकदेवकी मृत्यु हो गई। उनके पुत विजयदेव उस समय जम्मुके अधिपति थे। विजयदेव-के पुत नरसिंहदेव वहुत-सी सेनाके साथ वितस्ताके किनारे सुखतानके साथ मिल गये। खुसकमालिकने Vol. XIV 86 वचावका कोई रास्ता न देख सुलतानसे सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की । सुलतानके साथ मुलाकात करनेके अभि-प्रायसे वे लाहोरके बाहर आये । सुलतानने अच्छा मौका देख कर उन्हें कैंद कर लिया । अव लाहोर और खुसरुके अधिकृत पञ्चनद-प्रदेश गजनीपतिके हाथ आ गया । मृल-तानके दुर्गपित सिपासलर अली-इ-करमाथ पर लाहोरका कुल भार सौंपा गया और (तवकत्-इ-नासिरो रचयिता मिन्हाजके पिता) मौलाना सराज्-उहोन इ-मिनहाज सुल-तानके अधीनस्थ हिन्दुस्तानी सेनाके काजी नियुक्त हुए।

उक्त घटनाके बाद ही कन्नोजपित (विजयचन्द्रके पुत) जयचन्द्रके साथ पृथ्वीराजका तुमुल-संग्राम आरम्म हुआ। इस युद्धमें विजय पा कर अजमेरपितने 'परम-भद्दारक महाराजाधिराज'को उपाधि पाई।

५८७ हिजरी (११६१ ई०)-में सुलतान मुइज-उद्दीनने तवर-हिन्दा (भाटिन्दा)-के दुर्ग पर अधिकार किया और काजी जियाउद्दीनके ऊपर उसका रक्षामार सौंप आप चले गये। जियाउद्दोन १२०० तुलाकी अध्वारोही लेकर आउ मास तक दुगंरक्षामें नियुक्त रहे। इधर पृथ्वीराज दो लाख अश्वारोही और ३००० निपादीके साथ भाटिन्दा-के उदार और सुलतानके मिल जम्मुराज विजयदेवको शासन करनेके लिये दौड़ पड़े। सुलतान मुद्दज-उद्दीन-ने भी प्रायः लाखसे अधिक सेनाको ले कर 'तराइनगढ़'-में पृथ्वीराजका सामना किया । जयचन्द्र विजयदेव बादि कुछ राजाओंको छोड़ कर हिन्दुस्थानके प्रायः सभी राजोंने पृथ्वीराजका साथ दिया था। कुरुक्षेतके इस महासमरमें पृथ्वीराजके भाई दिल्लीपति गोविन्दराय हाथी पर सवार हो सैन्य-परिचालन कर रहे थे। सुलतान सवसे पहले रणहस्ती पर ही टूट पड़े और वरछेसे गोविन्दरायके दो दांत तोड़ डाले। किन्तु महावीर गोविन्दरायने वड़ी वीरतासे कवच द्वारा आत्मरक्षा की और भोमवेगसे खुलतान पर धावा किया। यह सन्धान व्यर्थ न निकला। सुलतानको गहरी चोट लगी जिससे वे वेचैन हो पड़े। घोड़े की पीठसे वे नीचे िर ही रहे थे, कि एक खालज-सेनाने उन्हें पहचान लिया और रणस्थलसे वाहर ले जा कर उनकी जान वचाई।

मुसलमानी सेनाको रणमें पीठ दिखानी पड़ी। हिन्दू-वीरोंको जयध्वनिसे गगनमण्डल गूंज उठा।

पलायमान घोरी अमीर और उमरावगण पहले सुलतानको अपने साथ न देख कर वड़े व्याकुल हुए। पीछे जव उन्हें मालूम हुआ, कि सुलतान खुशीसे हैं, तव वे सबके सब उनसे आ मिले।

पूर्ववत् जियाउद्दीन काज़ी तुलाकीके हाथ तवरहिन्द-दुर्गका भार सुपुदे कर गजनीको चल दिये ।

अब पृथ्वीराज तवरहिन्द जा धमके । दोनों पश्चमें धमसान लड़ाई छिड़ी । १२ माससे अधिक काल तक मुसलमान लोग दुर्गको रक्षा करते रहे। पीछे सुलतान-से आदेश पा कर उन्होंने अपनी राह ली और दुर्ग पृथ्वीराजके हाथ लगा।

करनोजपित जयचन्द्र पृथ्वीराजकी विजयवासी सुन कर बहुत क्षम्य हुए थे। वर्षदलनहारी पृथ्वीराजको किस प्रकार शान्ति दी जाय, उसीकी फिक्रमें वे लग गये। उन्होंने फौरन दूत द्वारा सुलतान मुद्दज-उद्दीनको कहला भोजा, कि "वे यथासाध्य सुलतानकी सहायता करेंगे। पृथ्वीराजको अधःपातित करनेके लिये वे अपना समस्त धनवल समर्पण करनेको प्रस्तुत हैं।" जयचन्द्रके जैसा जम्मुपति विजयदेवने भी सुलतानका पक्ष अवलम्बन किया था।

पूर्व-पराजयका प्रतिशोध लेनेके लिये सुलतानने गृह-शतु हिन्दूराजाओंसे सहायता पा कर विपुल उत्साहसे भारतवर्षमें प्रवेश किया । उनके साथ १२००० सुद्स और मीषण अस्प्रारी योद्धा थे। उनके आनेके पहले ही पृथ्वीराजने तवरहिन्दका दुर्ग जीत कर तराइनके किनारे छावनी डाल रखी थी। उनके साथ प्रायः दो लाख राज-पूत और अफगानी सेना थी।

फिर उसी कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत पुण्यसिल्ला सरखती-के किनारे दोनों दलमें मुठमेंड़ हुई। इस वार सुलतानने चारों ओरसे आक्रमण करनेकी व्यवस्था की। प्रत्येक ओरसे सुदक्ष तीरन्दाज अश्वारोही टूट पड़े। जयचन्द्रकी सेना और जम्मूराजकुमार नर्रासहदेवने ससैन्य सुलतान-का साथ दिया। इस समय मानो कुरु-पाएडवकी हो लड़ाई खिड़ी हुई थीं। भाग्यलद्दमो इस वार मुसल्मानोंके

प्रति ही प्रसन्न थीं। युद्धके दिन वहुत तड़के जिस समय हिन्दूसेना प्रातःकृत्य कर रहे थे, ठीक उसी समय सुल-तानने अकस्मात् पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी। गृह-वैरितासे ५८८ हिजरी (११६३ ई०)में महावीर पृथ्वी-राज सुळतानके हाथसे परास्त हुए। उनके दक्षिण हस्त-सक्तप महावीर गीविन्द्रायने इस युद्धमें जीवन उत्सर्ग किया। सुळतानने उस प्रतित भग्नदन्त-वीरको पहचान छिया था।

पृथ्वीराज हमेशा गजकी पीठ परसे ही छड़ रहे थे।
गोविन्दरायका पतन और अपनी पराजय जान ने घोड़े
पर सवार हो नौ दो ग्यारह हो गये। सरखतीके निकट
वे शबुके हाथ वन्दी हुए और पीछे मुसलमानके हाथसे
मारे गये। इसके साथ साथ पृथ्वीराजकी राजधानी
अजमेर, शिवालिक-प्रदेश, हाँसी, सरखती आदि जनपर
सुलतान मुइज-उद्दोनके हाथमें आये। सुलतान मुइजउद्दोनने आकर जव अजमेर पर देखल जमाया तव
पृथ्वीराजके पुत्रने सुलतानकी अधीनतास्त्रीकार कर ली।
इस कारण सुलतानने उन्हें राजपद पर प्रतिष्ठित किया।
पीछे सुलतानने कुतुव-उद्दोनके ऊपर शासन भार दे कर
गजनीकी याता की। किन्तु उस समय भी दिल्ली
मुसलमानोंके हाथ न आई थी। दूसरे वर्ष ५८६ हिजरी
(११६४ ई०)-में कुतुव-उद्दोनने दिल्ली नगरी पर अपना
पूरा अधिकार जमाया।

गतान्तरसे मुलतान मुइज-उद्दीन अजमीरमें पृथ्वीः राजके पुतको प्रतिष्ठित करके दिल्ली पधारे। उस समय दिल्लीनगर खाण्डिरायके एक ज्ञातिके अधिकारमें था। उन्होंने भी मुलतानकी अधीनता खीकार की। मुतर्रा मुलतान उनके साथ कोई छेड़ छाड़ न कर गजनीको चल दिये। इसी वर्ष कुतुवने सुना, कि नाहरवालों राजा (गुर्जरराज) ने बहुतसी जाट-सेना ले कर हाँसी पर चल्राई कर दी है। वे फीरन वड़ी तेजोसे हाँसीको रवाना हुए। नाहरवालाकी सेना कुतुवके पहुंचते ही चंपत हो गई। इसके बाद कुतुव-उद्दीनने दिल्लीमें ही अपना रहना पसन्द किया। इसके कुछ समय बाद ही पृथ्वीराजके माई हम्मीरराजने रणस्तामगढ़में अधिष्ठित ही पितृराज्य पानेकी चेष्टा की। इस पर अजमीरपति

पृथ्वीराजकुमारके साथ उनका युद्ध हुआ। कुतुवुद्दीन अजमीरराजको विपदमें देख कर उन्हें मदद देनेके लिये दलवलके साथ अजमीर आये। मुसलमानी सेनाके आगमन पर हम्मीर पार्वत्य प्रदेशमें जा लिये। इधर कुतुवकी अनुपस्थितिमें दिलीके चाहमानराजने वहुत-सी सेना संग्रह कर अपनी खाधीनता घोषणा कर दी। राहमें कुतुवुद्दीनके साथ उनका एक युद्ध हुआ। किन्तु चाहमानराज मुसलमानोंके हाथसे पराजित और निहत हुए। उनका मस्तक दिली भेज दिया गया। इसके साथ साथ दिल्लीके हिन्दूराजत्वका अवसान हुआ।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रन्थ छोड़ कर प्रवादसे पृथ्वी-राजका विषय जो कुछ मालूम होता है वह नोचे देते हैं;-

पृथ्वीराजने अकोरी नामक स्थानमें परमाल (परमातीं) - देवको और पेन्धात नामक स्थानमें जयचन्द्रको परास्त किया। उन्होंने दिल्लीको चारों और प्राचीरसे घेर दिया, लोनी और सम्मलमें दुर्ग वनाया और चुनारको अधिकार कर कुछ काल वहां वास किया। साह- बुद्दीन घोरीसे परास्त होनेके बाद वे खैरागढ़में वन्दी थे। वड़े आश्चर्यका विषय है, कि पृथ्वीराजको जो मुद्रा पाई गई है, उसके एक ओर पृथ्वीराजदेवका और दूसरी ओर उनके विजेता 'मुद्रज-उद्दीन मुद्रमद विन साम'का नाम अङ्कित है। अधिक सम्भव है, कि पृथ्वीराजपुतने घोरीको अधीनता खीकार करनेके वाद जो सिका चलाया उसी पर उक्त नाम रहा होगा।

अभी चाँवकविका वर्णन मिला कर देखें, तो वहुत अ'शोंमें मेल नहीं खायगा। चाँवकिव और उनके अनु-क्तीं टाउने क्तिरपित समर्रासहको पृथ्वीराजके वह-नोई वतलाया है। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। आवृ-पहाड़ पर अचलेश्वर-मन्दिरके समीपस्थ संन्यासिमठमें राणा समर्रासहकी जो शिलाप्रशस्ति उत्कीर्ण है, उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि १३४२ सम्बत्से (१२८५ई०)में समर्रासह राजत्व करते थे। समर्रासह शब्द विस्तृन विवरण देखो। इत्यादि नाना कारणींसे चाँदकविका उक्ति विश्वासयोग्य नहीं है। पर हाँ उन्होंने पूर्वतन पृथ्वी-राजका कहानीमूलक कोई श्रन्थ देख कर अपना 'रासी' वनाया होगा। यहीं कारण है, कि वीच वीचमें पृथ्वी- राजको प्रकृत जीवनीकी कथा भी पाई जाती है। अ पृथ्वीराज—१ रुक्मिणी-कृष्णावल्लीकाव्यके प्रणेता।

२ वप्पावंशसम्भूत कुम्भराणांके पौत और रावमल्ल-के द्वितीय पुत । तीनों भाईमें मनमुटाव रहनेके कारण पिता रायमल्लने पृथ्वीके दुःशील न्यवहारसे असन्तुष्ट हो उन्हें' निर्वासित कर दिया था। चौहानवीर दिल्लीभ्यर पृथ्वीराजकी तरह वे भी बीर, साहसी, उत्साही और रणिपासु थे। यहां तक, कि वे उन्मत्तको तरह सव समय, "विधाताने मेवारका शासन मेरे भाग्यमें लिखा हैं" ऐसा घम घम कर कहा करते थे। एक दिन वे लोग अपने चचा सूर्यमलके साथ वैट कर चित्तोरके भावी उत्तराधिकारित्य ले कर तक वितर्क कर रहे थे। इसी समय सङ्गने(१) आ कर कहा, 'नाहरमुगराकी चारण देवीकी परिचारिका जिन्हें राजा पसन्द करेंगी, सर्वोंके एक मतसे वे ही मेवारके सिंहासन पर अभिषिक होंगे।' तदनुसार अपने अपने माग्यकी परीक्षा करनेके लिये वे उस संन्यासिनीके आश्रयमें गये। पृथ्वीराजने जब देखा, कि संन्यासिनीने सङ्गको ही मेवारका भावी अधीश्वर उहराया, तव वे मन्दिरके भीतर ही भाई और चचाके प्रतिद्वन्द्वी हो उठे। घात-प्रतिघातसे दोनी ही क्षत-विश्रताङ्ग और विकलेन्द्रिय हो पडें। आरोग्य हो कर भी पृथ्वीराजकी हत्या करनेका मोका दुंढ रहे थे।

'सोरे स सत्तोतरे विक्रम साक वदीत ।

दिलीवर चीतोड़पत ठेखन्गां दे जीत ॥ (११२१) अर्थात् १६७० सम्बद् (१६२१ ई०) में चित्तोरपतिने दिली पर आक्रमण किया । इस छिक्ति सी उनके श्रव्यक्त आधुनिकता समझी जाती है। (J. A. S. B. 1885, p. 26) टाड साहबने किसा है, कि मेवारपति अमरसिंह (राज्यकाछ १५६०-१६२२ ई०में) ने यह पृथ्वीराजरासी संग्रह किया। सम्मवत: चांदकविका ग्रव्य इस समय सम्पूर्णक्ष्परे विकृत हो स्था होगा, १वीसे चांदकविके ग्रव्यं प्रकृत ऐतिहासिक तस्व

(१) इन्होंने ही लाख राजपूतोंको साथ छे तेमुरकुलविलक नावरका सामना किया था।

निकाल केना एक प्रकार असम्भन सा हो गया है।

[#] बॉदकविने एक जगह लिखा है-

राणा रायमलने पृथ्वीका ऐसा औद्धत्य सुन कर उन्हें राज्यसे निकाल भगाया।

पृथ्वी केवल पांच अध्वारोहीको ले कर गड़वारके अन्तर्गत नदील नगर जा धमके। इसी समय मीना लोगोंने यहां अपनी गोटी जमा ली थी। पृथ्वी उक्त दलमें मिल गये और मीना लोगोंको निहत कर सोढ़ागढ़ चल दिये। वहां उन्होंने चौहानवंशीय सङ्ग-सोलाङ्कीकी कन्याका पाणिप्रहण किया। पृथ्वीराजने अपने श्वशुर और ओका (२) नामक किसी महाजनको वहांका शासनकर्तां नियुक्त किया।

सङ्ग छिप रहे हैं, जयमल्ल (३) मारे गये हैं और पृथ्वीका भाग्य चमक उठा है, यह देख कर रायमल्ल पृथ्वीको अपने राज्यमें बुलानेके लिये वाध्य हुए। पृथ्वी घर लीटे, तब यहां वे माईको अवमानना कायुल्पकी तरह वहन न कर सके, वरन अपने वीरोचित उद्यमसे पूरतान पर आक्रमण कर उनकी लड़की तारावाईको हर लाये। यह रमणी योद्धाके वेशमें रहना अधिक पसन्द करती थीं। जहां कहीं उनके स्वामी लड़ाई करनेकी जाते थे, ये भी हाथमें धनुर्वाण लिये उनके साथ हो लेती थीं।

इधर संन्यासिनीकी वात पर प्रणोदित सूर्यमल्लने राज्य पानेकी आशासे सारङ्गदेवके साथ मालवराजकी शरण ली और उनकी सहायतासे कई स्थान दखल कर लिये। उन लोगोंके चित्तोर-आक्रमणकालमें खयं राय मल्लने गम्मीरा नदीके किनारे चिद्रोहियों पर आक्रमण किया। अस्त्राधातसे जर्जरित रायमल्ल मूर्च्छित हो पड़े। इस समय पृथ्वीराज हजार अश्वारोहियोंको ले कर पुनः हुने उत्साहसे लड़ाई करने लगे। दोनों दलमें खूव खून- ३ सुप्रसिद्ध कवि और अकदर-शाहके समासद।
एक तो वीकानेरके राजकुमार, दूसरे वीर पुरुप और
तेजस्वी कवि भी थे। वे उदार हृदयसे विक्तोरके राणा
प्रतापको स्वाधीनता-रक्षाके लिये मन ही मन धन्यवाद
देते थे। जब अकदरने प्रतापका सन्त्रिपत पृथ्वीको दिखलाया, तब इन्होंने सम्नाट्से साफ साफ कहा था, 'चाहे
प्रतापको आप अपना सारा राज्य भी क्यों न हे दें, तो भी
वे अपनी अवनित स्वीकार नहीं करेंगे।' दूसरे दिन उन्होंने
प्रतापको अपने दूत द्वारा एक गुत पत्न मेजा। उस पतको पढ़ कर प्रतापकी निर्वाणोन्मुख तेजीबिह सहसा
धम्रक उठी। पृथ्वीराजने उसी पत्नमें एक जगह लिखा
था, "पवित्न राजपूतकुलमें जनम ले कर ऐसा कीन है जो
यवनके हाथ अपना मानसम्भ्रम-वेच सकता।"

पृथ्वीराजका विवाह मेवारराजके भाई शकिसिहकी छड़कीसे हुआ था। इस गुणवती विनताके पवित्र सतीत्व वलसे ही वीरकिव एथ्वीराज आत्मकुलगीरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। एक दिन खोसरोजके अधिवेशनकालमें सम्राट्ने मेवार-राजकुमारोके हपलावण पर मुग्ध हो प्रेमासकि प्रकट की। पिजरावद विहिंद्रनी अकवरके मायाजालमें फँस गई। किन्तु ज्योंही सम्राट्ने अपनी वाहु वढ़ाते हुए राजकुमारोके सामने पहुंचे, त्योंही तेज छुरी दिखा कर उन्होंने अकवरका हदयरक पान करना चाहा था। अकवरने भी वज्राहतको तरह स्तम्मतप्राय रह कर सतीके सम्मानकी रक्षा की थी। अमर किव पृथ्वीराजकी छोटी छोटी कविता आज भी राजपुतानके कीने कोनेमें गाई जाती है।

खरावी हुई, रक्तकी नदी वह गई। आखिर पृथ्वीने खयं स्यंगल्छको आहत कर पिताका मनोरथ पूरा किया। पीछे वे जयपताका उड़ाते हुए चित्तीरको ओर अप्रसर हुए। विद्रोहीदल जरा भी शान्त न थे, वदला चुकानेके लिये अवसर हुढ़ रहे थे। वार वार आक्रमण करके उन्होंने पृथ्वीराजको तंग तंग कर डाला। किन्तु इस पर भी पृथ्वीराज विचलित न हुए। सारङ्गदेव उनके हाथसे मारे गये। स्यंगल्डने सिंद्र भाग कर अपनी जान वचाई और प्रतापगढ़ देवलंगे जा कर राज्य स्थापन किया। पृथ्वीके वहनोईने जो आयुके अधिपति थे, उन्हें विप खिला कर मार डाला। ये शिशोदिया कुलगीरव थे।

⁽१) पृथ्वीराज जब गडवार पहुँचे, उस समय उन्हें रसद घट गई थी। इस छिये अपनी अंगूठी उन्होंने ओझाके हाथ वैच छाली। अहहकप्रसे वहअं गूठी उन्होंके हारा राज-पुत्रके हाथ वेची गई थी। ओझाने ही उन्हें कह सन कर मीनाके दलमें मिला दिया।

⁽३) इन्होंने राव अरतानकी कन्या ताराधाईका पाणियहण करना चाहा था, पर ऐसा नहीं हुआ, उल्टे ने ही यमपुरको मेज दिये गये।

४ रांठोर राजपूतर्वशीय एक सेनापति। सम्राट् शाहजहान्का कार्य करके ये विशेष सम्मानित और पुर-स्कृत हुए थे। १६५६ ई०को दाक्षिणात्पमें उनकी मृत्यु हुई।

५ गुहिलवंशीय राजपूत, राणा राज्यमल्लके पुत । १५५७ सम्वत्में महाकुमार पृथ्वीराज विद्यमान थे। मेवारके अन्तर्गत मेदपाट नगरमें उनकी राजधानी थी।

६ पक दूसरे हिन्दूराजा। गड़हादेशाधिपनि राजा हृदयेशको शिलालिपिमें उनका परिचय पाया जाता है। पृथ्वीराम—रहुवंशीय पक सरदार। पिता मेरद और पुल पृथ्वी दोनों ही पहले पवित्व मैलापतीर्थंके करेया नामक जैनसम्प्रदायके दीक्षा-गुरु थे। ७६७ शक (८७५-९ ६०)-में राष्ट्रक्टराज २य कृष्णने दन्हें महासामन्त तथा महा-मण्डलेश्वरकी उपाधि दी थो।

पृथ्वीश (सं० पु०) पृथीब्याः ईशः । भूमिपति, राजा । पृथ्वीश-नागपुरके अन्तर्गत रस्तपुराधिप रसराजके पुत । इनको माताका नाम नोनक्छोदेवी था ।

पृथ्वीसिह—१ कराइवाहवंशीय जयपुरके अधिपति। ये १७९८ ई॰में पिताकी राजगही पर बैठे, किन्तु अपने भाई प्रतापसिहकी प्रवश्चनासे राज्यसृष्ट हुए।

२ एक वुन्देला-राज । जहांगीर और ग्राह्जहान्के समकालमें उर्चामें इनको राजधानी थी।

३ वुन्देलासरदार पन्नापित छत्नशालके वंशधर। अपने भाई शोभासिहके राजत्वकाल (१७४४ ई०) में मनमाना हिस्सा न मिलनेके कारण ये पेश्वाको शरणमें पहुंचे और उन्हें राजस्का चतुर्थांश देनेमें राजो हो करं गड़हाकोट राज्य पर दस्तल जमा। १७४८ ई० में इन्होंने मालधन नगर जीत कर वहां राजधानी वसाई और उसे सुरक्षित करनेके लिये एक दुर्ग भी वनवाया। १७९३ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

४ मारवाड्के राजा यशोवन्त सिंहके वड़े छड़के।
जव औरङ्गजेबने यशोवन्त सिंहको विद्रोही अफगानींका
दमन करनेके छिये काबुछ भेजा, उस समय यशोवन्त
सिंहने इन्हींको राज्यका भार सौंपा था। ये ही उस
समय मारवाड्का शासन करते थे। औरङ्गजेबने इन्हें
पक बार अपनी राजसभामें बुछचावा। पृथ्वीसिंह

Vol. XIV. 87

सम्राट्की आहा नहीं टालं सके, वे दिल्ली पहुंचे । सम्राट्-ने उनका अच्छा स्वागत किया था। रीतिके अनुसार पूर्व्वीसिंह वाद्शाहके समीप ही वैठते थे। एक दिन वे समामें आये और वादशाहको सलाम करके अपने आसन पर बैठने जाते ही थे, इतनेमें वादशाहने उन्हें हँस कर अंपने समीप बुलाया। जब वे वादशाहके समीप जा कर खड़े हो गये, तव वादशाहने उनके हाथ पकड़ कर घीरे धीरे कहा, 'राठौर ! मैंने सुना है, कि तुम इन भुजाओंमें अपने पिताके समान वल रखते हो, अच्छा कहो, इस समय तुम क्या करोगे ?' पृथ्वीसिंहने उत्तर दिया, 'ईश्वर दिल्लीभ्यरका कल्याण करें। बादशाह ! जब साधारण राजा और प्रजा पर आपका हाथ फैलता है, तव उनकी सभी इच्छाएं पूरी होती हैं, पर सौभाग्यवश आपने इस सेयकके हाथ खयं ही पकड़ छिये हैं, अतपय अब मैं सारी पृथ्वीको जीत सकता हूं।' इतना कहते कहते राठीर वीरके शरीरमें मानो नये वलका संचार हुआ। उस समय वादशाहने कहा,—देखते हैं, यह जवान दूसरा कुट्टन है। औरङ्गजेव यशोवन्त सिंहको कुट्टन कहा करते थे। वाद-शाहने प्रसन्न हो कर पृथ्वीसिंहको खिलअत दी। रीतिके अनुसार राठोरबीर वादशाहके दिये कपड़े वहीं पहन लिये और अंपने आसन पर जा वैठे।

किन्तु यही दिन उस नवयुवकका उल्लासमय जीवन-का अन्तिम दिन था । राजसमासे घर लौटते लौटते पृथ्वीसिंह व्याकुल हो गये। उनके हृद्यमें ऐं उन होने लगी, सिर कांपने लगा। देखते देखते यशोवन्तके हृद्य-का आनन्द, राडोर-कुलका होनहार वीर कुमार पृथ्वी-सिंह सदाके लिये इस धराधामसे सुरधामको चल विथे।

कहते हैं, कि वादशाहने उन किलअतके कपड़ोंमें इस प्रकार विषका योग कर दिया था, जिनके पहननेके कारण पृथ्यीसिंहका अन्त-डुआ।

५ जयपुरके महाराज माधोसिहके पुत्र । जन ये नन्हें नक्के थें, तभी इनके पिता सुरधामको सिधार गये । कक्की उमरमें हो इनका राज्याभिषेक सम्पादित हुआ। पृथ्वीसिंह छोटी रानीके पुत्र थे। पटरानीके पुत प्रतापसिंह थे। अतएव पटरानी ही राज्यकी देख-रेख करने लगी। ये चन्द्रावंशकी कन्या थीं। परन्तु फिरोज नामक एक फीलवानसे गुप्त प्रणय करके इन्होंने अपनेकी कलिक्कत कर दिया था। महारानीने उसे राजसभाका सदस्य वना दिया। इस पर सभी सामन्त अपसन्न हीं गये। महाराष्ट्र अम्बाजीने सुअवसर देख कर एक वेतन-भोजी सेना कर वस्ल करनेके लिये मेज दी। इस समय द्रवारमें फिरोजकी ही चलती वनती थी, सभी हीनवल हो गये थे। इसी प्रकार नी वर्ष तक आमेरका राज्य चला। बाद पक दिन पृथ्वीसिंह बोड् से गिर कर पञ्चत्व-को प्राप्त हुए। बहुतेरे कहते हैं, कि पररानीने इनको विष-प्रयोग द्वारा मरवा डाला है। बोकानेर और कृष्ण-गढ़की राजकुमारियोंसे इनका विवाह हुआ था। कृष्ण-गढ़की राजकुमारियोंसे मानसिंह नामक इन्हें एक पुत भी हुआ था।

पृताकु (सं० पु०) पर्दते इति पर्द अपानशब्दे (पर्दानित् सम्प्रसारणम्हो । तण् ३।८०) इति काकु, रेफस्य सम्प्र-सारणं अल्लोपश्च। १ सप्, सांप। २ वृश्चिक, बिच्छू। ३ व्यात्र, वाघ, चीता। ४ कुञ्जर, हाथी। ५ वृश्च, पेड़। पृदाकुसानु (सं० पु०) पृदाकुः गजइव सानुः समुकतः। १ इन्द्र। २ सप्वत् उन्नतशिरस्क, सांपकी तरह ऊ चा सिरवाला।

पृशन (सं० ति०) स्पर्शन साध्य बाहुयुद्ध ।
पृशनायु (सं० ति०) आत्मनः पृशनमिच्छति क्यच् तत
उ । अपनेको छुनेको इच्छा करनेवाला ।

पृशन्य (सं॰ पु॰) स्पृश-भावे क्यु, पृषोदरादित्वात् सलोपः पृशनं स्पर्शः तत्र साधुः यत्। स्पर्शसाध्य, छूने काचिल ।

पृश्चि (सं० ति०) स्पृत्त्यते इति स्पृश्नसंस्पर्शे । वृष्ण पृत्नोति । उण् ४।५२) इति निपातनात् साधुः । १ दुर्वळास्थियुक सर्वे, जिसका शरीर दुवळा पतळा हो । २ शुक्कवर्ण, सफेद रंगका । ३ नानावर्ण, चितकवरा । ४ साधारण, मामूळो । (स्त्री०) स्पृश्चित द्रव्यजातं इति वा स्पृश्-निपातनात् साधुः (वृष्णपृत्नीति । उण् ४।५२) ५ रिश्म, किरण । ६ सुतपाराजकी पुती । ये जन्मान्तरमें देवकीके रूपमें उत्पन्न हुई थीं । भागवतके दशम स्कन्धमें इनका विवरण लिखा है । ७ पृश्चिपणीं, पिठवन । ८ चितकवरी

गाय, चितले रंगकी गाय। (पु०) ६ ऋषिमेद, एक प्रांचीन ऋषिका नाम। १० युधाजित् राजाके माद्रीगर्भजात एक पुतः। ११ अञ्च, अनाज। १२ वेदः। १३ जल, पानी। १४ अमृतः।

पृश्चिका (सं० स्त्री०) पृश्ची ज़ले कायते शोभते इति कै.क.,
यद्वा पृश्चि स्वल्पं कं जलं यत । कुम्मिका, जलकुमी ।
पृश्चिममं (सं० पु०) पृश्चिवेदाव्यो गर्मे यस्य यद्वा पृश्चिः
जन्मान्तरजातदेवकी तस्याः गर्भः उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्येति अच् । श्रोक्त्रण । अन्त, वेद, जल और अमृतका नाम पृश्चि है और यह पृश्चि श्रीकृष्णके गर्भस्वक्रप है,
इसलिए पृश्चिगर्भ नाम हुआ है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि श्रीकृष्ण पृश्चिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, अतः उनका नाम पृश्चिगर्भ पड़ा।

ये भगवान्के चौबीस छीछावतारमेंसे ग्यारहवां अवतार हैं। इनका दूसरा नाम भूवप्रिय भी है।

श्रीकृष्णने देवकीसे कहा—हे सित ! तुम हो पूर्व-जन्ममें खायम्भुव मन्यन्तरमें पृश्चि हुई थीं। पृश्चिगर्भका चासस्थान ब्रह्मलोकके ऊपरी भागमें है।

पृश्चिगु (सं० ति०) पृश्नयो नाना वर्णत्वात् साधारणा गावो रश्मयोऽस्य । नानावर्ण दीतियुक्त ।

पृश्चिपणीं (संग्रह्मीण) पृश्चि स्वद्यं पणमस्याः डीप्। लताविशेष, पिठवनलता । (Hemionitis Cordifolia)

संस्कृत पर्याय पृथक्षणीं, चित्रपणीं, अङ्ग्रिविल्लका, कोष्टु विन्ना, सिह्युच्छी, कलिश, धाविन, गुहा, पिछपणीं, लाङ्गली, कोष्टु पुच्छिका, पृणेपणीं, कलशी, कोष्टु कमेखला, दीर्घा, श्रुनालवृन्ता, तिपणीं, सिह-पुच्छिका, दीर्घपता, अतिग्रहा, घृष्टिला, चित्रपणिका, महागुहा, श्रुनालविन्ना, धमनी, मेखला, लांगूलिका, पृष्टिपणीं, दीर्घपणीं, अ'व्रिपणीं और धावणी।

गुण कटुरस और अतिसार, कास, वातरोग, ज्वर, उनमाद, वण तथा दाहनाशक, बिदोषघ, बृष्य, मधुर, सारक और श्वास, रक्तातीसार, तृष्णा तथा विमिनवारक। पृक्षिभद्र (सं० पु०; पृश्नी भद्र यस्य। पृक्षिगर्भजात श्रीकृष्ण।

पृश्चिमत् (सं॰ त्रि॰) पृष्टिनविशिष्ट । पृश्चिमात् (सं॰,ुदु॰) पृथ्चिः नानावर्णा भूमिर्मातेव जन्म

· भूमियँस्य । समासान्तविधेरनित्यत्वात् न कप् । नाना वर्ण भूमिजात । पृश्निश्चङ्ग (सं० पु०) पृश्चिवेदादयः श्टङ्गमिव यस्य । १ विष्णु । पृक्षि स्वरूपं शृङ्गमिव शुण्डात्रं यस्य । २ गणेश । पृक्षिसक्थ (सं० ति०) पृश्नियुक्त सक्थिविशिए। पृश्निह्न् (सं० ति० । पृश्नियुक्त सर्पह्ननकारी । पृक्षी सं स्त्रो॰) स्पृश्ति जलमिति स्पृश-नि ततो वा ङीय्। वारिपणीं, कुम्मिका, जलकुम्भी। पृवत् (सं क्लो॰) पर्यंति सिञ्चति पृष-सेचने (वर्तमाने पृवद्बृहद् महदिति । उण् २:८४) इति अतिप्रत्ययो गुणा-भावश्व निपात्पते । जलविन्दु, पानीकी वृंद । पृयत् (सं • पु •) पर्पतीति पृषि-सेके (पृषिरिक्षमध्यां कित्। उण् ३।१११) इति अतच् सच कित् । १ विन्दु, वृंद। २ श्वेतविन्दुयुक्त भृग, चितला हिरन, चीतल पाढ़ा। पर्याय—रंकु, शवलपृष्टक । ३ राजा द्रुपदके पिता-का नाम । ४ मएडल्सिपंके अन्तर्गत एक सर्प। ५ रोहित नामकी मछली । पृषताम्पति (सं॰ पु॰) पृपतां विन्दूनां पतिर्नेता, इत्यलुक्-समासः। वायु, हवा। पृपताभ्व (सं० पु०) पृषतो मृगविशेषोऽभ्व इव गति-सावनं वाहनो वा यस्य । वायु, हवा । पृषती (सं ० स्त्री०) पृयत-स्त्रियां ङीप्। श्वेतविन्दु-युक्ता मृगी, वह मृगी जिसकी देहमें सफेद दाग हों। पुषत्क (सं ॰ पु॰) पृष्यते सिच्यते क्षिप्यते इति पृष-अति ततः संज्ञायाम् कन्। वाण। पृषता (संकस्त्रीक) पृषती भावः तल्-राव्। पृषत् या जलविनंदुका भाव वा धर्म। पृपदंश (सं॰ पु॰) पृपति विन्दौ अंशोऽस्य । वायु, हवा । पृषदभ्य (सं० पु०) पृयन् मुगविशेपोऽभ्य इय वाहको यस्य । १ वायु, हवा। २ राजर्षिमेद, महामारतके अनुसार एक राजर्षिका नाम । ३ विद्धपाक्षके पुतका नाम । पृषदाञ्च (सं० क्लो०) पृपद्भिः दिघिविन्दुभिः सहितमाज्यं। सद्ध्याज्य, दही मिला हुआ घी। पृषद्ध (सं० पु०) वैवस्त्रत मनुके पुतका नाम । पृषद्भु (सं॰ पु॰) द्वापरयुगीय युधिष्ठिरपक्षस्थित एक राजा ।

पृपद्भरा (सं० स्त्री०) रुरुकी पत्नी मेनकाकी कन्याका नाम । पृषद्दल (सं॰ पु॰) पृष्देव वलमस्य । वायुका घोड़ा । पृयन्ति (सं॰ पु॰) पर्यंति सिञ्चतीति पृय-सेचने अति, निपातनात् साधुः । जलविन्दु । पृषमाया (सं॰ स्त्री∙) पर्वतीति पृय-सेके क, पृषा अमृत-वर्षिणी भाषा यह । अमरावती, इन्द्रपुरी । पृयाकरा (सं॰ स्त्रां॰) पृय-भाने मिवप् पृपे सेचनाय आकी-र्यते इति आ-क्ट- अप्-टाप् । तांछनेका वाट । पृपातक (सं॰ क्ली॰) पृपन्तं पृपदाज्यं आतकते हसतीति तक-अच्, पृयोदरादित्वात् साधुः । दिधयुक्त घृत, दही मिला हुआ घी। पृपोदर (सं वि) पृपदुद्रं यस्य (पृषोदरादीनि यभी-वृद्धि । पा ६।३।१०६) इति त-छोपः । १ खरुपोद्द, जिसका पेट छोटा हो। (पु॰) २ वायु, हवा। पृयोदरादि (सं॰ पु॰) पृयोदर आदि पाणिन्युक्त शन्दगण । गण यथा—पृपोद्र, पृपोत्थान, वलाह्क, जीमूत, श्मशान, उल्रुबल, पिशाच, गृपी, मयूर। जो सव पद व्याकरणके सूत्रानुसार सिद्ध नहीं होते वे सव पृपोदरादित्वहेतु सिद्ध होते हैं। कहीं पर वर्णा-गम वा वर्णविपर्यय, कहीं पर वर्णका विकार वा नाश इत्यादि होनेसे उसे पृपोदरादि कहते हैं। यथा-पृपोदर; पृपत्-उद्र। यहां पर 'पृपत्' शब्दके 'त्' भागका लोप होनेसे पृयोदर ऐसा पद हुआ है। इसी प्रकार सव जगह जानना चाहिए। वर्णांगम द्वारा इंस, वर्णेके विपर्ययसे सिंह, वर्णेका आदेश करनेसे गूढ़ातमा और वर्णका छोप करनेसे पृषी-दर पद सिद्ध हुआ है।

वर्णांगम द्वारा हंस, वर्णके विपर्ययसे सिंह, वर्णका आदेश करनेसे गूढ़ातमा और वर्णका छोप करनेसे पृयोद्धा करतेसे गूढ़ातमा और वर्णका छोप करनेसे पृयोद्धा करतेसे गूढ़ातमा और वर्णका छोप करनेसे पृयोद्धा करतेसे गूढ़ातमा और वर्णका छोप करनेसे पृयोद्धा करते हैं।
पृयोद्धान (सं० क्की०) पृयद्ध उद्यानं पृयोद्धरादित्वात् त् छोपः। क्षत्रउपवन, छोटा वगीचा।
पृष्ट (सं० वि०) पृष्ठ-सेके प्रच्छ वा क। १ सिक, सी चा हुआ। २ संस्पृष्ट, छुछाया हुआ। ३ जिज्ञासित, पृछा हुआ।
पृष्ट (हि० पु०) पृष्ठ देखी।
पृष्टवन्धु (सं० पु०) अपेक्षितफळ प्रश्नविषयस्तोताके वक्ष्यः

पृष्टहायन (सं० पु०) १ घान्यभेद, एक प्रकारका घान । २ गज, हाथी ।

पृष्टि (सं क्लो) पृष-सेके भावे किन्। १ सेक। प्रच्छ-किन्। २ जिज्ञासा, पूछनेकी किया या भाव। पृष-कर्त्तरि किच्। ३ पार्श्वस्थ। ४ पृष्ठदेश, पिछला भाग। पृष्टिपणीं, (सं स्त्री) पृश्चिपणीं, पिठवन लता। पृष्ट्यामय (सं पु) पृष्टरोग।

पृष्ट्यामयिन् (सं० ति०) पृष्ठरोगयुक्त, जिसकी पीठमें रोग हुआ हो।

पृष्ठ (सं० क्की०) पृष्यते सिच्यते इति पृष (तियपृष्ठगृष यूपशेषाः । डण् २११२) इति थक् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः । १ शरीरका पश्चाद्धाग, पीठ । २ किसी वस्तुका वह भाग या तल जो अपरकी ओर हो, अपरी तल । ३ स्तील विशेष । ४ पीछेका भाग, पीछा । ५ पुस्तकका पता, पत्ना । ६ पुस्तकके पन्नेका एक ओरका तल । पृष्ठक (सं० क्की०) पृष्ठ-स्वार्थे कन् । पृष्ठदेश, पश्चाद्धाग, पीठकी ओरका हिस्सा ।

पृष्ठगोप (सं॰ पु॰) पृष्टं गोपायित गुप-वा अन् । पृथ्रदेश-रक्षक योद्धा, वह सैनिक जो सेनाके पिछले भागकी रक्षाके लिए नियुक्त हो ।

पृष्ठग्रन्थि (सं॰ पु॰) पृष्ठस्य ग्रन्थः । गड्रुरोग, क्रूवड़ । पृष्टग्रह् (सं॰ पु॰) घोड़ोंका वातन्याधिरोग ।

पृष्टचक्षस् (सं॰ पु॰) एन्डे पश्चाद्धागे चक्षः दृष्टिः तदुच्या-पारोऽस्य । १ भक्तूक, भात्रु, रोछ। २ कर्कट, के कड़ा। पृष्टचर (सं॰ बि॰) एन्डे चरतीति चर-ट। १ पश्चाद्धागमें

स्थित । २ पश्चाद्गामी, पीछे चलनेवाला । पृष्ठज (सं० ति०) पृष्ठे पश्चात् जायते जन-ड । पश्चाद्-

पृष्ठज (संगासण्) युग्ठ परचात् आपत् आगाः । परचात् जात, जो पीछे जन्मा हो ।

पृष्ठजाह (सं० ति०) पृष्ठस्य मूलं कर्णादित्वात् मूले जाहच्। पृष्टमूल ।

पृप्ठतःप्रथित (सं० पु०) खड्ग चलानेका ढंग, तलवारका एक हाथ ।

पृष्ठतरूपन् (सं॰ क्ली॰) तरूपमिव आचरित तरूप त्युद, पृष्ठस्य तरूपनं ६-तत् ।। पीठ-शय्या ।

पृष्ठतस् (सं॰ अव्य॰) पृष्ठ । प्रतियोगं पञ्चम्यास्तिसः । पा भाषाप्र) इत्यस्य 'आद्यादिभ्यः उपसंख्यानं' इति चार्तिः कोक्त्या तसि । १ पश्चात्, पीछे । पृष्ठदेश, पिछला भाग । पृष्ठद्वष्टि (सं० पु॰) एष्ठे द्वष्टिर्दर्शनं यस्य । मल्लूक, भालू, रोछ ।

पृष्ठपणीं (संग्रह्मी०) पिठवनलता ।

पृष्ठपोषक (सं० पु०) १ सहायक, मद्दगार। २ पीठ ठोंकनेवाळा।

पृष्ठफल (सं० पु०) किसी पिएडके ऊपरी भागका क्षेत्र फल।

पृष्ठमङ्ग (सं० पु०) युद्धका एक हंग । इसमें शबु सेनाका पिछला भाग आक्रमण करके नष्ट किया जाता है।

पृष्टभाग (सं॰ पु॰) १ पिछला भाग । २ पुरत, पीठ ।
पृष्टमर्भन् (सं॰ क्की॰) पृष्टे मर्मे । पृष्टस्थित मर्भभेद ।
सुश्रुतमें मर्भका विषय इस प्रकार लिखा है—मांस, शिरा,
अस्थि, स्नायु और सन्धि इनके सिन्नवेशको मर्भ कहते
हैं । मर्मस्थानमें हमेशा प्राण रहते हैं । अत्यव मर्भदेश
आह्त होनेसे नाना प्रकारको पीड़ा यहां तक कि मृत्यु
भी हो जाती है ।

पृष्ठदेशस्थ ममका विषय कहा जाता है। मेर्ट्एड-के दोनों ओर श्रोणिस्थानमें अस्थिमय मर्म है, जिसमें कटीक और तरुण नामके दो मर्म हैं। यदि किसी प्रकार इन मर्मोंमें चोट छग जाय, तो रक्तक्षय तथा तज्जन्य पाण्डु, विवर्ण और कपकी विकृति हो कर मृत्यु होती है।

पार्श्व और जञ्चनके चिह्मांगमें पृष्ठवंशसे कुछ नीचे दोनों और 'कुकुन्दर' नामक दो मर्म हैं। ये मर्म विद्व होनेसे शरीरके अधोभागमें स्पर्शहान नहीं रह जाता और कियाशिकका व्याञ्चात होता है। श्रेणीके मध्यस्थित दोनों अस्थिकाएडोंके ऊपर जो स्थान आश्यका आव्छादन और अधोभागके पार्श्वदेशमें संख्यन है, शरीरके दोनों पार्श्वके उसी स्थानमें नितस्य नामक दो अस्थिममें हैं। इसमें आञ्चात लगनेसे शरीरका अधोभाग स्व जाता है और धीरे धीरे मृत्यु भी हो जाती है। दोनों ज्ञ्चनसे वक्ष्य भावमें ऊपरको ओर और दोनों ज्ञ्चन तथा पार्श्वके मध्य स्थल अधोभागके पार्श्वह्यमें संख्यन पार्श्व मिन्य नामक दो शिराममें हैं जिनमें किसो प्रकारको चोट लगनेसे मृत्यु हो जाती है। स्तनमूलके साथ समान रेखामें स्थित पृष्ठदण्डके दोनों वगलमें बृहतो नामके मर्मह्य हैं। इनमें आञ्चात पहुंचते हो अत्यन्त रक्ताव होता है और मनुष्य

मर जाते हैं। पृष्ठके उपरिभागमें पृष्ठद्रग्डके दोनों वगल विक सन्धि (तीन अस्थिकी सन्धि)-संलग्न अंशफलक दो अस्थि-ममें हैं। इनके विद्ध होने पर वाहु निस्पन्द या स्व जाते हैं। वाहुद्धयके ऊर्ध्वदेशमें श्रीवाके मध्यस्थल और अंशफलक तथा स्कन्धके सन्धिस्थान-में अंश नामक स्नायुममेंद्वय है। यह ममं विद्ध होनेसे वाहु-स्तब्ध होता है। पृष्ठदेशमें बही चौदह ममं हैं, इसीसे वे सब पृथ्वममें कृहलाते हैं।

पृष्ठमांस (सं॰ क्लो॰) पृष्ठस्य मांसं। पशु प्रभृतिकी पीठ परका मांस। पृष्ठमांस, वृथामांस और निन्दित मांस कदापि नहीं खाना चाहिए।

पृष्ठमांसाद (सं० ति०) पृष्ठे परोक्षे मांसाद इव, असम-क्षमनिष्ट-जनकवाक्यकथनादस्य तथात्वं । १ परोक्षमें शाष्ट्रयपूर्वक वाक्याभिधार्या और दोषोधोयक व्यक्ति, वह जो पीठ पीछे किसीकी निन्दा या बुराई करता हो, चुगल-खोर । (ति०) पृष्ठमांसमचीति मांस-अद-अण्। २ पृष्ठमांस भक्षक, पीठका मांस खानेवाला।

पृष्ठमांसादन (सं० ह्वी०) पृष्ठे परोक्षे मांसादनं मांस-भक्षणमिव (की तंनस्यास्मानिष्टजनकात्) १ परोक्षमें दोय-की तंन, पीछे किसीकी निन्दा करना, चुगळी। (ति०) २ परोक्षमें निन्दा करनेवाळा, चुगळखोर। पष्टमांस- अद-कर्त्तीर ल्यु। ३ पृष्टमांस-भक्षक।

पृष्ठयज्ञन् (सं॰ पु॰) पृन्धेः रथन्तरादिभिरिष्टवान् यज-वनिष्। रथन्तरादि ६ स्तीतसमृहद्वारा यक्कारक।

पृष्ठयान (सं॰ क्ली॰) पृष्ठेन यानं गमनं। पृष्ठ द्वारा गमन, पीठके वळ चळना फिरना।

पष्टरक्ष (सं॰ पु॰) पृष्टं रक्षतीति रक्ष-अण्। पृष्टदेश-रक्षक योधमेद, पृष्टगोप।

पृष्टरक्षण (संं की॰) पृष्टस्य पृष्टदेशस्य रक्षणं। पृष्टदेशकी रक्षा, पश्चाहरक्षा।

पृष्ठवंश (सं० पु०) पृष्ठस्य वंशः वंश इव द्रव्ह इत्यर्थः। पृष्ठास्थि, रीद्धः। पर्याय—रीदकः।

पृष्टवास्तु (सं० क्ली०) एक मकानके ऊपर अथवा एक खंडके ऊपर दूसरे खंड पर वना हुआ मकान ।

पृष्ठवाह् (सं० पु०) पृष्ठं युगपाश्वं वहतीति वह-ण्वि । १ युगपाश्वंग वृप । (ति०) पृष्ठं पृष्ठमागं वहतीति वह-ण्वि । २ पश्चादुमाग वाहकः ।

Vol XIV BE

पृष्ठवाह्य (सं॰ पु॰) पृष्ठे वाह्यं वहनीय द्रव्यमस्य । पृष्ठं द्वारा भारवाहक वृष, वह वैल या पशु जिसकी पीठ पर वोक लादा जाता है। इसका पर्याय—स्थौरी और पृष्ठय है।

पृष्टशय (सं॰ ति॰) पृथ्ठे शेते पृष्टरूपाधिकरणोपदे कर्सरि अच्। पृष्टशायी, पीठके वळ सोनेवाळा।

पृष्ठश्रङ्ग (सं॰ पु॰) पृष्ठे श्रङ्गमस्य, श्रङ्गस्य वक्तमावेन पृष्ठगमनात् तथात्वं। वनछाग, जंगली वकरा।

पृष्ठशृङ्गिन् (सं॰ पु॰) पृष्ठे श्टङ्गमिव अस्यास्तीति श्टङ्ग-इति । १ महिप, भैंसा । २ मीमसेन । ३ नपु सक, नामर्द, हिजड़ा । ४ मैप, भेड़ा ।

वृष्टानुग (सं॰ ति॰) वृष्टे अनुगच्छतीति अनु-गम-ड । पीछे जानेवाला ।

पृष्ठानुगामिन् (सं॰ ति॰) पश्चादुगामी ।

पृष्ठास्थि (सं० क्ली०) पृष्ठस्य अस्थि । पृष्ठवंश, रीढ़, पीठकी हड़ी ।

पृष्ठेमुख (सं० ह्वी०) पृष्ठे मुखमस्य अलुक् समासः । कुमारानुचरमेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम । पृष्ठोदय (सं० पु०) पृष्ठेन उदयी यस्य । मेय, वृक्

वर्कट, धनु, मकर और मीन छन्। ये छः राशिबां पीठकी ओरसे उदय होती हैं।

पृष्ट्य (सं० क्ली०) पृष्टानां स्तोत्तविशेषाणां समृद्ध इति (बाक्षणमाणववायपाद यतः। या धाराधर) इत्यस्य 'पृष्टा-द्वपसंख्यानं' इति वार्त्तिकोक्त्या यत्। १ स्तोत्तसमृद्धः। (पु०) पृष्टेन वहतीति पृष्ट-यत्। २ भारनाहक अश्व, वह घोड़ा जिसकी पीट पर बोम्ह लादा जाता है। (ति०) ३ धारकः। ४ पृष्टभव, पीठकाः।

पृज्यस्तोम (सं० पु०) पृष्ट्यस्तोम-साधनतया अस्त्यस्य-अच् । सामवेदप्रसिद्ध पर्कतुभेद, यज्ञका पड़ाहिक नामक एक समय-विभाग ।

पृष्ट्यावलम्ब (सं॰ पु॰) यज्ञके कुछ विशिष्ट पांच दिन, यज्ञका पांच दिनका एक समय विभाग।

पृष्णि (संवस्त्रीव) पृक्ति-पृषोदरादित्वात् साधुः। पार्षिणः सागः। (तिव) २ नानावण[°] युक्तः।

पृष्णिपणीं (सं स्त्री) पृष्टिनपणीं पृषोदरा साहः पृष्टिनपणीं, पिठवनछता। पें (हिं पु॰) पें पेंका शब्द जो रोने, वाजा फूंकने आदि से निकलता है।

पंग (हिं० स्त्री०) १ हिंडोले या फूलेका,फूलते समय एक ओरसे दूसरी ओरको जाना। (पु०)२ एक प्रकारका पक्षी।

पेंगियामैना (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको मैना जिसे सत-भैया भी कहते हैं। स्तभैया देखो।

पेंघर (हि पु॰) एक प्रकारका पक्षी। इसकी आंखें लाल, चोंच सफेद और शरीर मटमेले रंगका होता है।

पेंघा (हिं पु॰) पे घट देखी।

पेंच (हिं० पु०) पेच हेली।

पेंचक (हिं० पु०) पेचक देखी।

पेंचकश (हि० पु०) पेचकश देखे।।

पॅजनी (हिं पुर) वैंजनी देखी।

पेंड (हिं० स्त्री०) पेंठ देखी।

पेंड़ (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका सारस पक्षी जिसकी चींच पीळी होती है। २ वेड हेखी। ३ वेड देखी।

पेंड्ना (हिं किं) वेडमा देखी।

पॅड़्की (हिं० स्त्री॰) १ सुनारोंका वह ओजार जिससे फंक कर वे लोग आग सुलगाते हैं, फूंकनी। २ पंडुक पक्षी, फाखता। ३ पिराक या गुक्तिया नामका पकवान।

गुक्षिया देखी।

पेंदा (हिं॰ पु॰) किसी वस्तुका निचला भाग जिसके आधार पर वह ठहरती या रखो जाती हो, विलकुल निचला भाग, तला।

पेंदी (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुका निचला भाग। २ तोप या वन्दूककी कोठी। ३ गुदा, गांड़। ४ मूली या गाजर आदिकी जड़।

पेंशन (हिं० स्त्री०) पेन्शन देखी।

पेशनर (हिं पु॰) पेन्शनर देखी।

पेंसिल (हिं० स्त्री०) पेन्सिल देखी।

पेउश (हि॰ पु॰) पेउसी देखी।

पेउसी (हिं० स्त्रीं०) १ व्याई हुई गाय या में सका पहले दिनका दूध। यह वहुत गाढा और कुछ पीले रंगका होता है। यह दूध पीने लायक नहीं होता। इसे तेली भी कहते हैं। २ एक प्रकारका प्रकवान जो उक्त दूधमें सींठ और शकर आदि डाल कर पकाया और जमाया जाता है। यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर होता है। पेगू—दक्षिण ब्रह्मका एक विभाग। यह अक्षा॰ १६ १६ से १६ ११ उ० और देशा॰ ६४ से ६६ ५४ पू॰ के मध्य अवस्थित है। रंगून, हन्थवती, धरावती, प्रोम, अङ्गरेजाधिकृत ब्रह्म और पेगू नगर इस विभागके अन्तर्गत हैं। भूपरिमाण ६१५६ वर्गमील और जनसंख्या १८२०६३८ है। इसमें ८ शहर और ६८१७ प्राम लगते हैं। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ६१ वौद्धधर्मावलम्बे हैं। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ६१ वौद्धधर्मावलम्बे हैं। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ६१ वौद्धधर्मावलम्बे हैं। अधिकांश अधिवासी कृपिजीवो हैं। यहां धानको फसल अच्छी लगती है। अलावा इसके एवी, तमाकृ, हई और फलादिकी भी खेती होती है।

र उक्त विभागके हन्धवाड़ी जिलान्तर्गत एक तालुक। इसका उत्तर-पश्चिम प्रदेश जंगल और पर्वतसे समाकीण है। दक्षिणभाग विलक्कल समतल है। यहां दक्षिण पूर्वसे दक्षिण-पश्चिममें पेगूनदो वह गई है। पेगूकी उपत्यका-भूमि १५०० फुट ऊंची है। इसके उत्तर उक्त नदीके दोनों किनारे निविड़ वनसे आच्छन्न हैं। मध्यमें प्रवाहित पेंक्नदी पूर्वकी ओर सितुङ्ग नदीमें मिल गई है। मेत्को नगर तक इससे एक नहर काट कर निकालो गई है जिससे स्थानीय उर्वरताकी वृद्धि हुई है। रंगूनसे पेगू तक एक वड़ा रास्ता चला गया है। १६वीं शताब्दी-में पेगुराज थ-विन-सिउ-ति-निर्मित रास्तेके बदलेमें एक नया रास्ता प्रस्तुत हुआ है। सितुङ्ग-मेली और इरावती-मेलीप्टेट रेलवेके खुल जानेसे वाणिज्यकी विशेष स्विधा हुई है।

३ निम्नत्रहाका एक जिला । यह अक्षा० १६ ५४ से १८ २५ उ० और देशा० ६५ ५७ से ६६ ५४ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२७६ वर्गमील है। यों तो जिलेमें अनेक नदी बहती हैं, पर सबसे बड़ी पेगू ही हैं। जङ्गलमें हाथी भी पाये जाते हैं, जो फसल करनेके पहले पहाड़ परसे उतरते और फसलको वरवाद कर डालते हैं। आवहवा रंगूनको-सी है। पहाड़के समीप होनेके कारण वर्षा अधिक होती है।

१५वीं शताब्दीके पहलेका पेगूका इतिहास वहुत कम मालूम है। करोव ढाई सौ वर्ष तक ब्रह्मलोगोंने यहां

राज्य किया। पीछे तलइङ्गने उन्हें परास्त कर अपना अधिकार जमाया। तलरङ्गके प्रसिद्ध राजा रजदित १३८५ ई०में सिहासन पर वैठे। ये वड़े रणिपासु थे, लड़ाईके सिवा इनका किसी ओर घ्यान न था। हेकिन कहते हैं, कि १४२२ ई०में मृत्युकी पहले उन्होंने प्रजाकी भलाईको ओर विशेष ध्यान दिया, धर्म तथा प्रजा सम्ब-न्धीय अच्छे अच्छे कार्य किये जो आज भी उन्हें अपर बनाये हुए हैं। १५३४ ई०में तौगूके तविनश्वेतीने यहां घेरा डाला और आखिर इस पर अधिकार जमा ही लिया। उन्होंने पेगूमें दश वर्ष तक राज्य किया और अपने नामको चिरस्थायी रखनेके लिये बहुतसे मन्दिर वनवाये। उनकी मृत्युके वाद उनके सेनापति बद्दत-नींग 'सिनव्युम्युशिन' नाम धारण कर राजसिंहा-सन पर वैठे। १५८१ ई०में उनके मरने पर वह विस्तृत राज्य एक अनुपयुक्त उत्तराधिकारीके हाथ लगा। १७वीं शताब्दीके आरम्भमें आवाके ब्रह्मोंने इस पर अपना कब्जा किया।

अङ्गरेज-श्रह्मके प्रथम युद्धमें रंग्न अवरोधके समय

त्रह्मसेनापित पेग् भाग गये । उनकी सारो सेना भी

तितर वितर हो गई। अधिवासियोंके अनुरोधसे वृटिशराजने ससैन्य जा कर नगरको अधिकार कर लिया।

स्य ब्रह्मयुद्धमें ब्रह्मवासियोंने अङ्गरेजोंकी कमान और
रसद लूट ली तथा पगोदा (मन्दिर)-चत्वर पर दखल
जमाया। इसी सालके नवम्यरमासमें ब्रिगेडियर नील
साहव दलवलके साथ वहां गये और ब्रह्म लोगोंको
परास्त किया। नीलके लोटते न लौटते दोनों पक्षमें

पुनः युद्ध खिड़ा जो दिसम्बरमास तक चलता रहा।
अन्तमें जेनरल गाडविनके ससैन्य पहुंचने पर ब्रह्मलोग
अपनी जान ले कर भागे।

इस जिलेमें २ शहर और ११७४ प्राम लगते हैं। जनसंख्या ३३६५७२ है। राजकार्यको सुविधाके लिये जिला दो उपविमागोंमें विभक्त हैं, पेगू और नीगलेविन। गांवके प्रधान राजस वस्ल करते हैं। पेसे प्रधानोंकी संख्या ५३१ है। उन्हें वस्लके अनुसार कमीशन मिलता है। कभी कभी है लोग छोटे छोटे मामलेका भी फैसला करते हैं। इसमें उन्हें फीस लेनेका अधिकार है। पेगू और टोंगूके वोच एक जज़ हैं जो वड़े वड़े अपराधों पर विचार करते हैं। अवालतमें चोरी डकेती-की पेशो वहुत कम होती है। जिले भरमें ८ अस्पताल, २० सेकण्ड्रो, २८१-प्राइमरी और ३६३ पलिमेण्टरो स्कूल हैं। म्युनिसिपल स्कूल ही सबसे प्रसिद्ध है।

४ उक्त जिलेका एक शहर । इसका प्राचीन नाम कामलङ्का है। यह अक्षा० १७ २० उ० और देशा० ६६ २६ पू०, रंगूनसे ४७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। कहते हैं, कि ५७३ ई०मं ध-म-ल और वे म-ल नामक धतुम राजपुत्रोंने इस नगरको वसाया था। उसके पहले प्राचीन पेगू नगरमें विलड्गा राज्यको राजधानी थी। इन राजवंशघरोंने एक समय सितुङ्ग और इरा-वती उपत्यका, आवा, पकचान, श्याम और आराकन-तक विस्तृत स्थानों पर अपना शासन फैलाया था।

पर्चंस इतिवृत्तसे हम लोगोंको पता लगता है, कि १६वीं शताब्दीमें पेगूराज्यकी आकृति विस्तृति और सुन्दरता वहुद्रस्थापी थी। यूरोपीय भ्रमणकारी फ्रेंड-रिक (Caesar Frederick)-ने लिखा है, कि, "निरापदसे पेगू नगर पहुंच कर हम लोगोंने देखा, कि पुरातन नगरमें देशीय और वैदेशिक वणिक, महाजन आदि स्वसायी लोग नाना प्रकारके काम काजमें लित हैं। नगर तो छोटा है, पर वाणिज्य जोरों चलता है। इस कारण लोगोंकी संख्या भी आस पासके स्थानोंसे अधिक है।

१६वीं शताब्दीके मध्य भागमें अलाम्प्राने पेग्राज्य जीत कर तल्डङ्ग जातिका चिह्न लोप करनेका सङ्कल्प किया। तद्मुसार उन्होंने प्रत्येक घरको तहस नहस कर अधिवासियोंको मार भगाया। १७८५ ई०में उनके प्रयौत वोद्त्त-यधा सिहासन पर वैठे। उन्होंने भिन्न प्रथासे राज्यशासन करके पेग्र और रंग्र्न नगरमें राज-कीय सदर वसाया। कर्णलं साइमसके विचरणसे मालूम होता है, कि यह नगर एक समय सुरक्षित और उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था।

यहांका जायेङ्ग-गा-नइङ्ग और शो एमदु-पागोदा देखने लायक है। तलइङ्गोंकी यह मन्दिरकीर्त्ति रंगुनके शोपदा-गोन्-पागोदाकी अपेक्षा जनसाधारणके निकट पवित्र समभी जाती है। यह भूमिपृष्टसे ३६१ फुट ऊंचा है। इसकी यह आकृति अफिकाके सबसे बड़े पीरामीडकी तुलनामें प्रायः ८३ फुट कम है। यह इङ्गलैएडके सेएट-पाल-गिर्जाका मुकावला करता है। प्रवाद है, कि शाक्य-खुद्धके आविर्मावके कुछ दिन वाद ही दो वणिकोंने इस प्रदेशमें आ कर उक्त पागोदाकी नीव डालो थी। पर-वर्ती पेगू राजाओंके यत्नसे वीच वीचमें उसका संस्कार होता गया। पीछे विगत चार-सौ वर्ष पहले उसका वर्त्तमान आकार संगठित हुआ है।

पेगू—हन्थवाड़ी जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह पेगूथोमा-से निकल कर पहले दक्षिण-पूर्व और पीछे दक्षिण-पश्चिम-की ओर बहती हुई रोदुन नगरके निकट ह्लां-वारेङ्गन नदीमें गिरी है। इस नदीमें ज्वार भाट आता है। नदी-के दोनों किनारे शालका वन है।

पेंगुइन—स्वनामजात जलचर पश्चिजातिवशेष (lenguin)। इनकी आस्ति हंसकी-सी है। दक्षिण समुद्रके नोहार और वफसे ढके हुए विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है। समुद्रज शम्बूक ही इनका एकमात आहार है। ये गमीर समुद्रमें गोता मारते और शम्बकादिको आसानीसे वाहर निकालते हैं। इनकी देह वहुत वारीक और मुलायम रोंएसे ढ की रहती है। पूँछ इतनी छोटी होती है, कि देखनेमें नहीं आंती। इनके शरीर परका रंग तमाम एकसा नहीं होता। माथा और कंघा काला, कएठ पीला, छाती और पेट सफेद तथा पीठ नीली होती है। ये दल बांध कर इधर उधर उड़ते हैं। एक एक दलमें ३० वा ४० हजार पश्ची उड़ते देखे जाते हैं। वृद्ध पश्ची प्रायः दो हांध लम्बा, तौलमें पनद्रह सेरसे कम नहीं होतां। तेल और चवींसे इनका शरीर परिपूर्ण रहनेके कारण मांस स्वादिष्ट नहीं होता है।

. इस पक्षीका पकड़नेवाला शिकारी दल एक आदमी-की कमरमें जंजीर बांध कर उसे पेंगुइनसे परिवृत पर्वत पर लटका देता है। पीछे वह आदमी इच्छानुसार पक्षी पकड़ कर जंजीरके सहारे ऊपर खींच लिया जाता है।

विज्ञानविदोंने इस जातिको Spheniscenae श्रेणी-भुक्त किया है। इनके मध्य Sphenicus, Endyptes, Pygosceles और Aptenodytes कई एक थोक हैं। Sphenicus demersus-की आंखें लम्बी और चींच टेढ़ी तथा पतली होती हैं। पैर और चींचका रंग काला, पीठ कालापन लिये सफेद और छाती भी सफेद होती हैं। अटलाव्टिक और कुमेच्बृत्तस्थ समुद्रके किनारे (Antartic seas) फाकलैएड द्वीपपुञ्ज और उत्तमाशा अन्तरीपमें ये अकसर देखे जाते हैं।

Endyptes chrysocome सिर चिपटा और लमा, रंग लाल, पीठका रंग काला, पेट मखमलके जैसा कोमल और सफेद, पंखका ऊपरी माग काला ओर भीतरी भाग सफेद तथा दोनों पैर पीले होते हैं। दक्षिण-समुद्रके अक्षा० ४३ ८ ३८ और देशा० ५६ ५६ ४६ पिश्वम-में लेसन साहवने इस जातिके पक्षोका शिकार किया था।(१)

Aptenodytes l'atachonica—आंख सिरसे वड़ी पतली, सीधी, आगेकी ओर टेड़ी और नीचेकी ओर लाल है। सिर और गलेके रोए काले होते हैं। सिर और गलेके रोए काले होते हैं। सिर और गलेके मध्यभागमें कानके दोनों वगलसे कमला नीवृकी तरह पोले पंख लटकते हैं। पेटके पर साटनकी तरह चमकीले सफेद और वीच वीचमें पीले दाग होते हैं। दोन पैर छोटे, पर मजवूत हैं। खड़े होने पर इनकी ऊ बाई ३ फुटसे कम नहीं होती। मेगेलन-प्रणाली, फाकलैएड द्वीप और कुमेर सिक्कटस्थ द्वीपावलों इस जातिके पश्ली मिलते हैं। र पापुआ, न्युगिनो आदि द्वीपोंमें Pygosceles शाखाकी पक्षिजाति देखनें आती है। दिक्षण-समुद्रका पेगुइन और उत्तर-समुद्रका आक (Auk) नामक पश्ली प्रायः एक-सा है। केवल आंख, दोनों पैर और अवयवमें कुछ कुछ प्रभेद देखा जाता है।

पेच (सं॰ पु॰) उल्लूकपक्षी, उल्लू । पेच (फा॰ पु॰) १ चक्कर, घुमाव, फेर, लपेट । २ धूर्तता, चालाकी, चालवाजी । ३ पगड़ीकी लपेट, पगड़ीका फेरा ।

⁽१) M. Lesson इत Zoologie de la coquille नामक प्रथमें इनकी भाइति और प्रकृतिका विषय विस्तः रित इनमें जिला है।

⁽२) Mr. Weddell-लिखित Voyage to the South Pole नामक पुस्तकमें इस जातिका विवरण लिखा है।

४ कठिनता, उल्पनन, बखेड़ा । ५ स्कू, वह कील या कांटा जिसके नुकीले आधे भाग पर चक्करदार गड़ारियां वनी होती हैं और जो ठींक कर नहीं विक धुमा कर जड़ा जाता है। ६ पतंग या गुड़ी लड़नेके समय दो या अधिक पतंगींके डोरका एक दूसरेमें फंस जाना। ७ यन्त, मशीन, किसी प्रकारकी कल । ८ युक्ति, तरकीव। ६ मशीनका पुरजा, यन्त्रका कोई विशेष अंग जिसके सहारे कोई विशेष कार्य होता है। १० कुश्तीमें वह विशेष किया वा घात जिससे प्रतिद्वन्द्वी पछाडा जाय, कुश्तीमें दूसरे को पछाड़नेकी युक्ति। ११ यन्त्रका बह विशेष अंग जिसको दवाने घुमाने या हिलाने आदिसे वह यन्त्र अथना उसका कोई अंश चलता या रुकता हो। १२ एक प्रकारका आभूपण। यह टोपी या पगडीमें सामनेकी ओर खोंसा या लगाया जाता है, सिरपेच। १३ गोशपेच, सिरपेचकी तरहका एक प्रकारका आभूपण जो कानोंमें पहना जाता है। १८ तलेके किसी परन या ताळ-के वोलमेंसे कोई एक टुकड़ा निकाल कर उसके स्थान पर ठीक उतना ही वड़ा हुकड़ा लगा देना। १५ पेटका मरोड़। पेचिस दे हो। १६ पेचताव देखी।

पेचक (सं॰ पु॰) पचित पच्यते वा पच (पिक्वचोहेच च। वण् ११३०) इति बुन, उपधाया अत इत्वं। पिक्ष-विशेय, उल्क्रुपक्षी। संस्कृत पर्याय—उल्कृक, वायसाराति, शक्राख्य, निवान्य, वक्रनासिक, हरिनेत, विवाभीत, नखाशी, पीयु, घर्षर, काक्रभीरु, नक्तचारी, निशाचर, कौशिक, द्वारान, पेच, रक्तनासिक, भीरुक।

अङ्गरेजीमें इसे आडल (Owl) कहते हैं। यह निशा-सर है, केवल रातको ही दोख पड़ता है। इस कारण रातको वाहर निकलता और इन्दुरादिको पकड़ खाता है। दिनको अपने कोटरसे वाहर नहीं निकलता। यदि संयोगसे निकल पड़े, तो कौंचे उसे चोंच मार कर क्षत-विश्वत कर डालते हैं। इनका शरीर परसे ढंका रहता है

Vol. XIV. 89

और मुख चका-सा गोल होता है। दोनों आँखें मनुष्यकी तरह सामने रहती हैं। नाक भी हम लोगोंकी नाक के समान और पैर शिकारी पश्लीके सदृश होते हैं। चंगुलमें तेज नाखून होते जिनसे वे अंधेरी रातमें भी शिकार पकड़ सकते हैं। इनकी दृष्टि जैसी तीव होती, श्रवणशिक भी वैसी ही सूदम होती है। इन्दुरादिके पैरका शब्द ये सहजमें सुन लेते हैं। येरल (Mr. Yarrell) साहवने लिखा है, गोलाकार मुखकेन्द्रके वोच सुचिकण पश्मगहरमें दो चश्च रहनेके कारण चश्लगोलकमें आलोक-रिशम सञ्चयको क्षमता श्रिक रहती है। यही कारण है, कि वे दूरमें विचरणशील इन्दुरादिको अच्ली तरह देख सकते हैं। इनकी व्राण, स्पर्श और आखादशिक प्रायः अन्यान्य शिकारो पक्षी-सी होती है।

पिश्वतस्विविद्दाने पेचक जातिको Strigidae श्रेणी
भुक्त किया है । अन्यान्य शिकारो पिश्वविद्दागण

इनका भी थोक निर्दिष्ट हुआ है। फरासी पिश्वविद्दागण

पेचक (Chats Huants) के दो थोक 'मानते हैं;—?

दिवाचारी तीक्ष्णदृष्टि शिकारळोळुप पेचक (Accipitrine owl) और निशाचर, जो केचळ रातमें ही शिकार

करते, दिनमें वाहर निकळते ही नहीं (Nocturnal owls)। प्रथम भागमें Strix Lapponica, S. Nyctea,

S. Uralensis और S. funerea तथा द्वितीय भागमें

S. nebulosa, S. Aluco, S. flammea, S. Passerina, S. Tengmalmi और S. Acadica नामक कई

पक भिन्न जातिके पेचक अन्तर्भु क हुए हैं।

जिन्हें मस्तकके ऊपर पशुश्ङ्कको तरह कलगो हांती है पिस्तित्त्वविदोंने उन्हें निश्लोक श्रेणीमें शामिल किया है। जिसकी आकृति एक-सी है, वैसी पेचक जातिकी Strix brachyotu:, S. Bubo, S. Otus और S. Scops आदि और भी कितनी जातियां किएंश की गई हैं। सीयेन्सन (Mr. Swainson) साहवने पेचक-जातिको तीन विशिष्ट श्रेणियोंमें विभक्त किया है,—१ Typical group बृहत्कण, २ Subtypical श्रुद्ध कर्ण और ३ Aberrant—क्षद्ध मस्तक और क्षद्धं पुच्छ (दोनों पैर लोम हारा आच्छादित)।

में साहव (Mr. G. R. Gray)-ने निशाचर पेचकॉको

अ पेचक चो।की तरह रातको बाहर निकलता है। दुष्ट फुचरित्र व्यक्ति दिनको पुलिमके भयसे बाहर निकल कर रातको ही बाब्सिरी करते हैं अथवा जो दिनको नीच कार्थमें प्रभूत रह कर रातको बाबू मे-सी शानकोकत दिखाते हैं उन्हें व्यासि 'पेचक' कहते हैं।

(Accipetres Nocturni) Surnince, Bubonince, Ululince और Strigidoe नामक चार उपविभागों-में विभक्त किया है। उक्त भागोंके मध्य और भी विभिन्न जातिके निदर्शन पाये जाते हैं।

पृथियो पर सब जगह पेचक जातिका वास है। ग्रीष्म-के समय खुदूर सुमेर और कुमेर्य्युत्तस्थित द्वीपोंमें इनका अभ्युद्य होता है। प्रवल ग्रीतके समय विकृोग्या वन्दर-में सैकड़ों पेचक देखे गये थे। जेम्सरोज नामक किसी परिद्शंकने लिखा है, कि उस ग्रीतके पूर्ववत्तों गरत्काल-में पेचकोंने यहां अंडे पारे थे। मेगेलन-प्रणालीस्थित फेमिन वन्दरमें भी S.Rufipes और S. nana) पेचक जातिका गमनागमन होता है। प्रिया, यूरोप, अफिका, अमेरिका और अट्टेलिया द्वीपमें नाना जातिके पेचकोंका यास देखा जाता है।

ये साधारणतः पश्ली और चतुष्पदादि जन्तुके मांससे अपना पेट भरते हैं। डे, nycten और डे, flammen श्रेणीके पश्लीका मुख्य आहार केवल मछली है। यूरोप और अमेरिकामें वृहत्-श्रङ्गं (Large-horned) पेचक खरगोश, तीतर, यनमुर्गा और छोटे छोटे पश्ली खाते हैं। चूहा, छुछुन्दर, छोटा छोटा पश्ली, माप, केकड़ा आदि भी छोटे पेचकका खाद्य है। शुद्रकर्ण पेचक (Short earned—Strix brachyotus) केवल वादुर खा कर अपनी जान वचाता है।

Strix flammen—श्वेतपेचक, गातवर्णको चिमिश्वासे इसको अङ्गरेजीमें Barn, white, Church,
illihowlet, owlet, Madge-howlet, Madge,
Hissing और creech पेचक आदि; फान्समें Pelit
chathuant Plombe, इस्लीमें Barbagianni; जर्मनमें Scheleierkauz, perl Elue; नदरलैएडमें De kerkuil, वेल्समें Dylluan wen कहते हैं। ये प्रायः १३ ईख लम्बे होते हैं। मादा पेचक नरसे सफेद होती है। शावकगण श्वेतपक्षमण्डित हो कर बहुत दिनों तक घोंसलेमें
रहते हैं। पुराने घर, गिरजाकी चूड़ा और ग्रामके समीपवन्ती बृक्ष-कोटरादिमें मादा एक बार ३ वा 8 अण्डे
पारती है, इनके घोसले परिकार परिच्छन रहते हैं। Іуу नामक पेचकके अंडेसे इनका अंडा छोटा है, पर अपेक्षा-इत गोलाकार होता है |†

ये हर्ट्टी, मांस, पर और रोएं सक्को एक साथ निगल जाते हैं। पीछे हट्टी और पर को उगल देते हैं। अन्यान्य पालित पक्षीके साथ ये मिल कर रहते और कुत्तेकी तरह खाद्य खिपा कर रखते हैं।

उरल पर्वत पर जो पेचक (Surnia Uralensis)
देखा जाता है, इसका मुंह सफेद और वहा होता, पंलसे पूछ लम्बो होती और उसमें एक कतारसे दाग रहता
है। इस जातिका पेचक दो फुट लम्बा होता है जिसमेंसे पूंछ प्रायः १० इन्न होती हैं। इनका प्रधान लाध
विल्ली और वड़ा वड़ा पक्षी है। Surnia funerea पेचक
उक्त पेचकसे छोटा अर्थात् २५ इन्न लम्बा होता है।
मादा पेचक नरसे वड़ी होती है। उनके बच्चे जब तक
धोंसले नहीं छोड़ते, तब तक उनका शरीर उज्जूल ध्रसरवर्णके परसे ढँका रहता है। एतन्तिन्न Strix pesserina, S. badia, S. capensis, Athene capensis,
Otus capensis और Noctua Boobook नामक कई
एक स्वतन्त पेचक जाति देखी जाती है।

श्रङ्गकी तरह कलमीदार पेचक 'Bubo' श्रेणीमुक है। इनके मध्य B. maximus और B. Varginianus नामके दो थोक हैं। पहले थोकके पेचकका सींग और आकार दूसरे थोकसे वहुत कुछ वड़ा होता है। अंग-रेजीमें इसे Great or eagle owl, इटलीमें Gufo grande, फ्रान्समें Le Hibou, Grand Duc, जर्मनमें Grosse ohieula और अर्थ लियामें Buhu कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम Strix Bubo है। छोटा छोटा मृगशावक, खरगोश, छुछुन्दर, चूहा, पक्षी, वेंग और सरीस्प तथा पतङ्गादि इनका आहार है। पर्यतकी कन्दरा, पुराने दुर्ग और खंडहरमें थे घोसले बनाते हैं। मादा २,३ अध्वा

े Mr. Blythने लिखा है, कि प्रीवनकालमें एक घावके में दो अ'डे देखी जाते हैं। उनके साथ साथ मादा दो और अ'डे पारती हैं। वे दोनों अ'डे पुर्वोक्त स'डों के फूटनेके बाद फूटते हैं। उसके साथ तीसरी बार पुनः दो अ'डे पारे जाते हैं। उन कह बच्चों के निकलते निकलते प्राय: ग्रीतकाल बीत जाता है। (Field, Naturalist's Magazine, vol I.)

8 अंडे एक साथ पारती हैं। अंडे देखनेमें मुर्गाके अंडेसे लगते हैं। मादा अपने वरुवेको तव तक आहार जुटाती हैं, जब तक वरुवा अच्छी तरह उड़ना सीख नहीं लेता। अगस्तमासके शेषमें बच्चे आपसे आप धम फिर कर खाने लगते हैं। इस जातिके पेचकमें इतनी शक्ति रहती है, कि यदि मेड़ियाको इसके पैरमें बांध दिया जाय, तो यह उसे ले कर आसानीसे उड़ सकता है। B. Vargininus वा भर्जिनियस् श्रृङ्खुक पेचक अमेरिकाके नाना स्थानोंमें देखे जाते हैं। इनका समाब प्रायः पूर्वोक्त पेचकसे मिलता जुलता है, पर आकारमें कुछ छोटे होते हैं। चौंचसे ले कर पूंछ तककी लम्बाई प्रायः २६ इश्च है।

२ करियुच्छम्लोपान्त, हाथीकी दुमका अन्तभाग । ३ गुदाच्छादक मांसपिएडविशेष । ४ पर्यङ्क, पलंग, चार-पाई । ५ यूक, जूं । ६ मेघ, वादल ।

वेचकश (फा॰ पु॰) १ लोहेका वना हुआ वह घुमावदार पेच जिसकी सहायतासे वोतलका काग निकाला जाता है। इसे पहले घुमाते हुए कागमें धंसाते हैं और जव वह कुछ अन्दर चला जाता है, तव अपरकी ओर खींचते हैं जिससे काग वोतलके वाहर निकल आता है। २ लोहारों और वर्ड़यों आदिका औजार। इससे वे लोग पेच (स्क) जड़ते अथवा निकालते हैं यह भागसे चपटा और कुछ जुकीला लोहा होता है। इसके पिछले भागमें पफड़नेके लिए दस्ता जड़ा रहता है।

पैचिकन् (सं० पु०) हस्ती, हाथी।

पेचताब (फा॰ पु॰) बिबराता आंदिके कारण प्रकट न किया जानेवाला क्रोध, वह गुरूसा जो मन-ही-मनमें रह जाय और निकला न जा सके।

पैचदार (फा॰ पु॰) १ एक प्रकारका कसीदेका काम । इसमें काढ़ते समय फेंद्रे लगाए जाते हैं। (बि॰) २ कडिन, उलकानेवाला, जिसमें कोई उलकाव हो। ३ पेच बाला, जिसमें कोई पेच या कल लगी हो।

पेचना (हिं किं) दो वस्तुशैंक वीचमें उसी प्रकारकी तीसरी वस्तु इस प्रकार घुसेड़ देना जिससे साधारणतः वह दिखाई न पड़े, इस तरह लगाना जिसमें पता न लगे। पेचनी (हिं स्त्री) चिकन वा कामदानीके काममें एक सीधो लकीर पर काढ़ा हुआ कसीदा। पेचवान (फा॰ पु॰) १ फशीं या गुड़गुड़ीमें लगाई जाने बाली वड़ी सटक। बड़ा हुका। पेचा (हि॰ पु॰) उल्लूपक्षी। पेचिका (सं॰ स्त्री॰) उल्लूपक्षीका मादा। पेचिल (सं॰ पु॰) पच-बाहुलकात् इल्ल्च्, अत इच। इस्ती, हाथी। पेचिश (फा॰ स्त्री॰) मरोड़, पेटकी एक प्रकारकी पीड़ा। यह आंव होनेके कारण होती है। पेचीदगी (फा॰ स्त्री॰) १ पेचीला होनेका भाव, धुमावदार होनेका भाव। २ उल्लाब। पेचीवा (फा॰ वि॰) १ पेचवार, जिसमें वहुत पेच हो।

पैचीदा (फा॰ वि॰) १ पैचदार, जिसमें वहुत पैच हो। २ मुक्तिल, उलमावदार, जो देढ़ा मेढ़ा और किंदिन हो। पैचीला (फा॰ वि॰) १ धुमाव फिराववाला, जिसमें वहुत पैच हों। २ मुश्किल उलमावदार।

पेञ्जली (सं० स्त्री०) पच्यते इति पच-उलघ्, अत इर्सं, गौरादित्यात् डीप्। शाकभेद, एक प्रकारका साग। पेज (हिं० स्त्री०) रवड़ी, वसौंधी।

पेज (अं॰ पु॰) पुस्तकका पृष्ठ, पक्षा, वरक, सफहा। पेट (सं॰ पु॰) पेटतीति पिट-अच्। १ प्रइस्त, चपत, थप्पड़। (ति॰) २ संहिताकारक।

पेट (हि॰ पु॰) १ उर्र, शरीरमें थैलेके आकारका वह भाग जिसमें पहुंच कर भोजन पचता है। बहुत ही निम्न कोटिके जीवोंमें गलेके नीचेका प्रायः सारा भाग पेटका हो काम देता है। कुछ जोवोंके किसी प्रकारकी पाचनं-किया न रहनेके कारण पेट भी नहीं होता है। छेकिन उच कोटिके जीवोंके शरीरके प्रायः मध्य भागमें थैलेके आकारका एक विशेष अङ्ग होता है। इसमें पाचन-रस बनता और मोजन पचाता है। मनुष्यों और चौपाइयों आद्में यह अङ्ग पसलियों के नीचे और जननेन्द्रियसे कुछ ऊपर रहता है। पाचक-रस वनाने और भोजन पचानिवाले सव अङ्ग अर्थात् आमाश्य, पक्वाशय, जिंगर, तिल्ली, गुरदे आदि इसीके अन्तर्गत रहते हैं। इसीके नीचेका भाग कटोरेके आकारका होता है जिसमें आंतें और मूताग्रय रहता है। पिसयों आदि कुछ जीवोंमें पकके बदले दो पेट होते हैं। २ पर्चीनी, ओफर, पेटके अन्दरकी थैली। इसमें खाद्य पदार्थ रहता और पचता है।

३ अन्तःकरण, मन, दिल । ४ गर्म, इमल । ५ चक्कीके पांठोंका वह तल जो दोनोंको जोड़नेसे भोतर पड़े । ६ सिल आदिका वह भाग जो कृटा हुआ और खुरदुरा रहता है और जिस पर रख कर कोई चोज पीसी जाती है। जीविका, रोजी। ८ समाई, गुंजाईश। ६ पोली-वस्तुके वीचका या भीतरो भाग, किसी पदार्थके अन्दरका स्थान जिसमें कोई चोज भरी जा सके। १० वन्दूक या तोपका वह स्थान जहां गोली या गोला भरा जाता है।

पेटक (सं पु) पेटतीति पिट-ण्वुल्। १ मञ्जूगा, पिटारा । पर्याय—पिटक, पेड़ा । २ समूह, हेर । पेटल (हिं वि) वड़े पेटवाला, तींदल ।

पेटा (हि॰ पु॰) १ सीमा, हद। २ पूरा विवरण, तफ-सील, व्योरा। ३ किसी पदार्थका मध्य भाग, वीचका हिस्सा। ४ वृत्त, घेरा। ५ नदीका पाट। ६ वड़ा टोकरा। ७ पशुओं की अंतड़ी। ८ नदीके वहनेका मार्ग। ६ पतंग या गुड़ीकी डोरका कोल। उड़ती हुई गुड़ीकी डोरका वह अंश जो वीचमें कुछ ढोला हो कर लटक जाता है।

अंश जो वीचमें कुछ ढोला हो कर लटक जाता है। पैटाक (सं॰ पु॰) पृथोद्रादित्वात् साधुः । पेटक, पिटारा।

पेटारा (हिं॰ पु॰) पिटारा देखी।

पेटाथीं (हिं वि॰) जो पेट भरनेको ही सव कुछ सम-भता है। पेट्ट, भुक्खड़।

पेटार्थू (हि॰ वि॰) पेटार्थी देखी ।

पेटिका (सं॰ स्त्री॰) पिटतीति पिट-ण्वुल् कापि अत इत्त्वं। १ वृक्षविशेष, पिटारी नामका पेड़। पर्याय—कुवेरासी, कुलिङ्गाक्षी, कृष्णवृन्तिका। २ छोटी पिटारी। ३ सन्दूक, पेटी।

पेटी (सं० ति०) पेट-गौरादित्वात् ङीप्। पेटक।
पेटी (हिं० स्त्री०) १ छोटा सन्दूक, सन्दूकची। २ चपरास। ३ पेटका वह भाग जहां तिवली पड़ती है, छाती
और पेडूके वीचका स्थान। ४ केंची, छुरा आदि रखनेके
लिए हजामकी किसवत। ५ कमरवन्द, कमरमें बांधनेका
चीड़ा तसमा। ६ वह डोर जो बुलबुलकी कमरमें उसे
हाथ पर वैटानेके लिए बांधते हैं।

पेटू (हि॰ वि॰) जो वहुत खाता हो, जिसे सदा पेट स्मरनेको ही फिक्र रहे, भुक्खड़।

पेटेंट (अं० वि०) १ किसी आविष्कारक आविष्कारके सम्वन्धमें सरकार द्वारा की हुई रजिस्टरो। इसकी सहा-यतासे वह आविष्कारक हो अपने आविष्कारसे आर्थिक लाभ उटा सकता है, दूसरे किसीको उसकी नकल करके आर्थिक लाभ उटानेका अधिकार नहीं रह जाता। यह रजिस्टरी नये प्रकारकी मशीनों, यन्तों, युक्तियों या ओप-धियों आदिके सम्बन्धमें होती है। ऐसी रजिस्टरीके वाद उस आविष्कारकका ही अधिकार रह जाता है। २ वह आविष्कार या पदार्थ आदि जिसकी इस प्रकार रजिस्टरी हो चुकी हो।

पेड (हिं० पु०) वैठ देखों।

पेठा हि॰ पु॰) सफेद रंगका कुम्हड़ा । जम्हड़ा देखो। पेठापुर-- २ वस्वई प्रदेशकी महीकान्ठा एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यहांके सरदारगण वरोदाके गायक-वाड़को वार्षिक ८६३०) रु॰ राजस दिया करते थे। अन-हळवाड़ा-पत्तनके जिस हिन्दूराजपूतवंशको १२६८ ई०में अलाउद्दीनने परास्त किया था, यहांके सामन्तगण उसी प्राचीन राजपूत वंशके हैं। उक्त वंशके अन्तिम राजाने अपने पुत श्रोरामसिंह (सारङ्गदेव)को कलोल नगर और इसीके पाश्यवत्तीं कई एक ब्राम दिये। इसी व्यक्तिसे दशवीं पीढ़ीमें हेरुताजी नामक किसी व्यक्तिने १४४५ ई०में अपने मामा पिठाजीको मार कर उनके राज्य पेशपुर पर अधिकार कर लिया। महोकान्ठाके अधिग्रानसे इस वंशके सरदारगण अद्ध स्त्राधीनता भोग करते आये हैं। १८७८ ई॰में ठाकुर गम्मीर सिंह अपने पिता हिम्प्रतसिंहके पद पर अभिषिक हुए। ये वघेळावंशोय राजपूत हैं। इनके दत्तक प्रहणकी क्षमता नहीं हैं, किन्तु ज्येष्ठपुतके राज्याधिकारको प्राप्ति स्त्रीकृत हुई है। वर्त्तमान सामन्त-का नाम ठाकुर फतेसिंह जी है।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर और सरदारोंकी वासभूमि। यह अक्षा० २३ १३ १० उ० और देशा० ७२ ३३ ३० पू०के मध्य, सावरमती नदीके पश्चिम किनारे पर अवस्थित है। यहां एक प्रकारका रङ्गीन कार्यासवस्त्र प्रस्तुत होता है जो साधारणतः स्थामराज्यमें ही मेजा जाता है।

पेड (अं ० वि०) १ वैरिंग या वैरंगका उलटा, जिसका मह-सूल, कर या भाड़ा आदि दे दिया गया हो । २ जो चुकता कर दिया गया हो, जो बस्छ कर दिया गया हो। पेड़ (हि॰ पु॰) १ वृक्ष, दरख्त । २ मूछ कारण, आदि कारण।

पेइना (हिं० किं०) पेरना देखी।

पेड़ा (सं॰ पु॰) पेटा-पृयोदरादित्वात् साधुः । मंजूपा, पिटारी, पेटी ।

पेड़ा (हि॰ पु॰) १ खोवा और खांडसे वनी हुई एक प्रसिद्ध मिठाई जिसका आकार गोल चिपटा होता है। २ गुंधे हुए आंटेकी लोई।

पेड़ागाँव—वार्यई प्रदेशके अहमदावाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह श्रीगोएडसे ४ कोस दक्षिणमें भोमानदीके उत्तर किनारे पर वसा हुआ है। इस नगरकी पूर्वसमृद्धि अभी जाती रही है—वह अभी प्रायः ध्वंसावरीपमें परि-णत हो गई है। अभी हैमाडपन्थियोंका वलेश्वर, लक्षी-नारायण, मिलकार्ज न और रामेश्वर नामक चार देवालय वर्त्तमान हैं। किन्तु वे भी भग्नावस्थामें हैं—किसीका मएडप, किसोका पीठस्थान और नाना शिल्पकार्ययुक्त स्तम्भ दीवार सादि गिर गई हैं।

१६८० ई०में यह नगर मुगलसेनाका प्रधान अड्डा था और वहां रसव्खाना, वाक्दबाना तथा गोला गोली आदि रखी जाती थी। दाक्षिणात्यके मुगलशासनकर्ता खाँ जहान्ते १६७२ ई०में शिवाजीका पीछा करते हुए यहां छावनी डाली थी और वादमें दुगै वनवाया था। भीमा नदीसे नगरमें जल आनेके लिये उन्होंने एक खाई खुदवा दी है। हाथी द्वारा चक्रयोगसे नदीका जल खींचा जाता था। यह हस्तिगृह और कलगृह आज भी मौजूद है। खाँ जहान इस नगरका नाम वहादुरगढ़ रख गये हैं। १६७३ ई०में वहादुर खाँ पेड़गांवके शासनकर्ता थे। १७५६ ई०में वहादुर खाँ पेड़गांवके शासनकर्ता थे। १७५६ ई०में अहमद्नगरदुगे पेश्रवाके हाथ आया और साथ साथ यह नगर पेश्रवाके भाई सदाशिवरावके अधिकारभुक्त हुआ। उसी समयसे १८१८ ई० तक यह महाराष्ट्रके दखलमें रहा।

पेड़ार (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका वृक्ष ।

पेड़ो (हिं० स्त्रो॰) १ वह खेत जिसमें पहले ऊख वोया गया हो और जो फिर गेहुं वोनेके लिए जोता जाय। २ वह पान जो पुराना तोड़ा हुआ तो न हो, पर पुराने पौधोंमें वादमें हुआ हो, पुराने पौधेका पान। २ पानका पुराना पौधा। ४ काएड, घड़, वृक्षको पींड। ५ वह कर जो प्रति वृक्ष पर लगाया जाय। ६ मनुष्यका घड़, ज़रीरका ऊपरी भाग। ७ एक वारका काटा हुआ नोलका पौधा। ४ वृङ्गी देखो।

पेड़् (हिं॰ पु॰) १ गर्भाशय। २ उपस्थ, नाभि और मुलेन्ड्रियके वीचका स्थान।

पेढ़ान (सं० पु०) अवसर्विणोके जिनोत्तमभेद ।
पेतलाद् वरोदाराज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २२ २६ ३० और देशा० ७२ ५० पू०के मध्य अवस्थित है। यहां तम्याक् और वस्त्रका विस्तृत कारवार है। पेतेनिक दाक्षिणात्यके प्राचीन राजवंश । अहमदनगरके उत्तर-पूर्व पैठान नगरमें ये लोग २५० ई० सनके पहले राज्य करते थे और भोज राजाओंके समसामयिक थे। पेत्य (सं० क्वी०) पीयते इति पा-पाने (अग्वेभ्गोऽपि छ्याते । उण् ४।१०५) इति इत्यन् । १ अमृत । २ चृत, थी। (पु०) ३ पतनशील पशु, लाग, वकरा।

पेदड़ी (हिं स्त्री) पिही देखा।

पेदन—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन श्राम। यह मछलीपत्तन नगरसे ढाई कोस उत्तर वसा है। यहांके अगस्त्येश्वर स्वामीके मिन्द्रमें १२२० ई० की एक और १२२५ ई० की तीन शिलालिप हैं। पेदर (हि० पु०) एक प्रकारका वहुत वड़ा जंगली पेड़। इसके पत्ते प्रति वर्ष भड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी वहुत मजजूत और भीतरसे सफेद होती है। यह मेज, कुरसियां, अलमारियां और नार्वे दनाने तथा इमारतके काममें आती है। इसकी ज़ड़, एके और फूल ओर्पिके स्पमें भी काम आते हैं। यह मन्द्रास और पंगलमें वहुतायतसे होता है।

पेदु (सं० पु॰) राजमेद, एक राजाका नाम।
पेद्दकल्लेपल्ली (पेद्दुल्लपल्ली)—कृष्णा जिलेका एक प्राचीन
नगर। यह मछलीपत्तनसे चार कोस दक्षिण-पिक्चिममें
अवस्थित है। यहांके नागेश्वरस्वामीके मन्दिर-प्राकारमें
राजा २य प्रतापक्टके समयमें उत्कीण १२१४ एककी एक
और अन्यान्य स्थानमें और भी लगभग चौद्द शिलालिपि
देवनेमें आती हैं। जिनमेंसे १०७६ शककी उत्कीण

Vol. XIV 90

शिलालिपि सबसे पुरानी है। अन्यान्य शिलालिपियां सम्भवतः १२वें और १३वें शक्तमें उत्कीण हुई हैं।

पेह्काञ्चरला—कृष्णाजिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह बिनुकोएडसे २ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहांके भीमेश्वर-मन्दिरके समीप १०७१ शक्तमें उत्कीण एक शिलालिपि है। यहांकी पूर्व समृद्धिका परिचायक और भी दो मन्दिरका भग्वावशेष देखनेमें आता है।

पेह्कानाल-मन्द्राजभदेशके कर्ूल जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका एक दूसरा नाम 'कृष्णरायसमुद्र' नन्द्रालसे तीन कोस दक्षिण-पश्चिममें वसा है। विजयनगरके राजा सदाशियके राजत्वकालमें मन्द्रिक खर्चके लिये दानज्ञाएक चेन्नकेशवस्तामीके मन्द्रिमें १४८१ शक्की और विदृपस्तामीके मन्द्रिमें १४६६ शककी उत्कीर्ण दी शिलालिप पाई गई हैं।

पेह्गाल पाड़ क्लाणा जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह दाची-पह्लीसे तीन कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां एक विचित्र शिल्पकार्ययुक्त प्राचीन मन्दिर है जिसका पुनः-संस्कारकाल १६६५ शक शिलालिपि द्वारा जाना जाता है। कई एक वीरकीर्त्ति और नागकीर्त्तिके अलावा यहां और भी शिलालिपि और दो पुराने मन्दिरका निदर्शन पाया जाता है।

पेट्टचेरकूर — कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह बापटलासे पांच कोस उत्तर-पिर्वममें अवस्थित है। यहां विविक्तमस्वामी-मन्दिरके गरुड्स्तम्मके ऊपर दो शिलालिपि और उसीके समीप कई एक शिलाफलक नजर आते हैं। इस ग्रामवासी एक व्यक्तिके पास और भी तीन ताम्रफलक हैं जो यथाकम विष्णुवर्द्ध न-महाराज मिल्लिय और वेमराज-प्रदत्त हैं।

पेइतिय्य-समुद्रम्—मन्द्राजप्रदेशके कड्य्या जिल्लान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह मदनपङ्घीसे ११ कोस उत्तर-पश्चिममें पड़ता है । यहांके कई एक प्राचीन मन्दिर और दुर्गके -ध्यंसावरोषके मध्य शिलालिपि पाई जाती है ।

पेह्पही—कृष्णाजिलान्तर्गंत एक प्राचीत नगर। यह रेपव्ल-से ७ कोस दक्षिण-पश्चिम और निजामपत्तनसे २ कोस उत्तर-समुद्रके किनारे वसा हुआ है। यहां समुद्रके किनारे चर पड़ जानेसे नगरके तीरवत्तीं स्थान पहलेकी

अपेक्षा चौड़ा हो गया है। इसी वन्दरमें अङ्गरेज-विषकींने सबसे पहले कोठीं वनवाई। १६११ ई०में कोठीस्थापन होते ही इस स्थानका पेट्टिपोली नाम पड़ा। लगभग १६६७ ई० तक इस कोठीका काम चला। वाद १७५३ ई०में निजाम द्वारा यह स्थान फरासीके हाथ आया। पुनः निजाम सलावतजङ्गने यह नगर निजामपत्तन सर-कारके अन्तर्भु क अङ्गरेजींको दे दिया।

पेह्पाड —गोदावरी जिलान्तगंत एक प्राचीन स्थान। यह इलोरासे ७ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके सोमेश्वर-मन्दिरके कल्याणमण्डपमें ११४० शककी उत्कीर्ण शिलालिपिमें मण्डपनिर्माताकी कीर्तिघोषणा की गई है।

पेद्दिवजयराम—विशाखपत्तन जिलेके विजयनगरके अधिपति । ये १७१० ई०में राज्यारोहण कर १७१२ ई०में पोतजुरसे अपनो राजधानी विजयनगरमें उठा लाये और
अपने हो नाम पर नगरका नाम रखा अत्यन्त परिश्रम और
अर्थध्यय कर उन्होंने एक दुगे वनवाया और १७५४ ई०में
चिकाकोलके फौजदार जाफरअली खाँके साथ मितता
की । वाद फरासी-सेनापित वूसीके साथ जब इनका
परिचय हुआ, तव इन्होंने उक्त मित्रता तोड़ दी । वूसीकी सहायतासे १७५७ ई०में वोविलीके शासनकर्ताको
पराजित और निहत कर अपनी वैरताका वदला लिया।
उनको यह विजयक्याति वहुत दुर तक नहीं फैली थी।
गुद्धाचसानके तीसरे ही दिन रातको ये गुप्त शृतु द्वारा
अपने शिविरमें मार डाले गये। विजयनगर देखो।

अपन शिवरम मार डाल गर्न । राजास र र पेह्वेगी—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेका एक प्राचीत नगर । यह इलोरासे तीन कोस उत्तर अवस्थित हैं। बेङ्गी तैलङ्ग राजाओंकी यहाँ राजधानी थी। ६०५ ई०में चालुक्यराजने उन्हें परास्त कर मार मगाया। ताझ-शासनसे जाना जाता है, कि चालुक्योंसे पहले ४थी शताब्दीमें यहां शालङ्कायन-चंशीय नरपतिगण राज्य करते थे (१)। बेङ्गीराज्य दक्षिण भारतमें एक प्राचीनतम राज्य

⁽¹⁾ Indian Antiquary, Vol. V, p. 177 रहेनी। के इस राजन शका उन्हेल न कानेके कात्य, मुनेंड बाइन बनका राजलकाल २री शतान्दीमें बतलाते हैं।

है। पल्लबनंशीय राजा यहां राजत्व करते थे। काञ्चीपुरके पल्लव राजाओं के साथ इनका सम्बन्ध है (२)।
जान पहता है, कि वालुक्यक तुँक वेङ्गी-विजयके वाद ही
काञ्चीपुरमें पल्लवों का आधिपत्य फैला। इस पेहवेगी के
निकटवर्ती चिन्नवेगी और पांच मील दक्षिण-पूर्व देएडलूह नामक नगर तक फैले हुए स्थानके घ्वंसावशेषसे
इसके प्राचीनत्वकी कल्पना की जाती है। प्रवाद है, कि
मुसलमान राजाओं ने बेगी और देएड इसके घ्वंसावशेषसे
इलोरादुर्भ वनवाया था।

पेद्दल्ली—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां बहुत-सी प्राचीन कीर्त्तियोंका मिद-शैन मिलता है। स्थानीय नदीके वीचमें रङ्गस्वामीका मन्दिर प्रतिष्टित है।

पे हापुर—गोदावरी जिलेके पेहापुर तालुकका सदर। यह अक्षा० १७ ४ ५५ उ० और देशा० ८२ १० ३५ पू०, राजमहेन्द्रीसे १२॥ कोस पूर्वोत्तरमें अवस्थित है। यहां मृत्तिका और प्रस्तरनिर्मित एक दुर्गका निदर्शन मिलता है। उसके अभ्यन्तरमागस्थ गृहादिमें काठकार्ययुक्त काम्र-शिल्पनैषुण्य है।

पेन (हि॰ पु॰) छसोड़े की जातिका एक बृक्ष जो गढ़-बाछमें होता है। इसकी छकड़ी मजबूत होती है। इसे 'कूम' भो कहते हैं।

पेनगङ्गा (वेनगङ्गा)—वेरार राज्यके अन्तर्गत एक नदी।
बुळदाना जिलेके पिवमवर्ची देवलघाट पर्वतके दूसरे
किनारेसे यह निकलती है और माहुरके समीप उत्तरमुखी
हो कर पूर्वकी ओर कुछ टेड़ी हो गई है। स्थानीय प्रवाद
है, कि जामदण्य परशुरामने यहीं पर तीर फेंका था, इसी
लिए स्रोतकी वकगति हुई है। जनसाधारणमें यह स्थान
पवित्व और पुण्यक्षेत्र माना जाता है। यहांके जलप्रपात
सहस्रकुएड नामसे प्रसिद्ध है और नदीस्रोत भी वांचगङ्गा कहलाता। यह नदी नाना वन अधित्यका उपत्यका पार करती हुई जगादनगरके समीप वर्दा नदीमें
मिल गई है। अरान और अर्णा नामको इसकी दो
शासारों हैं।

पेनी (अं ॰ स्त्री॰) इङ्गलैएडमें चलनेवाला तांवेका सिका जो एक शिलिङ्गका वारहवाँ भाग होता है। यह भारतके प्रायः तीन पैसोंके वरावर मृत्यका होता है।

पेनीवेट (अं॰ पु॰) एक अंग्रेजी तौल जो लगभग १० रत्तीके वरावर होती है।

पेनुगोएडा—गोदावरी जिलेके तुनुक् तालुकान्तर्गत एक गएडग्राम। यह सद्रसे ४ कोस दक्षिणपूर्व अवस्थित है। यहां तीन सुप्राचीन मन्द्रिक अलावा वसविकन्याका और एक मन्दिर है। कन्यकापुराण नामक स्थलपुराणमें उक्त मन्दिरका माहात्म्य वर्णित है।

पेन्ताकोट—मन्द्राज प्रदेशके विशास्त्रापत्तन जिलेके सब-सिद्धि तालुकान्तर्गत एक श्रुद्ध ग्राम । यहां नमक और अन्यान्य द्रध्यके कारखाने हैं। जहाज पर माल लादनेके समय नदीका मुख वन्द कर दिया जाता है।

पेन्द्रव—१ मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेके उत्तरभाग-स्थित एक सामन्त राज्य । यह विन्ध्यपर्यतके अभित्यका-देशमें अवस्थित है । भूपिरमाण ५८५ वर्गमील है । यहांके सरदारमण राजगोंड्वंशीय हैं । शासनकत्तांसे इन्होंने यह सम्पत्ति पाई थी ।

२ उक्त राज्यका सदर । यह अञ्चा० २२' ४७ उ० और देशा० ८२' पू०के मध्य, विलासपुरसे रेवा जानेके रास्ते पर अवस्थित हैं । इसी लिए यह स्थान वाणिज्यका केन्द्रस्थल हो गया है । यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसा-वशेष आज भी देखनेमें आता है ।

पेन्धात् युक्तप्रदेशके मैनपुरी जिलान्तर्गत वक गएडप्राम । जोकैयामें पवित्रक्षेत्रके महामेलेके उपलक्षमें धार्मिकोंके समागमके लिए ही यह स्थान प्रसिद्ध है। पुत्रप्राप्तिकी कामनासे सैकड़ों वन्ध्यानारी यहां भाती हैं।

पेन्धारा—कर्णाटवासी तृणविक्रयी जातिविशेष । घास काट कर वेचना हो इन लोगोंका कार्य और एकमाल उप-जीविका है; इसलिए इनका नाम ऐसा पड़ा है (१)। ये लोग पहले हिन्दू थे, वादमें इस्लाम धर्ममें दीक्षित हुए हैं और अपनेको सुन्नीके हनीफीसम्प्रदायभुक्त वतलाते हैं। ११वीं शदाब्दीके प्रारम्भमें ये लोग दल वाध कर

⁽R) urnell's S. Ind. Patacography, p. 15

⁽१) स्थानीय 'पेन्थ' शब्दका अर्थ चामका गुन्छ। है।

भारतमें चारों ओर फैल गए और दस्युवृत्ति, अत्याचार प्रभृति द्वारा गृहादि दम्ध और नाना यन्त्रणा दे कर ग्राम- वासियोंको उत्कण्डित किया। ये खोपुष्ठप दोनों ही लम्बे, मजबूत और काले होते हैं। हिन्द्री, मालबी और मराठी हो इनकी ग्राम्य-भाषा है। ये लोग कर्मठ और परिश्रम- शील होते हैं, किन्तु अतिरिक्त मद्यपायी और खभावतः ही अपरिकार रहते हैं।

स्वज्ञातिमें ही ये लोग विवाहादि करते हैं। विवाह भौर अन्त्येष्टिके समय ये काजोका आश्रय लेते हैं, किन्तु अन्यान्य कार्योंमें अपनेमेंसे किसी एकको जमादार वा मड़र बना कर बात तय करते हैं। मुसलमानोंसे इनका पार्थक्य यही है, कि ये लोग गोमांस नहीं खाते और हिन्दू देवदेवीकी पूजा तथा पर्वापलक्षमें उपवासादि करते हैं। यहलामादेवीके प्रति इनकी खूब भक्ति है। नाना जाति-के मेलसे इस सङ्करजातिकी उत्पत्ति हुई है।

पेन्घारी-पण्डारी देवी।

वेसकोएड (वेनुकोएडा)—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत पेत्रुकोएड तालुकका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० १८' ५' १५" उ० और देशा० ७९' ३८' १०" पू॰में अयस्थित है। यहांका गिरिदुर्ग खुन्दर और सुर-क्षित है। १५६५ ई०में तालिकोटकी लड़ाईमें मुसल-मानोंसे पराजित हो कर विजयनगरके राजाने इस पहाड़ी दुर्गमें आश्रय लिया। यह दुर्ग दानेदार (Granite) पत्थरसे वना हुआ है। ध्वंसावशिष्ट राजवासाद, भास्कर-शिल्प और हिन्दूमुसलमानोंके जीणैमन्दिर तथा मस्जिद्-के स्मृतिचिह्न इधर उधर पड़े हैं। कालके स्रोतमें गत-प्राय गन्यामहल नामक राजप्रासाद आज भी पूर्वकीर्ति-के गौरवको सूचना देता है। इसका भित्ति भाग प्राचीन हिन्दृशिल्पका परिचायक और स्थानीय महादेव-मन्दिर-का समकालत्रचीं-सा प्रतीत होता है। उपरितलकी .गद्धन देखनेसे परवत्तीं मुसलमान-राजत्वकालमें निर्मित और तत्कालीन शिल्पसे परिपूर्ण जान पड़ती है। शेर .अलीकी मस्जिद उन सर्वोमेंसे श्रेष्ट और सुन्दर है। यह अद्यासिका काले पत्थरकी वनी हुई है। इसके पीछे पर्वत[े] शृङ्ख लगभग ६०० पुट उंचा है। जगह जगह पर मिल्जिद्, मिनार, पान्थशाला, समाधिमन्दिर, चूड़ास्तम्म

(Tower), प्रस्तरस्तम्भ और अन्यान्य प्राचीन कीर्ति-का ध्वंसावशेष नजर आता है। नगरके मध्य दो जैन-मन्दिरोंमेंसे एकमें आज भी पूजाषाठ होता है। दुर्गके बीच दो प्राचीन मन्दिरोंका कारकार्य वहुत सुन्दर है— समस्त भारतमें ऐसा स्ट्मकार्य विरल है। दुर्गके उत्तर-द्वारके एक कोनेमें हनुमान्की एक प्रकाएड मूर्चि पड़ी है (१)। यहां बहुत-सी प्राचीन शिलालिपियां पाई गई हों। इनमेंसे कितनी ही दुर्गप्रान्तमें और कई एक गोपाल-खामी, आञ्चनेय, रामस्वामी, केशवस्वामी तथा अविमुक्त-ध्वर-स्वामीके मन्दिरमें और सत्यभोदरायल खामीके मठमें एक शिलालिपि देखनेमें आती है। शेरशाहकी मिन्दरमें में १४८६ शकका उत्कीर्ण एक शिलाफलक है। यह फलक या तो मुसलमानविजेता मस्जिद-निर्माणकालमें अन्य स्थानसे लाये हों, अथवा उन्होंने प्राचीन हिन्द-कीर्त्तिके ऊपर वह मस्जिद वनवाई हो।

पेन्नार-दक्षिण-भारतमें प्रवाहित दो नदी। इनका प्राचीन नाम पिनाकिनी है। दोनों हो महिसुर राज्यके नन्दी-दुर्ग पर्वतसे निकल कर पूर्वकी ओर कर्णाटराज्यमें बहती हुई बङ्गोपसागरमें गिरी हैं। १म, नन्दीदुर्गेके उत्तर-पश्चिम चेन्नकेशव पर्यंतसे उत्तर-पिनाकिनी निकल कर लगभग ३५५ मीलके वाद समुद्रमें मिलती है। इसके पापन्नी और चित्रावती नामक दो शास्त्रा नदी हैं। १८७४ ई०में इसके ऊपरका रेलवे पुल टूट गया। मन्द्राज इरि-गेशन कम्पनीकी काटी हुई खालने कृष्णा और उत्तर-पेन्नार को मिलाया है। १८५५ ई०में इस नदीवक्षमें अनिकट वनाया गया है। कभी कभी वाढ़के आ जानेसे वहुत हानि होती है। १८८३ ई०की वाढ़ उल्लेखयोग्य है। २य, दक्षिण पिनाकिनी भी चेन्नकेश्व पर्वतसे निकल कर सेएट-डेभिड दुर्गके समीप समुद्रमें गिरी है। सकी लम्बाई करीव २४५ मील हैं। वङ्गलूर जिलेके कृषिकार्षके लिये इसका पानी पुष्करिणीमें भर कर रखा जाता है। होसकोट नामक पुष्करिणीका ग्रेरा १० मील है।

⁽१) Madras Journal, 1878, p. 866, District Manual, p. 63 और Taylor's Oriental Annual, 1840, 'यमें विस्तृत विवरण देखी।

पेताहोबिलम (पेन्नहोब्लापग)—सन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह गुटोसे १४ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन मन्दिर-में विजयनगराधिप सदाशिवके राजत्व समयमें उनके सेनापित द्वारा उत्कीण १४७८ शकको एक शिलालिप भी है।

पेन्शन (अं क्सी क) मासिक या वार्षिक वृत्ति। यह किसी व्यक्ति अथवा परिवारके लोगोंको उसकी पिछली सेवाओंके कारण दी जाती है। जो मनुष्य कुछ निश्चित समय तक किसी राजकीय विभागमें काम कर चुकते हैं, उन्हें वृद्धावस्थामें नौकरीसे अलग होने पर, कुछ वृत्ति दो जाती है जो उनके वेतनके आधेके लगभग होती है। सेनाविभागके कर्मचादियोंके मारे जाने पर उनके परिवारवालोंको अथवा किसी राज्यको जीत लेने पर उस राजकुलके लोगों और उनके वंशजोंको भी हसी प्रकार कुछ वृत्ति दी जाती है। इसी प्रकारकी वृत्तियी 'पेनशन' कहलाती हैं।

पेन्शनर (अं ॰ पु॰) पेन्शन पानेवाळा व्यक्ति, वह जिसे । पेन्शन मिळती हो ।

पेन्सिल (अं ० स्रो०) लिखनेका एक प्रसिद्ध साधन जिससे से विना दाबात या स्वाहीके ही लिखा जाता है। यह प्रायः सुरमे, सोसे, रंगोन खड़िया या इसी प्रकारकी और किसो सामग्रीकी वनी हुई पतली लम्बी सलाई होती है जो या तो कलमके आकारकी गोल लम्बी लकड़ीके अन्दर लगी हुई होती है, या किसी धातुके खानेमें अटकाई होती है।

पेन्हाना (हिं क्रिं०) वहनाना दे हो ।

पेपर (सं• पु॰) १ संवाद्पत्त, असवार । २ द्स्तावेज, तमस्तुक, सनद या और कोई छेब जो कागज पर छिखा हो । ३ कागज ।

पेपरमिट (हिं पु॰) विपरभिट देखी।

पेनचा (हिं पु॰) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा।

पेय (सं० क्ली॰) पीयते यदिति पा-पाने कर्मणि यत् । (ईद्यति । पा ६।४।६५ इति आत ईत् ततो गुणः । १ जल, पानी । २ दुम्ध, दूध । ३ अप्रविध अझके अन्तर्गत अन्नविशेष, आठ प्रकारके अन्नीमेंसे एक । ४ पीनेकी वस्तु, वह चीज जो पीनेके काममें आती है । (ति॰) ५ पातव्य, पानयोग्य, पीने छायक, जिसे पी सकें।

वेया (सं० स्त्री०) पीयते इति पा-यत् ततधाप्। १ सिक्धसमन्वित पेय द्रव्य, मांड मिर्छा हुई पीने योग्य वस्तु, चावलोंको वनी हुई एक प्रकारकी लपसी। यह पर्याय मुकावलीके मतसे पन्द्रह गुने, चकदत्तके मतसे ग्यारह गुणे, और परिभाषाप्रदीपके मतसे चौदह गुने पानीमें पका कर तैयार की जाती है। यह स्वेद और अग्निजनक तथा मूख, प्यास, ग्लानि, दौर्वल्य और कुक्षिरोगकी नाशक मानी जाती है। २ आर्द्रक, अद्रक। ३ शतपुष्पी, सोआ नामक साग। ४ कपाय। ५ खच्छ मएड, सफेद मांड। ६ श्राणा, सौंफ।

पेयूप (सं० पु०-क्की०) पीय-पाने भीयेहवन् । दण् ४।७६) इति ऊपन् बहुळबचनात् गुणः। १ अभिनव दुग्ध, नव-प्रस्ता गाभीका प्रथम सात हिनका दूध, वह दूध जो गौके वचा देनेके सात दिन वाद तक निकळता है, पेउस । आयुर्वेदमें छिखा है, कि ऐसा दूध स्वादमें अच्छा नहीं होता और हानिकारक होता है। २ अवृत । ३ अभिनव सिं, सद्य प्रस्तुत वृत, ताजा घी।

पेरज (सं० क्लो॰) उपमणिसेद। पेरं। व दे की।
पेरजागढ़—मध्यप्रदेशके बान्दा जिलान्तर्गत एक पार्वतीय भूभाग। इसकी लम्बाई और चौड़ाई यथाकम १३
और ६ मील है। यह चोमूर और ब्रह्मपुरी परगनेके मध्य
अवस्थित है। सबसे ऊँ वे शिखरके नाम पर ही इस
पर्वतमालाका नाम पड़ा है। इस शिखरदेशसे 'सातबहिनी' नामक सप्त जलघारा वहती है। प्रवाद है, कि
पर्वतम्ब्रङ्गस्थ गुहामें सात वहन तपस्या करती थीं। उक
सप्तधारा उनकी स्मृतिका चिह्न है। पर्वतकी उपत्यकाभूमिमें कहीं कहीं धानकी खेती होती है।

पेरना (हिं० किं०) १ आवश्यकतासे वहुत अधिक विलम्ब करना, किसी काममें बहुत देर लगाना । २ दो भारी तथा कड़ी वस्तुओं के वोश्वमें डाल कर किसी तीसरी वस्तुको इस प्रकार दवाना कि उसका रस निकल आवे । ३ कष्ट-देना, वहुत सताना । ४ किसी वस्तुको किसी यन्त्रमें डाल कर घुमाना । ५ प्रेरणा करना, चलाना । ६ पठाना, मेजना । पेरम्बलूर—१ मन्द्राज प्रदेशके तिचिनापछी जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ६८६ वर्गमील है और सभी स्थान प्रायः समतल है। इसके उत्तराई की मिट्टी काली और कठिन तथा दक्षिणाई की पर्वतमय है। यहां रागी (Eleusine Corocane), कांगनि (Pacicum miliaceum) और कंग्र (Pennisetum typhoideum) आदि श्रस्योंकी खेती होतो है। उपविभागके करीव आधे स्थानमें कपास उपजता है।

२ उक्त उपविभागका सदर और प्रधान नगर। विचिनापल्लीसे मन्द्राज जानेके रास्ते पर वसा है। पेरम्वाकम्---मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपत जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२ ५४ ३० उ० और देशा० ८० १५ ४० पूर्वे मध्य काञ्चीपुर नगरसे प्रायः ७ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासी समी हिन्दू हैं । १७८० ई०में यहां अङ्गरेज-सेनाओं पर वड़ी विपत्ति पड़ी थी। कर्नल बेली ३७०० सेना ले कर जव यहां आये, तव हैदरअलीने उन्हें घेर लिया और सर्वोक्ती . जानसे मार डाला । १७८१ ई॰में सर आयर कूटने यहीं पर हैदरकी सेनाको परास्त कर सेलिनगढ़ तक खदेड़ा। पेरलक्षेत्र-दाक्षिणात्यके समुद्रतीरवर्त्ती एक प्राचीन तीर्थ । टलेमो यह स्थान Paraba नामसे उल्लेख कर गए हैं। कोई कोई तक्षीर जिलेके कोलेवण-नदीतीरवर्ती स्थानको ही पेरलस्थल वतलाते हैं। यहां एक ग्राचीन विष्णु-मन्दिर है जो हिन्दुओंके मध्य परम पवित्र स्थान गिना जाता है।

स्कन्दपुराणके पेरकस्थल-प्राहात्म्यमें विस्तृत विवरण देखों। पेरली (हिं० स्त्री०) ताएडच-मृत्यका एक भेद । इसमें अङ्गविक्षेप अधिक होता है और अभिनय कम। इसे 'देशी' भी कहते हैं।

पेरविल — मन्द्राज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक नगर।
यह रेपलीसे ५ कोस उत्तर-पश्चिममें वसा है। यहां चोल
राजाओंके प्रतिष्ठित दो प्राचीन मन्दिर देखनेमें आता है।
मन्दिरगालमें एक शिलालिप और निकटवर्ची आरादिम्मपुरमें कई एक ताम्रशासन हैं।

पेरवा (हिं पु॰) पेरनेवाला, वह जो कोल्ह आदिमें कोई चीज पेरता हो। पेरवाह (हिं पु॰) पेरवा देखी।

पेरा (हिं॰ पु॰) १ पोतनी मिट्टी, एक प्रकारकी मिट्टी जिससे दीवार, घर इत्यादि पोतनेका काम लिया जाता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए होता है। २ पेड़ा देखों।

पेरियप्पा—एक नाट्यकार । ये यहरामके पुत्र और राम-भद्रके समसामयिक थे । इन्होंने 'श्रङ्गारमञ्जरी-शाह-राजी' नामक एक नाटक प्रणयन किया है।

पेरिम—-वाबेळमएडव प्रणाळीस्थित एक द्वीप । यह अख-उपकूछसे १॥ मोल और अफ्रिका-उपकूछसे ६ मील दूर में, अक्षा॰ १२ ४० उ० उ० और देशा॰ ४३ २३ पूर्वमें अवस्थित है। इसकी लम्बाई और चौडाई यथाकर आ और १। मील है। यह स्थान अङ्गरेजोंके अधिकृत आदन-गवर्मेण्टके शासनाधीनमें है । यह द्वीप प्रायः पर्वत-मय है। आम्नेयपर्वत-निःस्त भस्मावशेषसे इसकी उत्पत्ति ह़ है। ऊपरमें सिर्फ २४५ फ़ुट ऊंचा एक पहाइ नजर आता है जिसका अपरांश समुद्रमें डुवा हुआ है। द्वीप-पृष्ठके अन्यस्थलमें जो देखा जाता है, वह स्थलविशेष पर पत्थर वन्धी हुई सतहकी तरह मालूम पड्ता है। किन्तु द्वीप इस प्रकार पर्वतात्रभागमें हिथत होने पर भी इसकी तीरभूमिमें जहाजादि लगानेके लिये वन्द्रगाहकी नाई उपयुक्त स्थान है। पेरिप्लस प्रन्थमें यह द्वीप 'दीवोदी-रस द्वीप' और अरववासी कर्ने क 'मयुन' नामसे अभिहित है। १५१३ ई०में पुर्त्तगीज-सेनापति अलब्कर्क लोहितसागरसे लौटनेके समय इस द्वोपके उच स्थान पर खृष्टका 'कूश' स्थापन कर इसका भेराकू ज नाम रख गये हैं। पीछे यह स्थान वाणिज्यविद्वे पी दस्यु लोगोंने अधिकृत हुआ। यह दस्युद्छ सर्वदा छोहितसागरके मुख पर पण्यद्रव्य लूटनेके लिए घुमता फिरता और इसी द्वोपमें आश्रय छेता था। उन लोगोंने यहां दुर्गादि स्थापन कर रहनेको विशेष चेष्टा की, किन्तु अत्यन्त परि-श्रमसे ६० फुट पर्वत खोदनेसे भी पानी न निकला। वाद वे इस स्थानको छोड़ कर मेरीद्वीपमें जाने को वाध्य हुए । १७६६ ई०में इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने इस स्थान पर अपना द्खल जमाया । उसी समय फरासीसैन्य टीपूर्क साथ मित्रता करनेकी इच्छासे इजिप्टराज्यमें अपना प्रभाव फैला रही थी।

'खेज कैनल' काटनेके वाद् लोहितसागर हो कर यूरोपीय वाणिज्यपोत जाने आनेमें सुविधा हो जानेसे भारतगवमेंएटने १८५९ ई०में यहां एक 'लाइट-हाउस' वनानेके लिए पुनः यह द्रोप अपने कन्जेमें कर लिया। १८६१ ई०में आलोकवाटिका साथ साथ एक छोटा सैनि-कावास भी वनाया गया।

पेरिम—फाम्बे उपसागरिक्धत एक छोटा द्वीप। इसकी लम्बाई १८०० गज और चौकाई ३००से ५००गज है। यह अक्षा० २१ इर्ड उ० और देशा० ७२ २३ ३० पूर्वके मध्य समुदोपक्छसे १। कोस दूरमें वसा है। पेरिष्ठसमें यह द्वीप वाहओनस (Baionas) नामसे प्रसिद्ध है। यह द्वीप पर्वतमय है। भूतस्वविद्वनण इसे टार्टियारी स्तरसे उन्नत बतलाते हैं। इस द्वीपके दक्षिणपूर्वभागमें कितने हो बृहदाकार जीवोंकी प्रस्तरास्थि पाई जाती है। १८६५ ई०में यहां एक आलोकगृह वा 'लाइट हाउस' वनाया गया है। ज्वारके समय भी इसकी ऊंचाई लगभग १०० फुट रहती है; २० मील दूरवत्तों जहाज पर अलोकरिय हेवनेमें आती है।

पेरिया—१ मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक गिरि-सङ्कट। यह अक्षा॰ ११ १५ उ० और देशा॰ ७५ ५० पूर्वके मध्य, कन्तन्र्से सामन्तवाड़ी जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

२ मन्द्राजप्रदेशवासी नीच अरूपृश्य जातिविशेष । परिया देखी ।

पेरियाकुलम्—१ मदुरा जिलान्तर्गत एक उपविभाग । भूपरिमाण ११६६ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका सद्र और प्रधान नगर। यह वराइनदीके किनारे वसा है।

पेरियापाटन—१ महिसुर राज्यके अन्तर्गत एक उपविभाग।
इसका दूसरा नाम हुनसूर है और भूपरिमाण 88% वर्गमोल है। इसके उत्तर-पिक्वममें कावेरी नदी और
दक्षिण-पूर्वमें लक्ष्मणतीर्थं नामक पुण्यसिलला स्तोतिस्तिनी
वहती है। यहांका पट्टरपुर-गिरिश्टक्स समुद्रपृष्ठसे ४३५०
फुट ऊँ चा है।

२ उक्त उपविभागका सदर । १८६५ ई०में हुनसूर नगरमें सदर कचहरी चले जानेसे यह स्थान एक गएड- प्राममें परिणत हो गया है। यह स्थान वहुत प्राचीन है, इसका पूर्वनाम था 'सिहपाइन'। १२वीं शताब्दीमें किसी चोल राजाने यहां प्रक्र मन्दिर और पुष्करिणोकी प्रतिष्ठा की। १६५६ ई०में कुर्गराजने एक दुर्भ वनवाया। महिस्सुर हेन्द्रराजसरदारने पेरिया-उदयाके इस दुर्भ पर अधिकार कर प्रस्तर द्वारा उसका पुनर्निमाण किया जिसका ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान है। हिन्दू-सेना-पितने पेरिया-उदयाका सिहपत्तन नाम वदल कर अपने नाम पर पेरियापाइन एका। टीयू-सुलतानके राजत्व-कालमें यहां कुर्ग और महिसुरकी सेनाका युद्ध हुआ। अङ्गरेजींने तीन वार इस स्थान पर दखल जमाया। १७६१ ई०में जनरल प्वारक्षमिकी गति रोकनेके लिए टीयूने इस नगरका कुछ अंश जला दिया था।

पेरियार—तिवांकुड़ राज्यमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा॰ १० ४० उ० और देशा॰ ७६ ५६ पू॰से निकल कर कोड़कूलूरके समीप समुद्रमें गिरी है। मल्लाई, शेर-धानी, पेरिक्नकोठाई, मुद्रपत्ती, कुन्दनपाड़ा, और एहा-मलय आदि कई एक शाला नहीं उल्लेखयोग्य हैं।

पेरिस—फ्रान्सकी राजधानी। पारिष तथा फ्रान्स देखो। पेरी (हिं० स्त्री॰) पीले रंगमें रङ्गी हुई धोती जो विवाहमें वर या वधूको पहनाई जाती है। इसे पियरी भी कहते हैं।

पैद (सं० पु॰) पीयते रसानिति पीङ् पाने । (मिपीभ्यां हः। उण् ४१९०१) इति ह । १ अग्नि, आग । २ सूय । ३ समुद्र, सागर । (ति०) ४ रक्षक, वचानेवाला । ५ पुरक, पुरा करनेवाला ।

पेष दक्षिण-अमेरिकाके अन्तगत एक खाधीन राज्य। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक स्मृतिचिह देखनेमें आते हैं। अमेरिका देखो।

पैच-पीह देखी।

पेरुक (सं॰ पु॰) एक राजाका नाम।

पेकाङ्गी—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्काट जिलेका एक प्राचीन स्थान। यह वालजापेटले 8॥ कोस उत्तर-पूचमें वसा है। यहां जैन-धर्माबलिक्योंका प्रधान अड्डा था। आज भो जैन-प्रतिस्नूचि नाना स्थानोंमें विक्षित दिखाई पड़ती है। यहाराजूँने इस स्थानके एक प्राचीन शिक्ष-मन्दिरका जीणेसंस्कार किया। पेश्नगर—मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपत् जिलेका एक प्राचीन नगर। यह महुरान्तकसे धा कोस उत्तर-पिश्चम-में अवस्थित है। यहां नाना कारुकार्ययुक्त एक प्राचीन शिवमन्दिर है। एक ध्वंसावशिष्ट जैनमन्दिरके कितने हो प्रस्तरखण्ड यहांके प्राचीन विष्णुमन्दिरके गावसंलग्न देखनेमें आते हैं। यहां कुछ शिलालिपियां भी हैं। पेरुन्दलयूर—कोयम्बतुर जिलेका एक प्राचीन नगर। यह सत्यमङ्गलम्से १० कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां के प्राचीन शिवमन्दिरमें कई एक शिलालिपि हैं जिनमेंसे एक सुन्दरपाण्ड्यदेवके शासनके तेईसवें वर्षमें उत्कीण है। मन्दिरके खर्चके लिए महिसुरराज कृष्णराज उदयारका दिया हुआ एक शासन है।

पेस्टिंद्रं—कीयम्बतुर जिलेका एक प्राचीन नगर। यह इरोद्से पांच कोस दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है और यहां एक रेलवेस्टेशंन है। यहां एक प्राचीन विष्णुमन्दिर और परवर्ती विजयमङ्गळग्राममें एक जैन मन्दिरका ध्वंसावशेष देखा जाता है।(१)

परमाल—दाक्षिणात्यके तिवांकुड़ (केरल) राज्यका पक प्राचीन राजवंश । तिवांकुड़का इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि परशुरामाधिष्टित नम्युरियोंका आधिपत्य जव शेव हो नया, तव तह शीय ब्राह्मणगण प्रति १२ वर्ष पर एक क्षतिय राजा निर्वाचित करने लगे । इसके वाद पेरुमाल वंशका आविर्माव हुआ । इस वंशके प्रसिद्ध राजा चेर-मान पेरुमाल चेरराज्यके अधीन सामन्तरूपसे उक्त प्रदेश-का शासन करते थे । उनको मृत्युके वाद केरलराज्य वंट गया और तिरुवनकोडू-नगरमें सवसे वड़ की राज-धानी स्थापित हुई । इस वंशकी चौवीस पीढ़ोमें राजा चीरवर्मा पेरुमालके राजा हुए ।

इनके बादके राजाओं का विवरण त्रिवाङ्कुर शन्दमें देखो। पेरुमालमलय—महुरा जिलान्तर्गत एक गिरिश्टङ्ग। यह पलनीसे पांच कोस उत्तर-पुवैमें वसा है। इसके पश्चिम ढालुदेशमें वहुतसे प्राचीन ध्वंसावशेष पड़े हैं।

पेरुमुकल दक्षिण आर्काट जिलान्तर्गत एक क्रचीन नगर। यह तिएडीयनसे ३ कोस पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित है।

यहां ३७० फुट ऊँचे पर्वतपृष्ठ पर एक छोटा गड़ है। पर्वतके शिखर पर एक मन्दिर भी है। पहाड़ छोटा होने पर भी आसानीसे ऊपर नहीं चढ़ सकते हैं। १७५६ ई०-में वन्दिवासयुद्धकी पराजयके वाद पुंदीचेरीकी ओर भागे हुए फरासोसियोंने इसी दुर्गमें आश्रय हिया था। अंगरेज सेनापति .कूटने पीछेसे उन पर आक्रमण किया, किन्तु वे आप हो मारे गय । पुनरुद्यमसे अङ्गरेजॉने चारों **बोरसे उन्हें** घेर लिया। अज्ञ्यसंख्यक फरासी-सेनाने गोळी-वास्द और रसादि को करके मृतप्राय हो आत्म-समर्पण किया । १७८० ई०में हैद्रअलीने इस स्थान पर चढ़ाई की, किन्तु वे कृतकार्यं न हो सके। १७८२ ई०में यह उनके अधिकारभुक्त हुआ । १७८३ ई॰में उक्त स्थान फिरले अंगरेजोंके हाथ लगा। वाद १७६० ई०में टोपू सुलतानने अंगरेजोंको हरा कर उस पर अपना दखल जमाया। पेरूर—१ कोयम्बतुर जिळान्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० १० ५८ उ० और देशा० ७९ पूर्व मध्य अव-स्थित है। कोई कोई उत्तर-चिदम्बरम्में अवस्थित रहनेके कारण इसे 'मेळ' नामसे पुकारते हैं। यह स्थान दाक्षिणात्यके एक पवित्ततीर्थमें गिना जाता है। यहां चोलराज्यके प्रतिष्टित एक प्राचीन मन्दिरके उत्पर एक दूसरा मन्दिर वना है। एक समय यह स्थान हवशाल वहाल-वंशीय राजाओंके अधिकारमें था । विक्रमचोड़-देव, सुन्दरपाण्ड्य आदि राजाओंके राजत्वकालमें उत्कीर्ण अनेक शिलालिपियां भी गाई जाती हैं। मन्दिर-के चारों ओर पथघाट पर नाना स्थानोंमें प्राचीन प्रस्तर-मृत्ति और वीरकोर्त्तिज्ञापक प्रस्तरसमूह पड़े हुए हैं।

२ मलवार जिलान्तगंत एक प्राम । यह अङ्गारीपुरसे १० कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है । यहां वहुन सी प्राचीन मूर्त्तिका निद्शीन पाया गया है।

पेकर—तिन्नेवेली जिलेका एक प्राचीन स्थान । यह श्री-वैकुरुठम्से १। कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहांके प्राचीन विष्णुमन्दिरमें शिलालिपि उत्कीर्ण है।

पेरोज (सं० क्की०) उपरत्नविशेष, फीरोजा नामक एक प्रकारका वहुमूल्य पत्थर। पर्याय—हरिताश्न, पेरज। यह दो प्रकारका होता है, सहमाङ्ग और हरित। गुण— सुकपाय, मधुर, दीपन और शूलनाशक। इसके संयोगसे

⁽१) काई वोई इस ध्वंसावशिष्ट मूर्तिसमूहको व्राह्मण्यय का परिचायक मानते हैं।

स्थावर और जङ्गम-विष तथा भृतादि दोष विनष्ट पेवड़ी (हिं० स्रो०) १ रामरज, पोली रज। २ पोर्ले होता है। पेल (सं॰ क्ली॰) पेलति सदा चलतोति पेल-अच् । १ पुरुष- , पेवर (हि॰ पु॰) पीला रंग । जाना । पेलढ़ (हिं० पु०) पेल्हड देखो। पेलना (हि॰ कि॰) १ धका देना, ढकेलना । २ अवझा . करना, टाळ देना । ३ वळप्रयोग करना, जवरदस्ता | पेवसी (हिं० स्त्री०) पेवस देखी । करना । ४ प्रविष्ट करना, घुसेड़ना । ५ जोरसे भीतर पेश (सं० पु०) पिश-अच् । हप । ठेलना या घंसाना, द्वा कर भीतर घुसाना, द्वाना। पेश (फा॰ क्रि॰ वि॰) सम्मुख, सामने, आगे। ६ त्यागना, फेंकना, इटाना। ७ गुदामैथुन करना। पेशकब्ज (फा॰ स्त्री॰) कटारी। ढीलना । १ पेरना देखो । पेलव (सं० ति०) पेलं कम्पनं वातीति वा-क । १ विरल । २ क्या, दुवला। ३ कोमल, मृदु । ४ स्तम । नाशवान । ६ लघु, छोटा । पेलवाना (हि॰ क्ली॰) दूसरेको पेलनेमें प्रवृत्त करना, पे लनेका काम दूसरेले कराना । वेलना देखो । पे ला (हिं पु॰) १ अपराध, कसूर। २ तकरार, भगड़ा। ३ पे लनेकी क्रिया या भाव। ४ आक्रमण, चढ़ाई, घावा । पे लास (अं ० पु॰) मङ्गल और वृहस्पतिके वीच एक यह । यह सूर्यसे २८॥ करोड़ मीलकी दूरी पर है। चार वर्षं आड मासमें यह ब्रह सूर्यंकी परिक्रमा करता है। इसका आकार चन्द्रमाके आकारसे छोटा होता है। १८०२ ई॰में डाक्र आछवर्जने पहले पहल इसका पता लगाया था। पेछि (सं॰ पु॰) पेल-इन् । गमनशील, गन्ता, जानेवाला । पेलिन् (सं॰ पु॰) घोटक, घोड़ा। पेलिशाला (सं॰ स्त्री॰) अध्वशाला, अस्तवल । पेलू (हिं० पु०) १ पति, खार्विड्। २ उपपति, जार । ३ पेलनेवाला, वह जो पेलना हो। ४ गुदा-भञ्जन करने-वाळा। ५ जवरदस्त, बळवान्।

पेल्हड़ (हिं० पु०) अएडकोय, फोता।

पंचलकः (हिं०.पु०) रियकः देखी।

Vol. XIV 92

पेवं (हि॰ पु॰) येम।

रंगकी वकनी । चिह्नाङ्गमेद, अएडकोय। (पु॰) २ श्रद्रांश। ३ गमन, विवित्ति—अभिनयशून्य केवल अङ्गविश्लेपवाहुत्य द्वारा नृत्य। पेवस (हिं पु॰) हालकी व्याई गाय या भैसका दूध। यह वहुत गाढ़ा और रंगमें कुछ पोछा होता है। यह हानिकारक होनेके कारण पीने योग्य नहीं होता है। ८ आक्रमण करनेके लिये सामने छोड़ना, आगे वढ़ाना, पेशकश (फा॰ पु॰) १ सीगात, तोहफा। २ नजर भेंट। , येशकार (फा॰ पु॰) हाकिमके सामने कागज पत्र पेश करके उस पर हाकिमकी आज्ञा लिखनेवाला कर्मचारी, किसी दफ्तरका वह कार्यकर्ता जो उस दखरके कागज पत अफसरके सामने पेश करके उन पर उसकी आज्ञा छेता है। पेशकारी (फा० स्त्री०) १ पेशकारका काम। २ पेश-कारका पद् । पेशक्षेमा (फा॰ पु॰) १ फौजका वह समान जो पहछेसे ही आगे भेज दिया जाय, सेनाकी खेमा तम्बू आदि वह आवश्यक साम्रशे जो उसके किसी स्थान पर पहुंचनेसे पहले उसके सुभीतेके लिये भेजी जाती हो । २ हरा-वल, फीजका वह अगला हिस्सा जो आगे आगे चलता है। ३ किसी वात या घटनाका पूर्व लक्षण। पेशगी (फा॰ स्त्री॰) पुरस्कार या मजदूरी आदिका यह अंश जो काम होनेके पहले ही दिया जाय, अगौडी, अगाऊ। पेशतर (फा॰ क्रि॰ वि॰) पूर्व, पहले। पेशताख (फा॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी मेहराव। यह अच्छी इमारतोंमें द्रवाजेके ऊपर और आगेकी ओर निकली हुई वनाई जाती है। पेशदस्त (हिं पु०) वेशकार देखी। पेशहस्ती (फा॰ स्त्री॰) जवरदस्ती, ज्यादती, वह अनुः चित कार्य जो किसी पश्की ओरसे पहले हो। पेशबंद (फा॰ पु॰) चारजामेमें लगा हुआ वह दोहरा बन्धन

जो घोड़ेकी गईन परसे छा कर दूसरी ओर वांध दिया जाता है। इस वन्धनके कारण चारजामा घोड़ेकी दुम-की ओर नहीं खिसक सकता।

पेयावंदी (फा० स्त्रो०) १ पूर्व चिन्तित युक्ति, पहलेसे किया हुआ प्रवन्ध या वचावकी युक्ति। २ छळ, धोखा। पेराराज (फा० पु०) पत्थर डोमेवाळा मजदूर, वह मजदूर जो राज वा मेमारके छिये पत्थर डो कर छाता हो। पेराळ (खं० वि०) पेरा-अवयवे मावे चन्न, पेरां छातोति छा-क, वा पे शोऽस्थास्तीति सिध्मादित्वात् छच्। १ चारु, मनोमुन्धकारी, मनोहर, सुन्द्र। २ दक्ष, प्रवीण, चतुर। ३ धूर्त, चाळाक। ४ कोमछ। (पु०) ५ विष्णु।- अमरशैकाकार भरतने छिखा है, कि 'पेशळ' शब्द ताळ्य श, मूर्ड एय प और दन्त्य सं इन तीन सकारके मध्य ही होगा अर्थात् 'पेशळ, पेथळ, पेसळ' इस प्रकार होगा। ६ सौकुमार्थ, सुकुमारता, नजाकत। पेराळता (सं० छो०) १ सौकुमार्थ, सुकुमारता, नजाकत। २ सौन्द्र्य, सुन्द्ररता, खूवसूरती। ३ धूत्तता, चाळाकी।

पेशलत्व (सं॰ ह्ली॰) ये शलस्य भावः त्व । ये शलता, पेशलका भाव चा धर्म ।

पेशया—प्रधान राजमन्तो। छत्रपति शिवाजीके आदेश-रचित "राजव्यवहारकोप" नामक पारसीक संस्कृत अभियानमें लिखा है,— 'प्रधान: पेशवा तथा।" प्रधान किसे कहते हैं और उनका कार्य क्या है, इस सम्बन्धमें शुक्रनीतिस प्रहमें इस प्रकार लिखा है।

"पुरोधारच प्रतिनिधिः प्रधानः सचिवस्तथा।
मन्द्री च प्राङ्विवाकरच पण्डितरच सुमन्द्रकः॥
अमात्य दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो द्रश ॥"
"सर्वद्शीं प्रधानस्तु सेनावित् सचिवस्तथा॥" ८४
"सत्यं वा यदि वासत्यं कार्यजातज्ञ यत् किल।
सर्वेवां राजकृत्येषु प्रधानस्तद्विचिन्तयेत्॥" ८६

इससे जाना जाता है, कि समस्त राजपुरुपोंकी अनुष्ठित कार्यायळीके जो परिदर्शक है तथा सब प्रकार-राजकार्य विषय जो अच्छी तरह जानते थे, वे ही प्राचीन-काळमे 'प्रधान' कहळाते थे।

बुसलमान राजाओंके विशेषतः दाक्षिणात्यके सुल-

तानोंके प्रधान मन्तिगण पेशवा नामसे ही पुकारे जाते थे। किन्तु पेशवा शब्द उस समयके भारत-इतिहासमें उतना प्रसिद्ध नहीं था। महाराष्ट्र-साम्राज्यके प्रतिष्ठता छतपति शिवाजीके प्रधान मन्त्री भी पेशवा उपाधिले परिचित थे। महाराज शिवाजीने अपने राज्याभिषेक-कालमें उस उपाधिके वदले प्राचीन हिन्दूनीतिशास्त्रका अनुसरण करके "पिएडतप्रधान" उपाधिका प्रवर्त्तन किया । उनके मरनेके वाद समस्त महाराष्ट्र-राजमन्त्रियोंने पिएडत-प्रधान'-की उपाधि धारण कर ली थी। परन्तु इतना होने पर भी पारसिक पेशवा शब्दका प्रचार हास नहीं हुआ। वरन शिवाजीके पौत महाराज शाहुके राजत्वकालमें देशमें पारसिक शब्दके समधिक प्रचारके साथ 'पेशवा' शब्दका पुनः राज-दरवारमें प्रचार हुआ। किन्तु इस पर भी इतिहासमें 'पेशवा' शब्दकी प्रधानता प्रतिष्टित नहीं हुई। शाहुके राजत्वकालमें उनके प्रधान मन्त्री वालाजी विश्व-नाथकी मृत्युके वाद उनके पुत प्रथम बाजीराव और पीछे वाजीरावके पुत वालाजी वाजीरावने कार्यंद्स्ता और बुद्धिमत्ताके गुणसे पेशवाका पद प्राप्त किया। महा-राज शाहुकी परलोक-शाप्तिके वाद उनके वंशमें नितान्त अकर्मण्य पुरुषपरम्पराका आविर्भाव हो जानेसे उनके मन्त्रिवंशका प्रभाव दिन दुना रात चौगुना वड़ने छगा। सच पृछिये तो उन्हों ने हो महाराष्ट्र-समाजका नेतृपद ग्रहण किया। इस कारण उन छोगों के मध्य उत्तरोत्तर समधिक क्षमताशाली व्यक्तियोंका जन्म हेनेसे तथा समस्त भारत-साम्राज्यमें उनकी विजय-वैजयन्तीके फह-रानेसे "पेशवा" नाम इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध हो गया ।

मुसलमानी अमलदारीमें साधारणतः मुसलमान लोग ही पेशवाके पद पर नियुक्त होते थे। १७वीं शतान्दी-को महाराष्ट्रदलमें नवशक्तिका सञ्चार होनेसे जब उन्होंने मुसलमानोंका शासन-श्रृङ्खल उच्छेद कर खदेशको खाधीनतारत्वसे भूपित कर दिया, तब महाराष्ट्रवासी योग्य व्यक्तियोंके भाग्यमें खदेशीय राजोंके अधीन गीरवकर पेशवा-पद और पेशवा-उपाधिका लाभ घटने लगा। किन्तु दाक्षिणात्यमें मुसलमानी अमलमें भी दो एक महाराष्ट्रीय अपने असाधारण कार्यगुणसे अति उच- पद पर नियुक्त होते थे। इनेके मध्य 'कम्बरसेन' नामक एक व्यक्तिने निजामशाही वंशके सुलतान बुर्हानशाह नामक राजाके प्रधान मन्त्री वा पेशवा पद पाया था। सुतरा महाराष्ट्रियोंके मध्य वे ही सर्वप्रधान पेशवामें गिने जाते थे।

'क्रव्य (-धेन'-फिरिस्ताके इतिहासमें इनका नाम आया है। फिरिस्ताके अनुवादकों मेंसे किसीने इन्हें 'कम्बर-सेन' और किसीने "कोङ्गारसेन' वतलाया है। दोनों नाममेंसे किसोका भी स्पष्ट अर्थ मालूम नहीं पड़ता। हिन्दूका नाम रखनेमें मुसलमान और अङ्गरेज-लेखक जैसी भूळ करते हैं, वह किसीसे छिपा नहीं है। कोङ्गारसेन वा कुमारसेन यह नाम वैदेशिक छेखक और अनुवादकोंके हाथसे विकृत हो कर कौंयेरसेन वा कम्कर-सेन हुआ है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जो कुछ हो, कुमारसेन वा कम्बरसेन जातिके ब्राह्मण थे। अह्मदनगर-के निजामशाही राजवंशके प्रतिष्ठाता अह्यदशाहके पुत बुर्हान निजामशाहके (१५०८से १५५३ ई०) राजत्व-कालमें प्रादुभू त हुए। उनकी प्रतिभा, धर्मभीरुता, दूर-वर्शिता और राजनीति-नियुणता आदि गुण देख कर निजामशाह उनकी बड़ी खातिर करते थे। उस समयके भन्ती पेशवा शेखजाफरके अत्याचारसे प्रजा वड़ी ही उत्पीड़ित हो ताहि ताहि करने लगी । यह देख कर सुलतानने उन्हें अव्चयुत कर कम्बरसेनको उस पद पर प्रतिष्ठित किया। यह घटना १६२६ ई०में हुई थो। कम्वरसेनके नीतिकौशलुसे बुर्हानशाह प्रतिद्वन्द्री स्वेदारीं और विह्वीश्वरके हाथसे आत्मरक्षा और मरहुठा-राजाओंका विद्रोह समन करनेमें समर्थ हुए थे।

इसके बाद सी वर्षके भीतर किसी भी महाराष्ट्रीय-ने किसी दरवारमें पे शवा'-की उपाधि नहीं पाई। १७वीं शताब्दीमें महातमा शिवाजी जव मुसलमानोंके हाथसे एक एक कर सभी प्रदेशोंका उद्धार करने छगे, उस समय मरहटोंका भाग्य फिर चमका और एक एक कर अपनी योग्यताके अनुसार उच्चपदको प्राप्त होते गये।

श्यामराज नीलकण्ड रञ्जक नामक एक प्राचीन ब्राह्मण कर्मचारी शिवाजीके वचपनकालसे उनके स्वराज्यस्थापन-विषयमें प्रधान परामर्शदाता थे। शिवाजीका अधि-

कार जब वढ चढ गया और उन्होंने राजाकी उपाधि भ्रारण की. तब श्यामराजनीलकण्ड पे शवा पद पर नियुक्त हए। (१६५६ ई०में) महाराष्ट्रदेशमें राजमन्त्रियोंको भी युद्धक्षेत्रमें जाना पडता था। इस कारण शिवाजीने श्यामराज नीलकण्डको एक दल सेनाका भी अधिनायक वता दिया। नीरा और कोयना नरीके मध्यवत्ती नवः विजित प्रदेशके निरीक्षण और वन्दोंवस्तका भार भी उन पर सौंपा गया था। १६५८ ई०में कोङ्कणप्रदेश दखल करनेके लिये शिवाजीने श्यामराज-नीलक उकी मेजा। उस समय वहां जिक्कराके सिद्दि लोगीका आधिपत्य था हि मुक्षे भर सेना है कर ने हिक्फण्ड बहुबान शबुका सामना कव तक कर सकते थे, इस वार उनकी याता विफल गई। फते वाँ सिहिने जब सुना, कि श्यामराज दलवळ-के साथ आ रहे हैं, तब आधी राहमें ही उन पर धावा बोल दिया और बुरी तरह परास्त किया। शिवाजीकी सेना इसके पहले और कहीं भी किसीसे परास्त नहीं हुई थो । सुतरां इस प्रथम पराजयसें शिवाजी वहें ही दुः खित हुए। श्यामराज नीळक पठकी इस पराभवके लिये पदच्युत होना पड़ । महाराज शिवाजीके प्रथम पे शवा श्यामराजनीलकण्डकी एक मुद्रा साताराके राज-भवनमें पाई गई है जिसकी पीठ पर यों लिखा है.-"श्रोशिव नरपति हर्षंनिव्तन, श्यामराज्ञ मतिमत् मधान।"

रयामराज नीलकण्डके वाद जो शिवाजी महाराज़के पे शवा-पद पर सुशोभित हुए, उनका नाम था मयूरेश्वर (मोरेश्वर) विमल पिङ्गले। वे संक्षेपमें मोरेपएड बा मोरो पिएडत नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके पिताका नाम था विमलाचार्य। विमलाचार्य शिवाजीके पिता शाहजोके कर्णाटकस्थित जागीरके अन्यतम तस्वावधायक थे। मोरोपएड कुछ दिन पिताके साथ कर्णाटदेशमें रह कर १६५३ ई जो महाराष्ट्रदेश आहे। यहां थोड़े ही दिनोंके मध्य शिवाजीके अवीन काम करके पुरन्दरदुर्गके रक्षाकार्यमें नियुक्त हो गये। मोरोपएडके कार्यसे शिवाजी वड़े ही सन्तुष्ट हुए और कृष्णानदोके मुहाने सहादिके शिवर पर उन्हें एक दुर्ग वनवानेका भार दिया। यह कार्य भी मोरोपएडने बड़ी ही दक्षतासे शेष कर डाला। पीछे और भी कतिपय दुर्गनिर्माणका भार उन पर सौंपा

गया था। स्थापत्य-विद्याको तरह सामरिक विमागके कार्यमें भी उनकी विशेष दक्षता थी। जावलीप्रदेश और श्रृङ्गारपुर-राज्य दखल करनेमें उन्होंने शिवाजीको सव प्रकारसे सहायता पहुंचाई थी। इस कारण शिवाजी उन्हें बहुत चाहते थे। अन्त्तर १६५८ ई०में श्यामराज बएड जब फते खाँ सिद्दिके हाथसे परास्त हो कर छौटे, तब शिवाजीने उन्हें एक इल सेनाके साथ सिद्दियोंका दमन करनेके लिये भेजा। इस नवीन सेनापितके सैन्यु-परिचालन-कौशल और शौयंग्रुणसे फते खाँको दातों उंगलो काटनी पड़ी। किन्तु इस युद्धके शेष होनेके पहले हो विजापुर-सुलतानके प्रसिद्ध सेनापित अफजल खाँने शिवाजीके राज्य पर आक्रमण कर दिया जिससे मोरोपएडको स्रराज्य लौट जाना पड़ा।

अनन्तर शिवाजीके साथ इन्द्रयुद्धमें अफजल मारे गमे। पीछे उनकी वारद्द हजार सेना और प्रसिद्ध सेना-पतियोंको परास्त करनेके लिये मोरोपएड और नेताजी प्रालकर आदि शिवाजीके समर-कुशल सेनापित नियुक्त दुए। इस युद्धमें ब्राह्मणवीर मोरोपएडने असीम साहस दिक्कावा और शृतुपक्षके १५० हाथी, ७ हजार घोड़े, ४ सी ऊंट और ७० लाख होन (सुवर्णमुद्धा) लूट कर देश लौटे। महाराज शिवाजीने उनकी रणदक्षता पर प्रसन्न हो कर उन्हें संस्मानस्चक परिच्छादि द्वारा गौर-वान्तित किया।

श्वाजीके देशविजय-कालमें इस ब्राह्मण-युवकने बढ़ी सहायता की थी। मुसलमानोंके साथ मोरीपएड जितनी वार लड़े थे, सवीमें उनकी जीत हुई थी। राजनीतिहासा और राज्यके भीतरो शासन-व्यापारमें भी उनकी विशेष दसता थी। इस कारण १६६७ ई०में शिवाजीने जब दिलीकी बाता को थी, तब राजकार्य देखनेका कुछ भार मोरोपएड पर हो सौंपा था। शिवाजी की अनुपत्थितिमें मोरोपएड केवल उनके प्रतिनिधिकपमें राज्यरक्षा और यथाविधि प्रजापालन करके हो निश्चित्त न थे, उन्होंने कतिपय देशोंको जीत कर शिवाजीके प्रतिद्वित खाधीन हिन्दूराज्यकी सीमा भी वढ़ा दी थी। उनके वनाबे हुए राजसंकान्त नियमादि भी राजा और प्रजाके प्रसमें विशेष सुविधाजनक थे। शिवाजी

जब दिल्लांसे मथुरा जान ले कर भागे, तव मुगलसम्राट्के अनुचरोंने उनका वहां तक पीछा किया। शिवाजीके साथ उस समय उनके दश वर्षके पुत्र शम्माजी भी थे। उसे छे कर भागना मुक्क्छि समम्त कर शिवाजी विशेष चिन्तित हो पड़ें। उस समय मधुरामें मोरोपएडके साले कृष्णाजीपएड रहते थे । उन्होंने महाराजको विपन्न देख कर शम्माजीको रक्षा और उसे निर्विप्न देरा पहुंचा देनेका भार अपने सिर पर लिया। अर शिवाजी खुळासा हुए और मथुरासे चल दिये। इधर मुगल-चरोंने शम्माजीको पहचान लिया जिससे वड़ी गड़बड़ी उडी । इस पर ऋण्याजीपएडने शम्माजीको भपना भाँजा वताया और मुगल-दूतका सन्देह दूर करनेके लिये खय' ब्राह्मण हो कर भी शम्भाजीके साथ वैठ कर भोजन अनन्तर ने अपने दो भाइयोंको सहायतासे शम्माजीको साथ छिये छिपके रायगढ् पहुँचे। अपने पुतको सहीसलामत देख कर शिवाजीने धन और 'विश्वासराम'-की उपाधि दे कृष्णजीपण्डकी विदा किया।

शिवाजीके दिल्लीसे लौटनेके बाद उनके साथ मुगलीं-की जितनी लड़ाइबाँ हुई, उनमेंसे अधिकांशमें मोरोपएड-ने समर-कुशलता दिखलाई थी । १६७१ ई०में पूनाके उत्तराञ्चलस्थित कई एक प्रसिद्ध दुर्ग उन्होंने अपनी बारह हजार पदातिक सेनाके बलसे मुगलोंके हाथसे खीन लिये। उनमेंसे 'साहर' नामक दुगैके अधिकारकालमें मोगल-सेनापति पसंलास खाँके साथ उनका जो घोरतर युद्ध हुआ था, वह उस समयके महाराष्ट्र इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध है। इस युद्धमें मोरोपएडने असाधारण शौर्य और समरकुशलता दिखलाते हुए २२ प्रसिद्ध मुगल-सेनाध्यक्षींको केद किया था। अलावा इसके ५ हजार घोड़े, १२५ हाथी, ६ इजार ऊ'ट और प्रबुर भन भी हाथ छगे थे। शिवाजी इस फतहकी सबर सुन कर फूले न समाये और उस विजयो ब्राह्मणवीरका गीरव वढ़ानेके लिये उन्हें एक प्रशंसापूर्ण पत, १ हाथी, १ विद्यं घोड़ा और भूपण परिच्छादि पुरस्कारसहप भेज दिये।

महाराष्ट्रदेशके एक ग्राम्यगीतिमें इस साह रो-युद्रका जो वर्णन है उसमें यों लिखा है, "कुरुशेतके युद्धमें अर्ज नने जिस प्रकार कौरवका नाश किया था, साहे रीके संप्राममें मोरोपएड पेशवाने भी उसी प्रकार मुगल-सेना-को यमपुर मेजा था।

इसके वाद १६७४ ई०में शिवाजीका जब राज्यामिपेक हुआ, उस समय मोरोपएडका पे शवा-पद हुट किया गया और शिवाजीके आठ प्रधानोंके मध्य वे 'मुख्यप्रधान' नामसे प्रसिद्ध हुए। राज्याभिपेक-कालमें शिवाजी ने अपने सचिवोंका फारसी नाम उठा कर प्राचीन नीति-शास्त्रकथित संस्कृत नाम रखा। तद्तुसार मोरोपएड-को "समस्त राजकार्यथुरन्धर राजमान्य राजश्री मोरेश्वर-पण्डित-प्रधान" इसी उपाधिसे पत लिखना होगा, यह स्थिर हुआ।

पेशवा-पदके कर्तव्यादि सम्बन्धमें इस समय जो निर्दा-रित हुआ, वह इस प्रकार है,—(१) राजकार्य-विषयक मन्त्रणा, (२) सभी कर्मचारियोंकी एक मत कर राज-कार्यनिर्वाह और सर्वोंके प्रति समदर्शिता; (३) सर्वदा सव प्रकारसे राज्यके हितसाधनमें मनोयोग; (४) सैन्य-वळकी सहायतासे नव देश विजय; (५) शत्रुयक्षका तथा परराष्ट्रसंक्रान्त समस्त संवाद-संप्रह; (६) राज-कार्यविषयक पत्रादि पर राजमुदाङ्कित और खनामाङ्कित करना। मोरोपएड यही सव कार्य करते थे। उनकी तनसाह १५ हजार होन वा सर्णमुद्रा थी। (१ होन = ३॥। ६०)।

इस घटनाके दो वर्ष वाद शिवाजी तज्जोर जीतनेके लिये अमसर हुए। जिस समय आनाजीदत्तो नामक किसी माह्यण-सचिवके ऊपर राज्यरक्षाका मार सुपुर्छ था, उस समय भी मोरोपएडको सभी राजकार्य देखनेकी क्षमता दी गई थी। कारण, मोरोपएडको अप क्षा शिवाजीके अधिकत्तर विश्वस्त और बुद्धिमान, कर्मचारी और कोई भी न थे। यही कारण था, कि शिवाजी उन्हें अपना दाहिना हाथ समक्ते थे। मोरोपएडने हो उत्तर-कोङ्कण और वागळान प्रदेशके मुगळ-शासनका उच्छेद करके उक्त दोनों प्रदेशको शिवाजीके दखळमें कर दिया था। उनको चेशके प्रायः ७० दुर्ग मुगळोंके हाथसे निकळ कर शिवाजीके हाथ छगे थे। कितने नये नये दुर्ग भी वे वनवा गये। सुरतको लूटने, पुर्तगीज और आविसिनियों-

के दमन, दुर्गादि तथा राजकार्यके पर्यवेक्षणादिमें वे हमेशा तैयार रहते थे। अपने खार्थके प्रति उनको विलक्कल दृष्टि न थो। इसी कारण शिवाजीका उन पर असाधारण विश्वास था। बानाजीदत्तो नामक शिवाजीके अन्यतम ब्राह्मण कमचारी नी एक इतकर्मा पुरुप थे। किन्तु मोरोपएडके प्रति शिवाजीको अधिकतर निर्मरशीखता देख कर वे इन (मोरोपएड)-के विद्वेपी हो उठेथे। शिवाजीके जीते-जी वह विद्वेपी देखनेमें आया।

१६८० ई०में शिवाजीकी सृत्यु होने पर नवप्रति-प्रित महाराष्ट्र राज्यमें वडी गड़वड़ी उठी । शिवाजीके वड़ें छड़के शम्माजी नितान्त दुश्चरित और अव्यवस्थित चित्तके थे। इस कारण शिवाजीने उन्हें पनाला-दुर्गमें केंद्र कर रखा था। मरते समय उन्होंने कतियय प्रधान कर्मचारियोंके निकट जो अपना अभिवाय प्रकट कियां था, वह यों है, "शम्भाजी यदि राजा होगा, तो वह अपनी बुद्धिके दोपसे सारा राज्य नष्ट कर देगा। कनिष्ठ पुत्र राजा-रामसे राज्यकी उन्नति होंगी, ऐसा मुन्हे विश्वास है।" शिवाज़ीके इस मन्तव्यके ऊपर निर्भर करके राजकर्भ-चारियोंने राजारामको राजा वनानेका संकल्प किया। शिवाजीकी मृत्युके वाद उनकी चार रानियों मेंसे केवल राजारामकी माता सोयरावाई ही जोवित थीं। ज्येष्ट शम्माजीको वञ्चित कर वह अपने पुतको राजा वनानेकी विशेष चेष्टा करने छगीं । इघर औरङ्गजेव भी इस समय दाक्षिणात्य जीतनेके छिये असंख्य सेनाके साथ हैदरा-वाद्के करीव करीव आ गये थे । महाराष्ट्र-विजय भी उनका प्रधान लक्ष्य था। इस कारण अक्रमीण्य और क्र र प्रकृति शम्माजीके वदलेमें धीरत्वसाव-सम्पन्न राजाराम-को सिंहासन पर स्थापन करना ही सभी कर्मचारियोंने अच्छा समन्ता। उन्होंने शिवाजीका मृत्यु-संवाद छिपा रबा और पनाला-दुगेंसे शम्माजी निकलने न पार्वे, इस-के लिये वहांके हवलदारको एक पत्र लिख सेजा। दुर्माग्यक्रतसे वह पत शंम्माजीके हाथ पड़ा । वस, अव क्या था, उन्हों ने उसी समय हुर्नके कर्मसारियों को केंद् कर सिहासन पानेके छिपे कतियय मरहटा-सरदारों की पत छिख भेजें। उनके कौशलसे वहुतेरे उनके धशीभूत हो गये। अव उन छोगोंको सहायतासे शम्माजीने कुछ

्र सेनापतियोंको कैद कर ससैन्य रायगढ़की ओर याता कर दी। इघर श्रीमती सीयरा वाईके आदेशसे मोरी । एड आदि कमेंचारियोंने राजारामको सिहासन पर विठा दिया था। रायगढ़ पहुंचते ही शम्माजीने सबसे पहले मोरी-पएड और आनाजीदत्तोंके घर लूट कर उन्हें कैद कर लिया (१) और राजविद्रोहापराधी कितने ब्राह्मणेतर जातीय कर्मचारियोंको उसी समय प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। राजाराम भी नजरवन्दी हुए। उनकी माताकी बड़ी निष्ठुरतासे हुत्या की गई।

श्रमाजी जब सिंहासन पर चैठे। तब उन्होंने अभि-पेकोत्सवके उपलक्ष्यमें मोरोपएडको मुक्त कर दिया था। अपर कर्मचारियोंने भी इस समय मुक्ति पाई। शिवाजी-के समय जो आठ प्रधान थे, उनमेंसे सर्वोंको अपने अपने पद पर प्रतिष्ठित किया । मोरोपएडने भी अपना पद पाया, लेकिन शिवाजीके समय उन्हें जो क्षमता और प्रतिपत्ति थी, उसे वे पानेसे वश्चित हुए । शम्भाजोके दुराचारसे सभी तंग तंग आ गये। अव उन पीड़ित कर्मचारियोंने राजारामको पुनः सिहासन पर विठानेकी चेष्टा की। इन षडयन्त्रकारियोंके मध्य मोरोपएडके प्रति-द्वन्द्वी आनाजीदत्ती अप्रनायक थे। यह खबर शम्भाः जीको लगते ही उन्होंने भट विश्लवकारियों को कैंद्र कर लिया। इनमेंसे बहुतोंकी प्राणदण्डकी आज्ञा हुई। आनाजी-इत्तोको भी देहान्त-दण्डभोग करना पडा था। राज्यमें इस प्रकार ब्रह्महत्या होनेसे सभी अत्यन्त दुःखी हुए थें। किन्तु किसीको भी ऐसा न हुआ कि शम्भाजीको इस विषयमें कुछ कहें। मोरोपण्डके मति आनाजी दत्तोका विद्वे पभाव था, तो भी अपने प्रतिद्वन्दीकी हत्या-से असन्त्रष्ट हो उन्होंने खुल्लमखुला शम्माजीसे कहा था, "महाराज ! आपने एक प्राचीन कर्मचारी और ब्राह्मण-का वध करके अच्छा काम नहीं किया। आपका यह

कार्य नितान्त अधममूलक और अज्ञताप्रसूत हुआ है। इसका फल आपको एक दिन अवश्य भोगना पड़ेगा।" मोरोपण्डको यह स्पंप्ट उक्ति शम्भाजोके हृद्यमें तीर सी जा जुमी। फलतः मोरोपण्डको एक दिन गिरिदुर्गमें विन्दमावमें रहना पड़ा था। इसके वाद शिवाजोके कर्णाटस्थित प्रतिनिधि और शासनकर्ता बहुमूल्य उपढ़ौकनादिके साथ शम्भाजोके दर्शन करने आये। उन्होंने शम्भाजोको राजनीतिविरुद्ध कार्यावलीके लिये दो चार मोठो मोठो वातें कहीं। इस पर शम्भाजीने मोरोपएडको कारागारसे छोड़ दिया। किन्तु इसके वाद वे पेशवाके पद पर नियुक्त न किये गये। इस घटनाके कुछ दिन वाद ही १६८३।४ ई०में उनके कप्टम वाद क्य-जीवनका अवसान हुआ।

शिवाजीने राज्याभिषेककालमें अपने आढ प्रधानोंके जो संस्कृत नाम रखे थे, उनमेंसे एकके सिवा और सभी महाराष्ट्र-साम्राज्यके अवसान तक अविकृत रहे। किन्तु पेशवा पदका "मुख्यप्रधान" यह संस्कृत नाम शिवाजीकी मृत्युके वाद थोड़े ही दिनोंके मध्य विलुप्त हो ग्या और पीछे पुनः पारसिक 'पेशवा' शब्दका विशेष प्रचार हुआ था।

नीलकण्ड मोरेश्वर पेशवा-चे मयूरेश्वर तिमल-पिङ्गलके पुत थे। मोरोपएडके दूसरी वार कैंद होनेसे नीलकएउपएड पेशवाके पद पर प्रतिष्ठित हुए। किन्तु उन्होंने केवल पेशवाका पद ही प्राप्त किया था, प्रस्त पदोचित कोई भी क्षमता उन्हें न दी गई थी। कलश वा कवजी नामक एक कान्यकुग्ज-वंशीय ब्राह्मण हीनमति शम्भाजीके वडे ही विश्वासभाजन थे। इस कारण प्रधान मन्त्रीका पद उन्हींको मिला। इस व्यक्तिके राज-कार्यमें तथा तन्त्रशास्त्र और तान्त्रिक अनुष्ठानमें विशेष ज्ञान था। वे मन्त्रवलसे राज्य और धनकी वृद्धि कर सकते थे। शम्भाजीके मनमें उन्होंने ऐसा विश्वास जमा दिया था, कि वे उनके प्रकान्त पक्षपाती हो गये थे। उन-को वातमें पड़ कर शक्साजीने अनेक प्राचीन कार्येदश और चिश्वस्त कर्मचारियोंको पद न्युत कर दिया था। इस व्यक्तिके हाथ शम्माजीने समस्त राजकार्यका भार सौंप दिया और आप नशेमें चूर रह कर अन्तापुरमें

⁽१) इसने बसर्छेखक मतानुवार यह विवरण लिपिवड किया। प्रायाद-इक्का कहना है, कि अपरापर कमैचारियों को विषद्वें देख कर और आनाजीदतों के साथ निर्विवावपूर्वक कोई काम न कर सक्तें के कारण मोरोप्याइने आत्मारक्षा के लिये प्रम्माजीका पक्ष लिया। किन्तु वे कभी भी प्रमाजीके विश्वासभाजन न हो सके।

आमीद-प्रमीद करने छंगे। इसका फर्ल यह दुआ, कि राज्य-में तमाम अशान्ति फैल गई, कर्मचारी जहां तहां खाधीन हो उठे। शिवाजोके समयको सामरिक और प्रजा-पाछन-मूलक नियमावलीका उल्लङ्कन करनेसे देशमें घोर अराज-कता उपस्थित हुई। प्रजा कप्टका सहन न कर सुगल भौर वोजापुर राज्यमें जा कर रहने लगीं। इधर शम्माजी-की अवस्था भी विलास-व्यसनसे ऐसी शोखनीय हो गई. कि कवजीके सिवा और किसीकों भी उनसे भेंट करनेका हुकुम न रहा। अन्तमें उनकी अवस्थाने बढ़ते वढ़ते ऐसा रूप धारण कर लिया, कि कवजी भी उनके पास जानेसे डरते थे। अवसर पा कर मुगळसम्राट् औरङ्गजेवने इस समय महाराष्ट्र पर आक्रमण कर दिया। अङ्गरेज और पुर्तगोज वणिकॉने तथा कोङ्कणके हवसियोंने वदला चुकानेमें कोई कसर उठा न रखी। शम्माजीने कई वार वीरता विस्तराई थी, पर उनकी यह बीरता वुकते हुए विरागकी रोशनी-सी थी। विश्व व्यक्तियोंका परामशं ले कर कार्य करना वे प्रकृतिके विलक्कल विरुद्ध समभाते थे। राजनीतिहानने तो उन्हें मानी छुआ ही नहीं था। बीजापुर और गोलकुएडासे सहायता मिलने पर भी वे मुगलोंको रोकनेमें अग्रसर न हुए। अतः महाराष्ट्र पर मुगलोंकी गोटी जम गई। अन्तमें उन्हें शत्रूने चारीं और-से घेर लिया। इस अन्तिम कालमें उन्होंने वक बार और अपना विकम दिखलाया और मुगलोंके साथ युद्धक्षेत्रमें कूद कर प्राणत्याग करनेका सङ्कृत्प किया। किन्तु बह गौरव उनके भाग्यमें ददा नहीं था। मुगलोंने उन्हें किंद कर वड़ी निष्ठुरतासे मार डाला।

शस्माजीके राजत्वकालमें नीलकएडपएड केवल नाममातके पेशवा पद पर अधिष्ठित थे, सभी काम काज कवजी द्वारा ही परिचालित होता था। नीलकएड पर केवल कर्णाटक प्रदेशका शासन-भार सुपुर्द था। १६६७ ई० तक वे उसी प्रदेशमें रहे।

शम्माजीकी मृत्युके वाद उनके छोटे माई राजारामने मुक्तिलाभ करके राज्यशासन चलाना चाहा । पर उनकी उमर थोड़ी थी, चारों और मुगलोंकी तृती वोल रही थी, इस कारण अपने वन्युवांघवोंके साथ लग्नवेशमें महाराष्ट्र-का त्याग कर उन्हें शाहजो (महाराज शिवाजीके पिता)-

की जागीर तञ्जोर अञ्चलके गिरिदर्गमें जा आश्रय लेना पड़ा। उनके पधारनेकी खबर सुन कर नीलकएड पएड तञ्जोरमें अच्छो व्यवस्था करके उनका खागत करनेके लिये दौड पड़े । मुगल लोग जिससे उन्हें तक्षोर आनेमें वाधा न दे सके, नीलकएठने उसका भी वन्दीवस्त कर दिया था। अनन्तर राजाराम वहां निरापदसे पहुंचे और सिंहासन पर वैठ कर उन्होंने आठ प्रधानको पुनः नियुक्त किया। नीलकएठपएडका पेशवा-पद फिरसे मजबूत कर दिया गया। बहुत दिनों तक मुगलोंके साथ युद्ध करके जन राजाराम १६६७ ई०में महाराष्ट्रदेश छीटे, तब नील-कएठपएड भी उनके साथ विशलगढ तक आये। इसके वाद राजार मके राजत्व कालके शेव पर्यन्त वे पेशवा-पद पर मतिष्ठित रहे। इतने दिनों तक आठ प्रधानोंके मध्य पेशवा ही मुक्य प्रधान माने जाते थे। राजारामके समय आठ प्रधानोंके ऊपर "प्रतिनिधि" नामक एक पदकी सृष्टि हुई। प्रहाद निराजी नामक एक ब्राह्मणने राजारामकी जिञ्जि भागते समय विशेष सहायता की थी। मुगलोंके साथ युद्ध-विश्रहमें उन्होंने अपनी बीरता और कार्य-कुशलता अच्छी तरह दिखलाई थी। इस कारण राजा-रामने "प्रतिनिधि" पदकी सृष्टि करके उन्हें ही उस पद पर प्रतिष्ठित किया । नीलकएडपएड पिताके जैसे कार्य-दक्ष और यशस्यो नहीं थे, अतः प्रतिनिधिकी प्रतिपत्ति उस समय महाराष्ट्र देशमें विशेष बढ़ गई थीं। यहां तक कि पेशवाका नाम भी छोग एक तरहसे भूल गये थे। उनकी राजमुद्रा पर निम्नलिखित स्रोक उत्कीणी था,---

"श्रीराजाराम नरपति हर्षनिधान। मोरेश्वर-सुत नीलकारु मुख्यप्रधान॥"

राजारामकी मृत्युके वाद उनकी स्त्री ताराबाईने सपने दश वर्षके छड़केकी समात्य रामचन्द्र नीलकएड, प्रतिनिधि प्रहाद निराजी और पे शवा नीलकएडकी सहा-यतासे महाराष्ट्र-सिंहासन पर विठाया। ताराबाई अतिशय बुद्धिमती और राजनीतिकुशला रमणी थीं। मुगलों का ख्याल था, कि राजारामके मरने पर महाराष्ट्रगण हताश हो जायगे। किन्तु ताराबाई जैसी ब्ह्यतासे राजकाय करने लगीं, कि मुगलोंको दातों उँगली काटने पड़ी। ताराबाई असीम उत्साहसे युद्धकी तैयारी करने लगीं।

- नाना दुर्गीमें खुद्से जा कर दुर्गपितियोंको छड़ाई करनेके छिये उत्साह देने छगीं। आखिर मुसलमानीको अपनी भूल माननो पड़ी। औरङ्गजेन २० वर्ष तक छड़ाई करते रहे, पर सभी वार उनकी हार होती गई। आखिर महा-राष्ट्रोंका विक्रम दिन दिन बढ़ता देख वे प्राण ले कर दाक्षिणात्यसे मागे। १७०७ ई०के फरवरीमासमें अहमदनगर पहुंचते ही उनका प्राणान्त हुआ।

और जुजेनकी मृत्युके वाद उनके छड़कोमें गद्दी पानेके छिये विवाद खड़ा हुआ। इससे महाराष्ट्रोंकी क्षमता
और भी वढ़ गई। उन छोगोंके पुनः पुनः आक्रमणसे तंग
आ कर मुगछोंने मेदनीतिका अवछम्चन किया। शम्माजीके मरनेके वाद उनके नावाछिग छड़के शाहु और माता
पशोदावाईको मुगछोंने कैद कर रखा था। सम्राट्ने
उनके प्रति किसा भी प्रकारका असदृश्यवहार नहीं किया
था। अभी उत्तेजित मरहृशे को शान्त करनेके छिये मुगछोंने
ने शाहु और उसकी माताको छोड़ दिया तथा मरहृशेंके
साथ सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने समका
था, कि शाहुको छोड़ देनेसे एक राज्यमें दो राजा होंगे।
राजारामके पुत्रके साथ शाहुका विवाद अवश्य होता
और इसी कछहानिसे महाराष्ट्र-राज्य आखिर मस्मशेष
हो जायगा। पर उनकी उस आशा पर भी पानी
फेर गया।

श्राहुकी मुक्तिका संवाद सुन कर तारावाईने उन्हें राज्यांशसे विश्वित करनेके लिये जाल-शाहु वतला कर घोषणा कर दी। किन्तु इससे कोई विशेष फल न निकला। महाराष्ट्रमें आ कर शाहुने कुछ वड़े वड़े सरदारोंको अपने हाथ कर लिये और तारावाईके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त किया। इस प्रकार १७०८ ई०के मार्चमासमें ये सातारा सिहासन पर अधिकढ़ हुए। राजारामके समय महाराष्ट्र-की राजधानों सातारामें स्थापित हुई थी।

शाहुके महाराष्ट्र देश आने पर नीलकरतपर पे शवा सारावाईका पक्ष ले कर उनके विकद्ध चाल चलने लगे। किन्तु उनके अधीन कुछ सेनापित खान्देशमें पांच हजार सेनाके साथ शाहुसे मिल गये थे। इस पर भी नील-करतका दिमान नहीं पलटा। तारावाईके युद्धमें हार खा कर भाग जाने पर भी वे उसोके साथ हो लिये। इसके कुछ समय वाद ही उनका देहान्त हुआ। नीलकर्ठपर्ड अपनी जीवहशामें कभी भी खाधीन-भावसे अपनी कायदक्षता न दिखा सके थे।

वहिरो (भैरव) मोरेश्वर पिंगके।—महाराजशाहु जव छतपतिको उपाधि घारण कर राजसिंहासन पर वैठे, तव उन्होंने नीलकरहिको छोटे भाई वहिरोपरहिको पे शवा-पद पर नियुक्त किया । १७५३-ई० तक वे शाहुके प्रधान मन्ती-का कार्य करते रहे। नीलकएठपएडकी तरह उनका जीवन विशेष घटनापूर्ण नहीं था। कल्याण, जुन्नर और राज-माठो आदि तालुकांका रक्षा-भार उन्हीं पर सौंपा गया था । वे महाराज शाहुको युद्ध-विवहमें किसी प्रकारकी सहायता न पहुंचा सके। वरन् १७१३ ई०के शेपभागमें जव वे काह्रोजी आंथ्रका विद्रोह दमन करने गये, तब वहीं पराजित हो कर वन्दी हुए। उनके रक्षणाधीन राजमठी आदि स्थान भी आंप्रके हाथ छगे। इस समय वालाजी विश्वनाथ नामक एक ब्राह्मण-कर्मचारीकी राजवरवारमें भच्छी चलती थी। वे आंप्रको परास्त कर वहिरोपएडको कैदसे छुड़ा लाये। इस पर शाहु वड़े प्रसन्न हुए और उन्होंको पेशवा वा मुख्य प्रधानका पद प्रदान किया। वहिरोपएड पदच्यत हुए। तभीसे वालाजी विश्वनाथके वंशधरोंकी कार्यदक्षताके गुणसे महाराष्ट्रराज्यका पेशवा-पद उन्हींके यंशानुगत हुआ। यहां तक, कि आजिर वे लोग एक प्रकारसे महाराष्ट्रदेशमें सर्वेसर्वा हो उठे।

पिङ्गलवंशके साथ पेशवा-पदका सम्बन्ध गहीं पर छिन्न हुआ। पिङ्गलवंशमें एक मोरोपएड हो जनमभूमिके सुरुत पुत्र निकले थे। वङ्गदेश तथा संयुक्त प्रदेशकी विभिन्न श्रेणोको तरह महाराष्ट्रमें भी देशस्य, कोङ्क णस्थ और कहाड़े इन तोन श्रेणोके ज्ञाह्मण हैं। पिङ्गले वंशीयगण देशस्य श्रेणीके अन्तर्गत वा सह्याद्रिके पूर्वा-श्रालवासी थे। इसके वाद पेशवापद जिनके पुरुषानुगत हुआ, वे कोङ्कणस्थ वा सह्याद्रिके पिश्चमस्थित प्रदेशमें रहते थे। कोङ्कणस्थ वा सह्याद्रिके पिश्चमस्थित प्रदेशमें रहते थे। कोङ्कणस्थ पेशवाओं प्रमुत्वकालमें देशस्थ गण उनसे कुछ असन्तुष्ट रहा करते थे, कारण राजकार्यविषयमें उनकी उतनी दक्षता न थो। इनके पहले कोङ्कण-देशीयगणको राजकार्यमें प्रदेश होनेका अवसर नहीं मिला था। वालाजी विश्वनाथके वंशधरींको अमल-दारीमें प्रायः सभो राजकार्यमें कोङ्कणस्थ ज्ञाह्मणोंको ही सरमार थी।

बाजाजी विश्वनाथ। — कोङ्कूण अन्तगत वाणकोर नामक प्रणालीके उत्तरी किनारे श्रीवद्ध नग्राम है, वहीं बालाजी विश्वनाथका जन्म हुआ था। उस समय श्री-वर्द्ध न ग्राम जिल्ला-होपके सिद्दी वा आविसिनीयगणके अधीन था। प्राचीनकालमें यह ग्राम वाणिज्य-स्रवसाय-के लिये विशेष प्रसिद्ध रहा।

वालाजो विश्वनाथके पितामह जनार्नन पएडभट्ट श्रीबद्ध न प्रामके प्रधान और ग्रामलेखक थे। महालको ज्ञानवंदी कामको देखरेख और ग्रामका राजस वस्ल आदिका भार उन्हों पर अर्पित था। उनके हो लड़कोमेंसे वड़े लड़के विश्वनाथपएड पैनृक पद पर नियुक्त हुए थे। विश्वनाथके पुत वालाजो विश्वनाथभट्टको भी प्रधान और ग्रामलेखकका पद प्राप्त हुआ था। सुवरां देशके राजनीतिक व्यापारके साथ उनका वहुत कुल लगाव था।

१८वों शताब्दोके प्रारम्भमें सुवर्ण दुर्ग यह जलदुर्ग वाणकोट नामक प्रणालीके मुहानेके समीप अवस्थित हैं) और उससे १५ मोल दक्षिण अञ्जनवेल नामक दुर्ग तथा उसके आसपासके प्रदेश जिल्लाके सिहियोंके शासना-धीन थे। इस कारण वाणकोट-प्रणाळी पर भी उन्होंने अपना आधिपत्य जमा रखा था। इधर आंग्रे उपाधिकारी मरहठा परिवारके हाथ महाराष्ट्रीय नौसेनाका आधिपत्य था। इस कारण समुद्रतीरवर्ती स्थानींका अधिकार हे कर नौसेनापति काहोजी आंध्रे के साथ सिहियोंकी दुश्मनी चल रही थी। दीच दीचमें युद्ध भी हो जाया करता था। बालाजी विश्वनाथ-भट्टने जब युवावस्थामें कदम रखा, तव वे युवती और गुणवती भार्या राधावाई तथा वाजी-राव और विमाजी भव्या नामक अपने दोनों पुतोंके साथ श्रीवद् नेत्राममें सुखसे रहने लगे। उसी समय काहोजो आंग्रे और जिल्लराके मित्रपति सिद्दि कासिममें विपन विचादानल धधक उठा। काहोजी सिद्दिके कमेंचारियोंकी मुलावेमें डाल कर अपने दलमें लानेकी चेएा कर रहे थे। इसी बीच किसी दुए व्यक्तिने सिद्दि कासिमसे जा कहा, -"बालाजो विभ्वनाथने छिपके आंध्रेका पक्ष लिया है।" कासिम अत्यन्त लघुमति और सन्द्रिश्विचने आदमी थे। उन्हों ने इस वात पर विश्वास कर वाळाजीको

सपरिवार पकड़ छानेके छिये हुकुम दे दिया। पहले वाछाजीके किनष्ट-जानोजी पकड़े गये। सिहिने विना विचार किये ही उन्हें द्राहको आज्ञा दे दी। हतमाय जानोजीको एक वोरेमें वंद कर समुद्रमें फेंक दिया गया (१७०१ ई०में)।

इस घटनासे विश्वनाथ कुछ डर गये और अपनी जान वचानेके लिये सर्पारवार वाणकोट-प्रणालीके दक्षिणा-श्रलिथत वेलास प्रामं चले गये। इस प्राममें हरि-महादेव-भानु नामक एक सज्जन ब्राह्मण रहते थे। वालाजीके साथ उनका वाल्यवन्युत्व था। वालाज़ीने भविष्यत् कर्तव्यताके सम्यन्थमें उनके साथ सलाह करके यह स्थिर किया, कि कोङ्कणका परित्याग कर सल्लादिके पूर्वाञ्चल किसी भी स्थानमें जा नौकरी करना ही उनके लिये अच्छा होगा। मानु-परिवाहको अवस्था भी शोचनीय थी, इस कारण उन्होंने भी वालाजोके साथ जानेकी इच्छा प्रकट की।

इसके वाद मह और मानु थोड़ी ही दूर वह थे, कि सिहि कासिमको वालाजीके भागनेको खबर लग गई। उन्होंने उसी समय वालाजीको पकड़नेके लिये अञ्चनवेलको हुर्गाधिपतिके पास एक पत्त लिख मेजा। सह्यादिके समीप तिओराधाट नामक स्थानमें वालाजी पकड़े गये और अञ्चनवेलके दुर्गमें केइ करके मेज दिये गये। सिहिके आदेशसे उन्हें उस दुर्गमें २५ दिन तक रहना पड़ा था। इस विपत् कालमें हरि महादेव-भानुने अपने दो भाइयींको साथ ले वड़ी मुश्किलसे किलेदारको वशीमूत किया। उन लोगोंकी चेष्टासे वालाजीको छुटकारा मिला। इस स्तावता पर वालाजीने अपने उपार्जनका चतुर्था श भानु भाइयोंको दिया था।

सहादि पार कर भट्ट और मानुने प्नाके निकरिश्यत सासवड्-प्रामके अस्वाजीविस्वक पुरन्दर नामक किसी सम्व्रान्त ब्राह्मणके यहां आश्रय लिया। इस समय महा-राष्ट्र देशमें घोर विद्वव चल रहा था। महाराज राजा-रामकी पत्नी तारावाई यहांका शासन कर रही थीं। मर-हठे लोग मुगलोंको अपने देशसे मार मगानेके लिये प्राणपणसे युद्ध कर रहे थे। जो व्यक्ति कैसा ही घोड़ा वा एक वल्लम पा लेता, वह उसी समय मुगलोंको

Vol. XIV 94

खदेड़ता जाता था। अमात्य रामचन्द्रपण्ड, प्रतिनिधि परशुराम विम्वक, सचिव शङ्करजी नारायण और घनाजो जाघव आदि महाराष्ट्रीय सरदारोंके बीर्यविकामसे सारा दाक्षिणात्य कांप रहा था। मुगल लोग मरहठोंकी हद्दमूर्ति देख कर भाग रहे थे। मुगल शासित प्रदेशमें महाराष्ट्रोंकी जड़ मजबूत हीती जा रही थी। सुतरां कार्यक्षम और दुद्धिमान व्यक्तियोंके लिये इस समय कार्यक्षेत्रमें अभाव नहीं था।

अस्वाजीपण्ड, बालाजीपण्ड और भाजु तोनीं माईने आपसमें सलाह करके पहले किसो भो व्यवसायमें प्रवृत्त होना हो उनके लिये लाभजनक होगा, ऐसा स्थिर किया। तदनुसार वे लोग पहले महाराष्ट्र राजधानी साताराको चल दिये (१७०७ ई०में)। वहां अम्बाजी और वालाजीने राजप्रतिनिधि परशुराम-त्रिम्बकके सेनु-ब्रह्से एक तालुकके राजल वस्ल करनेका ठेका लिया। उनकी अधीनतामें ५ सौ अभ्वारोही सेना थी। अम्बाजी पण्ड जैसे सम्प्रान्त और बालाजी विश्वनाथ जैसे प्रधान व्यक्तिकी दसता देख कर प्रतिनिधि महाश्य बद्दे खुश हुए और उन्हें सेनापति बनाजी-जाधव-रावके अधीन राजस्वविभागमें कारकूनके पद पर नियुक्त किया। १७०६ ई॰में बाळाजीकी तनखाह वार्षिक १सी मुद्रा कायम हुई । भानुके तीन भाइयोंमैंसे छोटे रामाजो महादेवने सन्निव शङ्करजी नारायणकी अभीनतामें नौकरी पाई। हरिमहादेव और वालाजी महादेव मानु, बालाजी विश्व-नाथके समीप रहने लगे।

इस समय महाराष्ट्रराज्यमें नाना प्रकारका निष्ठव बल रहा था, इस कारण राजस्थ वस्लको उतनी सुविधा न थी । शाहुके सिहासनाइक होने पर विश्व-बुलाकी बहुत कुछ लाघवता हुई । सुतरां बालाजो विश्व-नाथ राजस्ब संकान्त कार्यका विशेष सुप्रबन्ध करनेकी चेष्टा करने लगे । स्विकार्यमें उत्साह दे कर उन्होंने राजस वस्ल करनेका ऐसा नियम बलाया तथा तत्-संकान्त हिसावके कागज-पतोंको इस हिसावसे प्रस्तुत किया, कि थोड़े हो दिनोंके मध्य राजस विमागकी सारी गड़बड़ी जातो रही । उनकी ऐसी कार्यदक्षताका परि-स्य पा कर सेनापति जाधवराव उनकी वड़ी सातिर

करने छगे। महाराज शाहुके निकट भी वालाजी विश्व-नाथकी कार्यतत्परताकी कथा लिपी न रही। १७०६।१० ई०में धनाजी-जाधवके मरने पर महाराज शाहुने राजस-विभागका कुल भार वालाजी विश्वनाथके ऊपर अपण किया। जाधवरावके पुत चन्द्रसेनके हाथ केवल सामरिक-विभागका भार रहा। अब बालाजीके ऊपर सेनापित-का कोई भी कर्जू त्य न रहा। इस घटनासे चन्द्रसेन बड़े दुःखित हुए और बालाजोके प्रति विद्वेप करने लगे। इसके बाद जो घटना घटी उससे वह विद्वेप भीर भी बढ़ गया। चन्द्रसेन वालाबीके जानी दुश्मन हो गये।

औरङ्गजेवकी मृत्युके बाद उनके वड़े छड़के वहादुरशाहने सेनापति ज्रव्यक्तर खाँको दाक्षिणात्यका शासनकर्ता
बनाया था। मुगळ-सेनापतिको हैदरावाद दखळ करनेमें
महाराष्ट्रपति शाहुने उन्हें खासी मदद पहुंचाई थी।
ज्रुक्तकरखाँ पहलेसे ही शाहुके मङ्गळाकांको थे। वर्तमान
घटनासे उन्होंने बहादुरशाहसे कह सुन कर शाहुको
दक्षिणापथका खाँथ और सरदेशमुखो (राजखका दशमांग)
खत्वको सनद दिखवाई थी। १७१२ ई०में बहादुरशाहको
मृत्यु हुई। दिल्लोका सिहासन छे कर उनके छड़के
आपसमें कगड़ने छगे। इसका फळ यह हुआ, कि पहले
जहान्दरशाह और पीछे फरुखसियर राजसिहासन पर
वैठे। इस चिश्चको समय जुल्फकर खाँ मारे गये। पीछे
चीनकिळीच खाँ नामक एक मुसलमान सरदार दाहि
णात्यके स्वेदार हुए और उन्हें 'निजाम उळ मुल्क'की
उपाधि दी गई।

इस नये स्वेदारके आने पर जब महाराज शाहुने देखा, कि मुगलराज्यसे चौध और सरदेशमुखी पहलेके जैसा वस्ल नहीं होता है, तब उन्होंने १७१३ ई०में सेना-पित चन्द्रसेन-जाधवको दलवलके साथ चौध वस्ल करने भेजा। संग्रहीत राजसकी यथायोग्य व्यवस्था करनेके लिये वालाजी विश्वनाथ उनके सहकारी क्यमें भेजे गये। इस पर सेनापितने समका, कि बालाजी विश्वनाथ उनका कार्यपरिद्शीन करनेके लिये ही भेजे गये हैं। इसमें उन्होंने अपना अपमान समका और इसका बदला लेनेके लिये वे मौका दूढ़ने लगे।

लीटते समय एक दिन जब वे लीग धाखेटको निकले तव दैवकमसे वाळाजीके अधीन कुछ अध्वारोहियोंके हाथ चन्द्रसेनके कुछ नौकर घायल हुए । चन्द्रसेनने अपने मनमें समका, कि यह सब वालाजीकी चालवाजी है, जान वृक्ष कर ऐसा किया गया है। इस कारण उन्होंने अप-राधीको कठोर दएड देनेका सङ्ख्य किया। अपने अध्वारोहोको निरपराध बतलाते द्वय उनसे क्षमा मांगी । इस पर दोनोंमें विवाद खड़ा हुआ । सेनापतिने वालाजी विश्वनाथको विपन्न करनेका उपयुक्त समय पा कर दलवलके साथ उन पर आक्रमण कर दिया। उस समय वालाजीके साथ उनके दोनों पुत और अम्बाजी-पएड पुरन्दरे तथा कुछ अभ्वारोही सेना थी। अतः उन्होंने सेनापतिका सामना करना अच्छा नहीं समका, इसिंछिये अपने परिवार समेत सासवाड ब्राममें और पीछे बहांसे भी भाग कर पुरन्दर-दुर्शमें चले गये। वह दुर्ग शहुरजी नारायण सन्विवके रक्षणाधीन था। वहाँके प्रधान कर्मचारीने पहले तो उन्हें आश्रय देना चाहा, पर जब सुना, कि सेनापति बहुसंख्यक सेनाके साथ पुरन्दर आ रहे हैं, तब बालाजीको निराश कर दिया। वहांसे सेनापतिका वृत्र भी उनका पीछा करता था रहा था। वालाजी विश्वनाथ पाएडवगढ़में आश्रय लेनेके लिये दौड़ पड़े। उस समय पिळाजीराव और नाथजी घुमाळ नामक दो मरहठे किलेदारोंकी चेएासे राहमें ही पा६ सी सेना इकड्डी कंर ली गई। वालाजीके साथ प्रायः सौसे अधिक सेना थी। अब वालाजीको कुछ जोर हुआ और दां सी सेना ले कर वे नोरा नदीके किनारे चन्यसेनकी सेना पर हूट पड़े। कुछ समय तक दोनोंमें घमसान युद्ध चलता रहा। आखिर वालाजीकी ही हार हुई और वे पुनः वहांसे जान हे कर भागे। चन्द्रसेनने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा।

वालाजी वड़ी विपद् भेलते हुए पाएडवगढ़ पहुंचे। वहांसे उन्होंने अम्बाजीपएड पुरन्दरको महाराज शाहुके निकट सहायता मांगनेके लिये मेजा। शाह वालाजीको कार्यदक्ष और विश्वस्त कर्मचारी सममते थे। उनकी विपद्ववार्ता सुनते ही उन्हें आश्वास दे कर सातारा बुलाया। इधर चन्द्रसेन पाएडवगढ़में घेरा डाले हुए थे।

जव उन्हें वालाजीका पता लग गया, तव शाहुको कहला मेजा, कि "यदि वालाजीको मेरे हाथ सुपुर्व नहीं करोगे, तो में मुगलीसे जा मिलूंगा।" सेनापितका ऐसा औदत्य दे व कर शाहु वहें विगड़े और उनका दमन करनेके लिये सर-लक्कर-हैयत्राव निम्वालकरको मेजा। इस युद्धमें चन्द्रसेनने हार खा कर मुगल-स्वेदार निजाम-उल् मुक्कका आश्रय श्रहण-किया। वालाजो विश्वनाथ उस भयङ्कर विपद्धसे रक्षा पा कर अपने दोनों पुत्रोंके साथ सांतारा लीटे।

हैवतरावने चन्द्रसेनको परास्त कर मुगलराज्यमें लूट-पाट बारम्स किया। यह देख कर निजाम-उल्-मुक्कने उनके विकंद युद्ध करनेके लिये चन्द्रसेनको हुकुम दिया। यह संवाद पा कर महाराज शाहुने वालाजी विश्वनाथको 'सेनाकर्ता'(१) यह गौरवस्चक उपाधि है कर बहुसख्यक सेनाके साथ निम्बालकरको सहायतामें मेजा। वालाजी सर-लस्करसे जा मिले। अब पुरन्दरके समीप दोनों दल-में युद्ध छिड़ गवा। युद्धमें महाराष्ट्रोंको आंशिक जय हुई (१७१३ ई०)।

इस समय महाराष्ट्रराज्यकी विश्वह्रुला वहुत वह गई थो। साहुके साथ युद्धमें परास्त हो कर तारावाईने कोहापुरमें अपने लड़केको राजा कह कर घोषणा कर दी

(१) महाराष्ट्र-राज्यके प्रधान सेनायति चन्द्रसेनने शानु वर्षअवलम्बन किया था, दा करण शाहुकी सैन्यसंख्या बहुत
यह गई। इस समय ताराबाई चन्द्रसेनकी हस्तगत करके
नाना उपायोंने शाहुके अपर सरदारोंको अपने दलमें लानेकी
चेश कर रही थी। इस समय बालाजी-विद्यनाथ यदि अपनी
नीरता नहीं दिख्लाते, तो तिर्चय था कि शाहुको विषय होना
पडता। बालाजीके बुद्धिकी शलते ही शाहुको सरदार ताराचाईके दलनें न मिल सके। बरन् बहुसंख्यक नृतन सेनासंग्रह कर बाबाजीने शाहुका सैन्यामान दूर कर दिया। इसी
कारण उन्हें 'सेनाकत्ती' की उपाधि सिली थी। यावर डफने सिनाकत्ती' शन्दका Agent in charge of the
काराण पंता अर्थ लगाया है। परन्तु यह इम लोगोंके
ख्यालसे बुक्तिसेनत नहीं है। महाराष्ट्र लेखकराण 'सेनाकत्त'-का अर्थ 'सेन्यदलका स्विष्टक्ती' ऐना अर्थ लगाते हैं
और मही ठीक भी है।

ओर वहां एक नेई राजधानी वसाई। १७१२ ई०के मईमास-में (ग्राव्ट-डफ़के मतसे जनवरीमें) उस वालककी मृत्यु हुई / पीछे भगत्योंने राजारामकी छोटी स्त्रीके गर्मजात 'शम्भाजी' नामक वालकको गही पर विठाया और आप राजकार्य देंखने छगे । इस कारण महाराष्ट्रीय सरदारोंमें-से किसीने शाहुका पक्ष और किसीने अथवा कोहापुरके अधिपतिने शम्माजीका पक्ष अवलम्बन किया था। कुछ तो मुगलोंके साथ मिल गये थे और कोई निरपेक्ष रह कर खप्रधान और विद्रोही हो उठे थे। शेषोक्त सरदारोंके मध्य दामाजी थोरत और उदयजी चौहान ही प्रधान थे। उदयजीके उपद्रवसे शाहु तंग तंग आ गये और उन्हें अपने राज्यके पकांशका चौथ वस्तुल करनेका खत्व हेने-को वाध्य हुए। उधर काह्रोजी आंग्रे कोह्रापुरपति-शस्भाजीका पक्ष ले कर शाहुके अधिकृत कल्याण-प्रदेश जीतनेकी तैयारी कर रहेथे। दूसरी ओर कृष्णराव खटावकर नामक राजा उपाधिधारी एक व्यक्तिने चिद्रोही हो कर राज्यमें उपद्रव आरम्म कर दिया था। अलावा इसक और भी कितने छोटे छोटे मरहठा-सामन्त शाहुकी अधोनता स्वीकार नहीं करते थे।

वालाजी विश्वनाथके बुद्धिकौशल और शौर्यग्रणसे यह सब अराजकता दूर हो गई थी। शाहुका आदेश ले कर वालाजी विश्वनाथने पहले दामाजी थोरतके विरुद्ध युद्धयाता की । दामाजी पूनासे ४० मील दक्षिणमें अव-स्थित "हिङ्गन" प्रामके सुदृढ़ छोटे दुर्गके अधिपति थे। दुर्गके चारों और प्रायः २० कोस तकके सभी प्रदेश उन्होंके अधीन थे। वालाजीको दलवल आते देख कर दामाजीने पहले उन्हें वाधा देनेकी चेष्टा की, पीछे नितान्त भय खा कर सन्धिप्रार्थी हुए। विल्वपत्न तथा हर्स्नो हू कर उन्होंने शपथ खाया और वालाजीको दुर्ग समपूर्ण कर दिया। किन्तु वालाजी ज्यों ही ससैन्य दुर्गमें घुसे, त्यों ही दामाजीने उन्हें कैद कर लिया। अम्याजी-पएड पुरन्दरे आदि कर्मचारियोंने उनका सांध दिया। विश्वासघातक थोरत निष्कयसक्तप उनसे वहुत रुपये मांगने लगे। महाराष्ट्रपति शाहुको वालाजी विश्वनाथकी मुकिके लिये जो कुछ दामाजीने मांगा उतना देना ही पड़ा था।

थोरतके हाथसे मुक्ति पा कर जब वालाजी सातारा आये, तब यहां उन्हें कृष्णराव खटावकरका दमन करनेके लिये आदेश मिला। सिव नारायणशङ्कर थोरतके विकद्ध और पेशवा विहरोपण्ड पिङ्गले काहोजी आङ्ग के विकद्ध भेजे गये। सातारासे उक्त तीनों व्यक्ति प्रायः एक ही साथ निकले थे। इनमेंसे वालाजी विश्वनाथने ही अपनी यातामें सफलता पाई थी। आउन्ध्र नामक स्थानके समीप उन्हों ने कृष्णराव खटावकरको युद्धमें अच्छी तरह परास्त किया। थोरतके साथ युद्धमें नारायणशङ्कर और आंत्र के साथ युद्धमें विहरोपण्ड परास्त हो वन्दी हुए। आंत्र के वाथ युद्धमें विहरोपण्ड परास्त हो वन्दी हुए। आंत्र केवल विहरोपण्डको कैद कर शान्त नहीं हुए। वे लौहगढ़ और राजमाठी आदि स्थानोंको जीत कर महाराष्ट्र-राजधानी सातारा पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे।

अभी वालाजी विश्वनाथ पर ही आंब्रेका दमनभार सौंया गया। वालाजीने तीस हजार सेनाके साथ आंग्रे के विरुद्ध याता कर दी । लीहगढ़ उनके हाथ लगा और शतुकी भी हार हुई। पीछे उन्होंने काह्वोजीसे सन्धि करके महाराष्ट्र-राज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी शाहुको पत लिखा, कि काह्रोजी उनकी अधीनता खीकार करनेकी तैयार हैं। आंश्रे जैसे प्रवल पराज्ञान्त व्यक्तिको कौशलसे वशीमृत नहीं करनेसे उनके द्वारा राज्यमें विशेष अनिष्ठ होनेको सम्भावना थी, यही जान कर वालाजीन इस नीतिका अवलम्यन किया, अधिक क्या, वालाजीकी यह सामनीति सुफलपद हुई। आंत्रे ने कोहापुरके शम्माजी-का परित्याग कर शाहुका पक्ष लिया । वालाजीकी मध्य-स्थतामें जो सन्धि स्थापित हुई, उसके फलसे पेशवा वहिरोपएड काराभुक्त हुए । कोह्रापुरके साथ काही-जीका कुछ सन्धम्य टूट गया। शाहु महाराजके जो अव दुर्भ आंग्रेने वलपूर्वक दखल कर लियेथे, राजमाठी छोड़ कर और सब लौटा दिये। आंध्रेकी १६ सुद्रह दुर्ग, १६ सामान्य दुर्ग और महाराष्ट्र-रणतरीके समूहकी अध्यक्षता मिली। इसके बतिरिक काह्योजीको 'सर्खेल'-की उपाधि दी गई। सर्खेलकी उपाधि और पोताध्यक्षताकी सनद शाहुकी ओरसे खर्य वालाजी विश्वनाथने काहोजी आंग्रे को प्रदान की थी।

इस प्रकार पेशवाको कारामुक तथा महावली आंग्रे के साथ सन्धि स्थापत आदि कार्य सम्पन्न करके वालाजी विश्वनाथ १९१३ ई०के आखिरमें महाराष्ट्रराजधानी सातारा लोटे। महाराज शाहुने उनके कार्यसे प्रसन्न हो कर उन्हें विशेषकपसे सम्मानित और पुरस्कृत किया। वहिरोप्एड-पिङ्गले आंग्रे के हाथ वन्दी हुए थे, इस कारण तथा उनमें कार्यदक्षताका अभाव देख कर महाराज शाहुने उन्हें पद-च्युत कर दिया। वालाजी विश्वनाथ अपनी कार्य-कुशलताके पुरस्कारसक्ष उस पद पर अभिपिक हुए (१७१३ ई०को १६वीं ववस्थर)। वालाजीको पेशवा पद पर अभिपिक करते समय महाराज शाहुने सभी सामन्तोंको बुला कर दरवार लगाया और वह समारोहके साथ उन्हें पदोचित परिच्छवादि प्रदान किये।

٠,

पेशवा वा मुख्य प्रधानयद्के परिच्छादिकी तालिका— (१) चादर, (२) सुवर्ण स्वबंचित पगड़ी, (३) जामेयर नामक शाल, (४) कटिवन्धनी, (५) सुवर्ण-मुद्राङ्कित उत्तरीय वल, (६) किमखाव, (७) राजमुद्रा खुरिका, (८) असि-चर्म, (६) जरी पटका नामक जातीय पताका, (१०) चौधड़ा नामक राजसम्प्रमोचित बाधभाएड, (११) तीन हस्ती, (१२) एक अभ्ब, (१३) शिरपेच, (१४ मुक्ताकी माला, (१५) चोगा, (१६) मुक्तायुक्त कर्णभूषा, (१७) मुकागुच्छमय शिरोभूषण, (१८) कल्लमदान।

समी पेशवाके सुख्यप्रधानको ही ये सब राजिवह दिये जाते थे। "श्रीमन्त" यह उपाधि इसी समय उन्हें दी जाती थी। तव्जुसार वाळाजी सरकारी कागजपत पर "श्रीमन्त वाळाजी विश्वनाथ पर्ड (पर्छित) प्रधान" इसी नामसे उछिकित होने ळगे। उनकी राजमुद्रा इस प्रकार थी,—

"शाह नरपति हर्वनिषात । बालाजी विश्वनाथ मुख्य प्रघाम ॥"(१)

(१) पेशवाओं की राजसुद्रा पर इस प्रकार उस्ता "k" कि ब जानेका कारण यह या, कि पहले महात्मा विवाली के समयसे पिंगले-वंशके पुरुष पेशवा पर पर प्रतिष्ठित थे। महाराज शाहुने पिंगले-वंशके हाथसे पेशवाका अधिकार, "मह" व शक के हाथ अपेण किया, इस व शास्त्रके चिहत्करूप "प्रवान" शाहुने नकार विपरीत मावर्से लिखनेकी प्रथा शाहुने चकार ।

वालाजी विश्वनाथको पेशवा-पद देते समय उनके मित अग्वाजीपएड पुरन्दर उनके मुतालिक वा उपमन्ती नियुक्त किये गये। वालाजीके अनुरोधसे महाराज शाहुने हिर महादेव भानुको पेशवाके फड़नवीस (Sudet)-कार्य पर भर्ची किया। इस प्रकार जो वालाजी विश्वनाथ छह वर्ष पहले सिहियोंके भयसे देश छोड़ भागे थे, आज उन्हींने अपने असाधारण प्रतिमा वलसे प्रधान मन्त्रीका पद प्राप्त कर अपने वन्धुवान्धवोंको भी उच्चपद पर प्रतिष्ठित किया।

शाहुके साथ सिन्धिमें आंश्रेको जो सव दुर्ग मिछे थे, उनमेंसे श्रोवर्द्ध आदि कतिपय स्थान सिहियोंने सुविधा पा कर अपना छिये थे। उन सब स्थानोंको सिहियोंसे पुनश्रेहण करनेके छिये काह्रोजीने पेशवा विश्वनाथसे सहायताकी प्रार्थना की। अन्तमें वालाजी और काह्रोजीने मिल कर सिहियोंको परास्त किया (१७१५ ई० जनवरी)।

इसके वाद वालाजी विश्वनाथ सेनापित मानसिंह मोरे (चन्द्रसेनके वाद इन्होंको महाराष्ट्रीय सेनाका अधि-नायकत्व मिला) और सर-लक्ष्कर हैयतराव निम्वालकर-के साथ दामाजी थोरतके चिरुद्ध मेजे गये (१७१५ ई०)। सचिव नारायण-शङ्कर थोरतके हाथसे वन्दी हुए थे। अतपव बामाजीके विरुद्ध यदि सहसा युद्ध याला की जाय, तो सम्भव है, कि वे सचिवको मार डालेंगे, इस भयसे बालाजी विश्वनाथने पहले उनसे मेल कर लिया और सचिवको कारागारसे किसी तरह छुड़ाया। अव बालाजीने थोरतके गढ़ पर चढ़ाई कर दो और तोपसे गढ़को मूमिसात कर डाला। पीछे बामाजीको केट् कर सातारा भेज दिया।

सिचवकी माता पसुवाहंने कतहताके चिहल्लस्प वालाजी विश्वनाथको अपने अधिकारिस्थत पुरन्दर दुर्ग और पूना-प्रदेश दिया। वालाजीने महाराज शाहुकी अनु-मित और सनद-पत ले कर उसे शहण किया। इस समय पूनाप्रदेश मुगल-पक्षीय सरदार वाजीकदम नामक एक व्यक्तिके अधिकारमें था। वालाजीने उस व्यक्तिको वशोन्त करके निर्विधतासे पूनामें अपनी धाक जमा ली। उनकी चेष्टासे पूनामें लोगोंको जो चोरका मय रहता

Vol. XIV. 95

था, वह जाता रहा और रूपकींकी अवस्थाकी उन्नति हुई। अन्तमें पूना ही पेशवावंशका प्रधान वासस्थान और महाराष्ट्र-शक्तिका केन्द्रस्थळ वनाया गया।

्रस्स समयसे महाराज शाहुके द्रवारमें वालाजी विश्वनाथकी प्रतिपत्ति दिनों दिन बढ़ने लगो। यहां तक, कि
विना उनके अनुमोदनके राज्यका कोई भी कार्य नहीं
किया जाता था। वे प्रायः सभी विपयोंमें महात्मा
शिवाजीकी प्रतिष्ठित नियमावलीका अनुसरण करते थे।
किन्तु शम्माजीके समयसे मुगलोंके अनुकरण पर एक
कुत्सित प्रथा प्रचलित हुई थी। वह प्रथा यह थी, कि
जो सरदार अपने मुजबलसे जिस प्रदेशको जीत सकेंगे,
वह प्रदेश उन्हींको जागीरसक्षप दिया जायगा। शिवाजी
इस नौतिके घोर विरोधी थे। वालाजीने उसका मर्म न
समक्त कर शाहु महाराजके द्वारा अनेक सरदारोंको सनदपत्न दिलवाये थे। इससे राज्यकी कैसी क्षति होती थी,
उस ओर दुर्भाग्यक्रमसे प्रतिभाशालो मुख्यप्रधान
(वालाजी) का जरा भी ध्यान न था।

इस समय उत्तर-भारतमें दिव्छीके दरवारमें एक भयानक गोलमाल खड़ा हो गया था। **औरङ्गजेवके** प्रवीत फरबाशियर दिल्लीके सिहासन पर आरूढ़ थे। सैयद अवदुक्ला खाँ और सैयद हुसेनअली खाँके हाथकी वे कठपुतली हो रहे हैं, यह जान कर वे और उनके वन्धु-वर्ग उन दोनोंके हाथसे परिवाण पानेके लिये कोशिश कर रहे थे । इधर दोनों सैयद भी नाना उपायसे अपने आधिपत्यको अअपण रखनेके लिये चेष्टा करने छते। आखिर १७१७ ई०में दोनों पक्ष खुल्छमखुल्डा लड़ाई की तैयारी करने लगे । सैयद हुसेनअलीने महाराज शाहुसे सहायता मांगी। उन्होंने कह्ला मेजा, कि शाहु यदि इस समय उन्हें ५० हजार सेनासे मदद दें, तो वे नर्मदाके दक्षिणस्थित समस्त मुगल-राज्यका चौथ और सरदेशमुखी वस्रल करनेकी सनद उन्हें वादशाहसे दिला देंगे। अलावा इसके वे सेनाका बर्च मासिक १५ लाख रुपये देनेको भी तैयार हो गये।

इस समय महाराष्ट्रराज्यका अन्तर्विग्रह मिट गया था और शाहु तमाम महाराष्ट्र देश पर एकाधिपत्य कर रहे थे। इस कारण सैयदोंको सेनासे सहायता करना इस समय महाराष्ट्रोंके लिये दुःसाध्य नहीं था । महा-राज शाहुने सेनापित मानसिंह, मोरे, परासाजी भोंसले, शम्भाजी मोंसले, विश्वासराव पवार आदि सेनापितयोंको ५० हजार सेनाके साथ सैयदकी सहा-यतामें दिल्ली-याता करनेका हुकुम दिया। बालाजी विश्वनाथके ऊपर उन सव सेनापितयों के तस्वावधान-का मार सौंपा गया।

महाराष्ट्रसेना दिख्ली पहुंची । दिख्लीका गोलमाल घोरे घोरे बढ़ने लगा । उस विश्वमं फरुलश्चियर मारे गये और महम्मदशाह सिहासन पर स्थापित हुए (१७१६ है०)। विख्लीवासी सैयद भाइपोंके प्रति नितान्त मसन्तुए थे। इस कारण उनकी मददमें आये हुए मरहशें पर भी उन्हें कोध हो आया था। एक दिन वालाजी विश्वनाथ सैयद भाइयों के साथ वादशाहके दरवारमें गये। इधर दिल्लीवासियों ने विद्रोही हो कर मरहशें पर आकं मण कर दिया। इस दुर्घटनामें प्रायः १५ सौ मरहशे मारे गये। किन्तु सैयदने काफी रुपये दे कर उन लोगों की क्षति पूरी की। पीछे उन्हों ने वादशाहकी मुद्राङ्कित एक सनद द्वारा मरहशें की दाक्षिणात्यका चौध, सरदेशमुली और खराज्यका(१) सम्पूर्ण स्वत्व प्रदान किया।

यहां पर यह कह देना आवश्यक है, कि मुगलों के शिविरसे छौटते समय शाहुने वादशाहसे एक निदर्शन वा सनद ले ली थी। महात्मा शिवाजीके उपाजित स्वराज्यका वे विधिसङ्गत उत्तराधिकारी तो थे, पर उनकी अनुपिस्थितिमें महाराष्ट्रदेशमें जो सव गोलमाल हुआ था तथा उनकी चाची नारावाहने जो अपने लड़केकी राज्यका एकमाल उत्तराधिकारी वतला कर घोषणा कर दी थी, उससे उनका उत्तराधिकार-स्वत्य महाराष्ट्रीय

⁽१) स्वराज्य — इजयति महाराज विवाजीके शासित प्रदेश महाराष्ट्रमें "स्वराज्य" नामसे प्रतिद्ध हैं। स्वराज्य कहनेसे प्रधानतः पूना, सुपा, स्वरापुर, वार्ब, मावल, सातारा, कहात, खटाव, माण, फलटन, मलकापुर, तारले, पहनाला, असेशा, खनग, कोहलापुर, कोंडण और तु ग्रथ्मा नवीके उत्तर- स्थित कोपल, गदक तथा 'इत्याल परम्ना—ये सब भूभाग समझे जाते हैं।

सरदारों से कहां तक खीकत होगा, इस विषयमें उन्हें स्त्रभावतः ही संशय हो गया था । यही कारण था, कि उन्होंने वादशाहसे खराज्यका उत्तराधिकार पानेकी एक सनद छे ली थी। इस सनदके बलसे वे अपनेको दिल्ली-के सम्राट्के अधीन सामन्त राजा वतला कर महाराष्ट्र-देश पहुंचे । इसके वाद वहुत कुछ सनदके वलसे खराज्यका प्रकृत उत्तराधिकारी वतला कर तथा कुछ जागीर आदिका लोभ दिखा कर शाहुनै अधिकांश महा-राष्ट्र-सेनापतियोंको अपने दलमें मिला लिया । इस प्रकार शाहुके आगमन पर महाराष्ट्रराज्यमें दो नये विपयोंकी सूचना हुई—१ला शिवाजी, शम्माजी और राजाराम आदि भोंसले-राजगण जो अपनेको साधीन हिन्दुराजा कहा करते थे, वह इस समयसे विलुप्त हो गया। शाहुने जो अपनेको मुगल-सम्राट्के अधीन सामन्त राजा वतला कर घोषणा कर दो उससे महाराष्ट्रमें छत्रपतियोंकी स्रतन्त्रता जाती रही। परवर्त्तीकालमें मुगल-सम्राट्की क्षमता क्रमशः क्षोण होती तो आ रही थी, पर तोभी पेशवा सिन्दे, होलकर आदि प्रवल,पराकान्त महाराष्ट्रीय-गणको भी नाममातका दिल्लीश्वरका सार्वभौमत्व स्वीकार करना पड़ता था। दूसरा, शिवाजीके समय सरआमी जागीर वा सैन्यपोषणके लिये पुरुषपरम्पराक्रमसे भूस-म्पत्ति-भोगका स्वत्व किसीको भी नहीं दिया जाता था। शाहुने महाराष्ट्र-सेनापतियोंको अपने दलमें लानेके लिये उन्हें वंशानुक्रमिक जागीर खत्व दे कर जो नयी प्रथा चलाई, उससे महाराष्ट्रराज्यनाशके कारणका वीज उत्पन्न हुआ। सरदार लोग पुरुवानुक्रमसे जागीरका भोग करके मवल हो उठे और साम्राज्यघटित राजनीतिके साथ उनके जागीरभुक्त प्रदेशके खार्थादिका वीच वीचमें विरोध होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ, कि महाराष्ट्रसाम्राज्य खएडशः विभक्त हो कर सम्पूर्ण विलीन हो गया।

जो कुछ हो, शाहुने वादशाह्से खराज भोग करनेकी सनद तो पाई, पर फरुखशियरके दाक्षिणात्य स्वेदार निजाम-उल-मुल्कने उस सनदकी अवद्या करके खराजके अनेक स्थान वलपूर्वक अधिकार कर लिये। इस उपलक्षमें मुगलोंके साथ महाराष्ट्रीका अकसर युद्ध हुआ करता था। इसका निवारण करनेके लिये शाहुको नये वादशाहसे नई सनद छैनी पड़ी। दिलीका गोलमाल दूर करनेके लिये सैयदने जब उनसे सेना सहायतामें मांगी तब शाहुने जो सब खत्व वादशाहसे मांगे थे, उसका अधिकांश पेशवा बालाजी विश्वनाथ दिल्लीसे लौटते समय मंजूर कराके लाये। शाहुकी ओरसे वालाजी विश्वनाथने निम्नलिखित खत्वोंके लिये प्रार्थनाकी थो—

- १। छतपति महाराज शिवाजीके उपार्जित खराज्यका सम्पूर्ण उपभोग जिससे महाराष्ट्रीयगण कर सकें, उस-की सनद ।
- २। दाश्चिणात्यके अन्तर्गत वीजापुर, हैदरावाद, कर्णाटक, तञ्जोर, तिचिनापल्ली और महिसुर इन छह वादशाही प्रदेशोंसे चौथ (जमावंदी वा राजस्वका चतु-थांश) तथा सरदेशमुखी (राज्यकी कुल आयका दश-मांश) मरहरोंको भर्षण।
- ३। मुगलोंके अधिकृत शिवनेरो-दुर्ग (इसी दुर्गमें महात्मा शिवाजीका जन्म हुआ था और तिम्नक-दुर्ग मरहठोंको प्रत्यर्पण।
- ४। गोएडवन और वैरारके जो सव प्रदेश "सेना साहव स्वै" कानहोजी भोंसळेते अधिकृत हुए हैं, उन्हें मरहठोंके खराजभुक्त कर देना।
- ५। शाहुके महाराष्ट्र-आगमनकालमें उनकी माता और दूसरे आत्मीयगण प्रतिभूरूपमें दिल्लीमें रहते थे, उन्हें खदेश जानेका अनुमतिप्रदान।
- ६ । कर्णाटकमें महात्मा शिवाजी और उनके पिता शाहजीके समय जो सव अंश अधिकृत हुए थे, उन्हें मरहटोंको पुनः प्रदान । खान्देशमें शिवाजीका जहां जहां अधिकार था, उसके वदलेमें महाराष्ट्रदेशके पूर्वा-श्रन्थित परस्रपुर आदि प्रदेश-दान ।

वादशाहके ये सब खत्वप्रदान करनेसे महाराष्ट्र-पति शाहु निम्नलिखित शर्त मंजूर करेंगे, ऐसा वालाजी-ने अङ्गीकार किया—

- १ । छतपति महाराज शाहु सामन्तरूपमें दिल्लीश्वरको वार्पिक दश छाख रुपये कर प्रदान करेंगे ।
- २। सरदेशमु हो स्वत्वलाभके प्रतिदानमें मरहठोंको शान्तिरक्षाके लिये दायी होना पड़ेगा। जिन सब प्रदेशों-से वे सरदेशमुस्ती वसूल करेंगे, उन सब प्रदेशोंमें यदि

चीर डकैतोंका उपद्रवं हो जाय, तो उन्हें उसकी क्षति पूरी कर देनी पड़ेगी।

३। चौथं वस्लके स्वत्वके लिये महाराष्ट्रोंको १५ हंजार सेनाके साथ वादशाहको मदद देनेमें हमेशा तैयार रहना पड़ेगा। जब जहां कहीं आवश्यकता होगी, तब यहां वादशाही स्वेंदारको १५ हजार सेनासे मदद देनी होगी।

8 । कोह्वापुरके शम्माजी और उनके पक्षीय सरदार-गण यदि कर्णाटक, बीजापुर और हैदरावाद आदि वाद-शाही प्रदेशोंमें उपद्रव मचार्ये, तो महाराज शाहुको उसका प्रतिविधान करना होगा। यहां तक, कि शम्माजीके अत्याचारसे वादशाही प्रजाकी क्षति होनेसे वह क्षति भी शाहुको ही पूरी करनी पड़ेगी।

हुसेनअलीने इन सव शर्तांमेंसे प्रायः सभी शर्तें मंजूर कर ली थीं। वालाजी विश्वनाथके दिल्ली जाते समय महाराज शाहुने उन्हें वादशाहुसे दौलतावाद और बांदा ये दोनों दुर्ग तथा गुजरात और मालवप्रदेशमें चौध वस्तृल करनेका स्वत्व मंजूर करानेके लिये यथा-साध्य चेष्टा करने कह दिया था।

विह्वीसे लौटते समय वालाजीने सैयद्की सहायता पा कर बादशाइसे खराज्यकी सनद पुनर्श हण की, यह पहले ही कहा जा चुका है। महाराज शाहुकी माता और अपर आत्मीयगणको भी वे मुक्त करके अपने तत्वावधानमें खदेश लाये। शाहुने जो सव अधिकार मांगे थे, वे सभी दिये गये। केवल दो एक विषयों में सैयद्ने उनकी इच्छा पूरी न की। वे सव विषय ये थे,—

(१) खानदेशमें महाराष्ट्री का जिन सव हुगाँ पर अधिकार था, वह। (२) तिम्बक हुगें और उसके चारों ओरके प्रदेश। ३ तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणस्थित जो सव प्रदेश मरहहों ने वलपूर्वक छीन लिये थे, वह।

अलावा इसके सेना साहव सूबे काह्रोजी मींसलेने वेरार-अञ्चलमें जो सब प्रदेश दखल किये थे, उन्हें लौटा देनेमें सैयदने अनिच्छा प्रकट की। गुजरात और मालव-प्रदेशमें चौथ वसूल करनेका अधिकार मरहठोंको मिला था या नहीं, उसे ठीक ठीक नहीं कह सकते। महाराष्ट्रीय लेखकों का कहना है, कि बादशाहने उन्हें यह अधिकार भी दिया था। त्राएट डफ साहवके मतसे ये सब अधि-कार उन्हें दूसरे समय दिये जायंगे, ऐसा सैयद भाइयों-के कहने पर वालाजी विश्वनाथ देवराव हिङ्गणे नामक एक सुचतुर ब्राह्मणको दिल्लीमें दूत स्वरूप रख स्वदेश लीटे। इसके अतिरिक्त लीटते समय वे जयपुर, उदयपुर आदि राजाओं से मिले और शाहुके साथ जिससे उनकी मित्रता बनी रहें, ऐसा अनुरोध कर आये।

वालाजो विश्वनाथ जव दिल्लोमें थे, उस समय एक यटना घटी, वह भी यहीं पर उल्लेख योग्य है । दाक्षि-णात्यके मुगळ-शासित भदेशों में चौथ और सरदेशमुखी खत्वकी सनद मरहठोंकी दी गई है, यह छुन कर दिल्लीके अधिवासी वड़े असन्तुष्ट हुए। सनद् हे कर जब वालाजी दरवारसे यमुनाके किनारे अपने शिविरमें उसी समय राहमें उन पर आक्रमण करके उनसे सनद-पत्र छोन छेंगे,—इस प्रकार दिलीके दुष्ट व्यक्तियों ने आपसमें सलाह की । वालाजी जव दरवारसे निकले, तव हो उन्हें इसकी खवर लग गई। पोछे वे अपने मिल महादेव भानुके उपदेशसे सामान्य भृत्यके वेशमें सनद ले कर शिविरकी ओर खाना हुए। इधर वालाजी महादेव भाजु पेशवाकी पोशाकसे भूपित हो पालकीसे प्रकाश्य राज-पथ हो कर चले। पडयन्त-कारियों ने पे . वा समक्त कर आक्रमण किया और मार डाळा। इस समय उनके सहचरींने उनकी रक्षा करने-के लिये वड़ी वीरता दिखलाई थी, पर सभी चेश निश्फल गई। प्रसिद्ध नाना फड़नबीस इस आत्मी-त्सर्गकारो वालाजी-महादेव-भानुके पाँत थे। पितामहके जैसे पौब नाना फडनवीसने भी पेशवाओं की राज्यस्था-के लिये प्राणपणसे चेष्टा की थी।

दिल्लीसे सनद ले कर वालाजी विश्वनाथ १७१६ ई॰की ४थी जुलाईको सातारा पहुंचे। महाराज शाहुने अपने विजयी पेशवाका वड़ी धूमधामसे स्वयं आगे वढ़ कर स्वागत किया। इस सनदके फल से मरहठों के राज्यमें जो सब मुगल थाने थे, वे सब उठा दिये गये। "स्वराज्य" में और कहीं भी मुसल-मानी अधिकार न रहा। अलावा इसके शाहुकी प्रति-पत्ति भी खुव बढ़ गई। महाराज शाहुने इन सब कार्यों के

पुरस्कारस्वरूप वालाजी विश्वनाथको पूना जिलेके अन्तर्गत पांच महालके सरदेशमुखी स्वत्व और कुछ प्रामोंके समस्त उपस्वत्व भोगका अधिकार प्रदान किया। खानदेश और वालाघाट अञ्चलका शासन-भार पहलेसे ही उन पर अर्पित था।

वालाजी विश्वनाथ राज्यके विहःशतुओं का पराक्रम खर्व करके अभी कुछ निश्चिन्त हो गये थे। इस कारण उन्हें अव राज्यकी आभ्यन्तर व्यवस्थाका संस्कार करने का अवसर मिला। इतने दिनों तक आय व्यय और सरदारों के प्राप्य अंशका कोई भी निर्द्धारित नियम नहीं रहने के कारण अंशिदारों में अकसर कलह हो जाया करता था। वालाजी विश्वनाथने उसे दूर करने के लिये जमावंदीका स्क्म हिसाव पत्न देख कर आयव्ययके सम्बन्धमें कुछ विशेष नियम निर्द्धारित कर दिये। इस नये निर्द्धारणके फलसे राजकार्यका गोलमाल वहुत कुछ शान्त ही गया और राज्यकी श्रीवृद्धिकी ओर सर्वोको खामाबिक अनुराग उत्यक हुआ। इसके सिवा मुसलमानों के हाथसे कमशः नये नये प्रदेशोंको प्रहण करनेकी आकांक्षा मरहर्जेके इद्यमें उत्पन्न हुई। इसी कारण वे सव नियम यहां पर उद्ध त किये जाते हैं,—

- (१) सरदेश-मुखी आयके कुछ हकदार राजा (गई।के माछिक) हैं, इस पर किसी दूसरेका खत्य नहीं रहेगा।
- (२) राज्यकी अवशिष्ट आय "खराज्य" नामसे प्रसिद्ध होगी। छत्रपति महाराज शिवाजीके उपार्जित राज्यखण्ड आज तक स्वराज कहलाता था। बालाजी विक्वनाथने उसके वदले दूसरे अर्थमें उस शब्दका प्रवर्त्तन किया। सरदेशमुखी भिन्न और सभी प्रकारका खत्व तथा आय आजसे "स्वराज" कहलाने लगी। वालाजी विश्वनाथने उसके ध्ययकी निम्नलिखित प्रकारसे स्वयस्था की—
- (क) स्वराजकी सैकड़े पीछे २५) रु आय राजा पार्वेगे। इसका नाम 'राजवावती' रहेगा।
- (ख) स्वराज्यके भवशिष्ट तीन-चतुर्थां शका नाम 'मोकासा'रहेगा । इसमेंसे दो अंश राजा, अपने इच्छा-वुसार किसो दो कर्मचारीको देंगे । इसमेंसे स्वराज्यकी समस्त आयका सैकड़े पीछे ६ अंश एक व्यक्तिको दिया

जायंगा । यह अंग्र 'शांहोता' कहलायंगा । महाराज शांहुने यह अंग्र पन्य सचिवको वंशपरम्पराक्रमसे दान किया था।

- (ग) अविशिष्ट सैकड़े पीछे ६६ अंशका नाम 'आयेन मोकासा' रखा गया। इनमेंसे तीन अंश, राजा जिसे चाहें, दे सकते हैं। इस अंशका नाम 'नाड़गौड़ा' था।
- (घ) सराज्यकी समस्त आयका अवशिष्ट ६६ अ श सरदारोंको जागीर देनेमें खर्च होगा ।
- (३) 'राजवावती' वस्ल करनेका भार पेशवा, प्रति-निधि और सचिव पर रहेगा ।

मोकासाके मध्य दूसरेका प्राप्य अंश सचिव महाशय वसूल कर छँगे। दूरस्थित तालुकासे राजा अपने कर्म-चारियोंको भेज कर मोकासाका रुपया वसूल करावेंगे।

"नाष्ट्रगौड़ा" और "जागीर" जिन्होंने पाई है, उसके रूपये वे ही वसूछ कर लेंगे।

(४) सरदारोंके मध्य आपसमें सद्भाव-वृद्धिके लिये एककी जागौरमें दूसरेका कतिपय खत्य रहेगा, यह ज्यवस्था भी की गई।

इस नये नियमावलीके फलसे एकको क्षति वृद्धिके साथ दूसरेका खार्थ-सम्बन्ध घनिष्टभावमें होनेके कारण मरहठा सरदारोंके मध्य एकता-संस्थापनका पथ परिकार हो गया और उसीके फलसे भविष्यमें मरहठोंका साम्राज्य सारे भारतवर्षमें फैल गया था।

ये सव नियम स्थापन करनेके सिवा मुसलमानविष्ठवं से इपक जो जर्जर हो गये थे, छिपकार्थमें उन्हें उत्साह दिलानेके लिये मालगुजारीकी दर भी कुछ घटा दी गई थी। चोर-डकैतका भय दूर करनेके लिये उन्होंने कोई कसर उठा न रखी। राज्यकी आभ्यत्तर शासनयव-स्थाकी श्रीवृद्धिमें लगातार परिश्रम करनेके कारण वालाजी विश्वनाथका खास्थ्य खराव हो गया। इस अवस्थामें भी उन्हें दो वार युद्धयाला करनी पड़ी थी। इसके वाद जलवायु वदलने और कुछ दिन आराम करनेकी इच्छासे वे महाराज शाहुकी अनुमति ले "सासवड्" शाममें जा कर रहने लगे। किन्तु वहां खास्थ्यमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ, वरन दिनों दिन खराव ही होता गया। आखिर १७२० ई०के अियलमासमें (शाल्य उफके मतसे-अक्तूवर

मासमें) वे इहधामका परित्याग कर सुरधामको सिधार गये। वाळाजीकी मृत्युका संवाद सुन कर शाहु वड्डे दुःखित हुए थे।

बालाजी विश्वनाथ उतने समरकुशल तो नहीं थे, पर साहस, योद्धा और राजनीतिमें उन्होंने अच्छा नाम कमा लिया था। शाहुका मुगलराज-परिवारमें ही पालन-पोषण हुआ था, इस कारण वे विलासपरायणताके दास हो गये थे। वालाजी विश्वनाथ जैसे कार्यदक्ष पेशवासे यदि उन्हें सहायता नहीं मिलती, तो कभी भी सम्भव नहीं था, कि वे महाराष्ट्रदेशमें ऐसी प्रतिपत्ति लाभ कर सकते।

बालाजी विश्वनाथके मृत्युकालमें उनकी स्त्री राधा-बाई, पुत वाजीराव और चिमाजी अप्पा उनके पास ही थे। इसके बाद १७५३ ई०में राधावाईकी मृत्यु हुई। मृत्युकालमें वालाजीकी उमर करीब ५० वर्षकी होगी। बाजीराव और चिमाजीके सिवा उन्हें दो कन्या भी थीं।(१)

काजीराव वल्लाल पेशवा—१६६६ ई०को श्रोवर्ड न प्राप्तमें उनका जन्म हुआ। वे वचपनसे ही पिताके साथ छड़ाईमें जाया करते थे। इस कारण शोर्य और साहस किसी अंशमें अपने पितासे कम नहीं था। चन्द्रसेनके साथ वालाजोंके विश्रहकालमें, दामाजी थोरतके विरुद्ध युद्धयाता कालमें और सैयद भाइयों के कार्योद्धारके लिये दिल्लीगमनकालमें वाजीराव भी पिताके साथ थे। पिताकी मृत्युके पहले सैयदों के प्रतिनिधि आलम अलीकी सहायता करनेके लिये वे खान्देश गये थे। पिताकी मृत्युके १५ दिन पीछे १७२० ई०की १७वीं अप्रिलको वाजीराव शाहुसे पेशवाके परिच्लादिके साथ उक्त पद प्राप्त किया। श्रीपितराव प्रतिनिधि आदि कुल राजपुरुषों ने इस विषयमें शाहुको कुल और सलाह दी थी। किन्द्र वालाजी विश्वनाथको कार्यावलीका स्मरण कर तथा वे ६।९ वर्षसे अधिक पेशवापदकी सुखमोग न कर सकेंगे, यह सोच कर महाराज शाहुने वाजोरावको पितृपद पर अभिषिक्त कर ही दिया।

पेशवा-पद पर प्रतिष्ठित होते ही वाजीरावने महाराज शाहुसे पूनामें अपनी वासस्थान निर्दिष्ट करनेकी अनु-मति ली। पोछे अपनी माता और आत्मीयगणको पूना-में ला रखा। वापूजी श्रीपति नामक एक व्यक्ति पुरन्दर-दुर्गके अधिपति थे। वाजीरावने उन्हें पूनाके स्वेदार-पद पर नियुक्त किया। उन्होंने रम्भाजी जाधव नामक एक बुद्धिमान व्यक्तिको वापूजीकी अधीनतामें रह कर पूना ग्रामको शहरमें परिणत करनेका भार सौंपा। उनकी चेष्टासे थोड़े ही वर्षोंके अन्दर पूनामें वहुसंख्यक व्यवसायी और कारीगर वस गये और पूना ग्राम शहरमें परिणत हो गया।

वाजीरावने जव पेशवाका पद पाया, उसी समय भारतवर्षकी राजनीतिक अवस्था कैसी थी, उसका संक्षिप्त परिचय यहां पर देना आवश्यक है। क्योंकि यह देनेसे पाठकवर्ग वाजीरावकी कार्य-प्रणालीका ममें अच्छी तरह समक सकेंगे।

इस समय मरहठा-सरदारोंका आतमवित्रह वहुत कुछ शान्त हो गया था। परन्तु राजवंशके कलहमें कुछ सर-दार तो शाहुके पक्षमें और कुछ कोह्नापुरके शम्माजीके पक्षमें थे। इतना होने पर भी वालाजी विश्वनाथकी चेष्टासे शाहुका ही पक्ष मजवृत हो गया था और देशमें चोरों-इकैतोंकी बुनियाद भी रहने न पाई थी। दिल्लीके राजपरिवर्त्तन व्यापारमें मरहठोंने विशेष सहायता की थी जिससे महाराष्ट्र-शक्तिकी प्रतिपत्ति उत्तर भारतमें विशेषस्पस्पसे प्रतिष्ठित हो गई थी।

भारतवर्ष मणिकाञ्चनकी जन्मभूमि हैं, यह संवाद पा कर पाञ्चात्य वणिकोंने इसके पहले ही इस देशमें पदा-पंण किया था । पहले पुत्तेगीज वणिकोंका ही इस देशमें आगमन हुआ । किन्तु देशकी अवस्था देख कर उन्होंने थोड़े ही दिनोंके अन्दर वणिक्वृत्ति छोड़ दी और राजकीय व्यापारकी ओर ध्यान दिया। कमशः इस देशके राजाओंका छिद्रान्वेषण करके उन लोगोंके साथ रह कर शक्ति-परीक्षाकी वासना भी उनकी वलवती हो गई। पश्चिम समुद्दके तीरवर्त्ती वहुसंख्यक

⁽१) इनमें से बडी कन्या भाजनाईका 'इनलकरकजी' प्रदेशके जमादार वेंकटरान घोरपडेके साथ और छोटी कन्या माधु-बाईका नारामती नगरके प्रसिद्ध उत्तमणे नायूजी नायकके माई भानाजी नायकके साथ विवाद, हुआ था।

वन्दरों पर उन्होंने अधिकार कर लिया था। १७२० ई०को वाजीरावने राजकायमें प्रवृत्त हो कर देखा, कि पुर्चगीज लोग भी मरहरोंको वलिष्ठ श्रेणीमें गिने जा सकते हैं।

पुत्त गीजों की समृद्धि देख कर फरासीस, ओलन्दाज और अंगरेज-विणकों ने भी इस देशकी धन-सम्मत्ति लृटनेके लिये पश्चिम-भारतमें शुभागमन किया। गोआ, दायमन, दीड, वम्बई, लम्बायत्, साधी, स्रत, चीळ, वसई, पुंदिचेरी, राजापुर, वेंगुळें, कारिकळ, यानान, चन्दननगर आदि स्थानों में इन सब वैदेशिक विणकों ने अपनी अपनी कोठी खोळी थीं। किन्तु १७२० ई० तक फरासीस अथवा अंगरेज लोग इस देशके राजकीय व्यापारमें हाथ नहीं डाळ सके थे।

इधर उत्तर-भारतमें मुगलवादशाहकी अवस्था दिनींदिन शोचनीय हो रही थी । सैयद भाइयों की चेप्रासे
महभ्मदशाह दिख्लीके सिंहासन पर अधिकड़ थे। वे आप
जैसे विलासिय और व्यसनासक्त थे उनके कमचारी
भी वैसे ही नितान्त अकर्मण्य थे। सुनर्रा राजदरवार
यथेच्छाचार और विलासव्यसनकी लोलाभूमि हो गया।
प्रजाके ऊपर घोर अत्याचार होने लगा। राजस्य इतना
कम बस्ल होने लगा, कि वादशाहका दैनिक खर्च भी
चलना कठिन हो गया। वादशाह ऋण लेने लगे। ऋण
परिशोधके लिये प्रजाके ऊपर नया कर वैठाया जाने
लगा। दुवंल प्रजाका आर्त्तनाद सुननेवाला कोई भी
न रह गया।

इस समय औरङ्गजेवकी अमलदारीके एक सुद्ध्र राजनीति-विशारद सरदारने अपने वाहुवल और बुद्धिकीशलसे भारतवर्षमें मुसलमानोंके नएपाय गौरव-की पुनः प्रतिष्ठा की। प्रवर्द्ध मान महाराष्ट्रशक्तिको गति रोकनेके लिये उन्होंने जो चेष्टा की, वह वहुत कुछ फली-भूत हुई। इस वीरवरका नाम था चिगलीज खाँ वा निजाम-उल-मुल्क। सैयद भाइयोंने ही उन्हें मालवको स्वेदारहरूपमें दाक्षिणात्य मेजा था। दिला द्रवारमें सैयदोंकी असाधारण प्रतिप्रत्ति वढ़तो जा रही है, यह देख कर वे दंग रह गये। वाद्शाहको करतलगत करनेको उनकी जो उचाकांक्षा थी, उस पर पानी फेर गया। अव उन्होंने दाक्षिणात्यमें अपनी गोटी जमा कर वल-वृद्धिका

सङ्कल्प किया। उन्होंने प्रथमतः खुल्लमखुल्ला विद्रोह-घोषणा और माछवसे छे कर नमेदा किनारे तक सभी भूभाग पर चढ़ाई कर दो। आशीरगढ़ दुर्ग जीत कर अधिकांश मुगछ सरदारको अपने दछमें मिछा छिया। यह संवाद पा कर सैयद भाइयोंने दिलावर खाँ नामक एक सेनापतिको निजाम उल-मुल्केके विरुद्ध भेजा। औरङ्गावादसे हुसेनअछोके भतीजे आछमअछीने भी उन-के विरुद्ध युद्धयाला कर दी। आलमअलीकी सहायतामें खण्डेराव द्माडुँ, दामाजी गायकवाडु, वाजीराव आदि महाराष्ट्रीय सेनापति गये थे। वाजीराव युद्धसेतमें उतरे थे वा नहीं, कह नहीं सकते। पर अन्यान्य मरहजा सर-दारोंने इस युद्धमें विशेष शौर्यवीर्य दिखलाया था, पेसा चणन मिलता है। इतना होने पर भी निजामके हाथ आलमअर्जी और दिळावर खाँ को परास्त होना पड़ा। उनकी हार सुन कर हुसेन-अलीने दिल्लीसे वाद्शाहको साथ लिये निजामके विरुद्ध याता की । कहते हैं, कि राह-में वादशाहके इज़ारेसे ही उन्हें गुप्तघातकके हाथ प्राण गंवाने पड़े। इसके वाद उनके भाई अवदुला भी कारा-गारमें हुंस दिये गये।

इस प्रकार विना आयासके निजाम-उल-मुल्कका उन्नित-पथ साफ हो गया। वादगाह महम्मद शाहने उन्हें अपने प्रधान मंत्रीके पद पर चर कर दिल्ली बुलाया। किन्तु वीजापुरमें बिग्लय खड़ा हो जानेसे १७२८ ई० तक उन्हें दिल्ली जानेका अवकाश नहीं मिला। जो कुछ हो, वाजीरावने पेशवाका पद पा कर देखा, कि मुसलमानोंके मध्य निजाम-उल-मुल्क ही उनके एकमाल प्रधान प्रति-इन्होस्पमें दाक्षिणात्य प्रदेशमें खड़े हैं।

पूर्ववर्णित विद्यवकालमें खान्देशसे मरहरोंके प्राप्य चौध और सरदेशमुखी-संकान्त प्राप्य राजसके वस्तुमें विद्यवाधा होने लगे। पेशवा होते ही वार्जारावने सुना, कि खान्देशके मुगल लोग महाराष्ट्रीय मोकसदारोंको वस्तु करनेमें वाधा हेते हैं। १७२१ ई०में उन्होंने राम-चन्द्र गणेश नामक एक महाराष्ट्रीय सेनापितको खान्देश और मालवधदेशमें चौध और सरदेशमुख सत्व वस्तुल करनेके लिये मेजा। रामचन्द्र गणेशको मुगलोंने प्राण-पणसे वाधा देनेमें कोई कसर उठा न रखी। तथापि वे वाहुवलसे समस्त खत्य वस्ल करके वापिस आये। दूसरे वर्ष भी वस्लमें वड़ी गड़वड़ी उठी जिससे वाजी-राव उदाजी पवारको ससैन्य मालवमदेश भेजनेको वाध्य हुए। उदाजीने मालवके प्रत्येक परग्नेके राजपुरुषके नामसे महाराज शाहुका आदेशपत लिया और १७२२-१७२३ ई०में मालवसे चौथ तथा सरदेशमुखी संकान्त प्राप्य वस्ल कर लौटे। फिर दूसरे वर्ष उदाजी पवारके साथ वाजीरावने अपने छोटे भाई चिमनाजी अप्पाको मालवमदेशमें भेजा। वहांके सरदार राजा गिरिघरने लड़ाई करनेकी इच्छासे उन्हें रोका। आखिर वे युद्धमें हार खा कर भागे।

वाजीरावको पूरी इच्छा थी, कि मालवदेशको अच्छी तरह जीत कर धीरे धीरे उत्तरभारतमें महाराष्ट्र-सामाज्य फैलायंगे। यदि उन्हें शौर्य और उत्साहका अवतार कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस कारण प्रति-निधि श्रीपतिराव उन्हें ईर्ध्यांकी दृष्टिसे देखते थे। वाजी-राव जिससे अपना विक्रम और कार्यदक्षता दिखा कर महाराज शाहुके अधिकतर मीतिभाजन न हो सके, इस-के लिये वे हमेशा यह करते थे। महाराजके निकट जव कभी वाजीराव उत्तरभारत जानेकी वात उठाते, श्रीपतिराव पेसी पेसी युक्तिसङ्गत वार्तोसे महाराजके कान भर देते थे, कि उनको याता एक जाती थी। कई वार ऐसी घटना हो जानेसे महाराज शाहुने इसकी निष्यत्ति करनेके लिये एक सभा की । दरवारमें सभी सरदार और सामन्त उपस्थित हुए। प्रतिनिधिने पहले वाजीरावके प्रस्तावका उल्लेख कर उसके प्रतिवादमें बहुत-सी वाते कहीं। उन्हों ने कहा,--

"पेशवाने अपने पक्षका वलावल विना सोचे विचारे ही हिन्दुस्तान (उत्तर-भारत) जीतनेका प्रसङ्ग उठाया है। सच पूछिये, तो अभी हम लोगों में ऐसी शिक नहीं, कि सामान्य विद्रोहका भी दमन कर सकें निजामको महावली पराक्रमों सेना हम लोगों के द्वार पर आ कर युद्धके लिये प्रार्थना करती है। उन लोगों की रणकण्ड्वति निवृत्त करनेकी हम लोगों में शिक नहीं। अधिक क्या, अपना प्राप्य चौथ और सरदेशमुखी खत्व ही हम लोग निर्विरोध वस्ल नहीं कर सकते। ऐसी हालतमें हम लोगों को उचित है, कि चिदेश जीतनेमें प्रमृत्त न हो कर पहले खराज्यको ही दृढ बनानेकी कोशिश करें। कोव्हापुरके शम्माजीके साथ हम लोगों का जो विरोध है, उसकी मीमांसा और कर्णाटक अञ्चलमें महात्मा शिवाजीने जो राज्य बसाया था, उसका पुनरु-द्वार न करके उत्तर-भारतकी चढ़ाई करना, मैं राज्यके पक्षमें जरा भी हितकर नहीं समकता। पेशवाकी तरह हम लोगों में भी शौर्य और साहस है, पर विदेश जा कर शौर्यं अंकाश करनेका यह उपयुक्त समय नहीं है।"

वाजीराव एक सुवक्ता थे। उन्हों ने प्रांतनिधिके इस व्रतिवादके उत्तरमें ओजस्विनी भाषामें जो लम्बी चौड़ी वक्रुता दी उसका मर्मार्थ इस प्रकार है,—"प्रति-निधिका उपदेश वड़ा ही विस्मयकर है। वर्त्तमानकालको प्रकृत अवस्थासे वे विलक्कर अन्भिन्न हैं। मुगल साम्राज्यहर महातब अभी जीर्णावस्थाको प्राप्त हुआ है। उसके मूलमें कुठाराघात करनेका इससे उपयुक्त अवसर और कभी नहीं मिल सकता। कारण, मुगल-वादशाह अभी मरहठों के मुखापेश्ची हुए हैं। वीरश्रेष्ठ मरहठो की ही सहायतासे वे अपने अधिकारकी रक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि मरहठा-वीर अपनी वीरता दिखा दें, तो सम्मव है, कि सारा भारतवर्ष उनके कवलमें आ जायगा। केवल निजाम-उल-मुल्कके भयसे मुगलराज्य पर अपनी गोटो जमानेका ऐसा सुयोग छोड़ देना मैं कभी भी सङ्गत नहीं सम-भता । इस प्रकार दुम दवानेसे किस प्रकार राज्यकी वृद्धि होगी ? परलोकगत महाराज शिवाजी दौलतावाद-में औरङ्कजेव जैसे प्रवल शतुके रहते हुए भो बीजापुर और गोलकुएडाको विरुद्ध युद्धयाता करनेसे बाज नहीं आये थे और उक्त सुलतानों को अच्छी तरह दमन करनेके पहले उन्हों ने कर्णाटक जीतनेका सुअवसर नहीं छोड़ा था। महाराज शम्माजीकी मृत्युके वाद महाराज राजारामको भी इस प्रकार अनेक वार साहस विखलाने पड़े थे। प्रतिनिधिकी तरह यदि वे भीखता दिखलाते, तो क्या कभी सम्भव था, कि वे कायसम्पादन कर सकते थे ? फलतः निजाम-उल-मुल्कसे भय करनेका कोई भी कारण नहीं है। कोहापुरके

शमाजीके साथ जब चाहें, तभी सन्धि करके कर्णाटक-की व्यवस्था कर सकते हैं। पहले हिन्दुओं के निजल हिन्दुस्तान जब हम लोगोंने वैदेशिकोंको भगा कर अजीकिक यश कमा लिया है और ईश्वरकी इपासे मुगर्लोके हाथसे नष्ट्रपाय खराज्यका उद्घार भी किया है, तव इस महाराष्ट्रीय सेनाके वीर्यवलसे हम लोग हिमालय-शिखर पर अवस्थित "अटक" में महाराष्ट्रीय विजय-पनाका अवस्य फहरा सर्केंगे। उश्चपद पर प्रतिष्टित रह कर यदि महान् कार्यं न कर सका, तो राज्यका उचपद पानेका फल ही क्या ?(१) महाराज ! आप मुक्ते केवल सनद्पत दीजिये। मैं नृतन सैन्यद्र गडन करके मुगल-साम्राज्य पर अवश्य अधिकार करूंगा। निजाम-उङ्-· मुल्कको दमन करनेका भार भी मेरे ही ऊपर रहा । समग्र यवनराज्यका उच्छेद कर भारतवर्षमें सर्वत हिन्दूराज्य स्थापन करनेको महातमा शिवाजी महाराजकी विशेष इच्छा थी। अकाल मृत्युके कारण उनका वह उद्देश्य सिद्ध होने न पाया । महाराज (ग्राहु)-के पुण्यवलसे में यह कार्य किये दिखाता हूं । विशेषतः पितृदेवके साथ उत्तरभारत जा कर में वहांको अवस्था अपनी आंखोंसे देख आया हूं । हिन्दुस्तानके देशीय राजाओंके साथ इस विषयमें पहले ही इस लोगोंकी सन्धि स्थापित हो चुकी है। अभी केवल महाराजका आदेश होनेसे हो में उस कार्यको सिद्ध कर सकता हूं। कर्णाटक और कोहापुरके शस्याजीका व्यापार यदि व्यतिनिधि महाशय विशेष गुरु-तर समकते हों, तो अभी जो सेना सिव्वत है, उसे छे कर कुछ बड़े बड़े सरहारोंके साथ वे उस और याता कर सकते हैं। उत्तर-भारत-विजयका मार महाराजका आदेश पाने पर में अपने ऊपर छेता हूं।"

वाजीरावकी ऐसी उत्साह और उत्तेजनापूर्ण वक्तृता
सुन कर महाराज शाहु वड़े यसन्न हुए और उनकी भूरी
प्रशंसा करते हुए वोले, "वालाजी पन्थके औरससे आप
जैसे शीर्यशाली और कार्यवृक्ष व्यक्तिका जन्मग्रहण सम्भवपर है। आप जैसे कर्मचारी जिनकी अधीनतामें हैं, उनके
लिये हिमालयके अपर पारस्थित किक्तरखर्डमें भी विजय-

Vol. XIV. 97

पताका फहराना कोई आश्चर्य नहीं । उनके हिन्दुस्तान-विजयकी वात निहायत ही तुन्छ है। अत्यय आय उत्तरभारतको जांय, निजाम उत्त-मुक्क और कर्णाटक विजयका भार हम लोगोंके ऊपर रहा। "इतना कह कर महाराज शाहुने खिलअत दे कर वाजोराजको सम्मानित किया। उस दिनके द्रवारमें वाजोराजको जो ओजिखनी वकृता दी थी, उससे महाराष्ट्रीय सरदार-समाजमें उनको वाह्वाही होने लगो। साताराके द्रवारमें प्रतिनिधि श्रीपतिरावका जो गीरव और प्रमुत्य था, इस घटनासे उसका वहुत कुछ हास हो गया। महाराज शाहु भी वाजोरावके एकान्त पश्चपाती हो गये, और उन्हें उत्तरभारत-विजयका सनद-पत्न मेज दिया। १७२५ ई०में यह घटना घटी थी।

राजसभामें वाजीरावने जैसी वीररसपूर्ण वक्तृता दी थीं, उनका शीर्य और साहस भी वैसा ही था। वे ऐसे सुस्थकाय और कप्टसहिण्यु थे, कि चंद्राई कालमें वे कभी कभी आठ दश दिन तक थोड़े परसे उतरते ही नहीं थे और कल्चे चने तथा मकईको हाथसे चूर कर वही खा कर रह जाते थे। उनकी बुद्धि भी अतीव विशाल थीं। राजकार्यमें उनके जैसे धुरन्धर व्यक्ति महाराष्ट्र भरमें कोई नहीं था। वे अमायिक और कुछ कुछ विलासप्रिय भी थे।

उत्तर-भारतमें महाराष्ट्र-श्रमता फैलानेके लिये उन्हों-ने जिस सैन्यइलका गठन किया; उसमेंसे वहुतों ने पीछे विशेष प्रसिद्धि पाई थीं। उन लोगों के मध्य मल्हारराब होलकर, राणोजी सिन्दे (सिन्दिया), गोविन्दराब बुन्देला और उदाजी पवार आदिके नाम विशेष उल्लेख-थोग्य है।(१) ये लोग (उदाजी प्रवारको छोड़ कर)

⁽१) बाजारावका यह बात अतिनिधिके हृदयमे मानो 'तीरसी बुभ गई

⁽१) मन्दाररावके पिता पूना जिलान्तर्गत नीस नहीं के किनारे बोल नामक एक ग्राम है, उसी शामके चौगुला वा प्रामस्त्रकके नधीन काम करते थे। मेव-पालन उनहा पुरुषानुकानिक व्यवसाय था। मन्द्राररात्र ववपनमें नेव चराते थे। गुनावस्थामें उन्होंने महाराष्ट्रीय सैनिक विभागमें प्रवेश किया। बाजीरावने उनहीं इदिमत्ताका परिचय पा कर सन्दें अपने सैन्यदलके अन्तर्गत कर लिया। पीछे उनही धीरे

तो गरीव खानदानके, पर वाजीरावके साथ रह कर उन्होंने इतिहासमें अमरत्व प्राप्त कर लिया है।

महाराज शाहुसे सनद पा कर वाजीरावने पहले मालविजयके लिये दो वार याला की । दोनों ही वार उन्होंने राजा गिरिधरको हराया और कर देनेके लिये वाध्य किया। युद्धमें जयलाम करनेके वाद जो लुटपार-का आरम्म हुआ उसमें वाजीरावको खासी रकम हाथ लगी। मलहारराव होलकर, राणोजी सिन्दे और उदाजी पवारने इस युद्धमें विशेष वीरता दिखाई थी, इस कारण वाजीरावने उन्हें मालवका चौथ और सरदेशमुखोके रुपये वस्ल करनेका वंशपरम्परागत अधिकारपत प्रदान किया तथा सेनाखर्चके लिये 'मोकसा' नामक आयका अर्द्धां श (इनमेंसे होलकर सैकड़े पोछे रुशा), सिन्दे रुशा) और पवार १०)के हिसावसे) लेनेका हुकम दिया (१७२५ ई०)।

महातमां शिवांजीकी चेष्टासे कर्णाटक मराठोंके अधिकारमें आ गया था। निजाम-उल्-मुल्कने दक्षि-णात्यकी स्वेदारी पाते ही उस प्रदेशको अपने हाथ कर लिया था। उसका पुनरुद्धार करनेके लिये प्रतिनिधि वड़े उत्सुक थे। बाजीराय मालवको जोत कर जब लीटे, तब प्रतिनिधि महाशयके अनुरोधसे महाराज शाहु-ने उन्हें कर्णाटक पर चढ़ाई करनेका हुक्म दिया। इस

धीरे उन्नति होती गई और वे एक विशाल मूलण्डके अधीश्वर

राणोजीविन्दे — ग्वालियर के विन्दिया वंशके वावियुक्य ।
य पहले सुगलों के अधीन काम करते थे । सुगलों की अवनित
का सुजपात और स्वजातिका अम्युद्य देख कर इन्होंने पेशव।
बालाजी निश्वनाथके यहां बार्गी वा अश्वारोहीका कार्य प्रहण
किया । किन्तु सामान्य मृत्यमानमें ही इन्होंने अनेक दिन
व्यतीत किये थे । राणोजीकी निष्ठा देख कर बाजीरावने जनकी
तरकी कर थे । मल्हार्यावके साथ इनका विशेष सद्माव था ।
गोजिन्द्राव बुन्देला रत्नगिरि जिलान्त्रगत नेवर सामके
कलकरणीके पुत्र थे । पिताकी मृत्युके वाद इन्होंने अनकष्टसे पीडित हो बाजीरावका सेवकत्व सहण किया । कार्यतत्यरताके गुणसे ये बुन्देलखं बके सुनेदार बनवाये गये ।

समय कर्णाटककी याता करना वाजीरावने अच्छा नहीं समका और महाराज शाहुके निकट अपना अभिप्राय प्रकट किया, तो भी प्रतिनिधिको प्रसन्न करनेके हेतु उन्हें उसी समय युद्धयाता करनी पड़ी। फलतः कर्णाटकसे सरदेशमुखी और चौथ वस्ल तो हुआ सही पर उस प्रदेशके अखास्थ्यकर जलवायुके दोपसे महाराष्ट्रीय सैनिकॉमिंसे बहुतों की जान गई (१७२६ ई०में)।

वाजीरावकी गति रोकना सहज नहीं है, यह देख कर निजाम-उल्-मुल्क एक नया कौशल जाल फैला कर मराठो के अभ्युदय-निवारणकी चेष्ठा करने छगे। सच पृछिये, तो इस समय मराठे लोग भी निजाम-उल-मुक्क-के ए तमात उरके कारण थे। दिल्ली-द्रवारमें प्रधा-नता लाभ करना ही उनके जीवनका आज तक प्रधान लक्ष्य था। किन्तु अभी वह लक्ष्य परिवक्तित हो गया। कारण, १७२२ ई०में दिल्ली जा कर उन्हों ने वावशाही दरवारकी जैसी शोचनीय अवस्था देखी, उससे उनका लक्ष्य फलोभूत होचे, ऐसा उन्हें प्रतीत नहीं हुआ । वे थोड़े हो दिनों के अन्दर दिल्लीसे पदत्याग कर दाक्षिणात्य आये। यहां उन्होंने अपनी उद्याकाङ्क्षाकी परितृप्तिका स्वतन्त्रःक्षेत्र प्रस्तुत करनेका सङ्कल्प किया। उन्हों ने पहले दिल्लीके बादशाहके विरुद्ध विद्रोहघोषणा करके अपनेको दाक्षिणात्यके खाधीन अधिपति बतला कर प्रचार कर दिया। दिल्ली-के वादशाहका उन्हें जरा भी भय न था। दाक्षिणात्य-में अक्षण्ण प्रताप जमानेमें उन्हों ने मराडों को हो कल्टक-खरूप समका । इस कारण मराडो को अधःपात करना ही अभीसे उनके जीवनका मूलमन्द हुआ।

मराठे लोग मालवको जीत कर गुजरात और उत्तर-भारतमें अपनी धाक जमानेको कोशिश कर रहे हैं, यह देख कर निजाम मन हो मन कुछ सन्तुष्ट हुए थे। कारण उन्हों ने समका था, कि मराठों की दृष्टि उत्तर-भारतकी ओर आकृष्ट होनेसे वलसञ्चय करनेका उन्हें अवकाश मिल जायगा। अलावा इसके वादशाहके साथ मराठों-का विग्रह होनेसे दोनों दलकों दुर्वलता होनेको सम्मा-वना है—अन्ततः बादशाहको शक्ति सवश्य ही हास होगो। किन्तु केवल यही सोच कर वे निश्चित न वैठे, वरन् उन्होंने मराठोंके हाथसे आत्मरक्षाका एक और उपाय सोच रखा।

मुगल-वादशाहको दी हुई सनदके बलसे मराठे लोग प्रतिवर्षं निजामके राज्यसे चौध और सरदेशमुखी विप-यक कर वस्ल करते और तदुपलक्षमें प्रतिवर्ष उन्हें निजामके राज्यमें जाना पड़ता था। यह रोकनेके लिये उन्होंने ज़ाहुके निकट एक प्रस्ताव लिख मेजा, कि महा-राज यदि निजाम-राज्यका चौध और सरदेशमुखीका स्रत्व छोड़ दें, तो निजाम उन्हें एक मरतवे कुछ करोड़ नगद रुपये और उनके शासनाधीन बन्दापुरके निकटरूथ ^ह कुछ पराने निश्वर जागोर-स्वरूप प्रदान करेंगे। बाजी-राव इस प्रस्ताव पर कभी भी सहमत नहीं होंगे, यह निजामको अच्छी तरह मालूम था। अभी वाजीराव कर्णाटदेश लडाई करने गये थे, इसी कारण ऐसे अनसर-में उन्होंने शाहुके निकट यह प्रस्ताव लिख मेजा था । राजसभामें निजामके प्रस्तावका समर्थन करनेके लिये ने भ्रोपतिराच प्रतिनिधि महाशय थे जिन्हें निजामने रेवाके अञ्चलमें जागीरका लोभ दिखा कर वशीभृत कर लिया था। लघुमति प्रतिनिधिने महाराज शाहुको समभाया, कि निजामके प्रस्तावके अनुसार कार्य करनेसे मराठोंको विशेष लाम होगा। इस कारण सरलमति शाहुने उस प्रस्ताव पर अपनी सम्मति दे दी।

इस समय सहसा कर्णांटक-विजय प्राप्त करके वाजीराव सातारा छाँटे। इस घटनाका विषय सुनते ही वे निजामकी चाल अच्छो तरह समक गये। उन्हों ने याहु महाराजको समकाया, कि किसी भी कारण निजाम-राज्यमें चौथ और सरदेशमुखीका स्वत्व न छोड़ें। छोड़नेसे उक्त राज्यमें हमलोगों की प्रतिपत्तिकी हानि होगो। इससे निजामको जो मराठों का उर है, वह जाता रहेगा और तब उन्हें हम लोगों के विरुद्ध गुप्त पड़यन्त्र करनेका अवसर मिल जायगा। इस पर शाहुने उक्त प्रस्ताव पर अपनी असम्मति प्रकट की। प्रतिनिधिके ऊपर महाराज वड़े विगड़े और इस कारण वाजीरावके साथ प्रतिनिधि वैराजा रखने लगे।

इस कौशलजालको व्यर्थ होते देख निजामने एक दूसरी चाल चली। उन्होंने कोहापुरके शम्माजीका पक्ष ले कर महाराष्ट्र-समाजमें गृह-विवादानल प्रज्वलित करनेकी चेष्टा की । वर्षके शेषमें जव शाहुके कर्मचारी चौध और सरदेशमुखी वसूल करनेके लिये निजामराज्य उपस्थित हुए तब निजामने कहा, "महाराज शाहु और महाराज शम्माजी दोनों ही हमसे चौथ मांगते हैं । ऐसी अवस्थामें महाराष्ट्रराज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी कीन हैं, जब तक इसका निर्णेय नहीं होगा, तव तक हम चौय और सरदेशमुखीके रुपये किसीको भी नहीं दे सकते।" इतना कह कर निजामने महाराज शाहुके कर्मचारियोंको स्वराज्यसे निकाछ दिया । निजामकी यह चाल भी वाजीरावके निकट न चली। उन्होंने कहा, कि चौध वसुल करनेकी वादशाही सनद जिनके नाम पर है, निजाम उन्होंको चौथ देनेके लिये वाध्य हैं। शाहुने उनकी युक्तिकी सारवत्ता समभ कर निजामके कार्यकी बडी निन्दा को। पीछे उन्होंने निजामके विरुद्ध युद्ध-याता करके चौथ और सरदेशमुखी वसूलका हुकुम विया। १७२७ ई०के नवस्वर मासमें वाजीरावने राज्यके सभी योद्वाओंको छे कर युद्धवाता कर दी। इधर निजाम भी युद्धके लिये तैयार थे।

इस समय निजामके साथ जो युद्ध हुआ, उसमें वाजोरावने असाधारण वीरता दिखलाई थी। उन्होंने पहले बुहरनपुरको लूटा और उसे भस्मसात् करनेके अभित्रायसे नगरकी ओर कदम वढाया। यह देख कर निजाम अपने दलवलके साथ बहुरनपुरकी रक्षाके लिये चल विये। निजामकी सारी सेना उस और गई है. यह देख कर उन्हों ने थोड़ी-सी सेना बहुरतपुर भेजी और भाग प्रधान प्रधान सेनापतियों के साथ सहसा गुज-रातमें घुस पड़े। वहांके स्वेदार सरवुलन्की युद्धमें जर्जरित कर सारे गुजरातको अच्छो तरह लूटा । इधर निजाम स्वेदार सर बुखन्दको बाट जोह रहे थे। पीछे जव उन्हें मालूम हुआ, कि वाजीरावने गुजरात पर आक-मण कर दिया है, तव उन्हों ने भट पूनाको चढ़ाई कर दी। यह खबर पाते ही बाजीरावने वड़ी तेजीसे उनका पीछा किया। निजामने वाजीरावको अपनी पीठ पर देख पूना-की याता रोक दी और वाजीरावके साथ युद्ध ठान दिया। सुचतुर वाजीराव उनके साथ विविध खण्य युद्धीमें फ्रमशः

पश्चात्पद् हो कर गोदावरी तीरवत्ती एक विकट स्थानमें आ पहुंचे । निजाम अपनी भावी विपद् विलकुल समक्र न सके। वाजीरावने निजाम-पक्षीय सेनाके चतुष्पार्श्व-वत्तीं जङ्गलको दग्ध कर उन लोगों के आश्रय ग्रहणका पथ वन्द कर दिया। इसके वाद महाराष्ट्रकी सेनाने चारीं ओरसे उन्हें घेर लिया। अब दोनों में घमसान लडाई छिड गई। निजामका तोपखाना मराठोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट था, इस कारण अनेक महाराष्ट्रसेना विनष्ट हुईं। इस पर भो वाजीरावने उस स्थानका परित्याग नहीं किया और निजामका सैन्यदल जिससे खाद्यादिका संग्रह न कर सके, इस ओर विशेष ध्यान दिया। अभी निजामको अपनी विपद्द सूम पड़ी । उनके साथ को हापुरके शम्माजी, चन्द्रसेन जाधव, राव रम्भा निम्बालकर आदि मराठा सेनापति थे। निजाम उन लोगोंकी सहायतासे वाजी-रावका पराभव खर्व करनेके लिये महाराज शम्भाजीसे अनुरोध करने छगे। किन्तु उन छोगोंके मध्य नाना विषयों में मतमेद हो जानेके कारण निजामके दलमें वड़ी गृड्वड़ी उठी । इधर निजामकी सेना पेटकी चिन्तामें थी, उधर वाजीरावके सैन्यदलसे सन् सन् शब्द करती हुई गोली वहुतो को यमपुर भेजने छगी। अव कोई उपाय न देख निजामने सन्धिका प्रस्ताव किया। अनेक तकैवितकीके वाद निम्नलिखित शर्त स्थिर हुई-

- (१) निजाम कोह्रापुरके शम्माजीका पक्ष छोड़ दें।
- (२) निजाम राज्यमें जो सव महाराष्ट्रीय कर्मचारी प्रतिवर्ष चौथ वस्तुल करने जाते हैं, उनकी रक्षाके लिये निजाम अपने राज्यके कुछ हुगें मराठों को दें।
- (३) चौथ और सरदेशमुखीके जितने रुपये वाकी पड़ गये हैं, वहुत जल्द चुकती कर दें।

इस प्रकार सिन्ध स्थापित हो जानेके वाद निजामने वाजीरावको अभ्यथित करनेके लिये अपने शिविरमें बुलाया। असाधारण साहससम्पन्न वाजीराव केवल दो तीन नीकरों के साथ शलु-शिविरमें गये। यह घटना १७२८ ई०में घटी। इसी समय वाजारावने सेना-की दुर्च चलानेके लिये सिन्दे (सिन्दिया) और होलकर-को १२ परगने जा ति स्वद्धप दिये।

गुजरात पर मराठे लोग वहुत दिनोंसे दांत गड़ाये हुए

थे। निजामके साथ प्रथम युंद्धकाल में वाजीरावने एक वार गुजरात पर आक्रमण किया था। १७२६ ई० में उन्होंने काफी सेना साथ दे अपने माई चिमनाजो अप्पाको गुज-रात मेजा और पीछे आप भी वहां गये। उन्होंने सर-बुलन्द खाँ को कहा, कि यदि गुजरातका चौथ और सर-देशमुखी वस्त्र करनेका स्वत्व मराठों को मिले, तो वे गुजरातको शान्तिरक्षाका भार प्रहण करेंगे। सरवुलन्द खाँने इसे स्वोकार कर जो सन्धि की, उसके अनुसार,—

- (१) स्रत प्रदेश छोड़ कर अविशय समस्त गुज-रातका चौथ और सरदेशमुखीका स्वत्व महाराज शाहुको दिया गया ।
- (२) गुजरात-वासीको चोर डकैतोंके हाथसे वचानेके लिये महारा दूपित सर्वेदा २५सी अध्या हि गुजरातमें रखनेको राजी हुए।
- (३) गुजरातके विद्रोह-प्रिय जमींदारोंको कोई भी महाराष्ट्रीय किसी भी प्रकारसे सहायता नहीं दे सकेंगे। इस सन्यिके समय वाजीरायने सेनापति तिम्बकराय दभोड्को वहांके मोकसा और सरदेशमुख खत्यका एक अंश दिये।

इस समय मालवके राजा गिरिधरने महाराष्ट्रोंको चीय न दे कर शतुता कर ली। इस कारण दोनोंमें युद्ध चला। राजा गिरिधर मारे गये। इस पर दिल्लीके नादशाहने दायवहादुर नामक अपने एक आत्मीयको मालव मेजा। नवीन स्वेदारके शीर्यवलसे मराठोंको पीछे हटना पड़ा, पर पीछे जब चिमनाजी अप्पा, पिलाजी जाधव और मल्हारराव पहुंचे, तब मराठोंकी विजय हुई और दाय-वहादुर युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए।

इसके बाद महम्मद खाँ बङ्गण नामक एक सेनापति-के ऊपर मालवका शासन-कर्तृ त्व सौपा गया। इलाहा-वादप्रदेश भी उन्होंके शासनाधीन था। युन्देलकएड नामक राज्य इन्हों दो राज्योंके मध्य अवस्थित था। इसके पहले छतपति शिवाजीके उपदेशानुसार क्षित्य-वीर छतसालने इस देशमें हिन्दूराज्य वसाया था। महम्मद्खान इस हिन्दूराज्यको नष्ट करनेके लिये जी जानसे कोशिश करने लगे। राजा छतसाल पुनः पुनः युद करके भी प्रभावशाली महम्मद खाँका आक्रमण रोक न सके। अत्र निरुपाय हो और वाजीरावको हिन्दुओंका प्रक्रमात वन्यु समक छत्रसालने उनसे सहायता मांगो और निम्नलिखित मर्म पर एक ख़्लोक लिख मेजा,—"पूर्व कालमें बराहसे आकान्त हो गजराज जिस प्रकार विपन हो गया था, हम लोग भी आज उसी प्रकार-विपन हो गये हैं। बुन्देलागण वाजी हारने पर है, इस समय है वाजीराव! उन लोगोंकी लाज रखो।"

यह कातरोकिपूर्ण श्लोक पढ़ कर वाजीरावका हद्य मुसलमानों के प्रास्ति विपन्न हिन्दूराज्यकी रक्षा करनेके लिये व्याकुल हो उठा। स्वयं दलवलके साथ महम्मद्वाँके विकद्म यांका कर दी। वहां अपने पराक्रमवलसे वङ्गणको अच्छी तरह हराया और वुन्देलसएडको स्वाधीन हिन्दूराज्य माननेके लिये उन्हें वाध्य किया। समर-विजयी वाजीराव जव छवसालसे मिलने गये, तव वृद्ध राजाने प्रेमाश्रुपूर्ण नयनसे उन्हें आलिङ्गन किया और सवो के सामने उन्हें अपना तृतीय पुत्र कह कर सीकार किया। इस युद्धमें पराजित शत्रुके प्रति मराठो ने सन्हाव किया था। इस विपन्नसे छवसालने जो उद्धार पाया था, इस छत्रहतामें उन्हों ने वाजीरावको यसुना-तीरवन्तों काँसी नामक दुर्ग और उसके आस पासकी सवा दो लाख रुपये आयकी भूसम्पत्ति प्रदान की। यह वटना १७२६ हैं की २२वीं अप्रिलको हुई थी।

१७३३ ई०में छतसालके मृत्युकालमें वाजीराव उनसे मिलने गये थे। उस समय राजाने उन्हें और भी एक लाक दश हजार रुपये आयका राज्यांश दान किया। गोविन्दराव बुन्देला नामक एक ब्राह्मण पर ३ लाख ३० हजार रुपये आयके प्रदेशका शासनभार अर्पण किया गया। काल्यी और सागर आदि नगर गोविन्दरावसे स्थापित हुए। बुन्देलखएड अञ्चलमें महाराष्ट्रशक्तिकी जड़ गोविन्दरावके वाहुबलसे ही मजवृत हुई थी। पानीपतके युद्धमें उनकी मृत्यु हुई।

इसके पहले निजाम वाजोरावके हाथसे पराजित हुए थे, इस कारण वे बदला चुकानेके लिये अवसर हुंद्ध रहे थे। वाजीरावके साथ उनकी सन्धि हो चुकी थी और उनमें ऐसी शक्ति भी नहीं, कि उनका मुकावला खुल्लम-सुक्षा कर सकें। इस कारण वे लिएके वाजीरावके प्रति- द्वित्वर्योको सहायता देनेको सेष्टा कर रहे थे। इस समय
गृहविवाद हो जानेसे निजामका माग्य खुळ गया। गुजरातमें १७२१ ई०को सरवुळन्द खाँके साथ जो सन्धि हुई
थी, उसमें वाजीरावने सहगामी सेनापित विम्वकराव
दमोड़के मतामत बहण नहीं किया। पहळेसे ही वाजीरावको तमाम प्रतिपत्ति देख कर वे उनसे डाह करते आ
रहे थे। इस घटनासे वे अपनेको अपमानित समक्ष कर
वाजीराव पर वहें असन्तुष्ट हुए।

निजाम तो मौका इंड ही रहे थे, कि किसी तरह कुटदेवीका आगमन हो । अब वैसा ही आ गुजरा । दोनोंमें मनमुरावका हाल सुन कर वे वड़े प्रसन्न हुए और इस विद्वे पारिनमें इत्यन फेंकनेकी प्राणपणसे कोशिश करने लगे। सेनापति तिम्बकरावने जव देखा, कि निजाम उनकी सहायता करनेकी तैयार हैं, तव वे बार्जीराव पर आक्रमण करनेका आयोजन करने छगे। उनकी उत्ते-जनासे पिलाजी गायकवाड़ आदि कई एक सेनापित भी वागी हो गये। अब सर्वीने मिल कर ३५ हजार सेनाके साथ वाजोरावका सर्वनाश करनेके छिये गुजरातसे पूना की याता कर दी। तिम्बकरावने डिडौरा पिटवा दिया, कि वाजीरावकी प्रतिपत्ति हदसे ज्यादा हो जानेके कारण महाराज शाहुकी शक्ति थोडे ही दिनोंमें ढीली पड जावगी। इस कारण वे पेशवाका दर्प चूर्ण करके शाहुकी क्षमता बढ़ानेके लिये युद्ध कर रहे हैं और अनेक प्रसिद्ध मराठा-सेनापतियोंने भी इस कार्यमें साथ दिया है। कहना नहीं पड़ेगा, कि यह सुनते ही बहुतेरों ने सेनापति तिम्बकका पश्च अवलम्बन किया। वाजीराव यह संबाद पा कर जरा भो विचलित न हुए। उन्हों ने, जहां तक हो सका, वड़ी फ़ुर्त्तींसे सैन्यसंप्रह करके सेनापतिके विरुद्ध याता कर दी। उन्होंने घोषणा की कि, "सेनापति हिन्दू होते हुए निजामकी वातमें पड़ कर महाराष्ट्र राज्यमें गृह-विवादकी सूचना करते हैं। अतएव जो प्रकृत स्वराज्यके मङ्गळकामी हैं, उन्हें सेनापतिके विरुद्ध अस्त्रधारण करना कर्त्तथ्य है। "इस घोषणाके फलसे वाजीरावके दलकी बहुत कुछ पुष्टि हुई।

१७३० ई०के सितम्बरमासमें वार्जाराव और चिमना-जी अप्पाने आत्मस्क्षाके लिये १८ हजार सेना है कर सेनापित विम्वक दभाड़ के विरुद्ध कुच किया। गुजरात पहुंच कर उन्होंने पहले सेनापितके साथ सिन्धका प्रस्ताव उठाया। किन्तु गृह-विवाद अनर्थका मृल है, इसे न समक्त कर तथा पेशवाको भीत जान सेनापितने छड़ाई ठान दी। बड़ोदाके निकटवत्ती दंभई नामक स्थानमें दोनों पक्षमें तुमुल संप्राम हुआ। निजाम-उल्-मुल्कसे सहा-यता पानेकी जो आशा थी, सो नहीं हुई। वाजीरावके अदंभुत सेनापत्यके गुणसे ३५ हजार सेना रहते हुए भी शखुओं की हार हुई। स्वयं सेनापित भी गुद्धमें मारे गंथे। पिलाजी गायकवाड़के दो पुत्र भी इस गुद्धमें वीरगितको प्राप्त हुए। स्वयं पिलाजो आहत हो कर भागे। होल्कर और सिन्दियाने इस गुद्धमें विशेष विक्रम दिखलाया था। (१७३१ ई० फरवरी)

पेशवा गुजरातका वन्दोवस्त कर आये, तव प्रति-निधिने महाराजके निकट वाजीरावकी चुगळी खाई, सेनापतिके मरने पर महाराज वड़े ही दुःखित हुए। किन्तु बाजीरावने जब सभी घटना सुना दी, तव वे निजाम पर बहुत बिगड़े। उन्होंने सेनापतिके पुत यशवन्तरावको सैनापत्य प्रदान कर वाजीरोवके साथ मेळ करा दिया। फिर भी कभो जिससे कोई कलइ होने न पावे इसके लिये उन्होंने दोनोंसे प्रतिशापत लिखवा कर ले लिया। तभीसे गुजरातका सम्पूर्ण शासन-भार सेना-पतिको ऊपर अर्पित हुआ। मालवर्मे वाजीराव सर्वे-सर्वा हुए। बात यह ठहरी, कि गुजरातके राजसका क्षद्धां श वाजीरावके हाथसे राजकोषमें मेजा जायगा और सरबुलन्द खाँसे प्राप्य अन्यान्य प्रदेशोंकी आय सेनापति खयं राजसरकारमें मेजेंगे। इस समय पिलाजी गायकवाडके साथ भी बाजोरावका मेल हो गया और गायकवाडने शाहुसे' 'सेनाखास खेल"-की उपाधि पाई।

सेनापित लिम्बकराव दभाड़े प्रति वर्ष आचणमासमें देशिबिदेशके पण्डितोंको बुला कर उन्हें योग्यतानुसार दक्षिणादि दिया करते थे। उनकी मृह्युके वाद यह कार्य बन्द हो गया। पीछे वाजीरावने उसे फिर जारी किया। इस कार्यमें वार्षिक ६०।७० हजार रुपये सर्व होते थें। उनके पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवाकी अमलदारोंमें वह सर्व बढ़ा कर १६ लास रुपये कर दिया गया था। अङ्गरेजींने भी १८५१ ई० तक यह वानकाय निभाया था। उसके बाद्से उस रुपयेका एकांग्र शास्त्रालोचनापिय ब्राह्मण-परिवारको देनेमें और शेष दक्षिणा "प्राह्म कमिटी"और 'दक्षिणा फेलोशिय' परीक्षामें सर्च होने लगा। "दक्षिणा-प्राह्म-कमिटी" से आज भी महाराष्ट्र-भावामें उत्कृष्ट प्रन्थलेखकको योग्यतानुसार ५०से ५०० ६० तक पुरस्कारमें दिये जाते हैं।

सेनापतिके साथ भगड़ा मिट जानेके वाद वाजीराव-ने निजामको इस गृह-विवादका मूळ समभा और तब वे उनके विरुद्ध युद्धयाताका आयोजन करने लगे। यह देख कर निजाम डर गये और सन्धिका प्रस्ताव पेश किया। स्थिर हुआ, कि निजाम इसके वाद मराठोंके किसी भी काममें हाथ नहीं डाल सकते और वाजीराव स्थाधीन भावमें समस्त दाक्षिणात्य पर आधिपत्य करेंगे।

दूसरे वर्ष वाजीराव जब मालव गये, तद दोनोंमें साक्षात् हो कर यह स्थिर हुआ, कि मालव जाते आते समय वाजीरावको सेना कान्द्रेशस्थित निजामके अधिकारमें उपद्रव नहीं कर सकती तथा निजाम भी चौथ और सरदेशमुजीका दंपया विना तगादाके पेशवाको प्रतिवर्ष देनेमें वाध्य हैं।

इसके बाद जिल्लाके सिद्धिंगें साथ महाराष्ट्रपति-का विवाद खड़ा हुआ। महाराज शाहुने श्रीपितरायको उनके विकद मेजा। किन्तु वहां उनकी हारं हुई। अव शाहुने माळवसे वाजीरावको बुला भेजा। वाजीरावने राणोजी सिन्दे और मलहारराव होक्करको माळवका भार दे कर जिल्लाके लिये प्रस्थान कर दिया। युद्धमें सिद्धि पराजित हुए। उस अञ्चलके ११ मुहल्लोंकी आय-का अर्द्धांश मराठोंको मिला। रायगढ़ आदि पांच प्रसिद्ध दुर्ग भी उनके हाथ लगे। इस कायसे सन्तुष्ट हो महाराज शाहुने वाजीरावको रायगढ़ और निकटनर्सी प्रदेशोंका आधिषस्य प्रदान किया।

अनन्तर उत्तर-भारतको और जो वाजीरावको हृष्टि आकृष्ट हुई, उसके कतिपय कारण थे। प्रधमतः गुजरात और मालव जीतनेके बाद वाजीरावने उस प्रदेशका चौथ और सरदेशमुखी स्वत्वके सभी पत बादशाह्से मांगे। वादशाहने पहलेकी प्रतिश्रुति (अर्थात् बालाजी विश्वनाय-

को उन दोनीं प्रदेशके चौथ आदिको सनद देनेकी जो वात थी, उसे भूल कर वाजीरावके प्रस्तावको नामंजूर किया और सर-बुलन्द् खाँने वाजीरावको वह स्वत्व दिया था, इस कारण उन्हें पदच्युत और अवज्ञात किया गया। उनके स्थान पर योधपुरके राजा अभयसिंहको गुजरातका स्वेदार वना कर मेजा। अमयसिंह वड़े क्र रमकृतिके आदमी थे। उन्होंने अपने पिताकी हत्या कर सिंहासन दखल कर लिया था। उन्होंने पिलाजी गायक-वाड्को परास्त कर पोछे गुप्तधातक द्वारा उन्हें मरवा दाला। इस घटनासे मराठे लोग डरे नहीं, बरन् अत्यन्त उत्तेजित हुए। अमयसिंहको मराठोंका प्रताप अच्छी तरह मालूम था, इसलिये वे जान छे कर भागे। इसके वाद महस्मद लाँ बङ्गशकी मृत्युके वाद जयपुरके राजा सवाई जयसिंह मालवके सुवेदार वना कर मेजे गये, उनके साथ वाजीरावका सञ्जाव था । उनकी सहायता से वाजीरावने वादशाहको मौखिक भावमें मालवका अस्थायो अधिकार प्राप्त किया। किन्तु गुजरात और मालवके चौथ तथा सरदेशमुखोकी लिखित सनदके लिये प्रार्थना करने पर भी उन्हें नहीं मिली। इन सव कारणोंसे १७३५ ई०में उन्होंने जब सिहिके विरुद्ध अभि-यान किया, तव सिन्दे और होल्करको आगरे तक मुगल-प्रदेश पर आक्रमण करनेका हुकुम दे दिया था।

इन सद कारणोंके सिवा और कोई भी कारण न था। वाजीरावकी सेना और सामन्त अधिक हो जानेके कारण वे ऋणों हो गये थे। सेना असन्तुष्ट हो गईं, कारण उन्हें समय पर तनखाह न मिलने लगी। अव वाजीराव भारी विपद्में पड़ गये। महात्मा रामदास स्वामी जिस प्रकार राजनीति और धर्मनीति विपयमें छवपित महात्मा शिवाजीके गुरु थे, उसी प्रकार ब्रह्में न्द्रस्वामी नामक पक महापुरुप वाजीरावके गुरु और राजनीतिक परामशिदाता रहे। नितात विपन्न हो कर वाजीरावने उन्हें पत लिखा। उत्तरमें स्वामीजीने लिख भेजा, "विपट्नके समय धेये खोना तुम्हारे जैसे व्यक्तिको उचित नहीं है। तुम मालवदेश पर अच्छो तरह अधिकार कर दिल्ली चढ़ाईकी चेष्टा करो। ऐसा होनेसे अर्थका कष्ट जाता रहेगा, म्लेक्छदमन और हिंदू-साम्राज्यका विस्तार

होगा।" इत्यादि उत्साह और उपदेशपूर्ण पत पढ़ कर वाजीरावने ढाढ़स वांधा और दिल्लीको ओर अप्रसर होनेका संकल्प किया।

बाजीरावके आदेशसे महाराष्ट्रसेना माळ्वसे छे कर चम्बलनवीके किनारे तक फैल गई। मल्हारराव होल-करकी अधीनतामें एक दल सेना आगरा पार हुई। उन लोगोंका ताएडव-नृत्य देख कर वादशाह शङ्कित हो गये। प्रधान मन्त्री खान-दौरानने सन्धिका प्रस्ताव करके मेजा । वाहशाहके साथ सलाह करके वे बाजीरावको मालवके चौध और सरदेशमुखी तथा गुजरातके सरदेशमुखी सत्वकी सनद देनेके लिये प्रस्तुत हुए। परन्तु वादशाह-के अधीन तुराणी सरवारींकी प्रतिवन्यकतासे वह पस्ताव मंजूर नहीं हुआ। इस पर खान-दौरानने वाजीरावको ' सचित किया, कि वादशाह अपनी सन्धिक वर्छेमें चम्बल नदीके दक्षिणाञ्चलस्थित मुगलशासित प्रदेशसे वार्षिक १३ लाख रुपये देने और पश्चिममें वृंदी कोटासे लेकर पूर्व बुधावर तक समस्त राजपूत-शासित प्रदेशोंसे वार्षिक १० छाख ६० हजार रुपये कर वसूछ करनेका अधिकार देनेको तैयार हैं। वाजीरावको शेयोक अधि-कार देनेका उद्देश यह था, कि ऐसा होनेसे महाराष्ट्र और राजपूत आपसमें छड़ कर मर मिटेंगे और तब मुसलमानोंको अपने प्रनष्टगौरवके पुनरुद्धारका अच्छा अवसर मिलेगा। किन्तु वाजीराव इस पर सन्तप्र न हुए और अधिकके छिये प्रार्थना करने छगे। उन्होंने इस वार जो सब स्वत्व वादशाहसे मांगे थे, उनमेंसे एक विशेष उल्लेखयोग्य है । हिन्दुओंके प्रधान तीर्थ मथुरा, प्रयाग, काशी और गया ये चार प्रदेश जिससे विश्वमी मुसङमानोंके हाथसे निकल कर मराठोंके ग्रासनाधीन हों, इसके लिये वाजीरावने वादशाहसे विशेष अनुरोध किया। परन्तु वादशाहको यह मंजूर नहीं हुआ। अलाबा इसके एक और स्वत्वमें भी कुछ कसर रह गई। सान्-दौरानने वाजीरावसे छह लाख रुपये उपदौक्त-स्वरूप छे कर सारे दाक्षिणात्यके "सरदेशपाण्डे" नामक पद्का स्वत्व प्रदान किया। इस स्वत्वके अनुसार दाक्षिणात्य-स्थित निजाम-उल-मुल्क द्वारा शासित परेशोंकी समस्त आयके ऊपर सैकड़े पीछे ५) रु॰के हिसावसे वसूल

करनेकां अधिकार वाजीरावको मिला। निजामके साथ खानदौरानको पटती नहीं थी, इस कारण उन्होंने निजाम-का अपमान करनेके लिये ही यह स्वत्व वाजीरावको दिया था। निजामके ऊपर अपनी घाक जमानेका वाजी-रावने यह सुअवसर हाथसे नहीं छोड़ा और इस कारण वड़ी खुशीसे वादशाहको छह लाख रुपये दे कर यह ' स्वत्य खरीद लिया । निजाम वाजीरावके प्रति पहलेसे ही विद्वेष रखते थे, अव उनका विद्वेष और भी वढ गया। इधर वादशाहने जब देखा, कि बाजीरावकी सव मांगे पूरी नहीं हुई ओर मराडोंकी क्षमता दिनों दिन बढ़ती हो जा रही है, तव उन्होंने आत्मरक्षाके लिये किसी ं और उपायका अवलम्बन करना चाहा। उन्होंने निजाम-उल-मुक्कको वन्धुभावमं एक पत्र लिखा और महाराष्ट्-चढाईको रोकनेके लिये सहायता मांगी। निजामका जो कुछ अपराध था सो वादशाहने अभी माफ कर दिया। इस पर निजामके आनन्दका पारावार न रहा। वे फौरन दलवलके साथ वादशाहकी सहायता करनेके [ं] लिये उत्तर-भारतकी और चल दिये।

यह संवाद पा कर वाजीरावने ससैन्य दिल्लीकी याता कर दी। खानदौरानकी अधीनतामें वादशाही फौज उनकी गति रोकनेके लिये आगरा गई। अयोध्यामें सुवेदार सादत खाँने अकस्मात् एक दल सेना ले कर मराठों पर धावा वोल दिया। बहुतसी मराठी-सेना मारी गईं, होस्कर यमुना तैर कर पार हो गये। इस जीत पर सादत खाँ फूले न समाये और उन्होंने बाद-शाहको एक पत इस प्रकार लिख मेजा, "हम लोगींने दो हजार मराठी-सेनाको युंद्रक्षेत्रमें मार डाला है। मल्-हारराव होल्कर वड़ी बुरी तरहसे घायल हुए हैं। एक मराठा-सेनापति हम लीगोंके हाथसे मारा गया है। मराठे जान छे कर भागे हैं। भागते समय यमुना पार करनेमें दो हजार मराठी-सेना डूव मरी है।" सच पूछिये, तो ये सव वाते विलकुल कूडी थीं। किन्तु इस संवाद पर दिल्ली-दरवारमें आनन्दस्रोत वह गया। वाजीरावका द्र्षं चूर्णं हुआ, यह जान कर दिल्लीके उपराव उत्सव करने लगे। आगरेमें जो महाराष्ट्रीय दूत था, उसे मार भगाया गया। (१७३६ ई०)

उस स्मय वाजीराव राजप्रतानेमैं थें। वे दुधा-वरके राजपूत राजाको युद्धमें परास्त कर उनसे कर हे कर और वहां अपना आधिपत्य जमा कर मलहाररावकी सेनासे मिलंने आ रहे थे। इसी समय उन्हें मालूम हुआ, कि होळकर-युद्धमें परास्त हुए हैं। वे लम्बी लम्बी टांगें मारते हुए दिल्लीके निकट पहुंचे। यहां उन्होंने महाराष्ट्र-दूनकी अवमाननाके प्रतिकारस्वरूप दिल्ली नगरीको भरमसात् कर डालेंगे, ऐसी घोषणा कर दी। सारी दिल्लीमें हलवल मच गई। लोग भयसे विह्नल हो पड़े। किंतु वाजीरावने न तो दिल्लीको लूटा और न भरमसात् ही किया, वरन् वादशाहके निकट संधि-प्रस्ताव लिख भेजा। वादशाहकी मर्यादारक्षाके लिये हो वाजीरावने उस नृशंस-कार्यमें हाथ नहीं डाला। किंतु वहांके अमीर उमरावने कुछ और समऋ लिया था। वे लोग वाजीरावको भयभीत समक्त आठ हजार सेनाके साथ उन पर टूट पड़े। अब दोनों में जो युद्ध चला, उसमें करीव छः सौ मुगलसेना निहत हुई । मुगलपक्षीय एक सरदार आहत और एक सेनापति निहत हुए । उनके एक हाथी और दो हजार घोड़े मराठींके हाथ लगे। वाजीरावंकी वहुत थोड़ी सेना इस युद्धमें विनष्ट हुई थो (५७३७ ई०)।

अव दिहीके उमराव होशमें आये। उन्होंने बात्-शाहकी ओरसे वाजीरावके साथ सन्धिकी वात उठायी। इस समय वाजीराव गङ्गा और यमुनाके दोआव पर अधिकार करनेकी चेष्टामें थे। परन्तु शाहु महाराजने उन्हें कोङ्कणमें पुर्तगीजोंका सामना करनेके लिये सहसा बुळा लिया। इस कारण वाजीरावको वादशाहके साथ सन्धि कर बहुत जल्द साताराको छोटना पड़ा। इस सन्धिमें वाजीरावको मालवमदेशका एक छत अधिकार और युद्धध्ययसहस्प १३ छाख हुपये मिले।

इधर महाराष्ट्र-नौसेनापित आंग्रे के साथ पुर्तगीजी-का मनोमालिन्य हो जानेसे आंग्रे ने महाराज शाहुसे सहायता मांगो। महाराजके आदेशसे वाजीराव पुर्त-गीजोंके विरुद्ध खड़े हो गये। कुळावाके निकट दोनी-में मुठमेड़ हुई, आखिर मराठो-सेनाकी हो जीत हुई (१७३७ ई०)।

कुळावाके पुर्त्तगीजोंको प्रास्त कर वाजीरावने साल-सेट (Salsette) और वेसिन (Bassein) पर माऋ-मण कर दिया । इसमें वेसिनके निकटवर्त्ती घोडवन्दर-दुर्ग मराठोंके हाथ छगा। पीछे थानानगरमें घेरा डा़ला गया। यह स्थान भी वाजीरावने पुत्तगीजोंसे है हिया। अनन्तर उन छोगो'के वन्दरा नामक सेना-निवास पर .वाजीरावकी दृष्टि पड़ी । वाजीराव यदि बन्दरा पर आक्रमण कर दें, तो सम्भव है, कि वे वम्बई पर भी धावा वोल हैंगे, इस भयसे अङ्गरेज लोग चुपकेसे पुर्तागोजों की सहायता कर रहे थे। पुर्तगीजों को युद्धमें परास्त करनेके लिये पेशवाने समरदक्ष अरवी, मावली और हेटकारियोंको अपनी सेनामें भत्तीं किया। किन्तु वन्दरा पर आक्रमण करनेके पहले ही उन्हें खदर लगी कि मराठीं-के विनाशके लिये दिलीमें नाना प्रकारके उपाय और पडयंत हो रहे हैं। अतः उन्हें पुर्चगीज-दमनका परि-त्याग कर दिल्लीकी ओर याता करनी पड़ी।

इसके पहले वादशाहको सहायता करनेके लिये निजाम उल्-मुक्त ससैन्य दिल्ली बुलाये गये थे। निजाम-को इस कार्यमें उत्साह देनेके लिये वादशाहने उनके लड़केको मालव और गुजरातप्रदेशको सूबेदारी दो थी। दिल्छीमें वाजीरावके हाथसे वादशाही सेनाकी हार होने-के वाद निजाम-उल्मुब्क दलवलके साथ उत्तर-भारत जा धमके। वादशाहने वाजीरावके साथ जो संधि की थी. उसे वे भूल कर निजामको मराठो के विरुद्ध उने जित करने लगे। अपने सामन्त-राजाओं को भी उन्हों ने निजामकी सहायता करनेका आदेश किया। राजाके सिवा और सर्वोंने निजामका साथ दिया। दिल्ली-भ्वरके समस्त सामन्त-राजाओंको साथ छै जव वे गङ्गा-यमुनाके दोआव होते हुए मालव पहुंचे, उस समय उनके पास ३४ हजार सेना थीं। इधर वाजीराव बड़ी तेजी-से प्रायः ८० हजार सेनाके साथ नर्मदा उत्तीण हुए। उस समय सिरोज्ज नामक स्थानमें निजामका अड्डा था।

१७३८ ई॰के जनवरीमासमें भूपाल नामक स्थानमें दोनोंमें मुठभेंड़ हुई। पहले दिनके युद्धमें ही निजाम पक्षके ५सी राजपूत मारे गये। शतुपक्षके ७सी घोड़े मराठोंके हाथ लगे। मराठी-सेना १सी निहत और

,३ सी आहत हुई थीं । दूसरे दिन जो युद्ध हुआ उसमें मुसळमानीकी १५सी सेना मारी गई थीं। वाजीराव-ने असाधारण वृक्षताके साथ निजामको चारों ओरसे घेर लिया। निजामने विपद्व जान कर वादशाहरी सहायता मांगी। किन्तु खान-दौरानके साथ मनोमालिन्य और वादगाहका उनके प्रति आन्तरिक विराग रहनेके कारण दिल्लोसे सहायता न मिलो। अव निजामके सहकारी राजपूर्तोने वाजीरावकी शरण ली । किन्तु निजामको शिक्षा देनेके लिये उन्होंने पहले उनकी वात पर कान नहीं दिया। इस समय रसद भा घट चली थी जिससे निजाम दिनों दिन दुवले पतले होते जा रहे थे। उनके पुत नासिरजङ्गको जन यह खबर लगी, तन वे सेनाके साथ पिताकी सहायतामें आ रहे थे, किन्तु वाजीरावके आदेशसे उनके भाई चिमनाजी अप्पाने उन्हें राख्तेमें ही रोक दिया। अव निजामने रक्षाका कोई उपाय न देख २४ दिन तक कष्ट फेलनेके वाद वाजीरावकी शरण ली। दोनोंमें सन्धि स्थापित हुई। शर्व यह उहरी, कि समस्त माळवदेश और नर्मदा तथा चम्बळके मध्यवत्तीं प्रदेश वे वादशाहको कह सुन कर मराठो को दिला है तथा लड़ाईका खर्च ५० लाख रुपये भी दे दें। ये सब शतें मंजूर कर निजामने वाजीरावके हाथसे लाण पाया (१७३६ ई॰की फरकरी)। इस युद्धके फलसे मालवमें महाराष्ट्रका अधिकार निकाएटक हो गया।

इधर कोङ्कणमें पुर्तागोजों के साथ मराठों का पुनः विवाद खड़ा हुआ। विमनाजी अप्पा और सिन्देके आक्रमणसे पुर्तागोज तंग तंग आ गये, जिससे उन्हें तारापुरमें युद्धघोषणा कर देनी पड़ी। इस युद्धमें पुर्तागोजों को ही हार हुई (१७३६ ई०में)। इस समय राघोजों मों सला, महाराज शाहुको अनुमतिके विना पूर्व कटकसे ले कर उत्तर-प्रयाग तकके प्रदेशों में लूट पाट करके अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। अतः उनका दमन करनेके लिये बाजोरावको एक दल सेना भेजनी पड़ी। किन्तु सेना-पितको मूर्वतासे वह सैन्यदल पराजित हो लीट आया। अव वाजोरावने खयं राघोजोंके विकद्ध याता करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु इसी वीच दिल्ली अञ्चलमें राजनीतिक विष्ठव खड़ा हुआ। जिससे वाजीराव उत्तर-

Vol. XIV. 99

भारत जानेको बाध्य हुए। वाजीरावको संवाद आया, कि इराणके वादशाह नादिरशाहने दिल्ली पर आक्रमण कर मुगलों का पराभव और मयूरसिंहासन अधिकार कर लिया है। उनके हाथ निजाम पराजित, सादत खाँ वन्दी और खानदौरान् निहत हुए हैं। केवल इतना हो नहीं, वे एक लाख सेनाके साथ दाक्षिणात्य पर चढ़ाई करनेका उद्योग कर रहे हैं। इस संवादसे वाजीराव जरा भी विचलित न हुए, वरन् दूने उत्साहसे नादिरशाहको रोकने-के लिये तैयार हो गये। उन्हों ने नासिरजङ्गको पत लिखा, कि नादिरशाह हिंदू-मुसलमान दोनों के ही शत हैं। अतएव इस समय हम लोगों को गृहविवाद भल कर उनकी गति रोकना सर्वथा कर्त्तव्य है। उन्होंने चिमनाजी अप्याको भो खबर दो, कि वे अभी कोङ्कणमें पूर्त्तगोजों का दमन स्थगित रखें और दलवलके साथ। नाविरकी गति रोकनेके लिये मेरा साथ दें। नाविर-शाह जिससे चम्बल नदो पार न कर सके, इसके लिये वाजोराव विलक्कल नैयार हो गये।

नादिरशाहने दिख्ली पर क्यों चढ़ाई की तथा वे यहां के अधिवासियों के साथ किस तरह पेश आये, इस विपयकी आलोचना करना यहां पर अग्रासिङ्गिक होगा। तोभी इस सम्बन्धमें एक वात कह देना आवश्यक है। नादिरशाह भारतवर्ष पर आक्रमण करने के जो सब आयोजन कर रहे थे वह दिख्लीद्रश्वारको बहुत दिन तक मालूम न हो सका। यहां तक, कि सिंधुनदी के उपर पुल वना कर पञ्जाब घुसने के पहले तकका हाल दिल्लीवासीको कुछ भी मालूम नहीं था। इसका एकमाल कारण वाजीरावका डर था। वाजीरावका दमन करना जकरी है, दिल्लीद्रश्वार केवल इसी आयोजनमें उलमा हुआ था। नादिरशाहकी और किसीको भो दृष्टि न थी। ऐसे हो सुअवसरमें नादिरशाह विना रोक टोकके दिल्ली तक घुस गये थे।

नादिरशाहके भारत-आक्रमणका कारण भले ही कुछ हो सकता हो, पर भारतको सम्पत्ति लूटना उनका एक प्रधान उद्देश्य था। तदनुसार वे दिल्लो लूट कर प्रायः १८० करोड़ धनरलादिके साथ खदेशको लीटे। अतः वाजीरावको उनके विरुद्ध युद्धयाला करनेकी आवश्यकता न हुई। इसं समय कोङ्कणमें पुत्तगीजोंके साथ एक प्रसिद्ध युद्धमें चिमनाजी अप्पाकी जीत हुई। इस युद्धका विब-रण और मराठोंके साथ पुत्तगीजोंके कलहका कारण यहां पर संक्षेपमें देना आवश्यक है।

१८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें गोआ, दमन, दीउ, दभोळ, साळसेइट, वैसिन आदि स्थानीम पुर्तगीजोंका अधिकार जम गया था । वे लोग केवल इन सब स्थानॉर्स दुर्गादि बना कर निश्चित्त हो यैठे थे, सी नहीं। वहांके अधिवासियोंके प्रति धर्मसम्बन्धमें यन्परोनास्ति अत्या-चार भी करते थे। वे छोग रोमन कैथलिक धर्मावलम्बी थे, इस कारण वलपूर्वक दूसरेको किस्तान वनाना उनका धर्मकार्यं समना जाता था । विधर्मियींके प्रति अत्याचार करके उन्हें ईसा-धर्ममें लानेके लिये उन्होंने अपने देशमें एक सभाकी स्थापना की थी। भारतमें भी उसकी एक शासा खुल गई थी। जो विधमी ईसा-धमंत्री सहजर्म माननेको तैयार नहीं होते, उन्हें सभाके सदस्य कैंद करते, उपवासादि क्लेश हेते, येत मारते, उत्तप्त करतन पर सुलाते, उनके अङ्ग पर जलती हुई वत्ती रख देते. इस प्रकार तरह तरहके उत्पात किया करते थे। सच पृछिये, तो ईसाइयोंने इस समय भारत था कर जैसा भत्याचार आरम्भ कर दिया था, वैसा और किसी भी विधानि नहीं किया। हिन्दुकी वात तो दूर रहे, मुसलमानोंके प्रति भी उनका अत्याचार भीषण था। पुर्त्तगीजोंने अपने अधि-कृत स्थानोंके समस्त हिन्द्-वासियोंको नाना प्रकारकी यन्त्रणासे उत्पीड़ित करके ईसा-धर्मावलम्बी वनाया था।

पुर्त्तगोजों के अत्याचारसे जज्जेरित हो हिन्दू लोगोंने वीरिया वधना छे कर महाराष्ट्र-शासित देशमें आश्रय लिया था । बहुतों ने तो दुःसह अत्याचारके हाथसे हमेशाके लिये छुटकारा पानेके लिये समुद्रमें कृद कर प्राणिवसर्जन किये। जिन्हों ने विद्रोही हो कर उनके कार्यमें वाधा डालनेकी कोशिश की थी, वे सवंश मार डाले गये। आखिर वचे खुचेने नितान्त उत्यक हो महा-राष्ट्रपति शाहु और पेशवा वाजोरायको शरण ली। उन वेचारोंने आश्रयदाताके निकट यह कह कर एक आवेदन-पत्न भेजा, कि महाराष्ट्रपति जव हिन्दू धर्मके रक्षक हैं, तव विधानीं पुर्त्तगीजों से हम लोगों की रक्षा करना उनका

कर्ताब्य है। यह आवेदनपत्र पा कर महाराज शाहुने पुर्रागीजो'के हाथसे हिंदूधर्मियो'की रक्षा करनेके लिये बाजीराव और चिमनाजी अप्पाकी कोङ्कण-देश भेजा। इस समय महाराष्ट्र-नौसेनापति बांग्रेने पुर्सगीजो के विरुद्ध शाहुसे सहायताके लिये प्रार्थना की थी । पीछे बाजीरावकी सहायतासे यद्यपि आंग्रेकी पुर्रागीजों पर जीत हो गई थी, तोभी बाजीरावने जो खदेश न छीट कर पुर्रागीजों के अन्यान्य नगरों पर आक्रमण किया था, उसका कारण पूर्वकथित आवेदनपत था। पुर्त्तगीजी'-का इमन करनेके लिये गुरु ब्रह्में न्ट्रस्वामीने भी चिमनाजी और बाजीरावको उत्साहित कर पत लिखा था। पुर्त्त-गीजो'के हाथसे हिंदूधर्मियोंकी रक्षाके लिये ही बाजी-रावके दिल्ली यादामें वाध्य होने पर भी, विमनाजी भाषाने वहत दिनों तक कोङ्गणको नहीं छोड़ा। पुर्रा-गीजो का भच्छी तरह अधःपात करना ही उनका उद्देश्य था, इस कारण पूरे दो वर्ष युद्ध करके उन्होंने सालसेट भादि भनेक प्रदेश जीत लिये थे। मराठोंने जैसी वीरता और कभी नहीं दिखलाई थी, सो पुर्रागीजों के साथ युद्धमें दिखला दी।

दो वर्ष तक नाना स्थानोंमें छोटी छोटी लडाइयोंके बाद १७३६ ई०में मराठोंने वेसिन पर चढ़ाई कर दी। तीन मास घेरा डालने पर भी दुर्ग उन कोगोंके हाथ न लगा। पुर्तंगीजोंने यूरोक्से सहायता मंगाई थी। उनके तोपके सामने महाराष्ट्रीय-सेना बार वार छतभङ्ग होने लगी। मराठो'ने सुरंग करके वाह्नद द्वारा दुर्गप्राचीर उड़ा देनेकी चेटा की थीं। किन्तु फल कुछ भी न निकला। पीछे चिमनाजी अप्पाने एक दिन दुगै जीतनेकी प्रतिका करके अपने सरदारोंसे कहा, "तुम लोग बदि दुर्गमें प्रवेश नहीं कर सकते, तो मुक्ते तोपके मुंह पर वांच कर गोलीके साथ दुर्गके भीतर फेंक दो।" यह सुनते ही दूढ़ अध्यवसायके साथ सवो ने मिल कर पुनः दुर्ग पर भावा वोछ दिया । इस वार मराठी की जीत दुरें। मराठों ने वेसिनके दुर्गस्थित क्रोसचिहको विद्युप्त कर अपनी जातीय पताका फहराई (१७३६ ई० १६वीं जून)। इस युदमें मराठो ने जैसा शौर्य दिखलाया था, कि पुर्त्तगीजों को दांतीं अंगसी काटनी पड़ी थी। इस युद्धमें पुर्त्तगीजों को ७सौ और मराठों की ५ हजार सेना वीरगतिको प्राप्त हुई थीं । कुछ मिला कर दो वर्षके भीतर पुर्त्तगोजों के साथ युद्धमें १४ हजार महाराष्ट्र- योद्धा हताण हुए थे। किन्तु उसका फल यही हुआ, कि गोआ और उसके आस पासके प्रदेश छोड़ कर पुर्त्तगोजों के अधिकृत और सभी स्थान मराठों के हाथ लगे। उसके साथ साथ हिन्दुओं के निर्यातन-भोगका भो अवसान हुआ था। बेसिन-दुर्ग पर अधिकार करते समय दुर्गाधिपति-परिवारको एक महिला महाराष्ट्रीय-सैनिकवृन्दके कवलमें आ गई। किन्तु चिमनाजोने उसे सम्प्रानपूर्वक अपने आत्मीयगणके निकट भेज दिया। बेसिनके ईसाइधोंसे चिमनाजी अप्पाकी प्रशंसा सुनतेमें आती है।

इधर नादिएशाहके चले जानेके वाद दिल्लीकी अवस्था पेसी शोचनीय हो गई, कि वाजीराय यदि इस समय कोशिश करते तो मुगळ-साम्राज्यको राजधानीमें महाराष्ट्-विजयपताका अवश्य उड़ती और मुगळ-वादशाहीका नाम निशान नहीं रहता। किन्तु उन्हों ने ऐसा नहीं किया। अन्ततः कुछ दिनके लिये दिलीके सिहासन पर साधी-गोपालखद्भप एक बादशाहको एखना उन्होंने अच्छा समका। दिल्लीभ्वरको इस विपिन्न दशामें भी वाजी-रावनै एक वश्यतास्वीकारपत्नके साथ उनके निकट १०१ मोहर उपढौकन सक्क भेजीं। उस पत्नकी स्वीकार कर नादशाहने हाथी घोड़े परिच्छदादि द्वारा वाजीराथका सम्मान किया । किन्तु निजाम-उल-मुल्कके साथ भूपालमें जो सन्धि हुई, उसमें वाजीरावको माळव-प्रदेशकी नृतन सनद देनेकी शर्त थी, पर वह शर्त परी नहीं हुई। इस पर वाजीरावने कोई छेड़छाड़ करना अच्छा नहीं समभा ।

इस समय मो सिन्दे-होळकर आदि वाजीरावके सरदार कोङ्कणसे लौट कर उनसे मिल न सके । इस कारण इसी वीचमें वाजीरावने राजपूत और वुन्देलखएडके राजाओंके साथ मिलता कर ली। निजामके विच्छ फिर-से याता करनेके उद्देश्यसे ही उन्हों ने राजपूत राजाओं-से सन्धि कर ली थी। वाक्षिणात्यसे निजामका अस्तित्व लोप करना ही उनका इस समय प्रधान उद्देश्य हो गया था। किन्तु तंदुपयोगी आंयोजनका उनमें अभाव था। अलावा इसके राघोजी भी सले और दामाजी गायकवाड़ उनके प्रति विद्वेष रखते थे। उन लोगो के साथ शबुता हो जानेसे ही वाजीरावको इस समय कुछ व्यतिव्यस्त होना पड़ा था। परन्तु थोड़े ही दिनो के अन्दर उन्हों ने राघोजीके निकट जा कर निजामके सम्बन्धमें अपना अभिपाय प्रकट किया और उनसे मित्रता कर ली। उन्हें यह भी लोभ दिया, कि निजामका यदि हम लोग उच्छेद कर सके, तो लुटमें जो कुछ माल हाथ लगेगा उसका एक भाग आपको मिलेगा।

अव राघोजीका ध्यान कर्णाट-विजयको ओर भाकृष्ट हुआ। निजाम उस समय भी उत्तरभारतमें थे। इस कारण वाजीरावने दाक्षिणात्यमें उनके पुत्रके साथ युद्ध ठान दिया। इस युद्धमें पहले वाजीरावकी ही हार हुई थी, पर पीछे नासिरजङ्ग अच्छी तरह परास्त हुए। किन्तु नासिरजङ्ग भी चैसे व्यक्ति नहीं थे, कि सहजमें पीठ विखाते। इस कारण वाजीरावको बहुत दिनों तक उनके साथ युद्ध-व्यापारमें लित रहना पड़ा। इन सब युद्धोंमें उनकी जीत तो हुई पर उससे महाराष्ट्र-राज्यको कोई विशेव स्थायी लाभ दीख न पड़ा। अतः वाजीरावने नासिरके साथ प्रतिष्टान-नगरमें एक सन्धि कर ली। इस सन्धिके फलसे नर्मदा-तीरवर्सी दो प्रदेश उन्हें निजामके पुत्रसे मिले।

नासिरजङ्गके साथ युद्धका परिणाम उनके इच्छा
मुसार नहीं हुआ, यह देख वे वड़े क्षण्ण हुए। क्रमागत

युद्ध-व्यापारमें लगे रहनेसे वाजोरान ऋणमें डूव गये थे।

इस समय महाजनों के तकाज़े से वे तङ्ग आ गये।

अतः अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें उन्हों ने ब्रह्मे न्द्रस्वामीके निकट एक पत इस प्रकार लिख मेजा, "मैं

विविध विपद्ध, ऋण और निराशासे आच्छत्र हो नितान्त

मानसिक यन्त्रणाका भोग कर कर रहा हूं। जिस

अवस्थामें मचुन्य विपपान करनेको प्रवृत्त हो जाते हैं,

बही अवस्था मेरो आन पड़ी है। महाराजके निकट

मेरे अतेक शखु हैं। इस समय यदि मैं सातारा जाऊं।

तो वे मुक्ते विपक्ष करनेसे वाज नहीं आवेंगे। इस

समय मृत्यु पदि मेरे समीप आ जाय, तो उसे मैं अच्छा

समक्षंगा।"

किंतु वाजीराव विपद्में अधोर होनेवाले पात नहीं थे। उन्हों ने सातारा वा पूना न लीट कर नूतन विजय द्वारा ही अपनी अवस्थाको सुधारना चाहा। इस उद्देश्यसे वे उत्तर-भारतको ओर अप्रसर हुए। नमदा नदीके किनारे पहुंचते न पहुंचते उनका स्वास्थ्य विलक्ठल खराव हो गया और नवज्वरसे वे इस धराधामको छोड़ सुर-धामको सिधारे। यह अकस्मात् घटना १७४० ई०की-२२वीं अपिल (वैशाल शुक्का त्रयोदशी दिन) को घटी। मृत्युकालमें उन्हों ने मुसलमानके हाथसे अपने देशको सम्पूर्ण मुक्त करनेके लिये सिन्दे और होलकरको उपदेश दिया था।

सृत्युकालमें वाजीरावकी अवस्था ४५ वर्ष की थी। उनकी वीरता और शिक्तिकी और ध्यान देनेसे वे अकाल ही कराल कालके गालमें पतित हुए थे, ऐसा कहना होगा। उनकी भृत्युके संवादसे सारे महाराष्ट्रमें हाहाकार मच गया था। महाराज शाहु शोकसे अधीर हो गये थे। यहां तक कहा जाता है, कि निजाम-उल्मुखक भी उनका सृत्यु-संवाद सुन कर विमर्ष हुए थे।

वाजीरावने २० वर्ष तक पेशवा-पद पर कार्य किया था। उनके शासनकालका अधिकांश युद्धमें ही वीता था। इसी कारण राज्यकी भीतरी व्यवस्था-सुधारनेका उन्हें कभी भी अवसर नहीं मिला। उनकी वीरताकी तरह उनकी उचाकांशा भी असाधारण थी। सारे भारतवर्षको मुसलमानोंके शासनपाशसे मुक्त कर हिन्दूसाम्राज्यकी प्रतिष्ठा करना उनके जीवनका प्रधान उद्दे श्य था। उनके चरितमें जरा भी ऐव न था। वे दूरदर्शी, सरल और दयालु थे। उनकी द्यालुताके गुणसे निजाम-उल्-मुल्कने कई वार रक्षा पाई थी। वहुतींका ऐसा ख्याल है, कि इस दयालुताके लिये ही वे राजनीतिक्षेतमें विशेष विषक्ष हुए थे। राजनीतिक कठोरताके साथ शरणापन्न निजामका विनाश कर डालनेसे दाक्षिणात्यमें मराठींका एक प्रधान करहक दूर हो जाता।

स्वराज्यमें वाजीरावके अनेक शतु थे। प्रतिनिधि राघोजी मोंसले, सेनापित दभाड़े और गायकवाड़ ये सब हमेशा उनका अनिष्ट करनेमें छगे रहते थे। वालाजी विश्वनाथने सिंबवोंके राजस्व-विमागकी जो प्रधा प्रवर्तित की थी, उसके फलसे जिस परिभाणमें इष्ट, उसी परिमाणमें अनिष्टकी भी सचना हुई थी।

वाजीरावके समय पुर्तगीजोंका मलीमांति दमन हुआ था। इस पर अंगरेज लोग वड़े प्रसन्न हुए थे। वे लोग पुर्तगीजोंकी पोल कभी कभी चिमनाजी अप्पाके निकट खोल दिया करते थे, इस कारण महाराष्ट्र-द्रवारमें उनकी वड़ी खातिर थी। यहां तक, कि १७३६ ई०में जव वेसिन मराठोंके हाथ लगा तव अंगरेजोंसे सन्धि करके उन्हें महाराष्ट्रदेशमें व्यवसाय करनेका अधिकार भी मिला था।

वाजीराव देखनेमें सुश्री थे। शेष अवस्थामें वे कुछ विलासी भी हो गये थे। मस्तानी नामकी एक अपरूप लावण्यवती मुसलमान-युवतीके प्रेममें फँस कर वे कुछ दिन राजकार्य तक भी भूल गये थे। वहुतीने उनका चरित सुधारनेकी कोशिश की, पर व्यर्थ। महाराज शाहु भी इस कारण उन पर वड़े असन्तुए हुए। पीछे यह कहलवा कर भय दिखलाया, कि यदि वे अपना चरित नहीं सुधा-रेंगे, तो उनके भाई चिमनाजी वैराग्य प्रहण कर संसार-का त्याग कर देंगे। अव वाजीरावका होश डिकाने आया, कुमार्गसे अपनो प्रवृत्ति विलक्तल हटा ली। इस समय शतु भी अनेक हो गये थे। म्हणदातागण उन्हें निश्चित्त देख कर तगादे पर तगादा करने लगे। इस समय उन्हें जैसा मानसिक दुःल हुआ था, वह ब्रह्में न्द्रस्वामीको लिखित पत्रसे ही मालूम होता है।

वाजीरावके तीन पुत्र थे। वड़े का नाम वालाजी वाजी-राव मैंभलेका जनादैन वावा और छोटेका नाम रघुनाथ-राव, था। जनादैन वावा १२ वर्षकी उमरमें १७४५ ई०को परलोक सिघार गये। अलावा इसके मस्तानीके गर्भसे भी इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम था समशेर वहादुर।

वालाजी साजीसाव पेतवा।

१७२१ ई०के शेवमें इनका जन्म हुआ। वचपन से ही पिताके साथ रह कर राजकार्यकी देख-भाल किया करते थे, इस कारण थोड़े ही उमरमें ये कुल विषयोंसे जानकार हो गये। वाजीराव और चिमनाजी जव युद्धमें जाते थे, वालाजी ही शाहुके निकट रह कर पितृपदके अन्यान्य कार्य सम्पन्न करते थे। बाजीरावकी सृत्युके समय वे अपने

चचाके साथ कोङ्कणदेशमें युद्ध करने गये थे। उस समय राघोजी मौसले कर्णाटकमें लिचिनापछीके दुर्गमें घेरा डांले हुए थे। चे वाजीरावका मृत्यु-संवाद सुनते ही वावु-जी नायक नामक अपने एक मिलको साथ ले सातारा पहुंचे। वाजीरावके पद पर जिससे वावुजी नायक अभिपिक हीं इसके लिये वे महाराज शाहुसे पुनः पुनः अजुरोध करने लगे। उन्होंने शाहुको यह प्रलोभन दिया, कि वावुजी नायक धनी व्यक्ति हैं, यदि उन्हें पेशवाका पद दिया जाय तो महाराजको उपढ़ौकनमें प्रचुर धन हाथ लग सकता है। किन्तु प्रतिनिधि और गायकवाड़ इस समय राघोजीके अजुक्ल नहीं थे तथा खयं चिमनाजी अप्याको ले कर वालाजी शाहुके निकट पहुंच गये थे, इस कारण राघोजीकी सारी चेष्टाएं व्यर्थ गईं। वाजीरावके कार्यकलापका विषय शाहु भूले नहीं थे, सो उन्होंने उनके पुतको ही पेशवा पद पर नियुक्त किया।

वालाजी वाजीरावको पेशवा पद पर नियुक्त करनेके लिये यथारीति दरवार लगाया गया । उस समय नवीन पेशवाको महाराज शाहुने जो सव उपदेश दिये, वे इस प्रकार हैं,—"वाजीराव महाराष्ट्र राज्यके लिये अनेक कप्ट-साध्य कार्य कर गये हैं । इराणी (नादिरशाह)की दमन करनेके लिये मैंने उन्हें भेजा था। उनका भी उस विषयमें खूव उत्साह था। इराणी इस देशसे जो धनरतादि है गये हैं उन्हें छौटा छानेके छिये उनका विशेष यत्न था। किन्तु आयुः शेष हो जानेसे वे इस कार्यको कर न सके। तुम उनका पुत्र हो, अतएव उनकी और मेरी यह वासना पूर्ण करना तुम्हारा एकमात कर्त्तेव्य है। अटकके दूसरे किनारे मराठा सवारोंको छे जावी और अपनी वीरता दिखळाचो ।" फिर क्या था, वाळाजी योग्य पिताके योग्य पुत थे, १७५८ ई॰में उन्होंने शाहु तथा अपने पिताकी वासना पूरी कर दी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश महाराज शाहु इसे देख कर अपनी आँख जुड़ानेके लिये जीवित न थे।

वालाजी वाजीरावके पेशवा होने पर राघोजी पुनः कर्णाटक जा धमके। उनकी चेष्टासे विचिनापली मर ठीं-के हाथ लगा। पेशवाकी सेना पर इस दुर्गरसाका भार सौंपा गया और आर्क टके राजस्तसे वालाजीकी वार्षिक २० हजार रुपये दिये जांयगे, ऐसा स्थिर हुआ।

Vol. XIV. 100

१७४१ ई०के प्रारम्भमें यही वालाजीका प्रधान लाम हुआ।

वाजीरावके मरते ही दिलीके वादशाहने अजीमउला-बाँ नामक एक सरदार पर मालवकी स्वेदारी सौंपी। वालाजी वाजीराव और चिमनाजी अप्पाने वादशाहको पूर्व कत सिन्ध और प्रतिश्रुतिका विषय याद दिला कर मालवका अधिकार पानेके लिये प्रार्थना की, वादशाहने उनकी प्रार्थना सुन कर पहले पूर्वकृत सिन्धकी वावतमें १५ लाख कपये मेज दिये। पोले मालवके अधिकारदानके सम्बन्धमें सिन्ध स्थिर करनेको कहा। दोनों पक्षके मेलसे बहुत सा शर्तें निर्द्धारित हुई; पर वादशाहने तदनुसार कार्य करके वालाजीको मालवका अधिकार न दिया।

वाजीरावकी मृत्युके वाद चिमनाजी अप्पा और वालाजी रावने शङ्करजी नारायण और खएडोजी माणकर नामक दो व्यक्तियोंको अपने स्थान पर रख साताराकी याता कर दी। उन दो वीरपुरुषोंके कौशलसे सिहि (हवसी) और पुत्त गीज लोग कई स्थानोंमें परास्त हुए तथा रेवदएडा, यगोवतगढ़, मनोहरगढ़, माएडवी, घोड़-बन्दर और उरण आदि मराठोंके हाथ लगे। इस घटना-के कुछ दिन वाद ही चिमनाजी अप्पाका देहान्त हुआ (१७४१ ई० जनवरी)। प्रसिद्ध सदाशितराव वा माव-साहव उन्होंके पुत्र थे।

चिमनाजीकी मृत्युके वाद वालाजी मालवका परि-त्याग कर स्वदेश लीटे। अनन्तर एक वर्ष तक पूना और सातारामें रह कर उन्होंने राज्यकी आभ्यन्तरिक शासनका वहुत कुछ सुधार किया। इस कार्यमें बालाजीको विशेष दक्षता देख कर महाराज शाहु वड़े सन्तुष्ट हुए और उन्हें पुत्तगीओं से विजित प्रदेशों का अधिकार प्रदान किया। अलावा इसके वालाजीको गुज-रात और मालवके कर वस्तुल करनेका कुछ भार अपित हुआ। इससे पेशवाकी क्षमता वहुत ही बढ़ गई।

इस समय वङ्गाल और विहार अञ्चलमें राघोजी भोंसलेकी सेना घुस कर उपद्रव कर रही थी। राघोजी विना महाराज शाहुको आज्ञाके ही स्वाधीनमावसे कार्य कर रहे थे, इस कारण उनका दमन करनेके लिये वालाजी भेजे गये। वाराणसी, प्रयाग, गया और मथुरा आदि स्थान का मुसलमानो के हाथसे उद्धार करनेकी वाजीराव-

की विशेष इच्छा थी। इस कारण वालाजी पहले प्रयाग जीत कर विहार गये और राघोजी पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने छगे। किन्तु राघोजीकी वातमें पड़ कर इस समय गुजरातसे गायकवाड मालव जीतनेको जा रहे थे, अतः वालाजीको कुछ दिनके लिये विहारकी याता रोक देनी पड़ी । गायकवाड़का सामना करनेके लिये वाळाजीने भारराज्यके अधिपति आनन्दरावसे मितता कर ली । इसके वाद उन्हों ने निजाम-उल-मुला (वे उस समय उत्तर-भारतमें हो थे) और जयसिंहके कहने-से उत्तर-भारतके मुगळशासित प्रदेशों के चौथके छिपे वादशाहसे प्रार्थना की । इस समय मराठों की चलती देख कर वादशाह डर गये और वहुमूख्य ख़ितावके साथ उनकी मांग पूरी की। किन्तु इस विषयमें उन्होंने लिखित सनद नहीं दो । वर्ष पूरा होने पर फिसी समय वे चौथके रूपये भेज दिया करते थे। पर गंद-शाह्का ख्याल कुछ और था । वालाजी कुछ शान्ति प्रकृतिके व्यक्ति थे, लिखित सनद मिलो वा नहीं उसके लिये उन्हें परवाह नहीं। केवल वार्विक रुपये पा कर ही वे सन्तुष्ट हो गये थे।

इधर बङ्गालमें राघोजीके सरदार भास्कर-पाइका अत्याचार दिनों दिन बढ़ता जा रहा था, इस कारण वाद-शाहने वालाजीसे कहा, कि यदि आप वङ्गालको एका करने के लिये जांध, तो मैं मालवकी सनद और अजीमाबादका चौथ वस्तुल करनेका अधिकार दूं। वालाजी राजी ही गये और तदनुसार दलवलके साथ मुशीदावाद जा धमके । राथमें जिससे सेनाओंके उपद्रवसे कृषिकों की काई क्षति न हो उसके लिये उन्होंने यथोवित उपाय अवलम्बन किया था। मुशीदावाद पहुंचने पर अली-वदींने सेनाका खर्च दे देना स्वीकार किया। वालाजीके आनेको खबर सुन कर राघोजी बङ्गालसे नी दो ग्यारह हो गये। पर वालाजीके वड़ी तेजीसे उनका पीछा किया और वहुत-सो सेनाको यमपुरका मेहमान बनाया।

इस जयलाभके वाद वालाजी मालव लीटे और वाद-शाहसे प्रतिश्रुत सनदके लिये प्राथना की। वादशाहके पक्षमें उनकी प्रार्थना अप्राह्म करनेका कोई भी कारण न था, तो भी मालव जैसे प्रदेशकी सनद हेनेकी उन्हें जरा भी इच्छा न थी। अव उन्हों ने एक चाल चली, निजाम और जयसिंहसे सलाह ले कर अपने पुत अह-ममद्शाहको मालवका नाममात्रका अधिपति वनाया और वालाजीको उनके प्रतिनिधिक्तपमें मालव-शासनकी क्षमता प्रदान की (१७४३ ई० ।

यह सनद पा कर वालाजीने जो सन्धिपत लिख दिया, उसको शर्त इस प्रकार थी,—

- (१) मालवके वहिभू^९त किसी भी मुगल-प्रदेशमें कोई मराठा-सरदार जा कर उपद्रव नहीं कर सकता।
- (२) वादशाहके समीप एक उपयुक्त मर ठा-सर-दार ५सौ सवारोंके साथ सर्वदा उपस्थित रहेंगे।
- (३ वादशाहके किसी पर चढ़ाई कालमें वालाजी १२ हजार सवार उनकी संहायतामें मेजे गे। इनमैंसे ८ हजार सेनाका खर्च वादशाहको देना पड़ेगा।
- (४) चम्बलनदोके उत्तराञ्चलस्थित जमींदारोंसे निर्द्धारित 'पेशकश'की अपेक्षा अधिक धन कभी भी नहीं मांगा जायगा और उस प्रदेशके यदि कोई भी जमींदार वागी हो जांय, तो उनका दमन करनेके लिये ४ हजार सेनासे वादशाहकी सहायता करनी होगी।
- (५) मालवकी प्रजाने वादशाहसे जो जागीर और देवोत्तर-सम्पत्ति पाई है, उसमें मराठे लोग दखल दिहानी नहीं कर सकते।

इस सिन्धिके अनुसार कार्य करनेके लिये वादशाह-को ओरसे जयसिंह और वालाजी वाजीरावकी ओरसे राणोजी सिन्दे, मलहारराव होलकर, यशोवन्तराव पवार और पिलाजी जाधव जामिन दुए। यहां पर यह कह देना उचित है, कि इस जामिनका कोई मोल नहीं था।

यह वृहत् कार्य शेप करके वालाजी सातारा लौटे।
यहां उन्होंने आय-व्ययका कुल हिसाव महाराज शाहुको
समका दिया। इस समय विलासव्यसनासक्त शाहु
नाममातके महाराज थे। सभी क्षमता वालाजीके ही
हाथ थी। इतना अधिकार पा कर भी वालाजीने प्रमुके
प्रति कभी असम्मान नहीं दिखलाया। प्रतिवर्ष वे राज्यके समस्त आय-व्ययका हिसाव यथारीति शाहुको समका
दिया करते थे।

इस समय राघोजी वालाजीसे मित्रता करनेके अभि-**गायसे पतादि भेजने छगे और उनसे मु**छाकात करनेके लिये वेरारसे खाना हुए। इस प्रकार राघोजी वालाजी-को प्रतारित कर सातारा पर आक्रमण करनेका यथा-सम्भव आयोजन करने लगे । उधर गुजरातसे गायक-वाड़ साताराके विरुद्ध आ रहे थे। सातारामें श्रोपति-राव प्रतिनिधिने मृत्युशय्या पर रह कर भी वालाजोकी क्षमता हास करनेके लिये कोई कसर उठा न रखी। वे यद्यपि राघोजीके साथ नहीं मिले थे, तीभी गायकवाड़के साथ उनकी पूरी सहानुभृति थी । जी कुछ हो, इस गुप्त पडयन्तका विषय वालाजीसे छिपा न रह सका। उन्होंने अपने सैन्यवलकी सहायतासे इस विपद्से रक्षा पानेको अपेक्षा सामनीतिका अवलम्बन करना अच्छा समका । आखिर शाहुकी मध्यस्थतामें राघोजीकी जो उनसे सन्धि हुई, उसके अनुसार राघोजीने लखनऊ, पटना, वङ्ग और उड़ीसा प्रदेशका कर वसूल क्रनेका अधिकार पाया। वालाजी और उनके पूर्वपुरुपींकी उपार्जित जागोर और मोकाससत्व, कोङ्गण और मालवप्रदेशका आधिपत्य, इलाहावाद, आगरा, अजमीर, मुगलशासित मङ्गलचेढे आदि प्रदेशोंका चौथ तथा पटनाः अञ्चलके तीन परगना, आर्क ट अञ्चलसे वार्षिक २० हजार रुपये और वेरारके अन्तर्गत राघोजोके अधोन कतिपय प्रामों-का खत्व वालाजी भोग करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ। इस सन्धिके फलसे वालाजीके साथ राघोजीका जो कुछ विरोध था सो जाता रहा और गायकवाड नितान्त सहायश्रन्य हो पडे ।

शाहुकी मृत्युके वाद साताराके सिंहासन पर खयं अधिकार करनेको जो उच्च आकांक्षा राघोजीके मनमें वहुत दिनोंसे जागरित थो, वह इस सन्धिके फलसे प्रशस्त हो गई और अव वङ्गादि देशमें यथेच्छा अपना आधिपत्य फैलानेकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ।

इस समय तक उत्तर-भारतमें नर्मदा, सुवर्ण रेखा और गङ्गा इन तीन निद्योंके मध्यवत्तीं प्रदेशमें बालाजीकी धाक अच्छी तरह जम गई थी। इस समय महाराज शाहुने वालाजीको गङ्गाके उत्तरसे हे कर हिमालय तक अपना अधिकार फैलानेका अधिकार दे दिया और साथ "साथ सनद भी लिख दी (१७४५ ई०)।

इसके वाद राघोजीने पुनः वङ्गालदेशमें अपनी गोटी जमानेके लिये २० हजार खेनाके साथ भास्करपंडको भेजा। इस समय पूर्वकृत वादशाहो संधिके अनुसार वालाजी अलीवदींकी सहायता करनेमें वाध्य थे। किंतु राघोजीके साथ अभी जो नई संधि हो गई थी, उससे वे राघोजीको वङ्गविजयमें वाधा न दे सके। बादशाहने वड़े नम्र हो कर उन्हें पत्न लिखा था। परन्तु उन्होंने उसका कोई संतोपजनक उत्तर नहीं विया, केवल इतना ही लिख भेजा, कि वे अभी खराज्यके कार्यमें लिस हैं, जरा भी अवकाश नहीं मिलता। कुछ दिन तक वे उत्तर-भारत वा मालव अञ्चल नहीं गये, सातारा जा कर राज्यको आभ्यन्तरिक व्यवस्था सुधारने लगे।

्र दूसरे वर्षे अर्थात् १७४६ ई०में वालाजीने अपने चचेरे भाई (चिमनाजी अप्पाके पुतः) सदाशिवरावको महा दाजीपंड पुरन्दरके कारकृत सखाराम वांपूके साथ कर्णा-्टक ज़ीतनेके लिये भेजा । १७२६ ई॰के वाद पेशवाओं-्के पक्षमेंसे आज तक किसीने कर्णाटक जीतनेकी चेप्रा नहीं की । कर्णाटप्रदेशके ऊपर प्रतिनिधि और उनके पक्षवालोंके दाँत गड़े थे। इस कारण आत्मविप्रहके भयसे वाजीरावने इस काममें हस्तक्षेप नहीं किया। एरन्तु उस प्रदेशमें निजामकी क्षमता दिनीं दिन दढ़ती देख उन्होंने १७४० ई०के प्रारम्भमें राघोजीको कर्णाटक भेजा। उनकी मृत्युके वाद भी उनके पुत वालाजीने इतने दिनों तक कर्णाटकके व्यापारमें हाथ नहीं वंटाया । परन्तु जव उन्होंने देखा, कि प्रतिनिधि श्रीपतिरावके पर-लोक जानेके वाद कर्णाटक रक्षाकी कोई विशेष चेष्टा नहीं हो रही है तथा प्रदेशके मुखियोंने महाराष्ट्रीय खत्वापहरण पूर्वक महाराष्ट्रीय वसूल करनेवालोंको मार भगाया है, तव उन्होंने सदाशिवरावको उसी साल कर्णाटकका विद्रोह-दमन करनेके लिये भेजा। 'सदाशिवरावके साथ गुद्धमें सावनुरके नवाव परास्त हो कर सन्धिप्रार्थी हुए। मराठोंने वार्षिक ५० हजार रुपये आयका राज्यांश उन्हें दिया और अवशिष्ट समस्त सावनुर प्रदेश अर्थात् तुङ्ग-भद्रा नदीके उत्तराञ्चलस्थित समस्त प्रदेश अपने कब्जेमें

कर लिये । कर्णाटकमें खोई हुई महाराष्ट्रशक्तिकी पुतः प्रतिष्ठा कर जब सदाशिवराव सातारा लौटे, तब महा-राज शाहुने सन्तुष्ठ हो उन्हें पितृपद पर प्रतिष्ठित किया। चिमनाजी अप्पा वाजीरावके अधीन सहकारी सेनानायक थे। सदाशिवरावको बालाजीके अधीन वही पद दिया गया। सदाशिवराव भाव इतिहासमें 'भावसाहव' नामसे प्रसिद्ध हैं।

१७४७ ई०में तुन्देळखएड-राजाके साथ वालाजीकी एक नई संधि हुई। उस संधिके अनुसार उन्होंने वाजी-रावके प्राप्त राज्यांश छोड़ कर छलसालके पुत्रसे वार्षिक १६॥ लाख रुपये आयका प्रदेश पाया। पत्राके हीरककी खानसे जो आय आवेगी, उसका आधा उन्हें मिलेगा, यह स्थिर हुआ। अव उन्होंने राज्यके गीतरी संस्कारमें विशेष ध्यान दिया और इपकोंकी अवस्था उन्नत करनेके लिये विविध उपायोंका अवलम्बन किया। वोर इकतोंके हाथसे ग्रामवासियोंको वचानके लिये वधी-वित व्यवस्थाका प्रणयन और प्रवर्तन किया गया। दूसरे दूसरे विभागोंमें भी उनके यत्नसे बहुत कुछ संस्कार हुआ। राज्यमें तमाम उन्नतिके लक्षण दीख पड़ने लगे। इस समय उत्तर-भारतमें, दाक्षिणात्य और कर्णाटकमें कितपय घटनाओंका स्वपात हो जानसे वालाजीको यहांका सब काम काज छोड़ कर वहीं जाना पड़ा।

१७४८ ई०में अहादशाह अव्यालीने पहली बार भारत-वर्ष पर आक्रमण किया और मुगलोंके हाथसे परास्त हो अपना सा मुंह लिये घर लीटा। इस घटनाके पक मास वाद महम्मदशाहकी मृत्यु हुई। उनके पुत अहादशाह दिल्लीके सिहासन पर अधिकद हुए। इसको दो तीन मास पोछे १०४ वर्षकी उमरमें निजाम उल मुख्क भी इस लोकसे चल बसे। अब राज्यका उत्तराधिकार लेकर उनके छह पुलोंमें विवाद खड़ा हुआ। इसी अवसरमें वालाजीने दाक्षिणात्यसे निजामका मूलोन्छेद करनेका सङ्कत्य किया। किन्तु इस समय सातारामें जो कुकाएड चल रहा था, उसको लिये बालाजीको वहां जाना पड़ा।

१७४० ई०से ले कर १७४८ ई० तकके मध्य शाहुकी दो स्त्री और तीन वपका एक लड़का परलोक सिधार गया जिससे वे राज्यकार्यमें नितान्त उदासी हो पड़। १८४८ ई०में उनकी प्रियतमा भार्या संगुणाकी मृत्युसे तो. उन पर शोकका पहाड़ टूट पड़ा। वे पागळ हो गये। दिनों दिन उनका खास्थ्य खराव होने लगा। उनके चित्तकी स्थिरता विलक्कल जाती रही। एक दिन सामान्य कारणसे विरक्त हो उन्होंने वालाजीको पद्च्युत करना चाहा और इस कारण उनसे वातचीत तथा मेंट मुला-कात करना विलक्कल वंद कर दिया। जब वालाजी अपना सर्वेख उपढ़ौकनखरूप उन्हें देनेको राजी हुए, तब शाहुने क्रोध शान्त कर उन्हें अपने पास बुलाया। पेशवा अकेले उनके सामने, जा खड़े हुए।

शाहुने उन्हें देखते ही विना जूता पहने नंगे पांवसे अन्तःपुरमें प्रवेश किया। बालाजी वड़े ही चतुर थे, सव वातें ताड़ गये और जूता अपने हाथ ले कर उनका पीछा किया। जव शाहुने उनको ओर घूम कर देखा, तव वालाजीने इसी समय दोनों जूते उनके पैरके समीप रख दिये। इस पर शाहु वड़े प्रसन्न हुए और उन्हें खपद पर प्रतिष्ठित किया।

उनकी मानसिक विकृति घीरे घीरे दूर होती गई। किन्तु खास्थ्यके विषयों वे किसी भी प्रकार उन्नति छाम न कर सके। उस समय उनकी उमर केवल ६६ वर्षकी थी। जीनेकी कम आशा जान कर उन्होंने राज्यका वन्दोवस्त करनेके लिये अपने आठ प्रधानों और सरदारोंकी बुला कर कहा, "अपनी मृत्युके वाद कोल्हा-पुरकी तारावाईके पींब राजारामको में गोद लेता हूं। उन्हें राजा वना कर आप लोग विश्वस्तताके साथ राज्यपालन करना।"

यह संवाद सुन कर महाराजकी पटरानी सकवरवाई वड़ी असन्तुए हुईं। उन्होंने समका, कि तारावाईका प्रपीत यदि राजा होगा, तो उनका प्रभुत्व विलक्षल जाता रहेगा। इस कारण, वे अपने मन मुआफिक एक वालकको गोद ले कर खयं राजकार्य चलानेकी चेष्टा करने लगीं। प्रतिनिधि जगजीवन राच और उनके आश्रित यमाजी शिवदेव उनके पश्चपाती हुए। कोल्हापुरके शम्माजीको भी उन्होंने अपने वलमें मिला लिया और तारावाईने अपने पुत्रको केद करनेके लिये खण्डेराव न्यायाधीश महाशयको हुकुम दिया।

Vol. XIV. 101

वालाजी विश्वनाथ शाहुके मतानुसार कार्य कर रहे थे, इस कारण सकवरवाई उन पर जलने लगीं। अलावा इसके दरवारमें भी उनके अनेक दुश्मन थे।

महाराजका खास्थ्य दिनों दिन अधिक शोचनीय होने छगा। सक्तवरवाई वालाजीके पक्षके किसी भी व्यक्ति-को महाराजके साथ साक्षात् करनेकी अनुमति नहीं देंगी, ऐसा आदेश उन्होंने प्रचार कर दिया। इस पर महाराज वडे दृःखित हुए । उन्होंने सकवरवाईको समन्ना कर कहा, कि वालाजीसे वढ़ कर क्षमताशाली और उपयुक्त व्यक्ति अभी राज्य भरमें कोई नहीं है। सुतरां उनके विरुद्ध कौन खड़ा हो सकता है ? किन्तु रानीने उस वात पर कान नहीं दिया। उन्हों ने प्रतिनिधि आदिको राजकार्यं चलानेमें विलक्कल उपयुक्त समन्ता। शाहुने कहा था, "तुम्हारी चेष्टा सफल नहीं होगी। पेशवाकी क्षमता अतुल है, युद्धिकौशल अप्रतिहत है। अतएव उन्हींकी सलाह ले कर कार्य करो।" रानी टससे मस न हुई । उन्होंने प्रतिज्ञा की-"चाहे मृत्यु हो या चाहे उद्देश्यसाधन । यदि चेष्टा विफल हुई, तो पतिके साथ सती हो कर भावी अपमानकी शान्ति करू गी।" इसके वाद तारावाईके पौतको जाली राजाराम कह कर घोषणा कर दी। इधर उन्होंने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा को थी, कि वालाजी पक्षके कोई भी व्यक्ति अथवा वालाजी भी क्यों न हों, यदि राजपासादमें प्रवेश करे, तो ग्रुत्रधातक द्वारा वह यमपुर भेज दिया जायगा । अव वालाजीकी अवस्था वड़ी सङ्करापन्न हुई।

वालाजीका साहस भी अतुल था। ऐसी अवस्थामें भी वे बीच बीचमें महाराजके दशैन कर ही लेते थे।
एक दिन परम विश्वासी गोविन्दराव चिटनवीसके साथ
सलाह करके महाराज शाहुने राज्यकी भावी व्यवस्थाके
सम्बन्धमें वालाजीके नामसे एक आदेश-पत लिखा।
उनके इस शेप आदेश-पतानुसार बालाजी बाजीरावने
समस्त महाराज्यसेनाका आधिपत्य और सैनापत्य प्राप्त
किया। सातारा और कोल्हापुरका राज्य जिससे एकत
न हो तथा राजारामको राज्याभिषिक कर यथानियम
राजकार्य परिचालित हो, उसका भी आदेश इस पत्नमें
लिखा था। अलावा इसके हिन्दूधमरक्षाके लिये तथा

हिन्दूराज्यको फैलानेके लिये जो कुछ करना चाहिये था, कुल अधिकार वालाजोको दिया गया। अनन्तर इस आदेश पतके अनुसार कार्य करनेके लिये उन्होंने पेशवाको शपथ खाने कहा। शपथ खानेके वाद पूर्वोक्त आदेशपत उनके हाथ सौंपा गया। इस आदेशपतके वलसे वालाजी वाजीराव शाहुको परलोकप्राप्तिके वाद मराठा-समाजके नेता हो गये।

शाहुके राज्यकी भविष्यत् अवस्थाके सम्बन्धमें ऐसा बन्दोवस्त करने पर भी सकवरवाई निश्चिन्त न वैठीं। उन्होंने पाशवशक्तिको सहायतासे ताराबाईके पौतको राजच्युत करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु अपना संकल्प छिपानेके लिये उन्होंने तमाम घोषणा कर दी, कि महा-राजका शारीरिक अमङ्गल होनेसे वे उनकी अनुमृता हो कर पति-प्रेमका चरम दृष्टान्त दिखलायेंगी। महाराज शाहुने रानीके इस अभिसन्धिका हाल जान कर वालाजी-· को स्चित किया, कि राज्यको शान्तिरक्षाके छिये इस समय सैन्यसंग्रह करना आवश्यक है। वालाजीने वातकी वातमें ३४ हजार सेना इकट्टी कर छी । सकवरवाईने भी ७।८ हजार सेनाका संग्रह किया था। उन्होंने कोहा-पुरके शम्माजीको भी अपनी सहायतामें बुलाया। इधर महाराजका मृत्युकाल निकट आ गया । वे १७४८ ई०की ध्वीं दिसम्बर शुक्रवारको इहधामका परित्याग कर सुरधामको सिधार गये।

पेशवाने यह संवाद पाते ही पल भरमें प्रतिनिधि और उनके आश्रित यमाजी शिवदेवको कैद कर पुरन्दर नामक गिरिदुर्ग भेज दिया। कोल्हापुरके शम्माजीने ऐसे समयमें रानीसे सम्बन्ध रखना नहीं चाहा और उसका साथ उसी समय छोड़ दिया। रानीने राघोजी और गायकवाड़को अपनी सहायतामें बुलाया था, पर चे एक भी न आये। अब वालाजीने तमाम अपना प्रमुत्व फैला लिया। सकवरवाई किकर्तव्यविमूह हो गईं। महा-राजकी भविष्य वाणी सफल हुई। इसके वाद वालाजी और तारावाईकी अधीनता स्वीकार कर जीवित रहनेकी अपेक्षा उन्होंने मरना ही श्रेय समका। इस स्यालसे उन्होंने नारीधर्मानुसार अनुष्ठता होनेका सङ्कल किया। इस अन्तिम कालमें उन्होंने पेशवासे मित्रता कर उन्हों आशी-

र्वाद-स्वक्तप एक अंगूंडी और चौकड़ा नामक कर्णभूषण उतार कर दिया। वालाजीने रानीका ऋण परिशोध करनेकी प्रतिका की और अपनी यह प्रतिका पूरो हो कर डालो। जो कुछ हो, शाहुका यथारीति सत्कार और रानीका सहगमन ज्यापार सुसम्पन्न हुआ।

इस प्रसङ्घर्मे प्राएट-डफ आदि अङ्गरेज लेखकीने वालाजीके चरित्र पर जो दोपारोपण किया है, उसका यहां पर संक्षेपमें उल्लेख और प्रतिवाद कर देना आव-श्यक है। पहले अफने कहा है, कि वालाजीने रानीकी सती होनेके लिये बाध्य किया था। उन्होंने रानीके भाई-से कहा, 'यदि आपकी वहन महाराजकी सहस्रता न होगी, तो आपके वंशमें कलडू लग जायगा और सारे महाराष्ट्र-राज्यकी मर्यादा घूलमें मिल जायगी।' अलावा इसके उन्होंने रानीके माईको जागीर देनेका लोम भी दिखलाया था। डफ साहवको यह तत्त्व कहां मिला, मालूम नहीं। महाराष्ट्रवखर (इतिहास) के लेखकींका मत जो ऊपरमें लिखा जा चुका है उसे पढ़नेसे वालाजी पर दोवारोपण करनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता। वरन रानीके स्वतः प्रवृत्त हो कर स्वामीका सहगमन करना उनके उस हताश अवस्थाका नितान्त स्वाभाविक था, ऐसा ही वोध होता है। स्वामीका सहगमन उस समय महाराष्ट्र-समाज और राजदरवारमें अवश्य पालनीय धर्म समभा जाता था, सी भी नहीं। रानीका पड़पंत परि सफल होता, तो वे अपने पूर्वघोषित सहगमनका सङ्ख्य परित्याग कर सकती थीं, इसमें समाज उनकी निन्दा नहीं कर सकता था। जब उनकी चेष्टा विफल हो गई तव यदि वे पूर्वधोषणानुसार सहसृता न होतीं, तो उनके नाममें वहा नहीं लगता सो हम नहीं कह सकते। किन्तु ये सव वार्ते वालाजीके सप्तकाये विना वे नहीं समऋ सकती थीं, यह हमें विश्वास नहीं होता। वरत सकवरवाई जैसी अभिमानिनी और उद्यकांक्षासम्पन्न रमणीने इष्टसाधनमें असमर्थं होनेसे अवमानना सहनेकी अपेक्षा खामीके साथ सती होना अच्छा है, ऐसी प्रतिज्ञा यदि की भी होगी, तो कोई आश्वर्य नहीं ।

इसके बाद प्राएट डफ मिहोदयने लिखा है, कि देशके प्रकृत इतिहासमें अभिन्न व्यक्तिगण इस घटनाको घृणाकी

द्रिं देखा करते हैं। उन लोगोंके मतसे ऐसे सहगमनमें वाध्य करतेको अपेक्षा सकवरवाईको किसी भी दोपसे कलंकित कर मार डालना उचित था। एक दल वालांजी-का शतु था। क्या डफ महोदयने उसी दलको इतिहास-तत्त्वश्च बतलाया है ? जनसाधारणका मत वे किस प्रकार जान सके। किसी भी महाराष्ट्रीय रचनामें ऐसा भाव प्रकाशित नहीं हुआ है । अन्यान्य स्थानींमें भी इसी प्रकार जनसाधारणके मतकी दुहाई दे कर डफ महोदय अत्यन्त अद्भृत सिद्धान्तींकी स्थापना करनेमें प्रयासी हुए हैं। उदाहरणस्वरूप एक घटनाका उल्लेख करते हैं। उन्होंने अपने प्रन्थमें शिवाजी-चरित्रके सीमा-छोचना-प्रसङ्गमें लिखा है, कि चन्द्रराव मोरेकी हत्यामें जो शिवाजीका दोष था, यह वात सभी महाराष्ट्र-वासी खीकार करते हैं। किन्तु अफजल खाँकी हत्यामें शिवाजी-का दोष था, यह बात कतिपय विश्व व्यक्तियोंको छोड़ कर जनसाधारण स्त्रीकार नहीं करते । किन्तु महाराष्ट्रीय किसी भी प्र'थमें ऐसे मावका आभास नहीं है। फिर खजातीय हिन्दूराजाकी शिवाजीने हत्या करवाई थी_{,"} यह वात स्वीकार करनेमें जो नहीं संकुचते, वे विधमीं अफ-जलखाँकी हत्यामें शिवाजीकी कपरता स्वीकार नहीं करते, इसीको किस प्रकार सङ्गत समम कर विश्वास कर सकते हैं ? वरन् महाराष्ट्रीय-छेखकके प्रन्थमें उक्त मही-दयकी उक्तिका विरोधी विवरण ही पाया जाता है। इस कारण यहां भी वालाजीके सम्वन्धमें वे विश्व महाराष्ट्र-वासियोंकी दुहाई दे कर जिस सिद्धान्तकी स्थापनामें प्रयासी हुए हैं, उसके यथार्थ्य-विषयमें हम छोगोंको घोर सन्देह है । सकवरवाईके भाईको जागीरका प्रलो-भन दिया गया था, इस विषयमें महाराष्ट्रीय लेखक जव नीरव हैं, तव जब तक कोई छिखित प्रमाण नहीं मिलता, तव तक उसे भी हम लोग विश्वास नहीं कर सकते।

शाहुके अन्तिम आदेशपतके विषयमें भी अंगरेज इतिहास लेखकोंने नाना प्रकारका सन्देह किया है। वह पत यथाथेंमें शाहु महाराजके हाथका लिखा था ना नहीं, उस विषयमें उन्होंने कहा है, कि धूर्त ब्राह्मण वालाजी वाजीरावने कींशलसे समस्त राज्यभार अपने हाथ कर

लिया था। वे लोग ऐसा जो कहते हैं, उसका कारण भी हमारी समक्तमें नहीं आता । पेशवाओंके प्रति स्वामाविक विद्वेप रखनेके सिवा और इसका कोई कारण हमारे ख्यालसे नहीं हो सकता है। क्योंकि, शाहुके सन्तानादि न रहने तथा राजवंशमें राज्यशासनयोग्य कोई व्यक्ति न होनेके कारण शाहुके पक्षमें अपने आठ प्रधानोंके ऊपर राज्यका भार सौंप कर दत्तक प्रहणके सिवा और दूसरा कोई उपाय नहीं था। आठ प्रधानोंके मध्य पदमर्यादा, कार्यदक्षता और क्षमतामें पेशवा ही वह चहे थे। अतः उनके ऊपर राजकार्य देखनेका कुछ भार सौंपना भी शाहुके पक्षमें स्वाभाविक था। उस समय भारतवर्षकी राजनीतिक अवस्था जैसी थी, कि वालाजी जैसे व्यक्तिको छोड़ कर यदि किसी दूसरे पर राज्यका कुल भार शाहु महाराज सौंप जाते, तो यह धुव था, कि थोडे हो दिनों-के अन्दर राज्य चौपर हो जाता। यही सीच विचार कर शाहुनै वालाजी पर राजकार्यका कुल भार सौंपा था। सकवरवाईकी आकांक्षा उच्च होने पर भी शाहुको यह अच्छी तरह मालूम था, कि विस्तीर्ण महाराष्ट्रराज्य वह सुचारुद्धपसे न चळा सकेंगी, राज्यमें तमाम अशान्तिका राज्य हो जायगा। इस कारण उन्होंने शान्तिरक्षाके लिये सेनासंब्रहका हुकुम दिया था। उसके बाद शाहुका दत्तकपुत जैसा अकर्मण्य निकला, कि यदि कोई राज्यपरिदर्शक नियुक्त होते, तो वे उनके हाथके जिलीने हो जाते । अतः उस विषयमें वालाजीका दोष देना वा उन्हें राज्यापहारक कहना भी युक्तिसङ्गत नहीं है।

शाहुकी मृत्युके वाद वाळाजी तारावाईके पाँत राजा-रामको साताराके सिंहासन पर विठा कर उनके अभि-प्रायानुक्षप कार्य करने छगे। राज्यकी भावी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विचार करनेके छिये शाहुकी जीवहशामें ही राधीजी भोंसछे, गायकवाड़ और सेनापित दभाड़े आदि सरदारीके यहां बुछावा मेजा गया। परन्तु पक राधीजी-को छोड़ कर और कीई भी इस समय नहीं आये। राजारामके अभिवेककाछमें एक राधीजी और जागीर-दारीके सिवा सातारामें कोई भी उपस्थित नहीं हुए। महाराज शाहु चिटनवीस और पेशवाको ही सभी राजकार्य-परिचाछनका भार दे गयेथे। कोव्हापुरपति शस्माजीके भयसे राजारामका अपनी मौसीके घरमें पालन पोषण हुआ था। राज्याभिषेककालमें उनकी अवस्था ३० वर्षकी हो गई थी। अधिक काल तक देहात् में रहनेके कारण उन्हें राजकार्यका विलक्षल ज्ञान नहीं था। इधर महाराष्ट्र-साम्राज्य आधा भारतवर्षं तक अपना प्रभुत्व जमाये था। भोंसलेकी उमर उस वक्त ढल गई थी, दूसरे वे वङ्ग-विहार और उड़ीसा है कर व्यस्त थे। गायकवाडु और दमाड़े साताराके राजकार्यकी अवेक्षा अपनी अपनी जागीरकी उन्नति करना ही अच्छा समकते थे । अतः पेशवा वाङाजो वाजीरावके कंधे पर विस्तीर्ण महाराष्ट्र-साम्राज्यका भार पड़ा। नये राजाकी अमल-दारीमें वालाजीने राघोजी और दूसरे जागोरदारोंकी नई सनद दी। महाराज शाहुने राज्यकी जैसी व्यवस्था करने कहा था, वालाजी उसी भावमें उसे सम्पन्न करने लगे। इस समय पेशवा विशेषतः पुनामें ही रहते थे। अतः उसी स्थानमें रह कर वे जिससे अधिकांश राज-कार्यं चला सकें, चिटनशीस और राघोजीकी सलाहसे उनको व्यवस्था कर ली। इसके वाद जी सव दुर्घेटना घटीं उनसे साताराके साथ महाराष्ट्र-राज्यका सम्बन्ध वहुत कुछ हट गया और पूना ही महाराष्ट्रराज्यका केन्द्र-स्वरूप हुआ।

राजारामकी अकर्मण्यतासे वालाजीने महाराष्ट्र-समाजका नेतृत्व पा कर सारे भारतवर्षको जीतने, मुसलमान-शासनकर्ताओंका उच्छेद करने और देशीय हिन्दूराजाओंको मराठाकी अधोनता स्वीकार करानेका सङ्कल्प किया—अन्ततः उनके लिखित पतादि पढ़ने और उनके कार्यकलापकी पर्यालोचना करनेसे ऐसा ही प्रतीत होता है।

शाहुकी मृत्युके समय सिन्दे और होलकर वालाजी-के निकट सातारामें उपस्थित थे। राजारामके निर्विध्न सिहासनारुढ़ होने पर वालाजीने जब जागीरदारीको नई सनद कर दी, उस समय मालवकी आयको सिन्दे और होलकरके वीच वांट दिया। मालवकी आय कुल डेढ़ करोड़मेंसे होलकरको ७४॥ लाख और सिन्देको ६५॥ लाख रुपये आयको जागीर सेनाके खर्चके लिये दी और उन्हें उत्तर-भारत जानेका फरमान मिला। मालव जाते समय उन्होंने निजामके पुतको दक्षिण आकटको छड़ाईमें लिप्त देख खान्देशके अन्तर्गत धोड़प आदि कतिपय दुर्ग , अपने हाथ कर छिये। इधर गुजरातका राजस वहुत दिनों-से दमाड़े नहीं देते थे, इस कारण वालाजीने रघुनाथ-रावको उसे वस्छ करनेके लिये भेजा । गुजरातका बजाना वहुत दिनोंसे वाकी पड़ गया था । इधर निजाम उल् मुल्कको मृत्युके समय उनके राज्यमें गोलमालके सुयोग पर वालाजीने महाराष्ट्रराज्य फैलानेका जो सङ्कल्य किया था, उसे वे महोराज शाहुके मृत्युकालीन गोलमालके कारण कार्यमें परिणत न कर सके। अभी राजारामकी सातारामें प्रतिष्ठित कर उन्होंने निजामके काममें हाथ डाला। इसी वीच निजामके दूसरे छड़के नासिरजङ्गने पिताको गही पर अधिकार जमाया। निजामके वडे लडके उस समय दिक्लीके काममें उलमें थे इस कारण यथासमय दक्षिणात्य नहीं पहुंच सके। इधर निजामके पांच पुत्रों और उनके भतीजे मुजपफरजङ्गमें आत्म-विद्रोह खड़ा हुआ। फरा-सियोंने मुजप्फरका और अंगरेजोंने नासिरका साथ दे कर अपना मतलव निकाल लिया। गुप्तधातकके हाथसे दोनों प्रतिद्वन्द्वी मारे गये। पीछे फरासियोंने निजामके तीसरे लड़के सलावतजङ्गको सिहासन दखल करनेमें सहायता पहुंचाई। इसी सुअवसरमें अंगरेज और फरासी-ने करमण्डलके किनारे अपनी गोटी जमा ली। बालाजीने भी इस समय महाष्ट्रराज्यको उन्नतिके शिवर पर पहुंचने का सङ्ख्य किया।

सातारामें उनके शबुओंने इस समय सलावतजङ्गको वालाजीके विरुद्ध खड़े होनेके लिये उसेजित किया। वालाजीने सलावतजङ्गका दमन करनेके लिये निजामके वड़े लड़के गाजीउद्दीनको दिल्लीसे दाक्षिणात्य वुलाने और उन्हें निजामका सिहासन दिलानेका वचन दिया। गाजी-उद्दीनको इस वातको खबर देनेके लिये वालाजीने सिन्दे और होलकरके पास पत्न मेजा । उस समय वेदोनों उत्तर-भारतमें थे । सलावत्को मय दिखा कर उनसे अर्थ और राज्यांशमहण करना ही वालाजीका प्रधान उद्देश्य था। इस कारण उन्होंने सिन्दे और होलकरको पत्न लिखा था, कि वे गाजीउद्दीनको दाक्षिणात्यकी सुबेदारी देनेका हरगीज वचन न देवें, उन्हें केवल

आशामें भुला कर दाक्षिणात्य भेज देनेकी कोशिश करें।

पहले सलावत्को उरानेके लिये वालाजीने १७५१ ई०के जनवरी मासमें औरङ्गावादके निकट उन पर सहसा आक्रमण कर दिया। पीछे उनसे १५ लाल रुपये करखरूप वस्ल कर पुनः कृष्णानदीके किनारे, रायचूड़के निकट उन पर चढ़ाई कर दी और गाजीउद्दीनको सिंहासन छोड़ देनेके लिये उनसे अनुरोध किया। इस पर सलावत् जङ्गने सातारा जा कर वहांके राजपुरुषोंसे सहायता मांगनेका विचार किया था। परन्तु जव उन्होंने देखा, कि वालाजी गाजीउद्दीनके विलक्षल पक्षपाती हैं और लड़ाईका विराट आयोजन कर रहे हैं, तव लाचार

हो कर उन्हें सन्धिके लिये प्रार्थना करनी पड़ी।

इघर उत्तर-भारतमें सिन्दे और होलकर रोहिलोंके साथ लडाईकी तैयारी कर रहेथे। दिल्लीश्वरके तदानीन्तन वजीर अयोध्याके नवाव सफद्रजङ्गके साथ रोहिलोंकी घोर शबुता चल रही थो। रोहिलोंने वार वार चढाई करके वजीरको तंग कर डाला। उन्होंने सिन्दे और होलकरकी सहायतासे उन लोगोंका दमन करना चाहा । वजीर सफदरजङ्गके वुलानेसे १७५१ ई०के प्रारम्भमें सिन्दे और होलकर गङ्गा और यमुनाके दोआवमें पहुंचे । यहां उन्होंने दोआवके आस पास प्रदेशोंको तहस नहस कर डाला। ५०।६० हजार रोहिला-सेना मारी गई । इस प्रत्युकारमें वजीरने दोआवका एक अंश सिन्दे और होलकरको अलावा इसके लूटका माल, हजारों धोडे हाथी और धन उनके हाय लगा। यह संवाद पा कर वालाजीने सिन्दें और होलकरकी भूरि भूरि प्रशंसा की। मराठी-सेनाने गङ्गा यमुना पार कर पठानोंको जीता और वजीरकी भली भांति रहा की, यह सुन कर वे वड़े प्रसन्त हुए। किन्तु उनके स्थालसे वजीरके छिये अपनी जान छड़ा कर रोहिलोंका सर्वनाश कर देना अच्छा नहीं दुआ। रोहिलोंका कुछ दमन कर वजीरसे पुरस्कार और रोहिलोंके साथ सन्धिस्थापनपूर्वक उनसे दीआवका एक अ'श प्रहण करना ही इस क्षेत्रमें उचित था। यह वात भी उन्होंने सिन्द्रे और होलकरको स्चित की। फलतः इस क्षेत्रमें रोहिलोंके साथ सन्धि

न करके उन्होंने जो वजीरसे दोआवका एक अंश प्रहण किया (जो पीछे राजनीतिके हिसावसे दोषावह ठहराया गया था) उसका फल पानीपतकी लड़ाईमें सिन्दें और होलकरको अच्छी तरह मिल गया।

रोहिला-दमनमें लिप्त रहनेके कारण उन दोनोंको गाजीउद्दीनके साथ दाक्षिणात्य आनेमें विलम्ब होने लगा। इधर वालाजी वाजीराव रायचूड़के निकट सला-वत्जङ्गको आक्रमण कर उनसे अर्थ और राज्यांश पानेकी चेहा कर रहे थे। इसी समय सातारासे एक भयङ्कर विश्वका संवाद आया। सुतरां सलावतसे दो लाख रुपये ले कर ही वालाजीको बड़ी व्यव्रतासे सातारा जाना पड़ा।

राजारामके सातारा सिंहासन पर अधिकृढ़ होनेके वाद तारावाईने पेशवा वालाजीको पदच्युत करके राज-कार्यको कुछ क्षमता अपने हाथ छे छी और पेशवा-पद पर किसी दूसरेको नियुक्त करनेकी कोशिश करने छगी। तारावाई जैसी बुद्धिमती रमणी थी, वह पाठकोंसे छिपा नहीं है। इस रमणीने शाहको 'जालशाह' प्रतिपन्न करनेके लिये और उनका राज्याधिकार लोप करनेके लिये कैसी चेप्रा को थी, वह पहले ही कहा जा चुका है। राज्यारुढ होने पर भा उन्होंने अपना दाव निकालनेमें कोई कसर उठा न रखी थी। इस कारण १७३० ई०में उन्हें पकड़ कर सातारा-दुर्ग में कैंद कर रखा था। अभी ७० वर्षकी उमरमें मुक्तिलाभ करके वे फिरसे अपना अक्षण्ण प्रभुत्व जमानेकी कोशिश करने छगी। प्रतिनिधि जगजीवनराव और वमाजी शिवदेवको वालाजीने पहले ही मुक्तिदान दे दिया था। उन्होंने अभी तारावाईका साथ दिया और उन्हींकी वातमें पड कर उन दोनोंने युद्धकी घोषणा कर दो। वालाजीके माइयोंके मध्य जिससे गृहविवादका सुत्रपात हो जाय और सिन्दे तथा होलकर जिससे उनका पक्ष छोड़ कर तारावाईके पक्षमें मिल जांय एवं राघोजी भो सले जिससे वालाजीका पक्ष छोड़ कर मुगलोंका पक्ष लेवें, इसके लिये वे जी जानसे कोशिश करने लगीं। निजाम सलावतजङ्गको भी तारावाईने अपनी सहायतामें बुछाया था । किंतु वालाजीके श्रोप्ठ राजनीति कौशलसे तारावाईकी कुल चेषा व्यथ गई।

वालाजीने पहले प्रतिनिधिका विद्रोह-दमन करनेके लिये भाव साहवको दलवलके साथ भेजा। राजाराम अपनी इच्छासे इस अभियानमें भाव साहवके सहायक रूपमें गये थे। तिस पर भी प्रतिनिधि संधि करनेको विलकुल राजी न हुए। आखिर सङ्गोला नामक स्थानमें दोनों पक्षमें मुठभेड़ हो गई। प्रतिनिधि और यामाजी शिवदेव हार खा कर भागे। पेशवा और तारावाईके वीच जो संघर्ष चल रहा था उसका परिणाम शुभकर नहीं होगा, यह सोच कर तथा साम्राज्य-शासनका गुरुत्व अनुभव कर राजारामने इस समय पेशवाकी समस्त राजकार्य-परिचालनका सनद्पत प्रदान किया और आप वार्षिक ६५ लाख रुपये आयका प्रदेश ले कर निर्विध-पूर्वेक काल व्यतीत करना चाहा । सङ्गोला-दुर्गेमें ही इन सब विषयोंका शेष बन्दोवस्त करके वे सातारा लीटे। गुजरातमें दभाडे का शासनाधिकार था। किंतु परलोकगत तिम्बकराव दभाड़े के पुत बड़े ही अक्रमण्य थे, इस कारण गुजरातमें अकसर अशांति हुआ करती थी। इस वातका तथा वाकी खजानेका उल्लेख कर माव साहबने इस समय वालाजीके नामसे गुजरातके अर्द्धा श-की सनद्के लिये प्रार्थना की । राजारामने उनकी यह मांग भी पूरी की। कर्णाट-अञ्चलमें वावूजी नायक स्बे-दार थे। उपढीकन और अधिक राजस देनेमें सीकृत हो कर पेशवाने इस समय वहांकी स्वेदारी भी राजाराम-से ले ली। इस पर ताराबाई बड़ी असंतुष्ट हुई और उन्हें स्वाधीन भावमें राजकार्यका परिचालन करनेके लिये उपदेश देने लगी । किंतु जब राजाराम ऐसा भारी बोक अपने शिर लेनेसे इनकार चले गये, तव तारावाईने उन्हें सातारा-दुर्गमे कैंद किया (२४ नवम्बर १७५०ई०)। पेशवाने उन्हें जो जागीर देनेका वचन दिया था, वह न दे कर वार्षिक ६५ रुपये नगद ही देनेकी व्यवस्था कर दी। इन सव कारणोंसे सातारा-सिहासनका माहात्म्य बिलकुल घट गया।

राजारामको कैंद् करके ताराबाईने वहांके सेनापितको कहला भेजा, "सातारामें जितने कोङ्कणस्थ ब्राह्मण (बालाजी पेशवा कोङ्कणप्रदेशस्थ ब्राह्मण थे) हैं उन्हें भोली वरसा कर सातारासे मार भगाओ।" केवल यही

नहीं, उन्होंने दामाजो गायकवाड़को मी लिखा कि, "मराठा-क्षित्वयका राज्य ब्राह्मण हथिया रहा है! इस समय उसकी रक्षा करनेमें आपको सहायता देना कर्तथ है।" यह पत पाते ही दामाजी दलवल समेत साताराकी ओर चल दिये।

इधर निजाम-उल-मुल्कके तीसरे लड़के सलावत्जङ्ग तारावाईके अनुरोधसे उन्हें सहायताके लिये सातारा जा रहे थे । बालाजीने कृष्णानदीके किनारे उन्हें रोक रखा। सलावत् सन्धिप्रार्थी हुए। इस समय दामाजीके सातारा जानेकी खबर वालाजीके कानमें पडी। अतः उन्होंने १२ लाख रुपये ले कर सलावतजङ्गसे सन्धि कर और वड़ी तेजीसे गायकवाड़के विरुद्ध थाता की । पहले उन्होंने साताराकी रक्षाका प्रवन्य किया। तारावाई जिससे दुर्गत्याग न कर सकें, उसका भी वन्दोवस्त उन्हें करना पड़ा। इधर गायकवाड़को वाधा देनेके लिये भी वे तैयार हो गये। सलपीघाटके निकट दोनोंमें युद हुआ। पहले वालाजीकी सेनाके पीठ दिखाने पर भी पीछे दमाजी गायकवाड्को ही पराजय हुई। गायकवाड् दूसरी राहसी भग कर सातारामें तारावाईसे जा मिले। यहां महादजी अभ्वाजी पुरन्दरेने पेशवाकी ओरसे लड़ कर उन्हें परास्त किया। पेशवाके भयसे प्रतिनिधिको अव गायकवाड्की सहायता करनेका साहस नहीं हुआ। अतएव गायकबाड़को लाचार हो कर पेशवाके साथ सन्धि करनी पड़ी।

दमाड़े के यहां गुजरातका राजस यहुत दिनों से बाकी पड़ गया था। दमाजी दमाड़े के मातहत थे, इस कारण बालाजीने अभी उनसे राजसके लिये प्रार्थना की। दमाजी के इनकार चले जाने पर बालाजीने उनके साथ युद्ध ठान दिया और अकारण खून खरायीके बाद उनकी सेना पर हठात् आक्रमण कर उन्हें केंद्र कर लिया। (१७५१ ई०के मार्च मासमें) गुजरातके खजाने के लिये दमाड़े को भी कारागारकी हवा खाने पड़ी। पीछे जब उन दोनोंने वालाजीकी शरण ली, तब उन्हें तरस आया और फिर जो कुल अंपराध था, सो माफ कर दिया। १७५१ ई०के नवम्बर मासमें दमाड़े और १७५२ ई०की २५वीं फरवरीको दमाजी कारागारसे

मुक्त हुए। तारावाईको राजवंशीया जान कर वालाजी उन्हें केंद्र नहीं किया, वरन् वे मीडी मीडी बातोंसे प्रसन्न करनेकी कोशिश करने छगे। परन्तु इससे कोई भी फल न निकला। अव वालाजी साताराकी तारावाई को छोड आप पूना छोटे। इस समयसे तारावाईको कठो-रतासे राजाराम सातारा-दुर्गके एक आद्र अकोष्टमें कदन्न सा कर रुग्नदेहसे कालयापन करने लगे। १७६१ ई०के दिसम्बरमासमें तारावाईकी मृत्यु होने पर वालाजीके पुत पेशवा माधवरावने उन्हें कारागारसे मुक्त कर दिया। इसके पहले वालाजीने कई वार उन्हें मुक्त करनेके लिये तारावाईसे अनुरोध किया था। परन्तु वृद्धा रस-से मस नहीं हुई। प्राएट डफका कहना है, कि राजाराम-को मुक्त करना वालाजीकी आन्तरिक इच्छा न थी और राजाके छुटकारा पाने पर भी वालाजीने उन्हें सातारा नगरके वाहर खच्छन्दाचरणका अधिकार नहीं दिया था। पेशवाका ऐसा व्यवहार सामान्य नीतिकी द्रुप्टिसे द्वणीय होने पर भो राजनीतिके हिसावसे वह विशेष दोषाई नहीं समका जायगा। क्योंकि दुर्वल और अकर्मण्य व्यक्तिको राजपद पर प्रतिष्ठित रख कर सुनीतिकी मर्यादा रक्षाकी अपेक्षा क्षमताशाली व्यक्तिके हाथ राज्यभार रहना राज्यके पक्षमें अधिकतर कल्याणकर है।

तारावाईके विश्वव-दमनमें जव वालाजी वाजीराव विशेष व्यस्त थे, उस समय उनके घरमें जो विवाद उप-स्थित हुआ, उसका हाल यहां देना वावश्वक है। राम-बन्द्रवावा नामक एक व्यक्तिको वालाजीरावने राणोजी सिन्देके दीवानी-पद पर नियुक्त कर दिया था। १७५० ई० राणोजीको मृत्यु होने पर उनके वड़े लड़के जयप्पा सिन्दे-का दीवानी-पद पानेके लिये रामचन्द्रवावाने भावसाहव-को लाखसे ऊपर मुद्रा भेंट दे कर पेशवाके निकट अपना पक्ष समर्थन करनेके लिये कहा। जयप्पाके साथ राम चन्द्र वावाको पटती नहीं थो और न होलकरके साथ उनका सद्भाव ही था। अतः वालाजीने रामचंद्र वावाको पदच्युत किया। इस काममें भावसाहवकी वात न रहनेके कारण उन्होंने क्षुक्य हो रामचंद्ररावको अपने दीवानी-पद पर नियुक्त किया। मल्हारराव होलकर-की भी रामचंद्रवावाकी पदच्युतिमें सलाह थी, इस कारण उन पर भी भावसाहवका क्रोध था। इस विद्वेष-के फलसे आखिर पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्र-वैभवकी पूर्णाहति हुई।

रामचंद्रवावाने इस अपमानका वद्छा छेनेके छिये भावसाहवको वालाजीके निकट पेशवाका प्रधान कार्य-निर्वाहक पद् मांगनेके लिये सलाह दी । महदाजीएंड पुरन्दरे उस समय पेशवाके मातहत थे । पुरन्दरे-परि-वारके साथ वहुत दिनोंसे पेशवा-वंशको दोश्ती चली आती थी। अतएव उन्हें पद्च्युत करनेकी वालाजी विलकुल राजी न हुए । इस पर रामचंद्रवावा कोल्हा-परके शस्माजीसे भाव साहवके नाम पेशवापद-ग्रहणका आमंत्रणपत लाये। भाव साहवको कोव्हापुरपति द्वारा पेशवापद मिलनेसे वे वालाजीके एक प्रतिद्वन्द्वी हो जांयगे और उसके फलसे राज्यनाश होनेकी भी सम्भावना है, यह जान कर खदेशमक महदाजीपंड पुरन्दरेने अपना पद त्याग कर उस पद पर भावसाहबको नियुक्त करनेके लिये वालाजीसे अनुरोध किया । वालाजीको भी वही करना पडा । महदाजीके आत्मत्यागके फलसे इस प्रकार पेशवाका गृहविवाद शांत हुआ। इसके वाद वालाजीने पुरन्दरेको एक दल सेनाका अधिनायक वनाया।

रामचंद्रवावाके साथ होत्करके दीवान गङ्गाघर यशोवंतका अच्छा सन्नाव था। इस कारण वे उनकी मध्यस्थतामें मल्हारराव होल्करको तारावाईके पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। सिन्दे को भी इसी प्रकार तारावाईके पक्षमें खोंचनेको चेष्टा की गई थी। किंतु वे दोनों ही पेशवाके विश्वस्त सेवक थे। विशेषतः सिन्देको प्रभुभक्ति असाधारण थी, इस कारण रामचंट्र-वावाकी वह चेष्टा सफल न हुई। फलतः राजारामके सिहासनारुढ़ होनेके वाद दो एक वर्षके भीतर तारावाईने वाळाजीको तंग तंग कर डाळा । किंतु वाळाजो वाजी-रावने असाघारण धेर्य, साहस और नीतिकौशळसे सभी विपट्से उसीर्ण हो तारावाईके समस्त सहायताकारियों-को दमित और वशीभूत किया। अव तारावाई निरु-पाय हो सातारामें शान्तभावसे रहने छगीं। पेशवा वालाजीने उनके निर्वाहके लिये ६०।७० लाख रुपये आयको एक जागीर उन्हें दी थी। किन्तु उसकी भी

यथारीति व्यवस्था करना उनके लिये असम्मव हो गया।
वादमें उन्होंने १७५५ ई०में पेशवाको जागीर लौटा दी
और नगद रुपये देनेका अनुरोध किया। सारे महाराष्ट्र-साम्राज्यका प्रमुत्व ग्रहण करनेके लिये जो पेशवाके विरुद्ध हो गई थीं, उनकी इस प्रकार अक्षमता देख
लोगोंकी उनके प्रति भक्ति घट गई, इतना ही कह देना
पर्याप्त है। तारावाईका विष्ठव-दमन करनेके लिये वालाजीको २५ लाख रुपये कर्ज ले कर १५ हजार नई सेनाका
संग्रह करना पड़ा था। इतनी सेनाके अलावा उन्हें
और भी ४० हजार सेना थी।

तारावाईके उद्भावित अंतर्विष्ठवके निवारणकालमें वालाजी वाजीरावके प्रधान सहाय सिन्दे और होलकर रोहिला-दमनमें उलके हुए थे। इस कारण कई वार बुळावा जाने पर भी वे दोनों उनकी सहायतामें उपस्थित न हो सके थे। उन छोगोंको दूरदेशगत देख कर सलावत् जङ्गने फरासियों से सहायता पा कर वालाजी वाजी-राव पर आक्रमण कर दिया। सातारेके विपक्षियोंका उस समय अच्छी तरह दमन हो चुका था, इस कारण वालाजीने निभीकचित्तसे उनका सामना किया। सलावत आग लगा कर समस्त देशों को तहस नहस करते हुए पूनाकी ओर अग्रसर हुए। तलेगांव नामक स्थानके निकट दोनों पक्षकी मुठभेड़ हो गई। प्रथम दिनके युद्धमें मराठे लोग चन्द्रप्रहण (१८५१ ई० २२ नवम्बर)-के उप-लक्ष्में स्नानादि कर रहे थे। इसी समय रातको फरासी-सेनापति वृसीने सहसा उन पर आक्रमण कर छतभङ्ग कर डाला । दूसरे ही दिन मराठोंने इस अप-भानका वदला ले ही लिया। इस संघष्में सलावत्की वहुतसी सेना मारी गई। फरासी-सेनापति वृसीके तोप-खानेकी छांहमें रह कर मुगलसेनाने अपनी जान वचाई। तिम्बक एकयोटी नामक किसी मराठा-सेनापतिने इस युद्धमें असाधारण वीरता दिखा कर 'फांफड़े' अर्थात् महावीरकी उपाधि पाई थी। इस समय सलावत्जङ्गकी खवर लगी, कि खान्देशका तिम्यक नामक प्रसिद्ध दुर्ग वालाजीके किसी सरदारसे अधिकृत कर लिया गया है। अतः उन्होंने उसके उद्धारके लिये अहमदनगरको और याला कर दी। किन्तु राघीजी मींसलेने पुर्व दिशासे

उन पर आक्रमण कर दिया । वहुत दिनोंसे वेतन न मिलनेके कारण सेनाविद्रोही हो गई थी जिससे सलावत्जङ्गको वालाजीके साथ सिन्ध करके हैदरावाद लौटना पड़ा । इसके कुछ दिन वाद ही उनके मन्त्रो रामदासर्पएड (राजा रघुनाथदास) विद्रोही सैनिकोंके हाथसे मारे गये (१७५२ ई०को ७वीं अप्रिल)। इसी रामदासपएडके भतीजेको तारावाईने वालाजी वाजोराव-के पद पर पेशवा नियुक्त करनेका सङ्करम किया था।

सलावत्जङ्गको दुर्वल वनानेके लिये वालाजीने पहले ही भेदनीतिका अवलम्बन कर रखा था। हैदरावादके द्रवारमें वैदेशिक फरासियोंकी प्रवलता देख सर लक्कर और निम्यालकर आदि निजामके मराठा-सरदार वहें असन्तुए हुए थे। वालाजीने उन्हें समक्षा कर कहा, कि गाजीउद्दोनको दाक्षिणात्य हैदरावादमें ला सकनेसे ही फरासियोंका भाग्यविपर्यय होगा और मराठांकी प्रवलता वहेंगी। इस वात पर निजामके मराठा-सर-दारोंने वालाजीका पक्ष लिया।

इधर इन सव कामों से वालाजी वह ही, ऋणप्रस्त हो गये। यक तो अर्थामाव था ही, दूसरे तारावाईके यह्यन्त्रकी आशङ्कासे वालाजी गयासुद्दीनको यथा-सम्मव शीघ्र ही दाक्षिणात्य लानेके लिये सिन्दे और होलकरको पुनः पुनः पत्र लिखने लगे। वे लोग भी सफदरजङ्गको सहायतासे वादशाहसे गाजी नाम पर दाक्षिणात्यको स्वेदारो सनद ले कर घोर वर्षाकालमें औरङ्गावाद पहुंचे। पेशवा भी उनका सागत करनेके लिये वहां ससैन्य उपस्थित थे। उस समय वालाजीके पास कुल डेढ़ लाख सेना थी। गाजीके हैदरावादमें प्रतिष्ठित होने पर वालाजी उनसे पारिश्रमिक स्वरूप ताप्तीसे गोदावरी तक बेरारके पश्चिमाञ्चलियत समस्त मुभाग पावेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

पेशवाकी सैन्यसंख्या और गाजोउद्दोनकी आगमन-वार्त्ता सुन कर सलावत्जङ्ग दंग रह गये। पेशवाके साथ सिन्ध करनेके लिये उन्हों ने दृत भेजा। इसी वीचमें निजाम-उल-मुल्कके छोटे लड़के निजाम अलीकी माताने सहसा गाजीको विष खिला कर मार डाला (१७५२ ई०की १२वीं सितस्वर)। इस पर पेशवा और सिन्दे होत्कर वह विषण्ण हुए। गाजीकी मृत्यु होने पर भी उन लोगों की उद्देश्य-सिडिमें कोई वाधा न पहुंची। कारण, इस समय पेशवाकी अधीनतामें प्रायः सभी मराद्रा-सरदार इस प्रकार समन्नेत हो गये थे, कि गाजीके अङ्गीकृत प्रदेश यिंद मराठोंको न मिला, तो युद्ध अनिवार्य हो जायगा, पेसा ही मालूम पड़ा। करासो-सेनापित वूसी भी मराठों का सैन्यसंप्रह देख कर डर गये और सलावत्जङ्गको सन्धि करनेकी सलाह दी। बालाजीको नेरार, तासी और गोदावरीके मध्यवत्तीं सभी प्रदेश विना युद्धके मिले।

इसके बाद गुजरात पर अधिकार करनेके लिये वालाजीने रघुनाथरानको भेजा। इस बार गुजरात जा कर रधुनाथ कुछ भी न कर सके। अब स्रत जीतनेकी उनकी इच्छा हुई। किंतु ताराबाईके गोलमालके कारण बालाजीने उन्हें शीघ्र ही छीट आनेका हुकुम दिया। अतः दूसरीः बार वे राजासमकी प्रदत्तः सनदके अनुः सार गुजरातका अंद्वभाग जीतनेके लिये १७५१ ई०क्रे अस्तूवरमासमें मेजे गये। किंतु इसके वाव ही निजाम-ने पूना पर चढ़ाई कर दी थी, जिससे उन्हें वालाजीकी सहायतामें छौटना पड़ा । अभीनि जामके साथ सिन्धि हो जानेसे रघुनाथरावने पुनः गुजरातकी याताःकी (१७%३ ई०की १३वीं फरवरीः)। इसके पहले १७५३ इं ०के फरवरी मासमें दमांजी गायकवाड़ने पूनाके कारा-गास्से छुटकारा पाया धा । उस समय पेशवाके साध जो संधि हुई, उसमें यह स्थिर हुआ, कि गुजरातक वाकी सजानेकी बाबतमें गायकवाड़ पेशवाको १५ लास रुपग्ने दे'गे'। गुजरातका अर्द्धांश उन्हें दिया जायगा। सलावा इसके गायकवाड़ जो नूतनप्रदेश जीतेंगे, खर्च बाद दे कर उनकी आयका अर्खांश पेशवाको मिलेगा और पेशवाके अभियानकालमें दमाजी १० हजार सेना के कर उनकी सहायता करेंगे। व्साङ् के मातहतकी तौर पर पेशवाको वे ५ लाख रुपये वार्षिक करवान और साताराके राजारामके निर्वाहके लिये भी कई लाख रुपये प्रतिवर्षं देंगे । इधर राघोजी भोंसलेकी मृत्यु हो जानेसे उनके पुत जानोजी भोंसले "सेनासाहव सुवे" का प्रवृ पानेके लिये उपस्थित हुए। वालाजीने उन्हें उक पर पर प्रतिष्ठित तो किया, पर शर्त यह उहसी, कि उन्हें

साताराक महाराजक निर्वाहक लिये वार्षिक ६ लाख रुपये देने होंगे और जहरत पहने पर वालाजीको १० हजार सेनासे सहायता पहुंचानी होगी। जो कुछ हो, रघुनाथराव पूर्वोक्त सन्धिके अनुसार दमाजीसे गुजरात-का अर्द्धांश छेनेके छिये भेजे गये। वहां जा कर उन्होंने १७५३ ई॰के अप्रिल मासमें अहमदनगर पर अधिकार कर लिया तथा गायकवाडसे प्राप्त सभी प्रदेशों में अपना याधिपत्य जमाया। दमाजीके पूना अवरोधकालमें मुगलपश्लीय जवानमर्दं खाँने अहमद्नग्र दुर्गको अपने अधिकार कर लिया था। अहमदनगर-अधिकारकालमें कान्देशके अन्तर्गंत मालेगाँवके दुर्गनिर्माता नरशङ्करने तथा विञ्चुअञ्चलके जागीरदार विदृल शिवदैवने असा-आरण वीरत्व दिखा कर विशेष प्रसिद्धि पाई थी। मुक्ति-पुरो द्वारकानगरो भी इस समय पेशवाके हाथ छगी। वहां प्रतिदिन जिससे एक सौ ब्राह्मण भोजन करें, उसके लिये पेशवा-सस्कारसे ५ हजार रुपये वार्षिक आयकी ब्रह्मोत्तर भूसम्पत्ति उत्सृष्ट हुई थी।

गुजरातसे रघुनाथरात्र ससैन्य मालव पर आक्रमण कर सिन्दे और होलकरकी सहायतासे काठियावाड़, बूंवी, क्रोटा, राजगढ़, उदयपुर, जूनागढ़, नरवार, ग्वालियर, भांसी, काल्पी आदि स्थानी से चौथ और कर वस्ळ करते हुए भरतपुर पहुंचे। जाठ छोग कुम्भेरीकी लड़ाईमें परास्त हो पेशवाको कर देनेमें सहमत हुए और नगद् ६० लाख रुपये दे कर सन्धि कर ली। अनन्तर स्घुनाथ दिल्लो, रोहिलखएड, कुमायूं, काशी, प्रयाग, जयनगर, राजपूताना आदि प्रदेशोंमें महाराष्ट्रशक्तिका प्रभाष दिखळाते हुए १७५५ ई०के अगस्तमासमें पूना छौटे। दिल्लीमें रहते समय उन्हों ने वादशाह अहमद-शाह और उनके वजीर सफदरजङ्गको पदच्युत करके इजुउद्दीन् शाह नामक राजवंशीय एक व्यक्तिको द्वितीय भालम्गोरकी उपाधि दें दिल्लीके सिंहासन पर अभिविक्त किया था। रघुनाथरावकी सहायतासे शाहबुद्दीन् गाजी उसके मन्ती हुए (१७५४ ई०की २री जून) । किन्तु इन सव घटनाओं और अभियानके साथ वालाजी वाजीरावः का साक्षात् सम्बन्ध न रहनेके कारण वह प्रसङ्ग यहीं पर छोड़ दिया गया।

Vol. XIV. 103

इस प्रकार रघुनाथराव और सिन्दे होछकर आदि सरदारगण जव उत्तर-भारतमें मराठाका आधिपत्य फैला रहे थे, उस समय वालाजीराव भी चुप वैठे न थे। उन्होंने सलावत्जङ्गके साथ सिन्ध करनेके वाद ही कर्णाटककी और याता कर दी। १७५७ ई०में भावसाहवने कर्णाट-प्रदेशके ३६ परगनों वा सावजुरके नवावके राज्यके प्रायः अर्द्धों श पर अधिकार कर लिया था।

कर्णाट अञ्चलके जमींदार वह उद्धत हो गये थे, इस कारण बीच बीचमें उन लोगों का दमन और राजख़ वसूल फरनेके लिये पेशवाको सेना भेजनी पड़ती थी। इधर कई वर्षी तक नाना कारणो से पेशवा कर्णाटका राजस्व वसूल कर न सके। अतः अभी भावसाह्ब-को साथ ले वे स्वयं कर्णाटको चल दिये। वे प्रथमतः १७५३ ई०में जनवरीसे जुलाई मास तक श्रीरङ्गपत्तन, सौन्दा, विद्तुरकी 'आदि प्रदेशो'के विद्रोही जमींदारों को देनेसे वाध्य कर पूना छौटे। दूसरे वर्ष अवशिष्ट कर्णाट-में आधिपत्य जमानेके लिये. भावसाहव और रामचन्द्र वावा मेजे गये । उन्हों ने होली-दुन्नर नामक दुर्गको अपने वाहुवंछसे द्खळ कर भीरङ्गपत्तन पर आक्रमण कर विया । यह देख कर कर्णाटके सभी जमींदारों ने उनकी वश्यता स्वीकार कर छी तथा वाकी राजस प्रदान और भविष्यमें निर्विरोध यथा समय राजस्व देनेकी प्रतिषा की। अपने उद्देश्यको सिद्ध कर भावसाहव जूनमासमें खदेश लीटे ।

कुल्णानदीके दक्षिणसे रामेश्वर पर्यन्त मराठाके स्वराजभुक्त हो जाय, यही वालाजीका उद्देश्य था। इस कारण १७५५ ई०के जनवरी मासमें वे विदनुरको जीतने के लिये चल दिये। वह स्थान सावनुरके नवावके शासनाधीन था। किंतु निजाम सलावतजङ्ग पूर्वा- खलमें भो सलेके अधिकृत स्थानों पर अधिकार करने की चेष्ठा कर रहे थे, इस कारण उनका दमन करनेके लिये उन्हें वहां जाना पड़ा। उस समय बृहस्पित सिहराशिमें थे, अतः जितनी युद्धयाता की गई समी निष्फल हुई।

्रदूसरे वर्षके आरम्भमें ही बालाजी वाजीरावने रघु-नाथराव, भावसाहव, महदाजी पुरन्दरे, मव्हारराव,

जानोजी बीर मुधोजी भो सले, विद्वल शिवदेव आदि सरदारों को ले कर सावनुर पर आक्रप्रण कर दिया। इस समय मुजफ्फर जी नामक एक सरदारने महदाजी पुरन्दरेसे कलह करके सावनुरके नवावका आश्रयः प्रहण किया। ये अङ्गरेजी ढंग पर सेनाको युद्धविद्या सिखाते थे। उन्हें सुपूर्व कर देनेके लिये पेशवाने नवावको पत लिखा, पर नवावने उस पर कान नहीं दिया । इस कारण वाळाजी वाजोरायने अपना समभ कर युदकी घोषणा कर दी । १७४७ ई० के सन्धिकालमें नवाकी वागलकोट नामक दुर्ग पेशवाको देनेका वचन दिया था, पर आज तक वह वचन पूरा नहीं हुआ। अतः इस समय षद् भी अधिकृत कर . लिया गया । सलावतजङ्गको भी पेशवाने अभी अपने दलमें मिला लिया था, इस कारण उन्होंने भी इस गुद्धमें साथ दिया। कड़प्पा और कर्णालके नवाव तथा मुराररावं घोरपड़े नामक किसी मराठा-जमींदारने सावद्यरके नवावका पक्ष लिया था। परंतु समय पर कोई भी पहुंच न सके, जिससे नवावकी कई मास तक अकेला सावनुर-दुर्गकी रक्षा करनी पड़ी। आखिर मल्हाररावने दोनोंमें सन्धि करा दी। इसमें मराठोंको युद्धके व्ययस्वरूप ११ लाख रुपये और मिश्र-कोट, हुवली, कुन्दगोल आदि परगने मिले। अलावा इसके सोन्दें और विद्तुर प्रदेशके कर वस्ल करनेका अधिकार बालाजीको मिला । नवाव एकवारगी ११ छास रुपये गिन देनेमें विलकुल असमर्थ थे, इस कारण वड्डा-पुरके दुर्गका अधिकार कुछ दिनों के लिये मराटोंके हाथ रहा । मुजपफरजङ्गने पुनः पेशवाको अधीनता स्वीकार की । इसके वाद सोन्द्रे अञ्चलमें अपनी गोटो जमानेके लिये वालाजीने गोपालराव पटवर्द न नामक एक ब्राह्मण सरदारको भेजा। उन्होंने उस प्रदेशके देशाइयाँ (जर्मी-दारों)-का दमन करके उन्हें आठ लाख रुपये कर-स्वरूप देनेके लिपे वाध्य किया। इनमेंसे उन्होंने २॥० हास रुपयेके बदलेमें मदैनगढ़ वा फोएडा दुर्ग समर्पण किया। इस-प्रकार १६७४ ई०में छतपति महात्मा शिवाजीने जो फोएडा-दुर्ग जीत कर स्वराजभुक किया था तथा जो शम्माजीके राजत्वकालमें मुगलीके हाथ लगा था, वह इतने दिनोंके वाद फिर मराठोंके शासनाधीत हुआ। इसके वाद पेशवा वालाजी वाजीराव तुङ्गभद्राके दक्षिण किनारे गये और नृतन-प्राप्त विदनुर आदि प्रदेशों से करसंप्रह कर पूना लीटे। दश वर्ष पहले मराठों के स्वराज्यकी दक्षिणी सीमा पर कृष्णानदी थी, अभी उसके वदलेमें तुङ्गभद्रानदी हो गई है।

ूरस समय तुलाजी आंग्रे स्वाधीन हो कर निःशङ्क भावसे समुद्रतीरवर्ची स्थानों में सूट पाट कर रहे थे। उनका अत्याचार बालाजीको रोकना जरूरी था। किन्तु नी-सेनापति आंग्रे के साथ जल-युद्ध करना सहज नहीं है, यह सीच कर वालाजीने अङ्गरेज विणकोंकी सहायता-से आंग्रे को दमन करनेका सङ्खल्प किया। १७५६ ई०की २२वीं मार्चको स्थिर हुआ, कि अङ्गरेज और पेशवा-की नौ-सेना सम्मिलित हो कर ६४ तीपों के साथ सुवर्ण-दुर्ग और विजय-दुर्ग पर आक्रमण करेंगी । तद्युसार जञ्जीरा, सुवर्णदुर्गः और विजयदुर्ग वातकी वातमें उनके हाथ आ गये । पेशवाको सुवर्णेंदुर्गं और विजयदुर्ग मिला । वाणकोट दुर्ग और तत्सिमिहित १० माम भङ्गरेजो को मिले। इस समय वालाजो वाजीरावकी इच्छा हुई, कि मूसी बुसी नामक फरासी-सेनापतिकी अपने आश्रयमें एव मराडो-सेनाको अङ्गरेजी ढंग पर युद्धविद्या सिखाचें। किन्तु वूसी जिन सव शर्ती पर यह काम करनेको राजी हुए, वह वालांजीको पसन्द न आई। अतः उन्हें इस सङ्कल्पका त्याग करना पड़ा।

१७५७ ई०की १छी जनवरीको वालाजीरावने भाव-साहव और ६० हजार सेनाको साथ छे दक्षिण दिग्विजय के छिये याता कर दी। मुरारराव घोरपड़ ने छह हजार सेना छे कर उनका साथ दिया। मार्च मासमें वे श्रीरङ्गपत्तन पहुंचे और वहांके अधिपतिके प्रधान मन्तीको वाकी खजाना खुकानेके छिये कहा। छपयेकी तायदाद छे कर भी गड़बड़ी उठी थी। अतपव युद्ध अनिवाय हो गया। पेशवा श्रीरंगपत्तनमें घेरा डाल कर १७ दिन तक उस पर गोली वरसाते रहे। एक दिन एक गोली नगरके मध्यस्थित श्रीरङ्गदेवके मन्दिरशिखर पर जा गिरी। ठीक इसी समय वालाजीके तोपखानेकी एक तोप कर गई जिससे कितने ग़ीलन्दाज मारे गये। इस घटनामें दोनों पक्षने दैवप्रतिक्त समक्ष कर सन्धिकी

वात छेड़ी। पेशघा ३२ छाख रुपये हे कर अवरोध उटा लेनेको राजी हुए । इनमेंसे तन्द्राजने ५ लाख रुपये नगद् और वाकी रुपये जब तक बस्ल न हो जांय, तव तकको लिये चौद्ह परगने दिये । इन चौद्ह परगनीका कर वस्त्र करनेके लिये पेशवाने अपनी ओरसे कर्मचारी नियुक्त किया और शान्तिरक्षाके लिये उन्हें वहां छह हजार सेना रखनी पड़ी। इसके वाद उन्होंने शिरे नामक प्रदेश पर धावा बोल दिया। शिरे, होसकोट, कोलर, वालापुर और वङ्गलूर आदि पांच पराने छतपति शिवाजीकी चेष्टासे मराहों के इस्तगत हुए थे। सुतरां उन सव प्रदेशों को पुनः स्वराज्य-भुक्त करनेकी वासना वालाजीके हृद्यमें आप ही आप उदित हुई । तदनुसार उन्हों ने उक्त पांच परगनों -मेंसे अधिकांश स्थान पर अधिकार जमा ही लिया। वालाजीने शिरे परगतेके नवाव (कर्णाटकमें जिन्हें सामान्य भूसम्पत्ति थी, वे भी अपनेको नवाव कहा करते थे) मोर फेंजुलाको सामान्य जागीर शिरे नगर दे कर दुर्गादि-के साथ सभी परगने महाराष्ट्र-राज्यभुक कर लिये।

इसके वाद वर्षाकाल जब समीप आया, तब बालाजी-ने वलवन्तराव गणपत और मेहेन्दले नामक किसी ब्राह्मण सरदारको वहां छावनी डाल कर रहनेका हुकुम दिया और आप पूना लीटे। यह देख कर उस अञ्चलके कड़ापा नामक स्थानके नवादने कण्ह, सावतुर आदि स्थानोंके परान नवावींको तथा मुरारराव घोरपड्, मन्द्राज-की अङ्गरेजी-सेना और चित्तलदुर्गके जमींदारको साथ हे वहवन्तराव पर हठात् आक्रमण कर दिया और उन्हें पराज़ित करनेका पड्यन्त रचा। किन्तु पड्यन्तर्मे जिन्होंने साथ दिया था, उनमेंसे कोई भी कार्यक्षेत्रमें न उतरे। सुतर्रा वलवन्त रावके साथ युद्धमें कड़ापाके नवाव मारे गये और होसकोट, फडापा आदि स्थान मराठोंके हाथ लगे। वर्षाकालमें ही यह युद्ध हुआ था। आक ट-के नवावसे भी वलवन्त रावने धा० लाख रुपये कर-ख प बस्ल किये। इनमेंसे दो लाख नगद और ढाई लाख रुपये आयका राज्यांश पेशवाको मिला।

वर्णकालमें पेशवाकी सेनाको दूसरी ओर युद्धमें लिस देख हैदरअलीको सलाहसे श्रीरंगपत्तनके नन्दराजने मेराठोंकी सन्धि तोड़ दी और कुछ समय पहले जो छंहें १४ परगर्ने मिले थे, उन्हें वहांसे मार भगाया तथा अपना आधिपत्य फिरसें जमाया। परन्तुं इसे समय सिलावतजङ्गका राज्यविष्ठव उपिएयत हो जानेसे बले बन्तराव नन्दरावको उनके औद्धत्यका प्रतिफल न दे सके। सिंध ससन्य पेशवाकी सहायतामें चल दिये। इस समय विद्नुरप्रदेशमें अधिकार स्थापन भी वालाजी और मेहेन्द्लेका प्रधान उद्देश्य थां। निजामके साथ विश्वह खड़ा हो जानेसे वह सिद्ध नहीं हुआ। इसे समय नन्दर्भकों दिख्त और विद्नुर प्रदेशकों हस्तगते कर सकनेसे दाक्षिणात्यमें हैदरअलीका अभ्युद्ध होता वा नहीं, सन्दे ह है।

१७५७ ई०के अगस्त मासमें संलोबतजंड के भाई वुंसलतजंड और निजाम अलीन प्रधान मन्ती शाह नैवाज
काकी सहायतासे संलोबतजंड को पर्च युत और फरासियोंको निजाम राज्यसे विताड़ित करनेका भयंड पड़यन्त रचा। इस राष्ट्रविद्धवकी सचना देख कर बालाजीने अपने सैन्यसामन्तीको विदेशसे स्वदेश लीट कर
महाराष्ट्रीय स्वाधेरक्षाके लिये तत्पर होने कहा। अतः
बलवन्तराव मेहेन्दलेको कर्णाटप्रदेशका त्यांग कर स्वदेश
जाना पड़ा। इस पड़यन्तसे विद्धवकारियोंको उद्देश
जाना पड़ा। इस पड़यन्तसे विद्धवकारियोंको उद्देश
सिद्ध नहीं हुआ। शाह नवाज मारे गये और वुसलतजड़ प्रधान मन्तीके पद पर प्रतिष्ठित हुए। फरासियोंको
प्रभाव बढ़ चढ़ गया। अप्रेजीन इस सुअवसर्ग वलपूर्वक सूरतको दखल करनेकी चेंद्या को और वालाजी
वाजीरावने निजामअलीके उपदेशानुसार युद्ध करके
वाविक रक्ष लाख रुपये आयका राज्यांश प्राप्त किया।

१७५६ ई०के प्रारम्भमें वालाजीने गोपालराव गोविन्द्पटबद न और आनन्द्राव रास्तेको अर्धानतामें एक दल सेना कर्णाट देश भेजी। पेशवीक सरदारीने कर्णाट-प्रवेश करते ही नन्द्राजकी पूर्वद्त्त १४ परेगनी पर अपना आधिपत्य स्थापन किया। गोपालरावने जैना-पट्टन जीत कर जब बङ्गलूरमें घेरा डाला, तब हैंद्रश्रेली उनके विरुद्ध डट गये। वे एक ऐसे स्थानमें रह कर गुद्ध करने लगे, कि जहाँ महाराष्ट्र अध्वारोही अपना विक्रम बिलकुल दिखा न सके। इस यातामें गोपाल-

रेविके साथ उतेनी केमेंनि भी न थीं। इंधर ग्रंस और अंकिंसिक नैशं आंकिंमिणसम्बन्धमें हैदरबली वह सिद-हैंस्तें थें। तिंस पर भी गोपाळरांवे और ऑनेंस्टावेने तीन मासं तक नानां खेएडंग्रुइमि है दरअलोकी व्यति-ब्यस्त कर डाला और उनके अधिकृत कितने स्थान अपने वेंखल । कर लिये । हैदर्गमलीन उनका पीछा छोड़ा नहीं. अंध्यें वसीय के साथ बार वीर डीने पर ओक्रेमण करते हीं रहे। आंखिर लड़ीई करते करते दीनी देल उर्व गये और तेंबें सन्धि कर छीं। ईस सन्धिकी अंद्रेसीर थी-रङ्गेपत्तनके अवरोधकालिमें स्वीकृत इर लाख रुपयेक अविशिष्टं २७ लीखें तथा ५ लीखें हैंपेयें और हैं कर गोपीलराविने रुष्ठं परगिनी की अधिकार छोड़ दिया। इस प्रकार सन्धि हो जीनेसे बीलाजी कुछ असतुर हुए और गोपालराविक प्रति अकिमैण्यताका आरीप किया। इस सम्बन्धमें गोपालंखनिने बालाजीकी जो पत लिंबा था उसमें एक जंगेह कहा है, "यदि हम लोगे हैंक्की युद्धमें व्यति व्यस्ते नहीं करते, तो उनके जैसे व्यक्ति इंट लॉख रुपये नगदं (इनमेंसे १६ लॉख रुपये कीर्दने पंड़ थे) दें कर सिन्धं मील लेते, यह बंगा समाव थां ?" गोंपीलरावने वह यघार्थ कही थी वा नहीं, बॉलीजीकी पींछे मालूमें हुंआं।

इसके वाद स्थानीय राजांशों के युद्धविमहादिमें महा-राष्ट्रीय सेनाने सुविधानुसार किसी एक पहका श्रव-लावन करके उस प्रदेशको कितिपय स्थान देवल कर लिये थे और प्रचेर धन भी उनके हाँथ लगे गया था। किनु इस समय उत्तरमारतमें पानीपतकी लड़ाईमें उन लोगों का जो भाग्यविपयय हुआ, उससे तीन चार वर्ष तक कंणरिकी और दृष्टि पात करनेका उन्हें अवसर नहीं मिला। इसी बीच वालाजी बाजीरावका जीवन भी शेष ही चला था।

पानीपतकी चढ़ाईक कुछ पहिले निजामक सीथ एक बार विचाद खड़ा हुआ था। अहमदनगर-हुंगे ऑन्ट्रॉके अन्तर्गत होने पर भी निजामक अधिकारमें था। विसाजी कृष्ण नामक वालाजीक किसी सेनीपितिने वहाँके हुंगे-रक्षककी रिश्चित वे कर हुंगे पर अधिकार कर लिया (१७वीं अकित्वर १७५६ ई०में)। इस कारण सेला वत्जङ्गने युद्धको घोषणा करके पेशवाके विरुद्ध याता की। इसी समय भावसाहवं पानीपतके लिये सेनादल सजा कर उत्तर-मारतको जा रहे थे। मिश्ररा नदीके किनारे उद्यंगिरि नामकै स्थानमें दोनों पंक्षमें मुटमेंड हो गई। इस युद्धमें मरीडो ने विजयपतीका फहराई। निजामपक्षके ३ हजार आदमी मराठी के हाथसे यमपुर सिंघार गये। दंश हाथी और 8 तोप मराठों के हाथ लंगी। उनकी भी वहुतसी सेना इस युद्धमें मारी गई थीं। अंत्र निजामें बर्जीनें संन्धिका प्रस्ताव करके मेजा। बालांजीराव, रघुनांथराव आदिके इस युद्धमें उपस्थित रहने पर भी सेनापतित्व भावसाहवके ही हाथ था। उन्हों ने सन्धिका प्रस्ताव अप्राह्म करके निजामकी समूल ध्वस करनेकी इच्छा प्रकट की। अव सला-वृतंत्रं और निजाम अंहोने अपने संस्पूर्ण आत्मसमर्पण-के चिन्हेंसक्तंप संराज्यकी राजमुद्री (Seal of State) इनके निकट भेज दीं। निजामको नितान्त शरणांगत जीन कर मॉर्वेसाइंदेने संन्धिकी प्रस्तीव प्राह्म कर लिया । दौलतावाद, असीरगढ़ि, शिवनेरी, वीर्जीपुर, बुंहरनपुर, र्सीलहर और मीलहर ये छंहे दुगै तथा वीजापुर, विदर और और दें विदेशिसे कुछ वीपिक ६२ छोसिसे अधिक ठेपेये ऑयका राज्याश संन्धिक मूल्यस्वेद्धेप दान केर निजाम स्विदेशकी चेल दिये।

शर्बुराज्य पर बाकमण करनेंसे जो सब प्रदेश हाथ लगतें थें, उनमेंसे अधिकार्श संस्वारोंको सैन्यरकाके लिये जागीरस्वकाप मिलता था। इस बार भी ६२ लाख ३६ हजार कंपये आयके राज्यशिमेंसे प्रायः ४१ लाख कंपयेका प्रदेश संस्वार तथा कमचारियोंको सैन्यपीवणके लिये मिला था। वालाजीके पुत्र माधवराव और उनके भंतींजे मावसाहव आदि आतमाय लोगोंने ही इस वार अधिकार जागीर पाई थी। इस समय निजामराज्य की परिमाण इतना घंटे गया, कि थोड़े ही विनोंके अन्दर समस्त वाक्षिणात्य मराजीके ही हाथ आ जाता। परन्तु पानिपितकी लेड़ाईमें इन लोगोंको जैसा धका पहुंचा, कि

वीलाजीके शासनकालमें दक्षिण तुङ्गमद्रानदी पर्यन्त जिस प्रकीर महाराष्ट्रराज्य फैल गया थी, उत्तरमें भी उसी प्रकार अटकनदीके उस पार तक उन्होंने अपनी सोमा बढ़ा छी थी। दक्षिणभारतमें जिस प्रकार स्वयं बालाजी और मावसाहव मुसलमान-शासनका मूलो-च्छेद करनेमें प्रयासी हुए थे, उत्तरभारतमें भी उसी प्रकार रघुनाथराव और सिन्दे होलकर आदि सरदारगण मुसलमानोंके भीतिप्रद हो उठे थे। दिल्लीके वादशाह उन लोगोंके विलक्षल करायत्त हो गये थे। मुसलमानों ने अपनी क्षमताका हास होते देख अहम्दरशाह अवदलीकी सहायतासे पुनः भारतवर्ष पर मुगल वादशाहो स्थापन करनेके लिये प्राणपणसे कोशिश को। उसोके फलसे प्रसिद्ध पानीपतकी लड़ाई लड़ी थी।

१७३६ ई॰के प्रारम्भमें नादिरशाहने भारतवर्ष पर चढ़ाई करके दिख्लोको उजाड़ डाला था, यह पहले हो कहा जा चुंका है। वे स्वदेश छौट कर थोड़े ही दिनो के बाद गुप्तघातकके हाथसे मारे गये। पीछे उनके अन्यतम सरदार अवदिली इराणंके सिहासन पर वैठे। १७८४ ई॰के प्रारम्भमें अंददली मूलतान और लाहोर पर दखल कर सरहिन्द तंक अवसर हुए। वहां मुगल सेना-से पराजित हो दुम दवा कर भागे । इस पर भो उनकी सर्वेनाशकर शक्तिका परिचय पा कर दिल्लीके उमराव भयभीत हो गये थे। दिल्लीके दरवारकी अवस्था इस समय जैसी शोचनीय हो रही थी, कि अवद्लोने जव दूसरी वार भारतमें प्रवेश किया, तव उन्हें रोकनेका वाद-शाहो सेनाको साहस नहीं हुंआ। इस समय रोहिंछो का दमन भी विशेष आवश्यक था। इसं कारण अवदली और रोहिलो का दमन करनेके लिये दिल्ली-दरवारने महाराण्डो -से सहायता लेना जरूरो समभा। तद्नुसार १७५७ ई०में दिल्लीके वादशाह अहमदशाहने वजीर सफदरजङ्गकी सलाह है कर वालाजी वाजीरावको नाम पर सिन्दे और होळकरकी मध्यस्थामें 'अहदनामा' वा फरमान दिया । इस फरमानसे अवदाली रोहिला और सिन्धुप्रदेशके अमीरोंको दमन करने तथा राजपूताना और दिल्लीप्रदेशकी हान्ति-रक्षाके छिये वालाजी वाजीराव वाध्य हुए। इस कार्य-के लिये वादशाहने उन्हें लाहोर,मूलतान, रोहिलखएड और सिन्धु-राजपूताना इन चार प्रदेशोंका चौथ वसूल करनेका अधिकार दिया। इस सन्धिपत्रको प्रतिश्रुति-

रक्षाके लिये रोहिलों तथा अवदालीके साथ पेशवाको युद्ध करना पड़ा। इस सनद-पत्तसे उन्होंने चौथ वस्ल करने-का जो अधिकार पाया था, उसकी रक्षा करनेके लिये अवाध्य राजपूर्तीके साथ पुनः पुनः युद्ध करना पड़ा था।

१७५१ ई०में सिन्दे और होलकरने जो रोहिलखएड पर आक्रमण किया था, सो केवल लूटनेकी इच्छासे नहीं, बरन् पूर्वोक्त सन्धिकी शर्चका पालन करना ही प्रधान कारण था । वे छोग जव रोहिछा-समरमें नियुक्त थे उस समय अवदाछी दूसरी वार भारतवर्षं आ धमके। किन्तु सिन्दे-होळकरको छे कर यजीर उन्हें रोकने जा ही रहे थे, कि वादशाहने उसके पहले हो पञ्जावका अधिकार दे कर उन्हें विदा कर दिया था। १७५२ ई०में उन दोनों प्रदेशोंका अवदालीके हाथसे उद्धार करना मराठोंका प्रधान ,कर्त्तव्य था । किन्तु इस बार वे पञ्जाव पर दखल न कर सके। पीछे रघुनाथराव उत्तर-भारत जा कर पूर्वोक्त सनद-पतके वळसे राज-पुताना, कुम्मेरी, नागोर, दिल्ली आदि प्रदेशों में अपना आधिपत्य जमाने लगे । इसी समय वर्षाऋतुका आग-मन हुआ । अतएव वे इस समय देश छोट गये और पुनः अगस्त मासमें पूना आपे । दूसरे वर्ष जन-वरीसे छे कर जून तक सावनूरके अवरोधकार्यमें सहा-धता दे कर वर्षाकालका अवसान होते ही गुजरातके कतिपय मुसलमान सरदारोंने विश्वव बड़ा कर दिया था। उन लोगोंका दमन करके रघुनाथराव मालवदेश गये। इस समय अववालीकी आगमनवार्चा उनके कर्णगोचर हुई, जिससे वे उनका मुकावला करनेके लिये वालाजीकी अनुमति ले कर वड़ी तेजीसे दिल्लीकी ओर चल दिये। इघर वालाजी स्वयं श्रीरङ्गपत्तनको रवाना हुए।

१७५७के फरवरी मासमें रघुनाथरावने मल्हारराव होलकरके साथ अवदालीके विरुद्ध याता की। जाते समय उन्होंने वालाजीको पत लिखा, कि चे उनकी सहायतामें सिन्देको अति शोध भेज देवें। उस समय सलावतजङ्गके विरुद्ध दाक्षिणात्यमें जो षड़यन्त चल रहा था, उसी लिये दत्ताजी सिन्दे ससैन्य पेशवाके निकट उपस्थित थे। यह पत पा कर वालाजीने उन्हें रघुनाथरावकी सहायता-में भेजा। रघुनाथरावके साथ इस समय यद्यपि छह हजार सेनासे अधिक न थी तो भी अवदालीको आगमनवास् छुनते हो वे दिल्लीको दौड़ पड़ें।

वूसरो यालामें पञ्जावके जो सव प्रदेश अवदालीके हाथ छगे थे, नपे वजीर मीर शाह-बुद्दीन गाजीने पुनः उन पर द्खल जमाया। पीछे उन्होंने अपनेको निष्कएटक समफ कर अन्ताजी मणिकेश्वर नामक पेशवाके किसी एक ब्राह्मणकी दिल्लीको शान्तिरक्षाका भार सौंप दिया और आप आमोद-प्रमोद्में अपना समय विताने लगे। नाजीव खाँ नामक गाजीके अधीनस्थ और उन्होंके दुकड़ोंसे पले हुए एक रोहिळासरदारने प्रभुका सर्वनाश करनेके ळिये इस पंड्-यन्त्रमें साथ दिया। मुगलोंकी प्राचीन राजधानी दिल्ली जो महाराब्द्रीय सरदारके रक्षणाधीन थी, इसमें वहुतेरे अमीरोंने अपना अपमान समका, किन्तु गाजीको परच्युत किये विना दिल्लीसे मराठोंकी प्रवेलता कभी भी तिरोहित नहीं हो सकती। यह सीच कर उन्होंने अंबदालीको हिन्दुः रसकके हाथसे मुगलराजधानी दिल्लीके उदारसाधकके लिये आमन्त्रण किया । नजीव काँ और शाहजादी मलका-जमानी इस षड्यन्त्रके मूल नायक थे।

पञ्जाव हाथसे निकल गया था, इस कारण यह निम न्त्रणपत पानेके पहले ही अवदालीने भारतवर्ष पर साम-मण करनेका सङ्कल्प किया था। अव उन्हें और भी अच्छा मौका हाथ लगा। काफो सेना संप्रह कर उन्होंने १७५६ ई०के शेषमें खेवरघाटीमें पाले पड़नेके पहले कन्धार छोडा । उनके सरहिन्द पहुंचने पर शाहबुद्दीन गाजी होश में आये। उन्होंने जहां तक हो सका, वहुत जब्द कित-पय सेना इकट्टी कर नजीवखाँको अवदालीके विरुद्ध मेजा। अवदलीकी सेना ज्यों हो दिस्लीमें घुसो, त्यों ही नजीव प्रकाश्यभावमें शतुके साथ मिल गये। नजीवकी इस विश्वासघातकतासे गाजो और दिल्लोके वादशाह इराणी वादशाहके हाथसे बन्दी हुए और दिल्लीमें अफगानी सेना-के पैशाचिक ताएडवसे रकको घारा वह चली। अन्ताजी मणिकेश्वर अपनी सेनाके साथ जान हे कर भागे। दिल्लीको मलीमांति लूट कर तथा वहुसंख्यक अधिवासि-योंकी हत्या कर अवदाली मार्च मासमें मथुराको चल दिये । उस समय वहां पर्वोपलक्षमें (शायद होलीमें) नाना देशके हिंदू जुटे हुए थे। निर्मोही सफगानी सेनाके खब्गाघातसे बहुसंख्यक ब्राह्मण, साधु, सन्यासी, वालक और रमणी छिन्नशोर्ष हुईं! रमणियोंके प्रति पाशव अत्याचार और गोरकसे हिन्दूदेवियोंको स्नान करानेसे भो वाज नहीं आये। इधर उत्तर-भारतमें निदाधके प्रकोपको वृद्धि होनेसे बहुसंख्यक अफगानोसेना उसके शिकार वन गईं! इस कारण वे तैमुरशाहको पञ्जावमें रख कर वड़ो फुर्त्तोंसे स्वदेश वापिस गये। यह घटना १७५७ ई०में घटी थी।

इधर जुलाई मासके प्रारम्भमें रघुनाथराव दिल्लीके उपकएड भाग पर ससैन्य उपस्थित हुए । इसी वीचमें अपरापर सरदारोंने भो उनका साथ दिया जिससे उनकी सैन्यसंख्या पहलेसे कहीं वढ़ गई। उनका एक पत पढ़ने से मालूम होता है, कि जब वे दिल्ली पहुंचे तब अवदाली के खदेश जानेकी खबर सुन कर वड़े विपण्ण हुए थे। महाराष्ट्रीय लेखकोंका कहना है, कि रघुनाथरावके दलवल साथ आनेकी खबर सुनते ही अवदाली जान ले कर देश भागे थे।

गाजो और वादशाह आलम्गीरने अवदालीको शरण ली थी, इस कारण उन्होंने उन दोनोंकी पद्च्युत नहीं किया था। पर वे नजीव खाँको दिल्लोभ्बरका सैन्यापत्य प्रदान कर गये थे। अतएव दिल्लीमें नजीरके प्रभुत्वकी सीमा न रही। पेशवाके प्रतिनिधि अन्ताजी मणि-केश्वर भो दिल्लीमें पुनरागमन न कर सके। इस कारण रघुनाथने गाजीको जो नजीवसे विगडे हुए थे, साथ ले दिल्ली पर धावा वोल दिया। १५ दिन तक किसी भी तरह शहरकी गक्षा करके आखिर नजीव खाँने उनकी शरण ली । रघुनाथने नजीवको विश्वासघाती जान कर उनकी शक्ति खर्व करनेके लिये उनके दोआवस्थित जागीर (यह जागीर गाजीकी क्रपासे ही नजीवको मिली थी) जन्त करनेका संकल्प किया था। किंतु मल्हारके विशेष अनुनय विनय करने पर वे उन्हें विना किसी दएड-के छोड़ देनेको वाध्य हुए। मलहाररावकी सेनासे रक्षित हो नजीव अक्षत शरीरसे रोहिलखएडके अन्तर्गत शक-ताल नगर पहुंच सके थे। इतना ही कहना काफी है. कि मल्हाररावने इसके लिये नजीवसे मोटी रकम रिश-वतमें पाई थी। इस कपटाचारी नजीवके लिये ही पानीपतमें मराठोंका सर्वनाश हुआ था।

इसके वाद रघुनाथरावने दिल्ली शहर और दुर्ग-अघि-कार तथा वादशाहको अपने हाथसे पुनरभिंपिक कर अन्ताजी मणिकेश्वरको फिरसे वहांका शांतिरक्षक नियुक्त किया। इसके वाद उनका ध्यान दिल्लीप्रदेश और रोहिळखएडके वन्दोवस्तकी ओर आकृष्ट हुआ। अवदालीके अनुप्रहसे 'वे सव प्रदेश अफगान द्वारा विध्वस्त हो 'वे-चिराग' (दोपशून्य) हो गये थे । इस पर तथा मथुराको दुरवस्था पर अवदालीके प्रति उनका विशेष क्रोध था। १७५८ ई०के प्रारम्भमें उन्होंने लाहोरके लिये प्रस्थान किया। लाहोर प्रभृति प्रदेश उस समय अवदालीके पुत्र तैमुरशाहके शासनाधीन थे। रघुनाथकी आगमनवार्त्ता सुनते ही वे ससैन्य कन्धारको भाग गये। रघुनाथने लाहोर पर अधिकार कर लक्त्मोनारायण नामक उस देशके एक कार्यदक्ष कायस्य कर्मचारीके हाथ वहांका शासन-भार सौंपा और आप उत्तरदिशाको चल दिये। इसके वाद वे भीमवेगसे मूलतान और पञ्जावके अपरापर अंशोंको आक्रमण, छुएठन और अधिकार करते हुए भारतकी उत्तरी सोमा अटकनगरमें पहुंचे। यहां महाराष्ट्रीय विजयचिद्रस्वरूप उनकी जातीय गैरिक पताका फहराई गई और कृष्णा-तीरजात दाक्षिणात्य अश्व अटक-में सिन्धुनदोके जलमें अवगाहन और उसका जल पी कर परितृप्त हुए। इस घटनाका महाराष्ट्रीय लेखकोंने वड़े ही गौरवसे वर्णन किया है।

इसी स्थान पर मराठोंकी विभवीकृति चरमसीमा-को पहुंची थी। महाराज शाहुने वालाजी वाजीरावकी पेशवा-पद पर अधिष्ठित करते समय जिस कार्यसिद्धिके लिये उनसे अनुरोध किया था, उसे आज वालाजीने कर दिखाया। किन्तु पेशवाओंकी उद्य आकांक्षाका यहां पर शेष भी हुआ। सारे भारतवर्षसे मुसलमानी शासन-की जड़ काटना और वहां हिन्दूराज्य स्थापन करना ही बालाजीके जीवनका प्रधान लक्ष्य था। रघुनाथरावकी आकांक्षा इससे भी कहीं वढ़ कर थी। कन्धारमें प्रवेश कर उन्होंने अवदालीका दर्प चूण करनेके उद्देश्यसे ,वालाजीको जो पत लिखा था, वह इस प्रकार है,—

"अकवर वादशाहकी अधीनतामें जो सव प्रदेश थे, पेशवाओंकी अधीनतामें वे सव प्रदेश क्यों न रहें ने ?" पेसा विश्वास किया जाता है, कि काबुंछ कन्धारों भी महाराष्ट्र-आधिपत्य जमाना उनका उद्देश्य था । माव-साहवकी उच्च आकांक्षा पर सवोंको विस्मित होना पड़ा। उनका यहां तक ख्याल था, कि समुद्रवलयाङ्किता भारत-भूमि पार कर 'कनष्टान्टिनोपलमें' महाराष्ट्र-विजयकेतु यदि फहराया जाय, तो मराठो का गौरव है।

जो कुछ हो, एक मास तक अरकमें रह कर रघुनाथराव और मल्हारराव होलकर लाहोर लौटे। इधर
वर्षाकाल नजदीक आ गया था, अतः उन्हें खदेश लौटना
जकरी आन पड़ा। लाहोर छोड़ते ही अन्दाली पुनः
आविभू त होंगे, यह उन्हें अच्छी तरह माल्म था।
किन्तु वर्षाकालमें विदेशमें रहना भी अच्छा नहीं, यह
समक्त कर उन्होंने सीमान्तरक्षाका भार कुछ सरदारों के
जपर सौंपा और आप दाक्षिणात्यको चल दिये। राहमें
दत्ताजो सिन्देसे मुलाकात होने पर रघुनाथने उन्हें नजीव
खाँका दर्पचूर्ण करनेका हुकुम दिया। पीछे वे कूच करते
हुए पूना पहुंचे (१७५८ ई० अक्तूवर मास)।

इस समय भारतवर्षमें तमाम पेशवाओं की तूती बोल रही थी। महिसुर, हैदरावाद, मारवाड़ और दिल्ली आदि अञ्चलो'में उनका प्रभुत्व था । पञ्जाव, अजमीर, मालव, महाराष्ट्र, गुजरात और कर्णाट अञ्चलमें उनकी जड़ मजबूत हो गई थी । राजपूताना और अयोध्या आदि प्रदेशों से उन्हें चौथ निर्विघ्न मिलता जाता था। निजाम, महिसुरके नवाव आदि प्रवलशक्ति पेशवाके प्रतापसे शिर भुका कर उन्हें कर दिया करती थीं। पेशवाओं ने दिल्लीके सिंहासन पर अपने मनानीत व्यक्ति-को वादशाई वना कर उन्हें अपने हाथका खिलीना वना लिया था। भारतवर्षमें अव उनके एक भी शतु रह न गया महाराष्ट्र-राज्यमें जहां देखो वहीं शान्तिका राज्य था। इन सव लड़ाइयोंमें लिस रहने पर भी पेशवाओंने खदेशकी आस्यन्तरिक उन्नतिमें विशेष ध्यान दिया था। वालाजी-के समय और उन्होंकी विशेष वेष्टासे देश भरमें आर्थ-विद्याका बहुल प्रचार हो गया था। उन्हों ने वेद्, स्पृति, द्रशैनशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध शास्त्रीः-में सुपिएडत ब्राह्मणों की प्रतिवर्ष परीक्षा छे कर उन्हें मृत्ति देनेकी व्यवस्था कर दी थी। इस कार्यमें वे कमी कभी वार्षिक १८ लाख रुपये खर्च कर डालते थे। कारी, रामेश्वर, मिथिला आदि दूर देशों से भी वहुसंख्या ब्राह्मण प्रतिवर्षे परीक्षा दे कर दक्षिणा लेनेके लिपे पूना आते थे। दक्षिणाके लिये आये हुए ब्राह्मणों की परीक्षा छेने और दक्षिणा देनेके छिपे पूनामें एक खतंत्र आवास-मएडप बनाया गया था। पुरस्कारके लोभसे देशको ब्राह्मण सन्तानों की शास्त्र पढ़नेकी और विशेष प्रवृत्ति हो गई थी। देशिषदेशसे प्राचीन संस्कृत प्रधादि संग्रह कर उन्हें पूनाके राजकीय पुस्तकालयमें रखनेका अच्छा बन्दोवस्त था। कवि, शिल्पी, चितकर और गीतविद्याविशारद ध्यक्तिगण भी राजद्रवारमें पडे रहते थे। देशीय ऋषक और वणिक श्रेणीकी उन्नतिकी और भी बालाजीका विशेष लक्ष्य था। इन यह विश्वीहा विस्तृत विवर्ण महागाष्ट्र शब्दर्ने- टेखो । इस समय जिस प्रकार शान्ति विराजती थी, उसी प्रकार यदि कुछ दिन और अक्षुण्ण भावमें रह जाती, तो देशके अन्तर्वाणिज्य और वहिवाणिज्यके विस्तारमें तथा कळाविद्याके विशिष्ट संस्कारमें पेशवागण विशेष ध्यान दे सकते थे।

किन्तु नाना कारणोंसे पेसा नहीं हुआ। एकबारणों अनेक राज्योंके उनके करतल आ जानेसे शहुकी क्षमता हीन तो हो गई, पर उनकी संख्या घटी नहीं, बढ़ती हो गई। अलावा इसके सरदारोंके कार्यकलापके प्रति तीक्ष्ण दृष्टि नहीं रखनेसे तथा उन लोगोंके मनमें पापः बुद्धिका उद्य हो जानेसे मृहाराष्ट्र राज्यकी अवनित होने लगी। गृहविवाद और आत्मीयगणका मनोमालित्य भी उनके शक्तिहासका एक प्रधान कारण हुआ। पानीः पतकी लड़ाई होनेके पहलेसे जिस प्रकार उन सह अनिष्कर उपादानोंका सञ्चय होता था और वे उपादान जिस प्रकार पानीपतकी लड़ाईमें पेशवाओंके वैभवनाश- के कारण हुए, सो नीचे देते हैं।

रघुनाथरावके दाक्षिणात्य छोटने पर दत्ताजी सिन्दें नजीव खाँके विनाशके लिये दौड़ पड़े। पेशवाने दत्ता जी पर और भी कई कार्य सौंये थे। जनमेंसे (१) लाहोरका बन्दोवस्त करनेके वाद वहांसे राजस्व संप्रह कर मेजना, (२) सुजा-उद्दोलाको वशोभूत कर वारा-णसी, प्रयाग, अयोध्या और गया दन चार प्रधान तार्थ-

مثملان الإرادور المستقسسة الاردود

क्षेत्रोंका अधिकारप्रहण, यही दो यहां पर उल्लेखयोग्य हैं। लाहोरका वन्दोबस्त करके दत्ताजीने नजीवके विरुद्ध याता की। इसी समय मलहारराव होलकरने उनसे मिल कर कुछ दूसरो ही सलाह दो । उन्होंने इत्ताजीकों समभा कर कहा, "सारे भारतवर्षमें घूर्त नजीवके सिवा अभी पेखवाकी और कोई शतु नहीं है। उस नजीवका यदि आज नाश किया जायगा, तो फिर पेशवा हम लोगों का पहलेके जैसा सम्मान नहीं करेंगे। पेशवा निष्कएटक होनेसे सामान्य दूत भेज कर अटकसे अना-यास राजस्वादि वसुल कर सकोंगे और हम लोगींको 'शिव-निर्माल्यवत्' अनावश्यक समक कर अनादर करेंगे। भतपव नजीवकी रक्षा करको पेशवाको दमित करना हम लोगोंका कत्तव्य है। सुजा-उद्दीलाको बदलेमें नजीव-- को मिलता द्वारा वशीभूत करनेसे भी अयोध्या, काशी अादि प्रदेश हाथ लग सकते हैं।" मलहाररावके इस दुए उपदेश पर मुख्य हो सिन्दे उस समय बालाजीका आदेश उल्लुजन कर दिया । किन्तु थोडे ही दिनोंके मध्य उन्हें मालूम हो गया, कि नजीवकी रक्षा करना मानो सांपको दुध पिला कर पोसना था।

बाळाजी बाजीराव पेशवाक्रळमें असाधारण राज-ंनीति-विशारद थे। पेशवा-पद प्राप्तिके बादसे नाना · प्रकारके आत्म बिब्रहके दमनमें लिस रहने पर भी उन्होंने सारे भारतवर्ष पर पेशवाओंका अवितहत प्रभाव स्थापन कर लिया था। छतपति महातमा शिवाजी और उनके गुरु रामदास सामीके समयसे मराठींके इद्यमें जो हिंद्यत् बादशाही वा हिन्दूसाम्राज्य-स्थापनकी वासना वद्धमूल हुई थी, वह वालाजी वाजीरावके समयमें ही सफल हो जाती। परंतु पानोपतकी छड़ाईके पहले उनके सरदारोंने उत्तरभारतवर्षमं जो सव अभियान और युद्ध-वित्रह किये, उनमें प्रायः सभी जगह बाळाजीके उपदेशके विरुद्ध कार्थ किये गये थे, इसीसे वे इष्ट-फलसाधक नहीं हुए। सरदारोंमेंसे बहुतेरे खार्थे छुन्ध भीर पेशवाओं के भवाध्य हो गये थे । उन्हें शासन करनेकी शक्ति वालाजी-में न थी और उस समय सरदारोंका शासन विलक्कल सम्मवप्र भी नहीं था। सारे भारतवर्ष जीत कर सुशा-सिस रकना १८वीं शताब्दीमें भतीय दुष्कर कार्य था. उसके लिये बहुसंख्यक सेना रखनेकी आवश्यकता थी। यही जान कर बालाजीने काफी सेना रखी थी; किन्तु सरदारोंमेंसे बहुतेरे यथासमय राजस्व वस्तुल कर खयं इड्प कर जाते थे, पेशवाके प्रास कुछ भी नहीं मेजते थे जिससे पेशवा-सरकारको ऋणप्रस्त होना पड़ा था।

वालाजीका उपदेश अप्राह्म कर उनके सरदारींने जो भूल की थी, उसीके फलसे पानीपतमें उन लोगोंका सबे-नाश हुआ। बालाजीके लिखित अनेक पर्तीमें एकके साथ शतता और दूसरेके साथ मित्रता करनेका उपदेश दिया गया है, ऐसा देखनेमें भाता है। उन्होंने उत्तरभारतवर्षमें सर्वोके साथ एक ही वार शतुता करनेसे अपने सरदारोंको वार वार निषेध कर दिया था। किन्तु उनका उपदेश प्रतिपालित नहीं हुआ। अयोध्याके नवाव सुजा-उद्दौलाने दत्ताजीसे प्रस्ताव किया था, कि गाजी-उद्दीनको पदच्युत करके उन्हें यदि बजीरका पद मिले, तो वे मराठोंको नगद ५० लाख रुपये गिन देंगे। उसी प्रकार नजीवखाँ भी दिल्लीभ्यरका सेनापतित्व पाने पर ३० लाख रूपये देनेको राजी हुए थे। किन्तु वालाजीरावने इन दोनों प्रस्तावींमें-से किसीको मंजूर नहीं किया। क्योंकि, गाजीउद्दीन मराठोंके आश्रित थे; अतः विना दोषके उन्हें पद्च्युत करना उन्होंने अच्छा नहीं समभा। बिशेषतः सजाकी मन्तित्य प्रदान करनेसे वे अपने मित्र जाट लोगोंके साथ मिल कर मराठोंके विरुद्ध खड़े हो सकते हैं, यह सन्देह वालाजीके मनमें हो गया था। इसी कारण उन्होंने प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा, कि अयोध्या, काशी और प्रयाग ये तीनों हिन्दूके प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र गदि मुसलमानकवलसे छुड़ा सकें, तो वे सुजा-को वङ्गदेशका एकांश जीत कर देंगे। सुजाको इस प्रस्तावमें विशेष आपत्ति न थो'। वालाजीका प्रस्ताव कार्यमें परिणत होनेसे वह महाराष्ट्रशक्तिके पक्षमें मङ्गळ-कर द्वीता, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सिन्दे-होलकरकी बुद्धिके दोपसे ऐसा न होने पाया । उन्हों ने नजीवखाँके साथ मित्रता कर ही। सुतरां सुजाउद्दौहाके साथ संख्य स्थापित नहीं हुआ।

नजीवसाँका विनाश करनेके लिये वालाजीने वार बार सरदारोंको आदेशपत लिखा था। १७५६ ई०की

Vol. XIV, 105

५३नां मार्च और २री मईको उन्हों ने इस विषयमें द्त्ताजी और जनकोजी सिन्देको जो लिखा था, उसका कुछ अंश यों है,- "नजीवखाँको वष्टसीगिरि सैनापत्य देनेसे वह तीस लाख रुपये खुशीसे दे सकते हैं, पर याद रहे, वह पका विश्वासघातक और जुआचोर है। उसे वक्सीगिरि और अवदालीको दिल्ली देना एक ही वात है। नजीवकी सहा-यता करना दूध पिला कर सांप पोसनेके समान अनिष्टकर होगा। नजीवखाँको आधा अवदाली जान कर उससे अलग ही रहना, भूल कर भी मित्रता न करना।" पेशवा-का ऐसा स्पष्ट उपदेश और आदेश रहते हुए भी मल-हारराव होलकरको कुमंत्रणामें पड़ कर सिन्देने नजीवके विरुद्ध युद्धयाला नहीं की। अन्ताजी माणिकेश्वर, नारो-शङ्कर आदि वालाजीके अपर सरदारों ने यहां तक कि खयं जनकोजी सिन्द्रेने भी नजीवका दमन करनेका सङ्ख्य किया था। किंतु मलहारजी होलकर और दत्ताजो सिन्दे तथा गोविंद पंत बुन्दे ला भादि सरदारीं-को अवाध्यतासे वह कार्यमें परिणत होने न पाया। गोविद पंत वुन्दे लाके कहनेसे सिन्दे और होलकरने नजीवके साथ सिक्ता कर ही ली। विश्वासघातक नजीव भी अपनी ·मोठी मीठी वातों से उन्हें मोहित कर मराठों के न्पर्व-नाशका आयोजन करने लगा उसने सुजा भीर महाराष्ट्र-विद्वेषी योधपुरपित विजयसिंह छिपके मिछ कर फरका-वादके नवाव और दिव्लीश्वरकी सहायतासे अवद्लीको वुला भेजा। सिन्दे और होलकर इस पड्यन्तका कुछ भी पता न लगा सके। दूरदर्शी वालाजीका उपदेशभी उन . दोनोंने अत्राह्य किया । इसका फल सारी महाराष्ट्रजातिको भोगना पडा । खयं दत्ताजीको कुटिल नजीवके हाथसे उसके थोड़े ही दिनोंके बाद प्राणत्याग करने पड़े थे।

विशेष विवरण सिन्दे (सिन्दिया) शन्दमें देखो।
१७५६ ई०में वङ्गदेशको जीत कर उसका एकांश
सुजाको देने और उनसे अयोध्या, काशो तथा प्रयाग
प्रहण करनेका पेशवाका सङ्गरूप था। १७५७ ई०में
अवदली जब दिल्लीको मस्मसात् कर रहे थे, उसी समय
अङ्गदेजीन पलाशी-युद्धमें जयी हो भारत पर अपने
साम्राज्य स्थापनकी नीव डालो थो। इतना हो कहना
पूर्णात है, कि पेशवाका संकर्प यदि सिद्ध हो जाता, तो

भारतका इतिहास अन्य मूर्त्ति धारण करता । पेशवाने अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये पहले लाहोरप्रदेशका खुवन्दोवस्त कर सारी सेना दिल्लीमें इकट्टी करनेका सर-दारोंको हुकुम दिया था। उन्हें सुजाउदौलाके साथ वङ्गदेश पर चढ़ाई करनेके लिये कहा गया था। बङ्ग देश जीतनेके लिये रघुनाथराव भेजे जांयगे, यह भी स्थिर हुआ था, पर सामान्य लामके लिये नजीवके साथ मित्रता करके सिन्दे-होलकरने वालाजोको आशा पर पानो फेर दिया। उन लोगों की दुर्बु दिके फलसे लाहोरका बन्दोवस्त स्थायी नहीं हुआ, और न सुजा-उद्दीलाके साथ मितता हो हुई। 'भुजङ्गप्रकृति' नजीव-के चादुवाक्य पर मुग्ध हो वे निश्चिन्त हो रहे। इधर नजीवकी प्ररोचनासे समस्त उत्तर-भारतमें मुसलमान लोग मराठों के विरुद्ध इकट्टे होने लगे। अवदलीने भी विपुल सेनाके साथ आ कर भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया ।

इस प्रकार वालाजीका उपदेश लिख्न हो जानेसे तीसरी पानीपतकी लड़ाईका स्वपात हुआ। नजीवका पड़यन्व पूर्णावस्थाको प्राप्त होनेसे जब अवदली पञ्जाब-में घुसा, तव सिन्दे-होलकरकी आँखें खुलीं। उन्होंने अवदली पर आक्रमण करनेके लिये याता की। परन्तु उन्हें ही पराभव खोकार करना पड़ा। केवल यही नहीं, दलोके हाथसे वे अनेक सेना सामन्तों सहित मारे गये। यह संचाद १७६० ई०के जनवरीमासमें पूना पहुंचा।

यह संवाद पानेके दो सप्ताह पहले उदयगिरिके युद्धमें पेशवाने निजामको परास्त किया था। इसके बाद्
हैदरअलीके विरुद्ध युद्धयाता करना बालाजोका उद्देश्य
था। केवल यही नहीं, समस्त दाक्षिणात्यसे मुसलमानशासनका शेष चिह्न पर्यन्त चिलुप्त करनेकी इच्छा भी
उनके हृद्यमें बलवती थो। किंतु अबदलीके हाथसे
जब सिन्दे-होलकरकी पराजय-वार्चा सुनी, तब उन्हें
अपना संकल्प स्थागित रख कर उत्तर-भारतमें सेना
भेजनो पड़ी। इस सेनाका अधिनायकत्व किसे दिये
जांथ, इस चिषयमें बड़ी वाक्चितएडा हुई। रघुनाथरावके अभियानके फलसे राज्यकी आयवद्ध होनेकी वात

तो दूर रहे, ८० छाख रुपये और कर्ज हो गये थे। इस कारण इस वार सदाशिव भावको सेनापित बना कर अवदलीके विरुद्ध भेजा गया। विश्वासराच नामक बालाजोके बड़े छड़के भी उनके साथ थे। बहुनों के मतसे सदाशिवराव भावको सेनापित बनानेमें वालाजी की बड़ी भारी मूल हुई थी।

भावसाहवने अपनो वियुजवाहिनीके साथ दिल्लोकी ओर याला की । कुरुक्षेत्रके विस्मृत समरप्राङ्गणमें अह्यव्याह अवद्ली, नजीव खाँ रोहिला. सुजाउद्दौला, कुतवशाह, अहमद खाँ, दुन्दे खाँ आदि रोहिला, पठान् और दुराणी सरदारगण अपने अपने चतुरङ्गवलके साथ उतरे । १७६१ ई०की १४वीं जनवरीको दोनो पश्चमें घोर संप्राम आरम्भ हुआ । इस बार मराठोंकी पूरी हार हुई । ६स सुदका विस्तृत विवरण भाक (भाव) साहब शुन्दमें हुंखो ।

उत्तर-भारतमें श्रह्मपक्षकी प्रवलता देख कर वालाजी वाजीराव दलवलके साथ भावसाहवकी सहायतामें उत्तर-भारतकी चल दिये। नर्भदा पार होते ही उन्हों ने पानीपतकी पराभववार्ता सुनीं। जो व्यक्ति यह संवाद ले कर बाया था, वह एक शाहुकार (महाजन) का दूत था। पत संक्षेपमें इस प्रकार लिखा था, "पानीपतकी लड़ाईमें दो लाल स्वलित हुए, २७ मीहर खोई गई और हपये पैसे कितने नष्ट हुए उसकी शुमार नहीं।" इस संक तसे पेशवाने समका, कि भावसाहब सीर विश्वास-राव अपने २७ सेनापतियों के साथ मारे गये हैं और वहुतसो सेना विनष्ट हुई हैं। कुछ दिन बाद ही गुद्धक्षेत्रसे भागे हुए प्रराट उनके पास पहुंच गये। पानोपतमें उनका जो सर्वनाश हुआ था, उसका विस्तृत विवरण उनलीं जी जवानीसे सुना। अव वे हताशहदयसे पूना लाँटे।

पानीपतकी दुर्घटनासे प्रराठींकी असीम श्रति दुई। उनके प्रधान प्रधान सेनापति और लाखों सेना इस संप्रामानलमें मस्मीभूत दुई। महाराष्ट्रदेशके प्रायः सभी सरदारों और सम्प्रान्त जागीरदारोंने प्राण विसर्जन किये। वहुसंख्यक मराठा-परिवारींका अस्तित्व एकवारगी विलुप्त हो गया। महाराष्ट्रका एक परिवार भी इस घटनामें आत्मवियोगसे वचने न पाया। घर घर रोना पीटना पंड़ गया। वालाजी वाजीरावके वड़ लड़के विश्वासराव और

उनके मतीजे भावसाहव युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए थे। उनकी विशाल दिग्विजयो सैन्यइलका ऐसे शोच-नोय परिणामका विषय सुन कर वालाजीका कलेजा दूक टूक हो गया। भाव साहवके शोकसे और वियोगविधुर मसंख्य प्रजाका हाहाकार-रव सुननेसे वे उन्माद्यस्त हो, थोड़े ही दिनोंके मध्य (१७६१ ई०के शेप जून मास-में) इस घराधामको छोड़ सुरधामको सिधार गये। उनके जैसे दूरदर्शी नेताके अभावसे महाराष्ट्र-समाजका मेख्युड मानप्राय ही गया। पेशवाका अमित प्रताप यहीं पर खर्ब हुआ।

पेशवाई (फा॰ स्त्री॰) १ अगवानी, किसी माननीय पुरुषके आने पर कुछ दूर आगे चल कर उसका खागत करना।
२ पेशवाका पद या कार्य। ३ पेशवाओंकी शासन कला।
पेशवाज (फा॰ स्त्री॰) एक प्रकारका घाघरा जो वेश्वाएं
या नर्तेकियां नाचनेके समय पहनती हैं। इसका घेरा
कुछ अधिक होता है और इसमें अकसर जरदोजीका कार्य

पेशस् (सं क्वी) पिश-असुन् । १ रूप २ हिरण्य । पेशस्कार (सं वि) पेशो रूपान्तरं करोति क्व-अग्। स्वरूपका कोटमेद्, रूप वद्स्तने शका की झा।

पेशस्कारी (सं॰ स्रो॰) पेशस्कार-स्त्रियां ङीव्। रूपकर्ती, चेहरा वनानेवाली।

पेग्रहरूत (सं॰ पु॰) कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा।
यह कोड़ा जिस किसी कीड़े को पकड़ता है, यह अपना
रूप परित्याग करना है। इसलिए इस कीड़े का नाम
पेश्रहरूत हुआ है।

पेशा फा॰ पु॰) ध्यवसाय, उद्यम, यह कार्य जो मनुष्य नियमित रूपसे अपनी जीविका उपार्जित करनेके लिये करता हो।

पेशानी (फा॰ स्त्री॰) १ कपाल, ललाट, भाल, माथा । २ प्रारब्ध, भाग्य, किस्मत । ३ किसी पदार्थका अपरी और आगेका भाग ।

पैशाव (फा॰ पु॰) १ मूल, मृत। २ वीय, धातु। ३ सन्तान, औक्षाद।

क 'पेशना' शब्दकी बत्पत्तिके इतिहासकी आलोचना कानेसे माल्य होता है, कि ११५२ है जों अजाबहीनने ही सबसे पहले 'भन्त्री' अपाधिस्तरूप इस 'पेशना अवदका व्यव-हार किया है।

पेशावसाना (फा॰ पु॰) पेशाब करनेकी जगह।
पेशावर—पञ्जाबके लाटके अधीन एक जिला। यह
अक्षा॰ ३३ ं ४३ से ३४ ं ३२ ं उ॰ और देशां ७१ ं २२ से
७२ ं ४५ ं पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६३१
बर्गमील है। इसके उत्तर-पश्चिम और दक्षिणमें सफेदकोह तथा हिन्दुकुश पर्वतमाला, दक्षिण-पूर्वमें सिन्धु नदी
और पूर्वोत्तरमें खात और बोनका पर्वत है। उन पर्वतों
पर पटानबंशीय खाधीन जातिका वास है। जिलेके मध्य
हो कर कावुल और खात नदी बहती हैं।

स्वाभाविक सौन्दर्यसे पेशावर उपत्यका परिपूर्ण है। चारीं और बिस्तृत शैलंमालां मानी रङ्गभूमिकी सोपान-श्रेणीवत् सजी हुई है। दक्षिण-ओर खट्टक पर्वतमाला क्रमशः ३ हजार फुटसे हुई ७ हजार फुट ऊँची है और क्रमशः कावुल नदीकी उपत्यका-भूमि अतिक्रम कर सैवर-घाटी तक चली गई है। इस पर्नतश्रेणीके मध्य मुलाधर नामक श्रङ्कदेश ७०६० फुट ऊंचा है। काबुल नदीके उत्तरांशसे गिरिमाळाका विस्तार है। हिन्दुकुश और सिन्धुनदीकी मध्यवसी पर्वतमालाका नाम है स्नात। इन पर्वतावच्छित्र देशों में युसुफजे आदि पार्वतीय जाति-का वास है। होतिमर्दनके सन्निकटस्थ करमार शृङ्ग और पञ्चपीर पर्वत जनसाधारणके रहने योग्य है। कायुल, खात, कालापानी और वाड़ आदि कई एक स्रोतिखिनी उक्त पर्वती की घोती हुई सिन्धुनदीमें जा गिरी है। पर्वतों की प्राकृतिक अवस्थितिसे भूतस्विवतों ने विशेष क्षालीचना द्वारा निरूपण किया है कि 'पोष्ट टार्टियरी' युगप्रारम्भमें यह उपत्यकामूमि ह्रदसे परिपूर्ण थी। काल-के क्षयशील आक्रमणसे जव उनका रुद्ध जलनिगैमपथ **उन्युक्त हुआ, तब घीरे घीरे उस जलराशिने ढालु पथसे** प्रवाहित हो सिन्धुके कलेवरको बढ़ाया था। पेशावरकी वर्त्तमान गर्भगमीरता, वालुकासंयुक्त दलदलके मध्य विभिन्न श्रेणियोंके प्रस्तरादिके अवस्थान और अटक दुर्भके समीपवालीं नदीकी गीली जमीन हो कर बहनेसे ही प्रकृत घटनाका सन्धान मिळता है। पश्चिम और मध्यभागमें काबुछ तथा स्नात-नदी जहां बहती हैं वहां खेती वारी थच्छी होती है। दूसरी जगह जलकष्ट रहने पर भी सभी ऋतुओं में उत्कृष्ट और प्रचुर शरूव उत्पन्न

होता है। पर्वताच्छादित पश्चिम ओरको शोशा निराली
है। सुगभीर वनराजी, भीतिसंकुल गिरिसङ्कट और सुप्राचीन चूड़ाशोभित मसजिदें पर्वतिशिखर पर आसमानसे बातें करती हैं। सम्मुखमें शस्यश्यामल धान्य क्षेत्रादि
और पश्चाद्धागमें सुदूर देशस्थित तुवारावृत पर्वतच्युड़ा
रजताचलकी तरह अपूर्व शोभाशाली दिखाती है। असक
नगरके उत्तर काबुल और सिन्धुनदीमें सीना पाया जाता
है। चैत वैशाक और आध्विन कार्त्तिकमें मल्लाइ लोग
स्वर्णरेणुकी साफ कर बाहर निकालते हैं। सीनेके
अलावा यहां कड़्दर और बजीरमें लोहा, सुरमा आदि
सनिज पदार्थ पाये जाते हैं। मनेरीके समीप जरह
वर्णका एक प्रकारका ममेर पत्थर मिलता है जिसले
स्फटिककी माला और चूड़ो आदि सलङ्कार बनाये
जाते हैं।

युसुफत और इस्तनगरके समीपकतीं तथा अन्यान्व पार्वतीय जङ्गळों में शहतूत, शीशम, काऊ, ककीर, शाल आदि नाना प्रकारके मूल्यबान वृक्ष पाचे जाते हैं। उन सव जंगलों में हरिण, शूकर, चीता, लकड़वाधा, श्रगाल आदि खुंखार जानवरों तथा तरह तरहके पिक्षयों का बास है। स्थानीय अधिवासियों और नाना स्थानों के शिकारियों के उपद्वसे यहां की पशुसंख्या धीरे धीरे घटती जा रही है। सम्राट् अकवर यहां गैंड़ के शिकारमें आये थे। गग्रहार देखों।

आर्य हिन्दुओं के भारताधिष्ठानसे ही पेशावर उपत्यका-का इतिहास आरम्भ हुआ है। महाभारतादिमें इस स्थानको गान्धारराज्यके अन्तर्गत वतलाया है। चन्द्रः वंशीय गन्धार राजाओं ने पेशावर नगरमें ही राजधानी वसाई थी। पहले इसका नाम था परुषकस्थली और पुरुपपुर। मुसलमानी अमलवारीमें पेशावर नाम रखा गया है।

ई० ६डीं शताब्दीके पहले पेशावर-राज्य सैनकल-वंश-धरीके अधिकारभुक्त था । उक्त वंशोय राजाओंने पारंसी सेनाको परास्त कर भारतवर्षको शतुके आक्रमण और वैदेशिकको करवानसे वचाया था । ५वीं शताब्दीके पहले उन्होंने राजपूतवंशीय केदराजको #

क ये दरायुस के पिता विस्तान्वके समसामयिक थे।

पेशावर जीतनेसे विमुख किया था। बालेकसन्दर पुरुराजको परास्त करनेकी कामनासे जब इस प्रदेशमें उपस्थित हुए, तव यहांकी अधिवासियोंने उन्हें विशेष वाघा दी थी। युद्धफजै विभागके शेरगढ़के समीप सम्राट् अशोकका जो अनुशासन पाया गया है उससे इस प्रदेश-में उनके शासनविस्तारकी कट्यना की जाती है। १६५ ई०सन्के पहले बौद्ध त्रिताइनप्रसङ्घमे पुष्पमितका प्रभाव पेशावर तक फैला हुआ था। विकायाराज मिलिन्ड (Menander)-के समय सिन्धुके किनारे श्रीक लोगीं-का पुनरम्युद्य हुआ था। उनके वंशधर वीकात (Eucratides, 145 B. C.) ने पञ्जाव तक अपनी राज्य-सीमा फैलाई थी। पीछे शकराजाओंके अभ्युद्यकालमें **कोरासन, अफगान, पञ्जाद और सिन्धुप्रदेश तक** राज्य-रूपमें परिगणित हुआ । शकराजाओंको भाग्यलक्मी जव बिदा हो गई, तब यह स्थान अभी शताब्दी तक लाहोर और दिल्लीके हिन्दूराजाओंके अधीन रहा। मद्भदी, आबुरिहान अलेबेरणी आदि अरव-भौगोलिकोन १०वीं शताब्दीमें इस स्थानका पेशावर नाम रखा। १६वी शताब्दीमें सम्राद् वावरकी लिपिमालामें पर्शावर नाम पाया जाता है। सम्राट् अकवर जव पर्शावर शब्द-का कोई अर्थ न निकाल सके, तब उन्होंने इसका पैशा-वर' वा सीमान्तनगर नाम रखा।

आरियनके वर्णनसे मालूम होता है, कि अलेकसन्दर-के सेनापित हिफाण्यिनने हस्ती (Astes)-को परास्त कर पुष्कलावती पर अधिकार किया। चि'ति-अनुवाहित बस्रुवन्ध्रचरितमें गान्धारराज्यकी राजधानी पुरुपपुर नाम-से उल्लिखित हुई है। चीनपरिमाजक फाहियान 800 ई०में और सुङ्गयुन ५२० ई०में पेशावर नगर आये थे। ७वीं शतान्दीके पारममें चीनपरिमाजक फाहियान पुनः इस प्रदेशमें पधारे। उन्होंने इस राजधानीका पुरुपपुर (पी-लु-प-पु-लो) नाम रख कर इस स्थानकी पासीन कीर्त्तियोंका विस्तृत इतिवृत्त लिपवज्र किया है। उन्हीं के विवरणसे हम लोगोंको मालूम होता है, कि उनके भारता-गमनकालमें इस गान्धार राज्यका कुछ अंश किपश वा कावुलराज्यके अन्तर्भु क था।

परित्राजक सृपनचुनजुकी वर्णनसे जाना जाता है, कि

"पुरुषपुर राजधानीका घेरा ४० लोग वा प्रायः ६॥ मील था। पूर्वतन राजवंशका लोप हो जानेसे कपिशराजके अधीनस्य कर्मचारिगण इस प्रदेशका शासनकार्यं चलाते हैं। नगर और प्राप्तादि श्रीहीन हो गये हैं। पकमात पुरुपपुर-राजप्रासादके निकट प्रायः हजार मनुष्यीका वास है। फल, पुष्प आदिसे इस स्थानकी शोभा निराली है। ईखके रससे देशवासी मिस्री तैयार करते हैं। यहां नारायणदेव, असङ्गवोधिसत्त्व, वसुवन्धु वोधिसत्त्व, धर्मैतात, मनोहित और आर्य पार्थिक प्रभृति बौद्ध शास्त्र-कारोंने जन्मग्रहण किया था। उस समय विद्याचर्चा इतनी नोरों थी, कि यएनचुवङ्ग देशवासियोंको भीव और कोमल सभावापन्न वतला गये हैं। वौद्ध धर्म सम्प्रदाय व्यतीत वहां अत्यान्य सम्प्रदायों की भी प्रतिपत्ति हुई थी , विल्लंस-प्राय वीद्यकीर्त्तियों के निवर्शनसहस् लतागुच्छाच्छादित और ध्वंसावशिष्ट एक हजार संघाराम द्वष्टिगोचर होते हैं। अधिकांश स्तूप कालकी क्रोड़में शायित हैं। राज-धानीमें जो कुछ अमूल्य वीद्धकीर्तियां रह गई है। परि-व्राजकने उन्हींका यथासम्भव उक्लेख किया हैं,—१ भिश्ता-पातस्त्प(१), २ पीपलका वृक्ष (२), ३ कनिष्कस्तूप (३)

⁽१) शानवबुद्धके निन्णकालके बाद वनका मिक्षापात्र नाना देश पर्यटन करता हुआ आखिर कन्यारमें आया था। यहां उसके कथर एक छुदृहत स्तूर बनाया गया। सर हेनरी राजिनसनका कहना है, कि नहांके सुवलमान उसे पवित्र कीर्ति समझ कर भिक्त करते हैं। गौतमञ्जदके निश्चापात्रके इस अरदाधर्य अनुक्षेत्र प्राचीन इसा संन्यासियों के निकट गौतम सेसट-जोस-कत (वोविसन्त्रका अपभेशा) नामसे परिचित थे। इस नातको मोक्षम्हर आदिने भी सुक्तकग्रहरे स्नीकार किया है।

⁽२) यूपनचन तने इत हाउको १सी फुट कँचा और उठके नीचे पूर्ववर्ती चार बुद्धोंकी अस्तरमृत्ति देखी थी। छ गयुनने इते बोधित्वस और तत्यार्थस्य मन्दिरको राजा कनिरकका प्रति-छित बतलाया है। सुगलसम्राद् वाचरने १४०५ ई०में यह वक्ष देखा था।

⁽३) यह प्रस्टरस्तूप राजा किनस्कड़ा प्रतिष्ठित किया हुआ है। काहियानने इसे ४सी फुट ऊँचा और यूएन-चुन नोने ५ तक्षेड़ा बतलाया है। धनके आगमनकालमें यहां

और सङ्घाराम(४) बौद्धकीर्त्तिके प्रकृष्ट निद्दर्शन हैं। अलावा इसके असंख्य बौद्धमूर्ति और पूर्वतन बौद्धयुगके प्रस्तर-स्तम्मादि मी हैं। अलेकसन्दरके पञ्जाव-विजयके वाद यहां श्रीक जातिने अपना प्रभाव फैलाया था। उस समयकी खोदित मूर्ति वा अपरापर कीर्त्तियां बौद्ध तथा श्रीकभावमें परिपूर्ण (Graeco Buddhistic sculpture) हैं। पेशावरकी किसी बुद्धमूर्त्तिके निम्नदेशमें २७४ सम्बत्में उत्क्रीण एक शिलाफलक पाया गया है (५)

पुस्तकादि पढ़नेसे मालूम होता है, कि अत्री शताब्दी-के मध्यभागमें यहां हिन्दुओंकी प्रधानता थी। स्थानीय इतिवृत्तमें ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही अफगान वा पटानजातिका शुभागमन स्चित हुआ है, इसके बाद पेशावर-उपत्यका दिल्लीके हिन्दूसाम्राज्य और अफगान-राज्यके मध्य पड़ कर उभयपक्षीय युद्धविग्रहके केन्द्रस्थल

अर्जेष्य बुद्धमूर्त्तियाँ इधर डवर विखरी हुई थी। नूएन बुर'गने इस स्तूमको अग्निद्यब दिखा था।

Beal's Bud. Rec. West. World, Vol. I. p. 101-8.

(8) यह सी महाराज किन्स्क द्वारा उक्त हहत स्तूपके पश्चिममें प्रतिष्ठित बतलाया जाता है। यूएनसुव न जब यहां आये, उस समय भी संबाराभके भग्नप्राय द्वितल एहावि अव विष्ट थे। उन्होंने हीनयान मतावलम्बी वौद्ध संन्यासियोंको इस संवाराममें निवाभ्यास करते हैका था। १ वी श्वामधी तक वह स्थान बौद्ध में और ज्ञानचर्निका केन्द्रस्थल रहा। Journ. As. Soc. Beng 1849, p. 494.

(५) किन्छ-चेनत (शक)-के हिसाबसे यदि गणनाफी जाय, तो यह ३५१-२ ई०में उत्कीण प्रतीत होता है। किंतु गण्डफेरिय (Gondaphares)-की तफत इ-बहिनी किंतु किंपिमें १०३ सम्बत् पाया जाता है। गण्डफेरिया-राजकी प्रचलित मुद्रासे बात होता है, कि ने १ली श्वाब्यीके प्रथम भागमें विद्यमान थे। अतपन तंत्प्रचलित संवताब्द विक्रमांक (छ. С. 57) अथवा अन्य अन्द्रसूचक होगा तथा अन्हींने को विक्रम संवत् वा तत्यामियक कोई घटना-समाधितकाल प्रदण किया होगा, इसमें सन्देह नहीं। (Ind Ant. xviii, p. 257)

में परिणत हुई थी। इस समय भी अफगान लोग महसार-प्रवर्त्तित इस्लामधर्ममें दीक्षित नहीं हुए थे। वे लोग हजारा और रावलपिएडीवासी गक्कर जातिकी सहायतासे कावुळनदीके दक्षिणतीरस्थ पार्वतीय प्रदेशमें आ कर दस गये थे। किन्तु उस समय पेशावर, हस्तनगर और युसुफजै-प्रदेश हिन्दूराजोंके शासनभुक्त था। ३७८ ई०में स्रोरासानके राजा सबुक्तगीनके साथ छाहोरराज जयपाल-का युद्ध हुआ। राजा जयपाल पराजित हो जान ले कर भागें। पीछे संवुक्तगीनने पेशावर पर अधिकार जमाया और वहां २० हजार अध्वारोही नियुक्त कर आप स्वदेश-को छौट गये । उनके छड़के सुछतान महसूरने (६) कां बार पेशावर उपत्यकामें युद्ध किया था। उनमेंसे रावलपिएडीके चच-क्षेत्रमें अनङ्गपालके साथ जो गुद्ध हुआ, वह भारत इतिहासमें एक घोर दुर्घ दना हैं। मइ-मृद पेशावरमें रह कर ही भारत पर चढ़ाई फरनेका आयोजन करते थे। पीछे प्रायः सौ वर्ष तक यह स्थानं राजनीके अधीन रहा (७)।

महसूदके कुछ पह छे दिलजाक नामक दुई वे पठान-वंशने यहां अपनी गोटी जमाई। १२०६ ई०में साहबुद्दीनके मरने पर घोरके पठानवंशने सिन्धुनदी तक अपना दबल कर लिया था। किन्तु दिलजाकोंने पेशावरका कुछ भी अंश अपने हाथसे जाने नहीं दिया। १५वीं शतादीके शेषभागसे ही यहां अफगानजाति रहने लगीं।

तैमुरवंशधर उलुघवेगने जब खखे पटानोंको, (८) कावुछ से निकाल भगाया, तव युसुफजे, गिगियानी और पुर समद्जे नामकको तीन जातियां पेशावर उपत्यकामें बस

- (६) इन्होंके घलने पठान लोग इसलाम-घर्में ग्रीसित हुए । इन्होंने ही सबसे एहके भारतवर्ष पर अधिकार नमाया था । मह्मृद देखी ।
- (७) गशनीसे के कर ठाहोर तक गजनी-राज्यकी सम्बारें शी। पेशावर उक्त राज्यके ठीक नीचमें पडता था। महस्द भारतक्षेत्रे को कुछ छट ठाते थे, वह पेशावरमें ही रखा बाता था। जनके बाद बाद आक्रमण बीद छटपांटले यह स्थान चीरे धीरे जनमानवहीन और व्याध्रगण्डारादिसे पूर्ण हो गथा।

⁽८) अमणकारी पठाननातिमेद ।

गई'। दिलजाकों ने उन लोगों के रहनेके लिये कुछ अनु वर जमीन दो। इसके कुछ समय वादहों दोनों दलमें कलह पैरा हुआ। आतिथ्यके पुरस्कार स्वरूप उन्हों ने दिलजाकों को हजाराकों ओर खदेड़ दिया। अव गिगियानी स्वात और काबुलन्दीके सङ्गम स्थलमें, मुहम्मदजी हस्तनगरमें और युसुफजी लोग युसुफजीके उर्वर क्षेत्रमें रहने लगे।

इस प्रकार तीन स्वतन्त्रभागों में विभक्त हो पठान लोग मुछों पर ताब दे रहे थे। १५१६ ई०में मुगल-सम्राट् वावरने विल्ञान सरदारों से मिल कर इन पठानकी तीनीं जातियों को अपने कावूमें कर लिया था। वावर और शेरशाह वंशधरों के परस्पर युद्धविम्रहसे पेशावरके भाग्यों बहुत विपर्यय हुआ था। हुमायूं ने विल्ञाकों को पकदम मार भाग्या था, उनको बुनियाद तक भी रहने न दो थी। पक्रमान अकवरशाह के विशाल साम-द्श्डने पेशावरको शतुबिम्रहसे रक्षा को थो। जहांगोर, शाहजहां और औरङ्गजेक्के राज्यकालमें पेशावरके लोग भनिच्छा रहते हुए भी दिल्ली मिहासनकी अवीनता स्वीकार करनेकी वाध्य हुए थे। आखिर औरङ्गजेकके राज्यकालमें ही पठानों ने विद्रोही हो कर मुगलके अधीनतापासकों खंड खंड कर डाला था।

१७३८ ई०में यह स्थान नादिएग्राह्के हाथ छगा। परवर्ती दुरानीराजवंशक अधिकारकालमें कावुलराजसरकारके कार्यादि पेशावर राजधानीमें ही परिचालित होते थे। १७६३ ई०में तैम्र्याहके मरने पर अफगान राज्यमें बीर विश्वक्ष्वला उपस्थित हुई। इस विष्ठवमें पेशवाको मी वहुत कुछ मुसीवतें उठानी पड़ी थीं। अवसर पा कर सिखलोग मुसलमान शतुके प्रतिहिंसासाधनमें अप्रसर हुए और नंगी तलवारसे उन्हों ने (१८१८ ई०में) पर्वतके पाद तक सभी स्थानों को पददलित कर डाला। १८२३ ई०में सिख लोगों का दर्पचूर्ण करनेके लिये आजीम खाँ कावुलसे पेशावरकी और रवाना हुए। किंद्र रणजितसे हार खा कर उन्हें सिखकी अधीनता खीकार करनी पड़ी थी। रणजित्सिह के वल राजस्वके मिखारी थे, राज्यस्थापनाकी और उनका जरा भी ध्यान व था। पराजित राजगण उन्हें उपयुक्त नजराना

अथवा राजकर दे कर छुटकारा पाते थे (६)। जो ठीक समय पर राजकर नहीं भेजते, उनका राज्य छारखार कर दिया जाता था। लूटके मालसे सिख-राजकोष भर जाता था। अफगान और सिख-युद्धके वाद पेशावरमें सिखको प्रधानता स्थापित हुई। सरदार अविताविले (General Avitabile) यहांके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए।

१८४८ ईं भें यह प्रदेश वृटिश साम्राज्यभुक हुआ।
१८५७ ईं भें गद्रमें यहां के सिपाही बागी हो गये थे।
वड़ी मुश्किलसे जेनरल निकलसनने उनका दमन किया।
वृटिश गवर्में गटने बहुतों को फांसी में लटका कर अथवा
तोपसे उड़ा कर कठोर हृदयका परिचय दिया था।

इस जिलेमें ७ शहर और ७६३ शाम लगते हैं। जन संख्या करीन आठ लाख है। पहले निद्याशिक्षाकी ओर लोगोंका ध्यान कम था। अभी जिले भरमें १०सेकेएड्री, ७८ प्राइमरी, २०८ प्रलिमेएट्री स्कूल, ६४ वालिका स्कूल, ४ हाई-स्कूल और १ शिल्पकालेज हैं। निद्या-निभागको और ६१००६० खर्च होते हैं। अलाना इसके सिमिल अस्पताल और ४ चिकित्सालय भी हैं।

२ पेशावर जिलेकी एक तहसील । यह अक्षा० ३३ ४३ से ३४ १३ उ० तथा देशा० ७१ २२ से ७१ ४५ पू०के मध्य सवस्थित है। भूपरिमाण ४५१ वर्गमील और जन-संख्या ढाई लाखके करीव है। काबुलकी नहर इस तह-सीलको दो भागोंमें विभक्त करतो है। इसमें कुल २५६ आम लगते हैं। राजस्य पांच लाख वपयेसे कम नहीं होगा।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार विभागीय सदर। यह अक्षां० ३४' १'उ० और देशां० ७१' ३५' पू०- के मध्य अवस्थित है। यह खात और कायुलसङ्गमसे ६॥ कोस, जमकददुर्गसे ५। कोस, लाहोर-राजधानीसे १३८ कोस, वम्बईसे १५७६ मील और वलकत्तेसे १५५२ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या ७६५१४७ है। जिनमेंसे मुसलमानकी संख्या ही अधिक हैं। यही शहर प्राचीन गान्धार राज्यकी राजधानी है। यहां बौदकीर्त्तिके ध्वं-सावशेष आज भी पूर्वगीरवकी रक्षा करते हैं। जिलेबा इतिहास देखो। वर्तमान नगरकी गृहवादिकाका गठन-

⁽६) महाराज रबजित्के आदेमचे खड गिंस्ने पेमा-बरमें पठान-राज यार महम्मदको परास्त किया था । पीछे उन्होंने रणजित्को उपयुक्त नजराना दे कर निष्कृति पार्द ।

कार्य उतना विद्यां नहीं है। सिख-सरदार अविताविलेने नगरको चारों ओरसे महीकी दीवालसे घेर दिया है। 'नगर-प्रवेशके १६ द्वार हैं। द्वार वंद होनेके पहले हर एक रातको तोपध्वनि होती है। इनमेंसे एकका नाम 'कावुल-गेट' है जो ५० फ़र प्रशस्त है (१०)। सर हार्चंट पडवा-र्डिसके स्मरणार्थ यह फिरसे वनाया गया। नगरके वीच हो कर एक खाई दौड़ गई है। पीनेका जल कुपसे · निकाला जाता है। प्राचीन गृहादि उपयूपरि युद्धविश्वसे नए हो गये हैं। फितनी मसजिदें नगरकी शोभा बढ़ाती हैं। प्राचीन बौद्ध सङ्घाराम हिन्दूमन्दिरमें परिणत हुआ है। वर्त्तमान घोर खित नामक वृहत् वाटिका उसी सङ्घारामके ऊपर निर्मित है। अभी इसमें सराय और तहसोलको कचहरी लगती है। प्राचीरके वाहर उत्तर-प्रश्चिम दिशामें वाळा-हिसरका प्राचीन दुर्ग है । नगर-के दक्षिणपश्चिम वनमारी वाघवन और वाघशाहो नामके वगीचोंमें तरह तरहके फल फूल लगते हैं। लोग वहांके दोनों वगीचोंको वजोरवाग कहते हैं। शहरके उत्तर 'शाहोबाग' नामकी बाटिका देखने लायक है।

नगरसे एक कोस पश्चिम पेशावरका विख्यात गोरा-बाजार (Military Coantonment) है । १८४८-६ ई०में यह नगर अंगरेजोंके अधीन हुआ। इराणी सर-अलीमद्रैनखाँकी उद्यानवाटिकामें ही रेसिडेएटका अड्डा है। राजकोप और दक्षर इसी घर है। गोरावाजारका घेरा ४ कीससे कम नहीं होगा। नौसदर, जमकद और चेरटका किला इसीके अधीन है।

कावुल, वोलारा और मध्य पशियाके अन्यान्य राज्यों-के साथ भारतीय वाणिज्यका यह केन्द्रस्थान है। विला-यती वस्तु, शाल, चीनी, घी, नमक, गेहूं, तेल, अनाज, छुरी, कैंचो आदि द्रव्य भारतवर्षसे पशिया और कावुल, बुलारा और वजीर नगरमें भेजे जाते हैं। उनके बदलेमें काबुल आदि नानादेशोरपन्न दृष्य, वोलारेका चमड़ा, घोड़ा, रेशम, पिस्ता, किशमिस, पशम, औपध, मोहर, सौना और स्पेका सूता और फीता आदि द्रव्य पहले पेशावर आते हैं। पेशावरसे पञ्चाव, काश्मीर, वम्बई, कलकत्ते आदि स्थानोंमें रक्षनी होती है।

शहरमें ४ हाई स्कृत, १ शिल्पकालेज, १ अस्पताल और चार ४ चिकित्सालय हैं।

वेशावर (फा॰ पु॰) ब्यवसायी, किसी प्रकारका वेशा करनेवाला।

पेशि (सं० पु०) पिश इपिशीति। उण् ४।११व) १ शतकीटि। (स्रो०) २ मापविद्छ। ३ अएड, अंडा। ४ आद्रकादि द्विद्छ, अरहरकी दाछ। ५ आम्रादिकी शलादी, अमचूर। ६ खएडी छत आद्रैक, शलादी, दुकड़े दुकड़े किये हुए अमचूर।

पेशिका (सं॰ स्त्री॰) अएड, अंडा।

पेशितृ (सं० ति०) प्रतिमादिका अवयवकत्तां, मूर्ति गढ़नेवाळा ।

पेशो (सं० स्त्री०) पिश-इत वा ङीप्। १ अएड, अंडा।
२ वज्र । ३ मापविदल, उड़दकी दाल । ४ सुपक कलिका,
पकी हुई कली। ५ मांसी, जटांमासी। ६ वड गविकात,
तलवारकी म्यान। ७ नदीमेद। ८ पिशाकी मेद।
६ राश्रसीमेद। १० वाद्यविशेष, एक प्रकारका डोल।
११ गर्भवेष्टन-चममय कोष, चमड़ेकी वह थैली जिसमें
गर्भ रहता है। १२ मांसिष्डिं, शरीरके भीतर मांसकी
गुल्थी या गांठ।

मांसिंपिएडीको पेशी कहते हैं। सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—शरीरके सभी अङ्गोंमें पेशी है। कुछ पेशियोंकी संख्या ५०० है। इनमेंसे हाथ पैसें ४००, कोष्ठमें ६६, गले और उसके ऊपरमें ३४ हैं। प्रति उँगलीमें तीन तीन करके पन्द्रह, पैरके ऊपरी भागमें दश, कुर्जदेशमें दश, पददल और गुल्फदेशमें दश, पुरुक और जानु दोनोंक मध्यस्थलमें बीस, जानुमें पांच, ऊरुदेशमें वीस और वंक्षणमें दश। इस प्रकार प्रत्येक पैस्में सी कर दो सी और इतना ही पेशियां दोनों हाथमें हैं। इस प्रकार हाथ और पाँचकी पेशियां मिला कर चार सी होती हैं।

पायुदेशमें तीन, मेढ़में एक, मेढ़देशके सेवना-स्थानमें एक, दोनों मुक्तमें दो, दोनों नितम्बमें पांच पांच करके दश, वस्तिके ऊपरीभागमें दो, उदरमें पांच, नाभिमें एक, पृप्ठके ऊद्ध भागमें पांच पांच करके दश, दोनों पार्वकें छह, वक्षःस्थलमें दश, स्कन्ध सिक्षके बारों और सात,

⁽१०) काबुलसे के कर इस द्वार तक एक सीघा शस्ता नला आया है।

हद्य और आमाशयमें दो, यहत्, प्लीहा और उण्डुकमें छह, ग्रीवामें चार, हनुमें आठ, काकल और गलेमें एक एक करके दो, तालुमें दो, जिल्लामें एक, दोनों ओष्ट्रमें दो, नाक, में दो, चक्षमें दो, दोनों गएडमें चार, दोनों कानमें दो. ललाटमें चार और मस्तकमें एक। यही पांच सी पेशियां सारे शरीरमें अवस्थित हैं। शरीरकी शिरा, स्नायु, अस्थि, पर्च और सिन्ध पेशियों द्वारा आवृत रहनेसे ही शरीरके अंग हिल्लते डोल्लते हैं। स्त्रीके शरीरमें पुच्यकी अपेश्रा बीस पेशी और अधिक हैं। इनमेंसे दोनों स्तनमें पांच पांच करके दश जो यौवनकालमें बढ़ती हैं, अपत्य पथमें चार जिनमेंसे उस पथके मुँह पर दो और वाहर दो, गर्भीच्लद्रमें तीन और शुक्रशीणितके प्रवेशपथमें तीन हैं। पुरुषके मुक्षदेशमें जो सब पेशियां रहती हैं, खीके शरीरमें वे सब पेशियां, अन्तमूत फलकीय (गर्माशय)- को ढेंकी रहती हैं। (इच्चन शारीरस्था ५ अ०)

युरोपीय चिकित्सकोंके मतमें भी मानवदेह पेशी-मण्डित है। इसीसे देहयप्रिका एक और भंगरेजी नाम है Muscular System । जिन सद पेशियोंसे शारीरिक अंश सञ्चालित वा प्रसारित होते हैं उन्हें Tensor और उसोलनकारी पेशीको Levator कहते हैं। में सब पेशियां स्थिति स्थापक, रक्ताम और सूक्त तन्तुमय पदार्थ (Myoline) द्वारा आच्छादित हैं। श्रारीरके मध्यकी पेशियां कहीं न कहीं अपनो नीवेवाली हृहीसे जुड़ी रहती हैं। पेशीच्छेद . ¥yotomy) द्वारा मालूम होता है, कि पेशीमं जलका भाग अधिक है और जीवित देहमें यह प्रायः अद[्]खच्छ है। कुछ पेशियां अनुप्रस्थ (Transversalis) और कुछ तिशीर्ष (Triceps) अवस्थामें शरीरके मध्य प्रलम्बित हैं। प्रत्येक पेशीतन्तु जिस प्रकार किली (Myolemma) द्वारा आच्छादित है, उसी प्रकार एक एक पेशीखएड भी किल्ली (Aponeurosis)-से सम्बन्ध रखता है। साधारणतः दो श्रेणीकी वेशियां शरीरमें विद्यमान हैं । इनमेंसे कुछ पेशियां देसी हैं जो इच्छा करते ही (Voluntary) हिलाई डुलाई जा सकती हैं और कुछ ऐसी हैं जो इच्छा करने पर भी भवने स्थानसे (lnvoluntary) नहीं हटती. । अन्त-'बहा नली, मूलाशय, जननेन्ट्रिय, धमनी, शिरा और लसि- का निलयोंके प्राचीर-स्थानमें अचल और भवशिष्टांशमें सञ्चालनक्षम पेशी ही बत्तेमान देखी जाती हैं।

समान है। किन्सु जिनकी किया साधारणतः लक्षित हुआ करती हैं, नीचे उनकी यथासम्मय तालिका उद्ध त की गई है। करोटी प्रदेशकी १, ललाट और पण्चात् कपाल (Occipito frontalis) की पेशी द्वारा होनों भू का उच्चोलन, ललाटका आकुद्धन और मुखमण्डलका विभिन्न-भाव प्रकाशित होता है। २, हो मस्तकपेशी (Recti Minoris), ३ अक्षिपुटपेशीकी सहायतासे हम लीग आंख मूँ दते हैं। ४ भूसङ्कोचक पेशी, ५ अक्षिपुटाम आकर्वक पेशी, ६ अक्षिप्छवकी जदुश्वीत्तीलक पेशी, ७ गोलकको जदुश्वीपेशी, ८ उसके नीचेकी पेशी, ६ अक्षिपु पंशी (Trochlearis, और १० अक्षिगोलकको भीतर और बाहर करनेवाली तथा कनीनिकाको अक्षिकोटरके वाहा और उन्हर्धकोणमें नयनकारी पेशियां प्रधान हैं।

· समस्त मुखमण्डलके मध्य नासिकामें ३, ओष्टमें ६, सघरमें ४, हर्नूमें ५, कर्णमें ३, कर्णाभ्यन्तरमें ४, ब्रोवामें ३३, तालुमें ८ और पृष्टदेशमें ७, वक्षमें ५, उद्दर्भे ६, विटपमें ८। सियोंके केवल ७ \- ऊदुर्ध्यशासाके स्कन्ध भीर प्रगएडमें १५, प्रकोष्टमें २२, इस्तमें ११ और सक्यि वा निम्नशालामें ५२ प्रधान येशियां हैं। मलावा इसके और भी हो सौ-से अधिक छोटी छोटी शाखा प्रशाखायुक्त पेशियां हैं। इन सव पेशियोंकी सहायतासे भंगी'का सञ्चालन, प्रसारण, सङ्कोचन, स्थितिस्थापन आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। जैसे, कोई पेशी मुंह खोलनेके सनय होंडको ऊपर उठाती है, कोई हाथ उठानेमें सहायक होती है, कोई उसे मर्यादा-से भागे बढ़ानेसे रोकती हैं, कोई गरदनको अधिक भुकने नहीं देती, कोई पेटके भीतरक किसी यन्तको द्वाये रखती है और कोई मल अथवा मूलके त्यागने भथवा रोकनेमें सहायता देती है। जिह्नाकी पेशियां (Masoglossi) जिह्नाको हिलाती डोलाती भीर उसे भीतर तथा बाहर ख़ींचती है। किसी एक पेशोसे जिह्वाके पार्क्व और वाहरमें सञ्चालन और अवनमनिकया साधित होती हैं। इसीसे उसका एक साधारण नाम है

Vol. XIV. 107

Polychrestus । जिह्नामूल और निम्न हमुके मध्य स्थलकी जिह्नापेशोको Genio-glossus कहते हैं।

तालुकी पेशी तालुकी उठाती है। प्रत्येक पेशीका कार्य खतन्त है, कोई तालुकी खींचती है, कोई काकलको उठाती है, कीई तालुकी अबरोध करती है, कोई निगलनेमें सहायता देती हैं। एक और प्रकारकी पेशी है जिससे परचाह औरका नासारन्य अवरुद्ध किया जा सकता है।

जिस यन्त्रकी सहायतासे हम लोग वाक्य उचारण करते अथवा स्वरको उठा और गिरा सकते हैं, उस स्वर यन्त्रको तन्त्रियो को लिम्यतमावर्मे टाने रखनेको एक स्त्रतन्त पेशो है। एक और ऐसी पेशी है जो खरतन्त्री-- को सीधमें खींच कर उसको उपास्थिको बाहरकी ओर घुमाती है, दूसरी पेशी स्वरतन्त्रियोंको छोटी भीर शिथिल कर देती हैं। पृष्टदेश और पृष्ठवंशमें जो पेशियां संलग्न हैं उनमेंसे एकके द्वारा मस्तक बाहरकी और आकृष्ट होता है। अपर पेशीकी सहायतासे उद्धर्ध बाहु ऊपर और नीचेकी ओर उठती है। वह पेशी पंजरेको खडा करती और देहकाएडको सामनेकी ओर आकर्षण करती है। श्वासप्रहणकालमें एक पेशो पंजरेको उठाये रखती और दूसरी श्वासत्याग कालमें इसे भीतर द्वाने रखती है। चार पेशियों के सहारे मेरुद्र सीघा खडा है और देहकाएड पीछेकी ओर मुकाया जा सकता है। किसी पेशीसे पृष्ठवंश ऋज है, किसीसे गला सीधा, किसीसे मस्तककी हुडी और मस्तक इधर उधर घुमाया जा सकता है, एक पेशी गलेके मेरुद्रण्डको स्थिर रखती है और दूसरी तीन पेणियां पृष्टवंशकी सीधा रख कर घुमाती हैं।

वक्ष्यदेशमें जो पेशी है, वे श्वासप्रहणकालमें पंजरेकी
उठाये रहती है, श्वासत्यागकालमें पंजरेकी द्वाये रहती
और उसकी उपास्थियों को सामने उठाती हैं। इन
दोके सिवा श्वासप्रहणकालमें एक और पेशी है। श्वास
छोड़ते समय एक पेशी उपास्थियों को नीचे खींचती
और दूसरी पंजरेको उत्तोलित करती है। उठरके बीचमें
भा एक पेशी है जिसे Diaphram वा Midriff कहते
हैं। उदरके अभ्यन्तरस्थ यन्त्रों की द्वाये रखने और
वस्त्रस्थलको वस्तिके ऊपर अवनत रखनेके लिये दो वेशी

विद्यमान हैं। बहुत सी ऐसी पेशिश्ं हैं जो बक्षको विस्ति के ऊपर वा विस्तिको बक्षके ऊपर निष्ति और पार्वभावः में नत तथा उद्रयंत्रको सम्यक् प्रकारने निर्पाहित करनेमें समर्थ हैं।

मानवदेह के द्वारपथमें पेशी हैं। आवश्यकतानुसार को सब मुद्रित होती हैं, उन्हें वेष्टक वा सङ्कोचक (Sphincter) पेशी कहते हैं। स्त्री वा पुरुषके विटपदेशमें जितनी पेशियां हैं उनमें गुरु सङ्कोच-पेशी (Sphincter Ani) ही मलद्वारको अवस्त्र रखती हैं। मृतनाली (Ejaculator) मेंसे एक मृत्रनिर्गमकी विद्व और शिश्तके उत्थानसाधन तथा पुंलिङ्गके उत्थानकी संस्त्रा करती है। कोई पेशी सरलान्त्रके निम्नीय और मृताश्यको धारण करती तथा पेशावके स्रोतको रोकती है। शङ्कावर्मपेशी शङ्कावर्सको धारण करती है। एक पेशी योनिको संकुचित रखती और दूसरी भगांकुरको उक्षित करती है।

एक वही पेशी प्रगएडकी सम्मुख और निम्नकी ओर आकर्षण करती तथा भ्वासग्रहणमें पंतरींको उठाये रहती है। दूसरी दूसरी पेशियों मेंसे कोई श्वासग्रहणकालमें पञ्च-रास्थि वा पशु काको और स्कन्धाप्रको उत्तोलित करनी है। कोई जक् अस्थिको अवनर्मित, कोई प्रगण्डास्थिको आगे घोले उत्तोलित और आवर्तित करती है। किसी पेशी हारा प्रकोड आकुञ्चित और चित होता है। निम्न वाहुको आकुञ्चित और प्रकोद्रको प्रसारित करनेकी दो सतन्त्र पेशियां हैं। बङ्क्षणास्थि (Ischium)-से ले कर होनें जानुकी ऊदुर्ध्वास्थि (Femur) तक विलम्बित पेगी (Quadratus Fomoria) ऊरुदेशको मृक्तिशाली वनाती है। कटिदेशके दोनीं पार्श्वमें Psoas-magnus और Psoas parvus नामक हो श्रोणीपेशी हैं। उनमेंसे पहली पेशो दोनों पुटनोंको आगे वढ़ानेमें सहायता 'देती है और सदृर पृष्ठवंशको वस्तिगहरके उत्पर भुकानेमें सदद पहुंचाती है। Obturator Externus और Ob internus नामक दोनों पेशी रोधकशक्तिविशिष्ट है। बे दोनों पेशियो तथा जानुदेशस्थित Obturator नामक स्नायु गुह्यादि देशको अवरुद्ध और दोनी जानुको सुसं-

लंग रखनेमं समर्थ हैं। Obturator Externus नामक श्रेणोपेशों नीचे Masculi gemini or Gemellus (Superior और inferior) नामक और भी दो मांसपेशियां हैं। निम्नपदकी पेशियां Cruralis Craroeus वा जङ्कापेशो कहलाती हैं। निम्नपदके दोनीं डिम्ब वा जङ्काडिम्बस्थ पेशी (Gastroenemii) मानवकी इधर उधर चलनेमें सहायता देती हैं। पतिद्वित्र शरीरके प्रकोष्ठ, हस्त और निम्नशाखामें और भी अनेक पेशियां हैं जो उन सब प्रत्यक्षों सञ्चालनमें उपयोगी हैं।

पेशियां शरीरके अङ्गप्रत्यङ्गको सञ्चालित करती हैं।

मनुष्य इन्हीं पेशियोंको सहायतासे उठते, बैठते, खड़े होते,

चलते फिरते, दौड़ते, रोते, इंसते और वातचीत करते

हैं। पेशियां जब तक सिक्रय रहतो हैं, तब तक मानव

स्वेच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। पेशीके वलिष्ठ होनेसे

मानव अमित वलशाली होते हैं। पेशिकशक्ति (Myodynamia)-की अधिकतासे मानववाह विश्वविजयी हो

सकती है। कण्डके सुमोहन सुरसे जगन्मुश्वत्व एकमात पेशियोंका गुण है। स्नायुओंकी सहायतासे पेशीकी

क्षमता बढ़ती है। स्वायु देखी। स्नायविक दुर्वलता

उपस्थित होनेसे कमशः पैशिक दुर्वलता (Myasthenia) और पैशिक सङ्गोचनीयता (Myotility) आ

जाती है। पेशियोंमें जब बदनाका अनुभव होता है, नव

उसे पेशीशूल (Myalgia) कहते हैं। श्रीणीपेशीको

प्रदाहका नाम Psoites है।

पेशीकोष (सं॰ पु॰) पेश्याः कोषः । अएडकोष, फोता । पेशीनगोई (फा॰ स्त्री॰) भविष्यद्वाणी, भविष्य कथन । पेश्तर (फा॰ क्रि॰ विं॰) पूर्व, पहुछे ।

पेश्यएंड (स॰ क्लो॰) १ मांसपिएडाकार अएड, मांसपिएड-के आकारका अंडा। २ मांसगीलक।

वेपक (सं कि) वेषणकारी, पीसनैवाला।

पेपण (सं॰ क्ली॰) पिष-भाने-हयुद् । १ अवयविक्साग द्वारा चूर्णन, पीसना । २ खल । ३ शतगुप्ता । ४ तिधार स्तूहीवृक्ष, तिधारा थूहड़ ।

पेषणि (सं० स्त्री०) पेवणी दंखां।

वेत्रणी (सं • स्त्री •) पिन्यतेऽनयेति पिष-अणि, जा जीय्। पेषणशिला, सिला जिस पर कोई चीज पीसी जाय। पर्याय—पट्ट, गृहाइमा, गृहकच्छप । यह पश्चस्नामेंसे एक है। सिला पर द्रव्यादि पीसनेके समय नाना कीट आदि-के प्राण जाते हैं। इस लिए पीसनेवालेको स्वगंत्राप्ति नहीं होती । (मतु अ॰ ३।६८) पेषणीय (सं॰ ति॰) पिघ-अनीयर । पेषणाई, पीसने लायक ।

पेषना (हि॰ कि॰) पेखना देखो। पेयळ (सं॰ ति॰) पेपोऽस्यास्तीति पेप-सिध्मादित्वात्

छच्। पेशल। पेशब देखो।

पेषाक (सं॰ पु॰)) पिय-आकन्। पेघणी, सिलां। पेषि (सं॰ पु॰) पिपं-इन्। वज्र।

पेवी (सं• स्त्री॰) हिंसिका, पिशाचिनी i

पेप्ट (सं॰ ति॰) पिष-तुन्न् । पेषणकारी, पीसनेवाला । पेष्य (सं॰ ति॰) पेषणयोग्य, पीसनेलायक ।

पेस (हिं वि॰) पेश देखी।

पेसल (सं॰ ति॰) पेस-लच् वा पेशल-पृयोदरादित्वात् साधुः। पेशल । पेशल देखो ।

पेसुक (सं॰ ति॰) पिस-बाहु॰ उक्कन् । अभिवर्द्ध नशीलं, वदनेवाला ।

पेसर (सं॰ ति॰) पिस-शोलार्थं वरच्। गतिशीलं; चलनेवाला।

पेहंदा (हिं स्त्री) कचरी नामका स्ताकां फर । यह कुंदरूके आकारका होता है और इसकी तरकारी तथा कंचरी वनती है।

पेहिता (सं क्यों व्यसारणी, गंध्रप्रसारी।
पेहोवा—पञ्जावके कर्णाल जिलान्तर्गत कैथल तहसीलका एक प्राचीन शहर और हिन्दू-तीर्थस्थान। यह अक्षाक रहं पर् उक तथा देशा कहं रेप पूक्के मध्य थाने वरसे रेद मोल पश्चिम, पवित्वसिलला सरस्वतीनदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। वह कुक्क्षेत्रके अन्तर्गत है। पेहोवा संस्कृत पृथ्-दक (राजा वेणके पुत्र) शब्दका अपम्रंशक्त है। यहां स्वी शताब्दीकों जो दो शिलालिप पाई गई हैं उनसे जाना जाता है, कि यह स्थान पहले राजा भोज और उनके लड़के कन्नोज-राज महेन्द्रपालके राज्यान्तर्गत था। प्राचीनकालमें तोमरवंश प्रतिष्ठित विष्णुका एक मन्दिर

था, पर अभी उसका नाम-निशान भी नहीं है। सिख-पतनके वाद कैथलके भायगणने इस पर अधिकार नमाया। आखिर वृटिश-गवर्मेंग्टने कैथ ठके साथ साथ इसे भी अपने अधिकारमें कर लिया। यद्यपि इसकी अभी पूर्वश्री जाती रही, तो भी हिन्दुओं के निकट यह पवित्र तीर्थके जैसा गण्य होता है। इसके पास ही मराठोंके बनाये हुए पृथ्दकेश्वर या पृथवेश्वर और खामी कार्त्तिकके मन्दिर विद्यमान हैं। कहते हैं, कि कात्तिकका मन्दिर युद्धदेवता कात्तिकेयके उद्देशसे महाभारत-युद्धके पहलेका प्रतिष्ठित हैं।

पैंकड़ा (हिं॰ पु॰) १ वेड़ी। २ पैरका कड़ा। ३ ऊँटकी नकेल।

पैंग (हि॰ स्त्री॰) १ मोरकी पूंछ। २ धनुपका डोरी। पैंचना (हि॰ कि॰) १ पछोरना, अनाज फटकना। २ पलटना, फेरना।

पैंचा (हिं पु॰) पलटा, हेर फेर।

पैंजना (हिं० पु०) पैरका एक आभूषण। यह कड़े के आकारका पर उससे मीटा और खोखला होता है। इस-के भीतर कंकडियां पड़ी रहती हैं जिससे चलनेमें यह वजता है।

पेंजनियां (हिं० स्त्री०) वैजनी देखी।

चैंजनी (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियों और वचोंका कड़े की तरह पैरमें पहननेका एक गहना। यह खोखला होता है और इसके भीतर कंकड़ियां पड़ी रहती हैं जिससे चलने-में यह फन फन वजता है। घोड़ोंके पैरमें भी उन्हें कभो कभी पहनाते हैं। २ सम्गड़ या वैलगाड़ीके पहिएके आगेको वह टेढ़ी लकड़ी जिसके छेदमेंसे धुरा निकला रहता है।

पैंठ (हिं० स्त्री०) १ वाजार, हाट। २ दूकान, हटी। ३ दूसरी हुंडी जो महाजन हुंडीके खो जाने पर लिख देता है। 8 वाजारका दिन, हाट लगनेवाला दिन।

पै'डोर (हि॰ पु॰) दुकान, हाट।

पेंड़ (हिं पु॰) १ मार्ग, पथ, राह, पगडंडी। २ पग, कदम, एक स्थानसे उठा कर जितनी दूरी पर पैर रखा जाय उतनी दूरी। ३ चलनेमें एक जगहसे उठा कर दूसरी मगह पर पैर रखना, डग।

पैंड़ा (हि॰ पु) १ प्रणाली, रोति । २ मार्ग, पथ, रास्ता । ३ अस्तवल, घुड़सार।

पैंड़िया (हिं॰ पु॰) कोव्हमें गन्ने भरनेवाला। पैंड़ो (हिं॰ पु॰) पैंडा हेखी।

पैतालिस (हि॰ पु॰) १ चालिससे पांच अधिककी संख्या या अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—४५। (वि॰) २ जो गिनतीमें चालिससे पांच अधिक हो, चालिस और पांच।

पैतालीस (हिं वि) पैतालिस देखो।

पैंती (हिं० स्त्री०) १ पवित्रों, कुशको पेंड कर बनाया हुआ छल्ला जिसे श्राद्धादि कमें करते समय उंगलीमें पहनते हैं। २ तांवे या तिलोहको अंगूठी यह पवित्रताके लिये अनामिकामें पहनी जाती है।

पैतीस (हिं॰ वि॰) १ जो गिनतीमें तीससे पांच अधिक हो, तीस और पांच। (पु॰) २ तीससे पांच अधिककी संख्या या अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—३५।

पैंयां (हिं० स्त्री०) पैर, पांच।

पैंसठ (हिं॰ पु॰) १ साउसे पांच अधिककी संख्या या अङ्क । यह इस प्रकार लिखा जाता है—६५। (वि॰) २ जो गिनतोमें साउसे पांच अधिक हो, साठ और पांच।

पै (हिं पु) १ माड़ी देनेकी किया, कलफ चढ़ाना। २ पय देखों। (स्त्री) ३ दोप, ऐव, नुक्स। (अध्य) ४ प्रति, ओर, तरफ। ५ निकट, समीप, पास। ६ परन्तु, लेकिन, पर। ७ अनन्तर, पीछे। ८ निश्चय, अवश्य, जरूर। (प्रत्य) ६ अधिकरंण-सूचक एक विभक्ति, पर, उपर। १० करण-सूचक विभक्ति, दारा, से।

पैकर हि॰ पु॰) कपाससे हुई इक्टी करनेवाला। पैकरी (हि॰ स्त्रो॰) पांचमें पहननेका एक गहना, पैरी।

पैकार (फा॰ पु॰) छोटा व्यापारी, घोड़ी पूंथीका रोज-गारो, फुटकर वैचनेवाला, फेरीवाला ।

वैकारी (हिं पु०) वैकार देखी।

पैको (हि॰ पु॰) मेले तमाशेमें घूम घूम कर लोगोंको हुई। पिलानेवाला ।

पैकेट (अ' • पु •) पुलि'दा, मुद्दा, छोटी गठरी।

पैखाना (हिं० पु०) पायखाना देखो ।

पैगंबर (फा॰ पु॰) धर्मप्रवर्त्तक, मनुष्योंके पास ईश्वरका संदेसा छे कर आनेवाला।

वैगंबरा (फां ब्लो॰) १ वैगंबरका कार्य या पद । २ वैगंबर होनेका भाव। ३ एक प्रकारका गेहूं। (वि०) ४ पैगंवर-सम्बन्धी । पैग (हि० पु०) कदम, डग, फाल । पैगाम (फा॰ पु॰) १ सन्देश, संदेसा । २ विवाह-सम्बन्ध-की वात जो कहो या कहलाई जाय। पैङ्ग (सं । पु ।) एक ऋषिका नाम । पैङ्गराज (सं० पु०) एक प्रकारका पश्ची। पैङ्गरायग (सं० पु॰ स्त्रो०) पिङ्गञ्जहय ऋषेः गोतापत्यं नड़ादित्वात् फक्। पिङ्गल ऋषिका गोलापत्य। पेङ्ग-रायण' की जगह विङ्गार ऋषि हा गोत्नापत्य वा 'पिङ्गर' इस शब्दके 'र'के स्थान पर 'ल' करनेसे पिङ्गल होगा। पैङ्गुल (सं॰ पु॰) पिङ्गलस्यापत्यं गर्गादित्वात् यत्र्, पिङ्गल्य, । तस्य छाताः कर्णादित्वाद्ण्, यलोपः। १ पिङ्गलापत्यक्रे छातसमूह। यह बहुवचनान्त है। २ उपनिपदुमेद। ३ पिङ्गलकत छन्दोशास्त्र। पैङ्गलोदायनि (सं० पु० स्त्री०) पैङ्गलोदायनस्यापत्यं इञ् । १ प्राच्यभव नामक ऋषिके गोतापत्य । २ उतके युवा भपत्य । पैङ्गब्य (सं॰ पु॰ स्त्री॰) पिङ्गब्रस्य गोतापत्यं गर्गादित्वात् यञ्। १ पिङ्गल ऋषिका गोतापत्य । (क्की॰) २ पिङ्गल-कृत छन्दोप्रनथ। (ति०) ३ पिङ्गलवर्णयुक्त। पैङ्गाक्षीपुत (सं० पु०) ऋपिमेद । पैङ्गि (सं० पु० स्त्रो०) विङ्गस्यापत्यमित्र्। पिङ्गस्रपिका पैङ्गिन् (सं० पु०) पिङ्गेन ऋषिणा प्रोक्तः कल्पः इति। पिङ्गऋपिप्रोक्त कल्पसूत । पैङ्य (सं॰ पु॰) पिङ्ग-वाहुळकात् अवत्ये यम्। पिङ्ग ऋषिके पुत, ये गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि थे। पैच्छित्य (सं॰ ह्यी॰) पिच्छिलस्येदं अण् । पिच्छिल सम्बन्धी, पिच्छिळता। पैज (हि॰ खी॰) १ प्रतिद्वन्द्विता, किसीने विरोधमें किया हुआ हट, होड़, जिद्। २ पण, प्रतिका, टेक। (पु०) ३ पैतरा। पैजनी (हिं० स्त्री०) पेंजनी देखी। पैजवन (सं॰ पु॰) पिजवनस्यापत्यं झण्। नृपभेद, Vol. XIV 108

सुदास राजा। इस शब्दका पाठा तर पैयवन और प्रेय-वन भी है। सुदास शब्द देखी। पैजा (हिं पुं) पायना, छोहेका कड़ा। यह किवाड़के छेद्में इसिंखिये पहनाया रहता है जिसमें किवाड़ उतर न सके। वैज्ञामा (हिं॰ पु॰) वायजामा देखी । पैजार (फा॰ पु॰) जूता, पनही । पैजूलायन : सं॰ पु॰) पजूलस्य ऋषेः गोतापत्यं अभ्वादि-त्वान् फन्। पिज्ल ऋपिका गोलापत्य। पैञ्जूय (सं॰ पु॰) पिञ्जूये साधुः अण् । कर्णं, कान । पैटक (सं पु) पिटकस्यापत्यं (शिवादिभ्योऽण् । पा ८।१।११२) इति अण्। १ पिटकापत्य, पिटकी सन्तति। (ति०) २ बौद्धपिरकसम्बन्धीय । पैटकिक (सं० दि०) पिटकेन हरति (इग्श्युत्संगादिभ्य: । पा ४। ४१६५) इति उक्। पिटक द्वारा हरणकारी । पैटाक (सं॰ पु॰) पिटाक-शिवादित्वात् अपत्यार्थे अण् । पिटाकापत्य । पैड (हि॰ स्त्री॰) १ प्रवेश, घुसनेका भाव, दखल। २ गति, पहुंच, आना जाना । पैंडना (हि॰ कि॰. प्रवेश करना, प्रविष्ट होना, घुसना । पैठान—महाराष्ट्रके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद । यह गोदावरीके किनारे अवस्थित है। प्राचीन प्रन्थादिमें यह स्थान प्रतिष्ठानपुरी नामसे उविञ्जिति हुआ है। दिक्षणापथमें यह नगर एक समय वाणिज्य-केन्द्र था। पेरियुससे पता लगता है, कि यहांसे अकीक मस्तरादि महकच्छ वन्द्रमें छा कर दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते थे। चीनपरिवाजक यृपनचुवङ्गने इस नगरका ध्वंसावशेष देखा था। पैठाना (हिं० कि०) प्रवेश कराना, घुसाना। पैडार (हि॰ पु॰) १ प्रवेश, पैड । २ प्रवेशद्वार, दरवाजा । पैंडारी (हिं० स्त्री०) १ प्रवेश, पैंड। २ गति, पहुंच। पैठिक (सं पु॰) एक राक्षसका नाम। पैठी (हिं॰ स्त्री॰) वदला, एवज । पैटीनसि (सं० पु०) १ मुनिविशीय, एक स्मृतिकार। २ गोलप्रवर्त्तक ऋषिभेद्। पैड़िक (सं० ति०) पिड़का सम्यन्धीय।

पैड़ी (हिं० पु०) १ पौदर, वह स्थान जहां सिचाईके लिए जलाशयसे पानी ले कर ढालते हैं। २ सीढ़ी, वह जिस पर पैर रख कर ऊपर चढ़ें। ३ कुएं पर चरसा खींचने-वाले वैलोंके चलनेके लिए वना हुआ ढालवां रास्ता। पैएडपातिक (सं० ति०) भिक्षोपजीवी, भिक्षासे निर्वाह करनेवाला । पैएडायन (सं पु स्त्रो) पिएडऋषेगींतापत्यं नड़ादि-त्वात् फक्। पिएडऋपिका गोतापत्य। पैरिइक्य (सं० क्ली०) पिण्डं परिपण्डं भक्ष्यतयाऽस्त्यस्य ठन् ततो यक् च्यञ् वा। भिक्षोपजीवनः पैएडिन्य (सं॰ ह्यो॰) पिण्डं परिपण्डं भक्ष्यतयाऽस्त्य-स्येति पिएड-इन्, ततः ध्वञ् । भैक्षजीविका । पैएडा (सं० ति०) पिएडां भवः (कुर्वादिभ्यो गयः। पा ४।१।१५१) पिएडीमव । पैतदारव (सं० ति०) पीतदारोविकारः । (प्राणिरजतादिभ्यो-ऽङ_{् ।} पा ४०**४।१५**४) इति अञ्। पीतदारुका विकार। पैतरा (हिं॰ पु॰) १ तलवार चलाने या कुश्ती लड़नेमें घूम फिर कर पैर रखनेकी मुद्रा, वार करनेका ठाट। २ धूल पर पड़ा हुआ पदिचिह, पैरका निशान, खोज। पैतरावण (सं॰ पु॰) गोतप्रवर ऋपिमेद । पैतरी (हिं० स्त्रो०) रेशम फेरनेकी परेती। पैतला (हि॰ वि॰) छिछला, पायाव, उथला । पैतलाय (हि॰ वि॰) दलालको वोलीमें सतह । पैताना (हिं पु॰) पायताना देखी । पैतापुतीय (सं॰ ति॰) पितापुतसम्बन्धीय । पैतामह (सं॰ लि॰) पितामहस्येदं पितामह (तस्येदं। पा ४।३।१२•) इत्यण् । पितामह-संम्यन्धी । पैतामहिक (सं० ति०) पितामहादागतं (विधायोनियम्ब-न्धेभ्यो बुन्। पा ३।४।००) इति बुज्। पितामहसे आगंत, पितामहसे प्राप्त । पैतृक (सं० ति०) पितुरागतं पितुरिदं चेति, पितृ-ठञ्। पितृसम्बन्धी, पुरतैनी, पुरखींका। पैतृकमूमि (सं० स्त्री०) पैतृकी पितृसम्बन्धिनी भूमिः। पितृसम्बन्धि-स्थान, पुरतैनी। पितृपुरुप जिस स्थानमें वास करते हैं, उसे पैतृक भूमि कहते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें

लिखा है, कि पैतृकभूमि तीर्थं बहुप हैं। तोर्थमें वासं करनेसे जो फल मिलता है, पैतृकभूमिका वास भी वैसा हो फलदायक है। पैतृकभूमिमें यदि पितरों के श्राह्मादि कार्य न किये जांय, तो सभी निष्फल होते हैं। पितृ और देवकार्य पैतृकभूमिमें करना हो सर्वतोमावसे विधेय है। क्योंकि, इस स्थानमें वे सब कार्य सम्पूर्ण फलदायक हैं। पुत्न, पौत, कलत यहां तक कि प्राणसे भी पैतृकभूमि श्रेष्ठ है। पैतृकभूमिस्थित पुष्करिणी स्नान तीर्थस्नान तुल्य है। पैतृकभूमिमें मरनेसे तीर्थ-मृत्युका फल मिलता है। पैतृकभूमिको जन्मभूमि भी कहते हैं, इसलिये कहावत है,—

"जननी जनमभूमिश्च खर्गादपि गरीयसी।" पैतृमत्य (सं० ति०) पितृमत्यां अनुद्वायां कन्यायां भवः कुर्वादित्वात् ण्य। (ग ४।१।१३२) अनुद्धा कत्यासे जात, अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न । पैतृमेधिक (सं० ति०) पितृमेधसम्बन्धीय। पैतृयज्ञिक (सं• ति•) पितृयज्ञसम्बन्धीय । पैतृयज्ञीय (सं॰ ति॰) पितृयज्ञं-छ। पितृयज्ञाङ्गभृत, पितृयज्ञसम्बन्धीय। पैतृष्वस्तीय (सं॰ पु॰ स्नो॰) पिनृष्वसुरपत्यमिति (पितृष-सुर्छण्। पा ४११।१३२) इति छण् ततः वत्वम्। पितु-भगिनीपुत, बुआका लड्का। पैतृष्वस्रेय (सं० पु० स्त्रो•) पितुः ससुरपत्यं (इक्डिपः । पा ४।१।१३३) इति ज्ञापकत्वात् ढक् अन्त्यलोपश्च ततः पत्वम् । पितृष्वसाका अपत्य, बुआकी लड़की या लड़का । पैत (सं श्रिक) पित्तादागतं पित्तख्य शमनं कोपनं वेति पित्त-अण् । १ पित्तज्ञ, पित्तसे उत्पन्न । २ पित्तसम्बन्धी । (पु॰) ३ तिलक्षुप, तिलका पेड़ । पैत्तल (सं॰ ति॰) पित्तल-र्थण् । पित्तलसम्बन्धी । इति पित्त-छन् । पैत्तिक (सं॰ बि॰) पित्तेन निवृतः पित्तज, पित्तसम्बन्धी, पित्तसे उत्पन्न। पैत्तिको (सं ॰ स्त्री॰) योनिव्यापद्दविशेप । पैल (सं॰ ऋी॰) पितुरिद्मिति पितु-अण् । १ पितृतीथ, अ'गूठे और तर्जनीके वीचका भाग। २ पितृसम्बन्धी श्राद्धादि । पैताहोरात (सं० पु०) पैतः अहोरातः। पितृलोकका

दिवारात । एक महोनेमें पितृअहोरात होता है। पैता (सं० ति०) पितृसम्बन्धोय । पैथला (हि॰ वि॰) छिछला, पायाव, उथला । पैदर (हिं पुर) पैदल देखी। पैदल (हि॰ पु॰) १ पदाति, पैदल, सिपाही । २ पाद-चारण, पाँव पाँव चलना । ३ शतरंजमें नीचे द्रजेकी गोटी। यह सीधा चलती और आड़ा मारती है। (वि०) ४ पांच पांच चलनेवाला, जो सवारी आदि पर न हो। (कि॰ वि॰) ५ पैरोंसे, सवारी आदि पर नहीं। पैदा (फा• वि॰) १ आविभू त, प्रकट, उपस्थित। २ प्रस्त, जन्मा हुआ। ३ अजित, कमाया हुआ। पैदाइश (फा॰ स्त्री॰) उत्पत्ति, जन्म। पैदाइशी (फा॰ वि॰) १ प्राकृतिक, स्वाभाविक। २ जन्मका, वहुत पुराना । पैदाबार (फा॰ स्त्रो॰ उपज्ञ, फसल । पैदावारी (हिं स्त्री०) पैदावार देखो । पैद्व (सं॰ पु॰ स्त्री॰) अभ्व, घोडा । पैन (हि॰ पु॰) १ पनाला । २ नाली । पैनद्रक (सं॰ ति॰) पिनद्र-चतुरथ्यां वराहादित्वात् । फक्। पिनद्ध समीपादि। पैना (हि॰ पु॰) १ हलवाहोंकी वैल हांकनेकी छोटी छड़ी। २ अंकुश, लोहेका तुकीला छड। ३ घात गलानेका मसाला। ४ पैन देखो। (वि०) ५ तीक्ष्ण, चोखा, धारदार, तेज 🏻 पैनाक (सं ० त्रि०) पिनाकसम्बन्धी । पैनाना (हि॰ क्रि॰) छुरी आदिकी धारको रगड़ कर पैनी करना, चोखा करना। पैन्हना (हिं क्रिं) पहनमा देखो । पैप्पलाद (सं ॰ पु॰) पिप्पलादेन ऋषिणा प्रोक्तमधीयते अण् । १ पिप्पलादऋषि-प्रोक्त शास्त्र अध्ययनकारी लोक-समूह। २ तदर्थंवेसा। यह शब्द बहुवचनान्त है। पैप्पलादक (सं • ति ॰) पिप्पलादके शिक्षासम्बन्धो । पैप्पलादि (सं• पु॰) पिप्पलादस्य ऋचेरपत्यं इञ्। पिप्पलादऋषिका अपत्य । ये गोतप्रवर्त्तक ऋपि थे । पैमक (हिं० स्त्री॰) कलावत्तकी बनी हुई एक प्रकारकी सुनहरी गोट या लेस । इसे अङ्गरके टोपी आदिके किनारे पर लगाते हैं।

पैमाइश (फा॰ छो॰) मापनेकी किया या भाव, माप।
पैमाना (फा॰ पु॰) मानद्र ह, मापनेका औजार, वह
वस्तु जिससे कोई वस्तु मापी जाय।
पैमाल (हिं॰ वि॰) पामाछ देखो।
पैयान—पैजवन देखो।
पैयां (हिं॰ छो॰) पैर, पांत्र।
पैयां (हिं॰ पु॰) १ दीन हीन, खुम्ख। २ विना सतका
अनाजका दाना, खोखला दाना, मारा हुआ दाना। ३
पूर्व वङ्गाल, चट्टमाम और ब्रह्ममें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका वांस। इसमें वड़े वड़े फल लगते
हें जो खानेके काममें आते हैं। वंगलोचन भी इस

पैयूक्ष (सं ० ति०) पीयृक्षायाः विकारः (तालादिभ्योऽग । पा भाशाश्यर) इति विकारार्थे अण्। पीयृक्षावृक्षका विकार ।

वांसमें वहुत निकलता है। यह वांस वहुत सीभा जाता

है और गांठें भी इसमें दूर दूर पर होती हैं। चट्टशा में

इसकी चटाइयां वहुत वनती हैं। यह घरोंमें भी लगाया

जाता है। इसे मूलीमतंगा और तराईका वाँस भी

वैयूप (सं • क्ली॰) पीयूष ।

कहते हैं।

पैर (हि॰ पु॰) १ गतिसाधक अङ्ग, चरण, पांव। २ धूल आदि पर पड़ा हुआ पैरका चिह, पैरका निशान। ३ खिल्यान, वह स्थान जहां खेतसे कर कर आई हुई फसल दाना भाड़नेके लिये फैलाई जाती है। ४ खेतसे कर कर आप डंडल सहित अनाजका अराला। ५ प्रदररोग।

पैरउठान (हिं पु •) कुश्तीका एक पेच । इसमें वायां पैर आगे वढ़ा कर वाएं हाथसे जोड़की छातो पर धका देते और उसी समय दहिने हाथसे उसके पैरके घुटनेको उठा कर और वायां पैर उसके दहने पैरमें अड़ा कर फुरतीसे उसे अपनी ओर खोंच कर चित कर देते हैं। पैरगाड़ी (हिं • स्त्री •) वह हलकी गाड़ी जो वैठे वैठे पैर दवानेसे चलती है।

पैरना (हिं० किं०) पानीके ऊपर हाथ पैर चलाते हुए जाना, तैरना ।

पैरवी (फा॰ स्त्री॰) १ आज्ञापालन । २ पक्षका मण्डन,

किसी वातके अनुकूछ प्रयत्न, कोशिश, दौड़धूप । ३ अनु गमन, अनुसरण, कदम वा कदम बछना । पैरवीकार (फा॰ पु॰) पैरवी करनेवाला । पैरा (हिं॰ पु॰) १ पड़े हुए चरण, आया हुआ कदम, पीरा । २ पैरमें पहननेका एक प्रकारका कड़ा । ३ किसी ऊंची जगह पर चढ़नेके लिये लकड़ियोंके वल्ले आदि रख कर वनाया हुआ रास्ता । ४ एक प्रकारका की दिखणी कपास । इसके पेड़ बहुत दिनों तक रहते हैं और उंठल लाल रंगके होते हैं । रई इसकी वहुत साफ नहीं होती, उसमें कुछ ललाईपन या भूरापन होता है । यह कपास मध्यभारतसे ले कर मन्द्राज तक होती है । ५ लकडीका खाना जिसमें सोनार अपने कांटे वाट रखता है । ६ याल देखो ।

पैरा (अ' ॰ पु॰) लेखका उतना अंश जितनेमें कोई एक वात पूरी हो जाय और जो जगह छोड़ कर अलग किया गया हो। जिस पंक्ति पर एक पैरा समाप्त होता है, दूसरा पैरा उन प'किको छोड़ कर और किनारेसे कुछ हटा कर आरम्भ किया है।

'पैराई (हिं० स्त्री० १ टैरनेकी कला। २ पैरने या तैरने-की किया या भाय। ३ तैरनेकी मजदूरी।

पैराक (हि॰ पु॰) तैराक, तैरनेवाला।

पैराग्राफ (अं॰ पु॰) वेरा देखी।

पैराना (हि॰ क्रि॰) तैराना, पैरनेका काम कराना ।

पैराव (हिं० पु॰) डुवाव, इतना पानी जिसे केवल तैर ही कर पार कर सर्वे ।

पैराशूट (अं॰ पु॰) एक वहुत वड़ा छाता। इसके सहारे वैलून (गुन्वारा) घोरे घीरे जमीन पर उतरता और गिर कर टूटता फूटता नहीं।

पैरी (हिं ॰ पु॰) १ पैरमें पहननेका एक चौड़ा गहना। यह फूल या कांसेका बना होता है और इसे नोच जाति की स्त्रियां पहनता हैं। २ अनाजके सूखे पौघों पर वैल चला कर और इंडा मार कर दाना काड़नेकी किया दांयनेका काम, दवांई। ४ सीढ़ी, पैड़ी। ५ मेड़ोंके वाल कतरनेका काम।

पैरोकार (हिं ॰ पु॰) पैरवीकार देखो । रैंळ (सं॰ पु॰) पीलार्या पीलनाम्न्यां कियामपत्वं

(पीडाया वा। पा ४।१।११८) इति अपत्यार्थे अण्। १ पीडाका अपत्य। २ एक ब्राह्मण। इन्होंने चेदव्यासके संहिताविभागं करने पर ऋग्वेदका अध्ययन किया था। पैडागर्भ (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। ये जिस आश्रममें रहते थे, वह तीर्थस्थानमें गिना जाता है।

२ युधिर्छिरके कुछपुरोहित धीम्यके पुत्र । ये राज-स्ययक्तमें होतृपद् पर नियोजित थे । ब्रह्मचैवर्षके मतसे ये निदान-स्वियता माने जाते हैं ।

पैलगी (हि॰ स्त्री॰) अभिवन्दन, प्रणाम, पालागन । पैलव (सं॰ बि॰) पीलौ दीयते कार्य वा न्युप्रादित्यात् अण् । पीलसम्बन्धी, पीलुके पेड़का ।

पैला (हिं॰ पु॰) १ चार सेर नापका वरनन, चार सेर अनाज नापनेकी डलिया। २ नॉंट्ने आकरका मिट्टीका वरतन जिससे दूध दही ढांकते हैं, वड़ी पैली।

पैलादि (सं० पु०) पैल आदि करके पाणिन्युक शब्दगण भेद । गण यथा—पैल, शालङ्कि, सात्यकि, सात्यङ्कामि, राहित, रावणि, औदञ्ची, औदन्न भी, औदमेदि; औदमिज, औदश्कि, दैवस्थानि, पैकुलोदायनि, राहस्रति, भौलिङ्गि-राणि, औदन्यि, औद्राहमानि, औज्जिहानि, औदशुदि । पैली (हिं० स्त्रों०) १ अनाज या तेल रखनेका मिट्टीका

चौड़ा वरतन । २ मिट्टीका एक वरतन जिससे अनाज या तेल नापा जाता है।

पैलुमूछ (सं० त्रि०) पीलुमूछे दीयते काय वा (खुधादेग्ये-ऽण_{् ।} या ५।१।६७) पीलुमूळमें देने योग्य ।

पैलुवहक (सं० ति०) पिलुवह भवः (प्रम्थपुरवहानाव।
पा ४।२।१२२) इति बुञ्। पीलू वह जलादि भव।
पैवंद (फा० पु०) सम्बन्धी, इप्ट मित, मेलजोलका आदमी।
२ कपड़े आदिका वह छोटा टुकड़ा जो किसी वहं
कपड़े आदिका छेद बंद करनेके लिए जोड़ कर सी दिया
जाता है, चकती, जोड़, धिगली। ३ किसी पेड़की टहनी
काट कर उसी जातिके दूसरे पेड़की टहनीमें जोड़ कर
वांधना जिससे फल वह जायँ या उनमें नया साह आ

जाय ।

पैवंदी (फा॰ वि॰) १ वर्णसङ्कर, दोगला। २ कलमी,
पैवंद लगा कर पैदा किया हुआ। (पु॰) ३ बड़ा आँड शफ़तालू। पैत्रस्त (फा॰ वि॰) जो भीतर घुस कर सब भागोंमें फैल गया हो, समाया हुआ, सोखा हुआ।

पैशलय (सं० हो) पेशल-प्यम् । पेशलता, कोमलता । पैशलय (सं० हो) पेशल-प्यम् । पेशलता, कोमलता । पैशाच (सं० पु०) पिशाचस्यायमिति पिशाच-अण् । १ अष्टम प्रकार विवाहके अन्तर्गत् विवाहभेद, आठ प्रकार-के विवाहमेंसे एक । मनुमें लिखा है—

"सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रही यतोषगच्छति । स पापिग्रो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः ॥" (मनु ३।३४)

सीई हुई कन्याका हरण करके अध्या मदोन्मत्त कन्या-को फुसला कर उसके साथ विवाह करनेसे वह पैजाच चियाह कहलाता है। आठ प्रकारके विवाहोंमेंसे यह , विवाह अत्यन्त पापजनक और अध्या है। याश्चयत्क्यने लिखा है,—

. "राक्षसी युद्धहरणात् पैशाचः कन्यका छलात्।" (याजवल्य ११६१)

छलक्रमसे अथवा कन्याका निद्रादि अवस्थामें हरण कर उसके साथ विवाह करनेका नाम पैशाच विवाह है। २ पिशाच। ३ आयुधजीविसङ्घमेद, एक आयुध-जीवी सङ्घका नाम, एक लङ्गका दल। ४ हारितोक्त दानमेद। स्त्रियों कीय्। ५ प्राष्ट्रतभाषामेद। ६ पौष्ठाचका देखो। (ति०) ७ पिशाच सम्बन्धी, पिशाचका बनाया हुआ। ८ पिशाच देशका।

पैशासकाय (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त राजस कायके अन्तर्गत कायविशेष, सुश्रुतमें कहे हुए कार्यों (शरीरीं)-मेंसे एक जो राजस कायके अन्तर्गत है।

> "उच्छिष्टाहारता तैष्ट्ण्यं साहसप्रियता तथा। स्त्रीलीलुपत्यं नैलंड्जं पैशाचकायलक्षणम् ॥" (सुश्रुत २।४। अ॰)

जूटा बानेकी रुचि, सभावका तीसापन, दुःसाहस, स्त्रीलोलुपता और निर्लजता ये सव पैशाचकायके लक्षण हैं।

पैशाचविवाह (सं पु॰) वैशाय देखो ।

पैशाचिक (सं॰ ति॰) वीमत्स, पिशाचसम्बन्धीय, पिशाचोंका, राक्षसी।

पैशाची (सं० स्त्रो०) प्राकृत भाषाभेद, एक प्रकारकी प्राकृत भाषा।

Vol. XIV. 109

पैशुन (सं• क्ली॰) पिशुनस्य भावः कमे वा (हायनान्त-बुनाह्मकोऽण्। पा पारारहरू) इति अण्। पिशुनका भाव वा कमें, पिशुनता, चुगलसोरी।

पैशुनिक (सं • ति •) पश्चात्से निन्दाकारी, पीछे निन्दा या चुगली करनेवाला।

पैशुन्य (सं • हो •) पिशुनस्य भावः पिशुन (गुणवचननामाणा-दिभ्यः कर्मण च । पा ४।१।१२४) इति प्यञ् । पिशुनता, खलता, खुगळकोरी । यह दश प्रकारके पापके अन्तर्गत पाङ्मय पाप है।

> "पैशुन्यं सांहसं द्रोह ईर्यास्यार्थदृषणम् । वाग्द्एडजञ्च पारुत्यं कोधजोऽपि गणोष्टकः ॥" (तिथितस्व)

पैष्ट (सं • ति ०) पिष्टस्येदमिति पिष्ट-अण्। पिष्टसम्बन्धी।
पैष्टिक (सं • इही ०) पिष्ट उत्र। १ पिष्टसमूह । २ मच-विशेष, जी, चावल आदि अझोंको सड़ा कर बनाया हुआ मद्य।

पैद्यी (सं • स्त्री०) पिष्टेन निवृत्तेंति पिष्ट-अण्-ङीप् । विविध धान्य विकार-जात अम्ल मद्य, एक प्रकारकी शराब जी जौ जावल आदि अश्लोंको सड़ा कर वनाई जाती है। इसका गुण--कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, मधुर, अतिदीपन, वातनाशक, कफवर्ज क, ईषत् पित्तकर और मोहजनक है।

"गौड़ी माध्वी तथा पैद्धी निर्यासा कथितापरा। इति चतुर्विधा होयाः सुरास्तासां प्रमेदकाः॥" (हारीत ११ अ०)

यह पैड़ी मद्यसेवन शास्त्रमें निपिद्ध बतलाया गया है। जो यह मद्य पान करते हैं, उनकी गिनती महापातकीमें होती है।

"त्रह्मा च सुरापश्च स्त्रेयी च गुरुतल्पगः। यते सर्वे पृथक् हे या महापातिकिनी नराः॥"

(मनु ध२३५)

पैसना (हि॰ कि॰) प्रवेश करना, पैडना, घुसना। पैसरा (हि॰ पु॰) ब्यापार, प्रयत्न, जंजाल, भंभट, वलेड़ा। वैसा (हिं॰ पु॰) १ तीन पाईका सिका, पाव बाना, तांबेका सबसे अधिक चलता सिका। यह आनेका चौथा और रुपयेका चौसडवां भाग होता है। २ रुपवा, पैसा, बन, बौलत। पैसार (हि॰ पु॰) प्रवेशद्वार, भीतर जानेका मार्ग, पैठ है पैसिजरगाड़ी (हि॰ स्त्री॰) मुस्एफिरोंको छे जानेवासी रेलगाड़ी।

पैसुकायन (सं० पु०) गोत्तप्रवर ऋषिभेद ।

पैसेवाला (हि॰ पु॰) १ धनवान, धनी, मालदार। २ सराफ, पैसा वेचनेवाला।

पैहरा (हिं० पु॰) पैकर, विनिया, कपासके खेतमें रूई इकड़ी करनेवाला।

पैहारी (हिं० वि०) केवल दूध पी कर रहनेवाला (साधु) । पों (हिं० ल्ली०) १ अधीवायु निकलनेका शब्द । २ लम्बी नाल या भोंपेकी फूं कनेसे निकला हुआ शब्द । ३ लम्बी नालके आकारका वाजा जिसमें फूं कनेसे 'पों' शब्द निकलता है, भोंपा।

पोंकना (हिं० किं०) १ अत्यन्त भयभीत होना, वहुत डरना । २ पतला पाखान फिरना । (पु०) ३ पतला दस्त होनेका रोग ।

पोंका (हिं॰ पु॰) वड़ा फर्तिगा जो पौथों पर उड़ता फिरता है, वोंका।

पोंगली (हिं० स्त्री०) १ वह निरया जो दोवारा चाक पर-से वना कर उतारी गई हो । २ पोंगी देखी ।

पोंगा (हि॰ पु॰) १ कागज पत रखनेके लिए दीन आदिकी वनी हुई लम्बी खोखली नली, चोंगा। २ वांसका खोखला, पीर, वांसकी नली। ३ पांचकी नली। (वि॰) ४ युद्धिहीन, मूर्ब, अहमक। ५ पोला, खोखला।

पोंगी (हिं० स्त्री०) १ चार या पांच अंगुलकी वांसकी पोली नली। यह वांसके वीजनेकी डांडीमें लगी होती है। हांकनेवाले इसे पकड़ कर वीजनेकी घुमाते हैं। २ छोटी पोली नली। ३ ऊंख वा वांस आदिमें दो गांठीं के वीचका प्रदेश वा भाग। ४ नरकुलकी एक नली जिस पर जुलाहे तागा लपेट कर ताना या भरनी करते हैं। पोंछ (हिं० स्त्री०) पृंख देही।

पोंछन (हिं॰ पु॰) किसी लगी हुई चीजका वह वचा हुआ अंश जो पोंछनेसे निकले।

पो'छता (हिं० कि०) १ लगो हुई गोली वस्तुको जोरसे हाथ या कपड़ा आदि फेर कर उठाना या हटाना। २ पड़ी हुई गर्द, मैल आदिको हाथ या कपड़ा जोरसे फेर

कर दूर करना, रगड़ कर साफ करना। जो वस्तु लगी या पड़ी हो तथा जिस पर कोई वस्तु लगी या पड़ी हो अर्थात् आधार और आधेय दोनों इस कियाके कर्म होते हैं। ऋटकेसे साफ करनेको काड़ना और रगड़ कर साफ करनेको पींलना कहते हैं। (पु०) ३ पोंलनेका कपड़ा, जो पोंलनेके लिये हो।

पोंटा (हि॰ पु॰) नाकका यल।

पोंटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको छोटो मछली।

पोआ (हि॰ पु॰) सांपका बचा, संपोला ।

पोआना (हिं किं) १ पोनेका काम करना। २ गीले आटेकी लोईकी गोल रोटीके रूपमें बना बना कर पकाने वालेकी सेंकनेके लिये देना।

ेपोइया (हिं० स्त्री०) घोड़ें की दो दो पैर फेंकते हुए दौड़, सरपट चाल ।

पोइस (हिं० स्त्री०) १ सरपट, दौड़। (अथ०) २ देखो, हटो, वचो। गधे, खद्धर आदि छै कर चछनेवाले, छोगी-को छू जानेसे बचानेके लिये 'पोश' 'पोस' अथवा 'पोश्श' 'भोइस' पुकारते चलते हैं।

पोई (हिं क्री) १ एक छता जिसकी पत्तियां पानकी-सी गोछ पर दछकी मोटो होती हैं। इसमें छोटे छोटे फलोंकी गुच्छे छगते हैं जिन्हें पक्षने पर चिड़िया खाती हैं। पोई दो प्रकारको होती है – एक काले डंउलकी, दूसरी हरें डंउलकी। वरसातमें यह वहुत उपजती है। पिचयोंका लोग साग खाते हैं। एक जंगलो पोई भी होती है जिसकी पत्तियां लम्बोत्तरी होती हैं। इसका साग अच्छा नहीं होता। पोईकी छतामें रेशे होते हैं जो रस्सी वटनेके काम में आते हैं। वैधकमें पोई गरम, रुचिकारक, कफवर्द क और निदाजनक मानी गई है। इसके संस्कृत पर्याय उपोदकी, कलम्बी, पिच्छिला, मोहिनी, विशाला, मद्याका और पृतिका हैं। २ अंकुर, नरम-कल्ला। ३ ईखका कल्ला, ईखकी आंख। ४ गेंद्रं, ज्वार, वाजरे आदिका नरम और छोटा पौधा, जई। गन्नेका पोर।

पोकना (हिं० कि॰) १ महुएका पका हुआ फल।२ पोकना देखो।

पोकरण (पोकर्ण)—राजपूतानेके योघपुर राज्यानार्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २६ ५५ उ० और देशा० 9? ५८ प्०के मध्य, पुलादासे जयशालमीर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। एक समय यह नगर विशेष समुद्धशाली था, अभी इसका अधिकांश श्रीहान हो गया है। प्राचीन नगरके नाम पर हो उसकी वगलमें वर्तमान नगर स्थापित हुआ है। एक जैन-मिन्दर और यहांके राजवंशधरोंके मितिष्टित कीर्त्तिस्तम्मादि इस पुनतन परित्यक नगरकी अस्य कीर्ति है। नगर चारों औरसे मस्तर-प्राचीर द्वारा परिवेष्टित है। राजपूतानेके अन्यान्य नगर और सिन्धुपदेशके साथ यहांका खूब कारवार चलता है। योधपुर राजवंशके एक व्यक्ति यहांके प्रधान पद पर अधिष्टित हैं।

. पोकणी—युक्तप्रदेशवासी ब्राह्मणश्रेणीमेर । इनकी उत्पत्ति-के सम्बन्धमें बहुतसी वातें प्रचलित हैं। कहना है, कि 'पुष्पक्रणें' नामके अपसंशसे उनका पोकर्ण नाम पड़ा है। इस नामकरणंके सम्बन्धमें इन लोगोंके मध्य एक गर्य भी प्रचलित हैं,—ये लोग वैष्णव और छत्त्रीकी पूजा करते थे। एक बार पार्वतीने इन लोगोंकी मांस खाने कहा, किन्तु इन्होंने अखीकार किया। इस पर पार्वतीने ऋद ही कर इन्हें शाप दिया और ये छोग जय-शालमीरको छोड़ कर सिन्धु, कच्छ, मूलतान और पद्मान-के नाना स्थानों में जा कर वस गये। अन्यान्य जातियों-का कहना है, कि ब्राह्मणके औरस और मोहिनी नामक धीवर कन्याके गर्मसे इनकी उत्पत्ति है । इन छोगींमें उपनयनप्रधा प्रचलित है। विवाहकालमें अथवा किसी पुण्यतीर्थमें यहसामान्य विधिविहित कर्मके वाद उपवीत दान करना होता है। कोई सुत्राह्मण उनके साथ भोजन नहीं करता। इनके मध्य सगीवमें विवाह निपिद्ध है। जातवालकके छठें दिन (पष्टीपूजाके दिन) गृहस्थ-रमणियां गान करती हुई वालकके ननिहाल जाती भौर बहांसे एक मिट्टीका बोड़ा है आती हैं। विवाह-कालमें पुरुषगण माचते और खियां असील गान करती हैं। जिस कुडारसे उन्होंने पुष्करका खनन किया था, अव भी पञ्जाववासी उसकी पूजा करते हैं। राज-पूतानावासी भाटियारों के ये ही पक्तमात ब्राह्मण हैं। सभा प्रकारके नित्यकर्म इनके द्वारा साधित होते हैं। जात्यंश और सामाजिक आचार-व्यवहारमें वे छोन ,

सारखब त्राह्मणोंको अपेक्षा हैय हैं। सिन्धुप्रदेशके सार-खताँके साथ इनका प्रचडन देखा जाता हैं। पोकणे छोग प्रायः निरामिपमोजी हैं। हिन्दुऑको धर्मकर्मकी ग्रिक्षा देना ही इनका प्रधान कार्य है। ये छोग मस्तक पर उच्चीप धारण करते हैं। सिन्धुप्रदेशके पोकणे अपनी जातिकी गौरववृद्धिके छिपे कठोर आचरणसे दिन विताते हैं। एक्शण देखें।

पोकल (हि॰ वि॰) १ तस्त्रपूर्य, निःसार । २ कमजोर, नाजुक, पुलपुला । ३ पोला, खोखला ।

पोस (हिं॰ पु॰) पालने पोसनेका सम्बन्ध या लगाव पोस ।

पोखनरी (हिं॰ स्त्री॰) हरकीके बीचका गंड्डा जिसमें नरी लगा कर जुलाहे कपड़ा उनते हैं।

पोखना (हिं० किं०) १ यहकना, पोखाना, गाय मैंस आदिका, तथा देनेका समय समीप आने पर, हाथ पैर आदिका ढीछा पड़ जाना और धनका सृज आमा। २ पाछना, पोसना।

पोसर (हिं पु॰) १ तालाव, पोसरा । २ पटेवाजीमें एक चार जो प्रतिपक्षीकी कमर पर इहनी और होता है।

पोसरा (हिं पु॰) वह जलाश्य जो सोद कर वमाया गया हो, तालाव।

पोबराज (हिं go) युक्राज देखी।

पोबरी (हिं स्त्री) छोटा पोबरा, तहैया।

पोगएड (सं पु) पुनातीति प्-विच् पौ: शुद्धो गएडी यस्य । १ दश वर्षीय वालक, पांचसे दश वर्ष तककी अवस्थाका वालक । कुछ लोग पांचसे पर्द्रह वर्ष तक पोगएड मानते हैं । पौ: गएड इस पक्रदेशोऽस्य । २ अपो-गएड । ३ समावतः न्यूनाधिकाङ्ग, वह जिसका कोई अंग लोटा, वड़ा या अधिक हो । उन्नीस या इक्कीस उंगिलयां होने अथवा किसो अङ्गृकी न्यूनता वा अधिकता रहनेसे उसे पोगएड कहते हैं ।

पोगिर्ह्या—पृष्ट्वम-चालुम्यराज विनयादित्यके अश्रीन पक्र सेन्द्रकर्वशीय सामन्तराज ।

पोङ्गरु दक्षिण भारतमें हिन्दू द्वारा अनुष्ठित प्वॉटसव भेद । पौपमासमें जब स्पेद्देव मकरसंक्रान्तिकी और अप्र-सर होते हैं, तब उसो मकरसंक्रान्तिसे यह उत्सव शुक होता है। पोच (हिं० वि०: १ श्लीण, अशक्त, हीन। २ निरुष्ट, श्रुद्र, तुच्छ, नीच।

पोचारा (हिं पु॰) पुनास देखी ।

पोची (हिं० स्त्री॰) निचाई, बुराई, हेटापन।

पोछना (हिं० क्रि०) वों छना देखी।

पोट (सं॰ पु॰) पुटत्यत्रेति पुट-संग्लेषे आधारे द्यम् । वेश्म, घरकी नीवै । पुट रहेपे घञ् । २ संग्रहेप । ३ स्पर्श, छूना । ४ मेल, मिलान ।

पोट (हिं स्त्री) १ पोटली, मोटरी, बुकचा। २ मुर्देके ऊपरकी चादर, कृफनके ऊपरका कपड़ा। ३ पुस्तकके पन्नोंकी वह जगह जहांसे जुज़बंदी या सिलाई होती है। पोरगल (सं॰ पु॰) पोरेन संश्लेषेण गलतीति गल-अच् । १ नरसळ, नरकट। २ काश, कांस। ३ मत्स्य, मछळी। ४ बैकरञ्ज-सर्व भेद, एक प्रकारका सांप ।

पोटना (हि॰ कि॰) १ पंजेमें करना, फुसलाना, हथियाना, वातमें लाना । २ वटीरना, समेटना ।

पोडळ —तिव्यतको राजधानी लासानगरीका विख्यात सङ्घाराम ।

पोटरी (हिं० स्त्री०) वोदबी देखी।

पोटलक (सं की) पोटेन लीयते ली-ड, खार्थे-क। पोढ़ाना (हिं कि) १ दूढ़ होना, मजबूत होना। संश्लिप्ट बस्त्रादि, पोटली, गठरी।

पोटला--बौद्धप्रन्थवर्णित एक प्राचीन नगर और बन्दर । यह नगर सिन्धु नदी-मुहानास्थित द्वीपांशमें अवस्थित था। शाक्यगण कपिलवस्तुमें आ कर वास करनेके पहले इसी स्थानमें रहते थे।

पोटला (हि॰ पु॰) बड़ी गठरी।

पोटलो (हिं०स्त्री॰) छोटी गठरो, छोटा वकुचा।

पोटा (सं॰ स्त्रो॰) पुटति स्त्रीपुरुषखरूपं संक्ष्रिण्यतीति पुर-अच् टाव् च । १ पुंलक्षणस्त्री, वह स्त्री जिसमें पुरुष-के से लक्षण हों। जिस स्त्रीकी दाढ़ी या मूं छके स्थान पर वाल हों, उसे पोटा कहते हैं । २ दासी । ३ घड़ियाल । पोटा (हिं॰ पु॰) १ उदराशय, पेटकी यैं**ली । २ सामर्ध्यं,** ं साहस, पित्ता । ३ समाई, औकात, विसात । ४ चिड़िया-का वचा जिसे पर न निकले हीं, गेदा। ५ आंखकी पलक | ६ उंगलीका छोर | ७ नाकका मल या फ्लेप्सा | पोटास (अं॰ पु॰ ः वह क्षार जो पहले जलाद हुए पौथों- }

की राखसे निकाला जाता था, पर अंव कुछ सनिज पदार्थोंसे प्राप्त होता है। पौघोंकी राखको पानीमें घोल-कर निधारते हैं, फिर उस निधरे हुए पानीको औटाते हैं जिससे क्षार गार्ढ़ों हो कर नीचे जम जाता है। चुकन्दर-की सीठी (चोनी निकालने पर वची हुई) और भेड़ींके ऊनसे भी पोटास निकलता है। शोरा, जवासार आदि पोटास ही कहाते हैं। पोटास औषध और शिल्पमें काम आता है।

पोटाहिका (सं॰ स्त्री॰) गुञ्जा।

पोटिक (रं • स्त्रो॰) पोटः संब्लेपीऽस्त्यस्पेति दन्। विस्फोटक ।

पोट्टलिका (सं स्त्री•) पोटलिका, पृथोदरादित्वात् साधुः। पोटली, गडरी।

पोट्टली (सं क्ली) पोटेन संश्लेपेण लीयते इति ली-इ, पृयोदरादित्वात् साधुः, ङोप्। पोट्टलिका, पोटली, गडरी। पोड़ील (सं• पु॰) अवसिर्प णीके जीवोत्तम मेद।

पोड़ (सं० पु०) पुड़तोति पुड़-उन्। कपालारिथतल, खोपड़ीका ऊपरी भाग ।

पोढ़ा (हिं० वि०) १ पुष्ट, दृढ़, मजबूत । २ कडोर, कडिन। २ पक्का पड़ना।

पोत (सं पु) पुनाति इति पू-(इसंति । ण ३।८६) इति तन् । १ वहित, नाव, जहाज । २ गृहस्थान, वरकी नींव । ३ वस्त्र, कपड़ा । ४ दशवयीय हस्ती, दश वर्षका हाथीका बचा। ५ प्रस्तरविशेष, एक प्रकारका पत्थर। ६ पशु पश्री आदिका छोटा वच्चा । 🧕 छोटा पौघा। ८ वह गर्मस्थ पिएड जिस पर फिल्लो न चढ़ी हो। ६ क्षवडेकी बुनावट।

पोत (हिं स्त्रो॰) १ माला या गुरियाका दाना। २ काँचकी गुरियाका दाना। यह सिन्न सिन्न रंगोंका होता है। इसका आकार कोदोंके दानेके वरावर देखा जाता है। निम्न जातिकी स्त्रियां इसे तागेमें ग्र्थ कर गलेमें पह-नतो हैं। शाभा वदानेके लिये लोग इसे छड़ी और नैवे आदि पर भो लपेटते हैं। (पु॰) ३ प्रवृत्ति, ढंग, ढब। ४ अवसर, बारी, दाँव। (फा॰ पु॰) ५ भूकर, जमीन-का लगान।

पीतक (सं० पु०) पीत इच कायित के-क, स्वार्थे क वा।
१ पोतपदार्थ। २ नागमेद, महाभारतके अनुसार एक
नागका नाम। ३ शिशु, तीन महीनेका वश्वा। ४ दश
वर्षका हाथी।

पोतकी (सं• स्त्री॰) पोतक-स्त्रियां ङीप्। १ उपोदकी, पोई नामकी छता। २ स्थामाकपक्षी।

पोतगाँव—मध्यप्रदेशके चाँदा जिलान्तर्गत एक सामन्त-राज्य। यह अक्षा १२० उ० और देशा । ८० ११ प् के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४ वर्गमील है। यहाँ विस्तृत शालवन है।

पोतनगर—युक्तप्रदेशमें प्रतापगढ़ जिलावासी जातिविशेष।
साधुभाषामें इनका नाम है 'पोतकार'। पोत या कांचकी
माला बनाना हो इनकी एकमात उपजीविका है। इसीसे
इनका नाम पोतगार पड़ा है। ये लोग अपनेको शित्रय
जातिके बतलाते हैं, किन्तु इनके ऐसे नीचवृत्ति प्रहण
और समाजच्युतिके सम्बन्धमें कोई भी जनश्रुति नहीं
मिलती। ये लोग यहोपवीत पहनते हैं और दूसरेको
सजातिमें घुसने नहीं देते। इनका आचार व्यवहार
उद्यश्रेणीके हिन्दू-सा है। कोई भी मछली मांस नहीं
खाते, सभी निरामिष हैं। अपनो जातिको लोड़ कर
और दूसरे किसीके साथ बैठ कर खान पान नहीं
करते हैं।

पोतज (सं॰ पु॰) पोतः सन् नतु डिम्बादिकप इति भावः, जायते जन-ड। कुञ्जरादि, हाथी या घोड़े का वह वसा जो आँवल या खेड़ीमें लिपटा हुआ अपनी माताके गर्भसे उत्पन्न हो।

पोतड़ा (हि॰ पु॰) वर्षोंके चूतड़ोंके नीचे रखनेका कपड़ा। गंतरा।

पोतदार (हिं पु॰) १ वह व्यक्ति जिसके पास लगान करका रुपया रखा जाय, खजानची। २ वह व्यक्ति जो खजानेमें रुपया परखनेका काम करता हो, परखी।

पोतधारिन (सं॰ पु॰) जहाजका अध्यक्ष, कर्णधार। पीतन-एक प्राचीन जनपद। (वैनस्पिद्धा॰ चरित १।९९) पोतन (हिं॰ पु॰) १ पवित, खच्छ, शुद्ध। २ पवित करनेवाला।

पोतनहर (हि॰ स्त्री॰) १ घर पोतनेके लिये मही घोल कर Vol XIV. 110 रखनेका वरतन । २ घर पोतनेवाली स्त्री । ३ अन्न, आँत, अँतडी ।

पोतन (हिं० किं०) १ किसी गोली पदार्थको दूसरे पदार्थे पर फैला कर लगाना, चुपड़ना । २ किसी स्थानको मटी, गोवर, चूने आदिसे लीपना । ३ किसी गीले या सूंबे पदार्थको किसी वस्तु पर ऐसा लगाना, कि वह उस पर जम जाय। (पू०) ४ पोतनेका कपड़ा, पोता।

पोतनायक (सं० पु०) पोतस्य नायकः। पोताध्यक्ष, जहाजका कप्तान, नावका मांभी।

पोतप्लव (सं॰ पु॰) पोतेन प्लवते प्ल-अच्। नौका द्वारा तारक, वह जो नावसे नदी पार करता हो।

पोतराजा—धारवारवासी जातिविशैय | इनकी उत्पत्ति-के सम्बन्धमें प्रवाद है, कि इस वंशके किसी पूर्वेपुरुपने ब्राह्मणवेशमें दयमव नाम्नी छन्मीदेवीकी अंशभृता किसी रमणीका पाणिग्रहण किया। दोनोंके सहवाससे पुत-सन्तनादि उत्पन्न हुईं। एक दिन उसने होलय पत्नीके अनु-रोधसे अपनी माताको स्वगृह छाया। किसी उत्सवमें दयमव अपने बंधुवांधवोंको मिष्टाझ-भोजन करा रही थीं, इसी समय माताने अपने पुतसे कहा, "बेटा! सच सच-कहो, महिपजिह्नाद्राध और इस मिष्टान्नमें कौन अधिक रुचिकर है" ? इस प्रकार द्यमवने नोच संसर्गेसे अपनेको प्रतारित, अपदस्य अपमानित समभ कर पहले अपने वाल वचोंको मार डाला, पीछे खामीकी हत्याके लिये आगे वढ़ीं। इस प्रकार महिपमर्दिनीने महिपरूपधारी खामीको मार कर अपना कोध शान्त किया। आखिर वासगृहको जला कर वे स्वर्गधामको चली गईं। तभीसे उस स्वामीके वंशधर 'पोतराजा' वा महिषके राजा कहलाने लगे।

पोतराजोंकी संख्या वहुत थोड़ी है। धारवार जिलेमें द्यमवके उद्देश्यसे एक मेळा ळगता है, जो आठ दिन तक रहता है। मेळेके समय पोतराजवंशधर आमन्त्रित हो कर नायकता करते हैं। मेळा आरम्भ होनेके वाद एक दिन कई एक भैंसे और वकरे विलक्षे ळिये लाये जाते हैं। भैंसे द्यमवके होळयवंशोय खामी और वकरे उसके वंशधरकपमें आम्यदेवीके सामने मारे जाते हैं। जो पोतराज उत्सवका नायक वनता है, वह नंगे हो कर एक वकरे पर वाधकी तरह फपटता है और अपने दांतोंसे

उसका कएड फाड़ कर रक्तपान करता हुआ उस मरे ककरेंको ग्रामकी निर्दिष्ट सीमा पर छे जाता है। मेलेके शेष दिन वह व्यक्ति अझेंलङ्ग अवस्थामें अपने मस्तकके ऊपर कुछ अन्त रख छेता और उसे छींटते हुए सारे ग्रामका प्रदक्षिण कर आता है। जाते समय चार कोनेमें चार वकरोंको विल देता है। इन सब कार्योमें जितने पशुओंकी विल होती है, उनमेंसे कुछ उसे प्राप्त होता है। इनका अन्यान्य आचार-व्यवहार होलयके साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है। होलय देखो।

पोतवणिज् (सं० पु०) पोतेन वणिक् । वहित द्वारा वाणिज्यकर्ता, वह जो नाव जहाज द्वारा वाणिज्य व्यवसाय करता है। पर्याय —सांयातिक, नौवाणिज्यकर, समुद्रयानचारी।

पोतसङ्ग (सं॰ पु॰) जहाज आदिका त्फानके समय समुद्रगर्भस्थ पर्वतसे टक्कर खा कर नष्ट होना।

पोतरक (सं० पु०) पोतल देखी।

पोतरक्ष (सं॰ पु॰) पोतं रक्षति रक्ष-अण् । केनिपातक, डांड या बह्रो जिससे नाव चल्राई जाती है।

पोतल-१ सिन्धुतीरवर्ती एक प्राचीन बन्दर । २ तिब्बत राजधानी लासा नगरोके दलै-लामाका आवास-स्थान । इसका दूसरा नाम पोतरक है।

पोतलक (सं॰ पु॰) पर्वतिविशेष, एक पहाड्का नाम । पोतलकिषय (सं॰ पु॰) पोतलकः पर्वतिविशेषः प्रियोऽस्य । युद्धविशेष ।

पोतला (हिं पु॰) तावे पर घो पोत कर से की हुई चपाती, परांठा।

पोतवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । यह वैजवाड़ासे ११ मील उत्तर-पश्चिममें अव-स्थित है। यहां फकीर-तक्य नामक स्तूपके ऊपर एक प्रस्तरफलक है जिसमें १०७६ शकमें उत्कीर्ण महामण्डले-ध्वर पोतराज-कन्या प्रोलग्मदेवीका एक अनुशासन देखा जाता है।

पोतवाह (सं॰ पु॰) पोतं नावं वहतीति वह-(कर्मण्या पा इ।२।१) इत्यण् । वहित्रवाहिक, मांकी, महाह । पोता (हिं॰ पु॰) १ पुतका पुल, बेटेका वेटा । २ यज्ञमें सोलह प्रधान ऋत्विजीमेंसे एक । ३ पवित्र वायु, हवा । 8 विष्णु । ५१५ या १६ अ'गुल तम्बी एक प्रकारकी मछली । यह हिन्दुस्तानकी प्रायः सब निद्योंमें मिलती हैं। ६ घुली हुई मिट्टी जिसका लेप दोवार आदि पर करते हैं। ७ पोतनेका कपड़ा, यह कूची जिससे घरोंमें फेरा जाता है। (फा० पु०) ८ पोत, लगान। ६ अएड-कोप।

पोताच्छादन (सं॰ क्ली॰) पोतिमय आच्छादयतीति आ-छादि-ल्यु । वस्रकुद्दिम, तम्बू, हेरा ।

पोताएड (सं॰ पु॰) अश्वमुष्करोगभेद, घोड़े के अंडकोय-का एक रोग।

पोताधान (सं० क्की०) आधीयतेऽत्रेति स्युट् आधानं पोतानां अएडजमत्स्यनामाधानम् । क्षुद्राएड मत्स्य-संघात मछित्रयोंके वश्चोंका समृह्य, छांबर ।

पोतारा (हिं पु) पुतारा देखो ।

पोतारी (हिं क्यी) पोतनेका कपड़ा।

पोताश्रय (सं० पु०) यह स्थान जहां जहाज लंगर डाले रहता है, वन्दरभाह ।

पोतास (सं० पु०) कपूँ रविशेष, भीमसेनी कपूर।
पोतिका (सं० स्त्री०) १ पोईकी बैछ। २ वस्त्र, कपड़ा।
पोतिया (हिं० पु०) १ वह छोटी थैछी जिसे छोग पासमें
लिए रहते और जिसमें चूना, तंवाकू, सुपारी आदि
रखते हैं। २ वह कपड़े का दुकड़ा जिसे साधु पहनते
हैं या जिसे पद्दन कर छोग नहाते हैं। ३ एक प्रकारका
खिछीना।

पोती (हिं० स्त्रीं०) १ पुतकी पुती, बेटेकी बेटी। २ पानीका वह पुतारा जो मद्य सुवाते समय वरतन पर फेरा जाता है। इससे जो भाप अभकेसे उठती है, वह उस वरतनमें जा कर ठंढी हो जाती है और मद्यके रूपमें टपकती है। ३ मिट्टोका लेप जो हंड़ियाको पेंदी पर इसलिये चढ़ाया जाता है जिसमें अधिक आंच न लगे।

पोतुन्द — विशाखपत्तन जिलेके अन्तर्गत एक प्रसिद्धं स्थान। यह विमलीपत्तनसे १२ मील उत्तर-पिश्वममें अवस्थित है। यहां एक अति प्राचीन मन्दिरका ध्वंसाव-शेष, कलिङ्गगङ्गके बनाये हुए दो प्राचीन हुर्ग और विजय-नगराधिप राज्यदेवरायके प्रतिष्ठित जयस्तम्म हैं।

योत् (सं॰ पु॰) पू/तृण् । १ यज्ञादिमें नियोजित पुरोहित-विशेष, ऋत्विक् । २ पवित वायु । ३ विष्णु । पोत्या (सं क्रीं) पोतानां समृहः (पःशादिम्यो यः। पा ४।२।४६ इति य, नत्ष्राप् । पोनसमूह । पोत (सं० ह्यी॰) पूयते ऽनेनेति पू- (इज्जूकायो: पुः: । शरी१८६) इति प्ट्रन् · १ शूकरमुखात्र भाग, स्वरका सांग। २ लाङ्गल मुंसाप्र, हलकी फाली। ३ वज्र। ४ वहित, जहाज, नाव । ५ पोतृनामक ऋत्विक्का पात-भेद्र । ६ नात्रका डांड ।

पोतायुघ (सं० पु०) तन्मुखात्रमेव आयुघं यस्य । शूकर, सुअर ।

पोबिदंदाज (सं वि) पोबिदंदातः जायते जन-इ। १ शूकरदन्तजात पदार्थमात । (क्वी॰) २ शूकरदन्त-जात रत्न ।

पोतिन् (सं॰ पु॰) पोतमस्थास्तीति पोत-इनि । १ शूकर, सूअर। (ति॰) २ पोतविशिए।

पोतिरथा (सं स्त्रीः) पोत्नी शुक्ररः रथ-इव गतिसाध-कोऽस्याः। जिनशकिविशेष।

प्रोह्मेय (सं वि) पोतुः कर्म छ। पोतृकत्तव्य कर्म, ऋत्विक कर्तव्य कार्यभेद् ।

पोधकी (सं क्षी) वालकोंका नेतवर्र्मज रोगविशेय, छोटे छोटे वर्चीका नेक्रोग । इसमें आंखमें खुजली और पोडा होती है, पानी वहता है और सरसींके वरावर छोटी छोटो लाल लाल पुंसिया निकल आती हैं।

पोधा (हिं पु॰) १ कागजींकी गद्दी। २ वड़ी पोथी, बड़ी पुस्तक । इसका प्रयोग विशेषतः व्यंग्य या विनोद्में ही आता है, जैसे-तुम इतना वड़ा पोथा लिये कहां फिरते हो।

पोद—निम्नवङ्गवासी एक प्रसिद्ध जाति । इनका दूसरा नाम पन्नराज और चासी भी है। ये लोग अपनेको महामारतोक पुण्ड वतलाते हैं। महाभारतमें जिस पुण्डुक वा दक्षिण पुण्डुका उल्लेख है, ये लो : शायद उसी जातिके हैं। पुराड्य देखी।

फिर इस जातिमेंसे कोई कोई अपनेकी महाभार-तोक्त पौण्डूक वासुदैववंशके और कोई वटरामको पत्नी रैवतीके गर्भसे उत्पन्न वतलाते हैं। परन्तु जो इस जाति-के शिक्षित व्यक्ति हैं, वे कायस्थके औरस और नापित-

त्रस्ववैवर्तके मतसे वैश्यके औरस धार कलवारकी क्रन्यासे पौण्डुक जातिकी उत्पत्ति है।

उच जातिको जैसा इन लोगोंमें भी विचाहसम्बन्धके निर्दिष्ट नियम हैं। अकसर ५से ६ वर्षके भीतर कन्या व्याही जानो है। इन छोगोंमें विधवा विवाह नहीं चछता और न मनमुद्राव होने पर नीच जातिके जैसा एक दूसरे-का त्याग ही कर सकते हैं।

इन लोगोंके मध्य वैष्णव, शैव, शाक, सौर और गाणपत्य इन्हीं पांच सम्प्रदायोंके लीग देखे जाते हैं। राड़ीय ब्राह्मण पुरोहिताई करते हैं।

हिन्दूसमाजमें इनकी गिनती निम्नश्रेणीमें की गई है। ब्राह्मणसे हे कर नवशाख तक इनके हाथका पानी नहीं पीते। बैण्यव पोट् बहुत कुछ निष्ठावान् हैं, वे मांस नहीं खन्ते ।

इस जातिके लोग साधारणतः कृपि और मत्स्य द्वारा जीविका-निर्वाह करते हैं। अभी वे लोग उच्च जातिमें मिलनेकी कोशिश करते हैं। इंतमेंसे कोई कोई सोनार, छोहार, बढ़ई आहिका काम भी करता है। पोदना (हिं पु) एक छोटो चिडिया । २ छोटे डील डीलका पुरुष, नाटा आदमी, ठॅगना आदमी। पोद्छक्कर-नेव्लूर जिलास्य एक प्राचीन प्राप्त । यहां

एक प्राचीन गणेशमन्दिर और दुर्गका खंडहर है। पोदिका (सं ० स्त्री०) कलम्बीशाक, कलनी साग । पोदिलो-मन्द्राजके ने इत्र जिलेकी एक जमीदारी तह-सीछ। यह अक्षा० १५ २३ से १५ .४५ उ० और देशा॰ ७६ १२से ७६ ४६ पूर्वे मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण ५६४ वर्णमील और जनसंख्या साठ हजारके लग-भग है। इसमें १९१ ग्राम लगते हैं। यह तहसील वेङ्कटगिरि राज्यका एक भाग है। गर्लंडिन्नेके समीप वेळीकोएड पहाड़ी पर एक मन्दिर है। उक्त पहाड़ी तह-सीलके पित्वम हो कर दीड़ गई है। मूसी और गएडल-कम्मा नामकी दो नदियां तहसील होती हुई वङ्गालकी खाड़ीमें जा गिरी हैं।

पोडुवरपट्टी-मदुरा जिलेके पलनी तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन प्राप्त । यह वलनीसे १० मील उत्तर-पूर्व पड्ता कन्याके गर्भसे पोदजातिकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। है। यहां कई एक प्राचीन विष्णुमन्दिर हैं जिनमें शिला

लिपि उत्कीर्ण देखो जाती हैं। यहांकी एक मसजिद्में जो शिलालिपि उत्कीर्ण है उसमें सिनप्पनायक कर्नु क सुसलमानींको भूमिदानको कथा लिखी है।

पोद्दार (हिं॰ पु॰) वह मनुष्य जो गांजेकी जातियां तथा खेतोके ढंग जानता हो ।

पोना (हि॰ कि॰) १ गीले आरेकी लोईको हाथसे दवा दवा कर घुमाते हुए रोटोके आकारमें बढ़ाना, गीले आरे-को चपाती गढ़ना। २ पकाना। ३ पिरोना, गूथना, पोहना।

पोनानी—१ मन्द्राजप्रदेशके मलवार जिलेका तालुक। यह अक्षा० १०'१५' उ० और देशा० ७५'५२'से ७६'१३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३६ वर्गमील और जन-संख्या चार लाखसे ऊपर है। यहांका राजस्व ५१६०००) रू० है।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० १० ४८ उ० और देशा० ७५ ५६ पू० पोनानी नदीके मुहाने पर अविध्यत है। जनसंख्या दश हजारके करीव है जिनमेंसे माप्पिलाओंकी संख्या ही अधिक है। कालिकट और कोचिनके मध्य यह स्थान माप्पिलाओंका प्रधान बंदर माना जाता है। यहांसे जलपथ हो कर कोचिन विवांकुड़ और मन्द्राज रेलवेके तिचर स्टेशनमें जानेकी सुविधा रहनेके कारण यथेष्ठ लवण-वाणिज्य होता है।

माप्पिलाओं के प्रधान याजक तङ्गल यहां वास करते हैं। यहां मुसलमानोंका जो मदरसा है उससे मुसलमान-छातोंको उपाधि मिलती है। १६६२ ई०में ओलन्दाजों के कोचिन दखल करने पर अङ्गरेजोंने यहां आ कर अड्डा जमाया। १७८२ ई०में कनंल मैक्कीउड हैदरअली पर आक्रमण करने के लिये इसी स्थान पर उतरे थे। शहरमें २७ मसजिदें हैं जिनमें से जमाथ मसजिद ही प्रधान है। कहते हैं, कि उक्त मसजिद १५१० ई०में बनाई गई थी। अलावा इसके यहां मुनसिकी अदालत भी लगती है।

३ मन्द्राजप्रदेशकी एक नदी। यह अनमलय पर्वतसे निकल कर पालघाट होती हुई पोनानी नगरके समीप समुद्रमें गिरी है।

पोन्नानी-पोनानी देखो ।

पोस्तूर—क्रका जिलान्तर्गत एक अति प्राचीन स्थान । यह

वंगपटलासे १५ मील उत्तर-पिक्तम पड़ता है। यहां डिप्टी तहसीलदारकी सदर कचहरी लगती है। यहांका देवमन्दिर बहुत पुराना है। इसके पूर्वद्वारके एक स्तम्भमें १०४१ शककी उत्कीर्ण कुलोत्तुङ्ग चोलकी शिलालिपि है। इस अञ्चलके हिन्दुओंके निकट यह मन्दिर अति पुण्यपद समका जाता है। पोन्नूरुस्थलमाहात्मामें उसी देव-मन्दिरका माहात्मा वर्णित है।

पोन्नेरी—मन्द्राजके चेङ्गलपट्ट जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३ ११ से १३ ३४ उ० और देशा० ८० ५ से ८० २१ पू० बङ्गालकी खाड़ीके किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३४७ वर्गमील और जनसंख्या करीव १३६५६७ है। कोर्त्तलैयर और अरनिया नामकी नदी तालुकके मध्य हो कर वह गई हैं। तालुकका कुछ अंश उर्वरा और कुछ अंश उर्वरा और कुछ अंश उर्वरा और कुछ अंश उर्वरा सी तालुक हो कर गया है।

२ चेङ्गलपष्ट जिलेका एक नगर और उक्त तालुकका सदर। यह नारायणवरम्के दाहिने किनारे मन्द्राज शहर-से २० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित हैं। वहां एक थाना और डाकघर है।

पोप (अं व पु॰) ईसाइयोंके कैथलिक सम्प्रदायके प्रधान धर्मगुरः । इनका प्रधान स्थान यूरोपमें इटलीराज्यका रोम नगर है। १४वीं शताब्दी तक संसारके सभी ईसाई-धर्मावलम्बी राज्यों पर पोपका बड़ा प्रभाव था। उनका पद सभो ईसाई-सम्राट्से श्रेष्ठ और उनका कर्तृत्व समस्त ईसाई-मण्डलीके ऊपर था। रोमनकाथलिक ईसाई-सम्प्रदायके वे सर्वभय कर्त्ता थे । उनकी आहा और उद्यमसे कितनी 'क्र्जेड' या मजहवी लड़ाइयां हुई हैं, कितने राजेश्वर सिंहासनच्युत हुए हैं और कितनी कीर्त्तियां स्थापित हुई हैं, उसकी इयत्ता नहीं । १५वीं शतान्दीमें ॡथर नामक एक नये सम्प्रदाय स्थापककी शिक्षासे वहुतोंने पोपोंके हाथसे छुटकारा पानेकी कीशिश की थी । इसी समय इङ्गलैएडराज ८म हेनरीने अपनी पत्नी कैथरिनको छोड़ने और बोलिनसे विवाह करनेकी अनुमति मांगी। इस पर पोपने अनिच्छा प्रकट की जिस-से ने आगववूले हो गये। उन्होंने पोपका अधिकार उठा दिया और अपनेको इङ्गलैएडके सभी गिरजांओंके प्रधान

नायकं (Supreme head of the English church) पोरुआ (हि॰ पु॰) पोरिया । वतला कर घोपणा कर दी। इस समयसे पोपका अधि-कार घटने छगा और उनके अधीन जितने धर्म-मन्दिर थे, सभी हाथसे निकल गये। क्रमणः प्रोटेएएट सम्प्रदायकी । वहतीसे पोपका प्रभाव जो भी वचा खुचा था, वह भी जाता रहा। परन्तु पुराने कैथल्टिक सम्प्रदायके मानने-वालोंमें पोपका अमी वैसा ही आदर है। उनका अभि-पेक आदि उसी प्रकार किया जाता है जैसे महाराजाओं-विस्तृत विवर्ण खृष्टान्, रोम, खूथर आदि का होता है। शब्दों देखो।

पोपला (हिं ० पि०) १ पचका और सुकड़ा हुआ । २ ी विना दांतका, जिसमें दांत न हों, जैसे बुढ़ोंका पोपला मुंह। ३ जिसके मुंहमें दांत न हों।

पोपलाना (हिं॰ क्रि॰) पोपला होना।

पोपली (हि॰ स्त्री०) आमकी गुउली घिस कर वनाया हुआ वाजा। यह वाजा विशेष कर छोटे छोटे वच्चे वजाते हैं। पोय (हिं क्सी) पे ई देखी।

पोया (हिं पु) १ वृक्षका नरम पौधा। २ वचा। ३ सांपका छोटा वचा, सँपीला ।

पोर (हिं । स्त्री । १ उंगलीकी गांठ या जोड़ जहांसे वह कुक सकती है। २ उ गळीका वह भाग जो दो गांठींके वीच हो। ३ रीढ़; पीठ। ४ ईख, वांस, नरसल, सरकंडे आदिका वह भाग जो दो गांठोंके वीच हो।

पोरकाइ-मन्द्राजके तिख्यांकोर राज्यके अन्तर्गत अम्याला-पुलै तालुकका एक शहर। यह अक्षा है २२ उ० और देशा॰ ७६ '२२' पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः २२६४ है। पहले यह स्थान चम्पकसेरी-राजाके अधीन था। १७४७ ई०मे तिरुवांकोरके हाथ आया। यहां एक दुर्भ है जिसे कहते हैं, कि चोल्राजाओंके पहले कुरु म्बरीने वनाया था।

पोरा (हिं० स्त्री॰) १ लकड़ीका मंडलाकार दुकड़ा, लकड़ीका गोल कुंदा। २ कुंदेकी तरह मोटा आदमी। पोरिया (हिं॰ स्रो॰) हाथ परकी उंगलियोंकी पोरींमें पहननेका एक चांदीका गहना । यह छल्लेके जैसा होता है, पर इसमें घुंधरूके गुच्छे या भव्ये लगे रहते हैं। पोरो (हिं० स्त्रो ०) एक प्रकारकी कड़ी मट्टी।

Vol. XIV. 111

पोरमामिल्ल—मन्द्राजके कड़ापा जिल्लान्त गत एक प्राचीन नगर। यह अझा० १५ र् और देजा० ७६ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५५२२ है। पहले यहां एक पोलिगर-सरदार रहते थे। उनके दुगेका ध्वंसावशेष आज भी देखनेमें आता है। यहांके भैरवके मन्दिरमें .१२६१ २.कमें उत्कीर्ण बुक्तरायके पुत भास्कररायकी शिळाळिपि है। अळावा इसके यहां छक्मीकान्तस्वामीका पुराना मन्दिर हैं । प्रवाद है, कि भास्कररायने उक्त मन्दिरका संस्कार कराया था। ग्रहरमें एक अति उत्ऋष्ट पुष्करिणी है।

पोर्ट (अं ॰ पु॰) अं गूरसे वनी हुई एक प्रकारकी शराव । यह भवकेसे नहीं चुआई जाती, अंगुरके रसको धूपमें सङा कर वनाई जाती है। इसमें वहुत कम नशा रहता है, इसीसे लोग इसका सेवन पुष्टईके रूपमें करते हैं।

पोर्टकैनिङ्ग--- २४ परगनेके अन्तर्ग त एक त्रिलुप्त वन्दर । यह अक्षा॰ २२ १६ १५ उ॰ और देशा॰ ८८ ४६ २० पू॰के मध्य अवस्थित है। हुगलीनदीका बन्हर प्रतिवर्ष वालुसे भरते देख अङ्गरेजवणिक वहुत व्याकुल हो गये। उन्होंने मातलाके मुहाने पर एक वन्दर और नगर वसानेके लिये वड़े लाट डलहौसीके पास आवेदनपत मेजा । इस पर गवर्में एटने अतिशोध २५००० वीघा जमीन इकट्टी कर दी। अव नया शहर वसानेका सभी इन्तजाम पक्का हो गया. म्युनिस्पलिटी भी संगठित हुई। गवर्मएटने वड़े लाटके हाथ नगरका भार सौंपा। वड़े वड़े सौदागरोंकी कोठी खोली गई । वाणिज्य व्यवसायकी सुविधाके लिये कलकत्ते तक रेललाइन दींड़ गई। मातलाके मुहाने पर वहुतंसे पोताश्रय, जहाज रखनेके लिये जेटी और वडी बड़ी चावलकी कर्लें खोली गईं। पीछे बड़े लाट कैनिङ्गके नामानुसार इसका "पोर्टकैनिङ्ग" नाम रखा गया। नगर और वन्दरकी स्थापनामें लाखों रुपये खर्च हुए, पर कोई फल नहीं निकला। समुद्रगामी एक भ जहाज इस वन्दरमें नहीं आता। गवर्मेण्टका स्थाल था, कि चावलका व्यवसाय चलानेसे काफी लाम होगा और वहुतसे जहाज यहां लङ्गर डालेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ।

आखिर १८७१ ई०में छोटे लाटने यहांका वन्दर उठा दिया। जो सब कार्यालय खोले गये थे, वे छोड़ दिवे गये। पहलेके जैसा इस वन्दरका अधिकांश जङ्गलमें परि-णत हो गया। अभी यहां पोर्ट कमिश्नरोंकी कचहरी और रेलवे प्टेशन है।

पोर्ट व्लेयर-अन्दामानद्वीपींका प्रधान वन्दर।

शब्दामान देखी।

पोर्टी नोवी—मन्द्राजके दक्षिण आर्कट जिलेका एक वन्द्र शिर शहर। यह अक्षा० ११ इ० उ० और देशां० ७६ ४६ पू०के मध्य भेलर नदीके किनारे अवस्थित है। जन संख्यादश हजारसे ऊपर है, जिनमेंसे चतुर्थां श मुसलमान हैं। यहां एक समय दिनेशार और पुर्तगीजोंका बहुत लक्षा चौड़ा कारवार था। १६८२ ई०में अंगरेजोंने यहां कोठी खोली। यहांसे सर आयरकूटने ८००० सेना ले कर हैदरअलीकी ६० हजार सेनाका मुकावला किया था। यहां प्रतिवर्ध प्रायः ६ लाख रुपये द्रव्यको रक्षनी और लाखसे अपरको आमदनी होतो है। यहांको चटाई वहुत मशहूर है।

पोर्तुगीज--पुर्नगीन देखो ।

पोछ (सं श्रिक) पुल-ज्यलादित्यान् ण । १ महस्ययुक्त, प्रमावयाला । (पुरं) २ पिष्टकमेद, एक प्रकारका फुलका। ३ किटपोध, नामिके नोचेका माग, पेड़ । १ ४ पुज, हर ।

पोल (हि॰ पु॰) १ शुन्यस्थान, अवकाश । २ सार-हीनता, अन्तःसारशून्यता, खोखलापन । ३ प्रवेशद्वार, कहीं जानेका फाटक । ४ आंगन, सहन ।

पोल—गुजरातके महीकान्ता एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा : राज्य। यह महोकान्ताके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इस भूमागका अधिकांश जंगल और पर्दतसे भरा है। यहांकी प्रधान उपज ज्वार, वाजरा, चना और कंगनो है।

यहांके राजचंश अपनेको कन्नोजके अन्तिम हिन्दूराजा जयमाँदके वंशधर वतलाते हैं। जयचाँदके दो पुत्र थे, शिवजो और शोनकजो। मारवारके राजगण शिवजीके वंशधर हैं। शोनकजोने १२५७ ई०में इदरमें राज्य वसाया। २६ पोढ़ो तक शोनकजोके वंशको 'राव'की उपाधि रही। १६५६ ई०में इस वंशके शेष साधीन राजा जगननाथराव

मुसलमानोंसे राज्यच्युत हुए। अव पोल नामक स्थान-में राजपरिवारगण आ कर वस गर्ये। पोछे वे लोग इस पार्वत्य भूमागके राव कहलाने लगे। यहांके अधि-पति किसी दूसरे राजाके अधीन नहीं हैं।

पोलक (डि॰ पु॰) लखे बासके छोर पर चरखीमें यंधा हुआ पयाल। इससे लुककी तरह जला कर विगड़े हाथीको इराते हैं।

पोलच (हिं पु॰) १ वह परतो जमीन जो गत वर्ष रन्नी वोनेके पहले जोती गई हो, जौनाल। २ वह उत्सर या वंजर जमीन जिसे खुते या दूरे तीन वर्ष हो गये हों।

पोलएड यूरोप महादेशके अन्तर्गत एक प्राचीन राज्य। एक समय यह वाल्टिक समुद्रसे ले कर वेसारिवया और कार्पेथियन पर्वतमाला तक तथा पश्चिम प्रसियासे ले कर पूर्वे कस तक फैला हुआ था। यह छोटा राज्य उत्तर-पूर्वेमें पर्वतमालासे समाकी में है। भूपरिमाण २८२००० वर्गमील है।

प्राचीनकालमें पोलएडराज्य ड्यूक उपाधिकारी सर-दारोंसे शासित होता था। उक सरदारगण पोल जातिके थे। ८४० ई०में पियह (Piastrat Piastus) राज्याधिकार करनेके पहले और किसी भी वंशने यहां धारावाहिक राज्य नहीं किया। वियय-वंशधरींने प्रायः पाच शताब्द तक शासनदण्ड धारण किया था। उसके वाद् निर्वाचन-प्रणालीका सूत्रपात हुआ। उपयुक्त पासकी राजमुकुट दिया जाने लगा। उक्त राजाओंके राजस्य-कालमें शासनमें बहुत कुछ सुधार होने पर भी गृह-विवादके फलसे तमाम अशान्ति फैल गई थी। घोड़े भोरे उस गृहविवादसे राज्य चौपट हो गया। आपसकी लड़ाईसे राज्यमें अराजकताका शासन देख पार्श्ववर्ती राजगण इस गोलमालको मिटानेके लिये तैयार हो गये। आखिर छल, वल और कौशलसे १७७२ ई॰में इसिया, प्र सिया और अध्रियाने पोलएडको प्रास कर हो डाला। स्तिया पूर्वाड, अष्ट्रिया दक्षिण-पश्चिम और प्रतिया वाणिज्यप्रधान उत्तर-पश्चिम हो कर भी शान्त न हुए। इस-राजने पुनः १७६१ ई०में आक्रमण करके १७६३ और १७६४ ई॰को इसका वचा खुचा भागभी हड्प कर लिया। वोनापार्टका पोलएड-विजयसे बहुत परिवर्तन ; हुआ। नेपोलयन दे बो। इसके वाद फरासी-राज्यके , अधःपतन पर प्रसिया और अष्ट्रियाने पूर्वसम्पत्तिका कुछ अंश प्राप्त किया और अविश्वाह कस्याके हाथ लगा। १८३० ई०में पोलजाति बागो हुई। वार्सनगरवासी इसका मुकाविला न कर सके और आतमसमर्पण करनेको वाध्य हुए। पोल लोग भी राज्य छोड़ चम्पत हुए। १८३२ ई०में पोलएड इससाधाल्यमें मिला लिया गया। १८४६ ई०में अष्ट्रियाधिकृत काकोनगरमें खाधीनता पानेकी कोशिश की गई थी। १८६३-४ ई०में एक और राष्ट्रक विश्वव संघटित हुआ था। इससम्राट्ने अमृत परिधमन से उस विद्रोहका दमन किया था। तमीसे पोलएड-

पोलमपङ्घी—कृष्णा जिलास्थ एक प्राचीन प्राम । यह । नन्दीप्रामसे १७ मील उत्तर-्षृत्विसमें अवस्थित है । इस । प्रामके समीप प्राचीन वौद्धकीर्तिका ध्वंसावशेष देखा जाता है।

पोला (हिं ॰ पु॰) १ मध्यप्रदेशमें होनेवाला एक छोटा पेड़। इसकी लकड़ी मीतरसे वहुत सफेद और नरम निकलती हैं जिससे उस पर खुदाईका काम वहुन अच्छा होता है। वजनमें भी भारी होती हैं। हल आदि खेती के सामान उससे बनाये जाते हैं। भीतरी झालमें रेशे होते हैं जो रस्सी बनावे काममें आते हैं। पेड़ वरसातमें वीजोंसे उगता है। २ सूतका लच्छा जो परेती पर लपेटनेसे वन जाता है। (वि॰) ३ जो भीतरसे कड़ा न हो, पुलपुला। ४ जो भोतरसे भरा न हो, खोखला। ५ अन्तःसारशून्य, निःसार।

पोला—मराठोंके मध्य युवोत्सवभेद । महादेवके नाम पर वा वृषोत्सर्गमें जो सब सांद्र तिशूलाङ्कित हैं, उन्हें श्रावणी पूर्णिमाके दिन सजा कर पूजते और नगरका मदक्षिण कराते हैं । इस दिन उन्हें परिश्रम करना नहीं होता।

पोलाद (हिं ॰ पु॰) फौलाद देखी।

पोछारी (हिं ० स्त्री०) छेनोंके आकारका एक छोटा औजार । इससे सोनार खोरिया, कंगन, ब्रुंघुरु आदिके दानोंको फिरफिरेमें रख कर खलते हैं । यह तीन चार अंगुलका होता है और इसकी नोक पर छोटा-सा गोल हाना बना रहता है।

पोलाव (हिं • पु •) पुलाव देखो ।

पोलावरम्—१ मन्द्राजके गोदावरी जिलेका एक उप-विभाग। इसमें पोलावरम, चोदावरम् और येलावरम् नामके तीन तालुक लगते हैं।

२ मन्द्राजये गोदावरी जिलेका एक तालुक। यह अझा० १७ ७ से १७ २८ उ० और देशा० ८१ ५ से ८१ ३७ प्०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५८२७४ है। इसमें २६२ प्राम लगते हैं। राजस्व ६४०००। ६० है।

पोलिका (सं॰ स्त्री॰) पोली स्वार्थ-कन, टाप्, पूर्वहलक्च। पिएकविशेष, एक प्रकारको चपाती। संस्कृत पर्याय— पूलिका, पोलि, प्पिका, पूपला। मैदेकी पतली सिद्ध रोटीको पोलिका कहते हैं। यह पोलिका लिसका अर्थात् मोहनभोगके साथ खानो चाहिये। इसमें मएडकका-सा गुण है।

पोलियर —दाक्षिणात्यके सरदारोंकी उपाधि। तामिल 'पोलियम' शब्दका अर्थ दुर्ग और 'करम'-का अर्थ रक्षां है। यथार्थमें ये लोग गित्रसङ्कट और वन्यभूमिकी रक्षा करने थे, इसी कारण इनका पोलियर नाम पड़ां है। पोलियर कहनेसे पहाड़ी सरदारोंका वीधं होतां है। ये लोग वहुत कुछ खाधीन भावमें अपने अपने प्रदेगका शासन कर गये हैं। अरियालेरे, वाङ्करयाचम्, वोमराज, कोइलरपेह, पलेरेमपेना, पहापुरम, महुरा, तिन्नेबेलि, नहुमनबल्लकोह, नल्लतोक्चराविल्ले, सावनूर, उद्यगिरि, वरदाचलम् और सावन्तवाड़ी आदि देश एक समय विभिन्न पोलियरोंके अधिकारभुक्तं थे।

तिस्रवेलीके पोलिगर लोग एक समय सभी पोलिग्गरोंसे श्रेष्ठ थे। उनकी उपाधि थी 'तोएडमान राजा मरवर'। मन्द्राजके उत्तर वङ्गरयाचम्, दमरहा और वोमराजाके पोलिगरोंने निजाम और अङ्गगरेजोंके साथ युद्ध किया था। जुन्तर और पनालाके पोलिगर लोग शिवाजोंके हाथसे दमित हुए थे। दूसरे स्थानके पोलिगर गरोंने अङ्गरेजोंके हाथसे वीरगति पाई थी।

पोलिटिकल (वं ० वि ०) राज्यप्रवन्ध-सम्वन्धी, शासन-सम्बन्धी, राजनीतिक ।

पोलिटिकल एजंख्ट (सं॰ पु॰) वह राजपुरुष जो दूसरे राज्यमें अंपने राज्यकी ओरसे उसके सत्व और व्यापा-रादिकी रक्षाके लिये रहता है, राजनीतिक प्रतिनिधि। पोलिन्द (सं॰ पु॰) पोतस्य अलिन्द इवेति पृयोदरादि-त्वात् साधुः। नौकावयवभेदः नावकी लम्बाईमें दोनों ओर लकड़ोकी पट्टियोंसे वना हुआ यह ऊंचा और चौरस स्थान जिस पर याती वैठते हैं। पोलिया (हिं स्त्री०) १ एक पोला गहना जिसे स्त्रियां पैरोंमें पहनती हैं। (पु०) २ वौरिया देखो। पोली (सं॰ स्त्री॰) पोलति महत्त्व' गच्छतीति पुल ज्वाला-दित्वात् ण ङीप्। पिएकविशेष, पतली रोटी। पोली (हिं० स्त्री०) जङ्गली कुसुम या वर्रे। इसका तेल ; अफरीदी मोमजामा वनानेके काममें आता है। पोल्रर-१ मन्द्राजके नेव्लर जिलेकी जमींदारी तहसील। यह अक्षा० १३ ३० से १३ ५६ उ० तथा देशा० ७६ ५१ से ८०' ६ पू॰के मध्य अवस्थित है। इसके पूरवमें वङ्गालकी खाड़ी पड़ती है । भूपरिमाण ३५५ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ७४५१२ है। इसमें १३६ ग्राम लगते हैं। यों तो यहां वहुतसी निदयां वहती हैं, पर स्वर्ण-मुखी नामकी एक ही नदी प्रधान है। यहां धान, रागी

और कम्बूकी फसल अच्छी लगती है।

२ मन्द्राजके उत्तरीय आर्कट जिलेका दक्षिण तालुक।

यह अक्षा० १२ २० से १२ ४५ उ० और देशा० ७८ ५१ से ७६ २२ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६६ वर्गमील और जनसंख्या करोव डेढ़ लाखके है।

इसमें पोलूर नामका एक शहर और १७० श्राम लगते हैं। राजख तीन लाखसे ऊपर है। तालुकका अधि-कांश पर्यंतमाला-समाकीण है।

३ उक्त तालुकका एक शहर । यह अक्षा० १२ देश उ० और देशा० ७६ ७ पूर्ण मध्य अवस्थित है। जन-संख्या प्रायः ६२०६ है। नगरके पास ही एक प्राचीन दुर्गका ध्यं सावशेष और ५ मोल दूरमें लोहेको सान देखो जाती है।

पोलेपहो - कृष्णा जिलेका एक प्राचीन ग्राम । यह दाचे-पङ्गोसे १० मोल दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां अति प्राचीनकालके तीन शिवमन्दिर हैं । इनमैसे एक परशुराम-प्रतिष्ठित बतलाया जाता है। सिद्धे श्वरसामीके मन्दिरमें प्राचीन शिलालिथि उत्कीर्ण देखी जाती हैं। पोली (अं पु०) चौगानकी तरहका एक अङ्गरेजी खेल जो घोड़े पर चढ़ कर खेला जाता है।

पोलो मार्की—एक भिनिसवासी। मार्को पोलो १२५० ई०में अपने पिताके साथ कनस्तान्तिनोपल आये और वहांसे वोखारा, पारस्य, चीनतातार, चीन और भारत आदि नाना देशोंमें परिश्रमण कर उन सब देशोंका प्रकृत विवरण खिपिबद्ध कर गये। वे केवल देशभ्रमणमें ही यशसी हुए थे, सो नहीं, जेनोआकी लड़ाईमें इन्होंने सेनानायक हो कर अपनी वीरताका परिचय भी दिया था। इसके वाद स्वदेश लीट कर इन्होंने मिनिसनगरीको महासभाका सदस्यपद सुशोभित किया।

पोछाचि १ मन्द्राजके कोयम्बतोर जिलेका उपविभाग। इसमें पोछाचि, पहादम और उदमलपेट नामके तीन तालुक लगते हैं।

२ मन्द्राजके कोयम्बतोर जिलेका दक्षिण-पश्चिम तालुक। यह अक्षा० १० १५ से १० ५५ उ० और देशा० ७६ ४६ से ७९ १६ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७१० वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १६५६०८ है। इसमें इसी नामका एक शहर और १५ प्राम लगते हैं। राजस्व ३०४००। ६०का है। तालुकका दक्षिणीय भाग पर्वत और जङ्गलसे परिपूर्ण है।

३ उक्त तालुकका प्रधान शहर। यह अक्षा० १० ३६ उ० और देशा० ७७ १ पू०के मध्य अवस्थित है। जन-संस्था नी हजारके करीव है। यहां हाट, पथिकाश्रम, अस्पताल और मजिन्द्र टके घर हैं।

पोवार—राजपूत जातिकी शाखाभेद । पुषार देखां।
पोविन्द —भारतको उत्तर-पश्चिम सोमान्तवत्तों एक विणक्
जाति । मध्य पशियाके साथ भारतीय वाणिज्य एकमात
इन्होंके द्वारा परिचालित होता है। ये लोग स्वभावतः
हो भ्रमणशोल हैं, एक स्थान पर स्थायीक्तपसे नहीं रहते
हैं। इनमें लोहानी, नसर, नियाजी, दावतानी, मियांबेल
और करोती आदि अनेक विभिन्न श्रेणियां हैं। उन
श्रेणियोंमें भी फिर स्वतन्त्व थोक हैं। पूर्वोक्त श्रेणीमेंसे
कोई कोई दिल्ली, कानपूर, वाराणसी और भारतके

अन्यान्य नगरोंमें तथा गजनी, खिळात् इ-घिळजे, काबुळ, कन्त्रार और हीरट आदि स्थानोंमें पण्यद्रव्य हो कर जाते आते हैं। ये लोग पशम, रेशम, पशमीने, कम्बल, शुष्क फल, औपध, मसाला और घोड़े हाथी छे कर भारतवर्ष वैचने आते हैं और यहांसे शिल्पजात नाना द्रव्य तथा विलायती कपड़े खरीद कर ले जाते हैं। इस प्रकार वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा इनमेंसे अनेक धनी हो गये हैं। सर्वोंके पास प्रायः अच्छे अच्छे घोडे हैं। किसीके साथ इनका विरोध होनेसे ये लोग बातकी बातमें १४ हजार अवारोही इकट्टे कर सकते हैं। विशक होने पर भी ये युद्धनिपुण हैं और पार्वतीय शीतप्रधान देशींमें वास करनेके कारण विष्यु और तेजस्वी हैं। काबुलसे ले कर काटिवाज तक विना रोक टोकके वाणिज्य द्रव्य लाते हैं, किन्तु जितना ही ये लोग भारतको सीमामें अप्रसर होते जाते हैं, उतना ही इनका भय बढ़ता जाता है। कभी डकैत वा अङ्गरेजी-सेना मौका पा कर इनके द्रव्यादि लूट लेती हैं। इस कारण काटिवाजसे रवाना होते ही ये छोग दछ वांघ कर चछते हैं। एक एक दछमें ५ हजार-से १० हजार विष्ठप्र हथियारचंद पुरुष रहते हैं। प्रत्येक दलमें पक दलपति रहता है जिसकी उपाधि खाँ है। छिशिक्षित सैन्यश्रेणीकी तरह ये छोग राहमें कभी कभी लड़ाई भी ठान देते हैं। मेजर एडवार्डिस (Major Edwardes)-ने लिखा है, कि ऐसा एक भी पोविन्द देखनेमें नहीं आया जो एक न एक अङ्गसे दीन न हो— किसोके नाक नहीं हैं, कोई चशुहीन है, कोई छिन्नहस्त है, इस प्रकार प्रायः सभोके शरोर पर युद्धविष्रहके अल्ल-चिह्न दिखाई देते हैं।

वाजिरी जाति इनके जानी दुश्मन हैं। वाजिरीअधिवासित देशके उत्तर-पश्चिममें करोति शाखाके
पोविन्द रहते हैं। इस प्रदेशमें शीत अधिक पड़नेके
कारण विशेष कर तम्त्रूमें ही रहते हैं। दूध, धी, मध्यवन,
पनीर आदि इनके वसन्त कालका खाद्य है। घी दूधके
सेवनसे तथा शीतप्रधानमें वास करनेसे इनके शरीरका
रंग सफेद हो गया है। पशिया भर ये सर्वोसे मुन्दर
और सुश्री देखनेमें लगते हैं। पोविन्दोंके मध्य नसर
शाखा ही समधिक वलशाली है। श्रीध्मकालमें ये लोग

विल्डी जातिके तोकी और ओरकशाखाके साथ मिल कर रहते हैं। शीत पडते ही देराजातको भाग जाते हैं। नसेरा छोग उतने वाणि अपिय नहीं हैं। अपने पालित गाय, भैंस, ऊंट आहिसी ही गुजारा चलाते हैं और आच्छादनयोग्य तम्बू तैयार कर होते हैं। वे छोग निष्टुर, कुरितत और करस्त्रभावके हैं, अकारण जीव जन्तु-की हत्या करनेमें जरा भी कुिएउत नहीं होते। इनका कद छोटा, रंग काला और मुखमएडल स्वभावतः ही भयोत्पादक है। पानी, दौलतखेल और मियांखेल नामक लोहानोशाखाके पोविन्द खेतो-वारी करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। केवल मियां लेलके कुछ लोग मध्य-पशियामें वाणिज्य-व्यवसाय चलाते हैं। वे लोग अपने अपने स्त्री-पुतके रक्षणावेक्षणके लिये नियुक्त कर प्रीप्म-ऋतुमें वोसारा, समरकन्द् और काबुल आदि स्थानोंमें जाते हें और आवश्यकतानुसार द्रव्यादि खरीद कर गोमलगिरिसङ्कट होते हुए देराजात पहुंचते हैं। वहां अपना अपना माल वेच कर वे श्रीधमसूतमें स्वदेश लीरते हैं।

पोविन्द लोग हो मध्य-पशियाके पक्तमात व्यवसायी नहों है। परजा, गएडपुर और वावरजाति तथा श्रन्यान्य हिन्दू लोग आज भो मध्य-पशियामें वाणिज्य किया करते हैं। सिख लोगोंके समय पोविन्होंके पण्यद्रव्य पर अधिक कर लगाया गया था। अङ्गरेज गवर्मेण्टने कावुल, खोरा-सान, पारस्य आदि मध्य-पशियाके राज्यसे लाये हुए द्रव्यों पर कम शुल्क वस्ल करनेका हुकुम दिया। अङ्ग-रैजो-राज्यमें मायः २५ हजार पोविन्द छावनी डाले हुए हैं। वे छोग भारतसीमाके वाहर स्वाधीन और दुर्दार्घ भावमें विचरण करते हैं। किन्तु गोमल, मांभी, हैंदर, जर्कानी आदि गिरिपथ पार होते ही ये मानी मन्तमुग्ध-वत् सुशील और सुभद्र हो जाते हैं। भारतके एक प्रान्त-से दूसरे प्रान्त तक विस्तृत स्थानमें जव ये छोग विच्छिन्त हो कर रहते हैं, तब कभी भी अपनी उन्नप्रकृतिका परि-चय नहीं देते, वरन् निरीहभाव दिखानेकी चेष्टा करते हैं। ऐसी अवस्थामें रहनेसे उनको सतर्कताप्रवृत्ति ऐसी शिथिछ हो जाती हैं, कि चोर वड़ी आसानीसे उनका माल चुरा सकते हैं। किन्तु फिरसे गिरिसङ्कट पहुंचते हो उनके कुटिल चक्षु पुनः प्रस्फुटित होते हैं।

पोशाक (फा॰ स्त्रो॰) वस्त्र, परिश्रान, पहनावा । पोशाको (फा॰ पु॰) १ एक कपड़ा जो गाढ़ेसे वारीक और तनजेबसे मोटा होता है। २ अच्छा कपड़ा। पोशोदगो (फा• स्त्री०) गुप्ति, छिपाव। पोशीदा (फा॰ वि॰) गुप्त, छिपा हुआ। पोष (सं ० पु॰) पुष-भावे घञ्। १ पोपण, पालन । २ भाधिकय, बृद्धि- बढ़ती । ३ तुष्टि, स'तीप । ४ अम्युद्य, उन्नति। ५ धन, दौलत। पोषक (सं० ति•) पोषयतीति पुष-णिच्-च्यु । १ पालक,

पालनेवाला । २ वर्द्ध क, वढ़ानेवाला । ३ सहायक, सहायता देनेवाला ।

पोषण (सं क ऋी ॰) पुष-त्युद्। १ पुष्टि। २ पालन । ३ वद्भीत, बढ़ती। ४ सहायता।

पोषणप्रवाह । सं • ह्यो ॰) वह शक्ति जिससे खाया हुआ पदार्थ रक्तमांसादिमें परिणत हो कर शरीरकी पुष्टि होती है।

पोषध (हिं पु॰) उपवास त्रत ।

पोषधोषित (सं० त्रि०) उपोषित, उपवास किया हुआ । पोवना (हिं० क्रि॰) पालना।

पोवयित्तु (सं • पु •) पोवयतीति पुष-णिच् । १ काकगोष्य, पिक, कोयल। (ति०) २ पोवणकर्त्ता, पोपनेवाला । ३ भर्ता, लामी, मालिक।

पोवयिष्णु (सं• ति०) पुव-णिच् तत इन्नुच् (भवामन्ता-रुद्दायेरिनरमुद्र । पा ६।४१५५) इति अय् । पोपक, पालने-नाला ।

१ पोषक, पालने-षोषित (सं॰ ति॰) पुप-णिच् तृच्। वाला । २ पाला हुआ ।

पोषुक (सं० ति∙) पुष- बाहु० उक । पोषणकरणशीऌ, पालनेवाला ।

पोष्टा (हिं० वि॰) पोष्टू देखो ।

पोष्टृ (सं॰ पु॰) पुष्णातीति पुष-तृच्। १ पूरीक, करंज । २ पोपणकर्त्ता, पालनेवाला ।

पोष्ट्यर (सं० ति०) पोष्ट्रुषु वरः । पोषकश्रेष्ठ । पोप्य (सं० ति०) पुष्यते इति पुष-ण्यत् । १ पोषणीय, पाळने योग्य । (पु॰) २ भृत्य, नौकर, दास । जिनका प्रतिपालन करना असरव कर्त्तव्य हैं, उन्हें पीष्य कहते हैं। पोष्य-

वर्गका प्रतिपालन नहीं करनेसे प्रत्यवायप्रस्त होना पड़ता है। इस कारण पोश्यव्लर्गका यत्नपूर्वक पालन करना हर एकका कर्त्तव्य है।

माता, पिता, गुष्क, पत्नी, सन्तान, अभ्यागत, श्ररणागत, अतिथि और अग्नि ये नौ पोध्यवर्ग हैं। ये सव अवश्य प्रतिपालनीय हैं। सैकड़ों अपकर्म करते हुए भी इन्हें प्रतिपालन करना चाहिये। इनका प्रतिपालन किये विना कोई भी कर्म न करे।

"ज्ञातिर्वन्धुजनः श्लीणस्तथा नाथः समाश्रितः। अन्येऽप्यधनयुक्ताश्च पोप्यवर्गे उदाहतः॥" (दक्षसं०) शरणागत और इरिद्र ये सब भी पोष्यवर्गमें गिने गये हैं। आहिकतत्त्वमें लिखा है, कि पोव्यवर्गका पालन करनेसे उत्तम स्वर्ग लाभ और उन्हें पीड़ा होनेसे नरक होता है।

"भरणं पोव्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्। नरकं पीड़ने चास्य तस्माद्यक्तेन तान् भरेत्॥" (आहिकतस्त्र)

पोम्यपुत (सं॰ पु॰) पोप्यः पुतः पोन्यत्वेनैव पुतत्वं प्राप्तः इत्यर्थः । १ पालनादि द्वारा पुतत्वप्राप्त, पुतके समान पाला हुआ लड़का। २ दत्तक पुत्र। अपुत्र व्यक्ति पिएडप्राप्तिके लिये जिस पुनको ग्रहण कर पालता है उसे पोव्यवुत्त कहते हैं।

"अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः। पिग्डोद्ककियाहेतोर्नामसंकीर्त्त नाय च॥" (महु.) अपुत व्यक्तिको पिएडोद्कादि किया और नाम-कोर्त्त नके लिये पोष्यपुत प्रहण करना चाहिये। वह पोत्य-पुत उनके मरनेके बाद पिएडोदकादि दे कर धनका अधि-कारी होता है। पोष्यपुतका अशौच केवल तीन दिन है, परन्तु उसके पुतादिका सम्पूर्णशीच होगा। पोष्यपुतकी पत्नीका भी अशीच तीन दिन है, परन्तु कोई कोई एक मास तक मानते हैं। पर यह मत विशेष समीचीन नहीं है। पोध्यपुत्रका विशेष विवरण दत्तक शंदमें देखो । पोव्यवर्ग (सं ॰ पु॰) पोध्याणां प्रतिपालनीयानां चर्णः। प्रतिपालनीयगण । पोध्य शन्द हे खी ।

पोस (हि॰ पु॰) पालनेकी इतज्ञता, पालनेवालेके साथ प्रेम या हेल मेल।

पोसन (हि॰ पु॰) रक्षा, पालन । पोसना (हि॰ कि॰) १ रक्षा करना, पालना । पोस्ट (अ'॰ स्त्री॰) १ जगह, स्थान । २ पद, ओहदा । ३ नीकरो । ४ डाकखाना ।

पोस्टआफिस (अं॰ पु॰) डाकघर, डाकसाना। पोस्टकार्ड (अं॰ पु॰) एक मोटे कागजका टुकड़ा जिस पर पत लिस कर खुला भेजते हैं।

पोस्टमार्टम (अ'० पु०) १ मृत्युका कारण आदि निश्चित करनेके छिये मरने पर किसी प्राणीके शरीरकी चीर फाड़। २ वह परीक्षा जो किमी प्राणीकी छाशको चीर फाड़ कर की जाय।

पोस्टमास्टर (अं ॰ पु॰) डाकघरका सबसे वड़ा कर्मचारी। पोस्टमैन (अं ॰ पु॰) इधर उधर चिट्टी वांटनेवाला, चिट्टी रसां।

पोस्टरहंक (अं ० स्त्री ॰) लकड़ीके अक्षर छापनेमें काम आनेवाली एक प्रकारकी छापेकी स्याही ।

पोस्टलगाइड (अं ॰ पु॰) डाकघर-सम्बन्धीय पुस्तक। इसमें डाक द्वारा चिद्दी, पारसल आदि भेजनेके नियम और डाकघरींके नाम लिखे रहते हैं।

पोस्टेज (अ'० स्त्री०) डाक द्वारा चिट्ठी पारसल आहि भेजनेका महसूर्य।

पोस्त (फा॰ पु॰) १ वक्कल, छिलका । २ चमड़ा, खाल । ३ अकीमके पौथेका डोडा । ४ अकीमका पौथा, पोस्ता । पोस्ता फा॰ पु॰) स्वनामश्रसिद्ध वृश्वविशेष (Papaver Somniferum) । इसके डोडेमेंसे अफीम निकलता हैं, इस कारण इसे अकीमका पौथा भी कहते हैं। भारतवर्षमें विशेष कर सफेड और दाना पोस्ते (White poppy) को खेती अधिक होती है। उद्मिद्विद्व-गण अनुमान करते हैं, कि भूमध्यसागरके उपकुलमें, स्पेन, अलिजिर्या और ब्रोस आदि राज्योंमें तथा कर्सिका, सिसली और साइम्स द्वीपमें जो जङ्गलो पोस्तदानेके पौथे (Papaver Somnifirum) उगते हैं। उपयुक्त स्थानमें और जलगायुके गुणसे उन्हीं। पौथोंसे अकीम उत्पादक पोस्ता उत्पन्न हुआ है।

यह भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा—हिन्दी—अफीम, पोस्ता; बंगाल—पोस्त; नेपाल— अक्तीमः अयोध्या—पोस्ताः ; कुमायुन—पोषतः ; पञ्जाव— खसखसः, पोस्तः, छोदः, अफोमः, खिसखसः वम्बर्धः— अफोमः, अपो, खग्नखुन पोस्तः ; महाराष्ट्रः—आफुः, पोस्तः, खुसखुसः ; गुजरातो—अक्तीना, पोस्तः, खुग्नखुगः ; दािस्-णात्य—अफोमः, खग्नखग्रके वीदः, खग्नखग्रः ; तािमल्— अचिनीः, गग्नगग्रः, पोस्तकतोलः, गग्नगग्रतोलः, कसकसः ; तेलग्र्—अभिनोः, गसगसालतोलः, गसगसालः, कसकसः ; कणाडी—खसखिः, गसगसे, अफीमः मल्य—कग्नकग्र-करुपः, कसज्ग्रातोलः, कग्नकग्रक-कुरः, अफियुनः ब्रह्म—भैन भैनजो : सिङ्गापुर —अविन : संस्कृत—अहिफेन (कहीं कहीं पोस्तवीजम्) : अरव—अफिजनः, किगरल्खग्न-खगः, विजकलखग्रखगः, आवुनीमः पारस्य—खग्नखगः, अफिजनः, पोस्ते कीकनरः , तुखमीःकोकनरः। ये सव केवल पौर्थोके नाम हैं।

इसका पौधा दो ढाई हाथ ऊँचा होता है। पित्तवां भौग या गाँजेकी पित्तयोंकी तरह कटावदार पर बहुत वड़ी और सुन्दर होती हैं। उंठलींमें रोड्यां-सो होती हैं। फाल्युन चैतमें पौधा फूलने लगता है। पौधोंके बीचोबीच-से एक लम्बी पतली नाल ऊपरकी और जाती हैं जिसके सिरे पर चार पांच पखड़ियोंके कटोरेके आकारका बहुत सुन्दर गील फूल लगता है।

अंगरेज-शासित भारतवर्षमें विना गवर्मेग्टको अनुमितके कोई भो अर्मामको खेतो नहीं कर सकता। एकमात अफीम प्रस्तुत ही गवर्मेग्टका व्यवसाय है। डोडेसे
हो अफीम निकलतो है। डोडा तोन बार अंगुलका होता
है। जब यह कुछ बढ़ जाता है, नव उसमें लोहेकी नहरनीसे खड़ा चीरा या पाँछ लगा देते हैं। पाँछ लगनेसे
उसमेंसे हलके गुलावी रंगका दूध निकलता है। यह दूध
दूसरे दिन लाल रंगका हो कर जम जाता है। यही जमा
हुआ दूध अभीम है। एक डोडेसे तीन चार बार दूध
पाँछ कर निकाला जा सकता है। अफोम निकालनेके
बाद डोडेमें जो बीज या दाने रहते हैं, उन्हें प्रास्तेसे
एक प्रकारका तेल निकलता है। बङ्गालके पोस्त-दानोंसे
उत्कृष्ट तेल तैयार होता है। यह तेल मालवजात पोस्तेके तेलकी अपेक्षा विशेष कार्यकारों और औपधमें व्यवहत होता है। मालवका तेल केवल दीआ बालनेके

काममें आता है। तेलसे वत्ती और सावन मी तैयार होता है। यूरोपमें ओलीभ तेलमें यह मिलाया जाता है। तोसीके तेलके वदलेमें कहीं कहीं चिलकारगण इसी तेलको काममें लाते हैं । फुलकी पखिड़पींको भो लोग मिट्टीके गरम ताबे पर इकट्टा करके गोल रोटीके ह्रपमें जमाते हैं जिसे पत्तर कहते हैं। सूखे डोडोंसे राईकेसे सफेड़ सफेद वीज निकलते हैं जो पो-तेके दाने कहलाते हैं और खाय जाते हैं । पोस्तेका तेल सुखाद्य होता और वालने-से साफ रोशनी होती है। तेल निकालनेके बाद जो भूसी रह जाती है, गरीव लोग उसे खाते हैं और मवेशीको भी खिलाते हैं। मि॰ विनधम (Mr. Bingham)-ने लिखा है, कि पोस्तेके दानेमें प्रायः ३० भाग तेल है। तेल खच्छ और खादहीन होता, धूपमें रखनेसे ही परिष्कार हो जाता है। इसमें माद्कताशक्ति कुछ भी नहीं है। पोस्तेका दाना सुमिए होता है। मिठाई वनानेवाले इससे एक . प्रकारकी पीठी बनाते हैं।

प्राचीन व्रन्थादि पढ़नेसे जाना जाता है, कि पहले भरवोंने ही एशियामाइनरसे ले कर सुदूर चीन पर्यन्त इसका प्रचार किया था। पीछे खलीफाओं के उद्यमसे यह चीन और भारतवर्षमें लाया गया। आज भी चीनदेशमें एशियामाइनर और इजिमराज्यमें अफीमको विस्तृत खेती होती है। हिमालयके पार्वनीय नट पर सफेद, लाल और काले दानेके पीथे उगते हैं।

भारतवर्षमें और भो दो प्रकारके लाल दानोंके पोस्ते ।
(P. Rhoeas और P. dubium) पाये जाते हैं जिन्हें हिन्दीमें लाल पोस्ता ; दाक्षिणात्यमें लाल खराखराका ।
काइ, अरवमें खराखरा इ-मनसुर और अंगरेजीमें Bedpoppy वा Corn Rose कहते हैं। इनकी पखड़ियोंसे ओपधादि रंगाई जाती हैं। इसके डोडेका गुण मादक और वेदनावसादक है। काश्मीर, गढ़वाल, कुमायुन, हजारा आदि हिमालयके पहाड़ी देशोंमें तथा गोधूम-केलसे P. Rhoeas श्रेणीका पौधा उत्पन्न होता है। अफगानिस्तान और पारस्य राज्यमें P. dubium जातिके पौधे वहुतायतसे देखे जाते हैं।

मालयदेशमें प्रायः ३ लाख वोवेकी जमीनमें पोस्तेकी खेती होती है। अफीमके अलावा प्रति वीचेमें २ मन पोस्तादाना होता है। फ्रान्समें केवल तेलके लिये एक प्रकारका पोस्ता उपजाया जाता है। भारतवपेसे जो सब पोस्तेके दाने वेलजियम, फ्रान्स, इङ्गलैएड आदि यूरी-पीय देशोंमें मेजे जाते हैं, उनमेंसे कुछ अंग्र पारस्थदेशका रहना है। कलकत्ते, दम्बई आर मन्द्राज नगरसे नाना देशोंमें पोस्तेकी रफ़नी होती है। पोस्तेकी जातिके २५ या २६ पीधे होते हैं, पर उनमेंसे अफीम नहीं निकलतो। वे शोभाके लिये वगीचोंमें लगाये जाते हैं। उनके फूल चर्काले लाल होते हैं जिनको सुन्दरताका फारसीके कवियोंने इतना वर्णन किया है।

पोस्तेसे जो अफीम प्रस्तुत होती है उसमें नाना
भेपजगुण है। पहले यूरोपखएडमें उन सब ओपिधयोंका
व्यवहार था। अभी भारतीय अफीमकी खेती बढ़ जानेसे
तज्जात ओपधादिका भी विशेष व्यवहार होने छगा है।
इसका गुण—उत्तेजक, वेदनानाशक, वेदनानिवारक और
मादक। इसमें विधके जैसा गुण है। अतिरिक्त सेवनसे
अधिक नशा आता है। उस समय प्रीवास्थिदेशमें उसका
प्रकोप देखा जाता है। अधिक नशा चढ़नेसे प्राणनाशकी
भी सम्भावना रहती है। दारुण प्रदाहमें अथवा विषमादि
व्यरमें अफीम मिली हुई औपधादि दी जाती है। अफीमसे प्रस्तुत मिक्या, छाडेनम आदि एहोपैथिक औपध,
गांजा और अफीम मिश्रित तमाकृ, चण्डू वा मोदक
आदि मादक-प्रव्यक्त सेवनसे वहुत नशा होता है। कभी
कभी उसकी अधिकतासे प्राण भी निकल जाते हैं।
विस्तुत विवरण अहिफेन शब्दमें देखी।

पोस्ती (फा॰ पु॰) १ वह जो नरीके लिये पोस्तेके डोडे-को पीस कर पीता हो । २ आलसी आदमी । ३ गुड़िया-के आकारका कागजका एक खिलीना । इसकी पैंदीमें महीका ठोस गोल दीया-सा भरा रहता है। पेंदीसे ऊपर-की ओर यह गावदुम होता जाता है। यह हमेशा जड़ा हो रहता है, लेटानेसे या ऊपर गिरनेसे तुरत खड़ा हो जाता है।

पोस्तीन (फा॰ पु॰) १ एक प्रकारका पहरावा जो गरम और मुलायम रोपंचाले समूर आदि कुछ जानवरीका खालका वना होता है। इसे पामीर, तुर्किस्तान और मध्य-पिश्या-के लाग पहनते हैं। २ खालका वना हुआ कोट जिनमें नीचेकी ओर वाल होते हैं। पोहना (हिं कि कि) १ पिरोना, ग्रंथना । २ छेदना । ३ पोतना, छगाना । ४ धुसाना, धंसाना, जड़ना । ५ पोसना, बोसना । (बि) ६ धुसनेवाला, भेदनेवाला । पोहर (हिं ० पु०) १ वह स्थान जहां पशु चराये जाते हैं वा चरते हैं, चरहा । २ घास या पशुओं के चरनेका चारा, चरी ।

पोहा (हिं॰ पु॰) पशु, चीपाया । पोहिया (हिं॰ पु॰) चरवाहा ।

पौँचा (हिं० पु॰ : साढे पाँचका पहाड़ा ।

पाँडई हि॰ पु॰) १ पाँड़ के रंगका, गर्झ । (पु॰ २ पाँडे-के रंगके जैसा एक रंग। इसमें २० सेर टेस्का रंग और डेढ़ छटांक हल्दी पड़ती है। रंग पीलापन लिये हरा होना है। इसे गर्झ भी कहते हैं।

पोंड़ा (हिं • पु॰) एक प्रकारकी वड़ी और मोटी जातिकी ईख या गन्ना। इसका छिछका कुछ कड़ा होता है, पर उसमें रस बहुत अधिक होता है। यह ईख विशेषतः चूसनेके काममें आती है। छोग इसके रससे गुड़, चीनी भादि नहीं वनाते। इस ईखके दो भेद हैं, सफेद और काछा। सुश्रुतमें पौंड़ाको शीतछ और पुष्ट वतछाया है। कहते हैं, कि पौंड़ा पहछे पहछ इस देशमें चीनसे आया

वींग्डूट देखी। पौंड़ी हिं०स्ती०) पौरी देखो।

पौंदना (हिं • कि •) पौदना दे हो। पौंदना (हिं • कि •) तैरना।

पौरि (हि॰ स्त्री॰) पौरा देखो।

पौरिया (हिं 0 पु०) पौरिया दे ते ।

पौरवलेय (सं॰ पु॰ स्रो॰) पुंरवली अपत्ये-डक् । पुंरवली-का अपत्य ।

पोंश्वल्य (सं० क्ली०) पुंश्वल भावे-प्यञ् । १ असतीत्व परपुरुपगामित्व । २ पुरुप और स्त्रीका छिप कर व्यभिचार । पुरुपको देख कर स्त्रीके मनमें जो विकार उत्पन्न होता है, उसे पौंश्वल्य कहते हैं । मेघातिथिने पौंश्वल्य शब्दका ऐसा अर्थ लगाया है—'यिस्मन किस्मन्त पुंसि हरेटे धेर्याच्चलन' कथमनेन संप्रयुज्येयेतिरेतसो विद्यारः लीणां तत्पौंश्वल्यम्'। (मेधातिथि)

कुल्लूकने भी इसी अर्थका समर्थन किया है। Vol. XIV 113

पोहना (हिं कि कि) १ पिरोना, ग्रंथना । २ छेट्ना । ३ पाँसवन (सं क्रि) पुंसवनमेव स्वार्थे अण्। पुंसवन-

पोंसायन (सं॰ पु॰) सीतामणीमें याजक राजभेद । पोंस्न (सं॰ क्षी॰) पुंस इदं पुंस (स्त्रीपुं धाभ्यां नदल-क्वी मननात । पा शारा८७ । इति स्नञ् । १ पुंस्त्व । २ धेर्य । (ति॰) ३ पुरुषमें उत्पन्न । ४ पुरुषसे आगत । स्त्रियां कीप् । ५ पुरुषयोग्या । ६ पुरुषहिता ।

पौ (हि॰ स्त्रो॰) १ पौसाला, प्याऊ । २ ज्योति, किरण । ३ पाँसेको एक चाल या दाँव । (पु॰) ४ पैर । ५ जड़ । पौआ (हिं॰ पु॰) पौना देखो ।

पौगएड (सं॰ क्ली॰) पोगएडस्य भावः, पोगएड-अण्। अवस्थाविशेष, पांच वर्षसे दश वर्षे तककी अवस्था।

"कौमारं पञ्चमाव्यान्तं पौगण्डं दशमाविध।

कैशोरमापञ्चदशात् यौवनञ्च ततः परम् ॥"

(भाग० १ । १२।३७)

पांच वर्षे तककी अवस्थाको कौमार, दश वर्ष तकको पौगएड, पन्ट्रह वर्षे तक कैशोर और उसके वादकी अवस्थाको यौवन कहते हैं। (ति०) पौगएडावस्थायुक्त, जो पांचसे दश वर्ष तकके भीतर हो।

पौजिष्ठ (सं॰ पु॰ स्त्री॰) अन्त्यज्ञ जातिभेद् ।

पौटायन (सं ॰ पु॰ल्ली॰) पुटस्य ऋषेर्गीतापत्यम्, (अश्वा-दिभ्यः ॰ फल् । पा ४११।११०) इति स्त्रेण पुट-फल् । पुट ऋषिका गोतापत्य ।

पोठ (हिं॰ स्त्रो॰) जोतकी एक रोति इस रीतिके अनुसार प्रतिवर्षे जोतनेका अधिकार नियमानुसार बव्स्तता रहता है।

पौडर (अं ॰ पु॰) १ चूर्ण, बुकनी । २ एक सफेद बुकनी ं जिसे छोग मुंह पर छगाते हैं।

पौड़ी (हिं स्त्री) १ लकड़ीका वह मोढ़ा जिस पर मदारी वन्दरको नचाते समय विठाता है। २ एक प्रकार-की बहुत कड़ी महो।

पौद़ना ! हिं० कि •) १ फूलना, आगे पीछे हिलना । २ लेटना, सोना ।

पौढ़ना (हिं० क्रि॰) १ डुलाना, फूलाना । २ लेटाना । पौणिक्या (सं॰ स्त्रो॰) पुण गोतस्य स्त्री-अण् (गोत्र!वयवात् । पा धारा॰९) इति व्यङ्टाप् । पुलगोतको स्त्रो । पौराडरीक (सं० क्की०) पुराडरीक मित्र पुराडरीक (कर्करा-दिस्योहण् । या भाराहिण्) इत्यण् । १ प्रपौराडरीक, प्रपौराडरीयक वृक्ष, पुराडरी । २ क्राप्टियोष इसका आकार प्रवापतक जैसा होता है । ३ यज्ञ विशेष, । ४ वम्बई प्रदेशमें वेळगाँवके निकट एक पवित क्षेत्र । ५ स्थळपदा, थळकमळ ।

पौएडर्य (सं॰ क्ली॰) पुएडर्यमेव स्वार्थे अण् । १ प्रपौएडरीक, पुर्हरी । पर्याय-प्रपौर्हरोक और पौर्हरीयक । गुण-मधुर, तिक्त, कथाय, शुक्रबद्ध क, शीतल, चक्षुका हितकर, पाकमें मधुर, पित्त और कफनाशक। २ स्थलपश। पौएड (सं पु) १ गौड़देश वङ्गोत्तर वरेन्द्र भूमि। २ पुण्डूदेशवासी । ३ पुण्डूदेशके राजा । ४ भीमसेनके एक शंखका नाम । ५ इक्ष्मेद, मोटा गन्ना, पौंड़ा । ६ पुण्डू-देशके वसुदेवका पुत्र जो मिध्या वासुदेव फहलाया। पं.पड्ड देखें। ७ मनुके अनुसार एक जाति जो पहले क्षितिय थी पर पीछे संस्कारभ्रष्ट हो कर वृष्टत्वको प्राप्त हो गई थी। (ति०) ८ पुण्डूदेशोद्भव, पुण्डूदेशका। पीणड्क (सं ० पु ०) पी डू एव स्वार्थे कन्। १ इक्षुभेद, एक प्रकारका मीटा गन्ना, पौड़ा। संस्कृत पर्याय-पोंडिक, भीरुक, बंशक, शतपोरक, कान्तार, तपेसेसु, काष्ठेश्च, स्विपतक, नैपाल, दीर्घपत, नीलपोर और कोश-कृत । गुण—शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकर, श्लेंघाल, सारक, अविवाही, गुरुपाक और वष्य । पुण्ड् देखी। २ एक पतित जाति**। ब्रह्मयैवर्त्तपुराणमें लिखा दें,** कि शोरिडका (कलवारिन) के गर्भ और वैश्यके औरससे यह जाति उत्पन्न हुई है।

३ पुण्ड्देशके एक राजा। ये जरासन्धके सम्बन्धी।
थे। इनके पिताका भी नाम वस्तुदेन था, इस कारण ये
अपनेको वास्तुदेव कहा करते थे। राजस्ययक्षके समय
भीमने इन्हें परास्त किया था। श्रीकृष्णके समान ये भी
अपना रूप बनाये रहते थे। एक दिन नारदके मुंहसे श्रीकृष्णकी महिमा सुन कर ये वड़े विगड़े और कहने छगे,
मेरे अतिरिक्त और दूसरा वास्तुदेव है कीन। अतः इन्होंने
एकलव्य आदि वीरोंको छे कर द्वारका पर चढ़ाई कर दी।
उनके आक्रमणसे द्वारकावासी बड़े विद्वल हो गये।
दोनोंमें घनयीर युद्ध-आरम्भ हुआ। वहुतों वादबवीरों

और बङ्गीय नीरोंकी जान गई। आखिर कृष्णके कीशलसे पीण्डूक वासुदेव मारे गये। हरिबंश, विष्णुपुराण, भागवत और बद्धापुराणके ६६वें अध्यायमें विस्तृत विवरण देखो।

४ पोण्ड्देशोन्सव क्षतियविशेष । ये लोग क्रमंशः वृष-छत्वको प्राप्त हुए थे । पौग्ड्क देखो ।

पौण्डुक वासुदेव—पुण्डुदेशके एक पराकान्त राजा। ये
मगधाधिप जरासन्धके सम्बन्धी थे। हरिवंशके मतसे
इनके पिताका नाम वासुदेव था। वासुदेवके दो पत्नी थीं,
सुतनु और नाराची। सुतनुके गर्भसे पौण्डुक और
नाराचीके गर्भसे कपिल उत्पन्न हुए। कपिलने योगधर्मका अवलम्बन किया। पौण्डुक पौण्डुराज्य पा कर
पौण्डुक वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुए।

विशेव विवरण पौण्डूक शब्दमें देखी।

पौण्डूनगर (संब पुष) पौण्डूनगरे भवः अण् तस्य प्राच्य-देशत्वेऽपि नगरान्तत्वेन उत्तरपद्वृद्धिः। पौण्डूनगरभयः पुण्डूदेशका।

पौण्डुमात्सक (सं॰ पु॰) राजभेद, एक राजाका नाम। पौण्डुवत्स (सं॰ पु॰) वेदकी एक शाखाका नाम।

पौण्डूवर्द्ध न (सं ७ पु •) पौण्ड्राणामिश्रविशेषाणां वर्द्ध नं यस । नगरभेद । पुराड्रवर्दन देखो ।

पौण्डिक (सं• पु॰) पुण्डि-खार्थे ठञ्। १ इक्षुभेद, पौंडा नामका गन्ना। पर्याय-पुण्डे क्षु, पुण्ड, सेब्य, अतिरस, मधु। २ गोलप्रवर ऋपिभेद। ३ ठवा नामका पक्षी। ४ पुण्डुक नामक देश।

पौण्य (सं• तिः) पुण्येषु श्रोतस्मार्तकर्मसु साधुः भग्। पुण्यकर्मकारक।

पौतन (सं॰ हों।) पूतना-अण्। पूतना-सम्बन्धीय जन-पदमेद और उस देशके अधिवासी।

पौताना (हिं• पु॰) १ पैतः ना देखें। २ लकड़ीका पक भौजार जो जुलाहोंके करघेमें रहता है। यह चार अंगुल लम्बा और चौकोर होता है। इसके बीचमें छेद रहता है जिसमें रस्सी लगा कर इसे पौसरमें बांध देते हैं। कपड़ा बुनते समय यह करघेके गड़देमें लटकता रहता है। इसे पैरके अंगूटेमें फँसा कर ऊपर नीचे उठाते और दबाते हैं। ऐसा करनेसे राष्ठ पौसर आदि दबते और उठते हैं।

⁽१) मत्स्यपुराणके मतसे स्थरानी ।

पौतिक (सं० ति०) पृतिकेन दुर्गन्धिना निवृत्तं (सङ्कळा-दिभ्यश्च। पा ४।२।७५) इति अण्। पृतिक द्रव्यनिवृत्त, एक प्रकारका मधु।

पौतिनासिषय (सं० त्रि०) पूतिनासिक-ध्यञ् । १ पूति- । नस्यरोगप्रस्त, जिसे पीनस रोग हुआ हो । (क्री०) २ । नासिका रोग, पीनस रोग ।

पौतिमाय (सं॰ पु॰) प्तिमायस्य ऋषेः गोलापत्यं गर्गादि-त्वात् यञ्, तस्य छाताः (क्यवादिभ्यो गोते। पा ४।२।१११) इति अण् यद्योपक्च। पौतिमायके छातसमूह, प्रतिमाय ऋषिके गोलापत्यके छाता।

पौतिमाविपुत (सं•पु•) ऋपिभेद।

पौतिमाप (सं • पु०) पृतिमापस्य ऋषेः गोलापत्यं (गर्भा-दिभ्यो यम् । पा ४।१।१०५) पृतिमाप ऋषिका गोलापत्य । पौतिमाष्यायण (सं • पु •) पौतिमाप ऋषिका पु व्यवस्य । पौतृक (सं • ह्री ०) गोतुरिद ट्रम् । ऋत्यिक्भेद, पोतु-सम्बन्धी ।

पौत्तलिक (सं० ति०) १ प्रतिमापूजक, मृत्तिपूजक। २ पुतली सम्बन्धी, पुतलीका।

पौत्तिक (सं० क्ली॰) पुत्तिकासिमें धुमिस्काविशेषैः कृतम्, पुत्तिका (देशयां। पा ४।१।११०) इति उन्। आढ प्रकारके मधुके मध्य एक प्रकार पधु। पिङ्गल्लवर्ण पुत्तिका नामकी एक प्रकारको मधुमक्खी होती है। उसी मक्कीसे यह मधु निकाला जाता है, इस कारण इसे पौत्तिक कहते हैं। यह मधु ब्रीके समान होता है और प्रायः नेपालसे आता है। पौत (सं० पु॰) पुतस्यापत्यं पुत (अन्धान तैयं विदादि भोऽन्। पा ४।१।१०४) इति अञ्। पुतका पुत, लड़केका लड़का, पोता।

पौतजीविक (सं० क्ली०) वह कत्रच जो पुतर्श्वीवके बीजसे बनाया जाता है।

पौतायण (सं० पु॰) पुतस्य अपत्यं पुत (हरितादिभ्योऽनः। पा ४।१।१००) इति अपत्यार्थे फक्। पुतका अपत्य । पौतिकेय (सं० पु॰) पुतिकापुत, छड्कीका छड्का जी अपने नाना की सम्पतिका उत्तराधिकारी हो।

पौतिक्य (सं० क्ली॰) पुतिकस्य पुतिकायाः वा मानः (पायन्तपुगेहितादिक्यो यक्। पा ५।१।१२८) इति भावे यक्। पुतिक वा पुतिकाका भान। पौतिन् (सं• ति•) पौतिविर्शिष्ट । पौती (सं• स्त्री•) पुतस्य अपत्यं स्त्री, पुत-अञ्-ङीप् । पुतात्मजा, पुतको बेटो, पोती ।

पौद (हिं स्त्री) १ छोटा पौधा, नया निकलता हुआ पेड़। २ वह कोमल छोटा पौधा जो एक स्थानसे उलाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाया जा सके। ३ सन्तान, वंश। ४ वह वस्त्र जो वड़े लोगोंके मार्गमें इसलिये विछाया जाता है, कि वे उस परसे हो कर चलें, पाँवड़ी, पाँवड़ा।

पौद्न्य (सं॰ पु•) महाभारतके अनुसार एक नगरका नाम जहां अश्मक राजाकी राजधानी थी।

पौर्र (हिं० स्री०) १ पैरका चिहा २ वह राह जी पैरकी रगड़सें बन गई हो, पगडंडी । ३ वह राह जिस पर हो कर कोल्ह्र या मोट खींचनेवाला वैल घूमता या आता जाता है।

पौदां (हिं पु॰) १ वह पेड़ जो अभी वह रहा हो, नया निकलता हुआं पेड़ ।-२ छोटा पेड़, क्षुप, गुल्म आदि। ३ वुलवुलकी पेटीमें वांभनेका रेशंम या स्तका फुंदना। पौद्रगलिक (सं० ति०) १ खार्थंपर, खार्थों। २ पुद्रगल-सम्बन्धी, द्रव्य या भूतसम्बन्धी। ३ जीवसम्बन्धी। पौधन (हिं० स्त्री०) महीका वह पात जिसमें खाना रख कर परीसा जाता है।

पौधा (हिं॰ पु॰) १ नया निकलता हुआ पेड्, उगता हुआ नरम पेड्। २ छोटा पेड्, क्षुप, गुल्म आदि। पौधि (हिं॰ स्त्री॰) पौद देखो।

पौनःपुनिक (संब् बिक) पुनः पुनभेवः, पुनः पुनः उज्ज्, टिलोपः। १ पुनःपुनः भव, जो वार वार हो, फिर फिर होनेवाला । (क्की॰) २ दशमिक भग्नांशभेद। (Recurring)

पौनःपुन्य (सं० ही०) पुनः पुनः स्वार्थेन्यञ्, रिलोपः । पुनर्वार, दूसरो वार । पर्याय—वारम्वार, मुद्धः, राश्वत्, असकृत्, पुनः पुनः, वारम्वारेण, आसीकृण, प्रतिक्षण । पौनराधेयिक (सं० ति०) पुनः अग्न्याधान-सम्बन्धीय । पौनरुक (सं० ति०) पुनरुक्तस्य भावः अण् (ऋगय-नादिभ्यः । पा ४।३।७३) इति भवार्थे अण् । १ पुनर्वार उक्ति, फिरसे कहना । २ द्वैगुण्य । पौनकक्तिक (सं क छी ०) पुनक्कमध बेचि, तत् पदं वा अधीते (कत्वादिस्त्रान्तात् ठक । पा धाराह०) इति ठक् । १ पुनक्कार्थामिक । २ पुनक्कपदाश्येता । पौनर्णाव (सं ० पु०) सिन्नपात ज्वरमेद । इसमें रोगी लम्बी सांसें लेता है और पीड़ासे वहुत तलकता है। पौनभेव (सं ० पु०) पुनर्भु वोऽपत्यमिति पुनर्भु (अवस्थानक्तन्त्रें। विद्यादिश्यो ऽष् । पा धाराह० ॥ ३ वि अञ् । १ वारह प्रकारके पुत्रोमिसे दक पुत्र, पुनर्भु का पुत्र । "या पत्या वा परित्यक्ता विध्या वा स्वयेच्छ्या । उत्पादयेत् पुनर्भू त्वा स पौनर्भव उच्यते ॥" (मनु ६११७५)

पतिसे परित्यक्ता अथवा बिघवा स्त्री यदि अपनी इच्छासे दूसरेके साथ विवाह करे, तो उससे जो पुत उत्पन्न होता है, उसे पौनभैव पुत कहते हैं।

वह स्त्री यदि अक्षतयोनि रह कर परपुरुषगत अथवा पूर्चपतिके निकट लौट आवे, तो भर्ता उसका फिरसे पाणित्रहण कर सकता है। वह स्त्री भर्ताको पुनभूं-पत्नी होगी और भर्ता पीनभंव कहलायगा।

"सा चेदशतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा । पौनर्भवेन भन्नां सा पुनः संस्कारमहीति॥" (मनु ६।१७६)

(ति॰) २ पुनर्मूसम्बन्धी, पुनर्भूका।३ पुनर्भूसे उत्पन्न।

पौनर्भवा (सं इत्री) कन्याविशेष, वह कन्या जिसका किसीके साथ एक वार विवाह-संस्कार हो गया हो और दूसरी वार दूसरेके साथ विवाह किया जाय। कश्यपने सात प्रकारकी पौनर्भवा कन्यापं माना है, यथा—

"सप्त पौनभैवाः कत्या वर्जनीयाः कुलाधमाः । बाचा दसा मनोदत्ता कृतकौतुकमङ्गला ॥ उद्करपशिता या च या च पाणिगृहीतिका । अग्नि परिगता या च पुनभू प्रभवा च या । इत्येताः काश्यपेनोका दहन्ति कुलमग्निवत् ।" (उद्घाहतत्त्व)

वाक्द्सा, मनोदत्ता, कतकौतुकमङ्गला, उदकस्परिता, पाणिगुहीतिका, अग्निपरिगता और पुनर्भू प्रमया। ये सातों कन्याय वर्जनीया हैं। अर्थात् इन सातोंके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। पौना (हिं o go) १ पौनका पहाड़ा । २ काठ या लाहेकी वड़ी करछो । इसका सिरा गोल और चिपटा होता है। इससे आग पर चढ़े कड़ाहमेंसे पृरियां कचीरियाँ आदि निकाली जाती हैं।

पीनार (हिं स्त्री) कमलके फूलकी नाल या डंडल। कमलकी नाल वहुत नरम और कोमल होती है। उसके ऊपर महीन महोन रोइयां या काँटेसे होते हैं।

पौनारि (हिं स्त्री) पौना दे लो।

पौनिया (हिं॰ पु॰) वह कपड़ा जसका थान पौन धानके वरावर होता है और अजें भी वहुत कम होता है।

पौनी (हिं क्यीं) १ गाँवमें ये काम करनेवाले जिन्हें अनाज की राशिमेंसे अंश मिलता है। २ नाई, वारो, घोवी बादि काम करनेवाले जो विवाह आदि उत्सवों पर इनाम पाते हैं। ३ छोटा पौना।

पौने (हिं वि वि) किसी संख्यामेंसे चौथाई माग कम, किसी संख्याका तीन चौथाई।

पौषिक (सं० ति०) अपूप-निर्माणदक्ष, जो अपूप वनानेमें पटु हो ।

पौमान (हि॰ पु॰) १ प्रमान हेखो। २ जलाश्य, पोखरा।

पौर (सं० ह्यी॰) पुरे भवम्, पुर (तत्र भवः। पा धारापः) इत्यण्। १ रोहियत्यण्, कसा नामको घास। संस्कृतः पर्याय—कत्तृणः, रोहियः, देवजाधः, सौगन्धिकः, भूनिकः, व्यासपौरः, श्यामकः, धूमगन्धिकः। (पु०) २ पुरुराजपुतः। ३ नंखी नामकः गन्धद्रव्यः, नखः। (ति०) ४ पुरसम्बन्धोः, नगरका । ५ नगरमें उत्पन्नः। ६ उद्रप्रूरकः, पेट्टाः । पूर्वं दिशा या कालमें उत्पन्नः।

पौरक (सं॰ पु॰) पौर इव कायतीति कै-क। गृहवाह्यो-पवन, घरके वाहरका उपवन, पाई वाग।

भौरकुत्स (सं० क्ली०) तीर्थमेद, महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

पौरकुत्सी (सं॰ स्त्री॰) पुरुकुत्सस्य-अपत्यं स्त्रो पुरुकुत्स-इज्-ङीप् । गाधिराजकी माता ।

पौरगीय (सं॰ त्रि॰) पुरग-कृशाश्चादित्वात् छण् । पा ४।२।८०) पुरजनसमीपादि ।

पौरजन (सं॰ पु॰) पुर वा जनपदवासी।

पौरञ्जन (सं॰ ब्रि॰) राजा पुरञ्जनसम्बन्धीय । पौरण (सं॰ पु॰) पूरणस्य ऋवेः गोतापत्यं अण्। १ पूरण ऋषिका गोत्तापत्य, गोत्तप्रवर ऋषिभेद् । २ पूरण। पौरन्तर (सं॰ स्त्रां॰) पुरन्त्रस्येदं पुरन्द्रो देवताऽस्य वा अण्। १ इन्द्रसम्बन्धी। २ ज्येष्ठानस्तः। पौरव (सं • पु॰) पुरोरपत्यमिति पुरु-अण् । १ पुरुवंश । पुरुके चंशधर पौरव नामसे प्रसिद्ध हैं। ययातिने अपने पुत पुरुसे योवनावस्था पा कर कहा था, "तुमने मेरी जरा है कर यथार्थ पुतका कार्य किया है, इस कारण तुम्हारा अंश पौरव नामसे विख्यात होगा।" २ देशविशेष, उत्तर-पूर्वका एक देश। ३ उक्त देश-निवासी। ४ उक देशके राजा । (ति॰) ५ पुरुके वंशका, पुरुसे उत्पन्न । पौरवक (सं पु) पौरव-सार्थं कन्। पौरवशन्दार्थं।! पौरवी (सं॰ स्त्री •) १ युधिष्ठिरकी एक स्त्रीका नाम । २ बसुदेवकी स्त्रीका नाम । ३ संगीतमें एक मुच्छेना । इसका सरगम इस प्रकार है,—ध, नि, स, रे, ग, म, प। प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे। पौरवीय (सं० ति ।) पौरवी राजा भक्तिरस्य (जनविना जनपदश्त् सर्वे जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने। पा धो३।२•०) इति छ। पौरत्रनृप-भक्तियुक्तः। पौरइचरणिक (सं० ति०) पुरश्चरणस्य व्याख्पानस्तत भवो वा ठक्। (वा ४।३।०२) १ पुरश्चरणप्रतिपादक प्रन्थन्यांक्यान प्रन्थ । २ इस प्रन्थसे उत्पन्न । पौरस (सं• पु•) नक्षी नामक गन्धद्रव्य । पौरसस्य (सं पु) वह मित्रता जो एक ही नगर वा श्राममें रहनेसे परस्पर होती है। पौरस्त्री (सं॰ स्त्री) अन्तःपुर-वासिनी स्त्री । पौरस्त्य (सं । ति ।) पुरोभवः, पुरस् (दक्षिणायश्चात्पुर-बस्यक। पाधाराटन) इति त्यक्। १ प्रथम, पहला। २ पूर्विक्भिन्न, पूर्विदिशामें होनेवाला । पौरा (सं॰ पु॰) पड़े बुए चरण, आया हुआ कद्म, पैरा। पौरागीय (सं॰ ति॰) पुराग-ऋशाश्वादित्वात् छण्। (पा ४।२।<) पूर्वकालगतके अदूरदेशादि । पौराण (सं० ति०) पुराणे पडितः अण्। १ पुराणपडित, पुराणींमें कहा वा लिखा हुआ। २ पुराणसंम्बन्धी। पीराणिक (सं• ति•) पुराणमधीते वेद या पुराण (भास्या-Vol. XIV. 114

नाल्यायिकेतिहावपुराणेभ्यःन । पा धाराह०) इत्यस्य वार्त्ति-कोक्त्या उक्। १ पुराणचेत्ता । २ पुराणपाठी । तय्या-रुणि, कश्यप, सावर्णि, अस्तव्रण, वैशम्पायन और हारोत बे छः पौराणिक थे। ३ पुराणसम्बन्धीय, पुराणका। ४ पूर्वतन कालीन, प्राचीन कालका। (पु॰) ५ अठारह माताके छन्देंको संख्या। पौरि (हि॰ स्त्री॰) पीरी देखी । पौरिक (सं॰ पु॰) १ दाक्षिणात्यदेशभेद । २ पुरसम्ब-पौरिया (हि॰ पु॰) द्वारपाल, ड्योडीदार, द्रवान । पौरी (हिं॰ स्त्री॰) घरके भीतरका वह भाग जो द्वारमें प्रवेश करते ही पड़े और थोड़ी दूर तक छम्यो कोठरी या गलीके रूपमें चला गया हो, डारेड़ो । पौरकुत्स (सं॰ पु॰) पुरुकुत्सस्य ऋषेः गोतापत्यं अण्। पुरुकुत्स ऋषिका गोलापत्य, गोलप्रवर ऋषिमेद्र। पीवकुत्सि (सं । पु । पुवकुत्सस्यापत्यं इञ् । पुवकुत्स-का अवत्य । पौरकुत्स्य (सं॰ पु॰) पुरुकुत्सस्यापत्यं व्यञ् । पुरुकुत्स-का अपत्य। पौरुमद्ग (सं॰ इड़ी॰) सामभेद् । पौरुमह (सं॰ क्ली॰) सामभेद । पौर्वमीढ़ (सं॰ क्ली॰) सामभेद । पौरुशिष्टि (सं० पु०) ऋषिमेद्र । पौरुष (सं॰ क्ली॰) पुरुषस्य भावः कर्म झा युवादि-त्वादण्। १ पुरुपका भाव। २ पुरुपका कर्म। ३ पुरुपका तेज, पुरुषत्व । ४ पराक्रम । ५ रेत । ६ साहस । ७ उद्यमः उद्योग । ८ गहराई या ऊँ चाईकी एक माप, पुरसा । 🛙 ६ उतना वोक जितना एक आदमी उठा सके। (ति०) १० पुरुषसम्बन्धीय । ११ पुरुषपरिमित । १२ पुरुषबाह्य । १३ पुरुषकार । मानव जिस कर्म द्वारा इस जगत्में शुभाशुभ फल पाते हैं, उसे पौरुष कहते हैं। स्तार्थे अण्। १३ पुरुपशंन्दार्थं । १४ पुत्रागबृक्ष । पौरुयमेधिक (सं० ति०) पुरुपमेधसम्यन्धीय । पौरुपाधिक (सं॰ लि॰) पुरुपवत् पुरुपाकार। पौरुयांशक्तिन् (सं॰ पु॰) पुरुषांशकेन ऋषिणा प्रोक्त-मधीयते शौनकादित्वात् णिनि । पुरुपांशक ऋषिप्रोक्ता-'अ्येतृसमूह् ।

पौरुषाद (सं० ति०) पुरुषाद वा नरखादकसम्बन्धी । पौरुषिक (सं० ति०) १ पुरुषसम्बन्धीय । (पु०) २ पुरुषका उपासक ।

पौरुषेय (सं० पु०) पुरुष (सर्वपुरुषाभ्यां णढक्वो । पा धारारे०) इत्यत पुरुषाद्धधिवकारसमूहस्तेन स्तेषु पन्वर्थेषु ढम् । १ पुरुपका समृह, जनसमुदाय । २ वध । ३ पुरुषका कर्म, मनुष्यका काम । ४ रोजको मजदूरी या काम करनेवालां मजदूर । ५ पुरुषका विकार । (ति०) ६ पुरुषसम्बन्धी, पुरुषका । ७ पुरुपकृत, आद्मीका किया हुआ । ८ आध्यात्मिक ।

पौरुषेयत्त्र (सं० क्की०) पौरुषेयस्य भावः त्व । पौरुषेयका | भाव या कर्म ।

पौरुष (सं॰ ति॰) १ पुरुषसम्बन्धी । (क्ली॰) २ पुरुपता, साहस ।

पौरुद्वत (सं॰ पु॰) पुरुद्वत या इन्द्रका अख्न, वज्र । पौरू (हि॰ पु॰) भूमिका एक भेद, एक प्रकारकी मही या जमीन जिसके कई भेद होते हैं।

पौरेय (सं • ति ०) पुरस्यादूरदेशादि, पुर (सहवादिभ्यो हज् । पा ४।२।५ १ इति हज् । नगरके समीप देशादि ।

पौरोगव (सं• पु॰ स्त्री) पुरोऽत्रे गौनेंत्रं यस्येति, पुरोगुः, ततः प्रज्ञादित्वादण् । पाकशालाध्यक्ष ।

पौरोडाश (सं॰ पु॰) पुरोडाश एव प्रज्ञादित्वादण्। पुरोडाश । २ पुरोडाश-सहचरित मन्त्र ।

पौरोडाशिक (सं॰ पु॰) पुरोडाशसहचरितो मन्तः, पुरो-डाशः स पव पौरोडाशः, तस्य ध्याख्यानस्तत्र भवो वा । पुरोडाशिक, पुरोडाशसहचरित मन्त्र ।

पौरोभाग्य (सं० क्षीर्) पुरोभागिन-ष्यञ्, अन्त्यलोपं आद्यचो वृद्धिस्य । केवल दोषमात दर्शन ।

पौरोहित (सं० ति०) पुरोहितस्य धर्मं पुरोहित-(अण् महिष्यादिभ्यः। पा ४।४।४८) इति अण्। पुरोहितका धर्म, पुरोहितका कार्य।

पौरोहितिक (सं० पु॰) पुरोहितिका (शिवादिभ्वोऽण्। पा शार्।१११२) इति अपत्यार्थे अण्। पुरोहितकी सन्ति । पौरोहित्य (सं० क्की) पुरोहितस्य कर्म, प्यञ्। पुरोहितका कर्म वा धर्म, पुरोहिताई।

पौर्णद्वै (सं॰ क्की॰) पूर्णया दर्घा निष्पाद्यं कर्म-अण्। वैदिक कर्मभेद्र।

पौर्णमास (सं० पु०) पौर्णमास्यां भवः पौर्णमासी (सिन्धवेळाइय त नत्त्रेभम्योऽण पा धा३।१६) इत्यण्। पौर्ण मासीविहित यागविशेष, एक याग या इष्टिका जो पूर्णमाने के दिन होती थी। इस यागका विधान कात्यायनधौत-सुत्रमें सविस्तार छिखा है।

पौणमासायण (सं॰ क्ली॰) पूर्णि मामें अनुन्देय यागमेद् । पौर्णमासिक (सं॰ ति॰) पूर्णमास्यां भवः 'कालात् उज्' इति उज्। पौर्णमासभव यागादि ।

पौर्णमासी (सं क्यी) पूर्णमासी । यज्ञीमें प्रतिपदुत्तरा पूर्णमासीका ही प्रहण होता है । पूर्णमासी दो प्रकारकी मानी गई है, एक पूर्वा जिसे पञ्चदशी भी कहते हैं, दूसरी उत्तरा जिसे प्रतिपदुत्तरा कहते हैं ।

पौर्णमासी—वृन्दावनकी वृद्धा तपिक्षनी । बृहद्द्गणोहे श-दीपिकामें लिखा है, कि ये अवन्तीपुरवासी सान्दिपिन-मुनिकी माता और देवर्षि नारदको शिष्या थीं।

पौर्णमास्य (सं क्ली) पौर्णमास्यां भवः बाहुलकात् यत्। पौर्णमासभव यागावि, पूर्णिमाको होनेवाला यह आदि।

पौर्णमी (सं० खो०) पूजतया चन्द्रो मीयतेऽत मा-आधारे घन्नर्थे क, स्वार्थे अज् ततो ङीप्। पूर्णिमातिथि। पौणसौगन्धि (सं० पु•) पूर्णसौगन्धका गोतापत्य। पौत्ते (सं० क्की०) पूर्च-अज्। पूर्तकम-सम्बन्धीय, पूर्श-कार्य।

पौर्त्तिक (सं॰ ति॰) पूर्त्ताय साधुः टक् । पूर्रासाधनकर्म । पौर्य (सं॰ पु• स्त्री॰) पुरस्य अपत्यं (क्वांदिभ्यो ग:। पा

- ४।१।१५१) इति ण्य । पुरनाम राजाकी संतित । पौचेंदेहिक (सं• सि०) पूर्वदेह-ठक् । पूर्वदेहसम्बन्धोय । पौचेनगरेय (सं० सि०) पूर्वनगर्या भवः, (नवादिभ्यः ठक् । पा ४।२।६७) इति ठक् । पूर्वनगरीसव ।

पीर्वपञ्चालक (सं० ति०) पूर्वपञ्चाले भनः अण् ततः (दिगोऽनद्राणां। पा णश्रश्य) इति वृद्धः। पूर्वपञ्चाल-

भव, जो पूर्वपञ्चालमें होता हो। पौर्वपदिक (सं॰ ति॰) पूर्वपदं गृह्णति (पदोत्तरपदं गृह्णति। - पा धाधाइह) इति उज्। पूर्वपदग्राहक। पौर्वमद्र (सं० ति०) पूर्वमद्र (मद्रे भ्योऽन् । वा ४।२।१०५) इति अत्र, पूर्वपदवृद्धिः। मद्रके पूर्व ओर। पौर्ववर्षिक (सं • ति ॰) पूर्वासु वर्षोसु भवः पूर्ववर्षा-उक् । पूर्ववर्शाभव, जो पूर्व वर्शामें हो। पौबेशाल (सं• बि•) पूर्वस्यां शालायां भवः अञ् (पा शरा१०७) पूर्वशालाभव, जो पूर्वशालामें हो । पौर्वातिथ (सं । पु) गोतप्रवर ऋषिभेद । पौर्वापर्य (सं• ह्यां•) पूर्वापरयोर्भावः प्यञ् । १ पूर्वा-परत्व, पूर्व और पर अर्थात् आगे और पीछेका भाव । २ अनुक्रमण, सिलसिला। ३ कारण, वजह। नतीजा । पौवादः (सं० ति०) पूर्वाद्वे भवः, अञ्। पूर्वादः भव, जो पूर्वाद्धे में हो। पौर्वार्द्धिक (सं • ति ॰) पूर्वार्द्धे - भव-ठञ् । जो पूर्वार्द्धे -में हो। पौर्वादर्भ (सं ० ति •) पूर्वाद^६-व्यञ् । पूर्वाद^६भव । पौर्वाह्विक (सं ० ति.०) पूर्वाह (विभाषा पूर्वाहापराभ्यां। वा ४।३।२४) इति ठञ्। १ पूर्वाह्ममें होनेवाला। २ पूर्वाहसम्बन्धी। षौर्विक (सं • ति •) पूर्वस्मिन् भवः ठञ्। पूर्वमें होने-बाला। पौलस्ती (सं ० स्त्रो०) पुलस्तस्य स्त्रापत्यः, पुलस्त-यञ् , ङीप् यलोपः । पुलस्त्यको स्त्री अपत्य, सूर्पनखा । पौलस्त्य (सं॰ पु॰) पुलस्तेः पुलस्तस्य वा अपत्यं पुलस्ति-गर्गादित्वात् यञ् । १ पुलस्त्यका पुत वा उनके वंशका पुरुष। २ कुवेर। ३ रावण कुम्मकर्ण और विभीपण। ४ चन्द्र। ५ एक ज्योतिर्विद्र। पौलस्त्यो (सं ० स्त्रो०) १ पुलस्त्यवंशजा, पुलस्त्यवंश-को स्त्रो-अपत्य। २ सूर्पनखा। पौला (हि॰ पु॰) विना खूं टीके एक प्रकारकी खड़ाऊँ। छेदमें वंधो हुई रस्सोमें अँगूठा फँसा रहता है। पौलाक (सं ० त्नि०) पुलाकस्य विकारः पलाशादित्वात् अञ्। पुलाकविकार। पौलास (सं • ति •) पुलासः तृणादि स्तूपविक्षेपकः तेन निवृत्तः, (संकलादिभ्यक्षः। पा ४।२,७५) इति अञ्।

तृणादि स्तूपविशेष द्वारा निवृ^९त ।

पौलि (सं पु) पोलतीति पुल-महत्त्वे ज्यलादित्वात् ण, पौलेन निवृत्तः सुतङ्गमादित्वादिञ् । १ पाकानस्था-गत फलायादि । २ आरब्धपाक यवसप्पादि, थोड़ा भुना हुआ जौ, सरसों आदि । ३ दरद्ग्ध । पर्याय— आपक्व, अम्यूप, अम्योप । (स्री) ४ पोलिका, फुलका, रोटी ।

पौलिया (हि॰ पु॰) पौरिया देखो ।

पौलिश—पुलिशरचित-सिद्धान्तभेद । पुलिश देखो । पौली (हिं॰ स्त्री॰) १ पौरी, ड्योढ़ी । २ पैरका बह भाग जिसमें जूता, खड़ाऊँ आदि पहनते हैं, एड़ीसे लेकर उंगलियों तकका भाग । ३ पैरका निशान जो धूल, गोली मही आदि पर पड़ जाता है, पदचिह ।

पौलुषि (सं॰ पु॰) १ पुलुबंशीय सत्ययन्न ऋपिमेद । इनका नाम शतपथत्राह्मणमें आया है । २ पुलुबंशमें उत्पन्न पुरुष ।

पौलोम (सं • ति •) पुलोमनः अपत्यमिति पुलोमन-अण् अणो लोपः। १ पुलोमा ऋषिका हुंअपत्य या पुतः। २ कौशोतक उपनिषद्के अनुसार दैत्योंकी एक जातिका नाम।

पौलोमी (सं० स्त्री०) १ इन्द्राणी। २ भृगु महर्विकी पत्नोका नाम।

पौल्कस (सं॰ वि॰) पुल्कस-अण्। १ पुल्कसजाति-सम्बन्धोय। (पु॰)२ पुल्कसजातिका मनुष्य।

पौवा (हिं पु॰) १ पक सेरका चौथाई भाग, सेरका चतुर्था श । २ मड़ी या काट आदिका एक बरतन जिसमें पाव भर पानी, दूध आदि था जाय ।

पौष (सं॰ पु॰) पौषो पौर्णमास्यस्मिन्नित, सास्मिन्
पौर्णमासीत्यण्। वैशाखादि वारह मासके अन्तर्गत
नवम मास। इस मासमें पूर्णिमाके दिन पुष्यानक्षतका
योग होता है, इसोसे इसका पौप नाम पड़ा है। यह सौर
और चान्द्रके भेदसे दो प्रकारका है। फिर चान्द्रपौषके
भो दो भेद हैं, गौणचान्द्र और मुख्यचान्द्र। सौरमासमें
सूर्य जव वृश्चिकराशिसे अनुराशिमें आते हैं, तब इस
मासका आरम्म होता है। जब तक सूर्य इस राशिमें
रहते हैं, तब तकका समय पौपमास कहलाता है। यह
मास प्रायः २६ दिनोंका होता है। चान्द्रमासमें रिवके

धन्राशिमें रहनेसे शुक्काप्रतिपद्से छे कर अमावश्या तक-को मुख्यचान्द्र पौष और कृष्णाप्रतिपद्से छे कर पौर्णमासी तकको गीणचान्द्र पौप कहते हैं। पौषमासमें जन्म छेनेसे मन्त्रणारश्चक, कुश, परोपकारी, पिनृधनवर्जित, कुछ छक्यार्थ, व्यवशील, विधिन्न और धीर होता है।

इस मासके पर्याय—तैय, सहस्य, पौषिक, हैमन, तिष्य, तिष्यक हैं। २ जैववर्षमेर। ३ पक्ष। पौषी (स'० स्त्री०) पुष्य 'नक्षत्रेण् युक्तः' इत्यण्। तिष्य-पुष्येति यलोपः। १ पुष्ययुक्ता पौर्णमासी, पौपमासकी पूर्णिमा। २ पुष्यनक्षत्रयुक्ता राति।

पौक्तर (सं० क्कों०) पुक्तरस्येदिमिति पुक्तर अण्। १ पुक्तरमूल। पर्याय -पुक्तर, पद्मपत्न, काश्मीर, कुप्टमेद। गुज-कद्भ, तिक्त, बात, कफ, ज्वर, शोध, अकचि, श्वास और पाश्वशूलनाशक। भावप्रकाशमें लिखा है, कि इसके अभावमें कुप्र दिया जा सकता है। २ पद्मप्ल, भीसा, भसीड़। ३ परएडमूल, रेंड्रीकी जड़। ४ स्थलपद्म। (ति०) ५ पुक्तरसम्बन्धी।

पौष्करक (सं ० ति०) नीलपदा-सम्बन्धोय।

पौकरमूल (सं ० क्वी०) पुष्करं सुगन्धद्रव्यं तस्य इदं पौष्करं मूलं । पुष्करमूल ।

पौक्तरसादि (सं०पु०) १ एक वैयाकरण ऋपिका नाम जिनके मतका उल्लेख महाभाष्यमें है । २ पुक्तरसद् नामक ऋपिके गोलमें उत्पन्न पुरुष ।

पौक्तरिणी (सं क्षीक) पुष्कराणां समूहोऽस्या अस्तीति पौष्कर-इनि स्त्रियां ङीप्। पुष्करिणी, छोटा पोखरा। पौष्करेयक (सं किल) पुष्करे जातः (कर्षादेश्यो ठक स् । पुष्करमें जात, तालावमें होनेवाला।

पौष्कल (सं० ति०) पुष्कलेन निवृंत्तं सङ्गलादित्वादण्। (या धाराव्य) १ पुष्कसनिवृंत्तः। (क्वी०) २ साम-भेद, एक सामका नाम।

पीफलावत (सं ० पु०) दिवोदास धन्वन्तरिके प्रति आयु-

र्वेद ज्ञानार्थ प्रथ्नकारक सुश्रुत-सहाध्यायिमेद । पौक्रलेयक (सं वि) पुष्कले जातादि, कर्कादित्वात् उक्त म् । पुष्कलमें होनेवाला ।

पौक्तत्य (सं । क्री ।) पुष्कल-ध्यञ् । सम्पूणत्व, सम्पूर्णता ।

पौष्टिक (सं० क्ली०) पुष्ट्ये वृदुध्ये हितम्, पुष्टिन्छन्। र पुष्टिसाधन-कर्म, यह कर्म जिससे धन जन आदिको वृद्धि हो। २ क्षौरके समय गालाच्छादनवस्त्रविशेष, वह कपड़ा जो मुं उनके समय सिर पर डाल दिया जाता है। ३ पुष्टिकर औषध, वह औषध जिसका सेवन करनेसे शरीर-में वाकत हो। ४ पुष्टिकर दृष्ट्यगण (दि०) ५ पुष्टिहित, वलवीर्यदायक।

पौधी (सं० स्त्री•) राजा पुरुकी एक स्त्री।

यौष्ण (सं० ति०) पुवा देवताऽस्य तस्येदं वा अण् षणन्तत्वात् उपघालोपः । १ पुता देवता-सम्बन्धो, पुपादेवताका। (पु०) २ रेवती नक्षतः।

पौष्णात्रत सं पु) पुष्णावत गोवापत्य।

पौष्प (सं ० क्की ०) पुष्पेण निवृत्तं पुष्पस्येदं वेति पुष्प-अण् । १ पुष्पसाध्य मद्य, फूळींसे निकाला हुआ मद्य । २ पुष्परेणु, फूलको घूल, पराग । (ति ०) ३ पुष्प-निर्मित, फूलका बना हुआ । ४ पुष्पसम्बन्धो ।

पौष्पक (स॰ हो॰) पुष्पेण कायतीति कै-क, वा पुष्पक स्वार्थे थण्। कुसुमाञ्जन।

पौष्पी (सं क्षी) पुष्पस्य इयं पुष्प-अण् गौरादित्वात् ङीच् । देशचिरोष, पुष्पपुर या पाटलिपुन ।

पौत्य (सं० पु०) पूर्णोऽपत्यमिति पूषण-त्यम् । १ कर-वीर पुराधिपति पूपके लड्के । शिवांशज चन्द्रशेखरते इनके पुत्ररूपमें जनममहण किया था। (काविकायु॰ धर्र अध्याय) २ नृपमेद । इन्होंने उतङ्क ऋषिको गुरुद्धिणामें अपने दोनों कुएडल दिये थे । (महामारत १।३।९६२) तद्धिकृत्य कृतो मन्धः अण् । (क्की०) ३ महाभारतके आदिपर्यान्तर्गत पर्यमेद ।

पौसला (हिं० स्त्री॰) १ पानी पिलानेका स्थान ।२ ध्यासी को पानी पिलानेका प्रबन्ध ।

पौसार (हिं को॰) लकड़ीका एक इंडा जो ताने और राछके नीचे लगा रहता है। यह करलेके भीतर रहता है। इसीके पैरले दवा कर राछको ऊंचा नीचा करते हैं।

पौसरा (हिं० पु०) पाव सेरकी तोल । पौहारी (हिं० पु०) वह जो केवल दूख पी कर रहे, अब आदि न खाय।

प्याऊ (हि॰ पु॰) सर्वसाधारणको पानी पिलानेका स्थान, पौसरा । प्याज (फा॰ पु॰) एक प्रसिद्ध कन्द जो विलकुल गोल गांठके आकारका होता है।

विश्वेष विवरण पढाग्रह शन्दमें देखो । व्याजी (फा॰ वि॰) प्याजीके रंगका, हळका गुलादी । प्याट् (सं॰ अध्य॰) भी, हे, सम्बोधन प्यान (सं॰ वि॰) स्फीत ।

प्याना (हिं० कि॰) पिळाना देखी । प्यायन (सं'० ति॰) वर्द्ध नशक्तिशील ।

प्यायस्थूल (सं ॰ पु॰) गोतप्रवर ऋषिभेद ।
प्यार (हि॰ पु॰) १ स्नेह, प्रेम, चाह । २ वह स्पर्श,
चुम्बन, सम्बोधन भादि जिससे प्रेम स्चित हो । ३
अवार या पियार नामका वृक्ष जिसका वीज चिरौंजी है।

प्यारा (हि॰ वि॰) १ प्रीतिपात, जिसे प्यार करें। २ जो भला मालूम हो, जो अच्छा लगे। ३ जो छोड़ा न जाय, जिसे कोई अलग करना न चाहे।

प्यारी (सं॰ स्त्री॰) श्रीराधिका।

पारीचाँद मिल-कलकत्तेके निमतल्लानिवासी एक कायस्थ-सन्तान । इनके पिताका नाम रामनारायनमिल था। 'अन्होंने सङ्गीतविद्याकी उन्नतिके छिये सङ्गीततरिङ्गिणी नामक प्रन्थ रचा । प्यारीचांदने १८२७ ई०में हिन्दूकालेजमें प्रवेश किया। यहां विद्याशिक्षा सम्पन्न करके उन्होंने थोडे ही दिनोंमें प्रचुर अर्थ उपार्जन कर लिया । डफ साहव (Mr. Duff)ने इन्हें खुष्टानधर्ममें दीक्षित करनेकी वहत कोशिश की, पर कृतकार्य न हो सके। उच्चशिक्षा पा कर भी इन्होंने गवर्में एटकी नौकरी कभी नहीं की । विपयकमें में लिप्त रहते हुए भी साहित्यसेवाकी ओर इनका विशेष ध्यान था। टेकचांद ठाकुर नामसे इन्होंने वङ्गळा भाषामें "अलालके घरके दुलाल", "अमेदी", "आध्यात्मिका" आदि प्रनथ लिखे। "आलालके घरके दुलाल" नामक प्रनथ बङ्गालियोंके निकट विशेष परिचित है। आज भी सिमिल सर्विस (Civil service) परीक्षाकी पाठ्य पुस्तक निर्वाचित हुई है। G. D. Oswill M. A. ने इस प्रनथका अंगरेजीमें अनुवाद कर 'The Spoilt Child नाम रखा । केवल वङ्गलामें ही नहीं अङ्गरेजीमें भी ये अनेक प्रन्थ लिख गये हैं। इनमेंसे कलकता रिभ्यु मासक मासिक पविकामें लिखित जमींदार और प्रजा-

सम्बन्धीय एक प्रवन्ध पार्कियामेएटके मेम्बरोकी आलो-चनाका विषय हो गया था। आप हैयर साहेव (David Hare)की स्मरणार्थ समा, पशुकप्रनिवारिणी सभा आदिके स्थापयिता और British Indian Association आदिके उद्यमशील सम्य थे।

व्यारीमोहन वन्दोपाध्याय—कलकत्ते के सन्निकटस्थ गङ्गातोरवत्तीं उत्तरपाड़ाके एक ब्राह्मण । विद्याशिक्षाके वाद्
ये बृटिश-गवर्में एटके अधीन 'मुनसिफ' पद पा कर युक्तप्रदेशको चले गये । सिपाही-विद्रोहके समय ये इलाहाबाद्में थे । विद्रोहियोंको धोरतर अत्याचारी देख कर
उनके दमनके लिये आगे वढ़े । विद्रोहियोंके साथ
युद्ध करके इन्होंने विजयपताका फहराई । इस कारण
बृटिशगवर्में एटने इन्हें "Fighting Munsiff"की उपाधि
दी थी ।

प्याला (फा॰ पु॰) १ एक विशेष प्रकारका छोटा कटोरा। इसका ऊपरी भाग या मुंह नीचेवाले भाग या पेंदेकी अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा होता है। इसका व्यवहार साधारणतः जल, दूध या शराव बादि पीनेमें होता है, छोटा कटोरा, जाम। २ गर्भाशय। ३ जुलाहोंका मद्दीका वह बरतन जिसमें वे नरी भिगोते हैं। ४ तोष या वन्दूक आदिमें वह गड़ा या स्थान जिसमें रंजक रखते हैं। ५ भीख मांगनेका पात, खप्पर।

यास (हि॰ स्त्री॰) १ जल पीनेकी इच्छा, तृष्णा, तृपा।

शरीरके सव अंगोंमें कुछ न कुछ जलका अंश रहता है। उसी जलसे सव अंगोंकी पुष्टि होती है। जव यह जल शरीरके काममें आनेके कारण घट जाता है, तव सारे शरीरमें एक प्रकारका आलस्य मालूम होने लगता है। उस समय जल पीनेको जो इच्छा होती है, उसीका नाम प्यास है। जीवोंके लिये प्यास भूखसे वढ़ कर कष्ट-दायक होती है। कारण, जलकी आवश्यकता शरीरके प्रत्येक खायुको होती हैं। मीजनके विना मचुष्य कुछ अधिक दिनों तक जीवन-धारण कर सकता है, पर जलके विना थोड़े ही समयमें उनका प्राण-पखेक उड़ जाता है। जिस मचुष्यको प्याससें मौत होती है, वे मरनेसे पहले बागल हो जाते हैं। विशेष विवरण द्याणा ग्रव्हों हेखो।

२ किसी पदार्थं आदिको प्राप्तिकी प्रवल इच्छा, प्रवल कामना। प्यासा (हिं० वि॰) जिसे प्यास लगो हो, जो पानी पीना चाहता हो ।

प्युक्ष्त (सं० क्ली०) अपि-उस वाडुलकात् नक् अपेरह्लोपः। १ कायु। २ अजगर सर्पे।

प्युष (सं० क्ली०) १ विभाग। २ दाह।

प्यून (अ'० पु०) चपरासी, इलकारा।

प्यूस (हिं० पु०) पेवस देखो ।

ष्यूसी हिं स्त्री) पेवसी देखे।

ल्योरी (हिं॰ स्त्री॰) १ कईकी मोटी वत्ती। २ एक प्रकार का पीला रंग।

प्योसर (हिं॰ पु॰) हालकी व्याई हुई गौका दूध। प्योसार (हिं॰ पु॰) स्त्रीके लिये पिताका गृह, पीहर, मायका।

क्योंदा (हिं० पु०) वैबंद देखी।

ध्यौसरी (हि॰ पु॰) पेवसी देखो ।

प्र (सं॰ अन्य॰) प्रथयतीति, प्रथ-द्ध । १ वीस उपसर्गीमेसे एक । २ गति । ३ उत्कर्ष । ४ सर्वतीभाव । ५ प्राथम्य । ६ छ गति । ७ उत्पत्ति । ८ व्यवहार । ६ आरम्म ।

प्रजग (सं० क्की०) प्राग्युगं पृपोदरादित्वात् साधुः। १ प्राग्वनी युग। २ शस्त्रभेद, एक हथियारका नाम। प्रकङ्कत (सं० पु०) १ प्रकृष्ट विप, तेज जहर। २ प्रकृष्ट

नमञ्जूरः (सण्युण्) १ प्रश्रष्ट । वय, तज्ञ जहर । २ प्रश्रप्ट गमनयुक्त सर्पविशेष, तेजीसे भागनेवाला एक प्रकारका साँष ।

प्रकच (सं॰ ति॰) जिसके रोंगरे खड़े हों।

प्रकट (सं॰ ति॰) प्रकटतीति प्र-कट-अच्। १ स्पष्ट, व्यक्त, जाहिर । २ जो प्रत्यक्ष हुआ हो । ३ उत्पन्न, आविभूत । प्रकटन (सं॰ क्की॰) प्र-कट-ल्युट्। व्यक्तीकरण, प्रकट होने-की किया ।

प्रकटादित्य—काशीधामके एक वैष्णव राजा। इनके पिता को नाम वालादित्य और माताका नाम धवला था। प्रकटित (सं० वि०) प्र-कट-का। प्रकाशित, जो प्रकट इआ हो।

प्रकण्य (सं) पु) प्रकृष्टाः कण्या यत्, ऋषिमिन्नत्वात् न सुद् । देशभेद, एक देशका नाम ।

प्रकथन (सं• ह्यो•) प्र-कख-ल्युट्। प्रकृष्टकपसे कथन, साफ साफ कहना, खुलासा वयान। प्रकम्प (सं॰ पु॰) प्र-कम्प अच् । प्रकम्पन, कंपकेषी, धरधराहर ।

प्रकम्पन (सं० पु०) प्रकम्पयतोति प्र-किप-णिच्-ल्यु । १ वायुः हवा । २ नरकविशेष, एक नरकका नाम । ३ राक्षसभेदः, एक राक्षसका नाम । (क्वी०) ४ कम्पाति-शयः, बहुतं थरधराहट । ५ वायुका स्थितिस्थापक पदार्थ ।

जो पदार्थ आघात वा किसी दूसरी तरहसे अव-स्थान्तरित होने पर भी थोड़े ही समयके अन्दर पूर्व भवस्थाको प्राप्त होता है उसे स्थितिस्थापक पदार्थ कहते हैं। आधात द्वारा जो परमाणु अवसारित होते हैं वे अपने सामनेके परमाणुओंको हृदाये विना खर्य अप-सारित नहीं हो सकते। किन्तु उन्हें अपसारित करनेमें अपने पर प्रतिघात पहुँचता है। इस प्रकार उनमें एक गति उत्पन्न हो जाती है। उस गतिसे वे एक वार एक पारवंमें और दूसरी बार दूसरे पारवेंमें अपसारित हो कर दोलाययान होता रहता है। आहत पदार्थ कुछ समय तक इधर उधर चालित हो कर स्थिर हो जाता है और पूर्वभाव अबलम्बन करता है। स्थितिशापक पदार्थके परमाणुओंकी ऐसी गति और प्रत्यागतिको कम्पन वा प्रकरपन (Vibration) कहते हैं। इसी प्रकरपनसे सुर निकलता है। यह प्रकम्पन सुसम्पादित यन्त्रसे निकलते ही संङ्गीत-खर उत्पन्न करता है। यदि यन्त्रका कोई तार अच्छी तरह कस दिया जाय, तो उसकी कम्पन-संख्या अधिक होगी अर्थात् थोड़े ही समय कई वार हिलडोल कर स्थिर हो जायगा।

६ कम्पमान, हिलता हुआ। (ति॰) ७ प्रकम्पन-कारक, हिलानेवाला।

प्रकम्पनीय (सं० ति०) प्र-कस्पि-अनियर्। प्रकम्पनयोग्य। प्रकम्पमान (सं० ति०) अत्यन्त हिलता हुआ, जो धर-थराता ही।

प्रकम्पित (सं॰ ति॰) प्र-कम्पि-कः। प्रकम्पनयुक्तः जो कम्पित हुआ है।

प्रकम्पन् (सं० ति०) प्रकम्पोऽस्थास्तीति इनि । प्रकम्प युक्त । प्रकरण्य (सं० ति०) प्र-क्रम्पि-यत् । प्रकरम्पनयोग्य, कांपने हें या थरथराने लायक ।

प्रकर (सं क् की) प्रकीयते इति प्र-क्ष कर्मणि अप् । १ अगुरु-चन्दन, आरं नामक गन्धद्रय । २ समूह । ३ विकीर्ण कुसुमादि, खिला हुआ फूल । १ साहाय्य, सहारा मदद । ५ अधिकार, दखल । ६ कर्मपद्र, खूद काम करनेवाला । ७ अतिक्षेप । ८ पुष्पादिका स्तवक ।

प्रकरण (सं॰ क्ली॰) प्रक्रियते अस्मिन्निति प्र-क्र-आधारे स्युद् । १ प्रस्ताव । २ वत्तान्त, जिन्न करना । ३ अभिनेय प्रकार, प्रसङ्ग विषय । ४ इएकभेद, द्रश्यंकाव्यके अन्तर्गत रूपकके दश भेदोंमेंसे एक। साहित्यदपणके अनुसार इसमें सामाजिक और प्रेमसम्बन्धी कल्पित घटनाएं होनी चाहिये और प्रधानतः शृङ्काररस ही रहना चाहिये) जिस प्रकरणकी नायिका वेश्या हो वह शुद भौर जिसकी नायिका कुलबधू हो वह सङ्कीर्णप्रकरण कहलाता है। नाटककी मांति इसका नायक वहुत उच-कोटिका पुरुप नहीं होता और न इसका आख्यान कोई प्रसिद्ध ऐतिहासिक या पौराणिक बुत्त होता है। इसका नायक और मन्त्री ब्राह्मण वा सम्ब्रान्त वणिक होता है। इसके और सभी लक्षण नाटकरों हैं। नाटककी तरह इसका अभिनय होता है, इसिछिये इसे दृश्यकान्यके अन्तर्गत माना गया है। संस्कृतके मुच्छकटिक, मालती-माधव और पुष्पभूषित आदि प्रकरणके ही अन्तर्गत हैं। इनमेंसे मृच्छकटिकका नायक ब्राह्मण, मालतीमाधवका अमात्य और पुष्पभूषितका नायक विषक् है।

नाटक देखा ।

५ शास्त्रसिद्धान्त प्रतिपाद्य प्रन्थमीत् । ६ कर्जव्यार्थक यचन, वह वचन जिसमें कोई कार्य अवश्य करनेका विधान हो । ७ प्रन्थसिन्ध । ८ पाद, एकार्थाविच्छन्न स्त्रसमूह ।

प्रकरणपाद (सं • पु •) वौद्धशास्त्रभेद ।

प्रकरणसम (सं॰ पु॰) गौतमोक्त हेत्वाभासभेद्। इसे सत्प्रतिपक्ष भी कहते हैं।

प्रकरणी (सं० स्त्रो०) नाटिकामेद । नाटिकाका नाम ही प्रकरणी वा प्रकरणिका है। इसमें शृङ्काररस प्रधान

है। सार्थवाहादि इसके नायक और नायिकाकी तुल्य-वंशजा नायिका है। यथा—रतावली नायिका। नायिका और नायक शब्द देखी।

प्रकरी (सं श्लो) प्रकीर्णते अत्रेति प्र-क्त-अप् गौरादि-त्वात् क्षेप्। १ नाट्याङ्गमेद, नाटकमें प्रयोजनसिद्धिके पांच साधनींमेसे प्रका इसमें किसी एक देशव्यापी चरित्रका वर्णन होता है। २ एक प्रकारका गान।

प्रकरितृ (सं• ति०) विक्षेप्ता, फेंकनेवाला ।

प्रकर्मव्य (सं• क्ली•) प्र-कृ-तथ्य । प्रकृष्टकंपसे करणीय, अवश्य करने लायक ।

प्रकत्तुं (सं । ति ।) प्र-ष्ठ तृन् । प्रकृष्टक्षपसे कारक, अच्छी तरह करनेवाला ।

प्रकर्ष (सं ॰ पु॰) प्र-कृप-भावे बम्। १ उत्कर्ष, उत्तमता। २ अधिकता, वहुतायत। ३ प्रकृष्टकपसे कर्पण, अच्छी तरह जोता हुआ।

प्रकर्षक (सं • पु॰) प्र-कृष-ण्वुल् । उत्कर्षक, उत्कर्ष करनेवाला ।

प्रकर्षण (सं० क्ली०) प्र-क्लप-ल्युट्। १ उत्कर्ष, प्रकर्ष। २ आधिक्य, अधिकता।

प्रकर्षणीय (सं ० ति ०) प्र-कृष-अनीयर् । उत्कर्षणीय, जी . उत्कर्ष करनेके योग्य हो ।

प्रकर्षेवत् (सं ० ति०) प्रकर्षो विद्यतेऽसा मतुष्, मसा व । उत्कर्षेयुक्त, गुणवान् ।

प्रकर्षिन् (सं • लि॰) प्रकर्षो विद्यतेऽसाः, इति । प्रकर्षे-युक्त ।

प्रकर्षित (सं ० हो०) १ प्रकृष्टस्पसे आकर्षित । २ जिस सूद पर कपया लगाया गया है, उससे ज्यादा सूद वस्तुल करना।

प्रकलिवद् (सं॰ पु॰) प्रकृष्टां कलां वेसि विद-किप् षृयो-दरादित्वात् हुस्तः । १ विणक्जन । २ अझाता । प्रकला (सं॰ स्त्री॰) एक कलाका साठ्यां भाग । प्रकल्पना (सं॰ स्त्री॰) निश्चित करना, स्थिर करना । प्रकल्पित् (सं॰ ति॰) विधानकर्त्तां, स्थिर करनेवाला । प्रकल्पित (सं॰ ति॰) चिहित, निश्चित किया हुआ । प्रकल्पित (सं॰ स्त्री॰) नृह्चालनोविशेष, एक प्रकारकी वडी चलनी । प्रकल्य (सं ० ति०) प्र-फरण-यत्। प्रकल्पनीय, प्रकल्पन करनेयोग्य ।

प्रकल्याण (सं ० ति ०) अति उत्स्रष्ट, अति उत्तम, वहुत विद्यो ।

प्रक्रश (सं ॰ पु॰) प्र-कश-अप्। १ पीड़न, पीड़ा देना। २ कोड़ें से मारना।

प्रकशी (सं ॰ व्ही॰) शूकरोग। इसमें पुरुपोंकी मुले-निद्रय सूज जाती है। यह इन्द्रोको बढ़ानेवाली ओपधियों-का प्रयोग करनेसे होता है।

प्रकार्ण्ड (सं ॰ पु॰ क्वी॰) प्रकृष्टः कार्ग्डः इति प्रादिसमासः।
१ मूलसे ले कर शास्त्रा तकका वृक्षभाग, स्कन्ध, वृक्षका
तना। पर्याय—स्कन्ध, कार्ग्ड, दर्ग्ड। २ वृक्ष, पेड़।
३ शास्त्रा, डाल। (ति॰) ४ वहुत वड़ा। ५ वहुत
विस्तृत।

प्रकार्खर (सं॰ पु॰) प्रकार्खं राति गृह्णाति रान्क। बुक्ष, पेड़।

प्रकाम (सं ० ति०) प्रगतं काममिति पादिसमासः। १ यथेष्ठ, काफो, पूरा। (पु०) २ कामना, इच्छा। प्रकामम् (सं ० अव्य०) प्र-कम-णमुख्। १ अत्यर्थ। २

अनुमति ।

प्रकामोय (सं० पु०) देवभेद, एक वैदिक देवता ।
प्रकार (सं० पु०) प्रभेदकरणं प्रकृष्टकरणं वेति, प्र-कृ-वंज् ।
१ भेद, किस्म । २ साहृश्य, समानता, वरावरी । ३
भांति, तरह । ४ विशिष्ट ज्ञानहेतु भासमान पदार्थ ।
प्रकार (हिं० स्त्री०) प्राकार, चहारदीचारी, परकोटा, चेरा ।
प्रकारक (सं० ति०) प्रकारसम्बन्धीय, उस प्रकारका ।
प्रकारता (सं० स्त्री०) प्रकारसम्भवन्धीय, उस प्रकारका ।
प्रकारता (सं० स्त्री०) प्रकारसम्भवन्धीय, वल-टाप् । विष-

प्रकारवत् (सं ० ति ०) प्रकारः विद्यतेऽस्य मतुप्, मसा-च। प्रकारयुक्तः।

प्रकारान्तर (सं ७ पु०) अन्यः प्रकारः। अन्य प्रकार,

दूसरी तरह। प्रकालन (सं० ति०) प्रकालयित प्र-कालि-ल्यु । १ हिंसक।(पु०)२ सप्भेद, एक प्रकारका साँप।(क्वी०) माबे ल्युट्। ३ मारण, मारना।

प्रकाश (६० क्वी०) प्रकाशते इति प्रकाश-अच्। १

कांस्य, कांसा। २ वह जिसके द्वारा वस्तुओंका ह्या नेतींको गोचर होता है, दोष्टि, आभा।

वैश्वानिकोंके मतानुसार जिस प्रकार ताप गतिशक्ति-का एक रूप है, उसी प्रकार प्रकाश भी है। प्रकाश कोई वस्तु नहीं है जिसमें भारीपन हो । किसी वस्तु पर प्रकाश पड़नेसे उसकी तोल उतनी ही रहेगी जितनी अंधेरीमें थी । प्रकाशके सम्बन्धमं इधर वैद्यानिकोंका यह सिद्धान्त है, कि प्रकाश एक प्रकारकी तरङ्गवत् गति है। यह गति किसी ज्योतिष्मान पदार्थं के द्वारा ईयर वा आकाशद्र्यमें उत्पन्न होती है और वंदती है। जलमें यदि पत्थर फेंका जाय, तो जहां पत्थर गिरता है वहां जलमें श्लोभ उत्पन्न होता है जिसमें तरंगें उठ कर चारों ओर वढ़ने छगती हैं। ठीक इसी प्रकार ज्योति-ष्मान् पदार्थ द्वारा ईथर वा आकाशहब्यमें जो क्षोम उत्पन्न होता है यह प्रकाशको तरङ्गीके रूपमें चलता है। यह आकाशद्रन्य विभु वा सर्वध्यापक पदार्थ है। यह पदार्थ जिस प्रकार ब्रह्में और नश्चत्रोंके मध्य अंतरिक्षमें सर्वत भरा है उसी प्रकार डोससे डोस वस्तुओंके पर-माणुओं और अणुओंके मध्यमें भी । अतः प्रकाशका वाहक पदार्थमें यही आकाशहरूय है। प्रकाशतरङ्गेंकी गति कल्पनातीत है। वे एक सेकएडमें १८६००० मीलः के हिसावसे चलती हैं। प्रकाशकी जो किरने निकलती हैं, यद्यपि उन सर्वोंको एक-सी गति है तो भी तरंगोंकी लम्बाईके कारण उनमें भेद होता है। तरंगे भिन्न मिन्न लम्बाईकी होती हैं। इससे किसी एक प्रकारकी तरङ्गी-से वनी हुई किरनें दूसरे प्रकारकी तरङ्गोंसे वनी हुई किरनोंसे मिन्न होती हैं। यही भेद्र रंगोंके भेदका कारण है । जैसे, जिस तरङ्गका विस्तार '००००१६ इश्च होता है, वह बैंगनो रंग और जिसका विस्तार ००००२४ इञ्च होता यह लाल रंग होता है। पहले न्यूटन आदि प्राचीन तत्त्वविदीने प्रकाशको अगुमय वस्तुः के रूपमें माना था, पर पीछे वह अखएड वस्तुकी तरङ्गीके क्रवका माना गया। इधर थोड़े दिनोंसे फिर अणुमय माननेकी प्रवृत्ति वैज्ञानिकोंमें दिखाई पड़ रही है। (पु०) ३ रोद्र, धृप । इसका पर्याय द्योत और आतय है ।

८ प्रदीस, स्पष्ट होना, साफ समभमें आना । पर्याय-

स्फुट, स्पष्ट, प्रकट, उल्बण, ध्यक्त, प्रव्यक्त, उद्रिक्त । ५ प्रहास, हंसी ठट्टा । ६ प्रकटन, गोचर होना । ९ विस्तार । ८ प्रसिद्ध । ६ विकाश । सांख्यके मतसे पुरुष प्रकाशस्त्रभावका है। प्रकृति इसके साथ प्रकाश अर्थात् पुरुषका योग होनेसे प्रकाश हुआ करता है ।

विशेष विवरण प्रकृति, पुरुष और सांस्थदर्शनमें दे छो । वैष्णवशास्त्रके मतसे-आकार, गुण और लीलामें पेक्य रह कर जब एक ही विश्रहका युगपत् अनेक स्थानोंमें आविर्माव होता है तब उसे प्रकाश कहते हैं । जैसे, हारकामें श्रीकृष्ण प्रति मन्दिरमें ही पृथक् पृथक् रूपमें सर्वोको दिखाई देते थे। १० वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। ११ शिव, महादेव । १२ घोड़ की पीठ परकी वमक। १३ किसी प्रन्थ या पुस्तकका विभाग।

(ति०) १४ प्रकाशित, जगमगाता हुआ । १५ विक-सित, स्फुटित । १६ प्रकट, प्रत्यक्ष, गोचर । १७ अति प्रसिद्ध, सर्वत जाना सुना हुआ । १८ स्पष्ट, समक्तमें आया हुआ ।

प्रकाशक (सं० ति०) प्रकाशयति प्र-काश-णिच्-ण्वुल्। १ प्रकाश देनेवाला। (पु०) २ सूर्य आदि। २ कांस्य, कांसा। ३ सांख्यमतसिद्ध सत्त्वगुण। ४ वह जो प्रकट करे जैसे प्रनथयकाशक। ५ महादेवका एक नाम।

प्रकाशकबात् (सं॰ पु॰) प्रकाशकस्य आतपस्य ज्ञाता । १ कुक्चुट, मुर्गा । (ति॰) २ प्रकाशक ज्ञात्मात, प्रकाश जतानेवाळा।

प्रकाशकाम (सं वि वि) सीन्दर्य वा सम्मान-अभिलायी। प्रकाशकार (हि वु वु),प्रकाशक देखी।

प्रकाशता (सं॰ स्त्री॰) प्रकाशस्य-भावः, तस्र-टाप्। प्रकाशका भाव या धर्मे, प्रकाशस्य।

प्रकाशदेवी—काश्मीरकी एक रानी। इन्होंने प्रकाशिका विहारकी स्थापना की।

प्रकाशघर-तस्यचिन्तामणिटीकाके प्रणेता।

मकाशधर्म (सं० पु०) सूर्य ।

प्रकाशभृष्ट (सं० पु०) भृष्ट नायकके दो मेदोंमेंसे एक। यह नायक प्रकृत रूपसे भृष्टता करता है, नायिकाके साथ साथ लगा करता है, सबके सामने संकोच त्याग कर हंसी ठहा करता है, कि इकने आदि पर भी नहीं मानता। प्रकाशन (सं० ति०) प्रकाशयित प्र-काश-णिच्-च्यु । १ प्रकाशकारक, प्रकाश करनेवाला । (पु०) २ विष्णुका एक नाम । ३ प्रकाशित करनेका काम्र, प्रकाशमें लानेका काम । ४ किसी अन्थके छए जाने पर उसे सर्वसाधारणमें प्रचलित करनेका काम ।

प्रकाशमति चीनदेशवासी एक वौद्ध श्रमण चैनिक नाम था यूयनचो । भारतवर्षमें प्रकाशमित नाम-से ही विख्यात थे। इनके माता विता दोनों ही धनी और कुळीन घरानेके थे। इस प्रकार अच्छी अवस्था रहने पर भी इतके मनमें एकाएक वैराय-ज्ञानका सञ्चार हो आया । ६३८ ई॰के किसी समय इन्होने संसारधर्मका परित्याग कर भारतवर्ष आनेकी इच्छा प्रकट की । इसी उद्देश्यसे बे संस्कृत साहित्यकी आलोचनामें प्रवृत्त हो ता-हि-सि मन्दिर पहुंचे। उपस्थित पाठ समाप्त होनेके वाद ये यति-धर्म और दण्डव्रहण कर जेतवन-सङ्घारामकी ओर अवसर हुए। इस प्रकार परिव्राजकके रूपमें इन्होंने तुखारराज्य. जलन्धर, महावोधि /(मगध), नालन्द, नेपाल, तिव्यत, काश्मीर, लाटदेश वाहिक आदि नाना राज्योंमें स्मृति-चिह्न और विहारादि दर्शनकी कामनासे पर्यटन किया। मध्यभारतके अमरावती नगरमें ६० वर्षकी उमरमें इनकी मृत्यु हुई।

प्रकाशमान (सं॰ ति॰) १ प्रकाशयुक्त, चमकीला । २ प्रसिद्ध, मशहूर ।

प्रकाशवत् (सं ॰ ब्रि॰) प्रकाशनं विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व । प्रकाशनयुक्त, चमकीला ।

प्रकाशवर्ष काश्मीरदेशवासी एक कवि । आप हर्वके पुत और कवि दशैनीयके पिता थे । आपकी वनाई हुई किरा-तार्जुनीय टीकाका विषय मिल्लिनाथने उल्लेख किया है । प्रकाशवान (हिं० वि०) प्रकाशमान देखो ।

प्रकाशवियोग (सं० पु०) केशवके अनुसार संयोगके वी भेदोंमेंसे एक।

प्रकाशसंयोग (सं० पु०) केशवके अनुसार वियोगके दो भेदोंमेंसे एक ।

प्रकाशात्मन् (सं० पु०) प्रकाश आत्मा खरूपं देहो वा यस्य । १ सूर्य । २ विष्णु । (ति०) ३ व्यक्तसभाव ।

प्रकाशात्मा - एक प्रन्थकार, रामके शिष्य । इन्होंने मैति-

Vol. XIV. 116

उपनिषद्दीपिका नामक एक श्रन्थकी रचना की है। प्रका-शात्मा यित वा खामी—एक नैयायिक। ये अनत्यानुभव खामीके छात थे। द्क्षिणामूर्तिस्तोतार्थ-प्रतिपादकनिवन्ध वा मानसोहास, पञ्चपादिकावित्ररण, छौकिकन्यात्रमुका-वछी, शारीरक मीमांसान्यायसंग्रह और ब्रह्मसूत नामक प्रम्थ इन्होंके रचित हैं।

प्रकाशादित्य—१ लघुमानसोदाहरणके प्रणेता। २ एक प्राचीन हिन्दूराजा। इनके चलाये हुए जो सिक्के पाये गये हैं उन पर अश्वचिह्न अङ्कित है।

प्रकाशानन्द (सं० पु०) १ प्रबोधानन्द देखो । २ देहरादूनके रहनेवाले एक कवि । इनका जन्म १६१८ संवत्में हुआ था। इन्होंने "श्रीरामजीका दर्शन" नामक प्रन्थ वनाया था।

प्रकाशानन्द—एक विख्यात पिएडत । इनका दूसरा नाम मिल्लकार्जुन यतीन्द्र था । ताराभिकतरिङ्गणो, महालक्षी-पद्धति, वैदान्तिसिद्धान्तमुक्तावली, श्रीविद्यापद्धति और उनके गुरु सुभगानन्द्-आरब्ध मनोरमा नामक तन्त्रराज-टीकाका अविशिष्टांश सम्पूर्ण करके यशोभागी हुए थे। ये ज्ञातानन्दके शिष्य तथा नाना दोक्षित और महादेव सरस्रतीके गुरु थे।

२ प्रयोगमुखरोकाके रचयिता।

प्रकाशित (सं । ति ०) प्रकाशो जातोऽस्येति प्रकाश-तारका-दित्वात् इतच्, वा प्र-काश-णिच्-कः । १ प्रकाशिविशिष्ठ, चमकता हुआ । २ जिस पर प्रकाश पड़ रहा हो । ३ जो प्रकाशमें आ : चुका हो । भावे-कः । (क्को०) ४ प्रकाश । ५ शोभित । ६ दीपित । ७ प्रस्फुटित । ८ उद्घावित ।

प्रकाशिता (सं॰ स्त्री॰) प्रकाशिनो भावः, तल्-टाप्। प्रका-शित्व, प्रकाशका भाव या धर्म।

प्रकाशिन (सं वि) प्रकाश-अस्त्यर्थे इनि । प्रकाशयुक्त, जिसमें प्रकाश हो ।

प्रकाशीकरण (सं० ह्वी०) अप्रकाशः प्रकाशकरणं, अभूत-तन्त्राचे चित्र । जो अप्रकाश था उसका प्रकाश ।

पुकाशितर (सं॰ पु॰) पुकाशादितरः। पुकाशिमन्न,

अपूकाश । प्रकाश्य (सं० ति०) प्र-काशि कर्मणि यत् । प्रकाशनीय, जाहिर करने योग्य ।

प्रकाश्य (हि॰ क्रि॰-वि॰) प्रकट रूपसे, स्पष्टतया । प्रकिरण (सं॰ क्री॰) प्रक्षेप, फेंकना ।

प्रकीण (सं० क्की०) प्रकीयंते स्मेति प्र-कृ-विक्षेपे क । १ अन्यांश, अध्याय, प्रकरण । २ चामर, चंबर । ३ प्रिकर इंगेन्ध्रवाला करंज । ४ उच्छृङ्खल, उद्दर् । ५ फुटकर किता । ६ उन्मत्त, पागल । (ति०) ७ विक्षिप्त, छितराया हुआ । ८ विस्तृत, फैला हुआ । ६ मिश्रित, मिला हुआ । १० नाना प्रकारका । ११ विभिन्न जातीय, नाना जातिका प्रकीणेक (सं० क्की०) प्रकीणे सार्थे-कन् । १ चामर, चंबर । २ अध्याय, प्रकरण । ३ विस्तार । ४ वह जिसमें तरह तरहकी चीजें मिली हों, फुटकर । ५ अनुक्त प्रायश्चित, वह पाप जिसके प्रायश्चित्तका प्रन्थोंमें उल्लेख न हों, फुटकर पाप । प्रकीणे संज्ञायां कन् । ६ तुरङ्गम, घोड़ा । प्रकीणेकेशी (सं० स्त्री०) हुगी ।

प्रकीर्त्तन (सं० क्की०) १ घोषण, घोषण करना.।। १ उच्चैःस्वरसे नामगान, जोर जोरसे कीर्त्तन करना।

प्रकीर्त्ति (सं॰ स्त्री॰) १ प्रशस्ति, प्रशंसा। २ प्रसिद्धि, स्थाति । ३ घोपणा ।

प्रकीर्त्तित (सं० दि०) प्रकीर्त्यते स्मेति प्र-कृत्नः । कथित, कहा हुआ ।

प्रकार्य (सं० पु॰) प्रकार्थते इति प्र-क्ट-यक्। १ करअमेद, दुर्गन्यवाला करअ। २ घृतकरङ्ग । ३ रीडाकरअ। (ति॰) ४ विक्षित्य । ५ व्याप्य ।

प्रकुञ्ज (सं ॰ पु ॰) फलकप मानमेद, आड तोले या एक एक पलका मान ।

प्रकुपित (सं० वि०) प्र-कुप-क । १ अतिशय मुद्ध, जो वहुत मुद्ध हो । २ जिसका प्रकोप वहुत वढ़ गया हो । प्रकुल (सं० क्की०) प्रकर्पण कोलित राशीकरोति मैंबी॰ करोति चेति, प्र-कुल क । प्रशस्त देह, सुन्दर शरीर । प्रकुष्माएडी (सं० स्त्री०) हुर्गा ।

प्रकृत (सं० ति०) प्रक्रियते स्मेति प्र-श्-क्त । १ अधिकृत । २ आरव्य । ३ प्रकरणप्राप्त । ४ निर्मित, रचित । ५ यथार्थं, वास्तविक । ६ प्रकर्षकपसे कृत । ७ अविकृत । ८ प्रकान्त ।

प्रकृतता (सं॰ स्त्री॰) १ याधार्थ्य । २ प्रकृतका भाव । ३ आरम्म, आरब्धता । ४ तर्कादिका याधार्थ्य निरूपण । प्रकृति (सं क्षी) प्रक्रियते कार्यादिकमनयेति, प्र-कृ-किन् ।

१ स्वभाव, मिज़ाज । २ मूल वा प्रधान गुण जो सदा वना

रहे, तासीर । ३ योनि । ४ लिङ्ग । ५ खामी, अमात्य,

सुहृद, कोव, राष्ट्र, दुर्ग और वल ये सप्त अङ्ग हें । इनका

दूसरा नाम राज्य भी हैं । ६ धर्माध्यक्षादि सप्त प्रकृति—

"धर्माध्यक्षो धनाध्यक्षः कोषाध्यक्षस्य भूषतिः

दूतः पुरोधा दैवज्ञः सप्त प्रकृतयोऽभवन्॥" (मनु)
धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोपाध्यक्ष, भूपति, दूत, पुरोधा
और दैवज्ञ ये सप्त प्रकृति हैं। ७ शिल्पो। ८ शक्ति। ६
योपित्। १० परमातमा। ११ आकाशादि भूतपञ्चक।
१२ करण। १३ गुद्धा। १४ जन्तु। १५ छन्दोभेद। इस
छन्दके प्रति चरणमें २१ अक्षर रहते हैं। १६ माता। १७
प्रत्ययनिमित्त शब्दभेद। जिसमें प्रत्यय हो, उसे प्रकृति
कहते हैं। प्रकृतिके वाद हो प्रत्यय हुआ करता है। नाम
और धातुके भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है। नाम शब्दका
अर्थ है 'प्रातिपदिक'। नाम और धातु यही दो प्रकृति हैं।

प्रकृति भिन्न प्रत्यय हो नहीं सकता । जो आगमादि होता है, उसे प्रत्यय कहते हैं। शब्दशक्तिप्रकाशिकामें इसके विचारादिका विशेष विवरण सिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुळ नहीं सिखा गया।

प्रकर्षेण स्रष्ट्यादिकं करोतीति प्र-क्र कर्त्तरि किच्। १८ भगवानकी मायाख्या शक्ति। यह परा अपराभेदसे दो प्रकारकी है--पराप्रकृति और अपराष्ट्रकृति।

व्रक्षवैवर्त्तंपुराणके प्रकृतिखण्डमें लिखा है, कि , प्रकृति पांच प्रकारकी हैं।

"गणेशजननी दुर्गा राधा छत्त्रीः संरक्षती । सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पश्चमी स्मृता।" (ब्रह्मवैवर्त्तपुरु)

गणेशकी माता दुर्गा, राधा, छश्मी, सरखती और साविती सृष्टिविधानमें यही पांच प्रकृति नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रकृति शन्दकी नामनिरुक्ति इस प्रकार है—

> "प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता ॥" "गुणे प्रकृष्टे सत्त्वे च प्रशन्दो वर्त्तते श्रुतौ । मध्यमे रजसि कृश्च तिशन्दस्तामसः स्मृतः ॥ तिगुणात्मसद्भपा या सर्वशक्तिसमन्विता ।

प्रधाना खृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥ . प्रथमे वर्त्त ते प्रश्च कृतिश्च खृष्टिवाचकः ।
सुद्धेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकृतिता ॥"
(ब्रह्मवैवर्त्त पु॰ प्रकृतिख॰)

प्र शृद्धका अर्थ प्रस्टायाचक और स्ति शद्धका अर्थ स्टियाचक है। जो देवी स्टिविययमें प्रस्टा हैं, वे ही प्रस्ति हैं अर्थात् जो स्टि करनेमें समर्थ हैं, उन्होंको प्रस्ति कहते हैं। अथवा प्र शद्धका अर्थ सत्त्व, क शद्धका रजः और ति शद्धका अर्थ तमः हैं। जो इन तीन गुणोंकी सक्ता, सर्वशक्ति-समन्त्रिता और स्टि करनेमें प्रधान हैं, वे ही प्रस्ति हैं। अथवा प्र शद्धका अर्थ रहना और स्ति शद्धका अर्थ स्टि है। जो देवी स्टिक पहले वर्त्त मान थीं, उन्होंका नाम प्रस्ति है। जव भगवानने इस जगत्की स्टि को, तब वे योग द्वारा दो भागोंमें विभक्त हुए थे, दक्षिणाङ्गमें पुरुष और वामाङ्गमें प्रस्ति । अत्रप्य यह प्रस्ति ब्रह्मसक्त्या, नित्या और सनातनी है।

दुर्गा प्रभृति जिन पांच प्रभृतियोंकी कथा उत्पर लिखी गई है, उनके स्वरूप और लक्षणका विषय ब्रह्मचैचर्च-पुराणके प्रकृतिखण्डमें सविस्तार लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

पुरुपके नामके पहले प्रकृति नामका उद्यारण करना होता है। यदि कोई पुरुपका नाम पहले उद्यारण करके पीछे प्रकृतिका नाम ले, तो उसे मातृगमनतुल्य पाप होता है। (ब्रह्मवैवर्त्तपुरु श्रीकृष्णजनमस्वरू ५० अ०)

सस्य, रजः, और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि प्रकृतिके कीई कारण नहीं है, इसीसे इसको प्रकृति कहते हैं। महदादि प्रकृतिके विकार वा कार्य हैं।

> "प्रकृतेः कारणायोगान्मता प्रकृतिरेव सा । महत्तत्त्वाद्यः सप्तं शक्तेर्विकृतयः स्मृताः॥"

> > (भावप्र०)

जब सत्त्व, रजः और तमोगुण समभावमें रहते हैं, तब उसे मूलप्रकृति कहते हैं। भावप्रकाश और सुशुत-प्रभृतिमें प्रकृतिका विवरण जो लिखा है, वह सांख्यमतके जैसा है, इसीसे उसका विषय यहां नहीं लिखा गया। अभी अति संक्षिप्रभावमें सांख्यमतानु ए प्रकृतिका विषय दिया जाता है।

प्रकृति ही जगत्क सूल वा वीज है। प्रकृतिसे ही विश्वव्रह्माएड उत्पन्न हुआ है। प्रकृतिकी जव विकृति अवस्था है, तव ही जगत् अवस्था है अर्थात् प्रकृतिके विकार वा परिणामसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। प्रकृतिकी जव तक खरूपायस्था है, तव प्रख्यावस्था है। प्रकृतिके दो प्रकारका परिणाम है, खरूपपरिणाम और विरूप-परिणाम । खरूप-परिणाममें प्रकृति-अवस्था अर्थात् अन्यक्तावस्था है। विरूप परिणाममें यही जगद-वस्था है। प्रकृतिके जव चिरूप परिणाम होता है, तव इस जगत्का आविर्भाव और जव स्रह्मपरिणाम होता है, तव ही जगन्का ध्वंस हो कर प्रख्य हुआ करता है। इस प्रकार प्रकृतिके खरूप और विरूप परिणामसे जगत्-का आविर्माव और फिर तिरोभाव होता है। प्रकृति ही जगन्का आदि कारण या जगन्का बीज है। सृष्टिकी पूर्वावस्था, प्रकृति वा अव्यक्त तत्त्व अत्यन्त दुर्लक्ष्य, ध्यापक और शब्दस्पर्शादि गुणवर्जित है। अतपव प्रकृति-का खरूप कैसा है, इसका पता लगाना वहुत कठिन है। संसारी पुरुपोंके लिये मूलप्रकृति और उसके निजका असंसारीहर निराकरण करना वड़ा हो कठिन है। जिसने कभी दूध नहीं देखा है, केवल घी ही देखा है, वैसे व्यक्तिको घोको प्रकृति अर्थात् उत्पत्तिस्थान दूधके भाकारका अनुभव कराना जैसा कठिन है, वैसा ही वर्त्त-मान जगद्दृष्टा साधारण जीवको इसके मूल प्रकृतिके खरूपका अनुभव कराना एक प्रकार दुःसाध्य है।

प्रकृति और पुरुपका विषय रूपकमावमें इस प्रकार वर्णित है। प्रकृतिको कुलकामिनी और संसारी पुरुपको खामी वतलाया गया है। प्रकृति अपने खामी-पुरुपके निकट आत्मगरीर हमेशा आवृत रख कर हपशोकादि प्रकट करती है। पुरुप भी उस आवृताङ्गीके वृथा आलि- इनसे मुण्य हो कर वृथा हपँशोकादि अनुभव करते हैं। इस अवस्थामें यदि कोई प्रकृतिका खरूप जानना चाहे तो उनका यह अभिप्राय सहजमें पूर्ण होगा।

पहले अधिकारी होना पड़ेगा। अधिकारी होनेमें अवण, मनन और निद्ध्यासनकी आवश्यकता है। श्रवणादि द्वारां घीरे घीरे चित्तप्रसाद उपस्थित होगा। चित्त जब अति सुप्रसन्न अर्थात् निर्मेछ होगा, तब प्रहाति का आलिङ्गन अर्थात् विषयानुभवजनित सुल अच्छा नहीं छगेगा। उस समय ये सब सुख सुख नहीं सममे जायंगे, प्रत्युत किस प्रकार इसका परिहार हो, किस प्रकार इसके आक्रमणसे रक्षा मिछे, इसी प्रकारकी चेष्टा उत्पन्न होगी। जब यह देखा जाय, कि चित्त दुःखिमिश्रित सांसारिक सुखसे अत्यन्त विरत हो गया है और मैं क्या हं, इस प्रश्नका प्रत्युत्तर पानेके छिये ब्याकुछ हो रहा है, तभी जानना चाहिये, कि प्रकृति देखनेका अधिकार हुआ है। उस समय प्रकृतिको देखनेको जो चेष्टा होगी, वह विकछ नहीं जायगी।

यहां यह कह देना आवश्यक है, कि प्रकृति इन्द्रियज्ञानका गोचर नहीं है। प्रकृति दर्शनके लिये केवल
तीन उपाय निर्द्धारित हैं, श्रवण, मनन और निदिश्यासन। प्रकृति-परिज्ञानके निमित जो सन आप्तयाक्य
हें, उनका अर्थावधारण करनेका नाम श्रवण,
अवधृत अर्थको अनुकूल-युक्ति द्वारा हुढ़ अर्थात्
अधिचात्य करनेका नाम मनन और उस दुढ़क्त
अर्थका निरन्तर ध्यान करनेका नाम निदिध्यासन है।
यह निद्ध्यासन-सांख्यमें तत्त्वाम्यास नामसे ख्यात है।
तत्त्वाभ्यास वारम्वार करते करते चित्तका जड़त्व विनाश
हो कर सत्त्वोत्कर्ष होता है और मनको प्रकाशशिक
वढ़ती है।

प्रकृति-परिज्ञानके लिये शाखमें ये सव आप्त्राक्य सिन्नवेशित हैं—"नेदममूलं भवति" "सन्मूलाः सौन्येमाः प्रजाः।" (श्रुति) अर्थात् जो जो वस्तु उत्पन्न होतो है, यहां वही वस्तु प्रजा है। जो जो वस्तु प्रजा है, वही वही वस्तु जन्मवान् है। जिसकी पैदाइश है, उसका मूल है। वह मूल क्या है? वही मूल प्रकृति है, प्रकृति मूलकारणकी संज्ञा है और कुछ भी नहीं है। यह मूल सन्वादि तोनों दृज्योंका समीहार है। श्रुतिमें लिखा है,—

"अजामेकां लोहितशुक्रकृष्णां वह्वैः प्रजाः स्जमानां नमामः। अजा ये तां जुषमानां भजन्ते जहत्येनां भुक्तभोगां, तुमस्तान्॥" (श्रति)

'लोहित' रजः 'शुक्क्,' सस्व और 'कृष्ण! तमः ये ही

सिम्मिलित तीन द्रव्य आदि तत्त्व वा मूल हैं। उसी मूलसे इस असंख्य विचित्र प्रजाको उटपत्ति हुई है। जिस प्रकार पिता माठाका अधिकांश गुण सन्तानोंमें रहता है, उसी प्रकार प्रकृत्युत्पन्न जगत्में उसके गुण संकान्त हुए हैं।

'श्सरजस्त्रमसां चान्यावत्या प्रकृतिः' सत्त्व, रज्ञ श्रीर तम नामक तीनों द्रव्योंकी साम्यावस्था है अर्थात् उक्त तीनों द्रव्य जब समभावमें वा अन्यू-नातिरिक्त भावमें रहते हैं, तब उन्हें प्रकृति कहते हैं। प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त, जगदुर्थोनि, जगद्वीज ये सव एक पर्यापशब्द हैं। जब उनकी न्यूनाधिकता घटती है अर्थान् एक प्रवृद्ध हो जर दूसरेको अभिभूत करता है, तब थोड़ा थोड़ा करके उसका नाना परिणाम आरम्म होता है। प्रकृतिके इस प्रकार परिणाम आरम्म होनेसे प्रथम परिणाम महत्त, द्वितीय अहंकार और तृतीय इन्द्रिय तथा पञ्चतन्त्राव कहलाता है। इस प्रकार प्रकृतिके परिणामसे जगन्को उत्पत्ति हुई है। प्रकृति क्षणकालमात भी परिणात हुए विना नहीं रह सकतो। ना गरिणम्बळ्णक्ष वित्रवे' इसीसे वे सर्वदा परिणता होती हैं।

शास्त्रका तात्पर्य यह है, कि सत्त्व, रज, और तमः इन तीन सिमिलित द्रव्यों वा तीन अवयवयुक्त एक अनश्वर द्रव्यका पारिमापिक नाम प्रकृति है। ये अनादि और अनन्त हैं। प्रकृति गुणपदार्थ है वा द्रव्यपदार्थ ? इसके उत्तरमें शास्त्रने कहा है, कि प्रकृति द्रव्यपदार्थ है। सत्त्व, रजः और तमः ये तीनों ही यदि द्रव्य हों, तो इन्हें गुण क्यों कहते ? इसका कारण यह है, कि शास्त्रकारगण उप-करणद्रव्यको गुण और अङ्ग कहा करते हें। सत्त्वादि द्रव्य भी आत्माके सुख-दुःखके उपकरण हैं, इसी कारण वे गुण हैं। पशु रस्सीसे वांधे जाते हैं और रस्सीके नहीं रहने पर वे खुले रहते हैं, इस कारण रस्सी गुण है। पुरुष भी सत्त्वादिगुणसे वद्ध और तिहुक्लेट्से सुक्त होते हैं, उसीके अनुसार सत्त्वादि गुण हैं। पुरुष-रूप पशु इससे वांधे जाते हें, इस कारण इसका गुण नाम पड़ा है।

जिस प्रकार स्क्ष्मतम वीजसे फलपतादिसम्पन्न प्रकार्ण्ड वृक्ष उत्पन्न होता है, उसा प्रकार जगद्वीज Vol. XIV 117

प्रकृतिसे यह विशाल ब्रह्माएडस्त्रों वृक्ष उत्पन्न हुआ है। प्रकृतिके परिणाम अर्थात् जगतीस्य पदार्थोंके कार्यं कारण प्रभावकी परीक्षा करनेसे उससे चार सत्य उप-लब्ब होते हैं। प्रथम-कारणह्यका जो कुछ गुण है, वह कार्यट्रयमें संक्रमित होता है,—जिस प्रकार महीके समस्त गुण तदुत्पन्न घटमें अनुकान्त होते हैं। द्वितीय-जो जब बिनष्ट होता है, वह उस समय खीय कारणमें ही विर्छान हो जाता है। दीप बुध्त गया, परन्तु वह शिखाकार अग्निपिएड कहां गया ? मालूम होता है, कि हवा छनने पर वा हवाके नहीं रहने पर बह बुकः नया। वुम्त जाने पर इस व्यापारके प्रति प्रणिधान करमेसे देखा जाता है, कि जो बायु पुज्यलनका कारण है, दीप नामक अग्निपिएड उसी कारण वायुमें लीन हो गया है, इसके सिवा और कुछ भी नहीं है। अतएव जो जब विनष्ट होता हैं, वह उस समय अपने कारणमें ही विलीन ही जाता है। कारणमें विलीन होना—कारणापन्न होना ही विनाश हैं। तृतीय-कार्यकी अपेक्षा कारणकी सुक्ष्मता है। न्यप्रोधवुक्षका कारणीभृत न्यप्रोध वीज है, उसकी अपेक्षा वह वहुत ही सूक्ष्म है। चतुर्थ-कार्य अपने कारणको आयस नहीं कर सकता, किन्तु कारण कर सकता है। इन्हीं चारों नियमों से प्रकृतिज्ञानकी उपयुक्त युक्ति उत्पन्न होती है। प्रकृतिकी स्क्मता, व्यापकता, उमका अस्तिस्व और स्थिति पुकार जाननेके लिये योग-वछ और उसका साधन आवश्यक है, अन्यथा पृङ्कतिका खहप किसी हालतसे जाना नहीं जा सकता।

यहां तक शास्त्र और युक्ति हारा जो कुछ दिस्तलाया गया, उससे माल्म होता है, कि आत्मा (पुरुष) भिन्न आत्रह्म स्तम्त पर्यन्त समस्त जगत् पुरुति है। मृल प्रकृति अति सुक्ष और आदिम है। उस आदिम पुरुति ने कमशः विरुत्त हो कर इस असीम ब्रह्माएडको सृष्टि की है और असी भी वे ब्रह्माएडाकारमें अवस्थान करते है। जगत्को मृल या अव्यक्त अवस्थाका नाम पुरुति और व्यक्तावस्था वा सविकार अवस्थाका नाम पुरुति और व्यक्तावस्था वा सविकार अवस्थाका नाम जगत् है। पुरुतिका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहों हो सकता। प्रकृतिके अवस्थागत मेहके अनुसार प्रकृतिका धर्म वा समाव अत्यन्त पृथक् है। उसको अव्यक्तावस्थामें

्ट्रैं किसी विशेष धर्मका क्काश नहीं रहता। जितने परिणाम होते हैं उतने ही भिन्न भिन्न धर्म प्रकट हुआ करते हैं। प्रकृति जाननेका एक और संकीण उपाय है। वह घीं है, — कृतिम और अकृतिम जो कुछ दृश्य है उसका मूळ स्थूल-भूत है। स्थूलभूतका मूळ स्क्ष्मभूत, स्क्ष्मभूतका मूळ अहंतत्त्व, अहंतस्वका मूळ महत्तत्त्व और जो मह-त्तत्त्वका मूळ है, वही प्रकृति है।

प्रकृतिका साधर्म्य और वैधर्म्य पहले ही कहा जा चुका है। जगत्की अव्यकावस्था प्रकृति और उसकी व्यकाचस्था जगत् है । अव्यक्तावस्थाका धर्म व्यक्ता-वस्थाके धर्मसे पृथक् है । तिगुणात्मिका प्रकृतिकी दो अवस्थाके समस्त भ्रमीको दो भ्रेणी करके समभना होगा । एक श्रेणीमें साधारण धर्म और दूसरी श्रेणीमें असाधारण धर्म है। सांख्यशास्त्रका स्थूल सिद्धान्त यह है, कि कितने धर्म ऐसे हैं जो वाकाचस्थामें रहते हैं, अवाकावस्थामें नहीं रहते और कितने धर्म ऐसे हैं जो अवाक्तावस्थामें ही रहते हैं, वाकावस्थामें नहीं रहते। फिर वहुतसे धर्म ऐसे भी हैं जो दोनों ही अवस्थामें रहते हैं। जो केवल अवाकावस्थामें रहते हैं, वाकावस्थामें नहीं रहते, वे अवाकावस्थाके असाधारण धर्म हैं। इसी प्रकार वाकावस्थाके सम्बन्धमें जानना चाहिये। फिर जो सभी अवस्थाओंमें रहते, वे प्रकृति और विकृति इन दोनों ही अवस्थामें रहते हैं। वे प्रकृति और विकृति इन दोनों अवस्थाओं के साधारण धर्म हैं। यह भी स्परण रखता होगा, कि जो अत्राक्तावस्थाका साधर्म्य दै, वह वाकावस्थाका वैधम्यं और जो वाकावस्थाका साधम्यं है, वह अवाकावस्थाका वैधम्यं है।

व्यक्तावस्थाका साधर्म गत्येक व्यक्त सहेतुक, अनित्य, अन्यापी, सिक्षित्र, अनेक और आश्रित अर्थात् कारण इन्यका आश्रय किये हुए हैं ; लिङ्ग, सावयव और परतम्ब अर्थात् कारणके अर्थान है। ये सब व्यक्तावस्था-के साधर्य और अन्यक्तावस्थाके वैधर्म्य हैं।

मयक्तावस्थाका साधम्य- महेतुक, नित्य, व्यापक, निक्तिय, मनाभित, भिक्तिक, निर्वयन भीर अपरतन्त अर्थात् कारणके अभीन नहीं है। ये सव अवाक्तावस्थाके साधम्य और माकावस्थाके वैधम्य हैं। दोनों अवस्था-

के साधमर्थ न्त्रेगुण्य हैं अर्थात् गुणतयकी अवस्थित, अविवेकिता, विषय, सामान्य, प्रसवधमीं हैं। ये सव व्यक्तावस्थामें भी हैं और अव्यक्तावस्थामें भी। इन सव धर्मों के प्रकृतिकी स्वरूप शक्तिमें आरूढ़ रहनेके कारण इनके हारा केवल प्रकृतिका अवस्थामेद और आत्माकी स्वतन्त्रता निणींत होती है। किन्तु जिससे आत्माकी भोगसिद्धि होती है, जगत्का कार्य सुचावरूपसे चलता है, वह धर्म उसकी अवयवशिकिमें अवस्थित है।

अनयवर्शाकमें कीन कीन धर्म अवस्थित है, उसका विषय नीचे लिखा जाता है। प्रकृतिके एक अवस्वका नाम सत्त्व है। यह सत्त्व लघुप्रकाश और सुखशक्तिविशिष्ट है। प्रसन्नता, स्वच्छता, भीति, तितिका और सन्तो-पादि अनेक मेद रहने पर भी उन्हें सामान्यतः सुखा-तमक कहा गया। एक दूसरा अवयव रज है। यह रज गुरुलघुका समावेशसाधक, उपएम्मक, वाधा और बलका समावेशकारक, बलनशील और दुःखात्मक है। इसके भी शोकादि नाना भेद हैं। तीसरे अवयवका नाम तम है। यह तम गुरु, आवरक अर्थात् प्रकाशका पृतिवन्धक और मोहरूपी है। इस तमोगुणकी निद्रा, तन्द्रा, आलसा, बुद्धिमान्य आदि अनेक भेद रहने पर भी संक्षेपमें इसे मोहात्मक कहा गया है।

उक्त गुणान्वित तीनों द्रवा जव समसागमें रहते हैं, तव पूक्ति पदासिधेय और वर्णनातीत है। वैपन्य वा विकृतसे आरम्म होने पर पूक्तिमें वह धर्म उद्गृत वा पूवाक और वर्णनीय हुआ करता है। इसीसे सत्त्वादि-द्रवाके क्रमानुयायी अन्य नाम शुक्क, रक्त और कृष्ण रहे गये हैं।

सांख्याचार्यांका सिद्धान्त है, कि पृक्रतिके विगुणता-निवन्धन जगत्की पृत्येक वस्तु विगुण है। पृवांक धर्मसमूह अर्थात् सुख, दुःख, मोह, पृकाश, पृवृति, नियमन, लघु, चल और गुरु ये सब धर्म जगत्की पृत्येक वस्तुमें हें। यहां तक, कि पक सामान्य तृणशरीरमें भी वे सब गुण थोड़ा बहुत करके जक्कर हैं। ऐसे तारतस्यका कारण गुणसंयोगका तारतस्य है। जगत्में जो लेगुण्य देखा जाता है, पृक्षतिका वैगुण्य ही उसका कारण है। पृक्षति ही समस्त जगत्का कारण और जगत् उसका कार्य है। कारणमें जो नहीं रहता, कार्यमें उसका रहना विलक्कल असम्मव है। ऊपर कहे गये तीनों गुणोंके घर्मके अतिरिक्त और मी अनेक विशेष धर्म हैं। उन्हीं धर्मोंके रहनेसे जगत्को ऐसी विचितता है। वह धर्म अभिभावा और अभिभावक भाव है। जितने गुण हैं, सभी एक दूसरेकी अभिभूत करते हैं और सभी आपसको वाधा देनेकी चेष्टा करते हैं—यहो भाव है। सत्त्वके पृवल होनेसे यथासम्भव रज और तम अभिभूत होता है। तम पूंबल हो कर सस्व और रजको अभिभव करता है। इस पृकार एक दूसरेको अभिभव करनेका नाम अभिभाष्य अभिभावक भाव है। सच्वादि तीनों गुण एक दूसरेके अभिभावा और अभि भावक हैं अथच एक दूसरेके सहचर हैं। एक दूसरेको छोड नहीं सकता। तम है, सत्त्व नहीं है, वा सत्त्व है, तम नहीं है, देसा नहीं होता। तीन तीनोंके ही सहचर हैं। समस्त वस्तु तिगुण तो हैं, पर समितगुण नहीं हैं। समान तीन गुण जगद्वस्थामें नहीं रहता। न्यूना-धिक भावमें रहनेसे ही जगत्की ऐसी विचित्रता है।

प्रकृतिकः परिणाम ।- पहले ही कहा जा चुका है. कि प्रकृति परिणामिनो है प्रकृति परिणता हुए विना क्षणकाल भी उहर नहीं सकती । जब जगत् नहीं था, तव प्रकृतिकी वह अवस्था महाप्रख्य, अव्यक्त और प्रधान कहलाती थी । किन्तु उस अवस्थामें भी प्रकृतिके परिणामका विराम नहीं था। परिणाम-वादी कपिलका कहना है, कि परिणाम दो प्कारका है, सदृशपरिणाम और विसदृश परिणाम। परिणाम, परिवर्त्तन, अवस्थान्तर, लह्नप-प्रच्युति ये सव एक हो अर्थमें व्यव-हत होते हैं। महाप्रलयकालमें जो परिणाम होता है वह सद्भागिरणाम है। सत्त्व सत्त्वकृपमें, रजः रजोक्षपमें और तमः तमोद्भपमें जो परिणत होता है, उसे सदूशपरिणाम कहते हैं। जब विसदृश परिणाम आरम्भ होता है, तमी जगत् रचनाका आरम्भ है। जगत् अवस्थाके आने पर प्रकृति नये नये विसदृश परिणाम प्रसव करती है। विसदूशपरिणामका विवरण यह है, कि महत् तन्माल उत्पत्ति और उसोके स्थलभूत प्रभृतिके फलसे विभिन्न वस्तु उत्पन्न होती है।

उक्त दी प्रकारके परिणाम सर्वकालके निमित्त-निय-मित हैं। अति दूर अतीतकालसे अनन्त भविष्यकालका निमित्त नियमित है। स्वाभाविक वा सहज जान कर जिसे अपरिणामी समऋते हैं, वह भी यथार्थमें अपरि-णामी नहीं है। चन्द्र, सूर्य, जल, वायु आदि इनमेंसे कोई भी अपरिणामी नहीं है। पर हां, वे सब प्राकृतिक जड़. पदार्थंके परिणाम हैं, अत्यन्त मृदु और सूत्म हैं। वस्तु-का तीव परिणाम अति शीव अनुभूत होता है। चन्द्र स्यं आदि घुदु परिणाममें आवद्ध रहनेके कारण उनका परि-णाम अनुभवगोचरमें तो नहीं भाता, पर युक्तिगोचरमें अवश्य आता है। मृदु परिणामकी चरमसीमा ही सदृश परिणाम जाननेका द्वष्टान्त है। तीत्र परिणामकी इतनी तीवता है, कि पूर्वक्षणमें समुत्पन्न वस्तुका परिणाम पर-क्षणमें ही अनुभूत होता है। फिर मृदु परिणामकी इतनी मृद्ता है, कि कई शताब्दी तक उसकी कुछ भी उपलब्धि नहीं होती ।

प्रकृतिके विशेष विशेष परिणामका नाम जन्म, मृत्यु, जरा, उत्पत्ति, स्थिति, लय, वाल्य, यौषन, वार्द्धक्य, जीर्णता,नवता, मध्यता और दृढ़ता इत्यादि है। कल सूर्यकों हमने जिस अवस्थामें देखा था, आज उसकी वह अवस्था नहों है, परिणाम हो गया है। आदिसर्गकालमें पृथिवीके प्राणीका जैसा समावादि था, तथा किपलके समय जैसा था, आज हम लोगोंके समय वैसा नहीं है, परिवर्त्तन हो गया है। अधिक क्या कहा जाय, परिणामसभावा प्रकृतिके, तहुत्पन्न पृथिवी और तदाश्रित स्थावर जङ्ग-मात्मक वस्तुके अनिर्वाच्य परिणामकी कथाका मन ही मन विचार करना भी कठिन क्यापार है।

सांख्यशास्त्रका सिद्धान्त है, कि प्रकृति जड़ा, अस्वा-धीना अथच जगत्की निर्माणकर्ती है। इस सिद्धान्त पर विरुद्धवादियोंका कहना है, कि जड़वस्तु आप ही आप प्रवृत्त नहीं होती। यद्यपि कोई जड़ कभी भी आप ही आप प्रवृत्त नहीं होती। यद्यपि कोई जड़ कभी भी आप ही आप प्रवृत्त नहीं होती, तो भी उसकी वह प्रवृत्ति अनियमित अर्थात् श्रद्धुलाहीन है। ज्ञानशक्ति नहीं रहनेसे कोई भी कभी नियमित कार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार सुकौशलसम्पन्न जगत्का निर्माण क्या इच्छादि गुणशून्य जड़स्तमावा प्रकृति द्वारा सन्भव है? ज्ञानशून्या प्रकृतिके इसकी कही होने पर अव तक वह विश्वङ्खल हुआ रहता अथवा नियमितक्कपसे चन्द्र सूर्यादि परिम्नमण नहीं कर सकते । मनुष्यका पुत मनुष्य और वृक्षका अंकुर वृक्ष न हो कर कुछ औरका और होता । अतपन्न जगत्की विचित्रता देख कर यह अनुमान करना होगा, कि इसके मूलमें अव्याहतेच्छ ज्ञानसम्पन्न सर्वशक्तिमान् कोई एक कर्नु पुरुष अधिष्ठाता वा नियामक हैं । वे ही प्रकृतिके द्वारा सुनियमसे जगत्की सृष्टि और स्थित करते हैं।

इस पर कपिल कहते हैं, सो नहीं—रथ एक अचेतन वस्तु है, चेतनावान पुरुप उसमें अधिष्ठित रह कर उसे जिस प्रकार स्वेच्छानुसार नियमितरूपसे गतिमान करते हैं अथवा सुवर्णखण्ड एक जड़द्रश्य है, कोई कुशली स्वर्णकार उसका अधिष्ठाता वा कर्त्ता हो कर उसे जिस प्रकार परिणामित करता है, प्रकृतिके सम्बन्धमें उस प्रकार परिमापक वा प्ररेणकर्त्ता कोई नहीं हैं। वैसे अधिष्ठाताका अनुमान निष्ययोजन है। प्रकृति जड़ हैं, इस कारण रथनियन्ता सारिथकी तरह उसका कोई स्वतन्त्र नियन्ता है, ऐसी कल्पना करना निष्ययोजन है। प्रकृति अस्वाधीन है, इस कारण उसे परिणामित करनेके लिये अन्य पृथक व्यक्तिका प्रयोजन नहीं होता। अनादि और अनन्त पुरुपण हो उसके अधिष्ठाता हैं और निज शिक्त हो उसके परिणामकी प्रयोजक है।

इस पर कपिल कहते हैं—''तत्विक्षिधानादिषप्रात्य'व भणिवत्।"

जिस प्रकार सिन्नधानवशतः इच्छादि गुणहीन जङ्ख-भावयुक्त अथस्कान्तमणि लोहेके सम्बन्धमें सचेतन अधि-ष्ठाताकी तरह कार्यकारी होता है, उसी प्रकार साक्षिध्य-वशतः निर्गुण निक्तिय आत्मा ही वैसी प्रकृतिके अधि-ष्ठाता वा प्रेरकका कार्य करती है। जिस प्रकार लौह और चुम्बक दोनों ही जङ्ख्यमावके, इच्छादि गुणशून्य और स्वयं प्रवृत्तिरहित अथच परस्पर सिन्नहित होते ही एक दूसरेकी विकिया उपस्थित करती है, उसी प्रकार आत्मा-के निष्क्रिय और निरिच्छ तथा प्रकृतिके जड़ा और खतः प्रवृत्तिरहिता होने पर भी सिन्नधानविशेषके वलसे प्रकृतिश्रारोमें परिणामशक्तिका उद्य हुआ करता है। जङ्खभाव कह कर अनियमित परिणामकी आशङ्का अलोक आशङ्का है। क्योंकि, नियमितरूपसे परिणत होना ही प्रकृतिका स्वभाव हैं। तद्युसार प्रत्येक वस्तु ही नियमित परिणामके अधीन है। दूधका द्धि मिन कर्दम-परिणाम नहीं होता।

सांख्याचार्य ईश्वरकृष्णने कहा है—"विविवनत् प्रति प्रतिगुणाथ यविशेषात्" मेचनिमु[°]क सछिछ एक है, उसका एक रूप है और एक रस है; किन्तु वह एक और एक रसात्मक जल पृथ्वी पर आ कर नाना प्रकारके पार्थिव विकारोंके संयोगसे अर्थात् ताल और ताली आदि मिन मिन्न वीजमावापन्न विकारके साथ संयुक्त हो कर विभिन्न रूपमें विभिन्न रसमें परिणत हुआ करता है। तालचीज चा तालचूक्षने जिसे आकर्षण किया, वह एक रस हुआ और नारिकेलने जिसे आकर्पण किया, वह अन्य रस हुआ । अतएव एक ही जल जिस प्रकार कारण-विशेषके संसर्गसे भिन्न भिन्न फल और भिन्न भिन वस्तुमें कटु, तिक्त, कपाय, मधुर और अम्र आदि रस उत्पन्न करता है, उसी प्रकार पृकृतिनिष्ठ गुणतयके एक एक गुणका अभिभव और एक एक गुणका समुद्भव हो जानेसे पुवलके सहयोगसे दुवैल गुण विकृत हो जाते हैं। अतएव पृक्तिके नियमित परिणामके लिये पृक्ति-की स्वीय शक्ति वा स्वतःसिद्ध स्वभाव व्यतीत सतन्त्र पूरक रहना अकल्पनीय है।

प्रकृतिका प्रथम परिगाम ।—पृकृतिका पृथम विकाश महत्तत्त्व है। यह खिएके प्रारम्भमें असंसारी और अश्ररीरो आत्माके सिन्निधियशतः पृकृतिके मध्य प्रथम पृस्कृतित होता है। पहले गुणसमुदायके साम्यमङ्गसे सबसे पहले रजोगुणने सत्त्वगुणको उद्गिक किया था अर्थात् पहले मूलपृकृतिसे सभी तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। मूलपृकृति, महत्त्व, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धतन्मात ये पञ्चतन्मात, पञ्चकमेन्द्रिय, पञ्चशानेन्द्रिय और मन ये एकादश-इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत यही चौवीस तत्त्व हैं। ये सब तत्त्व पृकृत्युत्पन्न हैं, सुतरां जड़ हैं। सांख्याचार्यने दन सब तत्त्वोंको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है—

"मूलपुकृतिरविकृतिमैहदाद्याः पुकृतिविकृतयः सप्त। योड्शकस्तु विकारो न पुकृतिनै विकृतिः पुरुषः॥" (सांख्यका०३) कुछ तस्य केवल ही प्रकृति हैं अर्थान् किसीकी भी विकृति नहीं है। कुछ तस्य प्रकृति-विकृति हैं अर्थात् उभयात्मक हैं, प्रकृति भी है और विकृति भी है। कोई कोई तस्य केवल विकृति है अर्थात् किसी भी तस्वकी प्रकृति नहीं है। प्रकृति शब्दका अर्थ उपादान-कारण और विकृतिका अर्थ कार्य है। जिस सृलम्कृतिसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, उसका कोई कारण नहीं है। क्योंकि, मृल-प्रकृति कारणजन्य होने पर वह कारण भी कारणान्तर-जन्य है। फिर वह कारण भी अपरकारणजन्य है इत्यादि क्यसे अनवस्था दोषका निवारण करनेके लिये मृल प्रकृतिका कोई कारण नहीं है। अतः इस स्वतःसिद्धको अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।

अतएव केवल मूलप्रकृति ही प्रकृति है, किसीकी नी विकृति नहीं है । महत्तत्व, अहङ्कार और पञ्चतन्त्रात ये सात प्रकृति-विकृति वा उभयरूप हैं अर्थात् किसी तत्त्वकी प्रकृति और किसीकी विकृति है। महत्तस्य मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण वह मूलप्रकृतिकी विकृति है । इस महत्तस्वसे अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई है। इसीसे महतस्त्र अहङ्कारत्तस्त को प्रकृति है। उक्त प्रकारसे अहङ्कारतस्य प्रहत्तस्यकी विकृति है और उससे पञ्चतन्त्रात तथा एकाद्श इन्ट्रियों-की उत्पत्ति हुई है, इस कारण अहङ्कारतस्य, पश्चतन्मात और पकादश इन्द्रियकी प्रकृति है। पञ्चतन्माल भी उक्त-हरासे अहङ्कारतस्वको विकृति है और उससे पञ्चमहा-भूतकी उत्पत्ति हुई है । इस कारण पश्चमहाभूत और पकादश इन्द्रिय किसी भी तत्त्रान्तरकी उपादान आरम्भक नहीं होती। सुतरां ने प्रकृति नहीं हैं, केवल विश्वति हैं। सांख्यके मतसे प्रश्वति जगन्का मूख है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

इस विषयमें वादियोंका विस्तर मतभेद देखा जाता है। प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, यह सब कीई स्वीकार नहीं करते।

वौद्ध लोग असद्वादी हैं। उनके मतानुसार अभावसे भावकी उत्पत्ति होती है। उनका कहना है, वीजसे अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती; किन्तु पार्थिव उष्णता और

Vol. XIV. 118

जलादिके संयोगसे जब बीज चिनप्र हो जाता है, तब अंकुरकी उत्पत्ति हुआ करती है। सुतरां मायद्भप वीज अंकुरका कारण नहीं है। वीजका पृथ्यंसहप अभाव ही अंकुरहर भावपदार्थका कारण है। इस दृष्टान्त द्वारा सर्वत अभाव ही भावोत्यिका कारण है। वौद-गण ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचे हैं ; किन्तु इस पर सांख्या वार्यगणका कहना है, कि यह सिद्धान्त भ्रमा-त्मक है। वीजके पृथ्यंसके वाद अंकुरकी उत्पत्ति होती है, सही पर वीजका निरन्वय विनाश नहीं होता : वीज विनष्ट तो होता है, पर विनष्ट वीजका अवयव नष्ट नहीं होता। वह भावभूत वीजावयव अंकुरका उत्पादक है। वीजाभाव (वीजका अभाव) अंकुरका उत्पादक नहीं है। अभाव यदि भावीत्पत्तिका कारण हो, तो सव जगह सर्वभावींकी उत्पत्ति हो सकती है। अतएव अभाव भावो-त्पत्तिका कारण नहीं है। भावपदार्थ ही भावपदार्थकी उत्पत्तिका कारण है। वौद्धोंके असद्वादकी तरह वैदान्तिक विवर्त्तवाद भी सांख्याचार्योंके निकट बादूत नहीं होता। प्कृतिके परिणाम द्वारा ही जगत्की उत्पत्ति हुई है, सांख्याचायोंने यही पृतिपादन किया है। विवर्त्त और विकारका छक्षण इस पृकार है :--

"सतस्वतोऽन्यथा पृथा विवर्त्तं इत्युदीरितः। अतस्वतोऽन्यथा पृथा विकार इत्युदाहतः॥"

वस्तुके साथ जो अन्यथा पृथा वा अन्यक्प ज्ञान है, वह विकार है और यस्तुके नहीं रहने पर भी जो अन्यस्प ज्ञान होता है उसका नाम विवर्त है। इसका ताल्प्ये यह कि परिणामवाहिगोंके मतानुसार कारण विकृत वा अवस्थान्तर मात है अर्थात् कार्यकारणमें परिणत होता है। खतरां कार्यक्ष वस्तु है। कार्यक्षान निर्वस्तुक नहीं है। विवर्त्तवाहिगोंके मतसे कारण अविकृत हो रहता है, अथच उसमें वस्तुगत्या कार्य नहीं रहने पर भी केवल कार्यकी प्रतीति होती है। जिस प्रकार दुःधकी दृष्टिभावोत्पत्ति प्रभृति परिणामवादका दृष्टान्त है और रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रयञ्च वा जगत् नहीं रहने पर भी ब्रह्ममें प्रयञ्जी प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रयञ्च वा जगत् नहीं रहने पर भी ब्रह्ममें प्रयञ्जी प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रयञ्च वा जगत् नहीं रहने पर भी ब्रह्ममें प्रयञ्जी प्रतीति होती है। रज्जुसर्पकी प्रतीति-का कारण जिस प्रकार इन्द्रियदीय है, उसी प्रकार प्रयञ्च प्रतीतिका कारण जिस प्रकार इन्द्रियदीय है, उसी प्रकार प्रयञ्च प्रतीतिका कारण जनारि अनिद्याहरण दीप है। रज्जुमें

प्तोयमान सर्पे जिस प्रकार रज्जुका विवत्त है, ब्रह्ममें प्रतोयमान प्रपञ्च भी उसी प्रकार ब्रह्मका विवर्त्तमात है। यथार्थमें प्रपञ्च नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। रज्जुसप-की तरह प्रपञ्च भी प्रतीयमान मात है।

सांख्याचार्यों का कहना है, कि रज्जुमें सपकी प्रतोति होनेके वाद यदि प्रणिधानपूर्वक इसकी विवेचना को आय. तो यह सर्प नहीं है रज्जु है, ऐसा वाधज्ञान उप-स्थित होगा। सुतरां रज्जुमें सर्प-प्रतीति भ्रमात्मक है, ऐसा कहा जा सकता है। इसी युक्तिके अनुसार सांख्या-बार्यंने विवर्त्तवादका निराकरण किया है। थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम पड़ेगा, कि परिणामवादमें कार्य कारणसे भिन्न नहीं है, कारणका अवस्थान्तरमात है। कुछ वधिक्पमें, सुवर्ण कुएडल रूपमें, मृत्तिका घटरूपमें और तन्तु परक्तपर्मे परिणत होता है। अतपन दिन कुएडल, घर और पर यथाक्रम दुग्ध, सुवर्ण, मृत्तिका और तन्तुसे वस्तुगत्या भिन्न है, ऐसा नहीं कह सकते। कार्य यदि कारणसे भिन्न ही नहीं हुआ, तो ऐसा भी समभा जा सकता है, कि उत्पत्तिके पहले भी कार्य सुद्म-रूपमें विद्यमान था । कारकव्यापार अर्थात् जिन सव उपायोंसे कार्यकी उत्पत्ति होती है यथार्थमें वे सब उपाय वा कारकव्यापार कार्यके उत्पादक नहीं है। क्योंकि, उसके पहले भी कार्य सूच्मक्पमें कारणमें विद्यमान था। अतएव कारकव्यापार कार्यका उत्पादक नहीं है,-अभि-ध्यञ्जक वा प्रकाशक अर्थात् पूर्वमें सूत्त्म और अञ्यकस्पमें कार्यं विद्यमान था। कारकव्यापार द्वारा उसकी केवल स्थूलक्रपमें अभिवाक्ति होती है। अभी यह मालूम होता है, कि सांख्याचायों ने परिणामवादका अवलम्बन करनेके कारण सत्कार्यवाद ही स्थिर किया है। वेदान्तदर्शनके भाष्यमें शङ्कराचार्यने थे सब मत निराकरण किये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां ये सब विषय नहीं लिखे गये ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि सत्त्व, रजः और तमः यही तीनों गुण जगत्के मूल कारण हैं। जिस प्रकार वसी और तैल प्रत्येक अनल विरोधी होने पर भी दोनों मिल कर अनलके साथ कप्रकाशक्तप कार्य सम्पादन करता है तथा वात, पित्त और श्लेष्मा परस्पर विख्य

खमावका होने पर भो जिस प्रकार तीनों मिल कर शरीरश्रारणहर कार्य निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार तीनों गुण यद्यपि परस्पर विरुद्धसभावके हैं, तो भी तीनों मिल कर खकार्य सम्पादनमें समर्थ है। इन तीनों गुणों-मेंसे कोई भी हर परिणाम मिल झणकाल भी नहों रह सकता, जगत्में जो वैपस्य दिखाई देता है, परिणाम, वैषस्य उसका हेतु है। प्रकृतिसे ले कर चरम पर्यन्त सभी जड़वर्ग ही संहत वा मिलित गुणतय सहप है। सुतरां सुख दु:ख मोहात्मक है। ये सब पदार्थ हैं अर्थात् दूसरेका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हैं। गृह, श्रय्या, आसनादि पदार्थ संघातस्य अथच परार्थ है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। तदनुसार संघातमात ही परार्थ है, यह स्थिर किया जा सकता है।

प्रकृतिसे जगत्की सृष्टि हुई है। सृष्टि दो प्रकारकी है, प्रत्ययसर्ग और तन्मातसर्ग । प्रकृतिका प्रथम परिणाम महत्तस्य वा बुद्धितस्य है। उसकी असाधारणवृत्ति वा व्यापार अध्यवसाय वा निश्चय है। बुद्धिके घर्म गाठ हैं,—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, पेश्वर्य, अधम, अज्ञान, अवैराग्य और अनेश्वर्य । इनमेंसे प्रथम चार सात्विक और परवर्सी चार तामस हैं । महत्तस्वका कार्य अह-ङ्कारतस्य है। अभिमान उसकी वृत्ति है। यह अहङ्कार-तीन प्रकारका है-वैकारिक वा सान्धिक, तैजस वा राजस और भूतादि वा तामस है। एकादश इन्द्रिय सास्त्रिक अहङ्कारसे और तन्मातपञ्चक तामस अहङ्कारसे उत्पन्न हुआ है । राजस अहङ्कार दोनों वर्गोंकी उत्पत्तिका साहाय्यकारीमात है । चक्षु, श्रोत, ब्राण, रसन और त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रिय वा श्रानेन्द्रिय, वाक् पाणि, पाद, बायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। मन लगा कर पकादश इन्दिय और यह उमया-त्मक अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनोंमें क्या **श्वातेन्द्रिय और क्या कर्मेन्द्रिय कोई** भी मनके अधि-प्रान भिन्न स्व स्व विष्यमें प्रवृत्त नहीं हो सकती। मन-की असाधारण वृत्ति सङ्कल्प हैं। रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श ये पांच यथाक्रम चझरादि पांच युद्धीन्द्रियकी वृत्ति वा ज्यापार है। वचन वा कथन, आदान मा महण, विहरण वा गमन, उत्सर्ग वा त्याग और आनन्द वे पांच यथाक्रम वागादि पश्चकर्मेन्द्रियको वृत्ति है । मन, अह-क्वार और वृद्धि ये तीन अन्तःकरण हैं और चक्षुरांदि द्या वाह्यकरण हैं। अव तीनों अन्तःकरणकी असाघारण वृत्तिका विषय कहा जाता है। उनकी साधारणवृत्ति प्रणादि पश्चवायु हैं।

सभी तन्माव अति स्थम हैं, इसीसे ने अविशेष हैं। पञ्चतन्मावसे पञ्च महाभूवकी उत्पत्ति हुई है। इन पांच महाभूवोंमें कोई सुखकर और छद्यु, कोई दुःखकर और चञ्चल तथा कोई विपादकर वा गुरु हैं। अतपन ये विशेष नामोंसे पुकार जाते हैं। समस्त विशेष भी तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं, सूक्ष्मशरीर, मातापितृज वा स्थूलशरीर और तद्विरिक्त महाभूव।

महत्तस्व, अहङ्कार, एकाद्श इन्द्रिय और पञ्चतन्मात इत सर्वोको समिष्टि ही सूक्ष्म शरीर है। समस्त इन्द्रियां शान्त, घोर और मूढ़ात्मक हैं। अतः ये सव विशेष हैं। सूक्ष्म-शरीर इन्द्रियघटित हैं, इस कारण इसकी गिनती विशेष-में की गई है। प्रति पुरुपके लिये एक एक शरीर परि-कल्पित है। पुरुष एक एक शरीर प्रहण कर सुखदु:खादि-का भोग करते हैं। जब तक पुरुपकी विवेकस्याति नहीं होगी, तब तक प्रकृति पुरुपका साथ नहीं छोड़े गी। प्रकृति पुरुपकी विवेकस्याति उत्पन्न करा कर आए ही अपसृत हो जांग्मी।

पुरवहा विशेष विवरण पूर्व ब्व्हमें देखों।

जो सब सृष्टिकी कथाएँ कही गईं, वे पृष्ठतिके विरूप परिणामसे होतो हैं, यह पहले ही कहा जा जुका है। जब तक पृष्ठतिका पेसा विरूप परिणाम रहेगा, तब तक इस जगत्की स्थिति है। फिर जब सक्य-परिणामसे आरम्म होगा, तब भी इस जगत्का प्रलय होगा और जब प्रलय होगा, तब भी इस जगत्का प्रलय होगा और जब प्रलय होगा, तब इसी प्रणालीसे सभी पदार्थ कारणद्रव्यमें लीत हो जायंगे। जो तस्त्रसे उत्पन्न हुआ था, वह उसीमें लीन हो जायगा। पञ्चमहाभूत अपने कारणसामग्री पञ्च-तन्मालमें, पञ्चतन्माल और पकादश इन्द्रिय अहङ्कारतस्त्रमें तथा अहङ्कारतस्त्र महत्त्वमें और आखिर महत् जब प्रकृतिमें लीन हो जायगा, तब केवल मूल प्रकृति बच जायगी। इस प्रकार प्रकृतिके स्वरूप और विरूप-परिमाणमें एक वार जगत्की उत्यक्ति स्वरूप और विरूप-परिमाणमें एक वार जगत्की उत्यक्ति स्वरूप श्रीर वार जगत्का प्रलय होता है। अन्यान्य विषय श्रीस्वर्य वार जगत्का प्रलय होता है। अन्यान्य विषय श्रीस्वर्य वार जगत्का प्रलय

प्रकृतिज (सं॰ ति॰) प्रकृत्या जायते जन-ड । १ समावज जो प्रकृति या समावसे उत्पन्न हुआ हो। प्रकृति रूपेण जायते जन-ड । २ प्रकृतिसमावरूप सांस्थमत-सिद्ध सत्त्वादिगुण।

प्रकृतिधर्म (सं॰ पु॰) प्रकृतिर्धर्मः । सांख्यमतसिद्ध प्रकृति-का धर्मभेद् । अकृति देखो ।

वकृतिशुख्य (सं॰ पु॰) प्रवान पुख्य ।

प्रकृतिभाव (सं० पु०) १ खभाव । २ सन्धिका नियम जिसमें दो पर्दोंके मिलनेसे कोई विकार नहीं होता । प्रकृतिमण्डल (सं० क्ली०) प्रकृतीनां मण्डलं । १ राज्याङ्ग-खामी और अमात्यदि, राज्यके स्वामी, अमात्य, सुहद्द, कोप, राष्ट्र, दुर्ग और वल इन सातों अंगोंका समृह । २ प्रजाका समृह ।

प्रकृतिमत् (सं० ति०) प्रकृति-मतुप् । प्रकृतिविधिष्ट । प्रकृतिवत् (सं० अध्य०) प्रकृत्या तुल्यं प्रकृति-वति । १ प्रकृतितुद्य, पृकृतिके सदृशः । २ व्याकरणपृसिद्ध आदिश्यमान पृकृतिभूतका स्थानिवत् कार्ये ।

पुरुतिवशित्व (सं॰ पु॰) पुरुतिको अधिकारमें लाने या रखनेकी शक्ति।

पृक्षतिशास्त्र (सं॰ पु॰) वह शास्त्र जिसमें पृक्तिक वार्तो-का विचार किया जाय।

प्कृतिसिद्ध (सं० ति०) स्वाभाविक, प्राकृत, नैसर्गिक।
पकृतिस्थ (सं० ति०) प्रकृति-स्था-क। १ स्वीय भावापन्न,
जो अपनी प्राकृतिक भवस्थामें हो। २ स्वाभाविक
प्रकृतिस्थसूर्य (सं० प्०) उत्तरायण उल्लंडन करके आया

प्रकृतिस्थसूर्य (सं० पु०) उत्तरायण उह्यङ्घन करके आया हुआ सूर्य।

प्रकृतिजीर्णं (सं० पु०) साधारण या साभाविक अजीर्णं। प्रकृत्यादि (सं० पु०) प्रकृतिशब्द आदिर्यस्य । तृतीया-निमित्त शब्दगणमेद् । गण स्था—प्रकृति, प्राय, गोत, सम, वियम, द्विशोण, पञ्चक, साहस ।

प्रकृष्ट (सं० ति०) प्रकृष्यते इति प्र-कृष-कः । १ प्रकर्ष-युक्त, प्रधान, खास । पर्याय—मुख्य, प्रमुख्य, प्रवर्ह, वार्व्यं, वरेण्य, प्रवर, पुरोग, अनुक्तर, प्राप्रहर, प्रवेक, प्रधान, अप्रे-सर, उक्तम, अप्र, प्राप्तणों, अप्रणों, अप्रिम, जात्य, अप्रा, अनुक्तम, अनवराद्धं, प्रष्ट, पराद्धं, पर । २ आकृष्ट, खिचा रुआ। प्रकृष्टता (सं० स्त्रो०) उत्कृप्टता, उत्तमता, श्रेप्टता। प्रकृष्टत्व (सं॰ क्को॰) प्रकष्टता, उत्कृष्टता ।

प्रकृष्य (सं० ति०) प्र-रूष-कर्मणि-क्यप् । खींचने लायक ।

प्रकल्प (सं० ति०) प्र-क्लप-क। १ रचित। २ सम्भूत। प्रकरुप्ति (सं ० स्त्रो०) प्र-करुप-भावे-क्तिन् । विद्यमानता, मौजूदगी।

प्रकेत (सं ० ति०) प्र-कित-णिच्-अच्। १ प्रकर्य रूपसे **ज्ञापक । (क्री॰) २ प्रकृ**ष्टसुखसाधन अन्न । प्रकेतन (सं० क्ली०) १ अत्त । २ प्रकृष्टरूपसे ज्ञापन । प्रकोट (म'० पु०) १ परकोटा । परिस्ना, शहरपनाह ।

२ घुस्स ।

प्रकोथ (सं ॰ पु॰) प्र-क्कुथ-भावे-चम् । १ प्रकृष्टपतन । ५ संशोप । ३ पूतिभावापन्न ।

प्रकोप (सं०पु०) प्र-क्रुप-घज्। १ अतिशय कोप। २ ज्यरादिकी उत्कटता, वीमारीका अधिक और तेज होना। ३ क्षोम । ४ चञ्चलता, चपलता । ५ शरीरके वात, पित्त आदि वा किसी कारणसे विगड़ जाना जिससे रोग उत्प-न्त होता है।

प्रकोपन (सं ० क्ली०) प्र-कुप-त्युट्। '१ वन्धन । २ क्रुद्धकरण, गुस्सा करना, नाराज होना । ३ अण्यादिका उद्दीपन, आग सुलगाना । ४ क्षोभ । ५ चाञ्चल्य । ६ वात-पित आदिका कोप । वातादि संक्षोभके कारणको प्रकोप वा प्रकोपन कहते हैं। सुश्रुतके मतानुसार निम्नोक्त कारणसे दोपका प्रकोप होता है। वलवान्के साथ व्यायाम वा अतिरिक्त व्यायाम, स्त्री संसर्ग, अध्ययन, पतन, धायन, प्रपीड़न, अभिघात, लङ्घन, प्रवन, सन्तरण, राहि-ज्ञागरण, भारवहन, गज, अभ्व, रथ आदि पर चढ़नेसे, पैदल चलनेसे, कटु, कपाय, तिक्त या रुश्दद्रव्य, लघु अथवा शीतल तेजःविशिष्ट द्रव्य, शुक्तशाक, शुक्तमांस, कोदों, मूंग, मसूर, अरहर और उरद आदि अन्न खानेसे अनशन, विपरोत भोजन, अधिक भोजन करनेसे और वात, मूल, पुरीप, शुक्र, शदीं, हिसा, उद्गार और अधू भादिका वेग रोकनेसे वायुका प्रकोप होता है। विशेपतः मेयाच्छन्न दिनमें, शीतलवायुके प्रवहनकालमें, प्रतिदिन प्रभात और अपराहकालमें तथा अत्र परिपाक हो जाने पर वायुका प्रकोप होता है।

कोघ, शोक, भय, चिन्ता, उपवास, अग्निदाह, मैयुन, उपगमन, अथवा करु, अम्रु, छवण, तीक्ष्ण, उय्ण, छघु, विदाही, तिलतैल, पिण्याक, कुलथी, सरसीं, चिकनाकी साग, गोघा, मछली, वकरे और भेड़े का मांस, दही, महा, छेना, कांजी, शराव या शरावकी कोई विकृति और अमुरसविशिष्ट फल, मट्टा और रौत्रका उत्ताप, इन सव कारणोंसे पित्तका प्रकोप होता है। विशेपतः उणिक्या करनेसे वा उळाकालमें, मेघके अवसान पर, मध्याहकाल-में या दोपहर रातिमें तथा भुक्तद्रव्य परिपाकके समय पित्तका प्रकोप होता है।

दिवानिहा, श्रमका अभाव, मधुररस, अप्लरस, लवण-रस, शीतळ, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिळ, द्रववस्तु, हैमन्तिक, धान्य, यत्र, माप, गोधूम, तिलिपएक, दघि, दुग्ध, कुशर, पायस, इक्षुविकार, मांस, मृणाङ, केशर, श्रङ्गाटक, मधुररसविशिष्ट अञाबु और कुप्माएड आदि लताफरु, सम्यक्मोजन वा अतिरिक्त भोजन, इन सबसे श्लेपाका प्रकोप होता हैं। चिशेपतः शीनिकया करनेसे, शीत और वसन्त ऋतुमें तथा प्रतिदिन प्रातः और सार्वकाटमें एवं भोजन करते हो रहेप्माका प्रकोप होता है।

पुकोपनीय (सं० त्नि०) पु-कुप-णिच्-अनीवर् । पूकोपनाहं, प्कोपनके योग्य।

पुकोपित (सं॰ ति॰) पृ-कुप-णिच् क, वा पृकोपः तारका-दित्वादितच्। पृकोष या उत्तेतित किया हुआ।

प्दोपितृ (सं॰ ति॰) पु.कुप-णिच्-्रुण्। पृकोपक, गुस्सा करनेवाला ।

पुकोप्ट (सं ॰ पु॰) पूक्तध्यतेऽनेनेति पू-कृप-निष्कर्षे (उपि-कुषीति । उण् २।४) इति स्थन् । १ कृष[°]रके अघी-भागस्थित मणिवन्ध पर्यन्त वाहुभाग, कोहिनीके नीचेका हिस्सा । २ द्वारका अंशविशेष, सदर फाटकके पासकी कोठरी । ३ वड़ा आंगन जिसके चारों ओर इमारत हो ।

पुकोच्णा (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम। पुक्खर (सं ॰ पु॰) पुखर पृषोदरादित्वात् वा पृन्धर-अव् वा। १ अभ्यसन्नाह, घोड़ेकी पासर। २ कुम्कुर, कुत्ता। ३ अश्वतर, स्रचर। (हि॰) ४ अत्यन्त तीत्र,

र्ताक्ष्ण, पुचएड । पुकन्तु (सं० ति०) पुन्कम तृच्। उपक्रमकर्त्ता, शुरू **इ**रनेवाला ।

पूक्तम (सं॰ पु॰) प्र-क्रम भावे घज्। १ क्रम, शिलशिला। २ अवसर, मौका। ३ अतिक्रम, उल्लङ्घन। ४ पृथमा-रम्म, वह उपाय जो किसी कार्यके आरम्भमें किया जाय।

पूक्रमण (सं० क्वो०) पू-क्रम-ल्युट्। १ अच्छी तरह धूमाना, खूव भ्रमण करना। २ पार करना। ३ भारस्म कराना। ४ आगे वढ़ना।

प्रक्रमसङ्ग (सं ० पु०) प्रक्रमस्य भङ्गः। साहित्यमें एक दोष। यह दोष उस समय होता है, जब किसी नियमके वर्णनमें आरम्म किये हुए क्रम आदिका ठीक ठीक पालन नहीं होता।

पूकान्त (सं० ति०) पुन्त्रम-कः । १ पूकरणस्थ, पूकरण-प्राप्त । २ स्रारब्ध ।

पृक्षामणि—भोजविद्या वा भौतिकविद्याका प्रकरणविशेष । प्रिक्षया (सं० स्रो०) प्र-कृ-श । १ प्रकरण । २ राजाओंका वैद्यर छत्न आदिका धारण । पर्याय—अधिकार, अधी-कार, नियतविधि । ३ प्रकृष्टकार्य, युक्ति, तरीका ।

प्रक्रीड़ (सं । पु॰) प्रकृष्ट क्रीड़न।

प्रकोड़िन् (सं॰ बि॰) प्र-कोड़-णिनि । प्रकृष्टस्पसे कीड़ा-युका।

प्रक्रोश (सं०पु०) आक्रोश।

प्रक्तिक (स'० ति०) प्र-क्तिद्-कः । १ तृतः । २ प्रकृष्ट-क्रपसे क्लेद्युकः, वहुक्लेद्युकः ।

प्रक्तित्रवर्त्तिन् (सं॰ पु॰) नैतरोगविशेष । इसमें आँख-की पलकें बाहरसे सूज जाती हैं और पीड़ा होती है तथा आंखोंमें कीचड़ भर जाता है।

प्रष्रित (सं • पु॰) प्र-क्किद्-घञ्। आद्र^९ता, नमी, तरी। प्रष्रिदन (सं ॰ क्की॰) आद्रीकरण, गोला करना, मिगोना। प्रष्रिदेवत् (सं॰ त्रि॰) प्रष्रिद-अस्त्यर्थे मतुष्, मस्य व। प्रष्रिदेयुक्त, प्रक्किन्न।

प्रक्लिदिन् (सं ० ति ०) प्रक्लिद् अस्त्य थें-इनि । प्रक्लिद्युक्त । प्रकण (सं ० पु०) कण शब्दे, (क्वणो गि. । इन्त । पाइ।इ।६५ इति-अप् । १ वोणाध्वनि । २ शब्द ।

प्रकाण (सं ० पु०) प्र-कण-घञ्। प्रकण।

प्रक्षय (सं ० पु०) प्र-क्षि-अप्। नाश, बरवादी।

प्रश्नमण (सं ० पु॰) विनाशन, नाश करना, वरवाद् करना।

Vol. XIV 119

प्रक्षर (सं ॰ पु॰) प्रकर्षेण क्षरति सञ्चलतीति प्र-क्षर अच्। अञ्चसन्नाह्, अञ्चक्षचच, घोड्रेको पालर ।

प्रसरण (सं ॰ क्वी॰) प्रश्नर ल्युट्। प्रकृष्टरूपसे क्षरण, भरना, वहना।

प्रसाल (सं ० ति ०) प्रश्नालयति श्नालि-अच् । शोधक प्रायश्चित्त ।

प्रशालन (स'० क्को०) प्र-क्षालि ल्युट्। मार्जन, जलसे साफ करनेकी किया।

प्रक्षालनीय (सं ॰ ति॰) प्र-क्षालि अनीयर् । प्रश्लालनके योग्य । साफ करने लायक ।

प्रश्नास्त्रित (सं० ति०) प्रक्षास्त्रि क्त । १ घौत, श्रोया हुआ । २ मार्जित, साफ किया हुआ ।

प्रक्षाल्य (सं• ति•) प्र-क्षालि-यत्। प्रक्षालनीय, घोने . या साफ करनेयोग्य।

प्रक्षित (सं॰ वि॰) प्र-क्षिप-क । १ निश्चित, फेंका हुआ । २ विन्यस्त, पीछेसे मिलाया हुआ, ऊपरसे वढ़ाया हुआ । ३ अन्तर्निवेशित, अन्दर रखा हुआ।

प्रक्षेप (सं ॰ पु॰) प्र-िक्षय-घन्। १ औषधादिमें क्षेप-णीय द्रवा, वह पदार्थ जो औषघ आदिमें ऊपरसे डाला जाय। २ विक्षेप, फेंकना, डालना। ३ छितराना, विखराना। ४ मिलाना, वढ़ाना। ५ वह मूलघन जो किसी व्यापारिक समाज या संस्थाका प्रत्येक सदस्य लगा दे, हिस्सेदारोंकी अलग अलग लगाई हुई प्ंजी। प्रक्षेपण (सं० ह्यी॰) प्र-िक्षय-च्युट्। १ निक्षेपण, फेंकना। २ ऊपरसे मिलाना। ३ जहाज आदिका चलाना। ४ निश्चित करना।

प्रश्लेपि (सं॰ स्त्री॰) अझर लिखनेको एक विशेष रीति।

प्रक्षेपिन् (सं ॰ ति ॰) प्रक्षेप-यस्त्यर्थे इनि । प्रक्षेपयुक्त । प्रक्षेप्तवा (सं ॰ ति ॰) प्र-िक्षप-तवा । प्रक्षेपणीय, फैंकने लायक ।

प्रक्षेप्य (सं ० ति ०) प्र-क्षिप-यत् । प्रक्षेपयोग्य ।

प्रक्षोभण (सं क्री॰) प्रकृष्टहरासे स्रोभण, घवराहट,

प्रस्वेडन (सं ॰ पु॰) प्रक्वेड्यतीति प्र-क्ष्विड्-अव्यक्तशब्दे-

ल्यु । १ नाराच, लोहेका वाण । २ अवाक्त शब्द, शोर गुल । प्रक्ष्वेदन (सं० पु०) प्रक्ष्वेदतीति प्र-स्विद-अवाक्तशब्दे,

ल्यु । नोरास्र, छोहेका तीर ।

प्रखर (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टः खरः। १ अध्वसज्जा, घोड़ेकी पाखर। २ अभ्वतर, खचर। ३ कुक्कुर, कुत्ता। (ति॰) 8 तीक्ष्ण, प्रचएड। ५ धारदार, चोखा, पैना।

प्रकरता (सं ० स्त्री०) प्रखर होनेको किया या भाव, तेजी।

प्रसल (सं ० ति०) वहुत वड़ा दुए।

प्रखाद (सं ० ति ०) प्रकृष्टकपसे खादिता, खादक, खाने-वाला।

प्रस्य (सं ॰ वि॰) प्रख्यातीति प्र-ख्या ख्यातीकः । उत्तर-' पादमें तुल्पार्थवाचकः।

प्रख्या (सं • स्त्री •) प्र-ख्या भावे अङ्। १ विख्याति, प्रसिद्धि । २ उपमा । ३ समता, वरावरी ।

प्रख्यात (सं ० ति०) प्र-ख्यायुक्त। प्रसिद्ध, विख्यात, मशहूर।

प्रख्यातवप्तृक (सं० पु०) प्रख्यातो वष्ता जनयिता यस्य, 'नद्रुयत्श्चेति' कप्। विख्यातिपतृक, वह जिसका पिता बहुत प्रसिद्ध हो।

प्रस्थाति (सं ० स्त्री०) प्र-च्या-किन् । विख्याति, प्रसिद्धि । प्रस्थास् (सं ० पु०) प्र-चक्ष-असि, 'वहुल' शिच' इत्यु-कोर्न शित्। प्रजापति ।

प्रगण्ड (सं ॰ पु॰) प्रत्यासन्नो गण्डो त्रन्थिर्थस्य । कंधेसे के कर कोहनी तकका भाव ।

प्रगएडी (सं ० स्त्री०) प्रगएड गौरादित्वात डीप्। १ वहिःप्राकार, दुर्ग आदिका प्राकार जिस पर वैठ कर दूर दूरकी चीजे देखते हैं, बाहरी दीनार।

प्रगतजानु (सं॰ ति॰) प्रगते संक्ष्यिन्दे जानुनी यस्य । असंहत जानुक, टेढ़ा या मुड़ा पाँचवाला । पर्याय—प्रज्ञू, प्रज्ञ, प्रगतजानुक ।

प्रगन्ध (सं• पु॰) प्रकृष्टी गन्घोऽस्य । पप[°]द, दवन पापड़ा । २ प्रकृष्ट गन्धयुक्त ।

प्रगट (हिं• वि•) प्रकट है खो।

प्रगरन (दि॰ पु॰) प्रकटन देखी ।

प्रगटना (व्हिं कि) प्रगट, होना, जाहिर होना।
प्रगटना (व्हिं कि) प्रकट करना, जाहिर करना।
प्रगम (सं पु) प्र-गम अप्। प्रगमन, आगे बढ़ना।
प्रगमन (सं क्विं) प्र-गम-ल्युट्। १ आगे बढ़ना। २ उन्नति,
तरक्की। ३ छड़ाई, भगड़ा। ४ बह भाषण जिसमें
कोई अच्छा उत्तर दिया गया हो, अनुहा या माङ्गल
जवाव।

प्रगमनीय (सं० ति०) प्र-गम-अनीयर्। गमनकं योग्य, आगे वढ़ने लायक।

प्रगर्जन (सं ॰ ह्हो ॰) अतिगर्जन, भीषण शब्द । प्रगर्द्धिन (सं ॰ ति ॰) प्रकृष्टरूपसे अभिकांक्षायुक्त ।

प्रात्म (सं वित्) प्रात्मते इति प्रात्म प्राप्ते। पवा-द्या । १ प्रियुत्पन्तमित, सम्पन्न वृद्धिवाला । २ उद्धत, जिसमें नम्रता न हो । ३ निलंज, भृष्ट, वेह्या । ४ दाम्मिक, अभिमानी । ५ चतुर, होशियार । ६ उत्साही, साहसी, हिम्मती । ७ समय पर ठीक उत्तर देनेवाला, हाजिर जवाव । ८ निभय, निडर । ६ वोलनैमें संकोच न रखने-वाला, वकवादी । १० गम्मीर, भरा पूरा । ११ पृथान, मुख्य । १२ पुष्ट । १३ समर्थ ।

प्रगल्भ—कालिकाधिपति गङ्गवंशीय एक राजा, वृषध्वजने

पुल । कोई कोई इन्हें पूगर्भ भी कहते हैं ।

प्रगल्म आचार्य—१ एक विख्यात नैयायिक । इनके पिताका नाम नरपित और माताका नाम जाहवी देवी था।

थे शुभक्कर नामसे भी परिचित हैं । इन्होंने तस्विचन्तामणिटीका, श्रीदर्भ णखण्डन नामक खण्डनलाघटीका,
उपमानखण्ड, न्यायमतखण्डन और पूमाणखण्डन नामक
कई एक प्रन्थ वनाये हैं।

२ विद्यार्णेव नामक श्रन्थके रचिता। ये विष्णुशर्मा-के शिष्य थे।

प्रगल्मता (सं ० ति ०) प्रगल् भस्य भावः 'त्वतली भावे' इति तल् । १ प्रागल्म्य, बुद्धिकी सम्पन्नता । पर्याय-जिल्लाह, अभियोग, उद्यम, प्रौदि, उद्योग, कियदैतिका, अध्यवसाय, उर्ज । २ बौद्धत्य, उद्धतता । ३ निर्ले जता, धृष्टता, बेह्याई । ४ दाम्भिकता, अभिमान ।५ वुद्धिमत्ता, होशियारी । ६ उत्साह, साहस, हिम्मत । ७ वाक्बातुरी, हाजिर जवावी । ८ निभयता, सङ्गोवका

त्रभात ।

अभाव। ६ व्यर्थकी वातचीत, वकवाद। १० गर्भीरता।
११ प्रधानता, मुख्यता। १२ पुष्टता। १३ सामर्थ्य, शिकः।
प्रगत्मवचना (सं० ह्यां०) मध्या नायिकाके चार भेदोंमेंसे
एक। यह नायिका वातों ही वातोंमें अपना दुःख और
क्रोध प्रकट करती और उल्ला देती है। साहित्यह्पंणके मतानुसार कामान्धा, पूर्णयीवना, सब प्रकारके
रितिविपयमें अभिज्ञा, भावोन्नता और अल्पल्ड्यायुका
इत्यादि लक्षणोंको नायिकाको प्रगत्मानायिका कहते हैं।
रसमञ्जरीमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है जो
सब प्रकारके केलिकलाप विषयोंसे जानकार है, उसे
प्रगत्मा कहते हैं। इसको चेष्टा रितिप्रीति और आनन्दके
कारण आत्मसंमोह है। यहनायिका तीन प्रकारकी है,
धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

विशेष विधरण नाषिका शब्दमे देखो । प्रगल्मा (सं० स्त्री०) प्रौद्दा नायिका । प्रन्तमक्ता देखो । प्रगल्मित (सं० ति०) प्रगल्भयुक्त ।

प्रगाढ़ (सं० वि०) प्रकर्षेण गाह्यते स्मेति प्र-गाह-क . (यस्य विमाधा । ११ ७।२।१५) इति न इट् । १ अतिजय, अधिक । २ द्रढ़, वहुत गाढ़ा या गहरा । ३ निविड, धना; कठोर ।

प्रगासु (सं॰ ति॰) प्र-गै-तृच्। उत्तम गायक, अच्छा गानेवाला।

प्रगाथ (सं॰ पु॰ प्र प्रन्थ वाहुं आधारे वञ् । १ वह अर्थ जहां बेदमें दो ऋक् तीन किये जाते हैं,उसे प्रगाथ कहते हैं। सामसंहिता-भाष्यमें इसका विशेष विवरण लिखा है। २ प्रगाथक्षपमें ध्येष मन्त्व।

प्रगाद्य (सं॰ क्वी॰) प्र-गद्-ण्यत् । प्रकृष्टरूपसे गद्नीय अर्थात् कथनीय ।

प्रगामिन् (सं॰ ति॰) प्र-गम-णिनि । प्रकृष्टस्त्रपसे गमन-शील, जानेवासा ।

प्रगायिन् (सं० ति०) प्र-गा-णिनि । गायक, गानेवाला । प्रगाइन (सं० क्की) प्र-गाह-ल्युट् । प्रकृष्टस्तपसे अव-गाइन, मज्जन, मांजना ।

त्रगीति (सं० स्त्री०) प्र-गा-किन्। एक प्रकारका छन्त्। प्रगुण (सं० ति०) प्रकर्षेण गुणो यत्त । १ ऋञ् । २ प्रकृष्ट गुणयुक्त, गुणवान् । ३ अनुकृष्ट । ४ कार्यकुशल, दक्ष, होशियार । प्रगुणिन् (सं० वि०) प्रगुण अस्त्यर्थे इनि। प्रकृष्ट गुणशालो, गुणवान्।

प्रगुण्य (सं॰ बि॰) कार्यकुशल, होशियार ।

प्रमृहीत (सं । वि ।) प्र-प्रह-क । १ प्रकृष्टक्पमें पृहीत, जो अच्छी तरह प्रहण किया गया हो । २ जिसका उच्चारण विना सन्धिके नियमोंका ध्यान रखे किया जाय ।

प्रमृह्य (सं० ति०) प्र मृह्यते इति प्र-मृह-स्यप् (पदास्दे-दिन हा इक्षेषु च। पा ३।१।११६) क्यप् ततः (प्रहिन्येति। वा ६।१।१६) सम्यसारणम्। १ जो विना सन्त्रिके नियमोंका ध्यान रखे उच्चारण करनेके योग्य हो। २ जो ग्रहण करनेके योग्य हो। (पु०) ३ स्मृति। ४ वाक्य। प्रमे (सं० अव्य०) प्रकर्षेण गीयतेऽत्रेति प्र-मे-के। प्रातः,

प्रगेतन (सं० वि०) प्रगे पातर्भव इति प्रगे (सायक्षित्र-र्भात । ४.३।२३) इति द्यु तुद् च । प्रातर्भव । इसका पर्याय—श्वस्तन है ।

प्रगेनिशा (सं॰ ति॰) प्रगे प्रातःकालो निशेव सापहेतु-र्यस्य। प्रातःकालशायी, जो सवेरे सोता हो।

प्रगेशय (सं॰ बि॰) प्रगे शेते शी-अच् । प्रातःशायी, सबैरे सोनेवाळा ।

प्रमह (सं॰ पु॰) प्रगृह्यते इति प्रगृह्यात्यनेनेति वा (प्रहड्ड॰ ह-निर्देशन १२ । १ १ १ ५ ३) इति प्रम्, भाव पक्षे अप । १ तुलास्त, तराम् आदिमें वंधी हुई डोरी। २ अभ्वादि-की रिश्म, घोड़े आदि पशुओंकी लगाम। ३ वन्दी, कैदी। ४ अभ्रा, वाहु। ५ रिश्म, किरण। ६ धारण, प्रहण करने या पकड़नेका भाव या ढंग। ७ सुवर्णालु महीरुह, एक प्रकारका अमलतास। ८ किणकायृक्ष, किनयारी। १ इन्द्रियादिका निप्रह, इन्द्रियद्मन। १० नियमन, शासन। १२ अवलम्बन, आधार। १२ विष्णु। १३ सुवर्ण, सीना। १४ आवल्पन, आधार। १२ विष्णु। १३ सुवर्ण, सीना। १४ मार्गदर्शक,नेता। १५ आदर, सत्कार। १६ स्र्यं अथवा चन्द्रमाके प्रहणका आरम्भ। १७ अनुप्रह, इत्या। १८ उद्यतता। १६ वाग, लगाम। २० उपप्रह, किसी प्रहके साथ रहनेवाला छोटा प्रह।

प्रवहण संग् पु॰) १ प्रहण करनेकी किया या भाव, धारण। २ सुर्य आदिके प्रहणका आरम्भ। ३ घोड़े आदि पशुओं-को साधना। ४ तराजु आदिकी डोरी। ५ छगाम, बाग। प्रगाह (सं॰ पु॰) प्रगृहाते इति प्र-ग्रह (प्रवणिजां। पा ३।३।४२। 'रहमीच।' पा ३।३।५३) इति च घञ्।

प्रयह देखो ।

प्रय्रीव (सं० पु० झी०) प्रकृष्टा ग्रीवाकृतिरस्य । १ गृहादि-में प्रान्तघार्य दारुपंक्ति, किसी मकानके चारों तरफका वह घेरा जो छद्दे या वांस आदि गाड़ कर बनाया जाता है। २ वातायन, भरोखा, छोटी खिड़को । ३ सुखग्राला, आमोद्-प्रमोद् करनेका स्थान । ४ अभ्वशालां, अस्तवल । ५ द्रुमशोर्धक, वृक्षका उत्परी भाग। (ति०) ६ प्रकृष्ट-ग्रीवान्वित, जिसका गला सुन्दर हो।

प्रघटक (सं० ति०) १ घटनाकारी । (क्की०) २ सिद्धान्त । प्रघटाविद् (सं ० ति०) प्रघटां आडम्यरं वेत्तीति । शास्त्र-शएड, शास्त्राभित्र ।

प्रग्रहक (सं ० पु०) प्र-घट्ट-ण्वुल् । १ सिद्धान्त । २ सं यो-

प्रघण (सं ॰ पु॰) प्रविशस्त्रिज्ञेनैः पादैः प्रकर्षेणहन्यते इति प्र-इन (अगार्र-कर्देशे प्रवण: प्रवान^{रे}च। पा ३।३।७६) कर्मणि अप्, णत्यञ्च । १ वहिर्द्वारप्रकोष्टक, वरामदा, अलिन्द । २ ताम्रकुम्म, तांवेका घड़ा । ३ लौहमुद्रर, लोहे-का मुद्रर । ४ गृहाभ्यन्तरशय्यार्थ पिरिडका, घरके भीतरकी वह पिएडी जिस पर सोते हैं।

व्रघन (सं०पु०) प्रकर्षेणऽन्यते इति प्र-हन-अप् वा णत्यं । प्रवण देखो ।

प्रघस (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण अत्तीति प्र-अद्-अप् । (घनशेष । पा २।४।३८) इति घस्लादेशः ।१ असुर ।२ दैत्य । **५ राश्नसभेद, एक राश्नस जो रावणको सेनाका मु**ख्य सेनानायक था और जिसे हनुमान्ने प्रमदावन उजाड़नेके समय मारा था। ४ कुमारानुचर-मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम । (ति०) ५ भक्षक, खानेवाला ।

प्रघाण (सं॰ पु॰) प्रहत्यते इति प्र-हन-अप् पक्षे वृद्धिश्च । (पा ३।३।३।३६) प्रघण ।

प्रधाप (सं०पु०) प्रकर्षेण हत्यते यत्रेति प्र-हन-घञ्। १ युद्ध, छड़ाई । २ मारण, मारना ।

प्रधान (सं ॰ पु॰) प्र-हन-अप् वृद्धश्च पक्षे न णत्वं।

प्रधास (सं ॰ पु॰) प्र-घस्-धन्। १ प्रकृष्टकपसे भक्षणीय

हविरादि। २ वरुणप्रधास, एक प्रकारका चातुर्मास्य याग ।

प्रघासिन् (सं० ति०) प्रघासयुक्त मरुद्रण, प्रघासयह-युक्त ।

प्रचास्य (सं ० ति ०) प्रकृष्टरुपसे भन्नणीय, अच्छी तरह खाने लायक।

प्रचुण (सं ० पु०) प्र-घुण-क । अतिथि, मेहमान । प्रभूणें (सं॰ पु॰) प्रधूणेति समतीति प्र-भूणे-अच्। अतिथि, मेहमान ।

प्रयोर (सं ० ति०) अति कठिन, वहुत अधिक कठिन। प्रघोवक (सं॰ पु॰) प्र घुप भावे घञ्, ततः कन् । ध्वनि । प्रचक (सं॰ क्ली॰) प्रगतश्चकमिति प्रादिसमासः। प्रस्थित सैन्य, वह सेना जिसने कूच वोल दिया।

प्रचक्षस् (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण चक्षते वक्तीति प्र-चक्ष-असि,न क्यादेशः । वृहस्पति ।

प्रचएड (सं ० ति०) प्रकर्पेण चएडः। १ वहुत अधिक तीत्र, तेज, उप्र । २ प्रवल, बहुत अधिक वेगवान् । ३ भयङ्कर । ४ कठिन, कठोर । ५ दुःसह, असह। ६ वड़ा, भारी। ७ पुष्ट, वलवान्। ८ वहुत गरम। ६ प्रतापी। (पु॰) प्रकर्वेण चएडः उप्रगुणत्वात्। १० श्वेतकरवीर, सफेद कनेर। ११ वत्सप्री नामक राजाके सुनन्दागर्भजात एक पुत् । १२ शिवका एक गण।

प्रचण्ड--राष्ट्रकृटराज २य कृष्णके महासामन्त । ये त्रस-वकवंशीय धवलप्पके पुत्र थे। पिताके वाहुवलसे उपा-र्जित ७५० ग्रामोंका आधिपत्य इन्हीं पर सौंपा था। इनके अधीन चन्द्रगुप्त नामक एक द्र्डनायक इस मूभाग-का शासन करते थे। ये ८३२ शकमें विद्यमान थे।

प्रचारड—वौद्धराज अजातशतुके एक मन्ती । वेश्याशिकः प्रयुक्त इन्होंने राजासे अपमानित हो कर प्रवज्याका अव-लम्बन किया।

प्रचएडता (सं॰ स्त्री॰) १ प्रचएड होनेका भाव, तेजी, तीखा-पन । २ भयङ्करता ।

प्रचएडत्व (सं० पु०) प्रचण्डता देखी ।

प्रचण्डदेव—गौड़देशाधिपति एक क्षतिय राजा। धार्मिक राजा अपनी कार्यकुशळताके लिये जनसाधारणके पूज थे। ये शाक और वीरवतीके उपासक थे। वौद्धपृभाव-

कालमें इनके मनमें निर्वाणप्राप्तिकी आकांक्षा बलवती हुई। अतः अपने लड्के शक्तिदेवको राजपद पर विठा कर आप साधुनोंके साथ नाना देशोंमें पर्यटनको निकल गये। नेपालराज्यमें पहुंच कर थे जगत्के अपूर्व सौन्द्यं पर विमोहित हो पड़े । कमशः वहांके सभी तीथाँ और पीड स्थानादिका पर्यवेक्षण कर इन्होंने विरत्न और खय-म्युनाथकी पूजा शेष की। पीछे मंजुश्रीपर्यंत पर चढ़ कर गुणाकरिमभूसे वौद्धधर्म प्रहण किया। अव ये शान्तश्री नामसे प्रसिद्ध हुए। जो सब हिन्दूमतावलम्बी इनके साथ नेपाल गये थे, वे सबके सब बीद हो गये और सङ्घारामादिमें रह कर धर्मचर्चा करने लगे। इन्होंने ही स्वयम्पूनाथको पवित्र वहिरक्षाके लिये अपने गुरु गुणाकरसे अनुरोध किया था। इनके प्रस्ताव पर मुग्ध हो कर गुणा-करजीने 'तयोदशाभिषेक' द्वारा शरीर पवित्रकर शान्ति-कर बज्राचार्य नाम रखा। इसी समयसे नेपालमें गौड़-देश वासियोंका आना शुरू हुआ।

स्वयम्भूपुराणका भा अध्याव हेखो । अचएडमूर्ति (सं० स्त्री•) प्रचएड मूर्तिर्यस्य । १ वरुण-वृक्ष । २ उप्रमूर्ति, भयानक देहविशिष्ट । प्रचएडसैन—पक ताम्रलिस-देशाधिपति ।

प्रचरडा (सं ॰ स्त्री •) प्रकर्षेण चरडा । १ अतिकीपणा । २ भगवतीकी ससीविशेष । ३ दुर्गाकी अप्रनायिकाके अन्तर्गत नायिकाविशेष । देवीभागवतमें लिखा है, कि छगलएड नामक पीठस्थानमें यह प्रचर्डादेवी विराजित हैं । ४ वितदूर्वा, सफेद दूव जिसके फूल सफेद होते हैं ।

प्रचता (सं ० अव1०) देवगण द्वारा याचमान ।
प्रचय (सं ० पु०) प्रचीयते इति प्र-चिक् चयने (एःच् । एः
दे।३,५६) इत्यच् । १ समूह, भुएड । २ राशि, ढेर । ३
वृद्धि, वढ़तो । ४ वीजगणितमें एक प्रकारका संयोग । ५
यष्टि प्रभृति द्वारा पुष्प और फलादि चयन, लकड़ी आदिकी सहायतासे फूल या फल एकव करना । ६ वेद्पाठ
विधिमें एक प्रकारका खर । इस खरके उच्चारणके विधाभानुसार पाठकको अपना हाथ नाकके पास ले जानेकी
आवश्यकता पड़ती है।

प्रचयन (सं ॰ क्ली॰) वैदिक खरव्रामभेद् । Vol. XIV. 120

प्रचयस्वर (सं• पु॰) १ प्रचितिस्वर । २ सञ्चय । प्रचर । सं ॰ पु॰) प्रचरत्यस्मिनिति प्र-चर-आधारे अप्। १ मार्ग, रास्ता । २ प्रकृष्टरूपसे गमन । प्रचरण (सं॰ क्ली॰) विचरण, चलना, फिरना। प्रचरद्वप (सं ० ति ०) प्रचरत् प्रकाशमानं रूपं सरूपं यस्य । १ वाकरूप । २ प्रचारविशिष्ट, प्रचलित । प्रचरित (सं० बि०) प्रचलित, चलता हुआ। प्रचल (सं• ति•) प्र-चल-अच् । १ प्रसृष्ट चलनयुक्त, चञ्चल। (पु०) २ मयूर, मोर। ३ सौम्यकीटविरोष। पचलक (सं॰ पु॰) कीटमेद, सौम्य नामका कीड़ा। पचलन (सं• क्ली॰) प्रवर्त्तन, चलन । पचला (सं० स्त्री०) १ वह निद्रा जो वैठे या खड़े हुए मनुष्यको आती है। २ वह पापकम जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आती है। ३ सरट, गिरगिट। प्रचलाक (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण चलतीति प्र-चल-आकन्। १ शराघात २ शिखएड। ३ भुजञ्जम । ४ मयूरपुच्छ । प्रचलाकिन् । (सं ॰ पु॰) प्रचलाक-शिखण्डोऽसगास्तीति प्रचलाक-इति। १ मयूर, मोर। २ सपं, सांप। प्रचलायित (सं ० ति ०) प्रचलाय-क । निद्रादि द्वारा घूर्णित ।

प्रचलित (सं॰ ति॰) प्र-चल-क । १ प्रस्थित, दृढ़, स्थिर । २ प्रसिद्ध, मशहूर । ३ जिसका चलन हो, चलता हुआ । (क्ली॰) ४ सदीवण विशेष, हालका निकला हुआ फोड़ा ।

प्रचाय (सं० पु०) प्र-चि-घत्र्। १ हस्त द्वारा द्रव्यादि पकत करना, हाथसे कोई चीज इकट्टा करना । २ राशि, ढेर । ३ वृद्धि, अधिकता । ४ उपचय, सञ्चय ।

प्रचायक (सं ० ति०) १ इकट्ठा करनेवाला, ढेर लगाने-वाला।

प्रचायिका (सं॰ स्त्री॰) पृचि-भावे ण्वुल्, टाप् कापि अत इस्त्रं। १ प्रचयनकत्तीं स्त्री, वैदिक गान करनेवाली स्त्री। २ परीपाटीपूर्वेक पुष्पादि चयन, सिलसिलेसे फूल तोड़ना।

प्रचार (सं० पु०) प्रचरणमिति प्र-चय-भावे धञ्। १ प्रचरण, चलन, रवाज । २ प्रकाश । ३ प्रसिद्धि । ४ ध्यक्त । प्रचरत्यस्मिन् प्र-चर-आधारे घञ्। ५ गवादिका चरणस्थान, मवेशी आदि चरनेका मैदान, चरागाह। ६ अश्वका नेतरोगविशेष, घोड़ोंकी आँखका एक रोग। इसमें आँखोंके आस पासका मांस वढ़ कर दृष्टि रोक लेता है। इतविद्य अश्वचिकित्सकको चाहिये, कि जिस घोड़े को यह रोग हुआ है, उसे जमीन पर सुला कर उस वढ़े हुए माँसको काट डाले। परन्तु काटते समय जिससे चक्का स्थित अक्षिगोलक पर किसी प्रकारकी पीड़ा न पहुंचे, इस पर विशेष ध्यान रहे। पीले मधु या सैन्धवसे दोनों आंख भर है। कुल समयके वाद उसे जलसे घो कर शङ्का शिरावेध और कुछ, वच, चई, तिकटु, लवण और सुराके साथ प्रतिपान देना होता है। इस समय घोड़े को वायुशून्य स्थानमें ले जा कर दूव जिलानी चाहिये। ऐसी अवस्थामें मधुर भोजन वा गुरुभोजन निषद्ध है। (अश्ववैष क) प्रचारक (सं० ति०) प्रचारयशीति प्र-चारि-ण्युल्। प्रकारवारक (सं० ति०)

प्रचारक (सं॰ ति॰) प्रचारयसीति प्र-चारि-ण्युल् । पृका-श्रक, प्रचार करनेघाला, फैलानेवाला ।

पूचारण (सं० ह्यो॰) पू-चारि-स्युट्। १ पृकाशकरण, पुचार करना । २ चलन, रियाज ।

पूचारित (सं ॰ ति॰) पूचार, तारकाहित्वादि तच् वा पू-चारि-क । जिसका चार हुआ है, फैलाया हुआ ।

पूचारिन् (सं • बि •) पू-चर-णिनि । १ पूचारकारी, पूचार करनेवाला । २ गमनशील, जानेवाला ।

पुचाल (सं॰ पु॰) पृकृष्टः चालः । १ वीणाका काष्ट-मय अवयव । २ यूपका करकमेद ।

प्रचालित (सं॰ बि॰) प्र-चालि-क। जिसका प्रचलन किया गवा हो, जो चलाया गया हो।

प्रचिकित (सं ० बि०) विशिष्ट चैतन्ययुक्त ।

प्रचिक्तीषु (सं ० ति ०) प्रकत्तुं मिच्छुः प्र-कृ-सन्, तत-उ। प्रतिकारेच्छु, जो वदछ। स्रेना चाहता हो।

प्रचित (सं ० ति ०) प्र-चि-क । १ कृतचयन, जिसका फल तोड़ लिया गया हो । २ प्रचयस्वरयुक्त । सं ख्यायां कन् । ३ दण्डकभेद । '

प्रचीवल (सं० क्ली०) प्रचेयं वलं यत, पृषोदरादित्वात् साधुः। वीरण, खसकी जड़।

प्रचीर (सं o पु॰) वत्सयी राजाके सुनन्दागर्भजात एक पुतका नाम।

प्रचुर (सं • ति •) प्रचोरतीति प्र-चुर (इग्रायहेति । ग्रा ।१११३५) इति क ; वा प्रगतञ्चुराया इति प्रांदिस । १ अनेक । पर्याय—प्रभूत, प्राज्य, अद्भ्र, वहुल, वहु, पुरुह, पुरु, भूयिष्ठ, स्फिर, भूय, भूरि । (पु॰) २ ज़ौर, चोर ।

प्रचुरता (सं॰ स्त्री॰ । प्रचुरसा भावः प्रचुर-तल्-राप्। प्राचुर्ये, अधिकता, ज्यादती।

प्रचुरपुरुष (सं ॰ पु॰ । ब्रचोरतीति ब्र-चुर-क प्रचुरश्चासी पुरुषश्चेति। १ चौर, चोर। २ वहुनर, अनेक लोग। प्रचेतगढ़—महाराष्ट्रके अन्तर्गत एक दुर्ग। शिवाजीने वड़े चातुरीसे इस दुर्ग पर अधिकार किया था। १८१८ ई॰के जूनमासमें यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया।

प्रचेतस् सं ७ पु०) प्रचेततीति प्र-चित-असुन्। १ वरण।
२ मुनिविशेष। ३ प्रजापितभेद्। ४ एक मुनि और धर्मशास्त्र-प्रणेता। ५ पृथुके प्रपीत और प्राचीनविहें के दश
पुत्र। विष्णुपुराणके मतसे इन्होंने दश इजार वर्ष तक
समुद्रके भीतर घुस कर कठिन तपस्था की थी और
विष्णुसे प्रजास्तृष्टिका वर पाया था। कण्डुकस्या मारिषाके गर्भ और इन्हों के औरससे दक्षका जन्म हुआ था। ६
प्राचीनविहेराजपुत्र। ७ अनुत्रंशीय नृपसेद। ८ प्राचीन
विहेकी सामुद्री भार्या-गर्भजात पुत्रभेद। (ति०) ६ प्रकृष्ट
हृद्य, युद्धिमान्, होशियार, चतुर।

प्रचेप्तसी (सं ० स्त्रो०) प्रचेतयित मूर्चिछतमिति प्र-नित्-णिच् अतस्, गौरादित्यात् ङीप् । १ करफल, कावफछ। २ प्रचेताकी कन्या।

प्रचेता (सं ० पु०) १ चेतम ्देखो।

प्रचेतुन (सं० ति०) प्र-चित-उन् । प्रहृष्ट ज्ञानयुक्त, बुद्धिमान् ।

पचेतृ (सं॰ पु॰) प्रचेतित युद्धादि स्थाने वीरान् सिङ्गिने-तीति प्र-चित-तृच् । सारिथ ।

प्रचेय (सं ० ति०) १ जो चयन करने योग्य हो, जो चुनने या संग्रह करने छायक हो। २ ग्राह्म, जो ग्रहण करने योग्य हो।

प्रचेल (सं ॰ क्की॰) प्रचोतीति प्र-चेल-अच्। १ पीत-काष्ट्र, पीला चन्द्न। २ पीतमुद्र, पीली मूंग।

प्रचेलक (सं० पु०) प्रकर्षण चेलति गच्छतीति प्र-चेल

ण्वुल् । १ अभ्व, घोड़ा । (ति॰)ृ२ प्ररूप्ट गतियुक्त, वहुत अधिक चलनेवाला ।

प्रचेलुक (सं०पु०) १ पाचक । २ मानमेद, एक माप। प्रचोद (सं०पु०) प्र-चुद्-घञ्। प्रेरणा, उत्तेजना।

प्रचोद्क (सं ० ति०) प्रचोद्यित प्ररेयतीति चुद-प्ररेणे पबुल्। प्ररेक, उत्तेजित करनेवाला।

प्रचोदन (सं ० क्ली०) प्र-चुद-ल्युट् । १ प्रेरण, उत्तेजना ।

२ आज्ञा, द्वकुम । ३ नियम, कायदा, कानून । प्रचोदनी (सं० स्त्री०) प्रचोद्यते अपमार्थते रोगोऽनया चुद-णिच्-रुयुट्-स्रीप्। १ कएटकारिका, क्रेरहनी। २

दुरालमा, जवासा।

प्रचोदित (सं० ति०) प्र-चुद्-कः। प्रेरित, जो उत्तेजित किया गया हो।

प्रचोदिन् (सं० प्रि०) प्रेंरणाकारी, उत्तेतित करनेवाला। प्रचोदिना (सं० स्त्रो०) १ लताभेद, एक प्रकारकी बेल। २ कएटकारिका, कटेहरी।

प्रच्छक (सं॰ ति॰) प्रश्न करनेवाला, पूछनेवाला ।

प्रच्छद् (सं० पु०) प्रच्छाद्यतेऽनेनेति प्र-च्छद्-णिच् करणे च (छादेर्थेद्श्युपसर्गस्य । पा ह्।४।६६) इति उपधायां हस्तः । १ आच्छादन बस्तादि, छपेटनेका कपड़ा । २ कम्बल । ३ चोगा ।

प्रच्छद् (सं० क्षी) प्रच्छादयति प्र-छादि-क्षिप् हस्तः। अन्न, अनाजः।

प्रच्छद्पट (सं॰ पु॰) प्रच्छाचतेऽनेन स-चासौ पटश्चेति । आच्छादनपट, आवरणवस्त्र । पर्याय—निचोल, निचुल, निचोली ।

प्रच्छना (सं ० स्त्री०) प्रच्छ-वाह्यस्यत् युच् टाप्। जिज्ञासा, पूछना।

प्रच्छन्न (सं॰ ह्रो॰) प्र-छद्-क। १ अन्तर्हार, गुप्तहार। (ति॰) २ आच्छादित, ढका हुआ। ३ गोपित, छिपा हुआ।

प्रच्छद्द न (सं ॰ हो ॰) प्र-च्छद्-भावे त्युट् । १ वमन, कै । २ सांसकी वायुको नाकके रास्ते वाहर निकालना ।

प्रच्छिति (सं ० स्त्री०) प्र-च्छित् -चमने (रोगाख्यायां गुनुख् बहुखम् । पा ३।३।१०८) इति ण्नुस् स्त्रियां द्वापि सत इत्यं। १ वमी, उस्दी, ने । २ वमनका रोग। (ति०) ३ वमन-कारक, जिससे वमन हो।

प्रच्छादन (सं ० क्ली०) प्रच्छाद्यतेऽनेनेति प्र-च्छदु-णिच् ल्युट्।१ उत्तरीय वस्त्र, ओढ़नेका वस्त्र, चादर। पर्याय— प्रावरण, सं व्यान, उत्तरीयक। २ नेतच्छद, आंखकी परुक। भावे ल्युट्।३ गोपन, छिपानेका भाव।

प्रच्छादित (सं ० ति ०) प्र-च्छद्-णिच्-कः। आच्छादित, दका हुआ।

प्रच्छान (सं क क्ली॰) प्र-च्छो भावे ल्युट्। १ प्रकृप्रच्छेदन, अच्छी तरह काटना। २ सुश्रुतोक्त शस्त्रविस्रवाणभेद, सुश्रुतके अनुसार धाव चीरनेका एक प्रकार।

प्रच्छाय (सं ० क्ली०) प्रकृष्टा छाया (यत) प्रकृष्ट छाना । उत्तम छाया, अच्छी छांह ।

प्रच्छिर् (सं • ति ॰) प्र-छिद्-किप् । प्रच्छेद्कर्सा, छेद्ने या काटनेवाला ।

प्रच्छिल (सं॰ ति॰) प्रच्छ-बाहुलकात् इलच् । निर्जन, जनग्रन्य ।

प्रच्छेद (सं॰ ह्यो॰) प्र-छिद-धञ्। प्रकृष्ट छेद, अच्छी तरह काटना।

प्रच्छेदन (सं ० क्लो०) खण्ड करना, छेवने या कादनेकी किया।

प्रच्छेद्य (सं.० ति०) छेदनयोग्य, काटने लायक।

प्रच्यव (सं० पु०) प्र-च्यु-अच्। प्रक्षरण, आपसे आप बहुना, भरना।

प्रचयवन (सं० क्ली०) प्र-च्यु-ल्युट् । क्षरण, भरना, वहना । प्रच्यावन (सं० क्ली०) गतिपरिवर्त्तन, किसी आरब्धकर्म-से छौटा कर अन्य कर्ममें प्रवर्त्त करना, क्षरण, भरना, बहना ।

प्रच्याचुक (सं० क्लो•) क्षणस्थायी, थोड़ी देर तक उहरने-वाला।

अच्युत (सं० ति०) गिरा हुआ, अपने स्थानसे हटा हुआ। अच्युति (सं० ति०) प्र-च्यु-किन्। क्षरण, अपने स्थानसे गिरने या हटनेका भाव।

प्रज (सं० पु०) प्रविश्य जायायां जायते प्र-जनं-ह। पति, स्वामी। पति जायाके गभेमें प्रवेश कर वार वार नया जन्म केता है, इसीसे प्रज शब्दसे पतिका वीध होता है। प्रजिम (सं० ति०) प्र-गम-ज्ञाने कि, द्वित्वं उपधालीपः। प्रजाशील। प्रजङ्घ (सं० ति०) प्रकृष्टा जङ्घा यस्य। राक्षसभेद, रावण-को सेनाका एक मुख्य राक्षस जिसे अंगदने मारा था। प्रजन (सं० पु०) प्रजायतेऽनेनेति प्र-जन-करणे घञ् (जित्वच्योश्व।पा ७१३१३५) इति न चृद्धिः। १ गर्भधारण करनेके लिये पशुओंका मैथन, जोड़ा खाना। २ पशुओंके गभधारण करनेका समयं। ३ पुरुषेन्द्रिय, लिङ्ग।प्र जन-भावे घञ्। ४ पुत्तोत्पादन, सन्तान उत्पन्न करनेका काम। (ति०) ५ जनयिता, जन्म देनेवाला।

प्रजनन (सं० क्की० प्रजायतेऽनेनेति प्र-जन-ल्युट् । १ योनि । प्र-जन-भावे ल्युट् । २ जन्म । २ धालोकर्म, दाई-का काम । ४ प्रगम, सन्तान उत्पन्न करनेका काम । (ति•) ५ प्रजोत्पाक्क, जन्म देनेवाला ।

प्रजनिका (सं ॰ स्त्री॰) प्रजनयतीति प्र-जन-णिच् ण्वुल्, दापि भतदस्य । माता।

प्रजनियतु (सं ॰ पु॰) सर्वसृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा ।

ध्जनिष्णु (स'० व्रि०) प्र-जनि-इष्णुच् । जनन, जन्म देनेवाला ।

प्रजनुक (स°० पु०) प्रं-जन-वाहुलकात् उक । प्रजनशील, वह जो सन्तान उत्पन्न करता हो ।

प्रजन् (स'० स्त्री०) प्र-जन-वाहु० ऊ। य्रजनन, सन्तान उत्पन्न करनेका काम।

प्रजय (सं॰ पु॰) प्र-जि-भच्। प्रकृष्टजय, उत्तम जीत।
प्रजल्प (सं॰ पु॰) प्र-जल्प-भावे घञ्। १ वाष्यविशेष,
व्यर्थकी इधर उधरकी वात, गप। २ वह वात जो अपने
प्रियको प्रसम्न करनेके लिये की जाय।

प्रजल्पन (सं ० क्लो०) कथोपकथन, वातचीत ।

प्रजिटिपत (सं ० ति ०) १ कथित, कहा हुआ। २ व्यक्त, प्रकट। ३ वाक्यारम्मी, जिसने कहना आरम्भ कर दिया हो।

प्रजल्पिता (सं ० स्त्री०) १ वह बात जो कही जा चुकी हो। २ जल्पनाकारिणी, गप लझानेवाली औरत।

प्रजव (सं॰ पु॰) प्रजवनमिति प्र-जु-भावे-अप्। प्रकृष्ट-वेग, तेज्ञ बाल ।

प्रजिवन् (सं ० ति०) प्रजवतीति प्र-खु (प्रजीतिनिः। गः भारा१५६) इति इति । प्रकृष्टवेगयुक्त, बहुतं अधिक चलनेषाला । प्रजहित (सं • पु •) १ पुराण । २ गाहंपत्य अगि ।
प्रजा (सं • स्त्री •) प्रजायते इति प्र-जन उपनं न संहायां ।
प ३।२ ६६) इति उ स्त्रियां टाप् । १ सन्तान, सन्नित ।
पिता और माताके दोषानुसार विभिन्न प्रकारकी प्रजा
उत्पन्न होती है । २ वह जनसमूह जो किसी एक राजाके
अधीन या एक राज्यके राजाके अधीन या एक राज्यके
अन्तर्गत रहता हो । ३ उत्पत्ति, जनन । ४ राज्यके
निवासी, रिआया, रैयत । ५ मारतीय गांधोंमें छोटी
जातियोंके वे छोग जो विना वैतन पाये ही काम करते
हैं । ऐसे छोगोंको कभी किसी उत्सव पर अथवा व्याह
शादी आदिमें कुछ पुरस्कार दे दिया जाता है । नाऊ,
कुम्हार आदि पौनीकी गिनती प्रजामें की गई है ।

प्रजाकर (सं ॰ पु॰) वह तलवार जिससे प्रजाकी वृद्धि होती है। विकल्पमें तलवारका ही बोध होता है, क्योंकि मुजवलसे ही (तलवार द्वारा) प्रजावृद्धि और देशजय होनेकी सम्भावना है।

प्रजाकाम (सं ॰ त्नि ॰) पुताभिलाषी, पुत्नकी इच्छा रखने-बाला ।

प्रजाकार (सं ॰ पु॰) सृष्टिकर्त्ता, प्रजापित, ब्रह्मा।
प्रजागर (सं ॰ पु॰) प्र-जाग्र (ऋदोर ्। वाक्षाक्षपण) इति
भावे अव्। १ प्रकृष्टक्षपसे जागरण, जगना, नींद न आना।
२ विष्णु । ३ प्राण । ४ नींद न आनेका रोग। (बि॰)
५ पालक, रक्षाकर्त्ता, वचानेवाला।

प्रजागरण (सं ० क्ली०) अत्यन्त जागरण, विलक्षल मींद न आना।

प्रजागरा (सं॰ स्त्री॰) एक अप्सराका नाम। प्रजाझ (सं॰ बि॰) प्रजां हन्तीति। प्रजानाशकारी, प्रजाका नाश करनेवाला।

प्रजाचन्द्र (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। प्रजात (सं० ति०) प्र-जन-कः। १ प्रकृष्टकपसे झात। (पु०) २ अभ्वभेद, एक प्रकारका घोड़ा।

प्रजातन्तु (सं ॰ पु॰) प्रजायाः प्रजनस्य सन्तुरिष । १ सन्तान, श्रीलाद । २ वंश, कुल ।

प्रजाता (सं ० स्त्री०) प्रजातं प्रजननं सुतादीनामुस्पत्ति रित्यर्थः, तदस्या अस्तीति अच्, ततप्राप् । प्रस्ता स्त्री, जिसको बालक उत्पन्न हुसा हो। प्रजाति (सं ० स्त्री०) प्र-जन-किन् । १ प्रजा । २ प्रज-नन । ३ पौतोटपत्ति । ४ राजपुत्तमेद । इनका दूसरा नाम प्रजानि है ।

प्रजातिमन् (सं ० ति०) प्रजाति सम्यन्यीय ।

प्रजावित देखो ।

प्रजाद (सं ॰ स्त्री॰) प्रजां ददातीति । गर्भदा नामकी ओषित्र जिससे वांकपन दूर होता है ।

प्रजादा (सं० स्त्री०) प्रजां गर्भदोषनिवारणेन सन्तितं द्दातीति दा-क राप्। १ गर्भदाती क्षुप, गर्भ देनेवाली भोषधि-स्रता। (ति०) २ प्रजादाता, सन्तान देनेवाली। प्रजादान (सं० ह्वी०) प्रजायाः दानं। १ प्रजाका दान। २ प्रजाका आदान, प्रहण। प्रजातः जन्मतः दानं शुद्धि-रह्य। ३ रजत, चाँदी।

प्रजाद्वार (सं ० ह्ही०) १ प्रजा या सन्तान उत्पन्न करने-का साधन या उपाय। २ सूर्यका नामान्तर।

प्रजाधर्म (सं ॰ पु॰) प्रजा या पुतका कर्त्तव्य कर्म ।

प्रजाध्यक्ष (सं० पु०) प्रजायाः अध्यक्षः । १ प्रजापति । २ दक्ष ३ कर्दम । ४ सूर्यः ।

प्रजानन्ती (सं ॰ स्त्री॰) प्रजानातीति प्र-शा-शतृ-ङीप्। पण्डिता, विदुषी।

प्रजानाथ (सं॰ पु॰) प्रजायाः नाथः । १ लोकनाथ, नृष, राजा । २ ब्रह्मा । ३ मनु । ४ दक्ष ।

प्रजानिषेक (सं० पु०) १ गर्भधारण । २ गर्भस्थनूण, पुत ।

प्रजान्तक (सं ॰ पु॰) प्रजायाः अन्तकः। काल, यम।
प्रजाप (सं ॰ पु॰ । प्रजाः पातीति-पा रक्षणे क। राजा।
प्रजापति (सं ॰ पु॰) प्रजानां पतिः। १ त्रह्मा। ब्रह्मापुत
प्रजापतिसे विराट उत्पन्न हुए हैं। वि ।ट देखो।

बेदों और उपनिषदोंसे छे कर पुराणों तकमें प्रजापति-के सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी कथाएँ प्रचलित हैं। तैति-राय ब्राह्मणमें लिखा है, कि ब्रह्माके पुत्र प्रजापति प्रजा-सृष्टि करनेके वाद मायाके वशमें हो कर भिन्न भिन्न शरीरोंमें वंध गये थे। उन्हें इस अवरोधसे मुक्त करनेके लिये देवताओंने एक अध्वमेध-यन्न किया। इस पर शरीर पिञ्जरसे मुक्त हो कर उन्होंने देवताओंको ऐध्वर्यलाभका बर दिया था। ऐतरेय-ब्राह्मणमें लिखा है, कि प्रजापतिने Vol. XIV, 121 मृत्यक्ष्यमें रोहितक्ष्यधारिणी अपनी कन्या उवाके साथ सम्मोग किया था जिससे मृगनक्षतको उत्पत्ति हुई थी और वे स्वयं तथा उवा दोनों मिल कर रोहिणी नामक नश्चतके क्यमें परिवर्त्तित हो गये थे। सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि देवराज इन्द्रने प्रजा-पतिसे सूदम आत्मज्ञान तथा वैरोचनने स्थूल आत्मज्ञान प्राप्त किया था। पुराणोंमें ब्रह्माके पुत अनेक प्रजापतियों-का उल्लेख है।

आहिकतत्त्वमें दश प्रजापतिका उल्लेख है, यथा— मरीचि, अति, अङ्गिटा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, प्रचेता विशिष्ठ, भृगु और नारद।

महामारतमें मोक्षधमैंमें इक्कीस प्रजापतियोंका उल्लेख देखनेमें आता है, यथा—ब्रह्मा, स्थाणु, मन्जु, दक्ष, ख्यु, धमै, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अलि, पुलस्त्य, पुलह, कृतु, विशष्ठ, परमेष्ठी, विवस्तत्, सोम, कर्दम, क्रोध, अर्वाक् और क्रीत । पुरुषमेधयश्चमें प्रजापतिके आगे पुरुषकी बली दी जाती है। पुरुषमें देखों।

पुराणादिमें इन सवके अलावा और भी प्रजापतिका उल्लेख है। यथा—शंयु। "म्यु: प्रजापति: गं' (श्रुति)

युक्तप्रदेशके कुम्हार अपने अपने चाकका प्रजापति रूपमें पूजन करते हैं।

२ दक्षादि। ३ महीपाल, राजा। ४ इन्द्र। ५ जामाता, दमाद । ६ दिवाकर, सूर्य । ७ वहि, आग । ८ त्वधा, विश्वकर्मा। ६ पिता। १० यह। ११ मनु। मालिक या बड़ा, वह जो परिवारका पालन-पोपण करता हो। १३ एक तारा। १४ साट स'वत्सरोंमेंसे पांचवां संवत्सर । १५ आउ प्रकारके विवाहींमेंसे एक प्रकारका विवाह। प्रजापित देखी। १६ खनामस्यात कीटमेद, (Butter-fly) । इसका शरीर पतंगके जैसा तीन भागोंमें विभक्त है—मुखमएडल, वक्ष और उदर तथा गुहादेश। शरीरके दोनों वगलमें दो रहते हैं । पंखका अगला और पिछला कुछ छोटा होता है तथा वह कांचकी तरह सफेद मालूम पड़ता है। इस जातिका कीड़ा रात दिन मधु-सञ्चयमें लगा रहता है। ये निरीह सभावके होते और वृक्षपत्नादि गलित काष्ठ तथा जीवलोमपशमादि

खा कर अपना गुजारा चलाते हैं। टिड्डोको तरह ये शस्य ृं प्रजायिनी (सं ० स्त्री०) माता। वृक्षादिके क्षयकारक नहीं है।

पतक शन्दमें तिशेष विवरण देखी।

वैग्रानिकोंने इस जातिके पतङ्गका Lepidoptera नाम रखा है। इसके मध्य फिर तीन श्रेणी-विभाग किये। गये हैं, L. Diurna, Nocturna और L. Crepuscularia। जो प्रजापति दिवाकालमें विहार करते थे वे Diurna, जो सूर्यास्तकालमें बिहार करते, वे Nocturna और जो सबेरे, हो पहर तथा सन्ध्याकालमें विचरण करते वे Crepuscularia नामसे निर्दिष्ट हुए हैं। भारुतिके अनुसार इनकी भी पदसंख्याकी हास वृद्धि देखी जाती है। छोटे प्रजापतिके १० और वड़े के १६ पैर होते हैं। इनमेंसे ६ मुखमें, ८ उदरमें और २ गुहादेशमें भवस्थित हैं। भारतवर्षके हिमालय प्रदेशमें तथा दार्जिलिङ्ग नामक स्थानमें नाना वर्णीमें चित्रित विभिन्न जातीय प्रजापति देखे जाते हैं। उनका गातवर्ण ऐसा मनोहर होता, कि देखनेसे ही उन्हें पकडनेकी इच्छा होती है। विद्यानविदोंके यत्नसे सैकडों विभिन्न प्रकारके प्रजापति संगृहीत हो कलकत्तेके 'पशिवादिक म्युजियम' नामक जादूघरमें रखे गये हैं।

प्रजापित-हिंगुलवासी एक हिन्दूसाधु। उन्होंने ब्रह्ममें साकारत्वकी कत्रमा करके शिष्यमण्डळीकी शिक्षा दी। उनके मतसे परमात्मामें मानवात्माको छोनता ही देहका मोक्ष है।

प्रजापतिगृहीत (सं० ति०) घातृस्रष्ट, विधातासे स्रष्ट । प्रजापतिदास-गन्थसंत्रह, पञ्चलरा, पञ्चलरनिर्णय और मेघमाला नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता। प्रजापतिपति (सं ॰ पु॰) दक्षप्रजापति । प्रजापतियञ्च (सं ० पु०) प्रजापतेर्यञ्चः दक्ष्यञ्च । प्रजापतिलोक (सं० पु०) ब्रह्मलीक। प्रजापतिहृदय (सं क्ली॰) सामभेद। प्रजापती (सं ० स्त्री०) शाक्यवुद्धकी पालयिती गोतमी, गौतमयुद्धको पाछनेवाछी गोतमीका नाम ।

प्रजापाल (सं ॰ पु॰) प्रजां पालयतीति पाल-अण् । प्रजा-पालक, प्रजाका पालन करनेवाला।

प्रजापाट्य (सं॰ क्ली॰) प्रजापालनयोग्य ।

प्रजावत्- (सं० ति०) राजाऽस्त्यस्य मतुष् मस्य व । १ सन्तानयुक्त, जिसके सन्तानसन्तति हो। (पु॰)२ पुक्रतियुक्त नृप, योग्य राजा।

प्रजावती (सं । स्त्री । १ भ्रातृजाया, माई-की स्त्री। २ वड़े भाईकी स्त्री, भाभी, भौजाई। ३ पिय-त्रतपत्नी, प्रियत्रत राजाकी स्त्रीका नाम। ४ सन्तान-विशिष्टा, बहुत-से छड़कोंकी माता। ५ गर्भवती स्त्री। प्रजाविद् (सं० ति०) प्रजां त्रिन्द्तीति किप् । प्रजालाभ-

प्रजासनि (सं॰ पु॰) प्रजां सनोति ददाति सम-इत्। प्रजोत्पाद्क ।

प्रजास्ज (सं॰ पु॰) स्ष्टिकर्ता, ब्रह्मा । प्रजाहित (सं० स्त्री०) प्रजाये हितम्। १ ज्ञल, पानी। (ति॰) २ प्रजोपकार, प्रजाकी भलाई।

प्रजित् (सं ० ति ०) विजेता, विजय करनेवाला । प्रजिन (सं• पु॰) प्रकर्षेण जयतीति प्र-जि-बाहुलकात् नक् । वायु, हवा ।

प्रजिहीर्षु (सं ० ति ०) प्रहर्त्तु मिच्छुः । प्र-इ-सन्-उ। प्रहा-रेच्छु, जो आघात करना चाहती।

प्रजीवन (सं॰ क्ली॰) जीविका, रोजी।

प्रज्ञप् (सं ० ति०) प्र-ज्ञुप-क । प्रसक्त, लगा हुआ।

प्रजेश (सं॰ पु॰) प्रजानामीशः । प्रजापति ।

प्रजेश्वर (सं॰ पु॰) प्रजानामीश्वरः । राजा ।

प्रजुफटिका (सं॰ स्त्री॰) प्राफ़त छन्दोमेद । इसके प्रत्येक चरणमें १६ मालाएं होती है। इसे पदरी, पद्धिका, प्रज्वलय और प्रज्वलिया भी कहते हैं।

शङ्ग (सं · ति ·) प्रकर्षेण जानातीति प्र-श्रा । (भावश्वीप-संगे। या २१११६२) इति क। विद्वान, जानकार। प्रज्ञता (सं॰ स्त्री॰) प्रज्ञस्य भावः, तल्-दाप्। पारिडत्य,

विद्वता । प्रज्ञप्ति (सं॰ स्त्री॰) प्र-ज्ञा-णिच्-िक्तन् । १ सङ्केत, स्त्रापा । २ ज्ञान, अक्रु। ३ ज्ञापन, जतानेका भाष। ४ स्चना, खवर । ५ जिनविद्यादेवीविशीप।

प्रबक्तिवादिन् (सं० ति०) ज्ञानवादी।

प्रज्ञसी (सं स्त्रो॰) प्रसप्ति वाहु छोष्। जिनविद्यादेवी-विशेष । जैनोंकी एक विद्यादेवी ।

प्रज्ञा (सं॰ स्त्री॰) प्र-ज्ञा-क, टाप् । १ वुद्धि, ज्ञान । इसके ग्यारह बैदिक पर्याय हैं, यथा—केतु, केत, चेतस्, चित्त, ऋतु, असु, घी, शची, माया, वयुन, अभिष्या । २ एका-व्रता। ३ प्राज्ञी, प्रकर्षेण जानाति या। ४ सरस्वती। प्रज्ञा—वीद्रशास्त्रमें 'प्रज्ञा' का अर्थ ज्ञान वा वुद्धि वतलाया है। गुणकारएडव्यूहमें लिखा है, कि जव जगत्में कुछ भी न था, तव स्वयम्भू भादि बुद्ध रूपमें आविर्भूत हुए। उन्हीं एक बुद्धने चार हाथोंकी कल्पना करके अपनी इच्छासे प्रशाकी सृष्टि की। बुद्ध और प्रशाने एक साथ मिल कर 'प्रज्ञा उपाय' नामघारण किया । अष्टासाह-स्निका प्रश्नापारमित प्रन्थमें लिखा है, कि एकमात बुद्ध ही जगत्के गुरु और प्रज्ञा गुणींके आचार हैं। कमशः पौरालिक प्रवाहमें पड कर 'प्रकृति' खरूपा प्रज्ञादेवी देवता-रूपमें आदृत हुई थी। पूजाखण्डमें वे जगन्माता, निरूप, प्रज्ञारूप, प्रज्ञापारमिता और प्रकृति इन सव नामों से पूजित हुई हैं। प्रहादेवी ही जगत्प्रकृतिकी अनुस्पा (Diva Natura) और धर्म मानी गई हैं ! बौद्ध धर्मपुराणमें गौहाटीके कामेश्वरी-मन्दिरके योनिपीड विकोणाकार यन्त्रको जगन्माता बतलाया है। आदि प्रज्ञा वा धर्म हो प्रज्ञादेवी हैं। जब सभी श्रन्यमय था, तब पक्तमात प्रशादेवी ही आकाशसे मूर्त्तिमें प्रकाशित हुई थीं । योनिपीटस्थ तिकोणाकार यन्त्रके बिन्दुसे वे अपनी इच्छासे आदि प्रज्ञारूपमें और उक्त विकोणके पार्श्वदराडसे बुद्ध, धर्म और सङ्घ उत्पन्न हुए।

प्रज्ञाकर—एक मैथिलपिएडत। ये विद्याकरके पुत्र और मिश्र आनम्दकर खामीके पौत थे। इन्होंने सुवोधिनी नामक नलोदयरीकाकी रचना की।

प्रज्ञाकाय (सं• पु•) प्रज्ञा काय इच अस्य। बौद्धाचार्य मञ्जुघोष।

प्रज्ञाकूट (सं॰ पु॰) बोधिसस्वमेद ।

प्रज्ञाचक्षस् (सं॰ पु॰) प्रज्ञा एव चक्षुर्यस्य । १ धृतराष्ट्र । (ति॰) २ प्रज्ञाचक्षुःयुक्त, जिसके प्रज्ञारूप चक्ष हो । ३ अंधा ।

प्रश्वाचन्द्र—पक वौद्धपुरोहित । चीनपरिवृाजक इत्सिं जब नालन्दासे तीन योजन पश्चिम तिलाढ्क सङ्घाराममें पहुंचे, उस समय ये वहांके आचार्य थे। प्रज्ञाह्य (सं॰ पु॰) प्रज्ञाया भाह्य युक्तः । प्रज्ञासम्पन्नः बुद्धियुक्त ।

प्रज्ञातर—मध्यभारतवासी एक बौद्धाचार्य । दाक्षिणात्य जा कर इन्होंने वहांके २य राजपुत्र वोधियर्मको (१) धर्मो-पदेश दिया था । ४५७ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी ।

प्रज्ञातृ (सं । ति ।) प्र-ज्ञा-तृण् । सर्वाभिज्ञ ।
प्रज्ञादि (सं । पु ।) स्वार्थे अण् प्रत्ययनिमित्त शब्दगणभेद । १ प्रज्ञ आदि करके शब्दगण । गण यथा—प्रज्ञ,
विण्ञज्, उश्जिज्, उश्जिज्, प्रत्यक्ष, विद्वस्, विदिन्, पोड़न्,
विद्या, मनस्, श्रोत, शरीर, जुद्धत्, कृष्णमृग, चिकीर्षत्।
चोर, शतु, योध, चक्षुस्, वसु, एसन्, मरुत, कुञ्ज,
सत्वत्, दशाहै, वयस्, व्याकृत, असुर, रक्षस्, पिशाच,
अशनि, कर्णापण, देवता और वन्धु । २ अस्त्यर्थमें
ण-प्रत्यय निमित्त शब्दगणभेदं । गण यथा—प्रज्ञा
और श्रद्धा ।

प्रज्ञादित्य (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजा। काश्मीर देखों। प्रज्ञान (सं॰ क्षी॰) प्रज्ञायते ऽनेनेति प्रज्ञा-ल्युट्। १ वुद्धि, ज्ञान। २ चिह्न, निशान। ३ चैतन्य, होश। ४ पिएडत, विद्वान्।

प्रज्ञानन्द—एक वौद्ध-पिएडत । प्रज्ञास्त्रक्षपके शिष्य । इन्होंनें तत्त्वप्रकाशिका नामक तत्त्वालोकटीका और त्रिपुटी-प्रकरणटीका नामक और भी एक ग्रन्थ रचे हैं ।

प्रज्ञानाश्रम—स्वात्मनिरूपणप्रकरण नामक प्रन्थकी टीकाके रचयिता ।

प्रज्ञापारमिता (सं ० स्त्री ०) बौद्ध-प्रन्थोंके अनुसार दश पार्रामताओंमेंसे एक जिसे गौतम-बुद्धने अपने मर्कट जन्ममें प्राप्त किया था।

प्रज्ञाप्त (सं॰ ति॰) १ सज्जित, सजाया हुआ। २ आदिष्ट, हुकुम दिया हुआ।

प्रशासद्र—एक वौद्धाचार्य । चीनपरिव्राजक यूपनचुवङ्ग जब तिलाढक सङ्घाराममें आये, उस समय ये वहां पुरो-हिताई करते थे । यूपनचुवङ्गने ६३७ ई०में उनसे धर्म-संक्रान्त कितने भ्रम मिटा लिये थे ।

⁽१) ये बोधिवर्म ५२६ ई०में धर्मप्रचार करनेके छिये चीन देशा गये थे।

पृज्ञामय (सं० ति०) प्रशा-खरूपे मयट्। प्रशासद्भप, वुद्धिमान्।

प्रज्ञाल (सं० ति०) प्रज्ञास्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच्। चुद्धियुक्त, पण्डित।

प्रज्ञायत् (सं॰ ति॰) प्रज्ञा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। प्रज्ञायुक्त, बुद्धिमान्।

पूज्ञावमेन — एक वौद्ध-धर्मशास्त्रवेता । ये चीनराज्यके अन्तर्गत कोरियाविभागके सिको नामक स्थानमें रहते थे। इनका चैनिक नाम हिइ-छुन् था। भारत पर धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे इन्होंने खराज्य छोड़ दिया और अपना समय वौद्ध-संन्यासियोंके साथ वितानेका सङ्कट्य किया। राहमें ये गुयन-चौरके साथ मिल गये। १० वर्ष तक ये अमरायत सङ्घाराममें ठहरे थे। पीछे गन्धारसन्द-मन्दिरमें आ कर इन्होंने संस्कृत अध्ययनमें अपना शेप जीवन विताया।

प्जासहाय (सं॰ पु॰) ज्ञानी, बुद्धिमान्।

प्रजिन् (सं वि वे) प्रज्ञास्त्यस्येति इनि । पण्डित ।

प्रज्ञित (सं॰ ति॰) प्रज्ञा-अस्त्यर्थे पिच्छादित्वात् इलच् । परिडत, बुद्धिमान् ।

प्रज्ञु (सं॰ पु॰) प्रगते जानुना यस्य जानुनो इः । प्रगत-जानुक, खञ्जपाद ।

प्रज्वलन (सं॰ क्ली॰) प्र-जल-ल्युर् । प्रकृष्टज्वलन, अच्छी तरह जलनेकी क्रिया ।

पूज्वलित (सं॰ ति॰) प्र-जल-क । १ प्रकृएज्वलनयुक्त, दह-कता हुआ, घधकता हुआ। २ अति खच्छ, वहुत साफ।

प्रज्वित्या (हि॰ पु॰) छन्दोविशेष, एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें १६ मालाएं होती हैं।

प्रज्वार (सं॰ पु॰) १ ज्वरका प्रदाह, बुखारकी गर्मी । २ एक गन्धर्वका नाम ।

प्रज्वालन (हिं० क्रि॰) जलाना, दहकाना ।

प्रडीन (सं० पु॰ प्र-डी-नभ गतौ का। पक्षियोंकी गति-विशेष ।

पुण (सं० ति०) प्राचीन, पुराना।

पूण (हिं पु॰) किसी कामको करनेके लिये किया हुआ अटल निश्चय, प्रतिका। पूणरखं (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः नरखः पूर्वपदात् णत्वं । नवात्र, नाखूनका अगळा भाग ।

पूणत (सं० ति०) प्रनम-क । १ प्रणतिविशिष्ट, प्रणाम करता हुआ । २ वक्र, वहुत मुका हुआ । (पु०) ३ प्रणाम करनेवाळा । ४ दास, सेवक । ५ भक्त, उपासक ।

पूणतपाल (सं॰ पु॰) दीनों, दासों या मक्तजनोंका पालन करनेवाला, दीनरक्षक ।

पूर्णात (सं• स्त्री॰) प्रकृष्टं नमनं प्र-नम-सावे-किन् । १ प्रणाम, प्रणिपात, दण्डवत । २ नम्रता । ३ विनती ।

पूणद्दन (सं॰ पु॰) प्र-नद्द-भावे ल्युट् णत्वं । प्रणद्, बहुत जोरसे होनेवाला शन्द ।

पुणम (हि॰ पु॰) वणम देखी।

पूणमन (सं• पु•) १ भुकना। २ दण्डवत या नमस्कार करना, प्रणाम करना।

पूणस्य (सं० ति०) प्रणस्य, प्रणाम करने योग्य, वन्द्नीय। पूण्य (सं० पु०) प्रणयनं प्रणो (एःच्। पा शश्यः) इति अच्। १ प्रतियुक्त प्रार्थना। २ पूमा ३ विश्वास, भरोसा। ४ निर्वाण, मोक्षा ५ श्रद्धा। ६ प्रसव, स्रोका सन्तान उत्पन्न करना। ७ प्रार्थना।

पुणयन (सं० क्की०) प्र-णी-भावे-ल्युट् णत्वं। १ रचना, वनाना, करना । २ होम आदिके समय अग्निका एक संस्कार।

पूणयनीय (सं ० ति ०) प्र-नी-कर्मणि-अनीयर्। १ प्रकर्ष-रूपसे नेतव्य। २ संस्कार्य वहिमेद्। ३ अग्नि-संस्कार-सम्बन्धी, इध्मकाम्रादि।

पूज्यवत् (सं ० ति०) प्रजय-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । प्रजययुक्त ।

पूणयचिहति , सं • स्त्रो॰) प्रणयस्य विहतिः। असीकाद नामंजूर ।

पूर्णयिता (सं • स्त्री•) प्रणयिनो भावः तस्-टाप् । प्रणयी-्का भाव या धर्मे ।

प्रणियन् (सं ० पु०) प्रणयोऽस्यास्तीति प्रणय-इनि । १ स्वामी, पति, पूरेम करनेवाला । (ति०) २ प्रणययुक्त । पूर्णायनी (सं ० स्त्री०) १ पूरेमिका, नह जिसके साथ पूरेम

किया जाय। २ स्त्री, पत्नी।

प्रणयी (सं॰ पु॰) प्रणयिन, देखें।

पुणव (सं ० पु०) प्रकर्षेण न्यते स्त्यते आत्मा खे एदेवता चानेनेतित्र नु (ऋदोरण् । पा ३,३।५०) इति अप ततो णत्वं, अथवा ब्रह्मविष्णुमहेशक्ष्यत्वात् प्रणम्यते इति प्र नम् कर्मणि-धन्न् सं शापूर्वकत्वात् वृदुध्य भावः, षृपोद्रादि-त्वात् मस्य वाप १ ओङ्कार । वेद्याङके पहले ओङ्कारका उचारण होता है।

> "बोङ्कारप्रणवस्तारो वेदादिवैर्त्तृछो ध्रुवः। वैगुण्यं विगुणो ब्रह्म सत्यो मन्त्रादिरव्ययः। ब्रह्मवीजं वितस्त्रञ्च पञ्चरिमस्त्रिदैवतः॥" (वीजवर्णाभिधानतन्त्र)

अ, उ और म, इन तीन अक्षरोंकी सन्धि हो कर भोङ्कार शब्द निष्पन्न हुआ है। इनमेंसे अ-कार शब्दसे विष्णु, उ-कारसे महेश्वर और म-कारसे ब्रह्माका वोध होता है अर्थात् भोङ्कार वा प्रणव कहनेसे ये तीनों ही समक्षे जाते हैं।

"अकारो विष्णुरुद्वष्टि उकारस्तु महेश्वरः।

मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेण स्रयो मताः।"

(महानिर्वाणतन्त्र)

मनुमें लिखा है, कि ब्राह्मणको वेदपाउके पहले और पीछे प्रणवका उचारण करना चाहिये।

"ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वपरस्ताच विशीर्यते॥" (मनु २।७४)

पातञ्जलद्रशैनमें प्रणवको ईश्वर-बाचक वतलाया है। प्रणव जपादि द्वारा ईश्वरकी उपासना होती है। प्रणव वेदका आदि वा प्रथम है।

"आसीन्महोक्षितामाद्यः प्रणवन्द्च्छसामिव।" (रघुवं १० स०)

भोङ्कार या प्रणव यह प्राङ्गलिक है। किसी भी कार्यके पहले इसका उचारण करनेसे मङ्गल होता है। ओङ्कार और अथ ये दो ग्रन्थ ब्रह्माका कएड छेद कर वाहर निकले थे, इसीसे ये दीनों शब्द मङ्गलजनक हैं।

"ओङ्कारएवाथ शब्दश्व द्वावेतौ ब्रह्मणा पुरा। "कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गळिकावुमौ॥" (सांख्यवचनमाण्य)

तिथितत्त्वमें रघुनन्दनने लिखा है, कि पाठ वा Vol. XIV, 122 यद्यादिकालमें यदि कुछ न्पृन, अतिरिक्त, छिऱ्युक ना अयिषय हो, तो ओङ्कार उद्यारण करनेसे वे सव अछिट्र वा अविकल हो जाते हैं अर्थात् इससे सदोप भी निर्दोष हो जाता है।

मृत्युकालमें यदि कोई विष्णुका स्मरण कर 'ओं' इस अक्षरका उच्चारण करते हुए देह त्थाग करे, तो वह परम-गतिको प्राप्त होता है।

"भोँ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥" ं (गीता ८,१४)

विशेष विवरण औं कार शब्दमें देखी |

२ सामावयवभेद । ३ परमेश्वर । प्रणवना (हिं० किं०) प्रणाम या नमस्कार करना, श्रद्धा और नम्रतापूर्वक किसीके सामने भुकना ।

प्रणस (सं० ति०) प्रगता नासिका यस्य, नासिका शब्दस्य नसादेशः, अञ्समासान्तः णत्त्रञ्च । विगतनासिका, जिसको नाक कट गई हो, नकटा ।

प्रणाड़ी (सं॰ क्यो॰) प्रणाली-लस्य-ड । १ प्रणाले देखो । २ द्वारमात ।

प्रणाद (सं० पु०) प्रणदनिमिति प्र-णद-धञ् । १ अनुरागज शब्द, आनन्दध्विन । २ उच्चशब्द, बहुत जोरसे होनेवाली आवाज । ३ कर्णरोगभेद, कानका एक रोग इसमें कानोंमें तरह तरहकी गूँज सुनाई देती हैं । ४ चक्रवर्तीमेद ।

प्रणाम (सं॰ पु॰) प्र-णम-भावे घञ्। प्रणति, प्रणिपात, दण्डवत्। प्रणाम चार प्रकारका होता है, अभिवादन, अष्टाङ्ग, पञ्चाङ्ग और करशिरःसंयोग।

"यदुभ्यां कराभ्यां जानुध्यामुरसा शिरसा दृशा। वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥" (कालिकायु०)

दोनों हाथ, दोनों पैर, जानु, वशस्थल, मस्तक, इन आठ अङ्गोंसे जो प्रणाम किया जाता है उसे अद्याङ्ग प्रणाम कहते हैं। श्रीकृष्णके उद्देशसे जो अद्याङ्गप्रणाम करता है, बह सहस्रजनमार्जित पापसे मुक्त हो कर विष्णुलोक जाता है। इसके बाद पञ्चाङ्ग प्रणाम है।

"वाहुम्यां चैव जानुम्यां शिरसा वचसा दूशा।
पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमी॥"
(कालिकाषु०)

पूजामय (सं० ति०) प्रज्ञा-खरूपे मयट्। प्रज्ञाखरूप, बुद्धिमान्।

प्रज्ञाल (सं० ति०) प्रज्ञास्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच्। बुद्धियुक्त, पण्डित।

प्रज्ञायुक्त, बुद्धिमान् ।

पूज्ञावर्मन्—एक वौद्ध-धर्मशास्त्रवेत्ता । ये चीनराज्यके अन्तर्गत कोरियाविभागके सिको नामक स्थानमें रहते थे। इनका चैनिक नाम ह्विइ-छुन् था। भारत पर धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे इन्होंने सराज्य छोड़ दिया और अपना समय वौद्ध-संन्यासियोंके साथ वितानेका सङ्कृष्य किया। राहमें ये गुयन-चौरके साथ मिळ गये। १० वर्ष तक ये अमरावत सङ्घाराममें उहरे थे। पोछे गन्धारसन्द-मन्दिरमें आ कर इन्होंने संस्कृत अध्ययनमें अपना शेष जीवन विताया।

पज्ञातहाय (सं० पु०) ज्ञानो, बुद्धिमान्।

प्रजिन् (सं वि वि) प्रज्ञास्त्यस्येति इनि । पण्डित ।

प्रज्ञिल (सं० ति०) प्रज्ञा-अस्त्यर्थे पिच्छादित्वात् इलच् । परिडत, बुद्धिमान् ।

प्रज्ञु (सं॰ पु॰) प्रगते जानुना यस्य जानुनो हः। प्रगतः जानुकः, खञ्जपादः।

प्रज्वलन (सं॰ ह्रो॰) प्र-जल-ब्युर् । प्रकृष्टज्वलन, अच्छी तरह जलनेकी किया ।

पुज्वलित (सं॰ ति॰) प्र-जल-क । १ प्रकृष्टज्वलनयुक्त, दह-कता हुआ, धधकता हुआ। २ अति सच्छ, बहुत साफ।

प्रज्यलिया (हिं॰ पु॰) छन्दोविशेष, एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें १६ माताएं होती हैं।

प्रज्वार (सं॰ पु॰) १ ज्वरका प्रदाह, बुखारकी गर्मी। २ एक गन्धवैका नाम।

प्रज्वालन (हिं० क्रि०) जलाना, दहकाना।

प्रडीन (सं० पु॰े प्र-डी-नभ गतौ का। पक्षियोंकी गति-विशेष ।

पूण (सं० हि०) प्राचीन, पुराना । पूण (हिं० पु०) किसी कामको करनेके लिये किया हुआ अटल निश्चय, प्रतिज्ञा । पूणरखं (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः नरखः पूर्वेपदात् णत्वं । नखात्र, नाखुनका अगळा भाग ।

पूणत (सं० ति०) प्र-नम-क । १ प्रणतिविशिष्ट, प्रणाम करता हुआ । २ वक्र, बहुत भुका हुआ । (पु०) ३ प्रणाम करनेवाला । ४ दास, सेवक । ५ भक्त, उपासक ।

पूणतपास्त (सं॰ पु॰) दीनीं, दासीं या भक्तजनींका पासन करनेवाला, दीनरक्षक ।

पूर्णित (सं• स्त्री॰) प्रकृष्टं नमनं प्र-नम-भावे-किन् । १ प्रणाम, प्रणिपात, दण्डवत । २ नम्रता । ३ विनती । पूर्णिदन (सं॰ पु॰) प्र-नद-भावे ल्युट् णत्वं । प्रणद, वहुत जोरसे होनेवाला शब्द ।

पुणम (हिं० पु०) प्रणाम देखो ।

पूणमन (सं• पु॰) १ फुकना। २ दएडवत या नमस्कार करना, प्रणाम करना।

पूणम्य (सं० ति०) प्रणम्य, प्रणाम करने योग्य, बन्दनीय। पूण्य (सं० पु०) प्रणयनं प्रःणो (एव् च । धा क्षाक्ष्य । इति अच्। १ प्रतियुक्त प्रार्थना । २ पूम । ३ विश्वास, भरोसा । ४ निर्वाण, मोक्ष । ५ श्रद्धा । ६ प्रसव, स्त्रीका सन्तान उत्पन्न करना । ७ प्रार्थना ।

पूणयन (सं० क्की०) प्र-णी-भावे-रुयुट् णत्यं। १ रचना, वनाना, करना । २ होम आदिके समय अग्निका एक संस्कार।

पूणयनीय (सं ० ति०) प्र-नी-कर्मणि-अनीयर्। १ प्रकर्ष-रूपसे नेतब्य। २ सं स्कार्य वहिमेद्। ३ अग्नि-सं स्कार-सम्बन्धी, इध्मकाष्ठादि।

पूणयवत् (सं • ति •) प्रणय-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य न । प्रणययुक्त ।

पूणयविद्दति । सं • स्त्री •) प्रणयस्य विद्दतिः । अस्तीकार, नामंजूर ।

पूर्णियता (सं ॰ स्त्री॰) प्रणियनो भावः तल्-राप् । प्रणयी-्का भाव या धर्म ।

प्रणयिन् (सं ॰ पु॰) प्रणयोऽस्यास्तीति प्रणय-इति। १ स्वामी, पति, पूम करनेवाला। (ति॰) २ प्रणययुक्त। पूजियनी (सं ॰ स्त्री॰) १ पूमिका, वह जिसके साथ पूम किया जाय। २ स्त्री, पत्नी।

ाक्षया जाय । र एक प्रमाणिक देखे

प्रणयी (सं ० पु०) प्रणायन देखी ।

पूणव (सं ० पु०) प्रकर्णण नूयते स्त्यते आतमा स्रे प्रदेवता चानेनेतिप्र च (ब्हरेरण् । पा ३,३।५०) इति अप ततो णत्वं, अथवा ब्रह्मविष्णुमहेशस्वत्वात् प्रणम्यते इति प्र नम कर्मणि-धन् सं ज्ञापूर्वकत्वात् वृद्ध्य मावः, ष्र्वोद्रादि-त्वात् मस्य वा । १ सोङ्कार । वेद्याठके पहले ओङ्कारका उद्यारण होता है ।

> "मोङ्कारप्रणवस्तारो वेदादिर्वर्त्तुलो घ्रुवः। तेगुण्यं तिगुणो ब्रह्म सत्यो मन्तादिरव्ययः। ब्रह्मवीजं तितस्वञ्च पञ्चरश्मिस्त्रदैवतः॥" (वीजवर्णामिधानतन्त्र)

अ, उ और म, इन तीन अक्षरोंकी सन्धि हो कर ओङ्कार शब्द निष्यन्न हुआ है। इनमेंसे अ-कार शब्दसे विष्णु, उ-कारसे महेश्वर और म-कारसे ब्रह्माका वोध होता है भर्थात् भोङ्कार वा प्रणव कहनेसे ये तीनों ही समभे जाते हैं।

"अकारो विष्णुरुदृष्टि उकारस्तु महेश्वरः। मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेण त्रयो मताः।"

(महानिर्वाणतन्त)

मनुमें लिखा है, कि ब्राह्मणको वेदपाठके पहले और पीछे प्रणवका उचारण करना चाहिये।

"ब्राह्मणः प्रणयं कुर्यादादावन्ते च सर्वेदा । स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वंपरस्ताच विशीर्यते ॥"

(मनु श्रे १)

पातञ्जलदर्शनमें प्रणवको ईश्वर-बाचक वतलाया है। प्रणव जपादि द्वारा ईश्वरकी लपासना होती है। प्रणव बेदका आदि वा प्रथम है।

"आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवन्द्च्छसामिव ।" (रघुवं १० स०)

भोङ्कार या प्रणव यह प्राङ्गिलिक है। किसी मी कार्यके पहले इसका उच्चारण करनेसे मङ्गल होता है। ओङ्कार और अध ये दो शब्द ब्रह्माका कएउ छेद कर वाहर निकले थे, इसीसे ये दीनों शब्द मङ्गलजनक हैं।

"ओङ्कारएचाथ शब्दरच द्वावेती ब्रह्मणः पुरा। "कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गळिकावुमी॥" (सांख्यवचनमाष्य)

तिथितस्वमें रघुनन्दनने लिखा है, कि पाठ वा Vol. XIV, 122 यश्चादिकालमें यदि कुछ न्पून, अतिरिक्त, छिट्रयुक्त ना अयश्चिय हो, तो ओङ्कार उचारण करनेसे वे सव अछिट्र ना अविकल हो जाते हैं अर्थात् इससे सदोप भी निर्दोष हो जाता है।

मृत्युकालमें यदि कोई विष्णुका समरण कर 'ओं' इस अक्षरका उचारण करते हुए देह त्याग करे, तो वह परम-गतिको प्राप्त होता है।

"भाँ मित्चेकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥" (गीता ८।१४)

विशेष विवरण औं हार शब्दमें देखी ।

२ सामावयवभेद । ३ परमेश्वर ।
प्रणवना (हिं० किं०) प्रणाम या नमस्कार करना, श्रद्धा और
नम्रतापूर्वक किसीके सामने भुकना ।
प्रणस (सं० किं०) प्रगता नासिका यस्य, नासिका शब्दस्य
नसादेशः, अच् समासान्तः णत्त्रद्ध । विगतनासिका,
जिसको नाक कट गई हो, नकटा ।
प्रणाड़ी (सं० झो०) प्रणाली-लस्य-ड । १ श्रणाले देखो ।
२ द्वारमात ।

प्रणाद (सं • पु •) प्रणदनिमिति प्र-णद्-धन् । १ अनुरागज शब्द, आनन्द्ध्वित । २ उद्यशब्द, बहुत जोरसे होनेवाली आवाज । ३ कर्णरोगभेद, कानका एक रोग इसमें कानोंमें तरह तरहकी गूँज सुनाई देती है । ४ चक्रवर्त्तामेद । प्रणाम (सं • पु •) प्र-णम-भावे धन् । प्रणति, प्रणिपात, दण्डवत् । प्रणाम चार प्रकारका होता है, अभिवादन, अष्टाङ्ग, प्रशाङ्ग और करशिरःसंयोग ।

"पदुभ्यां कराभ्यां जानुध्यामुरसा शिरसा दूशा। वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥" (कालिकायु०)

दोनों हाथ, दोनों पैट, जानु, वसस्थल, मस्तक, इन आठ अङ्गोंसे जो प्रणाम किया जाता है उसे अप्राङ्ग प्रणाम कहते हैं। श्रोक्रणाके उद्देशसे जो अप्राङ्गप्रणाम करता है; बह सहस्रजन्मार्जित पापसे मुक्त हो कर विष्णुलोक जाता है। इसके बाद पञ्चाङ्ग प्रणाम है।

"वाहुभ्यां चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा द्वशा । पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ॥" (कालिकायु०) दोनों वाहु, दोनों जानु, मस्तक, वाष्य और चशु इन पांच अङ्गोसे जो प्रणाम किया जाता है, उसे पञ्चाङ्ग प्रणाम कहते हैं। देवमूर्ति और ब्राह्मणादि पर नजर षड़ते ही उन्हें प्रणाम करना चाहिये। जो देवताके उद्देश्यसे कभी भी प्रणाम नहीं करने उनका शरीर शव तुल्य है। अतः उसके साथ कभी भी वातचीत नहीं करनी चाहिये।

> "सम्बद्धा न नमेनद्ययस्तु विष्णवे शर्मकारिणे । शवोपमं विज्ञानीयात् ऋदाचिद्दिष नालपेत्॥" (वृहन्तारदीयपु०)

कायिक, वाचिक और मानसिकके भेदसे यह तीन प्रकारका है। ब्राह्मणको शूद्र-पूजित देवताका प्रणाम नहीं करना चाहिये।

> "यः शूर्रे णार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेदयदि । निष्कृतिस्तस्य नास्त्येव प्रायश्चित्तायुतैरपि॥" (कर्मलोचन)

देवताके उद्देश्यसे प्रणाम करनेसे अशेष मङ्गल होता है। अध्यान्य विवरण नमस्कार शब्दमें देखी। प्रणामिन् (सं• ति०) प्रणामकारो, प्रणाम करनेषाला। प्रणायक (सं• पु०) १ सेनानायक, सरदार। २ पथ-प्रदर्शक, वह जो मार्ग दिखलाता हो।

प्रणाज्य (सं० सि०) प्रणीयते इति प्र-णी-ण्येत् । (प्रणाव्योऽ सन्मतौ । पा ३।१।१२८) इति साधुः । १ असम्मत । २ अभिलाष विवर्जित, निस्पृह । ३ साधु, न्यायवान् । 8 प्रिय ।

प्रणाल (सं• पु॰) प्रणल्यते जलादि निःसार्यतेऽनेनेति प्र-णरू द्येज् । जलनिःसरणमागं, जल निकलनेका मागं, पनाला । प्रणालस (सं॰ पु॰) १ जीवशाक । २ वस्तुशाक । प्रणालिका (सं॰ स्त्री॰) १ परनाली, नाली । २ वन्द्रककी नली ।

प्रणाली (सं क्षी) प्रणाल-गौरादित्वात् डीष् । १ जलिनः सरणमार्ग, पानी निकलनेका रास्ता, नाली । २ पर-स्परा। ३ श्रेणी । ४ रीति, चाल, परिपाटी । ५ पदित, दंग, तरीका । ६ द्वार, द्रवाजा । ७ जलभागमेद, वह हो । उल्मार्ग जो जलके दो बड़े भागोंको मिलाता हो । ८ सुं घनी देनेकी नली ।

प्रणाश (सं० पु०) प्र-नस-घंज् ततो णत्व'। १ मृत्यु, मौत। २ पळायन, भागना। ३ नाश, वरवादी। प्रणाशन (सं० पु०) प्र-नश-णिच्-छ्यु। सम्यक्रपसे नाश या ध्वंस।

प्रणाशी (सं॰ ति॰) नाशकारी, नाश करनेवाला । प्राणि सित (सं॰ ति॰) प्र-निस-क णत्वं । चुन्वित, जिसका चुम्बन लिया गया हो ।

प्रणिक्षण (सं ० क्की०) प्र-निक्ष-ल्युट् णत्वं । उत्तमक्रपसे चुम्बन ।

प्रणिधान (सं० पु•) पूणिधायतेऽनेनेति पू-णि-धा-त्युट् णत्वं। १ रखा जाना। २ समाधि, मनकी एकाप्रता। ३ ध्यान। ४ समाधि द्वारा दृष्टि। ५ अपणि। ६ भकि-विशेष। ७ कर्मफलत्याग। ८ पूयल। ६ अति अधिक उपासना। १० भावी जन्मके सम्बन्धमें किसी पूकारकी पार्थना। ११ पुवेश, गति।

प्रणिधि (सं• पु॰) पूणिधीयते पूनिन्धानि, णत्वं। १ चर, भेदिया, गोईंदा। २ याचन, मांगना। ३ अवधान, मनोभाव, दिलका लगाव। ४ पूर्धना, विनती।

प्रणिधेय (सं० ति०) प्र-नि-धा-यत् । प्रणिधानयोग्य । प्रणिनाद (सं० पु०) प्र-नि-नद्-धञ् । षज्रशन्द्वत् गर्जन शब्द, बज्रके जैसा गरजना ।

प्रणिपतन (सं॰ क्ली॰) पू-नि-पत-ल्युट् । पृणिपात, प्रणाम ।

प्रणिहित (सं वि वि) प्र-नि-धा-क्त, था ओहि, णत्वं। १ स्थापित, जिसकी स्थापना की गई हो। २ पाप्त, पाया हुआ। ३ समाहित, रखा हुआ। ४ मिश्चित, मिला हुआ। प्रणी (सं वि वि) प्रणयति प्र-नी किष्। १ कारक, करने वाला। (पु) २ ईश्वर।

प्रणीत (सं वि) प्र-णी-क । १ निर्मित, बनाया हुआ । २ क्षिप्त, फेंका हुआ । ३ विहित, जिसका विधान किया गया हो । ४ प्रवेशित, जिसका प्रवेश किया गया हो । ५ पास पहुंचाया हुआ । ६ संशोधित, सुधारा हुआ । ७ जिसका मन्त्रसे संस्कार किया गया हो । (पु०) ८ मन्त्रः संस्कृत जल, वह जल जिसका मन्त्रसे संस्कार किया गया हो । १० अव्ही तरह पकाया हुआ भोजन ।

प्रणीता (सं० स्त्री०) प्रणीत-टाप् । १ वह जल जो यशकी कार्यके लिये वेदमंत्रोंको पढ़ते हुए कुएंसे निकाला जाता है और मन्त्रोचारण सहित छान कर रखा जाता है। २ मंत्रसंस्कृत जलाभार विशेष, वह पात जिसमें उपयुक्त जल रक्या जाता।

जल रक्षा जाता।
प्रणीय (सं० ति०) प्रणो कर्मण वेदे क्यप्। वह
चैदिक मन्त्र जिससे किसी चोजका संस्कार किया जाय।
प्रणुत (सं० ति०) प्र-णु-क। स्तुत, प्रशंसित।
प्रणुद (सं० ति०, प्र-नुद-किप्। १ प्ररणकारी। २ मुग्ध।
३ विचलित। ४ अनुरोध। ५ रोकनैवाला। ६ विताइनकारी, मार भागनेवाला।

प्रणुष्त (सं • ति ॰) प्र-नुद-क । १ नियुक्त, लगाया हुआ । २ प्रेरित, भेजा हुआ । ३ कस्पित, कंपाया हुआ । ४ विताड़ित, भगाया हुआ ।

प्रणेजन (सं॰ क्ली॰) १ प्रक्षालन, धोनां, साफ करना। (ति॰) २ प्रक्षालनकारक, धोने या साफ करनेवाला। प्रणेता (सं॰ ति॰) रचयिता, बनानेवाला।

प्रणेतु (सं ० ति ०) प्र-णी-तृच्। भणेता देखी।

प्रणेय (सं । ति) प्रकर्षण नेतु शक्यः, प्र-णी (भनोयत् । पा १ । १६) इति यत् । १ वश्य, अधीन । २ कृतलौकिक संस्कार, जिसके लौकिक संस्कार हो चुके हों । ३ प्राप-णीय, पाने लायक ।

प्रणोदित (सं • ति •) प्र-सुद-णिच् क । १ प्रेरित । २ नियोजित ।

भतकन् (सं॰ पु॰) प्र-तक-गतौ वनिष्। प्रकर्ष द्वारा गति युक्त, वहुत अधिक चळनेवाळा।

प्रतत (सं॰ ति॰) प्र-तन-कः। विस्तृत, छंवा चौड़ा, फैला हुआ।

प्रतित (सं ॰ स्त्री॰) प्र-तन-किच्। १ विस्तृति, विस्तार, फैंडाव। २ वही, छता।

प्रतती (सं ० स्त्रो०) प्रतति-ङीष् । व्रतती ।

प्रतद्वसु (सं ० पु०) प्रतत् प्राप्तं वसु धनं येन । १ प्राप्त-वसुक, वह जिसने धन प्राप्त किया हो । २ विस्तीर्ण धन, काफी सम्पत्ति ।

प्रतन (सं० ति०) प्र (नथ पुराणेप्रोत्। पा ५।४।२५) इत्यस्य वार्तिकोक्त्या चकारात् द्र्यु तुट् च् । पुरातन, पुराना। प्रतना (सं॰ स्त्री॰) १ गोजिह्वा, गोजिया साग । २ वाट्या-लक । ३ वीजकन्द ।

प्रतन्तु (सं ० ति०) प्रकृष्टस्तनुः प्रादिस० । १ अतिश्रस्य, बहुत छोटा । २ अति स्कृप, बहुत बारीक । ३ श्लीण, दुवला ।

प्रतपन (सं ० क्की ०) १ नरकभेद, एक नरकका नाम । २ उत्ताप, गरमी । ३ प्रज्वलितकरण, तपाना ।

प्रतप्त (सं० ति०) प्र-तप-का १ उत्तप्ता २ तापित। ३ कथित।

प्रतमक (सं॰ पु॰) श्वासरोगभेद, एक प्रकारका दमा। प्रतमाम् (सं॰ अध्य॰) प्र-तमप् आसु। अत्यन्त प्रकव। प्रतमाली (हि॰ स्त्री॰) कटोरी।

प्रतर (सं॰ पु॰) पू-तृ-भावे अप्। १ पृक्षष्टक्रपसे तरण, अच्छी तरह पार करना। २ पूतरणाधार, वेदा।

पृतर्क (सं ॰ पु॰) पुनतक सप्। १ संशय, संदेह। २ तसं, वादविवाद।

पृतर्केण (सं ० ह्वी०) पू-तर्क, भावे न्युट्। वितर्क, वाद-विवाद्। पर्याय—तर्क, व्यूह, वह, ऊह, वितर्कण, अध्याहारण, अध्याहार, ऊहण।

प्रतक्ये (सं ० ति०) प्र-तक-यत्। अतर्कणीय।

प्रतदंन (सं क् क्ली) प्र-तृह-भावे ल्युट्। १ ताड़न, ताड़ना। (पु०) २ दिघोदासपुत्रभेद, काशीराज हिंबी-दासके पुत्र। बीतह्य्य नामक एक राजाने जब दिघो-दासका वंश नष्ट कर डाला, तव उन्होंने भृगुकी सहायता-से पक पुत्रिष्ट-यञ्च किया। इस यञ्चसे उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ जिसका प्रतर्दन नाम रखा गया। अव प्रतर्दन पितृश्रतु बीतह्य्य द्वारा किये गये दुष्क्रमंका बदला लेनेको अप्रसर हो गये। बीतह्य्यने डरके मारे भृगुमुनिकी शरण ली। ३ विष्णु। ४ ऋषिभेद। (ति०) ५ ताड़क। प्रतल (सं० क्ली०) प्रकृष्ट तलं। १ पातालभेद, पाताल-के सातर्ये भागका नाम। २ विस्तृतांगुलि पाणि, हाथ-की हथेली।

प्रतान (सं o go) प्र-तन-घत्र । १ ऋषिमेद, एक प्राचान ऋषिका नाम । २ वायुरोगचिशेष, अपतानक नामक रोग जिसमें वार वार मुर्च्छा आती है । ३ वेल, लता । ४ तन्तु, रेशा (बि०) ५ विस्तृत, लम्बा चौड़ा । ६ तन्तुयुक्त, रेशोदार । प्रतानवत् (मः o ति o) प्रतान-मतुष् मस्य व । प्रतान-युक्त ।

त्रतानिन् (सं ० ति०) प्र-तन-णिनि । विस्तीर्णं, लम्बा चौड़ा ।

प्रतानिनी (सं० स्त्री०) प्रतानिन्-स्त्रियां ङीप् । १ प्रतान-वती । २ विस्तृत स्रतादि ।

प्रताप (सं ० पु०) प्र-तप-घत्र । १ पौष्ठप, वीरता, मर-दानगी । २ वल, पराक्रम आदि महस्वका ऐसा प्रभाव जिसके कारण उपद्रवी या विरोधी शान्त रहें, तेज, इक-बाल । ३ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़ । ४ रामचन्द्रके एक सखाका नाम । ५ युवराजका छल । ६ ताप, गरमी । प्रताप—एक प्राचीन राजा । अर्डु द पर्वतकी शिलालिपिमें इनका परिचय मिलता है ।

प्रतापउउजैनीय—विहारवासी एक राजा। इनके पिताका नाम दलपत था। शाहजहान् के शासनकाल के १म वर्ष-में (१६६६ ई०में) ये डेढ़ हजारी मनसबदार थे। पश्चिम और सासेरामके उत्तर भोजपुरमें इनको राजधानी थी। उक्त सम्राट्के राज्यकाल के १०वें वर्ष में जब प्रताप विद्रोही हुए, तब अबदुलाने भोजपुर पर दलल जमाया। प्रतापके आत्मसमप्पण करने पर भो सम्राट्ने उन्हें यमपुर भेज ही दिया। उनकी स्त्री वलपूर्वक इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुई और अबदुलाके पौत्रके साथ व्याही गई।

·प्रतापक्षितीन्त्र—पक राजा । रोहतासगढ़की शिलालिपिसे जाना जाता है, कि वे १२२३ ई॰में विद्यमान थे।

प्रतापकुँ विर वाई—मारवाड़के महाराजा मार्निसहकी रानो। ये जाखँण गांव परगना जोध्रपुरके भादी ठाकुर गोयंददासजीकी पुली थो। इनका विवाह संवत् १८८६-में हुआ था। इन्होंने कई मन्दिर वनवाये और ये वहुत दान-पुण्य किया करती थीं। ७० वर्षकी अवस्थामें संवत् १६४३में इनका खगैवास हुआ। इन्होंने अपने पिताके यहां शिक्षा प्राप्त की थी और संवत् १६००में विधवा हो जाने पर देवपूजन तथा काव्यकी ओर अधिक ध्यान लगाया। इनकी कविता देवपक्षकी हैं, जो मनो-हर हैं। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

ज्ञानसागर, ज्ञानप्रकाश, प्रतापपचीसी, प्रेमसागर, रामचन्द्रनाममहिमा, रामगुणसागर, रघुवरस्नेहलीला, रामपूरे मसुखसागर, रामसुजसपचीसी, पितका संवत् १६२३ चैतवदी ११की, रघुनाधजीके कवित्त और भजन-पदहरजस । इनको गणना मधुस्दनदासको श्रेणीम है। पूतापगञ्ज —अयोध्या पूदेशके वड्वांकी जिलेकी एक तहसील।

पूतापगढ़ युक्तप्रदेशके फैजावाद विभागका एक जिला।
यह अक्षा० २५ देश से २६ २१ उ० और देशा० ८१ १६ से ८२ २७ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपिरमाण १४४२ वर्गमोल है। इसके उत्तरमें रायवरेली और सुलतानपुर; पूर्व और पश्चिममें जीनपुर; दक्षिणमें इलाहावाद और पश्चिममें इलाहावाद तथा रायवरेली है। इसके दक्षिण पश्चिममें इलाहावाद तथा रायवरेली है। १८६६ ई०में प्रासादपुर सलोन पराना रायवरेलीकी सीमाभुक्त हो जानेसे इसका आयतन घट गया है।

सारा भूभाग जङ्गल और शस्यक्षेत्रसे परिपूर्ण है। विशेषतः दक्षिणका भाग और भागोंसे बना है। नदीके निकटवर्त्ती भग्नस्तरका विशाल दृश्य और क्रमोच निवन भूमिका श्यामल शस्यक्षेत्र तथा प्रामादिका आप्रकानन जिलेकी सुन्दरताको वढ़ाता है। गङ्गा और गोदावरीके अञावा यहां से नामक एक और नदी वहती है । वर्षा-कालमें अधिक जल हो जानेसे नार्चे हमेशा भाती जाती हैं। उस समय अनेक शाखा नदियां उसमें मिल जाती हैं। यहां वहुत-सी वड़ी वड़ी भीलें हैं जो वर्णकालमें विलकुल भर जाती हैं। किन्तु गहराई कम रहनेके कारण नार्चे नहीं चलतीं । यहांकी जमीनमें लवण, सोरा और कंकड़ पाया जाता है। सरकारने छवण और सोरे-का व्यवसाय वन्द कर दिया है। अलावा इसके यहां सव प्रकारकी रन्बी, खरीफ, अनाज और तरह तरहका धान उपजता है। तमाकू, चीनी, घी, गुड़, अफीम, तेल, गाय, वकरे, सींग, और चमड़े की रक्षनी दूर दूर देशोंमें होती है। इस जिलेका इतिहास भार जिलेसे सम्बन्ध रखता है। भार देखो। इस जिलेमें ४ शहर और २१६७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६१२८४८ है। विद्या-शिक्षामें यह जिला उतना बढ़ा चढ़ा नहीं है। यहां कुल मिला कर १६५ स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १० अस्प ताल और चिकित्सालय हैं।

यह जिला खास्थ्यप्रद होने पर भी यहांके अधिवासि-गण विशेष सुखी नहीं हैं। शीतकालमें रोगकी प्रवलता देखी जाती है। १८६८-६६ ई०में विस्चिका और वसन्तके साथ दुर्भिक्षने आ कर जिलेको विलकुल उजाड़-सा कर दिया था।

२ उक्त जिलेकी तहसील । यह अक्षा० २५ 8ई से २६ १९ उ० तथा देशा० ८१ ३१ से ८२ ४ पू०के मध्य अवस्थित है। इस तहसीलमें ३ शहर और ६७६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या करीव ३१६५८० है। सै नामकी नदी तहसीलने मध्य हो कर वह गई है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा॰ २५ ५४ उर और देशार ८१ ५७ पूर्व मध्य अवस्थित है। बैलासे यह शहर पांच मील दक्षिण पडता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। कहते हैं, कि १६१७-१८ ई०में राजा प्रतापसिंहने प्राचीन अलारिखपुर वा आरो नगरके ऊपर इस नगरको वसाया। उनका वनाया हुआ दुगै आज भी वर्त्तमान है। करीव डेढ़ सौ वर्ष पहले अयोध्या-के राजाने इसे अपने दखलमें कर लिया। अयोध्या अङ्गरेजोंके हाथ आनेके वाद यह स्थान प्राचीन राजवंशके अजितसिंह नामक किसी व्यक्तिके हाथ वेच डाला गया। पहले यह नगर वहुत लम्बा चौडा था। १८५७ ई०के गदरके वाद इसकी वाहरवाली दीवार तीड़वा दी गई, परन्तु भीतरकी दीवार और वगीचा बाज भी विद्यमान है। यहां चार हिन्दू-देवमन्दिर और ६ मस्जिटें देखी जातो हैं। सकर्णी और सै नदोके सङ्गमस्थछ पर पञ्च-सिद्धा नामक दुर्गामन्दिर अवस्थित है। सन्द्विएडक **प्राप्तमें चरिडकादेवीका जो मन्दिर है वह एक विख्यात** तीर्थमें गिना जाता है। निकटवत्तीं गोएडा श्राममें आज भी प्राचीन ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। प्रतापगढ़ नगरसे ७ कोस पश्चिम हिन्दौर नामक प्राम है। प्रवाद है, कि हन्दवी नामक राक्षसने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। यहांकी ध्वंसावशिष्ट प्राचीन कीर्त्तिका निदर्शन आज भी देवनेमें आता है। यहां एक स्कूल और औपघालय है जिसका खर्च राजाकी ओरसे दिया जाता है।

प्रतापगढ़—१ राजपूतानेके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह स्ताठ २३ ३२ से २४ १८ उठ और देशाठ ७४ २६ से Vol. XIV. 123 ७५ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८८६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें उदयपुर, पश्चिममें वांसवारा, दक्षिणमें रतलाम और पूर्वमें जौरा, मन्दसार और नीमक है। उत्तर-पश्चिम विभाग पर्वत और जङ्गलसे परिपूर्ण है। यहां केवल भील जाति रहती है। देवलियाके दक्षिण प्राचीन दुर्गसुरक्षित जूनागढ़, पर्वतके ऊपर वड़ी पुष्क-रिणो और कूप हैं। दकोर नामक स्थानमें पहले वहुतसे परथर मिलते थे।

प्रतापगढ़के महारावल उपाधिघारी शिशोदीयवंशीय राजपूत हैं। ये लोग अपनेकी उदयपुर राजवंशकी किनष्ठ शाखासे उत्पन्न बतलाते हैं। मालवराज्यमें मरालेंकी गोटी जम जानेसे वहांके सरदार हीलकरपतिकी राजकर देने लगे थे। १८१८ ई०में यह स्थान अङ्गरेजोंके दखलमें आया। मन्देश्वरकी सन्धिके अनुसार वृदिश-सरकारने होलकरसे प्रतापगढ़का राजस्व पाप्त किया; किन्तु पीछे वह वृदिशराजकोयसे होलकरको दिया गया। १८४४ ई०में दलपतिसिंह यहांके सिहासन पर वैठे। १८६४ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के उदयसिंहने राज्यभार प्राप्त किया। पीछे १८६० ई०में रघुनाथसिंह गई। पर वैठे। वृदिश-सरकारसे इन्हें १५ सलामो तोपे मिलती हैं। इनके अथीन ५० जागीरहार हैं।

इस राज्यमें १ शहर और ४१२ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या पचास हजारसे ऊपर है। इनमेंसे सैकड़े पीछे ६१ हिन्दू, २२ भोल, ६ जैन और शेयमें अन्यान्य जातियां हैं। यहांका विचार और शासनादिकार्य एकमात सर-दारके अधीन है। वे ही प्रजाके दएडमुएडके कर्चा हैं। उनके अधीन १२ कमान, ४० बरकन्दाज, २७५ अध्वारोही और ६५ पदार्ति सैन्य हैं। विद्याशिक्षामें यह राज्य वहुत पीछे पड़ा हुआ है। सैकड़े पीछे ४ पढ़े लिखे मनुष्य मिलते हैं। अभी केवल तीन स्कूल और एक अस्प-ताल है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर । यह अक्षा • २८ २ २ उ० और देशा • ७४ ४७ पू० राजपूताना माळवा रेळचे-के मन्देश्वर स्टेशनसे २० मीळ पश्चिममें अवस्थित हैं। १८वीं शतान्दीके प्रारम्भमें महारावळ प्रतापसिहसे यह नगर स्थापित हुआ। समुद्रपृष्ठसे यह १६६० फुट ऊंचा

है। शहर चारों ओर प्राचीरसे घिरा हुआ है। सळीम[ा] प्रतापगिरि—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिल्लेकी एक जमीं-सिंह जब १७५८ ई०में राजगद्दी पर वैठे, तब उन्होंने यह प्राचीर वनवाया था। उस प्राचीरमें ८ प्रवेशद्वार हैं। प्रतापचन्द्र—कुमायुन् प्रदेशके एक राजा। इनका शास-नगरके दक्षिण-पश्चिममें जो छोटा दुर्ग है उसमें महा-रावलके परिवार रहते हैं। अभी वर्त्तमान सरदारने प्रतापदेव—काश्मीरके एक राजा । आप तिथिनिर्णय अपने रहनेके लिये दूसरो जगह राजप्रासाद वनवाया है। इससे पूर्ववास परित्यक्त और जनहोन हो गया है। यहां प्रतापदेवराय-दाक्षिणात्यके अन्तर्गत विजयनगरके एक ३ विष्णुमन्दिर, ३ शिवमन्दिर और ४ जैनमन्दिर हैं। पन्ने वा मिनारके ऊपर सोनेके जड़ाऊ कामके लिये . प्रतापगढ वहुत कुछ विख्यात है। यह काम केवल दो ही घरके लोग अच्छी तरह कर सकते हैं। इस राज्यकी प्राचीन राजधानी देवलिया विलकुल उजाड़ सी हो गई है। यह स्थान प्रतापगढ़से ४ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। शहरमें एक देलियाफ आफिस, छोटा जेल, एक एङ्गळी-वर्नावयुलर मिडिल स्क्वल और अस्पनाल है, जिसका नाम रघुनाथ होसपिटल रखा गया है।

पतापगढ -त्रम्बईप्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरि-दुर्ग । यह अक्षा० १७ ५५ उ० और देशा० . ७३ ३५ पु॰ पश्चिमचाट पर्वतके शिखरदेश पर महाबालेश्वरसे ४ कोस दक्षिण-पिश्चम अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इस दुर्गकी ऊ'चाई ३५४३ फुट है। इसके उत्तर-पश्चिममें ७ से ८ सी फ़ुट ऊंची पर्वत चूड़ा, पूर्व और दक्षिणमें ३०-४० फूट गुम्बज और चुड़ादि उन्नत देखी जाती हैं। १६५५ ई०में महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने जावलीके राजा-को हत्या कर उनके अधिकृत रोहिलदुर्ग अपने दखलमें कर लिया और प्रतापगढ़-दुर्ग स्थापन किया। उनके विरुद्ध बोजापुरराज-प्रेरित मुसलमान सेनापति अफज़ल खाँकी निष्ठुर हत्या यहीं पर हुई थी। १८१८ ई०में महाराष्ट्रयुद्धके समय प्रतापगढ़ अङ्गरेजोंके हाथ लगा। प्रतापगढ---मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति । यह मोतुरके निकट अवस्थित है। भूपरि-माण २८६ चर्गमील है। पहले यह हराई सरदारींके अधिकारभुक्त थी। १६वीं शताब्दीके ब्रारम्भमें जब यह शोनपुरसे अलग कर दी गई, तव हराई सरदारोंके भाईने इसका शासनभार ब्रह्ण किया। पगारा नामक प्रधान य्र_ाममें सरदारोंका प्रासाद है।

दारी सम्पत्ति। किमेदी देखो।

काळ १३८३,शक माना जाता है।

रचियता सिद्धलक्मणके प्रतिपालक थे।

राजा। शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये १३८६ शक सम्वत्के वैशाखमासमें गतासु हुए थे। प्रतापधवळदेच--जापिलाधिपति । महानायक इनकी उपाधि थी। दक्षिण-विहारके सासेरामके निकटवर्त्ती ताराचएडी पर्वत पर १२२५ शक्तमें उत्कीर्ण इनकी एक शिलालिपि मिलती है।

प्रतापन (सं० क्षी०) प्र-तप-णिच्- भावे त्युट् । १ पीइन, कष्ट पहुंचाना। (पु॰) प्रतापयतीति-प्र-तप-णिच् त्यु। २ नरकविशेष. एक नरकका नाम । इसका दूसरा नाम कुम्भोपाक है। ३ विष्णु। (ति०) ४ क्लेणदायक, कप्र देनेवाला।

प्रतापनगर—वङ्गासके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध वाणिज्यः स्थान । यहां चावलका वहुत लम्वा चौड़ा कारखाना है। प्रतापनारायणिसश्च-कात्यायन गोत कान्यकुःज ब्राह्मण। इनके पूर्वज वैजेगांवमें रहते थे । इनका जन्म १८५६ ई०-को आश्विन कृष्ण श्मीमें हुआ था। इनके पिता सङ्खटाप्रसादजी एक अच्छे ज्योतियी थे। वे अपने पुत-को भी ज्योतिप पढ़ाना चाहते थे, पर इनकी कवि न होनेके कारण इनको अङ्गरेजी पढ़ाने छगे। १८७५ ई०में इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया था। इतने दिनोंमें अंग्रेजी-भाषामें इनको कुछ अभिज्ञता हो गई थी। संस्कृत और फारसीका भी इन्हें कुछ कुछ ज्ञान हो गया था।

काव्यांकुर इनके हृदयमें पहले हो जम चुका था। घोरे-धीरे ये उत्तम कवि हो गये। १८८३ ई०में इन्होंने ब्राह्मण नामक एक पत निकाला जो दश वर्ष तक चलता रहा। संस्कृत और फारसीमें भी ये हिन्दीके समान कविता कर सकते थे। कुछ दिनों तक ये कालाकांकरसे प्रकाशित "हिन्दोस्थान"के सहकारी सम्पादक रहे। मिस्टर ब्रैडलाके भारत गमनके उपलक्षमें इन्होंने कविता की

थो उससे इनकी वड़ी प्रशंसा हुई थी। कांग्रेसके ये वड़े पक्षपाती थे। इनका मत यह था,—

> "चहदु जु सांची निज कल्यान । तो सव मिळि भारत सन्तान॥ जपौ निरन्तर एक जवान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥"

इनका सर्गवास सम्यत् १६५१में ३८ वर्षकी अवस्थामें हो गया। १२ पुस्तकींका इन्होंने भाषानुवाद किया है और २० पुस्तकों लिखी हैं। इनकी गणना तोप कविकी श्रेणीमें है।

प्रतापपाल—करौलीके एक राजा।
प्रतापनारायण सिंह राजेन्द्र—इनका जन्मस्थान हल्दी
था। ये संवत् १६३४ में पैदा हुए थे और इन्होंने
'परवस-प्रताप' प्रनथकी रचना की थी।
प्रतापपुर (सं० क्ली०) जनपद्भेद।
प्रतापभानु—प्रतापमार्चाएडके रचयिता।

प्रतापमञ्ज्ञ १ नेपालके एक राजा। आप लक्षीनृसिंहके पुत्र थे। आपका दूसरा नाम था जयप्रतापमल्लदेव। २ वधेला (चालुक्य) वंशके एक राजा, दुणिगरेवके पुत्र। प्रतापमुक्तः (सं॰ पु॰) राजपुत्रमेद।

प्रतापराज परशुरामप्रतापके प्रणेता । इनका पूरा नाम साम्बाजी प्रतापराज है।

२ एक राजा । ये न्यायसिद्धान्तदीपप्रभावके प्रणेता प्रसिद्ध नैयायिक शेपान्तके प्रतिपालक थे। प्रतापराय—हिमालयतस्वतीं मानकोस्के एक राजा। सम्रास् अकवरशाहके विरुद्ध खड़े होने पर इन्हें उनके सेनापति जैन खाँने कैंद कर लिया।

प्रतापसद्र—१ वरङ्गलके विख्यात राजा । अपने वाहुवलसे ये दाक्षिणात्य जीत कर राजशिरोभूषण हुए थे । काकतीय (१) पृताप आन्ध्रराज्यकी राजधानोमें रहतेथे।

(१) यह राजवंश काकती (हुगाँ) देवीकी उपासना करता था, इस कारण इसका काकतीय नाम पड़ा । प्रताप-चरित्रमें पाण्ड रुत्र अर्ज्जनसे इस वंशकी उत्पत्ति मानी गई है। किन्तु वरंगलके काकती पगण अपनेको स्पेव शोद्मव बतलावे हैं। कांचीपुरके गणगृतिव शावतेश काकतीय व शके वंशावली

सम्बन्धमें बहुत गोडमाङ देखा बाता है। बरंग्ल देखो ।

इन्होंने अनेक देशों पर दखल जमाया था । सिवनेरीके यादवराज रामचन्द्र इनके डरसे गोदावरीके उस पार भाग गये थे। १२६५ ई०से १३२३ ई० तक इन्होंने राज्य किया था। बिचिनापल्लोंके अम्बुकेश्वर-मन्दिरके वाहर दोवारमें उनकी शिलालिपि उत्कीर्ण है।

२ उत्कलप्रदेशके एक राजा। इनकी वंशोपाधि गज-पति थी। इनके पिताका नाम पुरुषोत्तमदेव और माताका नाम पद्मावती था। कपिलेश्वरदेव इनके पितामह थे। ये विद्वजनप्रतिपालक और महाधार्मिक थे। पथ्यापथ्य-विनिश्चयके प्रणेता विश्वनाथसेन इनके सभा-पिर्डत थे। कौतुकचिन्तामणि, निर्णयसंग्रह, पृतापमार्त्तर्ड और सरखतीविलास नामक ग्रन्थ इन्होंके वनाये हुए हैं।

वचपनसे विद्याभ्यासमें रत रह कर इन्होंने नाना शास्त्रोमें च्युत्पत्ति लाम की थी। धर्मशास्त्रमें इनका अच्छा बान था। दूर दूरके लोग धर्मशास्त्रमें सलाह लेनेके लिये इनके पास आते थे। केवल शास्त्रविद्यामें ही नहीं, युद्धविद्यामें भी ये विशेष निपुण थे। पिताकी मृत्युके वाद १५०३ ई०में ये राजगड़ी पर वैठे और पुनके समान पृजाका पालन करने लगे। इनकी राजनीतिक ख्याति और विजय-गौरव समग्र विक्षण-भारतमें फैल गया था। पहले ये वौद्धपश्चपाती थे। पीछे अपनी ख़ोके अनुरोधसे तथा और कई कारणोंसे ये ब्राह्मण्यधमेकी पृधानता स्वीकार करनेको वाध्य हुए। निद्याके महामभु श्रीचैतन्यदेव जव उत्कलक्षेत्र पहुंचे, तव इन्होंने उनसे वैष्णवधमेकी दीक्षा लो। इस समयसे ये वौद्धधमेके विद्वे पी हो वौद्धग्रन्थोंको खोज कर जलाने लगे।

युद्धविद्यामें ये वड़े ही निपुण थे। इसीके फलसे इन्होंने रामेश्वर सेतुवन्ध तक अपना अधिकार फैला लिया था। असंख्य दुर्ग और विजयनगर-राज्य उनके कन्जेमें आ गये थे। इसी वीच बङ्गालके पटानींने उत्कल पर चढ़ाई कर दी। कटकके शासनकर्त्ता अनन्तिसह जो उन्हें रोकने गये थे, जान ले कर भागे और काटजूड़ीके दक्षिण तीरवर्त्ती सारङ्गाढ़में आश्रय लिया। इस जीतसे उत्साहित हो म्लेच्छोंने पुरीधाम पर आक्रमण करनेका सङ्खल्य किया। पंडा लोगोंने पवित्न देवमूर्त्तिको चिल्का

भीलमें छिपा रखा। यह संवाद पाते ही प्रतापखद्र दलवलके साथ उत्कल पहुंचे और म्लेच्छोंको मार भगाया। किन्तु इस युद्धमें इनका वल इतना क्षय हो गया था, कि आखिर इन्हें यवनराजके साथ सन्धि करनी पड़ी थी। अब पठान लोग उत्कलका परित्याग कर बङ्गालको लीटे। इक्कीस वर्ष राज्य करनेके वाद प्रतापखद्र १५२४ ई०में परलोकको सिधारे। उनके ३२ पुत्र थे। सच पूछिये तो उनके राज्यकालको वाद ही उड़ीसामें गङ्गराजवंशका अवसान हुआ। आप उत्कलके वरीहमन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। प्रतापवर्मन—चन्दे लर्चशीय एक राजा।

प्रतापवमन—चन्दं लवेशीय एक राजा । प्रतापवल्लाल—बेल्लीगांवके अधिपति । गुणचन्द्राचार्यं आप-के राजकार्यके परिदर्शक थे ।

प्रतापबुन्दे ला—पक वुन्देला राजा। इन्होंने १५३१ ई॰ में ओच्छा जागीर स्थापन करके वहां बुन्दे लाको वसाया। प्रतापबत् (सं॰ क्षि॰) प्रतापः विचतेऽस्य प्रताप-मतुप्-मस्य व। १ प्रतापयुक्त, इक्षवालमंद। (पु॰) २ स्कन्दा-नुचर गणभेद। ३ विष्णु।

प्रतापवान् (हिं० वि०) प्रतापनत् देखो । प्रतापशोलः—कन्नौजाधिपति, पुष्पभूतिके वंशधर । इनका नाम प्रभाकरवद्धेन था । प्रभाकरवर्धन देखो ।

प्रतापशील—उज्जयिनोपित हर्षविक्रमादित्यके पुत ।
प्रतापसहाय—पक किय । ये पहले उदयपुरमें राणा राजसिंहके यहां रहते थे । वहां गड़बड़ हो जानेसे वृंदी चले
गये जहां इनको जागीर तथा खिताव मिला। तभीसे
ये वहीं रहने लगे। इनकी कितात साधारण श्रेणीकी है।
इन्होंने १७०० ई०में स्फुटकाव्य वनाया।

प्रतापसिंह—१ काश्मीरके एक महाराज । १८८५ ई०में पिता महाराज रणवीरसिंहकी मृत्युके बाद थे राजगही पर बैठे।

२ जयपुरके एक राजा । इन्होंने १७९८ ई॰में पिता मधुसिहकी मृत्युके वाद राजसिहासन सुशोभित किया । ये एक उदारनोतिक राजा थे । इनके शासनकालमें (१७८८ ई॰में) कर्नल पोलियर वेदशास्त्रकी खोजमें जय-पुर राजधानी आये थे । इन्होंने उम पेद्रो दि सिल्मा नामक एक पुर्तगोजको अपने यहां राजवैधकपमें नियुक्त किया था। ३ तञ्जोरके एक राजा। ये महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके भतीजे और शरभोजीके पुत थे। इनके भाई शाहजीने राजच्युत हो कर सेएडहेमिडके किलेमें अङ्गरेजींकी शरण लो। अब अङ्गरेज विणकोंने प्रतापिसहके साथ युद्धशिणा कर दी। इस पर ये डर गये और देवीकोटा नामक दुगै उन्हें दे कर सिन्ध कर ली। उनके वादसे तञ्जोर-राजवंश 'प्रतापिसह'-की उपाधिसे भूपित हुआ।

८ नेपालाघिपति गुर्खाराज पृथ्वीनारायणके पुत्र। १७९१ ई०में इन्होंने राजिसहासन प्राप्त किया। प्रतापसिंह (नारायण) -- साताराके अधिपति। ये महा-राज २य शाहुके पुत और राघोजी मोंसलेके पौत थे। पेशवा वाजीरावने इन्हें कैद कर रखा था । जब अप्पा-साहवकी राज्यच्युति हुई, तव इन्होंने छुटकारा पा कर अङ्गरेजीकी सहायतासे राजसिंहासन पर द्खल जमाया। अङ्गरेजींके अनुप्रहसे वरणा और नीरा नदीके मध्यवत्ती भूभागसे छे कर पश्चिम सहादि और पूर्व पर्राटपुर तक-के स्थान इनके द्खलमें आ गये थे। पूनाके कुछ अंश इन्होंने अपनी जागीरमें मिला लिया। अङ्गरेजोंकी सहा-यतासे १८१८ ई०में इन्होंने पेशवा पर धावा कर दिया और शोलापुर जा कर नगर और दुर्ग पर अधिकार जमाया। १८१६ ई०में प्रतापके साथ अङ्गरेजोंकी जो सन्त्रि हुई उसमें इन्हें और भी प्रचुर सम्पत्ति हाथ छगी। परन्तु १८३६ ई०में सन्धिकी शतें तोड़ देनेके कारण ये राज्य-च्युत किये गये। पोछे वाराणसीमें १८४७ ई०को इनका देहान्त हुआ।

प्रतापसिह—प्रतापगढ़के प्रतिष्ठाता एक राजा । प्रतापगढ देखां।

प्रतापसिह—रामकर्णामृतके प्रणेता । प्रतापसिहदेव—प्रतापकल्पद्रुम नामक सुविख्यात ग्रन्थ-रचयिता ।

प्रतापसिह—एक प्र'थकार, राज्यलामस्तोत और राम-विज्ञापनस्तोत नामक दो प्रन्थ इनके वनाये हुए हैं। प्रतापसिह (राणा)—राजपूतकुल-गौरव मेवारके एक राणा, विज्ञोराधियति राणा उदयसिहके पुत्र। ये पिताके जैसे दुर्वल हृदयके न थे। इन्होंने मुगलसम्राट् अकवरशाहके प्रतिद्वन्छी हो कर वीरताका जो परिचय दिया था, वह आज भी भारतवासीकी स्पर्धा और गौरव-परिचायक है। प्रतापकी उदारता, नीतिकुशलता, दुःसकातरता, रण-नियुणता और कप्टसिह्ण्युता आदिका विचार कर देखने-से वे सभी अलौकिक जैसे मालूम पड़ते हैं। उनका अरण्यवास, हब्दीघाटका युद्ध, चिचोर्रसिहासन प्राप्ति आदि कार्य वड़े ही विस्प्रयकर तथा हिन्द्वोरताके अपूर्व द्वप्रान्त हैं।

१५६८ ई०में राजपूतशिककी आवासभूमि अजेय चित्तीरपुरी उनके हाथसे जाती रही तथा तहस नहस भी कर डालो गई। मुगल-सैन्य-प्रवाहसे मथित चित्तीर नर-नारीके शोणितमें प्लावित और श्मशानमें परिणत हुआ था। अकवरके कठोर आदेशसे सभी देवालय और पासादमाला तथा राजिनदर्शन मलियामेट कर डाले गये। राणा उदयसिंहने दुःखसन्तप्त-हृदयसे चित्तोर-का परित्याग कर राजिपप्लीके गुहिलोंका आश्रय प्रहण किया। इस शोचनीय दुर्धटनाके चार हो वर्ष वाद उनके पाण पखेक उड़ गये।

उद्यसिहकी मृत्युके वाद उनके किन प्र पुत जयम हु उद्यपुरके नये सिहासन पर वैठे। राणा उद्यसिहकी अन्यतमा मिह्यी शोणिगुरू-राजकुमारीके गर्भसे पृतापने जनमग्रहण किया। प्रतापको शिशोदिया राजसिहासन पर अभिषेक करनेकी कामनासे उनके मामा फर्टीरपित वहां जा पहुंचे। उन्होंकी प्ररोचनासे मेवारके प्रधान राणा चन्द्रावत् कृष्णने प्रतापका पक्ष छेनेका संकल्प किया। दोनों वीरोंने जयमहाको गद्दीसे उतार कर निम्नासन पर वैठने कहा और प्रतापको देवीदन्त खड्गसे सजा कर तीन वार भूमि रूपरीपूर्वक मेवारपित कह कर घोषणा कर दी। अनन्तर अन्यान्य राजपूत सरदारोंने सालुम्बाके रावत कृष्णका उदाहरण अनुसरण किया। अभिषेकोत्सव हो जानेके कुछ समय वाद ही नवीन भूपित प्रतापने समोको पितृपुक्यानुष्ठित प्राचीन 'अहेरिया' उत्सवमें योगदान करनेका अनुरोध किया।

प्रताप सुप्रसिद्ध शिशोदीयकुलके समस्त राजीपाधि और मानसम्प्रमके उत्तर्राधिकारी हुए तो सहो, पर उनके राज्य नहीं, राजधानी नहीं, उपाय नहीं, और न कोई अव-लम्बन ही था। जो थोड़े आदमीय और सदेशीय सेना- पित थे, वे मुसलमानोंके पापप्रलोभनमें पड़ कर राजपूतगौरवकी उपेक्षा नहीं करते, विपदके उप्यु परि कठोर
कशाधातसे विपर्यस्त हो वे लोग भी धीरे धीरे निःस्रृह,
निष्प्रभ, स्फूर्तिहीन और विमृद्धित हो गये। किन्तु
प्रतापका वीरहृद्य क्षणमातके लिये भी भयभीत और
विषण्ण नहीं हुआ। खजातिके प्रनष्ट गौरवका पुनरुद्धार
करनेके लिये ये खदेशवैरिके विरुद्ध समरानल प्रज्वलित
करनेको अप्रसर हुए। जब वे अपनेको अकेला, निःसहाय
और निःसम्बल देखते तथा अपने चिर-वैरी अकवरशाहको
प्रवलप्रतापशालो और विपुल सहायसम्पन्न समभते
थे, तब उनका क्षुदृहृद्य दूने आनन्दसे नाच उउता था।

वचपनसे हो खदेशीय कवियोंका काव्यप्रनथ पढ़नेसे व्रतापको अपने पूर्वपुरुपोंकी अन्त त वीरकीर्तिका वृत्तान्त मालूम हो गया था। उस समय उनका सुकुमारहृद्य दुर्जय वीरतासे परिपूर्ण होता जाता था। पूर्वपुरुषोंका इतिवृत्त पढ़ कर उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि वे कभी भी मारवार, अम्बर, वीकानेर और बुन्दिपति अथवा अपने सहोदर भाई सागरजीकी तरह मुगलींके चरणमें आतम-विकय कर मातृदृग्ध कलङ्कित न करेंगे। बहुतेरे राजपूत प्रवलप्रताप अकवरके हाथ अपनी कन्या वा वहनको अर्पण कर उनके में मभाजन हुए थे, किन्त तेजस्वी प्रताप-ने अपनेको जोखिममें देख कर भी ऐसी घृणित पन्धीका अवलम्बन कभी भी न किया। बरन् विपद्नके साथ साथ उनका साहस तथा उच्मशीलता और भी दूनी बढ़ती ही गई थी। उसी साहसके वल पचीस वर्ष तक दोई एड प्रताप सुगल सम्राट् अकवरशाहके समवेत वल और उद्यमको व्यर्थ करते रहे थे।

प्रतापका अद्भुत वीरत्व और लोकविस्मयकर कीर्ति-कलाप बाज भी मेवारकी प्रत्येक उपत्यकामें ज्वलन्त अक्षरोंमें कलक रहा है। वह कीर्तिकलाप आज भी प्रत्येक राजपूतसे गाया जाता है। पापप्रलोभन वा भयसे डर कर राजपूतोंने जो प्रतापका परित्याग कर मुगलींका पश्च लिया था उससे वे जरा भी विचलित न हुए, वरन् और भी दूने उत्साहसे डटे रहे। वीरवर जयमल और पुत्तके वंशधर पूगणपणसे उनकी सहायता करते थे और देवल-वाड़ाके सरहार आत्मोत्सर्ग खीकार करके उनका वृक्षिण-हस्तखक्षप वन गये थे। मुगलसैन्यसे उत्सादित चित्तोरपुरीका भट्ट किंबिगण विश्वणा विश्वणा रमणी कह कर वर्णन कर गये हैं। प्रतापने जननी-जनमभूमिके शोकसे विषावचिद्ध धारण कर सब प्रकारके भोगखुल और आमोद-प्रमोद पर लात मारी। सोने और चांदीके वरतनोंको दूर फेंक कर वे उनके बदले 'पतेरा' का व्यवहार करने लगे। वे तृण-शब्या पर सोते थे तथा शोकचिद्ध खरूप लम्बे केंग और दाढ़ी उन्होंने रख ली थी। चित्तोरकी शोचनीय अधःपतनवार्त्ता जतानेके लिये तथा मेवारवासियोंको चित्तोरके उद्धारमें उत्साहित करनेके लिये उन्होंने नगारेको सेनाके आगे न वजा कर पोलेमें वज्ञानेका हुकुम दे दिया। स्वदेशमें मिक आर्यवीरके वंशधर आज भी उनकी चलाई हुई विधिका अनुष्ठान किया करते हैं।

जनमभूमिकी पेसी दुरवस्था देख कर प्रताप प्रायः कहा करते थे, "मेरे और राणा सङ्ग (प्रतापके पिता-मह) के बीच यदि कापुरुप उदयसिंह जन्मग्रहण नहीं करते, तो कोई भी तुर्क राजस्थानमें अपना शासन फैला नहीं सकता था।"

राजनीतिज्ञ और वहुद्शीं सामन्तोंकी सहायतासे प्रतापने खराज्यके तत्कालोपयोगी सभी विधि नियम वनाये। सामयिक कार्यमें सहायता पानेकी आशासे उन्होंने नई नई भूमिवृत्ति निर्देश कर दी। प्रयोजन जान कर कमलमीरमें प्रधान राजपाट स्थापित हुआ। शतु जिससे नगरमें धुसने न पांचे, उसकी पूरी व्यवस्था कर दो गई। इसके साथ साथ गोलकुएडा और अन्यान्य गिरिटुर्ग भो सुरिक्षत किये गये। प्रतापने जव देखा, कि छोटेसे मेवार-के समतलक्षेत्रमें सेना रहनेका गुंजाइश नहीं है, तव उन्होंके समतलक्षेत्रमें सेना रहनेका गुंजाइश नहीं है, तव उन्होंके पितृपुरुपोंके आचरणका अनुसरण करके अपनी प्रजाको पहाड़ी देशमें आश्रय लेनेका हुकुम दिया और तमाम ढ़िढोरा पिट्या दिया, कि जो इस आदेशका प्रतिकुला-चरण करेगा उसे पूर्णदएड मिलेगा। प्रतापके इस आदेशका पालन करके राजपूत लोग मुसलमानोंके हाथसे आदेशका पालन करके राजपूत लोग मुसलमानोंके हाथसे

आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। सारे मेवारका जनस्थान विजनविपिनमें परिणत हुआ। यहां तक, कि जब तक उस घोर महासमरका अवसान न हुआ, तव तक अर-वलो शैलमालाका पूर्वी भाग वे-चिराग वना रहा । कहा जाता है, कि वीरवर प्रताप राजाज्ञाका सम्यक् प्रतिपालन होता है वा नहीं, इसकी परोक्षा करनेके लिये वे पर्वता-श्रमसे घोड़े पर सवार हो नोचे उतरते थे। प्रतापके कठोर अनुशासनसे राजस्थानका कुसुम-कानन थोई ही दिनोंके अन्दर उजाड़ सा हो गया। धन्लोमी विजेता-ओंकी अव विजयस्पृहाको सम्भावना न रही । मुगल-राजसरकारके साथ यूरोपमें जो वाणिज्य स्थापित हुआ था उससे पण्यद्रव्य सौराष्ट्रादि भारतीय वन्दरसे मेवार-प्रदेशके मध्य हो कर जाता था। प्रतापको आज्ञासे उनकी सेना जो अरवली पर्वतमालाके जंगली प्रदेशोंमें घूमा करती थी, नीचे उतर कर मुगलसेना पर आक्रमण करती और उनका वाणिज्यद्रव्य ॡट लेती थी।

अक्रवरने प्रतापको द्रांड देनेके लिये अपनी प्रधान सेना अजमेरमें रखी और प्रकाश्यक्षपसे उनके विरुद्ध युद्ध-घोपणा कर दी। उस प्रकाएड समरविहका प्रतिरोध करनेमें केवल इन्होंने ही अपना जीवन न्योछावर कर दिया था और सभी राजा वादशाहकी कृपाके मिशुक हो कर देशद्रोही हो गये थे । इस प्रकार राजस्थानके राजाओंने मुगल सम्राट्के हाथ अपनी खाधीनता तथा वंशमर्यादा वेच दी, परन्तु प्रतापने अपनी खाघीनताके लिये जीवन न्योछावर कर दिया है—चाहे कुछ हो जाय, प्रताप मुगल सम्राट्की अधीनता स्रीकार नहीं करेंगे। प्रतापकी शक्ति वहुत कुछ घट जाने पर भी वे जरा भी निरुत्साह न हुए। स्वदेशवासियोंने मुगलोंके पाप-प्रलोभनसे स्वधर्मकी तिलाञ्जलि दे कर स्वदेशके विरुद मातृभूमिके विषक्ष अस्त्र धारण किया था। राणाने इत सव म्लेन्छपदानत राजाओंके साथ सम्बन्ध तोड़ कर दिल्ली, पत्तन, मारवाड़ और धारावासी प्राचीन राजवंश-के साथ मिलता कर ली। प्रतापसिंहने प्रतिश्वा की थीं, कि पतित राजपूतोंके साथ कमी भी आहार व्यवहार वा सख्यता नहीं करे^{*}गे। वे वीरकी तरह शिशोदियाकुलकी गौरव रक्षा करनेमें विलक्षल समर्थ

[#] पतेरा — पळाश चा वटपत्रका बना हुआ पात्रविशेष । अभी मडीके वने हुए वर्तन हो पतेरा कहते हैं । Tod's Rajasthan, Vol. I, 3?3 n.

थे। उपेक्षित राजपूतगण घोरे घोरे उनके शबु हो उठे। सैकड़ों विपर्झें पड़ कर भी वे अपने जीवन-को तुच्छ समक्तते थे। क्षण भरके लिये वे प्रतिक्षा पालनमें पराड्मुख नहीं हुए।

शोलापुरके समरक्षेत्रमें विजयी हो कर अम्परराज कुमार मानसि ह दिली छौटनेके पहले कमलमीर आये और प्रतापका आतिथ्य स्वीकार किया। प्रतापने भी विशेप सौजन्य पूर्वक उदयसागरके किनारे पहुंच कर उनका अच्छा सत्कार किया। उसी सरोवरके ऊ'चे तद पर अम्बरपतिके सम्मानार्थ एक भारो भोजको तैयारी को गई। जब भोजनको सामग्री विलकुरु प्रस्तुत हो गई, तव राजा खानेके लिये बुलाये गये। कुमार अमरिस ह उनका यथोचित आहर सत्कार करनेके लिये खडे थे। जलसेमें प्रतापको न देख कर मानसि हको संदेह हो गया और उन्होंने उनकी अनुपस्थितिका कारण पूछा, उत्तरमें अमरसिंहने कहा, कि पिताजीके सिरमें पीड़ा होनेके कारण यहां पहुंच न सके। इस पर भी मानसिंहका सन्देह दूर न हुआ। पीछे पताप स्वयं उनके समीए पहुंचे और कड़क कर वोले, "जिस प्रक्तिने तुर्कोंके हाथ अपनी वहनको समर्पण कर दिया है और जो तुर्कोंके साथ वैठ कर खाता पोता है, सूर्यवंशीय राणा कमी भी उसके साथ वैठ कर भोजन नहीं कर सकते।" कुमार मानसिंह अपने कर्मदोपसे ही अप मानित हुए। प्रतापने उन्हें निमन्त्रण नहीं किया था. जिससे वे इस असीजन्यके भागी होते। अव मान सिंहके ज्ञानबङ्क खुळ गये। उन्होंने अपनेको अप-मानित समभ कर अन्न स्पर्श तक भी न किया और तुरत आसन परसे उड खड़े हुए। परन्तु जो कुछ अन्न उन्होंने इप्टरेवको निवेदन किया था, उसको वे अपने साफेमें रख कर वहांसे चल दिये। जाते समय वे इस अपमानका वद्छा चुकानेकी पृतिज्ञा करते गये । मानसिंहके साथ समरक्षेत्रमें यदि उनकी मुलाकात हो जाय तो वे वड़े हो पसन्न होंगे, इस प्रकार प्रतापने भी अपना अभिप्राय ५कट किया था।

जद यह संवाद वादशाहके कानमें पहुंचा, तव वे प्रदीमिस हकी तरह गरज उठे। उन्होंने मानिस हकी

अवमाननासे अपनेको भी अपमानित समभा और कोध-की छहरें उनकी घमनियोंमें दौड़ गईं। और भो राज-पून राजा जो प्रतापके गौरवसे जला करते थे -- मान-सिंहके सहायक वने। सम्राट्के पुत सलीम वड़ी सेनाके सेनापति हो कर अरवली प्रदेशमें आ कर उप-स्थित हुए। प्रताप भी २२ हजार स्वदेशभक्त वीर राजपूर्तोंको ले कर अरवलीकी पहाड़ी पर मुगल सेनाकी राह देख रहे थे। कमलमीरके दक्षिण पर्वत और वनाकाणी ४० मीलकी विस्तृत भूमि प्रतापकी सेनाकी केन्द्रभूमि वनी। इस भूमिकी चारो और पर्वतमाला है, ऊपर जानेका एक भी अच्छा रास्ता नहीं। इस प्रदेशको हृद्दीघाटी कहते हैं। छीलाक्षेत हुन्दीघाटीके समर प्राङ्गणमें प्रतापने अक्षय नाम कमाया था। जब तक केवल एक शिशोदिया मेवारका शासनदण्ड परिचालित करेगा और एक भी राजपूत कवि जीवित रहेगा, तव तक हल्दीघाटीकी स्पृति कोई भी विस्पृत नहीं होगा।

दोनों दलमें विपुल संप्राम छिड़ ःया। दोनों दलके योदा आपसमें छड़ रहे थे। मुसलमानी सेना अपना विक्रम दिखला रही थी। स्वदेशभक्त मातृभूमिके उद्घार-के लिये उन्मत्ति हके समान शतु सेनाका विनाश कर रहेथे। इसी समय शतापके सम्मुख हाथी पर चढ़े हुए सलोम वा धमके। उनका हाथी रक्षकोंसे घिरा हुआ था, तथापि प्रतापका विजयी घोड़ा 'चेतक' सेना-को चोरता फाड़ता आगेको ओर वढ़ा। प्रतापके युद्ध-कौशलसे रक्षकसेना मारी गईं। सलीम हाथो पर वैठे हुए थे। प्रतापने उसे ताक कर भाळा चळाया। प्रताप-का भाला हाँदेमें लगा। हाथीवान मारा गया, हौदा चूर हो गया, सलीमके प्राण वच गये। उस हाथीको छोड कर सलीम दूसरे हाथी पर सवार हुए और रणस्थलसे नौ दो ग्यारह हो गये। प्रतापने मानसिंहको वहुत ढुंढा, परन्तु वे नहीं मिले। कुछ पेतिहासिकोंका कहना है, कि मानसिंह हल्दीघाटीके युद्धमें गये ही नहीं । परन्तु दूसरा पक्ष कहता है, कि मानसिंह भो युद्धमें गये थे, परन्तु वे डेरे पर ही वैठे रहे, युद्धमें नहीं गये थे।

इवर प्रमुभक्त मुगलोंके राजपुतको रक्षाके लिये भीषण प्राणपण था और उधर दृढ्पतिज्ञ राजपृतोंके

राजपूतपतिकी सहायतामें भीषण उत्साह दिया। दोनी दलकी चीरताने एक केन्द्रीभृत हो कर दोंनों दलको विमुख कर दिया। मृतदेहसे वह स्थान प्रावित हो गया। प्रताप सात वार आहत हो कर भी मध्याइ-भार्तण्डके सद्रश रणक्षेत्रमें प्रदीप्त थे। राजच्छत उस समय भी उनके सिर पर था। वैरी दछने उस चिह्नका लक्ष्य करके उन पर आक्रपण कर दिया। तीन वार प्रतापके जीवनका सन्देह उपस्थित हुआ, पर शत्रुदछने उनका एक वाल भी वांका कर न सका। पीछे प्रताप रणक्षेत्रमें अगण्य नरमुएडका ढेर देख अवसन्न और निह-त्साह हो पड़े। इसी समय मुगलोंने बड़ी तेजीसे राणा पर आक्रमण कर दिया। राजभक्त भाळापति मन्नाने प्रतापके जीवनको सङ्कटापन्न देख राजछत्न और मुकट उनके सिर परसे खींच कर अपने सिर पर धारण किया। मुगलींने मन्नाको ही प्रताप समन्दा और उन पर आक्रमण करके उन्हें मार डाला। उनके इस आत्मत्यागसे उनके वंशधरगण उसी दिनसे मेवारका राजचिड वहन करते आ रहे हैं। कालापतिका यह आत्मदान जगत्में अतुल-नीय है।

प्रताप घोड़ो पर सवार हो अकेले नदनदी पार करने हुए जान ले कर भागे। पीछे केवलमात हल्दीघाटीके अत्यन्त अद्भुत युद्धके समृतिन्विह सक्तप सैनिकींकी मृत देहराशि रह गई। मुगलवाहिनीके सिवा वीस हजार राजपूत सेनाओंमेंसे केवल भाठ हजार सेना युद्धभूमिमें वच रहीं। प्रतापको भागते देख दो मुगळवीरोंने उनका पोछा किया। शबु पीछे आ रहा है यह सीच कर प्रतापने प्राणपणसे घोड़ा छोड़ा । महाराणा प्रतापके अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये थे, चेतकके भी अङ्गीमें कितने ही घाव लगे थे, तथापि वह प्रभुमक घोड़ा अपने प्रभुकी तरह क्षतविक्षताङ्ग होने पर भी तीरके समान छूटा। इसी समय प्रतापने सुना, कि पीछेसे मानो कोई उन्हें पुकार रहा है। घूम कर उन्होंने देखा, कि पीछे और कोई भी नहीं है—उनका भाई शकसिंह है। प्रतापके साथ उनकी दुश्मनी थी, इस कारण उन्होंने भाईका पक्ष छोड़ कर मेवाइके घोर शबु ः हो अकवरशाहसे सहायता मांगी थी। वादशाही सेना-

के वीच रह कर ही शक्तिने देखा था,—नीले घोड़े पर सवार हो, उन्हींके खदेश और खजातिके मुख उज्जुल करनेवाले उनके भाई अकेले वड़े वेगसे भागे जा रहे हैं। जातीय-सम्मानकी रक्षामें बद्धपरिकर भाईकी वात याद कर उनका हृदय विघल गया, कोघ विलक्कल जाता रहा । भ्रानृस्नेहविगिछत हृदयसे वे मुगलराजका साथ छोड़ भाईका आलिङ्गन करनेके लिये उन्मत्त हो गये थे। जिस मुसलमानी-सेनापतिने प्रतापका पाछा किया था, उसको हत्या कर भाईकी जीवनरक्षा करना ही शकका उद्देश्य था। वहुत दूर तक उस मुसलमानवीरके साथ जा कर उन्होंने भालेसे उसके प्राण ले लिये और स्नेह-पूर्ण हृद्यसे प्रतापके समीप जा भ्रातृवत्सलताकी परा-का ध्ठा दिखलाई । इसी स्थान पर हो श्रमकातर 'चेतक'को जीवनलीला शेष हुई। प्रतापने उस घोड़े के स्परणाथ वहां एक छतरी वनवा दी। अव प्रताप शक्तके . यो हे पर सवार हो बहांसे चल दिये। क्षणकालके लिये भ्रात्सिमलन सुखमोग करके शक्त पूर्वीक मृत खोरा-सनी सेनाके घोड़े पर सवार हो सलीमके पास उप-स्थित हुए। सलीमने उन्हें अभयदान दे कर इस प्रकार घोड़े अदल वदल करनेका कारण पूछा। सलीमने उन्हें आद्योपान्त कुछ वाते सुना दी। पीछे वे भी आनन्द चित्तसे प्रतापसिंहके साथ उदयपुरमें जा मिले।

१६३२ सम्बत् ७ श्रावण (१५७६ हैं॰ जुलाई) को हल्दीघाट महायुद्धका अन्त हुआ। अव सम्राट्युत सलीम-शाह जयोल्लासित चित्तसे गिरिप्रदेशका परित्याग कर चले। वर्णाकालका समय था, चारों थोर जल ही जल नजर आता था, इस कारण शतुसेना आगे वढ़ न सकी। युद्ध कुछ कालके लिये बन्द रहा। वसन्तकाल आने पर मुगलोंने फिरसे लड़ाई ठान दी। प्रतापने इस बार भी हार खा कर कमलमीरके गिरिदुर्गमें आश्रय लिया। सलोमके अधीनस्थ कोका सेनापित शाहवाज खाँने वहुत सो सेना ले कर कमलमीरमें घेरा डाला। प्रताप बड़ी वोरतासे लड़े और शतुसेनाकी कुल चेष्टाए यर्थ कर दी। परन्तु आवूपित देवरा-सरदारकी विश्वासघात-कतासे उन्हें इस व्यानका भी परित्याग करना पड़ा। इस बार प्रतापने चीन्द नामक स्थानमें आश्रय लिया।

कमलमीर (कुरममेर)-का गिरिदुर्ग प्रतापके हाथसे जाता रहा। खदेशवैरी राजपूतवीर मानसिंहने गोल-कुएडाके गिरिदुर्ग पर आक्रमण किया। महन्वत खाँने उद्यपुर पर अधिकार कर लिया। अक्रवरका अन्यतम सेनापित फरीद खाँ छप्पन प्रदेशको जीतता हुआ चीन्द तक आगे वढ़ा। प्रताप पकापक प्रचएडविक्रमसे मुगल-सेना पर हूट पड़े। इस वार शबुसेनाकी विशेप श्रति हुई। उन्हें फिर प्रतापके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस न हुआ। इस समय पुनः वर्षाश्चतु भो पहुंच गई। युद्ध वन्द रहा। प्रतापको भी विश्रामका अवसर मिला।

इस प्रकार युद्ध करते करते वर्षों गुजर गये। सेनाकी बे-शुमार मृत्यु पर वे भी अपनेको विपन्न सममने छगे। उनका परिवारवर्ग उनकी उत्करहाका प्रकमात कारण हो उठा। एक समय कारानिवासी भोलोंने उनके पुत-कलतादिको जवराकी रांगेकी खानमें छिपा कर आसन्त त्रिपद्धसे रक्षा की थो। खयं दिल्लीश्वरने रणकी इस अद्भुत वीरताका गुणानुवाद किया था। जङ्ग्लमें भूख प्याससे सन्तान-सन्ततिको कातर होते देख कर भी वे धैयैसे न डिगे। एक दिन श्रुधातुर कन्यापुतका आर्चनाद सुन कर उनका धैयँ विलक्षण जाता रहा था। उन्होंने राजाके नाम पर लानत देते हुए वाद्याहके निकट सन्यिका प्रस्ताव लिख भेजा।

ं प्रतापकी इस प्रकार आशातीत नम्नता देख कर दिलीश्वर वड़े प्रसन्त हुए और राजधानीमें आनन्दोत्सव
करनेका हुकुम दिया। वादशाहने वीकानेरके राजकुमार
कविवर पृथ्वीराजको भी राणाका मेजा हुआ पत दिखलाया। पृथ्वीराज देखो।

पत पढ़ कर पृथ्वीराजने सम्राट्से कहा, कि प्रताप कभो भी विजातीयके निकट शिर नहीं कुका सकते। तथा सम्राट्की अनुमति ले कर उन्होंने इस सम्बन्धमें प्रतापकी एक पत लिखना चाहा। पत्नमें उन्होंने प्रतापकी अव-नतिके खीकारसम्बन्धमें कोई जिक्र नहीं किया, केवल भोजिखनी भाषामें कुछ कविता लिख कर ऐसे हीन कार्यसे अलग रहनेका अनुरोध किया। पत पढ़ते ही प्रतापकी धमनियोंमें खाधीनताकी आग धधक उठी। वे पुनः १० हजार सेनासंग्रह कर युद्धके लिये तैयार हो गये।

आईन-इ-अकवरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि सम्राट्

अकवरशाहके राजत्वके २१वें वर्षमें मानसिंह मुगळसेना-के नायक हो प्रतापके विरुद्ध अप्रसर हुए। मुगळसेना-के पराजित होने पर भी राजा विहारीमहुके पुत जग-न्नाथने मुगलोंकी गौरवरसा की थी। दूसरे वर्ष अर्थात् १५७९ ई॰में राजा मगवान्दासने मुगलवाहिनी ले कर प्रतापके विरुद्ध युद्ध किया। उसी साल सम्रार्ने अज-मेरमें रहते समय सेनापति कुमार मानसिंहको पांच हजार सेनाके साथ प्रतापके विरुद्ध गोलकुएडा और कमलमीर जीवनेके लिये मेजा। आसफ खाँ इस सेनादलके मीर वक्सी नियुक्त हुए। चिचोर-युद्धके बाद प्रतापने हिन्दू-वाडाके पव तके मध्य गोगएडाः नगर वसाया और इस निभत निवासमें रह कर वे मुगलसेनाके साथ युद्धकी तैयारी करने लगे। कुमार मानसिंह जब गोगुएडाके समीप पहुंचे, तब प्रतापने हल्दीघाट पर्वतके वाहर आ कर शतका सामना किया । दोनों पक्षके सैकड़ों राज-पूत मारे गये । इस युद्धमें प्रताप-पश्चके रामेश्वर गोलि-यारी और उनके पुत्र शालिवाहन तथा चित्तोरपति जय-मलके पुत रामदास खेत रहे। राणा प्रताप दिग्विदिक शानशून्य हो कर धमसान युद्ध करने छगे। उनका सारा गरोर क्षतविक्षत हो गया। आखिर वे भी रणस्यलका परित्याग कर प्राणरक्षाके लिये भाग चले। पराजित राजपूतगण मुगलोंके हाथसे प्राण गंवाये। मानसिंहने अपनी विजयवार्त्ता वादशाहको सुनाई और हल्दीबाट गिरिसङ्कट पार कर गोगुएडा पर अधिकार जमाया (६८५ हिजरी)[¶]। प्रताप और उनके अधीनस्य सामन्तीं

बदानीने इस स्थानका नाम को क्याहा लिखा है।

ं अगलपक्षके मानशिक्षके सवीन साम्मायित राजा क्षेत्र-करण, मगवानदासके पुत्र मधुसिंह और राजा विहासि: क्षके पुत्र मगन्नाथ अदिथे। (adauni, in Elliot, Vol. v, p, 397-398 and Blochmann's Ain, P. 387)

ण बहोनी इस युद्धों स्वयं उपस्थित थे। उन्होंने जिला है, कि दोनों पक्षके राजपूत-योदा इतने निकटवर्सी हो कर लडते थे, कि उनका पत्र निवासन करना कठिन है।

(Badauni, vol II, p, 331; तवस्त्-इ-अस्वरी Elliot, vol, v, p, 399) पर कुद्ध हो सम्राट्ने १५७८-८० ई०में मीर वक्सी शाह-वाज खाँको उनके विरुद्ध सेजा। राजा भगवान्दास, मान-सिंह आदि राजपूत सरदार उनके साथ चले। शाहवाजने कमलमीर दुर्गमें घेरा डाला और उसे जीत लिया। पोछे गोगुएडा-दुर्ग और उदयपुर नगर भी उनके हाथ लगे #।

लगातार युद्धसे प्रतापकी शक्ति बिलकुल जाती रही। उन्होंने श्मशान तुल्य मेवाइराज्य और चित्तोर-का परित्याग कर सिन्धुतीरके निकटवर्ती प्राचीन सन्दी राजधानीको जाने और वहां शिशोदिया कुछका गौरव-निकेतन वसानेका सङ्करण किया। उनके जीवनके सह-चर सामन्तगण, जो पराधीनताको अपेक्षा निर्वासनको अच्छा समभते थे, उनके साथ साथ जानेको दृढ प्रतिइ हुए। सङ्ग्रव्यसिद्धिको प्रत्याशासे प्रताप सामन्त और आत्मीयगणसे परिवृत हो अरवलीका परित्याग कर ज्यों ही मरुदेश पार कर रहे थे, त्यों ही उनके प्रिय सचिव भामशाने पित्रप्रपार्जित काफी धनरत ले कर उनके चरणोंमें समर्पेण किया । नितान्त निरुपाय और सामर्थं-हीन प्रताप, असमयमें प्रचुर अर्थ पा कर मातृभूमि-परि-त्यागका जो सङ्खल्प था, उससे विरत हो गये। उन्होंने देखा कि यह धनरत हो कर वे और भी वारह वर्ष तक २० हजार सेनासंग्रह कर खदेशकी गौरवरक्षा कर सर्केंगे।

इस प्रकार प्रताप काफी धनरत पा कर पुनः युद्धको तैयारी करने छगे। मुगर्छोन उनकी तत्काळीन अवस्था-की विवेचना कर समका, कि वे मरुदेश पार कर भाग रहे हैं। किन्तु थोड़े ही दिनोके अन्दर उनका यह सुज-खप्त टूट गया। प्रताप एकाएक कृद्ध केशरीकी तरह गरजते हुए शाहवाजकी सेना पर टूट पड़े। इस वार

अहिन इ-जक्षवरी में लिखा है, कि राणा संन्यासी के वेशमें भागे थे। अक्षरनामा और तवकत इ-अक्ष्यमें लिखा है, कि मताय गहरी रातको गंमना हा के पहाडी प्रदेशमें भाग गये थे। (Elliot's Muhammadan Historians, Vol. v. p. 410 and vl., p. 58)

वहत-सी मुगलसेना विनष्ट हुई। मुगलोंके आत्मरक्षा-का आयोजन करनेके पहले ही कमलमीर दखल किया गया। अवदुला प्रतापको प्रवण्डगति रोक न सके और दलवल समेत मारे गये। इस प्रकार घीरे घीरे वजीस दुर्ग उनके हाथ लगे। विघमीं मुसलमानसेना वड़ी कठोरतासे राजपूर्तोंके हाथ मारे गये। इस प्रकार एक वर्षके अन्दर प्रतापने सारा मेवाड़ शलुके हाथसे अपने कब्जेमें फर लिया। केवल चित्तोर, अजमीर और मण्डलगढ़ वाकी रह गया। इतने पर भी उनके प्रतिजिघांसावृधि शान्त न हुई। खदेशद्रीही मानसिंहका दर्ष चूर्ण करनेके लिये उन्हों ने मानसिंहके राज्य अम्बरप्रदेश पर आंक-मण कर दिया और उसी राज्यके अन्तर्गत भालपुर गांचको लूटा।

तद्न्तर उदयपुरको भी महाराणाने अपने अधिकारमें कर लिया। वादशाहने भी अब युद्ध बन्द करना उचित समभा। प्रतापने उद्यपुरको मेवाइ राज्यको राजधानी वनाया। परन्तु चिस्तोरका उद्धार वे कर न सके। समस्त जीवन युद्ध तथा और भी अनेक कर्षीके कारण प्तापका शरीर शिथिल हो गया था। महाराणा प्ताप मृत्यु शय्या पर सो रहे हैं, नीर सामन्त खड़े हैं, पुत अमरसिंह सामने हाथ जो है खहें है। महाराणाको चेपाओंसे मालूम होता है, कि वे कुछ कहना चाहते हैं। साल्म्बा सरदारसे पूँछा, क्या आज्ञा है। महाराणा बोके "अमरसिंह मेरे सामने प्रतिहा करे. कि इम लोग चिलासमें लिप्त न होंगे और तुम भी प्रतिश्वा करो, कि इनको भोग विलासमें लिप्त न होने दें गे और चित्तोरके उद्घारमें इनकी सहायता करोगे।" दोनों ने उसी समय प्रतिज्ञा की। महाराणा प्रताप विचोर-का उद्धार न कर सके, इसका कष्ट उनकी रहा ही । चित्रोरका उद्धार और खजातिकी खाधीनता उनके जीवन का उद्देश्य था। इनमेंसे उन्होंने एक सिद्ध किया था, पर दूसरा सिद्ध कर न सके। इसी कारण वे राजभवनमें नहीं रहते थे। कुटो ही उनका बासस्थान थी, अमर-सिंह स्त्रमान हो से विलासी थे, इसी कारण प्रतापसिंह समभते थे, कि यह देशकी खाधीनताकी रक्षा करने वोष नहीं है। मृत्युके पहले उन्होंने कई वार अपना इस प्रकार-का अभिप्राय प्रकाशित किया था। इस कारण प्रतापने

मृत्युके समय प्रधान सामन्तींसे तलवार छुला कर यह प्रतिज्ञा कराई थी, कि हमलोग सर्वदा कुमार अमर्रासह-के साथ रहेंगे और उनको विलासी न वनने हेंगे।

जिस विवृत मुगडवाहिनोके साथ प्रताप वीस वर्षे तक युद्धमें उलके हुए थे उसकी संख्या ग्रीकके विरुद्ध प्रेरित पारस्पराज जरक्षेशको वडी फौजको अपेक्षा कहीं अधिक थी। यदि मेवारका प्रकृति इतिहास लिपिवद रहता, यदि एक थुसिडाइडिस् (Thucydides) वा जैनोफन (Zenophon) मेवारराज्यमें जन्म ग्रहण करते, तो पिळोपनिसस् (Peleponnesns)-का समरामिनय अथवा 'दश सहस्र' का प्रत्यावर्त्त कभी भी प्रतापके जीवनके समतुल्य नहीं हो सकता था। इघर मुगल-सेनाका जैसा असाधारण रणवातुर्य, दुर्दम दुराकाङ्क्षा, अपरिमेय उद्यम और ज्वलन्त धर्मानुराग था, उधर वैसा ही प्रतापकी अदम्य चीरता, प्रस्फुरित उच्चाकांक्षो, अनन्य साधारण खदेशानुराग, अलौकिक अध्यवसाय, सुविश्वसैन्य परिचालना और धर्मप्रणोदित मनोवेग इन सब गुणोंसे विभूपित हो बीरकेशरी प्रताप प्रवल वल-शाली सम्राट् अकवरको वाहिनीको विमुख कर सके थे। अरवलीका विशालक्षेत ही प्रतापको कार्यावलीका प्रमाण-स्थल है। उक्त अरवली पहाड़ पर ऐसा कोई भी स्थान न था जहां प्रतापकी पवित्र वीरकीर्त्त अनुष्ठित न हुई हो। सन् १५६७ ई०में यह भारतका सूर्य राजपूतानेमें अस्त हुवा था । १७ पुत छोड़ कर प्रताप सुरधाम पधारे थे। उनमेंसे अमरसिंह सबसे वह थे।

र मेवाइके महाराणा, जगत्सिंहके पुत । छोग इन्हें दूसरे प्रतापिसह कहा करते थे। १७५२ ई०में ये मेवाइके सिहासन पर वैठे। ये पहले प्रतापके समान न थे। गुणोमें ठोक उनके विपरीत थे। वे खजातिके मुख उउज्जल करनेवाले थे और पे खजातिके मुखमें कालिमा पोतनेवाले थे। इनके समयमें कोई ऐसी घटना न घटी जो लिखने योग्य हो। इन्होंने केवल तीन वर्ष तक राज्य किया। इनके शासनकालमें मराठोंने तीन वार इन पर आक्रमण किया। मेवाइ राज्यको लुटेरे मराठोंने तहस नहस कर डाला। अम्बरके राजा जयसिहकी कन्याको इन्होंने ज्याहा था। उसके गमेसे राजसिह नामक एक पुत उरपंत्र हुआ था।

३ अम्बर (वस मान जयपुर)-के राजा, माघोसिहके पुत । माधीसिंहकी मृत्युके वाद प्रतापसिंहके वैमाल भाई पृथ्वीसिंह राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। परन्तु पृथ्वीसिंह अकाल हो कराल कालके गालमें फंसे। पीछे वतापसिंह अम्बरके राजा वनाये गये। उस समय राजा खुशहाछीराम अम्बरके प्रधान मन्तो थे । राजनीतिमें वे वड़े चतुर थे। इस कारण राजा खुशहाळीराम फिरोजकी शक्ति नष्ट करनेकी कोशिश करने लगे। फिरोज माघोसिहको विधवा रानीका उपपति था। राजा खुशहालीराम पहले माचेरीके सामन्तको अधीनतामें थे। परन्तु अम्बरके राजमन्त्री हो कर भी खुशहालोराम अपने पूर्वप्रभुको भूछ नहीं गये थे। वे भीतर हो भीतर माचेरी सामन्तको खाधीन वनानेका भी प्रयत्न करते जाते थे। अनेक छल वल करके फिरोजको खुशहालीराम-ने मरवा डाला । इस समय माचेरी सामन्त और ख़श-हालीराम इन दोनोंमें सार्थंका ऋगड़ा खड़ा हुआ। एक दलने लुटेरे मराठों का आश्रय प्रहण किया । लुटेरे मराठों को अच्छा अवसर हाथ लगा। वे प्रजा पर मन-माना अत्याचार करने छगे। प्रतापसिंह जन तक नवा-लिग थे तव तक अम्बरमें इसी प्रकार अशान्ति फैली रही। जव महाराज प्रतापने अपने हाथमें राज्यका भार प्रहण किया, तव उन्हों ने समस्त विपत्तियों को दूर हटा दिया। मरोठोंका दमन करनेका भी उन्होंने द्वढ़ संकल्प कर लिया

इसी समय लुटेरे मूर्ख मराठोंने हर प्रान्तमें भयकुर लूट आरम्म कर दी थी। इनके मयसे सारा भारत कांप उठा। महाराज प्रतापसिंहने यह निश्चित कर दिया, कि अव मराठोंका दमन किये विना राजपूतानेके राज्योंका मङ्गल नहीं है। १७८७ ईं॰में मारवाड़के सिंहासन पर महाराज विजयसिंह सुशोभित थे। प्रतापसिंहने मारवाड़-राजके पास दूतके हाथ एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था, "लुटेरे और हमलोगोंके दुश्मन मराठागण हृदयमेदी अत्याचारोंसे हमलोगोंको तंग तंग कर रहे हैं। इस कारण उनका दमन करना हमारा फज है। समस्त राज-प्त-राजाओंको चाहिये, कि वे आपसमें मिल कर युद्धमें अपने शत्रुको परास्त करें और तव फिरसे निश्चिन्त हो कर राज्य करें। मैंने खुदसे रणप्राङ्गणमें जा कर मराठों को दण्ड देनेका विचार कर लिया है। अतएव यदि आप अपनी राडोर-सेनाको मेरी सहायताके लिये मेज दें, तो मैं आसानोसे अपनी जातिके शलुओंका अहङ्कार मट्टीमें मिला दूं।" वह पल पाते ही मारवाड़पति विजयसिंह-ने सेनाको तैयार हो जानेका हुकुम दे दिया। इसके पहले हो वड़ी मुसीवतमें पड़ कर अजमेरका अधिकार मराठोंको दे दिया गया था। इस समय प्रतापको विशेष उद्योगी देख कर पुनः अजमेर पर अधिकार करनेको कामनासे वे अप्रसर हुए। वलवान राठोर-सेनाके सेना-पति नियुक्त हुए जवानदास।

तुङ्गा नामक स्थानमें मराठोंके नेता सेंधिया और उनके शिक्षित फरासीसी सेनापित डिवाइनने बड़ी तेजी-से मारवाड़ और जयपुरकी संयुक्त सेना पर धावा वोल दिया । दोनों दलमें घमसान युद्ध होने लगा । अपनी जाति की रक्षाके लिये वीर राठोर और कछवाहे लडने लगे। संधिया भाग चला, उसकी सेना तितर वितर हो गई। मराठीसेना युद्धके सामान छोड़ कर चम्पत हुई। विजयी राठोर और कछवाहोंने उस धनको आपसमें वांट लिया। इस युद्धके विजयीपलक्षमें प्रतापसिंहने एक वहुत वड़ा उत्सव किया।इस उत्सवमें २० लाख रुपये दीन दुखियोंको वाँदे गये। प्रतापिसहकी वीरता और युद्ध-कोशलसे मराठा लुटेरॉका अभिमान महीमें मिल गया । अव राजपूतानेमें पुनः शान्ति विराजने छगी। परन्तु गृहः कलह और विजातीय आक्रमणींसी जर्जरित राजपूतानेके राजाओंमें इस विजयकी शान्ति वहुत दिनों तक न रह सकी।

प्रतापसिंहकी सलाहसे मारवाइराजने अपनी सेना
तुङ्गारके युद्धमें भेज दी थी। इस समय माघोजी
सेंधिया मारवाड़ पर चढ़ आया। मारवाइराजने प्रतापसिंहसे मदद मांगी। इन्होंने भी अपनी सेना भेज दी।
परन्तु सेनाके पहुंचने पर राठोर भाटोंने कल्लवाहोंकी
निन्दा गाई, जिससे वे वड़े विगड़े। उनका क्रोध इतना
वढ़ा कि वे इस वातको भूल गये कि हमको क्या करना है।
राठोर और महाराष्ट्र सेनामें लड़ाई चलने लगी। कल्लवाहोंकी सेना वैठी वैठी तमागा देखतो रही, मरोठोंकी
जात हुई। यदि वे इस वार भी दोनों सेना मिल जातीं,

तो मराठोंका द्पं सर्वदाके छिये चूणं हो जाता। यह वृत्तान्त सुन कर प्रतापसिंहको वड़ा दुःख हुआं। १८०३ ई०में महाराज प्रताप इस छोकसे चळ वसे।

८ खएडे लाके राजा राव इन्द्रसिंहके पुंत । पिताकी मृत्युके समय ये विलक्तल वालक थे। इनके मन्त्रियोंने मराठोंको काफी धन दे कर इनकी रक्षा की। उस संमय खण्डेलाके दो अघोध्वर थे, प्रतापसिंह और नर-सिंहदास । प्रतापिस हसे जन अम्बरके राजा कर मांगते थे, तब वे अपना निर्दिष्ट कर दे दिया करते थे, परन्तु नर्रासहदास नहीं देते थे। इस कारण अम्यरराजके सेना-पति नन्दराम सेना छे कर इछदिया आये। प्रताप-सिंहने अच्छा मौका देख कर अम्बरराजके सेनापितसे कहा, 'यदि खण्डेलाप्रदेश हमारे दखलमें करा दिया जाय, तों में समस्त खण्डेळाका कर दुंगा।' सेनापतिने इसे कवूल कर लिया। यहां तक कि, प्रतापसिंहको समस्त खण्डेला-राज्यका अधिकारपत दे दिया गया। प्रतापसिंहने भी उस राज्य पर अपनी गोटी जमा ली। नर्रासहदास गोविन्द्गढ़में जा कर रहने छगे । प्रतापसिंहने गोविन्दगढ़ पर भी आक्रमण कर दिया। परन्तु नन्दराम इलदियाने रिशवत ले कर नर्रासहको पुनः राज्य दिला दिया। नन्द-राम हलदियाके भाग जाने पर अम्बरराजका सेनापति आशाराम पुनः इस प्रदेशमें घुसा और घोखेसे प्रतापृसिंह तथा नरसिंह दोनोंको कैद कर लिया। प्रतापसिंह बहुत दिनों तक कारागारमें रहे । जब मारवाड्राज और अम्बर-राजमें युद्ध आरम्भ हुआ, तव प्रतापिसह और नर्रासह दोनों छोड़ दिये गये। नरसिंहदास तो मारवाड़के युद्धमें मारे गये, परन्तु प्रतापका पता नहीं।

व्रतापस (सं॰ पु॰) तपसि साधुः अण् प्रकृष्टस्तापसः, प्रादिस॰। १ प्रकृष्टतापस, उत्तम तेजसी।२ शुक्कार्क वृक्ष, सफेद मंदार।

प्रतापादित्य नङ्गज कायस्थ-कुलतिलक गुह्वंशीय यशो-हराधिपति । जिस समय (१५६४ ई०मं) इनका जनम हुआ, उस समय अफगान वा पडान जातीय मुसलमान-राजा वङ्गाल, विहार और उड़ीसाका शासन करते थे। प्रतापके जन्मके कुल पहले सुलेमान करानी वङ्गाल और विहार जीत कर उड़ीसा जीतनेका आयोजन कर रहे थे। कालापहाइ नामक एक स्थापतयागी हिन्दूने उड़ीसा पर दलल जमाया। इस समय प्रवल प्रताप अकवरशाह दिलोके सिंहासन पर अधिष्ठित थे और सारे भारतवर्षमें उनकी तृती वोल रही थी। सुलेमानने वादशाहको उपढ़ी-कन भेज कर खुश कर रखा था। इस कारण अकवरने वङ्गालजयको और दृष्टिपात नहीं किया। इस समय गीड़नगरमें वङ्गालकी राजधानी थी।

गौड़तगरमें प्रतापका जनम हुआ था। इनके पिता श्रीहरि और वाचा जानकीवहम नवावके अधीन कानूनगोका काम करते थे। वांनों आई परम वैणाव थे। कहते हैं, कि जिस समय कालापहाड़ने उड़ीसा जांत कर जगजाथमूर्ति तोड़नेकी आज्ञा ही, उस समय श्रीहरिकी वेशसे पंडा लोगोंने जगजाथमूर्ति अन्यत खिपा रखा था, इस कारण मूर्तिकी रक्षा करनेमें समर्थ हो श्रीहरिने अपनेको लतार्थ समका था।

१६वीं शताब्दीके मध्यमागमें बङ्गालका भाग्यचक वहुत कुछ परिवर्तन हो गया। किन्तु जब जो राजा सिंहासन पर वैदे, उन्होंने श्रीहिर और जानकोबलमके गुणसे वशीमूत हो उन्हें अपने अपने पदसे च्युत नहीं किया। इस प्रकार दोनों भाई नवाबके यहां नीकरी करके थोड़े ही दिनोंमें धतशालो हो गये थे। नवाब सुलेमानशाहने श्रीहरिको 'विक्रमादित्य' और जानको बहुम को 'वसन्तराय'-की उपाधि दो। तबसे ये दोनों भाई उपाधि नामसे ही प्रसिद्ध हुए।

उस समयकी रीतिके अनुसार प्रताप पांच वर्षकी उमरमें स्कूलमें भत्तीं हुए। उस समय पारसी राजमाया थीं, जिन्हें राजसेवा वा प्रतिष्ठालामकी इच्छा होती, वे पारसी पढ़ते थे। जिनकी इच्छा होती, वे पारसी और अरवी दोनों ही भाषा सीखते थे। प्रतापको वचपनमें उक दोनों ही भाषा सीखनी पड़ी थी।

आज जिस प्रकार देहातों में छोटे छोटे छड़के तीर धनुष छे कर खेळते देखे जाते हैं, उस समय भी उसी उसी प्रकार सवोंको धनुविद्याका अभ्यास करना पड़ता था। चोर उकतोंसे आत्मरक्षा करनेके छिये उस समय धनुर्वाण ही प्रधान बहा था। युद्धमें भी धनुर्वाणका ध्यवहार होता था। इस कारण सब कोई वहें चावसे

यह विद्या सीखते थे। प्रताप भी तीर चलानेमें वड़े सिद्धहस्त थे। उनका एक भी बार खाली नहीं जाता था। अन्यान्य अल चलाना और अभ्वारीहण आदि कार्योमें भी प्रताप वड़े दश थे।

१५७३ ई०में सुलेमानके छोटे लड़के दाऊद खाँ वङ्गाल विहार और उड़ीसाके नवाव हुए। सुलेमानने जिस मकार वादशाहको उपढ़ीकनादि भेज कर खुश रखा करते थे, उस मकार दाऊदने नहीं किया। वरन वे अपनेको अकवर शाहके मुकाबलेका समफने लगा। उन्होंने देखा, कि उनका भड़ार धनरलादिसे परिपूर्ण है, दो लाख पठान-सेना उनकी आझाका पालन करनेको हर-यक्त तैयार हैं, काफी लड़ाईके सामान, हजारों तोप उनके अक्षागारमें मौजूद हैं, कालापहाड़ आदि रणनियुण सेना उनके लिये जान देनेको तैयार हैं।

सुलेमानको मृत्युके दूसरे वर्ष मुगल सेनापित मुनीव जाँने सम्राट्का प्राय कर दाऊदसे मांग मेजा। तेज और उत्साहसे उद्दीत हो नवावने सम्राट्-सेनापितको कर मेजनेके बदले अवज्ञास्चक उत्तर मेजा। इस कारण युद्ध अपरिहार्थ हो गया। यह देख कर विक्रमादित्यने यमुना और इच्छामती नदीके वियोग स्थान पर किला वनवा लिया। उनके बन्धु बान्धव जो पूर्व बङ्गालमें रहा करते थे उनको भी वहीं युला लिया। यही वर्च-मान यशोहर जिला है। यहां पहले चाँव जाँकी जागीर थो। चाँव खाँके कोई उत्तराधिकारी न होनेके कारण वह स्थान जनशून्य हो गया। सिह बाध आदि हिस्र जन्तु-ऑको वह निवासमूमि हो गया था। धनरज्ञकी रक्षाके लिये विक्रमादित्यने उस स्थानको पसन्द किया। था।

विक्तमादित्य और वसन्तरायको राजधानीमें रहने छगे। नवाव उन दोनों पर आवश्यक कार्य भार सोंप विहारको ओर अप्रसर हुए। यहां उन्होंने सम्राद्के अधिकारस्थ एक छोटे दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। यह संवाद पाते ही अकवरणाहने एक वड़ी सेना युद्धक्षेत्रमें मेजी। सम्राट् सेनापति मुनोम खाँ और राजा टोडर-मळने पठानसेनाको परास्त कर दाऊदको मार मगाया। आखिर पटनेके हाजीपुरमें दोनोंमें वहुत दिनों तक युद्ध चळता रहा। अन्तमें मुगळसेनाने हाजीपुरको जीत

Vol. XIV. 126

लिया। हार खा कर दाऊद उड़ीसा भागे। गौड़के धनी और सम्म्रान्त व्यक्ति राजधानी छोड़ कर यशोहरक चले गये। विक्रमादित्य और वसन्तराय छन्ने वेशमें रहने लगे। नवावने आवश्यकीय कागज पत्नको जमीन में गाड़ रखा। कुछ समय वाद दाऊदने मुगलसेना-पतिको वङ्गाल और विहार दे कर सन्धि कर ली।

सिन्ध स्थापनके वाद सेनापित मुनीम खाँन गौड़की याता कर दी। यहां महामारीका भारी प्रकोप था। प्रतिदिन इतने मनुष्य मरते थे, कि लोग शवका अच्छी तरह सत्कार नहीं कर सकते थे, केवन गङ्गाजल छिड़क कर उसे फेंक देते थे। सेनापित मुनीम खाँ भी महामारीके शिकार वन गये। नागरिक लोग, जहां जिसकी इच्छा हुई, भाग गये। इस प्रकार गौड़नगर श्मशान-सा दीख पड़ने लगा। जो स्थान हजारसे अधिक वर्ष तक अन्यतम प्रधान नगर समका जाता था, जहां के हिन्दूराजाओंने उत्तर-भारत पर भी एक दिन प्रधानता स्थापन की थी, जहां के ध्वंसावशिष्ट की त्विस्तम्भ आज भी देश विदेशके दर्शकों को तम करते हैं वह स्थान १५७५ ई०की महामारीकों, भारतके मानचित्रसे विलुप्त हो गया और उसके स्थानमें, सुदूर सुन्दरवनके जङ्गलप्रदेशमें एक अपरिचित स्थान थिशोहर नामसे प्रसिद्ध हो गया।

विक्रमादित्यने जब मुगल-सेनापितका मृत्युसंवाद् दाऊदके पास मेजा, तब उनके आनन्दका पाराबार न रहा। उन्होंने इसी समय सेना सजानेका हुकुम दे दिया और प्रायः पचास हजार घुड़सवार हे कर वे वड़े वेगसे वङ्गालको ओर चल दिये। उत्साहहीन मुगलसेना उनकी गित रोक न सकी। दाऊद मुगलसेनाको हताहत करते हुए राजमहल तक वढ़े। यहां सम्राट्के सेनापित खाँजहान और राजा टोडरमलने उन्हें रोका। मुगल-पठानमें पुनः तुमुल-संग्राम लिड़ गया। पठान लोग हथेली पर जान ले कर लड़ने लगे। इस वार भी राजा टोडरमलके उद्योगिस के कालापहाड़ आदि पठान-सेनापितयोंकी चेष्या व्यर्थ गई। इस युद्धमें दाऊदके सेनापित कालापहाड़ और खर्य दाऊद भी मारे गये। पठान-सेना छत्मङ्ग हो भाग चली दाऊदकी मृत्युके साथ पठानसेनाकी जय-आशा पर

पानी फेर गया। अव मुगलप्रभुताका जड़ वङ्गालमें वहुत मजबूत हो गई।

राजा टोडरमलने गुद्धमें फतह पा कर तमाम घोषणा कर दी, कि जो कोई वङ्गाल राजखिययक कागजपत उन्हें समक्ता देगा, उसे वे विशेषक्षपसे पुरकार देंगे। नवाद दाऊदको मृत्यु हो जानेसे विक्रमादित्य और वसन्तरायको आशा निराशामें पलट गई थी। अब दोनों भाइयोंने संन्यासीका वेश छोड़ दिया और टोडरमलसे मुलाकात की। राजा टोडरमलने उनका अच्छा सत्कार किया और शक्ति भर उन्हें मदद देनेका बचन दिया। उन्होंने भी राज्यके राजखिवययक कागजपत समक्ता दिये। इस पर टोडरमल उन पर बड़े मसन्न हुए और उनकी जागीर कायम रखी। पीछे वे दोनों भाई 'महाराजा' 'राजा' और की उपाधिसे भूयित हुए। प्रवाद है, कि विक्रमादित्य और वसन्तरायके 'राजस्विपयक कागजपतको मिसिसक्य ग्रहण कर टोडरमलने वङ्गालमें राजस्व सम्बन्धोय बन्दो-वस्त किया था।

जिस समय बङ्गालमें भाग्यच्क परिवर्तित हो रहा था, उस समय प्रताप यशोहरमें रहते थे। दाऊदकी पराजय और मृत्यु-सम्बाद पर वड़े दुःखित हुए। राजमहरूके युद्ध के वाद विक्रमादित्य यशोहर आये । यहां चद्रहो पकी एक राजकुमारीके साथ प्रताप-का विवाह हुआ। कहते हैं, इस विवाहोत्सवमें लाखीं रुपये खर्च हुए थे। इस समय इनकी अवस्था केवल चौद्ह वर्षकी थी। विक्रमादित्यके पिता भवानन्दने इनका 'प्रतापादित्य' नाम रखा था । युवक प्रताप शिकार खेलने वनमें जम्या करते थे । उस समय उनका साहस बुद्धि और कप्रसहिष्णुता आदि देख कर लोगोंको आस्वर्य होता था। १५७५ ई॰में जो महामारी हुई थी उससे गौड़ जनशून्य हो गया था, परन्तु वशोहरकी श्रीवृद्धि हुई । गौडुका यश हरण करनेके कारण यशोहर नाम सार्थक हुआ था। ऋमशः प्रतापका स्वभाव उद्धत हो गृंगा। वे वातचीतमें पिता और चाचाकी आज्ञाका तिरस्कार कर दिया करते थे। विक्रमादित्य पुत्रके इस दुर्घ्य वहारसे वड़े चिन्तित हुए। प्राणसम भाई वसन्तरायका प्रताप अपमान करेगा, विक्रमादिखको इसका भारी डर था। पीछे पुतके कारण भाईसे किसी प्रकारका विवाद न हो

इसिलिये उन्होंने युक्तिसे पुतका कहीं दूर हटा देनेका विचार किया। उन्होंने अकवरकी राजधानी आगरेमें प्रतापको मेज दिया। वसन्तरायका प्रतापमें बड़ा स्नेह था। उन्होंने भाईसे प्रतापको आगरा न मेजनेके लिये कहा था। परन्तु प्रतापने यह समम्म लिया था, कि चाचा हीके कारण में निकाला जा रहा हूं। जो हो, आगरे जानेसे प्रतापका मन्तियोंके साथ परिचय हुआ और उनको सहायतासे वादशाह अकवरके साथ भी उनकी जान पहचान हुई। प्रतापका भाग्य चमका। धोरे धोरे थे कुमार सलोम और टोडरमल आदिके मित्र हो गये।

इसके बाद प्रताप वयोवृद्धोंके साथ मुगल-द्रवारकी अवस्था और मुगलोंकी राजनीतिके गृढ़ रहस्यसे अवगत होने लगे, मुगलसेनाका समर-कौगल सीखने लगे। प्रवाद है, कि सम्राट्सभामें एक समस्याकी पूर्ण करके प्रताप सम्राट्के प्रमाजन हो गये थे। सम्राट्ने एक दिन अपने समा-सदस्योंको एक कविताका शेप चरण कह कर अपर तीन चरण पूरा करनेको कहा। यह शेप चरण था "श्वेत भुजङ्गिनी जात चलिहें" कोई भी उस समस्याकी सम्राट्के मन माफिक पूर्ण न कर सका। आखिर प्रतापने सम्राट्की अनुमति ले कर इस प्रकार पूर्ण की,—

"सो वरकामिनी नीर निहारित रीत भिल्हें। चिर आंचरको गठ पर वापिको घारहुं चल्ल चिल्हें॥ बाय वेचारी आपन मनमें उपमा चिह्हें। कैछन मरावित ख़ेतसुजङ्गिनी जात चिल्हें॥"

इस प्रकार समस्याको पृत्ति करके प्रतापने सम्राट्का विशेष अनुप्रह लाम किया था।

इस समय बङ्गालमें जागीरवारोंने मिल कर विद्रोह खड़ा कर दिया था। इस कारण राजा टोडरमल पुनः उनका दमन करनेके लिये भेजे गये। राजधानीसे टोडरमलको अनुपिर्धात देख प्रतापने एक चाल चली। यशोहरकी मालगुजारी वादशाहके खजानेमें जमा करनेके लिये विकमादित्य प्रतापके यहां भेज दिया करते थे। प्रतापने जब देखा, कि में सम्राट् और उनके मन्तियोंका विश्वासी हो गया हुं, तब उन्होंने मालगुजारी दाखिल करना बन्द कर दिया। यशोहरसे यथासमय राजकोपमें

दाखिल करनेके लिये रुपये भेजे जाते थे। परन्तु पाते थे। इस वे दाखिल नहीं होने मालगुजारी वाको पड जाने पर सम्राट्ने प्रताप-को बुला कर इसका कारण पूछा । प्रतापने उत्तर दिया, "हमारे पिता वृद्ध हो गये हैं। इस कारण चाचा ही गज्यका प्रवन्ध करते हैं। मालूम पड़ता है, कि किसी कारणसे चाचा मालगुजारी नहीं भेजते और उनकी अयोग्यताके कारण राज्यमें भी सर्वदा अराजकता केली रहती है।" यह सुन कर वादशाह वड़े विगड़े और राज कर-देने पर प्रताप हीको राजा वनानेकी उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया । वहुत शीघ्र ही प्रतापने बाकी राज्य-कर दे दिया। वादशाहने उसमेंसे तीन लाख रुपये उनको औटा दिये और उनको राजाके सनद-पत दै कर उन्हें यशोहरं भेज दिया। इस प्रकार प्रतापका पितृद्रोह फलीभूत हुआ। सन्नार्से २२ हजार सेना ले कर प्रताप वहांसे चल दिये। जव विकमादित्य और वसन्तरायने सुना, कि सम्राट्की आहासे प्रताप राज्य लेने आ रहे हैं, तब वे व हे प्रसन्न हुए। पुतको राज्य देनेके लिये विक्रमादित्य वड़े हपित हुए। दोनों भाई वड़े हर्षके साथ प्रनापको वाट जोह रहे थे। उनके अनिसे नगरवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु यशोहर पदार्पण करते ही प्रतापने नगर घेर लिया और राजकीय पर अधिकार जमाया। प्रतापको डर हुआ था कि वसन्तराय उन्हें रोवेंगे। परन्तु यहां सी कुछ नहीं हुआ। पिता और चाचा प्रतापके व्यवहारसे दुःखित हुए और नगरवासी भी हक्के वक्के हो गये। विक्रमादित्य और वसन्तराय उनके हेरेमें गये और उनकी दुधताकी कोई वात न कह कर तथा अनेक प्रकारके उपदेश दे कर राज्य प्रहण करनेके लिये उनसे कहा । प्रताप पिताके साथ राजमहलमें आये। त्रताप वड़ी घूमघामसे राज्या-भिषिक्त किये गये। राजसिंहासन पर वैठ कर प्रतापने अपने राज्यका सुप्रवन्ध करके पुत्त गोज छुटेरोंका दमन किया। प्रतापके पराक्रमको चारों ओर प्रसिद्धि हो गई। इसी समय विक्रमादित्यका परलोकवास हुआ। प्रतापने वाचाके कहनेसे उत्कलसे उत्कलेश्वर नामक महादेव और गोविन्द्देव नामक श्रीकृष्णकी मूर्त्ति यशोहरमें

स्थापित की, कई एक किले वनवाये और कालीगञ्जके निकट एक नगर वसाया जिसका नाम 'प्रतापनगर' रखा। इच्छामती नदीके किनारे रायपुर प्राप्तमें खाई खोद कर उन्होंने जहाज वनाने और उसकी मरम्मत करनेका एक कारखाना खोला, वड़ी वड़ी सड़कों वनवाई और उनके दोनों किनारे आन्त पथिकोंको आश्रय देनेके लिये वृश्चरीपे।

दिह्नीसे प्रस्थान करते समय प्रताप कमळखोजा नामक एक हव्सी जातिके अध्यसेनानायकको अपने साथ छापे थे, उसकी सहायतासे प्रतापने धीरे धीरे दश हजार, अध्यसेना सुशिक्षित कर रखी थी। पीछे उन्होंने यूरो-पीय हंगसे गोलन्दाज सेनाकी तैयारी की और पुर्त्तगीजोंकी सहायतासे कमान, गोले तथा वास्त्र तैयार करनेका कारखाना खोला। इस समय मगरी समुद्रके उपकूल भागमें 'हरमद' (Armada) अर्थात् जलदस्युगण भारी उपद्रव मचा रहे थे। लोग तंग तंग आ गये थे। उनका दमन करनेके लिये उन्होंने नौवलसेनाका संग्रह किया और पुत्त गीजोंकी सहायतासे जलदस्युको वहुत दूर तक खदेर भगाया। इन्हें अर्थका अभाव नहीं था, खजाना धन रत्नसे परिपूर्ण था।

१५८८ ई०के शेप भागमें राजा मानसिंह वङ्गाल, विद्वार और उड़ीसाके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। इस समय वङ्गाल भौर विहारमें मुगलप्रभुता वद्धमूल होने पर भी उड़ीसाने पठान मुगर्लोंके विरुकुर पदानत नहीं हुए वे मौका पा कर बङ्गाल पर आक्रमण करके ऊश्रम मचा रहे थे। इन सब उपद्रवींका निवारण और राजस्वविव-यक वन्दोवस्त सुनियमसे चलानेके लिये ही सम्राट्के प्रधान सेनापति राजपूतवीर मानसिंह काबुलसे मेजे गये थे। इस समय पठानोंने कतत्रूखांके नेतृत्वमें उड़ीसा-को जीत कर वङ्गदेशमें दामोदर नदी तक अपना अधि-कार फैला लिया था। राजा मानसिंहने दो छोटी छोटी लड़ाइयोंके वाद उन्हें परास्त किया। सम्राट्को कर देना स्वीकार करके उन्होंने उड़ीसाका अधिकार प्राप्त किया । किन्तु १५६२ ई॰में पठानोंने उड़ीसाका जगन्नाथ-मन्दिर लूटा और यातियोंके प्रति घोर अत्याचार किया। इस पर मानसिंहने वड़े कुद हो युद्धयाता कर दी।

वङ्गालके जमींदार सहायताके लिये वुलाये गये।
प्रतापकी सहानुभूति पठानों पर रहने पर भी वे मानसिंहका आह्वान प्रत्याख्यान न कर सके। विशेषतः जगबाधमन्दिरके लूटनेसे वे पठान-दलपित पर निशेष विरक्त हुए थे। कतल्लुखां इस समय जीवित नहीं थे।
प्रताप एक दल घुड़सवार और एक दल पैदल सेना ले कर खयं मानसिंहकी सहायतामें गये। उड़ीसा जीतनेके वाद वे बहुत सी मूर्त्तियां संग्रह कर अपने घर लाये थे।

मानसिंह प्रतापके व्यवहार पर वह प्रसन्त हुए और उन्होंने उनका यथेए आदर सत्कार किया। इसी समयसे वे प्रतापको स्नेहदृष्टिसे देखने लगे। प्रताप भी जहां तक हो सकता था सम्राट्-सेनापितको प्रसन्न रखनेकी कोशिश किया करते थे। उनमें एक ऐसा विलक्षण गुणधा, कि जो कोई उन्हें देखते थे, वे उन्हें प्रेम किये विना नहीं रह सकते थे। इस कारण थोड़े हो समयके भीतर प्रताप लोकप्रिय हो गये। सप्तप्राम वा हुगलीमें एक मुगल फीजदार रहते थे। राजा मानसिंहके शासनकालमें वङ्गालमें राजस्वविषयक वन्दोवस्त होता था। इस उपलक्षमें प्रजाके प्रति जैसा भीपण अत्याचार किया जाता था, इतिहास पढ़नेसे वह मालूम हो सकता है।

इस समय सरकार सिलिमाबाद, सातगाँव, बाकला आदि सरकारोंमें यथेष्ट अत्याचार हो रहा था। प्रजा अपनी जन्मभूमि छोड़ कर भाग रही थी। ऐसे निराश्रय जितने मनुष्य प्रतापके निकट पहुंचे, सर्वोको उन्होंने आश्रय दिया था। प्रतापने उन्हें रहने लायक स्थान, खेतीको उपयोगी भूमि और आवश्यकीय द्रव्यादि प्रदात किये थे। इस पर हुगलीके फौजदार प्रताप पर विगई और इसकी खबर उन्होंने मानसिंहको दी। इसका पूरा पता लगानेके लिये मानसिंहने अपने विश्वस्त कर्मचारो शङ्कर चक्रवर्नोंको वहां भेजा। किन्तु मुसलमान कर्मचारियोंके चक्रान्तसे शङ्कर केंद्र कर लिये गये। पीछे प्रतापको चेष्टासे शङ्करको छुटकारा मिला और मानसिंह, का मो कोघ ठंढा हुआ। किन्तु हुगलीके फौजदारकी कुदृष्टि प्रताप परसे न हरी। मानसिंहको निकट उन्होंने कई वार चुगली खाई, पर कोई फल न निकला।

इसी समय प्रतापने यशोहरेश्वरी शिलामयी प्रतिमा

पाई। प्रवाद है तथा दंखिण वङ्गालके वङ्गज कायस्थोंका आज भी स्थिर विश्वास है, कि प्रतापके गुणसे मुग्ध हो भगवती भजानी शिलामची रूपमें यशोहरमें आविर्भूत हुई थीं। इस घटनाके वलसे प्रतापका उत्साह और भी दूना वढ़ गया। सभी उन्हें ईश्वरानुगृहीत समम्मने लगे। प्रतापने भी भक्तिपूर्ण हृदयसे देवीका नाम यशोहरेश्वरी रख कर उनकी सेवाके लिये वशोहरका उपसत्व प्रदान किया।

इस घटनाके कुछ समय वाद प्रताप चन्द्रीपके राज-कार्यमें इस्तक्ष्रेप करने छते। चन्द्रीपके अधिपति राजा | कन्द्र्पनारायणकी मृत्यु हुई । पीछे उनके नावाछिम । छड़के रामचन्द्रराय राजसिंहासन पर वंदे। उस समय रामचन्द्रकी उमर ६ वर्षसे अधिक नहीं होगी। शायह यह घटना १६६६ ई८में घटी थी राज्यछाभ करनेके कुछ समय वाद ही रामचन्द्रराय एक भारी सङ्घटमें पड़ गये। उन्हें अपने तथा प्रजाके धनप्राणकी रक्षा करना |

इस समय जलक्ष्यु है भयसे दक्षिण बङ्गाल नितान्त उत्पीडित हो गया था। पुत्तेंगीजोंके विवरणसे जाना , जाता है, कि वे आराक्रनके राजाके अधिकारस्य वाणिज्य व्यवसायियों पर अत्याचार करते थे। उनके नेता कार्चा-लहो वाकला वा चन्द्रद्वीपमें अड्डा करके मगों और बङ्डा ४-नीयातियों का बड़ा नुकसान और अपमान करते थे। इस कारण आराकन-राजने वाकलाके कुछ अंश पर अधि-कार कर लिया। चन्द्रहीपके वाल राजा दो अत्याचा-रियों के प्रवल प्रतापसे प्रायः हतसर्वस हो गये थे। इस अवस्थामें उन्हें प्रतापकी सहायताके सिवा और कोई रास्ता सुमः नहीं पड़ा । दोनों राजवंशमें शोणित सम्बन्ध भी था। प्रताप उन्हें मद्द पहुंचानेको तैयार हो गये। उन्होंने अपने नौवलको सजा कर प्रग और पुर्त-गीजोंका दमन करनेके छिये याता कर दी। चन्द्रहीयमें प्रतापका आगमन सुन कर जलदस्युगण शीघ ही वाकला-राज्यसे भाग चले। पीछे प्रतापने आराकनके राजासे मेल कर लिया। इस समय आराकनके राजा अत्यन्त वलशाली थे। सन्धिमें शर्त यह थी, कि दोमेंसे कोई भी शत्ओंको आश्रय न देंगे। अव पुर्त्तगीज-व्रयुगण चट-थ्राम और सन्दोपकी ओर चम्पत हुए।

Vol. XIV 127

१५६८ ई०के प्रथम भागमें सम्राट् अकवरने राजा मानसिंहको दक्षिणापथके युद्धमें मेजा। मानसिंहके जाने पर हुगर्छीके फौजदार प्रतापके साथ वद्छा चुकाने का अवसर हुढ़ने छगे। अभी येनकेन प्रकारेण प्रताप-को अपमानित करना हो उनका लक्ष्य था। जो नधे ग्रासनकर्त्ता हो कर आये, उन्होंने सहजर्मे फीजवारको वात पर विश्वास कर लिया। प्रतापने शासनकर्त्ताको सन्तुष्ट रखनेको कोशिश तो की थी, पर कोई फल न हुआ। वे मुगल-सेनासे अपनेको मुक्त करनेका पड्यन्त करने छगे । इस समय दक्षिण और पूर्व बङ्गालमें इन-की क्षमता खुब चढ़ी बढ़ी थी। सर्वसाधारणके ये विय भो थे। विशेषतः अपनेकी दैववलसे विलिष्ट समभ्त कर वे उत्साहित हो गये थे। उनके अधीन ५२ हजार डाली, ५१ हजार धानुकी, १० हजार अध्वारोही और १६ हजार हाथी युद्धके लिये हमेशा तैयार रहते थे। अलावा इसके 'मुहत्पासहस्त" थर्थात् अनियपित काफी सेना भी थी। यूरोपीय प्रथासे शिक्षित गोलन्दाज-सेना और तोपका भी अभाव नहीं था । उनका भंडार धन-रतादिसे भरा था और वे अपनेको नौबलसे विशेष वलिष्ठ सममते थे। मुगलोंसे अपमानित होनेके कारण उन्होंने अपनेको खुद धिक्कारा । इस समय टोडरमल जीवित नहीं थे और न राजा मानसिंह हो दिल्लीमें थे। सलीम पिता-के विरुद्ध विट्रोह खड़ा कर उनके विरागभाजन हो गये थे। इस कारण प्रतापने सम्राट्-इरवारसे प्रतिकारकी कोई आशा न देखी । अब वे केवल अपनी तलवारके भरोसे रहे। किन्तु सहसा किसी कार्यको कर चैठना उन्होंने थच्छा नहीं समफा। इस कारण चाचासे इस विषयमें सलाह ली। वसन्तराय दिल्लीभ्यरको विलक्षण क्षमतासे अच्छी तरह जानकार थे। वङ्गालका भाग्य-चक्र उन्होंने अनेक वार वदलते देखा था। नवाव दाऊद-का भाष्यविषर्यय सर्वदा उनके हृद्यमें जागरित था। अमारोप अवस्थामें हरिनाम छे कर दिन कारनेकी उनकी प्रवल इच्छा थी । अतः प्रतापके प्रस्तावको उन्होंने श्राह्म नहों किया, वरज् यह कार्य करनेसे उन्हें वार वार मना किया। परन्तु प्रतापने उनको एक भी न सुनी। उन्होंने स्वाधीन भावसे राज्य करनेका संकल्प किया।

सस्मवतः (५६६ ई०में प्रतापने अपनेको स्वाधीन । राजा कह कर घोषणा कर दी। धूमधारमें वे महासमा-रोहसे सिहासन पर वैठे। इस उपलक्षमें वङ्गालके प्रायः । सभी राजे महाराजे उपस्थित हुए और प्रतापके कार्यमें विशेष सहानुभूति प्रकट की थी।

प्रताप राज्याभिषेकके दिन कल्पतरु हुए थे अर्थात् सर्वोको मुंह मांगा दान मिला था । प्रतापको महिको प्तापके साथ राजासन पर वैठ कर अभिषिक्त हुई थीं, उस दिन प्रताप और उनकी स्त्रीने मुक्तहस्तसे दान किया था। हाथी, घोड़े, रथ, गी, भैंस, जमीन जिसने जो वस्तु मांगी, उसे वहो मिली । यह देख कर एक ब्राह्मणने उनकी दानशक्तिकी परीक्षा करनेके लिये एक कौशल रचा । ब्राह्मणने प्रतापसे कहा, "महाराज! मैं महिषीके लिये पार्थना करता हूं।" ब्राह्मणके मुखसे यह निदाहण वात सुन कर सभाके सभी मनुष्य आग बबुळे हो उठे । वे ब्राह्मणको सभासे मार भगानेका उद्योग करने लगे । किन्तु प्रतावने सर्वोको रोक दिया । उन्होंने महिपोसे ब्राह्मणके साथ जाने कहा और ब्राह्मण-की सेवामें शेप जीवन वितानेका अनुरोध किया। उन्होंने सभास्थ व्यक्तियोंको सम्बोधन करके कहा "मैंने प्रतिका को है, कि मुक्तसे आज जो चाहेगा, उसे वही दान करूंगा। अभी में अपना अर्द्धाङ्क दान करके सत्यका पालन कर्त्व'गा।" प्रतापका दृढ़ता देव कर सभी चमत्हत हो गये। प्रताप-महिषी प्रतापकी अनुरूपा थीं। वे ब्राह्मणके पास जा खड़ी हुईं और हाथ जोड़ कर ब्राह्मणके आदेशको अपेक्षा करने छगीं। ब्राह्मण भी यह विस्मयकर व्यापार देख कर अवाक् हो गये। अव उन्होंने कहा, "महाराजको दानशक्ति जाननेके लिये मैंने ऐसी असङ्गत प्रार्थना की है। महिबी मेरी कन्या स्वरूप है, मैं पुनः महाराजको दान करता हूं। जब आप राजा हैं, तव शास्त्रानुसार मेरा दान होनेको आप चाध्य हैं।" प्रतापने पहले तो इसे स्वीकार नहीं किया, पर पीछे शास्त्रके व्यवस्थानुसार महिपीकी तौलके वरावर अर्थ दे कर ब्राह्मण देवताको विदा किया और महिबीको पुनर्श हण किया। यहां यह भी उल्लेख कर देना उचित है, कि महिषीके वड़े लड़के-को उमर उस समय १२ वर्षकी थो। कन्या विन्दूमती-

की वयस भी ८ वर्ष और शेष दो पुत्रोंकी उमर ४१५ वर्षसे कमी न थी।

किसी समय दिल्लीसे एक भाट किव प्रतापसे कुछ पानेकी आशासे आये। उस समय प्रताप राजधानीमें नहों थे। आखेटको वाहर गये हुए थे, भाट किवे वहीं जाकर उनकी मुलाकात की। किवके आना अभिपाय प्रकट करने पर राजाने उन्हें राजसभामें आने कहा। इस पर किवने गिड़गिड़ा कर कहा, "महाराज! मुक्ते आये बहुत दिन हो गये हैं, सौभाग्यवश आपके दर्शन हो गये। फिर न मालूम कव दर्शन होंगे। इस कारण आपकी जो इच्छा हो, अभी देनेकी हुपा करें।" प्रतापने उसी समय उन्हें एक घोड़ा और सहस्र मुद्रा पारितोषिकमें दों। माटने प्रतापकी दानशीलता देख कर कहा था, "मैं भारतके कोने कीने ग्रुमा हूं, पर महाराज जैते वानशील राजाको कहीं भी न देखा।"

प्रतापकी दानशीलताने प्रतापको सर्वजनप्रिय वना दिया था। वसन्तराय मितव्ययी थे। दुर्धोका दमन करने-में उनका विशेष ध्यान था। इसी कारण अशेष गुण रहते हुए भी वे प्रतापके समान लोकप्रिय न हुए। प्रताप-को उदारता भी असाधारण थी।

प्रतापने जिस समय खाधीनताका अवलम्यन किया, उस समय उनके गुरु श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार जीवित नहीं थे। इसके कुछ पहले उनकी मृत्यु हो चुकी थो। प्रतापने तर्कालङ्कारके भाई चएडीवरको पौरोहित्य पद पर वरण किया। तर्कालङ्कार यदि जीवित रहते, तो सम्मव था, ि वे प्रतापकी मतिको पलट सकते थे। पर 'नियतिः केन वाध्यते।'

प्रतापने खाधीनता लाभ करके अपने नाम पर सिका चलाया। अब द्वुगलीके फीजदार और मुगलशासनकता दोनों ही प्रतापकी विभूतिसे जल उठे और उन्हें दमन करनेके लिये दलवलके साथ आगे वह । उधर प्रताप भी निश्चेष्ट न थे। वे मुगलसेनापितका आगमन सुन कर सम्मुख युद्ध करनेके लिये वाहर तो न निकले, पर अनिय-मित युद्धका आयोजन करने लगे। मुगलसेनाके गङ्गा पार करने पर प्रतापकी सेनाने उनकी रसद लूट ली और उनके आने जानेका रास्ता चारों ओरसे वंद कर दिया। तंथापि मुगलसेनापति अग्रसर होते ही गये। आधुनिक वसीतीरहाट नामक स्थानके निकट इच्छामतिके किनारे प्रतापकी सेनाने मु ालसेनाको रोका। संग्रामपुर ग्राममें दोनोंमें गुद्ध छिड़ गया। मुगलसेना परास्त हुई। जो इच्छामती पार कर न सके, वे बड़ी मुश्किलसे प्राण ले कर भागे थे। इस बार मुगलोंकी बहुत सी सेना विनष्ट हुई थो। हुगलोंके फीजदार और मुगलसेनापति भी ग्राण ले कर भागे थे। यह घटना १५६६ ई०में घटो थी।

इस घटनाके वाद मुगलोंको प्रतापादित्य पर चढ़ाई-करनेका मौका न मिला। इस कारण उड़ीसाके पठानों ने पुनः विद्रोह खड़ा कर दिया। उस विद्रोहके दमन-में मुगलोंको १६०२ ई० तक उल्लेसे रहना पड़ा था। इस कारण प्रतापको अपनो शक्ति वढ़ानेका अच्छा अवसर मिल गया।

प्रतापने खाधीन हो कर भी अधिकारस्थ मुसलमानोंके ,
प्रति कभी अत्याचार नहीं किया । चरन मुसलमानोंकी
उपासनाके लिये अपने राजधानी धूमघाटमें 'टेड्रा मसजिद' नामकी एक सुन्दर मसजिद अपने खर्चसे वनता दी ।
थी । इसका कुछ अंग्रा आज भी विद्यमान है । सुनते
हैं, कि वहुतसे पठान प्रतापसे परास्त हो कर उनके यहां
नौकरी करने लगे थे । प्रतापने पुर्तगीज धर्मयाजकोंको अपने अधिकारमें गिर्जा वनानेकी असुमति दी थो । वहुतसे पुर्तगीज उनका सैनिककार्य करते थे जिनकी उपासनाके लिये प्रतापने अपने खर्चसे गिर्जा वनवा दिया था। आप कट्टर हिन्दू होने पर भी किसीके धममें आक्षेप
नहीं करते थे।

पहले प्रताप वैष्णव थे, पोछे शिलामयोका अनुप्रह लाम कर शाक हो गये थे। किन्तु जब तक तक्किङ्गार जीवित रहे, तब तक उनके शरीरमें कोई दोप घुसने न पाया।

पुत्तैगीज-लेखक डु जारिकने उल्लेख किया है, कि १६०२ ई०के शेष भागमें पुर्त्तगीज लोग चाँद खाँ-पतिका आश्रय पानेके लिये अपने दलपति कार्चाल-होके अधीन यशोहर गये। प्रतापने उन्हें आश्रय तो दिया, पर आराकन-राजको प्रसन्न करनेके लिये दलपति कार्चालहो-की हत्या कर डालो। फिर किसी लेखकका कहना है, कि प्रतापने उसकी हत्या नहीं की थी। चारघाट नामक स्थानमें हिरिस् ड्री नामका एक विनया रहता था। उसके सात बाणिज्य जहाज थे। पुत्तेगीज-जलदस्युने हिरिको बहुत तंग कर डाला था, उसके जहाज लूट लिये थे। इस पर वहांके लोग वड़े विगड़े, फलतः जव कार्वालहों आदि पुत्तेगीजगण यशोहर गये, तव वदला चुकानेके लिये एक उन्मत्त जनताने कार्वालहोंको मार डाला। उस समय प्रताप यूमघाटमें थे। दो पहर रातको उन्हें इस हत्याको खबर लगी थी।

इस समय मुगलींका ध्यान पुनः वङ्गालकी ओर आरुष्ट हुआ। परन्तु सम्राट् अकवर युवराज सलीमकी अवाध्यता और तृतीय पुत दानियालकी मृत्युसे वड़े दुःखित थे। तथापि उन्होंने मार्नासहको वङ्गाल भेजनेकी कल्पना की। किन्तु यह कार्यमें परिणत होनेके पहले ही १६०५ ई०के अक्तूवर मासमें उनका देहान्त हो गया। अव युवराज सलीम जहांगोर नाम धारण कर राजसिहा-सन पर वैठे। वङ्गदेशको अपने शासनमें लानेके लिये उन्होंने राजा मार्नासहको भेजा। मार्नासहके साथ वाईस उमराव अपनी अपनी सेना ले कर चले। प्रायः डेढ़ लाख मुगल और राजपृत सेना वङ्गाधिप प्रतापादित्यकी वलगरीक्षाके लिये मेनी गईं। १६०६ ई०के प्रथम भागमें याहा करके मार्नासह काशी पहुंचे। यहां उन्हें एक वङ्गाली ब्रह्मचारीसे कुछ सहायता मिल गई जिससे उन्हें वहुत कुछ रहस्यों-का पता लग गया।

इधर प्रताप भी निश्चिन्त नहीं वैठे थे। उन्होंने पहले-की तरह केवल यशोहरमें हो अपना हेरा नहीं जमाया, वरन मानसिहकी गति रोकनेके लिये चारों ओर सेना भेज दो। दक्षिण और पूर्वसे उन पर आक्रमण कोई न कर न सके, इसके लिये उन्होंने श्रीपुरके अधिपति केदार-रायको सतर्क कर दिया था। गङ्गातीरवन्तीं और मधिकारस्थ अन्यान्य स्थानोंके दुगं उन्होंने पहलेसे ही सिजात कर रखा था। मानसिह वह मान तक पहुंच गये, यह संवाद पा कर वे नौसेन्य, अधिकांश गोलन्दाज सैन्य और अपरसेन्य ले कर भागीरथीके किनारे जगहल नामक स्थानमें उनको वाट जोहने लगे। भागीरथी तीर-के उभय पार्श्वस्थ शामोंमे जितनी नावें थी, उन्हें वे एक जगह संग्रह कर रखा और ग्रामवासियोंको स्थानान्त-रित करके सम्राट्-सेनापतिके आहारीय संग्रहका पथ बंद कर दिया।

मानसिंहके वद्ध मान पहुंचने पर निद्या-राजवंशके पूर्वपुष्य भवानन्द मजुमदार उनसे मिलने गये। उस समय भवानन्द हुगलीके फौजदारके अधोन कानूनगोका काम करतेथे। भवानन्दने मानसिंहसे हाथ जोड़ कर कहा, "प्रमो! आपके आगमनसे इस देशके सभी भूम्य-धिकारो भाग गये हैं। हम कुंछ प्राम्याधिकारो आपके दर्शनलामकी आशासे यहां पहुंचे हैं। यदि कोई काम करनेका हमें आदेश दें, तो अन्तःकरणसे उसका प्रतिपालन करनेको प्रस्तुत हैं।" मानसिंहको उस समय भागीरथी पार करना था। इस कारण उन्होंने भवानन्दको नौका संप्रहका भार दिया। भवानन्द भो सम्राद्सेनापतिका अनुप्रहमाजन होनेकी आशासे नौका संप्रह करने लगे और थोड़े ही दिनों के मध्य गाड़ी पर लाद कर वहुत-सी नार्वे इकड़ी कर दी। अव मानसिंह भागी-रथी पार करनेका आयोजन करने लगे।

इस समय मानिसंह के साथ करीव तीन छाल आदमी थे। राजमहल के पाकु इ-राजवंश के पूर्वपुरुषने दो तीन हजार अनुवाणधारी अनियमित सेना छे कर मानिसंह का साथ दिया। मानिसंह एक दिनमें गङ्गा पार होना चाहते थे। चैत मासका दिन था। यदि गङ्गा पार करते समय प्रतापकी नीसेना उन्हें वाधा देनेको अप्रसर हो जाय, तो वे भारी विपद्में पड़ जायंगे, इस आशङ्कासे मानिसंह वहुत जल्द गङ्गा पार होनेका आयो-जन करने लगे। रातको वे सवके सव वर्द्ध मानसे रवाना हुए और चौदह कोसका रास्ता तै कर वहुत सवेरे भागी-रथीके किनारे पहुंचे। दिन भरमें सारी सेना गङ्गा पार हो गई और चायड़ा ग्रामके निकट उन्होंने छावनो डाली।

मानसिंह ससैन्य गङ्गा पार कर गये हैं, यह सुन कर प्रताप कुछ काल तक हतज्ञान ही पड़े। उन्होंने समका धा, कि मुगळसेनापित आधुनिक कलकत्तेके निकट वा बिवेणीके निस्न भागरथी पार करेंगे, परन्तु सो नहीं हुआ। वे भयानन्दकी सहायतासे न्यद्वीपके निकट भागी-

रथा पार कर चुके थे। अव प्रताप किंक तैयविमृह हो गये । तथापि उन्हों ने निराशको अपने प्रतमें घुसने न दिया और धैर्यधारण कर उनका मुकावला करनेको दिल-कुछ तैयार हो गये। उन्होंने मानसिंह पर अतर्भित अवस्थामें आक्रमण करना ही युक्तियुक्त समका। किन्तु प्रतिकृल दैववशसे उनकी एक भी युक्ति काममें न थाई। जिस दिन प्रताप ससैन्य अत्रसर होते, उसके एक दिन पहलेसे आकाश घन बटासे घिर आया। जोरसे तूफान वहने लगा, उसके साथ साथ मूसलघार वृष्टि और ओले भी पड़ने लगे। तमाम जल ही जल दिखाई देने लगा। मृष्टिसे युद्धोपकरण भरे वैकाम हो गये, तथा घोड़े हाथी रसद ढोनेवाले जन्तु आश्रयस्थान लोजने लगे। एक सप्ताह तक यृष्टि होती रही थी। इससे लोगोंको कितना कप्ट हुआ, यह वर्णनातीत है। सेनाके मध्य विश्वहुला उपस्थित और आहारीय सामग्रीका अभाव देख प्रतापको अप्रसर होनेका साहस न हुआ। सेनापितयीं-की सलाह ले कर यशोहर लौटना ही उन्होंने अच्छा सममा। मानिस हको वाघा देनेकी व्यवस्था करके प्रताप ससैन्य यशोहर लोट गये।

इस समय कालनोके दत्त प्रतापके अधीन कर-संप्राहक थे। अनियमित सैन्यसंप्रह करना भी उनका कार्य था। उन्हें आवश्यकीय संवादादि संप्रह करने और शबुशिविरमें रसदका अभाव करनेका भार दे कर तथा यमुना और भागोरथीके मध्यवत्तीं स्थानमें मानसिंह-को वाधा देनेके लिये उपयुक्त सेनादल छोड़ प्रताप यसोहर लौटे। किन्तु यदि वे जानते होते, कि उस समय शबुशिविरमें कैती शोचनोय दशा गुजर रही है, तो शायद वे एक वार शबुको वलपरीक्षा किये विना कभी भी न लौटते।

उस समय मुगलसेनामें विषम विश्वाल्या हो गई थी, मानसिंह खयं चापड़ाग्राममें अपनी वीस हजार राजपूत सेना ले कर छायनी डाले हुए थे। किन्तु अपरा पर सेनाकी दुईशाका पारावार न था। जो त्कानके समय नदी पार कर रहे थे वे जलमें ह्रव मरे। जो तंत्र्में रहते थे, उनका तंत्रू उड़ कर कहां चला गया, पता नहीं। यञ्जपात और बक्षपातसे सेकड़ों मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त हुंप। कमान और गाड़ी विलक्क वरवाद हो गई। गाथी घोड़े आदि जो सब जन्तु नड़ीके चरमें ये वे वह गये और वहुतसे डूब मरे। कड़नेका तात्पर्य यह कि मुगलसेना दुईशाकी चरमसोमा तक पहुंच गई।

मानसिंह गाडी पर जो सब नावें छाद कर लाये थे, उसी पर बैठ कर उन्होंने प्राणरक्षा जो। सेनाकी दुर-वस्था देख कर वे वहें कातर हुए। क्या करना चाहिये, भविष्यमें क्या होगा, इसी ऊहापोहमें वे पड़े रहे। उनके हिन्दूयोद्धा और सेनापति भयभीन हो पड़े। वे लोग प्रतापादित्यको भवानीका वर पुत समन्दते थे। ये सब दैवविड्म्बना प्रतापके प्रति देवीकी प्रसन्नताका परिचय है, यही उन छोगेंकी धारणा थी। मानसिंह सेनाका मनोसाव समम्ह कर चिन्तित और विवण्ण हो पड़ें। इसी समय भवानन्द मजूमदारने नाव पर रसद ला कर मानसिंहको उपहारमें दी। मान-सिंह भवानन्दकी पेकान्तिक श्रद्धा देख कर वड़े प्रसन्न हुए। भवानन्दने इस समय विश्रह्यतिष्टाके लिये प्रचुर भन्न संप्रह किया था जिसे उन्होंने मुगळसेनाको दान कर दिया। भवानन्दसे यदि यह सहायता न मिछती, तो मुगलसेनाकी दुर्गतिकी सोमा न रहती। मानसिंह अभी विशेष उत्साहित हुए और यशोहर जानेका परामर्श करने लगे।

पहले मुगलसेनापित विना आगे पीछे तेखे जिस प्रकार
यशोहर जानेमें विपदस्थ हुए थे, उस प्रकार मानसिह
इस वार न हुए । वे प्रतापपक्षीय लोगोंके हस्तगत करनेकी चेष्टा करने लगे । कसवाके किलेदार भवेश्वररायने
मानसिहकी बश्यता खीकार कर ली और अपनी शिक
भर उन्हें सहायता पहुंचानेका वचन दिया । इसके वाद
सेना और तोपश्रेणोके जाने की सुविधाके लिये मानसिह
पथ प्रस्तुत करने लगे । उस पथका नाम गींड्वक्रका
जंगल रखा गया । आज भी उस पथका कुल कुल अंश
देखनेमें आता है । मानसिहने सेनाके लिये आवश्यकीय
आहारीय और भारवाही जन्तु संग्रह करके शुभदिनमें
यशोहरकी याता कर दी ।

प्रतापने जन सुना, कि कसवा उनके हाथसे जाता रहा और अवेश्वर मानसिंहकी सहायता कर रहे हैं, तन वे र Vol. XIV, 128 मर्माहत हो पड़े। परन्तु कालिनोक इत्तकी प्रभुभिक देख कर वे पुनः उत्साहित हुए। पोछे उन्होंने सभी किले-दारोंको पवित जाहवीका जल छुआ कर देवी गिलामयी-के सामने उनसे प्रतिका कराई, कि कोई भी देह-प्राण रहते शतुके हाथ किला समर्पण न करे। प्रतापने यशोहर-रक्षाका भार अपने भांजे गुप्तजयके हाथ सौंपा। गुप्तजय हुड़ वित्त, साहसो और विश्वासमाजन थे। इतमें सव गुण रहनेके कारण वे प्रतापके एकमात प्रिय हो गये थे। उनका शरीर सुस्थ नहीं था, इस कारण प्रतापने उसे समराङ्गनमें न भेज कर पुरोके रक्षा-कार्यमें नियुक्त किया। उनका विवाह नहीं हुआ था। प्रतिपालक मामाकी परा-जयके वाद ये भवानीविषयक सङ्गीतकी रचना कर अपना समय वितात थे।

प्रतापने यशोहरके निकटवर्ती प्रामवासियोंको निरातङ्क रखनेके लिये उन्हें दुर्गसुरक्षित यशोहर भेज दिया
था। यशोहरमें काफो रसद भी संग्रह की गई। पुरके
बाहर भाक्रमणयोग्य स्थान सुरक्षित किया गया। जमीनके
अन्दर बाहद गाड़ कर रखी गई। दुर्ग और नदी तीरस्थ
स्थानोंमें तोपश्रेणी सिज्जत थो और कतिपय रणतरी इछामती तथा यसुनाके वियोगस्थान पर शहुको
वाधा देनेके लिये उटी दुई थी। इस प्रकार सज धज
कर प्रताप मानसिंहके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

मुगळवाहिनी धीरे घीरे यशोहरकी ओर वढ़ने छगी।
प्रतापने देखा, कि मार्नासह जिस नियमसे अप्रसर होते
आ रहे हैं, उससे उन पर अतर्कितभावमें आक्रमण करना
कठिन है, अगर आक्रमण किया भी जाय, तो फळाफळको
सम्भावना नहीं। इस करण उन्होंने ऐसी हाळतमें मानसिंह पर आक्रमण नहीं किया। यमुना पार करते समय
उन्हें वाधा देना हो उन्होंने उचित समका। अजगर सर्वकी
तरह मुगळसेना अप्रसर हो यशोहरके दूसरे किनारे पहुंच
गई। उम समय वैशासका महीना शेष हो चळा था।

१६:६ई०के वैशाखमासके शेपमें मानसिंह यशोहर बा ईश्वरीपुरके पश्चिम पहुंचे। यहां अपनी छावनी डाल कर उन्होंने शिष्टाचाराजुसार प्रतापके निकट दूत मेजा। दूत वेड़ी वा श्रद्धुल और तलवार ले कर गया था इस प्रकार जानेका तास्पर्य यह, कि वश्यता स्वीकार मरके वंदी होचें अथवा तलवार है कर युद्ध करें।
प्रताप मानसिंहका पत पढ़ कर वड़े कुद्ध हुए और
अपने भार केशवभट्टको समुचित उत्तर देनेके लिये
इशारा किया। केशवभट्टने दूतको लक्ष्य करके कहा,
"क्षित्वगण तलवार के वलसे ही ज्यरक्षा करते हैं जो
क्षित्वय मृत्युके भयसे शत्रुके आगे शिर कुकाता है, वह इह
कालमें नरकभोग करता है। मुसल गर्नोंके साथ सम्बन्ध
स्थापन करके जड़बुद्धिवशतः मानसिंह अपना जातीय
कर्त्तेच्य भूल गये हैं। जो कुछ हो, इस समय उनके साथ
युद्ध करना प्रतापका प्रकान्त कर्त्तंच्य है।" इतना कह
कर भट्टने दूतके हाथसे तलवार ले प्रतापको दे दी। दूत
वहांसे लीटे और मानसिंह कुल वातें उसने कह
सुनाईं। अव मानसिंह यशोहर पर आक्रमण करनेके

ईभ्वरीपुर आक्रमण करनेमें कालि दी पार करना आवश्यक था । जहां पर मानसिंहकी सेना छावनी डाली हुई थी, वहांसे उक्त नदी पार करनेकी उन्होंने सुविधा न देखीं। कारण, उसके दूसरे किनारे प्रतापको तोपश्रेणी सिजात थी और पास ही उनकी रणतरी भी चक्कर लगा रही थी । मानसिंह गुप्तचरोंके मुखसे यह संवाद पहले सुन चुके थे। इसी कारण उन्होंने उस स्थान पर कालिन्दी पार करना अच्छा नहीं समभा। व ांसे पंच कोस दक्षिण हट कर एक अरक्षित स्थानमें नदी पार करनेंकी उनकी इच्छा थी । किन्तु कार्यवशतः मानसिंह प्रतापको घोखा देनेके लिये ऐसा दिखलाने लगे, मानो वे उसी स्थान पर नदी पार करेंगे। भागीरथी पार करते समय नाव नहीं रहनेके कारण उन्हें वड़ी मुसीवतें उठानी पड़ी थीं। इस कारण वे इस वार वहुत-सी नावें गाड़ी पर छाद कर अपने साथ लाये थे। प्रतापकी इसकी कुछ भी खवर न लगी, कि मुगलसेना किस स्थान पर नदी पार करेगी। सुगर्लोने प्रतापको रणतरीके ऊपर गोला वरसाना आरम्म कर दिया और प्रतापके दुर्गका छक्ष्य करके वे तोपँ दागने छगे। प्रताप भो इस गोलावर्षणका जवाव देने लगे। उनके गोला-वर्षणके सामने वादशाही गोलन्दाज ठहर न सके। एक पहर तक गोलावर्षण करके उनकी कमान भूमिसात्

हो गई। घीरे घीरे रात ही चली, तिस पर भी मुगलीने गोला वरसाना छोड़ा नहीं। इघर उनकी सेना अंधेरी रातमें दक्षिणकी जोर हट कर अभीए स्थान पर पहुंची और वड़ी तैजीसे नदी पार करने लगी। वहां पर प्रताप-की जो मुद्दो भर सेना थी, वह सहजमें परास्त हुई। अन्यान्य सेनाओंके घटनास्थल पर पहुंचनेके पहले ही अधिकांश मुगलसेना नदी पार कर खुकी थी। इसकी खबर प्रतापको वड़ी देरीसे लगी। सबेरे जब वे उस स्थान पर पहुंचे, तव मुगलसेनाको नदीके इस पार देख हाथ मलते रह गये।

अव प्रतापको चैन कहा, वे फौरन शबु पर आक्रमण करनेका आयोजन करने छगे। प्रधान सेनापति सूर्यः कान्त गुहको मुगलसेनाके मध्य भाग पर, सेनापित प्रतापसिंहको वाम प्रार्श्व पर और गोलन्दाज सेनानायक कड़ाको विपक्षव्यूहके पाइवैभाग पर आक्रमण कर देनेको हुकुम मिला। सामन्त मदनमञ्जूको दाली सेना हे कर गोलन्दाज सेनाके पार्श्वभागकी रक्षा करनेकी कहा गया। सुखा नामक कूटयुद्धविशास्त्र सेनापति और सर्व प्रतापा-दित्य पार्वतोयसेना ले कर युद्धकी गतिका पर्यवेक्षण करने छगे। मानसिंह अद[्]चन्द्राकारकृति व्यूहरचना करके युद्धके लिये प्रस्तुत थे। प्रतापके आक्रमणका क्रीशस देख वे विस्मित हो गये। तथापि उन्होंने अति शीव्र सैन्यचालना करके वङ्गसेनाकी गति रोकदी। किन्तु बङ्गसेनाका प्रथम आक्रयणवेग मुगलसेना न सह सकी। पहले हो जो दश भुगल उमराव अवसर हुए थे, वे गोलन्दाज सेनाका तथा सूर्यकान्तगुहका आक्रमण निवारण करनेमें समर्थ न हुए। दोनों आक्रमण-के वेगसे वे जर्जर हो गये। दशों उमराव मारे गये। अव सूर्यकान्त प्रतापसिंह और रूढ़ाने मिल कर मुगलसेनाके वामभाग पर आक्रमण कर दिया। सेनाको विपहुमैं देख कर खर्य मानसिंह वङ्गसेनाकी गति रोकनेके लिये भागे वढ़ें । किन्तु उनके पहुंचनेके पहले दश हजार मुगलसेना निहत हो चुकी थी। इधर रूढ़ाके गोलन्दाजसेनाके आक्रमणसे अनेक मुगळसेना धराशायी हो रहेथे। विपद्का भयङ्कर रूप देख कर मानसिंहने सूर्यकान्तगुहकी गति रोकनेके लिये बीस हजार सेना भेजी। अर तुमुंड संप्राम चडने लगा। दोनों पक्षकी सेना हताहर हुई। फिल्तु बङ्गसेनाकी कुछ अधिक क्षति हुई। प्रायः दग हजार सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। इतना होने पर भी युद्ध चलता ही रहा। प्राणपणसे दोनों दलके योदा छड़ते रहे। सूर्यकान्तगुहने असोम साहससे राजपूत-सेता-नायक गाजी उपाधिकारी उपरावकी आक्रमण करके मार डाला । सेनानायककी मृत्यु पर राजपूत-चोर दूनी उत्साहसे लड्ने लगे। उनके विकामसे वङ्गसेना दंग रह गई। सुयोग समक्त कर मानसिंहने वीस हजार तुर्की सेना भेजी और प्रतापादित्यके अधीनस्थ सेना पर चढ़ाई कर दी। वे सब सेना वन्दूकधारी थी। प्रायः पांच हजार वङ्गसेना उनकी गोलीके शिकार वन गई। युद्धमें वलक्षय देख प्रतापसिंह स्थिर न रह सके। वे पार्वतीय सेनाको छे कर वज्रपातकी तरह मानसिंहकी अधीनस्थ सेना पर टूट पड़े। आमर्मासाशी यह पार्च-तीय सेना चर्म और असि छे कर लड़ती थीं। वे कमी कभी पृथक् पृथक् दलमें विभक्त हो कर, कभी विच्छित्र भावमें, कभी एक साथ मिल कर शतु पर आक्रप्रण करने लगी । महत्युद्धमें वन्द्रकधारी उन्हें पीछे हरा न सके। उनमेंसे अनेक पर्वतीय सेनाके हाथ प्राण गॅबाये। इसके वाद मदनमञ्जूके अधीनस्थ ढाली योदा-ने मानसिंहके अधीनस्थ योद्धा पर घावा वोल दिया। जिस हाथी पर सवार हो मानसिंह छड़ रहे थे, ढाली-सेनाने उसे मार डाला । मानसिंह तुरत जमीन पर कृद पड़े और अदुमुत शिक्षावलसे आक्रमणकारियोंको खएड खएड कर डाला । मानसिंहको विपर्मे देख महमूद आदि मुसलमान सेनापतिगण उनकी सहायता-में आगे वह । इस स्थान पर घमसान युद्ध चलने लगा । किन्तु मानसि हके गहरी चोट खाने पर मुगलसेना लड़ाई छोड़ पीछेको हट गई। पांच कोस तक पीछे हट कर उन्होंने छावनी डाळी। श्रान्त हान्त बङ्गसेना उन्हें और अधिक दूर तक खदेर न सकी । यह युद्ध सारा दिन चल्ता एहा था। मुगलसेनाकी महतो क्षति हुई थी। उनके पायः चतुर्थांश हताहत और अनेक सेना-पति निहत हुए थे।

प्रतापादित्यके साथ प्रथम संघर्षमें मानसिंह बङ्गा-

चिपका अरुभुत समरकौशल देख विस्मित हो गये । आज तक वे जिलने शबुओंके साथ छड़े थे, ऐसे शिक्षित और समरकुग्रल सेनापित उन्होंने कहीं नहीं देखा था। काबुल, दक्षिणापथ आदि देशों पर उन्हों ने अधिकार किया था सहो, पर प्रतापक्षी सेनाके सदृश शिक्षित सेनासे उन्हें कमी मुठमेड़ नहीं हुई थी। जिन सब मुगल सेनापतियों-ने अक्तवरशाहके अधीन भारतके नाना स्थानों में युद्ध किया था, वे भी बङ्गाळीका रणकीशल देख आश्चर्यान्वित हुय। मानसिंह पहलेसे ही प्रतापको चाहते थे । अभी उनके वीरत्व पर और भी मुख्य हो गये। सेनाका क्षय देख कर उन्हों ने समन्ता था, कि अपरिमित सेनाका क्षय किये विना वे प्रतापको कानूमें न कर सकेंगे। इधर वर्षाकाल-का भी समय आ पहुंचा। इन सब कारणों से मानसिंह प्रतापके साथ संधि करनेको इच्छुक हुए। उनकी इच्छा थो, कि वे प्रतापको अपने साथ दिल्ली छे जांयगे और वहां सम्राट् जहांगीरसे उनका मेळ करा हैंगे। यह सम्याद हे कर उन्नीने प्रतापके निकट एक विश्वासी अनु-चर मेजा। किंतु प्रतापने मानसिंहको बात पर विश्वास नहीं किया। वे समभते थे, कि सम्राट्से अव उन्हें मित्रता होनेकी आशा नहीं, क्यों कि उन्हों ने राजीपाधि धारण की है, अपने नाम पर सिका चढाया है, चचाकी हत्या की है, अन्यान्य जमींदारों का राज्य छीन लिया है। ऐसी हाउतमें सम्राट् उनसे मितता करे गे, यह कदापि सम्मय नहीं । विशेषतः भगवती भवानीकी ऋषासे वे जयी हो सकेंगे, यह आशा उनके हृदयसे अब भी दूर नहीं हुई थी। उपस्थित युद्धमें उनका वलक्षय होने पर भी मुगलों की विशेष क्षति हुई थी । इन सब कारणों से उनके मन्त्री आदिने मानसिंहके भेजे हुए प्रस्तावको खीकार करनेकी सलाह न दी। प्रतापके आत्मीय, खजन, गुरु, पुरोहित सवी ने संधिका पक्ष समर्थन किन्तु प्रतापने किसीकी वात न सुनी केवल मंबीकी ही वात पर वे डरे रहे।

अनन्तर मानसिंहने यशोहरको घेरनेकी चेटा को। जिन सव उपायोंका अवलम्बन करके प्रताप उनके शिविर-में रसद पहुंचने न देते थे, उन्हीं सव उपायोंका अवलम्बन करके वे प्रतापकी राजधानीमें, जिससे खाद्य-सामग्री पहुं-

चने न पावे, उसकी चेष्टा करने छगे। इस समय यशो-हरमें वहुतसे लोगोंका वास था। पार्श्ववत्तीं अनेक स्थानोंके छोग निरातङ्क होनेकी आशासे यशोहर जा कर रहने लगे। प्रताप भी अनेक ग्रामींको जनशून्य करके वहांके वासियोंको यशोहर लाये थे। इन सव लोगो को खाद्य सामग्रीका वहुत कप्ट होने छगा। सेनाके छिये भी वहुत कप रसद वच गई थी। जिस जिस स्थानसे खाद्य-सामग्री संग्रहीत होती थी, उन सव स्थानों के छोगों ने मुगलोंका पक्ष अवलम्बन किया। एकमात कालनीके दत्त प्रतापके पक्षमें रह गये। वे जहां.तक हो सका, खाद्यादि संग्रह करके यशोहर भेजने छगे। किंत इतनी सामग्रीसे क्या हो सकता था? थोडे ही दिनों के मध्य यशोहरमें अजका विलक्षल असाव हो गया । प्रतापके लाख नेष्टा करने पर भो अन्न कष्ट दूर नहीं हुआ । उन्हों ने एक दिन फिर-से मुगलसेना पर आक्रमण कर दिया और विजय प्राप्त की। परंतु इस पर भी मुगळवाहिनीने यशोहरका परि-त्याग नहीं किया। वे अपने सुरक्षित शिविरमें ही रहने लगीं। प्रतापने मानसिंहको युद्धमें परास्त तो कर दिया, पर वे उन्हें यशोहरसे न भगा सके। रसद घट जानेसे प्रतापकी सेना वहत कष्ट पाने लगी।

एक दिन युद्धावमानके वाद प्रताप रातको वन्धु और अमात्योंके साथ वैठ कर पासे खेल रहे थे। इसी समय एक भिलारिनी वृद्धे औरतने उनके पास आ कर अपना दुखड़ा रोया, वह एक तो त्रूढ़ी थी, दूसरे अन्नका कष्ट, इस कारण राजनीतिका अर्थं उसे कहां तक मालूम हो सकता था। बार बार अन्न भिक्षा करके उसने मताप-को तंग कर डाला। अभी प्रतापका स्वभाव पहलेके जैसा रहा नहीं, उन्होंने कठोर होना सोख लिया था । विशे-षतः ऐसे अन्नकष्टके समय वे कितनेका अभिलाष पूर्ण कर सकते ? इस समय वे नशेमें चूर रहते थे। वृद्धाकी कातरोक्तिसे उन्हें दया तो क्या आवेगी, क्रोधका उदय हो आया। उन्हों ने उसे वध्यभूमिमें हे जा कर उसके दोनों स्तन काट डालनेका हुकुम दिया । घातकने फौरन हुकुम तामिल किया। शङ्कर प्रभृति मन्त्रियों ने भी राजाको इस काजसे नहीं रोका। राजाशाके विरुद्ध किसीने एक बात भी न कही।

विजातीय कोधके वशवत्तीं हो कर प्रताप इस जघन्य कार्यका आदेश दे अन्तःपुर चले गये। महिपीके निकट जा कर उन्हों ने मानसिक शान्तिलामकी चेष्टा की। फिन्तु जो कार्य करनेका उन्हों ने आदेश दिया उससे उन्हें शान्तिलामकी सम्मायना कहां ? जीवनकी शान्ति अव फिर उन्हें मिलनेको नहीं।

प्रवाद है, कि प्रतापने उस रातको मानसिक क्लेश दूर कर की आशासे खूव शराव पी ली । नशेको उत्तेजना-से वे सभी वात भूछ गये, वेचैन हो पड़ें । महिपीके साथ क्रीड़ा कौतुक करके रात वितानेको चेष्टा करने छगे। इसी समय एक दिन्यबस्त्र और दिव्यालङ्कार पहनी सोलह वर्षकी दिव्याङ्गनाने उनके केलिगृहमें प्रवेश किया और भिक्षान्नके लिये प्रार्थना की । उसे भ्रष्टा स्त्री समक कर राजाने राजपुरीसे निकल जानेको कहा। जाते समय उस दिव्याङ्गाने भी कहा, "महाराज ! सत्यपाशसे मुक्त हो कर मैंने तुभे परित्याग किया । तुमने मुखे 'जाओ' ऐसा कहा है, इस कारण तुम अब मेरा अनुप्रह-लाभ करने योग्य नहीं।" यह निश्चय है, कि मनुष्य जव तक ईश्वरदत्त शक्तिका अपव्यवहार न करेगा, तव तक ईश्वरकी उस पर कृपा वनो रहती है । क्षमताका अप-व्यवहार करनेसे ईश्वरके अनुप्रहलामसे वश्चित होना पड़ता है। यही कारण है, कि भगवती भवानी उन्हें छोड देनेको वाध्य हुई'। प्रतापादित्यने जब तक कुमार्गे-में पांच नहीं उठाया तव तक सभी लोगों की उन पर सहानुभृति वनी रही। ज्यों ही वे जनसाधारण-के प्रति असदुज्यवहार करने लगे त्योंही वे अप्रिय हो उठे और दैवानुप्रह भी उनसे हट गया।

नगर भरमें वृद्धाका स्तनच्छेद-वृत्तान्त फैळ गया।
यह घटना सुन कर सवो के रोंगटे खड़े हो गये। प्रतापको जो दिलसे चाहते थे, वे भी जानी दुश्मम हो गये।
प्रताप पक्षके स्वजन, गुरु पुरोहित आदिने अभी प्रतापका
पतन अवश्यम्भावी समका, सवोंका मन अत्यन्त विषण्ण
हो गया। प्रताप जनसाधारणकी सहानुभूति खो वैठे।
केवल सेनाकी ही उन पर पूवंकी-सी अद्धा वनी रहो।
इस घटनाका सम्याद मुगल-शिविर तक पहुंच गया।
मानसिंह आदिके आनन्दका पारावार न रहा। उन्होंने

विश्वासी चरको गुप्रनावमें यहोहर नेजा और नगर-वालियों को अपने दलनें मिला छेनेकी कोशिश की। इसी वीचमें एक झार घटना घटी जिससे लोग और भी विचलित हो गये।

यशोहरेश्वरी जिलामयी प्रतिना दक्षिणस्या थीं। हडान् रात नरमें वे पिल्वनात्या हो गई। सर्ना लोग कहते लगे, कि देवी प्रतापके प्रति विरक्त हो विमुखी हो गई हैं। सर्वसाधारणका नन इस घटनासे नितान्त विहल हो गया। उन्हों ने समन्द्रा, कि प्रताप देवी भवानीसे परित्यक हो गये, उन्हें अब युद्धमें कथ पानेकी करा भी आज्ञा न रही। सदों के मनमें इस प्रकारको एक घारणा वहमूल हो गई। इधर मानसिंह आदि भी अवसर समक्ष कर सदों को और भी विनीपिका दिखलाने लगे। धीरे धीरे यशोहर वासियों ने सम्राह्का साथ देना स्वीकार कर लिया और रातको वुपकेसे वे मुगल-सेनाको यशोहर छोड़ देगे, ऐसा अङ्गीकार किया।

यशोहरके दुर्गरसक गुनजयको यह संवाद पहले मान्द्रम न हो सका। इस कारण वे उस मकार प्रस्तुत भी न थे। उन्होंने यह भूछ कर भी नहीं समन्त्र था, कि प्रतापके गुरु पुरोहित और बारनीय स्वजनगण मुगली का पश्च अवलन्यन करके चुपकेले शह के हाथ नगर समर्पन करेंगे। दितु हो पहर रातको जब राजपुत्रसेनाने नगरने बवेश कर सि'इनाद् किया, तव उन्हें समन्दनेमें देर न छगी। उन्होंने देखा, कि नगर पर अधिकार कर अयरिनेय मुगळ सेना दुर्ग पर आक्रमण करने आ रहां हैं। बद वे सान-र्ध्यानुसार दुर्गस्काको चेष्टा करने छने। उनका सेना भवने अपने स्थान पर उट गई और शतुके ऊपर अजन्न-घारले अन्तिषृष्टि करने छगा । इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा दुर्गरक्षो सेनाकी संख्या बहुत धोड़ी थी तो भी उन्होंने प्राणपणसे युद्ध किया। उन्हें पूर्ध आशा थी, कि प्रताप इस समय वा कर उनकी सहा यता करेंने, किंतु उस समय भताप वृमघाटमें ऐंग कर रहेथे। वे समय पर युदस्थङमें पहुंच न सके। दुर्गरही-सेना अपनी शक्ति भर युद्ध करके ह्यान्त हो

गई। बहुतसे गृतृके ग्रिकार वन गये। गुप्ततय दुर्ग-रह्मा असन्तव देख राजपरिवारस्य खिल्यों को तथा यथासम्भव आवश्यकीय द्रव्यादिको छे कर नाव पर चड़े और बृज्यादकी ओर चछ दिये। दुर्ग गृतुके हाथ छ्या। सुग्छपञ्च नितान्त उत्साहित हुआ। प्रतापने यह दावण सम्बाद पा कर भी बाह्यतः किसी प्रकारका विपादिच इ

यशोहरदुर्न शतुके हाय छना, शिछाप्रयां विसुधी हुईं, उनके गुर, पुरोहित, आत्मीयस्त्रजन मनायका परिस्थान कर शतुके साथ मिछ नथे। इतना होने पर भी प्रतापका साहस और उन्होंह यहा नहीं। उन्होंने युंच करना हो पण किया। उनका सङ्क्ष्य और प्रतिक्षा अटल रही। प्रतापने पक समय मानसिहको इन्द्र-युद्धमें आद्वान करके यह युद्ध येन करना चाहा था। परन्तु जयपुरराज इस समय वृद्ध हो गये थे, इस कारण प्रनापके प्रस्तावको सीकार नहीं किया। अब प्रताप अनकितमावसे मानसिह पर आक्रमण करनेका अवसर दुड़ने छने। किंतु मानसिहके शिविरमें प्रतापका गुप्त रहस्य माजून हो जाया करता था. इस कारण मुनछसेना प्रतापकी वेद्य वर्थ करनेके छिये हमेगा प्रस्तुन रहती थी। बीच बोचमें करहरुद्ध चळने छना।

पक्ष दिन प्रवाप थोड़ीसे अधारोही सेना छे करअविकृत भावसे पक्ष दृष्ट नुगलसेना पर आक्रमण करिंके
लिये वाहर निर्मेश । प्रायद यह संवाद नुगलोंको पहले ही
आर पुत्र भी थे। ग्रायद यह संवाद नुगलोंको पहले ही
नाल्म ही सुका था। नुगलसेनाके आक्रमण करिने पर
उन्होंने देखा, कि बारों ओरसे नुगलसेना उन्हें चेरनेको
तैयारी कर रही है। अद उन्होंने लीट जाना ही अच्छा
समन्ता। किंतु मानसिंह आदिने आ कर उनका रास्ता
रोक दिया। अनंतर जय अयवा प्रायकी आग्रा नहीं
है यह देव कर प्रताप मृत्युका आलिद्दन करनेको तैयार
हो गये। वे थोड़ी-सी सेना छे कर वज्रपावकी वरह
मानसिंह पर हुट पड़े। किंतु थोड़ी देर तक युद्ध
वरनेके वाद प्रवाप सज्ञाद-सेनापविको ग्रारीरसी सेनाका संहार कर मानसिंहके साथ भिड़ गये।
मानसिंहकी उनर इस समय ६० वर्षसे अधिक हो सुकी

Yol. XIY. 129

थी। गत युद्धमें आहत हो कर उनका शरीर भी वैसा सुस्थ न था। तो भी वे मानके डरसे युद्ध करनेको वाध्य हुए। अव दोनोंमें युद्ध चलने लगा। विचित शिक्षा और अद्भुत कीशङसे वे प्रतापकी सभी चेषा निष्फल करने लगे। मानसिंहने जो अद्दुभुत निपुणता दिखा कर चढ़ती जवानीमें सम्राट् अकवरकी जीवनरक्षा की थी, इस बुढ़ावा समयमें भी उस युद्धपदुताने उनका परित्याग नहीं किया। कुछ समय छड़ते रहनेके वाद प्रतापने उनका कवच भिद् डाळा। अव मानसिंह असि-चर्म ले कर युद्ध करने लगे। दोनोंकी सेना दर्शककी तरह टकटकी लगाये देखने लगी। वहु काल तक युद्ध करते रहनेके वाद प्रतापने मानसिंहको भूमिशायी कर दिया और खड्ग ले कर उनका संहार करनेके लिये अपना दाहिना हाथ उडाया। ठोक इसी समय पोछेसे कचुरायने आ कर प्रतापका दाहिना हाथ अपने खड्गसे दो खएड कर डाळा। प्रताप भी मूर्विछत .हो कर जमोन पर गिर पड़े। मुगलींने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया।

प्रतापकी मृत्यु निश्चय हो गई है, यह समफ कर उनकी सारी सेना तितर वितर हो गई। कुमार उद्य, सेनापित सूर्यकान्त आदिने पराजयके वाद प्राण रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं, यह समफ कर सवींको छीटाया और मुगछसेना पर फिरसे आक्रमण कर दिया। अब फिर तुमुछ-युद्ध छिड़ गया। मुगछसेना कितनो निहत हुई, उसकी शुमार नहीं। इधर कुमार उदय भी कच्चूरायके हाथसे यमपुर भेजे गये। सूर्यकान्त कड़ा आदि सेना पितयोंने एक पक कर प्राणविसर्जन किया। इतने पर भी मुद्दी भर बङ्गसेनाने युद्ध नहीं छोड़ा। प्रतापके साथ उनका सुशिक्षित सैन्यदछ और सेनापितगण मारे गये। मन्त्री शङ्कर भी कैंद्र कर छिये गये।

मानसिंह आहत प्रतापको कैंद कर उनकी शुश्रूषा करने छगे। कुछ दिन वाद प्रताप होशमें आये, पर उन्होंने किसीसे एक वात भी न कही। मानसिंहने उन्हें लोहेके पिंजरेमें कैंद कर रखा। प्रतापकी स्त्रोने इस दुर्घटनाका संचाद पा कर यमुना नदीमें आत्मविसर्जन किया। कचुराय 'यशोहरजित्'-की उपाधि पा कर यशो-हरके राजा हुए। प्रतापका जो पुत बन्दी हुआ था उसे सम्राट् जहांगीरने मुसलमानी धर्ममें दीक्षित कर पञ्जावमें वसाया। सुनते हैं, कि उनका वंश आज भी मौजूद है। कञ्चराय निःसन्तान थे। उनके माई चन्द्रशेखर राय्रके वंश आज भी नूरनगर और खोड़ागाछीमें वास कर रहे हैं।

मानसिंद्दने कचुरायको यशोहरमें अभिविक्त कर दिलीको याता कर दो। यशोहरको अधिष्ठाती शिला-मयो देवीप्रतिमाको चे अपने साथ ले गये और राजधानी अम्बरमें उनकी प्रतिष्ठा को। पुरातन जयपुरमें आज भी वह प्रतिमा देखनेमें आतो है। वहांके लोग उन्हें शिला-देवी कहते हैं। अम्बर देखो।

दिल्ली लाते समय प्रतापका वाराणासीमें देहान्त हुआ । कोई कोई कहते हैं, कि उनकी मृतदेह दिल्ली लाई गई थी, पर यह कूट है। कहा जाता है, कि सम्राट् जहांगीरने प्रतापको मृत्यु पर शोक प्रकट किया था। इस प्रकार प्रतापने अपने प्राणकी आहुति दें कर मातृपूजाहप महायज्ञका उद्यापन किया था।

प्रतापादित्य—१ गढ़ादेशाधिपति एक राजा। २ काश्मीर प्रदेशके एक राजा। राजा १म युधिष्ठिरकी राज्यच्युति-के बाद हुएँ राजा हुए सही, पर तमाम अराजकता फैल गई। मन्त्रियोंने राज्यकी दुरबस्था देख प्रतापादित्य नामक किसी भिन्न देशीय राजपुतकी खदेशमें बुलाया और राजपद पर अभियिक किया। ३ काश्मीरके कर्कोट वंशीय एक राजा, राजा दुल भवद्ध नके पुत्त। राजमहिषी नरेन्द्रमभाके गभेसे इनके चन्द्रापीड़, सुकापीड़ और तारा पीड नामके तीन पुत्त उत्पन्न हुए थे।

प्रतापी (हि॰ वि॰) १ प्रतापवान, इकवालमंद। २ दुःख-दायी, सतानेवाला। (पु॰) ३ रामचन्द्रके एक सलाका नाम।

प्रतारक (सं । ति ।) प्रतारवतीति प्र-तृ-णिच्-ण्डुल् । १ वञ्चक, ठग । २ धूर्च, चालाक ।

प्रतारण (सं० क्ली॰) प्र-तृ-णिच्-भावे-ल्युट्। वश्चन ठणी। पर्याय—प्रतारणा, व्यलीक, अभिसन्धान।

Ę

सः चीनके इतिहासमें इन कर्कोटबंशीय राजपुत्रोंके नाम मिलने हैं।

व्रतारणा (सं॰ स्त्री॰) व्रतारण-स्त्रियां राप्। वञ्चना, उगी ।

प्रतारणीय (सं॰ ति॰) प्र-तृ-णिच् अनीयर् । प्रतारणयोग्य, ठगने लायक ।

प्रतारित (सं० ति०) प्र-तृ णिच्-क । १ वश्चित, जो उगा गया हो। २ पारप्रापित।

प्रतिचा (हिं॰ स्त्री॰) धनुपकी डोरी, ज्या, चिल्ला। प्रति (सं॰ अध्य॰) प्रथते इति प्रथ-विख्यातौ वाहुलकात् इति । बोस उपसगीं मेंसे पांचवां उपसर्ग, एक उपसर्ग : जो शब्दोंके आरम्भमें लगाया जाता है और नीचे लिखे अर्थं देता है। १ प्रतिनिधि। २ विपरीत। ३ प्रति-कूल। ४ परिवर्त्ते । ५ प्रत्येक । ६ पुनर्वार । ७ लक्ष्य । ८ ऊपर। ६ लक्षण, चिह्न। १० आभिमुख्य। ११ वीप्सा । १२ व्यावृत्ति । १३ प्रशस्ति । १४ विरोध । १५ इत्यम्मूत कथन । १६ अख्यमाता । १७ अंश, भाग । १८ प्रतिदिन । १६ साद्रश्य । २० निश्चय । २१ निन्दा। २२ स्वभाव। २३ व्याप्ति। २४ समाधि। २५ व्यावृत्ति। २६ प्रशस्ति।

प्रति (हिं० अध्य०) १ सामने, मुकाबिलेमें । २ ओर, ! तरफ। (स्त्री॰) ३ कापी, नकछ। ४ एक ही प्रकार-की कई वस्तुओं में पृथक् पृथक् एक एक वस्तु, अइद। प्रतिक (सं० ति०) कार्यापणेन क्रीतः (कार्यापण हिठन, बक्तव्या प्रतिरादेशश्च वा । पा भारार्थ्य वार्तिक) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या टिठन्। १ कार्यापाणिक, जी १६ पण वा ८२८० कौड़ियोंमें खरीदा गया हो।

प्रतिक : युक (सं० पु०) विपक्ष, शब् ।

प्रतिकएड (सं॰ अन्य॰) कएडे कएडस्य समीपे वा वीप्-सार्या सामीये वा अव्ययीमावः। १ कएठ कण्डमें। २ कण्डसामीव्य।

प्रतिकर (सं॰ पु॰) प्रति-क्र-विक्षेपे भावे अप् । १ विस्ती-र्णता । २ विक्षेप ।

प्रतिकर्तुं (सं॰ ति॰) पृति-इ-तृच् । पृतीकारकर्त्तां, बदला चुकानेवाला ।

पुतिकत्तं व्य (सं वि) पृति-इ-तव्य । पृतिकरणीय, वदला चुकाने लायक।

पार्थिवादिवत् समासः। १ पूसाधन, यह कर्म जो किसी दूसरे कमैंके द्वारा पुरित हो। २ वेश, भेस। ३ पृति-कार, वदळा । ४ अङ्गसंस्कार, शरीरको संवारना । ५ विद्यमान गुणान्तराधान।

प्रतिकर्प (सं॰ पु॰) प्रति-कर्प-भावे-घन्। समाकर्षेण। प्रतिकल्य (सं॰ ति॰) अतिकल्पनीय, सजाने लायक । प्रतिकश (सं वि वे) प्रति-कश-गतिशासनयोः अच्। १ सहाय, सहायता करनेवाला। २ पुरोग, पथदशैक। ३ बार्त्ताहर। (पु॰) प्रतिगतः कशां पृादिसमासः । ४ कशाघातप्राप्त अभ्व, वह घोड़ा जिसे चावुक लगा हो । प्रतिकष्ट (सं० क्ली०) प्रतिहर करं। १ कर्मानुहर कष्ट। २ उसका कारण।

प्रतिकाङ्क्षिन् (सं० वि०) आकाङ्शायुक्त । प्रतिकाम (सं अध्य) कामं कामं प्रति अध्ययीभावः । प्रत्येक काम।

प्रतिकामिनी (सं० स्त्री०) सपत्नी, सौत। त्रतिकाय (सं० पु०) प्रति-चि-घञ्, क्यादेशः वा प्रतिगतः

कायो यत । १ शरम, लक्ष्य । २ तस्त्रीर, प्रतिक्रप, प्रतिमा, मूर्ति । ३ प्रतिपक्ष, प्रतिवादी ।

प्रतिकार (सं॰ पु॰) प्रति-क्त-घन् । प्रतीकार, बद्छा, किसीको वातका उचित उपाय। २ चिकित्सा, इहाज। प्रतिकारक (सं॰ पु॰) प्रतिकार करनेवाला, वदला चुकाने-

प्रतिकारिन् (सं० ति०) प्रति-क्र-णिनि । प्रतिकारक, वदला चुकानेवाला ।

प्रतिकार्य (सं॰ ति॰) जो प्रतीकार करनेके योग्य हो, जिसका प्रतिकार किया जा सके।

प्रतिकाश (सं• ति०) प्रति-कश-धञ् । ृप्रतीकाश, तुल्य । प्रतिकास (सं० ति०) प्रति-कास-धन्। प्रतीकाश, एक-सा।

प्रतिकितव (सं॰ पु॰) प्रतिकृतः कितवः प्रादितत्पुरुपः । ब् तकारके प्रतिकृष्ठ च तकार, जुआरीके मुकावलेमें जुआ खेळनेवाला जुआरी ।

प्रतिकुञ्चित (सं० ति.) प्रति-कुञ्च-क । १ वक्र, टेड़ा। २ वकोकृत, टेड़ा किया हुआ।

पृतिकर्म (सं॰ क्ली॰) पृत्यङ्गं पृतिख्यातं वा कर्मं, शाक- । प्रतिकुखर (सं॰ पु॰) प्रतिपक्ष कुअर, प्रतिपक्षीय हस्ती ।

प्रतिकूप (रं ॰ पु॰) प्रतिक्षपः कूपः । परिस्ना, खाई । प्रतिकूल (सं॰ ति॰) प्रतीपं कूलादिति । १ अनुकूल, जो अनुकूल न हो, खिलाफ, उलटा । (कि॰) २ विपरीता-चरण, प्रतिकूल आचरण, विपरीतता । ३ प्रतिपक्षी, वह जो विरोध या प्रतिकूलता करे ।

प्रतिकूलकारी (सं० ति०) प्रतिकूल-कृ-णिनि । पृतिकूल आचरणकारी, विपरोत आचरण करनेवाला ।

प्रतिकूलकृत (सं० ति०) प्रतिकूलं करोति क्र-किप् तुक् च। प्रतिकूलाचरणकारी, प्रतिकूल आचरण करनेवाला। प्रतिकूलतस् (सं० अन्य०) प्रतिकूल-तसिल्। प्रतिकूलमें। प्रतिकूलता (सं० स्त्री०) प्रतिकूलस्य भावः, तल्-टाप्। प्रतिकुलत्व, प्रतिकूल आचरण।

प्रतिकूछप्रवर्तिन (सं ० ति ०) पृतिकूछे प्वर्तते प्र-वृत-णिनि। जो किसीके विरुद्ध ठाना गया हो।

प्रतिकूलवचन (सं० ह्यो॰) प्रतिकूल यत् वचनं । प्रति-वाक्य, विरुद्ध वाक्य ।

प्रतिक्क्लवादिन (सं० ति०) प्रतिक्क्लं वद्ति प्रतिक्कल-वद-णिनि । किसीके विरुद्ध वोलनेवाला ।

प्रतिकृत (सं ० ति०) १ जिसका वदला हो चुका हो। २ जिसके विरुद्ध प्रयत्न किया जा चुका हो।

प्रतिकृति (सं॰ स्त्री॰) प्रकृष्टा कृतिः। १ प्रतिमा, प्रति-मूर्ति । २ प्रतिनिधि, तस्वीर, चित्र । ३ प्रतीकार, वदला। ४ प्रतिविम्य, छाया। ५ पूजन, पूजा।

प्रतिकृत्य (सं ॰ लि॰) पृतीकारयोग्य, जो पृतीकार करने-के छायक हो।

प्रतिरुप्ट (सं ० ति०) प्रतिरुज्यते स्मेति पृति-रुष-कः । १ निरुप्ट, जी वहुत ही निन्दित या वुरा हो । (क्ली०) २ दी वारका जोता हुआ खेत ।

प्रतिक्रम (सं ॰ पु॰) १ पृत्यावर्त्तन, छौट आना । २ प्रति-कूछ आचार।

प्रतिक्रिया सं ० छो०) १ पृतीकार, वद्छा। २ एक ओर कोई क्रिया होने पर परिणाम खरूप दूसरी ओर होने-वाछो क्रिया। ३ संस्कार, सजावट। ४ शमन या निवारणका उपाय।

प्रतिकृष्ट (सं० ति०) १ दरिद्र । २ नीरस । प्रतिकोध (सं पु०) क्रुद्ध व्यक्तिके प्रतिरूप क्रोध । प्रतिक्षण (सं० अञ्च०) क्षणं क्षणं प्रति । पौनःपुन्य, किर फिर।

प्रतिक्षय (सं॰ पु॰ पृतिक्षिणोति हिनस्ति विपक्षादीनिति पृति-क्षि-अच्। रक्षक, वचानेवाला ।

प्रतिक्षिप्त (सं ० वि०) पृतिक्षि ग्रते स्मेति पृति-क्षिप-क । १ पृपित, भेजा हुआ । २ अधिक्षिप्त, फेंका हुआ । ३ निन्दित, तिरस्कृत । ४ वास्ति, रोका हुआ । ५ आहूप, बुळाया हुआ ।

प्रतिक्षेप (सं ० पु० ' प्रति-क्षिप-भावे-घत्र् । १ तिरस्कार। २ फे कना । ३ रोकना ।

प्रतिक्षेपण (सं • क्ली ०) पृतिक्षिप-णिच-्युट्। निराकरण। प्रतिखुर (सं० पु०) मूढ़गभंभेद, वह मूढ़गर्भ जिसमें वालक हाथ पैर वाहर निकाल कर अपने घड़ और सिरसे योनि-मार्गको रोक देता है।

प्रतिख्याति (सं॰ स्त्री॰) पृति-ख्या-भावे-किन्। १ विज्याति। २ अतिख्याति । ३ पृसिद्धि ।

प्रतिगज (सं ॰ पु॰) पृतिपक्षीय हस्ती ।

प्रतिगत (सं ० क्ली०) प्तिमुखं गतं गमनं । १ पक्षियोंकी गतिविशेष । २ प्त्यागत, जो वापस आया हो ।

प्रतिगन्या (सं॰ स्त्री॰) सोमराजी ।

प्रतिगर (सं॰ पु॰) प्रतिगोर्यते प्रत्युचार्यते प्रति-गॄ-भावे अप्। वैदिक मन्त्रविशेषका उच्चारणभेद।

प्रतिगरितृ (सं । त्रि । प्रति-गृ-तृच् । प्रतिशब्द्कारी । प्रतिगर्जन (सं । क्ली । किसोके विषद्व गर्जन ।

प्रतिगिरि (सं॰ पु॰) १ श्रुद्ध पर्वत, छोटा पहाड़। २ पर्वत सदूश, वह जो देखनेमें पहाड़के समान हो। प्रतिगृह (सं॰ अन्य॰) गृहं गृहं प्रतिगृहं। प्रत्येक घरमें,

घर घरमें। प्रतिग्रहीत (सं० ति०) प्रति-ग्रह-क। ग्रहीत, जी है

लिया गया हो। प्रतिगृहीता (सं० स्त्री०) धर्मपत्नी, वह स्त्री जिसका पाणिग्रहण किया गया हो।

प्रतिग्रहीतु (सं॰ ति॰) प्रति-प्रह-तृच् । प्रतिग्रहकारकः, प्रतिग्रह करनेवाला ।

प्रतिगृह्य (सं० दि०) प्रति-प्रह-क्यप् । प्रतिग्रहणीय, स्नेने स्रायक । प्रतिगेह (सं० अद्यर्०) घर घरमें ।
प्रतिग्रह (सं० पु०) प्रतिग्रहणीमित प्रतिग्रह (गृरवृद्ध विश्वमान्द्र (ग्रवृद्ध विश्वमान्द्र (ग्रवृद्ध विश्वमान्द्र । पा ३।३।५८) इति भावे अप् । १ स्त्री- करण, स्वीकार, ग्रहण । २ सैन्यपृष्ठ, सेनाका पिछछा भाग । ३ पतद्वग्रह, पोकदान, उगाछदान । ४ उस दान- का छेना जो ग्राह्मणको विधिपूर्वक दिया जाय । इस प्रकारका दान सेना ग्राह्मणके छः कर्मों मेंसे एक है। प्राह्मण प्रतिग्रह द्वारा धन उपार्जन कर सकते हैं।

"प्रतिप्रहार्जिता वित्रे क्षतिये शस्त्रनिर्जिताः। वैश्षे न्यायार्जिताश्वार्थाः शूत्रे शुश्रृपयार्जिताः॥" । (गहड् पु० २१५ अ०)

अयाचित भावमें यदि प्रतिष्रह छिया जाय तो उसमें कोई दोष नहों।

> "अयाचितोवपन्ने तु नास्ति दोवः प्रतिप्रहे । अमृतं तं विदुर्वेचास्तस्मात्तन्नैविनदु[©]देत् ॥" (गरुड्यु• २१५ अ०)

अयासित भावमं प्राप्त होनेसे वह प्रतिप्रह लिया जा सकता है, इसमें कोई दोप नहीं। ब्राह्मणको छह कमें करना विधेय हैं; यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और पृतिप्रह। अतप्य प्रतिप्रह ब्राह्मणका स्वधमें होने पर भी तीर्धादिमें प्रतिप्रह न ले, लेनेसे तीर्थ जानेका कोई फल नहीं। अतप्य ब्राह्मणको कभी मी तीर्थ वा पुण्यायतनमें ऐसा दान नहीं ब्रह्मण करना चाहिए।

"सुत्रणंमथ युक्तातमा तथैवान्यव्यतिग्रहम्। स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्ज्वनेऽपि वा॥ निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तदनमञ्जते। ३ तस्तीर्थं न गृह्णोयात् पुण्येष्वायतनेषु च॥" (कृमेपु॰ ३३ थ०)

राजादि, शूद्र, पतित और निन्दित व्यक्तियोंसे प्रति शह लेना विलक्कल निपेध है।

" न राज्ञः प्रतिगृह्योयान्न शूर्रपतिताद्पि । न चान्यस्मादशकश्च निन्दितान् वर्जयेदुवुधः॥" (कूर्मपु० १५ अ०)

विद्याहीन ब्राह्मण कभी भी प्रतिब्रह न छै। सुवर्ण, भूमि, तिल, गो प्रभृति यदि अविद्यान व्यक्ति प्रतिब्रह छै, तो सभी भस्मीभूत हो जाते हैं तथा दाताको भी कोई फल नहीं होता। ब्राझणको गहित प्रतिप्रह अर्थान् जो सव प्रतिप्रह शास्त्रप्रें निन्दित वतलाये गये हैं उन्हें कभो भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

किन्तु जव भारीसे भारी विषद् पहुं च जाय, तव गहिंत प्रतिप्रह लिया जा सकता है। दाता दान करके उसकी चिन्ता न करे तथा प्रतिप्राही दान ले कर और पानेके लिये जी न वड़ावे। यदि मोहके वशीभृत हो कर ऐसा करे, तो दोनोंको ही नरक होता है।

"हाता च न स्मरेहानं प्रतिप्राहो न याचते । ताबुभौ नरकं याती दाता चैव प्रतिप्रही।" (बृहत्पाराग्रर० ४ २०)

प्रतिप्रहस्तमधं कोई ध्यक्ति यदि प्रतिप्रह न करे, तो दानशीलोंके लिये जो लोक विहित है, उसे भी उसी-लोककी प्राप्ति होती है।

"प्रतिप्रहसमधाँ हि नाद्ते यः प्रतिप्रहम्।
ये लोका दानशीलानां सतामाप्तोति पुष्कलान्॥"
(याञ्चलक्य)

अपने भोगके लिये कभो भी प्रतिग्रहण ले, पर देवता और अतिथि पूजादिके लिये प्रतिग्रह विश्रेय है। प्रतिग्रहार्जित वर्थ द्वारा यह नहीं करना चाहिये,

करनेसे चाएडालयोनिमें जन्म होता है।

"चाएडालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्।" (शुद्धितस्व)

५ पृतिकृत प्रह । ६ प्रत्यभियोग, किसांके अभियोग लगाने पर उलटे उसी पर अभियोग लगाना । ७ अधि-कारमें लाना, पकड़ना । ८ पाणिप्रहण, विवाह । ६ उपराग, प्रहण । १० अभ्यर्थना, खागत । ११ विरोध करना, मुकावला करना । १२ उत्तर देना, जवाव देना । प्रतिग्रहण (सं० क्लो०) प्रति-ग्रह ल्युट् । प्रतिग्रह लेना, विधिपूर्वक दिया हुआ दान लेना । प्रतिग्रहन् (सं० ति०) प्रति-ग्रह-णिनि । प्रतिग्रहकारक.

प्रतिप्रहिन् (सं ० वि ०) प्रति-प्रह-णिनि । प्रतिप्रहकारकः, प्रतिप्रह छेनेवाला, दान लेनेवाला ।

प्रतिप्रहोता (हिं॰ वि॰) दान छेनेवाला । प्रतिप्रहोत् (सं॰ वि॰) प्रति-प्रह-तृच् । प्रतिप्रहक्तां, दान छेनेवाला ।

प्रतिप्राम (सं॰ अञ्य॰) ग्राम ग्राममें, प्रत्येक गांवमें।

Vol. XIV, 130

प्रतिग्राह (सं० पु०) प्रतिगृह्णाति निष्ठीवनादिकमिति प्रति-ग्रह (विभाषा ग्रहः। पा ३।१।१४३) इति ण। १ पतद्ग्रह, पोकदान। २ प्रतिग्रह, ग्रहण करना, छेना। प्रतिग्राहक (सं० पु०) प्रतिग्रहकारक, प्रतिग्रह छेनेवाछा। प्रतिग्राहिन (सं० वि०) प्रति-ग्रह-णिनि। प्रतिग्रहकारक, दान छेनेवाछा।

प्रतिप्राह्य (सं० ति०) प्रति-प्रह क्यप् (प्रत्यिपन्यां प्रहे:। पा ३।१।११८) प्रतिग्रहके योग्य, प्रहण करने छायक।

प्रतिघ (सं० पु०) प्रतिहन्त्यनेनेति, प्रति-हन ड, न्यङ्का-वित्वात् कुत्वं। १ कोध, गुस्सा। २ मारना। ३ मूर्च्छा, वेहोशी। ४ रुकावट डालनेवाला। ५ प्रति-कूल, विरुद्ध।

प्रतिघात (सं० पु०) प्रति-हन-णिच् भावे अप्। १ मारण, मारना। २ वह आघात जो एक आघात लगने पर आपसे आप उत्पन्न हो, टक्कर। ३ प्रतिबन्ध, वाधा। ४ निराश, निक्षेप।

प्रतिघातक (सं॰ ति॰) प्रतिघातकारी, प्रतिघात करने-वाला।

प्रतिघातन (सं० क्की०) प्रति-हन-णिच्-ल्युट्। १ हत्या, मारना। २ वाघा, वकावट।

प्रतिघातिका (सं० स्त्री०) विद्यकारिणी, वाधा डालने-वाला ।

प्रतिघातिन् (सं० ति०) १ प्रतिघातकारी, विरोध करने-वाला। २ टक्कर मारनेवाला। (पु०) ३ शतु, वैरी, दुश्मन।

भतिघाती (हि॰ पु॰) प्रतिगतिम् देखो ।

प्रतिव्न (सं० क्ली०) प्रतिहन्त्यस्मिन्निति प्रति-हन घअर्थे क। अङ्ग, शरीर, वदन।

प्रतिचक्र (सैं॰ ह्यी॰) प्रतिक्रपं चक्रं। १ प्रतिक्रप राज-मण्डल। २ प्रतिक्रप चक्र।

प्रतिचक्षण (सं : क्ली •) प्रति-चक्ष-ल्युट् । प्रतिनियतद्शैन, प्रतिदिन दर्शन ।

प्रतिचक्ष्य (सं० ति०) प्रति-चक्ष-ण्यत् वा ख्यादेशाभावः । प्रकर्षक्रपमें दृश्य, जो साफ साफ दिखाई दे ।

प्रतिचन्द्र (सं॰ पु॰) प्रतिरूप चन्द्र, चन्द्रकी प्रतिकृति ।

प्रतिचिकीर्पां (सं० स्त्री०) प्रतिकर्त्तुर्मिच्छा पृति-छ-सन्-टाप्। पृतीकार करनेकी इच्छा। पृतिचिति (सं० वि०) पृत्येक स्तर। पृतिचिन्तन (सं० पु०) पुनर्विचार, फिरसे सोचना। प्रतिच्छन्द (सं० क्की०) १ प्रतिद्धप। २ अनुरोध। ३ प्रति-कृति।

प्रतिच्छन्दक (सं० ति०) प्रति-च्छन्द-ण्डुल्। प्रतिनिधि। पृतिच्छाया (सं० स्त्री०) पृतिगता छावामिति। १ पृति-छति, मिट्टी पत्थर आदिकी वनी हुई मृत्ति। २ चित्रं, तस्त्रीर। ३ पृतिविम्य, परछाई'। ४ साद्रुश्य। प्रतिच्छेद (सं० पु०) पृति-छिद्य-घञ्। प्रतिवन्ध, वाधा,

प्रतिच्छेद (सं॰ पु॰) पृति-छिद्द-घञ् । पृतिवन्ध, वाधा, रुकावट ।

पुतिछाँई (हिं०स्त्री०) प्रतिच्छ.या देखो।

पूर्तिछाया (हिं • स्त्री •) पूर्तिविंव, परछांही।

प्रतिछाँही (हिं॰ स्त्री॰) प्रतिष्ठाया देखें ।

प्रतिजङ्घा (सं• स्त्रो॰) प्रतिगता जङ्घां। अप्रजङ्का, जांघका अगला भाग।

पृतिजन (स[°]० अव्य०) वीष्सायामव्ययीभावः । पृत्येकः के पृति ।

पृतिजनादि (सं॰ पु॰) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद । गण यथा—प्रतिजन, इदंयुग, संयुग, समयुग, परयुग, परकुळ, परस्यकुळ, अमुष्यकूळ, सर्वजन, विश्वजन, महाजन, पञ्चजन ।

प्रतिजन्य (सं॰ क्की॰) प्रतिकूलं जन्यं युद्धं यस्य, प्रतिजने विपक्षजनपदे भवः यत् वा । १ प्रतिवलः । २ प्रतिपक्ष-जनपदभय ।

प्रतिज्ञह्य (सं ॰ पु॰) प्रतिगतो ज्ञह्य । १ बाक्यविशेष । २ सम्मतिपृदान, दूसरेके मतके साथ अपना मत मिलाना, सलाह ।

प्रतिजागर (सं ७ पु०) प्रतिजागरण मिति पृति-जागृ-घज्। (जाप्रोऽपीती। पा अशंद्ध) इति गुणः। १ पृत्यवेक्षण। २ प्रत्यवेक्षा, खूव होशियारी रखना। ३ रक्षा। ४ रक्षाके लिये नियोग।

प्रतिजिह्ना (सं॰ स्त्री॰) पृतिह्नपा जिह्ना । तालुमूलस्थ जिह्निका, गलेके अन्दरकी घंटी; कौवा । पर्याय— प्रतिजिह्निका, माध्वी, रसनकाकु, अलिजिह्निका । प्रतिजिहिका (सं॰ स्रो॰) पृतिजिह्या सार्थे कन, टापि अत इत्वं। पृतिजिह्या, छोटो जीम।

प्रतिजीवन (सं॰ हो॰ पुनजीवनप्राप्ति, फिरसे जन्म होना।

प्रतिज्ञा (सं ० स्त्रो०) पृतिज्ञायते इति प्रति-ज्ञा (आवस्योप-वर्ग। पा ३।३।१०६) इति अञ् । १ कर्च्ययकारक ज्ञानानु-कृत्र न्यापार, कोई काम करने या न करने आदिके सम्बन्धमें दृढ़ निश्चय । २ न्यायमें अनुमानके पांच जिल्हों या अवयवोंमेंसे पहला अवयव । २५१४ देखो । २ शपथ, सौगंध, कसम । ३ अभियोग, दावा ।

प्रतिज्ञाकर मैथिल—नलोद्यटोकाके रचयिता। ये प्रज्ञाकर नामसे परि चत थे।

प्रतिज्ञात (सं० बि०) प्रतिज्ञायते स्मेति प्रतिज्ञा-कः। १ भङ्गीकृत, स्रीकार किया हुआ। २ साध्य, करने या हो सकने योग्य।

प्रतिज्ञान (सं ० हो०) प्रति-ज्ञा-ल्युट्। प्रतिज्ञा ।

प्रतिज्ञान्तर (सं० क्लो०) अन्या प्रतिज्ञा मयूर्व्यसकादित्वात् समासः । गौतमस्त्रोक्त निग्रहस्थानमेद । प्रतिज्ञात भर्थका जहां नियेध होता है, वहां उस वाष्यको स्थिर करनेके लिये अन्य जिस प्रतिज्ञाका निर्देश किया ज्ञाता है, उसे प्रतिज्ञान्तर कहते हैं । निग्रहस्थान देखो ।

प्रतिज्ञापत (सं • क्ली॰) प्रतिज्ञास्चकं पत्नम्, मध्यपद्लोपि-कर्मधारयः। भाषापत्नविशोष, बह पत्न जिस पर कोई प्रतिज्ञा लिसी हो, स्करारनामा।

प्रतिज्ञाविरोध (सं॰ पु॰) गौतमस्त्रोक्त निग्रहस्थानभेद । प्रतिज्ञा और हेतु इन दोनोंका जो विरोध होता है, उसे प्रतिज्ञाविरोध कहते हैं। निग्रहस्थान देखो।

प्रतिज्ञासं न्यास (सं ० क्ली०) गौतमस्त्रोक्त निग्रहस्थान-भेद।

प्रतिज्ञाहानि (सं ॰ क्ली॰) गौतमस्त्रोक्त नित्रहस्थानभेदः। प्रतिज्ञेष (सं ॰ पु॰) प्रतिज्ञानात्यनेनेति प्रति-ज्ञा-यत्। १ स्तुतिपाठकः। २ प्रतिज्ञा करनेमं समर्थः। (ति॰) ३ प्रतिज्ञातन्य।

प्रतितन्त्र (स' बलो ०) प्रतिकृष्टं तन्त्रं शास्त्रं प्रादि-समासः। स्वमतिविषद्वशास्त्र, वह शास्त्र जिसके सिद्धान्त अपने शास्त्रके सिद्धान्तींके प्रतिकृष्ट हीं। प्रतितन्त्रसिद्धान्त (सं॰ पु॰) गौतमस्त्रोक्त सिद्धान्तभेद, वह सिद्धान्त जो कुछ शास्त्रोंमें हो और कुछनें न हो। जैसे, मीमांसामें 'शम्द' को नित्य माना है, पर न्यायमें वह अनित्य माना जाता है।

प्रतितर (सं॰ पु॰) पृतितीर्यतेऽनेन पृति-तृ-करणे अप्। नौकाचाछन दएडादि, नाव खेनेका वर्छा। पृतिताळ (सं॰ पु॰) पृतिगतस्तालम्। तालविशेष, सङ्गीनमें तालका एक पृकार। इसमें कांतार, समराख्य, वैक्रण्ड और वाञ्चित ये चारों ताल हैं।

प्रतिताली (सं ॰ स्रो॰) प्रतिगता तालमिति गौरादित्वात्, जीप् । तालकोदुधारम यन्त्र, तालो ।

प्रतित्णी (सं क्सी) सुभुतोक्त वातरोगभेद। इसमें गुदा अथवा मूलाशयसे पीड़ा उठ कर पेट तक पहुंचती है। यह रोग वायुके विगड़नेसे होता है।

प्रतिथि (सं ० पु॰) देवरथ नामक एक धर्मप्रवत्तं क ।

प्रतिदर्ख्ड (सं ० ति०) अवाध्य, दुद्धर्य ।

प्रतिदत्त (सं० ति०) १ छौटाया हुआ, वापस किया हुआ। २ वदलेमें दिया हुआ।

प्रतिदर्शन (सं॰ क्ली॰) परिदर्शन।

प्रतिदान (सं ॰ क्ली॰) प्रतिकृत्य दानं प्रतिकृषं दानं वा । १ विनिमय, परिवर्त्तं न, बदला । २ न्यस्तार्पण, लो या रखी हुई चीजको लोटाना ।

प्रतिदारण (सं० क्लो०) प्रतिदायैतेऽस्मिनिति प्रति-द्व-णिच्-आधारे ल्युट् । १ युद्ध, लड़ाई । भावे ल्युट् । २ भेदन ।

प्रतिदिन (सं॰ क्ली॰) दिनं दिनं प्रति । प्रत्यह, रोज रोज।

प्रतिदिवन् (सं • पु०) भितदोव्यतोति प्रति-दिव । स्तिन् युविष तिक्षाजिधन्त्रियुप्रतिदिवः । उण् १।१५६) इति कणिन् । १ सूर्य । २ भांतदिन ।

प्रतिदिवस (सं ॰ अव्य॰) प्रत्येक दिन, हर रोज।

प्रतिदीवन् (सं ॰ पु॰) प्रतिदिवन् पृयोदरादित्वात् साधुः । सूर्थं ।

प्रतिदुह् (सं ॰ पु॰) पृत्यह दोहनदुग्ध, हर रोजका दुहा हुआ दूध । प्रतिदूत : सं॰ पु॰) प्रतिपक्षमें प्रेरित दूत वा राजकर्मै-चारी।

प्रतिदेय (सं० ति०) प्रति-दा यत् । १ क्रीतद्रन्यका दुष्कीत वुद्धि द्वारा दान, खरीदी हुई चीजको वापस कर देना । २ प्रतिदान करने योग्य, जो वदलने यो छीटाने लायक हो । प्रतिदेवत (सं० ति०) प्रत्येक देवताके योग्य । प्रतिदेवता (सं० स्त्रो०) प्रतिपक्ष-देवता । प्रतिदेवतम् (सं० अन्य०) प्रत्येक देवताके उपयोगो । प्रतिदेवतम् (सं० अन्य०) गतिमस्त्रोक्त जातिमेद, न्याय-

में एक प्रकारकी जाति । जाति देख , प्रतिद्वत (सं० वि०) १ प्रत्यपकारसाधनेच्छ । २ प्रति

प्रतिदुह् (सं० ति०) १ प्रत्युपकारसाधनेच्छु । २ प्रति-हिसा प्रहणमें समुत्सुक ।

प्रतिद्वन्द्व (सं० क्की०) प्रतिकृष' द्वन्द्व' प्राद्सिमासः। तुल्ययुद्ध, वरावरवालीकी लड़ाई।

प्रतिद्वन्द्विता (सं० स्त्रो०) अपनेसे समान व्यक्तिका विरोध, वरावरवालेकी लड़ाई।

प्रतिद्वन्द्वो (सं० पु०) प्रतिद्वन्द्व मस्त्यस्य इनि । १ प्रति-पक्ष । २ शलु । ३ समकक्ष, मुकावलेका लड्नेवाला । प्रतिद्विरद (सं० पु०) प्रतिद्वन्द्वी हस्ती, प्रतिगज । प्रतिधत्तृ (सं० ति०) प्रति-धृ-तृच् । निराकारक । प्रतिधा (सं० ह्यो०) प्रति-धा भावे-किए । प्रतिविधान । प्रतिधान (सं० ह्यो०) प्रति-धा भावे ल्युट् । प्रतिविधान, निराकरण ।

प्रतिधावन (सं० क्की०) प्रति-धाव-ल्युट्। प्रतिमुख, पीछे की ओर दौडना।

प्रतिधि (सं पु॰) प्रतिमुखं धीयते प्रति धा-कर्मणि-कि। स्तोत्तविशेष, सन्ध्याके समय पढ़ा जानेवाला एक प्रकार-का वैदिक स्तोत। २ ईयाका तिर्यंक गतकाष्ट।

(ऋक् १०।८५।८)

प्रतिधुर (सं॰ पु॰) सिज्जित अश्वयुग्मका एक, दो सजे सजाये घोड़ोंमेंसे एक।

प्रतिघृष्य (सं० ति०) १ प्रतियुद्धमें शक्त । २ उपेक्षणीय । प्रतिध्वनि (सं० पु०) प्रतिह्नपो ध्वनिरिति । प्रतिशब्द, अपनी उत्पत्तिके स्थान पर फिरसे सुनाई पड़नेवाला

शब्द । पर्याय-प्रतिनाद, प्रतिश्रुत, पृतिध्वनि । वायुमें क्षोभ होनेके कारण लहरें उठती हैं । इन्हीं लहरोंसे शन्दको उत्पत्ति होती है । जब इन लहरोंके रास्तेमें प्राचीर वा चट्टान आदि जैसे कोई वाधक पदार्थ भाता है, तब ये छहरें उससे टक्कर खा कर छीटती हैं। यही कारण है, कि वह शब्द पुनः उस स्थान पर सुनाई देता है जहांसे वह उत्पन्न हुआ था। यदि वायुकी छहरोंको रोकनेवाला पदार्थं शब्द उत्पन्न होनेके स्थानके ठीक सामने होता है, तव तो प्रतिध्वनि शब्द उत्पन्त होनेके स्थान पर ही सुनाई पड़ती है। परन्तु यदि वह डीक सामने न हो, तो प्रतिध्वनि भी इघर उधर सुनाई पड़ेगी। यदि लगातार वहुतले शब्द किये जांय तो शन्दोंकी प्रतिध्वनि साफ नहीं सुनाई पड़ती, पर शब्दों-की समाप्ति पर अन्तिम शब्दकी प्रतिध्वनि वहुत ही स्पष्ट कर्षभोचर होती है। जैसे, यदि किसी वहुत वह वालाव-के किनारे या किसी वडे गुम्बद्के नीचे खडे हो कर 'हाथी या घोड़ा' ऐसा कहा जाय, तो प्रतिध्वनिमें 'घोडा' वहुत साफ सुनाई देगा। साधारणतः प्रतिध्वनि उत्पन्न होनेमें एक सेकेंएड वा नवां अंश लगता है। इसिंहिये इससे कम अन्तर पर जो शब्द होंगे, उनकी प्रतिध्वनि स्पर्य नहीं होगी। शब्दकी गति प्रति सेकेएड करीव ११२५ फुट है। अतः जहां वाधक स्थान शब्द उत्पन्न होनेके स्थानसे (११२५ का १८ वा अंश) ६२ फ़ुटसे कम अन्तर पर होगा, वहां प्रतिध्वनि नहीं खुनाई देगी। सवसे अधिक स्पष्ट प्रतिध्वनि उसी शब्दकी होती है जो अकस्मात् और उच खरसे कहा जाता है। प्रतिध्वनि सुनाई पड़नेके ये सब स्थान हैं, कमरा, गुम्बद, तालाव, कूप, नगरके प्राचीर, वन, पर्वत और तराई। किसी किसी स्थान पर ऐसा भी होता है, कि शब्दकी कई कई प्रतिध्वनियां हीती हैं।

२ शब्दसे श्राप्त होना, गुंजना। ३ दूसरोंके भावों था विचारों आदिका दोहराया जाना।

प्रतिध्वान (सं० क्की०) प्रतिध्वननमिति प्रतिध्वन-ध्रञ्। प्रतिध्वनि, प्रतिशब्द ।

प्रतिनन्दन (सं॰ क्ली॰) प्रति-नन्द भावे ल्युट् । आशीर्वाद पूर्वेक अभिनन्दन, वह अभिनन्दन जो आशीर्वाद देते हुए किया जाय ।

प्रतिनष्तु (सं० पु॰) प्रतिस्तो नप्ता नप्तुः सदृश इत्यर्थः। प्रपौत, परपोता। प्रतिनव (सं० वि०) प्रतिगतं नवं नवतामिति। नृतन, नया। प्रतिनर्तक—महाराज अप्र शिलादित्यके राजकर्मचारीको उपाधिमेद। यह सम्भवतः भट्ट, कवि, राजदृत वा घटकोंकी मान्यस्चक पदवी है। प्रतिना (हिं० स्त्री०) प्रतना देखो। प्रतिनाग (सं० पु०) प्रतिगज, प्रतिद्वन्द्वी हस्ती। प्रतिनाड़ी (सं० स्त्री०) उपनाड़िका, छोटी नाड़ी।

प्रतिनाद (सं० पु०) त्रति-नद-घम् । प्रतिशब्द । प्रतिशब्द । प्रतिशब्द न देखा ।

प्रतिनायन् (सं० ति०) नामसम्बन्धीय ।
प्रतिनायक (सं० पु०) प्रतिकृत्नः नायकः । प्रतिकृत्ननायकः,
नाटकों और काव्यों आदिमें नायकका प्रतिद्वन्द्वी पात्र ।
औसे रामायणमें रामका प्रतिनायक रावण है ।
प्रतिनाह (सं० पु०) एक प्रकारका रोंग । इसमें नाकके ।
नथनोंमें कफ चकनेसे श्वासको चलना व'द हो जाता है
प्रतिनिधि (सं० पु०) प्रतिनिधीयने सदृशी कियने इति
प्रतिनिधि (सं० पु०) प्रतिनिधीयने सदृशी कियने इति
प्रतिनिध । प्रनेग थाः किः। ण । च ३ ९२ इति कि ।
१ प्रतिमा, प्रतिमृत्ति । २ यह व्यक्ति जो किसी दूसरेकी
ओरसे कोई काम करनेके लिये नियुक्त हो ।

यदि आप कोई कार्य करनेमें असमर्थ हों, तो प्रति-निधिसे यह काम करा सकते । शास्त्रमें इस प्रति-निधिका विपय लिखा है। कहां पर प्रतिनिधिको आवश्य-कता हैं और कहां नहीं, इसका विषय कात्यायनश्रीत-स्त्रमें वतलाया गया है। रघुनन्दनने कात्यायनमता-नुपायी पकादशीतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है।

पकान्त असमर्थ होने पर विनयी पुत्र, वहन वा भाई पृतिनिधि वनाये जा सकते हैं। यदि इनका अमाव हो तो ब्राह्मण पृतिनिधि हो सकते हैं।

"पुतं चा विनयोपेतं मिगनीं मातरं तथा। एषामभाव प्वान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत्॥"

(पकादशीतस्व)

काम्यकर्ममें पृतिनिधिकी जरूरत नहीं, पर नित्य भीर नैमित्तिक कर्ममें पृतिनिधि दे सकते हैं। काम्यकम स्वयं कर्षेट्य है।

Vol XIV, 131

"काम्यो पृतिनिधिर्नास्ति नित्यनैमित्तिके हि सः। काम्येपूयकमादृद्धभन्ये पृतिनिधि विदुः॥" (एकादशीतत्त्वधृत कालमाधव)

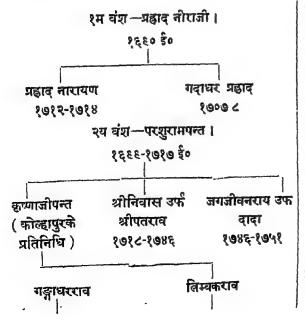
माधवाचार्यने इसका तात्पर्य इस प्कार लिखा है,— नित्य और नैमित्तिक कर्मका आरम्म खयं करे। पीछे पृतिनिधि द्वारा करा सकते हैं। कान्यकर्म, जहां तक हो सके, अपने हाथसे करे, पर यदि आरम्म कराके वीचमें ही असमर्थ हो जाय, तो पृतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं। यह जिस काम्यकर्मको कथा कही गई, वह श्रीतकाम्य-पर है। किन्तु काम्य स्मात्तंकमें के खयं उपक्रम करके पीछे पृतिनिधि द्वारा करा सकते हैं।

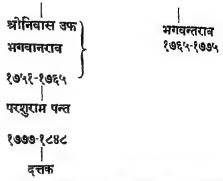
इसी नियमसे पृतिनिधि करना विधेय है। दैवादि कार्योमें जिन सब द्रव्योंका विधान है, वे सब द्रव्य यदि संगृहीत न हों, तो उसके वदलेमें अन्य द्रव्य दिया जा सकता है। जैसे मधुके अमावमें गुड़।

आयुर्वेदके मतसे - औपधादि पुस्तुत करनेमें जो औषधियां कही गई हैं, उतमेंसे एक द्रव्य यदि दुःपाण्य हो, तो उसका पृतिनिधि प्रहण कर औषध पृस्तुत करना विधेय है। शास्त्रमें पृतिनिधि द्रध्यका विषय इस प्कार लिखा है-पुराने गुड़के अभावमें नये गुड़की चार पहर तक धूपमें सुखा हो। सीराष्ट्र मद्दीके अभावमें पङ्क-पर्वेटी, लोहेके अभावमें लोह-कोट, खेत सर्व पके अशाव में साधारण सर्पंप, चई और गजिपष्पलीके अभावमें पिपरामूल, कुंकुमके अभावमें हरिद्रा, मुक्ताके अभाधमें शुक्तिकचुण, हीरकके अभावमें वैकान्त अथवा कौड़ीकी मस्म, खर्ण और री यके अभावमें लीहमस्म, पुकरमूलके अमावमें कुट, रास्ताके अभावमें परगाछा, रसाञ्चनके समावमें दाहहरिदाका काथ, पुष्पके वदलेमें कचा फल, मेदाके समावमें अध्वगन्धा, महामेदके समावमें अनन्त-मूल, जीवकके वदलेमें गुलञ्च, ऋषमकके वदलेमें भूमि-कुष्माएड, ऋदिके वदलेमें विजवन्द, वृद्धिके वदलेमें गोरक्ष, काकोछी और श्रीरकाकोछीके अभावमें शतमूछी, इसी प्रकार अन्यान्य दुःधके अभावमें गर्य दुःध प्रहण करना चाहिये । उपरि उक्त द्रव्योंके अलावा यदि अन्य किसी द्रव्यका अभाव हो, तो उस द्रव्यके समान गुण-वाले किसी अन्य द्रव्यका प्रयोग किया जा सकता है।

प्रतिनिधि महाराष्ट्रदेशस्य एक प्रसिद्ध ब्राह्मणवंश। १६६० ई०में ज्ञल्फकर खाँके आक्रमणसे अपनेको वचाने-के लिये राजाराम जिञ्जीको भाग आये। प्रह्वाद नीराजी नामक किसी महाराष्ट्रवीरके परामर्शसे उन्होंने आत्म-रक्षा को थी। राजकाय चलानेके लिये जिञ्जीमें एक नृतन सभा बुलाई गई। उक्त राजसभामें अष्ट पृथानकी अपेक्षा सम्मानस्चक 'प्रतिनिधि' उपाधिसे प्रहाद नीराजी भूपित हुए थे।

कोरेगांच तालुकके अधीन किनहर्द-ग्रामवासी ब्राह्मण तिम्बक कृष्ण कुलकरणीके पुत परशुराम पन्त १६६८ ई०में राजाराम द्वारा प्रतिनिधि-पद पर नियुक्त हुए। १७०० ई०में राजारामकी विध्वा पत्नी तारावाईने उन्हें फिरसें प्रतिनिधिके पद पर प्रतिष्ठित किया। इस समयके युद्धविग्रह- में उन्होंने प्रधान सेनापतिका कायं किया था। १७०७ ई०में वे शाहुसे भृत और काराकद्ध हुए। इस अवसरमें प्रह्वाद नारा यणके पुत गदाधर प्रह्वादने प्रतिनिधिका पद प्राप्त किया। १७१० ई०में गदाधरकी मृत्यु हुई। पिछे परशुराम पन्त फिरसे प्रतिनिधिके पद पर आकद्ध हुए किन्तु दूसरे ही वर्ष उन्हें पदच्युत करके नारायण प्रह्वाद उस पद पर नियुक्त किये गये। अनन्तर १७१३-१४ ई०- में परशुरामने फिरसे प्रतिनिधिका पद पाया। पीछे वह पद उनके बंशाधीन हो गया।





श्रीनिवासराव (इनके पुत पैतृक सम्पत्तिके इखीछ-कार हैं ।

प्रतिनिधिगण अपनी अग्नी उपभोग्य सम्पत्तिसे सैन्य रक्षा करते थे। पेशवा वालाजी वाजीरायके शासनकालमें १७४० ई०को श्रीपत्राय रघुजी भींसलेके साथ कर्णाटक पर आक्रपण करनेके लिये अप्रसर हुए। अनन्तर वहांसे लीट कर उन वोनोंने तिचीनपहीकी याता कर दी। १७४१ ई०की २६वीं माचँको तज्जोरके राजाने महाराष्ट्रके हाथ आत्मसमर्पण किया। १७३० ई०में श्रीपत्रावने कोल्हायुरके राजाको जीता। महाराष्ट्र-अवनिक साथ साथ क्रमशः प्रतिनिधियोंका भी प्रताप हास होता आया। फिलहाल अङ्गरेजी शासनमें प्रतिनिधिगण प्रभुत्व और प्रतिपत्तिहीन हो गये हैं।

विश्वत विवाग महाराष्ट्र शब्दम देखी।
प्रतिनिधित्व (सं० पु०) प्रतिनिधि होनेकी किया गा
भाव, प्रतिनिधि होनेका काम।
प्रतिनिनद (सं० पु०) प्रतिध्वित, प्रतिशब्द।
प्रतिनिनद (सं० पु०) १ निक्षेप। २ प्रतिधातसे निहत।
प्रतिनियम (सं० पु०) प्रत्येकं नियमः। ध्यवस्था, हर एकः
के प्रति एक नियम।
प्रतिनिर्जित (सं० वि०) १ पराजित, हराया हुआ। २
विताड़ित, भगाया हुआ।
प्रतिनिर्देश (सं० पु०) पूर्वनिर्देश, वह जिसका पहले
उल्लेख किया जा चुका हो।
प्रतिनिर्देशक (सं० वि०) पूर्वनिर्देश, जो पहले कहा
गया हो।
प्रतिनिर्देशक (सं० वि०) प्रति निर्-दिश कमेणि प्यत्।
निर्देश करने वोग्य।

प्रतिनिर्यातन (सं० ह्यो०) प्रति-निर्-यात-ल्युर् । वह अप-कार जो किसी अपकारके वहलेमें किया जाय। २ पृत्य-पैण । ३ प्रतिहिसा-साधन ।

प्रतिनिवर्त्तन (सं० ह्वी०) प्रति-निर्-वृत-भावे-च्युट्। १ अभीष्ट वस्तुसे निवृत्ति । २ निवारण ।

प्रतिनिवारण (सं॰ क्ली॰) प्रति-नि-वृ-णिच् ल्युट् । प्रतिषेध, प्रतिवारण।

प्रतिनियासन (सं क्ही०) चौद्ध भिक्षुओं के पहननेका एक वस्त्र।

प्रतिनिवृत्त (सं ० ति ०) प्रति-नि-वृत्तः । प्रत्यागत, । लौरा हुआ।

निशामें।

प्रतिनोद (सं० पु०) प्रति-सुद्-चर्। प्रतिप्रेरण।

प्रतिन्यस्त (सं॰ ति॰) १ प्रतिगच्छित । २ स्थगिद् । प्रतिन्याय (सं॰ अव्य॰) प्रति-ति-अय वा इ-धन् । २ यथा- प्रतिपत्त्यं (सं॰ क्ली॰) प्रतिपदे संविदे त्यं । वाद्यसेद, गत अत्यागमन ।

प्रतिन्युङ्क (सं॰ पु॰) ओङ्कार स्वरके प्रतियोग्य न्युङ्क प्रतिपत्नफला (सं॰ स्त्री॰) प्रतिपत्नं फलं यस्याः । क्षट्र-शब्दका प्रयोग ।

प्रतिप , सं॰ पु॰) प्रति पाति पालयतीति प्रति-पा-क । ; प्रतिपथ (सं॰ अद्य॰) पथिमध्य, राहमें । राजा शान्तनुको विताका नाम ।

प्रतिपञ्च (सं ॰ पु॰) प्रतिकृतः पञ्चः इति प्रादिसः । १ शबु, दुश्मन । २ प्रतिवादी, उत्तर देनेवाला । ३ सादृश्य, 🖟 समानता, वरावरी । ४ विरोधी पद्म, विरुद्ध दल । ५ विरुद्ध पक्ष, दूसरै फरीककी वात।

मतिपश्चता (सं॰ स्रो॰) मितपश्चस्य भावः तस्-दाव्। मतिपक्षका भाव, विरोध।

मतिपश्चित (सं॰ पु॰) मितपङ्गः जातोऽस्य तारकादि-हवादितच् । हेत्वाभासभेद, पांच प्रकारके हेत्वाभासमें-से चौथा प्रकार।

प्रतिपक्षी (सं॰ पु॰) विपक्षी, विरोधी शबु ।

प्रतिपच्छ (हि॰ पु॰) प्रतिपक्ष देवी ।

प्रतिपच्छी (हिं० पु०) प्रतिपधी देखी।

प्रतिवण (सं० पु०) प्रतिरूपः वणः । परिमाण-कल्पन । प्रतिपण्य (सं ॰ ह्री॰) वह द्रव्य जो किसी द्रव्यके बद्छेमें लिया जाता है।

प्रतिपत् (हिं० स्त्रो०) शविवद् दृस्तो ।

व्यतिपत्ति (सं॰ स्रो॰) व्यतिपद्निमिति व्यतिपद्-किन्। १ प्रवृत्ति। २ प्राप्ति, पाना। ३ ज्ञान। ४ अनुतान। ५ दान देना। ६ कार्य स्पर्ने लाना। ७ प्रतिपादन, निल-पण । ८ प्रमाणपूर्वक पर्शन, जोमें वैठाना । ६ स्वीकृति, मानना । १० पद्याप्ति, प्रतिष्टा, धाक । ११ आव्र, सत्कार। १२ निश्चय, दृढ़ विचार। ३ परिणाम। १४ गीरव।

व्यतिपत्तिकर्में (हि॰ पु॰) श्राद आदिमें वह कर्म जो सव-के अन्तमें किया जाय, सबके पीछे किया जानेवाला कर्म । प्रतिपत्तिपरह (सं॰ पु॰) प्रतिपत्तये परह । बाद्यविशेष, प्रतिनिश (सं ॰ अथ्र॰) निशायां निशायां प्रति । प्रति- 🖟 वह ढोळ जिसे वजवानेका अधिकार केवळ अभिज्ञान वर्गके होगोंको था। इसका पर्याय हम्बापदह है।

प्रतिपत्तिमत् (सं ॰ ति ॰) प्रतिपत्तिः विद्यतेऽस्य मतुप् । र्घातपत्तियुक्त ।

एक प्रकारका वड़ा हो छ।

कारवेह, छोटी करेली ।

प्रतिपथगति (सं वि) १ प्रतिपथातिवाहनकारी । २ विषधगामी।

प्रतिपथिक (सं० बि०) प्रतिपथमेति प्रतिपथ—(प्रतिपर-मेति द'व । पा धोधावर) इति दन् । प्रत्येक पथमें गमन-कारी।

व्यतिपद्द (सं । स्त्री ।) प्रतिपद्यते उपऋग्यतेऽनयेति प्रति-पद्-करणे-किए्। १ दगड्वाच, प्राचीनकाळका एक प्रकारका बड़ा डोल। २ मार्ग, रास्ता। ३ आरम्म। ४ बुद्धि, समका ५ श्रेणां, पंक्ति। ६ अग्निकां जन्मतिथि। ७ तिथिविशेष, पश्की पहली तिथि। चन्द्रकलाका हास होनेसे कृष्णपक्षको और वृद्धि होनेसे शुक्रुवसको प्रतिवद् होगो। शुक्काप्रतिपद्द कहनेसे १ अङ्क और क्रण्या कहनेसे १७ अङ्कका बोघ होता है। यदि यह तिथि दो दिन तक रहें, तो इसकी व्यवस्था इस प्रकार होती हैं कृष्णाप्रतिः पद् द्वितीयायुक्त और शुक्काप्रतिपद् अमाचस्यायुक्त प्राह्म है। इसमें तिथि गुग्माद्र नहीं होगा; परन्तु उपवास-

विषयमें रूणाप्रति । द्वितीयायुक्त होनेसे वह प्रहणीय नहीं होगी।

कार्त्तिक्रमामनि शुक्त्यनिषद्धके दिन बलिके उद्देश्यसे भूपदीपादि द्वारा पूजा करनी होनी है। इस प्रतिषद्धको बिजिप्रतिषद्ध कदने हैं। मन्त्र यथा—

"विलिस्तः ! नमस्तुभ्य विरोचनसुन प्रमो । भविषयेन्द्र सुसाराते पूजेय' प्रतिगृशताम्॥"

(तिधितस्य)

दस प्रतिपदमें स्नानदानादि करनेसे शतगुण फल । प्राप्त होता है।

"महायुण्या निथिरियं चलिराज्यमवर्डिनो ।

हनानं दानं महायुण्यं कात्तिकेऽस्यां तिथो भवेत् ॥" '

अप्रदायणमासको कृणावितपद्दके दिन रोहिणों

नद्रतका योग होनेसे यदि उस दिन गङ्गास्नानादि किया |

जार, तो शतस्यंप्रहणकालोन गङ्गास्नानादिके समान |
फल प्राप्त होता है ।

"रोहिण्या प्रतिपदुयुक्ता मार्गे मासि सितेनरा। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यप्रहरातैः समा॥" (तिथितस्य)

पतिपद्द तिथिका नाम नन्दा है,— "व्रतिपद्दे एकाद्यों पण्डी नन्दा जे या मनीपिभिः।" (ज्योतिस्तत्त्व)

इस नन्दा अर्थात् प्रतिपद् आदि तिथियोंमें तेळ नहीं लगाना चाहिये।

"तन्द्रामु नाभ्यङ्गमुपाचरेच झीरख रिकासु जयासु मांसम् पूर्णासु योगिन् परिवर्जनीया भग्रासु सर्वाणि समाचरेच"

प्रतिपद्द तिथिमें कुप्माएड (कुम्ह्डा) न खाना चाहिये, खानेसे अर्थकी हानि होती है। शास्त्रमें इस निधिको औरकार्य भी निपिद वतलाया है।

"श्लीर' विशाखा प्रतिपद्गतु वर्ज्य'।" (तिथितस्व) तिथ ४०४ देखं।।

प्रतिपद्ध तिथि अग्निकी जन्मतिथि है। वराहपुराणके महानपोपाण्यानमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रतिपड़ितिथिमें जो जन्म लेता है, यह मणिकनक-यिभूव गते संयुक्त, मनोहर कान्तिविशिष्ट, प्रतापशाली

और स्वेतिस्वही तस्य अपने कुटमा हमारा काल करनेवाला होता है। अलेखान ।

प्रतिषद् (संब अध्यक्षः) पदे पदे प्रतिपद्धित्यकारताः । १ पद पदने । १ स्थान स्थानने १ ० होक १५ हाह भेद ।

प्रतिपदा (सं॰ रती॰) - हिमी पप्तही पहली विधि, हो। - पद्ग, परिचा ।

प्रतिषम्नक्त (सं ॰ पु॰) वीद्धज्ञान्त्रोक्त चार प्रतारके आवारे सम्प्रदाय ।

प्रतिपर्णेशिका (स°० खो०) द्रवन्नेत्रृक्ष, मृमा हानी। प्रतिपाण (स°० पु०) प्रति-पण-चन् । प्रतिकष गृतकोत्रा, चुक्में प्रतिपक्षीका रखा हुआ दोव । २ चिनित्रयमे रहेल पण, बदलेमें लगाई हुई बाजी ।

प्रतिपात (सं ॰ थव्य ॰ पाये पारे प्रतिपायमिस्ययर्ग भावः । प्रत्येक मनुष्य ।

प्रतिपादक (सं॰ वि॰) प्रतिपाद्यनीति प्रतिपर्धान् ण्युल् । १ प्रतिपत्तिजनक, अन्छी तगर समसाने पा कहनेवाला । २ प्रतिपन्नकारक, प्रतिपन्न करनेपाला । ३ निर्याहक, निर्याह करनेवाला । ४ उत्पादक, उत्पान करनेवाला ।

प्रतिपादन (सं ० हों।०) प्रतिपद णिच् मार्व न्युट् । १ इ.न । २ प्रतिपत्ति, अच्छो नर्द समन्ताना । ३ नि पादन, निरूपण । ४ प्रमाण, सन्तुत । ५ उत्पत्ति, वैशामा ६ पुरस्कार, इनाम ।

प्रतिपादनीय (सं ३ वि ३) प्रति पद-णिन् अर्गायम् । अत

प्रतिपाद्यित् (सं ० वि०) प्रति पद् णिच् गृन् । प्रतिपाद्र प्रतिपादन करनेवान्य ।

व्रतिपादित (सं ॰ वि ॰ । व्रति पद णिच्न्क । निपारित. जिसका व्रतिपादन हो चुका हो । ६ दन, जो दिया गण हो। ३ स्थिरीकृत, जिसका निश्चय हो चुका हो। 8 शोधित, जो सुधारा जा चुका हो।

प्रतिपाद्य (सं कि) प्रति-पद-णिच-कर्मणि यत्। १ वोधनीय, निरूपण करनेके योग्य। २ अभिधेय। ३ दातव्य, देनेके योग्य।

प्रतिपान (सं॰ क्ली॰) प्रति-पा-ल्युट् । पानीयज्ञल, पीने लायक जल।

प्रतिपाप (सं ॰ पु॰) १ अनाचारका प्रतिदान । २ पापी-के प्रति तुल्यरूप निष्टुर व्यवहार, वह कटोर और पाप-रूप व्यवहार जो किसी पापीके साथ किया जाय ।

प्रतिपाल (सं॰ पु॰) वह जो पालन करे, रक्षक, पोषक । प्रतिपालक (सं॰ ति॰) प्रतिपालयतीति प्रति-पा-णिच् ण्युल्। १ पालनकर्त्ता, पालन-पोषण करनेवाला । २

प्रतिपालन (सं॰ क्लो॰) प्रति-पा-णिच् भावे ल्युट्। १ रक्षण, रक्षा करनेकी क्रिया या भाव। २ पोपण, पालन करनेकी क्रिया या भाव। ३ निर्वाह, तामील।

अपेक्षाकारी ।

प्रतिपालनीय (स'० ति०) प्रति-पा-णिच् अनीयर्। प्रति-पाल्य, प्रतिपालनके योग्य।

प्रतिपालित (सं० त्नि०) १ पालन-किया हुआ । २ रक्षित ।

प्रतिपाल्य (सं॰ ति॰) प्रति-पा-णिच् कर्मणि यत्। १ प्रतिपालनोय, पालन करनेके योग्य। २ रक्षा करनेके योग्य।

प्रतिपित्सा (सं० स्त्रो०) प्रतिपत्तृमिच्छा, प्रतिपद्-सन् अङ्, टाप्। १ प्रतिपत्तिकी इच्छा। २ पानेकी इच्छा। प्रतिपीड़न (सं० क्षी०) प्रति-पीड़-स्युट्। प्रतिरूप पीड़न, अनुरूप पीड़न।

प्रतिपुरुप (सं० अव्य०) पुरुपे पुरुपे प्रतिपुरुपिमत्यव्ययी-भावः। १ प्रत्येक पुरुप। (पु०) २ प्रतिनिधि, वह पुरुप जो किसी दूसरे पुरुपके स्थान पर हो कर काम करे। ३ वह पुतला जो प्राचीन कालके चोर लोग घुसने-के पहले घरमें फैंका करते थे। जब इस प्रतिपुरुपके फेंकने पर घरके लोग किसी प्रकारका शोर नहीं करते थे, तब चोर घरमें घुसते थे। ४ सङ्गी, साथी। ५ सहकारी, वह जो साथमें काम करे।

Vol. XIV 132

प्रतिपुष्य (सं० क्ली॰) प्रतिवार चन्द्रमाका पुष्यानस्रतमें प्रवेश।

प्रतिपुस्तक (सं० क्लो॰) प्रतिरूप लिखित ग्रन्थ, किसी कितावकी नकले।

प्रतिपूजक (सं ॰ ति ॰) प्रति-पूज-ण्बुल् । प्रतिरूप पूजा-कारी, अभिवादनकरनेवाला ।

प्रतिपूजन (सं॰ पु॰) प्रतिपदं पूजनं प्रादिस॰। १ दूसरेको पूजा करते देख उसोके अनुसार पूजा करना। २ आभिमुख्य द्वारा पूजन, अभिवादन, साहव सलामत।

प्रतिपूजा (सं॰ स्त्री॰) प्रतिरूप पूजा, अभिवादन । प्रतिप्रस्त (सं॰ बि॰) प्रतिप्रस्ते स्मेति प्रति प्रस्क । १ प्रतिप्रसवविशिष्ट, जिसके विषयमें प्रतिप्रसव हो । २

प्रतिप्रस्थाता (हिं ० पु०) प्रतिप्रस्थातु देखा ।

पुनः सम्भावित।

प्रतिप्रस्थात् (सं॰ पु॰) प्रति-प्र-स्था-तृच् । सोमयागीय ऋत्विग्भेद, सोमयाजी १६ ऋत्विजोंमेंसे छठां ऋत्विज ।

प्रतिप्रस्थान (सं• कडी॰) प्रतिकृतं प्रस्थानं प्रादिसं। १ विरुद्धपक्षाश्रयणं। (ति॰) २ प्रतिकृतः प्रस्थानयुक्त। ३ निप्राह्य।

प्रतिप्रहार (सं॰ पु॰) प्रतिरूपः प्रहारः प्रादिसः । १ इतप्रहारके अनुरूप प्रहार, मार पर मार । २ प्रतिघात-भेद ।

प्रतिप्रकार (सं ॰ पु ॰) प्रतिक्रपः प्राकारः । १ तुल्यक्रप प्राचीर । २ दुर्गके वहिर्दिकस्थ प्राचीर, दुर्गके वाहरकी दीवार ।

प्रतिप्राभृत (सं ॰ म्ली॰) उपढोंकन प्रत्यप ण, रिशवत वापिस करना।

प्रतिप्राश् (सं॰ बि॰) दूसरेका भोजन खा छेना।

प्रतिप्रास्थानिक (सं । त्रि) १ प्रतिप्रस्थाताके कर्म-सम्बन्धीय। २ प्रतिप्रस्थाताका कार्य।

प्रतिप्रिय (सं॰ क्लो॰) प्रत्युपकार, वह उपकार जो किसी उपकारके वहले किया जाय ।

प्रतिष्रैप (सं॰ पु॰) प्रतिरूपः प्रैपः प्रादिस॰। नियोजित कर्तृ क नियोक्ताके प्रति पुनः प्रेरण।

प्रतिष्ठवन (सं० क्लो॰) पश्चादुल्लम्फन, पीछेकी ओर कूदना । प्रतिफल (सं० ह्यो०) प्रतिफलतोति प्रतिफल-अच्। १ प्रतिविम्त्र, छाया। २ परिणाम, नतीजा। ३ वह वात जो किसी वातका वदला देने या लेनेके लिये की जाय। ४ प्रत्युपकार।

प्रतिफलन (सं० क्वी०) प्रति फल-ल्युट्। १ प्रतिविम्ब, परिछांही। २ सादृश्य, समानता।

प्रतिफला (सं ॰ स्त्री॰) वकुची, वावची ।

प्रतिफल्लित (सं• ति•) प्रति-फल्ल-क । प्रतिविम्वित । प्रतिफुल्लक (सं• ति•) प्रतिफुल्लिति विकसतीति प्रति-फुल्ल-ण्युल् । १ प्रफुल्ल । २ पुष्पशुक्त ।

प्रतिवद्ध (सं० ति०) प्रति-वन्ध-क । १ प्रतिवन्धविशिष्ट, जिसमें किसी प्रकारका प्रतिवन्ध हो, जिसमें कोई रुका-वट हो। २ जिसमें कोई वाधा डाली गई हो। ३ नियंतित।

प्रतिबन्ध (सं॰ पु॰) प्रति-वन्ध-वञ्। १ कार्यं प्रतिघात, बाधा, विध्न । २ रोक, रुकाबर, अरकाव । ३ प्रवन्ध, बंदोवस्त ।

प्रतिबन्धक (सं॰ पु॰) प्रतिबद्मातीति प्रति-बन्ध ण्वुल्। १ विटप, चृक्ष। (ति॰) २ रोकनेवाला। ३ वाधा डालनेवाला।

प्रतिवन्धकता (सं० स्त्री०) १ रुकाबट, रोक, अड़चन। २ विघ्न, वाधा।

मतिवन्धि (सं० पु०) मतिवध्नात्यनेनेति प्रतिवन्ध-इन्। अनिष्टान्तर प्रसञ्जक वाक्य, प्रतिवन्ध।

प्रतिवन्धिका (सं० स्त्री०) प्रतिवन्धक स्त्रियां टाप्, कापि अत-इत्वं। प्रतिवन्धक।

प्रतिवन्यु (सं॰ पु॰) प्रतिरूपी वन्युः प्रादिसमासः। वन्यु तुल्य दौहिसादि, वह जो वन्युके समान हो।

प्रतिवध्य (सं॰ बि॰) प्रति-वन्ध-यत्। प्रतिवन्धनीय। प्रतिवल (सं॰ बि॰) प्रतिगतं वलमस्य। १ समर्थं,

शक्त । २ शक्तिमें समान, वरावरकी ताकतवाला । प्रतिवला (सं० स्रो०) अतिवला, ककही नामका पौधा । प्रतिवाणी (सं० स्रो०) प्रतिक्षपा वाणी । १ प्रत्युक्ति, प्रत्युक्तर । २ अनुपयुक्त । ३ असुविधाजनक । 8 अमनोमत ।

प्रतिवाधक (सं० ति०) १ वाधा करनेवाला, रोकनेवाला । २ कष्ट पहुंचानेवाला । प्रतिवाधन (स'० हो०) प्रति-वाध-ल्युट्। १ विक्न, वाधा। २ पीड़ा, कर्षे।

प्रतिवाहु (सं०पु॰) प्रतिगतो वाहुं। १ वाहका अगला भाग। २ पुराणानुसार श्वफल्कके एक पुत्र और अकर्क भाईका नाम।

प्रतिविभ्व (सं ० पु॰) प्रतिरूपं विभ्वं प्रादिस॰ । १ प्रतिमा, मूत्ति । २ प्रतिच्छाया, परछाई, छाया । ३ दप[°]ण, शोशा । ४ चित्न, तस्वीर ।

प्रतिविम्बक (सं० पु॰) पर्रछाँईके समान पोछे पीछे चलनेवाला।

त्रतिविम्बन (सं॰ क्ली॰) प्रतिविम्ब नामधातु भावे त्युट्। अनुकरण । सञ्छपदार्थमें अनुरूप आकृति पतन ।

प्रतिविक्ववाद (सं० पु०) प्रतिविक्वस्य वादः ६ तत्। वेदान्तका वह सिद्धान्त जिसके अनुसार यह माना जाता है, कि जीव वास्तवमें ईश्वरका प्रतिविक्व मात है।

वेदान्तद्यं न भौर त्रद्य श्रव्द देखां।

प्रतिविम्वित (सं ० ति०) १ जिसका प्रतिविम्य पड्ता हो, जिसकी परछाँही पड़ती हो। २ वह जो परछाँही पड़नेके कारण दिखाई पड़ता हो। ३ जो कुछ असपष्ट क्पसे व्यक्त होता हो, जिसका आभास मिलता हो।

प्रतिवीज (सं• ह्यों०) नष्ट वीज, जिसका वीज नष्ट हो गया हो। जिसको उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो गई हो।

प्रतिवुद्ध (सं० ति०) प्रति-बुध-कर्त्तरि कः । १ जागरित, जागा हुआ। २ झात, जो जाना गया हो। ३ आलोचित, जिसकी आलोचना की गई हो। ४ उन्नत, जिसकी उन्नति हुई हो।

प्रतिबुद्धि (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-बुध-किच्। विपरीत बुद्धिः जलटी समभः।

प्रतिवोध (सं • पु॰) प्रति-युध भावे धज्। १ जागरण, जागना। २ ज्ञान। (ति॰) ३ जागरित, जागा हुआ। ४ ज्ञाता, जाननेवाला।

प्रतिवोधक (सं० ति०) प्रति-वोधयतीति प्रति-वृध-णिव्-ण्डुल् । १ तिरस्कारकारक, निन्दा करनेवाला । २ शिक्षक, शिक्षा देनेवाला । ३ प्रतिवोध करानेवाला । ४ जागरण-कारी, जागनेवाला । ५ झान उत्पन्न करनेवाला ।

प्रतिवोधन (स'० क्ली०) १ पृवोधन, शान उत्पन्न कराना । (क्ली॰) २ जागरण, जगाना । पृतिवोधवत् (स'० ति० पृति-वोधः अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य य। प्रतिवोधयुक्त। प्रतिवोधिन् (सं ० त्रि०) प्रति-त्रुध-भविष्यति-णिनि । भावि प्रतिवोधयुक्त । २ शास्त्र-प्रतिवोधी । प्रतिवोधिपुत्र (सं॰ पु॰) एक वौद्धाचार्य। प्रतिसट (सं ॰ पु॰) प्रतिकुलो भटः प्रादि समासः । । १ प्रतियोध, वरावरका योद्धा। २ वह जिससे युद्ध होता हो, मुकावला करनेवाला । ३ शतु, वैरी, दुशमन । এतिभरता (सं॰ स्त्री॰) शब् ता, दुश्मनी, चैर। प्रतिभय (सं ० ति ०) प्रतिगतं भयं यत । १ भयङ्कर । (क्ली॰) २ प्रतिगतं भयं प्राद्सि॰ । २ भय, डर । प्रतिमत्ति (सं ० स्त्री०) पिता माताका भरणपोपण। प्रतिभा (स • स्त्रो•) प्रति-भाति शोभते (ति प्रति-भा-कप्-टाप्। १ बुद्धि, समऋ । २ प्रत्युत्पन्नमतित्व, वह असाधारण मानसिक शक्ति जिसकी सहायतासे मनुष्य थापसे आप, विशेष प्रयत्न किये विना ही किसी काममें वहुत अधिक योग्यता प्राप्त कर छेता और दूसरोंसे आगे : वद् जाता है।३ दीप्ति, चमक। सादृश्य, समानता। प्रतिभाकृट (सं ० प्र०) एक वोधिसत्वका नाम । प्रतिभाग (सं० क्ली०) । वह फल जो प्रत्येक मनुष्य । राजाके व्यवहारके छिपे उन्हें देता है । २ प्रत्येक भाग । प्रतिभागशस् (सं ० अव्य०) प्रत्येक भाग । प्रतिभात (सं ० ति०) प्रति-भा-कर्त्तरि-क। १ ज्ञानमें बहता हुआ। २ प्रदीसियुक्त, जगमगाता हुआ। प्रतिभान (सं ० क्ली०) प्रति-भा-ल्युट्। १ वुद्धि, समभः। २ प्रभा, चमक । प्रतिमानवत् (सं ० ति०) प्रतिमान अस्त्यर्थे मतुष् मस्य च । प्रतिभानयुक्त । प्रतिभानु (सं ॰ पु॰) सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्ण-के एक पुलका नाम। प्रतिभान्वित सं ० ति ०) प्रतिभया अन्वितः । १ प्रगल्भ, प्रतिभाशालो । २ प्रत्युत्पन्नमतियुक्त । (पु॰) ३ श्रीकृष्ण-के ६४ प्रकारके मुख्य गुणोंमेंसे एक गुण। प्रतिभामुख (सं ० ति०) प्रतिभान्वितं मुखमस्य। प्रगत्भ, प्रतिभाशाली ।

प्रतिभावत् (सं ० त्रि०) प्रतिमा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व । 🕧 त्रतिभान्वित, प्रतिभाशाली । २ दोप्तिमान, चमकदार। प्रतिभावान् (हिं ० वि०) प्रतिभावत देखो । प्रतिभाशाली सं• वि•) प्रतिभावाला, जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिमापा (सं • स्त्री •) १ उत्तर, जवाव । २ वह जो किसी उत्तरके उत्तरमें कहा जाय, प्रत्युत्तर । ३ बादीका कथन, मुद्दईका वयान । प्रतिभास (सं॰ पु॰) प्रति भास-भावे-वञ् । १ प्रकाश, चमका २ आइति। ३ म्रम, धोखा। कर्रोर अच्। ८ प्रकाशमान । प्रतिभासन (सं० क्ली०) प्रति-भास-ल्युट्। प्रकाशन। प्रतिभासम्पन्न (सं ० ति०) प्रतिमाशाली, जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिमाहानि (सं ० पु०) प्रतिभायाः हानिः । वुद्धिनाश । प्रतिभिन्न (सं ० ति०) विभक्त, जो अलग हो गया हो । प्रतिभू (सं ॰ पु॰) प्रतिरूपः प्रतिनिधिर्वा भवतीति प्रति-भू (भुद: सहान्तरयाः । या ३।२।१३६) इति किए । लग्नक, व्यवहार-शास्त्रमें वह व्यक्ति जो ऋण देनेवाले (उत्तमर्ण)-के सामने ऋण हेनेवाहें (अधमर्व) की जमानत करे.

याज्ञवक्ष्यसंहितामें प्रतिभूका विषय इस प्रकार लिखा है—

जामिन ।

"वर्शने मत्यये दाने प्रतिभाव्य विधीयते । आद्यौ तु वितथे दाव्या वितरस्य सुता अपि॥" (याज्ञ० २।५४)

दर्शन, प्रत्यय और दान इन तीन कार्यों में जामिनकी जकरत पड़ती है। अर्थान् विचारपितके निकट आप इसे छोड़ दें, 'जकरत पड़ने पर में इसे हाजिर कर दूंगा' ऐसे दर्शनका तथा किसो महाजनको कहे, 'आप इसे अप्टण दें, यह आपको घोखा नहीं देगा, वड़ा विश्वासी है' ऐसे विश्वासका पवं 'वह यदि नहीं देगा, तो में दूंगा' ऐसे दानका यही तीन प्रकारका प्रतिभूत्व विहित हुआ है। इनमेंसे दर्शन और विश्वास सम्यन्धीय प्रतिभू-की बात यदि ठीक न हो अर्थात् पे दोनों यदि पीछे

हर जांय, तो महाजनका रुपया इन्हीं दोनोंको देना पड़ेगा। पग्नु यदि इसी वीच उनकी मृत्यु हो जाय, तो उनके पुत उस ऋणके दायी नहीं हो सकते। जिसके लिये प्रतिभू हुए थे, वह यदि ऋण परिशोध न करे, तो उन्हें ही उत्तमणेंका ऋण परिशोध 'करना होगा उनकी मृत्यु होने पर उनके छड़के ऋणशोध करेंगे। दशैन और प्रत्ययके प्रतिभुञोंकी मृत्यु पर उनके छड़के यदि जामिनके अनुरूप कार्यं न कर सके, तो उन्हें कोई पाप नहीं होगा। परन्तु दानके प्रतिभूका पुत यदि ऋण परिशोध न करें, तो वह अवश्य पापभागी होता है। यदि वहुतसे आद्मी अंशका निर्देश न करके किसी प्कके प्रतिभू हों, तो उसी प्रकार चिशेप अंशका निर्देश न करके समो मिल कर अधमणेंके अभिप्रायानुसार ऋण शोध करनेको वाध्य हैं। प्रतिभूके सामने उत्तमर्ण जो कुछ देगा, अधमणै-प्रतिमूको उसका दूना लगा कर देना होगा। परन्तु स्त्री-पशुका अधमर्ण स्त्री-पशुपदान-कारी प्रतिभूको सवत्स स्त्रीपशु देवे । इसी प्रकार धान्य-के अधमर्णको उसे (प्रतिभूको) तिगुना धान, चस्रके अधमर्णको चौगुना वस्र और रसके अधमर्णको अउ-गुना रस देना चाहिये। (४१ इनल्थ्य ६० २ अ०)

इसका विस्तृत विव ण मतुके अग्रग अक्षायमें देखा। प्रतिभेद (सं० पु०) प्रति-भिद-श्रज्। १ प्रभेद, अन्तर, फर्का २ आविष्कार।

प्रतिभेदन (सं० हो)०) प्रति-भिद-भावे ब्युट्। १ नेतादि-का उत्पाटन, आंख आदिका निकालना। २ विभाग करना। ३ भेद उत्पन्न करना, खोलना।

प्रतिभोग (सं० पु०) प्रति-भुज-घन्। उपभोग।
प्रतिम (सं० ति०) प्रतिभातीति प्रति-मा-क (अत्वक्षीर-स्रो। पा ३।१।१।६) सद्भग्न, समान। इस शब्दका व्यवहार केवळ यौगिकमें, शब्दके अन्तमें होता है। जैसे, मेघप्रतिम अर्थात् मेघके समान।

प्रतिमण्डक (सं० पु०) शालक रागका एक मेद । प्रतिमण्डल (सं० लि०) प्रतिक्षं मण्डलं, प्रादिसमासः । सूर्यादि मण्डलकी परिधि, सूर्य आदि चमकते हुए ब्रह्मेंका घेरा।

प्रतिमत्स्य (सं ॰ पु॰) जाति तथा तन्नामक देशवासी।

प्रतिमन्त्रण (सं ० क्की०) उत्तर देना, जवाव देना। प्रतिमर्श (सं ॰ पु॰) शिरोवस्तिमेद, एक प्रकारको शिरो वस्ति जो नस्यके पांच मेदींके अन्तर्गत हैं। सुश्रुतर्गे लिखा है, - औपध्र अथवा औपधके साथ पकाये हर घीको नाकके नथनों द्वारा ऊपर चढ़ानेका नाम नस्व है। यः नस्य दो प्रकारका है, शिरोविरेचन और स्नेहन। इन दोनोंके भी फिर पांच भाग किये गये हैं, यथा-नस्य शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड़ और प्रधमन । इस प्रति-मर्शका चौद्ह समयमें प्रयोग किया जा सकता है। यथा~ प्रातःकाल सो कर उडनेके समय दतुवन करनेके वाद, घरसे वाहर निकलनेके समय, मलमूल परित्यागके वाद, कवलग्रहण और अञ्चनप्रयोगके बाद, व्यायाम, व्यवसाय या प्रथम्नमणके वाद, अभुक्तकालमें, वमन और दिवा-निदाके उपरान्त और सायंकालमें। ये चौदह प्रतिमर्श-के उपयुक्त समय माने गये हैं। इनमेंसे प्रातःकाल सी कर उठनेके समय इसका सेवन करनेसे नाकका मछ निकल जाता है और मन प्रफुल रहता है। दतुवन करने-के वाद सेवन करनेसे दांत मजबूत होते और मुंहकी दुर्गन्ध नए होती है। घरसे बाहर निकलनेके समय सेवन करनेसे धूली और धुआं आदि नाकमें घुस नहीं सकते । मलमूल त्यागके वाद सेवन करनेसे आंखींकी ज्योति वढ़ती है। अभुक्तकालमे सेवन करनेसे श्रोतपथ-की विशुद्धिता और छघुता ; वमनके वाद सेवन करनेसे स्रोतपथसंलग्न श्लेग्मा परिष्कृत हो कर अन्तमें विच ; दिवानिद्राके वाद सेवन करनेसे निद्राजन्य गुरुत्व और मलनाश तथा चित्तको एकाप्रता ; सायंकालमें सेवन करनेसे सुखसे निशा और उत्तम प्रवोध होता है। भिन भिन्न समयके प्रतिमर्शका भिन्न भिन्न परिणाम वत-लाया गया है।

प्रतिमल्ल (सं ॰ पु॰) प्रतिकूलो मल्लः प्रादिसमासः। प्रति-योध, शत्रुता, विरोध ।

प्रतिमा (सं ॰ स्त्री॰) प्रतिमीयत इति अति-मा-अङ् तत-प्राप्। १ अनुकृति, किसोकी वास्तविक अथवा किएत आकृतिके अनुसार वनाई हुई मूर्ति या चित्र। २ गज-दन्तवन्ध, हाथियोंके दांत परका पीतल या तांबे आदिका वन्धन। ३ पृतिविस्व, छाया। ४ मट्टी, पत्थर या धातु आदिको वनी हुई देवताओंकी मूर्ति। पर्याय-प्रतिमान, पृतियातना, पृतिविभ्व, पृतिच्छाया, अर्था, पृतिकृति, पृतिच्छन्द, पृतिनिधि, पृतिकाय, प्रतिरूप।

λ,

١,

"गिरिष्टं तु सा तस्मिन् स्थिता खसितळोचना। विभाजमाना शुशुभे पृतिमेच हिरण्मयो॥"

(महाभारत शर्वादक)

शास्त्रीय पूमाणके अनुसार मृत्तिका, शिला और स्वर्णादि द्वारा देवताकी पृतिमृत्ति वनानी साहिये। यह पृतिमा व्यक्त और स्थापितके भेदसे दो पृकारका है। जो स्वयमुत्पन्न है, वही व्यक्त है और जिसे मद्दी आदि द्वारा वना कर मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठित करते हैं, उसका नाम स्थापित प्रतिमा है।

किस देवताको कैसी आकृति और उसके अङ्गप्रत्य-क्रादिका कैसा परिमाण होना चाहिये, इसका विस्तृत विवरण मरस्यपुराणके प्रतिमालक्षण नामक २३२, २३३ और २३४ अध्यायमें लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया।

देवीपुराणके मतसे, --एक दिन देवराज इन्द्रने ब्रह्मासे प्रतिमाकी भाराधनाके विषयमें कुछ प्रश्न किये। इस पर ब्रह्मा, प्रधान प्रधान देवताओंने प्राचीनकालमें जिस जिस देवताकी आराधना करके जैसा जैसा वैभव प्राप्त किया था, उसके सम्मन्धर्मे इस प्रकार कहने छगे,— 'हे देवेश! पहले शम्भुने अक्षमाला धारण करके मन्त-शक्तिमयी देवीकी आराधना की। इसीसे दे सर्वोके ईश्वर हुए हैं। मैं शैलमयी देवीकी पूजा करता हूँ, इस कारण यह सुदुर्लभ ब्रह्मत्व मुक्ते ब्राप्त हुआ है । विष्णु हमेशा इन्द्रनोलमयी देवींको अर्चना करते हैं, अतः उन्होंने सनातन ब्रह्मत्व प्राप्त किया। इसो प्रकार विश्वदेवगणने रौष्यमयी देवीकी, बायुने पित्तलमयीकी, बसुगणने कांस्य-मयीको, दोनों अध्विनोक्कमारने पार्थिवमयीको, वरुणने स्फटिकमयीकी, अग्निने अन्नमयीकी, दिवाकरने ताझ-मयीकी, चन्द्रने मुक्तामयीकी, पन्नगगणने प्रवालमयीकी, असुरगण और राक्षसगणने छष्णलौहमयीकी, पिशाचगणने पिञ्चल और सीसकमयीकी तथा मातृकागणने वज्रलोह-मयी देवोकी भक्तिपूर्वक आराधना करके एरम वैसंव वास किया था। अतएव है इन्द्र! यदि तुम भी परम गति

पाना चाहो, तो मणिमयी प्रतिमाका निर्माण करके शिवा-हेवीकी आराधना करो। इससे तुम्हारे समी अमीष्ट सिद्ध हो सकते हैं।

उक्त सभी प्रतिमाको सब प्रकारके प्रस्तर, शुभमय काष्ट्रगृह और बलभीयुक्त मण्डपमें स्थापन करना हो प्रशस्त है। प्रतिमाको स्थापित करते समय पहले गन्थ, पुष्प, धूप, दीप और माल्य आभरणादि द्वारा पहले उनका अधिवास करके पीछे नाना प्रकारकी वेदध्वनि, वादित और खोकण्डध्वनिके साथ स्थापन करना होता है। इस प्रकार कहे गये उपकरणादि द्वारा जो व्यक्ति प्रतिमाकी स्थापना करते हैं, वे परलोकमें अजस सुज लाम करते हैं।

भग्निपुराणके मतसे, भगवान्ने कहा है, कि में कियावानोंकी अग्निमें, मनीपियोंके हृद्यमें, खल्यवुद्धि-वालोंकी प्रतिमामें और हानियोंमें सब जगह विराजमान हैं। अर्थात् कियानिष्ट व्यक्ति अग्निमें, मनीपो हृद्यमें और ज्ञानिगण समी जगह मेरे अस्तित्वको कल्पना करके दर्शन पाते हैं।

"अमी कियावतामस्मि हित् चाहं मनीविणाम् । प्रतिमाखल्पषुद्रोनां ज्ञानिनामस्मि सर्वतः॥" (अग्नियु०).

सुवर्ण, रजत, ताम्र, रत, प्रस्तर, काष्ट्र, स्रीह और सीसक साधारणतः इन्हीं सब धातुओंकी सुन्दर प्रतिमा बना कर पूजा करना प्रशस्त है।

छक्षणान्वित मनोहर प्रतिमा वना कर मानव यदि पूजा करे, तो उसे अक्षण विष्णुलोकमें स्थान मिलता है। "प्रतिमां लक्षणवतीं कः कुर्याक्वेव मानवः।

केशवस्य परं लोकमक्षयं प्रतिपद्यते ॥" (अग्निपु०)
प्रतिमाको गढ़ कर उनकी पूजा करनेका कारण तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

"चिन्मयस्याप्रमेयस्य निष्कलस्याशरीरिणः। साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो क्षकल्पना॥" साधकोंको ख्रविधाके लिये ही उस चिन्मय, अब्रमेय, निष्कल और अशरीरी ब्रह्मका क्षप कल्पित होता है।

4 तीलनेका बाट, वटखरा । ६ साहित्वका एक अलङ्कार। इसमें किसो मनुष्य पदार्थ वा व्यक्तिकी स्थापनाका वर्णन होता है।

Vol. XIV. 133

प्रतिमान (सं० क्की०) प्रतिमीयतेऽनेनेति प्रति-मा-ल्युट्।
१ प्रतिविम्य, परछांही। २ हाथोके दोनों वड़े दांतोंके
वीचका स्थान। ३ साह्रश्न, समानता, वरावरी। ४ हस्ती
का छलाटदेश, हाथीका मस्तक। ५ ह्यान्त, उदाहरण।
६ प्रतिनिधि।

पृतिमाया (सं० क्की०) पट्यमान कवितावळी। स्मरण-शक्तिका परिचय देनेके लिये जो सव कविताएँ पढ़ी जाती हैं उन्हें प्रतिमाया कहते हैं। २ प्रतिरूप माया। पृतिमार्गक (सं० पु०) प्रतिदिशं मार्गो गमनपन्था यस्य। १ पुरविशेष। २ प्रत्येक मार्ग।

प्रतिमाला (सं क्यों) स्मरणशक्तिका परिचय देनेके लिये दो आदिमियोंका एक दूसरेके पीछे लगातार क्योंक वा कविता पढ़ना। कभी कभी एकके क्योंकका अन्तिम अक्षर लेकर दूसरा उसी अक्षरसे आरम्भ करनेवाला क्योंक पढ़ता है। इसे अंत्याक्षरी कहते हैं। जो आगे नहीं कह सकता, उसकी हार समभी जाती है।

पृतिमास (सं॰ अव/०) मासे मासे प्रतिमासमित्यवायी-भावः । प्रत्येक मास, हर माह ।

प्रतिमास्य (सं॰ पु॰) जनपद और तज्जनपदवासी जाति-विशोष।

प्रतिमित (सं० पु०) नृपमेद । २ प्रत्येक मित ।
प्रतिमुक्क (सं० अव्य०) प्रत्येक मुक्क या कली ।
प्रतिमुक्त (सं० ति०) प्रतिमुच्यते स्मेति प्रति-मुच-क । १
परिहित वस्त्रादि, पहना हुआ कपड़ा । २ परित्यक,
जिसका त्याग कर दिया गया हो । ३ वद्ध, जो वंधा हुआ
हो । ४ प्रतिनिवृत्त, जो रोक दिया गया हो । ५ विच्युत,
जो अलग कर दिया गया हो । ६ प्रत्यर्पित, जो फिरसे
दिया गया हो ।

प्रतिमुख (सं ० ह्वी०) साहित्यद्पैणोक्त नाटकाङ्ग सन्धि-भेद, नाटककी पांच अङ्गसंधियोंमेंसे एक । "मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहतिः। इति पञ्चास्य भेदाः स्युः क्रमाह्यक्षणंमुच्यते॥" (साहित्यद० ६ अ०)

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्थ और उपसंद्वति यही पांच नाटककी अङ्गसन्धि है। नाटकके प्रतिमुखमें लास, परिसप, विधृत, तापन, नर्म, नर्मग्रुति, प्रगमन, विरोध, पर्यु पासन, पुष्प, वज्र, उपन्यास और वर्णसंहार ये सव प्रतिमुखके अङ्ग हैं अर्थात् जहां प्रतिमुख वर्णित होगा वहां इन सव विषयोंकी वर्णना करनी होगी । रित-भोगार्थ इच्छाका नाम विलास है।

"समीहा रंतिमोगार्था विलास इति कथ्यते।" (साहित्यदः)

इसका उदाहरण-

"कामं प्रिया न खुलभा मनस्तु तदुभावदर्शनाश्वासि।" (शकुन्तला)

प्रिया सुलमा नहीं है, तिस पर भी मन उसे देखनेका नितान्त अभिलाणी है। यहां रितभोगार्थ इच्छाका चर्णन हुआ है, इसीसे यह विलास हुआ।

२ पश्चाद्धाग, किसी चोजका पीछला भाग। प्रतिमुद्रा (सं॰ स्त्री॰) नामाङ्कित मोहरकी छाप। प्रतिमुद्धत्ते (सं॰ अव्य॰) प्रत्येक मुह^{ूर्च}, अनवरत, लगा-तार।

प्रतिमूर्त्त (सं • स्त्री॰) प्रतिरूपा मूर्त्तिः प्रादिस॰। देवादि-मृत्ति, आकृति, छवि।

प्रतिम्पिका (सं॰ स्त्री) इन्दुरिवशेष, एक प्रकारका चूहा।

प्रतिमोक्ष (सं॰ पु॰) मोक्षप्राप्ति ।

प्रतिमोक्षण (सं० क्को॰) १ मोक्षमिति। २ मोचन।

प्रतिमोचन (सं क ही) प्रति-मुच्-ल्युट्। १ वन्धन-मोचन, वन्धनसे मुक्त करना। २ निर्यातन। ३ परिधान। प्रतियद्ध (सं ० पु •) प्रतियत्यते इति प्रति-यत् प्रवतं (यज्याच यतिरुद्धप्रच्छवसो नहः। पा २।३।१०) इति नहः। १ लिप्सा, लालच। २ उपप्रहः। ३ निप्रहादि। ४ वन्दी, कैदी। ५ संस्कार। ६ गुणान्तराधानकप संस्कार। ७ प्रहणादि। ८ रचना (ति ०) ६ प्रयत्नयुक्त।

प्रतियातन (सं ० क्ली •) प्रति-यात-त्युट् । वैरनिर्यातन । प्रतियातना (सं ० स्त्री •) प्रतियात्यतेऽनया इति प्रति-यत- णिच् (न्यास्थन्त्रोयुच । पा ३।३।१ • ७ । इति युच् ततप्राप्। १ प्रतिमा, मूर्ति । २ तुल्यस्य यातना ।

प्रतियान (सं ॰ क्ली) प्रति-या-ल्युट् । प्रतिगमन, लीटना, वापिस भाना ।

152 July 200

प्रतियायिन् (सं ० ति०) प्रति-या-भविर्यात गम्पादित्वात् णिनि । भावियानयुक्त, भविष्यत् यानयुक्त । प्रतियुद्ध (सं० क्ली०) प्रतिक्रपं युद्धं प्रादिसमासः। अनुस्पयुद्ध, बरावरीकी लड़ाई । प्रतियूयप (सं ॰ पु॰) तुल्यक्रप यूथपति । प्रतियोग (सं ॰ पु॰) प्रति युज्यते इति प्रति-युज-भावे घञ्। १ विरोधविपक्षता, शबुता, तुश्मनी । २ विरुद्ध-सम्बन्ध, विरोधी पदार्थोंका संयोग। ३ पुनरुद्योग, वह उद्योग जो फिरसे किया जाय । ४ मारक, वह जिससे किसी पदार्थका परिणाम नष्ट हो जाय। प्रतियोगिक (सं ० ति ०) १ प्रतियोगयुक्त । २ निकट सम्बन्धयुक्त । प्रतियोगिता (सं• स्त्री॰) प्रतियोगिनः भावः, प्रतियोगि-भावे- तल्-स्रियां द्यप् । १ प्रतिद्वन्द्रिता, चढ़ा-ऊपरी । २ बिरोध, शबुता। प्रतियोगितावच्छेद्क (सं॰ वि॰) प्रतियोगितावच्छित्र धर्म, जिसमें प्रतियोगिता हो, पैसा धर्म। प्रतियोगिन् (सं ॰ पु॰) प्रतिद्धवं युज्यते इति प्रति-युज-धिनुण्। १ विरोधी, वैरी । २ हिस्सेवार, शरीक । ३ सहायक, मददगार । ४ साथी । ५ दरावरवाला, जोड्का । (ति॰) ६ मुकावलेका, वरावरीका । ७ मुकावला करने-वाला, सामना करनेवाला। प्रतियोद्धा (हि॰ पु॰) १ शतु, विरोधी । २ मुकावलेका छडनेवाला । प्रतियोद्ध्र (सं ॰ ति ॰) प्रति-युध-तृच् । प्रतिरूप योदा । प्रतियोद्धा देखो । प्रतियोध (सं॰ पु॰) प्रति-युध-धन् । प्रतिभट, प्रतिकप-योद्धा । प्रतियोनि (सं अब्य) १ प्रत्येक योनि । २ उत्पत्तिके अनुह्मप् । प्रतिर (सं ॰ ति ॰) जठरमें चिरकाद्यावस्थान, जो सदाके लिये पेटमें रहता है। प्रतिरक्षण (सं ॰ पु॰) रखा,हिफाजत । प्रतिरथ (सं॰ पु॰) प्रतिकूछी रथी यस्य, प्रादिसमासः। १ प्रतियोघ, वरावरीका छड्नेवाछा । २ पुराणानुसार यदुवंशी वजाभ्वके पुत्रका नाम।

प्रतिरम्भ (सं • पु॰) प्रतिलम्म, लाम । प्रतिरव (सं ॰ क्वी॰) प्रतिरुवन्ति प्रति-र-करोरि अच् । १ प्राण। २ प्रतिकूछ शब्द। प्रतिराज (सं ॰ पु॰) प्रतिपक्ष नृपति, विपक्ष राजा । प्रतिराजन् (सं ० पु०) विपश्च राजा। प्रतिरात (सं॰ अब्य॰) प्रत्येक रात । प्रतिराध (सं ० पु॰) १ वाधा, विघ्न । प्रतिरुद्ध (सं । ति । प्रति-रुध-क । १ अवरुद्ध, रुका हुआ। २ निवारित, अटका हुआ। प्रतिरूप (सं ॰ क्ली॰) प्रतिगतं प्रतिकृतं वा रूपमिति प्रादि समासः। १ वितमा, मृत्ति। २ महाभारतके अनुसार एक दानवका नाम। ३ चित्र, तखीर। ८ मेरुसाचर्णिकी दुहिता। (ति॰) प्रतिगतं रूपमस्य। ५ अनुरूप, एक-सा। प्रतिरूपक (सं ० क्ली०) प्रतिरूप-स्वार्थे-कन् । प्रतिविस्व । प्रतिह्रप्य (सं ० क्वी०) समह्रपता, तुल्यह्रपता । यतिरोद्धा (हि॰ वि॰) १ विरोधी, शबुता करनेवाला। २ वाश्रा डालनेवाला, रोकनेवाला । प्रतिरोद्ध् (सं० ति०) प्रति-रुध नृण्। प्रतिगेदा देखो। मतिरोध । सं • पु॰) मतिरुध्यनेऽ नेनेति मति-स्थ-करणे वज्। १ तिरस्कार । २ निरोध । ३ प्रतिविश्व। व्रति-रुघ-कर्त्तरि अच्। ४ सत्प्रतिपञ्ग। प्रतिरोधक (सं॰ पु॰) प्रतिवणदि प्रतिवध्य सीर्यं करी-तीति प्रति-रुध ण्डुल्। १ प्रतिवन्धक, रोकने या वाधा-डालनेवाला । २ हटचौर, चोर, ठग, डाकू आदि । प्रतिरोधन (सं० क्ली०) प्रति-रुध-स्युट् । प्रतिरोध, प्रतिरोध करनेकी क्रिया या भाव। प्रतिरोधित (सं ० ति०) प्रति-रुध-णिच्-क । १ निवा-रित, जो रोका गया हो । २ न्याहत, जिसमें वाधा डाली गई हो । वितरोधिन् (सं॰ पु॰) व्यतिरुणद्वीति प्रति-रुध-णिनि। र प्रतिवन्धक, रोकने या वाधा डालनेवाला। २ चोर, डकैत वादि। प्रतिलक्षण (सं ॰ क्ली॰) चिह्न सबूत । व्रतिलभ्य (स॰ पु॰) व्रति-ल्यम-यत् । प्राप्तियोग्य, वह जो पाने लायक हो। प्रतिलम्म (सं ॰ पु॰) प्रति-लम्म-मावे-घञ् । लाम, प्राप्ति ।

प्रतिलाम (स॰ पु॰) प्रति-लभ-घज् । १ लाम, प्राप्ति । २ शालक रागको एक मेद् ।

प्रतिलिङ्ग (सं ० अन्य) प्रत्येक लिङ्ग ।

प्रतिलिपि (सं ॰ स्त्री॰) लेखकी नकल, किसी लिखी हुई चीजकी नफल।

प्रतिलोम (सं० ति०) प्रतिगतं लोम आनुकुल्यं। अच् प्रत्यक्व-पूर्वात सामलोमनः। पा प्राधान्यः इति समासान्तोऽ च प्रत्ययः। १ विपरीत, प्रतिकृलः। २ विलोम, जो नीचेसे ऊपरकी ओर गया हो, जो सीधा न हो । ३ मीच।

प्रतिलोमक (सं ॰ पु॰) प्रतिलोम स्वार्थे कन् । १ विपरीत, प्रतिकूल । २ लोमका विपरीत ।

प्रतिलोमज (सं० ति०) प्रतिलोमात् जायते इति प्रतिलोम-जन्-छ। १ नीचवर्णके पुरुष और उच्च वर्णको कन्यासे उत्पन्न सन्तान। यह जाति अति निकृष्ट होती है। "संकोर्णयोनयो ये तुः प्रतिलोमानुलोमजाः।

अन्योन्यव्यतिषकाश्च तान् प्रवक्ष्याम्यशेषत ॥

(मनु १० अ०)

गनुमें लिखा है, कि परस्परकी आसक्तिवशतः सङ्कर जातिकी उत्पत्ति होती है। यह सङ्कर जाति अनलोमज और प्रतिन्होमज है। इस सङ्कर जातिमें चएडाल, सूत, बैदेह, आयोगव, मागध और क्षत्ता ये छः प्रतिलोमज सङ्करवर्ण हैं। सूत क्षतिय पिता और ब्राह्मणी मातासे, बैदेहिक बैश्य पिता और ब्राह्मणी मातासे, वाएडाल शूद पिता और ब्राह्मणी मातासे, नागध बैश्य पिता और क्षतिया मातासे, भागध बैश्य पिता और क्षतिया मातासे तथा आयोगव जाति शूद पिता और बैश्या मातासे तथा आयोगव जाति शूद पिता और वैश्या मातासे उत्पन्न हुई है। इन लोगोंको पितृकार्यका अधिकार नहीं है। ये सभो जातियां नराधम हैं।(नह १० अ०)

विन्णुसंहितामें लिखा है, प्रतिलोमा स्त्रोसे उत्पन्न
पुत्त बार्यस माजमें निन्दित हैं। इन सब जातियोंमेंसे
आगोगवोंकी वृत्ति रङ्गावतरण, पुक्तसों (क्षता)की व्याधत्व,
मागश्रोंको स्तवपाठ, चएडालोंकी वध्यवध अर्थात्
जल्लादका कार्य, वैदेहिकोंकी स्त्रोरक्षा और स्त्रीजोवन
तथा स्तोंको वृत्ति अश्वसारथ्य निर्झारित हुई है।
ग्रामके वहिर्मांगमें वास और मृतव्यक्तिका वस्त्र पहनना

ही चएडाछोंका विशेषत्व है। (विष्णु-० १६ ४०) प्रतिछोमतस् (सं० अव्य०) प्रतिछोम-तस् । प्रतिछोम कमसे, प्रतिछोमक्रपसे ।

प्रतिलोमविवाह (सं० पु०) वह विवाह जिसमें पुरुष नीच वर्णका और स्त्रो उच्च वर्णकी हो।

प्रतिवक्तव्य (स^{*}० ति०) प्रति-वच-तव्य । प्रत्युत्तर योग्य, जवाव देने लायक ।

प्रतिवचन (सं० क्री०) प्रतिरूपं वचनं प्रादिसमासः। १ प्रतिवाक्य। २ उत्तर। ३ विरुद्धवाक्य। ४ प्रति-निर्देश।

प्रतिवचस् (सं ० क्री०) प्रतिरूपं वचः। प्रत्युत्तर, जवान ।

प्रतिवत् (सं० ति०) प्रति अस्त्यर्थे मतुष् मस्य व। प्रतिशब्दयुक्त ।

प्रतिवत्सर (सं ॰ अव्य॰) प्रति वर्षे, हर साल। प्रतिवन (सं॰ अध्य॰) प्रत्येक वनमें।

प्रतिवर्णिक (सं॰ ति॰)१ अनुक्रप वर्णसम्बन्धी। २ तुल्यवर्णयुक्त।

प्रतिवर्त्तन (सं॰ क्की॰) प्रति-वृत-ल्युद् प्रत्यागमन, लीटना, वापिस आना ।

प्रतिवरमैन् (सं॰ ति॰) भिन्न पथावलम्बी, प्रतिङ्गूल-प्रथानुचारी।

प्रतिवर्द्धिन् (सं ॰ बि॰) प्रति-वृध-णिनि । तुल्यवलशाली, अपने जोड़का ।

प्रतिवसति (सं ॰ अन्य॰) प्रत्येक गृहमें, घर घरमें। प्रतिवसथ (सं ॰ पु॰) ग्राम, गांव।

प्रतिवस्तु (सं ॰ स्त्री॰) प्रतिरूपं वस्तु प्रादिसमासः। तुल्यरूप वस्तु, एक-सा पदार्थं।

प्रतिवस्तूपमा (स'० स्त्रो०) अर्थालङ्कारभेद, यह काव्या-लङ्कार जिसमें उपमेय और उपमानके साधारण धर्मका वर्णन अलग अलग वाष्योंमें किया जाय। इसका लक्षण—

"प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाकःयोगेम्यसाम्ययोः।

एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्त निर्दिश्यते पृथक्॥"

(साहित्यद० १०११६३)

उदाहरण—"धन्यासि चैद्भि गुणैक्दारैर्यया समारू-व्यत नैपघोऽपि इतः स्तुतिः काखलु चन्द्रिकाया यद्विध-मप्युत्तरलोकरोति॥" (साहित्यद्०१०प०)

हे वैद्भिं! तुम थन्य हो, क्योंकि उदार गुण-समूह द्वारा तुमने नलको भी आलुष्ट किया है। चन्द्रिका यदि समुद्रको तरङ्ग कुला कर डाले, तो इसमें उसकी तारीफ ही क्या! अर्थात् तुम्हारे गुणसे नल राजा आकृष्ट होंगे, इसमें और आश्चर्य ही क्या! यहां पर उत्तरलो-करण और समाकर्पण दोनों हो एक है, परन्तु भिन्न वाक्य द्वारा निर्दृष्ट होनेके कारण प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार हुआ। यह अलङ्कार मालाकार है, अर्थात् दो वाक्य न हो कर यदि विभिन्न शब्द द्वारा अनेक वाक्यगत एकी-कारण हो, तो भी प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होगा।

प्रतिबह्न (सं• क्ली०) प्रति-बह-स्युट्। विरुद्धदिशामें जाना, उलटी ओर के जाना।

प्रतिवाक्य (सं० क्ली०) १ प्रतिकृष बाक्य । २ प्रतिध्वनि । ३ उत्तर प्रत्युक्तर ।

प्रतिवाच् (सं• स्नी॰) प्रतिक्षपा वाक् । उत्तर, जवाव। प्रतिवाणि (सं॰ स्नी॰) प्रतिक्षपा वाणिः प्राद्सि॰। १ उत्तर, जवाव। २ प्रतिकूल वाष्य। ३ समानार्थं वाष्य। ४ प्रतिथ्वनि।

प्रतिवात (सं ० ति ०) प्रतिगतः वातो यतः, प्रादि-समासः। १ जिस भोरसे वायु आती हो। २ बातामिसुख्य, वायुका प्रतिकृत । (पु॰)३ विल्व मृक्ष, बेळका पेड़।

प्रतिवाद (सं ॰ पु॰) प्रति-वद्-भावे-धञ्। १ वह वात जो किसी दूसरी वात अथवा सिद्धान्तका विरोध करने-के लिये कही जाय, विरोध, खएडन। २ विवाद, वहस। ३ उत्तर, जवाव।

प्रतिवादक (सं० पु०) प्रतिवाद करनेवाळा, वह जो प्रति-वाद करे।

प्रतिवादिता (सं • स्त्री •) १ पृतिवादींका धर्म । २ प्रति-वादका भाव ।

पितवादी (सं०पु०) १ वह जो पृतिवाद करे। प्रतिवाद या खएडन करनेवाला। २ वह जो किसी वातने तर्क करे। ३ वह जो वादीको वातका उत्तर दे।

पतिवाप (सं ॰ पु॰) पति-वप-धञ्। १ कपाय औषधमें | Vol. XIV 134

चूर्णादि पृक्षेप। वृक्षमूलादिका काथ वनानेके वाद उसमें जो द्रव्य डाला जाता है, उसे पृतिवाप कहते हैं। २ कल्क, चूर्ण। ३ धातुमस्मीकरण, धातुको सस्म करनेका काम। ४ पानीय औषधविशेप। पृतिवार (सं० पु०) पृति-वृ-धञ्। निवारण, रोकना। पृतिवारण (सं० ात०) पृात-वारि-कर्त्तरि ल्यु। १ निवारक, रोकनेवाला। (पु०) २ दैत्यमेद, एक असुरका नाम। ३ मस हस्ती, मतवाला हाथी। भावे-ल्युट्।

प्रतिवार्ता (सं ० स्त्री०) प्रतिरूपा वार्ता । प्रत्युत्तर स्थानीय-वृत्तान्तभेद ।

४ निवारण, रोकना, मना करना ।

प्रतिवार्यं (सं० ति०) प्रति-वृ-ण्यत्। निवारणीय।
प्रतिवाशः (सं० क्षी०) प्रतिवादः, वाक्वितएडा।
प्रतिवासः (सं० स्त्री०) १ सुगन्धिः, सुवासः, खुशवृ। २ः
पड़ोसः, समीपका निवासः।

पृतिवासर (सं॰ पु॰) पृतिगतो वासरं।पृतिदिन, हर रोज।

पृतिवासिता (सं॰ स्त्री॰) पड़ोसका निवास, पृतिवासका भाष ।

प्रतिवासी (सं ॰ पु॰) पड़ोसमें रहनेवाला, पड़ोसी।
प्रतिवासुदेव (सं ॰ पु॰) जैनियोंने अनुसार विष्णु या
वासुदेवके नौ शब् जो नरकमें गये थे। उनके नाम
ये हैं—अध्वत्रीव, तारक, मोदक, मधु, निशुम्म, विल,
प्रह्वाद, रावण और जरासन्ध।

प्रतिवाह (सं॰ पु॰) पुराणानुसार अक्रूरके भाई, श्वफलको पुत ।

पृतिविधान (सं ० क्की०) पृति-वि-धा-त्युट्। १ पृति-कार। २ पृक्षतिके उपपादनके लिये उपायका अवलम्बन। पृतिविधि (सं ० पु०) विधीयते वि-धा-कि। पृतीकार। पृतिविधित्सा (सं ० स्त्री०) पृतिविधातुमिच्छा पृति-विधा-सन्, स्त्रियां टाप्। पृतिकारको इच्छा।

प्रतिविधेय (सं० ति०) प्रितिविधानके योग्य, प्रतिकार करने छायक।

पृतिविन्ध्य (सं॰ पु॰) द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न युधि-ष्टिरके पुतका नाम।

प्रतिविभाग (सं ॰ पु॰) पृति-वि-भज-घज्। पृत्येक विभाग । पृतिविरक्ति (सं० बि०) पृति-वि-रम-किन् । १ वैराग्य, पृत्येक वस्तुके पृति विरक्ति। २ विराम। पृतिविरुद्ध (सं० ति०) विद्दीहभावापन्न, विरुद्धाचारी। प्रतिविशेष (सं०पु०) विशेष घटना। प्रतिविशिष्ट (सं ० ति०) प्रति-वि-शास-क । उत्कृष्ट । प्रतिविश्व (सं ॰ पु॰) विश्वका प्रत्येक पदार्थ । प्रतिविषय (सं ० पु०) शन्दादि प्रत्येक विषय अर्थात् स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। प्रतिविषा (सं • स्त्री॰) प्रतीपं विषं यस्याः । अतिविषा, अतीस । प्रतिविष्णु (सं क्ली) विष्णुं विष्णुं प्रति । १ प्रत्येक विष्णुके प्रति । (पु॰) २ विष्णुके प्रतिद्वन्द्वी राजा मुचु-कुन्दका एक नाम। प्रतिविष्णुक (सं॰ पु॰) प्रतिगतो विष्णु यस्मिचिति, प्रति-विष्णुम् चुकुन्दो नृपतिः तन्नाम्ना कायति प्रकाशते इति कै क। १ मुचुकुन्द नामक फूलका पौधा। २ क्षोरिणीभेद, एक प्रकारकी खिरनी। प्रतिवीक्षणीय (सं० ति०) प्रति-वि-ईक्ष-अनीयर् । प्रति बीक्षणके योग्य, देखने छायक। प्रतिवीज (सं॰ ह्यी॰) तारनागाम्र हेमकृत पारदनिवन्यन द्रव्य । प्रतिवीर (सं० पु०) १ समकक्षवीर, जोड़का योदा। २ तुल्यशतु, जोड्का दुश्मन । प्रतिचीर्यं (सं वि) प्रतिरोध करनेका उपयुक्त शक्ति-सम्पन्न, जिसमें विरोध करनेके लिये यथेष्ठ वल हो। प्रतिवृत्ति (सं ० अव्य०) शब्दकी इखदीर्घमाला । प्रतिवृष (सं ॰ पु॰) उन्मत्त वृष, मतवाला साँढ़ । प्रतिवेद (सं॰ अञ्य॰) प्रत्येक वेदमें जो है। प्रतिचेदक—एक श्रेणीके राजकर्मचारियोंकी सम्राट् अशोकने राज्यके सभी संवाद जाननेके लिये इन्हें नियुक्त किया था। प्रतिवेदशाख (सं ॰ अन्य॰) वेदकी प्रत्येक शाखामें। प्रतिवेल (सं ॰ अन्य •) प्रत्येक मुद्धर्त्तमें, क्षण क्षणमें । प्रतिवेश (सं ॰ पु॰) प्रत्यागतो वेशो निवेशः प्रतिविशत्य-

त्रे ति आघारे घञ् वा। १ प्रतिवासि गृह, घरके सामने या पासका घर, पड़ोसका मकान। २ पड़ोस। (ति॰) ४ आसन्नवत्तीं, नजदीकका। प्रतिवेशवासिन् (सं ॰ ति॰) प्रतिवेशं वसतीति वस-णिनि। प्रतिवासी । प्रतिचेशिन् (सं ० वि०) प्रतिवेश आसन्नवर्त्तिगृहमस्यां-स्तीति इनि । प्रतिवासी, पड़ीसमें रहनेवाला। प्रतिवेश्मन् (सं । क्ली ।) प्रतिवासीका घर, पड़ोसका मकान । प्रतिवेश्य (सं ॰ पु॰) पृतिवासी, पड़ोसमें रहनेवाला । प्रतिवैर (सं ० क्ली०) प्रतिहिसा, अपकारका प्रत्युपकार। प्रतिचोढव्य (सं ० ति ०) पृति-वह-तव्य । पृतिवहनीय, प्रति-वहनयोग्य । पृतिन्यृह (सं ० पु॰) प्रतिरूपः वूरहः प्रादिसः। सैन्य-विन्यासका प्रतिरूप बूरह । प्रतिन्योम (सं० पु०) राजपुत्रभेद्। प्रतिशङ्का (सं ० स्त्री) वह शङ्का जी वरावर वनी रहे। प्रतिशबु (सं ॰ पु॰) पृतिपक्ष शबु । प्रतिशन्द (सं • पु •) पृतिद्धपः शन्दः पृदिस । १ प्रति-ध्वनि, गूंज। २ शन्दानुरूप। प्रतिशब्दग (सं ० ति ०) शब्दानुसार गमनकारी। प्तिशम (सं०पु०) १ नाश । २ मुक्ति । प्तिशमय्य (सं • पु॰) यथानियुक्त, वह जो सुपथमें स्था-पन करने योग्य हो। पृतिशयन (सं० ह्यो०) पृति-शी-भावे-ल्युट्। प्रतिखाप, किसी कामनाकी सिद्धिकी इच्छासे देवताके स्थान पर खाना पीना छोड़ कर पड़ा रहना, धरना देना। प्रतिशयित (सं ० ति ०) प्रति-शी-क। प्रातशयनकारी, धरना देनेवाला। प्रतिशर (सं॰ पु॰) खएड खएड करना, चूर चूर करना। . प्रतिशरण (स**ं० पु**०) स्वकमेमें विश्वासंस्थापन । प्रतिशशिन् (सं ॰ पु॰) चन्द्रमाका प्रतिविम्म । प्रतिशाख (सं ॰ अन्य॰) बेद्की प्रत्येक शाखामें। प्रतिशाप (सं॰ पु•) प्रत्यमिसम्यात, फिरसे शाप देना । प्रतिशासन (सं॰ ह्री॰) प्रति-शास् भावे न्युट्। बुला कर नौकर आदिको किसी कार्यमें छगाना।

प्रतिशिष्य (सं ॰ पु॰) शिष्यानुशिष्य, शिष्यका शिष्य । प्रतिशिष्ट (सं ॰ ति ॰) प्रतिशास्त का । प्रे पित, भेजा हुआ । २ प्रत्याख्यात, छौटा हुआ ।

प्रतिशीवन (सं ० क्की०) विरामस्थल, उहरनेकी जगह। प्रतिशक (सं ० अव्य०) शुक्रप्रहकी ओर।

प्रतिशोध (हिं॰ पु॰) वह काम जो किसी वातका वदला जुकानेके लिये किया जाय।

प्रतिश्या (सं ० खो०) प्रतिश्यायते इति प्रति-श्चेङ्-गती (शातश्चोपसर्गे । पा २।१।१३६) इति क-न्राप् । प्रति-श्याय, पीनस रोग ।

प्रतिश्याय (सं॰ पु॰) प्रतिक्षण श्यायते प्रति-श्यै-(स्याद्-वधास संवर्ताणिति। पा ३।(।१४१) इति ण। नासारोग विशेष। इसका लक्षण सुभूतमें इस प्रकार लिखा है-मलमुतादिका वेगधारण, अजीणे, नासारन्ध्रमें धूमश्रवेश, अधिकवाच्यकथन, क्रोध, ऋतविपर्ध्याय, राविज्ञागरण. दिवानिद्रा, शीतल जलका आधक व्यवहार, शैत्यक्रिया, अधिक मैथुन और रोदन आदि कारणोंसे मस्तकमें कफ घना हो जाता है जिससे वायु कुपित हो कर सद्यः प्रतिश्याय रोग उत्पादन करती है। फिर वायु, पित्त, कफ और रक्तके पृथक् पृथक् वा मिलित भावमें क्रमशः मस्तकमें सञ्चित पवं अपने अपने कारणसे क्रिपत होनेसे प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होता है।

इस रोगका पूर्व लक्षण- -प्रतिश्याय होनेके पहले हिका, सिरका भारी होना, स्तब्धता, अङ्गमर्दन, रोमाञ्च, नासिकासे धूम निकलनेके जैसा अनुभव, तालुज्याला और नाक मुख हो कर जलसाब, सर्वदा लोमहर्पण आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। यह रोग वायु, पित्त, कफ और तिदोषज हुआ करता है।

प्रतिश्याय रोग वायुजन्य होनेसे नासारन्ध्र स्तब्ध, सवरुद्ध और अल्पसाविविशिष्ट तथा गला, तालु और आष्ठ स्व जाता है। पित्तजन्य होनेसे नाक हो कर कुछ पीला और गरम राल निकलती तथा शरीरमें दवें मालुम पड़ता है। रोगी कुश, पाण्डुवर्ण और तृपातुर होता है तथा धूम-संयुक्त अग्निकी तरह वमन करता है। कफज होनेसे नाक हो कर सफेद और शीतल कफ बार वार टपकता

रहता है, दोनों आंखें सफेद और फूल जाती हैं, सिर और मुंह भारी मालूम पड़ता है। विदोषज होनेसे रोग पुन: पुन: उत्पन्न हो कर चाहे पका हो या न हो, आप ही आप छूट जाता है। इसमें अपोनस रोगके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। रक्तजन्य होनेसे रक्तसाव, चक्ष ताम्रवर्ण और वक्ष:स्थलमें आहत होनेकी तरह वेदना होती है। नि:श्वास और मुखसे दुर्गन्य निकलती है तथा प्राणशिक विलक्षल जाती रहती है।

साध्यासाध्य लक्षण और परिणाम—जिस किसी प्रति-श्यायमें निःश्वाससे दुर्गन्य निकलती है, प्राणशक्तिका लोप होता है। तथा नाक कभी ठंढी और कभी सूखी रहती हैं, कभी वंद और कभी विवृत हो जाती है, उस प्रतिश्यायको दुए और कएसाध्य समक्तना चाहिये। यथाकालमें चिकित्सा नहीं होनेसे वह प्रतिश्याय और भी भीषण रूप धारण करता है। पीछे उसमें छोटे छोटे सफेद कीड़े उत्पन्न होते हैं। कीड़ के उत्पन्न होनेसे कृमिज शिरोरोगकें सभी लक्षण दिखाई देने लगते हैं। प्रतिश्यायके गाढ़ा होने पर क्रमशः वाधिय, नेलहीनता वा नाना प्रकारके उत्कट नेलरोग, प्राणनाश, शोथ, अग्निमान्य, कास और पीनस रोग उत्पन्न होते हैं।

विकित्स-सद्योजात वा अभिनव पृतिश्याय छोड़ कर और सभी प्रकारके पृतिश्याय रोगोंमें घृतपान, विविध प्रकारका स्वेद और वमन तथा अधिक दिनका होनेसे अवपीड़नका प्रयोग हितकर है । प्रतिश्याय यदि पक न गया हो, तो उसे पकानेके लिये स्वेद-प्रयोग, अस्लके साथ भोजन अथवा दुःघ और आद्र के इक्षविकार (गुड़ आदि)के साथ सेवन करना कर्त्वा है । प्रति-श्याय पक कर यदि घना या अवलम्वित हो गया हो, तो उसे शिरोविरेचन द्वारा वाहर निकाले । सद्वैद्य दोव और अवस्थाकी विवेचना करके विरेचन, आस्थापन, धूमपान और कवलग्रहणका प्रयोग करे । प्रतिश्याय-रोगमें वायुशून्य स्थानमें शयन, उपवेशन, अङ्गवालनादि क्रिया, मस्तक पर गुरु और उप्ण वस्त्रवन्धन, रुक्ष पलान्न और सिद्धिका सेवन उपकारजनक है। शीतल जलपान, स्त्रीसङ्ग, चिन्ता, बतिशय रुक्ष्ण अन्नसेवन, बेगधारण और नूतन मद्यसेवन प्रतिश्याय रोगोके लिये विशेष

अपकारक है। वमन, अङ्गका अवसाद, ज्वर, अरुचि, अरित और अतीसार इन सव उपद्रवींका छङ्गनं, पाचन, अग्निदीपन आदि क्रिया द्वारा चिकित्सा करे। औषध और आहारके नियम द्वारा सभी उपद्रवींका प्रतिकार करना विधेय है।

वातिकजन्य प्रतिश्याय होनेसे विदार्थादि गणके साथ घृत पाक करके उसमें पञ्चलवण मिला दे, पीछे उस घृतका नस्य, पान और धूम आदिमें प्रयोग करे । यह पित्त वा रक्त जन्य होनेसे काकोल्यादि गणके साथ घृत पका कर सेवन अथवा शीतल परिपेचन और प्रदेहका प्रयोग हितकर है । सर्जरस, रक्तचन्दन, प्रियंगु, मधु, शकरा, द्राक्षा, सौंक, गाम्भारो और यष्ट्रमधु ये सब द्रव्य वेरके चूरके साथ मधुरगण विरेचनाके साथ प्रयोज्य हैं। धववृक्षका त्वक, विफला, श्यामालता, लोध, यप्टिमधु और गाम्भारी इन सब द्रव्योंका कवक तथा दश गुण दुःध के साथ पाक किये हुए तेलका उपयुक्त कालमें अर्थात् पकावस्थामें नस्यके साथ प्रयोग करे।

यह रोग कफज होनेसे पहले तिल और उरद्के योगसे पाक किये हुए घृत द्वारा उसे स्निग्ध करे, पीछे यवागुके संयोगसे वमन करावे । इसके वाद कफनाशक विधिका अवलम्बन विधेय है । श्वेत और पीत वला, घृहती, कएटकारी, विड्क्न, मनसा, श्वेतामूल, श्वामालता, भदा, पुनर्णवा इन सब द्रध्योंके साथ पाक किये हुए तेलका नस्यमें पृयोग करे । देवदार, अवामागं, सरलकाष्ठ, दन्ती और ईंगुदी इन सब द्रव्योंकी बत्ती बना कर धूम पृयोग करनेसे यह रोग बहुत जल्द जाता रहता है। सिवापात होनेसे कडु, तिक्त, तोक्ष्ण, धूम और कडु औषध पृयोज्य है। रसाञ्चन, अतीस, मोथा और देवदार इन्हें एक साथ मिलावे। पीछे उसका तेल पाक करके नस्यमें प्रयोग करे । मोथा, गजिपपली, सेन्धव, चीता, तुत्य, करञ्जवोज, लवण और देवदार इनका प्रस्तुत कषाय तथा पाक किया हुआ तेल शिरोविरेचनमें प्रयोज्य है।

अहं माग जलसंयुक्त दुग्धमें मृग वा पक्षीका मांस तथा जलजात वातझ भीषधका पुरुपाक करे। जव पानी का अंश कुछ भी न रहे, केवल दूध रह जाय, तव उसे उतार कर ठंढा होने दे। बादमें ऊपरसे घी डाल दे। उस वीमें सर्वगन्धा, सनन्तमूल, शर्करा, यष्टिमधु वा रक्तचन्दनका करक डाल कर पुनः दश गुण दुग्धमें उसे पाक करे। इसका नस्यमें प्रयोग करनेसे सभी प्रकारके प्रतिश्याय अग्रोग्य हो जाते हैं। (व्रश्रुत उत्तरत • २४४०)

अन्यान्य वैद्यक प्रन्थोंमें लिखा है—प्रतिश्याय-रोगमें पिपर, सोहिजनका वीज, विड़ड्ग और मिर्च इनके चूर्णका नस्य लेने तथा कचूर, भुइं आंवला और विकटु इनके चूर्णको घी और पुराने गुड़के साथ सेवन करनेसे यह रोग अति शीघ दूर हो जाता है। पुटपाक जयन्तीपत, तैल और सैन्धव लवणके साथ इसका प्रतिदिन सेवन विधेय है। चित्रकहरीतकी और लक्मीविलासरस आदि औषध इस रोगमें विशेष उपकारक है।

पथ्यापथ्य—अतिश्याय आदि नासारोगोंमें कफः शान्तिकर पथ्य वावस्थेय है। कफका अधिक उपद्रव रहनेसे रोटी वा उससे भी अधिक क्ले अथच लघु पथ्य-को आवश्यकता है। इस रोगमें उचर यदि खूव चढ़ आया-हो, तो अक्ष वंद कर दे, लघु पथ्यका सेवन करावे।

भावप्रकाश, चरक, चकदत्त आदि वैद्यक प्रन्थोंमें इस रोगके निदान और चिकित्सादिका विषय भी लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उत्लेख नहीं किया गया।

व्रतिश्रम (सं॰ पु॰) परिश्रम, मेहनत ।

प्रतिश्रय (सं॰ पु॰) प्रतिश्रीयते अस्पिन्निति, प्रति-श्रि-माघारे अच्। १ यझशाला, वह स्थान जहां यह होता है। २ सभा। ३ स्थान। ४ निवास।

प्रतिश्रव (सं० क्की०) प्रति-श्रु (ऋदोःप्। पा शश्रप्) इति अप्। अङ्गीकार, स्त्रीकार।

प्रतिश्रवण (सं० ह्यी०) प्रति-श्रु-सावे ल्युट् । १ अङ्गीकार स्वीकृति, मंजूरी । २ श्रवणानुगत ।

प्रतिश्रवस् (सं ० पु०) १ गोत्तप्रबर-ऋषिमेद् । २ परि-क्षित्-पुत भीमसेनात्मज ।

प्रतिश्रुत् (सं॰ स्त्री॰) प्रतिक्रपं श्रयते इति प्रति-श्रु सम्पदादित्वात् क्रिप्। प्रतिध्वनि, ग्रूंतः।

प्रतिश्रुत (सं कि) प्रतिश्रयते स्मेति प्रतिश्रु-क। अङ्गोकृत, स्वीकार किया हुआ।

प्रतिश्रुति (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-श्रु-माने-किन् । १ अङ्गीकार,

मंजूरी, रजाम दी। २ प्रतिध्वनि, गुंज। ३ प्रतिश्चा, इकरार। १ वसुदेवके एक पुतका नाम। प्रतिश्रुतका (सं० स्त्री०) देवताभेद, एक वैदिक देवताका नाम। प्रतिश्रोता (सं० पु०) अनुमति देनेवाटा, मंजूर करने-बाटा।

प्रतिस्त्रोक (सं॰ थव्य॰) प्रत्येक स्त्रोकमें। प्रतिपिद्ध (सं॰ ति॰) प्रति-सिध-क। १ प्रतिपेध विपय,। निपिद्ध, निवारित।

प्रतिपेध (सं ० पु०) १ नियेध, मनाहा । २ खएडन । ३ एक प्रकारका अर्थालङ्कार । इसमें किसी प्रसिद्ध नियेध या अन्तरका इस प्रकार उल्लेख किया जाता है जिससे उसका कुछ विशेष अर्थ निकले । प्रतियेधोपमा देखो । प्रतियेधक (सं ० ति०) प्रतियेधतीति प्रति-सिध्-ण्बुल्।

प्रतिपेधकर्तां, मना करनेवाला, रोकनेवाला। प्रतिपेधन (:सं॰ क्ला॰) प्रति-सिध्-स्युट्। प्रतिपेध, निषेध।

प्रतिपेधनीय (सं ० ति०) प्रति-सिध्-अनीयर्। प्रतिपेध योग्य, मना करने लायक।

प्रतिपेघोकि (सं क्सी) प्रतिपेधवाक्यकथन । प्रतिपेघोपमा (सं क्सी) उपमा अलङ्कारमेद । जहां उप-मान उपमेयके मध्य सादृश्य प्रतिपेध द्वारा अधिक वैचिता वर्णित हो, वहां यह मलङ्कार होता है ।

> "न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितु'। कळिड्डेनो जङ्स्येति प्रतिपेयोपमैव सा॥"

> > (काव्यादर्श)

कलडूरी और जड़ चन्द्रमाके साथ तुम्हारे उस मुसकी तुलना कभी भी नहीं हो सकती। यहां पर चन्द्रमा और मुखके साथ उपमा और उपमेय माव है। चन्द्रमा कलडूरी और जड़ हैं तथा तुम्हारा मुख निष्कलडूर और सचल है, यह वैचिता क्यमें वर्णित हुआ है। इस प्रकार चन्द्रमाके साथ तुम्हारे मुखकी तुलना असम्भव है। सादृश्य द्वारा इस प्रकार प्रतिपेध होनेके कारण यह मलडूरा हुआ।

प्रतिष्क (सं ॰ पु॰) प्रतिष्कन्दति प्रतिगच्छतीति प्रति-स्कम्द-बाहुछकात् इ । दूत ।

Vol XIV 135

प्रतिष्करा (सं ० पु ०) प्रतिकरातीति प्रति-करा-अच्, बाहुङकात् सुद् । १ सहाय, मद्द । २ वार्ताहर, दृत । ३ चमड़े की वसी, चाहुक ।

प्रतिष्क्य (सं॰ पु॰) प्रति कष्यतेऽनेनेति प्रति-कप-हिंसायां अच्, बाहुलकात् सुर्। चर्मरङ्क् वदी।

प्रतिकस (सं ॰ पु॰) चर, दूत।

प्रतिष्टन्य (सं ० बि ०) बाघाप्राप्त, जोरका गया हो ।

प्रतिष्टम्म (सं॰ पु॰) प्रतिष्टम्मनमिति प्रति-स्तन्म भावे-चन्, पत्वं। प्रतिबन्ध।

प्रतिष्टुति (सं० स्त्री०) प्रति-स्तु-किन् । प्रतिलक्ष्य करके स्तुति ।

प्रतिग्रोत (सं ॰ वि ॰) स्तुतिकार्यने विशेष दक्ष ।
प्रतिष्ठ (सं ॰ पु॰) प्रतिष्ठा अस्यास्तीति अन् । १ जैनमेद, जैनियोंके अनुसार सुपार्थ्य नामक वृत्ताईतके
पिताका नाम। (बि॰) २ प्रतिष्ठायुक्त, प्रसिद्ध,
मशहर।

प्रतिष्ठा (सं ० स्त्रां०) प्रति तिष्ठवीति प्रति-स्था (आवश्यो-पर्शो । पा ३।३१८०६) इति अङ्, टाप् । १ गौरव, मान-मर्यादा । २ सिति, पृथ्वी । ३ स्थान, जगह । ४ आश्रय, ठिकाना । ५ यागनिष्यचि, यक्षकी समाप्ति । ६ चतुरस्रर पद्य, चार वर्णोका वृच । ७ स्थिति, टहराव । ८ शरीर । ६ स्थापना, रखा जाना । १० प्रक्याति, प्रसिद्धि । १२ प्रश, कीर्ति । १३ आवर, सत्कार । १३ प्रतका उद्यापन । १४ एक प्रकारका छन्द । १५ देवताकी प्रतिमा-की स्थापना ।

देवताओं की मूर्ति बना कर उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। विना प्रतिष्ठाके पूजादि कुछ भी नहीं होती। रघुनव्यनने देवप्रतिष्ठातस्त्रमें प्रतिष्ठाकों जो व्यवस्था की है, वह इस प्रकार है, खुवणीदि निर्मित प्रतिमा प्रस्तुत करके पीछे उसकी प्रतिष्ठा करनी होगी। प्रतिष्ठाकर्ममें फाल्युन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्टमास प्रशस्त है। उत्तरायण अतीत होने पर शुन शुक्तपक्षमें, पञ्चमी, दितीया, तृतीया, सप्तमी, दशमी, प्रीणमासो और तयोदशीमें जो प्रतिष्ठा की जाती है, वह शुभफलदा है।

"चैते वा फाल्गुने वापि ज्यैष्ठे वा माधवे तथा। समयः सर्व देवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्॥ प्राप्य पक्षं शुभं शुक्कमतीते चोत्तरायणे। पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा॥ दशमी पौणमासी च तथा श्रेष्ठा त्वयोद्शी। तासु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत्॥" (देवप्रतिष्ठातस्व)

सभी देवताकी विशेषतः केशवकी प्रतिष्ठा उत्तरायण-में शुक्कपक्ष और शुभदिनमें कर्त्तवा है। यदि कृष्णपक्षमें करनेकी इच्छा हो, तो पञ्चमी और अष्टमी तिथिमें कर सकते हैं। भुजवलभीममें लिखा है—युगादि, अयन, विषुवद्वय, चन्द्र और सूर्यप्रहण वा पर्वदिन तथा जिस देवताकी जो तिथि है, उसी तिथिमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

प्रतिष्ठाविधेय तिथि यथा—धनद्की प्रतिपद, लक्सीकी द्वितीया, भग्नानीकी तृतीया, उनके पुलको चतुर्थी, सोम-राजकी पञ्चमी, गुहकी षष्टी, मास्करकी सप्तमी, दुर्गाकी अष्टमी, मातृगण (गौरी, पद्मा आदि षोड्श मातृकाकी)की नवमी, वासुकीकी दशमी, ऋषियोंकी एकादशी, चक-पाणिकी द्वादशी और नारायणकी पौणमासी तिथि प्रतिष्ठाविषयमें शुभ है। माघ, फास्मुन, चैत, वैशास, ज्येष्ठ और आषाढ़ इन सव महीनोंमें प्रतिष्ठाकार्य शुभ-जनक वतलाया गया है।

"माघे वा फाल्गुने वापि चैतवैशाखयोरिष । ज्यैष्ठाबाढ़कयोर्वापि प्रतिष्ठा शुभदा मवेत्॥" (देवप्रतिष्ठातत्त्वधृत प्रतिष्ठासमुख्य)

भविष्यपुराणमें लिखा है—सोम, बृहस्पति, शुक्त और
बुधवारमें प्रतिष्ठा करनी होती है। मत्स्यपुराणके मतसे
पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा, मूला, उत्तरफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवणा, रोहिणी, पूर्वभाद्रपद, हस्ता,
अश्विनी, रेवतो, पुष्या, मृगशिरा, अनुराधा, और
स्वातिनक्षत्रमें प्रतिष्ठा प्रशस्त है। दीपिकाके मतसे—
रोहिणी, ज्येष्ठा, हस्ता, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती,
मृगशिरा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरमाद्रपद
नक्षत्रमें तथा कमैकर्त्ताकी चन्द्र और तारा विशुद्धिमें

ब्रह्स्पतिके केन्द्रगत होनेसे शुभतिथिमें विधिपूर्वक प्रतिष्ठाकार्यं करना चाहिये।

देवादिकी प्रतिष्ठा करनेमें उपयुक्त वेदिवद ब्राह्मणोंको आचार्य बना कर उन्हींसे प्रतिष्ठाकार्य कराना चाहिये। जिन सब देवताओंकी प्रतिष्ठा करनी होगी, उन सब देवताओंका स्त्री, अनुपनीतद्विज और शूद्र व्यक्ति स्पर्श न करे। यदि वे अज्ञानवशतः स्पर्श कर हो, तो उस देव-प्रतिमाका अभिषेक वा पुनःप्रतिष्ठा करना आवश्यक है।

त्राह्मण, क्षित्रय, वैश्य और ग्राह ये चारों वर्ण देव-प्रतिष्ठा कर सकते हैं। किन्तु क्षित्यादि तीन वर्णांको ब्राह्मण द्वारा प्रतिष्ठा करानी चाहिये। देवताकी प्रतिष्ठा हो जाने पर ही उसमें देवत्व होता है। किसी भी देवताकी मूर्त्ति वना कर उसकी पूजा तव तक नहीं करनी चाहिये, जब तक उसकी प्रतिष्ठा न हो है।

देवताकी पूजापद्धतिके अनुसार अङ्ग-देवताकी पूजादि करके पीछे प्राणप्रतिष्ठा करनी होती है।

प्राणप्रतिष्ठाके मन्त—''भा ही को य' रं कं व' शं व' सं हों हों सः अमुद्दव प्राणो इह प्राणाः आमिस्यादि अमुद्द्य बीद इहस्थित, आमिस्यादि अमुद्द्य सर्वेन्द्रियाणि, आमिस्यादि अमुद्द्य बाह् मनस्वश्चेत्रोत्रप्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठाद्व स्वाहा । अस्ये प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्य प्राणाः स्रान्तु च । अस्ये देवस्वरूपंगाये स्वाहा ते यद्धरीरयन् ॥'

इसी मन्त्रसे देवताकी प्राणप्रतिष्ठा करनी होती है। जिस देवताकी प्राणप्रतिष्ठा करनी होगी उस देवताका नाम षष्ठी विभक्त्यन्त करके निर्देश करना होता है। देवताके हृद्य पर हाथ रख कर प्राणस्थापन और मन्त्रमें जिन सव स्थानोंकी कथा लिखी गई है उन सब स्थानों पर हाथ रख कर तत्तत् अङ्गप्रत्यङ्गादि-का उज्जीवन करना होगा। इस नियमसे प्राणप्रतिष्ठा हो जाने पर उसमें देवत्व आ जाता है।

देवप्रतिष्ठा करनेमें कर्मकर्ताको वृद्धिश्राद्ध करना होता है। पुत्रजनन, पुत्रका अन्नप्रदान, चूड़ा, पुंसवन, वत, पाणिश्रहण, देवादिको प्रतिष्ठा और नवगृहमें प्रवेश ये सब गृहस्थोंके वृद्धिकर हैं। इसीसे इन सब कार्बी-में वृद्धिश्राद्ध करना आवश्यक है। यथाविधि देवप्रतिष्ठा करनेसे इह और परलोकमें अशेष पुष्य प्राप्त होता है। अपने विभवानुसार देवप्रतिष्ठा करना सर्वोका कत्तवा है। एक दिनमें यदि देवप्रतिष्ठा, वास्तुयाग और गृहोत्सर्ग ये तीनों कार्य करने हों तो, एक वृद्धि करनेसे ही सव काम चल जायगा, पृथक् पृथक् कार्यके लिये वृद्धि-श्राद्ध करना नहीं पड़ेगा। (इस प्रतिष्ठाका विषय गरुड़पुराणके ४८वें अध्यायमें तथा मत्स्यपुराणमें सिब-स्तार लिखा है।)

जलाश्रयप्रतिष्ठा, देवगृहप्रतिष्ठा, मठप्रतिष्ठा आदि स्थानोंमें भी पूर्वोक्त वावस्था जाननी चाहिये।

यदि कोई देवताका गृह निर्माण करके उस गृहमें देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित तथा उस गृहको विविध चित द्वारा शोभित करे, तो प्रतिष्ठाता देवलोकको प्राप्त होता है। देवगृहके लिये यदि कोई भूमिदान करे, उसे भी देवलोक-की प्राप्ति होती है। मृत्निर्मित देवगृहकी प्रतिष्ठा करने-में जो फल होता है, काष्ट्रनिर्मित गृहमें उससे कोटि गुण अधिक फल, इष्टकालयमें उससे दूना और प्रस्तरनिर्मित देवगृहकी प्रतिष्ठा करनेमें द्विपराई गुण फल प्राप्त होता है। इसमें धनी और दिख्में विशेषता यह है, कि धनी व्यक्ति प्रस्तरनिर्मित गृहमें जो फललाभ करते हैं, दरिद्र व्यक्ति मृत्निर्मित गृहमें भी वही फल पाते हैं। यशाविधि प्रतिष्ठादि करके ब्राह्मणमोजन कराना उचित है। ब्राह्मणोंकी संख्या हुजार या एक सी आठ या पचास अथवा वीससे कम नहीं होनी चाहिये। यदि वीस ब्राह्मणकी भी भोजन करानेमें असमर्थ हो, ती यथाशकि भोजन करा सकते हैं।

> ''ततः साहस्रं विप्राणामथवाष्टीत्तरं शतम्। भोजयेच्य यथाशषत्या पञ्चाशद्वाथ विशतिम्॥"ं (मठपतिष्ठातत्त्व)

जो सव देवमूर्चि प्रतिष्ठित होंगी, प्रतिदिन यथा-विधान उनकी पूजा अवश्य कर्त्तव्य है। इन प्रतिष्ठित मूर्चिकी यदि एक दिन पूजा न की जाय, तो उनकी द्विगुण अर्च ना करनी होंगी। यदि एक मास वा उससे भो अधिक दिन तक उनकी पूजा न हुई हो, तो पुनः प्रतिष्ठा करनी होती है। किसी किसीका यह भी कहना है, कि प्रतिष्ठा न करके अभिषेक करनेसे काम चल सकता है। परन्तु पुनः प्रतिष्ठा करना ही मुख्य कहर है। अस्पृत्यसे स्पृष्ट होनेसे अर्थात् जिनका स्पर्श नहीं करना चाहिये, वे यदि मूर्तिको छू छैं, तो पुनर्वार प्रतिष्ठा करे। प्रतिष्ठित मूर्ति खण्डित, स्फुटित, दृग्ध, भ्रष्ट, स्थान-वर्जित, यागहीन, पशुस्पृष्ट, दुष्टभूमि पर पतित, अपर वेवताके मन्त्र द्वारा पूजित और पतितस्पर्श दूपित ये द्या प्रकारके दोषयुक्त होनेसे उस मूर्तिमें देवत्व नहीं रहता।

जलाशय प्रभृतिकी प्रतिष्ठा उसी उसी पद्धतिके अनुसार कर्त व्य है। पहले प्रतिष्ठाका जो काल वतलाया गया है, सभी प्रकारकी प्रतिष्ठा उस कालमें विधेय है। केवल वतप्रतिष्ठाकी जगह जो वत जिस वर्षमें साध्य है, उस वर्षके शेषमें प्रतिष्ठा करनी होगी। इसमें प्रतिष्ठा करनेसे अकाल और मलमास आदिका दोप नहीं लगता। यदि वह प्रतिष्ठा किसी विम्नवातः न की जाय, तो अकाल अथवा मलमासमें नहीं कर सकते। जिस वर्षमें कालगुद्धि रहेगी, उसी वर्ष प्रतिष्ठा विथेय है। १६ स्थेयभेद।

> "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्मित्रधौ वैरत्यागः।" (पातं २।३५)

अहिंसा प्रतिष्ठा होनेसे उसकी और किसीके साथ शतुता नहीं रहती अर्थात् चित्त यदि हिंसाशून्य एवं अहिंसाधर्म पवल वा पराकाष्ट्राको प्राप्त हो, तो उसके निकट हिस्र जन्तु थहिंस्र हो जायगा। व्याघ्र, भल्लूक, और सर्पोदिपूर्ण गिरिगहर वा निविद्ध अरण्य कहीं भी अहिंसाप्रतिष्ठ वाकिकी समाधिमें विध्न नहीं पहंच सकता। कोई हिस्रजन्तु भी उसकी हिसा नहीं कर सकता। बााधादि जो मनुष्योंकी हिंसा करते हैं, बह केवल उनका दोप नहीं है, मनुष्योंका भी दोप है। तुम हिंसा करते हो, इस कारण वे भी तुम्हारी हिंसा करते हैं। तुम्हारा मन हिंसाकी आशङ्का करता है, इस कारण वे भी तुम्हें शबु जान कर तुम्हारी हिंसा करते हैं। मजुष्यको देखते ही उन्हें जो हिंसा वृत्तिका उदय होता है, वह मनुष्यके दोपसे ही होता है। चित्त यदि अहिंसा प्रतिष्ठित हो वर्थात् हिंसाको यदि जन्मकी तरह भूल जाय, तो एक अपूर्व श्री उत्पन्न होती । उस श्रीको देखनेसे समी प्राणी उसके समीप हिंसासभावका

परित्याग करता है। कोई भो उसकी हिंसा नहीं कर | सकता।

"सत्यमतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।"

(पातञ्जलद० २।३६)

सत्यप्रतिष्ठ होनेसे धर्माधर्मक्षप क्रियाफलके खाधीन हो जाता है। मिथ्याको यदि एक वार भूल जाय, चित्त यदि किसी प्रकारके मिथ्यासम्पक्षेसे कलुष्तित न होवे केवलमाल सत्य ही यदि हृद्यमें स्फुरित होता रहे, तो कार्यका फल भी उसके अधीन होता है अर्थात् सत्यप्रतिष्ठ वाक्ति जिस वाकाका प्रयोग करेगा, वह उसी समय सिद्ध होगा। 'स्वर्ग जाओ' कहनेसे स्वर्गमें वा 'नरक जाओ' कहनेसे नरकमें जायगा। उसका वाक्य कभी भी दलनेको नहीं।

"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानं।"

(पातञ्चलद् २।३७)

अस्तेय प्रतिष्ठा होनेसे अर्थात् असीय यदि दृढ़मूल हो जाय, तो उसके समीप सभी रत्न आप ही आप पहुंच जायगा।

"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यकाभः॥"

(पातञ्चलद० २।३८)

ब्रह्मचर्यको प्रतिष्ठा होनेसे वीर्यंलाम होता है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा अर्थात् वीर्यनिरोध विषयमें सुसिद्ध होनेसे
वीर्य अर्थात् निरितशय सामर्थ्य उत्पन्न होती है। यदि
वीय वा चरमधातुका कणमात भी विरुत्त वा विचलित
न हो, भूलसे भी यदि कभी मनमें कामोदय न
हो, तो चित्तमें एक ऐसी अन्द्रुत सामर्थ्य पैदा होगी
जिसके वलसे चित्त हमेशा अव्याहत रहेगा अर्थात्
कभी भी विचलित न होगा। ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठ व्यक्तिके
हर्यमें एक ऐसी अन्द्रुत क्षमता उत्पन्न होती है, कि वे
जिस वक्त जिसे जो उपदेश देंगे, उसी वक्त वह सिद्ध हो
जायगा। उस समय उन्हें अणिमादिशक्ति उपस्थित
होगी। अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यके उनके अधिगत हो
जानेसे वे जव जी चाहेंगे तभी कर डालेंगे। योगीमातको ही अहिसादि प्रतिष्ठाविषयमें यत्नवान होना चाहिये।

प्रतिष्ठाकाम (सं० ति०) १ यशःप्राधीं । २ गृहादिकी प्रतिष्टा करनेमें इच्छुक । ३ स्थितिकाम । प्रतिष्ठात् (सं० पु०) प्रति-स्था-तृण् । ऋत्विक्मेद् । प्रतिष्ठात्व (सं० क्को०) प्रतिष्ठा-त्व । प्रतिष्ठाका भाव । प्रतिष्ठान (सं० क्को०) प्रतितिष्ठत्यत्रेति प्रति-स्था-अधि-करणे ल्युट् । १ जनपद्मेद, पुक्रत्वाको राजधानी । हरि-वंशमें इस नगरको गङ्गाके किनारे अवस्थित वतलाया है। यहां ऐलकी राजधानी थी । (हरिव'श २६।४७-४६)

प्रति स्था-भावे-स्युट्। २ त्रतादिकी समाप्ति पर कर्त्तव्य कर्मभेद, वह कृत्य जो त्रत आदिको समाप्ति पर किया जाय। ३ स्थापित या प्रतिष्ठित करनेकी क्रिया, रखना, वैठाना। ४ देवमूर्त्तिकी स्थापना। ५ जड़, मूल। ६ उपाधि, पदवी। ७ स्थान, जगह। ८ विक्याति, प्रसिद्धि, नामवरी।

प्रतिष्ठानपुर चन्द्रचंशीय प्रथमराज पुरूरवाकी राजधानी । यह नगर गङ्गा यमुनाके सङ्गंम पर वर्त्तमान कूसी नामक स्थानके आस पास था। यहां समुद्रगुप्त और हर्पगुप्तने एक किला वनवाया था जिसका गिरा पड़ा अंश अव तक वर्त्त मान है। कुछ वर्ष हुए यहां कुमारगुप्तके २४ सिक्रे जमीनमेंसे निकाले गये हैं।

२ गोदावरी तीरवर्त्तीं महाराष्ट्रकी प्राचीन राजधानी। अभी यह निजाम राज्यके अन्तभू के हो गया है। यहां शालिवाहन राजाकी राजधानी थी। दलेमीने लिखा है, कि अन्ध्रबंशीय महाराज श्रीपुलोमायी यहांका शासन करते थे। पैठान दे जो।

प्रतिष्ठापन (सं॰ क्ही॰) प्रति-स्था-णिच् ल्युट् । देवमूर्तिकी स्थापना ।

प्रतिष्ठापयितः (सं॰ ति॰) प्रति-स्था-णिच्-तृच् । प्रतिष्ठा-पनकत्तां, मूर्त्तिको स्थापना करनेवाला ।

प्रतिष्ठापत (सं॰ पु॰) वह पत जो किसीकी प्रतिष्ठाका सूचक हो, सम्मानपत।

प्रतिष्ठापयितव्य (सं ० हि०) प्रति-स्था-णिच्-तव्य । स्था-पन योग्य ।

प्रतिष्ठावत् सं० ति०) प्रतिष्ठा विद्यते ऽस्य मतुष् मस्य व । प्रतिष्ठायुक्त, इज्जतदार ।

(पातञ्जलद॰ २पा॰) प्रतिष्ठाचान् (हि॰ वि॰) जिसको प्रतिष्ठा हो, इज्जतदार।

प्रतिष्ठि (सं ० स्त्री०) प्रतिष्ठाश्रय, सर्वोको प्रतिष्ठा ।
प्रतिष्ठित (सं ० ति०) प्रतिष्ठा जाता अस्येति तारकादित्वादितच् । १ प्रतिष्ठायुक्त, इज्जतदार । २ गौरवान्वित ।
३ विष्यात, प्रशंसित । ४ सं स्कृत । ५ अधिगत । ६
जिसको प्रतिष्ठा की गई हो । (पु०) ७ विष्णु ।
प्रतिष्ठिति (सं ० स्त्रो०) प्रतिष्ठान, स्थापित करनेका भाव
या कार्ये।

प्रतिच्चात (स'० त्रि०) प्रति-स्ना-क बत्व'। १ प्रतिस्नात, विशुद्ध। २ पूत, पवित्र।

प्रतिष्णिका (सं ० स्त्री०) प्रति-का-स्वार्धे क, कापि अत-इत्वं सुवमादित्वात् वत्वं। प्रतिस्नानकारिणी स्त्री। प्रतिसंकम (सं ० पु०) प्रतिरूपः संक्रमः प्रादिसमासः। १ प्रतिस्काया। २ सञ्चार। (ति०) ३ प्रतिसंक्रान्त। प्रतिसंक्या (सं ० स्त्री०) प्रति-सम्-स्था-भावे अङ्। प्रसं-स्थान, सांक्यके अनुसार ज्ञानका एक भेद। २ चेतना। प्रतिसं स्थानिरोध (सं ० पु०) प्रतिसं स्थापूर्वं को निरोधः। बुद्धिपूर्वं क भावपदार्थके नाशस्य वौधमतिसद्ध पदार्थ-भेद।

वौद्ध दाशैनिकोंने प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्या निरोध और आकाश इन तीन पदार्थोको स्वरूपशून्य, तुच्छ और अभायमात वतलाया है। महामित शङ्करा-चार्यने वेदान्तदर्शनके भाष्यमें इस मतका खण्डन इस प्रकार किया है,—

"प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या निरोधा प्राप्तिरविच्छेदात्॥" (वैदान्तसूत्र २।२।२२)

वैनाशिकोंका कहना है, कि तोन छोड़ कर सभी संस्कृत अर्थात् उत्पाय, क्षणिक (क्षणकालस्थायी) और बुद्धिवोध्य अर्थात् बुद्धिप्रकाश्य हैं। वे तीन पदार्थ ये हैं—प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध और आकाश। निरोध शब्दका अर्थ है विनाश। कितनी वस्तु पेसी हैं जो ज्ञानपूर्वक निरुद्ध वा विनष्ट होती हैं और कितनी आप हो आप निरुद्ध होती हैं। वौद्ध लोग इन तीनोंको सक्रपशूल्य तुच्छ और अभावमाल सममते हैं। बुद्धिपूर्व क अर्थात् ज्ञान वृक्त कर यह नष्ट करता है, ऐसे विनाशका नाम प्रतिसंख्या-निरोध है। भामतीने इस स्वके व्याख्यास्थलमें लिखा है, भावप्रतीपा संख्यावुद्धिः प्रतिसंख्या, तथा निरोध

पृतिसंख्यानिरोघः सन्तमिममसन्तं करोमीत्येवमकारता च बुद्धेर्भावप्रतीपत्वम्।'

तुम जिसे सत्य कहते हो उसे मैं बुद्धिपूर्वक असत् करूंगा, इसका नाम प्रतिसंख्यानिरोध । अबुद्धिपूर्वक विनाश का नाम अप्रतिसंख्यानिरोध और आवरणाभावका नाम आकाश है। वैनाशिक लोग जो प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोधकी वात कहते हैं वह विलक्क अस-माव है। कारण, उनके मतसे भी विच्छेदका अमाव नहीं है। अब विचारनेकी वात है, कि यह प्रतिसंख्या-निरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध किसका है ? सन्तानका वा सन्तानीका ?

सन्तानका अर्थ प्रवाह और सन्तानीका अर्थ प्रवाहान्तगैत पदार्थ है। इसका दूसरा नाम भाव वा वस्तु है।
जैसे तरङ्ग और जल; स्रोतः और जल। जिस प्रकार
एक तरङ्ग, दूसरी तरङ्गको उत्पादन कर आप नष्ट हो
जाती है और फिर वह तरङ्ग भी अन्य तरङ्ग पैदा करनेके
वाद नजर नहीं आती, उसी प्रकार एक भाव अन्य भावको पैदा कर नष्ट हो जाता है और दूसरे भावके भी नष्ट
होते न होते उससे प्रक नया भाव निकल आता है।
इस प्रकार जन्मविनाशका स्रोत सर्थदा वहता रहता है।
अविद्या संस्कारको और संस्कारविद्यानको पैदा कर
नष्ट होता है, अतप्त्व वे भी कारण-कार्यके स्रोत गिने
जाते हैं।

उपर जो कहा गया, कि यह निरोध किसका है, सन्तानका या सन्तानीका? इसके उत्तरमें यही कहना है, कि सन्तानका निरोध असम्मव है। क्योंकि, सन्तानी सन्तानोंके मध्य परस्पर कारण-कार्यक्षपमें अनुभूत रहती है। इस कारण सन्तानका विच्छेद असम्मव होता है। सन्तानीका निरोध भी असम्भव है। इसका भी कारण यह है, कि किसी भी भाव (पदार्थ नका निरन्वय और निरुपास्य विनाश नहीं होता। वस्तुमात हो किसी भी अवस्थामें क्यों न प्राप्त हो, प्रत्यभिन्नाके वलसे उसका अविच्छेद ही देखा जाता है। अमुक वस्तु अभी ऐसी हुई है, यह प्रत्यभिन्ना न्नान उस वस्तुका निरन्वय विनाशका नहीं होना ही साक्ष्य देता है। किसी किसी अवस्थामें स्पष्ट प्रत्यभिन्ना सचमुच नहीं होती। नहीं होने पर भी कचिद इष्ट अन्वय-

Vol. XIV. 136

के विच्छेदाभाववलसे उस वस्तुका अन्वय वा अविच्छेद अनुमित हो सकता है। इस प्रकार सुगतोंका दो प्रकार-का विनाश अयुक्त है अर्थात् परस्पर संलग्न कारणकार्य-धाराका विच्छे द नहीं होनेके कारण सौगत मतसे सिद्ध प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध दोनों ही असम्भव-होता है।

इस पर बौद्धोंका कहना है, कि अविद्यादिके निरोध-में मोक्ष है। अविद्यादिका निरोध उक्त दोनों निरोधोंका अन्तःपाती है। यदि ऐसा ही हो, तो हमारा पूछना यही है, कि अविद्यादिका निरोध क्या ससहाय है, (यमनिय-मादि अङ्गोंके साथ) क्या यह सम्यक् ज्ञान द्वारा होता है वा आप ही आप ? यदि ससहाय सम्यक्ज्ञानसे होता है, ऐसा कहा जाय, तो 'क्षणिकवाद' सभी पदार्थं सभावतः क्षणिबनाशो हैं, इस प्रतिज्ञाका त्याग करना होगा। यदि कहा जाय, कि आप ही होता है, तो अविद्यादि निरोध-का उपदेश निरर्थक हो जाता है। सुतरां दोनों हो पक्षमें दोष है । अतएव अविद्यादिके प्रतिसंख्यानिरोध तथा , अप्रतिसंख्यानिरोधविषयमं दोनोंमं हो दोष है। अतएव वौद्धोंका मत नितान्त अयौक्तिक प्रतीत होता है। (वेदान्तद् १।२।२२-२३) बौद्धदर्शन देखो ।

प्रतिसंयोद्ध्य (सं॰ ति॰) प्रति-सम-युघ-तृच् । प्रतियोद्धा, जोड़का।

प्रतिसंलयन (सं० क्ली०) प्रति-सम-ली-न्युट्। सम्पूर्ण-रूपसे लीन होना।

प्रतिसंवत्सर (सं॰ अव्य॰) प्रत्येक वर्षे, हर साछ । प्रतिसं विद् (सं॰ स्त्री॰) प्रत्येक वस्तुका यथार्थ ज्ञान । प्रतिसं विद्पाप्त (सं ॰ पु॰) वोधिसत्त्वमेद ।

प्रतिस वेदक (सं ० ति०) पूर्णतत्त्वज्ञ।

प्रतिसंविदिन् (सं ० ति०) सुखमोगी ।

प्रतिसंस्थान (सं ० क्ली०) प्रति-सम-स्था-स्युट् । मध्यमें अवस्थान, प्रवेश ।

ग्रतिसं हार (सं ० पु॰) प्रति-सं-द्व-घघ् । १ निवर्त्तन, निवारण। २ प्रत्याकर्षण, सङ्कोच।

प्रतिसंहत (सं ० ति०) प्रति-सं-ह-कृ।१ संकुचित।

२ निवर्त्तित । ३ अनुरुद्ध । प्रतिसङ्गक्षिका (सं ० स्त्री०) वौद्धभिक्षुकोंका वह कपड़ा जिसे वे घूळीसे बचनेके लिये पहनते हैं।

प्रतिसङ्गिन् (सं० पु०) प्रतिसङ्ग-इनि । प्रतिसङ्ग, युद्ध । प्रतिसञ्चर (सं॰ पु॰) प्रति सञ्चरन्ति कियाशून्य विली-यन्तेऽस्यां प्रति सम-चर-आधारे अप् । १ प्रलयभेद । "यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत्। तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसञ्चरः ॥" (मार्के॰पु॰ ४६ अ०)

जिस समय यह विश्व प्रश्तिमें लीन हो जायगा, तभी प्रतिसञ्चर होगा। २ प्रलयमाल। प्रतिसिन्निहीषु (सं॰ ति॰) प्रतिसंहर्त्तुमिन्द्धुः प्रति-सम्-ह-सन, तत उ । प्रतिसंहार करनेमें इच्छुक । प्रतिसदृक्ष (सं ० ति०) समानदर्शी, एक-सा देखनेवाला । प्रतिसदृश (सं॰ त्रि॰) प्रत्येकके प्रति समानदर्शी, सबको एकसा देखनेवाला। प्रतिसन्देश (सं॰ पु॰) प्रतिरूपः सन्देशः प्रादिसमासः। सन्देशानुसार प्रत्युत्तरह्नप वाचिक वृत्तान्तभेद । प्रतिसन्धान (सं० क्ली०) प्रति-सम्-धा-भावे-ल्युर् । अतु-सन्धान, हूं ढ़ना, स्रोजना। प्रतिसन्धानिक (सं० पु०) राजाओं आदिकी स्तुति करने-वाला मागध। प्रतिसन्धि (सं॰ बु॰) प्रतीयः सन्धिः प्राद्सिमासः । १ वियोग, विछोह । २ अनुसन्धान, हूं हना । ३ पुनर्जन्म । ८ उपरम । प्रतिसन्थेय (सं० ति०) प्रति-सम्-धा-कर्मणि यत् । प्रती-कारयोग्य। प्रतिसम (सं० त्रि०) प्रतिकृतः समः। विसदृश, जो देखनेमें समान न हो।

प्रतिसमन्त (सं॰ ति) प्रतिगतं समन्तात् येन प्रादिवहुं पृपोदरादित्वात् साधुः । प्राप्तसमन्ताद्भाव । प्रतिसमाधान (सं॰ क्ली॰) प्रति-सम्-आ-धा-ल्युट्। प्रतिकार । प्रतिसमाधय (सं० ति०) प्रति-सम्-आ-धा-यत्। प्रती-कार्यं, प्रतीकारके लायक । प्रतिसमासन (सं॰ क्लो॰) प्रति-सम्-था-अस भावे ब्युट् । निरसन, निवारण।

प्रतिसर (सं॰ पु॰) प्रतिसरतीति प्रति-सः अच् । १ मन्त-भेद, जादृका मन्त्र । २ माल्य, माला । ३ कङ्कुण, एक प्रकार का गहना । 8 घाहमें पयननेका कंकण । ५ प्रातःकाल, सवेरा । ६ वणशुद्धि, जब्मका मर आना । ७ चम्पृष्ठ, सेनाका पिछला माग । ८ मादा हाथी, हथनी । ६ मएडल । १० मृत्य, नौकर । (ति०) ११ नियोज्य । प्रतिसरण (सं० क्षी०) किस चीजके वल टेक कर रहना । प्रतिसर्ग (सं० पु०) प्रतिस्तर सर्गः । ब्रह्माको सृष्टिके वाद दक्षादिकी सृष्टि, वे सव सृष्टियां जो इन्द्र, विराद् पुक्ष, मनु, यक्ष और मरीचि आदि ब्रह्माके मानस-पुताने उत्पन्न की थीं।

कालिकापुराणमें प्रतिसर्गका विषय इस प्रकार लिखा है—चद्र, विराट्पुरुप, मनु, दक्ष और मरोचि आदि ब्रह्माफे मानस पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने जो जो सृष्टि को है, उसका नाम प्रतिसर्ग हैं। विराट्पुल मनुने अन्य छः मनुओंकी सृष्टि करके वहुतों प्रजाकी सृष्टि की। क्रमशः उस मनुकी सन्तिसखा सारे संसारमें फैल गई। खायम्भुव मनुने प्रजा-सृष्टि करनेकी कामनासे पहले जिन डः पुत्रोंको इत्पादन किया, वे सभी मनु थे। उनके नाम थे खारी-चिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षष और विवस्तान्।

यक्ष, राक्षस, पिशाच, नाग, गन्धवै, किन्नर, विद्या-धर, अप्सरा, सिद्ध, भूत, विद्युत्, मेघ, छता, गुल्म, तृण, मत्स्य, पशु, कीट और अन्यान्य जलज स्थलज प्राणी आदिकी सायम्भुव मनुने अपने पुत्नोंके साथ मिल कर सृष्टि की, इसीसे इसको उनका प्रतिसर्ग कहते हैं। सायम्भवपुत छःम नुर्जोने भी अपने अपने अधिकारमें प्रति-सर्गं करके चराचर व्याप्त किया । उन्होंने वराहयञ्ज, यूपादि यक्षीय द्रव्य, धर्म, अधर्म और यावतीय गुणोंकी सृष्टि की। इसीसे उन्हें वाराह प्रतिसर्ग कहते हैं। भनेक प्रधान प्रधान देविषं, महर्षि और सोमप आदि पितरोंको उत्पादन करके सृष्टि प्रवर्त्तित की। यही दक्षका प्रतिसगं है। ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षित्रय, ऊरसे वैश्य और पदतलसे शूद्र और चारों मुखसे चार वेद उत्पन्न हुए। ब्रह्माका प्रतिसर्ग होनेके कारण यह ब्राह्मसर्गं कद्दलाया। मरीचिसे कृश्यप और कश्यपसे समस्त जगत्, देव, दैत्य, दानव आदिकी सृष्टि हुई। इस-का नाम मारीच प्रतिसर्ग रखा गया । अतिके नेतसे चन्द्रमा भीर चन्द्रमासे जगत्व्यापक चन्द्रमंश उत्पन्न

हुए, यही सीमसर्ग वा अतिका प्रतिसर्ग है। पुलस्त्यके पुत्र भाज्यप नामक पितरों और राक्षसोंका प्रतिसर्ग पुलस्त्य कहलाता है । हस्ती, अध्व आदिको पुलहने सृष्टि की, इस कारण इसे पुलहका प्रतिसगं कहते हैं । सूर्य-सन्तिम ८८ हजार वालखिल्यगण ऋतुके पुत हैं, अतः ये कतुके प्रतिसर्ग कहलाये । ८६ हजार प्राचेतसगण प्रचेताके पत्र थे. यह प्रचेताका प्रतिसर्ग कहलाता है। सुकालीन पित्राण और अवन्यतीगर्मसम्भत अन्य ५० योगी बशिष्ठके वृत थे, इसका नाम वासिष्ठ प्रतिसगं है। भृगुसे भाग-बोंकी उत्पत्ति हुई । वे सभी दैत्योंके पुरोहित, कवि और महाप्राञ्च थे तथा सारे संसारमें उनका प्रसार था, यही भागव प्रतिसर्ग नामसे प्रसिद्ध है। नारदसे नाना प्रकारके नक्षत, विमान, प्रश्न, उत्तर, गृत्य, गीत और कौतक उत्पन्न हुए, इस कारण इसका नाम नारद प्रतिसर्गं पडा। इन्हीं दक्षमरीचि आदि ऋषियोंने अनेक पुत उत्पादन किये और उन सक्का विवाह कर खर्ग और मर्त्यको परिपूर्ण कर दिया । उनके पुत्रपौतादिकी सन्तान-सन्तित आज भी भुवनमण्डल पर वर्त्तमान है और उत्पन्न हो रही हैं। विष्णुके नयनसे सर्थ, मनसे चन्द्र, कर्णसे वसु ओर दशदिक तथा मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई थीं, इस कारण यह विष्णुका अतिसर्ग कहलाया। पीछे चन्द्रमा अतिके नैतसे और सूर्यं कश्यपपत्नी अवितिसे पुजित हो कर कश्यपके औरस और अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। चद्रसे चार प्रकारके भृतोंकी उत्पत्ति हुई, १ला कुक्कुर, वराह और उच्चूहपधारो, २रा शृङ्खाल और वानर रूपधारी, ३रा मब्लुकानन और विडालानन रूप-धारी और ४था च्याव्रमुखी तथा सिंहमुखी। ये सभी नाना शस्त्रधारी, कामरूपी और महावल पराकान्त थे। यह रुद्रका प्रतिसर्ग है। कल्पके शेषमें इन सब प्रति-सर्गौका छय हुआ करता है। (काछिका पु॰ २६ अ॰) २ प्रलय । (अवा०) ३ सर्गं सर्गंमें, प्रति सर्गंमें ।

प्रतिसर्यं (सं ॰ पु॰) प्रतिसरे मवः यत्। रुद्रमेद्, एक रुद्रका नाम। २ विवाहोचित हस्तस्त्रमवमात, विवाह-के समय हाथमें वांघा जानेवाला कंगन।

प्रतिसध्य (सं ॰ बि॰) प्रतिगतं सन्यं वाममिति । प्रति-क्छ, विपरीत । प्रतिसन्धानिक (सं ॰ पु॰) प्रतिसन्धानं प्रयोजनमस्येति प्रतिसन्धान-ठक् । मागध, स्तुतिपाठक ।

प्रतिसाम (सं ० ति०) साम्नि साम्नि वीप्सायामव्ययी-भावः अच् समासान्तः । प्रत्येक साममें, हरएक साम-मन्त्रमें ।

प्रतिसामन्त (सं॰ पु॰) विपक्ष, शबु ।

प्रतिसायम् (सं० अवा०) प्रति सन्ध्याकालमें ।

प्रतिसारण (सं० ति०) प्रतिसारयित प्रति-स-णिच्-स्यु। १ अपसारक, हरानेवाला। २ दूरीकारक, दूर करनेवाला। (पु०) ३ दूरीकरण, दूर हराना, अलग करना। ४ सुश्रु-तोक्त अग्निकार्यभेद। यह अग्निकार्य चार प्रकारका है, चलय, विन्दू, विलेखन और प्रतिसारण। इसमें गरम घो या तेल अग्दिकी सहायतासे कोई स्थान जलाया जाता है। ववासीर, भगन्दर, अबुँद आदि रोगोंमें यह विधेय है। ५ व्रणचिकित्साङ्ग। ६ दन्तवर्षणभेद, मंजन। किसी प्रकारके चूणे या अवलेह आदि द्वारा दांत, जीम और मुंहको उंगलीसे धोरे धोरे घिसनेका नाम प्रसारण है। प्रतिदिन नियमित रूपसे प्रतिसारण करनेसे मुखकी विरसता, दुर्गन्य, मुखशोय, तृण्णा, अरुचि और दन्तपीड़ा जाती रहती है।

प्रतिसारणीय (सं० ति०) प्रति-स्-णिच् कर्मणि अनी-यर्। १ स्थानान्तर नयनीय, हटा कर दूसरे स्थान पर ले जानेके योग्य। (पु०) २ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारकी क्षार-पाक-विधि। यह कुष्ट, भगन्दर, दाद, कुष्ठव्रण, फांई, मुहासे और ववासीर आदिमें अधिक उपयोगी होती है।

प्रतिसारा (सं ० स्त्री०) पश्चबुद्ध-शक्तिमेद, बौद्ध तान्तिकों-के अनुसार एक प्रकारकी शक्ति जिसका मन्त्र धारण करनेसे सव प्रकारकी विघ्न-वाधाओंका दूर होना माना जाता है।

प्रतिसारित (सं० ति०) प्रति-स-णिच्-क । १ परिचालित, चलाया हुआ, हटाया हुआ । २ प्रवर्त्तित, वदला हुआ । ३ दूरीकृत, अलग किया हुआ । ४ संशोधित, शोधा हुआ ।

प्रतिसारिन् (सं॰ ति॰) प्रतीपं सरित स-णिच्-णिनि। १ प्रतीपगामी। २ नीचगामी।

प्रतिसिद्ध —दाक्षिणात्यमें प्रचलित (राजा ३य जयसिंहके समसामियक) राजकरिवशेष।

प्रतिसीरा (सं॰ स्त्री॰) प्रतिसिनोति प्रतिवध्नातीति प्रति-सि (श्रुविनिष्मिशं वीर्षश्च। त्रण् २।२५) कृन् दीर्घक्च, ततप्राप्। यवनिका, परदा।

प्रतिस्र्यं (सं० पु०) प्रतिरूपः स्र्यः प्राद्स०। १ इकलास, गिरगिट। २ आकाशमें होनेवाला एक प्रकारकः
उत्पात जिसमें स्र्यं निकला हुआ हिलाई देता है। ३
स्र्यंपरिवेश, स्र्यंका मण्डल या घेरा। वृहत्संहितामें
लिखा है, कि जिस ऋतुमें स्र्यंका जैसा वर्ण होता है, उस
ऋतुमें यदि प्रतिस्र्यंका वर्ण भी वैसा हो हो अथवा वैद्र्यसद्रश, खच्छ और शुक्कवणं युक्त हो, तो वह वर्ष क्षेम भीर
सुभिक्षकर होगा, ऐसा समक्तना चाहिये। पीतवर्ण होनेसे वग्राधि, अशोकपुष्पकी तरह होनेसे शास्त्रप्रकोप अर्थात्
युद्धादि उपस्थित होता है। प्रतिस्र्यंके उद्य होनेसे
दस्युभय, आतङ्क और नृपविनाश होता है। उत्तरमें
प्रतिस्र्यं होनेसे अधिक जल, दक्षिणमें होनेसे प्रवल वायु,
दोनों दिक् होनेसे सिललभय, उपरमें होनेसे राजमय
और नीचे होनेसे सहामारीका भय वना रहता है।

(बृहत्सं• ३७ स॰)

प्रतिसूर्यक (सं॰ पु॰) प्रतिसूर्य सार्थे कन्। कृकंडास्, गिरगिट। २ सूर्यका परिवेश। शितसूर्थ देखो।

प्रतिसूर्यशयानक (सं॰ पु॰) सूर्यके उत्तापमें सोनेवाला कुम्भीर, सरट आदि।

प्रतिस्हष्ट (सं ० ति०) प्रति-सज्जन्मर्गण-क । १ प्रेपित, भेजा हुआ । २ प्रत्याख्यात, लीटा हुआ ।

प्रतिसेना (सं॰ स्त्री॰) विपक्षियोंकी सेना, दुश्मनकी फौज।

प्रतिसोमा (सं० स्त्री०) प्रतिरूपः सोमः सोमवर्छा यस्याः। महिषवर्छी, छिरेटा नामकी बेल । प्रतिस्कन्थ (सं॰ पु॰) १ कुमारानुचरभेद । २ नियम-सन्ध्यङ्गभेद ।

प्रतिस्त्री (सं ॰ स्त्री॰) प्रतिरूपा स्त्री प्रादिसमासः। १ परनारी, पराया औरत। आभिमुख्ये अव्ययीमावः। (अव्य॰)२ स्त्रीके अभिमुख।

प्रतिस्थान (सं० अद्य०) प्रत्येक स्थानमें, हर जगह ।
प्रतिस्नेह (सं० पु०) प्रति-स्नेह-घज् । प्रतिरूप स्नेह ।
प्रतिस्पर्दा (सं० स्त्रो) प्रति-स्पर्द -मावे-अङ् । प्रतिरूपास्पर्दा, किसी काममें दूसरेसे वढ़ जानेकी इच्छा या
उद्योग, लागडाँट, चढ़ा ऊपरी । २ विवाद, भगड़ा ।
प्रतिस्पर्दिन (सं० ति०) १ विद्रोही, उद्दु । २ प्रतिस्पर्दा-

युक्त, मुकावला या वरावरी करनेवाला ।

प्रतिस्पश (सं॰ पु॰) प्रतिरूपः स्पशः। १ प्रतिदूत। २ आगमनप्रतीक्षा, किसीकी वाट जोहना।

प्रतिस्पाशन (सं० बि०) प्रतिस्पश, वाधक।

प्रतिस्फलन (सं० पु०) विस्तार, फैलाव ।

प्रतिस्पृति (सं॰ स्त्री॰) प्रतिरूपा स्मृतिः प्रादिसमासः। प्रतिरूप स्मृतिशास्त्र।

प्रतिस्याय (सं० पु०) प्रतिश्याय देखी ।

प्रतिस्नाव (सं॰ पु॰) एक प्रकारका रोग। इसमें नाकमेंसे पीला या सफेद रंगका वहुत गाढ़ा कफ निकलता है।

भतिस्रोतस् (सं॰ ह्यो॰) प्रतीपं स्रोतं प्रादिसः । स्रोतके प्रतिकृत्न गमन, विरुद्ध धारमें जाना।

प्रतिसर (सं० पु०) प्रति-स-शन्दोपतापयोः, मावे आधारे वा अप्। प्रतिशब्द, गूंज। २ उपतापाधार, सूर्यकिरण-सम्पर्कस्थान।

प्रतिहत (सं० ति०) प्रतिहत्यते स्मेति प्रति-हन-क । १ निरस्त, हदाया हुआ । २ व्याहत, मना किया हुआ । ३ आहत, चोट खाया हुआ । ४ प्रेरित, उसकाया हुआ । ५ अवस्त, रुका हुआ । ६ प्रतिस्विटित, गिरा हुसा । ७ प्रतिवद, बंधा हुआ । ६ ब्रिप्ट, जिसे द्वेप हो । ६ निराश, जिसे आशा न हो ।

प्रतिहति (सं० स्त्री०) प्रति-हन-भावे-किन्। १ प्रतिघात, वह आधात जो किसीके आधात करने पर किया जाय। २ क्रीध, गुस्सा। ३ रोकने या हटानेकी चेंग्रा। ४ टकर।

प्रतिहन्ता (सं० पु०) १ रोकनेवाला, बाधक । २ मुकावले-में बड़ा हो कर मारनेवाला ।

Vol. XIV 137

प्रतिहन्तः (सं ॰ ति ॰) प्रति-हन-तृच् । प्रतिहन्ता देखो । प्रतिहन्तव्य (सं ॰ ति ॰) प्रति-हन-तव्य । प्रतिहननके योग्य, मारनेके लायक ।

प्रतिहरण (सं० क्वी०) प्रति-ह-ल्युट् । विनाश, वरवादी । प्रतिहर्सा (हिं० पु०) १ सोल्लह ऋत्विजींमेंसे वारहवां ऋत्विज । २ वह जो विनाश करे । ३ भरतवंशीय प्रतीह-राजाके एक पुत्रका नाम ।

प्रतिहन् (सं ० ति०) प्रति-ह-तृन् । प्रतिहर्त्तः देखो । प्रतिहर्षण (सं ० क्वी०) प्रतिक्रपं हर्षणं प्रादिसमासः । १ हर्षानुक्तप हर्षे । इप-णिच्च्च्युट् । २ प्रतिक्रप सन्तोष सम्पादन ।

प्रतिहस्त (सं॰ पु॰ं) प्रतिद्भपः हस्तोऽवलम्यनद्भपो यस्य । प्रतिनिधि ।

प्रतिहार (सं० पु०) प्रति विषयं प्रत्येकं वा हरति स्वामि-समीपमानयतीति प्रति-ह-अण्। १ द्वारपाल, दरवान, ब्योदीदार। २ द्वार, दरवाजा, ब्योदी। ३ मायाकार, ऐन्द्रजालिक, वाजीगर। ४ परमेष्टीके पुत्त। ५ सामका अवयवमेद, सामवेद-गानका एक अंग। ६ राजकमैचारी-भेद, प्राचीनकालके एक राजकमैचारी जो सदा राजाओंके पास रहा करते थे और जो राधाओंको सब प्रकारके समाचार आदि खुनाया करते थे। अकसर पढ़े लिखे ब्राह्मण या राजवंशके लोग इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। ७ चोवदार, नकीव। ८ एक प्रकारकी सन्धि। ६ दाक्षिणात्यवासी राजवंशभेद। उत्तर-भारतके परिहारगण पहले दिक्षणमें प्रतिहार कहलाते थे। परिहार देखो।

प्रतिहारक (सं० पु०) प्रतिहर्ष हरतोति ह-ण्वुल्। १ ऐन्द्र-जालिक, वाजोगर। २ वह जो प्रतिहार सामगान करता हो।

प्रतिहारण (सं० क्वी०) प्रति-द्व-णिच्-ल्युट् । १ प्रवेशद्वार, दरवाजा । २ प्रवेशन, द्वार आदिमें प्रवेश करनेकी आजा । प्रतिहारतर (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्रकारका अस्त । इसका वावहार, दूसरोंके चलाए हुए अलोंको निष्फल करनेके लिये होता हैं।

प्रतिहारत्व (सं ० पु०) प्रतिहार या द्वारपालका काम या पदः। प्रतिहारिन् (सं ॰ पु॰) प्रति-ह्र-णिनि । द्वारपाल, ड्योढ़ी-दार ।

प्रतिहारी (हिं 0 पु०) प्रतिहारिन् देखो ।

प्रतिहार्यं (सं ० ति ०) प्रति-ह-ण्यत् । परिहार्यं, छोड़ने लायक ।

प्रतिहास (सं० पु०) प्रतिह्नपः हासः प्राद्सः । १ उपहासकारीके प्रति हास्य, हंसी करनेवालोंके साथ हंसी।
२ करवीरवृक्ष, कनेर। ३ शुक्ककरवीर, सफेद कनेर।
प्रतिहिंसा (सं० स्त्रो०) प्रतिहिंस-अङ्-टाप्। १ वैरनियांतन, वैर सुकाना, बदला लेना। २ वह हिंसा जो
किसो हिंसाका बदला सुकानेके लिये की जाय।
प्रतिहिति (सं० पु०) शरयोजना, चिल्ला चढ़ाना।
प्रतिहृत (सं० अवर०) प्रत्येक हृदयमें।
प्रतिहृत (सं० पु०) प्रति हृ-आधारे अप्। समीप,
नजदीक।

प्रतोक (सं • पु •) प्रति-कन् निपातनात् दोर्घः । १ अव-यव, अङ्ग । २ पता, चिह्न, निशान । ३ किसी पद्य वा गयके आदि या अन्तके कुछ शब्द लिख कर या पढ़ कर उस पूरे वाक्यका पता वतलाना । ४ मुख, मुंह । ५ आकृति, कप, स्रत । ६ प्रतिक्रप, स्थानापन्न वस्तु । ७ प्रतिमा, मृत्ति । ८ वसुके पुत्न और ओघमानके पिताका नाम । ६ मठके पुत्रका नाम , १० पटोल, परवल । ११ उपासनामेद । श्रुतिमें प्रतीकोपासनाका विधान लिखा है । छान्दोग्य उपनिषद्में कई जगह इस उपा-सनाका उल्लेख देखनेमें आता है । वेदान्तदर्शन और उसके भाष्यमें प्रतोकका जो विषय लिखा है, वह इस प्रकार है: —"न प्रतीके नहिवः" (वेदान्त ध्रारा है)

मनव्रह्म, आदित्यव्रह्म, नामव्रह्म इत्यादि शास्त्रींमें विहित हुए हैं। अतएव इनकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। मन, आदित्य और नाम (ओं, तत्, सत् हरिविष्णु इत्यादि) ये सब प्रतीक हैं। इन सर्वोसे व्रह्मबुद्धि उत्थापित करनी होगी। इस प्रकार उपासना करनेका नाम प्रतीकोपासना है। ब्रह्म और उपासक जीव अभिन्न है, यह भाव स्थिर रखकर मैं ही नाम हूं', 'में ही आदित्य हूं', ऐसा समकोगे या ब्रह्मको ही मन, आदित्य और नाम वतलाओगे ! इसके उत्तरमें ।

याङ्कराचार्यने कहा है—प्रतीकमें अहं ज्ञान न्यस्त मत करो। कारण, प्रतीकोपासक प्रतीकको अहं अर्थात् आत्मा नहीं मानते। इसी कारण प्रतीकमें 'अहंग्रह' उपासना सिद्ध नहीं होती। 'न प्रतीक नहि सः' इस स्वभाष्यमें शङ्कराचार्यने ऐसा लिखा है—मन ब्रह्म है। मनकी ऐसी उपासनाका नाम अध्यातम-उपासना है, आकाश ब्रह्म है—ऐसी उपासनाका नाम अध्यतम-उपासना है, आकाश ब्रह्म है—ऐसी उपासनाका नाम अधिदैव-उपासना और नामक्रप-में ब्रह्मोपासना ही नामब्रह्म इत्यादिक्षण उपासनाका नाम प्रतीकोपासना है।

अध्यातमादि इतमें अनेक प्रकारकी प्रतीकोपासना वतलाई गई है। इसमें संशय यह है, कि इन सब प्रतीकोंमें अदंशानका उत्पादन करना होगा वा नहीं ? पूर्वपक्षमें यह मिलता है, कि इन सब प्रतीकोंमें आत्ममति (अहंशान) करना ही युक्तिसिद्ध है। कारण, श्रुतिमें ब्रह्मको आत्मा वतलाया है। इस विषयका तात्पय यह, कि कोई भी प्रतीक क्यों न हो, सभी जब ब्रह्मचिकार हैं, तब निश्चय ही वे सब ब्रह्म हैं। जो ब्रह्म है, वही आत्मा है। इसके उत्तरमें श्ङ्कराचार्यने ऐसा कहा है—'न श्रताक्षकारमार्थि वश्नीयात, नह्मु पासकः, श्रतीकानि व्यस्तान्वास्मिवेनाइकयेत' (वेदान्तद्व माद्य)

प्रतोकमें आत्ममित अर्थात् अहंद्यान प्रवाहित न करे। कारण, प्रतीकोपासक किस्तो भी प्रतीकको आत्मभावमें नहीं देखते अर्थात् आत्माके जैसा नहीं मानते। प्रतोक ब्रह्मका विकार होनेके कारण ब्रह्म है। अत्यय ब्रह्म ही आत्मा हैं, ऐसा जो कहते हैं उनको भारी भूल है। क्योंकि, उससे प्रतीकका प्रतोकत्व विलोप हो सकता है। नाम प्रभृति प्रतोक (उपासनाका अवलम्बन) ब्रह्मके विकार तो हैं, पर उनमें ब्रह्मदृष्टि प्रवाहित करनेमें विकारभाव उपमिद्देत होगा और वे सब ब्रह्मभावका आश्रय छेंगे। यदि नामादिका सकप विलुस हुआ, तो प्रतोक रहा कहां! अहंद्यान प्रवाहित होगा किसमें!

्रव्रह्म ही आत्मा है, यह भाव स्थिर रखनेमें व्रह्मद्रष्टिके उपदेशसे आत्मज्ञान सिद्ध तो हो सकता, पर उससे रष्ट-सिद्धि नहीं होगी। कारण, उस प्रकारके दर्शनसे कर्नुं-

62 You at 4

त्वादि संसारधमें निराकृत नहीं होता। ब्रह्म हो आत्मा ह-यही दर्शन कर्नृंत्वादि सर्वसंसारघर्म निराकरण पूर्वेक उदित होता है। उसकी अनिराकरण अवस्थामें ही उन सब उपासनाओंका विधान है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि उक्त प्रकारकी कल्पनासे उपासक प्रतीकके साथ समान होनेकी चेष्टा तो करता है, पर उससे अहंबान उत्पन्न नहीं होता। जीव और प्रतीकका खरूपगतभेद तथा विधि श्रवण नहीं रहनेके कारण प्रतीकमें अहं प्रहउपासनाकी विलक्कल सम्भावना नहीं । जो रुचक है वही सस्तिक है। रुचक और स्वस्तिक पूर्वकालका अलङ्कारविशेष है। अलङ्कारक्षपमें इन दोनोंकी एकता नहीं है : किन्तु सुवर्ण-रूपमें एकता है। अतएव सुवर्णत्व प्रकारमें अभेद रहने पर भी उन दोनों (खस्तिक और रुचक)के सरूपमें यथेष्ट प्रमेद है। खुवर्णस्य प्रकारमें रुचक खस्तिककी एकता-की तरह ब्रह्मात्मभावकी एकता ब्रह्मण करनेमें प्रतीकाभाव-की प्राप्ति होती है। इसोसे प्रतीकमें अहंज्ञान नहीं किया जा सकता अर्थात् प्रतीकोपासनासे अहंज्ञान लाभ नहीं होता ।

पूर्वीक चाक्यमें अर्थात् मनत्रहा इत्यादिकी उपासना-में और भी अनेक संशय हैं। ब्रह्ममें आदित्यादि बुद्धि न्यस्त करनी होगी या आदित्यादिमें ब्रह्मयुद्धि ? इसका विषय छिखा गया। अव प्रतीकोपासनाविधायक वास्य-निचयमें ब्रह्म शब्दके साथ आदित्यादि शब्दका समा-नाधिकरण देखा जाता है। यथा—'आदित्यब्रह्म' 'प्राण-व्रह्म' 'विद्य त्व्रह्म' इत्यादि । इन सब वाक्योंमें समान विमक्तिका प्रयोग होनेसे एकार्थता ही प्रतीत होती है। आदित्य शन्द और ब्रह्म शन्दका बास्तविक सामानाधि-करण्य (एकार्थता) असम्भव है। कारण, उक्त दोनों शब्द विभिन्नार्थवाची हैं। जिस प्रकार गी, अन्व प्रमृति शब्दोंका यथार्थं सामनाधिकरण नहीं है, उसी प्रकार उन सव विभिन्नार्थवाची शन्दोंका भी सामानाधिकरण्य नहीं है। यदि कहा जाय, कि ब्रह्मादित्यके प्रकृतिविकृति-भाव है—ब्रह्म प्रकृति और आदित्य विकृति है—तद्नुसार ब्रह्मादित्यके भी ब्रह्माकाश प्रभृतिके मृद्घटादिकी तरह सामानाधिकरण्य सम्भव है अर्थात् मृदुविकार घटको मृत्तिका कहनेको प्रथा है, तद्बुसार बह्मविकार आदि-

त्यादिको ब्रह्म कहना सङ्गत तो है, पर इसके द्वारा सामा-नाधिकरण्य सम्भव नहीं । कारण, प्रकृति व्रद्धके साथ आहित्यादि विकारका अभेद साधनेमें विकारका विलय साधित होता है और उससे प्रतीक (उपासनाके आल-म्यन)-का अभाव उपस्थित होता है।

श्रुति-प्रमाणानुसार यह जाना जाता है, कि एकाई त-बोधकालमें कौन किसका उपास्य होता है ? कोई भी नहीं होता-यह अभिप्राय अकाट्य होने पर सचमुच श्रुतिका परिमितविकारप्रहणव्यर्थं होगा। यदि ऐसा हो, तो क्यों वे (श्रुति) आदित्यादि विकारका उल्लेख करते हैं? क्यों वे ब्रह्मज्ञानार्थं प्रतीक निर्देश करते हैं। इसका उत्तर यही है, कि जिस प्रकार ब्राह्मण ही अग्नि है अर्थात अग्नि तुल्य इत्यादि स्थलमें ब्राह्मणमें अनिवृद्धिका आरोप है उसी प्रकार वहां भी ब्रह्ममें आदित्यादि वृद्धिका अथना आदित्यादिमें ब्रह्मवुद्धिका आरोप है, यही मालूम होता हैं। किन्तु किसमें कीन युद्धि आरोपित करनी होगी? यही संशय है, आदित्यादिमें ब्रह्मबुद्धिको या ब्रह्ममें आदित्यादि बुद्धिको ? ब्रह्ममें ही आदित्यादि बुद्धि उत्पा-दन करनो होगो, यदि उन (धुति)-की सम्प्रति है। क्योंकि ब्रह्म ही उपास्य हैं। ब्रह्मको आदित्य जान कर उनका ध्यान करनेसे बहाका ध्यान वा उवासना सिद हो कर फलपद होती है। यही शास्त्रमाणसिद्ध है। पूर्वपक्षकी प्राप्ति होनेसे, आदित्यादिमें ही ब्रह्मदर्शन करे, पेसा सिद्धान्त हुआ है। उसका प्रतिकारण उत्क्रप्रता है, ब्रह्म ही सर्वोत्ऋष्ट हैं। उनकी दृष्टिसे दूष्ट होने पर अर्थात् ब्रह्ममावमे भावित होने पर वे उत्रुष्ट हो कर यथोक्त फल देते हैं।

'त्रहा त्यादेशः', 'त्रहा त्युपासीत', 'त्रहा त्युपास्ते' इत्यादि श्रुति द्वारा सर्वत ब्रह्म शब्दका और शुद्ध आदि-त्यादि श्रुति द्वारा सर्वत ब्रह्म शब्दका और शुद्ध आदि-त्यादि शब्दका उच्चारण हुआ। इस पर यह निर्णीत होता है, कि शुक्तिको रजतके जैसा समभते हें, इत्यादि स्थलमें शुक्ति शब्द जिस प्रकार शुक्तिकावाची है, उसमें जो 'रजत' शब्दका प्रयोग है, यह केवल रजतज्ञानका उपलक्षक है; अर्थात् वह रजतकी तरह केवल प्रतीत हो होती है, यथार्थमें वह रजत है नहीं। 'आदित्यो ब्रह्मोति' इत्यादि स्थलमें भी उसी प्रकार जानना चाहिये। फलतः

पहले आदित्यादि प्रतीकमें ब्रह्मयुद्धिकी अध्यस्त करे।
"स य प्रतदेवं विद्वान् आदित्यं ब्रह्मे प्रत्युपास्ते।"
(छान्दोग्य० उप० ३।१६)

कोई उपासक वा ज्ञानी प्रदर्शित प्रकारसे आदित्यकी व्रह्मभावमें उपासना करते हैं, कोई उपासक 'वाक्य ही व्रह्म हैं' इस वाक्यकी उपासना करते हैं, इस प्रकार प्रतीतकोपासनासे फललाभ तो होता है, पर आत्मज्ञान नहीं होता। अतिथि उपासना (सेवा)-से जिस प्रकार फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार आदित्यादि प्रतीकोपासनासे भी फल मिलता है। उस फलके देनेवाले ब्रह्म हैं। जिस प्रकार प्रतिमादिमें विष्णुदर्शन हैं उसी प्रकार आदित्यादिमें भी ब्रह्मदर्शन। जिस प्रकार प्रतिमामें विष्णुकी उपासना है, उसी प्रकार आदित्यादिमें भी ब्रह्मकी उपासना। (वेदान्तमाध्य क्षाप्त छ०)

(त्रि॰) ११ प्रतिकूल, विरुद्ध । १२ विलोम, जो नीचेसे ऊपरकी ओर गया हो ।

प्रतीकवत् (सं ० ति ०) प्रतीक-अस्त्थें मतुप् मस्य व। १ प्रतीकयुक्त । २ मुखयुक्त । (पु ०) ३ अग्निका नामभेद । प्रतीकार (सं ० पु ०) प्रतिकरणमिति प्रति छ- घञ् उपसर्गे-स्पेति पक्षे दीर्घः । १ कृतापकारका प्रत्यपकार, वह काम जो किसीके किये हुए अपकारका बदला चुकाने अथवा उसे निष्फल करनेके लिये किया जाय । २ चिकित्सा, इलाज । ३ प्रतिधान ।

प्रतीकार्य (सं॰ बि॰) प्रतिकारयोग्य, वद्छा चुकाने छायक।

प्रतीकाश (सं ॰ पु॰) प्रतिकाशते इति प्रति काश-धन्, उपसर्गस्य दीर्घः। उपमा, प्रतिकाश।

प्रतीकाश्व (सं ॰ पु॰) भानुवत् राजाके एक पुतका नाम । प्रतीकास (सं ॰ पु॰) प्रति-कस-घञ् । प्रतीकाश ।

प्रतीकोपासना (सं ० स्त्री०) किसी विशेष पदार्थमें व्यापक ग्रह्मकी भावना करके उसे पूजना और यह मानना कि हम उसी ब्रह्मकी पूजा करते हैं।

प्रतीक्ष (सं ० ति ०) प्रति-इक्ष-अच् । प्रतीक्षाकारी, वाट जोहनेवाला ।

प्रतीक्षक (सं ० ति ०) प्रति-इक्ष-ण्वुल् । १ प्रतीक्षाकारक, आसरा देखनेवाळा । २ पूजक, पूजा करनेवाळा । प्रतीक्षण (सं ० क्की०) प्रति-ईक्ष-ल्युट्।१ प्रतीक्षाकरण, आसरा देखना। २ क्रपाद्वष्टि, मेहरवानीकी नजर। प्रतीक्षणीय (सं ० ति०) प्रति-ईक्ष-अनीयर्। प्रतीक्षण-योग्य।

प्रतीक्षा (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-ईश्च-अङ् । १ प्रतीक्षण, आसरा, इंतजार । २ प्रतिपालन, किसीका भरण पोपण करना । ३ पूजा ।

प्रतीक्षिन् (सं० ति०) प्रति-ईक्ष-णिनि । १ प्रतीक्षा-कारक, प्रतीक्षा करनेवाला । २ पूजाकारक, पूजा करने-वाला ।

प्रतोक्ष्य (सं ० ति ०) प्रतीक्षते इति प्रति-ईश्-ण्यत् । १ पूज्य, पूजा करने लायक । २ प्रतीक्षणीय, प्रतीक्षा करने योग्य । प्रतीघात (सं ० पु०) प्रति-इन-भावे धन्न् वाहुलकात् दीर्थः । १ प्रतिघात, वह आधात जो किसीके आधात करने पर हो । २ वह आधात जो एक आघात लगने पर आपसे आप उत्पन्न हो, टक्कर । ३ वकावट, वाधा । ४ निराश । ५ निश्चेप ।

प्रतिघातिन् (सं० वि०) प्रति-हन्-णिनि । प्रतिघातयुक्त । प्रतीर्चा (सं० स्नो०) प्रतिदिनान्तं प्रतिदिनान्ते इत्यर्थः अञ्चति सूर्यमिति अञ्च- नातिपूजनयोः (ऋतिक् १ष्ट्र सण् विग्रिक्णगञ्ज्वपुष्णिकुषाय । या १।२।५९) इति किन् अनलोपो दीर्घंश्च, 'उगितश्येति' इति ङीप् । पश्चिमदिक्, पश्चिम दिशा । २ पश्चिमभिमुखी । ३ प्रतिनिवृत्तमुखी ।

प्रतीचीन (सं० ति०) प्रतीचिभवं प्रत्यच् (विभाषाङ्गे-रहिक् वियांपा। ४।ः इति ख, अञ्जोपो दीर्घश्च। १ प्रत्यक् पश्चिम दिशाका, पछाहीं। २ पराङ्गमुख, जिसने मुंह फेर लिया हो।

व्रतीचिनेड् (सं ० क्ली०) सामभेद् ।

प्रतीचीश (सं॰ पु॰) पश्चिम दिशाके खामी, वरुण। प्रतीच्छक (सं॰ ति॰) प्रतिगता इच्छा यस्य प्रादिस॰ ततः कप्। प्राहक, छेनेचाछा।

प्रतीच्य (सं ० ति०) प्रतीच्यां भवः, प्रतीची-यत् । पश्चिम-दिग्जात । पश्चिमदिशामें होनेवाला ।

प्रतीत (सं ० ति ०) प्रतीयते सम प्रत्येकमगाद्वेति, प्रति-इण्कर्मणि, कर्त्तरि वा क । १ ख्यात, प्रसिद्ध, मशहूर । २ प्रसन्न, खुरा। ३ झात, विदित, जाना हुआ। (पु॰)
४ विश्वदेवका अन्यतम ।
प्रतीतसेन (सं॰ पु॰) राजपुत्रभेद ।
प्रतीताक्षरा (सं॰ स्त्रो॰) प्रतीतः अक्षरः यत । विश्वासयोग्य वाक्यसम्बिलत ।
प्रतीतार्थ (सं॰ ति॰) स्वीकृतार्थं, अनुमोदितार्थं।
प्रतीति सं॰ स्त्री॰) प्रति-इन्-भावे किन्। १ शान,

प्रतात सं क स्राक) प्रात-इन्-माच किन्। १ शान, जानकारी। २ दृढ़ निश्चय, विश्वास, यकीन। ३ प्रसिद्धि, ख्याति। ४ आनन्द, प्रसञ्जता। ५ आदर। प्रतीतोद् (सं ० पु०) वेदमन्द्रादिका पद्विशेष। प्रतीत्यसमुत्पाद (सं ० पु०) वोद्धशास्त्रोक्त निदानतत्त्वभेद। जिन सव कारण-परम्परासे जीवकी जाति, उत्पत्ति निर्णीत हुई है, वे प्रत्ययनिवन्धन ही दुःखके कारण हैं। फ्लेशव्याधि-प्रपीड़ित मनुष्यींके दुःखसे कातर हो शाक्य-कुमार सिद्धार्थने वोधिद्यमके नीचे वुद्धत्व लाभके समय जीवनव्याधिके कारण स्वकृत द्वादश निदानका आविकार किया था। उक्त द्वादश निदानतत्त्वका नाम प्रतोत्य-समृत्पाद है।

लिलत-विस्तरमें लिखा है—अविद्या, संस्कार, विद्यान, नामकप, पड़ायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और दुःख ये वारह जोवोत्पत्तिके निदान हैं। अविद्यासे संस्कार, संस्कारसे विद्यान, विश्वानसे नामकप इस प्रकार अन्यान्य सम्बन्धविशिष्ट हो कर जातिसे जरा, मरण, शोक, दुःख, परिदेव, दौर्मन्य और उपायास आदि उत्पन्न हुए हैं। मानवजीवनका उत्पत्तिकारण निर्देश करनेमें पहले मृत्युकारणका निर्देश करना आवश्यक है। जाति वा जन्म नहीं रहने से मृत्यु नहीं हों सकती। मृत्युका उत्पत्तिकारण यदि जाति हो, तो यह अवश्य खंकार करना पड़ेगा, कि कोई एक विषय जातिका उत्पत्तिनिदान है। इस प्रकार मानव दुःखके कारणभूत द्वादश परस्पर सम्बन्धविशिष्ट निदान आविष्ठत हुए हैं।

इस निदानतत्त्व वा धमैस्वका प्रकृत अर्थे छे कर वहुत मतमेद चल रहा है। वीद्धाचार्योंने इसकी मिन्न भिन्न व्याख्या की है। हीनयानमतावलिक्योंके साथ महापानसम्प्रदायकी एकता देखी जाती है। बौद्ध मिन्न मन्यान्य दार्शानिकोंने भी इसकी भिन्न भिन्न रूपसे ज्याख्या को है। वौद्धशास्त्रमें प्रतीत्यसमुत्पादके मूल-खद्धप द्वादश निदानमें जो पारिभाषिक संज्ञा ज्यवहृत हुई है उसका सम्पूर्ण अर्थप्रह नहीं होने पर भी यथा सम्भव उन सब शब्दोंका अर्थ नीचे लिखा जाता है—

अविद्या-अज्ञान वा ज्ञानका अभाव-जगत् और जागतिक पदार्थोंका नित्य और सत्य ज्ञान (यथार्थमें जगत् असत्)।

संस्कार—अविद्याजात भ्रान्तिहान निवन्धन मान-सिक व्यापारभेद । क्य रस गन्ध शब्द स्पर्श—अर्थात् शीत श्रीषम ज्वाळा यातना सुख दुःख स्मृति अनुभूति भय हर्ष छज्जा चेष्टा आदि सभी संस्कार हैं । संस्कारके योगसे मनःशरीर संगठित हुआ है । विना संस्कारके कुछ भो नहीं हो सकता । सभी संस्कारके एकत होने-से में पृण, जात्रत, नाना उपाधिभूषित, महैश्वर्यमय और 'मह' क्यमें दण्डायमान होता हूं, किन्तु वह विद्यानादि-का सहायसापेक्ष है ।

विश्वान—शान, यह छः प्रकारका है—१ चाक्षव, २ श्रावण, ३ व्राणज, ४ रासन, ५ त्वाच और ६ मानस।

नामक्य-प्रत्यक्ष-जगत्, 'नाम'का अर्थ अन्तर वा मनोजगत् और 'क्य'का अर्थ वाह्य वा जड़जगत् है। नामक्यसे सारे संसारका बोध होता है। बौद्धव्यंनमें नामक्य पदार्थको पश्चस्कन्धको समष्टि वतलाया है।

वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञानस्कत्थ, इन चारोंके योगसे नामकी तथा क्षिति, अप, तेज और मस्त् इन चारोंके योगसे 'रूप' नामक पञ्चम स्कन्ध-की उत्पत्ति हुई हैं। वेदना, संज्ञा और संस्कार कहनेसे समस्त चित्तवृत्तियोंका ही उद्धेख किया गया। उसमें विज्ञानयुक्त होनेसे ही अन्तःशरीर वा मनोजगत् निर्मित होता है। वह प्रकाण्ड मनोमयजगत् एक नाममात है। फिर 'पुद्रस्थ' पुरुष एकेश्वर में ही—एक नाम और एक सपकी समष्टिमाल हूं।

पड़ायतन—जड़शरीर, चक्ष, कणं, नासिका, जिह्ना, शरीर और मन इन छः इन्द्रियोंका आश्रयस्वरूप हम लोगोंका शरीर है।

स्पूरी-जड़शरीरके साथ जड़जगत्का सम्बन्ध।

Vol. XIV. 138

वेदना—स्परीजात रूपरसगन्धादिकी अनुभूति । तृष्णा—आकांक्षा या प्रवृत्ति, वाह्यजगत्के साथ अन्तर्ज्ञ गत्का सम्बन्ध रखनेकी इच्छा । मतान्तरसे सुखकर विपयकी लाभेच्छा और कप्रजनक विपयकी वर्जनेच्छा ।

उपादान—उपकरण, स्रोके प्रति स्वामीका अनुराग वा प्रवल आसक्तिका भाव ।

भव-सत्ता वा अस्तित्व (Becoming or Existence)

जाति—जन्म वा उत्पत्ति।

जरामरण—जन्मजन्य दुःखादि ।

पूर्वोक्त द्वादश पदार्थ इतरेतर सम्बन्धविशिष्ट है। ब्रह्मसूत्र-टीकाकार गोविन्दनाधने इस निदान-श्रङ्खळाको मनुष्यजीयनका इतिहास वतलाया है । मातृगर्भेमें भ्रणके मध्य मनुष्य-जीवनका आरम्भ है । वहां पहले पहल वहुत संस्कार वा सामान्य चित्तवृत्तिका विकाश होता है, साथ साथ सुबदुःखादिको अनुमूर्तिका सञ्चार हुआ करता है। इस प्रमेदानुमृतिका मूल अविद्या, भक्कान वा भ्रान्ति है। संस्कारके क्रमशः परिस्फुट होनेसे विज्ञानका उदय होता है। उससे भ्रण मानो वहुत कुछ सुखदुःखादिका अनुभव करना सोख लेता है। क्रमशः नामरूपका विकाश है-वह वहुत कुछ स्क्ष्मशरीर भाव-का—विज्ञान और संस्कारका आश्रयभूत है। इसके वाद पड़ायतन वा भवयवादिसम्पन्न जड़शरीर बहुत कुछ पूर्णाकार धारण करता है। अभीसे इन्द्रियादिका कार्य शुरू होता 🕻 । क्रमशः वाह्यजगत्के साथ उस स्यूलशरीरका स्पर्श हो जाता है। अभी मान लेना चाहिये, कि भ्र ण मातृगर्भसे भूमिष्ठ नहीं हुआ है। मातृ-गर्भ ही उसका वाह्यजगत् है। उस जगत्के साथ स्पर्श-जन्य उसे वेदनादिका अनुसव होता है। वेदनासे 'तृणा' अर्थात् आराम उपभोग और दुःखपरिहारकी आकांक्षा; उससे 'उपादान' वा सुखलाम और दुःखपरिहारकी विशेष चेष्टा होती है। ऐसी अवस्थामें पहुंचनेसे 'भव' अर्थात् गर्भस्थ भ्रणने पूर्णकपसे मनुष्यसत्ता प्राप्त की है, ऐसा समभा जाता है। इसी समय मालूम होता है, कि वह मातुगर्भसे वाहर निकल कर 'जाति' वा मनुष्यजन्म

लाम करता है। उस वैचारेके जातिलामका फल ही जरामरणकी अभिवाक्ति (Evolution) है। वोधिवृक्ष-के नीचे भगवान्ने जिस मीमांसाका आविष्कार किया, वह मानो एक फिजिओलाजीतत्त्व (शरीरविद्या)के जैसा है।

हिन्दूशास्त्रमें मानवकी १० दशाओंका उल्लेख है। वौद्धोंका प्रतीत्यसमुत्पाद व्यापार भो मानवजीवनका इतिहासमात है। उस इतिहासकी १२ दशाओंमें अभिव्यक्ति हुई है। बुद्धदेवने किस प्रकार यह धर्म-तत्त्व प्राप्त किया और कवसे यह वौद्ध-समाजमें प्रचलित तथा आहृत हुआ, वौद्धशास्त्रसे उसका पता चलता है।

महावंशके २ अध्यायमें लिखा है, कि शाक्यकुमार सिद्धार्थने २६वर्षकी उमरमें गृहाश्रमका परित्याग किया। वे गयाके निकटवत्तीं नैरजना नदीके किनारे छः वर्ष तक वोधिवृक्षके नीचे ध्यानमन्त रहे। उसके तपके प्रभावसे डर कर 'मार' वलवल समेत भाग चले। ३५ वर्षकी उमरमें उन्होंने वुद्धत्वलाम किया था। वुद्धत्वणाप्तिके साथ साथ उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद कप धर्मज्ञानप्राप्त किया।

पहले ही कहा जा चुका है, कि परस्पर कार्यकारण-भावापन यह प्रतीत्यसमुत्पादतत्त्व वौद्ध्यमैका एक प्रधान अङ्ग है। कारण-परम्परा द्वारा अविद्यासंस्काः रादिसं जो कार्यं उत्पन्न होता है, वह श्रृङ्खलायुक्त नहीं होने पर भी निरपेक्ष प्रयृत्त हो कर कार्योन्मुल हुआ करता है। कारणसमवायका नाम प्रत्यय (dependence) है। माध्यमिकस्त्वमें चार प्रकारके प्रत्ययकी वार्ते लिखी हैं—

"चत्वारः प्रत्यया हेतुश्चालम्यनमनन्तरम् । तथैवाधिपतेयं यत् प्रत्ययो नास्ति पश्चमः॥" (माध्यमिकसृक्ष १।३)

हेतु, आलम्बन, अनन्तर और आधिपतेयके सिवा और पञ्चम सम्बन्ध नहीं हैं। प्रतीत्यसमुत्पादतत्त्वमें जो द्वादश निदानका उल्लेख है, यह परस्पर हेत्पनिबन्ध नहीं होने पर भी किसी किसी अन्योन्यसम्बन्धमें निवद है। अविद्या और संस्कारमें हेतुसम्बन्ध वर्त्तमान है, किन्तु संस्कार और विज्ञानका सम्बन्ध अन्यहप है। हम लोगोंकी निगाह पर जब कोई चित्र पड़ता है, तब पहले पहल हम लोग उसका विशेषत्व उपलब्ध नहीं कर सकते। अविद्यासे ही धीरे धीरे हम लोग उस मूर्तिका विशेषत्व निरूपण कर लेते हैं। इस प्रकार संस्कार वा अनुमूर्ति हारा हम लोग चासुप ज्ञानकी सार्धकता करते हैं। यह मेरी माता है, इत्यादि ग्रान्तज्ञान अविद्याज्ञित है। श्रान्तज्ञानवश्तः मनमें जो व्यापारादि संबदित होता है, वह संस्कारसे उत्पन्न है। इस कारण संस्कार और अविद्या परस्पर उत्पादक शक्तिविशिष्टके जैसा कल्पित है। इसी प्रकार विज्ञान, नामस्प, पड़ायतन आदि एक दूसरेके साथ अवच्छिन्न भावमें सम्बन्धयुक्त हुआ है। ज्ञाति' वा जन्म नहीं होतेसे दुःखका आस्थान नहीं रहता, इसीसे जरामरणकल्प जड़शरीरको ही जन्मसे उत्पन्न दुःखका मुलसक्स वतलाया है।

शङ्कर-पदानुस्त पूज्यपाद आनन्दगिरिने अपने वेदान्त-भाष्य (शश्६)-के ऊपर जो टीका टिप्पणी की है, उसमें जस्मादि पूर्वापर विषय अविद्याजनित है। मतान्तर-से अविद्यादि भी जन्मादिके साथ परस्पर सम्बन्ध विशिष्ट कही गई है। इस प्रकार यह एक द्वाद्य प्रन्थियुक श्टङ्ख्लविशिष्ट हो कर जलयन्त्र (घटीयन्त्र)-के जैसा लगा-तारं घूमता है।

हिन्दू वार्शनिक वाचस्पतिमिश्रने उक स्वकी टीकामें बुद्धधर्मस्लक प्रतीत्यसमृत्पादतत्त्वकी एक संश्लेप
व्याख्या दी हैं,—"बुद्धदेवने संश्लेपमें कहा हैं, कि प्रतीत्यसमुत्पादलक्षण प्रत्ययफल मात है। इसके दो कारण हैं,
हेत्पनिवन्य और प्रत्ययोपनिवन्य। वाह्य और आध्यातिमकमेदसे इसको और भी दो भागोंमें विभक्त किया जा
सकता है। वाह्यहेन्पनिवन्य इस प्रकार हैं,—बीजसे अंकुर, अंकुरसे पत्न, पत्नसे काएड, काएडसे नाल,
नालसे गर्भ, गर्भसे शूक, शूकसे पुष्प और पुष्पसे फल
उत्पन्न होता है। इसी प्रकार बीजसे निर्लिप्तभावमें फलपुष्पादिका उद्भव होता है। परन्तु वीज यह नहीं जानता,
कि वह अंकुरका कर्चा है अथवा अंकुर भी समक्त नहीं
सकता, कि वीज हो उसका उत्पादक है। इसी प्रकार
फल और पुष्पके मध्य निर्वर्चक और निर्वर्चित सम्बन्ध
रहने पर भी किसीको उत्पादक और उत्पादत्वका ज्ञान

नहीं उत्पन्न होता। वीजादिका चैतन्य असिद्ध तथा अन्य अधिष्ठाताका अभाव होने पर भी कार्यकारणभाविष्यम उपलब्ध होता है। प्रत्ययोपिनवन्यके विषयमें उन्होंने लिखा है, कि हेतु-समवायका नाम प्रत्यय है। यह धातुका मेल होनेसे वीजहेतु अंकुर उत्पन्न हो सकता है। पृथिवी वीजका संप्रहकार्य समाप्त करके अंकुरको दृढ़ करती है। जल द्वारा वीज स्नेह्युक्त होता है। तेज द्वारा वीजका परिपाक होता, वायुक्ते योगसे वीज अनिनिह त हो कर अंकुरतेवादन करता और आकाश वीजको आवरण शून्य करता तथा ऋतु द्वारा वीज परिणतिको प्राप्त होता है। इससे यह सावित हुआ, कि इन सव अविकृत धातुओं के मेलसे वीजसे अंकुर उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं होता। पृथिवी यह नहीं जानती, कि वह वीजका संग्रह काये करती है अथवा वीज भी नहीं कह सकता, कि वह उसकता (अंकुरका) परिणामसाधन करता है।

आध्यातिक प्रतीत्यसमुत्पाद्के भी इसी प्रकार हो कारण निर्दिष्ट हुए हैं। अविद्या संस्कारसे छे कर जाति जरामरणादि पर्यन्त आध्यातिक प्रतीत्यसमुत्पादका हेत्पानिवन्ध है। यहां पर अविद्याको भी माल्म नहीं, कि वह संस्कारका निर्वेत्तनकर्ता है अथवा संस्कार भी यह नहीं कह सकता, कि वह अविद्याका निर्वेत्तिता है। इस प्रकार जात्यादि भी एक दूसरेके निर्वर्त्तक और निर्वित्तत भावको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं। अविद्यादि स्वयं अवेतन होने पर भी उसमें चेतनान्तरका अधिष्ठान हुआ है। सुतरां अवेतन बीजादि पदार्थके अंकुरादिकी उत्पत्तिकी तरह संस्कारादिका अन्य चेतनाधिष्ठान प्रतीय-मान होता है।

पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश और विश्वानधातुकी समिएसे कावकी उत्पत्ति हुई है। यही प्रत्यवोपनिवन्ध आध्यातिमक प्रतीत्यसमुत्पादकी अभिन्यक्ति है। पृथिवी-से कावकी कठिनता, जलसे स्नेहता, तेजसे अशितपीत-रूपता, वायुसे भ्वास प्रभ्वासादि और आकाशसे काया सुपिरभावापन्न होती है। पञ्चविक्षानकार्यसंयुक्त विश्वानधातु ही नामस्य अंकुरका सम्यादक है। आध्यातिमका अविकला पृथिव्यादि धातुके एकत समावेशसे कायाकी उत्पत्ति है; किन्तु पृथिवी भी नहीं जानती, कि उसीसे

कायाकी कठिनता हुई है अथवा कायाको भी यह ज्ञान नहीं, कि उसकी उत्पत्तिका हेतु पृथिवी है। यही प्रत्यक्ष-द्रष्ट प्रतोत्यसमुत्पाद है। दाशंनिकप्रवर वाचरूपतिमिश्रने बौद्धमतका खण्डन करते हुए प्रतोत्यसमुत्पाद-धर्मतत्त्व-का जो अर्थ किया है वही यहां पर उद्घृत हुआ। इसका मूळांश ऐसा दुवाध्य है, कि उसका कोई परिस्फुट भाव भाषामें लिपिवद्ध नहीं किया जा सकता।

सर्वदर्शनसं प्रह्कार माधवाचार्यने भी वौद्धदर्शन-भागमें प्रतीत्यसमुत्पादतत्त्वकी पूर्वोक्तरूपसे विवृति की है। अभ्वघोषने निज कृत बुद्धचरितमें अविद्याको ही जगत्रतप वृक्ष और दुःखका मूलकारण वतळाया है। माध्यमिकसूत्रके टीकाकार चन्द्रकी सँका कहना है, कि इतरेतर सम्बन्धविशिष्ट द्वावश निदानतत्त्व ही प्रतीत्य-समुत्पाद है। यह क्षणस्थायी नहीं और न चिरस्थायी ही है, ज्ञाता नहीं है और न ज्ञेय ही है। इसका नाश नहीं है और न यह किसीको नए ही करता है। नदीस्रोतको तरह निरन्तर वह रहा है। शालिस्तम्भसूतमें आध्यात्मिक प्रतीत्यसमुत्पाद-तस्य दो भागोमें विभक्त हुआ है, हेत्पनिवन्ध और प्रत्ययोपनिवन्ध । हेत्पनिवन्ध-में अविद्यादि कारणपरम्परा एक दूसरेका उत्पत्तिसाधक हुई है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और विज्ञान इन छः पदार्थों के मेलसे प्रत्ययोपनिवन्ध निष्पादित हुआ है। क्षितिसे देह, जलसे उसकी परिपुष्टि, अग्निसे पाककार्य, वायुसे भ्वासिकया और आकाशसे कायका सुषिर भाव हुआ करता है, तथा विज्ञान द्वारा ही शरीर इन्द्रियसायुज्यको प्राप्त होता है। इन छह धातुओंके पर-स्पर मेळसे पूर्णदेहिविशिष्ट हो कर जीव 'नाम' पाता है। अथच पृथिव्यादि कोई भी नहीं कह सकता, कि मैं ही परवत्तींका निष्पादक हूं अथवा परवत्तीं भी अपनेको पूर्वका निष्पन्न नहीं कह सकती।

वेदान्तसूत्रकी व्याख्या देखो ।

मायालक्षण-सभाव-विशिष्ट पदार्थमात ही असामिक है। हेतु और प्रत्ययके अविफल्टा हेतु वे निरन्तर कार्य-कारी हुए हैं। यह स्वयंद्यत नहीं है, अथवा यह न पर-इत है न ईश्वरकृत, न कालपरिणामित ही है, न प्रकृतिसम्भूत न पक्षेककारणाधीन है और न अहेतुसमुत्पन्न ही। बुद्धघोष- ने विशुद्धिमाग्ग नामक पालिश्रन्थमें संस्कार वा कर्मको ही मनुष्यके जातितस्वका मूलकारण वतलाया है। उक्त श्रन्थमें कई जगह तत् कर्नुं क उक्त द्वाद्शतस्वका ऐसा अर्थ लिखा है—चार सत्यकी अज्ञानता ही अविद्या है, संस्कार—शारोरिक, वाचिनक वा मानसिक सदसत् कर्मादि, प्रत्यक्षज्ञान ही विज्ञान है; वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूपस्कन्थके सहयोगसे नामकप; चक्षुकर्ण नासिका जिह्ना त्वक् और मन ये छः षड़ायतन हैं; सुखदुःखादिकी अनुभूतिमात हो वेदना है, रूपरसादिकी वलवती इच्छाका नाम तृष्णा है; उपादान—आसक्ति,; भव—कमसत्ता; जाति—जन्म और जरामरणादि—दुःख-कारण।

प्रतीदर्श (सं॰ पु॰) शतपथत्राह्मणोक्त एक व्यक्तिका नाम। प्रतीनाह (सं॰ पु॰) प्रति-नह-घन्। वाहुं दोर्घ। १ वाधा देना। २ कर्णरोगमेद। ३ पताका।

प्रतीन्थक (सं० पु०) विदेहराजाके एक पुतका नाम ।
प्रतीप (सं० ति०) प्रतिकृत्ना आपो यस्मिन् । (इक्
पूर्न्धः प्यामानके । पा ५।४।७४) इति अप्रत्यय (इध्यन्त
हरगेंम्योऽप ईत् । पा ६।३।६३) इति ईः । १ प्रतिकृत्न, उलटा । (पु०) २ चन्द्रचंशीय एक राजाका नाम।
३ अर्थालङ्कारमेद । इसमें उपमेयको उपमानके समान न
कह कर उलटा उपमानको उपमेयके समान कहते हैं अथवा
उपमेय द्वारा उपमानका तिरस्कार वर्णन करते हैं । उदाहरण—

"यस्वन्नेतसमानकान्ति सिळिले मानं तिद्न्दीवरं मेघैरन्तिरतः प्रिये तव मुखच्छायानुकारो शशी। येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गतः त्वत्साद्वश्यविनोदमालमि मे देवेन न क्षम्यते॥" हे प्रिये! तुम्हारे नयनके समान जिसकी कान्ति थी, वह इन्दीवर अभी जलमें इव गया है। जो शशी तुम्हारे मुखकी शोभा धारण करता था, वह भी अभी मेघसे दक गया है। फिर जो तुम्हारी चालका अनुकरण करते थे, वे राजहंस भी अभी मानससरोवरको चले गये हैं। अत-पव हे प्रिये! मैं जो तुम्हारी सदृशता देख कर भी कुछ शान्तिलाम करता, प्रतिकृत्व देवको वह भी अच्छा न लगा।

यहां पर इन्दीवर, शशी और राजहंस ये सव प्रसिद्ध उपमान होने पर भो उन्हें उल्मेयमें वर्णन किया गया है। द्वितीय उदाहरण यथा—

"तद्वधनं यदि मुद्रिता शशिकथा हा हेम सा चेद्र पुति-स्तच शूर्यदि हारितं कुवल येस्तच्चेत् स्मितं का सुधा। धिक् कन्दर्पधनुर्वृ वौ यदि च ते किंवा वहु ब्रमहे यत्स त्यं पुन दक्त वस्तु विमुखः सर्गकमो वेधसः।" (साहित्यद्यण १० परि)

उसके मुखके साथ चन्द्रमाकी तुलना नहीं होती, कान्तिके सामने सुवर्ण लजा जाता है, दोनों चक्षुके निकट कुवलयदल हार मानता है। एक वारकी थोंड़ी मुसकराहट सुधाकों भी तुच्छ वतलाती है। दोनों भ्रू मदनके कुसुम-धनुकों भी मात करता है। अधिक क्या कहा जाय, विधाताने सचमुच सारी सुन्द्रता इसीकी सृष्टिमें लगा दी है। इसके समान और दूसरी वस्तु है ही नहीं।

यहां पर मुख और चन्द्र, कान्ति और सुवर्णधुति, चक्षु और कुवलय, हास्य (मुसकराहर) और सुधा, भ्रू और धनु ये सव उपमान और उपमेय भावमें चिरगसिद्ध हैं। मुख इतना सुन्दर है, कि चन्द्रमाके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती, अतपव चन्द्रमाका कथन निष्फल है। इस निष्फलताके अभिधानके कारण यहां पर प्रतीप अलङ्कार हुआ। (शाहित्यद १०।७४२ ।

४ चन्द्रवंशीय ऋक्षराजपुत, शान्तनुराजके पिता। प्रतीपक (सं० पु०) प्रतीप-स्वार्थ-कन्। १ प्रतीप देखोः २ हर्यश्व-राजपुत यदुके एक पुत्रका नाम।

प्रतीपग (सं॰ ति॰) प्रतीपं गच्छति गम-ड । प्रतिकूळ-गामी, उलटा आचरण करनेवाला ।

प्रतीपगति (सं o बि o) प्रतिकू**लगति** ।

प्रतीपगमन (सं० क्को) प्रतीपं गमनं । प्रतिकूलगमन । प्रतीपगामिन् (सं० बि०) प्रतीपं गच्छति गम-णिनि । प्रतिकूल-गमनकारी ।

प्रतीपतरण (सं० क्ली०) जलस्रोतके विपरीत और नाव चलाना ।

प्रतीपदर्शिन् (सं॰ ति॰) प्रतीपं वामं पश्यति द्वरा-णिनि । १ प्रतिकुळदर्शक । स्त्रियां ङीप् । २ स्त्रीमात ।

प्रतोपदर्शिनी (सं ॰ स्त्री॰) देखते ही मुंह फेर छेनेवाळी नई स्त्री।

Vol. XIV, 139

प्रतीपवचन (सं ॰ क्ली॰) प्रतीपं वचनं । प्रतिकूलवास्य, खण्डन ।

प्रतीपाश्व (सं ॰ पु॰) राजमेद ।

प्रतीपिन् (सं ॰ ति ॰) प्रतीपः विद्यतेऽ स्य (सुखाधि-भवश्च । धारा१३१) इति इनि । प्रतीपयुक्त, जो कार्यके प्रतिकृत हों ।

प्रतीपोक्ति (सं ॰ स्त्री॰) किसीके कथनके विरुद्ध कहना, खएडन ।

प्रतीवोध (सं०) प्रति-बुध-धज्। वोध वाहुं दीर्घः। १ ज्ञान। २ सतर्कता। ३ प्रतिक्षण गुध्यमान। प्रतीयमान (सं० ति०) १ जान पड़ता हुआ। २ ध्वनि

या व्यंग्य द्वारा प्रकट होता हुआ ।
प्रतीर (सं ॰ क्ली॰) प्रतीरयति जलगतिकमैसमाप्ति नयतीति
प्र-तीर-कमैसमाप्ती क । तट, किनारा ।

प्रतीराध (सं॰ पु॰) प्रति-राध-धम् वाहुं दीर्घः।

प्रतिराध देखी।

प्रतीवर्त्त (स'० ति०) प्रति-वत्-घञ्-वाहुं दीर्घः । गोळा-कार ।

प्रतीवाप (सं० पु०) प्रत्युत्यते प्रक्षित्यते अथवा निषिच्यते-ऽस्मिश्चिति प्रति-चप-निषेकादौ घञ्, वाहुं दीघः। १ गलित सर्णादिका द्रव्यान्तर द्वारा अवचूर्णन, सोने आदि गलाये द्रव्यका रूप वदलनेके लिये उसे मिलाना। २ निस्नेपण, फेंकनेकी किया। ३ दैवी उपद्रच। ४ औषध जो पीनेके लिये काढे आदिमें मिलाया जाय।

प्रतीवी (सं० ति०) प्रति-बी-किप्-वेदे साधुः । प्रति-गमनशील ।

प्रतोबेश (सं॰ पु॰) प्रतिबिश्यते इति प्रति-विश् घञ्, उप-सर्गस्य वाहु॰ दोर्घः। प्रतिवेश, पड़ोस ।

प्रतीवेशिन् (सं॰ ति॰) प्रतीवेशोऽस्यास्तीति प्रतिवेश (अत इनि ठनौ । पा ५१२।:११) इति इनि । प्रतिवेशी, पड़ोसमें रहनेवाला, पड़ोसी ।

प्रतीवैश्य (सं॰ पु॰) पुराणानुसार एक देशका नाम । प्रतीशा (सं॰ स्ती॰) सम्मानना, श्रद्धा ।

प्रतीह (सं॰ पु॰) भरतवं शीय सुवर्चलाके गर्भसे उत्पन्न परमेष्टीके एक पुतका नाम। प्रतीहार (सं० पु०) प्रति-हृ-घञ् वाहु० दोघैः । १ द्वार, दरवाजा । २ द्वारपाल । इसका लक्षण—

> "इङ्गिताकारतत्त्वको वलवान् प्रियदर्शनः। अप्रमादी सदा दक्षः प्रतिहारः स उचते ॥"

> > (चाणक्यसंग्रह्)

जो ईिङ्गत और आकारसे अभिन्न (ईिङ्गत शब्दका अर्थ है हृदयगत भाव और आकारका अङ्गचिन्नादि—इस- के तत्त्वसे जो अवगत हैं) तथा वलवान, प्रियदशन, प्रमादशून्य, और सब कामोंमें दक्ष हैं, उन्हींको प्रतिहार कहते हैं। मतस्यपुराणमें इसका लक्षण इस प्रकार है—

"प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः। चित्तप्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते॥"

(मत्स्यपु० १६८ अ०)

पांशु, सुरूप, कार्यदक्ष, प्रियवादी, अनुद्धत और सर्वो-के चित्तप्राहक आदि गुणसम्पन्न व्यक्ति प्रतोहार हो सकते हैं।

३ सन्धिका एक भेद । वह मेल या सन्धि जो कोई यह कह कर करता है, कि पहले मैं तुम्हारा काम कर देता ! हूं पीछे तुम मेरा करना ।

प्रतीहारिन् (सं ० ति०) प्रतिहरित सामिसमीपे सर्वविषय-मिति प्रति-ह-णिनि उपसगैस्य दोघैः वा प्रतीहारः रक्षणी-यत्चेनास्यास्तीति इनि । द्वारो, द्वाररक्षक, ड्योढ़ोदार। प्रतीहारी (सं ० स्त्री०) प्रतीहारोऽस्या अस्तीति-अच्, गौरा-दित्वात् डीप् । द्वारस्थिता, द्वारपालिका।

प्रतीहास (सं ॰ पु॰) प्रतिहत्यो हासोऽस्य उपसर्गस्य दीर्घः । करचीर, कनेर ।

प्रतुएडक (सं॰ पु॰) जीवकशाक, जीवक नामका साग।
प्रतुद (सं॰ पु॰) प्रतुदतीति प्रनुद्दन्त । वे पश्ची जो अपना
भक्ष्य चींचसे तोड़ कर खाते हैं । यथा—गोध, श्येन,
कंक, काक, द्रोणकाक, उल्लू और मयूर। इनके मांसका
गुण—छघु, शीत, मधुर, कषाय और मानवका हितकर।
सुश्रुतमें छिखा है—कपोत, पारावत, भृङ्गराज, परभृतक,
यष्टिक, कुलिङ्ग, गृहकुलिङ्ग, गोक्षोड़क, डिण्डिमानक, शतपलक,मातृनिन्दक भेदशी, शुक, सारिका, वलगुली, गिरिशाल
हाल, दृषक, सुगृही, खझरीरक, हारीत और दात्यूह आदि
पक्षी प्रतुद जातिके हैं। इनके मांसका गुण—कषाय, मधुर

रूक्ष, फलाहारी, वायुकर, पित्त और श्लेमानाशक, शीतल, मूलरोधक तथा अल्पतेजस्कर।

(इश्वतसूत्र० ४६४०)।

चरकके मतसे शतपत, भृङ्गराज, कोयप्री, जोवजीवक, कैरात, कोकिल, अत्यूह, गोपापत, प्रियात्मज, लट्टा, लट्टापक वभु, वटहा, तिरिडमानक, जटी, दुन्दुभि, वाकावलोह, पृष्टकु, लिङ्गक, कपोत, शुक्कशारङ्ग, चिरिटीक, कुयप्रिक, शारिका, कलविङ्क, चटक, अङ्गारचूड़क, पारावत और पाण्डविक ये सव प्रतुदजातीय पश्ली हैं।

(च. ब्सूत्र॰ २७ अ०)

प्रतुष्टि (सं० स्त्री०) प्र-तुप-क्तिन् । १ अतिरुच सन्तोष । २ उपादेय ।

प्रत्णी (सं॰ स्त्री॰) स्नायुकी दुवैलतासे होनेवाला एक प्रकारका रोग। इसमें गुदासे पीड़ा उत्पन्न हो कर अंत-ड़ियों तक पहुंचती है।

प्रत्द (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम जिनका उल्लेख ऋग्वेदमें है।

प्रतृत्ते (सं॰ ति॰) प्र-तूर रोगे क । १ प्रकृष्टावेगान्वित । भावे-क । (क्ली॰) २ प्रकृष्टवेग ।

प्रतृत्तंक (सं० ति०) प्रतृत्तंमस्त्यर्थे बुन् ।गीवदावभ्यो बुत्। वा प्रारावर) प्रकृष्वेगयुक्त ।

प्रतृत्ति (सं॰ स्त्री॰) प्ररूपयेगयुक्त, वह जिसकी चाल तेज हो।

प्रत्लिका (सं० स्त्री०) प्रकृष्टं त्लमत कप् कापि इत्नं। शय्याभेद, तोशक।

प्रतोद (सं० पु०) प्रतुचते ऽनेनेति प्र-तुद्-करणे घञ्। १ अश्वादिताङ्गदरुड, चातुक, कोड़ा। पर्याय—प्राजन, प्रव-यन, तोत्न, तोद्न । २ सामभेद, एक प्रकारका सामगान। ३ पैना, औगी।

प्रतोदिन् (सं । ति । १ वेधकारी, छेद करनेवाला । २ चावुक मारनेवाला ।

प्रतोली (सं॰ स्त्री॰) प्रतुल्यते परिमीयते इति प्र-सुल परि-माणे धन्न, गौरादित्वात् जीष् । १ रथ्या, रास्ता । २ अभ्य-न्तरमार्ग, गली, कूचा । ३ दुर्गका वह द्वार जो नगरकी ओर हो । ४ फोड़ों आदि पर पट्टी वांध्रनेका एक ढंग। इस ढंगकी पट्टो डोड़ो आदि पर वांधी जाती है। ५ इस ढंगकी बांधी हुई पट्टी। ६ सोपानश्रेणीशोभित -नगरद्वार, नगरका वह दरवाजा जिसमें सीढ़िया छगी हों। प्रतोप (सं॰ पु॰) प्र-तुप भावे घञ्। १ सन्तोप, तृष्टि। २ पुराणानुसार सायम्भु च मनुके एक पुतका नाम। (ति॰) ३ सन्तोपयुक्त, जिसे सन्तोप हो।

प्रत्त (सं० ति०) प्रदीयते स्मेति प्रन्दा कः। (अन वपसर्गाद तः। पा अश्वर्थः) इति तादेशः। दत्त, जिसे दिया गया हो।

प्रचि (सं॰ स्त्री) प्र-दा-कि । दान ।

प्रतिपातु—प्रदाज प्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत गुण्युर तालुक का एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० १६ १२ उ० और देशा० ८० २४ पू०के मध्य अवस्थित है। यह गुण्युर नगरसे ५ कोस दूर पड़ता है। यहांके दण्डेश्वर स्वामीके शिवमन्दिरमें सात शिलालिपियां हैं। इनमेंसे ११४४ शक-सम्बत्में चोलराजके समय उत्कीण शिला-लिपि ही सबसे पुरानी है। प्रवाद है, कि वह मन्दिर १०२३ शकमें किसी चोलराजसे स्थापित हुआ है। स्था-नीय वेणुगोपाल-स्वामीका विष्णुमन्दिर रेड्डी सरदारोंसे बनाया गया है।

प्रस (सं० ति०) 'प्र-निश्च-पुराणे प्रात्' इति चकारात् तप् । प्राचीन, पुराना ।

प्रजतत्त्व (सं॰ क्ली॰) पुरातत्त्व, वह विद्या जिसमें प्राचीन कालकी वार्तीका विवेचन हो।

प्रसतस्विवद् (सं॰ पु॰) प्रसस्य तस्वं वेति विदु-किए। प्रत्नतस्वज्ञ, यह जो प्राचीन तस्वोंसे अवगत हों, इति-हासवेत्ता।

प्रत्नथा (सं• अन्य•) प्रत्न इवार्धे थान्। प्राचीनके जैसा।

प्रतनवत् (स'० अन्य०) प्रतन-इयार्थे वित । पुरातनके समान ।

प्रत्यंश (सं ० क्की ०) प्रत्येक अंश वा विमाग ।

प्रत्यंशु (सं ० ति •) प्रतिगवी ऽशु अत्या०-स० । १ प्राप्तां-शुक्र । २ प्रतिगतांशुक्र ।

प्रत्यक् (हिं० कि० वि०) १ पीछे । २ पक्ष्विम ।

प्रत्यक्चेतन (सं ॰ पु॰) प्रतीपं विपरीतमञ्जति जानित प्रति-अञ्च-किप्, ततः प्रत्यक् चेतनः कर्मधा॰। सांक्यमत- सिद्ध पुरुष, योगके अनुसार वह पुरुष जिसकी चित्तवृत्ति विलकुल निर्मेल हो चुको हो, जिसे आत्महान हो चुका हो और जो प्रणव आदिका जय करके अपना खरूप पह-चाननेमें समर्थ हो चुका हो।

योगसूलमें लिखा है कि चित्त जब नितान्त निर्मेल होता, किसी प्रकारका गुणाधिकार नहीं रहता, तब प्रत्यक्चैतन्यका ज्ञान अर्थात् शरीरान्तर्गत आत्मा सम्बन्धीय ज्ञान उत्पन्न होता है। इस ज्ञानके उत्पन्न होनेसे किसी प्रकारका बिग्न नहीं रहता। विवेकस्यातियुक्त पुरुष ही प्रत्यक्चैतन्य कहलाते हैं।

रजोजन्य अस्थिरता वा चलिंचता आदि समाधि-के प्रवल विश्व है। पुरुप जब प्रणवादि जप द्वारा अपना सक्स्य जान छेते हैं, तब फिर कोई विकार रहने नहीं पाता।

२ अन्तरातमा । ३ परमेश्वर । प्रत्यक्त्व (सं० क्की०) १ पश्चाहिक्में पीछेको ओर । २ नजदीक, अपनी ओर ।

प्रत्यक्पणीं (सं ० स्त्री०) प्रत्यिश्च पर्णानि अस्याः, पाक-कर्णोति डीप्। रकापामार्गं, चिचड़ा। २ द्रवन्ती, मूसाकानी।

प्रत्यक्षुष्पी (सं ० स्त्री०) प्रत्यित्त पुष्पाणि यस्याः । अपामार्गे, चिचडा ।

प्रत्यक्वोधि—वौद्ध यतियोंकी एक अवस्था।

प्रत्यक्शिरस् (सं ० दि०) पीछेकी और मस्तकयुक्त, जिसका सिर पीछेको ओर घुमा हो।

प्रत्यक्श्रेणी (सं ० स्त्रीं०) प्रतीची श्रेणी यस्याः समासान्त-विधेरनित्यत्वात् कप् । दन्तीवृक्ष मूसाकानी ।

प्रत्यक्खरूप-प्रत्यक्तस्वदीपिकाटीकाके प्रणेता, प्रत्यक् प्रकाशके शिष्य।

प्रत्यक्ष (सं० ति०) प्रतिगतमिश्च इन्द्रियं यत, समासे अच, वा प्रत्यक्षमस्त्यस्येति अशं आदित्वाद्च् ११ इन्द्रियः प्राह्म, जिसका ज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा हो सके । २ इन्द्रियोचर, जो आंखोंके सामने हो । (क्वी०) ३ निर्वाचन, मेदझान । ४ इन्द्रियसिक्षकर्यजन्य ज्ञान, चार प्रकारके प्रमाणोंमेंसे एक प्रमाण जो सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, प्रत्यक्ष प्रमाण । अश्चि शम्बका अर्थ चक्षु है, अतएव

इस चक्षसे जो ज्ञांन उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। अक्षि शब्दसे इन्द्रियमातका ही वोध होता है। यह ज्ञान छः प्रकारका है।

आस्तिक वा नास्तिक आदि सभी दार्शनिक पिएडतीं-ने प्रत्यक्षको प्रमाण खीकारा है, इसमें किसीका भी मतभेद नहीं है। अति संक्षिप्त भावमें इस प्रत्यक्ष-प्रमाणका विषय लिखा जाता है।

गौतमस्त्रमें छिखा है—

"प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि।"

(गौतमसु० १।३ अ०)

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रमाण हैं। इनमेंसे प्रत्यक्ष प्रमाण सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि इसमें किसीका मतभेद नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण-का लक्षण इस प्रकार है; "इन्द्रियार्थसिक्षकपींत्पन्नं जानमञ्जपदेश्यमव्यभिचारिक्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं।"

(गौनमस • ११८)

चक्ष. त्वक् भौर नासिका आदि बाह्य इन्द्रिय अधवा आस्यन्तरिक इन्द्रियं मन विषय आदिको प्राप्त कर जो अञ्यभिचारी अर्थात् व्यभिचार नहीं होता—यधार्थ ज्ञानका जनक होता है, यैसे ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष-प्रमाण है। चक्ष और जिह्नादि इन्द्रिय द्वारा रूपरसादिका जो साक्षात्कार होता है वही साक्षात्कार प्रत्यक्ष प्रमाण है। यहां पर यह आशङ्का हो सकती है, कि जब चश वाह्यवस्तुका प्रत्यक्ष उत्पादन करता है, उस समय चक्षु शरीरमें ही रहता है, शरीरसे निकलता नहीं । घटादि-में संयुक्त हो कर किस प्रकार उसका प्रत्यक्ष सम्पादन करता है, थोड़ा गौर कर देखनेसे ही यह शङ्का दूर हो सकती है। दीपके जिस प्रकार घरके एक कोनेमें रहने पर भी उसकी प्रभा घर भरमें फैल जाती है, उसी प्रकार चक्षपदार्थं तेजस अर्थात् तेजःस्वरूप है । सुतरां तत्प्रयुक्त उसको स्हम प्रभा निकलती है। उक्त स्हम प्रभा अववर्ती पदार्थको पा कर 'यह मनुष्य है' 'यह गौ है' इत्यादि ज्ञान उत्पन्न करा देती है।

त्विगिन्द्रिय सारे शरीरमें व्याप्त है। अतपन इस्त-पदादि किसी अवयवके साथ शीत उष्णादि किसी भी वस्तुका स्पर्श होनेसे ही उसका प्रत्यक्ष होता है। त्विगि- न्त्रिय द्वारा केवल कपका प्रत्यक्ष नहीं होता। क्य पिन्न नयन द्वारा जिसका प्रत्यक्ष होता है, त्वक् द्वारा भो उस-का प्रत्यक्ष अवश्यम्मावी है। रसनेन्द्रिय रसयुक्त पदार्थंको पा कर उसके माधुर्यादि गुणको साक्षात्कार करती है। इसी प्रकार नासिका गन्धको और कर्णेन्द्रिय प्रत्यको प्रहण कर तथा मन ज्ञान और सुखादि क्य आस्थन्तिक पदार्थंको अनुभव कर प्रत्यक्ष गोचर करता है।

रक्तवस्तु समीपस्थित स्फरिकादिमें जो रक्ता प्रत्यक्ष करती है, यही प्रत्यक्ष भ्रमात्मक है। क्योंकि स्फरिक शुक्कवर्ण है, उसमें रक्तवर्ण ज्ञान अयथार्थ है। इसीसे प्रत्यक्षळक्षणमें 'अव्यमिचारि' पद अर्थात् भ्रम मिनन यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है।

इन्द्रिय और विषय इन दोनोंके मध्य जिस सम्बन्ध-के रहनेसे प्रत्यक्ष होता है, उसी सम्बन्धका नाम सिन-कर्ष है। यह सिन्नकर्ष छः प्रकारका है। यथा—संयोग, संयुक्त, समवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवायसम-वेत,समवाय और विशेषणता।

इनमेंसे प्रथमतः इन्द्रिय दृष्यमें युक्त होती है। इसी-से द्रव्यके प्रत्यक्षमें जो सन्निकर्ष है, वही संयोग गुण और किया है। द्रव्यमें जो जाति रहती है, उसके प्रत्यक्ष-में जो सन्निकर्ष हैं, उसे संयुक्तसमवाय कहते हैं। गुण और क्रियामें जो जाति रहती है, उसके प्रत्यक्षमें संयुक्त-समवेतसमवाय है। शब्द प्रत्यक्षमें समवायसन्निकर्प है। क्योंकि, कर्णेन्द्रिय गगनस्तरूप हैं। उसके साथ शम्द-का समवाय सम्बन्ध ही है । शन्दत्व जाति प्रत्यक्षमें समवेतसमवाय है। अभावशत्यक्षमें विशेषणता सन्नि-कर्ष है। यह प्रत्यक्ष दो भागोंमें विभक्त है। जिनमेंसे पहला अन्यपद्देश्य वा निर्विकल्पक है । यह ज्ञान प्रथम इन्द्रिय द्वारा उत्पन्त होता है और गोत्वधर्म तथा गोर्धार्म प्रभृतिको पृथक्षपमें विषय करता है, गोत्वादि गवादि सम्बन्धको नहीं करता। दूसरा प्रत्यक्ष व्यवसायात्मक है। इसे सचिकल्प भी कहते हैं। यह प्रत्यक्ष गवादिमें गोत्वादिके सम्बन्धको विषय करता है। इसीसे गोख-विशिष्ट गो ऐसे प्रत्यक्षका आकार हो जाती है। इस प्रमाणका विषय पूर्वोक्त सूतके भाष्यमें उक्त प्रकारका ही सुत्रार्थ कल्पित हुआ है।

गीतमसूत्रमें 'प्रत्यक्ष' यह स्वतन्त्र प्रमाण है वा नहीं, इसकी परीक्षाका विषय इस प्रकार लिखा है।

कोई कोई आशङ्का कर सकते हैं, कि प्रत्यक्ष नामक एक स्वतन्त्र प्रमाण रहनेसे उसकी परोक्षा आवश्यक है। प्रत्यक्ष प्रमाणको यदि स्वतन्त्र प्रमाण न माना जाय, तो क्या दोष होता है सो गीतमने इस प्रकार कहा है—

"प्रत्यक्षमचुमानमेकदेशप्रहणादुपछन्धेः।"

(गौ० शश२८)

चक्षरादि इन्द्रिय चृक्षके सन्निकर्यसे उत्पन्न एक

गृक्ष हैं, ऐसे ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान वा प्रत्यक्ष प्रमाण कहते

हैं। इस प्रत्यक्षक्षपमें अभिमत उक्त ज्ञान अनुपित्यात्मक
मात है अर्थात् यह प्रत्यक्षज्ञान अनुपितिका प्रकार मेद
मात है। नर्योकि कोई एक अङ्ग प्रहण करनेसे सम्पूर्ण
वृक्षका ज्ञान होता है। अतपव उक्त ज्ञान अनुपित्यात्मक
है, यहरू वीकार करना ही पड़ेगा। जिस प्रकार धूम
प्रहण (ज्ञान) द्वारा अप्रत्यक्षीभृत विहका ज्ञान होता है—
इस कारण उक्त विद्वज्ञानको जिस प्रकार अनुपित्यात्मक
स्वीकार करते हो—उसी प्रकार प्रकरेशज्ञान द्वारा
अप्रत्यक्षीभृत अपरांशका जो ज्ञान होता है, उसे भी
अनुपित्यात्मक मानना कर्चन्य है। स्रतरां प्रत्यक्ष अनुमानसे स्वतन्त्र और कोई प्रमाण नहीं है। वादियोंको
यह आग्रङ्का दूर करनेके लिये निम्नलिखित सूत्र दिया
गया है—

"न प्रत्यक्षेण यावत्तावदृष्युपलम्मात् ।" (गीतमस् ० २।२।२६)

अनुमिति सिन्न प्रत्यक्ष नामक प्रमाण नहीं है, यह कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण, मूल वा शाखादिकप किसी पकदेशका प्रत्यक्ष उत्पन्न करता है। अतपव प्रत्यक्षमातका उच्छे द हो ही नहीं सकता। यह देखा जाता है, कि अनुमान प्रत्यक्षम् छव अर्थात् इसके मूलमें प्रत्यक्ष है। नाना स्थानोंमें घूप धूमहेतु बहिका एकत स्थितिदर्शन और विह्न शून्य देशमें धूमका अभाव देख कर हम लोग यह निश्चय करते हैं, कि जहां जहां धूम है वहां वहां विह्न भी है, यह एक व्याप्तिज्ञान मात है। फिर कहीं कहीं घूम देखनेसे अप्रत्यक्षोभूत बहिका अनुमान होता है। अतपव अनुमिति वा अनु-

मान प्रत्यक्षम् छक है। इस कारण प्रत्यक्ष-प्रमाण नहीं रहने से पहले अनुमान ही सिद्ध नहीं हो सकता और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिन्निहित चस्तुकी अवधारणा उत्पन्न होतो है। अनुमान प्रमाण द्वारा अप्रत्यक्षमृत चस्तुका ज्ञान होता है। अतएव प्रत्यक्ष अनुमानका कार्य जब विभिन्न है, तब अनुमानसे प्रत्यक्ष एक स्वतन्त प्रमाण है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। पृक्षादि सावयव पदार्थक प्रत्यक्षकी जगह उक्त आपत्ति गले ही प्राह्म हो सकती है, पर निरवयव शब्द और गन्धादिका प्रताक्ष अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। कारण, उक्त शब्द और गन्धादि निरवयव होनेके कारण उनका एकदेश प्रहण करनेसे अपरदेशकी अनुमिति नहीं उत्पन्न हो सकती। सुतर्रा प्रताक्ष प्रमाण अवश्य स्वीकार्य है।

प्रत्यक्षमातका उच्छेद नहीं होने पर मी उक्त मृक्षादि सावयव वस्तुका ज्ञान अनुमित्यात्मक है, यह खोकार करनेमें कोई दोप नहीं होगा। गीतमस्तमें यह आपित भी निराकृत हुई है,—"न वैक्देशोपक्रव्यिष्यविषद्भावात्।" गी॰ ११२१३०

उक्त वृक्षके प्रत्यक्षस्थलमें एकदेशमातको उपलिध हुआ करती है, यह खीकार नहीं किया जा सकता। कारण, ऐसा होनेसे पृथक् अवयवीको सत्ता स्वीकार करनी पड्रेगी। सुतरां अवयव प्रत्यक्षकालमें अवयवीका भी प्रत्यक्ष उत्पन्न कर देता है। यदि इसके उत्तरमें यह कहा जाय, कि सभी अवयवोंके साथ जब चक्षुरादिका सम्बन्ध नहीं है, तब अवयवीका प्रत्यक्ष किस प्रकार हो सकता ? यह सङ्गत नहीं है, यथार्थमें अवयवीका ही प्रत्यक्ष होता है। सभी अवयवींके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध अपेक्षा नहीं करता। किसी व्यक्तिके हस्त वा पदादि किसो एक अवयवका रुपशे करनेसे उक्त व्यक्तिका स्पर्शं किया जाता है, यह अवश्य खोकार्य है। यदि समी अवयवींका स्पर्श होनेसे ही उक्त व्यक्तिका स्पर्श होगा, पेसा कहा जाय, तो कभी भी उक्त व्यक्तिका स्पर्श करने-की सम्मावना नहीं रहती । सूक्र सूच्म अवयव अवयवा-न्तर द्वारा व्यवहित है, इस कारण एक ही समयमें सभी अवयवींका स्पर्ध नितान्त असम्भव है। अतएव उक्त

Vol XIV 140

अवयवी व्यक्तिके कभी भी स्पार्शनिक प्रत्यक्ष उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः यह कहना पड़े गा, कि किसी एक अवयवके साथ स्पर्श होनेसे हो अवयवीके साथ स्पर्श हुआ करता है। अवयवके प्रत्यक्षकालमें अवयवीका भी प्रत्यक्ष होता है। उसीको तरह अवयवीके चाक्षुपादि-प्रत्यक्ष हुआ करता है, यह वाध्य हो कर स्वीकार करना पड़े गा। सुतरां चृक्षादि प्रत्यक्षको और कुछ भो अनुप-पत्ति न रही।

इन सव तर्कयुक्ति द्वारा यह स्थिर हुआ, कि प्रत्यक्ष एक स्वतन्त प्रमाण है। जो प्रत्यक्षको अनुमित्यात्मक कहते, वे भारी भूछ करते हैं। (न्यायदश⁶न)

गीतमस्तानुसार प्रत्यक्षके लक्षण और प्रत्यक्ष स्वतन्त्व
प्रमाण है वा नहीं, इस विपयकी आलोचना हो चुकी।
अव यह देखना चाहिये, कि किस प्रकार प्रत्यक्ष होता है।
सवीने यह प्रमाण स्वीकार किया है वा नहीं, उसका
विषय अति संक्षिप्तमायमें लिखा जाता है। प्रत्यक्षप्रमाण
सर्ववादिसम्मत है इसमें किसीकी भी आपित नहीं देखी
जातो। प्रमाणचिन्तकोंका कहना है, कि प्रत्यक्षप्रमाण
प्रमाणान्तरका जीवनस्वरूप है। प्रत्यक्षप्रमाणका यथार्थ
क्रिपमें निर्णय होनेसे अन्यान्य सभी प्रमाण सहनं हो जाते
हैं। इन्द्रियभेदके अनुसार प्रत्यक्षमेद स्वीकृत होता है।

"प्रत्यक्षमेकं चार्याकाः कणाद्युगतौ पुनः। अनुमानञ्च तत्रापि सांख्यः शब्दञ्च ते उमे॥"

(वेदान्तका०)

चार्वाकने एक मात प्रत्यक्षको ही प्रमाण वतलाया है। उनके मतसे अनुमानादि प्रमाण नहीं है। इस मतका बौद्धदार्शनिकोंने भी अनुमोदन किया है।

तत्त्वकौमुदीमें लिखा है, "अनुमान प्रमाण नहीं है, प्रताक्ष ही एकमात प्रमाण है" जो ऐसा कहते हैं, वाचस्पतिमिश्र आदिने तर्क और युक्ति द्वारा उनके इस मतका खण्डन किया है, केवल खण्डन हो नहीं किया है, वरन इसे अति अश्रद्धेय और अयौक्तिक भी वतलाया है।

अभी इस प्रमाणके विषयकी आलोचना की जाती है। नयनादि इन्द्रिय द्वारा यथार्थ इत्पों सभी वस्तुओंका जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं। यह

छः प्रकारका है, चाक्षुष, ब्राणज, रासन, त्वाच्, श्रावण और मानस । चक्षु, ब्राण, रसना, त्वक्, श्रोत और मन इन छह इन्ट्रिय द्वारा यथाक्रम उल्लिखित छह प्रकारके प्रत्यक्ष उत्पन्न होते हैं। गन्ध, तद्दगत सुरमित्व और असुरभित्वादि जातिका ब्राणज प्रत्यक्षः मधुरादि रस और तद्दगत मधुरत्वादि जातिका रासन प्रत्यक्षः नील-पीतादि रूप तत्तत् रूपविशिष्ट द्रव्य और नीलृत्व पीतत्व आदि जाति एवं उन सव रूपविशष्ट द्रव्योंकी किया तथा योग्यवृत्तिसमवायादिका चाक्षुपप्रत्यक्षः उद्गृत शीत उष्णादि स्पर्शे और तादृश स्पर्शविशिष्ट द्रव्यादिका त्वाच प्रत्यक्षः, शब्द और तद्गत वर्णत्व और ध्वनित्वादि जाति-का श्रावण प्रत्यक्ष और सुख दुःखादि आत्मवृत्ति गुण-की आत्मा तथा सुखत्वादि जातिका मानस प्रत्यक्ष होता है । उक्त पड़िन्द्रिय द्वारा इसी प्रकार छः तरहके प्रताक्ष हुआ करते हैं । इन छः तरहके प्रमाणोंमेंसे चाक्ष प्रत्यक्ष ही प्रधान है। नीचे चाक्षव प्रत्यक्ष पर ही थोडा विचार किया जाता है।

वज्जुरिनिय और वाक्षुव झान वा वाज्जुव प्रस्य । चक्षरिन्द्रिय क्या है ? किस प्रकार चक्षु द्वारा वस्तुका ज्ञान होता है ? इस विषयमें भिन्न भिन्न मत देखे जातें हैं ।

किसी वौद्धका कहना है, कि चक्षु के केन्द्रस्थानमें जो सफेद काला गोल अंश दिखाई देता है, उसे तारा वा मणि कहते हैं। उसका दूसरा नाम कृष्णसार भी है। चाक्षु प झान वा चाक्षु प प्रत्यप्रके प्रति वह कृष्णसारयन्त्र ही मृख्यकारण है। क्योंकि, कृष्णसारयन्त्र के अविकृत रहनेसे हो वस्तुप्रह होता है, अन्यथा नहीं होता। इस कारण यह कहना उचित है, कि कृष्णसारयन्त्र ही इन्द्रिय है। कृष्णसारके अलावा और कोई चक्षरिन्द्रिय ही नहीं है।

इस पर सांख्यशास्त्र कहते हैं, कि कृष्णसारको इन्द्रिय कहना सम्पूर्ण भ्रम है।

"अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामिश्रष्टानं ॥" जो वास्तविक इन्द्रिय है, वही अतीन्द्रिय है। कभी भी उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। द्रश्यमान कृष्णसार उसका अधिष्ठानमाल है। अधिष्ठान (आश्रय) को अधिष्ठित अर्थात् इन्द्रिय कहना नितान्त भ्रम है।

थोड़ा गीर कर देखनेसे मालूम होगा, कि विषय और इन्द्रिय इन दोनोंका संयोग नहीं होनेसे वस्तुवह नहीं हो सकता । सन्निकर्पं व्यतीत दोनों वस्तुकी संयोग-घटना हो हो नहीं सकती। विषय और इन्द्रिय इन दोनींका अत्यन्त असन्निक्रप्रतानिवन्धन संयोग नहीं हो सकता। संयोग होनेसे भी उपलव्यि नहीं होती । यदि विना संयोगके केवल कृष्णसारके अस्तित्वसे ही वस्तुकान होता, तो इस जगतमें कोई भी वस्तु अक्रात नहीं रह सकती थी। जब तक शरीर रहता है, तव तक कृष्णसार भी रहता है। जव कृष्णसार समी समय विद्यमान है और वस्तू भी सव जगह निपतित है, तव तत्तावत्का ज्ञान जो नहीं होता, सो क्यों ? व्यवहित वस्तु ही फिर बन्नात क्यों रहती ? फिर भी जगत्में जितने प्रकाशक पदार्थ देखे जाते हैं, सभी प्रकाश्य वस्तुके साथ संयुक्त हो कर ही प्रकाश देते हैं । दीप एक प्रकाशक वस्तु है। वह जिस वस्तुके साथ संयुक्त होता है उसी वस्तुको प्रकाश देता है । जिस वस्तुके साथ वह संयुक्त होने नहीं पाता, उस वस्तुको वह प्रकाश नही दे सकता । यदि वैसा होता, तो गृहान्तरीय दीप गृहान्तरीय वस्तुको प्रकाश कर सकता था। अत-पव दूरस्थित वस्तुके साथ चक्ष्र्रिन्द्रियका संयोग सिद्ध करनेके लिपे एक ऐसे पदार्थको इन्द्रिय कहना उचित है जों चक्षगोलकमें अधिष्ठित रह कर गोलकसे अविच्छिन्न इतमें प्रसर्पित हो दूरिस्थत वस्तुके साथ संयुक्त हो सकता है।

वह पदार्थ क्या है ? इसके उत्तरमें नैयायिकोंका कहना है, कि वह पदार्थ भौतिक अर्थात् तेजोविशेय है। परन्तु साल्यकार कहते हैं, कि वह वस्तु आहङ्कारिक अर्थात् अहंतत्त्वका परिणामविशेय है। चक्षु और चाश्रय प्रत्यक्षके सम्बन्धमें नैयायिकोंका मत है, कि ऐसे कृष्णसार यन्त्रमें पक प्रकारको रिश्म है। वही रिश्म चश्चरिन्द्रिय कहलाती हैं। वह रिश्म समस्त्रपातकी तरह धारा-कार और अविच्छित्र भावमें कृष्णसारसे विनिःस्त हो सामनेको वस्तुके साथ संयुक्त होती है। संयुक्त होते ही आत्मामें यह 'अमुक वस्तु' इत्याकार कान पैदा करती है। दीपालोक जिस प्रकार चश्च प्यान व्यक्तिके

सम्बन्धमें वस्तुको प्रकाशित करता है, अचक्षु व्यक्तिके साथ नहीं करता, उसी प्रकार रिममय चक्षुरिन्द्रिय भी मनःसंयुक्त हो कर रूपविशिष्ट वस्तुको प्रकाशित करता है। सपहीन वस्तु वा अमनोयोग चक्ष् चाक्षुप भत्यक्ष उत्पन्न नहीं करता। प्रत्यक्षके प्रति मनःसंयोग ही प्रधान कारण है विना मनःसंयोगके किसी प्रकारका प्रत्यक्ष नहीं होता। यह मत नैयायिकोंका है; परन्तु सांख्यका मत कुछ और है। उनके मतानुसार सभी इन्द्रियां भौतिक नहीं हैं। वे आह्ङारिक अर्थात् अहङ्कारः तत्त्वके परिणामसे उत्पन्न हुई हैं। कारण, चक्ष अपनी अपेक्षा न्यूनवस्तुको, फिर वृहत् वस्तुको भी ब्रहण करता है। चक्षरिन्द्रिय यदि भौतिक होती, तो वह कभी भी वृहत् वस्तुको प्रहण नहीं कर सकती थी। क्योंकि, किसी छोटी वस्तुमें वड़ी वस्तु व्यापित हो सकती हो, ऐसा आज तक नहीं देखा गया है। विशेषतः भूत पदार्थ की ऐसी कोई भी शक्ति नहीं जिससे वह विना विभागके दूरस्थ वस्तुके साथ समाििहत हो सके। लो, कि तेजमें वैसी शक्ति है, तो फिर हम लोग क्यों नहीं सर्वदा देख सकते, कि छोटे छोटे दोप प्रभा रूपमें वहुत दूर जा रहा है और अपनी अपेक्षा अधिक परिमाण-युक्त वस्तुको साथ लिये हुए है।

इत्यादि अनेक प्रकारकी युक्ति द्वारा चक्षरादि इन्द्रिय-का नैयायिक-कल्पित भौतिकस्व खिएडत हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे वे सब तर्व और युक्ति यहां पर नहीं दिखलाई गईं।

चाक्षुप प्रत्यक्षकी प्रक्रिया वा प्रणालीके सम्बन्धमें किपिलका अभिप्राय क्या है, सो ठोक ठीक मालूम नहीं। इस विषयमें सांख्याचार्यों का भा मतभेद देखा जाता है। कोई आचार्य शिकवादी है और कोई शिक सहकृत वृत्तिवादी। शिकवादी आचार्यों का कहना है, कि कृष्ण-सारमें पक प्रकारकी विषयग्राहिणी शिक है जो चक्टु-रिन्द्रिय शब्दकी वाच्य है। हम लोग जो देखते हैं, वह हुभ्यमान वस्तुका प्रतिविम्बमात है। कृष्णसार जब अपनी शिकसे अपने खच्छांशमें वस्तुका प्रतिविम्ब प्रहण करता है, तब उस वस्तुका पहले अविकित्यत ज्ञान होता है। पीछे मनकी सहायतासे यह अमुक वस्तु इस आकारका है, ऐसा झान स्थिर हो जाता है।

चाक्षुप प्रताक्षमें आलोककी सहायता रहना आव-श्यक है। वस्तुमें व्यक्त, रूप और वृहत्त्वके रहने तथा कांच आदि स्वच्छ पदार्थ भिन्न अन्य किसो मिलन पदार्थको व्यवधान नही रहनेसे प्रयोजनीय वस्तुका समूचा शरीर प्रताक्षका गोचर नहीं होता। सम्मुखका अद्ध ही प्रताक्षका विषय होता है। अपराद्ध अनुमेय है। यह अनुमान साथ ही साथ हुआ करता है। चक्षु-गोलक दो होने पर भी इन्द्रिय एक है। अतिदूर और अतिसामी य प्रभृति नवविध प्रतिवन्धक रहनेसे चाक्षुप नहीं होगा।

पश्चीको बहुत दूर चले जानेसे वह दृष्टिवहिर्भूत हो जाता है। फिर आँखका काजल और नाककी जड़ जो वहत समीपमें है उसे भी हम लोग नहीं देख सकते। गोलक वा इन्द्रियमें किसी प्रकारका व्याघात पहुं-चनेसे ज्ञानका भी आघात हाता है। विमना और उन्मना होनेसे भी दृष्ट दृश्यका ज्ञान नहीं रहता। परमाणु अति स्क्ष्म होनेके कारण वह दिखाई नहीं देता। सौरालांकमें अभिभूत रहनेके कारण दिनको नक्षतादिके दर्शन नहीं होते । स्वजातीय दो वस्तुके एकत होनेसे उनमेंसे प्रतेत्रक दिखाई नहीं देता। जैसे, काठमें अग्नि है, दूधमें दही है, घी भी है, किन्तु जब तक वह मानवीय व्यवहारमें अभिव्यक्त नहीं होता, तव तक वह प्रताक्ष विषयमें नहीं आता। यह सब देख कर सांख्या-चार्यांने कहा है, कि अतिदूरत्व, अतिसामीप्य, इदियका नाश, अमनोयोग, अतिस्क्ष्मता, अमिभव, स्वजातीयके साथ सम्मिलन, अनमिव्यक्तता, ये सव चाक्षुषप्रत्यक्षके प्रतिवन्ध हैं। ये सब प्रतिबन्धक केवल प्रतासके निवृत्ति-जनक हैं सी नहीं, स्थलविशेषमें कोई कोई विपर्ययवीध-का भी कारण होता है।

शास्त्रके नाना स्थानोंमें नाना प्रकारके चाक्षुषप्रत्यक्षका विषय वर्णित हुआ है । कांच आदि खच्छ पदार्थका व्यवधान रहनेसे देखा जाता है, पर मिलन पदार्थ रहनेसे नहीं देखा जाता, इसका क्या कारण ? आइनेमें भाताप्रतिविम्य विपरीत क्यों दिखाई देता है ? वायाँ भाग दाहिने और दाहिना भाग वाएँमें अवस्थित दिखाई देता है, नदी किनारेका वृक्ष अधाशिर, आकाशके चन्द्र- सूर्यादिका प्रतिविक्त जलके ऊपर वहता हुआ न दिखाई दे कर मध्य निमान अर्थात् इव रहनेके जैसा दिखाई देता है। इस प्रकार ये सव जो विपरीत भावमें दिखाई देते हैं, उसका कारण क्या ?

कितनी दूर, कितनी सामीय्य, कितनी सूक्ष्म और किसी स्थूछ वस्तुका दर्शन होता है और नहीं होता हैं ? तथा कहांसे द्वष्टिवातिकम आरब्ध होता है ? ये सव विषय नाना शास्त्रोंमें नाना प्रकारसे वर्णित हुए हैं।

उक्त प्रश्नोंके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि भ्रमवशतः ये सब हुआ करते हैं। दार्शनिकॉने इसकी अध्यास, आरोप और अविवेक आदि नाना आख्या प्रदान की है।

दर्शनशास्त्रमें भ्रमकी उत्पत्ति और निवृत्तिकारण विणत है तथा अवान्तरप्रमेह भी निर्णीत हुआ है। सांख्य और वेदान्त-मतसे भ्रमज्ञान सर्य मिथ्या है; किन्तु उनका फल सत्य है। रज्जुसर्प देखनेसे प्रकृत सर्पदंशनको तरह भय और कम्प दोनों ही होता है। भ्रममात हो असद्वस्तु-अवगाही है, तथापि उसके कोई न कोई फल अवश्य है अर्थात् उसके द्वारा जीवकी प्रवृत्ति निवृत्ति उत्पन्न होती है। अनुसन्धान करनेसे देखा जाता है, कि भ्रमके मिन्न मिन्न प्रमाव और फलभेद है। यही सब देख कर भ्रमज्ञानकी श्रेणीभेद करिपत हुआ है। पहले सोपाधिक और निरुपाधिक ये दो भेद, पीछे सम्वादो, विसम्वादी, आहार्य और औपाधिक आहार्य ये वार भेद वा श्रेणी कलिपत हुई हैं। धम देखो।

भूमोत्पत्तिके प्रधानतः तीन कारण हैं—दोष, सम्भ-योग और संस्कार । इनमेंसे दोषके कई मेद हैं, यथा— निमित्तगत, कालगत और देशगत। निमित्तगत दोष यह है, कि जो इन्द्रिय जिस प्रत्यक्षकी जनक है, वह इन्द्रिय दोष-दुष्ट होना। चाक्ष्रप्रप्रत्यक्षका जनक चक्ष है वह चक्षु यदि पित्तदोषसे विकृत हो गया हो, तो अति श्वेत वस्तु भी हरिद्रावर्णकी दिखाई देती हैं। सन्ध्यादि कालका मन्दान्धकार प्रभृति दोष, कालदोष और अति-दूरत्व, अतिसामिय आदि देशगत दोष हैं।

सम्प्रयोग सम्प्रयोग शब्दका अर्थ है जिस वस्तुमें भ्रम उत्पन्न होता है, उस वस्तुके सर्वा शकी स्फूर्ति नहीं

होना, अर्थात् किसी एक सामान्यांशमें प्रकाशित होना । संस्कार संस्कार शब्दसे यहां सदृश वस्तुका स्मरण समभा जायगा। कोई कोई संस्कारके वद्छेमें सादृश्यको ही भूमोत्पत्तिका कारण वतलाते हैं । उस मतका अभि-प्राय है, कि वस्तुके किसी एक अंशमें सादृश्य नहीं रहने-से भृम उत्पन्न नहीं होता। रज्जुमें ही सर्पभूम होता है, चतुक्तोणक्षेत्रमें सर्पभूम नहीं होता। अतएव किसी सादृश्यमान पदार्थमें हो दोव वा सम्प्रयोगवशतः भूम हुआ करता है। भ्रम और प्रतिवन्धक रहित हो कर चक्षु-के साथ विषयका सन्निकर्प होनेसे चाश्रुप प्रताक्ष उत्पन्न होता है।

अवगेन्त्रिय और श्रावगद्गान वा श्रावणप्रतत्रक्ष ।

चसु मेवल रूपमें हो संसक्त है, चक्षु द्वारा रूप वा रूपविशिष्ट पदाथं दिखाई देता है। उसके द्वारा शन्द-स्पर्शादिका ज्ञान नहीं होता। शब्दादि ज्ञानके लिये और भी चार इन्द्रियां हैं। उनमेंसे शब्दश्रहणकारी श्रवणेन्द्रिय और उसके द्वारा श्रावण प्रत्यक्षका विषय कहा गया है।

चक्ष् रिन्द्रियकी तरह श्रवणेन्द्रिय भी प्रत्यक्षको भगोचर है। केवल अनुमिति द्वारा ही अनुभव करना पड़ता है। अवजेन्द्रियका आश्रय अर्थात् गोलक कर्णान्तः प्रदेश है। कर्णशंकुलिके सभ्यन्तर प्रदेशमें जो अवकाश (अन्तर) है, उसका नाम श्रोताकाश है। श्रवणेन्द्रिय शंकुलि स्थानमें अधिष्ठित रह कर शब्दप्रहणकार्यं निर्वाह करतो है । शास्त्र-में शब्दब्रहणकी दो प्रकारको प्रणालो वर्णित हैं। इनमेंसे एक प्रणाली बीचितरङ्गन्यायानुसारिणो है और दूसरी कदम्यगोळकन्यायानुसारिणी ।

किसी एक स्थिरजलवाले जलाशयमें अभिघात पहुं-चानेसे अभिघातको जगह वेग उत्पन्न होता है। वह वेग जलको तरङ्गायित करता है। जिस प्रकार प्रथमोत्पन्न उस बेगसे वेगान्तर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तरङ्गसे भी तरङ्गान्तर उत्पन्न होता है। तरङ्गसे तरङ्गान्तर होते होते वह धीरे घीरे छोटी लहरीकी तरह हो जाती है। मध्यमें यदि कहीं भी वेगनिरोधक वस्तु मिल जाय, तो वहीं पर वह पतित हो कर नष्ट हो जाती है, नहीं तो कुछ दूर जा कर विलीन हो जायगी। इसी प्रकार पहले आकाशमें ध्वनि उत्त्रेन्न हुई, बह ध्वनि तरङ्गायमान वायुमें आरो-

Vol. XIV. 141

हण करके इन्द्रि स्थान कर्णशंकुलिमें पहुंच गई । इन्द्रिय-ने उस ध्वनिको ग्रहण कर आत्माके पास पहुंचा दिया। इसका तात्पर्य यह, कि शब्द कर्णशंकुळोस्थित शब्दवाही स्नायुका अवलम्बन करके मनके निकट गमन करता है। निकटस्य आत्मा उसे प्रकाश करती है अर्थात् अनुभव करती है। इसीका ही दूसरा नाम सुनना वा श्रवण है। निकटमें यदि अवणेन्द्रिय न रहे, तो वह धर्थं होता है। सुतरां भाकाशीत्पन्न शन्द आकाशमें ही विलीन हो जाता है।

स्थिरजळवाले जलाशयमें भाघात ंकरनेसे जो तरंग उत्पन्न होती है, वह तो कभी किनारे छूती और कभी नहीं भी छूती है। उसका कारण भाघातका वल है अर्थात् आधातसे उत्पन्न वेगका तारतम्य है। वेगकी अधिकता रहनेसे तरङ्गकी दूरगति और अल्पता रहनेसे अदूरगति होती है। शब्दको गतिको भी ठीक उसी प्रकार जाना चाहिये। बेंग जिस परिमाणमें उपस्थित होगा, शब्दकी गति भी उसी परिमाणमें होगी। दार्शनिक पिएडतोंने ऐसी वीचितरङ्गके द्रधान्तमें श्रवणेन्दियको शब्द्शहण-प्रणालीका वर्णन किया है और निम्नलिखित घटनाओंको सोपपत्तिक वतलाया है।

शब्दवहनकारी वायुको विपरोत गतिके प्रवल रहनेसे निकटोत्पन्न शब्द भी यथावत् गृहीत नहीं होता । सामने-में रहनेसे दूरीत्पन्न शन्द भी नजदीकके जैसा सुनाई देता है। श्रवणेन्द्रिय और आघातस्थान इन दोनोंमें वायुकी वेगरोधक वस्तुका व्यवधान रहनेसे सुनाई नहों देता, अगर सुनाई भी देता है, तो वहुत कम । पार्थिय प्रदेशका दूरत्य जिस परिमाणमें शब्दशानका प्रतिवन्धक है, जलनय प्रदेशमें उससे कम परिमाणमें प्रतिबंधक होता है।

योचितरङ्गन्यायवादी और कद्म्यगोलकन्यायवादीका मत प्रायः एक-सा है। केवल इतना हो प्रभेद हैं, कि वीचि-तरङ्गवादीके मतसे एक ही शब्द उत्पन्न होता है, पर कदम्बगोलकन्यायवादीके मतसे कदम्बकेशरकी तरह उसके ऊपर नाना शब्द होते हैं। कदम्बकुसुमका किञ्जल्का-रोहणस्थान वर्त्तूल है। उस वर्त्तूल अंशके चारों और एक थाकमें अनेक कैशर उत्पन्न होते हैं । उन सब केशरोंके ऊपर दूसरा गुच्छा रहता है। शन्द भी उसी प्रकार आघात

स्थलसे एक समयमें दशों ओर दश संख्यामें उत्पत्तिलाम करता है। उन दश शब्दोंसे अन्य दश शब्द निकलते हैं। क्रमशः अन्य दश शब्द इसी प्रकार इन्द्रियस्थानको प्राप्त होते हैं।

दोनोंके मतसे शब्द अभिघात स्थानसे उत्पन्न होता और इन्द्रियस्थानमें जा कर प्रकाशलाम करता है। किसी किसीका कहना है, कि शब्द आघात स्थलसे उत्पन्न नहीं होता, आघातस्थलमें केवल वेग उत्पन्न होता है। यह शब्द कानमें पहुंचनेसे वहां अनुहूप शब्द उत्पन्न करता है और वही अवणेन्द्रियसे गृहीत होता है। 'शब्दस्तु ओलोत्पन्नः अवणेन्द्रिये गृहाते।' इस प्रकार आवणप्रत्यक्ष हुआ करता है।

स्पर्शनप्रस्यक्ष वा स्पर्श वा स्पर्श प्राह्य स्विगिन्दिय ।

इस इन्द्रिय द्वारा शीत, उज्ण, खर, तीव्र आदि नाना जातीय स्पर्शं झान होता है। द्रव्य वा द्रव्यनिष्ठ किसी गुणोंके त्वक् संयुक्त होते ही इन्द्रियात्मक त्वक् द्रव्यगत शीतलत्वादि गुणको ब्रहण कर झान गोचर कराता है अर्थात् मनकी सहायतासे आत्मामें उन सवका झान पैदा करता है। त्वक्में द्रव्यसंयीग होनेसे ही त्वक् द्रव्यगत सभी गुणोंको ब्रहण करते हैं। किन्तु कोमलत्व और कठिनत्व इन दो गुणोंको ब्रहण करनेमें उसे कुछ विशेष संयोगकी अपेक्षा करनी पड़ती है। सामान्य संयोग द्वारा कोमलत्व कठिनत्वका ब्रहण नहीं होता। द्रव्वतर संयोग ही दोनों झानका प्रधान कारण है।

त्विगिन्द्रियका आश्रयस्थान त्वक् अर्थात् चमैविशेष
है। द्रश्यमान वाह्यचमै इन्द्रिय नहीं है। यदि द्रश्यमान चमै इन्द्रिय होता, तो केवल वाह्य शीतलत्वादिका
अनुभव हो सकता था, वेदनादि अनन्तरस्पर्यका नहीं।
अतएव त्विगिन्द्रिय केवल वाह्यचमैन्यापक है, सो नहीं,
प्रत्युत वह आपादतलमस्तक अन्तर्वाह्य पारन्याप्त है। यह
इन्द्रिय समस्त शरीरव्यापी है, इस कारण वाह्यस्पर्शकी
तरह अन्तरस्पर्यं भी यथायथ अनुभूत हुआ करता है।
इन्द्रियात्मक त्वक् वाहर और भीतर सव जगत् विराजित रहने पर भी अंगुलिके अप्रभागमें उसका उत्कर्ष
है। यही कारण है, कि हस्तांगुलि और पदांगुलिके अप्रभागसे मनुष्य अत्यन्त सूक्ष्म 'स्पर्शादिका अनुभव कर

सकते हैं। न्यायके मतानुसार यह इन्द्रिय वायवीय है और सांख्यसे आहङ्कारिक। इसी त्वगिन्द्रिय द्वारा त्वाच वा स्पर्शन प्रत्यक्ष होता है।

रासन प्रात्यक्ष, रासन वा रासनहान । ।

यह इन्द्रिय कटु, तिक्त, कषाय आदि रसानुभवका द्वारस्वरूप है। रसनाके द्वारा कटुतिकादि रसका प्रत्यक्ष होता है। रसकान और रासनप्रत्यक्ष पर्यायक शब्द है। रासनप्रत्यक्ष द्रव्याश्रित रसके साथ रसनाका संयोग होनेके वाद उत्पन्न होता है। रसनेन्द्रियका गोलक अर्थान् आश्रय जिह्ना है। न्यायके मतसे यह इन्दिय जलीय है और सांख्यसे आहङ्कारिक। उक्त क्रपसे रसना द्वारा रासन-प्रत्यक्ष हुआ करता है।

ब्रानब प्रत्यत्त ब्राणेन्दिय वा गश्यक्तन ।

यह इन्द्रिय भिन्न भिन्न गन्धज्ञानका हेतु है। इसका स्थान नासादण्डका अभ्यन्तरमूल वतलाया गया है। वायुसे लाई हुई गन्ध इन्द्रिय स्थानमें संयुक्त होती है, उसके वाद उसका प्रत्यक्ष अर्थात् ज्ञान होता है। यह इन्द्रिय न्यायके मतसे पार्थिव और सांख्यके मतसे अहङ्कारोत्पन्न है।

मानस प्रत्यक्ष वा मानस ।

मन एक इन्द्रिय है। इस इन्द्रिय द्वारा जो प्रत्यक्ष वा ज्ञान होता है, उसे मानस प्रत्यक्ष कहते हैं। कोई कोई मनको इन्द्रिय नहीं मानते, पर सांख्यके मतसे मन इन्द्रिय वतलाया गया है। जो मनका इन्द्रियत्य खोकार नहीं करते, उनके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि वाह्य वस्तुओंका धर्म पांच प्रकारके वाह्यकरणों द्वारा गृहीत होता है, पर सुख, दुःख, यत आदि आन्तर धर्मीका गृहीता कीन है ! वाह्य पदार्थ साक्षात्कारके निमित्त जिस प्रकार वाह्यकरण वा वहिरिन्द्रियको रहना आवश्यक है, उसी प्रकार अन्तः पदार्थ साक्षात्कारके निमित्त अन्तःकरणका रहना आवश्यक है। ज्ञानकरणत्वसद्भप इन्द्रियलक्षण चक्षु-रादिके जैसे मनके भी हैं। मन ही सुख दुःखादि ज्ञानका अद्वितीयकरण है अर्थात् मनसे ही सुखदुःसादि-का प्रत्यक्ष होता है। सुख दुःख साक्षात्कार हमेशा ही हुआ करता है, इस कारण उसका अवलाव विलक्तल असम्भव है । सुख दुःखादिका साक्षात्कार चक्ष, कर्ण, नासिका, त्वक् इन्हीं सब द्वारा सुसम्पन्न होता है, ऐसा नहीं कह सकते । मन ही एकमाल सुख्दुःख साक्षात्कारका द्वार है, यह स्वतः ही खीकार करना पड़ेगा। अतएव मन द्वारा ही सुख दुःखादिका मानस प्रत्यक्ष हुआ करता है।

इस मानस अरयक्षका विषय मनस शन्दमें देखो। छः प्रकारके प्रत्यक्ष प्रमाणोंका विषय लिखा गया। न्यायशास्त्रमें विशेषतः नव्यन्यायमें इसका विषय पुङ्कानु-पुङ्करूपमें आलोचित हुआ है। (नव्यन्याय चार खएडोंमेंसे पहला प्रत्यक्षखएड है। इसी प्रत्यक्षखएडमें प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय विशेषक्षपसे वर्णित हुआ है।)

(अव्य०) अक्षि अक्षि प्रतीति वीष्तायां, अक्ष्नोराभि-मुज्यमित्यर्थे, (उक्षणं नाभित्रति भाभिमुख्ये वा । २१११४) इत्यव्ययीभावः ततप्राच् । २ इन्द्रियलक्षण, अपरोक्ष । "फल्क्चनभिसन्याय क्षेतिणां चीजिनान्तथा । प्रताक्षं क्षेतिणामर्थो वीजाद्वयोनिर्गरायसो ॥"

(मनुशप२)

प्रत्यक्षतमा (सं० अव्य०) त्रत्यक्ष-तमप्-आमु । त्रत्यक्ष-प्रमाणक्रपमें ।

प्रत्यक्षतस् (सं ॰ अन्य॰) प्रत्यक्ष तसिल् । प्रत्यक्षरूपमें, साक्षात् सम्बन्धमें ।

प्रत्यक्षता (सं॰ स्त्रो॰) प्रत्यक्षस्य भावः तल्-टाप् । प्रत्यक्ष-त्व, प्रत्यक्ष होनेका भाव ।

प्रत्यक्षदर्शन (सं० ति०) प्रत्यक्षं पश्यतीति प्रत्यक्ष-दूश-ल्यु, प्रत्यक्षं दर्शनं यस्येति वा । १ साक्षी, जिसने अपनी आंखोंसे सब देखी हों । (क्की०) २ प्रत्यक्ष इपसे दर्शन, साक्षात् सम्बन्धमें देखना ।

प्रत्यक्षदर्शिन् (सं॰ ति॰) प्रत्यक्षं पश्यति दृश-णिनि । साक्षी, जिसने कपसे कोई घटना देखी हो ।

प्रत्यक्षद्वरा (सं० ति०) प्रत्यक्षं पश्यति द्वरा-किप् । स्वयं द्रष्टा, प्रत्यक्षदर्शी ।

प्रत्यक्षद्वर्य (सं ॰ ति ॰) प्रत्यक्षेण दृश्यः । प्रत्यक्षक्रपसे दर्शनीय, साफ साफ दिखाई देने छायक ।

प्रत्यक्षद्वष्ट (सं ० ति ०) प्रत्यक्षेण द्वष्टः । प्रत्यक्षरूपसे जो देखा गया हो । प्रत्यक्षप्रमा (सं॰ स्त्री॰) यथार्थ ज्ञान । प्रत्यक्षमक्ष (सं॰ पु॰) प्रत्यक्षद्भपसे भक्षण ।

प्रत्यक्षळवण (सं ० क्की ०) प्रत्यक्षं पृथक्त्या उपलभ्य-मानं ळवणं। पाकनिष्पत्तिके वाद व्यञ्जनादिमें दीयमान ळवण, वह नमक जो भोजन पक चुकनेके वाद उसमें और डाला गया हो। शास्त्रोंमें श्राद्ध आदि अवसरों पर इस प्रकार नमक देनेका निषेध है। पाकके समय यदि भूलसे नमक न डाला गया हो, तो पोछेसे उसमें नमक न देना चाहिये।

प्रत्यक्षवादिन् (सं० पु०) पताक्ष-मेव प्रमाणत्वेन बद्तीति वदणिनि । १ वीद्ध । ये लोग प्रताक्ष भिन्न अन्य किसी प्रमाणको स्वीकार नहीं करते, इसीसे इन्हें प्रताक्षवादी कहते हैं। चार्चाक भी प्रत्यक्षवादी हैं। (बि०) २ प्रत्यक्षवादिमात ।

मत्यक्षवृत्ति (सं॰ ति॰) प्रतक्ष रूपसे दर्शनयोग्य । मत्यक्षी (सं॰ ति॰) प्रताक्षमस्तास्येति प्रताक्ष-इनि । बाक्त-द्रप्रार्थं, साक्षात् द्रप्रया ।

प्रत्यक्षीकरण (सं० क्ली०) अत्रताक्षप्रताक्षकरणं अभूत-तन्त्राचे चित्र। अप्रताक्षका प्रताक्षकरण, इन्द्रिय द्वारा द्यान करा देना, सामने ला कर प्रताक्ष करा देना।

त्रत्यक्षीभृत (सं ० ति ०) जिसका ज्ञान दिन्वयों द्वारा हुआ हो, जो प्रताक्ष हुआ हो।

प्रत्यगक्ष (सं ० ह्यो०) समक्ष, मुकावला ।

प्रत्यगातमन् (सं ॰ पु॰) प्रतीचो जीवस्य आतमा स्वद्धपं । १ परमेश्वर, ब्रह्मचैतन्य ।

प्रतागानन्द (स'० ति०) १ मनही मन आनन्दयुक्त । (पु०) २ वहा ।

प्रत्यगाशापति (सं ॰ पु॰) प्रतागाशायाः पश्चिमस्या दिशः अधिपतिः । पश्चिम दिशाके अधिपति, वरूण । प्रत्यगुद्व (सं ॰ स्त्री॰) प्रतीच्या उदीच्याश्च अन्तराला दिक् । पश्चिम और उत्तर दिशाका कोना, वायुकोन । प्रत्यग्नि (सं ॰ अवा॰) प्रतीक्ष अग्निमें ।

प्रत्यप्र (सं० ति०) प्रतिगतमप्रं श्रेष्ठं प्रथम दर्शनं यस्पेति । १ नृतन, नया, ताजा । २ शोधित, सोधा हुआ । (पु०) ३ पुराणानुसार उपरिचर वसुके एक पुतका नाम । प्रत्यप्रगन्धा (सं० स्त्रो०) स्वर्णयूथिका, सोनजूही । प्रत्यप्रथ (सं ० पु०) अहिच्छतादेश, दक्षिण पांचाछ । प्रत्यप्रह (सं ० पु०) चेदिदेशके एक राजाका नाम । प्रत्यङ्ग (सं० क्की०) प्रतिगतमङ्गमिति । १ अवयवविशेष । सुंश्रुतमें लिखा है,--मस्तक, उदर, पृष्ठ, नामि, ललाट, नासा, चिद्रुक, वस्ति और ग्रीवा एक एक है। कर्ण, नेत, नासा, भ्र , शङ्क, अंश, गएड, कक्ष, स्तन, मुन्क, पार्श्व, नितम्य, जातु, वाहु और ऊरु दो दो हैं। उंगली वीस हैं। अलावा इसके त्वक, कला, धातु, मल, दोप, यकृत्, श्लीहा, फुसफुस, हृदय, आशय, अन्त, दो चुक्च, स्रोत, कएडरा, जाल, रज्जु, सेवनी, सङ्गात, सीमन्त, अस्थि, सन्धि, स्नायु, पेशी, मर्म, शिरा, धमनी और योगवह-स्रोत। समूचा शरीर इन्हों सब अङ्गोंमें विमक्त है। इनमेंसे त्वक्, कला, आशय और धातु प्रतेरक सात सात हैं, शिरा १०७, पेशी ५००, स्नायु ६००, अस्थि ३००, सन्धि २१०, मर्भ १२७, धमनी २४, दोष और मन तीन तीन तथा शरीरके ब्रार ६ हैं।

(भ्रुश्रुत श्रीरस्था ५ २०)

२ अप्रधान, जो प्रसिद्ध न हो । ३ प्रत्येक अङ्गके प्रति । (पु॰) ४ नृपविशेष, एक राजाका नाम । प्रत्यङ्गिरस (सं॰ पु॰) चाक्षष मन्वन्तर आङ्गिरस अर्थात् अङ्गिरोत्पन्न ऋषिभेद ।

प्रत्यङ्गिरा (सं० स्त्रो०) १ देवीविशेष, तान्तिकींकी एक देवी। मन्त्रमहौषधिके ८म तरङ्गमें इसके प्रयोगादिका विषय लिखा है। २ कण्डकशिरीषवृक्ष, सिरसका पेड़। ३ विसखोपरा।

प्रत्यङमुख (सं० ति०) प्रताङ्मुखं यस्य । पश्चिमाभिमुख । प्रताच् (सं० ति०) प्रताञ्चतीति प्रति-अञ्च-किन् । १ पश्चिमदिशा । २ पश्चिमदेश । ३ पश्चिमकाल । ४ प्रतिगत । ५ अभिमुख । ६ अन्तर्यामी, स्वात्मा । प्रत्यञ्चा (हि० स्त्री०) धनुषकी डोरी जिसमें लगा कर वाण छोड़ा जाता है ।

प्रत्यञ्चित (सं ० ति ०) प्रति-अञ्च-क । प्रतिपूजित, सम्मानित ।

प्रत्यञ्जन (सं ० क्ली ०) प्रतिरूपमनुरूपमञ्जनं प्रादिस ०। १ अनुरूपाञ्जन । २ अञ्जन द्वारा नेतप्रसादन, आंखमें अंजन छगा कर उसे अच्छा करना । प्रत्यद्न (सं॰ क्की॰) प्रति-अदु-ल्युट्। भोजन, बाय, खाना।

प्रत्यध्मान (सं ॰ पु॰ । एक प्रकारका वातरोग ।

प्रत्यनीक (सं० पु०) प्रतिगत अनीकं युद्धमिति। १ शतु। २ प्रतिपक्ष । ३ विरोधी । ४ विध्न, वाधा । ५ प्रतिवादी । ६ प्रतिपक्ष सेना । ७ अर्थाळङ्कारमेद, कविताका वह अर्थाळङ्कार जिसमें किसीके पक्षमें रहनेवाळे या संबंधीके प्रति किसी हित या अहितका किया जाना वर्णन किया जाय। यथा—'तं । विनिजितमनी भवस्य। ६। सुन्दर । भवत्यनु-२का । पश्चिभेषु ग्रयदेव श्रारेशता ताप्यत्यवुशय। दिव कामः ॥"

(कान्यप्रक)

हे सुन्दर! कपमें तुमने कन्द्पैको जीत लिया है। यह को मी तुम्हारे ही ऊपर विशेष अनुरक्ता है। इस कारण कन्द्पे तुम्हारे प्रति हो व करके ही युगपत् पञ्चशर हारा उसे कए दे रहा है। यहां पर कन्द्पे जिसके कपसे विजित हुआ, उसका वह किसी प्रकार प्रतीकार न कर सका। परन्तु जो स्त्री उसको प्रिय थी, उसीको वह कए देने लगा तथा यह कए रिपुका ही उत्कर्षजनक होनेके कारण यहां प्रत्यनीक अलङ्कार हुआ।

प्रत्यनुमान (सं० क्को०) प्रतिरूपमनुमानं प्रादि-तत्। अनुमानके विरुद्ध अनुमान, तर्कमें वह अनुमान जो किसी दूसरेके अनुमानका खंडन करते हुए किया जाय।

प्रत्यन्त (सं॰ तु॰) प्रतिगतोऽन्त मिति, 'श्रत्यादयः क्रान्ता-धर्थे' इति समासः । १ म्लेच्छदेश । २ प्रान्तदुर्ग । (ति॰) ३ तहे शजात । ४ सिक्किष्ट ।

प्रत्यन्तपर्वत (सं॰ पु॰) प्रत्यन्तः सन्निकृष्टः पर्वतः । महा-पर्वतसमीपवत्तीं क्षद्र पर्वत, वह छोटा पहाड़ जो बड़े पहाड़के समीप हो ।

प्रत्यन्तर (सं॰ ति॰) प्रति-प्राप्त-मनन्तरं अत्यां सं । प्रत्या-सन्न, समीप, नजदीक ।

प्रत्यपकार (सं० पु०) प्रति-अप-क्त-घञ्। अपकारका प्रति-शोध, वह अपकार जो किसी अपकारके वदलेमें किया जाय।

प्रत्यब्द (सं॰ अध्य॰) प्रत्येक वत्सर, हर साल । प्रत्यभिधारण (सं॰ क्ली॰) फिरसे जल सींचना । प्रत्यभिचरण (सं० पु०) निवारण, रोकने या हटानेको किया।

प्रत्यभिज्ञा (सं॰ स्त्री॰) प्रतिगता अभिज्ञा अत्या॰ स॰ । १ वह ज्ञान जो फिसी देखी हुई चीजको अथवा उसके समान किसी और चीजको फिरसे देखने पर हो। २ वह अभेदबान जिसके अनुसार ईश्वर और जीवात्मा दोनों एक ही माने जाते हैं।

प्रत्यभिज्ञाद्यीन (सं० क्ली०) प्रत्यभिज्ञायाः दर्शनं शास्त्रं । माहेश्वरशास्त्रभेद् । माघवाचार्यंते सर्वदर्शनसंग्रहमें इस दर्शनका मत संग्रह किया है। वहुत संक्षेपमें उनके दर्श-नोक्त विषयकी यहां पर आलोचना की जातो है।

इस दर्शनके मतसे भक्तवत्सल महेश्वर ही परमेश्वर माने गये हैं। इस दर्शनके मतावलम्बी तुरी तन्तु भादि जड़ात्मक बस्तुओंको पटादि कार्यका कारण न वतला कर एकमाल महेभ्वरको ही जगत्कार्यका कारण वतलाते हैं। जिस प्रकार तपःप्रभावशाली तापसगण विना इष्टक और चूर्णं प्रभृतिके निविद् अरण्यमें रच्छानुसार वड़ी वड़ी अद्यालिकाये' बनाते और विना स्त्रीप्रसङ्गके ही मानस-पुतादि उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार जगदीश्वर महादेव-ने जगिश्चर्माण विषयमें जड़ात्मक जगदन्तर्गत किसी बस्तुकी अपेक्षा किये बिना स्वेच्छावशतः इस जगत्का निर्माण किया है। परमेश्वरके सिवा और कोई भी किसी कार्यका कारण नहीं है। यदि पटाविकार्यकी तुरीतन्तु आदि जड़बस्तु कारण होती, तो तुरीतन्तु आदिके नहीं रहने पर कभी भी कैवल योगियोंकी इच्छा द्वारा पटादि कार्यं नहीं हो सकता था। न्योंकि विना कारणके कोई भी कार्य नहीं होता, यह नियम सब जगह देखा जाता हैं। अतएव जब तुरी और तन्तुके नहीं रहने पर भी बोगिबोंकी इच्छा वशतः पटादि कार्य सम्पन्न होता है, तन पटादि कार्यके प्रति तुरी प्रश्वति जी बास्तविक कारण नहीं है, इसमें और कहनेकी जकरत हो क्या ? परमेश्वर महादेव किसीसे भी नियोजित हो कर इस जगत्का निर्माण नहीं करते तथा किसी वस्तुसे सहायता छेनेकी भी उन्हें जहरत नहीं पड़ती। इसीसे उन्हें खर्तत कहा गया है। जिस प्रकार खच्छ द्र्पणमें शरीरादिका प्रति-विम्य पड़नेसे शरीरादि दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार

जगदीश्वरमें सभी वस्तुओंका प्रतिविम्य पड्नेसे शरी-रादि दृष्टिगोचर होता है। इस कारण परमेश्वर महादेव-को यदि जगदर्शनदर्पण भी कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। जिस प्रकार बहुद्भयी व्यक्ति अपने इच्छानुसार कभी राजा, कसी मिक्षुक, कसी स्त्री, कसी कुमार और कसी चृद्ध आदिका रूप धारण करता है, उसी प्रकार भगवान् महेश्वर भी स्थावर जङ्गमादि नाना ह्योंमें रहनेकी इच्छा करते हुए स्थावर और जङ्गमात्मक जगत्का निर्माण करते हैं तथा उन सब रूपोंमें रहते भी हैं। जगत् ईश्वरात्मक है, इसमें और कोई सन्दे ह रहने नहीं पाया। परमेश्वर आनन्द्सहप और प्रमाता हैं अर्थात् ज्ञाता और ज्ञानस्वरूप है। सुतरां अस्मदादिका घट-पटादि विषयक जो जो ज्ञान होता है, वह सभी परमेश्वर खरूप है।

इस पर वादिगण आपत्ति करते हैं, कि यदि सभी वस्तुविपयक सभी ज्ञान एकमात ईश्वरस्वरूप हों, तो घट-हानके साथ पटहानका कोई भेद नहीं रहता, यह आपांत्त थोड़ा गीर कर देखनेसे उठ ही नहीं सकती है। यथार्थमें सभी वस्तुनिययक ज्ञानका भेद नहीं रहने पर घटपटादि विषयका भेद है कर घटजानसे पटजान भिन्न है, ऐसा कहनेमें उन्न क्या ! कुएडल और कटकादि कपमें परिणत सुवर्णका वास्तविक मेद नहीं रहने पर भी कुएडल और कटकादि रूप उपाधिके भेदसे कुएडलसे कट-कालङ्कार मिन्त हैं, ऐसा सब कोई कहते हैं। उपाधिके मेदसे हो विभिन्न प्रकारका ज्ञान हुआ करता है।

इस दर्शनके मतसे मुक्तिखद्भप परापर सिद्धिका उपाय वक्तमात प्रत्यभिज्ञा है। अन्यमतकी तरह इस मतमें मी पूजा, ध्यान, जप, याग और योगादिके अनु-ष्टानकी जरूरत नहीं। प्रत्यभिन्ना द्वारा ही सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं। 'सं एवेश्वरोऽह" वही परमेश्वर में हूं। ऐसे परमेश्वरके साथ जीवात्माके अभेद्शानको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। जिस प्रकार सर्वाकृति व्यक्तिको नामन कहते हैं, उसी प्रकार पहले उपदिए व्यक्तिको खर्वाकृति दृष्टि-गोचर होनेसे 'बोऽय' वामना;' वह यही वामन है, इस प्रकार जो ज्ञान होता है उसे नैयायिक लोग प्रत्यभिज्ञा कहते हैं।

Vol. XIV 142

प्रत्यभिक्वालाभ होनेसे ही मुक्ति होती है। इसी कारण इस दर्शनका प्रत्यभिक्वादर्शन नाम रखा गया है। श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्व और अनुमानादि द्वारा ईश्वरका सक्त्व और शक्ति जान कर, वह शक्ति भी जीवात्मामें है, इस प्रकार क्षानलाम करनेमें 'च एवेषरोऽद'' वही ईश्वर में हूं, ऐसा जो ज्ञान होता है, उसे एतन्मतावलम्बी व्यक्तियोंका प्रत्यभिक्षा शब्द द्वारा निर्देश करना नितान्त अमूलक वा स्वक्षपोलकिष्यत नहीं है। इस प्रकार प्रत्यभिक्षा शास्त्रान्तर द्वारा समुत्यन्त होनेकी विलक्तल सम्भावना नहीं। यही कारण है, कि इस शास्त्रको दृसरे दूसरे शास्त्रोंको अपेक्षा विशेष आदरणीय और श्रेयस्कर वतलाया गया है।

इस दर्शनके मतसे जीवात्माके साथ परमात्माका
मेद नहीं है अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा हैं और परभात्मा ही जीवात्मा। पर हां, एक दूसरेके साथ जो
मेदज्ञान हुआ करता है, वह भूममात्र हैं। जोवात्माके
साथ परमात्माका जो अभेद हैं, वह अनुमानसिद्ध हैं।
जिस व्यक्तिके ज्ञान और कियाशिक नहीं हैं, वह परमेश्वर नहीं हैं, जैसे गृहादि। अब देखना चाहिये, कि जव
जीवात्माकी वे सब शक्तियां देखी जाती हैं, तब जीवात्मा
जो ईश्वरसे भिन्न नहीं है, इसमें और कोई सन्दे ह रह
नहीं गया।

यहां पर कोई कोई यह आपत्ति करते हैं, कि यदि जीवमें ईश्वरता ही रहे, तो उस ईश्वरताखरूप शिवत्वप्राप्तिके निमित्त आत्मप्रत्यभिज्ञाका प्रयोजन ही क्या ? जिस प्रकार मद्दीमें गिरा हुआ वीज, चाहे जान वृक्ष कर गिराया गया हो, वा अनजान, जळसंयोगादि होनेसे ही अंकुरोत्पादन करता है, उसी प्रकार ज्ञात हो, वा अज्ञात, जीवमें यदि सचमुच ईश्वरता रहे, तो ईश्वर की तरह जीव जगन्निर्माणादि जो नहों कर सकता है, सो क्यों ? इस प्रकारकी आपत्ति आपाततः उठ तो सकती है, पर थोड़ा गीर कर देखनेसे वह आपत्ति विळ-कुळ छिन्नमूळ हो जायेगी । देखो, कहीं कहीं कारण रहनेसे और कहीं कहीं कारण ज्ञात होनेसे ही कार्य हुआ करता है। जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक उस कारण द्वारा कार्य हो ही नहीं सकतां।

जैसे, इस घरमें पिशाच है, जब तक यह मालूम नहीं होता, तब तक उस घरके पिशाचसे भीठ व्यक्ति किसी प्रकारका भय नहीं खाता। किंतु उस पिशाचका ज्ञान हो जानेसे हो भीठ व्यक्ति भय खाने लगता है। इसी प्रकार जीवमें ईश्वरता रहने पर भी उसे विना जाने ईश्वरकी तरह वह कोई कार्य नहीं कर सकता। जिस प्रकार अपरिमित धन रहने पर भी किसी व्यक्तिको अज्ञाना-चस्थामें प्रीति नहीं होती, परन्तु जब उसका ज्ञान हो जाता है, तब आनन्दका ठिकाना नहीं रहता, उसी प्रकार में ही ईश्वर हूं, इस प्रकार जीवमें ईश्वरता ज्ञान होनेसे एक असाधारण प्रीति उत्पन्न होती है। इस कारण आत्मप्रतामिज्ञा अवश्य कर्त्तव्य है, इसमें कोई सन्दे ह नहीं। जिससे आत्मप्रतामिज्ञा हो, बैसा करना प्रताकका अवश्य कर्त्तव्य है।

इस दर्शनके मतसे परमातमा स्वतःप्रकाशमान है अर्थात् परमात्मा आप ही प्रकाश पाते हैं। जिस प्रकार आलोकका संयोग नहीं होनेसे गृहस्थित घटपटादि वस्तुओंका प्रकाश नहीं होता, उसी प्रकार परमेश्वरका प्रकाश किसी कारणकी अपेक्षा नहीं करता। वे सर्वंत सर्वदा प्रकाशमान हैं। यहां पर कोई कोई यह आपत्ति करते हैं, कि जीवात्मा और परमात्मामें परस्पर अमेद है तथा परमात्मा परमात्मरूपमें सर्वदा और सब जगहं प्रकाशमान हैं, यह अवश्य स्त्रीकार करना पड़ेगा, नहीं तो जोवात्मा और परमात्मामें जो परस्पर अमेद हैं, सो नहीं रह सकता। कारण, जिस वस्तुकां अभेद जिस वस्तमें रहता है, उस वस्तुके प्रकाशकालमें अवश्य ही उस वस्तुका प्रकाश होता है, ऐसा ही नियम है। परन्तु परमात्मारूपमें जीवात्माका जो सर्वदा प्रकाश होता है, यह स्त्रीकार नहीं किया जा सकता। कारण, स्वीकार करनेसे जीवात्माके वैसे प्रकाशके निमित्त प्रता-भिन्ना दर्शनकी आवश्यकता ही क्या रह जायगी। जीवात्माका वैसा प्रकाश तो सिद्ध ही है। सिद्धविषय साधनमें कभी भी किसी वाक्तिकी अवृत्ति नहीं होती। इस प्रकारको आपत्ति उठाने पर केवल इतना ही कहना प्रयाप्त होगा, कि जिस प्रकार किसी कामिनीको यह मालूम हो जाय, कि अमुक घरमें एक सुरसिक नायक है, उसका स्वर अति मधुर है, अन्प्रम ह्पलावण्य हैं और सहास्य बदन हैं। अव वह जिस प्रकार उस नायकके पास जाती है और वार वार उसे देखती हैं, पर जब तक उस नायकके गुण उसके दृष्टिगोचर नहीं होते, तब तक वह आहादित नहीं होती और न उसके शरीरके सम्पूर्ण सात्विक भावका आविर्माव ही होता हैं, उसी प्रकार परमात्मह्पमें जीवका प्रकाश होने पर भी तव तक पूर्णभाव पानेकी सम्मावना नहीं, जब तक ईश्वरके ईश्वरतादि गुण उसमें भी हैं, ऐसा उसे मालुम न हो जाय। परन्तु जब गुख्वाक्य सुन कर सर्वश्वत्वादिक्ष ईश्वरका धर्म मुक्सें भी हैं, ऐसे जानका उद्य हो जाय, तब पूर्णभावका आविर्माव हो सकता हैं, इसमें सन्देह नहीं। अतयव उस पूर्णतालामके लिये प्रतामिजादशैनकी विशेष आवश्यकता है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।

पदार्थंनिणंयविषयमें व्रताभिज्ञाद्शेन और रसेश्वर-दर्शनका मत प्रायः एक सा है।

(सर्वदश्रीनसंग्रहपृतत्रायभिहाद०)

प्रत्यिकान (सं ह्यो॰) प्रति-अभि-का-स्युट्। अभिकान, सद्ग्र वस्तुको देख कर किसी पहले देखी हुई वस्तुका स्मरण।

भत्यभिनन्दिन् (सं ० ति ०) प्रति-अभि-नन्द्-इति । प्रता-भिनन्द्नकारक, आह्वानकारक ।

प्रत्यमिमापिन् (सं कि स्त्री) प्रति-अभि-भाष-णिनि । अभिनन्दनकारक, अभिनन्दन करनेवाला ।

प्रत्यमिमर्श (सं० पु०) प्रति-अभि-मृश-वज्। १ प्रर्यण, रगड़। २ स्पर्शन, छूना।

प्रत्यभिमर्शन (सं ० ह्यां०) प्रति-अभि-मृश्-स्युट् । अभि-मर्शन ।

प्रत्यभिमेधन (सं ० क्ली०) घृणास्चक प्रतास्तर।
प्रत्यभियोग (सं ० पु०) प्रतिक्योऽभियोगः। प्रतापराघ,
वह अभियोग जो अभियुक्त अपने वादी अथवा अभियोग छगानेवाछे पर छगावे। व्यवहारशास्त्रके अनुसार ऐसा करना वर्जित है। अभियुक्त जव तक अपने

आपको निर्देश न प्रमाणित कर छै, तव तक उसे वादी पर कोई अभियोग छगानेका अधिकार नहीं है। प्रत्यमिवाद (सं ० पु०) प्रति-अभि-वद्द-णिच् माचे घञ्। अभिवादकके तत्प्रतिक्ष आशीर्वचनादि, वह आशीर्वाद जो किसी पूज्य या वड़ेका अभिवादन करने पर मिले। ब्राह्मणादि गुरुजनोंको यदि कोई अभिवादन करे, तो उन्हें प्रतामिवादन करना चाहिये।

मनुस हितामें लिखा है-लाकिक द्यान, वेदिकज्ञान वा आध्यात्मिक शान जिनसे प्राप्त किया जाय, उन्हें तथा सदुवाह्मण और गुढजनको देखनेसे ही अभिवादन करना कर्त्तच्य है। अभियादनके वाद उन्हें अताभिवादन करना चाहिये। जो अभिवादन करते हैं उनको आयु, यश और वलकी वृद्धि होती है। श्रेष्ठजनको अभिवादन करनेके वार 'अभिवादये अमुकनामहमस्मीति' में अमुक व्यक्ति हूं, आपको अभिवादन करता हूं, ऐसा कह कर अपना नाम उचारण करना चाहिये । यदि वह संस्कृत न जानता हो, तो अभिवादनके बाद में ऐसा कहना चाहिये। सभी स्त्रियोंको भी इसी प्रकार अभिवादन करना कर्चवा है। अभिवादन करने पर ब्राह्मणको 'बासु-धान भर धीम्व' ऐसा वाक्य ऋहना चाहिये । जो ब्राह्मण प्रताभित्राद्व करना न जानते हों, विद्वान् वाक्तिको चाहिये कि उन्हें अभिवादन न करें। शूद्र जिस प्रकार अनभिवाद्य हैं, उन्हें भी उसी प्रकार समकता चाहिये। (मनु२ वः)

प्रत्यभिवादक (सं॰ ति॰) प्रति-श्रभि-वद-णिच्-ण्बुळ्। प्रताभिवादनकारी, प्रताभिवादन करनेवाला।

प्रत्यभिवादन (सं० क्की०) प्रति-अभि-वद-णिच्-ल्युट्। प्रत्यभिवाद, वह आगोर्वाद जो किसी पूज्य या वड़ेका अभिवादन करने पर मिले। प्रत्यभिवाद देखी।

प्रत्यभिवाद्यितः (सं ० ति०) प्रति-अभि-वद्-णिच्-तृच् । प्रताभिवाद्कः।

प्रत्यभिस्कन्द्न (सं) हो।) प्रति-अभि-स्कन्द्-भावे-न्युर् । प्रताभियोग ।

प्रत्यभ्यतुज्ञा (सं ० स्त्री०) प्रति-अभि-अनु-ज्ञा-थङ् । प्रत्या-देश, अनुज्ञा, हुकुम ।

प्रत्यमित (सं ० पु०) शतु, दुश्मन।

त्रत्यय (सं ॰ पु॰) प्रति इण् भावकरणादी चथायथं अच् । १ अधीन, मातहत । २ शपथ, सीमंघ । ३ ज्ञान, बुद्धि । 8 विश्वास, एतवार । ५ प्रामाण्यक्ष ि निश्वय, सवृत । ६ हेतु, कारण । ७ छिद्र, छेद । ८ शन्दमेद । ६ आचार । १० ख्याति, प्रसिद्धि । ११ निश्वय । १२ खादु, ज़ायका । १३ सहकारिका गण, मददगार । १४ विचार, ख्याल । १४ व्याख्या, शरह । १६ आवश्यकता, जकरत । १७ चिह्न, लक्षण । १८ निर्णय, फैसला । १६ सम्मित, राय । २० विष्णुका एक नाम । २१ वह रीति जिसके द्वारा छंदीं-के भेद और उनकी संख्या जानी जाय । छन्दोशास्त्रमें ६ प्रताय हैं, यथा—प्रस्तर, स्ची, पाताल, उद्दिए, नए, मेरु, खएडमेरु, पताका और मक्केटी । २२ व्याकरणमें वह अक्षर या मूलशन्दके अन्तमें उसके अर्थमें कोई विश्वर पता उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे लगाया जाय ।

प्रत्ययकारिन् (सं० दि०) प्रतायं करोतीति क्र-णिनि । १ विश्वासकारक, विश्वास दिलाने ग्राला । स्त्रियां की १ । २ प्रतायकारिणी मुद्रा, मोहर । मोहरकी छाप रहनेसे लोगोंके प्रत्यय होता है, इसीसे इसको प्रतायकारिणी कहते हैं ।

प्रत्ययत्व (सं० क्ली०) प्रत्यस्य भावः, त्व । प्रत्यययका भाव वा धर्म ।

प्रत्ययनस्त्व (सं॰ क्ली॰) पुनःप्राप्त, वह जो फिरसे मिला हो।

प्रत्ययसर्गं (सं॰ पु॰) महत्तत्त्व या वुद्धिसे उत्पन्न सृष्टि । प्रत्ययिक (सं॰ ति॰) प्रत्यययुक्त ।

प्रत्ययित (सं० ति) प्रत्ययो विश्वासः सञ्जरोऽस्येति प्रत्यये (तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् । पा ५।२।३६) इति इतच् । १ आप्त, प्राप्त । २ विश्वस्त, जिसका विश्वास किया जाय । ३ प्रतिगत, लौटा हुमा ।

प्रत्ययिन् (सं० ति०) प्रत्यय-इनि । प्रत्यययुक्त, विश्वस्त । प्रत्यरा (सं० स्त्री०) प्रतिनिहिताः अराः प्रादिस० । लकड़ी-की चौड़ी पटरी जो पहिएकी गड़ारी और पुद्दीके बीचमें उसे मजबूत रखनेके लिये जड़ी रहती है ।

प्रत्यरि (सं॰ पु॰) वित-म्छ-इन् । १ शतु, दुश्मन । २ जन्म-तारासे पांचवा, चौदहवां और तेईसवां तारा । यह तारा शुभकार्य मालमें निन्दनीय है। चन्द्र और ताराशुद्धिमें सभी कार्य करने होते हें, विशेषतः कृष्णपक्षमें ताराशुद्धि नहीं होनेसे कोई भो कार्य नहीं करना चाहिये । प्रत्यरि- तारामें छवण दान करके शुभकायें किये जा सकते हैं। 'अत्यरी डवणं दचात्' (ज्योतिस्तस्त)

प्रत्यके (संव पु॰) प्रतिसूर्यं, सूर्यमण्डलभेद ।

प्रत्यर्चेन (सं० क्की०) प्रति-अर्च-ह्युट्। प्रतिनमस्कार, प्रतिपूजा।

प्रत्यर्थ (सं॰ पु॰) एक प्रकारका प्रतिस्यें।

प्रत्यर्थंक (सं॰ पु॰) शतु, दुश्मन ।

प्रत्यर्थिक (सं० पु०) विपक्ष, शबु ।

प्रत्यर्थी (सं॰ पु॰) प्रतिशोधं प्रतिकृष्टं वा अर्थयते इति प्रतिकृष्टं वा अर्थयते इति प्रति-अर्थ-णिनि । १ शबु, दुश्मन । २ प्रतिवादी, मुद्दालेह ।

प्रत्यर्पण (सं क्लो॰) प्रति-ऋ-णिच्-ल्युट् पुकागमः। प्रतिदान, दानमें पाया हुआ धन फिर दान करना।

प्रत्यर्पणोय (सं० ति०) प्रति-ऋ-णिच् अनीयर्। प्रत्यर्पण-के योग्य।

प्रत्यर्पित (सं॰ ति॰) प्रति-ऋ-णिष्-क । प्रतिदत्त, जो फिरसे छोटा दिया गया हो ।

प्रत्यर्प (सं॰ पु॰) १ डालवां प्रदेश । २ पार्श्वदेश । प्रत्यर्ह (सं॰ अव्य॰) प्रतिपूजाके योग्य, सम्माननीय ।

प्रत्यवकर्शन (सं० ति०) प्रति-भव-कर्शि-स्युष् । इशत्वकर, निवर्त्तक ।

प्रत्यवनेजन (सं० ह्यो०) प्रतिक्षपमवनेजनं प्रादि-स०। श्राद्धाङ्ग प्रथम जलादि दानके अनुक्ष पिएडके ऊपर क्रियमाण पुनरवनेजन, श्राद्धमें पिएडदानकी वेदी पर विष्ठाए हुए कुशों पर जल सींचनेका संस्कार।

प्रत्यवमर्श (सं० पु०) प्रति-अव-मृश-क्षान्तौ भावे घन्। १ अनुसन्धान, पता लगाना। २ विवेक, अच्छे बुरेका विचार करना।

प्रत्यवमर्शन (सं॰ क्ली॰) प्रति-अव-मृश-ल्युट्ं । १ अतु-सन्धान । २ युकायुक्त विचार ।

प्रत्यवमर्शवत् (सं० ति०) प्रत्यवमर्शः विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व । १ प्रत्यवमर्शयुक्त । २ चिन्तान्वित ।

प्रत्यवमर्प (सं० पु०) प्रति-अव-मृष-क्षान्तौ-भावे-धञ्। सहन, सहा करना।

प्रत्यवमर्षण (सं॰ क्ली॰) प्रति-अव-मृप-भावे च्युद्। १ सहन । २ युक्तायुक्त विचार । प्रत्यवर (सं॰ ति॰) प्रतिक्षे अवरः प्रादिस॰। अतिनिरुष्ट, जो सवसे अधिक निरुष्ट हो।

> "प्रतिगृहात् याजनाद्वा तथैवाध्यापनादिष । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्र`त्य विप्रस्य गर्हितः॥" (मनु १०।१०६)

त्राह्मणोंके निन्दिताध्यापन, याजन और प्रतिग्रह इन तोनोंमेंसे प्रांतप्रह प्रत्यवर है अर्थात् अति निरूष्ट है। प्रत्यवस्तिह (सं० ति०) अभिमुखमें अवतरण, सामनेमें उतरना।

प्रत्यवरोधन (सं० क्लो०) प्रति-अव-रुध-णिच्-ख्युट्। १ अवरोधन। २ विद्योत्पाद् करना, वाधा देना।

प्रत्यवरोह (सं॰ पु॰) प्रति-अव-रह-घञ्। १ अवरोह, उतरना। २ सोपान, सोढ़ी। ३ अप्रहायणमासमें गृह्य उत्सवविशेष, वैदिक कालका एक प्रकारका गृह्य उत्सव जो अगहन मासमें होता था।

प्रत्यवरोहण (सं॰ क्लो॰) प्रति-अव-रुह-रुयुर् । १ निम्न अवतरण, नीचे उतरना। २ अप्रहायणमासमें गृह्य उत्सव-विशेष ।

प्रत्यवरोहणीय (सं० ति०) प्रति-अव-मह-णिच्-अनीयर्। १ अवरोहणके योग्य। २ वाजयेययक्षकी प्रकाह साध्य विल ।

प्रत्यवरोहिन् (सं० ति०) प्रति-अव-रह-णिनि । नोचे उत-रनेवाला ।

प्रत्यवसान (सं० क्षो०) प्रति-अव-सो-रुयुट् । भोजन, खाना।

प्रत्यवसित (सं॰ ति॰) प्रति-अव-सो-क । मक्षित, खाया हुआ ।

प्रत्यवस्कन्द (सं॰ पु॰) प्रति-अव-स्कन्द-धन् । चतुर्विध उत्तरके अन्तर्गत उत्तरविशेष, व्यवहारशास्त्रके अनुसार प्रतिवादीका वह उत्तर जो वादीके कथनका अएडन करनेके लिये दिया जाय, जवाव-दावा ।

प्रत्यवस्कन्दन (सं० क्षी०) प्रति-अव-स्कन्द-ल्युट् । प्रत्यवस्कन्द देखो ।

प्रत्यवस्था (सं॰ स्त्री॰) प्रति-अव-स्था-भावे अङ्। प्रति-पर्भक्षपसे अवस्थान ।

Vol XIV 143

प्रत्यवस्थात् (सं॰ त्नि॰) प्रतिपश्चतया अवतिप्रते प्रति-अव-स्था-तृच् । शतु, दुश्मन ।

प्रत्यवस्थान ' सं॰ क्ली॰) प्रति-अव-स्था-ल्युद् । विपक्ष-रूपसे अवस्थान, शत्रुतारूपमें रहना ।

प्रत्यवहार (सं॰ पु॰) प्रति-अव-ह-भावे-धञ्। १ संहार, मार डालना। २ लड़नेके लिये तैयार, सैनिकोंको लड़नेसे रोकना।

प्रत्यवाय (सं॰ पु॰) प्रतावाय्यते इति-प्रति-अव-अय गती घञ्। १ पाप या दोष जो शास्त्रीम वतलाये हुए निताकर्म-के न करनेसे होता है। २ भारी परिवर्त्तन, उलटफेर। ३ जो नहीं है उसका न उत्पन्न होना या जो है उसका न रह जाना।

प्रत्यदेश्वण (सं० क्की०) प्रति-अव ईक्ष भावे-ल्युट्। १ पूर्वापर आलोचना, किसी वातको वहुत अच्छी तरह देखना, समकता या जाँचना। २ अनुसन्धान, खोज। ३ विचार। ४ प्रतिजागर, खूव होशियारी रखना।

प्रत्यवेक्षा (सं० स्त्री०) प्रति-अव-ईक्ष-भावे-अ । प्रत्यवेक्षण, तत्त्वावधान ।

प्रत्यवेक्ष्य (सं० ति०) प्रति-अव-ईक्ष-यत् । १ प्रतावेक्षण-योग्य, देखरेख करने लायक । २ अनुसन्धेय, खोज करने योग्य । ३ विचार्य, विचारने योग्य ।

प्रत्यशम (सं० पु०) प्रतिकृषः अश्मा। गैरिक, गेकः।
प्रत्यग्रीला (दृंसं० स्त्री०) सुश्रुतोक्त अग्रीला तुत्य रोगमेद,
सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका वातरोग। इसमें नामिके
नीचे पेडूमें एक गुडली-सी हो जाती है जिसमें पीड़ा
होती है। यदि गुडलीमें पीड़ा न हो उसे 'वातग्रीला' कहते
हैं। गुडली मलमूलके द्वारको रोक देती हैं जिसके
कारण रोगी मलमूलका तग्नग नहीं कर सकता।

बानव्याधि श्रव्द देखी ।

प्रत्यस्तगमन (सं ० क्वी०) सूर्यका अस्तगमन, सूर्यका इवना।

प्रत्यस्तमय (सं॰ पु॰) १ अस्तगमन, डूवना । २ विराम, डहराब । ३ ध्वंस, वरवादी ।

प्रत्यस्त्र (सं॰ क्ली॰) प्रतिद्धवं अस्त्रं । प्रतिद्धवं अस्त्र, तुल्य-द्धपं अस्त्र, एक-सा हथियार ।

प्रत्यह (सं॰ अव्य॰) अहः अहः प्रति (नषु सहादश्यतरसाम् । पा ५।४।१०९) इति टच्। प्रतिदिन, रोजरोज । प्रत्याकार (सं० पु०) प्रतिह्नयः खड्गेन सदृशः आकारो यस्य। खड्गकोष, स्थान।

प्रत्याक्षेपक सं० ति०) उपहासकारी, हँ सी उड़ानेवाळा । प्रत्याख्यात (सं० ति०) प्रति-आ-स्था-क । १ दूरीकृत, हटाया हुआ, दूर किया हुआ । पर्याय—प्रतप्रादिए, निरस्त, निराकृत, निकृत, विप्रकृत । २ अस्वीकृत, नामंजूर किया हुआ । ३ निकृतसाहहीकृत, उत्साहहीन किया हुआ । प्रत्यास्थात (सं० ति०) प्रति-आ-स्था-तन्त्र । प्रत्यास्थात-

प्रत्याख्यातृ (सं ० ति०) प्रति-आ-ख्या-तृच् । प्रत्याख्यान-कारक, प्रत्याख्यान करनेवाला ।

प्रत्याख्यान (सं० क्वो०) प्रति-आ-ख्या भावे ज्युर् । १ निराकरण, दुर करना । २ खण्डन ।

प्रत्याख्यायिन् (सं ० वि०) प्रति-आ-ख्या-णिन्, युकागमः। प्रत्याख्याता, प्रत्याख्यान करनेवाला ।

प्रत्याख्येय (सं ० ति ०) प्रति-आ-ख्या-यत् । प्रत्याख्यानके योग्य, निराकरणीय ।

प्रत्यागत (सं ० ति ०) प्रति-आ-गम-क । १ प्रतिनिवृत्त, जो छीट आया हो, वापस आया हुआ । (पु०) २ पैतरे-का एक प्रकार । ३ कुश्तीका एक पे च ।

प्रत्यागति (सं ० स्त्री०) प्रति-स्रा-गम भावे किन् । प्रत्या-गमन, दोवारा श्राना ।

प्रत्यागम (सं ॰ पु॰) प्रत्यागमनिमति, प्रति-आ-गम-अप्। प्रत्यागमन, छोट भाना।

प्रत्यागमन (सं ॰ क्वी॰) प्रति-आ-गम-ल्युट् । १ प्रताा-गम, स्रोट आना, वापसी । २ दोवारा आना ।

प्रत्याघात (सं॰ पु॰) १ चोटके वदलेकी चोट, वह आघात जो किसी आघातके वदलेमें हो। २ टकर।

प्रत्याचार (सं ० पु०) प्रति-आ-चर-घञ् । सदाचार-सम्पन्न, अच्छा आचरणवाला ।

प्रत्याताप (सं ॰ पु॰) प्रति-आ-तप्-घम् । रौद्रयुक्त स्थान, वह जगह जहां धूप हो ।

प्रत्यात्मन् (सं ० वि०) १ प्रतेत्रक, हरएक । २ एकाकी, अकेळा ।

प्रत्यात्मक (सं ० ति०) किसी एक व्यक्तिका अधिकृत।
प्रत्यात्मा (सं ० ह्वी०) प्रतिविम्ब, छाया।
प्रत्यादशे (सं ० पु०) प्रतिहर चित।

मत्यादान (सं० हो०) प्रति-आ-दा-ल्युट् । पुनप्र[°]हण, फिरसे छेना ।

प्रत्याद्ता (सं ० पु०) प्रतिसूर्य । प्रतिसूर्य देखो ।

प्रत्यादिष्ट (सं ० ति ०) प्रत्यादिश्येतेस्मेति प्रति-आ-दिश् क । १ प्रत्यादेशविशिष्ट । पर्याय—निरस्त, प्रत्या-ख्यात, निराकृत, निकृत, विप्रकृत । २ त्यक, छोड़ा हुआ । ३ ज्ञापित, जताया हुआ ।

प्रत्यादेश (सं ॰ पु॰) प्रत्यादेशनिमति प्रति-आ-दिश-ध्रम् । १ निराक्तरण, प्रत्याख्यान । २ खएडन । ३ भक्तींके प्रति देवताओंका आदेश, आकाशवाणी ।

प्रत्याधान (सं॰ क्लो॰) प्रतिपत्त्या धोयते प्रति-आ-धा-कर्म-णि-ल्युट्। १ मस्तक, सिर। २ द्वितीयाधान।

प्रत्याध्मान (सं० पु०) प्रतिगतमाध्मानमीयत् शब्दो यह। वातव्याधिरोगविशेष ।

इसका लक्षण—वायुके रक जानेसे जव शब्द और यातनाके साथ उदर शोध आध्मात हो जाता है, तव उसे आध्मातरोग कहते हैं। यह पार्श्व और हदयदेशसे निःस्त हो कर आमाश्यमें आध्मानरोग उत्पन्न करता है, इसीका नाम प्रतप्रध्मान है। इस रोगमें वमन, लक्ष्मन, दोपन और वस्तिकमें आवश्यक है।

प्रत्यानयन (सं॰ क्वी॰) प्रति-आ नी-ल्युट् । पुनरुद्धार, फिरसे लाना ।

प्रत्यानीत (सं० त्नि०) प्रति-भा-नी-क । जो फिरसे छ।या गया हो, जिसका पुनरुद्वार हुआ हो ।

प्रत्यानेय (सं॰ ति॰) १ फिरसे छाने योग्य । २ सत्पर्यमें छाने योग्य ।

प्रत्यापत्ति (सं० स्त्री०) प्रति-आ भावे क्तिन् । १ वैराग्य । २ पुनरागमन ।

प्रत्यापीड़ (सं॰ पु॰) छन्दोमेद ।

अत्याप्नवन (सं० क्ली०) प्रति-भा-ग्लु-ग्युट् । आप्नावित होना, उछलना, कूदना ।

प्रतासान (सं० ति०) प्रतिरूप तथा आसायते प्रति-आ-स्ना-कर्मणि स्युर् । प्रतिनिधि ।

प्रत्याद्माय (सं॰ पु॰) प्रतिरूप-तथा भाद्मायते प्रति-भा-सा-कर्मणि-घञ् । प्रतिनिधिरूपमें विधीयमान ।

प्रत्याय (सं॰ पु॰) राजस्त, कर ।

प्रत्यायक (सं० ति०) प्रति-इ-ण्वुल् । १ विश्वासकारक । २ बोधक ।

प्रत्यायन (सं क्की) प्रति-सा-इ-णिच् 'नौगमिरवोधने' इति न गमादेशः भावे ल्युट् । १ वोधन । २ विश्वास-जनन ।

प्रत्यायित (सं । क्रि) १ विश्वस्त । (पु ०) २ विश्वस्त कर्म-चारी ।

प्रत्यायितव्य (सं॰ ति॰) विश्वासके उपयुक्त, विश्वास करने लायक।

प्रत्यारमा (सं० पु०) प्रतिक्षपः आरम्भः प्राविसं। पश्चात् आरम्म । पहले आरम्म करके पीछे आरम्म करनेका नाम प्रत्यारम्म है ।

प्रत्यालीड़ (सं० क्की०) प्रति-सा-लिह-क । १ धन्यीगणके पादसंस्थानविशेष, धनुष चलानेवालोंके वैठनेका एक प्रकार । इसमें वे धनुष चलानेके समय बायां पैर आगे बढ़ा देते हैं और दिहना पैर पीछे खींच लेते हैं । (ति०) २ आखादित, चला हुआ । ३ अशित, खाया हुआ ।

प्रत्यावत्तंन (सं॰ ह्वी॰) प्रति-आ-वृत-णिच्, वा भावे ल्युट्।१ प्रतिनिवृत्ति । २ प्रतिनिवारण ।

प्रत्यावृत्त (सं॰ ति॰) प्रति-सा-यृत-क । १ प्रत्रागत, लौटा हुआ । २ पुनरावृत्त, दोहराया हुआ ।

प्रत्याशा (सं की) प्रति-किञ्चित् वस्तु लक्षीकृता भा समन्तात् अश्तुते व्यामोतोति प्रति-आ-अश्-अच्, ततप्राप्। १ आकांक्षा, मरोसा। २ प्रताय।

मत्याश्रय (सं॰ पु॰) प्रति-आ-श्रि-अच् । आश्रयगृह, एनाह छेनेको जगह ।

प्रत्यात्राव (सं॰ पु॰) पति-आ-श्रु-णिच्, भावे अच्। १ उद्देश करके श्रावण। कर्मणि अच्। २ 'अस्तु ओषड़्' ऐसा शन्द्।

प्रत्याश्रावण (सं० क्को०) प्रति-आ-श्रु-णिच्, माचे ल्युट्। सम्नीध्र कर्वक अध्वयुं के प्रति मन्तविशेषका आश्रवण। प्रत्याश्वास (सं० पु०) प्रति-आ-श्वस्-घम्। पुनर्वार आश्वास।

प्रत्याश्वासन (सं० क्ली०) प्रति-आ-श्वस-णिच् -्ह्युट्। सान्त्वनार्थं आश्वासन।

प्रत्यासङ्ग (सं॰ पु॰) १ संश्रव। २ संयोग।

प्रत्यासित (सं ॰ स्त्री॰) प्रति-आ-सद् भावे किन् । १ नैकट्य, निकटता । २ नैयायिक मतसिद्ध अलौकिक प्रतास जनक सम्बन्धमात । आधित देखो ।

प्रत्यासन्न (सं० ति०) प्रति-आ-सद्-क । निकटवत्तीं, नजदीकका ।

प्रत्यासर (सं॰ पु॰) प्रत्यास्त्रियते इति प्रति-आस् (ऋरो-रप्। पा ३१३।४७) इत्यप्। सैन्यपृष्ठ, सेनाका पिछला भाग।

प्रत्यासार (सं॰ पु॰) प्रत्याक्षियते प्रति-मा-स्-घन् । सैन्य-पुष्ठ, सेनाका पिछळा भाग ।

प्रत्याखर (सं॰ पु॰) प्रत्याखरित प्रति-आ-ए-अच्। १ प्रत्यागत। २ सूर्य। सूर्य अस्त हो कर फिर उदित होते हैं, इसीसे इनका सूर्य नाम पड़ा है।

प्रत्याहरण (सं० क्की०) प्रति-आ-ह भावे त्युद्। १ प्रत्या-हार। २ प्रत्यावर्त्तन।

प्रत्याहार (सं॰ पु॰) प्रति-आ-ह भावे घडा । १ अपने अपने विषयसे इन्द्रियका आकर्षण । २ योगाङ्ग विशेष, योगके आठ अङ्गीमसे एक अङ्ग जिसमें शन्द्रयोंको उनके विषयों-से हटा कर चित्तका अनुसरण किया जाता है ।

> "प्रत्याहारस्य तकेश्च प्राणायामस्तृतीयकः। समाधिर्धारणं ध्यानं पड्ड्रो योगसंप्रहः॥"

> > (भरत)

प्रत्याहार, तक, प्राणायाम, समाधि, धारण और ध्यान यही छः योगके मङ्ग हैं। पातञ्जलदर्शनमें यम नियम आदि आढ योगाङ्ग कहे गये हैं। इनमेंसे प्रत्याहार पञ्चम योगाङ्ग है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम नामक योगाङ्गके मनुष्ठान द्वारा शरीर और मनके परि- एकत वा सुसंस्कृत होनेके वाद प्रत्याहार नामक योगाङ्ग- का अम्यास करना पड़ता है। पूर्वोक्त चारके सिद्ध होनेसे इसका अम्यास सहज हो जाता है। यदि चक्षु रादि इन्द्यां किसी सुन्दर क्रण पर दुरे भावसे जा पड़े, तो उन्हें वहां- से हटा कर अपने चित्तको शान्त करनेका नाम प्रत्याहार है। चक्ष जिससे द्वरी राह पर न दौड़े, कण जिससे अप- शब्दका अवण न करे, नासिका जिससे द्वरी गंध न ले, ऐसा ही उपाय करना चाहिये। प्रत्येक इन्दिय जिससे अपने अपने ग्रहीतव्य विषयका त्याग कर अविकृत

अवस्थामें चित्तकी भनुगत रहे, वही करना चाहिये। इसी अभ्यासका नाम प्रत्राहार है। यह प्रत्राहार नामक योगाङ्ग जब अभ्यस्त हो जाता है, तब जानना चाहिये, कि सभी इन्द्रियां वशीभूत हो चुकी हैं। मनोहर रूप देखने-से चक्षु खभावतः ही उस और आरुष्ट होता है। किन्तु कैसा ही मनोहर रूप क्यों न हो, इस योगके अभ्यस्त हो जानेसे चक्षु जरा भो उस पर आसक नहीं होगा। जब सभी इन्द्रियां इसी राह पर आ जाँय, तब समक्षना चाहिये, कि प्रत्राहार नामक योगाङ्ग सिद्ध हो चुका। इन्द्रियां जब इच्छानुरूप वशीभूत होती हैं, तब समाधि आसानीसे करतलगत हो जाती है।

प्रतग्रहार योगाङ्गका अभ्यास दड़ा ही कठिन है। यदि कोई अस्त्रधारी राजा अपने नौकरके हाथ चपनी भर तेल देकर कहे, कि शांत्र जाओ, दौड़े हुए जाओ, पर देखना, तेल गिरने न पाचे, अगर एक बुन्द भी गिरेगा, तो इसी अख्रसे सिर काट लिया जायगा, ऐसी अवस्थामें भृत्यको जिस प्रकार दूढ़चित्त रखना आवश्यक है, जिस प्रकार अङ्ग-संयमकी आवश्यकता है- अत्राहार अभ्यासकालमें भी उसी प्रकार दृढ्चित्त और अङ्गसंयमकी आवश्यकता पड़ती है। कुछ दिन वाद जब वह अभ्यस्त वा खायत्त हो जायगा, तव चित्तको जिधर चाहो, घुमा सकते हो । अव चक्षु रादि इ'द्रिया भी उसका अनुवर्त्तनकरेंगी ; किसी भी प्रकारका रूप चक्ष को और कोई भी शब्द कर्णको आकर्षण नहीं कर सकता । जब यह प्रत्याहार सम्पूर्णेरूपसे भायत्त हो जायगा, तव धारणा, ध्यान वा समाधि उसके लिये कुछ भी कठिन मालूम नहीं पड़ेगा। यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये चार योगाङ्ग जव तक अच्छी तरह अभ्यस्त नहीं हो जाँयगे, तव तक इसकी सिद्धि नहीं हो सकती। (पात्रज्ञलद • साधनपा •)

३ संज्ञाविशेष, एक प्रकारकी संज्ञा।
प्रत्याहार्य (सं ० ति०) प्रत्याहारके योग्य।
प्रत्युक्त (सं ० ति०) प्रति-वच कमेणि क। १ उत्तरित,
जिसे जवाव दिया गया हो। २ प्रतिवाक्य द्वारा निराकृत।
प्रत्युक्त (सं ० स्त्री०) प्रतिवचनमिति प्रति-वच भावे
किन, प्रतिकृपा उक्तिरिति वा। प्रत्युक्तर, जवाव।
प्रत्युच्चारण (सं ० क्ली०) पुनर्वार उच्चारण, फिरसे कहना।

प्रत्युजीवन (. सं ० क्री०) प्रति-उद्-जीव भावे ल्युट्। पुनर्जीवन, मरे हुए ब्यक्तिका फिरसे जी उठना। "रसविच्छेदहेतुत्वात् मरणं नैव वर्ण्यते। वर्ण्यतेऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्यावदूरतः॥' (साहित्यद०)

रसविच्छेदके कारण कान्य और नाटकादिमें मृत्यु-का वर्णन नहीं करना चाहिये। यदि मृत्युका वर्णन किया भी जाय, तो शोध ही उसका प्रतुर्जीवन वर्णन करना भी आवश्यक है। जिस प्रकार कविने कादस्वरी-में पहले मृतुरका वर्णन करके पीछे जीवनप्राप्तिका भी वर्णन किया है।

प्रत्युक्त (सं० अव्य०) प्रति-च उक्तच इति द्वन्द्वः। १ वैप-रोत्य, इसके विरुद्ध, विष्कि, वरन्। २ किसी दूसरेके पक्षका खंडन या अपने पक्षका मंडन करनेके लिये विप-रीत भाव, विपरीतता।

प्रत्युत्कर्षं (सं ० पु०) मूल्याधिक्य।

प्रत्युत्क्रम (सं ॰ पु॰) प्रत्युत्क्रमिनित प्रति-उत्क्रम-घज्। १ प्रकृष्ट योग, युद्धके लिये तैयारी। २ प्रधान प्रयोजना-नुकूल प्रयोजनानुष्ठान, वह उद्योग जो कोई कार्य आरम्म करनेके लिये किया जाय। ३ युद्धका प्रथम आक्रमण, जो युद्धके समय सवसे पहले हो।

प्रत्युत्क्रान्ति (सं० स्त्री०) प्रति-उत्-क्रम-किन् । प्रत्युत्क्रम । प्रत्युक्तविध (सं० स्त्री०) १ धारण । २ अवस्रम्बन । ३ रक्षण । ४ स्थापन ।

प्रत्युत्तस्भ (सं॰ पु॰) प्रत्युत्तव्धि ।

प्रत्युत्तर (सं० क्ली०) प्रतिकपमुत्तरं । उत्तरका उत्तर, जवावका जवाव।

प्रत्युत्थान (सं० क्की०) प्रत्युत्थोयते इति प्रति-उत्-स्था-ल्युट्। १ अभ्युत्थान, किसी वड़े या पूज्यके आने पर उनके खागत और आदरके लिये आसर्न छोड़ कर उठ खड़ा होना।

प्रत्युत्थायिन् (सं० ति०) प्रति उत् स्था-णिनि युकागमः। प्रत्युत्थान कारक, अभ्युत्थान करनेवाला । प्रत्युत्थेय (सं• ति०) प्रत्युत्थानके उपयुक्त । प्रत्युत्पन्न (सं• ति०) प्रति-उत्-पद-क । १ उत्पत्ति- विशिष्ट, जो फिरसे उत्पन्न हुआ हो। २ जो ठोक समय । पर उत्पन्न हुआ हो। ३ सत्त्रर, हठात्।

प्रत्युत्पन्नमति (सं ० ति ०) प्रत्युत्पन्ना तत्काळोचिता मितर्यस्य । १ उपस्थित विषयमें जिसकी बुद्धिका स्फूरण हो, ठीक समय पर जिसकी बुद्धि काम कर जाय । २ स्क्ष्मबुद्धियुक्त । पर्याय—कुशाधीयवुद्धि, स्क्ष्मदर्शी, तत्काळघी, प्रतिमान्वित ।

पत्युदाहरण (सं ० क्ली ०) प्रतिकृत्वमुदाहरणं प्रादिस ०। उदाहरणके वैपरीत्य द्वारा उदाहरण ।

प्रत्युद्दगति (सं ० स्त्री०) प्रति-उत्-गम । प्रत्युद्दम । प्रत्युद्दगम (सं ० क्ली०) प्रति-उत्-गम-अप् । १ प्रत्युत्थान, किसीके आने पर उसका स्यागत करनेके छिपै उठ कर खड़ा हो जाना । २ प्रतिगमन ।

प्रत्युद्रमन (सं क क्ली) प्रति-उत्-गम-व्युट् । प्रत्युत्थान । प्रत्युद्रमनीय (सं क ति क) प्रति-उत्-गम-अनीयर् । १ प्रत्युद्रगमनने उपयुक्त, सम्मान करने योग्य । (क्ली क) २ भीतवस्त्रयुग्म, एक प्रकारका वस्त्र जो प्राचीन कालके यश्रीमें या भोजनके समय पहना जाता था ।

प्रत्युद्वार (सं ॰ पु॰) वायुजन्य रोगभेद, एक प्रकारका वायुरोग।

प्रत्युद्यम (सं॰ पु॰) १ तुल्यपरिमाण । (बि॰) २ प्रत्युद्यमयुक्त । ३ तुल्य परिमाणविशिष्ट ।

प्रत्युचिमन् (सं॰ बि॰) प्रति-उत्-यम-अस्तार्थे इनि । १ तुल्य परिमाणविशिष्ट। २ अद्भ्य । ३ तुल्य वलशाली । प्रत्युचात् (सं॰ बि॰) प्रति-उद्द-या-तृच् । विरुद्धमें गमनकारो, शब् पर आक्रमण करनेवाला ।

प्रत्युवामिन् (सं ० ति०) प्रति-उत्-यम-णिनि । १ तुन्य परिमाणविशिष्ट । २ अदम्य । ३ समकक्ष ।

प्रत्युन्तमन (सं ० क्ली०) प्रतिकृत्वमुत्रमनं प्रादिस० । फिर-से अझ होना ।

प्रत्युपकार (स ॰ पु॰) प्रतिक्षपः उपकारः प्राद्सि॰ । उपकाराजुक्षप हितानुष्ठान, वह उपकार जो किसी उपकारके वद्छेमें किया जाय।

प्रत्युपकारिन् (सं o ति o) प्रति-उप-क्र-णिनि । प्रत्युपकार, उपकारका बदला देनेवाला ।

Vol. XIV. 144

प्रत्युपिकया (सं ॰ स्त्री॰) प्रतिरूपा उपिकया प्रादिस॰ । प्रत्युपकार ।

प्रत्युपदेश (सं॰ पु॰) प्रति-उप-दिश-घज् वा प्रतिरूपः उप-देश प्रादिस॰। १ उपदेशानुरूप शिक्षाप्रदान। २ उप-कारानुरूप हिताचरण।

प्रत्युपभोग (सं॰ पु॰) प्रति-उप-भुज-धन् । सुखमीग । प्रत्युपमान (सं॰ क्की॰) उपमानका वैपरीत्य ।

प्रत्युपवेश (सं ॰ पु॰) वलपूर्वक राजी कराना।

प्रत्युपस्थान (सं॰ क्ली॰) निकटवत्तीं स्थान, आसपासकी जगह।

व्रत्युपस्पर्शन (सं ० क्ली०) जल द्वारा धौतकारण, पानीसे साफ करना।

प्रत्युपह्व (सं॰ पु॰) देवताओंका आवाहन-मन्त्रपाठ । प्रत्युपहार (सं॰ पु॰) प्रतिक्रपः उपहारः प्रादिस॰। अनु-क्रप उपहार, भेंट देनेयोग्य द्रवा ।

प्रत्युपाकरण (सं० क्ली०) पुनः वेदपाठारस्म ।

प्रत्युपेय (स^{*}० ति०) १ प्रतिदानके योग्य, दानदेने छायक । २ आलोचनोय, विचारने छायक ।

प्रत्युत (सं॰ ति॰) प्रति चप्-क । १ जो धौतुकमें दिया गया हो । २ सज्जित, सजाया हुआ । ३ लचित, जड़ा हुआ । ४ विचितित, जींचा हुआ ।

प्रत्युरस (सं॰ अबा॰) उरसि विभक्तार्थे व्ययोभावः । (प्रेतेहरसः सन्तमीस्थात पा ५१४।=२) वक्षःस्थल पर, छाती पर ।

मत्युल्क (सं ॰ पु॰) प्रतिकृत उल्कस्य प्रादिस ॰।१ काक, कौवा। प्रतिकृषः उलुको यस्य कप्। २ उल्लूकी आकृतिका एक पक्षी।

प्रत्युप (सं ॰ पु॰) प्रतोषति विनाशयति अन्धकारमिति प्रति-उप्-दाहे (इग्रवहाति । पा ३।१।१३६) इति क । प्रत्यूप, प्रभात, तङ्का ।

अत्युपस् (सं ॰ क्ली॰) प्रत्योपति नाशयतान्धकारमिति प्रति-उप् (डपः कित्। डण् ४।२३३) इति असि, स च कित्। प्रत्यूप, प्रातःकाल।

प्रत्युद्ध[°] (स'० अन्य) अहर्ध्वदिक, अपरकी ओर।

प्रत्यूप (सं ॰ पु॰) प्रत्यूपति रुजति कामुकानिति प्रति-ऊप् रोगे क । १ प्रभात, तड्का । २ स्प्रं । ३ वसुभेद, एक वसुका नाम । प्रत्यूपस् (सं ० क्की०) प्रति-उप्-असि । प्रभात, तड़का । प्रत्यूष्य (सं ० ति०) दहनीय, दाह करनेके योग्य । प्रत्यूह (सं ० पु०) प्रयूत्हनमिति प्रति-ऊह-घञ् । विघ्न, वाधा ।

प्रत्यृच (सं॰ अन्य॰) ऋचं ऋचं प्रति वीप्सायामन्ययी॰ भावः अच्समासान्तः। एक एक ऋक्में।

प्रत्येक (सं० ति०) समृह अथवा वहुतोंमेंसे हरएक, अलग अलग।

प्रत्येकत्व (सं ० पु०) प्रत्येकका भाव या धर्म।
प्रत्येकबुद्ध (सं ० पु०) १ एकबुद्धका नाम। २ मानवकी
बुद्धत्वप्राप्तिका क्रमभेद। १म प्रत्येक, २य श्रावक और
३य महायानिक, ये तीनों मिल कर 'लि-यान' कहलाते
हैं। वौद्धशास्त्रमें सैकड़ों बुद्धका उल्लेख है।

प्रत्येक्शस् (सं० अव्य०) एक एक कर । प्रत्येतव्य (सं० ति०) स्वीकृत, मंजूर किया हुआ । प्रत्येनस (सं० पु०) १ विचारक । २ उत्तराधिकारी, जो मरे आदमीके ऋणका दायी हो ।

प्रतास (सं॰ पु॰) प्र-तसु-घञ्। १ भय, डर। २ कम्प, कंपकंपी।

प्रथन (सं ० ह्वी०) प्रथ-ल्युट्। १ प्रकांशकरण, प्रकाशमें लानेकी क्रिया या भाव। २ विस्तार। ३ गुल्मभेद, एक प्रकारकी लताः

प्रथम (सं ० ति ०) प्रथते प्रसिद्धो भवतीति प्रथ । प्रथे सन् । हण् भाई ८) इति अमच् । १ प्रधान, मुख्य । २ आदिम, पहला, आदिका । पर्याय—आदि, पूर्व, पीरस्त्रा, आच, अग्रिम, प्राक् । ३ सर्वश्रेष्ठ, सबसे अच्छा । (कि ० वि ०) ४ पहले, पेश्तर, आगे ।

प्रथमक (सं० ति०) प्रथम-खार्थे कन्। प्रथमशब्दार्थ। प्रथमकिएत (सं० ति०) पहले जिसकी कल्पना की गई हो।

प्रथमकारक (सं ॰ पु॰) व्याकरणमें कर्त्ताकारक। प्रथमकुसुम (सं ॰ पु॰) शुक्तमरुवकवृक्ष, सफेद फूलके अगस्तका वृक्ष।

प्रथमगर्भ (सं॰ प्र॰) प्रथम वारका गर्भ । प्रथमच्छद (सं॰ ति॰) १ प्रथमका आच्छादन । २ अग्नि-का आच्छादयिता i प्रथमज (सं ० ति ०) प्रथमं जायते जन-इ। १ पूर्वजात, जो पहले उत्पन्न हुआ हो। २ प्रथम गर्भजात, जो सबसे पहले गर्भसे उत्पन्न हुआ हो। ३ अप्रज, ज्येष्ट। प्रथमजात (सं ० ति ०) प्रथमे जातः। अप्रज, वड़ा। प्रथमतः (सं ० अव्य०) प्रथम-सप्तम्पर्थे तसिल्। पहलेसे, सबसे पहले।

प्रथमपुरुष (सं ॰ पु॰) १ आदिपुरुष, पुराने जमानेका आदमी। २ व्याकरणोक्त आख्यात विभक्तिका संज्ञावोधक शब्द, व्याकरणमें वह सर्वनाम जो वोलनेवाले
पुरुषको सूचित करता है। ३ मैतायणीसूतके प्रणेता,
प्रथमप्रकाशके शिष्य।

प्रथयभाज् (सं ० ति०) प्रथम-भज-ण्वि । १ प्रथम भाग ब्रह्ण करनेवाला । २ उत्पत्तिकालविभागकारी ।

मथमयज्ञ (सं॰ पु॰) यज्ञका प्रथम उत्सर्ग ।

प्रथमरात (सं ० पु०) रातिका प्रथम भाग।

प्रथमवयसिन् (सं ॰ ति ॰) प्रथमवयोऽस्त्यस्य बाहु ० इनि सान्तत्वात् न पदत्वं । प्रथमवयोयुक्त ।

प्रथमवास्य (सं ० ति०) पूर्वपरिहित ।

प्रथमिवत्ता (सं ० ति०) प्रथमं वित्ता विन्ना लब्धा। प्रथमपरिणीता स्त्री, पहलेकी व्याही औरत।

प्रथमश्रवस् (सं ० लि०) अतिशय ख्यातियुक्त, जिसे धन वा यशकी ख्याति हो ।

प्रथमसङ्गम् (सं॰ पु॰) प्रथम सम्मेलन, पहली बार सुलाकात।

प्रथमसाहस (सं ॰ पु॰) साहस द्एडभेद, प्राचीन व्यव-हारशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका साहसद्एड। इस द्रुडमें २५० पण तक जुरमाना होता था। यह द्रुड-साधारण अपराधोंके लिये होता था।

प्रथमस्थान (सं ० क्वी ०) वेदमन्त उचारण करनेके समय धीमा या नीचा स्वर ।

प्रथमस्वर (सं ॰ क्ली॰) सामभेद, एक प्रकारका साम-गान ।

प्रथमा (सं० स्त्री०) १ मद्य, मिद्रा। २ व्याकरणका कर्त्ताकारक।

प्रथमागामिन् (सं ० ति ०) प्रथमोक्त, जो पहले कहा गया हो। प्रथमाङ्ग लि (सं ० पु० स्ना०) प्रथमा अंगुलिः कर्मधा० । वृद्धांगुष्ट ।

प्रथमादेश (सं ० पु०) किसी पदके पहले आदेश । प्रथमाद्धे (सं ० पु० क्ली०) पूर्वाद्धे, पहलेका आधा माग प्रथमाश्रम (सं ० पु० क्ली०) प्रथमः आश्रमः कम०। ब्रह्म-वर्याश्रम ।

प्रथमेतर (सं ० ति ०) प्रथमादितरः । प्रथम भिन्न, दूसरा । प्रथयत् (सं ० ति ०) प्रथ-णिच्-तृण् विख्यातिकारक । १ विस्तृतिकारक, फैलानेवाला । २ घोषणाकारो, घोषणा करनेवाला ।

प्रथस् (सं ० ति०) प्रवृद्ध, खूद वढ़ा हुआ।
प्रथस्वत् (सं ० ति०) विस्तारयुक्त, खूद लस्या सौड़ा।
प्रथा (सं ० स्त्री०) प्रथ-(विद्धिद विभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४)
इत्यङ् ततष्टाप्। १ ख्याति, प्रसिद्धि। २ रीति, रिचाज,

प्रथित (सं ० ति ०) प्रथ-क । १ ख्यात, मशहूर । (पु०) २ पुराणानुसार स्वारोचिष मनुके पुतका नाम ।

प्रथितत्व (सं ० क्ली०) प्रथितस्य भावः त्व । प्रथितका भाव या धर्म ।

प्रधिति (सं ० स्त्री०) स्याति, प्रसिद्धि ।

प्रथिमन् (सं॰ पु॰) पृथोर्मावः (पृथ्वादिभ्यइम्निज्या । पा ५।१।१२२) इति इमनिच्, प्रथादेशः । १ पृथुका भाव, पृथुत्व, वहुतायत । (वि॰) अतिशयेन पृथुः इमनिच्। २ अतिशय पृथुत्वयुक्त, खूव सम्या चौड़ा ।

प्रथिमिनी (सं० स्त्री०) प्रथिमास्त्यस्या इति प्रथिमन् (बडायां मन्साभ्यां। पा पारा१३७) इति इनि । प्रथिम-युक्त स्त्री।

प्रथिवी (सं॰ स्त्री॰) पृथिवी पृपोदरादित्वात् साधुः। पृथिवी।

प्रथिष्ठ (सं॰ ति॰) अतिशयेन पृद्धः पृथु-इष्ठन, प्रथादेशः। अतिशय वृहत्, खूव लम्या चौड़ा।

पृथु (सं० पु०) प्रथते प्रथ-उण् । १ विष्णु । २ पृथु देखी । पृथुक (सं० पु०) प्रथ-वाहुं उक् । पृथुक, चिडवा ।

पद (सं० ति०) प्रद्दातीति दा-क। दाता, देनेवाला। इस शब्दका प्रयोग सदा यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है, जैसे सुखपद, मोक्षप्रद। प्रदक्षिण (सं० पु० क्की०) प्रगतं दक्षिणमिति (तिष्ठद्य प्रवतीनिच् । पा २। ११७) इति समासः । देवपूजन आदिके समय देवमूर्त्ति आदिको दाहिनी ओर कर मिक-पूर्वक उसके चारों ओर घूमना, परिक्रमा ।

> "एकं देव्यां रवी सप्त तीणि कूर्याद्विनायके। चत्वारि केशवे कूर्यात् शिवे चार्द्ध भदक्षिणम्॥" (कर्मलोचन)

स्त्रीको देवताके उद्देशसे एक वार, रिवके सात वार, विनायकके तोन वार, केशवके चार वार और महादेवके अर्द्धवार प्रदक्षिण करना चाहिये।

कालिकापुराणमें प्रदक्षिणका विषय इस प्रकार लिखा है,—वाहिने हाथको फैला कर तथा सिर भुका कर देवताको दाहिनी और कर एक या तीन वार उनको जो परिक्रमा की जाती है, उसे प्रदक्षिण कहते हैं। यह प्रदक्षिण सब प्रकारके देवताओंका तुष्टिप्रद है। जो मनुष्य देवीका एक सौ आठ वार प्रदक्षिण करता है उसकी सब प्रकारकी कामना सिद्ध होती और आखिर उसे मोक्ष-लाम होता है।

तन्त्रसारमें लिखा है—

"दक्षिणाद्वायवीं गत्वा दिशं तस्याश्च शाम्मवीम् । ततश्च दक्षिणां गत्वा नमस्कारिक्षकोणवत् ॥ अद्धं चन्द्रं महेशस्य पृष्ठतश्च समीरितम् । शिवप्रदक्षिणे मन्त्री अद्धं चन्द्रक्षमेण तु ॥ सक्यासव्यक्षमेणेव सोमसूतं न लङ्घ्येत् ।" 'सोमसूतं जलनिःसरणस्थानं' "प्सार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्नशिराः पुनः । दश्येत् दक्षिणं पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः । तिघा च वेष्टयेत् सम्यक् देवतायाः प्रदक्षिणं ॥"

प्रवृक्षिणकालमें पहले दक्षिणसे वायुकोण, पीछे शाम्मवी दिक् और तदन्तर दक्षिणदिक् जा कर विकोण-वत् नमस्कार करे। पृष्ठदिक्से अर्ज्ञ चन्द्राकारमें शिवका प्रदक्षिण करना कर्त्तव्य है। दाहिना हाथ फैला कर और सिर भुका कर दाहिनी ओरसे प्रदक्षिण करना चाहिये।

हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि भक्तिपूर्वंक देव-प्रदक्षिण करनेसे यमपुरका दर्शन करना नहीं पड़ता। तीन वार प्रदक्षिण और साएाङ्ग प्रणाम करनेसे दश अश्वमेघ करनेका फल होता है।

> "प्रदक्षिणां ये कुर्चन्ति भक्तियुक्ते न चेतसा । न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम् ॥ यस्त्रिःभदक्षिणं कुर्यात् साष्टाङ्गक्रभणामकम् । दशाश्वमेधस्य फलं प्राप्नुयानात संशयः॥" (हरिभक्तिविवे)

भक्तिपूर्वेक विष्णुके विमानका एक वार प्रदक्षिण करनेसे सौ अध्वमेधयक्ष करनेका फल होता है। जो भगवान विष्णुका प्रदक्षिण करता है, वह इंसयुक्त विमान पर चढ़ कर खर्गलोक जातां है। विष्णुका एक वार प्रदक्षिण नहीं करना चाहिये।

"एकहरूतप्रणामश्च एका चैव प्रदक्षिणा।
भकाले दर्शनं विष्णोहेन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥"
भकाले भोजनादि समये' (हरिभक्तिवि० ८वि०)
एक हाथसे प्रणाम, एक वार प्रदक्षिण वा अकालमें
विष्णुदर्शन करनेसे पुराकृत सभी पुण्य नए होते हैं।
अतएव देवताका एक वार भूल कर भी प्रदक्षिण नहीं
करना चाहिये। (हरिभक्तिवि० ८वि०)

(ति०) २ समर्थं, योग्य । प्रदक्षिणा (सं० स्त्री०) १ ष्रदक्षिण देखो । २ प्रदक्षिण स्थान । प्रदक्षिणिक्रया (सं० स्त्री०) प्रदक्षिण-कार्यं, प्रदक्षिण करना ।

प्रदक्षिणपद्विका (सं॰ स्त्री॰) प्राङ्गणभूमि, आंगन। प्रदक्षिणाञ्चेस् (सं॰ ति॰) जिस भग्निकी शिखा दाहिनी ओर पुज्वलित हो।

प्रदक्षिणावर्त्त (सं० ति०) १ प्रदक्षिणार्चिस् । २ दक्षिणा-वर्त्त, दक्षिण ओर पाकयुक्त ।

प्रदक्षिणावृत्क (सं० वि०) दक्षिणकी ओर न्यस्त, जो दाहिनी ओर स्थित हो।

प्रदक्षिणित् (सं० अन्य ०) प्रदक्षिणं पृपोदरादित्वात् साधुः । प्रदक्षिण ।

प्रदग्ध्य (सं० ति०) प्र-दह-तन्य। दहनयोग्य, दाह करने लायक।

प्रदत्त (सं० ति०) प्र-दा-क । १ अर्पित, जो दिया जा चुका हो । (पु०) २ गन्ध्रवेभेद, एक गन्धवंका नाम । प्रदिद (सं० ति०) प्रकृष्ट दानयुक्त ।

प्रदर (सं॰ पु॰) प्र-द्व-विदारणे ऋदोरप्। पा ३।३।४७) इति अप्। १ भङ्ग, फोडने या तोड़नेका भाव। २ दारणसाधन वाण, भिद्नेवाळा तीर । ३ विदार, फाइना । ४ स्त्रीरोगभेद, स्त्रीका एक रोग । (Fluor albus) यह रोग दो प्रकारका है-एंक जिसमंसे साव छाल रंगका होता है, उसे रक्तप्रदर वा मेनोरेजिया और जिसमें साव सफेद रंगका होता है, उसे श्वेतप्रदर वा ल्युकोरिया कहते हैं। इसका दूसरा नाम अस्कृद्र है। श्लीरमत्स्यादि संयोग-विरुद्ध द्रव्यभोजन, मद्यपान, पहलेका आहार जीर्ण होने पर भी पुनर्वार भोजन, अपन्त द्रव्यभोजन, गर्मणत, अतिरिक्त मैथुन, पथपर्यटन, अधिक यानारोहण, शोक, उपवास, भारवहन अभिघात, और दिनमें अतिनिहा आदि कारणोंसे प्रदर रोग उत्पन्न होता है। गर्भाशयसे सफेद या लाल रंगका लसीदार पानीसा वहना और और उससे कभी कभी दुगन्य निकलना ही इस रोगका साधारण लक्षण है। जिस प्रदरमें अपक रसयुक्त, पिच्छिल, पाण्डुत्रणं और धोए हुए मांसके जलकी तरह स्नाव निक-लता है, उसे कफज ; जिसमें पीत, नील, कृष्ण वा रक वर्ण उणास्त्राव दाह और वेदनाके साथ प्रवलवेगमें निक-छता है, उसे पित्तज ; जिसमें रूझ, अरुणवर्ण, फेनदार और धोये हुए मांसके जलको तरह स्नाच वहुत दर्द करके निकलता है, उसे वातज कहते हैं। सन्निपातज प्रदर-रोगमें मधु, घृत वा हरिताल रंगका साव निकलता है भौर उसमेंसे मुर्देकी सी गन्ध निकलती है। यह वहुत कठिन रोग है। चिकित्सा करने पर भी दूर नहीं होता। प्रदररोगिणीके रक्त और वलका क्षोण होनेसे स्नाव हमेशा निकलता रहता है तथा तृष्णा, दाह और ज्वरादि उप-द्रवके उपस्थित होनेसे रोग असाध्य हो जाता है।

वाधक नामक रोग भी प्रदररोगके अन्तर्गत है। प्रायः सभी वाधकोंमें कभी कभी योनिद्वारसे अल्पपरिमाणमें श्वेत स्नाव निकलता है। किटमें, दोनों स्तनमें अधवा सारे शरीरमें दारुण वेदना होती है। वाध देखो।

वातजप्रदररोगमें दीघ ६ तोला, सचल लवण है आने भर, तथा कृष्णजोरा, यप्टिमधु और नीलोत्पल— प्रत्येक 19 आने भर तथा मधु आघ तोला सदको एक रोगीको सेवन करावे । पित्तजप्रदरमें अङ्कसको रस अथवा गुलञ्जके रसको चीनीके साथ मिला कर सेवन करे। रक्तप्रदरमं श्यासका उपद्रव रहनेसे उक्त श्रीषघ-के साथ कञ्जिका और सींड मिलाना उचित है । यह-हुमरके रसका लाक्षाके जलके साथ सेवन करनेसे प्रदर-रोगका रक्तस्राव अतिशीघ यंद हो जाता है। २ तोला भशोककी छालको आध सेर जलमें सिद्ध कर जब पाव भर जल रह जाय, तव उसमें सेर भर दूध डाल दै। वाद उसे फिर आंच पर चढ़ावे । जब देखे, कि केवल दूधका भाग दच गया है, तद उसे उतार हो। रोगिणीके अग्निवलभी विवेचना कर उपयुक्त माहामें उसे सेवन करनेसे रक्तप्रदर निवारित होता है। दर्थादि काथ, उत्पलादि कल्क, चन्दनादि चूर्णं, पुष्यानुगचूणं, प्रदरादिजौह, प्रदरान्तकलौह, अशोकधृत, सितकल्याण घृत, अशोकारिए और पताङ्गसच आदि यावतोय औषध-का रोगोका अवस्था देन कर प्रयोग करे। अजीर्ण, अग्निमान्य और ज्वर आदि उपद्रव रहनेसे घीका सेवन विलक्कल निषेध है । वायुका उपद्रव अथवा पेटमें वेदना रहनेसे प्रियङ्ग् वादि वा प्रमेहमिहिरतैल मदैन करे, इससे भारी उपकार दे नेमें आयेगा।

प्रदर आदि रोगोंमें पुराना वारोक चावल, मूंग, मसूर और चनेको दाल, कच्चे केले, करेली, डूमर, पटोल, पुराने कुम्हड़ेको घृतपम्ब तरकारी रोगोका दिनका पथ्य है। यदि पचा सके, तो वीच वीचमें वकरेके मांस-का जूस भो दे सकते हैं। रातको क्षधानुसार रोटो आदि खाना आवश्यक है। तीन चार दिनके अन्तर गरम जलसे स्नान कराना हितकर है।

प्रदर्शिद लीह (सं० क्की० औपघमेद । प्रस्तुत प्रणाली— कूटजकी छाल १२॥० सेर, पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष ८ सेर । इस क्वाथको छान कर फिरसे पाक करे । गाढ़ा होने पर उसमें वराकान्ता, मोचरस, आकनादि, वेलसींट, मोथा, धाईका फूल, अतीस, अवरकको मस्म और लोहे-की भस्म प्रत्येकका एक पल चूर्ण जाल दे । इसकी माता ।०) चवकोसे ले कर १ तोला तक है । कुशमूल-चूर्ण मिश्रित जल इसका अनुमान वतलाया गया है। इसमें पुष्टिकर और वलवद्ध के गुण है।

Vol. XIV. 145

साथ मिला दे। दो दो घंटेके वाद २ तोला मालामें प्रदरान्तकरस (सं० क्री०) औषधविशेष । प्रस्तुत रागीको सेवन करावे। पित्तजप्रदरमें अद्भूसके रस प्रेवन अध्या गुलञ्चके रसको चीनीके साथ मिला कर सेवन को मस्म, प्रत्येक द्रव्य आधा तोला और लोहा तीन तोला, करे। रक्तप्रदरमें श्वासका उपद्रव रहनेसे उक्त औषध- के साथ कित्रका और सींठ मिलाना उचित है। यहा- वालो स्थाप के प्रदर्भ स्थाप सेवन करनेसे प्रदर- करनेसे सब प्रकारके प्रदररीय जाते रहते हैं।

प्रदरान्तकलीह (सं० क्ली०) भीषधमेद । प्रस्तुत प्रणाखी-लोहा, ताँवा, हरिताल, राँगा, अवरक, कीड़ी, सोंठ, पोपर, मिचं, हरितकी, आमलकी, वहेड़ा, चितामूल, विड्ङ्ग, पञ्चलवण, चई, पोपल, शङ्कमस्म, वच, ह्युपाफल, कुड़, कचूर, आकनादि, देवदाह, इलायची, वीजताड़कका वीज, इन सब द्रव्योंके वरावर वरावर माग चूर्णको मधु और चीनीमें डाल कर घोंट ले। वाद उसे घीके साथ माधना दे कर गोली वनावे। (रम्म्लाकर)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें लिखा है, कि पूर्वोक्त सभी समान भागके चूर्णको एक साथ मिला कर गोली बनावे। पोछे घृत, मघु और चीनीके साथ उसका सेवन करनेसे रक्त, श्वेत, नील और पीतादि कठिन प्रदर दूर हो जाते हैं।

प्रदर्श (सं॰ पु॰) प्र-द्वश-घन्। १ व्रशैन, भे ट, मुलाकात। २ आदेश, हुकुम।

प्रदर्शक (सं० ति० प्र-दर्शि-ण्युल् । १ प्रदर्शनकारी, दिख-कानेवाला । दर्शक, देखनेवाला । (पु०) ३ द्रष्टा, गुरु । प्रदर्शन (सं० क्ली००) प्र-द्वश्-णिस्-स्युट् । १ उल्लेख, जिक । २ दिखलानेका काम । ३ प्रदर्शनी ।

प्रदर्शनी (सं ॰ स्त्री॰) वह जगह जहां हर तरहकी वस्तुएं लोगोंको दिखलानेके लिये रखी जायें । नुमाइश ।

प्रदर्शित (सं ० ति ०) जो दिखलाया गया हो, दिखलाया हुआ।

प्रदर्शी (सं ॰ बि ॰) द्शैन, देखनेवाला ।

प्रवल (सं ॰ पु॰) प्रकर्षेण दलति दालयतीत्यर्थः चा-प्र-दल-अच् । वाण, तीर ।

प्रदव (सं ॰ पु॰) दुनोति दु-अच् 'दुन्योरनुपसर्गे' इति अनुपसर्गे इत्युक्ते न ण । १ प्रकृष्टतापक । भावे अप् । २ प्रकृष्ट ताप ।

प्रदच्य (स'॰ पु॰) प्रद्वाय हितं वाहु॰ यत् । दावाग्नि, जङ्गळकी भाग । प्रदहन (सं॰ क्ली॰) प्र-दह-न्युर्। प्रकृष्ट रूपसे दहन, अच्छी तरह जलना।

प्रदा (सं ॰ स्त्री॰) प्र-दा-भावे अङ् । १ प्रकृष्टदान । (ति॰) २ प्रकृष्टदायक ।

प्रदाता (हिं ० ति०) प्रदातृ हेखो ।

प्रदातृ (सं ० ति०) प्रद्दातीति प्र-दा-तृण् । १ प्रक्रप्रदान-कारक, दाता (पु०) २ वह जो खूव दान देता हो, वहुत वड़ा दानी । ३ इन्द्र । ४ विश्वदेवके अन्तर्गत एक देवताका नाम ।

प्रदातन्य (सं ० ति ०) प्र-दा-तन्य । दानके योग्य । प्रदान (सं ० क्वी ०) प्र-दा-भावे ल्युट् । १ दान, देनेकी किया । २ प्रकृष्ट दान, वस्तृशिश । ३ विवाह, शादी । ४ अंकुश ।

प्रदानक (सं० क्ली०) प्रदान-स्वार्थे-कन्। प्रदान देखो। प्रदानरुचि (सं० ति०) प्रदाने रुचिर्यस्य। जिसे दान-कार्यमें रुचि हो।

प्रदानवत् (सं॰ ति॰) प्रदान अस्त्यर्थे मतुप्. मस्य व । दानयुक्त, दानशोल, दानी ।

प्रदानशूर (सं ॰ पु॰) १ दानवीर, वहुत वड़ा दानी। २ एक वोधिसत्वका नाम।

प्रदानिक (सं ० ति०) प्रदान-सम्बन्धीय ।

प्रदान्त (सं॰ पु॰) सम्प्रदायभेद।

प्रदापयितृ (सं० ति०) प्र-दा-णिच्-तृच् । दानकारी, दान करनेवाला ।

प्रदायक (सं॰ ति॰) प्रदानकारी, देनेवाला।

इसका कारण मालूम किया जाता है।

प्रदायिन् (सं ० ति०) प्र-दा-णिनि । प्रदानकारी, जो दे । प्रदाव (सं ० ति०) दावाग्नि, जङ्गलकी आग ।

पृदाह (सं 0 पु 0) प्-दह-घञ्। दाह। व्याधिष्रस्त जीव-शरीरमें ज्वराधिक्य अथवा दारुण वेदनाके समय जो उत्ताप मालूम होता है, उसे चिकित्साशास्त्रमें प्रदाह (Inflammation) कहा है। वाह्य वा स्थानिक प्रदाह होनेसे वह स्थान लाल और स्फीत देखा जाता है तथा रोगी उस स्थानमें वेदना और उत्ताप अनुभव करता है। आभ्यन्तरिकं होनेसे वेदना और ज्वर आदि लक्षण द्वारा

वहुतसे चिकित्सकोंका कहना है, कि देहाम्यन्तरस्य

किसी यन्त वा विधानके आहत नहीं होनेसे प्राह नहीं हो सकता। फिर कोई कहते हैं, कि विधान वा उसको रक्त नालियोंके एक समय विनष्ट होने पर भी प्राह नहीं हो सकता। सुविज्ञ चिकित्सकोंने उसके जो अनेक प्कारके आनुमाणिक कारण वतलाये हैं उनमेंसे कुछ नीचे दिये जाते है।

डा॰ सएडरसन (Dr. Burdon Sanderson) के मतसे इसका प्रधान कारण आधात है जो विधान अथवा यन्त्रके मध्य किसी न किसी प्रकारसे उपस्थित हो सकता है। डा॰ लिएर (Dr. Lister) का कहना है, कि स्नायुमएडल वा किसी विशेष स्नायुमें उत्तेजनाके कारण मासोमोटर नामक स्नायु विगड़ कर प्रवाह उत्पन्न करता है। डा॰ भिकों (Dr. Virchow) के मतसे सभी विधानोंके परिपोपणका व्याधात होनेसे प्रवाह होता है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि सुद्म उद्धिज्ञादि (Grm) हारा ही प्रवाह हुआ करता है।

प्रदाहके दो कारण वतलाये जा सकते हैं—! पूर्व-वर्त्ती और २ उद्दीपक । पूर्ववर्त्ती कारण दो प्रकारका है, साधारण और स्थानिक ।

अति भोजन द्वारा रक्ताधिक्य या अनाहार और पीड़ाके द्वारा रक्तकी होनता, विविधमादक द्रव्यके सेवन- से शारोरिक श्लीणता, स्कोटकयुक्त ज्वर, वातरोग, उप- दंश और वहुमूलादि व्याधिमें रक्तका विपाक होना अथवा मूलयन्द्र वा चमकी कियाका सुचारुह्तपसे निर्याह न होना, शरीरके मध्य अनिष्टकर पदार्थोंका उत्पादन निवन्धन और शिशु, वृद्ध वा रक्तप्रधान धातुविशिष्ट व्यक्तियोंका शारीरिक प्रदाह—ये सब साधारण कारण हैं। विधान वा रक्तनालोकी अपकृष्टता वा अप्रवल रक्ताधिक्य और स्पर्शशक्तिकी होनता अर्थात् उत्ताप वा उत्तेजक द्रव्यका संयोगज्ञान नहीं रहना हो स्थानिक प्रदाहका कारण है।

उद्दीपक कारण तीन अंशोंमें विभक्त है—! साधा रण उद्दीरक कारण, २ स्थानिक उद्दीपक कारण और ३ आनुसङ्गिक (Secondary) उद्दीपक कारण।

साधारण उद्दीपक कारण—शरीरके मध्य वायु द्वारा विपाक पदार्थका प्रवेश अथवा आप ही आप विपर्का उत्पत्ति, जैसे वातरोगमें विष कत्तृं क पेरिकाडाइटिसकी
उत्पत्ति। धर्मावस्थामें शरीरमें शीतल वायु लगनेसे
ध्राम्यन्तरिक सभी यन्त्रोंमें प्रदाह उत्पन्त होता है। इसके
द्वारा त्वक्स्थ रक्तन।लियोंका सङ्कोचन होता हैं। अधिक
रक्त आम्यन्तरिक यन्त्रके मध्य प्रवाहित होनेसे अथवा
धर्मितिवारण होनेके वाद अनिष्टकर पदार्थ वाहर निकलने
नहीं पाते जिससे यन्त्रके मध्य प्रदाह मालूम पड़ता है।
सहसा प्राचीन चर्मरोगके आरोग्य होनेके वाद अथवा
किसी पर्यायिक अपस्नावके वन्द्र हो जानेसे आम्यन्तरिक
यन्त्रमें रक्त अधिक जमा हो जाता है जिससे प्रदाह होने

आधात अथवा शरीरके मध्य किसी कृमि, क्षतास्थि, अर्बुंद, पथरी आदिका अवसान, त्वक्संलग्नमें क्षत वा फोस्कादिका कारण (अग्नि अथवा कोटन आपल आदिका संस्पर्श), विपाल जन्तुका दंशन, आर्सेनिक सेवन अथवा अधिक शीत वा उत्तापका अवस्थान ही स्थानिक उद्दोपनका कारण है।

निकटवत्तीं स्थानसे प्रदाहकी विस्तृति, यान्तिक कियाधिक्य और स्नायुकी उत्तेजना ही आनुसङ्क्रिक कारण है। वैंग अथवा वादुरके दैनेको सुईसे विद्य करने-से उत्तेजनाके वाद् छोटी छोटो धमनियां पहले संकु-चित हो कर पीछे प्रसारित होने लगती हैं। धमनी-प्रसारणके कुछ वाद शिरा और कैशिकासमूहका प्रसा-रण होता हैं। प्रदाह होनेसे सुदम रक्तनालियां दिखाई देती हैं। उस समय रक्तस्रोत वड़ी तेजीसे वहता है। घीरै घीरै शोणित शिथिलमावमें सञ्चालित हो कर अव-रुद्धताको प्राप्त होती है। प्रदाहित स्थानके चारों वगल रक्त प्रवस्करममें सञ्चालित होता है। पीड़िताङ्गमें उसकी सञ्चालन-क्रिया चौगुनी वढ़ जाती है। प्रदाहित स्थान-के कोधोंमें विशेष परिवर्त्तन देखा जाता है । कहीं कहीं न्तन कोपकी भी उत्पत्ति देखी जाती है। मूलयन्तके प्रदाहमें युरिनारी टिउरने मध्य मेघाकृति अखच्छ इपिधि-लियम (Clondy swelling)-की तरह वह अस्वच्छ औ। स्फीत देखा जाता है। प्रदाहके वढ़नेसे वे नये कोप गलने लगते हैं।

प्रदाहित स्थानसे एक प्रकारका तरल पदार्थ निक-

छता है। कारण, स्थानविशेषमें यह निःस्त पदार्थः नाना प्रकारका हो जाता है। तरछ होनेसे उसे सिग्म् और गाढ़ा होनेसे छिम्फ कहते हैं। श्लैष्मिक फिछोके प्रवाहजनित छिम्फका नाम म्युसिन् (Mucin) है।

प्रदाहके दीर्घकाल तक स्थायी होनेसे उससे तत्तत् अङ्गका रूपान्तर हुआ करता है। १ शोपण, २ पूय, ३ सत, ४ कोमलता, ५ विगलन और ६ इड़ता आदि प्रदाहके परिणाम हैं। प्रदाह अनेक प्रकारका है-१ प्रबल और ऐष्यूट (Acute), अप्रवल वा सवसे ऐक्यूट, प्राचीन वा क्रणिक, बलवत् वा स्थेनिक (Sthenic), हुबैल ना एथेनिक (Asthenic), विस्तृत या डिफ्यूज (Diffuse) सीमावद वा सर्कम्पसकाइब्ड (Circumscribed) खोत्पन्न वा प्राहमरी (Primary) और अनु-सङ्गिक वा सेकेएडरी। प्रदाहनिवारणके लिये घर्मकारक, मुतकारक, विरेचक और अवसावक भौपधादिका प्रयोग आवश्यक है। रोगी यदि दुवैल हो, तो उसे वलकारक आहार और सुरा देवे। निद्रा और वेदनानिवारणके लिये अफीम मिली इई औषधादिका प्रयोग करे । मूल-यन्त्र, मस्तिष्कं और फुल्फुसके प्रवाहमें अ कीमका सेवन वडी होशियारीसे करे।

प्रदि (सं ० ति ०) प्र-दा-'उपसर्गे घोः किः' इति-कि । त्रदानकर्त्ता, दानी ।

प्रदिग्ध (सं ० क्ली०) प्र-दिह-कर्मणि क । १ मांसव्यक्षन-मेद, विशेष प्रकारसे एका हुआ मांस । अधिक घृतमें पहले मांसको अच्छी तरह भून ले । पीछे उसे उत्पाजल-में उत्तम रूपसे सिद्ध कर जीरा गोलमिर्च मसाला आदि डाल दे । बाद नीचे उतार कर घृत, तक और विजा-तक (दाख्बीनी, इलायची, तेजपव)-से, वधार ले । इसी-को प्रदिग्धमांस कहते हैं । इसमें वलकर, मांसकर, अग्नि-वर्ष क और कफिपत्तनाशक गुण माना गया है । (वि०) २ स्निग्ध किया हुआ, तेल या घीसे चिकना किया हुआ।

प्रदिव (सं श्रि) प्रकर्षेण दीव्यति प्र-दिव्धिव । १ प्रकर्षक्षपमें द्योतमान, जो खूव चमकता हो । (स्त्री) २ पुरातन, पुराना । ३ प्रकृष्ट दिन । ४ पूव दिन । प्रदिश् (सं० स्त्री०) प्रगता दिग्भ्यः । १ विदिक्, दो मुख्य दिशाओं के वीचका कोना । २ प्रकृष्ट दिक् । प्रदिशा (हि० स्त्री०) प्रदिश् हेखा । प्रदीप (सं० पु०) प्रकृषण दीपयित प्रकाशयित प्रदीप्यते इति वा, प्र-दीप-णिच् वा-क । दीप, दीआ, चिराग । पर्याय स्नेहादीपक, कज्जलध्यज्ञ, शिखा-तक, गृहमणि, ज्योत्स्नावृक्ष, दशेन्धन, दोषातिलक, दोषास्य, नयनो-त्सव ।

"न कारणात् स्याद्विमिदे कुमारः
प्रवित्तिते दीप इव प्रदीपात्।" (रघु ५१३७)
देवपूजामें दीपदान अवस्य करना चाहिये। दीपदान
विशेष पुण्यजनक है।

कालिकापुराणमें इस प्रदीपका विषय इस प्रकार लिखा है—प्रदीप सात प्रकारका है, घृतप्रदीप, तिलतैल-युक्त-प्रदीपः सार्षपतैछयुक्त प्रदीप, निर्यासजात-पृदीप, और अन्नजात दधिजात राजिकाजात प्रदीप, प्रदीष । विना प्रदीपके किसी भी प्रकारका दैवकार्य नहीं करना चाहिये। दैव वा पैत कोई भी कार्य करना हो, पहले प्रदीप वालना आवश्यक है। उक्त सात प्रकारके प्रदीपोंमें पांच प्रकारको वत्तीका व्यवहार किया जा सकता है। पद्मभव स्त्त, दर्भगर्भस्त, शणज, वादर और कोषो-द्भवस्त इन पांच प्रकारके स्तोंसे प्रदीपकी जो वत्ती वनाई जाती हैं वे विशेष प्रशस्त हैं। तैजस, दारुमय, वा नारिकेलजात दोपींका मुण्मय छौहनिमिंत, आधार वनावे और इन हीमेंसे किसी आधार . पर दीप रखे । भूछ कर भी जमीन पर न रखे। वसु-मती सव कुछ सहन कर सकतो है केवल दो चीज नहीं अकायके निमित्त पदाघात और प्रदीपका ताप । अत-**ए**व जिससे पृथ्वी पर ताप छ**ाने न** पावे, वैसा ही उपाय करना चाहिए। यदि पृथ्वी पर किसी प्रकार ताप लग जाय, तो ऐसा प्रदीप देनेसे ताम्रताप नामक नरक होता है । देवताओंको जो दोष दान करना होता है, उसका ताप यदि चार उ'गली दूरसे पाया जाय, तो उसे पाप-विह कहते हैं। ऐसा प्रदीपदान विशेष अनिष्टजनक है। नेलादिके आह्वादकर, शोमनादियुक्त, भूमितापवर्जित, सुशिख, शब्दशून्य, निर्धूम, अनित हस्त और दक्षिणावर्त्त-

वर्त्तियुक्त प्रदोप विशेष लक्ष्मीपुद हैं। पृदीप यदि द्यु पर स्थित हो और उसका पात स्नेह द्वारा परिपृरित रहे तथा वत्ती यदि दक्षिणावर्त्तमें रह कर उज्जवलभावसे जन्ने, तो वही प्रदीप सर्वोत्तम और सव देवताओंका तुष्टिप्र माना गया है। यदि वह दीप वृक्ष पर न रहे, तो मध्यम और यदि प्रदीपपातमें तेल न हो, तो उसे अधम कहते हैं। साधक शणसूत वा वृक्षके त्वक अथवा जीर्ण और मिलन वस्त्रकी वत्ती काममें न लावे। श्रीवृद्धिके लिये सर्वदा रुईकी वत्तीका प्रयोग करे। कीपज वा रोमज सूत वत्तीके लिये विलक्कल निषिद्ध है। घृत और तेल दोनोंको एक साथ िला कर प्रदोप न वाले, वालनेसे तामिस्र नामक नरक होता है। प्राणीकी चर्वी, मजा और अस्थिनिर्यास प्रदीपमें न डाले, डालनेसे नरक भुगना पड़ता है। अस्थिनिर्मित पात अथवा दुर्गन्यादिः युक्त पात्रवें प्रदीपस्थापन न करे। देवताके निमित्त कल्पित पृदीप कभी भो न बुतावे। जानकर अधवा लोभादिके वशीभूत हो कदापि पृदीपका हरण न करे, क्योंकि दोपहारक अंधा और निर्वापक व्यक्ति बहरा होता है। (बाल्कापु॰ ६८) कार्त्तिकमासमें आकाशमें अवश्य दीप जलाना चाहिये, इससे अक्षयफल लाम होता है।

"कार्त्तिके मासि यो दद्यात् प्रदीपं सर्पिरादिना । आकारो मण्डके वापि स चाक्षयफलं लभेत्॥" (कर्मलो॰)

अग्निपुराण आदिमें भी इस प्रदीपका विवरण लिखा है, पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया । कार्तिकी कृष्णाचतुर्दशीमें प्रदीपदान विशेष मङ्गलजनक है । शेष शब्द देखी ।

२ प्रकाश, रोशनी । ३ वह जिससे प्रकाश हो । ४ सम्पूण जातिका एक राग । इसके गानेका समय तीसरा पहर है । कोई कोई इसे दीपक रागका एक पुत वत-छाते हैं ।

प्रदीपक (सं॰ पु॰) १ प्रकाशक, प्रकाशमें लानेवाला।
२ नी प्रकारके विषोंमेंसे एक प्रकारका भयंकर स्थावर
विष । इसके सुंघने मालसे मनुष्य मर जाता है। यह
विष एक पौधेको जड़ है जिसके पत्ते खजूरके से होते हैं

और जो समुद्रके किनारे बहुतायनसे पैदा होता है। इसे प्रदीपन भी कहते हैं।

प्रदीपन (सं० क्वे.०) प्रन्दीप-रुयुट् । १ प्रकाशन, प्रकाश करनेका काम। २ उद्दोपन, उज्ज्वल करना, चमकाना। (पु॰) प्रदीपयतोति प्र-दीप-णिच्-स्यु । ३ स्थावर-विप-भेद। प्रवीरक देखी।

प्रदीपशरणध्यज (सं ० पु०) महोरगराजभेद ।

पदीपशाह (सं ० पु०) राजवुलभेद ।

प्रदीपसिंह-गद्यचिन्तामणि और चित्रचुड़ामणिके रच-यिता ।

प्रदोपिका (सं ० स्त्रो०) १ छोटी छाछटेन । २ एक रागिणी जिसे कोई कोई दीवकरागको स्त्री वतलाते हैं।

पदीपोय (सं ० ब्रि०) प्रदीपाय हितः अपूपादित्वात् छ । प्रदीपहित ।

प्रदीस (सं ० ति ०) प्र-हीप-कर्त्तीर क । १ उज्ज्वल, चमक-दार । २ प्रकाशवान्, जगमगाता हुआ ।

प्रदीतवर्मा—सिंहपुर-राजवंशके एक राजा । आप जाल-न्धरमें राज्य करते थे।

प्रदीप्ति (सं॰ स्त्री॰) १ प्रकाश, रोशनी । २ आभा, चमक ।

पदीर्घ (सं ० ति०) अतिशय दीर्घ, खूद चौड़ा ।

पदुद् (सं ० त्नि०) प्र-दुह-सत्स्ब्रियेत्यादिना किप् । प्रकर्य-रूपसे दोग्धा, जो अच्छी तरह दूही गई हो।

प्रदूपक (सं ० वि०) नष्टकारी, वरवाद करनेवाला ।

पद्गप्ति (स' । स्त्री । । द्वप्तियुक्त, अत्यन्त अहङ्कारी)

प्रदृषण (स'० हि०) १ नष्टकारो, चौपट करनेवाला । (क्री॰) २ नष्ट, बरवाद ।

प्रदेय (सं० ति०) प्र-दा-यत्। १ दानके उपयुक्त, विवाह करनेके योग्य । २ दान करने योग्य, जो देनेके छायक हो। (पु०) ३ उपहार, भेंद, नजर।

मदेश (स'o पु॰) प्रदिश्यते इति प्र-दिश् (हडश्च । वा ३।३। १२३ इति बञ् (दपसर्गस्य घटन्यममुख्ये बहुर्छ । ६१३।१२२) इति पाक्षिको दीर्घाभावः। १ किसी देशका वह वड़ा विभाग जिसकी भाषा, रोति, व्यवहार, जलवायु, शासन-पद्धति आदि उसी देशके अन्य विभागोंकी इन सव वातोंसे भिन्न हीं। प्रान्त, स्वा। २ स्थान, जगह, मुकाम।

Vol. XIV. 146

३ संज्ञा, नाम । ४ तन्त्रयुक्तिविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारकी तन्त्र-युक्ति । ५ चुद्धांगुष्टके आगेसे तर्जनी के अप्र पर्यन्त परिमाण, अंगुडेके अगले सिरेसे ले कर तर्जनीके अगले सिरे तककी दूरी, छोटा वित्ता या वालिश्त । ६ अङ्ग, अवयव। ७ भित्ति, दीवार। ८ पद् ।

प्रदेशकारिन् (सं ० ति०) प्रदेशं करोति ऋ-णिनि । १ एक देशकारी। (पु॰) २ योगियोंका एक सम्प्रदाय।

प्रदेशन (सं क्री) प्रदिश्यते अनेनेति प्र-दिश-करणे ल्यूर्। वह जो किसी वड़े या राजाको उपहारके रूपमें दिया जाय, भेंट, नजर। पर्याय-प्राभृत, उपायन, उपग्राह्य, उपहार, उपदा ।

प्रदेशनी (सं ० स्त्री०) प्रदेशन-ङोप् । तजेनी, अं गृहेके पासकी उ'गली।

प्रदेशवत्। सं ० ति०) प्रदेशः अस्त्यर्थे मतुष् मस्य व । प्रदेशयुक्त ।

प्रदेशिनो (स[°]० स्त्री०) प्रदिशतीति प्र-दिश-णिनि, ङीप् । १ तर्जनी, अंगूटेके पासकी उंगली । २ शास्त्रविशेष, एक शास्त्रका नाम।

प्रदेशी (सं ० ति०) प्रदेश सम्बन्धी, प्रदेशका । प्रदेख (सं ॰ पु॰) धर्माधिकरणिक, विचारक। प्रदेह (स°० पु॰) प्रदिह्यते इति प्र-दिह लेपने-वञ्। प्रलेप, वह औपथ या लेप आदि जो फोड़े पर उसे दवाने-के लिये लगाया जाय। २ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका व्यञ्जन ।

प्रदोप (सं ॰ पु॰) दोपा रातिः, प्रारम्मे दोपाया इति प्रादिसः । १ रजनोमुल । रातिके प्रथम चार दएडका नाम प्रदोष है। "प्रदोषोऽस्तमगादूर्द घटिकाद्वयमिन्यते।" 'षटिका दग्रह द्वय'' (तियितस्व) सूर्यके अस्त होनेके वाद दो घटिका समयको प्रदोपकाल कहते हैं। सूर्यास्तके वाद चार दएडकाल ही प्रदोष है। कोजागरी लक्ष्मीपूजा आदि प्रदोपकालमें करनी होती है।

रातिके प्रथमभाग-अर्थात् प्रथम प्रहरको भी प्रदोप त्रयोदशी, चतुर्थीं, सप्तमी और द्वादशी तिथिके प्रदोषमें अध्ययन नहीं करना चाहिये। इन सव प्रदोर्जेका नाम यथाकम सारखत, गाणपत, सौर और.

वैष्णव प्रदोप है। यहां पर प्रदोप शब्दका अर्थ है, रातिके बाद। अर्थात् लयोद्शी प्रभृतिकी रातिमें अध्ययन न करे। प्रदोपव्रत स्थलके प्रदोप शब्दमें रात्रिका प्रथम एक प्रहर ऐसा अर्थ स्थिर करना होगा। कोजागरी छक्ष्मी-पूजा आदि स्थलमें प्रदोप शब्दका अर्थं सूर्यास्तसे ४ दग्ड काल समकता चाहिये। इस हिसावसे स्थान विशेषमें प्रदोव शब्दका अर्थ ४ दएड, १ प्रहर और सारी रात होता है। प्रदोपवतका विषय हेमाद्रिके वतखएडमें सविस्तार लिखा है,-शास्त्रमें कई जगह प्रदोपकालमें कियानुष्टान-का विधान है। किन्तु प्रदोप शब्दका अर्थ यदि ४ दएड, १ पहर और सारी रात हो, तो किस समय कैसा अर्थ प्रहुण करना होगा ? इसके उत्तरमें केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि कर्मविशेपमें शास्त्रकी उक्ति देख कर उसे स्थिर करना ही विधेय है। फलतः प्रायः अधिकांश जगह सूर्यास्तके बाद प्रथम चार दण्डको ही प्रदोपकाल वतलाया है। स्थानिवशेपमें प्रदोप शब्दका अर्थ एक पहर वा सारी रात होने पर भो वह कर्म विशेपमें विशे-षोक्ति द्वारा ही पृथक् रूपमें समका जायगा। 'मदीयो रजनीमुख'' (अप्तर) रजनीके मुखभागका नाम प्रदोप है। इस उक्ति द्वारा भी प्रदोप शब्दसे राविका प्रथम चार दण्डकाल ही समभा जाता है।

"बद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यश्वरुणाय कल्पते ॥" (कुमार पृष्ठिष्ठ)

२ वड़ा दोष, भारी अपराध । ३ वह अंधेरा जो संध्या समय होता है। ४ तयोदशीका वत । दिन भर उप्रवास करके संध्या समय शिवका पूजन करनेके वाद भीजन करना होता है। यह वत प्रायः, पुतकी कामनासे हो किया जाता है। (ति०) ५ दुए, पाजी।

प्रदोषक (स'० ति०) प्रदोषे भवः काळात् ठञ्चंधित्वा पूर्वाहे त्यादिना बुन् । प्रदोषकाळभव, प्रदोषकाळमें होनेवाळा।

प्रदोह (सं ॰ पु॰) प्र-दुह-धञ्। दोहन, दूहना।
प्रद्धटिका (सं ॰ स्त्री॰) पञ्जाटिका देखो।
प्रद्धु (सं • क्ली॰) प्रस्टा द्योः खर्गां यस्मात् तत्। पुण्य।

प्रद्युद्ध (सं० पु०) प्रकृष्टं द्युम्नं वस्तं यस्य । १ कन्दरं, कामदेव । २ रुक्मिणीगर्भजात श्रीकृष्णके पुत । ये भग-वान वासुदेवके चतुर्थां श थे ।

"एकदेवं चतुःपादं चतुर्धा पुनरच्युतः। विमेद वासुदेवोऽसो प्रद्यु झो हरिरव्ययः॥" तथा—"अनिरुद्धः खयं ब्रह्मा प्रद्यु झः काम एव च। वलदेवः खयं शेषः कृष्णश्च प्रकृतेः परः॥" (ब्रह्मवैवर्त्तंषु० श्लीकृष्णजनम ११६ अ०)

पुराणमें लिखा है, कि कामदेव जव महादेवके कोपाग्निमें भस्म हो गये, तब पतिवियोग-विधुरा रित-देवी महादेवके पास जा कर वहुत विछाप करने छगी। पीछे उनकी स्तुति करके सामिलामके लिये पार्थना की। रतिको कातरोक्तिसे शिवजीका कोध शान्त हुआ। उन्हों-ने रतिसे कहा, 'श्रीकृष्णके औरस और रुक्मिणीके गर्भसे मदन जनमग्रहण करेगा, सो तुम दुःख शोकादिका परित्याग कर अपना घर चली जा।' यथासमय छन्नी-रूपा रिक्षमणीके गर्भसे कन्द्र्वस्पधारी प्रयुक्तने जनम-ग्रहण किया । जन्म होनेके सातवें दिन श्रीकृष्णके प्रवह शतु शम्बरासुरने उसे हर लिया । यह वात श्रीकृत्णको मालूम तो हो गई, पर उन्होंने इसका कुछ भी प्रतिविधान न किया। दैत्यपति शस्वरको रानोका नाम मायावती था। मायावतीके कोई पुल न था; अतएव शम्बरने प्रयु ब्रको मायावतीके हाथ सौंप दिया । मायावती भी पुलक्तित अन्तःकरणसे वालकका मुखचन्द्र निरीक्षण कर-के आनन्द-सागरमें गोता खाने छगो । धीरे धीरे उसे अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्त स्मरण होने लगे। अव उसे पक्की धारणा हो गई कि, 'देवादिदेव शूलपाणिने कुद्ध हो कर इन्हींको अनङ्ग किया था। ये ही मेरे पूर्वजन्मके स्वामी हैं।' अव शिशुको अपना पति जान उसने लालन पालन स्वयं करना उचित न समऋ धायके हाथ लगा दिया। रसायनके प्रयोगसे प्रयुद्ध थोड़े ही दिनोंके मध्य जवान हो गये। इस प्रकार परिवर्द्धित हो उन्होंने मायावतीके निकट दानवीमायाकी शिक्षा दी।

अव मायावती भी उनसे स्त्रीके समान भाव प्रकट करने लगी। यह देख प्रद्युम्नने एक दिन मायावतीसे पूछा, 'तुम मेरे प्रति पुलमाव छोड़ कर इस प्रकारका विपरीत-

भाव क्यों प्रकाशित करती हो ? इस पर मायावती प्रयुम्नको एकान्तमें है जा कर कहने छगी, 'तुम हमारे पुत नहीं हो, शम्वरभी तुम्हारा पिता नहीं है। तुम्हारा जन्म वृष्णिवंशमें हुआ है। तुम्हारी माता रुक्मिणी और पिता श्रीकृष्ण है। तुम्हारे जन्मके सातवें दिन सौर घर-से शम्बरने तुम्हें चुरा लाया है। मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हुई हूं, तुम शम्बरको मारो और मेरा मनोरथ पूर्ण करो ।' यह सुन कर प्रद्युझ शम्बर पर बड़े विगड़े और उसका क्रोध बढ़ानेको कोशिश करने छगे। बहुत देर तक ऊहा-पोहके वाद उन्होंने भक्षास्त्र द्वारा सिहद्वारके ऊपरका रतन ध्यज काट डाला । इसकी खबर लगते ही शम्बरने क्रोधसे अधीर हो अपने पुर्तोको बुलाया और प्रच्मकी हत्या करनेमें प्रोत्साहित किया । अनन्तर चित्रसेनादि उनके सौ पुत्र अख्रशस्त्रसे परिवृत्त हो रुक्मिणीनन्दन प्रयुक्तके साथ युद्ध करनेमें तैयार हो गये। प्रयुव्नके शरजालसे विद्ध हो एक एक कर शम्बरके सभी पुत यमपुरको सिधारे। पीछे पुनः समराकांक्षासे उद्दोप्त हो प्रयुद्ध केशरीको तरह संवामस्थलमें विचरण करने लगे। शम्बर पुर्तोकी मृत्यु पर हतचेतन हो कर भी द्वम शतुके प्रभाव से झुट्ध हो गये और रणसजाकी तैयारी करने छगे। रथ पर सवार हो दलवलके साथ वे रणक्षेत्रमें कृद पड़ें। दोनोंमें घमसान युद्ध चलने लगा। पीछे दुर्घंद, केतुमाली शबुहन्ता और प्रमर्दन प्रभृति दैत्यवीरगण घोरतर युद्धके वाद मैदानमें ढंग हो गये। अव दित्यसेनागण समराङ्गण-का परित्याग कर आत्मरक्षाका उपाय देखने लगी।

अनन्तर दैत्यराज शम्बर व्यथित हृदयसे प्रद्युम्नके सामने हुए। उनकी हृदयनिहित प्रतिजिधासां वृत्ति कुछ भी घटी न थी। अब दोनों में मुठभेड़ हुई। वाहुगुद्धके वाद मायां गुद्ध आरम्म हुआ। छण्णतनय प्रद्युम्नने पहले से हो मायावतीसे यह विद्या सीख रखी थी। शम्बरने जब देखा कि शबुको परास्त करनेका कोई उपाय नहीं हैं, तब उन्होंने पार्वतीप्रदत्त हेममुद्धर चलाना चाहा। इसी समय सगैसे देवराजने नारद के हाथ वैण्णवास्त्र और अभेद्य कवच प्रद्युम्नके निकट भेज दिया। नारद भी यथा निवेदन करके इन्द्रके समीप लीटे। शम्बरने महाकुद्ध हो हैममुद्धर आने हाथमें हिवरा अद्या महाकुद्ध हो हैममुद्धर आने हाथमें हिवरा। यह मन रथ परसे उत्तर और

पार्वतीको मन ही मन प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे। देवीके वरसे दैत्यनिक्षित मुद्रर कन्दर्पके गलेमें पद्म-मालाके जैसा जा लटका। इसके वाद चैण्णवास्त्र द्वारा उन्होंने शम्बरराजको पृथ्वी पर गिरा दिया । इस प्रकार दैत्यपति शस्त्ररके निहत होने पर प्रयुक्त श्रीलामपूर्वक समरक्कान्ति दूर करनेके लिये अन्तःपुरमें रतिदेवीके साथ जा मिले । इसके वाद् ऋशवन्त नगरका परित्याग कर ने दोनों द्वारकापुरी चल दिये। थोड़े ही समयके अन्दर वे द्वारकापुरी पहुंच गये। अन्तःपुरचारो केशव-महिषोगण ऐसे कन्द्रपैवपुका अवलोकन कर युगपत् विस्मित, इष्ट और भयभीत हो गई थीं । श्रीकृष्ण इसके पहले ही नारद-के मुखसे शम्बरनिधनवार्त्ता सुन चुके थे। अव वे हठात् अन्तःपुर घुसे और पुत्र तथा पुत्रवधुको देख कर फूले न समाये। पोछे उन्होंने रुक्मिणीको सम्बोधन कर कहा, 'यह तुम्हारा ज्येष्ठपुत्र प्रद्युम्न है और यह साधुशोला कामिनो तुम्हारे पुतकी भार्या है।' अनन्तर श्रोक्रणके आदेशसे रुपिमणीदेवीने पुत और पुतवधृको स्नेहपूर्वक आिळडून करती हुई ग्रहमें प्रवेश किया।

(हरियंग १६२-१६५ स०)

३ वैष्णवींके अ गमोक चर्तु व्युहात्मक विष्णुका अंश-भेद । वासुदेय, संकर्षण, प्रधुम्म और अनिकद्ध ये चार संज्ञाकान्तव्यृह हैं। (रामानुजद॰) ४ सनत्कुमार भंश जात । ५ नड्छाके गभेसे उत्पन्न मनुके एक पुतका नाम। (ति॰) ६ अत्यन्त बली, यहन वड़ा बीर।

प्रयुम्न-१ एक प्राचीन ज्योतिर्विद् । ब्रह्मगुप्तने खरचित ब्रह्मसिद्धान्त नामक ब्रन्थमें उनका नामोक्छेख किया है। २ एक कवि । ३ चन्द्रगच्छके अन्तगत एक जैनसूरि, वोधिसागरके शिष्य और देचचन्द्रके गुरु ।

प्रद्यु मनआचार्य—संस्कृतके एक वड़े विद्वान् । इनका दूसरा नाम वेदान्ततोर्थं भी है। १५७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

वधु म्निमं ः न् चैतन्यमहाम् भुके सहचर एक वैष्णव।
'छण्णचैतन्योदयावलो' नामक प्रन्थ इन्हींका वनाया हुआ
है। २ नोलाचलवासो, जगन्नाथके सेवकों मेंसे एक। महाप्रभु जब दक्षिणदेश भ्रमण करते हुए आये, तब सार्वभीमने अपरापर भक्तोंके साथ इन्हें भी श्रीमहाप्रभुके द्शीन
करा दिये थे।

प्रद्यु म्नदास---एक प्रन्थरचियता।ये नागीइराजा दल्लेल- । प्रद्योतिन् (सं० वि०) प्रद्योतिते प्र-द्यु त्-णिनि । आलोक-सिंहके यहां रहते थे। इन्होंने १७२७ ई०में काव्यमञ्जरी-प्रनथकी रचना की थो।

प्रद्युम्नपीठ-काश्मीरके श्रीनगरके अन्तर्गत हरिपर्यंतस्थ -पवित्र तीर्थक्षेत्र ।

प्रद्यु म्नपुर (सं० क्ली०) प्रद्यु म्नकी राजधानी जो चन्द्रभागा-तीर पर अवस्थित थी।

प्रद्युम्नसूरि-१ राजगच्छके अन्तर्गत एक जैन पण्डित, अभयदेवकं गुरु। तर्कशास्त्रमें उनका विशेष पाण्डित्य था। इन्होंने दिगम्बरोंको परास्त कर उनका नाम विलक्कल मिटा दिया था। ८४ प्रन्थोंकी इन्होंने रचना की। सपा-दलक्ष, त्रिभुवनगिरि आदि जनपदोंके राजा इनकी कविता पढ़ कर वड़े प्रसन्त हुए थे।

२ चन्द्रगच्छभुक्त सर्वदेवके शिष्य ।

३ आसड़-प्रणोत विवेक-मञ्जरोके भाष्यकार वालचन्ट्र-के सहकारी। उक्त टीका १३२२ सम्यत्के कात्तिक मासमें समाप्त हुई । इन्होंने धर्मकुमार साधुकी गालिभद्चरितः रचनाकालमें (१३३४ सम्वत्में) चिरोप सहायता पहुंचाई थी। ये कनकप्रभास्रिके शिष्य थे।

विचारसारप्रकरणके प्रणेता देवप्रभाके शिष्य ।

५ चन्द्रगच्छके अन्तर्भु क एक जैनाचार्य । आप यशो-देवके शिप्य और मानवदेवके गुरु थे। तपागच्छकी पट्टा-वलीमें आपका नाम वत्तीस पर्यायोंमें उहिवित हुआ है। प्रचोत (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो द्योतः । १ रश्मि, किरण । २ यक्ष-भेद, एक यशका नाम । ३ दीप्ति, चमक ।

प्रद्योतन (सं॰ पु॰) प्रद्योतते इति प्र-युत् (अनुदात्तेतथ-इलादेः। पा शरारष्ठ इति युच्। १ सूर्य। (क्वा०) २ दीप्ति,चमक । ३ द्योतनशील, वह जो खूव जगमगाता हो । प्रद्योतन भट्टाचार्य-एक राजकवि, वलभद्रके पुत । इन्होंने बुन्दे लाराज वीरभद्रदेवके आदेशसे शरदागमचन्द्रालोक-प्रकाशकी रचना की । प्रायश्चित्त और समयालोककाव्य नामक इनके वनाये हुए दो प्रन्थ और भी देखनेमें आते हैं।

प्रद्योतनसूरिं खरतरगच्छके अन्तर्गत एक जैनस्रि । ये बुद्धदेवके शिष्य और मानदेवके गुरु थे।

युक्त, जिसमें प्रकाश हो।

पद्रच (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो द्रवः प्रादिस॰ । पलायन, भागता । पदाणक (सं श्रीत) प्र-दा-कुरिसतायां गती क, खार्थे कन्। कुरिसत गतिप्राप्त, नीच जातिका।

प्रदाव (सं० पु०) प्र-द्रु (प्रेषुस्तुस्तरः । पा ३।३।२७) इति घञ्। पलायन, भागना।

प्रदाविन् (सं० ति०) प्र-द्रु-ताच्छिरुपे णिनि । पछायनशीस, भागनेवाला ।

प्रद्वार (सं ० क्ली०) प्रगतं द्वारं प्रादिसं। द्वारप्रान्तमाग, दरवाजेका अगला हिस्सा।

प्रहिष् (सं ० ति०) प्र-हिष्-िकष् । घृणायुक्त । प्रद्वेप (सं०पु०) प्र-द्विप्-घञ्। १ द्वेप, डाह। २

घृणा। ३ शतुता, वैर, दुशमनी। प्रद्वेषण (सं॰ क्री॰) प्र-द्विप्-ल्युट्। इप ।

प्रद्वेपी (सं॰ स्त्री॰) महाभारतके अनुसार दीर्घेतमा ऋपिकी स्त्रीका नाम।

प्रधन (सं ० क्को०) प्रदध्यतीति प्र-धा (इ॰ द्विमिन्दिनि-धाञात्र- क्युः । उ^{ण्} २।८१) इति वाहुलकात् क्युः आतो लोपश्च । १ युद्ध, लड़ाई । प्रक्रप्ट' धन' यस्य । (ति॰) २ प्रभूत धनविशिष्, जिसके पास काफी सम्पत्ति हो। प्रथम्य (सं॰ ति॰) प्रभूतधननि मित्त गो।

प्रधमन (सं ० क्को०) प्र-धम-ध्वाने भावे ल्युट्। १ मुख-मारुतव्यापारभेद, वैद्यकमं वह क्रिया जिसमें कोई औपघ या चूणं आदि नाकके रास्ते जोरसे सुद्याँ कर जपर चढ़ाया जाय। २ नस्यविशेष, वैधकमें एक प्रकारकी सुँ घनी ।

प्रधर्ष (सं ॰ पु॰) प्र-धृष्-घज् । घर्षण, आक्रमण । प्रघर्षक (सं ० ति०) प्रघर्षणकारी, आक्रमण करनेवाला। प्रधर्षण (सं ० क्वी०) प्र-धृष-ल्युट् । १ आक्रमण, चढ़ाई । २ अपमान, अनादर । ३ वलपूर्वेक किसी स्त्रीका सतीत्व भंग करना, वलात्कार।

प्रधर्षणीय (सं ० ति ०) प्र-धृष्-अनीयर् । प्रधर्षणके योग्य ।

प्रधर्पित (सं । ब्रि॰) १ जिस पर आक्रमण किया गया हो।

२ जिसका अपमान किया गया हो। ३ वह स्त्री जिसके साथ वळाटकार किया गया हो।

प्रधा (सं ० ति ०) प्र-धा-भावे-अङ् । १ निधान । २ दक्ष प्रजापतिको कन्या जिसका विवाह कश्यपके साथ हुआ था ।

प्रधान (सं कही को प्रधाने सर्वमातमनीति-प्र-धा-युच्। १ प्रकृति, संसारका उपादान कारण। प्रकृतिके प्रधान जो परिणाम है, उसी बुद्धितस्वको प्रधान कहते हैं। जगत्के खृष्टिविषयमें यहो प्रधान मूळ है। कारण, इसी प्रधान से सर्वोको उत्पत्ति हुई है। फिर जब जगत्का तिरोभाव होगा, तब इसी प्रधानमें जगत् छीन हो जायगा। प्रकृति देखे।

२ महापाल, सेनाध्यक्ष । ३ परमातमा, ईश्वर । ४ वृद्धि, समक्त । ५ सविव, मन्ती । ६ राजियेभेद, एक राजियेका नाम । ७ सरदार, नेता । (लि०) ८ सवींच्य, श्रेष्ठ । पर्याय —प्रमुल, प्रवेक, अनुत्तम, उत्तम, मुख्य, वर्ष्य, वर्रण्य, प्रवज्ञ, अनवराज्ञी, पराञ्ची, अप्र, भाप्रहर, प्राय, अप्रा, अप्रीय, अप्रिम । ६ मुख्य, खास ।

प्राय, अग्रंग, अग्रंग

१ पेशवा—प्रधानमन्त्री वा कार्याध्यक्ष मोरेश्वरपिङ्गले। २ मजुमदार—आयव्ययके परिदर्शक और धन रक्षक—आवाजी सोमदेव कल्याणीके सुवेदार।

३ सर्नीस—राजकीय कागज पतादिके रक्षक और पत तथा दानपतादिके परिदर्शक

४ वङ्कनीस-गोपनीय कागज-पतादिके रक्षक और पुररक्षी सेना दलके व्यवस्थापक

पदातिक सैन्य—येशजी कङ्क ।

Voi. XIV. 147

६ द्वीर (वजीर) परराष्ट्रसचिव—सोमनाथ पन्थ। ७ न्यायाघीश—विचारविमाग।ध्यक्ष—नीराजी रावजी और गुमाजी-नायक।

८ न्यायशास्त्री हिन्दूशास्त्रज्ञ कर्म-विधि, दण्डविधि और ज्योतिपादि विज्ञान) तत्त्वका संग्रह करना । शम्भु उपाध्याय और पीछे हो इनका कार्य था। । रघुनाथ पन्थ।

पूर्वोक्त व्यक्तिगण कार्यनिर्वाहक समितिके उक्त अप्रपद् पद् पर नियुक्त हुए थे। न्यायाधीश और न्यायशास्त्री को छोड़ कर शेष छह व्यक्तियोंको सैन्यपरिवालना करनी होती थी। इस कारण उन लोगोंको अपना अपना काम करनेका अवकाश नहीं मिलता था। उनके सह-कारी द्वारा ही काम काज बलाया जाता था।

राजसिंहासन पर अधिष्ठित हो कर शिवाजीने पूर्वोक पदाभिषिक कमँचारियोंका पारसी नामके वद्हेमें संस्कृत नाम रखा। नोचे उक आठ मंतियोंके नाम दिये जाते हैं—

नाम पूर्वोपाधि संस्कृताभिधान । मोरोपन्त पिङ्गले पेशवा मुख्यप्रधान रामचन्द् पन्त मज्ञमदार पन्त अमात्य अन्नाजी दृत्त सरनोस पन्त सचिव द्त्ताजी पन्त बङ्कनीस मन्त्री हम्बीररावमोहिते सरनोबत् सेनापति जनादंनपन्त हन्नुवन्त दवीर सामन्त वालाजी पन्त न्यायाघीश न्यायाधीश रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री पिएइत राव।

ये सव पद जव संस्कृत नामोंमें परिवित्तत हुए उसके बाद्से उक्त मन्तिद्ल 'अष्टप्रधान' कहलाने लगे। यही आड व्यक्ति राजाको हर विषयमें सलाह देते थे। जब कभी लड़ाई लिड़ जाती थी, तव इन्हें दलवलके साथ रणक्षेतमें शक्ष का सामना करना पड़ता था। पहले पदाति और अश्वारोही सेनाके दो विभिन्न नायक रहते थे, पर अभी दोनोंका काम एक ही सेनापितने प्रहण किया। इसके बाद मिन्न भिन्न महाराष्ट्र-राजाओंके समयमें भी इसी प्रकार अष्टप्रधान सभा बुलाई जाती थी। प्रधान लोग राजाके सर्वेसर्वा थे। महाराष्ट्र देखी। प्रधानक (सं ० ह्यी०) प्रधान-स्वार्थे कन् । सांस्यके अनुसार बुद्धि-तत्त्व।

प्रधानकर्म (सं० क्ली०) प्रधानं कर्म । प्रधान कार्य । सुश्रुतमें लिखा है, कि कर्म तीन प्रकारका है, पूर्वकर्म, प्रधानकर्म और पश्चात्कर्म । इनमेंसे रोगकी उत्पत्ति होने पर जो कर्म किया जाता है, उसे प्रधान कर्म कहते हैं।

(सुधुत सूत्र ०५ अ०)

प्रधानक्षयि—एक भाषाके किय । इनका जन्म-संवत् १७७५ में हुआ था । इनके कियत्त अति मनोहर होते थे । प्रधान केशवराय—एक भाषा-किय । इन्होंने शालिहोत नामक अश्विचिकित्साविषयक प्रन्थ भाषामें वनाया है । प्रधानतस् (सं अठ्य) प्रधान-तिस् । प्रधान कपसे । प्रधानतस् (सं अठ्य) प्रधान-तिस् । प्रधान-तरु-टाप् । प्रधानत्व, प्रधान होनेका भाव, धर्म, कार्य या पद । प्रधानथातु (मं पु ०) प्रधानं धातु कर्मधा । चरम-धातु, शरीरके सब धातुऑमेंसे प्रधान शुक्र और वीर्य । प्रधानभाज् (सं वि ०) प्रधानं भजते भज्-िषा । प्रधानभाज् (सं वि वि) प्रधानं भजते भज्-िषा । प्रधानभाज् । सं वि वि) प्रधानं भजते भज्-िष । प्रधानभाज् । सं वि वि) प्रधानं भजते भज्-िष्ठ । प्रधानभाज् । सं वि वि) प्रधानं भजते भज्-िष्ठ । प्रधानभाज् । सं वि वि । प्रधानभाज् । सं वि वि । प्रधानं भजते भज्-िष्ठ । प्रधानभाज् । सं वि वि । प्रधानं भजते भज्-िष्ठ । प्रधानभाज्ञ । सं वि वि । ।

प्रधानातमन् (सं० पु॰) विष्णु, परमातमा ।
प्रधारण (सं० ति०) प्र-धारि-त्युट्। प्रकृष्टकपसे धारण।
प्रधायन (सं० क्री०) प्र-धाय-त्युट्। १ प्रकृष्टकपसे
धायन, खूव तेजीसे दौड़ना। २ उत्तमकपसे घौतकरण,
अच्छी तरह साफ करना। (पु०)३ वायु, ह्वा।
प्रधि (सं० पु०) प्रधीयतेऽनेनेति प्र-धा (डपधों धीः
किः। पा ३।३।१२) इति कि। नेमि, पहियेका घुरा।
प्रधी (सं० ति०) प्रकृष्टा धीर्यस्य। १ प्रकृष्ट-युद्धियुक्त,
खूव समम्तदार। २ प्रकृष्ट ध्यानकारक। (स्त्री०)
प्रकृष्टा-श्रीः प्रादिस्य। ३ उत्कृष्टा बुद्धि, अच्छी समकः।
प्रधूपित (सं० ति०) प्र-धृप-क वा प्रकृष्ण धूपितः। १
तप्त, तपाया हुआ। २ दीप्त, चमकता हुआ। ३ सन्तापित, जिसे सन्ताप या दुःख हुआ हो।

प्रधूयिता (स'० स्त्री०) न्योतिपोक्त सूर्यगन्तव्यादिक्, वह दिशा जिधर सूर्य वढ़ रहा हो ।

प्रधृष्टि (सं क्षी) प्र-धृष-क्तिन्। दमन, धर्पण, दलन।

दलन् । प्रधृष्य (सं ० ति ०) प्र-धृष-षयष् । प्रधर्षणयोग्य, दमन करने लायक ।

प्रधमा (सं० ति०) जोरसे वहना।

प्रध्मात (सं ० ति०) प्र-ध्मा-क । १ शब्दित, ध्वनित । २ सन्धुक्षित ।

प्रध्मापन (सं ० क्की०) प्र-ध्मापि-ल्युट् । अवरुद्धवायु-नालीकी श्वामकिया सम्पादन करनेके लिये एक प्रकार-की प्रक्रिया ।

प्रध्मापित (सं ० हि०) प्र-ध्मा-खार्थे णिच्-क । ध्वनित, शन्दित ।

पंध्यान (सं॰ क्ली॰) प्र-ध्यै-ख्युट् । प्रकृष्टरूपसे ध्यान, गमीर ध्यान ।

प्रध्वंस (सं ॰ पु॰) प्र-ध्वंस भावे वर्ष् । १ नाग, विनाश। २ सांख्यके मतसे किसी वस्तुकी अतीत अवस्था। सांख्य मतवाले यह नहीं मानते, कि किसी वस्तुका नाग होता है। इसीलिये वे किसी पदार्थकी अतीत अवस्थाको ही प्रध्वंस कहते हैं।

प्रध्यंसक (सं वित्) विनाशक, नाश करनेवाला।
प्रध्यंसन (सं वित्) १ ध्यंसक, नाश करनेवाला।
(क्कीव) २ ध्यंस, वरवादी।

प्रध्यंसाभाव (सं ० पु॰) न्यायके अनुसार पांच प्रकारके अभावोमिसे एक प्रकारका अभाव ।

प्रध्वंसिन् (सं • त्रि •) प्र-ध्वंस-णिनि । प्रध्वंसशील, नाग करनेवाला ।

प्रध्वस्तः सं विति) प्र-ध्यंस-कः । १ जिसका प्रध्यंस हो जुका हो, जो नष्ट हो गया हो । २ अतीत, जो बीत गया हो । (पुरु) ३ तान्तिकॉके अनुसार एक प्रकार-का मन्त्र ।

प्रनप्त, (सं ॰ पु॰) प्रगता नप्तारं जनकतया अत्यांस॰। पौलके पुल, परपोता।

प्रनर्दक सं० ति०) प्रनर्द-ण्वुल् ; णीप शत्वाभावात् न णत्वं। प्रकर्षक्रपसे नर्दनकारक ।

प्रनष्ट (सं ० ति ०) प्र-नश-क । प्रकर्षक्रपसे नागयुक्त । प्रनामी (हिं० स्त्री०) वह धन या दक्षिणा जो गुरु, ब्राह्मण या गोम्बामी आदिको शिष्य या भक्त स्रोग प्रणाम करने के समय देते हैं।

प्रनायक (सं० ति०) प्रकृष्टो नायकोऽस्य प्रशन्दस्य नयति प्रति उपसर्गत्वाभावात् न णत्वं। प्रकृष्टनायकयुका।

व्यापक।

प्रनालक सं० पु०) १ वस्तुक शाक । २ जीवशाक । पुनाशन (हिं० पु०) प्रणाशन देखी ।

प्रनाशिन् (सं॰ त्रि॰) पु-नश-णिनि, ततः णत्वं। प्रणाशशील, नाश करनेवाला।

प्रतिसित (सं ० ति०) प्र-णिस-का । चुम्यित, जिसका चुम्यन किया गया हो ।

प्रनिधातन (सं ० ह्वी०) प्र-णि-हन्-णिच् भावे घञ् विकल्पे णरवाभावः । प्रणिधातन, वध ।

प्रनिन्दन (सं॰ क्ली॰) प्र-निन्द-स्युट् । प्रक्रष्टकवसे निन्दा । प्रनीड़ (सं॰ क्लि॰) प्रगतो नीड़ात् । नीड़त्यागी, (वह पक्षी) जिसने अपना घोंसला छोड़ दिया हो। पुनृत्य (सं॰ क्ली॰) पुकृष्टकपसे नृत्य, नाच।

पूपक्व (सं ॰ ति॰) पू-पच-क्त । पूक्कप्रक्रपसे पक्य, जो भलीभांति पक गया हो ।

पूपश्च (सं॰ पु॰) पूगतः पक्षं अत्यां सं। पक्षात्र, पंसका अगळा हिस्सा।

पृषञ्च (सं ॰ पु॰) पृषञ्चयते इति प्र-पच्च व्यक्तीकरणे घञ्। १ विषयांस, उल्लट पल्लट, इधरका उधर । २ विस्तार, फैलाव। ३ सञ्चय, जमा। ४ पांच तत्त्वोंका उत्तरोत्तर अनेक भेदोंमें विस्तार, संसार, भवजाल। ५ सांसारिक व्यवहारोंका विस्तार, दुनियांका जंजाल। ६ वखेड़ा, कमेलः। ७ धोखा, ढोंग, आडम्बर।

पृपञ्चक (सं॰ त्रि॰) पृपञ्च-कन् । १ विस्तारक, फैलाने-वाला । (क्लो॰) २ विस्तृतिकरण, फैलाना ।

पुपञ्चन (सं क हो । विस्तृतिकरण, विस्तार वढ़ाना। पूपञ्चित (सं । विश्त) पूपञ्चयते स्मेति पू-पचि-क । १ विस्तृत । २ भ्रमयुक्त । ३ पूतारित, जो उगा गया हो। पूपञ्चो (सं । विश्) १ पूपञ्च करनेवाला। २ छली, कपटी । ३ भगड़ाल, वस्ने दिया।

पूपण (सं ० पु०) चिनिमय, वद्छा।

पुपतन (सं ० हो) पूपतत्यस्यात् पू-पत-ल्यु ट् । १ पतना-पादान वृक्षादि । माने ल्युट् । २ पूकर्वस्वपही पतन । (ति० ३ पूपतनीय ।

पुपथ (सं॰ ति॰) पुरुष्टः पन्था यत । शिथिल, थका-मौदा ।

पुपथ्य (सं ॰ ति ॰) पृष्ठस्यं पृथ्यं पृादिसः । १ अत्यन्तहित । २ बहुसेवित मार्गभव । पूपथ्या (सं ० स्त्री ०) हरीतकी, हड़ ।
पूपद (सं ० स्त्री ०) पूपर व्यं पूगतं वा पदमिति
पूपदिस । पादाश्र, पैरका अगला भाग।
पूपदन (सं ० स्त्री ०) पू-पद-स्युद् । पूषेश ।
पपदीन (सं ० ति ०) पूपदं व्याप्नोति छ । पादाश-

प्रपन्न (सं॰ ति॰) प्रपचते स्मेति प्र-पद-क । १ प्राप्त, आया हुआ । २ शरणागत, शरणमें आया हुआ ।

प्रवज्ञाङ् (सं ॰ पु॰) प्रयन्नमलति भृषयतीति प्रयन्न-अल् (कर्मैण्यन । पा ३।२।१) इत्यण् डलयोरैक्यं । १ प्रयुन्नाङ्, चक्रमर्देक, चक्रबंडु । २ दद्र मर्दन ।

प्रपर्ण (सं॰ क्ली॰) पतित पत्न, गिरा हुआ पत्ता। प्रपलायण (सं॰ क्ली॰) प्र-प-लय-ल्युद्। प्रकृषक्षपसे पलायन।

प्रपवण (सं० क्ली०) प्र-पूच्युट् । १ पवित्रीकरण, पवित्र करना। २ परिष्कृतकरण, साफ करना।

प्रविचणीय (सं० ति०) प्र-पृ-अनीयर् । प्रविणयोग्य ।
प्रापा (सं० स्त्री०) प्रकर्षण पिवन्त्यस्यापिति, प्र-पा
(श्रातश्चोपवर्गे । पा ३।२।१०६) इत्यङ्, व्रञ्थे को वा । १
पानीय-शालिका, वह स्थान जहां प्यासोंको पानी
पिलाया जाता है । हेमाद्रिके दानखर्ण्डमें लिखा है, कि
चैत, वैशाख, ज्येष्ठ और आवाढ़ इन चार महिनोंमें प्रपा
या पनसाल तैयार करके प्यासोंको पानी पिलावे । जिस्स
दिन इसका आरम्भ किया जाय, उस दिन ब्राह्मणः
भोजन और शेष दिन ब्राह्मण, जाति तथा कुटुम्वादिको
भोजन करा कर इसका उद्यापन करे । जो
पनसाल देते हैं, उन्हें अक्षयस्वगंकी प्राप्ति होती है।
पानीयग्रालिका देखो । २ यक्षशाला ।

प्रपाक (सं॰ पु॰) प्र-पच्-घञ्। पम्वताकरण, पकानेकी किया।

प्रपाठक (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टः पाठोऽत कप्। १ वेदके अध्यायोंका एक अंश। २ श्रौतप्रन्थका एक अंश। प्रपाणि (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टः पाणिः प्रादिसमासः। पाणि तल, ह्येली।

प्रपाण्डु (सं ० ति०) प्रकृष्टः पाण्डुः । अतिशय पाण्डु-वर्णे । प्रपाण्डुर (सं० ति०) अतिशय श्वेत, विलक्कुल सफेद। प्रपात (सं० पु०) प्रपतत्यस्मादिति प्र-पत (अक्तीरे च कारके संज्ञायां। पा ३।३।१६ इति घञ्। १ निरवलम्बन पर्वतादिका पार्थे, पहाड़ या चट्टानका ऐसा किनारा जिसके नीचे कोई रोक न हो। २ निर्फर, करना।३ उड्डीनगतिविशेष, एक प्रकारकी उड़ान। ४ कूल, किनारा। ५ प्रपातन, एकवारगी नीचे गिरना।

प्रपातन (सं ० क्ली०) पातन, नीचे गिरना।

प्रपातिन् (सं क्हो॰) प्रपातः अस्त्यर्थे इनि । प्रपात-युक्त पर्वत ।

प्रपाथ (सं ॰ पु॰) पन्था, रास्ता ।

प्रपाद (सं॰ पु॰) १ असमयमें प्रसव । २ असमयमें दान । प्रपादिक (सं॰ पु॰) मयूर, मोर ।

प्रपादुक (सं ० क्ली०) १ गमन, जाना। २ प्रत्यागमन, छोटना।

प्रपान (सं ॰ क्लो॰) पानीयशाला, पौसलां ।

प्रपानक (सं० क्की०) प्रकृष्टं पान-मस्य कप्। एक प्रकारकी पीनेकी वस्तु जो फलोंके गूदे रस आदिको पानीमें घोल कर नमक, मिर्च चीनी आदि डाल कर वनाई जाती है।

प्रपापूरण (सं ॰ क्ली॰) प्रपायः पूरणं। जल द्वारा प्रपा पूर्णकरण, हौदको पानीसे भरना।

प्रपापुरणीय (सं० ति०) प्रपापूरणप्रयोगनमस्य, छ। प्रपापूरणप्रयोजनक।

प्रपायिन् (सं॰ हि॰) पृषिवतीति प्र-पा-णिनि । १ पानकर्त्ता, पीनेवाला । २ रक्षणकर्त्ता, वचानेवाला ।

प्रपालन (स'० क्ली०) प्र-पाल-ल्युट् । प्रकृष्टकपसे पालन, अच्छी तरह रक्षा करना ।

प्रपालिन् (सं॰ पु॰) १ वलदेवका एक नाम। (ति॰) २ पालक।

प्रपावन (सं क्ह्रो॰) प्रपेव कामपुरकं वनं वा प्रकर्षेण पावयतीति पूर्णिच्-कर्त्तरि ल्यु । वनभेद, कामारण्य । प्रपितामह (सं ॰ पु॰) प्रकर्षेण पितामहः, पितामह-स्यापि पिता । १ त्रह्मा । २ परब्रह्म। ब्रह्मासे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है और ब्रह्मा परब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं, इसीसे उनका प्रितामह नाम पड़ा है। ३ पितामहके पिता, दादाका वाप, परदादा ।

प्रिपतृच्य (सं ॰ पु॰) प्रिपतामहका भ्राता, परदादाका भाई ।

प्रपित्व (सं॰ ९०) १ प्रक्रम, सिलसिला। २ संग्राम, युद्ध। ३ समीप, नजदीक। (ति॰) ४ प्राप्त, पाया हुआ। ५ सन्निहित, नजदीकका।

प्रिपित्सु (सं० ति०) प्र-पद्- सन्, उ । पानेका अभि-लापी ।

प्रपोड़न (सं० ह्रे॰) प्र-पोड़-ल्युट् । १ प्रकृष्ट रूपसे पोड़न, अच्छो तरह सताना । २ घारक औपध ।

प्रपुर्खरीक (सं० ह्यो०) प्रपौएडरीक, पुंडरिया।

प्रपुत (सं॰ पु॰) पौत, पोता।

प्रपुनाइ (सं॰ पु॰) पुमांसं नाइयतीति नइ-भ्रंशे अण्यक्षष्टः पुन्नाइः प्रादिसः पृयोदरादित्यात् साधुः। प्रपुन्नाइ, चक्कंड । इसके सागका गुण—कफनाशक, रुक्ष, रुघु, शीत और वात तथा पित्तप्रकोपक।

प्रपुन्नड़ । सं० पु॰) प्रपुन्नाड़ पृयोदरादित्वात् साधुः । प्रपुन्नाड्, चकवँड ।

प्रपुन्नाट (सं॰ पु॰) पुमांसं नाटयति नट-णिच्-अण्। चक्रमद^९ चक्रवेड ।

प्रपुताटच्छद् (सं० प्र०) चणकवृक्ष । २ चक्रमद^९पत । प्रपुत्नाङ् (सं० पु०) प्रपुत्नार्, चक्रमद^९ ।

प्रपुन्नाल (सं॰ पु॰) प्रपुन्नाड़, रस्य लत्वं । प्रपुन्नाड़ ।

प्रपुराणचृत (सं॰ ह्यो॰) बहुत पुराना घी।

प्रपुराणधान्य (सं॰ क्ली॰) वहुत पुराना धान ।

प्रपुष्पित (सं॰ ति॰) प्रकृष्ट रूपसे पुष्पित, फूलसे लदा हुआ।

प्रपूरक (सं० ति०) १ पूरणकारी, पूरा करनेवाला। २ आनन्ददायक, खुश करनेवाला।

प्रपूरण (सं क्की) प्र-पूर-स्युद्। प्रकृष्टकपसे पूरण। प्रपूरिका (सं वि) प्रपूर्वते कएटकैरिति प्र-पूर-कर्मणि-घञ् वा प्रपूरवतोति प्र-पूर-ण्डुल् कापि अतइत्वं। कएट-कारी, भटकटैया।

प्रपूरित (सं॰ ति॰) प्र-पूर-क । जो परिपूर्ण किया गया हो। प्रपूर्वग (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः पूर्वगः पूर्ववर्ती प्रादिस॰। सृष्टिके प्राग्वत्तीं परमेश्वर । सृष्टिके पहले एकमात परमे-श्वर ही थे, इसीसे उनका प्रपूर्व नाम पड़ा है।

प्रथ्यक् (सं० अन्य०) पृथककपमें ।
प्रपृष्ठ (सं० ति०) उन्ततपृष्ठ, जिसकी पीठ ऊँची हो ।
प्रपीएडरीक (सं० क्ली०) पुण्डरीक-सार्थे अञ्, प्रष्ठष्टं पीएडरीक स्पेव पुष्पं यस्य । हस्ती और मनुष्यके चक्षुका हितकर क्षद्रविटप, पुण्डरीका पीधा । कहते हैं, कि इसका रस आंखमें लगानेसे आंखके रोग दूर होते हैं । इसकी पत्तियां शालपणींकी पत्तियोंकी-सी होती हैं । संस्कृत पर्याय—चक्षुष्प, शीत, श्रोतुष्प, पुण्डरी, पुण्डरीयक, पीण्ड-रीय, सुपुष्प, सानुज, अनुज । गुण्य—चक्षुका हितकर, मधुर, तिक, शीतल, पित्त रक्त, ज्ञण, ज्वर, दाह और तृष्णानाशक । मावप्रकाशके मतसे इसका गुण—मधुर, तिक्त, क्षाय, शुक्वद क, चक्षुका हितकर, पाकमें मधुर, कान्तिप्रद, पित्त, क्ष्म और रक्त्वेषनाशक ।

प्रपौत (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण पौतः पौतस्यापि पुतत्वात् तथात्वं । पौतका पुत, पोतेका छड्का, पड्पोता । इसका पर्याय प्रतिनता है ।

प्रपौतो (सं० स्त्री०) पौतको कन्या, पोतेकी छड्की। प्रव्यायन (सं० क्ली०) प्र-व्याय-ल्युट्। वृद्धि, स्थूलता। प्रव्यायनीय (सं० ति०) प्र-व्याय-अनीयर्। वृद्धिके योग्य। प्रव्यायत् (सं० ति०) प्र-व्याय-तृष् । वृद्धियुक्त, जो स्थूल हो गया हो।

प्रप्रोथ (सं० पु० क्ली०) गुल्ममेद् ।

प्रमायन सं को को) प्र-प्लु-णिच् त्युट् । १ जलप्लावन । २ जल द्वारा अम्यादि निर्वापण, पानीसे आग वुताना । प्रफर्वी (सं को) प्रकृष्ट पर्व नितम्बस्थानं यस्या स्त्रियां कीप्, पृषीदरादित्वात् साधुः । १ प्रशस्त नितम्बा स्त्री । (ति) २ प्रकृष्टगतियुक्त, तेजीसे चलनेवाला ।

प्रफुड़ना (हिं किं) वकुलत देखी।

प्रफुलना (हिं० कि०) फूलना।

प्रफुला (हिं० स्त्री०) १ कुमुदिनी, कुईं । २ कमलिनि, कमल।

प्रफुलित (हि॰ वि॰)१ कुसुमित, खिला हुआ। २ प्रफुल, थानन्दित।

Vo. XIV- 148

प्रफुल्त (सं० ति०) प्रफुह देखो ।

प्रफुछ (सं० ति०) फलतीति फलाविसरणे का। (आदखेती। पा जाराह्म) इति इड्मावः (ति च। पा जाराहम) इति उत् (अनुप्तर्गात फुछ क्षिमेति। पा जाराहम) इति उत् (अनुप्तर्गात फुछ क्षिमेति। पा जाराहम) इति निष्ठातस्य छः, ततः प्रादिस । या प्रफुछतीति फुछविकशने अच्। १ विकाशयुक्त, बिला हुआ। पर्याय—उत्कुछ, संफुछ, व्यकोष, विकच, स्फुट, फुछ, विकसित, पुङ्ग, जूम्म, स्मित, उन्मिपित, दिनत, स्फुटत, उन्छृसित, विजृम्मित, स्मेर, विनिद्र, उन्निद्र, विमुद्र, हसित। २ कुछ-मित, फूला हुआ, । ३ खुला हुआ, जो मुंदा हुआ न हो। । असक, आनन्दित।

प्रफुल्लचन्द्र वन्दोपाध्याय—एक ख्यातनामा वङ्गीय प्रन्थकार । इनके पिताका नामं शिवचन्द्र वन्दोपाध्याय और माताका शारदासुन्दरीदेवी था। इनका जन्म १२५६ सालकी ११वीं आश्विनको हुआ था। इन्होंने अपना साराजीवन साहित्य-चर्चामें विताया था। इन्हें केवल वंगलामें ही नहीं, उड़िया, हिन्दी, तैलङ्ग, लाटिन और ग्रीक भाषामें भी अच्छा श्रान था। वाब्मीकि और तत्सामयिक वृत्तान्तको प्रकाशित करनेके पहले ही प्रफुल वात्रूने प्रीक और दिन्दू नामक एक और प्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया। आठ नौ वर्षं ग्रीक और संस्कृत भाषामें रचित ग्रन्थको एकाग्र-चित्तसे पढ़ कर इन्होंने उक्त प्रन्थकी रचना की थी। उस प्रन्थके प्रति पत्नमें जटिल भाषामें प्रन्थकारको चिन्ता-शीलता, वहुदर्शिता, पाण्डित्य और उद्गावनी शक्ति प्रस्कु-टित हुई है। उक्त प्रनथके अलावा इन्होंने दो और वड़े वड़े त्रन्थोंमें हाथ लगाया था, १ला वङ्गला भावामें एक सविस्तार मनोविज्ञान Mental Philosophy)-प्रकाश और २रा राढ़ोय त्राह्मण-समाजका इतिहास-सङ्ख्लन।

आपको साहित्यसेवासे मुग्ध हो वङ्गीय साहित्य-परिपद्दने आपको १३०५ सालमें सहकारी सभापतिका पद दे कर सम्मानित किया। वृटिश-गवर्मेंग्टने आपकी कार्य-दक्षतासे असन्न हो १६०० ई०में आपको पूर्ववङ्गके स्थायी देपुटी पोएमास्टर-जनरलके पद पर नियुक्त किया। उसी सालकी ३१वीं अगस्तको आप इस घराधामको छोड़ परलोकको सिधार गये।

प्रवन्ध (सं॰ पु॰) प्रवध्यते इति प्र-वन्ध-धञ् । १ प्रकृष्ट

वन्धन, वांधनेकी डोरी आदि । २ कई वस्तुओं या वाती-का एकमें प्रथन, योजना । ३ एक दूसरेसे संबद्ध वाक्य-रचनाका विस्तार, लेख या अनेक संबद्ध पद्योंमें पूरा होने-वाला काव्य । ४ आयोजन, उपाय । ५ पूर्वापरसंगति, बंधा हुआ सिलसिन्छा । ६ व्यवस्था, बंदोवस्त, इन्तजाम । प्रवन्धकल्पना (सं० स्त्रो०) प्रवन्धस्य कल्पना रचना । १ संदर्भ रचना, प्रवन्ध रचना । । २ वहुनृता स्तोकसत्या-कथा, ऐसा प्रवन्ध जिसमें थोड़ी-सी सत्य कथामें वहुत सी बात ऊपरसे मिलाई गई हो ।

प्रवर्षे (सं• ति•) प्र-वह स्तुतौ वृद्धौ वा अच् । प्रधान, श्रेष्ठ ।

प्रवल (सं० पु०) प्रकृष्टं वलतीति प्र-वल-प्राणने अच्। १ पल्लव, कोंपल। २ पसारिणीलता। (ति०) प्रकृष्ठं वलं यस्य। ३ प्रकृष्टवलयुक्त, वलवान, प्रचएड। ४ तु द, उप्र, जोरका।

ष्रवला (सं को को) पृक्ष्यं वलमस्याः । १ प्रसारिणी भोषधि । बि) २ प्रकृष्ट वलवती, वहुत वलवती । ३ प्रचण्ड ।

प्रवलाकिन् (सं ॰ पु॰) सर्पं, सांप ।

प्रवास (सं॰ पु॰) प्रवास देखो ।

प्रबालक । सं ० पु॰ । यक्षमेद ।

प्रबालकीर—प्रवालकीट देखो ।

प्वालपद्म (सं॰ क्लो॰) रक्तोपल, लाल कमल ।

पुंबालफल (सं ० क्ली०) पुंवालवद्गक्तं फलं यस्य । रक्त-चन्दन, लालचंदन ।

षुबाळवत् (सं० ति०) पुवाळअस्त्ये मतुप्, मस्य वः । प्रवाळयुक्त ।

प्रवालाश्मन्तक सं ७ पु ०) प्रवाल इव अश्मन्तकः रक्तः त्वात् । रकाश्मन्तक वृक्ष ।

प्रबालिक (सं॰ पु॰) प्रवालोऽस्त्यस्य वाहुत्येनेति प्रवाल (अत इनिठनौ ।पा ५/२/११५) इति ठन् । जीवशाक ।

प्रवास (सं ० पु०) प्रवास देखो ।

त्रबाह (सं ० पु०) प्रवाह देखो ।

प्रवाहु (सं ॰ पु॰) प्रगतो वाहु-मिति। कूर्परका अधी-भाग, हाथका अगला भाग, पहुंचा।

प्रबाहुक (सं॰ अध्य॰) प्ररुप्तो बाहुरत कप्। १ सीधर्मे, एक लाइनमें। २ समतलमें, सतहके वरावर।

प्रवीन (सं० ति०) प्रवीण देखी।

प्रबुद्ध (सं ० ति ०) प्र-बुध-क । १ प्रवोधयुक्त, जागा हुआ । २ पिएडत, ज्ञानी । ३ विकसित, खिला हुआ । ४ होशमें आया हुआ, जिसे चेत हुआ हो । (पु०) ५ नव योगेश्वरोंमेंसे एक योगेश्वर । ६ ऋपभदेवके एक पुत्र जो भागवतके अनुसार परम भागवत थे ।

प्रवुद्धता (स^{*}० स्त्री०) प्रवुद्धर . भावः, तल टाप् ।प्रहृष्टुः वोघ, प्रकृष्ट ज्ञान ।

प्रबुघ् (सं० ति०) प्र-बुध-किए । प्रबुद्ध ।

प्रबुध (सं० पु०) प्र-बुध-क। वोध, ज्ञान।

प्रवोध (सं० पु०) प्र-युध अप गमे भावे बज्। १ प्रकृष्ट-ज्ञान, यथाथ ज्ञान। २ विकाश, बिलना। ३ सान्त्वना, अ।श्वासन, ढाढ़स। ४ चेतावनी। ५ महावुद्धकी एक अवस्था। ६ जागना, नींदका हटना।

प्रवोधक (सं ० ति०) १ जगानेवाला । २ चेतानेवाला । ३ समभानेवाला । ४ सान्त्वना देनेवाला, ढाढ्स वंधाने-वाला ।

प्रवोधन (सं० क्ली०) प्र-बुध-ल्युट्। १ यथार्थ ज्ञान, चेत। २ जागरण, जागना। ३ जागरित करण, नींद्से उठाना। ४ सिकाश, खिळना। ५ सान्त्वना, आध्वा-सन। ६ ज्ञापन, जताना। ७ न्यूनपूर्वगन्ध चन्दनादि-का प्रयत्नविशेष द्वारा पुनर्वार सौगन्धोत्पादन, चन्दन आदि जिसकी सुगन्ध चळी गई हो, ४से फिर सुगन्धित करना।

प्रवोधना (हिं० किं०) १ जगाना, नींदसे उठाना। २ सचेत करना, होशियार करना। ३ ढाढ़स देना, तसछी देना। ४ मनमें वात विठाना, समकाना बुकाना। ५ पट्टी पढ़ाना, सिखाना।

प्रवोधनो (सं ० स्त्री०) प्रवोध्यतेऽनयति प्र-वुध-णिव् ल्युट, लीप्। १ दुरालमा, धमासा। प्रवुध्यते हरि-रत्नेति। २ कार्त्तिक शुक्कपक्षकी एकादशी, देवीत्थान एकादशी। इस दिन भगवान् प्रवुद्ध होते अर्थात् सो कर उठते हैं, इसीसे इस एकादशीका प्रवोधनी नाम पड़ा है। आषाढ़ शुक्का एकादशीको दिन भगवान् सोते और कार्त्तिकमासको शुक्का एकादशीको उठते हैं, इसीसे इसका दूसरा नाम उत्थान एकादशी भी है। "विण्युः शेते सदापाढे प्रयुध्यते च कार्त्तिके।" (तिथितत्त्व)

एकाद्शो करना हर व्यक्तिका कर्त्तन्य है। विशेषतः उत्थान एकाद्शो तो सर्वोको अवश्य हो करनी चाहिये। हरिभक्तिविलासमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

"जनम प्रभृति यत्पुण्यं नरेणोपार्जितं सुवि । वृथा भवति तन्सवं न ऋत्वा वोधवासरम्॥" (हरिसक्ति० १६ वि०)

जनमके वाव्से ही जो पुण्यानुष्टान किये गये हैं, वे सभी इस उत्थान एकाद्शीके नहीं करनेसे निष्फल होते हैं। अतप्य प्रत्येक व्यक्तिकों यह एकाद्शी करना कर्त्तव्य है। इस एकाद्शीके दिन उपयास करके विष्णुके उद्देशसे नाना प्रकारके उत्सव करने होते हैं। इस दिन विष्णुका माहात्म्य सुननेसे पापक्ष्य और पुण्यविद्धत तथा अन्तमें मुक्तिलाम होता है। जो यह प्रवोधनो एकाद्शी करते हैं, उनके कुल तक भी उद्धार पाते हैं और उन्हें अश्वमेध आदि यह करनेका फल होता है। इस दिन विष्णुके उद्देशसे स्नान, दान, तप और होम आदि इनमेंसे जिस किसीका अनुप्रान किया जाय, वह अक्षय होता है।

जिन्हें यह एकादशी करनी हो, वे इसके पूर्व दिन संयम कर दूसरे दिन उपवास करे। इस दिन जलाशय-के समीप जा भगवान विध्युका विधियूर्वक पूजन करे। भनन्तर विष्युकी मूर्त्तिको जलाशयमें ले जा कर सङ्कल्य करनेके बाद उनका प्रवोधन करे। प्रवोधनके समय निम्नलिखित मन्त्रपाठ करना होता है। यथा—

"शहा न्द्रबद्गानिकुवेरस्यसोमादिभिर्वन्दितपाद्पदाः ।
वुध्यस देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रमावेन सुखेन देव ॥
इयन्तु द्वादर्शा वैव प्रवोधार्थं विनिर्मिता ।
त्वयैव सर्वछोकानां हितायं शेपशायिना ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज्ञ निद्गं जगत्पते ।
त्विय सुप्ते जगत्सुत्रमुत्थिते चोत्थितं भवेत् ॥
गता मेघा वियच्चैव निर्मेछं निर्मेछा दिशाः ।
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ॥
शहा न्द्रबद्दे रिवितक्यंभावो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीय ।

प्राप्ता तव द्वादशी कौमुदाख्या जागृत्व जागृत्व च लोकनाथ ॥ मेघो गता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पणि च लोकनाथ ।" (हरि॰ १६)

प्रवोधानन्दसरस्वती—एक संन्यासी । इनका पूर्व नाम प्रकाशानन्द था । कावेरीनदीके तीरवत्तीं रङ्गक्षेतस्थ वेनकुएड नामक स्थानमें ये रहते थे । संन्यासावस्थामें ही ये प्रकाशानन्द नामसे प्रसिद्ध हुए ।

चार सौ वर्षं पहले प्रकाशानन्द भारतके संन्यासियों-के मध्य विद्यागीरवर्मे वढ़े चढ़े थे। ये पृथक् ईश्वरका अस्तित्व अथवा अवतार स्वीकार नहीं करते थे। भक्ति नामका एक पदार्थ है, इस ओर उनका जरा भी ध्यान न था। इन्होंके समय श्रोचैतन्य-महाप्रभु भक्तिधर्मका प्रचार कर रहे थे, इस कारण प्रकाशानन्दका उनके साथ विवाद खड़ा हुआ। केवल इतना ही नहीं, प्रकाशानन्द-को सुननेमें भाषा, कि चैतन्यमहायमु उनके आश्रममें जा कर उनके अति स्नेहके शिष्य गोपालको भक्तिपथ पर लाये हैं। इस पर चैतन्यदेवके ऊपर ये वह विगडे। किन्तु दोनोंका आश्रम पृथक् पृथक् था। प्रकाशानन्द-की इच्छा थी, कि यदि वे समीपमें रहते तो देखते कि वे कैसे हैं और उनका भक्तिधर्म कैसा है। किन्तु अपनी आशा पूर्णं करनेका इन्होंने कोई उपाय नहीं देखा । क्रमशः प्रकाशानन्द—जो समुद्रके जैसे गम्भीर थे, वे भी अधेर्य हो उठे। पीछे उन्होंने एक यादोंके साथ निम्न श्लोक लिख कर चैतन्यके पास भेज दिया । यथा-

"यतास्ते मणिकणिकामलसरः स्वद्दीर्घिका दीर्घिका, रत्नन्तारकमोक्षदं तनुभृते शम्भुः स्वयं यच्छति। तस्मिन्नद्भुतधामनि स्मर्रिपोर्निर्घाणमार्गे स्थिते, मूढ़ीऽन्यत मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति॥" अर्थात् प्रकाशानन्दने श्रीगौराङ्गको एक तरहसे 'मूढ़' कह कर गाली दी। जो हो, गौराङ्गने प्रकाशानन्दकी सम्मानरक्षाके लिये नोचेका उसके उत्तरमें भेजा,---

"धर्मास्मोमणिकणिका भगवतः पादाम्बुभागीरथी, काशोनां पतिरद्धंमेव मजते श्रीविश्वनाथः स्वयं । एतस्यैव हि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं, मस्मात् छण्णपदाम्बुजं भजसाले श्रीपादनिर्वाणदं॥" जो प्रकाशानन्द संन्यासियोंके राजा हैं, उन्हें उषदेश ? इस वार प्रकाशानन्दने खुल्लमखुल्ला गाली गलीज देते |
हुए एक और स्लोक लिख मेजा, जो इस प्रकार है,—
"विश्वामितपराशरप्रभृतयोवाताम्बुएणांशना,
स्तेऽिप स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्रै व मोहं गताः।
शाल्यान्नं सघृतं पयोद्धियुतं ये भुज्जते मानवास्तेपामिन्द्रियनिग्रहो यिद्धिमंबिहन्ध्यस्तरेत् सागरं॥"
श्रीगौराङ्गप्रभु महाप्रसादका त्याग नहीं करते थे और
भक्तोंके आग्रहसे कभी कभी उत्तम बस्तु भी ग्रहण कर
लेते थे। इसीका उल्लेख करते हुए प्रकाशानन्दने उक्त
स्रोक मेजा था।

महाप्रभु इसका उत्तर और क्या देते ? उनके किसी भक्तने एक श्लोक लिख कर उसका उत्तर दिया था।

इसके बाद प्रकाणानन्दको सुननेमें आया, कि नीला-चलके वासुदेव सार्वभौम उन चैतन्यके फंदेमें पड़ कर वैष्णव हो गये हैं। सार्वभौम भी प्रकाशानन्दकी तरह क्षमताशाली भारत-प्रसिद्ध व्यक्ति थे। सार्वभौमका यह संवाद सुन कर चैतन्यके प्रति प्रकाशानन्दकी भिक्त तो क्या होगी और भी द्वेप वढ़ गया। उन्होंने समका, कि चैतन्य अवश्य ही ऐन्द्रजालिक होगा। इस कारण अपने शिष्योंको चुला कर उन्होंने कह दिया, 'चैतन्य ऐन्द्र-जालिक है। जो उसके पास जायगा, मोहिनीवशसे वह उसे सुन्ध कर देगा। अतः तुममेंसे कोई भी उस प्रता-रकके पास न जाना। इस काशीपुरीमें उसकी एक भी चाल न चलेगी। उरके मारे वह हमसे भेंट भी नहीं करता है।"

इसके वाद एक महाराष्ट्रीय वित्रने काशीवासी सभी संन्यासियोंको निमन्त्रण किया । गौराङ्ग संन्यासियोंके साथ नहीं मिलते थे । किन्तु आज विप्रके आप्रहसे उन्होंने विप्रका निमन्त्रण स्वीकार किया । आज उनसे प्रकाशानन्दकी मुलाकात होगी ।

प्रकाशानन्द निर्मीक थे, इस भारतमें ऐसा कीई भी पिएडत नहीं, जो उनसे तर्क वितर्क कर सकते। अभी वे हजारों शिप्योंसे परिवेष्टित हो सभामें बैठे हुए हैं। उनके मनका भाव यह था, कि चैतन्यके आने पर वे उनसे केवल दो वात करेंगे। दो हो वातमें उन्हें निर्वाक् कर देंगे।

इसी समय महात्रमु प्रसन्न वदनसे हरिकीर्तन करते हुए अवने भक्तोंके साथ उस सहस्र संन्यासिसमन्वित समा-में उपस्थित हुए। उनके चेहरे पर कोई विशेष भाव नहीं था, पर उनके भक्त लोग वड़े व्याकुल थे, कि न जाने आज क्या घटना घटेगी ?

महाप्रभुने सळिजत भावमें पहळे संन्यासी समाको नमस्कार किया। पीछे पाद्मशाळत्की जगह जा कर पैर घो छिये और उसी जगह वैठ गये।

प्रकाशानन्द सदाशय व्यक्ति थे, चिरशतु होने पर भी उन्हें अपवित स्थान पर क्यों चैठने देते ! अतः उन्होंने आप्रहपूर्वक उन्हें सभामें ला कर विद्याया। चस्तुतः प्रभुके चिनयनम्न वाक्य पर, उनके चिनीत व्यव-हार पर और उनके मधुर मूर्त्तिदर्शन पर प्रकाशानन्द मोहित हो गये। पीछे कुछ देर तक तर्क वितर्क करनेके वाद प्रकाशानन्दका गर्च जाता रहा, उनके हृदयमें भिक्का सञ्चार हो आया। अव उन्होंने हजारों शिष्यके सामने श्री चैतन्यको ईश्वर वतला कर उनके प्रति भक्ति प्रदर्शन की। अव काशोपुरोमें हरिनामकी मानो पाढ़ उमड़ आई। जव कभी चैतन्य वाहर निकलते थे, लोगोंकी अपार भोड़ हो जाती थी, प्रकाशनन्द भी अपने शिष्योंके साथ उनके पीछे पोछे चलते थे।

प्रवोधित (सं॰ त्रि॰) १ जो जगाया गया हो, जागा हुआ।
२ जिसका प्रवोध किया गया हो। ३ ज्ञानप्राप्त।

प्रवोधिता (सं वं स्त्री०) एक वर्णवृत्ति । इसके प्रत्येक चरणमें रुगण जगण फिर सगण जगण और अन्तमें गुरु होता है। इसे खुनन्दिनी और मञ्जुभाविणी भी कहते हैं।

प्रवोधिन् (सं० वि०) प्रवोधयति प्र-वुध-णिच्-णिनि। प्रवोधकारक, जगानेवाला ।

प्रवोधिनी (सं० स्त्री०) प्रवोधयित हरिमिति प्रवोधन-डीप् १ उत्थान एकादशी । प्रतेधनी देखो । २ दुरा-लभा, धमासा ।

प्रमङ्ग (सं० ति०) प्र-भञ्ज-घन्। भग्न, दूरा फूटा। प्रमङ्गर (सं० ति०) प्रकृष्टकपसे भंगुर, नाशशील। प्रमञ्जन (सं० पु०) प्रकर्षण भणकि वृक्षादीनिति प्र-भनज -युच्। १ वायु, हवा। २ प्रचएड वायु, आंधी। ३ नांण, तोड़, उखाड़ पखाड़ । (बि॰) ४ अञ्चनकारक, तोड़ने फोड़नेवाला ।

प्रभञ्जन—मणिपुरके एक राजा, महाराज देवाह्यके पुत्र । ये राजर्पि सुरामां च शके थे ।

प्रभद्ग (स'॰ पु॰) प्रकृष्टं भद्गं यस्मात् । १ निम्ब, नीम । प्रभद्ग (सं॰ पु॰) प्रकृष्टं भद्गं यस्मात् । १ निम्ब, नीम । प्रकृष्टो भद्ग इति प्राद्सिः । (बि॰) २ श्रेष्ट ।

प्रभद्गक (सं० ह्यी०) १ छन्दीमेद । पन्द्रह अक्षरींका पक वर्णवृत्त । २ पारिभद्रवृक्ष, फरहद्का पेड़ । ३ प्रसा-रणी, गन्धप्रसारिणी नामकी छता ।

प्रमदा (सं ० स्त्री०) प्रकृष्टं भद्रं यस्मात्, दाप् । प्रसा-रिणी स्ता ।

वभत्तः (सं ० ति०) व-भृ-तृच् । १ सम्यक् रूपसे प्रभरण । २ नजदीकमें लाना ।

प्रभग्नेन् (सं० पु०) भृ-भावे कर्त्तरि वा मणिन्, प्रकृष्टं भग्ने भरणं, प्रकृष्टः भग्नां भर्ता ऋत्विक् वा यस्मिन्। १ यह। (क्षी०) २ प्रकर्षक्षपते भरण, सम्पादन। प्रभव (सं० पु०) प्रभवत्यस्मादिति प्र-भू 'अकर्त्तरे च कारके' इत्यधिकारात् (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) इति अप्। १

इत्यधिकारात् (ऋरोरव् । पा ३।३।५७) इति अप् । १ जन्महेतु, उत्पत्तिका कारण । २ जलमूल, जलका निर्णम-स्थान । ३ मुनिमेद, पक मुनिका नाम । ४ पराक्रम । ५ जन्म, उत्पत्ति । ६ स्रष्टि, संसार । ७ विष्णु । ८ जैन-स्थिवरमेद । ६ साध्यमेद । १० ज्योतियोक्तं साढ संव-त्सरोमें एक संवत्सर । इस संवत्सरमें वृष्टि अधिक होती है और प्रजा नीरोग तथा सुखी रहती है ।

यृहत्संहितामें लिखा है—यृहस्पति जिस समय धिनिष्ठानश्चलका प्रथमांश प्राप्त कर माधमासमें उदय होते हैं, उस वर्ष प्रभव नामक संवत्सर होता है। यह संव त्सर प्राणियोंके लिये हितपद है। इस वर्ष यदि कहीं वृष्टि न हो, वायु या अग्निका कोप हो, ईतिका भय हो, तो भी प्राणियोंका विशेष अनिष्ट नहीं होता। (ति०) ११ प्रभूत, वहुत ज्यादा।

प्रभवन (सं ० ह्री०) प्रभूत्खुट्। १ उत्पत्ति । २ मूछ । ३ थाकार । ४ अधिष्ठान । (ति०) ५ उत्पन्न । प्रभवप्रभु (सं० पु०) जैनोंकी षष्ठ श्रुतकेवली । प्रभवदि (सं० पु०) प्रभव आद्येषां । प्रभव आदि षष्टि-संवत्सर । षष्टिसंवरवर देखो ।

Vol. XIV. 149

प्रमिचनु (सं० ति०) प्र-भू-नृच् । प्रभावशाली ।
प्रमिचिणु (सं० ति०) प्रभवितुं शीलमस्येति प्र-भू(भुवश्व । पा श्वाश्वर्द) इति इण्णुच् । १ प्रभावशील । २
प्रकर्षकपसे भवनशील । (पु०) ३ विष्णु । १ प्रभु ।
प्रभविष्णुता (सं० स्त्री०) प्रभविष्णु-भावे तल्-टाप् ।
प्रभुता, प्रभु-विष्णुका भाव ।

प्रभव्य (सं ० ति०) प्रभु-यत्। प्रभवनीय।
प्रभा (सं ० त्री०) प्रश्नर्येण भातीति प्र-भा (आ-१वोपभों।
पा श्रि० हि। इति अङ्। १ कुवेरपुरी। भा-भावे अङ्।
२ दीप्ति, चमक। पर्याय—रोचिस्च ति, शोचिस्, त्विपा,
ओजस्, भास, रुचि, विभा, आलोक, प्रकाश, तेजस्,
रुच्। ३ दुर्गा। ४ स्मांतुको कन्याभेद, नहुपकी माता।
५ गोपीविशेष। ६ एक अप्सराका नाम। ७ एक द्वादशाक्षरा वृत्ति जिसे मन्दाकिनी भी कहते हैं। ८ स्प्यैका
विम्य। ६ स्प्यैकी पत्नी। युक्तप्रदेशवासी काँजर जातिकै
लोग इनकी उपासना करते हैं। उनका कहना है, कि
आलोकमयी प्रभादेवी ही गोमेपादिको सुस्थ रखती हैं।
अहीर लोग भी इनकी पूजा करते हैं।

प्रभाकर (सं ० पु०) प्रभां करोतीति क (दिवाविभाविद्याप्रभेति। पा इ। २। २१) इति ट । १ सूर्य । २ अग्नि। ३
चन्द्र । ४ अर्कपृक्ष, मदारका वृक्ष । ५ समुद्र । ६ अप्रममन्यन्तरीय देवगणभेद, मार्कपुडे यपुराणके अनुसार
आठवें मन्यन्तरके देवताओं के देवता । ७ अतियंशीय
मुनिविशेष । ८ नागभेद, एक नागका नाम । ६ मीमांसकमेद । दर्शनशास्त्र आदिमें इनका मत 'प्रभाकर
मत' कहलाता है। ये गुरुक्षपमें प्रसिद्ध थे। १० कुग्रद्वीपस्थितवर्षभेद, मतस्यपुराणके अनुसार कुग्रद्वीपके
एक वर्षका नाम ।

प्रभाकर—१ दाक्षिणात्यप्रदेशके एक सामन्त राजा । इनके
पृथिवीम्ल नामक एक पुत्र था । पृथिवीमृल देखो ।

२ तन्त्रप्रस्थके प्रणेता। ३ काशीतस्त्रद्वीपिका और गयापद्वितदीपिकाके स्वियता। ४ कृष्णविलासकाव्यके स्वियता। ५ धर्मसारके प्रणेता। ६ मूधरके पुत्र। इन्होंने १६१७ ई०में गीतराध्यकी रचना की। ७ अलङ्कार-रहस्यके प्रणेता, माध्यके पुत्र। ८ माध्यसङ्के पुत्र और रामेश्वर भट्टके पौत्र। ये विश्वनाथ और रघुनाथके न्नाता तथा उनके छात थे। एकावलीप्रकाश कुमार सभ्मवदीका, चूर्णिका नामक वासवदत्ताटीका, रास-प्रदीप (१५८३), छघुसत्रशतिका स्तव (१६२६) विवाह पटल और शाल्पदीपिका नाम प्रन्थ इन्होंके बनाये हुए हैं। १५६४ ई०में इनका जन्म हुआ।

प्रभाकरगुरु—चृहतीमीमांसास्त्रभाष्यके रचियता, शालिक-नाथके गुरु । विदग्धमुखमण्डनमें इनका नाम आया है । ग्रंभाकरदत्त- एक संस्कृत कवि ।

प्रभाकरदेव---१ एक संस्कृत कि । २ एक अभिधानके । प्रणेता ।

प्रभाकर देवश—गोत्नप्रवर और वाक्पुप्पमाला नामक केशवकृत गोत्नप्रवरनिर्णयके टोका-रचयिता।

प्रभाकरनन्दन-एक संस्कृत कवि ।

प्रभाकरमङ्—१ क्यातनामा पिएडत । २ पयोग्रहसमर्थन प्रकारके रचियता वासुदेवके पिता । ३ औचित्यविचार-चर्चाके श्रेमेन्द्र-उद्धृत एक कवि । ४ न्यायिविवेक नामक मीमांसा-प्रनथके प्रणेता । ५ प्रमाकराहिकप्रणेता ।

प्रभाकरवर्द्ध न—कन्नोजके वैश्यवंशीय एक राजा। थाने-श्वरमें इनकी राजधानी थी। इनके पिताका नाम आदित्य-चर्द्ध न और माताका महासेनगुप्ता था। चीनपरिव्राजक यूपनचुदंगके वर्णनसं मालृम होता है, कि ये हर्पवद न और राज्यवर्द नके पिता थे। महाराज हपेके समाकवि वाणसहने हर्पवरितमें लिखा है, कि श्रीकण्टराज्यके पुष्प-भूति (पुष्यभूति) नामक एक अधिवासी इनके पूर्व-पुरुष थे । इनका दूसरा नाम था प्रतापशील । गन्धार, हूण, सिन्धु, गुर्जर, लाट और मालव आदि राज्य इनके अधि-कारभुक्त थे। इन्होंने यशोमतीका पाणिग्रहण किया, जिनके गर्भसे उक्त दो पुत और महादेवी (राज्यश्री) नामक एक कत्या उत्पन्न हुई । प्रभाकरने भएडी नामक उचपदस्थ कर्मचारीके ऊपर दोनोंका शिक्षांमार सौंपा। मों लिरराज अवन्तिवर्माके पुत ग्रहवर्माके साथ राज्यश्री-का विवाह हुआ। आजमगढ़ जिलेके मधुवन श्रामसे जो शिलालिपि पाई गई है उससे जाना जाता है, कि प्रवल पराक्रमशाली राजा-प्रभाकर सूर्यके उपासक वे। किन्तु ' - उनको स्त्री यशोमती सुगतकी भक्त और उनके चलाये हुर_ा

धर्ममतकी पक्षपातिनो थों । प्रमाकरकी मृत्युकी वाद उन के वड़े छड़के राज्यवर्द्ध न गद्दी पर वैठे। प्रभाकरमित्र—पक कवि ।

प्रभाकरी —वोधिसच्चोंकी तृतीयावस्था । १ छी अवस्थाका नाम प्रमुदिता, ररीका विमला और १रीका प्रभाकरी है। इसी नीसरी अवस्थामें मानवहृद्यकी वृत्तियों दृद्यद हो कर विश्वास वा भक्ति उत्पन्न करती है।

प्रसाकीट (सं० पु॰) प्रमान्त्रितः कीटः मध्यपदलीपि-कर्मधा॰। खद्यीत, द्धगन्।

प्रभाग (सं॰ पु॰) प्र-भज-धञ् । १ विभागका विभाग । २ भग्नांशका भग्नांश, भिन्नका भिन्न ।

प्रभाचन्द्र—एक विष्यात परिडत । जैनेन्द्रव्याकरणमें स्नका उल्लेख है ।

प्रभाचन्द्र—१ एक जैनधर्मे-प्रवर्त्तक । दिगम्बर-पद्टावर्टीमें इन्हें नेमिचन्टके गुरु और लोकेन्द्रके शिष्य वतलाया है।

२ पृथिवीचन्द्रके शिष्य । १३६० सम्बत्में इन्होंने हरि भद्रकृत जम्बूद्वीप-संप्रहिणीकी टीका लिखी है । ये कृष्ण-गच्छके अन्तम् क थे और १३६१ संवत्में इन्होंने धर्मिशक्षा देना आरम्भ किया ।

प्रभाचन्द्रदेव—दिगम्बर पट्टावर्ला वर्णित रक्षकीचिके शिष्य और पद्मनिद्के गुरु। इन्होंने पूज्यपादीय शासका एक टोका रची है। १३१० संवत्में ये विद्यमान थे।

प्रभाचन्द्रस्रि—प्रभावकचरितके रचयिता। १३३४ सम्बत् मॅ इनकी लिखी हुई धर्मकुमारसाधुके शालिभद्रचरितकी एक पुस्तक पाई गई है।

प्रभाज (सं ॰ पु॰) प्र-भज-ण्वि । विभागकारी ।
प्रभाञ्जन (सं ॰ पु॰) शोभाञ्जन, सहजनका पेड़ ।
प्रभात (सं ॰ क्री॰) प्रकर्षेण भातुं प्रवृत्तमिति प्र-भा-आदि
कर्मीण क, वा प्रकृष्टं भातं दीतिरत्नेति । १ प्रातःकाल,
सवरा । पर्याय—प्रत्यूप, अहमुंख, कल्य, उपा, प्रत्यूपा,
दिनादि, निशान्त, ल्युए, प्रगे, प्राह, गोल, गोसङ्ग, उपस,

उपक, ऊपा, विभात । शाकका मत है, कि प्रभातकाल यदि प्रतिदिन हुगां-का स्मरण किया जाय, तो जिस प्रकार सूर्यके उदय होते-से अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार आपद जातो रहती है। प्रभातकालमें आत्महितेच्छु व्यक्तियोंको बैद्य, पुरोहित, भन्दा और दैवजने दर्शन करने चाहिये। "वेद्यः पुरोहितो मन्त्री दैवज्ञोऽथ चतुथकः । प्रभातकाले द्रष्टव्यो नित्यं स्त्रियमिच्छता ॥" (राजवहुम)

त्रातःऋख शब्द देखो ।

२ एक देवता जो सूर्य और प्रभासे उत्पन्न माना गया है।

प्रमाती (सं क्षी) १ प्रत्यूप और प्रमास नामक वसुओंकी माता। २ एक प्रकारका गीत जो प्रातकाल गाया जाता है। ३ वन्तधावन, दातुन। प्रभातीर्थं (सं क्षी) शिवपुराणोक्त तीर्थभेद।

प्रमान (सं॰ क्वी॰) प्र-भा-त्युर् । ज्योति, दीप्ति । प्रभानन्द्स्रि-चन्द्रगच्छके एक जैनगुरु, देवभद्के शिष्य और चन्द्रस्रि तथा,विमलस्रिके गुरु ।

प्रभानीय (सं ० ति०) प्र-मा-अनीयर् । दीप्ति ।

प्रभापन (सं ० क्ली०) दीप्रिसम्पादन, उजाला करना।

प्रभापनीय (सं॰ क्षि॰) प्रभापनयोग्य ।

प्रमापाल (सं० पु०) वोधिसत्त्वमेद, एक वोधिसत्त्व।

प्रमाप्ररोह (सं॰ पु॰) आलोकरिम ।

प्रभामग्डल (सं० ह्यो०) १ गोलाकार-रिष्म । २ दीप्ति-पुज्ज ।

प्रभामय (सं० त्रि०) दीप्तिमय ।

प्रमामित--एक वौद्ध-सन्यासी। ये जातिके क्षतिय थे।
मध्यभारत इनका जन्मस्थान था। ६२७ ई०में ये चीनराज्य गये थे और ६३३ ई०को ६६ वर्षकी अवस्थामें
पञ्चत्वको प्राप्त इए।

प्रभारक (सं॰ पु॰) नागभेद, एक नाग।

प्रभाव (सं ० पु०) प्र-भू-घञ् । १ तेज, प्रताप, रोवदाव । २ सामर्थ्य, शक्ति । ३ विकाम, महिमा । ४ शान्ति । ५ उद्भव, प्रादुर्भाव । ६ इतना मान या अधिकार कि जो वात चाहे कर या करा सके, साख या दवाव । ७ अन्तः करणको किसी ओर प्रवृत्त करनेका गुण । ८ प्रवृत्ति पर होनेवाला फल या परिणाम, असर । ६ खारोचिप-मनुके एक पुत्र जो कलावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए ये । १० प्रभाके गर्भसे उत्पन्न सूर्यके एक पुत्र । ११ सुग्रीवके एक मन्तीका नाम ।

प्रभावक (सं॰ हि॰) प्रभावशाली ।

प्रभावज (सं० ति०) प्रभावात् जायते इति-जन-ड । १ शक्तिविशेष, एक प्रकारकी राजशक्ति जो कोष और द्राड-के क्यमें व्यक्त होती है। २ एक प्रकारका रोग जो देवता, ऋषि, वृद्धादिके शाप वा प्रहादिके हेरफेरसी उत्पन्न होता है। (ति०) ३ प्रभावजात, प्रभावसी उत्पन्न।

प्रभावता (सं• स्त्री•) प्रमावस्य भावः तल्-टाप्। प्रभावका भाव।

प्रभावत् (सं ० वि०) प्रभा-अस्यस्येति प्रभा-मतुप् मस्य व । प्रभायुक्त ।

प्रभावती (सं क्षी) प्रभावत् छीप्। १ प्रभाविष्णिण, वह क्षी जिसका खूव रोवदाव हो। २ कुमारके एक अनुचर मातृगणका नाम। ३ भारतके अनुसार अङ्ग-देशके राजा चित्रस्थकी रानी। ४ भारतके अनुसार सूर्य-की पत्नीका नाम। ५ तेरह अक्षरोंका एक छन्द जिसे रुचिरा कहते हैं। ६ शिवके एक गणकी वीणाका नाम। ७ प्रभाती नामका एक राग वा गीत। (ति) ८ प्रभाव-शीछ।

प्रभावती—१ जनपद्मेद । २ नदीविशेष । इस प्रभावती और वाङ्मतीके सङ्गमस्थल पर जयतीर्थ अवस्थित हैं। प्रभावतीगुप्ता—वाकाटकवंशीया एक महाराज्ञी, महाराजा-धिराज देवगुप्तकी कन्या। इनका विवाह राजा २४ चल्र सेनसे हुआ था। इनके प्रधरसेन नामक एक पुत था.।

प्रभावन (सं॰ ति॰) क्षमताशाली, प्रभावशाली ।

प्रभावना (सं॰ स्त्रो॰) उद्भावना, प्रकाश ।

प्रभाव्यूह (सं ॰ पु॰) वीद्दशास्त्रोक्त देवताभेद !

प्रभाष (सं ॰ पु॰) प्रभाषते यः सः प्र-भाष-अच् । वसु-भेद, एक वसुका नाम ।

प्रभाषण (सं ॰ ह्वी॰) प्र-भाष-णिनि । प्रहप्टकपसे भावण, ं अच्छो तरह कहना ।

प्रभाषित् (सं ० ति०) प्र-भाष-णिनि । प्रकृष्टकपर्से कथन-शील, अच्छो तरह कहनेवाला ।

प्रभास (सं ॰ पु॰) प्रभासते शोभत इति प्र-भास-अन् । १ सोमतीर्थ । यह वीर्थं अतिशय श्रेष्ठ है। इस तीथमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम और अतिरात यज्ञका फल होता है। (कारत ३।०२।५६-५७) स्कन्दपुराणके प्रभासक्एड- में इस क्षेत्रमाहात्न्यका विस्तृत विचरण लिखा है।
गुजरातमें सोमनाथका मन्दिर इसी तोर्थके अन्तर्गत
था। अभी इसे सोमनाथ कहते हैं। सोमनाथ देखो।
२ चसुमेद, एक वसुका नाम। ३ कुमारका एक अनुचर।
४ अष्टम मन्वन्तरका एक देवगण। ५ दीप्ति, ज्योति।
६ जैनगणाधियमेद। (ति०) ७ पूर्णप्रभायुक।

ममासन (सं० ह्यो०) दीप्ति, ज्योति। प्रभाखर (सं० ति०) दीप्तिशाली।

प्रभिद् (सं ० ति०) प्र-भिद्द-क्विप्। प्रकृष्टकपसे भेद-कारक।

प्रभिन्न (सं॰ पु॰) प्र-भिद्-क्त । १ मदमत्त हस्ती, मतवाला हाथी । पर्याय—गर्जित, मत्त, भ्रान्त, मदकल । (वि॰) २ पूर्ण भेद्युक्त ।

प्रभु (सं • पु •) प्रभवतीति प्र-भु • हु । १ विष्णु । २ शिव । ३ पारद, पारा । ४ शब्द, आवाज । ५ अधिपति, नायक । जो अनुप्रह या निप्रह करनेमें समर्थ हो उन्हें प्रभु कहते हैं । पर्याय—स्वामी, ईश्वर, पित, ईशित, अधिभू, नायक, नेता, परिवृद्ध, अधिप, पालक । ६ वम्बईप्रान्तके कायस्थों की उपाधि । कायस्थ और पत्तनीष्रभु हेखो । ७ स्वामी, मालिक । ८ अष्टम मन्वन्तरीय देवगणभेद । (ति •) ६ नित्य । १० शक्त । ११ श्रेष्ठ ।

प्रभुता (सं॰ स्त्री॰) प्रभोर्भावः तल्-टाप्। १ महत्त्व, बड़ाई। २ शासनाधिकार, हुकूमत। ३ वैभव। ४ मालिकपन, साहिबी।

प्रभुत्व (सं ॰ पु॰) व्रभुता देखो ।

प्रभुत्वाक्षेप (सं ० पु०) अर्थालङ्कारमेद । इसका लक्षण— यदि कोई खाधीनपतिका नायिका नायकके विदेश आदि जानेके विषयमें कोई विघ्नजनक चिशिष्ट कारण न दिखा-कर केवल अपने प्रभुत्वािमानसे हो नायकको रुद्ध कर रखे अर्थात् नायकको जो जानेसे रोके, नो वहां यह अल-द्धार होता है। जैसे कोई नायिका अपने नायकसे कहती है—'हे प्रिय! सचमुच विदेश जानेसे तुम काफी धन उपार्जन कर सकोगे। जाते समय राहमें कोई कप्ट भी न होगा। इधर मुक्त पर भी कोई विपद्द पड़नेकी सस्भावना नहीं, पर है प्राणनाथ! मैं अनुरोध करती है, कि विदेश मत जाओ।' यहां पर नायकके विदेश जानेके प्रति किसी प्रकारका विच्नजनक हेतु नहीं रहने पर भी उस विपयमें केवल नायिकाके प्रमुत्वसे ही नायकका जाना रुक सकता है, इस कारण यह अलङ्कार हुआ।

प्रमुदेव (सं ॰ पु॰) योगशास्त्रके प्रवर्त्तक ऋषिमेद् । प्रमुमक (सं ॰ पु॰) प्रमोर्भक । १ उत्तम घोटक, बढ़िया घोड़ा । (बि॰) २ प्रभुभक्तिपरायण, नमकहलाल । ३ कुलीन ।

प्रभूत (सं० ति०) प्र-भू-क । १ प्रचुर, वहुत अधिक । २ उद्गत, निकला हुआ । ३ भूत, जो अच्छी तरह हो चुका हो । ४ उन्नत, वढ़ा हुआ । (पु०) ५ पश्चभूत, तत्त्व । प्रभूतक (सं० ति०) प्रभूतः विद्यतेऽस्य प्रभूत-मत्त्वर्थे (गोवदाविभयो हुन्। पा ५।२।६२ इति हुन् । प्रमूत-युक्त, वलवान् ।

प्रभ्तत्त्व (स्वं॰ क्की॰) प्रभृतस्य भावः त्व । प्रचुरता, प्रभृ तता ।

प्रभूततीक्ष्णदृश्धा (सं० स्त्री०) राजिका, लाल सरसों। प्रभूतरत्न (सं० पु०) १ बुद्धभेद। (ति०) २ वहुधन-युक्त।

प्रभृति (स°० ति०) प्रभु भावे किन्। १ उत्पत्ति । २ शकि । ३ प्रचुरता, अधिकता ।

प्रभूद्याल कायस्थ—अजयगढ्के रहनेवाले एक साधारण प्रन्थकार । इनका जन्म संवत् १६१५में हुआ था । इन्होंने "क्षान प्रकाश' नामक प्रन्थकी रचना की थी।

प्रभूवन् (सं ० ति०) प्र-भू-क्विनिष् । सामर्थ्यंयुक्त, वलवान् ।

प्रभुवसु (सं॰ बि॰) प्रमूघनशाली इन्द्।

प्रभृःणु (सं० त्रि०) प्रभवतीति प्रन्भू (म्हाजित्यस्य गान्छ । पा ३ १। (३९) इति ग्स्नु । १ क्षम्, समर्थं । २ शक्त, योग्य । ३ प्रभाशील ।

प्रभृति (सं ० अव्य०) प्र-भृ-किच् । १ इत्यादि, आदि । वगैरह । (स्त्रो०) २ प्रकृष्ट आयोजन ।

प्रशृथ (सं ० ति०) प्रभृ-वाहुं थक् । प्रकृष्टभरण । प्रमेद (सं ० पु०) प्र-भिद्-घम् । १ मेद, विभिन्नता । पर्याय—प्रकार, विशेष, भिदा, अन्तर । २ स्फोटन, फोड़ कर निकलना । प्रभेदक (सं ० ति०) १ प्रकृष्टकपसे भेदक। २ विभाग-कारो।

प्रमेदन (सं० क्षी०) १ प्रकृप्रकपसे मेदन । (ति०) २ प्रमेदक ।

प्रभेदनी (सं॰ स्त्री॰) वह अस्त्र जिससे छेद किया जाय । प्रमेदिका (सं॰ स्त्री॰) १ वेधन अस्त्रविशेष, वेधने या छेदने-का अस्त्र । २ भेदकारिणो, छेद करनेवाली ।

प्रमेश्वर (सं ॰ पु॰) शिवपुराणोक्त तीर्थविशोप । प्रमंश (सं ॰ पु॰) प्र-मंश-अच् । सप्ट होना, विच्छिन्न होना ।

प्रभंश्यु (सं ० पु०) सुधुतोक्त नासागत रोगमेद, पोनस
रोग। अधिक तीक्ष्ण और चरपरे पदार्थं स्ंघने, स्र्यंकी
ओर देखने और नाकमें अधिक वत्ती आदि ट्रंसनेसे
उसके मीतरका मर्मस्थानं दूपित हो जाता है और अधिक
छीकें आने लगती हैं। इसको क्षवयु कहते हैं। पीछे
जव मूर्दि ण सिक्षत, गाढ़ा, विदग्ध लवणविशिष्ट कफ
पित्तसे तापित हो कर नाक हो कर गिरता है, तव उसे
मधंश्यु रोग कहते हैं। (इक्षुत निदानस्थात ३२ २०)
प्रभंशिन (सं ० ति०) प्रभंश अस्त्यर्थे इति। प्रभंश्यु।
प्रभंशुक (सं ० ति०) प्रमंश्रशील, गिराने या अलग
करनेवाला।

प्रमुष्ट (सं ० ति०) प्रमुन्श-क । १ श्रंशयुक्त, गिरा हुआ । २ ह्टा हुआ ।

प्रभ्रष्टक (स ॰ पु॰) शिखावलम्बिनी माला, सिरसे लट-कतो हुई माला ।

प्रमंहिप्रीय (सं ॰ क्ली॰) सामभेद ।

प्रमगन्द (सं॰ पु॰) १ वाद्ध पिक, स्त्रकोर । २ राजभेद, एक वेदोक्त राजाका नाम ।

प्रमङ्गन (सं ० क्षी०) अत्रगामी, अगुआ ।

प्रमणस् (स'० ति०) प्रकृष्टं मनी यस्य, संज्ञात्वे णत्वं अन्यत अणत्वं । १ हर्पयुक्त, प्रसन्न । २ सावधान, होशियार । ३ द्यालु, मेहरवान ।

प्रमण्डल (सं ० पु० हो०) चक्रनेमि, पहिंचेका घुरा।

प्रमतक (सं ॰ पु॰) प्राचीन ऋषिभेद । प्रमति (सं ॰ ति॰) प्रष्ट्रा मतिर्यस्य । १ प्रक्रप्रमति युक्त, उत्तम बुद्धिवाला । २ प्रताचीश्वर सुनय राजाके पुरो-Voi. XIV. 150 हित कश्यपवंशीय ऋषिभेद । ३ च्यवन ऋषिके एक पुत-का नाम । ४ गृत्समदऋषिवंशीय वागिन्द् ऋषिके पुत ऋषिभेद । ५ नृगके एक पुतका नाम । ६ उसी वंशके वत्सवीके एक पुतका नाम ।

प्रमत्त (सं ० ति ०) प्रमाद्यति स्मेति प्र-मद्-गत्यर्थे क ।
तस्य णत्वा-भावः । १ उम्मत्त, मतवाला । २ विक्षिप्त,
पागल । ३ जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो, जो सावधान
या सचेत न हो । ४ सन्ध्याधिहीन, जो सन्ध्यादि नहीं
करता हो । (पु०) ५ मास पक्षी । ६ काकविशेष, एक
प्रकारका कीवा । ७ लाङ्गलीवृक्ष ।

प्रमत्तगीत (सं० ही० प्रमत्तेनं गीतं। प्रमत्त कर्नु क गीत, वह गान जिसे पगला आदमी गाता हो।

ममत्तता (सं॰ क्षी॰) १ मस्ती । २ पागलपन । पुमत्तवत् (सं॰ बि॰) पूमत्त-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः । पूमादयुक्त, वावला ।

पूमथ (सं ॰ पु॰) प्रमथतीति प्र-मथ-अच्। १ घोटक, घोड़ा। २ शिवके पारिपद। इनको संख्या ३६ करोड़ वताई गई है।

"षद्विंशचु सहस्राणि प्रमथा द्विजसत्तमाः। तलैकत सहस्राणि भागे पोड्श संस्थिता॥" इत्यादि (कालिकापु० २६ अ०)

कालिकापुराणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—
महादेवके मुखके फेनसे प्रमथोंकी उत्पत्ति हुई है। जव
ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों मिल कर फिरसे जगत्सृष्टि विषय पर विचार कर रहे थे, उसी समय चार
भागोंमें विभक्त छह करोड़ प्रमथगण आ कर महादेवकी
अर्चना करने लगे। इनमेंसे एक भागमें नानाक्तपधारी जटा
और अर्द्ध चन्द्रविशिष्ट १३ हजार प्रमथ थे। ये सवके
सव भोगविमुख, ध्यानपरायण, योगो और मदमात्सर्यादि
रिहत थे। कभो भी किसीसे कुछ मांगते न थे।
स्कचन्द्रनादि उपभोग्य विषयमें उनका अनुराग नहीं था।
स्कायन्द्रनादि उपभोग्य विषयमें उनका अनुराग नहीं था।
स्कीपुतादि संसारी सुखकी उन्हें जरा भी चाह न थी।
योगशिक्षाके लिये सर्चदा ध्यानपरायण हो वे महादेवको
चारों ओरसे घेरे रहते थे।

प्तिः प्रमध्यगणकामुक और महादेवको कीड़ा-विषयमें सहायता करते हैं। ये सब प्रमथ्यगण विचित्न आभरणोंसे अलंकत, जटाज्र और अद्ध चन्द्रविशिष्ट, शिपकी तरह शुभवर्ण वृपारूढ़, उमाकी तरह सुन्दरी कामीनियोंसे सेवित, विचित्रमाल्य द्वारा विभूषित हैं, इस प्रकार नाना प्रकारके मनोहर वेशोंमें प्रमथगण उमाके साथ की झापरायण महादेवका अनुगमन करते हैं। ये सव महादेवकी तरह अद्ध अङ्गमें गौरीका रूप धारण किये हुए हैं। महादेव पार्वतीके साथ जब सुखविलासादि करते हैं, उस समय ये महादेवके द्वार-देशकी रक्षा करते हैं। प्रतिदिन जिस समय महादेव आकाशपथसे विचरण करते हैं, उक्त प्रमथगण उस समय उनके पीछे पीछे चलते हैं तथा जिस समय वे ध्यानमें रहते हैं उस समय ये उनकी परिचर्या करते हैं। ये प्रमथगण मायावी हैं।

कुछ प्रमथगण युद्धस्थानमें जा कर शत्का संहार करते हैं, ऐसे प्रमधोंकी संख्या ६ करोड़ है। गायक प्रमथ-गण मृदङ्ग पणव आदि वाद्योंके साथ मधुरस्वरसे गान करके महादेवके समीप नृत्य करते हैं। तीन कोटि प्रमध नाना रूप धारण कर महादेवके पीछे पीछे चलते हैं। सर्वशास्त्रार्थविदु वलवान् प्रमथगण मायावलसे सभी कार्य अधिक क्या, अणिमादि ऐश्वर्थशाली कर सकते हैं। प्रमथगण मुहुत्तं भरमें तीनों छोकका परिक्रमण कर आते हैं। रुद्र नामक अन्य प्रमथगण जटा और अद्ध चन्द्र द्वारा भूषित हो सुरेन्द्रके आदेशसे हमेशा खर्गमें रहते हैं। एक कोटि प्रवलपराकम प्रमथ निरन्तर महादेवको सेवा किया करते हैं. जो सब प्रमथ पावियोंको अपनी महिमासे विस्मया-न्वित करके धार्मिकोंका प्रतिपालन और उनका विस्मय दूर करते, वे वराहगणको निधन और महादेवकी सेवा करने के लिये उत्पन्न हुए थे। महादेवने वराह नरसिंह और हरि-को देख कुछ काल तक चिन्ता करके जो शब्द किया था. उसीसे इन सबींकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण ये वहु-क्षपी हुए। महावलवान् प्रमथगण यद्यपि क्र्रकार्ये नहीं करते, तो भी उनकी आकृति ही ऐसी भयङ्कर है, कि सब कोई भय खाते हैं। पर्वतप्रान्त पर जो फल, फूल, पत, जल आदि चढाये जाते, वही इनका खाद्य है। कभी कभी ये सब महादेवका भोजन भी खा लिया करते हैं। प्रमथ-गण चैतमासकी चर्त्दशी भिन्न सभी तिथियोंमें आमिप भोजन करते हैं। (कालिकायु॰ ३१ अ०)

३ धृतराधूके एक पुतका नाम ।

प्रमथन (सं० स्त्री०) प्र-मथ भावे त्युट् । १ वध, हत्या । २ ष्रतेशन, यन्त्रणा देना । ३ विलोड्न, मथना । ४ उन्मूलन, जड्से उखाड़ना । ५ मटन, रौंदना । ६ त्याग, छोड़ना । ७ परिभव, अपमान, तिरष्कार । (ति०) ८ प्रमायक । प्रमथनाथ (सं० पु०) महादेव, शिव ।

प्रमथा (सं० स्त्री०) प्रमथित विदोपानिति-प्र-मथ-अच्। १ हरीतकी, हड़। यह विदोष-नाशक है, इसीसे इसका नाम प्रमथा पड़ा। २ पीडा, तकलीफ।

प्रमथाधिप (सं॰ पु॰) प्रमथानां अधिपः । महादेव, शिव । प्रमथालय (सं॰ पु॰) नरकभेद ।

प्रमधित (सं० क्री॰) प्रकर्षेण मथितं। १ निजल तक् महा जिसमें ऊपरसे पानी न मिला हो। २ नवनीत, मक्क्षन। (ति॰ २ प्रकर्षकपसे मथित, खूद मथा हुआ।

प्रमद् (सं क्ली) १ ज्योति । २ इच्छा, प्रवृत्ति ।
प्रमद् (सं ० पु०) प्र-मद्-(प्रमद्सम्मदौ ह्षें । पा ३।३।६८)
इति अप् । १ हर्ष, आनन्द । प्रमाद्यत्यनेनेति प्र-मद् करणे
अप् । २ प्रस्तूरफल, धत्रेका फल, फूल । दानवविशेष । ४ वशिष्ठके एक पुतका नाम । ये उत्तम मन्वन्तर
में सप्तर्षिके मध्य एक थे । ५ मत्तता, मतवालापन
(ति०)६ मत्त, मतवाला ।

प्रमद्क (सं० पु०) १ परलोकसत्तावादी नास्तिकमेद। जो सव नास्तिक परलोककी सत्ता खीकार नहीं करते, उनका कहना है, कि इहलोकके अलावा और कोई लोक है ही नहीं। प्रद खार्थे कन्। २ प्रमद हेखे।

प्रमद्कानन (सं० क्की०) प्रमदानां काननं (ङारो. इन्द्रसोर्चहुत्रम्। पा (१३१६३) इति हस्तः वा प्रमदाय हर्षाय यत् काननं। प्रमदावन, राजाओंके अन्तःपुरोचित उद्यान।

प्रमद्वन (सं ० क्की०) प्रमदानां वनं, ङ्यापोर्रित हुसः। प्रमोदकानन, आनन्दकाननः।

प्रमदा (सं ० स्त्री०) प्रमदयति पुरुषमिति प्र-मद-हर्षे-णिच् अच्-वा प्रमदो हर्षोऽस्त्यस्या इति अच्-टाप्। १ उत्तमा-स्त्री, सुन्दरी स्त्री। प्रियंगु, मालकंगनी। ३ चतुर्दशा-क्षरपादक वृत्तिविशेष। इसके प्रत्येक चरणमें १४ अक्षर पहते हैं। प्रमदाकानन (सं० क्ली०) प्रमदानां काननं । प्रमद्वन । प्रमदावन (सं० क्ली०) प्रमदानां वनं । प्रमद्वन । प्रमद्वितव्य (सं० क्ली०) प्रमदानां वनं । प्रमद्वन । प्रमद्वितव्य (सं० क्ली०) प्रमद-तव्य । उपेक्षायोग्य । प्रमद्वरा (संक्ली०) शुनककी माता, कवकी भार्या । गन्धवीराज विभ्वावसु और मेनका अप्सरासे इसका जन्म हुआ था । स्थूलकेश मुनि इसका लालन पालन करते थे । मुनिने प्रमति मुनिके पुत कवके साथ इसका विवाह कर दिया । (भारत राष्ट्र अ०)

प्रमनस् (सं॰ ति॰) प्रकृष्टं मनो यस्य । इर्षयुक्त, प्रसन्न । प्रमना (हिं॰ वि॰) प्रमनस् देखी ।

प्रमन्थ (सं • पु •) अन्युत्पादक काष्ट्रभेद । किसी किसी पुराविद्का विश्वास है, कि यही शब्द रूपकभावमें श्रीकलोगोंके निकट Prometheus नामसे वर्णित हुआ है। शान देखी।

प्रमन्यु (सं • पु •) प्रियन्नतवंशीय वोरन्नतके एक पुत,
मन्यूके कितप्र श्राता। (मागवत पारेषारेष)
प्रमन्द (सं • पु •) सुगन्धयुक्त वृक्षमेद।
प्रमन्दनी (सं • क्षि •) सुगन्धयुक्त वृक्षमेद।
प्रमन्यु (सं • ति •) प्रकृष्टं मसुर्यस्य। १ अतिशय कोधयुक्त, वहुत गुस्सावर। पु •) २ अति कोध, वहुत गुस्सा।
प्रमय (सं • पु •) प्र-मी-वधे मावे-अच्। वध, हिंसा।
प्रमय (सं • ति •) प्र-मी-वधे कर्त्तरे उन्। हिंसक, मारने-

प्रमर (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टक्ष्यसे मारियता, वह जो उत्तमक्रय-से शबुका दमन करता हो।

वाला ।

प्रमरण (सं ॰ क्लो॰) प्रकृष्टकपसे मदंन, अच्छी तरह इमन करना।

प्रमर्दक (सं ० ति०) प्र-मृद्ध-ण्वुल् । प्रकृष्टकपसे मदेक । प्रमर्दक (सं ० ति०) प्रमृद्धाति प्र-मृद्ध-ल्यु । १ प्रकृष्टकपसे मदेक, खूव मर्दन करतेवाला । (पु०) २ दैत्यविशेष, एक सस्रका नाम । ३ विष्णु समस्त जगत्का मर्दन करते हैं, इसीसे उन्हें प्रमर्दन कहते हैं। ३ प्रकृष्टकपसे मर्दन, अच्छो तरह मलना दलना । ४ खूव कुचलना, रींदना । ५ दमन करता, नष्ट करना ।

प्रमर्दितु (सं ० ति०) प्रमर्दनकर्ता, मर्दन करनेवाला ।

प्रमर्दिन् (स'० वि० ' पृक्षप्रहरासे मर्दनशील, अच्छी तरह दलन करनेवाला ।

प्रमहस् (सं ० ति०) पुरुष्टं महः तेजः यस्य । पुरुष्ट तेजस्वी, पुमावशाली ।

प्रमा (सं ॰ स्त्रो ॰) पृमोयते इति पू-माङ् माने (आतश्त्रोप सर्गे । पा ३।३।१०६) इति अङ् टाप् । १ यथार्थज्ञान, शुद्धवोध ।

नैयायिकोंके मतसे अथविज्ञानका नाम प्रमा है। 'यत् नर्थविज्ञान' सा प्रमा' (नात्सायन) जिससे अर्थका विज्ञान मर्थात् सम्यक् वोध हो, उसे प्रमा कहते हैं। जिसमें जो है, उसमें उसके अनुभवका नाम प्रमा है। 'यत यदन्ति तत तस्यानुभवः' 'तद्वति तस्त्रकारको द्वा' (नात्सा) जहां जैसी नात है, वहां उस प्रकारके ज्ञानका नाम प्रमा है। इन सब वचनोंका स्थूल तात्पर्य यह है, कि भ्रम भिन्न ज्ञानका नाम प्रमा है। जिस ज्ञानमें किसी प्कारका प्रमप्रमाद नहीं है, वही प्रमापदवाच्य है। भ्रमप्रमादादि दोष दिखाई देनेसे अप्रमा और भ्रमश्रान्य होनेसे ही प्रमा होगी।

जिसमें जो गुण और दोष है, उसे उसी गुण और दोषका जाननेका नाम यथार्थ ज्ञान वा प्रभा है। जैसे ज्ञानी व्यक्तिको पिएडत और अन्धेको अन्धा जानना। जिसमें जो गुण और दोष नहीं है, उसे उसो गुण या दोषका जाननेका अयथार्थ ज्ञान वा अप्रमा कहते हैं। जैसे पिएडतको मूर्ख और रज्ज्को सर्पके जैसा जानना। विशेष विष्याण प्रमाण शन्दमें देखी। २ नींच। ३ माप। प्रमाण (सं० क्को०) प्रमीयते विश्वमनेनेति प्र-मा-ल्युट्। १ विष्णु। २ नित्य। ३ मर्यादा, थाप, साख। ४ गास्त्र। ५ एक अलङ्कार। इसमें आट प्रमाणोंमेंसे किसी पक्का कथन होता है। ६ सत्यता, सचाई। ७ निश्चय, यकीन। ८ प्रामाणिक वात या वस्तु, आदरकी चीज। ६ इयत्ता, हद। १० मूल्यन। ११ प्रमाणपत्त, आदेश-पत्त। १२ वह कारण वा मुख्य हेतु जिससे ज्ञान हो, वह वात जिससे कोई दूसरो वात सिद्ध हो, प्रमा, सवूत।

समी दशंनशास्त्रमें प्रमाणका विषय आलोचित हुआ है। अति संक्षिप्तमावमें उसका विषय यहां लिखा जाता है। सांख्यदर्शनमें कपिलने जो प्रमाणका सूत लिखा है, वह यों है—"द्वयोरेकतरस्य वाप्य सिन्नकृष्टार्थंपरिच्छितेः प्रमा तत्साधकं तित्वविधं प्रमाणम्।" वस्तु जव तक समम्भमें नहीं आती है, तव तक वह असिन्नकृष्ट या असम्बन्ध रहती है। असिन्नकृष्ट वस्तु इन्द्रियादि द्वारा सिन्नकृष्ट अर्थात् बुद्धग्राह्म होनेसे जो उस वस्तुका परिच्छेद, इयत्ताका धारण या स्वरूपनिश्चय होता है, वही परिच्छेद, वा अवधारण प्रमा कहलाता है। प्रमा प्रमात्पुरुष अथवा वुद्धिका धर्म है। जो उस वस्तुनिश्चयकारिणी प्रमाका साक्षात्कारक अर्थात् जनक है, उसीको प्रमाण कहते हैं।

वस्तु जब तक इन्द्रियके साथ संयुक्त नहीं होतो, तव तक वह असन्निकृष्ट रहती है। पीछे वह असन्निकृष्ट वस्तु सन्निकृष्ट अर्थात् इन्द्रियसंयुक्त हो कर अथवा पुरुषके निकट परिच्छेद पाती है; अर्थात् वह एतद्रृप और अमुक इत्याकारमें अवधृत होती है। वह अध्य-वसाय वा युद्धिका विकाश विशेष प्रमा नामसे प्रसिद्ध है।

उक्त प्रकारका प्रमा-ज्ञान साक्षात् सम्बन्धमें जिसके द्वारा उत्पन्न होता है, उसका नाम प्रमाण है। अधिक कहना क्या, प्रमाण द्वारा ही वस्तुकी परीक्षा सिद्ध होती है। अव प्रश्न हो सकता है, कि प्रमाण कितने प्रकारका है, एक है वा अनेक ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि जब बस्तु नाना प्रकारकी है और उनकी अवस्था भी अनेक है -- अतीतावस्था, अनागता-वस्था और वर्त्तमानावस्था, तव स्यूल, स्क्म, दृश्यादृश्य पदार्थं परिपूर्णं वहुगुणयुक्त जगत्की परीक्षाके लिये जी एकमाल प्रमाण रहेगा सो असम्मव है। जगत्को कोई भी वस्तु अखण्ड दण्डायमान नहीं है, परीक्षासाधक पदार्थ एक होनेसे जिस समयमें परोक्षितव्य वर्तमान है, उस समयमें परीझासाधक सामग्री रह भी सकती है या नहीं भी रह सकतो है और जिस समयमें परिकासाधक प्रमाण विद्यमान है, उस समय परीक्षितव्य वस्तु नहीं भी रह सकती है। इस प्रकार होनेसे परोक्षा अप्रतिष्ठित होती है। अप्रतिष्ठितत्व दोषपरिहारके लिये एक ऐसा पदार्थ खोकार्य है, जो तोनोंकालमें अवस्थायो है। प्रमाणके एक

होनेसे लैकालिक परीक्षा सिद्ध नहीं होती। सुतरां वर्तमान परोक्षाके लिये जिस प्रकार सर्वसम्मत प्रत्यक्ष उपस्थित है, उसी प्रकार अतीत और अनागत परीक्षाके लिये प्रगाणान्तरका रहना आवश्यक है। परीक्षाकार्यको जगदन्तःपातो खोकार करना होगा, नहीं करनेसे जगत्की असम्पूणताकी आपत्ति होती है। अतः यह क.ना या खोकार करना उचित है, कि जगत्की अवस्था और पदार्थ जिस प्रकार अनेक है, उसी प्रकार तहुप्राहक प्रमाण भी अनेक है।

प्रमाणकी संख्या कितनी हैं, इसमें वहुतोंका मतभेद देखा जाता है। कोई एक, कोई दो, कोई तीन, कोई चार, कोई पांच और कोई छ। प्रमाण स्वीकार करते हैं। वेदान्तकारिकामें इस प्रमाणके मतभेद्विषयमें ऐसा छिखा है—

"प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणाद्युगतौ पुनः । अनुमानञ्च तचापि सांख्याः शब्दञ्च ते उमे ॥ न्यायैकदेशिंनोऽप्येवमुपमानञ्च केषलम् । अर्थापस्या सहैतानि चरवार्थादुः प्रभाकराः ॥ अभावषष्ठान्येतानि भद्दावेदान्तिनस्तथा । सम्भवैतिहायुक्तानि इति पौराणिका जगुः ॥"

(वेदान्सका०)

न्यायदर्शनमें प्रमाणका विषय सविस्तार छिखा है।
महर्षि गौतमने खप्रणीत गौतमस्त्रमें जो सोछह पदार्थोंका
स्वीकार किया है, उसके आरम्भमें ही प्रमाण शब्दका
उच्छेख देखा जाता है। कारण, प्रमाण द्वारा सभी
पदार्थ स्थिर किये जाते हैं। यही कारण है, कि उन्होंने
पहले नमाण शब्दका ही उच्छेख किया है।

महर्षि गीतमने चार प्रकारका प्रमाण माना है। 'श्रय-क्षानुमानोपमानग्रुबनः प्रमाणानि" (गीनमू ० ११११) प्रमाण शब्द प्र+मा + ब्युट् प्र-उपस्तग, मा-धातु और ब्युट् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। प्र-उपसर्गके साथ मा-धातुका अथ यथायझान और ब्युट् प्रत्ययका अथं करण है। तीनों मिल कर प्रमितिके कारणका बोध करता है, इसीसे इसको प्रमाण कहते हैं।

कार्यमात हो कर्त्ता है और वह करणकी अपेक्षा करता है। कर्त्ता और करणके नहीं रहनेसे कोई भो कार्य नहीं हो सकता। वस्त्रादि कार्यका कर्ता तन्तुवाय है और तुरी आदि उसका करण है। इसी प्रकार ज्ञान भी जब एक कार्य है, तब उसके कर्ता और करण अवश्य है। जिसके यापार के बाद ही कार्य उत्पन्न होता है, उसका नाम करण है। आत्माके यत्नसे ज्ञान पैदा होता है, उसका नाम करण है। आत्माके यत्नसे ज्ञान पैदा होता है, इसोसे ज्ञानका कर्ता आत्मा है। इन्द्रिय और व्याप्तिज्ञानादि आदिके व्यापारके वाद ज्ञान उत्पन्न होता है, इसोसे इन्द्रिय और व्याप्तिज्ञानादि ज्ञानके करण हैं। उस ज्ञानका करण ही प्रमाण है। यह प्रमाण चार प्रकारका है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान भीर शब्द। प्रत्यक्ष शब्दसे ज्ञानविशेषका और ज्ञानविशेषके करणका भी बोध होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाणकः धिषय प्रत्यक्ष शन्द[ः] देखी । अनुमान शब्द अनुमिति-करणका वोधक है। इस कारण अनुमितिका करण ही अनुमान प्रमाण है। अनु पश्चात्, मान अर्थात् ज्ञान, पश्चात् ज्ञान ही अनु-मान है। व्याप्य पदार्थ (धूमादि)-के दर्शनान्तर व्यापक पदार्थ (बह्रि प्रभृति)-के निश्चयको अनुमिति कहते हैं। जब किसी मकानमेंसे दूरसे धूआँ निकलते दिखाई . देता है, तब उस मकानमें विह है, ऐसा सवोंको प्रतीत होता है। नदीमें जलवृद्धि वा वेगकी अधिकता देखनेसे किसी देशमें अवश्य वृष्टि हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। यहां पर उक्त विह और वृष्टिका निश्चय किसी इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ, पर न्याप्य घूमादि वा नदीवृद्धि और चेग देख कर ही यह ज्ञान उत्पन्न हुआ, इसीसे उक्त निश्चयको अनुमान कहते हैं। यहां पर धूम वहिका व्याप्य और विह धूमका व्यापक है। नदीवृद्धि और वेग वृष्टिका व्याप्य तथा वृष्टि नदीवृद्धि और वेगकी व्यापक है । जिस पदार्थके नहीं रहनेसे जिस वस्तुका ् अभाव रहता है, उस पदार्थंकी व्याप्य उक्त वस्तु होती है। जैसे, वहिके नहीं रहनेसे धूम कभी भी नहीं रह सकता, अतएव धूम विह पदाधका ब्याप्य और धूमका व्यापक है। वृष्टि नहीं होनेसे नदीकी वृद्धि या जलका वैग कभी नहीं हो सकता, अतएव नदीवृद्धि वृष्टिकी व्याप्य और वृष्टि

जो ज्ञान जिस पदार्थके बाद उत्पन्न होता है, वही Vo. XIV- 151

. उसको ब्यापक है।

पदाय उस शानका करण होता है। अमुक स्थानमें विह है, यह शान धूम देखनेके वाद उत्पन्न होता है तथा नदोकी वृद्धि देखनेके वाद वृष्टि हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। अतपव धूमदर्शनादि वह्यादिकी अनु-मितिका करण हुआ है। इसी प्रकार उपमितिका करण उपमान और शब्दवीधका करण शब्दममाण स्थिर करना होगा।

गौतमस्त्रमें अनुमानका लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट इआ है,—

"अथ तत्पूर्वेकं विविधमनुमानं पूर्वेवत् शेपवत् सामा-न्यतो दृष्टश्च" (गौतमस्० १११,५)

किसी व्याप्य पदार्थको देख कर अन्य किसी च्यापक-का जो निरचय होता है, उसे अनुमिति कहते हैं। अनु-मितिस्थलमें पहले लिङ्गदर्शन, पीछे लिङ्गलिङ्गी अर्थात् हेतुसाध्यका सम्बन्धज्ञान वा ज्याप्तिज्ञान, अन्तमे अप्रत्यक्ष अर्थ (साध्य) का ज्ञान होता है। इसी साध्यका ज्ञान अनुमिति है। व्याप्तिज्ञान वा लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्धदर्शन ही करण है, परामर्श अर्थात् साध्यव्यातियुक्त हेतुका पक्ष-वृत्तित्वज्ञान ही व्यापार है। लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्ध अर्थात् ध्यातिज्ञान करण होनेके कारण अनुमान है। क्योंकि, पहले लिङ्गदशन, पीछे ध्यातिका ज्ञान वा स्मरण हुसा करता है। अनु अर्थात् पश्चात् या लिङ्गदर्शनके वाद मान अर्थात् लिङ्गलिङ्गोके सम्वन्ध-ज्ञान होनेका नाम ही अनुमान है। यह अनुमान प्रमाण प्रत्यक्षपूर्चक है। क्योंकि, लिङ्गका प्रत्यक्ष नहीं होनेसे लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्ध स्मरण नहीं हो सकता। लिङ्गलिङ्गीका सम्बन्ध भी पहले प्रत्यक्ष हुआ है। कारण, अननुभूत विषयका स्मरण नहीं हो सकता। जिस व्यक्तिने महानस (रसोई-घर)-में विह और सहचार अर्थात् सहावस्थान प्रत्यक्ष किया है, क्रमशः पर्वत पर धूम दिखाई देनेसे उसीको विहिधूमके सम्बन्ध वा व्याप्तिका स्मरण हो सकता है। जिस व्यक्तिने वहि और धूमके सामानाधिकरण्यका कभी भी अनुभव-नहीं किया; उसके लिये वहिधूमकी ध्याप्तिका स्मरण विलक्कल असम्भव है। कहनेका तात्पर्य यह, कि अव्यवहित भावमें हो चाहे व्यवहित भावमें, अनुमानके मूलमें अवश्य ही प्रत्यक्ष रहेगा।

पहले ही कहा जा चुका है, कि व्याप्य पदार्थको देख कर अन्य किसी व्यापकका णो निश्चय होता है, वही अनुमिति है। किसी पदार्थंको देखनेसे ही अन्य पदार्थका निश्चय होता है, सी नहीं। यदि ऐसा होता, तो गाय देखनेसे घोड़ेका और घट देखनेसे परका निश्चय हो सकता था। इस कारण व्याप्य देखनेसे ही व्यापकका निश्चय होता है, यही अवधारण करना होगा। जैसे-धूम देखनेसे पर्वतका, गृहादिमें अनि तथा नदी-वृद्धि देखनेसे वृष्टिका और पत देखनेसे लेखकका निर्णय होता है। यहां पर धूम वहिका व्याप्य है। व्याप्तिविशिष्ट होनेके कारण हो उसका नाम व्याप्य पडा - है। साध्यशून्यदेशमें अर्थात् साध्य जिस स्थान पर रहता है, उस स्थानमें नहीं रहनेको व्याप्ति कहते हैं। ्राब्द जिसकी अनुमिति होता है, उसका नाम पश्च है। : यहां पर विह्वृष्टि प्रभृतिकी अनुमिति होती है, इसीसे . विह्न और वृष्ट्यादि साध्य है। विह्निश्चन्यदेशमें कभी धून नहीं रहता अर्थात् वित नहीं है, वहां धूमका असन्द्राव है। इस कारण धूम विह्नका व्याप्य है। वृष्टि नहीं ेहोनेसे नदी किसी तरह वढ़ नहीं सकती। जहां अधिक वृष्टि होती है, वहीं नदीकी वृद्धि है। इस कारण वृष्टिका न्याच्य नदीवृद्धि है, ऐसा जानना होगा। पर्वे तादि पर . बह्बिच्याच्य धूमादिका दर्शन हो कर पीछे वह्विच्याप्य धूम-विशिष्ट पव⁸तादि और वृष्टिन्यात्र नदी वृद्धिविशिष्ट देशादिका निश्चय होता है । पीछे बहिमान पव तादि और नदीवृद्धिविशिष्ट देशादिसप अनुमिति उत्पन्न होती . है। इस प्रकार जिस विह आदिका अनुमान होता है, उसका कारण जिस पदार्थका प्रत्यक्ष होता है, उसके साथ ् इन्द्रियका संयोग हुए विना नहीं होता। यहां पर्व तादि पर जो वहिका निर्णय अथवा देशादिमें वृष्टिका निर्णय हैं, उसमें इन्द्रियका सम्बन्ध नहीं है तथा किसी वाम्य द्वारा भी उसका ज्ञान नहीं होता। इस कारण उसे शब्दप्रमाण भी नहीं कह सकते। अतः साध्यव्याप्य हेतु-विशिष्ट पक्ष पर्वतादिक्षप झान हो कर जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसीका नाम अनुमिति है।

यह अनुमान तीन प्रकारका है, पूर्व वत्, शेववत् और सामान्यतोद्वर । इनमेंसे कारणहेतुक, अनुमानका नाम पूर्व वत् है। यथा—मेघकी उन्नति देख कर शोध वृष्टि होगी, इस प्रकार अनुमान तथा रोगविशेष देख कर मृत्यु सन्निकट है, येसा अनुमान है। यहां पर वृष्टि-का कारण मेघकी उन्नति और मृत्युका कारण रोगविशेष है। ये दोनों हेतुज्ञापक होनेके कारण वह अनुमिति कारणिखन्नक अनुमान हुई है।

कार्यहेतुक अनुमान अर्थात् कार्यको हेतु करके कारण-की जो अनुमिति होती है, उसके कारणको शेपवत् अनुमान कहते हैं। यथा—धूमादि देख कर अनि आदि-की अनुमिति और नदीका वेगाधिषय देख कर अतीतवृष्टि अनुमिति।

जहां कार्य और कारण-भिन्नहेतुक जो अनुमान होता है, उसे सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। यथा—जन्यत्थ देख कर विनाशित्वकी अनुमिति इत्यादि।

नव्य नैयायिकोंने, केवलान्वयि अनुमानका नाम पूर्ववत् अनुमान, केवलव्यतिरेकी अनुमानका नाम शेष-वत् अनुमान और अन्वयव्यतिरेकी अनुमानका सामा-न्यतोद्वयः अनुमान नाम स्थिर किया है।

जहां वरितरिक वर्राप्ति न रह कर केवळ अन्वय-वर्राप्तिकान रहता है और उससे जो अनुमिति उत्पन्न होती है, उसके कारणको केवळान्वयी कहते हैं। अन्वय-वर्गाप्तिकान न रह कर वर्रातरिक वर्गाप्तिकानके लिये जो अनुमिति होती है, उसका कारण केवळवर्रातरिकी है। दोनों वर्गाप्तिकानसे जो अनुमिति उत्पन्न होती है उसका कारण अन्वयवर्गातिरेकी है। वर्गाप्ति दो प्रकारको है, अन्वयवर्गाप्ति और वर्गतिरेकवर्गाप्ति। नवर नैयायिकोंने ये सब विषय ले कर इतने स्कूमभावमें विचार किया है, कि उसका समक्तना वहुत कठिन है।

पूर्ववत अनुमान—कारण और कार्यके मध्य पहले कारणकी सत्ता रहती है। पीछे अर्थात् उत्तरकालमें उससे कायकी उत्पत्ति होती है। इस लिये पूर्व शब्दका अर्थ कारण और शेष शब्दका अर्थ कार्य है। अतएव जहां कारण द्वारा कार्यका अनुमान होता है, उसीका नाम पूर्ववत् है। यथा—मेघकी उन्नति देख कर वृष्टिका अनुमान। पूर्ववत् शब्द मत्वर्थप्रत्यय और वितिमृत्यय दोनों प्रकारसे सिद्ध हो सकता है। मत्वर्थ-

13- - 2-4 16.

'प्रत्यव द्वारा सिद्ध होनेसे पूर्ववत् (शब्दका अर्थ पूर्वयुक्त ! है। पूर्व शब्दका अर्थ फारण है। कारणयुक्त अनु-मानका उदाहरण पहले ही दिखळाया जा चुका है। पूर्व-वत् शब्द वतिप्रत्यय करके निष्पन्न होनेसे इसका अर्थ पूर्वतुल्य होता है। तद्युसार दूसरी तरहसे अनुमानका बैविध्य लिखा जाता है। जहां सम्बन्ध ग्रहणकालमें मर्थात् व्याप्तिशानकालमें लिङ्गलिङ्गी वा साध्यसाधनका प्रत्यस् होता है, पीछे प्रत्यक्षपिद्धष्ट साधन द्वारा प्रत्यक्ष-व्रशंनयोग्य साध्यका अनुमान होता है, वहां पूर्वद्रुष्टके तुल्यरूप साध्यका अनुमान होनेके कारण उसका पूर्व-वत् नाम एड़ा है। पाकशालामें धूम और वहिका सम्बन्ध वा व्याप्ति गृहीत हुई है । कालान्तरमें तथाविध अर्थात् महानसदूर धूमके समान धूम देख कर पर्वतादि पर तथाविध बहिका अनुमान होता है। जहां व्याप्तिप्रहण-कालमें साध्य और साघन दोनोंका प्रत्यक्ष होता है, वहां तथाविध साधन द्वारा तथाविध साध्यका अनुमान होने-से पूर्वयत् अनुपान हुआ करता है। इस अनुमानमें प्रत्यक्ष साधन द्वारा प्रत्यक्षयोग्य साध्यका अनुमान होता है अर्थात् पहले प्रत्यक्षद्वष्ट नियत सम्वन्ध पदार्थद्वयका एक पदार्थ देख कर अपर पदार्थका अनुमान होता है। यही पूर्ववत् अनुमान है।

शेयवत अनुयान कार्य द्वारा कारणके अनुयानका नाम शेयवत् अनुमान है अर्थात् कार्य देख कर जहां कारणका अनुमान किया जाता है वहां शेयवत् अनुमान होता है। नदीकी परिपूर्णता और होतकी प्रखरता देख कर जो अतीतवृष्टिका अनुमान होता है, उसका नाम शेयवत् अनुमान है। कारण, नदीका पूर्णत्व और स्रोतिका प्रखरत्विशेष वृष्टिका कार्य है। वृष्टिके जलने ही वह काम सम्पादन किया है। खुतरां यहां कार्य देख कर कारणका अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान हुआ है। इस प्रकार कार्य देख कर जहां जहां कारणकी अनुमान होगा। इसका पक जदाहरण नीचे दिया जाता है,— शब्दको उत्पत्ति और विनाश प्रत्यक्षसिद्ध है। इस कारण शब्द सामान्य वा निशेषादि हो हो नहीं सकता। क्योंकि, सामान्यादि पदार्थकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। इन्य, गुण सौर कर्म ये तीन पदार्थ अनित्य है। शब्द भी

अनित्य है, अतपव शब्द द्रव्य, गुण वा कर्मपदार्थके अन्त-भूत है। यदि इस प्रकारका संदेह उपस्थित हो और यदि विशेषकपसे विवेचना कर देखा जाय, तो यह अवश्य कहना पड़ेगा, कि शब्द द्रव्यपदार्थ नहीं हो सकता। कारण, उत्पन्न द्रव्यमात ही अनेक द्रव्यवृत्तियुक्त है। कोई उत्पन्न द्रव्य एकमात द्रव्यमें नहीं रहता, अनेक द्रव्यमें हो रहता है। ऋषाल और कपालिका ये दोनों द्रस्य घट-अधिकरण हैं। जिन सब तन्तुओं द्वारा पाट या वस्तु प्रस्तुत हुआ है, ये सव तन्तु पटके अधिकरण हैं। अवयवदुव्यके परस्पर संयोगसे अवयविद्वयकी उत्पत्ति होती है। अतएव अवयवद्रन्य अवयविद्रन्यका आश्रय वा अधिकरण है । अवयवद्रव्य अनेक है, इस कारण अवयविद्रव्य भी अनेकांश्रित वा अनेकवृत्तियुक्त हैं। यह एक द्रव्यवृत्ति हो ही नहीं सकता। परन्तु शब्द एक-द्रव्यवृत्ति है। आकाश शब्दका अधिकरण है। आकाश केवल एक है, अनेक नहीं। जन्यद्रव्यमात ही अनेक द्रव्यवृत्ति है, शब्द जन्य है, अथच एक जुन्यवृत्ति है। इस कारण शब्द द्रव्यपदार्थं हो ही नहीं सकता। कमेंपदार्थ कहना भी उचित नहीं। क्योंकि, कमें कर्मा-न्तरका जनक नहीं होता । किन्तु शब्द शब्दान्तरका जनक हो सकता है। अभिघात द्वारा जो शब्द उत्पन्न होता है, दूरस्थित व्यक्ति उसे छुनने नहीं पाता। यह प्रखरोत्पन्म शब्द दूसरे शब्दको उत्पन्न करता है। इस प्रकार वीचितरङ्गको तरह शब्दपरम्परासे उत्पन्न होते होते दूरस्थ थोताके कानमें उस शब्दकी उत्पत्ति होती है ; दूरस्य श्रोता केवल वही शब्द सुनता है। निकटस्य व्यक्तिको तोष, दूरस्थ व्यक्तिको मन्द, दूरतरस्थ व्यक्तिको मन्द्तः शब्द सुनाई देता है । यदि सभी एक तरहका शब्द सुने, तो उसका तीवमन्दभाव नहीं हो सकता। अतप्त्र यह स्थिर हुआ, कि उक्त स्थलमें भिन्न सिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न शब्द सुनते हैं। पूर्व पूर्व शब्द पर शब्दका जनक है। अतएव शब्द कर्म नहीं है। क्योंकि, कमें दूसरे कमका जनक नहीं होता। उक्त प्रकारसे शन्दका द्रव्यत्व और कर्मत्व प्रतिपिद्ध हुआ। शन्दमें सामान्यत्वादिकी प्रसक्ति वा सम्भावना नहीं है। कारण, शब्द अनित्य है और सामान्यादि नित्य है।

सम्भावितके मध्य जो अवशिष्ट रहा, शब्द वही पदार्थ है। इसी प्रकार शब्दका गुणत्व स्थिर होता है। इसीका नाम शेषवत् अनुमान है।

धामान्यतोद्द्ध अनुमान—पूर्ववत् और शेषवत् अनु-मानका नाम सामान्यतोद्र्ष्ट है। देशान्तरद्र्ष्ट वस्तुका देशान्तरमें दर्शन, वह वस्तु गतिपूर्वक देखनेमें आती है। गृहमें दृष्ट व्यक्तिका रध्यामें दर्शन, उसका गतिपूर्वक सन्देह नहीं है। आदित्य भी देशान्तरमें दृष्ट हो कर देशान्तरमें दृष्ट होते हैं। अतयव अप्रत्यक्ष होने पर भी आदित्यकी गतिका अनुमान किया जा सकता है। यही अनुमान सामान्यतोद्र्ष्ट है। क्योंकि, सामान्यतः देखा गया है, कि अन्यब दृष्टका अनाम दर्शन गतिपूर्वक है। तद्नुसार आदित्यकी गतिका अनुमान किया जाता है।

जो लिङ्गी वा साध्य कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता, अथच प्रत्यक्ष साध्य और साधनके अनुसार सामानातः व्याप्तिज्ञानके वलसे अनुमित होता है, वैसे नित्य-परोक्ष-साध्यका अनुमान सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। क्योंकि, सामानातः किसी विषयको देख कर अप्रत्यक्ष अर्थात् प्रत्यक्षके अयोग्य विषयका अनुमान होता है। रूपादिकी उपलब्धि वा ज्ञान द्वारा चश्चुरादि इन्द्रियका अनुमान है। छेदादि किया परशु प्रभृति करणसाध्य अर्थात् परशु-करण द्वारा छेदिकया सम्पन्न होती है। इसी प्रकार पाकादिकिया काष्टादिकप करणसाध्य है, विशेष २ किया विशेष विशेष करणसाध्य देख कर क्रियामात ही करण-साध्य है। अतएव कपादिकी उपलब्धि और किया भी करणसाध्य है। इस प्रकार क्रपांदि उपलिध्यका कारण अनुमित होता है। जो कपादिकी उपलिधका कारण-इतमें अनुमित है, वही चक्षरादिकी इन्द्रिय है। समी इन्द्रियां अतीन्द्रिय हैं, वे कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होतीं। लोग अकसर जिन सव संस्थानको चक्षरादि इन्द्रिय कहते हैं, वे यथार्थमें चक्षरादि इन्द्रिय नहीं हैं। वे इन्द्रियके अधिष्ठान वा स्थानमात हैं । इनके दो मेद हैं, स्वार्थ और परार्थं । स्वयं समम्तनेके लिये जो अनुमान किया जाता है, लिङ्गदर्शन और ब्याप्तिस्मरणसे ही वह पर्यवसित होता है। परार्थं अनुमान अर्थात् दूसरेको समम्भानेका जो अनुमान होता है, वह न्यायसाध्य है। पञ्चअवयवयुक्त

वाक्यविशवका नाम न्याय है। इस एंडव अवयवयुक्त ।यापः का चिवय न्यायदर्शनमें देखों।

प्रत्यक्ष प्रमाण प्रायः वर्त्तमान विषयग्रहणमें ही पय-वसित हुआ करता है। परन्तु अनुमान वैसा नहीं है। अनुमानका कार्यक्षेत्र वर्त्तमानको तरह अतीत और अना-गतविषयग्रहण करनेमें भी समर्थ है। धूम देखनेसे वर्त्त-मान अन्तिका, नदीको वृद्धि देखनेसे अतीत वृष्टिका और मेघोन्नति देखनेसे अनागत वा भविष्य वृष्टिका अनुमान होता है।

अनुमानका छक्षण तो कहा गया, अव उपमान-प्रमाणका विषय छिखा जाता है। महर्षि गौतमने उप-मानका छक्षण इस प्रकार वतलाया है,—

"प्रसिद्ध साधम्मात् साध्यसाधनसुपमानं ।" . . . (गौतमस् १(१)६) "प्रज्ञातेन सामान्यात् प्रज्ञापनीयस्य प्रज्ञापनसुपमानमिति" (बात्सा•)

जिस व्यक्तिने नीलगाय कमी नहीं देखी है तथा उसके खद्भपसे वह कुछ भी जान-कार नहीं है उस व्यक्तिको यदि कहा जाय, कि गोसदूश नीलगाय होती है औं यदि वह पीछे जंगल जाय तो वहां नीलगाय देख कर यही अनुमान करेगा, कि यह पशु गायके सदृश है । अनन्तर यह गोसदृश पशु गवयपद्याच्य है, इस पूर्ववाक्याधका स्परण करके यह पशु गव .पदवाच्य है, ऐसा स्थिर करता है। इस प्रकार स्थिर करनेका नाम उपमिति है। गोसदृश गवय, इस वाक्यार्थका जो स्मरण होता है, वही ज्यापार है। पीछे यह पशु गोसदृश है, इस् प्रकारका जो प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है, उसका नाम उपमान है। स्वस्थित प्रसिद्ध शब्द मसिद्ध गवादिका बोधक है, उसके साधम्य अर्थात् गवादिका सादृश्य ज्ञान है । इस प्रकारका साध्यसाघन ही उपमान शब्दार्थ है। नैयायिक लोग वैधर्म्यज्ञानको भी उपप्रान कहा करते हैं। यथा अतिदीघं गलविशिष्ट और कठिन ऋएटकमक्षण-कारी, अति चञ्चल अधर और ओष्टशाली जी पशु होता हैं, वह करभपद्वाच्य है। इस प्रकार उपदेशप्राप्त हो कर यदि कोई व्यक्ति ऊंट देख ले, तो वह जकर अनुमान

करेगा, कि इस पशुका गला लम्बा और अघर ओष्ठ अति चञ्चल है तथा यह कठिन कएटकमोजी है, अतः यही जन्तु करभयद्वाच्य है। इस प्रकारका निश्चय ही छप-मिति है। यहां इस पशुमें वर्त्तमान जो अति दीर्घ गल -देशादि है, वह अन्य पशुका वैधर्म्य है अर्थात् अन्य पशुमें ये सब धर्म नहीं हैं। यह पशु तदिशिष्ट है, यही ज्ञान उप-मान कहलाता है तथा उस प्रकारका दीघे गलादि धर्म-विशिष्ट पशु ही करभपद्वाच्य है, इत्यादि उपदेश वाष्यार्थकां जो ज्ञान है उसे वत्रापार कहते हैं । इसका स्थूल तात्पर्य यह, कि प्रसिद्ध पदार्थके सादृश्य द्वारा अप्रसिद्ध पदार्थके साधन वा ज्ञानका नाम उपमान है। संग्रा भीर संग्राका सम्बन्धं ग्रान है अर्थात् इस पदार्थका यह नाम है, वा यह वस्तु इस शब्दका अर्थ है, ऐसे उप-मानका फल-गोसदूरागवय है, यहले ही इसका उदा-हरण दिया जा चुका है। कुछ बढ़ा चढ़ा कर कहनेसे ही इस उपमान प्रमाणका विषय सहजवीध्यं हो जायगा। गवय (नीख गाय) नामक एक प्रकारका जंगली पशु है। गवय कैसा पशु है, यह नगरवासी नहीं जानते, कथा-प्रसङ्गमें नगरवासीके प्रशानुसार जंगली आदमीने कहा, कि गवय पशु देखनेमें गायके जैसा होता है। संयोगवश वह नगरवासी आखेटको जंगल गया और वहां दैवात् पक गवय पशु उसकी निगाहमें पड़ा । वह नगरवासी .उस सदृष्ट पूर्व पशुको देख कर जंगली आदमीके पूर्व-कथनानुसार समऋ गया, कि इसी अद्वृष्टपूर्व पशुक्ता नाम गवय है अथवा इसी जातिका पशु गवय शब्दका अधे है। यहां प्रसिद्ध गोपशुके सादूश्य द्वारा अप्रसिद्ध गवय पशु-का साधन वा प्रकापन हुआ है। क्योंकि, अदृष्ट पूर्व पशुमें गोपशुका साद्वस्य देख कर ही इसका वाम गवय है वा इस जातिका.पशु गवय शब्दका अर्थ है, द्रष्टाको ऐसा बान हो गया है। यहाँ अदृष्टपूर्व जंगळी पशुमें गी-सादृश्य दर्शनं करण है, जंगली आद्मीका चाक्य वा उसके अर्थका समरण व्यापार है और इस जातिका पशु गवय शब्दका सर्थ है, यह ब्रानफल है। इ सी प्रकार उप-मिति हुआ करती है।

महर्षि गौतमने शब्द्यमाणका छक्षण इस प्रकार वतलाया है—

Vol, XIV, 152

"आप्तोपदेशः शब्द इति । स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्॥"

(गौतमस्० १।१।७-८)

आप्तोपदेशका नाम शन्दममाण है। शन्द प्रतिपाद्य वर्थिषयमें जो अम्रान्त हैं, जिनके प्रतारणादिरूप दूपित अभिसन्धि नहीं है, जिन्होंने जिसे यथार्थ समक लिया है, उसे दूसरेको समकाना हो जिसका उद्देश है, वे उस विषयमें आप्त हैं। उनका उपदेश शन्दरूपप्रमाण है।

आसोपदेश या आस व्यक्तिका उपदेश अर्थात् वक्तव्य विषयमें यथार्थ झानशाली और प्रतारणादि यून्य वक्ता, उसका उपदेश, आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य-युक्त वाक्य ही प्रमाण होगा । यथा—'पुत ! तुम विद्या-म्यास करो और सत्य वाक्य वोलो । जो विद्वान् नहीं है और जो कूठ वोलता है, उसका कोई सम्मान नहीं करता ।' इस प्रकार पिता प्रभृतिका वाक्य । बालुकामय भूमि पर स्वंकी किरण पड़नेसे वहां जिसे जलभूम हुमा है, वह व्यक्ति भूमवश उस स्थानमें जल है, यदि पेसा वाक्य कहे, तो वह वाक्य वस्तुतः जलका वोधक नहीं होता, इसीसे वह प्रमाण नहीं है । खल और विणक्षण प्रतारक होते हैं, इस कारण उनका वाक्य भी प्रामाणिक नहीं है । इन सव वाक्योंमें व्यतिव्यासिकरण-जन्य सूत्रमें आस पेसा विशेषण दिया गया है । आसवाक्य भूमप्रमा-दादि दोषशून्य है, अर्थात् इसमें कुछ भी दोषभूम नहीं है ।

जिस वाषयका पद कर्ता, कर्म और करण आदिका वोधक खर है अथवा हळ्वर्णक्रप चिह्नयुक्त है, उसे साकांक्ष्र वाषय कहते हैं। जो वाषय इन चिह्नोंसे रहित है, उसका नाम निराकांक्ष वाषय है। यथा—शिन्य गुरुको पूछता है, यहां शिन्य पदोत्तर कर्मृ वोधक 'अ' और गुरुपदोत्तर कर्म-वोधक 'को' इन दो वर्णोंके रहनेसे शिन्य गुरुसे कोई विषय पूछता है, ऐसा अथं होता है। यहां पर यदि शिन्य-एदोत्तर 'अ' न रह कर 'में' और गुरुपदोत्तर 'को' न रह कर 'का' रहता, तो इस प्रकार जो वाक्य वना उससे शिन्य गुरुसे पूछता है, ऐसा अर्थ कभी भी नहीं हो सकता था। इसीसे यह वाक्य निराकाङ्क्ष है। जिन दो पदार्थों-का परस्पर सम्बन्ध नहीं रहता, उस पदार्थंके वोधजनक वाक्यका नाम अयोग्यवाक्य है। यथा विह्नशीतल समुद्र

छङ्कन करता है, यहां विह और सैत्यगुणका तथा समुद्र- · ळङ्घनका परस्पर सम्बन्ध नहीं रहनेके कारण उस वाक्य-को अयोग्य वाक्य कहा जायगा। जो पट्टो परस्पर अर्थवोधक होगा, यदि उसके मध्य अन्य पदका व्यवधान न रहे, तो उसे आसक्ति कहते हैं। यथा—सूर्यं उदय होते हैं, यहां पर सूर्यपद और उद्यपदके मध्य अन्य पदका व्यत्रधान नहीं हैं, इस कारण उसे आसकियुक्त-पद कहें गे। 'गाय आतो हैं, सूर्य अस्त होते हैं, वर्षके साध' यहां पर 'गाय और वर्षके साथ पद' इन दोनोंके मध्य सूर्य आदि पदका व्यवधान रहनेके कारण वे दोनों पद आसक्ति-रहित हुए हैं। उसके द्वारा वर्षके साथ गाय • आती हैं, ऐसा समभा जायगा। पदके साथ अर्थका सम्बन्धज्ञान हो कर अर्थका स्मरण होनेसे शब्दवोध होता है। वैसे सम्यन्धका नाम शक्ति और सक्षणा है। इनमेंसे पद और पदार्थके साक्षात् सम्बन्धका नाम शक्ति और वैसे सम्बन्धयुक्त जो अर्थ होगा उसका नाप्र शक्य है। उस शक्यका जो सम्बन्ध है, उसका नाम लक्षणा है। शब्दप्रमाणके प्रति तात्पर्येज्ञान भी कारण है। इस वाक्य द्वारा ऐसा अर्थवीध होवे, इस प्रकार वक्ताकी इच्छा ही तात्पर्य पदार्थं है।

इस शब्द्यमाणके फिर दो भेद हैं—हृष्टार्थक और अहुष्टार्थक । इस जगत्में प्रसिद्ध जो पदार्थ है, उसके वोधजनक वाक्यका नाम हृष्टार्थक है। यथा—पुत कामना करके पुतेष्टि नामक याग करें और शरीरकी पुष्टिके लिये धृत भोजन करें इत्यादि वाक्य प्रसिद्ध पुत और याग तथा शरीरपुष्टि आदिका वोध कराता है, इस कारण ये सव वाक्य दृष्टार्थक हैं। परलोकप्रसिद्ध पदार्थका वोधक जो वाक्य है उसका नाम अहुष्टार्थक है। यथा—"लर्गका-मोऽश्वमेधेन यजेत" लर्गको कामना करके अश्वमेध्य ग करे और इन्द्रत्वकी इच्छा करके अग्निष्टोम य.ग करे, इत्यादि वाक्य परलोक माल प्रसिद्ध जो लर्गादि है, उसके वोधक हैं। इस कारण यह अहुष्टार्थक हुआ।

नैयायिकोक्त प्रमाणका विषय एक तरहसे कहा गया। मीमांसक्रणण उक्त चार प्रकारके प्रमाणके अतिरिक्त ऐतिहा, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव नामक और भी चार प्रमाण खीकार किये हैं। गौतमका कहना है, कि ये सब

प्रमाण प्रमाणपर्वाच्य नहीं हैं, संक्षिप्तप्रभावमें इसका विषय नीचे छिखा जाता है।

१। ऐतिहा प्रमाण—जिसका प्रथम प्रवर्गक कौन है उसका ठोक पता नहीं, अथच वहुकालसे प्रवादमात चला जा रहा है, उसे ऐतिहाप्रमाण कहते हैं। "इतेहोचुर्नृद्धाः इसे-तिशं इह वटे यद्धाः प्रतिश्वचीति" वृद्ध लोग कहते हैं, कि इस वटचुश्च पर यश्च वास करता है। ऐसे प्रमाणका नाम ऐतिहाप्रमाण है।

ा अर्था गति प्रमाण—अर्थाधीन आपित्तका नाम अर्था-पत्ति है। जहां किसी एक पदार्थको संस्थापन करनेमें किसी दूसरे पदार्थका अर्थायत्त होता है, वहां उसे अर्था-पत्ति कहते हैं। जैसे, मेब नहीं होनेसे वृष्टि नहीं होती, यह सिद्ध करनेमें मेघसे ही वृष्टि होती है, यह अर्थाधीन सिद्ध होता है। अतएव अर्थापत्ति भी खतन्त्व एक प्रमाण है।

३। सम्भव प्रमाण—जिसके द्वारा व्यापक किसी पदार्थकी सत्ता पदार्थकी सत्ता प्रहण की जाती है। जैसे व्यापक सहस्रक्षानाधीन व्याप्य शतका ज्ञान होता है, अर्थात् सहस्र वस्तुका ज्ञान हासिल करनेमें शतवस्तुका ज्ञान हो कर पोले सहस्र वस्तुका ज्ञान होता है।

४। अभाव प्रमाण—जिससे विरोधी किसी वस्तुका अभाव देखनेसे तिहरोधी पदार्थकी कल्पना की जाती है, उसे अभावप्रमाण कहते हैं। जैसे, नकुलाभाव देखनेसे तिहरोधी सर्पकी कल्पना की जाती है, इसिल्ये नकुलाभाव एक अभाव नामक प्रमाण है।

गौतमने इन चारों प्रमाणके सम्बन्धमें तके और
युक्ति दिखा कर मिन्न प्रमाण कह कर और कुछ भी
खीकार नहीं किया । उनका कहना है—"शब्द ऐतिहा
नर्थान्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावात्तरभावादनुमानेऽधीयित्तवम्भवाभावानार्थन्तरभावात्तरभूत
प्रमाण अतिरिक्त नहीं है, वह शब्द्रप्रमाणान्तरभूत
है । जिस अकार शब्द प्रमाण-स्थलमें प्रमाणयोग्य शब्दाधीन अर्थवोध हुआ करता है, उसी
प्रकार ऐतिहास्थलमें भी वैसा हो शब्दाधीन अर्थमह
होता है । सुतर्रा उसे शब्दप्रमाणान्तर्भूत स्वीकार

करना अवश्य कर्तव्य है। इसी प्रकार अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव अतिरिक्त प्रमाण नहीं है। किन्तु यह अनु-माणप्रमाणके अन्तभू त है। कारण, प्रत्यक्षीभृत पदार्थं -दर्शनके ळिये अप्रत्यक्षीभृत पदार्थं के ज्ञानकरणको अनु-मान कहते हैं। जिस प्रकार प्रत्यक्षीभृत धूमदशन अप-त्यक्षीभृत विद्वज्ञानको अनुमित्यात्मक खीकार करता है, उसी प्रकार अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव स्थलमें भी प्रत्यक्षीभृत वस्तु ज्ञानाधीन अप्रत्यक्षीभृत वस्तुका ज्ञान उत्पन्न होता है। सुतर्रा उन्हें अनुमानके अन्तभृत स्वीकार करना कर्तव्य है।

सच पृछिये, तो अर्थापत्ति प्रभृति स्वतन्त प्रमाण नहीं है। कारण, उपपादकान द्वारा उपपादक कल्पनाकी अर्थापत्ति कहते हैं। दौसे हम लीग यदि सवल सुस्थ अथच स्थूलकाय एवं दिनके अभोजी किसी व्यक्तिको देखें, तो उस समय हमें अवश्य ज्ञान होगा, कि यह व्यक्ति निश्चय ही रातको भोजन करता है, क्योंकि दिनका अमोजी व्यक्ति यदि रातको भोजन न करे, तो उसका स्थूळत्व कभी भी नहीं रह सकता। अतएव यह रातको भोजन करता है. ऐसा निश्चय होता है। जिस वस्तुके नहीं रहनेसे जो वस्तु अनुपपन्न होती है, बह वस्तु उपपाद्य है। यथार्थ में विना राहिभोजनके दिनके अभुक्त व्यक्तिका स्थूलत्व अनुपपन्न है। इस कारण स्थूलत्व उपवाद्य और जिसका अभाव होनेसे जिसकी अनुपपत्ति होती है उसे उपपादक कहते हैं। जैसे, रातिभोजनका ममाव होनेसे स्थूळत्वकी अनुपपत्ति होतो है, इसीसे रातिभोजन उपपादक है। अतपत्र यहां पर स्यूलत्व द्वारा उपपादक रातिमोजन किंपत हुआ है, इसीसे अर्थापत्ति हुई। यह अर्थापत्ति. खतन्त्र प्रमाण हो हो नहीं सकती।

अव प्रश्न उठता है, कि किसी भी वस्तुकी उत्पादक कोई भी वस्तु हो सकती है वा नहीं? इसके उत्तरमें यही कहना है कि किसी वस्तुकी उत्पादक उसी सम्बन्ध-की वस्तु हो सकती है, दूसरी नहीं। कारण घटका उत्पा-दक पट नहीं हो सकता; किन्तु स्यूलत्वका उपपादक मोजन अवश्य है। अतएव यह कहना होगा, कि उप-पादक और उपपादका परस्पर व्याप्यव्याप्यकसाव सम्बन्ध है। न्याय उपपास द्वारा व्यापक उपपादक किएत होता है। यह अनश्य खीकार करने योग्य है। अवता-पक कभी भी आपास तथा अन्याय आपादक नहीं हो सकता। अतपन आपास और आपादकका प्रस्पर न्याप्यन्यापक सम्बन्ध अनश्य खीकार्य है। अतः जिस प्रकार न्यायधूम द्वारा न्यापक नहिज्ञानको अनुमित्या-त्मक खीकार करना होगा उसो प्रकार उक्त ज्ञानको अनुमित्यात्मक खीकार करना निधेय है।

मेघ नहीं होनेसे वृष्टि नहीं होती। मेघ होनेसे ही
वृष्टि होगी, इस प्रकारकी अर्थाधीन आपित ही अर्थापित
है। उस अर्थापित्तको कभी भी स्वतन्त प्रमाणक्षपमें
मान नहीं सकते। कारण, मेघ होने पर भी कदास्तित्
जव वृष्टि नहीं होती है, तव अर्थापांत प्रमाण नहीं है।
विना मेघके वृष्टि होती ही नहीं, इसके द्वारा मेघ होने छे
ही वृष्टि होती है इस प्रकारका उदाहरण अर्थापित नहीं
है। किन्तु मेघ नहीं होनेसे वृष्टि नहीं होती, इसका
वात्पर्य यह, कि वृष्टि होनेमें मेघकी आवश्यकता है। जहां
कार्यसत्त्वा द्वारा कारणसत्त्वा अर्थाधीन होता है, वहां
अर्थापित्तका उदाहरण जानना होगा। इत्यादि प्रकारमें
अर्थापत्तिका प्रमाण नहीं है। यह अनुमान प्रमाणके
मध्य हो निविष्ट है, ऐसा प्रमाणित हुआ है।

अभाव प्रमाण है वा नहीं ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि अभाव नामका कोई प्रमाण नहीं है, कारण वह प्रमेथ नहीं है। जो प्रमाज्ञान (यथार्थ ज्ञानका) का विषय नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है। अभाव प्रमाज्ञानका विषय नहीं है, सुतरां अलीकका प्रमाणत्व सिद्ध नहीं हो सकता। इस पर अभाववादी कहते हैं, कि अभाव पदार्थ अवश्य खीकाय है। कारण, अभाव ज्ञान द्वारा वावहार निष्पन्न होता है। जिसको ज्ञान द्वारा वावहार सिद्ध होता है, उसका अस्तित्व अवश्य अङ्गोकार करने योग्य है। 'नील घट ले आवी' इस प्रकार यदि किसीको कहा जाय, तो उसे नीलत्वका ज्ञान रहनेके कारण वह साधारण घटमेंसे नीलघटको ले आता है। फिर 'अनीलघट ले आवी' इस प्रकार आदेश करने पर भी वह साधारण घटमेंसे नीलाभावविशिष्ट घटको पृथक कर लाता है। अभावज्ञान नहीं होनेसे

कभी भी वैसे व्यवहारकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अत-एव प्रतिपत्तिसाधक अभाव पदार्थको अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। इस पर आपत्ति यह उठ सकती है, कि अनीलघट लाओ, इस वाक्य द्वारा नीलाभावका ज्ञान हो कर अनीलघरका ज्ञान होता है। किन्त इस तरह नीला-भावका ज्ञान किस प्रकार होगा ? यदि उक्त घटमें नीली-त्पत्ति हो, तो नीलाभाव नहीं है और यदि उसमें नील-गुण न रहे, तो अभावज्ञान नहीं हो सकता। कारण, अभाव ज्ञान प्रतियोगो ज्ञानसापेक्ष है। जो वस्तु नहीं है उसका अभावविषयक ज्ञान नहीं हो सकता। स्रुतरां नीलगुण घटमें नहीं रहनेसे नीलाभाव ज्ञान किस प्रकार होगा ? ऐसी आशङ्का पर इतना ही कहना पर्याप्त है, कि प्रतियोग्यधिकरणीभूत देशान्तरमें प्रतियोगिसत्तारूप लक्षण द्वारा अभावकी उत्पत्ति हो सकती है; अभावाधिकरणमें प्रतियोगिसत्ता अपेक्षित नहीं है। किसी भी देशमें प्रतियोगिसत्ता द्वारा अनिधकरण देशमें अभावकी सिद्धि हो सकती है ?

इत्यादि रूपसे उसका वाद-प्रतिवाद प्रदर्शित हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका पूरा विवरण नहीं दिया गया। स्थूलतात्पर्यं, यह कि अभावादिका प्रामाण्य किसी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(न्यायदर्शन)

किसी किसी दर्शनने कई प्रकारके प्रमाण स्वीकार किये हैं जिनका विषय संक्षेपमें नीचे दिया जाता है।

- १। चार्वाकदर्शनमें एकमात प्रत्यक्ष प्रमाणको हो स्वीकार किया है। ये लोग प्रत्यक्ष भिन्न अन्य प्रमाणको स्वीकार नहीं करते।
- २। बौद्धदार्शनिकके मतसे प्रत्सक्ष और अनुमान यही दो प्रमाण है।
- ३। रामानुजने प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यही तीन प्रकारका प्रमाण बतलाया है।
- ४ । पूर्णप्रज्ञके मतसे प्रमाण तीन है, प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ।
- ५ । चेशेपिकके मतसे प्रत्यक्ष और अनुमान यही दा प्रमाण है ।
- ६। न्यायके मतसे प्रमाण चार है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

- श सांख्यके मतसे तीन प्रमाण हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।
- ८ । पातञ्जलके मतसे प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यहो तीन प्रमाण हैं ।

सांख्य, वेदान्त और मीमांसाकारका कहना है, कि चक्षु जिस प्रकार स्वतः-प्रमाण है, प्रमाणनिचयके (आगम) आप्तवाक्य भी उसी प्रकार स्वतः प्रमाण है। चक्षु प्रमाण है वा नहीं; चक्षु ने ठोक देखा या नहीं; इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं होता। जो प्रत्यक्षज्ञान है, उसकी जिस प्रकार परीक्षा नहीं की जाती, उसी प्रकार आप्तवाक्यप्रस्त ज्ञानको भी परीक्षा निषेध है। वाक्य-प्रमाण परिनिष्ठित ज्ञानका प्रमाण्य आप ही आप स्थिरता को प्राप्त होता है, उसमें अन्य प्रमाणकी जक्षरत नहीं पड़ती।

इसीसे मीमांसा-परिशोधित वा विचारित वेदार्थ-विज्ञान स्वतःप्रमाण है। विचारित वेदवाक्य जो ज्ञान उत्पन्न करता है वह ज्ञान अम्रान्त है अर्थात् यथार्थ लौकिक वाक्यमें भी विचारयोगकी आवश्यकता है। विचारित लौकिक वाक्य भी यथार्थ ज्ञानका जनक है। प्रभेद इतना ही है, कि लौकिक वाक्य ऐहिक पदार्थको और वैदिक वाक्य ऐहिक पारितक दोनों प्रकारके पदार्थ-को प्रतिपादन करते हैं।

वचपनसे शब्द श्रवण, कार्य दर्शन, व्यवहार पद्धतिका पर्यवेक्षण और मनन करते करते मनुष्य आगे चल
शब्द राशिको विचित्र शक्तिसे अवगत हो सकता है।
शब्दमें जो विचित्र अर्थ प्रत्ययक सामर्थ्य है, उसका कात
होनेका नाम व्युत्पत्ति है। व्युत्पत्तिमान पुरुष हो
विचारका अधिकारी है। भूम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि
दोषरहित व्युत्पन्न पुरुष विचारपूवक जो कहते हैं, वह
सत्य है। सांख्यके मतसे विचारित वेदवाक्ष्य और योगी
पुरुषका वाक्ष्य दोनों ही सत्यक्षान उत्पन्न करते हैं
वैसा ही वाक्य आसवाक्य कहलाता है। उस प्रकारका आत वाक्य-समुत्य उपदेशिक ज्ञान सब प्रकारकी
अनर्थनिवृत्तियोंका उपाय है। इसमें ग्रम, प्रमाद, संशय
आदि किसी प्रकारका दोष नहीं है। सांख्यके प्रकृतिपुरुषके विवेकज्ञान वा वैद्रान्तिकोंके ब्रह्महानको आप

वाष्यके उत्तर निर्भर देख कर ऋषिगण विचारित वेद-वाक्यको चक्षुको अरेक्षा गुरुतर प्रमाण समम्बते हैं। इसी कारण ऋषियोंके निकट वेदका इतना आदर है। योगियों और ऋषियोंका वाष्य भी वेदार्थानुयायी है। इस कारण उनका वाक्य भी प्रमाण है। यही सांख्य भीर वेदान्तोक आगम प्रमाण है।

(ति॰) १२ सत्यवादी, सच वीछनेत्राछा। १३ प्रमाणित, चरितार्थ। १४ मान्य,स्वीकारयोग्य। (अन्य॰) १५ भवधि या सीमासुचक शब्द, पयन्त, तक। प्रमाणक (सं॰ ति॰) प्रमाण-स्वाधे कन्। १ प्रमाण शब्द देखो। २ वेड, घेरा।

प्रमाणकुश्ल (सं ॰ पु॰) अच्छा तर्क करनेवाला । प्रमाणकोटि (सं ॰ हि॰) प्रमाण मानी जानेवाली वातों या वस्तुकोंका घेरा ।

प्रमाणता (सं॰ स्ती॰) प्रमाणस्य भाषः तल्-दार्। प्रामाण्य, प्रमाणका भाष वा धर्म।

प्रमाणपत्न (सं ॰ पु॰) वह लिखा हुआ कागज जिस परका लेख किसी वातका प्रमाण हो, सर्टिफिकेट। प्रमाणपुरुष (सं ॰ पु॰) जिसके निर्णयको माननेके लिये

प्रमाणपुरुष (सं॰ पु॰) जिसके निर्णयको माननेके लिये दोनों पक्षके लोग तैयार हों, पंच ।

प्रमाणलक्षण (सं० षरो०) प्रमाणस्य रक्षणं ६-तत्। प्रमाणका लक्षण, वह रक्षण जिससे प्रमाण सावित हो। प्रमाणवत् (सं० ति०) प्रमाणं विद्यतेऽस्य, मतुप्, मस्य व। प्रमाणयुक्त, जिसमें प्रमाण हो।

प्रमाणवाक्य (सं क्हीं) प्रमाणं प्रामाण्यक्तपं यत् वाक्यं । प्रामाण्यसक्तप वाक्य, वेदबाक्य, आसवाक्य, ये सव प्रमाणक्तपमं व्यवहत होते हैं, इसीसे इन्हें प्रमाणवाक्य कहते हैं। प्रत्यक्षावि प्रमाण सिद्ध हो लेकिन वह यवि वेदविरुद्ध हो, तो उसे प्रमाणवाक्य नहीं कहेंगे।

प्रमाणवाधितार्थंक (सं ॰ पु॰) प्रमाणेन वाधितः अर्थो यस्य, ततः कप्। तकविशेष। यह दो प्रकारका है, व्याप्ति-प्राहक और विशेष परिशोधक। धूम यदि बह्विव्याप्ति-चारी हो, तो वह प्रमाण जन्य नहीं हो सकता, इसीको व्याप्तिप्राहक और पर्वत्यदि निर्वहि हो, तो निर्ध्भ होगा। इसे विषयपरिशोधक कहते हैं। (तहैन।गरीशी)

प्रमाणान्तरता (सं० स्त्री०) अन्यत् प्रमाणं, तस्य भावः तस्य द्यप्। अन्य प्रकारका उपाय।

Vol. XIV. 153

प्रमाणिक (सं ० ति ०) प्रमाणं सिद्धिहेतुतयाऽस्त्यस्य उन् । १ प्रमाणिसद्ध, जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो । २ परिमाणभेद्युक्त, मध्यमांगुल और कूर्परा-न्तरमित परिमाणयुक्त हस्त ।

प्रमाणिका (सं क्षीं) प्रमाण-स्थियां टाप्। अष्टा-क्षरपादक छन्दोभेद्। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें पक जगण, एक रगण, एक छघु और एक गुरु होते हैं। इसका दूसरा नाम नगस्त्रकृषिणी' भी है।

प्रमाणित (सं॰ ति॰) प्रमाण द्वारा सिङ, सत्य ठहराया

प्रमाणी (सं ॰ स्त्री॰) प्रमाणिका वा नगस्त्रस्पिणी छन्द-का नाम ।

प्रमाणीकृत (सं ० ति ०) अप्रमाणं प्रमाणं कृतं प्रमाण अभूततन्त्राचे चिन्न, ततः कु-कः। प्रमाणस्यसे निश्चितः, प्रमाणस्यसे जिसका स्वीकार किया गया हो।

प्रमातव्य (सं॰ ति॰) प्रमथनयोग्य, बध्य, मारने लायक । प्रमाता (सं॰ पु॰) प्रनाह दे हो ।

प्रमातामह (स°० पु०) प्रकृष्टो मातामहस्तस्यापि जनकत्वा-दिति प्रादिस०। मातामहका पिता, परनाना।

प्रमातामही (सं० स्त्री०) प्रमातामहकी पत्नी, परनानी । प्रमात् (सं० ति०) प्रमिनोति प्र-मि-तृच् । १ प्रमा- शानकर्ता, प्रमाणों द्वारा प्रमेयक झानको प्राप्त करनेवाला । नैयायिकोंके मतसे आतमा और सांख्यके मतसे शुद्धचेतन पुष्प वृद्धिसाझी हैं । वैदान्तके मतसे अन्तःकरणवृत्तिप्रतिविभिवत वा तद्विच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाता है। २ झानका कर्ता आतमा या चेतन पुष्प । ३ विषयसे भिन्न विषयी, दृष्टा, साझी ।

प्रमात (सं ॰ पु॰ स्त्रो॰) निर्दिष्ट संख्या ।

प्रमात्व (सं॰ क्ही॰) विमायाः भावः त्व । प्रमाका धम वा भाव ।

प्रमाय (सं० पु०) प्र-मय आवे-घञ्। १ प्रमथन, प्रयन । २ वळपूर्वक हरण, छोन खसोट। ३ निपातन करके भूमि पर पेपण, प्रतिद्वन्द्वीको भूमि पर पटक कर उस पर चढ़ वैउना और घस्सा देना। ४ मर्दन, नाग्न करना। ५ पोड़न, दुःख देना। - ६ वध, हत्या करना। ७ शिव-पारिषदु प्रमथगण, शिवके एक गणका नाम। ८ स्कट्के .अनुचरका नाम । ६ महाभारतके अनुसार धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । १० किसी स्त्रीसे उसकी इच्छाके विरुद्ध संभोग ।

प्रमाधिन् (सं० ति०) प्र-मथ-णिनि । १ पौड़नकर्त्तां, पीड़ित करनेवाला । २ मारणकर्त्तां, मारनेवाला । ३ पीड़ादायक, दुःक्ष-दायी । (पु०) ५ राक्षसविशेष, रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम । यह खरका साथी था । ६ रामचन्द्रजीकी सेनाका पक यूथपित वन्दर । ७ वृहत्संहिताके अनुसार वृहस्पतिके ऐन्द्र नामक तीसरे युगका दूसरा संव-त्सर । ८ यह औपध जो मुल, आंख, कान आदि छिद्रों से कफादिके सञ्चयको दूर कर दे । ६ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । १० अप्सराभेद, एक अप्सराका नाम । प्रमाधी (सं० ति०) प्रमाधिन देखा ।

प्रमाद (सं० पु०) प्र-मद्-घञ्। १ अनवधानता, असाव-धानता। २ भ्रम, भान्ति। ३ अन्तःकरणकी दुवँछता। प्रमाद तमोगुणका धमं है। तमोगुणकी अधिकता होनेसे हमेशा प्रमाद होता है। ४ योगशास्त्रानुसार समाधिके साधनोंकी भावना न करना वा उन्हें ठीक न समक्षना। यह नौ प्रकारके अन्तरायोंमें चौधा है। इससे साधक-को चित्तविक्षेप होता है।

प्रमादवत् (सं ॰ ति ॰) प्रमादोऽस्त्यस्पेति प्रमाद्- मतुप् मस्य वः । प्रमाद्युक्त, प्रमत्तः । पर्याय-जन्म, असमीक्ष्य-कारी, खट्टारुढ़ ।

प्रमादिक (स'० वि०) प्रमादशील, भूल चूक करनेवाला। प्रमादिका (सं० स्त्री०) प्रमाणोऽनवधानताऽस्त्यस्या इति, प्रमाद-उन, टाप्। दूषिता कन्या, वह कन्या जिसे किसीने दूषित कर दिया हो। पर्याय—स'वेदा, दूषिता, धप-कारिणी।

प्रमादिन (सं ० ति०) प्रमादोऽस्त्यस्येति प्रमाद-इनि । १ प्रमाद्विशिष्ट, असावधान रहनेवाला । (पु०) २ वृह-स्पतिके शक्ताग्नि दैवत नामक दशमयुगका दूसरा संव-त्सर । इसमें लोग आलसी रहते हैं, कान्तियां होती हैं और लाल पूलके पेड़ोंके वीज नष्ट हो जाते हैं। ३ पागल, बावला । प्रमादिनी (स'० स्त्री०) हिंडोल रागकी एक सहचरीका नाम।

प्रमादी (सं॰ ति॰) प्रमादिन् देखो।

प्रमापण (सं॰ क्वी॰) प्रनी-हिंसायां खार्थे णिच्, भावे-ल्युट्। मारण, नाग्र।

प्रमापयिता (सं ० ति०) प्रमापयितृ दे खी ।

प्रमापयित् (सं० ति०) १ प्रमथनयोग्य । २ अनिष्कर, हानि पहुँ चानेवाला । २ धातक, नाश करनेवाला ।

प्रमायु (स[°]० ति०) विनाशयोग्य, नाशशील ।

प्रमायुक्त (सं ॰ ति ॰) प्र-मी ताच्छील्ये उक्तम् । मरणशील, क्षर, ध्वं सशील ।

प्रमार (सं० पु०) १ प्रऋषक्तपसे मृत्यु । २ राजपूत श्रेणीभेद । परमार देखो ।

प्रमार्जेक (सं० ति०) १ साफ करनेवाला । २ प्रमार्जेन-कारक, हटानेवाला ।

प्रमार्जन (स'० क्ली०) १ परिष्कार करना, साफ करना। २ पोंछना, भाड़ना। ३ हटाना, दूर करना।

प्रमित (सं० ति०) प्र-मि-क, वा प्र-मा-क (बतिश्वति मास्येति । पा ५।४।४०) इतोत्वं । १ ज्ञात, विदित, अव-गत । २ निश्चित । ३ परिमित । ४ अल्प, थोड़ा । ५ जिसका यथार्थ ज्ञान हुआ हो, प्रमाणों द्वारा जिसे प्रमा नामक ज्ञान प्राप्त हुआ हो । ५ अवधारित, प्रमाणित । ६ अन्यूनातिरिक, न अधिक न कम ।

प्रमिताक्षरा (सं॰ स्त्री॰) प्रमितानि परिमितानि अक्षराणि यस्यां। १ सिद्धान्तिशिरोमणिव्याख्यानक्रपा टीका। २ सुद्धत्ते चिन्तामणिटीकामेद। ३ द्वादशाक्षरपादक छन्दी- भेद। इसके प्रत्येक चरणमें सगण जगण और अन्तमें दो सगण होते हैं।

प्रमिताशन (सं॰ क्वी॰) प्रमितमशनं । अल्पमात भोजन, वहुत थोड़ा जांना ।

प्रमिति (सं॰ स्त्री॰) प्र-मा-किन्, वा मि-किन् । प्रमा, वह यथार्थं ज्ञान जो प्रमाण द्वारा प्राप्त हो ।

प्रमीढ़ (सं॰ ति॰) प्र-मिह-सेचने-क । १ घन, गाढ़ा । २ मृतित, मृतसे निकला हुआ ।

प्रमीत (सं॰ ति॰) प्री-मी-हिंसायां-क । १ मृत, मरा हुआ। (पु॰) २ यज्ञार्थं हतपशु, यज्ञके लिये मारा हुआ पशु !

رين ٿير بن بيان

प्रमीति (सं० स्त्री०) हनन, वघं। २ मृत्यु, मरण। प्रमीलक (सं० पु०) १ तन्द्रा, उँघाईँ। २ शरीरका आलस्य, शरीरको दुवलता।

प्रमोछन (सं० क्षी०) प्र-मोछ-च्युट्। निमीछन, मूँदना।
प्रमोछा (सं० क्षी०) प्रमोछनमिति प्र-मोछ-संमीछने
(ग्रोध इछ:। पा शश्रार्०३) इति अ, ततप्राप्। १ तन्द्रा,
उंधाई। २ मुद्रण, मृंदना। ३ तन्द्री। ४ अवसाद, थका-वट। ५ रावणपुत इन्द्रजित्की पत्नी।

प्रमोलिन (सं० ति०) १ मुद्रणकारी, आँख मूंदनेवाला। (पु०) २ एक दैत्य।

प्रमीलो (सं० ति०) प्रमीतिन देखो ।

प्रमुक्ति (सं० स्त्री०) प्र-मुच्-कि। मोक्ष।

प्रमुख (सं० क्ली०) प्रकृष्टं मुखमारम्मः । १ तत्काल, उस समय । २ सम्मुख, सामने । (पु०) ३ आदि, आरम्म । ४ समूद्द, ढेर । ५ पुत्रागवृक्ष । (ति०) ६ प्रथम, पहला । ७ मुख्य, प्रधान । ८ मान्य, प्रतिष्ठित । (अध्य०) ६ इससे आरम्भ करके, और और, इत्यादि, वगै-रह ।

प्रमुखतस् (सं॰ अब्य॰) प्रमुख-तसिल् । प्रमुखमें, सामनेमें ।

प्रमुख (सं॰ पु॰) १ ऋषिमेद, एक ऋषिका नाम । (ति॰) २ मोका, मुक देनेवाळा ।

प्रमुचु (सं॰ पु॰) ऋषिभेद एक ऋषिका नाम।

प्रमुद्ध (सं० ति०) प्रकृष्टा मुत्प्रीतिर्यस्य । १ हृष्ट्, आन-न्दित । (स्त्री०) प्रकृष्टा मुत् कर्मधा । २ प्रकृष्ट आनन्द । प्रमुदित (सं० ति०) प्र-मुद्ध-क (उद्दुपचादिति । पा १।२।२१) इति कित् । हृष्ट्, प्रसन्न, आनन्दित ।

प्रमुद्तिबद्ना (सं श्ली) द्वाद्शाक्षरपादक छन्दोभेद, बारह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति जिसे मन्दाकिनी भी कहते हैं। मन्दाकिनी देखो।

प्रमृपित (सं॰ बि॰) चोरित, अपहत ।

प्रमृग (सं॰ थन्य॰) प्रकृष्टा मृगा यत, तिष्ठदुःवादित्वाद्-न्ययीभावः। वहुमृगयुक्त स्थान।

प्रमृग्य (सं॰ ति॰) प्रमृग-यत्। प्रकृष्टक्रपसे अन्वेषणीय, जिसकी अच्छी तरह तलाश को जाय।

प्रमुण (सं० स्त्रे ०) प्रकृष्टरूपसे हिंसक, हिंसा करनेत्राला।

प्रमृत (सं० क्ली॰) प्रकृष्टं मृतं प्राणिहिंसितं यत । मन्क क्षणरूप जीवनोपायमेद, मनुके अनुसार हल जीत कर जीविका करनेका नाम । हल चलनेसे महीमें रहनेवाले बहुतसे जीव मर जाते हैं, इसीसे उसे मृत कहते हैं। प्रमृतक (सं० ति०) प्रमृत खार्थे कन्। प्रमृत देखों। प्रमृश (सं० ति०) प्रमृशित मृश-श्रापथेति-क। पण्डित, विद्वान्।

प्रमुष्ट (सं॰ ति॰) प्रमुज्क । १ निरस्त । २ मार्जित । प्रमुष्य (सं॰ ति॰) प्रमर्थणयोग्य ।

प्रमेय (सं • ति •) १ जो प्रमाणका विषय हो सके, जिसका वोध करा सके । २ जिसका मान वतलाया जा सके, जिसका अंदाज करा सके । ३ अवधार्य, जिसका निर्धारण कर सके । (पु॰) ४ वह जो प्रमा या यथार्थ जानका विषय हो, वह जिसका वोध प्रमाण द्वारा करा सके । न्यायदर्शनमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है, "आत्मग्रारीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्तिद्ये प्रेश्यमाव प्रलब्ध । ज्ञानमा प्राप्त करा प्राप्त अनेयम्॥" (गौनम्सु॰ ११११६)

प्रमेय शस्त्रका अर्थ है प्रमाद्यान अर्थात् यथार्थ ज्ञानकां विषय । स्वमं आत्मा शरीर इत्यादि शृद्धुंद्वारा केवल लक्ष्य निर्दिष्ट हुआ है । अर्थात् आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, मन, प्रवित्त, दोष, प्रत्यभाव, फल, सुख, अपवर्ग ये वारह तथा तु शृद्ध्वोध्यद्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात लक्ष्य निर्देश करानेमें पदार्थ मात ही प्रमेयपद्वाच्य है । इनमेंसे आत्माशरीर प्रभृति द्वाद्शका हान होनेसे दुःखमय संसारमें विराग और आत्मतत्त्वहान हो कर शोष्ठ मोक्ष्तांभ होता है।

पूर्वोक स्वमं महिंप गौतमने आतमि अपवर्णान्त वारहको प्रमेय कह कर निर्देश किया है। इनमें कणा-दोक आत्मा आंशिकभावमें भूतपञ्चक, कप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, बुद्धि, मन प्रवृत्ति, इच्छा, हेप ये सव निर्दिष्ट तो हुए हैं, पर काल और दिक् नामक द्रव्य, संयोगादिशुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय निर्दिष्ट नहीं हुए हैं। सुतरां कणादोक्त पदार्थोंको प्रमेय पदार्थके अन्तर्गत नहीं कह सकते। यह आपित्त सभी-चीन तो है, परन्तु भाष्यकारको उक्तिके प्रति लक्ष्य करने-से उक्त आपित सहजमें दूर हो सकतो है। उक्त स्वमं भाष्यकारने जो लिखा है वह इस प्रकार है— द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय तथा उनके अवान्तरमेद्से अपिरसंक्षेय अन्य प्रमेय भी हैं। परन्तु आत्मादि अपवर्गान्त प्रमेयका तत्त्वज्ञान अप-वर्गका साधन और उनका मिथ्याज्ञान संसारका हेतु हैं। इसीसे आत्मादि अपवर्गान्त प्रमेय विशेषक्रपसे उपिदृष्ट हुए हैं। इसके तात्पयं टीकाकारका कहना है, कि जिनके तत्त्वज्ञानसे अपवर्ग और जिनके अतत्त्वज्ञानसे संसार होता है वैसा प्रमेय आत्मादि अपवर्गान्त वारह है। इससे कम नहीं है और न अधिक ही हैं। इस पर चात्तिककारने कहा है, कि अन्य भी प्रमेय हैं, परन्तु जिनके तत्त्वज्ञानसं मुक्ति होती है वैसा प्रमेय यही सब हैं।

महर्षि गौतमने खक्त स्तमं 'तु' शब्दका निर्देश करके यही स्थिर किया है, कि आत्मादि अपवर्गान्त मिमेय मोक्षोपयांगिकपमें मुमुक्षके प्रति उपिद्ष हुआ है । उससे अन्य प्रमेयका निराकरण नहीं होता । सुतरां कणादोक्त पदार्थ भी गौतमके प्रमेय पदार्थके अन्तर्गत हैं, यह निःसन्देह कहा जा सकता है । स्तकारका अभिप्राय जाननेके और भी कारण हैं—

'प्रमेया च तुला प्रामण्यवत्'' (गौतम्सु॰ इस स्वके प्रति लक्ष्य करनेसे यह और भी विस्तार हो जाता है ।

जिस द्रव्य द्वारा द्व्यान्तरके गुरुत्वका इयत्तापरिकान होता है, उसका नाम तुला है। यह तुला द्रव्यप्रमाण, सुवर्णादि गुरुद्वय प्रमेय हैं। किन्तु तुला द्रव्य जिस प्रकार प्रमाण होता है, उसी प्रकार प्रमेय भी हो सकता है। जब तुला द्रव्यके परिमाण परिकानके लिये सुव-णीदि द्रव्य द्वारा तुलाद्रव्यका इयत्तापरिच्छे द किया जाता है, तव परिच्छे दक सुवर्णादि द्रवाप्रमाण और परिच्छे व तुला द्रवा प्रमेय होगा। इस पर वार्त्तिककार कहते हैं, कि तुलाद्रवा जब तक अपर द्रवाकी इयत्ताके परिच्छे दका हेतु होता है, तभी तक वह प्रमाण है। जब तक अपर द्रवा होता हो, तभी तक वह प्रमाण है। जब तक अपर द्रवा द्वारा तुलाद्रवाकी इयत्ताका परिच्छे द किया जाता है, तब तक वह परिच्छे दक द्रवाका प्रमाण और परिच्छे दमान तुला-द्रवा प्रमेय होगा। यथा-थीं निमित्तके मेदसे एक पदार्थमें अनेक पदोंका प्रयोग परिहार्थ है। जिस अवस्थामें कोई वस्तु प्रमाका साधन

होती है उस अवस्थामें वह प्रमाण है। फिर जिस अवस्थामें वह वस्तु प्रमाका विषय होती है उस अवस्थामें वह प्रमेय हैं, इसे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। स्त्रोक यदि केवल वारह ही प्रमेय हों, तो 'तुला प्रमेय' स्त्रकारको यह उक्ति नितान्त असङ्गत हो जाती है। यद्यपि स्त्रनिर्दिं ए वारह पदार्थों के मध्य तुलाका पाठ नहीं आता, तो भी तुलाको प्रमेय कहा जाता है। अतप्य यह जानना होगा, कि जिसका तत्त्वज्ञान अपवर्गका और अतस्वज्ञान संसारका हेतु हैं वहीं प्रमेयस्त्रमें अभिहित हुआ है। स्त्रकार अन्य प्रकारका भी प्रमेय वतलाते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो पूर्वापर सङ्गति नहीं हो सकती। अतप्य कणादोक्त पदार्थ गौतमके प्रमेय पदार्थ के अन्तर्गत हैं, इसमें जरा

अव प्रश्न उठता है, कि प्रमेय पदार्थमें यदि समस्त पदार्थों का अन्तर्भाव होता, तो एक पदार्थ कहनेसे ही काम चल सकता था, तव फिर गौतमने जो सोलह पदार्थ और वारह प्रमेय वतलाये हैं, सो क्यों? इसके उत्तरमें भाष्यकारने कहा है, कि प्रस्थानभेद रक्षाके लिये संश-यादि पदार्थ कहे गये हैं। यदि वैसा नहीं होता, तो आन्वीक्षिकी अर्थात् न्यायविद्या भी अध्यात्मविद्या तमें पर्यवसित होती।

इस पर वाचस्पितिमिश्र कहते हैं, कि यदि ऐसा खोकार न किया जाता, तो आन्चोक्षिकी भी तयीके अन्तर्गत हो जाती। तयी, वार्त्ता, दण्डनीति और आन्वीक्षिकी ये चार विद्या प्राणियों के उपकार के लिये उपिष्ट हुई हैं। इनमें से तयीका प्रस्थान अनिहोत्तहवनादि, वार्त्ताका प्रस्थान हलशकटादि, दण्डनीतिका प्रस्थान, खामी, अमात्य प्रभृति और आन्वीक्षिकीका प्रस्थान, संश्यादि है। प्रस्थान शब्दका अर्थ है असाधारण प्रतिपाद्यविषय। प्रस्थान मेदसे ही विद्याभेद हुआ करता है। फलतः न्यायके साथ जिन सव पदार्थोंका संस्थव है, गौतमने उन्हें ही पदार्थ वतलाया है। सतरां संश्यादिका कीर्तन निर्धंक है, ऐसा किसी हालतसे नहीं कह सकता। प्रमाण पदार्थ प्रमेय प्रदार्थ अन्तर्गत है, इसमें संदेह करनेका कोई कारण नहीं। क्योंकि, चक्षुरादि इन्द्रिय प्रत्यक्षप्रमाण

है। उनकी गिनती साक्षात् प्रमेय पदार्थमें की गई है। ज्याप्तिज्ञान अनुमान और सादृश्यक्षान उपमान है, ये दोनों वुद्धिए प्रमेयके तथा शब्दरूप प्रमाण अर्थरूप प्रमेयके अन्तर्गत हैं। किन्तु चक्षरादि पदार्थ प्रमाकी साधन अवस्थामें प्रमाण माना जाता है और प्रमाकी विषय-अवस्थामें वही फिर प्रमेयपद्वाच्य होता है। उल्लिखित कारणोंसे प्रमाण पदार्थ प्रमेय पदार्थके अन्तर्गत होने पर भी पृथक्षमावमें कहा गया है। (न्यायदर्शन)

आतम. दि द्वादश प्रमेशका विषय उग्हीं सब शब्दीं में देखी। वेदान्तके मतसे शुद्ध चैतन्य ब्रह्म ही एकमाल प्रमेय हैं।

प्रमेयत्व (सं ० क्ली०) प्रमेयस्य भावः त्व । प्रमेयका भाव या धर्म ।

प्रमेह (सं ॰ पु॰) प्रकर्षेण मेहति क्षरित वीर्याद्रिनेतिति प्र-मिह क्षरणे करणे घञ्। स्वनामख्यात रोगविशेष, मेह-रोगविशेष। (A urinary affection, a gleet, gonno rrhoea) पर्याय—मेह, मूलदोष, बहुमूलता। इस रोग-का लक्षण-~

"आस्या सुखं खप्रसुखं द्धीनि प्रास्योद्का-

नूपरसाः पयांसि । नवान्नपानं गुड्वैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच सर्वम्॥" (माधवनि०)

सर्वदा उपवेशन वा शयन, दिध, प्राम्यमांस, औदक-मांस और आनूपमांस, दुग्ध तथा नूतन तण्डुलका अन्न-मक्षण, नूतन जल, चीनी और मिठाई आदि अतिशय मिष्टमोजन तथा कफजनक द्रव्य खानेसे प्रमेहरोग उत्पन्न होता है।

सुश्रुतमें लिखा है—दिवास्त्रम, अपरिश्रमी और भालस्य प्रसक्त होनेसे तथा शीतल, स्निध, मधुर द्रव अन्त-भक्षण करनेसे निश्चय ही प्रमेहरोग होता है। इस प्रकार अहिताचारो पुरुपकी वातिपत्तक्ष्ट्रेप्पा विना परि-पाक हुए ही मेदधातुके साथ मिल जाती और मूलवाहिनी नाड़ोके मध्य प्रवेश कर अधोमागमें चली जाती है। वहां वस्तिमुखका आश्रय करके भेदकरणकी तरह यन्त्रणा उत्पन्न करती है। ये सब लक्षण होनेसे प्रमेह हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। करतल और पदतलमें दाह,

वेह स्निग्ध, पिच्छिल और भार, मूल शुक्कवणे और मधुर, तन्द्रा, अवसाद, पिपासा, निश्वासमें दुर्गन्ध, तालु, गल-देश, जिह्वा और दन्तमें मलकी उत्पत्ति, केशका जिह्ल भाव तथा नखवृद्धि ये सब प्रमेहरोगके पूर्वलक्षण माने गये हैं। सभी प्रकारके प्रमेहमें मूल अधिक उत्तरता है। इस रोगमें व्ययसम्भूत पीड़का उत्पन्न होती है। जन-नेन्द्रियके ऊपर जो फोड़ा निकलता है उसे पीड़का कहते हैं। प्रमेहरोग २० प्रकारके हैं उनमेंसे उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, श्रीतमेह, श्रीतमेह, ग्रीतमेह, ग्रीलमेह, कालमेह, हरिद्रामेह, माखिष्टमेह और रक्तमेह ये छः प्रकार पित्तज और रसामेह, मजामेह, झौद्रमेह और हस्तिमेह ये चार प्रकार वातज प्रमेह हैं।

ये सव प्रमेहरोग होनेके पहले दन्त, चक्ष् और कर्णादि-में अधिक मलसञ्चय, हस्त और पदादिमें ज्वाला, देहकी चिक्कणता, तृष्णा और मुखकी मधुरता होती है। अधिक परिमाणमें मुत्र और मुतकी आविलता (मैलापन) ये दी प्रमेहके साधारण छक्षण हैं। उदकप्रमेहमें मूल मैंछा, कभी खच्छ, पिच्छिल, परिमाणमें अधिक श्वेतवर्ण, जल-वत् और गन्धहीन होता है। इशुमेहमें मूत इक्षुरसके जैसा मिठास होता है । सान्ट्रमेहमें पेशावको अधिक काल तक रखनेसे वह घना हो जाता है। सुरामेहमें सुराके समान तथा ऊपरी भागमें स्वच्छ भौर निचले भागमें घना मूब दिखाई देता है। पिएमेहमें मूबत्याग करते समय रोगोके रोंगडे खड़े हो जाते तथा जलकी तरह सफेद और अधिक पेशाव उतरता है। मूत शुक्रको तरह वा शुक्रमिश्रित होता है। सिकतामेहमें मूतके साथ वालुकाकणाकी तरह कठिन पदार्थ निक-लता है। शीतमेहमें मूल अतिशय शोतल, मधुस्वाद और परिमाणमें अधिक होता है। शनैमेंहमें वहुत धीरे धीरे यल्प मूत निकलता है। लालामेहमें लालायुक्त तन्तु-विशिष्ट और पिच्छिल पेशात्र उतरता है । क्षारमेहमें मूल क्षारजलको तरह गन्ध, वर्णं, आस्वाद और स्पर्शविशिष्ट होता है। हरिद्रामेहमें हरिद्रावर्ण और कटुरसयुक्त तथा मूब्रत्यागकालमें लिङ्गमें जलन मालूम होतो है। मञ्जिष्टा-मेहमें मञ्जिष्टाजलके समान रक्तवर्ण और मछलीकी तरह

गन्धयुक्त मूल निकलता है। रक्तमेहमें मछलीकी तरह गन्धविशिष्ट, उल्ला और खारा पेशाव उतरता है। वसा-मेहमें चवींके समान अथवा चवींमिश्रित मूल बार वार निकलता है। कोई कोई वसामेहको सिपमेंह भी कहते हैं। मजमेहमें मजातुल्य वा मजमिश्रित मूल निकलता हैं। हस्तिमेहमें रोगी मतवाले हाथीको तरह हमेशा पेशाव करता है और पेशाव करनेके पहले किसी प्रकार-का वेग उपस्थित नहीं होता। कभी कभी तो मूलरोध होते भी देखा जाता है।

प्रमेहरोगका उपद्रव—दश प्रकारके कफज मेहोंमें अजीए, अरुचि, विम, निद्राधिक्य, खांसीके साथ कफिल्योवन और पीनस; छः प्रकारके पित्तज मेहोंमें वस्ति और लिङ्गनालमें सुई चुभनेकी-सो वेदना, लिङ्गनालमें पाक, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्रोहार, मूर्च्छा और मलभेद तथा चार प्रकारके वातज मेहोंमें उदावर्च, कम्प, हदयमें वेदना, सब प्रकारके वातज मेहोंमें उदावर्च, कम्प, हदयमें वेदना, सब प्रकारके आहारमें लोभ, शूल, अनिद्रा, शोप, कास और श्वास ये सब उपद्व उठ सकते हैं। उपद्व-युक्त सभी प्रकारका प्रमेह प्रायः कप्टसाध्य है।

पित्तज-प्रमेहमें दोनों चृपणका अवदारण (लम्या होना), वस्तिभेद, मेद्दतोद, हृदिशूळ, अम्लिकाज्यर, अति-सार, अवचि, वमन, गातका उद्घाव, दाह, मुर्च्छा, पिपासा, निद्रानाश, पाण्डुरोग, विद्या और मूलकी पीत-वर्णता ये सव उपद्रव होते हैं।

ये सव प्रमेह उपस्थित होनेसे यदि उपयुक्त चिकित्सा न की जाय, तो रोगीको गया गुजरा ही समम्मना चाहिये। शरीरमें चवीं और मेदके अधिक रहनेसे तथा समस्त धातुओं के तिदोप द्वारा दूपित होनेसे प्रमेहरोगीके शरीरमें दश प्रकारकी पोड़का उत्पन्न होती है। इन सव पीड़काओं के नाम हैं शराविका, सपंपिका, कच्छिपिका, जालिनी, विनता, पुतिणी, मसूरिका, अलजो, विदारिका और विद्धिका। इनका लक्षण—शरावके जैसा परिमाण और उसका मध्यस्थल निम्न होनेसे शराविका; श्वेतसपंपके समान तथा उसीकी तरह शरीरमें स्थित होनेसे सर्धपो; दाहगुक्त और कूर्मकी तरह संस्थित होनेसे कच्छिपका; तीव्रदाहगुक्त और पोड़काके नील-क्षण तथा उन्नत होनेसे विनता, संकुचित और उन्नत

हांनेसे पुतिणी, मस्रके जैसा संस्थित होनेसे मस्रिका, रक्त और श्वेतवण कठिन स्फोटयुक्त होनेसे अलजी, मृमिकुप्माण्डकी तरह गोल और कठिन होनेसे विदारिका तथा विद्रधिके लक्षणविशिष्ट होनेसे भी विद्रधिका समभी जाती है। दुवल अवस्थामें यदि रोगीके मल्हार, हदय, सस्तक, अंशदेश, ष्ट्रप्ट और ममस्थानमें उपद्रविशिष्ट पोड़का हो, तो उसे असाध्य जानना चाहिये। समूचे शरीरको निष्पोड़न करके यदि मेद, मजा और वसायुक्त आस्राव वायुक्तपृ क अधोभागमें निःस्त हो, तो इसमें भी रोगीकी जान पर खतरा है, ऐसा समभना चाहिये। प्रमेहके पूर्व लक्षणका भाव दृष्ट होने तथा मूतके अधिक परिमाणमें निकलनेसे ही जानना चाहिये, कि उसे प्रमेहरोग हुआ है। पोड़कामें अतिशय पोड़ित और उपद्रविशिष्ट होनेसे मधुमेह होता है। यह मधुमेह दुःसाध्य हैं।

सभी प्रकारके प्रमेहरोग अधिक दिन रहनेसे मधुमेहरूपमें परिणत होते हैं। इसमें मूल मधुके समान धना, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मिठास होता है। मधुमेह अवस्थामें जिस जिस दोषकी अधिकता रहती है, उस उस दोपसे उत्पन्न प्रमेह-लक्षण दिखाई देते हैं। (सुन्नुत निदान ६३ म०)

प्रमेहरोग स्वभावतः कप्टसाध्य है। अता यह रोग होते ही उसकी विशेषक्षपसे चिकित्सा करना आवश्यक है। सुश्रुतके मतसे प्रमेहरोग दो प्रकारका है सहज और कुपथ्यजन्य। पितामाताके वीजदोपसे जो रोग उत्पन्न होता है उसे सहज और जो कुपथ्य द्वारा होता है उसे कुपथ्य-जन्य कहते हैं। दोनों ही प्रकारके प्रमेहमें पहले श्ररीरकी कुश्रता, कक्ष्रता, अन्य आहार, पिपासा आदि उपद्रव होते हैं। पीछे देहकी स्थूलता, किन्धता, अधिक आहार, श्रय्याप्रियता, आसनप्रियता वा निद्राशीलता आदि लक्षण दोख पड़ते हैं। कुश होनेसे अन्नपानके नियम द्वारा और स्थूल होनेसे उपवासादि काशेकर किया द्वारा चिकित्सा विधेय हैं।

प्रमेहरोगियोंके लिये सौवीरक (कांजी), तूषीदक, शुक्त, सुरा, आसव, दुग्ध, जल, तैल, घृत, इक्षुविकार, द्धि, पिष्टान्न, अमुपानक, प्राम्य वा अन्पदेशजात पशुका मांस ये सव विशेष निषिद्ध हैं। शाहि, पिंद, यव, गोध्म, कोड़व और उद्दालक ये सब यदि पुराने हों, तो प्रमेहरोगी खा सकते हैं। चना, अरहर, कुलथी और मृंगको जमालगोटेके तेलमें पाक कर, तीता और कसैला शाक, पेशाव रोकनेवाला जङ्गली प्रांस और जिन सब ड्रव्योंसे मेद शुष्क होता है, उन्हें तेलमें एका कर प्रमेहरोगी भोजन कर सकते हैं। असु-भोजन विलक्षल निपिद्ध है, स्नान कर सकते हैं। परन्तु प्रमेहको यदि अधिकता हो तो स्नान नहीं करना ही अच्छा है।

प्रमेहरोगोको पहले लिग्ध कर पूर्वोक्त किसी प्रकारके तेल द्वारा वा प्रियंगु आदि सिद्ध चृत द्वारा वमन और विरेचन करावे। विरेचनके वाद सुरसादिकपाय द्वारा आस्थापन करे। शरीरमें यदि जलन देती हो, तो स्नेह- वर्जित न्यप्रोधादिके कपायमें सींड, भद्रदार और मोधा डाल कर मधु तथा सैन्धवके साथ पान करे। इसके द्वारा देह विशुद्ध होनेसे हरिद्रा, आमलकीका रस, मधुके साथ पान अथवा लिफला, देवदार और मोधा इन्हें हरिद्रायुक्त आमलकीके रसमें पीस कर मधुके साथ पाक करे। क्लान अथवा निम्य, आरग्वध, सप्तपर्ण, मूर्वा, क्लान अथवा निम्य, आरग्वध, सप्तपर्ण, मूर्वा, क्लान अथवा निम्य, आरग्वध, सप्तपर्ण, मूर्वा, क्लान स्ताम पलाश इन सव वृक्षोंका त्वक, पल, मूल, फल और पुष्प इन सवका कपाय प्रस्तुत करके सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

उद्कमेहमें पारिजातकयाय, इश्रुमेहमें जयन्तीकपाय, छरामेहमें किङ्गकपाय, सिकतामेहमें चितककपाय, शनैमेंहमें खिद्र-कपाय, लवणप्रमेहमें पाठा और अगुरुका
कपाय, पिष्टमेहमें हरिद्रा और दारुहरिद्राका कपाय,
सान्द्रमेहमें सप्तपर्णकपाय, शुक्रमेहमें दुर्वा, शैचाल, प्लव,
हठ, करज और कसेरूका कपाय, फेनमेहमें तिफला,
आरग्वध और दुाक्षाका कपाय, फेनमेहमें तिफला,
आरग्वध और दुाक्षाका कपाय, इन्हें मधुके साथ
पान करे! कफजप्रमेहमें शेपोक्त दो प्रकारका अधिक
परिमाणमें मधुके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार
होता है। पित्तज नीलप्रमेहमें शालसारादि कपाय वा
अश्वत्थकपाय, हरिद्रामेहमें राजवृक्षकपाय, अग्रुमेहमें मधुमिश्रित न्यशोधादि कपाय, क्षारमेहमें लिफलाकपाय,
मिश्रित न्यशोधादि कपाय, क्षारमेहमें लिफलाकपाय,

गुडूची, तिन्दुकास्थि, खर्जू र और गाम्भारीका क्याय, इन्हें मधुके साथ पान करनेसे विशेष फायदा देखा जाता है।

जो सव प्रमेह असाध्य वतलाये गये हैं, वे अच्छी तरह चिकित्सित होनेसे याज्य होते हैं। इस कारण असाध्य प्रमेहकी भी चिकित्सा विधेय है। असाध्य प्रमेहके मध्य सिंपमेहमें कुछ, कूटज, सोनापाठा, हिंगु और कटकी इनके कल्कका गुड़ू ची और चिलकके कपायके साथ सेवन करे; वसामेहमें अग्निमन्थका कपाय, झौद्रमेहमें खिदर या गुवाककपाय, चित्तमेहमें तिन्दूक, किपत्य, शिरोप, पलाग, सोनापाठा, मूर्वा और दुरालभा इनके कपायको मधुके साथ सेवन करनेसे वे सव असाध्य प्रमेह याच्य रहते हैं। इन सव प्रमेहोंमें हाथी, बोड़े, स्वर, गधे-और अंदरको हड़ीका क्षार सेवन करनेसे भी विशेष उपकार होता है। प्रमेहमें यदि ज्वाला रहे, तो जलीयकन्द और दूधके साथ यवागु प्रस्तुत करके मधुके साथ सेवन करें।

त्रियंगु, अनन्ता, यूथिका, पद्मा, लोहितिका, अस्वप्टा, दाड़िमत्सक, शालपणी, पुन्नाग, नागकेशर, धातुकी, धातकी, वक्षल, शालमली और मीचरस इनका अरिष्ट वा आसव प्रस्तुत करे। इसके सेवनसे प्रमेहरोग जाता रहता है। श्रुङ्गाटक, गिलोर्ड्यायप, सृणाल, कशेरुक, यष्टिमधु, आन्न, जम्बू, असन, अर्जुन, रोश्न, मल्लातक, चर्मवृक्ष, गिरिकणिका, शैलज, निचुल, दाड़िम, अजकणी, हरिवृक्ष, राजादन, गोवधंटा और विकड़्त इनका अरिष्ट, अवलेह वा आसव प्रस्तुत करके सेवन करनेसे प्रमेहरोग प्रशमित होता है।

प्रमेहरोगकी वृद्धि होनेसे वरायाम, युद्ध, कीड़ा गज, तुरङ्ग और रथादिमें भ्रमण तथा अल्लसञ्चालन करनेसे विशेष उरकार होता है। रोगी यदि निर्धन और निःसहाय हो, तो पादुका और छलका परित्याग कर मिल्लाहार तथा संयतिचत्तसे सौ योजनसे अधिक भ्रमण करे। स्थामाक, नीवार, आमलक, कपित्थ, तिन्दुक और अश्मन्तक फल खा कर वन चनमें भ्रमण, सर्वदा गो और ब्राह्मणका अनुगामी हो गोमूल तथा गोमय मञ्जण करे। इससे भ्रमहरोगकी शान्ति होतो हैं। प्रमेहरोगको पीड़का होनेसे उसकी भी चिकित्सा विधेय हैं। प्रमेहरोगीका मृत पिच्छिलता और आविलताशून्य, निर्मेल, तिक और कटुरसविशिष्ट होनेसे रोग आरोग्य हुआ हैं, ऐसा जानना चाहिये।

(सुधुत चिकित्सा १२-१३ अ०)

प्रमेहरोगके वहुतसे मुष्टियोग हैं-प्रमेहरोग स्वभा-वतः ही कप्रसाध्य हैं। इस रोगका आक्रमण होते ही ' विशेष सावधानीसे रहना उचित हैं। गुळश्चका रस, आमलकोका रस, कचे सेमरका रस प्रमेहरोगका उत्कृष्ट ् मुष्टियोग हैं 📔 लिफला, देवदारु, दारुहरिदा और मोथा इनके काथका मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके ·प्रमेह प्रशमित होते हैं। मधु और हरिाद्।युक्त आमलकी-का रस भी उसी प्रकार उपकारी है। शुक्रमेहमें दुग्धके साथ शतमूलीका रस अथवा प्रतिदिन सबेरे आध पाव . कचे दूधमें उतना ही पानो मिला कर पी जानेसे विशेष उपकार होता है। पलाशफूल एक तोला और चीनी आध तोला इन्हें ठंढे जलके साथ सेवन करनेसे सभो प्रकार-के प्रमेह निवारित होते हैं। रांगेकी भस्म प्रमेहरोगकी एक उत्कृष्ट औपध है। सेमरफूलके रस, मधु और हरिदाचूर्णके साथ २ रत्ती भर रांगेकी भस्मका सेवन करनेसे प्रमेहरोग अतिशीघ्र जाता रहता है।

प्रमेहरोगमें मूलरोध होनेसे ककड़ोका वीज, सैन्धव-लवण और तिफला इनके चवन्नी भर चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करे। कुशावलेह और मूलकुन्द्रिगकी अन्यान्य औपधोंका भी सेवन करनेसे विशेष उप-कार होता है।

इलायचीका चूर्णं, मेहकुलान्तकरस, मेहमुद्ररविटका, वङ्गेश्वर, वृहत्हरिशङ्कररस, चन्दनासव और दाड़िमादा-घृत आदि औपधका तथा प्रमेहिमिहिर आदि तेलका रोगकी अवस्थाका विचार करके सभी प्रकारके प्रमेह रोगोंमें व्यवहार किया जाता है।

प्रमेह-पीड़कामें यज्ञह्रमरका दूध लगावे अथवा सोमराजीके वीजको पीस कर प्रलेप दे। अनन्तमूल, श्मामालता, द्राक्षा, निसोथ, कटकी, हरीतकी, अङ्कसको छाल, नीमकी छाल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा और गोक्षरवोज, इन सब द्रवर्शेका काथ सेवन करनेसे प्रमेहपीड़का प्रश-मित होती है। शारिवादि लौह, शारिवादिआसव और मकरध्वजका रस इस अवस्थाकी उपयुक्त औषध है।
प्रमेहरोगकी अन्यान्य औपधोंका भी इसमें विवेचनापूर्वक
प्रयोग कियाजा सकता है। अधिक दूध, मिष्टद्रवा, अधिक
मत्स्य, छालमिर्च, शाक, अम्र द्रवा, उरदकी दाल, वृधि,
गुड़, छौकी, ताड़की गरी और अन्यान्य कफवर्ड क द्रवाभोजन, मद्यपान, मैथुन, दिवानिद्रा, राविजागरण, आतपसेवन, मृतका वेगधारण और अधिक धूमपान ये सह
प्रमेहरोगमें विशेष अनिष्टकारक हैं। भावप्रकाशमें छिखा
है, कि स्त्रियोंके प्रमेहरोग नहीं होता।

"रजः प्रवत्तते यस्मात् मासि मासि विशोधयेत्। सर्वान् शरीरदोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः॥"

(भावप्र०)

स्त्रियोंके प्रति मासमें रजीरक स्नाव हो कर शारीरिक समस्त दोप विशोधित होते हैं, इस कारण वे प्रमेहरोगा-कान्ता नहीं होतीं। किन्तु कहीं कहीं अनात्ती वा स्त्रियोंके यह रोग होते देखा गया है। प्रमेहरोगीमें कोई बळवान होता है और कोई दुर्वल । इनमेंसे क्या वाकिके लिपे वल और मांसवृद्धिकर औषध तथा अधिक दोप और वलसम्पन्न वाक्तिके लिपे संशोधन अर्थाः विरेचनादिका प्रयोग विशेष हितकर हैं। जब वमन और विरेचन द्वारा सभी दोप ऊदुर्ध्याधः निःस्तत हो जाय, तव सन्तर्पणिष्रया कत्तवा है। जिस प्रमेहरोगोको संशोधनका सेवन करना निपिद्ध है, उनके लिये संशमन औपधविशेष उप-कारजनक हैं। विक्तिर (हंस, मयूर और कुक्कुटादि), प्रतुद् (कपोतादि) पक्षी तथा छागादि जंगली पशुके मांस-का यूप, अल्प परिमाणमें कवाय रस, चूर्ण अवलेह, मस्र और म् ग आदिका लघु आहार प्रमेह रोगमें हितकर है। श्यामाक कामिनोधान्य, गोध्म, चना, अरहर, कुलथी और उड़द ये सव द्रवा यदि साल भरसे ऊपरके हों, तो उन-का सेवन करनेसे विशेष छाभ होता है। मधु और हरिदा संयुक्त आमलकीका रस, त्रिफला, देवदार और मोथेका काथ पान करनेसे प्रमेह प्रशमित होता है। बिफला, लौह, शिलाजतु वा हरोतकी चूणंका मधुके साथ अवलेह करनेसे वा गुलञ्चके रसको मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके प्रमेह जाते रहते हैं। थोड़ी सी फिटकरीके चूरको नारियलको वीचमें भर कर उसे रात भर कीचड़में

गाड़ रखे। सबेरे उसे निकाल कर उस चूर्ण और जलको एक साथ पान करनेसे वहुत दिनोंका प्रमेह नए हो जाता है। अलावा इसके कुगायलेंद्र, शिलाजतु, सालसारादिलेंद्र, वाड़िमाध्ययत, लृहदुदाड़िमाध्ययत, महादाड़िमाध्य यत, विड़ङ्गादि लौह, पञ्चाननरस, मेहकुलानकरस, मेहानलरस, चन्द्रकला, तारकेश्वर, सोमेश्वरस, सर्वेश्वरस, वेदविद्यावटी, वङ्गेश्वर, वृहद्धङ्गेश्वर, वङ्गाएक, वसन्त-कुसुमाकररस, चन्द्रप्रमादि विटका, मेहमिहरतेल, प्रमेह-मिहरतेल, इन्द्रवटी, मेहमुहरविटका, सोमनाथरस और देवदावरिए इन सब धृत और तेलका सेवन करनेसे प्रमेहरोग प्रश्नाक होता है। चिकित्सकको चाहिए, कि वे रोगीका धातु और वलावल देख कर औपधका प्रयोग करें। (मैप १४११ना॰ प्रमेहरोगा०)

भावप्रकाश, चरक, चकदत्त आदिमें इस रोगका विशेष विवरण लिखा है, पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

यह रोग महापातकज है। अतएव इसमें प्रायश्चित्त करना अवस्य कर्त्र थ्य है। मेहरोग नेखो।

प्रमेहिमिहिरतैल (सं ॰ ह्यो ॰) तैलीपथमेद । इसकी प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४ सेर, कल्कार्थ लाक्षा ८ सेर, जल ६४ सेर, ग्रेप १६ सेर, सतम्लीका रस ४ सेर, दुष्ध ४ सेर, दिधका जल १६ सेर, कल्कार्थ सीयां, देवदार, मीथा, हिरद्रा, दारुहिर्द्रा, मूर्या, कुट, अश्वगन्धा, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, रेणुक, कटकी, यिष्टमधु, रास्ना, गुइत्वक्, इलायची, वरङ्गी, चई, धनिया, वला, गोरक्षमुंडी, पिठ-वन, मिक्रप्त, सरलकाष्ट्र, पश्चकाष्ट्र, लोध, सौफ, वच, जीरा, कसकी जल, जायफल, अहसकी लाल, तगरपादुका प्रत्येक दो तोला। यथानियम इस तेलको पाक करे। शरीरमें इसकी मालिस करनेसे दाह, पिपासा और मुख-शोयादि उपदुर्वोंके साथ सभी प्रकारके प्रमेह रोग जाते रहते हैं। (मैयव्यराना॰ प्रमेहरोगा)

प्रमेहिन् (सं o पु o) प्र-मिह-णिनि । १ प्रमेहरोगी । २ नन्दिवृक्ष ।

प्रमोक्तवा (सं० ति०) प्र-मुच्-तव्य । मुक्तिके योग्य । प्रमोक्ष (सं० पु०) १ विमुक्ति, छुटकारा । २ निर्वाण, मोक्ष । ३ त्याग, छोड्ना ।

Vel. XIV. 155

प्रमोक्षण (सं ० क्ली०) प्रकृष्टकपसे मुक्ति । प्रमोचन (सं ० ति०) प्रकर्षण मुच्यतेऽनेन प्र-मुच-ल्युट् । १ प्रकृष्ट मोचनकर्चा, अच्छी तरह प्रमोचन करनेवाला । (क्ली०) २ प्रकृष्टकपसे मोचन, अच्छी तरह खुड़ाना । ३ प्रमोचनसाधन, खूब हरण करना । स्त्रियां ङीप् । ४ गवाक्षी । ५ गोडुम्या, एक प्रकारकी ककड़ी, गोमा ककड़ी ।

प्रमोद (सं० पु०) य-मुद हर्षे भावे घम्। १ हप, आनन्द। २ आमोद, सुख। ३ नागमेद, एक नागका नाम। ४ इप्यारा-नुचरभेद, कुमारके एक अनुचरका नाम। ५ मुख्य सिद्धि-मेद, एक सिद्धिका नाम। मुख्यसिद्धि तीन प्रकारकी है, प्रमोद, मुदित, और मोदमान। सर्वोत्कर्षसे जब भाध्या-त्मिक दुःखकी निवृत्ति होती है, तब यह सिद्धि होती है। ६ यहस्पतिके एहले युगके बीधे वर्षका नाम। (ति०) ७ प्रमोद युक्त, हर्षयुक्त।

प्रमोदक (सं॰ पु॰) १ विष्ठिक्षान्य, साठी धान । २ शास्ति-धान्यविशेष, एक प्रकारका जब्हद ।

प्रमोदन (सं० ति०) प्रमोदयित प्र-मुद-णिच्-ल्यु । १ हर्पकारक । (पु०) २ विप्णु । (क्क्री०) ३ हर्पसम्पादन । प्रमोदमान (सं० क्की०) सांख्यवर्णित अष्टसिद्धिमेंसे एक । प्रमोदसहक (सं० क्की०) कृतान्नभेद, एक प्रकारकी औषध । यह गाढ़े दही और चीनोमें मिर्च, पीपल, लींग, और कपूर मल कर उसमें अनारके एक दाने डाल कर बनती है। इससे दीपन होता है तथा थकावट और प्यास दूर होती है।

प्रमोदा (सं० स्ती०) सांख्यके अनुसार आठ प्रकारकी सिद्धियोंमेंसे एक। यह आधिदैविक दुःखोंके नष्ट होने पर प्राप्त होती हैं।

प्रमोदित (सं० ति०) प्र-मुद-हर्षे-क (उदुपधादिति। पा १।२।६१) इति किद्भावः; प्रमोदोऽस्य जात इति तारका-दित्वादि तच् वा। १ प्रमोद्युकः, आनन्दितः, हर्षित। (पु०) २ कुवैर।

प्रमोदिन (सं ० ति ०) प्रमोदयतीति प्र-सुद-णिच् णिनि । १ प्रकृष्ट इपयुक्त । २ इपजनक ।

प्रमोदिनी (सं ० स्त्री०) जिङ्गिनी वृक्ष, जिनिनका पेड़ । प्रमोह (सं ० पु०) प्र-मुह-वरु । १ प्ररूपक्षप मोह । २ प्रमोहक, युर्च्छो । प्रमोहन (सं० क्ली०) प्रमुद्धतेऽनेन प्र-मुह-करणे-ल्युट्, ग्रमोऽयति प्र-मुह-णिच्-ल्यु वा। १ प्रमोहसाधन, वह अस्त्र जिसके प्रयोगसे शत्नुद्धमें प्रमोहको उत्पत्ति हो। २ मोहित करना। (ति०) ३ प्रमोदकारकमात। प्रमोहिन (सं० ति०) प्रमोहयतीति प्र-मुह-णिनि। मोह-जनक।

प्रम्लोचन्ती (सं ० स्त्री०) अप्सराभेद । प्रम्लोचा (सं ० स्त्री०) प्रम्लोचित तापसादीन् प्रतिगच्छ-तीति प्र-म्लुच-गतौ अच्-टाप् । अप्सराविशेष, एक अप्सरा ।

प्रयक्ष (सं ॰ पु॰) प्र-यक्ष-पूजायां अच् । पूज्य । प्रयंज् (सं ॰ स्त्री॰) वलि, उत्सर्ग ।

प्रयज्यु (सं ० ति ०) प्र-यज 'यजिसनिशुद्धिमसिद्निम्यो युच्, इति युच् निरन्नासिकत्वात् अनादेशो न । अध्वर्यु । प्रयत् (सं ० ति ०) प्र-यम-क वा प्रयते धर्माद्यर्थमिति प्र-यत-अच् । १ पवित, सं यत । २ नम्न, दीन । ३ प्रयत्न-शील । ४ दक्त, दिया हुआ ।

प्रयतात्मा (सं॰ ति॰) १ संयत आत्मावाला, जितेन्द्रिय, संयमो । (पु॰) २ शिव ।

प्रयति (सं॰ स्त्री॰) प्रन्यम-क्तिन्। प्रथम संयम। प्रयतितव्य (सं॰ ति॰) प्रन्यत-तव्य। प्रयत्नके योग्य। प्रयक्तव्य (सं॰ ति॰) प्रयक्तयोग्य।

प्रयत्न (सं० पु०) प्र-यत यत्ने (यजयाचयतविच्छप्रच्यवक्षी नङ् । पा ३।३।४०) इति नङ् । प्रकृष्टयत्न, चेष्टा, कोशिश ।

नैयायिकों के मतसे प्रयत्न तीन प्रकारका है, प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि । इप्रसाधनता ज्ञान, चिकीर्षा (यह हमारा कर्ताव्य है, ऐसी इच्छा), कृतिसाध्यत्य ज्ञान और उपादानप्रत्यक्ष ये सब प्रवृत्तिके कारण हैं। जो काम करनेकी इच्छा नहीं होती उसे करनेके लिये कोई भी प्रवृत्त नहीं होता । इच्छा होने पर भी यदि समका जाय, कि यह काम मेरी शक्तिके वाहर है, तो वह काम करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। असाध्य विषयमें प्रवृत्त होना असम्मव है। इतना होने पर भी जिस उपादानसे कार्यसम्मव करना होगा, उस उपादानका प्रत्यक्ष नहीं होने पर वह कार्य नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार महीके नहीं रहने से घड़े आदि नहीं वन सकते तथा चावलके नहीं रहनेसे

रसोई नहीं वन सकती, उसी प्रकार विना उपादानके कोई कार्यं नहीं किया जा सकता। शरीरमें प्राणवायुका सञ्च-रण अर्थात् निश्वास प्रश्वासादि जिस प्रयत्नभावसे होते हैं, उसका नाम जीवनयोनि प्रयत्त है। २ फलार्थियोंके प्रारब्ध कर्मोकी पाँच अवस्थामेंसे एक । ३ वर्णों के उचा-रणमें होनेवाली क्रिया । उचारण प्रयत्न दो प्रकारका होता है, आम्यन्तर और वाह्य। ध्वनि निकलनेके पहले वागि-न्द्रियकी क्रियाको आभ्यम्तर प्रयत्न और ध्वनिके अन्तकी कियाको बाह्य प्रयत्न कहते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्नके अन्-सार वर्णोंके चार भेद हैं, विवृत, स्पृप्ट, ईपत् विवृत और ईषत् स्पृष्ट । जिनके उचारणमें वागिन्द्रिय खुली रहती हैं, उसे विवृत, अैसे, खर ; जिनके उचारणमें वागिन्द्रिय-का द्वार वंद रहता है, उसे स्पष्ट, जैसे 'क' 'से' 'म' तक १५ व्यञ्जन ; जिनके उचारणमें वागिन्द्रिय कुछ खुली रहती है, उसे ईपत् विवृत, अैसे, व र ल व और श प स ह को ईपत् स्पष्ट कहते हैं। वाह्य प्रयत्नके अनुसार दो भेद हैं. अघोव और घोष। अघोष वर्णोंके उचारणमें सिर्फ श्वासका उपयोग होता है, कोई नाद नहीं होता, यथा-क ख च छ ट ठ त थ प फ श प और स । घोप वर्णों के उचारणमें केवल नाद्का उपयोग होता है, यथा-१प व्यक्षन और सव खर।

प्रयत्नवत् (सं॰ त्नि॰) प्रयत्नोऽस्यास्ति प्रयत्न-मतुष्-मस्य-व । प्रयत्नयुक्त ।

प्रयत्नवान् (हि॰ वि॰) प्रयत्नमें लगा हुआ।

प्रयक्षशैथित्य (सं॰ क्ली॰) स्वासाविक प्रयत्नके उपरमपूर्वक प्रयत्नमेद । यह योगाङ्ग आसनसिद्धिके निमित्त
आवश्यक है। पातञ्जलदर्शनमें लिखा है—"अयलमेविक
व्यानन्तसमापित्तभ्यां" (पातक्रजलद २।४०) 'चलत्वात स्थैविचातकस्य स्वामाविक प्रयत्नस्य शेविल्य वपरमः'
(भोजवृत्ति) आसन जय करनेमें शास्त्रविहित प्रयत्नकी
आवश्यकता है। आसन जय करनेमें शास्त्रविहित प्रयत्नकी
आवश्यकता है। आसन जय करनेमें लिखे स्वामाविक
प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अर्थात् अयोगी मनुष्य हमेशा
जैसे प्रयत्नसे उपवेशन करते हैं, वैसे प्रयत्नका परित्याग
कर योगशास्त्रोक्त प्रयत्न शिक्षा करे। पोछे उसी प्रयत्नको
काममें ला कर आसन जय करना होता है। स्वामाविक
प्रयत्नका उपरम होनेसे-योगशास्त्रोक्त यो प्रयत्नविशेष हैं,
उसीको प्रयत्नशैथिल्य कहते हैं।

प्रयन्त (सं० ति०) प्र-यम-तृच् । १ प्रकर्षक्रपसे यन्ता । द

प्रयस् (सं॰ क्वी॰) प्रयस्पतेऽय प्र-यस-आधारे-किए। अन्न । प्रयसा (सं॰ स्त्री॰) एक राक्षसी जिसे रावणने सीताको समकानेके लिये नियत किया था।

प्रयस्त (सं ० ति०) प्र-यस-प्रयत्ने-क । १ प्रयास द्वारा कृत । २ सुसंस्कृत । (क्वी०) ३ घृतचतुर्जातकादि द्वारा प्रयत्न संस्कृत व्यक्षन ।

प्रयस्तत् (सं० ति०) हविर्लक्षणान्नयुक्त । प्रया (सं० स्त्री०) प्रकर्षक्रपसे शतुके प्रति अभियायी वल । वह ताकत जो शतुके प्रति अच्छी तरह लगाई गई हो ।

प्रवाग (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो यागो यागफलं यस्य यस्मात् या । १ एक त्रसिद्ध तीर्थं जो गंगा यमुनाके सङ्गम पर है ।

प्रयाग तीर्थंका विषय प्रायः सभी पुराणोंमें आया है। यहां अति संक्षित्र भावमें उसके माहात्म्यका विषय छिला जाता है। कहते हैं, कि पापी सभी जकारके पापानुष्ठान करके यदि प्रयाग तीर्थमें मस्तक मुझवे, तो उसके सब पाप जाते रहते हैं। मत्स्यपुराणमें प्रयागतीर्थंके माहात्म्यका विषय १०२ अध्यायसे छे कर १०७ अध्याय तक विस्तृतमावमें छिला है, यहां उसका संक्षित विवरण दिया जाता है,—

"पतत् प्रजापतेः क्षेत्रं तिपु लोकेषु विश्रुतम्। न शक्यं कथितं राजन् तिपु लोकेषु विश्रुतम्।" इत्यादि। (मत्स्यपु० १०२ अ०)

प्रयागतीर्थं प्रजापितका क्षेत्र-हैं और विलोकविख्यात है। इसका माहातम्य सी वर्ष तक कहने पर भी शेष नहीं हो सकता। इस तीर्थमें स्रोतस्वती गंगा और यमुना विद्यमान हैं। साठ हजार वीरपुरुष गङ्गाकी और स्वयं स्थिदेव यमुनाकी रक्षा कर रहे हैं। यहां एक यट-वृक्ष है जिसके रक्षक स्वयं शूलपाणि हैं। सभी देवता मिल कर इस पापनाशक स्थानकी रक्षा करते हैं। यहांका माहात्स्य पेसा है, कि केवल नाम लेनेसे हो पाप-का क्षय होता और दर्शनसे सभी पाप जाते रहते हैं। इस तीर्थमें पांच कुएड हैं जिनके मध्य जाहवी देवी अवस्थित हैं। प्रयागतीथ में प्रवेश करते ही सभी पाप ध्वंस हो जाते हैं और मन ही मन जो कामना की जाती है वह पूरी होती है। इस तीथ में क्नानदानादि और पितरोंका तर्पण करके यदि देहावसान हो जाय, तो वह दीसकाश्चन सदृश और स्पैतुल्य तेजस्क विमान पर चढ़ कर स्वर्गगितिको प्राप्त होता है। वहां पहुंच कर वह गन्धवं और अप्सराओंके मध्य वास करता है। देश, विदेश, गृह वा अरण्य जहां कहीं भी मृत्युकालमें प्रयागका समरण किया जाय, मृत्युके वाद उसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होती है। जव उसका पुण्यक्षय हो जाता है, तव वह स्वर्गलोकसे परिश्रष्ट हो जम्बूद्वीपका अधिपति हो कर जन्मब्रहण करता है।

प्रयागतीर्थमें यदि सिर्फ एक पयस्तिनी गाभी श्रोतिय ब्राह्मणको दान दी जाय, तो उसे पांच करोड़ गुण श्रिक फललाभ होता है। इस तीर्थमें किसी सवारी-से जाना विलक्षल मना है। यदि कोई धनगर्वते उन्मत्त हो सवारी द्वारा इस तीर्थमें जाय, तो उसे तीर्थमें जाने-का कोई फल नहीं।

"ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेत् यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत्तार्थं तस्मात् यानञ्च वर्ज्जयेत्॥"

(मत्स्यपु०)

इस तोधेंमें जिसे जैसा विभव है उसे तद्युसार दान करना चाहिये। इस तीथेंमें जो अक्षयबट है उसके नीचे यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे बद्छोककी , प्राप्ति होती है।

"वटमूर्णं समासाद्य यस्तु भाणान् परित्यजेत्। सर्वेलोकानतिकस्य रुदृलोकं स गच्छति॥"

(मत्स्यपु०)

यह तीर्थ गङ्गा और यमुनाके सङ्गमस्थल पर अव-स्थित है, इसीसे यहां देवता, दानव, गन्धर्व और ऋषि हमेशा विद्यमान रहते हैं। माधमासमें इस तीर्थमें सभी तोर्थोंका समागम होता है, इसीसे उक्त मासमें यह तीर्थ करनेसे सव तीर्थोंका फललाभ होता है।

"माघे मासि गमिष्यन्ति गङ्गायामुनसङ्गमं । गवां शतसहस्रस्य सन्यक्दत्तस्य यत्फलं । प्रयागे माघमासे वे स्राहं स्नातस्य वत्फलम् ॥"

(मत्स्यपु॰)

विधिपूवक हजार गाय दान करनेमें जो फल है, माघमासमें प्रयागतीर्थमें तीन दिन स्नान करनेसे वही फलप्राप्त होता है। माघमासमें प्रयाग स्नान ही सर्वा-पेक्षा प्रशस्त है।

गङ्गा और यमुनाके मध्य जो अग्निमं आत्म-विसर्जन करते हैं वे शरीरिस्थित रोमपरिमित वर्ण पर्यन्त स्वर्ग-लोकमं वास करते हैं। प्रयागतीर्थामं समस्त मस्तक मुख्डन करनेसे केशपरिमित वर्ण तक खर्गलोककी गित होती हैं। यहां पर केशमुख्डको ही सर्वापेक्षा प्रशस्त यतलाया हैं। स्त्रियोंके केशच्छेदकी साधारण यह विधि हैं, कि वे सिर्फ केशके अग्रमागसे दो अंगुल परिमित केश कटावे, परन्तु प्रयागमें उन्हें समूचा मस्तक मुख्डवाना होता है। केशमूलका आश्रय करके शरीरमें पाप अवस्थित रहते हैं, इसी क रण सभी केश मुंडवा डालने होते हैं। यदि कोई मोहवश केश न मुंडवावे, तो उसे कोटिकुलके साथ कल्प पर्यन्त रौरव नरककी हवा खानो पड़ती है। अतः प्रयागमें केश छेदन अवश्य कर्त्वथ हैं।

पद्मपुराण-भृमिलएडके १२३वें अध्यायमें तथा कूमें-पुराजके ३३वें अध्यायमें प्रयागतीर्थके माहात्म्यादिका विषय विस्तृत भावमें लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुळ नहीं लिखा गया। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है, कि यह तीर्थ आजसे नहीं वहुत प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है और यहांके ही जलसे प्राचीन राजाओं-का अभिषेक होता था। इस वातका उल्लेख वाल्मीकि रामायणमें हैं। वन जाते समय श्रीरामचन्दु प्रयागमें भरद्वाज ऋषिके आश्रम पर होते हुए गये थे। प्रयाग वहुत दिनों तक कोशल-राज्यके अन्तर्गत था। अशोक आदि वौद्धोंके अनेक मठ और विहार थे। अशोकका स्तम्म अव तक किलेके भीतर खड़ा है जिसमें समुद्-गुप्तको प्रशस्ति खुदी हुई है । फाहियान नामक चीनी याती ४१४ ई०में यहां आये थे। उस समय प्रयाग कोशल राज्यमें ही लगता था। प्रयागके उस पारही प्रतिष्टान नामक प्रसिद्ध दुर्ग था जिसे समुद्गुप्तने वहुत द्वद् किया था। (धिशेष विवरण इलाहाबाद शब्दमें देखो।

२ वहुतसे यज्ञोंका स्थान । प्रयागदत्त—विज्ञानन्दकरी नामक वैद्यजीवनटीकाके स्विथिता । प्रयागदास—पद्मकोश नामक अभिधानके प्रणेता। प्रयागभय (सं॰ पु॰) प्रकृष्ट यागकारिजनात् विभेति स-पदपरिग्रहशङ्कुयेति भी-अच् । इन्द्र । प्रयागवांल (हि॰ पु॰) प्रयाग तीर्थंका पंडा। अयाचक (सं० ति०) प्रार्थनाकारो, मांगने या चाहनेवाला <u>।</u> प्रयाचन (सं० क्ली०) याच्या, प्रार्थना। प्रयाज (सं० पु०) प्र-यज-धन् यज्ञाङ्गत्वात् न कुत्यं। दशपौर्णमासाद्यङ्गया निद, दशंपौर्णमास यज्ञके अन्तर्गत एक अङ्ग यज्ञ । यह यज्ञ पांच प्रकारका है । प्रयाजवत् (सं० पु०) प्रयाज अस्त्यर्थे मतुष् मस्य वः। प्रयाजरूप कर्मभेदपञ्चकयुक्त प्रधान याग दर्शादि। प्रयाण (सं० ह्वी०) प्र-यो-स्युद्, णत्यं। १ गमन, जाना, कूच, रवानगी। संस्कृत पर्याय-प्रस्थान, गमन, हज्या, अभिनिर्याण, प्रयाणक । २ युद्धयाता, चढ़ाई । राजाओंके युद्धादि प्रमाणमें ये सव वर्णनीय हैं। यथा—भेरीनिखन, भूकम्प, वलघूलि, करभ, वृष, ध्वज, छत्न, वणिक, शकट और रथ। (कविकल्प ता) ३ भारम्भ, किसी कामका छिड्ना । प्रयाणक (स°० क्ली०) प्रयाण-सार्थे कन् । प्रवाण देखें। प्रयाणकाल (सं° पु॰) १ जानेका समय, यात्राका समय। २ इस लोकसे प्रस्थानका समय, मृत्युका समय। प्रयाणभङ्ग (सं ० पु०) यातामङ्ग । प्रयाणपुरी (सं ० स्त्री०) दक्षिणमें कावेरी नदीके तट पर एक प्राचीन तीर्थ । इसका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें वर्णित है। यहां वहुत पुराना एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। प्रयाणीय (सं ० ति०) प्र-या-अनोयर्, णत्वं । गम्य, अप्र-सर होने योग्य। प्रयात (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण यातः वा प्र-या-कर्त्तरि-क । १ भृगु, ऊंचा किनारा जिस परसे गिरनेसे कोई वस्तु एक दम नीचे चली जाय। २ सौप्तिक, निदाके समय चढ़ाई कर देना । (लि॰) ३ प्रकर्षरूपसे गन्ता, खूव चलनेया जाने वाला । ४ गत, गया हुआ । ५ मृत, मरा हुआ । ६ सुप्त, सीया हुआ । कर्भणि-क । ७ प्रयोण द्वारा प्राप्त, जो युद्धमें मिला हो। (क्की०) भावे-क । ८ गमन, जाना। १ प्रगन्तव्य, जाने प्रयातव्य (सं ० ति०) प्र-या-तव्य । लायक। २ आक्रम्य, चढ़ाई करने लायक।

प्रयापण (सं ० ह्वी०) १ अप्रगमन, आगे जाना । २ विवा-इन, भगाना, चलता करना ।

प्रयापणीय (सं० ति०) १ अग्रगामी । २ प्रेरणीय । प्रयाम (सं० पु०) प्र-यम-धन् । १ दुष्पाव्यता, महेंगी । २ आदर, कदर । ३ देश या काळसम्बन्धी दीर्घता, लम्बाई । ४ संयम, बंधा हुआ आचरण ।

प्रयामन् (सं ० ति०) प्रयाण, गमन ।

प्रयायिन् (सं'० ति०) पुन्या-णिनि, थादन्तात्-युक्च। गन्ता, जानेवाला।

प्रयास (सं ॰ पु॰) प्र यस प्रयत्नेघञ् । १ प्रयत्न, उद्योग, कोशिश । पर्याय—श्रम, ऋम, ऋश, परिश्रम, आयास, व्यायाम । २ श्रम, मेहनत । ३ इच्छा ।

प्रयिषु (सं ० ति०) प्र-या वाहुलकात् कु,' द्वित्वे अभ्या-सस्य अत इत्वं । प्रयाणयुक्त ।

प्रयुक्त (सं ० बि०) प्र-युज-क। १ प्रकर्षक्रपमें युक्त,
भच्छी तरह जोड़ा हुआ। २ प्रेरित, जो किसी काममें
लगाया गया हो। ३ प्रयोज्य, जिसका खूव प्रयोग किया
गया हो। ४ प्रकृष्ट संयोगविशिष्ट, अच्छी तरह मिला
हुआ। ५ प्रकृष्ट निन्दायुक्त। ६ प्रकृष्ट संयमविशिष्ट।
प्रयुक्ति (सं ० स्त्री०) प्र-युज-भावे-किन्। १ प्रयोजन।
२ प्रयोग।

प्रयुग (सं० ह्वी०) प्रउग, प्रववत्तौ युग।
प्रयुज (सं० ति०) प्र-युज सत्स्द्रिपेत्यादिना-किप्।
प्रयुज—चातुर्मास्यके अन्तर्गत क्रियामेद्। चतुर्मान्य देखो।
प्रयुजमान (सं० ति०) प्र-युज-शानच्। जिसका प्रयोग

किया गया हो।
प्रयुक्षान (सं० ति०) पु-युज-शानच्। प्रयोगकारी।
प्रयुक्ष (सं० क्वी०) प्रकर्षेण युतं। दश लाखकी संख्या।
(ति०) २ दश लाख। ३ सहित, समेत। ४ अस्पर,
गड़वड़। ५ प्रकर्षकपसे संयुत, खूद मिला हुआ।
प्रयुति (सं० क्वी०) प्र-यु-भावे-किन्। १ प्रकर्षकपसे
योग। २ प्रयोग।

प्रयुतेश्वर (सं॰ क्ली॰) स्कन्दपुराणोक्त तीर्थमेद। प्रयुत्छ (सं॰ पु॰) १ योदा, वीर। २ मेष, मेड़ा।३ संन्यासी।४ वायु। ५ इन्द्र।

प्रयुद्ध (सं॰ क्ली॰) प्रकृष्टं युद्ध प्रादिस॰। अत्यन्त युद्ध। प्रयुद्धार्थं (सं ॰ पु॰) प्रयुद्धः अर्थो यस्य सः। प्रत्युत्कम । प्रयुध् (सं ॰ ति ॰) प्र-युध्-क्षिय् । प्रकृष्ट योद्धा, भारी वीर ।

प्रयोक्ता (सं ० पु०) प्रयोक्तृ देखी ।

प्रयोकनृ (सं० वि०) प्रयुणकीति प्र-युज-तृन् । १ प्रयोग-कर्त्ता, व्यवहीर करनेवाला । २ अनुष्ठाता, अनुष्ठान करने-वाला । ३ नियोगकर्त्ता, नियोजित करनेवाला । (पु०) ४ उत्तमणे, ऋण देनेवाला, महाजन । ५ प्रधान अभि-नय करनेवाला, स्त्रधार ।

प्रयोक्तव्य (सं॰ त्रि॰) प्र-युज-तन्य। १ प्रयोगयोग्य, उचारण लायक।

प्रयोग (सं०पु०) प्र-युज-भावकमीदी यथायथं घञ् ततो कुत्वं। १ अनुष्ठान, आयोजन, साधन। २ शब्दा-दिका उद्यारणभेद। ३ अनुमानाङ्ग पञ्चावयव वाक्यो-चारण, अनुमानके पाचों अवयवींका उचारण। ४ अभि-नय नाटकका खेल । ५ वाबहार, इस्तेमाल, वरता जाना । ६ प्रक्रिया, क्रियाका साधन, विधान 🕛 ७ तान्त्रिक उप-चार या साधन जो वारह कहे जाते हैं। मारण, मोहन, उचारन, कीलन, विद्वे पण, कामनाशन, स्तम्भन, वशी-करण, आकर्षण, वन्दिमोचन, कामपूरण और वाकप्रसा-रण। ८ निदर्शन, द्वष्टान्त। ६ घोटक, घोडा। १० रोगोके दोपों तथा देश, काल और अज़िका विचार कर औपधकी वाबस्था, उपचार। ११ यज्ञादि कर्मों के अनुष्टानका वोध करानेवाली विधि, पद्धति । १२ धनकी वृद्धिके लिये ऋणदान, रुपया वढ़ानेके लिये सुद्ध पर दिया जाना । १३ सामद्ग्ड आदि उपायोंका अवलम्बन । १४ शस्त्रादिमोचन । १५ नायक और नायिकाकी मिलन-रूप कियामेद् ।

प्रयोगवस्ति (सं ॰ पु॰) रसायन जौर वाजीकरणमें प्रयोज्य वस्ति । यह वस्ति ८ प्रकारकी हैं, पहले १ स्नेहवस्ति, पीछे ३ निरूहवस्ति और उसके वाद ४ स्नेहवस्ति ।

प्रयोगचिधि (सं ० पु०) प्रयोगज्ञापको विधिः मध्यपद-लोपी कर्मधा० । ट्रियोगकी अविलम्बज्ञापक विधि ।

प्रयोगातिशय (सं॰ पु॰) साहित्यदर्पणोक्त नाटकाङ्ग-प्रस्तावनाभेद् । इसका लक्षण—

Vol. XIV. 156

"यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्तवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥" (साहित्यद० ६ य०)

यदि एक प्रयोगमें अन्य प्रयोग प्रयुक्त हो और उसे उपलक्ष्य कर पालका प्रवेश हो, तो प्रयोगातिशय प्रस्ता-वना होती है। जैसे, कुन्दमाला नामके संस्कृत नाटकमें स्वायारने नृत्यके लिये अपनी भार्याको बुलानेके प्रयोग द्वारा सीता और लक्ष्मणका प्रयोग स्वित किया और उस प्रयोगका अवलम्बन करके सीता और लक्ष्मण प्रविष्ट हुए।

प्रयोगार्थ (सं ० पु॰) प्रयोगस्यायं 'अर्थेन सह नित्य-समासः विभक्तालोपश्च' इति वार्त्तिकोक्ता प्रयोगोऽर्थं-प्रयोजनमस्य वा। प्रत्युत्कम, प्रधान प्रयोगके अनुकूल प्रयोजनानुष्ठान ।

प्रयोगिन् (सं ० ति०) प्रयोगोऽस्त्यस्येति प्रयोग (अत इतिहनौ । पा ५१२।११५) इति इनि । प्रयोगयुक्त, प्रयोग करनेवाला ।

प्रयोगी (सं ० पु०) प्रयोगित् देखो ।

प्रयोगीय (सं o बि o बावस्थेय, औषधमें जिसका प्रयोग किया जाय।

प्रयोग्य (सं ० ति ०) प्रयुज्यते प्र-युज-कर्मणि-ण्यत्, कुत्वं । प्रयोज्य अभ्य ।

प्रयोजक (सं० ति०) प्रयुनिक प्रेरयित कार्यादी मृत्यादी-निति, प्र-युज्-ण्डुल्। १ प्रयोगकर्त्ता, अनुष्ठान करनेवाला। २ प्रेरक, काममें लगानेवाला। ३ नि वन्ता, इन्तजाम करनेवाला।

प्रयोजन (सं० क्लो॰) पृयुज्यते इति प्-युज-ल्युट्। १ कार्यं, काम। २ हेतु, कारण। ३ उद्देश्य, अभिपाय, मतलव।

"सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत् पृयोजनं नोक्तं तावत् केन पृयुज्यते॥" (पृञ्ज)

कोई विषय कहनेके पहले उसका प्योजन कह देना आवश्यक है। कारण, विना प्योजनके किसीकी भी किसी विषयमें प्रयृत्ति नहीं होती। यह प्योजन दो प्कारका है, मुख्य और गीण।

जिस उद्देश्यंसे जिसकी प्रवृत्ति होती है, उसका नाम प्रयोजन है। मनुष्य जो कोई काम करते हैं उसका चरम छक्ष्य है सुखप्राप्ति वा दुःखपरिहार । अतएव सुख और दुंखाभाव मुख्य प्रयोजन है । अलावा इसके सर्वोकी गीण प्रयोजनमें गिनती की गई है।

गौतमने सोलह पदार्थं बतलाये हैं, उनमेंसे प्रयोजन चौथा है। जिस वस्तुका अभिलाव करके कार्यमें प्रवृत्ति उत्यन्न होती है, वही वस्तु प्रयोजनका पदार्थ है। सुस अथवा परिश्रमादिके लिये दुःख निवृत्तिकी इच्छा करके भोजन और शयनादि किये जाते हैं, इसीसे सुख और दुःखनिवृति इसका प्रयोजन है। भोजनादिको इच्छाके पाक आदि कार्य सम्पादन होते हैं। इस कारण भोजनादि भी प्रयोजन हैं। पाक आदिके उद्देश्यसे काष्ठ और अनि-संब्रह किया जाता है, अतः ये दोनों भी प्रयोजन हैं। अभी यही प्रतिपन्न हुआ, कि कार्यमात ही किसी कार्यका प्रयोजन है। इससे इच्छाविषयत्व ही प्रयोजन सामान्य-का लक्षण हुआ; किन्तु भोजन करनेसे सुख अथवा दुःख-की निवृत्ति होगी, ऐसा उद्देश्य करके ही भोजन करनेमें लोगोंकी प्रवृत्ति होती है। परन्तु भोजन करनेले सुख अथवा दुःसकी निवृत्ति नहीं होगी, यदि ऐसा निश्चय रहे, तो कभी भी भोजनादि करनेमें किसीकी इच्छा न हो सकती। अतएव भोजनादि विषयमें इच्छा ही सुख अथवा दुःखनिवृत्तिविषयक इच्छाके अधीन है। इस कारण भोजनादि गौण प्रयोजन है। सुखदुःखनिवृत्ति विषयमें इच्छा स्वभावतः ही हुआ करती है, अर्थात् सुस अथवा दुःखनिवृत्ति ंहोनेसे अन्य फल होगा, ऐसी इच्छा करके सुख अथवा दुःख निवृत्तिविषयक इच्छा उत्पन्न नहीं होती। इसीसे सुख और दुःखनिवृत्ति मुख्य प्रयोजन है। भोजन और पाक आदि गौण प्रयोजन हैं। कोई कोई सुखसाक्षात्कारको भी मुख्य प्रयोजन कहते हैं। इनमेंसे सुख, दुःखाभाव और सुखसाक्षात्कार वे तीनों ही मुख्य प्रयोजन हैं।

मनीषिगण आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिको ही एकमाल नुख्य प्रयोजन कह गये हैं। मुख्य और गीण प्रयो-जनके दो छक्षण इस प्रकार हैं—'अन्ये^{च्छ}।नधीनेन्छ। विष**य**स्वं सुख्यप्रयोजनात्वं अन्येच्^छ।घीनेन्छ।विषयम्ब तीयप्रयोजनस्व ''' (मुक्तिबादमें गदाधर) जहां दूसरेकी इच्छा-के अनधीन इच्छाविषयत्व होगा, वहां मुख्यप्रयोजन और जहां अन्येच्छाके अधीन इच्छाविषयत्व होगा, वहां गीण प्रयोजन होता है। अन्येच्छाके अधीन और अनधीन यही गीण मुख्यका प्रमेद है। (न्यायदश न)

प्रयोजनवत् (सं॰ ति॰) प्रयोजनं विद्यतेऽस्य मतुष् मस्य ब । प्रयोजनयुक्त ।

प्रयोजनवतीलक्षणा (सं॰ स्त्री॰) वह सक्षणा जो प्रयोजन द्वारा वाच्यार्थसे मिन्न अर्थ प्रकट करे। लक्षणके दो भेद हैं, प्रयोजनवती और रुढ़ि। 'युद्धक्षेत्रमें बहुत-सी तलवारे' आ गई।' इस बाक्यमें यदि तलवारका अर्थ तलवार ही किया जाय, तो अर्थमें वाधा पड़ती हैं। इससे प्रयोजन-वश तलवारका अर्थ तलवारवंद सिपाही लेना पड़ता है। अतः जिस लक्षण द्वारा यह अर्थ लिया गया वह प्रयोजन-वती हुई। परन्तु कुछ लक्ष्यार्थं सदृ हो गये हैं। जैसे, 'कार्यमें कुराल' कुरालका अर्थ कुश इकट्ठा करनेवाला होता है, पर यह शब्द दक्ष या निपुणके अर्थमें ऋढ़ हो गया है। इस प्रकारका अर्थ रुढ़िलक्षणा द्वारा प्रकट होता है। प्रयोजनवत् (सं । ति ।) प्रयोजनं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व । प्रयोजनयुक्त, मतल्य रखनेवाला । प्रयोजनवान् (हि० वि०) प्रयोजनवत देखो । प्रयोजनीय (सं॰ ति॰) कामका, मतलवका । प्रयोक्य (स'० ति०) प्र-युज्ज्-ण्यत्। (प्रयोज्यिनयोजयौ शक्वार्थे। पा ७।३।६८) इति निपातनात् साधुः। प्रयोगके योग्य, काममें लाने लायक। २ कत्तंच्य, आचरण-योग्य । ३ प्रेरित करने योग्य, काममें छगाप जाने छायक । (पु॰) ४ प्रेष्यभृत्य, नौकर । ५ मृलघन । ६ णिजन्त धातुका प्रकृत्यर्थं कर्ता । ७ प्रयोज्यत्वस्वकृप सम्बन्धमेद । प्रयोत् (स' ० ति ०) प्र-यु-तृच् । प्रकर्षकपसे मिश्रयिता, अच्छी तरह मिळानेवाला।

प्रयमेथ (सं ॰ पु॰) प्रियमेधका पुं अपत्य । प्ररक्ष (सं ॰ ति॰) प्ररुप्तपसे रक्षाकारी, रक्षक । प्ररक्षण (सं ॰ क्षी॰) संरक्षण, अच्छी तरह रक्षा करना । प्ररथ (सं ॰ अन्य॰) प्रगती रथी यत्न तिप्रहुग्वाहित्वाह-व्ययोभावः । प्रगतस्ययुक्त देश ।

प्रराघस् (सं ॰ पु॰) अङ्गिरसवंशोय ऋषिभेद् ।

प्रराध्य (सं•्ति•) प्र-राध-यत्। प्रकृष्टकपसे स्तुत्य, प्रशंसा लायक।

प्ररिक्षन् (सं ० ति ०) प्र-रिच-ड्वनिप् । प्रकृष्टस्पसे विरेचन-कर्ता ।

प्रस्त (सं ॰ ति ॰) प्र-रुज-क । १ प्रकृष्टरोगकारक । (पु॰) २ देवसैन्याधिपमेद । ३ राक्षसमेद ।

प्रकह (सं ॰ ति ॰) प्र-कह-क । प्ररोहणकारी, अपरको वढ़ने-वाला, जैसे अंकुर, कल्ला, पौधा ।

प्रसद्ध (स' ० ति ०) प्र-व्ह-क । १ प्ररोहणकर्त्ता, ऊपरको वढ़नेवाला । २ वद्धमूल । ३ जात, उत्पन्न । ४ प्रवृद्ध, खूव वढ़ा हुआ । (पु०) ५ जठर । कहीं कहीं 'जरह' ऐसा पाठ भी देखनेमें शाता है । ६ सञ्जात वृक्षादि ।

प्रकृद्धि (सं ० स्त्री०) प्र-सह-किन् । वृद्धि, उन्नति, बढ़ती । प्रदेश (सं ० पु०) प्रदेखन, दान ।

प्ररेचन (सं० क्की०) प्र-रिचिर्-विरेचने भावे ल्युट् । १ रुचि-सम्पादन, रुचि दिलाना, चाह पैदा करना । २ मोहित करना । ३ उत्तेजित करना ।

प्ररोचना (सं० स्त्री०) प्र-रुच् णिच्-युच् राप्। १ उत्ते-जना, बढ़ावा। २ रुचिसम्पाइन, चाह या रुचि उत्पन्न करनेकी किया। ३ प्रस्तावनाका अङ्गमेद, नारकके अभि-नयमें प्रस्तावनाके वीच स्वधार, नर, नरी आदिका नारक और नारककारकी प्रशंसामें कुछ कहना जिससे दर्शकोंको रुचि उत्पन्न हो। ४ अभिनयके बीच आगे आनेवाली वातका रुचिकर स्पमें कथन।

प्ररोधन (सं० क्ली०) प्र-रुध ल्युट् । आरोहण, ऊपर उठाना । प्ररोह (सं० पु०) प्ररोहतीति प्र-रुह-अच् । १ अंकुर, अंखुआ, कल्ला । २ नन्दीवृक्ष, तुनका पेड़ । ३ आरोह, चढ़ाव । ४ उत्पत्ति, पैदाइश । ५ प्ररोहण, ऊपरकी और निकलना ।

प्ररोहण (सं ० हो ०) प्र-रह-भावे ल्युट्। १ उत्पत्ति, पैदा-इश । २ आरोह, चढ़ाव । ३ भूमिसे निकलना, उगना । प्ररोहभूमि ,सं ० स्त्रो०) उर्वरा भूमि, उपजाऊ जमीन । प्ररोहशाखी (सं० पु०) वे वृक्ष जिनको कलम लगानेसे लग जाय।

प्रक्षपन (सं ० क्ली०) प्-लप-भावे-ल्युट् । १ प्लाप, कहना, वकना । २ अनर्थंक त्राक्य, वकवाद करना । प्रलिपत (सं ० ति ०) प्-लप-क । १ कथित, कहा हुया । २ वृथा उक्त, अनर्थक कथित । (क्वी ०) भावे-क । ३ पृलाप । प्रलब्बव्य (सं० ति ०) प्-लभ-तथ्य । १ पृक्वप्रकपसे लब्धन्य, पाने योग्य । २ प्वञ्चनाह⁶, ठगने लायक ।

प्रलम्ब (सं ॰ पु॰) पृलम्बते इति प्-लम्ब-अच् । अतिदीर्ध-त्वादेव तथात्वं। १ दैत्यभेद । यह्युदनुका पुत्न था और मनुष्यसे मारा गया था। २ एक दानव जिसे वळरामने मारा था। भागवतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—एक वार कृष्ण वलराम गोपोंके साथ वृन्दावनमें बोल रहे थे। इसी समय प्रलम्बासुर भी गोपवेशमें उनके साथ मिल कर खेलने लगा। भगवान् कृष्ण उस दुएकी अभिसन्धि ताड़ गये। वे गोप-वालकोंके साथ कृतिम मल्लयुद्ध करने लगे। इस कृतिम युद्धमें यह ठहराव हुआ, कि जो हार जायगा वह जीतनेवालेको कंधे पर विटा कर निर्दिष्टस्थान तक छे जाय। गोप-वेशधारी पुलम्ब हारा और वलरामको कंधे पर लेकर भागने लगा। उन्हें दूर देश ले कर मार डालना ही पुलम्बका प्कमात उद्देश्य था। किन्तु वलराम उसके कंधे पर चढ़ कर ऐसे भारी हो गये, कि दुष्ट दानव उन्हें ढो नहीं सका। अन्तमें प्रलम्व अपनी मूर्त्ति घारण करके वलरामकी भोर वढ़ा, किन्तु शीघ्र हो युद्धमें वलराम द्वारा मारा गया। इसकी मृत्यु पर देवताओंके आनन्दका पारावार न रहा । (भागवत १०१८ अ०) ३ त्रपुष, खीरा । ४ पयोघर, स्तन । ५ लताकु र, दुनगा। ६ शाखा, डाल। ७ हारमेद, एक प्रकारका हार। ८ प्रलम्बन, लटकाव।६ रामाय-णीक्त जनपद्विशेष । १० अंकुर, अंखुआ । ११ वङ्ग रांगा । १२ तालाकु र । १३ तालखरड । १४ तपुपवीज, स्वीरेका वीया। १५ व्यर्थका विलम्ब, काममें शिथिलता या टालटूल। (ति०)१६ लम्यमान, नीचेकी ओर दूर तक लटकता हुआ। १६ लम्बा। १७ दैगा हुआ टिका हुआ । १८ निकला हुआ, किसी ओरका वढ़ा हुआ । १६ शिथिल, सुस्त ।

प्रलम्बक (सं॰ पु॰) सुगन्धतृण, सुगन्धित घास। प्रलम्बद्दन (सं॰ पु॰) प्रलम्बं इन्तीति इन-क। वलराम। प्रलम्बन (सं॰ क्की॰) १ प्रकृष्टकृपसे लम्बन, लटकाव, भुलाव। २ अवलम्बन, सहारा लेना।

प्रलम्बिसङ् (सं॰ पु॰) प्रलम्बं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। वस्रामः।

प्रलम्वान्त (सं० पु०) प्रलम्बो लम्बमानः भन्तो यस्य। दीर्घान्तकोपविशिष्ट, लम्बमान कोप।

प्रलम्बित (सं॰ ति॰) प्र-लम्ब क्त । प्रकर्णक्रपसे लम्बित, खूव नीचे तक लटकाया हुआ ।

प्रलम्बन् (सं॰ ति॰) प्रलम्ब-थस्त्यर्थे इनि। १ प्रलम्ब-युक्त, दूर तक लटकनेवाला। २ भाश्रयो, सहारा लेने-वाला।

प्रलम्बी (सं० ति०) प्रकृष्टिन हें खी । प्रलम्म (सं० पु०) प्र-लभ-घञ्, मुमानमः । प्रकृषेद्वपसे

प्रलम्मन (सं० क्ली०) प्र-लभ-भावे-ल्युट् । १ प्रकर्षकपसे लाभ, प्राप्ति होना । २ खल, घोखा ।

प्रलय (सं॰ पु॰) प्रलीयतेऽस्मिनिति प्र-ली-साधारे अच् (ए॰च्। पा ६।३।४६० निषिल भूतादिका लयाधार काल-मेद, जगत्के नाना रूपोंका प्रकृतिमें लीन हो कर मिद्र-जाना । पर्याय—संवर्त्तं, कल्प, क्षय, कल्पान्तं, लय, संक्षय, विलय, प्रतिसर्गं, प्रतिसन्धरः । पुराणोंमें संसारके नाशका वर्णन कई प्रकारसे आया है । कुर्मपुराणके अनुसार प्रलय चार प्रकारका होता है, नित्य, नैमित्तिक प्राकृत और आत्यन्तिक । यथा—

"नित्यं नैमित्तिकं चैव प्राष्ट्रतात्यन्तिकौ तथा। नित्यं संकीर्त्याते नाझा मुनिभिः प्रतिसञ्चर॥" (कूर्मपु० ४२ अ०)

लोकमें जो वरावर क्षय हुआ करता है वह नित्य प्रलय है। कल्पके अन्तमें तीनों लोकोंका जो क्षय होता हैं वह नैमित्तिक वा ब्राह्म प्रलय कहलाता है। जिस समय प्रकृतिके महदादि विशेष तक चिलीन हो जाते हैं उस समय प्राकृतिक प्रलय होता है। श्रानको पूर्णा-वस्था प्राप्त होने पर ब्रह्म या चितमें लीन हो जानेका नाम आत्यन्तिक प्रलय है।

नैमित्तिक प्रलयके सम्बन्धमें कूमैपुराणमें इस प्रकार लिखा है—एक हजार चतुर्यु गके अन्तमें जो प्रलय उप-स्थित होता है उस प्रलयमें भगवान प्रजापित प्रजागणको अपनेमें रखनेको इच्छा करते हैं। इस समय समस्त भूतल पर सी वर्ष तक दाहण अनावृष्टि रहती है। घीरे धीरे भयद्भुर अनावृष्टि होनेसे चराचरका नाश होने लगता है । शस्य असार हो मट्टीमें परिणत हो जाते हैं। सप्तरिम दिवाकर गगनमें उड़ कर उत्तम किरण जाल द्वारा महार्णवकी जलराशि चूसने लगते हैं। क्रमशः प्रदीम रिष्म सप्तसूर्यस्त्यमं चारों खोर उदित हो कर अग्निकी तरह इस लोकको दृष्य करती हैं। पीछे बह अग्नितुस्य किरणराशि उद्दर्भ्य और बघोलोक तक पैल जाती हैं । इस प्रकार जलपदीस वहु सहस्र शिखा-समाकुछ सतसूर्य सारी वसुन्धराको कृष्य कर गगन-तलमें अवस्थान करते हैं। क्रमणः दहामान वसुन्वरा परके यावतीय नद्द, नदी, द्वीप और पर्वत आदि सूर्यके तापसे सूल कर विलक्कल स्नेहहीन हो जाते हैं। इस समय ज्वालामालासमाञ्जल प्रेवीप्तपादक भी अपने तेज द्वारा चारों लोकींको वृष्य करनेमें प्रवृत्त होता है । इसके वाद स्थावर जङ्गम सभी पदाथों के विकान हो जानेसे पृथ्वी पर एक भी तरुलतादि दृष्टिगोचर नहीं होती है। एकमाल भूमि ही कुर्मपृष्ट पर विराजती देखी, जाती हैं। नभोमएडल अमिशिखासे जाञ्चल्यमान हो जाता है । समुद्र वा पातालगत जो सव तीर्थ हैं, वे सभी अपने अपने स्थान पर भूमिक्पमें परिणत हो जाते हैं। सप्तधा विभिन्न ह्व्यवाहन इस प्रकार द्वीप, पर्वात, वर्ष और महोद्धिको मस्मसात् करके नदी आदिके जलपानसे प्रदीत होने लगता है तथा एकमाल पृथ्वीको आश्रय कर जलता है। अनन्तर घोर बङ्बानलका प्रकोप होता है। उसकी प्रकोपसे पृथ्वी परके सभी पर्वत और बचे खुचे प्राणी जल कर भस्म हो जाते हैं। उनकी शिक्षा हजारी योजन तक फैली रहती है इस कालाग्निके प्रभावसे गन्धर्व, पिशाच, यश्, ऊरग और राक्षस तथा भूटोंक, भुवलॉक, स्वलॉक और महलॉक तक भी दग्ध होने खगता है।

इथर नील, पीत, हरित, धूझ आदि नाना वर्णीके भयडूर जलदजाल गगनतलमें उठ कर दिग्दिगन्तको समाच्छन्न कर डालते हैं। पीले अवणकठोर अति भैरव निनादसे नभस्यलको गुंजाते हुए मृथल धारमें निरन्तर वर्षा वरसाते हैं। वहुत देर तक इस प्रकार वर्षा होनेसे वह सप्तथा विभिन्न विश्वप्रासी विभावसु शान्त हो जाता है तथा सर्वत जलपूर्ण होनेके कारण होनतेजा अनि भी जलमें पुस जाती है। अनिके तुम्ह जानेसे द्वीपशैल-समन्विता वसुन्धरा और समसागर जलपूर्ण हो जाते हैं। वर्षाजलके प्रवाहसे सारी त्रसुन्धरा प्लावित रहती हैं। साथ साथ पर्वतादि वसे खुचे पदार्थ सभी जलप्रवाहमें विलीन हो जाते हैं। उस एकार्णवीभृत जलप्रवाहमें एकमात प्रजापित ही योगितदाकी गीदमें सो रहते हैं।

शकृतिक प्रलयके सम्बन्धमें कूर्मपुराणमें इस प्रकार हिला है,—हो अपरार्द्ध काल बीत जाने पर लोकसंहारक कालागि इस निविल जगन्को भस्मसान् करनेकी इच्छा-से आत्माको आत्मामें समावेश कराती है। पीछे महेश्वर-क्ष्पमें सुर, असुर और महायोंके साथ समस्त ब्रह्माण्ड-को दृश्य करतो है। भगवान महादेव भी अनिक्स्पमें अति भयङ्करभावसे होगोंका संहार करने हम जाते हैं। इस प्रकार समस्न प्राणियोंको दृग्ध कर वे ब्रह्मशिरा नामक एक महामन्त देवताओंके शरीर पर फेंक्ते हैं। मन्त्रके प्रभावसे जव देवताओंका भी देह भस्मीभृत हो जाते हैं, तव एकपाल हिमशैलनन्दिनो भगवती ही साझी-रूपी भगवान शस्म की समीपवर्त्तिनी हो अवस्थान करती है। उस समय शम्मु चन्द्रसूर्यादि ज्योतिष्क पदार्थों से गगनमण्डलको आच्छादित कर देवताओंके मस्तक और कपासकी माला बनाते और उसीसे अपनेकी सजाते हैं। उनके सहस्र नयन, सहस्र देह, सहस्र इस्त, सहस्र चरण और शरीरमें सहस्र प्रभा विद्यमान रहती है। उनके वदनमण्डल भयडूर और नयन लाल लाल दिखाई देते हैं। उनके हाथमें विश्ल, परिधानमें व्याञ्चर्म है। उस समय वे ऐम्बरिक योगका अवलखन करके परमानन्दप्रचुर बात्मामृत पान करते हैं और देवी गिरिजाके प्रति दृष्टिपात करके नाचते हैं। पीछे मङ्गल-मयी भवानी भी भर्चाका ताएडवामृत पान करके योगा-वसम्बनसे उनके शरीरमें प्रवेश करती हैं। भगवान पिनाकपाणि ताएडवरसका परित्याग कर ब्रह्माएडमएडस दृष्ध करनेकं वाद निज इच्छासे पुनः प्रकृतिस्य होते हैं। घीरे घीरे सारी पृथ्वी जलमें विलीन हो जातो है। शनि उस जलतस्वको ग्रास करती है। इस प्रकार सगुण वेज

Vol. XIV. 157

वायुमें, सगुण वायु आकाशमें, सगुण आकाश भूतादिमें और इन्द्रिय तैजसमें विलीन हो जाती है। वैकारिक अवस्थामें देवताओंका भी लय हुआ करता है। वैकारिक, तैजस और भूतादि ये तीनों अहङ्कार महत्में विलीन होते हैं। महत् भी तीनों अहङ्कारके साथ संहार होता है।

इस प्रकार महेश्वर यावतीय भूत और तत्त्वका संहार करके प्रधान और परम पुरुपको भी परस्पर संहार करनेमें नियोग करते हैं। प्रधान तथा पुरुप ये दोनों जन्ममरणहीन हैं। उनका कभी भी विलय नहीं है। किन्तु इस समय महेश्वरकी इच्लासे उनका भी संहार होता है। प्रधानसे ले कर रुद्र पर्यन्त सभीका रुद्र हं हार करते हैं। उन्हींकी संहारिणी शक्ति नित्य है। जिनका मन सर्वदा परमज्ञानमें निविष्ट है, शङ्कर उन योगियों- का भी आत्यन्तिक लय करते हैं।

विष्णुपुराणमें प्रलयका विषय इस प्रकार लिखा है—
नैमित्तिक, आत्यन्तिक और प्राकृतिक भेदसे प्रलय
तीन प्रकारका है। कल्पान्त कालमें जो ब्राह्म प्रलय होता
है उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। मोक्षक्ष प्रलयका नाम आत्यन्तिक और द्विपराद्ध क प्रलयका नाम
प्राक्षत प्रलय है।

नैमित्तिक अति प्रलय भयानक है। चतुर्युंग सहस्रके वाद महीतलके क्षीण होने पर सौ वर्ष तक वृष्टि नहीं होती। इससे अल्पसार यावतीय पार्थिव जीव क्षयको प्राप्त होते हैं। इसके वाद भगवान विष्णु रुद्रक्षपमें समस्त प्रजाको अपनेमें विलीन करते और सूर्यकी सप्तविध रिममें अवस्थान करके सभी जल-को पी जाते हैं। केवल यही नहीं, जलज जीव और भूमि-गत जलको अच्छी तरह चूस कर शैल, प्रसवण और पाताल आदि इस ब्रह्माएडमें जितना जल है सभी शोपण करते हैं। भगवान् विष्णुने इस प्रकार जलपान द्वारा पुष्ट हो सूर्यको जिन सात रिमयोंका अवलम्बन करके जलशोपण किया था, वे सव सूर्यरिम उस समय स्यँक्पमें प्रका-शित होती हैं। प्रदीप्त ये सात भास्कर ऊर्द और अधः-स्थित समस्त भुवनको अच्छी तरह दभ्ध कर डालते हैं। इस प्रकार तिभुवन सूर्यतापसे दग्ध हो कर नितान्त परि-

शुष्क हो गये। इस समय तिभुवनस्थित सभी वृक्षादि सुख कर विलीन हो जाते हैं, केवल वसुधा कूमपृष्टके आकारमें दिखाई देती है। अनन्तर भगवान् रुट्रुरूपी विप्णु अपनी निःश्वाससम्भूत अग्निसे पातालको भस्म करते हैं। पीछे वह कालानल समस्त पातालखएडको दृग्ध कर ऊर्द्ध गामी हो पृथ्वीतल, भुवलोंक और खलोंकको भी भस्मसात् कर डालता है। प्रखर कालानलके तेजसे विनष्ट समस्त चराचर त्रिभुवन उस समय एक वड़ी कड़ाहीके सदृश दीख पड़ता है। इस समय दोनों लोकके निवासी प्रचएड अनलतापसे पीड़ित हो महलॉक्सें आश्रय छेते हैं। किन्तु वहां भी चैन न पा कर वे जनलोक चले जाते हैं। इसके बाद् भगवान् विष्णुके मुखनिः ध्वास द्वारा नाना वर्णके मेघोंकी सृष्टि होती है। वे सव मेघ तमाम आकाशमें फेल जाते और सौ वर्ष तक मूपलधारमें वृष्टि करते हैं। इस प्रकार लगातार वृष्टिसे प्रचएड अनल वुक जाता है। पीछे मेघ जगत्को वृष्टि द्वारा तरावीर करके धीरे धीरे भुवलॉक और खर्गलोकको हावित कर डालता है। इस समय समस्त लोक अन्यकारमय और स्थावर जङ्गम सभी पदार्थं विनष्ट हो जाते हैं। जब सप्तर्षियोंका स्थान तक भी जलमन हो जाता है, तब अखिल ब्रह्माएड एक महासमूद्रके जैसा मालूम पड्ता है। पीछे भगवान् विष्णुके निःश्वाससे प्रवल वायुकी उत्पत्ति होती है। यह वायु सो वर्ष तक प्रचएड बेगसे वहती है जिससे सभी मेघ ध्वंसप्राप्त हो जाते हैं। अनन्तर् भगव न् विष्णु उस बायुको ध्वंस कर अनन्त समुद्रमें शेपशय्या पर सो जाते हैं।

इस समय केवल शनकादि ऋषि भगवानका वरावर स्तव किया करते हैं। अनन्त जलराशिके सिवा इस समय और कुछ भी नजर नहीं आता है। ३६० दिनका मजुण्योंका एक वर्ष और इस एक वर्षको देवताओंकी एक दिनरात होती है। इस प्रकार ३६० वर्षका देवताओंका एक वर्ष और ऐसे १ हजार वर्षका मजुष्योंका चार युग होता है। इस प्रकार एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन और उतने ही की एक रात होती है। इसी रातमें वह प्रलय होता है। फिर जब उतना समय दीत जायगा अर्थात् ब्रह्माका दिन आयेगा, तब इस जगत्की फिरसे सृष्टि होगी। यही नैमित्तिक प्रलय है।

प्राकृतिक प्रलय-पूर्वोक्त रूपमें अनावृष्टि और अन-लके सम्पर्कसे जब पाताल आदि सभी लोक निःस्नेह हो जाते हैं, तव महत्तत्वादि पृथ्वो पर्यन्त विकारसमूहको ध्वंस करनेके लिये प्रलयकाल उपस्थित होता है। प्राकृतिक प्रलयमें पहले जल पृथ्वीके गन्धगुणको ग्रास करता है। जब पृथ्वीसे समस्त गन्ध जल द्वारा आरुए हो जाती है, तव यह पृथ्वी लयको प्राप्त होती है। गन्धके विनष्ट हो जानेके वाद पृथ्वी जलके साथ मिल जाती है। रससे जलकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण जल भी रसात्मक है। इस समय जल अत्यन्त वर्द्धित हो कर महाशब्द करता तथा समस्त भुवनको डुवोता हुआ वड़े वेगसे वहता है। पीछे जलकर गुण जो रस है उसे अग्नि शोपण करना शुरू कर देती है। कालक्रमसे अग्नि द्वारा शोपित हो कर जब रसतन्माल अग्निमें विलीन हो जाता है, तव वह रसहीन जल तेजके मध्य प्रवेश करता है। पीछे वह तेज क्रमशः अत्यन्त प्रवलस्य धारण कर सारे भुवनमें फैल जाता है। वह अग्नि सारे भुवनके सार भागको शोपण कर लगातार तापप्रदान करती है। ऊर्द्ध अधः सभी प्रदेश जब अग्नि द्वारा दग्ध हो जाते हैं, तव वायु समस्त तेजके आधार जो प्रभाकर है उन्हें ही यास कर डालती है। तेजके विनए हो जानेसे समस्त भुवन वायुमय हो जाते हैं और तेज पूर्वोक्त प्रकारसे हत-रूप हो कर प्रशान्त होता है। उस समय केवल प्रवल वायु ही चारों ओर प्रवाहित होती है। तेजके वायुमें पृवेश करनेसे समस्त भुवन अन्धकारमय हो जाते हैं। पीछे वह पूचएड वायु अपने उत्पत्तिवीज आकाशका अव-छम्यन करके दशों दिशाओं में वहती है। क्रमशः वायुका गुण जो स्पर्श है, उसे आकाश प्रास कर डालता है। उस समय वायु शान्त हो जातो है और रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये सभी मूर्त्तिहीन आकाशमें विलीन हो जाते हैं। अभी केवल शब्द ही अवस्थित रहता है। पीछे अहङ्कार-तत्त्व और मौतिक इन्द्रियोंको ग्रास करता है। इस समय शब्दादि कुछ भी नहीं रहता। यह अहङ्कारतत्त्व भी अपने प्रकृति महतत्वमें लीन हो जाती है। पीछे महतस्व भी प्रकृतिमें छोन हो जाता है। इस प्रकार स्यूलसे छे कर स्ट्रम तक समस्त जगत्के अपनी अपनी प्रकृतिमें लीन

हो जानेसे केवल प्रकृति ही अवशिष्ट रह जाती है। यह प्रकृति विगुणमयी है। यह प्यक्त और अव्यक्त उमय- सक्तिपणी है। इसके अतिरिक्त सवोंके अधिष्ठाता-रूपमें एक पुरुप हैं। वे पुरुष केवल झानसरूप हैं। वे परब्रह्म परमात्माके अंश हैं। पीछे यह व्यक्ताव्यक्तसक्तिपणी प्रकृति और परमात्माके अंशस्क्रप पुरुष ये दोनों ही परमात्मामें लीन हो जांयगे। इस समय एक ब्रह्माके सिवा और कुछ भी नहीं रहेगा। विश्वब्रह्माएड तव ब्रह्ममय हो जायगा। यही ब्राह्मतिक प्रलय है। द्विपराद्वे परिमितकाल तक यह ब्राह्मतिक प्रलय होता है। यद्यपि उस नित्य परमात्माके दिन-रात कुछ भी नहीं है, तो भी सवापक्षा उनकी श्रेष्ठता दिखानेके लिये पूर्वोक्त परिमितकाल हो और उनका दिवा और रावि कियत हुई है।

आत्यन्तिक प्रलय—जीवका मोक्षरूप जो प्रलय है उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। विद्वान लोग आध्या-त्मिकादि तापत्वयको जान कर ज्ञान और वैराग्य द्वारा आत्यन्तिक लयप्राप्त होते हैं। वे पहले देखते हैं, कि यह जगत् दुःखमय है, यहां कुछ भी सुख नहीं है। सर्वदा आध्यात्मिकादि तापत्नय जीवोंको सता रहा है। अतएव इस तापत्रयका जिससे आत्यन्तिक लय हो उसका उपाय करना एकमात्र कत्त[°]व्य है। इस प्रकार मनीपिगण विचार करके ज्ञान और वैराग्य द्वारा मोक्षलाभ करते हैं। मोक्ष प्राप्त हो जानेसे उनका आत्यन्तिक लय होता है। आध्यात्मिकादि दुःखका विषय पहले ही कहा जा चुका है। वह आध्यात्मिक ताप दो प्रकारका है, शारीर और मानस । वायु, पित्त और श्लेष्मानिवन्धन नाना प्रकारकी व्याधि शारीर तथा काम, क्रोध आदि रिपु जनित मानस दुःख है । मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच प्रभृति द्वारा जो दुःख होता है, उसे आधिभोतिक एवं शोत, उष्ण, वायु, वर्षा आदि द्वारा जो दुःख होता है उसे आधि-दैविक दुःख कहते हैं। इन सव दुखोंसे तथा वार वार-की जन्ममृत्युसे क्लेशकी सीमा नहीं रहती । स्त्री, पुत, भृत्य, गृह, क्षेत्र और धनादि द्वारा मनुष्यको जितना उसकी अपेक्षा सुखका भाग वहुत ही क्लेश होता है, कम है। यह संसार दुःखमय है। विना मुक्तिके कहीं भो सुख नहीं है। इसोसे विद्वान लोग सर्व दा भगवत्-

प्राप्तिके लिये यहा करते हैं। कमें और ज्ञान ये दौनों भगवत्प्राप्तिके हेतु हैं। ज्ञान दो प्रकारका है, आगम और विवेकज। शब्दब्रह्म आगम द्वारा और परमब्रह्म विवेक द्वारा जाना जाता है। जिस प्रकार प्रदीप अन्ध-कारको नष्ट करता है, उसी प्रकार आगमद्वारा शब्द-ब्रह्म जान लेनेसे सभी अज्ञान दूर हो जाते हैं। किन्तु परब्रह्म केवल विवेक द्वारा ही जाना जाता है। सूर्यके उद्य होनेसे अन्धकारराशिकी तरह अज्ञानान्धकार विलक्त कल तिरोहित हो जाता है। उस समय वे वस्तुके खरूपसे अवगत हो कर सब प्रकारके दुःखोंसे निष्कृतिलाभ करते हैं अर्थात् उस समय वे मुक्त हो जाते हैं। जो मुक्त हुए हें, उन्हें आत्यन्तिक प्रलय हुआ है। इससे जीवगण शाध्वत ब्रह्मखरूप आत्यन्तिक रूलय नाम पड़नेका यही कारण है। (विष्णुपु॰ हो१।० अ०)

विष्णुपुराणके मतसे प्राञ्चत प्रलय ही महाप्रलय है। कालिकापुराणमें लिखा है,—जव कल्पका अवसान होता है, तव दैनन्दिन प्रलय हुअ करता है। इन सव प्रलयको मन्वन्तर कहा जा सकता है। मन्वन्तर शब्दका अर्थ मनुका अधिकारकाल है। एक एक मनु जब तक प्रजाका शासन करते हैं, तब तक अनेक नामसे मन्बन्तर प्रचलित होता है। चौदह मन्यन्तरका एक एक कल्प और यही एक कल्प विधाताका दिन है। ब्रह्मके एक दिन वीत जाने पर जगत्में उत्पात शुरू होता है। इस समय महामाया योगनिद्रा ब्रह्माका आश्रय लेती है। लोक-पितामह ब्रह्मा भी अमिततेज्ञा विष्णुके नाभिकमलमें प्रविष्ट हो कर सुखसे सोते हैं। अनन्तर विष्णु खयं बैलोक्य संहर्ता रुद्धपी हो पहलेकी तरह समस्त भुवनः मएडलको चिनए करते हैं। वे जिस प्रकार महाप्रलय-कालमें वायु और विद्वको सहायतासे सभीको दृश्य करते हैं, उसी प्रकार दैनन्दिन प्रलयमें भी वे तिलोकका दाह किया करते हैं। तैलोक्यदाहकालमें क्रशानुतापपीड़ित महलांक वासिगण तापार्च हो जनलोकमें आश्रय छेते हैं। अनन्तर रुद्र नाना वर्णके मेघसमूह द्वारा वृष्टि करके भ्रु वलोक पर्यन्त व्यापी जलराशिसे भुवनमण्डलको परि-पूर्ण कर डालते हैं। इस समय परमेश्वर बैलोक्यको

अपने जठराभ्यन्तरमें रख कर नागपर्यंङ्क पर गयन करते हैं। इस समय ब्रह्मा उनके नाभिकमलमें और लक्ष्मी उनके समीप अवस्थान करती हैं। जब कालानलसे समस्त भुवनमर्खळ दग्ध हो जाता है और बैलोक्यग्रास-से परितृप्त परमेश्वर योगनिद्राके वशीभूत होते हैं, तव अनन्त पृथिवीका त्याग कर विष्णुके निकट चले जाते अनन्तके पृथ्वी त्याग करनेसे पृथिवी क्षण भरमें अश्रोगत होते होते क्र्मंपृष्ट पर पतित हो खएर्डावखएड हो जाती है। इस समय क्र्मं पदनिकर द्वारा जलके ऊपर वहती हुई पृथ्वीको धारण करता है । श्लीरोदसमुद्में जहां भगवान् विष्णु छच्मीके साथ निदासिछापी है। अनन्त वहां जा कर वे लोक्यव्रासतृप्त उस परमेश्वरको मध्यम फण द्वारा धारण करता है। उसका पूर्वेफण ऊपरकी ओर कड़ा, दक्षिण फण उपाधान और उत्तर-फण पादोपाधानरूपमें रहता है । पश्चिमफण तालवृन्त-का काम करता है । विष्णुके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी रक्षा अनन्तके आग्नेय फणसे होती हैं। इस प्रकार अनन्त अपने शरीरको नारायणको शय्या वना कर तथा जलमन्ना पृथ्वीके ऊपर अधोदेह स्थापन कर लक्ती-सहचर नारायणको मस्तक पर धारण करता है। उस समय नारायणके नाभिकमलमें ब्रह्मा और जटराभ्यन्तरमें त्रैलोक्य ।वराजित रहता हैं। नारायण ब्रह्माका एक दिन तक इस प्रकार शयन करते हैं।

यह प्रलय ब्रह्माके प्रतिदिनके अन्तमें ही होता है, इसीसे पुराविद्गण इसे दैनन्दिन प्रलय कहते हैं। रात वीत जाने पर फिरसे सृष्टि होती है। इस प्रकार ब्रह्माके दिनमें सृष्टि और रातमें प्रलय होता है।

(হাতিভাষ্ত ২৩%)

नैयायिकोंने दो प्रकारका प्रलय वतलाया है, खएड प्रलय और महाप्रलय। किन्तु नव्य नैयायिकगण महा-प्रलय स्वीकार नहीं करते। उनके मतसे खएड और महाप्रलयका लक्षण इस प्रकार है—

> "जन्यद्रव्यानधिकरण हालत्व' ख्राडप्रलयत्व' लन्यभावानविकरणकालत्व' महाप्रलयत्व'।"

जन्यद्रव्यका अनधिकरणकालत्व ही खएडप्रलयत्व है अर्थात् जव जन्यद्रव्यके अधिकरण मातका ही अभाव होगा, तव खर्डप्रलय और जन्यभावके अनधिकरणकाल-में ही महाप्रलय होता है। नव्य नैयायिकींने वहुतों तकें और युक्ति द्वारा महाप्रलयको अप्रामाण्यता स्थिर की है। विशेष विवरण महाप्रलय शब्दमें देखो।

सांख्याचार्यांके मतसे प्रवृत्तिके परिणामसे जगत्की सृष्टि और लय हुआ करता है । प्रकृतिके सवंदा परि-माण होता है। यह परिणाम दो प्रकारका है, खढ़पपरि-णाम और विरूपपरिणाम। जव खरूपपरिणाम होता है, तब ही प्रलय हुआ करता है। फिर विरूपपरिणाम-से जगत्की सृष्टि होती है । प्रकृति सत्त्व, रजः और तमोगुणात्मिका है । इस प्रकृतिका सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोद्भपमें और तमः तमोद्भपमें जब परिणाम होता है, तव ही प्रलय होता है। प्रकृतिके कभी सक्तपपरिणाम और कभी विरूपपरिणाम होगा, पर उसे जानवेका कोई उपाय नहीं। जिस प्रकार पौराणिकोंके मतसे ब्रह्माके राजिकालमें प्रलय होता है, उस प्रकार इसके किसी समयको स्थिरता नहीं है। परिणाम होते होते जव सद्भप परिणोम होगा, तर प्रख्य और सद्भपपरिणाम होते होते जब विरूप परिणामका आरम्भ होता, तब जगत्की सृष्टि होती है। जब प्रकृतिके खरूपपरिणामसे आरम्भ होता है, तब पहले महामृत पञ्चतन्मालमें, पञ्च-तन्मात और एकादश इन्द्रिय अहङ्कारतत्त्वमें, अहं तत्त्व स्वीयकारण महतस्व और महतस्य प्रकृतिमें छीन होगा। इस समय केवल पृथिवी ही रहेगी और कुछ भी नहीं। यही सांख्योक्त प्रलय है। इसका विषय संख्वदर्शन, प्रकृति और प्रियेवी शब्दमें देखा।

२ वैष्णवींके मतसे नायिकींके बाद प्रकारके सात्विक भावोंमेंसे अप्टम सात्विकभाव । प्रलय सात्विकभाव सुख और दुःख दोनींही अवस्थामें अनुमृत होता है। मृविपतन बादि इसका अनुमव है। ३ साहित्यव्र्येणोक्त सात्विक भावभेद। ४ मृच्छी, बेहोशी। ५ लयको प्राप्त होना, विलीन होना, न रह जाना।

प्ररुपता (सं ॰ स्त्री॰) प्ररुपस्य भावः, तल्, टाप् । प्ररु-यत्व, प्ररुपका भाव या धर्म ।

प्रलयन (सं ० क्ली०) उत्पत्तिस्थान ।

प्रलयलाट (सं० ति०) प्रकृषा ललाटोऽस्य (उपनर्गात्-Vol. XIV. 158 लांग ध्रुवमपर्शे । पा ६१२११७७) इति अन्तीदासस्वं । प्रकृष्ट लळाटयुक्त, सुन्दर कपाळवाळा ।

प्रख्व (सं ॰ पु॰) प्र-लू-भावे-अप्। १ प्रकर्णकपसे खेदन, अच्छी तरह काटना। २ खएडमेद, टुकड़ा, घज्जी। ३ लेश।

बलवन (सं ० क्ली०) प्र-ल्लू-ल्युट् । प्रकर्णकपसे छेदन, अच्छी तरह काटना ।

प्रलवित् (सं ॰ ति॰) प्र-लू-तृण् । प्रकर्णकपके छेदनकारी, अच्छी तरह काटनेवाला ।

प्रलिव हिं सं को । प्रलूपते अनेन प्र-लू-करणे इत । छेदनसाधन अस्त्रादि, काटनेका हथियार ।

प्रलाप (सं० पु०) प्रलपनमिति प्र-लप-भावे धम् । १ प्रला-पन, वकना, कहना । २ अनर्थकवाष्य, व्यर्थकी वकवाद । ३ निष्पयोजन जम्मत्तादि वचन, अनाप शनाप वात, पागलोंकी-सी वह वह । ४ आलाप, वातचीत । ५ रोग-का उपसर्ग भेद । ज्वरादि रोगका वेग अधिक रहने पर रोगी प्रलाप करता हैं। इसका लक्षण—

> "स्वदेहकुिपताद्वातादसम्बन्धं निर्धंकं। वचनं यन्नरो बूते स प्रलापः प्रकीर्त्तितः॥" (वैद्यक्रनि०

मनुष्य खदेहमें कुपित वायु द्वारा निरर्थंक जो सब वाक्य कहते हैं, उसे प्रलाप कहते हैं। वायु कुपित होने-से ही प्रलाप होता है, यह प्रलाप जिस रोगके कारण हुआ करता है, उस रोगको शान्ति करनेसे प्रलापकी शान्ति होती है।

प्रलापक (सं० पु०) सिन्निपातज्वरमें । इसका लक्षण— जिस सिन्निपात ज्वरमें धर्म, भ्रम, गातवेदना, कम्प, सन्ताप, विम, करलवेदना और शरीर अत्यन्त गुरु होता है, उसीको प्रलापक वा प्रलापि-सिन्निपात कहते हैं। इसकी चिकित्सा—तगरपादुका, पित्तपापड़ा, अमलतास, मोधा, करकों, लामज्जक, अमावमें खसखसकी जड़, अध्यगन्धा, ब्राह्मी, द्राह्मा, चन्दन, दशमूल और शङ्खपुष्पी इनके समान भागको एक साथ मिला काढ़ा वनावे। उसका प्रति दिन सेवन-करनेसे प्रलापक सिन्निपात अति शोध जाता रहता है। सान्त्यनावाक्य, अञ्चन, तीक्ष्ण नहरू और तिमिरका सेवन करनेसे मन प्रकृतिस्थ होता है।
मनके प्रकृतिस्थ होनेसे प्रठापकी शान्ति होती है।
प्रठापन सं० क्ली०) प्र-ठप्-णिच्-ल्युट्। १ आठापन,
संभाषण। २ वकना, कहना।
प्रठापवत् (सं० ति०) प्रठापः विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व।
प्रठापयुक्त, अनाप शनाप वकनेवाठा।

प्रलापहा (सं॰ पु॰) प्रलापं हन्तीति हन-किप्। कुल्रत्था-ञ्जन, एक प्रकारका अंजन।

प्रलापिता (सं० स्त्री०) प्रलापिनो भावः तल्-राप् । १ प्रलापित्व, प्रलापीका भाव या धर्म । २ प्रेमालाप । प्रलापिन् (सं० ति०) प्-लप (प्रलप्तूर्भ्मयवदवदः । पा ३।२११४५) इति ताच्छोल्ये घिनुन् । १ प्लपनशील, प्लाप करनेवाला, अंड वंड वक्षनेवाला । २ सिक्षपात ज्वर-मेत् । प्रलापक देखो ।

पुलीन (सं॰ ति॰) पु-ली-कर्त्तरिक्त । १ पुलयपुाप्त, समाया हुआ । २ चेष्टाशून्य, जड़वत् ।

पूळीनता (सं ० स्त्री०) प्ळीनस्य निश्चेष्टस्य भावः तळ्-टाप् । १ पूळ्य, नारा । २ चेष्टानारा, जड्त्व । पूळून (सं ० पु०) १ कीटभेद, एक पूकारका कीड़ा । (ति०) पु-लु-क्त । २ छिन्न, कटा हुआ ।

पूलेप (सं ॰ पु॰) प्र-लिप्-भावे-घञ् । वणादि शोषणार्थं द्रव्यविशेष द्वारा लेपनिवशेष, पुल्टिस । सुश्रुतमें लिखा है, कि सब प्रकारके स्जनमें पहले प्रलेप दो प्रकारका होता है, सामान्य और विशेष । किर इसके भी तीन मेद किये जा सकते हैं, यथा—प्रलेप, प्रदेह और आलेप । जिस रोगमें वा जिस अवस्थामें जिस प्रकारका प्रलेप विधेय है, वह उन्हों सब रोगप्रकरणोंमें वणित हुआ है।

प्रलेप जब सूख जाय, तब उसे शरीर पर नहीं रखना चाहिये। शुष्क प्रलेप कोई काम नहीं करता, बरन् शरी-रमें पोड़ा देता है। इन तीन प्रकारके प्रलेपोंमेंसे शुष्क या अशुष्क, शीतल और अल्प होनेसे उसे प्रलेप कहते हैं; उष्ण अथना शीतल, अनेक अथवा अल्प होनेसे उसे प्रदेह और दोनों प्रकारके मध्यवत्तीं होनेसे उसे आलेप कहते हैं। रक्तिपत्तज रोगमें आलेप विधेय है। बातश्लेष्मजन्य रोग होनेसे अथवा भग्न अस्थिका संयोग करनेमें वा वणके शोधन और पूरण करनेमें प्रदेह विधेय है। इस वा अक्षत दोनों हालतमें 'प्रदेहका व्यवहार किया जाता है। जिसका क्षतस्थान पर प्रयोग किया जाता है, उसे कक्ष अथवा निरुद्धालेपन कहते हैं। इससे वणका स्नाव (अर्थात् रसरकादिका निकलना) रुक जाता और वणकोमल होता है।

जो स्जन क्षारसे दग्ध नहीं होती उसके छिये आले-पन हितकर है। जो द्रव्य भक्षण वा पान करनेसे शरीरके अभ्यन्तरस्थ दोषोंको शान्ति होती है, उस द्रव्यका प्रलेप देनेसे वे दोप जाते रहते हैं। शरीरके मर्भस्थानमें अथवा गुहास्थानमें जो सब रोग होते हैं, उनके संशोधनके छिये आलेपन विधेय है। आलेपन प्रस्तुत करनेमें पित्त-जन्य रोगोंमें समस्त आलेपन मिला कर वह जितना होगा उसके सोलह भागोंमेंसे छः भाग स्नेहद्रव्य अर्थात् यृत, तैल और वसा आदिमेंसे कोई एक उसमें मिला दे। वायुजन्य रोग । वार भाग और श्लेष्प्रजरोगमें आधा भाग स्नेहद्रव्य मिलाना होगा। इसका बहुत बना करके प्रलेप देना उचित है। जब तक उससे उष्णता निकलती रहे, तब तक उसमें शीतल आलेपनका प्रयोग न करे, केवल उष्ण आलेपन देते रहना चाहिये।

शरीरमें यदि प्रदेहका लेपन करना हो, तो दिनमें लेपन करना ही विधेय है। विशेषतः पित्तज्ञन्य और रक्तज्ञ अभिघात अर्थात् शरीरमें किसी आघात जन्य अथवा विपजन्य होनेसे दिवाभागमें ही लेपन करना कर्त्तव्य है। जो प्रलेप पूर्वदिनका प्रस्तुत किया हुआ हो उसका प्रयोग कदापि न करें। क्योंकि, वह प्रलेप गाढ़ हो जाता है और उसका प्रयोग करनेसे उष्णता, वेदना और जलन होती है। प्रलेपके ऊपर प्रलेप भूल कर भी न देवे, अथवा जो प्रलेप शरीरसे एक वार अलग कर दिया गया हो उसका फिरसे शरीरमें प्रयोग करना कर्त्तव नहीं, करनेसे हानिके सिवा लाभ नहीं है।

वहुतसे स्थानों पर पृष्ठेप दे कर उसे वांध देना होता है ; नहीं तो वह गिर पड़ता है। इस वन्धनके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—प्रलेप वन्धन करनेमें वृक्षका त्वक् निर्मित वस्त्र, कार्पास वस्त्र, कम्बल, पटबस्त, वर्म, वृक्ष की अभ्यन्तरस्थित छाल, कह का खएड, शहतूतका फल ये सब द्रव्य प्रलेपके ऊपर दे कर उसके वाद वांघ रखे, : तथा रोग और कालकी विवेचना कर भिषक् बन्धन हुट्य स्थिर करे । वंधन करनेमें प्रथमतः घना प्रलेप दे । उसके ऊपरी भाग पर सरल और असंकुचित भावमें कोमल पट्टवख द्वारा वन्धन करे। त्रणके ऊपरी भाग पर यदि मजदूत गांडदी जाय, तो प्रलेपकी औषघ विच्छिन्न हो जाती है। विपरीत भावमें वन्धन होनेसे अर्थात् जहां जैसा यन्धन देना उचित है, वहां वैसा न देनेसे व्रणका मुंह विस जाता है । व्रणके आयतानुसार यह वन्यन तीन प्रकारका होता है हुढ़, सम और शिथिल । वन्धनमें कप्ट वोध होनेसे उसे दृढ्वन्ध, वन्धनमध्य बायुके गमनागमन करनेसे शिथिलवन्ध और दोनींके मध्यवत्तीं होनेसे उसे समवन्ध कहते हैं। नितम्ब, उदर, वगल, काछ, छाती और मस्तक इन सब स्थानीं-में हृढ़ वन्धन, हाथ, पांब, मुंह, कान, कण्ड, मेढ़, पीड, पार्ख और उद्रमें समवन्धन तथा चशुके सन्धिस्थानमें केवल शिथिल वंघन करना होता है।

(सुन्युत सुन्नस्था॰ १= २०)

प्रकेष द्वारा दुःसाध्य वणादि आरोग्य होते देखे गये हैं। चरक और सुयुनादि वैद्यक्यन्थोंमें इसका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहों लिखा गया।

प्रलेपक (सं० ति०) प्र-लिए-ण्वुल्। १ प्रलेपकर्ता, लेप करनेवाला। (पु०) २ जीणे ज्वरभेद, एक प्रकारका पुराना बुखार। यह ज्वर बात कफसे उत्पन्न होता है। इसमें पसीनेके संसर्गसे चमड़ा लिपा हुआ अर्थात् भीगा सा रहता है और उत्वर वहुत थोड़ा थोड़ा रहता है। यह ज्वर अत्यन्त कप्रसाध्य है।

विशेष विवरण ज्वर शन्दां देखो। खियां टाप्, कापि अत इत्वं, प्रलेपिका तस्या धर्म महि यादित्वादण्। ३ प्रलेपिकाका धर्म। प्रलेपन (सं० पु०) लेप करनेकी किया, पोतनेका काम। प्रलेप्य (सं० ति०) १ प्रलेपयोग्य, लेपने लायक। (पु०) २ कुञ्चित केशदाम, धुँ घराले वाल। प्रलेह (सं० पु०) प्रलिह्यते इति प्र-लिह्-धम्। न्यञ्चन-विशेष। पाकराजेश्वरमें इसकी प्रस्तुत प्रणालीका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले मांसके छोटे छोटे खएड काट कर तेल या घीमें तल ले। पीछे उसमें तम लवण-युक्त गन्ध डाल दे। जब तक उसमेंसे पट पट शब्द निक-लता रहे, तब तक उसे आंच परसे न उतारे, सिद्ध होने दे। अनन्तर उसमें अनारका पानी डाल कर कुछ काल तक और पाक करता रहे। जब अच्छो तरह सिद्ध हो जाय, तब उसमें सींठ और जीरा छोड़ दे। पीछे आंच परसे उतार कर मांसकों शोरवासे अलग रखे। अब शोरविको कपड़ेसे ढक कर हींग और घृतयुक्त धृपसे धृपित करे, वादमें उसे एक दूसरे वरतनमें रख दे। इसीका नाम प्रलेह है।

गीड्देशीय प्रलेह—पूर्वोक्त प्रकारसे मांसको पाक कर उसमें हींग, अद्रुक, वीजपुर, इलायवी और लवण डाल देनेसे गीड्देशीय प्रलेह बनता है। यह रुविकर, वल्य, और वायुरोगनाशक, श्राहक, पित्तवद्व क और आध्मान-नाशक गुण माना गया है।

पूर्ण प्रसेह—मांसप्रणके योग्यानुसार कोष्ठाकार कर-के घृतमें मांसको भुन है। पीछे प्रहेहकी विधिके अनु-सार पाक करे, इसीका नाम पूर्ण प्रहेह है। इसका गुण— वातनाशक, श्हेप्मा और मुखबेरस्यनाशक तथा गुरु है।

शुक्कवर्ण प्रलेह—पूर्वीक पृकारसे मांसको पाक कर धनिये, हींग, दिध और घृतः अद्य पकायस्थामें खिन्न-मांसको डाल दे। पीछे उसे आँच परसे उतार छेने पर शुक्कवर्ण प्रलेह वनता है।

पीतवर्ण प्रलेह—शुक्कवर्ण प्लेहके जैसा मांसका पाक कर हरिद्रा और कुंकुममिश्रित करनेसे यह प्रलेह होता है। अलावा इसके रक्तवर्ण प्लेह, हरिद्र्ण प्रलेह और वटकप्लेह आदि नाना प्रकारके प्रलेहोंका प्रस्तुत विवरण लिखा है। मांसकी तरह मछलीका भी प्रलेह प्रस्तुत किया जाता है।

मत्स्य पृलेह—मछ्छोंके पृलेहको भी मांसकी तरह पाक करना होता है। इसकी और सब विधि पूर्ववत् है, सिर्फ इतना ही पृभेद है, कि इसे तेलमें भुनना पड़ता है। पृलेहन (सं० हों०) प्-लिह-स्युर्। चारना।

पूलोप (सं ॰ पु॰) पृन्छुप-घञ् । पृङ्गप्रकपसे लोप, ध्यंस, नाश । पूलोन (सं ॰ पु॰) पून्छुन-घञ्, वा पूक्छ होनः। पूक्छ होन, हालच।

पूलोनक (सं ० पु०) प्लोसनकारी, लालव देनेवाला । प्रलोसन (सं० वि०) र प्रवश्वक, कालव देनेवाला । (ही०) २ लोस दिखाना, लालच दिखाना ।

प्रलोनि (सं॰ स्त्रो॰) दालुक्ता, दाल् ।

प्रहोनिन् से॰ वि॰। प्रस्तुन-गिनि । प्रहोनयुक्त, प्रहोनमें फैसानेवाला ।

प्रलोचित । सं वि । प्रलोचमें आया हुआ, बलचाया हुआ ।

प्रलोस्य (सं० ति०) १ प्रकोसनयोग्य । २ आकर्षणीय । ३ अभिकापयोग्य ।

प्रकोलुप । तं । वि । प्रवृष्टः लोलुपः प्राहितः । १ अति-शय लोलुप । । पु) २ गरुड्वंग्रीय कुन्तिपुव पश्चिन्द । प्रव (सं) क्षी) गति, गतन ।

प्रवक्त (सं) कि) प्र-गतों साधुक्तारित्वे द्योत्ये द्युन् । १ भूयोगतियुक्त । २ उसमें साधुकारी ।

प्रवक्तु (सं > ति >) प्रकर्षेण बक्ति यः, प्रन्वन्तृत्रः । १ वेदादिवासक, उपदेश देनेवाला । २ सहका, अन्छी तरह समन्दा कर कहनेवाला ।

प्रवक्तव्य : सं० वि० : प्र-वच-तच्य । प्रकृष्टरूपसे वचनीय. अच्छी तरह सहते लायक ।

प्रवस्तुत्व । सं२ हो। । प्रवन्तृं नांवः प्रस्तुत्व । प्रवकाका नाव वा धर्ने ।

प्रवत । संग् पुण्कीः । एतवरा-सस्य रः । सरा, पक्षी प्रवङ्ग । संग् पुण्कीः । एतवङ्ग-सस्य-रः । एतवङ्ग, पक्षी । प्रवचन । संग् क्लोः । प्रकर्षेण उस्पते इति प्र-वच्-स्युट् । १ अर्थानुसम्यान पूर्वक कथन, अर्थ स्त्रीस कर दताना । १ वेदाङ्ग । ३ प्रकृष्टवास्य, स्यास्या ।

मबचनाय । सं श्री । अन्तीति प्रन्य (नव्योक्त्रवन् नीवति । पा श्री १८) इति कर्त्तीरे अनीयर् । १ प्रवन्ता, अन्ती तरह समन्द्रा कर कहनेवाला । प्रोच्यते इति प्र-वच-कर्मणि अनीयर् । १ प्रवाच्य, वताने या समन्द्रा कर कहने योग्य ।

प्रवन्यावित (सं॰ पु॰) हासके र्ष नेदोनेंसे एक । प्रवट (सं॰ पु॰) प्रु-अट-सार्चे-अण् । गोधून, गेहूँ । प्रवाग । सं २ वि २) प्रवति - विति यु प्रतिकरणे सुद् । १ वि के क्रियाः नीवा होता प्रया हो, हासुर्व । २ वत् मुका हुआ । २ प्रवृत्त, रत । ३ नम्र । २ प्रमुक्त सुवारिकः । ६ निपुण २ स्व । ३ विनीतः । ८ व्यक्त सुवारिकः । ६ निपुण २ स्व । ३ विनीतः । ११ प्रावकः । १२ स्वीतः । १३ प्रावकः । १२ स्वातः । १३ प्रावकः । १२ स्वातः । १३ प्रावकः । १२ स्वातः । १२ प्रावकः । १२ स्वातः । १२ स्वातः । १२ स्वातः । १८ स्वातः ।

पुबराता (सं २ स्वी२) पुबरात्य सावः दङ्कार् । पुबराता साव या वर्षे ।

प्वमवन् (सं) वि) । प्वम अस्टर्ये स्तुर् स्स्व व) | प्वमयुक्त ।

पृथन् (सं) स्वी) पृथने वाति वा इति । १ पृथम अर्धान् तिस्य स्थानमें जानेवालो । १ प्यंत्रका डालुदेस, पराङ्ख किनास ।

पृत्रत्वत् सं शित्रः प्यत् अस्यर्थे स्तुर्ःस्ययः तान्द्रत्वात् न पद्रत्वं । अस्यन्त विस्तारयुद्ध, वृत्र हस्या चीड्रा ।

प्वतस्यव्यविका (संश्रह्माश) प्वतस्यत् पृत्यसं प्रतियव्यक्ती यंस्याः । नायिकानेद्र वह नायिका जितका पति विदेश जानेकाला हो । इस नायिकाकी वेदा—शाहुक्कत् कातर प्रेक्षमः गमनविक्षीपर्शेतः निवेदः सालावः वान्योदः निःश्वास और वाष्पादि । एसम्बरीमें सुन्या, नव्याः पृक्षाः परकीया आदि नेहाने इसके भी को नेद् कटापे गये हैं।

पुनस्टरस्ये यसी (सं २ खोशः प्रवस्टरस्योतका । प्रवर्तः (सं २ वि२) प्रहण्यसमे वाद्य । प्रवर्तः (सं २ छीशः बोपना ।

प्रविद्तृ : सं श्रिकः । योषकः योषका कर्णवालः । प्रविद्यानम् (सं श्रिकः) या सावे बाहुलकान् समिन् : अवर् प्रकृष्णित्युक्तः यामा गतिबेस्य । प्रकृष्ट गननकारः नेवी-सं क्षणिकाला ।

प्रवप (तं > ति >) अतिगय स्यूट, अत्यन्त नेशेनुङ । प्रवपन (तं > हो >) प्रवप्तरन्ते वपन । २ मृं छ शही हुई वाना । प्रवयन (सं • क्ली •) प्रवीयतेऽनेनेति प्र-अज-गती क्षेपणे च ल्युट्। (वर्षो । मा २१४१५ •) इति वी, (कृत्यचः। पा ८१४१२६) इति णत्यं। १ प्रतोद, पैना। प्र-वय-गती-भावे ल्युट्। २ प्रकर्षक से गप्रन, तेजीसे चलना।

प्रवयनीय (सं० ति०) प्र-अज अनीयर्, अजे-वी । प्रव-यनयोग्य।

प्रवयस् (सं ० ति०) प्रगतं वयो यस्य ।' १ वृद्ध, वृद्धा । २ पुरातन, पुराना ।

प्रवय्या (स' • स्त्री •) प्र-वि-यत् 'भय्य प्रवय्ये छन्द्सि' इति निपातनात् सिद्धं । प्रक्षेकपसे गतियुक्ता स्त्री, तेजीसे चस्नेवासी औरत ।

प्रवर (सं • क्ली •) प्र-व्रियते इति प्र-वृ-अप्। १ अगुरु वन्दन, अगरकी लकड़ी। २ गोत्न। ३ सन्ति। ४ गोत्नप्रवर्षक मुनि। जैसे, जमदिन गोतके प्रवर्षक ऋषि जमदिन, भौवें और विश्वष्ठ; गर्ग गोतके गार्थ, कौस्तुभ और माण्डव्य इत्यादि। विशेष विवरण गेर्व शब्द में देखो। ५ स्तुही वृक्ष । ६ कृष्णमुद्ध, कोली मूंग। (ति •) ७ श्रेष्ठ, वद्धा, मुख्य।

प्रवरिगरि (सं० पु०) मगध देशके एक पर्व तका प्राचीन नाम । इसे आज कल वरावर पहाड़ कहते हैं। गयासे ७ कोस उत्तर-पूर्व पड़ता है।

प्रवरण (सं ० ह्यो०) १ वेवताओंका आवाहन । २ वर्षा-ऋतुके शेषमें होनेवाला वोद्धका एक उत्सव ।

प्रवरदास—चैतन्यप्रकरणके प्रणेता । इनकी उपाधि ब्रह्म-विद्य है ।

प्रवरधातु (सं॰ पु॰) मूल्यवान् धातुविशेष ।

प्रवरपुर—१ काश्मीरस्थ नगरभेद । राजा प्रवरसेनने इस नगरको वसाया । २ मध्यप्रदेशस्थ प्रवरसेन प्रतिष्ठित एक ग्राम ।

प्रवरभूपति (सं० पु०) राजमेद । वनरहेन देखो ।

प्रवरलित (सं क्वी) पोडशाक्षरपादक छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति चरणमें १६ अक्षर रहते हैं। इसके १ला, ७वां, ८वां, ६वां, १०वां, ११वां मीर १८वां अक्षर लघु और शेष गुरु होते हैं।

प्रवरवाहन (सं० पु०) प्रवरं वाहनंय योः । सश्विनोकुमार-

Vol. XIV. 159

प्रवरसेन—१ गोनन्द-वंशीय एक काश्मीरराज । इनका दूसरा नाम था श्रेष्ठसेन । लोग इन्हें तज्जीन भी कहा करते थे । ये वड़े वीर थे । इन्होंने प्रवरेश्वर नामक शिय और मातृचकको स्थापना की थी । अलावा उन्नके इन्होंने और भी कितने पुराने मन्दिरोंका संस्कार कराया । प्रवरेश्वर शिवको इन्होंने तिगर्त देश दिया था । २० वर्ष राज्य करके ये सुरधामको सिधार गये ।

२ ये द्वितीय प्रवरसेनके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके पिताका नाम तोरमान था। १म प्रवरसेनके ये पीत थे। उनकी मृत्युके वाद उनके ज्येष्ठ पुत्र हिरण्य काश्मीर-की राजगद्दी पर वैठे। तोरमान छोटे होनेके कारण युवराजके पद पर अभिविक्त हुए। युवराज तोरमानने अपने नाम पर सोनेका सिका चलाया। इस पर राजा वड़े विगड़े और तोरमानको कैंद कर लिया। उस समय तोरमानकी स्त्री अञ्जना गर्भवती थी। पतिकी आज्ञासे वह एक कुम्हारके यहां रहने लगी। वहीं इस प्रवरसेन-का जन्म हुआ । प्रवरसेनकी वाल्यावस्थाके खेलोंसे सर्वोंको मालूम हो गया था, कि वे उच्चवंशी और भावी ाजा हैं। ये अपने साथियोंके साथ खेलमें राजा वनते और सवका शासन करते थे। एक समय इनके मामा जयेन्द्रने इन्हें वेखं पाया । आकृति आदि देखनेसे उन्हें सन्देह हुआ। ये उस वालकके पीछे पीछे गये। वहां अञ्जनाको देख कर जयेन्द्रका कुल सन्देह जाता रहा। जव जयेग्द्रसे प्रवरसेनको सव वातोंकी खबर लगी, तव ये आगववूला हो गये। परन्तु मामाके अनुरोधसे इन्होंने कोध शान्त किया और उसो समय तीर्थयाताको निकल पडे ।

हिरण्यगुतके मरने पर काश्मीरका राजसिंहासन कुछ दिनों तक खाळी ही था। पीछे उज्जयिनीपति चिकमा-दित्यकी साम्रासे मातृगुत काश्मीरके राजा हुए।

प्रवरसेन तीर्थपर्यटन करते करते श्रीपर्वत पर पहुंचे। वहां उन्होंने अपने राज्यकी दुर्दशा और पिताकी मृत्युकी वात सुनी। इस पर वे वड़े दुःखित हुए। इसके प्रति-कारका उपाय सोच ही रहे थे, कि अध्वपाद नामक सिद्ध वहां पहुंच गया। उसने प्रवरसेनसे प्रार्थना की, "आप मेरे पहलेके गुरु हैं। मैंने आप हीसे सिद्धि पाई है। उस समय जब मैंने आपसे निवेदन किया था, कि आप क्या वाहते हैं, तब आपने कहा था, मुक्ते राज्य चाहिये। मैंने आपका मनोरथ पूरा करनेके लिये भग-बात् चन्द्रशेखरसे प्रार्थना की है। उन्होंने कहा, प्रवरसेन भेरा अनुचर है, मैं उसका अभीष्ट पूरा कर्क गा।" इतनी बात कह कर वह सिद्ध चला गया। प्रवरसेन भी तपस्थामें लग गये। शिवजी यथासमय पधारे और प्रवरसेनको वर दे कर चले गये।

कुछ समय प्रवरसेन काश्मीरके समीप पहुंचे। राज-मन्द्रीको जब मालूम हुआ, कि प्रवरसेन काश्मीरके]निकट पहुंच गये हैं, तब वे उनके पास गये और मातृगुप्तके विरुद्ध युद्ध करनेके विषयमें सलाह करने लगे। प्रवर-सेनने जवाब विया, कि मेरी इदय-आँखें विकमादित्यका खून देखनेके लिये लालायित हैं। मातृगुप्तके साथ मेरा कुछ विरोध नहीं है। जो क्लेशका सहन कर सकते हैं, यदि वे शबु भी हैं, तो उनको कप देनेसे क्या फायदा है। जो छोटे छोटोंको पराजय कर जगत्में वीरके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनका नाश करनेवाले ही सच्चे वीर कह-श्तना कह कर प्रवरसेन मन्त्रियोंके साथ विक्रमादित्यसे छड़ाई करनेके छिये रवाना हो गये। राह-में ही खबर लगी, कि विक्रमादित्य पञ्चत्वको प्राप्त हुए। इससे प्रवरसेनको वड़ा दुःख हुआ। इसी समय इन्हें संवाद आया, कि काश्मीरराज विकमादित्य राज्यका परित्याग कर कहीं जा रहे हैं। प्रवरसेनने समना, कि शायद मेरे पश्चवालीने उन्हें राजच्युत कर दिया हो। इसका निर्णय करनेके लिये वे खर्य मात्गुप्तके निकट गये और बड़े विनीत-स्वरसे राज्य-त्यानका कारण उनसे पूछा । मातृगुप्तने कहा 'राजन् ! जिसने मुफे राजा बनाया था, वह इस संसारसे जाता रहा। अतः अब मेरा भी राज्यभोग करना अन्याय और छत्राता है। प्रवरसेतने मातृगुप्तको वहुत समकाया, कि आप राज्यका परित्याग न करें। परन्तु उन्होंने एक भी न सुनी और वे काशी जा कर संन्यासी हो गये। अव प्रवरसेन काश्मीरके सिहासन पर तो वैठे, पर राज्यकी जो कुछ आय थी, उसे वे मारागुप्तके पास काशी भेज दिया करते थे। दश वर्षेके वाद मातृगुप्त सुरघामको सिधार गये।

प्रवरसेन काश्मीरका शासन करने छगे, उनकी सेनाओंने मारतके अन्यान्य प्रान्तोंको भी अपने कछोमें कर छिया था। विक्रमादित्यके पुत शिलादित्यको शिलादित्यको शिलादित्यको राज्यसे मार मगाया था। अव प्रवरसेनने शिलादित्यको उसका पितृराज्य दिला दिया। काश्मीरका जो सिहासन विक्रमादित्य छे गये थे उसे थे छौटा लाये। इनके यहासे वितस्ता नदी पर नौकाओंका पुल वंध गया था। प्रवरसेनने अपने नाम पर एक नगर भी वसाया था। अळावा इसके और भी कितने ही महान् राजोचित कार्य इन्होंने किये। ६० वर्ष तक इन्होंने राज्य किया था।

३ सेतुवन्यकाव्यके प्रणेता काश्मीरराज। इनकी किवता-शक्तिका उल्लेख क्षेमेन्द्र और वाणभट्ट किवने श्रीहर्षचिरितकी अनुक्रमणिकामें किया है। प्राकृतमाणमें जितने काव्य इनके रचे हुए हैं, उनमेंसे 'सेतुवन्ध' सबसे श्रेष्ट हैं।

४ वाकारक-चंशीय महाराज। ये श्य प्रवरसेनके अतिवृद्ध प्रियामह और राजा १म रुद्रसेनके पितामह थे। इनका विष्णुबृद्धगील था। शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन्होंने अन्निप्टोम, अप्तीर्याम, उक्ध्य, योङ्शिन, अतिराल, वाजपेय, वृहस्पितसय और चार अश्वमेध आदि यहाँका अनुष्ठान किया। इनकी उपाधि 'चराहदेव' थी।

अजल्डाके गुहामन्दिरमें जो शिलालिपि पाई गई है, उसमें इनका 'प्रवरसेन बराहदेव' नाम देखनेमें आता है। ५ वाकाटक-वंशीय एक महाराज। प्रवरपुरमें इनकी राजधानी थी। राजा २य रुद्रसेनके औरस और प्रभावती गुप्ताके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। शिलालिपिमें इनकी दानशीलताका प्रकृष्ट परिचय मिलता है। प्रवरा (सं० स्थी०) १ अगुरुकाष्ट्र, अगरकी लकड़ी। २

पलाशवृद्ध ।

प्रवरा—दाक्षिणात्यके अहमदनगर जिलेमें प्रवाहित एक
नदी । इसका प्राचीन नाम पयोधरा है । मूला, महालुङ्गी और अङ्गला इनकी शाखानदी हैं। प्रायः १२०
मील रास्ता तै कर यह तोकनगरके निकट जोदावरीमें
मिलती है। राजुर, अकोल, सङ्गमेर, राहुरी, नेवास,

तोक और प्रवरासङ्गम नामक नगर इसके किनारे अव-स्थित है। इसको जल स्वास्थ्यकर है।

प्रवरासङ्ग्रम—अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत एक नगर।
प्रवरानदीके दाहिने किनारे गोदावरी-सङ्गमतट पर यह
वसा हुआ है। नदीके दूसरे किनारे तोकनगर अवस्थित
है। दोनों नगर ही ब्राह्मण-प्रसिद्ध हैं। पहले यहां वहुतसे हिन्द्-मिन्द्र थे। १७६१ ई०में पानीपत-लड़ाईके वाद
निज्ञामअलीने वहुतों मिन्द्र तहस नहस कर खाले। यह
स्थान जनसाधारणमें पवित्र तीथँके जैसा गण्य है।
यहांका सिद्ध थ्वर महादेवका मिन्द्र किसी ब्राह्मणसे
प्रतिष्ठित हुआ है। कहते हैं, कि मिन्द्रके वनानेमें लाखसे अधिक रुपये बर्व हुए थे। प्रति वर्ष महाशिवरातिवतके उपलक्षमें यहां एक मेला लगता है।

प्रवरेश्वर (सं॰ पु॰) प्रवरसेनं राजा ।

प्रवर्ग (सं० पु०) प्रवृज्यते निःक्षियते हिनरादिकमस्मि-जिति प्र-वृज-अधिकरणे घम्। १ होमाग्निं, हवन करने-की अग्नि। प्रवृज्यतेऽसी घज्। २ प्रवर्गयहमें अतु-ष्टेय होम।

प्रयार्थं (सं॰ पु॰) प्र-वृज्ञ-कर्मेणि ण्यत्, कुट्वं । प्रवर्ग-यक्षमें अनुष्टेय होम।

प्रवर्ग्यवत् (सं० ति०) प्रवर्ग्य-अस्त्यर्थे मतुष् मस्य व । १ प्रवरायुक्त । (पु०) २ यज्ञमेद ।

प्रवत्त (सं॰ पु॰) १ कार्यारम्म, डानना । २ गीलांकार अलङ्कार भेद, गोल आकारका एक आभूषण । ३ एक प्रकारके मेघ।

प्रवर्त्तक (सं • ति •) प्रवर्त्त यतीति प्र-वृत-णिच ्ण्युल् । १ प्रवर्त्त नकारी, किसी कामको वलानेवाला । २ यारम्भ करनेवाला, वलानेवाला । ३ प्रवृत्त करनेवाला, काममें लगानेवाला । ४ न्याय करनेवाला । ५ गति देनेवाला । ६ न्याय करनेवाला । ५ गति देनेवाला । ६ जमारनेवाला, उसकानेवाला, विचारक रनेवाला । ७ निकालनेवाला, ईजाद करनेवाला । (इति •) ८ नाटकमें प्रस्तावनाका एक मेद । इसमें स्वधार वर्त्त मान समयका वर्णन करता है भौर उसीका सम्बन्ध लिये पालका प्रवेश होता है।

प्रवर्तन (सं ० हो।) प्र-वृत-णिच्-ल्युट्। १ प्रवृत्ति । २ कार्य भारम्म करना, ठानना । ३ उसे जना, प्रोरणा, उस- काना । ४ कार्यसञ्चालन, कामकी चलाना । ५ प्रचार करना ।

प्रवर्त्तना (सं ॰ स्त्री॰) प्र-वृत्-िणच्-युच्, टाप्। प्रवृत्तिवान, प्रवृत्त करनेकी किया, उत्तेजना। २ आरम्भ, ठानना। ३ उत्तेजना, उभारना। ४ प्रेरणा, उसकाना। ५ नियो-जन, किसी काममें छगाने या नियुक्त करनेकी किया। प्रवर्त्तनीय (सं ॰ ति॰) प्र-वृत-िणच्-अनीयर्। प्रवर्त्तन-योग्य।

प्रवर्त्तमान (सं० ति०) प्र-वृत-णिच्-शानच्। किसी काममें प्रवृत्त होना।

भवर्त्तमानक (सं० ति०) प्रवत्तमान खार्थे कन् । प्रवर्त्तमान । प्रवर्त्तियतु (सं० ति०) प्र-वृत-णिच्-तृण् । १ प्रवर्त्तक । २ अनिवर्त्तक, अविच्छे दकारी । ३ संस्थापक ।

प्रवर्तित (सं ० ति०) प्र-वृत-णिच्का १ चालित, चलाया हुआ। २ उत्पादित, पैदा किया हुआ। ३ भारव्य, ठाना हुआ। ४ प्रत्यावर्तित, लौटाया हुआ। ५ उत्तेजित, उभारा हुआ।

प्रवर्त्तितथ्य (सं ० ति०) प्र-वृत-णिच्-तथ्यं। १ प्रवर्त्तन-योग्य। २ अनुष्टेय।

प्रवर्त्तितः (सं ० ति ०) प्र-वृत्त-तृण् । प्रवर्त्तनकारी । प्रवर्त्तितः (सं ० ति ०) प्र-वृत-णिनि । १ प्रवर्त्तयुक्तः, प्रव-त्तंकः । २ अप्रगामी । ३ प्रवाहशीलः । ४ उत्पत्तिशीलः । प्रवर्त्यं (सं ० ति ०) किसी कार्यमें प्रवृत्तं या उत्ते जन-योग्यः ।

प्रवद्ध फ (सं ० ति०) प्र-चृध-णिच् -ण्वुल् । प्रवद्ध नकारी, वृद्धि करनेवाला ।

प्रवर्द न (सं० क्वी०) प्र-वृध्य-भावे-ल्युट्। १ विवर्द्ध न, वढ़ती। (ति०) र वृद्धिकारक, वढ़ानेवाला।

प्रवर्ष (सं० पु०) १ प्रकृष्टकपसे वर्षण, अतिवृधि । २ वृष्टि ।

प्रवर्षण (सं ० क्वीं ०) १ प्रकृष्टक्तपसे वर्षण, वारिश । २ किष्किन्धाके समीपका एक पर्वत जिस पर श्रीराम और छक्ष्मणने निवास किया था।

भवर्ष (सं ० ति०) प्रवहिति प्रयद्धे ते प्र-वृह-अच् । प्रधान, श्रेष्ठ ।

प्रवलाकिन् (सं॰ पु॰) १ भुजङ्ग, सांप । २ चिलमेखलक्, मयूर, मोर । प्रवहह (सं०पु०) प्रहेलिका, पहेली। प्रवल्हिका (सं०स्त्री०) प्रहेलिका, पहेली। प्रवस्थ (सं०स्त्री०) १ प्रस्थान। २ प्रवास। प्रवस्त्र (सं०स्त्री०) १ प्रवासयात्रा, विदेश गमन। २ वहिंगमन, वाहर जाना।

प्रवसु (सं॰ पु॰) इलिनृपयुत्त दुष्मन्तम्राता नृपमेद । प्रवस्तव्य (सं॰ ति॰) प्र-वस-तन्य । प्रस्थानशोग्य, वाहर निकलने लायक ।

प्रवह (सं ० पु०) प्र-चह-भावे अच्। १ गृह नगरादिसे वहिर्गमन, घर नगर आदिसे बाहर निकलना। २ वायु, सात वायुओंमेंसे एक वायु। यह वायु आवह वायुके ऊपर अवस्थित है। इसी वायुका आश्रय करके ज्योतिष्क-मण्डल आकाशतलमें अवस्थित है। ३ मेघविशेष, एक प्रकारके वादल। ४ खूव बहाव। ५ इन्ड जिसमें नाली द्वारा जल जाय।

प्रवहन (सं ॰ क्ली॰) प्रोहातेऽनेनेति प्र-वह-करणे व्युट्। १ कर्णीरय, डोली। २ यान, सवागी। ३ पोत, नाव। ४ छोटा परदेदार स्थ, वहली। ५ ले जाना। ६ कन्याकी विवाह देना।

प्रयहि (सं ॰ स्त्री॰) प्रवहते आच्छादयतीति प्र-वह-इन्। प्रवहिका, पहेली।

प्रविद्धाः (सं ० स्त्री०) प्र-वह्न-ण्युल्-टाप्, स्रत-इत्वं। प्रहे-लिका, पहेली।

प्रजा (सं ॰ पु॰) प्रकर्षेण वाति गच्छति वा क्विप् । अन्न, अनाज ।

प्रवाक । सं ० पु०) घोषण करनेवाला ।

प्रवास (सं ० ति ०) प्रकृष्टा वाग् यस्य । १ युक्तियुक्त र गण्यका, उत्तित वोलनेवाला । २ वहुत वोलनेवाला, इथर उधरकी हाँकनेवाला । ३ युक्तिपदु, अच्छा वहस करनेवाला । (स्री०) ४ प्रकृष्टा वागिति प्रादिस०। ५ प्रकृष्टवाक्य, उत्तित वचन ।

प्रवासक (सं° ति॰) प्रकृष्ट वक्तीति प्रन्वय-ण्युख् । प्रभृष्टवक्ता, अच्छा वोळनेवाळा ।

प्रवाचन (सं ० क्ली०) प्र-वच-णिच न्त्युट् । प्रकृष्टरूपसे कथन, अच्छी तरह कहना ।

प्रवाच्य (सं ० ति०) प्र-वर्च-ण्यत् (यजयाजस्यपवर्वस्य ।

पा शिक्ष) इति कुत्यासावः । १ सम्यक् वक्तव्य, अच्छी तरह कहने योग्य । २ निन्य, निन्दा करने योग्य । प्रवाड़ (सं ० पु०) प्रवाछ छस्य डृत्वं । प्रवाछ, मूंगा । प्रवाड़सागर (सं ० पु०) बुद्ध ।

प्रवाण (सं० क्ली०) कपड़े का किनारा वनाना। प्रवाणि (सं० स्त्री०) प्रकर्षेण ऊयतेऽनयेति प्र-वे करणे-्ल्युट्, ङोप् निपातनात् ङोपो हुस्वः। तन्त्रशलाका, जुलाहोका एक औजार, ढरकी, नाल।

प्रवाणी (सं॰ स्त्री॰) प्र-वे-ल्युट् ङीप् । तन्त्रशलाका, नाल, ढरकी ।

प्रवात (सं । ति) प्रकर्षण बाति प्र-वा-शतः। १ प्रकृष्ट गतियुक्त, तेज चलनेवाला । २ हवासे हिलता हुआ, भोंके खाता हुआ । (पु) ३ प्रवल वायु, तेज हवा। ४ सुखसेव्य वातयुक्त देशादि, वह स्थान जहां खूब हवा हो। - ५ प्रवण, ढाल, उतार।

प्रवातसार (सं ० पु०) बुद्ध ।

प्रधानेज (स°० ति०) प्रवाते जायते जन-उ, अलुक्स०। निम्नप्रदेशमें होनेवाला।

प्रवाद (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टी वादः प्र-वद-घञ्वा । १ जन रव, जनश्रुति । २ परस्परं वाक्य, वातचीत । ३ अपवाद, भूठी वदनामी । ४ जनसमाजमें प्रसिद्ध वाक्य । ५ पर-स्परं कथोपकथन ।

प्रभादक (सं ० ति०) प्रकृष्टी वादकः प्रादिस०। प्रकृष्ट कपसे वादक, वाद्यकारो ।

पुवादिन् (सं॰ ति॰) प्र-वद् ताच्छोल्ये णिनि । परस्पर कथन कारक ।

पूजाद्य (सं• ति•) प्र-चद-ण्यत् । १ कथनयोग्य, फहने लायक । २ घोषणाई, पुकाशित करने योग्य ।

पुवापयितः (सं॰ ति॰) पु-वप-णिच्-तृण् । रोपयिता, रोपनेवाला ।

पुवापिन् (सं॰ ति॰) पु-वप-णिनि । त्रपनकारी, बोने-वाला ।

पुवाच्य (सं॰ क्वी॰) क्षिप्रता, तेजी ।

प्रवार (सं॰ पु॰) प्र-वृणोत्यनेनेति प्र-वृ-करणे घम्।१ प्रवर । २ वस्त्र, आष्ट्यादन । ३ उत्तरीय वस्त्र, चादर या दुपद्रा । प्रवारण (सं ० हो०) प्र-वृ-णिच्-्स्युट्। १ काम्यदान, वह दान जो किसी कामनासे किया जाय। २ नियेघ। ३ वर्षा हतु वीतने पर होनेवाला वीद्धींका एक उत्सव। प्रवार्थ (सं ० वि०) प्र-वृ-ण्यत्। सन्तीपयोग्य, तृप्ति

प्रवाल (सं ॰ पु॰ क्ही॰) प्रवलतीति प्र-वल-प्राणने (व्विट-तिक्षन्वेभ्यो ण। पा ३१११४७० वा प्र-वल णिच्-सच्। १ रक्तवर्ण वर्त्तलाकार रत्नविशेष, भूगा। पर्याय—विद्रुम, अङ्गारकमणि, अम्मोधिवल्लभ, भौमरत्न, रक्ताङ्ग, रकाकार, लतामणि।

इस प्रवालका चलित नाम मूंगा है। इसके अधि-प्राती देवता मङ्गल हैं। ज्योतियके मतानुसार मङ्गल-प्रहके विकद होनेसे यदि प्रवालदान और प्रवाल धारण किया जाय, तो शुभ होता है। मङ्गलप्रहके विकद होनेसे यदि शरीरमें फोड़े आदि हो जांय तो प्रवालदान, धारण और घिस कर प्रतिदिन भोजन करनेसे विशेष उपकार होता है।

जिन सब प्रवालोंका वर्ण, शशकके रक्तके जैसा होता है, वही प्रवाल प्रथम और प्रधान है। जिसका वर्ण गुंजा सिन्दूर वा दाख़िस्यपुष्पके जैसा लाल होता है, वह दितीय श्रेणीका प्रवाल है। जो ढाक वा पारलीपुष्पके जैसा होता है, वही तृतीय श्रेणीका विद्रुम है और जो प्रवाल कोकनदके जैसा वर्ण धारण करता है, वह सबसे निरूप प्रवाल माना गया है।

प्रसन्नता अर्थात् परिकार कान्तियुक्त, कोमल अर्थात् सुखवेध्य, स्निग्ध वा देखनेमें घृत तैलादिक जैसा और सुराग अर्थात् नोज्ञ वर्णविशिष्ट विद्रुम ही सर्वोत्कृष्ट है। इसे धारण करनेसे धनधान्यादिकी वृद्धि होती और विपमय जाता रहता है। अन्यान्य रह्मोंकी तरह प्रवालक भी चार वर्ण निर्द्धारित हुए हैं। पूर्वोक्त चार श्रेणीक प्रवाल भी ब्राह्मणादि चार जातिक तथा विभिन्न गुणशाली माने गये हैं। सुराग, सुस्निग्ध, सुखवेध्य, वहु-कालस्थायी, लावण्य और सुन्दर वर्ण ही प्रवालका पृथान गुण है। ऐसे प्रवालके धारणसे धनधान्यकी वृद्धि होती है। हिमालयप्रदेशमें एक प्रकारका लाल प्रवाल मिलता है। राजनिर्म एटमें लिखा

है, कि विशुद्ध अर्थात् श्यामिकादि दोयरहित, दृढ़, धन, सुगोल, स्निन्ध, सर्गाङ्गसुन्दर और सुन्दर वर्णविशिष्ट, समान, वजनमें भारी और शिराशून्य प्रवालघारणसे शुभफल प्राप्त होता है। विवर्ण और खर वा खसखस ये दो प्रवालके प्रधान दोप हैं। पतिन्नित्र रेखा आदि और भी इसके अनेक दोप वतलाये गये हैं। रेखायुक्त प्रवालका धारण करनेसे यश और लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। आवत्त रहनेसे वंशनाश होता है। पहलदोप नाना रोगोंके उत्पादक, विन्दु धनविनाशक, वासदोप भयोत्पादक और नीलिकादोप मृत्युकारक है। अलावा इसके राजनिर्धस्कार और भी कहते हैं, कि गौरवर्ण, रंग तथा जलमावापन्न, वक्त, स्क्ष्मकोटर अर्थात् लिद्रप्राय चिह्नयुक्त, स्थ, कृष्णवर्ण, हल्का और खेतविन्दुयुक्त प्रवाल अशुभ-जनक हैं।

शुकाचार्यका कहना है, कि मुक्ता और प्रवांल कभी कभी जीर्णताको प्राप्त होता है। शुक्रनीतिके मतसे १ तोला उत्कृष्ट प्रवाल आध तोले सोनेके समान है; किन्तु युक्तिकल्पतरुके मतसे—"मूल्यं शुद्धप्रवालस्य रीव्यद्विगुण-मुन्यते।"—निद्रांष और परीक्षित प्रवाल चांदीसे दूना मूल्यवान है अर्था १ दो तोले शुद्ध चांदीका जो मूल्य होगा, १ तोले प्रवालका भी वहीं मूल्य है।

वहुत पहलेसे ही पृथ्वोके सभी जनपदोंसे प्रवाल रतका अलङ्कारक्षमें व्यवहार होता आ रहा है। थिउ-फाटसने प्रवालका विशेष उक्लेख किया है। प्राचीन गलजाति भी प्रवालका अलङ्कार पहना करती थी। वर्त्त-मान कालमें अलङ्कारके लिये जो सब प्रवाल व्यवहृत होते हैं, वें:भूमध्य और लोहितसागरसे निकाले जाते हैं। यह मणिरत भारतवासी अङ्गमें धारण करते हैं। भारतवर्षके अधिवासी माल ही पलाकाटीकी माला पहनते हैं। आज भी युक्तप्रदेशवासी और सन्थाल परगनेकी कोल भील आदि आदिम जातियोंमें इसका विशेष आदर देखा जाता है। ज्योतिःशालमें लिखा है, कि यह रत्न मङ्गल्य-प्रहका अतिप्रिय है। इसे धारण करनेसे सव प्रकारके

अ यहां पर मुवर्ण शब्दसे तत्काल प्रचलित ८० रत्ती समझा जाता है। "प्रवाल" तोलकिषत स्वर्णाई" मूल्यपहीतः"

(ग्रुकनीति)

Vol. XIV. 160

पाप जाते रहते हैं तथा अल्ह्मीकी दृष्टि नहीं रहती। इसीसे इसका दूसरा नाम भीमरत रखा गया है। वैद्यक्त-शास्त्रके मतसे विद्रुमका साधारण गुण सारक, कपाय, स्त्रादु और शीतल है। राजनिर्धरकारके मतसे प्रवालका गुण—मधुर, अमुरसयुक्त, कफिपत्तादि दीषनाशक, बलकारी और कान्तिप्रद। यदि स्त्रियां इसे धारण करे, तो विशेष मङ्गललाम होता है। इससे नाना प्रकारकी औषध भी प्रस्तुत होती हैं। राजवल्लभके मतसे इसका गुण—सारक, शीतवीर्य, ऋपाय, खादुपाक, विमकारक, और चक्षुका हितजनक। पक्ते केलेमें पलाखर भर कर उसका सेवन करनेसे रक्तदोषजन्य गातक्षत (स्फोटकादि) आरोग्य होता है। शुक्रनीतिमें इसे खल्यरत वतलाया है, भीने गीमेवविद्य भें।

गरुड्युराणमें लिखा है, कि प्रवाल सनीसक, देवक और रोमक आदि स्थानोंमें उत्पन्न होता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी प्रवाल पाये जाते हैं, पर वे उतने उत्ह्रप्ट नहीं होते । प्रवालमणिके उत्पत्ति-सम्बन्धमें लिखा है, कि श्वेत-समुद्रके मध्य विद्र मा नामक एक प्रकारकी लता उगती है। उस लतासे वज्र-सदृश गुणविशिष्ट भति दुर्लभ विद्वमरत्न पाया जाता है। रज्ञतत्त्वविदोंका कहना है, कि पत्थरकी तरह कठिन होना इसका खामाविक गुण नहीं है। यहपूर्वक जलके साथ अग्निमें सिद्ध करनेसे वह पत्थरके समान कडा हो जाता है, नचेत् प्रथमावस्थामें यह घनीभूत मांसनिर्यास-की तरह दिखाई देता है। शुक्रनीतिमें लिखा है, कि यह विद्र मरत लौहशालका द्वारा विद्र किथा जा सकता है। इसकी वर्णवरीक्षाके सम्बन्धमें उक्त प्रन्थकारने कहा है—"बंधीतरक्तवाक् भामत्रियं विद्युममुत्तवं।" अल्य पोत-मिश्रित रक्तकान्ति विद्रुप हो उत्तम है और वही सर्वोका प्रिय है । गरुड़पुराणमें प्रवालको पाप और अलद्मी-नाशक वतलाया है।

२ किसलय, कोंपल, कोमल पत्ता । ३ वीणाद्रख, सितारा या तँवूरेकी लकड़ी।

प्रवालकीट—खनामश्रसिद्ध समुद्रज क्षुद्राकार कोटयोनि-विशेष (Actinozoa)। जीवतत्त्वविदोने इन्हें Coeletenrata श्रेणीभुक्त किया है। पूरुभुज शब्दमें जी सव Polypes नामक कीटजातिका उल्लेख किया गया है,

थे उसीके अन्यतम हैं। वेहवक्लीनलाकार, चोपक नल के जैंसा और शीर्षदेश चिप्टा है। उस चिपटेके मस्तक भागमें बहुत वारोक तथा गोलाकार रोंगटे होते हैं। मस्तकमागके मध्यस्थलमें मुंह रहता है। हां करनेले उद्रमाग वाहर निकल आता है । पाकस्थलीके चारीं ओर छोटे छोटे गहुर होते हैं। वे गहुर फिर लियत-भावमें विभक्त हैं। इस प्रकार इस क्ष्ट्र कीट जातिके शरीरमें असंख्य गर्तं रहते हैं। इसके वहिर्भागका शारी-रिक आच्छादन दो है, The ectoderm and the endoderm । उन सन गहरोंके मुखमें पुष्पाकृति डिम्बकोप (Ovaria) रहता है। उस पुंष्पस्थानके उपर्युपरि प्रस्फुटनसे द्वितोय जीवकी उत्पत्ति हुआ करती है। इस प्रकार समुद्रगर्भके एक एक स्थानमें भिन्न भिन्न जातिके असंख्य प्रवाल उत्पन्न होते हैं। पृरुभुजकी तरह ये भी पृथक् पृथक् नहीं रहते, एक दूसरीमें सटे रहते हैं। जो सव प्रवाल एक दूसरेसे सट कर रहते हैं, उनकी आइति एक-सी है। Ctenophora श्रेणीको छोड कर अपर Actinozoa जातिके स्नायुमण्डली अथवा गर्भकोप नहीं है। इनके शरीरकी दोनों वेप्रनी मांसल होने पर भी उनमें खड़ीके समान चूर्णपदार्थ सञ्चित हुआ करता है। धीरे घोरे वही पदार्थ अस्थिके समान कठित हो कर शम्बकादिके खोलकी तरह अन्तर वा वहिर्भागका आवरणस्वरूप हो जाता है। खड़ीकी तरह आवरणयुक्त होनेके कारण प्रवालका अङ्गरेजी नाम Coral रखा गया है। विज्ञानविदों ने प्रवालकीटको तीन भागों में विभक्त किया है-१ कठिन आवरणयुक्त खतन्त्रकीट, २ बाह्या-वरणयुक्त जीव और ३ अन्तरावरणयुक्त जीव। वाणि-ज्यार्थं जो सव प्रवाल इकट्टे किये जाते हैं, वे प्रायः शेषोक्त दो श्रे णियोंके अन्तर्गत हैं । समुद्रगर्भमें जो सव प्रवालमण्डित पर्वत (coral reef) वा द्वीपमाला (coral island) निकले हैं, उनके उत्पत्ति-निर्णयमें एकमाल यही कहा जा सकता है, कि अभ्यन्तरमें आव-रणात्मक कीटके मांसयुक्त स्थानमें पुनः पुनः पुष्पप्रस्पुः-टनसे द्वितीय जीवको अवतारणा और उस आवरणात्मक जीवसङ्घको दृढ़ता ही ऐसे खड़ीके समान प्रवाल-पर्वत-की उत्पत्तिका कारण है।

जीवतत्त्वविद्ये ने Actinozoa श्रेणोको Zoantharia, Alcyonaria, Rugosa और Ctenophora इन्हों चार भागों में विभक्त किया है। पेलियोजिक (palaeozoic) पर्वतमालाके मध्य आजे मी Rugosa जातीय प्रवालका प्रस्तरीभृत कङ्गाल देखनेमें भाता है। तैरनेवाले Ctenophora के शरीरमें खड़ीके समान कठिनावरण (culcarious skeleton) उत्पन्न नहीं होता । भारतवर्षमें जो सब प्रवाल व्यवहत होते हैं वे Aleyonaria और Zoantharia-से उत्पन्न हैं। शेपोक्त दोनों ही जातिका गाल मांसल है। Zoantharia श्रेणीमें भी दो स्वतन्त भाग है—Z. Scherodermata और Z Scherobasica । इनकी देहकी अन्तर्वेपनी (Endoderm)-से कार्यनेट आव लाइम नामक एक प्रकारका पदार्थ निकलता है। यथार्थमें इस जातिके जीवींका अभ्यन्तरभाग कठिन होने पर भी वहिर्मागमें मांस रहनेके कारण वह वहत कोमल होता है। इस मांसके शरीरमें प्रस्फुटित होनेसे वहतसे सतन्त्र कीट अपनी माताके शरीरमें संयुक्त हो जाते हैं जिससे अनेक जीवोंका समावेश हुआ करता है। इसके शरीरसे अकसर चुणैवत् पदांयं निकला करता है। पीछे वह पदार्थ भापसमें संलग्न हो कर समुद्र-गर्भके मध्य पर्वताकारमें परिणत हो जाता है। Sclebrobasica और Meyonaria जातिके कीटसङ्की क्रपा-न्तर प्राप्तिसे अलङ्कार-व्यवहार्थे रक्तवणं प्रवाल उत्पन्न होते हैं। भारत-महासागरमें विभिन्न श्रे णीके प्रवालखे कुछ पर्वतश्रङ्गींकी उत्पत्ति देशी जाती है। लाझाद्वीप, मालद्वीप और निकोचर द्वीपपुत्र प्रवालमण्डित हैं। पारस्य उपसागर और छोहितसागरके सुगभीर तछमें प्रवाछ पाया जाता है। सिन्धुप्रदेशसे छे कर मछचार उपकुल और तिन्नेवेली तकके प्रदेशमें अनेक प्रवालोंकी हिंडुयां देखी जाती हैं। ये सब हिंडुयां मकान बनाते समय पत्थर वा चूनेके रूपमें व्यवद्धत होती हैं।

वैद्यानिकोंने परीक्षा करके यह स्थिर किया है, कि विद्युवरेखाके दोनों वगलमें स्थित प्रायः ६ सी कीस परि-वित स्थानको प्रवालवन्ध (Coral zone) कहते हैं। मोरे साहव 'Mr.). Murray) ने अटलाएटक और प्रशान्त महासागरमें प्रवाल देखा था। वही सव प्रवाल मौसुम वायु द्वारा खोतमें परिचालित हो कर विभिन्न स्थानोंमें चले गये हैं। जिस प्रवालसे अलङ्कारादि प्रस्तुत होते हैं, वह समुद्रके वहुंत नीचे २०से १२० हाधके मध्य पाया जाता है। थोड़ी सी भी गर्मी लगनेसे ये भर जाते हैं। इसी कारण करुणामय जगदीश्वरने उन्हें अन्धकारतम सागरगर्भमें रहनेका रुथान वना दिया है।

प्रवास (सं॰ पु॰) प्रवसन्त्यस्मित्रिति त्र-चस (इच्न) पा । ३।१२१) इति धम्। १ विदेश। २ अपना घर या देश छोड़ कर दूसरे देशमें रहना। यदि कोई व्यक्ति घर छोड़ कर वारह वयं तक विदेशमें रहे और उसकी यदि कोई खोज खबर न रुगे, तो उसका प्रे तावधारण करना होता है अर्थात् उसकी मृत्यु निश्चय जान कर औदुर्ध्वदेहिक क्रियादि विधेय हैं । वारह वर्षके मध्य यदि फिसी तरहका प्रमाणजनक मिल जाय, तो उसका प्रेतापधारण नहीं होगा। प्रवासके दिनसे वारह वर्षके वाद अर्थात् तेरहवें वर्षके आरम्भमें प्रवासीका प्रेतावधारण विधेय है। जिस मास तथा जिस दिनमें वह घरसे निकला था, उसी मास तथा उसी दिनमें प्रेतिकिया कर्राव्य है। मृत्य होने पर जो सब कियाएं की जग्ती हैं, बही कियाएं इसतें भी करनी होती हैं। केवल इतना ही प्रभेद है, कि इसमें उसकी कुशपुत्तलिका करके चान्द्रायण और पीछे कुश-प्रतिलकाका दाह करना पड़ता है। विदेशगत व्यक्तिका प्रथम गमन दिन यदि मालूम न रहे, तो उस कुणाष्ट्रमी वा अमावस्याके दिन प्रेतकार्य करना होगा। दिन और मास दोनों ही मातृम न रहने पर आपाद-मासको अमावस्थाके दिन प्रेतहृत्य किया जा सकता है। मदनरत्नमें लिखा दे, कि पितृविपयमें प्रन्द्रह वर्षे प्रचासके वाद प्रेतावधारण होगा । वारह वर्षमें जो कहा गया है, सो पितृ भिन्न और सभी व्यक्तियोंके प्रति ।

श्रक्षकारिकामें लिखा है, कि पूर्ण वयस्क व्यक्ति यदि प्रवासी हो और २० वर्ष तक यदि उसका कोई सम्माद् न मिले, तो उसका प्रतावधारण विधेय है। इसी प्रकार मध्यम वयस्क व्यक्तियोंका पन्ट्रह वर्ष और वृद्ध व्यक्ति-गींका वारह वर्ष के वाद श्राह्मकर्म करनेको लिखा है। "गतस्यं न भवेत् वार्त्ता यार्वत् द्वाद्श्वार्षिकी । प्रे तावधारणं तस्य कर्त्त व्यं सुतवान्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्पातस्तन्मासि तदहः क्रिया । दिनाज्ञाने कुद्दस्तस्य आपादस्याथ वा कुद्दः ॥ निर्णयसिन्धुधृत वृद्धमनुः—

प्रोषितस्य तथा काली मतश्चेदद्वादशाब्दिकः । प्राप्ते तयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत्॥ वृद्दस्पति—

यस्य न श्रूयते वार्त्ता यावद्वं द्वादशवत्सरान् । कुशपुतकदाहेन तस्य स्यादवधारणा ॥ भविष्यके मतसे-

पितरि प्रोपिते यस्य न वार्ताः नैव चागमः । उद्धं पञ्चदशाद्वर्पात् कृत्वा तत् प्रतिरूपकम् ॥ कुर्य्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदादोन्येव सर्वाणि प्रतिकर्माणि कारयेत् ।" द्वादशान्द्रप्रतीक्षाः पितृभिन्नविषयेति मद्नरत्ने उक्तः, ग्रह्मकारिकायान्तु—

तस्य पूर्णवयस्कस्य विंशत्यव्दोर्द्धतः क्रिया। द्वादशाद्वत्सरादूर्द्धमुत्तरे वयसि स्थिता॥" (तिथितत्व)

प्रवासी व्यक्तिको प्रवाससे लौट कर अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंकी पादवन्दना करनी चाहिये।

(कूर्वपु॰ स्ववि॰ १३ अ०)

प्रवासन (सं॰ पु॰) १ देश या पुरसे वाहर निकालना, देश-निकाला । २ वध ।

प्रवासित (सं॰ ति॰) १ देशसे निकाला हुआ। २ हत, मारा हुआ।

प्रवासी (सं॰ ति॰) विदेशमें निवास करनेवाला, परदेश-में रहनेवाला ।

प्रवास्य (सं० ति०) प्र-वस् ण्यत्। प्रवासयोग्य, जो देश-से निकाले जाने योग्य हो।

प्रचाह (सं० पु०) प्र-वह-भावे वज्। १ प्रवृत्ति, भुकाव।
२ जलकोत, पानीको गति । ३ व्यवहार, चलता हुआ
काम। ४ प्रकृष्टाश्व, अच्छा वाहन या घोड़ा। ५ पुरीपादिका निर्गम, मलमूबत्याग। ६ धारा, वहता हुआ पानी।
७ कार्यका वरावर चला चलना, कामका जारी रहना।

८ चलता हुआ क्रम, तार, सिलसिला। १ प्रसार, विस्तार।

प्रवाहक (सं॰ पु॰) प्रवहतीति प्र-वह-ण्वुळ्। १ राक्षस।
(ति॰) २ प्रकृष्टवहनकर्त्तां, अच्छी तरह वहनं करनेवाला।
प्रवाहण (सं॰ पु॰) १ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। २
ढोया जाना। ३ वहाया जाना। (ति॰) प्रवाहयति प्र-वहणिच्-स्यु। ४ प्रवहणकारी, ढोनेवाला।

प्रवाहण जैवलि—पञ्चाल प्रदेशके प्रक राजा।

प्रवाहणी (सं० स्त्री०) मलद्वारमें सक्से ऊपरकी कुंडली जो मलको वाहर फेंकती है।

प्रवाहिका (सं० स्त्रीं०) प्रवहित मुहुमुंहुः प्रवर्तते इति प्र-वह-ण्वुल, टाप्, अत इत्वं। १ प्रहणी रोग। १ अती-सार, आमाशयरोग, इसका लक्षण—मन्द्रभोजी व्यक्तिकी वायुके प्रवृद्ध होनेसे जव सिश्चित मल थोड़ा थोड़ा करके प्रवाहरूपमें अनेक वार निकलता है, तब प्रवाहिकारोगकी उत्पत्ति होती है। यह वातकृत होनेसे अतिशय शूल, पित्तकृत होनेसे पेट ज्वाला और कफ्ज होनेसे कफके साथ मल निकलता है। अन्यान्य लक्षण और चिकित्सा अतीसार और प्रहणीरोगकी तरह करनी होतो है।

विशेष विवरण प्रहणी और अतीबार शब्दमें देखो। अतीसाररोगमें वायु कर्तु क रक्त और पुरीष स्नुत होनेसे जब फेनकी तरह दस्त उतरता है, तद उसे प्रवा-हिका कहते हैं।

प्रवाहित (सं ० ति ०) १ जो वहाया गया हो । २ जो ढोया गया हो ।

प्रवाहिन् (सं ० ति०) प्र-वह-णिनि । १ प्रदाहयुत, वहने-वाळा । २ तरळ, द्रव । ३ वहानेवाळा ।

प्रवाही (सं ॰ स्त्री॰) प्रोह्यते इति प्र-वह-घड्न्, गौरादित्वात् ङीप् । बालुका, बालु ।

प्रवाहु (सं॰ पु॰) १ कूर्परका ऊद्रध्वभाग। २ प्रवाहिका। प्रवाहोत्या (सं॰ ति॰) वालुका, वालु।

प्रवाह्य (सं॰ ति॰) प्रवाहें भवः यत् । प्रवाहभव, स्रोतोभव । प्रविख्याति (सं॰ स्त्री॰) प्र-वि-ख्या-किन् । अति प्रसिद्धि । पर्याय-विश्राव ।

प्रविग्रह (सं ॰ पु॰) सन्धिभङ्ग ।

प्रविचय (सं॰ पु॰) १ अनुसन्धान, खोज । २ परीक्षा ।

प्रविचार (सं ॰ पु॰) उत्तमरूपसे विचार, सुविचार । प्रविचिन्तक (सं ॰ ति॰) भविष्यत्दर्शी, जो भविष्यत् सोच कर काम करता हो ।

प्रविचेतन (सं ० क्री०) प्रकृष्टरूपसे चेतन, श्वान :

प्रविजय (सं ० पु०) जनपद्भेद, उस देशके छोग ।

प्रविद् (स'० स्त्री०) प्र-विद्-किए । प्रवेदन ।

प्रविदार (सं ॰ पु॰) पृ-वि-दू-घञ्। अवदारण, विदीर्ण होना।

प्रविदारण (सं ० क्ली०) प्रविदारयन्त्यतेति प्र-वि-द्र-णच, आधारे ल्युट्। १ युद्ध, लड़ाई। प्र-वि-द्र-णिच् भाषे ल्युट्। २ अवदारण, पूर्णस्त्रपसे विदारण। ३ आकीर्ण। (ति०) प्र-वि-द्र-णिच्-कत्तंरि ल्युट्। ४ प्रविदारक, विदा-रण करनेवाला।

प्रविपल (सं ॰ पु॰) कालपरिमाणभेद, विपलके ६० भाग-का एक भाग।

प्रविभाग (सं० वु०) प्र-वि-भज-वञ् । १ प्रकृष्टरूपसे विभाग । २ अंग ।

प्रविर (सं पु॰) पीतकाष्ट्र, एक प्रकारका चन्दन।

प्रविरः (सं ० ति०) १ अत्यव्य, बहुत थोड़ा । २ अति दुःथा य, बहुत कठिन ।

प्रविलिम्यन् (सं० ति०) प्र-वि-लम्ब-णिनि । विलम्बयुक्त ।

प्रविलय (सं॰ पु॰) प्र-वि-ली-घञ् । १ सम्पूर्णसपसे ध्वंस २ विलक्कल गायव हो जाना ।

प्रविछसेन (सं॰ पु॰) पुराणोक्त अन्ध्रवंशीय एक राजाका नाम ।

प्रविलापिन् (सं ॰ ति ॰) प्र-वि-लप-पिनि । १ विलापकारी । १ दुःख ।

प्रविवाद (स'० पु०) प्रकृष्टो विवादः प्रादिसः । प्रकृष्टक्षपसे विवाद, तर्कवितर्कं करना ।

प्रचिचिक् (सं ० ति०) प्र-विश-सन् उ। प्रवेश करनेमें रच्छुक।

प्रविश्लेष (स'॰ पु॰) प्रकृष्टी विश्लेष यस्य । प्रकृष्ट विश्लेष । पर्याय—विश्वर ।

प्रविपा (सं ० स्त्री०) प्रहतं विषमनया । अतिविषा, अतीस । प्रविष्ट (सं ० वि०) प्र-विश-कत्तेरि क । १ प्रवेशविशिष्ट, पैठा हुआ, घुसा हुआ। स्त्रियां टाप्। २ पैप्पलादि कौशिककी माता। (इरिवंश १९१ अ०)

Vol. XIV. 161

प्रविष्टक (सं॰ क्ली॰) १ रङ्गमञ्चमें प्रवेश । २ गृहमें प्रवेशकारी, ंघरमें घुसनेवाला ।

प्रविस्तर (सं ॰ पु॰) प्र-वि-स्तु-अव । विस्तार, चौड़ाई।
प्रविस्तार (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टरूपसे विस्तृति, काफी चोड़ाई।
प्रवीण (सं ॰ ति॰) प्रकृष्टरूपसे विस्तृति, काफी चोड़ाई।
प्रवीण (सं ॰ ति॰) प्रकृष्टा संसाधिता वीणाऽस्य, वा
प्रवीणयित वीणया गायकस्य नैपुण्यसिद्धे स्तसुख्य
नैपुण्यात् तथात्वं। १ निपुण, होशियार। पर्याय—निपुण,
अभिन्न, विन्न, निष्णात्, शिक्षित, वैज्ञानिक, इतमुख,
इती, कुशल। २ अच्छा गाने वजाने या वोलनेवाला।
(पु॰) २ भौत्य मनुके एक पुतका नाम।

प्रवाण कविराय—हिन्दीके एक किये । इनका जन्म संवत् १६६२में हुआ था। ये नीति और शान्तरसके अच्छे किये थे। इजारामें इनके वनाये कविक्तांपाये जाते हैं।

प्रवीण ठाकुरप्रसाद—एक कवि । संवत् १६२४में इन्होंने जन्म प्रहण किया था । शाहगंज निकटवत्तीं पिलया गांव-में इनका घर था । ये महाराज मानसिंहके द्रवारमें रहते थे । इनको कविता सुन्दर होतो थी ।

प्रवीणता (स'० स्त्री०) निपुणता, कुरालता, चतुराई।
प्रवीणताय पातुरि— वुन्देळखएड ओरछाकी रहनेवाली एक
किव । इसकी उत्पत्ति सम्वत् १६४०में हुई थी । केशवदासजीने किविप्रिया नामक प्रन्थमें इसकी वड़ी प्रशंसा
की हैं। जिससे साफ फलकता है, कि यह एक उत्तम
किव थी। यह राजा इन्द्रजित्के दरवारमें रहती थी।
राजा इन्द्रजित् किव थे अतएव इनमें प्रेम हो गया था।
अकवर वादशाहने इसे अपने द्रवारमे वुळवाया था;
किन्तु राजा इन्द्रजित्ने इसे जाने नहीं दिया। छेकिन
यवनराजने जव अपनी त्योरी वद्छी तो प्रचीणरायने जाना
ही अच्छा समक्ता, व्यर्थ एक प्रवल वादशाहसे विरोध
वदाना अच्छा नहीं। वहां जा वादशाहको अच्छी २
किवतासे प्रसन्न कर पुनः राजा इन्द्रजित्के यहां लीट

प्रवीर (सं ० ति ०) प्रकृष्टः वीरः । १ सुमर, भारी योदा, बहादुर । (पु ०) २ भीत्यमनुके एक पुत । इनका दूसरा नाम प्रवीण भी है । ३ पुरुवंशीय प्रचिन्चत्के पुत । ४ उपदानवी-गर्भजात धर्मनेतके एक पुत । ५ चएडाल पुरुपविशेष । ६ माहिष्मतीके राजा नीलध्यजके पुत जो

ज्वालाके गमसे उत्पन्न थे। महाभारतमें इस प्रवीर अथवा ज्वालाका नाम कहीं भी नहीं आया है। परन्तु इनकी कथा जैमिनी-भारतमें इस प्रकार है—जब युधिप्रिर को अभ्यमेधका घोड़ा माहिष्मतीमें पहुंचा, तव राजकुमार प्रवीर रमणीय प्रमोदकाननमें बहुत-सी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उनकी प्रयसी मदनमञ्जरी भी वहीं थी। सुन्दर घोड़े को देख कर मदनमञ्जरीने कहा, 'नाथ! वह वड़ा ही विचित घोड़ा है, उसे पकड़ कर ला दें और उसके छलाटमें जो पत वंधा है उसे पढ़ कर मुक्ते सुनाने-की कृपा करें।' प्रेयसीके कहनेसे राजकुमार घोड़ेको पकड़ लाये और पत्न खोल कर प्रियतमाकी सुनाया। उस पत्नमें इस प्रकार लिखा था, 'राजा युधिष्टिरने अश्व-मेधके लिये घोड़ा छोड़ा है। अर्जु न इसकी रक्षामें नियुक्त हैं। जिसमें सामर्थ्य हो, वह इस घोड़ को पकड़े।' प्रवीरने अर्डु नकी तृणके समान जान कर घोड़ें को बांध रखा और युद्धके लिये तैयार हो गये।

इघर अञ्चल, वृषकेतु, अनुशाल्य, पृथुम्न और यौव-नाश्वके साथ वहां पहुंच गये। पहले वृषकेतुके साथ लडाई छिड़ी जिसमें वृषकेतु पराजित हुए। परन्तु अनुशाल्यके सामने प्रवीर ठहर न सके, अचेत हो पड़ रहे।

इसी समय महावीर नीलध्वजने आ कर अर्जु न पर उनकी कन्या खाहाके साथ सूर्यका चढ़ाई कर दी। विवाह हुआ था। सूर्य इतने दिनों तक घर-जमाई थे। श्वशुरको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने भी अर्जु नकी वहुत-सी सेनाको दग्ध कर डाला। आखिर उन्होंने अपनी वर्त्तमान अवस्थाका स्मरण करके अपनेको धिकारा। उनके परामर्शसे नीलध्वजने भर्जु नका घोड़ा लौटा देना चाहा । किन्तु वीररमणी ज्वाला अपने पतिको धिका-रती हुई वोली, 'आप वीर हैं, क्षतियकुलमें उत्पन्न हुए हैं, तव फिर क्यों घोड़े को छौटा देना चाहते हैं !' उन्होंने अपने पुतको भी रणस्थलमें भेज दिया। अव पत्नीकी उत्तेजनासे नीलध्वज पुनः युद्ध करनेको वाध्य हुए। क्रमशः उनके पुत्र भाई सबके सब युद्धक्षेत्रमें खेत रहे। आप भी एक दिन तक रणस्थलमें बेहोश थे।

दूसरे दिन सबेरे नीलध्वजने ज्वालाको बड़ी निन्दा

की और अर्जु नको घोड़े लौटा कर उनसे मेल कर लिया।

पुत युद्धमें मारे गये, पितने भी उनका परित्याग कर दिया, इतने पर भी वीररमणीका हृद्य शान्त न हुआ। वे उसी समय मैकेको चलो गई और अपने माई उल्मूक-को अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उमारने लगी। उल्मूक वैसे पात थे नहीं, उन्होंने वहनकी एक भी वात न सुनी और उन्हों अपने घरसे निकल जानेको कहा।

इस प्रकार भाईसे तिरस्छत ज्वाला नाय पर यह कर गङ्गा पार कर रही थी। गङ्गादेवीका जल उनके पैरमें छू गया जिससे उन्होंने अपनेको पापप्रस्त समभा। इस पर गङ्गा सहसा आविभू त हुई और इसका कारण पूछा। ज्वालाने उन्हें वहुत फटकारा, कि तुमने अपने सात पुलोंको डुवा दिया और आठवें पुत भीष्मको यह गति हुई, कि अर्जु नने शिखण्डीको सामने रख कर उसे मार डाला। इस पर गङ्गादेवीने कुद्ध हो कर शाप दिया, कि आजसे छह महीनेके भीतर अर्जु नका सिर कट कर गिर पड़ेगा। यह सुन कर उवाला प्रसक्त हो आगमें कुद पड़ी और अर्जु नके वधकी इच्छासे तीक्ष्णवाण हो कर वसुवाहनके त्णीरमें जा विराजी। (जेमिनिभारत) ७ उत्तम, विद्या।

प्रवीरवर (सं॰ पु॰) असुरमेद । प्रवीरवाहु (सं॰ पु॰) राक्षसमेद ।

प्रवृज्य (सं॰ ति॰) प्रवर्ग्य ।

प्रवृञ्जन (सं॰ क्ली॰) प्रवर्जन, मनाही।

प्रवृञ्जनीय (सं० ति०) प्र-वृञ्ज-कर्मणि-अनीयर् । १ प्रवर्ग्य । २ प्रवर्गयागके व्यवहारयोग्य ।

प्रवृत् (सं॰ क्की॰) प्रवृणोति भूतानि प्र-वृ-िकप्। अन्न, अनाज।

प्रवृत्होम (सं॰ पु॰) होमभेद, एक प्रकारका होम। प्रवृताहुति (सं॰ स्त्री॰) ऋत्विक् नियोगकालमें अनुष्ठेय होमभेद।

प्रयुत्त (सं० ति०) प्रवर्त्तते स्मेति प्र-नत्-कः १ प्रयुत्ति-विशिष्ट, किसी वातकी ओर भुका हुआ। २ आरम्म, ठानना। ३ प्रकृष्ट वर्र्सनविशिष्ट। १ रत । ५ उत्पन्त ।

2. 11% 15

६ चिलत । ७ नियुक्त । ८ (क्की॰) प्रवृत्तिलक्षण धर्म-विशेष । ६ प्रवृत्ति ।

प्रवृत्तक (सं० क्ली०) चैतालीय प्रवरणीय प्रातावृत्तमेद । प्रवृत्तचक (सं० पु०) प्रवृत्तं स्वाज्ञानुसारेण चकं राष्ट्रादि यस्य। राष्ट्रादिमें अप्रतिहताज ।

प्रवृत्ति (सं क्षीं) प्रवर्तते इति प्र-वृत-कित् । १ प्रवाह, वहाव । २ वार्ता, वृत्तान्त । प्रवर्त्तं निर्मित प्र-वृत कित् । ३ प्रवर्त्तं ने, कामका चळना । प्रवर्त्तं च्याप्रोति प्रसिद्धस्वेन प्र-वृत्त-कित् । १ यहादिन्यापार । ५ अवन्ति-प्रमृति देश । ६ हस्तिमद्, हाथीका मद् । ७ मनका किसी विवयको ओर छगाव, कुकाव । ८ उत्पत्ति, आरमा । ६ सांसारिक विषयोंका प्रहण, दुनियांके धंधोंमें छीन होना । १० नैयायिकोंके मतसे यहाविशेष । इसका कारण चिकीर्षा, इतिसाध्यताहान, इष्टसाधनता-हान और उपादान प्रत्यक्ष है । मनप्रवृत्तः)

इष्टसाधनताहान प्रवृत्तिका और द्विष्टसाधनता ज्ञान नियुत्तिका कारण है। परिश्रम करनेसे कप्ट वा दुःख होता है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। दुःख स्वमावतः ही द्विष्ट-है अर्थात् है बका विषय है । कोई भी दुःखको पसन्द नहीं करता, सभी उससे हों प करते हैं। अतएव दःख द्विष्ट है। परिश्रम वृःवजनक है। अतः यह द्विष्ट-साधन है। इससे ऐसा प्रतिपन्न हुआ, कि द्विष्ट-साधनताझान ही निवृत्तिका कारण है। अतएव परि-अमसे प्रवृत्ति न हो कर निवृत्ति ही हो सकती। इस पर यह आशङ्का हो सकती है, कि द्विष्टसाधनताहान भी जिस प्रकार निवृत्तिका कारण है, इष्टसाधनताझान भी उसी प्रकार प्रवृत्तिका कारण है। इष्ट-इच्छाका विषय अर्थात् जिसे पानेकी इच्छा होती है, उसका साधन है अर्थात जिससे अभिल्पित वस्तु पाई जाती है, उसे इप्रसाधन कहते हैं। परिश्रम द्वारा अभिछषित वस्तु मिल सकती है, सुतरां परिश्रम इष्टसाधन है। क्योंकि, सुस्न और दुःजाभाव ही इच्छाका विषय हुआ करता है। परिश्रम द्वारा सुक्ष और दुःकामाव-सम्पन्न होता है, अतएव परि श्रमके ब्रिएसाधनता होनेके कारण जिस मकार उस विषयमें निवृत्ति हो सकती है, इष्टसाधनता होनेके कारण उसी प्रकार प्रवृत्ति भी ही सकतो है। इसके

उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि प्रवृत्ति और निवृत्ति परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं। एक विषयमें · एक कालमें एक पुरुषकी परस्पर विरुद्ध प्रवृत्ति और निवृत्ति होना विलकुल असम्भव है । क्षेत्रल इपसाधनता-क्कान प्रवृत्तिका और ब्रिष्टसाधनताहान निवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका ही विषय दुर्छम हो जाता है। कारण, ऐसा विषय नहीं, जो निरविच्छन्न सुख वा निरवच्छिम्न दुःख सम्पादन करे । सभी विषय थोड़े वहुत सुखदुःखका साघन है। सुबसम्पादनमें प्रवृत्ति प्राणि-मातको ही स्वाभाविक है। अभिरुषित शब्दादि विषयमें-इन्द्रियका सम्बन्ध होनेसे सुखकी उत्पत्ति हुआ करती है । अभिमत विषयमें इन्द्रियका सम्बन्ध इन्द्रियपरिचालना-सापेक्ष है। कई जगह अभिमत विषयके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध-सम्पादन बेप्टासापेक्ष है। निविष्टचित्तसे चिन्ता करनेसे सभी समभ सके ने, कि प्रत्येक सुखसाधनके साथ अन्ततः कुछ दुःस अपरिहार्यं रह गया है । निश्चेष्टभाव-में रह कर कभी भी विषय ग्रहण नहीं किया जा सकता। अन्ततः शारीरिक शक्तियोंकी परिचालना आवश्यक है। इएसाधनता-ज्ञानमात प्रयुत्तिका और द्विष्टसाधनता-श्चानमात निवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्ति और निवृत्त एक प्रकारसे असम्भव हो जाती है। इसीसे आन्वायाँने ऐसा सिद्धान्त किया है, कि इष्टसाधनताकान प्रयूति-का कारण तो है, पर वलवदुद्विष्टसाधनताज्ञान उसका प्रतिवन्धक है। जिस विषयमें उत्कर वा अतिशय हे प होता है, उसका नाम वलवड़िहर है। मधु और विष-मिश्रित अन्न खानेमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती। मधु-मिश्रित थन्न सुखादु होता है। उसका मोजन इप्रसाधन होने पर भी विधमिश्रित अन्तका भोजन वलवदिव्य-साधन है • क्योंकि विषमिश्रित अन्तभोजनसे मृत्यु हो सकती है, मृत्यु वलवदुद्दिए है। यही कारण है, कि मधुमिश्चित अन्न-भोजनमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती। इष्टसाधनताक्षानमात प्रवृत्तिके प्रति कारण होनेसे मधुविष-मिश्रित अन्तभोजनमें भी प्रवृत्ति न हो सकती । परन्तु ऐसा नहीं होता, इसी कारण वलबदुद्विएसाधनताज्ञान प्रवृत्तिका कारण होने पर भी बलवद्विष्टसाधनताज्ञान निवृत्तिके प्रतिवन्धनखरूपमें अङ्गोक्तत हुआ है । जिसे

विषयमें उत्कर वा अतिशय अभिलाय उत्पन्न होता है उसे वलवड्डिष्ट कहते हैं। वलव्ड्डिप्रसाधनताज्ञान निवृत्तिका प्रतिवन्धक नहीं होनेसे पाकादिमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती, वरन निवृत्ति होना ही सङ्गत है। कारण, पाक करनेमें कष्ट होता है, अतः पाककी द्विष्टसाधनता है। किन्तु पाकमें वलवदुद्विष्टसाधनता है, इस कारण पाक विषयमें निवृत्ति नहीं होती, वरन् प्रवृत्ति ही हुआ करती है। क्योंकि, पाक करके भोजन करनेसे जो तृप्ति वा सुख होता है वही वलबदुदिछ है। इष्ट. और द्विएगत वल-वत्व समावतः व्यवस्थित् नहीं है। अवस्थामेद् और रुचिभेद्से यह विवेचित हुआ करता है। एक अवस्थामें जो वलवदुद्विए समभा जाता है, दूसरी अवस्थामें उसकी अन्यथा होती है। इससे यह प्रतिपन्न हुआ, कि वलवटुद्विष्ट-साधनताज्ञान नहीं होनेसे किसी विषयकी प्रवृत्ति नहीं होती । यह वलवदुद्विप्रसाधनताज्ञान रुचि और अवस्थाने मेदसे विभिन्न प्रकारका हुआ करता है, जो एक व्यक्तिका अभिल्पित है वह दूसरेका अभिल्पित नहीं भी हो सकता है। इसी से रुचि और अवस्थाभेदसे इसे भिन्न भिन्न वतलाया गया है। कहनेका तात्पर्य यह, कि वल-वहृद्धिप्रसाधनताज्ञान होनेसे कार्यमें प्रवृत्ति और वल-यदुद्धिए साधनताज्ञान होनेसे निवृत्ति होगी।

महर्षि गौतमने प्रयुक्तिका लक्षण और विभाग करते हुए कहा है— "अन्तर्त्वागृडुिद्धिश्ररी गरम इति" (गौतमञ्च १ ११७ १०) 'प्रयृक्तिहेतुत्यं प्रयक्तिशातारं हि रागाद्यः प्रवक्तियन्ति पुण्ये पापे वा' (बास्यायन) जगत्में प्राणिमात्रकों ही तीन प्रकारके कार्यं कहने होते हैं। जब अन्य व्यक्तिकों कोई विषय जाननेकी इच्छा होती है, तब याष्य प्रयोग करना होता है, वह वाक्य एक कार्यं और जब तक यह कार्यं कर्तंच्य है या अकर्तंच्य इत्यादिका निर्णय करना होता है, तब तक मानसिक चिन्ता और वस्तु- द्रशैनादिकों भी आवश्यकता होती है। इस कारण मानसिक चिन्ता और वस्तु- द्रशैनादिकों भी आवश्यकता होती है। इस कारण मानसिक चिन्ता और वस्तु- द्रशैनादिकों जसरत पड़ती है, तब शरीरके व्यापारकों अपेक्षा करता है। शरीरकों चालना नहीं होनेसे वस्तुके उत्पादन आदि कार्यका सम्पादन नहीं होता। इस कारण शरीरका व्यापार भी

एक कार्य है। उक्त तीन कार्योमेंसे जो कार्य करनेकी जब इच्छा होती है, तब आत्मामें एक प्रवृत्ति (यत,) उत्पन्न होती है। उस प्रवृत्ति वा यत्नके होनेसे ही सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। जब तक वह प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं होती, तव तक कोई भो कार्य नहीं हो सकता है। वाक्यका उचारण करनेमें पहले आत्मामें यल होता है। पीछे उस यत्न द्वारा कण्ठ और तालु आदि स्थानींकी चालना होती है, अनन्तर वाषय उद्यारित होता है। फिर मानसिक चिन्ता और वस्तुदर्शनादि कार्य जव उत्पन्न होता है, तव जिस जिस विषयमें चिन्ता आदि क्तंब्य है, उस विषयमें मनका अभिनिवेश और आत्माके साथ मनका संयोग हुआ करता है। वह अभिनियेश या मनका संयोग आत्मामें नहीं होनेसे कभी भी दर्शनादि किया नहों हो सकती। इस कारण मानसिक चिन्ता आदि भी प्रवृत्तिसाध्य है, इसमें सन्देह नहीं। अर्थात् जो कोई कार्य क्यों न हो, आत्मामें यत्न नहीं होनेसे वह कार्य हो ही नहीं सकता है। उसी यहका नाम प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति और यत्न एक ही पदार्थ है। महर्षि गीतंमने प्रवृत्तिको समभानेके लिये उक्त तीन कार्योंकी अनुकूलि अर्थात् जनकरूपमें परिचय दे कर पूर्वोक्तरूपसे विभक्त किया है। सूत्रस्थ वाक्शब्द ही वाष्यका नाम है और बुद्धि शब्द मानसिक चिन्ताका वोधक तथा आरम्भ शब्दसे अनुकूल समभा जाता है अर्थात् वाषयानुकूल और चिन्ता आदिका अनुकूल तथा चेष्टानुकूल यही तीन प्रकारकी प्रवृत्ति हैं, ऐसा सूलके अर्थ से समभा जाता है। फिर सभी प्रवृत्ति दो प्रकारको है, शुभक्तपा और अशुभक्तपा। हितकर कार्य करनेमें जो प्रवृत्ति होती है, उसे शुभक्रपा और अहितकर कार्यमें जो प्रवृत्ति होती है, उसे भशुम-रूपा कहते हैं। (न्यायदश⁶न)

११ शब्दकी अथव।धनशक्तिमेद । वैत्तरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूत्तमा यही चार प्रकारकी शब्दप्रवृत्ति हैं। प्रवृत्तियम् (सं० पु०) प्रवृत्ति वृत्तान्ते जानावीति हा-क। चरविशेष । पर्याय—वार्त्तिक, वार्त्तायन।

प्रवृत्तिनिमित्त (सं० क्ली०) अतिधेय, शक्यतावच्छेदक धर्म । प्रवृत्तिविद्यान (सं० पु०) वाह्य पदार्थांसे प्राप्त झान । प्रवृद्ध (सं० ति०) प्रवद्ध ते स्मेति प्र-वृध-क । १ वृद्धियुक्त,

खूव बड़ा हुआ। पर्याय—एघिन, प्रोड़। २ प्रसारित, खूव फैला हुआ। 3 प्रौढ़, ख़ब पक्का। (पु॰) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक जिसे प्रस्त भी कहते हैं। इसमें तलवारकी नोंकसे गतुका शरीर हु सर जाता हैं। ५ अयोध्याके राजा रघुके एक पुत्त । ये गुरुके ज़ापसे १२ वप⁶के लिये राक्षस हो गये थे। प्रवृद्धादि (सं० क्ली०) अत्तरपदके अन्तोदात्तता-निमित्त पाणिनि-उक्त शब्दगणभेद । यथा---प्रवृद्ध, प्रयुत, अव-हित, अनवहित, खटाढढ़, कविशस्त। प्रवृद्धि (सं॰ स्त्री॰) १ अतिशय पृद्धि । २ उन्नति । प्रवेक (सं० ति०) प्रविच्यते पृथक् क्रियते इति प्र-विच-कर्मणि घञ्। १ उत्तम, विद्या। २ प्रधान, मुख्य। प्रवेग (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो वेगः प्रादिस॰ । १ प्रवल वेग । (ति०) २ वेगविशिए। प्रवेगित (सं० ति०) प्रवेग-इतच् । प्रवेगयुक्त । प्रवेद (सं॰ पु॰) यब, जौ । प्रवेण (सं० प्र०) एक प्रकारका वकरा। प्रवेणि (सं क्षी) व्याप्नोतीति प्र-वेण-गती-इन् । १ कुथ, कथरी । २ वेणी, केशविन्यास । प्रवेणी (सं० लो०) प्रवेणि-इदिकारादिति पाक्षिको-ङीप्। १ वेणी, केशवित्यास । २ गजपृष्ठस्थित विचित्र कम्बल, हाथीकी पीठ परका रंगविरंगा भूछ । ३ नदीविशेष, एक नदोका नाम । प्रवेता (सं० पु०) प्रवेत् देखो । प्रवेतृ (सं० पु०) प्र-अज-तृन् , अजे-वा । सारथी, रथ-वान। प्रवेद (सं॰ पु॰) प्र-चिद्-घञ्, वा प्रकृष्टो वेदः प्रादिस॰। प्रकृष्ट्रशान, अच्छी समभ्र । प्रवेदरुत (सं० ति०) प्रवेद-छ-किए। शापक, जताने-प्रवेदन (सं० र्ज्ञा०) प्र-विद-णिच्च ्ल्युट् । श्वापन, घोषणा । प्रवेद (सं) ति) प्र-विद-णिच्-यत् । प्रवेदनयोग्य । प्रवेष (सं० पु०) प्र-वेष्-त्रज्। अतिराय कम्प्, कंपकंपी । प्रवेपक (सं० पु०) प्र-वेप-ण्बुल् । १ कम्पन, कंपकंपी। (ति०) २ कम्पक, जिसे कॅपकपी होती हो ! प्रवेपथु (सं॰ पु॰) प्र-वेप-अथुच्। कम्पन, कांपना । Vol. XIV. 162

प्रवेपन (सं०पु०) १ दैत्यमेद । (क्ली०) २ कम्पन । ३ आन्दोलन । प्रवेपनिन् (सं० ति०) ज्ञह्यको कँपानेवाला । प्रवेपनीय (सं॰ ति॰) प्र-वेप-अनीयर् । कम्पनाई, कॉॅंपने योग्य । प्रवेरित (सं॰ वि॰) इतस्ततः पातित, इधर उधर पड़ा हुआ। प्रवेळ (सं॰ पु॰) प्र-वेळ-अच् । पीतमुद्द, पीळी मृंग । प्रवेश (सं० पु०) प्र-विश ं इल्य । ण ३।३।१२१) इति भावे वज्। १ अन्तर्विगाइन, भीतर जाना, घुसना। २ गति, पहुंच। ३ किसी विषयका जानकारी। प्रवेशक (सं० पु०) १ प्रवेश करनेवाला। २ नाटकके अभिनयमें वह स्थल जहां कोई पात दो अं जोंके वीचकी घटनाका परिचय अपने वार्तालाप द्वारा देता है। प्रवेशन (सं० क्की०) प्रविश्यतेऽनैनेति प्र-विश-करणे ल्युट्। १ सिंहद्वार । प्र-विश-भावे-ल्युट् । २ प्रवेश, भीतर जाना । प्रवेशनीय (सं० वि०) प्रवेशनं प्रयोजन यस्यं अनुप्रयचना-दित्वात् छ । प्रवेशसाधन, घुसनेछायक । प्रवेशयितव्य (सं० ति०) प्रवेश करने योग्य । प्रवेशिका (सं• स्त्री॰) १ प्रवेशार्थ देय अर्थ, प्रवेशको लिये दिया जानेवाला धन । २ वह पत, चिट्ठी या चिह्न जिसे दिसा कर कहीं प्रवेश करने पाएं। प्रवेशित (सं० ति०) प्-विश-णिच्-क। जिसमें पूर्वेश कराया गया हो। पुचेशिन् (सं ० ति ०) प्र-विश-इनि । १ प्रवेशकारी । २ प्वेशयुक्त। (क्वी०) ३ प्रवेश। पुवेश्य (सं ॰ ति॰) प्र-चिश-ण्यत् । पुवेशाहँ, घुरूने योग्य । प्चेष्ट (सं ॰ पु॰) प्रवेष्टते इति वेष्ट वेष्टने-अच्। १ वाहु । २ वाहुनीचमाग, वाहुका निचला भाग। ३ हस्तिदन्त-मांस, हाथीके दाँत परका मांस। ४ गजपृष्टास्तरण, हाथी-की पीठका मांसल भाग जिस पर सवार चंद्रते हैं। प्रवेष्टक (सं ॰ पु॰) प्रवेष्ट-स्वार्थे-प्राचास्त्ये-क । दक्षिणं वाहु, दहिना हाथ। प्रवेष्ट्य (सं ॰ हि॰) प्र-विष-णिच्-तथ्य। प्रवेशार्ह, श्रुसने लायक।

प्रवेष्टा (सं० पु०) प्रवेष्ट्र देखी ।

प्रवेष्ट्र (सं ० ति०) प्र-विश-तृण्। प्रवेशकारी, घुसने या पैठनेवाला।

प्रवोद् (सं ० ति ०) प्र-वह-तृच् प्रवर्णस्योकारः । १ प्रव-हनकारो, ढोनेवाला । (क्षी ०) २ वहन करना, ढोना । प्रवोध (सं ० क्षी ० १ ज्ञान, समस्र । २ महाबुद्धकी अवस्थामेद ।

प्रध्यक (सं ० ति०) प्रव्यज्यतेम्मेति प्र-वि अन्ज-क, वा प्रकर्षेण व्यक्तः प्रादिस०। स्फुट, स्पष्ट।

प्रव्यक्ति , सं ० स्त्री०) प्रकाश ।

प्रध्याध (सं० पु०) प्रदृष्टी व्याघो यत । खूद जोर छगा कर फेंका हुआ तीर जहां पर जा कर गिरे वहां तकका स्थान ।

प्रवजन (सं० क्लो०) प्रास्पगृहादि वजनं। संन्यास, गृहस्थाश्रम और पुतादिका परित्याग कर प्रवज्या अव-स्टान्यन।

प्रवजित (सं ॰ पु॰) प्र-वज-क । बुद्धभिक्षशिष्य । पर्याय— चेलुक, श्रामणेर, महापाशक, गोमी । ति॰) २ प्रव-ज्याश्रमविशिष्ट, गृहत्यागी ।

प्रविज्ञता (सं ० स्त्री०) प्रविज्ञतस्य लिङ्गमिव जरादिक-मस्त्यस्या इति अच्, राप्। १ मांसी, जरामांसी।२ मुण्डोरी।३ गोरखमुंडी। ४ तापसी।

प्रवच्या (सं० स्त्री०) प्र वज (वनवर्जार्भाव वयप् । पा पाइ।६८) इति भावे-क्यप् । १ संन्यास, मिक्षाश्रम । व्रद्यवर्य, गाहस्थ और वानप्रस्थके वाद प्रवच्याका अवलम्बन करना होता है। पूर्वाश्रमधर्मेका परित्याग कर प्रवच्याका अवलम्बन करना मना है।

> "बृथा सङ्करजातानां प्रवज्यासु च तिष्ठतां। आत्मनस्त्यागिनाञ्चौव निवर्त्ते तोद्ककिया॥" (मनु ५।८६)

जो बृथा प्रव्रज्याश्रमका भवलम्बन करते वे पाप-भागी होते हैं। (क्की॰) २ प्रव्रजन ।

प्रवज्यावसित (स'० पु॰) प्रवज्याया अवसितो विच्युतः। संन्यासम्रन्यः, जो सन्यास प्रहण करके उससे च्युत हो गया हो। "प्रव्रज्यावसितो यत तथो वर्णा द्विजात्तमाः । निर्वासं कारयेद्विशं वासत्वं क्षतवेश्ययोः॥"
(कात्यायन)

प्रविजयास्त्रष्ट व्यक्तिको प्रायश्चित्त करना होता है। परन्तु प्रायश्चित्त करने पर भी उसके साथ जान पानका व्यवहार नहीं रखना चाहिये। मोहम्रयुक्त यदि कोई उसके साथ जान पान करे, तो उसे भी चान्द्रायणवत करना होता है।

प्रवज्यावत नेपाली वीद्धोंका कर्मानुष्टानमेद। जो व्यक्ति वाँदा' होना चाहता है, उसे पहले यह वत करना होता है। नेपाल देखी।

पहले गुरुके निकट जा कर वह अपना अभिवाय पुकट करता है। पीछे उसके मङ्गलके लिये गुरु कलसी-पूजा करते हैं। अनन्तर कलसीका विभिषेक होता है। इस समय गुरु द्वारा प्राथींके मस्तक पर जल छिड़कनेके वाद नायक वाँढा आ कर उसके हाथमें एक अंग्डी पहना देते हैं। पोछे वह नायक 'वज़रक्षा' समाप्त करके गुरुमएडलकी पूजा करनेके वाद दूसरे दिनका कार्य शेप कर डालते हैं। व्रतिक्रयाके इस कार्यका नाम 'दुसल' है। तीसरे दिन प्रवज्यावत अनुष्ठित होता है। उस दिन संबेरे एक चैत्य सूर्त्ति, बिरत्नमूर्त्ति, प्रशापारिमता आदि विविध शुरस्यन्य, एक कलस, दिधपात, दूस्रे चार जलपूर्ण कुम्म, चीवर, निवास, पिएडपात, काप्ट-पाटुका, पत, गन्धपात, सुवर्ण और रीप्य क्षर तथा भोज्यादि सज्जित पातादि सामने रख कर वह व्यक्ति-खस्तिक आसन पर चेठते हैं । पीछे गुरुमएडल, चैत्य, तिरत्न तथा प्रज्ञापारमिता शास्त्रको उपासना करते हैं। अनन्तर यह बाँढ़ामें अपनी गिनती करानेके लिये गुरुसे प्रार्थना करता है। इस पर गुरुद्व उस व्यक्तिका तिरत, पञ्जशिक्षा और उपवासादि करनेकी तीन वार प्रतिक्वा कराते हैं। प्रतिक्वा कर चुकने पर गुरु उसे वाँद्रा वनानेमें राजी होते हैं। इसके वाद मुख्डन और पञ्चामिषेक किया को जाती है। इस समय गुरु और दूसरे चार नायक आ कर उसके मस्तक पर जल छिड़क कर दीक्षा देते हैं और उसके कल्याणके लिये रत्नसम्भव बुद्धसे प्रार्थना भी करते हैं। पीछे गुरु उसे नूतन चीवर और निवास तथा कानका खर्णाभरण हेते हैं। इस समय उसके पूर्व नामके वदलेमें वौद्ध यतियोंके जैसा नूतन नाम रखा जाता है। विरक्षकी पूजादि हो जानेके वाद नाना बुद्ध और वोधिसच्चोंको प्रणाम कर वह प्रवज्या श्रहण करता है और गुरुके सामने शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध, प्रश्वास्कन्ध और विमुक्तिस्कन्धका प्रति-पालन करनेकी प्रतिश्चा करता है। अनन्तर पञ्चोपचार-पूजा, अधियासन, महाविल आदि वहुतसे धर्माचारोंका अनुष्ठान करना होता है। यह संस्कार हिन्दुओंके यक्को-पवीतके ढंग पर होता है।

प्रवश्चन (सं ० . पु० काग्रच्छे दनास्त्रभेद, कुठार, कुल्हाड़ी ।

प्रवस्क (सं ० पु॰) कर्त्तन, काटना।

प्रवाज् (सं ॰ पु॰) १ नदोगर्भ । २ नदीका अत्यन्त निम्न देश ।

प्रवाज (सं॰ पु॰) प्र-व्रज-आधारे घज्। १ अत्यन्त निम्नदेश, वहुत नीची जमीन।२ संन्यास।

प्रवाजन (सं॰ क्को॰) प्र-वज-णिच्-ल्युट्। निर्वासन। प्रवाजित (सं॰ ति॰) प्र-वज-णिच्-क। निर्वासित, देशनिकाला।

प्रवाजिन (सं ० पु॰) प्रवाज ।

पञ्जय (सं० पु०) निमज्जन ।

प्रशंस (हिं वि०) प्रशंसाके योग्य, तारीफके लायक। प्रशंसक (सं वि०) १ प्रशंसाकारी, स्तुति करनेवाला। २ तोपामोद, खुशामदी।

प्रशंसन (स'० हो०) प्र-शन्स-भावे ल्युट् । १ गुणकीसैन द्वारा स्तुति, गुणोंका वर्णन करते हुए स्तुति करना । २ धन्यवाद, साधुवाद ।

प्रशंसनीय (स' ० ति ०) प्र-शंस-अनीयर् । प्रशंसाके योग्य, तारीफके लायक ।

प्रशंसा (स'० स्त्री०) प्र-शन्स-भावे-स, स्त्रियां टाप्। १ प्रशंसन, वड़ाई, तारीफ। पर्याय—वर्णना, ईडा, स्तव, स्तोत, स्तुति, चुति, श्लाघा, सर्थवाद। किसीको अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाित्ये।

"न चात्मानं प्रशंसेद्वा परिनन्दाञ्च वर्जधेत्। वेदिनिन्दां देविनन्दां प्रयत्ने न विवर्जधेत्॥" (कर्मधु० उप०१५) प्रशंसित (सं ० ति०) प्रशन्स-क । १ प्रशंसायुक, जिसकी तारीफ हुई हो, सराहा हुआ। (छी०)२ प्रशंसा, तारीफ।

प्रशंसिन् (सं॰ ति॰) प्र-शन्स-णिनि । जिसकी प्रशंसा हुई हो ।

प्रशंसोपमा (सं० स्त्री०) काष्यादशींक अर्थालङ्कारमेद । जहाँ उपमेयकी अधिक प्रशंसा करके उपमानको प्रशंसा द्योतित की जाती है, वहां यह अलङ्कार होता है। इसका उदा-हरण—

"ग्रह्मणोऽप्युद्धवः पश्चश्चनद्रशम्भृशिरोधृतः।
तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति सा प्रशंसोपमोच्यते॥"

ग्रह्मासे जिस पश्चकी उत्पत्ति हुई है और खर्य महादेव
जिस चन्द्रमाको अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं,
हे सुन्दरि | वैसा पश्च और चन्द्र तुम्हारे मुखके साथ
तुल्नीय है। यहां पर पहले पश्च और चन्द्रको प्रशंसा
हुई है और उस प्रशंसित उपमेय द्वारा उसके मुखके
साथ तुल्ना होनेका कारण उस मुखका सौन्दर्यातिशय
वर्णित हुआ है। इसीसे यहां पर यह अलङ्कार हुआ।
प्रशंस्य (सं ० ति०) प्र-शन्स-यत्। प्रकर्यक्रपसे स्तुत्य,
प्रशंसनीय।

प्रशत्वन् (सं ॰ पु॰) प्र-सद्-क्विप्-तुर् च। १ समुद्र। स्त्रियां ङोप् 'चनोरच' इति र। २ प्रशत्वरी नदी। प्रशम (सं ॰ पु॰) प्रशमनमिति प्र-शम-भावे-धञ्। १ शमता, उपशम, शान्ति। २ भागवतके अनुसार रन्तिदेवके पुतका नाम।

प्रशमन (सं ० क्ली ०) प्र-शम-णिच्-ल्युट् । १ मारण, वघ । २ शमता, शान्ति । ३ प्रतिपादन । ४ स्थिरीकरण, स्थिर करना, वशमें लाना । ५ नाशन, ध्वंस करना । ६ सता जित्के भाईका नाम । ७ अल्लप्रहार । (ति ०) ८ शान्तिकर, शान्ति करनेवाला ।

प्रशर्घ (सं । ति । प्रकर्षकपसे अभिभवकारी ।
प्रशस् (सं । क्षी । १ प्रशस्त । २ प्रशस्त छेदन । ३ इटार ।
प्रशस्त (सं । ति । प्रशस्यते स्मेति प्र-शन्स-क । १ प्रशंसनीय, सुन्दर । २ अतिश्रेष्ठ, उत्तम, बहुत बढ़िया । (क्षी ।
३ करज्योड़ि पाषाणभेद, करजोड़ी नोमकी जड़ी । ४ क्षेम,
इश्ल ।

प्रशस्त—एक कि । ये पिएडत प्रशस्तक नामसे मशहूर थे। प्रशस्तकर (सं० पु०) प्रन्थकारमेद् । प्रशस्तवाद देखो। प्रशस्तवाद (सं० पु०) एक नैयायिक । इन्होंने प्रशस्तवाद- भाष्य नामक वैशेषिकस्त्रकी एक टोका लिखी है। वह प्रन्थ द्रव्यभाष्य, पदार्थों हेश वा पदार्थधर्मसंग्रह नामसे भी प्रसिद्ध है। शङ्करमिश्रने इनका प्रशस्त वाचार्य नामसे उल्लेख किया है। इनके वनाये हुए भाष्यके व्योग्रशियाखार्य कत व्योग्रवती, श्रीधरकत न्यायकरदली, उदयनकृत किरणावली, श्रीवत्सकृत लोलावती, जगदीशकृत पदार्थनतत्त्वनिणय, मिल्लनाथकृत निष्किएटका और शालिखाना नाथकृत कुछ टीकाएँ आज भी मिलती हैं।

प्रशस्तव्य (सं० ति०) प्रशंसाके योग्य।
प्रशस्ताद्रि (सं० पु०) १ वृहत्संहितोक्त मध्यदेशस्थित
पर्वतमेद । २ एक देशका नाम । वृहत्संहिताके मतसे यह
देश ज्येष्ठा, पूर्व मूळ और शतिभषके अधिकारमें है।
प्रशस्ति (सं० छो०) प्र-शन्स-भावे-किन् । १ प्रशंसा, स्तुति।
२ प्रशंसास्चक अनुशासन, वह प्रशंसास्चक वाक्य जो
किसीको पत्र ळिखते समय पत्रके आदिमें ळिखा जाता
है, सरनामा। ३ राजकीय अनुशापतियशेष, राजाकी
ओरसे एक प्रकारके आज्ञापत जो पत्थरोंकी चट्टानों वा
ताम्रपत्रादि पर खोदे जाते थे और जिनमें राजवंश तथा

विषय और कालादिका परिचय मिलता हो।
प्रशस्तिकृत (सं ० ति ०) प्रशस्तिं स्तवं करोतीति प्रशस्तिः
क क्रिप् तुक्व। स्तुतिकर, प्रशंसा करनेवाला।
प्रशस्य (सं ० ति ०) प्र-शन्स-कर्मणि प्रयप्। १ प्रशंसनीय,

कीर्त्ति आदिका वर्णन होता था । ४ प्राचीन पुस्तकोंके

आदि और अन्तकी कुछ पंक्तिया जिनसे पुस्तकके कर्त्ता,

प्रशंसाके योग्य। २ श्रेष्ट, उत्तम। (क्रो॰) ३ प्रशंसन, प्रशंसा, तारीफ।

प्रशस्यता (सं ० स्त्री०) प्रशस्यस्य भावः तल्-टाप् । उत्स् ष्टता, श्रष्टात ।

प्रशास (सं ० ति०) १ विस्तृत शासायुक्तं । (क्वी०) २ भ्रणगठनकी पञ्चमावस्था ।

प्रशाखा (सं ॰ स्त्री॰) प्रगता शाखां अत्यां समासः । अत्र-शाखा, शाखाकी शाखा, रहनी ।

प्रशाखिका (सं० स्त्री०) क्षद्र क्षद्र शाखा, छोटी टहनी। प्रशान (सं० ति०) प्रकर्षण शास्पति यः प्रशाम-क्षियप् (अनुनानिकस्य क्षित्रक्षांक स्ति। पा द्वाशार्थ) इति दोर्घः। शान्त, निश्चलगृत्तिवाला।

प्रशान्त (सं० ति०) प्रकर्षेण शान्तः। १ प्रकृपशमताविशिष्ट, वाञ्चल्यरहित, स्थिर । २ शान्त, निश्चल वृत्तिवाला। (पु०) ३ एक महासागर जो पशियाके पूर्व पशिया और अमेरिकाके वीचमें हैं।

प्रशान्तचारितमित (सं ॰ पु॰) वोधिसत्वभेद ।

प्रशान्तचारिन् (सं० ति०) १ स्थिरमावमें भ्रमणकारी।
• पु०) २ देवताभेद।

प्रशान्तचेष्ट (सं० ति०) प्रशान्ता चेष्टा यस्य । १ व्यापार-शून्य । २ स्थिर ।

प्रशान्तता (सं० स्त्री० प्रशान्तस्य भावः तल्-दाप्। प्रशान्तका भाव या धर्मे।

प्रशान्तराग —गुजैरवंशीय राजा २य दहके विरुद् ।

राष्ट्रकृट देखो ।

प्रशान्तात्मन् (सं॰ पु॰) १ महादेव । २ प्रशान्तस्माव । प्रशान्ति (सं॰ स्नो॰) प्रकृष्ट शान्ति ।

प्रशासन (सं० हो०) प्र-शास-भावे-उयुद्। १ कत्तंव्यको शिक्षा जो शिष्म आदिको दी जाय। २ शासन।

प्रशासित (सं ० ति ०) १ जिसका अच्छा शासन किया गया हो । २ शिक्षित ।

प्रशासिता (सं० वि०) शासनकर्ता, शासक।
प्रशास्ता (सं० पु०) १ होताका सहकारी, एक ऋत्विक्। जिसे मैवावरूण मो कहते हैं। २ ऋत्विक्। ३ मित। ४ शासनकर्ता।

प्रशासितः (सं ० ति०) य-शास-तृण्। शासनकारी, नियन्ता।

प्रशास्तुं (सं० पु०) वशास्ता देखो ।

प्रशास्त्र (सं ० ति ०) प्र-शास्तुरिदं अण्, संज्ञापूर्वकविधेर-नित्यत्वात् न वृद्धिः । १ शास्त्रद्धप शंसनकत्तृ सम्बन्धी । (पु०) २ एक यागका नाम । ३ प्रशस्ताका कर्म । ४ प्रशस्ताके सोमपान करनेका पास ।

प्रशिथिल (सं ० बि०) प्रकृष्टः शिथिलः प्रादिस० । अति-श्रय शिथिल । गशिष्टि (सं ० स्त्री०) १ आदेश, आज्ञा, । २ अनुशासन, शिक्षा, उपदेश ।

प्रशिच्य (सं॰ पु॰) प्रगतः शिष्यमध्यापकत्वेन अत्या॰ सं। १ शिष्यका शिष्य। २ परम्परागत शिष्य।

प्रशिस् (सं॰ स्री॰) प्र-शास-किप् । प्रशासन, साज्ञा । प्रशुकीय (सं॰ बि॰) ऋकसंहिता-चर्णित प्र शुका! इति मन्त्रसम्बन्धीय ।

प्रशुद्धि (सं॰ स्त्री॰) विशुद्धि ।

प्रशुश्रुक (सं० पु०) मेरुदेशका राजमेद, वास्मीकीय रामा-यणके अनुसार मेरुदेशके एक राजाका नाम।

प्रशोचन (सं ही) वैद्यककी एक क्रियाका नाम जिसमें रोगोके व्रणादिको जला देता है, दागना।

प्रशोप (सं॰ पु॰) शुक्त होना, सोखना।

प्रशोषण (सं॰ पु॰) १ उपदेवसेद । २ सोखना, सुखाना । ३ पक राक्षस जो वर्बोमें सुखंडी रोग फैलाता है।

प्रश्न (सं० पु०) प्रच्छनमिति प्रच्छ-् यनयाचयतेति । पा २।२।८०) इति नङ्, टक्क्वोः पूडिति। या _{१।४।१}९) इति श, (ब्रक्षेचेति । या ३।२।११७) इति न सम्प्रसारणं। १ जिज्ञासा, सवाल। २ वह वाक्य जिससे कोई वात जाननेकी इच्छा प्रकट हो, पूछनेकी वात । ३ विचारणीय विषय । ४ एक उपनिषद् । इस उपनिषद्में ६ प्रश्न हैं और प्रत्येक प्रश्नके सातसे सोलह तक मन्त्र हैं। कुल मिला कर ६७ पन्त हैं । यह उपनिपद्द अथवेंवेदीय उप-निपद् मानी जाती है। इसमें प्रजापतिने सृष्टिका उत्पत्ति-विषय अलङ्कारोंमें वताया है। कात्यायनजीका प्रथम प्रक्त है, कि प्रजा कहांसे उत्पन्न हुई, इसका उत्तर विस्तार-से दिया गया है। दूसरा प्रश्न भागेव वैद्भि करते हैं, कि कौन देवता प्रजाका पालन करते हैं और कौन अपना वल दिकाते हैं। इसके उत्तरमें प्राण नामका देवता वड़ा वतलाया गया है। क्योंकि, उसीके वलसे इन्द्रियां अपना अपना काम करती हैं । तीसरा प्रक्न आक्व-लायनजीका है, कि प्राण किस प्रकार वड़ा है और किस प्रकार उसका सम्बन्ध वाह्य और अन्तरात्मासे हैं। चौथा प्रश्न सौर्यायणी गार्ग्यने किया है, कि पुरुपोर्ने कौन सोता है, कीन जागता है, कीन स्वप्न देखता है, कीन सुख भोगता है। उत्तरमें पुरुषकी तीनों अवस्थाएँ दिखा कर आत्मा Vol. XIV. 163

सिद्ध की गई है। पांचवां प्रश्न जो शैव सत्यकामाने किया है, वह ओंकारके अर्थ और उपासनाके सम्बन्धमें। छठा प्रश्न सुकेश भरद्वाजजी करते हैं, कि सोलह कलाओं-वाला पुरुष कौन है ?

प्रश्नदूती (सं० स्त्री०) प्रश्नस्य दूतीय । प्रहेलिका, पहेली, वुक्तीवल ।

प्रश्नविवाक (सं॰ पु॰) कृतान् प्रश्नान् विवक्ति, उत्तरयित-वि-वच-कर्रारि संज्ञायां धज्। १ शुक्क यजुर्वेदरं हिता-के अनुसार प्राचीनकालके विद्वानींका एक भेद जो भावी घटनाओंके विययमें प्रश्नोंका उत्तर विया करते थे। २ पञ्च, सरपंच।

प्रश्नविवाद (सं० पु॰) तर्कवितक, वितएडा ।

प्रश्नव्याकरण (सं॰ पु॰) प्रश्नान् शिष्यकृतप्रश्नान् व्याक-रोति उत्तरयति, वि-आ-क्-ल्यु, प्रश्नस्य व्याकरणः । जैन-शास्त्रमेद, जैनियोंके एक शास्त्रका नाम । भावे-ल्युट् । (क्की॰) २ पृष्टार्थं उत्तरक्षापन ।

प्रश्नि सं० पु०) १ ऋषिभेद, एक ऋषि । २ जलकुम्मी । ३ पृश्निपर्णि, पिठवन ।

प्रश्निन् (सं० ति०) प्रश्न्युक्त, प्रश्नकारी।

प्रश्नी (सं॰ स्त्री॰) पृश्नि, षृषोदरादित्वात् र, वाहु॰ ङीय् । कुम्मिका, जलकुम्मी ।

प्रश्नोत्तर (सं॰ क्लो॰) १ प्रश्नका उत्तर, सवाल जवाव। २ तर्कवितर्मा, पूछताछ। ३ शब्दालङ्कारमेद, वह काव्या-लङ्कार जिसमें प्रश्न और उत्तर रहते हैं।

प्रश्नोपनियद् (सं० स्त्री०) प्रश्नाधिकारेण प्रवृत्ता उप-नियद् । आथवींपनियद्भेद । पांच प्रश्नीका अधिकार करके यह उपनियद् हुई है, इसीसे इसका प्रश्नोपनियद् नाम पड़ा है।

प्रश्रय (सं॰ पु॰) प्रश्रयणमिति प्र-श्रि-भावे-अच्। १ प्रणय, विनय। २ आश्रयस्थान। ३ टेक, सहारा। ४ धर्म और हीसे उत्पन्न एक देवता।

प्रशयण (सं॰ क्री॰) सीजन्य, शिष्टाचरण, विनय्।

प्रश्रयिन् (सं० ति०) १ शिष्ट, सुजन । २ शान्त, नम्न, विनीत ।

प्रश्रवण (सं॰ पु॰) रामायणके अनुसार एक पर्नत । प्रश्रवस् (सं॰ ति॰) प्रकृष्ट अन्त । प्रश्रित (सं० ति०) प्र-श्रि का । विनीत । प्रश्रुष (सं० ति०) प्रकृष्टः श्रुथः प्रादिस० । शिथिल । प्रश्रित (सं० पु०) वैदिकसन्थ्याङ्गमेद । इसमें हस्व-वर्णके पहले अण्की जगह ओ होता है।

प्रश्लिष्ट (सं॰ ति॰) प्र-श्लिष-क । १ सुसम्बन्ध, मिला-जुला । २ सन्धिप्राप्त ।

प्रश्लेष (सं॰ पु॰) १ घनिष्ट सम्यन्ध । २ सन्धि होनेमें स्वरोंका परस्पर मिल जाना ।

पृथ्वसितव्य (सं० ति०) पृथ्वास निकालने योग्य।
पृथ्वास (सं० पु०) प्र-श्र्वस-भावे-घञ्। कोष्ट्रवायुका
बहिनिःसारण, वह वायु जो नथनेसे वाहर निकलती है।
प्राणायाम देखो। २ वायुके नथनेसे वाहर निकलनेकी।
किया।

प्रप्टन्य (सं॰ त्रि॰) १ पूछने लायक । २ जिसे पूछना हो । पुष्टा (सं॰ त्रि॰) पुश्नकर्त्ता, पूछनेवाला ।

पृष्टि (सं० पु॰) प्र्च्छ कर्रारि वाहुलकात् ति । १ वाहन-ह्रियमध्यवत्ती युगविशेष, यह घोड़ा या वैल जो तीन घोड़ोंके रथ या तीन वैलोंकी गाड़ीमें आगे जोता जाता है। २ वाहिने ओरका घोड़ा या वैल। ३ तिपाई। (ति०) ४ पाश्वेंस्थ, पास खड़ा हुआ।

प्रिमत् (सं० ति०) प्रष्टि-मतुप् । युग पाश्वैवाहनविशिष्ट । प्रिश्वाहन (सं० ति०) जो तीन वाहनसे ढोआ जाय । प्रष्टिवाहिन (सं० पु०) रथ ।

प्रब्टू (सं ० ति०) प्रच्छ-तृच् । प्रब्टा दंखो ।

प्रष्ठ (सं ॰ ति॰) १ अप्रगामी, अगुवा । २ प्रधान, मुख्य । ३ उत्तम, विद्या ।

प्रप्रवाह (स° 9 पु0) प्रष्ठः अप्रगामी सन् वहतीति प्रष्ठ-वह (बहुछ । तः ३।२।६४) इति ण्वि । यु । पार्श्वेग प्रथमयोजित द्भ्य गवादि, वह वछड़ा जो पहले पहले हलमें लगाया जाय ।

प्रष्ठी (सं॰ स्त्री॰) प्रष्ठ-ङीष् । प्रष्ठभार्या, अप्रगामीकी पत्नी । प्रष्ठौही (सं॰ स्त्री॰) प्रष्ठवाह (चाहः । पा ४।१।६१) इति ङीप् । प्रथम गभैषती गामि, पहलौठी गाय ।

पूर्संख्या (सं॰ स्त्री॰) १ पृष्ठष्ट सं ख्या, मीजान, टोटल । ३ चिन्ता, भ्यान ।

प्रसंख्यान (सं ॰ क्ली॰) प्-सम-स्या-भावे न्युर्। १ सम्यक्

इन, सत्यशान । २ आत्मानुसन्धान, ध्यान । (ति०) ३ प्रकृष्टकपसे संस्थायुक्त । ४ सम्यक् शानयुक्त । प्रसक्त (सं० ति०) प्र-सन्ज्ञ-क्त । १ नित्य । २ आसक्त, संबद्ध । ३ संश्विष्ट, लगा हुआ । ४ प्रस्तावित । ५ जो बरावर लगा रहे, न छोड़नेवाला । (क्वी०) २ प्रसङ्ग विषय ।

प्रसक्ति (सं० स्त्री०) प्-सनज-माये-किन् । १ पूसङ्ग सम्पर्के । २ अनुमिति । ३ आपत्ति । ४ व्याप्ति । प्रसङ्ग (सं० पु०) प्र-सन्ज-यम् । १ प्रकृष्ट सङ्ग, धनिष्ट-सम्यन्य, मेळ । २ व्याप्तिक्त प्रस्वन्य । ३ वातोंका पर-स्पर सम्यन्य, विपयका लगाव । ४ अनुगक्ति, लगन । ५ स्त्री-पुरुष संयोग । ६ विषयानुक्रम, प्रस्ताव । ७ अवसर । १० हेतु, कारण ।

प्रसङ्ग्वत् (सं॰ ति॰) प्रसङ्ग-अस्त्थे मतुप् मस्य व । १ , प्रसङ्गयुक्त । २ आकस्मिक, हडात् ।

प्रसङ्गविध्वंस (सं॰ पु॰) मानमोचनके छः उपा मिसे एक।

प्रसङ्गविसं स (सं॰ पु॰) मानमोचनके छः उपायोंमें अन्तिम ।

प्रसङ्गसम (सं ॰ पु॰) न्यायमें जातिके अन्तर्गत एक प्रकारका मितपेथ। यह प्रतिचादीकी ओरसे होता है। इसमें प्रतिचादी कहता है, कि साधनका भी साधन कहों और इस प्रकार वादीको उलक्षनमें डालना चाहता है। प्रसङ्घ (सं ॰ पु॰) १ वहुसं ख्या, अनेकत्व। २ श्रेणीवद । प्रसङ्घ (सं ॰ पु॰) प्रसज्यप्रतिपेधस्य भोमो भीमसेन-

वत् अन्त्यलोपः। प्रसज्यप्रतिषेध, अत्यन्तामाव।
प्रसज्यप्रतिषेध सं० पु०, प्रसज्य प्रसिक्तं सम्पाद्य आरोप्य ति यावत् प्रतिषेधः। अत्यन्तामाव 'प्रसक्तं कि अतिकि अते' प्रसक्त ही प्रतिसिद्ध होता है। इस न्यायके अतुसार वायुके रूप नहीं है। यहां पर पहले रूप आरोपित हुआ था, पीछे स्थिर हुआ, कि वायुके रूप नहीं है।
इस प्रकारका निषेध या अमाव ही प्रसज्यप्रतिषेध हो
कर उसका निषेध होनेसे प्रसज्यप्रतिषेध होता है। २
नज्मेद। जहां विधिको अप्रधानता और निषेधकी
प्रधानता होतो है तथा कियामें नम् अर्थात् अन्यय हुआ
करता है, वहां प्रतिषेध नम् होता है। इसका उदाहरण,

'नातिरात्ने पोड़शिनं गृहाति' अतिरात्न ग्रन्दका अर्थं अतिरात्न यद्य और पोड़शी शब्दका अर्थं सोमलतारस-पूर्णं पात है। अतिरात्न यद्यमें पोड़शि-ग्रहण नहीं करना चाहिये। यहां पर विधेय कर्मं पोड़शिग्रहण है। इस-साक्षात् सम्बन्धमें विध्यर्थवाचक लट्के साथ अन्वय नहीं हुआ, इसोसे यहां प्रसज्यप्रतिषेध नम् हुआ है।

"पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्धुं घः। भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितृषां नीपतिप्रते॥ "सत्त रोगीति निन्दाश्रवणान् प्रसज्यता।"

(मालमासतत्त्व)

पीप, चैतं और कृष्णपक्षमें नवान्न नहीं करना चाहिये, करनेसे जन्मान्तरमें रोगो होना पड़ता है। यह निर्पेध भी प्रसज्यप्रतिपेध हैं। नङ्कि।

प्रसत्ति (सं ॰ स्त्री॰) प्र-सद-किन् । १ प्रसन्नता । २ निर्मे-लता, शुद्धि ।

प्रसत्वन् (सं ॰ पु॰) प्रसोदतीति प्र-सद्-क्रनिप् । १ धर्म । २ प्रजापति ।

प्रसत्वरी (सं॰ स्त्री॰) प्रसत्वन् (बनोरच पा ४।।।७) इति ङीप् रस्व । प्रतिपत्ति, प्राप्ति ।

प्रसन्धान (सं ० क्ली०) क्रमपाठोक्त सन्धि, योग ।

प्रसन्धि (सं० पु०) मनुपुतसेद ।

प्रसन्न (सं॰ ति॰) प्रसीदतीति प्र-सद-गत्यर्थेति क। १ निर्मेल, स्वच्छ । २ सन्तुष्ट, तुष्ट । ३ प्रफुल, खुश । ४ अनुकुल । (पु॰) ५ महादेव ।

प्रसन्नकुतार चहोपाध्याय—जङ्गालके एक भावुक कि ।
सङ्गीतरचनामें उनकी असाधारण क्षमता और गीतिवद्यामें विशेष पारदिशिता भी देखी जाती थी। इनका चड़्का
१२५५ साल १७ माघमें जन्म हुआ था। ववपनसे ही
थे सङ्गीतानुरागी थे। १३ वा १४ वर्षकी उमरसे
ही वे अच्छी अच्छी गीतरचना कर सकते थे। उनके
सभी गीतोंका मूलमन्त एक था। ऐहिक सुख दुःख
सम्पद् विपद् अनित्य है, अस्थायी है; मुग्ध मानव
यदि व्यर्थ वाग्चितएडा न करके पकाप्रचित्तसे मा कालीके चरणोंमें शरण ले, तो उसके उद्धारका पथ मुक्त हो
सकता है, यही एक महामन्त उनके सङ्गीतसमृहका प्राण
था। महम्मद, नानक, चैतन्य आदि सर्वोके प्रति वे विशेष

मिक्तमान थे। ख्यं निष्ठावान पवित हिन्दू होने पर भी अहिन्दूके प्रति उन्हें जरा भी घृणा हो प न था। प्रसन्नकुशर ठाकुर—कलकत्तेके विष्यात ठाकुरवंशीय पक व्यक्ति। १८०३ ई॰में इनका जन्म हुआ था। वचपनसे हो ये न्यायके पक्षपाती थे। थोड़े ही समयके अन्दर इन्होंने वकालत पास कर ली। सदर अदालतमें उन्नति और सुनामकी पृतिष्टा करके ये सरकारी वकील हो गये। लाई उलहौसीके शासनकालमें इन्होंने उदारता और सहद्यता दिखा कर हिन्दूकालेजका सत्त्व शिक्षाविभागके हाथ समर्पण किया। लाई उलहौसीने इस खार्थ-त्याग पर इनकी भूरि भूरि पृशंसा की थी। वृद्धावस्थामें इन्होंने 'अनुवादक' नामक वक्ष्ण और 'रिफार्मर' नामक अंगरेजी पितकाकी परिचालनाका भार प्रहण कर तत्का-लिक राजकीय और सामाजिक अन्दोलनमें हाथ वटांया।

लाडं डलहीसीके शासनकालमें ये ध्यवस्थापक सभा (Legislative council)की सहकारितामें नियुक्त हुए। पेनेलकोड नामक फौजदारीदएडविधिके संशोधनकालमें इन्होंने सर वर्णिस पीकाक (Sir Barnes Peacock) की विशेष सहायता की थी। १८६६ ईं०की ३०वीं अपिल को इन्हों c. s. 1. की उपाधि मिलि। १८६८ ईं०की ३०वीं को ये इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधारे।

प्रसन्नचन्द्रसूरि—एक जैन पिएडत, अभयदेवके छात और सुमतिके गुरु। इन्होंने जैनोंके नौ अङ्गोंकी दीका लिखी है।

प्रसन्तता (सं॰ स्त्री॰) प्रसन्तस्य भावः तल्-द्राप् । १ अनुत्रह, ऋषा, प्रसाद् । २ हर्ष, आनन्द् । ३ प्रफुछता । ४ सच्छता, निर्मेळता । ५ उज्यलता ।

त्रसन्नत्व (सं॰ ह्री॰) प्रसन्नस्य भावः त्व । प्रसन्नता, निर्मेछता ।

प्रसन्तमुख (सं ॰ बि॰) जिसका मुख प्रसन्त हो, जिसकी आकृतिसे प्रसन्तता उपकती हो ।

प्रसन्नवेङ्करेश्वर—एक प्राचीन नैणान तीर्थं। श्रीरङ्गके पश्चिम कावेरी नहोके किनारे वह विष्णुमूर्त्ति स्यापित है । भविष्योत्तरपुराणके प्रसन्नवेङ्करेश्वरमाहात्स्यमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

प्रसन्ता (सं॰ स्त्रा॰) प्रसन्त-राप् । १ मद्यविशेष, एक प्रकार-

की शराव। वैद्यक्तमें इसे गुल्म, वात, अर्श, शूछ और कफनाशक माना है। (ति०) २ प्रसादविशिष्टा। प्रसन्नात्मन् (सं० ति०) प्रसन्नो निर्मेछः आत्मा यस्य। १ प्रसन्नान्तःकरण, जो सदा प्रसन्न रहे। (पु०) २ विष्णु।

प्रसन्तान्ध (सं॰ पु॰) अथ्वका नेतरोगिवशेष। इसमें उसकी आँख देखनेमें तो ज्योंका त्यों रहती हैं पर उसे दिखाई नहीं पड़ता। यह असाध्यरोग है और अच्छा नहीं होता

प्रसन्नेरा (सं ॰ स्त्री॰) प्रसन्ना निर्मेला इरा जलमिव । एक प्रकारकी मदिरा ।

प्रसभ (सं॰ ति॰) प्रगता सभा समाधिकारोऽस्मात् प्रादि॰ वहुत्री॰। १ वलात्कार। २ हठात्। प्रसभहरण (सं॰ क्ली॰) वलपूर्वक हरण, इकेती। प्रसयन (सं॰ क्ली॰) प्र-सि-वन्धने करणे ल्युट्। १

बन्धनसाधन तन्तु, जाल ।

प्रसर (सं॰ पु॰) प्र-सु-भावाधारादौ यथायथं अ**प्**। १ विस्तार, आगे वढ़ना । २ प्रसार, फैलाव । ३ दृष्टिका फैलाव, आँखकी पहुंच। ४ वेग, तेजी। ५ समृह, राशि। ६ व्याप्ति। ७ प्रकर्षे, प्रधानताः प्रभाव। ८ युद्ध, लड़ाई। १ नाराच नामक अस्त्र। १० वीरता, साहस । ११ उत्पत्ति । १२ प्रणय, प्रेम । १३ एक प्रकार-का पौधा जो भूमिके ऊपर फैलता है । १४ वातपित्तादि प्रकृतियोंका सञ्चार या घटाव बढ़ाव । सुश्रुतके अनुसार कुपित दोष किस प्रकार शरीरमें फैल जाता है, उसका विषय यों है—सुरा प्रस्तुतकालमें जिस प्रकार किन्चो-दक (मसालेका पानी) और पिष्ठतण्डुलको एक साथ पीसनेसे वह वढ़ जाता है, उसी प्रकार सभी दोवोंके कुपित होनेसे वे वर्द्धित हो कर गतिविशिष्ट होते हैं। वायुकी गतिशक्ति द्वारा ही इनकी गति हुआ करती है। वायुके अचेतन पदार्थ होने पर भी उसमें रजोगुण अधिक परिमाणमें है। रजोगुण सभी भावोंका प्रवर्तक है। जिस प्रकार किसी पुछके एक ओर अधिक जलराशि अमा रहनेसे वह जलराशि पुलकी तोड़ तो हुई दूसरी ओरमें स्थित जलके साथ मिलती और चारों आर फैल जाती है, ω सी प्रकार सभी प्रकारके दोपोंमेंसे किसी एक

दोपके विगड़नेसे वे सभी दोष स्वतन्त्र अथवा दो या सभी एक साथ अथवा शोणितके साथ मिल कर नाना प्रकारमें प्रसारित होते हैं। सभी दोषोंके मिलने अथवा स्वतन्त्र होनेसे वे पन्द्रह प्रकारमें प्रसारित होते हैं। यथा— वात, पित्त, श्लेष्मा, शोणित, वातिपत्त, वातश्लेष्मा, वात-शोणित, वातिपत्तश्लेष्मा और वातिपत्तशोणित। इसीका नाम प्रसर है।

जिस प्रकार आकाशके जिस स्थान पर प्रेष्टका सञ्चार होता है, उसी स्थान पर वृष्टि होती है, उसी प्रकार कुपित दोप जहां जहां प्रसारित होता है, उसी स्थान पर विकृति उत्पन्न होती है।

(सुत्रुत स् त्रस्था॰ २१४०)

(ति०) १५ विसर्पणकर्ता, गमनशोळ ।
प्रसरण (सं० क्री०) प्र-स्र-भावे-ल्युट् । १ सेनाओंकी
सर्वतोव्याप्ति, सेनाका लूट पाटके लिये इधर उधर
फेलना । पर्याय—प्रसरणी, प्रसर्रण, प्रसारणी । २
सेनाका तृणकाष्टके लिये इधर उधर जाना । ३ आगे
वढ्ना, खिसकना । ४ विस्तृति, फेलाव । ५ व्याप्ति ।
६ उत्पत्ति । ७ विस्तार । ८ खार्थ-प्रवृत्ति ।

प्रसरणी (सं°० स्त्री॰) प्र-स्'अर्त्तिस्वित्यानिः' इति अनि । प्रसरण, फैलाव,पसार ।

प्रसरा (सं ० स्त्री०) प्सारणी लता, गंधाली, पसरन । प्रसरित (सं ० ति०) १ फैला [हुआ, पसरा हुआ । २ विस्तृत । ३ आगेको वढ़ा हुआ, स्थानसे आगेको ससका हुआ ।

प्रसर्गं (सं॰ पु॰) प्र-सृज-घञ् । १ वर्षण, वरसाना । २ तिश्लेपण, किसी चीजको ऊपरसे छोड़ना, गिराना । प्रसर्जन (सं॰ ति॰) निश्लेपण, गिराना, डालना ।

प्रसर्प (सं॰ पु॰) प्र-सृप्-घञ् । १ गप्तन । (क्ली॰) २ सामभेद, एक प्रकारका सामगान ।

प्रसर्पक (सं॰ पु॰) १ यज्ञदर्शक, वह दर्शक जो यज्ञमें विना बुळाए आया हो। २ ऋत्विक्का सहकारीभेद, सहकारी ऋत्विज्। ३ अनिमन्त्रित व्यक्ति।

प्रसर्पण (सं॰ क्ली॰) प्र-सृष-ल्युट्। १ गमन, जाना। २ प्रसरण, फैलावः ३ सेनाका इधर उधर फैलना ४ खिसकना । ५ धुसना, पैठना । ६ गति, चलनेका भाव या कार्य ।

प्रसंपिन् (सं वि) प्र-सुप-णिनि । १ वऋगतिशील, रॅगनेवला । २ गतिशील । ३ यहकी समामें जाने-बाला ।

प्रसल (सं० पु०) हेमन्त ऋतु ।

ग्रसव (सं० पु०) प्र-स् (ऋदोरप्। पा शश्रभण) इत्यप्। २ गर्भमोचन, वद्या जननेकी किया। पर्याय प्रस्ति। २ गर्भग्रहण, जन्म, उत्पत्ति। ४ अपत्य, सन्तान। ५ फल। ६ फूल। ७ आजा।

प्रसवका विषय भाव-प्रकाशमें इस प्रकार लिखा है— गभैवती स्त्री नवम, दशम, यकादश वा द्वादश मासमें सन्तान प्रसव करती है। इसकी अन्यथा होनेसे अर्थात् नवम मासके मध्य अथवा द्वादश मासके वाद प्रसव होने-से उसे अस्वाभाविक जानना चाहिये। भावप्रकाशके मतसे प्रकादश या द्वादश मास प्रसवका काल वतलाये जाने पर भी साधारणतः नवम दशम मासमें ही प्रसव दुआ करता है। इसके अतिरिक्त समयमें प्रसव होनेसे उसे अखामाविक कहते हैं।

ज्योतिस्तत्त्वमें छिखा है, कि यदि गर्भवती स्त्री प्रसववेदनासे छटपटा रही हो, तो वटपत पर सुख-प्रसवमन्त्रचक्र छिख कर उसके मस्तक पर रख देनैसे सुखसे प्रसव होता है।

सुखप्रसवमन्त्र—

"अस्ति गोदावरी तीरै जम्मला नाम राक्षसी। तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्।"

सुखप्रसन्नचक—

"पञ्चरेकाः समुहिष्य तियंगूद्ध कमेण हि ।
पदानि पड्दशापाच त्वेकमाचे छुनौ तयम् ॥
नवमे सप्त द्यानु वाणं पञ्चदशे तथा ।
द्वितीयेऽप्टावध्मे पट् दिशि द्वौ पोड्शे श्रुतिः ॥
पकादिना समं इ यमिच्छाङ्काद्ध तिकोणके ।
तदा द्वातिशदादिः स्याचतुण्कोण्ठेषु सर्वतः ॥
दर्शनाद्धारणात्तासां शुमंस्यादेषु कमसु ।
द्वातिशत् प्रसवे नार्याश्चतु हिंशशहमे नृणाम् ॥

भूताविष्टे षु पञ्चाशन्मृतापत्यासु वै शतम् । - द्वासप्ततिस्तु वन्ध्यायां चतुः यष्टीरणाध्वनि ॥" (ज्योतिस्तस्व)

	3:	३२	३२	३२	
३२	१	٤	E	१ 8	३२ सुख्यद्वचक
३२	११	१२	97	હ્ય	३२ इसे वोल या लमें
३२	9	ર	ર ધ	૮	: १ ३२ वत्तीसा घर
३२	र३	१०	ધ	8	३२ पूरण कहते हैं।
	રૂર	३२	३ २	३ २	

जिस कार्यद्वारा जरासे भ्रूण तत्संलग्नपूल (Placenta) और भाच्छादनी फिली (Foetal membrane)-के साथ भूमिए हो कर निरपेक्षभावमें जीवनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त होता है, उसे प्रसव कहते हैं।

इसका विशेष विवरण चात्रीविधा शब्दमें देखीं ।

वृहत्संहितामें लिखा है, कि स्त्रियों के प्रसविकार होनेसे वा दो तीन अथवा चार सन्तान एक वार जन्म लेनेसे अथवा होनातिरिक्त कालमें प्रसव होनेसे देश और कुलका श्रय होता है। योड़ी, कंटनी, भेंस, गाय और हथनीके यमज उत्पन्न होनेसे वे वचती नहीं हैं। छः मास वीत जाने पर प्रसव वेक्षतका फल हुआ करता है। इसी-से इसकी शान्ति करना कर्च यह । शान्तिविषयमें गर्गने कहा है, उस स्त्रीका त्याग और ब्राह्मणोंको कामना- जुरूप दान तथा चतुष्पाद जन्तुओंको परमूमिमें छोड़ देना चाहिये। ऐसा नहीं करनेसे नगरस्वामी और अपने दलका अनिष्ट होता है।

वृहजातक आदि उद्योतिप्र न्थोंमें प्रस्तीको कष्ट प्रसच वा सुखपसच आदिका विस्तृत विचरण लिखा है। प्रसचक (सं० पु०) प्रसच न पुष्पादिना कायित शोभते इति कै-क। पियारका वृक्ष, चिरौँजीका पेष्ट। प्रसचन (सं० क्की०)१ आनयन, लाना।२ वद्या जनना।

३ गर्भ धारण।

Vol. XIV. 164

पसववन्धन (सं० क्ली०) प्रसवानां पुष्पफलानां वन्धनं यत । वह पतला सींका जिसके सिरे पर पत्ता या फूस लगता है, नाल ।

प्रसववेदना (सं॰ स्त्री॰) प्रसवजन्यवेदना, वह दर्द जो वश्वा जननेके समय होता है।

प्रसवस्थली (सं॰ स्त्री॰) पुसवस्य स्थलोव । १ उत्पत्ति-स्थान, माता । २ नाटफ ।

प्रसविता (सं० वि०) १ जन्म देनेवाला उत्पादक । २ अनुजाकर्त्ता, हुकुम देनेवाला । (पु०) ३-पिता, वाप । प्रसवितः (सं० पु०) प्रभविता देखो ।

प्रसविती (सं० स्त्री०) प्रसविष्ट-स्त्रियां ङोप्। १ जन्म देने-वाली। २ माता।

प्रसविन् (सं॰ स्त्री॰) पु-सु-शीलार्थे इनि । १ प्रसवशील । २ उत्पादक, जन्मदाता ।

प्रसिवनी (सं० ति०) उत्पन्न करनेवाली, जननेवाली।
प्रसिवात्थान (सं० क्ली०) यञ्चवेदिका सप्तद्श परिशिष्ट।
प्रसिव्य (सं० ति०) पृगतं सन्यादिति। १ पृतिकृतः। २
पृसवनीय। (पु०) ३ वाईं ओरसे परिक्रमा करना।
प्रसिह (सं० पु०) प्रसिहतीति-प्रसह-अच्। वे पश्ली,जो
भपाटा मार कर अपना भक्ष्य या शिकार पकड़ते हैं।
जैसे, कौआ, गीध, वाज, उद्गतु, चील, नीलकएठ इत्यादि।
वैद्यकमें इन पश्लियोंका मांस उज्जवीयं माना गया है।
जो इनका मांस खाते हैं, उन्हें शोव, भस्मक और शुक्रक्षय रोग हो जाता है। २ अमलतास।

प्रसहन (सं॰ पु॰) पृगतं सहनं सहागुणो यस्मात्। १ हिंस्नपशु, हिंसक पशु। २ आलिङ्गनः। प्र-सह-भावे-ल्युट्। ३ सहन । ४ क्षमा। (बि॰) ५ पृसहनयुक्त, सहन-शीलता।

प्रसहा (सं० स्त्री०) प्र-सह-अब्-टाप् । वृहतिका, कटाई । प्रसत्य (सं० अव्य०) पृकर्षण पोढ़ा इति प्-सह-काची-त्यप् । १ हठात् वलात्कार । (सि०) पृसोह् शक्य इति प्-सह-यत् । २ जो अच्छो तरह सहन कर सके । प्रसह्यचौर (सं० पु०) पृसद्य वलात्कारेण चौरः । हठात् चौर्यकारी, जवरदस्ती माल छोननेवाला ।

प्रसिद्यहरण (सं० क्ली०) पृसद्य वलात्कारेण हरणं । १ वल-पूर्व क हरण, जवरदस्ती हर ले जाना । जैसे क्षतिय कम्याओंको हरण करते थे ।

प्रसहन् (सं० ति०) प्-सह-विनय्। प्रसहनकर्ता।
प्रसातिका (सं० स्नो०) सो-नाशे-भावे-किन्, प्गता साति-र्नाशो यस्याः कप्। अनुत्रीहि, सावां। इस धानके तण्डुल द्वारा श्राद्धादि करनेसे पितृगण परिनृत होते हैं।

"श्यामाकराजश्यामाकौ तद्वच्चैव पूसातिकाः। नीवाराः पौष्कलाश्चैव धान्यानां पितृतृप्तये॥" (मार्केषु० ३२।६)

प्रसाद (सं० पु०) प्र-सद-वज्। १ प्रसन्नता, खुशी। २ नैमंत्य, खच्छता। ३ अनुप्रह, रूपा। ४ खास्थ्य, तंदुरुरतो। ५ गुरुजन आदिको देने पर वची हुई वस्तु जो काममें लाई जाय। ६ वह पदार्थ जिसे देवता या वड़े लोग प्रसन्न हो कर अपने भक्तों या सेवकोंको दें। ७ मोजन। ८ शब्दालङ्कारके अन्तर्गत एक वृत्ति, कोमलवृत्ति। ६ काष्यका गुणमेद, रसका धर्मभेद। रस हो काल्यका प्राण है। जहां पाठमावसे ही अथंवोध होता है अथंव विषेत विषयके सम्बन्धमें वित्तमें स्थायिभाव अङ्कित होता है तथा ग्राम्य या जटिल शब्दोंका प्रयोग नहीं रहता, वहां प्रसाद-गुण होता है।

स्र ी लकड़ीमें आग लगानेसे वह जिस प्रकार तुरत सुलग जाती है, उसी प्रकार जिस रचनाके सुनते ही चित्त आकृष्ट हो जाता है, वही प्रसादगुण है। इसमें जो सव शब्द प्रयुक्त होंगे उनका अर्थवोध सुनते ही हो जायगा। महाकवि कालिदासकी रचना प्रायः प्रसादगुणविशिष्ट है।

१० धर्मकी पत्नी मूत्तिसे उत्पन्न एक पुत । ११ दैवनेवेद्य, वह वस्तु जो देवताको चढ़ाई जाय । देवताके उद्देशसे जो उत्सर्ग किया जाता है, वही पीछे भक्तों के निकट प्रसाद समका जाता है। हिन्दू, वौद्ध, खृण्डान, मुसलमान आदि सभी जातियोंके निकट उपास्य देवका प्रसाद वड़े ही आदरकी वस्तु है। श्रीक्षेत्रके जगनाधका प्रसादान महाप्रसाद कहा जाता है। अन्य स्थानोंमें अन्य देवका प्रसादान यदि ब्राह्मण भिन् अन्य जाति छू छे, तो वह अपवित्र हो जाता है; परन्तु इस महाप्रसाद में वैसा दोव नहीं समका जाता। स्था हो, या वासी हो या किसी जातिसे स्पृष्ट भी क्यों न हो, वह महाप्रसाद पवित्र और वैष्णवोंके निकट दुर्लभ सामग्री है।

वीदलोग भी बुद्धके उद्देशसे सभी जगह अनुका भीग चढ़ाते हैं। प्रोमके सुय-सनदी बुद्धमन्दिरके निकट जी पहाड़ है उस पर प्रसादान देरके देरमें पड़ा हुआ देखा जाता है। हिन्दू लोग प्रसाद की कभी भी अबहेला नहीं करते। प्रसाद पाते ही वे उसे सिर पर चढ़ाते हैं।

देवताके प्रति कृतज्ञता और भक्तिप्रदर्शनसे ही प्रसाद-की सृष्टि है। वाइवेलमें भी देखा जाता है, कि आवेल देवप्रसादलाभके लिये होम और उत्सर्ग करते हैं। वाइ-वेलमें एक जगह लिखा है, कि मांसविकय-स्थानमें जो स्थानमें जो प्रसादी मांस रहता है उसे अच्छे बुरेका विचार किये ही प्रहण करना चाहिये (Corinthians, x. 52) फिर एक जगह ऐसा भी लिखा है, कि प्रतिमाके सामने जी उत्सुष्ट होगा, उसे कभी ब्रहण न करे। (Act xv. 29) अभी कोई भी खुष्टान प्रतिमाके सामने कोई द्रव्य उत्सर्ग नहीं करते। परन्तु हित्र और मुसल-मान लोग अपने अपने इप्रदेवके उद्देश्यसे कुरान निर्दिष्ट पशुका मांस निवेदन करके उसे ब्रहण करते हैं। मुसलमानोंका 'हलाल करना' है। आज भी प्रोपमें जहां हिंघ लोगोंका वास है, वहां व्यवहार्य पशु चिहित किया रहता है। निपिद्ध पशुका मांस जिससे किसीको न मिले, इसके लिये पशुवधकालमें एक हिव्याजक वहां खड़ा रहता है। यह याजक निहत पशुकी मांसे पर चिह दे कर 'कोआर' अर्थात् शास्त्रके मतसे व्यवहार्य, ऐसा लिख देता है। जहां इस प्रकारका प्रसादी मांस पकाया जाता है, वहां अच्छी सफाई रहती है। शाक और वैध्यव लोग भी प्रसादात्रके रन्धनस्थानमें किसीको भी घुसने नहीं देते।

प्रसादक (सं० ति०) १ अनुग्रहकारक । २ निर्मेछ । ३ प्रसन्न करनेवाला । ४ प्रीतिकर । (पु०) ५ प्रसाद । ६ वास्तुक, वशुपका साग । ७ देवधान्य, देवधान ।

प्रसादन (सं॰ क्लो॰) प्रसादयतीति प्र-सद्द-णिच् -्ल्युट् । १ अन्न, अनाज । २ प्रसन्न करना । (ब्लि॰) ३ प्रसन्न करनेवाला, प्रसन्नता देनेवाला ।

प्रसादना (सं॰ स्त्रो॰) प्र-सद-णिच्-युच्-टाप् । परि-चर्या, सेवा ।

प्रसादनीय (सं॰ ति॰) प्र-सद-णिच -अनीयर् । प्रसादन-योग्य, प्रसन्न करने लायक । प्रसादपट्ट (सं ॰ पु॰) सम्मानस्चक पट्टमेद । दो उँ गली विस्तृत पट्टका नाम प्रसादपट्ट है। यह प्रसादपट्ट सेना-पतिको लिये शुभजनक माना गया है।

प्रसादपुर—अयोध्या प्रदेशके रायवरेली विभागके अन्तर्गत एक उपविभाग । यह रुई नदीके उत्तर अवस्थित है। यहां वहुवेगमकी राजधानी थी। १७८३ ई०में यह स्वतन्त्र परगनाह्मपमें गिना जाता था।

२ उक्त विभागका सदर । इसके समीप प्राचीन भग्नावशेष देखनेमें आता है । इनमेंसे इन्दू-व्यक्ति,य राजाओंकी प्रचलित मुद्रा और ध्वंसावशेष दुर्गादि उल्लेखयोग्य है।

प्रसादवत् । सं ० बि ०) प्रसाद-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । १ प्रसादयुक्त, अनुप्रहविशिष्ट । २ प्रसन्न । स्त्रियां ङीप् । ३ समाधिभेद ।

प्रसादान्त (स'० क्ली०) देवताके प्रसाद्खरूप अन्त ।
प्रसादिन (स'० ति०) १ प्रीतिकर । २ शान्तिकर । ३
शान्त । ४ अनुप्रह करनेवाला, रूपां करनेवाला । ५
निर्मेल, स्वच्छ । (स्ती०) ६ देवताओंको चढ़ाया हुआ
पदार्थ । ७ नैवेद्य । ८ वह पदार्थ जो पूज्य और वह लोग
छोटोंको दे, वड़ोंकी देनी । ६ देवताको वलि चढ़ाय
हुए पशुका मांस ।

प्रसाद्य (सं॰ बि॰) प्रसादनयोग्य।

प्रसाधक (सं ० ति ०) प्रसाधयित प्र-साधि-ण्युह् । १
भूषक, अलंकत करनेवाला । २ सम्पादक, सम्पादन करनेवाला । ३ राजाओंको वस्त्र आभूषणादि पहनानेवाला ।
प्रसाधन (सं ० क्री ०) प्रसाध्यतेऽनेनेति प्र-साध-ल्यु द् ।
१ वेशा । २ कङ्कतिका, कंघी । ३ अलङ्कार, श्रङ्कार । 8
सम्पादन । ५ महावला लता । (ति ०) ६ प्रसाधियता ।
प्रसाधनी (सं ० स्त्री ०) प्रसाध्यतेऽनयेति प्र-साध-ल्यु द्
ङोप् । १ सिद्धि । २ कङ्कतिका, कंघी ।

प्रसाधिका (सं क्झी) प्रसाध्यति निष्पाद्यति प्र-साध्-ण्वुल्, टापि अतइत्वं। १ नीवारधान्य, निवार धान। २ अप्रवीहि, सार्वा। ३ वेशकारिणी स्त्री।

प्रसाधित (सं० ति०) प्र-साधि-क। १ अलंकत, सजाया हुआ। २ प्रकृष्ट निष्पन्त ।३ निष्पादित । प्रसाध्य (सं० ति०) प्र-साधि-यत् ।१ प्रसाधनयोग्य । (क्की०) २ पराजय । प्रसार (सं ० पु०) प्र-स्-घञ् । १ विस्तार, फैलाव । २ तृणकाष्टादिका प्रवेश । ३ इतस्ततः गमन, इधर उधर जाना । 8 गमन, जाना । निगम, निकास । ६ सञ्चार । प्रसारण (सं ० क्की०) प्र-स्-णिच्-ल्युट्। पांच प्रकारके कर्मों मेंसे एक । भाषापरिच्छद्में पांच प्रकारके कर्म वतलाये गये हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन । २ परिवर्द्ध न, बढ़ाना । ३ विस्तारकरण, प्रसारना ।

प्रसारणी (सं० स्त्री०) प्रसायंते इति प्र-सारि-ल्युट्-ङीप्।
१ लताविशेष, गंधप्रसारी। इसे महाराष्ट्रमें चाँदवेली,
कलिङ्गमें हेसरणे और तैलङ्गमें गोन्तेम गोक्चेहू, सिवरेलचेहु कहते हैं। इसका गुण गुरु, वृष्य, वल और
सन्धानकर, वीर्यवद्ध क, उष्ण, वातनाशक, तिक्त, वात,
रक्त और कफनाशक है। राजनिघण्डुके मतसे इसका गुण—
गुरु, उष्ण, तिक्क, वात, अशे और श्वयधुनाशक तथा मलविष्टम्भहारक। संस्कृत पर्याय— सुप्रसरा, सारिणी,
प्रसरा, चारुपणीं, राजवला, भद्रपणीं, प्रतानिका, प्रवला,
राजपणीं, भद्रवला, चन्द्रवल्ली, प्रभद्रा। २ सेनाका लूटपाटके लिये इधर उधर जाना।

प्रसारित (सं ० ति०) विस्तृत, फैलाया हुआ । प्रसार्थ (सं० ति०) प्र-स्-ण्यत् । प्रसारणयोग्य, फैलाने लायक ।

प्रसारिणी (सं॰ स्त्री॰) १ गन्धप्रसारिणी छता ।२ छजाछु छता, छाजवंती । २ देवधान्य, देवधान ।

प्रसारिन् (सं॰ ति॰) प्रसरतोति प्र-स्-णिनि । १ प्रसरण-शील, फैलनेवाला । पर्याय—विस्तवर, विस्तर, विसारी ।

प्रसाह सं पु॰) १ पराजय । २ आत्मशासन ।

प्रसित (सं० क्ली॰) प्र-सो-क। १ पूय, पीव, मवाद। (ति॰) २ आसक।

प्रसिति (सं० स्त्री०) प्रसिनोति वध्नात्यनयेति, प्र-सि-करणे-क्तिन् । १ वन्धनसाधन रज्जु निगड़ादि, रस्सी । २ ज्वाला, लपट । ३ प्रवन्धन । ४ रिम ।

प्रसिद्ध (सं० ति०) प्रसिध्यतीति प्र-सिघ-गत्यर्थेऽति क । १

भूषित, अलंकत । २ विख्यात, मशहूर । ३ उन्नत । प्रसिद्धक (सं० पु०) १ जनकवंशीय राजमेद, मरुके पुत और कीर्त्तिरथके पिता । २ प्रसिद्ध देखो ।

प्रसिद्धता (सं॰ स्त्री॰) प्रसिद्ध-तल्-राप् । स्याति, प्रसिद्धकाः भाव या धर्मे ।

प्रसिद्धि (सं॰ स्त्री॰) प्र-सिध्-क्तिन् । १ ख्याति । २ भृषः, िसिगार ।

प्रसिद्धिमत् (सं॰ ति॰) प्रसिद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। प्रसिद्धिः युक्त।

प्रसुत् (सं० ति०) प्रवाहशील ।

प्रसुत (सं॰ त्रि॰) १ उत्पन्न । २ दवा कर निचोड़ा हुआ । (क्की॰) ३ संख्याभेद ।

प्रसुप् (सं॰ ति॰) शतुओंका निद्राकारक।

प्रसुप्त (सं॰ ति॰) प्र-स्वप-क । निदित, खूव सीया हुआ । प्रसुप्ति (सं॰ स्त्री॰) प्रकृष्टा सुप्तिः वा प्र-सुप्-किन् । उत्तस निद्रा, गाढ़ी नींद ।

प्रसुव (सं॰ पु॰) निर्यासन ।

प्रसुश्रुत (सं॰ पु॰) मरुराजका पुलमद ।

प्रस् (सं श्ली) प्रस्ते इति प्र-स् (विद्यक्षिते। प्र ३।२।६१) इति किए। १ माता, जननी। २ घोटकी, घोड़ी। ३ कदली, केला। ४ वोच्त् लता। ५ नरम घास। ६ कुश। (ति०) प्रसवकती, उत्पन्न करनेवाली।

प्रसुका (सं॰ स्त्री॰) प्रसूरेन प्रसु-सार्थे-कन् । १ वाजिनी, घोड़ी । २ अभ्वगन्धा, असगन्ध ।

प्रस्त (सं० ति०) प्र-स् कर्त्तार-क । १ सञ्जात, उत्पन्त । २ उत्पादक । (पु०) ३ चाक्षुप मन्यन्तरमें देवगणभेद । १ कुसुम, फूळ । ५ एक रोगका नाम जो स्त्रियोंको प्रसवके पीछे होता है। इसमें प्रस्ताको ज्वर होता,है और दस्त आते हैं।

प्रसूत (हिं पु) एक रोगका नाम जिसमें रोगीके हाथ और पैरसे पसीना छूटा करता है।

प्रस्ता (सं॰ स्त्री॰) प्रस्तेस्म इति पू-सू-कर्त्तरि-क । १ जातसन्ताना, वह स्त्री जिसे वश्चा जना हो । पर्याय— जातापत्या, पूजाता, पूस्तिका । २ घोटकी, घोड़ी ।

प्रस्ति (सं क्ली) पू-स्यते इति पू-स्-िक्तन् । १ प्सव, जनन । पू-स्-भावे-िक्तन् । २ उद्भव । ३ तनय, वेटा । १ - दुहिता, वेटी । ५ सन्तित, अपत्य । ६ कारण, पृकृति । ७ उत्पत्तिस्थान । ८ जातपुसमा स्त्रो, वह स्त्रो जिसने प्सव किया हो। ६ दक्ष प्रजापतिकी स्त्रीका नाम जिनसे सती-का जनम हुआ था।

पृद्तिका (सं॰ स्त्री॰) पृद्धतः स्तोऽस्या अस्तीति ठन् । पृद्धता, वह स्त्री जिसे वश्वा हुआ हो ।

पूर्विज (सं॰ हों॰) पूस्तेक्ज्रयमारम्पेत्यर्थः जायते रित जन-ड । १ दुःख । (ति॰) २ पुसर्वजातमात ।

प्रस्न (सं॰ क्वी॰) पृस्ते स्मेति प्-स्-क्त, ओदित्वात् निष्ठा तस्य नत्वं । १ पुष्प, फ्छ । २ फछ । ३ अर्कवृक्ष, मदार । ४ घोड़ेका मुखका पक रोग । (ति॰) ५ जात, उत्पन्न ।

प्रस्नक (सं॰ ह्ही॰) १ प्रस्न, फूळ । २ मुकुळ, कळी । प्रस्नवाण (सं॰ पु॰) कामदेव ।

प्रस्नवाण (सर्व पुर्व) कामद्य । प्रस्नुवरससंम्मवा (संव स्रीव) पुष्पशकरा ।

प्रस्तेषु (सं० पु०) प्रस्तं पुष्पं इपुर्वाणो यस्य। काम-देव।

प्रसूमन् (सं० ति०) पुष्पविशिष्ट । प्रसूचन् (सं० ति०) फलयुक्त ।

प्रस्त (स'० वि०) प्र-स्य-क । १ प्रवृद्ध, वढ़ा हुआ । २ प्रसारित, फैला हुआ । ३ विनीत, नम्न) ४ नियुक्त, तत्पर । ५ प्रेरित, मेजा हुआ । ६ प्रचलित । ७ इन्द्रियलोलुप, लंपट । ८ गत, गया हुआ । (पु०) ह अर्द्धां अली, गहरी की हुई हथेलो । १० हथेली सरका मान, पसर ।

प्रसृतज (सं॰ पु॰) महाभारतके अनुसार एक प्रकारका पुत जो व्यभिचारसे उत्पन्न हो, जैसे, कुएड और गोलक।

प्रस्ता (सं० स्त्री०) प्र-स्र-क, टाप्। जङ्गा, जांघ। प्रस्ति । सं० स्त्री०) प्र-स्र-किन्। १ विस्तार, फैलाव। २ सन्ति, सन्तान। ३ अर्डाञ्चलि, गहरी की हुई इथेली। ४ सीछह तीलेके कराकरका मान।

प्रस्ए (सं० ति०) प्र-एज-क । १ प्रक्षपंस्पसे सृष्ट, उत्पन्न । २ व्यक्त, परित्यक । ३ क्लेशित, दुःखित । (स्री०) ४ प्रस्ता संगुलि, फीली दुई उंगली ।

प्रसृष्टा (सं० स्त्री०) युद्धका एक दांव।

प्रसेक (सं ॰ पु॰) प्रसेचनमिति प्र-सिच्-धन्। १ सेचन, सींचना। २ निचोड़, निसोध। ३ छिड़काव। ४ नसाध्यरोग, जिरियान। ५ द्रव पदार्थका वह अंश जी Vol. XIV. 165 रस रस कर टपके, पसेव । ६ चरकके अनुसार मुंहसे पानी छूटना और नाकसे श्लेप्मा गिरना ।

प्रसेकता (सं ० स्त्री०) प्रसेकस्य भावः तळ्-टाप्। १ प्रसेकका भाव या धर्म। २ वमनादि समयमें १छिप्मा गिरना।

प्रसेकिन् (सं॰ पु॰) प्र-सिच्-वाहु॰ विणुन् । १ प्रसे-चनशील । २ प्रसेक्युक्त । ३ वणमेद । ४ असाध्य-रोगमेद ।

प्रसेदिका (स[°]० स्त्री॰) क्षुद्राराम, छोटा उपवन । प्रसेदिवत् (सं ० ति ०) प्र-सद-कत्तंरि-कसु । प्रसव । प्रसेन (सं॰ पु॰) अनमिलके पौत क्षतियराज सताजित्के पक भाईका नाम । सताजित्के पास एक मणि था। उस मणिका मुकावला करनेवाला उंसं समय और कहीं भी न था। एक दिन प्रसेन उसे पहन कर शिकार खेलने गये। बहां एक सिंह उन्हें मार मणि ले कर चला। अपनी गुफार्में वह घुसना ही वाहता था, कि उसी समय जाम्बवान् वहां पहुंचा और उसे मार कर मणि छीन ली। उस मणिको जाम्यवान्ने अपने लड्के को खेळनेके लिये दे दिया। सताजित्ने प्रसेनजित्के न आने पर कृष्णचन्द्र पर यह अपवाद लगाया, कि उन्होंने प्रसेनको मणिके छोभसे मार ाला है। छण्ण-चन्द्र इस अपवादको मिद्रानेके लिये जङ्गलमें गये । उन्हीं-ने मार्गमें प्रसेन और उसके घोड़े को मरा पाया 🏮 आगे चलने पर सिंह भी मरा हुआ मिला। मी आश्वर्यान्वित हुए। दूं दृते हुए वे आगे वढ़े और एक गुफामें उन्हें जाम्बबान मिला। ऋक्षराजने उन्हें अभोष्टदेव जान कर भएनी कल्या जाम्बयतीको मणिके साथ अर्पित किया। कृष्णचन्द्र मणि और जाम्बवतीकी छे कर आप और उन्होंने सताजित्को मणि दे कर अप्ना कलङ्क मिटाया। (नागवत १०१५६ २०) यदि कोई नप्ट-चन्द्रके दिन हठात् चन्द्रदर्शन करे, तो दूसरे दिन सवेरे इस मणिहरण-वृत्तान्तका पाठ कर छेनेसे उसका पाप जाता रहता है। भागवतके १०।५६ अध्याय और हरि-वंशमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रसेनजित् (सं॰ पु॰) १ नृपभेद् । प्रवन देखी । २ कोशळाधिपति इक्ष्याकुवंशीय एक राजा । इनके पिता- का नाम सुगन्धि था। इन्होंने मी अजातशिं बुद्धको देखा था। ३ जैनधर्मप्रवर्शक पाश्वनाथदेवके श्वशुर एक राजा। ४ श्रावस्तिके अधिपति।

प्रसेव (सं० पु०) प्रसीव्यतेस्मेति प्र-सिव (अवर्ति सेति। य ३।३।१६) इति घञ्। १ वीणाङ्ग, वीनकी तुंवो। २ कपड़ें की थैंली, थैंला। ३ प्रकृष्ट सेवन। (वि०) ४ स्यूत, सीया हुआ। ५ प्रथित, प्रसिद्ध।

प्रसेवक (सं०पु०) प्र-सिव-ण्डुल् वा प्रसेव एव स्वार्थे कन्। १ वीणाप्रान्तचककाष्ठ, वीनकी तूंवी। इसका पर्याय ककुभ है। २ स्तकी थैली, थैला। ३ थैली वनानेवाला पुरुष।

प्रस्कण्व (सं० पु०) प्रगतं कृण्वं पापं यस्मादिति (परमण्य-हिष्यावृति । पा ६१,१ '५३) इति सुट्। ऋषिविशोप। ये वैदिक सम्ध्याके अन्तर्गत सूर्योपस्थानमन्त्रके ऋषि थे। प्रस्कादन (सं० क्ली०) प्रस्काद-त्युट्। १ विरेचन, जुलाव। २ महादेव। ३ अतीसार रोग। ४ आस्कादन। ४ आस्कादनका अपादान।

प्रस्कन्ति (सं० पु०) संग्रहप्रहणी रोग।
प्रस्कन्त (सं० ति०) प्रकर्षण स्कन्नः, प्रादिस०। पतित,
समाजका नियम भङ्ग करनेवाला। २ गिरा हुआ। (पु०)
३ अध्वरोगविशेष, घोड़ेका एक रोग। इस रोगमें
घोड़ेकी छाती भारी हो जाती और शरीर स्तब्ध हो
जाता है, तथा जब वह चलता है, तब कुवड़ेकी तरह
हाथ पैर वटोर कर चलता है।

प्रस्कुन्द (सं ० पु०) प्रगतः कुन्दं चक्रं, अत्यादिसं, पार-स्करादित्वात् सुट्। कुन्दाच्य चकाकार वेदिका। प्रस्कलन (सं ० क्की०) प्रक्रप्टकपसे स्वलन, पतन। प्रस्तर (सं ० पु०) प्रस्तुणाति आच्छाद्यति यः, प्र-स्तु पचाचच्। शिला, पत्थर। पर्याय-न्य्रावन, पाषाण, उपल, अश्मन, दूशत्, दूषत्, पादारुक, पारटीट, मन्मरु, काचक, शिला।

थोड़ से पत्थर खरडोंके एक जगह रहनेसे गएडशैलकी और बहुतसे पत्थरोंके एक जगह रहनेसे पर्वतादिकी उत्पत्ति है। मट्टीका स्तर किस प्रकार जलवायुके प्रभावसे कठिन हो कर प्रस्तराकारमें रूपान्तरित होता है, उसका विवरण पर्वत शब्दमें सविस्तार लिखा है। पर्वत है भी। वर्षाके अविरत जलकोतसे तथा सामयिक भीषण त्फानसे शिलाखण्ड पर्वत परसे भौत वा विच्युत हो कर नीचे गिर पड़ता है। इस प्रकार बहुवर्षव्यापी संघर्षणसे खण्ड खण्डाकारमें विच्यूण पर्वतका ही पत्थर अभिधान हुआ करता है। समय समय पर पर्वतको काट कर हम लोग आवश्यकतानुसार जो शिलाखण्ड प्रहण करते हैं उसे ही अकसर पत्थर कहते हैं।

पत्थरके प्रधानतः दो मेद हैं—१ सि छह (pervious) अर्थात् जिसमेंसे जल निकलता है और २ छिहहीन (Inpervious) अर्थात् जिसके भीतर जल घुसने नहीं पाता (जैसे कर्दम आदि)। उक्त दोनों श्रेणियोंके मध्य अवस्थान्तरमेदसे पत्थरके नानारूप विभाग और नामसंज्ञा हुई है। आग्नेयगिरि-निःस्त उसत और गलित सावादि शीतल हो कर प्रस्तराकारमें एरिणत होता है उसे आग्नेयप्रस्तर (Igneous rock) कहते हैं। जलमध्य-स्थित परमाणुसमष्टि अपनी शक्ति जम कर किन हो जाती है। जलगभ में उत्पन्न होनेके कारण इस पत्थरका जलज वा पिल य (Aqueous वा Sedimentary) नाम पड़ा है। वह पिलमय भूखण्ड हृदीभूत हो कर पीछे प्रस्तर-स्तर (Stratified rocks)-में क्रपान्तरित होता है।

पूर्वोक्त स्तरके मध्य निहित जीवदेहके प्रस्तरीभूत कङ्कालको उस जोवकी 'प्रस्तरास्थि' (Possils: कहते हैं। कोई कोई पत्थर विशिष्ट जलवायुके गुणसे परिवित्तत हो कर स्फार्टक (कांचकी तरह)-का आकार धारण करता है। इसीका नाम Pebble है। १)

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें लाल, नीला, जर्ड आदि विभिन्न वर्णोंका पत्थर पाया जाता है। घर वनाने, प्रति-मूचि गढ़ने और अलङ्कारादि प्रस्तुत करनेमें ये सव पत्थर; विशेष उपयोगो हैं। दिल्लीके समीपदेशवत्तीं लाल पत्थर, नर्मदा, गोदावरी और कृष्णा तीरवत्तीं श्लेट, रेतीला और मर्मर पत्थर, हिन्दूमन्दिरादिका वेसल्टिक ग्रीन्धोन, ब्रह्म-का मर्मर (बुद्धमूचि वनानेके लिये प्रशस्त), तृत्वा पर्यत-का मर्मरके समान श्वेत पत्थर, जयपुरका वरतन वनाने-का सफेद पत्थर और कैमुर गिरिश्रेणोका पत्थर तथा

[।] १) इसीसे प्रसिद्ध पाथरका नश्मा बनता है।

चैनपुर, सासेरम, तिलोह और अकवरपुरके निकटवर्ती प्रदेशोंका पत्थर कलके जांता, नदीके पुल, घर, देवदेवी की मृत्ति आर जयस्तम्मादि वनानेमें व्यवहृत होता है। भारत, अमेरिका वा यूरोपवासियोंने जब धातुनिर्मित अल्लास्त्रका व्यवहार करना नहीं सीखा था, उस समय आदिम जातिके लोग पकमात पत्थरके अल्लासे ही अपने सभी आवश्यकीय कार्य चलाते थे। उन सब पत्थरोंके वने हुए कुन्हाड़ी, छूरी और तीरके फलकका निदर्शन जगत् के नाना स्थानोंमें पाया गया है।(२)

प्राचीनकालके राजगण प्रस्तरफलकमें राजकीय विशेष कार्यवली लिपिबद्ध करते थे । राज्यजय, प्रामदान, मन्दिर उत्सर्ग और साधारण दानकी पत्रलिपि (सनद्) खरूप यह प्रचलित था।

प्राचीनतम राजाओंके कोत्तिक राप, उनके प्रवर्तित अनुशासन और विभिन् घटनाओंका उल्लेख करते हुए जो उत्कीर्ण प्रस्तरफलक देखे जाते हैं, उन सभी शिला-फलकोंमें तत्सामयिक घटना वा उन सव वंशातुचरित भी कीर्त्तित रहता है। मौजेसने एक प्रस्तर-फलकर्मे ईश्वरकी १० अनुज्ञा (Ten commandments लिपिबद्ध की थी। पिकिन महानगरीके कनफुची-मन्दिर-में १० ढकाछति प्रस्तरखण्डके ऊपर कविता लिखी है। प्रवाद है, कि सान और यौके समयमें वे सव फलक प्रति ष्टित हुए थे । वीद सम्राट् अशोक अपनी कीर्त्तिकी प्रतिष्ठाके लिये तथा अपने धर्मानुशासनका प्रचार करनेके लिये पर्वतगात्र पर अनुशासनसमूह (Edict) उत्कीर्ण कर गये हैं। विस्तृत विवरण विकालिपि और त्रिथदर्शी त्रसृति गन्तें देखों। रेतोले पत्थर ले कर हो पर्वतकी सृष्टि हैं सो नहीं। हिमाछय पर्वत जिस पर्वतराशिसे गठित वन्थ्यागिरिमें वह नहीं है, उसका उपादान पकदम खतन्त है। जिस प्रकार मट्टी कठिन हो कर पत्थरमें परिणत होती हैं, उसी प्रकार कालकामसे और जलवायुके गुणसे तथा पार्श्वस्थ मृत्तिकारसके विशेपत्व-के कारण साधारण पत्थर रूपान्तरित हो कर मूल्यवान्

हीरक और वैदुर्यादि मणिरत्न (Precious stones)में परिणत होता है।

जब हीरकादि मुख्यवान् मणि अथवा अपेक्षाकृत अरुपमुल्यके प्रस्तरादि स्वांभाविक अवस्थामें अर्थात् पर्वं तगहरस्य खानमें वा पर्वं तगावमें निवद रहते हैं, तव वे मनुष्यके किसी काममें नहीं आते। उन्हें काममें लानेके लिये आवश्यकतानुसार काटना होता है। श्वेत, रेतीले वा वानेदार पत्थरको गृह-निर्माणके उप-योगो वनानेके छिये गोलाकार, लम्बे, तिकीण वा चतु-रस्र भावोंमें कारते हैं। जल और वालुके योगसे करात-यन्त्र द्वारा एक वृहत् प्रस्तरखएडको सौ तह करके काम-में लाते हैं। कटोरे, गिलास, आदि पात छेनी यन्तकी सहायतासे इच्छानुसार खोदे जा सकते हैं। मन्दिरगात-में संन्यस्त प्रस्तरफलक Slab) के ऊपर उत्कीर्ण शिल्प-कार्य और चारुचित समूह तथा मिन्न भिन्न देवदेवियों-की मूर्त्ति और मनुष्यकी प्रतिकृति भास्करविद्याका प्रकृष्ट निद्शंन है। आहरु विवा देखी।

खोदित शिल्पके द्वारा जिस प्रकार मोदे पत्थरकी श्रीवृद्धि होती है, उसी प्रकार हीरकादि मणिके पलकी काट कर उसे उज्ज्वल वनाते हैं। हीरक, चूर्ण, पन्ना, मरकत, नील, गार्णेट आदि मणियोंको पल काटनेसे भौज्ज्वल्य और मूल्य वृद्धि होती है। उन्हें आवश्यकता- उसार काटनेके लिये दो तीन प्रकारकी कलें आविष्कृत हुई है। हीर देखों।

स्परोमणि (Alchemist's stone) नामक एक और प्रकारके पत्थरकी वात सुनी जाती है । उसका गुण है अवरावर धातुओंको सुवर्णमें परिणत करनां, किन्तु यह पत्थर है वा नहीं, इस विषयमें छोगोंको अब तक सन्देह है।

चुम्बक (Load-stone) नामक एक और प्रकारका पत्थर है जो अपने गुणसे दूरस्थित छौहादिको आकर्ष ण करता है। वैश्वानिकोंने उस शक्तिको वैद्युतिक वत-छाया है। समुद्रगर्भमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें यह पत्थर पाया जाता है। छोहेंमें इस एत्थरको घिसनेसे उस छोहे-में भी चुम्बकको शक्ति आ जाती है।

जगत्के सभ्य और असभ्य जातियोंके मध्य गिला-

⁽२) मि० वजानकोई, छेफ्टेस्टनेस्विनी, सार्जन गिमरोज सर अलेकसन्दर, कानेहम आदि महोदयोंने स्वप्रणीत प्रन्थमें इसका यथेष्ट प्रमाण हिया है।

ब्जाकी विधि प्रचलित थी । सुसभ्य यूरोपखण्डमें पहले प्रस्तर-पूजाका जैसा समाद्र था, भारतके नाना स्थानोंमें भी उसो प्रकार पूजावाहुत्य दृष्टिगोचर होता है। भारतमें पौत्तलिकताका स्रोत प्रवल होनेसे नाना प्रकार-की देवमूर्त्तिगठन और विद्यनाशके लिये नाना देवताओंकी कल्पनाका प्रयोजन होता है। इस कारण भारतमें जगह जगह सुसभ्य जातिमें भी खोदित प्रतिमूर्त्ति और अखो-दित सिल लोढेकी पूजा ग्राम्य देवताक्रपमें प्रचलित है। गएडकीशिला ले कर शालब्रामक्त्रपमें नारायणकी पूजा, वट अश्वतथ आदि वृक्षोंके नीचे लोई रख कर उसमें सिन्द्र और चन्दनलेपन पूर्वक शिव पञ्चानन्द आदि देवताओंकी पूजा, मनसावृक्षके नीचे लोढे रख कर मनसावेवीकी पूजा, षष्ठी पूजा आदि होती है। वह लोढ़ा-पत्थर नदीमेंसे निकाला जाता है अथवा प्रस्तर खएडसे प्रस्तुत होता है। अलावा इसके खोदितप्रस्तर पर शिव, ब्रह्मा, विष्णु, दुर्गा, काुळो, तारा आदि शक्ति मूर्चि, छक्तो, सर-स्वतो, इन्द्र, यम, राम, कृष्ण और बुद्धमूर्त्तिको भी पूजा देखी जाती है।

भारतीय आयों के सिवा अनायों में भी इस प्रकार शिलामयी प्रतिमापूजाका निदर्शन पाया जाता है। इ हिन्न धर्मप्रन्थमें भी शिलामूर्त्तिका उल्लेख है। फिनिकीयगण एक अखण्ड परथर पर किसी एक देवमूर्तिकी पूजा करते थे। धर्मप्रवर्त्तिक महम्मदके आविर्भावके समय तक अरवी लोग एक खण्ड काले पत्थरकी पूजा करते आ रहे थे, पीले वह पत्थर कन्नकी दोवारमें गाड़ दिया गया। जूनानगरमें भी इस प्रकारका एक और पवित पत्थर है। वहांके अधिवासिगण धर्मके अनुरोधसे सूर्यकी और उस पत्थरको धुमाते हैं। हिन्नाइडिसमें एक कृष्णवर्णका पत्थर है जिसे वहांके लोग जात्रत् वतलाते हैं। समय समय पर वह पत्थर आकाशवाणी द्वारा जनसाधारणको सभी-विषय जताते हैं।

मुगलसम्राट् वावरने लिखा है, कि जामयुद्धके अभि-नयमें पारसिकोंके मध्य आत्मविवाद खड़ा करनेके लिये पेन्द्रजालिकोंने अपने अपने पत्थर (magic stone) लेकर कार्य आरम्भ किया था।(४) आज भी मध्यपिशया-की भ्रमणशील जातिमें उस पत्थरकी गुणावलिका आदर है। तुकंमानोंका रजिया सरदार और कीरघीज वस्ती सरदार आज भी इस पत्थरको अपने साथ लिये फिरते हैं। विषाक्त सर्प वा विच्लू (Scorpions) के काटनेसे यह कुरानके फतिहा-मन्त्रको अपेक्षा विशेष उपकारो है, ऐसा उन लोगोंका विश्वास हैं।

इङ्गलेंग्डदेशीय वृत्ताकार न्यस्त प्रस्तरावलाको प्रोन-हें (Stone-henge) कहते हैं। वह एक प्राचीन कीर्त्तिका निदर्शन है। दक्षिणभारतमें कृष्णातीरवर्ती अम-रावती नगरके वृत्ताकारमें प्रोधित लम्यमान प्रस्तर वौद्ध-शिल्पका निदर्शन होने पर भी एक दूसरेके अनुक्ष है। वर्त्तमान प्रथासे खोदित और शिल्पयुक्त 'फ्राश' चिहित-प्रस्तरस्तम्भके वदले पहले समाधिस्तम्भक्षपमें शबदेहके ऊपर जो पत्थर सजाया जाता था, उसे 'क्रमलेक' (Cromleche) कहते थे। जिस भाग्य-प्रस्तर (Stone of Destiny) से आयर्लेंग्डके राज्यगण राज्याभिषिक होते थे, वह अभी वेष्टमिनिष्टरके प्राचीन राजतत्वक नीचे जड़ा हुआ है।

पहले यूरोपलएडमें राजाओंको पत्थर पर विटा कर जैसी वड़ी धूमधामसे अभिवेक करानेकी प्रथा थी, राजपूत राजाओंमें भी वैसा हो राज्याभिवेक देखा जाता है। इस प्रकारका प्रस्तरसिंहासनाभिवेक कानान जातिके मध्य (Canaanitish of origin) प्रचलित था। खीडन और दिनेमारके राजगण गोलाकार पत्थर पर अभिविक होते। हैं अविमेलेकराज(King Abmelech) साचेमके स्तम्म पर(Pillers of Shechem) और जेहोयस (Jehoash) प्रस्तरस्तम्म पर वैट कर राजा होते हैं। गायल (Gael) जिस पत्थर पर वैटा करते थे, वह पवित और ऐशी-शिकिविशिष्ट समभा जाता है। जैक केड (Jack Cade) ने लएडननगरका प्रस्तर खुला कर ही मर्टिमरको लएडनका राजा वतलाते हुए घोषणा कर दी थी। आइरिस सर-दारगण सम्पद्याप्तिकालमें प्रस्तर पर वैटते थे। हिरो-दोतसने पत्थर पर वीरोंके पदिचहका विषय उल्लेख

⁽३) पावैतीय आदिम अनार्थ आतिकी प्रस्तर-पूजा कोट, गोंड आदि शन्दोंमें विवृत हुई है

⁽⁸⁾ Baber's Memoirs p. 450.

किया है। गयामें विष्णुपद, वृत्दावनमें कृष्णपद और | सिंहलमें वौद्धपदिवह-समृह प्रस्तर पर अङ्कृत है।

कोल और बस लोगोंके मध्य स्मरणार्ध प्रस्तरवण्ड (Monoliths) रखा जाता है। हिमालय-पर्वतवासी कुनावरोंके मध्य शस्यरश्राके लिये बेतमें प्रस्तरपूजा-विधि प्रचलित है। वह जमीन अधिक शस्यशालिनी होवे, पेसा कह कर वे एक खएड पत्थर पर चूना और सिन्दूर पोत देते हैं। पीछे उसमें पांचों उंगलोकी छाप मार कर पूजा करते हैं। दाक्षिणात्यके उचानमें अथवा मैदानके किनारे वृक्षके नीचे सिन्दूर छगे हुए बहुतसे प्रस्तरखएड देखे जाते हैं। महिसुरवासी असग छोग भी शिला ले कर भूमिदेवताकी पूजा करते हैं। रेवासे ले कर वस्ता तकके विस्तृत स्थानमें सभ्य और असभ्यों-के मध्य प्रस्तरपूजा देखी जाती है। दाक्षिणात्यके वक-दार और वेतदार नामक निरुष्ट जातिके छोग अपने अपने घरमें प्रस्तरखण्ड पर भूतदेवकी पूजा करते हैं। वहांके अन्यान्य स्थानींमैं इचक लोग शस्यक्षेतादिमें पांच खएड पत्थर सिन्दूरसे पोत कर रख देते हैं। जिन्हें वे लोग शसाक्षेतका रक्षाकर्त्ता और पञ्चपाण्डु कहते हैं। लम्पत् राज्यके वे कुनई नगरवासी एक खएड शायित पत्थरकी छाती पर एक शिलाको खडा करके धर्मकपूमें कर उसकी पूजा करते हैं। उनका विश्वास है, कि इस देवता-के समीप अभक्तिपूर्वक जानेसे उसकी माग्यलक्मी अप्रसन्न हो जाती है।

भारतमें जिस प्रकार हिन्दू-देवदेवियोंकी प्रस्तरमूर्ति-का विशेष आदर हैं, भीसवेशमें भी पहले उसी प्रकार जिएटर, भिनस आदि शिलामूर्तियोंकी पूजा प्रचलित थी। आज भी वे सव देवमूर्तियां देखनेमें आती हैं।

२ मिण । ३ दभैमुप्ति, डाभ या कुशका पूला । ४ पत्ते आदिका विछावन । ५ विछावन । ६ चमड़े की थैली । ७ चौड़ी सतह, समतल । ८ प्रस्तार । ६ एक तालका नाम ।

प्रस्तरण (सं० क्लो॰ १ आस्तरण, विछावन। २ विछाना, फैलाना।

प्रस्तरणी (स'० स्त्री०) प्रस्तरस्तदाकारोऽस्त्यस्या इति प्रस्तर इति, ङीप् । १ गोलोनिका, स्वेतदूर्वा । २ गोजिहा । Vol XIV. 166

प्रस्तरभेद (सं॰ पु॰) पाषाणभेद, पखानभेद ।
प्रस्तरस्वेद (सं॰ पु॰) वातादिरीगमें स्वेदविशेष ।
प्रस्तरेष्ठ (सं॰ पु॰) प्रस्तरे तिष्ठति स्था-क, अलुक्
समासः, ततः पत्वं । प्रस्तरस्थायी विश्वदेवभेद ।
प्रस्तरोदभूत (सं॰ क्ली॰) प्रस्तरज्ञ ।
प्रस्तरोपल (सं॰ पु॰) चन्द्रकान्तमणि ।
प्रस्तव (सं॰ पु॰) १ स्तुति, प्रशंसा । २ प्रभाव, शुभ
महर्त्तं ।

प्रस्तान्न (सं • क्की •) पुरातन तंडुल, पुराना चावल । प्रस्तार (सं • पु •) प्र-स्तु-घञ् । १ तृणवन, घासका जंगल । पर्याय—तृणाट्यी, ऋष् । २ पह्नवादि रिचत शयनीय, घास या पत्तियोंका विछीना । ३ शय्यामाल, विछीना । ४ विस्तार, फैलाव । ५ आधिक्य, वृद्धि । ६ परत, पटल । ७ सोपान, सीढ़ी । ८ समतल, चौड़ी सतह । छन्दोशास्त्रके अनुसार नौ प्रत्ययोंमें पहला । इससे छन्दोंके भेदकी संख्या और क्पोंका ज्ञान होता है । इसके दो भेद हैं, वर्ण प्रस्तार और मालाप्रस्तार ।

प्रस्तारपङ्कि (सं॰ स्त्री॰) छन्दोभेद । यह पंक्ति छन्दका एक भेद हैं। इसके पहले और दूसरे चरणोंमें वारह वारह अक्षर और चौथेमें आठ अक्षर होते हैं।

प्रस्तारिन् (सं० ति०). प्रस्तारोऽस्थास्तीति इनि । प्रस्तार-युक्त, सम्या चीझा ।

प्रस्तार्थमें (सं क्की) नेतरोगभेद, आँखका एक रोग। इसमें आँखके डेले पर चारों ओर लाल या काले रंगका मांस बढ़ आता है। चैचकके अनुसार इसकी उत्पत्ति सन्निपातके प्रकोपसे मानी गई है।

प्रस्ताव (सं० पु०) प्र-स्तु (प्रस्तुइ स्वुदः। पा ६।३।२०) इति धञ्। १ अवसर। २ प्रसङ्ग, छिड़ी हुई वात। ३ प्रकरण, विषय। ४ अवसर पर कही हुई वात, जिक, चर्चा। ५ समाके सामने उपस्थित मन्तव्य, सभा समाजमें उठाई हुई वात। ६ सामचेदका एक अंश जो प्रस्तोता नामक अप्रत्विक द्वारा पहले गाया जाता है। ७ प्राक्कथन, विषय-परिचय।

प्रस्तावन (सं० पु०) १ प्रस्ताव करनेकी किया । २ प्रस्ताव करनेका भाव ।

प्रस्तावना (सं ० स्त्री०) प्रस्तावयति विज्ञापयति कार्या-

दिकमिति प्र-स्तु-णिच्-राप्। १ आरम्म। २ नारकादि प्रन्थमें अभिनयारम्म विषयक कथा, नारकमें आख्यान या वस्तुके अभिनयके पूर्व विषयका परिचय देने, इतिवृत्त स्वित करने आदिके लिये उठाया हुआ प्रसङ्ग। स्वधार, नर, नरी, विद्यक, पारिपार्थिकके परस्पर कथोपकथनके रूपमें प्रस्तावना होती है। इसमें कभी कभी कविका परिचय, सभाकी प्रशंसा आदि भी रहती है। भरतमुनिने इस प्रस्तावनाके पांच भेद वतलाये हैं, उद्धात्यक, कथो-द्धात, प्रयोगातिशय, प्रवर्त्तक और अवलित।

(साहित्यद्य ६१२८८)

प्रस्तावित (सं० ति०) जिसके लिये प्रस्ताव किया गया हो, जिसके लिये प्रस्ताव हुआ हो।

प्रस्ताव्य (सं० ति०) प्रस्तावनाके योग्य, प्रस्ताव करने लायक ।

प्रस्तिर (सं॰ पु॰) प्रस्तर निपातनात् इत्वं । पल्लवादि-रचित शम्या । घास पत्ते आदिका विछावन ।

प्रस्तीत (सं० ति०) प्र-स्तै-क (अस्योऽ वरस्याम्। प्राचित्र हित्र निष्ठा तस्य मो वा। १ संहत। २ ध्यनित। प्रस्तुत (सं० ति०) प्रस्तूयते स्मेति प्र-स्तु-क। १ प्रकरण-प्राप्त, जो कहा गया हो। २ प्रासङ्गिक, जिसको वात उठाई गई हो। ३ निष्यन्त, जो किया गया हो। ४ प्रक्षेस्तुति-युक्त, जिसकी अच्छी तरह स्तुति या प्रशंसा की गई हो। ५ उपस्थित, जो सामने हो। ६ प्रतिपन्न, प्राप्त। ७ उपयुक्त, थोग्य। ८ प्रशंसित, जिसकी तारोफ को गई हो। ६ उद्यत, तैयार। १० प्राकरणिक, प्रकरणयुक्त।

प्रस्तुतालङ्कार (सं॰ पु॰) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें एक प्रस्तुतके संवन्धमें कोई वात कह कर उसका अभि-प्राय दूसरे प्रस्तुतके प्रति घटाया जाता है।

प्रस्तुति (सं॰ स्त्री॰) १ प्रस्तावना । २ प्रशंसा, स्मृति । ३ उपस्थिति । ४ निष्पत्ति, तैयारी ।

प्रस्तूत (सं॰ पु॰) चाक्षष मन्चन्तरमें देवमेद ।

प्रस्तुत (सं० ति०) प्र-स्तु-क । १ अन्तरित । २ प्रकर्ष-कपसे विस्तारित ।

प्रस्तोक (सं॰ पु॰) १ सञ्जयके पुत्रका नाम । २ एक प्रकारका सामगान ।

प्रस्तोता (सं 0 पु ०) एक सामवेदी ऋत्विक् जो यहींमें

पहले सामगानका आरम्भ करता है। (ति॰) २ प्रकर्ष-रूपसे स्तोता।

प्रस्तोतः (सं० पु०) वस्तोता देखा ।

त्रस्तोभ (सं ॰ पु॰) प्र-स्तुभ-घञ् । १ निवृत्तिमार्ग, प्रोत्सा-हन । २ सामभेद ।

प्रसथ (सं० पु० क्वी०) प्रकर्षण तिष्ठतीति प्र-स्था (अत्वधीप-धर्मे । पा ३ १ ११३६) इति-क ; वा प्रतिष्ठतेऽस्मिन् अनेन वेति घअर्थे क । १ परिमाणविशेष, प्राचीन कालका एक मान । यह मान दो प्रकारका होता है, एक तौलनेका, दूसरा मापनेका । कोई चार कुड़वका और कोई दो शराव-का कुड़व मानते हैं । वहुतोंके मतसे एक प्रस्थ एक अढ़क का चतुर्थीश माना गया है । वमन, विरेचन और शोणित मोक्षणमें साढ़े तेरह पलका प्रस्थ माना जाता है । कुछ लोग इसे छः पलका और कुछ लोग द्रोणका धोड़शांश मानते हैं । २ पहाड़ोंका ऊंचा किनारा । ३ वह भाग जो ऊपर वहुत उठा हो । ४ विस्तार ।

प्रस्थकुसुम (सं॰ पु॰) मरुवक वृक्ष, मरुवा।

प्रस्थपुष्प (सं॰ पु॰) १ मरुवेका पौधा । २ छोटे पत्तींको तुलसी । ३ जम्बीरो नीवू ।

प्रस्तम्पच (सं ० ति०) प्रस्थ-पचनशील।

प्रस्थल (सं० पु०) महाभारतके अनुसार पंजावके निकर-का एक देश जो उस समय सुशर्मा नामक राजाके अधि-कारमें था।

प्रस्थान (सं० क्की०) प्र-स्था-ल्युद्। १ अभियान, विजयके लिये सेना या राजाकी याला। २ गमन, रवानगी। ३ मार्ग। ४ उपदेशकी पद्धति या उपाय। ५ वैखरी वाणीके भेद जो अठारह हैं, यथा—४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। ६ पहननेके कपड़े आदि जिसे लोग यालाके मुद्धत्ते पर घरसे निकाल कर यालाकी दिशामें कहीं पर रखवा देते हैं। जब कोई ठीक मुद्धत्ते पर याला नहीं कर सकता, तब ऐसा किया जाता है।

प्रस्थानविञ्च (सं॰ पु॰) प्रस्थानस्य विञ्ञः । गमन-व्याघात, जानेमें रुकायट ।

प्रस्थानी (हि॰ वि॰) प्रस्थान करनेवाला, जानेवाला । प्रस्थानीय (सं॰ बि॰) प्र-स्था-अनीयर् । प्रस्थान योग्य । प्रस्थापन (सं॰ क्ली॰) प्र-स्था-णिच्-त्युट् । प्रस्थान कराना, भेजना । २ प्ररण । ३ स्थापन ।

प्रस्थापित (सं० ति०) प्र-स्था-णिच्-क । १ प्रे पित, भेजा हुआ। २ प्रकर्षह्रपसे स्थापित। प्रस्थाव्य (सं॰ ति॰) १ प्रस्थानयोग्य । २ प्रेरणायोग्य । प्रस्थायी (सं ० वि०) प्र-स्था 'भविष्यति गमिगाम्यादयः' इति णिनि । भाविगमनकर्त्ता, जो भविष्यमें प्रस्थान करने-वाला हो । प्रस्थावत् (सं ० ति०) प्रयाणसमर्थं, जो प्रयाण कर सकता हो। प्रस्थिका (सं ० स्त्रो॰) प्रस्थस्तदाकारोऽस्या इति प्रस्थ-उन् । १ अम्बद्धा, आमङ्ग । २ याचिका, पुरोना । प्रस्थित (सं ० ति ०) प्र-स्था-क । १ गमनोद्यत, जो जाने-को तैयार हो। २ स्थिर, उहरा धुआ। ३ दृढ़, मजबूत। ४ गत, जो गया हा। (पु०) ५ सोमपातमेद। मस्थिति (सं ० ति ०) प्रस्थान, याता । प्रस्थेय (सं ० ति०) प्रस्थानयोग्य । पुक्त (सं ॰ पु॰) स्नानपत । पूजव (सं ॰ पु॰) म स्तु अप्। १ श्लीराभिष्यन्द, दूधका वहना। २ क्षरण, टपकना। प्रस्नातृ (सं० ति०) स्नानकारो, स्नान करनेवाला । प्रसाचिन् (सं० वि०) क्षरणशील । प्रस्तिग्ध (सं० ति०) १ तैलाक्त । २ स्नेहलिस । ३ प्रिय-वन्धु । प्रस्तुपा (सं॰ स्त्रो॰) स्नूपायां स्नूपा पृपोदरादि॰ साधुः। पतोद्व, पोतेकी स्त्रो। पस्नेय (सं० ति०) प्रस्नातुमर्रति प्र-स्ना-अर्हार्थे यत्। स्तानाई जलादि, स्तान करने योग्य जल आदि। प्रस्पन्दन (सं० क्ली०) प्र-स्पन्द-भावे-ल्युट् । प्रकर्षक्रपसे स्पन्दन । मस्फुट (सं॰ ति॰) प्रस्फुटित विकशतोति प्र-स्फु-क । १ प्रकुछ, बिला बुआ। २ प्रकाशित, साफ, प्रकट। प्रस्फोटन (सं॰ क्ली॰) प्रस्फोट्यते उनेनेति प्र-स्फुट-णिच्, करणे ल्युट्। १ सूर्प, सूर। २ ताड़न, पीटना। ३ विका-शन, विकसित होना या करना। ४ फटकना। ५ किसी वस्तुका इस प्रकार पकवारगी खुळना या फूटना उसके भीतरके पदार्थ बेगसे वाहर निकल पड़ें।

क्षरण, अच्छी तरह भरना। (ति०। २ प्रक्षरणकर्त्ता, वहानेवाला । प्रस्यन्दन (स'० क्वी०) प्र-स्यन्द-ल्युट् । १ प्रकपरूपसे क्षरण। २ क्षरण, निःसरण। प्रस्यन्दिन् (सं॰ ति॰) प्र-सान्द-अस्त्यर्थे इनि । १ प्रसान्द- ' युक्त। २ क्षरणशील। प्रसंस (सं॰ पु॰) गर्भका पतन, भ्रंश। प्रसंसिन् (सं० वि०) १ पतनशील, गिरनेवाला। २ अकालप्रसवशील, अकालमें गिरनेवाला। प्रस्रव (सं॰ पु॰) प्र-स्नु-अप् । क्षरण, भरना, वहना । प्रस्रवण (सं ॰ पु॰) प्रस्नवति जलमस्मादिति प्र-स्नु-अपा-दाने ल्युट्।१ माल्यवत् पर्वतः। २ खेद, घर्म, पसीनाः। ३ किसी स्थानसे गिर कर वहता हुआ पानी, प्रपात, भरना, निर्भर । संस्कृत पर्याय उन्स, जलप्रसाव। प्रसवणजलका गुण—खच्छ, लघु, मधुर, रोचन और दोपक। ४ जल आदि द्रच पदार्थी का टपक टपक कर या गिर गिर कर बहना। ५ किसी स्थानसे निकल कर वहता हुआ पानो, स्रोता। ६ दुग्ध, दूध। ७ सूत्र, पेशाव। त्रस्रवणी (सं o स्त्री०) वैद्यकके अनुसार वीस प्रकारकी योनियोंमेंसे एक । इसका दूसरा नाम दुष्पजाविनी है। इसमेंसे पानी-सा निकलता रहता है । इस योनिवाली स्त्रीको सन्तान होनेमें बड़ा कप्ट होता है। प्रसाव (सं ॰ पु॰) प्रस्यते इति प्र-स्नु (प्रे ुस्तुन्धुः ए। शशर७) इति धन्। १ प्रकर्पस्तपसे क्षरण, अच्छी तरह वहना। २ मूब, पेशाव। विशेष विवरण मूत्र शब्दमें देखो। ३ गोमूल, गायका मूत । गोमूल अति पवित है । रोहिणी-नक्षतमें गोमूत्रसे यदि मानव स्नान करे, तो उसके सव प्रकारके दोष जाते रहते हैं। "प्रसावेण तु यः स्नायात् रोहिण्यात् मानचो द्विजः। सर्व पापकतान् दोषान् द्हत्याशु न संशयः॥" (वराहपु०) ८ प्रस्रवण, भरता। प्रसृत (सं ० ति०) प्रन्तु-कः। क्षरित, मज़ा हुआ, गिरा प्रस्थन्द (सं ॰ पु॰) प्र-स्थन्द-भावे-घञ् । १ प्रकर्षकपसे प्रस्नुति (सं ॰ स्त्री॰) क्षरण, निःसरण ।

प्रस्तन (सं॰ पु॰) प्र-स्वन-भावे अप्। उच्चैःशब्द, ऊंचा स्वर ।

प्रसाद (सं ० ति ०) प्र-स्वद्-णिच्-असुन् । प्रकर्वरूपसे स्वाद्यिता, भच्छा स्वाद् देनेवाला ।

प्रस्तान (सं० पु०) प्र-स्तन-घञ्। उच्चैःशब्द जोरका शब्द।

प्रस्वाप (सं ॰ पु॰) प्रस्वाय्यते शबुरनेन प्र-खप-णिच्-करणे-अच्। १ शबुको प्रस्वापनसाधन अस्त्रभेद, एक अस्त्र जिसके प्रयोगसे शबुको युद्धस्थलभे निद्रा आ जाती है। २ वह वस्तु जिसके प्रयोगसे निद्रा आवे।

प्रसापन (सं० क्वी०) प्र-स्वप-णिच्-करणे स्युट् हर शतुके निद्राकारक अस्त्रमेद । (ति०) २ निद्राजनक।

प्रस्वापिनो (सं ० स्त्री०) हरिव शके अनुसार कृष्णचन्द्रकी एक स्त्रीका नाम।

प्रखेद (सं॰ पु॰) प्र खिद्-घञ्। अतिशय घमं, पसीना । प्रखेदिन् सं॰ ति॰) प्रखेद- अस्त्यर्थे इति । प्रखेद-युक्त, घमँयुक्त ।

प्रहणन (सं० क्वी०) प्र-हन-ल्युट् (इग्तेरत् पृष[®]स्य । पः ८।४।२२) इति णत्वं । प्रकृष्टस्तपसे हनन, अच्छी तरह मारना ।

प्रहत (सं ० ति ०) प्रहन्यते स्मेति प्र-हन-क । १ हत, मारा हुआ । २ प्रताड़ित, पीटा हुआ । ३ प्रसारित, फैलाया हुआ । (पु०) ४ पासे आदिका फेंकना। ५ प्रहार, वार, ठोकर।

प्रह्नेमि (सं०ु०) प्रहाणां नैमिरिव, निपातनात् प्रसार प्रां चन्द्र, चन्द्रमा।

प्रहन्तव्य (सं• ति॰) प्रं-हन-तव्य । प्रहणनयोग्य, वध योग्य ।

प्रहत्तु (सं ० ति ०) प्र-हन-तृच् । हन्ता, मारनेवाला । प्रहर (सं ० पु ०) प्रहियते हकादिरस्मिन्निति प्र-ह-यम् अप् वा । दिनके ओठ सम भागोंमेंसे एक भाग, प्रहर । दिवा और राति मान समान नहीं रहता, इसीसे दिवा-द्राहके चार भागमेंसे एक भागको 'दिवाप्रहर' और रातिमानके चार भागमेंसे एक भागको 'रातिप्रहर' कहते हैं। यांम शब्द है हो।

प्रहरक (सं ॰ पु॰) १ प्रहरी, वह मनुष्य जो पहरे पर हो और घंटा वजाता हो । २ प्रहरिता, प्रहरीका काम । प्रहरकुटुवी (सं० स्त्री०) प्रहरसत्र कुटुवी कुटुम्बिनी व । कुटुम्बिनी क्षुप, अर्कपुष्पी ।

प्रहरण (सं क् क्वी) प्रहियतेऽनेनेति प्र-द्व-करणे ल्युर्। १ अस्त्र, हथियार। २ युद्ध, लड़ाई। ३ प्रहार, वार। 8 हरण करना, छीनना। ५ मारना, आघात पहुंचाना। ६ फें कना, हटाना। ७ स्त्रियोंकी सवारीके लिये एक प्रकार-का परदेवाला रथ, वहली। ८ मृदङ्गके वारह प्रवन्धमंसे एक।

प्रहरणकिलका (सं० स्त्रो०) चतुर्दशाक्षरपादक छन्दोभेद, चौदह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति । इसके प्रत्येक चरणमें दो नगन, एक भगण, फिर एक नगण और अन्तमें लघु गुरु होते हैं।

प्रहरणीय (सं० वि०) प्र ह-अनीयर् । प्रहरणके योख।
प्रहरी (सं० पु०) प्रहरोऽधिकारकालत्वेनास्त्यस्य इति।
१ यामिक, पहर पहर पर घंटा वजानेवाला, घड़ियालो।
२ प्रहरकालाधिकत सैन्यभेद, पहरा देनेवाला, नौको-दार।

प्रहत्त[°]च्य (सं ॰ त्नि ॰) प्र-ह्न-तच्य । प्रहरणीय, प्रहारयोख । प्रहर्त्ता (सं ॰ त्नि ॰) १ प्रहार करनेवाला । २ योदा । प्रहत्त्^९ (सं ॰ त्नि ॰) प्रहर्ता देखो ।

प्रहर्ष (सं० पु०) प्र-हृष्-घञ् । आनन्द, हर्ष । प्रहर्षेण (सं० पु०) प्रहर्षेयतीति प्र-हृष-णिच्-ल्यु । १ बुधप्रह । २ आनन्द । ३ एक अलङ्कार । इसमें बिना उद्योगके अनायास किसीके वांछित पदार्थंकी प्राप्तिका वर्णन है । (त्नि०) २ हर्षविशिष्ट, हर्षकारक ।

प्रहर्षणी (सं ॰ स्त्री॰) प्रहर्षयतीति प्र-हृप-णिच्, स्यु, स्रीष्। १ हरिद्रा, हस्दी। २ छन्दोभेद, एक प्रकारकी वर्णवृत्ति। इसके प्रत्येक चरणमें मगण, फिर नगण, फिर जगण, रगण और अन्तमें एक गुरु होता है। तीसरे और दशवें वर्ण पर यति होती है।

प्रहृषुल सं ॰ पु॰) बुध नामक प्रह ।

प्रहस (सं ॰ पु॰) राक्ष्सिमेद, एक असुरका नाम।
प्रहसन (सं ॰ क्री॰) प्र-हस-भावे-ल्युट्। १ प्रहास,
अट्टहास, जोरकी हँसी। २ परिहास, हंसी, दिल्लगी।
३ रूपकभेद। ४ हास्यरसप्रधान नाटकाङ्गभेद। इसमें
हास्यरस ही रहता है। पहलेके प्रहसनेंमिं एक ही अंक

होता था, पर अव लोग कई कई अङ्कोंका प्रहसन लिखते हैं। समाजका कुरीतिसंशोधन और रहसाजनक विव-रणका वर्णन करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इस खेलमें नायक कोई राजा, घनी, ब्राह्मण वा धूर्त होता है और अनेक पात रहते हैं। इनमेंसे नीच जातिके पुरुष स्त्रियोंकी तरह प्राकृतभाषामें कथोषकथन करता है। 'हासप्रार्णव', 'कौतुकसर्वेख' और 'धूर्त्तसमागम' आदि प्रसिद्ध प्रहसन हैं।

साहित्यद्रपंणके मतसे प्रहसनमें 'भाण'-के जैसा सन्धिका अङ्गसमृह, लास। और अङ्गाङ्कादि रहे'गे। इस-में वृत अर्थात् नादकीय विषय कविकल्पित होना विधेय है। प्रह्सनमें हासारस अङ्गी है। तपस्वी और ब्राह्मण आदि नायक होते हैं। खेल भरमें हासत्ररस प्रधान रहता है। नाटक देखो। ४ व्यङ्गोक्ति, चुहल, खिल्ली। प्रहसन्तो (सं ० स्त्रो०) प्रहसति प्रकर्षेण विकशतीति १ यूथी, जूही। २ वासन्ती । प्र-हस-शतु **डोप**् प्रकृष्ट अङ्गारधानी, अच्छी अंगेठी। प्रहसित (सं ० पु० । बुद्धभेद, एक बुद्धका नाम । प्रहस्त (सं॰ पु॰) प्रततः प्रसृतो वा हस्तो यत। विस्तृतांगुलि पाणि, चपत, थप्पड़ । २ रामायणके अनु-सार एक सेनापतिका नाम। प्रहा (सं ० स्त्री०) प्रहन्ता, प्रहणनकारी । प्रहाण (सं ० ह्वी० १ परित्याग । २ चित्तकी पकाव्रता, ध्यान । प्रहाणि (सं ० स्त्री०) प्र-हा-नि, तती णत्वं । १ अपचय, हानि, घाटा। २ परित्याग। ३ हानि, नाश।

प्रहार (स'० पु०) प्रहरणमिति प्र-ह्र-घञ्। १ आघात, चोट। २ निश्रह, युद्ध।

प्रहारक (सं॰ पु॰) प्रहारकारी, मारनेवाला ।

प्रहारण (सं: क्ली॰) प्र-ह्र-णिच्-ल्युट्। काम्यदान, मनचाहा दान .

प्रहारना (हिं० किं०) १ आघात पहुंचाना, मारना । २ मारने-. के लिये चलाना, फे कना।

प्रहारवर्मन् (सं॰ पु॰) मिथिलाके एक राजा। प्रहारवल्ली (सं ० स्त्री०) मांसरोहिणी खता । प्रहारिन् (सं ० ति०) प्र-ह्र-णिनि । १ प्रहारकर्त्ता, मारने-Vol. XIV. 167

२ चलानेवाला, फे कनेवाला। ३ नष्ट करने-वाला, दूर करनेवाला। (पु॰) ४ राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम।

प्रहारुक (सं ० ति ०) वलपूर्वक हरणकारो, जवरदस्ती छोननेवाला ।

प्रहार्य (सं ० ति ०) १ प्रहारयोग्य, मारने योग्य । २ हरण-योग्य ।

प्रहावत् (सं० ति०) प्रहा-मतुष् मसा व। प्रहरण-युक्त ।

प्रहास (सं ॰ पु॰) प्रकृष्टी हासी यसा वा प्र-हस-धन्। १ शिव। २ कार्त्तिकेयका एक अनुचर। ३ नागविशेष। प्रकृष्टो हासी यस्पात्। ४ नट। ५ अट्टहास, जोरकी हं सी, उहाका। ६ सीमतीर्थंका एक नाम। यह प्रभास-का शकृत रूप जान पड़ता है।

प्रहासिक (सं ॰ पु॰) हासाजनक, लोगोंको ह्'सानेवाला । प्रहासी (सं ० ति ०) प्रकृष्टं हासयित हसति च यः, प्र-हस-णिच् वा णिनि। १ हासकारक, ह'सानेवाला। पर्याय-वासन्तिक, केलिकिल, वैहासिक, विदूषक, भीतिद् । २ हासकारी, ह सनेवाला ।

प्रहि (सं c go) प्रकर्षेण हियतेऽत्रेति प्र-ह (प्रहरतेः कृषे । उग् । ४।५२४ / इति इण्, सच डित् । कूप, कुआँ ।

प्रहित (सं ॰ क्वी॰) प्रधीयते स्मेति-प्र-धा-क । १ प्रेरित, उसकाया हुआ। २ क्षिप्त, फेंका हुआ। ३ फटका हुआ। (क्वी॰) 8 सूर्प, सूप। ५ सामभेद, एक प्रकारका साम।

प्रहितङ्गम (सं० ति०) किसी कर्मोहे शसे गमन्कारी, किसी कामसे जानेवाला।

प्रहिता (सं॰ स्त्री॰) प्रसारणी नामकी छता, गन्धप्रसारी। प्रहीण (सं ० ति०) प्र-हा-त्यागे क (वु मस्यमेति । प्र शिक्षा । इति स्रात ईत्, (आदितथा । ११२।१५) इति निष्ठा तस्य न, ततो णत्व । परित्यक्त, छोड़ा हुआ। प्राहीरजा (सं ० स्त्री०) कुटुम्बिनी क्षप ।

प्रहुत (सं ० क्ली ०) प्रहुयते स्मेति प्र-हु-का । भूतयश, विल-वैश्वदेव।

> "अहुतञ्च हुतम्बेव तथा प्रहुतमेव च। ब्राह्म' हुतं प्राशितञ्च पञ्चयशान् प्रचक्षते॥

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको चलिः। ब्राह्मत्रं हुतं द्विजाब्रत्रार्था प्राशितं पितृतर्थणम्॥" (मनु ३। ३)

अहुत, हुत, प्रहुत, ब्रह्माहुत और प्राशित थे पांच यह पश्चमहायह हैं। इनमेंसे जपका नाम अहुत, होमका नाम हुत और भूतयहका नाम प्रहुत है। भूतयह शब्दसे अतिथि-सेवाका हो वोध होता है। यह भूतयह वा प्रहुत प्रत्येक व्यक्तिको करना चाहिये।

प्रहृति (सं । स्त्री ।) प्रकृष्टी हुतिः प्राविस ।। प्रकृष्टा आहुति ।
प्रहृत (सं । क्रि) प्र-ह-कमीण-क । १ इतप्रहार, मारा
हुआ । २ प्रक्षित, फेंका हुआ । ३ पीटा हुआ, ठोंका हुआ ।
(पु ०) ४ प्रहार, सीट, आघात । ५ एक गोलकार ऋषिका
नाम ।

प्रहृष्ट (सं ० ति ०) प्र-हृष क्त । अतिशय आहादित, अत्यन्त प्रसम्ब ।

महत्रक (सं o पुo) काक, कौवा ।

प्रहेणक (सं० क्ली०) प्रहेलकं पृयोद्दादित्वात् लसा ण। पिष्टकविशेष, लपसी। पर्याय—वाचन, व्रतोपायन, प्रहे-लक, वाचनक्।

प्रहेलक (सं क्हीं) प्रहिलति खादादिना अभिपायं स्चयतीति प्र-हिल-भावेसेचने ण्युल् वा । १ प्रहेणक, इपसी । २ पहेली ।

प्रहेलिका (सं ० स्त्री०) प्रहिलित अभिप्रायं स्वयतीति प्र-हिल अभिप्रायस्वने क्युन् टापि अत-इत्वं। दुविक्षानार्थं प्रश्न, क्टार्थभाषिता कथा, पहेली। पर्याय—प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविहका, प्रविक्षा भेद वेखे जाते हैं, यथा—समागताप्रहेलिका, विश्वता, न्युत्कान्ता, प्रमुषिता, परुषा, संख्याता, प्रकितता नामान्तिता, निभृता, सम्मूहा, परिहारिका, प्रकच्छना, उभयच्छन्ना और सङ्कोणां। सरस्रतीकण्डा भरणमें ये सब भेद और उदाहरण लिखे हैं। इसके फिर दुए और निर्दष्टभावसे भी अनेक भेद कल्पित हुए हैं। इनमेंसे उल्लिखित निर्दु ए प्रहेलिकाके अन्तर्गत है। साहित्यद्र्षणकार इसकी गिनती अलङ्कारमें नहीं करते। क्योंकि, उनके मतसे प्रहेलिका रसकी परिपन्थी हुआ करती है।

विशेष विवर्ण पहें औ शब्द में दें स्ती ।

प्रहोष ('सं ॰ पु॰) प्रकर्षक्रपसे होम करनेमें असमर्थ | प्रहोषिन् (सं ॰ ति ॰) प्रहु-वाहं इनि, सुगागमश्च | प्रकर्ष-क्रपसे होमकर्त्तां, अच्छी तरह होम करनेवाला | प्रहृत्ति (सं ॰ स्त्री॰) प्र-ह्वाह्-क्तिन् हृस्यः । प्रीति । प्रह्वाद (सं ॰ पु॰) प्रहृलाद्ते इति प्र-ह्वाद्-शब्दे अच् वा प्रह्वाद्यति प्र-ह्वाद्-णिच्-अच्, रलयोरैक्यं । १ प्रह्वाल । २ नागमेद । ३ शब्द ।

प्रहासि सं० पु०) क्षय, नाश । प्रहादि सं० पु०) प्रहादका अनुचर । प्रहलक्ष (सं० वि०) प्र-हाद-क (इ.दो निष्ठायां । पा ६।४।६५) इति अस्वः । प्रीत ।

प्रहाद (सं० पु०) पृहादयतीति पृ-हाद-णिच्-अच्। पुराणपृसिद्ध दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र और पक पृथान विष्णुभक्त।

दैत्यपति हिरण्यकशिपुने ब्रह्माके वरसे हैलोक्पके आधिपत्य, सर्वदेवत्व और सव यक्षमागोंका अधिकार पाया था। सिद्ध ऋषिगण उनका स्तव गाया करते थे। धीरे धीरे दैत्यरांज पेश्वयमद्से मत्त और मिद्रासका हो गये। उन्हें प्रह्माद नामका एक पुत्र था जिसकी विष्णुः भक्ति बाल्यावस्थासं ही प्रकाशित हो गई थी। दैत्यरांजने पुरोहित पर्ड और अमकंको पृह्मादको शिक्षा देनेके छिये नियुक्त किया। प्रह्मादको गुरु विष्णुका नाम व छेनेके छिये सर्वेदा प्रह्मादको उपदेश विया करते थे, पर उसका कुछ भी फल न हुआ। प्रह्मादको संगतसे अन्य दैत्य-वालक भी विष्णुभक्त हो गये। इससे अनर्थ होनेको सम्भा वना देख कर पर्ग्डामार्कने दैत्यरांजसे कह दिया। एक दिन नशेकी हालतमें दैत्यरांजने प्रह्मादसे कहा, कि आज तक तुमने जो कुछ पढ़ा है, सो सुनाओ। गुरु भी उसी जगह खड़े थे। पिताके उत्तरमें प्रह्मादने इस प्रकार कहा,-

"अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिश्यमच्युतम्।
प्रणतोऽस्मि महात्मानं सवंकारणकारणम्॥"
यह सुन कर हिरण्यकशिषु आग वव्ला हो गया और
लाल लाल आँखें कर गुरुसे कहा, "तुमने मेरी अवशा कर
वालकको मेरे हो शबुकी स्तुति सिख्लाई है।" गुरुजी तो
उरके मारे कुछ नहीं वोले, पर प्रहादने जवाव दिया, "कौन
किसको सिखा सकता है? हृदयके वे परमातमा विष्णु ही

अनुशासनकर्ता हैं। जिनके योगिध्येय परमपद शब्द-गोचरमें नहीं है, जिनसे इस विश्वकी सृष्टि हुई है, जो स्वयं विश्व हें वही परमेश्वर विष्णु हैं।"

हिरण्यकशिपुने कोध भरी वातोंसे कहा, 'मेरे रहते दूसरा कान परमेश्वर है? वया तुम अपनी हथेली पर जान रख कर ऐसा कहते हो ?' प्रहादने उत्तर दिया, 'वे ही सवोंके परमेश्वर हें, केवल मेरे हृदयमें ही नहीं, सवोंके हृदयमें वे अधिकार किये हुए हैं।' दैत्यपति कोधसे अधीर हो बोला, 'दूर हो जा दुए! किसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है!'

प्रहाद फिरसे गुरुगृहमें पढ़नेके छिये भेजे गये। गुरुने वहुत कुछ समऋया वुकाया, पर प्रह्वाद्ने एक भी न सुनी। कुछ दिन वाद दैत्यराजने पुनः प्रहादको बुछा मंगाया और पाठ-विषय सुनानेको कहा । बहादके मुखसे पुनः वही कथा निकलो। अब दैत्यराजके क्रोधका पारा और भी बढ़ चला। उन्होंने प्रहादको मरवा डालनेके लिये अनेक उपाय किये, परन्तु भगवान्की ऋपासे प्रह्वाद्की फुछ भी हानी न हुई। दैत्यराजने अपने उपायोंकी निष्फल होते देख फिरसे पुतको समभा कर कहा, 'निर्वोध ! अव भो अभय देता हूं, मेरी वात सुन ले, उस शतुका स्तव करना भूल जा। प्रहादने भी निभैय हो कर उत्तर विया, 'समस्त भयहारी उस अनन्तके हृद्यमें रहते हुए मुक्ते डर किस वात का ? पिताजी ! यदि अपनी भलाई चाहते हों, तो आप भी उन्हींका स्मरण किया करें। उनका सपरण करनेसे ही सभो भय दूर हो जाते हैं।

अव हिरण्यकशिषुने अपना क्रोध रोक न सका । उसने पहादको सहस्र विवधरसे उँसाया और पीछे दिग्गजके पैरोंसे कुचलवाया, पर प्रहादका वाल वाँका न हुआ । प्रज्यलित अग्निकुएडमें फेंक देने पर भी प्रहाद 'राम राम' करता वाहर निकल आया ।

अनन्तर दैत्यपुरोहित भागवातमज (पएड और अमर्क)-ने प्रहादको विष्णुका नाम भूल जानेके लिये वहुत कुछ उपदेश दिया, पर प्रहाद कव माननेवाले थे। वे अन्यान्य दानव-पुतोंको भी बुला कर कहा करते थे, 'तुम लोग सभी देखते हो, कि इस देहसे जन्म होते ही

दुःख मोग कर रहे हो, सुख कुछ भी नहीं है। जिसे जी जितना अधिक पसन्द करता है, उसीके छिये उतना ही अधिक कप्ट होता है। धन कहो चाहे जन कहो, सभी शोकदुःखका कारण है । इस कारण किसी पर अनु-राग करना उचित नहीं । हम वालकगण समऋते हैं, कि युवावस्था आने पर अपने कर्राध्यका पालन करेंगे, युवक समभते हैं, कि बुढ़ापा आनेसे कर्तव्य कर्म किया जायगा और वृद्ध समऋते हैं, कि मेरी शक्ति सामध्ये जाती रही, समय रहते अपना कर्संब्य तो किया नहीं, अव क्या हो सकता है।' इस प्रकार चिर-जीवन ही व्या कट जाता है, आत्माका काम होने नहीं पाता। समस्त जगत् इसी प्रकार दुःखमय है। इस अति दुःखमय भवार्णवमें पकमात विष्णु हो आश्रय हैं। यदि मेरी वार्तोको क्ठी न समको, तो उसी विष्णुका स्मरण किया करो। उनके प्रसन्न होनेसे जगत्में कुछ भी दुर्लंभ नहीं है । सर्वंत सम-दशीं बनो, समभाव ही विष्णुकी आराधना है। अभेद वुद्धि होनेसे हम छोग असुरभावका त्याग कर निवृति लाभ कर सकते हैं।

जव दैत्यराजको मालूम हुआ कि प्रहाद दूसरे वृद्धारे छड़कोंको भी वहका रहा है, तव उसने पाचकको बुलाया और अबके साथ हलाहल विष मिलानेका हुकुम दिया। प्रहाद सहजमें उस हलाहल विष मिलानेका हुकुम दिया। प्रहाद सहजमें उस हलाहल विषको जोर्ण कर गये। अव हिण्यकशिपुने पुरोहितोंको बुलाया और अन्य उपायसे उसके प्राणनाश करनेको फर्माया। पुरोहितोंने प्रहादको समका कर कहा, 'पिता परम होते हैं। उनको वातका लड्डन करना कदापि उचित नहीं?' इस पर प्रहादने जवाव दिया था, 'पिता सवोंके गुरु हैं, इसमें सन्देह नहीं। वे मेरे पूजनीय हैं, यह भी मैं कबूल करता हूं। परन्तु चतुवंग जिससे लाभ हो, उसे कौन नहीं चाहता? तुम लोग कत्या द्वारा मेरा नाश चाहते हो, पर कौन किसका नाश कर सकता है? आतमा हो आतमाका विनाश और रक्षा करती है।'

दैत्यपुरोहितींने जब देखा, कि प्रहाद विलक्कल अटल है, लाख चेप्रा करने पर भी वह दल नहीं सकता, तव उन्होंने भीषण आग्नेय कृत्याकी सृष्टि की। अग्निमय शूल प्रहादके पक्षमें लग कर चूर चूर हो गया। पीछे उस कृत्यासे पुरोहित लोग ही दृष्ध होने लगे। 'कृष्ण रक्षा करो, कृष्ण रक्षा करो' ऐसा कहते हुए प्रह्वाद उन्हें वचानेकी दौड़ पड़े। प्रह्वादके स्पर्शसे ही याजकों ने रक्षा पाई।

हिरण्यकशिषुने इस अपूर्व प्रभावकी कथा सुन कर प्रहादको बुलाया और इसका कारण पूछा। प्रहादने जवाव दिया, 'यह मन्त्रादिकृत वा मेरा नैसर्गिक नहीं है। जिसके हृदयमें अच्युत वास करते हैं, यह उन्हींका सामान्य प्रभाव है। जो दूसरों का अनिष्ट नहीं करता है, जो सवोंकी भलाई चाहता है, उसीका ऐसा प्रभाव है। पिताजी! कायमनोवाष्यसे जो दूसरेका अनिष्ट करता है, आगे चल कर उसीका अमङ्गल होता है।'

अव हिरण्यकशिषु क्षण भर भी स्थिर न रह सका। उसने प्रहादको समुख प्रासादचूड़ासे गिरिपृष्ठ पर फेंक देनेको कहा। अनुचरो ने राजाका आदेश पालन किया। किन्तु प्रहाद वाल वाल वच गया। अव दैत्यपितने शम्बर-से कहा, 'शम्बर! तुम माया जानते हो, सो माया द्वारा प्रहादका नाश करो।'

शम्बरको देख कर प्रह्वादने मधुसूदनका स्मरण किया। भक्तके लिये भगवान्ते सुदर्शनको भेजा। उस चक द्वारा शम्बरकी हजारों माया विनष्ट हुई। प्रह्वाद प्रसन्न चिक्तसे गुरुके घर लीटे। गुरुने उन्हें शुक्रनीतिकी शिक्षा दी।

कुछ दिन बाद दैत्यपितने प्रह्वादको बुला कर नीति-शास्त्रका प्रसङ्ग पूछा। प्रह्वादने भी कहा, भैंने यह नीति-शास्त्र पढ़ा है, पर यह शास्त्र अच्छा नहीं है। इसमें मिलादिका साधन उपाय बतलाया गया है। पिताजी! साध्यके अभावमें साधनका प्रयोजन ही क्या? उस पर-मात्मा गोविन्दमें मिलामिलकी कथा रह नहीं सकती। वे मुक्तमें हैं, आपमें हैं और सभी जगह हैं। इसलिये कहता है, कि स्थावरजङ्गम जगत्को आत्मतुल्य देखना उचित है। ऐसा जाननेसे ही भगवान प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे सभी क्लेश दूर होते हैं। अनलसे, अनिलसे, सलिलसे, हलाहलसे किसीसे भी कोई अपकार नहीं कर सकता।

यह सुन कर दैत्यपति सिंहासन परसे उठे और प्रहादके छाती पर एक छात मारी। उनके आदेशसे दैत्योंने प्रहादका हाथ पाँच वांध कर समुद्रमें फेंक दिया। इस प्रकार वहुत समय वीत गया। उसी अवस्थामें प्रहाद एकान्त चित्तसे भगवान्को पुकारने छगे और उनमें विल कुछ छीन हो गये। अव योगके प्रभावसे प्रहाद विष्णु-मय देखते हैं और आप भी विष्णुमय हो गये हैं। उनके हाथ पांवका वन्धन ढीला हो गया। इसी समय उन्हें पीताम्बरधारी विष्णुके दर्शन हुए।

जव हिरण्यकशिपुने देखा, कि किसीसे इसकी मौत नहीं होतो, तब खयं तलवार ले कर वाहर आया और प्रहादका हाथ खंमेसे वांघ कहा, 'अरे मूर्खं ! तेरा मृत्यु-काल पहुंच गया, अव अपने ईश्वरको वुलाओ । यदि तेरा ईश्वर सब स्थानोंमें वर्त्तमान है, तव इस खंभेमें क्यों नहीं है।' महादने उस खंभकी ओर देखा और प्रणाम किया। तदनन्तर वे वोळे—यही तो हिर देखे जा रहे हैं। हिरण्य-कशिपुको वहां कुछ भी नहों दीख पड़ता था। उसने प्रहादको वहुत भला बुरा कह कर उस खंभ पर छात मारी। छातके छगते ही उस खंभेमें भयडूर शब्द हुआ । प्रहादने खंभेमें नृसिंह भगवान्को देखा, परन्तु अव भी हिरण्यकशिपुको कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। अतएव वह भीचका हो कर चारों ओर देखने लगा, कि वह भयडूर शब्द कहां हुआ ? उसी समय खंभेसे भयडूर नृसिंह उत्पन्न हुए। हिरण्यकशिषु गदा ले कर उस और दौड़ा। नृसिंहने उसे उठा कर अपनी जङ्गा पर रख लिया तथा नखोंसे उसका पेट फाड़ कर उसे मार डाला। अन-न्तर अन्यान्य दानव जो शस्त्र ले कर हिरण्यकशिपुके उद्धारके लिये प्रस्तुत थे, उन्हें भी मार डाला। हरियंश-में लिखा है, कि हिरण्यकशिप और वृक्तिंहमें हजारों वर्ष तक युद्ध चलता रहा था। अन्तमें नृसिंहने उसे परास्त कर मार डाला।

अनन्तर देव गन्धवं आदि कोधशान्तिके लिये वृसिंह-की स्तुति करने लगे। ब्रह्माके कहनेसे प्रहादने वृसिंहके कोपकी शांतिके लिये स्तव किया। प्रहादकी स्तुतिसे प्रसन्त हो कर भगवान वोले, 'भद्र प्रहाद! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं तुम पर प्रस न हुआ हूं, वर मांगों।' प्रहादने हाथ जोड़ कर कहा, 'भगवान! मैं स्वभावसे हो कामासक हूं। अतः इन वरों का लोभ आप न दिखावें। यदि आप मुक्ते वर देना चाहते ही हैं, तो यही दीजिये, कि मेरे हदयमें कामका अंकुर कभी उत्पन्न न हो।' भगवानके कहनेसे प्रह्वादने दूसरा वर यह मांगा, कि हमारें पिताने जो आपका सक्तप न जान कर आपको निन्दा की है, उसके पापसे वे मुक्त हों। भगवान वीले, 'केवल तुम्हारे पिताका हो उद्धार नहीं हुआ, किंतु उसके २१ पूर्वजोंका भी उद्धार हो गया। क्योंकि, उसके वंशमें तुम्हारा जनम हुआ।'

अव प्रहाद राजा हुए। यथा समय उनके विरेचना-भाव पुत्र और चिंछ नामक एक पौत्रने जन्म ग्रहण किया। पहाद चिंछ पर राज्यभार सौंप कर तीर्थको निकल एड़े। जब वे वदिकाक्षन पहुँचे, तव उन्होंने वहां नर-नारायणको भएड तपखो समक्ष कर उनके साथ घोर-तर गुद्ध किया। सैकड़ों वर्ष तक दोनोंमें युद्ध चलता रहा, पर प्रहाद नरनारायणको जीत न सके। अन्तमें नैमिपारण्य आ कर वे विष्णुको तपस्या करने लगे। विष्णुके दर्शन होने पर उन्हें समक्षनेमें देर न लगी, कि नरनारायण ही साक्षात् मगवान् हैं, वलसे वा कीशलसे उन्हें पराजय करना किसोका भी साध्य नहीं है। इसके वाद वे फिरसे वदरिकाश्रम लीटे और नरनारायणके चरणों पर गिर एड़े। नारायणने कहा, 'वत्स! तुमने भक्तिके गुणसे मुक्ते परास्त किया।'

इस समय विल स्वर्गराज्य पर अधिकार कर वैठे। प्रहाद स्वर्ग जा कर अपने पौतसे मिले। चिलने उन्हें स्वर्गराज्य छोड़ देना चाहा था, पर प्रहादने विष्णुध्यान-में ही अपना समय वितानेकी इच्छा प्रकट की। इस कारण सग राज्यकी तुच्छ समक्त कर उन्होंने प्रहण नहीं किया।

देवताओंको स्वग में प्रतिष्ठित और विलको छलनेके लिये वामन अवतीण हुए। उनके आविमांवसे दैत्योंका बल घटने लगा। विलने एक दिन प्रहादसे वीर्यहास होनेका कारण पूछा। किन्तु प्रहादके मुखसे जब उन्होंने सुना, कि वामन ही इसका कारण है, तब विलने सगर्व कहा था, "हिर कीन है ? उसके समान मेरे पास सेकड़ों वोर पुश्च मौजूद हैं। किसी भो देवताकी सामर्थ्य नहीं, जो मेरे एक वीरको परास्त कर सके।" विलकी गर्वोक्ति सुन कर प्रहादने कहा था, 'अरे मूर्खं! तुक्ते धिकार है, त्वे वैकुएडनाथकी निन्दा की ? मेरे प्राणसे धियतम Vol. XIV. 168

हरिको जान कर भी तूने उसे अग्राह्य किया ? इस महा-पापसे तेरा खगराज्य जाता रहेगा, तुक्ते पातालमें वास करना पड़ेगा। यथार्थमें पृह्वादके अभिशापसे ही विल पातालवासी हुए थे। (गमनपु॰ ७-१० अध्याय , ४५-५७ अ०)। अन्तमें पृह्वादने तपस्था द्वारा निर्वाणमुक्ति पाप्त की। (विण्यु पु॰ १।२२ अध्याय)

२ जनपद्विशेष, एक देशका नाम । ३ पूमोद, आनन्द । ४ शन्द, आवाज । ५ नागविशेष, एक नागका नाम । प्रह्वाद—१ प्रवोधचन्द्रोदयहस्तामलक नामक प्रन्थके प्रणेता । ६ नरसिंहस्तुति और हर्यप्टक नामक दो प्रन्थके रचयिता । ३ चौहानवंशीय एक राजा, राजा वालहनके पुता ।

प्रहादक (स'० ति०) आहादजनक, सन्तीयजनक। प्रहादन (स'० क्षी०) प्र-होद-ल्युट्। आहादकरण, आनन्दकरण, प्रसन्न करना।

प्रहादनदेव—मालवके एक युवराज । ये अनहिलवाड़के चालुक्यराज्यके अधोनस्थ सामन्तराज धारावर्षदेवके छोटे भाई थे। सकलकलाविद्द पड़दरीनाश्रमी और जन-साधारण इनका विशेष सम्मान करते थे।

प्रहाद नीराजि—पक महाराष्ट्रसचिव । इन्होंने कई पक महाराष्ट्रयुदोंमें विशेष साहस और बुद्धिकौशलका परि-चय दिया था । प्रतिनिधि देखो ।

प्रहादिन (सं० नि०) प्रहाद-इनि । प्रहादयुक्त, प्रसन्न । प्रहादिनो (सं० स्रो०) रक्त लजालुका, लाल लाजवंती । प्रह्म (सं० नि०) प्रह्मयते इति प्र-ह्वे-(धननिघृ:नरिष्येति अण् १११५३) इति वन्, आलोपश्च । १ नम्र । २ विनीत । ३ आसक्त । ४ प्रवण । ५ आवर्जित ।

प्रहच्ण (सं॰ क्ली॰) प्रकृष्टकपसे आह्वान, वुलाना । प्रह्मलोका (सं॰ स्त्री॰) प्रवह्मिका पृपोदरादित्वात् साधुः । प्रहेलिका, पहेली ।

प्रह्वाञ्चलि (सं ० वि०) इताञ्चलिपुरसे मस्तकानतभावमें दण्डायमान, जो हाथ जोड़े सिर मुकाए खड़ा हो। प्रह्वार (सं ० पु०) १ आवाहन। २ स्तव।

प्राइमर (अं ॰ पु॰) १ किसी भाषाकी वह प्रारम्भिक पुस्तक जिसमें उस गापाकी वर्णमाला आदि दी गई हो। २ किसी विषयकी वह प्रारम्भिक पुस्तक जिसमें उस विषय- का ज्ञान प्राप्त करनेवालोंके लिये साधारण मोटी मोटी वाते दी गई हैं।

प्राइवेट (अं॰ वि॰) १ जो सार्वजनिक न हो, विकि निजके सम्बन्धका हो। २ जो सर्वसाधारणसे छिपा कर रखा जाय, गुप्त। ३ व्यक्तिगत, निजका।

प्राइवेटसेके टरो (अं ० पु०) किसी वड़े आदमीका निजका मन्त्री या सहायक, खास-नवीस, खास कलम।

प्रांशु (सं ० ति०) प्रकृष्टा अंश्वोऽस्य । १ उच्च, उन्नत । (पु०) २ वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम । ३ वत्सपी राजाके सुद्क्षिणा-गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम । १ विष्णु ।

प्रांशुता (सं ॰ स्त्रो॰) प्रांशोर्भावः तल-टाप्। प्रांशुका भाव वा धर्म, उचता।

प्राकर (सं० पु०) द्युतिमान् नृपके एक पुत्रका नाम । प्राकरणिक (सं० ति०) प्रकरणेन प्राप्तं ठक् । प्रकरण प्राप्त ।

प्राकर्ष (सं ० क्लो०) सामभेद, एक प्रकारका साम। प्राकर्षिक (सं ० ति०) प्रकर्ष नित्यमह ति छेदादित्वात् डम्। १ नित्य प्रकर्षाह । २ उत्कर्षयोग्य।

प्राकर्षिक (सं० पु०) प्र-था-कष-किरन्। १ स्थियोंका नत्तंक। स्थियोंके वीसमें नास्तेवाला पुरुष। २ परदा-रोपजीबी, दूसरोंकी स्थियोंसे जोविकानिबांह करनेवाला पुरुष, दलाल।

प्राकाम्य (सं ॰ क्ली॰) प्रकामस्य भावः व्यञ्। भाठ प्रकार-के पेश्वर्य या सिद्धिर्थोमेंसे एक। कहा जाता है, कि इस पेश्वर्यके प्राप्त ही जाने पर मनुष्यकी इच्छाका व्याघात नहीं होता। वह जिस वस्तुकी इच्छा करता है वह उसे शीध्र मिल, जाती है। यदि वह इच्छा करे, तो जमीनमें समा सकता है या आसमानमें उड़ सकता है।

प्राकार (सं ॰ पु॰) प्रक्रियते इति प्र-क्ट-घञ्, उपसर्गस्य घञीति दीर्घः। प्राचीर, चहारदीवारी। पर्याय—शाल, साल, वरण, वप्र। प्राकारका परिमाण—

"ऊर्द्ध विश्वतिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुमप्रदम्॥" (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ४।१३ अ०)

१६ हाथ ऊँ चा घर भौर २० हाथसे ज्यादा ऊँ चा प्राचीर नहीं बनाना चाहिये, बनानेसे घरवाळींका अनिष्ठ

होता है। प्राचीर वा घरका द्वार दो हाथ चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा वनाना चाहिये। २ सर्वतीविस्तार् चारों ओर फैला हुआ।

प्राकारमर्दिन् (सं ० ति ०) पृकारं मृद्गति मृद-णिनिं, ६-तत्। पृकारमेदक, दीवार काटनेवाला।

पूाकारीय (सं ० ति०) पूकारायां छ । १ पुकार पूकृति, ईंट आदि । २ सम्भवत्पूाकार देश, जहां दीवार खड़ी को जाय ।

प्राकार्षक (सं ० पु०) प्राकापिक देखो ।

प्राकाश (सं० पु०) प्रवाश देखी।

प्राकास्य (सं॰ पु॰) १ सवके सामने प्रकाशन । २ स्थाति, प्रसिद्धि ।

प्राकृत (सं ॰ स्त्री॰) प्रकृष्टमकृतमकार्यं यस्य। १ नीच। २ प्रकृति-सम्बन्धी, प्रकृतिसे उत्पन्न। ३ स्वामाविक, सहज। ४ साधारण, मामूली। ५ लौकिक, संसारी। (स्त्री॰) ६ बोलचालकी भाषा जिसका प्रचार किसी समय किसी प्रान्तमें हो अथवा रहा हो। ७ एक प्राचीन भाषा जिसका प्रचार प्राचीनकालमें भारतमें था। क्या बङ्गला, क्या उड़िया, क्या हिन्दी, क्या महाराष्ट्री भारतमें जितनी देशी भाषायँ प्रचलित हैं, वे सभी एक समय प्राकृत कहलाती थीं और प्राचीन प्राकृत भाषासे ही प्रचलित देशी भाषाओंको उत्पत्ति हुई है।

हेमचन्द्रने अपने प्राकृत व्याकरणमें लिखा है, किं संस्कृत ही प्रकृति वा मूल है। उससे जो उत्पन्न हुआ है या होता आ रहा है वही प्राकृत है।

कृष्णपिएडतकी प्राकृतचिन्द्रकामें भी लिखा है,— "प्रकृति संस्कृत तब भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्। तद्भवं तत्समं देशोत्येवमेतिबधा मतं॥" (११४) संस्कृत प्रकृति है, उससे उत्पन्न होनेके कारण इसका

प्राकृत नाम पड़ा है। इसके फिर तीन भेद हैं, संस्कृत-भव, संस्कृतसम और देशी।

उपरोक्त प्रमाणके अनुसार इस देशके सभी पिएडत कहते हैं, कि संस्कृत ही प्राकृतभाषाकी जनती है। किन्तु वेवर प्रभृति प्राश्चात्य जर्मन पिएडत इस प्रतका अनुप्रोदन नहीं करते।

अध्यापक वेवर (Weber) का कहना है, कि संस्कत

भाषा समस्त आर्यं जातिका बोलचालको भाषा है, ऐसा नहीं कह सकते। यह केवल विद्वानकी भाषा है। वैदिक भाषांसे ही एक ओर सुगडित और सुप्रणालीवद्ध हो कर संस्कृतभाषाकी उत्पत्ति और दूसरी ओर मानवके प्रकृति-सिद्ध तथा अनियत वेगसे प्राकृतभाषाका चलन है। प्राचीन वैदिक भाषा ही क्रमशः सृष्ट हो कर जनसाधारण-की प्राकृत भाषा हो गई है। फिर वही वैदिक भाषा वैया-करणोंके हाथसे सुगडित और पिएडतोंके हाथसे मार्जित हो कर संस्कृतक्रपमें परिणत हुई है। प्राकृत भाषाका अनि-यमितरूप संस्कृत-भाषामें नहीं है, फिन्तु वैदिक भाषामें पाया जाता है। जैसे, कुट=स्त (ऋक् १।५६।४) काट≈ कत्तै, याबत्सः = यावचः, कृकलास = कृकदासु, खुल्लक = क्षुड्क, भूज = श्रृज इत्यादि। यहां तक, कि रामायण भारतादि क ब्यों में भी पेसी बहुत सी कथाएँ हैं जो उस समयकी प्रचलित प्राइतभाषा गृहीत हुई हैं, जैसे, 'गोपेन्द्र' की जगह 'गोविन्द्।'

भध्यापक औफ्र कट साहवके मतसे—'अध्यापक वेवरने कहा है, कि प्राकृत भाषा वैदिक भाषाकी सम-कालीन है, वह समीचीन नहीं है। ऋग्वेदकी भाषा कभी भी सारे भारतमें प्रचलित न थो। आयौंके आदि निवास केवल पक्षावमें ही उसका प्रचार था। आयोंके चारों तरफ वहु संख्यक अनार्य जातिका वास था, वे विजेता-की भाषा प्रहण करनेको बाध्य हुई थीं। उन्हींके मुखसे भार्यभाषा विकृत होता थी। फिर आर्थसन्तान भी शूद् कन्या-ग्रहणमें वाध्य हुई थी तथा उनके संभ्रवसे आर्यगृह-में अनार्यभाषा प्रचलित हुई। अन्तमें राजनीतिक विष्ठवमें अनार्य जातिने हो राज्यशासन लाम किया और उन लोगों-के प्रमावसे उनकी भाषा जनसाघारणमें प्रचलित हुई। सनमुच रामायण महामारतादिमें अथवाधर्मधासमें यहां तक, कि वेदको ब्राह्मण-भाषा परिषदु वा पण्डित मण्डली छोड़ कर जनसाधारणमें कमी भी कथित मापाक्यमें प्रचलित न रही।

अध्यापक छासेनके मतसे—वैदिकमाणा एक समय कथितमापा होने पर भी पाणिनिके समय 'माणा' कहनेसे तत्काल प्रचितसं स्कृतमापा समको जाती थी, पाणिनिकी उकिसे ऐसा जाना जाता है। किसी किसी वैविक्रमन्त्रमें प्राइतका विकृत कप तो देखा जाता है, पर प्राइतमाषामें टूटा फूटा कप होनेमें अनेक समय लगे हैं। इस कारण संस्कृत और प्राइतकी उत्पत्ति एक समयमें खीकार नहीं कर सकते। हिन्दू आर्थों के भारतमें फैलनेके वाद प्राइतकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु स्थान विशेषके संस्कृतको उत्पत्ति इंक हुं है। परन्तु स्थान विशेषके संस्कृतको अस्ति अझतका उद्भव हुआ है, यह भी खीकार नहीं किया जा सकता। कारण, स्थानमेदसे संस्कृतभाषाका मेद अब तक भी निर्णीत नहीं हुआ। अशोकके समय प्राइतभाषा लिखितभाषाक्रपमें व्यवहत हुई थी। इस समय पूर्वभारत, गुजरात और कावुलका पूर्वांश इन तीन स्थानोंमें स्थानीय प्राइतका प्रचार था। सुतरां मूल प्राइतभाषाकी उत्पत्ति इसके भी पहले हुई है। कारण बुद्धकी उकि संस्कृत और प्राइत दोनों हो माधामें लिपिन्वस हुई थी।

अध्यापक बेनफाई (Benfey)-के मतसे-- अशोकके समय दो प्रकारकी देशी माचा प्रचलित थी, एक गुजरात-में और दूसरी मगधमें। इन दो भाषाओंकी गडन देखनेसे मालूम होता है, कि उक्त दो प्रदेशोंमें संस्कृतभाषाके साथ एकत प्राकृत भाषा नहीं थी। एक समय बहां जिस संस्कृतमायाका प्रचार था, वही क्रमशः प्राकृतभाषामें परिणत हो गई है। अतएव अशोकके अम्युद्यके वहुत पहले संस्कृतमाषा मृत हो चुकी थी और प्राकृत-भाषाका स्त्रपात हुसा था। वौद्धधर्मको पवित्र भाषा पाली है। प्रथम वौद्धगण यह निर्देश कर गये हैं, कि उन्होंने स'स्कृत भाषामें अपने घर्मग्रन्थकी रचना नहीं की, किन्तु अपनी कथित भाषामें लिपिवद की है। यह भाषा मगधकी प्रचलित भाषाके साथ संस्कृतका जी सम्बन्ध है, संस्कृतके साथ उक्त भाषाका भी वही सम्बन्ध देखा जाता है। अधिक सम्मव है, कि खुष्ट-पूर्व ६ठीं शताब्दीमें जिस समय वीद्रधर्मका सम्युदय हुआ, उस समय जनः साधारण संस्कृत भाषामें वोलचाल नहीं करते थे। अन्ततः इसके भी तीन सी वर्ष पहले यदि संस्कृतको जनसाधारणकी माषा मान हैं, तो अत्युक्ति नहीं।'

इसी प्रकार यूरोपीय भाषा-तत्त्वविदोंने प्राकृतभाषा-की उत्पत्ति निर्णय की है। उक्त परिखतोंमेंसे प्रत्येककी बातमें कुछ न कुछ सत्यता अयन्य हैं, इसमें सन्देह नहीं। यथार्थमें आर्यजातिकी आदि भाषा वेदमें है। उस वैदिक-भाषारूप स्रोतस्त्रतीसे संस्कृत और प्राकृत दोनों ही घारा निकली है। जिस समयसे भापाका लिपवद होना आरम्भ हुआ, उसी समयसे लिखित और कथित भाषा धीरे धीरे पृथक होने लगी। किन्तु वेदसंहिताके प्रचार-कालमें लिपिपद्धति नहीं थी, सुतरां उस समय आर्य जन-साधारण जिस भाषामें वोलचाल करते थे, वही भाषा बेदमें पाई जाती है अर्थात् वेदसंहिताकी भाषा ही बैदिक-युगकी कथित भाषा है। पञ्चनद और सरस्रतीप्रवाहित कुरुक्षेवमें एक समय इसी भाषाका प्रचार था। आयोंके भारतवर्षमें आधिपत्य फैलानेके साथ साथ उस भाषामें अपर प्रावेशिक भाषाका धोरे धीरे प्रवेश होने लगा। पत द्धिन कालके प्रभावसे कथितभाषा भी सामान्य रूपान्त-रित होती गई। यही कारण है, कि हमलोग वेदसंहिताको और उपनिपद्की भाषामें वहुत कम अन्तर देखते हैं। परन्तु प्रादेशिक भाषाने भारतीय आर्योंकी भाषा पर जो अपना प्रभाव डाला है, उसका निद्शैन प्राचीनतम संस्कृतभाषा-में अति विरल है। प्राचीनतम संस्कृत भाषामें जितने प्रन्थ मिलते हैं, वे सभो प्रायः उत्तरभारतवासी मुनि ऋपियोंके वनाये हैं। सुतरां उन सव प्रन्थोंका तमाम भारतमें प्रचार होने पर भी पूर्व-भारत, पश्चिम-भारत अथवा दाक्षिणात्य की प्रादेशिक भाषाका कुछ भी निदर्शन नहीं है। पाणिनि और निरुक्तकार यास्कके समय वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा बहुत कुछ पार्थक्य हो गई थी, बह भी प्रादेशिक भावमें नहीं। वह वहु सहस्रवर्पव्यापी काल-प्रभावका फल है। इस समय संस्कृत भाषा 'लौकिक' वा जनसाधारणकी कथित भाषा समको जाने पर भी स्थान-भेदसे तत्कालप्रचलित संस्कृत भाषामें भी थोड़ी वहुत पृथक्ता देखी जाती थी।

यास्कले लिखा है—"अथापि भाषिकेभ्यो धातुभ्यो तैगमाः इतो भाष्यन्ते दम्नाः क्षेत्रसाधा इति । अथापि तैगमभ्यो भाषिका उष्णं घृतमिति । अथापि प्रकृतय एवै-केषु भाष्यन्ते विकृतय एकेषु । शवतिर्गतिकर्मा कम्योजेष्येव भाष्यते विकारमस्य आर्येषु भाष्यन्ते शव इति । दातिले-वनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदीच्येषु ।" (निक्क २।२) वैदिक अनेक विशेष्यपद (जैसे दम्ना, क्षेत्रसाधा)

अनेक पद जैसे 'उ॰णं' 'घृतं' वैदिक धातुसे निकले हैं।
फिर एक जगह इसे प्रकृति (धातु) और दूसरी जगह
विकृति कहा गया है। जैसे 'शवति' धातु द्वारा कम्बोजदेशमें 'गतिकमें' समका जाता है और आयों के मध्य
इसीका विकार 'शव' (अर्थात् मृतदेह) शब्दका व्यवहार
है। पूर्वदेशके लोग कर्त्तनका अर्थ 'दाति' पर उत्तरदेशके
लोग 'दात' (दा) लगाते हैं।
यास्ककी उक्तिसे जाना जाता है, कि एक समय कम्बोज

फिर भाषाके

भाषामें प्रचलित घातुसे उत्पन्न हुए हैं

यास्तको उक्तिसे जाना जाता है, कि एक समय कम्बोज
देशमें भी संस्कृत भाषा प्रचलित थी और देशमेदसे इस
मापाप्रयोगका तारतम्य हुआ था। जव देशमेद और
कालभेदसे संस्कृत भाषाम अन्याधिक पार्थम्य और अर्थ
व्यत्यय हो रा था, ठीक उसी समय पाणिनि, यास्त आदि
शाब्दिकों ने व्याकरणादि प्रणयन द्वारा संस्कृत भाषाको
सीमावड कर हाला। इसी समय लिपि प्रचलित हुई है।
अतः पिडतोंकी चेष्टासे उस समयसे व्याकरणके पथ
प्रदर्शित हो कर जो सब प्रन्थ लिपियद्ध हुए, चलित
भाषाके साथ उनका धीरे धीरे पार्थक्य होता गया। उस
कथित भाषासे ही पीछे आदि प्राकृत भाषाको उत्पत्ति
हुई। प्राचीनतम आर्थभाषासे किस प्रकार प्राकृत भाषाकी
जत्पत्ति हुई है नीचे उसकी एक तोलिका दी
जाती है—

पुलिङ्ग यकववन ।

प्राकृत। आर्पप्रास्त । पालि । संस्कृत । कारक। अगी अस्मि अगिग अग्निः कर्त्वा अगिग अगिंग क्षांग अग्नि' कर्म अग्निना अग्गिणा अगिगा अस्तिना क्रण अग्गिस्मा अग्गिणो अग्गिणो अग्नेः अग्गिना अगोहिती अवा० अग्गितो अग्गित

स॰ अग्नैः श्रग्गिणो,श्रग्गिस्स,श्रग्गिनो,-स्स श्रग्गिणो,-स्स अधि॰ अग्नौ श्रग्गिस्मि श्रिगम्हि-स्मि भग्गिस्मि स॰ अग्ने श्रमा धन्गि अग्नि

पुलिङ्ग बहुबचन

कः अम्नयः अग्गयो अगायो अगीयो कर्म अग्नीन् अग्गयो अग्गीऊ

प्राहर्ते जम्हेहिः अम्हेहिः अस्हेहिः अम्हेहिः अस्
भारत
कः अस्माभः अस्टि अमहिं स्ति अमहिंम, हि
ममाहिती
कः अस्मिप्तिः अग्विहितो अग्विहित्ते अग्विहिते अग्विहित्ते अग्विहित्ते अग्विहित्ते अग्विहित्ते अग्विहित्ते अग्वि
अर्थनिम्यः आपाणि, णं आगीनं अगाणि, पं स्र अर्मीनां अग्गीण, णं आगीनं अग्गीसु, सं
अधिवय अवाविध्य
स्राल्भ वृद्धि वृद्धा
कु बुद्धिः अमृहसु सु अमृहसु सु अमृहसु सु अमृहसु
कर्म दुद्धिः वुद्धिः वुद्धिः । अस्माष्ट्र । महस्तुः । ।
कमं चुन्ना कर वृद्धया क्ष्मित् वृद्धिया, वृद्धियं वृद्धीय, वृद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कुद्धीय कि व्यं तुमं त्वं तुमं त्वं तुमं तं, तुमं, तुमं सुद्धिया, वृद्धीय कि वृद्धीय कि व्यं तुमं त्वं तुमं तं, तुमं, तं, तुमं तुद्धीय कि वृद्धीय कि वि
भगा वुद्धार बुद्धि वुद्धि वा बुद्धी कः त्वं त्वं तुमं त्व पुप सः बुद्धेः सम्बः बुद्धे वुद्धि वुद्धि वा बुद्धी कः त्वं त्वं तुमं त्वं तुमं त्वं तुमं तुद्धं, तुमं सम्बः बुद्धे वुद्धि वुद्धि वा बुद्धी कः त्वं त्वां, तां, तुमं, तं, तुवं तुद्धं, तुम स्रोणिङ्गं वहुपचन। कमें त्वां तुप
सम्ब॰ वुद्धे वुद्धि वुद्धि वुद्धि वुद्धि वुद्धि वुद्धि वुद्धि वुद्धि कर्र त्वा र्षि त्या र्षे त्या राष्ट्रि त्या राष्ट्र त्या राष्
स्रोलिङ्ग वहुवचन । स्रोलिङ्ग वहुवचचन । स्रोलिङ्ग वहुवचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचचच
का बुद्धयः बुद्धी, बुद्धीओ बुद्धी, बुद्धी बुद्धी कर त्वया ते, तुमे, तहस्तो, तुमस्तो, कमं बुद्धीः बुद्धी बुद्धीहिं, हिं तहस्तो, तहस्तो, तुमस्तो, तहस्तो, तहस्तो, तुमस्तो,
कमं वुद्धीः बुद्धीः बुद्धिभि,-हि वुद्धिहि,-हि तहत्तो, तुमोतो तहत्ता, तुमाहि, तमाहितो, तुवत्तो
करः बुद्धिभः बुद्धिहि, हि बुद्धिभः, वि बुद्धिहितो । अपा॰ त्वत् तुमाहि । तया तुमाहितो, तुवातो । तुमाहितो, तुवातो । तुवाता तुमहितो । तया तुमहितो । तया तुमहितो । तया । तुवाव, तुमहित्तो । तया । त्वाव । तुमहित्तो । त्वाव । तुमहित्तो । त्वाव । तुमहित्तो । त्वाव । तुमहित्तो । त्वाव । त्वावहित्तो । त्वावहित्ति । त्वावहिति । त्वावहित्ति । त्वावहित्ति । त्वावहित्ति । त्वावहित्ति । त्वाव
मु बहीनां वुद्धाण, वहीसुं स्व (तुमहाव ६८वाप
भ० वृद्धिपु वृद्धिमु उपनिवन्त । क्रीविकिङ्ग एकवचन ।
क्रीविक्षिष्ण प्रकर्वका । हिं, दृष्टि विक्षा दृष्टि, दृष्टि विक्षा दृष्टि, तुष्टि, तु
कत्तां द्धि दहि, दहि राष्ट्र सुन्ति हिंदै सुन्ति ते, तव तिह, तुम्हें राष्ट्र उपह, उपह, उपह, उपह, उपह, उपह, उपह
्राची दशीनि दहागा, पर्या तिमह प्रपृष्ट विवृत्त, भ
कर्ता द्रशीन वहाग, पान्यका एकवचन। असाह, असिम, असिम
अस्मद् शब्दका एकवचा । तहा, धार्मा वर्षा । तहा, धारमा तुमे, तुमिम,
कर्ता अहं अहं अहं मं, ममं, ममं कः मां मं, मम मं, ममं, मिमं कः मां मं मया मए, मइ, मे, ममए अधिः त्विय त्विय, तिय त्विमा, त्विमा, त्विमा,
कर मया मप, म भना ममादी, मज्यती
में में में भारत
स् मे, मम म, मम, अण्ड मा ममस्म, अम्हास्म
अधि मिय मियं मेर्, सनारम् अधि मियं मेर्, सनारम् युस्मद् शब्दका बहुवचन ।
अस्मद् शब्दभा उ
अधि० मिय भाय अस्मद् शब्दका वहुवचन । अस्मद् शब्दका वहुवचन । अस्मद् शब्दका वहुवचन । वयं, अम्दि
कारा) अमहे (अमहे कि यूर्य तुम्ह, पुना उर्
अस्मान अस्ट) अमृहां
नः (ना प्या
Vol. XIV. 169

ţ

चतस्सो

चत्तारि

छरठो दस दह

तेरह

सोलह

वीसा

नीसा

पण्णासा

पणवण्णा

प्राकृत।

भणई भणसि

भणामि भणिम

भणह, भणित्ध

भणामों, भणमो भणाम, भणम

भण

भणउ

भणह

भण तु

अंदर्शत

भववाड् भणीअप

भणिजप

छ

C						
कर्म युक्सान् तुम्ह, तुम्ह तु	म्हे, तुव्से ।	चतस्रः	चतस्सो	चत्ससो	चतस्	
वः तुम्म वो { तु	व्भ, तुय्हे,	चत्वारि	, चत्तारि	चत्तारि	चत्त	
् वा । जय	हि, तुज्में, वे	पर्	ಶ	छ		
	हेहि, उम्हेहि	पृष्ठ	छर्ठो	छट्ठो सट्ठो,	3 7	
कर० युष्माभिः हे तुमहेहि तुमहेहि	दश	दह	दस	दस		
	तयोदश			,		
र तुव्मेहि र	उय्हेहि,	वोड़श	सोलस	तेलह्, तेरह् सोलस	सो	
	तुमहेहिते तुमहेसु तो,	विंशति	वीसा	वीसति, वीसं		
(तम्हेंभि	विंशत्	तीसा	तिसति, तीसं	न सं		
अपा॰ युष्मत् तुमहेहितो { तुमहेहि	पञ्चाणत्	पन्ना				
े ्तुम्हाह	तुम्हासु तो,	पञ्चपञ्चाशत्	पणपण्णस	पञ्जासं	प्रका	
	तुव्भेहितो, { तुव्भाहितो,	नन्द्र नन्द्रान्तरपू		पञ्चपञ्जास	पणव	
	कियापद् ।					
	वर्त्तमान काल एकवचन ।					
	तुम्हाहितो,	पुरुष । सं	स्कृत। आ	र्पत्रा। पाछि।	प्राव	
	तुउभोहितो,		गति भण	ति भणति	भ	
	इत्यादि	मध्यम भ	गसि भण	सि भणसि	भूष	
। तम्हाण् । तम्	ह, तुरुभं	उत्तम भणा	_		भ्य	
े तुम्हाण तुम्हाक) _{ताम}	हाणं, तुमहरा				भण	
सम्बर्ध र युष्माकं तुम्हाहं तुम्हं र तुम् तुम्हाह तुम्ह	वर्त्तमान काल वहुवचन।					
(वी वो (तुम	ाणं, तुवाणं				-2*-	
{ तुब्	माण्तुज्भाण	१म भण			ण'ति	
(वा	मध्य० भण	थि भणथ	भणध भ	णह, भ	
। तुम	हिंसु,				भण	
्राच्या चर्चा च	हानु,	उत्त० प	ामः भण	ामो भणाम	भण	
अधि वयुष्मास तुम्हेसु, सु तुम्हेस र् तुम्	हानु, ोसु, तुमासु,	੍ਰਿਸ਼ਾ				
्री तुर्दे	ोसु, त्वसु,				} भण	
् तु	हेसु, तहसु,		317	नुज्ञा ।		
{ तुः	्मेसु,					
(तुब	(भसु,		ण भ		भ	
{ तुः	(भसु, क्षेसु,	भ	गतु भ	णतु भणतु		
् तुइ	भसु,	वहुब॰ भ	गत भण	ाथ भणध	भ	
(तुः	चु इत्यादि	भ	गन्तु भ	गंतु भणंतु	भ	
अङ्कर्रं क्या ।		लर्	कर्मवाच्य			
बी हो . दो, दुवे, वे हो, दुवे दो,	दुवे, वे वेषिण				भ	
ति ति तिरि	ति			भद्धते भण्णते भणीयते भणिद्ध	् भ	
चत्वार चसारो चतारो	चत्तारो	एकव॰ १म	भण्यत	भणीयते भणिज	ते भ	
चतुरः चतुरो चतुरो	चउरो		(-4 -44 424 486 430	भ	
-3" -3"						

लट् णिच । ं भाणेति भाणेड् एक व०१म भाणयती भीणेति भाणेहे

उपरोक्त तालिकाकी अच्छी तरह आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि आर्य पण्डितोंके मुखसे विशुद्ध उच्चा-रण द्वारा जो भाषा संस्कृतस्पमें गिनो जातो थी, वही जनसाधारणके मुखसे कुछ विकृत हो कर प्राकृतरूपमें परिणत हुई है। वेदसंहिताके प्रचलनस्थान पञ्चनद अथवा ब्रह्मावत्तंभूमिमें पहले संस्कृतभाषा विकृत हो कर प्राकृतक्रपमें प्रचलित हुई थी वा नहीं, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। इस अञ्चलमें बहुकाल तक संस्कृत-भापा हो कथित भाषाक्रपमें प्रचलित थी। ललितविस्तर-में जो प्राचीन 'गाथा' नामक भाषा हा प्रयोग है अधिक सम्भव है, कि वही यहांकी प्रचलित संस्कृत भाषाकी पर वत्तीं कथितहरूप है। यही भाषा आगे चल कर पालिभाषा-में परिणत हो गई है। किन्तु आदि बाक्रतभाषा पहले किस स्थानमें प्रचलित थी, उसे जाननेका कोई उपाय नहां। वहुतोंका विश्वास है, कि महाराष्ट्रदेश ही प्राफृत भापाका आदि स्थान है। इसीसे छत्त्रीधरने चिन्द्रकार्मे लिखा है; "प्राकृतं महाराष्ट्रोद्भवम्" अर्थात् महाराष्ट्रसे हो प्राष्ट्रत भाषाको उत्पत्ति है । चएडवेंबकी प्राष्ट्रत-दीपिकामें लिखा है,---

"यतद्पि लोकानुसारात् नाटकाद्गै महाप्रयोग-दर्शनात् प्राकृतं महाराष्ट्रदेशीयं प्रकृष्टभाषणम् । तथाच द्रडी-

"महाराष्ट्राश्चयां सायां प्रकृष्टं शकृतं विदुः।"

लोक व्यवहारके अनुसार तथा नाटकादि और महा-कवियोंके प्रयोगानुसार महाराष्ट्रदेशीय प्राकृत ही उत्कृष्ट भाषा समभी जाती है। दएडीने भी यही लिखा है कि महाराष्ट्रदेशमें जो पारुतमाया प्रचलित थी वही श्रेष्ठ है।

रामतर्कवागीशने अपने प्राञ्चत-ऋख्पतरुके शारम्भमें ही लिखा है,---

"सर्वासु भाषाखिह हेतुभूतां भाषां महाराष्ट्रभवां पुरस्तात्। निरूपिययामि यथोपदेशं श्रीरामशर्माहिममां प्रयसात्॥"

महाराष्ट्री भाषा ही सभी प्राष्ट्रत भाषाकी सार है अर्थात् दूसरे स्थानकी प्राकृत भाषाएं भी महाराष्ट्रीसे ही निकली हैं। इस प्रकार रामशर्माने वतलाया है, 'शौर-सेनी महाराष्ट्रीसे और महाराष्ट्री तथा शौरसेनीसे मागधी भाषाकी उत्पत्ति है।'

तव क्या महाराष्ट्रदेश ही प्राकृतभाषाका प्रचार हुआ घा ? इस सम्बन्धमें सन्देह करनेके अनेक कारण हैं। आपै संस्कृत वा संस्कृत भाषाका प्राचीनतमक्रप जिस प्रकार वैदिक भाषामें है, उसी प्रकार प्राकृतभाषाका भी आदिक्रए आपेंप्रकृतिमें विद्यमान है। प्राचीन आर्थजाति जिस संस्कृत-भाषाका व्यवहार कर गई हैं अथच पाणि-न्यादि शाध्दिकोंके समय तत्कालप्रचलित व्याकरणके नियमानुसार जो साध्य नहीं थी, वह जिस प्रकार आर्ष समभी जाती थी, उसी प्रंकार जब प्राकृतव्याकरण रचा जाता था, अथच वह तत्कालप्रचलित प्राइतके साथ जिस प्राचीन प्राकृत भाषाका किसी किसी विषयमें पार्थेक्य देखा जाता था, वही 'आर्ष' वा 'पुरातन प्राकृत' समभी जाती है।

अभी आर्प-प्राष्ट्रतकी आलोचना करना आवश्यक है। इस आर्पप्राकृतका आदिकप और गठनादि निर्णात हो जानेसे ही हम छोग प्राकृतभाषाके उत्पत्तिस्थानका वहुत कुछ पता लगा सकते हैं।

किसी किसी वौद्ध और जैन पण्डितोंका मत है, कि पाणिनिने ही पहले पहल आर्थ-प्राकृतके लक्षण निरूपण किये हैं। केदारभट्टने लिखा है.-"पाणिनिर्भगवान् प्राकृतलक्षणमपि व्यक्ति संस्कृताद्न्यत् ।

वीर्घाक्षरञ्च कुर्वाचदेकां मात्रामुपैतीति॥" भगवान् पाणिनिने संस्कृतं भिन्न प्राकृतके लक्षण भी प्रकाशित किये हैं, कि दीर्घाकार कहीं कहीं एकमाता-युक्त अर्थात् हस्व हुआ करता है।'

स्र्येपज्ञितिटीकामें मलयगिरिने भी लिखा है,— "चत्तारि इति च सूते नपुंसकत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात् । प्राकृते हि लिङ्गं व्यभिचारि यदाह पाणिनिः सप्राकृत लक्षण, लिङ्गं व्यभिचायेपीति॥"

'इस स्वमें प्राकृत भाषा कह कर ही 'चत्तारि' नपु'-सकद्भपमें निर्दिष्ट हुई है। प्राकृतभाषामें लिङ्गका

व्यभिचार देखा जाता है। पाणिनिने खरचित प्राकृत-लक्षणमें कहा है, 'लिङ्ग भी व्यभिचारी अर्थात् परि-वर्त्तनीय है।'

हम लोग अभी पाणिनि-रचित कोई भी प्राकृत ध्याकरण नहीं पाते हैं। मलयगिरिके मतसे पाणिनिने जो प्राकृत-च्याकरण लिखा था, उसका नाम है 'प्राकृत-अभी चएडरचित 'प्राकृतलक्षण' नामक एक आर्पप्राकृतका व्याकरण प्रकाशित हुआ है। इस चएडके ग्रन्थमें 'ह्रस्व' ब'यागे" (२१३) इस सुत्रमें केदारमङ्की उक्ति और 'वविद्वपरण्यः।" (११४) इस स्तूलमें मलयगिरिकी उक्ति तो संमधित हुई है, पर पाणिनिका दोहाई दे कर जो स्त उद्धृत हुआ है, ठीक वही स्त चएडके प्राकृत छक्षणमें नहीं है, इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि पाणिनि-नामधेय किसी व्यक्तिने 'प्राकृतलक्षण' नामक एक स्वतन्त्र व्याकरण लिखा था। यह पाणिनि और अप्रा-ध्यायिके रचयिता पाणिनि ये दोनों क्या एके व्यक्ति थे ? अद्याध्यायीमें पाणिनिने जिसे प्रचलित 'भाषा' वतलाया है वही तत्काल प्रचलित संस्कृत भाषा है। सुतरां उनके समयमें ऐसी प्राकृत भाषा पुचलित थी वा नहीं तथा उसका व्याकरण लिखनेका प्रयाजन हुआ था वा नहां, इस विषयमें सन्देह है। हमारा विश्वास है, कि अष्टाध्यायी नामक संस्कृत ज्याकरणके रचयिता पाणिनि और पानृतलक्षणके पृणेता पाणिनि दोनीं ही भिन्न न्यति हैं।

जो कुछ हो, चएडरचित आर्ष-प्राकृत-लक्षणमें हम लोग सुप्राचीन प्राकृत भाषाका बहुत कुछ परिचय पाते हैं।

चएडने प्राकृत, अपमंश (३।३७), पैशाचिकी (३।३८) और मागधी (३।३६) इन चार प्रकारके प्राकृतींका उटलेख किया है। इन चार प्रकारके प्राकृतींका भेद इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है—

"न छोपोऽपर्भ्रशेऽघो रेफस्य ।" । ३।३७) अपभ्रंशमें अघो 'र' अर्धात् रफलाका छोप नहीं होता । जैसे—व्यव, व्रसि ।

ृ"पैशाचिक्यां रणयोर छनी।" (३।३८) पैशाचिकीमें 'र'-की जगह 'छ' और 'ण'-की जगह 'न' होता है। जैसे—अरे=अछे, प्रणमत =पनमत। "मार्गाधकायां रसयोर छशौ ।" (३।३६) मार्गाधी-भाषामें 'र'-की जगह 'ल' और 'स'-को जगह 'श' होता है। जैसे चन्द्रकरनिकर=चन्द्रकल निकल, हंस= हंश।

उक्त प्राकृत-लक्षणके टीकाकारने संस्कृत, प्राकृत. अपभ्रंश, पैशाचिकी, मागधी और शौरसेनी इन छः भाषाओंका उल्लेख किया है। किन्तु उन्होंने भी महा-राष्ट्री-भाषाका कहीं उल्लेख नहीं किया।

वररुचिने ही अपने प्रकृतप्रकाशमें सबसे पहले महाराष्ट्री प्रकृतकी विस्तृतभावमें आलोचना की है। उनके मतसे महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी यही चार प्रकृत भाषा हैं।

हेमचन्द्रने (मूल) शकृत, शौरसेनी, पैशाची, चुलिका पैशाची और अपभ्रंश इन छः पुकारके प्राइती-का उल्लेख किया है। हेमचन्द्रने जिसे केवल प्राकृत वतलाया है, उसके साथ जैनशास्त्रमें व्यवहृत अर्द्ध-मागधिका सादृश्य अधिक है और वररुचिकथित महा-राष्ट्रीके साथ विलकुल नहीं है। अतएव हेमचन्द्र-वर्णित मूल प्राकृतको किस प्रकार महाराष्ट्री कह सकते । फिर चएडने आपप्राकृतके वर्णनाकालमें मूल प्राकृतका जो लक्षण निर्देश किया है, उसके साथ वररुचि-वर्णित मूल प्राकृत या प्रहाराथ्वीकी कई जगह पकता नहीं है। सुतरां चएडने जव महाराष्ट्री नामक किसी पाकृतका उल्लेख नहीं किया, अथच वररुचि निर्देशित म्लमाकृत वा महाराष्ट्रीके साथ जगह जगह पर पृथक ता देखी जाती है, तव किस प्रकार कहा जायगा, कि वार्षप्राकृत-के उत्पत्तिकालमें महाराष्ट्रीकी उत्पत्ति हुई थी? इस हिसावसे महाराष्ट्रीको आदि प्राकृत और उससे अपर प्राकृत समूहकी उत्पत्ति किस प्रकार स्रोकार को जा सकती है ? अधिक सम्भव है, कि वरविचे महा-राष्ट्रीको भित्ति करके प्राकृत व्याकरण प्रकाशित करनेसे तत्परचर्त्ती दो एक आछङ्कारिक और आधुनिक वैया-करणोंने महाराष्ट्रीको ही आदि प्राकृत वतलाया है। किन्तु महाराष्ट्रीभाषा आदि प्राकत भाषा है, ऐसा किसी भी पुचीन वैयाकरणने स्पष्ट उल्लेख नहीं किया।

फिर वौद्ध लोग मागधीको मूल भाषा सममते हैं।

उन्होंने कश्चायन (कात्यायन) की 'पूर्योग सिद्ध'-से जो ' यचन उद्दधृत किया है, वह इस प्कार है—

"सा मागधी मूलमावा नरा येयादिकप्पिका। ब्रह्मानो च स्सुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे॥"

जो मूल भाषा सब भाषाओंको आदिकल्पक है, जिस अशुतपूर्व भाषामें मनुष्य और ब्रह्म, यहां तक, कि सम्यक् वौद्ध लोग भी वातचीत करते हैं, वही भाषा मागधी है।

जैन लोग अद्ध मागधो भाषाको हो आदि भाषा जानते हें हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने 'पश्चना-स्त्र'से जो पृमाण उद्धधृत किया है, वह इस पृकार है,—

"से कि तं भाषारिया ? जेनं अद्धमगहाय भाषाय । भासेन्ति जत्थयनं वम्मीलिवि पवत्तदः।" अर्थात् किस भागमें उसका प्योग है ? अद्धिमागधी-भाषा जिससे प्काशित किया जाता है, वही ब्राह्मीलियि है।

लिपिस्पिके वाद जितने प्रकारकी लिपिमालाएं निकली हैं उनमें ब्राह्मोलिपि हो भारतवासीकी आदि-लिपि है। पहले ही कहा जा चुका है, कि आयाँकी श्रुति जब प्रचलित हुई, उस समय भी लिपिपद्धित नहीं थी। अधिक सम्भव है, कि देशप्रचलित भाषामें मनो-भाव प्रकाशित करनेके लिये सबसे पहले ब्राह्मीलिपि हो ज्यवहत हुई थी।

वीद्धों और जैनोंके आदि धर्मप्रन्थ मागधो (पालि) और अद्धे मागधो भाषामें रिनत हैं। जैनतीर्थं दूरोंकी उपदेशायली भी इसी अद्धं मागधी भाषामें लिखी हुई हैं। जैनोंके भगवतीस्त्रमें चातुर्याम धर्मप्रकरणमें २३ में तीर्थं दूर पार्श्वनाथकी उक्ति पाई जाती है। ७७७ ई०सन्के पहले पार्श्वनाथका समेतिशखर पर निर्वाण हुआ। उनका लीलाक्षेत्र काशी और मगध था। अतप्य उस समय इस प्रदेशमें जो भाषा प्रचलित थी उसी भाषामें निश्चय है, कि उन्होंने अपना अभिमत प्रकाशित किया था। पार्श्वनाथका मत जो भगवतीस्त्रमें है, वह अद्धं भागधी भाषामें देखा जाता है।

पार्श्वनाथ, महाबीर और शास्यवुद्ध इन्होंने जो मागधी भाषामें धर्मप्रचार किया था, उसका बहुत कुछ निद्शीन प्रियद्शींको मागधीय अनुशासन्-लिपिमें तथा चएडको आर्पप्राकृत भाषामें विद्यमान है।

Vol. XIV. 170

ि प्रयद्शी को गुजरातसे आविन्कृत अनुशासनमें ज भाषा न्यवहत हुई है, सम्भवतः वही भाषा वहुत कुछ क्ष्पान्तरित हो कर दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्री कहलाने लगी थी। फिर पूर्व-भारतसे प्रियदर्शीकी जो सब अनुशासन-लिपियां आविन्कृत हुई हैं वही भागधी नामसे स्थात थीं।

अध्यापक लासनके मतसे, 'वररुचि-वर्णित महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची इन चार प्रकारके प्राकृतीं-मेंसे शौरसेनी और मागधी ये दोनों ही यथार्थमें स्थानीय लक्षणाकान्त हैं। इन दानोंमें शौरसेनी एक समय पश्चिमाञ्चलके विस्तृत प्रदेशमें कथित भाषाक्रपमें गिनी जातो थी और मागधी अशोककी शिलालिपिमें व्यवहत हुई है तथा पूर्वभारतमें यही भाषा एक समय प्रचलित थो। महाराष्ट्र नाम रहने पर भी यह महाराष्ट्रप्रदेशकी भाषा नहीं समकी जाती। पैशाची नाम भी काल्पनिक समका जाता है।

जो कुछ हो, अतिपूर्वकालमें भारतमें सव जगह पायः एक तरहसे प्राकृतभाषाका ही प्रचार था। अभी जिस वकार महाराष्ट्रीके साथ मागधी वा विहारी भाषाका प्रभेद देखा जाता है, पहले उस प्रकार नहीं देखा जाता था। वररुचिका प्राकृतप्रकाश और भारतवर्षके नाना स्थानोंसे आविष्कृत प्रियदशींकी अनुशासनिछिपिकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि दो या ढाई हजार वर्ष पहले भारतीय आर्यजातिक मध्य जो कथित वा प्राकृतभाषा प्रचलित थी, वह सभी जगह प्रायः एक-सी थी, अति सामान्य इतरविशेष था । जैसे चएड अथवा वररुचिके स्थानभेदमें चार प्रकारकी प्राकृत-भाषाओंका उल्लेख करने पर भी यदि उन सव भाषाओंके मूल और गठनकी आलोचना की जाय, तो वहुत प्रमेद देखा जाता हैं। इसीसे वररुचिके १म ६ परिच्छेदमें महाराष्ट्री भाषा-की ४२४ सूलोंमें आलोचना करने पर भी उन्होंने १४ स्तोंमें पैशाची, १७ स्तोंमें मागधी और ३१ स्तोंमें शौर-सेनीका विशेषत्व दिखलाते हुए 'ग्रेपं महाराष्ट्रीवत्' ऐसा कह कर उपसंहार किया है।

चएड और वररुचि दोनींने ही प्राकृतभाषाके तिविध द्वा सीकार किये हैं; यथा संस्कृतयोनि, संस्कृतसम और देशी, जो संस्कृतयोनि है वह संस्कृतसे उत्पन्न है। यथा—संस्कृतमाला = प्राकृतमत्ता। नित्यं = निचं।

जिसका रूप विस्तृत नहीं होता, ठीक संस्कृतका मत ही रहता है, वहीं संस्कृतसम है। यथा—सूरो, सोमो, जालं कन्दलं।

संस्कृतके साथ जिसका कुछ भी मेळ नहीं है, अथच भिन्न भिन्न देशोंमें जिसका बोळचाळमें व्यवहार हैं, वही देशी है। यथा—महाराष्ट्रदेशमें भातु, भेटु; अन्ध्रदेशमें वर्षटकमु कुडु; कर्णाटदेशमें कुछु; द्राविड़में चोठ।

जिन्होंने प्राक्षतभाषाको संस्कृत भाषाकी दुहिता वतलाया है, प्राक्षतके उक्त विविधक्षणकी आलोचना करनेसे
उनकी वातोंका समर्थन नहीं किया जा सकता। प्राक्षतभाषाका अनेकांश संस्कृतभय होने पर भी जो देशी है
जिसका भारतवासी बहुत दिनोंसे व्यवहार करते आ रहे
हैं, उसे हम लोग कभी भी संस्कृत नहीं कह सकते।
प्राकृतका यही अंश भारतवासीका निजल है। इसी अंशके प्रभावसे देशभेद, कालभेद और लोगोंके उचारणभेदसे प्राकृतभाषाने नाना मूर्त्ति धारण की है तथा भारतके
एक प्रान्तको भाषा दूसरे प्रान्तमें अवोध्य हो गई है।
दाक्षिणात्यसे हो इस देशीय भाषाका प्रभाव विस्तृत
हुआ है। इस सम्बन्धमें कृष्ण पिएडतने अपनी प्राकृतचिन्द्रकामें इस प्रकार लिखा है, -

"अपभ्रंशस्तु यो मेदः पष्टः सोऽत न लक्ष्यते।
देशमापादितुत्यत्वान्नाटकादावदर्शनात्॥
अनत्यन्तोपयोगाचातिष्रसङ्गभयादिष ।
पवमन्येऽिष ये भेदा लक्षिताः पूर्वं स्रिभिः॥
नेहोकाः किंतु नाम्नैते कोन्धन्ते स्पष्टबुद्धये।
महाराष्ट्री तथावन्तो शौरसेन्यद्धं मागधी।
वाह्योको मागुधी चैव पड् ता दाक्षिणात्यजाः॥
शकाराभीरवण्डाल-शचरद्राविङ्गेष्ट्रजाः।
होना वनेचराणाञ्च विभाषा नाटकाश्रयाः॥
बावण्डो लाटवैदर्भावुपनागरनागरी।
वार्वरावन्त्यपाञ्चालटाक्षमालवकैकयाः॥
गीड़ोष्ट्रदेवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तलसे हलाः।
कालिङ्गश्राच्यकणाट-काञ्च्यद्राविङ्गौर्ज्वराः॥
आभीरोमध्यदेशीयः स्दमभेद्व्यवस्थिताः।

सप्तविशत्यपश्रंशा वैडाळादिमभेदतः॥
काञ्चीदेशीयपाण्ड्ये च पाञ्चाळं गौड़मागधं।
बाचण्डदाक्षिणात्यञ्च शौरसेनं च कैक्यं॥
शावरं द्राविडं चैव पकादश पिशाचजाः।
पवमार्षमनापञ्च सङ्कीणं चोपजायते॥"

'प्राकृतका पप्रमेद अपभ्रं श है, देश प्रचलित जो सव भाषा है, वह उसीके समान है। नाटकादिमें उसका प्रयोग नहीं खा जाता। पूर्व पिड़तींने और भी जिन सव भेदोंकी कल्पना की , वाहुल्य और अति प्रसङ्गके भयसे उसका जिक्र नहीं किया गया। किन्तु अच्छी तरह जाननेके लिये उनका केवल नाम दिया जाता है। महा-राष्ट्री, अवन्ती, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, वाह्रीकी और मागधी ये छः भाषा वाक्षिणात्यमें प्रचलित है। शकार, आमीर, चएडाल, शवर, द्राविड़ और उड़देशमें जो सब भाषा व्यवहृत होतो हैं वे तथा वनचरोंकी व्यवहृत होन भाषापे नाटकादिमें प्रयुक्त होतो हैं। वाचण्ड, लाट चैदर्भ, उपनागर, नागर, वार्चर, आवस्त्य, पञ्चाल, टाह्म, मालव, क्षेक्य, गौड़, उड़, दैव, पाश्चात्य, पाण्ड्, कीन्तल, गुर्ज्जर, आभीर और मध्यवेशीय वैड़ालाविभेदसे वे सता-इस भाषावं अपभ्रंश समभी जाती हैं तथा उन सब भाषा-ओंमें एक दूसरेके साथ अति सामान्य प्रमेद हैं। इनमेंसे व्राचर्**ड, काञ्ची, पार्**डा, पाञ्चाल, गौड़, मागघ, दाक्षि णात्य, शौरसेन, कैकय, शम्वर और द्राविड ये त्यारह पै गाच-भाषा हैं। अलावा इसके ये सब भाषाप पुनः आपं, अनार्ष और सङ्कीर्ण भेदसे भी तीन प्रकारकी हुआ करती है।

अभी बङ्गला, उड़िया, गुजरातो, मराठी आदि देशीय वा अपभ्रंश भाषाके कितने प्रभेद हैं। किन्तु प्राचीन-कालमें इस प्रकारका प्रभेद नहीं था, कृष्णपिंडतके उद्भुत बचनसे यह साफ साफ जाना जाता है। यह बहुत दिनोंकी वात है। यहां तक, कि पांच सी वर्ष पहले बङ्गाल, मिथिला, उड़िया और महाराष्ट्रमें जो भाषा प्रचलित थीं, सब मिला कर देला गया, कि उस समय भी इन सब भाषाओं के घातु, प्रकृति, ग्रास्प शब्द और कृद शब्द बहुत कुल मिलते जुलते थे। वह ही दुःखका विषय है, कि जितने ही दिन वीतते जाते हैं, जितना ही भारतीय विभिन्न भाषामें सैकड़ों प्रन्थ रचित हो कर | भाषाको थोवृद्धि कर रहे हैं, उतनी ही विभिन्न देशोंकी । विभिन्न भाषा विभिन्न मूर्त्ति धारण करती जा रही है। । जिनके साथ पहले हम लोग एक थे, अभी कालके प्रवाव-से भिन्न और संस्वसून्य हो गये।

प्राहत भाषाके उच्चारणमें संस्कृतसे प्रभेद होने पर श्री प्राहत भाषाका व्याकरण संस्कृतानुसारी है। परन्तु प्राहृतोन्द्रव होने पर भी अभी भारतकी प्रचलित भाषाके व्याकरणके नियमादि विलक्ष्ण स्वतन्त्र हैं। वङ्गभाषा, प्रहाराध्य और मैथिल शब्दमें विस्तृत विवरण देखो .

प्राकृतभाषाका विशेषत्व ।

संस्कृतभाषामें कुल ६४ वर्ण हैं, परन्तु प्राकृत भाषामें सिर्फ ३६ हैं। यथा—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ यही ८ स्वर और क ख ग छ, च छ ज फ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध, प फ व म, य र छ च स ह यही २८ व्यञ्जन। परन्तु पैराचिकी भाषामें 'त' और मागधो भाषामें 'श कारका प्रयोग देखा जाता है। इन दोनोंको भी छेनेसे प्राकृत भाषामें ८ वर्ण होते हैं। अर्थात् साधारण प्राकृत भाषामें प्रञुत वर्ण और पे औ ऋ ऋ छ छ, अः, ङ ञ न श तथा 'प सब अक्षर नहीं हैं।

कृष्यविष्डितके उद्गृत वचनसे जाना गया है, कि प्राकृतके प्रधानतः तीन भेद हैं—आपं, अनार्ष और सङ्कीर्ण।

आर्पे प्राकृतमें प्रथमाकी जगह हितीया और सप्तमी-की जगह तृतीया विभक्ति देखी जाती है। यथा—चतु-विंशतिरपि जिनवराः =चीर्वासं वि जिणवरा। तस्मिन् काले तस्मिन् समये =तेणं कालेणं तेणं समलणं।

अनार्य था साघारण प्राक्तमें संस्कृतको तरह छिङ्ग और विभक्ति रहने पर भा कई जगह विपर्य्य देखा जाता है। यथा संस्कृतमें विद्युत् स्त्रीलिङ्ग हैं, पर प्राकृतमें विज्जूको पुंलिङ्ग वतलाया है।

इसी प्रकार द्विचचनकी जगह वहुवचन होता है। यथा—संस्कृत देवी, ब्राह्मणी पादी इत्यादिकी जगह प्राकृत भाषामें यथाकम देवा, वम्भणा, पाया देखा जाता है। चतुर्थोंका प्रयोग वहुत कुछ पष्टीके जै सा है। यथा— नमः जिनाय = नमो जिनस्स ।

हेमचन्द्रके मतसे ऋषिकथित प्राइत ही आपें वा पुरातन प्राइत है। 81२८७ र उन्होंने लिखा है, कि आपेंप्राइतका बहुकप हुआ करता है, अर्थात् इसमें कोई खास नियम नहों है। इसकी सभी विधियाँ विकल्पमें प्रयुक्त हुआ करती हैं।

जैनोंके प्राचीन अङ्गादि अद्धे मागधी भाषामें रचित हैं। इसीसे मालूम होता है, कि हेमचन्द्रने अद्धे मागधीको ही आर्य वा पुरातन प्राकृत वतलाया है। उनके मतसे— कर्जु के एकवचनमें पदके अन्तमें 'अ' रहनेसे मागधी-मापामें 'अ'-की जगह 'ए' होता है। किन्तु महाराष्ट्रीय मापामें ऐसी विधि नहीं है। मागधी और अद्धे मागधी भाषामें जहां 'र' और 'स' होता है, मागधी भाषामें वहां यथाकम 'ल' और 'श' होता है। इस सामान्य प्रभेदको छोड़ कर दोनों भाषामें और कोई पृथक्ता नहीं है।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि चएडने प्राकृत, मागधो, पैशाची और अपभ्रंश इन चार प्रकारके प्राकृतों-का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने महाराष्ट्री और शीर-सेनीका उल्लेख नहीं किया। शायद इन दो श्रेणियोंकी प्राकृत भाषा उनके समयमें प्रन्थनिवद्ध नहीं हुई होगी। चएडने मूल प्राकृत कह कर जिस भाषाकी विस्तृत आलोचना की है, उसके साथ मागधी भाषाकी वहुत कुछ एकता है। इस हिसावसे चएडका मूल वा आर्थ प्राकृत हो अर्ड मागधीका पुरातनकप समका जाता है। किन्तु उनके समयमें भी अर्ड मागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी-का पृथक् नाम नहीं हुआ।

हिमालयसे कुमारिका और गङ्गासागरसे सिन्धु इस विस्तृत जनपद्से सम्राट् प्रियदशीं के जो सब अनुशासन आविष्कृत हुए हैं उनमें हम लोग पालि वा प्राकृत भाषा-का तिविधक्कप पाते हैं:—पञ्जावी वा युक्तप्रदेशीय, उद्धियनी वा मध्यप्रदेशीय और मागधी वा प्राच्यदेशीय। युक्तप्रदेशीय भाषामें सभी जगह 'र' व्यवहृत हुआ है और चएडने 'अपन्नंश' कह कर जिस भाषाका लक्षण वतलाया है, उसके साथ इसका मेल देखा जाता है। मध्यप्रदेशीय वा आवन्त्य भाषा ही चएड विणेत मूल प्राकृत है। इसका एक समय उज्जियिनो, गुजरात, महाराष्ट्र और किल्क्ष अञ्चलमें प्रचार था। प्राच्यदेशीय भाषामें सभी जगह 'र' की जगह 'ल' है। खाल्सी, मीरद, लीरिया, सहसराम, वरावर, रामगढ़ और घोलीसे प्राप्त प्रियदर्शीको लिपिमें सभी जगह इसी प्रकार 'ल'-का प्रयोग देखा जाता है। यही चएड-चर्णित मागधी है।

स्वर-विधान ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राकृत भाषामें ऋ, ऋ, ऌ, ॡ, ऐ, औ ये छः खर नहीं हैं।

ऋ की जगह रि अथवा स्थानविशेषमें अ इ उ ए ओ हुआ करता है। चएड २१५, वरषचि २१२७-३१) यथा— ऋणं = रिणं, घृतं, घतं, ऋषि = इसि, युद्धः = बुड्ढो, युन्तं = बॅटं, उत्कृष्टं = उक्कोसं।

पे की जगह ए, अइ और क्षित् इ वा ई हुआ करता है। (चएड २१६ ७, वररुचि ११३५-३६) यथा—तैलं = तेलं, शैलं = सेलो, सैन्धवं = सेन्धवं, सिन्धवं, ऐश्वर्यं = अइ-सरियं, भैरवः = भइरवो ; धैर्यं = धीरं।

आ, ई, ऊ इन सव दीई खरोंके बाद संयुक्ताझर रहनेसे दीई खर हस्त्र होता है, (चगुड २।३) यथा -कार्य = कज्ञं, तोक्ष्णं = तिक्खं, ऊर्दं = उद्दं, उद्दं।

फिर हस्व स्वरके वाद युक्त व्यञ्जन रहनेसे हस्व स्वर । दीर्घ होता है तथा एक व्यञ्जनका लोप होता है। अग्रड २।२ यथा—धनाद :=धनड्ढी, देव इन्द्र वा देवेन्द्र = देविन्दो ।

द्यञ्जन-विधान ।

प्राकृत भाषामें मूर्व ण्य ष वा तालव्य श नहों होता।
श और प की जगह स होता है। (वाकि २।४३) यथा —
निशा = निसा, पण्ढ़ः = सण्ढ़ो, कपाय = कसायं। इस
प्रकार ट के स्थान पर ड और ड के स्थान पर ल होता
है। (वरकि २।२०-२३) यथा — नता, विटप = विड्वो;
दाड़िमं = दालिमं।

प्राक्तत भाषामें दन्त्य 'न' नहीं है। इस कारण सभी जगह 'ण' होता है। उधर पैशाची माषामें 'ण' नहीं है। (नग्रड ३१३८)

शब्दके अन्त्यस्थल हलका लोप होता है। (वरकि ६१२) यथा—यशस् = जसी, नमस = णही, कर्मन् = कर्मो, यावत् = जाव। स्त्रीलिङ्गमें शब्दके अन्त्यस्थ हलकी जगह आकार होता है। यथा—सरित्=सरिया, प्रतिपद=पिड्वा; किंतु विद्युत्, शरद और प्राट्ट् शब्दकी जगह नहीं होता। इन तीन शब्दोंकी जगह यथाक्रम विज्जू, सरदो, पाउसी हुआ करता है। (वरहिन ४१६-११) शब्दके आदिमें य-को जगह ज होता है। (वर्गड ३११५) यथा—यीवनं = जुव्यूणं, स्याः = सुज्जो; किन्तु युष्मद्दके 'यकार'-की जगह तकार होता है। (वर्गड ३११७) यथा—युष्मासिः = तुम्हेहि। फिर यकारके मध्यमें रहनेसे पूर्वकृप रहता है। यथ —प्रयागजलं = प्यागजलं।

क, ग, च, ज, त, द, प वर्गीय द, अन्त्यस्थ द, य १न सदका अकसर लोप हुआ करता है। (वर्शिव २१२) यथा—मुक्क = मउलो, सागर = साधरो, वचनं = दअणे, रजतं = रअदं, वितानं विआणं, गदा = गआ, विपुलं = विउलं, वायुना = वाउणा, जोवं = जीअं।

किन्तु कहीं कहीं श्रुतिमधुर होनेके लिये लोप नहीं होता । यथा—कुसुमं, पिअगमणं, (अपजलं =) अव-जल, अतुलं, आदरो शणरो, (अयशस् =) अजसो स्न, ध, ध, और भ को जगह ह होता है (वरशेष २१२७) यथा—मुखं = मुहं, मेशः = मेहो, गाथा = गाहा,

राधा = राहा, सभा = सहा।

फिर स्थानविशेषमें लोप भी नहीं होता। यथा— प्रखलः = प्रखलों, प्रलंघन = प्रलंघणों, अधीरों, उपलब्ध-भाव = उपलब्धभावो। (भामह २१२७)। किन्तु शौर-सेनो भाषाके त-को जगह र और ध-की जगह घ होता है। (चण्ड ११३९ टीका, बरवि १२३, र का कभी कभी ल होता है। किन्तु मागधी और अपभ्रंशमें सभी जगह ऐसा ही हुआ करता है। यथा—हरिद्रा = हिल्हा, चरणो = चलणों, युधिष्ठर = जुहिठ्ठिलों, अंगुरो = अंगुलि, किरात = किलादों, परिखा = फलिहा।

ण, म, छ, म और ह इन पांच वर्णोंका परिवर्त्तन नहीं होता है। (वर्श्वच २१३४) यथा—दश =दह, एका-दश =प्रनारह, द्वादश =वारह, क्योदश =तरह।

फिर कहीं पर श की जगह ह और स दोनों ही होते हैं। यथा—दशवल =दहवली, दसवली।

प्राकृत भाषामें संयुक्तव्यञ्जनका यथेष्ठ परिवर्त्तन देखा जाता है। क, ग, ङ, त, द, प, प, स इत आठ वर्णोंका किसी वर्णके साथ युक्त होनेसे लोप होता है। यथा—अक = भत्तं, सिक्थक = सित्थओ, स्तिष्ध = सिनिद्धो, खद्ग = खगो, उत्पलं = उप्पलं, मुद्गर = मुगगरो, सुप्त = सुत्तो, गोष्ठी = गोद्दी, स्वलित = बलिअं। (वरक्वि ३।१)

म, न और यकार यदि किसी वर्णके साथ अधोयुक्त हों तो उनका लोप होता है। यथा—रिशम =रस्सी, युग्मं = युगां, नग्न=णग्गो, सौम्य=सोम्मो। (दरहिच ३१२)

ल, व और रकारका किसी वर्णके साथ ऊपर वा नांचे युक्त होनेसे भी लोप होता है। (वरक्वि ३१३)। यथा—उल्का = उका, वल्कलं = वक्कलं, लुक्थक = लोदओ, पक्ष = पिक्कं, अर्क = अक्को, शकु = सको।

किसी किसी जगह युक्तवर्णके मध्य फिर खरागम हुआ करता है। (वरहचि ३।६२) यथा, श्री = सिरी, हो = हिरी, कीत = किरीतो, क्लान्त = किलंतो, क्लेश = किलेसो।

संस्कृतका युक्तवर्ण प्राकृत भाषामें कैसा आकार धारण करता है, नीचे उसकी एक तालिका दी गई है:— प्राकृत संस्कृत

क = त्क, प्क, क, क्य, क्, क, क्र, स्क, क। क्ल = त्ल प्ल, ल्य, झ, क्क, स्क, स्थ, य्ल, स्व। ग्ग = द्रा, हुन, न्न, न्य, अ, र्ग, छ्रा,। ग्घ=ङ्घ, इघ, घ्र, ब्र, ब्रं। ङ्क = ङ्क्ष च्च = च्य, त्य, चू, ची। च्छ=ध्य, र्छ, छु, क्ष, त्क्ष, त्क्ष, त्स, त्स्य, एस, श्च। ज्ज = ज, ज, ज, ज, ज्व, घ, घ, घ, य। ज्म=ध्य, हा। ञ्ज =क्त, त्य, एय, हा। ह=त[°], स। इ = ए, घ, स्त, स्थ। इ=त, दै। ड्ढ = ह्य, र्घ । एट, एड =त्त, न्द्। ण्ण = मन, श, स्न, स्न, ण्य, न्य, एं. एव, न्य । णह =क्न, एन, व्या, स्न, ह, ह,। Vol. XIV. 171

त्त = क, स, ल, तम, ल, त्व, त। त्थ = क्य, प्य, ब, थ, स्त, व्ह स्थ। इ=म्द, म्द, ग्र, द्र, दे, इ.। द्र ≕ध, ब्ध, धं, ध्व। न्द =न्त । (शौरसेनीमें) न्ध =ह । प्प = क्प, त्प, प्य, प्र, प्र, हप, घ्र, क्र, त्न । प्फ = क्फ, त्फ, क, स्फ, :फ, प्प, स्प। व्य = न्व, इप, इ, र्व, त्र । भ्म =ग्म, इ्स, द्ध, भ्य, भ्र, भ, हु। मा = ङ्म, प्म, न्म, म्य, मी, हम, म्छ । म्ह=पा, तम, सम, तम। च्य = यें, जें। र=र्थं । रि = य (कचित् पैशाचीमें), दू (कचित्) । रिस, रिह =श, प, है। छ=ल्य, छै, ल्व, यै। ल्ह=ह। व्य = द्व, व्य, त्र, व । ैस=र्रा, श्र, ख, खं। स्स =शम, श्य, प्म, स्य, श्र, श्र, श्व, प, प्व, स्न, स्व । शब्दका द्वप ।

प्राकृत भाषामें द्विवचन और सम्प्रदान कारक नहीं होता। सम्प्रदानकी जगह पष्टी विभक्ति होती है। अपा-दान शब्दके अन्तमें हिन्तो और सुन्तो विभक्ति आती है।

प्राकृत भाषामें प्रधानतः ५ प्रकारके शब्दोंका क्ष्य देखा जाता है—१ छा कितने अ. वा आकारान्त, २ रा कितने हस्य इ वा दीर्घ ईकरान्त, ३ रा कितने उ वा उका-रान्त, ४ था जो पहले ऋकारान्त था, ऐसे कितने शब्द और ५ वां पहले जो खञ्जनान्त था, ऐसे कितने शब्द। शेषोक्त दों क्ष्पों में ऋ की जगह प्रायः इ उ अथवा अर् वा आर होता है। सम्बन्ध पदमें भी इसी प्रकार होता है मातृ शब्दकी जगह माआ तथा आकारान्त लोलिङ्गकी तरह शब्दक्ष होता है। ब्यम्नान्त शब्दका शेष वर्ग लोप तथा प्रथम ३ प्रकारमेंसे किसी एककी तरह क्ष्य होता है। यथा—सरस्की जगह सर (पुंलिङ्गबद्दर), अशिख्की जगह आसिसा (स्त्रीलिङ्गस्त)। परन्तु हलन्त प्राकृतका रूप साधारण संस्कृतवत् होता है। यथा—भवदा (भवत् शब्दकी तृतीया), आउसा = आयुषा (आयुस् शब्दकी ३या)।

नीचे अकारान्त और आकारान्त शब्दका रूप दिख-लाया गया है:---क्षीवलिङ्ग वण =वनं पुळिङ्ग सर = सरस् एकवचन वहुवचन सरा। (वणाइ', वणाणि) १मा। सरो (वर्ण) २या । सरं सरे, सरा । सरेहि, सरेहि। ३या । सरेण ∫ सराहिंतो, सरेहिंतो ५मी | { सरादो, सरादु, सराहि, सरा । र सरासुंतो, सरेसुंतो सराणं, सराण । ६ष्टी । सरस्स । सरेसु, सरेसुं। ७मी। सरे, सरस्ति। सम्बो। सर (वण) सरा। (वणाइं, वणाइ) स्रीलिङ्ग माभा =मात्।

वहुवचन । एकवचन माञ्राओ, माञाउ, माञा । १मा । माआ माभाओ, माभाउ । ऱ्या। साअं (माथाहितो, ५भी । माआदो,-दु-हि । र माथासुती। (माआणं, माआण ३या।) ६छी। } ७मी। माआइ, माआए। (माबासु, माबासुं। माआओ, माआउ। संखो०। माप स्रीलिङ्ग णई =नदी।

१मा। णई

२या। णई

२या। णई

प्रिकी, णईखी, णईखी।

प्रिकी। णईकी, णईखी

च्या।) णईअ, णईआ

च्या।) णईअ, णईखा

च्या।) णईअ, णईखा

च्या।) णईअ, णईखा

च्यानाम।

प्राकृत भाषामें सर्वनाम शब्दका कुछ विशेषत्व है। जैसे, किम् यदु तदुकी जगह यथाकम 'क' 'ज' और 'त'; पतद्की जगह 'पद' वा 'प'; इदम्की जगह 'दम', अदस्की जगह 'अमु' कभी कभी 'अह' भी होता है। फिर किम्, यद और तद्की जगह स्थलविशेषमें 'कि' 'जि' 'ति' ऐसा देखा जाता है।

त ≕तदु (पुंकिङ्ग) पकवचन वहुवचन श्मा। तो (क्कीवलिङ्गमें तं ते) (क्की॰ ताइ, ताइ') २या । तेण, तिणी उया । तेहि। ५मी । ताहितो, तत्तो, तत्तु, तदो, तदु । तासु तो। ६ष्ठी । तस्स, तास, से ताणं ताण, तेसि। तससि-स्सि. ७मी । तस्मिं-तस्मि तेसु, तेसु । तहि, तस्थ। स्रीलिङ्ग । एकवचन । वहुवचन ताओ ताउ। १मा । ता तीओ, तीउ। २या । ताहितो, तीहितो, ५मी। तादो, तादु। स्रुंतो । ताप, ताइ, ताहि, तीहिं। ३या । तिणा तीप, तीइ, तांसा ६ष्ठी। तस्सा, तासे,से तेसि, तासि, ताणं। जीणं, तीण, तीसि । तिस्सा, तीसे तोध, तीआ तासु, तासु तीसु तीसु । ७मी । ताहे, तइआ क्रियापद् । प्राकृतशम्द्रके क्रियापद्में भी द्विवचन नहीं होता। इस घातुका रूप दिया जाता है। वर्त्तमान काल । वहुवचन । एकवचन । हसंति । प्रथम । इसदि, इसइ । मध्यम । हसमि । हसह, हसधं-घ, हसित्था, हसत्थ । हसामो,-मु,-म, हसिमो-उत्तम । हसामि, हसमि,

हसमृहि ।

१म। हसदु, इसव।

अनुशा ।

मु-म, इसम-इसम्ह ।

हसंतु ।

मध्यम । इससु, इसाहि, इसस्स । इसह, इसध, घं। उत्तम । इसमु । इसामी-म, इसमी-म, इसम्ह । पदान्तमें 'अ' की जगह 'प'के इच्छानुसार व्यवहार होते देखा जाता है। यथा—इसेमि, इसेंदु ।

भविष्यत्कालमं प्राकृतके कई रूप होते हैं। यथा— पकवचन--१स्सं, स्सामि । २ स्ससि । ३ स्सि । वहुवचन--१ स्सामो । २ स्सध, स्सह । ३ ससंति ।

फिर स्थानविशेषमें इकारका आगम भी देखा जाता है। यथा—हसिस्सम्, कहीं भविष्यत्कालमें 'स्स'-की जगह 'च्छ' होता है। जैसे, श्रु धातुसे सोच्छम् वा सोच्छिस्सम्, वच धातुसे बोच्छम् वा वोच्छिस्सम्। फिर कहीं स्सकी जगह हि होते देखा जाता है। यथा— हसिहिमि।

प्राक्तमें कर्मवास्पमें कर्नु वास्पकी विभक्ति व्यवहृत होती है। (संस्कृत 'य'-की जगह ईम वा ईज आदेश होता है) यथा—प्रत्यते = पढ़ीआइ, पड़िजाइ। कहीं कहीं य का लोप नहीं होने पर भी वह पूर्ववर्ती हलका क्षप धारण करता है। यथा—गम्यते = गम्भइ, गमिजाइ। णिच् प्रत्ययका संस्कृतमें अय-की जगह प होता है। यथा,—कारयति = कारेइ, हासयति = हासेइ।

फिर णिचमें 'आवे' ऐसा आदेश भी हुआ करता है। यथा—कराबेद, हसाबेद । (नरविच ५१२०)

हलके वाद तुम् और खरके वाद दुम् होनेसे वह पूर्व-वर्णके साथ युक्त होता है। यथा—वच् नुम् वक्तुं = वत्तुम्। णि—दुम = णेदुम् (संस्कृत नेतुं)।

त्वा-की जगह तूण वा ऊण होता है। यथा—हत्वा=
काऊण। प्राकृत गद्यमें कहीं त्वा-की जगह दुअ भी
होता है। यथा—गदुअ = गत्वा। वर्स माममें शतु और
शानच्की जगह अन्त वा एन्त और माण आदेश होता
है। यथा पढ़न्त, पढ़ेन्त, पढ़माण। स्त्रीलिङ्गमें
शतु शानच्के वाद ई और आकार आदेश होता है।
यथा—हसई, हसंती, हसमाणा।

कर्मवाच्यके अतीतकालमें प्रायः संस्कृत रूप ही रहता है, परन्तु प्राकृतके नियममें वर्णप्रत्यय होता है। यथा— श्रुत = सुद्द, सुअ।

कर्मवाच्यके भविष्यत्कालमें 'य' पूर्वहलका रूप धारण

करता है और अनीयकी जगंह भनीय वा अणिज होतां है।

अंध्यय ।

प्राकृतका अवन्य-विधान भी वहुत कुछ संंस्कृत-सा है। विशेषता इतनी हो है, कि 'इति'-को जगह ति होता है। यह यदि पूर्व'शन्दके साथ युक्त हो, तो पूर्व-वर्णका आ, ई और उकार हस्स होता है। खलुकी जगह हस्स स्तर वा अनुस्तारके परवत्तीं ए उकारके वाद क्ख़ और दीर्घस्तरके वाद खु होता है। इसी प्रकार अपि की जगह वि, इव की जगह विए वा वा, एव की जगह उजेन्य वा जैन्य होते हैसा जाता है।

जिस साधारण प्राकृतका विषय आलोचित हुआ, डाकृर होरणली साहबके मताचुसार ८वीं शताब्दी तक प्राकृतका यही कप विद्यमान रहा। पोछे प्राकृत भाषाका विछक्तंल परिवर्तन हो गया। आजकलकी प्रचलित भाषामें वहा परिवर्तन देखा जाता है।

वहुतों संस्क त नाटकमें भी विभिन्न प्राक, त भाषाका प्रयोग देखा जाता है। जिस प्रकार वहुत समय हुए, संस्कृत भाषा मृत होने पर भी उसका पण्डितोंके निकट पूर्वेवत् आदर होता आ रहा है, उसी प्रकार प्राचीन नाटक वा सेतुवन्धादि प्राचीन प्राकृतकाव्य-वर्णित प्राकृत भाषाका वहुत दिनोंका लोप होने पर भी संस्कृत अलङ्कार और छन्दोशास्त्रमें उसका प्रयोग आज भी देखा जाता है।

अमी संस्कृत नाटक लिखनेमें किसकी किस प्रकार-की प्राकृत भाषाका न्यवहार करना होगा, इस संवन्धमें मालङ्कारिकोंने ऐसा निर्देश किया है,—

प्राकृतचिन्द्रकाकार कृष्णपण्डितने ळिखा है,— दिश्रमण, राजगण, मन्तिगण और अमात्य तथा विणकोंकी भाषा संस्कृत होगी। कोई कोई संस्कृतमें, कोई प्राकृतमें, कोई साधारण भाषामें और कोई व्यक्ति म्लेच्छ मापामें वातचीत करेगा। यागयकादिमें स्लेच्छ भाषाका और खियोंको प्राकृत भिन्न अन्य भाषाका व्यवहार नहीं करना चाहिये। कुलोन व्यक्तिकी सङ्कोणी भाषाका और ज्ञानहोन व्यक्तिको संस्कृत भाषाका प्रयोग करना निषद है। किन्तु जो परिन्नाजक, मुनि अथवा श्राह्मण हैं, वे संस्कृत मिन्न अन्य भाषाका व्यवहार न करें। प्रधान व्यक्तिको प्रायः संस्कृत भाषाका व्यवहार करना चाहिये। परन्तु उन लोगोंके मध्य भाषान्तरका व्यवहार भी कभी कभी देखा जाता है। वालक, स्त्री, वृद्ध, वैश्य और अध्सरागण इन्हें संस्कृतभाषाका प्रयोग करना विलकुल मना है। पर हां, विचित्रताके लिये यदि वीच वीचमें संस्कृत भाषाका प्रयोग किया जाय, तो कोई असङ्गत नहीं है। उत्तम व्यक्ति यदि ऐश्वर्यादि द्वारा प्रमन्त अथवा दारिद्रासे उपहत हों, तो प्राकृत भाषाका उच्चारण करना उनके लिये दोषावह नहीं होगा। राजा वा आहाण ये की इनके लिये प्राकृतभाषाका व्यवहार कर सकते हैं। भाषा-विषयमें खर्य भरत इन सव विषयों का उल्लेख कर गये हैं, अतः इन्हें निःसन्देह स्वी-कार करना पड़ेगा।

इस भाषाके विषयमें भारद्वाजने कुछ और तरहसे कहा है,—उनके मतसे गाथामात ही महाराष्ट्रभाषामें निवन्ध होगी। तिङ्गिन्त अन्यान्य सभी भाषाका नाट्य सम्बन्धमें प्रयोग किया जा सकता है। जो वालक, स्त्री, वृद्ध, मिक्षक, श्रावक अथवा कपटद्ग्डी तथा प्रहा-भिभृत, मत्त वा वएडकपी हैं, उन्हें प्राकृत भाषाका ही च्यसहार करना चाहिये । अलावा इसके नायिका वा सिबयोंके लिये शौरसेनी, विदूषकादिके लिये प्राच्य, धूर्तोंके लिये अवन्तिका, राक्षसोंके लिये मागर्घा और अन्तःपुरवासी चेद, राजपुत और श्रेष्टियोंके लिये अर्ड-मागधी भाषाका प्रयोग वतलाया है। शकार, दिन्यभावी योध और भारिश आदिके मध्य यथात्रम शकारी, वाहिकी भीर शावरी भाषा ही प्रशस्त है । द्राविङादिकी द्राविङी, सनक और राक्षसोंकी औड़ी तथा कान्याङ्गमें वैता-छिकोंकी चेताछादि भाषा ही प्रसिद्ध है। किरात और वर्षर आदि जातियोंकी किसी प्रकारकी भाषा वा उसका सक्षण नहीं है ।

साहित्यवर्पणमें लिखा है—'छतातमा उत्तम पुरुषोंके संस्कृतभाषाका और योषिदोंको शौरसेनीभाषाका प्रयोग करना चाहिये, किन्तु इन योविदोंकी जो सब गाथा रहेगी, उसमें महाराष्ट्र-भाषा ही प्रयुक्त होगी। प्रतिद्वन्न जो राजाओंके अन्तःपुरचारी हैं उन्हें मागधीका तथा चेट, राजपुत और श्रेष्ठीको अर्द्धमागधी भाषाका व्यवहार करना होगा। विदूषक प्रभृतिके लिये प्राच्य, धूर्तीके लिये अवन्तिका, योधनागरिकोंके लिये दाक्षिणात्य, शकार और शकोंके लिये शाकारी, दिव्योंके लिये वाहीकी, द्रविड्के लिये दाविड़ी, आमोरोंके लिये आमोर, प्रसीं-के लिये चाएडाली और काष्ट्र तथा पतादि द्वारा जी जीविका निर्वाह करते हैं, उनके लिये शावरीभाषा प्रशस्त है। इसो प्रकार अङ्गारकारोंके छिये पैशाची, उत्तम चेटियोंके लिये शीरसेनी तथा वालक, षण्ड, प्रहविचारक, उन्मत्त वा आतुर्तिके लिये शौरसेनी भाषा ही प्रसिद्ध है। परन्त कभी कभी संस्कृतभाषा भी व्यवहत होती है। देश्वर्यगर्वित, दारिद्रायुक्त और भिक्षु आदिकी भाषा प्राकृत तथा उत्तमपरिव्राजिका ब्रह्मचारिणीको भाषा संस्कृत होगी। इसके अतिरिक्त देवीं, मन्त्री, कन्या और वेश्या इन लोगोंके लिये भी संस्कृत भाषा वतलाई गई है। कार्यवशतः उत्तमादिकी भाषा विपर्यंय की जा सकती है। किन्तु योपित्, ससी, वालक, वेश्या, धूर्त और अप्सरा बैचित्राकी भाषा संस्कृत ही होनी चाहिये।

प्राकृत वैयाकरण।

प्राक्तभाषाकी शिक्षा देनेके लिये बहुतसे परिडतींने प्राकृत व्याकरणकी रचना की है। इनमेंसे चएड, शाकल्य, भरत, कोम्रल, यरविच और भामह पे सर्वा-पेक्षा प्रधान और प्राचीन हैं। मार्कएडेय कवीन्द्रने अपने प्राकृतसर्वसमें इनका नामोरलेख किया है । शकृतसञ्जीवनीके रचयिता वसन्तराज्ञका नाम भी वे उल्लेख कर गये हैं। अलावा इसके लङ्के श्वररचित प्राष्टत-कामधेनु वा प्राकृतलङ्के भ्वर, समन्तभद्रकृत प्राकृतन्या-करण, हेमचन्द्रकृत प्राकृत शब्दानुशासन, तिविकमदेवकृत प्राकृतव्याकरणवृत्ति, उद्यसौभाग्यगणिकृत प्राकृतप्रक्रिया वृत्ति नामक उसकी टीका, नरचन्द्रकृत प्राप्ततप्रवीध नामक हेमप्राकृताध्यायदीका, क्रमदीश्वरकृत संक्षिप्तसार-प्राकृतपाद और नारायणकृत उसकी टीका, रामतर्भ बागीशकृत प्राकृतकल्पतरः, प्राकृतकौमुदो, कृष्णपिडत-वामनाचार्यंकरञ्ज कविसार्वभौम-कृत प्राकृतचिन्द्रका, रचित प्राहतचन्द्रिका, चएडीवरशर्म-विरचित दीपिका नामक संश्वितसारकी प्राइतपादटीका, प्राइत-

रद्वसा वा पड्भाषावास्तिक, छत्त्मीधरकी पङ्भाषा-चिन्द्रका, कात्यायनकृत प्राकृतमञ्जरी, वसन्तराजरचित प्राकृतसञ्जीवनी, माक एड य कवीन्द्रका प्राकृतसर्वस्व, चाल्मीकि-रचित प्राकृतस्व, रघुनाथ-शर्म-विरचित प्रकृतानन्द, नर्रासह-रचित प्राकृतप्रदीपिका, चिन्नवोन्म भूपाळ-रचित प्राकृतमणिदीपिका प्रसृति बहुतसे व्याकरण पाये गये हैं।

प्राचीनभाषामें एक समय अनेक काव्यप्रन्थ रचे गये थे। अभी जो सब प्राकृत काव्य पाये जाते हैं उनमें महाराज सातवाहन-रचित सप्तशतो, राजा प्रवरसेन-रचित सेतुबन्ध और वाक्पति-रचित गौड़वधकाव्य विशेष उन्हें ख योगा हैं।

८ प्रलयविशेष । ६ पराशर मुनिके मतसे बुधग्रहकी स्रोत प्रकारको गतियोंमें पहली और उस समयकी गति जब वह स्वाती, भरणी और इत्तिकामें रहता है। यह बालीस दिनकी होती है और इसमें भारोगा, वृष्टि, धान्यकी पृद्धि तथा मंगल होता है।

माञ्चतहतिवृत्त (Natural History)—प्राकृति विषयक वृत्तान्त । पृथ्वी और तदुत्पन्न वस्तुओंका विवरण । जैसे बन्तुविद्या, धातुविद्या, उद्घिद्वविद्या इत्यावि ।

प्राकृतज्वर (सं० पु०) प्राकृतः प्रकृतिसम्बन्धी ज्वरः। वैद्यक्तके अनुसार वह ज्वर जो वर्णा, शरद या हेमन्त ऋतुमें ऋतुके प्रभावसे होता है। कहते हैं, कि वर्णा, शरद और हेमन्त ऋतुओंमें क्रमशः वात, पित्त और कफ-की प्रधानता होती है और उसी समय मनुष्य पर बातादिकी प्रधानतासे ऐसा ज्वर आक्रमण करता है। प्राकृतत्व (सं० क्ली०) प्राकृतस्य भावः त्व। प्राकृतका भाव या धर्म।

प्राञ्चतदोय (सं o पु o) प्राञ्चतो दोयः। वर्षा, शरत् और बसन्त ऋतुमें यथाकम कुपित वात, पित्त और कफ-प्रकृतिसम्पन्न वातादि दोषः। वर्षा और शिशिरकालमें वायुका कोप, शीक्ष और शरत्कालमें पित्तका प्रकोप, हेमन्त और वसन्तकालमें कफ प्रकोप, थे सब प्राञ्चत दोष हैं। (बरह सूत्रस्थान १० ४०)

प्राह्मततस्विविक (Natural Theology) वह शास्त्र जिसके द्वारा सृष्ट पदार्थवर्शनजनित तस्वज्ञान उत्पन्न हो।

Vol. XIV. 172

प्राकृततन्त्र (Democracy) प्रजातन्त्र, प्रजाके हस्तगत राज्यशासन ।

प्राञ्चतमातुष (सं॰ पु॰) प्राञ्चतः सामान्यः मातुषः। सामान्य मनुष्य।

प्राकृतमित (सं॰ क्वी॰) प्राकृतं स्वाभाविकं मितं। स्वभाव-सिद्ध मित, जिसके साथ स्वाभाविक मित्रता हो। "सखा गरीयान् शत्रुश्च कृतिमस्तौ हि कार्यतः। स्याताममितौ मित्रे च सहजप्राकृताविष ।"

(माघ २।३६)

त्राकृत मित्र भी व्यवहार द्वारा प्राकृत शब् के जैसा होता है।

प्राकृतशतु (सं॰ पु॰) प्राकृतः स्वामाविकः शतुः । १ स्वामाविक शतु । २ स्वदेशाव्यवहित देशावस्थित राजादि, विषयानन्तरवसीं नृष ।

प्राकृतसमाज (House of Commons) - इङ्गलैण्डदेशके । राजकीय समासंक्रान्त साधारण लोकका समाज।

प्राकृतिक (सं० ति०) प्रकृति द्वज। १ प्रकृतिविकार।
२ जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ हो । ३ प्रकृति-सम्बन्धी,
प्रकृतिका। ४ स्वाभाविक, सहज। ५ साधारण,
मामूली। ६ भौतिक। ७ सांसारिक, लौकिक। ८
नीच। (पु०) प्राकृतप्रलय।

प्राकृतिक इतिवृत्त (Natural History)— वह शास्त्र जिससे सृष्टपदार्थके खरूप और अवस्थाका ज्ञान हो। प्राकृतिककार्यं (सं० क्की०) सृष्टपदार्थ, वह पदार्थं जो केवल झन्द्रयके प्राह्म हो। जैसे, आलोक, शब्द और ताप प्रमृति।

प्राकृतिकभूगोल (सं० पु०) भूगोलविद्याका वह अङ्ग जिसमें भौगोलिक तत्त्वोंका तुलनात्मक दृष्टिसे विचार होता है। भूगभं शास्त्र और इसमें प्रमेद इतन ही है कि, भूगभं शास्त्र पृथ्वोकी वनावटके प्राचीन इतिहाससे सम्बन्ध रखता है और इस शास्त्रमें उसको वत्तंमान स्थिति तथा मिन्न भिन्न प्राकृतिक अवस्थाओंका वर्णन होता है। इस विद्यामें यह वतलाया जाता है, कि पर्वत, समुद्र, निव्यां, द्वीप और महाद्वी. सादि किस प्रकार वनते हैं। पहाड़ोंकी ऊंचाई और समुद्रोंकी गहराई कितनी है। समुद्रमें ज्वारमाटा किस प्रकार आता. है और निदयों तथा भीलों आदिको सृष्टि किस प्रकार होती है, इत्यादि।

प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science)—वह शास्त्र जिससे प्राकृतिक कार्य विषयक ज्ञान लाभ हो।

प्राक् (सं ० ति ०) १ पहलेका, अगला। (पु०) २ पूर्व, पूरव।

प्राक् कर्म (सं ० ह्यो०) प्राक्तन-कर्म । १ पूर्वकर्म । २ अदृष्ट, भाग्य ।

प्राक्कलप (सं ० पु०) पुराकलप, पूर्वकलप ।

प्राक्कूल (सं ॰ ति॰) प्रागप्रदर्भ, वह कुश जिसका अगला भाग पूर्व ओर किया गया हो।

प्राक्केवल (सं ० ति०) जो पहलेसे ही भिन्नरूपमें प्रकट रहा हो।

प्राक्चरणा (सं० स्त्री०) १ जननैन्द्रिय, योनि, भग। २ योनिका एक रोग।

प्राक् चिर (सं ॰ अव्य॰) विलम्ब होनेके पहले, यथाकालमें। प्राक् छाय (सं ॰ क्ली॰ प्राक् पूर्ववर्त्तिनी छाया यस दिने। पूर्वदिक्वत्ती छायायुक्त काल, जिस समय छाया पूर्व ओर पडती हो, अपराहकाल।

प्राक्तन (सं ० पु०) १ वह कमें जो पहले किया जा चुका हो और आगे जिसका शुभ और अशुभ फल भोगना पड़े। भाग्य देखो। २ प्राचीन, पुराना।

प्राक्त तनय (सं ० पु०) पूर्वशिष्य ।

प्राक् पद (सं ० पु०) प्राक क्ष्यः पदः कर्मधा०। पूर्व-वर्त्ती पद।

प्राक पुष्पा (सं ० स्त्री०) प्रोक पुष्पं यस्याः अजादित्वात् टाप्। प्राक वर्त्ति-पुष्पान्वित स्त्रता।

प्राक्ष (सं॰ पु॰) प्राक्ष फुल यस्य । पनस्त, कटहर । इसमें विना फूलके ही फल लगते हैं, इसीसे इसका प्राक्ष फल नाम पड़ा है ।

प्राक्ष फल्युनी (सं ॰ स्त्री॰) प्राची फल्युनी, पूर्व फल्युनी-नक्षत ।

प्राक फुल्गुनीभव (सं॰ पु॰) प्राक फुल्गुन्यां भव उत्पत्ति-र्यस्य । १ वृहस्पति । (ति॰) २ पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमें जातमात, जो पूर्वफुल्गुनी नक्षत्रमें पैदा हुआ हो ।

प्राक फाल्युन (सं० पु०) प्राक फल्युन्यां भवः अण्। बृहस्पति। प्राक फाल्गुनी (सं० स्त्री०) पूर्व फाल्गुनी नक्षत । प्राक फाल्गुनेय (सं० पु०) प्राक फल्गुन्यां भव इति प्राक फल्गुन-ठम् । वृहस्पति ।

प्राक् शिरस् (सं ० ति०) प्राक् शिरा यस्य । पूर्वकी ओर या अप्रभागमें मस्तकयुक्त ।

प्राक शिरस्क (सं ० ति०) प्राक शिरस्।

प्राक्शङ्कवत् (सं ० पु०) ऋषिभेद् ।

प्राक सन्ध्या (सं ० स्त्री०) प्राचीसन्ध्या कर्मघा० । पूर्वे• सन्ध्या, सुर्योदयके समयका सन्धिकाल, सबेरा ।

प्राक्त्सवन (सं० हो०) प्राक्त्कालिक' सवन' यिइय प्रथम सवन ।

प्राक्सी (अं ० स्त्री०) १ वह लेख जिसके द्वारा किसी संख्याका कोई सदस्य किसी दूसरे सदस्य आदिको अपना प्रतिनिधि नियत करके उसे अपनी ओरसे उप-स्थित हो कर सम्मित प्रदान करनेका अधिकार देता है, प्रतिनिधिका पत्र २ वह वाकि जो किसी दूसरे वाकि-के स्थान पर उसका कर्लंड्य पालन करे, प्रतिनिधि।

प्राक सौमिक (सं॰ पु॰) सोमात् सोमयागात् प्राक अव्ययीभावः, प्राक सोम तत भवः ठञ्, उत्तरपद्दृद्धिः। १ सोमयोगके पहले कर्त्तंच्य अग्निहोत्न, वह कर्त्तंच्य जो यजमानको सोमयागके पूर्वं कर लेना चाहिये। जैसे, अग्निहोत्न, दर्शपौर्णमास, पशुपाग। २ यह।

शाक् स्रोतस् (सं ० स्त्री०) शाक् बहिः स्रोतोऽस्याः। नदी, दरया।

पाखर्य (सं ० क्की०) प्रखरस्य, भावः प्रखर-ध्यम्। प्रख-रत्व, तीक्ष्णता, तेजी।

प्रागप्र (सं ० ति०) प्राक् अप्र वस्य। पूर्वामिमुख, पूर्वकी ओर।

प्रांगद्य सं वि कि) प्रगदिनोऽदूरदेशादि चतुरध्यादित्वात् ज्य । प्रगदीके समीप ।

प्रागभाव (सं ॰ पु॰) प्राग्वत्तीं अभावः। अभावविशेष।
अभाव तीन प्रकारका है, प्रागभाव, ध्वंसाभाव और
अत्यन्ताभाव। जो अभाव अपना प्रतियोगी उत्पन्न
करता है, उसका नाम प्रागभाव है। जिसका अभाव है,
उसे उसका प्रतियोगी कहते हैं। जैसे, इस वीजसे वृक्ष
उत्पन्न होगा। अभी वृक्ष नहीं है, भविष्यत्में होगा।

भर्यान् भर्मा रक्षका भमाव है, पाँछे वृक्ष होगा । यह अभाव प्रतियोगोको उत्पन्न कर नष्ट हो जाता है अर्घात् र्याजसे गृस हो जाने पर फिर प्रागभाव नहीं रहता । जिस वस्तुसं जो जो वस्तु उत्पन्न हो सकती है उसमें उसका प्रागाभव है। युक्षको खड़ा कर वीज नष्ट हो जाता है। इस प्रकार वस्तुकै उत्पन्न होनेसे प्रागभाव खर्य जाता रहता है। प्रागभावके नाश है, उत्पत्ति नहीं। प्रागत्म्य (सं ० क्वी०) प्रगत्मस्य भावः प्यञ्। े प्रग-हमता, बीरता। २ ख्रियोंका अयलज मावविशेष । स्त्रियोंके चेष्टा नहीं करने पर भी प्रगल्भना उनका स्वाभा-विक गुण है। ३ साहस । ४ निर्भेयता। ५ घमंड । ६ चतुरता । ७ प्रधानता, प्रवलता । प्रागल्भ्यवत् (सं० ति०) प्रागल्भ्य-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य य । १ प्रागल्भ्ययुक्त, प्रगल्भताविशिष्ट । २ विश्वासी । ३ वृथावाषपयुक्त । प्रागवस्था (सं॰ स्त्री॰) प्राची अवस्था कर्मधा॰ । पूर्वा-वस्था । प्रागद्दि (सं॰ पु॰) शाखाप्रवर्त्तक आचार्यभेद् । प्रागाथ (सं॰ ति॰) १ प्रगाथ सम्बन्धीय । (पु॰) २ कलि, भर्ग और हर्यतका पुं अपत्य । प्रागाधिक (सं॰ ति॰) प्रगाथ वा ऋग्वेदका अप्रममण्डल-सम्बन्धीय । प्रागायत (सं॰ ति॰) पूर्वकी ओर आयत वा विस्तृत । प्रागार (सं ॰ पु॰ क्ली॰) प्रासादगृह । प्रागाहिक (सं ० ति०) पौर्वाहिक, पूर्वाह्रमव। मागुक्ति (सं॰ ख़ी॰) प्राची उक्तिः कर्मधा॰ । पूर्वोक्ति, पूर्वे-

प्रागुत्तरा (सं॰ स्त्री॰) प्राची उत्तरा दिक्। पूर्वोत्तर दिक्,

प्रागुद्दीची (स'० स्त्री०) प्राची उदीची दिगिति कर्मधा०।

प्राप्यानवत् (मं ॰ ति॰) प्राक्यमन मतुष्-मस्य व । प्राक्-

प्राग्त्रीय (सं० ति०) पूर्वकी ओर त्रीवा न्यस्त, पूर्वकी ओर

पूर्व और उत्तरके वीचकी दिशा, ईशान कोण।

प्रान्गामिन् (सं ० वि०) पूर्वेगामी, अप्रगामी ।

पूर्वोत्तर दिक्, ईशान कोण।

गमनयुक्त, पूर्वगामी।

सिर किया हुआ।

का कथन।

प्राग्जनम (सं २ क्वी०) पूर्वजनम । प्राग्जाति (सं॰ स्त्री॰) पूर्वजाति । प्राग्ड्योतिप (सं॰ पु॰) प्राक् ड्योतिपं नक्षत्नं यत । काम-रूप देश, कामाख्या प्रदेश । "अतैय हि स्थितो ब्रह्मा प्राइनुस्तं ससर्जं च। ततः प्राग् ऱ्योतिषाख्येयं पुरी शऋपुरीसमा ॥" (कालिकापु॰ ३७)

"भगवान् नरकासुरसे कहते हैं—हे पुतः! जिस स्थानमें करतोया नामकी गङ्गा नदी सर्वदा प्रवाहित हो रही हैं और जहां छिछतकान्ता देवी विराजती हैं, वहां तक तुम्हारी पुरी होगी। इसी स्थान पर जगत्रसविनी योगनिट्टा महामाया देवी कामाख्याद्वप धारण कर सर्वेदा विराजती हैं। इसी स्थान पर खयं महादेव, ब्रह्मा और में रहता हूं। चन्द्र सूर्य भी यहां ही रहते हैं। यह स्थान रहस्यमय है। अतः कीड़ार्थ सभी देवता यहां आये हैं। यहां सर्वतोभद्रा नामकी लक्ष्मी विद्यमान हैं। पहले इस नगरमें ब्रह्माने एक मक्षत्र रखा था। इसीसे इन्द्रपुरीके समान इस पुरीका नाम प्रागज्योतिष पड़ा है। तुम विवाह करके अमात्योंके साथ यहां राज्य करो, मेंने तुम्हारा अभिषेक किया। (हालिकायु० ३० स०) कामला देखो।

यद्यपि सुतप्रन्थ और संहिताओंमें इस राज्यका उल्लेख नहीं आया है, तो भी रामायण, महाभारत, पुराण और तन्त्रके प्रन्थींमें इसका वर्णन देखनेमें आता है। मनु संहितामें प्राग्ज्योतियका नाम नहीं लिखा है, किन्तु वहां भी किरातनिपेदित एक प्राच्य राज्यका उल्लेख है। महा-भारतमें प्राग् ज्योतियको किरातोंकी निवासभूमि लिखा है। अतएव ऐसा मालूम होता है, कि मनुका किरात-निपेवित राज्य और महाभारतका प्राग्ज्योतिय दोनीं एक ही हैं। किन्तु मनुने प्राग्ड्योतिपका नामोल्लेख क्यों नहों किया, इस प्रथका उत्तर देना इस समय कठिन है। मनु-ने किरात देशवासियोंको क्षतिय वतलाया है। प न्तु उन-का उपनयन आदि संस्कार न होनेके कारण वे शूट्रवत् हो गये हैं।

रामायणमें लिखा है,—कुशके पुत अमूर्चेरजस्ने पश्चिमस्थित 'प्रागज्योतिषपुर'-को वसाया । वेतायुगमें रावणने सीताको हर लिया था। उन्हें दृढ़नेके लिये

सेनापित सुप्रीयने वानरोंको चारों ओर मेजा था। सुषेण मारीच आदि वानरोंको पश्चिमकी ओर भेजते समय सुप्रीय कहते हैं—

"योजनानि चतुःपष्टिर्वराहो नाम पर्वतः। सुवर्णश्रद्धः सुमहानगाधे वरुणालये॥ तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातऋपमयं पुरम्। तस्मिन् वस्ति दुष्टातमा नरको नाम दानवः॥"

अगाध समुद्रसे ६४ योजन विस्तृत सुवर्णशिखर-विशिष्ट वराह नामक एक महायवत है। उस पर्वत पर सुवर्णनिर्मित प्रागुज्योतिष नामको एक पुरो अवस्थित है। उस पुरीमें नरक नामका एक दुरातमा दानव रहता है। रामायणवर्णित यह प्राग ज्योतिपपुरी इस समय कहां है, उसका कुछ चिह्न है वा नहीं थादि वाते वतलाना वहुत ही कठिन है। इस समय प्राग ज्योतिप नामसे जो प्रदेश या नगर समका जाता है, वह भारतका आसाम प्रदेश है। आसाम प्रदेशोंमें वड़े वड़े पर्वंत तो है, पर उसके समुद्रमध्यमें होनेके प्रमाण नहीं मिलते। त्रेतायुगसे आज तक बहुत समय वीत गये, इसमें कितने नगर बने और कितने पुराने नगर नष्ट हुए, कितने जलमय प्रदेश स्थल और कितने स्थलमय प्रदेश जलमय हो गये। अतः सम्भव है, कि त्रेतायुगमें श्रोरामचन्द्रके अवतार व्रहुण करनेके समय प्राग ज्योतिपका भारतभूमिसे सम्बन्ध न हो और वह समुद्रके वीचमें रहा हो। वही जलमय प्रदेश क्रमशः आज स्थलखरूपमें परिणत हो गया हो।

महाभारत (सभापर्व २३ अ०) में लिखा है—
युधिष्ठिरके राजस्य यक्षके समय जब अर्जुन दिग्विजयको
निकले, तव उनसे प्राग्ज्योतिपके राजा भगदत्तने किरात,
चीन तथा सागरतीरस्थ अन्यान्य अनुप्देशवासियोंकी बड़ी
सेना ले कर युद्ध किया था। कुरुक्षेत्रके युद्धमें भो भगदत्तने किरात, चीन आदि सेनाओं द्वारा दुर्याधनकी सहायता की थी। युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञके समय भी
प्राग्ज्योतिषाधिपति भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तने युधिष्ठिरका
यज्ञाश्व वांध रखा था। पुनः अर्जुनसे युद्धमें परास्त हो
कर वह उनका करद राज्य हो गया। महाभारतमें सञ्जयकथित जनपदों में प्राग्ज्योतिषका नाम नहीं है। वहां

करातदेशका उद्छेख हुआ है । मत्स्यपुराणमें प्राग्-ज्योतिष प्राच्य जनपदोंमें छिसा गया है । वायुपुराण, ब्रह्माएडपुराण, वामनपुराण और ब्रह्मपुराण आदि पुराणों-में प्राग् ज्योतिषको भारतवषके पूर्वभागमें अवस्थित वत-छाया है । विष्ट्रणुपुराणमें प्राग्-्योतिपका नाम नहीं छिसा है । वहां उसके स्थानमें कामक्ष्य राज्यका उल्लेख पाया जाता है । वहां भारतके नदनदियोंका नाम तथा स्थान निर्देश करते हुए महर्षि पराशर मैत्तेयसे कहते हैं, कि कामक्षपनिवासी और दक्षिण देशनिवासी इन निर्योक्ता जल पीते हैं । इससे माल्यम पड़ता है, कि प्राचीन कालमें पूर्वदेशी राज्यों में कामक्ष्य राज्य ही प्रसिद्ध था और पीछे वही प्राग्ज्योतिषके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

वराहिमहिरके भारतीय विभागवर्णनमें कामक्रवका नाम नहीं है। वहां प्राग्ज्योतिपका ही नाम लिखा गया है। परन्तु कालिदासके रघुव शमें दोनो का नाम पाया जाता है। यथा—

"चकम्पे तीर्ण छौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तेः सह कालागुरुद्व मैः॥
न प्रसेहे स रुद्धार्कं मसारावर्षं दुर्दिनम् ।
रथवर्त्म रजोऽप्यस्य कृत एव पताकिनीम् ।
तमीशः कामक्रपाणामत्याखरङलविकमम् ।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः।
कामक्रपेश्वरस्तस्य हेमपीडाधिःदेवताम्।
रक्कपुरुपोपहारेण छायामानच पादयोः॥"

रघुके छौहित्यनदी पार करने पर सेनाके हाथियोंके वांधनेसे जिस प्रकार कृष्णागुरुवृक्ष कांपते थे, प्राग्ज्योतिषके राजा उसी प्रकार काँपने छगे। रघुके रथ
धोड़े तथा हाथीसे जो घूल उड़नी थी उससे बिना
मेघके भी आकाश आच्छन्न हो जाता था। रघुको सेनाका
आक्रमण तो दूर रहा, प्राग् ज्योपाधिपति उस धूलको भी,
नहों सह सके। प्राग्ज्योतिपाधिपति जिन मदकावी
मातङ्गोसे दूसरों पर आक्रमण करते थे, वे ही मातङ्ग,
उन्हों ने इन्द्रसे भी अधिक वलशाली रघुको उपहारमें
दिये। रघु सुवर्णपीठ पर वैठते थे, उनकी चरणप्रभासे
वह पीठ शोभा पा रहा था, कामक्रपेश्वरने आ कर रत्नकपी पुष्पोपहारसे उनके चरणोंको पूजा की।" इस वर्णनसे

मालूम पड़ता है, कि कामरूप राज्य कितने दिनोंसे वच-मान है तथा वह कभी कामरूप नामसे भौर कभी आग्-ज्योतिप नामसे प्रसिद्ध था। किन्तु कालिकापुराणके एक श्लोकसे चिदित होता है, कि प्राग्ज्योतिप कामरूप-का एक भाग था। कामरूप एक देश था और उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिप थी। कामरूप नामके सम्बन्ध-में कालिकापुराणमें लिखा है, कि महादेवकी कोपान्निमें जल कर कामदेवने यही रूप प्राप्त किया था, तभीसे स्स पीठका नाम 'कामरूप' हुआ। ब्रह्माने पहले यहां एक नक्षतकी सृष्टि को थी, इस कारण इसका नाम प्राग्-ज्योतिप है। कामरूप और कोचविहारमें अन्यान्य विवरण देलो।

प्राग् ज्योतिपपुर (सं० पु०) प्राग् ज्योतिप देशकी राजधाना । इसे अभी गौहाटी कहते हैं। रामायणके अनुसार यह नगर कुशके पुत्र अमूर्तराज द्वारा वसाया गया था।

माग्दक्षिण (सं० ति०) पूर्वदक्षिण।

प्राग्दक्षिणा (सं० स्त्री०) वह दक्षिणा जो पहले दी जाय ।

माग्द्राइ (सं० ति०) पूर्वकी और द्राड्युक्त।

प्रागृदिश (सं० स्त्री०) पूर्वदिक, पूर्व दिशा।

प्राग्दिशीय (सं० ति०) पूर्व दिक्भव, पूर्व और होने वाला।

प्राग्देश (सं॰ पु॰) पृब^ददेश, पूर्वाञ्चल ।

प्राग्द्वार (सं॰ खो॰) पूर्व दिक्स्थ द्वार, पूरव ओरका दर-वाजा ।

प्राग्वोधि (सं० ह्री०) पर्व तमेद, पक पर्यतका नाम ।
प्राग्भक (सं० ह्री०) सुश्रुतोक अन्नमक्षणके प्राक्कालकप भीपध-सेवन-कालभेद, दवा कानेके लिये मीजन
करनेसे पहलेका समय । सुश्रुतमें औपघ सेवनके दश काल बतलाये गये हैं । यथा—निर्मक, प्राग्भक, अघो-भक्त और मध्यभक्त प्रभृति । इनमेंसे कानेके पहले भीपघ सेवन करनेका नाम प्राग्भक्त है। इस प्रकार भीषधका सेवन करनेसे वह कैके रास्ते वाहर नहीं निक-लता, जाया हुआ अन्न वहुत अच्छी तरह पचाता और बल बढ़ाता है। वृद्ध, शिशु, भीक और स्नोके लिये ऐसे ही समय दवा कानेका विधान है।

प्राग्मरा (सं० स्त्री०) जैन मतानुसार सिद्धशिलाका एक

Vol. XIV. 178

प्राप्तार (सं॰ पु॰) प्रकृष्टो आरो यत । १ पर्वताप्रभाग । २ उत्कर्ष । ३ परंभाग ।

प्राप्रसर (सं॰ ति॰) १ अप्रग, पहला । २ श्रेष्ठ । प्राप्रहर (सं॰ ति॰) प्राप्ते प्रकृष्टान्ने हियतेऽसी इ-भव् ।

श्रेष्ठ, मुख्य ।

प्राप्राट (सं• क्वी॰) प्राप्ते अटतीति अट-अच्। अधन-द्धि, पतला दही।

प्राप्त्य (सं॰ ति॰) प्रकर्षेणाप्रे भव इति प्राप्त-यत् । श्रेष्ठ, बढ़ा ।

प्राग्वंश (सं • पु॰) प्राञ्चतीति प्र-अञ्च-किन् प्राक्वंशः सपलीकयजमानादि समूहोऽत । १ हिवर्य हसे पूर्वभाग-स्थित यजमानादिकी स्थितिके युद्द, यक्षशालामें वह वर जिसमें यजमानादि रहते हैं। २ विष्णु।

प्रान्यचन (सं० क्ली॰) प्रागुक्तं वचनं । मन्यादि कतुंक पूर्वोक्तं वचन, महामारतके भनुसार मन्यादि महर्पियोंके वचन ।

प्राग्वत् (सं॰ अन्य॰) पूर्वतुल्य वा कालतुल्य, पहलेके जैसा।

प्राग्वाट (सं० क्की०) शिलालिपि-चर्णित एक विस्तृत जन-पद, प्राचीनकालके एक नगरका नाम जो यसुना और गंगाके बीचमें था। मरतजी केकयसे अयोध्या बाते समय इस नगरमेंसे हो कर आये थे। मेनाइ हेसी। प्राग्वेश (सं० पु०) पूर्वदेश।

प्राधर्मसङ् (सं० ति०) प्रकर्षक्रपसे दीसस्थानमें वर्तमान । प्राधात (सं० पु०) प्रकृष्ट माधातोऽस्मिन, वा प्राहन्यतेऽस्मि-न्निति, प्र-आ-इन आधारे धज् । विशेषक्रपसे आधात, कड़ी चोट ।

प्राघार (सं॰ डु॰) प्राघरणमिति प्र-घु-प्रस्नवणे घडा, (वपवर्ष'स्वषकच्य मनुष्ये बहुल'। या १११११२५) हृत्यु-पसर्गस्य दांघः। चृतादि श्वरण।

पाचुण (सं॰ पु॰) प्राघोणते भ्राम्यतीति प्र-आ-सुण-कः। अतिथि, मेहमान ।

प्राघुणिक (सं॰ पु॰) प्राघुण-स्वार्थे-उक् । अतिथि । प्राचुर्णिक (सं॰ पु॰) प्र-बा-चूर्ण-भावे घञ् प्राघूर्णी भ्रमणे तत साधु इति उञ् । सतिथि, मेहमान ।

प्राङ्ग । सं ० पु०) प्रहतः प्रकृष्टः वाङ्गमस्य प्रादि वहु० । १ पणववारा, छोटा नगाङ्ग । २ प्रकृष्ट देहयुक्त । प्राङ्गण (सं० क्ली०) प्रक्रप्टमङ्गनमङ्गं यस्य । १ पणव-वाद्य, एक प्रकारका ढोल । प्रकर्षेण अङ्गनं गमनं यस णत्वं। २ गृहभूमि, आंगन । पर्याय—अजिर, चत्वर, अङ्गन ।

"प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमृतवाहनः।
. पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्रिकाम्॥"
(भविष्योत्तर)

शास्त्रानुसार प्राङ्गण सूर्यविद्ध होनेसे अशुभकर होता है। घरकी नीवं इस प्रकार डालनो चाहिये जिससे वह पूर्व-पश्चिम आयत न हो कर उत्तर-दक्षिण आयत हो। पूर्व पश्चिम आयत होनेसे सूर्यविद्ध और दक्षिणोत्तर आयत होनेसे चन्द्रविद्ध होता है; किन्तु वह चन्द्रविद्ध

प्राङ्गण मनुष्यके लिये शुभकर माना गया है।
प्राङ्ग्याय (सं॰ पु॰) प्राक् न्यायः। व्यवहारविषयमें उत्तरभेद, व्यवहारशास्त्रके अनुसार भिमयोगका एक प्रकारका उत्तर। इसके उपस्थित होने पर यह विवाद नहीं
चल सकता। यह उत्तर उसी समय दिया जा सकता
है जब कि उपस्थित विवादके सम्बन्धमें पहले ही न्यायाल्यमें निर्णय हो खुका हो।

सं कि) प्राक् पूर्वदिक्ष्यं मुखं यस्य । पूर्व -दिङ्मुक, जिसका मुंह पूर्व दिशाकी ओर हो । पूर्वकी ओर मुंह कर प्रातःसन्ध्यादिकरनी होतो है । धर्मशास्त्रमें छिखा है, कि जहां किसी दिशाका जिक नहीं किया गया है, बहां प्राङ्मुख जानना चाहिये।

प्राच् (सं ० ति ०) प्र-अन्च किप्। पूर्वदेश, पूर्वकाल और पूर्वदिक्। (अध्य०) प्राचिसप्तम्यर्थ असि तस्य लुक्। पूर्वकी ओर।

प्राच (सं॰ पु॰) प्र-आ-चल-धृती बाहुलकात् छ । १ प्रकर्ष-रूपसे रक्षक, वह जो अच्छी तरह रक्षा करता हो । २ प्रकृष्ट गमन ।

प्राचाजिह्न (सं० हि०) प्रोक्-देशस्थित जिह्वास्थानीय ज्वाले ।

प्राचार (सं ० पु०) कीटमेद । प्राचार्य (सं० पु०) १ आचार्य, गुरु, शिक्षक । २ विद्वान, परिहत ।

प्राचिका (सं स्त्री) प्राञ्चतीति प्र-अञ्च कृन् टापि अत

इत्वं । चनमक्षिका, खांसको जातिको एक प्रकारकी जंगळी मक्खो ।

प्राचिन्वत् (सं० पु०) राजमेद, एक राजाका नाम।
प्राचो (सं० स्त्री०) प्रथमं अञ्चित स्यं प्राप्तोतीति प्र-अञ्चकिवन् (दिश्विष । पा १११६) इति छोप्। १ पूर्विदिक्
पूर्विदिशा। २ वह दिशा जो देवताके या अपने आगेकी
ओर हो। ३ जलआंवला। (ति०) ४ पूज्य, श्रेष्ठ।
प्राचीन (सं० ति०) प्रागेविति प्राक्ष (विभाषाच्नेरिदिक्
हित्रवां। पा प्राधाद) इति ख, खस्येनादेशः। १ पूर्विदिक्
देशकालभव, जो पूर्वदेश या कालमें उत्पन्न हुआ हो।
२ पूर्व, पहले। ३ पूर्वकालीन, पुराना, पिछले जमानेका।
४ युद्ध, बुद्धा। ५ प्रागम्र, अम्रज। ६ प्रकृष्ट गन्ता, अपराङ्मुख। (पु०) ७ प्राचीर। पर्याय—आवष्टक, वृति।
प्राचीनकालमें होता रहा हो। इसके पांच मेद हैं—१
नाट्य, २ वृत्य, ३ नृत्त, ४ ताएडच और ५ लास्य।

प्राचीनकुल (सं॰ पु॰) एक प्राचीन ऋषिका नाम।
इसका दूसरा नाम अपान्तरतम और प्राचीनगर्भ भी है।
प्राचीनगर्भ (सं॰ पु॰) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

इन्हें प्राचीनकुल और आपान्तरतम भी कहते हैं। प्राचीनगौड़ (सं॰ पु॰) गौड़दे शोय एक प्राचीन प्रन्य-कार । इन्होंने संवत्सरप्रदीपको रचना को।

प्राचीनश्रीव (सं ० ति •) जिसका गला भागे या पूर्वकी भोर हो।

प्राचीनता (सं ० स्त्री०) प्राचीन होनेका भाव, पुराना-पन ।

प्राचीनतिलक (सं ० पु॰) चन्द्रमा ।

प्राचीनत्व (सं॰ पु॰) प्राचीन होनेका भाव, पुरानापन। प्राचीनपक्ष (सं॰ ति॰) अत्रभागमें पक्षविशिष्ट।

प्राचीनपनस (सं० पु०) प्राचीनः पनसः कर्मधाः । विल्य-

वृक्ष, बेलका पेड़ । प्राचीनवर्हिस (सं० पु०) १ इन्द्र । २ एक प्राचीन राजांका नाम । अग्निपुराणानुसार ये अग्निगोतीय राजा हिवधानके पुत्र थे और प्रजापति कहलाते थे। प्रजेता-गण इनके पुत्र थे।

प्राचीनयोग (सं ० पु०) प्राचीनो योगोऽस्य । ऋपिभेद, एक प्राचीन गोत-प्रवर्त क ऋपिका नाम । प्राचीनयोगोपुत (सं ० पु०) यज्ञःशाखास्य ऋपिभेद ।

प्राचीनरिम (सं ० दि०) देवताभिमुख, देवताकी और । प्राचीनवंश (सं ० दि०) प्राग्वंश, जिसका अवलम्बन-

वंशदएड सामने या पूर्वकी और हो ।

प्राचीनशाल (स'० पु॰) १ पूर्वेदिग्स्थ गृह, पूर्वेदिशाका । घर। २ पुरातन गृह, पुराना घर।

प्राचीना (सं ० स्ती ०) प्राचीन-राप् । १ वनतिक्ति, अकवन आदि । २ रास्ता । ३ ए। ठा । ४ पाक्सचा, वृद्धा ।

प्राचीनाकरक (सं० पु०) मधुर जम्बीरवृक्ष । प्राचीनामलक (सं० क्की०) पानीयामलक, जलवाँवला । इसका पर्याय वारिववर है। यह तिदोप और विपनाशक माना गया है।

प्राचीनाधीत (सं ० क्ली०) प्राचीनं प्रदक्षिणं आवीयते स्मेति आ-वी-गत्यादी-क, वा प्राचीनं शावेतीति गत्यर्थेति-क। यक्लोपवीत धारण करनेका एक प्रकार । इसमें वाम हस्त यक्लोपवीत धारण करनेका एक प्रकार । इसमें वाम एस यक्लोपवीत दक्षिण स्कन्ध पर रहता है। इस प्रकारका यक्लोपवीत पितृकार्यमें धारण किया जाता है। यर्थाय—पितृसम्ब, सम्य ।

प्राचीनावीती (सं॰ पु॰) श्राचीनावीतमस्त्यस्येति प्राचीना-वीत-इनि । प्राचीनावीतविशिष्ट, वह जी प्राचीनावीत यक्षीयवीत थारण किये हीं, सद्य ।

प्राचीनोपवीत (सं ० वि ०) प्राचीनावीत देखी । प्राचीपति (सं ० पु०) प्राच्याः पूर्वस्या दिशः पतिः बन्द्र । प्राचीवळ (सं ० पु०) १ काकतुंडी, कीआटोटी । २ काकजंघा. चकसेती । ३ गएडदुर्वा ।

प्राचीर (सं० क्की०) प्राचीयते इति प्र-आन्धिण् चयने (श्रुविचिमिञांबद्दीर्षथ । उण् २।२५) इति कन, दीर्घक्क । नगर या किले आदिके चारों ओर उसकी रक्षाके उद्देश्यसे वनाई हुई दीवार, चहार-दीवारी, शहरपनाह, परकोटा ।

बाहरी आदमी जिसके घरमें प्रवेश न कर सके इसके छिये सवोंको प्राचीर बनाना चाहिये। युक्तिकल्पतशमें छिसा है—राजगण जो प्राचीर बनावेंगे, वह हाथीके अमेरा और मनुष्यके बालहुनीय हो। राजाओंके प्राचीर राजदण्डकी तरह उन्नतं होते चाहिये। प्राचीरमें चारें।

बोर गुप्त द्वार रखना अवश्य कर्त्तव्य है।

प्राचुर्य (सं॰ क्लो॰) प्रचुरस्य मावः ध्यण्। प्रचुरता,

बाधिक्य, बहुतायत।

प्राचेतस् (सं॰ पु॰) प्रचेतसोऽपत्यमिति प्रचेतस् अण्।

१ वाब्सीकि सुनिका नाम। २ प्रचेतागण जो प्राचीनवर्हिके

पुत्र थे और जिनकी संख्या दश थी। ३ विष्णु। ४ दक्ष।

५ वरुणके पुत्रका नाम। ६ प्रचेताके अपत्य या वंदाज।

प्राचैक् (सं॰ अव्य॰) प्र-आ-चि-वाहु, डैसी। धाचीन,

पुराना।

प्राच्य (सं • पु•) प्राचि भवः, प्राच् (गुप्रागपाग्रह प्रतीची यत्। पा धारारे । रेति यत्। १ शरावती नवीके पूर्वका देश । (बि•) २ पूर्वदिक्मव, पूर्व देश या दिशामें उत्पन्न । मार्कण्डेयपुराणके मतसे अङ्गारक, सुदकर, अन्तर्गिरि, चिहिंगिरि, प्रचङ्ग, बङ्ग, मालद, मालवर्त्तिक, श्रक्षोत्तर, प्रविजय, भागंच, मलक, प्राग्ज्योतिष, भागं, विदेद, तास्त्रलिसक, मल, मगंच और गोनद पे सब प्राच्य-जनपद हैं। ३ पूर्वसम्बन्धी, पूर्वीय । ४ पूर्वकालका, पुराना ।

प्राच्यक (सं॰ ति॰) प्राच्य-लार्थे कन्। प्राच्य देखो । प्राच्यकसेर (सं॰ पु॰) कुंकुम, केशर।

प्राच्यपवयुचि (सं ० स्वी०) वैदिक स्याकरणोक्त पद्युचि-भेद ।

प्राच्यवाट (सं॰ क्ली॰) प्राच्यो वाटो यस्य । प्राक् देशस्य । प्राच्यवृत्ति (सं॰ व्ली॰) पृत्तरत्नाकरोक्त छन्दोमेद, वैताली वृत्तिके एक मेदका नाम । इसके समपादोंमें सौधी और पांचवी माता मिल कर गुरु हो जाती हैं। प्राच्यसप्तसम (सं॰ वि॰) सप्तसमाः प्रमाणमस्य मातच, तस्य द्विगुत्वात् लुक । प्राचीन सप्तसम ।

माच्याध्वय्यु (सं ७ पु॰) प्राच्य बध्वयु ।

प्राच्यायन (सं o पु॰ स्त्री॰) पूर्वके ऋषियोंके गोतमें उत्पन्न पुरुष।

प्राच्छ् (सं० ति०) पृच्छति प्रच्छ-किप् निपातनात् दीर्घरव । (वण् २।५०) १ जिशासक, पृछनेवाला । २ प्राड् विवाक, न्यायाधीश । प्राजक (सं० पु०) प्राजयति प्रकर्षेण गमयति घोटकाद्ने- निति प्र-अज-णिच-ण्युल् । सार्थि, रथ चलानेवाला । प्राजन (सं० क्वी०) प्रवीयतेऽनेनेति प्र-अज-ल्युट् । (बायौ । पा २।४।५७) इति पक्षे व्यभावः । तोदन, चाबुक, कोड़ा ।

प्राजहित (सं० पु०) गाईपत्य अग्नि। प्राजापत सं० ति०) प्रजापतेः धर्मं महिष्यादित्वादण्। मजापतिका धर्म।

प्राजापत्य (सं ० ह्वी०) प्रजापतिदेवतास्येति प्रजापति (वित्यवित्यादित्यपत्युत्तर्पदात् ण्यः । पा ४।१।८५) इति ण्यः । १ द्वाद्शाहसाध्य व्रतिविशेष, एक व्रतका नाम जो बारह दिनका होता है। इस व्रतके पहले तीन दिन तक सायंकाल २२ ब्रास, फिर तीन दिन तक आपाचित अन्न २४ ब्रास सा कर अन्तके दिन तीन दिन उपवास करना पड़ता है। अगम्यागमन, मद्य और गोमांस आदि कानेके प्रायश्चित्त-में यह व्रत किया जाता है। (गहडपु० २२६ अ०)

२ रोहिणीनक्षतः । ३ आठ प्रकारके विवाहों में नौथा। इसमें कन्याका पिता वर और कन्याको प्रकत कर उनसे यह प्रतिक्षा कराता है, कि हम दोनों मिल कर गाईस्थ-धर्मका पालन करेंगे। पोछे वह दोनोंको पूजा करके वरको अलङ्कारयुक्त कन्याका दान करता है। ऐसे विवाहको काम भी कहते हैं। विशेष विवरण विवाह शब्दमें हेखो। ४ प्रजापतिके पुता। ५ प्रयाग। ६ जैनराजमेद। इसका प्रयाय तिपृष्ठ है। ७ यह। (ति०) ८ प्रजापतिसम्बन्धी। ६ प्रजापतिसे उत्पन्न।

प्राजापत्या (सं क्ली) प्रजापित देंचतास्या प्रजापित-ण्य, सियां टाप् । १ एक इष्टिका नाम । यह प्रवज्याश्रम वा संन्यासाश्रम श्रहणके समय की जाती है। इस यहमें सर्थस्व दक्षिणामें दे दिया जाता है। इसके देवता प्रजा-पति हैं।

> "प्राजापत्यां निरूप्येष्टि सर्वचेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यनीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रवजेत् ग्रहात् ॥" (मनु ६।३८)

प्राजापत्य याग समाप्त करके सर्वस दक्षिणामें दे दे। पीछे आत्मामें अग्नि आधान करके ब्राह्मण गृहसे इक्षेत्रेयाका अवलम्बन करे। प्राजावत (सं० ति०) प्रजावत्या धर्म्य महिष्यादित्वादण्। भ्रातृजायाका धर्म ।

प्राजिक (सं ॰ पु॰) ख़्रेन, वाज नामक पक्षी ।

प्राजिता (सं० पु०) १ सारथी। (ति०) २ प्रस्रष्टगन्ता। प्राजित् (सं० पु०) प्रानिता देखो।

प्राजिन् (सं० पु०) प्र-अज-णिनि, न्यभावः। पक्षिभेद, पक प्रकारकी चिड्या।

प्राजिमिडिका (सं• स्त्री०) स्थानभेद ।

प्राजेश (सं ० क्को०) प्रजेशो देवतास्य अण्। १ रोहिणी नक्षत्र । २ यह चरु आदि पदार्थं जो प्रजापति देवताके छिये हों।

श्राज्ञ (सं ॰ पु ॰) प्रकर्षेण जानातीति प्र-ज्ञा-क, ततः प्रश्च-पव खार्थे अण्। १ कल्किदेवके ज्येष्ठमाता । २ बेदान्तके अनुसार जीवात्मा । (ति ०) ३ बुद्धिमान, समभ्दार, चतुर । ४ विद्वान, परिडत । ५ मूर्ब, बेवकूफ ।

प्राहत्व (सं॰ पु॰) १ बुद्धिमत्ता । २ पाण्डित्य, पिहाता । ३ मुर्खेता, येवकूफी ।

ब्राज्ञमानी (सं॰ पु॰) आत्मानं प्राज्ञं मन्यते प्राज्ञ-मन्-णिनि । परिष्डतामिमानी, वह जिसे अपने पारिष्डत्यका अभिमान हो ।

प्राज्ञा (सं क्सी) प्रज्ञाऽस्त्यस्या इति अस्-राप्। १ बुद्धिमती, विदुषो । पर्याय—धीमती । २ बुद्धि, समन्तः।

प्राज्ञी (सं॰ स्त्री॰) प्रञ्ज-स्वार्थे-अण्-ुङीप्। १ स्वयंत्राती। २ पण्डितपत्ती। ३ सूर्यपत्ती।

प्राज्य (सं० त्रि०) प्र-व्ययते इति प्र-अज-ण्यत्, वीभावा-भावः । १ प्रचुर, अधिक, वहुत । २ प्रचुर घृतसम्पन्न, जिसमें बहुत वी पड़ा हो । (क्की०) ३ प्रभृत आज्य, प्रचुर घृत ।

प्राज्यसङ् (सं॰ पु॰) राजाबली-पताकाके रचयिता एक संस्कृत पेतिहासिक।

प्राञ्च (सं) ति) प्र-अञ्च-विच् । पूव देशकालवर्ती । प्राञ्चन (सं) ति) १ अञ्चन या रंग । २ प्राचीनकाल-का एक प्रकारका छेप या रंग जो वाण पर लगाया जाता था । प्राञ्जल (सं० ति०) प्र-अञ्जन्ताहुलकात् अलच्। १ सरल, सीधा। २ सचा। ३ वरावर, समान। प्राञ्जलि (सं० ति०) प्रवद्धाऽञ्जलियेन प्रादि वहुत्री०। १ वद्धाञ्जलिपुट, जो अञ्जलि वांधे हो। (पु०) २ सामवेदियों-का एक भेद। ३ अञ्जलि, अ जुलि। प्राञ्जलिक (सं० ति०) प्राञ्जलि। प्राञ्जलिक (सं० ति०) प्राञ्जलिरस्त्यस्य बोह्यादित्वादिनि। वद्धाञ्जलिपुक।

प्राड़हत (सं • पु॰) प्रश्नकारक के द्वारा आहत।
प्राड़ विवाक (सं • पु॰) पुच्छतीति प्राट् विविच्य वक्तीति
विवाकः ततः कर्मधारयः। १ वह जो न्यवहार-शास्त्रका
हाता हो और विवावों आदिका निर्णय करता हो, विचारक, जज (Judge)। पर्याय—अक्षव्योंक, व्यवहारदर्शीं।
शास्त्रमें अष्टावश प्रकारके विवावपद निर्दिष्ट हुए हैं। उन
सव विवावोंकी जो मीमांसा करते हैं उन्होंको प्राड्विवाक कहते हैं। राजाको उचित है, कि वे प्रजाके सव
प्रकारके विवावोंकी स्वयं मीमांसा करें। यदि उन्हें
अवकाश न रहे, तो प्राड विवाक नियुक्त करें। इनका
कक्षण—

"विवादे पृस्कृति प्रश्नं प्रति प्रश्नं तथैव च । प्रियपूर प्राग्ववद्ति प्राङ् विवाकस्ततः स्मृतः॥" वृहस्पतिः ब्यासोऽपि—

"विवादानुगतः पृष्ट्वा ससभ्यस्तत् प्रयत्नतः। विचारयति येनासौ प्रार्झ्ववाक स्ततः स्मृतः॥" (वीरमित्नोदय)

विवाद-विषयमें जो प्रश्न और प्रतिप्रश्न करते हैं तथा पहले प्रियवाक्यका प्रयोग करते हैं उन्होंका नाम प्राड़-विवाक है। जो विषय ले कर विवाद चलता है उस विषयको सभ्यगणके साथ आनुपूर्विक जिक्कासा करके जो विचार करते, उन्हें प्राड़ विवाक कहते हैं।

राजा जब इन सव कार्योंकी देखरेख स्वयं न कर सकते हों, तब उन्हें विद्वान श्राह्मणको विचारक पट पर नियुक्त करना चाहिये। बह ब्राह्मण तीन सम्योंके साथ धर्माधिकरणमें प्रवेश कर उपविष्ठ वा उत्थितमायमें विचारादि काय करें। वे तीनों सम्य होवें तथा उन्हें अक् यज्ञः और सामवेदका सम्यक ज्ञान रहे। कभी भी अनुप-Vol. XIV, 174 युक्त मनुष्यकों इस काय में नियोग नहीं करना चाहिये। कारण, अयथायं विचारके लिये जो पाप होता है, उसके चतुर्थां शके भागी राजा ही होते हैं। जातिमन्त्रोपजीवी ब्राह्मणको अथवा जो अपनेकी ब्राह्मण बतला कर घूमता फिरता है, पर वह क्रियानुष्टानरहित और ज्ञानशून्य है। ऐसे ब्राह्मणको भी यदि राजा चाहें, तो विचारकके पद पर निसुक्त कर सकते हैं। परन्तु शूद्ध, चाहे वह सर्व-गुणन्वित और धार्मिक हो चाहे ब्यवहारसे अच्छी तरह ज्ञानकार भी क्यों न हो उक्त पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। जिस राज्यमें शूद्ध विचारक है, वह राज्य थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जाता है। (मन्न ४४०)

याइवट्स्यसंहितामें लिखा हैं—राजा कोध और लोभ-शून्य हों धर्मशास्त्रादुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ व्यव-हार अर्थात् मुकदमेका स्वयं विचार करें। विचार न कर सकें तौ प्रतिनिधि द्वारा करावें। मीमांसा-व्याकरणादि और वेदशास्त्रमें अभिन्न, धर्मशास्त्र-विद्व, धार्मिक, सत्यवादी और जो शबू तथा मिलमें पक्ष-पातवर्जित हैं उन्हीं ब्राह्मण तथा विषकींकी सभासद् नियुक्त करें। यदि अलङ्क्तीय काय वशतः राजा स्वयं विचार न कर सकें, तो पूर्वोक्त सभ्यगणके साथ एक सवंधर्मे ब्राह्मणको व्यवहारदर्शनमें नियुक्त करें। धे ही विचारक वा पाइ विवाक कहलाते हैं। सभ्यगण यदि स्नेह, लाभ अववा भयप्रयुक्त धर्मशास्त्रविरुद्ध वा आचारविरुद्ध विचार करें, तो उस विवादमें व्यक्तिके लिये जो दर्ड विहित है, राजा उनमेंसे प्रत्येकको उससे दूना दएड देवें । (याइवल्क्य ६० २ अः) वीरमित्री-दयमें लिखा है, कि राजा यदि स्वयं विचार न कर सकें, तो समस्त शास्त्रपारग, शमदमपरायण, कुळोन, मध्यस्थ, उद्ये गशून्य, स्थिरप्रकृतिसम्पन, परलोकभोष, धार्मिक और कोधरहित ब्राह्मणको प्राङ् विवाकके पद पर नियुक्त करें। जिन्होंने केवल एक शास्त्रका अध्ययन किया हो, व विचा-रकके उपयुक्त नहीं हैं। यदि पूर्वोक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मण-का अभाव हो अर्थात् न मिले, तो उक्त गुणसम्पन्न क्षत्रियको अथवा उनके अभावमें वैश्यको नियुक्त कर सकते हैं। किन्तु शूढ़को भूछ कर भी उक्त पद प्रदान न करें। यदि कोई राजा ब्राह्मणका परित्याग कर चपलके

ऊपर विचारकार्यका भार सोंपे, तो उनका राज्य अति-शीघ नए हो जाता है। राजा जिस प्रकार अभिपिक हो कर राजकार्यकी पर्यालीचना करते हैं, पाड़ विवाक भी उसी प्रकार यथाविहित अभिपिक हो धर्मासन पर वैठ कर विचार-कार्य करें। जिससे वे किसी प्रकारके भ्रममें न पड़े उसके प्रति विशेष ध्यान रखना कर्त्तव्य है। (बीरिमित्रोदय) विचार, विचारक, विचागल्य देखों।

२ वह जो दूसरोंके अभियोग आदि चलाता या उनका उत्तर देता हो, वकील। प्राण् (सं ० पु०) प्राणिति प्र-अन-क्किप् णत्वं । प्राण । प्राण (सं० पु०) प्राणिति जीवति बहुकालमिति, प्र-अन-अच् प्राणित्यनेनेति करणे घत्। १ त्रह्या। एकमात प्राण रहनेसे ही जीवन रहता है, अतएव जीवकी उत्पत्ति और नाश प्राणहेतु ही हुआ करता है, इस कारण प्राण हो ब्रह्म हैं। २ पञ्चवृत्तिक देहस्थित वायु, हदयमारुय । ३ वायु, हवा । ४ जैनशास्त्रानुसार पांच इन्द्रियां; मनो-बल, वाक्वल और कायवल नामक तिविधवल उच्छास, निश्वास और आयु इन सक्का समूह। ५ श्वास, सांस । ६ वल, शक्ति । ७ पुराणानुसार पक कल्पका नाम जो ब्रह्माके शुक्क पक्षकी पछीके दिन पड़ता है। ८ छान्दोग्य ब्राह्मणके अनुसार प्राण, वाक, चक्र, श्रोत और मन। ६ वाराहमिहिर और आर्यभट आदिके अनुसार कालका वह विभाग जिसमें दश दीर्घ माताओं-का उच्चारण हो सके। यह विनाड़िकाका छठा भाग है। १० जीवन, जान। ११ मूलाधारमें रहनेवाली वायु। १२ अग्नि, आग। १३ वह जो प्राणोंके समान प्यारा हो, परम त्रिय । वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्पियोंमेंसे एक ऋषि । १५ हरिवंशके अनुसार घर नामक वसुके एक पुतका नाम। १६ यकारवर्ण। १७ एक सामका नाम। १८ ब्रह्म। १६ विष्णु। २० घाताके एक पुतका नाम। २१ देहस्थित पञ्चवृत्तिक वायु जिससे प्राणी जीवित रहता है।

"प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टां वद्ध यते पृथक् ।
प्राणनाच्चेव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते ॥"
(भारत १२।३२८।३५)
वायु पृथक् पृथक् सपमें प्राणियोंकी सब प्रकारकी

चेष्टा वढ़ाती है। भूतोंके प्राणनके हेतु इसका प्राण नाम पड़ा। योगाणैंवमें लिखा है—

"इन्द्रनीलप्रतीकारां प्राणक्षपं प्रकीत्तितम् । आस्यनासिकयोर्मध्ये हन्मध्येनाभिमध्यमे ॥ प्राणालय इति प्राहुः पादांगुरुठेऽपि केचन । अपानयत्यपानोऽयमाहारख्य मलापितम् ॥"

(योगाणव)

प्राण इन्द्रनीलके जैसा है। आस्य और नासिका-के मध्यमागमें, इदय और नाभिके मध्यस्थलमें इसका आलय है। किसी किसीके मतसे पादांगुष्ठ भी प्राणा-लय है। सांख्यके मतसे—

> "सामान्यकरणवृत्तिः त्राणाद्यावयवाः पञ्च ॥" (सांख्यका० २१)

प्राण प्रभृति पञ्चवायु इन्द्रियसामान्यकी मिलित-वृत्ति है, जीवनधारण उसका कार्य है। सांख्याचार्यांके मतसे करण तेरह हैं, यथा—मन, बुद्धि और अहङ्कार पे तीन अन्तःकरण, पांच कर्मेन्द्रि । और पांच ज्ञानेन्द्रिय धे दश वाह्यकरण । इन सव करणोंको दो प्रकारको वृत्तियां हैं, असाधारण और साधारण । भिन्न भिन्न करणकी भिन्न भिन्न वृत्तिका नाम असाधारण वृत्ति है । कहना फजूल है, कि असाधारण वृत्ति करणभेदसे भिन्न है। प्योंकि, दो करणकी एक वृत्ति होनेसे उस वृत्तिका असा-धारणत्व वहीं रहता। वहां साधारण हो जाती है। निर्विशेपमें समस्त करणोंकी जो वृत्ति होतो है, उस-का नाम साधारण वा सामान्यवृत्ति है । प्राणादि वायुपञ्चक है, करण सर्वोक्ती साधारणवृत्तिमात है। सुतरां सांख्यके मतसे प्राण करणोंकी साधारण वृत्तिके सिवा और कुछ भी नहीं है । स्मरण रहे, कि सांस्या-चार्योंके मतसे वृत्ति और वृत्तिमतमें भेद नहीं है अर्थात् जिसकी वृत्ति होती है और जी वृत्ति होती है, इन दोनींमें कोई मेद नहीं है, दोनों एक ही पदार्थ हैं।

किसी किसी पिएडतके मतसे प्राण ही आत्मा है। इन प्राणात्मवादियोंका मत नितान्त भ्रान्त है। यहां इस प्राणात्मवादका विषय अति संक्षिप्तभावमें लिखा जाता है। प्राणात्मवादियोंका कहना है, कि चक्षुरादि इन्द्रियके नहीं रहने पर भी यदि केवल प्राण रहे, तो मनुष्य जीवित

रह सकता है। अतएव इन्द्रिय आतमा नहीं है। उपनिषद्-में चक्षरादि इन्द्रियको भी प्राण वतळाया है। नासिका-्र प्राण सुख्य प्राण कहा गया है। प्राणके श्रेष्ठताविषयमें एक सुन्दर बाख्यायिका छान्दोग्य-उपनिषद्में इस प्रकार लिखो है,—एक समय वापसकी श्रेष्ठता छे कर प्राणीमें विवाद खड़ा हुआ । चक्षुरादि प्रत्येक प्राण अपने-को श्रेष्ठ वतलाता था। मैं ही श्रेष्ठ हूं, सर्वोंको इसी वात-का अभिमान था। कोई भी अपनेको न्यून वा अश्रेष्ठ नहीं कहता था। स्रुतरां प्राणोंका यह विवाद आपसमें निवट न सका। किसी एक महत् व्यक्तिकी सहायताकी आव-श्यकता हुई। सभी प्राण पिता प्रजापतिके समीप गये और वोले, 'मगवन्! हममेंसे कौन श्रेष्ठ है।' प्रजापितने जवाव दिया, 'तुममेंसे जिसके उत्क्रान्त होनेसे अर्थात् जिसके साथ सम्बन्ध विच्छित्र होनेसे शरीर पापिष्ठतर अर्थात् मृत हो जाता है, वही श्रेष्ठ है।' प्रजापतिके इस प्रकार कहने पर पहले वागिन्द्रिय उत्कान्त हुई अर्थात् शरीरसे चली गई। इस प्रकार वागिन्द्रिय सौ वर्ष तक शरीरसे विच्छित्र रही, पीछे लौट कर उसने देखां, कि उसके नहीं रहनेसे भी शरीर जीवित रहा है। विस्मित हो कर उसने शरीरसे पूछा, 'विना मेरे तुम किस प्रकार जीवित रह सका ?' उत्तर मिला, 'मृक वोल तो नहीं सकता है, पर वह प्राण द्वारा प्राणनिकया, चक्षद्वारा दर्शनिकया, श्रोत द्वारा श्रवणिकया और मन द्वारा चिन्तािकया निर्वाह करके जीवित रहता है। उसी प्रकार मैं भी जीवित था। अव वागिन्त्रियने अपनेको श्रेष्ठ नहीं समका और उसी समय पुनः शरीरमें प्रवेश किया। चक्षुः उत्कान्त हुआ। उसने भी एक वर्षके वाद लौट कर देखा, कि उसके नहीं रहनेसे शरीर जीवित है मरा नहीं, उसने भी विस्मयके साथ शरीरसे पृछा, 'विना मेरे तुम किस प्रकार' जीवनधारण कर सका ?' उत्तर मिला, 'अन्धा देख तो नहीं सकता, पर नह जिस प्रकार प्राण द्वारा प्राणन, वागिन्द्रिय द्वारा वदन, श्रोत द्वारा श्रवण और मन द्वारा चिन्ता करके जीवित रहता है, उसी प्रकार मैं जीवित था। चक्षुने जद समभा, कि वह किसी हालतसे श्रेष्ठ नहीं हो सकता, तव वह शरीरमें प्रविष्ट हुआ। अव श्रोत उत्ज्ञान्त

हुआ। एक वर्षके वाद लीट कर उसने देखा, कि उसके अमावमें भी शरीर जीवित है, इसिलिये उसने अपनेकी श्रेष्ठ नहीं समका और शरीरमें पुनः प्रवेश किया। पीछे मन शरीरसे अलग हों गया। एकं वर्षके वाद लौट कर उसने देखा, कि उसके नहीं रहनेसे शरीर मरा नहीं है। उसने जव पूछा, कि मेरे नहीं रहनेसे तुम किस प्रकार जीवित रह सका । तव शरीरने जवाव दिया, 'अमनस्क वालकगण जिस प्रकार प्राण द्वारा प्राणन, वागिन्द्रिय द्वारा वदन, चक्षु द्वारा दर्शन और श्रोत द्वारा श्रवण कर जीवित रहते हैं, उसी प्रकार मैं जीवित था . मनने समका, कि वह भी श्रेष्ठ नहीं है, इस कारण शरीर-में प्रवेश किया। पीछे मुख्य प्राणने उत्क्रमणका उद्योग किया। बलवान् अभ्य जिस प्रकार वन्धनरज्जुके समस्त शंकुको शिथिल कर देता है, उसी प्रकार प्राणके उत्क-मणेच्छासे वागादि सभी इन्द्रियां शिथिल होने लगीं। जव शरीरपातकी आशङ्का हुई, तव वागादि सभी इन्द्रि-योंने एक खरसे प्राणसे कहा, भगवन ! आप शरीरसे अलग न होवें, आप ही श्रेष्ठ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं !'

इस श्रीत थाख्यायिका द्वारा चक्षु रादि इन्द्रियकी अपेक्षा प्राणकी थे छता प्रतिपन्न हुई है। किन्तु प्राण आतमा है, यह समर्थित नहीं हुआ। प्राण आतमा है, इस विषयका उक्त आख्यायिकामें कहीं भी जिक्र नहीं किया गया। सुतरां प्राण आतमा है, ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचनेसे भ्रान्त होना पड़ेगा। कारण, ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचनेका मूळ कारण होता है प्राणकी श्रृत्युक्त श्रेष्टता। श्रुतिमें प्राणकी श्रेष्ठता देख कर प्राण आत्मा है, इसे समर्थन करनेके पहले श्रु तिके तात्पर्यकी पर्या-लोचना करना उचित है। प्राणको श्रेष्ठता क्यों है, यह श्रुतिमें ही दिखलाया गया है,—'तान् वरिष्ठः प्राण तवाच मा मोहमापर्यथाहमें बेतत् वञ्चधाःमान' प्रविभव्यैतद्वाणमय-घम्य विधारयाभि" (श्रुति) श्रेष्ठशाणने वागादि इन्द्रियोंसे कहा, 'तुम लोग म्रान्त न होचो । मैं ही प्राण, अपान, समान, उदान और ज्यान इन पांच क्रपोंमें विभक्त हो कर शरीरको आलम्यनपूर्वेक इसे घारण करता हूं।' फिर भी लिखा है, "प्राणेन रक्षन्तवर' फुलाय'" (श्र ति) निरुष्ट

देह नामक गृहको प्राण द्वारा रक्षित करके जीव सोता है। श्रुतिमें और भी लिखा है, "यस्यात् कम्माच्वांगात् प्राण उत्कामति तदेव उच्छुष्पति तेम यदश्नाति यत् पिनति वेनेतरान् प्राणानवति" (श्रुति) । जिस किसी अङ्गसे प्राण उत्कान्त होता है, वह भङ्ग सुख जाता है। प्राण द्वारा जो भोजन वा ान किया जाता है, उससे अवरापर शाण परिपुष्ट होते हैं। शरीरके जिस अङ्गमें किसी कारणसे आध्यात्मिक वायुका सञ्चार न हो, वह अङ्ग परिशुक्त हो जाता है। भोजन वा पान द्वारा शरीर और शरीरस्थ इन्द्रियोंकी परिपुष्टि होती है अर्थात् वलका सञ्चार होता है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। इसीसे प्राणकी श्रेष्टता है। श्रु ति-ने भी कहा है, "किस्मन्नहमुरकान्ते उत्कान्तो मविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठितेऽइ' प्रतिष्ठात्यामौति स प्राणमस्त्रत ।" (श्रुति) किसीके उत्भानत होनेसे में उत्भानत हुंगा, किसीके प्रतिष्ठित रहनेसे मैं प्रतिष्ठित रहुंगा। इस प्रकार विवे-चना करके उन्होंने प्राणकी सृष्टि की। जब तक देहमें प्राण अधिष्ठित रहता है, तव तक देहमें भात्मा भी अधि-प्रित रहती है। देहके साथ प्राणका सम्बन्ध विच्छिन होनेसे आत्माका भी सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। इसीसे प्राणको श्रेष्ठ वतलाया गया है।

पर प्रश्न उठ सकता है, कि जब प्राण आतमा नहीं है, तव प्राण देहका प्रभु भी नहीं है, आत्मा ही देहका प्रभु है। सुतरां देहके साथ प्राणका सम्बन्ध विच्छिन्न होनेसे भी आत्मा देहमें रह सकती है। प्रभु भृत्यका अनुगामी क्यों होगा ? इसके उत्तरमें यही कहना है, कि प्रभुका नियम पर्यानुयोज्य है। प्रभुते ऐसा नियम क्यों चलाया ? यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता । आत्माने यह नियम किया है, कि प्राणके उत्कान्त होनेसे ही उसका उत्कान्त होगा। इस लिये ही प्राणकी सृष्टि हुई है। अतएव प्राणके उत्क्रान्त होनेसे आत्मा देहमें नहीं रह सकती। शब के भयसे महाराज सेनापित और सेनाको ले कर दुगैमें आश्रय लेते हैं। शलुपक्षके दुगैके अवरोध करने पर सेनापति और सेना जव तक दुर्गकी रक्षा कर सकती है, तब तक महाराज दुर्गका परित्याग नहीं करते। किन्तु सेनापति और सेनाके दुर्ग छोड़ कर भाग जानेसे महाराज को दुर्गका प्रभु होते हुए भी उन्हें

भृत्यका अनुगमन करना पड़ता है अर्थात् तत्काल उन्हें' भी दुर्गका परित्याग करना पड़ता है । सेनापित और सेना यद्यपि दुर्गके प्रभु नहीं हैं तो भी उनसे जिस प्रकार दुर्गकी रक्षा होती है, उसी प्रकार प्राणके आत्मा नहीं होने पर भी उससे शरीर रिश्वत होता है। प्राण द्वारा शरीरकां रक्षा होती है, इसीसे इसको आत्मा कहना असङ्गत है। कारण, ऐसा होनेसे मस्तिष्क, हत्पिएड और पाकस्थली का यदि कोई अंश नष्ट हो जाय, तो शरीरकी रक्षा नहीं होनेके कारण उन्हें आत्मा कहना पड़ेगा। चक्षुरादि इन्द्रियोंके अभावमें भी प्राण रहते जीवन रहता है, उसका कारण दिखलाया जा चुका है। उससे जिस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियका आत्मत्व नहीं कहा जा सकता, अत- एव प्राणात्मवादका कोई प्रमाण नहीं है।

त्रैदान्तिक आचार्योंके मतसे अध्यात्मभाषापत्र वायु हो प्राण है। प्राणके वायुविशेष होनेसे प्राणात्मवादियोंके मतानुसार वायुका चैतन्य स्वीकार करना पड़ेगा। वायुका चैतन्य स्वीकार करना असम्भव है, क्योंकि वायु भूतपदार्थ है।

आतमा भोका और चेतन है। प्राण भोका वा चेतना नहीं है। स्तम्भादि जिस प्रकार घरमें संहत है, प्राण भी उसी प्रकार परार्थ है। स्तम्भादि संहत पदार्थ जिस प्रकार परार्थ है। प्राण भी उसी प्रकार परार्थ है। प्रूच्छा और सुपुति आदि अवस्थामें प्राणको क्रिया उपलब्ध होने पर भी उस समय चेतना नहीं रहती। इससे भी प्राणका अनात्मत्व प्रतिपन्न हुआ। प्राणादिके अनात्मत्व चिषयमें गृहद्रारण्यक उपनिपद्रमें एक सुन्दर आख्यायिका लिखी है। ब्रह्रारण्यक उपनिपद् में एक सुन्दर आख्यायिका लिखी है। ब्रह्रारण्यक उपनिपद् देखी।

वेदान्तदशंनमें प्राणका विषय इस प्रकार लिखा है,—
"तथा प्राणाः" (वेदान्तस् विश्वार) ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न
हुआ है, इत्यादि सृष्टिप्रकरणमें प्राणकी उत्पत्ति नहीं कही
गई है। प्रत्युत किसी किसी श्रुतिमें प्राणकी अनुत्पत्ति
ही वर्णित हुई है। यथा—सृष्टिके पहले ऋषिगण ही
असत्रुपमें थे, वे ही ऋषि प्राण हैं। इस श्रुतिमें सृष्टिके
पहले प्राणकी अनुत्पत्ति वा प्राणासद्भाव कहा जाता है।
फिर अन्य श्रुतिमें प्राणकी उत्पत्ति भी देखनेमें आती है।

."यथाग्नेविस्फुळिङ्गान्युचरन्त्येवमेवैतसादात्सनः सर्वे प्राणाः" (श्रुति) जिस प्रकार अग्निसे छोटे छोटे विस्फु लिङ्ग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार आत्मासे सव प्राणींकी उत्पत्ति होती है। "पतसाजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च""सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्" (श्रुति) इत्यादि ।'आत्मा-से प्राण, मन और सभी इन्द्रियां उत्पन्न हुई हैं' 'उसी आत्माने प्राणकी सृष्टि की' 'प्राणसे श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिबी, इन्द्रिय, मन और अन्न उत्पन्न हुआ हैं',इत्यादि भिन्न भिन्न श्रुतिमें भिन्न भिन्न उक्ति रहनेसे तथा एकतर निर्द्धारणके कारणका निरूपण नहीं रहनेसे प्राण उत्पन्न है वा अनुत्पन्न अर्थात् जन्य हैं वा नित्य, यह नहीं जाना जाता। इस संशयको दूर करनेके लिये "तया प्राणाः" सुत्रमं तथा शब्दका उल्लेख देखनेमं भाता है । लोकादि जिस प्रकार परग्रहासे उत्पन्न हैं, उसी प्रकार प्राण भी उससे उत्पन्न है। यह अर्थ तथा शब्दके प्रयोगसे प्रकट होता है। 'उनसे प्राण, मन, आकाश, वायु आदि समी उत्पन्त हुए हैं।' इत्यादि उदाहरणमें भी आकाशादिकी तरह प्राणकी उत्पत्ति समन्ती जायगी। अथवा यह भी कहा जा सकता है, कि जैमिनिने जिस प्रकार वहसूत व्यवहित उपमानको प्रहण किया है, उसी प्रकार व्यासने भी, आकाशादि जैसे ब्रह्मोत्पन्न हैं, वैसे प्राणसे भी पर-ब्रह्मोत्पन्त है, यही स्वीकार किया है। प्राण जो विकारी भर्थात् जन्मवान् है, तत्प्रति हेतु श्रुति है। श्रुतिने कहा है, इसी कारण प्राणकी जनमवत्ता स्वीकार की जाती है। किसी किसी श्रुतिमें प्राणकी अनुत्पत्ति श्रवण रहने ! पर भी अन्य श्रुतिमें उसकी उत्पत्ति सुनी जाती है। जो वहु और प्रवल श्रुतिमें सुना जाता है, एक जगह अश्र-वण उसका निषेध नहीं कर सकता । अतएव श्रुतत्व-का विशेष न रहनेके कारण आकाशादिकी तरह प्राण भी उत्पन्न पदार्थं है, यह उक्ति निर्दोप है। प्राण उत्पन्न पदार्थं है इसमें कोई आपत्ति वा सन्देह नहीं। महा-मृति शङ्कराचार्यने नाना प्रकारकी युक्तियां दिखलाते हुए तथा सभी श्रुतियोंका विरोध परिहार करते हुए प्राणका जन्यत्व स्थिर किया है। इसमें और कोई मतद्वीध नहीं है।

. किसी किसीके मतसे सृष्टिके पहले प्राणका अस्टित्व Vol. XIV 175 श्रवण रहनेके कारण अन्य श्रुतिमें कही गई उत्पत्ति मुख्य उत्पत्ति नहीं है, किन्तु गौण है। इसका प्रत्युत्तर यहीं है, कि गीणत्वको कुछ भी सम्भावना नहीं। कारण, जिस हेतु प्रतिबाहानि प्रसक्त होती है, उस हेतु प्राणको उत्पत्ति गौण नहीं है। श्रुतिमें लिखा है, 'भगवन्! क्या जाननेसे ये सव जाने जाते हैं, श्रुतिने इसी एक विज्ञानसे सवविश्वानसाधनार्थं 'इससे प्राण उत्पन्न हुआ है' इत्यादि वाक्य कहे हैं। वह प्रतिहा उसी हालतमें सिद्ध हो सकती हैं, जब प्राण प्रभृति समस्त जगत् ब्रह्मोत्पन्न हीं। क्योंकि, प्रकृतिके व्यतिरिक्त विकृति नहीं है। इसका अभि-प्राय यह, कि प्रकृति ही वस्तुसत् है, विकृतिका पृथक अस्तित्व नहीं है। मृत्तिका हो वस्तु घटनाम मात है। प्राणीत्पत्ति यदि गीण हो, तो अवश्य ही उस प्रतिज्ञाकी हानि होगी। प्रतिज्ञा भी गौण हैं, ऐसा कहनेका कोई उपाय नहीं। क्योंकि श्रुतिने उपसंहारमें भी ब्रह्माको विश्वामित्र वतलाया है, 'यही विश्व ब्रह्म हैं और कुछ भी नहीं हैं'। यदि प्रश्न उठे, कि सृष्टिके पहले प्राणसङ्गाव-श्रवणकी गति कैसी थी ? उसका उत्तर यही हैं, कि वह कमी भी मूलप्रकृतिविषयक नहीं है अर्थात् प्राण परममूल नहीं है। जो परममूल है, वह अप्राण अमन है, इत्पादि। इस श्रु तिमें भी प्राणादि सर्वविशेषयजित माने गये हैं। वह बाक्य अवांतर प्रकृतिविषयक है । इसका अर्थ है, स्वविकारकी अपेक्षा उत्पत्तिके पहले प्राणका अस्तित्व।

प्राणकी उत्पत्ति भी भाकाशादिकी उत्पत्तिकी तरह मुख्य है। इसके प्रति अन्य हेतु यह है कि 'जायते' यह जन्मवाचो पदके पहले प्राणविषयमें श्रुत हो कर पीछे भाकाशादि दूसरे दूसरे पदार्थोंमें अनुवर्त्तित होनेके कारण तथा आकाशादिके जन्म मुख्य, गौण नहीं है, यह स्थापित हो जानेके कारण आकाशादिके साथ पठित प्राणका जन्म मुख्य है, गौण नहीं।

प्राण कितने हैं, पहले यही जानना भावश्यक है। सिन्न भिन्न श्रुतिने जो भिन्न भिन्न संख्या वतलाई है उससे संख्याविषयक संश्रय उत्पन्न होता है। किसी श्रुतिने सात प्राण, 'वसप्राणा; प्रभवन्ति तसात्' (श्रुति) किसीने आठ प्राण और किसीने नौ प्राणका उल्लेख किया है। यथा— 'उसमाङ्गस्थित सात प्राण और उसके निम्नस्थ दो प्राण'। फिर किसी श्रुतिमें दश प्राणकी कथा लिखी है। यथा— 'पुरुषमें नौ प्राण और दशवां प्राण नामि। किसी श्रुति-में ग्यारह प्राणींका वर्णन देखनेमें आता है। यथा— 'पुरुषमें दश प्राण और एकादश प्राण आत्मा।' केवल इतना ही नहीं, वारह और तेरह नक प्राणोंकी संख्या श्रुतिमें वतलाई गई है। परन्तु शङ्कराचार्यने वड़ी खोजसे यह स्थिर किया है, कि प्राणकी संख्या सात है, न उससे कम और न अधिक (चेदान्तदर्शनके २य पाद 'चतुर्थ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।)

वेदान्तमें सभी इन्द्रियोंको प्राण वतलाया है। वह प्राण दी प्रकारका है, मुख्य और अमुख्य। सभी इन्द्रियां अमुख्य प्राण हैं और प्राण ही मुख्य प्राण है। सभी प्राण अणु हैं। सुक्ष्मता और परिच्छिन्तता ही प्राण-का अणुत्व है, परमाणुतुत्यता नहीं है। प्राणके परमाणु तुःत्य होनेसे युगपन् सर्वेशरीरव्यापी कार्य हो ही नहीं सकता । सुतरां सभी प्राण स्क्ष्म हैं अर्थात् दृष्टिपथातीत मात हैं। मुख्य प्राण ही ज्येष्ट और श्रेष्ट है। यह श्रीत-निर्देश ही श्रेष्ठ शब्दके प्राणवाचकत्वका प्रमाण है। प्राण ंकी ज्येष्ठता भी है। कारण, शुक्र निषेककालसे ही प्राण-वृत्तिलाम करता है अर्थात् गर्मस्थ शुक्र स्पन्दनिकया-न्वित होता है। निषेकके समय शुक्रमें यदि प्राणवृत्तिका उद्य नहीं होता, तो योनिनिधिक शुक्र अपत्याकारमें परि-णत नहीं हो सकता था। श्रीतादि प्राण इन्द्रिय) बहुत समयके वाद् अपने अपने स्थानकी विभाग-निष्पत्ति हो 'जानेसे उस उस स्थानमें वृत्ति लाभ करता है। इस कारण वे उपेष्ठ नहीं हैं । गुणाधिम्यत्रयुक्त मुख्य प्राण श्रेष्ट है। पहले ही छान्दोग्य उपनिषद्की एक आख्यायिका द्वारा इसका प्रतिपादन हो चुका है । प्रस्तावित मुख्य प्राण कैसा है ? श्रुतिप्रमाणानुसार वायु ही प्राण है। "यः प्राणः स पत्र वायुः पञ्चविधः प्राणोऽपानो ब्यान 'उदोनः समानः।" (श्रुति) जो प्राण है वही वायु है। वायु पांच प्रकारको है, प्राण अपान, व्यान, उदान और समान । सांख्यशास्त्रका अभिश्रंत पक्ष भी पूर्वपक्षमें ् पाया जाता है । सांख्यवादियोंका कहना है, कि प्राण -और कुछ भी नहीं हैं। इन्द्रियोंकी साधारणवृत्ति अर्थात् किया ही प्राण है। इस पर यह कहा जा सकता है, कि प्राण वायु नहीं हैं और न इन्द्रियव्यापार ही है। क्योंकि, त्राणपृथक्कपसे उपदिए हुआ है। 'प्राण त्रह्मका चतुर्थं पाद हैं' ब्रह्मचतुर्थंपाद प्राण वायुक्तप ज्योति द्वारा अभि-व्यक्त हो कर तापप्रद अर्थान् कार्यक्षम होता है। इस अ तिने प्राणको वायुसे पृथक् वतलाया है।

प्राण यदि वायु हो, तो वह वायुसे पृथक क्यों वत-लाया गया ? इन्द्रियवृत्तिसे भी प्राणकी पृथक्ता है और वाक प्रभृति इन्द्रियकी गणनामें प्राणको गणना भी वृत्ति और वृत्तिमानका अभेदोपचार स्वीकार्य है । प्राणको यदि इन्द्रियन्यापार कहा जाय, तो उसकी गिनतो इन्द्रिय-से पृथक्कपमें क्यों होगी ? उससे प्राण, मन, समस्त इन्द्रियां, आकाश और वायु उत्पन्न हुई हैं। इस श्रुति-में भी प्राणको इन्द्रियन्यापारसे भिन्न वतलाया है।

श्रुतिका कहना है, कि चक्षुरादि इन्द्रियोंके सुप्त होनेसे इस नीचतम देहगृहकी प्राण द्वारा ही रक्षा होती है। प्राण जव जिस अङ्गका त्याग करता है, तव वह अंग सुख जाता है। प्राण जो पान करता है, भोजन करता है उससे दूसरे दूसरे प्राण रक्षा पाते हैं अर्थात् जीवित रहते हैं। श्रुतिमें भी प्राण कर् क शरीरेन्द्रिय-की पुष्टि वर्णित हुई है। आत्माने सोचा, कि मेरे उत्कान्त होनेसे में ही उत्कान्त होऊंगी। शरीरका त्याग कर जानेसे में कहां उहकंगा, मालूम नहीं। अनन्तर उसने प्राणकी सृष्टि की। इस श्रुतिमें भी जीवके प्राणा-धोनको उत्कान्ति और स्थिति वतलाया है।

मुख्य प्राणके जो बिशेष कार्य हैं वह श्रु तिप्रमाणसे जाना जाता है। प्राणकी पांच वृत्ति वा अवस्था हैं, यथा—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राणकी ये पांच इन्द्रियां क्रियाके मेदानुसार निर्द्धारित हुई हैं। यथा—प्राक्चृतिका नाम प्राण है और उसका कार्य उच्छ्वासादि है। अवाग्चृतिका नाम अपान है, उसका कार्य उत्सर्गादि अर्थात् मलमूब त्याग प्रभृति है। जो उक्त दोनोंके सन्धिस्थल पर वृत्तिमान है उसे व्यान कहते हैं। इस व्यानका कार्य वीर्यवत् है अर्थात् अन्तिमन्थनादि वलसाध्य कार्यनिर्वाह है। ऊद्ध वृत्तिका नाम उदान है, यह उत्कान्त्यादिका कारण है। जो सर्वाङ्गमें समयुत्ति है उसे समान कहते हैं। समान द्वारा भुकान्न रस-

रकादि भावप्रास हो कर सारे शरीरमें पहुंचाया जाता है। इस प्रकार प्राण मनकी तरह पञ्चयृत्तिक है।

मुख्यप्राण भी इतर प्राणोंकी तरह अणु है, ऐसा जानना होगा। यह अणु परमाणुके समान नहों है, यह बहुत ही सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मदृष्टिके अगोचर है। प्राणकी पांच अवस्था सारे गरीरमें ज्याप्त है, इस कारण यह परमाणुके समान नहीं है। प्राण जव उत्कान्त होता है, तब उसे पाश्यस्य नियुण व्यक्ति भी देख नहीं सकते। इसी कारण प्राणको सूक्ष्म कहा गया है। श्रु तिमें प्राणकी उत्कान्ति, गति और अगित चिणत है, इसी कारण यह परिच्छिन्त अर्थात् परिमित है। प्राण व्यापक है। प्राणका वह व्यापित्व कभी आधिवैविक अभिप्रायमें और अन्यापित्य कभी आध्यतिमक अभिप्रायमें है। आधि हैविक प्राण समिष्टक्ष है, इसीका दूसरा नाम हिरण्यन्य में है। आध्यात्मिक प्राण व्यक्षित है, उसका दूसरा नाम हिरण्यन्य समें है। आध्यात्मिक प्राण व्यक्षित है, उसका दूसरा नाम प्राण है। प्राणका विभुत्व कभी भी आधिवैविक वा वाध्यातिमक नहीं है।

प्रस्तावित सभी प्राण क्या अपनी अपनी महिमासे अर्थात् स्वाधीन क्षमतासे अपना अपना कार्य करते हैं या देवताके अधिष्ठान रहनेके कारण उन्हींकी शक्तिसे कार्य करते हैं ? इस पर थोड़ा विचार करनेसे मालूम होता है, कि कार्यशक्तिका योग रहनेके कारण प्राण अपनी अपनी महिमासे कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। देवताधिष्टित प्राणींका कायेप्रवृत्ति है अर्थात् वे देवताविशेषके अनु-प्रहसे अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, यदि यह स्वीकार कर हैं, तो उसी देवताकी भोकतृत्वप्राति होती हैं; सुतरां जीवका भीक्तृत्व लोप होता है। तत्परिहारार्थ प्राणींकी स्वाधीन प्रवृत्ति स्वीकार करना ही उचित है। इससे यह स्थिर हुआ, कि अग्निप्रेमृति देवता कर्तृक धिधिष्ठित हो कर ही वागादि इन्द्रियां अपने कार्यमें प्रवृत्त होती हैं। उसका कारण श्रुतिचाक्य है अर्थात् श्रुतिने वही कहा है। यथा-- अम्बिने वाक्य हो कर मुख्यें प्रवेश किया है' इत्यादि । अग्निका यह वाक्यभाव और मुक्त-प्रवेश देवतात्माके अधिष्ठानरूपमें कहा गया है। देवता-का अधिष्ठान अर्थात् सम्बन्धविशेष छोड् कर वाक्यमें मधवा मुखमें शसिद्ध अग्निका कोई विशेष सम्पक⁸ नहीं देखा जाता। 'वायुने प्राण हो कर नासिकामें प्रवेश किया है।'इत्यादि प्रकारसे प्राणके अधिष्ठातो देवता है, यह भी मीमांसित हुआ है।

प्राणादिके अधिष्ठाती देवता रहने पर भी अंतिके द्वारा प्राणवान् अर्थात् देहेन्द्रियसंवातस्वामी जीवके साथ ही पूर्वीक प्राणींका सम्बन्ध रहना सावित होता है। जीवके साथ हो प्राणका नित्य अर्थात् अनुच्छेय सम्बन्ध है, प्राणाधिष्ठातो देवताके साथ नहों। क्योंकि, प्रत्येक गाणको उत्कान्तादिमें अर्थात् मरणादिके समय जीवातु-गमन करते देखा जाता है । श्रुतिमं लिखा है, जीवके उत्क्रमणमें उद्यत होनेसे प्राण उसका पश्चाह्गामी होता हैं और मुख्यपाणके उत्क्रमणमें प्रयृत्त होनेसे उसके साथ साथ अन्यान्य प्राण भी उत्क्रमण करते हैं। यही कारण हैं, कि प्राणके सर्वोका नियम्बी देवता रहने पर भी जीवका भोकतृत्व विद्धुत महीं होता । नियन्त्री देवता सभी प्राणींके पक्षभूत हैं, भीक्तुत्वके नहीं । जिस प्रकार प्रदोप चझुरिन्दिय का उपकारक होनेके कारण चक्षुका सहायमात्र है। उसी प्रकार तद्धिष्टातो देवता केवल उनके सहायमात हैं। एक प्रधान प्राण और अव-शिष्ट अप्रधान एकादशप्राण (एकादश इन्ट्यि) चर्णित हुए हैं।

मुख्य प्राण और अन्यान्य प्राणके छक्षणमें वहुत प्रमेह
है। वागादि इन्द्रियोंके सुप्त होनेसे अर्थात् उनका अपना
अपना व्यापार उपरत होनेसे केवल एक मुख्यप्राण ही
वाश्रत रहता है, अपने व्यापारमें नहीं लगा रहता। एकमात्र मुख्यप्राण ही मृत्युश्रस्त नहीं है, सभी प्राण
मृत्युग्रस्त हैं। मुख्यप्राणके ही रहने से देहका अवस्थान
है और उसीकी उत्क्रान्तिसे देहका पतन है। इन्द्रियां
क्रपरसादि विषयकी आलोचना करती हैं, पर यह प्राण
सो नहीं करता। मुख्यमें अमुख्य प्राणका अर्थात् प्राण
और इन्द्रियके मध्य इस प्रकार वहुतों चैलक्षण्य देखे जाते
हैं। छान्दोग्य और वृहद्दारण्यक उपनिषदमें इसका विषय
विशेषक्रपसे आलोचित हुआ है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं लिखा गया। (वेदान्तद० २१४ ४०)

वेदातसारमें नाग, कूमें, कुकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक पांच प्राणींका उल्लेख है। मृत्युकालमें सभी प्राण इन्द्रियोंको ले कर पीछे आप उत्कान्त हो जाता है। देही-के शरीरमें जब तक प्राण रहता है तब तक जीवन रहता है, प्राणके निकल जानेसे मृत्यु होती है। प्राण किस प्रकार देहसे निकलता है उसका विपय यहां पर संक्षेप-में लिखा जाता है। जीव जन्म ले कर नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक होता है। इससे नाना प्रकारके संस्कारों या अद्रष्टोंकी उत्पत्ति होती है। वे सब संस्कार सूक्त शरीरमें एक एक करके उपलिप्त होते हैं। मानवकी जरा उपस्थित है ; वह जीर्णवस्त्रके समान है, सपैके निर्मोकः त्यागके समान हैं, पुनर्वार जराजीर्ण देहके परिवर्तनकी आवश्यकता हुई है। फिर आयु नहीं है, मृत्युकाल उप-स्थित है। जो वाह्यवायु इतने दिनों तक प्राणवायुके अनुप्रदसे चली आ रही है, जी वाह्य तेज दैहिक तापके समान आ रहा है, वह वायु और वह तेज अभी शरीरकी वायु और शरीरके तेजका प्रतिकृत हो गया है। इसी कारण भुक्तद्रव्यका यथायथ पाठ, रसरकादिकी उत्पत्ति और सञ्चयन अवरुद्ध हो गया हैं। ऐसी अवस्था देख कर लोग कहने लगते हैं,—मुमूर्यु अर्थात् मृत्यु पहुंच गई। इसी समय शरीरतेज और वाह्यतेज दोनों सम्पर्क विच्छित्र हो जाते हैं। उनके विच्छित्र होनेसे ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाता है । इस समय मुख्य प्राण अपनी वृत्ति अर्थात् कार्यको समेट लेता है और वलवत् वेगधारण करता है। अब श्वासोछ्वासकी जब वृद्धि होने लगी, तव लोग कहते हैं, कि भ्वास वा दमा पहुंच गया। यह श्वास या दमा और कुछ भी नहीं है, प्राण जो वल-बद्भवेगसे इन्द्रियोंको आकर्षण करती है, उसीसे निश्वास वायुकी अधिकता होती है। अब श्वास या दमा चक्ष और कर्ण प्रभृति इन्द्रियोंको खींचने लगता है। वे सव अभी अपना अपना स्थान छोड़ कर प्राणमें मिछ जाती है। इससे मुमूर्छुकी आँखोंमें जाछ-सा पड़ जाता है जिस-से वह फुछ भी देखने नहीं पाता। इस समय मुख्य प्राण इन्द्रियमय सुद्म शरीरको सङ्कोच कर छेता और नाभिका परित्याग कर कएठमें पहुँच जाता है। लोग कहने लगते हैं, कि कालभ्वास आ गया, अब देरी -नहीं। इस समय मुख्यप्राण कएठमें रह कर चित्तको आकर्षण करता है। चित्त भी स्थानच्युत होता और

प्राणमें आ कर मिल जाता है। इस समम लोग कहत हैं, कि अव ज्ञान नहीं रहा, खाट परसे उतारो। इसी समय मुख्यप्राण अपनी उद्गमन वृत्तिको अवलम्बन करके चैतन्याधिष्ठित सूच्म शरीरके साथ वाहर निकल जाता है और यह कौशिक वा स्थूल शरीर रह जाता है।

शास्त्रमें भी लिखा है, कि चक्षु, कण, नासिका, मुख, नामि, मलद्वार, प्रस्नावद्वार, पाँवकी वृद्धांगुलि और ब्रह्मरन्ध्र यही सब स्थान प्राण-निग्मनके द्वार हैं। जिस स्थान हो कर मनुष्यके प्राण निकलते हैं, वह स्थान किसी पक विशेष रुक्षणका हो जाता है। मुख हो कर निकलनेसे मुँ ब खुला रहता है, लिङ्ग हो कर निकलनेसे लिङ्गच्छिद विस्फारित होता है । भविष्यमें उत्तम जन्म यदि होनेको हो तो ऊर्द च्छिद्रसे और यदि अधम जन्म होनेको हो तो अधिश्चद्रसे प्राणत्याग होता है। ऊर्द छिद्रके मध्य ब्रह्मरन्ध्र ही श्र ष्ठ है और अधिश्छद्रके मध्य पादांगुलि सर्वापेक्षा अधम है। ब्रह्मरन्द्र हो कर प्राणत्याग होना ब्रह्मलोकप्राप्तिका और पादांगुलि हो कर प्राणत्याग होना नरकगमनका छक्षण है। मालूम होता है, कि इसी कारण अन्तर्ज्ज लिकालमें मुमूर्षु व्यक्तिकी पदांगुलि-को दवा कर रखते हैं; किन्तु सूच्मतम प्राण इस प्रकार दव रहनेकी वस्तु नहीं हैं। जिसकी जैसी गति होगी, प्राण उसी भावमें चले जाते हैं। लाख चेष्टा करने पर भी उसकी गति नहीं रोकी जा सकती। यदि किसीकी हठात् मृत्यु हो जाय, तो भी उक्त व्यवस्थाकी अन्यथा नहीं होती । शिरश्छेद और वज्रवतनादि द्वारा मृत्यु होनेसे भी कथित प्रकारके नियम प्रतिपालित होते हैं ।

बेदान्तके मतसे प्राणमिलित आकाशादि पञ्चभूतके रजोअंशसे उत्पन्न हुए हैं। पञ्चकर्मेन्द्रियके साथ इन प्राणादि पञ्चको प्राणमय कोश कहते हैं। "इद' प्रणादि-पञ्चकंकमे न्यायहित' बत् प्राणमय कोशो भवति"

(वेदान्तमार)

भारतीय दर्शनोंमें जिस प्रकार प्राणतत्त्व विवृत हुआ है, वर्तमान पाश्चात्य दार्शनिकोंने ठोक उसी प्रकारकी आलोचना नहीं की हैं। उन्होंने आणुवीक्षणिक परीक्षा-से देखा हैं, कि प्रत्येक शरीरमें शरीररक्षक असंस्य सजीव कोषाणु (Celbs) हैं, जो चर्मचक्षु से दिखाई

नहीं देने पड़ते । उन काषाणुके मध्य अति तरल प्राण-पङ्क (Protoplasm) विद्यमान है । जड़से किसी प्रकार इस प्राणपङ्ककी उत्पत्ति नहीं है। अह अचेतन है। इसके किस स्थानमें प्राण है, पाश्चात्य दार्यानिक उसका पता लगा रहे हैं। शरीर शुग्दमें बिस्तृत विदश्य देखों।

सुश्रुतमें प्राणका विषय इस प्रकार लिखा है--भग-षान् खयम्भू ही प्राणवायु नामसे कथित हैं। ये खतन्त्र, नित्य और सर्वंगत हैं । ये प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके कारण हैं। ये स्वयं अव्यक्त हैं, किन्तु इनकी क्रियाएं प्रत्यक्ष हैं । ये सूद्म, शीतल, लघु, खर, तीर्थेग्नामी, शब्द और स्पर्शगुणिवशिष्ट, रजोगुणवहुल, अचिन्त्यशक्ति तथा देहस्थ सभी दोपींके नायक और रोगोंके राजा हैं। ये देहके मध्य क्षित्र-कार्यकारी और शीधविचरणशील हैं । पक्षाशय और गुहादेश इनका आलय है। प्राणवायुके कुपित नहीं होनेसे दोप, धातु भौर अग्नि समभावमें रहतीं हैं, उन्हें अपने अपने विषयमें मवृत्ति होती है । नामस्थान-क्रियाके भेदसे अग्नि जिस वकार पांच भेरोंमें विभक्त हैं, यह प्राण भी उसी प्रकार पञ्चधा विभक्त है। यथा—प्राण, उदान, समान, व्यान भीर अंपात । ये पांच प्राणवायु पांच स्थानमें रह कर देहियोंकी देह रक्षा करती हैं। जो वायु मुंहमें सञ्चरण करती है उसे प्राणवायु कहते हैं। प्राणवायु द्वारा देह-की रक्षा होती, युक्त अन्न जडरमें जाता और प्राणधारण होता है। इस प्राणत्रायुके दूषित होंनेसे प्रायः हिका भ्वास आदि रोग उत्पन्न होते हैं। जो वायु ऊर्द की ओर सञ्चरण करती उसे उदानवायु कहते हैं। इस उदानवायुके दूषित होनेसे स्कत्यसन्धिके ऊपरमें तरह तरहके रोग यैदा होते हैं। आमाशय और पकाशयके मध्यस्थलमें समानवायु रहती है । समानवायु जठर-स्थित अग्निके साथ मिछ कर खाये हुए अन्नको पचाती है। इसके दूषित होनेसे गुवम, अग्निमान्य, अतिसार थादि रोगोंको उत्पत्ति होती है। व्यानवायु सारे शरीरमें घूमती है और बाहारजनित रमको अरीरमें नहन करती ; है। इसके द्वारा पसीना निकलता और देहसे रक्तस्राव होता है अथवा यों कहिये, कि इससे पांचों प्रकारके काम : इग्ते हैं। व्यानवायुक्ते कुपित होनेसे प्रायः सर्वेदेहगत Vol. XIV. 176

रोग उत्पन्न होते हैं। अपानवायु पकाशयमें रहती है। इसके द्वारा मल, मृत, शुक्र, गर्भ और आतंवशोणित-कालमें आकृष्ट हो नीचेकी और जाता है। इसके कुपित होतेसे बस्ति और गुहादेशमें आश्रित सभी रोग उत्पन्न होते हैं ज्यान और अपान इन दो वायुके एकत्र कुपित होनेसे शुक्रदोप और प्रमेहरोग होता है। सभी वायु जब एक साथ कुपित होती है, तब वे शरीर छेद कर वाहर निकल जाती है। (इश्वत निदानश्यान १ ४०)

वेदान्तसारमें भी लिखा है, कि गाण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पञ्चवायु ही पञ्चमाण हैं। इनमेंसे ऊर्द्ध गमनगील नासाम्रस्थायी वायुका नाम प्राण, अधी-गमनगील पायु आदि स्थानवर्त्ती वायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनगील शर्रारस्थायी वायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनगील शर्रारस्थायी उत्क्रमण वायुका नाम व्यान, ऊर्द्ध गमनशील कर्डस्थायी उत्क्रमण वायुका नाम उदान और पीत अन्नजलादिकी समीकरणकारी वायुका नाम समान है। सांख्यमतावलम्बी आचायोंका कहना है, कि नाग, कुर्म, इकर, देवदन्त और धनञ्जय नामक और भी पांच वायु हैं। उदिरणकारी वायुकी नाग, उन्मीलनकारी वायुकी कुर्म, सुधाजनक वायुकी इकर, जुम्मनकारकको देवदन्त और पोपणकारी वायुकी धनञ्जय कहते हैं। किंतु वैदान्तिक आचार्योंने इन नाशादि पञ्चवायुकी प्राणादि-पञ्चवायुके हो अन्तर्गत माना है।

(वेदान्तसार)

कर्मलोचनमं प्राणकर और प्राणहर द्रव्यका विषय इस प्रकार लिखा है—सधोमांस, नवान्न, बालार्खा-सम्भोग, शीरभोजन, धृत और उच्चोदक-सेचन ये छः द्रवा सद्याणकर है। शुल्कमांस, वृद्धालो-गमन, शरन्-कालका स्टांसेवन, तरुणद्धि (सड़ा दही), प्रभात-कालमं मैथुन और प्रभातकालमें निद्वा ये छः सद्यःप्राण-नांशक माने गये हैं।

"सद्योमांसं नवान्तश्च वाला स्त्री क्षीरभोजनम्। वृतमुष्णोदकञ्चेव सद्यः प्राणकराणि वट्॥ शुक्त'मासं स्त्रियो वृद्धा वालाकंस्तरुणं द्धि। प्रमाते मैधुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि पट्॥"

(कर्मलोचन)

जब बीचका प्राणान्तरकाल पहुंच जाय, तव उसे

घरसे वाहर कर दे। पीछे आंगनमें कुशशय्या पर सुला कर जव तक पूर्ण त्याग न हो, तव तक उसके कानमें ईश्वरका नाम उच्चारण करे। अनन्तर प्राणत्याग हो जाने पर यथाविधि उसका सत्कार करे। सत्कारके वाद उसका अशौच होता है। (वराहपु॰)

प्राणक (सं० पु०) प्राणैः प्राणेन वा कायतीति कै-क । १ सत्त्वजातीय । २ प्राणिमात । ३ जीवकवृक्ष । ४ बोल, एक प्रकारका सुगन्धित गोंद । ५ प्राण ।

प्राणकर (सं० त्रि०) प्राणं वलं करोनीति क्र-ट। वल कारक, शक्तिवर्द्धक ।

प्राणकर्ग (सं० क्री०) प्राणानां कर्म ६-तत्। प्राण-समूहका कर्मभेद। इन्द्रियोंके जो सव कर्म हैं, कोई कोई उन्हींको प्राणकर्म कहते हैं। उपनिपद्में सभी इन्द्रियोंको प्राण वतलाया है। किंतु वे गौण प्राण हैं। प्राणादि पञ्चप्राण मुख्यप्राण हैं। उनके अर्थात् इन्द्रियों-के कर्मको प्राणकर्म कहते हैं। इस कर्मका विषय प्राण शुब्दमें देखो।

प्राणकष्ट (सं॰ पु॰) वह दुःख जो प्राण निकलते समय होता है, मरनेके समयकी पीड़ा।

प्राणकान्त (सं० पु०) १ त्रियव्यक्ति, प्यारा। २ पति, स्थामी।

प्राणकुच्छ्र (सं॰ पु॰) यह कष्ट जो मरनेके समय होता है, प्राणकप्ट ।

प्राणकृष्ण—जातकमकरंद नामक संस्कृत ज्योतिपके प्रणेता।
प्राणकृष्णविश्वास—संस्कृत-शास्त्रानुरागी कायस्थवंशीय
वंगालके एक जमींदार। इनके पिताका नाम रामहरिविश्वास था। इनकी मूल उपाधि 'दास' थी। इनके
बृद्धपितामह मुर्शिदावादके नवाव अलीवदींखाँके यहां
मुंशीके पद नियुक्त थे। उस समय सारे आर्यावक्तेंमें
वर्गींका उत्पात चल रहा था। प्रभुके कार्यमें वे वर्गींके
हाथसे मारे गये। इस लिये अलीवदींखाँमे उनके लड़के
रामजीवनको बुला कर वसंतपुर नामक प्राम जागीर
सक्तप दिया। प्राणकृष्ण योग्य पिताके योग्यपुत्र थे।
उन्होंने कोचिवहारके कलकृरकी दीवानी और सीदागरीमें खासी रकम इकट्टी कर ली थी। ये उच्च प्रकृतिके
साधक और घोर तान्तिक भी थे। पिताका अनुसरण
कर ये बहुतसे मन्दिर वनवा गये।

आप संस्कृत, बङ्गला, हिन्दी, पारसी और अंगरेजी मापामें व्युत्पन्न और अतिशय विद्यानुरागी थे। बहुत खर्च करके आपने दुर्लभ तन्त, धर्मशास्त्र, ज्योतिप और आयुर्वेदीय प्रंथादिकां संग्रह किया था। आपने भाठ प्रन्थ भी लिखे थे जिनमेंसे प्राणतोषिणी तन्त, प्राण-रुष्णीपधावली, वैष्णवामृत, क्रियाम्बुद्धि और पाणरुष्ण शब्दाम्बुद्धि ये पांच मुद्दित हुए थे तथा भस्मकौमुदी, विष्णुकौमुदी आदिकी हस्तलिपि आज भी अमुद्दित अवस्थामें पड़ी है। उनका 'प्राणतोषिणी' नामक प्रन्थ तान्तिकोंके निकट अमुल्य ग्रन्थ समका जाता है।

प्राणग्रह (सं॰ पु॰) द्याणाख्य इन्द्रिय । नासिका, नाक । प्राणघात (सं॰ पु॰) हत्या, वध ।

प्राणघ्न (सं॰ ति॰) प्राणं हन्ति-हन-टक् । प्राणनाश्कृ, प्राण छेनेवाला ।

प्राणच्छिद् (सं० ति०) प्राणान्-छिनत्ति छिद्-िकिप् । प्राण-च्छे दकारक, हत्या करनेवाला ।

प्राणच्छे द (सं ० पु०) प्राणवध, हत्या ।

प्राणजीवन (सं ॰ पु॰) पाणं जीवयति जीवि-ल्यु । १ परम प्रिय व्यक्ति, अत्यंत प्रिय मनुष्य । २ विष्णु जी पाणींकी रक्षा करते हैं। (बि॰) ३ प्राणस्थापक ।

प्राणतज्ञ (सं ० पु ०) कल्पप्रभव वैमानिकभेद् ।

प्राणत्याग (सं ॰ पु॰) प्राणानां त्यागः। प्राणका परि-त्याग, मर जाना।

प्राणथ ,सं० पु०) प्राणित्यनेनेति प्र-अन्-प्राणने (शीङ्शिपि क्षिमीति । उण ् ३१११६) इति अथ । १ वायु, ह्वा । २ पूजापति । ३ तीर्थ, पिनल स्थान । ४ जैनशास्त्रा-नुसार एक देवता जो कल्पभव नामक वैमानिक देवताओं-के अन्तर्गत है । (लि०) ५ वलवान, ताकतवाला । प्राणद (सं० क्ली०) प्राणं प्राणनं वलं ददातीति पूग्ण-दां, (आतोऽनुपर्योति । पा ३१२१३) इति क । १ जल, पानी । २ रक्त, खून । ३ जीवक नाम वृक्ष । ४ विष्णु । (लि०) . ५ पूग्णहाता, जो पुग्ण है । ६ पूग्णों की रक्षा करने-

वाला। ष्राणदा (सं० स्त्री०) प्राणद-टाप्। १ जाल। २ ऋदि-वृक्ष । ३ हरीतकी, हरें।

प्राणदागुड़िका (सं ॰ स्त्री॰) अर्शरोगाधिकारमें चन्नद्रत्तोक

शीपश्चिरेय । प्रस्तुत प्णाली—सींड ३ पल, मिर्च ४ पल, पीपल २ पल, चई १ पल, तालीणपल १ पल, नागेश्वर ४ तोला, पीपलम्ल २ पल, तेजपल १ पल, छोटी
इलायची २ तोला, खसखसकी जड़ २ तोला, 'कोई कोई '
अन्तिम दो द्रव्य दो दो पल करके लेते हैं), पुराना गुड़
३० पल इन सब दृब्धोंको पक साथ पीस कर मोदक वनाये। रोगीका कोष्ठवड रहनेसे सोंठके बदले हरीतकीका व्यवहार करे। पित्तार्शरोगमें गुड़के बदले चूर्णसमष्टिका चतुर्गुण चीनी डाल कर मोदक वनाना होता
है। इसकी माला आध तोला और अनुपान रोगीके
द्रोपकी अवस्थाके अनुसार दूध और जल पृष्टित है। इस
औपधका सेवन करनेसे सब प्कारके अर्शरोग, पानात्यय,
मूलकुल, आदि नाना प्कारके रोगोंकी ग्रांति होती है।
(मैक्टरतावली-वार्गोंशिकार)

प्राणदाता (सं० पु०) प्राणदातृ देखी । प्राणदातु (सं० ति०) प्राण-दा-तृष् । १ प्राणदायी, प्राण ' देनेवाला ।

भाणदान (सं० क्ली०) प्राणस्य दानं । १ जीवनदान, प्राण देना । २ किसीका मरने या मारे जानेसे वचाना ।

त्राणयः त (सं॰ क्ली॰) १ प्राणपण करके युद्ध, जीवनका . मोह छोड़ कर युद्ध करना । २ जान पर खेलना, जान ! श्रोखोमें डालना ।

प्राणद्रोह (सं॰ पु॰) प्राणस्य द्रोहः हिसा। प्राणहिसा। प्राणधन (सं॰ पु॰) वह जी हृद्यका सर्वस्व हो, अत्यन्त प्रिय।

प्राणधरमिश्र – जातकचन्द्रिकाके रचयिता।

प्राणघार (सं ० ति ०) १ जीवित, प्राणवाला । (पु०) २ ं ्राणयुक्त जोव, प्राणी, ञाणघारी ।

प्राणधारण (सं॰ झी॰) प्राणानां धारणं। १ जीवनधारण। । ६ शिव, महादेव।

प्राणघारो (सं ० ति०) १ प्राणयुक्त, जीवित । २ जो सांस लेता हो, चेतन ।

प्राणन ः सं ० क्ली०) प्र-अन-प्राणने ल्युट् । ? जीवन । २ चेप्रन, चेप्रा करना । ३ जलः पानी ।

वाणनाथ (सं ७ पु॰) व्राणानां नाथः ६ तत् । १ पति, स्वामी । २ व्रिष्म व्यक्ति, व्रिमनम । प्राणनाथ—१ हैवडभूष्णके स्वियता। इनके पिताका नाम जीवनाथ था। २ एक माग्रदायके प्रवर्त्तक आचार्यका नाम। प्राणनाथी देखो। ३ एक प्राह्मण-कृति। इनका जनम संवत् १८५ में हुआ था। ये वैसवारिके रहनेवाले थे। इनका वनाया 'चकल्यूह इतिहास' नामक प्रन्थ उत्तम है। 8 कोटाके रहनेवाले एक कृति। सम्बत् १७८१में इन्होंने जनमग्रहण किया था। ये कोटा राज-इरवारके राजकृति थे। इनकी कृतिता सुन्दर होतो थी।

प्राणनाथ कायस्थ —साधारण श्रेणोके एक कवि । इनका जन्म सम्बन् १८४३में हुआ था। इन्होंने 'सुद्रामा चरित्र' तथा 'रागमाला' इन दो प्रन्थोंकी रचना की थी।

प्राणनाथ तियेदी--एक कवि। इन्होंने १७६५ ई०में 'कल्कि-चरित्र' प्रन्थ बनाया था।

प्राणनाथवैद्य—एक प्रसिद्ध वैद्यक प्रन्थकार । इन्होंने संस्कृत भाषामें भेषज्यरसामृतसंहिता, रसप्रदीप और नैद्यदर्पणकी रचना की ।

प्राणनाथी—गुरु प्राणनाथ प्रतिष्ठित एक धर्मसम्प्रदाय। प्राणनाथ जातिके क्षतिय थे और औरङ्गजेवके समयमें उत्पन्न हुए थे। हिन्दू और मुसलमानी दोनों शास्त्रोंमें इनक **इान था। ये 'महितारिबल' नामक एक प्रन्थमें वेदके साथ** कुरानका समन्वय करनेकी चेष्टा कर गये हैं। कहते हैं, कि उनकी शाख्याच्या पर मुन्ध हो कर वुन्देलके प्रसिद्ध राजा छतसाल उनके शिष्य वन गये थे। इसीसे कोई कोई मुसलमान लेखक छत्रशालको इस्लामधर्मावलम्बी कहनैसे वाज नहीं आये हैं। सन्न पृष्टिये तो छत्रशास्त्रने कसी भी इस्लाम् धमेको ब्रहण नहीं किया था । प्राण-नाथका शिष्यत्व खोकार करनेसे ही मात्र्म होता है, कि ऐसी अफवाह उड़ गई है। गुरु प्राणनाधने भी कर्मा इस्लाम धर्मको ब्रहण नहीं किया। परन्तु इतना अवश्व है, कि इस्लामधर्ममें उनकी यथेष्ट आस्था थी । कवीर, नानक आदिके समान ये भी आजन्म साधु हो कर हिन्दू और मुसलमान वर्मकी एकताके सम्बन्धमें उपदेश देते रहे। हिन्दू और मुसलमान दोनों श्रेणोंके वहुसंस्थक छोगोंने उनका शिष्यत्व स्तीकार किया था ।· माणनाथके मताबलम्बी प्राणनाथी कहलाते हैं।

एक समय बुन्देलखएड, गोरखपुर और मथुरा बाह्रि

अञ्चलोंमें वहुसंख्यक प्राणनाधियोंका वास था। अव भी वे कुछ संख्यामें देखे जाते हैं। ये लोग मूर्तिपूजा नहीं करते और प्राणनाथके प्रन्थोंकी वड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। इस सम्प्रदायमें प्रवेश करते समय इस सम्प्रदायवालोंके साथ, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान एक साथ बैठ कर खाना पड़ता है। वस केवल इतनी ही विशेषता है और सभी वातोंमें हिन्दू तथा मुसलमान अपने अपने पूवजोंके आचार व्यवहारका पालन करते हैं। प्राण-नाथने अनेक प्रन्थोंकी रचना की थी, पर अभी निम्न-लिखित प्रन्थ ही पाये जाते हैं—१ रासनाम, २ प्रकाश, ३ षट्रित,४ कलस, ५ सनन्ध, ६ कोर्चन, ७ खुलासा, ८ खेल्वत्, ६ पराक्रम इलाही दुर्लहिन, १० सागरश्क्रार, ११ बड़ीशिङ्गार, १२ सिद्धिमासा, १३ मारफतसानर,

प्राणनारायण—कामरूपके एक राजा। इनको उपलक्ष कर के ही जगन्नाथपिखतराजने 'प्राणाभरण' नामक एक संस्कृत काव्यकी रचना की।

कामहर और कोचिवहार देखों। प्राणनाश (सं० पु०) प्राणविनाश, प्राणत्याग। प्राणनाशक (सं० ति०) प्राण छेनेवाला, मार डालनेवाला। वाला। प्राणनिग्रह (सं० पु०) प्राणका निग्रह, प्राणायाम।

प्राणन्त (सं०पु०) १ वायु । २ रसाञ्जन । प्राणन्ती (सं०स्त्री०) प्राणन्त पित्वात् ङीष् । १ क्षुघा,

भूख। २ हिचकी। ३ छींक।
प्राणपत (सं० ति०) प्राणपतेरपत्यादिः (अश्वपत्यादिभ्यस्य। पा ४।१।८४) इति अण्। अन्त्यलोपः।
प्राणपतिके अपत्यादि।

प्राणपति (सं० पु०) प्राणानां पतिः ६-तत्। १ आतमा।
२ स्वामी। ३ हृद्य। ४ प्रिय व्यक्ति, प्यारा।
प्राणपत्नी (सं० स्त्री०) १ प्राणसमान पत्नी। २ स्वर।
प्राणपरिक्रय (सं० पु॰) प्राणका मृत्य, प्राणपण।
प्राणपरिक्षीण (सं० वि०) १ जिसका जीवनक्षय होता
.जा रहा हो। (क्की०) २ वृद्धावस्था।

प्राणपरिग्रह (सं० पु॰) प्राणानां परिग्रहः। प्राणधारण,

प्राणपरित्याग (सं॰ पु॰ ो प्राणानां परित्यागः। प्राण-विनाश।

प्राणपरिवत्तन (सं० पु०) किसी मृत पुरुषकी आत्माकी किसी जीवित पुरुषके शरीरमें वुलाना।

प्राणपा (सं० स्त्री० · प्राणरक्षक ।

प्राणप्यारा (हिं० पु०) १ प्रियतम, अत्यन्त प्रिय व्यक्ति। २ पति, खामी।

प्राणप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) १ प्राण धारण करना। २ हिन्दू-धर्मशास्त्रींके अनुसार किसी नई वनी हुई सूर्तिको मन्दिर आदिमें स्थापित करते समय मन्द्रों द्वारा उसमें प्राणका आरोप करना। किसी मूर्तिकी जब तक प्राणप्रतिष्ठा न हो छे. तब तक वह मूर्ति पूजाके थोग्य नहीं होती और उसकी गणना साधारण धातु, मही या पत्थर आदिमें होती है। प्राणप्रतिष्ठाके बाद ही उस मूर्तिमें देवताका अस्तित्व माना जाता है।

प्राणमद (सं० ति०) प्राणं प्रद्दातीति प्र-दा-क। १ प्राण-दाता, जो प्राण दे । २ खास्थ्यवद्ध क, शरीरका स्वास्थ्य और बल भादि बढ़ानेवाला।

प्राणप्रदा (सं० स्त्री०) ऋदि नामक श्रोषधि।
प्राणप्रदायक (सं० ति०) प्राणप्रदानकारी, प्राणदाता।
प्राणप्रदायिन (सं० ति०) प्राण-प्र-दा-णिनि। प्राणदाता।
प्राणप्रिय सं० ति०) १ प्राणतुत्यिय, प्राणके समान
प्यारा। (पु०) २ अत्यन्त प्रिय न्यक्ति, प्राणप्यारा।
३ पति, स्वामी।

प्राणवल्लम (सं ० पु०) प्राणवरूम देखो । पुगणमक्ष (सं ० पु०) पृग्णेन प्राणेन भक्षः ३ तत् । व्राण द्वारा अवद्याणमात ।

पूाणमास्वत् (सं॰ पु॰) पूाणेन वायुना जलेन वा भास्वान् उद्दोत्तः । समुद् ।

पूर्णभूत (सं० ति०) पूर्णस्वरूप।

पाणसृत् (सं ० ति ०) पाणं विभक्ति भृ-किए-तुक् च। १ पाणी, पाण घारण करनेवाला। २ पाणपोषक। (पु०) ३ विष्णु।

पूगणमय (सं० ति०) पूगणसं युक्ता, जिसमें पूगण हो। पूगणमयकोश (सं० पु०) चेदान्तके अनुसार पांच कोशों-मेंसे दूसरा। यह पूगण, अपान, व्यान, उदान और समान ं नामक पांच प्राणींसे बना हुआ माना जाता है।-वेदान्त-ः सारमें पांचों कर्मेन्द्रियोंको भी पूरणमय कोशके अन्तर्गत ्माना है। इसी पाणमय कोशसे मनुष्यको सुख-दुःखादि-का ज्ञान होता है। स्क्ष्मपूरण सारे शरीरमें फैंड कर मनको सुखदुःखका वोध कराते हैं। इसी कोशको वीद-प्रन्थोंमें वेदनास्कत्य माना है। पाणमल्ल-नेपालके एकं गजा, सुवर्णमल्लके पुंत । वृाणमोक्षण (सं ॰ क्ली॰) वृाणानां मोक्षणं ६-तत् । वृाण-परित्याग । पूर्णवयम (सं ॰ पु॰) पाणो यम्यतेऽनेन यम-करणे धजून · बृद्धिः । · प्राणायाम । इसमें प्राण संयत होते हैं, इसीसे इसको प्राणयम कहते हैं। प्राणयाता (सं क्यो॰) प्राणानां याता ६-तत्। १ श्वास प्रश्वासके आने जानेकी क्रिया, सांसका आना 'जाना । २ गोजनादि जो जीवनके साधनभूत **हैं**, वह व्यापार जिनसे मनुष्य जीवित रहता है। प्राणयोनि (सं॰ पु॰) प्राणस्य योनिः कारणं। १ परमे-भ्वर। २ जगत्प्राण वायु। प्राणरम्प्र (सं० क्ली०) १ प्राणबहिर्गमनका छिद्र, प्राण निकलनेका छिद्र, प्राण निकलनेका छेद। २ नासिका, नाक। ३ मुख, मुंह। प्राणरोध (सं ० पु०) प्राणान् वध्यतेऽनेन वध-करणे घत्रं। प्राणायाम, प्राण प्राणायाम द्वारा रुद्ध होते हैं। प्राणवत् (सं ॰ ति ॰) प्राण अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वः। प्राणयुक्त, जिसमें प्राण हों। प्राणवथ.(सं ॰ पु॰) प्राणघातं, जानसे मार ढालंना । प्राणवल्लम (सं॰ पु॰) १ वह जो प्यारा हो, प्रिय। २ खामी, पति। प्राणवान् (हि॰ पु॰) प्राणवत देखी। ब्राणवायु (सं० स्त्री०) १ पूरण । २ जीव । पूरणविद्या (सं ० स्त्री •) पूरणतत्त्व जाननेकी विद्या । पाणवृत्ति (सं ॰ स्त्रीं॰) पाणानां वृत्तिः व्यापारः । पाणका कार्यं, पाण, अपानं, उदानं आदि पंच पाणींका काम। प्राण देखो । पूरणब्यव (सं ० पु०) पूरणस्य च्याः ६-तत्। पूरणका

व्यय, पाणनाशं 🗀 🛷 🐃

Vol. XIV. 177

But I shi good of

पूर्णशरीर (सं ॰ पु॰,) पूर्णः शरीर सक्तप यस्य । १ पाणात्मेक्स्पर्में ध्येय परमेश्वर । २ उपनिषदींके अनुसार एक सूक्ष्म शरीर जो मनोमय माना गया है । इसींकी विश्वान और क्रियाका हेतु मानते हैं। पाणशोषण (सं ॰ पु॰ , वाण । वाणसंन्यास (सं ० पु॰) मरण, मौत । पूरणसंयम (सं॰ पु॰) पूरणानां संयमः। पूरणायाम । पाणसरीध (सं ॰ पु॰) श्वासरीध। पाणसंवाद (सं पु॰) पाणानां संवादः ६ तत्। सभी प्राणीको स'वाद, एकादश इन्द्रिय और मुख्य प्राण इनका श्रेप्रत्व हे कर विवादकप संवाद। इस प्रकरणमें प्राण-की श्रेष्टता दिखानेके लिये पाणका ग्यारह इन्द्रियोंके साथ विवाद कराया गया है और अन्तमें सबसे पाणकी श्रेष्ठता खीकार कराई गई है। वाणसंशय (सं ॰ पु॰) वाणानां संशयः ६-तत्। १ जीवनसंशय, जीवनकी आशङ्का। २ मरणासन्नता। पाणसंहिता (सं क्सी) वेदोंके पढ़नेका एक क्रम। इसमें एक सांसमें जहां तक अधिक हो सके पाठ किया जाता है। " प्राणसङ्कट (सं• पु•) प्राणानां सङ्कटः ६-तत् । प्राण-संशय, जीवनकी आशङ्का। प्राणसद्मन (सं क्री) प्राणानां सदा गृहम्। शरीर। प्राणसन्देह (सं॰ पु॰) प्राणसंशय । प्राणसंन्यास (सः ० पु०) मरण, प्राणगमन । प्राणसम (सं॰ पु॰) १ प्राणतुल्य प्रिया, प्राणके समान व्यारा । स्त्रियां टाप् । प्राणसमा, प्राणके समान, प्रिया पतां। प्राणसम्भूत (सं० पु०) बायु, हवा। प्राणसमित (सं० पु०) १ नासिका पर्यन्त विस्तृत, नाक तक फैला हुआ। २ प्राणके समान प्रिय। प्राणसार (सं ० ति ०) १ वल, शक्ति । २ वह जिसमें वहुत वल,हो 🛾 ३ विलेष्ठ, ताकतवर 🏴 प्राणसुख-पक पारस्य भाषाविद् कायस्थ-परिडत। इन्होंने बादशाह महम्मद्शाहके समय 'इन्शाए राहत ात' नोमक एक पत-रचना-विषयक प्रन्य लिखा । प्राणस्त-(सं॰ क्ली॰) जीवनस्त ।

आणहत्ता (सं० ति०) प्राणघातक, प्राण छेनेवाला । ... प्राणहर (सं० ति०) प्राणं हरति देहात् देहान्तरं प्रापयति वलं वा ह-अच् । १ मारक, नाशक । २ बलनाशक, शक्ति नष्ट करनेवाला । (पु०) ३ विष आदि जिससे प्राण निकल जाते हों।

प्राणहानि (सं॰ स्त्री॰) वह अवस्था जिसमें प्राणीं पर संकटहो, जान-जोजिम।

प्राणहारक (सं० क्की०) प्राणान् हरतीति ह-ण्वुछ। १ वत्सनाम। (ति०) २ प्राणनाशक, प्राण छेनेवांछा। प्राणहारिन् (सं० ति०) प्राणान् हरतीति ह-णिनि। प्राणहारक, प्राण छेनेवाछा।

प्राणिहता—मध्यप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। चन्दा जिले-के सिरोञ्चके निकट वर्दा और वेणगङ्गा एक साथ मिल कर प्राणिहता नामसे गोदावरीमें जा िरी है। वर्षा-कालमें यह नदी जलसे विलक्कल भर जाती है, पर प्रीष्म कालमें कुछ भी जल नहीं रहता।

प्राणाग्निहोत (सं ० ह्वी ०) प्राणरूपेऽग्नौ होतम् । प्राण-समूहके पञ्चाहुतिकप अग्निहोतात्मक भोजन । भोजनके समय पञ्चप्राणके उद्देशसे पहले जो आहुतिकप भोजन किया जाता है उसे प्राणाग्निहोत कहते हैं । यथा— 'प्राणाय स्वाहा' 'अपानाय स्वाहा' । प्राणाद्वित देखो । ' 'उदानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा' । प्राणाद्वित देखो ।

२ प्राणाग्निहोत्त-प्रतिपादक कृष्णयञ्जर्वेदीय उप-निषद्भेद ।

प्राणाघात (सं॰ पु॰) १ पीड़ा, कष्ट । २ हिसा, हत्या । प्राणातिपात (सं॰ पु॰) प्राणानां अतिपातः । प्राण-निपात, प्राण विनाश ।

प्राणातिपातिवरमण (सं॰ पु॰) जैनमतानुसार अहिंसा व्रत । यह दो प्रकारका होता है—द्रव्य-प्राणातिपात-विरमण और भाषप्राणातिपातिवरमण । इस व्रतके पांच अतिचार हैं। वथ, वन्थ, छेदविच्छेद, अतिभारा-रोपण और भोगव्यवच्छेद ।

प्राणात्मन् (सं० पु०) प्राणकपः भातमा। प्राणकप भातमा, छिङ्गातमा, जीवात्मा। उपनिषद्भे प्राणको ही भातमा, वतलाया है। वेदान्तदर्शनमें महामति शङ्कराचार्यने सभा श्रुतियोंका समन्वय करके यह मत खरडन किया है। प्राण देखो।

प्राणात्यय (सं॰ पु॰) १ प्राणनाश यदि किसीके प्राण-नाशकी सम्भावना हो और कूठ वोलनेसे यदि उसकी जान वच जाय, तो कूठ वोल सकते हैं, इसमें कोई पाप नहीं।

"न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाह काले।

प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥"-(तिथितत्त्वधृत वचन)

परिहासच्छलसे ख्रियोंके निकट, विवाहकालमें, प्राण तथा सब धन जाते समय भूठ वोलनेमें कोई पाप नहीं।

२ मृत्युकालोपलक्षितकाल, प्राणात्ययकालमें किसी प्रकारका अन्न क्यों न हो उसे कानेमें कोई पाप नहीं होता । अर्थात् ब्राह्मणादिको दिनमें दो वार भोजन नहीं करना चाहिये । परन्तु प्राणात्यकालमें यदि वार वार अन्न खानेकी इच्छा हो, तो उन्हें उनके इच्छानुसार अन्न दिया जा सकता है। इस प्रकार अन्नादि-भोजनमें कोई पाप नहीं होता।

"प्राणात्यये च संप्राप्ते योऽन्तमित्त वत स्ततः। न स पापेन लिप्येत पद्मपत्तिमवाम्मसा ॥" (स्मृति

पाणाद (सं० ति०) पाणभक्षक, जीवननाशक। पाणाधार (सं० ति०) १ अत्यन्त पिय, प्यारा। २ प्रेम-पाता। ३ पति, स्वामी।

प्राणाधिक (सं ॰ ति ॰) प्राणेम्योऽधिकः । प्राणोंसे अधिक पुरा पति और पुत प्रभृति ।

त्राणाधिनाथ (सं॰ पु॰) प्राणानामधिनाथः ६-तत्। पति । प्राणाधिप (सं॰ पु॰) प्राणानां अधिपः । १ प्राणाधि-ष्ठाती देवता ।

प्राणान्त (सं • पु •) प्राणानां अन्तः ६-तत्। मरण, प्राण-नाश ।

प्राणान्तक (सं ० लि०) प्राण लेनेवाला, जान लेनेवाला। प्राणान्तिक (सं ० हो०) प्राणान्तः प्रयोजनमस्य उण्। मरणकालिक प्रायश्चित्तावि, मरणकालमें कर्त्तं व्यापाव- विकत्तावि, मरणकालमें कर्त्तं व्यापाव-

प्राणापान (सं॰ पु॰) प्राणश्च अपानश्च द्वन्दः। १ प्राण और अपान वायु। २ अध्विनीकुमार।

The esses in

प्रोणाशाध (सं॰ पु॰) प्राणानासावाधं पीड़ा ६-तत्। प्राणसंशय, जान-जोलिम।

प्राणायतन (सं क ही) प्राणोंके निकलनेका प्रधान स्थान या मार्ग । याह्यवल्यसंहितामें दोनों कान; नाकके दोनों छेद, दोनों आँखें गुदा, लिङ्ग और मुखके हारा वे पूण निकलनेके नी पृधान मार्ग गिनाये गये हैं। स्हीं मार्गोंसे पृणियोंके शरीरसे मृत्युके समय पूण निकलते हैं।

पूर्णायन (सं० पु० स्ती० · प्राणस्यापत्यं नदाहित्वात् फक् । प्राणका अपत्य ।

प्राणायाम (सं॰ पु॰) प्राणस्य वायुविशेषस्य भायामः रोघः यद्वा प्राण भायम्यन्तेऽनेनेति-आ-यम् करणे घज् । प्राण-वायुका गतिविच्छेदकारक व्यापारमेद ।

प्राणायाम द्वारा सभी पाप दूर होते हैं। पूजा जप आदि जिस किसी धर्मकाय का अनुष्ठान करना होता है, उसके पहले प्राणायाम करना आवश्यक है। कारण, प्राणायाम द्वारा चित्त स्थिर होता है। चित्तके स्थिर नहीं होनेसे कोई भी काम सुश्रङ्खलमावमें सम्पन्न नहीं हो सकता। योगसूतके मतसे वायुका प्रच्छर्रन अर्थात् म कर्पणपूर्वक त्याग, विधारण अर्थात् आङ्ख्य-माण बायुकी यथीक विधानानुसार धारण करने-सै प्राणायाम होगा । पहले शास्त्रोक्त प्रणालीका अव-लम्बन करके गुरूपदेशक्रमसे नासिका द्वारा समृतमय वाह्यवायु आकर्षण करे। पीछे परिमितस्यसे और योगशास्त्रोक विधानसे उसका धारण करना हीगा। अन्तर्मे धीरे धीरे शास्त्रानुवायी नियम द्वारा उसका परि-त्याग करना होगा। इसी प्रक्रियाका नाम प्राणायाम है। प्र—आ--यम =प्राणको सम्बक् संयत अर्थात् श्वानुकप निरोधकरण । प्राणकी गति यदि इच्छाधीन हो, तो चित्तको सहजमें स्थिर किया जा सकता है। क्योंकि, चाहे जो कोई इन्डियकार्य हो, सभी प्राणगतिके मधीन है। प्राच ही श्वास-प्रश्वास रूप गतिका अवल-अन करके समस्त देहयम्बकी परिचालित करते हैं,— भिन्न भिन्न इन्द्रियको भिन्न भिन्न कार्यमें उन्मुख कर डालते हैं। प्राण ही साग्रह्मको रस रकादि आकारमें परिणत करके प्रत्येक इन्द्रियके पास अपँण करते हैं तथा

प्रत्येक इन्द्रिय और प्रत्येक देह यग्तको गति, वल और स्वमायकी रक्षा करते हैं। प्राण ही इन्द्रियचक, नाड़ी-चक्र और मनके परिचालक है तथा प्राण हो मन-श्वाञ्चल्यके प्रधान कारण हैं। प्राणके चलनेसे मन चलता है और प्राणके स्थिर होनेसे मन भी स्थिर होता है। काम, कोघ, लोम और मोह आदि जो कुछ मनी-दीप है, जो कुछ विशेष है, सभी प्राणगतिके दोवले हुआ करते हैं। प्राण यदि विशुद्ध हो, तो मनोदोप भी जातां रहता है। प्राण यदि निरुद्ध हो, तो उससे मनकी गति भी रुद्ध होती है। मनीपियोंने यह गूढ़ रहस्य योग द्वारा जान कर मनोदोपके निवारणके लिये, उसके विश्लेपका विनाश करनेके लिये वा पापस्यके लिये प्राणायामका उपदेश दिया । यह प्राणायाम यदि छुसिद हो, वा आयत हो, तो मनका जो कुछ विक्षेप है सभी जाता रहता है। उस समय चित्त निर्दोष और निर्विक्षेप हो कर आप हो आंप सुप्रसन्न, सुप्रकार, खच्छस्थिति, प्रवाहयोग्य वा एकाग्र हो जाता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राणायाम योगका अङ्गविशेष है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार. धारणा, ध्यान और समाधि ये आढ योगके अङ्ग हैं। पहले यम, नियम और आसन जय होनेसे प्राणायाम नामक योगाम्यास करना विशेष है। यम, नियम और सासन-सिद्धिके पहले यदि प्राणायामका अनुष्ठान किया जाय तों वह सिद्ध नहीं होगा।

पत्रज्ञिले पूर्णायामके लक्षण इस पकार निर्देश किये हैं—"तिस्मिन् सित श्वासप्रश्वासयोगीतिविच्छेद। प्राणायामः" (पातज्ञलद० २१४६) भासनसिद्ध होनेसे श्वास भीर प्रश्वासका गतिविच्छेद हो प्राणायाम है। श्वास भीर प्रश्वासकी सामाविक गति भङ्ग कर देनेसे उसे शास्त्रोक्त नियमके अधीन करना वा स्थानविशेषमें विद्त करनेका नाम प्राणायाम है। आसन सिद्ध होनेसे हो यह दुःसाध्य कार्य सहजमें सम्पन्न किया जाता है नचेत् यह बड़ा ही दुष्कर है। यह प्राणायाम फिर तीन प्रकारका है वाह्मपृत्ति, अभ्यन्तरपृत्ति और स्तम्भवृति। "वाह्माभ्यन्तरस्तम्भवसिदेशकालसंख्याभिः परिन्द्वरो दोई। सुद्धाः" (पातज्ञलद० २१५०)

ं ये तिविध प्राणायाम देश, काल और संख्या द्वारा दीर्घ तथा सूच्मरूपमें सिद्ध होते देखे जाते हैं। प्राणा-यामके विषयकीं जब तक अच्छी तरह आलोचना न को जायगी, तव तक इसका ताटपर्य दृद्यंद्रम होना वडा ही कठिन है। सभी योगशास्त्रोंमें इसका 'कौशल और च्यवस्थाविषयक उपदेश तथा फलाफल[,] विशेषहपसे पर्यालोचित हुआ है। उन सव विषयोंकी पर्यालोचना करनेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि प्राणायाम एक प्रकारके प्राणवायुका यन्त्र है। अर्थात् प्राणवायु जो विना प्रयत्नके अर्थात् स्वाभाविकक्यमें सर्वेदा भीतर बाहर गमनागमन करती है, प्रयत्नविशेषका अवलम्बन उसकी उस खाभाविक गतिकी भङ्ग करके उसे किसी दूसरे नये भावके अधीन करना ही प्राणायाम है। यह प्राणायामस्य प्राणयन्त्र आयत्त होनेसे चित्त कैसा कौशर्ली और क्षमतापन्न हो जाता है वह वर्णनातीत है। प्राण-बायुकी चिराभ्यस्त वा स्वाभाविक गतिको भङ्ग करके उसे नूतन नियमके अधीन रखनेका नाम प्राणायाम है। किन्तु इसमें कुछ विशेष व्यवस्था है, वह है पूर्वीक तोन प्रकारकी वृत्ति अर्थात् वाह्यकृत्ति, अभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति । औदर्यवायुके वाहर कर देने अथवा शास्त्रोक्त नियमसे सांस परित्याग करनेका नाम वाह्यवृत्ति है। इस वाह्यवृत्तिका दूसरा नाम रेचक है। वाहरकी ' वायु आकर्षण करके उसे शरीरके मध्य भर-नेका नाम अभ्यन्तरवृत्ति हैं। इसे पूरक भी कहते हैं। प्रपृरित वायुराशिको अभ्यन्त्रमें रुद्ध करनेका नाम स्तम्भवृत्ति है। इस स्तम्भवृत्तिको कुम्मक् भी कहते हैं। कुम्मके मध्य जलपूर्ण होनेसे वह जिस प्रकार निश्चल रहता है, हिलता डोलना नहीं है, उसी. प्रकार शरीर जव वायुसे पूण हो जाता है, जव उसके भीतरकी परिपूर्ण वायु भी निश्चल हो जाती है, जरा भी हिलती डोलती नहीं । इसी कारण स्तम्मवृत्तिका नाम कुम्भक रखा गया है। श्रीरकी शिरा प्रभृति समस्त छिद्र यदि वायुपूण न रहे, तो तर्जु, आन्दोलन वा वेग उपस्थित हो कर शरोर-को विकल कर डालता है। किन्तु यदि समस्त स्थान पूर्ण हो जाय तो तरङ्ग, आन्दोलन वा वेग उत्पन्न नहीं होता । सुतरा शरीर भी निर्विकल, लघु और स्फीतप्राय हो जाता है।

तप्तशिला पर जलविन्दु रखनेसे वह जिस प्रकार संकुचित वा सूख जाता है, उसी प्रकार सन्निरुद्धं वायु भी धीरे धीरे शरीरमें संकुचित हो कर सूच्यताको प्राप्त. होतो है। उक्त लक्षणाकान्त तीनों प्राणायामके फिर **रो भेद वतलाये गये हैं, दोर्घ और सुद्म**। प्राणायामुकी दीर्घता और सूच्मता केवल स्थान, काल और संस्था-विशेष द्वारा जाती जाती है। रेचक प्राणायामकी दीर्घता तथा सूच्मतावोधक स्थान कैसा है ? प्रथमतः यह देखना होगा, कि रिच्यमान वायु कितनी दूर जाती हैं। प्रादेश वितस्ति वा हस्तपरिमितस्थानके वाह्र जाती है वा उससे अधिक दूर जाती है, यदि अल्प दूर जाय तो उसे सूदम, नहीं तो दीर्घ कहते हैं। हथेली पर तूला या सत्तू रख कर रेचन करनेसे ही वायुकी वहिगैतिका परि-माण जाना जाता है:। ऱ्रपूरक और कुम्मक प्राणायामकी स्थानिक दीर्घता और सुत्मता कितनी है, इसका विषय इस प्रकार लिखा है 🥶 पूरक और कुम्भक प्राणायामका स्थान अभ्यन्तर है । पूरककालमें और कुम्भककालमें शरीरके भीतरका सब स्थान यदि वायुसे परिपूर्ण है, ऐसा अनुभव हो, तो वह दीर्घ, नहीं तो सूत्म है। पूरक और कुम्मकका दीर्घ ही अच्छा है। पूरक वा कुम्मकु-कालमें यदि आपादमस्तक सभी जगह पिपीलिका-सञ्च रण-स्पर्शकी तरह रूपशे वा किसी अन्य वायुक्तियाका अदु-भव हो, तो जानना चाहिये कि प्रपूरितवायु शरीरमें सभी जगह परिज्याप्त हुई है। इस प्रकार कालके द्वारा भी उक्त तीनों प्राणायामकी दीघंता और सूद्ध्यताका- निर्णय किया जाता है। रेचक हो चाहे पूरक हो, चाहे कुम्मक हो क्यों न हो, देखना होगा, कि वह कव तक स्थायी होता है। वह जितना ही अधिक काल तक स्थायी होगा, उतना ही वह दीर्घ और अच्छा अर्थात् भविष्यत् योगका उपयोगी होगा। इस प्रकार सांख्यगणना द्वारा भी उसकी दीवता और सूत्मता जानो जाती है । योगसिद्ध तंपः स्वियोंने प्राणायामकी हस प्रकार दीर्घता आर सूत्मताको सहजमें सम्पन्न करनेके लिये मन्त्रकी सृष्टि की है। मनः ही मन विधिकमसे १६।६॥३२ वार मन्त्र जप कर यथा-कम रेचक, पुरक और कुम्मक कर सकनेसे ही लिखित प्रकारको दीर्घता और स्त्मता निणीत होती है। योगि-

प्राणायाम-मन्तोंको अथवा मन्तजपकी संख्याओंको ऐसे सुकीशलसे विधिवद किया है, कि मन्तोंका यथा-विधि उद्यारण शेथ होते ही प्राणानिरोधका कालादि परि-माण आप ही आप सम्पन्न होता है। वाद्यका चोल जिस प्रकार तालमाताके संख्यानुसार रचा जाता है, प्राणायामके मन्त्र भी उसी प्रकार कालायाताके नियमा-ससार रवे रहते हैं।

उक्त तिविध प्राणायाम यदि वाहरके द्वादशांगुलादि परिमित स्थान और हृदय, नाभि, मस्तकाम्यन्तर अथवा सारे शरीरमें बाप्त शिरा प्रशिरा आदि अभ्यन्तर स्थानकी पर्यालोचना वा अनुसन्धानपूर्व क विहित हो, तो वह चतुर्य प्राणायाम समस्त जाता है। प्रथम अभ्यासके समय यह चतुर्य प्राणायाम ही अवलम्बनीय सैं। किन्तु अस्यासके दृढ़ हो जानेसे फिर स्थान वा कालके परिणामादिके प्रति लक्षा नहीं रहता और न अनु-सन्धान ही रहता। अनुसन्धान वा लक्षाके नहीं रहने पर भी सुदृढ़ अभ्यासके वलसे आप ही सम्पन्न होता है।

उक्त चतुर्विथ प्राणायाम जब विना बलेशको अर्थात् सहजमें सम्पन्न होता रहेगा, तब जानना चाहिये, कि प्राणायाम सुसिद्ध हुआ है। प्राणायामको सिद्ध होनेसे ही विचकी इच्छानुसार नियोग कर सकते हैं। इस विपयम योगियोंका मत है, कि वुद्धिसत्त्व वा मानवीय । अत्वाकरण सर्वव्यापक और सर्ववस्तुप्रकाशक है। अविद्या मशृति बलेश और रागह्र पाहिकप मनोदोप वा पापने उसको ताहृश व्यापकता, प्रकाशकता और असीम अमताको ढक रक्ता है। प्राणायाम अम्यस्त होनेसे उसका वह आवरण हुट जाता है। प्राणायाम अम्यस्त होनेसे उसका उस समय चित्तका यथार्थस्तकप, समाव अथवा पूर्ण प्रकाशकि आविच्छत होता है। प्राणायाम द्वारा शरीर और मन सुसंस्कृत और परिष्ठत होता है। प्राणायाम योगाङ्ग अनुष्टानके वाद प्रत्याहार योगाङ्गका अनुष्टान करना पड़ता है। (1185% व्यक्षीन र पाह)

जो पहले प्राणायाम योगाङ्गका अनुप्रान करें, उन्हें विशेष सावधान होना चाहिये नहीं तो उन्हें नाना प्रकारकी पीड़ा होनेकी सम्मावना है। प्राणायाम-शिक्षायी

Vol. XIV. 178

वाकि पहले गुरुके समीप रहं कर शास्त्रविधानका अव-लम्बन करते हैं। पीछे वड़ो सावधानीसे थोड़ा थोड़ा करके प्राणायाम सीखनेके बाद वह आयत्त होता है। अव योगी जहां चाहते वहां प्राणपरिचालन कर सकते हैं। प्राणायामके सुसिद्ध होनेसे कोई भी बगायि रहने नहीं पाती। किन्तु यदि अयथा वा अनियमसे उसका अभ्यास किया जाय, तो सव प्रकारके रोग होते हैं। वायुका गतिचातिकम होनेसे हिका, श्वास, कास, शिरः-पोड़ा, कर्णरोग, चक्षरोग तथा अन्यान्य विविध रोग उत्पन्न होते हैं। अतएव प्राणवायुके त्यागके समय अर्थात् रेचककालमें उसे उपयुक्तहपसे परित्याग करना होता है पूरकके समय उपयुक्तकपसे पूरण और कुमाक-में समय उपयुक्तरूपसे कुम्भक अर्थात् वायुप्रवाहको घारण करे । जो प्राणायामशिक्षा धीरे धीरे और उपयुक्तरूपसे की जाती है वह अति शीव्र आयस मीर अपीड़क होती हैं। अन्यथा वह अनिष्ट्रवह ही जाती है। प्राणवायु यदि सहसा वा हठात् आवद हो जाय, तो वह रोमकूप हो कर निकल कर देहको विदोर्ण कर सकती है तथा कुछ आदि क्षतरोग भी उत्पन्न करती 🕯। अतएव जंगली हाथीकी नरह थीरे थीरे प्राणवायु-को वशीभृत करना होगा। एक वारमें उसे वशीभृत करनेकी चेष्टा करना विड्म्बनामात है। इसमें कुफलके सिवा सुफलको जरा भी आशा नहीं। चाहे प्राणवायु हो वा अपानवायु कभी भी उसका वेगसे परित्याग न करे। श्रासवायुका ऐसे अन्यवेगसे त्याग करना होगा, कि हथेली पर रखा हुआ सत् उड़ने नहीं पावे। धास-वायुका आकर्षण और प्रपूरित बायुका परित्याग दोनों ही किया थीरे धीरे करनी होंगी। कुम्मक, रेचक या पूरक इनमेंसे किसीके समय अङ्गप्रत्यङ्गको कम्पित न करे। निःश्वसित वायुका किस परिमाणमें वाहर आनः स्रामाविक होगां, यह पहले ही स्थिर कर लेना चाहिये? वायुकी खामाविक बहिरागतिका परिमाण मालूम नहीं रहनेसे प्राणायाम द्वारा किस परिमाणमें उसे संक्षिप्त करना होगा, इसका निर्णय नहीं हो सकता। नितान्तः अस्तामाविक कर डालनेसे इसके द्वारा भाणनाशकी भीः सम्मादना है। इस कारण प्राणवायुकी वहिरागतिका

स्वाभाविक परिमाण निर्णय करके पीछे प्राणसंयममें प्रवृत्त होना उचित है। इस सम्बन्धमें पवनविजयस्वरो-दय-ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—

प्राणवायुका देहसे निकल कर १२ उंगली तक वाहर ज्ञाना ही स्वाभाविक है। गानके समय १६ उंगली, भोजनके समय २०, सर्वेग-गमनके समय अर्थात् दौड़ कर जानेमें २४, निदाकालमें ३०, स्त्रीसंसगकालमें ३६ और व्यायामकालमें उससे भी अधिक वहिर्गत होती है। ंजो योगी प्राणसाधना द्वारा उसकी चहिर्पतिको स्वभा-यस्थ रख सकें, उसी योगीको परमायु बढ़ती है । प्राण-बायुकी वहिर्गति यदि अस्वाभाविक हा वा स्वाभाविक परिमाणसे अधिक परिमाणमें निकलती हो, तो जानना चाहिये, कि उसका आयुःश्चय होगा । यही योगशास्त्रका नियम है। इस कारण प्राणायामशिशिक्ष प्रथम योगी। को चाहिये, कि वे प्राणकी ऐसी स्वामाविक वहिगैतिके प्रति लक्षा रस कर प्राणसाधना करें। वे जब कुम्भक-के वाद रेचक करे'गे अर्थात् आकृष्यमाण बाह्यवस्तुका परित्याग करें गे, उस समय उन्हें सावधान रहना उचित है।

प्राणायाम योगाङ्गका अभ्यास करनेमें पहले उसका अधिकारी होना पड़ता है। जो सर्चदा व्याधिय त रहते हैं तथा वृद्ध हैं, युवाकालमें भी जो दुवंल हैं, जिन्हें सच्च अर्थात् क्रोश सहनेकी विलक्षल शक्ति नहीं है अथवा जिन्हें मानसिक तेज नहीं है और जो गृहवासी हैं अर्थात् घर छोड़ कर किसी पुण्यतमस्थानमें रह नहीं सकते, स्नेहममतादिसे परिपूर्ण हैं, जिन्हें बहुत कम उत्साह है, जो निर्वोर्थ अर्थात् क्रीवतुत्य निरूत्साही हैं वे सब व्यक्ति यदि प्राणायामका योग अवलम्बन करें, तो उन्हें बहुत समयके वाद सफलता मिल भो सकती है वा नहीं भी मिल सकती है, सफलता नहीं मिलने की ही बहुत सम्भावना है। ये सब व्यक्ति इसके निरुष्ट अधिकारी हैं।

जो अति प्रोढ़ नहीं हैं, अथच नियमितरूपसे योगा- भ्यासमें रत रहते हैं जिनके वीय अर्थात् उत्साह या अध्यवसाय है, जिनकी बुद्धिवृत्ति समान है, और जिन्होंने योगपथका मध्यस्थान पर्यन्त अधिकार कर लिया है, जिनका उत्साह मध्यम है तथा संसाराशकि उतनी प्रवल नहीं है, वे व्यक्ति प्राणायामशिक्षाके मध्यमाधिकारी हैं।

जिनका आग्रय अर्थात् मनका अभिप्राय अति पवित्र और महान् हैं, जो वीयंशाली, अति उत्साह्युक्त, श्लमाशील हैं, जो एक स्थानमें निश्चल वा सुस्थित रह संकते हैं अर्थात् अञ्चलसमावके हैं, जो अरोगी, सुस्थमनाः, हिधर-बुद्धि और शास्त्रज्ञानसम्पन्न तथा सर्वदा शास्त्राभ्यासमें रत रहते हैं, वही व्यक्ति प्राणायामके प्रकृत अधिकारी हैं। उक्त गुणसम्पन्न व्यक्ति यदि चेष्टा करें, तो यथासम्मव-कालमें प्राणग्यामयोग सीख सकते हैं।

जो प्रभून वलगाली हैं, जिनका अङ्ग प्रत्यङ्ग सुदृह है, जो मानसिक अवस्थामें अति तीक्षण वा तीव हैं, जो गुणग्राम-विभूषित, अत्यन्त गान्तस्त्रमावयुक्त और सब भूतोंके मङ्गलेक्सु हैं, जिनका हृद्य करणा वा द्यादिसे परिपूर्ण, गरीर व्याधिहीन, भीतर वा वाहरमें किसी प्रकारकी मलिनता नहीं है, जो किसीका भय नहीं करते, वाधा वा विम्न जिन पर आक्रमण नहीं कर सकता और जो जरा भी विचलित नहीं होते तथा जो योगीके कुलमें, विद्वान वा सिद्ध पुरुषके वंशमें उत्पन्न हुए हैं, वे ही विशेष अधिकारी हैं।

ये सब अधिकारी पहले ज्ञानी वा योगीके निकट सुशिक्षित होवें। पीछे यमनियमादि योगसाधक गुणको आयत्त करना तथा संसाराशकि और लोकसङ्गका परि-त्याग करना विधेय है। कुछ समय वाद वे किसी एक फलमूलादिसम्पन्न, सुभिक्ष और निरुपद्रव स्थानमें जांग वहांके किसी एक शुचि अर्थात् पवितस्थानमें अथवा नदी समीपस्थ अरण्यके अन्तर्गत मनोरम प्रदेशमें मन-स्तुप्तिकर एक मठ वनाचे । वैसे स्थानमें विकालस्थायी, श्चिखभाव, एकाप्रवित्त, घोरप्रकृति, शुक्रमस्रघारी तथां आसन पर उपविष्ट हो प्राणायामका अभ्यास करें। इश अथवा मृगचर्म फैला कर उसके ऊपर दूसरा आसने विछा कर वैठें । अनन्तर इष्ट देवता और गुस्को प्रणाम कर पूर्व[°] अथवा उत्तरको ओर मुंह कर प्रीवा, मस्तक तथा देहयप्रिको ठीक समान रखना होगा, जरा भी हिलने डोलने न पाने । दृष्टिको हमेशा मनके साथ नासाप्र पर्र लक्ष्य किये रखें। इसी भावमें आसन पर उपविष्ट हों

- प्राणायाम, ध्यान वा धारणादिका अभ्यास करना होता । ंहै।

योगचिन्तामणिके विधानानुसार पहले कोमल कुशा, उसके ऊपर मृगचर्म, मृगचमेंके ऊपर वस्त्र विछा कर अभ्यास करना उचित है।

अन्य योगशास्त्रोंके मतसे—प्राणायाम वा योगानुष्ठान-के लिये नदी तीर, कानन वा पर्व तगुहाका आश्रय लेना ही होगा, पैसा कोई नियम नहीं है। मनके अनुकूल वा निरुपद्रव स्थान जहां मिले वहीं प्राणायामका अभ्यास किया जा सकता है।

, "रातिशेषे निशीये वा सन्धयोक्भयोर्रापे।" इत्यादि।

उपदेशवाष्य रहनेके कारण त्रातः और सायंकालमें प्राणायामका तथा रालिके शेव और मध्यरालमें ध्यानका अनुत्तमकाळ माना गया है। वस्तुतः इसी समयमें मनकी प्रसन्नता और शारीरिक सुस्थता कुछ अधिक रहती है। इस सम्बन्धमें घेरएडसंहिनामें इस प्रकार लिखा है,-"प्रथमतः संधान, पाँछे काल, अनन्तर मिताहार, सबके भन्तमें नाड़ीशुद्ध अर्थात् प्राणायामका अनुष्टान करना कर्त्तव है। दूरदेश अर्थात् गुरुके वासस्थानसे कुछ दूर, अरण्य अर्थात् भक्षद्रव्यविद्दीन वन, राजधानी और जनता-पूर्ण स्थानमें प्राणायाम करनेसे सिद्ध होनेकी वात तो दूर रहे उलटे विद्र हो सकता है। इन सब स्थानींका परि-त्याग कर किसो एक मनोरम प्रदेशमें, धार्मिकराज्यमें. सुभिक्ष अर्थात् जहां अन्नका अभाव नहीं हो और न किसी उपद्रवको ही सम्मावना हो, वैसे स्थानमें जा कर प्राचीर-वेष्टित मध्यमाकार एक कुटीका निर्माण करना होगा। वह स्थान सुपरिष्कृत और गोमयलित रहे। हेमन्त, शिशिर, श्रीष्म और वर्षा ऋतुमें श्राणायाम वा योगारस्म करना विधेय नहीं हैं। उसका कारण यह, कि उन सव भृतुओंमें प्राणायाम वा योगका आरम्भ करनेसे रोग होनेकी सम्भावना है। यह योगाङ्ग प्राणायामका विषय् कहा गया । योग देखो । पूजादि करनेमें पहले प्राणायाम करना होता है। विना प्राणायामके कोई भी पूजा सम्पन्न नहों होती। तन्त्रसारमें इस प्राणायामका विषय इस प्रकार लिखा है-

"भृतशुद्धि ततः कुर्यात् प्राणायामक्रमेण च । किन्छानामिकांगुर्छैर्यन्नासापुरघारणम् ॥ प्राणायामः सविश्वे यस्तज्ज्ञंनीमध्यमे विना ॥" (तन्त्रसार)

पूजादिस्थलमें प्राणायाम क्रमसे भूतशुद्धि करनो होगी। कनिष्टा, अनामिका और अंगुष्ट अंगुली द्वारा यथीक नियमसे नासापुरमें जो धारण किया जाता है, उसका नाम प्राणायाम है। अर्थात् सभी मन्त उक्त अंगुली द्वारा नासापुटमें ४, १६, ८, १६ वा ६४, ३२ दार शास्त्रोक्त नियमसे वायुधारण और त्याग करनेका नाम प्राणा याम है। प्राणायामकालीन नासिकापुटमें तर्ज नी और मध्यमा अंगुलि न लगावे। यह प्राणायाम दो प्रकारका है, सगर्भ और निर्गर्भ। जहां मन्त्रकृप द्वारा प्राणायाम होता है, वहां उसे सगर्भ और जहां माता होती है, वहां उसे निर्गर्भ कहते हैं। मुलमन्त्र वीज है अर्थात् जिस देवताका प्राणायाम करना होगा, उस देवताका मूलमंत या प्रणव पहले वामनासापुरमें अनामिका और क्रनिष्ठा तथा दक्षिण नासामूलमें अंगुष्टांगुली द्वारा पकड़ कर पहले १६ वार जप करे। जप करनेमें जितना समय लगे, उतने समय तक वामनासा द्वारा वायुपूरण करना होता है। पोछे वामं और दक्षिणनासापुरमें ६४ वार जप और उस जपसंख्याके परिमित काल तक वायुका कुभ्भक करे। पहले जो वायु नासापुर द्वारा भरी गई है, उस वायुको सारै शरीरमें छेना होगा। अनन्तर ३२ बार जप करनेमें जितना समय लगता है उतने समय तक उस वायुका त्याग करना होगा। इस प्रकार तीन वार करना होता है। वायुपूरण, कुम्मक वा रेचनके समय उक्त परि-मिति जप भो करना होगा । पहले यदि १६, ६१, ३२ वार कोई शाणायाम करनेमें सनर्थ न हों, तो इसके तुरीयक चतुर्थ भागका एक भाग करना होगा। अर्थात् पहले ४, १६, ८ वार जप और तत्परिमितिकालमें वायु-घारण तथा रेचनादि करने होते हैं । 8, १६, ८ **इनसे** क्रम बार प्राणायाम नहीं होता । पहले पहल जो प्राणा-याम करें, उन्हें दूसरे नियमसे करना चाहिये । इसंका उत्तमरूपसे अम्यास हो जानेके वाद १६, ६४ और .३२ बार कर सकते हैं। **त्राणायामका साधारण नियम**्यह

है, कि जितना वायुप्रण है, उसका चौगुना कुम्मक और उसका आधा,रेचन करना होता है। प्राणायाम अवश्य कर्चन्य है। विना प्राणायाम किये पूजा और मन्तजप कुछ भी नहीं होता। इससे प्राणायामका नित्यत्व अभिहित हुआ है। (तन्त्रसार) पूजा और मृतश्रुद्ध देखो।

चाहे वैदिक संध्या हो या तान्त्रिक संध्या, दोनों संध्यामें ही प्राणायाम करना होता है। तान्त्रिक और प्राणायाममें ब्राह्मण, क्षतिय, वैश्य, शूद्र चारों बर्णोंके ही समान अधिकार हैं। जो कोई तन्त्रोक्त मंत ब्रह्ण करे, उसे प्रातः, मध्याह और सायाह इन तीनों समयमें सन्ध्याके साथ प्राणायामका अनुष्ठान करना होगा । ब्राह्मण सर्वस्व प्रभृति धर्मेत्रन्थमें लिखा है, कि जो सब ब्राह्मण प्रतिदिन तिसंध्या यथाविहित प्राणा-यामका अनुष्ठान करते हैं, उनके सभी पाप जाते हैं। यहां पर ब्राह्मण शब्दसे उपलक्षणमाल समभना होगा। क्षतिय, चैश्य और श्रुद्र जो कोई वर्ण क्यों न हो प्राणायाम करनेसे उसका पाप नष्ट होता,है। सूर्यो-इयसे जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार जो प्राणायामका भाचरण करते हैं, उसके पाप विनष्ट होते हैं। शास्त्रमें इस प्राणायामको ही आद्य और श्रेठतप वत-लाया है। विस्तृत विवाण बाह्मणधर्वस्वमें देखी।

प्राणायामी (सं० ति०) प्राणायाम अस्त्यर्थे इनि । प्राणा-यामानुष्ठानकारो, प्राणायाम करनेवाला ।

प्राणाय्य (सं॰ ति॰) उपयुक्त, योग्य ।

प्राणार्थवत् (सं० ति०) प्राण और धनवान् ।

प्राणावाय (सं॰ क्ली॰) प्राणेनावैति अव-इ-अच्। जैनियोंके चौदह पूर्वोमेंसे एक अङ्ग ।

प्राणासन (सं ॰ क्ली॰) रुद्यामलोक्त पूजाङ्ग आसनभेद । यह प्राणासन सबैसिद्धिप्रदायक है ।

श्राणाहुति (सं ० स्त्री०) प्राणक्षपेभ्यः अग्निम्य आहुतिः।
भीजनके पहले गृहस्थके कर्तव्य प्राणक्षप अग्निके उद्देशसे आहुति। भोजनके पहले पञ्चप्राणाग्निको यह आहुति
दे कर भोजन करना चाहिये। प्राणाहुति मुद्रा द्वारा पञ्चप्राणाग्निको आहुति देनी पड़ती है। प्राणाग्निके उद्देशसे
जब आहुति देनी हो, तब तजनी, मध्यमा और अंगुष्ठ
भंगुलि योग कर देना होगा अपानवायुके उद्देशसे मध्यमा

अनामिका और अंगुष्ठ योग करके; ज्यानवायुके उहें श-से किनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ अंगुिल योग करके तथा उदानवायुके उहें शसे एकमाल तजनी अंगुिल छोड़ कर और सभी अंगुिलके संयोगसे आहुित देनी होती है। घृत और व्यञ्जनादिके साथ अन्न पहले 'प्राणाय स्वाहा प्राण स्तृत्यित' 'अपानाय स्वाहा अपानस्तृत्यित' 'उदानाय स्वाहा उदानस्तृत्यित' 'समानाय स्वाहा समान-स्तृत्यित' 'ज्यानाय स्वाहा ज्यानस्तृत्यित' इस प्रकार पञ्चप्राणानिको पञ्च आहुित दे कर भोजन करना होता है। इस पञ्चप्राणको आहुित देते समय यदि अन्तके साथ घृत न दिया जाय, तो पीछे घृत नहीं खा सकते हैं। आहुित देते समय मन्त्रसे प्रणयसंयुक्त अर्थात् 'ओ प्राणाय स्वाहा' ऐसा कहना होता है। पञ्चप्राणको इस प्रकार आहुित दिये विनो ब्राह्मणको कभी भोजन नहीं करना चाहिये। (आहिक्तस्व)

त्राणिघातिन् (सं० ति०) त्राणिनं हन्ति हन-णिनि। त्राणीकी हत्या करनेवाला।

प्राणिणिषु (सं ० ति०) प्राणेच्छु, जीवनके भभिलायी।
प्राणिद्युत (सं ० क्रो०) प्राणिभिमेंपादिभिः इतं द्युतमिति मध्यपदलोपिसमासः। पणपूर्वक मेपकुषकुटादिका युद्ध, धर्मशास्त्रानुसार नह वाजी जी मेढ़े, तीतर, घोड़े
आदि जीवोंकी लड़ाई या दौड़ भादि पर लगाई जाय।
प्राणिन (सं ० ति०) प्राणाः सन्त्यस्थेति प्राण (भवहिष्
ठनौ। पा पारारश्प) इति इति। १ प्राणिविशिष्ट,
जिसमें प्राण हों (पु०) २ जन्तु, जीव। ३ मनुष्य।
४ वाकि। कहीं कहीं पुरुष अपनी स्त्रोके लिये और
स्त्री अपने पतिके लिये 'प्राणी' शब्दका बावहार
करते हैं।

प्राणिमत् (स'॰ ति॰) प्राणिन अस्त्यर्थे मतुप् । प्राणि-ंयुक्त स्थान, प्राणिविशिष्ट देशादि ।

प्राणिमातः (सं॰ स्त्री॰) प्राणिना माते व गर्भदातृत्वात्। गर्भदात्नी क्षुपं।

प्राणिहित (सं० ति०) प्राणिनां हितः। १ प्राणियोंका हितसाधन । स्त्रियां टाप्। २ पांदुका, खड़ाऊ । ३ उपा-नत्, जुता । ४ लोकहितकारिणी ।

त्राणीत्य (सं ॰ क्की॰) प्राणीतस्य प्रयोजितस्य भावः, प्रणीत-ष्यञ् । ऋण । प्राणेश (सं ॰ पु॰) प्रणानामीशः ६-तत् । १ पति, स्वामी । २ प्यारा, प्रेमी व्यक्ति ।

प्राणेश्वर (स'o पुरु) प्राणानामीश्वरः ६-तत् । १ पति, स्वामी । २ प्रोमी वाक्ति, बहुत व्यारा ।

प्राणीपहार (सं॰ पु॰) प्राणस्य उपहारः भोजनं ६-तत्। आहार, भोजन ।

प्राण्यङ्ग (सं ० क्ली०) प्राणानामङ्गं ६ तत्। प्राणियोंके । अवयव हस्तपादादि।

प्रात (हिं अवाः) सबेरे, तड्के।

प्रातः (सं ॰ पु॰) प्रभात, तड़का ।

प्रातःकर्म (सं ॰ पु॰) यह कर्म जो प्रातःकाल किया जाता हो । प्रातःकृत देखो ।

प्रातःकार्यं (सं ० क्ली०) प्रातः प्रभातकालस्य कार्यं कर्त्तव्या किया । प्रभातकालके कर्त्तव्य कर्म ।

प्रातःकाल (सं ॰ पु॰ पु॰) प्रातः प्रभातः कालः कर्मधा॰।
१ प्रभातकाल, सवेरेका समय। २ रातके अन्तमं सूर्योः
दयके पूर्वका काल। यह तीन मुद्धक्ता माना गया है।
जिस समय सूर्य उदय होनेको होते हैं, उससे डेढ़ दो
धंटा पहले पूर्व दिशामें लालिमा दिखाई पड़ने लगती है
और उस ओरके नक्षतोंका रंग फीका पड़ना प्रारम्भ
होता है। उसी समयसे प्रातःकालका आरम्भ माना
जाता है।

प्रातःकालीन (सं॰ ति॰) प्रातःकालसम्बन्धी, प्रातः-कालका।

प्रातःकृत्य (सं० क्की०) प्रातः प्रभातकाले कृत्यं कर्तं व्यं कार्यं वा प्रातः प्रभातकालस्य कृत्यं कर्त्तं व्या क्रिया । प्रभात-कालमें अनुष्ठेय कर्मं, गास्त्रविहित प्रातःकत्त व्य कर्मं । भित प्रत्यूप कालमें विद्यावनसे उठ कर पुनः राविको विद्यावन पर जाने तक जो सव कार्यं करने होते हैं, धर्म-शास्त्रमें उनका विषय विशेषक्रपसे पर्यालोचित हुआ है । रघुनन्दनने आहिकतत्त्वमें प्रातःकृत्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

ब्राह्म मृहर्त में विछात्रनसे उठ कर देवता और अर्थियोंका स्मरण करना होगा । पश्चिमयामका नाम ब्राह्म मृहर्त्त है अर्थात् बार दण्ड रात रहते हो ब्राह्ममृहर्त्त काल उपस्थित होता है । इस सम्ब विद्यावन पर पड़े रह कर ही, ब्रह्मा, विष्णु, महे-श्वर और नवग्रह, मेरा सुप्रभात करें, ऐसा स्मरण करना चाहिये।

"ब्रह्मामुरारिस्तिपुरान्तकारी भातुः शशी भूमिस्रतो तुथस्य । गुरुस्य शुक्रः शनिराहुकेतु कुर्यन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥"

पोछे गुरुदेवका स्मरण कर उनके उद्देशसे निम्नछिखित मन्बसे प्रणाम करना चाहिये। मन्ब—
"प्रातः शिरसि शुक्काब्जे द्विनेतं द्विभुजं गुरुम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम्॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मा इष्टदेवसक्षपिणे।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति विषं संसारसंबकम्॥"

अपनेको सिश्चिदानन्द ब्रह्म समभ्य कर समरण करे और वे हिद्स्थित हपीकेश जो कराते हैं, वहीं करता हूं, पेसा समभ्ये।

अनन्तर "प्रियदत्ताये भुवे नमः" ऐसा कह कर पृथ्वीको प्रणाम कर तव दाहिना कदम उठावे । गातोत्थान करके श्रोतिय, सुभगा, अनि वा अनिचित्के दशेंन करें, ापिष्ठ, दुर्भगा, मद्य, नन्न और नकटेका मुंह कभी भी न देखे । जहां धनी, श्रोतिय, राजा, नदी और वैद्य हैं, उसी स्थान पर वसना हितकर है । यदि प्रापिष्ठों पर निगाह पड़ जाय, मुंह देखनेसे—

"कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च । ऋतपणस्य राजपें कीर्तां कलिनाशनं ॥"

इस मन्त्रका उचारण करे। वाद्में अरुणोद्य काल-में मृत्वपुरीयोत्सर्गे और दन्तधावन करके प्रातःस्नान करे। दन्तवावन और प्रातःस्नान देखो।

नैस्देत और प्रातःकालमें पुरीष त्याग करे । पुरीष त्यागकालमें दाहिने कान पर जनेऊ रखे । अभःशीध वापं हाथसे करे, दाहिने हाथ कभी भी नहीं । कर नाभि ऊपरका अङ्ग वापं हाथसे रुपर्श न करे । शीचमें अरिक्रमात जल लगा है। उतना जल नहीं मिलनेसे शुचि नहीं होती।

हाथमें मिट्टी देनेकी भी व्यवस्था है, यथा लिङ्गमें एक बार, गुहामें तीन बार और बार हाथमें दश बार। पीछे दोनों हाथमें सात बार मट्टी दे।

Vol XIV 179

"एकालिङ्गे गुदे तिस्रो स्तथा वामकरे दश। उमयोः सप्तदातन्या मृदः शुद्धिमभीष्सता॥" (आह्विकतत्त्वधृत मनु और दक्ष)

प्रक्षालन और मार्ज नादि शेष्र करके आचमन करे, पीछे यथासम्मव स्पर्वदर्शन विश्वेय है। पूर्वमुखी हो कर पदमक्षालन करना होता है। ब्राह्मण पहले दाहिने पदको और शूद्र पहले वाप पदको प्रक्षालन करे। अन-न्तर हस्तप्रक्षालनपूर्वक शिखा बांध कर आचमन करे। ब्रिज गायली उच्चारण करके ब्रह्म-रन्ध्रके नैप्तर्र तमें शिखा और जुड़ी बांध कर कार्य आरम्म करे।

"गायत्या तु शिखां चद्धा नैऋ[°]त्यां ब्रह्मरन्ध्रतः । जूटिकाञ्च ततो बद्द्भ्वा ततः कर्म समारभेत् ॥" (आह्विकतत्त्वधृत ब्रह्मपु॰)

शूद्र निम्नलिखित मन्त्रसे अपना शिखा वंधन करे—
"ब्रह्मवाणीसहस्राणि शिववाणीशतानि च ।
विष्णोर्नामसहस्रेण शिखावन्धं करोम्यहं ॥
गच्छन्तु सकला देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
तिष्ठत्वताचला लक्त्मीः शिखा मुक्तं करोम्यहं ॥"
आचमनकालमें यदि जल न मिले, तो दाहिना कान छूना
होता है। आवमन देखो।

इसके वाद यथारीति दन्तभावन करें। दन्तभावन देखो। परन्तु श्राद्धमें, जन्मदिनमें, विवाहमें, अजीणे होने पर, व्रतमें और उपवासमें दन्तधावन नहीं करना चाहिये। खदिर, कदस्य, बर, तिन्तिड़ी, आझ, निम्य, अपामार्ग, विल्व, अके वा उडुम्बर ये सब काम्र दन्तधावनमें प्रशस्त हैं। यदि चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा भीर रविसंकान्ति इन सब दिनोंमें दन्तकाष्ट्र न मिले, तो बारह कुलो जलसे मुंह घो लेनेसे ही शुद्धि होगी। अनामिका वा अंगुष्ठ द्वारा दन्तधावन न करे। दन्तधावनके बाद प्रातः सान, प्रातःसन्ध्या, होम, देवकार्य और गुरु तथा शुभ दशन करे। इसीको प्रातःस्रत्य कहते हैं। (ग्राहिक्तन)

कूर्मपुराणमें लिखा है—ब्राह्ममुद्धतेंमें उठ कर मन ही मन इप्टेव और धर्म अर्थको चिन्ता करे। उपाकाल दिखाई देनेसे भावश्यक कार्य निवदा कर दतुवन करे। पीछे नदी जलमें स्नान करके शुद्ध होवे। विना स्नान किये देह शुद्ध नहीं होतो, इसी कारण होमादि समो

शुभ कर्मों के पहले स्नान करना होता है। नित्य स्नानसे शरीर और मन पवित्न होता है। भावन शब्द देखो। स्नान करके देव, ऋषि और पितरों के उद्देशसे तर्पण करना होता है। कुशसे जलविन्दु ले कर मन्लोश्वारणपूर्वक तर्पण करे। पहले आपोहिष्ठादि मन्त्व, गायती और वाहण मन्त्व पड़े। वेदमाता गायती और सूर्यके उद्देशसे जला-अलि दे। पीछे नदीं के पूर्वकृलमें कुशासन पर वैठ तीन वार प्राणायाम करके संध्या करे। यहीं संध्या जगत-प्रस्ति, मायातीता, निकला, ईश्वरी और पराशक्ति है। अनन्तर सूर्यमण्डलगता सावितीका जप करे। विप्रको पूर्वमुखो हो कर ही नित्य संध्यापूजा करनी चाहिये। संध्याहीन व्यक्ति सभी कर्मोंमें अयोग्य है। उसका कोई मी कार्य सफल नहीं होता। अन्तमें उसे नरककी प्राप्ति होती है। उदीयमान सूर्यको ऋग्, यज्ञः और साम वेदोक सौरमन्त द्वारा प्रणाम करे। प्रणामका मन्त इस प्रकार है, -

"ॐ खं खखोल्काय शान्ताय कारणतयहेतचे। निचंद्यामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानकपिणे॥ नमस्ते घृणये तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मकिपणे। त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योतीरसोऽमृतम्। भूभृंवः खस्त्वमोङ्कारः सर्वे रुद्राः सनातनाः॥ पुरुषः सन्महोऽतस्त्वां प्रणमामि कपर्दिनम्॥ त्वमेव विश्वं वहुचा सदसत् सूयसे च यत्। नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं गरणं गतः॥ प्राचेतसे नमस्तुभ्यमुमायाः पतये नमः। नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने। विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय ते नमः। नम उमापतये तुभ्यमादित्याय नमोऽस्तु ते॥ नमस्ते बहुहस्ताय त्राम्बकाय नमोस्तु ते । प्रपद्ये त्वां विद्धपाक्ष ! महान्तं परमेश्वरम् ॥ हिरण्मये यृहे गुप्तमात्मनं सर्वदेहिनाम्। नमस्यामि परं ज्योतिब्रह्माणां त्वां परामृतम्॥ विश्वं पशुपति भीमं नरनारीशरीरिणम्। नमः सूर्याय रुद्राय भाखते परमेष्ठिने। उग्राय सर्वभक्ष्याय त्वां प्रपद्ये सदैव हि ॥"

यह कह कर स्तव पाठ करे। इसके बाद घर आ कर आंचमनादि शेव करके कार्य में लग जाँय। प्रातःसन्ध्या (सं ० लो०) प्रातः प्रथमाद्वीया सन्ध्या। प्रातःकालमें कत्तेवा चैदिक और तान्त्रिक कर्त्तेवा उपा-सनाविशेष। चैदिक प्रातःसन्ध्यामें निम्नलिखित क्रियापं कही गई हैं। १ मार्जन, २ प्रार्थना, ३ प्राणायाम, ४ माचमन। ५ आपोमार्जन, ६ अधमर्षण, ७ स्वींपस्थान, ८ देवतपंण, ६ सावित्रावाहन, १० सावित्रोध्यान, ११ सावित्रीजप, १२ सावित्रीविसर्जन, १३ बादित्यशुक्त-प्रीणन, १८ आत्मरक्षण, १५ रुद्रोपस्थान, १६ ब्रह्मादिको जलदान, १७ सुर्यार्घदान और १८ सुर्यंप्रणाम।

तान्तिक प्रातःसन्ध्याके कर्म—१ मन्ताचमन, २ जल-शुद्धि, ३ करेन्यास, ४ अङ्गन्यास, ५ सदमर्थण, ६ इस्त-श्रालन, ७ आचमन, ८ सूर्यार्घतान, ३ गायलोको जल-इान, १० तर्पण, ११ गायलीस्नान, १२ गायलोजप, १३ जलसमर्थण, १४ रप्टरेक्च्यान, १५ प्राणायाम, १६ मूल-मन्त्रजप और १७ नमस्कार।

प्रातःसवत (सं ० क्ली०) प्रातःकालमें अनुष्ठेय सोमयाग 📳 प्रातःस्नान (सं ० ह्यी०) प्रातः प्रभातसमये यत् स्नानं ७ तत्। प्रभातकाल कर्त्तव्य अवगाहनादि। धर्म और खारूवाको वनाये रखनेके लिये प्रातःस्नान एकान्त उप-योगी है। प्रातःस्नानके सम्बन्धमें गरुड्युराणके ५०वें अध्यायमें लिखा है, कि उपाकालमें विधिविहित आवश्य-कतानुसार शौविकिया निर्वाह करके पवित नदीजलमें रनान करे। जो प्रति दिन पापकार्यंका अनुष्टान करते हैं वे प्रातःस्नान द्वारा सभी पापोंसे मुक्त हो कर पवि-तता लाभ कर सकते हैं। अतएब प्रातःस्नान करना हर व्यक्तिका पकान्त कर्राव्य है। प्रातःस्नान नितान्त त्रयोजनीय होनेके कारण सभी इसकी अशंखा करते हैं। रातिकालमें निदित व्यक्तिके मुखसे यदि लगातार राल टपक्ती हो, तो पहले विना स्नान किये किसो कार्यका भनुष्टान न करना चाहिये। सच पृछिये, तो पाप-क्षालन करके पविवतालाभ करतेमें प्रातःस्नान जितना उपकारी है उतना और कोई प्रसिद्ध कमें नहीं है। विशे-षतः जप अथवा होमादि कार्मीमें प्रातःस्नान करना ही पड़ता है, परन्तु अशक्त व्यक्तियोंके प्रति अशिरस्कस्नान करना अशास्त्रीय नहीं है।

उक्त पुराणके ही २१५वें अध्यायमें लिखा है, कि

वातःकालमें संक्षेपसे और मध्याहमें विधानकामसे स्नान करना वाहिये । ये दो फालके स्नान केवल वानप्रस्थीं और गृहस्थोंके लिये ही प्रशस्त हैं। यति वा ब्रह्मचारीः के लिये यह नियम लागू नहीं है। यतिको तीनीं शाम और ब्रह्मचारीमालको सिर्फ एक शाम स्नान करना चाहिये। जो प्रतिदिन उपाकालमें रविके उदय और अस्तकालीन स्नान फरते हैं, उनका वह स्नान प्राजापत्य-व्रतको समान है। अतएव उस स्नानसे महापातकका विनाश हो सकता है। यदि कोई एक वर्ष तक प्रतिदिन अञ्जापूर्वेक प्रातःस्नान करे, तो वारह वर्ष तक प्राजापत्यका अनुप्रान करनेमं जो फल वतलाया गया है, वहीं फल उस प्रातःस्नायीको प्राप्त होता है। जो विपुल भोगको कामना करते हों, उन्हें मात्र और फाल्गुन दो मास तक प्रतिदिन प्रातःस्नान करना उचित है। हवि-व्याशी हो कर माधमासमें प्रातःस्नान करनेसे भोषण अतिपातकके हाथसे भी अध्याहति मिलती है। यदि कोई माता, पिता भाता, सुहत् अथवा गुरुके उद्देशसे पातः-स्नान करे, तो वह उस स्नानफलका वारहवां अंश लाभ कर सकता है। (गरहपुराण ५० और २१५ अ०)

प्रातःस्नायो सं ० ति०) जो प्रातःकाल स्नान करता हो, सबेरे नहानेवाला ।

प्रातःस्मरण (सं ॰ यु॰) प्रातःकालके समय ईश्वर, देव-ताविके नामींका स्मरण या जप आदि करनेकी क्रिया या भाव।

प्रातःस्मरणीय (स'ं बि॰) जो प्रातःकाल स्मरण करनेके वोग्य हो ।

प्रांतनाथ (हि॰ पु॰) सूर्य ।

प्रातर् (स' काव्य) प्र-अतः अरन् (प्रातवेररन् । उण् पापः)१ प्रमात, सबरे । (पु)२ पुष्यार्ण और प्रमा-के पुत, एक देवताका नाम ।

प्रातर (सं ॰ पु॰) नागभेद, एक भागका नाम । प्रातरतुवाक (सं ॰ पु॰) ऋग्वेदके अन्तर्गत वह अनुवाक् जो प्रातःसवन नामक कममें पढ़ा जाता है।

प्रातरभिवादन (सं o पु o) प्रातःकालका प्रणाम, वह अभिवादन जो प्रातःकाल सो कर उठनेके समय किया जाय। पातरह (सं ० पु०) दिनका आद्यंश, दो पहरके पहलेका समय !

प्रातराश (सं॰ पु॰) प्रातर्भोजन, जलपान, कलेवा। पर्योय—कल्यजभ्धि, कल्यवर्रा।

प्रातराशित (सं ० ति०) प्रातःकालमें भुक्त, जिसने प्रातः-कालमें भोजन किया हो ।

यातराहुति (सं॰ स्त्री॰) प्रातःकालकी आहुति, वह आहुति जो प्रातःकाल दी जाय ।

प्रातरित्वन् (सं ० ति ०) प्रातरागत, सबेरे आनेवाला।

प्रातर्गेय (सं ॰ पु॰) स्तुतिपाउक, स्तुतिवत । प्रातर्जित् (सं ॰ बि॰) प्रातःकालमें जयकारी ।

प्रातदेन (सं॰ पु॰) प्रतदेनके गोलापत्य, प्रतदेनके गोलमें उत्पन्न पुरुष ।

प्रातिर्देन (सं॰ पु॰) प्रातःकाल, मध्याहसे पहलेका समय। प्रातद्^{दे}ग्ध (सं॰ झी॰) प्रातःकालमें पेयदुग्ध, वह दुभ जो सबेरे पीया जाय।

प्रातदोंह (सं० पु०) प्रातःकालमें दूध दुहनकी किया। प्रातःभीषतृ (सं० पु०) प्रातःभुंङ्के भुज-तृच्। काक, कीवा

मातर्भोजन (सं॰ क्ली॰) प्रातराश, जलपान, कलेया। मातर्यु क (सं॰ वि॰) प्रातःकालमें युक्त। मातयु ज (सं॰ वि॰) प्रातःकालमें अश्व द्वारा युज्यमान। प्रातवेस्तु (सं॰ वि॰) प्रातःकालमें वीतिशील।

प्रातस्त्रिवर्गा (सं ० स्त्री ०) गङ्गा ।

प्रातहोंम सं ० पु॰) प्रातःकालमें अनुष्टेय होम । प्रातस्तराम् (सं ॰ अव्य॰) अति प्रत्यूपमें, वहुत तड़के । प्रातस्त्य (सं ॰ ति॰) प्रातःकाल-सम्बन्धीय ।

प्रातिवृक्तसरा (सं० स्त्री०) कल्लिकामेद ।

प्राति (सं ० स्त्री ०) १ पूरण। २ वृद्धांगुष्ठ और तर्जनी-को मध्यवत्तीं वितस्ति, अंगूठे और तर्जनीके वीचका स्थान।

प्रातिकारिटक (सं० ति०) प्रतिकर्ष्टं गृह्वाति । कर्ष्ट-ग्रहणकारी, गला पकड़नेवाला ।

प्रातिका (सं ० स्त्री०) प्र-अत-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। १ जवायुक्ष । २ वाद्ध^{भय} ।

प्रातिकामी (सं० पु०) १ भृत्य, नौकर । २ दुर्योधनके एक दूतका नाम । प्रातिकूलिक (सं ॰ ति ॰) प्रतिकूलं वर्तते प्रतिकूल-ठक्। प्रतिकूल वर्त्तमान ।

प्रातिकुट्य (सं॰ क्ली॰) प्रतिकुलस्य भावः गर्गादित्वात् यम्। प्रतिकृलका भाव, प्रतिकुलताचरण।

प्रातिकत्र (सं० ह्री०) प्रतिक-पुरोहितादित्वात् यक् । प्रतिक-भाव ।

प्रातिश्चेपिक (सं ० ति०) प्रतिश्चेपकारी।

प्रातिजनीन (सं ० ति०) प्रतिजनं साधु प्रतिजन-सञ्। प्रतिजन वा विपक्षके उपयुक्त।

प्रातिज्ञ (ं सं॰ क्ली॰) प्रतिज्ञाका विषय, आलोचनाका विषय । ं ;

प्रातिथेयो (सं० स्त्री०) आध्वलायनगृह्योक्त एक साध्वी रमणी।

प्रातिदैवसिक (सं ० ति०) प्रतिदिवसे भवः। जो प्रति-दिन हो, हर रोज होनेवाला।

प्रातिनिधिक (सं॰ पु॰) प्रतिनिधि सार्थे ठक्। प्रति-निधि।

प्रातिपक्ष (सं० ति०) १ प्रतिपक्ष वा विपक्षसम्बन्धीय। २ विरुद्ध, प्रतिकूछ।

प्रातिपक्षा (सं० क्ली•) प्रतिपक्षस्य भावः। विपक्षता, शतुता।

प्रातिपथिक (सं॰ ति॰) प्रति पथमें गमनकारी । प्रातिपद (सं॰ ति॰) प्रतिपद सम्बन्धीय ।

प्रातिपदिक । सं ० ति ०) प्रतिपदायां तिथी भव इति प्रति-पद-छन् । (कालात्इन् । पा ४।३।११) १ प्रतिपत्-तिथिभव, प्रतिपद तिथिमें होनेवाला । (पु०) २ अग्नि । अग्निने संसारमें ख्याति पानेके लिये पितामह ब्रह्मासं तिथिके लिये प्रार्थना की । ब्रह्माने प्रसन्न हो कर उन्हें प्रतिपद तिथिका अधिपति बना दिया। (वराह्युत्तण)

३ संस्कृत व्याकरणके अनुसार वह अर्थवान शब्द जो धातु न हो और न उसको सिद्धि विभक्ति लगनेसे हुई हो। प्रातिपदिकके अन्तर्गत ऐसे नाम, सर्वनाम, तदि-तान्त, कृदन्त और समासान्त पद आते हैं जिनमें कारक-की विभक्तियां न लगाई गई हों। व्याकरणमें उनकी 'प्रातिपदिक' संज्ञा केवल विभक्तियोंको लगा कर उनसे सिद्ध पद बनानेके लिपे की गई हो।

एक राजाका नाम । २ एक ऋषिका नाम जो गोल-प्रवत्तं क थे।

प्रातिपेय (सं ० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका

प्रातिपौरुषिक (सं० त्रि०) प्रतिपुरुष सम्बन्धीयः मनुष्यत्व सम्बन्धीय ।

प्रातिबोध (सं॰ पु॰) प्रतिबोधका पुं अपत्य।

त्रातिबोधायन (स[°]० पु०) प्रतिवोधका गोलापत्य । प्रातिभ (सं ० त्रि०) प्रतिभाऽस्त्यस्य प्रज्ञादित्वात् अण्। १ प्रतिमान्वित, जिसमें प्रतिमा हो। (पु०) २ उन पांच प्रकारके उपसर्गों या विद्योमेंसे एक प्रकारका विद्य जी बोगियोंके योगमें हुआ करते हैं। मार्कएड यपुराणमें लिखा है, कि प्रातिम, श्रावण, दैव, श्रम और आवर्त ये पांच योगियोंके योगविद्यके भयङ्कर हेतु हुआ करते हैं। इनमेंसे जिसके द्वारा योगीके चित्तमें यावतीय वेदार्थ, काम्यशास्त्रादिका अर्थ, विविध विद्या और नाना प्रकारके शिल्प प्रतिभात होते हैं उसे प्रातिभ कहते हैं। योगी जिसके द्वारा सहस्रयोजन दूरवर्ची शब्द श्रहण करके उसका क्यं हृदयङ्गम कर सकते हें उसका नामः श्रावण है। जिसके प्रमावसे देवमतिम योगी पुरुप उन्मक्ती तरह चारों ओर दृष्टिपात करते हैं वही दैव चिग्न कह-छाता है। अछावा इसके समस्त आचाराँका परित्याग करनेसे और दोयवशतः योगोका मन जिस निरालस्य-भावसे भ्रमित होता है उसे भ्रम और श्रानावर्त्त जद जलावर्च की तरह आकुलित ही कर योगीके चित्तकी बिनष्ट करता है, तब उसे आवर्त्त क विध्न कहते हैं।

प्रातिभाग्य (सं० क्की०) प्रतिभू-ध्यञ् ब्रिपदवृद्धिः । प्रतिभू-भाव, जमानत, जामिनि।

मातिभासिक (स^{*}० ति०) प्रतिभास-सम्बन्धी, अनुक्रपक । २ जो वास्तवमें हो पर पर भ्रमके कारण भासित हो। जैसे, रज्जुमें सर्पका कान प्राप्तिमासिक 🖁 । ३ जो व्याव-हारिक न हो.।

प्रातिरूप (सं ० क्ली०) प्रतिरूपका भाव, अनुरूप । आतिलोमिक (सं॰ ति॰) १ शतिलोमसे उत्पन्न, आनु-लोमिकका उल्ला । २ विपश्च, विरुद्ध, अभीतिकर। Vol. XIV. 160

प्रातिपीय (सं ॰ पु॰) १ राजभेद, महाभारतके अनुसार | प्रातिलोम्य (सं ॰ क्ली॰) १ प्रतिलोमका भाव । २ बिंच-द्भता । ३ प्रतिकूलता ।

प्रातिवेशिक (सं ॰ पु॰) प्रतिवेश-यत् । पड़ोसी ।

प्रातिवेशमक (सं॰ ति॰) १ प्रतिवेशम वा प्रतिवेशीके गृहसम्बन्धीय। २ निकटवत्तीं। (पु०)३ प्रतिवेशी, पड़ोसी ।

मातिवेश्य (सं॰ पु॰) १ पड़ोस । २ पड़ोसी । ३ व**र** पड़ोसी जिसका द्वार अपने द्वारके ठीक सामने हो। प्रातिवेश्यक (संव पुर) त्रतिवेश्य खार्थे कर । प्रतिवेशी, पडोसी ।

प्रातिशाख्य (सं॰ क्ली॰) विभिन्न बेदके खर, पद, संहिता आदि निर्णयार्थे प्रन्थविशेष । प्रतिवेद भी भिन्त भिन्त शासा है। प्राचीनकालमें जो जिस शासाका अध्ययन करते थे वे वंशपरम्परासे उसी शास्त्राके अनुयायी माने जाते थे। यैदिकयुगके वहुत समय वाद जब भिन्न भिन्न शाखाध्यायी अपने अपने बेदपाडकालमें कुछ असमंजसमें पड़ गये, अथव उस समय जो सव वैदिक ज्याकरण प्रच-लित थे, उनसे बेदकी प्रतिशाखाके पद, क्रम वा स्वरादि-का निर्णय करनेमें सुविधा नहीं होती थी, तद प्रतिशाखाके स्वर और पदादिका विपर्स्ययनिवारणार्थं प्रातिशाख्यकी उत्पत्ति हुई। एक समय वेदकी सभी शास्त्राओंका प्राति-शास्य प्चालित था। अभी केवल ऋग्वेदकी शाकल-शासाका शौनक रचित ऋक्पातिशास्य, यज्जुर्वे देकी तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य और वाजसनेय शाखाकाका कात्यायन-रचित वाजसनेय प्रातिशाख्य, सामचेदको माध्यन्दिनशाखाका पुष्पमुनि-रचित साम-प्रातिशास्य और अथवं प्रातिशास्य वा शौनकीय चतु-राध्यायिका पाई जाती है।

शौनककां ऋक्षातिशाख्य ३ काएड, ६ पटल और १०३ किएडकामें विश्वक है। इस प्रातिशाख्यके परि-शिष्ट रूपमें उपलेखस्त नामक एक प्रन्थ भी पाया जाता है। पहले विष्णुके पुतने ऋक्षातिशाख्यका भाष्य स्वा, उसीकी देख कर उबटाचार्य ने एक विस्तृत भाष्य लिसा है।

तैचिरीय प्रातिशास्य ऋकप्रातिशास्यके बाद रचा

गया, यही पाश्चात्य पिएडतोंका मत है। इस प्राति-शास्त्रमें आलेय, स्थिविरकौिएडन्य, मारद्वाज, वाल्मीिक, अनिवेश्य, अनिवेश्यायन, पौक्करसादि प्रशृति आयार्यांका उल्लेख है। यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि इसमें तैत्तिरीय आरण्यक वा तैत्तिरीय ब्राह्मणका एक भी प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता। केवल तैत्तिरीय संहिताका विषय ही आलोचिन हुआ है। आलेय, माहिष्येय और बरुचि-रचित तैत्तिरीय प्रातिशाख्यका भाष्य प्रचलित था; पर अभो वह नहीं मिलता है। वे सब प्राचीन भाष्य देख कर कार्त्तिकेयने लिभाष्यरत्न नामक एक विस्तृत भाष्यकी रचना की है।

कात्यायनका वाजसनेय-प्रातिशाख्य आठ अध्यायमें विभक्त है। १म अध्यायमें संज्ञा ओर परिभापा, २य में खरप्रक्रिया, ३य-से ले कर ५म अध्याय तकमें संस्कार, ६४ और 9म अध्यायमें क्रियाका उच्चारणभेद तथा ८म अध्यायमें खाध्याय वा वेदपाठका नियम वर्णित हुआ है। इस वाजसनेय प्रातिशाख्यमें शाकटायन, शाकार्थ, गाग्ये, काश्यप, दाल्म्य, जातुकर्ण, शीनक, औपाशिवि, काण्य और माध्यन्दिन आदि पूर्वाचायों का उल्लेख है। इसके प्रथम अध्यायमें 'वेद' और 'भाष्य' इन्हीं दो भाषा-का उल्लेख देखनेमें आता है।

कुछ दिन पहले पाश्चात्य पिएडतोंका विश्वास था, कि सामप्रातिशाख्य नहीं मिलता, परन्तु अभी वह संदेह जाता रहा। आज कल जो सामप्रातिशाख्य मिलता है वह पुष्पमुनिका वनाया हुआ है। यह दश प्रपाठकमें विभक्त है। इसके प्रथम और द्वितीय प्रपाठकमें दशराब, संवत्सर, एकाह, अहोन, सब, प्रायश्चित्त और क्षुद्ध पर्वानुसार स्तोबिय सामोंकी संज्ञाएं संक्षेपमें वर्णित हैं। तृतीय और चतुर्थ प्रपाठकमें सामके मध्य अत आइ-भाव और प्रकृतिभावके सम्बन्धमें उपयुक्त उपदेश है; पञ्चम प्रपाठकमें सामभक्ति कहां गीत और कहां अगीत रहेगी, उसकी ध्यवस्था; सप्तम और अग्रम प्रपाठकमें लोप, आगम और वणविकारके स्थानादि सम्बन्धमें विशेषभावसे उपदेश; नवम प्रपाठकमें मानकथन और

दशम वा शेष प्रपाठकमें कृष्टाकुए-निर्णय तथा प्रस्ताव लक्षणादि वर्णित हुए हैं।

अथर्थपातिशास्य केवल दो ही पाये गये हैं—एक चार अध्यायमें सम्पूर्ण है। यह शौनकरचित है, इसीसे इसका गौनकीय चतुरध्यायिका नाम पड़ा है। इसमें छः मुख्य विषय आलोचित हुए हैं, १म—प्रन्थका उद्देश्य, परिचय और वृत्तिः २य—खर और खड़नसंयोग, उदात्तादि लक्षण, प्रगृह्य, अक्षरविन्यास, युक्तवर्ण, यम, अभिनिधान, नासिक्य, खरमिक, स्फोटन, कर्षण और वर्णकम; ३य—संहिताप्रकरण: ४थ—क्रमनिर्णय: ५म—पद-निर्णय और ६प्र—खाध्याय वा वेदपाठकी आवश्यकतान् सम्बन्धमें उपदेश!

पाश्चात्य पण्डितोंमेंसे वहुतोंका विश्वास है, कि पाणिन आदिके व्याकरण रचित होनेके वहुत पहले पे सभी प्रातिशाख्य रचे गये हैं। अभी जो सब प्रातिशाख्य मिलते हैं पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुसार उनमेंसे शौनकरिचत अथवंवेद-प्रातिशाख्य ही सर्वप्राचीन है। इसके वाद ऋक्प्रतिशाख्य, ऋक्प्रातिशाख्यके वाद नैतिरीय प्रातिशाख्य और सवके अन्तमें कात्यायनका वाजसनेय-प्रातिशाख्य है। पण्डित सत्यव्रतसामभ्रमीके मतसे— "पुष्पप्रणीत सामप्रतिशाख्य पाणिनिस्त्वसे, यहां तक कि सर्वद्रशनज्येष्ठ मोमांसादशैनसे भी प्राचीन है। कारण, मोमांसादशैनकी अधिकरणमालामें तथाच सामगा आहु:— 'युद्ध' तालच्यमाह भवति।' इस सामप्रातिशाख्यका वचन उद्दश्वत है।'

अध्यापकं गोल्डण्डुकरने प्रचलित सभी प्रातिशाख्य प्रन्थोंको पाणिनिके बादका बतलाया है। उन्होंने मोक्ष-मूलर, वेवर आदि जर्मन पण्डितोंके मतकी समालोचना की है। उनके मतसे चाजसनेय-प्रातिशाख्यके रचयिता कात्यायन और पाणिनिस्तक वार्त्तिककार कात्यायक दोनों ही एक बाक्ति थे। कात्यायनने अपने वार्त्तिकमें जिस प्रकार पाणिनिकी तीव्र आलोचना की है, बाज-सनेय-प्रातिशाख्यके मध्य भी उसी प्रकार पाणिनिके-ऊपर आक्रमण देखा जाता है। यथा—

पाणिनिस्तमें है—"अद्शैन' लोगः। (१।१।६०) अर्थात् अद्शीन हो लोग है। कात्यायन कहते हैं, 'वर्ण- स्यादर्शन' लोपः' (वाजसनेयप्रा॰ १।१८१) अर्थात् केवल लोप कहनेसे काम नहीं चलेगा, वर्णका अद्रशैन होनेसे हो लोप समन्त्रा जायगा।

पाणिनिने कहा है,—"उच्चैख्राचः।" (१।२।२६) "नीचैरतुदात्तः" (१।२।३०) और "समाहारः खरितः" (१।२।३१)।

यहां वाजसनेय-प्रातिशाख्यकारने लिखा है कि केवल समाहार कहनेसे काम नहीं चलेगा 'उभयवान खरितः' (१।१०८-११०) अर्थात् उदात्त और अनुदात्त दोनोंके योगसे स्वरित, यही कहना उचित है।

पाणिनिने कहा है, 'तस्यादित उद्दात्तमद्व हस्व'।" इस स्वलं कात्यायनने संतुष्ट न हो कर दूसरा स्व किया, "तस्यादित उद्दात्त स्वराद्व माव'" (प्रा० १।१२६) उदात्त अर्द्व हस्य कहनेसे काम नहीं चलता, स्वरकी अर्द्व मावा कहना ही अच्छा है। पाणिनिने कहा है, "तुलास्यप्रयत्न' सवर्णम्।" (१।१।६) कात्यायनने साफ तौरसे लिखा है, "समानस्थानकरणास्यप्रयत्नसवर्णः।" (१।४६)

पाणिनि कहते हैं, "मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः" (१११८) कात्यायन इससे संतुष्ट नहीं है। वे कहते हैं "मुखानुनासिकाकरणोऽनुनासिकः।" (११७५) पाणिनिने स्व किया है, "ओम् अभ्यादाने।" (८१२८७) अर्थात प्रारम्भमें ओम् रहना जकरी है। पाणिनिके इस स्वसे जाना जाता है, कि उनके समयमें केवल वैदिक प्रन्थमें ही नहीं, सभी जगह प्रारम्भमें 'ओम्' व्यवहृत होता था। किन्तु वाजसनेय-प्रातिशाख्यकारने लिखा है, 'ओम्कारं वेदेषु' (१११८) "अथाकारं माण्येषु" (१११६) अर्थात् वेदके प्रारम्भमें 'ओम्' और भाण्यके प्रारम्भमें 'अथं-का व्यवहार हुआं करता है। इस प्रमाण द्वारा बाजसनेय-प्रातिशाख्यकार पाणिनिके परवर्त्ती होते हैं।

वाजसनेय-प्रातिशाख्यकार और तैत्तिरीय प्रातिशाख्य-कार दोनोंने ही ऋक्ष्रातिशाख्यकार शौनकका मत उद्गृत किया है। खतरां शौनक दोनों यज्जःप्रातिशाख्य-कारके पूर्ववत्तीं होते हैं।

अथर्च और ऋक् दोनों ही शौनक-रचित माने जाते हैं, पर दोनों प्रन्थ एक व्यक्तिकी रचना है वा नहीं, उसका पता नहीं चलता। परन्तु शौनकने ऋक्प्राति- शास्यमें व्याछि (व्याइ)-का मत उद्धृत किया है।
महामाय्य आदिसे जाना जाता है, कि व्याइने पाणिनिकी अष्टाध्यायों के उपर 'संग्रह' नामक एक वृहत् ग्रन्थ
लिखा है। इन व्याइका दूसरा नाम दाक्षायन तथा
पाणिनिका दाक्षिपुत है। पाणिनिके "यिष्ठिष्ठोक्य"
(शिर्रिः) सूतके भाष्यमें पतञ्जिले गोतापत्य समभानेके
लिये उदाहरण खरूप 'दाक्षायण' शब्द ग्रहण किया है।
फिर 'अतइज्' (पा शिर्राः) सूतके भाष्यमें दक्षका
अपत्य वा पुत समभानेके लिये 'दाक्षि' शब्दका उल्लेख
किया है। पाणिनिने शिर्रिः स्तमें पीत और उसके
वंशधरोंको ही गोतापत्य वतलाया है। इस हिसावसे
पाणिनि दक्षके पीत वा दाक्षिपुत और दाक्षायन व्याइ
दक्ष वा दाक्षिके गोतापत्य होते हैं।

पाणिनिने एक सूत किया है, "आचार्योपसर्जन-श्चान्तेवासी" (६१२:३६) अन्तेवासी अर्थात् शिष्यके पहले यदि उनकी आचार्यपरम्पराके नाम रहे और द्वन्द्व समास हो, तो पूर्व पदका प्रकृतिस्वर होता है। महा-भाष्यकार पतज्ञिलेने इसके उदाहरणस्वरूप लिखा है, "आपिशलपाणिनीय-च्याड़ीय-गौतमीयाः।" इस प्रमाण द्वारा भी पाणिनि व्याड़िके पूर्ववर्ती वा आचार्य होते हैं।

कोई कोई प्रातिशास्त्रको वैदिक व्याकरण समभते हैं। वेदके पड़ड़के मध्य 'ब्याकरण' एक है: परन्तु प्राति-शास्त्रका नाम पड़ड़्क वा वैदिक व्याकरणके मध्य गृहीत नहीं होता। सचमुच प्रातिशास्त्रमें व्याकरणके लक्षण का विलक्षल अभाव है। इसीसे संस्कृतविद् पिएडतीं-ने प्रातिशास्त्रको वेदकी शासाविशेषका नाद और खर विद्यत तथा पदको संहिनामें लानेके लिये विधिम्लक प्रनथ वतला कर प्रकाशित विधा है।

प्रातिथुत्क (सं॰ पु॰) प्रतिथुति तत्समये भव डञ्। प्रतिश्रवणके समय उत्पन्न पुरुष।

प्रातिस्विक (सं ० ति०) प्रतिस्वं भवः, प्रतिस्व-ठक् । १ असाधारण । २ अपना, निजका । ३ प्रत्येकका यथाकम पृथक् पृथक्, अपना अपना । ४ अन्यासावारण, जो दूसरेके नहीं है । ५ आवेशिक ।

पातिहत (सं ॰ बि॰) स्वरितका संज्ञामेर्।

प्रातिहर्त (सं० क्वी०) प्रतिहर्त्तु भावः कम वा उद्गातादि अञ्, (पा ५।१।१२६) प्रतिहर्त्ताका कमें। २ प्रतिहर्त्ता-का भाव।

प्रातिहार (सं॰ पु॰) प्रतिहार पव, स्वार्थे अण्।१ प्राति हारिक, मायावी। २ कोड़ाकुराळी। ३ मायाकार, जादूगर। ४ प्रतिहार, द्वारपाळ।

प्रातिहारक (सं ॰ पु॰) प्रतिहारक पव, स्वार्थे अण्। प्रातिहारक।

प्रातिहारिक (सं० पु०) प्रतिहारः प्रतिहरणं वराजहत्यर्थे, स प्रयोजनमस्पेति प्रतिहार-ठञ् (पा ५।१।१०६) १ माया-कार, मायावी, जादूगर। २ द्वारपाल। (ति०) ३ प्रतिहार सम्बन्धी।

प्रातिहार्थ (सं ० क्ली०) १ प्रतिहारका कार्य, द्वारपालका काम। २ इन्द्रजाल, माया, लाग।

प्रातीतिक (सं॰ ति॰ । प्रतीत्या निवृष्तः उज् । १ जिसकी प्रतीति केवल चिन्ता या कल्पनाके द्वारा मनसे होती हो । ६ जिसकी प्रतीति स्वयं किसीको हो । प्रातीप (सं॰ पु॰) प्रतीपस्यापत्यं प्रतीपस्यायं इति वा ; प्रतीप-अण् । १ प्रतीप-नृपपुत, शान्तनुराज । २ प्रतीपका अपत्यं।

प्रातीपिक (सं० ति०) प्रतीपं वर्त्तते इति प्रतीप-ठञ्। १ प्रतिकूल आचरण करनेवाला, विरुद्धाचारी । २ विप-रीत, उख्टा ।

प्रातृद (सं ॰ पु॰) ऋषिभेद, एक वैदिक ऋषिका नाम । प्रात्यक्ष (सं ॰ ति॰) प्रत्यक्ष-सम्बन्धीय ।

प्रात्यप्रिध (सं ॰ पु॰) प्रत्यप्रधका गोतापत्य।

पात्यन्तिक (सं ॰ पु॰) १ वह राज्य जो सीमापान्तमें हो, ऐसा राज्य जो दो राज्योंको सीमाके मध्यमें हो। २ सीमाको रक्षाके लिये नियुक्त पुरुष।

प्रात्यिक (सं ० ति ०) प्रत्ययाय स्थित इति प्रत्यय-उक् ।
१ प्रत्ययसम्बन्धीय । (पु०) २ मिताक्षराके अनुसार
तीन पुकारके पृतिभूमेंसे दूसरा ।

भात्यहिक (सं ० स्त्री०) पृतिदिनका, दैनिक।
पाथमकल्पिक (सं ० पु०) पृथमकल्प आद्यारम्भ पृयोजनं
यस्य (पा५१११०९) इति ठञ्, यद्वा पृथमकल्पमधीते
इति, विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यमिति ठक्। १

प्थमारच्य वेदाध्ययन । २ कल्परूपशिक्षाप्रन्थाध्ययन विषयीभूत । (ति॰) प्थमकल्पे भवः ठक् । ३ पृथमा-रम्भोचित वेदाध्ययनादि । पृथमं शिक्षणीयं कल्पं शास्त्र-मधीते यः इत्यर्थे ठक् । ४ शैक्ष्म ।

प्राथमिक (सं० ति०) प्रथमे भवः-प्रथम-ठञ्। १ प्रथम-भव, जो पहले उत्पन्न हुआ हो।२ प्रारम्भिक, आदिम। प्राथस्य (सं० ति०) प्रथम-ध्यञ्। प्रथमका भाव, प्रथ-मता, पहलापन।

प्रादिशिण्य (सं० पु०) प्रदक्षिण-सम्बन्धीय । प्रादानिक (सं० ति०) दानयोग्य, जो देने छायक हो । प्रादाय (सं० अन्य०) प्रकृष्ट रूपसे दत्त । प्रादि (सं० पु०) उपसर्ग संज्ञार्थ पाणिनि उक्त शम्दमेद । प्रादिगण ये सव हैं,—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, चि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप प्रभृति ।

प्रादित्य (सं ॰ पु॰) राजपुत्तभेद । प्रादुराक्षि । सं ॰ पु॰) गोत प्रवर ऋपिमेद

प्रादुर्भाव (सं० पु॰) प्रादुस्-भू-भावे-घ्रम्। १ आवि-र्भाव, प्रकट होना। २ विकाश । ३ उत्पक्ति । प्रादुर्भेत (सं० पु॰) १ आविर्भेत, प्रकटित । २ विक-

प्रादुर्भूत (सं॰ पु॰) १ आविर्भूत, प्रकटित । ३ विक-िसित, निकला हुआ । ३ उत्पन्न ।

प्रादुर्भू तमनोभवा (सं ० स्त्री०) केशवके अनुसार मध्याके चार भेदोंमेंसे एक । इसके मनमें कामका पूरा प्रादु-भाव होता है और कामकलाके समस्त चिह्न पकट होते हैं। साहित्यदर्पणमें इसे प्रस्तृहस्मरयौचना लिखा है। प्रादुष्करण (सं ० क्ली०) प्रादुस्-िक-अण् । १ प्रदर्शन, किसी अप्रकट वस्तुको प्रकट करनेका भाव । २ दृष्टि-गोचरकरण, दिखलाना।

प्रादुष्कृत (सं• वि॰) १ आविभू त, जो प्रकट हुआ हो। २ प्रदर्शित, जो दिखलाया गया हो।

प्रादुष्कृतवपु (सं ० ति ०) जो आकृति रूपविशिष्ट हो कर दृष्ट होती है। जैसे, मूर्त्तिविशिष्ट देव और भूतयोनिकी छायाका शरीरमें आविर्माव, शरीरमें भूतादिका आवेश। प्रादुष्कृत्य (सं ० ति ०) १ उत्पाद्य। २ प्रकट करनेयोग्य, जो दिखलाने लायक हो।

प्रादुष्य (सं ॰ क्ली॰) प्रादुर्भाव ।

प्रादेश (सं 0 पु 0) प्रदिश्यते प्र-दिश् हलश्चिति 'घञ्। (वप्रश्चित प्रमित दीपं) १ तज्ञेनी और अंगुष्ठका मध्य-प्रदेश, तज्ञेनी और अंगुष्ठके वीचका मांग। २ परि-माणमेद, प्राचीनकालका एक मान जो अंगुर्हेकी नोकसे ले कर तर्जानीकी नोक तकका होता था और नापनेके काममें आता था। ३ प्रदेश, स्थान।

प्रादेशन (सं ० ह्वी० प्र-आ-दिश्-ल्यू ट्। दान।
प्रादेशमात (सं ० ति०) वितस्तिपरिमित, विघत परिमाण।
प्रादेशिक (सं ० ति०) प्रदेशे भव-ठक्। १ प्रदेशमव,
किसी एक देशका। २ प्रसङ्गात, प्रसङ्गानुसार। ३ पूर्व-वत्ती घटना वा दृष्टान्त द्वारा प्रतिपन्न। ४ आद्यर्थज्ञायक।
५ विशेष स्थानविषयक। (पु०)६ सामन्त, जमीदार च्या सरदार आदि। ७ स्वेदार।

प्रादेशिकेश्वर (सं॰ पु॰) सामन्तराज, सामान्य भूसम्प चिके अधिकारी वा राजा।

प्रादेशिन् (सं ॰ बि॰) वितस्तिपरिमित, विलश्त सरका। प्रादेशिनी (सं ॰ स्त्री॰) तज्ञ नी।

प्रादोप (सं॰ ति॰) प्रदोषस्या मिति प्रदोष-अण् । १ प्रदोष-सम्बन्धी, प्रदोषसे सम्बन्ध रखनैवाला । (पु॰) २ प्रदोप्र-कालमें विचरणकारी सृगादि ।

प्रादोबक (सं ० ति०) प्रदोषस्यायमिति प्रदोष-छन्। (तिबाः प्रदोशभ्याक्य। पा ४।३।१४) पृदोषकालमें होनेवाला। पृदोहित (सं ० पु० स्त्री०) पृदोहितस्यापत्यं इन्। पृदोहितका अपत्य।

प्राद्युम्नि (सं॰ पु॰) प्रद्युम्नका अपत्य।

प्राचोति (सं॰ पु॰) प्रचोतका अपत्य ।

प्राथनिक (सं॰ पु॰) प्रधणं संग्रामस्तत्साधनं प्रयो-जनमस्य ठक्। १ युद्धोपकरण, छड़ाईका सामान। (ति॰) २ योदा, छड़ाका।

प्राधा (सं॰ स्त्री॰) प्रधैव स्वार्थे ण । १ दक्षकी एक कन्याका नाम । २ काश्यपकी एक स्त्रीका नाम । पुराणोंमें इसे गन्धवों और अप्सराओंकी माता वतलाया है।

प्राधानिक (सं ॰ स्त्री॰) प्रधान खार्थे-ठक्, तस्येवं ठक् वा। प्रधान, प्रधान सम्बन्धी।

प्राधान्य (सं ॰ ह्वी॰) प्रधानस्य भावः प्रधान भावे-ध्यञ् । १ प्रधानत्व, मुख्यता । २ प्रधानता, श्रेष्ठता ।

Vol. XIV. 181

प्राधान्यस्तुति (सं ० ति०) जो विशेष स्तुतिवादको प्राप्त हुए हैं।

प्राधीत (सं ० ति ०) प्र-अधि-इङ्-क । प्रक्षष्टकपसे पठित, जो अच्छी तरह पढा गया हो ।

प्राधेय (स'० ति०) १ प्राधाका अपत्य । २ उसका वंश-घर । (पु०) ३ जातिविशेष ।

प्राध्यायन (सं• क्ली॰) प्राधि-इङ्-ल्युट्। प्रकृष्टक्तपसे अध्ययन, जोरसे आवृत्ति या पठन।

प्राज्येषण (सं ० क्ली०) प्रा-सिध-इष्-स्युट्। १ विद्या वा शानलाम विपयमें प्रवृत्ति। २ झानाज[°]नके कारण शिष्यके प्रति उपदेशवाक्य।

प्राध्व (सं ॰ पु॰) प्रागतोऽध्वानमिति अस् । (उत्तर्गाः विषयः) पा ५१४।८५) यक्टिंडध्वा इति अस् समासान्त । १ वहुदूरगामी रथादि, जिस वस्तु पर सवार हो कर लोग लम्बी याता करें। २ लम्बी राह । ३ प्रहर । ४ प्रणतभाव, विवय । ५ वन्ध ।

प्राध्वम् (सं ॰ अन्य ॰) प्राध्वनतीति प्रा-आ-ध्वन-डिम । १ आनुकूल्य । आनुकूल्यार्थक शब्दसे नर्मन् और अनुकूल दोनों ही समकते हैं । (पु॰) २ नम्नता, चिनय । ३ वन्धन ।

प्राध्वंसन् (सं ० पु०) प्रध्वं सका अपत्य ।

प्राध्वन (सं॰ पु॰) प्रकृष्टः अध्वा प्रादिस॰ । १ प्रकृष्ट एथ, अच्छी सङ्क । २ नदीका गर्भ ।

प्राध्वर (सं ॰ पु॰) वृक्षकी शाखा, पेड़की डाल ।

प्रान्त (सं० पु०) प्रकृष्टोऽन्तः । १ वन्त, शेष । २ किनारा, छोर । ३ दिशा, ओर । ४ किसी देशका एक भाग, प्रदेश । ५ एक ऋषिका नाम । ६ इस ऋषिके गोत्रके छोग ।

प्रान्तग (सं ० ति०) त्रान्ते गच्छतीति गम-इ। सीमा पर रहनेवाला, जी प्रान्तमें या सरहद पर रहता हो।

प्रान्ततस् (सं ॰ अध्य॰) प्रान्त-तसिल् । प्रान्तदेशमें, सीमामागमें ।

प्रान्तदुर्गं (सं ॰ क्की॰) सीमादेशस्थित नृपाश्रय स्थान वा दुर्गं, वह दुर्गं जो नगरके किनारे प्राचीरके वाहर हो। वान्तपुष्पा (सं ० स्त्री॰) १ पुष्पवृक्षविशेष, एक फूलका पौधा। २ उस वृक्षका पुष्प।

प्रान्तभूमि (सं ० स्त्री०) १ किसी पदार्थंका अन्तिम भाग, किनारा। २ योगशास्त्रके अनुसार समाधि, जो योगकी अन्तिम सीमा मानी जाती है। ३ सीपान, सीढ़ी।

पान्तर (सं ० हो० , पृष्ठप्रमन्तरं अवका ी व्यवधानं वा यत । १ वृक्षच्छायादिशून्य पथ, दो स्थानोंके वीचका लम्वा माग[°], जिसमें जल या वृक्षों आदिकी छाया न हो। २ वन, जङ्गल। ३ दो गाँवों के वीचकी भूमि। 8 दो पृंशोंके वीचका शून्य स्थान। ५ बृक्षके वीचका खोखला अंश।

पान्तव ति, सं ० स्त्री०) क्षितिज।

पान्तशून्य (सं ० क्ली०) दूर शून्यपथ, दो स्थानोंके वीचका लग्वा मार्ग जिसमें जल या वृक्षों भादिको छाया न हो।

प्रान्तायन (सं ० पु०) प्रान्तका गोत्रापत्य, प्रान्त नामक ऋषिके गोतके लोग।

पुन्तिक (सं ० ति०) १ पुन्त सम्बन्धी, पुन्तीय। पूदेशी, किसी एक देश या प्रान्तसे सम्बन्ध रखनेवाला। पुन्तिय (सं० ति•) पुन्तक, प्रान्तसे सम्बन्ध रखने-बला।

प्रांगु(सं० ति०) १ उच्च, ऊँचा। (पु०) २ वैवस्रत मजुके एक पुत्रका नाम, विष्णु।

व्राप (सं ॰ पु॰) प्-भ्रप् । १ व्राप्ति, व्रापण । २ जल-सिक्त, जलपूर्ण।

प्रापक (सं ० वि०) १ प्राप्ति सन्वन्धीय । २ पानेवाला, जो पानेके योग्य हो । ३ प्राप्त होनेवाला ।

प्रापण (सं॰ ह्वी॰) प्र-आप्-व्युट् । र नयन, छे आना । २ प्राप्ति, मिलना। ३ प्र रण।

प्रापणिक (सं॰ पु॰) प्रापणास्यते इति प्र-आ-पण व्यवहारे-किकन्। (अक्टिंगणिकंषः । इण् २। ४१ पण्यविक्रंयी, सीदा या भाल बेचनेवाला ।

प्रापणीय (सं॰ ति॰) प्राप्यते यत् प्र-आप् अनीयर्। प्राप्य, जो मिलने योग्य हो ।

प्रापिन् (सं॰ बि॰) प्राप्त करनेवाला, जिसे कुछ मिले। प्रापेय (सं० पु०) गन्धर्वंगणविशेष । प्रापेय देखो ।

प्राप्त (सं० वि०) प्र-आप्-कः । १ प्रस्थापित, लब्धः । २ उत्पन्न । ३ समुपस्थित । ४ पाया हुआ, जो मिला हो । प्राप्तकारिन् (सं० ति०) उपयुक्त विचार द्वारा कार्यकारी । प्राप्तकाल (सं० पु०) प्राप्तःकालोऽस्य । १ करणयोग्यकाल, कोई काम करने योग्य समय। २ उपयुक्त काल, उचित समय । ३ मरणयोग्य काल । ४ विवाहयोग्य उद्र । (ति•) ५ समयप्राप्त, जिसका काल भा गया हो ।

प्राप्तकालम् (सं॰ अध्य॰) उपयुक्त समयमें, यथाकालमें । प्राप्तजीवन (सं वि) पुनर्जीवित, जिसकी नई जिन्द्गी हुई हो।

प्राप्तदोप (सं॰ ति॰) दोपी, जिसने कोई दोष या अपराध किया हो।

प्राप्तपञ्चत्व (सं० ति०) प्राप्तं पञ्चत्वं मरणं पेन । मृत, जो पञ्चत्व प्राप्त कर चुका हो।

प्राप्तवृद्धि (सं० ति०) १ वृद्धिमान्, चतुर । २ जो बेहोश होनेके वाद फिर होशमें आया हो।

शातभार सं• पु॰) शासभारः तद्वहनकालोऽस्य । भार-सहनशील वृपादि, वह वैल जो वोम्र होता हो। प्राप्तभाव (सं॰ पु॰) प्राप्तो भावो येन । १ जाताझ । (ति॰)

२ लब्ध सत्तादि। ३ जिसके मनमें भाव वा अवस्थान्तर उपस्थित हुआ हो।

प्राप्तमनोरथ (सं॰ ति॰) जिसकी वाञ्छा पूरी हुई हो । प्राप्तयौवन (सं॰ ति॰) जिसका यौवनकाल आ गया हो, जवान।

प्राप्तरूप (सं० ति०) प्राप्त कपं येन । १ मनोश । २ पण्डित । ३ रूपवान्।

प्राप्तवर (सं बि॰) अनुप्रह्वा आशीर्वाद् लाभकारी। प्राप्तव्य (सं॰ लि॰) प्राप्यते यत् । प्र-आप्-कमेणि तन्य । प्राप्य, जो मिलनेको हो, मिळनेवाला।

प्राप्तव्यवहार (सं० ति०) १ जो युवक-जनोचित वयसको प्राप्त हुआ हो। २ जो व्यक्ति खकीय कार्यावली निष्पादन करने और . कुलप्रधादि आचार न्यवहारकी रक्षा करनेमें समर्थ हो।

प्राप्तसूर्यं (सं॰ पु॰) जिसके मस्तकके ऊपर विलम्बित सरळ रेखामें सूर्य अवस्थित हों।

वासव्यमर्थ (सं॰ पु॰) पञ्चतन्दोडि़बित मनुःयि रोषः।

प्राप्ति (सं० स्त्री०) प्र-साप-किन् । १ उत्य । २ धनादिको वृद्धि । ३ अधिगम, अर्ज न । ४ लाभ, फायदा । ५ प्रापण, मिलना । ६ पहुंच । ७ अणिमादि साठ प्रकारके पेश्वयाँमें-से एक, जिससे वाञ्छित पदार्थ मिलता है अथवा सव इच्छाएँ पूर्ण होती हैं । ८ नाटकका सुसद उपसंहार । ६ फालत ज्योतिषके अनुसार चन्द्रमाका ग्यारहवां स्थान जिसे लाभ भी कहते हैं । १० सङ्गति, मेल । ११ जरा-सन्यको एक पुली जो कंससे ब्याही थी । १२ कंसकलत-मेद, कंसको एक स्त्रीका नाम । १३ समिति, सङ्घ । १४ प्राणायामको चार प्रकारकी अवस्थाओंमेंसे एक अवस्था । १५ संयोगसहत्व द्रव्यगुणमेद । १६ मुखाङ्गमेद । १७ कामकी पत्नीमेद । १८ सहममेद । १६ भाग्य । २० व्याप्ति, प्रवेश । २१ आय, आमदनी ।

प्राप्तिसम (सं० ह्री०) गौतमोक्त जात्युत्तरभेद, वह प्रत्यवस्थान या आपित जो हेतु और साध्यको ऐसी अवस्थामें
जब कि दोनों प्राप्य हों, अविशिष्ट वतला कर की जाय।
यथा—एक मनुष्य कहता है कि पर्वत विहमान है, क्योंकि
बह धूमवान हैं, जैसे पाकगृह, इस पर वादी कहता है,
कि पर्वत घूमवान हैं, क्योंकि वह विहमान हैं, जैसे पाकगृह। प्रतिवादी आपित करता है, कि जहां अग्नि है क्या
धूम वहां सर्वदा रहता है अथवा कभी नहीं भी रहता।
यदि सर्वत रहता है, तो साध्य और साधकमें कोई अन्तर
नहीं, फिर तो धूम अग्निका बैसे ही साधक हो सकता है
जैसे अग्नि धूमका। इसीको प्रातिसमजाित कहते हैं।
प्राप्य (सं० वि०) प्र-आप्-गयत्। १ प्राप्तव्य, प्राप्त करने
योग्य। २ जो पहुंचमें हो, जहां तक पहुंच हो सकती हो।
३ गम्य। ४ मिलने योग्य, जो मिल सके। (पु०) ५

प्राप्यकारो (सं० पु०) इन्द्रिय जो किसी विषय तक पहुंच कर उसको ज्ञान करातो है। न्यायदर्शनके मतसे ऐसी इन्द्रिय केंबल आँस हो है, परन्तु वेदान्त-दर्शनमें कहा है, कि कानमें भी यह गुण है।

व्याकरणीक नियमविशोप । ६ कमभीद । (अञ्य०) ७

लम्बार्थ, पानेके लिये।

प्रावल्य (सं० हो० १ प्रवलका भाव, तेजी । २ प्रधानता । प्रावालिक (सं० पु०) प्रवालव्यवसायी, प्रवालका व्यापार करनेवाला पुरुष । प्रावोधक (सं॰ पु॰) वह पुरुष जो राजाओंको उनकी स्तुति सुना कर जगानेके लिये नियुक्त हो। प्राचीनकाल-में यह काम करनेके लिये मगध देशके लोग नियुक्त किये जाते थे जिन्हें मागध कहते थे।

ग्रामञ्जन (सं० क्की०) प्रमञ्जनो देवताऽस्य अण्। १ बायुदेवता कत्तृष्क अधिष्ठित, जो वायुदेवताके द्वारा अधिष्ठित हो। २ प्रमञ्जन वा वायुदेवता-सम्बन्धी। (पु०)३ स्वातिनक्षता।

प्राप्तव (सं ० ह्वी०) प्रभोर्माव प्रमु-अण्। १ श्रेष्ठत्व, श्रेष्ठता। २ प्रमुत्व, अधिकार।

प्राभवत्य (सं ० क्वी०) प्रभवतो भावः व्यञ्। विभुत्व, प्रभुता।

प्रामाकर (सं॰ पु॰) प्रभाकरस्याय' तन्मतं वेत्तोति प्रभा-कर-अण् । प्रभाकर-सम्बन्धीय मीर्मासकविशेप ।

प्राभातिक (स.० वि०) प्रभातसम्पर्कीय, सबेरेका। प्राभासिक (सं० वि०) प्रभासदेशभव, प्रभास देशका। प्राशृंत (सं० क्वी०) प्राश्चियते स्मेति प्र-भा-भृ-क्तं। उप-कृकेन द्रवा, उपहार।

प्राभृतक (सं० क्ली०) प्राभृत-स्यार्थे-कन्। प्राभृत, उप-दौकन, उपहार। इसका पर्याय कौशलिका है।

प्राभृतीकृत (सं० ति०) १ उत्सगीकृत, जिसका उत्सगें दिया गया हो। २ उपहारक्षपमें प्रदत्त, जो इनाममें दिया गया हो।

प्रामित (सं॰ पु॰) दशम मन्यन्तरके अन्तर्गत सप्तर्पिके मध्य एक ऋषि।

प्रामाणिक (सं० ति०) प्रमाणादागतः प्रमाण-ठक्। १ हैतुक। २ जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो। ३ माननीय, मानने योग्य। ४ सत्य, ठीक। ५ शास्त्र-सिद्ध। ६ जो प्रमाणोंको मानता हो। ७ शास्त्रह। (पु०) ८ व्यापारियोंका मुखिया।

प्रामाण्य (सं॰ क्षी॰) प्रामाणस्य भावः प्रमाण-ध्यञ् । १ प्रमाकरणत्व, प्रमाणता । २ मान, मर्यादा ।

प्रामाण्यवाद (सं॰ पु॰) प्रामाण्यस्य वादः कथनम्। १ प्रमाकारणता कथन । २ चिन्तामणि न्यायत्रंथविशेव। प्रामादिक (सं॰ ति॰) प्रमाद-उक्। प्रमाद्घरित, दोप-युक्त, दूषित। प्रामादिकत्व (सं० क्ली०) प्रामादिकींका भाव। प्रामाद्य (सं० पु०) प्रमाद्यत्वेनेति प्र-मद्-ण्यत्। १ अद्भस (Gendarussa Adhadota)। २ उन्माद, पागलपन ।

प्रामीत्य (सं० ह्वी०) प्रमयनिमिति प्र-मी वधे-भावे-कः; ततः प्रमीते मरणे साधु इति ध्यञ्; अस्य वधतुल्यत्वा-त्तथात्वम्।१ ऋण, कर्जा। प्रमीतस्यभाव इति प्रमीत-ध्यञ्। २ सृतत्व।

प्रामीसरीनोट (अं० पु०) १ वह लेख या पत जिस पर लिखनेवाला अपना हस्ताक्षर करके यह प्रतिका करे. कि मैं अमुक पुरुषको या जिसे वह आज्ञाका कार दे या जिसके पास यह लेख हो, किसी नियत समय पर उतना रुपया दे दूंगा, हुंडी । २ एक प्रकारका सरकारी कागज या ऋणपत । सरकार अपनी प्रजासे कुछ ऋण छै कर प्रतिज्ञा करती है, कि मैंने इतना ऋण लिया अोर इसका इस हिसावसे स्य विया ककंगी। पैसी हुंडीका सरकारी खजानेसे वरावर समय समय पर सूद मिला करता है। जब हूंडी का नियत समय पूरा हो जाता है, तव सरकारसे उसका रुपया भी मिल सकता है। ऐसी हुंडी यदि मालिक चाहे, तो बीचों दूसरेंके हाथ वेच भी सकते हैं। ऐसी हुंडी या नोटका भाव वरावर घटा वढ़ा करता है।

प्रामोदक (सं० ति०) मनोछ, मनोहारी।
प्राय (सं० पु०) प्रकृष्टमयनमिति प्र-अय-धञ् ; यद्धा-प्र-इअञ् । (पा १।३।५६) १ मरण, मौत । २ अनशनादि
तप जिससे मनुष्य शक्तिहीन हो कर मृतकके समान हो
जाता है या मर जाता है। ३ अवस्था, उन्न । ४
समान, तुल्य। ५ लगभग। ६ प्रवेश। (ति०) ७

गमक, जानेवाला ।

प्रायः (सं० अवर०) प्र-अय-गती असुन् । १ विशेषकर,
बहुधा, अकसर । २ लगभग, करीव करीव ।

प्रायगत (सं० क्रि०) आसन्तमृत्यु, जो ६र रहा हो ।

प्रायचित्त (सं० क्री०) प्रायक्षित देखो ।

प्रायण (सं० क्री०) प्र-अय-भावे-स्युट् । १ शरीरपरिबर्त्तन, पक शरीर त्याग कर दूसरे शरीरमें जाना । २

अनशन द्वारा देहत्याग । ३ एक स्थानसे दूसरे स्थान

पर जाना । ४ जन्मान्तर । ५ वह दृश्य या आहार जो अनशन व्रतकी समाप्ति पर ब्रहण किया जाता है, पारण । ६ प्रवेश, पारम्म । ७ दुग्धमिश्रित खाद्यब्र्च्यविशेष, एक प्रकारका खाद्यपदार्थं जो दूधमें मिला कर वना है । ८ जीवनपथ, जीवितावस्था ।

प्रायणान्त (सं० पु०) जीवनका शेप मृत्यु, मरण। प्रायणीय (सं० ति०) प्रायणे आरम्भित्ने विहितः इति प्रायण-छ। १ प्रारम्भ दिन। २ सोमयागमें पहली सुत्याके दिनका कर्म। (ति०) ३ प्रारम्भिक, आरम्भ-सम्बन्त्री।

प्रायदर्शन (सं० क्की०) सकराक्षर दर्शनयोग्य भौतिक दृश्यादि, साधारण घटना जो प्रायः देखनेमें आती हो।। प्रायद्वीप (सं० पु० स्थलका वह भाग जो तीन ओरसे पानीसे घिरा हो और केवल एक ओर स्थलसे मिला हो।
प्रायभव (सं० ति०) नित्यसंघटनशील, जो साधारण रीतिसे अथवा प्रायः होता हो।
प्रायविधायिन (सं० ति०) जिसने अनशनवत द्वारा

जीवनत्यागका सङ्कवप किया हो।
प्रायवृत्त (सं० ति०) जो विलकुल गोल या वतु लाकार
न हो पर वहुत कुछ गोल हो, अंडाकार ।
प्रायशः (सं० अन्य०) १ सव प्रकारसे, विलकुल तरहसे।
२ वाहुन्यक्रपसे, अकसर।

प्रायश्चित्त (सं० क्की०) प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यसमा १। (पारस्करभ्यतीन च षंद्रया। पा १११११५०) इत्यत प्रायस्य चित्तिचित्तयो इति वार्तिकोक्त्या सुट् निपात्यते च। पापक्षयसाधन कर्म, वह कृत्य जिसके कहनेसे मनुष्यके पाप छूट जाते हैं। अङ्गिराने छिखा है—

"प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्पृतं ॥"
प्रायस् शब्दका अर्थं तप और चित्तका अर्थं निश्चय
है। तपोनिश्चययुक्त होनेसे उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।
हारीतके मतसे,—"प्रयत्तवाहोपचितमश्चमं नाश्यतीति।"
अर्थात् शुद्धि द्वारा सञ्चित पाप नाश होता है, इसीसे :
इसका प्रायश्चित्त नाम पड़ा है।

मनुष्यके प्रधानतः तीन प्रकारके पाप होने हैं—१छा, शास्त्रमें जिस जातिके लिये जो कार्य वतलाया गया है, उसका नहीं करना।

२रा,—शास्त्रमें जो कार्य निपिद्ध वतलाये गये हैं, उनका अनुष्टान।

'रा, इन्द्रियका दमन न करके यथेच्छभावमें काम-भोग। इन तीन प्रकारके पापोंसे मनुष्यका पतन होता है। इस पापक्षयके लिये प्रायश्चित्त आवश्यक है। जैसे---

श्राह्मणका यथाकालमें उपनयन होना आवश्यक है।
यथाकालमें उपनयन नहीं होनेसे विहित कमके अनुध्रांनके कारण पाप होता है। अतएव यह पापक्षयक्षप
प्रायिश्चल्त करके पीछे उपनयन करना होगा। इसी
प्रकार श्रूड़के लिये द्विज्ञातिशुश्रूपा विहित है, किन्तु उसे
न करके यदि वह ब्राह्मणका आचार अवलम्बन करे, तो
उससे पाप होता है। उस पापक्षयके लिये शाक्मानुसार
प्रायिश्चल करना उचित है। इसी प्रकार ब्राह्मणके लिये
सुरापान वा सुराविक्रय विशेषक्रपसे निन्दित और पापक
बतलाया गया है। निन्दित कमक्षप पापक्षयके लिये भी
प्रापिश्चल आवश्यक है। इसी तरह परस्थोगमन, ब्राह्मणके चएडालीगमन आदिसे महापाप होता है और उसके
लिये भी प्रायश्चित्तको ज्यवस्था है।

सभी कार्योमें समान पाप नहीं होता, किसी कार्यमें सल्पपाप और किसी कार्य में महापाप होता है। पापके सल्पपाप और किसी कार्य में महापाप होता है। पापके सल्पपाधिक्यके अनुसार पापके भी उपयुक्त प्रायश्चिक्तकी ब्यवस्था है। कर्मविषा ह और पाप शब्द देखो । अथवा इसके ज्ञानकृत और अज्ञानकृत ये दो प्रकारके भो पाप हीते हैं । कहीं कहीं ज्ञानकृत पापका प्रायश्चिक्त नहीं है। प्रायश्चिक्त करने पर भी वह ज्ञानकृत पाप नहीं छूटता । फिर कहीं कहीं ज्ञानकृत पापका प्रायश्चिक्त हैं। परन्तु अज्ञानकृत पापमें जिस प्रकार सामान्य प्रायश्चिक्त करनेसे काम चलता है, उस प्रकार इसमें नहीं है, इसमें दूना प्रायश्चित्त करना पड़ता है। फिर अवस्थाविशेषमें भी प्रायश्चित्तको कमी वेशो है । इस सम्बन्धमें प्रायश्चित्तको कमी वेशो है । इस सम्बन्धमें प्रायश्चित्तको कमी वेशो है । इस सम्बन्धमें प्रायश्चित

"जिस वर्णके लिये जिस पापके पायश्चित्तको जैसी Vol. XIV. 182 ध्यवस्था है—अवस्थामेदसे ने शकालांदिके अनुसार उसकी पूर्ण, पादन्यून, अर्द्ध और चौथाई व्यवस्था भी है। जैसे बालक, पृद्ध, आतुर और लियोंके लिये आधा। १६ वर्ष से कम उमरका वालक और ८० वर्ष से अधिक उमरका वृद्ध कहलाता है। पांचसे ग्यारह वर्ष तक पाद, वारहसे सोलह वर्ष तक अर्द्ध, पूरा सोलह वर्ष होनेसे पूर्ण प्रायिश्चत्त आवश्यक है। पांच वर्ष से कम होनेसे पाप नहीं लगता, सुतरां उसे प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्त नृदुशेखरमें लिखा है—शास्त्र ब्राह्मणके लिये पूर्ण प्रायश्चित्त, क्षित्रयोंके लिये पादोन, वैश्यके लिये पादमात प्रायश्चित्त है। शूदके प्रायश्चित्तमें जप होमादि नहीं करने होते। अमन्तक करना होता है। जो याग यश करते हैं उन्हें जपादि अवश्य करना चाहिये।

प्रायश्चित्तस्थलमें जो पञ्चगन्यकी व्यवस्था है, वहां गोप्तयसे दूना गोमूल, चीगुना छुत और अठगुना दुग्ध तथा दिंघ गाहा है। पतिद्धित्र ताम्रवर्णा गोका मूले, स्वेतवर्णाका गोप्तय, पीतवर्णाका दिंघ और छव्णवर्णा गोका छुत ही प्रशस्त है। जो उक्त नियमका पालन करनेमें विलकुल असमर्थ हैं, उनके लिये जहां गोदानकी व्यवस्था है वहां गोके अभावमें उसका मूल्य देना होता है। गोमूल्य इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है:—

गोके अभावमें चार तीला सोनेके वरावर चांदी, अथवा उसका आधा, अथवा चार भागका एक भाग भी दिया जा सकता है। परन्तु जो धनवान् हैं उनके लिये गोमूल्यलक्षण पांच पुराण अर्थात् सोलह माशा रजत-दानकी व्यवस्था है। इस प्रकार मध्यवित्तवालोंके लिये तीन पुराण और दिह्नके लिये एक कार्यापण मूल्यका विधान है। वृषकका मूल्य छः कार्यापण ही देना होगा, पर शूलपणि पांच कार्यापण वतलाते हैं। केवल गोमूल्यके लिये तीन पुराण ही उत्तम, ३२ पुराण मध्यम और एक पुराण अध्यम माना तथा है।

प्रायश्चित्तका पूर्वोइकृत्य ।

प्रायश्चित्त करनेके एक दिन पहले सर्वोको केग्रा-नखादि करवा डालने चाहिये। स्नानके वाद केवल घृत खा कर रहे। अनन्तर संध्याके समय घरके बाहर बैंड

कर ब्रतादिका उल्लेखपूर्वक सङ्करंप करे। पहले जो नख केशादि कटानेकी वात कही गई है, वह विद्वान् ब्राह्मण, नरपति अथवा सघवा स्त्रियोंके लिये ही है । परन्त महापातकादि-स्थलमें उन्हें भी कटवाना कर्त्तव है। 'सधवा यदि सिर न मुड्वा सके, तो कमसे कम दो अंगुल केश छोड कर सव कटवा डाले । सधवा क्षियीं-को तीथ क्षेतादिमें भी इसी नियमका पालन करना चाहिये। विधवा स्त्रियोंके लिये सिर अच्छी तरह मुड़वा डालना ही शास्त्रविहित है। यदि कोई मोहवशतः ऐसा न करे, तो उसे विहित प्रायश्चित्तका दूना करना होगा भौर उसकी दक्षिणा भी दुनी होगी। जो बत तीन दिन-में समाप्त होगा, उसमें नखरोमादि करवाना ही पहेंगा। इस प्रकार छः दिनके व्रतमें श्मश्रु और नौ दिनके व्रतमें शिला छोड कर और सब कटवाना होगा । जो वत इससे भी अधिक दिनमें समाप्त होगा उसमें शिखा भी फटवानी पड़ेगी । स्त्रियां यदि तीन वा छः दिनमें कोई कार्य करनेको उद्यत हों, तो उन्हें केश नख आदि कुछ भी कटवानेकी जरूरत नहीं।

प्रायश्चिस्ततिथि।

अप्रमी या चतुर्वशी तिथिमें प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिये। परन्तु चतुर्वशीमें सङ्कृत्प करके अमावस्थाके दिन प्रायश्चित्त कर सकते हैं।

प्रायदिचस्तप्रयोग ।

शास्त्रकारोंने प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें छः वर्ष, तीन वर्ष और डेढ़ वर्षकी व्यवस्था दी है। इनमेंसे ३० तीस प्राजापत्य करनेमें एक वर्ष, पै'तालीसमें डेढ़ वर्ष और नक्बेमें तीन वर्षकी व्यवस्था है। अधिकांशके मतसे ही प्राजापत्यव्रतमें गवादि अथवा उसके निष्क्रयस्वरूप रजत, स्वर्ण अथवा उसका भाधा वा एकपाद अर्थात् चतुर्था शका एक अ'श उत्सर्ग करना होगा। एतिइन फल, ताम्त्रूल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, पञ्चगव्य, मृत्तिका, भस्म, गोमय, दूर्वा, तिल, सिमत्, दर्भ, होमके लिये धृत, सभास्थ ब्राह्मणोंकी दक्षिणा और अनुज्ञाकारी ब्राह्मणोंकी पुजाके निमित्त दक्षिणा ये सब आयोजन करने चाहिये।

जिन्हें प्रायश्चित्त करना होगा, वे पहले चार अथवा एक ब्राह्मणको सभासदुक्तपमें विडा कर पीछे स्नान करे। स्नानके वाद यदि पारग हों, तो आद्र वस्त्रसे ही उन सद ब्राह्मणोंका प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्गं प्रणाम करे । पीछे ब्राह्मणगण कर्त्तासे पूछे, कि तुमने कौन-सा काम किया हो, सच सच वोले, कूठ कभी भी न वोली। इस प्रकार प्रश्नके वाद कर्त्ता सम्यगणको गी अथवा बृषके मृत्य-खरूप खर्ण अथवा तद्द[°] वा तत्पाद, इनमेंसे किसी एक-के परिमाणानुसार रजतद्रव्य दान करके कहे, कि मेरा पाप यही है। इस प्रकार सङ्कल्पके वाद प्रदत्त द्रन्य सम्प्रगण-के सामने रख कर कहे—"मेरा नाम अमुक है, मैंने जन्मसे छे कर आज तक ज्ञान वा अज्ञान, काम वा अकामवशतः बहुवार अथवा एक बार जो सद कायिक, वाचिक, मान-सिक, सांसर्गिक, स्पृष्ट वा अस्पृष्ट, भुक्त वा अभुक्त, पीत वा अपीत सर्वविध पातक, अतिपातक, उपपातक, लघ-पातक, सङ्करीकरण, मिलनीकरण, पातीकरण और जातिम् शकरणादि पातकका अनुष्ठान किया है। इनमेंसे सम्मावित पापींको दूर करनेके छिये मुक्ते कौनसा प्राय-श्चित्त करना होगा कृपया कहिये।

खयं अशक हो कर प्रायश्चित्त करने के निमित्त पुता-दिको अपने प्यजमें दे सकते हैं, पर उन्हें 'मेरे पिताकी जन्मायिय' ऐसा कहना होगा। पहले जिन सव पापिंका उक्लेख किया गया उनमेंसे यदि एक महत्तर पापका प्रायश्चित्त करना हो, तो तुमने कौन काम किया है, ऐसे प्रश्न पर मैंने अमुक्तवध, अमुक्तभक्षण वा अमुक अगम्या-गमन किया है, इत्यादि प्राकृत पापका उल्लेख करके उसका जो प्रायश्चित्त हो सकता है, उसीका उपदेश लेनेके लिये ब्राह्मणोंके निकट प्रार्थना करना कर्त्त ख है।

अनन्तर धर्म शास्त्रविदोंके निकट प्राथ ना करनी होगी, कि मैंने जो सव महाघोर पाप किये हैं, उनकी संशुद्धिका उपाय विधान करें। यह कहकर उन्हें प्रणाम करना होता है। पीछे जब सभ्यगण पापीकी सामध्ये पर विचार कर प्रायश्चित्तका निश्चय कर हैं, तब कर्ता चन्द्नपुष्पादि द्वारा पुस्तकपूजा और अनुवादक पूजा करके निबन्ध पूजाके लिये कुछ चीजें रखें और अनुवादकको पापा- गुसार दक्षिणा है। अब अनुवादक फिर कर्ताको समका कर कहें, 'पापनिराशार्थ यह प्रायश्चित्त तुम्हें करना

पड़ेगा। ऐसा करनेसे तुम कतार्थं होगे' ऐसा कह कर स्यवस्थापत प्रदान करें।

सार्दाव्य प्रायश्चित्त करनेमें आधानाङ्गमें अग्निविच्छेष्-प्रत्यवाय-निराशार्थं विच्छेद दिनसे आरम्भ करके प्रति-वर्ष एक एक कृष्णु करे। कर्ता 'ओम्' यह अङ्गीकार करके सम्यगणको विदा करे। पीछे रिकाके सायाहमें देशकालका उन्ने ख करके 'अमुक्शमंणो मम जन्म प्रभृति अस यावत् ज्ञानाज्ञानमध्ये स'भावितानां 'पापानां निरा-शार्थं पर्पदुपद्धं साद्धं ब्द्यायश्चित्तं प्राच्योदीच्याङ्ग-सिहतं अमुक्रमत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये इस प्रकार सङ्कृत्य करे। पीछे—

"यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
केशानाश्चित्य तिप्रन्ति तस्मात् केशं वपाम्यहम्॥"
यह मन्त्र पढ़ कर क्षीरकार्य करे। क्षीरामावमें
सार्काब्यव्रत दूना करना होता है तथा सभ्यगणको दूना
दक्षिणा भी देनी होती है। किन्तु सधवा स्त्री और
पिताके जीवित रहनेसे पुत्रका श्लौर निपिद्ध है। दश पांच केश काटनेसे ही काम बल सकता है। क्षीरकर्म-में शिखा न कटावे। यदि कोई भ्रमसे कटवा ले, तो
उसके पुनः संस्कारका आवश्यक है और उस जगह पर
कुशमय शिखा ब्रह्मश्रन्थि करके दाहिने कान पर रखनो
होती है। मयूलकारके मतसे कुच्छाधिकमें क्षीरकमविधि,
इच्छ न्यूनमें क्षीरकर्म अनावश्यक है।

क्षीरकर्मके वाद कुल्ली करके मन्त्रपाठपूर्वक दन्त-काष्ठ द्वारा जिह्वा उल्लेखन करे । मन्त्र यथा---

"आयुर्वेल' यशो वर्चः प्रज्ञाः पशुवस्ति सः त्रह्मप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वशो देहि वनस्पते॥"

भनन्तर स्नान करके मस्मादि दशस्नान करें। 'प्राय-विचाङ्ग भस्मस्नान' करिष्ये' यह सङ्कृत्य करके भस्म छे 'ईशानाय नस्मः' इस मन्त्रसे उस भस्म शिरा पर, 'तत्पुक-पाय नमः' इस मन्त्रसे मुख पर, 'अधोराय नमः' इस मन्त्रसे हृदय पर, 'नामदेवाय नमः' इस मन्त्रसे गुहा पर, 'सद्योजाताय नमः' इस मन्त्रसे दोनों पाद पर और प्रणव उद्यारणपूर्वक सारे शरीर पर छेपन करके स्नान करे। इसीको मस्यस्नान कहते हैं। मस्मस्नानके बाद आन्यमन करके 'अथ गोमयस्नान' करिष्ये।' इस मन्त्रसे सङ्कृत्य करे । पीछे गोमय छे कर प्रणव उद्यारणपूर्वक उसे दक्षिण ओरसे उत्तरकी ओर फेंक है। आखिर 'मानस्तोक' इत्यादि मन्द्रोंसे अभिमन्द्रित करके 'अगमप्र' चरन्तीनां' इत्यादि कह कर सर्वाङ्गमें छेपन करे।

पीछे 'अवते हेड़' और 'प्रसम्राजे' यह उक्त स्क दो वार उद्यारण करके तीर्थंकी प्रार्थना करनी होती है। 'याः प्रवतो निवत उद्यत' इत्यादि तीर्थं अभिमन्त्रण-मन्त्र- से स्नान करके दो वार आचमन करे। 'हिरण्यश्रङ्ग' इत्यादि तीर्थंप्रार्थना दशों प्रकारके स्नानमें ही करनी होती है। पीछे—

"अध्वक्षान्ते रथकान्ते विष्णुक्षान्ते वसुन्धरे । शिरसा धारिययामि रक्षस्व मां पदे पदे ॥" इस मन्त्रसे मृत्तिकाको अभिमन्तित कर— "उद्दधृतासि वराहेण इन्णेन शतवाहुना । मृत्तिके हरमे पाप' यन्मया दुष्ट्वत' इतम् ॥"

इस मन्त्रसे मृत्तिका छे—'नमो मित्रस्य वरुणस्य' इत्यादि यन्त्रसे वह मृत्तिका सूर्यको दिखा कर 'गन्ध-द्वारां' वा 'स्यो ना पृथिवी' अथवा 'इद' विष्णु' इत्यादि मन्त्रसे शिरः प्रभृति अङ्गमें मृत्तिका छेपन करे। पीछे दो वार स्नान और दो वार आचमन करने होते हैं।

इसके वाद शुद्धोदकस्नान है। 'आपो अस्मानिति'
इस मन्त्रसे सूर्यकी ओर और 'इद् विष्णुरिति' मन्त्रसे
प्रवाहकी ओर मजन, पोछे पञ्चगवा और कुशोदकसे कः
प्रकारके स्नान करने होते हैं। 'तत्सिवतुः' इत्यादि
मन्त्रसे गोमूल स्नान पोछे आचमन, 'गन्धद्वारां' इस
मन्त्रसे गोम्यस्नान, 'आध्यायस्व' इस मन्त्रसे दुष्धस्नान, 'द्धिकाल्ण' इस मन्त्रसे द्धिस्नान और 'देवस्य
त्वा सवितुः प्रस इन्द्रियेणामिषिञ्चामि इति' इस मन्त्रसे
कुशोदकस्नान करना होवा हैं। दश्विध स्नानप्रयोगमें
तीन स्नानके वाद अध्मर्षण करे। अध्मर्षण-तर्पणका
मन्त्र, यथा- "ब्रह्माद्यो ये देवाः तान् देवांस्तर्पयामि।
भूदेवास्तर्पयामि। सुवर्देवांस्तर्पयामि। सुदेवांस्तर्पयामि। भूभुं वः स्वर्देवांस्तर्पयामि। भूभुं वः स्वर्देवांस्तर्पयामि। कृष्णहे पायनादयो ये स्वय्यः
तान् ऋषींस्तर्पयामि, सुवर्द्धं पीन०, स्वर्भ्धं पीन०

भूभुँवः स्तर्भेषोन्ः प्राचीनावीती । समः पितृमान्यमोङ्गि रस्तानग्निष्वात्तादयो ये पितरः तान् पितृन्०, मूः पितृन०, भुवः पितृन्०, स्वः पितृ स्त०, भूभु वःस्वःपितृन्० । अन्तमें । यक्षतपंणादि करके वस्त्र पहने और तिलक लगावे। पीछे आचमन करके देशकालादिका उल्लेख करते हुए 'विष्ण-प्रोत्यर्थं प्रायश्वताङ्गविष्णुश्राद्धसम्पत्तये श्रीविष्णृद्देशे ब्राह्मणभोजनपर्याप्तामनिष्कयीभृतं द्रव्यं नत्राधिकयुग्म दातुमहमुत्सुजे' ऐसा कहे । अनन्तर चार ब्राह्मणोंकी .पूजा करके उन्हें दान दे। 'तेन पापापहा क्रेमहाविष्णुः प्रीयतां' पीछे 'प्रायश्चित्तं पूर्वाङ्गगोदानं करिष्ये' इस प्रकार सङ्कल्प करके 'गवामङ्गे षु' इत्यादि मन्त्रसे गोदान वा तन्मूल्य द्वारा दान करे। देशकालादिका उल्लेख करके--- 'प्रायश्चित्तपूर्वाङ्गहोमं करिष्ये । तदङ्गतया स्थिएडलोल्ले जनाद्यग्निप्रतिष्ठापनादि करिन्ये । प्रकार 'विदनामानमन्ति प्रतिष्ठापयामि' शेषमें इस प्रकार ध्यान करके 'प्रायश्चित्त पूर्वाङ्गहोममें देवतापरिप्रहार्थमन्या धानं करिष्ये' कहे । 'चक्षपी आज्ये नेत्य!दि' मन्त्रसे अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति इन प्रतिदेवताओं के उद्देश-से २७ करके घृताहुति और पृथिवी, विष्णु, चर्, ब्रह्मा, अन्नि, सोम, सविता, प्रजापति और स्विष्टकृत अन्नि इन्हें यथोक्त मन्त्रसे एक सी आठ वार घृताहुति दे।

पञ्चगव्य शोधन आज्यसंस्कारकालमें भाज्यके साथ उसे अग्निके चारों ओर वेप्टन करे। ताम्र-पातमें वा पलाशपत्रमें गोमूल लिपल वा अप्रमाप, गायली द्वारा सफेद गायका गोमय १६ माप, 'गन्धद्वारां इति' मन्त्रसे पीली वा कपिला गायका दुग्ध ७ पल अथवा १२ माष, 'आप्यायस्त्र' इत्यादि मन्त्रसे नीली गायका दिध ७ पल वा १० माष, 'द्धिकाव्णो' इत्यादि मन्त्रसे ले कर काली गायका घृत एक पल वा ८ मास, तैजोसि शुक-मसीति' अथवा 'घृतं मिमिक्षे' इत्यादि मन्त्रसे ग्रहण कर तथा 'देवस्व त्वां' इत्यादि मन्त्रसे एक पल वा ४ माष हुशोदक ले कर यिक्वयकाष्ट्रसे आलोड्न करनेके वाद् प्रणव द्वारा अभिमन्त्रण करे। इसके वाद भूः खाहा अन्य इदं। भुवः स्वाहा वायव इदं'। स्वः स्वाहा सूर्यायेदं। भूभुँवः खाहा प्राज्ञायत्य इदं। इस वकार प्रति देवताके उद्देशसे २७ और १०८ वार आहुति दे। विष्णुके लिये : भूः स्वाहा विष्णव इदं ! भुवः स्वाहा विष्णव इदं ! भूभु वः स्वाहा विष्णव इदं ! इस प्रकार १०८ वार आहुति दे कर प्रभाव्य होम करे । इससे पहले सात कुशपल पर प्रभाव्य ले कर 'इरावती धेनुमती॰ खाहा पृथिव्या इदं ॰ १ इदं विष्णः विष्णव इदं २ मानस्तो॰ खहाय ३ महायका॰, महाण ६० ४ महास्थाने शकोदेवीति इत्यादि मन्तेंसे, 'अन्ये स्वाहा अन्य इदं ! सोमाय स्वाहा सोमायेदं । तत्सिवतुर्वरेण्यं॰, स्यायेदं । सोमाय स्वाहा सोमायेदं । तत्सिवतुर्वरेण्यं॰, स्यायेदं । प्रजापतिके उद्दे शसे—'ओं स्वाहा प्रजापतय इदं ॰ अन्ये स्विष्ठकृते स्वाहा । अन्ये स्विष्ठकृत इदं' इस प्रकार केवल दश वार आज्यको प्रभाव्याहुति दे । यदस्येति मन्त्रसे स्विष्ठकृत होम करके प्रायश्वित होम शेष करनेके वाद ब्राह्मणको सम्बोधन करके 'त्रतप्रहणं करिष्ये' ऐसा कहे, ब्राह्मण भी आन्ना दें, 'कुक्प्व'।

'यःवगस्थितं अोम् उचारणपूर्वंक पञ्चगद्य, पीछे प्रणव उचारणपूर्वंक पञ्चगद्य पान करे । अशका-वस्थामें थोड़ा गोम्लादि दे। प्रामके बाहर नदीके किनारे तारोंको देख कर पेसा करना होता है। रातको तारे देख कर बत करे। मुमूर्षु के लिये वाहर आनेकी जक्षरत नहीं, इस दिन उसे उपवास करना होता है। यदि उपवास न कर सके, तो हविष्यभोजन विधेय है।

घर छौट कर प्रातःकालसे ले कर संकल्पित प्रत्यामनायके अनुसार उत्तराङ्ग करे। गोके अभावमें उसके
मूल्य रजतादि दानकालमें पश्चगन्य पान करके 'इदं
सार्द्धांन्द्रे पञ्चन्दवादिशत् कृच्छु प्रत्याम्नायगोनिष्कयो
भूतं प्रतिकृच्छु 'निष्कतद्द्धृतद्द्धांन्यतमप्रमाणं राजतद्रव्यं
नानानामगोले भ्यो ब्राह्मणेभ्योः दातुमहमुत्स्नुके।' इस
मन्त्रसे सङ्कल्प करे। पीछे उन सव द्रव्योको विभाग
कर 'आचीर्णस्यामुख प्रायश्चित्तस्य साङ्गतार्थमुत्तराराङ्गानि करिष्ये।' इस मन्त्रसे होम करे। अनन्तर
'स्थिएडलादि करिष्ये।' इस प्रकार सङ्कल्प करके पूर्ववत् विष्णुश्राद्ध और गोदान विधेय है। अव फिर यहां
पञ्चगन्यहोम करनेको जकरत नहीं। समर्थके लिये
गोभूमि और होमादि दशदान और अशक्तके लिये हिरण्यदान कर्राव्य है।

उत्तर जो सार्द्धाव्द-प्रायश्चित्तकी व्यवस्था लिखी गई, वह केवल ब्राह्मणके लिये हैं। स्त्री और शूद्रके लिये वेदमन्तका उचारण करना नियेध हैं, सभी अमन्तक करने होंगे। प्रायश्चित्तके वाद पार्चणश्चाद्ध करना उचित है। पिताके जीवित रहने पर भी प्रायश्चित्तकर्ता पुत पिताको छोड़ कर उक्त श्चाद्ध कर सकता है। स्त्रियोंको-पार्चणश्चाद्धमें अधिकार नहीं हैं, इसीसे उन्हें भोज्यो-तसर्ग करना वतलाया गया है। प्रायश्चित्तेन्दुश्चीहर)

सव पाप प्रायक्तितिथि ।

महापातकादि सभी प्रकारके अक्षानकृत पापोंमें अस-मर्थके लिये सभी प्रायश्चित्त पड्ट्स, समर्थके लिये उसका दूना, ज्ञानकृत पापमें असमर्थके लिये तिगुना, अम्प्रासीके लिये चौगुना, अत्यन्त वा निरन्तर अम्यासमें पचगुना और बहुकालाम्यासमें छः गुना प्रायश्चित्त वत-लाया गया है।

उपपातक अज्ञानकृत होनेसे असमर्थके लिये दो अब्द, अम्यासमें दूना, ज्ञान कृत होनेसे असमर्थके लिये तिगुना, अभ्यासमें चौगुना, निरन्तर अभ्यासमें पचगुना और वहुकालाभ्यासमें छःगुना विधेय हैं।

अञ्चानकृत प्रकीर्ण-पापमें असमर्थके लिये एकाव्द, अभ्यासमें दूना और उसके बाद पूर्ववत्।

क्षत्रपापमें पूर्ववत्, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र वा चान्द्रायण, अतिसामान्यपापमें १२ या ३६ वार प्राणायाम और स्त्री तथा गूदके छिये अमन्त्रक ।

खर वा ऊँटकी सवारीसे गमनकारी, नग्नस्वापी, नग्नावस्थामें भोका और दिवाभागमें स्वदारगामीको चाहिये, कि वे सचेल स्नानपूर्वंक प्राणायाम द्वारा शुद्ध हो लें। अज्ञानपूर्वंक होनेसे स्नानमाल, अभ्यासमें ४ प्राणायाम चतुरिधक अभ्यासमें एक उपवास, अत्यन्त अभ्यासमें किराल और इच्छा पूर्वंक खर वा उष्ट्रारोही विप्रके लिये द्विगुण वतलाया गया है।

गुरु, देव, विम्न, आचार्य, माता, पिता, और राजाके मितवाद, आकोश और पैशुन्यमें जिह्नादाह और हिरण्यः दान, अभ्यासमें सहस्र गायलीजप, अज्ञानकृत होनेसे प्राजापत्य करके स्नान और गुरुको संतुष्ट करके पवित्र होवे।

Vol. XIV. 183

शुद्रको विप्रातिक्रमादिमें सात रात उपवास, क्षतियातिक्रममें एक उपवास करना चाहिये। विप्रकी मारनेकी इच्छासे दण्ड उठानेमें छच्छ, दण्डाघातमें अति-कुच्छ, आघातसे विश्वके रक्तपात होनेमें वा अभ्यन्तर रक्तमें वा त्वक्मेदमें छच्छू, अस्थिमेदमें अतिऋच्छ्, अङ्ग करनेमें पराक्, अङ्गछेरछेदनमें दश गोदान, ज्ञानतः होनेमें द्विगुणा वा २० गोदान और सभी जगह विप्रके पदाघात ले कर प्रणामपूर्वक उन्हें प्रसन्न करे। जलमें वा अग्निमें यदि अज्ञानवशतः किसी पीड़ित ध्यक्तिका विष्टामुब स्पर्श करे, तो सचेल स्नानपूर्वक गोस्पर्श, ज्ञानपूर्वक होनेसे उप-वास करके सचेल खान ; ज्ञानतः अभ्यासमें तीन उप-वास और तीन अधमर्वण विधेय हैं। किन्तु अनार्न व्यक्ति-का विन्मूत होनेसे वा अत्यन्त अभ्यास रहनेसे तप्त-रुच्छ की व्यवस्था है। विना जलके पेशाव करनेमें भी पेसा ही जानना चाहिये। निजैल अरण्यमें शौचकर्म करने-से सवस्त्रस्नान, मूलादिका वेग धारण करनेमें एक सौ आठ वार जप, श्रौत वा स्मार्चकर्मकोपमें उपग्रस, सूर्यों-दयके वाद सुस्थ देह रहते स्वेच्छासे निदा करनेमें सावितीजप और निराहार। जीणे और मलयुक्त वस्न-धारणादिमें तथा स्नातकके वतलोपमें उपवास और आठ सी वार जप । पञ्चमहायक्को मध्य एकके लोप होने-में आतुरके लिये उपवास और धनीके लिये कृच्छु। हैं। आहिताग्निकी पर्वक्रियाके लोपमें भी इसी प्रकार । विना स्नान किये भोजन करनेमें एक उपवास और सारा दिन जप। ऋतुकालमें भार्यागमन नहीं करनेसे कृच्छु। ह्रै; अनिच्छा होनेमें शत प्राणायाम । अपनी भार्याको कोधके वशीभूत हो ्व्यभिचारिणी कहनेमें वर्णानुसार नवरात, पड़रात और तिरात कुच्छु ; गौड़ोंके मतसे सवोंके लिये प्राजापत्य । दान दे कर फिर उसे छेनेमें ऋपिचान्द्रायण । एक पंक्तिमें वैठे हुए व्यक्तियोंमेंसे किसीको कम और किसीको वेशी देनेमें प्राजापत्य । नदीका पुछ काट देनेमें वा कन्याको कप्ट देनेमें चान्द्रायण । पतित म्लेच्छादिके साथ वा ध्यानस्थ ब्राह्मणके साथ कथा कहनेमें, भार्या अन्न वा घनलाभमें वाधा देनेसे संवत्सर वत ; द्विजके विना यशोपवीतके भोजन और जलपान करनेमें नक्तवत, केवल जलपानमें ति-प्राणायाम। इच्छापूर्वक एकार्य

करनेमें उपवास । उच्छिए जान कर भी उसे भोजन करने-में उपवास । द्विजके यहोपवीतके विना झान पूर्वक मूल-त्याग वा आहारादि करनेमें 'मिय तेज' इत्यादि मन्तसे जप । निमन्तितके अन्यत भोजन करनेमें तिरात, अनिच्छासे होनेमें सद्य उपवास । निमन्तण करके निम-न्तितको नहीं जिलानेमें यतिचान्द्रायण । अद्एडको द्एड देजमें पुरोहितके कृच्छ्र और राजाको तिरात । विष्णु और गरड़के मध्य हो कर जानेमें द्विजके सान्तपन करना दाहिये।

क्षत्रियके रणमें पीड दिखानेसे संबत्सरवत, फलपद पृक्ष काटनेमें भी संदत्सरवत । नीलवस्त्र वा वनावटी देशका व्यवहार करनेमें उपवास और पञ्चगव्य पान। गीलीके मध्य जानेमें तीन प्राणायाम ; नीलवृक्षके काएसे दन्तधावन करनेमें नीलवतधारणवत । नीलीवख पहनकर अन्तदान करनेमें दाता भीर भोका दोनोंको सान्तपन। अपाङ्के वके साथ पङ्कि-भोजनमें उपवास और दूसरे दुसरे दिन पञ्चगन्य-पान। क्षतिय भीर नैश्यको प्रणाम करनेमें उपवास और यदि ब्राह्मण शूदको अभिवादन करे, तो उन्हें तिरात उपवास करना चाहिये। अनापद-कालमें सिद्धान्न मिक्षा करनेसे गृहस्थको दशरात वज्र-कुन्छ सम्बन्धि द्वापान, भापदुमें बिराब । मृण्मय प्रतिमा वा देवालयादि तोड्नेमें आज्याहुति भौर ब्राह्मण भोजन, पर प्रतिमाने तारतम्यमें द्एडशयश्चित्तका भेद है। वारिद्रा, कोध वा मात्सर्यादि प्रयुक्त भर्चाके अति-क्रममें अतिरुच्छ्र । पवंके दिन मैथुन करनेमें सवस्न-स्तात और वादणीमार्जात । श्राद्धके दिन मैथुन करनेमें उपवास । रजस्वला सपत्नीगमनमें तीन दिन उपवास और चौथे दिनमें घृतभोजन । कामतः होनेमें सप्तराव उपवास । अकाम अथच अम्यासमें कृच्छु और अभ्यासमें मासिकवत, दूसरेके मतसे होवार्षिक। कामतः अभ्यासमें प्रथम दिन पराक, द्वितीय दिन सान्तपन और तृतीय दिन प्राजापत्य । अकामतः रेतः क्षेक करनेमें महाव्याद्वति होम, छः मासके बाद गर्भिणी-गमनमें भी उक्त होम । कामतः रेतः सेक करनेमें ३ प्राणायाम और सहस्र गायतीजप, वानप्रस्थ यतिके लिये चान्द्रायणं, गृहस्थके लिये वारुणी द्वारा माज⁹न । खप्न-

में यदि रेतःसेक हो जाय, तो सूर्यको तीन वार प्रणाम और तीन अधमर्पण । ब्रह्मचारीके लिये रेतस्खलनमें स्नान करके सूर्यापूजा और 'तिः पुनर्मासेति' यह ऋक्-मन्त्रजप । कामतः रेतःपातमें संवत्सरवत । दिवा-निद्ग, नम्नस्त्रीदर्शन, नम्ननिद्रा, श्मशानाक्रमण, ह्यारोहण और दुर्ज नस्पर्शमें नक्तभोजन । गर्भाघानादि चूड़ान्त संस्कारमेंसे किसी एकके छोपमें पादकुच्छू, अनापदमें व्रिगुण। प्रायश्चित्तके वाद संस्कार कर्राव्य है। संवत्सर नित्यिक्रयालीपमें पिष्ट प्राजापत्य, अनिच्छा होनेमें तप्त-कुच्छ । निषिद्ध काष्ट्रसे दन्तधावन करनेमें गोदर्शन । व्रतग्रहणकारीका प्रमाद्वशतः व्रतसङ्ग होनेमें तीन उप-वास पीछे पुनुवं तग्रहण । विप्रके छः मास क्षातवृत्ति द्वारा घनाज नमें चान्द्रायण, ६ मास वैश्यवृत्ति और सद्य शूद्रवृत्तियहणमें पुनक्तपनयन पूर्वक सच्छ । शूद्रके द्विजकम करनेमें भी कुच्छू और तद्धनत्याग ही प्राय-श्चित्त है। स्त्रीधन द्वारा जीवनधारण करनेमें स्त्रीको धनदान करके चान्द्रायण । भार्याके मुखमैथुनमें कुच्छ, गोयानसे जाते समय मैथुन करनेमें रुच्छाई, अनिच्छासे होनेमें स्नानमाल । वस्तिकम⁹में, प्रच्छद⁹न और विरेचन अभ्यासमें शिशुक्टच्छ, अनभ्यासमें स्नानमात । देवा-लयकी शिला ले कर अपना घर वनानेमें रुच्छ, और यति-सान्तपन। गुरुके समीप प्रतिश्रुत हो कर उसे पूरा नहीं करनेमें तप्तक्रच्छ के साथ चान्द्रायण ! खाते समय कथा कहनेमें उस अन्नका त्याग । आद्योपवा-सादि निपिद्ध दिनोंमें दन्तधावन करनेसे सौ बार गायती जप और जल पी कर शुद्ध होवें।

विवाहके पहले यदि कन्याके रजोदर्शन हो, तो जव तक उसका विवाह नहीं होगा, ऋतु दिनसे गिन कर जितने दिन होंगे, उतने गोदान, असमर्थके लिये सुवण-श्रृङ्गादियुक्त एक गोदान करके तीन दिन उपवास, चतथे रालमें दुग्धमात आहार, पीछे निवृत्तरजस्का दान करे। उस कन्याके पाणिश्रहणकारी वरको भी कुस्माएडमन्त उद्यारण करके घृताहुति देनी चाहिये। विवाहहोमकाल-में वा विवाहके समय रजोदर्शन होनेसे पहले स्नान करावे, पीछे 'तां पूजानेति' इस तैत्तिरीय मन्त द्वारा होम करके विवाह करे। मद्य, विद्या, मृत वा पृतिगन्धके आधाणमें तिप्राणा-याम, दर्शन और स्पर्शनमें स्नान तथा घृताशन, उच्छिष्ट सुरास्पर्शमें स्नान और पञ्चगन्यपान, तत्वाणमें ति-प्राणा-याम। मदिरा दान वा स्पर्शमें वा प्रतिग्रहणमें स्नान और तीन दिन कुशोदकपान। संन्धान्स्यादिमें विना स्नान किये भोजन करनेमें आठ हजार गायती-जप।

ब्राह्मणके शूद्धादि स्पर्शमें उपनास । चाएडाळादि स्पर्शमें चान्द्रायण, उसके अभ्यासमें रजकादि स्पर्शसे उसका आधा ।

नैमित्तिक स्नान किये विना भोजन करनेमें एक सौ आठ वार गायबीजप। अमेध्यादि अस्पृश्यके स्पर्शमें यदि विना स्नान किये भोजन कर छे, तो तीन रात उप-वास तथा जान वृद्ध कर होनेमें छः राति। शानवशतः स्वपाकादिस्पर्शमें विना स्नान किये भोजन करनेसे विराव इस्तिस्थित कवलादि भोजनमें, अत्राह्मणके समीप दुष्टप किमें वैठ कर, वालकोंको छोड़ कर भोजन करनेमें, तथा अञ्चानवरातः शुद्रके हाथका श्रश्न खानेमें नक्तवत, ज्ञानवशतः खानेमें उपवास तथा पञ्चगव्य-पान । श्रद्र-की प'किमें बैठ कर खानेमें दो उपवास, ब्राह्मणके लिये विना आसमन किये खानेमें एक सौ आठ वार जप, अभ्यासमें सहस्र गायती जप। भोजनके समय मस्तक पर विष्ठादि गिरनेसे अन्नत्याग करके नदीमें स्तान और वि-भाणायाम । ऋतुकालमें पृथ्वी पर भोजन करनेमें अहीरात यावकाहार और पञ्चगन्यपान । भोजनके समय चार्डाळादि अन्त्यजने द्रशैनमें भोजनत्याग। आवमनपूर्वंक तीन वार प्राणायाम करके भोजनत्याग नहीं करनेमें उपनास और पञ्चगगवर्यान । चएडालादिके उच्छिष्टस्पर्शमें पूर्णप्राजापत्य। चार्डालके उच्छिष्ट अन्नस्पर्शेमें चान्त्रायण, रजकादिके उच्छिएस्परीमें तिरात घृतपान । दुसरेके उच्छिष्टस्पर्शमें विराव-स्नान । भोजन-के समय रजस्वलाका स्पर्श करनेमें शिशुकुच्छ और शतप्राणायाम । भोजनके समय मलनिर्गममें ग्रीच कर-के उपवास और पञ्चगव्यपान, जान वृक्त कर पीतावशिष्ट मुखनिर्गत जलपानका अभ्यास रहनेमें चान्द्रायण अथवा पराक । अञ्चानवरातः शूद्रोच्छिप्र भोजन करनेमें बिरात उपवास । अञ्चातभावमें किसीके भी घर चएडाल रहनेमें

तथा अञ्चानवग्रतः उसको अन्न-भोजन करनेमें प्राजापत्य ; जान वृक्त कर भोजन करनेमें पराक । रजस्वला, स्तिका, अभ्य, शूकर, पतित, कुणि, कुछी और कुनखीका स्पष्ट अन्न जान वृष्ट कर खानेमें काय, विना जाने खानेमें उसका आधा। वामहस्तमं अञ्चनोजन और एक पंक्तिमें खाते समय एकके उठ जानेमें उपवास, नक्तवत और पश्चगवा-पान, चिड़ाल, काक, इन्द्रूर, नकुल और गवादिके उच्छिए अन्न खानेमें ब्राह्मोरस, अधिक भोजन करनेमें एक उप-वास, पूर्णाहारमें विराव उपवास। स्वेच्छासे होनेमें पादकुच्छु । अभ्यासमें क्रुच्छू । कुक्कुरका उच्छिष्ट खानेमें पक्तमात यावकत्रत । विश्वके शूद्रगृह भोजन करनेमें मनस्तापसे शुद्धि ; इच्छापूर्वंक भोजन करनेमें शतजप ; किन्तु शूद्रपात भिन्न अपर पातमें भोजन करने-से उपवास और पञ्चगवापान । वट, आकन्द, अञ्चत्य, कुम्भी, तिन्दुक, कोविदार, कदम्बवही, पलाश और ब्रह्मवृक्षपत्नमें भोजन करनेमें चान्द्रायण। यि के परापत्रमें भोजन करनेमें चान्दायण । शहकत् क ब्राह्मणके उपवीत छेदनमें मन्तपूर करेके अन्य उपवीत धारण, उपवास और सौ वार गायतीजप । यञ्चोपवीत छेदनमें दो महासान्तपन, गोविपचाएडाळादिहत, उद्बन्य, गरद, आत्मधाती, शृङ्गी, दंद्री, विषवहि-जल-विद्युत्-सरो स्प-हत, सङ्कुरजाति और पतितके शववहन, दहन और उदकदानादि क्रियाकरणमें तप्तकुच्छ्र । अनिच्छासे करतेने गोमूल और वावकाहार द्वारा रुच्छ्र । शूद्रशयानुगमनमं हिजका स्नान और एक सौ अग्ड वार गायबीजप, हिज-त्रे तानुगमनमें एक सौ बाट, शूदके लिये स्थानमाल है। आत्महत्या आदि अशास्त्रीय मरणमें तत्पुत कर्तुं क तस-इच्छ्रदयात्मक चान्द्रायण करके पीछे उसकी क्रिया होगी। परन्तु क्रोधवशतः आत्महत्या करनेमें लिराह उप-वास । पतिके अनुगमनकालमें यदि स्त्रो चितासे उठ पड़े, तो उसे प्राजापत्य करना होगा। विप्रशूद्र रजस्त्रला-स्वर्शमें विप्राका कच्छ्र और शूदाका पादकच्छ्र, चाएडा-छादि अन्त्यज और पतित शब्दादि जान वृक्त कर स्पश करनेमें रजस्वलाका प्रथम दिन द्विरात, द्वितीय दिन पकाह, चतुर्थदिन नकत्रत, अज्ञानवशतः स्पर्श करनेमें उपवास मात्रसे शुद्धि होती है।

ये सव साधारण प्रायश्चित्त हैं। एतद्भिन्न गोवध, अस्थिमङ्ग, पालननिमित्त वध, बात्य, स्तेय, ऋण, अपा-करण, अनाहिताग्निता, अपण्यादि क्रय, परिवेदन, भृतका-ध्ययन, पारदार्थ, अपगम्या, स्त्री शूद्रचे श्यक्षत्ववध, द्रुमा-दिच्छेदन। ब्रह्मचारीका बतलोप, अभिर्शसि, पुत्रकन्या-विकय, अलाद्यखादन, अयाज्ययाजन, पितृमातृसुतत्याग, अन्त्यज-स्त्रीगमन-भोजन, गोमांसमक्षण, भार्याको मातृ-सम्वाधन, उपवीतच्छेदन प्रभृतिका विशेष विशेष प्राय-श्चित्त निर्दिष्ट हुआ है।

शूलपाणिके प्रायश्चित्तविवेक, रघुनन्दनके प्रायश्चित्त-त्त्व और काशींनाथके प्रायश्चित्ते न्दुशेखरमें निम्न लिखित प्रायश्चित्तींका उल्लेख है—

१ प्राजापत्य वा छच्छ, २ पादोनछच्छ, ३ छच्छ, वर्ष, ४ पादछच्छ, ५ अतिछच्छ, ६ छच्छ, तिछच्छ, ७ तत्रकृच्छ, ८ पण्छच्छ, ६ सौभ्यछच्छ, १० वारण-छच्छ, श्रीकृच्छ, १२ यावकछच्छ, १३ जलच्छच्छ, १४ ब्रह्मक्र्चचे १५ पराक, १६ सान्तपन, १७ महासान्तपन, १८ चान्द्रायन, १६ पिपीलिका-मध्यचान्द्रायन, २० यवमध्य चान्द्रायन, २१ शिशु-चान्द्रायन, २२ यतिचान्द्रायन, ३ ऋपिचान्द्रायन और २४ सोमायन। नाचे इन सव प्रायश्चित्तवतींको व्यवस्था संक्षेपमें लिखो जाती है—

प्राचिच'त-तः । पृण-इ.न्द्रम्या । अन्मर्थके लिये ।
प्राजापत्य । तीन दिन सवेरे, तीन दिन सायं- १ दुम्धकालमें, जो विना मांगे मिलेगा । इस वती
प्रकार तीन वा पांच दिन कुक्कुटाएड १ धेनुसदृश प्रास, फल, मूल और जल पी दानं ।
कर उपवास । जपशीलके लिये वारह
हजार गायली जप, हजार तिलहोम,
धृताहुति और प्राणायाम दो दो सौ,
१२ ब्राह्मणभोजन । तीथोहे शसे
योजन याला ।

पादीन दो दिन सचेरे, दो दिन सार्थ-कुच्छ्र कालमें और दो दिन अयाचितभावमें आहार, एक दिन दो दिन उपवास। श्रायश्चित्त-नाम । पूर्ण-व्यवस्था । अवमर्थके लिये । इच्छाद्ध[े] सवेरे, एक दिन, सायंकाल, दो दिन अयाचितभावमें आहार, दो दिन उप-वास ।

शिशुकुच्छ्र १ दिन-सवेरे १ दिन सार्य-काल, १ दिन अयाचितभावमें आहार और १ दिन उपवास ।

अतिकृच्छ्र तीन प्राजापत्यके मतसे अर्थात् ३ धेनुदान, ६ दिन करके पाणि-पूरात्र भोजन मतान्तरसे और उपचासादि। २ धेनु।

कच्छु ।ति- २१ दिन केवल जलपान । रुच्छु मतान्तरसे अतिकच्छ का द्विगुण वा ६ प्राजापत्यके समान ।

तप्तकुच्छ तीन दिन करके उष्ण जल, श्लीर और यृतपान। इसमें ६ पल जल, विपल श्लीर और १ पल यृत होगा।

शीतकुच्छ्र तसकुच्छ्र्यत्, केवल तसकी जगह शीतल व्यवस्था ।

वर्णकुच्छ्र ५ दिन साध्य, प्रतिदिन पलाश, अद्धे धेर् उदुम्बर, पद्म, विख्यपत और कुशोदक पान । तिरात उपवासके वाद उक्त पलाशादि पञ्चकाथोदक पान । गो-मूत १ पल, गोमय अर्द्धाङ्ग प्र माता, श्लीर ७ पल, दिध ३ पल, धृत १ पल, कुशोदक १ पल । गायतीमन्त्रसे शोधन करके यह पञ्चगव्य स्नान । 'इदं विष्णुमानस्तोंके वशती' इत्यादि मन्त्रसे होम ।

सान्तापन- ६ रात्र उपवास ।

য়ন্ত্র

पराक १२ रात उपवास ।
सौम्य १म दिन प्राणरक्षाके लिये तिलइन्ह्यु पिएड, २य दिन ओदनस्नाव, ३य दिन
मद्रा, ४थे दिन जल और ५म दिन
सत्त् साय, ६से ८ दिन पर्यन्त उप-

[#] धेनुके असावम असका मूल्य दान | धेनुमूल्यकी व्यवस्था पहळे ही लिखी जा चुकी है |

प्रायश्चित्त-नाम । पूर्णव्यवस्था । असमर्थके लिये । प्रायश्चित्त-नाम । पूर्णव्यवस्था । असमर्थके लिये ।

मतान्तरसे तिलिपिएडादि प्रत्येक ३ दिन करके १५ दिन और ६ दिन उपवास, इसके मध्य २ दिन वायु-भक्षण। इस प्रकार इक्कीस रात करें। वारणक्रच्लु एक महीना तक सत्त् और जल- १ धेनु।

पान ।

श्रीक्रच्छ्र गोमूब, गोमय और यावक तीन दिन करके पान।

यावकः सप्तरात, पक्ष या मास भर यवी-इञ्छ् दक पान।

जल-कृच्छ् अनशनसे अहोरात जलमें वास।

वज्रकृच्छ्य गोमय यावक पान । सान्तपन पूर्वदिन पञ्चगव्यमात पान, दूसरे १ पुराण-

दिन उपवास ।
प्रतिसान्त- तीन दिन पञ्चगव्य पान, ४ थे दिन
पन उपवास । होम भी करना होता
है। मतान्तरसे ५वें और ६ठें दिन
उपवास ।

महासान्त- १ गोमूल, २ गोमय, ३ दुग्ध, ४ पन दिख, ५ छूत, और ६ कुग्रोदक, प्रत्येक एक एक दिन पान, ७वें दिन २ धेनु उपहास। मतान्तरसे गोमूलादि मतान्तरसे प्रति द्वच्य ३ दिन करके पान और डेढ़। सेय ३ दिन उपवास, यह इक्कीस

रातसाध्य है। अतिसान्त- पञ्चगव्य प्रत्येक दो दिन करके पन पान, शेप २ दिन उपवास, यही बादशरात। चान्द्रायण । कृष्ण प्रतिपदसे आमलकी प्रमाण ८ धेनु । विपोलिका- १४ ग्रास आरम्भ करके पीछे प्रति- दक्षिणा दिन एक दिन घटाते जाय । इस मध्य ८ बुपभ। प्रकार चतुर्देशी दिन एक ग्रासमात शुलपाणि-आहार करे, अमावस्याके दिन उप-के मतसे वास । पीछे शुक्क प्रतिपदमें १ प्रास. आ धेनु । श्या में २ ब्रास, इसी क्रमसे पूर्णि-दरिइके मान्त पयन्त बढ़ाते जाय। लिये ३ भाजापत्य

यवमध्य- शुक्त प्रतिपदसे एक प्रास आरम्भ चान्द्रायण करके पूर्णिमान्त पर्यन्त वढ़ावे, फिर रुण्ण प्रतिपदसे घटाना शुद्ध करे। एकादशी व्रतमङ्गमें भी दोष नहीं होता।

यति-चान्द्राः ४ प्राजापत्यके समान । इसः यण में त्रति मध्याहको आठ आठ फरके पिएड भक्षण करे । हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहे ।

शिशुचान्द्रा- समाहित चिससे ४ पिएड यण सबेरे और ४ शामको खाय। ऋषि-चान्द्रा- एक मास हविष्याशी और ३ धेनु, यण नियमसे रह कर तीन तीन पिएड मतान्तर

सोमायण- गोके ४ स्तनसे सप्तरात, ३ स्तन-चान्द्रायण से सप्तरात, २ स्तनसे सप्तरात और १ स्तनसे सप्तरात तथा विरात चागु-भक्षण।

त्रधम दो छोड़ कर शेप सभी चान्द्रायण प्रतिपद्द व्यतीत भीर सभी दिनोंमें आरम्भ करे।

अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, मलावह । पाप और प्रकीर्णकके भेदसे प्रायिवक्तका भी तारतम्य है। अतिपातकमें पूर्ण प्रायिवक्त, महापातकमें उसका आधा, प्रकीर्णक पापमें अतिपातकका आठवां भाग करना होता है। नीचे कुछकी व्यवस्था दी जाती है:—

दान ।

अतिपातक। प्राथिकत्तः। असमर्थमे घेनुदान।

ब्राह्मणका मातृ अज्ञानमें द्विगुण ३६० भ्रेनु

द्विदि ना स्नूपा- द्वादश वार्षिकत्रत,

गमन। ज्ञानतः उसका द्विगुण।

Vol. XIV 184

तदशक्तं वृशींदान । दक्षिण । १०८० कार्षावण वा २०० गो, असमर्थमें उतने मूल्यका स्वर्णादि । २०० कार्पावण ।

		गायश्चि त्त		
का मातृ-दुहितृ वा त स्तूषा गमन।	प्रायित । व अग्निमें प्रवेश कर प्राण त्याग । अथवा चौवीस वार्षिक वत । कामतः इसका द्विगुण । मातृ- प्रसृतिको भी इसी प्रकार वत कर्त्तंच्य है।	असमर्थमे घेतुवान । ३६० घेतु ।	तदश् कमें चूर्णीदान । १०८० कार्यापणके २ उतने मूल्यका स्वर्णादि ।	दक्षिण । .०० गो, असमर्थमें २०० कार्यापण ।
महीपातकः ।				
अकामतः ब्राह्मण	द्वादश वार्षिक वत । १ मरण, अशक्तमें द्विगुण	८० घेनु ।	५४० कार्यापण वा उतने	
कत्तृ क ब्रह्मवध । कावतः बाह्मण कत्त्र क	सरम, अराताम हिस्सुम हादश वार्षिक वत । ३	१६० धेन ।	मूल्यका स्वर्णादि । १०८० कार्घापण ।	१०० कार्यापण । २०० गो ।
त्रहान्ध	र द्वार्युर जाराजनस्था ।	(d a 4,3)	१०८० मामायण ।	400 att
ज्ञानतः ब्राह्मण कतृ क	ब्रह्मवध प्रायश्चित्त ।			
ब्राह्मणीगभैवध ।	अज्ञानमें उसका आधा	1		
ज्ञानतः ब्राह्मण कर्तृक		१८० घेतु ।	५४० कार्यापण ।	१०० गो वार्रे
शन्नु ब्राह्मणवघ ।				कार्यांपण ।
अनिच्छासे भ्रतिय	२४ वार्षिक व्रत।	३६० धेनु	१०८० कार्यापण ।	२०० गोवा २००
कतुक ब्रह्मवथ ।				कार्घापण।
अनिच्छासे वैश्य-		५४० घेतु ।	१६२० कार्यापण ।	रे०० गो वा २००
कत् क ब्रह्मवध ।	स्वेच्छासे उसका दूना			कार्यापण ।
अनिच्छासे शूद्र-		७२० धेनु ।	२१६० कार्षापण ।	४०० गो ।
कत् क ब्राह्मण-वध ।	स्वेच्छासे इसका दूना।		*	· ;
ब्राह्मणका सुरापान ।	जव तक मृत्यु न हो तव तक अग्निवत् उष्ण सुरा, गोमूल, जल व दुग्धपान । २४ वार्षिक वत, अज्ञानमें दसका भाधा ।	T 5	१०८० कार्षावण ।	२०० गी ।
क्षत्रियका पैधी	१८ वार्षिकव्रत ।	२०० घेनु	८१० कार्वापण ।	७५ गो ।
सुरापान ।	अज्ञानमें उसका आधा।		_ •	• •
वैश्यका पैधी	द्वादश वार्षिक वत,	१८० धेनु ।	५४० कार्यापण ।	१०० गो।
सुरापान ।	अज्ञानमें उसका आधा ।	. 3		
श्चानतः ब्राह्मणका गुवङ्गणा-गमन ।	२४ वार्षित वत, गुर्व- ङ्गनाको भी यही कर्त्तव्य है।	३६० धेतु ।	१०८० कार्यापण ।	२०० गो।

श्रामश्चित्रा

अतिपातक ।	प्रायश्चित्त ।	असमर्थमें घेतुदान ।	तद्शक्तमें चूणींदान ।	दक्षिणा।
अनवातक ।	द्वाद्श वार्षिक वत ।	१८० घेतु ।	५४० कार्यापण ।	१०० गी।
ढोंग। जैसे, शूद्रका अपनेको ब्राह्मण दत-				
लाना । अधीत चेद्विस्मरण,	द्वांदश वापिक व्रत।	१८० घेतु ।	५४० कार्पीपण ।	१०० गी।
वेदनिन्दा, कूटसाक्ष्य, सुहदुवध, गर्हितान्त-				
भीजन । सपिएडा स्त्री-गमन, ब्राह्मण-कुमारी-गमन, बएडालादि स्त्री- गमन ।	अज्ञानमें द्वाद्श वार्षिक, ज्ञानमें दूना ।	१८० घेनु ।	५४० कार्यायण ।	१०० गो ।
हपपात र । ब्राह्मण, श्लिय, चैश्य	त्रैमासिक वत ।	१२ भेनु । मतान्तरसे	र६ वा ५१	१० वृष, १० गो,
कतु क ज्ञानकृत ब्राह्मण का गी-वध ।	· अज्ञानकृत होने- में भाषा।	१७ धेनु ।	कार्यापण ।	अशकमें १५ कार्यापण।
शूद्र कर्नुं क्ष ब्राह्मण- स्वामिक गो-वध ।	त्रमासिक वत । अज्ञानमें उसका आभा ।	६ धेनु ।	२५॥ कार्यायण ।	१ गो, अशकमें १ कार्पापण ।
ब्राह्मण-क्षतिय-वैश्य कर् ^ड क क्षतियका गो-	वाण्मासिक वत । अज्ञानमें उसका	१२ धेनु ।	३६ कार्यापण ।	यथाशकि ।
वध ।	भाषा ।			
शूद्र कर्तृ क क्षतियका गो-वध ।	तैमासिक वत । अज्ञानमें उसका भाषा ।	६ धेनु ।	१८ कार्पापण ।	यथाशक्ति ।
द्विज कत्तुं क वैश्यका गं	ोवध । द्वैमासिक व	त, अज्ञानमें उसका आध	।। १० धेन । २० क	उपांतवा । मध्यस्यः ।
द्विजकर्तुं क शूद्रका गीर	वधा २ शाजापत्य	, अज्ञानमें उसका आधा	। २ धेन । ६व	तर्पापण । यथाशकि ।
शूद्र कर्षेक ब्राह्मणकी गर्भिणी कपिला वा वध	तैमासिक वर धेनु-	त, अञ्चानमें उसका आधा	। १७ घेतु। ५१ क	ार्पापण । १० वृष, १० गो । अशक्तमें १५ कार्पापण ।
हिज कर्तु क क्षतियकी गर्भिणी हिगुण पाण्मासिक व्रत, अज्ञानमें २४ घेतु । ७२ कार्पापण । यथाशक्ति । कपिला वा दोग्धी होमधेतु- उसका आधा । वध				

,

प्रायदिच**त्त**

श्रतिपातक ।	प्रामिश्वस्त ।	असमधीमें घेनदान	। तदशक्तीं चणिता	ा हिस्सा
शुद्र कर्तु क क्षतियकी गर्भि	णी पाण्मासिक व्रत, अज्ञानमें उसक	१२ धेन	। ३६ कार्यापण ।	यथाणकि ।
कपिला वा दुग्धवती हो।			. ((·
धेनुवध ।	·			•
द्विज कर्तृक वैश्यकी गर्भि	णो चतुर्पु णमासिक वत, अज्ञानमें उसव	ता २०धेनु	। ६० कार्यायण ।	यथाशक्ति ।
कपिला वा दोग्ध्री होमधेनु	- आधा।		,	
वध ।				
शूद्र कर्त्र क वैश्यकी गर्मिणी	ि द्विगुण मासिक वत । अज्ञानमें उसक	। १० घेतु ।	३० कार्पापण।	यथाशक्ति ।
कपिला वा दोग्ध्री होमधेनु	; आधा।			
वध ।				
द्विज कर् क यूद्की गर्भिणं	ो ८ प्राजापत्य। अज्ञानमें तद्रई	। ८ घेतु ।	२४ कार्यापण।	यथागृक्ति ।
कपिला वा दोग्ध्री होम-				
धेनुवध ।				
शूद्र कर्तुं क शूदकी गर्शिणी	८ ग्राजापत्य । अज्ञानमे उसका	८ घेनु ।	१२ कार्यापण ।	यथाशकि ।
कपिला वा दोग्ध्रीहोमधेनु	आधा ।			
वध ।	•			
द्विज कत् क अधम शूद्रका	२ व्राजापत्य । अज्ञानमें उसका आधा ।	२ धेतु ।	६ कार्यापण।	यथाशक्ति ।
गोवघ ।		•		
शूद्र कर्तृ क अधम शूद्रका	१ प्राजापत्य । अज्ञानमें इसका आधा ।	१ धेनु ।	३ कार्पापण।	यथाशक्ति ।
गोवध ।				
द्विज कतृ क शूद्र तरका	इतिकर्त्तंव्यताक	२ धेतु ।		
अपालन निमित्त गो-	प्राजापत्य । प्राजा-			र्थिके लिये देव
वध ।	पत्यद्वय ।		कार्याप	
द्विज कर्तृक शूद्रका	प्राजापत्य ।	२ घेतु ।	६ कार्पापण।	यथाशिक ।
अपालन-निमित्त गी-				•
वध ।			•	
गोका श्टङ्गभङ्ग, अस्थि-	दशरात वज्रवत । मासाद्ध यव-	१ घेतु ।	३ कार्पापण ।	यथाशकि।
भद्ग, चर्मनिर्मोचन और	पान । अथवा प्राजापत्य ।			
लांगूलछेदन ।			•	
ब्राह्मण कत्तु क चृपका	श्राजापत्यद्वय ।	२ धेनु ।	६ कार्यापण।	यथाशक्ति ।
शकटादिमें योजन ।				
डपपातक।	* ^ ~			
ब्राह्मण-भ्रतिय कत्तृं क	तैमासिक व्रत । अज्ञानमें	४५ धनु ।	१२५ कार्यापण ।	२५ गोल ।
ज्ञानकृत क्षतियवध।	उसका आधा ।			a mi annac
बैश्य कर्त्यु क क्षत्रिय-	षस्वार्षिक व्रत ।	२३ घंतु । ६	s)) कार्यापण । १	हे गा [,] अराया-
वध ।			म १	शा कार्वापण।

प्रायश्चित्र

श्रतिपातक।	41717.00	र्धमें घेतुदान	तदशक्तर्ये चूर्गीदान । ८०५ कार्यापण ।	। दक्षिणा। ७५ गो।
शूद्र कत् क क्षतवध ।	नवचार्पिक वत ।	१३ थन	1 Coddware	१३ गो, अशकमें
द्विज कर्नु क वैश्य-	सार्द्धवार्षिकवत ।		। ६७॥ कार्यापण ।	१२॥ कार्यापण ।
वध शूद्र कर्तृक वैश्य-	तैवार्षिक वत ।		। १२५ कार्यापण।	२५ गो ।
वध । द्विज कर्तृ क शूद्र-	नवमासिक व्रत ।	१२ घेतु	। ३३॥ कार्यापण।	७ गो, अशक्तमें ६। कार्यापण
वध ।	• ·	०० जेन	। २७० कार्यापण ।	५० गी ।
ब्राह्मण कर्तुं क ब्राह्मणी-	पड् वार्षिक महोत्रत ।	१० वधु	1 -700 -111 11 1	·
वध ।	क्षतियके द्विगुण,			
	वैश्यके तिगुण और			
	शूट्रके चतुर्गु [°] ण ।		•	📥 .
ब्राह्मण-श्रविय कर्नु क		८५ घेनु	। १२५ कार्णन।	२५ गो ।
क्षत्रिया-वध ।	वैश्यके द्विगुण, शूद्के तिगुण।			
द्विजकतुंक वेश्या यथ		१५ धेनु ।	४५ कार्यापण ।	८ गो, अशकर्मे ८।७६॥। कार्पापण ।
शूद्रावध ।	वार्षिक वतं ।	१५ धेतु ।	४५ कार्पापण । ८।	६ गो, भशकर्मे -६॥। कार्पापण ।
राजाका उत्तम गज-	पञ्चनीलगृक्ष दान ।	9	२५ कार्पापण ।	यथाशक्ति ।
	वासोयुग दान।			
	अहोरात उपवास, भन्तमं घृतघट दान ।		८ पण ।	यथाशकि ।
मार्जारादि और	त्राक्षी ःपान	9	१ कार्यापण ।	यधाशक्ति ।
गृहपिस वध ।	वा पादकृच्छ ।			
सामान्य पक्षिक्य ।	नकवत वा दो रत्ती रौप्य-	9	<) १३। पण ।	यथाशकि ।
	दान।			
ब्रात्ययाजन ।	प्राजाग्त्य	१ धेनु ।	३ कार्यापण ।	यधाशक्ति।
अमध्यमक्षण ।	चान्द्रायण (गुरुतर विषयमें)	८ घेतु ।	२२॥ कार्यायण ।	यथाशक्ति।
अभोज्यात्र भोजन।	प्राजापत्प (ज्ञानतः)	१ धेतु ।	३ कार्पापण।	यथाशकि।
	क्षतियका पादोन, वैश्यका अद्ध [°] और मूद्रका पाद ।			
नवश्राद्याक्षभोजन ।	चान्द्रावण।	र श्रीच । ः	२२॥ कार्यापण ।	यभागिक ।
	समी प्रायश्चित्त अद्ध और वाल, स्त्री तथ			
निर्देश है सर्व उसके	अभावार्त । कार्याका केरे के	ा देशका ।	ञ्च मा अद्ध पाद्धा गय	हा जहागाकी
निर्देश है, वहां उसके अभावमें १ कार्पापण होनेसे ही काम चल सकता है।				

ऊपर जिन प्रायश्चित्तोंका प्रयोग लिखा गया, वही प्राचीन मत है। आज कलके नच्य स्मात्तोंने उसमें बहुत हेर फेर कर दिया है। पहलेकी तरह अब कडोरता नहीं है। अध्यवहार्थ और व्यवहार्थ श्रव्ह तथा शुल्पानिकी प्रायश्चित-विवेक, काशीनाबके प्रायश्चित्ता न्युके खर सादि प्रविधे सपरापर प्रायश्चित्तांविष देखों।

Vol. XIV. 185

प्रायश्चित्ति (सं ० स्त्री०) प्रायः अध्ययं तपंसश्चित्तिः चित-भावे-किन् । प्रायश्चित देखो ।

प्रायश्चित्तिक (सं ॰ ति ॰) प्रायश्चित्तः कर्त्तं ब्यत्वेनास्त्य-स्य उन् । १ प्रायश्चित्तिह्, प्रायश्चित्तके योग्य । २ प्राय-श्चित्त संस्वन्धी ।

प्रायश्चित्ती (सं ० ति ०) प्रायश्चित्तः कत्तं यदवेनास्त्य-स्य इति । १ प्रायश्चित्तार्हं, प्रायश्चित्तके योग्पः । "अज्ञात्वा भूमशास्त्राणि प्रायश्चित्तं वदेत्तु यः । प्रायश्चित्ती भवेत् पूर्वं तत्पापं तेषु गच्छति ॥" (प्रायश्चित्ततत्त्व)

यदि कोई अज्ञन्यक्ति अमेशास्त्र जाने विना प्रायश्चित्त-की व्यवस्था दे, तो प्रायश्चित्ती अर्थान् प्रायश्चित्त करने-वाळे तो पापसे मुक्त होते हैं, पर उनका पाप व्यवस्थापक के ऊपर जाता है। इस कारण धर्मशास्त्रको अच्छी तरह जाने विना प्रायश्चित्तको व्यवस्था कभी नहीं देनी चाहिये। २ जो प्रायश्चित्त करे, प्रायश्चित्त-करनेवाला। प्रायश्चित्तमत् (सं० ति०) प्रायश्चित्त-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वा प्रावश्चित्तयुक्त।

प्रायश्चित्तीय (सं० ति०) १ प्रायश्चित्तसम्बन्धो । २ प्रायश्चित्त होम सम्बन्धो ।

प्रायश्चित्तीयता (सं ० स्त्री०) प्रायश्चित्तीय ुभावे-तल्-टाप् । प्रायश्चित्तीयका भाव वा भर्मे ।

प्रायस् (सं॰ अन्य॰) प्र-अय-असि । १ वाहुल्य । २ तपस्, ब्रेतादि ।

प्रायाणिक (सं) ति) प्रयाणाय हितं उक्। १ यातिक इन्यं, शंखं, चंचर भादि मङ्गल द्रव्य जो याताके समय आवश्यक होते हैं। (ति) २ प्रयाण सम्बन्धी, याता-सम्बन्धी।

प्रायातिक (सं॰ ति॰) प्रयातये हितं ठक्। याताकालमें हितकर द्रन्य।

प्रायास (सं ० पु०) देवविशेष ।

प्रायंक (सं ० कि०) प्रायेण प्रायं वा भविमिति प्रायं टक् ।

प्रायः होनेवाला, जो बहुधा या अधिकतासे होता है।

प्रायुद्धे पीन् (सं ० पु०) प्रायुधि प्रकृष्ट्युद्धाद्स्थाने हेपते

प्राव्हायते इति द्विष्-णिनि । भोटक, घोड़ा ।

प्रायोग (सं ० पु०) प्रयुज्यते शकटादौ प्र-युज-कर्मणि-

घज्, कुत्वं दीघे संब । शकटादिमें नियोगाह वृष, गाड़ी आदिमें जीतने लायक वैल ।

प्रायोगिक (सं ० ति०) प्रयोगं नित्यमईति छेदादित्वात् ठ्रम् । नित्यप्रयोगाह , जिसका प्रयोग नित्य होता हो । प्रयोज्य (सं ० ति०) प्र-भा-युज-णिच-यत् । १ प्रयोज्जनाई, प्रयोगमें आनेवाला । (पु०) २ मिताक्षरा आदि धर्मशास्त्रोंके अनुसार वह वस्तु जिसका काम किसीको नित्य पड़ता हो । जैसे, पढ़नेवालेको पुस्तका-दिका, रूपकको हल वैल आदिका और योद्धाको क्रमशाः भस्त शस्त्रादिका इत्यादि । ऐसी वस्तुओंको शास्त्रमें विभाजनीय नहीं माना है । विभागके समय वह वस्तु उसीको मिलती है जिसके कामको वह हो अथवा जो उसे अपने काममें लाता रहा हो या जिसकी उससे जीविका चलती हो ।

त्रायोदेवता (सं॰ पु॰) सर्जमान्य देवता, वह देवता जिसे सव मानते हों।

प्रायोद्घीप (सं॰ पु॰) प्रायदीप देखी ।

प्रायोपगमन (सं ० पु०) अनुशन व्रत द्वारा प्राण परि-त्याग करनेका प्रयंत्त, भूकों मर कर जान देना । प्रायोपिष्ट (सं ० ति०) प्रायेण मरणार्थमनशनेन उप-विष्टः । प्रायोपवेशविशिष्ट, जिसने प्रायोवेश व्रत किया हो ।

प्रायोवेश (सं ० पु॰) प्रायेण मृत्युनिमित्तकानशनेन उप-वेशः स्थितिः। सन्यासपूर्वं क भनशनस्थिति। संन्यास-का अवलम्बन करके जब तक मृत्यु न हो, तब तक उप-वासरूप वत।

प्रायोपवेशन (सं ॰ हो॰) प्रायेण मृत्युनिर्मित्तकानशैनेन उपवेशनं प्रायोपवेशवत ।

प्रायोपचेशनिका (सं ० स्त्री०) प्रायोपचेशनवत । ः ः प्रायोपचेशिन् (सं ० ति०) प्रायोपचेश अस्त्यर्थे इनि । प्रायोपचिष्ठ, जिसने प्रायोपचेश वत किया हो ।

प्रायोपेत (सं • ति •) प्रायः प्रायोपवेशः तेन उपेतः। प्रायो-पवेशनयुत, प्रायोपवेशन व्रतका व्रती।

प्रारब्ध (सं ॰ क्ली॰) प्रकृष्टमारब्धं खकार्यजननायेति। १ शरीराम्मक अदृष्टविशेष, भागा, किसमत। तव तक प्रारब्ध शेष नहीं होता, तव तक सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु आदि अवश्यम्मानी है। ्र "अवस्यमेव भोक्तन्यं कृतं कर्म शुभाग्रुः । नाभुकं ख़ियते कर्म कल्पकोटिशतैरिप ॥ (मनु)

शतकोटि कल्पमें भी कर्मका श्रय नहीं होता। इस कारण प्रारब्ध कर्मके भोग द्वारा ही क्षय हुआ करता है। परन्तु यदि विशुद्धशान उत्पन्न हो जाय, तो प्रारम्य कर्म ं कुवतेऽ द्वीन!" (गीता) २ तीन यकारके कर्मीमेंसे कृतारम्भ, जो आरम्भ हो जुका हो । 🐰

प्रारिष्य (सं ० स्त्री०) प्र-आ-रस्म-किन् । १ गजवन्धनरञ्ज दाथोंके वांधनेकी रस्ती। २ आरम्म, शुद्ध।

्रगारम्म (सं ० पु०) व्र-आ-रभ-भावे-चत्र् सुम्ब । १ प्रकर्ष-इपसे बारम्म, शुद्ध । "प्रारम्भे कर्मणां विद्यः पुएडरीकं ।समरेद्वरिम्।" (समृति)

कर्गके प्रारम्भमें पुण्डरीक हरिका स्मरण करना चाहिये। प्रारभ्यते इति प्र-आ-रभ्-कर्मणि घञ्, मुम्च। २ क्र्म । प्रकृष्ट आरम्मो योगी यस्य । ३ योगी । ४ आदि । प्रारम्भण (सं ० ह्वी०) प्र-क्षा-रम-स्युद्-मुम्च । आरम्भण, शुक्र करना।

प्रारम्भिक (सं ॰ ति॰) १ त्रारम्भ सम्बन्धी, प्रारम्भका । २ भादिम। ३ प्राथमिक।

त्रारोह (सं॰ ति॰) प्ररोहशीलमस्य छतादित्वान् ण । 😁 धा-1-२) प्ररोहणशील ।

प्राजीयिता (सं । ति ।) दान करनेवाला, दानी ।

प्रार्जु न (सं o पुo) एक प्राचीन देशका नाम । :

प्रार्ण (सं १ क्वीं०) प्रकृष्टमुणं वृद्धिः । ् १ प्रकृष्ट ऋण, वहुत क्तर्ज । (ति॰) प्रकृष्टं अपूर्ण यस्य प्राद्दि बहुन्री॰ । २ प्रकृष्ट . भ्णयुक्त, जिसे ज्यादा कर्ज हो।

प्रार्थ (सं ॰ पु॰) सज्जा, असवाव ।

प्रार्थक (सं ॰ ति ॰) प्रार्थयतीति प्र-अर्थ-ण्डुल ्। प्रार्थना-ः कारी, प्रार्थना करनेवाला ।

प्रार्थन (स'० हो०) प्र-सर्थ ल्युट् । याचन, प्रार्थना करना, , मांगना । पर्याय अभिशस्ति, याचना, अर्थना, प्रार्थना । प्रार्थना (चं॰ ख़ी॰) प्र-अर्थ-णिच्-युच् । १ याचन, चाहना,

् मांगना । २ हिंसा । ३ साहित्यदर्पणीक गर्भाङ्गमेद । ४ किसीसे नम्रतापूर्वक कुछ कहना, विनती । 🥱 अभि-ः शुभ वा अशुभ जो सव कार्य किये जाते. हैं उनका 🕒 यान, चढ़ाई। ६ अवरोध, घेरा डाळना । ७ तन्तसारके अवश्य सोग करना पड़ता है। कर्मका भोग हुए विना । अनुसार एक मुद्राका नाम। इस मुद्रामें दोनों हाथोंके पंजीकी उंगलियोंकी फैला कर एक दूसरे पर इस प्रकार रखते हैं, कि दोनों हाथोंको उंगलियां यथाक्रम एक दूसरे-के ऊपर रहती हैं। विशेष विवाण मुदा शब्द में देखी।

नाग हो जाता है। "ज्ञानानिः सर्वकर्माणि भस्पसात् । प्रार्थनापतः सं • पु •) यह पत जिसमें किसी प्रकारकी प्रार्थना लिखी हो, निवेदनपत, अर्जी।

बह्दंजिसका फलमोग भारम्म हो चुका हो। ु(ति॰) ३ वार्थनासमाज (सं॰ पु॰) एक नवीन समाज या सस्प्रदाय। इस मतके अनुवायी दक्षिणमें वस्वईकी और अधिक हैं। इस मृतके सिदान्त ब्राह्मसमाजसे मिछते ज्ञुछते हैं। इसके अनुयायां जाति पांतिका भेद नहीं मानते और न मृचिपूजा आदि करते हैं।

> प्रार्थनीय (सं॰ क्ली॰) प्रार्थयते इति प्र-अर्थ णिच् अनीयर् । द्वापर युग। (ति०) २ प्रार्थना क्रूरने योग्य, निवेदन करने लायक ।

प्रार्थायितच्य (सं ० वि०) प्र-भर्थि-णिच्-तन्य। प्रार्थानीय, प्रार्थना करने योग्य।

प्रार्धायेता (सं ० ति ०) प्र-अर्ध-णिच्-तृच् । प्रार्थनाकारी, प्रार्थना करनेवाला ।

प्रार्थित (सं ० ति ०) प्रार्थ्यते स्मेति प्र-अर्थ-क । १ याचित, जो मांगा गया हो। २ शतुसंबद्ध, दुश्मनसेंधिरा हुआ। ३ अभिहिन, कहा हुआ। ४ हत, मारा हुआ।

पार्थिन् ('सं ॰ ति॰) प्रार्थयते प्र-सर्थ-णिनि । १ प्रार्थना-शील, प्रार्थेना करनेवाला। २ निवेदक, निवेदन करने-:वाला । ३ रज्युक ।

प्रार्थ्य (सं० ति०) प्रार्थनाके योग्य। प्राथ्यंक (सं • ति •) प्रार्थनाकारी।

प्रालम्ब (सं • ऋरे •) प्रालम्बते इति लवि-अवसंशने अच् । १ कर्ड्रेशसे ऋञ्जलस्वमान माल्य, वह माला जो गर्दनसे छाती तक लटकती हो । २ रस्सी आदिके ढंगकी यह वस्तु जो किसी ऊंची वस्तुमें टंगी और लटकती हो। पालम्बिका (सं• ,स्रो•) पालम्बते इति अच्, संज्ञायां कन्, टापि अत इत्यं। स्वर्णादि रचित्,लनिएडका, गर्छेमें पहनने-का सोनेका,हार।

प्रालेपिक (सं० ति०) प्रलेपिकामा धर्मम्। प्रलेपकार्या सम्बन्धीय । प्रालेय (सं ० क्ली०) प्रकर्षेण लीयन्ते लीना भवन्ति पदार्था अह्रेति प्रलयो हिमालयस्तत आगतं प्रलय-अण् (केवंयः नित्रयुत्रकयाणां यादेरिषः । पा ७।३।२) इति यस्येयादेशः । १ हिम, वर्फ । २ भूगर्भशास्त्रानुसार वह समय जव अत्यन्त हिम पड़नेके कारण उत्तरीय घ्रुव पर सव पदार्थ नष्ट हो गये और वहां शीतकी इतनी वृद्धि हो गई, कि अब कोई जन्तु वा वनस्पति वहां नहीं रह सकती। प्रालेयरिम (सं॰ पु॰) प्रालेयस्य रिमर्थस्य । चन्द्रमा । प्रालेयरौल (सं॰ पु॰) प्रालेय नाम शैलः । हिमवान् । प्रालेयांशु (सं॰ पु॰) प्रालेयानि हिमानि तद्वत् शीता वा क्ष'श्वो यस्य । चन्दमा । प्रालेयावि (सं ॰ पु॰) प्रालेय नाम अद्रिः । हिमालय । प्रावचन (सं । ति ।) प्रवंचन वा स्वरसम्पर्कीय। प्रावट (सं० पु०) प्र-अव-अट्-अच्, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। यव, जी। प्रावण (सं० क्ली०) प्र-क्षा-वन-संभक्ती करणे-घ, 'प्रणि-रित्यादि णत्वं। खनित्र, गैनी। प्रावणि (सं॰ स्त्री॰) प्र-अव-अनि । प्रकृष्ट भवनि । प्रावर (सं॰ पु॰) प्रावृणोत्यनेनेति प्र भा-वृ-करणे अप्। प्राचीर, चहारदीवारी। प्रावरक (सं० पु०) १ जनपद्भेद । २ वहिर्वासः संयुक्त । प्रावरण (सं॰ क्षी॰) प्रावृणोत्यनेन गात्तमिति प्र-आ-वृ-करणे ल्युट्। १ उत्तरीयवस्त्र, ओढ़नेका वस्त्र, चादर। २ प्रच्छादन, ढकन । प्रावरणीय (सं॰ क्ली॰) १ आच्छादनवस्त्र, चादर । रित्ति॰) २ जिससे आवरण किया जाय। प्रावार । सं । पु । प्रावियते गातमनेनेति प्र-आ-वृ-करणे-घञ्। १ उत्तरीयवस्त्र। २ एक प्रकारका कपड़ा जो प्राचीनकालमें वनता था और वहुमूल्य होता था। प्रावारक (सं॰ पु॰) उत्तरीयवस्त्र, चादर। प्राचारकर्ण (सं० पु०) उल्लूकमेद, एक प्रकारका उल्लू। प्रावारकीट (सं० पु०) प्रावारस्य कीटः । कीटमेद्, कपड़े -में लगनेवाला एक प्रकारका कीड़ा। प्रावारिक (सं० पु०) वह जो उत्तरीयवस्त्र वनाता हो।

प्रावास (सं॰ ति॰) प्रवासे दीयते कार्यं वा व्युष्टादित्वा-दण्। १ प्रवासमें देने योग्य। २ प्रवासमें कार्य। प्रावासिक (सं॰ ति॰) प्रावासाय प्रभवति सन्तापादि-त्वात् । उञ् । १ प्रवाससाधन । प्रवासे साधुः गुड़ा-दित्वात् ठञ्। २ प्रवासमें साधु। प्रावाहणि (सं० पु०) प्रवाहणका अपत्य । प्रावाहणेय (सं॰ पु॰) प्रवहणस्य अपत्यं (शुस्रादिभ्यश्च ! पा 8।१।१२३) इति अपत्यार्थे ठक्। प्रवहण ऋषिका अपत्य, जैवल ऋषिका अपत्य । प्रावाहणेयक (सं॰ पु॰) प्रावाहणेय-स्वार्थे क। प्रावाह-णेय, प्रावाहण ऋषिका अपत्य । प्रावाहणेयि (सं॰ पु॰ स्त्री॰) प्रवाहणस्य गोतापत्यं इत्र्, ततो वृद्धिः। प्रवाहण ऋषिका गोतापत्य। प्रावितु (सं॰ ति॰) प्र-अव-तुण्। प्रकृष्टक्रपसे रक्षक, रक्षा करनेवाला। प्रावित (सं ० क्षी०) साभ्रय, किसीके आश्रयमें रहना। प्राविष्ट्य (सं॰ पु॰) क्रीश्चद्वीपके एक खएडका नाम। प्राची (सं० ति०) अवहित, सावधान। प्रावीण्य (सं० क्ली०) प्रवीण-ध्यण्। प्रवीणता, कुश-लता । प्रावृट् (सं० पु०) १ वर्षाऋतु । २ पुनर्नवा । ३ अमृत-सारलीह । प्रावृद्कालवहा (सं ० स्त्री०) नदीभेद । प्रावृडत्यय (सं ॰ पु॰) प्रावृषः अत्ययो नाशो यत । शरइ-ऋतु । प्रावृत (सं ० वि०) प्रावियते स्मेति प्र-था-वृ-क । आच्छा-दन, ओढ़नेकाा कपड़। प्रावृति (सं ० स्त्री ०) प्रावृणोति प्रकर्षेण आच्छादयति दृष्टिपथमनयेति प्र-आ-वृ-करणे-क्तिन् । १ प्राचीर, येरा । २ मल जो आत्माकी दूक् और दूक्शिकको आच्छादन करता है। ३ आड़, रोक। प्रावृत्तिक (सं० पु०) प्रवृत्तौ हितः ठक्। प्रवृत्तिवाहक दूतमेद, वह दूत जो एक स्थानके समाचारको दूसरे स्थानमें पहुंचानेका काम करता है। प्रावृष् (सं ० स्त्री०) प्रकर्षेण आ-सम्यक् प्रकारेण च वर्ष-तीति प्र-आ-चृष्-किष् प्रावर्णत्यतेति आधारे किष्वा,

वर्णणिमिति वृद्, प्रकृष्टा वृद्त (निह्यृतिवृपीति । पा ६।३।११६) इति पूर्वायदस्य दोर्घः। वर्षाकाळ, आवण भौर भादमास ।

प्रावृपा (सं॰ स्त्री॰) प्रावृप-हरून्तात् टाप् वा । वर्षाकार । प्रावृपायणी (सं • स्त्री •) प्रावृपायां अयनमुद्रभवो यस्याः, गौरादित्वात् ङीप्। १ कपिकच्छु, मर्काटी, वानरी। २ विपखोपरा ।

प्रावृपिक (सं॰ पु॰) प्रावृपि वर्षाकाले कायति शब्दायते इति कै-क, अलुक्समासः। १ मयूर, मोर। (ति०) २ जो वर्षा ऋतुमें उत्पन्त हो। ३ वर्षाकाल सम्बन्धी। प्रावृषिज (सं॰ पु॰) प्रावृषि जायते जन-ड, अञ्जक्स॰ । वह तीक्ष्ण यायु जो वर्षाकालमें चलती है, अंआवात। प्रावृषीण (सं • ति •) प्रावृषि भवः बाहुं ख । १ वर्षाकालः भव, वर्षाकालमें उत्पन्न होनेवाला । २ वर्षाकाल-सम्बन्धी।

प्रावृषेण्य (सं॰ पु॰) प्रावृषि भवः, प्रावृट् देवतास्य वेति प्रावृष् (कालेम्यो भववत् । पा ४।२।३४) इति एगयः । पा ४।३।१३) इति एण्यः । १ कव्म्ववृक्ष । २ कुट ऱ-युक्ष, कुरैया। ३ धाराकदम्ब। ४ ईति। ५ वर्षाकालमें देय करादि, वह कर जो वर्षाकालमें दिया जाता हो। ६ प्रचुरता, अधिकता । 🧕 (त्रि॰) वर्षाकालमें उत्पन्न, वर्षाकालका ।

प्रावृषेण्या (स'ः स्त्रीः) प्रावृषेण्य-टाप् । १ कपिकच्छु, केवाँच। २ रक्त पुनर्णवा।

प्रावृषेय (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम । (ति०) २ वर्षाकालमें होनेवाला।

प्रायुष्य (सं ॰ क्ली॰) प्रायृषि भवमिति यत् । १ वैदूर्थ । २ कुटज । ३ घाराकदम्य । ४ विकएटक । (ति०) ५ जो वर्षाकालमें हो।

प्रावेण्य (सं० क्ली॰ एक प्रकारका ऊनी वस्त्र। प्राचेप (सं ॰ ति ॰) प्रवेपी, कम्पनशील ।

प्रावेशन (सं क्री) प्रवेशने दीयते तत कार्य व्युद्या-दित्वादण्। प्रवेशनमें कार्य।

मावेशिक (सं० ति०) प्रवेशाय साधुः ठञ्। प्रवेश-साधन, प्रवेश करनेमें सहायता देनेवाळा ।

प्रामाज्य (सं॰ ति॰) प्रमञ्जा सम्बन्धी ।

Vol. XIV. 186

प्राश (सं॰ पु॰) प्र-अश-भोजने-घञ् । प्ररूष्ट भोजन । प्राशन (सं॰ क्की॰) प्र-अश-भावे-ह्युट् । १ भोजन, खाना । २ चलना ।

प्राशनीय (सं० ति०) प्र-अश-अनीयर्। प्रकृष्टह्रपसे भोजनोय, खानेके योग्य।

प्राशन्य सं • पु •) प्राशने हितः यत् । प्रकृष्ट भक्षणमें हित ।

प्राशस्त्य (सं॰ क्षी॰) प्रशस्त-ष्यण् । प्रशस्तत्।, प्रशस्त होनेका भाव।

प्राशास्ता (सं॰ क्ली॰) प्रशास्तर्भावः कर्म वा उद्गादित्वात् अञ्। १ प्रशास्ता नामक ऋत्विजका काम । २ प्रशास्ता-का भाव।

प्राशित (सं क्की) प्रकर्षेण अशितं यत । १ पितृयह तर्पण । २ भक्षण । (ति०) ३ मक्षित, खाया हुआ । प्राशितु (सं॰ ति॰) प्र-भश् तुच्। प्रकृष्टकपसे भक्षक। प्राशित (सं॰ ही॰) यहोंमें पुरोडाश आदिमेंसे काट कर निकाला हुआ छोटा टुकड़ा जो ब्रह्मोद्देशसे अलग करके प्राशिताहरण नामक यज्ञपातमें रखा जाता है। यह भाग जी वा पीपलके गोदेके वरावर निकाला जाता और प्रायः नाक्की ओर काटा होता है।

प्राशिताहरण (सं० ह्यों) प्राशितं हियतेऽनेन करणे व्युट्। यज्ञके एक पातका नाम। यह गोकर्णके आकारका होता है और इसीमें प्राशित रखा जाता है। पुगिशितिय (सं॰ ति॰) प्राशित सम्बन्धी।

प्राशी (सं॰ त्रि॰) प्रकर्षेण अश्नाति-त्र-अश्-णिनि । म्छष्टकपसे भक्षक, खानेवाला ।

प्राशु (सं ० त्रि०) प्र-अश्-उन् । १ भक्षण, स्नाना । २ मक्रप्ट, शोध ।

प्राश्टङ्ग (स'ं वितः) प्रकृष्टं श्टङ्गमस्य वेदे दीर्घः। प्रकृष्ट-थङ्ग युका।

प्राश्निक (सं ॰ पु॰) प्रश्नाय तदुत्तरप्रदानाय साधुरिति प्रश्न-उक्। १ सम्य, समाकी कार वाई करनेबाला। (त्नि॰) २ प्रश्नकर्त्तां, पूछनेवाला ।

प्राश्नीपुत (सं॰ पु॰) यजुर्वेदीर्य धर्मप्रवत्त[°]क ऋपिमेद्। प्राश्य (सं॰ पु॰) अर्कप्रकाशके अनुसार वे पशु जो गांवमें रहते हैं। जैसे, गाय, भैंस, वकरी, भेड़ा, आदि।

प्राश्वमेध (सं • पु॰) पूर्नेहत अध्वमेध याग। प्राष्ट्रिष्ट (सं ० ति०) लघुवर्णद्वययुक्तः स्वरिदुभेद । प्राष्ट्रमणे (सं ० पु॰) प्रकर्षेण प्रकृष्टः प्राप्ती वर्णः। त्रिन-ंबण, नाना वर्ण । प्रास (सं • पु •) प्रास्थते क्षिप्यते इति प्र-अस् (इल्ला । ं पा ३।३।१२१) इति घम्। कुन्तास्त्र, प्राचीनकालका एक प्रकारका भाला। इसमें सात हाथ लम्बी बांसकी छड़ लगतो है और दूसरो नोक पर लोहेका नुकीला फल रहता है। इसका फल वहुत तेज होता है जिस पर स्तवक चढ़ा रहता है, वरछी। श्रासक (सं•पु•) प्रास-संज्ञायां खार्थे वा कन्। १ प्रासास्त्र, प्रास नामका अस्त्र। २ पाशक, पांसा। प्रासङ्ग (सं• पु•) प्राज्यते इति प्र-सञ्ज-घञ्, उपसर्ग-स्येति दोर्घः। १ युग, हलका जुआ वा जुआठा जिसमें ं नये वैल निकाले जाते हैं। २ तराजूकी डंडी। ३ तुला, तराज् । ' 'प्रासङ्गिक (स'० ति०) १ प्रसङ्ग-सम्वन्धी, प्रसङ्गका । २ ' प्रसङ्घागत, प्रसङ्घ द्वारा प्राप्त । 🐪 🗥 🗥 'प्रासङ्कर' ('सं'० पु०')' प्रसङ्घं वहतीति प्रासङ्घ-(तद्वहति रथप्रासं । पा ४।४।७६) इति यत्। युग-वहनकारो वृष, वह वैल जो जुआमें लगाया गया हो। प्रासच (सं • पु •) १ आकृस्मिक प्रभूत वृष्टि, काफी वर्षा। "२ वन्या, बाढ़। प्रासन (सं ० क्ली०) विश्लेपण, फॅकना। पासद ('सं ॰ पु॰') शतुओंका प्रकर्ष हर्पमें अभिभविता। प्रासाद (सं॰ पु॰) प्रसीदन्त्यस्मित्रिति प्र-सद (इन्प्रः) पा ें शहीर २१) इत्याधारे घञ्। (उपसग⁸स्य षठन्यमनुष्य बहुल) पा ६। : । १२१) - इति उपसर्गस्य दीर्घः । ११ देवताः और - राजाओंका यह, पुराणोंमें केवल राजाओं और देव-ताओंके गृहको प्रासाद कहा है। 💯 😘 "प्रासादानां लक्षणन्तु वक्ष्ये शौणक ! तच्छ णु । 🖰 ¹³⁷⁷⁷ चतुःपष्टिपदं कृत्वा दिग्विद्ध्पुण्यक्षितम्॥¹¹³⁷ ः 🗼 🏸 ः (ःगर्हडुपु० ४७ अ०) देवप्रासादका विषय-गरुडपुराण, अग्निपुराण और · विश्वकर्म आदि प्रन्थोंमें सविस्तार लिखाःहै विश्वकर्म 1 क्रमार अञ्चल हेल्या र अर्थेष्ट असार हा दे **व परह दिखी ।**

२ बहुत वेड़ा मकान, महल । ३ महलकी नेही, ं कोंठेके ऊपरकी छत । ४ बौद्धोंके संघाराममें बहु बड़ी शाला जिसमें साधुलीग एकत होते हैं। प्रासादकुषकुट (सं० पु०) प्रासादस्य देवसूभुजी गृहस्य कुक्कुटइव, सर्वदा प्रासाद्विचारित्वाद्स्य तथात्वं । पारावत, कवृतर। प्रासादपरामन्त (सं ० पु०) मन्त्रभेद । प्रासाद्प्रस्तर (सं ॰ पु॰) प्रासाद्तल, घर (आदिकी सम-तलः छत्। प्रासादमण्डना (स'० स्त्री०) १ प्राचीन कालका एक प्रकार-का रंग । इस रंगसे प्रासादके ऊपर रँगाई होती थी। यह पीला या लाल होता था और इसकी रंगाई बहुत दिनों तक टिकती थी । , २ हरिताल । 🤝 🕒 📆 🚜 प्रासादश्रङ्गः (स o क्की o) प्रासादका चूड़ादेशः राज्भवन-का शिखर। प्रासादारोहण (.सं॰ क्ली॰ा) प्रासाद वाः अट्टालिक्स्में प्रवेश । 👵 🔻 😕 . .. प्रासादिक (सं० ति०) १ दयालु, ऋपालु । २ हिन्तर, अञ्छा । ३ जो, प्रासादमें दिया जाय । ४ प्रासाद-सम्बन्धीः। प्रासादीय (सं ० ति०) प्रासाद सम्पर्कीय । 🚎 🚋 प्रासाह (सं ० स्त्री०) प्रबल, वलवान् । 😘 🚓 🚉 प्रासिक (सं: ० पु ० :) प्रासः प्रहरणमस्येति प्राप्त-(प्रहर्-णम्। पा ४।४।५७) इति ठक्ः। त्रासास्त्रधारीः, वह जिसके शास प्रासःया भाला हो ।ः इसका पर्यायःकौन्तिकःहै,।ः प्रांसेनजिती (सं ० स्त्री०) प्रसेनजितका कन्यापतेयः। 🕫 प्रासेव (सं ० पु०), अध्वसज्जाका अङ्गमेदः वह रस्सी जी 🤈 घोड़े ने साजमें समितित हो 📖 🕬 🥫 🕫 🥃 प्रास्कण्व (सं ० स्त्री०) १ प्रस्कण्व सम्बन्धीय । (ज्ञी०) २ सामभेद् । १००० १० व प्रास्तारिक (सं ० ति०) प्रस्तारे व्यवहरति-डक् । 🗥 जिसकाः व्यवहार प्रस्तारमें हो। २ प्रस्तारसम्बन्धीं हि प्रास्थानिक (सं ० ति०) प्रस्थाते साधुः उभ् । वह पदार्थे . जो प्रस्थानके सुमय मङ्गलकारक माना [.]जाता हो । जैसे, शङ्खकी ध्वनि,।देही; मछली आदि । 🐪 🧐 🐠 प्रास्थिक (संकतिक) प्रस्थ-(वम्भवत्यबहरति प्रवतिकाम det .717. 156

शशास्त्र) इति उण् । १ प्रस्थ सम्बन्धीः। २ जो प्रस्थके हिसाबसे खरीदा गया हो। 📑 अवहारक। ४ पाचक। (क्ली॰) ५ प्रस्थमित धान्यवपनाधारक्षेत, भूमि। प्रस्थपरिमित थान्यादि समावेशक । ७ प्रस्थके निमित्त । ८ प्रस्थका संयोग। 📭 प्रस्थका उत्पात। त्रास्पेच्टस् (अ'o go) वह छपा हुआ पत जिसमें आरम्भ होनेवाले किसी बड़े कार्यका विस्तृत विव्रण और उसकी कार्यप्रणाली आदि दी हो। प्राप्नवण (सं° वि°ं)१ प्रस्रवणमें उत्पन्न। (पु॰)२ प्रस्नवणका अपत्य, सरस्वती ,नदीका उत्पत्तिस्थान। प्राह् (सं॰ पु॰) प्रकर्षेण आहेति शब्दोऽत । नृत्योप-देश। 🗀 🔭 प्राहारिक (सं ॰ पु॰) नगररक्षक कर्मचारिविशेष, पहक्या, चौकीदार। प्राहुण (स°० पु• स्त्री०) अतिथि, मेहमान, पाहुना । · प्राहतायन (सं ० पु०) प्रहतस्य गोतापत्यं अभ्वादिभ्यः क्ष्म । (-पा.श्रार्।११०) प्रहतका गोलापत्य । पाह (सं• पु॰)-पृथमञ्च तदहङ्गोति (राजाहासिक्रिभ्यस्य न्। पा पाधार।) इति टच्। महोहे पर्तेभ्या । पा धाधार अतः अहोदेशः । (अहोऽदन्तात् । पा ८।४।०) इति णत्वं । , १ पूर्वाह । २:तद्भिमानिनी देवता । (ति०) ३ प्रकृष्ट-द्नियुक्त। शाहः (सं अव्य) पूर्वाहमें। प्राह्मेतन (सं ॰ ति ॰) प्राह्मे भवः (सायं चितं प्राह्मः प्रगेऽ-ब्युयेभ्यप्दुदुव्ली तुट्च । ्पा शश्रश्र) इति-टयु, तुट्य। पूर्वाहसम्बन्धी । प्राह्ने तरां (सं॰ भन्य॰) द्रयोरतिशयेन प्राह्ने 'किमेव्याच्च्या-द्रव्ये चतरा चतमां इति मुख्यवधिस्तात् चतरा । अति-प्राहृाद (सं • पु •) प्रहृाद मर्थात् विरोचनकी सन्तान । प्राह्मदि (स'• पु•') प्रह्मदिका अपत्य । पिटर (अ'o पुo) १ वह जो किसी छापेखानेमें रह कर ें छापनेका काम करता हो, छापनेवाळा । २ वह जो किसी छापेखानेमें छपनेवाली चीजोंकी छपाईका जिम्मेदार हो । प्रिटिंग (अ∙.स्त्री०) छापनेका काम, छुपाई । विदिग्रह क (अ १, छो(०,) दाइप्के छापनेको स्यादी । ,, पीतशालक वृक्ष, पियासाल नामका पेड़ । २ केलिकदस्त्र,

प्रिटिंगप्रे स (अं ० स्त्री०) सीसेके अक्षर या टाइप छापने-की वह कल जो केवल हाथसे चलाई जाती है। मुहायन्त्र देखी । प्रिटिंगमशीन (अं ० स्त्रो॰) सीसेने अक्षर या टाइप छापने-की कल । यह साधारण हाथकी कलकी- अपेक्षा वहुत अधिक काम करतो है और जो हाथ तथा इंजिन दोनोंसे चलाई जा सकती है। मुदायन्त्र देखो। प्रिस (अ॰ पु॰) राजकुमार, शाहजादा। प्रिस आव वेवस (अं० पु०) इङ्गलैएडके राजाके बड़े लड़केकी उपाधि, इङ्गले एडके युवराज । प्रिंसिपल (सं ॰ पु॰) १ किसी वड़े विद्यालय या कालिज आदिके प्रधान अधिकारी। २ वह मूलधन जो किसीकी उधार दिया गया हो और जिसके लिये व्याज मिलता हो। प्रिय (सं ॰ पु॰) त्रीणातीति त्री (इगुवधझात्रीकृत: कः । पा ३।१।१३५) १ भर्ता, खामी। २ जामाता, दाभाद। ३ कार्त्तिकेय, स्वामिकर्तिक। 8 मृग्विशेषः, एक प्रकारकाः हिरन। - ५ ऋदिनामौपध, ऋदि नामकी ओपधि। ६ जीवक नामकी ओपधि। ७ धर्मातमा और मुमुक्षुओंको प्रसन्न करनेवाला और सवकी कामना पूरी करनेवाला ईश्वर । ८ हित, भलाई । ६ वेतसलता, वे त । १० हरिताल । ११ प्रियङ्ग, कँगनी । १२ धाराकदस्त । (ति०) १३ जिससे प्रेम हो, प्यारा। १४ मनीहर, जो भला जान पड़ें। प्रियंवद् (सं 🌼 पु॰) प्रियं वदतीति वद् (प्रियनशे बदः स्वच् । षा ३।२।३८) इति खच् मुम् । १ खेचर, आकाशचारी । २ गन्धवंभेद् । (ब्रि॰) ३ प्रियभाषी, मधुर ब्रचन बोळनेवाळा । दानसागरमें ळिखा है, कि जो सहस्र गो अथवा भूमि या सुवर्ण दान करते हैं, परजन्ममें वे ही प्रियवादी होते हैं। प्रियंबदा (सं.० स्त्री०) १ प्रियवादिनी । २ द्वादश अक्षर-पादक छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें वारह अक्षर रहते हैं। ३ शकुन्तलाकी एक सखीका नाम। ४ जाति-पुष्पवृक्ष । प्रियक (सं० पु॰) प्रिय स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १

कदमका पेड़ । ३ घाराकदम्व । ४ महाकदम्व । ५ विलेश्य मृगविशेष, चितकवरा हिरन जिसके रोएँ रंग विरंगे, मुलायम, वड़े और चिकने होते हैं । ६ पक्षिविशेष । ७ अलि, भौरा । ८ प्रियंगु, कंगनी । ६ छुङ्कुम, केसर । १० असन वृक्ष । ११ तिन्दुकवृक्ष । १२ स्कन्दानुचर-विशेष ।

प्रियकर (सं ० ति ०) प्रिययोग्य।

प्रियकर्मन् (सं ० क्की०) प्रियं कर्म कर्मधा०। हितकार्यं, हितकर्मं।

प्रियकाङ्क्षी (सं ० ति०) शुभाभिलापी, भला चाहनेवाला, हितकारी।

प्रियकाम (स' ० लि ०) प्रियः कामो यस्य । हिताभिलापी, भला चाहनेवाला ।

प्रियकाम्य (सं• पु॰) १ उद्भिहमेद् । (Terminalia Tomentosa) २ पीतशालयृक्ष ।

प्रियकार (सं ० ति ०) हितकारी, शुभचिन्तक।

प्रियकारक (सं ० ति०) हितकारक ।

प्रियकारिन् (सं० ति०) प्रियं करोति प्रिय-क्र-णिनि । हितकारोमात ।

प्रियकृत् (सं ० ति ०) प्रियं करोति छ-किप्-तुक्च। १ प्रियकारी। (पु०) २ विष्णुका एक नाम।

प्रियकोशल (सं॰ पु॰) १ पियालयुक्ष । २ अक्किका वृक्ष । प्रियक्षत्र (सं॰ ति॰) प्रीणयितृवल, जो प्रणयके साथ शासन करें।

प्रियङ्कर (सं ० ति०) प्रियं करोतीति प्रिय-क्ट-(धेमिष्रियम रे-ऽण् च। पाः।२।४४) इति चकारात् त्वच् सुम्। १ प्रियकारक। (पु०) २ दानयियरेष, एक दानवका नाम। ३ वृहज्जीवन्ती, वड़ी जीवंती। ४ श्वेतकएटकारी, सफेद भरकटैया। ५ अध्वगन्धा, असगन्ध।

प्रियङ्करी (सं ० स्त्री०) प्रियः हुर हेखो ।

प्रियङ्करण (सं ० क्ली०) अप्रियं प्रियं करोत्यनेन क्र-करणे च्युन्, मुम्च्। अप्रियको प्रियता करण, नाखुशको खुश करना।

प्रियङ्गं (सं क्षी) प्रियं गच्छतीति प्रिय-गम-मृगय्वादि-त्वात् कुप्रत्ययेण साधुः । १ खनामख्यात गन्व तृण-विशेष (Aglaia Roxburghiana) संस्कृत पर्याय— श्यामा, महिळाह्रया, ळता, गोवन्दनी, गुन्दा, फिल्नी, फलो, विष्वक्सेना, गन्धफली, कारम्मा, प्रियक, प्रिय-वहो, फलिया, गौरी, बृत्ता, कङ्गु, कङ्गु, नो, भंगुरा, गौर-वही, सुमगा, पर्णमेदिनी, शुमा, पीता, मङ्गल्या, श्रेयसी। भारतवर्षकं पश्चिमोपकूळवत्तीं देशोंमें, कोङ्कणसे मेदिनीप्र पर्यन्त विस्तृत स्थानींमें, सिहलके ६ हजार ऊ चे स्थानीं-में, सिङ्गापुर, यवद्रोप, सुमाला, मलयद्रीपपुञ्जमें यह वृक्ष पाये जाते हैं। इसका फल मीठा होता है। अग्निद्ग्ध, गाबक्षतमें यह शीतल, ज्वाला उपशमकारी और क्षत-नाशक माना गया है। फलका गुण-धारक और तिदोपनाशक, इसका गुण-शीतल, पित्त, अस्तदोष, भ्रम, वमन, ज्वर और वक्त जाड्यनाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण-तुवर और अनिल-नाशक, रक्तातियोग, दौर्गन्ध, स्वेद, गुलम, तृष्णा, विपदीप और मोहनाशक । २ राजिका । ३ पिप्पली · ४ कङ्कु । ५ कटुका । ६ घातकी ।

त्रियङ्ग्वम्बप्रादिवर्गं (सं॰ पु॰) त्रियंगु और अम्बप्रादिगण । त्रियजन (सं॰ पु॰) त्रियो जनः । १ हद्यलोक, त्रियन्यकि । २ पौढ़भावज्ञ ।

त्रियजात त्सं ॰ ति ॰) १ जातमात ही प्रिय, जी जन्ममात-से ही सर्वोका प्रियकर हो । (पु॰) २ अग्निका नामान्तर, अग्निका एक नाम ।

प्रियजीव (सं॰ पु॰) प्रियजीवी यस्य यस्मिन् वा। ेश्योनाक वृक्ष, सोनापाठा।

प्रियतन्तु (सं ॰ ति ॰) प्रिया तनुर्यस्य । जिसका शरीर अत्यन्त प्रिय हो ।

प्रियतम (सं ॰ पु॰) १ मयूरिशका वृक्ष, मोरिशका नामका पेड़ । २ खामी, पति । (ति॰) ३ प्राणोंसे भी बढ़ कर प्रिय, सबसे अधिक प्यारा ।

प्रियतर (सं ॰ ति ॰) अयमनयोरतिशयेन प्रियः प्रिय-तरप्। दो में जो अधिक प्रिय हो।

प्रियता (सं ० स्त्री०) प्रियस्य भावः तल्-टाप् । प्रिय होने-का भाव ।

त्रियतोपण (सं॰ पु॰) व्रियस्य तोषणं यस्मात्, वा प्रियं तोषयतीति तुष-णिच् व्यु । १ सोलह प्रकारके रतिवंधोंके अतिरिक्त र्रातयंथविशेष ((ति १) २ प्रियच्यक्तिको प्रसन्न करनेबाळी ।

प्रियत्व (सं ० ह्यी०) प्रियस्य मावः प्रियन्त्व । प्रियता । पर्याय-प्रेम, प्रेमा, स्नेह, प्रणय, हार्ड, प्रियता, स्निग्थता। प्रियद (सं ० ति ०) प्रियं द्दाति दा-क । प्रियवस्तुदानकारी, .जो त्रियवस्तु दे ।

प्रियदत्ता (सं ० स्त्री०) पृथिबी।

"नामास्याः त्रियद्त्तेति गुद्यं देख्याः सनातनम् । दाने वाऽव्यथवादाने नामास्याः प्रथमं प्रियम्॥ य पतां विदुषे द्यात् पृथिची पृथिचीपतिः। पृथिन्यामेतिदिएं स राजा राज्यमिती ब्रजेत्॥"

(भारत ६२ अ०)

सबेरे विखावनसे उड कर 'धियक्ताचे भुवे नमः' यह वाक्य उचारण करनेके वाद पहले दाहिने पैरको जमीन पर रखना चाहिये।

प्रियदर्शन (सं ० त्रि०) प्रियं दर्शनं यस्य । १ सुद्रश्य, जो देखनेमें व्यारा लगे, सुन्दर। (पु॰) २ शुक पक्षी, तोता। . ३ क्षीरिका बृक्ष, जिरनीका पेड़ । ४ गन्धर्यविशेष, एक गन्धवंका नाम ।

प्रियद्शिन् (सं ० ति०) प्रिय-दूश-णिनि । प्रियद्शैनकारी, सवको प्रिय देखते या सममानेबाला।

प्रियदर्शी (अशोक) भारतके एक विख्यात सम्राट्। थे 'अशोक' नामसे ही संर्वत परिचित हैं। किन्तु यह 'भशोक' नाम उनके किसी अनुशासनपत्नमें अथवा साम-थिक प्रन्थमें नहीं मिलता। यही कारण है, कि एक दिन अध्यापक विलसन साहवने प्रियद्शीं और मशोक दोनोंकी अभिन्नताके सम्बन्धमें सन्देह प्रकट किया था। किन्तु सिहलके दोपवंश नामक प्राचीन पालि अन्यमें अशोकके 'पियदस्सि' और 'पियदस्सन' ये दोनों ही नामान्तर लिखे मिलते हैं। पर सर्वजनपरिचित 'अशोक' नाम उनके वहुसंख्यक शिलातुशासनमेंसे किसी में जो नहीं है, इसीसे लीगोंकी सन्देह अवश्य होता है।

दो विभिन्न ओरसे हम लोग अशोक वा त्रियव्शीकी संक्षिप्त जीवनी पाते हैं। एक उनके राजत्वकाछमें . उन्हीं के आदेशसे उत्कीर्ण वहुसंस्थक शिखालिपिसे और दूसरे वीद तथा जैन धर्मप्रनथसे । किन्तु दुःसका विषय

Vol. XIV. 187

है. कि व्रन्थगत विवरणके साय उनके अनुशासन छिपियोंको एकता नहीं है। इसीसे मालूम होता है, प्रियदर्शी और वशोक्षके अभिन्नत्व-सम्बन्धमें किसी किसीने संदेह प्रकट किया है।

वौद्धारयमें अशोकः। परिचर ।

अशोकावदान और दिन्यावदानके मतसी शाक्यवुद्धके राजा विग्विसार, उनके छड़के अजातशृहु, अजातके छड़के उदायी वा उदयीश, उदयीशके लड़के मुएड, मुएडके लड़के काकवणीं, काकवणींके सहली, सहलीके तुलकुचि, तुलकुचिके महामएडल, महामएडलके लड्के प्रसेनजित्. मसेनजित्के छड़के चन्द और चन्दके छड़के विन्दुसार थे। इन्हीं विन्दुसारके पुतका नाम अशोक था। वड़े हो आक्वर्यका विषय है, कि अवदानप्रश्वमें अशोकके पिता-मह चन्द्रगुप्तका नाम तक भी नहीं आया है। चन्द्रगुप्त का नाम नहीं रहनेके कारण कोई कोई फिर अनुमान करते हैं, कि चन्द्रगुप्तके साथ मार्थवंशका आविर्माव और तिरोभाव होता है। अशोकके साथ चन्द्रगुप्तका कोई सम्बन्ध न था। इधर हिन्दू, जैन और वौद्धप्रन्थमें चन्द्र-गुप्तको अशोकके पितामह वतलाया तो है, पर प्रियवृशीं-के निज अनुशासनोंमें उनके पिता वा पितामहका कहों भी नामोल्लेख नहीं है।

जन्मक्या ।

पूर्वोक्त दोनीं अवदानोंमें लिखा है—चम्पा नगरीमें किसी ब्राह्मणके घर एक परमासुन्दरी कन्या उत्पन्त हुई। एक दैवज्ञने कन्याको देख कर कहा था, 'यह कुमारी राज-रानी और राजमाता होगी !' धनका स्रोभ सबसे बड़ा लोभ है। ब्राह्मण लोभमें पड़ गये। जब कन्या ब्याहने योग्य हुई ; तब वे उसे छे कर पाटलीपुत आये और राजा बिन्दुसारको प्रहान किया । विन्दुसारने ब्राह्मण-कन्याको राजान्तः पुरमें भेज दिया। उसका रूप देख कर राजमहिषियोंकी आँखें स्थिर रह न सकीं। उन्होंने सीचा कि यह रूप पानेसे कभी भी सम्मव नहीं, कि राजा हम छो तेंको चाहे ने। सर्वीने सलाह करके उस ब्राह्मण-वालिकाको नाइन दना कर रखा और उसे झीरकमैकी शिक्षा देने छगीं। कुछ दिन इसी प्रकार गुजर गये। वह त्राह्मणकन्या राजा विन्तुसारको ह्जामत करके अपना

गुजारा चलाने लगी। पक दिन राजाने वड़े प्रसन्न हो कर उससे कहा, में तुभ पर वड़ा प्रसन्न हुआ हं, क्या चाहती हो ? वोलो । में तुम्हारा अभिलाप पूरा कर दूंगा। इस पर ब्राह्मण-वाला सिर भुका कर धीरे घीरे वोली, में सिर्फ आपको चाहती हूं और किसीको नहीं।' इस पर राजाने कहा, 'सो क्यों ! में क्षिलय मुर्काभिषिक हूं और तुम पक नाइन, में तुभ किस प्रकार व्याह सकता ? ब्राह्मण-कुमारीने उत्तर दिया, 'में नाइन नहीं, ब्राह्मणकन्या हूं। आपकी पत्नी होनेके लिये ही पिता मुभे यहां दे गये हैं।" पुरमहिलाओंने हे पवशतः मुभे नाइनका कार्य सिखाया है। इसके वाद राजाने ब्राह्मण-कन्याकी कामना पूरी की। अब वह दिरद्र ब्राह्मण-कन्या ही पटरानी हुई। यथासमय उसके दो पुता उत्पन्न हुए, अशोक और विगतशोक वा वीतशोक।

भशोकके पहले पटरानीके गर्भसे विन्दुसारके सुसीम नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया था ।

जव तक्षणिला नगरवासियोंने विन्दुसारके विकद अल्लाधारण किया, तब विन्दुसार वहीं पर अशोकको छोड़ भागे। अब अशोक राहमें दलवल संग्रह कर तक्षशिला-में जा धमके। नगरवासियोंने विना युद्धके हो उन्हें तक्ष-शिला नगर समर्थण किया और उनकी खूब खातिर को।

इभर विन्दुसारके प्रधान मन्त्री खलाटकने ज्येष्ठ राज-फुमार खुसोमके आचरणसे विरक्त हो उन्होंको तक्षशिला मेज दिया और अशोकको राजा बनानेके अभिपायसे राजधानोमें बुला मंगाया।

अभी चिन्दुसारकी आयु शेव हो चली थी। अमात्योंने अच्छी तरह सजधज कर अशोकको उनके सामने ला खड़ा किया और जब तक सुसीम लौट न आचे, तव तक उन्हींको राजपद प्रदान करनेका अनुरोध किया। जब अशोकने पिताको बेचल देखा तब उन्होंने जोर शब्दोंमें कहा, 'यदि धर्म है, तो मैं ही राजा होऊँ गा' आलिर हुआ भी वही। देखते देखते राजाके मुखसे रक्तकी धाग बहने लगी जिससे वे पश्चत्वको प्राप्त हुए।

भव अशोक सम्राट्के कपमें पाटलिपुतके सिंहासन पर वैढे। राधगुप्त उनके मन्त्री हुए। तक्षशिलामें सम्बाद भेजा गया। जब सुसीमने सुना, कि पिता इस

लोकसे चल वसे और अशोकने पितृसिंहासन पर अधि-कार कर लिया है, तब वे फौरन दलवलके साथ पाटलि-पुतके लिये खाना हुए। इधर अशोक भी इटे हुए थे। नगरके प्रथम द्वार पर एक नग्न, तृतीय द्वार पर राधगुप्त, चतुर्भ द्वार पर स्वयं अशोक उपस्थित रहे। द्वारके सामने एक गद्दा सोदचाया गया और खदिर तथा अंगार-से भर कर उस पर अशोक-मृत्ति रखी गई।

सुसीमने समभा था, कि अशोकको मार सकने पर ही वे राजा होंगे, अन्यथा नहीं। इस ख्यालसे वे अशोकके साथ युद्ध करनेके लिये पूर्वद्वारमें घुसे। घुसते ही वे अङ्गारपूर्ण गङ्देमें गिर पड़े और पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

अशोक राजप्रतिष्ठित हुए तो सही, पर वे अमात्योंके प्रति विशेष अवशा दिखलाने लगे। एक दिन राजाने अमात्योंसे कहा, 'तुम लोग फलफूलका पेड़ काद कर ऊपरसे जल देते हो।' अमात्योंने राजाके प्रतिकृत उत्तर दिया। इस पर अशोक बड़े विगड़े और पांचों मंतियींके जो वहां खड़े थे सिर कटवा डाले।

अशोककी कठोरता दिनों दिन वढती गई। उन्होंने एक रमणीय वधागार वनवाया । चएडगिरिक नामक एक तांतीका लड़का उस वधागारका रक्षक नियुक्त हुआ। मानवका जीवन लेना ही उसका श्रीतजनक कार्ये था। सैकड़ों व्यक्तिके उस बधागारमें प्राण गये। कुछ दिन वाद समुद्र नामक एक साधु भिक्षाकी आशासे नरकालय-में घुसा। जो उसर्प्रां जाता था, वह प्राण सो वैडता था, दूसरे दिन छौटने नहीं पाता । परन्तु इस वार कई दिन वीत गये, पर साधुका जीवन नष्ट नहीं हुआ। दुवुँ त चएडगिरिक भौचक-सा रह गया, उसने साधुके प्राण हेनेके लिये यथेए चेएा की, पर साधुके प्राण न निकले। चएडगिरिकने राजासे इसकी खबर दी। राजा खयं साधुको देखने आये। वे क्या देखते हैं, कि उस साधुके आधे शरीरसे जल गिरता है और आधेमें आग धधकती है। इस पर राजा बड़े विस्मित हुए और कौत्हरूप्रयुक भिक्षका परिचय पूछा। भिक्षुने उत्तर दिया, परम कारुणिक धर्मान्वय वुद्धका पुत हुं, संसारके महा-भय भववन्धनसे मुक्त हुआ हूं । महाराज् ! सुनिये ! भग-वान कह गये हैं, 'मेरे परिनिर्वाणके सौ वर्ष वाद पार्टल-

पुत्रनगरमें अशोक नामक एक राजा होगा। वहीं, चतुर्मांग चकवत्तीं धर्मराज मेरे शरीरधातुका विस्तार करेगा, ८४०० धर्मराजिकाकी प्रतिष्ठा करेगा। अतएव हे नरेन्द्र! इन सव दुवृं तियोंका परित्याग कर उसी नाथकी पूजा करी और धर्म फैलाओ।"

राजा वड़े विचलित हो गंधे। बुद्धके नामसे उनके हृद्यमें चित्तप्रसाद उपस्थित हुआ, उन्होंने हाथ जोड़ कर भिक्षु कसे कहा, 'दशवलस्तत! मुन्ने क्षमा कीजिये! मैंने आजसे बुद्धगण और धर्मकी शरण ली।' अनन्तर राजाने सम्मानपूर्वक भिक्षु को विदा किया। अव अशोककी विधिरिपासा जाती रही, उस नरिपशाच चएडिगिरिकंका और उस रमणीय बधागारका अस्तित्व लुप्त हो गया। अव चएडिगिशक धर्माशोक नामसे पुकार जाने लगे।

अज्ञातशतुने जो द्रोणस्तूप वनवाया था, उसे इन्होंने तोड़वा डाला और उसमेंसे शरीरघातु निकाल कर नागोंकी सहायतासे रामग्राममें एक सुबृहत् स्तूप वनवाया। इसके बाद नाना स्थानोंमें नाना-घातुगर्भ सुब्रण, रजत, स्फटिक और वैदुर्यरिवत चौरासी हजार करण्डकी स्थापना की गई।

अशोक धर्मोन्मत्त हो उठे। एक दिन इन्होंने स्थविर-यशासे कहा, 'में एक दिनमें चौरासी हजार धर्मराजिका स्थापन करना चाहता हूं सो मेरी इच्छा पूरी करो।' स्थविरयशाने भी अपनी बुजुगी दिखला दी। अशोक-राजका मनोरथ पूरा हुआ। इस समयसे वे धर्माशोकके नामसे प्रसिद्ध हुए।

पक दिन अशोकने सुना, कि मथुरामें उपगुप्त नामक पक स्थिवर रहते हैं, उनके समान न्यायशास्त्रक दूसरा कोई नहां है भौर न उनके समान कोई बुद्धभक्त हो है। राजाने उनके दर्शनकी इच्छा प्रकट की। अमात्यवर्गने उपगुप्तको चुला लोनेके लिये दूत भेजना चाहा, परन्तु राजाने इसे अच्छा नहीं समना। ये स्वयं उनसे मिलने जायेंगे, इस प्रकार उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया। उपगुप्तने भी जब सुना, कि मौथेंसम्राट् उनसे मिलने आ रहे हैं, तब वे उनके धर्मानुराग पर बड़े सन्तुष्ट हुए और नाव पर चढ़ कर मथुरासे पाटलियुत पहुंच गये। राजपुक्यने उपगुप्त-के पदार्पणका सम्बाद राजासे कहा। मौर्यराजने अप- गुत्तके आगमन-सम्बादको घोपणा करनेके लिये घंटा वजानेका हुकुम दिया। राजाके आदेशसे पाटलियुल-नगरी विशिष्टशोमासे सुशोमित हुई। सम्राट् खयं शेवराविको उठ कर एक योजनपथसे उन्हें अपने साथ लिवा लाये। उपगुक्तके दर्शनसे ही अशोकने अपनेको कृतार्थ समन्ता। उपगुक्तने अशोकको अपने साथ ले किपलवस्तु, भागवाश्रम, बाराणसी आदि बुद्धके समस्त लीलाक्षेत्र दिखला दिये थे। उन सव पवित वौद्धक्षेत्रों-में सम्राट्ने बुद्धकी अर्थना और उनके स्मरणार्थ स्तूपादि बनवा दिये।

अशोकने जिस समय ८४००० धर्मरजिकाकी प्रतिष्ठा की, उस समय देवी पद्मावतीके गर्भसे धर्मवर्द्ध न नामक उनके परम कपवान एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्रकी और कुणाल पश्चीकी सी थीं, इस कारण अशोकने उसका 'कुणाल' नाम रक्षा था। आगे चल कर वहीं आँखें उनके दुश्मन हो गईं। कुणालने युवावरूथामें कदम बढ़ाया। अशोककी प्रधान महिषी तिष्यरक्षिता उन नेतों को देख कर कुणाल पर अनुरक्त हो गई। एक दिन रानीने कुणालको अकेलेमें पा कर उनके निकट अपनी असिवच्छा प्रकट की। कुणालने अपने दोनों हाथोंसे दोनों कान मूद कर कहा, 'माताजी! ऐसी धर्मविच्छ वाते 'फिर मुक्ते सुननेका अवसर न दें। धर्मलीपकी अपेक्षा मेरा मरण हो मङ्गल है।' तिष्यरिक्षताकी मनस्कामना पूर्ण न हुई। तभीसे वे सन्तु वांध कर मुणालके पीछे पह गईं।

इधर तक्षशिलामें विद्रोहानल धपक उठा। उसे शान्त करनेके लिपे अशोक विलक्कल तैयार हो गये, पर मन्त्रिवर्गके कहनेसे उन्होंने कुणालको ही महासमारोहसे तक्षशिला भेज दिया।

कुछ दिन वाद अशोक कठिन रोगसे आकान्त हुए। उनके मुखसे विष्ठा निकलने लगी, कोई भी इस रोगका चिकित्सा न कर सके। अव राजाने कुणालको राज-सिंहासन पर अभिषिक्त करनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुन कर तिष्यरिक्ता बोली, 'यदि ऐसा होगा, तो मैं अवश्य प्राण दे दूंगी।' उन्होंने राजासे कहा, 'मैं आप-का रोग दूर कर दूंगी, पर याद रहे अभी यहां कोई भी

वैद्य आने न पाये।' राजा इस पर राजी हो गये। इधर रानीने वैद्यको बुला कर कहा, 'वैद्यराज ! अभी आप एक ऐसा आभीर खोज लावें जिसकी भी अवस्था राजा-सी हो। वैद्यने तुरत हुकुम तामिल कर दिया। रानीने उस आभीरको एक गुप्त स्थानमें छा कर उसका पेट फाड डाला और पाकाशयकी परीक्षा की । उन्होंने देखा, कि उसकी आंतमें असंख्य कीड़े किलविल कर हैं। मिर्च, पीपर, श्रुवेर आदिसे भी वे की है नष्ट नहीं हुए। आखिर पलाण्डुका (याज) रस देते ही सब कीड़े मर मर मलद्वारसे निकलने लगे। रानीने अशोकराज-से कहा, 'आपको अब चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं, उप-युक्त औपध मिल गई है। पलाण्डू ही आपका जीर्वनरक्षक है, आपको वही खाना पड़ेगा।' राजाने कहा, 'मैं क्षतिय हु, किस प्रकार पलाण्डु जा सकता।' तिष्यरक्षा वोली, 'जीवनरक्षार्थं औषधसक्षप पलाण्डु सानेमें कोई दोप न होगा।' पीछे पलाण्डुके सेवनसे राजाने आरोग्य-लाभ किया। इस प्रकार रानीके हाथसे प्राणदान पा कर अशोकने उन्हें सात दिनके लिये राज्यभार प्रदान किया।

दुएमित तिष्यरिक्षताको अव वव्ला चुकानेका अच्छा मौका हाथ लगा। उन्होंने अशोकके नामसे तक्षशिला-वासी जनसाधारणको हुकुम दिया, 'मौर्यकुलकलङ्ग कुणालकी दोनों आँखे निकाल लो।'

ऐसा निदारण आदेश पा कर सभी तक्षशिलावासी नितान्त दुःखित हुए। कुणालका चरित्र अति विशुद्ध, और शान्त था, वे सर्वों के प्रिय थे। उनके अनिष्टसाधनमें सभी विमुख हो गये और राजाकी घोर निन्दा करने लगे। कुणालने वह पत्र पढ़ा और अपने हाथोंसे दोनों नेत उखाड़ कर पिताका आदेश पालन किया। यह देख कर सभी हाहाकार कर उठे। परन्तु उस शान्तमूर्ति द्रहचेता कुणालका मन जरा भी विचलित न हुआ।

तक्षिशिला आनेके पहले ही काञ्चनमालाके साथ कुणालका विवाह हुआ था। प्राणिपयतम कुणालके चित्तविमोहन दोनों नयन अपहत हुए देख वे अचेत हो हो पड़ी। भार्याको शान्त करके मिखारीके वेशमें कुणालने पत्नीका हाथ पकड़ तक्षशिलाका परित्याग किया, अव कुणाल रास्ते रास्ते वीणा वजाये जाते थे, साथमें एकमाल काञ्चनमालाके सिवा और कोई न था। भिक्षा ही दोनोंको उपजीविका थी। अव कोई भी उन्हें पह-बान न सकने थे। यहां तक, कि द्वारपालने भो उन्हें राजप्रासादमें युसने न दिया। एक दिन वहुत तड़के बे राजप्रासादके पास ही वैठ कर वीणा वजा कर गाने लगे, 'यदि इस भवसागरसे पार होना चाहो, यदि इस मिथ्या संसारके दोपोंसे वचना चाहो, यदि देख पानेकी इच्छा रहे, तो शीव्रही इस आयतनका त्याग करो —त्याग करो !

यह मीठा खर अशोकके कानों तक पहुंचा। उन्होंने उसी समय स्थिर कर लिया, कि यह खर उनके प्रिय पुत कुणालके सिवा और किसीका नहीं हो सकता। उन्होंने फीरन कुणालको लानेके लिये आदमी मेजा। कुणाल स्त्रीके साथ राजाके समीप उपस्थित हुए। अशोक नयनरञ्जन पुत्रको नयनहीन देख मूर्च्छित हो पड़े। कुछ समय वाद राजा जव होशमें लाये, तव कुणालको अपनी गोदमें ले कर कहने लगे, 'प्रिय पुत्र! कहो तुम्हार वे चार नयन किस प्रकार नए हुए!'

कुणालने बिनीत स्बरमें कहा, 'राजन ! जो वीत गया, उसके लिये वृथा शोक न करें। सभी अपना अपना कर्मफल भुगते हैं, सो मैं भी भुगता हूं! तब फिर दूसरे-को दोपी वनाने क्यों चलूं?'

पीछे जय राजाको मालूम हुआ, कि तिप्यरिक्षताका हो यह काम है, तव उन्होंने क्रोधमरो आँखोंसे तिप्य-रिक्षताको बुला कर कहा, 'केवल तुम्हारे नेत हो नहीं, नाक, मुंह, आदि प्रत्येक अङ्ग !कट्या डालूंगा। दुए-मित ! नरिपशाची! तव ही तुम समकेगी, मेरे इदय पर तुने कैसी गहरी चोट दो है।'

कुणालने हाथ जोड़ कर पितासे निवेदन किया, 'राजन! तिष्यरिक्षता अनार्यकर्मा है, आप आर्य कर्मा हो कर स्त्री-वध न करें। मैती और तितिक्षाकी अपेक्षा दूसरा और कोई धर्म नहीं है। यदि माता मेरे दो नेत निकाल कर सचमुच प्रसन्न हैं, तो उसी प्रसन्नतासे मेरे वे बक्ष पुनः निकल आयंगे। कहते हैं, कि धूज-विश्वासके प्रमावसे तत्क्षणात् कुणालके पूर्ववत् दोनों चक्षु निकल आये। किन्तु अशोकने तिष्यरिक्षताको क्षमा

त किया । उस पापिष्ठाकी देहं जन्तुगृहमें जला डाली गई ।

जिस समय राजा अशोकने ८४००० धर्मराजिकाकी
प्रतिष्ठा और पश्चवार्षिक व्रतका अनुष्ठान किया, उस
समय उनके भाई वीतशोक तीर्थिकोंके प्रति वड़े अनुरक्त
हो गये। तीर्थिक लोग उन्हें समक्ताते थे, कि श्रमण
शाक्यपुतोंके मोक्ष नहीं है। वीतशोक भी उसे जानते थे,
वरन् श्रमणोंके प्रति उनका कभी कभो विवाद भी हो
जाया करता था। परन्तु अशोकको यह अखरता था।

उन्होंने वीतशोकको बुद्धमतमें लानेकी एक अपूर्व तर-कीव दूढ़ निकाली। उन्होंने अपने मंत्री उपयक्षको बुला कर कहा, कि जिस तरहसे हो वीतशोकको सिहासन पर विठाओ। एक दिन अमात्योंने अशोककी पौट्टमौलि ले कर स्नानशालामें वीतशोकसे कहा, "राजाके मरने पर आप ही राजा होंगे। अभी आप सजध्य कर सिहा-सन पर वैठिपे, देखें, यह आपको कैसी शोमा देता है।" बीतशोक अमात्योंकी वातमें भूल कर अशोककी राज-भूषा पहन सिहासन पर वैठे। ठीक इसो समय अशोक वहां आ पहुंचे। 'कौन है?' अशोकके इतना कहते ही वारों ओरसे सशस्त्र घातकोंने आ कर वीतशोकको घेर लिया। अशोकने गम्मीर खरसे कहा, 'देको वीतशोक! वुम मुक्ते घकेल कर सिहासन पर वैठ गये हो। अच्छा बैठो, मैंने सात दिनके लिये तुम्हें राज्य छोड़ दिया। इसके वाद घातकके हाथसे मारे जाओगे।"

वीतशोकने सात दिनके लिये राज्य पाया। कितने ही नाच गान और आमोदके स्रोत वहने लगे। सातबें दिन बातकने आ कर अन्तिम दिनकी याद दिला दी। राजवेशमें बीतशोक अशोकके समीप आये। अशोकने पूछा, भाई! इन सात दिनींमें कैसा चैन करा, नाच गानमें कैसा आमोद पाया !' वीतशोकने उत्तर दिया सुख कहां! नाच गान देखा नहीं, सुना भी नहीं, गन्ध न ली और न इसमें आखाद ही पाया! केवल यही देखा, कि नीलवल्लधारी धातकगण मानों इरवाजे पर खड़े हैं।'

अशोकने कहा, 'भाई ! यदि मरनेका इतना डर है, तो किसी वातकी चिन्ता मत कर, तुम्हें शाणदान दिया।' वीतशोक विनीत भावमें बोले, 'यदि आपको ऐसी कृपा हुई, तो में उन सम्यक सम्बुद्धकी शरण हो । धर्म और Vol. XIV 188 भिक्षुसङ्घको शरण छी।' उसी समय वीतशोकने प्रवज्या प्रहण किया। पांशुक्छ, चीवर भौर वृक्षमूछ ही वीतशोकना आध्यस्थान हुआ। भिक्षा करके वे जो कुछ छाते उसीसे अपने शरीरकी रक्षा करने छगे। नाना देश, नाना जनपद होते हुए वे प्रत्यन्तदेशमें उपस्थित हुए। यहां महाव्याधिने उन पर आक्रमण किया। यह जनर राजा अशोकने पाते ही उनकी चिकित्सार्थ भैपज्यादि भेज दिये।

इस समय पुण्डुवद्धं न-नगरवासी निर्धं नथ उपासकों-ने अपने उपास्य जिनदेवके पादमूलमें युद्धदेवकी मूर्ति अङ्कित की थी। वौद्धोंने जा कर अशोकको इसकी खबर दी। इस पर अशोक वड़े विगड़े और पुण्डूवद्धं नवासी समस्त आजीवकोंको मार डालनेका हुकुम दिया। एक दिनमें अटारह हजार आजीवक निहत हुए थे।

इसके बाद फिर पाटिल पुतके निर्म न्थोंने भी जिन-देवके पादम्लमें बुद्धमितमाका चित्र अङ्कित किया था। उन्हें भी अशोकने पूर्वयत् सजा दी थी। यहां तक, कि आखिरमें उन्होंने घोषणा कर दी थी, 'जो निर्म न्थका सिर कार लायेगा, उसे दीनार मिलेगा।'

इस समय चीतशाक महाव्याधित्रस्त हो एक आभीरके घर अपना दिन विताते थे। आमीरपत्नीने उनके वड़े वड़े नाखून और दाढ़ी देख कर उन्हें निर्ज न्थ समका और अपने खामीको इसकी खनर दी। आभीर चीतशोकका शिर काट कर दीनार पानेकी आशासे अशोकको पास आया। अशोक उसे देखते ही मूर्च्छित हो पड़े। जब वे होशमें आये, तव अमात्योंने उनसे कहा, 'वीतरागको अर्थ कप्ट दिया जा रहा है, सवको अभय दान देना ही हम छोगोंका विचार है।' उसी दिन राजाने अपने राज्यमें ढिढोरा पिट्या दिया, 'अब मेरे राज्यमें कहीं भी हिंसा न होने पाने।' इसके वाद अशोकने अपना सर्वख वीदसङ्घमें न्योछावर कर दिया।

महाव श्ववणित अशीक ।

सिंहलके पालि महावंशमें दो अशोकका परिचय मिलता है। १म अशोक 'कालाशोक' नामसे ही प्रसिद्ध है। बुद्धनिर्वाणके १०० वर्ष वाद पुरवपुरमें कालाशोक राज्य करते थे। इन्हीं प्रथम अशोकके समय सद्धर्म । सङ्गीतिमें बुद्धके उपदेशमूलक शास्त्र संग्रहीत हुए।

कालाशोकके १० पुर्लीने पहले २२ वर्ष, पीछे ६ पुर्लीने भी २२ वर्ष राज्य किया । उनके शेष पुतका नाम धननन्द था। चाणभ्यके कौशलसे धननन्दको राज्य न मिल कर मोरियवंशसम्भृत चन्द्रगुप्तके राज्य मिला । चन्द्रगुप्तने ३४ बर्ष राज्यशासन किया । षीछे उनके पुत विन्दुसारने २८ वर्ष राज्य भोग किया था। उनकी १६ महिपियोंके गर्भसे १०१ पुतं उत्पन्न हुए थे। इन सव पुत्रोंमेंसे अशोक ही पुण्यतेजा और महासमृद्धिसम्पन्न थे। वे पिताके अधीन उज्जयिनीका शासन करते थे। जब उन्होंने सुना, कि उन-के पिता मृत्युशय्या पर पड़े हैं, तब वे फौरन पाटलिपुत आ कर सिंहासन पर अधिकार कर बैठे । पीछे वे अपने ६६ भाइयोंको मार कर जम्ब्रुद्वीपमें एकाधिपत्य करने लगे। बुद्धनिर्वाणके २१८ वर्ष वाद उनका अभिषेक हुआ। राज्यलामके चौथे वर्ष वड़ी ध्रमधामसे उनका अभिषेक-काय[े] सम्पन्न हुआ था। इस अभिपेककालमें उनके छोटे भाई तिष्यने 'उपराज' को पदवी पाई थी।

भशोकके पिता ब्राह्मणमक्त थे। वे प्रतिदिन साठ हजार ब्राह्मणमोजन्द्रैकराते थे। अशोकने भी तीन वर्षे तक उनका अनुसरण किया था। अभिपेकके वाद उनकी बुद्धि विलकुल पलट गई। वे अपनी सभामें समस्त सम्प्रदायभुक्त धर्मामात्योंको बुला कर शास्त्रचर्चा करने लगे और सर्वोको उन्होंने समभागमें वृक्तिकी व्यवस्था कर दी।

श्रमण-न्यप्रोधको देख कर वौद्धधर्मके प्रति उनका-चित्त आरुष्ट हुआ। यह न्यप्रोध और कोई भी न था, उन्होंका भतीजा था। अशोकने जब विन्दुसारके वड़े छड़के सुमनकी हत्या की उस समय उनकी गर्भवती पत्नीने चएडालके घरमें आश्रय लिया था। न्यप्रोध उन्होंने के गर्भसे उत्पन्न हुए और अपने पूर्व सुकृतिवलसे उन्होंने शर्दस्वलाम किया था।

अशोकके हृदयमें एक ओर ब्राह्मणधर्मके प्रति बीत-राग और दूसरी ओर वौद्धोंके प्रति अनुराग प्रवल होने लगा। अभी वे प्रतिदिन साठ हजार श्रमणोंकी सेवा करने लगे।

ः इसी वर्षमें उपराज तिष्य, अशोकके भांजे और सङ्घ-

मिलाके खामी अग्निवर्माने भी प्रवज्याका अवलंबनं किया। उनका अनुसरण करके हजारों मनुष्य बीदधर्ममें दीक्षित हुए थे। अशोकको धर्मीन्मत्तता धीरे धीरे प्रवल होती गई।

उपराज तिष्यके प्रवासायहणके वाद अशोकने अपने
प्रिय पुत महेन्द्रको ही 'उपराज' बनानेका विचार किया
था। किन्तु उन्होंने भी थोड़े ही दिनोंके अन्दर संन्यास
ग्रहण किया। वे स्थविर महादेव द्वारा दीक्षित हुए।
स्थविर मध्यान्तिकने उनके लिये कर्मवचनका अनुष्ठान
किया। इस समय धर्मपति सङ्घमिताकी उपाध्यायां और
आग्रुपाली उनकी आचार्यां हुई'। अशोकके देहें वर्षमें
महेन्द्र और सङ्घमिता दोनोंने ही प्रवज्याको ग्रहण किया।

धीरे धीरे बौद्ध-भाचार्य और उपाध्यायकी संख्या इतनी वढ़ गई और इतना मतभेद होना आरम्भ हुआ, कि भाखिर छड़ाई फगड़ा करके भारतके सभी बौद्धा-रामोंमें उपोषध और प्रावरण वन्द हो गया। इस प्रकार सात वर्ष बीत जाने पर अशोकको इसका पता छगा। उन्होंने तमाम घोषणा कर दी, 'मेरे अशोकाराममें जितने भिक्षु रहते हैं, वे उपोषध्रव्यतका अवश्य बाछन करे'।' भिक्षसङ्घने जवाब दिया, 'तीर्थिकके साथ इस छोग उपोषधव्यतका पाछन नहीं कर सकेंगे।' धर्मपाछन नहीं करनेसे किसको अधर्म हुआ? राजा असमञ्जसमें पड़े। उन्होंने मौह्राछपुत्र तिष्यके निकट खय' जा कर अपनी मनोवेदना प्रकट की। तिष्यने 'तित्तिरजातक' सुना कर सम्राट्से कहा,','प्रतीच्छा नहीं रहनेसे पाप नहीं होता।' सम्राट्से कहा,','प्रतीच्छा नहीं रहनेसे पाप नहीं होता।' सम्राट्से मोगाछ-पुत्रके उपदेशसे धर्मज्ञान छाभ किया।

अशोकके अधीनस्थ राजगण और वन्धुवर्ग अभी सम्राट्के परोमर्शेसे स्तूपादि वनाने छगे। सम्राट्ने भी वीद्धधर्मका श्रचार करनेके मिये महेम्द्रको सिंहल भेजा।

सिंहलराज प्रियतिष्य महेन्द्रके निकट वौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। पोछे धर्मप्रचारके उद्देश्यसे सङ्घमिला भी सिंहल आये थे और सिंहलराज-महिलाओंने सङ्घमिलाके निकट दोक्षालाम किया था।

अशीकके सम्बद्धमें जैन-मत ।

हेमचन्द्र-रचित विषष्टिशलाकापुरुषचरितके मतेसे— 'विन्दुसारसे अशोकश्रोने जन्मश्रहण किया। विन्दुसार-की मृत्युके बाद वे ही राजसिहासन पर वैठे। यथासमय अशोकने उन्हें उज्जिपनीपुरी दे दी । कुणाल वहीं जा कर रहने लगे। कितपय शरीररक्षक उनने रक्षाकार्यमें नियुक्त हुए । इस प्रकार कुछ वर्ष गुजर जाने पर राजा अशोकने किसी परिचारकके मुखसे सुना, कि कुणालकां अध्ययनकाल पहुंच गया है। यह वात सुन कर राजा वड़े ही सन्तुष्ट हुए और उसी समय स्वयं एक पत कुणालके निकट लिख मेजा। पत प्राइत मापामें इस प्यालसे लिखा गया था, कि कुणाल उसे सहजमें समक्ष सके। सुतरां एक जगह 'अध्ययन करो' ऐसा लिखनेमे 'अधीऊ' यह एवं लिखा गया था।

राजा जन पत लिखर है थे, उस समय कुणालको एक विमाता वहीं बैठी थो। वह धीरे भीरे राजाके हाथसे पत ले कर आधीपान्त पढ़ गई। पत पढ़ कर उसके मनमें हिंसाका सञ्चार हो आया। वह कुणालको विज्ञत कर अपने पुत्रको राज्यका भावो अधीश्वर वनानेके निमित्त मन हो मन कोई उपाय सोच रही थी। उस समय राजा कुछ अन्यमनस्क हो पढ़े। कुणालकी विमाताने इसी अवसरमें अपना मतलव गांठ लिया। पत्नमें जहां 'अधीउ' लिखा था, वहां उसने अपनी आंखों- के काजलसे एक ओर विन्तु वैठा कर 'अ'धीउ' अर्थात् अन्धा होओ, ऐसा बना दिया। पीछे राजा अशोकने भी उसे दुइरा कर पढ़ा नहीं और स्वनामाङ्कित मोहर मार कर पत्न उज्जयिनी नगर भेज दिया।

इधर कुणालने पहले पितृनामाङ्कित पत पाते ही उसे सहसा मस्तक पर धारण किया, पीछे किसी वाचक द्वारा उसे पढ़वाया। पत्न पढ़ते ही पत्नपाठक एकदम विषण्ण हो पड़ा। कुणाल उसे विषण्ण देख स्वयं पत्न पढ़ने लगे। पत्नमें 'अ'धीउ' ऐसा देख उन्होंने सोचा, कि हमारे मीयवंशमें कोई भी गुरुका आदेश लङ्घन नहीं करते। अंतपन यदि भाज मैं उसे लङ्घन कर्क, तो सभी मेरे हुणान पर चलेंगे; खुतरां गुरुका आदेग कदापि उल्लङ्घन नहीं कर सकता। इतना कह कर उन्होंने स्वयं तमशलाका द्वारा अपने दोनों नेत निकाल लिये। इधर भशोकको जन इसकी खतर जगी, तव वे अपने कुटलेख पर आत्माको धिकारते हुए शोकसागरमें निमान हुए।

वे विलाप कर कहते लगे, 'हाय! मेरी आशा पर आज पानी फेर गया, मैं जिसे युवराज वनाना चाहता था वह आज स्रदास वन वैठा। मेरे मनकी आशालता मन-हीमें मुरका गई।' इस प्रकार चिन्ता करके अंशोकने जुणालको एक समृद्धिशाली ग्राम दान किया। अब जुणाल वहीं रहने लगे।

कुछ दिन बाद उन्हें शरत्श्री नाम्नी ख्रीसे एक पुल उत्पन्न हुआ । कुणाल विमाताका मनोरथ व्यथं करनेके लिये राज्यलाभार्थ पारलीपुल गये । वहां जा कर उन्होंने अपने गीतवाद्यसे सवको मुख्य कर दिया । इस प्रकार सर्वोंकी उन्होंने वाह्याद्दी लूटो । राजाको भी इसका पता लग गया । उन्होंने अन्यगायकको अपने प्रासादमें बुलवाया और पर्वेंको आड़में बैठ कर वे उनका गान खुनने लगे । अन्धेने वड़े खुरीले खरसे गीत गाया । अन्तिम गीतमें उन्होंने कहा, 'हाय ! चन्द्रग्रसका प्रयौल, विन्दुसार का पील अशोकश्रीका पुल यह अंधा आज दर दर भीख मांगता फिरता है।' राजाने गान सुन कर अधिसे कहा, 'तुम कौन हो १' अधिने जवाव दिया, 'महाराज ! मैं आप-का पुल कुणाल हूं। मैं आपके ही आदेशसे अधा हुआ है।'

राजाने इतना सुन कर पर्दा हटा दिया और अश्रुपूर्ण नयनोंसे उन्हें आलिङ्गन किया, वाद फिरसे पूछा, 'वत्स! तुम क्या चाहते हो?' कुणालने जवाब दिया, 'पितः! मेरे एक पुत उत्पन्न हुआ है, आए उसीको राजसिंहासन पर अमिषिक करें, यहो मेरे एकान्त प्रार्थना है।' राजाने पुत्र कुणालकी वात पर सन्तुष्ट हो उसे स्वीकार कर लिया और महा समारोहसे पौतको अपने घर मंगवाया। इस पौतका उन्होंने 'सम्प्रति' नाम रखा।

इस समय यद्यपि 'सम्प्रति' की उमर कथी थी, तो भी राजाने अपनी वात पूरी करने तथा कुणालको प्रसन्न रखनेके लिये उस नन्हें वच्चेको राज्यमें अभिषिक किया। ज्यों ज्यों उसकी उमर बढ़ती गई, त्यों त्यों बुद्धि, विक्रम और विद्या आदि, राज़ोचित समस्त गुण भी बढ़ने लगे। उन्होंने जैनधर्म ग्रहण किया।

इस समय भमेविष्ठव उपस्थित हुआ । सुतरां सभी जैन पाटलिपुत्रमें एकत हुए । उन्होंने मिल कर एक संघ बुलाया जिसका नाम श्रीसङ्घ रखा गया। इस संघमें जैनधर्मशास्त्र संग्रहीत हुए। (परिक्षिष्टपर्व)

प्रियदशींक अनुशासनसे परिचय ।

बौद्ध और जैनग्रन्थसे अशोकका जो विवरण छिखा गया, उसमें प्रकृत वार्ते रहने पर भी उसमें अत्युक्ति और काल्पनिक वार्ते मिली हैं, इसमें सन्देह नहीं। इस कारण उनका प्रकृत परिचय जाननेके लिये उनके राज्यकालमें उत्कीण अनुशासनका ही अवलम्बन करना चाहिये। इन सब अनुशासनोंसे प्रियद्शींका जो अति संक्षिप्त परि-चय पाया गया है, वह नोचे लिखा जाता है।

अनुशासनसे प्रियदशीके वाल्यजीवनका हाल मालूम नहीं होता। उनकी गिरिलिपिमें लिखा है,कि वे पहले अति-शय मृगयाप्रिय और युद्धप्रिय थे। राजा होते ही वे वौद्ध-धर्मके अनुरागी नहीं हुए। पहले ये अतिशय निष्ठर और मांसप्रिय थे। १म गिरिलिपिमें लिखा है, 'सुपथ्यके लिये उनकी पाकशालामें प्रति दिन अनेक प्राणिवध होते थे। अभिपेकके ८ वर्षे वाद उन्होंने कलिङ्ग जीता। इस युद्धमें एक लाख पश्चास हजार आदमी वन्दी हुए और लाखसे ऊपर मारे गये।' इस संक्षिप्त विवरणसे मालम होता है, कि जब वे राजपद पर अधिष्ठित हुए थे, उस समय सारा भारतवर्ष उनके दखलमें न था अथवा वौद्ध और जैनोंके प्रति भी उनकी विशेष आस्था न थी। २री, ५वीं और १३वीं गिरिलिपिसे जाना जाता है—उनके शासनकालके चौदह वर्षके मध्य भारतवर्षका तृतीयांश उनके साम्राज्य-भुक्त हुआ था। इस समय उत्तरमें हिमालयकी पाद-- देशस्थ तराई, दक्षिणमें महिसुर और गोदावरीके उत्त-रांश, पूर्वमें बङ्गोपसागर और ब्रह्मपुतनद तथा पश्चिममें भारतवर्षेकी वर्त्तमान पश्चिमसीमा, इन सव भूभागोंमें उनका शासनदएड परिचालित होता था। सोमान्तवर्ती प्रदेशोंमें जो सब राजा राज्य करते थे और जो सब जन-. पद अवस्थित थे, उनका विषय १३वीं लिपिमें इस प्रकार लिखा है--

"विजवने मध्य ये देवताओं ने प्रिय प्रियद्शीं मुख्य-विजय हैं। उनने अधिकारमें तथा सर्व अपरान्त देशों में छः सौ योजनकी दूरी पर अन्तिओं क नामके राजा हैं। पीछे चार राजा तुरमय नामसे, अन्तिकिनि नामसे, राज्य करते हैं । दक्षिणमें चोड़, पाएड (पाएडा) ताम्वपनिय (ताम्रपणीं) और हिड़ राजाका भी राज्य है।"

यवन, काम्बोज, पेतेनिक, गन्धार, रिष्टिक वा राष्टिक, विश और वृजि, नामक और नामस्पति, भोज, अन्ध्र और पुछिन्दोंने उनकी अधोनता खीकार की थी।

दक्षिणसीमान्तर्वत्तीं अविजित देशोंके मध्य उनके अनु-शासनमें चोड़, पाएडा, सत्यपुत, केरलपुत और ताम्र-पणींका उल्लेख हैं।

शासनकी सुन्यवस्था करनेके लिये उन्होंने कई एक नियम चलाये थे। प्रत्येक प्रधान प्रधान शहर 'महामात्य' नामक कमचारियोंके अधीन रहता था। सारा साम्राज्य कई एक प्रदेशोंमें त्रिभक्त हुआ था। प्रत्येक प्रदेशका शासन करनेके लिये एक एक 'प्रादेशिक' नियुक्त थे। कितने प्रदेशोंको मिला कर एक राज्य गठित होता था। एक एक राज्य 'राजुक' नामक एक प्रधान कर्मचारीके भधीन था । राज्य कई एक प्रधान खएडोंमें विभक्त था जिनमेंसे पाटलिपुत, उज्जयिनी, तक्षशिला और तोसली नगर ही प्रधान थे। पाटलिपुतमें सम्राट्की निजकी राजधानी थी । उज्जयिनी, तक्षशिला और तोसलीका शासनभार एक एक राजकुमारके हाथ सुपुर् था। सम्राट्ने खराज्य तथा परराज्यका सम्याद् जानने-लिये 'प्रतिवेदक' नामक एक श्रेणीके कर्मचारी नियुक्त किये थे। उनका प्रधान काम था प्रजा और अमार्त्योंके गुप्त कार्यादि सम्राट्को जताना।

कलिङ्ग-विजयकालमें जो रक्तधारा वही थी, उससे अशोकके हृद्यका भाव विलक्कल वदल गया। इसी समयसे उनके हृद्यमें ममता और अहिंसावृत्तिने स्थान लिया।

वयोवृद्धि और ज्ञानवृद्धिके साथ प्रियद्शीं पहले वौद्धधर्मा जुरागी और पीछे एक कहर वौद्ध हो गये थे। वौद्धधर्म प्रचारके लिये उन्होंने एक भी कसर उठा न रखी थी। वे असि द्धारा ना वल प्रयोग द्वारा अथवा प्रलोभन दिखा कर अपना महत् उद्देश्य साधन करनेमें अप्रसर नहीं हुए। सब जीवों पर द्या और दान, साधु-सेवा और धर्म उपदेश ही उनके धर्म प्रचारका प्रधान उद्देश्य था।

उन्होंने दशवें वर्षमें भोषणा कर दी थी, पहले सुख-सम्मोगके लिये जो विहारयाता होती थी, वह अवसे धर्मयातामें परिणत हुई।' ध्रमण, ब्राह्मण और बौद्धेंके साथ साक्षात्, दीन दरिद्वींको दान, धर्ममचार और धर्म-जिहासाके लिये ही इस धर्म पालाकी सृष्टि हुई। वारहवें वपंमें सम्राट्ने धर्म प्रचारका यथोचित प्रवन्ध किया और उसी वर्ष उनका धर्मानुशासन लिपिवद हुआ। जीवोंके प्रति अहिंसा, ब्राह्मण, श्रमण और कुटुम्बोंके प्रति सद्भावहार, वितामाता, गुरुजन और युद्धींकी शुश्र्वा आदि सद्धर्मपालनार्थं आज्ञा उनके राज्यमें प्रचारित हो गई। राजुक और प्रादेशिकोंको भी हुकुम दिया गया, कि राज-कार्य-निर्वाह और धर्मार्थप्रचारके लिये उन्हें प्रति पांचवें वर्षे अपने अपने इलाकेमें घूमना पड़ेगा। पिता, माता, वन्धुवान्धव, ज्ञाति, ब्राह्मण और अमणोंकी शुश्रूवा, जीवीं पर द्या और अपभएडोंके उत्पर निन्दाविमुखता आदि सदमें राज्यमें जारी है वा नहीं, इसके प्रति लक्ष्य रलना होगा। प्रजाका अभिप्राय, अमात्य वा पञ्चायतका विवाद, प्रवञ्चनाकी कथा सुनानेके लिये जब चाहें, तब प्रतिवेदकगण (उनके सम्राट्में)-के समीप जा सकते हैं। राजा, चाहे लानेको वेठे हों, चाहे अन्तःपुरमें हों, सुस्रोद्यान-में हों सभी समय प्रतिवेदकगण उनके सभीप जा सकते हैं। सभी कार्य शीव्र सुसम्पन्न होनेके लिये ही सम्राट ने पेसा हुकुम जारी किया था।

उस समय भी यज्ञयूपमें यथेए पशुवध होते थे। यज्ञके िल्ये पशुवध ब्राह्मणधर्म निन्दित नहीं है, वरन् अनुष्ठे य, है। सम्राट्ने तमाम घोषणा कर ही, 'आहारके लिये जीववध करना अकर्तस्य है। यज्ञयूपमें जीवनाश करना भी उचित नहीं। रन्धनशालामें खानेके वास्ते कोई जीवहत्या नहीं होगी।

प्रियदर्शीन केवल अपने ही राज्यमें नहीं, दूरहेशीय विभिन्न खाधीन राज्योंमें भी मानव और साधारण पशुकी प्राणरक्षाके लिये दी प्रकारके चिकित्सालय खोले थे। जहां औषध नहीं मिलती थी, वहां उन्होंने नृतन बीज बुनवाया था। उनके आदेशसे जनसाधारणके हितार्थ नाना स्थानोंमें कृप प्रस्तुत हुए थे।

उनके धर्मानुशासनका प्रचार होता है वा नहीं और Vol. XIV, 189 जनसाधारण तदमुसार कार्य करते हैं वा नहीं, उसका परिदर्शन करनेके लिये प्रियद्शींने अभिषेकके तेरह वप वि वाद 'धर्ममहामात्य' नामक कुछ असात्य नियुक्त किये।

इस समय प्रियद्शींका चित्त जनसाधारणकी भलाई-के लिये आप ही आप आकृष्ट हुआ था। इस समय उन्होंने जो सद्धमें चलाये, उनकी मूल नीति इस प्रकार

१ जीवीं पर दया, २ पिता माताकी शुश्रूषा, ३ वन्धु और हातिवर्ग के प्रति सद्घावहार, ४ ब्राह्मण और श्रम-णोंको दान और शुश्रूषा, ५ दीन और नौकरोंके प्रति सद्घावहार, ६ विधर्मियोंके प्रति निन्दाविमुखता, ७ श्रम, भावशुद्धि, कृतहता और दृढ्भकि।

गिरिलिपिकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वे चौदह वप तक एक कट्टर वौद्ध रहे थे। ब्राह्मण्य-धर्म में लालित पालित हो कर ब्राह्मणधर्म के प्रति भी उनके अनुरागमें कमी न थी। अधिक सम्मव है, कि आजी-वक जैनसंसम से उन्होंने पहले अहिंसाधर्म की शिक्षा की, परन्तु उनकी वयोवृद्धि और ज्ञानवृद्धिके साथ वौद्धाचार्यों प्रभावसे वे भी धीरे धीरे वौद्ध हो गये।

दाक्षिणात्यमें महिस्रको अन्तर्गत चित्तलदुर्ग के अधीन सिद्धापुर नामक एक स्थान है, वहांसे जो गिरि- लिपि आविष्कृत हुई है उसमें इस प्रकार लिखा है,—

देवताओं के प्रिय (प्रियद्शीं) - ने कहा है, ढ़ाई वर्ष से ऊपर मैं उपासक था; किन्तु उस समय कोई भी खेटा न की। छः वर्ष क्यों, उससे भी अधिक समय तक मैं सङ्घमें उपगत रहा। उस समय मैंने वृद्धिसाधनके लिये वेष्टा की है। जो सब मजुष्य (ब्राह्मण) जम्बूद्धीपमें सत्य समक्षे जाते थे, वे अभी देवताओं के साथ भूठे साचित हुए।

प्रियद्शींने टीक किस समय वौद्धधर्म प्रहण किया मालूम नहीं। उनकी १३वीं गिरिलिपिमें लिखा है, कि उन्होंने अभिषे कके आठ वर्ष वाद कलिङ्गको जीता। वहां बहुत प्राणीहत्या देख कर उन्हें भारी दुःख हुआ। उसी समयसे उनका ध्यान धर्म पथको और आकृष्ट हुआ। इस हिसाबसे अनुमान किया जाता है, कि अभिषे कके दशवें वर्षमें वे उपासक हुए। पालि महावंशके मतसे राज्यलाभके चार वर्ष वाद अशोकका अभिषेककार्य सम्पन्न हुआ। यदि इसीको सत्य मान लिया जाय, तो राज्यलाभके कमसे कम चौदह वर्ष वाद उन्होंने बौद्ध्यमें अवलम्बन किया था। निग्लीवके अनुशासनमें लिखा है, कि अभिषेकके चौदह वर्ष पीछे त्रियदर्शींने कोणोगमन नामक गतबुद्धके पूर्व-स्थित स्तूपको वर्द्धित किया। यद्दे रियाकी गिरिलिपिसे भी जाना जाता है, कि अभिषेकके बौस वर्ष वाद उन्होंने बुद्धशाक्यके जन्मस्थान लुम्बिनी प्राममें आ कर बुद्धकी पूजा की और उस ग्रामको बुद्धके उद्दे श्यसे निष्कर कर दिया।

प्रियद्शी ने वौद्धशास्त्रका प्रचार करनेके लिये भी विशेष चेपा की थी, जयपुरके अन्तर्गत भावासे जो गिरि-लिपि आविष्कृत हुई है उसमें साफ साफ लिखा है--

"राजा प्रियदशीं मागधसङ्घका अभिवादन करते हुए कहते हैं, 'आप लोग निरापद समृद्धिकी इच्छा करते हैं। आप लोगोंको मालूम है, कि मैं युद्ध, अमें और सङ्घके प्रसाद और शुभको कामना करता हूं। भगवान युद्धने जो कुछ कहा है, सवो का उसका पालन करना उचित है। जहां तक सक् गा, वहां तक में इसका अवश्य प्रचार कह गा। ऐसा होनेसे सद्धमें चिर्ध्यायी होगा। अमैपर्याय ये सव हैं—विनयसमुत्कर्ष, आर्यवस, अनागतभय, मुनिगाधा, मौनेयसूल, उपतिष्य-प्रश्न और लाघुलोवादमें मुषावाद, भगवान बुद्ध कर्त्तृक परिभाषित। मेरी इच्छा है, कि बहु भिक्ष और भिक्षुणीगण इस अमै पर्यायका अविरत अवण और ध्यान करें। उपासक और उपासिका लोग भी ऐसा ही करें। मैंने अपना अभिप्राय यहां पर इस लिये प्रकट किया, कि जनसांश्रारण मेरे इच्छासे अवगत होवें। "

उक्त धर्मपर्याय वा धर्मशास्त्रोंमेंसे कुछका माभास इस प्रकार पाया गया है, चिनय-समुत्कर्ण बिनयपिटक-का सारांश प्रातिमोक्ष, अनागतभय स्वपिटकका अंगु-त्तर निकायशाखाका, 'आरण्यकानागतभयस्त्त', उपतिष्य-प्रश्न-चिनय पिरकका महावग्गस्थ 'शारिपुलप्रभ' मुनि-गाथा—स्वपिटकके सुत्तनिपातके अन्तर्गत 'मुनिगाथा' नामक १२वां स्व ; लाघुलोवादमें मृषावाद—मजिमम-निकायका अध्वलिका राहुलोबाद नामक १६ स्व । सिहलके दीपवंश और महावंशमें भी लिखा है, कि मशोकके समय २य धर्मसङ्गीति हुई थी भीर उसमें बुद्धके उपदेशमूलक सभी शास्त्र संगृहीत हुए थे।

केवल खराज्यमें ही नहां, विदेशमें धर्मप्रचार करने-के लिये भी प्रियद्शी ने विशेष यक्त किया था। अन्तिओक (Antiochus), तुरमय (Ptolemy), अलिकसुन्दर (Alexander) आदि यवनराज शासन करते थे, इजिप्त ग्रीस आदि उस दूरवत्तीं देशोंमें भी प्रिब-दर्शीने धर्मप्रचारक मेजा था। सासरेमकी गिरिडिपिमें २५६ विबुध वा धर्मप्रचारकोंका उल्लेख है। सिंहलके दीव-वंशमें १० प्रधान धर्मप्रचारकोंके नाम हैं तथा ने किस किस देशमें भेजे गये थे, उसका भी उहु व है। यथा-काश्मीर और गान्धारमें महक्तन्तिक (मध्यान्तिक). महिपमें (महिसुरमें) महादेव, वनवासी (वा उत्तर कणाड़ामें)रक्षित, अपरान्तदेशमें वाहिकदेशीय धर्मरक्षित, महाराष्ट्रमें महाधर्मरक्षित, योनदेशमें (सिरीया और भन्यान्यं श्रीकराज्यमें) महारक्षित, हिमवन्तमें मज्जम (मध्यम), खुवर्णभूममें (ब्रह्म मलय आदि स्थानों में) सेन भौर उत्तर तथा सिहलमें महेन्द्र (महिन्दो)।

प्रियदर्शीकी वयोवृद्धि और राज्यवृद्धिके साथ उनकी दया भी विश्वन्यापिनी हो गई थी। उनकी ५वीं स्तम्न-लिपिमं इस प्रकार लिखा है,—"देवताओं के राजा प्रिव-दशीं कहते हैं, अभिषेक २६ वर्ष वाद निम्नलिखित जीवीं-का वध रोक दिया गया—शुक, सारिका, अलुन, चक्र-वाक, हंस, नान्दोमुखी, जतुका, अम्वाकपीलिका, ददी, अनठिका, मतस्य, बेदवेयक, गङ्गापुतक, संयुद्धमतस्य, कफटशल्यक, पन्नसस, समर, पण्डक, ओकपिएड, पल-सत, श्वेतकपोत, श्राम्यकपोत ; भजका) छागी, पड्का (भेड़ी), शूकरी, शर्मिणी वः दुःधवती ये सभी अवश्य हैं। उनके छः महोनेसे कम उमरवाले शावक भी अवध्य हैं। बधि-कुक्कुट मत काटो, भूसीसे जीव मत दग्ध करो । अनिष्टार्थ या हिंसार्थ वनको भिनसे मत जलाभी । जीव द्वारा अन्य जीवका पोपण मत करो। तीन चातु-र्मास्यमं, पौषपूर्णिमामं, चतुर्दशी, पश्चदशी भौर प्रतिपद्में तथा प्रति उपवासके दिन मछली मत मारो, इन दिनों उसकी विको मत करो । अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा, तिष्य और पुनर्नेसु नक्षत्रयुक्त दिनोंमें, तोन चातुर्मास्यमें, और पर्नके दिन वृष, अज, मेष, शूकर और अन्यान्य जीवोंको विधया मत करो। तिष्य और पुनर्नेसुमें, चातुः मांस्य पूर्णिमामें और चातुर्मास्य पक्षमें अध्व वा गोको लाञ्छित मत करो।"

वौद्ध धर्मावलम्बी और वौद्धोंके प्रति अनुरक्त होने पर भी वे ब्राह्मण और श्रमणके प्रति भक्ति दिखलाते थे। बौद्ध होनेके बाद उन्होंने यज्ञीय पशुवधको निन्दा की है। 'जो सब मनुष्य जम्बूद्धीपमें सत्य समक्ते जाते थे, अभी बे सब देवताओंके साथ असत्य समक्ते जाने लगे' इत्यादि उक्ति द्वारा ब्राह्मण्यधर्मके ऊपर कटाक्ष करने पर भी वे बिद्धान् ब्राह्मणों का यथेष्ट आदर करते थे।

ने अपने जीवनके शेष पर्यन्त वौद्ध थे वा नहीं, कह नहीं सकते। उनके अमिषेकके बीस वर्ष वाद आजीवक जैनीं-के प्रति भी उनका अच्छा वर्त्ताव श्रा, यह वरवारकी लिपि-से जाना जाता है। इस कारण कोई कोई अनुमान करते हैं, कि अशोकने जीवनके शेपमें जैनधर्म अवलम्बन किया था। जैनप्रन्थसे जाना जाता है, कि अशोकके जीते जी जब राज्यकाल शेव हो चला तथा उन्होंने अपने दुधमुं हे पौत सम्प्रतिको राजसिंहासन पर विठाया, उस समय पाटलि-पुतमें श्रीसङ्घ स्थापित हुआ था और पहले जिस प्रकार बौद्धशास्त्र संगृहीत हुए थे, इस सङ्घर्में जैनाचार्यीने भी उसी प्रकार जैनशास्त्रका संप्रह किया था। पीत दशरथकी जो लिपि पाई गई है, उसमें भी आजीवक जैनव्यक्तियों-के ऊपर उनका अनुराग देखा जाता है। यह दशरथ और सम्प्रति दोनों एक व्यक्ति थे वा नहीं, यह आज तक रिथर न हो सका है । जो कुछ हो, प्रियदर्शी अपनी शेषाबस्थामें अथंबा उनके समी वंशधर बौद्ध थे, ऐसा अनुमान नहीं किया जाता।

प्रियदशीका कालनिक्षण ।

प्रियद्शींका काल ले कर वहुत मतमेद चल रहा है। अबदानके मतसे बुद्धनिवाणके १०० एक सौ वर्ष बाद अशोकने राज्यलाम किया। महावंशके मतसे इन अशोक को नाम कालाशोक था। कालाशोकके वाद उनके दश और नौ पुत्रोंने मिल कर ४४ वर्ष राज्य किया। इन नवींमें अन्तिम राजा धनमन्द थे। चाणक्यने उनकी हत्या

करके चन्द्रगुप्तको जम्बूद्दीपका सिंहासँन प्रदान किया। चन्द्रगुप्तने ३४ वर्ष राज्य किया। पीछे उनके लड़के विन्दु-सार २८ वर्ष राजा रहे। अशोक उन्होंके पुत्र थे। युद्ध-निर्वाणके बाद और अशोकके अभिषेक पर्यन्त २१८ वर्ष बीत सुके थे।

महाव शको मतसी ५४३ ई०सन्को पहले बुद्धदेवने निर्वाणलाभ किया। अतएव महाव शके अनुसार ३२५ ई॰सन्के पहले अशोकका राज्याभिपेक हुआ । इस हिसावसे ३५३ ई०सन्के पहले विन्तुसारका और ३८७ ई॰सन्के पहले चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक काल माटे तौर पर स्थिर किया जा सकता है। किन्तु पाश्चात्य-पुराविदोंमेंसे किसीका भी महायंशके ऊपर विश्वास नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है, कि वुद्धनिर्वाणसे महा-वंशमें जो अब्द गिना गया है, वह विलकुल विश्वास-जनक नहीं है। कारण, बुद्धनिर्वाणकाल ले कर नाना देशीय बौद्धोंमें बहुत मतमेद हैं। वृद्ध देखों। इसीसे उन्हों-ने बुद्धनिर्वाणाब्द् पर निर्भंद न करके चन्द्रगुप्त पर लक्षा किया है। जिंहनस् आदि किसी किसी पाश्चात्य ऐति-हासिकने महावीर अलेकसन्दरके समसामयिक जिन Sandrocottusका उल्लेख किया है, पाश्चात्य पुराविदोंका विश्वास है कि वे ही मौर्यराज चन्द्रगुप्त हैं। ३२५ ई०सन्के पहले अलेकसन्दर पञ्चनद्में उपस्थित हुए थे। पाञ्चात्य पुराविदोंका विश्वास है, कि नीमवंशोद्भव चन्द्रगुप्त-ने उनसे मुलाकात की थी। अलेकसन्दरने वष्ट हो कर उन्हें प्राणद्एडका आदेश दिया। आसिर उन्होंने भाग कर अपनी प्राणरक्षा की। पीछे वे ३२० ई०सन्के पहले राजा हुए थे। चन्द्रगुप्त शब्दमे बिस्तृत विवरण देखी। इस प्रकार मारतके अङ्गरेज ऐतिहासिकोंने अलेकसन्दर और चन्द्रगुप्तको भित्ति करके भारतके कालकमिक इतिहास-का पसन किया है।

अशोक जब चन्द्रगुप्तके पौत हैं, तब उन्होंने अलेक-सन्दरके बहुत समय बाद सिहासन प्राप्त किया होगा, इसमें जरा भी सन्दे ह नहीं। विशेषतः प्रियद्शींके अनु-शासनमें अन्तिकौक (Antiochus), तुरमय (Ptolemaeu-), अन्तिकिनी (Antigonus) मक (Magas) और अलेकसन्दर (Alexander) इन देशनासी यवन (Greek) राजोंका नामोल्लेख हैं। उक्त पांच ध्यक्तियोंके कालसम्बन्धमें अध्यापक लासेनने इस प्रकार लिखा है,— Antiochus of Syria—(राज्यकाल) २६०-२४७ खु०पू०।

Ptolemy Philadelphus—্থে-২৪৩ জৃত্ত।
Antigonus Gonatus of Macedonia—২৩৫২৪২ জৃত্তুত।

Magas of Cyrene—२५८ खु॰पूर्वाब्दमें मृत्यु ।
Alexander of Epirus—२६२-२५८ खु॰पू॰ ।
उक्त पांच राजा २६०-२५८ खु॰पू॰के मध्य जीवित थे
इसीसे सेनार्टने कहा है, कि प्रियदशींके राजत्वके १३वें
वर्षमें जो लिपि उत्कीर्ण हुई, उसमें जब उक्त पांचोंके नाम
मिलते हें, तब निश्चय है, कि वह लिपि भी २६०-२५८
ई॰सन्के मध्य प्रचारित हुई थी । इस हिसाबसे २६६ ई॰
सन्के पहले उनका अभिषेक हुआ और उसके चार वर्ष
पहले अर्थात् २७३ खु॰पू॰में उन्होंने राज्यलाम किया।

अशोकका चरित-धमालीचना।

वुद्धके आविभावकालसे ले कर आज तक भारतवर्ष-में जितने राजा राज्य कर गये हैं, वियद्शींके साथ किसी-की तुलना नहीं की जा सकती। जीवनके प्रथमांशमें जिस उद्धतप्रकृति, नरशोणितलिप्सा और खगणिवह पने उसे समाजके मध्य घृण्य और निन्दास्पद कर डाला था, वह दुए प्रकृति सम्भोग और समृ दकी गोदमें लालित पालित हो किस प्रकार संशोधित और विशुद्ध हो कर अतुलनीय और आदर्शस्त्रक्ष हो सकती है, अशोकका चरित उसका प्ररुष्ट परिचायक है। उन्होंने राजनीतिक कार्यकुरालता, युद्धनिपुणता और लोकचरित्त-शिक्षासे भारतविश्रुत अकवरको भी पराजय किया है। वीर्यवत्ता और राज्यवृद्धिके पक्षमें कोई भी मुगल सम्राट् उनके मुकावलेके नहीं थे। अकवर जिस प्रकार विद्वे पियोंके साथ संस्रव रखते थे, देशीय विदेशीय सभी परिडतोंका आदर सम्नान करते थे, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी प्रजाको जिस प्रकार समानभावमै देखते थे, अशोकने भी उसी प्रकार प्रीस आदि दूरदेशोंके साथ सम्बन्ध रखा था। ब्राह्मण वा श्रमण सभी पिएडतों-की यथेष्ट भक्तिश्रद्धा की थी ; हिन्दू, वौद्ध, जैन आदि

सर्वोका समान उपकार किया था। बुद्धदेवने जो धम चलाया, वह भारतके कुछ ही अंशोंमें आवद था; परन्तु अशोकके समय बुद्धका वह उपदेश केवल भारतवयमें ही नहीं, पशिया, यूरोप आदिमें भी फैल गया था। अशोकके के समय भी बौद्धधर्ममें कोई विशेष जटिलता न थी। उनके अनुशासनोंमें सब जीवों पर द्या और जनसाधा-रणको प्रतिपाल्य साम्यनोति ही उपदिए हुई है।

यूरोपीय पुराविदोने अशोकके साथ कनप्रानटाइन, सलोमान, लुइ-दि-पायस आदि प्रातःश्मरणीय धार्मिक राजाओंकी तुलना की है।

वियदास — एक प्रन्थकार । भक्तमोद्तरङ्गिणी, भक्तिप्रभा और उसकी टीका, भागवतपुराणप्रकाश और श्रुतिस्त-तात्पर्यामृत नामक इनके वनाये हुए प्रन्थ आज भी मिलते हैं।

प्रियधाम (सं॰ क्ली॰) प्रियं धाम यस्य । प्रियस्थान, प्यारा स्थान ।

प्रियपति (सं पु) प्रियस्य पतिः पालकः। प्रियपालकः। प्रियपालकः। प्रियपाल (सं । ति । जिसके साथ प्रेम किया जाय, प्यारा।

प्रियप्राय (सं॰ क्ली॰) प्रियस्य प्रायो यत । प्रियनाम्य, मधुर वचन । पर्याय—चटु, चाटु ।

प्रियप्रेप्स (सं० ति०) प्रियं प्रेप्सतीति प्रं-आप-सन-उ। इष्टार्थोद्युक्त, उन्मुख, उत्सुक।

त्रियभाषण (सं ० क्ली०) त्रियस्य प्रियवाषयस्य भाषणं कथनं। प्रियवाषयकथन, मधुर्वचचन वोलना।

प्रियभाषिन् (सं॰ ति॰) मधुर वचन वोलनेवाला, मीडी वात कहनेवाला ।

प्रियमधु (सं॰ पु॰) प्रियं मधु मद्यं यस्य। वल्लरामका एक नाम।

प्रियमाल्याजुलेपन (सं० ति०) प्रियं माल्यकनुलेपनञ्च यस्य। १ माल्याजुलेपनप्रिय, जो माला और अनुलेपन-को वहुत पसन्द करते हों। (पु०) २ स्कन्दाजुन्तरमेद। प्रियमेघ (सं० पु०) १ अजनीदके एक पुतका नाम। २ २ यक्षोपेत ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

प्रियम्मविष्णु (सं० ति०) अप्रियः प्रियो भवति भू-कर्त्तरि-खिष्णुच् (कर्त्तरि भुगः खिष्णुच् खरुञ्जो । पा ३।२।४०) अविय प्रियमचिता, जो पहले त्रिय नहीं था, पीछे त्रिय हुआ।

प्रियरथ (सं॰ बि॰) प्रोयमाण रथयुक्त, जिसे विद्या रथ हो।

प्रियक्तप (सं ० ति०) प्रियं कृषं यस्य । १ इयक्तप, जिसका कृष अत्यन्त मनोहर हो । (क्वी०) र मनोहर कप, सुन्दर चेहरा।

त्रियरोजशाह—दिल्लीश्वर सुळतान फिरोजशाहका संस्कृत नाम। गयाधाम और अळवारके निकटवर्ती मचाड़ोमें प्राप्त तथा उनके आदेशसे उत्कीर्ण और संस्कृत भाषामें छिखित शिळालिपिमें उनका यह नाम पाया जाता है।

फिरांनशाह देखी।

प्रियवक्ता (सं० ति०) प्रिय यश्चन बोलनेवाला, मधुर-भाषो ।

प्रियवचन (सं० ह्वी०) प्रियं वचनं कर्मधा० । १ प्रिय वाक्य, मधुर वर्चन । (ति०) प्रियं वचनं यस्य । २ प्रियवादी, प्रिय वचन बोळनेवाळा । ३ भक्तिमान् रोगी ।

प्रियमत् (सं० ति०) प्रिययुक्त ।

भियवर (सं॰ ति॰) अतिप्रिय, सवसे प्यारा ।

प्रियवणीं (सं ० ति ०) प्रियः वणीं यस्याः गौरादित्वात् कीष् । प्रियंगुः कंगनो ।

प्रियनही सं क्षी॰) प्रिया मनोज्ञा बल्ली छता। प्रियंगु, भैगनो।

प्रियवाच् (सं क्षी) प्रियवाक् । प्रियवाक्य, प्रियवचन । प्रियवाद (सं पु) प्रियः वादः । प्रिय वाक्य, मीठी बोली । प्रियवादिका (सं क्षी) १ बाद्ययन्त्रभेद, एक प्रकारका वाजा । २ मधुरमाविणी, वह औरत जो मीठी मीठी वातों से दूसरों की मीह लेती है।

प्रियवादिन् (सं॰ ति॰) प्रियं मनोज्ञ वदतीति बद्-णिनि। मनोज्ञ वका, मीठा वोलनेवाला।

प्रियवादिनी (सं० स्त्री०) शारिका, एक प्रकारकी मैना।
प्रियवत (सं० पु०) प्रियं वतं यस्य। १ खायम्भुव
मनुके एक पुतका नाम। इनके भाईका नाम उत्तानपाद था। भागवतमें इसका विषय यों लिखा है—
ये प्रजापति थे। विश्वकर्माकी कन्या वहिंप्मतीसे इनका
विवाह हुआ था। वहिंष्मतीसे इनके अनीध सादि दश

पुत्र उत्पन्न हुए थे । परन्तु विष्णुपुराणसे जाना जाता है, कि प्रियवतने कर्दमकी कन्याकी व्याहा था। उसके गर्भसे सम्राट् और कुश्नी नामकी हो कन्याएं तथा दश पुत उत्पन्न हुए थें। इन दश पुत्नोंके अलावा इनके दूसरी स्त्रीसे उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुताने जन्म त्रहण किया था। फिर भागवतमें दूसरी जगह लिखा है, कि वे ही पुत मन्वन्तरके अधिपति हुए। प्रियवतके प्रथमोक्त दश पुर्तोमेंसे तीन पुत्र संन्यासी और अन्य सात पुत राजा हुए थे। प्रियवत सारी पृथ्वीके अधीश्वर थे। उन्होंने पृथ्वीको सात भागोंमें विभक्त कर उन्हें भएने पुर्तीको दे दिया था। उन सात भागोंके नाम ये हैं.--जम्बूदोप, प्रश्नदीप, शालमलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रीञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। इन द्वीपींके चारीं और लक्षण-समुद्र, इक्षसमुद्र, सुरासमुद्र, वृतसमुद्र, श्लीरसमुद्र, दक्षि-समुद्र और जलसमुद्र हैं। उन सात द्वीपोमेंसे जम्बूद्वीप-के अधिपति प्रियनत थे। उन्होंने अपने ज्येष्ट पुत अनोधको अपना उत्तराधिकारी बनाया और इध्मजिह्नको स्थद्वीप, यहवाहुको ग स्मलीद्वीप, हिरण्यरेताको कुश्-द्वीप, घृतपृष्ठको कौञ्चद्वीप, मेधातिथिको शाकद्वीप और वीतिहोत्नको पुष्करद्वीप दिया था। प्रियमत सभी बातों-में पुरुपश्रेष्ठ थे। भागवतके मतानुसार इन्होंने ।यारह अवु^९द वर्षों तक राज्यशासन किया था। आभी पृथ्वी पर प्रकाश होता है और आधी पर अन्धकार—इस प्रकारको अपने साम्राज्यमें प्राकृतिक विपमता देख कर प्रियवतने अन्धकार दूर करनेकी प्रतिका की, 'में अपने तेजसे रालिको भी दिन कर दूंगा। इसके वाद द्रुत-गामी ज्योतिर्मय रथ पर चढ़ कर इन्होंने द्वितीय सूर्यके समान सूर्यका पीछा किया। उस समय रथचकसे जो सात गड्ढे वने, वे ही सात समुद्र हुए और उन्हीं सात समुद्रोंसे घिरे रहनेके कारण पृथ्वीके सात भाग हुए । पुराणोंमें जो इनके विषयमें लिखा है, उनका यही असि-भाग है, कि राजा प्रियवतने जो सब कार्य किये हैं, वे ईश्वरके विभा दूसरे किसीसे सिद्ध नहीं हो सकते। अन्तर्मे ये आत्मज्ञान प्राप्त कर मोक्षके अधिकारी हुए थे।

(ति •) २ त्रतित्रव, जिसे त्रत व्यारा हो ।

प्रियशालक (स**ं**० पु०) पियासाल ।

प्रियश्रवस् (सं ॰ पु ॰) प्रियं श्रवः श्रवणं यस्य । पर-मेश्वर ।

प्रियस (सं • ति •) १ भभिल्पित बस्तुप्रद । २ प्रिय-तमाभारा ।

प्रियसस (सं ॰ पु॰) प्रियः सखा च हितकारित्चात् टच् (राजाहः सिख्मिष्टच्) १ खदिर, खैरका पेड़ । प्रिय-श्चासौ ससा चेति । २ प्रियवन्धु । ३ प्रियका सखा, प्रियका वन्धु ।

त्रियसङ्गमन (सं० हो)) प्रिययोः सङ्गमनं यत । १ प्रिय भौर सङ्कोतस्थान, त्रियाका मिलनस्थान । २ कश्यप भौर अदितिके मिलनस्थान, वह स्थान जहां कश्यप और अदितिका मिलंन हुआ था।

त्रिवंसत्य (सं • क्ली •) त्रियं सत्यमिति कर्मधा • । १ सुनृतवाक्य । (ति •) त्रियं सत्यं यस्य । २ सत्यप्रिय । प्रियसन्देश (सं • पु •) प्रियं सन्दिशति प्रिय-सम्-दिश-अण् । १ सम्पक्रयृक्ष, चम्पाका पेड़ । प्रियः सन्देशः कर्मधा • । २ प्रियसम्बाद, खुश खबरी ।

प्रियसालक (सं॰ पु॰) प्रियः सालः ततः सार्थे कन्। असनवृक्ष, पियासाल नामक पेड़।

प्रियस्तोत्त (सं ॰ ति ॰) जिसके स्तोत्त अतिशय प्रिय हो । प्रियस्तामी—हारितस्तृतिके टोकाकार । विवादरत्नाकरमें चण्डेश्वरने इनका नामोल्लेख किया है ।

प्रिया (सं ॰ स्त्री ॰) प्रिय-टाप् । १ नारी, स्त्री । २ भार्या, पत्नी । ३ पत्ना, इलायची । ४ मल्लिका, चमेलो । ५ मिद्रा, शराव । ६ वार्त्ता, संदेश । ७ पञ्चाक्षर-छन्दो- विशेष, एक वृत्तका नाम जिसके प्रत्येक वरणमें पांच अक्षर होते हैं । ८ प्रे मिका स्त्री, माशुका ।

प्रिया—बाराणसीराज रामचन्द्रकी पत्नी। वौद्धग्रन्थादि-में जहां कपिलवस्तुनगर-प्रतिष्ठाका प्रसङ्ग आया है, वहां इनका विवरण मिलता है। बालिकाबस्थामें इन्हें सफेद कोढ़ हुआ था। इस पर इनके आत्मीयवर्गने इन्हें जङ्गल-में छोड़ दिया था। वहीं रामचन्द्रने उनका रोग शान्त कर उनसे विवाह कर लिया।

प्रियाल्य (सं ० ति०) प्रिया-आल्या यस्य । प्रिय, प्यारा । प्रियातिथि (सं ० ति०) आतिथेयी, अतिथिको सत्कार-करनेवाला । प्रियात्मञ (सं• पु•) स्वनामस्यात प्रसहजातीय पक्षि-भेद, चरकके मतानुसार पसह जातिका एक पक्षी। प्रियात्मा (सं• पु०) उदारचेता, बद्द जिसका चित्त उदार और सरल हो।

प्रियादि (सं ॰ पु॰) प्रिया आदि करके पाणिन्युक्त शब्द् गण, यथा—प्रिया, मनोक्का, कल्याणी, सुसगा, दुर्भगा, भक्ति, सचिवा, खसा, कान्ता, समा, श्लान्ता, चपला, दुहिता, वासना, तनया।

प्रियाम्बु (स°० पु०) प्रियं अम्बु यस्य । १ आम्रमृक्ष, आमका पेड़ । २ आम्रफल, आमका फल । ३ दृश जल, बढ़िया पानी । (ति•) ४ जलप्रिय, जिसे जल बहुत प्रिय हो ।

प्रियाल (सं० पु॰) वृक्षभेद, पियार (Buchanania Latifolia) इसके नीजको चिरौं जी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—चार, अस्रष्ट, खर-कृत्य, ललन, चारक, बहुवल्क, सन्नद्र, तापसप्रिय, स्नेहवीज, उपवद, मक्षवीय, पिबाल, वहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकद्र, धनुःपट।

इसके पेड़ भारतवर्ष भरके विशेषतः दक्षिणके जंगलों-में होते हैं । हिमालयके नीचे भी थोड़ो ऊँचाई तक इसके पेड़ मिलते हैं, पर विशेषतः यह विन्थ्य पर्वतके जंगलोंमें पाया जाता है । इसके पेड़में चीरा लगानेसे एक प्रकारका बढ़िया गोंद निकलता है जो पानीमें बहुत कुछ घुल जाता है ।

वैदाकके मतसे इसका गुण—पित्त, कप और अल-नाशक। फलका गुण—मधुर, गुरु, स्निग्ध, सारक, बायु, पित्त, दाहज्वर और तृष्णानाशक। मज्जाका गुण— मधुर, वृष्य, पित्त और वायुनाशक, हृदा, दुर्जर, स्निग्ध, विष्टम्भी और आमवर्द्ध कं। (भावप्रकाश) विशेष विष-रण पियार शब्दमें देखी।

पियाला (सं॰ स्त्री॰) प्रियाल-टाप्। द्राक्षा, दास । प्रियावत् (सं॰ ति॰) १ प्रियायुक्त, जोस्रवाला । २ कृत्यायुक्त ।

प्रियासाधु गोविन्द्कृत सिद्धान्तरत्नाख्यभाष्यपीठ नामक प्रन्थके टीकाकार।

प्रियास्यमती (सं ० स्त्री०) काश्मीरराज चित्ररथकी ...

प्रियाह्म (सं । स्त्री ।) कंगुनिका, कैंगनी नामका अन्त । प्रियेषिन् (सं ॰ व्रि॰) प्रियामिलापी, हितामिलापी। त्रियोदित (सं ० क्ली •) प्रियं उदितं कर्मधा० । चाटुवाक्य, मोठी वचन।

प्रिवीकौंसिल (अ ० पु॰) १ ने सब व्यक्ति जो किसी वड़े शासकको शासनके काममें सहायता देते हैं। २ रङ्ग-लैएडमें वहांके राजाको परामर्श देनेवालींका वर्ग । इसका सङ्गठन १५वीं शतान्दीमें हुआ था । इस वर्गमें कुछ पुराने पदाधिकारी और कुछ राजाके चुने हुए लोग रहते हैं। फिलहाल इसमें राजकुलसे सम्बन्ध रखनेवाले लोग, वड़े वड़े सरकारी कर्मचारो, रईस और पाइरी गादि सम्मिलित हैं। देसे स्नोगोंको संख्या २००से ऊपर है। इस वर्गके दो विभाग हैं। एक विभाग शासनकार्यमें राजाको सलाह देता है भौर दूसरे विभागमें न्याय-विभागके सर्वप्रधान कर्मचारी होते हैं। प्रधम विभाग-के परामशैदाताओंके नामके साथ राइट-आन्रेखुलकी उपाधि खती है। वूसरा विभाग भगीलके कामके लिये भक्तेजी राज्य भरमें भंतिम न्याबालय है, यहीं पर -आबिरी फैसला सुनाया जाता है। शासनकार्यमें अव प्रिबी कौंसिलकी बिशोव समता रह न गई और उसका स्थान प्रायः मन्त्रीमएडलने ले लिया है।

मी (सं ० इती०) १ मीति, भेम। २ कान्ति, जमक । ३ रच्छा। ४ तृति । ५ तर्पण।

त्रीसक (हिं पु॰) कदस्य, कद्म।

श्रीण (सं । ति ।) त्र (नश्च पुराणे त्रात् । पा ५।४।२५) इत्यस्य वार्तिकोक्त्या ख /् पुरातन, पुराना १३ प्रीति-युक्त, जो प्रसन्न हो । ३ प्रीणनकारक, प्रसन्न करनेवाला । '४ नमें 🖟

प्रीणन (सं ० क्ली०) प्रो-स्वार्थे णिच्-ल्युट् । ओरिति लुक्) तृप्तिकारण। s पर्याय-तपण, अवत। श्रीणस (सं o go) गएडक ।

प्रीत (सं o ति o) प्रीञ् श्रीणने का । प्रीतियुक्त । पर्याय---इप्ट, मत्त, तृप्त, प्रहुश, प्रमुद्ति, तृपित ।

शीतात्मा (सं o go) शिवका एक नाम।

प्रीति (सं ॰ स्त्री॰) प्रीञ्-भावे किन् । १ तृप्ति, वह सुख जो कितो १९ नत्त्रको देखने या पानेसे होता है। संस्कृत

पर्याय—सुद्, प्रमद, हर्ष, प्रमोद, आमोद, सम्मद, आनन्दशु, आनन्द, शर्में, सात, सुख। २ कोमपत्नी, कामकी एक स्त्री-का नाम जो रतिकी सौत थी। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि किसी समय अनद्भवती नामकी एक वेश्या थी। वह माघमें विभृति द्वादशीका विधिपूर्व क त्रत करनेके कारण दूसरे जन्ममें कामदेवकी पत्नी हो गई थी। ३ फलित ज्योतिषके २७ योगों मेंसे दूसरा योग । इस योगमें सब प्रकारके शुभ कर्म विधेय हैं । जो मनुष्य इस योगमें जन्मग्रहण करता, वह नीरोग, सुखी, विद्वान् और अन-वान होता है। ४ प्रसन्नता, आनन्द, हर्ग। ५ प्रेय, स्नेह।

प्रीतिकर (सं o ति o) करोतीति कृ-र-करः प्रीत्याः करः। प्रीतिजनक, प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला ।

प्रीतिकर—एक विख्यात शास्त्रवेत्ता भौर पण्डित । इन्हों -ने सामवेदप्रकाशन, ऊहगानदर्पण, अहागानदर्पण और वेयद्र्पण नामक वैदिक प्रन्थों की रचना की है।

प्रीतिकर्भन् (सं० ह्यी०) प्रीतिहेतु कर्म, वह कार्य जी किसीको सन्तुष्ट करनेके लिये किया जाय।

भोतिकारक (सं ॰ वि॰) मी तेका देखी।

प्रीतिकृट (सं ० क्ली०) ग्राममेद् ।

प्रीतिज्ञ्या (स • स्त्री॰) प्रीति-ज्ञूपते सेवते इति जुप-सेब-ने क-टाप । अनिरुद्धकी पत्नी उपाका नाम।

प्रीतितृष् (सं ॰ पु॰) प्रीत्यधिष्ठाता देवतामेद् ।

प्रीतिद (सं॰ पु॰) प्रीति द्दातोति दा-(भातोऽउप-सर्गे क:। पा ३।२।३) इति क। १ भएड, भांड़। संस्कृत पर्याय—वासन्तिक, केलिकिल, वैहासिक, बिद्बक, प्रहासी। (ति०) २ हर्ष, सुख और प्रेमदायक।

प्रीतिवृत्त (सं॰ ह्यो॰) शीत्या दत्तमिति । १ शीतिपूर्वक दत्त वस्तु, प्रेमपूर्वक दिया हुआ दान । २ वह पदार्थ की सास अथवा ससुर अवने पुत्र या पुत्रवधूको, या पति अपनी पत्नीको भीगके लिये दे।

भीतिदान (सं ० पु॰) प्रीतिदत देख । प्रोतिदाय (सं॰ पु॰) प्रीत्या दीयते दा कमेणि-धर्म्। प्रीतिपूर्वक दत्त, प्रमपूर्वक दिया हुआ दान। प्रीतिधन (सं० ह्री॰) प्रीत्या देय' धनं । भ्रीतिपूर्वेक देय

धन ।

प्रीतिपात (सं॰ पु॰ / जिसके साथ प्रीति की जाय, प्रेम-भाजन, प्रेमी।

प्रीतिमोज ,सं० पु०) वह भोज या खान-पान जिसमें मिल और वन्धु आदि सम्मिलित हों।

प्रीतिभोज्य (सं० त्नि०) प्रीत्या भोज्यम्। प्रीतिपूर्वक भक्षणीय।

प्रीतिमत् (सं॰ ति॰) प्रीतिः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। प्रीतियुक्त, प्रेम रखनेवाला।

प्रीतिमय (सं · लि ·) प्रीतिकर, सन्तोपमय।

प्रीतिमान (हिं० वि०) प्रीतिमत् देखो ।

श्रीतिय (सं० स्त्री० श्रेम।

मीतिवचस् (सं॰ क्षी॰) प्रीतियुक्तं वचः। प्रीतिपूर्वक बाक्य।

प्रीतिरीति (सं ॰ स्त्री॰) प्रे मपूर्ण व्यवहार, परस्परका प्रे म सम्बन्ध ।

प्रीतिवर्द्धं न (सं ० कि०) प्रीतिवर्द्धं यति-वृध-णिच्-रुयु । १ सन्तोषवद्धं क । (पु०) २ विष्णुका एक नाम । प्रीतिसङ्गति (सं ० पु०) वान्धवसमिति ।

प्रीत्यर्थ (स'० अध्य०) १ प्रीतिके कारण, प्रसन्न करनेके वास्ते। २ लिये, वास्ते।

प्रुष्ट (सं• ति॰) प्रुप-क । दग्ध, जला हुआ । प्रुष्ठ (सं• पु॰) दुग्ध, दूध ।

मुख (सं • पु •) मुख्याति स्निद्यति पिपर्त्ति वेति प्रुप (भग्नभुषि वटिकणि खटिषिशिभ्यः इन् । वण् १।१५१) इति कन् टाप् । १ ऋतु । प्रोपति दहतीति । २ दिवाकर, सूय । ३ जलविन्दु ।

प्रुष्वा (सं० स्त्री०) प्रुष्व-टाप्। जलविन्दु।
प्रुष्त (अं० पु०) १ किसी वातको ठीक उहरानेके लिये
दिया जानेवाला प्रमाण, सबूत। २ किसी वस्तुका
असर होनेसे पूरा बचाव। इस अर्थमें यह शब्द यौगिक
शब्दों के उत्तर पदके रूपमें व्यवद्वत हुआ करता है।
जैसे वाटर प्रूष्त, पायर प्रूष्त आदि। ३ किसी छपनेवाली चीजका वह नमूना जो उसके छपनेसे पहले
मशुद्धियां आदि दूर करनेके लिये तैयार किया जाता है।
प्रम (अं० पु०) लट्टूके आकारका एक प्रकारका यन्त्र
जो सीसे आदिका बना होता है। यह समुद्रकी गह-

राई नापनेके काममें आता है। इसे रस्सीके एक सिरेमें जहां नापके निशान छगे होते हैं, बांध कर समुद्रमें डाल देते हैं और इस प्रकार उसकी गहराई नापी जाती है। कभी कभी इसके नीचेका अंश इस तरह बना दिया जाता है, कि उससे समुद्रकी तहके कुछ कंकड़-पत्थर वालू या घों घे आदि भी उसके साथ छग कर ऊपर चले आते हैं।

प्रोक्षक (सं० ति०) प्र-ईक्ष-ण्वुल्। दर्शक, देखनेवाला। प्रोक्षण (सं० क्षी०) प्रोक्षते पश्यत्यनेनेति प्र ईक्ष-करणे-ल्युट्। १ चक्षु, आंख। भावे ल्युट्।२ दर्शन, देखने-की किया।

प्रेक्षणीय (सं० ति०) देखनेके योग्यः।

प्रेक्षा (सं ० स्त्री०) प्रकर्षण ईक्षते ययेति प्र-ईक्ष- (गुरो-श्च हलः । पा शशर०३) इति अ-टाप् । १ प्रज्ञा, बुदि । २ नृत्येक्षण, नाच तमाशा । प्र-ईक्ष-भावे अ, टाप् । ३ ईक्षण, देखना । ४ शाखा, डाली । ५ शोभा । ६ किसी विषयकी अच्छी और बुरो वातों का विचार करना । ७ द्रिष्ट, निगाह ।

प्रेक्षागार (सं क्ली) प्रेक्षायाः आगारं ६-तत्। राजाओं-केमन्त्रणार्थं गृह्, राजाओं आदिके मन्त्रण करनेका स्थान।

प्रेक्षायह (सं० क्री४) प्रेक्षागार, मन्त्रणायह ।
प्रेक्षादि (सं० पु०) प्रेक्षा आदि करेके पाणित्युक्त शब्दगण,
गण यथा—प्रेक्षा, हलका, वन्धुका, ध्रुवका, क्षिपंका,
न्यग्रोध, इकट, कङ्कट, सङ्कट, कटक्प, धृक, पूक, पुट, मह,ः
परिवाप, यावास, धुवका, गर्स, कूपक, हिरण्य । इन
शब्दोंके उत्तर 'इनि' प्रत्यय लगता है।

प्रेक्षावत् (सं• ति•) प्रेक्षा विद्यतेऽस्य अस्त्यर्थे मतुप्र मस्य व । समोक्ष्यकारी, सुविवेचक

प्रे झासंयम (सं ॰ पु॰) जैनोंके अनुसार सोनेसे पहले यह देख लेना कि इस स्थान पर जीव आदि तो नहीं है।

प्रेक्षित (स°० बि०) प्र-ईक्ष-क । दूष्ट, देखा हुआ । प्रेक्षित (स°० बि०) प्र-ईक्ष-तृच् । दर्शक, देखनेवाला ।

प्रोक्षिन् (सं ० ति०) प्रोक्षा अस्त्यस्य (प्रोक्षादिभ्य इति । पा ४।२।८०) इति इति । प्रोक्षायुक्त । वुद्धिमान्, समन्त-

दार ।

में हु (सं • ति •) १ कम्पित, जी कांप उठा हो। २ . हिलता या भूछता हुआ। (पु •) ३ भूछना, पेंग छेना। ४ एक प्रकारका सामगान।

में हूण (सं क्रीं) प्र-इख-त्युट् ततोणत्वं। १ अच्छी तरह हिलना या फूछना। २ अठारह प्रकारके रूपकोंमें-से एक प्रकारका रूपका। इसमें स्वधार विष्कुम्मक और प्रवेशक आदिकी, आवश्यकता नहीं होती और इसका नायक नीच जातिका हुआ करता है। इसमें प्ररोचना और नान्दी नेपध्यमें होता है और यह एक अङ्कमें समाप्त होता है। इसमें धीररसकी प्रधानता रहती है।

प्रें हुत् (सं ० ति०) प्र-इंखि गती-शतः । १ चळनविशिष्ट । २ संसक्तिविशिष्ट।

प्रेङ्कनीय (स'० ति०) प्र-रख-अनीयर् । प्रकर्षकपसे कलनयोग्य, जो अच्छी तरह चलने लायक हो ।

प्रेङ्का (सं० स्त्री०) प्रेङ्खते गभ्यतेऽनयेति प्र-इक्षि गती करणे घञ् दाप्। १ दोला, भूलना। २ हिलना। ३ याता, भ्रमण। ४ नृत्य, नाच। ५ अञ्चगति घोड़े-को बाल।

में द्वित (सं० वि०) प्र-इखि-का। कम्पित, जो कांप रहा हो।

प्रदेशेल (सं० पु०) दोलन, भूलना।

में द्वीलन (सं ० ज्ञी०) प्रे द्वीत्यते चल्यतेऽनेनेति प्रे द्वील करणे वयुट्। १ दीलन, फूलना । भावे-क्युट् । २ कम्पन, हिलना, कांपना ।

प्रे ह्वोलित (सं० ति०) प्रे ह्वोल-क । दोलित, कांपता हुआ, हिलता हुआ।

प्रेण (सं० पु०) १ गति, वाल । २ प्रेरणा करना ।
प्रेत (सं० पु०) प्र-इ-क । १ मृत व्यक्ति, मरा हुमा
मनुष्य। २ नरकस्य जीवमेद, नरकमें रहनेवाला प्राणी । ३
- पिशाचोंकी तरह एक कल्पित देवयोनि जिसके शरीरका
- रंग काला, शरीरके वाल खड़े और स्वस्त बहुत ही
विकराल माना जाता है। ४ बहुत ही चालाक और
- कंजूस भादमी। ५ पुराणानुसार वह कल्पित शरीर जो
मनुष्यक्रो मरनेके उपरान्त प्राप्त होता है।

विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि जब मनुष्य मर जाता है भौर उसका शरीर जला विया जाता है तब वह अति-Vol. XIV 191

वाहिक वा लिङ्गशरीर धारण करता है और जब उसके उद्देश्यसे पिएड आदि दिया जाता है, तव उसे घे तशरीर प्राप्त होता है। इसी प्रेत-शरीरको भोगशरीर भो कहते हैं। यह शरीर मरनेके उपरान्त सपिएडी होने तक रहता है और तन उसके वाद वह अपने कमेंके अनुसार स्वर्गं या नरकमें जाता है । जव तक संपिएडीकरण नहीं होता, तब तक में तशरीर रहता है। यही कारण है, कि उसके उद्देश्यसे श्राद्याविमें पितादिपदका उल्लेख न हो कर अविपदका उल्लेख हुआ करता है। आद्येको-हिए मास्तिक श्राह्म आदि घेतश्राह्म माना गया है। इन सव श्रादां में 'पितादि' पदका उल्लेख न हो कर 'प्रेत अमुक तदुई शसे श्राद करता हूं' पेसा उल्लेख होगा। मृत्युके वाद पूरकपिएड द्वारा में तदेहके अङ्गमत्यङ्गादिका पूर्ण होता है। जिन लोगोंकी श्राद्ध बादि या बौदुध्व-देहिक क्रिया नहीं होती, वे भे तावस्थामें ही रहते हैं। कुछ लोग अपने कर्मके अनुसार औदुर्ध्वदेहिक क्रिया हो जाने पर भी प्रत ही वने रहते हैं।

मे तदेहावस्थामें शीत, बात और आतप जन्य भया-नक यातना होती है। में तके उद्देश्यसे श्राद्धादि कार्य करने होते हैं, यह पहले ही कहा जा जुका है। इस में त श्राद्धके अधिकारी कीन है, उसका विषय यथाक्रम नीचे लिखा जाता है। उन सब अधिकारियोंको छोड़ कर यदि कोई में तके उद्देश्यसे श्राद्ध करे, तो श्राद्ध पतित तो नहीं होता, पर प्रत्यवाय होता है। यथार्थ में ताधि-कारी यदि श्राद्ध न कर सके, तो उसकी अनुमति ले कर दूसरा कर सकता है, इसमें कोई दोष नहीं।

प्रतिकाय के अधिकारिग्रीका यथाक्रम । पुरुषके पश्चम

१ ज्येष्ठपुत । १० दौहित । १ कि प्र ५ कि प्र ६ कि प्र ५ कि प्र ६ कि प्र ६

८ बाग्दसाकन्या। १७ किनछ वैमालेय-पुता। ६ दत्ताकन्या। १८ ज्येष्ठ वेमालेय पुता।

१६ पिता ।	३४ भागिनेय।
२० माता ।	३५ मातृपक्ष सपिएडज्ञाति ।
२१ पुत्रवधू ।	३६ मातृपक्ष समनोदकज्ञाति ।
२२ पौली।	३७ असवर्णा भार्या।
२३ दत्तापौती ।	३८ अपरिणीता स्त्री।
२४ पौतवधू।	३६ श्वशुर ।
२५ प्रपौती।	४० जामाता ।
२६ दत्ता प्रयोती ।	४१ पितामही भ्राता ।
२७ पितामह ।	४२ शिष्य। .
२८ पितामही ।	४३ ऋत्विक्।
२६ सपिएड क्रांति।	८८ आचार्य ।
३० समानोदक ।	8५ मिल ।
३१ सगोत ।	४६ पितृमित ।
३२ मातामह।	४७ एक ग्रामवासी सजातीय
	गृहीतवेतन ।

३३ मातुल ।

४८'सजातीय।

क्रीकं पक्षमे ।

१ ज्येष्ठ पुतः।	१५ पिता ।
२ कनिष्ठ ⁻ पुत ।	'१६ भ्राता ।
३ पौत ।	१७ भगिनी-पुत्र ।
४ प्रपौत ।	१८ भर्त्तु -भागिनेय ।
५ कस्या ।	१६ भातृपुत ।
६ वाग्दता कन्या ।	२० जामाता।
७ दत्ताकन्या ।	'२१'भचु [°] मातुल ।
८ दौहित ।	ं२२'भत्तृ [°] शिष्य ।
६ सपत्नीपुत ।	(२३ पितृसमानोद्क ।
१० पति ।	२४ पितृवंश ।
११ स्नूपा (पुतवधू)।	२५ मातृसमानोक्क ।
१२ सपिएड ।	२६ मातुवंश ।
१३ समानीदकः।	२७ द्विजोत्तम ।
१४ सगोत ।	

पुरुष और स्त्री दिनका यथाक्रम प्रेत-श्राद्धांधिकारी-का विषय लिखा गया है। ये सव व्यक्ति पर पर अधि-कारी हैं अर्थात् यदि ज्येष्ठ पुत न रहे, तो किनिष्ठ पुत अधिकारी हो सकता है, ऐसा जानना चाहिये। दिने अधिकारीके नाम जो दिये गये हैं उससे यही समकता चाहिये, कि में तश्राद अवश्य कर्तन्य है।

किस किस कमेंसे प्रतयोंनि होती है तथा उनकी गित, आहार और कर्मादि कैसे हैं, उसका विषय शासमें इस प्रकार छिखा है। पहले कहा जा चुका है, कि जिनकी औदध्येदेहिक किया नहीं होती, वे प्रत हो कर रहते हैं। कर्मविशेषसे किसी किसीकी औद्ध देहिक किया करने पर भी वे प्रत हो वने रहते हैं। इसे वोलचालमें भूत' होना कह सकते हैं। वैदिकविधानमें औदुध्येदेहिक कियाका अभाव और विष्णुके प्रति हो परहनेसे बहुत दिन नरक भीग करनेके वाद प्रत शरीर होता है।

पद्मपुराणमें लिखा है—

"ततो वहुतिथे काले स राजा पश्चतां गतः ।
वैदिकेन विधानेन न लेमे सौद्धध्वदेहिकम् ॥
विष्णुप्रद्वेपमालेण युगानां सप्तविंशतिम् ।
भुषत्वा च यातनां यामीं निस्तीर्णनरको नृषः ॥
समया गिरिराजन्तुं पिशाचोऽभूत् तदा महान् ॥"
('पाशोत्तरस्य १६ भ०)

वहुत दिनोंके वाद उस राजाकी मृत्यु हुई। उसकी वैदिकविधानसे औद्ध्वदेहिक क्रिया नहीं हुई और वे विष्णुद्धे थी थे, इस कारण वहुत दिन तक नरकका भोग कर प्रेतदेहको प्राप्त हुए। मर कर भूत हुआ है, ऐसा जो लोग कहा करते हैं, वह और कुछ भी नहीं हैं, सिवा इसके, कि उसकी औद्ध्वदेहिक क्रिया नहीं हुई, इस कारण वह प्रेतदेहको प्राप्त हुआ है। प्रेतका क्रप

"विकरालमुखं दीनं पिशङ्गनयनं भृशं। ऊर्द्ध मृद्ध जक्तणाङ्गं यमदूतिमवापरम्॥ ज्वलज्ञिद्धञ्च लम्बोष्ठं दोर्घजङ्गशिराकुलम्। दीर्घाङ्घि शुक्ततुग्डञ्च गर्चाक्षं शुक्तपङ्कुजम्॥" (पाशोसरख॰ १६-अ०)

'इनके विकराल वदन, अतिशय दीन, 'चक्षु पिङ्गलकर्ण और कोटरप्रविष्ट,'केश ऊद्दर्ध्व, अङ्ग कृष्णवर्ण, जिहा अत्यन्त चञ्चल, लम्बोछ, जङ्घा दीर्घ अतिशय शिराल, अङ्घिदेश दीर्घ, शुष्क 'तुएड और यमदूतको 'तरह'शुष्क पञ्जर होते हैं।

प्रेतत्वाद जनक कर्म ।—जो अग्निमें घृताहुति नहीं देते भौर विष्णुकी अर्थना नहीं करते, जो कभी सुतीर्वर्मे

नहीं जाते-भौर न शात्मविद्यालाम ही कर सकते हैं, वे हीं प्रे तदेहको प्राप्त होते हैं। जो कभी भी दुःखीको सुवण, बख, ताम्बूल, रत्न, फल, जल आदि नहीं देते ; जो लोभ-वशतः ब्रह्मस्य या स्त्री-धन हरण करते हैं तथा वश्चक, धूर्तं, नास्तिक, वकभार्मिक, मिथ्यावादी हैं ; जी वाल, वृद्ध, भातुर भौर स्त्री-विषयमें निर्देय हैं, अनि भौर विप-दाता हैं , जो भूठों गवाहों देते हैं , जो अगम्यागामी, प्राम्य-याजक, व्याधके आचरणयुक्त, वर्णाश्रमधर्मविहीन, सर्वदा भावकद्रव्य सेवनमें रत, विष्णुद्धे थी, श्राद्धान्नभोजी, असत्-कर्मरत, सब प्रकारके पातकयुक्त, पायएडधर्मचारी, पुरी-हितकी गृत्ति द्वारा जीविका निर्वाहकारी, पिता, माता, स्तुषा, अपत्य और स्वदारत्यागी, लुब्ध, नास्तिक तथा भर्म दूपक हैं ; जो युद्धस्थलमें प्रभुका परित्याग कर भाग साते हैं; जो शरणागर्तीकी रक्षा नहीं करते; जो महाक्षेत-में दान छेते तथा जो परद्रोहरत, त्राणिहिसक, दैवता, गुरुनिन्दक और कुप्रतिप्राही हैं, वही व्यक्ति प्रे तादि शरीर भारण करते हैं। इन संव कुकर्मशाली व्यक्तियोंको इह-लोक तथा परलोकमें कभी भी सुख नहीं मिलता।

प्रतिके भाहारके विषयमें लिखा है, कि वे श्लेप्मा, मूल, पुरीप और स्थिपोंका मल भोजन करते हैं। अपित्रत गृह उनका वासस्थान है। जहां पवित्रता और शौच रहता है, यहां प्रतिगण नहीं रहते। पतित व्यक्तिसे सेवित वस्तु, विलमन्त्रविहीन वस्तु, नियम और व्रत-होन द्रव्य ये लोग मक्षण करते हैं। फलतः अपवित्र वस्तुमात ही इनका भोज्य और अपवित्र गृहादि ही वास-स्थान है, ऐसा जानना चाहिये।

प्रतिवश्वरण ।—जो ब्राह्मण श्रूद्रान्न खाते और वेद्विदु-क्राह्मणकी अवहेला करते हैं तथा जो देव और
आहाणके वृत्तिहारी हैं, वे प्रतियोगिको प्राप्त होते हैं।
जो माता, पिता और साधुजनका परित्याग करते हैं,
उन्हें भी प्रतियोगि होती है। अयाज्य याजन, याज्यका
परिवर्जन, मद्यपान, स्त्री-सेवा, वृथामांसमोजन, द्विज और
देवता निन्दा, शुक्तप्रहण कर कन्याविकय, गच्छित वस्तुका अपहरण, मृत अकिको शय्या आसनादि ब्रह्मण, कुठक्षेत्रमें दानब्रह्मण, पितत और चर्डालसे दानब्रह्मण, मासिक
नवश्राद्धमें पार्वीयानन भोजन अवस्यादनक को ना

गुरुपत्ता हरण, भूमि भीर कन्यापहरण, विध, शङ्क, तिल भीर लवणविकय, मद्य, तक, दुग्ध भीर द्धिविकय तथा नित्य भीर नैमित्तिक कियामें भदान आदि, जो इन सब कर्मीका अनुग्रान करते हैं, वे प्रेतयोनिको प्राप्त होते हैं। (अनिदुराण)

प्रे तत्वामावकरण अर्थात् जो सव कम करनेसे मे तयोनि नहीं होती है वह यों है,—जिन्होंने एकराब, विराव वा कच्छूचान्द्रायणादि वतका अनुष्ठान किया है तथा जो वतपरायण हैं, उन्हें कभी भी प्रे तयोनि नहीं होती! मिष्ठ अब और पान-दान, देवद्विजमें भक्ति, प्जादि याग-यक्का अनुष्ठान, सव भूतों पर दया, मान और अपमानमें तुल्यता, शबु और मिलमें समझान, काञ्चन और छोष्ट्रमें तुल्यता, देवता और अतिथि-प्जामें रत, अकोध, रद, ऐश्वर्य, तृष्णा और आसङ्कता त्याग तथा तथिमें भ्रमण इत्यादि सत्कार्य करनेसे कभी भी प्रे तयोनि नहीं होती!

शास्त्रीक विधानानुसार जी व्यक्ति सत्कार्यका अनु-ग्रान नहीं करते, वे ही प्रेत बनते हैं। सत्कर्मके अनु-ग्रानसे इसकी निवृत्ति होती हैं। गयामें प्रेतिशला पर पिएडदान करनेसे इनका उद्धार होता है।

पद्मपुराणके उत्तरखएडमें जो पञ्चमे तोपाख्यान है उसमें प्रेतका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रेतकर्म (सं० क्की०) प्रेतस्य कर्म ६-तत्। प्रेतकार्य। हिन्दुओं में दाह आदिसे छे कर सिपएडी तक जो कर्म किये जाते हैं उन्हें प्रेतकर्म कहते हैं।

> "शकृत्वा प्रेतकार्याणि प्रेतस्य धनहारकः। वर्णानां मद्धे प्रोक्तं तह्वतं नियतञ्चरेत्।"

> > (दायतस्व)

यथाविधान प्रेतने उद्देशसे श्राद्धादि कार्य करनेके वाद वह प्रेतका धनभागी हो सकता है। यदि कोई प्रेतकार्य किये विना प्रेतका धनग्रहण कर ले, तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

प्रतिकार्य (सं० ह्यी०) प्रतस्य कार्यम्। प्रतिदिश्यक कार्यं, प्रतिकर्म

नवश्राद्धमें पात्रीयान्त-भोजन, ब्राह्मणद्दनन, गो-वध, चौर्य, प्रेतकृत्य (सं ॰ ति ॰) प्रेतस्य कृत्यं। प्रेतकार्य ।

प्रतेगाः (सं ० ति ०) प्रेतं गतः २-तत् । प्रेतयोनि- ! प्राप्त ।

ब्रे तगृह (सं ० क्ली०) प्रे तस्य गृहम् । १ श्मशान, मसान । २ वह स्थान जहां मृत शरीर रखे या गाडे जाते हैं। प्रेतचारी (सं०पुर) महादेव, शिव।

में ततर्पण (स'० क्लो०) में तस्य तर्पणं । में तके उद्देश्यसे तपण । मृत्युके वाद्से छे कर सपिएडीकरण पर्यन्त प्रति-दिन प्रतके उद्देशसे तप्ण करना होता है। प्रेतके उद्देश-से सतिल जलदान और प्रतिदिन तपंण करना कर्त्तव्य है। किन्तु प्रतितर्पणमें विशेषता है, कि महागुरुनिपातमें केवल प्रेतके उद्देशसे तर्पण करना होता है। जव तक सपिएडी-करण न हो, तव तक प्रेतके उद्देशसे तपंण विधेय है। उस समय दूसरे किसीका भी तर्ण नहीं करना होता .है। प्रतिदिनके कर्त्तेव्य तर्पणमें शुक्र और रविवारको तिलतपँण निपिद्ध हैं, किन्तु प्रेततपँणमें प्रतिदिन तिल द्वारा तर्पण करना होता है, इसमें कोई भी निपेध नहीं है। तर्पणके समय पितादिका उल्लेख न कर प्रेतपदका ही उल्लेख करनेको लिखा है। सामवेदियोंके लिये प्रेत-दर्पणमें 'अमुक गोलं प्रेतं अमुकदेवशर्माणं तर्पयापि' यज्ञविदयोंके लिये 'अमुक गोत प्रेत अमुक देवशर्गन् तव्यख' ऐसा कहना होता है। श्मशानमें जो जो व्यक्ति दाह करने जाचें, उन्हें प्रेतके उद्देशसे सतिल तिलतर्पण करना चाहिये, नहीं तो पापभागी होना पडता है।

(शुद्धितस्व)

प्रेतत्व (सं• क्वी॰) प्रेतस्य भावः त्व । प्रेतका भाव या धर्म।

प्रेतदाह (सं• पु॰) मृतकके जलाने आदिका कार्य। श्रेतदेह (सं १ पु० क्वी०) श्रेतस्य देहः । श्रेतशरीर किसी मृतकका वह किएत शरीर जो उसके मरनेके समयसे सपिएडी पर्यन्त उसकी आत्माको प्राप्त रहता है।

"कृते सपिएडीकरणे नरः संवत्सरात् परम्। प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रवद्यते॥"

(तिथितत्त्व)

मृत्युके एक वर्ष वाद सपिएडीकरण किया जाय, तो मृत न्यक्ति प्रतिदृहका परित्याग कर भोगदेहकी प्राप्त होता है। मृत्युके वादसे ले कर सपिएडीकरण तक प्रेत प्रेतनी (हिं० स्त्रो०) भूतनी, चुड़ैल।

शरीर रहता है। दशपिएड द्वारा इस में तदेहकी उत्पत्ति होती है, इसीसे दश पिएडका नाम पूरकपिएड पड़ा है।

मृत्युके वाद देह भप्मीभूत हो जाने पर घेतके उद्देशसे पहले जो पिएड दिया जाता है उससे बेतका शिर पूरा होता है। इसी प्रकार द्वितीय पिएडसे कर्ण, चक्ष् और नासिका; तृतीय पिएडसे ब्रीवा, स्कन्ध और वक्ष; चतुर्थ पिएडसे नाभि, लिङ्ग और गुद्द; पश्चम पिएडसे जानु, जङ्घा और पाद; पष्ट पिएडसे समस्त मर्मः सप्तम विएडसे समस्त नाडियां : अप्रम पिएडसे दन्त और लोम । नवमसे वीर्थ और दशम पिएडसे सभी अङ्गोंकी पूर्णता होती 🕻 । इस प्रकार दश पिएड द्वारा में तके शरीरका पूरण हुआ करता है। मृतव्यक्तिके मुंहमें जो आग देता है, उसीको यह पिएड देना पड़ता है। (शुद्धिताव)

में तधूम (सं • पु •) में तस्य धूमः ६ तत् । चिताधूम, वह धूआं जो मृतको जलानेसे निकलता है। प्रेतनदी (सं ० स्त्री०) प्रेततरणीया नदी । वैतरणी नदी। प्रेतोंको यह वैतरणी नदी पार कर यमलोक जाना होता है।

"यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी। ताञ्च तत्तु ददाम्येनां भ्रष्णां वैतरणीश्च गाम्।।" (श्राद्धपर्व)

जिससे प्रेत इस नदीको सुखसे पार कर सके, इसके लिये श्राद्धके पहले वैतरणी करनी होती है। वैतरणी देखी।

वेतनाह (सं ० पु०) यमराज । प्रेतनिर्यातक (सं०पु०) धन लेकर प्रेतका दाह आदि करनेवाला, मुरदा-फरोश ।

प्रेतनिर्हारक (सं • पु •) प्रेतं निर्हरति गृहात् श्मशान-भूमि निर-ह-ण्बुल्। शवहारक, वह जो मृतकको उठा कर श्मशान तक ले जाय । जो रुपये ले कर शववहन करते हैं वे पतित हैं। उनके साथ एक पंक्तिमें वैठ कर नहों खाना चाहिये। धर्मार्थ शव-वहन करनेमें विशेष पुण्य लिखा है।

"प्रेतनिर्हारकाश्चैव वजनीया प्रयत्नतः ।" (मनु) 'प्रे तनिर्हारको धनप्रहणेन नुनतु धर्मार्थ ।' (कुल्लुक) त्रेतपक्ष (सं० पु०) प्रेतिप्रयः पक्षः । गौण चान्द्र आश्विन कृष्णपक्ष, पितृपक्ष । यह पक्ष पितरों को अतिशय प्रिय है, इसीसे इसका प्रेतपक्ष नाम पड़ा है । इस पक्षमें मृत व्यक्तिका सांवत्सरिक श्राद्ध पार्व ण विधि द्वारा करना होता है । श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि मृतव्यक्तिके सिपण्डीकरणके बाद प्रत्येक वर्ष उसके उहे शसे पको-हिष्ट श्राद्ध करना विधेय है । किन्तु प्रेतपक्षमें मृत व्यक्तिका पकोहिष्ट न करके पार्वणविधिके द्वारा तेषुरुपिक श्राद्ध करना होता है । प्रेतपक्षमें प्रतिपदसे ले कर अमावस्था पर्यन्त, प्रतिदिन पितरों के उद्देशसे तिल तर्पण करना होता है और अमावस्थाके दिन पार्वण-विधानानुसार श्राद्ध विधेय है। रिव शुक्र आदि वार-को तिलतर्पण निषिद्ध नहीं है। प्रेतपक्षमें प्रतिदिन तिल-तर्पण किया जाता है। इस प्रेतपक्षका दूसरा नाम अपरपक्ष है।

प्रेतपटह (सं ॰ पु॰) प्रेतस्य पटहः। मरणकालमें वादनीय वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा जो किसीके मरनेके समय बजाया जाता है।

त्रेतपति (स'० पु०) प्रेतानां पतिः ६-तत् । यम । प्रेतपव त (सं० पु•) प्रेतोद्धारणार्थः पर्वंतः । गया तीर्थस्य, स्वनामस्यात पर्वंत ।

त्रे तषावक (सं० पु०) वह प्रकाश जो प्रायः दलदलों, जंगलों या किष्रस्तानोंमें रातके समय जलता हुआ दिखाई पड़ता है। इस घटनाको लोग भूतों और पिशाचोंको लीला समकते हैं।

में तिपिएड (सं० पु०) में ताय देयः पिएडः । मरण सिपएडीकरण पर्यंन्त में तसम्मदानक पिण्डाकार अन्न, अन्न आदिका बना हुआ वह पिण्ड जो मृतकके उद्देश-से उसके मरनेके दिनसे छे कर सिपण्डीके दिन तक नित्य दिया जाता है। प्रकिपएडको भी में तिपिएड कहते हैं। इस पिएएडे बारों में तदेह बनती है, इसीसे इसका में त-पिएड नाम पड़ा है। दशाहिक में तिपएडमें खथा शब्दका मंयोग नहीं करना चाहिये। दशिष्डसे सारी देहें पूर्वी हो जाती है। प्रतदह-दे लो। यह प्रतिष्ड हर किसीको देना उचित है। जो यह प्रतिष्डदान नहीं करते, वे नरकको प्राप्त होते हैं।

प्रेतिपिएडदानके बाद प्रेतके उद्देशसे स्नातके लिये जल और पीनेके लिये भीर देना चाहिये। 'प्रेताक स्नाहि पिय चेदं भीरं' यह कह कर प्रेतृके नाम गोलका उक्लेख करते हुए देना होता है। पीछे निम्नलिखित मन्त्र पढना होता है। मन्त्र यथा—

"श्मशानान्छद्ग्घोऽसि परित्यकोऽसि वान्धवैः। इवं नीरमिदं भीरं स्नात्वा पीत्वा सुजीमव ॥" (शुद्धितस्व)

प्रतपुर (सं • क्वी) प्रेतानां पुरम्। यमालय, यमपुर। प्रेतमाव (सं • पु •) प्रेतस्य भावः। प्रेतस्य, प्रेतस्य। प्रेतमेध (सं • पु •) प्रेतस्य मेधः ६ तत्। प्रेतोद्देश्यकः श्राद्धस्य यह, मृतकके उद्देशसे होनेवाला श्राद्ध।

प्रेतयह (सं• पु॰) एक प्रकारका यज्ञ जिसके करनेसे प्रेतयोनि प्राप्त होती है।

प्रे तराक्षसी (सं • स्त्री •) प्रे तार्ना पिशाचमेदानां राक्षसी व अपसपेणकारित्वात् । तुस्रसी कहते हैं, कि अहां तुस्रसी रहती है, वहां भूत प्रेत नहीं नाते । इसीसे उसका यह नाम पड़ा है ।

प्रेतराज (सं• पु॰) प्रेतानां राजा, दन् समासान्तः । १ यमराज । ये प्रेतोंके शुमाशुभ-फलका विचार कर जिसकी जैसी गति होती हैं, तद्युसार उसे वही गति प्रदान करते हैं। २ महादेव, शिव।

मे तलक्षण (सं॰ क्ली॰) अरिए लक्षण ।

प्रे तलोक (सं॰ पु॰) प्रे तानां लोकः ६-तत्। यमक्रीकः। प्रे तवन (सं॰ क्षी॰) प्रे तानां स्तानां वनमिवाधारत्वात्। समग्रान, मरघट।

प्रे तवाहित (सं॰ ति॰) प्रे तेन चाहितः भूताविष्ट, जिसें भूत लगा हो।

प्रेतिविधि (सं॰ स्नी॰) मृतकका दाह आवि करना । प्रेतिविमाना (सं• स्नी॰) पञ्च प्रेतिके विमानवाली भगवती।